अग्निपुराणम्

हिन्दीव्याख्योपेतम्

॥ श्रीः ॥

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला

१०६



अग्निपुराणम्

हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकार

आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी

निवृत्त प्राचार्य

श्रीहनुमत्संस्कृत महाविद्यालय, हनुमानगढ़ी, अयोध्या



चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

दिल्ली

प्रकाशक
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
३८ यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. २११३
दिल्ली ११०००७
दूरभाष : २३८५६३९१

प्रमुख वितरक
चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. १०६९
वाराणसी २२१००१
दूरभाष : २४२०४०४

कतिपय पुराण-ग्रन्थ

श्रीमद्भागवतम् 'अन्वितार्थप्रकाशिका'-टीकोपेतम्	**श्रीमद्भागवतम्** 'श्रीधरी'-'वंशीधरी'-टीकोपेतम् सम्पूर्ण : १-२ भाग	**श्रीमद्भागवतम्** 'श्रीधरी'-टीकोपेतम्		
श्रीमद्देवीभागवतम् 'पीताम्बरा'-भाषाटीकासहितम्	**हरिवंशपुराणम्** 'नारायणी'-भाषाटीकासहितम्	**श्रीमद्भागवतम्** 'चूर्णिका'-टीकोपेतम्	**श्रीमद्भागवतम्** 'सामयिकी'-भाषाटीकासहितम्	**श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम्** 'रामाभिनन्दिनी'-भाषाटीकासहितम्
श्रीमद्देवीभागवतम् मूलमात्रम्	**आनन्दरामायणम्** 'ज्योत्स्ना'-भाषाटीकासहितम्	**योगवाशिष्ठ-महारामायणम्** भाषाटीकासहितम् सम्पूर्ण : १-२ भाग	**गर्गसंहिता** 'प्रियंवदा'-भाषाटीकासहितम्	**शिवमहापुराणम्** 'शिवा' भाषाटीकासहितम्

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. ३७/११७ गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. ११२९
वाराणसी २२१००१
दूरभाष : २३३५२६३

मूल्य : सजिल्द ६००-००
पत्राकार ५५०-००
लेजर कम्पोजिंग
एस.पी. कम्प्यूटर्स, अयोध्या

मुद्रक
ए.के. लिथोग्राफर्स, दिल्ली
प्रथम संस्करण २००४ ई.

प्रस्तावना

भारतीय मनीषा इस अर्थ में विश्वास करती है कि वेद ज्ञानराशि का दूसरा नाम है। वेदार्थ के संरक्षण से ही भारत एवं भारतीय संस्कृति की सुरक्षा संभव है। वेद अपने आप में प्रमाणभूत हैं। 'तस्य निःश्वसितं वेदाः' इस श्वेताश्वतर श्रुति के अनुसार वे परमात्मा के निःश्वासभूत हैं। जिस तरह से कोई भी व्यक्ति अपने श्वास-प्रश्वासों का कर्ता नहीं होता है उसी तरह से परमात्मा भी अपने श्वासभूत वेदों के कर्ता नहीं हैं। अतएव वेदों को अपौरुषेय ही स्वीकार करना चाहिए। अपौरुषेय होने के ही कारण वेदों का स्वतः प्रामाण्य है। वेद जिस तरह से आज सुने जाते हैं उसी तरह से वे अनादिकाल से सुने जाते हैं। इसीलिए **'श्रूयते नित्यम् इति श्रुतिः'** यह वेद शब्द के पर्यायभूत श्रुति शब्द की व्युत्पत्ति स्वीकार की जाती है। वसिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव इत्यादि महर्षियों ने अनादिकाल से विद्यमान वेदों का अपने योग के बल पर साक्षात्कार किया था न कि उन लोगों ने वेदों का प्रणयन किया था। इसीलिए 'ऋषयः क्रान्तद्रष्टारः' यह ऋषि शब्द का लक्षण किया जाता है। इस तरह वेद भारतीय मनीषा के सर्वस्व हैं, स्वतः प्रमाण एवं अपौरुषेय हैं।

वेदों की ही व्याख्या सभी वेदाङ्ग करते हैं। वेदाङ्गों के माध्यम से वेदार्थावगति में सहायता मिलती है। वेद के स्वरूप का निरूपण करते हुए महर्षि कात्यायन कहते हैं—

'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्।'

अर्थात् वेदों के दो भाग हैं—मन्त्र भाग और ब्राह्मण भाग। मन्त्र भाग में कर्मकाण्ड का तथा ब्राह्मण भाग में ज्ञान का निरूपण किया गया है। इन दोनों भागों का वेदत्व समान रूप से अक्षुण्ण है।

वेदों के स्वरूप के विषय में विचारकों की विमति है। कुछ लोग केवल मन्त्रभाग को ही वेदत्व स्वीकार करते हैं। किन्तु उनकी धारणा सूत्रकार महर्षियों के विपरीत होने के कारण अनादरणीय है। वेदों के मन्त्रभाग के द्वारा इस अर्थ का प्रतिपादन किया गया है कि तत्-तत् देवताओं की अवधारणा कैसे की जाय। वेदों के ब्राह्मण भाग के द्वारा आराध्यदेव के स्वरूप, रूप, ऐश्वर्य आदि के प्रतिपादन पुरस्सर इस बात को बतलाया गया है कि परमदैवत श्रीभगवान् ही हैं। वे ही मानव जीवन के परमप्राप्य हैं। उस परमात्मा को प्राप्त करने वाले जीव का स्वरूप, परमात्मा की प्राप्ति के साधनों का स्वरूप, परमात्मा की प्राप्ति में बाधक तत्त्वों का स्वरूप तथा परमात्मा की प्राप्ति के फल का स्वरूप—इन्हीं सभी अर्थों का निरूपण वेदों के ब्राह्मण भाग का प्रतिपाद्य है। इन सभी अर्थों का समुदित नाम अर्थपञ्चक विज्ञान है। कहा भी गया है—

प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः।
प्राप्त्युपायं फलं प्राप्तेः तथा प्राप्तिविरोधि च॥
वदन्ति सकला वेदाः सेतिहासपुराणकाः।
मुनयश्च महात्मानो वेदवेदान्तवेदिनः॥

जिस वेद की इतनी महिमा बतलायी गयी है वे वेद अत्यन्त दुरूह हैं। उनकी अर्थावगति सामान्य बुद्धि का काम नहीं है। वेदों के ही अर्थों की व्याख्या करते हुए प्राचीन महर्षियों ने स्मृतियों, इतिहासों तथा पुराणों की रचना की है। अतएव वेदार्थ तत्त्वों को याथात्म्य जानने के लिए इन तीनों साधनों की सहायता लेनी चाहिए। श्रीवचनभूषणकार का कहना है—

'वेदार्थो निश्चेतव्यः स्मृतीतिहासपुराणैः।'

अर्थात् वेदों के अर्थ का निर्णय, स्मृतियों, इतिहासों तथा पुराणों के आलोक में करना चाहिए। अपनी स्वतन्त्रबुद्धि से वेदों की व्याख्या करने का दु:साहस अनर्थकारी हो सकता है। महर्षि बादरायण भी महाभारत में कहते हैं—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
विभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति॥

अर्थात् इतिहास एवं पुराणों के माध्यम से ही वेदों के अर्थ का उपबृंहण करना चाहिए। अल्पश्रुत व्यक्तियों से वेद यह सोचकर भयभीत रहता है कि यह मेरा अपार्थ करेगा।

श्रीवचनभूषणकार का कहना है कि वेदों के मन्त्रभाग की व्याख्या स्मृतियों के प्रकाश में करना चाहिए—

'स्मृत्या पूर्वभागार्थः निश्चीयते।'

स्मुतियों के जो प्रतिपाद्य विषय हैं, प्राय: वे ही प्रतिपाद्य वेदों के मन्त्र भाग के भी हैं। वेदों के मन्त्रभाग के अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिए महर्षियों ने स्मृतियों का प्रणयन किया है। अन्तर दोनों में यही है कि महर्षियों ने अपनी ऋतम्भरा-प्रज्ञा के द्वारा वेदार्थों का साक्षात्कार करके उनका वर्णन सरल तथा सर्वजनबोधगम्य भाषा में ही किया है। मन्त्रभागार्थ के विषय में सन्देह होने पर उस अर्थ का प्रतिपादन करने वाले स्मृतिभाग को ही प्रामाणिक मानना चाहिए।

वेदों के दूसरे भाग ब्राह्मणभाग की व्याख्या विशेष रूप से इतिहास और पुराण करते हैं। पुराणों के वर्ण्य-विषय मुख्य रूप से परमात्मप्राप्ति के साधनों की विवेचना है। किन्तु अग्निपुराण का वर्ण्य अन्य पुराणों की अपेक्षा भिन्न है। अन्य पुराण जिस तरह से वेदान्तार्थों की व्याख्या प्रधानरूप से करते हैं उस तरह अग्निपुराण नहीं करता है। वह कर्मकाण्ड भाग की व्याख्या विशेषरूप से करता है। इसके साथ वह लोकोपयोगी अन्य विद्याओं की भी चर्चा करता है। संस्कृत-वाङ्मय में समुपलभ्यमान शास्त्रों में से अधिकांश शास्त्रों की व्याख्या यह पुराण नि:संकोच करता है। वर्ण्य-विषय की दृष्टि से अग्निपुराण का प्रतिपादन क्रम निम्नांकित प्रकार का है—

इस पुराण के प्रारम्भिक चार अध्यायों में भगवान् विष्णु के विभिन्न अवतारों का वर्णन है। इसके पश्चात् पाँचवें अध्याय से ग्यारहवें अध्याय तक रामायण की कथा वर्णित है। पुन: एक अध्याय में हरिवंश की कथा का वर्णन करके आगे के तीन अध्यायों में महाभारत की कथा वर्णित है। सत्रहवें अध्याय में जगत् की सृष्टि का तथा अठारहवें अध्याय में मनुवंश का वर्णन किया गया है। उन्नीसवें अध्याय में प्रलय का वर्णन करके पुन: बीसवें अध्याय में जगत्सर्ग का वर्णन किया गया है।

इसके बाद इस पुराण के प्रवक्ता अग्निदेव कर्मकाण्ड का वर्णन प्रारम्भ करते हैं। इक्कीसवें अध्याय से लेकर एक सौ छठे अध्याय तक कर्मकाण्ड के विभिन्न विषयों का वर्णन अग्निदेव ने किया है। इस कर्मकाण्ड के अङ्गरूप से अग्निदेव ने वास्तुशास्त्र का भी विशद वर्णन किया है। कर्मकाण्ड प्रकरण में देवप्रतिष्ठा का विषय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए प्रतिष्ठाविषयक अनेक कर्मकाण्ड की पद्धतियों में बड़े ही समादरपूर्वक अग्निपुराण को प्रमाण रूप में उद्धृत किया गया है।

अग्निपुराण का एक वर्ण्य-विषय तीर्थों का माहात्म्य भी है। इस प्रसङ्ग में गङ्गा नदी, प्रयाग, वाराणसी तथा गया तीर्थ का माहात्म्य वर्णित है। गृहस्थ जीवन में गया तीर्थ का बड़ा ही महत्त्व है। प्राय: भारतीय आस्तिक जनता अपने पितृगण का श्राद्ध करने के लिए गया तीर्थ की यात्रा करती है। उस यात्रा तथा श्राद्ध का कैसा विधान है, इन सारी बातों की विस्तृत चर्चा अग्निपुराण के एक सौ पन्द्रहवें अध्याय से लेकर एक सौ सत्रहवें अध्याय तक की गयी है।

अग्निपुराण के एक सौ इक्कीसवें अध्याय से लेकर एक सौ छत्तीसवें अध्याय तक ज्योति:शास्त्र का वर्णन है। इस प्रसंग में अनेक सिद्धमुहूर्तों का वर्णन किया गया है। इन मुहूर्तों की सत्यता आज भी शतप्रतिशत प्रमाणिक है। ज्योति:शास्त्र के अनेक ग्रन्थों के अध्ययन से भी दु:साध्य विषयों का संकलन इस पुराण के सोलह अध्यायों में एकत्र संगृहीत किया गया है।

अग्निपुराण के एक सौ सैंतीसवें अध्याय में वर्णित महामारी विद्या लोकसिद्धिकामियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। एक सौ अड़तीसवें अध्याय में षट्कर्म मारण, मोहन आदि अभिचार कर्मों का वर्णन है। इसके बाद मन्त्रौषधियों का वर्णन है जो आज के युग में अत्यन्त उपयोगी है।

अग्निदेव ने कुब्जिका, अष्टकादेवी, त्वरिता देवी आदि देवियों की पूजाविधि का भी वर्णन किया है। अग्निपुराण की संग्राम विजय विद्या सद्यः फलप्रद है। इसका आज भी लोग अनुष्ठान करते हैं। धर्मशास्त्रों में वर्णित वर्णाश्रम धर्म का भी वर्णन इस पुराण में किया गया है। विवाहों के भेद तथा भावाशौच आदि का वर्णन कर्मकाण्ड से सम्बन्ध रखता है।

नवग्रहों का होम, श्राद्धकल्प, अयुत, लक्ष तथा कोटिहोम आदि के भी वर्णन का सम्बन्ध कर्मकाण्ड से है।

पातकों तथा उनके प्रायश्चित्तों का वर्णन अग्निपुराण के एक सौ अड़सठवें अध्याय से लेकर एक सौ चौहत्तरवें अध्याय तक किया गया है। अग्निदेव ने अनेक प्रकार के व्रतों का वर्णन एक सौ पचहत्तरवें अध्याय से लेकर दो सौ सातवें अध्याय तक किया है। इसके बाद उन्होंने दो सौ बारहवें अध्याय तक अनेक प्रकार के दानों का वर्णन किया है। तदनन्तर अग्निदेव ने राजधर्म का विस्तार से वर्णन करके राज्य तथा उसके अङ्गों का वर्णन भी किया है।

आज के युग में जिसका लोप-सा होता जा रहा है उस धनुर्विद्या का वर्णन अग्निदेव ने राजधर्म तथा उसके अङ्गों के वर्णन के ही प्रसङ्ग में किया है।

पुराणों का एक विषय वंशों का वर्णन भी है। इस प्रसंग में अग्निपुराण में सूर्यवंश, सोमवंश, यदुवंश तथा पुरुवंश का वर्णन करके द्वादश संग्रामों का भी वर्णन किया गया है।

आयुर्वेद के विषयों का वर्णन अग्निपुराण के दो सौ अठहत्तरवें अध्याय से लेकर दो सौ सत्तानवे इन पूरे बीस अध्यायों में किया गया है। अग्निपुराण में वर्णित आयुर्वेद की प्रामाणिकता की सिद्धि इसी से होती है कि अग्निपुराण के इन अध्यायों पर विस्तृत निबन्ध वाराणसी के पण्डित सत्यनारायण शास्त्री जैसे महामनीषियों ने लिखा है।

आयुर्वेद वर्णन के पश्चात् इस महापुराण में अनेक देवताओं के मन्त्रों का वर्णन किया गया है। इसके बाद अनेक प्रकार की शान्तिओं तथा पूजाओं का वर्णन इस महापुराण में किया गया है। अध्याय तीन सौ सत्ताइस से तीन सौ चौंतीस पर्यन्त इस पुराण में छन्दःशास्त्र का साङ्गोपाङ्ग विवेचन है। शिक्षा नामक वेदाङ्ग का वर्णन तीन सौ पैंतीसवें अध्याय में किया गया है। काव्य शास्त्र का वर्णन तीन सौ छत्तीसवें अध्याय से लेकर तीन सौ छियालिसवें अध्याय तक किया गया है।

व्याकरणशास्त्र का वर्णन तीन सौ अड़तालीसवें अध्याय से लेकर तीन सौ अठावनवें अध्याय तक किया गया है। कोश का वर्णन तीन सौ उनसठवें अध्याय से लेकर तीन सौ छियासठवें अध्याय तक किया गया है। इसके पश्चात् चार प्रकार के प्रलयों, शरीर के अवयवों तथा योगशास्त्र का वर्णन किया गया है। तीन सौ छिहत्तरवें अध्याय से लेकर तीन सौ अठहत्तरवें अध्याय तक ब्रह्मज्ञान का वर्णन करके अद्वैतब्रह्मविज्ञान का वर्णन किया गया है। तीन सौ अस्सीवें तथा एकासीवें अध्यायों में गीता एवं यमगीता का सारांश वर्णित है। अग्निपुराण का अन्तिम अध्याय तीन सौ बयासीवाँ अध्याय है। इस अध्याय में अग्निपुराण का माहात्म्य वर्णित है।

अग्निपुराण के माहात्म्य का वर्णन करते हुए अग्निदेव ने इसे ब्रह्म स्वरूप बतलाया है—

'आग्नेयं ब्रह्मरूपं ते पुराणं कथितं मया। (३८२।१)

अग्निदेव ने स्वयं कहा है कि इस पुराण में परा एवं अपरा दोनों प्रकार की विद्याओं का साङ्गोपाङ्ग वर्णन है। परा विद्या का ही दूसरा नाम वेदान्तशास्त्र है। इस शास्त्र में श्रीभगवान् के स्वरूप, रूप तथा ऐश्वर्यादि का वर्णन किया गया है। श्रीभगवान् की एकान्तमनसा आराधना मनुष्य के सभी पापों को विनष्ट करके उसे परमात्मा का लोक प्रदान करती है।

अग्निपुराण की महिमा का वर्णन करते हुए अग्निदेव ने कहा है—

किं तीर्थैर्गोप्रदानैर्वा किं यज्ञैः किमुपोषितैः ।
आग्नेयं ये हि शृण्वन्ति अहन्यहनि मानवाः ॥
कपिलानां शतैर्दत्ते यद्भवेज्ज्येष्ठपुष्करे ।
तदाग्नेयं पुराणं हि पठित्वा फलमाप्नुयात् ॥

अर्थात् जो मनुष्य प्रतिदिन अग्निपुराण का पाठ करते हैं उन्हें तीर्थ में जाने, गोदान करने, यज्ञ तथा उपवास करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वृद्ध पुष्कर क्षेत्र में सौ कपिला गौओं का दान करने से जो फल प्राप्त होता है उस फल को मनुष्य अग्निपुराण का पाठ करके प्राप्त कर लेता है।

वस्तुतः यदि कहा जाय तो अग्निपुराण संस्कृत साहित्य का विश्वकोश है। इसके अध्ययन मात्र से पराविद्या तथा अपराविद्या दोनों का समुचित ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

यद्यपि अग्निपुराण साङ्गोपाङ्ग वेद की व्याख्या करता है। किन्तु आज तक यह पुराण संस्कृतज्ञों के द्वारा अत्यन्त उपेक्षित रहा है। यही कारण है कि अग्निपुराण का पाठ आज तक अत्यन्त अव्यवस्थित रहा है। मुम्बई के वेङ्कटेश्वर प्रेस से प्रकाशित अग्निपुराण प्रकाशित है किन्तु उसके भी पाठ को सर्वात्मना शुद्ध नहीं माना जा सकता है। प्रस्तुत संस्करण में पाठशुद्धि पर अधिक ध्यान दिया गया है।

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली के स्वत्त्वाधिकारियों का आग्रह था कि समुचित अनुवाद के साथ अग्निपुराण का प्रकाशन किया जाय। फलस्वरूप अग्निपुराण का यह संस्करण पाठकों के लिए प्रस्तुत है।

अन्त में विज्ञ पाठकों से प्रार्थना है कि इस संस्करण में विद्यमान स्खलनों की ओर मेरा ध्यान अवश्य आकृष्ट करेंगे जिससे कि भविष्य के संस्करणों में सुधार लाया जा सके।

विद्वज्जनविधेयः
शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य)

अग्निपुराणम्

विषयानुक्रमणिका

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

अग्निपुराणम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

श्रियं सरस्वतीं गौरीं गणेशं स्कन्दमीश्वरम्। ब्रह्माणं वह्निमिन्द्रादीन् वासुदेवं नमाम्यहम् ॥ १ ॥ नैमिषे हरिमीजाना ऋषयः शौनकादयः । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन स्वागतं सूतमब्रुवन् ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः– सूत त्वं पूजितोऽस्माभिः सारात्सारं वदस्व नः । येन विज्ञातमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते॥३॥ सूत उवाच– **सारात्सारो हि भगवान् विष्णुः सर्गादिकृद्विभुः। ब्रह्माहमस्मि तं ज्ञात्वा सर्वज्ञत्वं प्रजायते ॥ ४ ॥ द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् । द्वे विद्ये वेदितव्ये इति चाथर्वणी श्रुतिः ॥ ५ ॥ अहं शुकश्च पैलाद्या गत्वा वदरिकाश्रमम् । व्यासं नत्वा पृष्टवन्तः सोऽस्मान्सारमथाऽब्रवीत् ॥ ६ ॥** व्यास उवाच– **शुकाद्यैः शृणु सूत त्वं वसिष्ठो मां यथाऽब्रवीत्। ब्रह्मसारं हि पृऽच्छन्तं मुनिभिश्च परात्परम् ॥ ७॥** वसिष्ठ उवाच– **द्विविधं ब्रह्म वक्ष्यामि शृणु व्यासाखिलानुगम् । यथाग्निर्मां पुरा प्राह मुनिभिर्दैवतैः सह ॥ ८ ॥ पुराणं परमाग्नेयं ब्रह्मविद्याक्षरं परम्। ऋग्वेदाद्यपरं ब्रह्म सर्वदेवसुखं परम् ॥९॥ अग्निनोक्तं पुराणं यदाग्नेयं वेदसम्मितम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं पुण्यं पठतां शृण्वतां नृणाम् ॥१०॥ कालाग्निरूपिणं विष्णुं ज्योतिर्ब्रह्म परात्परम् । मुनिभिः पृष्टवान् देवं पूजितं ज्ञानकर्मभिः॥११॥** वसिष्ठ उवाच– **संसारसागरोत्तारनावं ब्रह्मेश्वरं वद । विद्यासारं**

श्रीदेवी (लक्ष्मीजी), सरस्वती, गौरी, (पार्वतीजी), गणेश, स्कन्द, ईश्वर (भगवान शङ्कर), ब्रह्मा, अग्नि तथा इन्द्र आदि एवं वासुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ ।।१।। तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में आए हुए सूतजी से नैमिषारण्य तीर्थ में श्रीभगवान् की आराधना करने वाले शौनक आदि ऋषियों ने स्वागत करते हुए पूछा ।।२।। **ऋषियों ने कहा–** सूतजी ! आप हम लोगों के द्वारा पूजित हैं। आप हम लोगों को सबसे सार वस्तु का उपदेश दें जिसके जान लेने मात्र से मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है ।।३।। **सूतजी ने कहा–** जगत् की सृष्टि आदि (पालन तथा संहार) करने वाले भगवान् विष्णु सबसे बढ़कर सार वस्तु हैं । (मेरी आत्मा ब्रह्म भगवान् विष्णु ही हैं ।) इस प्रकार से उन्हें जान कर मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है ।।४।। शब्द ब्रह्म तथा परंब्रह्म इन दो ब्रह्मों को जानना चाहिए ।

नोट- १- (अथर्ववेद की (माण्डूक्योपनिषद् की श्रुति भी बतलाती है कि दो विद्याओं का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । (वह श्रुति है– 'द्वे विधे वेदितव्ये पराचापरा च।' अर्थात् दो विद्याओं का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए परा विद्या तथा अपरा विद्या । परंब्रह्मविषयिणी विद्या को परा विद्या कहते हैं तथा शास्त्रीय ज्ञान विषयिणी विद्या को अपरा विद्या कहते हैं) ।।५।। मैंने (सूतजी ने) श्री शुक्रजी ने तथा पैल आदि महर्षियों ने बदरिकाश्रम में जाकर, व्यासजी को नमस्कार करके उनसे सारवस्तु के विषय में पूछा तो उन्होंने हम सबों को सारवस्तु का उपदेश दिया ।।६।। **व्यासजी ने कहा–** सूतजी! शुक आदि मुनियों के साथ जाकर सारवस्तु के विषय में पूछने पर वसिष्ठजी ने मुझे परात्पर (सर्वश्रेष्ठ) ब्रह्म का जैसा उपदेश दिया उसे आप सुनें ।।७।। **वसिष्ठजी ने कहा–** व्यास ! ऋषि, मुनि तथा देवताओं सहित मुझको प्राचीनकाल में अग्निदेव ने मुझे जैसा उपदेश दिया वही मैं तुम्हें बतला रहा हूँ । सम्पूर्ण जगत् की आत्मा ब्रह्म के दो रूप हैं ।।८।। अग्निपुराण सर्वश्रेष्ठ पुराण, ब्रह्मविद्या, अक्षर, परमतत्त्वविषयक, ऋग्वेद आदि वेदों से भिन्न तथा सभी देवताओं को सुख प्रदान करने वाला सर्वोत्कृष्ट ज्ञानस्वरूप है ।।९।। अग्निदेव के द्वारा प्रोक्त (उपदिष्ट) होने के कारण इस पुराण के आग्नेयपुराण कहते हैं, यह वेद के समान पढ़ने तथ सुनने वाले मनुष्यों को पुण्य प्रदान करने वाला, तथा भोग (लोक में अभ्युदय) तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है ।।१०।। मुनियों द्वारा ज्ञानयोग

यद्विदित्वा सर्वज्ञो जायते नरः ॥ १२ ॥ अग्निरुवाच– विष्णुः कालाग्निरुद्रोऽहं विद्यासारं वदामि ते । ब्रह्माग्नेयं पुराणं यत्सर्वं सर्वस्य कारणम्॥१३॥ सर्गस्य प्रतिसर्गस्य वंशमन्वन्तरस्य च । वंशानुचरितादेश्च मत्स्यकूर्मादिरूपधृक् ॥१४॥ द्वे विद्ये भगवान् विष्णुः परा चैवापरा द्विज। ऋग्यजुःसामाथर्वाख्या वेदा अङ्गानि षड् द्विज ॥ १५॥ शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गतिः । छन्दोऽभिधानं मीमांसा धर्मशास्त्रं पुराणकम् ॥ १६ ॥ न्यायो वैद्यकगान्धर्वं धनुर्वेदोऽर्थशास्त्रकम् । अपरेयं पराविद्या यया ब्रह्मावगम्यते ॥ १७॥ यत्तददृश्यमग्राह्यमगोत्रचरणं ध्रुवम्। विष्णुनोक्तं यथा मह्यं देवेभ्यो ब्रह्मणा पुरा ॥ १८ ॥ तथा ते कथयिष्यामि हेतुं मत्स्यादिरूपिणम् ॥ १९॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये व्यासप्रोक्ते प्रथमः प्रश्नाध्यायः ॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

मत्स्यावतारकथावर्णनम्

वसिष्ठ उवाच– **मत्स्यादिरूपिणं विष्णुं ब्रूहि सर्गादिकारणम् । पुराणं ब्रह्म चाग्नेयं यथा विष्णोः पुरा श्रुतम् ॥ १॥** अग्निरुवाच– **मत्स्यावतारं वक्ष्येऽहं वसिष्ठ शृणु वै हरेः। अवतारक्रिया दुष्टनष्ट्यै सत्पालनाय हि ॥ २ ॥ आसीदतीतकल्पान्ते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः । समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका**

एवं कर्मयोग के द्वारा पूजित, कालाग्नि स्वरूप (प्रलयकाल में सम्पूर्ण जगत् को भस्मसात् कर देने वाली अग्नि का रूप धारण करने वाले) ज्योतिस्वरूप, परात्पर ब्रह्म भगवान् विष्णु के विषय में महर्षि वसिष्ठ जी ने पूछा ।।११।। **बसिष्ठजी ने कहा–** देव ! आप मुझे संसाररूपी सागर से पार जाने के लिए नौका के समान सम्पूर्ण विद्याओं के सारस्वस्वरूप उस ईश्वर (सम्पूर्ण जगत् के नियामक) ब्रह्म का उपदेश दें जिसे जानकर मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है ।।१२।। **अग्निदेव ने कहा–** मैं ही विष्णु, कालाग्नि (प्रलयकालीन अग्नि जो सम्पूर्ण जगत् को जलाकर भस्म बना देती है) तथा रुद्र स्वरूप हूँ । मैं तुम्हें अग्निपुराण का उपदेश देता हूँ तथा उस ब्रह्म का तुम्हें उपदेश दे रहा हूँ जो सम्पूर्ण जगत् स्वरूप हैं । मत्स्य, कूर्म आदि रूपों को धारण करने वाला तथा सर्ग (सृष्टि) प्रतिसर्ग (प्रलय) (देवताओं तथा पितरों के वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित (सूर्य तथा चन्द्र आदि राजवंशों में उत्पन्न होने वाले राजाओं के चरित्र) आदि सबों का कारण है ।।१३-१४।। हे द्विज परा तथा अपरा ये दोनों विद्याएँ भगवान् विष्णु के स्वरूप हैं । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष तथा छन्द नामक ये छहों वेदाङ्ग, मीमांसा (पूर्व तथा उत्तर दोनों) धर्मशास्त्र, पुराण, न्याय, वैद्यक, गान्धर्ववेद, धनुर्वेद तथा अर्थशास्त्र ये सभी अपरा विद्या (के अन्तर्गत) हैं, परा विद्या वह है जिससे ब्रह्म का ज्ञान होता है ।।१५-१७।। जो ब्रह्म अदृश्य (जिसको इन चर्मचक्षुओं के द्वारा नहीं देखा जा सकता) अग्राह्य (जिसे प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों के द्वारा पूर्णरूप से नहीं जाना जा सके) अगोत्र (नाम विशेष से रहित) चरण (प्राकृत कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों से रहित) तथा ध्रुव (नित्य) है । प्राचीनकाल में भगवान् विष्णु ने जैसा मुझको तथा ब्रह्माजी ने देवताओं को उपदेश दिया उसी तरह से मै (सम्पूर्ण जगत् के) कारण स्वरूप तथा मत्स्य आदि रूप (शरीर) को धारण करने वाले ब्रह्म को तुम्हें बतलाऊँगा ।।१८-१९।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का पहला प्रश्नाध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १॥

वसिष्ठजी ने कहा– सृष्टि आदि (पालन तथा संहार) के कारण स्वरूप, मत्स्य आदि शरीर धारण करने वाले भगवान् विष्णु तथा प्राचीनकाल में भगवान् विष्णु से जिसे सुना गया है, उस वेद वरूप अग्निपुराण का हमें उपदेश दीजिए ।।१।। **अग्निदेव ने कहा–** वसिष्ठजी मैं आपको श्रीभगवान् के मत्स्यावतार की कथा सुनाता हूँ उसे आप सुनें। श्रीभगवान दुष्टों का विनाश तथा सज्जनों

भूरादिका मुने ॥ ३ ॥ मनुर्वैवस्वतस्तेपे तपो वै भुक्तिमुक्तये । एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम् ॥ ४॥ तस्याञ्जल्युदके मत्स्यः स्वल्प एकोऽभ्यपद्यत। क्षेप्तुकामं जले प्राह न मां क्षिप नृपोत्तम ॥ ५॥ ग्राहादिभ्यो भयं मेऽत्र तच्छ्रुत्वा कलशेऽक्षिपत् ॥ मनुं वृद्धः पुनर्मत्स्यः प्राह तं देहि मे बृहत् ॥ ६॥ स्थानमेतद्वचः श्रुत्वा राजाऽथोदञ्चनेऽक्षिपत् । तत्र वृद्धोऽब्रवीद्भूपं पृथु देहि पदं मनो ॥ ७॥ सरोवरे पुनः क्षिप्तो ववृधे तत्प्रमाणवान्। ऊचे देहि बृहत्स्थानं प्राक्षिपच्चाम्बुधौ मनुः ॥ ८॥ लक्षयोजनविस्तीर्णः क्षणमात्रेण सोऽभवत् । मत्स्यं तमद्भुतं दृष्ट्वा विस्मितः प्राब्रवीन्मनुः ॥ ९॥ को भवान्ननु विष्णुस्त्वं नारायण नमोऽस्तु ते । मायया मोहयसि मां किमर्थं त्वं जनार्दन ॥ १०॥ मनुनोक्तोऽब्रवीन्मत्स्यो मनुं वै पालने रतम् । अवतीर्णो भवायास्य जगतो दुष्टनष्टये ॥ ११॥ सप्तमेऽथ दिने ह्यब्धिः प्लावयिष्यति वै जगत्। उपस्थितायां नावि त्वं बीजादीनि निधाय च ॥ १२॥ सप्तर्षिभिः परिवृतो निशां ब्राह्मीं चरिष्यसि । उपस्थितस्य मे शृङ्गे निबध्नीहि महाहिना ॥ १३॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे मत्स्यो मनुः कालप्रतीक्षकः । स्थितः समुद्र उद्वेले नावमारुरुहे तदा ॥ १४॥ एकशृङ्गधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः । नावं बद्ध्वा तस्य शृङ्गे मत्स्याख्यं च पुराणकम् ॥ १५॥ शुश्राव मत्स्यात्पापघ्नं संस्तुवन् स्तुतिभिश्च तम् । ब्रह्मवेदप्रहर्तारं हयग्रीवं च दानवम् ॥ १६॥ अवधीद्वेदमन्त्राद्यान्पालयामास केशवः । प्राप्ते कल्पेऽथ वाराहे कूर्मरूपोऽभवद्धरिः ॥ १७॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेयेऽग्निप्रोक्ते मत्स्यावतारवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

का पालन करने के लिए अवतार ग्रहण करते हैं ।।२।। हे मुने ! बीते हुए कल्प में नैमित्तिक ब्राह्मलय हुआ। उस समय समुद्र ने भूः आदि लोकों को डुबा दिया ।।३।। निश्चय ही वैवश्वत मनु ने लौकिक भोगों तथा मुक्ति की प्राप्ति के उद्देश्य से तपस्या की। एक बार जब वे कृतमाला नदी में जल से तर्पण कर रहे थे, उसी समय उनकी अञ्जलि के जल में एक छोटी सी मछली आ गयी। राजा ने जब उसे जल में फेंकना चाहा तो **उसने कहा–** नृपोत्तम ! मुझे फेंकिए मत ।।४-५।। यहाँ मुझे ग्राह आदि से भय लगता है, यह सुनकर राजा ने उसे (उस मछली को) कलश के जल में डाल दिया। बढ़ी हुई उस मछली ने मनु से कहा- मुझको बड़ा स्थान दीजिए । इस बात को सुनकर राजा ने उसे एक हौज में डाल दिया । वहाँ पर बढ़ी हुई **मछली ने कहा–** मनो ! मुझे बड़ा स्थान दीजिए ।।६-७।। सरोवर में डाली गयी मछली बढ़कर वह सरोवर के बराबर शरीर वाली हो गयी । **उसने फिर कहा–** मुझे इससे बड़ा स्थान दीजिए, यह सुनकर मनु ने उसे समुद्र में डाल दिया। क्षणभर में वह मछली लक्षयोजन विस्तृत शरीर वाली हो गयी । उस अद्भुत मछली को देखकर आश्चर्यचकित होकर मनु ने कहा ।।८-९।। आप कौन हैं ? आप विष्णु ही हैं । हे नारायण! आपको नमस्कार है । हे जनार्दन ! आप अपनी माया से मुझे क्यों मोहित कर रहे हैं ? ।।१०।। मनु के द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर उस मत्स्य ने कहा कि इस संसार का पालन करने के लिए, दुष्टों का विनाश करने के लिए तथा इस जगत् का कल्याण करने के लिए मैं अवतीर्ण हुआ हूँ ।।११।। आज के सातवें दिन समुद्र पृथ्वी को डुबा देगा । तुम्हारे सामने नाव उपस्थित हो (आ जाने) जाने पर तुम उसमें बीज आदि सप्तर्षियों के साथ ब्रह्मा की रात्रिपर्यन्त संचरण करोगे । मेरे आने पर तुम मेरे शृङ्ग में उस नाव को महासर्प से बाँध देना ।।१२-१३।। यह कहकर वे मत्स्य भगवान् अन्तर्धान (तिरोहित) हो गए । मनु समय की प्रतीक्षा करते रहे । समुद्र के बढ़ जाने पर वे नाव पर बैठ गए ।।१४।। एक लाख योजन विस्तृत एक शृङ्ग वाले सुवर्ण मत्स्यरूपधारी श्रीभगवान् के शृङ्ग में नाव को बाँधकर मुनियों के साथ स्तुति करते हुए मनु ने श्रीभगवान् से समस्त पापों को विनष्ट करने वाले मत्स्य पुराण का श्रवण किया। भगवान् केशव ने भी ब्रह्मा के वेद का अपहरण करने वाले हयग्रीव नामक दानव का वध किया। वेद के मन्त्र (अथवा वेद एवं मनु) आदि की रक्षा की । उसके पश्चात् बाराह कल्प के आने पर श्रीभगवान् ने कूर्मरूप धारण किया ।।१५-१७।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का मत्स्यावतार वर्णन नामक दूसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

कूर्मावतारकथावर्णनम्

अग्निरुवाच– **वक्ष्ये कूर्मावतारं च संश्रुतं पापनाशनम् । पुरा देवासुरे युद्धे दैत्यैर्देवाः पराजिताः ॥ १॥ दुर्वससश्च शापेन निःश्रीकाश्चाभवंस्तदा। सुराः क्षीराब्धिगं विष्णुमूचुः पालय वै सुरान् ॥ २॥ ब्रह्मादिकान् हरिः प्राह सन्धिं कुर्वन्तु चासुरैः । क्षीराब्धिमथनार्थं च अमृतार्थं श्रिये सुराः ॥ ३॥ अरयोऽपि हि सन्धेयाः सति कार्यार्थगौरवे । युष्मानमृतभाजोऽथ करिष्यामि न दानवान् ॥ ४॥ मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा च वासुकिम्। क्षीराब्धिं मत्सहायेन निर्मथत ह्यतन्द्रिताः ॥ ५॥ विष्णूक्ताः संविदं कृत्वा दैत्यैः क्षीराब्धिमागताः । ततो मथितुमारब्धा यतः पुच्छं ततः सुराः ॥ ६॥ फणिनिश्वाससङ्ग्लाना हरिणाऽऽप्यायिताः सुराः । मध्यमानेऽर्णवे सोऽद्रिरनाधारो ह्यपोऽविशत् ॥ ७॥ कूर्मरूपं समास्थाय दध्रे विष्णुश्च मन्दरम्। क्षीराब्धेर्मथ्यमानाच्च विषं हालाहलं ह्यभूत् ॥ ८॥ हरेण धारितं कण्ठे नीलकण्ठस्ततोऽभवत् । ततोऽभूद्वारुणी देवीपारिजातश्च कौस्तुभः ॥ ९॥ गावश्चाप्सरसो दिव्या लक्ष्मीर्देवी हरिं गता । पश्यन्तः सर्वदेवास्तां स्तुवन्तः सश्रियोऽभवन् ॥ १०॥ ततो धन्वन्तरिर्विष्णुरायुर्वेदप्रदर्शकः । बिभ्रत्कमण्डलुं पूर्णममृतेन समुत्थितः ॥ ११॥ अमृतं तत्कराद्दैत्याः सुरेभ्योऽर्धं प्रदाय च । गृहीत्वा जग्मुर्जम्भाद्या विष्णुः स्त्रीरूपधृक्ततः ॥ १२॥ तां दृष्ट्वा रूपसम्पन्नां दैत्याःप्रोचुर्विमोहिताः । भव भार्याऽमृतं गृह्य पाययास्मान् वरानने ॥ १३॥ तथेत्युक्त्वा हरिस्तेभ्यो गृहीत्वाऽपाययत्सुरान् । चन्द्ररूपधरो राहुः पिबंश्चार्केन्दुनार्पितः ॥१४॥ हरिणाप्यरिणा छिन्नं सबाहु तच्छिरः पृथक्। कृपयाऽमरतां नीतं वरदं हरिमब्रवीत् ॥१५॥ राहुर्मत्तस्तु**

अग्निदेव ने कहा– जिसका श्रवण कर लेने मात्र से पापों का नाश हो जाता है,उस कूर्मावतार का मैं वर्णन करता हूँ । प्राचीनकाल में देवासुर संग्राम में देवता दैत्यों से पराजित हो गए ।।१।। उस समय दुर्वासा ऋषि के शाप से निःश्रीक (दरिद्र) बने हुए देवताओं ने क्षीरसागरवासी भगवान् विष्णु से प्रार्थना की कि आप देवताओं की रक्षा करें।।२।। श्रीहरि ने ब्रह्मा आदि देवताओं से कहा कि देवताओं ! क्षीरसागर का मन्थन करने के लिए तथा श्रीदेवी को प्राप्त करने के लिए आपलोग असुरों से सन्धिकर लें ।।३।। अपने कार्य की सिद्धि के लिए शत्रुओं को भी मिलाना चाहिए । मैं आप सबों को ही अमृत का अधिकारी बनाऊँगा दानवों को नहीं ।।४।। मन्दराचल को मथानी बनाकर तथा वासुकि नाग को नेत्र (रस्सी) बनाकर आप सभी मेरी सहायता से सावधानीपूर्वक क्षीरसागर का मन्थन करें ।।५।। भगवान् विष्ण के द्वारा ऐसा कहे जाने पर दैत्यों के साथ सन्धि करके देवता क्षीरसागर पर आए और क्षीरसागर को मथना प्रारम्भ किए।सर्प की जिस तरफ पूँछ थी उस ओर देवता थे ।।६।। वासुकि सर्प के विष पूर्ण श्वाँस से श्रान्त देवता भगवान् विष्णु के द्वारा सन्तुष्ट किए गए । जब समुद्र मथा जा रहा था उस समय निराधार वह पर्वत जल में प्रवेश कर गया (डूब गया)।।७।। भगवान् विष्णु ने कूर्म का रूप धारण करके मन्दराचल को धारण किया । मथे जाते हुए समुद्र से हलाहल विष निकला ।।८।। उसको भगवान् शङ्कर ने अपने गले में धारण किया, उसके कारण वे नीलकण्ठ हो गए (अर्थात् उनका गला उस विष की गर्मी के कारण काला पड़ गया ।) उसके पश्चात् समुद्र से वारुणी (मदिरा) देवी,पारिजात (कल्पवृक्ष) कौस्तुभ मणि, गौ (कामधेनु) दिव्य अप्सराएँ तथा लक्ष्मी देवी निकलीं । लक्ष्मी देवी श्रीहरि के पास चली गयीं । उनके दर्शन करके देवता उनकी स्तुति करके लक्ष्मी से सम्पन्न (सश्रीक) हो गए ।।९-१०।। उसके पश्चात् भगवान् विष्णु के अंशावतार, आयुर्वेद का प्रचार करने वाले अमृत से परिपूर्ण कमण्डलु को धारण किए हुए धन्वन्तरी निकले ।।११।। उनके हाथ से अमृत लेकर तथा देवताओं को आधा अमृत देकर जम्भ आदि दैत्य (आधा अमृत लेकर) चल दिए। उसके पश्चात् भगवान् विष्णु ने स्त्री का रूप धारण किया।।१२।। अत्यन्त रूपवती (सुन्दरी) उस स्त्री को देखकर मोहित हुए दैत्यों ने **उससे कहा–** तुम हमारी

चन्द्रार्कौ प्राप्स्येते ग्रहणं ग्रहः । तस्मिन् काले च यद्दानं दास्यन्ते स्यात् तदक्षयम् ॥ १६॥ तथेत्याहाथ तं विष्णुस्ततः सर्वैः सहामरैः। स्त्रीरूपं सम्परित्यज्य हरेणोक्तः प्रदर्शय ॥ १७॥ दर्शयामास रुद्राय स्त्रीरूपं भगवान् हरिः । मायया मोहितः शम्भुर्गौरीं त्यक्त्वा स्त्रियं गतः ॥ १८॥ नग्न उन्मत्तरूपोऽभूत्स्त्रियः केशानधारयत् । अगाद्विमुच्य केशान्स्त्री अन्वधावच्च तां गताम् ॥१९॥ स्खलितं तस्य वीर्यं कौ यत्र यत्र हरस्य हि। तत्र तत्राभवत्क्षेत्रं लिङ्गानां कनकस्य च ॥ २० ॥ मायेयमिति तां ज्ञात्वा स्वरूपस्थोऽभवद्धरः । शिवमाह हरी रूद्र जिता माया त्वया हि मे ॥ २१॥ न जेतुमेनां शक्तो मे त्वदृतेऽन्यः पुमान्भुवि । अप्राप्ताश्चामृतं दैत्या देवै र्युद्धे निपातिताः ॥ २२॥ त्रिदिवस्थाः सुराश्चासन्दैत्याः पातालवासिनः । यो नरः पठते देवविजयं त्रिदिवं व्रजेत् ॥ २३॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विद्यासारे कूर्मावतारवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

वराहनरसिंहादीनामवताराणां वर्णनम्

अग्निरुवाच– **अवतारं वराहस्य वक्ष्येऽहं पापनाशनम्। हिरण्याक्षोऽसुरेशोऽभूद्देवाञ्जित्वा दिवि स्थितः॥१॥ देवैर्गत्वास्तुतो विष्णुर्यज्ञरूपो वराहकः।**

पत्नी बन जाओ ! हे वरानने ! अमृत को लेकर हम लोगों को पिलाओ ।।१३।। 'अच्छी बात है' यह कहकर (मोहिनी रूपधारी) श्रीहरि ने अमृत लेकर उसे देवताओं को पिला दिया । चन्द्रमा का रूप धारण करके अमृतपान करने वाले राहु को सूर्य तथा चन्द्रमा ने पहचान लिया तथा श्रीभगवान् को बतला दिया।।१४।। राहु को भगवान् ने भी चक्र से उसके बाहु से युक्त शिर को काटकर धड़ से अलग कर दिया । अपनी कृपा से उसे अमर बनाने वाले श्रीभगवान् से उसने कहा।।१५।। मैं राहु नामक ग्रह हूँ । मुझसे चन्द्रमा तथा सूर्य का ग्रहण लगेगा। उस समय लोग जो दान करेंगे वह अक्षय होगा ।।१६।। उसके पश्चात् भगवान् विष्णु ने उसे वरदान दिया कि ऐसा ही हो । उसके पश्चात् सभी देवताओं के समक्ष भगवान् ने अपने स्त्रीरूप का परित्याग कर दिया।। भगवान् शंकर ने श्रीहरि से कहा कि आप मुझे उस स्त्री रूप का दर्शन कराएँ । समस्त पापों को विनष्ट करने वाले श्रीभगवान् ने श्रीरुद्र को अपना वह स्त्री रूप दिखाया । भगवान् की माया से मोहित होकर शम्भु (सम्पूर्ण जगत् का कल्याण करने वाले भगवान् शङ्कर) पार्वती को छोड़कर उस मोहिनी स्त्री के पास चले गए ।।१७-१८।। कामोन्मत्त रूप वाले नंगे (भगवान् शंकर ने) उस स्त्री के केशों को पकड़ लिया। वह स्त्री (मोहिनी) अपने बालों को छुड़ाकर भाग गयी । भागने वाली उस स्त्री के पीछे (कामोन्मत्त भगवान् शङ्कर भी) दौड़ने लगे ।।१९।। (कामातुर भगवान् शङ्कर का) पृथिवी पर जहाँ-जहाँ वीर्य गिरा वहाँ-वहाँ पर सुवर्ण का तथा शिवलिङ्ग का क्षेत्र बन गया ।।२०।। यह तो माया है। इस प्रकार से उस स्त्री (मोहिनी) को जानकर भगवान् शंकर अपने स्वरूप में स्थित हो गए । श्रीहरि ने (भगवान् शङ्कर से) कहा– रुद्र ! आपने मेरी माया को जीत लिया।।२१।। आपको छोड़कर पृथ्वी पर कोई दूसरा पुरुष इसको जीतने में समर्थ नहीं है। अमृत नहीं प्राप्त कर सकने वाले दैत्य संग्राम में देवताओं के द्वारा पराजित कर दिए गए ।।२२।। इसके पश्चात् देवता स्वर्ग लोक के निवासी हो गए और दैत्य पाताल के निवासी । जो मनुष्य देवताओं के इस विजय को पढ़े वह (मृत्यु के पश्चात्) स्वर्गलोक को प्राप्त करे ।।२३।।

इस तरह से आदिमहापुराण, अग्निपुराण का श्रीभगवान् कार्मावतार वर्णन नामक तीसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३॥

अग्निदेव बोले– *मैं पापों का नाश करने वाले बराह अवतार का वर्णन करूँगा। देवताओं को जीतकर स्वर्गलोक में निवास करने वाला हिरण्यक्ष असुरों का स्वामी बना ।।१।। देवताओं*

अभूत्तं दानवं हत्वा दैत्यैः सार्धं तु कण्टकम् ॥ २॥ धर्मदेवादिरक्षाकृत्ततः सोऽन्तर्दधे हरिः । हिरण्याक्षस्य वै भ्राता हिरण्यकशिपुस्तथा ॥३॥ जितदेवयज्ञभागः सर्वदेवाधिकारकृत्। नारसिंहं वपुः कृत्वा तं जघान सुरैः सह ॥ ४॥ स्वपदस्थान्सुरांश्चक्रे नारसिंहः सुरैः स्तुतः । देवासुरे पुरा युद्धे बलिप्रभृतिभिः सुराः ॥ ५॥ जिताः स्वर्गात्परिभ्रष्टा हरिं ते शरणं गताः॥ सुराणामभयं दत्त्वा अदित्या कश्यपेन च ॥ ६॥ स्तुतोऽसौ वामनो भूत्वा ह्यदित्यां स क्रतुं ययौ । बलेः श्रीयजमानस्य, गङ्गाद्वारे गृणन् स्तुतिम् ॥ ७॥ वेदान्पठन्तं तं श्रुत्वा वामनं वरदोऽब्रवीत् । निवारितोऽपि शुक्रेण बलिर्ब्रूहि यदिच्छसि ॥ ८॥ तत्तेऽहं सम्प्रदास्यामि, वामनो बलिमब्रवीत्। पदत्रयं मे गुर्वर्थं देहि दास्ये तमब्रवीत् ॥ ९॥ तोये तु पतिते हस्ते वामनोऽभूदवामनः। भूर्लोकं स भुवर्लोकं स्वर्लोकं च पदत्रयम् ॥ १०॥ चक्रे बलिं च सुतले तच्छक्राय ददौ हरिः । शक्रो देवै र्हरिं स्तुत्वा भुवनेशः सुखी त्वभूत् ॥ ११॥ वक्ष्ये परशुरामस्य चावतारं शृणु द्विज । उद्धतान्क्षत्रियान्मत्त्वा भूभारहरणाय सः ॥ १२॥ अवतीर्णो हरिः शान्त्यै देवविप्रादिपालकः। जमदग्ने रेणुकायां भार्गवः शस्त्रपारगः ॥ १३॥ दत्तात्रेयप्रसादेन कार्तवीर्यो नृपस्त्वभूत् । सहस्रबाहुः सर्वोर्वीपतिः स मृगयां गतः॥ १४॥ श्रान्तो निमन्त्रितोऽरण्ये मुनिना जमदग्निना । कामधेनुप्रभावेण भोजितः सबलो नृपः ॥ १५॥ अप्रार्थयत्कामधेनुं यदा स न ददौ तदा। हृतवानथ रामेण शिरश्छित्वा निपातितः ॥ १६॥ युद्धे परशुना राजा सधेनुः स्वाश्रमं ययौ। कार्तवीर्यस्य पुत्रैस्तु जग्मदग्निर्निपातितः ॥ १७॥ रामे वनं गते वैरादथ रामः समागतः । पितरं निहतं दृष्ट्वा पितृनाशाभिमर्षितः ॥ १८॥ त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं निःक्षत्रामकरोद् विभुः । कुरुक्षेत्रे पञ्च

ने जाकर भगवान् विष्णु की स्तुति की । भगवान् ने यज्ञस्वरूप्वराह रूप धारण किया और दैत्यों के साथ उस दुखदायी दानव हिरण्याक्ष का वध किया। उसके पश्चात् धर्म तथा देवता आदि की रक्षा करने वाले यज्ञ वराहरूपधारी श्रीभगवान् अन्तर्धान हो गए।।२।। निश्चय ही उसी प्रकार से हिरण्याक्ष का भाई हिरण्यकशिपु यज्ञ में देवताओं के भाग को जीतकर सभी देवताओं पर अधिकार करने वाला हो गया। श्रीभगवान् ने नरसिंह रूप धारण करके दैत्यों के साथ उसका वध किया ।।३-४।। देवताओं के द्वारा स्तुति किए जाने वाले भगवान् नरसिंह ने देवताओं को अपने लोक (स्वर्गलोक) का निवासी बनाया । प्राचीनकाल में देवता देवासुर संग्राम में बलि आदि दैत्यों से पराजित हो गए । स्वर्गलोक से निकाले गए वे श्री भगवान् के शरण में गए ।।५।। देवताओं को निर्भय होने का वरदान देकर कश्यप तथा अदिति द्वारा स्तुति किए जाने पर भगवान् अदिति के गर्भ से वामन के रूप में अवतीर्ण होकर ऐश्वर्य सम्पन्न यजमान (बलि) की स्तुति (प्रशंसा) करने गए।।६-७।। वेदों का पाठ करने वाले उन वामन को (आया हुआ) सुनकर वरदान देने वाले बलि ने (शुक्राचार्य के द्वारा मना किए जाने पर भी वामन भगवान् से कहा कि जो चाहो सो माँग लो। मैं उसे तुम्हें देने के लिए दूँगा । वामन् भगवान् ने राजा बलि से कहा कि मुझे मेरे आचार्य के लिए तीन डग पृथिवी दीजिए । बलि ने वामन से कहा मैं तुम्हें दूँगा ।।८-९।। हाथ पर (संकल्प का) जल पड़ते ही वामन अवामन (विराट्रूपधारी) हो गए । उन्होंने तीन डग में भूर्लोक, भुवलोक तथा स्वर्लोक को नाप लिया । बलि को सुतल लोक प्रदान करके श्रीहरि ने स्वर्लोक इन्द्र को प्रदान किया सम्पूर्ण लोक के स्वामी इन्द्र देवताओं के साथ श्रीभगवान् की स्तुति करके सुखी हो गए ।।१०-११।। मैं श्री परशुराम जी के अवतार का वर्णन करता हूँ उसे आप सुनें । पृथिवी का भर दूर करने के लिए क्षत्रियों को उद्धत (उद्दण्ड) जानकर देवताओं तथा ब्राह्मण आदि का पालन करने वाले श्री भगवान् जमदग्नि के पुत्र के रूप में रेणुका के गर्भ से सभी शस्त्रों में पारङ्गत श्रीपरशुराम के रूप में अवतीर्ण हुए।।१२-१३।। भगवान् दत्तात्रेय की कृपा से एक हजार भुजाओं को पाकर कार्तवीर्य राजा हुआ। सम्पूर्ण पृथिवी का स्वामी वह एक बार मृगया के लिए गया ।।१४।। जङ्गल में थके हुए उस राजा को देखकर जमदग्नि मुनि ने उसे निमन्त्रित किया और कामधेनु के प्रभाव से सेना सहित राजा को भोजन कराया ।।१५।। (यह देखकर राजा ने) उस कामधेनु को प्राप्त करने के लिए मुनि से प्रार्थना की किन्तु जब जमदग्नि ने उसे नहीं दिया तो राजा ने उनसे कामधेनु को छीन लिया। उसके पश्चात् श्रीपरशुराम ने युद्ध में फरसे से राजा का सिर काटकर उसे मार डाला और कामधेनु के साथ वे अपने आश्रम

कुण्डान् कृत्वा सन्तर्प्य वै पितृन् ॥ १९॥ कश्यपाय महीं दत्त्वा महेंद्रे पर्वते स्थितः । कूर्मस्य च वराहस्य नृसिंहस्य च वामनम् ॥ २०॥ अवतारं च रामस्य श्रुत्वा याति दिवं नरः ॥ २१॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये वराहनृसिंहवामनपरशुरामावतारवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीरामावतारकथावर्णनम्

अग्निरुवाच– **नारायणमहं वक्ष्ये नारदेनोदितं पुरा । वाल्मीकये यथा तद्वत्पठितं भुक्तिमुक्तिदम् ॥ १ ॥ विष्णुनाभ्यब्जजो ब्रह्मा मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः। मरीचेः कश्यपस्तस्मात्सूर्यो वैवस्वतो मनुः ॥ २ ॥ ततस्तस्मात्तथेक्ष्वाकुस्तस्य वंशे ककुत्स्थकः । ककुत्स्थस्य रघुस्तस्मादजो दशरथस्ततः॥३॥ रावणादेर्वधार्थाय चतुर्धाभूत्स्वयं हरिः । राज्ञो दशरथाद्रामः कौसल्यायां बभूव ह ॥ ४ ॥ कैकेय्यां भरतः पुत्रः सुमित्रायां च लक्ष्मणः। शत्रुघ्नश्चर्ष्यशृङ्गेण तासु सन्दत्तपायसात् ॥ ५ ॥ प्राशिताद्यज्ञसंसिद्धाद्रामाद्याश्च समाः पितुः । यज्ञविघ्नविनाशाय विश्वामित्रार्थितो नृपः ॥ ६ ॥ रामं सम्प्रेषयामास लक्ष्मणं मुनिना सह। रामो गतोस्त्रशस्त्राणि शिक्षितस्ताटकान्तकृत् ॥ ७ ॥ मारीचं मानवास्त्रेण मोहितं दूरतोऽनयत् । सुबाहुं यज्ञहन्तारं सबलं चावधीद्बली ॥८॥ सिद्धाश्रमनिवासी च विश्वामित्रादिभिः सह। गतः क्रतुं मैथिलस्य द्रष्टुं चापं सहानुजः ॥९॥ शतानन्दनिमित्तेन विश्वामित्रप्रभावतः।**

में आए, किन्तु कार्तवीर्य सहस्रबाहु के पुत्रों ने परशुराम के वन में चले जाने पर जामदग्नि को मार डाला । इसके पश्चात् वन से लौटकर तथा अपने पिता को मरे हुए देखकर पिता की मृत्यु से क्रुद्ध होकर श्रीपरशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित बनाया । कुरुक्षेत्र में पाञ्चकुण्डों का निर्माण करके, पितरों का उसमें तर्पण करके तथा सारी पृथ्वी कश्यप ऋषि को दान देकर स्वयम् वे तपस्या करने के लिए महेन्द्र पर्वत पर चले गए ।।१६-१९।। कूर्मावतार, वराहावतार, नृसिंहावतार, वामनरावतार तथा परशुरामावतार की कथा का श्रवण करके मनुष्य स्वर्गलोक का भागी होता है।।२०-२१।।

इस तरह से आदि महापुराण अग्निपुराण का श्रीभगवान् के वराह, नृसिंह, वामन तथा परशुरामावतार का वर्णन नामक चौथा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

अग्निदेव ने कहा– प्राचीनकाल में देवर्षि नारद ने जिस प्रकार से महर्षि बाल्मीकि को उपदेश दिया था उसी तरह से मैं रामायण की कथा का उपदेश आपको दे रहा हूँ । उसके पढ़ने से इस लोक में भोग तथा परलोक में मुक्ति की प्राप्ति होती है ।।१।। **श्रीनारदजी ने कहा–** श्रीविष्णु भगवान् के नाभिकमल से ब्रह्माजी पैदा हुए, उनसे मरीचि, मरीचि से कश्यप उत्पन्न हुए, कश्यप से सूर्य उत्पन्न हुए और सूर्य से वैवश्वत मनु उत्पन्न हुए।।२।। उसके पश्चात् वैवस्वत मनु से इक्ष्वाकु उत्पन्न हुए । उन्हीं के वंश में ककुत्स्थ नामक राजा उत्पन्न हुए, ककुत्स्थ के पुत्र रघु हुए, उनसे अज उत्पन्न हुए और अज से दशरथ उत्पन्न हुए ।।३।। रावण आदि का वध करने के लिए स्वयं श्रीहरि चार रूपों में अवतीर्ण हुए । राजा दशरथ के पुत्र राम कौसल्या के गर्भ से उत्पन्न हुए ।।४।। कैकेयी के गर्भ से भरत तथा सुमित्रा के गर्भ से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न उत्पन्न हुए । ऋष्यशृङ्ग के द्वारा प्रदान किए गए सम्यक् सिद्ध पायस का प्राशन (भक्षण) करने के कारण उन (कौसल्या) कैकेयी तथा सुमित्रा इन तीन रानियों के पुत्र राम आदि अपने पिता दशरथ के ही समान बलवान् हुए ।। ५।। राक्षसों द्वारा किए जाने वाले यज्ञ में विघ्न को दूर करने के लिए महर्षि विश्वामित्र द्वारा प्रार्थना किए जाने पर राजा दशरथ ने श्रीराम तथा लक्ष्मण को मुनि विश्वामित्र के साथ भेज दिया।। मुनि के साथ गए हुए तथा राक्षसी ताड़का का वध करने वाले श्रीराम को मुनि विश्वामित्र नेअस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा दी ।।६-७ ।। श्रीराम ने मानवास्त्र के द्वारा मोहित करके मारीच को दूर पहुँचा दिया और यज्ञों को विध्वंस करने वाले सुबाहु तथा उसकी सेना को मार डाला ।।८।। विश्वामित्र आदि के साथ

रामश्च प्रार्थितो राज्ञा स मुनिः पूजितः क्रतौ ॥ १० ॥ धनुरापूरयामास लीलया स बभञ्ज तत् । वीर्यशुल्कां स जनकः सीतां कन्यां त्वयोनिजाम्॥ ११॥ ददौ रामाय, रामोऽपि पित्रादौ हि समागते । उपयेमे जानकीं तामूर्मिलां लक्ष्मणस्तदा ॥ १२ ॥ श्रुतकीर्तिर्माण्डवी च कुशध्वजसुते तथा । जनकस्यानुजस्यैते शत्रुघ्नभरतावुभौ ॥ १३ ॥ कन्ये द्वे तूपयेमाते जनकेन सुपूजितः । रामोऽगात्स वसिष्ठाद्यैर्जामदग्न्यं विजित्य च ॥ १४॥ अयोध्यां भरतोऽप्यागात्सशत्रुघ्नो युधाजितः ॥ १५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये श्रीरामायणे बालकाण्डे पञ्चमोऽध्याय : ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

रामायणेऽयोध्याकाण्डम्

नारद उवाच— भरतेऽथ गते रामः पित्रादीनभ्यपूजयत् । राजा दशरथो राममुवाच शृणु राघव ॥ १ ॥ गुणानुरागाद्राज्ये त्वं प्रजभिरभिषेचितः। मनसाऽहं प्रभाते ते यौवराज्यं ददामि ह ॥ २ ॥ रात्रौ त्वं सीतया सार्धं संयतः सुव्रतो भव । राज्ञश्च मन्त्रिणश्चाष्टौ स वसिष्ठस्तथाऽब्रुवन् ॥ ३ ॥ दृष्टि र्जयन्तो विजयः सिद्धार्थो राज्यवर्धनः। अशोको धर्मपालश्च सुमन्त्रः सवसिष्ठकः ॥ ४ ॥ पित्रादिवचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स राघवः । स्थितो देवार्चनं कृत्वा कौसल्यायै निवेद्य तत् ॥ ५ ॥ राजोवाच वसिष्ठादीन् रामराज्याभिषेचने । सम्भारान् सम्भरन्तु स्म इत्युक्त्वा कैकयीं गतः ॥ ६॥ अयोध्यालङ्कृतिं दृष्ट्वा ज्ञात्वा रामाभिषेचनम् । भविष्यतीत्याचचक्षे कैकेयीं मन्थराऽसती ॥ ७ ॥ पादौ गृहीत्वा रामेण कर्षिता सापराधतः

सिद्धाश्रम में निवास करने वाले श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मण के साथ मैथिल (श्रीजनकराज) के धनुर्यज्ञ को देखने के लिए गए ।।९।। शतानन्द रूपी निमित्त (पुरोहित) के द्वारा तथा विश्वामित्र के प्रभाव से प्रभावित राजा जनक ने धनुर्यज्ञ में प्रख्यात महर्षि विश्वामित्र एवं श्रीराम की पूजा तथा प्रार्थना की ।।१०।। श्रीराम ने आसानी से ही धनुष को चढ़ाया और उसे तोड़ दिया। जनक ने भी अपनी वीर्यशुल्का (वीरता ही जिसका मूल्य था) अयोनिजा पुत्री सीता का विवाह श्रीराम के साथ कर दी । राम ने भी अपने पिता आदि के आने पर जानकी का पाणिग्रहण किया तथा लक्ष्मण ने उर्मिला का पाणिग्रहण किया ।।११-१२ ।। उसी तरह जनक के छोटे भाई कुशध्वज की दो पुत्रियों माण्डवी तथा श्रुतिकीर्ति का क्रमशः भरत एवं शत्रुघ्न ने पाणिग्रहण किया । जनक के द्वारा अच्छी तरह से पूजित होकर श्रीराम जमदग्नि के पुत्र श्री परशुराम को पराजित करके वसिष्ठ आदि के साथ अयोध्या आए तथा शत्रुघ्न के साथ भरत अपने मामा युधाजित के यहाँ चले गए ।।१३-१५।।

इस तरह से आदि महापुराण अग्निपुराण का बालकाण्ड वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५ ॥

नारदजी ने कहा– भरत के (अपने ननिहाल) चले जाने पर श्रीराम ने अपने माता-पिता आदि की पूजा की । राजा दशरथ ने श्रीराम से कहा राघव ! सुनो ।।१।। तुम्हारे गुणों से अनुरक्त होकर प्रजा ने मन से तुम्हें राजा बना दिया है, मैं तुम्हें प्रातःकाल युवराज बनाऊँगा ।।२।। रात्रि में तुम संयमपूर्वक व्रत का पालन करो । वसिष्ठ जी के साथ-साथ राजा दशरथ के आठ मन्त्रियों (१) दृष्टि (२) जयंत (३ विजय (४) सिद्धार्थ (५) राज्यवर्धन (६) अशोक (७) धर्मपाल तथा (८) सुमन्त्र- ने भी ऐसा ही कहा है ।।३-४।। पिता आदि की बातों को सुनकर श्रीराम ने 'अच्छी बात है' यह कहकर इस बात को कौसल्याजी को बतलाकर तथा देवताओं की पूजा करके (व्रती) हो गए ।।५।। राजा दशरथ वसिष्ठ आदि से यह कहकर कि राम के राज्याभिषेक की सामग्री जुटायी जाय;

तेन वैरेण सा रामं वनवासं च काङ्क्षति ॥ ८ ॥ कैकेयि त्वं समुत्तिष्ठ रामराज्याभिषेचनम् । मरणं तव पुत्रस्य मम ते नात्र संशयः ॥ ९ ॥ कुब्जयोक्तं च तच्छ्रुत्वा एकमाभरणं ददौ । उवाच मे यथा रामस्तथा मे भरतः सुतः॥ १०॥ उपायं तं न पश्यामि भरतो येन राज्यभाक् । कैकेयीमब्रवीत्क्रुद्धा हारं त्यक्त्वाथ मन्थरा ॥ ११ ॥ मन्थरोवाच– बालिशे रक्ष भरतमात्मानं मां च राघवात् । भविता राघवो राजा राघवस्य ततः सुताः ॥ १२ ॥ राजवंशस्तु कैकेयि, भरतात्परिहास्यते । देवासुरे पुरा युद्धे शम्बरेण हताः सुराः ॥ १३ ॥ रात्रौ भर्ता गतस्तत्र रक्षितो विद्यया त्वया। वरद्वयं तदा प्रादाद्याचेदानीं नृपं च यत् ॥ १४ ॥ रामस्य च वने वासं नव वर्षाणि पञ्च च । यौवरज्यं च भरते तदिदानीं प्रदास्यति ॥१५॥ प्रोत्साहिता कुब्जया सा अनर्थे चार्थदर्शिनी । उवाच सदुपायो मे कथितः सः करिष्यति ॥ १६ ॥ क्रोधागारं प्रविश्याथ पतिता भुवि मूर्च्छिता । द्विजादीनर्चयित्वाथ राजा दशरथस्तदा ॥ १७ ॥ ददर्श कैकेयीं रुष्टामुवाच कथमीदृशी । रोगार्ता किं भयोद्विग्ना किमिच्छसि करोमि तत् ॥ १८ ॥ येन रामेण हि विना न जीवामि मुहूर्तकम् । शपामि तेन कुर्यां ते वाञ्छितं तव सुन्दरि ॥ १९ ॥ सत्यं ब्रूहीति सोवाच नृप मह्यं ददासि चेत् । वरद्वयं पूर्वदत्तं सत्यार्थं देहि मे नृप ॥ २०॥ चतुर्दश समा रामो वने वसतु संयतः । सम्भारैरेभिरद्यैव भरतोऽत्राभिषेच्यताम् ॥ २१ ॥ विषं पीत्वा मरिष्यामि दास्यसि त्वं न चेन्नृप। तच्छ्रुत्वा मूर्च्छितो भूमौ वज्राहत इवापतत् ॥ २२ ॥ मुहूर्ताच्चेतनां प्राप्य कैकेयीमिदमब्रवीत्। किं कृतं तव रामेण मया वा पापनिश्चये॥२३॥ यन्मामेवं ब्रवीषि त्वं सर्वलोकाप्रियङ्करि । केवलं त्वत्प्रियं कृत्वा भविष्यामि सुनिन्दितः ॥२४॥ न त्वं भार्या कालरात्रिर्भरतो नेदृशः

कैकेयी के पास गए ।।६।। अयोध्या की सजावट को देखकर तथा राम का राज्याभिषेक होगा यह जानकर दुष्टा मन्थरा कैकेयी के पास गयी ।।७।। अपराधिनी मनरा के पैर को पकड़कर राम ने एक बार घसीटा था उसी वैर से वह राम को वनवास देना चाहती थी।।८।। उसने कैकेयी से कहा- कैकेयी ! तुम सावधान हो जाओ, राम का राज्याभिषेक हो रहा है । ऐसा होने पर निःसंदेह तुम्हारे पुत्र की तथा मेरी मृत्यु होगी ।।९।। कुब्जाकी उस बात को सुनकर कैकेयी ने उसे अपना एक आभूषण दिया और कहा मेरे तो राम तथा भरत दोनों एक समान पुत्र हैं ।।१०।। मैं कोई ऐसा उपाय नहीं जानती कि भरत राज्य के भागी हों यह सुनकर क्रुद्ध मन्थरा ने हार फेंककर **कैकेयी से कहा–** ।।११।। **मन्थरा ने कहा–** मूर्खे ! तुम राघव से भरत को, अपने को तथा मुझे बचाओ । राम राजा होंगे तो उनके बाद उनके पुत्र राजा होंगे।।१२।। हे कैकेयि ! इस तरह से तो भरत के हाथ से राजवंश ही निकल जायेगा । प्राचीनकाल में जब देवासुर संग्राम में शम्बरासुर ने देवताओं को पराजित कर दिया था ।।१३।। उस युद्ध में गए हुए अपने पति की रात्रि में रक्षा तुमने अपनी विद्या के द्वारा की थी । उस समय राजा ने तुम्हें दो जो वरदान दिये थे । उन्हें अब राजा से माँग लो।।१४।। राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास तथा भरत के लिए युवराज पद, उन वरदानों को इस समय राजा देंगे ।।१५।। कुब्जा के द्वारा प्रोत्साहित होकर अनर्थ में भी अपने स्वार्थ की सिद्धि को समझने वाली **कैकेयी ने कहा–** तुमने मुझे अच्छा उपाय बतलाया । राजा इसे अवश्य करेंगे ।।१६।।इसके बाद वह कोपभवन में जाकर पृथ्वी पर गिरकर मूर्छित हो गयी । इसके पश्चात् राजा दशरथ ब्राह्मण आदि की अर्चना करके कैकेयी के पास गए तथा रुष्ट कैकेयी से पूछे कि तुम ऐसी कैसे हो गयी ? क्या तुम किसी रोग से पीड़ित हो ? अथवा किसी भय से उद्विग्न हो गयी हो ? तुम क्या चाहती हो? जिसे मैं करूँ ।।१७-१८।। सुन्दरी! जिस राम के बिना मैं मुहूर्त भर भी नहीं जी सकता उसी राम की शपथ करता हूँ, तुम्हारे मनोरथ को अवश्य पूर्ण करूँगा।।१९।। **कैकेयी ने कहा–** राजन्! सच-सच कहें । यदि आप देना ही चाहते हैं तो सत्य की रक्षा के लिए आप मुझे उन दो वरदानों को दीजिए जिन्हें आप मुझे पहले ही दे चुके हैं ।।२०।। श्रीराम संयमी रहकर चौदह वर्ष पर्यन्त वन में निवास करें और इन्हीं अभिषेक सामग्रियों से आज आप भरत को युवराज पद पर अभिषिक्त करें।।२१।। राजन् ! यदि यह वरदान आप नहीं देंगे तो मैं विष पीकर मर जाऊँगी । इस बात को सुनकर राजा दशरथ बज्र से मारे गए के समान मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े । मुहूर्त भर के पश्चात् चेतना प्रप्त करके उन्होंने कैकेयी से कहा ।।२२।। **राजा ने कहा–** पापमय निश्चयवाली तथा सम्पूर्ण संसार का अपकार करने वाली कैकेयि ! रामने अथवा मैंने तुम्हारा कैन सा ऐसा अपराध किया है कि तुम इस तरह से बोल रही हो ?।।२३।। केवल तुम्हारा मनोरथ पूरा करके मैं संसार

सुतः । प्रशाधि विधवा राज्यं मृते मयि गते सुते ॥ २५॥ सत्यपाशनिबद्धस्तु राममाहूय चाब्रवीत् । कैकेय्या वञ्चितो राम राज्यं कुरु निगृह्य माम्॥२६॥ त्वया वने तु वस्तव्यं कैकेयी भरतो नृपः। पितरं चैव कैकेयीं नमस्कृत्य प्रदक्षिणम् ॥ २७॥ कृत्वा नत्वा च कौसल्यां समाश्वास्य सलक्ष्मणः । सीतया भार्यया सार्धं सरथः ससुमन्त्रकः॥ २८॥ दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यो दीनानाथेभ्य एव सः । मातृभिश्चैव पित्राद्यैः शोकार्तैर्निर्गतः पुरात् ॥ २९॥ उषित्वा तमसातीरे रात्रौ पौरान् विहाय च । प्रभाते तमपश्यन्तोऽयोध्यां ते पुनरागताः॥ ३०॥ रुदन् राजापि कौसल्यागृहमागात् सुदुःखितः । पौरा जनाः स्त्रियः सर्वा रुरुदू राजयोषितः॥ ३१॥ रामो रथस्थश्चीराढ्यः शृङ्गवेरपुरं ययौ । गुहेन पूजितस्तत्र इङ्गुदीमूलमाश्रितः ॥३२॥ लक्ष्मणः सगुहो रात्रौ चक्रतुर्जागरं हि तौ । सुमन्त्रं सरथं त्यक्त्वा प्रातर्नावाऽथ जाह्नवीम् ॥ ३३॥ रामलक्ष्मणसीताश्च तीर्त्वा तेऽगुः प्रयागकम् । भरद्वाजं नमस्कृत्य चित्रकूटगिरिं ययुः ॥ ३४॥ वास्तुपूजां तत्र कृत्वा स्थिता मन्दाकिनीतटे । सीतायै दर्शयामास चित्रकूटं च राघवः ॥ ३५॥ नखैर्विदारयन्तं तं काकं तच्चक्षुराक्षिपत् । ऐषिकास्त्रेण शरणं प्राप्तो देवान् विहाय सः ॥ ३६॥ रामे वनं गते राजा षष्ठेऽह्नि निशि चाब्रवीत् । कौसल्यायै कथां पूर्वां यदज्ञानाद्धतः पुरा ॥ ३७॥ कौमारे सरयूतीरे यज्ञदत्तकुमारकः । शब्दभेदाच्च कुम्भेन शब्दं कुर्वंश्च तत्पिता ॥ ३८॥ शशाप विलपन्मात्रा शोकं कृत्वा रुदन्मुहुः । पुत्रं विना मरिष्यावस्त्वं च शोकान्मरिष्यसि॥ ३९॥ पुत्रं विना स्मरञ्शोकात्कौसल्ये मरणं मम । कथामुक्त्वाथ हा राममुक्त्वा राजा दिवं गतः ॥ ३९॥ सुप्तं मत्त्वाऽथ कौसल्या सुप्ता शोकार्तमेव सा । सुप्रभाते शयानं तं सूतमागधवन्दिनः ॥ ४१॥ प्रबोधका बोधयन्ति न च बुध्यत्यसौ नृपः । कौसल्या तं मृतं ज्ञात्वा हा हतास्मीति चापतत् ॥ ४२॥ नरा नार्योऽथ रुरुदुस्तैलद्रोण्यां निधाय तम् । वसिष्ठेन

में निन्दित हो जाऊँगा । तुम मेरी पत्नी नहीं तुम तो मेरी कालरात्रि हो ? किंतु भरत ऐसा पुत्र नहीं है ।।२४।। मेरे मर जाने तथा पुत्र राम के वन चले जाने पर विधवा होकर तुम राज्य का प्रशासन करो । सत्य के बन्धन में बँधे हुए राजा दशरथ ने **राम को बुलाकर कहा–** ।।२५।। राम मुझे कैकेयी ने धोखा दिया है । मुझे बन्दी बनाकर तुम राज्य करो ।। कैकेयी ने वरदान माँगा है कि तुम वन में निवास करो और भरत राजा बनें ।।२६।। श्रीराम ने पिता दशरथ तथा कैकेयी को नमस्कार करके था उनकी प्रदक्षिणा करके कौसल्या को नमस्कार करके तथा उन्हें आश्वासन देकर लक्ष्मण, पनी सीता रथ तथा सुमन्त्र के साथ ब्राह्मणों, दीनों तथा अनाथों को दान देकर, शोक से आर्त बने हुए माताओं तथा पिता आदि को छोड़कर नगर से निकल गए ।।२६-२८।। रात्रि में तमसा के तट में निवास करके और नागरिकों को छोड़कर वन में चले गए । प्रातःकाल में श्रीराम को नहीं देखकर, वे सब पुनःअयोध्या आए अत्यन्त दुखी राजा भी रोते हुए कौसल्या के घर आए ।।२९-३०।। पुरवासी लोग, सभी स्त्रियाँ तथा रानियाँ रोने लगीं । राम भी रथ पर बैठकर तथा चीर धारण करके शृङ्गवेरपुर चले गए ।।३१।। वहाँ पर निषादराज से पूजित राम इङ्गुदी वृक्ष के नीचे निवास किए । निषादराज और लक्ष्मण दोनों ही रात्रि पर्यन्त जागरण करते रहे ।।३२।। प्रातःकाल सुमन्त्र तथा रथ का त्याग करके राम, लक्ष्मण तथा सीता के साथ गङ्गा पार करके प्रयाग गए ।।३३।। भरद्वाज महर्षि को नमस्कार करके वे सभी चित्रकूट चले गए और वहाँ पर वास्तुपूजन करके मन्दाकिनी के तट पर रहने लगे ।।३४।। श्रीराम ने सीता को चित्रकूट पर्वत दिखाया । (जयन्त नामक) काक ने सीता को अपने नखों से नोचा तो (श्रीराम ने) ऐषिकास्त्र के द्वारा उसकी एक आँख फोड़ दी । वह जयन्त अन्य देवताओं का परित्याग करके श्रीराम की शरण में गया ।।३५।। राम के वन चले जाने पर छठें दिन राजा ने रात्रि में कौसल्या को कथा सुनाया कि किस प्रकार उन्होंने अपनी कुमारावस्था में सरयू के तट पर पानी भरने के घड़े के शब्द को सुनकर यज्ञदत्त के पुत्र श्रवण कुमार को शब्दवेधी बाण से मार दिया था और श्रवणकुमार की माता के साथ शोक करते हुए तथा बार-बार विलाप करते हुए मुनि ने शाप दिया था ।।३६-३८।। हम दोनों पुत्र के विना मर जायेंगे तुम भी पुत्र के शोक में मरोगे ! कौसल्ये ! पुत्रके विना शोक के कारण मेरी मृत्यु होयेगी । इस तरह से कथा कहकर, हाय राम ! यह कहकर राजा दशरथ स्वर्गलोक चले गए । इसके पश्चात् शोकार्त राजा को सोया हुआ जानकर कौसल्या भी सो गयीं ।।३९-४०।। प्रातःकाल होने पर राजा को जगाने वाले सूत, मागध तथा वन्दीजन सोए हुए राजा को जगाने लगे किन्तु वे जगे नहीं।।४१।। राजा

च तत्कालमानीतो भरतः किल ॥ ४४॥ सुमन्त्राद्यैः सशत्रुघ्नः शीघ्रं राजगृहात्पुरीम् । दृष्ट्वा सशोकां कैकेयीं निन्दयामास दुःखितः ॥ ४५॥ अकीर्तिः पातिता मूर्ध्नि कौसल्यां स प्रशस्य च । पितरं तैलद्रोणीस्थं संस्कृत्य सरयूतटे ॥ ४६॥ वसिष्ठाद्यैर्जनैरुक्तो राज्यं कुर्विति सोऽब्रवीत् । व्रजामि राममानेतुं रामो राजा मतो बली ॥ ४७॥ शृङ्गवेरं प्रयागं च भरद्वाजेन भोजितः । नमकृत्य भरद्वाजं रामं लक्ष्मणमागतः॥ ४८॥ पिता स्वर्गं गतो राम अयोध्यायां नृपो भव । अहं वनं प्रयास्यामि त्वदादेशप्रतीक्षकः॥ ४९॥ रामः श्रुत्वा जलं दत्त्वा गृहीत्वा पादुके व्रज । राज्यायाहं न यास्यामि सत्याच्चीरजटाधरः ॥ ५०॥ रामोक्तो भरतश्चागान्नन्दिग्रामे स्थितो बली । त्यक्त्वाऽयोध्यां पादुके ते पूज्य राज्यं प्रपालयत्॥ ५१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रामायणेऽयोध्याकाण्डे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

रामायणेऽरण्यकाण्डवर्णनम्

नारद उवाच– **रामो वसिष्ठं मातृश्च नत्वात्रिं च प्रणम्य सः । अनसूयां च तत्पत्नीं शरभङ्गं सुतीक्ष्णकम् ॥ १ ॥ अगस्त्यभ्रातरं नत्वा अगस्त्यं तत्प्रसादतः । धनुः खड्गं च सम्प्राप्य दण्डकारण्यमागतः ॥ २ ॥ जनस्थाने पञ्चवट्यां स्थितो गोदावरीतटे । तत्र शूर्पणखाऽऽयाता भक्षितुं तान्भयङ्करी ॥ ३ ॥ रामं सुरूपं दृष्ट्वा सा कामिनी वाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥** शूर्पणखोवाच– **कस्त्वं कस्मात्समायातो भर्ता मे भव चार्थितः । एतौ च**

को मरा हुआ जानकर कौसल्या हाय ! मैं मर गयी' ऐसा कहकर गिर पड़ीं । इसके पश्चात् राजा को तेल की द्रोणी (नाव) में रखकर नरनारी रोने लगे ।।४२।। महर्षि वसिष्ठ ने तत्काल सुमन्त्र आदि को भेजकर शत्रुघ्न के साथ भरत को राजगृह (ननिहाल) से अयोध्या बुलवाया ।।४३।। दुखी भरत ने शोकार्त्त कैकेयी को देखकर उसकी निन्दा की । कौसल्या की प्रशंसा करके अपयश कैकेयी के शिर पर मढ़ दिया ।।४४।। तेल की द्रोणी में रखे हुए पिता का सरयू तट में संस्कार करके वसिष्ठ आदि स्वजनों द्वारा 'राज्य करो' यह कहे जाने पर **भरत ने कहा–** मैं राम को लाने के लिए वन जा रहा हूँ । मेरे मतानुसार बलवान् श्री राम ही राजा हैं। शृंङ्गवेरपुर के पश्चात् प्रयाग में भरद्वाज महर्षि ने उनको भोजन कराया ।।४६।। भरद्वाज महर्षि को नमस्कार करके भरत राम तथा लक्ष्मण के पास आए और बोले– राम ! पिता स्वर्ग चले गए आप अयोध्या के राजा बनें ।।४७।। आपकी आज्ञा पाकर मैं बन जाऊँगा । इस समाचार को सुनकर श्रीराम ने जलाञ्जलि देकर भरत को आदेश दिया कि मेरी चरण पादुका को लेकर तुम लौट जाओ ।।४८।। सत्य का पालन करने के लिए चिर तथा जटा धारण करने वाला मैं राज्य करने के लिए नहीं जाऊँगा । श्रीराम का आदेश प्राप्त करके बली भरत लौट आए और नन्दिग्राम में रहने लगे ।। ४९ ।। अयोध्या का त्याग करके उन दोनों पादुकाओं का पूजन करके उन्होंने राज्य का पालन किया ।। ५०-५१ ।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण के रामायण के अयोध्याकाण्ड की कथा वर्णन नामक छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥

नारदजी ने कहा– वे (प्रख्यात) श्रीराम महर्षि वसिष्ठ तथा माताओं को नमस्कार करके अत्रि मुनि तथा उनकी पत्नी अनसूया को नमस्कार करके शरभङ्ग ऋषि सुतीक्ष्ण ऋषि, अगस्त्य महर्षि के भाई (अग्निजिह्वा ऋषि) तथा अगस्त्य महर्षि को प्रणाम करके उनकी कृपा से धनुष् तथा खड्ग को प्राप्त करके दण्डकारण्य आए ।।१-२।। दण्डकारण्य के पञ्चवटी में गोदावरी नदी के तट पर वे रहने लगे । वहाँ पर उन सबों को खाने के लिए भयङ्कर आकार वाली राक्षसी शूर्पणखा आयी ।।३।। राम के सुन्दर रूप को देखकर कामार्ता होकर वह कहने लगी ।। ४ ।। **शूर्पणखा ने**

भक्षयिष्यामि इत्युक्त्वात्तुं समुद्यता॥ ५ ॥ तस्य नासां च कर्णौ च रामोक्तो लक्ष्मणोऽच्छिनत् । रक्तं क्षरन्ती प्रययौ खरं भ्रातरमब्रवीत्॥ ६ ॥ मरिष्यामि विनासाऽहं खर जीवामि वै तदा । रामस्य जाया सीताऽस्ति तस्यासील्लक्ष्मणोऽनुजः ॥ ७ ॥ तेषां यद्रुधिरं क्वोष्णं पाययिष्यसि मां यदि॥ खरस्तथेति तामुक्त्वा चतुर्दशसहस्त्रकैः ॥ ८ ॥ रक्षसां दूषणेनागादथ त्रिशिरसा सह । रामं, रामोऽपि युयुधे शरैर्विव्याध राक्षसान् ॥ ९ ॥ हस्त्यश्वरथपादातं बलं निन्ये यमक्षयम् । त्रिशीर्षाणं खरं रौद्रं युध्यन्तं चैव दूषणम् ॥ १०॥ ययौ शूर्पणखा लङ्कां रावणाग्रेऽपतद्भुवि । अब्रवीद् रावणं क्रुद्धा न त्वं राजा च रक्षकः ॥ ११ ॥ खरादिहन्तू रामस्य सीतां भार्यां हरस्व च । रामलक्ष्मणरक्तस्य पानाज्जीवामि नान्यथा ॥ १२ ॥ तथेत्याह च तच्छुत्वा मारीचं प्राह वै व्रज। स्वर्णचित्रमृगो भूत्वा रामलक्ष्मणकर्षकः ॥ १३ ॥ सीताग्रे तां हरिष्यामि अन्यथा मरणं तव । मारीचो रावणं प्राह रामो मृत्युर्धनुर्धरः ॥ १४ ॥ रावणादपि मर्तव्यं मर्तव्यं राघवादपि । अवश्यं यदि मर्तव्यं वरं रामो न रावणः ॥ १५ ॥ इति मत्त्वा मृगो भूत्वा सीताग्रे व्यचरन्मुहुः । सीतया प्रेरितो रामः शरेणाथावधीच्च तम् ॥ १६ ॥ म्रियमाणो मृगः प्राह हा सीते ! लक्ष्मणेति च । सौमित्रिः सीतयोक्तोऽथ विरुद्धं राममागतः ॥ १७ ॥ रावणोऽप्यहरत्सीतां हत्वा गृध्रं जटायुषम् । जटायुषा स विरथो अङ्केनादाय जानकीम् ॥ १८ ॥ गतो लङ्कामशोकाख्ये धारयामास चाब्रवीत् । 'भव भार्या ममाग्र्या त्वं :राक्षस्यो ! रक्ष्यतामियम्' ॥ १९॥ रामो हत्वाथ मारीचं दृष्ट्वा लक्ष्मणमब्रवीत्॥२०॥ श्रीराम उवाच– मायामृगोऽसौ सौमित्रे! यथा त्वमिह चागतः। तथा सीता हृता नूनं नापश्यत्स गतोऽथ ताम् ॥ २१ ॥ शुशोच विललापार्तो मां त्यक्त्वा क्व गतासि

कहा– तुम कौन हो ? यहाँ किसलिए आए हो ? मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि तुम मेरे पति बन जाओ । इन दोनों को मैं खा जाऊँगी । यह कहकर वह उन सबों को खाने के लिए वह तैयार हो गयी ।।५।। राम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण ने उसकी नाक और कान दोनों काट लिया । रक्त बहाती हुई शूर्पणखा अपने भाई खर के पास जाकर बोली ।।६।। नाक से रहित मैं मर जाऊँगी और मैं तब जीऊँगी- जब राम, राम की पत्नी सीता तथा राम के अनुज लक्ष्मण के गर्म-गर्म खून मुझको पिलाओगे। **खर ने कहा–** 'अच्छी बात है' इस प्रकार से उससे (शूर्पणखा) से कहकर चौदह हजार राक्षसों तथा अपने छोटे भाई दूषण तथा त्रिशिरा के साथ वह राम के पास आया । राम ने भी युद्ध किया तथा वे बाणों से राक्षसों के मारने लगे ।।८-९।। उन्होंने हाथी, घोड़े रथ तथा पैदल सेना को तथा भयंकर युद्ध करने वाले त्रिशिरा, खर तथा दूषण को मार दिया ।।१०।। शूर्पणखा लङ्का जाकर रावण के समक्ष पृथ्वी पर गिर पड़ी और क्रुद्ध होकर रावण से बोली कि न तो तुम राजा हो और न तो रक्षक ।।११।। खर आदि का वध करने वाले राम की पत्नी सीता का हरण करो । मैं राम तथा लक्ष्मण के रक्त का पान करके ही जी सकती हूँ , अन्यथा नहीं ।।१२।। उसकी उन बातों को सुनकर रावण ने कहा ऐसा ही होगा । उसने मारीच से कहा कि तुम राम तथा लक्ष्मण को दूर ले जाने वाला सुवर्ण का मृग बनकर पहले सीता के सामने जाओ। ऐसा करने पर मैं सीता का हरण करूँगा । यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है । मारीच ने रावण से कहा कि राम तो धर्नुधारण करने वाले मृत्यु के समान हैं ।।१३-१४।। राम के भी हाथ से मरना है और रावण के भी हाथ से मरना है । यदि मरना निश्चित है तो राम के ही हाथों मरना ठीक है रावण के हाथों नहीं ।।१५।। यह सोचकर वह स्वर्ण मृग बनकर बार-बार सीता के समक्ष विचरण करने लगा । सीता के द्वारा प्रेरित होकर राम ने बाण से उसका वध किया ।।१६।। मरते समय मृग ने कहा हाय ! सीते ! हाय ! लक्ष्मण ! सीता का आदेश पाकर राम की आज्ञा के विरुद्ध भी लक्ष्मण राम के पास आए ।।१७।। रावण ने भी जटायू नामक गृध्र का वध करके सीता का अपहरण कर लिया । जटायू के द्वारा रथ रहित बना दिए जाने के कारण वह जानकी को कन्धे पर बैठाकर लङ्का चला गया और सीता को अशोक बाटिका में रख दिया तथा कहा ।।१८-१९।। **रावण ने कहा–** तुम मेरी पत्नी बन जाओ । राक्षसियों तुम लोग इसकी रक्षा करो । उधर राम ने मारीच का वध करके तथा लक्ष्मण को देखकर कहा ।।२०।। सुमित्रानन्दन ! वह माया मृग था । जब तुम यहाँ आये उसी समय किसी ने सीता का अपहरण कर लिया। (आश्रम में) जाकर श्रीराम सीता को नहीं

वै । लक्ष्मणाश्वासितो रामो मार्गयामास जानकीम् ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा जटायुस्तं प्राह रावणो हृतवांश्च ताम् । मृतोऽथ संस्कृतस्तेन कबन्धं चावधीत्ततः॥२३॥ शापमुक्तोऽब्रवीद्रामं स त्वं सुग्रीवमाव्रज ॥ २४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रामायणे अरण्यकाण्डे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

रामायणे किष्किन्धाकाण्डम्

नारद उवाच— **रामः पम्पासरो गत्वाऽशोचत्स शबरीं गतः । हनूमताऽथ सुग्रीवं नीतो मित्रं चकार ह ॥ १ ॥ सप्ततालान्विनिर्भिद्य शरेणैकेन पश्यतः। पादेन दुन्दुभेः कायं चिक्षेप दशयोजनम् ॥ २ ॥ तद्रिपुं बालिनं हत्त्वा भ्रातरं वैरकारिणम् । किष्किन्धां कपिराज्यं च रुमां तारां समर्पयत् ॥३॥ ऋष्यमूके हरीशाय, किष्किन्धेशोऽब्रवीदथ । सीतां त्वं प्राप्स्यसे यद्वत्तथा राम ! करोमि ते ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा माल्यवत्पृष्ठं चातुर्मास्यं चकार सः । किष्किन्धायां च सुग्रीवो यदा नायाति दर्शनम् ॥ ५ ॥ तदाब्रवीत्तं रामोक्तो लक्ष्मणो व्रज राघवम् । न स सङ्कुचितः पन्था येन वाली हतो गतः ॥६॥ समये तिष्ठ सुग्रीव मा बालिपथमन्वगाः ॥ सुग्रीव आह संसक्तो गतं कालं न बुद्धवान् ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा स गतो रामं नत्वोवाच हरीश्वरः । आनीता वानराः सर्वे सीतयाश्च गवेषणे ॥ ८॥ त्वन्मताः प्रेषयिष्यामि विचिन्वन्तु च जानकीम् । पूर्वादौ मासपर्यन्तं मासादूर्ध्वं निहन्मि तान् ॥ ९॥ इत्युक्ता**

पाए ।।२१।। सीता को नहीं पाकर वे शोक करने लगे और आर्त होकर विलाप करते हुए बोले सीते ! तुम मुझको छोड़कर कहाँ चली गयी ? लक्ष्मण के द्वारा आश्वासन पाकर वे सीता को खोजने लगे ।।२२।। जटायू ने राम को देखकर कहा कि सीता का अपहरण रावण ने किया है ।। इसके बाद जटायू की मृत्यु हो गयी । श्रीराम ने उसका (जटायू का) (अन्तिम) संस्कार किया । उसके पश्चात् उन्होंने कबन्ध नामक राक्षस का वध किया ।।२३।। शाप से मुक्त होकर कबन्ध ने श्रीराम से कहा कि आप सुग्रीव के पास जाइये।।२४।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का रामायण के अरण्यकाण्ड की कथा वर्णन नामक सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७ ॥

नारदजी ने कहा— राम पम्पासर जाकर शोक करने लगे । पुनः वे शबरी के पास गए । उसके पश्चात् हनुमान् ने लाकर सुग्रीव को उनका मित्र बना दिया ।।१।। श्रीराम ने एक ही बाण से सात तालवृक्षों को गिराकर, अपने पैर से दुन्दुभि के शरीर को दस योजन दूर फेंक दिया ।।२।। श्रीराम ने भाई से बैर करने वाले सुग्रीव के शत्रु बालि को मारकर वानरराज्य किष्किन्धा, रुमा तथा तारा को उसे (सुग्रीव को) समर्पित कर दिया ।।३।। उसके पश्चात् ऋष्यमूक पर्वत पर किष्किन्धा के स्वामी सुग्रीव ने कहा- श्रीराम ! आप जिस प्रकार से सीता को प्राप्त कर सकेंगे, वैसा कार्य मैं आपके लिए कर रहा हूँ ।।४।। उसकी (सुग्रीव) जब तक बातों को सुनकर किष्किन्धा में रहने वाले सुग्रीव सामने नहीं आए तब तक श्रीराम ने माल्यवान् पर्वत पर चातुर्मास्य किया ।।५।। उस समय राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने सुग्रीव से कहा कि तुम राम के पास जाओ, वह रास्ता बन्द नहीं हो गया है, जिससे मरकर बालि परलोक गया । अतएव तुम अपनी बात का पालन करो बालि के रास्ते पर नहीं चलो ।।६।। सुग्रीव ने कहा कि वासनासक्त होने के कारण मैं बीतते हुए काल को नहीं जान पाया । यह कहकर वानरों के स्वामी सुग्रीव राम के पास जाकर उन्हें प्रणाम करके कहने लगे ।।७-८।। **सुग्रीव ने कहा—** मैं सभी वानरों को सीता की खोज करने के लिए लाया हूँ । आपकी आज्ञा पाकर ये सभी सीता का अन्वेषण एक मास पर्यन्त पूर्व आदि दिशाओं में करें । महीना

वानराः पूर्वपश्चिमोत्तरमार्गगाः । जग्मू रामं ससुग्रीवमपश्यन्तस्तु जानकीम् ॥ १०॥ रामाङ्गुलीयं सङ्गृह्य हनूमान् वानरैः सह । दक्षिणे मार्गयामास सुप्रभाया गुहान्तिके ॥ ११॥ मासादूर्ध्वं च विन्ध्यस्था अपश्यन्तस्तु जानकीम् । ऊचुर्वृथा मरिष्यामो जटायुर्धन्य एव सः ॥ १२॥ सीतार्थे योऽत्यजत्प्राणान् रावणेन हतो रणे । तच्छ्रुत्वा प्राह सम्पातिर्विहाय कपिभक्षणम्॥ १३॥ भ्राताऽसौ मे जटायुर्वै मयोड्डीनोऽर्कमण्डलम्। अर्कतापाद्रक्षितोऽगाद्दग्धपक्षोऽहमत्रगः ॥ १४॥ रामवार्ताश्रवात्पक्षौ जातौ भूयोऽथ जानकीम् । पश्याम्यशोकवनिकागतां लङ्कागतां किल ॥ १५॥ शतयोजनविस्तीर्णे लवणाब्धौ त्रिकूटके । ज्ञात्वा, रामं ससुग्रीवं वानराः कथयन्तु वै ॥ १६ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रामायणे किष्किन्धाकाण्डेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

रामायणे सुन्दरकाण्डम्

नारद उवाच– **सम्पातिवचनं श्रुत्वा हनूमानङ्गदादयः । अब्धिं दृष्ट्वाऽब्रुवंस्तेऽब्धिं लङ्घयेत्को नु जीवयेत् ॥ १ ॥ कपीनां जीवनार्थाय रामकार्यप्रसिद्धये । शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवेऽब्धिं स मारुतिः ॥ २ ॥ दृष्ट्वोत्थितं च मैनाकं सिंहिकां विनिपात्य च । लङ्कां दृष्ट्वा रक्षसानां गृहाणि, वनितागृहे ॥ ३ ॥ दशग्रीवस्य कुम्भस्य कुम्भकर्णस्य रक्षसः । विभीषणस्येन्द्रजितो गृहेऽन्येषां च रक्षसाम् ॥ ४ ॥ नापश्यत्पानभूम्यादौ सीतां**

से अधिक होने पर मैं (सबों को) मार डालूँगा । इस तरह से आदेश पाकर पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर दिशा में जाने वाले वानर सीता का पता लगाए विना ही सुग्रीव तथा राम के पास लौट आए ।।९।। श्रीराम की अंगूठी लेकर वानरों के साथ हनुमान सुप्रभा की गुफा के पास दक्षिण दिशा में अन्वेषण करने लगे ।।११।। जानकी का पता लगाए विना ही एकमास से जब अधिक समय होने लगा तो उन सबों ने कहा- हम लोग तो व्यर्थ ही मरेंगे, हम लोगों में जटायू ही धन्य था, जो संग्राम में रावण के द्वारा मारे जाकर सीता के लिए अपने प्राणों को त्याग दिया ।।१२-१३।। इस बात को सुनकर सम्पाति ने वानरों को खाने का विचार त्यागकर कहा– निश्चय ही वह जटायू मेरा भाई था । मेरे साथ सूर्यमण्डल पर्यन्त उड़ता हुआ सूर्य की गर्मी से (मेरे द्वारा रक्षित होकर) लौट आया और पंखों के जल जाने से मैं यहाँ पड़ा रहा । राम की कथा सुनने से मेरे पंख पुनः जम गए हैं । मैं लङ्का की अशोक वाटिका में विद्यमान सीता को देख रहा हूँ ।। १५।। सौ योजन (चार सौ कोस) विस्तृत क्षार समुद्र में त्रिकूट पर्वत पर लङ्कावासी हैं । सीता का पता लगाकर सभी वानर राम तथा सुग्रीव को बतला दें ।।१६।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का रामयण के किष्किन्धाकाण्ड की कथा का वर्णन नामक आठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८ ॥

नारदजी ने कहा– सम्पाति की बात सुनकर तथा समुद्र को देखकर हनुमान् तथा अङ्गद आदि ने कहा कि हम लोगों में कौन है जो समुद्र को पार करके हम लोगों के जीवन की रक्षा करे ।।१।। बन्दरों के जीवन की रक्षा के लिए तथा श्रीराम के कार्य की सिद्धि के लिए हनुमान् सौ योजन चौड़े समुद्र को लाँघ गए ।। २ ।। अचानक समुद्र जल से ऊपर उठे मैनाक पर्वत को ढकेलकर तथा सिंहिका नामक राक्षसी को मारकर राक्षसों के निवासस्थान लङ्का को देखकर, रावण, कुम्भ तथा कुम्भकर्ण नामक राक्षसों के नरीगृह में, विभीषण, इन्द्रजित तथा अन्य राक्षसों के घर तथा मदिरालय आदि में सीता को नहीं देखकर हनुमान् चिन्तित हो गए ।। ३-४ ।। अशोकवाटिका में जाकर शिंशपावृक्ष के नीचे, राक्षसियों से घिरी हुई सीता को हनुमान् ने देखा । उसके पश्चात् हनुमान् जी ने

चिन्तापरायणः ॥ अशोकवनिकां गत्वा दृष्टवान् शिंशपातले ॥ ५ ॥ राक्षसीरक्षितां सीतां, भव भार्येति वादिनम् । रावणं शिंशपास्थोऽथ नेति सीतां
सुवादिनीम्॥ ६ ॥ भव भार्या रावणस्य राक्षसीर्वादिनीः कपिः। गते तु रावणे प्राह राजा दशरथोऽभवत् ॥ ७ ॥ रामोऽस्य लक्ष्मणः पुत्रौ वनवासं
गतौ वरौ । रामपत्नी जानकी त्वं रावणेन हृता बलात् ॥ ८ ॥ रामः सुग्रीवमित्रस्त्वां मार्गयन्प्रैषयच्च माम् । साभिज्ञानं चाङ्गुलीयं रामदत्तं गृहाण
वै ॥ ९ ॥ सीताङ्गुलीयं जग्राह सापश्यन्मारुतिं तरौ । भूयोऽग्रं चोपविष्टं तमुवाच यदि जीवति ॥ १० ॥ रामः कथं न नयति शङ्कितामब्रवीत्कपिः
रामः सीते न जानाति ज्ञात्वा त्वां स नयिष्यति ॥ ११॥ रावणं राक्षसं हत्त्वा सबलं देवि मा शुचः । साभिज्ञानं देहि मे त्वं मणिं सीताऽददात्
कपौ॥१२॥ उवाच मां यथा रामो नयेच्छीघ्रं तथा कुरु । काकाक्षिपातनकथां प्रातर्याहि हि शोकहा ॥ १३॥ मणिं कथां गृहीत्वाऽऽह हनूमान्नेष्यते
पतिः । अथवा ते त्वरा काचित्पृष्ठमारुह मे शुभे ॥ १४॥ अद्य त्वां दर्शयिष्यामि ससुग्रीवं च राघवम् । सीताऽब्रवीद्धनूमन्तं नयतां मां हि
राघवः॥१५॥ हनूमान् स दशग्रीवदर्शनोपायमाकरोत् । वनं बभञ्ज तत्पालान्हत्त्वा दन्तनखादिभिः ॥ १६॥ हत्त्वा तु किङ्करान् सर्वान् सप्त
मन्त्रिसुतानपि । पुत्रमक्षं कुमारं च शक्रजिच्च बबन्ध तम् ॥ १७॥ नागपाशेन पिङ्गाक्षं दर्शयामास रावणम् । उवाच रावणः ''कस्त्वं'' मारुतिः प्राह
रावणम् ॥ १८ ॥ रामदूतो राघवाय सीतां देहि मरिष्यसि । रामबाणैर्हतः सार्धं लङ्कास्थै राक्षसैर्ध्रुवम् ॥ १९॥ रावणो हन्तुमुद्युक्तो विभीषणनिवारितः।
दीपयामास लाङ्गूलं दीप्तपुच्छः स मारुतिः ॥ २० ॥ दग्ध्वा लङ्कां राक्षसानां दृष्ट्वा सीतां प्रणम्य ताम् । समुद्रपारमागम्य दृष्टा सीतेति चाब्रवीत्॥२१॥
अङ्गदादीन्, अङ्गदाद्यैः पीत्वा मधुवने मधु । जित्वा दधिमुखादींश्च दृष्ट्वा रामं च तेऽब्रुवन् ॥ २२ ॥ दृष्टा सीतेति रामोऽपि हृष्टः पप्रच्छ मारुतिम्।

'मेरी पत्नी बन जाओ' यह कहने वाले रावण को तथा 'मैं ऐसा नहीं कर सकती' इस तरह से कहने वाली सीता को एवं 'तुम रावण की पत्नी हो जाओ' इस तरह से कहने वाली राक्षसियों को देखा।।५-६।। रावण के चले जाने पर **हनुमान् जी ने कहा–** एक थे राजा दशरथ । उनके दो श्रेष्ठ पुत्र राम और लक्ष्मण वनवास में गए । आप राम की पत्नी जानकी हैं, रावण ने आपका बलपूर्वक हठात् अपहरण किया है ।। ७-८ ।। सुग्रीव के मित्र राम ने आपका अन्वेषण कराते हुए मुझे आपके पास भेजा है । श्रीराम के स्मृति चिह्न के साथ, श्रीराम के द्वारा भेजी गयी अंगूठी को आप स्वीकार करें।।९।। सीता ने पेड़ पर बैठे हुए हनुमान् को देखा तथा अंगूठी को ले लिया । पुनः अपने समक्ष बैठे हुए हनुमान् से सीता ने कहा कि यदि राम जीवित हैं तो वे मुझे यहाँ से क्यों नहीं ले चलते हैं ? **हनुमान् ने कहा–** सीते ! आपको श्रीराम नहीं जानते हैं, हे देवि ! जानकर वे सेना के साथ रावण का बध करके, यहाँ से ले जायेंगे; आप शोक न करें ।। १२ ।। आप अपनी कोई पहचान मुझे दीजिए सीता ने हनुमान्जी को मणि दिया और कहा-ऐसा उपाय करना कि श्रीराम मुझे यहाँ से शीघ्र ले चलें ।। १३।। इस समय मुझसे कौए की आँख निकालने की कथा को सुनकर हे ! मेरे शोक को दूर करने वाले हनुमान् प्रातःकाल यहाँसे जाना । कथा को सुनकर तथा मणि को लेकर हनुमान् ने कहा, आपके पति अवश्य आयेंगे ।। १४ ।। अथवा हे शुभे (मङ्गलकारिणि) सीते ! यदि आपको शीघ्रता हो तो आप मेरी पीठ पर बैठिए आज ही मैं आपको सुग्रीव के साथ राघव का दर्शन करा दूँगा ।। १५ ।। सीता ने कहा कि मुझे श्रीराम ही यहाँ से ले चलें । हनुमान् ने रावण को देखने का उपाय रचा।।१६।। दाँत एवं नख आदि से वनपालककें को मारकर अशोक वाटिका को उजाड़ दिया । उन्होंने सभी सेवकों तथा रावण के मन्त्रियों के सात पुत्रों को मारकर रावण के पुत्र अक्षयकुमार को मार दिया । पुनः इन्द्रजित ने उन्हें नागपाश में बाँधकर पीली आँख वाले रावण को दिखाया । रावण ने पूछा कि तुम कौन हो ? हनुमान् ने कहा कि मैं पवनपुत्र (हनुमान) हूँ ।। १७-१९।। **हनुमान ने कहा–** मैं राम का दूत हूँ। श्रीराम को सीताजी को लौटा दो, अन्यथा निश्चय ही तुम लङ्का के राक्षसों के साथ श्रीराम के बाणों से मारे जाओगे ।। २०।। रावण उन्हें मारने के लिए तैयार हो गया, किन्तु विभीषण ने रोक दिया । रावण ने हनुमान की पूँछ में आग लगवा दी । जलते हुए पूँछ वाले पवनपुत्र हनुमान ने राक्षसों की लङ्का को जलाकर सीता का पुनः दर्शन करके और उन्हें

कथं दृष्टा त्वया सीता किमुवाच च मां प्रति ॥ २३॥ सीताकथामृतेनैव सिञ्च मां कामवह्निगम् । हनूमानब्रवीद्रामं लङ्घयित्वाब्धिमागतः ॥ २४॥ सीतां दृष्ट्वा पुरीं दग्ध्वा सीतामणिं गृहाण वै । हत्वा तं रावणं सीतां प्राप्स्यसे राम मा शुचः ॥ २५॥ गृहीत्वा तं मणिं रामो रुरोद विरहातुरः । मणिं दृष्ट्वा जानकी मे दृष्टा, सीतां नयस्व माम् ॥ २६॥ तया विना न जीवामि, सुग्रीवाद्यैः प्रबोधितः । समुद्रतीरं गतवांस्तत्र रामं विभीषणः॥ २७॥ गतस्तिरस्कृतो भ्रात्रा रावणेन दुरात्मना । रामाय देहि सीतां त्वमित्युक्तेनासहायवान् ॥ २८॥ रामो विभीषणं मित्रं लङ्कैश्वर्येऽभ्यषेचयत् । समुद्रं प्रार्थयन्मार्गं यदा नादात्तदा शरैः ॥ २९॥ भेदयामास, रामं च उवाचाब्धिः समागतः । नलेन सेतुं बद्ध्वाऽब्धौ लङ्कां व्रज गभीरकः ॥ ३०॥ अहं त्वया कृतः पूर्वं, रामोऽपि नलसेतुना कृतेन तरुशैलाद्यैर्गतः पारं महोदधेः । वानरैः स सुवेलस्थः सह लङ्कां ददर्श वै ॥ ३१ ॥

इत्यादिमहपुराण आग्नेये रामायणे सुन्दरकाण्डे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

रामायणे युद्धकाण्डम्

नारद उवाच– **रामोक्तश्चाङ्गदो गत्वा रावणं प्राह जानकी । दीयतां राघवायाऽऽशु अन्यथा त्वं मरिष्यसि ॥ १ ॥ रावणो हन्तुमुद्युक्तः स आगाद्धतराक्षसः। रामायाऽऽह दशग्रीवो युद्धमेकं तु मन्यते ॥ २ ॥ रामो युद्धाय तच्छ्रुत्वा लङ्कां स कपिराययौ । वानरो हनुमान् मैन्दो द्विविदो जाम्बवान्नलः ॥ ३ ॥**

प्रणाम करके समुद्र पार आकर अंगद आदि से कहा कि मैंने सीता को देख लिया है ।। पुनः अंगद आदि के साथ मधुवन में मधुपान करके दधिमुख आदि (मधुवन के रक्षकों) को पराजित करके, श्रीराम का दर्शन करके उन सबों ने कहा– सीता का पता लग चुका है । प्रसन्न होकर श्रीराम ने भी हनुमान से पूछा ।। २३-२४ ।। **श्रीराम ने कहा–** तुमने सीता को कैसे देखा ? उसने मेरे विषय में क्या कहा ? कामाग्नि से संतप्त मुझको सीता की कथा रूपी अमृत से सींच दो ।। २५ ।। **नारद जी ने कहा– श्री हनुमान् ने श्रीराम से कहा–** समुद्र पार करके मैं लङ्का गया । वहाँ पर सीता का दर्शन करके, लङ्का नगरी को जलाकर आया हूँ । सीता जी के द्वारा प्रदत्त मणि को आप ग्रहण करें ।। २६ ।। श्रीराम ! आप शोक न करें । रावण का वध करके आप सीताजी को प्राप्त करेंगे । उस मणि को लेकर सीता के विरह से व्याकुल श्रीराम रोने लगे ।। २७ ।। मणि को ही देखकर मैंने सीता को देख लिया । मुझे सीता के पास ले चलो। मैं उसके विना नहीं जी सकता हूँ। फिर सुग्रीव आदि ने उन्हें समझाया बुझाया ।। २८ ।। पुनः श्रीराम समुद्र के तट पर गए । वहाँ पर अपने दुष्ट भाई रावण के द्वारा अपमानित हेकर विभीषण श्रीराम के पास आया ।। २९ ।। निःसहाय विभीषण ने रावण से कहा था कि तुम राम को सीता लौटा दो । श्रीराम ने अपने मित्र विभीषण को लङ्का के राज्य पर अभिषिक्त किया ।। ३० ।। मार्ग प्राप्ति के लिए प्रार्थना करने पर भी जब समुद्र ने मार्ग नहीं दिया तो श्रीरम ने उसे बाणों से बेध दिया ।। तब अकर समुद्र ने श्रीराम से कहा । **समुद्र ने कहा–** हे गंभीर स्वभाव वाले! नल के द्वारा सेतु का निर्माण कराकर आप पार जाइये । प्राचीनकाल में आपने ही (अपने पूर्वजों द्वारा) मेरा निर्माण कराया था । श्रीराम भी वृक्ष तथा पर्वतों द्वारा निर्मित नल के सेतु (पुल) से समुद्र के पार गए और सुवेल पर्वत पर रहकर उन्होंने वानरों के साथ लङ्का को देखा ।। ३१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का रामायण की सुन्दरकाण्ड की कथा वर्णन नामक नवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९ ॥

नारद जी ने कहा– श्रीराम की आज्ञा पाकर अङ्गद ने लङ्का जाकर रावण से कहा कि शीघ्र श्रीराम के लिए सीता को लौटा दो नहीं तो तुम मारे जाओगे ।। १ ।। रावण अङ्गद को मारने

नीलस्तारोऽङ्गदो धूम्रो सुषेणः केसरी गजः । पनसो विनतो रम्भः शरभः कम्पनो बली ॥ ४ ॥ गवाक्षो दधिवक्त्रश्च गवयो गन्धमादनः । एते चान्ये च सुग्रीव एतैर्युक्तो ह्यसङ्ख्यकैः ॥ ५ ॥ रक्षसां वानराणां च युद्धं सङ्कुलमाबभौ । राक्षसा वानराञ्जघ्नुः शरशक्तिगदादिभिः ॥ ६ ॥ वानरा रक्षसाञ्जघ्नुर्नखदन्तशिलादिभिः । हस्त्यश्वरथपादातं राक्षसानां बलं हतम् ॥ ७ ॥ हनूमान् गिरिशृङ्गेण धूम्राक्षमवधीद्रिपुम् । अकम्पनं प्रहस्तं च युध्यन्तं नील आवधीत् ॥ ८ ॥ इन्द्रजिच्छरबन्धाच्च विमुक्तौ रामलक्ष्मणौ । तार्क्ष्यसन्दर्शनाद्बाणैर्जघ्नतू राक्षसं बलम् ॥ ९ ॥ रामः शरर्जर्जरितं रावणं चाकरोद्रणे । रावणः कुम्भकर्णं च बोधयामास दुःखितः ॥ १०॥ कुम्भकर्णः प्रबुद्धोऽथ पीत्वा घटसहस्रकम् । मद्यस्य महिषादीनां भक्षयित्वाऽऽह रावणम् ॥ ११ ॥ सीताया हरणं पापं कृतं, त्वं हि गुरुर्यतः। अतो गच्छामि युद्धाय रामं हन्मि सवानरम् ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वा वानरान् सर्वान् कुम्भकर्णो ममर्द ह । गृहीतस्तेन सुग्रीवः कर्णनासं चकर्त सः ॥ १३ ॥ कर्णनासाविहीनोऽसौ भक्षयामास वानरान् । रामोऽथ कुम्भकर्णस्य बाहू चिच्छेद सायकैः ॥ १४ ॥ ततः पादौ ततश्छित्त्वा शिरो भूमौ न्यपातयत् । अथ कुम्भो निकुम्भश्च मकराक्षश्च राक्षसः ॥ १५ ॥ महोदरमहापार्श्वौ मत्त उन्मत्तराक्षसः । प्रघसो भासकर्णश्च विरूपाक्षश्च सङ्गरे ॥ १६ ॥ देवान्तको नरान्तश्च त्रिशिरा चातिकायकः । रामेण लक्ष्मणेनैते वानरैः सविभीषणैः ॥ १७ ॥ युध्यमानास्तथा त्वन्ये राक्षसा भुवि पातिताः । इन्द्रजिन्मायया युध्यन्रामादीन् स बबन्ध ह ॥ १८ ॥ वरदत्तैर्नागपाशैरोषध्या तौ विशल्यकौ । विशल्ययाऽव्रणौ कृत्वा मारुत्यानीतपर्वते ॥ १९ ॥ हनूमान्धारयामास तत्रागं यत्र संस्थितः । निकुम्भिलायां होमादि कुर्वन्तं तं हि लक्ष्मणः ॥ २० ॥ शरैरिन्द्रजितं वीरं युद्धे तं तु व्यपातयत् । रावणः शेकसन्तप्तः सीतां हन्तुं समुद्यतः ॥ २१ ॥ अविन्ध्यवारितो राजा रथस्थः

के लिए तैयार हो गया, किन्तु अङ्गद राक्षसों को मारकर लौट आए और श्रीराम से बोले कि रावण केवल युद्ध को मानता है ।। २ ।। इस बात को सुनकर श्रीराम युद्ध करने के लिए वानरों के साथ लङ्का आए । हनुमान, मैन्द, द्विविद, जाम्बवान्, नील, नील, तार, अङ्गद, धूम्र, सुषेण, केसरी, गज, पनस, विनत, रम्भ, शरभ, बलवान्, कम्पन, गवाक्ष, दधिवक्त्र, गवय, गन्धमादन ये सभी तथा अन्य भी वानर थे । सुग्रीव इन सभी तथा अन्य असंख्य वानरों के साथ आए ।। ३-५।। राक्षसों तथा वानरों के बीच घनघोर युद्ध हुआ । राक्षस वानरों को बण शक्ति तथा गदा आदि से मारते थे ।। ६ ।। वानर राक्षसों को नख, दाँत तथा शिला आदि से मारते थे । राक्षसों की हाथी, घोड़े तथा पैदल सेना मारी गयी ।। ७ ।। हनुमान ने अपने शत्रु धूम्राक्ष पर पर्वत की चोटी पटककर उसका वध कर दिया । युद्ध करने वाले अकम्पन तथा प्रहस्त का वध नील ने किया ।। ८ ।। गरुड़ को देखकर इन्द्रजीत (मेघनाद) के नागपाश रूपी बाणों के बन्धन से मुक्त होकर राम तथा लक्ष्मण ने बाणों से राक्षसों की सेना को विनष्ट कर दिया ।। ९ ।। श्रीराम ने रण में बाणें से मारकर रावण को जर्जर बना दिया । दुखी रावण ने कुम्भकर्ण को जगाया ।। १०।। जगकर कुम्भकर्ण हजारों घड़ा मदिरा पीकर तथा भैंसे आदि का मांस खाकर रावण से कहा ।। ११ ।। **कुम्भकर्ण ने कहा–** तुमने सीता का हरण रूपी पाप कर्म किया है, फिर भी चूँकि तुम बड़े हो अतएव मैं युद्ध करने के लिए जाता हूँ और वानरों के साथ राम को मार देता हूँ ।। १२ ।। **नारद जी ने कहा–** यह कहकर कुम्भकर्ण सभी वानरों को रौंदने लगा । उसके द्वारा पकड़ लिए जाने पर सुग्रीव ने कुम्भकर्ण के नाक और कान को काट लिया ।। १३ ।। नाक कान से विहीन होकर वह वानरों को खाने लगा । उसके पश्चात् श्रीराम ने बाणों से कुम्भकर्ण की दोनों भुजाओं को काट दिया ।। १४ ।। उसके बाद उसके दोनों पैरों को काटकर उसके शिर को पृथिवी पर गिरा दिया ।। १४ ।। उसके बाद उसके दोनों पैरों को काटकर उसके शिर को पृथिवी पर गिरा दिया।। इसके पश्चात् युद्ध में कुम्भ, निकुम्भ, मकराक्ष, महोदर, महापार्श्व, मत्त, उन्मत्त, प्रघस, भासकर्ण, विरूपाक्ष, देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिरा तथा अतिकाय ये सभी तथा अन्य राक्षस, राम, लक्ष्मण, वानरों तथा विभीषण के साथ युद्ध करते हुए मारकर पृथिवी पर गिरा दिए गए ।। मायापूर्वक युद्ध करते हुए इन्द्रजित ने राम आदि को वरदान में प्राप्त नागपाश के शर बन्धन में बाँध दिया । हनुमान् के द्वारा द्रोण पर्वत के लाए

सबलो ययौ । इन्द्रोक्तो मातली रामं रथस्थं प्रचकार तम् ॥ २२ ॥ रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव । रावणो वानरान्हन्ति मारुत्याद्याश्च रावणम्॥२३ ॥ रामः शस्त्रैस्तमस्त्रैश्च ववर्ष जलदो यथा । तस्य ध्वजं स चिच्छेद रथमश्वांश्च सारथिम् ॥ २४ ॥ धनुर्बाहूञ्शिरांस्येव उत्तिष्ठन्ति शिरांसि हि । पैतामहेन हृदयं भित्त्वा रामेण रावणः ॥ २५ ॥ भूतले पातितः सर्वै राक्षसै रुरुदुः स्त्रियः। आश्वास्य तं च संस्कृत्य रामाज्ञप्तो विभीषणः॥२६॥ हनूमताऽऽनयद्रामः सीतां शुद्धां गृहीतवान् । रामो वह्नौ प्रविष्टां तां शुद्धामिन्द्रादिभिः स्तुतः ॥ २७ ॥ ब्रह्मणा दशरथेन, त्वं विष्णू राक्षसमर्दनः । इन्द्रोऽर्थितोऽमृतवृष्ट्या जीवयामास वानरान् ॥ २८ ॥ रामेण पूजिता जग्मुर्युद्धं दृष्ट्वा दिवच्चते। रामोविभीषणायादात् लंकामभ्यर्च्य वानरान् ॥ २९॥ ससीतः पुष्पके स्थित्वा गतमार्गेण वै गतः । दर्शयन् वनदुर्गाणि सीतायै हृष्टमानसः ॥ ३० ॥ भरद्वाजं नमस्कृत्य नन्दिग्रामं समागतः । भरतेन नतश्चागादयोध्यां तत्र संस्थितः ॥ ३१ ॥ वसिष्ठादीन्नमस्कृत्य कौसल्यां चैव कैकयीम् । सुमित्रां प्राप्तराज्योऽथ द्विजादीन् सोऽभ्यपूजयत् ॥ ३२ ॥ वासुदेवं स्वमात्मानमश्वमेधैरथायजत् । सर्वदानानि स ददौ, पालयामास स प्रजाः॥३३॥ पुत्रवद्धर्मकामादीन् दुष्टनिग्रहणे रतः। सर्वो धर्मपरो लोकः सर्वसस्या च मेदिनी ॥ ३४ ॥ नाकालमरणं चासीद्रामे राज्यं प्रशासति॥ ३५॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रामायणे युद्धकाण्डे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

जाने पर वहाँ के दो वैद्यों ने विशल्या नामक (व्रण रहित बना देने वाली) औषधि के द्वारा श्रीराम तथा लक्ष्मण को व्रणों से रहित बना दिया ।। १५-१९।। हनुमान् पुनः उस पर्वत को वहीं रख दिए जहाँ वह पहले था ।। वीर इन्द्रजित (मेघनाद) जब निकुम्भिला पर होम आदि कर रहा था उस समय लक्ष्मण ने बाणों से उसे युद्ध में मार डाला ।। शोक से संतप्त होकर रावण सीता को मारने के लिए उद्यत हो गया ।। २०-२१ ।। अवन्ध्या के द्वारा समझाए जाने पर राजा रावण रथ पर बैठकर अपनी सेना के साथ युद्ध करने गया । इन्द्र की आज्ञा से मातली ने श्रीराम को अपने रथ पर बैठाया ।। २२ ।। उस समय राम और रावण का युद्ध राम और रावण के अनुरूप हुआ । उससे किसी दूसरे युद्ध की तुलना नहीं की जा सकती है। रावण वानरों को मारता था और हनुमान आदि रावण को ।। २३ ।। राम मेघ के समान उस पर शस्त्रों तथा अस्त्रों की वर्षा करते हुए रावण की ध्वजा को काट दिए उसके रथ, घोड़े तथा सारथि को विनष्ट कर दिए।। २४ ।। रावण के धनुष् भुजाएँ, तथा शिर बार-बार नए उग जाते थे । अन्त में ब्रह्मास्त्र के द्वारा रावण के हृदय को बेधकर राम ने सभी राक्षसों के साथ रावण के शिरों को पृथ्वी पर गिरा दिया । रावण की स्त्रियाँ रोने लगीं। श्रीराम की आज्ञा से विभीषण ने उन सबों को आश्वस्त करके रावण का संस्कार किया ।। २५-२६ ।। श्रीराम ने हनुमान् के द्वारा सीता को बुलवाया ओर उन्हें शुद्ध जानकर अपनाया। शुद्ध सीता को अग्नि में प्रवेश करने पर इन्द्र आदि देवता ब्रह्माजी तथा दशरथजी ने श्रीराम की स्तुति की और कहा राक्षसों को मारने वाले आप विष्णु ही हैं ।। २७ ।। प्रार्थना किए जाने पर इन्द्र ने अमृत की वर्षा करके मरे हुए वानरों को जिला दिया ।। २८ ।। राम के द्वारा पूजित होकर वे (देवता आदि) युद्ध को देखकर स्वर्गलोक चले गए । श्रीराम ने वानरों का सत्कार करके विभीषण को लङ्का का राज्य दिया ।। २९ ।। सीता के साथ पुष्पक विमान पर बैठकर प्रसन्न मन से वे सीता को वन के दुर्गम मार्गों को दिखाते हुए जिस मार्ग से आए थे उसी मार्ग से अयोध्या के लिए लौटे ।।३०।। भरद्वाज महर्षि को नमस्कार करके वे नन्दिग्राम आए । भरत ने उन्हें नमस्कार किया । पुनः वहाँ से वे अयोध्या आए, वहाँ पर रहकर वे वसिष्ठ आदि को तथा कौसल्या, कैकेयी एवं सुमित्रा को नमस्कार किए । राज्य प्राप्त करके उन्होंने ब्राह्मणों आदि की पूजा की ।। ३१-३२ ।। उन्होंने अश्वमेघ यज्ञ के द्वारा अपनी आत्मा स्वरूप भगवान् वासुदेव का भजन किया । उन्होंने हर प्रकार के दानों के दिया तथा प्रजाओं का पुत्रक समान पालन किया । उन्होंने धर्म तथा काम आदि पुरुषर्थों का पालन दुष्टों का निग्रह करते हुए किया ।। ३३।। जिस समय श्रीराम राज्य कर रहे थे उस समय सभी लोग धर्म परायण हो गए, सम्पूर्ण मेदिनी (पृथिवी) धन-धान्य से भर गयी । उस समय किसी की भी अकाल मृत्यु नहीं होती थी ।। ३४-३५ ।।

इस तरह आदि महापुराण अग्निपुराण का रामायण के युद्धकाण्ड की कथा का वर्णन नामक दसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः

रामायण उत्तरकाण्डम्

नारद उवाच– **राज्यस्थं राघवं जग्मुरगस्त्याद्याः सुपूजिताः ॥ १ ॥** ऋषय ऊचुः– **धन्यस्त्वं विजयी यस्मादिन्द्रजिद्विनिपातितः ॥ १॥ ब्रह्मात्मजः पुलस्त्योऽभूद्विश्रवास्तस्य कैकसी । पुष्पोत्कटाऽभूत्प्रथमा तत्पुत्रोऽभूद्धनेश्वरः ॥ २॥ कैकस्यां रावणो जज्ञे विंशद्बाहुर्दशाननः । तपसा ब्रह्मदत्तेन वरेण जितदैवतः ॥ ३॥ कुम्भकर्णः सनिद्रोऽभूद्धर्मिष्ठोऽभूद्विभीषणः । स्वसा शूर्पणखा तेषां रावणान्मेघनादकः ॥ ४॥ इन्द्रं जित्वेन्द्रजिच्चाभूद्रावणादधिको बली । हतस्त्वया लक्ष्मणेन देवादेः क्षेममिच्छता ॥ ५ ॥ इत्युक्त्वा ते गता विप्रा अगस्त्याद्या नमस्कृताः । देवप्रार्थितरामोक्तः शत्रुघ्नो लवणार्दनः॥६॥ अभूत्पूर्मथुरा काचिद्रामोक्तो भरतोऽवधीत्। कोटित्रयं च शैलूषपुत्रणां निशितैः शरैः ॥ ७ ॥ शैलूषं दृप्तगन्धर्वं सिन्धुतीरनिवासिनम् । तक्षं च पुष्करं पुत्रं स्थापयित्वाऽथ देशयोः॥ ८ ॥ भरतोऽगात्सशत्रुघ्नो राघवं पूजयन् स्थितः । रामो दुष्टान्निहत्याजौ शिष्टान्सम्पाल्य मानवः ॥ ९ ॥ पुत्रौ कुशलवौ जातौ वाल्मीकेराश्रमे वरौ । लोकापवादात्त्यक्तायां ज्ञातौ सुचरितश्रवात् ॥ १० ॥ राज्येऽभिषिच्य ब्रह्माऽहमस्मीति ध्यानतत्परः । दशवर्ष सहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ ११ ॥ राज्यं कृत्वा क्रतून् कृत्वा स्वर्गं देवार्थितो ययौ ॥ सपौरः सानुजः, सीतापुत्रो जनपदान्वितः ॥ १२ ॥** अग्निरुवाच–

नारदजी ने कहा– श्रीराम के राज्यासीन होने पर सम्मानित अगस्त्य आदि महर्षि श्रीराम के पास गए ।। १ ।। ऋषियों ने कहा- श्रीराम आप धन्य हैं, क्योंकि आपने विजयी इन्द्रजित का वध किया है। ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य्य थे, उनके पुत्र विश्रवा हुए । उनकी दो पत्नियाँ थीं कैकसी तथा पुण्योत्कटा । पहली पत्नी पुष्पोत्कटा के पुत्र कुबेर हुए । कैकसी का पुत्र रावण हुआ उसकी बीस भुजाएँ तथा दस मुख थे । तपस्या से ब्रह्मा का वरदान प्राप्त कर उसने देवताओं को जीत लिया ।। २।। रावण का छोटा भाई कुम्भकर्ण सोने वाला हुआ तथा विभीषण धार्मिक हुआ । रावण की बहन शूर्पणखा थी । उन सबों में रावण का पुत्र मेघनाद हुआ ।। ४ ।। इन्द्र को जीतने वाला इन्द्रजित् रावण से भी अधिक बली हुआ । देवताओं का कल्याण करने की इच्छा वाले आपने लक्ष्मण के द्वारा इन्द्रजित का वध कराया ।। ५ ।। **नारद जी ने कहा–** इस प्रकार से कहकर श्रीराम के द्वार सम्मानित होकर अगस्त्य आदि विप्रगण चले गए । देवताओं के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर श्रीराम की आज्ञा से शत्रुघ्न ने लवणासुर का वध किया ।। ६ ।। प्राचीनकाल में एक मथुरा नाम की नगरी थी । श्रीराम के आदेश से वहँ जाकर भरत जी ने शैलूष के तीन करोड़ पुत्रों का वध तीक्ष्ण बणों से किया ।। ७ ।। समुद्र के तट पर निवास करने वाले गुप्त गन्धर्व और शैलूष को मारकर उनके देशों का राजा उनके ही पुत्र तक्ष तथा पुष्कर को बनाया।। ८।। उसके पश्चात् भरत शत्रुघ्न के साथ लौट आए और अयोध्या में ही रहकर श्रीराम की पूजा करने लगे । मानव शरीरधारी श्रीराम युद्ध में दुष्टों को मारकर शिष्ट (सज्जन) पुरुषों का पालन करते थे ।।९।। लोकापवाद के भय से त्यागी गयी सीता के गर्भ से महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में श्रीराम के कुश तथा लव नामक दो श्रेष्ठ पुत्र हुए । उनके सुन्दर चरित्र को सुनकर श्रीराम ने उन्हें (कुश तथा लव) को राज्याभिषिक्त करके 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार से ध्यान करते हुए ग्यारह हजार वर्ष राज्य करके तथा यज्ञों को करके, देवताओं की प्रार्थन सुनकर स्वर्ग चले गए ।। १०।। नागरिकों अनुज, तथा जनपद वासियों के

वाल्मीकिर्नारदाच्छ्रुत्वा, रामायणमकारयत् । सविस्तरं, य एतच्च शृणुयात्स दिवं व्रजेत् ॥ १३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रामायण उत्तरकाण्ड एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

कृष्णावतारकथावर्णनम्

अग्निरुवाच– **हरिवंशं प्रवक्ष्यामि विष्णुनाभ्यम्बुजादयः । ब्रह्मणोऽत्रिस्ततः सोमः सोमाज्जातः पुरूरवाः ॥ १ ॥ तस्मादायुरभूत्तस्मान्नहुषोऽतो ययातिकः। यदुं च तुर्वसुं तस्माद्देवयानी व्यजायत ॥ २ ॥ द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी । यदोः कुले यादवाश्च वासुदेवस्तदुत्तमः ॥ ३॥ भुवो भारावतारार्थं देवक्यां वसुदेवतः । हिरण्यकशिपोः पुत्राः षड्गर्भा योगनिद्रया ॥ ४ ॥ विष्णुप्रयुक्तया नीता देवकीजठरं पुरा । अभूच्च सप्तमो गर्भो देवक्या जठराद्बलः ॥ ५ ॥ सङ्क्रामितोऽभूद्रोहिण्यां रौहिणेयस्ततो हरिः । कृष्णाष्टम्यां च नभसि अर्द्धरात्रे चतुर्भुजः ॥ ६ ॥ देवक्या वसुदेवेन स्तुतो बालो द्विबाहुकः । वसुदेवः कंसभयाद्यशोदाशयनेऽनयत् ॥ ७ ॥ यशोदाबालिकां गृह्य देवकीशयनेऽनयत् । कंसो बालध्वनिं श्रुत्वा तां चिक्षेप शिलातले ॥ ८ ॥ वारितोऽपि स देवक्या मृत्युर्गर्भोऽष्टमो मम । श्रुत्वाऽशरीरिणीं वाचमतो गर्भास्तु मारिताः ॥ ९ ॥** बालिकोवाच– **किं मया क्षिप्तया कंस जातो यस्त्वां वधिष्यति । सर्वस्वभूतो देवानां भूभारहरणाय सः ॥ १० ॥** अग्निरुवाच– **इत्युक्त्वा सा च शुम्भादीन् हत्वा इन्द्रेण**

साथ सीता के पुत्र राज्य करने लगे) ।। १२ ।। **अग्निदेव ने कहा–** देवर्षि नारद से सुनकर महर्षि वाल्मीकि ने विस्तारपूर्वक रामायण का निर्माण किया। जो इस रामायण को सुनता है वह स्वर्गलोक को प्राप्त करता है ।। १३ ।।

इस तरह आदि महापुराण अग्निपुराण का रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा का वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं श्री हरि के वंश का वर्णन करूँगा । भगवान् विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए । ब्रह्मा से अत्रि ऋषि तथा अत्रि ऋषि से सोम उत्पन्न हुए । सोम के ने ययाति के तीन पुत्रों को जन्म दिया– द्रुह्यु, अनु और पुरु । यदु के कुल में यादव उत्पन्न हुए और उन सबों में उत्तम वासुदेव (श्री कृष्ण थे) ।। ३ ।। जो पृथ्वी का भार उतारने के लिए देवकी के गर्भ से वसुदेवात्मज रूप में अवतीर्ण हुए । भगवान् विष्णु के द्वारा प्रेरित होकर योगनिद्रा ने श्रीकृष्णावतार से पूर्व हिरण्यकशिपु के छह पुत्रों को देवकी के गर्भ में लाया । देवकी के सातवें गर्भ के रूप में उनके पेट में बलराम आए । उनको योगमाया ने रोहिणी के गर्भ में पहुँचा दिया, इसीलिए श्री बलराम रोहिणेय कहे जाते हैं ।।४ -५ ।। भाद्रपद की कृष्णाष्टमी को आधी रात को चार भुजाओं वाले भगवान् अवतीर्ण हुए ।। ६ ।। देवकी तथा वसुदेव की प्रार्थना से वे दो भुजाओं वाले बालक हो गए । कंस के भय से वसुदेव ने भगवान् को यशोदा की शय्या पर पहुँचा दिया ।।७।। और यशोदा की बालिका को वे देवकी की शय्या पर लाए । बालिका की रोने की ध्वनि सुनकर कंस ने उसे पत्थर पर पटक दिया ।। ८ ।। देवकी के द्वारा रोके जाने पर भी उसने कहा कि यह आकाशवाणी सुनकर कि तुम्हारा आठवाँ गर्भ मेरा काल है, मैंने तुम्हारे गर्भों (बच्चों) को मारा है । कंस के द्वारा पटकी गयी वह बालिका आकाश में स्थित होकर यह कही ।। ९-१० ।। **बालिका बोली–** मुझको पटकने से क्या लाभ है ? तुमको जो मारेगा वह जन्म ले चुका है। वह देवताओं का सर्वस्व है । वह पृथ्वी का भार हटाने के लिए अवतार लिया है ।। ११ ।। **अग्निदेव ने कहा–**

च स्तुता । आर्या दुर्गा देवगर्भा अम्बिका भद्रकाल्यपि ॥ ११ ॥ भद्रा क्षेम्या क्षेमकरी नैकबाहुर्नमामि ताम् । त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नाम सर्वकामान्स चाऽऽप्नुयात् ॥ १२ ॥ कंसोऽपि पूतनादींश्च प्रैषयद्बालनाशने । यशोदापतिनन्दाय वसुदेवेन चार्पितौ ॥ १३ ॥ रक्षणाय च कंसादेर्भीतेनैव हि गोकुले । रामकृष्णौ चेरतुस्तौ गोभिर्गोपालकैः सह ॥ १४ ॥ सर्वस्वं जगतः पालौ गोपालौ तौ बभूवतुः । कृष्णश्चोलूखले बद्धो दाम्ना व्यग्रयशोदया॥१५॥ यमलार्जुनमध्येऽगाद् भग्नौ च यमलार्जुनौ । परिवृत्तश्च शकटः पादक्षेपात्स्तनार्थिना ॥ १६ ॥ पूतना स्तनपानेन सा हता हन्तुमुद्यता । वृन्दावनगतः कृष्णः कालियं यमुनाह्रदात् ॥ १७॥ जित्वा निःसार्य चाब्धिस्थं चकार बलसंस्तुतः । क्षेमं तालवनं चक्रे हत्त्वा धेनुकगर्दभम् ॥ १८॥ अरिष्टवृषभं हत्वा केशिनं हयरूपिणम् । शक्रोत्सवं परित्यज्य कारितो गोत्रयज्ञकः ॥ १९ ॥ पर्वतं धारयित्वा च शक्राद् वृष्टिर्निवारिता । नमस्कृतो महेन्द्रेण गोविन्दोऽथार्जुनोऽर्पितः ॥ २० ॥ इन्द्रोत्सवस्तु तुष्टेन भूयः कृष्णेन कारितः । रथस्थो मथुराञ्चागात्कंसोक्ताक्रूरसंस्तुतः॥२१॥ गोपीभिरनुरक्ताभिः क्रीडिताभिर्निरीक्षितः । रजकं चाप्रयच्छन्तं हत्त्वा वस्त्राणि सोऽग्रहीत् ॥ २२ ॥ सह रामेण मालाभृन्मालाकारे वरं ददौ । दत्तानुलेपनां कुब्जामृजुं चक्रेऽहनद्गजम् ॥ २३ ॥ मत्तं कुवलयापीडं द्वरि रङ्गं प्रविश्य च ॥ कंसादीनां पश्यतां च मञ्चस्थाने नियुद्धकम् ॥ २४ ॥ चक्रे चाणूरमल्लेन मुष्टिकेन बलोऽकरोत् । चाणूरमुष्टिकौ ताभ्यां हतौ मल्लौ तथाऽपरे ॥ २५ ॥ मथुराधिपतिं कंसं हत्त्वा तत्पितरं हरिः। चक्रे यादवराजानमस्तिप्राप्ती च कंसगे॥२६ ॥ जरासन्धस्य ते पुत्र्यौ जरासन्धस्तदीरितः । चक्रे स मथुरारोधं यादवैर्युयुधे

शुम्भ आदि राक्षसों को मारकर इन्द्र आदि के द्वारा स्तुति की जाने वाली वह देवी, आर्या, दुर्गा, वेदगर्भा, अम्बिका, भद्रकाली, भद्रा, क्षेम्या तथा क्षेमकरी नामों वाली हो गयी । मैं उसे नमस्कार करता हूँ। जो उसके इन नामों को तीनों सन्ध्याओं में पढ़ता है, उसकी सारी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं ।। १२-१३ ।। कंस ने भी बालकों का नाश करने के लिए पूतना आदि को भेजा । वसुदेव ने कंस आदि के भय से ही यशोदा के पति नन्द को अपने दो पुत्रों (श्रीकृष्ण तथा बलराम) को समर्पित कर दिया था । गोकुल में श्रीराम (बलराम) और कृष्ण गौएँ तथा गोपालों के साथ गायों को चराते थे। इस तरह सम्पूर्ण जगत् का पालन करने वाले वे दोनों गोपाल (ग्वाले) बन गए ।। १४-१५ ।। कामों में व्यग्र रहने वाली यशोदा ने श्री कृष्ण को उल्लूखल में रस्सी से बाँध दिया। श्रीकृष्ण जुड़वें अर्जुन वृक्षों के बीच मे आ गए और उन दोनों वृक्षों को तोड़ दिए । स्तनपान की इच्छा वाले श्री भगवान् ने अपने पादप्रहार के द्वारा शकटासुर को मार दिया ।। १६-१७ ।। भगवान् को मारने के लिए तैयार उस पूतना को भगवान् ने स्तनपान करके मार दिया । वृन्दावन में जाकर श्रीकृष्ण ने कालिय नाग को जीतकर उसे यमुना के ह्रद से निकालकर समुद्र में भेज दिया । बलराम के द्वारा प्रशंसित भगवान् ने गर्दभ रूपधारी धेनुकासुर को मारकर तालवन को बाधारहित (मङ्गलमय) बना दिया ।। १८-१९ ।। वृषभरूपधारी अरिष्टासुर तथा अश्वरूपधारी केशी नामक राक्षस को मारकर भगवान् श्रीकृष्ण ने इन्द्रोत्सव को बन्द कराकर पर्वत यज्ञ को प्रारम्भ किया ।। २० ।। गोवर्धन पर्वत को धारण करके क्रुद्ध इन्द्र के द्वारा की जाने वाली वृष्टि से उन्होंने गोपों की रक्षा की । इन्द्र ने भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार किया, अर्जुन ने भगवान् की शरणागति की ।। २१ ।। प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्ण ने पुनः इन्द्रोत्सव को प्रारम्भ कराया । साथ में क्रीड़ा करने वाली अनुरागयुक्त गोपियों के द्वारा देखे गए भगवान् श्रीकृष्ण ने कंस के द्वारा आदिष्ट अक्रूरजी की स्तुति को सुनकर रथ पर बैठकर मथुरा आए । उन्होंने वस्त्र नहीं देने वाले कंस के धोबी को मारकर वस्त्रों को ले लिया ।। २२-२३।। श्री बलराम के साथ मालाकार (माली) के द्वारा माला पहनाए जाकर उन्होंने उसे वरदान दिया । चन्दन का लेप करने वाली कुब्जा को उन्होंने सीधा (शरीर वाली) बना दिया । राजद्वार पर विद्यमान कुबलयापीड नामक मदमत्त हाथी को मार दिया, और रङ्गशाला में प्रवेश करके कंस आदि के समक्ष मञ्चस्थान पर भगवान् श्रीकृष्ण ने चाणूर नामक पहलवान के साथ तथा बलराम ने मुष्टिक नामक पहलवान के साथ मल्लयुद्ध किया । उन दोनों (श्रीकृष्ण तथा बलराम) के द्वारा चाणूर तथा मुष्टिक नामक तथा दूसरे पहलवान मारे गए ।। २४-२६ ।। मथुरा के स्वामी कंस को मारकर

शरैः ॥ २७ ॥ रामकृष्णौ च मथुरां त्यक्त्वा गोमन्तमागतौ। जरासन्धं विजित्याऽऽजौ पौण्ड्रकं वासुदेवकम् ॥ २८ ॥ पुरीं तु द्वारकां कृत्वा न्यवसद्यादवैर्वृतः । भौमं तु नरकं हत्त्वा तेनाऽऽनीताश्च कन्यकाः॥ २९॥ देवगन्धर्वयक्षाणां ता उवाह जनार्दनः । षोडशस्त्रीसहस्राणि रुक्मिण्याद्यास्तथाऽष्ट च ॥ ३० ॥ सत्यभामासमायुक्तो गरुडे नरकार्दनः । मणिशैलं सरत्नं च इन्द्रं जित्वा हरिर्दिवि ॥ ३१॥ पारिजातं समानीय सत्यभामागृहेऽकरोत्। सान्दीपनेश्च शस्त्रास्त्रं ज्ञात्वा तद्बालकं ददौ ॥ ३२ ॥ जित्वा पञ्चजनं दैत्यं यमेन च सुपूजितः । अवधीत्कालयवनं मुचुकुन्देन पूजितः ॥ ३३ ॥ वसुदेवं देवकीं च भक्तविप्रांश्च सोऽर्चयत् । रेवत्यां बलभद्राच्च जज्ञाते निषधोल्मुकौ ॥ ३४॥ कृष्णात्साम्बो जाम्बवत्यामन्यास्वन्येऽभवन्सुताः। प्रद्युम्नोऽभूच्च रुक्मिण्यां षष्ठेऽह्नि स हृतो बलात् ॥३५ ॥ शम्बरेणाम्बुधौ क्षिप्तो मत्स्यो जग्राह धीवरः । तं मत्स्यं शम्बरायादान्मायावत्यै च शम्बरः॥३६॥ मायावती मत्स्यमध्ये दृष्ट्वा स्वं पतिमादरात् । पुपोष सा तं चोवाच रतिस्तेऽहं पतिर्मम ॥ ३७ ॥ कामस्त्वं शम्भुनाऽनङ्गः कृतोऽहं शम्बरेण च । हृता न तस्य पत्नी त्वं मायाज्ञः शम्बरं जहि ॥ ३८ ॥ तच्छ्रुत्वा शम्बरं हत्त्वा प्रद्युम्नः सह भार्यया । मायावत्या ययौ कृष्णं कृष्णो हृष्टोऽथ रुक्मिणी ॥ ३९ ॥ प्रद्युम्नादनिरुद्धोऽभूदुषापतिरुदारधीः । बाणो बलिसुतस्तस्य सुतोषा शोणितं पुरम् ॥ ४० ॥ तपसा शिवपुत्रोऽभून्मयूरध्वजपाततः। युद्धं प्राप्स्यसि बाण त्वं बाणं तुष्टः शिवोऽभ्यधात् ॥ ४१ ॥ शिवेन क्रीडतीं गौरीं दृष्ट्वोषा सस्पृहा पतौ । तामाह गौरी भर्ता ते निशि स्वप्ने तु दर्शनात् ॥ ४२ ॥ वैशाखमासद्वादश्यां पुमान्भर्ता भविष्यति । गौर्युक्ता हर्षिता चोषा गृहे सुप्ता ददर्श तम् ॥ ४३ ॥

श्रीहरि ने कंस के पिता उग्रसेन को यादवों का राजा बनाया । अस्ति तथा प्राप्ति नामक जरासन्ध की दो पुत्रियाँ जो कंस की पत्नी थीं उन दोनों की प्रेरणा से जरासन्ध ने मथुरा को घेर कर बाणों से युद्ध करने लगा ।। २७-२९।। भागवान् श्री कृष्ण द्वारकापुरी का निर्माण कराकर यादवों के साथ वहीं रहने लगे । भौमासुर का वध करके उसके कारागृह में विद्यमान देवताओं गन्धर्वों तथा यक्षों की कन्याओं को लाए तथा उन सबों के साथ श्री भगवान् ने विवाह किया । श्री भगवान् की सोलह हजार तथा रुक्मिणी आदि आठ स्त्रियाँ थीं ।। ३०-३१ ।। नरकान्तक का वध करने वाले श्रीकृष्ण सत्यभामा के साथ स्वर्गलोक में जाकर इन्द्र को परास्त करके वहाँ के अनेक रत्नों से युक्त मणिपर्वत तथा पारिजात वृक्ष को लेकर सत्यभामा के गृह में रख दिए । आचार्य सान्दीपनि से शस्त्रों तथा अस्त्रों की शिक्षा प्राप्त करके उनको उनका पुत्र प्रदान किए ।। ३२-३३ ।। पञ्चजन दैत्य को जीतकर यम के द्वारा सुपूजित भगवान् ने कालयवन का वध किया तथा मुचुकुन्द के द्वारा पूजित हुए ।। ३४।। उन्होंने देवकी, वसुदेव तथा भक्त ब्राह्मणों की पूजा की । बलभद्र जी के रेवती के गर्भ से दो पुत्र हुए निषध तथा उल्मुक ।। ३५।। श्रीकृष्ण के जाम्बवती के गर्भ से साम्ब नामक पुत्र हुए तथा अन्य स्त्रियों से अन्य पुत्र हुए । उनके रुक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न उत्पन्न हुए जिनका शम्बरासुर ने छठी की रात्रि में ही अपहरण कर लिया था और उसे समुद्र में फेंक दिया । उसे एक मछली निगल गयी । मल्लाह ने उस मछली को शम्बरासुर को दिया और शम्बरासुर ने उसे मायावती को दे दिया ।। ३६-३७ ।। मायावती ने मछली के भीतर अपने पति को देखकर आदरपूर्वक उनका पालन किया और प्रद्युम्न से कहा मैं आपकी पत्नी रति हूँ और आप मेरे पति कामदेव हैं । शङ्कर ने आपको अनङ्ग बना दिया था और शम्बरासुर ने मेरा अपहरण कर लिया था । मैं उस (शम्बरासुर) की पत्नी नहीं हूँ । आप माया को जानने वाले हैं, अतएव शम्बरासुर का वध कीजिए ।। ३९ ।। उस बात को सुनकर प्रद्युम्न ने शम्बरासुर को मारकर अपनी पत्नी मायावती के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के पास गए और उसके पश्चात् श्रीकृष्ण और रुक्मिणी प्रसन्न हो गए ।। ४० ।। प्रद्युम्न के पुत्र उदार बुद्धि वाले उषा के पति अनिरुद्ध हुए । बलि का पुत्र बाणासुर था । उसकी पुत्री उषा थी और उसकी नगरी का नाम शोणितपुर था ।। ४१ ।। तपस्या के द्वारा बाणासुर शिवजी का पुत्र हो गया । तपस्या से प्रसन्न होकर शङ्कर ने कहा कि जब तुम्हारा मयूरध्वज टूटकर गिर जायेगा तो तुम्हें युद्ध करने को मिलेगा ।। ४२ ।। एक बार शिव जी के साथ क्रीड़ा करती हुई पार्वती को देखकर उषा को भी अपना पति प्राप्त करने की इच्छा हुई । उसको पार्वती ने वरदान दिया कि रात्रि में स्वप्न

आत्मना सङ्गतं ज्ञात्वा तत्सख्या चित्रलेखया । लिखिताद्वै चित्रपटादनिरुद्धं समानयत् ॥ ४४॥ कृष्णपौत्रं द्वारकातो दुहित्रा बाणमन्त्रिणः । कुम्भाण्डस्यानिरुद्धोऽगाद्राम ह्युषया सह॥ ४५ ॥ बाणध्वजस्य सम्पातो रक्षिभिः स निवेदितः । अनिरुद्धस्य बाणेन युद्धमासीत्सुदारुणम् ॥ ४६॥ श्रुत्वा तु नारदात्कृष्णः प्रद्युम्नबलभद्रवान् । गरुडस्थोऽथ जित्वाऽग्नीञ्ज्वरं माहेश्वरं तथा ॥ ४७॥ हरिशङ्करयोर्युद्धं बभूवाथ शराशरि । नन्दिविनायकस्कन्दमुख्यास्तार्क्ष्यादिभिर्जिताः ॥ ४८ ॥ जृम्भिते शङ्करे सुप्ते जृम्भणास्त्रेण विष्णुना । छिन्नं सहस्रं बाहूनां रुद्रेणाभयमर्थितम् ॥ ४९॥ विष्णुना जीवितो बाणो द्विबाहुः प्राब्रवीच्छिवम् । कृष्ण उवाच– त्वया यदभयं दत्तं बाणस्यास्य मयाऽपि तत् ॥ ५०॥ आवयोर्नास्ति भेदो वै भेदी नरकमाप्नुयात् । शिवाद्यैः पूजितो विष्णुः सानिरुद्ध उषादियुक् ॥ ५१॥ द्वारकां तु गतो रेमे उग्रसेनादियादवैः । अनिरुद्धात्मजो वज्रो मार्कण्डेयात्तु सर्ववित् ॥ ५२॥ बलभद्रः प्रलम्बघ्नो यमुनाकर्षणोऽभवत् । द्विविदस्य कपेर्भेत्ता कौरवोन्मादनाशनः ॥ ५३॥ हरी रेमेऽनेकमूर्ती रुक्मिण्यादिभिरीश्वरः पुत्रानुत्पादयामास त्वसङ्ख्यातान्स यादवान् । हरिवंशं पठेद्यस्तु प्राप्तकामो हरिं व्रजेत् ॥ ५४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये हरिवंशे द्वादशोऽध्याय : ॥ १२ ॥

देखने पर तुम्हें पति मिलेगा ।। ४३ ।। वैशाखमास की द्वादशी के दिन स्वप्न में तुम जिस पुरुष को देखोगी वही तुम्हारा पति होगा । गौरी के द्वारा इस तरह कहने से प्रसन्नमना उषा ने अपने घर में सोयी हुई उस पुरुष को स्वप्न में देखा ।। ४४ ।। अपने साथ रहने करने वाली अपनी सखी चित्रलेखा के द्वारा चित्रपट के द्वारा लिखे हुए श्रीकृष्ण के अनिरुद्ध नामक पौत्र को जानकर बाणासुर के मन्त्री कुम्भाण्ड की पुत्री से उन्हें मँगवा लिया । वहाँ आकर अनिरुद्ध ने उषा के साथ रमण किया ।। ४५-४६ ।। रक्षकों ने बाणासुर को बतलाया कि उसका ध्वजा टूटकर गिर गया है । अनिरुद्ध का बाणासुर के साथ अत्यन्त भयंकर युद्ध हुआ ।। ४७ ।। उसके पश्चात् नारदजी के मुख से समाचार सुनकर गरुड़ पर सवार होकर श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न तथा बलभद्रजी के साथ गये तथा आग्नेयास्त्र तथा माहेश्वर ज्वर को जीत लिए ।। ४८ ।। उसके पश्चात् श्रीकृष्ण भगवान् तथा शङ्कर जी में भयङ्कर बाणों का युद्ध हुआ । गरुड़ आदि ने ने दी, विनायक तथा स्कन्द आदि प्रमुख शिवगणों को जीत लिया ।। ४९ ।। विष्णु के द्वारा जृम्भणास्त्र के प्रयोग से शङ्करजी के सो जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने बाणासुर की हजार भुजाओं को काट दिया । शङ्करजी द्वारा बाणासुर के लिए अभय की प्रार्थना करने पर भगवान् ने दो भुजाओं वाले बाणासुर को जीवित कर दिया और शिवजी से कहा ।। ५०-५१ ।। **भगवान् कृष्ण ने कहा–** आपने बाणासुर को अभय वरदान दिया है, अतएव मैंने भी इसे अभय बना दिया। हम दोनों में कोई भी भेद नहीं है । हम दोनों में भेद जानने वाला मनुष्य नारकी होगी ।। ५२ ।। **अग्निदेव ने कहा–** शिव आदि से पूजित होकर भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण) अनिरुद्ध तथा उषा आदि के साथ द्वारका चले गये तथा उग्रसेन आदि यादवों के साथ क्रीड़ा करने लगे ।। ५३ ।। अनिरुद्ध का पुत्र वज्र हुआ जो मार्कण्डेय महर्षि की कृपा से सर्वज्ञ हो गया । प्रलम्बासुर का वध करने वाले बलभद्रजी यमुना का आकर्षण करने वाले हो गए । बलभद्रजी ने द्विविद्र नामक राक्षस का वध किया तथा कौरवों के उन्माद को विनष्ट किया । अनेक शरीरों को धारण करने वाले तथा सम्पूर्ण जगत् के नियामक (ईश्वर) श्रीहरि ने रुक्मिणी आदि के साथ रमण किया । भगवान् श्रीकृष्ण ने असंख्य यादव पुत्रों को उत्पन्न किया । जो पुरुष हरिवंश को पढ़ता है, वह अपनी सारी इच्छाओं को पूर्ण करके अन्त में श्रीभगवान् के लोक को प्राप्त करता है ।। ५४ ।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का हरिवंश वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

भारताख्यानम्

अग्निरुवाच– **भारतं सम्प्रवक्ष्यामि कृष्णमाहात्म्यलक्षणम् । भूभारमहरद्विष्णुर्निमित्तीकृत्य पाण्डवान् ॥ १ ॥ विष्णुनाभ्यब्जजो ब्रह्मा ब्रह्मपुत्रोऽत्रिरत्रितः। सोमः सोमाद् बुधस्तस्मादैल आसीत्पुरूरवाः ॥ २ ॥ तस्मादायुस्ततो राजा नहुषोऽतो ययातिकः । ततः पुरुस्तस्य वंशे भरतोऽथ नृपः कुरुः ॥ ३ ॥ तद्वंशे शन्तनुस्तस्माद् भीष्मो गङ्गासुतोऽनुजौ । चित्राङ्गदो विचित्रश्च सत्यवत्यां च शन्तनोः ॥ ४ ॥ स्वर्गं गते शन्तनौ च भीष्मो भार्याविवर्जितः । अपालयद् भ्रातृराज्यं बालश्चित्राङ्गदो हतः ॥ ५ ॥ चित्राङ्गदेन, द्वे कन्ये काशिराजस्य चाम्बिका । अम्बालिका च भीष्मेण आनीते विजितारिणा॥६॥ भार्ये विचित्रवीर्यस्य, यक्ष्मणा स दिवं गतः । सत्यवत्या ह्यनुमतादम्बिकायां नृपोऽभवत् । धृतराष्ट्रोऽम्बालिकायां पाण्डुश्च व्यासतः सुतः । गान्धार्यां धृतराष्ट्राच्च दुर्योधनमुखं शतम् ॥ ८ ॥ शतशृङ्गाश्रमपदे भार्यायोगादथो मृतः । ऋषिशापत्ततो धर्मात्कुन्त्यां पाण्डोर्युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥ वाताद्भीमोऽर्जुनः शक्रान्माद्र्यामश्विकुमारतः । नकुलः सहदेवश्च, पाण्डुर्माद्रीयुतो मृतः ॥ १० ॥ कर्णः कुन्त्यां हि कन्यायां जातो दुर्योधनाश्रितः । कुरुपाण्डवयोर्वैरं दैवयोगाद् बभूव ह ॥ ११ ॥ दुर्योधनो जतुगृहे पाण्डवानदहत्कुधीः । दग्धागाराद्विनिष्क्रान्ता मातृषष्ठास्तु पाण्डवाः ॥ १२ ॥ ततस्त एकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने । मुनिवेषाः स्थिताः सर्वे निहत्य बकराक्षसम् ॥ १३ ॥ ययुः पाञ्चालविषयं द्रौपद्यास्ते स्वयंवरे । सम्प्राप्ता बहुवेषेण द्रौपदी पञ्चपाण्डवैः ॥ १४ ॥ अर्धराज्यं पुनः प्राप्ता ज्ञाता दुर्योधनादिभिः । गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं पावकाद्रथमुत्तमम् ॥ १५ ॥ सारथिं चार्जुनः सङ्ख्ये**

अग्निदेव ने कहा– अब मैं भगवान् श्रीकृष्ण के माहात्म्य के सूचक महाभारत की कथा कहूँगा । भगवान् विष्णु ने (श्रीकृष्ण ने) पाण्डवों को निमित्त (ब्याज) बनाकर पृथिवी के भार को दूर किया ।।१।। विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए, ब्रह्मा जी के पुत्र अत्रि महर्षि हुए । अत्रि के पुत्र सोम हुए । सोम से बुध उत्पन्न हुए । बुध से ऐल पुरुरवा का जन्म हुआ ।। २ ।। ऐल पुरुरवा के पुत्र आयु हुए । आयु के पुत्र राजा नहुष हुए और नहुष के पुत्र ययाति हुए । ययाति के पुत्र पुरु हुए । उनके ही वंश में भरत हुए और भरत के वंश में राजा कुरु हुए ।। ३ ।। कुरु के ही वंश में शन्तनु हुए । शन्तनु के पुत्र थे गङ्गापुत्र भीष्म । शन्तनु के ही सत्यवती के गर्भ से दो पुत्र हुए । चित्राङ्गद तथा विचित्रवीर्य । ये दोनों भीष्म के अनुज थे ।। ४ ।। शन्तनु के स्वर्ग चले जाने पर ब्रह्मचारी भीष्म ने अपने भाई के राज्य का पालन किया । चित्राङ्गद को बचपन में ही किसी चित्राङ्गद नामक गन्धर्व ने मार दिया था । शत्रुओं को पराजित करने वाले भीष्म काशिराज की दो कन्याओं अम्बिका तथा अम्बालिका का अपहरण करके लाये ।। ५-६ ।। ये दोनों विचित्रवीर्य की भार्या बनीं किन्तु (विचित्र वीर्य) यक्ष्मा रोग से ग्रस्त होकर स्वर्ग चले गए ।। सत्यवती की अनुमति से व्यास से अम्बिका के गर्भ से राजा धृतराष्ट्र पुत्र उत्पन्न हुए तथा अम्बालिका के गर्भ से पाण्डु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । धृतराष्ट्र के गन्धारी के गर्भ से दुर्योधन आदि सौ पुत्र हुए ।। ७ -८ ।। इसके पश्चात् ऋषि के शाप के कारण शतशृङ्ग ऋषि के आश्रम में ही भार्या सहवास के समय पाण्डु की मृत्यु हो गयी । कुन्ती के गर्भ से धर्म के द्वारा पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर हुए, वायु से भीम तथा इन्द्र से अर्जुन उत्पन्न हुए । अश्विनीकुमारों के संयोग से माद्री के गर्भ से पाण्डु के पुत्र नकुल और सहदेव हुए । पाण्डु माद्री के साथ ही मर गए ।। ९-१० ।। कुन्ती जब कन्या थी उसी समय उसके गर्भ से कर्ण पैदा हुए थे और वे दुर्योधन के आश्रित हो गए दैवयोग से कौरवों तथा पाण्डवों में बैर हो गया ।। ११ ।। दुर्बुद्धि दुर्योधन ने पाण्डवों को लाक्षागृह में जला दिया किन्तु जलते हुए गृह से अपनी माता के साथ छह व्यक्ति पाण्डव निकल गए ।। १२ ।। उसके पश्चात् वे सभी एकचक्रापुरी में किसी ब्राह्मण के गृह में मुनि का वेष बनाकर रहने लगे। वहाँ उन्होंने बक नामक राक्षस का वध किया ।।१३।। वहाँ से वे पाञ्चाल राज्य में द्रौपदी के स्वयम्बर में गए अनेक वेषों के द्वारा पाञ्चों पाण्डवों ने द्रौपदी को प्राप्त किया ।। १४ ।। दुर्योधन आदि के द्वारा जान लिए जाने पर पाण्डवों

कृष्णमक्षय्यसायकान्। ब्रह्मास्त्रादींस्तथा द्रोणात्सर्वे शस्त्रविशारदाः ॥ १६ ॥ कृष्णेन सोऽर्जुनो वह्निं खाण्डवे समतर्पयत् । इन्द्रवृष्टिं वारयंश्च शरबन्धेन पाण्डवः ॥ १७ ॥ जिता दिशः पाण्डवैस्तु राज्यं चक्रे युधिष्ठिरः । बहुस्वर्णं राजसूयं, न सेहे तत्सुयोधनः ॥ १८ ॥ भ्रात्रा दुःशासनेनोक्तः कर्णेन प्राप्तभूतिना । द्यूतकार्ये शकुनिना द्यूतेन स युधिष्ठिरम् ॥१९ ॥ अजयत्तस्य राज्यं च सभास्थो मायया हसन् । जितो युधिष्ठिरो भ्रातृयुक्तश्चारण्यकं ययौ ॥२०॥ वने द्वादश वर्षाणि प्रतिज्ञातानि सोऽनयत् । अष्टाशीतिसहस्त्राणि भोजयन् पूर्ववद् द्विजान् ॥ २१ ॥ सधौम्यो द्रौपदीषष्ठस्ततः प्रागाद्विराटकम्। कङ्को द्विजो ह्यविज्ञातो दाजा भीमोऽथ सूपकृत् ॥ २२ ॥ बृहन्नडाऽर्जुनो भार्या सैरन्ध्री, यमजौ तथा । अन्यनाम्ना, भीमसेनः कीचकं चावधीन्निशि ॥ २३ ॥ द्रौपदीं हर्तुकामं तमर्जुनश्चाजयत्कुरून् । कुर्वतो गोग्रहादींश्च तैर्ज्ञाता पाण्डवा अथ ॥ २४ ॥ सुभद्रा कृष्णभगिनी अर्जुनात्समजीजनत्। अभिमन्युं ददौ तस्मै विराटश्चोत्तरां सुताम् ॥ २५ ॥ सप्ताक्षौहिणीश आसीद्धर्मराजो रणाय सः । कृष्णो दूतोऽब्रवीद्गत्वा दुर्योधनममर्षणम् ॥ २६ ॥ एकादशाक्षौहिणीशं नृपं दुर्योधनं तदा ॥ युधिष्ठिरायार्धराज्यं देहि ग्रामांश्च पञ्च वा ॥ २७ ॥ युध्यस्व वा, वचः श्रुत्वा कृष्णमाह सुयोधनः । भूसूच्यग्रं न दास्यामि योत्स्ये सङ्ग्रहणोद्यतः ॥ २८ ॥ अग्निरुवाच– **विश्वरूपं दर्शयित्वा अधृष्यं विदुरार्चितः। प्रागाद्युधिष्ठिरं प्राह योधयैनं सुयोधनम् ॥ २९ ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये आदिपर्वादिभारताख्यानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

ने आधा राज्य प्राप्त किया । अर्जुन ने अग्नि से उत्तम रथ, दिव्य गाण्डीव धनुष् श्रीकृष्ण जैसे सारथि तथा अक्षय बाणों को प्राप्त किया तथा द्रोणाचार्य से ब्रह्मास्त्र आदि अस्त्रों को प्राप्त किया । सबके सब पाण्डव शस्त्र विद्या में निपुण थे ।। १५-१६ ।। श्रीकृष्ण की सहायता से अर्जुन ने खाण्डव वन में अपने बाणों के जाल से इन्द्र के द्वारा की जाने वाली वृष्टि को रोककर अग्नि को संतृप्त किया।।१७।। पाण्डवों ने दिग्विजय किया तथा राजा युधिष्ठिर हुए । उन्होंने राजसूय-यज्ञ किया जिसमें बहुत स्वर्ण दान दिया गया । उसको दुर्योधन नहीं सह सका ।। १८ ।। उसने अपने भाई दुःशासन के कहने से तथा ऐश्वर्य सम्पन्न कर्ण के कहने से शकुनी की सहायता से जुए के खेल में जुए से युधिष्ठिर तथा उनके राज्य को सभा में ही मायापूर्वक हँसी करता हुआ जीत लिया । पराजित युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ वन में चले गए ।। १९-२० ।। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार पहले के ही समान धौम्य आदि अट्ठासी हजार ब्राह्मणों को भोजन कराते हुए बारह वर्षों को विताया। उसके पश्चात् पाञ्चों पाण्डव तथा छठीं द्रौपदी विराट् की नगरी में गए ।। अपने को गुप्त रखने के लिए राजा युधिष्ठिर कङ्क नामक ब्राह्मण बन गए,भीम रसोइया बन गए, अर्जुन बृहन्नला बन गए और द्रौपदी सैरन्ध्री (दासी) हो गयी। इसी तरह से नकुल और सहदेव ने भी अपने अपने नाम बदल लिए । द्रौपदी का हरण करने की इच्छा वाले कीचक को भीमसेन ने रात्रि में मार दिया । विराट् की गायों को हाँक ले जाने वाले कौरवों को जब अर्जुन ने परास्त कर दिया तब वे सब पाण्डवों को जान सके ।। २१-२४ ।। श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा ने अर्जुन पुत्र अभिमन्यु को जन्म दिया । विराट् ने अपनी पुत्री उत्तरा का उसके साथ विवाह कर दिया ।। २५ ।। राजा युधिष्ठिर के पास युद्ध करने के लिए सात अक्षौहिणी सेना थी । उनके दूत भगवान् श्रीकृष्ण ने ग्यारह अक्षौहिणी सेना के स्वामी तथा असहनशील राजा दुर्योधन से कहा कि युधिष्ठिर को आधा राज्य दे दो अथवा पाँच ग्रामों को दे दो अथवा युद्ध करों, इस बात को सुकर दुर्योधन ने कहा ।। २६-२७ ।। **सुयोधन ने कहा–** सङ्गह के कार्य में लगा हुआ मैं सूई की नोक भर भी पृथिवी नहीं दूँगा । मैं युद्ध करूँगा ।। २८ ।। **अग्निदेव ने कहा–** अपने अजेय विश्वरूप को दिखाकर तथा विदुर के द्वारा पूजित होकर श्री भगवान् जाकर युधिष्ठिर से बोले कि इस दुर्योधन से आप युद्ध करें ।। २९ ।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का आदिपर्व इत्यादि महाभारत वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

भारताख्याने कुरुपाण्डवसङ्ग्रामवर्णनम्

अग्निरुवाच– **यौधिष्ठिरी दौर्योधनी कुरुक्षेत्रं ययौ चमूः । भीष्मद्रोणादिकान्दृष्ट्वा नायुध्यत गुरूनिति ॥ १ ॥ पार्थं ह्युवाच भगवानशोच्या भीष्ममुख्यकाः। शरीराणि विनाशीनि न शरीरी विनश्यति ॥ २ ॥ अयमात्मा परं ब्रह्म अहं ब्रह्मास्मि विद्धि तम् । सिध्यसिद्ध्योः समो योगी राजधर्मं प्रपालय ॥ ३ ॥ कृष्णोऽक्तोऽथार्जुनोऽयुध्यद्रथस्थो वाद्यशब्दवान् । भीष्मः सेनापतिरभूदादौ दौर्योधने बले ॥ ४ ॥ पाण्डवानां शिखण्डी च तयोर्युद्धं बभूव ह । धार्तराष्ट्राः पाण्डवांश्च जघ्नुर्युद्धे सभीष्मका : ॥ ५ ॥ धार्तराष्ट्राञ्शिखण्ड्याद्याः पाण्डवा जघ्नुराहवे । देवासुरसमं युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ६ ॥ बभूव खस्थदेवानां पश्यतां प्रीतिवर्धनम् । भीष्मोऽस्त्रैः पाण्डवं सैन्यं दशाहोभिर्न्यपातयत् ॥ ७ ॥ दशमे ह्यर्जुनो बाणैर्भीष्मं वीरं ववर्ष ह। शिखण्डी द्रुपदोक्तोऽस्त्रैर्ववर्ष जलदो यथा ॥८॥ हस्त्यश्वरथपादातमन्योन्यास्त्रनिपातितम् । भीष्मः स्वच्छन्दमृत्युश्च युद्धमार्गं**

अग्निदेव ने कहा– युधिष्ठिर तथा दुर्योधन की सेनाएँ कुरुक्षेत्र पहुँच गयीं । भीष्म तथा द्रोण आदि को देखकर 'ये हमारे गुरुजन हैं' यह सोचकर अर्जुन ने युद्ध नहीं करना चाहा ।। १ ।। **भगवान् ने अर्जुन से कहा**– कौरवों के भीष्म आदि मुख्य योद्धाओं के विषय में शोक करना ठीक नहीं । विनाश तो शरीरों का होता है, आत्मा तो अविनाशी है ।। २ ।।यह आत्मा परंब्रह्म है। 'मैं ब्रह्म हूँ' इसी प्रकार से तुम आत्मा को जानो । सफलता तथा असफलता दोनों को समान रूप से जानने वाला तुम योगी बनो, और राजधर्म का पालन करो ।। ३ ।। विशेष- **आत्मा को परंब्रह्म कहने का अभिप्राय यह है कि जिस तरह इस शरीर का सारा संबन्ध तब तक बना रहता है, जब तक उसके भीतर आत्मा विद्यमान रहती है । आत्मा के शरीर से निकल जाने पर सभी विनष्ट हो जाते हैं । अपने लोग भी पराए हो जाते हैं । बान्धव जन ही उस शरीर को जलाकर विनष्ट कर देते हैं। उसी तरह से आत्मा के भीतर परमात्मा का निवास है । परमात्मा के साथ नित्य ही रहने के कारण आत्मा नित्य ही बनी रहती है । वह परमात्मा ही सभी आत्मओं में अन्तर्यामी रूप से व्याप्त है । जिस तरह से शरीर तथा आत्मा में अभेद का व्याहार-व्यवहार होता है उसी तरह से आत्मा तथा परमात्मा में भी अभेद का व्याहार-श्रुतियों में किया है । छान्दोग्य श्रुति कहती है– 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम् तत्सत्यं स आत्मा, तत्त्वमसि श्वेतकेतो ।' (छा. उ.) अर्थात् हे श्वेतकेतो ! यह सम्पूर्ण जगत् ऐतदात्मक (परमात्मक) है, वह परमात्मा ही सत्य (नित्य) है, तुम भी परमात्मक ही हो। एक दूसरी श्रुति भी कहती है 'अयमात्मा ब्रह्म' (बृ. उ. २/५/१९+मा. डू. २+. पू. ४/२+नृसिंहो. १/९) अर्थात् यह आत्मा जो समस्त शरीरों के भीतर विद्यमान है, ब्रह्मात्मक होने के कारण ब्रह्म ही है । अतएव भीष्म तथा द्रोण आदि को ब्रह्मात्मक समझो, आत्मा नित्य है । उनके विषय में किसी प्रकार का शोक करना ठीक नहीं है, क्योंकि उनकी आत्मा को तो तुम मारने जा नहीं रहे हो । इस समय तुम्हें योगी होना होगा । योगी सफलता से न तो प्रसन्न होता है और तो असफलता से अप्रसन्न । वह दोनों को समान रूप से देखता है । वह कर्तव्य में विश्वास रखता है। तुम क्षत्रिय हो । क्षत्रिय का धर्म है कि वह धर्म युद्ध करे । तुम्हें क्षत्रिय का धर्मपालन करने के लिए युद्ध करना चाहिए । विजय प्राप्ति की इच्छा से नहीं** ।। श्रीकृष्ण के द्वारा इस तरह कहे जाने पर अर्जुन ने रथ पर बैठकर रणबाद्य आदि का शब्द करता हुआ युद्ध किया । सर्वप्रथम दुर्योधन की सेना के सेनापति भीष्म हुए।।४।। पाण्डवों की सेना के सेनापति शिखण्डी हुए । दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ । भीष्म के साथ धृतराष्ट्र पुत्रों ने पाण्डवों पर प्रहार किया ।। ५ ।। शिखण्डी आदि पाण्डवों ने कौरवों को युद्ध में मारना प्रारम्भ किया । कौरव तथा पाण्डव की सेनाओं में देवासुर संग्राम के समान युद्ध हुआ । यह युद्ध आकाश में रहने वाले देवताओं के लिए अत्यन्त प्रियकर था । भीष्म ने दस दिन पर्यन्त अपने अस्त्रों से पाण्डवों की सेना का वध किया । दसवें दिन अर्जुन ने वीर भीष्म के ऊपर बाणों की वर्षा की तथा द्रुपद के कहने से शिखण्डी ने उनके ऊपर मेघ के समान अस्त्रों की वर्षा की ।। ६-८ ।।

प्रदर्श्य च ॥ ९ ॥ वसूक्तो वसुलोकाय शरशय्यागतः स्थितः । उत्तरायणमीक्षंश्च ध्यायन् विष्णुं स्तुवन् स्थितः ॥ १० ॥ दुर्योधने तु शोकार्ते द्रोणः सेनापतिस्त्वभूत् । पाण्डवे हर्षिते सैन्ये धृष्टद्युम्नश्चमूपतिः ॥ ११ ॥ तयोर्युद्धं बभूवोग्रं यमराष्ट्रविवर्धनम् । विराटद्रुपदाद्याश्च निमग्ना द्रोणसागरे॥१२॥ दौर्योधनी महासेना हस्त्यश्वरथपत्तिनी । धृष्टद्युम्नाद्धि पतिता द्रोणः काल इवाऽऽबभौ ॥ १३ ॥ हतोऽश्वत्थामा वेत्युक्ते द्रोणः शस्त्राणि चात्यजत्। धृष्टद्युम्नशराक्रान्तः पतितः स महीतले ॥ १४ ॥ पञ्चमेऽहनि दुर्धर्षः सर्वक्षत्रं प्रमथ्य च ॥ दुर्योधने तु शोकार्ते कर्णः सेनापतिस्त्वभूत् ॥ १५ ॥ अर्जुनः पाण्डवानां च तयोर्युद्धं बभूव ह । शस्त्राशस्त्रि महारौद्रं देवासुररणोपमम् ॥ १६ ॥ कर्णार्जुनाख्ये सङ्ग्रामे कर्णोऽरीनवधीच्छरैः । द्वितीयेऽहनि कर्णस्तु अर्जुनेन निपातितः ॥ १७ ॥ शल्यो दिनार्धं युयुधे ह्यवधीत्तं युधिष्ठिरः । युयुधे भीससेनेन हतसैन्यः सुयोधनः ॥ १८ ॥ बहून् हत्वा नरादींश्च भीमसेनमथाऽद्रवत् । गदया प्रहरन्तं तु भीमस्तं तु व्यपातयत् ॥ १९ ॥ गदयाऽन्यानुजांस्तस्य तस्मिन्नष्टादशेऽहनि । रात्रौ सुषुप्तं च बलं पाण्डवानां न्यपातयत् ॥ २० ॥ अक्षौहिणीप्रमाणं तु अश्वत्थामा महाबलः । द्रौपदेयांश्च पाञ्चालान् धृष्टद्युम्नं च सोऽवधीत् ॥ २१ ॥ पुत्रहीनां द्रौपदीं तां रुदतीमर्जुनस्ततः । शिरोमणिं तु जग्राह ऐषीकास्त्रेण तस्य च ॥ २२ ॥ अश्वत्थामास्त्रनिर्दग्धं जीवयामास वै हरिः । उत्तरायास्ततो गर्भं स परीक्षिदभून्नृपः ॥ २३ ॥ कृतवर्मा कृपो द्रौणिस्त्रयो मुक्तास्ततो रणात्। पाण्डवाः सात्यकिः कृष्णः सप्त मुक्ता न चापरे ॥ २४ ॥ स्त्रियश्चाऽऽर्ताः समाश्वास्य भीमाद्यैः स युधिष्ठिरः। संस्कृत्य प्रहतान् वीरान् दत्तोदकधनादिकः॥२५॥ भीष्माच्छान्तनवाच्छ्रुत्वा धर्मान्सर्वांश्च शान्तिदान् । राजधर्मान्

हाथी, घोड़े रथ तथा पैदल सेना एवं परस्पर में एक दूसरे के असंख्य वीर मार गिराए गये । अपनी इच्छा के अनुसार मृत्यु वाले भीष्म युद्ध का मार्ग दिखलाकर वसुओं के द्वारा कहे जाने पर वसुलोक जाने के लिए उत्तरायण आने की इच्छा से भगवान् विष्णु की स्तुति करते हुए शरशय्या पर पड़े रहे ।। ९-१० ।। दुर्योधन के शोकार्त हो जाने पर द्रोण उसकी सेना के सेनापति बने और हर्षित पाण्डवों की सेना के सेनापति राजा धृष्टद्युम्न हुए ।। ११ ।। उन दोनों सेनाओं का ऐसा भयङ्कर युद्ध हुआ कि उससे यमराज का राज्य बढ़ गया । विराट् तथा द्रुपद आदि वीर द्रोण रूपी सागर में डूब गए। अर्थात् द्रोण ने उन्हें मार डाला ।। १२ ।। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना से युक्त दुर्योधन की महासेना को धृष्टद्युम्न ने मार गिराया । यह देखकर द्रोणाचार्य काल के समान पाण्डवों की सेना का नाश करने लगे ।। १३ ।। अश्वत्थामा नाम का मनुष्य अथवा हाथी मारा गया, यह सुनकर द्रोण ने शस्त्र का त्याग कर दिया । अत्यन्त पराक्रमी द्रोणाचार्य सशस्त्र क्षत्रियों को मारकर धृष्टद्युम्न के बाणों से जर्जर होकर पृथ्वी पर गिर पड़े । पुनः दुर्योधन के शोकार्त होने पर उसकी सेना के सेनापति कर्ण हुए ।। १४ -१५ ।। पाण्डवों की सेना के सेनापति अर्जुन बने और उन दोनों का परस्पर में शस्त्रों के द्वारा देवासुर संग्राम के समान अत्यन्त भयंकर युद्ध हुआ ।। १६ ।। कर्ण तथा अर्जुन के संग्राम में कर्ण ने बाणों द्वारा शत्रुओं का वध किया । दूसरे दिन अर्जुन ने कर्ण को मार गिराया ।। १७ ।। शल्य ने आधा दिन तक युद्ध किया और उसका वध युधिष्ठिर ने किया । जिसकी सेना मार दी गयी थी उस दुर्योधन ने भीम के साथ युद्ध किया ।। १८ ।। बहुत से मनुष्यों आदि को मारकर वह (दुर्योधन) भीम के ऊपर टूट पड़ा प्रहार करने वाले उस दुर्योधन को भीम ने मार गिराया ।। १९ ।। उस अठारहवें दिन भीम ने गदा से दुर्योधन के अन्य अनुजों को मार गिराया । महाबली अश्वत्थामा ने रात्रि में सोयी हुयी पाण्डवों की एक अक्षौहिणी सेना को मार दिया । उसने द्रौपदी के पुत्रों,पाञ्चाल वीरों तथा धृष्टद्युम्न का वध कर दिया ।। २०-२१ ।। उसके पश्चात् रोती हुई द्रौपदी को सान्त्वना देकर अर्जुन ने अश्वत्थामा को पकड़ लिया तथा ऐषिकास्त्र के द्वारा उसके सिर की मणि को निकाल लिया ।। २२ ।। अश्वत्थामा के अस्त्र से निर्दग्ध (भस्म) उत्तरा के गर्भ को श्रीहरि (भगवान् श्रीकृष्ण) ने जीवित कर दिया । वही राजा परीक्षित हुआ ।। २३ ।। लड़ाई से कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा ये तीन वीर कौरव पक्ष में बचे और पाण्डवों के पक्ष में पाञ्चों पाण्डव, सात्यकि तथा श्रीकृष्ण ये सात वीर बचे दूसरे नहीं ।। २४ ।। आर्त स्त्रियों को आश्वस्त करके भीम आदि के साथ युधिष्ठिर मारे गए वीरों का संस्कार करके उनके निमित्त जलदान तथा धन

मोक्षधर्मान् दानधर्मान् नृपोऽभवत्॥ २६ ॥ अश्वमेधे ददौ दानं ब्राह्मणेभ्योऽरिमर्दनः । श्रुत्वाऽर्जुनान्मौसलेयं यादवानां च संक्षयम् ॥ २७ ॥ राज्ये परीक्षितं स्थाप्य सानुजः स्वर्गमाप्तवान्॥ २८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये भारताख्यानं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

पाण्डवस्वर्गारोहणवर्णनम्

अग्निरुवाच– **युधिष्ठिरे तु राज्यस्थे आश्रमादाश्रमान्तरम् । धृतराष्ट्रो वनमगाद् गान्धारी च पृथा द्विज ॥ १ ॥ विदुरस्त्वग्निना दग्धो वनजेन दिवं गतः। एवं विष्णुर्भुवो भारमहरद् दानवादिकम् ॥ २ ॥ धर्मायाधर्मनाशाय निमित्तीकृत्य पाण्डवान् । स विप्रशापव्याजेन मुसलेनाहरत् कुलम् ॥ ३ ॥ यादवानां भारकरं, वज्रं राज्येऽभ्यषेचयत् । देवादेशात्प्रभासे स देहं त्यक्त्वा स्वयं हरिः ॥ ४ ॥ इन्द्रलोके ब्रह्मलोके पूज्यते स्वर्गवासिभिः । बलभद्रोऽनन्तमूर्तिः पातालस्वर्गमीयिवान् ॥ ५ ॥ अविनाशी हरिर्देवो ध्यानिभिर्ध्येय एव सः । विना तं द्वारकास्थानं प्लावयामास सागरः ॥ ६ ॥ संस्कृत्य यादवान् पार्थो दत्तोदकधनादिकः । स्त्रियोऽष्टावक्रशापे भार्या विष्णोश्च याः स्थिताः ॥ ७ ॥ पुनस्तच्छापतो नीता गोपालैर्लगुडायुधैः । अर्जुनं हि तिरस्कृत्य, पार्थः शोकं चकार ह ॥ ८ ॥ व्यासेनाश्वासितो मेने बलं मे कृष्णसन्निधौ । हस्तिनापुरमागत्य पार्थः सर्वं न्यवेदयत् ॥ ९ ॥**

आदि का दान किया ।। २५ ।। पुनः वे शान्ति प्रदान करने वाले सभी धर्मों, राजधर्मों, मोक्षधर्मों तथा दानधर्मों का शन्तनु के पुत्र भीष्म के मुख से श्रवण करके राजा बने ।। २६ ।। शत्रुओं का नाश करने वाले युधिष्ठिर ने अश्वमेघ याग में ब्राह्मणों को दान दिया, अर्जुन के मुख से मूसल जन्य यादवों का विनाश सुनकर युधिष्ठिर ने परीक्षित को राजा बनाया और स्वयं अपने अनुजों के साथ स्वर्ग प्राप्त किए ।। २७-२८ ।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का भारताख्यान वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १४ ॥

अग्निदेव ने कहा– हे द्विज ! युधिष्ठिर के राजा हो जाने पर धृतराष्ट्र एक आश्रम का त्याग करके दूसरे आश्रम को स्वीकार करने के नियमानुसार गार्हस्थ्य के पश्चात् वानप्रस्थाश्रम को स्वीकार करके गन्धारी तथा कुन्ती के साथ वन चले गए ।। १ ।। विदुर तो वनाग्नि में जलकर स्वर्ग चले गए । इस तरह से भगवान् विष्णु ने पृथिवी के भारस्वरूप दानवादिकों का विनाश किया ।। २।। धर्म की रक्षा तथा अधर्म का नाश करने के लिए श्री भगवान् ने पाण्डवों को बहाना बनाकर संहार करने का कार्य किया तथा ब्राह्मणों के शाप के बहाने से मुसल के द्वारा अपने वंश का संहार किया।।३।। यादवों के लिए भारस्वरूप वज्र को राजा बनाकर श्रीभगवान् ने देवताओं के आदेश से स्वयम् प्रभास क्षेत्र में जाकर अपना शरीर त्याग कर इन्द्रलोक में तथा ब्रह्मलोक में स्वर्ग के निवासी देवताओं द्वारा पूजित हुए ।। ४।। अनन्त (शेष) के अवतारस्वरूप बलभद्रजी पाताल स्वर्ग में चले गये । नित्य स्वरूप श्रीभगवान् दिव्यगुण सम्पन्न होने के कारण देव हैं । वे ही ध्यान करने वाले पुरुषों के द्वारा ध्यान करने योग्य हैं । श्रीकृष्ण भगवान् के अभाव में समुद्र ने द्वारका को डुबो दिया ।। ६ ।। अर्जुन यादवों का संस्कार करके तथा उनके (आत्मोन्नयनार्थ) जलदान तथा धन आदि का दान किए । अष्टावक्र मुनि के शाप से जो स्त्रियाँ भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण) की पत्नियाँ बनी थीं, उन्हीं के शाप के प्रभाव से गोपालों ने अपनी लाठी के बल से अर्जुन का अपमान करके उनको लूट लिया। यह देखकर अर्जुन शोक करने लगे ।। ७-८ ।। व्यास जी के द्वारा आश्वाशन प्राप्त करने पर उन्होंने माना कि मेरा सारा बल श्रीभगवान् के ही कारण था। हस्तिनापुर आकर अर्जुन ने सारी कथा

युधिष्ठिराय सभ्रात्रे पालकाय नृणां तदा ॥ तद्धनुस्तानि चास्त्राणि स रथस्ते च वाजिनः ॥ १० ॥ विना कृष्णेन तन्नष्टं दानमश्रोत्रिये यथा। तच्छ्रुत्वा धर्मराजस्तु राज्ये स्थाप्य परीक्षितम् ॥ ११ ॥ प्रस्थानं प्रस्थितो धीमान् द्रौपद्या भ्रातृभिः सह । संसारानित्यतां ज्ञात्वा जपन्नष्टशतं हरेः ॥ १२ ॥ महापथे तु पतिता द्रौपदी सहदेवकः । नकुलः फाल्गुनो भीमो राजा शोकपरायणः ॥ १३ ॥ इन्द्रानीतरथारूढः सानुजः स्वर्गमाप्तवान् । दृष्ट्वा दुर्योधनादींश्च वासुदेवं च हर्षितः ॥ १४ ॥ एतत्ते भारतं प्रोक्तं यः पठेत्स दिवं व्रजेत् ॥ १५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पाण्डवप्रास्थानिकपर्ववर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

बुद्धावतारवर्णनम्

अग्निरुवाच– **वक्ष्ये बुद्धावतारं च पठतः शृण्वतोऽर्थदम् । पुरा दे (दै) वासुरे युद्धे दैत्यैर्देवाः पराजिताः ॥ १ ॥ रक्ष रक्षेति शरणं वदन्तो जग्मुरीश्वरम्। मायामोहस्वरूपोऽसौ शुद्धोदनसुतोऽभवत् ॥ २ ॥ मोहयामास दैत्यांस्तांस्त्याजिता वेदधर्मकम् । ते च बौद्धा बभूवुर्हि तेभ्योऽन्ये वेदवर्जिताः ॥ ३॥ आर्हतः सोऽभवत्पश्चादार्हतानकरोत्परान् । एवं पाषण्डिनो जाता वेदधर्मादिवर्जिताः ॥ ४ ॥ नरकार्हं कर्म चक्रुर्ग्रहीष्यन्त्यधमादपि। सर्वे कलियुगान्ते तु भविष्यन्ति च सङ्करशः ॥ ५ ॥ दस्यवः शीलहीनाश्च वेदो वाजसनेयकः । दश पञ्च च शाखा वै प्रमाणेन भविष्यति ॥ ६॥**

तात्कालिक प्रजाओं के पालक तथा भाइयों के साथ उपविष्ट महाराज युधिष्ठिर को सुनाया ।। ९।। उन्होंने कहा- मेरा वही धनुष् था, वे ही मेरे अस्त्र थे, वही रथ था और वे ही घोड़े थे । किन्तु कृष्ण के अभाव में वे सब उसी तरह व्यर्थ हो गए जिस तरह अश्रोत्रिय को दिया गया दान व्यर्थ होता है ।। १०।। यह सुनकर धर्मराज ने परीक्षित को राजा बना दिया और स्वयम् भाइयों तथा द्रौपदी के साथ संसार की अनित्यता को जानकर श्रीभगवान् के अष्टोत्तर शत नाम को जपते हुए प्रस्थान किया ।। ११-१२ ।। उस महापथ पर द्रौपदी सहदेव के साथ गिर पड़ीं, फिर नकुल, फिर अर्जुन और इसके बाद भीम गिर पड़े । यह देखकर राजा युधिष्ठिर शोकार्त हो गए ।। १३ ।। इन्द्र के द्वारा लाये गये रथ पर चढ़कर छोटे भाइयों के साथ वे स्वर्ग पहुँचे । वहाँ पर दुर्योधन आदि तथा श्रीकृष्ण को देखकर वे हर्षित हुए ।। १४ ।। हे वसिष्ठ ! यह मैंने आपको महाभारत की कथा सुनायी, इसको जो पढ़ेगा वह स्वर्गलोक को प्राप्त करेगा ।। १५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का पाण्डवप्रास्थानिकपर्व वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं बुद्धावतार का वर्णन करूँगा, जिसके पढ़ने से अर्थ की प्राप्ति होती है । प्राचीनकाल में देवासुर संग्राम में दैत्यों ने देवताओं को परास्त कर दिया ।। १ ।। तब देवता भगवन्! हमारी रक्षा कीजिए । हमारी रक्षा कीजिए !! यह कहते हुए ईश्वर (श्रीभगवान्) की शरण में गए । यह सुनकर माया मोह स्वरूप श्रीभगवान् शुद्धोदन के पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुए ।। २ ।। उन्होंने दैत्यों को मोहित करके उन्हें वैदिक धर्म से पराङ्मुख बना दिया । वे ही दैत्य बौद्ध हो गए, उन्हीं से अन्य लोगों ने भी वैदिक धर्म का त्याग कर दिया ।। ३ ।। इसके पश्चात् भगवान् स्वयम् आर्हत् होकर दूसरे लोगों को आर्हत् (जैन) बना दिए । इस तरह से वैदिक धर्म से रहित लोग पाखण्डी हो गए ।। ४ ।। इन सबों ने नरक प्राप्ति के योग्य कर्मों को किया और लोग इस धर्म की शिक्षा अधर्मी लोग से भी प्राप्त करेंगे । सभी लोग कलियुग के अन्त में वर्णसंकर हो जायेंगे ।। ५ ।। सभी लोग दस्यु (चोर) तथा शीलहीन हो जायेंगे तथा एकमात्र शुक्लयजुर्वेद की वाजसनेयी शाखा रह जायेगी । वेदों की केवल दस-पाँच शाखाएँ प्रमाण के लिए रह जायेंगी ।। ६ ।। धार्मिक स्वांग बनाए हुए तथा अधर्म में रुचि रखने वाले राजा के रूप में म्लेच्छ लोग मनुष्यों

धर्मकञ्चुकसंवीता अधर्मरुचयस्तथा। मानुषान् भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छाः पार्थिवरूपिणः ॥ ७ ॥ कल्की विष्णुयशः पुत्रो याज्ञवल्क्य पुरोहितः। उत्सादयिष्यति म्लेच्छान् गृहीतास्त्रः कृतायुधः ॥ ८ ॥ स्थापयिष्यति मर्यादां चातुर्वर्ण्ये यथोचिताम्। आश्रमेषु च सर्वेषु प्रजा सद्धर्मवर्त्मनि ॥ ९ ॥ कल्किरूपं परित्यज्य हरिः स्वर्गं गमिष्यति। ततः कृतयुगं नाम पुरावत्सम्भविष्यति ॥ १० ॥ वर्णाश्रमाश्च धर्मेषु स्वेषु स्थास्यन्ति सत्तम। एवं सर्वेषु कल्पेषु सर्वमन्वन्तरेषु च ॥ ११ ॥ अवतारा असङ्ख्याता अतीतानागतादयः। विष्णोर्दशावतारांशान्यः पठेच्छृणुयान्नरः ॥ १२ ॥ सोऽवाप्तकामो विमलः सकुलः स्वर्गमाप्नुयात् धर्माधर्मव्यवस्थानमेवं वै कुरुते हरिः ॥ १३ ॥ अवतीर्णः स जगतः सर्गादेः कारणं हरिः ॥ १४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये बुद्धावतारवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

जगत्सर्गवर्णनम्

अग्निरुवाच— **जगत्सर्गादिकां क्रीडां विष्णोर्वक्ष्येऽधुना शृणु। स्वर्गादिकृत्स सर्गादिः सृष्ट्यादिः सगुणोऽगुणः ॥ १ ॥ ब्रह्माव्यक्तं सदग्रेऽभून्नखं रात्रिदिनादिकम्। प्रकृतिः पुरुषो विष्णुः, प्रविश्याक्षोभयत्ततः॥२॥ सर्गकाले महत्तत्त्वमहङ्कारस्ततोऽभवत्। वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः॥३॥ अहङ्काराच्छब्दमात्रमाकाशमभवत्ततः। स्पर्शमात्रोऽनिलस्तस्माद्रूपमात्रोऽनलस्ततः ॥ ४ ॥ रसमात्रा आप इतो गन्धमात्रा धरित्र्यभूत्। अहङ्कारात्तामसात्तु**

का भक्षण करने वाले हो जायेंगे ।। ७ ।। इसके पश्चात् श्रीभगवान् का विष्णुयज्ञ के पुत्र के रूप में कल्की अवतार होगा। उनके याज्ञवल्क्य पुरोहित होंगे। वे आयुधज्ञ भगवान् हाथ में आयुध लेकर म्लेच्छों का विनाश करेंगे ।। ८ ।। पुनः वे चारों वर्णों की यथोचित (शास्त्रविहित) मर्यादा की स्थापना करेंगे। सभी आश्रमों की प्रजा सद्धर्म का पालन करने वाली होगी ।। ८ ।। इसके पश्चात् श्री हरिः अपने कल्कि रूप का परित्याग करके स्वर्ग लोक चले जायेंगे। उसके पश्चात् पहले के ही समान सत्ययुग होगा ।। १० ।। हे सर्वश्रेष्ठ ! वसिष्ठ ! सभी वर्णों एवं आश्रमों के लोग अपने धर्म का पालन करेंगे। इसी तरह सभी कल्पों तथा सभी मन्वन्तरों में श्रीभगवान् के अतीतकालिक अवतार होते हैं ।। ११ ।। भगवान् विष्णु के दस अंशावतारों को जो पढ़ेगा अथवा सुनेगा वह निष्पाप होकर अवाप्तसमस्तकाम (अपनी सारी इच्छाओं को पूर्ण करने वाला) होएगा तथा अपने कुल के साथ स्वर्ग प्राप्त करेगा ।। १२ ।। इस तरह जगत् की सृष्टि आदि (पालन तथा संहार) के कारण स्वरूप (को करने वाले) भगवान् श्रीहरि उसी प्रकार से अवतार ग्रहण करके धर्म तथा अधर्म की व्यवस्था करते रहते हैं ।। १३-१४ ।।

इस तरह से आदि महापुराण अग्निपुराण का बुद्धावतार वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १६ ॥

अग्निदेव ने कहा— अब मैं श्रीभगवान् की जगत् की सृष्टि आदि (पालन तथा संहार) रूपी क्रीड़ा (लीला) का वर्णन कर रहा हूँ, उसे आप सुनें। स्वर्ग आदि का निर्माण करने वाले सृष्टि आदि के कारणस्वरूप जगद्व्यापारकर्ता भगवान् विष्णु सगुण तथा निर्गुण (अगुण) दोनों प्रकार के स्वरूप वाले हैं ।। १ ।। **विशेष— श्रीभगवान् ही जगत् की सृष्टि आदि के कर्ता हैं। तैत्तिरीयोपनिषत् की भृगुवल्ली कहती है- यतो व इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभि संविशन्ति।' (तै. २/१) अर्थात् निश्चय ही जो परब्रह्म इन सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करता है, और जिसके कारण उत्पन्न हुए समस्त भूत जीवित (पालित) रहते हैं, जिसमें जाकर प्रलीन हो जाते हैं और अन्त में जिसमें ही प्रवेश कर जाते हैं।**

तैजसानीन्द्रियाणि च ॥ ५ ॥ वैकारिका दश देवा मन एकादशेन्द्रियम्। ततः स्वयम्भूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥ ६ ॥ अप एव ससर्जाऽऽदौ तासु वीर्यमवासृजत् ॥ आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥ ७ ॥ अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः। हिरण्यवर्ण मभवत्तदण्डमुदकेशयम्॥८॥ तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूरिति नः श्रुतम् ॥ हिरण्यगर्भो भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ॥ ९ ॥ तदण्डमकरोद् द्वैधं दिवं भुवमथापि च। तयोः

'जन्माद्यस्य यतः' (शा. मी.) अर्थात् जिससे इस जगत् की सृष्टि आदि होती है वह ब्रह्म है, यह सूत्र भी ब्रह्म (श्रीभगवान्) को ही जगत् की सृष्टि आदि का कारण बतलाता है कि श्रीभगवान् समस्त दिव्य गुणों से सम्पन्न हैं, 'यः सर्वज्ञः सर्ववित्, पराऽस्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।' यह श्रुति भी भगवान् के दिव्यगुणों का वर्णन करती हुई बतलाती है कि श्रीभगवान् सर्वज्ञ (सभी वस्तुओं को सामान्य रूप से जानने वाले, तथा सर्ववित् (सभी वस्तुओं को विशेष रूप से जानने वाले हैं। उनकी अनेक प्रकार की परा शक्तियाँ सुनी जाती हैं, उनके ज्ञान तथा बल की क्रियाएँ स्वाभाविक हैं। अगुण पद के द्वारा यह बतलाया गया है कि श्री भगवान् में हेय प्राकृतिक गुणों का अभाव है। उनमें कोई भी प्राकृतिक गुण नहीं है। अगुण पद परंब्रह्म में दिव्यगुणों के सद्भाव का निषेध नहीं करता है। सृष्टि से पूर्व ब्रह्म सत् स्वरूप थे। उस समय वह अव्यक्त स्वरूप थे। उस समय न रात्रि थी और न तो दिन आदि। उसके पश्चात् सृष्टिकाल के आने पर पुरुष स्वरूप भगवान् विष्णु ने प्रकृति में प्रवेश करके उसे क्षुब्ध किया ॥ २ ॥ विशेष- इस श्लोक में अग्नि ने पुरोवादिनी (जगत् कारण तत्त्व का विवेचन करने वाली श्रुति का अनुवाद किया है' श्रुति कहती है– सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।' (छा. उ. ६/२/१) अर्थात् हे सोमरसपानार्ह ! सच्छिष्य! सृष्टि से पूर्व यह सम्पूर्ण जगत् सत्स्वरूप था। वह अकेला तथा अद्वितीय था। इस श्रुति के 'एकमेवाद्वितीयम्' इन दो पदों के द्वारा ब्रह्म को सहकारी निरपेक्ष जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण बतलाया गया है। अर्थात् जगत् का उपादान कारण, निमित्त कारण तथा सहकारी कारण तीनों ब्रह्म ही है। अव्यक्त शब्द के द्वारा ब्रह्म को सूक्ष्म चिढचिद्विशिष्ट नाम तथा रूप (आकार) आदि के विभाग से रहिता वस्थावस्थित बतलाया गया है। भगवान् विष्णु ही परंब्रह्म हैं। वे ही पुरुष शब्द वाच्य हैं। कयोंकि वे अनन्त जीवों के अन्तःकरण में अन्तर्यामी रूप से निवास करते हैं (पुरुषु शेते) यही पुरुष शब्द की व्युत्पत्ति है। अथवा (पुम्सु शेते) यह पुरुष शब्द की व्युत्पत्ति है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार (पुरुष शब्द का अर्थ होगा कि चूँकि श्रीभगवान् सबों के हृदयरूपी गुफा में निवास करते हैं अतएव वे पुरुष कहलाते हैं। वे ही अपनी प्रकृति को अधिष्ठान बनाकर अपनी माया के द्वारा सम्पूर्ण जगत् के रूप में परिणत होते हैं। भगवान् ने गीता में कहा भी है– प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया। (गी. ९/८) सृष्टि के समय सर्वप्रथम महत्तत्त्व (बुद्धितत्त्व) उत्पन्न हुआ, उसके पश्चात् अहंकार उत्पन्न हुआ। यह अहंकार तीन प्रकार का हुआ है वैकारिक (सात्विक) तैजस (राजस) तथा भूतादि (तामस) ॥ ३ ॥ अहंकार से शब्दतन्मात्रा उत्पन्न हुई। उससे आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से स्पर्श तन्मात्रा उत्पन्न हुई, और स्पर्शतन्मात्रा से वायु उत्पन्न हुआ। वायु से रूप तन्मात्रा उत्पन्न हुई और उससे अग्नि उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥ अग्नि से रसतन्मात्रा उत्पन्न हुई और उससे जल उत्पन्न हुआ, उससे गन्धतन्मात्रा उत्पन्न हुई और उससे पृथिवी की उत्पत्ति हुई। इन सबों की तामस अहंकार से उत्पत्ति हुई और राजस अहंकार से इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई ॥ ५ ॥ वैकारिक (सात्विक) अहंकार से इन्द्रियों के दस अधिष्ठातृ देवता उत्पन्न हुए। (पञ्चज्ञानेन्द्रियों तथा पञ्च कर्मेन्द्रियों) के अतिरिक्त ग्यारहवाँ मन भी इन्द्रिय है। (घ्राण, चक्षु, रसना, श्रोत्र एवं त्वक् ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। वाक्, पाणि, पाद, पायु (मल त्याग करने वाली इन्द्रिय) तथा उपस्थ (लिङ्ग) ये पञ्च-कर्मेन्द्रियाँ हैं। **(चूँकि सुख दुःख आदि आभ्यन्तर विषयों का ग्रहण मन के द्वारा ही होता है, अतएव मन को ग्यारहवाँ इन्द्रिय मान लिया जाता है।)** इसके पश्चात् अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा वाले भगवान् स्वयम्भू ने सर्वप्रथम जल की सृष्टि की और उसमें अपने वीर्य का आधान किया ॥ ६ ॥ जल को ही नार कहा जाता है। उसे ही नरसूनु कहा जाता है। जल ही सर्वप्रथम चूँकि श्रीभगवान् का आश्रय बना **(अतएव नार अयनम् = आश्रयो यस्याऽसौ) इस विग्रह के अनुसार।**) भगवान् को नारायण कहा जाता है ॥ ७ ॥ जल में स्थित वह अण्डा सुवर्ण के समान पीत वर्ण का हो गया। उसी से स्वयम्भू ब्रह्मा उत्पन्न हुए, ऐसा मैंने (अपने आचार्यों से) सुना है ॥ ८ ॥ भगवान् हिरण्यगर्भ उसमें एक वर्ष तक रहे उसके पश्चात् उन्होंने उसको दो भागों में विभक्त कर दिया जिसका एक भाग द्युलोक हो गया और दूसरा भाग भूलोक हो गया। उन दोनों भागों के बीच में उन्होंने आकाश की सृष्टि की ॥ ९-१० ॥

शकलयोर्मध्य आकाशमसृजत्प्रभुः ॥ १० ॥ अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे । तत्र कालं मनो वाचं कामं क्रोधमथो रतिम् ॥ ११ ॥ ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां स्त्रष्टुमिच्छन्प्रजापतिः । विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ॥ १२ ॥ वयांसि च ससर्जादौ पर्जन्यं चाथ वक्त्रतः । ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये ॥ १३ ॥ साध्यास्तैरयजन्देवान्भूतमुच्चावचं भुजात् । सनत्कुमारं रुद्रं च ससर्ज क्रोधसम्भवम् ॥ १४ ॥ मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । वसिष्ठं मानसान्सप्त ब्राह्मणानिति निश्चितम् ॥ १५ ॥ सप्तैते जनयन्ति स्म प्रजा रुद्राश्च सत्तम । द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ॥ १६॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये जगत्सर्गवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्याय : ॥ १७ ॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

स्वायम्भुवमनुवंशवर्णनम्

अग्निरुवाच–प्रियव्रतोत्तानपादौ मनोः स्वायम्भुवात् सुतौ। अजीजनत् सुतां रम्यां शतरूपा तपोऽन्विताम् ॥१॥ काम्या कर्दमभार्यातः सम्राट् कुक्षिर्विराट्प्रभुः। सुरुच्यामुत्तमो जज्ञे पुत्र उत्तानपादतः ॥ २ ॥ सुनीत्यां च ध्रुवः पुत्रस्तपस्तेपे सुकीर्तये । ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि हे मुने॥३॥ तस्मै प्रीतो हरिः प्रादान्मुन्यग्रे स्थानकं स्थिरम् । श्लोकं पपाठ स्युशना वृद्धिं दृष्ट्वा स तस्य च ॥ ४ ॥ अहोऽस्य तपसो वीर्यमहो श्रुतमहोऽद्भुतम् । यमद्यपुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥ ५ ॥ तस्माद् वृद्धिश्च भव्यश्च ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत । वृद्धेराधत्त सुच्छाया पञ्च

उन्होंने जल में तैरती हुई पृथ्वी का तथा दश दिशाओं का आधान किया । उसी में उन्होंने काल, मन, वाणी, काम, क्रोध तथा रति की सृष्टि की । पुनः उसी के अनुरूप सृष्टि करने की इच्छा से प्रजापति ने सर्वप्रथम विद्युत, वज्र, मेघ,रोहित, इन्द्रधनुष, तथा पक्षियों की सृष्टि की । उसके पश्चात् उन्होंने यज्ञ कार्य करने के लिए अपने मुख से ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद की सृष्टि की ।। ११-१३।। उन वेदों के द्वारा ब्रह्मा जी ने साध्य देवों का यजन किया । पुनः उन्होंने अपनी भुजा से छोटे बड़े भूतों की, सनत्कुमार की तथा क्रोध से उत्पन्न होने वाले रुद्र की सृष्टि की ।। १४ ।। उन्होंने अपने मन से उत्पन्न होने वाले मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु तथा वसिष्ठ इन सातों को ब्राह्मण रूप से निश्चित किया ।। १५ ।। हे द्विजश्रेष्ठ वसिष्ठ ! ये सात सप्तर्षि तथा रुद्र ने प्रजाओं को उत्पन्न किया । ब्रह्मा जी अपने ही शरीर को दो भाग में करके, आधे भाग से नारी तथा आधे भाग से पुरुष हो गए और उन्होंने उस नारी भाग के ही गर्भ से प्रजाओं की सृष्टि की ।। १६ ।।

इस तरह से आदि महापुराण अग्निपुराण का जगत् सर्ग वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७ ॥

अग्निदेव ने कहा– स्वायम्भुव मनु के प्रियव्रत तथा उत्तानपाद ये दो पुत्र उत्पन्न हुए तथा एक सुन्दरी तपस्विनी कन्या शतरूपा के गर्भ से उत्पन्न हुई ।। १ ।। वह सुन्दरी कर्दम महर्षि की माया हुई जिससे चक्रवर्ती सम्राट् कुक्षि उत्पन्न हुए । उत्तानपाद के पुत्र उत्तम उनकी सुरुचि नामक पत्नी के गर्भ से उत्पन्न हुए तथा सुनीति के गर्भ से उनके पुत्र हे मुने ! ध्रुव उत्पन्न हुए । ध्रुव ने सुकीर्ति की प्राप्ति के लिए तीन हजार दिव्य वर्ष पर्यन्त तप किया ।। २-३ ।। प्रसन्न होकर श्री हरि ने ध्रुव को सप्तर्षि मण्डल से ऊपर एक स्थिर स्थान प्रदान किया । ध्रुव के इस उत्कर्ष को देखकर उशना (शुक्राचार्य) ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा ।। ४ ।। ध्रुव की तपस्या का बल प्रशंसनीय है । इनका ज्ञान अत्यन्त अद्भुत है । जिस ध्रुव को अपने आगे करके सप्तर्षि मण्डल स्थित है ।। ५ ।।

पुत्रानकल्मषान् ॥ ६ ॥ रिपुं रिपुञ्जयं पुष्यं वृकसं वृकतेजसम् । रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम् ॥ ७ ॥ मनोरजायन्त दश नड्वलायां सुतोत्तमाः ॥ ८ ॥ ऊरुः पूरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्कविः । अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चातिमन्युकः ॥९॥ ऊरोरजनयत्पुत्रान्षडाग्नेयी महाप्रभान्। अङ्गं सुमनसं स्वातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम् ॥१०॥ अङ्गात्सुनीथापत्यं वै वेणमेकं व्यजायत । अरक्षकः पापरतः स हतो मुनिभिः कुशैः ॥ ११ ॥ प्रजार्थमृषयोऽथास्य ममन्थुर्दक्षिणं करम् । वेणस्य मथिते पाणौ सम्बभूव पृथुर्नृपः ॥ १२ ॥ तं दृष्ट्वा मुनयः प्राहुरेष वै मुदिताः प्रजाः । करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत् ॥ १३ ॥ स धन्वी कवची जातस्तेजसा निर्दहन्निव । पृथुर्वैण्यः प्रजाः सर्वा ररक्ष क्षत्रपूर्वजः ॥ १४ ॥ राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स पृथिवीपतिः । तस्माच्चैव समुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ ॥१५॥ तत्स्तोत्रं चक्रतुर्वीरौ, राजाऽभूज्जनरञ्जनात् । दुग्धा गौस्तेन सस्यार्थं प्रजानां जीवनाय च ॥१६॥ सह देवैर्मुनिगणैर्गन्धर्वैश्चाप्सरोगणैः । पितृभिर्दानवैः सर्पैर्वीरुद्भिः पर्वतैर्जनैः ॥१७॥ तेषु तेषु च पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा । प्रादाद्यथेप्सितं क्षीरं तेन प्राणानधारयन् ॥ १८ ॥ पृथोः पुत्रौ तु धर्मज्ञौ जज्ञातेऽन्तर्धिपालितौ । शिखण्डिनी हविर्धानमन्तर्धानाद् व्यजायत ॥ १९ ॥ हविर्धानात्षडाग्नेयी धिषणाजनयत्सुतान्। प्राचीन बर्हिषं शुक्रं गयं कृष्णं व्रजाजिनौ ॥२०॥ प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिव्यां यजतो यतः। प्राचीनबर्हिर्भगवान्महानासीत्प्रजापतिः॥ २१ ॥ सवर्णाऽधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः । सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ॥ २२ ॥ अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः। दश वर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः॥२३॥ प्रजापतित्वं सम्प्राप्य तुष्टा विष्णोश्च

ध्रुव के तीन पुत्र उत्पन्न हुए वृद्धि, भव्य और शम्भु । वृद्धि के सुच्छाया नामक पत्नी के गर्भ से पाँच पवित्र पुत्र हुए ।। ६ ।। रिपु, रिपुञ्जय, पुष्य, वृकस और वृकतेजस । रिपु के वृहती नामक पत्नी ने सर्वतेजःसम्पन्नचाक्षुष् नामक पुत्र हुए ।। ७ ।। वीरण की पुत्री पुष्करिणी के गर्भ से चाक्षुष् मनु नामक पुत्र हुए । मनु की पत्नी नड्वला के गर्भ से निम्नांकित दस उत्तम पुत्र उत्पन्न हुए ।। ८ ।। उरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, कवि, अग्निष्टु अतिरात्र, सुद्युम्न और अतिमन्यु ।। ९ ।। आग्नेयी ने उरु के- अङ्ग, सुमनस, स्वाति, क्रतु, अङ्गिरा तथा जप नामक छह अत्यन्त तेजस्वी पुत्रों को उत्पन्न किया ।। १० ।। अङ्ग का सुनीथा के गर्भ से वेण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो प्रजाओं की रक्षा नहीं करने वाला और पापी था तथा जिसे मुनियों ने कुश से मार डाला ।। ११ ।। सन्तान के लिए मुनियों ने वेण की दाहिनी भुजा का मन्थन किया उससे राजा पृथु उत्पन्न हुए ।। १२ ।। उन्हें देखकर मुनियों ने कहा- यह बालक अपनी प्रजाओं को प्रसन्न करेगा तथा महान यश प्राप्त करेगा ।। १३ ।। वेन के पुत्र क्षत्रियों के पूर्वज तथा महातेजस्वी पृथु ने धनुष् और कवच धारण कर सम्पूर्ण प्रजा की रक्षा की ।। १४ ।। वे राजसूय यज्ञ करने वाले राजाओं में सर्वप्रथम राजा थे । उस राजसूय यज्ञ से उत्पन्न चतुर तथा वीर सूत एवं मागध ने राजा पृथु की स्तुति की । प्रजाओं का रञ्जन करने के कारण वे (पृथु) राजा कहलाए । उन्होंने धान्य तथा प्रजाओं के जीवन की रक्षा के लिए पृथिवी का दोहन देवता, मुनिगण, गन्धर्व, अप्सरा, पितृगण, दानव, सर्प, विरुध, (लता) पर्वत तथा मनुष्यों के साथ किया ।। १५-१७ ।। विभिन्न पात्रों में दूही जाने वाली पृथिवी ने सबों को यथेप्सित दुग्ध प्रदान किया; जिससे उन सबों ने जीवन धारण किया ।। १८ ।। पृथु के दो धर्मज्ञ पुत्र हुए अन्तर्धि तथा पलित । शिखण्डिनी ने अन्तर्धि के पुत्र हविर्धान को उत्पन्न किया ।। १९ ।। अग्नि की पुत्री आग्नेयी ने अपने गर्भ से हविर्धान के, प्राचीन बर्हिष्, शुक्र, गय, कृष्ण तथा अजिन इन छह पुत्रों को उत्पन्न किया ।। २० ।। भगवान् प्राचीन वहिर्ष महान् प्रजापति थे । यज्ञ के समय उन्होंने पूर्व की ओर मुख करके सम्पूर्ण पृथिवी पर कुश बिछा दिया । अतएव वे प्राचीन वर्हिष कहलाने लगे ।। २१ ।। प्राचीन वर्हिष् की सवर्णा पत्नी तथा समुद्र की पुत्री सामुद्री ने उनके दस पुत्रों को उत्पन्न किया । वे सबके सब प्रचेता के नाम से विख्यात तथा धनुर्वेद में पारङ्गत हुए ।। २२ ।। एक समान धर्म वाले उन सबों ने समुद्र के जल के भीतर रहकर दस हजार वर्ष तक घोर तपस्या की ।। २३ ।। भगवान् विष्णु से प्रजापति होने के वरदान को पाकर बाहर निकलकर वे पृथ्वी तथा आकाश को वृक्षों से व्याप्त देखकर अपने मुख की अग्नि तथा वायु से वृक्षों को जलाने लगे ।

निर्गताः । भूः खं व्याप्तं हि तरुभिस्तांस्तरूनदहंश्च ते ॥ २४ ॥ मुखजाग्निमरुद्भ्यां च दृष्ट्वा चाथ द्रुमक्षयम् । उपगम्याब्रवीदेतान् राजा सोमः प्रजापतीन् ॥ २५ ॥ कोपं यच्छत् दास्यन्ति कन्यां वो मारिषां वराम् । तपस्विनो मुनेः कण्डोः प्रम्लोचायां मयैव च॥ २६॥ भविष्यं जानता सृष्टा भार्या वोऽस्तु कुलङ्करी । अस्यामुत्पत्स्यते दक्षः प्रजाः संवर्धयिष्यति ॥ २७ ॥ प्रचेतसस्तां जगृहुर्दक्षोऽस्यां च ततोऽभवत् । अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः ॥ २८ ॥ स सृष्ट्वा मनसा दक्षः पश्चादसृजत स्त्रियः । ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश॥ २९॥ सप्तविंशति (तिं) सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने । द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे ह्यदात् ॥ ३० ॥ तासु देवाश्च नागाद्या मैथुनान् मनसा पुरा । धर्मसर्गं प्रवक्ष्यामि दशपत्नीषु धर्मतः ॥ ३१ ॥ विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान्व्यजायत । मरुत्वत्या मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवोऽभवन्॥ ३२॥ भानोस्तु भानवः पुत्रा मुहूर्तास्तु मुहूर्तजाः । लम्बाया धर्मतो घोषो नागवीथी च यामिजा ॥ ३३ ॥ पृथिवीविषयं सर्वं मरुत्वत्यां व्यजायत । सङ्कल्पायास्तु सङ्कल्पा इन्दोर्नक्षत्रतः सुताः ॥ ३४ ॥ आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः । प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ च नामतः ॥ ३५॥ आपस्य पुत्रौ वैतण्ड्यः श्रमः शान्तो मुनिस्तथा । ध्रुवस्य कालो लोकान्तो वर्चाः सोमस्य वै सुतः ॥ ३६ ॥ धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा । मनोहराया शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा ॥ ३७ ॥ पुरोजवोऽनिलस्यासीदविज्ञातोऽनलस्य च । अग्निपुत्रः कुमारश्च शरस्तम्बे व्यजायत ॥ ३८ ॥ तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठतः । कृत्तिकातः कार्तिकेयो यतिः सनत्कुमारकः ॥ ३९ ॥ प्रत्यूषाद्देवलो जज्ञे विश्वकर्मा प्रभासतः । कर्त्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वर्धकिः ॥ ४० ॥ मनुष्याश्चोपजीवन्ति शिल्पं वै भूषणादिकम्। सुरभी कश्यपाद्रुद्रानेकादशवि ॥ ४१ ॥ महादेवप्रसादेन तपसा

वृक्षों का विनाश होते देखकर प्रजापति सोम इनके पास आकर बोले ।। २४-२५ ।। आप लोग अपने क्रोध को नियन्त्रित करें । ये (वृक्ष) आपको मारिषा नाम की श्रेष्ठ कन्या प्रदान करेंगे । भविष्य को जानने वाला मैं ही उसकी मृकण्डु ऋषि की पुत्री के रूप में प्रम्लोचा के गर्भ से सृष्टि की थी । वह कुल को बढ़ाने वाली आप लोगों की पत्नी होगी । उसका पुत्र दक्ष होगा जो प्रजाओं की वृद्धि करेगा ।। २६-२७ ।। प्रचेताओं ने उसे (मारिषा को) पत्नी के रूप में ग्रहण किया । उसका पुत्र दक्ष हुआ । दक्ष ने सर्वप्रथम अचरों तथा चरों की सृष्टि मन से की उसके पश्चात् द्विपदों तथा चतुष्पदों की । पुनः उन्होंने स्त्रियों की सृष्टि की । उनमें से दस स्त्रियों को उन्होंने धर्म को प्रदान किया तथा तेरह स्त्रियों को महर्षि कश्यप को प्रदान किया ।। २८-२९ ।। सत्ताइस स्त्रियों को सोम को प्रदान किया और चार स्त्रियाँ अरिष्टनेमि को। बहुपुत्र को दो तथा अङ्गिरा महर्षि को दो ।। ३० ।। जिनकी पहले मानसी सृष्टि थी वे देवता तथा नाग उनमें (दक्ष कन्याओं में) मैथुन से उत्पन्न हुए । अब मैं धर्म की दस पत्नियों में होने वाली सृष्टि का वर्णन करूँगा ।। ३१ ।। विश्वानामक पत्नी के पुत्र विश्वेदेव हुए तथा साध्या के पुत्र साध्यदेव हुए ।। मरुत्वती से मरुद्गण उत्पन्न हुए, तथा वसु नामक धर्मपत्नी के पुत्र वसुगण हुए ।। ३२।। भानु नामक धर्मपत्नी के पुत्र भानुगण हुए तथा मुहूर्ता के पुत्र मुहूर्तगण उत्पन्न हुए । लम्बा के गर्भ से धर्म के पुत्र घोष उत्पन्न हुए तथा यामि की सन्तान नागवीथी हुई ।। ३३ ।। मरुत्वती के गर्भ से पृथिवी के समस्त प्राणी उत्पन्न हुए । चन्द्रमा ने अपनी पत्नियों में निम्नांकित नाम वाले पुत्रों को उत्पन्न किया- आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, पत्यूष, प्रभास, तथा अष्ट वसु ।। ३४-३५ ।। आप के चार पुत्र हुए- वैतण्ड्य, श्रम, श्रान्त तथा मुनि । ध्रुव के दो पुत्र हुए- काल तथा लोकान्त एवं सोम के पुत्र वर्चा हुए ।। ३६ ।। धर के मनोहरा नामक पत्नी के गर्भ से द्रविण, हुतहव्यवह, शिशिर, प्राण तथा रमण हुए ।। ३७ ।। अनिल के पुत्र पुरोजव हुए तथा अनल के अविज्ञात । अग्नि (अनल) के ही कुमार नामक पुत्र शरस्तम्ब (सरपत) से उत्पन्न हुए ।। ३८ ।। बाद में उनके ही शाख, विशाख तथा नैगमेय नामक पुत्र हुए, कृतिका के पुत्र कार्तिकेय तथा यति सनत्कुमार हुए ।। ३९ ।। प्रत्यूष के पुत्र देवल तथा प्रभास के पुत्र विश्वकर्मा हुए । वे देवताओं के बढ़ई तथा हजारों शिल्पों के आचार्य थे ।। ४० ।। उनके ही भूषण आदि के शिल्प (निर्माण कला) को अपनाकर मनुष्य अपनी जीविका चलाते हैं । सन्तानोत्पन्न करने की

भाविता सती। अनैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च सत्तम ॥ ४२ ॥ त्वष्टुश्चात्मजः श्रीमान् विश्वरूपो महायशाः। हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः॥४३॥ वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा। मृगव्याधश्च सर्पश्च कपाली दश चैककः ॥ ४४ ॥ रुद्राणां च शतं लक्षं यैर्व्याप्तं सचराचरम् ॥ ४५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्वायम्भुवमनुवंशवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

कश्यपवंशवर्णनम्

अग्निरुवाच– **कश्यपस्य वदे सर्गमदित्यादिषु हे मुने। चाक्षुषे तुषिता देवास्तेऽदित्यां कश्यपात्पुनः ॥ १ ॥ आसन् विष्णुश्च शक्रश्च त्वष्टा धाता तथार्यमा। पूषा विवस्वान् सविता मित्रोऽथ वरुणो भगः ॥ २ ॥ अंशुश्च द्वादशादित्या आसन् वैवस्वतेऽन्तरे। अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश॥३॥ बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्त्रः विद्युतः स्मृताः। प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठाः कृशाश्वस्य सुरायुधाः ॥ ४ ॥ उदयास्तमने सूर्ये तद्वदेते युगे-युगे। हिरण्यकशिपुर्दित्यां हिरण्याक्षश्च कश्यपात् ॥ ५ ॥ सिंहिका चाभवत्कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः। राहुप्रभृतयस्तस्यां सैंहिकेया इति श्रुताः ॥ ६ ॥ हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः। अनुह्लादश्च ह्लादश्च प्रह्लादश्चातिवैष्णवः ॥ ७ ॥ सह्लादश्च चतुर्थोऽभूत् हजादपुत्रो ह्रदस्तथा। ह्रदस्य पुत्र आयुष्माञ्शिविर्बाष्कल एव च ॥ ८ ॥ विरोचनस्तु प्राह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात्। बलेःपुत्रशतं त्वासीद् बाणज्येष्ठं महामुने ॥ ९ ॥ पुराकल्पे हि बाणेन प्रसाद्योमापतिं प्रभुम्। पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येवं प्राप्त ईश्वरात् ॥ १० ॥ हिरण्याक्षसुताः पञ्च शम्बरः शकुनिस्त्विति। द्विमूर्धा शङ्कुरार्यश्च**

कामना वाली सुरभी के गर्भ से कश्यप ऋषि के पुत्र ग्यारह रुद्र उत्पन्न हुए ।। ४१ ।। हे श्रेष्ठ महर्षे ! महादेव की कृपा से सती ने अनैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा तथा रुद्र इन चार पुत्रों को उत्पन्न किया ।। ४२ ।। त्वष्टा के पुत्र महायशस्वी तथा श्रीसम्पन्न विश्वरूप हुए। हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, सर्प तथा कपाली ये ग्यारह रुद्र हैं। ऐसे तो रुद्र सैकड़ों तथा लाखों हैं, जिनसे यह सम्पूर्ण चराचर व्याप्त है ।। ४३-४५ ।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का स्वायम्भुव मनुवंश का वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८ ॥

अग्निदेव ने कहा– हे मुने ! अब मैं अदिति आदि में उत्पन्न कश्यप की सृष्टि का वर्णन करता हूँ। चाक्षुष् नामक मन्वन्तर में जो तुषिता नामक देवगण अदिति के गर्भ से कश्यप के पुत्र हुए। वे ही वैस्वत मन्वन्तर में विष्णु, इन्द्र, त्वष्टा, धाता, अर्यमा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, भग, अंशु तथा द्वादशादित्य (बारह आदित्य) नामक कश्यप तथा अदिति के पुत्र हुए ।। अरिष्टनेमि की पत्नियों की सोलह सन्तानें हुईं ।। १-३ ।। विद्वान् बहुपुत्र की चार विजलियाँ (विद्युत्) पुत्रियाँ बतलायी गयी हैं। प्रत्यङ्गिरा ऋषि के श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए और कृशाश्व के पुत्र देवताओं के आयुध हुए।। ४।। ये सब प्रत्येक युग में उसी तरह से होते हैं, जैसे प्रतिदिन सूर्योदय तथा सूर्यास्त होते हैं। दिति नामक पत्नी में कश्यप महर्षि के हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष नामक पुत्र एवं सिंहिका नामक पुत्री हुयी, जो विप्रचिति नामक राक्षस की पत्नी बनी। सिंहिका के पुत्र राहु आदि हुए जो सैंहिकेय कहलाते हैं ।। ५-६ ।। हिरण्यकशिपु के चार प्रख्यात पुत्र हुए,अनुह्लाद, ह्लाद, परमवैष्णव प्रह्लाद तथा चौथा संहलाद। हलाद का पुत्र ह्रद हुए। संह्लाद के तीन पुत्र हुए आयुष्मान्, शिवि तथा वाष्कल ।। ७-८ ।। हे महामुने ! प्रह्लाद के पुत्र विरोचन हुए और विरोचन के पुत्र बलि। बलि के सौ पुत्र हुए जिनमें सबसे बड़ा बाण (असुर)) था ।। ९ ।। पूर्वकल्प में बाणासुर ने भगवान् शङ्कर को प्रसन्न करके उनसे यह वरदान प्राप्त किया कि मैं आपके ही सन्निकट विचरण करता रहूँ।।१०।।

शतमासन्दनोः सुताः ॥ ११ ॥ स्वर्भानोः सुप्रभा कन्या पुलोम्नस्तु शची स्मृता । उपदानवी हयशिरा शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ १२ ॥ पुलोमा कालका चैव वैश्वानरसुते उभे । कश्यपस्य तु भार्ये द्वे तयोः पुत्राश्च कोटयः ॥ १३ ॥ प्रह्लादस्य चतुष्टकोट्यो निवातकवचाः कुले । ताम्रायाः षट् सुताः स्युश्च काकी श्येनी च भास्यपि ॥ १४ ॥ गृध्रिका च शुचिर्ग्रीवा ताभ्यः काकादयोऽभवन् ॥ अश्वाश्चोष्ट्राश्च ताम्राया अरुणो गरुडस्तथा ॥ १५ ॥ विनतायाः सहस्रं तु सर्पाश्च सुरसाभवाः। काद्रवेयाः सहस्रं तु शेषवासुकितक्षकाः ॥ १६ ॥ दंष्ट्रिणः क्रोधवशगा धरायाः पक्षिणो जले । सुरभ्यां गोमहिष्यादि इरोत्पन्नास्तृणादयः ॥ १७ ॥ खसायां यक्षरक्षांसि मुनेरप्सरसोऽभवन् । अरिष्टायास्तु गन्धर्वाः कश्यपाद्धि स्थिरं चरम् ॥ १८ ॥ एषां पुत्रादयोऽसङ्ख्याः देवैर्वै दानवा जिताः । दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् ॥ १९ ॥ पुत्रमिन्द्रप्रहर्तारमिच्छती प्राप कश्यपात् । पादाप्रक्षालनात्सुप्ता तस्या गर्भं जघान ह ॥ २० ॥ छिद्रमन्विष्य चेन्द्रस्तु ते देवा मरुतोऽभवन् । शक्रस्यैकोनपञ्चाशत्सहाया दीप्ततेजसः ॥ २१ ॥ एतत्सर्वं हरिर्ब्रह्मा अभिषिच्य पृथुं नृपम् । ददौ क्रमेण राज्यानि अन्येषामधिपो हरिः ॥ २२ ॥ द्विजौषधीनां चन्द्रस्तु अपां तु वरुणो नृपः। राज्ञां वै श्रवणो राजा सूर्याणां विष्णुरीश्वरः ॥ २३ ॥ वसूनां पावको राजा मरुतां वासवः प्रभुः । प्रजापतीनां दक्षोऽथ प्रह्लादो दानवाधिपः ॥ २४ ॥ पितृणां च यमो राजा भूतादीनां हरः प्रभुः। हिमवांश्चैव शैलानां नदीनां सागरः प्रभुः ॥ २५ ॥ गन्धर्वाणां चित्ररथो नागानामथ वासुकिः । सर्पाणां तक्षको राजा गरुडः पक्षिणामथ॥२६॥ ऐरावतो गजेन्द्राणां गोवृषोऽथ गवामपि। मृगाणामथ शार्दूलः प्लक्षो वनस्पतीश्वरः ॥२७ ॥ उच्चैः श्रवास्तथाश्वानां सुधन्वा

हिरण्याक्षके पाँच पुत्र थे शम्बर, शकुनि, द्विमूर्धा, शङ्कु तथा आर्य । दनु के सौ पुत्र थे ।। ११ ।। स्वर्भानु की सुप्रभा नामक कन्या थी तथा पुलोमा की शची, नामक कन्या थी । वृषपर्वा की तीन पुत्रियाँ थीं, उपदानवी, हयशिरा तथा शर्मिष्ठा ।। १२ ।। वैश्वानर की दो पुत्रियाँ थीं, पुलोमा तथा कालका । कश्यप महर्षि की दो पत्नियाँ थीं और उन दोनों की करोड़ों सन्तानें थीं ।। १३ ।। प्रह्लाद के वंश में निवातकवच नामक चार करोड़ असुर थे । ताम्रा की छह पुत्रियाँ थीं- काकी, श्येनी, भासी, गृध्रिका, शुचि तथा सुग्रीवा । उन सबों से ही काक आदि उत्पन्न हुए ।। १४ ।। अश्वा से घोड़े तथा ऊँट उत्पन्न हुए, विनता के दो पुत्र हुए अरुण तथा गरुड़ । सुरसा के पुत्र हजारों सर्प उत्पन्न हुए । कद्रू के हजारों शेष, वासुकि तथा तक्षक उत्पन्न हुए ।। १५-१६ ।। ये सभी दाँत वाले तथा क्रोधी सर्प थे । धरा के पुत्र जल में रहने वाले पक्षी उत्पन्न हुए । सुरभि की सन्तान गाय तथा महिष आदि हुए तथा इरा के तृण आदि पुत्र रूप से उत्पन्न हुए ।। १७ ।। खसा की यक्ष तथा राक्षस सन्तानें हुयीं, मुनि की सन्तान अप्सराएँ हुईं, अरिष्टा के गन्धर्व उत्पन्न हुए । इस तरह चर एवं अचर कश्यप की सन्तानें हुयीं ।। १८ ।। इन कश्यप की सन्तानों की असंख्य सन्तानें हुयीं । देवों ने दानवों को पराजित कर दिया । अपने पुत्रों के विनष्ट हो जाने पर दैत्य माता दिति ने अपने पति कश्यप को प्रसन्न किया ।। १९ ।। उसने इन्द्र को मारने वाले पुत्र की प्राप्ति का वरदान कश्यप महर्षि से प्राप्त किया ।। अपने पैरों को धोए विना सोयी हुई दिति के दोष को देखकर इन्द्र उसके गर्भ को काट डाले । वे कटे हुए गर्भ के टुकड़े ही इन्द्र के सहायक तथा तेजस्वी उनचास मरुत् देवता हो गए ।। २०-२१ ।। ये सभी, हरि (भगवान् विष्णु) तथा ब्रह्मा ने राजा पृथु को अभिषिक्त करके सबों के स्वामी श्रीहरि ने- दूसरों को भी राज्य प्रदान किया ।। २२ ।। ब्राह्मणों तथा औषधियों के राजा चन्द्रमा हुए, जल के स्वामी वरुण हुए, राजाओं के राजा वैश्रवण (कुबेर) हुए तथा (द्वादश) सूर्यों के स्वामी भगवान् विष्णु हुए ।। २३ ।। वसुओं के स्वामी पावक हुए, मरुतों के स्वामी इन्द्र हुए, प्रजापतियों के स्वामी दक्ष हुए तथा दानवों के स्वामी प्रह्लाद हुए ।। २४ ।। पितरों के स्वामी यम हुए, भूतों आदि के शङ्कर जी अधिपति हुए, पर्वतों के स्वामी हिमवान हुए तथा नदियों के स्वामी सागर हुए ।। २५ ।। गन्धर्वों के स्वामी चित्ररथ हुए नागों के वासुकि, सर्पों के तक्षक तथा पक्षियों के स्वामी गरुड़ हुए ।। २६ ।। गजेन्द्रों के स्वामी ऐरावत तथा गायों के स्वामी गोवृष मृगों (जंगली जीवों) के स्वामी शार्दूल (सिंह) तथा वनस्पतियों के स्वामी प्लक्ष (वटवृक्ष) हुए ।। २७ ।। उसी तरह से अश्वों के स्वामी उच्चैःश्रवा, पूर्वदिशा के स्वामी सुधन्वा, दक्षिण दिशा के शङ्खपाद

पूर्वपालकः । दक्षिणस्यां शङ्खपादः केतुमान् पालको जले॥ २८ ॥ हिरण्यरोमकः सौम्ये प्रतिसर्गोऽयमीरितः ॥ २९ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रतिसर्गे कश्यपवंशवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अथ विंशोऽध्यायः

जगत्सर्गवर्णनम्

अग्निरुवाच— **प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु स : । तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि स स्मृतः ॥ १ ॥ वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः॥ इत्येषः प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः ॥ २ ॥ मुख्यः सर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः । तिर्यक्स्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तैर्यग्योन्यस्ततः स्मृतः॥ ३ ॥ तथोर्ध्वस्त्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः। ततोऽर्वाक्स्त्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुष : ॥ ४ ॥ अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च यः। पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृताश्च त्रयः स्मृताः ॥ ५ ॥ प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमस्तथा । ब्रह्मतो नव सर्गास्तु जगतो मूलहेतवः ॥ ६ ॥ ख्यात्याद्या दक्षकन्यास्तु भृग्वाद्या उपयेमिरे । नित्यो नैमित्तिकः सर्गस्त्रिधाऽथ कथितो जनैः ॥ ७ ॥ प्राकृतो, दैनन्दिनीयादान्तरप्रलयादनु । जायन्ते यत्रानुदिनं नित्यसर्गो हि स स्मृतः॥८॥ देवौ धाताविधातारौ भृगोः ख्यातिरसूयत। श्रियं च, पत्नी विष्णोर्या स्तुता शक्रेण वृद्धये ॥९॥ धातुर्विधातुर्द्वौ पुत्रौ क्रमात्प्राणो मृकण्डुकः। मार्कण्डेयो मृकण्डोश्च जज्ञे वेदशिरास्तथा ॥ १०॥ पौर्णमासश्च सम्भूत्यां मरीचेरभवत्सुतः । स्मृत्यामाङ्गिरसः पुत्राः**

हुए । जल के रक्षक केतुमान हुए ।। २८ ।। उत्तर दिशा के स्वामी हिरण्यरोमक हुए। इस तरह से यहाँ तक प्रतिसर्ग का वर्णन किया गया ।। २९ ।।

इस तरह से आदि महापुराण अग्निपुराण का प्रतिसर्ग वर्णन के प्रसंग में कश्यप वंश वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १९ ॥

अग्निदेव ने कहा— सर्वप्रथम महत् तत्त्व की सृष्टि हुयी, उसे ब्रह्मा की सृष्टि समझनी चाहिए । दूसरी सृष्टि पञ्चतन्मात्राओं की हुयी, उसे भूतसर्ग समझना चाहिए ।। १ ।। तीसरी सृष्टि इन्द्रियों की हुयी और वह वैकारिक (सात्त्विकाहंकारजन्य) है । यही प्राकृत सृष्टि है जो बुद्धिपूर्वक है । अर्थात् इस सृष्टि में सर्वप्रथम बुद्धितत्त्व (महत्तत्त्व) की उत्पत्ति हुयी ।। ३।। चौथी सृष्टि मुख्य सृष्टि है। मुख्य शब्द से स्थावरों (वृक्ष, पर्वत आदि) को कहा जाता है । पाँचवीं सृष्टि जिसे तिर्यक्स्रोत कहते हैं, उससे तिर्यग्योनि के जीव उत्पन्न हुए ।। ३ ।। छठी सृष्टि उर्ध्वस्रोतसों की है, उसे ही देवसर्ग (देवसृष्टि) कहते हैं। उसके पश्चात् सातवीं सृष्टि अधः स्रेत वाले जीवों की हुई । उसे ही मानवी सृष्टि कहते हैं ।। ४ ।। आठवीं सृष्टि अनुग्रह सृष्टि है । उसके दो भेद हैं - सात्त्विक तथा तामस । इन आठों प्रकार की सृष्टियों में प्रथम तीन प्रकार की सृष्टि प्राकृत (प्रकृतिजन्य) सृष्टि कहलाती है शेष पाँच सृष्टियाँ वैकृत सृष्टि (प्रकृति के विकारों से उत्पन्न) हैं ।। ५।। प्राकृत वैकृत इन सबों से भिन्न नवाँ कौमार सर्ग (सृष्टि) है । इस सर्ग के कर्ता ब्रह्माजी हैं । ये नव प्रकार के सर्ग ही जगत् के मूल कारण हैं ।। ६ ।। ख्याति आदि दक्ष की कन्याओं का पाणिग्रहण भृगु आदि महर्षियों ने कि। इस तरह से लोग तीन तरह की सृष्टि बतलाते हैं- नित्य, नैमित्तिक तथा प्राकृत । प्रतिदिन होने वाले आभ्यन्तर प्रलय के पश्चात् जो प्रतिदिन सृष्टियाँ होती हैं उसे नित्य सर्ग कहा जाता है ।। ७-८ ।। भृगु ऋषि की पत्नी ख्याति ने पुत्र रूप में धाता और विधाता नामक दो देवताओं तथा श्रीदेवी नामक कन्या को उत्पन्न किया, जो विष्णु की पत्नी हुई तथा अपनी समृद्धि के लिए इन्द्र ने जिनकी स्तुति की ।। ९ ।। धाता तथा विधाता के क्रमशः दो पुत्र हुए प्राण तथा मृकण्डु, मृकण्डु के पुत्र का नाम मार्कण्डेय हुआ तथा उनके पुत्र वेदशिरा हुए ।। १० ।। मरीचि महर्षि की सम्भूति नामक पत्नी

सिनीवाली कुहूस्तथा ॥ ११ ॥ राका चानुमतिश्चात्रेरनसूयाप्यजीजनत्। सोमं दुर्वाससं पुत्रं दत्तात्रेयं च योगिनम् ॥ १२ ॥ प्रीत्यां पुलस्त्यभार्यायां दत्तोलिस्तत्सुतोऽभवत्। क्षमायां पुलहाज्जातः सहिष्णुः सर्वपादिकः ॥ १३ ॥ सन्नत्यां च क्रतोरासन् बालखिल्या महौजसः। अङ्गुष्ठपर्वमात्रास्ते ये हि षष्टिसहस्त्रिणः ॥ १४ ॥ ऊर्जायां च वसिष्ठाच्च राजा गात्रोर्ध्वबाहुकः । सवनश्चानघः शुक्र; सुतपाः सप्त चर्षयः ॥ १५॥ पावकः पवमानोऽभूच्छुचिः स्वाहाग्नितोऽभवत् । अग्निष्वात्ता वर्हिषदोऽनग्नयः साग्नयो ह्यजात् ॥ १६ ॥ पितृभ्यश्च स्वधायां च मेना वैधारिणी सुते । हिंसा भार्या त्वधर्मस्य तयोर्जज्ञे तथानृतम् ॥ १७ ॥ कन्या निकृतिस्ताभ्यां भयं नरकमेव च । माया च वेदना चैव मिथुनं त्विदमेतयोः ॥ १८॥ तयोर्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम् । वेदना च सुतं चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात् ॥ १९ ॥ मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधाश्च जज्ञिरे । ब्रह्मणश्च रुदञ्जातो रोदनाद्रुद्रनामकः ॥ २० ॥ भवं शर्वमथेशानं तथा पशुपतिं द्विज । भीममुग्रं महादेवमुवाच स पितामहः ॥ २१ ॥ दक्षकोपाच्च तद्भार्या देहं तत्याज सा सती । हिमवद्दुहिता भूत्वा पत्नी शम्भोरभूत् पुनः ॥ २२ ॥ ऋषिभ्यो नारदाद्युक्ताः पूजाः स्नानादिपूर्विकाः । स्वायम्भुवाद्यास्ताः कृत्वा विष्ण्वादेर्भुक्तिमुक्तिगाः ॥ २३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये जगत्सर्गवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥



में पौर्णमास नामक पुत्र हुआ । अङ्गिरा महर्षि की पत्नी सम्भूति में उनके अनेक पुत्र हुए तथा सिनीवाली, कुहू, शका तथा अनुमति नामक चार पुत्रियाँ हुईं । अनसूया ने अत्रि महर्षि के तीन पुत्रों को जन्म दिया, सोम (चन्द्रमा) दुर्वासा तथा योगी दत्तात्रेय ।। ११-१२ ।। पुलस्त्य की पत्नी प्रीति के गर्भ से उनका दत्तोलि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । पुलह महर्षि ने क्षमा के गर्भ से सहिष्णु तथा सर्षपादिक को जन्म दिया ।।१३।। क्रतु की पत्नी सन्नति के गर्भ से महातेजस्वी साठ हजार बालखिल्य महर्षियों ने जन्म लिया वे अंगूष्ठ के एक पर्व के आकार के थे ।। १४ ।। व्रसिष्ठ की पत्नी उर्जा ने, राजा, गात्र, ऊर्ध्वबाहुक, सवण, अनपघ, शुक्र तथा सुतपा इन सात ऋषियों को जन्म दिया ।। १५ ।। अग्नि की पत्नी स्वाहा ने पावक, पवमान तथा शुचि इन चार पुत्रों को जन्म दिया । अज के अग्निष्वाता, वर्हिषद्, अनग्नि तथा सग्नि नामक चार पुत्र हुए ।। १६ ।। पितृगणों की स्वधा नामक पत्नी से दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं मेना तथा वैधारिगी । अधर्म की पत्नी हिंसा थी उन दोनों (हिंसा तथा अधर्म) से अनृत (असत्य) की उत्पत्ति हुई ।। १७ ।। इन दोनों की ही पुत्री निकृति हुई और भय तथा नरक ये दो पुत्र हुए । भय तथा नरक की क्रमशः माया तथा वेदना पत्नी हुई ।। १८।। उन दोनों (पत्नियों) में से भय की पत्नी माया ने समस्त भूतों का विनाश करने वाले मृत्यु को जन्म दिया । रौरव नरक की पत्नी वेदना ने भी भय को जन्म दिया ।। १९ ।। व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा, तथा क्रोध ये मृत्यु की सन्तानें हुयीं । ब्रह्मा के रुद्र नामक पुत्र हुए क्योंकि उन्होंने रोते हुए ही जन्म लिया थे।। २० ।। हे द्विज वसिष्ठ ! ब्रह्मा ने रुद्र के भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र, तथा महादेव नाम रखा ।। २१।। रुद्र की पत्नी सती ने दक्ष पर क्रोध करके अपने देह का परित्याग कर दिया । पुनः वह हिमवान् की पुत्री होकर शङ्कर की पत्नी बनी ।। २२ ।। नारद आदि ऋषियों से वर्णित स्वायम्भुव आदि की पूजा का मैंने वर्णन किया है । विष्णु आदि की उन पूजाओं को करके स्वायम्भुव मनु आदि ने भुक्ति तथा मुक्ति को प्राप्त किया ।। २३ ।।

इस तरह से आदि महापुराण अग्निपुराण का जगत् सर्ग वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २० ॥



अथैकविंशोऽध्यायः

विष्णवादिदेवानां सामान्यपूजाविधानम्

नारद उवाच– **सामान्यपूजां विष्णवादेर्वक्ष्ये मन्त्रांश्च सर्वदान् । समस्तपरिवाराय अच्युताय नमो यजेत् ॥ १ ॥ धात्रे विधात्रे गङ्गायै यमुनायै, निधी तथा । द्वारश्रियं वास्तुनरं शक्तिं कूर्ममनन्तकम् ॥ २ ॥ पृथिवीं धर्मकं ज्ञानं वैराग्यैश्वर्यमेव च । अधर्मादीन् कन्दनालपद्मकेसरकर्णिकाः ॥ ३ ॥ ऋग्वेदाद्यं कृताद्यं च सत्त्वाद्यर्कादिमण्डलम् । विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा च ता यजेत् ॥ ४ ॥ प्रह्वी सत्या तथेशा चानुग्रहामलमूर्तिका । दुर्गां गिरं गणं क्षेत्रं वासुदेवादिकं यजेत् ॥ ५ ॥ हृदयं च शिरश्चूडां वर्म नेत्रमथास्त्रकम् । शङ्खं चक्रं गदां पद्मं श्रीवत्सं कौस्तुभं यजेत् ॥ ६ ॥ वनमालां श्रियं पुष्टिं गरुडं गुरुमर्चयेत् । इद्रमग्निं यमं रक्षो जलं वायुं धनेश्वरम् ॥ ७ ॥ ईशानं तमजं चास्त्रं वाहनं कुमुदादिकम् । विष्वक्सेनं मण्डलादौ सिद्धिः पूजादिना भवेत् ॥ ८ ॥ शिवपूजाथ सामान्या पूर्वं नन्दिनमर्चयेत् । महाकालं यजेद् दुर्गां यमुनां च गणादिकम् ॥ ९ ॥ गिरं, श्रियं, गुरुं, वास्तुं**

नारद जी ने कहा– अब मैं विष्णु भगवान् की सामान्य पूजा का तथा सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले मन्त्रों का वर्णन करता हूँ । भगवान् (विष्णु) की पूजा 'समस्त परिवाराय अच्युताय नमः' अर्थात्- 'अपने समपूर्ण परिवार से विशिष्ट भगवान् अच्युत को नमस्कार है, यह कहकर करे ।। १ ।। इसी तरह धाता, विधाता, गङ्गा, यमुना, शंखनिधि तथा पद्मनिधि, द्वारश्री, वास्तुपुरुष, शक्ति, कूर्म, अनन्त, पृथिवी, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य तथा अधर्म आदि की एवं कन्द, नाल,पद्म, केसर, कर्णिका, ऋग्वेद आदि (यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद) कृत (सत्य) युग आदि (त्रेतायुग, द्वापरयुग, कलियुग, सत्त्वगुण आदि (रजोगुण, तमोगुण) सूर्य आदि मण्डल, विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञान, क्रिया तथा योगा का यजन करना चाहिए ।। २-४ ।। प्रह्वी, सत्या, ईशा, अनुग्रहा, अमलमूर्ति, दुर्गा, वाणी, गण, क्षेत्र तथा वासुदेव आदि का यजन करना चाहिएँ ।। ५ ।। हृदय, शिर, शिखा, वर्म (कवच) नेत्र, अस्त्र, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, श्रीवत्स, (चिह्न) तथा कौस्तुभ (मणि) का पूजन करना चाहिए ।। ६ ।। वनमाला, श्री, पुष्टि,गरुड़ तथा गुरु की अर्चना करे। उसके पश्चात्, इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, जल, वायु, कुबेर, ईशान (शङ्कर) ब्रह्मा, अस्त्र, वाहन तथा कुमुद आदि (गणों) तथा विष्वक्सेन, आदि की पूजा मण्डल आदि में करने से सिद्धि की प्राप्ति होती है ।। ७-८ ।।

विशेष- ये सभी विष्णु मण्डल के देवता हैं। अतएव विष्णु भगवान् के पूजन में इन सबों का पूजन अलग-अलग मण्डल में करना चाहिए । सबों का चतुर्थ्यन्त नामोच्चारण करके अन्त में नमः शब्द का प्रयोग करना चाहिए । सुविधा के लिए यहाँ पर सबों का चतुर्थ्यन्त नाम मन्त्र दिया जा रहा है–

१. ओम् धात्रे नमः २. विधात्रे नमः ३. ॐ गङ्गायै नमः ४. ओम यमुनायै. ५. ओम् शंखनिधये० ६. ओम् पद्मनिधये० ७. द्वारश्रियै० ८. ओम् वास्तुपुरुषाय० ९. ओम् शक्तये० १०. ओम् कूर्माय० ११. ओम् अनन्ताय० १२. ओम् पृथिव्यै० १३. ओम् धर्माय० १४. ओम् ज्ञानाय० १५. ओम् वैराग्याय० १६. ओम् ऐश्वर्याय० १७. ओम् अधर्मादिभ्यो० १८. ओम् कन्दाय. १०. ओम् नालाय २०. ओम् पद्माय २१. ओम् केसराय २२. ओम् कर्णिकायै० २३. ओम् ऋग्वेदाय० २४. ओम् यजुर्वेदाय २५. ओम् सामवेदाय २६. ओम् सत्त्वाय० २७. ओम् रजसे० २८. ओम् तमसे० २९. ओम् अर्कादि मण्डलेभ्यो० ३०. विमलायै० ३१. ओम् उत्कर्षिण्यै० ३२. ओम् ज्ञानायै० ३३. ओम् क्रियायै० ३४. ओम् योगायै० ३५. ओम् प्रह्व्यै० ३६. ओम् सत्यायै० ३७. ओम् ईशायै० ३८. ओम् अनुग्रहायै० ३९. ओम् अमलमूर्तिकायै० ४०. ओम् दुर्गायै० ४१. ओम् गिरे ४२. ओम् गणाय० ४३. ओम् क्षेत्राय० ४४. ओम् वासुदेवादिभ्यो० ४५. ओम् हृदयाय० ४६. ओम् शिरसे स्वाहा ४७. ओम् शिखायै वौषट् ४८. ओम् कवचाय हुम् ४९. ओम् नेत्राभ्याम् वषट् ५०. ओम् अस्त्राय फट् ५१. ओम् शङ्खाय० ५२. ओम् चक्राय० ५३. ओम् गदायै० ५४. ओम् पद्माय० ५५. ओम् श्रीवत्साय०

शक्त्यादीन् धर्मकादिकम् । वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री काली, कलविकारिणी ॥१०॥ बलविकारिणी चापि बलप्रमथिनी क्रमात् । सर्वभूतदमनी च मदनोन्मादिनी शिवा ॥ ११ ॥ हां हूं हां शिवमूर्तये साङ्गवक्त्रं शिवं यजेत्। हौं शिवाय हौमित्यादि हामीशानादिवक्त्रकम् ॥ १२ ॥ ह्रीं गौरीं गं गणः शक्रमुखाश्चण्डो हृदादिकाः ॥ क्रमात्सूर्यार्चने मन्त्रा दण्डी पूज्यश्च पिङ्गलः ॥ १३ ॥ उच्चैःश्रवाश्चारुणश्च प्रभूतं विमलं यजेत् । सोमं सन्ध्ये परसुखं स्कन्दाद्यं मध्यतो यजेत् ॥ १४ ॥ दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला तथा । अमोघा विद्युता चैव पूज्याथो सर्वतोमुखी ॥ १५ ॥ अर्कासनं हिं हं खं खं सोल्कायेति च मूर्तिकम् । ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नम आं नमो हृदयाय च ॥ १६ ॥ अर्काय शिरसे तद्वदग्नीशाश्रयवायुगान् । भूर्भुवः स्वरे

५६. ओम् कौस्तुभाय० ५७. ओम् वनमालायै ५८. ओम् श्रियै० ५९. ओम् पुष्ट्यै० ६०. ओम् गरुडाय० ६१. ओम् गुरवे० ६२. ओम् इन्द्राय० ६३. ओम् अग्नये० ६४. ओम् यमाय० ६५. ओम् रक्षसे० ६६. ओम् जलाय० ६७. ओम् वायवे० ६८. ओम् धनेश्वराय० ६९. ओम् ईशानाय ७०. ओम् ब्रह्मणे ७१. ओम् अस्त्राय० ७२. ओम् कुमुदादिभ्यो० ७३. ओम् विष्वक्सेनाय नमः॥ अब सामान्य रूप से शिव जी की पूजा बतलायी जा रही है । पहले नन्दी की पूजा करनी चाहिए, पुनः महाकाल, दुर्गा, यमुना तथा शिव के गणों आदि की पूजा करनी चाहिए फिर वाणी (सरस्वती), श्री, गुरु, वास्तु पुरुष, शक्ति आदि, धर्म आदि, वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकारिणी, बलविकारिणी तथा वलप्रमथिनी सर्वभूतदमनी, तथा मदनोन्मादिनी शिवा की पूजा करनी चाहिए ।।९-११।।

विशेष- ये उपर्युक्त देवता शिव जी के परिवार के अन्तर्गत हैं । अतएव शिवजी की पूजा करने से पहले इन सबों की पूजा निम्नांकित नाम मन्त्रों से करनी चाहिए - १. ओम् नन्दिने नमः २. महाकालाय नमः ३. ओम् दुर्गायै नमः ४. ओम् यमुनायै नमः ५. ओम् गणादिभ्यो नमः ६. ओम् सरस्वत्यै नमः ७. ओम् श्रियै नमः ८. ओम् गुरवे नमः ९. ओम् वास्तुपुरुषाय नमः १०. ओम् शक्त्यादिभ्यो नमः ११. ओम् धर्मादिभ्यो नमः १२. ओम् वामायै नमः १३. ओम् ज्येष्ठायै नमः १४. ओम् रौद्र्यै नमः १५. ओम् काल्यै नमः १६. ओम् कलविकारिण्यै शिवायै नमः १७. ओम् वलाविकारिण्यै शिवायै नमः १८. ओम् बलप्रमथिन्यै शिवायै नमः १९. ओम् सर्वभूतदमन्यै शिवायै नमः २०. ओम् मदनोन्मादिन्यै शिवायै नमः ॥)

'ओम् हां हूं हां शिवमूर्तये नमः' इस मन्त्र से शिवजी के अङ्गों तथा मुखों की पूजा करनी चाहिए। 'ओम् हौं शिवाय नमः' इस मन्त्र से शिवजी की पूजा करे । पुनः 'ओम हां' इस मन्त्र से शङ्कर जी के ईशान आदि पाञ्च मुखों की पूजा करनी चाहिए ।। (वे मन्त्र हैं- १. ओम् हां ईशानाय नमः २. ओम् हां वामदेवाय नमः ३. ओम् हां सद्योजाताय नमः ४. ओम् हाँ अघोराय नमः ५. ओं हां तत्पुरुषाय नमः । ईशान, वामदेव, सद्योजात, अघोर तथा तत्पुरुष ये पाँच मुख पञ्चमुखी शङ्कर जी के हैं ।) ओम् ह्रीं गौर्यैनमः इस मन्त्र से गौरी की, गणेभ्यो नमः इस मन्त्र से शिवगणों की, इसके पश्चात् इन्द्रादि की चण्ड की तथा हृद्रादि की पूजा करनी चाहिए। उन सबों के पूजा मन्त्र हैं- १. ओम् 'इन्द्रादिभ्यो नमः' २. ओम् चण्डाय नमः ३. ओम् हृदादिभ्यो नमः ।। १२ ।। अब क्रम से सूर्य पूजा के मन्त्र बतलाए जाते हैं। सूर्यपूजन में सर्वप्रथम दण्डी पूज्य हैं, फिर क्रमशः पिङ्गल, उच्चैःश्रवा, अरुण, प्रभूत, सोम, विमल आदि की पूजा करें । दोनों सध्याओं (प्रातःसन्ध्या तथा सायं सन्ध्या), परसुख तथा स्कन्द आदि की बीच में पूजा करें ।। १३-१४ ।। उसके पश्चात् दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता तथा सर्वतोमुखी सूर्य की इन नवशक्तियों की पूजा करे ।। १५।।

विशेष– इन सबों के पूजन के मन्त्र निम्नांकित हैं– १. ओम् दण्डिने नमः २. ओम् पिङ्गलाय नमः ३. ओम् उच्चैःश्रवसेनमः ४. ओम् अरुणाय नमः ५. ओम् प्रभूताय नमः ६. ओम् विमलाय नमः ७. ओम् सोमाय नमः ८. ओम् प्रातःसन्ध्यायै नमः ९. ओम् सायंसन्ध्यायै नमः १०. ओम् परसुखाय नमः ११. ओम् स्कन्दाय नमः १२. ओम् दीप्तायै नमः १२. ओम् सूक्ष्मायै नमः १४. ओम् जयायै नमः १५. ओम् भद्रायै नमः १६. ओम् विभूत्यै नमः १७. ओम् विमलायै नम; १८. ओम् अमोघायै नमः १९. ओम् विद्युतायै नमः २०. ओम् सर्वतोमुख्यै नमः ॥

ज्वालिनी शिखा हूं कवचं स्मृतम् ॥ १७ ॥ मां नेत्रं वस्तथार्कास्त्रं राज्ञी शक्तिश्च निःस्वका । सोमोऽङ्गारकोऽथ बुधो जीवः शुक्रः शनिः
क्रमात्॥१८॥ राहुः केतुस्तेजश्चण्डः सङ्क्षेपादथ पूजनम् ॥ आसनं मूर्त्तयो मूलं हृदाद्यं परिचारकः ॥ १९ ॥ विष्णवासनं विष्णुमूर्ते रां श्रीं श्रीं श्रीधरो
हरिः । ह्रीं सर्वमूर्तिमन्त्रोऽयमिति त्रैलोक्यमोहनः ॥ २० ॥ क्लीं हृषीकेशः हूं विष्णुः स्वैर्दीर्घैर्हृदादिकम् । समस्तैस्त्रः पञ्चमी पूजा सङ्ग्रामादौ
जयादिदा ॥ २१ ॥ चक्रं गदां क्रमाच्छङ्खं मुसलं खड्गशार्ङ्गकम् । पाशाङ्कुशौ च श्रीवत्सं कौस्तुभं वनमालया ॥ २२ ॥ श्रीं श्रीमहालक्ष्मीस्ताक्ष्यो
गुरुरिन्द्रादयोऽर्चनम् । सरस्वत्यासनं मूर्तिं रों ह्रीं देवी सरस्वती ॥ २३ ॥ हृदाद्या लक्ष्मीर्मेधा च कला तुष्टिश्च पुष्टिका । गौरी प्रभा मतिर्दुर्गा गणो गुरुश्च

'ओम् हिं हं खं खं उल्काय नमः' इस मन्त्र से सूर्य के आसन की पूजा करनी चाहिए । 'ओम् ह्रां ह्रीं सः' इस मन्त्र से सूर्य की मूर्ति की पूजा करनी चाहिए । पुनः अङ्गन्यास करते हुए ओम् आं हृदयाय नमः इस मंत्र से अपने हृदय का स्पर्श करना चाहिए। ओम् अकार्य शिरसे स्वाहा । इस मन्त्र से शिर का स्पर्श करना चाहिए । ओम् भूर्भुवः स्वः ज्वालिन्यै शिवायै वौषट् इस मन्त्र से शिखा का स्पर्श करे । ओम् कवचाय हुम् इस मन्त्र से दोनों भुजमूलों का स्पर्श करें । ओम् नेत्राभ्यां वौषट् इससे दोनों नेत्रों का स्पर्श करें । ओम् रः अस्त्राय फट् इस मन्त्र से अपने दाहिने हाथ की दोनों अुगुलियों को शिर के ऊपर से दक्षिणावर्त पीछे से घुमाते हुए बाएँ हाथ की हथेली पर प्रताडन करे । इसके पश्चात्, संक्षेप से राज्ञी, शक्ति, निःस्वका, सोम, भौम, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, तेज और चण्ड का पूजन करें ॥ १६-१८॥

विशेष– सूर्य की शक्तियों नवग्रहों तथा गणों के पूजन के मन्त्र निम्नांकित हैं–

१. ओं राज्यै नमः २. ओम् शक्तये नमः ३. ओम् निःस्वकायै नमः ४. ओम् सोमाय नमः ५. ओम् भौमायनमः ६. ओम् बुधाय नमः ७. ओम् वृहस्पतये नमः ८. ओम् शुक्राय नमः ९. ओम् शनिश्चराय नमः १०. ओम् राहवे नमः ११. ओम् केतवे नमः १२. ओम् तेजसे नमः १३. चण्डाय नमः ।। देवता के ही समान देवता के आसन, मूर्ति, मूल, हृदयादि तथा परिचारक की पूजा करनी चाहिए । भगवान् विष्णु के आसन तथा विष्णु की मूर्ति की पूजा 'रां श्रीं श्रीं श्रीधरो हरिः' इस मन्त्र से करना चाहिए । ओम् ह्रीम् यह सभी मूर्तियों के पूजन का मन्त्र है । इस मन्त्र को त्रैलोक्य मोहन मन्त्र भी कहते हैं ।। १९-२० ।।

विशेष- विष्णु के आसन आदि के पूजन के मन्त्र निम्नांकित होंगे- ओां रां श्रीं श्रीं श्रीधरो हरिः विष्णवासनाय नमः ओम् रां श्रीं श्रीं श्रीधरो हरिः विष्णु मूर्त्यै नमः, ओम् रां श्रीं श्रीं श्रीधरो हरिः विष्णुमूलाय नमः, ओम् रां श्रीं श्रीं श्रीधरो हरिः विष्णु हृदयादिभ्यो नमः । ओम् रां श्रीं श्रीं श्रीधरो हरिः विष्णुपरिचारकेभ्यो नमः ॥ अथवा सर्वत्र ओम् रां श्रीं श्रीं श्रीधरो हरिः । इस मन्त्र के बदले में 'ओम् ह्रीम्' इस मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए ।

'ओम् क्लीं हृषीकेशाय नमः' इस मन्त्र से भगवान् की हृषीकेश की मूर्ति का पूजन करना चाहिए, 'ओम् हूँ विष्णवे नमः' इस मन्त्र से भगवान् की विष्णु मूर्ति का पूजन करना चाहिए । समस्त दीर्घ स्वरों के द्वारा हृदयादि न्यास करना चाहिए। पाञ्चवी पूजा अर्थात् श्री भगवान् के परिचारकों (विष्वक्सेन, गरुड़, शेष आदि) की पूजा संग्राम आदि में विजय प्रदान करने वाली होती है ।। २१ ।।

विशेष- भगवान् हृषीकेश की मूर्ति के पूजन में हृदयादिन्यास के मन्त्र ये होंगे– १. ओम् क्लां हृदयाय नमः, २. ओम् क्लीं शिरसे स्वाहा, ३. ओम् क्लूं शिखायैवषट्, ४. ओम् क्लैं कवचाय हुम्, ५. ओम् क्लौं नेत्राभ्यां वषट् तथा ६. ओम् क्लः अस्त्राय फट् । (इन्हीं मन्त्रों से करन्यास भी करना चाहिए ।) भगवान् विष्णु की मूर्ति के पूजन में हृदयादि न्यास के मन्त्र ये हैं। ओम् हां हृदयाय नमः, ओम् हीं शिरसे स्वाहा, ओ हूँ शिखायै वषट्, ओम् हैं कवचाय हूम्, ओम् हौं नेत्राभ्यां वषट्, ओम् हः अस्त्राय फट् । (करन्यास भी इन्हीं मन्त्रों से करना चाहिए ।) श्रीभगवान् की पूजा में क्रमशः चक्र, गदा, शंख, मुसल, खड्ग, शार्ङ्ग (धनुष पाश, अंकुश, श्रीवत्सचिह्न, कौस्तुभ (मणि) तथा वनमाला की पूजा करनी चाहिए ।। २२ ।। ओम् श्रीं श्रियै नमः इस मन्त्र से श्रीदेवी की, ओम् मं महालक्ष्म्यै नमः, इस मन्त्र से महालक्ष्मी, ओम् तं ताक्ष्याय नमः इस मन्त्र से गरुड की, ओम् गुं गुरवे नमः इस मन्त्र से गुरु की, ओम् इं इन्द्राय नमः इस मन्त्र से इन्द्र आदि की पूजा करनी चाहिए । 'ओम ह्रीं देव्यै सरस्वत्यै नमः' इस मन्त्र से सरस्वती देवी के आसन तथा उनकी मूर्ति का पूजन करना चाहिए ।। २३ ।। पुनः हृदयादिन्यास करना चाहिए । इसके पश्चात्

क्षेत्रपः ॥ २४ ॥ तथा गं गणपतये च ह्रीं गौर्यै च श्रीं श्रियै । ह्रीं त्वरितायै ऐं क्लीं सौं त्रिपुरा चतुर्थ्यन्ता नमोन्तका ॥ २५ ॥ प्रणवाद्याश्च नामाद्यमक्षरं बिन्दुसंयुतम् । ॐयुता वा सर्वमन्त्राः पूजनाज्जपतः स्मृताः ॥ २६ ॥ होमस्तिलघृताद्यैश्च धर्मकामार्थमोक्षदाः । पूजामन्त्रान्पठेद्यस्तु भुक्तभोगो दिवं व्रजेत् ॥ २७ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विष्णवादिदेवतासामान्यपूजाविधानवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

पूजाधिकारार्थं सामान्यः स्नानविधिः

नारद उवाच– **वक्ष्ये स्नानं क्रियाद्यर्थं नृसिंहेन तु मृत्तिकाम् । गृहीत्वा तां द्विधा कृत्वा मलस्नानमथैकया ॥ १ ॥ निमज्ज्याचम्य विन्यस्य सिंहेन कृतरक्षकः । विधिस्नानं ततः कुर्यात् प्राणायामपुरःसरम् ॥ २ ॥ हृदि ध्यायन् हरिं देवं मन्त्रेणाष्टाक्षरेण हि। त्रिधा पाणितले मृत्स्नां दिग्बन्धं सिंहजप्ततः॥३॥ वासुदेवप्रजप्तेन तीर्थं सङ्कल्प्य चालभेत् । गात्रं वेदादिमन्त्रैश्च सम्मार्ज्याराध्यमूर्तिगम् ॥ ४ ॥ स्मृत्वाघमर्षणं वस्त्रं परिधाय समाचरेत् । विन्यस्य मन्त्रैर्निर्माज्यं पाणिस्थं जलमेव च ॥ ५ ॥ नारायणेन संयम्य वायुमाघ्राय चोत्सृजेत् । जलं ध्यायन्हरिं पश्चात् दत्त्वार्घ्यं द्वादशाक्षरम् ॥ ६ ॥ जप्त्वा**

लक्ष्मी, मेघा, कला, तुष्टि, पुष्टि, गौरी,प्रभा, मति, दुर्गा, गण, गुरु तथा क्षेत्रपाल की पूजा करनी चाहिए ।। २४ ।। उसके पश्चात् ओम् गं गणपतये नमः इस मन्त्र से गणपति की, ओम् ह्रीं गौर्यै नमः इस मन्त्र से गौरी की, ओम् श्रीं श्रियै नमः इस मन्त्र से श्रीदेवी की, ओम् ह्रीं त्वरितायै नमः इस मन्त्र से त्वरिता देवी की, तथा ओम् ऐं क्लीं सौं त्रिपुरायै नमः, इस मन्त्र से त्रिपुरा देवी की पूजा करनी चाहिए ।। २५ ।। अथवा किसी भी देवता के पूजन में उस देवता के नाम के आदि अक्षर को अनुस्वार से युक्त करके उस देवता के नाम का चतुर्थ्यन्त उच्चारण के पश्चात् नमः पद का प्रयोग करे । सभी मन्त्रों के आदि में ओम् अवश्य लगाए । यही उस देवता के पूजन तथा जप का मन्त्र हो जाता है ।। २६ ।। पूजन के अन्त में तिल तथा घृत आदि से होम करने पर धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है । जो पुरुष पूजा के मन्त्रों को पढ़ता है, वह इस लोक के भोगों का भोग करके अन्त में स्वर्ग को प्राप्त करता है ।। २७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का विष्णु आदि देवताओं के समान्य पूजा विधान का वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २१ ॥

श्री नारद जी ने कहा– अब मैं पूजा कार्य करने के लिए सर्वप्रथम अधिकार प्राप्ति विधि का वर्णन कर रहा हूँ । भगवान् नृसिंह का नाम लेकर मिट्टी लेना चाहिए । उसको दो भागों में विभक्त करके मन्त्र से अङ्ग न्यास आदि करके तथा रक्षा करके प्राणायाम पूर्वक हृदय में अष्टाक्षर मन्त्र से भगवान् का ध्यान करते हुए विधिपूर्वक स्नान करना चाहिए ।। १-२।। **विशेष-** भगवान् नृसिंह का मन्त्र निम्नांकित है– ओम् उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् । नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ।। अथवा- ओम् नृं नृसिंहाय नमः यह भी नृसिंह भगवान् का मन्त्र है ।) मिट्टी के बचे हुए दूसरे भाग को हथेली पर रखकर उसे तीन भागों में विभक्त करके उसके द्वारा नृसिंह मन्त्र जपते हुए दिग्बन्धन करना चाहिए ।। ३ ।। उसके पश्चात् 'ओम् नमो भगवते वासुदेवाय' इस वासुदेव मन्त्र के द्वारा संकल्प करके पुनः जल का स्पर्श करना चाहिए । इसके पश्चात् ओम् लगाकर मन्त्रों के द्वारा अपने शरीर तथा आराध्य देवता की मूर्ति का अच्छी तरह से मार्जन करना चाहिए ।। ४।। **विशेष–** मार्जन के मन्त्र निम्नांकित हैं– ओम् आपो हिष्ठामयो भुवः । ओम् तान उर्जे दधातन । ओम् महेरणाय चक्षसे । ओम् यो वः शिवतमो रसः ओम् तस्य भाजयते हनः। ओम् उशतीरिवमातरः। ओम् तस्मा अरंगमामव । ओम् अपो जनयथाचनः ।) इसके पश्चात् अघमर्षण मन्त्र का जप करके, वस्त्र पहनकर पूजन कार्य प्रारम्भ करना चाहिए । मन्त्रों के द्वारा अंगन्यासादिको करके मन्त्रों से मार्जन

न्यान्भक्तितस्तर्प्य योगपीठादितः क्रमात् । मन्त्रान् दिक्पालपर्यन्तानृषीन् पितृगणानपि ॥ ७ ॥ मनुष्यान् सर्वभूतानि स्थावरान्तान्यथाचमेत् । न्यस्य चात्मनि संहृत्य मन्त्रान् यागगृहं व्रजेत् ॥ ८ ॥ एवमन्यासु पूजासु मूलाद्यैः स्नानमाचरेत् ॥ ९ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सामान्यपूजाविधिवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अर्थ त्रयोविंशोऽध्यायः

सामान्य आदिमूर्त्यादिदेवानां पूजाविधिः

नारद उवाच– **वक्ष्ये पूजाविधिं विप्रा यं कृत्वा सर्वमाप्नुयात्। प्रक्षालिताङ्घ्रिराचम्य वाग्यतः कृतरक्षणः॥ १ ॥ प्राङ्मुखः स्वस्तिकं बद्ध्वा पद्माद्यपरमेव च। यं बीजं नाभिमध्यस्थं धूम्रं चण्डानिलात्मकम् ॥ २ ॥ विश्लेषयेदशेषं तु ध्यायन् कायात्तु कल्मषम् ॥ क्षौं हृत्पङ्कजमध्यस्थं बीजं तेजोनिधिं स्मरन्॥ ३ ॥ अधोर्ध्वतिर्यग्गाभिस्तु ज्वालाभिः कल्मषं दहेत् ॥ शशाङ्काकृतिवद्ध्यायेदम्बरस्थं सुधाम्बुभिः ॥ ४॥ हृत्पद्मव्यपिभिर्देहं स्वकमाप्लावयेत् सुधीः। सुषुम्णायोनिमार्गेण सर्वनाडीविसर्पिभिः॥ ५॥ शोधयित्वा न्यसेत्तत्वं करशुद्धिरथास्त्रकम् । व्यापकं हस्तयोरादौ दक्षिणाङ्गुष्ठतोऽङ्गकम् ॥ ६ ॥ मूलं देहे द्वादशाङ्गं न्यसेन्मन्त्रैर्द्विषट्ककैः । हृदयं च शिरश्चैव शिखावर्मास्त्रलोचने ॥ ७ ॥ उदरं च तथा पृष्ठं बाहूरू**

करना चाहिए । पुनः हाथ में जल लेकर (ओम् नमो नारायणाय) इस नारायण मन्त्र से अपने प्राणवायु को रोक कर, उस जल को सूंघकर पृथिवी पर गिरा देना चाहिए । पुनः श्रीभगवान् का ध्यान करते हुए अर्घ्य देकर द्वादशक्षर मंत्र का जप करना चाहिए ।। ५-६।। **विशेष–** अघमर्षण का मन्त्र यह है– ओम् ऋतञ्च सत्यञ्चाऽभिद्धा तपसोऽध्यजायत । ततः समुद्रोऽर्णवः समुद्रादर्णवादधि संवत्सरोअजायत। अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी । सूर्या चन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवञ्च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ।।' सूर्य नारायण को त्रिपदा गायत्री से अर्घ्य देना चाहिए । ओम् नमो भगवते वासुदेवाय- यह द्वादशाक्षर मन्त्र है ।।) उसके पश्चात् क्रमशः योगपीठ से लेकर दिक्पाल पर्यन्त देवताओं के मन्त्रों, ऋषियों, पितरों, मनुष्यों तथा स्थावर पर्यन्त समस्त भूतों का तर्पण करके आचमन करना चाहिए। उसके पश्चात् मन्त्रों का न्यास एवं उपसंहार करके यज्ञशाला में प्रवेश करना चाहिए। इसी प्रकार अन्य पूजाओं में भी मूलमन्त्र (ओम नमो नारायणाय) आदि मन्त्रों से स्नान करना चाहिए ।। ७-९।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का सामान्य पूजादि विधि वर्णन नामक बाइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२ ॥

श्रीनारद जी ने कहा– विप्रों ! अब मैं उस पूजाविधि को बतला रहा हूँ जिसका अनुष्ठान करके मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है । पैर धोकर, आचमन करके, मौन धारण किए हुए अपनी रक्षा करनी चाहिए ।। १ ।। पूर्वाभिमुख होकर स्वस्तिकासन अथवा पद्मासन अथ्वा किसी आसन से बैठकर अपनी नाभि में 'यं' बीज का ध्यान करते हुए धूम्र वर्ण वाले, प्रचण्डवायु स्वरूप अपने शरीर से सम्पूर्ण पापों को अपाकृत (दूर) करे ।। २ ।। अपने हृदय कमल में तेजोनिधि (तेज के आकर) 'ह्रीम्' बीज का स्मरण करते हुए उसके नीचे, ऊपर तथा तिरछी निकलती हुयी ज्वालाओं से अपने पापों को जला दें ।। ३ ।। उसके पश्चात् बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह आकाश में स्थित चन्द्रमा की आकृति वाले, हृदयकमल में व्याप्त सुषुम्णा नाड़ी के मार्ग से सभी नाड़ियों में फैलने वाले अमृत जल से अपने देह को सिञ्चित करे ।। ४-५ ।। इस तरह से तत्त्वशुद्धि करके तत्त्वों का न्यास करना चाहिए । फिर हाथ की शुद्धि करके अस्त्रन्यास करें । पुनः व्यापक करना चाहिए। सर्वप्रथम दाहिने हाथ के अंगुष्ठ से लेकर सम्पूर्ण अङ्गों में व्यापक करे ।। ६ ।। बारह अक्षर वाले मूलमन्त्र 'ओम् नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्र से देह के बारह अङ्गों में न्यास करना चाहिए।

जानुपादकम् । मुद्रां दत्त्वा स्मरेद् विष्णुं जप्त्वाष्टशतमर्चयेत् ॥ ८ ॥ वामे तु वर्द्धनीं न्यस्य पूजाद्रव्यं तु दक्षिणे । प्रक्षाल्यास्त्रेण चार्घ्येऽथ गन्धपुष्पान्विते न्यसेत् ॥ ९ ॥ चैतन्यं सर्वगं ज्योतिरस्त्रजप्तेन वारिणा । फडन्तेन तु संसिच्य हस्ते ध्यात्वा हरिं परम् ॥ १० ॥ धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं वह्निदिङ्मुखान् । अधर्मादीनि गात्राणि पूर्वादौ योगपीठके ॥ ११ ॥ कूर्मं पीठे ह्यनन्तं च यमं सूर्यादिमण्डलम् । विमलाद्याः केसरस्था ग्रहाः कर्णिकसंस्थिताः ॥ १२ ॥ पूर्वं स्वहृदये ध्यात्वा आवाह्यार्चेच्च मण्डले । अर्घ्यं पाद्यं तथाचामं मधुपर्कं पुनश्च तत् ॥ १३ ॥ स्नानं वस्त्रोपवीतं च भूषणं गन्धपुष्पकम् । धूपदीपनैवेद्यानि पुण्डरीकाक्षविद्यया ॥ १४ ॥ यजेदङ्गानि पूर्वादौ द्वारि पूर्वे परेऽण्डजम् । दक्षे चक्रं गदां सौम्ये कोणे शङ्खं धनुर्न्यसेत् ॥ १५ ॥ देवस्य वामतो दक्षे चेषुधी खड्गमेव च । वामे चर्म श्रियं दक्षे पुष्टिं वामेऽग्रतो न्यसेत् ॥ १६॥ वनमालां च श्रीवत्सकौस्तुभौ दिक्पतीन् बहिः । स्वमन्त्रैः पूजयेत्सर्वान् विष्णोरर्चावसानतः ॥ १७ ॥ व्यस्तेन च समस्तेन अङ्गैर्बीजेन वै यजेत् । जप्त्वा प्रदक्षिणीकृत्य स्तुत्वार्घ्यं समर्घ्य च ॥ १८ ॥ हृदये विन्यसेद्ध्यात्वा अहं ब्रह्म हरिस्त्विति। आगच्छावाहने योज्यं क्षमस्वेति विसर्जने ॥ १९॥ एवमष्टाक्षराद्यैश्च पूजां कृत्वा विमुक्तिभाक् । एकमूर्त्यर्चनं प्रोक्तं नवव्यूहार्चनं शृणु ॥ २० ॥ अङ्गुष्ठकद्वये न्यस्य वासुदेवं बलादिकान् । तर्जन्यादौ शरीरेऽथ शिरोललाटवक्त्रके॥२१॥

शरीर के बारह अङ्ग ये हैं- १. हृदय, २. सिर, ३. शिखा, ४. कवच, ५. अस्त्र, ६. नेत्र, ७. उदर, ८. पीठ, ९. बाहु, १०. ऊरु, ११. जानु (घुटना) और १२. पैर । सुरभि मुद्रा के द्वारा समर्पण करके, पुनः अष्टोतरशत 'ओम नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्र का जप करके 'विष्णवे नमः' विष्णवे नमः कहकर भगवान् विष्णु का स्मरण करना चाहिए ।। ७-८ ।। **विशेष-** (द्वादशाक्षर न्यास के मन्त्र इस तरह बनेंगे- १. ओम् ओम् नमः हृदये, २. ओम् नं नमः शिरसि, ३. ओम् मों नमः शिखायाम्, ४. ओम् मं नमः वर्मणि, ५. ओम् भं नमः अस्त्रे, ६. ओम् वं नमः नेत्रयोः, ७. ओम् तें नमः उदरे, ८. ओम् वां नमः पृष्ठे, ९. ओम् सुं नमः बह्वोः, १०. ओम् दें नमः ऊर्वोः, ११. ओम् वां नमः जान्वोः, १२. ओम् यं नमः पादयोः ।। जप के बाद में विष्णवे नमः विष्णवे नमः का उच्चारण करना चाहिए । इसी को विष्णु स्मरण कहते हैं ।) अपनी बायीं ओर जलपात्र को रखकर अपने दाहिनी ओर पूजन की सामग्री को रखे । उसके पश्चात् मन्त्र से धोकर गन्ध (चन्दन आदि) तथा पुष्प से युक्त अर्घ्य पात्र में उसे (पूजन सामग्री को रखे) ।। ९ ।। (ओम् अस्त्राय फट् यह अस्त्र मन्त्र है ।) फट् जिसके अन्त में होता है, ऐसे अस्त्र मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित जल से ज्ञानस्वरूप, सर्वव्यापक ज्योतिस्वरूप श्रीहरि को हाथ पर रखकर स्नान कराकर, उसके पश्चात् श्रीहरि का ध्यान करके, योगपीठ के पूर्व आदि आठ दिशाओं में, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अग्नि, दिशा, दिक्पाल तथा अधर्म आदि आठ विग्रह की स्थापना करे । उस पीठ के ऊपर कूर्म, अनन्त, यम तथा सूर्यादिमण्डल की स्थापना करनी चाहिए । (कमलाकृति योगपीठ के) केसर में विमला आदि की तथा उसकी कर्णिकाओं में ग्रहों की स्थापना करनी चाहिए ।। १०-१२ ।। देवता का पहले अपने हृदय में ध्यान करके पुनः आवाहन करके मण्डल में पूजन करे। भगवान् को पुण्डरीकाक्ष विद्या (ओम् नमो भगवते वसुदेवाय) से क्रमशः अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, भूषण, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य समर्पित करना चाहिए ।। १३-१४ ।। पुनः पूर्वादि दिशाओं में भगवान् के पार्षदों का पूजन करना चाहिए । पूर्व तथा पश्चिम द्वार पर गरुड़ की पूजा करनी चाहिए, दक्षिण द्वार पर चक्र की, उत्तर द्वार पर गदा की, तथा कोणों में धनुष् तथा शंख की स्थापना करनी चाहिए । भगवान् की बायीं ओर तुणीर की तथा दाहिनी ओर खड्ग की बायीं ओर ढाल की दाहनी ओर लक्ष्मी की तथा बायीं ओर पुष्टि देवी की स्थापना करनी चाहिए । भगवान् के समक्ष वनमाला, श्रीवत्स तथा कौस्तुभ की स्थापना करे । पुनः मण्डल के बाहर दिक्पालों की स्थापना करके सबों को अपने-अपने मन्त्र से पूजा करके, अन्त में भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए।।१५-१७।। सभी पार्षदों की अलग-अलग अथवा एक साथ ही बीजमन्त्र से पूजा करें । मन्त्रजप, प्रदक्षिणा तथा स्तुति करके, अर्घ्य प्रदान करके (मैं ही हरि ब्रह्म हूँ) अर्थात् मेरे अन्तर्यामी आत्मा भगवान् श्रीहरि हैं, वे ही ब्रह्म हैं, इस प्रकार ध्यान करके सबों की स्थापना अपने हृदय में करनी चाहिए ।।१८।। आवाहन मन्त्र में 'आगच्छ' पद जोड़ना चाहिए तथा विसर्जन मन्त्र में, 'क्षमस्व' पद जोड़ना चाहिए । इसी तरह से अष्टाक्षर आदि मन्त्रों से पूजा करके जीव मोक्ष प्राप्ति का पात्र बनता है । यहाँ तक मैंने एक मूर्ति की अर्चना का वर्णन किया अब आप नव व्यूहों की अर्चना सुनें।।१९-२०।।

हृन्नाभिगुह्यजान्वङ्घ्रौ मध्ये पूर्वादिकं यजेत् । एकपीठं नवव्यूहं नवपीठं च पूर्ववत् ॥ २२ ॥ नवाब्जे नवमूर्त्या च नवव्यूहं च पूर्ववत्। पद्ममध्ये च तत्स्थाने वासुदेवं च पूजयेत् ॥ २३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये आदिमूर्त्यादिपूजाविधिर्नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

अथ कुण्डनिर्माणाग्निकार्यादिविधिः

नारद उवाच– **अग्निकार्यं प्रवक्ष्यामि येन स्यात्सर्वकामभाक्। चतुरभ्यधिकं विंशमङ्गुलं चतुरस्रकम् ॥ १ ॥ सूत्रेण सूत्रयित्वा तु क्षेत्रं तावत् खनेत्समम्। खातस्य मेखलाः कार्या त्यक्त्वा चैवाङ्गुलद्वयम् ॥ २ ॥ सत्त्वादिसञ्ज्ञाः पूर्वास्या द्वादशाङ्गुलमुच्छ्रिताः। अष्टाङ्गुला द्व्यङ्गुलाथ चतुरङ्गुलविस्तृता ॥ ३ ॥ योनिर्दशाङ्गुला रम्या षट्चतुर्द्व्यङ्गुलोच्छ्रिता । क्रमान्निम्ना तु कर्तव्या पश्चिमाशाव्यवस्थिता ॥ ४ ॥ अश्वत्थपत्रसदृशी किञ्चित्कुण्डे निवेशिता । तुर्याङ्गुलायतं नालं पञ्चदशाङ्गुलायतम् ॥ ५ ॥ मूलन्तु त्र्यङ्गुलं योन्या अग्रं तस्याः षडङ्गुलम् । लक्षणं चैकहस्तस्य द्विगुणं द्विकरादिषु ॥ ६ ॥ एकत्रिमेखलं कुण्डं वर्तुलादि वदाम्यहम् । कुण्डार्द्धे तु स्थितं सूत्रं कोणे यदतिरिच्यते ॥ ७ ॥ तदर्द्धदिशि संस्थाप्य भ्रामितं**

दोनों अंगूठों पर वासुदेव का तथा तर्जनी आदि पर बलभद्र आदि का न्यास करके उसके पश्चात् शरीर के सिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुप्ताङ्ग, जानु (धुटना) तथा चरण एवं मध्यभाग (कटि) इन नवो स्थानों में पूर्वादि दिशाओं का यजन करें । एक पीठ पर एक व्यूह के क्रम से नवपीठों के नवकमलों पर नवव्यूहों की स्थापना अपने शरीर में ही करके वासुदेव आदि नवो व्यूहों की तत्-तत् स्थानों पर पहले के ही समान पूजन करना चाहिए।।२१-२३।। **विशेष**– श्रीभगवान् के उन नव व्यूहों के नाम हैं– वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नरसिंह और वराह।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का आदिमूर्ति आदि की पूजा विधि वर्णन नामक तेइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३ ॥

नारद जी ने कहा– अब मैं अग्नि कार्य का वर्णन कर रहा हूँ जिससे मनुष्य अपने समस्त अभिलषित अर्थों को प्राप्त कर लेता है । चौबीस अंगुल चतुरस्र (चौकोर) भूमि को सूत से नापकर उसे उतना ही (२४ अंगुल ही) गहरा खोदना चाहिए । उस खात (गड्ढा) के ऊपर दो अंगुल भूमि छोड़कर मेखला का निर्माण करना चाहिए ।। १-२ ।। ये मेखला सत्त्वादि (रजस् तथा तमस्) नाम वालीं तीन होती हैं। उपरी मेखला की ऊँचाई बारह अंगुल होती है । इन मेखलाओं की चौड़ाई क्रमशः (नीचे से) आठ अंगुल, दो अंगुल तथा चार अंगुला होती है ।। ३ ।। इस कुण्ड की पश्चिम दिशा में दस अंगुल लम्बी मनोहर योनि बनाना चाहिए । उसको क्रमशः छह अंगुल, उसके पश्चात् चार अंगुल फिर दो अंगुल ऊँचा करना चाहिए । योनि को पीछे की ओर ऊँची तथा आगे की ओर क्रमशः नीची होनी चाहिए ।। ४ ।। योनि का आकार पीपल के पत्ते के आकार वाला तथा उसका अगला भाग कुछ कुण्ड के भीतर प्रविष्ट होना चाहिए । योनि चार अंगुल चौड़ी तथा उसका नाल पंद्रह अंगुल आयत होना चाहिए । योनि का मूलभाग तीन अंगुल और उसका अग्रभाग छह अंगुल विस्तृत होना चाहिए। यह एक हाथ लम्बे चौड़े कुण्ड का लक्षण (स्वरूप) बतलाया गया है। दो हाथ लम्बे चौड़े कुण्ड के सभी लक्षण दो गुने हो जायेंगे ।। ५-६ ।। अब मैं एक मेखला अथवा तीन मेखला वाले वर्तुलकुण्ड का स्वरूप बतला रहा हूँ । चौकोर कुण्ड के आधे भाग में विद्यमान सूत्र को किसी एक कोने तक ले जाना चाहिए । उसके ठीक आधे (बीच में) पर पकड़कर सूत को घुमाने से गोलाकार कुण्ड बन जाता है । अर्थात् मध्यविन्दु से कोण विन्दु तक सूत्र को ले जाने पर सामान्य दिशाओं की अपेक्षा जितना सूत अधिक होता है, उसके आधे भाग को प्रत्येक दिशा में बढ़ाकर स्थापित करना चाहिए । मध्यविन्दु से उन्हीं विन्दुओं तक वर्तुलाकार कुण्ड बन जाता है ।।७।।

वर्तुलं भवेत् । कुण्डार्द्धं कोणभागार्द्धं दिशि चोत्तरतो बहिः ॥ ८ ॥ पूर्वपश्चिमतो यत्नाल्लाञ्छयित्वा तु मध्यतः । संस्थाप्य भ्रामितं कुण्डमर्द्धचन्द्रं भवेच्छुभम् ॥ ९ ॥ पद्माकारे दलानि स्युर्मेखलायां तु वर्तुले । बाहुदण्डप्रमाणन्तु होमार्थं कारत् स्रुचम् ॥ १० ॥ सप्तपञ्चाङ्गुलं वापि चतुरस्त्रं तु कारयेत् । त्रिभागेन भवेद्गर्तं मध्ये वृत्तं सुशोभनम् ॥ ११ ॥ तिर्यगूर्ध्वं समं खात्वा बहिरर्द्धं तु शोधयेत् । अङ्गुलस्य चतुर्थांशं शेषार्द्धार्द्धं तथान्ततः॥१२॥ खातस्य मेखलां रम्यां शेषार्द्धेन तु कारयेत् । कण्ठं त्रिभागविस्तारमङ्गुष्ठकसमायतम् ॥ १३॥ सार्द्धमङ्गुष्ठकं वा स्यात्तदग्रे तु मुखं भवेत् । चतुरङ्गुलविस्तारं पञ्चाङ्गुलमथापि वा ॥ १४ ॥ त्रिकं द्व्यङ्गुलकं तत्स्यान्मध्यं तस्य सुशोभनम् । आयामस्तत्समस्तस्य मध्यनिम्नः सुशोभन॥१५॥ शुषिरं कण्ठदेशे स्याद्विशेद्यावत्कनीयसी । शेषं कुण्डं तु कर्तव्यं यथारुचि विचित्रितम् ॥ १६ ॥ स्रुवं तु हस्तमात्रं स्याद्दण्डकेन समन्वितम् । बटुकं द्व्यङ्गुलं वृत्तं कर्तव्यं तु सुशोभनम् ॥ १७ ॥ गोपदं तु यथा मग्नमल्पपङ्के तथा भवेत् । उपलिप्य लिखेद्रेखामङ्गुलां वज्रनामिकाम्॥१८॥ सौम्याग्रा प्रथमा तस्यां रेखे पूर्वमुखे तयोः । मध्ये तिस्रस्तथा कुर्याद् दक्षिणादिक्रमेण तु ॥ १९ ॥ एवमुल्लिख्य चाभ्युक्ष्य प्रणवेन तु मन्त्रवित् । विष्टरं कल्पयेत्तेन तस्मिञ्शक्तिं तु वैष्णवीम् ॥ २० ॥ अलङ्कृतामृतुमतीं क्षिपेदग्निं हरिं स्मरन् । प्रादेशमात्राः समिधो दत्त्वा परिसमुह्य तम् ॥ २१ ॥ दर्भैस्त्रिधा परिस्तीर्य पूर्वादौ तत्र पात्रकम् । असादयेदिध्मबर्हिर्द्वयं स्रुक्स्रुवकद्वयम् ॥ २२ ॥ आज्यस्थालीं चरुस्थालीं

इसी प्रकार कुण्ड के अर्द्धभाग से बढ़ा हुआ जो कोणार्द्धभाग है उसे उत्तर दिशा में बढ़ाना चाहिए । पुनः प्रयत्न पूर्वक पूर्व से पश्चिम दिशा पर्यन्त, चिह्न लगा देना चाहिए । इस प्रकार मध्यविन्दु में स्थापित करके अर्धचन्द्राकार सूत्र को घुमाने से अर्द्धचन्द्राकार कुण्ड बन जाता है ।। ८-९ ।। गोल कुण्ड पर कमल दल के आकार वाली मेखला बनानी चाहिए ।। होम करने के लिए बाहुदण्ड के बराबर चौकोर स्रुक बनानी चाहिए अथवा उसे सात या पाँच अंगुल लम्बी बनाना चाहिए ।। १० ।। उसके तीन भाग में गढ़ा बनाकर बीच में मनोहर वृत्त बनाए ।। ११ ।। उस गढ़े को तिरछा तथा ऊपर की ओर बराबर गढ़ा करके बाहर के आधे भाग को साफ कर देना चाहिए । बचे हुए आधे का आधा भाग जो चौथाई अंगुल है, उसे भी भीतर से साफ करा देना चाहिए ।। १२ ।। बाकी बचे हुए आधे भाग से सुन्दर मेखला बनानी चाहिए। खात का कण्ठ मेखला के तीन चौथाई के समान विस्तृत तथा चौड़ाई अंगुष्ठ के बराबर होनी चाहिए ।। १३ ।। अथवा स्रुक् के कण्ठ की चौड़ाई डेढ़ अंगुल की भी हो सकती है । उसके आगे स्रुक् का मुख चार अथवा पाँच अंगुल विस्तृत होना चाहिए ।। १४।। अथवा उसका मुख तीन या दो अंगुल का होना चाहिए । उसका मध्यभाग मनोहर होना चाहिए । स्रुक् के मुख की लम्बाई तथा चौड़ाई समान होनी चाहिए । उसके बीच का भाग नीचा तथा मनोहर होना चाहिए ।। १५ ।। स्रुक् के कण्ठ प्रदेश में एक ऐसा छिद्र होना चाहिए जिसमें कनिष्ठिका अंगुलि प्रविष्ट हो जाए ।। स्रुक् का गढ़ा अपनी इच्छा के अनुसार तथा मनोहर बनाना चाहिए ।। १६ ।। स्रुवा को दण्डा के साथ एक हाथ लम्बा होना चाहिए बटुक (स्रुवा का अगला भाग जिसमें घी से हवन करने के लिए छिद्र बनाया जाता है) को दो अंगुल का गोला तथा सुन्दर होना चाहिए । थोड़े से कीचड़ में पड़ने पर गाय का पैर जैसे उभड़ जाता है, उसी तरह का वटुक होना चाहिए । कुण्ड को लिपकर उसके भीतर एक उत्तर से दक्षिण की ओर जाने वाली वज्रनाम की रेखा खींचनी चाहिए । उस रेखा के ऊपर पूर्व से पश्चिम की ओर जाने वाली दो रेखा खींचनी चाहिए । उन दोनों रेखाओं के ऊपर दक्षिणादि क्रम से तीन रेखाएँ खींचनी चाहिए ।। १७-१९ ।। इस प्रकार से मन्त्रवेत्ता पुरुष रेखाओं को खींचकर, उस पर प्रणव का उच्चारण करके जल छिड़ककर उस पर एक विस्तर (आसन) की कल्पना करके उसके ऊपर समालङ्कृत तथा ऋतुमती वैष्णवी अग्नि की कल्पना करे । पुनः श्रीहरि का स्मरण करते हुए उसके ऊपर अग्नि डालना चाहिए । पुनः प्रादेशमात्र (अंगूठे से लेकर तर्जनी अंगुलि के बराबर अर्थात् एक बीत्ते की) समिधाएँ डालकर उस अग्नि का परिसमूहन (अग्नि की चारों तरफ कुश विखेरने का कार्य) करना चाहिए।।२०-२१।। कुण्ड के पूर्वादि दिशाओं में तीन-तीन कुश विछाकर, वहीं पर पात्रों समिधा, दो कुश, तथ स्रुवा को रखे ।। २२ ।। आज्यस्थाली (घृतपात्र) चरुस्थाली (हविष्यपात्र), कुशा से आच्छादित घी, प्रणीता पात्र के जल से प्रोक्षण पात्र का प्रोक्षणी पात्र का प्रोक्षण करके, उसे हाथ में लेकर जल से भरके, उस जल को पवित्री से ढंके हाथ पर गिराकर, प्रोक्षणी में अग्नि का ध्यान

कुशाज्यं च प्रणीतया । प्रोक्षयित्वा प्रोक्षणीं च गृहीत्वापूर्य वारिणा ॥ २३॥ पवित्रान्तर्हिते हस्ते परिस्राव्य च तज्जलम् । अग्निं ध्यात्वाथ प्रोक्षण्यां योन्या अग्रे निधाय च ॥ २४ ॥ तदद्भिस्त्रिश्च सम्प्रोक्ष्य इध्मं विन्यस्य चाग्रतः । प्रणीतायां सपुष्पायां विष्णुं ध्यात्वोत्तरेण च ॥ २५ ॥ आज्यस्थालीमथाज्येन सम्पूर्याग्रे निधाय च। सम्प्लवोत्प्लवनाभ्यां तु कुर्यादाज्यस्य संस्कृतिम् ॥ २६॥ अखण्डिताग्रौ निर्गर्भौ कुशौ प्रादेशमात्रकौ। ताभ्यामुत्तानपाणिभ्यामङ्गुष्ठानामिकेन तु ॥ २७॥ आज्यं ताभ्यां तु सङ्गृह्य त्रिवारं चोर्ध्वमुत्क्षिपेत् । स्रुक्स्रुवौ चापि सङ्गृह्य ताभ्यां प्रक्षाल्य वारिणा ॥ २८ ॥ प्रताप्य दर्भैः सम्मृज्य पुनः प्रक्षाल्य चैव हि। निष्टप्य स्थापयित्वा तु प्रणवेनैव साधकः ॥ २९ ॥ प्रणवादिनमोऽन्तेन पश्चाद्धोमं समाचरेत् । गर्भाधानादिकर्माणि यावदङ्गव्यवस्थया ॥ ३० ॥ नामान्तं व्रतबन्धान्तं समावर्तावसानकम् । अधिकारावसानं वा कुर्यादङ्गानुसारतः॥३१॥ प्रणवेनोपचारं तु कुर्यात्सर्वत्र साधकः । अङ्गैर्होमस्तु कर्तव्यो यथावित्तानुसारतः॥ ३२ ॥ गर्भाधानं तु प्रथमं ततः पुंसवनं स्मृतम् । सीमन्तोन्नयनं जातकर्म नामानुशासनम् ॥ ३३ ॥ चूडाकृतिं व्रतबन्धं वेदव्रतान्यशेषतः। समावर्तनं पत्न्या च योगो यागाधिकारकः ॥ ३४ ॥ हृदादिक्रमतो ध्यात्वा एकैकं कर्म पूज्य च । अष्टावष्टौ तु जुहुयात् प्रतिकर्माहुतीः पुनः ॥ ३५॥ पूर्णाहुतिं ततो दद्यात्स्रुचा मूलेन साधकः । वौषडन्तेन मन्त्रेण प्लुतं सुस्वरमुच्चरन् ॥ ३६॥ विष्णोर्वह्निन्तु संस्कृत्य श्रपयेद् वैष्णवं चरुम् । आराध्य स्थण्डिले विष्णुं मन्त्रान् संस्मृत्य पूजयेत् ॥ ३७ ॥ आसनादिक्रमेणैव साङ्गावरणमुत्तमम् । गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य ध्यात्वा देवं सुरोत्तमम् ॥ ३८ ॥ आधायेध्ममथाघारावाज्यावग्नीशसन्निधौ । वायव्यनैर्ऋताशादि प्रवृत्तौ तु यथाक्रमम्॥३९॥ आज्यभागौ ततो हुत्वा चक्षुषी दक्षिणोत्तरे। मध्ये तु जुहुयात् सर्वमन्त्रैरर्चाक्रमेण तु ॥ ४० ॥ आज्येन तर्पयेन्मूर्तिं दशांशेनाङ्गहोमकम्।

करके तथा उसे (प्रोक्षणीपात्र) को योनि के आगे रखकर ।। २३-२४ ।। उसके (प्रोक्षणी के) जल से समिधा का तीन बार प्रोक्षण करके, पुनः उसे (समिधा को) अपने आगे रखकर सुन्दर पुष्प से युक्त प्रणीता पात्र में भगवान् विष्णु का ध्यान करके, उत्तर तरफ रखे हुए घी से आज्यस्थाली को भरकर तथा उसे अपने आगे रखकर सम्प्लवन तथा उत्प्लवन के द्वारा उस घी का संस्कार करना चाहिए ।। २५-२६ ।। जिनका अग्रभाग खण्डित नहीं हुआ हो ऐसे एक-एक बीते लम्बे दो कुशों को ऊपर की ओर हथेली करके अनामिका तथा अंगूठे से पकड़कर उन दोनों से तीन बार घी को ऊपर उठावे । पुनः स्रुक् तथा स्रुवा को भी लेकर उन दोनों को जल से धोकर, पुनः उन दोनों को तपाकर कुश से पोंछकर, फिर जल से धोकर, उन्हें पुनः तपाकर ओंकार का उच्चारण करते हुए साधक रख दे। फिर 'ओम् नमः' इस मन्त्र से होम करे। पुनः गर्भाधान से लेकर नाम संस्कारपर्यन्त, अथवा यज्ञोपवीत संस्कारपर्यन्त, अथवा समावर्तन संस्कारपर्यन्त, अथवा यज्ञाधिकार संस्कारपर्यन्त अग्नि के समस्त संस्कारों को उनके अंगों के अनुसार सम्पादित करना चाहिए ।। २७-३१ ।। साधक को चाहिए कि वह प्रणव के द्वारा सर्वत्र पूजन करे तथा अपनी वित्त शक्ति के अनुसार अङ्ग मन्त्रों से होम करे।।३२।। पहला संस्कार गर्भाधान है, दूसरा पुंसवन संस्कार है, फिर सीमन्तोन्नयन, पुनः जातकर्म, पुनः नामकरण, फिर चूड़ाकरण, पुनः यज्ञोपवीत, फिर वेदाध्ययन, तदनन्तर समावर्तन, तदनन्तर यज्ञाधिकार प्रदान करने वाला पाणिग्रहण संस्कार होता है ।। ३३-३४ ।। हृदय आदि के क्रम से ध्यान करके प्रत्येक कर्म का पूजन करके प्रत्येक कर्म के लिए आठ-आठ आहुति देनी चाहिए ।। ३५ ।। फिर साधक को चाहिए कि वह मूल मन्त्र के अन्त में वषट् जोड़कर 'ओम् नमो भगवते वासुदेवाय वषट्' इस मन्त्र का प्लुत स्वर से सुस्पष्ट उच्चारण करते हुए स्रुव से पूर्णाहुति दे ।। ३६ ।। इस तरह से वैष्णवाग्नि का संस्कार करके वैष्णव चरु का स्रपण करे । अर्थात् विष्णु भगवान् के लिए चरु पकाए । वेदी पर भगवान् विष्णु की आराधना करके मन्त्रों को पढ़ते हुए उनकी (भगवान् विष्णु की) पूजा करे ।। ३७ ।। पुनः सभी देवताओं में श्रेष्ठ श्रीविष्णु भगवान् का उनके अंगों तथा आवरणों के साथ ध्यान करके उनका चन्दन तथा फूल से आसनादि के क्रम से पूजन करना चाहिए ।। ३८ ।। पुनः समिधा को अग्नि में डालकर अग्निकोण से लेकर ईशान कोण पर्यन्त अग्नि में आघार नामक क्रमशः दो आहुति दे । पुनः वायव्यकोण से लेकर नैर्ऋत्य कोण

शतं सहस्त्रं वाज्याद्यैः समिद्भिर्वा तिलैः सदा ॥ ४१ ॥ समाप्यार्चां तु होमान्तां शुचीञ्शिष्यानुपोषितान् । आहूयाग्रे निवेश्याथ ह्यस्त्रेण प्रोक्षयेत्पशून्॥४२॥ शिष्यानात्मनि संयोज्याविद्याकर्मनिबन्धनैः । लिङ्गानुवृत्तं चैतन्यं सह लिङ्गेन पालितम् ॥ ४३ ॥ ध्यानमार्गेण सम्प्रोक्ष्य वायुबीजेन शोषयेत् । ततो दहनबीजेन सृष्टिं ब्रह्माण्डसञ्ज्ञिकाम् ॥ ४४ ॥ निर्दग्धां सकलां ध्यायेत् भस्मकूटनिभस्थिताम् । प्लावयेद्वारिणा भस्म संसारं वाङ्मयं स्मरेत॥४५॥ तत्र शक्तिं न्यसेत्पश्चात् पार्थिवीं बीजसञ्ज्ञिकाम् । तन्मात्राभिः समस्ताभिः संवृत्तं पार्थिवं शुभम् ॥ ४६ ॥ अण्डं तद्भवं ध्यायेत्तदाधारं तदात्मकम्। तन्मध्ये चिन्तयेन्मूर्तिं पौरुषीं प्रणवात्मिकाम् ॥ ४७॥ लिङ्गं सङ्क्रामयेत्पश्चात्पार्श्वस्थं पूर्वसंस्कृतम् । विभक्तेन्द्रियसंस्थानं क्रमाद् वृद्धं विचिन्तयेत् ॥ ४८ ॥ ततोऽण्डमब्दमेकं तु स्थित्वा द्विशकलीकृतम्। द्यावापृथिव्यौ शकले तयोर्मध्ये प्रजापतिम् ॥ ४९ ॥ जातं ध्यात्वा पुनः प्रोक्ष्य प्रणवेन तु तं शिशुम् । मन्त्रात्मकं तनुं कृत्वा यथान्यासं पुरोदितम्॥ ५०॥ विष्णुहस्तं ततो मूर्ध्नि दत्त्वा ध्यात्वा तु वैष्णवम् । एवमेकं बहून्वापि जपित्वा ध्यानयोगतः ॥ ५१ ॥ करौ सङ्गृह्य मूलेन नेत्रे बद्ध्वा तु वाससा। नेत्रमन्त्रेण मन्त्री तानशेषानाहतेन तु ॥ ५२ ॥ कृतपूजो गुरुः सम्यग्देवदेवस्य तत्त्ववान् । शिष्यान् पुष्पाञ्जलिभृतः प्राङ्मुखानुपवेशयेत् ॥५३॥ अर्चयेयुश्च तेऽप्येवं प्रसूता गुरुणा हरिम् । क्षिप्त्वा पुष्पाञ्जलिं तत्र पुष्पादिभिरनन्तरम् ॥ ५४ ॥ वासुदेवार्चनं कृत्वा गुरोः पादार्चनं ततः । विधाय दक्षिणां दद्यात् सर्वस्वं चार्धमेव वा ॥ ५५ ॥ गुरुः संशिक्षयेच्छिष्यांस्तैः

पर्यन्त आज्य भाग नामक दो आहुतियाँ देनी चाहिए।। पुनः अर्चा के क्रम से सभी मन्त्रों द्वारा कुण्ड के मध्य में हवन करना चाहिए ।। ४० ।। पुनः घी से मूर्ति को तृप्त करना चाहिए । पुनः घी, अथवा समिधा अथवा तिल से एक सौ अथवा एक हजार दशांश अङ्ग मन्त्रों से होम करना चाहिए ।। ४१ ।। होम पर्यन्त की पूजा पूरा करके पवित्र तथा उपवास किए हुए शिष्यों को बुलाकर एवं सामने बैठाकर भावनात्मक बलिपशु का अस्त्र से प्रोक्षण करे ।। ४२ ।। शिष्यों को भावनापूर्वक अपनी आत्मा से संयुक्त करके अविद्या (अज्ञान) तथा कर्मों के कारण लिङ्ग शरीर के साथ पलने वाले लिङ्गशरीर का अनुवर्तन करने वाले चैतन्य का ध्यान के द्वारा प्रोक्षण करके, उसका वायु के बीज मन्त्र के द्वारा शोषण करना चाहिए । पुनः अग्नि बीज के द्वारा पूर्णरूप से दग्ध तथा भस्म समूह के रूप में अवस्थित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड सृष्टि का ध्यान करना चाहिए। तदनन्तर जल बीज के द्वारा उस भस्म संसार का प्लावन करके वाणीमय संसार का ध्यान करना चाहिए ।। ४३-४५ ।। (वायु का बीजमंत्र 'यं' है । अग्नि का बीजमंत्र 'रं' है तथा जल का बीज मंत्र 'वं' है ।) उस वाणीमय संसार में बीज संज्ञक पृथिवी शक्ति का न्यास (आधान) करना चाहिए । उससे उत्पन्न सम्पूर्ण तन्मात्राओं (रूप तन्मात्रा, रसतन्मात्रा, गन्धतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा तथा शब्दतन्मात्रा) से सम्पन्न पार्थिव अण्ड (अण्डा) का ध्यान करना चाहिए । उस अण्ड का आधार पृथिवी की शक्ति होती है तथा वह अण्ड पृथिव्यात्मक ही होता है । पुनः उस अण्ड के भीतर प्रणव (ओम्) स्वरूपा परमात्मा की मूर्ति का ध्यान करना चाहिए ।। ४६-४७ ।। पुनः अपनी आत्मा में स्थित तथा संस्कृत लिङ्ग शरीर का उस मूर्ति में भावना के द्वारा सङ्क्रमण कराए । पुनः ध्यान करना चाहिए कि उस पुरुष की इन्द्रियों के संस्थान विभक्त हो गये तथा वह पुरुष अण्ड में ही बड़ा हो गया ।। ४८ ।। पुनः ध्यान करना चाहिए कि एक वर्ष पर्यन्त उस अण्ड में ही रहकर पुरुष अण्ड को दो भागों में फोड़कर बाहर निकला । उस अण्ड के दो टुकड़े ही द्युलोक तथा भूलोक हैं । उन दोनों के बीच प्रजापति को उत्पन्न हुआ ध्यान करके, उस प्रजापति शिशु का भावना से प्रणव के द्वारा प्रोक्षण करके, उसका शरीर मन्त्रमय करके, पूर्वोक्त प्रकार से उसका न्यास करना चाहिए ।। ४९-५० ।। पुनः (भावना) से उस शिशु के सिर पर भगवान् विष्णु का हाथ रखकर उसे विष्णु होने का ध्यान करे । इस तरह से एक अथवा अनेक पुरुषों का ध्यान योग के द्वारा जप करके, फिर उसके सिर से हाथ हटाकर मन्त्रज्ञ को चाहिए कि वह उन शिष्यों के नेत्रों को निश्छिद्र कपड़े से बाँध दे । तत्त्ववेत्ता को चाहिए कि वे श्रीभगवान् की अच्छी तरह से पूजा करके पुष्पाञ्जलि लिए हुए शिष्यों को पूर्वाभिमुख बैठा दे ।। ५१-५३ ।। आचार्य के द्वारा दूसरा जन्म पाकर वे शिष्य भी श्रीहरि की इसी प्रकार पूजा करें । तदनन्तर वे श्री भगवान् के चरणों में पुष्पाञ्जलि समर्पित करें ।। ५४ ।। श्रीभगवान् की पूजा करने के पश्चात् वे आचार्य के चरणों की पूजा करके, अपना सर्वस्व अथवा आधी सम्पत्ति गुरुदक्षिणा में दे दें ।। ५५ ।। गुरु शिष्यों को सम्यक् शिक्षा प्रदान करें और शिष्यों को भगवान् के नाम

पूज्यो नामभिर्हरिः । विष्वक्सेनं यजेदीशं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ५६ ॥ तर्जयन्तं च तर्जन्या मण्डलस्थं विसर्जयेत् । विष्णुनिर्माल्यमखिलं विष्वक्सेनाय चार्पयेत् ॥ ५७ ॥ प्रणीताभिस्तथात्मानमभिषिच्य च कुण्डकम् । वह्निमात्मनि संयोज्य विष्वक्सेनं विसर्जयेत् ॥ ५८ ॥ बुभुक्षुः सर्वमाप्नोति मुमुक्षुर्लीयते हरौ ॥ ५९ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कुण्डनिर्माणाद्यग्निकार्यादिवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

वासुदेवादिमन्त्राणां लक्षणानि

नारद उवाच— **वासुदेवादिमन्त्राणां पूज्यानां लक्षणं वदे । वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥ १ ॥ नमो भगवते चादौ अ आ अं अः सबीजकाः । ओङ्काराद्या नमोऽन्ताश्च नमो नारायणस्ततः ॥ २ ॥ ॐ तत्सद् ब्रह्मणे चैव हूं नमो विष्णवे नमः । ॐ क्षौं ॐ नमो भगवते नरसिंहाय वै नमः ॥ ३ ॥ ओं भूर्नमो भगवते वराहाय नराधिपाः जपारुणहरिद्राभा नीलश्यामललोहिताः ॥ ४ ॥ मेघाग्निमधुपिङ्गाभा वल्लभा नवनायकाः। अङ्गानि स्वरबीजानां स्वनामान्तैर्यथाक्रमम् ॥ ५॥ हृदयादीनि कल्पेत विभक्तैस्तन्त्रवेदिभिः । व्यञ्जनादीनि बीजानि तेषां लक्षणमन्यथा॥ ६ ॥**

मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए । तदनन्तर उन्हें मण्डल में विराजमान शंख, चक्र तथा गदा धारण करने वाले, अपनी तर्जनी अंगुली से उन्मार्ग गमन से रोकने का संकेत करने वाले विष्वक्सेन का पूजन करना चाहिए । पुनः विसर्जन करके सम्पूर्ण भगवान् विष्णु के निर्माल्य को विष्वक्सेन को समर्पित करना चाहिए ।। ५६-५७ ।। प्रणीता पात्र के जल से अपने को तथा कुण्ड को सिञ्चित करके, 'भावना द्वारा अपने में अग्नि को संयुक्त करके, विष्वक्सेन का विसर्जन करना चाहिए ।। ५८ ।। इस तरह से श्रीभगवान् की आराधना करने वाला बुभुक्षु पुरुष इस लोक में समस्त भोगों को प्राप्त कर लेता है तथा मुमुक्षु पुरुष श्रीभगवान् में लीन हो जाता है ।। ५९ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का कुण्ड निर्माण आदि तथा अग्निकार्य आदि के वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २४ ॥

श्री नारदजी ने कहा— पूजन करने योग्य वासुदेव आदि के मन्त्रों का मैं स्वरूप बतलाता हूँ । क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के मन्त्रों का आदि में पहले ओम् फिर अ, आ, अं, अः इन बीजमंत्रों को तदनन्तर उनके नामों को पुनः नमः पद के साथ उच्चारण करना चाहिए फिर ओम् नमो नारायणाय इस नारायण मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए । **विशेष-** १. वासुदेव नामक व्यूह का मन्त्र 'ओम् अं नमः भगवते वासुदेवाय नमः' है । २. संकर्षण नामक व्यूह का मन्त्र है 'ओम् आं नमो भगवते संकर्षणाय नमः ।' ३. प्रद्युम्न नामक व्यूह का मन्त्र है— 'ओम् अं नमो भगवते सङ्कर्षणाय नमः तथा ४. अनिरुद्ध नामक व्यूह का मन्त्र है— ओम् अः नमो भगवते अनिरुद्धाय नमः । इन चारों मन्त्रों के अन्त में 'ओम नमो नारायणाय' इस नारायण मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।) 'ओम् तत् सद्ब्राह्मणे नमः' यह ब्रह्मा का मन्त्र हैं— 'ओम् हूँ विष्णवे नमः' यह विष्णु का मन्त्र है, 'ओम् नमो भगवते नरसिंहाय नमः' यह नृसिंह भगवान् का मन्त्र है । 'ओम् भूर्नमो भगवते वराहाय' यह वराह भगवान् का मन्त्र है । भगवान् के नवों व्यूह इन मन्त्रों के स्वामी तथा भक्तों के अत्यन्त प्रिय हैं । उन्हें अभीष्ट फल प्रदान करने वाले हैं । इन नवों व्यूहों के क्रमशः वर्ण- १. जपा कुसुम के समान अरुण, २. हल्दी के समान पीला, ३. नीला, ४. श्यामल, ५. रक्तवर्ण, ६. मेघ के समान ७. अग्नि के समान ८. मधु के समान तथा ९. पिङ्गल वर्ण के हैं । तन्त्रवेत्ताओं को चाहिए कि वे अलग-अलग अङ्गों का स्वर बीजों के साथ जोड़कर अङ्गन्यास करें ।। ३-५।। **विशेष—** अग्निपुराणकार के अनुसार भगवान् के नव व्यूह क्रमशः हैं - (१) वासुदेव, (२) संकर्षण,

दीर्घस्वैस्तु भिन्नानि नमोन्तान्तस्थितानि तु। अङ्गानि ह्रस्वयुक्तानि उपाङ्गानीति वर्ण्यते ॥ ७॥ विभक्तं नामवर्णान्तस्थितबीजात्ममुत्तमम्। दीर्घस्वरैश्च संयुक्तमङ्गोपाङ्गैः स्वरैः क्रमात् ॥ ८ ॥ व्यञ्जनानां क्रमो ह्येष हृदयादिप्रक्लृप्तये । स्वरबीजेषु नामान्तैर्विभक्तान्यङ्गनामभिः ॥ ९ ॥ युक्तानि हृदयादीनि द्वादशान्तानि पञ्चतः । आरभ्य कल्पयित्वा तु जपेत् सिद्ध्यनुरूपतः ॥ १० ॥ हृदयं च शिरश्चूडा कवचं नेत्रमस्त्रकम् । षडङ्गानि तु बीजानां मूलस्य द्वादशाङ्गकम् ॥ ११ ॥ हृच्छिरश्च शिखा चैव हस्तौ नेत्रे तथोदरम् । पृष्ठबाहूरुजानूंश्च जङ्घेपादौ क्रमान्न्यसेत् ॥ १२ ॥ कं ठं शं पं वैनतेयः खं ठं फं षं गदानुजः । गं डं वं सं पुष्टिमन्त्रो घं टं भं हं श्रियै नमः ॥ १३ ॥ चं णं मं क्षं पाञ्चजन्यं छं तं पं कौस्तुभाय च । जं खं वं सुदर्शनाय श्रीवत्साय सं वं दं च लम् ॥ १४ ॥ ॐ वं पं वनमालायै पद्मनाभाय वै नमः । निर्बीजपदमन्त्राणां पदैरङ्गानि कल्पयेत् ॥ १५ ॥ जात्यन्तैर्नामसंयुक्तैर्हृदयादीनि पञ्चधा । प्रणवं हृदयादीनि ततः प्रोक्तानि पञ्चधा ॥ १६ ॥ प्रणवं हृदयं पूर्वं परायेति शिरः शिखा । नाम्नात्मना तु कवचमस्त्रं नामान्तकं भवेत् ॥ १७ ॥ ॐ परास्त्रादिश्च नामात्मा चतुर्थ्यन्तो नमोऽन्तकः । एकव्यूहादिषड्विंशव्यूहान्तः स्यात्समो मनुः ॥ १८ ॥

---

(३) प्रद्युम्न, (४) अनिरुद्ध, (५) नारायण, (६) ब्रह्मा, (७) विष्णु, (८) नरसिंह, और वराह । इन सबों का अङ्गन्यास इस प्रकार से होता है- ओम् आं हृदयाय नमः, ओम् ईं शिरसे स्वाहा, ओम् ऊँ शिखायै वषट्, ओम् ऐं कवचाय हुम्, ओम् औं नेत्राभ्यां वषट्, ओम् अस्त्राय फट् ।। जिन मन्त्रों के बीज मन्त्रों के प्रारमभ में व्यञ्जन होते हैं, उनके लक्षण (स्वरूप) दूसरे प्रकार के होते हैं। वे दीर्घस्वरों के द्वारा विभक्त होते हैं तथा उनके अन्त में नमः पद लगा रहता है । उनके ह्रस्व वर्ण से युक्त अङ्ग उपाङ्ग कहलाते हैं ।। ६-७ ।। उपास्य देवता के नाम में पाए जाने वाले वर्ण को अनुस्वार से युक्त करके अङ्गन्यास को करना उत्तम है । अथवा देवता के नाम के आदि अक्षर को दीर्घस्वरों के क्रम से अङ्गों तथा उपाङ्गों में न्यास क्रमशः करना चाहिए ।। ८ ।। हृदयादि न्यास के लिए व्यञ्जनों का यही क्रम है । अङ्गन्यास करने के लिए देवता के स्वर वीजों के अन्त में देवता का नाम जोड़कर उसके अन्त में अङ्गों का नाम जोड़कर अङ्गन्यास वाक्य बनाना चाहिए । पाँच अङ्गों से लेकर वारह अङ्गों तक के न्यास वाक्य की कल्पना करके सिद्धि प्राप्ति के अनुकूल मन्त्रों का जप करना चाहिए ।। ९-१० ।। हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र तथा अस्त्र ये छह अङ्ग हैं । इन अङ्गों में मूलमन्त्र के बीज स्वरों का न्यास करना चाहिए । बारह अङ्गों के न्यास, क्रमशः ये हैं- (१) हृदय, (२) शिर, (३) शिखा, (४) दोनों हाथ, (५) दोनों नेत्र, (६) उदर, (७) पृष्ठ, (८) दोनों भुजाएँ, (९) ऊरू, (१०) दोनों जानु (घुटने), (११) दोनों जंघे तथा (१२) दोनों पैर । इनमें क्रमशः न्यास करना चाहिए ।। ११-१२ ।। कं ठं शं पं वैनतेयाय नमः यह गरुड का मन्त्र है, खं ठं फं षं गदायै नमः यह गदा का मन्त्र है, गं दं वं सं पुष्टयै नमः यह पुष्टि देवी का मन्त्र है, घं टं भं हं श्रियै नमः, यह श्रीदेवी का मन्त्र है, चं णं मं क्षं पाञ्चजन्याय नमः यह पाञ्चजन्य मन्त्र है, छं तं पं कौस्तुभाय नमः' यह कौस्तुभ मणि का मन्त्र है, जं खं वं, सुदर्शनाय नमः, यह सुदर्शन चक्र का मन्त्र है, सं वं दं लं श्रीवत्साय नमः यह श्रीवत्सचिह्न का मन्त्र है, ओम् वं वनमालायै नमः यह वनमाला का मन्त्र है, तथा ओम् पं पद्मनाभय नमः यह पद्ममन्त्र है । वीजमन्त्र रहित मन्त्रों के पद के अक्षरों से ही अङ्गन्यास करना चाहिए ।। १३-१५ ।। जिनके अन्त में जाति होती है ऐसे नामों से युक्त हृदय आदि अङ्ग पाँच प्रकार के होते हैं। इसीलिए प्रणव से युक्त हृदय आदि अङ्ग पाञ्च प्रकार के कहे गये हैं । हृदयादिन्यास में पहले सप्रणवक उच्चारण करके फिर हृदय का उच्चारण करके अन्त में नमः पद का उच्चारण करना चाहिए । फिर पराय पद के उच्चारण के पश्चात् चतुर्थ्यन्त शिर पद का उच्चारण करना चाहिए । अर्थात् ओम् पराय शिरसे स्वाहा कहकर सिर का स्पर्श करना चाहिए । पुनः वासुदेव नाम का उच्चारण करके शिखा का स्पर्श करना चाहिए । अर्थात् ओम् वासुदेवाय शिखायै वषट् कहकर शिखा का स्पर्श करना चाहिए । चतुर्थ्यन्त आत्मा पदोच्चारण पूर्वक कवच का स्पर्श करना चाहिए। अर्थात् 'ओम् आत्मने कवचाय हुम्' इस वाक्य का उच्चारण करके कवच (दोनों हाथों से परस्पर दोनों भुजाओं) का स्पर्श करना चाहिए । तदनन्तर भगवान् वासुदेव का चतुर्थ्यन्त नाम लेकर अस्त्रन्यास करना चाहिए । अर्थात् ओम् वासुदेवाय अस्त्राय फट् यह कहकर अस्त्र न्यास करना चाहिए । न्यास में पहले ओम् पुनः चतुर्थ्यन्त परादिपद पुनः अस्त्र आदि जाति नाम का उच्चारण करना चाहिए। नामात्मक पद को चतुर्थ्यन्त (चतुर्थी विभक्ति) से युक्त होना चाहिए। यह मन्त्र एक व्यूह (वासुदेव) से लेकर छब्बीस व्यूह पर्यन्त के समान है।।१६-१८।।

कनिष्ठादिकराग्रेषु प्रकृतिं देहकेऽर्चयेत् । पराय पुरुषात्मा स्यात् प्रकृत्यात्मा द्विरूपकः ॥ १९ ॥ ॐ परायाग्न्यात्मने च वाय्वर्कौ वह्निरूपकः । अग्निं त्रिमूर्तौ विन्यस्य व्यापकं करदेहयोः ॥ २० ॥ ऋग्वेदं व्यापकं हस्ते अङ्गुलीषु यजुर्न्यसेत् । तलद्वयेऽथर्वरूपं शिरोहृच्चरणान्तगम् ॥ २२॥ आकाशं व्यापकं न्यस्य करे देहे तु पूर्ववत् । अङ्गुलीषु च वाय्वादि शिरोहृद्गुह्यपादके ॥ २३ ॥ वायुर्ज्योतिर्जलं पृथ्वी पञ्चव्यूहःसमीरितः । मनः श्रोत्रं त्वग् दृग् जिह्वा घ्राणं षड्व्यूह ईरितः॥२४॥ व्यापकं मानसं न्यस्य ततोऽङ्गुष्ठादितः क्रमात् । मूर्धास्यहृद्गुह्यपत्सु कथितः करणात्मकः॥ २५ ॥ आदिमूर्तिस्तु सर्वत्र व्यापको जीवसञ्ज्ञितः । भूर्भुवः स्वर्महर्जनस्तपः सत्यं च सप्तधा ॥ २६ ॥ करे देहे न्यसेदाद्यमङ्गुष्ठादिक्रमेण तु । तलसंस्थः सप्तमश्च लोकात्मा देहके क्रमात् ॥ २७ ॥ देवः शिरोललाटास्यहृद्गुह्याङ्घ्रि संस्थितः ॥ अग्निष्टोमस्तथोक्थस्तु षोडशी वाजपेयकः ॥ २८ ॥ अतिरात्राऽप्तोर्यामश्च यज्ञात्मा सप्तरूपकः। धीरहं मनः शब्दश्च स्पर्शरूपरसास्ततः ॥ २९ ॥ गन्धो बुद्धिर्व्यापकं च करे देहे न्यसेत्क्रमात् । न्यसेदङ्घ्रौ च तलयोः के ललाटे मुखे हृदि॥ ३०॥ नाभौ गुह्ये च पादे च अष्टव्यूहः पुमान्स्मृतः । जीवो बुद्धिरहङ्कारो मनः शब्दो गुणोऽनिलः॥३१॥

विशेष– अङ्गों की जातियाँ पाँच हैं– नमः, स्वाहा, वषट्, हुम् और फट् । हृदय की नमः जाति है, शिर की स्वाहा जाति है, शिखा और नेत्र की वषट् जाति है, कवच की हुम् जाति है तथा अस्त्र की फट् जाति है । सत्रहवें श्लोक में नेत्रों का न्यास नहीं लिखा है । उसका कारण यह है कि नेत्रों की और शिखा की एक ही जाति है । अतएव अस्त्रन्यास में प्रयुक्त वासुदेव पद से पूर्व के चतुर्थ्यन्त पद के साथ नेत्रों का न्यास होगा। अर्थात् ओम् पराय नेत्राभ्यां वषट् यह नेत्र न्यास का वाक्य होगा । इस तरह क्रमशः अङ्गन्यास के ये मन्त्र होंगे । ओम् हृदयाय नमः, ओम् पराय शिरसे स्वाहा, ओम् वासुदेवाय शिखायै वषट् ओम् कवचाय हुम्, ओम् पराय नेत्राभ्यां वषट् । ओम् वासुदेवाय अस्त्राय फट् । कनिष्ठा आदि अंगुलियों के अग्रभागों में प्रकृति की देह में अर्चना करनी चाहिए । पर वासदुव के न्यास में प्रयुक्त पराय पद परमात्म पुरुष को बतलाता है । उस परमात्मा के दो रूप हैं– पुरुषात्मा रूप तथा प्रकृत्यात्मा रूप ।। १९ ।। 'ओम् परायाग्नयात्मने नमः' यह व्यापक मन्त्र है। पराय पद अग्नि का वाचक है । अग्नि त्रिमूर्ति है– वसुमूर्ति, अर्कमूर्ति तथा अग्निमूर्ति । इस त्रिमूर्ति में अग्नि का विधिवत् न्यास करके हाथ तथा पूरे शरीर में व्यापक न्यास करना चाहिए ।। २०।। बाएँ तथा दाहिने हाथ की अंगुलियों में वायु तथा सूर्य का न्यास करना चाहिए । यह तीन व्यूह मानने पर पूजन का विधान है ।। चार व्यूह भगवान् के स्वीकार करने पर- ऋग्वेद का व्यापक न्यास हाथ में करना चाहिए, अंगुलियों में यजुर्वेद का व्यापक न्यास करना चाहिए, दोनों हथेलियों में अथर्ववेद रूपी व्यापक का न्यास करना चाहिए तथा शिर, हृदय तथा चरण में अन्तिम सामवेद रूपी व्यापक का न्यास करना चाहिए ।। २१-२२ ।। पञ्च व्यूह पक्ष में - पहले के ही समान आकाश का हाथ शरीर तथा अंगुलियों में व्यापक न्यास करना चाहिए । वायु आदि (अग्नि, जल, तथा पृथिवी) का क्रमशः शिर, हृदय, गुह्याङ्ग तथा पैर में करना चाहिए । आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी ये पञ्च व्यूह कहे गये हैं । मन, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा तथा घ्राण ये षड्व्यूह कहे गए हैं ।।२३-२४।। **विशेष–** चतुर्व्यूह पक्ष में चारो वेदों को ब्यूह माना गया है । पञ्च व्यूह पक्ष में पञ्चभूतों को यह माना गया है । इन भूतों का क्रम (आकाशः सम्भूतः, आकाशाद् वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी', इस श्रुत्युक्त प्रक्रिया से ही पञ्चभूतों का क्रम रख गया है । षड्व्यूह पक्ष में पञ्चज्ञानेन्द्रियों के साथ-साथ मन को भी इन्द्रिय मानकर उसको व्यूहान्तर्गत माना गया है । भगवान् ने भी गीता में कहा है– 'मनः षष्ठानीन्द्रियाणि ।' मन का व्यापक न्यास करके उसके पश्चात् पाञ्च ज्ञानेन्द्रियों का अंगुष्ठ आदि के क्रम से पाञ्चों अंगुलियों में तथा मूर्धा (शिर) आस्य (मुख) हृदय, गुप्ताङ्ग तथा पैरों में न्यास करना चाहिए । यह न्यास इन्द्रियात्मक न्यास कहा गया है ।। २५ ।। जीव संज्ञक आदि मूर्ति तो सर्वत्र व्यापक है, भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः तथा सत्यम् ये सात लोकात्मक सप्त व्यूह हैं।। २६ ।। इन सात लोकों में से प्रथम भूः का हाथ में तथा सम्पूर्ण शरीर में न्यास करके शेष छह लोकों में से पाँच का पाँचों अंगुलि में न्यास करना चाहिए । सातवें 'सत्यम्' का करतल (हथेली) में न्यास करना चाहिए। यह सप्तलोकात्मक न्यास है । इसका क्रमशः सम्पूर्ण शरीर में न्यास किया जाता है ।। २७ ।। देह, शिर, ललाट, मुख, हृदय, गुह्याङ्ग तथा चरण इनके साथ स्थानों में स्थित, अग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम तथा यज्ञात्मा ये सप्तयज्ञात्मक भी सप्तव्यूह हैं ।। २८।। बुद्धि, अहंकार, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और

रूपं रसो नवात्मायं जीव अङ्गुष्ठकद्वये। तर्जन्यादिक्रमाच्छेषं यावद्वामप्रदेशिनम्॥ ३२॥ देहे शिरोललाटास्यहृन्नाभिगुह्यजानुषु। पादयोश्च दशात्मायमिन्द्रो व्यापी समास्थितः॥ ३३॥ अङ्गुष्ठकद्वये वह्नौ तर्जन्यादौ परेषु च। शिरोललाटवक्त्रेषु हृन्नाभिगुह्यजानुषु ॥ ३४ ॥ पादयोरेकादशात्मा मनः श्रोत्रं त्वगेव च। चक्षुर्जिह्वा तथा घ्राणं वाक् पाण्यङ्घ्रिश्च पायुकः॥ ३५॥ उपस्थं मानसोव्यापी श्रोत्रमङ्गुष्ठकद्वये। तर्जन्यादि क्रमादष्टावतिरिक्तं तलद्वये॥३६॥ उत्तमाङ्गललाटास्यहृन्नाभ्यङ्घ्रिषु गुह्यके। ऊरुयुग्मे तथा जङ्घागुल्फपादेषु च क्रमात्॥ ३७॥ विष्णुर्मधुहरश्चैव त्रिविक्रमकवामनौ। श्रीधरोऽथ हृषीकेशः पद्मनाभस्तथैव च ॥ ३८ ॥ दामोदरः केशवश्च नारायण इतः परः। माधवश्चाथ गोविन्दो विष्णुर्वै व्यापकं न्यसेत् ॥ ३९ ॥ अङ्गुष्ठादौ तले चैव पादे जानुनि वै कटौ। शिरःशिखोरःकट्यास्यजानुपादादिषु न्यसेत् ॥ ४०॥ द्वादशात्मा पञ्चविंश षड्विंशव्यूहकस्तथा। पुरुषो धीरहङ्कारो मनश्चित्तं च शब्दकः ॥ ४१॥ तथा स्पर्शो रसो रूपं गन्धः श्रोत्रं त्वचस्तथा। चक्षु जिह्वा नासिका च वाक्पाण्यङ्घ्री च पायवः ॥ ४२॥ उपस्थो भूर्जलं तेजो वायुराकाशमेव च। पुरुषं व्यापकं न्यस्य अङ्गुष्ठादौ दश न्यसेत् ॥ ४३॥ शेषान्हस्ततले न्यस्य शिरस्यथ ललाटके। मुखहृन्नाभिगुह्योरुजान्वङ्घ्रिकरणोद्गते ॥ ४४॥ पादे जान्वोरुपस्थे च हृदये मूर्ध्नि च क्रमात्। परश्च पुरुषात्मादौ षड्विंशे पूर्ववत् परम् ॥ ४५ ॥ सञ्चिन्त्य मण्डलेऽब्जे तु प्रकृतिं पूजयेद् बुधः। पूर्वयाम्याप्यसौमीषु हृदयादीनि विन्यसेत् ॥ ४६ ॥ अस्त्रमग्न्यादिपत्रेषु वैनतेयादि पूर्ववत्। दिक्पालांश्च विधिस्तुल्यस्त्रिव्यूहेऽग्निश्च मध्यतः ॥४७॥ पूर्वादिदिग्दलावासैः पाद्यादिभिरलङ्कृतः। कर्णिकायां नाभसश्च मानसः कर्णिकास्थितः॥४८॥

गन्ध यह अष्ट व्यूह हैं। बुद्धि का व्यापक न्यास हाथ तथा शरीर में क्रमशः दोनों चरण के तलवों, मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्याङ्ग तथा पैर में करना चाहिए।पुरुष को अष्टव्यूह स्वरूप कहा गया है।। ३०।। जीव, बुद्धि, अहंकार, मन, शब्द, स्पर्श, (वायु का गुण) रूप, रस तथा गन्ध यह नव व्यूह हैं। जीव का न्यास दोनों हाथ के अंगुष्ठकों में करना चाहिए। शेष आठ तत्त्वों का न्यास दाहिने हाथ की तर्जनी से लेकर बाएँ हाथ की तर्जनी अंगुलिपर्यन्त आठ अंगुलियों में करना चाहिए ।। ३२ ।। नवव्यूह में बतलाए गए नव तत्त्वों का क्रमशः सम्पूर्ण शरीर, शिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि गुप्ताङ्ग, जानु (घुटनों) तथा पैरों में करके इन्द्र का व्यापक न्यास किया जाय तो यह दश व्यूह का न्यास हो जाता है ।। ३३ ।। दोनों अंगूठों, शिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुप्ताङ्ग, जानुओं तथा दोनों पैरों में एकादश इन्द्रियों का न्यास करने से एकादश व्यूहात्मक न्यास हो जाता है ।। मन, श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ ये ग्यारह इन्द्रियाँ हैं। मन से ध्यान करते हुए दोनों अंगुष्ठों में तथा तर्जन्यादि आठ अंगुलियों में इनका का न्यास करना चाहिए। मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, चरण, गुप्ताङ्ग, दोनों ऊरु, जङ्घा, गुल्फ तथा चरणों में क्रमशः ग्यारह तत्त्वों का न्यास करना चहिए ।। ३४-३६ ।। विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, केशव, नारायण, माधव तथा गोविन्द ये द्वादश व्यूह हैं। विष्णु का व्यापक न्यास करना चाहिए। अंगुष्ठ आदि अंगुलियों में करतल में, पैर में, घुटनों में, कटि में, शिर में, शिखा में, हृदय में, कटि में, मुख में, जानु में तथा पाद आदि में इन बारहों व्यूहों का न्यास करना चाहिए ।। ३८-४० ।। यही द्वादश व्यूह कहलाता है। अब पंचविंश (२५) व्यूह तथा षड्विंश (२६) व्यूह का वर्णन किया जाता है। पुरुष, बुद्धि, अहंकार, मन, चित्त, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, नासिका, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ (लिङ्ग), भू, जल, पृथिवी, तेज, वायु तथा आकाश। ये पञ्चविंशव्यूह के पच्चीस तत्त्व हैं। पुरुष का सम्पूर्ण शरीर में व्यापक न्यास करके अंगूठे आदि में दस का तत्त्वों का न्यास करें। पुनः अवशिष्ट चौदह तत्त्वों का क्रमशः निम्नांकित चौदह अङ्गों में न्यास करना चाहिए। हथेली, शिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्याङ्ग, ऊरू, चरण, जानु, उपस्थ (लिङ्ग) हृदय, तथा मस्तक। षड्विंश न्यास में परम पुरुष परमात्मा का आत्मा आदि में न्यास करके अवशिष्ट पच्चीस तत्त्वों को पञ्चविंश न्यास के ही समान न्यास करना चाहिए। (परमात्मा के अतिरिक्त षड्विंशन्यास के वे ही पच्चीस तत्त्व हैं जो पंचविंश व्यूह में वर्णित हैं ।। ४१-४५ ।। विद्वान् को चाहिए कि वह प्रकृति का कमल मण्डल में ध्यान करके उसका पूजन करे। पद्ममण्डल के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दलों में हृदयादि अङ्गों का न्यास करना चाहिए। आग्नेयादि कोणों के मण्डलों में पहले के ही समान गरुड़ आदि का न्यास करना चाहिए। (इन्द्रादि दस) दिक्पालों की पूर्वादि दिशाओं में स्थापना करके उनकी पहले के ही समान पूजन करना चाहिए। मध्य के त्रिव्यूह में अग्नि की स्थापना करनी चाहिए। इन सभी देवताओं को चिन्तन के द्वारा पाद्यादि से अलङ्कृत करना चाहिए। पाद्म मण्डल की कर्णिका में आकाश तथा मानस ये तत्त्व स्थित हैं। राज्य प्राप्ति के लिए व्यूहों, पाञ्चों अङ्गों,

विश्वरूपं सर्वसिद्ध्यै यजेद्राज्यजयाय च । सर्वव्यूहैः समायुक्तमङ्गैरपि च पञ्चभिः।। ४९।। गरुडाद्यैस्तथेन्द्राद्यैः सर्वान्कामनवाप्नुयात् । विष्वक्सेनं यजेन्नाम्ना रौं बीजं नामसंयुतम् ।। ५०।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वासुदेवादिमन्त्रलक्षणवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।। २५ ।।

अथ षड्विंशोऽध्यायः

मुद्रालक्षणानि

नारद उवाच— **मुद्राणां लक्षणं वक्ष्ये सान्निध्यादिप्रकारकम् । अञ्जलिः प्रथमा मुद्रा वन्दनी हृदयानुगा ।। १ ।। ऊर्ध्वाङ्गुष्ठो वाममुष्टिदक्षिणाङ्गुष्ठबन्धनः। सव्यस्य तस्य चाङ्गुष्ठो यस्य चोर्ध्वं प्रकीर्तितः ।। २ ।। तिस्रः साधारणा व्यूहे अथासाधारणा इमाः । कनिष्ठादिविमोकेन अष्टौ मुद्रा यथाक्रमम्।। ३।। अष्टानां पूर्वबीजानां क्रमशस्त्ववधारयेत् । अङ्गुष्ठेन कनिष्ठान्तं नामयित्वाङ्गुलित्रयम् ।। ४ ।। ऊर्ध्वं कृत्वा सम्मुखं च बीजाय नवमाय वै । वामहस्तमथोत्तानं कृत्वोर्ध्वं नामयेच्छनैः ।। ५।। वराहस्य स्मृता मुद्रा अङ्गानां च क्रमादिमाः । एकैकां मोचयेन्मुद्रां वाममुष्टौ तथाङ्गुलीम् ।। ६ ।। आकुञ्चयेत्पूर्वमुक्तां दक्षिणेऽप्येवमेव च । ऊर्ध्वाङ्गुष्ठो वाममुष्टिर्मुद्रासिद्धिस्ततो भवेत् ।। ७ ।।**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मुद्रालक्षणवर्णनं नाम षड्विंशोध्यायः ।। २६ ।।

गरुड़ादि पार्षदों तथा इन्द्रादि से युक्त विश्वरूप परमात्मा का पूजन करके साधक अपने सभी मनोरथों को पूर्ण कर लेता है । अन्त में रौं बीज लगाकर नाम से विष्वक्सेन का पूजन करना चाहिए। विष्वक्सेन के पूजन का मन्त्र- 'रौं विष्वक्सेनाय नमः ।' होगा ।। ४६-५० ।।

इस त रह आदिमहापुराण अग्निपुराण का वासुदेवादि मन्त्र लक्षण वर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।। २५ ।।

श्रीनारदजी ने कहा— अब मैं सान्निध्य आदि जिनके भेद हैं, उन मुद्राओं का लक्षण बतलाऊँगा । पहली मुद्रा अञ्जलि मुद्रा है दूसरी बन्दनी तथा तीसरी हृदयानुगा मुद्रा है ।। १ ।। हाथ जोड़कर अञ्जलि बनाने को अञ्जलि मुद्रा कहते हैं। हाथ जोड़कर उसे शिर से लगाकर नमस्कार करने को वन्दनी मुद्रा कहते हैं । दोनों हाथों के अंगूठे ऊपर की ओर उठे रहें, वायें हाथ की मुट्ठी से दाहिने हाथ के अंगूठे को बाँध लें, और बाऐं हाथ के अंगूठे को ऊपर की ही ओर उठाए रहे, तो यह हृदयानुगा मुद्रा होती है ।। २ ।। ब्यूह पूजन में ये तीन मुद्राएँ तो साधारण (सामान्य) हैं अब असाधारण मुद्रा बतलायी जा रही है । दोनों हाथों की अंगुलियों को झुका लेने के पश्चात् क्रमशः एक-एक करके कनिष्ठा आदि अंगुलियों को सीधा करने से आठ मुद्राएँ बनती हैं ।। ३ ।। अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग तथा शवर्ग इन आठ वर्गों के बीज अं, कं, चं, टं, तं, पं, यं तथा शं को सूचित करने के लिए पूर्वोक्त आठ मुद्राएँ हैं । अंगुष्ठ से लेकर कनिष्ठि का पर्यन्त की तीन अंगुलियों को झुकाकर पुनः सामने करके हाथ को ऊपर करने पर जो मुद्रा बनती है वह नवें क्षं वीज को सूचित करती है । दाहिने हाथ के ऊपर बाएँ हाथ को उत्तान करके अंगुलियों को धीरे-धीरे ऊपर की ओर झुकाने पर जो मुद्रा बनती है उसे बराह मुद्रा कहते हैं। ये क्रमशः अङ्गों की मुद्राएँ हैं। एक-एक मुद्रा को छोड़ना चाहिए। इसी तरह बाएँ हाथ की मुट्ठी के एक-एक अंगुली को सीधा करना चाहिए, तथा पहले से सीधी की हुई अंगुलियों को एक-एक करके मोड़ना चाहिए । इसी तरह से दाहिने हाथ की भी मुद्रा करनी चाहिए । बाएँ हाथ की मुट्ठी के अंगूठे को ऊपर की ओर उठाए रखना चाहिए । ऐसा करने से मुद्रा की सिद्धि हो जाती है ।। ४-७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का मुद्रा लक्षण वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।। २६ ।।

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

शिष्येभ्यो दीक्षादानविधिः

नारद उवाच– **वक्ष्ये दीक्षां सर्वदा च मण्डलेऽब्जे हरिं यजेत् । दशम्यामुपसंहृत्य यागद्रव्यं समस्तकम् ॥ १ ॥ विन्यस्य नारसिंहेन सम्मन्त्र्य शतवारकम् । सर्षपांस्तु फडन्तेन रक्षोघ्नान्सर्वतः क्षिपेत् ॥ २ ॥ शक्तिं सर्वात्मिकां तत्र न्यसेत्प्रासादरूपिणीम् । सर्वौषधीः समाहृत्य विकिरानभिमन्त्रयेत्॥३॥ शतवारं शुभं पात्रे वासुदेवेन साधकः । संसाध्य पञ्चगव्यं तु पञ्चभिर्मूलमूर्तिभिः ॥ ४ ॥ नारायणान्तैः सम्प्रोक्ष्य कुशाग्रैस्तेन तां भुवम् । विकिरान्वासुदेवेन क्षिपेदुत्तानपाणिना ॥ ५ ॥ त्रिधा पूर्वमुखस्तिष्ठन् ध्यायन् विष्णुं तदा हृदि । वर्धन्या सहिते कुम्भे साङ्गं विष्णुं प्रपूजयेत् ॥ ६ ॥ शतवारं मन्त्रयित्वा त्वस्त्रेणैव च वर्धनीम् । अच्छिन्नधारया सिञ्चन्नैशान्यान्तं नयेच्च ताम् ॥ ७ ॥ कलशं पृष्ठतो नीत्वा स्थापयेद्विकिरोपरि । संहृत्य विकिरान्दर्भैः कुम्भेशं कर्करीं यजेत् ॥ ८ ॥ सवस्त्रे पञ्चरत्नाढ्ये स्थण्डिले पूजयेद्धरिम् । अग्नावपि समभ्यर्च्य मन्त्रैः सन्तर्प्य पूर्ववत् ॥ ९ ॥ प्रक्षाल्य पुण्डरीकेण विलिप्यान्तः सुगन्धिना । उखामाज्येन सम्पूर्य गोक्षीरेण तु साधकः ॥ १० ॥ आलोड्य वासुदेवेन ततः सङ्कर्षणेन च । तण्डूलानाज्यसंसृष्टान् क्षिपेत् क्षीरे सुसंस्कृते ॥ ११ ॥ प्रद्युम्नेन समालोड्य दर्व्या सङ्घट्येच्छनैः । पक्वमुत्तारयेत्पश्चादनिरुद्धेन देशिकः ॥ १२॥ प्रक्षाल्यालिप्य तत्कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं तु भस्मना । नारायणेन पार्श्वेषु चरुमेवं सुसंस्कृतम् ॥ १३ ॥ भागमेकं तु देवाय कलशाय द्वितीयकम् । तृतीयेन तु भागेन प्रदद्यादाहुतित्रयम् ॥१४॥ शिष्यैः सह चतुर्थं तु गुरुरद्याद्विशुद्धये । नारायणेन सम्मन्त्र्य सप्तधा क्षीरवृक्षजम् ॥१५॥ दन्तकाष्ठं भक्षयित्वा**

नारदजी ने कहा– अब मैं दीक्षाविधि का वर्णन करता हूँ । सर्वदा पद्ममण्डल पर श्री हरि का यजन करना चाहिए । दशमी तिथि को याग की सारी सामग्री एकत्रित करके रखकर 'क्ष्रौं' इस नारसिंह मन्त्र से सौ बार अभिमन्त्रित करके क्ष्रौं फट् इस रक्षोघ्न मन्त्र से सब जगह सरसो (पीली) छिड़कना चाहिए ।। १-२।। उसके पश्चात् वहाँ पर प्रासाद रूपिणी सर्वात्मिका शक्ति का न्यास करना चाहिए। साधक को चाहिए कि वह सभी औषधियों को एकत्रित करके, शुभ पात्र में [illegible] को रखकर वासुदेव मन्त्र से उसे सौ बार अभिमन्त्रित करे । वासुदेव से लेकर नारायण पर्यन्त पाँच मूलमूर्तियों (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा नारायण) के मन्त्रों से पञ्चगव्य तैयार करके, कुश के अग्रभाग से उस पञ्चगव्य द्वारा भूमि का प्रोक्षण करके, ऊपर की ओर (उत्तान) हाथ करके वासुदेव मन्त्र से सरसो छींटे ।। ३-५ ।। उस समय पूर्वाभिमुख होकर तीन बार भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए, वर्धनी से युक्त कलश पर भगवान् विष्णु की विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिए ।। ६ ।। अस्त्र मन्त्र के द्वारा उसे सौ बार अभिमन्त्रित करके वर्धनी को अविच्छिन्न जल धारा से सिंचित करते हुए ईशानकोण पर लाए ।। ७ ।। पीछे से कलश लाकर विकिर (सरसों) के ऊपर स्थापित करे। कुशे से सरसों को बिटोरकर कुम्भेश तथा कर्करी की पूजा करनी चाहिए ।। ८ ।। वस्तु तथा पञ्चरत्न से समलंकृत वेदी पर श्रीहरि की पूजा करे । अग्नि में भी मन्त्रों द्वारा पूजन करके पहले के ही समान तर्पण करके ।। ९ ।। '**ओमपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि । यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स वाह्याभ्यन्तरः शुचिः ।**' इस पुण्डरीकाक्ष मन्त्र से, उखा (बटलोही) का प्रोक्षण करके ऊसके भीतर सुगन्धित घी लगाकर, गोदुग्ध से उसको भरकर, वासुदेव मन्त्र से उसको चलाकर उस सुसंस्कृत दुग्ध में घी मिले हुए चावल को साधक संकर्षण मन्त्र से डाले ।। ९-११ ।। आचार्य को चाहिए कि वे प्रद्युम्न मन्त्र से उसको करछुल से चलाकर धीरे-धीरे उसे मिलाए और पक जाने पर खीर को अनिरुद्ध मन्त्र से उतार दें ।। १२ ।। वहाँ भूमि को धोकर तथा लिपकर चरु के बगल में भस्म से उर्ध्वपुण्ड्र बना देना चाहिए । इस तरह से उस सुसंस्कृत चरु को चार भाग में विभक्त करे ।। १३ ।। उसका एक भाग भगवान् को और दूसरा भाग कलश को समर्पित करके तीसरे भाग से तीन आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिए ।। १४ ।। चतुर्थ भाग को आचार्य शिष्यों के साथ खाएँ । दूसरे दिन (एकादशी तिथि को) दूध वाले वृक्ष के दातून को नारायण मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित

त्यक्त्वा ज्ञात्वा स्वपातकम् । ऐन्द्राग्न्युत्तरकैशानीमुखः स्नातो ह्यनुत्तमम् ॥ १६ ॥ शुभं सिद्धमिति ज्ञात्वाचम्य प्राणान्नियम्य च । पूजागारं विशेन्मन्त्री प्रार्थ्य विष्णुं प्रदक्षिणम्॥१७॥ संसारार्णवमग्नानां पशूनां पाशमुक्तये । त्वमेव शरणं देव ! सदा त्वं भक्तवत्सलः ॥ १८ ॥ देवदेवानुजानीहि प्राकृतैः पाशबन्धनैः । पाशितान् मोचयिष्यामि त्वत्प्रसादात्पशूनिमान् ॥ १९ ॥ इति विज्ञाप्य देवेशं सम्प्रविश्य पशूंस्ततः । धारणाभिस्तु संशोध्य पूर्ववज्ज्वलनादिना ॥ २० ॥ संस्कृत्य मूर्त्या संयोज्य नेत्रे बद्ध्वा प्रदर्शयेत् । पुष्पपूर्णाञ्जलींस्तत्र क्षिपेत्तन्नाम योजयेत् ॥ २१ ॥ अमन्त्रमर्चनं तत्र पूर्ववत्कारयेत् क्रमात् । यस्यां मूर्तौ पतेत्पुष्पं तस्य तन्नाम निर्दिशेत् ॥ २२ ॥ शिखान्तसम्मितं सूत्रं पादाङ्गुष्ठादि षड्गुणम् । कन्यया कर्तितं रक्तं पुनस्तत् त्रिगुणीकृतम् ॥ २३॥ यस्यां संलीयते विश्वं यतो विश्वं प्रसूयते। प्रकृतिं प्रक्रियाभेदैः संस्थितां तत्र चिन्तयेत् ॥ २४ ॥ तेन प्राकृतिकान् पाशान् ग्रथित्वा तत्त्वसङ्ख्यया। कृत्वा शरावे तत्सूत्रं कुण्डपार्श्वे निधाय तु ॥ २५॥ ततस्तत्त्वानि सर्वाणि ध्यात्वा शिष्यतनौ न्यसेत् । सृष्टिक्रमात् प्रकृत्यादिपृथिव्यन्तानि देशिकः॥२६॥ त्रेधा वा पञ्चधा वा स्याद् दशद्वादशधापि च । दातव्यः सर्वभेदेन ग्रथितस्तत्त्वचिन्तकैः ॥ २७ ॥ अङ्गैः पञ्चभिरक्रान्तं निखिलं प्रकृतिक्रमात् । तन्मात्रात्मनि संहृत्य मायासूत्रे पशोस्तनौ ॥ २८ ॥ प्रकृतिर्लिङ्गशक्तिश्च कर्ता बुद्धिस्तथा मनः । पञ्चतन्त्रमात्रबुद्ध्याख्यं कर्माख्यं भूतपञ्चकम् ॥ २९ ॥ ध्यायेच्च द्वादशात्मानं सूत्रे देहे तथेच्छया । हुत्वा सम्पातविधिना सृष्टेः सृष्टिक्रमेण तु ॥३०॥ एकैकं शतहोमेन दत्त्वा पूर्णाहुतिं ततः । शरावे सम्पुटीकृत्य कुम्भेशाय निवेदयेत् ॥ ३१ ॥ अधिवास्य यथान्यायं भक्तं शिष्यं तु दीक्षयेत्। करणीं कर्तरीं चापि रजांसि

करके, दातून करे, पुनः उसे फेंककर, अपने पापों का स्मरण करते हुए स्थित होने की भावना करनी चाहिए फिर आचमन प्राणायाम के पश्चात् मन्त्रोपदेष्टा गुरु भगवान् विष्णु से प्रार्थना करके उनकी परिक्रमा के पश्चात् पूजा गृह में प्रवेश करे।। १५-१७।। प्रभों संसार पाश में बंधें पशुओं को छुटकारा दिलाने के लिए आप ही शरण दाता हैं। आप अपने भक्तों पर वात्सल्य भाव रखतें हैं।। १८।। देवाधि देव आज्ञा दीजिये प्राकृत पाश बन्धनों से बँधे हुए इन पशुओं को आज आपकी कृपा से मुक्त करूँगा।। १९।। श्री हरि से इस प्रकार प्रार्थना करके पूजा गृह में प्रवेश करे। गुरु पहले के ही समान अग्नि आदि की धारणाओं द्वारा शिष्यभूत समस्त पशुओं का शोधन करके संस्कार करने के पश्चात् उनका वासुदेवादि मूर्तियों से संयोग करो शिष्यों के नेत्र बाँधकर उन्हें मूर्तियों की ओर देखने का आदेश दे। शिष्य उन मूर्तियों की ओर पुष्पाञ्जलि फेंके। तदनुसार उनका नाम निर्देश करे। पूर्ववत् शिष्यों से क्रमशः मूतियों का मन रहित पूजन करावे। जिस शिष्य का फूल जिस मूर्ति पर गिरे उसका वही नाम गुरु करे।। २०-२२।। कुमारी कन्या के हाथ से काता हुआ लाल रंग का सूत उसके उसे छह गुना करके बट दे। उस छह गुने सूत की लम्बाई पैर के अंगूठें से लेकर शिखा तक होनी चाहिए फिर उसे भी मोड़कर तिहरा कर ले। फिर उसमें प्रकृति देवी का चिन्तन करे जिस प्रकृति देवी से विश्व उत्पन्न होकर उसी में लीन हो जाता है।। २४ ।। पुनः प्राकृत तत्त्वों की संख्या के अनुसार उस सूत्र में चौबीस गाँठें लगाकर, उसे परई में करके कुण्ड के बगल में रख देना चाहिए ।। २५ ।। उसके पश्चात् आचार्य प्रकृति से लेकर पृथिवी तत्त्व पर्यन्त समस्त तत्त्वों का सृष्टिक्रम से ध्यान करके, उन तत्त्वों का शिष्य के शरीर में न्यास करे ।। २६ ।। तत्त्वचिन्तन करने वाले आचार्य को यह क्रिया तीन बार, या पाँच बार, या दस बार, या बारह बार करना चाहिए तथा ग्रन्थि बन्धन का कार्य करना चाहिए ।। २७ ।। प्रकृति के क्रम से पाञ्च अङ्गों से संबद्ध, अङ्ग सम्पूर्ण न्यास मन्त्रों को पढ़कर पञ्चतन्मात्रात्मक माया सूत्रस्वरूप शिष्य के शरीर में प्रकृति, लिङ्गशक्तिकर्ता, बुद्धि तथा मन का उपसंहार करना चाहिए । पुनः शिष्य के शरीर में पञ्चतन्त्र मात्राओं, बुद्धि, मन तथा पञ्चमहाभूत का ध्यान करना चाहिए । फिर अपनी इच्छा के अनुसार हवन करके, प्रलय क्रम सें अथवा सृष्टि के क्रम से एक-एक मन्त्र से सौ-सौ बार हवन करके, फिर पूर्णाहुति देकर, सूत्र को शराव (कसोरे) में संपुटित करके उसे कुम्भेभांश को समर्पित करे ।। २८-३१ ।। पुनः उचित

खटिकामपि ॥ ३२ ॥ अन्यदप्युपयोगि स्यात्सर्वंतद् वामगोचरे । संस्थाप्य मूलमन्त्रेण परामृश्याधिवासयेत् ॥ ३३ ॥ नमो भूतेभ्यश्च बलिः कुशे देयः स्मरन्हरिम् । मण्डपं भूषयित्वाथ वितानघटलड्डुकैः ॥ ३४ ॥ मण्डलेऽथ यजेद्विष्णुं ततः सन्तर्प्य पावकम् । आहूय दीक्षयेच्छिष्यान्बद्धपद्मासनस्थितान्॥३५॥ सम्प्रोक्ष्य विष्णुहस्तेन मूर्धानं स्पृश्य वै क्रमात् । प्रकृत्यादिविकृत्यन्तां साधिभूताधिदेवताम् ॥ ३६ ॥ सृष्टिमाध्यात्मिकीं कृत्वा हृदि तां संहरेत्क्रमात्। तन्मात्रभूतां सकलां जीवेन समतां गताम् ॥ ३७ ॥ ततः सम्प्रार्थ्य कुम्भेशं सूत्रं संस्कृत्य देशिकः । अग्नेः समीपमागत्य पार्श्वे तं सन्निवेश्य तु ॥ ३८॥ मूलमन्त्रेण सृष्टीशमाहुतीनां शतेन तम् । उदासीनमथासाद्य पूर्णाहुत्या च देशिकः ॥ ३९ ॥ शुक्लं रजः समादाय मूलेन शतमन्त्रितम् । सन्ताड्य हृदयं तेन हुम्फूट्कारान्तसंयुतैः ॥ ४० ॥ वियोगपदसंयुक्तैर्बीजैः पादादिभिः क्रमात् । पृथिव्यादीनि तत्त्वानि विश्लिष्य जुहुयात्ततः ॥ ४१ ॥ वह्नावखिलतत्त्वानामालये व्याहृते हरौ । नीयमानं क्रमात्सर्वं तत्त्वाधारं स्मरेद् बुधः ॥ ४२ ॥ ताडनेन वियोज्यैवमादायापाद्य साम्यताम् । प्रकृत्याहृत्य जुहुयाद्यथोक्ते जातवेदसि॥ ४३ ॥ गर्भाधानं जातकर्म भोगं चैव लयं तथा । कृत्वाष्टौ तत्र तत्रैव ततः शुद्धं तु होमयेत् ॥ ४४ ॥ शुद्धं तत्त्वं समुद्धृत्य पूर्णाहुत्या तु देशिकः । सन्धयेद्धि परे तत्त्वे यावदव्याकृतं क्रमात् ॥ ४५ ॥ तत्परं ज्ञानयोगेन विलाप्य परमात्मनि । विमुक्तबन्धनं जीवं परस्मिन्नव्यये पदे ॥ ४६॥ निर्वृत्तं परमानन्दे शुद्धे बुद्धे स्मरेद् बुधः। दद्यात् पूर्णाहुतिं पश्चादेवं दीक्षा

विधि से अधिवास कराकर भक्त शिष्यों को आचार्य दीक्षित करें । उस समय शिष्य के बाएँ भाग में,करणी, कर्त्तरी (कैंची) रेत, खड़िया तथा अन्य सभी उपयोगी वस्तुओं को रखना चाहिए । उन सबों की स्थापना करके मूलमन्त्र से उन वस्तुओं का स्पर्श करके उनका अधिवास कराना चाहिए ।। ३२-३३ ।। श्रीहरि का स्मरण करते हुए 'नमो भूतेभ्यः इस मन्त्र से कुश के ऊपर बलि देनी चाहिए। पुनः मण्डप को अलंकृत करके घट की स्थापना करके उसमें लड्डू भर दे।।३४।। उसके पश्चात् मण्डप में भगवान् विष्णु का पूजन करे, उसके पश्चात् हवन करके, शिष्यों को बुलाकर पद्मासन से बैठे हुए शिष्यों को दीक्षा दे ।। ३५ ।। शिष्यों का प्रोक्षण करके विष्णुहस्त (शालग्राम भगवान् को अपने हाथ में लेकर) शिष्यों के शिर से क्रमशः स्पर्श कराए । पुनः साधिभूत तथा साधिदैवत प्रकृति से लेकर विकृति पर्यन्त (प्रकृति के चौबीस तत्त्वों प्रकृति, महान, अहंकार, पञ्चतन्मात्राएँ, पञ्चमहाभूत, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ और मन) की आध्यात्मिक सृष्टि करके, उन सबों का क्रमशः लय के क्रम से अपने हृदय में संहार करे । इस तरह सम्पूर्ण तन्मात्र स्वरूपा सृष्टि जीव के समान हो जाती है ।। ३६-३७ ।। इसके पश्चात् आचार्य कुम्भेश की प्रार्थना करके, सूत्र का संस्कार करें । पुनः अग्नि के समीप आकर शिष्य को अपने सन्किट बैठाएँ । पुनः (ब्रह्मा के) मूल मन्त्र से सृष्टि के स्वामी, ब्रह्म के लिए सौ आहुतियाँ दे । पुनः उदासीन भाव से आचार्य पूर्णाहुति के साथ शिष्य के सन्निकट आकर उजली मिट्टी (पासा) लेकर उसे सौ बार वराह भगवान् के मूलमन्त्र से अभिमन्त्रित करे पुनः उससे (अभिमन्त्रित धूल) करके, जिनके अन्त में हुं फट् लगा हो इस तरह के वियोग के वाचक क्रिया पद से तथा बीज मन्त्रों से युक्त वाक्य रचना करके (जैसे- रां नमः कर्मेन्द्रियाणि वियुंक्ष्व हुं फट् । ओं णं नमः भूतानि वियुंक्ष्व हुम्फट् । इत्यादि से पृथिवी आदि तत्त्वों का विश्लेषण करके हवन करना चाहिए ।। ३८-४१ ।। विद्वान् आचार्य को इस तरह से सभी तत्त्वों का क्रमशः (कार्य तत्त्वों का कारण तत्त्व में लय के क्रम से) लय कर लेने के पश्चात् उन समस्त तत्त्वों के आधार समस्त तत्त्वों के ताडन के द्वारा समस्त तत्त्वों को शिष्य से विश्लिष्ट करके शिष्य को शुद्ध बनाकर उसकी प्रकृति को पूर्वोक्त अग्नि में हवन कर देना चाहिए ।। ४३ ।। उसके पश्चात् गर्भाधान, जातकर्म, भोग तथा लय आठ बार करके आठों बार शुद्ध हवन करे ।। ४४ ।। आचार्य को चाहिए कि वे पूर्णहुति के द्वारा शुद्ध तत्त्व को उद्धृत करके अव्याकृत प्रकृति पर्यन्त समस्त तत्त्वों का क्रमशः परं तत्त्व में लय करे ।। ४५ ।। उसके पश्चात् ज्ञानयोग के द्वारा संसार के बन्धन से मुक्त जीव को अव्यय तथा परमप्राप्य परमात्मा में विलीन करके आचार्य यह अनुभव करें कि वह जीव शुद्ध बुद्ध तथा परमानन्द स्वरूप को प्राप्त कर चुका है । अन्त में आचार्य को पूर्णाहुति करनी चाहिए । ऐसा करने से दीक्षा पूर्ण होती है ।। ४६-४७ ।। अब मैं उन प्रयोग मन्त्रों को बतला रहा हूँ, जिन मन्त्रों

समाप्यते ॥ ४७ ॥ प्रयोगमन्त्रान् वक्ष्यामि यैर्दीक्षाहोमसंलयः । ओं यं भूतानि विशुद्धं हुं फट्। अनेन ताडनं कुर्याद् वियोजनमिह द्वयम् ॥ ४८ ॥ ॐ यं भूतान्यापातयेऽहम् । आदानं कृत्वा चानेन प्रकृत्या योजनं शृणु । ॐ यं भूतानि पुंश्चाहो । होममन्त्रं प्रवक्ष्यामि ततः पूर्णाहुतेर्मनुम् ॥ ४९॥ ॐ अं ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ओ वौषट् । पूर्णाहुत्यनन्तरं तु तत्त्वे शिष्यं तु सन्धयेत् ॥ ५० ॥ एवं तत्त्वानि सर्वाणि क्रमात् संशोधयेद् बुधः। नमोन्तेन स्वबीजेन ताडनादिपुरःसरम् ॥ ५१ ॥ ॐ रां कर्मेन्द्रियाणि, ॐ दें बुद्धीन्द्रियाणि (च) । यं बीजेन समानं तु ताडनादिप्रयोगकम् ॥ ५२॥ ओं सुं तं गन्धतन्मात्रे विम्बं युंक्ष्व हुं फट् । ॐ सं पाहि हां ॐ स्वं स्वं युङ्क्ष्व प्रकृत्या ॥ ५३ ॥ ओं जं हुं गन्धतन्मात्रे संहर स्वाहा । ततः पूर्णाहुतिश्चैवमुत्तरेषु प्रयुज्यते ॥ ५४ ॥ ॐ रां रसतन्मात्रे। ॐ तें रूपतन्मात्रे ॥ ५५ ॥ ॐ वं स्पर्शतन्मात्रे । ॐ यं शब्दतन्मात्रे ॥ ५६ ॥ ॐ भं नमः । ॐ मौ अहङ्कारः ॐ नं बुद्धौ । ॐ ॐ ॐ प्रकृतौ ॥ ५७ ॥ एकमूर्तावयं प्रोक्तो दीक्षायोगः समासतः । एवमेव प्रयोगस्तु नवव्यूहादिके स्मृतः॥५८॥ दग्ध्वा परस्मिन् सन्दध्यान्निर्वाणे प्रकृतिं नरः । शोधयित्वाथ भूतानि कर्माक्षाणि विशोधयेत् ॥ ५९ ॥ बुद्ध्यक्षाण्यथ तन्मात्रं मनो ज्ञानमहङ्कृतिम् । लिङ्गात्मानं विशोध्यान्ते प्रकृतिं शोधयेत्पुनः ॥ ६० ॥ पुरुषं प्राकृतं शुद्धमैश्वरे धाम्नि संस्थितम् । स्वगोचरीकृताशेषभोगं मुक्तौ कृतास्पदम् ॥६१॥ ध्यायेत्पूर्णाहुतिं दद्याद्दीक्षेयं त्वधिकारदा । अङ्गैराराध्य मन्त्रस्य नीत्वा तत्त्वगणं समम् ॥ ६२ ॥ क्रमादेवं विशोध्यान्ते सर्वसिद्धिसमन्वितम् । ध्यायन् पूर्णाहुतिं दद्याद्दीक्षेयं साधके स्मृता ॥ ६३ ॥ द्रव्यस्य वा न सम्पत्तिरशक्तिर्वात्मनो यदि । इष्ट्वा देवं यथापूर्वं

से दीक्षा, होम तथा लय का कार्य सम्पन्न होता है । 'ओम् यं भूतानि विशुद्धं हुम् फट् ।' इस मन्त्र से आचार्य को शिष्य के हृदय में श्वेत रज से प्रताडन करना चाहिए । वियोजन मन्त्र दो हैं । (जिन्हें पहले कहा जा चुका है ।) ।। ४८ ।। 'ओम् यं भूतान्यापातयेऽहम्' इस मन्त्र से भूतों का आदान (ग्रहण) करके, शिष्य को प्रकृति से जोड़ने वाले मन्त्र को सुनो । 'ओ यं भूतानि पुंश्च' यह वियोजन मन्त्र है । मैं पहले होम मन्त्र कहूँगा उसके पश्चात् पूर्णाहुति का मन्त्र है । 'ओम् भूतानि संहर स्वाहा' यह होममन्त्र है । 'ओम् अं नमो भगवते वासुदेवाय ऊँ वौषट्' यह पूर्णाहुति मन्त्र है । पूर्णाहुति के पश्चात् शिष्य को तत्त्व से संयुक्त कर देना चाहिए ।। ४९ ।। अपने-अपने बीज मन्त्रों के अन्त में नमः पद लगाकर ताडनादि क्रिया पुरस्सर संशोधन करे ।। ५१ ।। ओम् नमः कर्मेन्द्रियाणि वियुंक्ष्व हुम् फट्' ओम् दें नमः बुद्धीन्द्रियाणि वियुंक्ष्व हुं फट्' इन दो मन्त्रों से भी पूर्वोक्त यं बीज के ही समान ताडनादि प्रयोग होते हैं ।। ५२ ।। ओम् सुं तं गन्धतन्मात्रे बिम्बं युंक्ष्व हुं फट्' 'ओम् सं पाहि हाँ ओम् स्वं स्वं युंक्ष्व प्रकृत्या' जं हुं गन्धतन्मात्रे संहर स्वाहा ।' ये दोनों क्रमशः संयोजन के तथा होम के मन्त्र हैं ।।५३।। उसके पश्चात् आगे कहे जाने वाले इन मन्त्रों से पूर्णाहुति की जाती है– (१) ओम् रां रस तन्मात्रे (२) ओम् तें रूप तन्मात्रे, (३) ओम् वं स्पर्शतन्मात्रे, (४) ओम् यं शब्दतन्मात्रे, (५) ओम् भं नमः, (६) ओम् मौ अहंकारः, (७) ओम् नं बुद्धौ, (८) ओम् ओम् ओम् प्रकृतौ । इस तरह से एक मूर्ति में यह संक्षेप में दीक्षा का विधान बतलाया गया । इसी तरह नवव्याहृत्यादि में भी प्रयोग बतलाया गया है ।। ५४-५८ ।। इस तरह से नर प्रकृति को दग्ध करके परं ब्रह्म से संयुक्त हो जाता है । उसके पश्चात् उसे भूतशुदि करके कर्मेन्द्रियों का शोधन करना चाहिए ।। ५९ ।। उसके पश्चात् ज्ञानेन्द्रियों, पञ्चतन्मात्राओं मन, अहंकार तथा लिङ्ग शरीर का शोधन करके उसके पश्चात् प्रकृति का शोधन करे । उसके पश्चात् सम्पूर्ण भोगों को अपना विषय बना चुकने वाले (प्रकृति के संबन्ध से युक्त पुरुष जीवात्मा का ईश्वर के धाम में अवस्थित तथा मुक्ति का पात्र बने हुए शुद्ध रूप का ध्यान करके पूर्णाहुति देना चाहिए । यह दीक्षा अधिकार प्रदान करने वाली है । अङ्गों के साथ मन्त्र की आराधना करके तत्त्व समूह को समावस्था में लाकर इसी क्रम से तत्त्वों का विशोधन किया जाता है । उसके पश्चात् सभी सिद्धियों का समन्वित रूप से ध्यान करते हुए पूर्णाहुति देनी चाहिए । यह साधक के लिए दीक्षा बतलायी गयी है ।। ६०-६३ ।। यदि शिष्य के पास द्रव्य के लिए सम्पत्ति न हो अथवा किसी प्रकार की असमर्थता हो तो देशिकोत्तम (उत्तम आचार्य) को चाहिए कि वे सम्पूर्ण उपकरणों को एकत्रित करके पहले उक्त विधि से श्रीभगवान् की आराधना

सर्वोपकरणान्वितः॥ ६४ ॥ सद्योऽधिवास्य द्वादश्यां दीक्षयेद्देशिकोत्तमः । भक्तो विनीतः शारीरैर्गुणैः सर्वैः समन्वितः ॥ ६५ ॥ शिष्यो नातिधनी यस्तु स्थण्डिलेऽभ्यर्च्य दीक्षयेत् । अध्वानं निखिलं दैवं भौतं वाध्यात्मिकीकृतम् ॥ ६६ ॥ सृष्टिक्रमेण शिष्यस्य देहे ध्यात्वा तु देशिकः । अष्टाष्टाहुतिभिः पूर्वं क्रमात्सन्तर्प्य सृष्टिमान् ॥ ६७ ॥ स्वमन्त्रैर्वासुदेवादीञ् ज्वलनादीन् विसर्जयेत् । होमेन शोधयेत् पश्चात् संहारक्रमयोगतः॥६८॥ यानि सूत्राणि बद्धानि मुक्त्वा कर्माणि देशिकः । शिष्यदेहात्समाहृत्य क्रमात्तत्त्वानि शोधयेत् ॥ ६९ ॥ अग्नौ प्राकृतिके विष्णौ लयं नीत्वाधिदैविके। शुद्धं तत्त्वमशुद्धेन पूर्णाहुत्या तु सन्धयेत् ॥ ७० ॥ शिष्ये प्रकृतिमापन्ने दग्ध्वा प्राकृतिकान्गुणान् । मोचयेदधिकारे वा नियुज्ज्याद्देशिकः शिशून्॥७१॥ अथान्यां शक्तिदीक्षां वा कुर्याद् भावे स्थितो गुरुः । भक्त्या सम्प्रतिपन्नानां यतीनां निर्धनस्य च ॥ ७२ ॥ सम्पूज्य स्थण्डिले विष्णुं पार्श्वस्थं स्थाप्य पुत्रकम् । देवताभिमुखः शिष्यस्तिर्यगास्यः स्वयं स्थितः ॥ ७३॥ अध्वानं निखिलं ध्यात्वा पर्वभिः स्वैर्विकल्पितम्। शिष्यदेहे तथा देवमाधिदैविकयाजनम्॥७४॥ ध्यानयोगेन सञ्चिन्त्य पूर्ववत्ताडनादिना । क्रमात्तत्त्वानि सर्वाणि शोधयेत्स्थण्डिले हरौ ॥ ७५ ॥ ताडनेन वियोज्याथ गृहीत्वात्मनि तत्पुनः । देवे संयोज्य संशोध्य गृहीत्वा तत्स्वभावतः ॥ ७६ ॥ आनीय शुद्धतत्त्वेन सन्धयित्वा क्रमेण तु । शोधयेद्ध्यानयोगेन सर्वत्रोत्तानमुद्रया ॥ ७७॥ शुद्धेषु सर्वतत्त्वेषु प्रधाने चेश्वरे स्थिते । दग्ध्वा निर्वापयेच्छिष्यान् पदे चैशे नियोजयेत्॥ ७८॥ निनयेत् सिद्धिमार्गेण साधकं देशिकोत्तमः। एवमेवाधिकारस्थो गृही कर्माण्यतन्द्रितः ॥ ७९॥ आत्मानं शोधयंस्तिष्ठेद्यावद्रागक्षयो भवेत् । क्षीणरागमथात्मानं ज्ञात्वा

करके द्वादशी तिथि को सद्यः (शीघ्र ही) अधिवास कराकर शिष्य को दीक्षा प्रदान कर दें । जो शिष्य अत्यन्त धनवान् न हो किन्तु भक्त, विनीत तथा आत्मा के सभी गुणों से सम्पन्न हो तो आचार्य को चाहिए कि वे समस्त दैविक तथा भौतिक मार्ग को आध्यात्मिक बनाकर उनका सृष्टि के क्रम से शिष्य के शरीर में ही ध्यान करके स्थण्डिल पर ही भगवान् की अर्चना करके शिष्य को दीक्षा प्रदान करें । पुनः सृष्टि से युक्त आचार्य तत्-तत् वासुदेवादि मूर्तियों के मन्त्रों से आठ-आठ आहुतियों से वासुदेव आदि को प्रसन्न करके अग्नि आदि का विसर्जन करें। उसके पश्चात् होम के द्वारा संहार क्रम से शोधन करें ।।६४-६८।। जो सूत्र पहले बाँधे गए थे उन सबों को खोलकर शिष्य के देह से कर्मों को खींचकर आचार्य क्रमशः तत्वों का शोधन करें ।।६९।। पूर्णाहुति के द्वारा प्राकृतिक विष्णु अग्नि में लीन करके आधिदैविक अग्नि में अशुद्धतत्त्व से शुद्धतत्त्व को योजित करें ।। ७० ।। प्राकृतिक गुणों को भस्म करके शिष्य के प्रकृतिस्थ हो जाने पर आचार्य को चाहिए कि उस शिष्य को या तो छोड़ दें अथवा दूसरे शिशुओं को दीक्षित करने का अधिकार प्रदान कर दें ।। ७१ ।। शक्ति सम्पन्न आचार्य यदि चाहें तो वे अपने संयमी अथवा निर्धन शिष्यों को दूसरी शक्ति दीक्षा भी दे सकते हैं ।। ७२ ।। स्थण्डिल (वेदी) पर विष्णु भगवान् की पूजा करके अपने सन्निकट में शिष्य को बैठाये; अधिकार प्राप्त शिष्य तिरछा मुँह करके देवताभिमुख होकर स्वयं बैठे ।। ७३ ।। अपने पर्वों द्वारा विकल्पित समस्त मार्गों का शिष्यों के देह में ध्यान करके देवता, तथा उनका आधिदैविक क्रमशः समस्त तत्वों का वेदी पर श्रीभगवान् में शोधन करें ।।७४-७५ ।। श्वेत रज के द्वारा ताडन करके उन तत्त्वों का शिष्य से वियोजन करके, पुनः उनको अपने में धारण करके, देवता से उसका संयोग कराकर तथा संशोधन करके, पुनः उनको स्वाभावानुसार ग्रहण करके शुद्ध तत्त्व के साथ संयुक्त करके सर्वत्र ध्यानयोग के द्वारा उत्तानमुद्रा करते हुए शोधन करे ।। ७६-७७ ।। सभी तत्त्वों के शुद्ध हो जाने पर तथा प्रधान ईश्वर तत्त्व के होने पर, अशुद्ध तत्त्वों को जलाकर शिष्यों का निर्वापण करे तथा उनका परमात्मा के चरणों से संबन्ध कराये ।। ७८ ।। उत्तम आचार्य को चाहिए कि वे साधक को सिद्धि के मार्ग पर सर्वदा चलाते रहें । इस तरह से अधिकार प्राप्त गृहस्थ को सदा कर्मों को करने में निरालस रहना चाहिए ।। ७९ ।। उसको तब तक आत्मशोधन करते रहना चाहिए जब तक कि राग का विनाश न हो जाय । जब वह समझ ले कि मेरा राग विनष्ट हो गया है तो निष्पाप वह पुत्र अथवा शिष्य को अधिकार सौंपकर स्वयं संयमी (संन्यासी) हो जाय । माया के बन्धन को जलाकर वह संन्यस्त होकर अपनी आत्मा में स्थित होकर अपने शरीर के पात की आकांक्षा

संशुद्धकिल्विषः॥८०॥ आरोप्य पुत्रे शिष्ये वा ह्यधिकारं तु संयमी। दग्ध्वा मायामयं पाशं प्रव्रज्य स्वात्मनि स्थितः शरीरपातमाकाङ्क्षन्नासीताव्यक्तलिङ्गवान्॥८१॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वदीक्षाविधिकथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

आचार्याभिषेकविधानम्

नारद उवाच– **अभिषेकं प्रवक्ष्यामि यथाचार्यस्तु पुत्रकः । सिद्धिभाक्साधको येन रोगी रोगात्प्रमुच्यते ॥ १ ॥ राज्यं राजा सुतं स्त्री च प्राप्नुयान्मलनाशनम् । मृत्साकुम्भान्सुरत्नाढ्यान् मध्यपूर्वादितो न्यसेत् ॥ २ ॥ सहस्रावर्तितान् कुर्यादथवा शतवर्तितान् । मण्डपे मण्डले विष्णुं प्राच्यैशान्योश्च पीठके ॥ ३ ॥ निवेश्य सकलीकृत्य पुत्रं साधकादिकम् । अभिषेकं समभ्यर्च्य कुर्याद् गीतादिपूर्वकम् ॥ ४ ॥ दद्याच्च योगपीठादींस्त्वनुग्राह्यास्त्वया नराः । गुरुश्च समयान् ब्रूयाद् गुरुः शिष्योऽथ सर्वभाक् ॥ ५॥**

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये आचार्याभिषेकविधिवर्णनं नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

मन्त्रसाधनविधिः सर्वतोभद्रादिमण्डललक्षणानि च

नारद उवाच– **साधकः साधयेन्मन्त्रं देवतायतनादिके । शुद्धभूमौ गृहे प्राच्र्य मण्डले हरिमीश्वरम् ॥ १ ॥ चतुरस्त्रीकृते क्षेत्रे मण्डलादीनि वै**

करने लगे, किन्तु वह उसे किसी मुद्रा द्वारा व्यक्त करे ॥ ७९-८१ ॥

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का सर्वदीक्षाविधि कथन नामक सत्ताइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २७ ॥

श्रीनारदजी ने कहा– अब मैं अभिषेक की उस विधि का वर्णन कर रहा हूँ जिस तरह आचार्य के द्वारा अभिषिक्त होकर साधक शिष्य सिद्धि को प्राप्त कर लेता है और रोगी रोगमुक्त हो जाता है ॥ १ ॥ जिस मलनाशक अभिषेक के द्वारा राजा राज्य को तथा कोई स्त्री पुत्र को प्राप्त कर लेती है । रत्न से भरे मिट्टी के घड़ों को मण्डप के मध्य भाग से पूर्व दिशा में स्थापित करना चाहिए ॥ २ ॥ पुनः उन घड़ों को सौ बार अथवा हजार हुए सूत से अथवा कपड़े से लपेटे फिर मण्डप में पद्ममण्डल के ऊपर पूर्व अथवा ईशानकोण में पीठ पर स्थापित करके पुनः एकत्रित करके पुत्र आदि को प्रदान करने वाले अभिषेक को गीत आदि गाते हुए करना चाहिए ॥ ३ ॥ पुनः योगपीठ का दान कर दे । उस समय गुरु यह उपदेश दे कि तुम्हें लोगों पर कृपा करनी चाहिए । ऐसा करके गुरु तथा शिष्य दोनों सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त कर लेते हैं ॥ ५ ॥

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का आचार्याभिषेक विधि वर्णन नामक अठाइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८ ॥

श्री नारदजी ने कहा– साधक को चाहिए कि वह मन्त्र की सिद्धि देवता के मन्दिर में, अथवा घर में शुद्ध भूमि पर बैठकर मण्डल में भगवान् विष्णु की अर्चना करके करे ॥ १ ॥ चौकोर

लिखेत् । रसबाणाक्षिकोष्ठेषु सर्वतोभद्रमालिखेत् ॥ २ ॥ षट्त्रिंशत्कोष्ठकैः पद्मं पीठे पङ्क्त्या बहिर्भवेत् । द्वाभ्यां तु वीथिका तस्माद् द्वाभ्यां द्वाराणि दिक्षु च ॥ ३ ॥ वर्तुलं भ्रामयित्वा तु पद्मक्षेत्रं पुरोदितम् । पद्मार्धे भ्रामयित्वा तु भागं द्वादशमं (कं) बहिः ॥ ४ ॥ विभज्य भ्रामयेच्छेषं चतुष्क्षेत्रं तु वर्तुलम् । प्रथमं कर्णिकाक्षेत्रं केसराणां द्वितीयकम् ॥ ५ ॥ तृतीयं दलसन्धीनां दलाग्राणां चतुर्थकम् । प्रसार्य कोणसूत्राणि कोणदिङ्मध्यमं ततः॥६ ॥ निधाय केसराग्रे तु दलसन्धींस्तु लाञ्छयेत्। पातयित्वाथ सूत्राणि तत्र पत्राष्टकं लिखेत् ॥ ७ ॥ दलमध्यान्तरालं तु मानं मध्ये निधाय तु । दलाग्रं भ्रामयेत्तेन तदग्रं तदनन्तरम् ॥ ८ ॥ तदन्तरालं तत्पार्श्वे कृत्वा बाह्यक्रमेण च । केसरौ तु लिखेद् द्वौ द्वौ दलमध्ये ततः पुनः ॥ ९ ॥ पद्मलक्ष्मैतत्सामान्यं तद् द्विषड्दलमुच्यते । कर्णिकार्धेन मानेन प्राक्संस्थं भ्रामयेत्क्रमात् ॥ १० ॥ तत्पार्श्वे भ्रमयोगेन कुण्डल्यः षड् भवन्ति हि । एवं द्वादश मत्स्याः स्युर्द्विषट्कदलकं च तैः ॥ ११ ॥ पञ्चपत्रादिसिद्ध्यर्थं मत्स्यैः कृत्वैवमब्जकम् । व्योमरेखाबहिःपीठं तत्र कोष्ठानि मार्जयेत्॥१२॥ त्रीणि कोणेषु पादार्थं द्विद्विकान्यपराणि तु । चतुर्दिक्षु विलिप्तानि पत्रकाणि भवन्त्युत ॥ १३ ॥ ततः पङ्क्तिद्वयं दिक्षु वीथ्यर्थं तु विलोपयेत् । द्वाराण्याशासु कुर्वीत चत्वारि चतसृष्वपि ॥ १४ ॥ द्वाराणां पार्श्वतः शोभा अष्टौ कुर्याद् विचक्षणः । तत्पार्श्व उपशोभास्तु तावत्यः परिकीर्तिताः । चतुर्दिक्षु ततो द्वे द्वे चिन्तयेन्मध्यकोष्ठकैः ॥ १६॥ चत्वारि बाह्यतो मृज्यादेकैकं पार्श्वयोरपि । शोभार्थं पार्श्वयोस्त्रीणि त्रीणि लुम्पेद् दलस्य तु॥ १७॥ तद्वद्विपर्यये कुर्यादुपशोभां ततः परम् । कोणस्यान्तर्बहिस्त्रीणि चिन्तयेन्निर्विभेदतः ॥ १८ ॥ एवं षोडशकोष्ठं स्यादेवमन्यत्तु मण्डलम् । द्विषट्कभागे षड्विंशत्पदं पद्मं तु वीथिका ॥ १९ ॥ एका पङ्क्तिः पराभ्यां तु द्वारशोभादि पूर्ववत् । द्वादशाङ्गुलिभिः पद्ममेकहस्ते तु मण्डले ॥ २० ॥ द्विहस्ते

बनाए हुए क्षेत्र में वह मण्डल आदि का निर्माण करे कोष्ठों में सर्वतोभद्र मण्डल बनाए ।। २ ।। पीठ के ऊपर छत्तीस कोष्ठों में पद्म (कमल) का निर्माण बाहर करे ।। दो कोष्ठों के द्वारा वीथी तथा दो-दो कोष्ठों के द्वारा चारों दिशाओं में द्वारों का निर्माण करे ।। ३ ।। पूर्वाक्त पद्मक्षेत्र में सूत्र को गोला घुमाकर पद्म के आधे भाग में सूत्र को घुमाकर उसके बाहर वाले भाग को बारह भागों में विभक्त कर दे । अवशिष्ट भीतर के आधे भाग में चार गोला क्षेत्र बनाए उसमें सबसे भीतर का जो गोला क्षेत्र होगा वह कर्णिका क्षेत्र है, दूसरा केसरों का क्षेत्र है, तीसरा कमल दलों की सन्धि का क्षेत्र है और दलों के अग्रभाग का क्षेत्र चौथा क्षेत्र होगा । कोण के सूत्रों को फैलाकर कोणों तथा दिशाओं को बना दे । उसके पश्चात् केसर के अग्रभाग में कमल दल की सन्धियों को बनाए । फिर सूत्रों को गिराकर कमल के आठ पत्रों को बनाए ।। ४-७ ।। दलों के मध्य को अन्तराल का मान बीच में बनाकर, दलों के अग्रभाग को घुमाकर दल के अग्रभाग को बनाए । उसके पश्चात् उस दल के अन्तराल को उसके बगल में बाह्यक्रम से बनाना चाहिए । उसके पश्चात् दल के बीच में दो-दो केसरों को बनाना चाहिए ।। ८-९ ।। यह पद्ममण्डल का सामान्य लक्षण है । वह कमल बारह दलों (द्विषड्दल) वाला होता है । कर्णिका के आधे भाग के बराबर पूर्वस्थित भाग में सूत्र को क्रमशः घुमाए ।। १० ।। उसके बगल में छह गोली-गोली कुण्डलियों को बना देना चाहिए । इस तरह बारह दलों से बारह मत्स्यों का स्वरूप बन जाता है ।। ११ ।। पाञ्चपत्र आदि की सिद्धि के लिए मत्स्यों के द्वारा कमल का निर्माण करके, व्योम रेखा से बाहर जो पीठ है वहाँ पर कोष्ठों का मार्जन करना चाहिए ।। १२ ।। तीन कोनों में चरण के लिए दो-दो रेखाओं को खींच देना चाहिए । कमल के चारों ओर पत्ते बने रहते हैं ।। १३ ।। पुनः वीथी के लिए चारों दिशाओं में दो पंक्तियों को मिटा दे और चारों दिशाओं में चार द्वारों का निर्माण करे ।। १४ ।। विद्वान् को चाहिए कि वह द्वारों के बगल में आठ शोभामयी आकृतियों को बनाए और उन सबों के बगल मे उतनी ही उपशोभाओं को बनाए ।। १५ ।। उपशोभाओं के सन्निकट में कोण बतलाए गए हैं । उसके पश्चात् चारो दिशाओं में मध्य कोष्ठकों के द्वारा दो-दो आकृतियों का चिन्तन करना चाहिए ।। १६ ।। पीठ के बाहर शोभा के लिए चार बगल में एक-एक आकृति बनाए । शोभा को बढ़ाने के लिए दल के बगल में तीन-तीन आकृतियाँ बनाए ।। १७ ।। उसी तरह उसके विपरीत दिशा में भी उपशोभाओं को बनाना

हस्तमात्रं स्याद् वृद्धया द्वारेण चाचरेत् । अपीठं चतुरस्त्रं स्याद् द्विकरं चक्रपङ्कजम् ॥ २१ ॥ पद्मार्धं नवभिः प्रोक्तं नाभिस्तु तिसृभिः स्मृता । अष्टाभिस्त्वारकान् कुर्यान्नेमिं तु चतुरङ्गुलैः ॥ २२ ॥ त्रिधा विभज्य च क्षेत्रमन्तर्द्वाभ्यामथाङ्कयेत् । पञ्चान्तस्त्वारसिद्ध्यर्थं तेष्वास्फाल्य लिखेदरान् ॥ २३ ॥ इन्दीवरदलाकारानथ वा मातुलुङ्गवत् । पद्मपत्रायतान्वापि लिखेदिच्छानुरूपतः ॥ २४ ॥ भ्रामयित्वा बहिर्नेमावरसन्ध्यन्तरे स्थितः । भ्रामयेदरमूलं तु सन्धिमध्ये व्यवस्थितः ॥ २५ ॥ अरमध्ये स्थितो मध्यमराणां भ्रामयेत्समम् । एवं सिध्यन्त्यराः सम्यङ्मातुलुङ्गनिभाः समाः ॥ २६ ॥ विभज्य सप्तधा क्षेत्रं चतुर्दशकरं समम् । त्रिधा कृते शतं ह्यत्र षण्णवत्यधिकानि तु ॥ २७ ॥ कोष्ठकानि चतुर्भिस्तैर्मध्ये भद्रं समालिखेत् । परितो विसृजेद् वीथ्यै तथा दिक्षु समालिखेत् ॥ २८ ॥ कमलानि पुनर्वीथ्यैपरितः परिमृज्य तु । द्वे द्वे मध्यकोष्ठे तु ग्रीवार्थं दिक्षु लोपयेत् ॥ २९ ॥ चत्वारि बाह्यतः पश्चात्त्रीणि त्रीणि तु लोपयेत् । ग्रीवापार्श्वे बहिस्त्वेकः शोभा सा परिकीर्तिता ॥ ३० ॥ विसृज्य बाह्यकोणेषु सप्तान्तस्त्रीणि मार्जयेत् । मण्डलं नवनालं स्यान्नवव्यूहं हरिं यजेत् ॥ ३१ ॥ पञ्चविंशतिकव्यूहं मण्डलं विश्वरूपगम्। द्वात्रिंशद्हस्तकं क्षेत्रं भक्तं द्वात्रिंशता समम् ॥ ३२ ॥ एवं कृते चतुर्विंशत्यधिकं तु सहस्त्रकम् । कोष्ठकानां समुद्दिष्टं मध्ये षोडशकोष्ठकैः ॥ ३३॥ भद्रकं परिलिख्याथ पार्श्वे

चाहिए। कोण के भीतर तथा बाहर विना किसी अन्तराल के तीन कोष्ठों को बनाए ।। १८ ।। इसी तरह सोलह कोष्ठों वाला एक दूसरा मण्डल बनाना चाहिए । उसके बाहरी भाग में छब्बीस पदों वाला पद्म होता है तथा बाद के दो कोष्ठों से एक-एक वीथी की पंक्ति होती है । द्वार शोभा आदि पहले मण्डल के ही समान बनाना चाहिए । एक हाथ के मण्डल में बारह अंगुल का एक पद्म बनाना चाहिए ।। १९-२० ।। दो हाथ के मण्डल में भी एक हाथ का ही कमल होना चाहिए वृद्धि हाथ के द्वारा करनी चाहिए । चक्राब्ज मण्डल को चौकोर दो हाथ का तथा विना पीठ का होना चाहिए।।२१।। पद्म का आधा भाग नव अंगुल का होना चाहिए, उसकी नाभि तीन अंगुल की, आठ अंगुल का आर बनाए तथा चक्र चार अंगुल का बनाना चाहिए ।। २२ ।। पूरे क्षेत्र को तीन भागों में विभक्त करके उसके अन्दर वाले भाग को दो भागों में चिह्नत करे । भीतर पाँच अरों के निर्माण सूत्र को पटककर करना चाहिए ।। २३ ।। उन अरों को नीलकमल दल के समान, अथवा मातुलुङ्ग (जम्बीरी नीबू) अथवा पद्मपत्र के समान विस्तृत अपनी इच्छा के अनुसार बनाना चाहिए ।। २४ ।। अरों की सन्धि में रखकर सूत्र बाहर नेमि तक ले जाना चाहिए और उसे घुमाना चाहिए । सन्धि के मध्य में ही रखकर अर के मूल भाग में सूत्र को घुमाए ।। २५ ।। अरों के बीच मे सूत रखकर अरों के समान ही सूत्र को घुमाना चाहिए । इस तरह से मतुलुङ्ग (नीबू) के समान आकार वाले अर बन जाते हैं ।। २६।। चौदह हाथ के चौकोर क्षेत्र को सात भागों में विभक्त करके तीन-तीन भागों में विभक्त करने पर यहाँ पर एक सौ छियानबे कोष्ठक बनेंगे । उन सबों के बीच में चार कोष्ठों में 'भद्र' शब्द लिख देना चाहिए । पुनः सभी दिशाओं में कमलों को बनाना चाहिए । फिर वीथी बनाने के लिए चारों तरफ कोष्ठों को परिमार्जित करके सभी दिशाओं में ग्रीवा के लिए बीच में दो-दो कोष्ठों को मिला देना चाहिए ।। २७-२९ ।। यहाँ कोष्ठों की संख्या १९६ जो बतलायी गयी है, वह ठीक नहीं बनती है । १४×७×३ = २९४ कोष्ठक बनते हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन वाले संस्करण में २९६ कोष्ठ लिखा है वह भी ठीक नहीं प्रतीत होता है ।) बाहर के चार तथा पीछे के तीन-तीन कोष्ठों को मिला देना चाहिए । ग्रीवा के पास बाहर एक कोष्ठक होना चाहिए । उसे ही शोभा कहते हैं ।। ३० ।। बाहर के कोष्ठों में सात कोष्ठों को छोड़कर तीन कोष्ठों का मार्जन करना चाहिए । इस तरह मण्डल नव नालों वाला बन जायेगा । उस मण्डल में श्रीभगवान् के नव व्यूहों का पूजन करना चाहिए ।। ३१ ।। पच्चीस व्यूहों वाला मण्डल विश्वरूप स्वरूप होता है । बत्तीस हाथ के क्षेत्र को समान आकार वाले बत्तीस भागों में विभक्त करना चाहिए ।। ३२।। ऐसा करने से १०२४ (एक हजार चौबीस) कोष्ठ बनेंगे । उनके मध्य के सोलह कोष्ठों में वेदी का निर्माण करके बगल की एक पंक्ति छोड़कर पुनः सोलह-सोलह कोष्ठों वाली आठ वेदियों का निर्माण करना

पङ्क्तिं विसृज्य तु । ततः षोडशभिः कोष्ठैर्दिक्षु भद्राष्टकं लिखेत् ॥ ३४ ॥ ततोऽपि पक्तिं सम्मृज्य तद्वत् षोडशभद्रकम् । लिखित्वा परितः पंक्तिं विमृज्याथ प्रकल्पयेत् ॥ ३५ ॥ द्वारद्वादशकं दिक्षु त्रीणि-त्रीणि यथाक्रमम् । षड्बहिः परिलुप्यान्तर्मध्ये चत्वारि पार्श्वयोः ॥ ३६ ॥ चत्वार्यन्तर्बहिर्द्वे तु शोभार्थं परिमृज्य तु । उपद्वारप्रसिद्ध्यर्थं त्रीण्यन्तः पञ्च बाह्यतः ॥ ३७ ॥ परिमृज्य तथा शोभां पूर्ववत्परिकल्पयेत् । बहिः कोणेषु सप्तान्तस्त्रीणि कोष्ठानि मार्जयेत् ॥ ३८ ॥ पञ्चविंशतिकव्यूहे परं ब्रह्म यजेत् कजे । मध्ये पूर्वादितः पद्मे वासुदेवादयः क्रमात् ॥ ३९ ॥ वाराहं पूजयित्वा तु पूर्वपद्मे ततः क्रमात् । व्यूहान् सम्पूजयेत्तावद्यावत् षड्विंशगो भवेत् ॥ ४० ॥ यथोक्तं व्यूहमखिलमेकस्मिन् मण्डले क्रमात् । यष्टव्यमिति मन्त्रेण प्रचेता मन्यतेऽध्वरम् ॥ ४१ ॥ सत्यस्तु मूर्तिभेदेन विभक्तं मन्यतेऽच्युतम् । चत्वारिंशत्करं क्षेत्रं ह्युत्तरं विभजेत्क्रमात् ॥ ४२ ॥ एकैकं सप्तधा भूयस्तथैकैकं द्विधा पुनः । चतुःषष्ट्युत्तरं सप्त शतान्येकं सहस्रकम् ॥ ४३ ॥ कोष्ठकानां भद्रकश्च मध्ये षोडशकोष्ठकैः । पार्श्वे वीथी ततश्चाष्टभद्राण्यथ च वीथिका ॥ ४४ ॥ षोडशाब्जान्यथो वीथी चतुर्विंशतिपङ्कजम् । वीथीपद्मानि द्वात्रिंशत् पङ्क्तिवीथीकजान्यथ ॥ ४५ ॥ चत्वारिंशत् ततो वीथी शेषपङ्क्तित्रयेण तु । द्वारशोभोपशोभाः स्युर्दिक्षु मध्ये विलोप्य च ॥ ४६ ॥ द्विचतुष्षड्द्वारसिद्ध्यै चतुर्दिक्षु विलोपयेत् । पञ्चत्रीण्येककं बाह्ये शोभोपद्वारसिद्धये ॥ ४७ ॥ द्वाराणां पार्श्वयोरन्तः षट्चत्वारि च मध्यतः । द्वे द्वे लुम्पेदेवमेव षड् भवन्त्युपशोभिकाः ॥ ४८ ॥ एकस्यां दिशि सङ्ख्या

चाहिए।।३३-३४।। उसके पश्चात् भी एक पंक्ति को सम्मार्जित करके सोलह वेदियों को बनाकर उसके चारों तरफ एक पंक्ति को मिटाकर बारह द्वारों को बनाए । प्रत्येक दिशा में तीन तीन दरवाजे होने चाहिए । फिर बाहर के छह कोष्ठों को मिलाकर भीतर तथा बीच में चार, बगल के चार तथा भीतर तथा बाहर के दो-दो कोष्ठों की परिमार्जित करके उपहार बनाने के लिए भीतर के तीन तथा बाहर के पाञ्च कोष्ठकों को मिलाकर पहले के ही समान शोभाओं की रचना करनी चाहिए । बाहर के कोनों में सात अन्दर के तीन कोष्ठों को परिमार्जित कर देना चाहिए ।। ३५-३८ ।। पच्चीस व्यूहों में ब्रह्म की कमल पर पूजा करनी चाहिए । पूर्व से लेकर मध्य में कमल पर क्रमशः वासुदेव आदि का पूजन करना चाहिए ।। ३९ ।। पूर्वकमल पर बराह का पूजन करके उसके पश्चात् यह पूजन का क्रम तब तक चलाना चाहिए जब तक छब्बीसवें व्यूह श्रीभगवान् की पूजा न हो जाय ।। ४० ।। जैसे एक व्यूह में सभी व्यूह क्रमशः बतलाए गये हैं उसी तरह से सभी व्यूहों का क्रमशः पूजन उनके मन्त्र से करना चाहिए । इस तरह से इस यज्ञ को प्रचेता (वरुण) मानते हैं ।। ४१ ।। सत्य (ब्रह्मा) तो यह मानते हैं कि छब्बीस व्यूह के रूप में भगवान् अच्युत ही विभक्त हो गए हैं। यदि चालीस हाथ का चक्र, मण्डप हो तो प्रत्येक हाथ को सात-सात भाग में विभक्त करके पुनः उसे दो-दो भागों में विभक्त करना चाहिए । इस तरह कोष्ठकों की संख्या १७३४ होगी । बीच के सोलह कोष्ठों में वेदी बनानी चाहिए । उसके बगल में बीथी होनी चाहिए । इसके बाद आठ वेदियों का निर्माण करना चाहिए । फिर उनके बगल में वीथी होनी चाहिए ।। ४२-४४ ।। पुनः सोलह कमलों को बनाने के बाद वीथी बनानी चाहिए फिर चौबिस कमल बनाना चाहिए । इस तरह से वीथी कमलों की संख्या बत्तीस हो जाती है । उसके पश्चात् चालिस पंक्ति में वीथी के कमलों को बनाना चाहिए । उसके पश्चात् वीथी को बनाना चाहिए । बची तीन पंक्तियों के द्वारा द्वार की शोभा तथा उपशोभा को बीच में तथा मध्य में कोष्ठों को मिटाकर करना चाहिए ।। ४६ ।। चार दिशाओं में द्वार बनाने के लिए दो चार अथवा छह कोष्ठों को मिटा देना चाहिए । शोभा तथा उपशोभा बनाने के लिए बाहर की पाँच, तीन तथा एक कोष्ठ को मिटाना चाहिए ।। ४७ ।। द्वारों के बगल में छह-छह, भीतर चार-चार तथा मध्य में दो-दो कोष्ठों को मिटाए इस तरह से छह उपशोभाएँ बनती हैं ।। ४८ ।। इन उपशोभाओं की एक-एक दिशा में चार-चार संख्या होनी चाहिए । अतएव

स्युश्चतस्त्रः परिसङ्ख्यया । एकैकस्यां दिशि त्रीणि द्वाराण्यपि भवन्त्यतः ॥ ४९ ॥ पञ्च पञ्च तु कोणेषु पङ्क्तौ पङ्क्तौ क्रमात् सृजेत् । कोष्ठकानि भवेदेवं सतीष्टं मण्डलं शुभम्॥ ५० ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वतोभद्रादिमण्डलवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।। २९ ।।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

सर्वतोभद्रमण्डलादिविधिकथनम्

नारद उवाच– **मध्ये पद्मे यजेद् ब्रह्मा साङ्गं पूर्वेऽब्जनाभकम् । आग्नेयेऽब्जे च प्रकृतिं याम्येऽब्जे पुरुषं यजेत् ॥ १ ॥ पुरुषाद् दक्षिणे वह्निं नैर्ऋते वारुणेऽनिलम्। आदित्यमैन्दवे पद्मे ऋग्यजुश्चैश पद्मके ॥ २ ॥ इन्द्रादींश्च द्वितीयायां पद्मे षोडके तथा । सामाथर्वाणमाकाशं वायुं तेजस्तथा जलम् ॥ ३ ॥ पृथिवीं च मनश्चैव श्रोत्रं त्वक्चक्षुरर्चयेत् । रसनां च तथा घ्राणं भूर्भुवश्चैव षोडशम् ॥ ४ ॥ महर्जनस्तपः सत्यं तथाग्निष्टोममेव च। अत्यग्निष्टोमकं चोक्थं षोडशीं वाजपेयकम् ॥ ५ ॥ मनो बुद्धिमहङ्कारं शब्दं स्पर्शं च रूपकम् ॥ ६ ॥ रसं गन्धं च पद्मेषु चतुर्विंशतिषु क्रमात् । जीवं मनो धियं चाहं प्रकृतिं शब्दमात्रकम् ॥ ७ ॥ वासुदेवादिमूर्तींश्च तथा चैव दशात्मकम् । मनः श्रोत्रं त्वचं प्राच्र्य चक्षुश्च रसनं तथा ॥ ८ ॥ घ्राणं वाक्पाणिपादं च द्वात्रिंशद्वारिजेष्विमान् । चतुर्थावरणे पूज्याः साङ्गाः सपरिवारकाः॥९॥ पायूपस्थौ च सम्पूज्य मासानां द्वादशाधिपान्। पुरुषोत्तमादिषड्विंशान् बाह्यावरणके यजेत् ॥१०॥ चक्राब्जे तेषु सम्पूज्या मासानां पतयः क्रमात् । अष्टौ प्रकृतयः षड् वा पञ्च वा चतुरोऽपरे॥११॥**

एक-एक दिशा में तीन-तीन द्वार भी होते हैं ।। ४९ ।। प्रत्येक पंक्ति के कोणों में पाञ्च-पाञ्च कोष्ठ होते हैं । इस तरह से अभीष्ट मण्डप शुभप्रद होता है ।। ५० ।।

इस तरह से आदि महापुराण अग्निपुराण का सर्वतोभद्रादि मण्डल विधि वर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २९ ॥

श्रीनारदजी ने कहा– सर्वतोभद्र मण्डल में मध्य के कमल पर ब्रह्मा जी का साङ्गपूजन करना चाहिए । अग्निकोण के पद्म पर प्रकृति का तथा दक्षिण के कमल पर पुरुष का पूजन करना चाहिए ।। १ ।। पुरुष से दक्षिण तरफ अग्नि का नैर्ऋत्य कोण तथा पश्चिम में वायु का पूजन करना चाहिए । पूर्वकमल पर आदित्य का ईशान कमल पर ऋग्वेद तथा यजुर्वेद का, द्वितीय पंक्ति के षोडशदल कमल पर इन्द्र आदि का पूजन करना चाहिए । कमल के सोलह दलों पर निम्नांकित सोलह देवताओं का पूजन करना चाहिए– सामवेद, अथर्ववेद, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, मन, श्रोत्र,त्वक्, चक्षु, रसना, घ्राण, भूर्लोक तथा स्वर्लोक ।। २-४ ।। चौबीस कमलों पर क्रमशः महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक, अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम, मन, बुद्धि, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध का पूजन क्रमशः करना चाहिए । पुनः बत्तीस कमलों पर क्रमशः जीव, मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति, शब्द तन्मात्रा, वायुदेव आदि की मूर्नियों, मन, श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, घ्राण, वाक्, पाणि तथा पाद का पूजन करना चाहिए । चतुर्थ आवरण में इन सबों का साङ्ग तथा सपरिवार पूजन करना चाहिए ।।५-९।। पायु तथा उपस्थ की पूजा करके बारह महीनों के जो बारह 'केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ तथा दामोदर स्वामी हैं, उनकी और पुरुषोत्तम आदि छब्बीस व्यूहों की पूजा करनी चाहिए।।१०।। चक्राब्जमण्डल में उन कोष्ठों में मासों के स्वामियों तथा आठ प्रकृति तथा चार, पाञ्च अथवा छह विकृतियों की पूजा करनी चाहिए ।।११।।

रजःपातं ततः कुर्याल्लिखिते मण्डले शृणु । कर्णिका पीतवर्णा स्याद्रेखाः सर्वाः सिताः समाः ॥ १२ ॥ द्विहस्तेऽङ्गुष्ठमात्राः स्युर्हस्ते चार्धसमाः सिताः। पद्मं शुक्लेन सन्धींस्तु कृष्णेन श्यामतोऽथ वा ॥ १३ ॥ केसराः रक्तपीताः स्युः कोणान् रक्तेन पूरयेत् । भूषयेद्योगपीठं तु यथेष्टं सार्ववर्णिकैः॥१४॥ लतावितानपत्राद्यैर्वीथिकामुपशोभयेत् । पीठद्वारे तु शुक्लेन शोभा रक्तेन पूरिताः ॥ १५ ॥ उपशोभाश्च नीलेन कोणशङ्खांश्च वै सितान् । भद्रके पूरणं प्रोक्तमेवमन्येषु पूरणम् ॥ १६ ॥ त्रिकोणं सितरक्तेन कृष्णेन च विभूषयेत् । द्विकोणं रक्तपीताभ्यां नाभिं कृष्णेन चक्रवे॥१७॥ अरकान्पीतरक्ताभिः श्यामान्नेमिस्तु रक्ततः । सितश्यामारुणाः कृष्णाः पीता रेखास्तु बाह्यतः॥ १८ ॥ शालिपिष्टादि शुक्लं स्याद्रक्तं कौसुम्भकादिकम् । हरिद्रया च हारिद्रं कृष्णं स्याद्दग्धधान्यतः ॥ १९ ॥ शमीपत्रादिकैः श्यामं बीजानां लक्षजाप्यतः । चतुर्लक्षैस्तु मन्त्राणां विद्यानां लक्षसाधनम् ॥ २० ॥ अयुतं वृद्धविद्यानां स्तोत्राणां च सहस्त्रकम् । पूर्वमेवाथ लक्षेण मन्त्रशुद्धिस्तथात्मनः ॥ २१ ॥ तथापरेण लक्षेण मन्त्रः क्षेत्रीकृतो भवेत्। पूर्वमेवासमो होमो बीजानां सम्प्रकीर्तितः ॥ २२ ॥ पूर्वमेवदशांशेन मन्त्रादीनां प्रकीर्तिता । पुरश्चर्या तु मन्त्रेण मासिकं व्रतमाचरेत्॥२३ ॥ भुवि न्यसेद्वामपादं न गृह्णीयात्प्रतिग्रहम् । एवं द्वित्रिगुणेनैव मध्यमोत्तमसिद्धयः ॥ २४ ॥ मन्त्रध्यानं प्रवक्ष्यामि येन स्यान्मन्त्रजं फलम् । स्थूलं शब्दमयं रूपं विग्रहं बाह्यमिष्यते ॥ २५ ॥ सूक्ष्मं ज्योतिर्मयं रूपं हार्दं चिन्तामयं भवेत् । चिन्तया रहितं यत्तु तत्परं परिकीर्तितम्॥२६॥ वराहसिंहशक्तीनां स्थूलं रूपं प्रधानतः। चिन्तया रहितं रूपं वासुदेवस्य कीर्तितम्॥२७॥ इतरेषां स्मृतं रूपं हार्दं चिन्तामयं सदा। स्थूलं वैराजमाख्यातं

इसके बाद मैं यह बतला रहा हूँ कि किस प्रकार से उन कोष्ठों में रंगीन चूर्ण डालना चाहिए, उसे सुनो । कर्णिका को पीली तथा सभी रेखाओं को उजली बनाना चाहिए ।। १२ ।। दो हाथ के मण्डल में सभी रेखाएँ अंगूठे के समान, तथा एक हाथ के मण्डल में सभी रेखाएँ अर्ध अंगूष्ठ के समान होनी चाहिए । सभी रेखाएँ समान उजली हों । कमल को श्वेत चूर्ण से तथा उनकी सन्धियों को काले अथवा श्यामवर्ण के चूर्ण से बनाना चाहिए ।। १३ ।। केसर को लाल तथा पीतवर्ण से बनाना चाहिए तथा कोणें को रक्त चूर्ण से भरना चाहिए । येगपीठ को अपनी इच्छा के अनुकूल सभी वर्ण के चूर्णों से भरना चाहिए ।। १४ ।। लताओं, वितानों तथा पत्रों से वीथियें को रंगना चाहिए । पीठ के द्वार पर शोभा को श्वेत तथा रक्त वर्ण के चूर्ण को भरना चाहिए ।। १५ ।। उपशोभा को नील चूर्ण से तथा कोणों के शङ्खों को उजला बनावे । इस तरह से वेदी को रंगना बतलाया गया है । इसी प्रकार से अन्य वेदी में भी रंग भरना चाहिए ।। १६ ।। त्रिकोण को उजले तथा लाल वर्ण से तथा काले वर्ण से सुशोभित करे चक्राब्ज मण्डल में द्विकोण को लाल तथा पीले रङ्ग से, तथा उसकी नाभि को कृष्ण वर्ण से रंगना चाहिए ।। १७ ।। चक्र के अरों को पीत, लाल तथा श्यामवर्ण से एवं नेमि को रक्त वर्ण से रंगना चाहिए ।मण्डल की बाहरी रेखाओं को उजली, श्यामवर्ण की, काली तथा पीली होनी चाहिए ।। १८ ।। चावल के चूर्ण का उजले के लिए, कुसम आदि के रस को रक्त वर्ण के लिए, पीले वर्ण के लिए हल्दी का चूर्ण तथा काले रंग के लिए जले हुए धान्य के चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए ।। १९ ।। श्यामवर्ण के लिए शमी पत्र के चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए। बीजमन्त्रों का एक लाख बार, मन्त्रों का चार लाख तथा विद्याओं का एक लाख जप करने से सिद्धि होती है ।। २० ।। वृद्धविद्याओं की दस हजार, तथा स्तोत्रों की एक हजार जप करने से सिद्धि होती है । इससे पहले एक लाख मन्त्र का जप करने से आत्मा की शुद्धि होती है । पुनः दूसरी बार एक लाख जप करने से मन्त्र की सिद्धि होती है । जिस मन्त्र का पहली बार जितना जप किया जाता है, उसका उतना ही होम करना चाहिए ।। १२ ।। अन्य मन्त्रों के जप का दशांश होम बतलाया गया है ।। २३ ।। ब्रती पुरुष पृथिवी पर पहले बायाँ पैर न रखे, दूसरे का दिया हुआ दान न ले। इस तरह से व्रत तथा पुरश्चरण दो एवं तीन बार करने से क्रमशः मध्यम तथा उत्तम कोटि की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।। २४ ।। अब मैं मन्त्र का ध्यान बतलाता हूँ जिससे मन्त्रों का पूर्णफल प्राप्त होता है । मन्त्र का बाह्य विग्रह स्थूल तथा शब्दमय होता है ।। २५ ।। मन्त्र का सूक्ष्म रूप ज्योतिःस्वरूप तथा हृदय में चिन्तामय होता है । मन्त्र का सर्वोत्कृष्ट रूप अचिन्त्य होता है ।। २६ ।।वराह, नृसिंह तथा शक्तियों के मन्त्रों का स्थूल रूप प्रधान होता है । वासुदेव मन्त्र का रूप अचिन्त्य बतलाया गया है ।। २७ ।। इनसे भिन्न देवताओं तथा के मन्त्रों का रूप हृदय में चिन्तनीय बतलाया

सूक्ष्मै लिङ्गितं भवेत् ॥ २८ ॥ चिन्तया रहितं रूपमैश्वरं परिकीर्तितम् । हृत्पुण्डरीकनिलयं चैतन्यं ज्योतिरव्ययम् ॥ २९ ॥ बीजं जीवात्मकं ध्यायेत् कदम्बकुसुमाकृतिम् । कुम्भान्तरगतो दीपो निरुद्धप्रसवो यथा ॥ ३० ॥ संहतः केवलस्तिष्ठेदेवं मन्त्रेश्वरो हृदि । अनेकसुषिरे कुम्भे तावन्मात्रा गभस्तयः ॥ ३१ ॥ प्रसरन्ति बहिस्तद्वन्नाडीभिर्बीजरश्मयः । अन्त्रावभासका दैवीमात्मीकृत्य तनुं स्थितः ॥ ३२ ॥ हृदयात्प्रस्थिता नाड्यो दर्शनेन्द्रियगोचराः । द्वेऽग्नीषोमात्मिके तासां नाड्यौ नासाग्रसंस्थिते ॥ ३३ ॥ सम्यगुद्घातयोगेन जित्वा देहसमीरणम् । जपध्यानरतो मन्त्री मन्त्रजं फलमश्नुते ॥ ३४ ॥ संशुद्धभूततन्मात्रः सकामो योगमभ्यसन् । अणिमादिकमवाप्नोति विरक्तः प्रविलङ्घ्य च ॥ ३५ ॥ चिदात्मको भूतमात्रान् मुच्यते चेन्द्रियग्रहात् ॥ ३६ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वतोभद्रमण्डलादिविधिकथनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

अपामार्जनविधानम्

अग्निरुवाच– **रक्षां स्वस्य परेषां च वक्ष्येऽपामार्जनाह्वयाम् । यया विमुच्यते दुःखैः सुखं च प्राप्नुयान्नरः ॥ १ ॥ ॐ नमः परमार्थाय पुरुषाय महात्मने । अरूपबहुरूपाय व्यापिने परमात्मने ॥ २ ॥ निष्कल्मषाय शुद्धाय ध्यानयोगरताय च । नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत्तत् सिध्यतु मे वचः ॥३॥**

गया है। वैराज तथा सूक्ष्म रूप को लिङ्गित कहा जाता है ।। २८ ।। ईश्वर का रूप अचिन्त्य बतलाया गया है, वह हृदयकमल में रहने वाला, ज्ञानस्वरूप, ज्योतिःस्वरूप तथा अव्यय है ।। २९ ।। बीज का जीवात्मक रूप से तथा कदम्ब के पुष्प के समान आकार वाला ध्यान करना चाहिए । जिस तरह से घड़े के भीतर रखा हुआ दीप निर्वात होने के कारण सदा एक समान संहत ज्योति वाला होता है, उसी प्रकार ज्योतिस्वरूप मन्त्रेश्वर का हृदय में निवास है । जिस तरह अनेक छिद्रों वाले घड़े में रखे गए दीपक की उतनी ही ज्योतियाँ बाहर निकलती हैं जितने उसके छिद्र होते हैं, उसी तरह से नाड़ी के माध्यम से बीज की रश्मियाँ निकलती हैं । अंतड़ियों को प्रकाशित करने वाली तथा दिव्य शरीर को अपनी आत्मा बनाकर शरीर के भीतर हृदय में स्थित रहने वाला यह बीजमन्त्र होता है ।। ३२ ।। हृदयप्रदेश से फैलने वाली तथा चक्षुरिन्द्रिय से दिखायी देने वाली ये नाड़ियाँ होती हैं । उनमें से सूर्यात्मक तथा चन्द्रात्मक दो नाड़ियाँ नासिका के अग्रभाग में स्थित हैं ।। ३३ ।। उद्घात योग के द्वारा अच्छी तरह से अपने शरीर की वायु को अच्छी तरह से जीतकर जप तथा ध्यान करने वाला मन्त्रज्ञ पुरुष मन्त्र के पूर्ण फल को प्राप्त करता है ।। ३४ ।। जिस साधक ने अपने भूतों तथा तन्मात्राओं की अच्छी तरह से शुद्धि कर ली है, तथा जो कामना से युक्त होकर योग का अभ्यास करता है वह अणिमा महिमा गरिमा लघिमा प्राप्ति, प्रकाम्य, ईशित्व, तथा, वशित्व सिद्धियों को प्राप्त करता है । इन कामनाओं से विरक्त निष्काम साधक भूतों, तन्मात्रों तथा इन्द्रियों के संबन्ध से मुक्त होकर ज्ञानस्वरूप मुक्त हो जाता है ।। ३५-३६ ।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का सर्वतोभद्र मण्डल आदि विधि वर्णन नामक तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३० ॥

अग्निदेव ने कहा– अपनी तथा दूसरों की रक्षा स्वरूप अपामार्जन नामक विधि का अब मैं वर्णन कर रहा हूँ । जिसके द्वारा मनुष्य दुःखों से छुटकारा प्राप्त करके सुख प्राप्त करता है ।।१।। ओम् जो परमार्थ पुरुष स्वरूप हैं, प्राकृतिक रूप (शरीर) से रहित तथा अनेक दिव्य रूप वाले हैं, उन महात्मा, तथा व्यापक परमात्मा को नमस्कार है ।। २ ।। सम्पूर्ण दोषों से रहित (अखिलहेय प्रत्यनीक) शुद्धस्वरूप तथा ध्यान योग में सर्वदा रत रहने वाले परमात्मा को नमस्कार करके मैं जिस वाणी को कह रहा हूँ मेरी वह वाणी सिद्ध (सफल) हो जाए ।। ३ ।। वराह भगवान् नृसिंह भगवान्, तथा

वराहाय नृसिंहाय वामनाय महात्मने । नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत्तत् सिध्यतु मे वचः ॥ ४ ॥ त्रिविक्रमाय रामाय वैकुण्ठाय नराय च । नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत्तत् सिध्यतु मे वचः ॥ ५ ॥ वराह नरसिंहेश वामनेश त्रिविक्रम । हयग्रीवेश सर्वेश हृषीकेश हराशुभम् ॥ ६ ॥ अपराजितचक्राद्यैश्चतुर्भिः परमायुधैः । अखण्डितानुभावैस्त्वं सर्वदुष्टहरो भव ॥ ७ ॥ हरामुकस्य दुरितं सर्वं च कुशलं कुरु । मृत्युबन्धार्तिभयदं दुरितस्य च यत्फलम् ॥ ८ ॥ पराभिध्यानसहितैः प्रयुक्तं चाभिचारिकम् । गरस्पर्शमहारोगप्रयोगं जरया जर ॥ ९ ॥ ॐनमो वासुदेवाय नमः कृष्णाय खड्गिने । नमः पुष्करनेत्राय केशवायादिचक्रिणे ॥ १० ॥ नमः कमलकिञ्जल्कपीतनिर्मलवाससे । महाहयरिपुस्कन्धधृष्टचक्राय चक्रिणे ॥ ११ ॥ दंष्ट्रोद्धृतक्षितिभृते त्रयीमूर्तिमते नमः । महायज्ञवराहाय शेषभोगाङ्कशायिने ॥ १२ ॥ तप्तहाटककेशान्त ज्वलत्पावकलोचन । वज्राधिकनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोऽस्तु ते ॥ १३ ॥ काश्यपायातिह्रस्वाय ऋग्यजुःसामभूषिते । तुभ्यं वामनरूपायाक्रमते गां नमो नमः ॥ १४ ॥ वराहाशेषदुष्टानि सर्वपापफलानि वै । मर्द मर्द महादंष्ट्र मर्द मर्द च तत्फलम् ॥ १५ ॥ नारसिंह करालास्य दन्तप्रान्तानलोज्ज्वल। भञ्ज भञ्ज निनादेन दुष्टान् पश्यार्तिनाशन ॥ १६ ॥ ऋग्यजुःसामगर्भाभिर्वाग्भिर्वामनरूपधृक् । प्रशमं सर्वदुःखानि नयत्वस्य जनार्दनः ॥ १७ ॥ ऐकाहिकं द्व्याहिकं च तथा त्रिदिवसं ज्वरम् । चातुर्थिकं तथात्युग्रं तथैव सततं ज्वरम् ॥ १८ ॥ दोषोत्थं सन्निपातोत्थं तथैवागन्तुकं ज्वरम् । शमं नयाशु गोविन्द छिन्धि छिन्ध्यस्य वेदनाम्॥१९॥ नेत्रदुःखं शिरोदुःखं दुखं चोदरसम्भवम् । अनिश्वासमतिश्वासं परितापं सवेपथुम् ॥ २० ॥ गुदघ्राणाङ्घ्रिरोगांश्च कुष्ठरोगांस्तथा

महात्मा वामन भगवान् को नमस्कार करके मैं जो कहता हूँ वह मेरी वाणी सफल होए ।। ४ ।। त्रिविक्रम श्रीराम, वैकुण्ठ तथा नर को नमस्कार करके जो मैं कह रहा हूँ वह मेरी वाणी सत्य हो ।।५।। हे वराह ! नृसिंह ! भगवन् ! हे वामन भगवन् ! हे हयग्रीव भगवन् ! हे सर्वेश ! हे हृषीकेश ! आप अमङ्गल का नाश करें ।। ६ ।। हे भगवन् ! जो कभी भी पराजित नहीं होते उन अपने चार (शंख, चक्र, गदा तथा शार्ङ्ग धनुष) श्रेष्ठ आयुधों जिनका अखण्डित प्रभाव है, उनके द्वारा आप समस्त दुष्टों का विनाश करें ।। ७ ।। अमुक व्यक्ति के पापों को विनष्ट करें, इसका सभी प्रकार का मङ्गल करें, मृत्यु, बन्धन तथा आर्ति रूपी भय प्रदान करने वाले दुर्दैव का जो फल है, शत्रुता की भावना से ग्रस्त होकर प्रयोग किए गए अभिचार कर्म रूपी विष के स्पर्श, तथा महारोग के प्रयोग को आप जरा से जीर्ण बना दें ।। ८-९ ।। ओङ्कारस्वरूप, वासुदेव, भगवान् कृष्ण, खड्ग धारण करने वाले, कमल के समान नेत्र वाले, चक्र आदि को धारण करने वाले भगवान् केशव को नमस्कार है ।। १० ।। कमल के पराग के समान पीत एवं स्वच्छ वस्त्र धारण करने वाले महाश्व (हयग्रीव) नामक राक्षस शत्रु की गर्दन को चक्र से काटने वाले चक्रधारी श्रीभगवान् को नमस्कार है ।। ११।। शेष की शय्या पर शयन करने वाले, मूर्तिमान त्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद, तथा सामवेद स्वरूप) अपने दाँतों के ऊपर पृथिवी को धारण करने वाले महायज्ञ वराह भगवान् को नमस्कार है ।। १२ ।। जिनके केश (आयाल) का अन्तिम भाग सुतप्त सुवर्ण के समान चमकने वाला है, जिनके नेत्र जलती हुयी आग के समान चमकते हैं, जिनके नखों का स्पर्श वज्र से भी अधिक कठोर है, ऐसे दिव्य सिंह नृसिंह भगवन् ! आपको नमस्कार है ।। १३ ।। महर्षि कश्यप के आत्मज, अत्यन्त छोटे शरीर वाले, ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद से समलङ्कृत तथा पृथिवी को अपने डग से नापने वाले भगवन् वामन ! आपको बारम्बार नमस्कार है ।। १४ ।। हे बड़े-बड़े दाँतों वाले वराह भगवन् ! सम्पूर्ण दुःखों तथा समस्त पापों के फलों को विनष्ट करके उनके फलों को भी आप विनष्ट कर दें।।१५।। हे भयंकर मुख वाले ! दाँतों के सन्निकट चमकने वाली अग्नि की ज्वाला से देदीप्त भगवन्, हे भक्तों के दुःखों को विनष्ट करने वाले नृसिंह भगवन् आप अपनी गर्जना से दुष्टों को विनष्ट करके मुझे कृपापूर्वक देखें ।। १६ ।। हे वामन रूप धारण करने वाले भगवन् ! ऋग्, यजुः तथा साम से युक्त वाणी के द्वारा भगवन् जनार्दन इस (व्यक्ति) के दुःखों को विनष्ट कर दें ।। १७ ।। हे गोविन्द! आप इसके ऐकाह्निक, द्वयाह्निक, त्र्याह्निक, चातुर्थिक, तथा अत्यन्त उग्ररूप से सदा बने रहने वाले ज्वर को,दोषजन्य, सन्निपातजन्य, तथा आगन्तुक ज्वर को शीघ्र शान्त करके इसकी वेदना को विनष्ट कर दें ।। १८-१९ ।। नेत्र के दुःख, सिर के दुःख, उदरजन्य दुःख, श्वास का रुकना, अत्यधिक श्वास का आना, जलन, कँपकँपी, गुदा, घ्राण, तथा पैर के रोग, कुष्ठरोग, क्षयरोग, कामल

क्षयम् । कामलादींस्तथा रोगान् प्रमेहांश्चातिदारुणान् ॥ २१ ॥ भगन्दरातिसारांश्च मुखरोगांश्च वल्गुलीम् । अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रांश्च रोगानन्यांश्च दारुणान्॥ २२ ॥ ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः । कफोद्भवाश्च ये केचिद्ये चान्ये सन्निपातिकाः ॥ २३ ॥ आगन्तुकाश्च ये रोगा लूताविस्फोटकादयः । ते सर्वे प्रशमं यान्तु वासुदेवस्य कीर्तनात् ॥ २४ ॥ विलयं यान्तु ते सर्वे विष्णोरुच्चारणेन च । क्षयं गच्छन्तु चाशेषास्ते चक्राभिहता हरेः ॥ २५ ॥ अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् । नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ २६ ॥ स्थावरं जङ्गमं वापि कृत्रिमं चापि यद् विषम् । दन्तोद्भवं नखभवमाकाशप्रभवं विषम् ॥ २७ ॥ लूतादिप्रभवं यच्च विषमन्यत्तु दुःखदम् । शमं नयतु तत् सर्वं वासुदेवस्य कीर्तनम् ॥ २८ ॥ ग्रहान् प्रेतग्रहांश्चापि तथा वै डाकिनीग्रहान् । वेतालांश्च पिशाचांश्च गन्धर्वान् यक्षराक्षसान् ॥ २९ ॥ शकुनीपूतनाद्यांश्च तथा वैनायकान् ग्रहान् । मुखमण्डीं तथा क्रूरां रेवतीं वृद्धरेवतीम् ॥ ३० ॥ वृद्धकाख्यान् ग्रहां श्चोग्रांस्तथा मातृग्रहानपि । बालस्य विष्णोश्चरितं हन्तु बालग्रहानिमान् ॥ ३१ ॥ वृद्धाश्च ये ग्रहाः केचिद्ये च बालग्रहाः क्वचित् । नरसिंहस्य ते दृष्ट्या दग्धा ये चापि यौवने ॥ ३२ ॥ सटाकरालवदनो नारसिंहो महाबलः। ग्रहानशेषान्निःशेषान्करोतु जगतो हितः ॥ ३३ ॥ नरसिंह महासिंह ज्वालामालोज्ज्वलानन । ग्रहानशेषान् सर्वेश खाद खादाग्निलोचन ॥ ३४ ॥ ये रोगा ये महोत्पाता यद् विषं ये महाग्रहाः । यानि च क्रूरभूतानि ग्रहपीडाश्च दारुणाः ॥ ३४ ॥ शस्त्रक्षतेषु ये दोषा ज्वालागर्दभकादयः । तानि सर्वाणि सर्वात्मन् परमात्मन् जनार्दन ॥ ३६ ॥ किञ्चिद्रूपं समास्थाय वासुदेवास्य नाशय । क्षिप्त्वा सुदर्शनं चक्रं ज्वालामालातिभीषणम् ॥ ३७ ॥ सर्वदुष्टोपशमनं कुरु देववराच्युत ! सुदर्शन महाज्वाल च्छिन्धि च्छिन्धि महारव ॥ ३८ ॥ सर्वदुष्टानि रक्षांसि क्षयं यान्तु विभीषण । प्राच्यां प्रतीच्यां च दिशि दक्षिणोत्तरतस्तथा ॥ ३९ ॥ रक्षां करोतु सर्वात्मा नरसिंहः स्वगर्जितैः । दिवि भुव्यन्तरिक्षे च पृष्ठतः

(पीलिया) आदि रोग, मुख के रोग, अत्यन्त भयंकर प्रमेह रोग, भगन्दर, अतिसार, मुख के रोग, बल्गुली नामक रोग, अश्मरी नामक रोग, मूत्रकृच्छ्र तथा दूसरे भयंकर रोग, वातजन्य रोग, पित्तजन्य रोग, कफजन्य रोग, सन्निपातिक रोग, लूता तथा विस्फोटक आदि आगन्तुक रोग ये सबके सब रोग भगवान् वासुदेव के नाम संकीर्तन से शान्त हो जायें ।। २० ।। २१-२४ ।। ये सभी रोग भगवान् विष्णु के नामोच्चारण से विनष्ट हो जायें तथा भगवान् विष्णु के चक्र के प्रहार से विनष्ट हो जायँ ।। २५ ।। मैं यह सत्य-सत्य कह रहा हूँ कि श्रीभगवान् के अच्युत, अनन्त, गोविन्द इन नामों के उच्चारण रूपी भेषज से सभी रोग विनष्ट हो जाते हैं ।। २६ ।। जो स्थावर, जङ्गम अथवा कृत्रिम विष हैं, दाँत से उत्पन्न, नख से उत्पन्न, तथा आकाश से उत्पन्न होने वाले विष हैं, जो लूता इत्यादि से उत्पन्न होने वाले दुःखद विष हैं वे सबके सब भगवान् वासुदेव के नामोच्चारण से शान्त हो जायँ ।। २७-२८ ।। ग्रह, प्रेतग्रह, डाकिनीग्रह, वेताल, पिशाच, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, शकुनी, पूतना आदि, वैनायकग्रह, मुखमण्डी, क्रूररेवती, वृद्धरेवती, वृद्धिकाग्रह, उपमातृग्रह आदि जो बालकों के ग्रह हैं,उनको बालक रूपधारी भगवान् विष्णु का चरित्र विनष्ट कर दे ।। २९-३१ ।। जो कोई हृदयग्रह बालग्रह अथवा यौवन के ग्रह हैं, वे भगवान् नृसिंह की दृष्टिसे ही विनष्ट हो जायँ।। ३२ ।। जगत् का कल्याण करने वाले महाबलवान् तथा आयालों के कारण भयंकर मुख वाले भगवान् नृसिंह सम्पूर्ण ग्रहों को विनष्ट कर दें ।। ३३ ।। हे ज्वाला समूह से देदीप्यमान मुखड़े वाले महासिंह नृसिंह भगवन् ! हे अग्निलोचन ! हे सर्वेश ! सम्पूर्ण ग्रहों को आप खा जाइये-खा जाइये ।।३४।। इसके जो रोग हैं, महाउत्पात, विष, महाग्रह, क्रूरभूत, भयंकर ग्रहजन्यपीड़ा, शस्त्रप्रहारजन्य दोष, ज्वालागर्दभ आदि, उन सबों को हे सर्वात्मन् ! परमात्मन्! जनार्दन् ! ज्वाला समूह से अत्यन्त भयंकर बने हुए सुदर्शन चक्र को चलाकर विनष्ट कर दें ।। ३५-३६ ।। हे देवताओं में श्रेष्ठ, अच्युत भगवन् ! आप सभी दुष्टों को विनष्ट कर दें । हे सुदर्शन! हे महाज्वाल, हे महारव ! आप इसके समस्त अशुभों को छिन्न-भिन्न कर दें ।। ३८ ।। हे भयंकर ! सुदर्शनचक्र ! सभी दुष्टों तथा राक्षसों का क्षय हो जाय । पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण दिशा में सर्वात्मा भगवान् नृसिंह अपनी गर्जना

पार्श्वतोऽग्रतः ॥ ४० ॥ रक्षां करोतु भगवान् बहुरूपी जनार्दनः । यथा विष्णुर्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ४१ ॥ तेन सत्येन दुष्टानि शममस्य व्रजन्तु वै । यथा विष्णौ स्मृते सद्यः सङ्क्षयं यान्ति पातकाः ॥ ४२ ॥ सत्येन तेन सकलं दुष्टमस्य प्रशाम्यतु । यथा यज्ञेश्वरो विष्णुर्देवेष्वपि हि गीयते॥४३॥ सत्येन तेन सकलं यन्मयोक्तं तथास्तु तत् । शान्तिरस्तु शिवं चास्तु दुष्टमस्य प्रशाम्यतु ॥ ४४ ॥ वासुदेवशरीरोत्थैः कुशैर्निर्णाशितं मया । अपमार्जतु गोविन्दो नरो नारायणस्तथा ॥ ४५ ॥ तथास्तु सर्वदुःखानां प्रशमो वचनाद्धरेः । अपमार्जनकं शस्तं सर्वरोगादिवारणम् ॥ ४६ ॥ अहं हरिः कुशो विष्णुर्हता रोगा मया तव ॥ ४७ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कुशापामार्जनस्तोत्रवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

निर्वाणदीक्षासिद्धार्थानां संस्काराणां वर्णनम्

अग्निरुवाच— **निर्वाणादिषु दीक्षासु चत्वारिंशत्तथाष्ट च । संस्कारान् कारयेद्धीमाञ्शृणु तान् यैः सुरो भवेत् ॥ १ ॥ गर्भाधानं तु योन्यां वै ततः पुंसवनं चरेत्। सीमन्तोन्नयनं चैव जातकर्म च नाम च ॥ २ ॥ अन्नाशनं ततश्चूडा ब्रह्मचर्यव्रतानि च । चत्वारि वैष्णवी पार्थी भौतिकी श्रौतिकी तथा॥३॥ गोदानं स्नातकत्वं च पाकयज्ञाश्च सप्त च। अष्टका पार्वणश्राद्धं श्रावण्याग्रायणीति च ॥ ४ ॥ चैत्री चाश्वयुजी सप्त हविर्यज्ञांश्च ताञ्शृणु।**

से इसकी रक्षा करें । स्वर्ग, पृथिवी, तथा अन्तरिक्ष में पीछे,बगल में तथा आगे अनेक रूप धारण करने वाले भगवान् नारायण रक्षा करें । भगवान् विष्णु देवता, असुर तथा मनुष्यात्मक सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं, इस सत्य के द्वारा इसके सम्पूर्ण पाप शान्त हो जायँ । जिस तरह से भगवान् विष्णु के स्मरण मात्र से सम्पूर्ण पाप विनष्ट हो जाते हैं, उसी सत्य के द्वारा इसके समस्त पाप विनष्ट हो जायँ । जिस तरह से देवता भी भगवान् विष्णु का यज्ञेश्वर रूप से गान करते हैं, उसी सत्य के द्वारा मैंने जो कुछ कहा है, वह सब सत्य होए । शान्ति हो, कल्याण हो तथा इसके सारे दोष दूर हो जायँ ।। ३९-४४ ।। जिस तरह से भगवान् वासुदेव के शरीर से उत्पन्न कुश इसके समस्त पापों को विनष्ट कर दिया है, उसी तरह से भगवान् गोविन्द, नर तथा नारायण उसका अपमार्जन करें।।४५।। श्रीभगवान् के स्मरण मात्र से इसके समस्त दुःखों का नाश हो जाय । यह अपमार्जन स्तोत्र प्रशस्त तथा सभी रोगों को दूर करने वाला है ।। ४६।। मैं श्रीहरि हूँ,कुश विष्णु स्वरूप है, मैंने तुम्हारे रोगों को विनष्ट कर दिया है ।। ४७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का कुशापमार्जन स्तोत्र वर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३१ ॥

अग्निदेव ने कहा— निर्वाण आदि दीक्षाओं में बुद्धिमान पुरुष को अड़तालिस संस्कारों को करना चाहिए, उन सबों को करने से मनुष्य भी देवता हो जाता है । उसे आप सुनें ।। १ ।। सर्वप्रथम योनि में गर्भाधान संस्कार करना चाहिए, फिर पुंसवन संस्कार करना चाहिए । उसके पश्चात् क्रमशः सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, तथा ब्रह्मचर्य व्रत करना चाहिए । वैष्णवी, पार्थी, भौतिक तथा श्रौत ये चार संस्कार की विधियाँ हैं । पुनः गोदान (बाल काटना) स्नातकत्व और पाकयज्ञ, ये सब मिलकर संस्कारों की संख्या सात हो जाती है । अष्टकाश्राद्ध, पार्वण श्राद्ध, श्रावणीकर्म, तथा आग्रायणी कर्म, चैत्री, तथा अश्वयुजी ये पाकयज्ञ हैं । आप हविर्यज्ञों को सुनें । आधान, अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य, पशुबन्ध और सौत्रामणि । अब सात सोमसंस्थाओं

आधानं चाग्निहोत्रं च दर्शो वै पौर्णमासकः ॥ ५ ॥ चातुर्मास्यं पशुबन्धः सौत्रामणिरथापरः । सोमसंस्थाः सप्त शृणु अग्निष्टोमः क्रतूत्तमः ॥ ६ ॥ अत्यग्निष्टोम उक्थ्यश्च षोडशी वाजपेयकः। अतिरात्रोऽप्तोर्यामश्च सहस्रेशासवा इमे ॥ ७ ॥ हिरण्याङ्घ्रिर्हिरण्याक्षो हिरण्यमित्र इत्यतः । हिरण्यपाणिर्हेमाक्षो हेमाङ्गो हेमसूत्रकः ॥ ८ ॥ हिरण्यास्यो हिरण्याङ्गो हेमजिह्वो हिरण्यवान् । अश्वमेधो हि सर्वेशो गुणाश्चाष्टाथ ताञ्छृणु ॥ ९ ॥ दया च सर्वभूतेषु क्षान्तिश्चैव तथार्जवम् । शौचं चैवमनायासो मङ्गलं चापरो गुणः ॥ १० ॥ अकार्पण्यं चास्पृहा च मूलेन जुहुयाच्छतम् । सौरशाक्तेयविष्णवीशदीक्षास्वेते समाः स्मृताः ॥ ११ ॥ संस्कारैः संस्कृतश्चैतैर्भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्। सर्वरोगादिनिर्मुक्तो देववद् वर्तते नरः ॥ १२॥ जप्याद्धोमात्पूजनाच्च ध्यानाद्देवस्य चेष्टभाक् ॥ १३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये निर्वाणदीक्षासिद्ध्यर्थानां संस्काराणां वर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

पवित्रकारोपणविधिकथनम्

अग्निरुवाच— **पवित्रारोहणं वक्ष्ये वर्ष पूजाफलं हरेः। आषाढाऽदौ कार्तिकान्ते प्रतिपद्वनदा तिथिः ॥ १॥ श्रिया गौर्या गणेशस्य सरस्वत्या गुहस्य च । मार्तण्डमातृदुर्गाणां नागर्षिहरिमन्मथैः ॥ २ ॥ शिवस्य ब्रह्मणस्तद्वद् द्वितीयादितिथिक्रमात्। यस्य देवस्य यो भक्तः पवित्रा तस्य सा तिथिः॥३॥ आरोहणे तुल्यविधिः पृथङ्मन्त्रादिकं यदि। सौवर्णं राजतं ताम्रं नेत्रकार्पासिकादिकम्॥ ४ ॥ ब्राह्मण्या कर्तितं सूत्रं तदलाभे तु संस्कृतम्।**

के विषय में सुनें। उत्तम यज्ञ अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, बाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम, तथा सहस्रसव ।। २-७ ।। हिरण्याङ्घ्रि, हिरण्याक्ष, हिरण्यमित्र, हिरण्यपाणि, हेमाक्ष, हेमाङ्ग, हेमसूत्रक, हिरण्यास्य, हिरण्याङ्ग, हेमजिह्व, हिरण्यवान् तथा सर्वेश अश्वमेघ ये उत्तम यज्ञ हैं ।। ८-९ ।। सभी प्राणियों पर दया करना, क्षमा, ऋजुता, शौच (पवित्रता), श्रम राहित्य, मंङ्गलमयता, औदार्य, अस्पृहा (सन्तोष) मूलमन्त्र से सौबार होम ये सभी, सौर, शाक्त, वैष्णव तथा शैव दीक्षाओं में समान रूप से अपेक्षित होते हैं ।। १०-११ ।। इन संस्कारों से संस्कृत मनुष्य भोग तथा मोक्ष को प्राप्त करता है, सभी रोगों से मुक्त होकर वह देवता के समान व्यवहार करता है ।। १२ ।। जप, होम, पूजन तथा ध्यान से मनुष्य अपने समस्त मनोरथों को पूर्ण कर लेता है ।। १३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का निर्वाणदीक्षा सिध्यर्थ संस्कारों का वर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३२ ॥

अग्निदेव ने कहा— *मै। पवित्रारोपण विधि तथा श्रीहरि के वर्ष पूजा के फल का वर्णन करूँगा ।* इस विधि का अनुष्ठान आषाढ़ मास से लेकर कार्तिक मास पर्यन्त किया जाता है, किन्तु इसमें प्रत्येक मास की प्रतिपत् तिथि त्याज्य होती है ।। १ ।। श्री, गौरी, गणेश, सरस्वती, कार्तिकेय, सूर्य, मातृका, दुर्गा, नाग, ऋषि, हरि, कामदेव, शिव तथा ब्रह्मा (ये चौदह देवता) द्वितीया आदि क्रमशः तिथियों के अधिष्ठातृ देवता हैं । इन देवताओं में से जो जिस देवता का भक्त होता है उसके लिए उस देवता की ही तिथि पवित्र होती है ।। २-३ ।। पवित्रक के लिए सुवर्ण, चाँदी, ताम्बा, नेत्रक (रेशम), रेशम तथा कपास के सूत्र उत्तम हैं । सूत ब्राह्मणी के हाथ का काता हुआ होना चाहिए । यदि ब्राह्मणी के हाथ का काता हुआ सूत न मिले तो संस्कार किया हुआ सूत ले लेना चाहिए । द्विगुण सूत को त्रिगुण करके उसी से पवित्रक बनाना चाहिए । सभी देवताओं की पवित्रक विधि एक समान है, मन्त्र भले ही पृथक् पृथक् होते हैं ।। ४-५ ।। पवित्रक एक सौ आठ अंगुल से ऊपर उत्तम

द्विगुणं त्रिगुणीकृत्य तेन कुर्यात्पवित्रकम् ॥ ५ ॥ अष्टोत्तरशतादूर्ध्वं तदर्धं चोत्तमादिकम् । क्रियालोपविघातार्थं यत्त्वयाभिहितं प्रभो ॥ ६ ॥ मया तत् क्रियते देव यथा यत्र पवित्रकम् । अविघ्नं तु भवेदेतत् कुरु नाथ तथाव्यय ॥ ७ ॥ प्रार्थ्य तन्मण्डलादौ तु गायत्र्या बन्धयेन्नरः । ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि ॥ ८ ॥ तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् । देव देवानुरूपतः ॥ ९ ॥ जानूरूनाभिपादान्तं प्रतिमासु पवित्रकम्। पादान्ता वनमाला स्यादष्टोत्तरसहस्रतः ॥ १०॥ मालां तु कल्पसाध्यां वा द्विगुणां षोडशाङ्गुलात् । कर्णिकाकेसरं पत्रमन्त्राद्यं मण्डलान्तकम् ॥ ११ ॥ मण्डलाङ्गुलमात्रैकचक्राङ्कादौ पवित्रकम् । स्थण्डिलेऽङ्गुलमानेन आत्मनः सप्तविंशतिः॥ १२ ॥ आचार्याणाञ्च सूत्राणि पितृमात्रादिकैः स्वकैः। नाभ्यन्तं द्वादशग्रन्थिं तथा गन्धपवित्रके ॥ १३ ॥ अङ्गुलात्कल्पनादौ द्विर्माला चाष्टोत्तरं शतम् । अथवार्कचतुर्विंशषट्त्रिंशन्मालिका द्विज ॥ १४॥ अनामामध्यमाङ्गुष्ठैर्मन्दाद्यैर्मालिकार्थिभिः । कनिष्ठादौ द्वादश वा ग्रन्थयः स्युः पवित्रके ॥ १५ ॥ रवेः कुम्भहुताशादेः सम्भवे विष्णुवन्मतम् । पीठस्य पीठमानं स्यान्मेखलान्तं च कुण्डके ॥ १६ ॥ यथाशक्ति सूत्रग्रन्थिः परिचारेऽथ वैष्णवे। सूत्राणि वा सप्तदशसूत्रेण त्रिविभक्तके ॥ १७॥ रोचनागुरुकर्पूरहरिद्राकुंकुमादिभिः। रञ्जयेच्चन्दनाद्यैर्वा स्नानसन्ध्यादिकृन्नरः ॥ १८ ॥ एकादश्यां यागगृहे भगवन्तं हरिं यजेत्। समस्तपरिवाराय बलिं दद्यात्समर्चयेत् ॥ १९ ॥ क्षौं क्षेत्रपालाय द्वारान्ते द्वारोपरि तथा श्रियम् । धात्रे दक्षविधात्रे च गङ्गां च यमुनां तथा ॥ २०॥ शङ्खपद्मनिधी पूज्य मध्ये वस्त्रप्रसारणम् । सारङ्गायेति भूतानां भूतशुद्धिं स्थितश्चरेत् ॥ २१ ॥ ॐ हूं हः फट् हूं गन्धतन्मात्रं संहरामि नमः । ॐ हूं हः फट् हूं

होता है तथा उसके आधा मध्यम आदि के क्रम से होता है । सर्वप्रथम देवता से प्रार्थना करना चाहिए कि हे प्रभो ! क्रियालोपजन्य दोष का विघात (विनाश) करने के लिए आपने जो शास्त्रीय विधान किया है, हे केशव मैं उसका अनुष्ठान करता हूँ । जहाँ पर जो पवित्र है उसको मैं कर रहा हूँ । यह कार्य जिस तरह से निर्विघ्न पूरा हो हे अव्यय आप वैसा ही करें ।। ६-७ ।। इस तरह से प्रार्थना करके पवित्र मण्डल का गायत्री से बन्धन करें ।। 'ओम् नारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि, तन्नोविष्णुः प्रचोदयात् ।' यह विष्णु गायत्री है । गायत्री मन्त्र का भिन्न-भिन्न देवता के अनुकूल प्रयोग करना चाहिए । सभी देवताओं की गायत्री अलग अलग हैं ।। ८-९ ।। प्रतिमा के घुटना, ऊरु, नाभि तथा पैर के अन्तिम भाग में पवित्रक लगाना चाहिए । अष्टोत्तर सहस्रमनियों वाली वनमाला पैर पर्यन्त की होनी चाहिए ।। १० ।। कल्प से बनी हुई माला को सोलह अंगुल के दुगना अर्थात् बत्तीस अंगुल की होनी चाहिए । प्रथम मण्डल से लेकर अन्तिम मण्डल पर्यन्त कर्णिका, केसर तथा पत्र का मन्त्र से पूजन करना चाहिए ।। ११ ।। मण्डल के अंगुलमात्र के एक चक्र आदि में पवित्र किया जाता है । अपने अंगुल से सत्ताइस अंगुल वेदी के ऊपर नाभि के अन्त में एक ओर आचार्य, पिता, माता आदि के बारह ग्रन्थि वाले पवित्रकसूत्र का चन्दन आदि से पूजन करना चाहिए ।। १२-१३ ।। अङ्गुलि से माला बनाने पर दो अष्टोत्तरशत (१०८) दाने की माला बनाना चाहिए अथवा हे द्विज बारह दाने की, या चौबीस दाने की अथवा छत्तीस दाने की माला बनाना चाहिए ।। १४ ।। अनामिका मध्यमा तथा अंगुष्ठ तथा मन्द अंगुलियाँ जिनसे माला बनायी जाता है, उनसे माला बनाना चाहिए । अथवा कनिष्ठा अंगुलि से पवित्रक में बारह, ग्रंथि लगाना चाहिए ।। १५ ।। सूर्य, कुम्भ, अग्नि के लिए यदि सम्भव हो तो विष्णु के ही समान माला बनाए और पूजन करे। वेदी की माला वेदी के बराबर तथा कुण्ड की माला मेखला के बराबर होनी चाहिए ।। १६ ।। स्नान तथा सन्ध्या आदि करके मनुष्य को चाहिए कि वह विष्णु भगवान् के पूजन में अपनी शक्ति के अनुसार सूत्र में ग्रन्थि लगाकर अथवा विना ग्रन्थि के ही सूत्र के द्वारा तीन भागों में विभक्त करके सत्रह सूत्रों को गोरोचन, अगरु, कर्पूर, हल्दी, कुंकुम तथा चन्दन आदि से रंगें ।।१७-१८।। एकादशी के दिन यज्ञशाला में श्रीभगवान् की पूजा करे तथा श्रीभगवान् के सम्पूर्ण परिवार के लिए बलि प्रदान करे एवं अर्चना करे ।। १९ ।। इसके पश्चात् ओम् क्षौं क्षेत्रपालाय नमः ।' इस मन्त्र से क्षेत्रपाल के द्वारान्त पर बलि देनी चाहिए । द्वार पर श्रीदेवि, धाता, दक्ष, विधाता, गङ्गा, यमुना, शङ्खनिधि तथा पद्मनिधि की पूजा करके मध्य में सारङ्गाय नमः इस वाक्य का उच्चारण करके एक वस्त्र फैला देना चाहिए । उसके पश्चात् बैठकर भूतों की भूतशुद्धि करनी चाहिए ।। २०-२१ ।। (१) ओम् हूं हः फट् हूं गन्धतन्मात्रं संहरामि नमः', (२) ओम् हूं हः फट् हूं रसतन्मात्रं संहरामि नमः, (३) ओम् हूं हः फट् हूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः, (४) ओम् हूं हः फट् हूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः ।। ५ ।। ओम् हूं हः फट् हूं शब्द तन्मात्रं संहरामि नमः । इन पाञ्च उद्घात मन्त्रों के

रसतन्मात्रं संहरामि नमः ॥ २२ ॥ ॐ हूं हूः फट् हूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः । ॐ हूं हूः फट् हूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः॥ २३ ॥ ॐ हूं हूः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः । पञ्चोद्घातैर्गन्धतन्मात्रस्वरूपं भूमिमण्डलम् ॥ २४ ॥ चतुरस्त्रं च पीठं च काञ्चनं वज्रलाञ्छितम्। इन्द्रादिदैवतं पादयुग्ममध्यगतं स्मरेत् ॥ २५ ॥ शुद्धं च रसतन्मात्रं प्रविलाप्याथ संहरेत् । रसमात्रं रूपमात्रे क्रमेणानेन पूजकः ॥ २६ ॥ ॐ हूं हूः फट् हूं रसतन्मात्रं संहरामि नमः । ॐ हूं हूः फट् हूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः ॥ २७ ॥ ॐ हूं हूः फट् हूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः । ॐ हूं हूः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः ॥ २८ ॥ जानुनाभिमध्यगतं श्वेतं वै पद्मलाञ्छितम् । शुक्लवर्णं चार्धचन्द्रे ध्यायेद्वरुणदैवतम् ॥ २९ ॥ चतुर्भिश्च तदुद्घातैः शुद्धं तद्रसमात्रकम् । संहरेद्रसतन्मात्रं रूपमात्रे च संहरेत् ॥ ३० ॥ ॐ हूं हूः फट् हूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः । ॐ हूं हूः फट् हूं स्पर्शातन्मात्रं संहरामि नमः ॥ ३१ ॥ ॐ हूं हूः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः । इति त्रिभिस्तदुद्घातैस्त्रिकोणं वह्निमण्डलम् ॥ ३२॥ नाभिकण्ठमध्यगतं रक्तं स्वस्तिकलाञ्छितम् । ध्यात्वानलाधिदैवं तच्छुद्धं स्पर्शे लयं नयेत् ॥ ३३ ॥ ॐ हूं हूः फट् हूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः। ॐ हूं हूः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः ॥ ३४॥ कण्ठनासामध्यगतं वृत्तं वै वायुमण्डलम् । द्विरुद्घातैर्धूमवर्णं ध्यायेच्छुद्धेन्दुलाञ्छितम् ॥३५॥ स्पर्शमात्रं शब्दमात्रे संहरेद् ध्यानयोगतः । ॐ हूं हूः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः ॥ ३६ ॥ एकोद्घातेन चाकाशं शुद्धस्फटिकसन्निभम् । नासापुटशिखान्तस्थमाकाशमुपसंहरेत् ॥ ३७ ॥ शोषणाद्यैर्देहशुद्धिं कुर्यादेवं क्रमात्ततः । शुष्कं कलेवरं ध्यायेत् पादाद्यं च शिखान्तकम् ॥ ३८ ॥ यं-बीजेन वं-बीजेन ज्वालामालासमायुतम्। देहं रमित्यनेनैव ब्रह्मरन्ध्राद् विनिर्गमम्॥३९॥ बिन्दुं ध्यात्वा चामृतस्य तेन भस्मकलेवरम् । सम्प्लावयेल्लमित्यस्माद्

द्वारा गन्ध तन्मात्र स्वरूप भूमिमण्डल वज्र (हीरा) के द्वारा अलङ्कृत सुवर्णनिर्मित चतुरस्र पीठ तथा इन्द्रादि देव समूह को भी भगवान् के दोनों चरणों में विद्यमान रूप से स्मरण करना चाहिए । पुनः शुद्ध रस तन्मात्रा का प्रविलापन करके उसका संहार करे और इसी क्रम से साधक रस तन्मात्रा का रूपतन्मात्रा में प्रविलापन करे ।।२२-२६।। ओम् हूं हः फट् हूं रसतन्मात्रं संहरामि नमः, ओम् हूं हः फट् हूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः । ओम् हूं हः फट् हूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः । ओम् हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः । इन चार उद्धात मन्त्रों के द्वारा श्रीभगवान् के घुटनों तथा नाभि के मध्य में विद्यमान, श्वत वर्ण के, कमल से अलंकृत, शुक्लवर्ण वाले, वरुणदैवत, अर्द्धचन्द्र के ऊपर विद्यमान, शुद्ध रसतन्मात्रा का ध्यान करे । उस रसतन्मात्रा का संहार करके उसका रूपतन्मात्रा में प्रविलापन करे ।।२७-३०।। ओम् हूं ह्न फट् हूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः। ओम् हूं हः फट् हूँ स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः । ओम् हूं हः फट् हूँ शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः । इन तीन रूप तन्मात्रा के उद्घात के मन्त्रों के द्वारा त्रिकोण बह्निमण्डल, स्वस्तिक चिह्न से चिह्नित रक्त वर्णन के अग्न्यधिदैवत रूपतन्मात्रा का श्रीभगवान् के नाभि तथा कण्ठ के मध्य में विद्यमान रूप से ध्यान करके उस शुद्ध रूप तन्मात्रा का स्पर्श तन्मात्रा में लय करना चाहिए ।। ३१-३३ ।। ओम् हूं हः फट् हूँ स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः । ओम हूँ हः फट हूँ शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः । इन दो उद्घात मन्त्रों का उच्चारण करके, धूम्रवर्ण के शुद्ध चन्द्रमा से लाञ्छित, श्रीभगवान् के कण्ठ तथा नासिका के मध्य में विद्यमान वायुमण्डल का ध्यान करना चाहिए । पुनः स्पर्शतन्मात्रा का शब्दतन्मात्रा में ध्यानयोग के द्वारा लय करना चाहिए । 'ओम् हूं हः फट हू शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः' इस एक उद्घात मन्त्र के द्वारा शुद्ध स्फटिक के समान आकाश का श्रीभगवान् की नासिका तथा शिखा के बीच में ध्यान करके उपसंहार करना चाहिए ।। ३४-३७ ।। इसी प्रकार से शोषणादि क्रिया के द्वारा देहशुद्धि करनी चाहिए । पाद से लेकर शिखा पर्यन्त शुष्क शरीर का ध्यान करना चाहिए ।। ३८ ।। 'यं' तथा 'वं' इन दो बीजों के द्वारा ज्वाला समूह से व्याप्त देह को 'रं' बीज के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र से निकले हुए अमृत की विन्दु का ध्यान करके उसमें भस्म शरीर को डुबाए तथा 'लं' बीज के द्वारा दिव्य शरीर को सम्पन्न करके अङ्गन्यास तथा करन्यास करके मानस-याग करना चाहिए । साङ्ग सपरिवार विष्णु का अपने हृदयकमल में मानस पुष्पों आदि सामग्रियों से तथा मूलमन्त्र

देहं सम्पाद्य दिव्यकम् ॥ ४० ॥ न्यासं कृत्वा करे देहे मानसं यागमाचरेत् । बिष्णुं साङ्गं हृदि पद्मे मानसैः कुसुमादिभिः॥४१॥ मूलमन्त्रेण देवेशं प्रार्चयेद् भुक्ति मुक्तिदम् । स्वागतं देव ! देवेश सन्निधौ भव केशव ॥ ४२ ॥ गृहाण मानसीं पूजां यथार्थं परिभाविताम् । आधारशक्तिः कूर्मोऽथ पूज्योऽनन्तो महीं ततः ॥ ४३ ॥ मध्येऽग्न्यादौ च धर्माद्या अधर्माद्याश्च मुख्यगाः । सत्त्वादिमध्ये पद्मं च मायाविद्याख्यतत्त्वके ॥ ४४ ॥ कालतत्त्वं च सूर्यादिमण्डलं पक्षिराजकः । मध्ये ततश्च वायव्यादीशान्ता गुरुपङ्क्तिका ॥ ४५ ॥ गणः सरस्वती पूज्या नारदो नलकूबरः । गुरुर्गुरोः पादुका च परोगुरुश्च पादुका ॥ ४६ ॥ पूर्वसिद्धाः परसिद्धाः केसरेषु च शक्तयः । लक्ष्मी सरस्वती प्रीतिः कीर्तिः शान्तिश्च कान्तिका ॥ ४७ ॥ पुष्टिस्तुष्टिर्महेन्द्राद्या मध्ये चावाहितो हरेः । धृतिः श्रीरतिकान्त्याद्या मूलेन स्थाप्यतेऽच्युतः ॥ ४८ ॥ ॐ अभिमुखो भवेति प्राथ्य प्राच्यां सन्निहितो भव। विन्यस्यार्घ्यादिकं दत्त्वा गन्धाद्यैर्मूलतो यजेत् ॥ ४९ ॥ ॐ भीषय भीषय हृच्छिरस्त्रासय वै नमः । मर्दय मर्दय शिखामग्न्यादौ क्रमतोऽस्त्रकम्॥५०॥ ''रक्ष रक्ष प्रध्वंसय कवचाय नमः । हूं फट् अस्त्राय नमो मूलबीजेन चाङ्गकम् ॥ ५१ ॥ पूर्वदक्षाप्यसौम्येषु मूर्त्यावरणमर्चयेत् । वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥ ५२ ॥ अग्न्यादौ श्रीरतिधृतिकान्तयो मूर्तयो हरेः । शङ्खं चक्रं गदां पद्ममग्न्यादौ पूर्वकादिकम् ॥ ५३ ॥ शार्ङ्गं च मुसलं खड्गं वनमालां च तद्बहिः । इन्द्राद्यांश्च तथानन्तं नैर्ऋत्यां वरुणं ततः ॥ ५४ ॥ ब्रह्मेन्द्रेशानयोर्मध्ये अस्त्रावरणकं बहिः । ऐरावतस्ततश्छागो महिषोऽथ

से भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले श्रीभगवान् की पूजा करनी चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए कि- हे देवताओं के भी देव भगवन् ! आपका स्वागत है । यथोचित रूप से श्रद्धापूर्वक की गयी मानसिक पूजा को आप स्वीकार करें । उसके पश्चात् आद्याशक्ति, कूर्म, अनन्त तथा पृथिवी का पूजन करना चाहिए ।। ३९-४३ ।। वेदों के मध्य में तथा अग्नि आदि कोष्ठों में धर्म आदि तथा अधर्म आदि मुख्य देवताओं की, सत्त्व आदि में पद्म, माया तथा अविद्या तत्त्व का पूजन करना चाहिए ।। ४४ ।। वहीं पर कालतत्त्व, सूर्यादिमण्डल तथा पक्षिराज गरुड़ का पूजन करना चाहिए । उसके पश्चात् मध्य में ही वायव्य कोण से लेकर ईशानकोण पर्यन्त गुरुपंक्ति (आचार्य परम्परा) सरस्वती, नारद, नलकूबर, परमगुरु की पादुका तथा गुरु के गुरु की पादुका का पूजन करना चाहिए । कमल केसरों में पूर्वसिद्ध तथा परसिद्धशक्तियों– लक्ष्मी, सरस्वती, प्रीति, कीर्ति, शान्ति, कान्ति, पुष्टि, तुष्टि तथा महेन्द्र आदि का पूजन करना चाहिए । सावधान होकर बीच में श्रीहरि की धृति, श्री तथा अतिकान्ति आदि का पूजन करके मूलमन्त्र से भगवान् अच्युत की स्थापना करनी चाहिए ।। ४५-४८ ।। पुनः श्री भगवान् की 'अभिमुखो भव' अर्थात् हे भगवन् ! आप मेरे सम्मुख होएं, इस तरह से प्रार्थना करके 'प्राच्यां सन्निहितो भव' अर्थात् पूर्व दिशा में आप प्रतिष्ठित होएँ, इस मन्त्र से प्रतिष्ठा करके मूलमन्त्र के द्वारा चन्दनादि सामग्रियों से श्रीभगवान् की पूजा करनी चाहिए।। ४९ ।। पुनः निम्नांकित मन्त्रों से अङ्गन्यास करना चाहिए । (१) ओम् भीषय-भीषय हृदयाय नमः, (२) ओम् त्रासय त्रासय शिरसे स्वाहा, (३) ओम् मर्दय मर्दय शिखायै वषट्, (४) ओम् रक्ष रक्ष प्रध्वंसय प्रध्वंसय नमः कवचाय हुम्, (५) ओम् मर्दय मर्दय नेत्राभ्यां वषट् तथा (६) ओम् हुम् अस्त्राय फट् इन मन्त्रों से तथा अच्युत भगवान् के मूल मन्त्र 'ओम् नमो नारायणाय' से अपना अङ्गन्यास करना चाहिए तथा अग्नि में भी ध्यानपूर्वक अङ्गन्यास करना चाहिए ।। ५०-५१ ।। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशाओं में, वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध मूर्तियों की तथा आवरण की पूजा करनी चाहिए।।५२ ।। अग्नि आदि कोणों में श्री, रति, गदा तथा पद्म की अग्नि आदि दिशाओं में शार्ङ्ग, मुसल, खड्ग तथा वनमाला की उसके बाहर पूर्वादि दिशाओं में इन्द्रादि देवताओं की नैर्ऋत्य कोण में अनन्त की, उसके पश्चात् पश्चिम दिशा में वरुण की, पूर्व तथा ईशान के बीच में ब्रह्मा की उसके बाहर अस्त्रों तथा आवरण की पूजा करनी चाहिए । दिक्पालों के पश्चात् बाहर में क्रमशः ऐरावत, छाग, महिष, नगेशय, (सिंह) मृग, शशक (खरगोश) वृषभ, कूर्म, एवं हंस इन वाहनों की पूजा करनी चाहिए । उसके पश्चात् पृश्निगर्भ तथा कुमुद आदि दो-दो श्रीभगवान् के द्वारपालों की पूजा करके पूर्व आदि (दक्षिण, पश्चिम) द्वारों से लेकर उत्तर द्वार पर्यन्त सभी द्वारों पर श्रीहरि को नमस्कार करके उसके पश्चात् बलिपीठ पर 'विष्णु पार्षदेभ्यो नमः' इस मन्त्र से भगवान् विष्णु के पार्षदों

नगेशयः ॥ ५५ ॥ मृगः शशोऽथ वृषभः कूर्मो हंसस्ततो बहिः । पृश्निगर्भः कुमुदाद्या द्वारपाला द्वयं द्वयम् ॥ ५६ ॥ पूर्वाद्युत्तरद्वारान्तं हरिं नत्वा बलिं बहिः । विष्णुपार्षदेभ्यो नमो बलिपीठे बलिं ददेत् ॥ ५७॥ विश्वाय विष्वक्सेनात्मने ईशानके यजेत् । देवस्य दक्षिणे हस्ते रक्षासूत्रं च बन्धयेत्॥५८॥ संवत्सरकृतार्चायाः सम्पूर्णफलदायिने । पवित्रारोहणायेदं कौतुकं धारय ॐ नमः ॥ ५९ ॥ उपवासादिनियमं कुर्याद्वै देवसन्निधौ। उपवासेन नियतो देवं सन्तोषयाम्यहम् ॥ कामक्रोधादयः सर्वे मा मे तिष्ठन्तु सर्वथा । अद्यप्रभृति देवेश यावद् वैशेषिकं दिनम् ॥ ६१ ॥ यजमानो ह्यशक्तश्चेत्कुर्यान्नक्तादिकं व्रती । हुत्वा विसर्जयेत् स्तुत्वा श्रीधरं नित्यपूजनम् ॥ ६२ ॥ ॐ ह्रीं श्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः ॥ ६३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वदेवतासाधारणपवित्रकारोपणविधिकथनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

पवित्रकारोपणे पूजाहोमादिविधिः

अग्निरुवाच— **विशेदनेन मन्त्रेण यागस्थानं च भूषयेत् । नमो ब्रह्मण्यदेवाय श्रीधरायाव्ययात्मने ॥ १ ॥ ऋग्यजुः सामरूपाय शब्ददेहाय विष्णवे। विलिख्य मण्डलं सायं यागद्रव्यादि चाहरेत् ॥ २ ॥ प्रक्षालितकाराङ्घ्रिः सन् विन्यस्यार्घ्यकरो नरः । अर्घ्याद्भिस्तु शिरः प्रोक्ष्य द्वारदेशादिकं तथा ॥ ३ ॥ आरभेद्द्वार यागञ्च तोरणेशान् प्रपूजयेत् अश्वत्थोदुम्बरवटप्लक्षाः पूर्वादिगानगाः ॥ ४ ॥ ऋगिन्द्रशोभनं प्राच्यां यजुर्यमसुभद्रकम् ।**

को बलि प्रदान करना चाहिए ।। ५४-५७ ।। इसके पश्चात् ईशानकोण पर 'विष्वक्सेनात्मने विश्वाय नमः' इस मन्त्र से विष्वक्सेन की पूजा करनी चाहिए । पुनः श्रीभगवान् के दाहिने हाथ में- '**संवत्सरकृतार्चायाः सम्पूर्णफलदायिने । पवित्रारोहणायेदं कौतुकं धारय ओम् नमः ।**' अर्थात् संवत्सर पर्यन्त की जाने वाली अर्चा का फल देने वाले प्रभो आपको नमस्कार है । आप पवित्रारोहण के लिए इस कौतुक सूत्र (रक्षासूत्र) को धारण करें । इस मन्त्र से रक्षा बाँधनी चाहिए ।। ५८-५९ ।। 'निश्चित उपवास के द्वारा मैं श्रीभगवान् को सन्तुष्ट करता हूँ' इस संकल्प को करके श्रीभगवान् के सन्निकट में ही उपवास आदि नियमों को करना चाहिए ।। ६० ।। पुनः प्रार्थना करनी चाहिए कि- हे भगवन् ! आज से लेकर मेरे लिए विशेष दिन पर्यन्त मुझमें काम, क्रोध आदि विल्कुल न रहें ।। ६१।। यदि यजमान अधिक दिनों का उपवास करने में असमर्थ हो तो उसे एक दिन तथा एक रात का उपवास करके, हवन करके भगवान् श्रीधर का नित्यपूजन करके स्तुतिपूर्वक विसर्जन करना चाहिए ।। ६२ ।। श्रीभगवान् के विसर्जन का मन्त्र है- **ओम् ह्रीं श्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः** ।। ६३ ।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का सर्वदेवता साधारण पवित्रकारोपण विधि कथन नामक तैतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३३ ॥

अग्निदेव ने कहा— 'नमो ब्रह्मण्यदेवाय श्रीधरायाव्यात्मने । ऋज्यजुः सामरूपाय शब्ददेहाय विष्णवे ।' अर्थात् ब्राह्मणों को देवता मानने वाले, लक्ष्मीपति, निर्विकारस्वरूप, ऋक् यजुः तथा सामवेदस्वरूप, शब्दशरीर भगवान् विष्णु को नमस्कार है । इस मंत्र को पढ़ते हुए यज्ञशाला में प्रवेश करके उसको अलंकृत करे सायंकाल में समस्त मण्डलों को चित्रित करके याग की सामग्री को एकत्रित करना चाहिए ।। १-२ ।। अर्चक अपना हाथ पैर धोकर हाथ में अर्घ्य लेकर अर्घ्य के जल से अपने शिर तथा द्वार का प्रोक्षण करके, द्वारयाग (पञ्चाङ्ग) प्रारम्भ करे तथा तोरणाधिष्ठातृ देवों का पूजन करे । पीपल, गूलर, बड़ तथा पाकड़ की लकड़ी के पूर्वादि दिशाओं के द्वार होते हैं । पूर्व दिशा के द्वार पर ऋग्वेद, इन्द्र तथा शोभन की, दक्षिण दिशा पर यजुर्वेद यम तथा सुभद्र की, पश्चिम दिशा के द्वार पर सामवेद, वरुण तथा सुधन्वा की एवं उत्तर दिशा के द्वार पर अथर्ववेद, सोम तथा सुहोत्र की पूजा करनी चाहिए ।। ३-५ ।। यज्ञशाला के प्रत्येक द्वार पर अपने नाम

सामापश्च सुधन्वाख्यं सोमाथर्वसुहोत्रकम् ॥ ५॥ तोरणान्ताः पताकाश्च कुमुदाद्या घटद्वयम्। द्वारि द्वारि स्वनाम्नार्च्याः पूर्वे पूर्णश्च पुष्करः ॥ ६ ॥ सम्भवप्रभवौ सौम्ये द्वारपांश्चैव पूजयेत् ॥ ७॥ अस्त्रजप्तपुष्पक्षेपाद्विघ्नानुत्सार्य संविशेत् । भूतशुद्धिं विधायाथ विन्यस्य कृतमुद्रकः ॥ ८ ॥ फट्कारान्तं शिखां जप्त्वा सर्षपान्दिक्षु निक्षिपेत् । वासुदेवेन गोमूत्रं सङ्कर्षणेन गोमयम् ॥ ९ ॥ प्रद्युम्नेन पयस्तज्जाद्दधि नारायणाद् घृतम् । एकद्वित्र्यादिवारेण घृताद्वै भागतोऽधिकम् ॥ १० ॥ घृतपात्रे तदेकत्र पञ्चगव्यमुदाहृतम् । मण्डपप्रोक्षणायैकं चापरं प्राशनाय च ॥ ११ ॥ स्नानाय दशकुम्भेषु इन्द्राद्याँल्लोकपान्यजेत् । पूज्याज्ञां श्रावयेत्तांश्च स्थातव्यं चाज्ञया हरेः ॥ १२ ॥ यागद्रव्यादि संरक्ष्य विकिरान् विकरेत्ततः । मूलाष्टशतसञ्जप्तान् कुशकूर्चान् हरेच्च तान् ॥ १३ ॥ ऐशान्यां दिशि तत्रस्थं स्थाप्य कुम्भं च वर्धनीम् । कुम्भे साङ्गं हरिं प्राच्य वर्धन्यामस्त्रमर्चयेत् ॥ १४ ॥ प्रदक्षिणं यागगृहं वर्धनीछिन्नधारया । सिञ्चन्नयेत्ततः कुम्भं पूजयेच्च स्थिरासने ॥ १५ ॥ सपञ्चरत्नवस्त्राढ्ये कुम्भे गन्धादिभिर्हरिम् । वर्धन्यां हेमगर्भायां यजेदस्त्रं च वामतः ॥ १६ ॥ तत्समीपे वास्तुलक्ष्मीभूविनायकमर्चयेत् । स्नपनं कल्पयेद् विष्णोः सङ्क्रान्त्यादौ तथैव च ॥ १७ ॥ पूर्णकुम्भानवस्थाप्य नवकोणेषु निर्व्रणान् । पाद्यमर्घ्यं चाचमनं पञ्चगव्यं च निक्षिपेत् ॥ १८ ॥ पूर्वादिकलशेऽग्न्यादौ पञ्चामृतजलादिकम् । दधिक्षीरं मधूष्णोदं पाद्यं स्याच्चतुरङ्गकम् ॥ १९ ॥ पद्मश्यामाकदूर्वाश्च विष्णुपत्नी च पाद्यकम् । तथाष्टाङ्गार्घ्यमाख्यातं यवगन्धफलाक्षतम् ॥ २०॥ कुशाः सिद्धार्थपुष्पाणि तिला द्रव्याणि चाऽऽहरेत्। लवङ्गकक्कोलयुतं दद्यादाचमनीयकम् ॥२१॥ स्नपयेन्मूलमन्त्रेण देवं पञ्चामृतैरपि । शुद्धोदं मध्यकुम्भेन देवमूर्ध्नि

से तोरण, पताका, कुमुदादि द्वारपाल तथा दो घड़ों की स्थापना करके पूजन करना चाहिए । पूर्व द्वार पर पूर्ण तथा पुष्कर नामक द्वारपाल का, दक्षिण द्वार पर आनन्द तथा नन्दन का, पश्चिम द्वार पर वीरसेन तथा सुषेण का तथा उत्तर द्वार पर सम्भव तथा प्रभव नामक द्वारपालों का पूजन करना चाहिए ।। ६-७ ।। अस्त्र मन्त्र का जप करके, पुष्पों को चारो तरफ विखेरकर, विघ्नों को दूर करके यज्ञशाला में प्रवेश करना चाहिए । भूतशुद्धि करके उसके पश्चात् सामान्य एवं विशेष मुद्राओं (जिनका वर्णन २६वें अध्याय में किया जा चुका है) को करना चाहिए । अङ्गन्यास करके पुनः फट्कार पर्यन्त शिखामन्त्र का जप करके चारो दिशाओं में गौर सर्षप छींटे । पञ्चगव्य बनाने में वासुदेवमन्त्र से गोमूत्र को, सङ्कर्षण मन्त्र से गोमय (गोबर) को, प्रद्युम्न मन्त्र से दूध को, प्रद्युम्नपुत्र (अनिरुद्ध) मन्त्र से दधि को एवं नारायण मन्त्र से घी को मिलाना चाहिए । अन्य द्रव्यों को घी की अपेक्षा- क्रमशः एक, दो, तीन और चार भाग अधिक मिलाना चाहिए । इन सभी पदार्थों को किसी घी के पात्र में मिलाना चाहिए, इसे ही पञ्चगव्य कहते हैं। इसके एक भाग से मण्डप का प्रोक्षण करना चाहिए तथा दूसरे भाग से आचमन एवं स्नान करना चाहिए । दश कुम्भों पर इन्द्रादि दश लोकपालों की पूजा करनी चाहिए । पूजा करके उन सबों को सुनाना चाहिए कि आप लोगों को यहाँ भगवान् की आज्ञा से स्थित रहना चाहिए ।। ८-१२ ।। याग की सामग्री की रक्षा करके छींटने वाली सामग्री को छींट देना चाहिएँ पुनः मूलमन्त्र का अष्टोत्तरशत जप करके कुश की कूंची से उन सबों को बिटोर लेना चाहिए ।। १३ ।। पुनः ईषानकोण में कुम्भ की स्थापना करके उसके सन्निकट में वर्धनी स्थापित करे । कुम्भ में श्रीहरि की साङ्ग पूजा करके वर्धनी में अस्त्र की पूजा करनी चाहिए ।। १४ ।। वर्धनी (कमण्डलु) की जल धारा से सिञ्चते हुए, प्रदक्षिणा करते हुए उस घड़े को यज्ञशाला में लाकर उसको स्थिर आसन पर रखकर पूजन करना चाहिए ।। १५ ।। पञ्चरत्न तथा वस्त्र से सुशोभित उस कुम्भ पर श्रीहरि की चन्दन आदि से पूजा करके घट को वायीं ओर रखकर सुवर्ण युक्त वर्धनी में अस्त्र की पूजा करनी चाहिए ।। १६ ।। उसके समीप ही, वास्तु, लक्ष्मी तथा पृथ्वी की पूजा करनी चाहिए । उसी प्रकार से संक्रान्ति आदि के दिन विष्णु के स्नान की व्यवस्था करनी चाहिए।।१७।। शेष नव कोणों में निश्छिद्र नव जलपूर्ण घड़ों की स्थापना करके, पाद्य, अर्घ्य, आचमन तथा पञ्चगव्य उनके ऊपर छिड़कना चाहिए ।। १८ ।। पूर्वादि दिशाओं तथा अग्न्यादि कोणों में स्थापित पञ्चामृत, दधि, दुग्ध, मधु तथा दर्भजल मिश्रित करके चतुरङ्गक पाद्य देना चाहिए ।। १९ ।। कमल, सावाँ, दूर्वा, तुलसी, यव, चन्दन, फल तथा अक्षत को मिलाकर अष्टाङ्ग अर्घ्य देना चाहिए ।। २० ।। कुश, सिद्धार्थपुष्प (पीली सरसो का फूल) तिल तथा द्रव्य एकत्रित करके लवङ्ग तथा ककोल से युक्त जल से आचमन का जल देना चाहिए ।। २१ ।। श्रीभगवान् का मूलमन्त्र

विनिक्षिपेत्॥ २२ ॥ कलशान्निः सृतं तोयं दूर्वाग्रं संस्पृशेन्नरः । शुद्धोदकेन पाद्यं च अर्घ्यमाचमनं ददेत् ॥ २३ ॥ परिमृज्य पटेनाङ्गं सवस्त्रं मण्डलं नयेत् । तत्राभ्यर्च्याचरेद् होमं कुण्डादौ प्राणसंयमी ॥ २४ ॥ प्रक्षाल्य हस्तौ रेखाश्च तिस्रः पूर्वाग्रगामिनीः । दक्षिणादुत्तरान्ताश्च तिस्रश्चैवोत्तराग्रगाः॥२५॥ अर्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्य योनिमुद्रां प्रदर्शयेत् । ध्यात्वात्मरूपं चाग्निं तु योन्या कुण्डे क्षिपेन्नरः ॥ २६ ॥ पात्राण्यासदयेत्पश्चाद् दर्भस्त्रुक्स्त्रुवकादिभिः। बाहुमात्राः परिधय इघ्मव्रश्चनमेव च ॥ २७ ॥ प्रणीता प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थालीघृतादिकम् । प्रस्थद्वयं तण्डुलानां युग्मं युग्ममधोमुखम् ॥ २८ ॥ प्रणीता प्रोक्षणीपात्रे न्यसेत्प्रागग्रगं कुशम् । अद्भिः पूर्य प्रणीतां तु ध्यात्वा देवं प्रपूज्य च ॥ २९ ॥ प्रणीतां स्थापयेदग्नेर्द्रव्याणां चैव मध्यतः। प्रोक्षणीमद्भिः सम्पूर्य प्राच्र्य दक्षे तु विन्यसेत् ॥ ३० ॥ चरुं च स्त्रपयेदग्नौ ब्रह्माणं दक्षिणेन्यसेत्। कुशानास्तीर्य पूर्वादौ परिधीन् स्थापयेत् ततः॥३१॥ वैष्णवीकरणं कुर्याद्गर्भाधानादिना नरः । गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं जनिः ॥ ३२ ॥ नामादिसमावर्तनान्तं जुहुयादष्टचाऽऽहुतीः। पूर्णाहुतिं प्रतिकर्म स्त्रुचास्त्रुक्सुयुक्तया ॥ ३३ ॥ कुण्डमध्ये ऋतुमतीं लक्ष्मीं सञ्चिन्त्य होमयेत् । कुण्डलक्ष्मीः समाख्याता प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका॥३४॥ सा येनिः सर्वभूतानां विद्यामन्त्रगणस्य च । विमुक्तेः कारणं वह्निः परमात्मा तु मुक्तिदः ॥ ३५ ॥ प्राच्यां शिरः समाख्यातं बाहू कोणे व्यवस्थितौ। ईशानाग्नेयकोणे तु जङ्घे वायव्यनैर्ऋते ॥ ३६ ॥ उदरं कुण्डमित्युक्तं योनिर्योनिर्विधीयते । गुणत्रयं मेखलाः स्युर्ध्यात्वैवं समिधो दश ॥ ३७ ॥ पञ्चाधिकास्तु जुहुयात् प्रणवान् मुष्टिमुद्रया । पुनराघारौ जुहुयाद् वाय्वग्न्यन्तं ततः श्रपेत् ॥ ३८ ॥ ईशान्तं मूलमन्त्रेण आज्यभागौ तु होमयेत् ।

तथा पञ्चामृत से स्नान कराकर उनके ऊपर बीच के घड़े से शुद्धोदक डाले ।। २२ ।। कलश से निकाले गए जल को दूर्वा के अग्रभाग से छूना चाहिए । शुद्धोदक से ही पाद्य अर्घ्य तथा आचमन कराना चाहिए। २३ ।। किसी वस्त्र से श्रीभगवान् के अङ्गों को पोंछकर वस्त्र पहनाकर भगवान् को मण्डप में ले जाना चाहिए । वहाँ पर श्रीभगवान् की अच्छी तरह से पूजा करके प्राणों का संयम करके (प्राणायाम करके) कुण्ड आदि में होम करना चाहिए ।। २४ ।। हाथ धोकर स्थण्डिल अथवा कुण्ड में पहलें पश्चिम से पूर्व की ओर जाने वाली तीन रेखाओं को तथा दक्षिण से उत्तर की ओर तीन रेखाओं को खींचना चाहिए ।। २५ ।। पुनः उन रेखाओं पर अर्घ्य जल से सिञ्चन करके योनिमुद्रा दिखाए । पुनः आत्मस्वरूप का ध्यान करके योनिमार्ग से अग्नि को कुण्ड में डालना चाहिए।।२६।। उसके पश्चात् पात्रासादन करना चाहए । कुश,स्रुक्, स्रुवा, बाहों के बराबर परिधियाँ, इध्मव्रश्चन (कुल्हाड़ी) प्रणीता, प्रोक्षणी पात्र, आज्यस्थाली तथा घी आदि दो दो प्रस्थ (पसेरी) चावल भरकर दो औंधामुख पात्र रखना चाहिए ।। २७-२८।। प्रणीता को प्रोक्षणी पात्र में रखकर उसके ऊपर पूर्वाग्र कुश रखे । जल से प्रणीता को भरकर श्रीभगवान् का ध्यान करके उनका पूजन करना चाहिए । अग्नि तथा द्रव्यों के बीच में प्रणीता की स्थापना करे (रखे) । फिर प्रोक्षणी को जल से भरकर पुनः पूजा करके उसे दाहिनी ओर रखे ।। २९-३० ।। अग्नि में चरु डाले तथा ब्रह्मा की कुण्ड के पश्चिम भाग में स्थापना करे । पूर्वादि दिशाओं में कुशों को फैलाकर उसके पश्चात् परिधियों की स्थापना करे ।। ३१ ।। तदनन्तर गर्भाधान आदि संस्कारों के द्वारा अग्नि का वैष्णवीकरण करे । गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोनयन, जातकर्म, नामकरण से लेकर समावर्तन संस्कार पर्यन्त के समस्त संस्कार के लिए आठ-आठ आहुतियाँ देनी चाहिए । प्रत्येक कर्म के लिए स्रुक् तथा स्रुवा को मिलाकर पूर्णाहुति देनी चाहिए ।। ३२-३३ ।। ऋतुमती लक्ष्मी का (कुण्ड में) ध्यान करके हवन करना चाहिए, त्रिगुणात्मिका प्रकृति को ही कुण्ड लक्ष्मी कहा गया है ।। ३४ ।। वही सभी भूतों, विद्याओं तथा मन्त्रों की माता है, मुद्रा मुक्ति का साधन अग्नि है तथा भगवान् मुक्ति प्रदान करने वाले हैं ।। ३५ ।। पूर्व में कुण्ड लक्ष्मी के शिर ईशान तथा अग्नि कोण में दोनों भुजाएँ, वायव्य तथा नैऋत्य कोण में दोनों जंघे होते हैं, कुण्ड ही उसका उदर है, योनि ही उसकी योनि है, तीनों मेखलाएँ ही उसके तीन गुण हैं, इस तरह से ऋतुमती कुण्ड लक्ष्मी का ध्यान करके उसमें पन्द्रह समिधाएँ प्रणवोच्चारणपूर्वक मुष्टिमुद्रा से डालनी चाहिए । तदनन्तर वायव्यकोण से लेकर अग्निकोण पर्यन्त आघार होम करना चाहिए ।। ३६-३८ ।। इसके पश्चात् नैर्ऋत्य कोण पर्यन्त मूलमन्त्र से आज्यभाग की दो आहुतियों को देना चाहिए । द्वादशाक्षर मन्त्र से उत्तर में तथा दक्षिण एवं कुण्ड के मध्य में व्याहृतियों से हवन करना चाहिए । कमलदल के मध्य में विराजमान संस्कारयुक्त, सात जिह्वा वाले, करोड़ों सूर्य के

उत्तरे द्वादशान्तेन दक्षिणे तेन मध्यतः॥ ३९ ॥ व्याहृत्या पद्ममध्यस्थं ध्यायेद् वह्निं तु संस्कृतम् । वैष्णवं सप्तजिह्वं च सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ ४० ॥ चन्द्रवक्त्रं च सूर्याक्षं जुहुयाच्छतमष्ट च । तदर्धं चाष्टमूलेन अङ्गानां च दशांशतः ॥ ४१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पवित्रकारोपणसम्बन्धिपूजाहोमादिविधिकथनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

पवित्राधिवासनविधिः

अग्निरुवाच— **सम्पाताहुतिनासिच्य पवित्राण्यधिवासयेत् । नृसिंहमन्त्रजप्तानि गुप्तान्यस्त्रेण तानि तु ॥ १ ॥ वस्त्रसंवेष्टितान्येव पात्रस्थान्यभिमन्त्रयेत्। बिल्वाद्यद्भिः प्रोक्षितानि मन्त्रेण चैकधा द्विधा ॥ २ ॥ कुम्भपात्रे तु संस्थाप्य रक्षां विज्ञाप्य देशिकः । दन्तकाष्ठं चामलकं पूर्वे सङ्कर्षणेन तु ॥ ३ ॥ प्रद्युम्नेन भस्मतिलान् दक्षे गोमयमृत्तिकाम् । वारुणे चानिरुद्धेन सौम्ये नारायणेन च ॥ ४ ॥ दर्भोदकं चाथ हृदा अग्नौ कुङ्कुमरोचनम् । ऐशान्यां शिरसा धूपं शिखया नैर्ऋतेऽप्यथ ॥ ५ ॥ मूलपुष्पाणि दिव्यानि कवचेनाथ वायवे । चन्दनाम्ब्वक्षतदधिदूर्वाश्च पुटिकास्थिताः ॥ ६ ॥ गृहं त्रिसूत्रेणाऽऽवेष्ट्य पुनः सिद्धार्थकान् क्षिपेत्। दद्यात् पूजाक्रमेणाथ स्वैः स्वैर्गन्धपवित्रकम् ॥ ७ ॥ मन्त्रैर्वै द्वारपादिभ्यो विष्णुं कुम्भे त्वनेन च । विष्णुतेजोद्भवं रम्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ ८ ॥ सर्वकामप्रदं देव तवाङ्गे धारयाम्यहम् । सम्पूज्य धूपदीपाद्यैर्व्रजेद् द्वारसमीपतः ॥ ९ ॥ गन्धपुष्पाक्षतोपेतं**

समान कान्ति वाले, चन्द्रमा के सदृश मुख तथा सूर्य के सदृशनेत्र वाले वैष्णवाग्नि का ध्यान करके अष्टोत्तरशत आहुति देनी चाहिए। उसके आधे भाग से आठ अधिक तथा सम्पूर्ण अंगों के दशांश मूलमन्त्र से आहुति देनी चाहिए ।। ३९-४१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का पवित्रकारोपण सम्बन्धी पूजा तथा होमादि विधि वर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३४ ॥

अग्निदेव ने कहा– सम्पात आहुति के द्वारा सींच कर पवित्रों का अधिवास कराना चाहिए । नृसिंह मन्त्र तथा अस्त्र मन्त्र का जप करके पवित्रों को वस्त्र में छिपाकर उन्हें वस्त्रवेष्टित रूप से ही किसी पात्र में रखकर अभिमन्त्रित करना चाहिए । मन्त्र पढ़कर एक अथवा दो बार विल्व आदि के जल से पवित्र का प्रोक्षण करे । पुनः उसे मिट्टी के पात्र में रखकर आचार्य उसकी रक्षा करें । संकर्षणमन्त्र से पूर्वदिशा में दन्तधावन और आँवला, प्रद्युम्न मन्त्र से भस्म तथा तिल दक्षिण दिशा में, अनिरुद्ध मन्त्र से पश्चिम दिशा में गोबर तथा मिट्टी, तथा उत्तर दिशा में नारायण मन्त्र से कुश तथा जल रखना चाहिए । हृदयन्यास के मन्त्र से अग्निकोण में कुंकुम तथा गोरोचन, शिरोन्यास मन्त्र से ईशानकोण में धूप, शिरोन्यास मन्त्र से नैऋत्य कोण में दिव्य मूलपुष्पों को, पुनः कवचन्यास मन्त्र से वायव्य कोण में एक दोने में चन्दन, जल, अक्षत,दधि तथा दूब रखना चाहिए ।। १-६ ।। तदनन्तर गृह को त्रिसूत्री से वेष्टित करके पीली सरसो छिड़कना चाहिए । पुनः पूजा के क्रम से अपने अपने मन्त्रों से गन्ध (चन्दन) तथा पवित्र को द्वारपालों को चढ़ाना चाहिए । विष्णु को पवित्रक चढ़ाने का मन्त्र है- '**विष्णुतेजोद्भवं रम्यं सर्वपातकनाशनम् । सर्वकामप्रदं देव तवाङ्गे धारयाम्यहम्।**' अर्थात् हे देव ! विष्णु तेज से उत्पन्न, मनोहर, सभी पापों को विनष्ट करने वाले तथा सभी कामनाओं को प्रदान करने वाले पवित्रक को आपके अङ्गों में मैं धारण कराता हूँ । पुनः श्रीभगवान् की धूप तथा दीप आदि से पूजा करके द्वार के समीप जाना चाहिए ।। ७ -९ ।। पुनः गन्ध तथा पुष्प से युक्त पवित्रक को स्वयम् भी इस मन्त्र से धारण करना चाहिए- '**पवित्रं वैष्णवं**

पवित्रं चाऽऽत्मनोऽर्पयेत् । पवित्रं वैष्णवं तेजो महापातकनाशनम् ॥ १० ॥ धर्मकामार्थसिद्ध्यर्थं स्वकेऽङ्गे धारयाम्यहम् । आसने परिवारादौ गुरौ दद्यात्पवित्रकम् ॥ ११ ॥ गन्धादिभिः समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः । विष्णुतेजोद्भवेत्यादिमूलेन हरयेऽर्पयेत् ॥ १२ ॥ बह्निस्थाय ततो दत्त्वा देवं सम्प्रार्थयेत् ततः । क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह ॥ १३ ॥ प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव केशव ! इन्द्रादिभ्यस्ततो दत्त्वा विष्णुपार्षदके बलिम् ॥ १४ ॥ ततो देवाग्रतः कुम्भं वासोयुगसमन्वितम् । रोचनाचन्द्रकाश्मीरगन्धाद्युदकसंयुतम् ॥ १५ ॥ गन्धपुष्पादिनाऽऽभूष्य मूलमन्त्रेण पूजयेत् । मण्डपाद् बहिरागत्य विलिप्ते मण्डलत्रये ॥ १६ ॥ पञ्चगव्यं चरुं दन्तकाष्ठं चैव क्रमाद् भजेत् । पुराणश्रवणं स्तोत्रं पठञ्जागरणं निशि॥१७॥ परप्रेषकबालानां स्त्रीणां भोगभुजां तथा । सद्योऽधिवासनं कुर्याद्विना गन्धपवित्रकम् ॥ १८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पवित्राधिवासनविधिर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

विष्णुपवित्रारोपणविधिः

अग्निरुवाच– **प्रातः स्नानादिकं कृत्वा द्वारपालान् प्रपूज्य च । प्रविश्य गुप्ते देशे च समाकृष्याथ धारयेत् ॥ १ ॥ पूर्वाधिवासितं द्रव्यं वस्त्राभरणगन्धकम् । निरस्य सर्वं निर्माल्यं देवं संस्नाप्य पूजयेत् ॥ २ ॥ पञ्चामृतैः कषायैश्च शुद्धगन्धोदकैस्ततः। पूर्वाधिवासितं दद्याद् वस्त्रं गन्धं च पुष्पकम् ॥ ३ ॥ अग्नौ हुत्वा नित्यवच्च देवं सम्प्रार्थयेन्नमेत् । समर्प्य कर्म देवाय पूजां नैमित्तिकीं चरेत् ॥ ४ ॥ द्वारपालविष्णुकुम्भवर्धनीः**

तेजो महापातकनाशनम्। धर्मकामार्थ सिद्ध्यर्थं स्वकेऽङ्गे धारयाम्यहम् ॥' अर्थात्– धर्म, काम तथा अर्थ की प्राप्ति के लिए वैष्णवतेज से समन्वित महापातक को विनष्ट करने वाले पवित्रक को मैं अपने अङ्ग में धारण कर रहा हूँ । आसन पर परिवार आदि में, तथा गुरु को भी पवित्रक देना चाहिए ।। १०-११ ।। चन्दन आदि से तथा गन्ध, पुष्प तथा अक्षत आदि से पूजन करके '**विष्णुतेजोद्भवं रम्यम्**' इत्यादि उपर्युक्त मन्त्र से श्री हरि को भी पवित्रक अर्पित करें ।। १२ ।। पुनः अग्नि में विद्यमान श्रीभगवान् को पवित्रक प्रदान करके प्रार्थना करनी चाहिए– '**क्षीरोदधिमहानाग शय्यावस्थित विग्रह। प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव केशव ।**' अर्थात्– हे क्षीरसागर में महानाग (शेषनाग) की शय्या पर अवस्थित शरीर वाले भगवन् ! केशव ! मैं आपकी प्रातःकाल पूजन करूँगा आप मेरे सन्निकटस्थ होएँ । पुनः इन्द्रादि विष्णु भगवान् के पार्षद देवताओं को बलि प्रदान कराना चाहिए ।। १३-१४ ।। उसके पश्चात् दो वस्त्रों से वेष्टित कुम्भ को गोरोचन, कर्पूर, केसर आदि से अलंकृत करके उसकी मूलमन्त्र से पूजा करनी चाहिए । मण्डप से बाहर आकर पुते हुए तीन मण्डलों में क्रमशः पञ्चगव्य चरु और दतौन रखे और रात्रि में पुराणों का श्रवण करे, स्तोत्रपाठ करते हुए रात्रि में जागरण करे ।।१५-१७ ।। दूसरों को भेजने वाले बालकों, स्त्रियों तथा भोगी पुरुषों का विना गन्ध तथा पवित्रक के ही शीघ्र ही अधिवासन करना चाहिए ।। १८ ।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का पवित्राधिवासन विधि वर्णन नामक पैंतीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३५ ॥

अग्निदेव ने कहा– प्रातःकाल स्नान आदि करके तथा द्वारपालों आदि की पूजा करके, गुप्त स्थान में प्रवेश करके उसके पश्चात् पहले से अधिवासित वस्त्र, आभरण तथा गन्ध आदि द्रव्य को हटाकर उन्हें स्वयं धारण करे । पुनः निर्माल्य द्रव्य को हटाकर श्रीभगवान् को स्नान कराकर पूजन करना चाहिए ।। १-२ ।। क्रमशः पञ्चामृत, कषाय जल तथा शुद्ध गन्धोदक से स्नान कराकर

प्रार्थयेद्धरिम् । अतो देवेति मन्त्रेण मूलमन्त्रेण कुम्भके ॥ ५ ॥ कृष्ण कृष्ण नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् । पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम्॥६॥ पवित्रकं कुरुष्वाद्य यन्मया दुष्कृतं कृतम् । शुद्धो भवाम्यहं देव त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ॥ ७ ॥ पवित्रं च हृदाद्यैस्तु आत्मानमभिषिच्य च । विष्णुकुम्भं च सम्प्रोक्ष्य व्रजेद् देवसमीपतः ॥ ८ ॥ पवित्रमात्मने दद्याद्रक्षाबन्धं विसृज्य च । गृहाण ब्रह्मसूत्रं च यन्मया कल्पितं प्रभो ॥ ९ ॥ कर्मणां पूरणार्थाय यथा दोषो न मे भवेत् । द्वारपालासनगुरुमुख्यानां च पवित्रकम् ॥ १० ॥ कनिष्ठादि च देवाय वनमालां च मूलतः । हृदादिविष्वक्सेनान्ते पवित्राणि समर्पयेत् ॥ ११ ॥ वह्नौ हुत्वा वह्निगेभ्यो विश्वादिभ्यः पवित्रकम् । प्राच्य पूर्णाहुतिं दद्यात् प्रायश्चित्ताय मूलतः ॥ १२ ॥ अष्टोत्तरशतं वापि पञ्चोपनिषदैस्ततः। मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः ॥ १३ ॥ इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज । वनमाला यथा देव कौस्तुभं सततं हृदि॥१४॥ तद्वत्पवित्रतन्तूंश्च पूजां च हृदये वह । कामतोऽकामतो वापि यत्कृतं नियमार्चने॥१५॥ विधिना विघ्नलोपेन परिपूर्णं तदस्तु मे । प्रार्थ्य नत्वा क्षमाप्याथ पवित्रं मस्तकेऽर्पयेत् ॥ १६ ॥ दत्त्वा बलिं दक्षिणाभिर्वैष्णवं तोषयेद् गुरुम् । विप्रान् भोजनवस्त्राद्यैर्दिवसं पक्षमेव वा ॥ १७ ॥ पवित्रं स्नानकाले वा अवतार्य समर्चयेत् । अनिवारितमन्त्राद्यं दद्याद् भुङ्क्तेऽथ केवलम् ॥ १८ ॥ विसर्जनेऽह्नि सम्पूज्य पवित्राणि विसर्जयेत्। सांवत्सरीमिमां पूजां सम्पाद्य विधिवन्मम ॥ १९ ॥ व्रज पवित्रकेदानीं विष्णुलोकं विसर्जितः । मध्ये सोमेशयोः प्राच्य विष्वक्सेनं हि तस्य च॥२०॥

श्रीभगवान् पर पहले से ही अधिवासित वस्त्र, चन्दन आदि पुष्प चढ़ाना चाहिए ।। ३ ।। नित्य की भाँति अग्नि में हवन करके भगवान् की प्रार्थना करके उन्हें नमस्कार करना चाहिए । श्रीभगवान् को कर्म समर्पण करके नैमित्तिकी पूजा करनी चाहिए ।। ४ ।। फिर द्वारपाल,विष्णुकुम्भ, वर्धनी (कमण्डलु) तथा श्रीहरि की प्रार्थना **अतो देवा अवन्तु नो** इत्यादि वैदिक मन्त्र से श्रीभगवान् की प्रार्थना करनी चाहिए और मूलमन्त्र से घड़े पर पवित्रक चढ़ाकर यह प्रार्थना करनी चाहिए ।। ५ ।। हे कृष्ण आपको नमस्कार है, आप इस वर्ष पूजा का फल प्रदान करने वाले पवित्र बना देने के लिए धारण करें । मैंने जो कुछ भी पाप किया है उससे मुझे पवित्र बना दें । हे देवाधिदेव आपकी कृपा से मैं पवित्र हो रहा हूँ ।। ६-७ ।। पवित्रक तथा अपने शरीर को हृदयादिन्यास से सिक्त करके तथा विष्णुकुम्भ का प्रोक्षण करके श्रीभगवान् के समीप जाना चाहिए ।। ८ ।। पवित्रक स्वयं धारण करके भगवान् के रक्षा बन्धन को हटाकर (खोलकर) भगवान् की प्रार्थना करनी चाहिए- हे भगवन्! मेरे द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र को आप धारण करें, जिससे कि मुझे कोई दोष न लगे तथा मेरे कर्म पूरे हों । द्वारपाल तथा आसनासीन प्रमुख आचार्यों को कनिष्ठादि पवित्रक तथा श्रीभगवान् को मूलमन्त्र से माला समर्पित करनी चाहिए । हृदय आदि से लेकर विष्वक्सेन पर्यन्त को पवित्रक समर्पित करना चाहिए ।। ९-११ ।। अग्निस्थ विश्वादि देवताओं के लिए पवित्रक का अग्नि में हवन करके, पूजन करके, प्रायश्चित्त के लिए मूलमन्त्र से पूर्णाहुति देनी चाहिए । मूलमन्त्र का अष्टोत्तरशत जप करना चाहिए । पुनः पञ्चोपनिषत् के मन्त्रों से श्रीभगवान् को मणि, मूँगा, तथा मन्दार पुष्पों की माला से पूजन करके यह प्रार्थना करनी चाहिए- हे गरुड़ध्वज भगवन् ! इस संवत्सर पूजा को आप स्वीकार करें । इस वनमाला को आप अपने हृदय पर कौस्तुभमणि के समान धारण करें । उसी प्रकार पवित्र तन्तुओं तथा पूजा को हृदय में धारण करें । सकाम तथा निष्काम रूप से मैंने इस नियमार्चन में जो कुछ भी विधिपूर्वक किया है, वह निर्विघ्न होकर मेरे लिए परिपूर्ण हो ।' इस प्रकार से प्रार्थनापूर्वक नमस्कार एवं क्षमापन करके अपने सिर पर पवित्रक को धारण करना चाहिए ।। १३-१६ ।। पुनः बलि देकर दक्षिणा से वैष्णव आचार्य को सन्तुष्ट करना चाहिए तथा ब्राह्मणों को एक दिन अथवा एक पक्ष तक भोजन तथा वस्त्र प्रदान करके सन्तुष्ट करना चाहिए ।। १७ ।। स्नान के समय पवित्रक को उतार कर पूजा करनी चाहिए, मन्त्रों से पवित्र अन्न को भोग लगाकर उसे खाना चाहिए ।।१८।। विसर्जनकाल में दिन में पूजन करके पवित्रकों का विसर्जन करना चाहिए । 'मेरी इस सांवत्सरी पूजा को विधि पूर्वक सम्पादित करके हे पवित्रक ! मेरे द्वारा विसर्जित होकर आप विष्णुलोक में जायँ। सोम तथा ईशान के बीच में विष्वक्सेन की पूजा करके, उनके पवित्रक को ब्राह्मण को समर्पित करना चाहिए ।उस पवित्रक में जितने तन्तु होते हैं, उतने हजार युग पर्यन्त अर्चक विष्णुलोक में समाहृत

पवित्राणि समभ्यर्च्य ब्राह्मणाय समर्पयेत् । यावन्तस्तन्तवस्तस्मिन् पवित्रे परिकल्पिताः ॥ २१ ॥ तावद्युगसहस्राणि विष्णुलोके महीयते । कुलानां शतमुद्धृत्य दशपूर्वान् दशापरान् ॥ २२ ॥ विष्णुलोके तु संस्थाप्य स्वयं मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ २३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विष्णुपवित्रारोपणविधिनिरूपणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

अथ संक्षेपतः सर्वदेवसाधारणः पवित्रारोपणविधिः

अग्निरुवाच– संक्षेपात्सर्वदेवानां पवित्रारोपणं शृणु। पवित्रं पूर्वलक्ष्म स्यात् स्वरसानलगं त्वयि ॥ १ ॥ जगद्योने समागच्छ परिवारगणैः सह। निमन्त्रयाम्यहं प्रातर्दद्यां तुभ्यं पवित्रकम् ॥ २ ॥ जगत्सृजे नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् । पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ॥ ३ ॥ शिव देव नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् । मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः ॥ ४ ॥ इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु वेदवित्पते । सांवत्सरीमिमां पूजां सम्पाद्य विधिवन्मम ॥ ५ ॥ व्रज पवित्रकेदानीं स्वर्गलोकं विसर्जितः । सूर्यदेव नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् ॥ ६ ॥ पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् । शिव देव नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् ॥ ७ ॥ पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् । गणेश्वर नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् ॥ ८ ॥ पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् । शक्तिदेवि नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् ! ॥ ९ ॥ पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम्। नारायणमयं सूत्रमनिरुद्धमयं वरम् ॥ १० ॥ धनधान्यायुरारोग्यप्रदं सम्प्रददामि ते । कामदेवमयं सूत्रं संकर्षणमयं वरम् ॥ ११ ॥ विद्यासन्ततिसौभाग्यप्रदं

होता है । अपने पहले के दस तथा बाद के दस पीढ़ी को इस तरह से सौ वंशों को विष्णुलोक में संस्थापित करके वह स्वयं मुक्त हो जाता है ।।१९-२३ ।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का विष्णुपवित्रारोपण विधि वर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३६ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब संक्षेप में सभी देवताओं का पवित्रारोपण सुनें । स्वरस अग्नि से युक्त पवित्रक को पूर्वोक्त समस्त लक्षणों से युक्त होना चाहिए ।। १ ।। पुनः प्रार्थना करे– हे जगत् के कारण भगवन् ! मैं आपको निमन्त्रित कर रहा हूँ । आप अपने परिवार समूह के साथ पधारें । मैं प्रातःकाल आपको पवित्रक समर्पित करूँगा ।। २ ।। हे जगत् की सृष्टि करने वाले, ब्रह्मन् आपको नमस्कार है, इस वर्ष पूजा का फल देने वाले पवित्रक को आप मुझे पवित्र बनाने के लिए स्वीकार करें ।। ३ ।। हे शिव देव ! आपको नमस्कार है । आपको नमस्कार है । देवों में सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मन्! मणि तथा विद्रुम (मूँगा) को मालाओं तथा मन्दार कुसुम आदि से की गयी संवत्सर की पूजा आपको प्राप्त हो । हे पवित्र ! मेरी इस पूजा को विधिवत् सम्पादित करके मेरे द्वारा विसर्जित आप अब स्वर्गलोक जायँ । हे सूर्यदेव ! आपको नमस्कार है । मुझे पवित्र बनाने के लिए आप वर्षपूजा का फल प्रदान करने वाले पवित्रक को स्वीकार करें । हे शिवदेव ! आपको नमस्कार है । वर्ष पूजा का फल प्रदान करने वाले इस पवित्रक को आप मुझे पवित्र बनाने के लिए स्वीकार करें ।। ४-७ । हे गणेश्वर ! आपको नमस्कार है । मुझे पवित्र बनाने के लिए आप वर्ष पूजा का फल प्रदान करने वाले इस पवित्रक को स्वीकार करें ।। ८ ।। शक्तिदेवी ! आपको नमस्कार है । मुझको पवित्र बनाने के लिए आप इस वर्ष पूजा का फल प्रदान करने वाले पवित्रक को स्वीकार करें ।। ९ ।। यह सूत्र नारायणमय तथा अनिरुद्धमय है । धनधान्य आयु तथा आरोग्य प्रदान करने वाले इस सूत्र को मैं आपको प्रदान कर रहा हूँ ।। १० ।। यह सूत्र कामदेवमय तथा सङ्कर्षणमय है । विद्या सौभाग्य तथा सन्तान

सम्प्रददामि ते । वासुदेवमयं सूत्रं धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥ १२ ॥ संसारसागरोत्तारकारणं प्रददामि ते । विश्वरूपमयं सूत्रं सर्वदं पापनाशनम् ॥ १३॥ अतीतानागतकुलसमुद्धारं ददामि ते । कनिष्ठादीनि चत्वारि मनुभिस्तु क्रमाद्ददे ॥ १४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये संक्षेपतः सर्वदेवसाधारणं पवित्रारोपणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः

देवालयनिर्माणफलादिवर्णनम्

अग्निरुवाच– **वासुदेवाद्यालयस्य कृतौ वक्ष्ये फलादिकम् । चिकीर्षोर्देवधामादि सहस्रजनिपापनुत् ॥ १ ॥ मनसा सद्मकर्तॄणां शतजन्माघनाशनम्। येऽनुमोदन्ति कृष्णस्य क्रियमाणं नरा गृहम् ॥ २ ॥ तेऽपि पापैर्विनिर्मुक्ताः प्रयान्त्यच्युतलोकताम् । समतीतं भविष्यञ्च कुलानामयुतं नरः ॥ ३ ॥ विष्णुलोकं नयत्याशु कारयित्वा हरेर्गृहम् । वसन्ति पितरो हृष्टा विष्णुलोके ह्यलङ्कृताः ॥ ४ ॥ विमुक्ता नारकैर्दुःखैः कर्तुः कृष्णस्य मन्दिरम् । ब्रह्महत्यादिपापौघघातकं देवतालयम् ॥ ५ ॥ फलं यन्नाप्यते यज्ञैर्धाम कृत्वा तदाप्यते । देवागारे कृते सर्वतीर्थस्नानफलं लभेत् ॥ ६ ॥ देवाद्यर्थे हतानां च रणे यत्तत्फलादिकम् । शाठ्येन पांसुना वापि कृतं धाम च नाकदम् ॥ ७ ॥ एकायतनकृत्स्वर्गी त्र्यगारी ब्रह्मलोकभाक् । पञ्चागारी शम्भु-लोकमष्टागाराद्धरौ स्थितिः ॥ ८॥ षोडशालयकारी तु भुक्तिं मुक्तिमवाप्नुयात् । कनिष्ठं मध्यमं श्रेष्ठं कारयित्वा हरेर्गृहम् ॥ ९ ॥ स्वर्गं च वैष्णवं लोकं**

प्रदान करने वाले इस सूत्र को मैं आपको प्रदान कर रहा हूँ ।। ११ ।। यह सूत्र वासुदेवमय है तथा धर्म, काम, अर्थ तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है, संसार सागर को पार करने के साधनभूत इसे मैं आपको प्रदान कर रहा हूँ ।। १२ ।। यहसूत्र विश्वरूपमय है, सब कुछ देने वाला तथा पापों का नाश करने वाला है । अतीत कालिक तथा अनागतकालिक अपने कुल का उद्धार करने के लिए इसे मैं आपको प्रदान कर रहा हूँ। उपर्युक्त मन्त्रों के द्वारा कनिष्ठ आदि चारो को क्रमशः प्रदान करना चाहिए ।। १३-१४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का संक्षेपतः सर्वदेवसाधारण पवित्रारोपण नामक सैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३७ ॥

अग्निदेव ने कहा– श्रीभगवान् के मन्दिर निर्माण से होने वाले फल आदि का मैं अब वर्णन कर रहा हूँ । श्रीभगवान् के मन्दिर निर्माण करने की इच्छा वाले के हजारों जन्मों के पाप विनष्ट हो जाते हैं ।। १ ।। जो लोग मन से श्रीभगवान् के मन्दिर निर्माण करने का विचार करते हैं, उनके सौ जन्मों के पाप विनष्ट हो जाते हैं। जो लोग भगवान् के बनाए जाने वाले मन्दिर के निर्माण का समर्थन करते हैं ।। २ ।। वे भी पापों से मुक्त होकर भगवान् अच्युत के लोक को प्राप्त करते हैं । भगवान् के मन्दिर का निर्माण कराकर मानव अपने दस हजार बीती हुई पीढ़ी को तथा दस हजार आगे की पीढ़ी को शीघ्र ही विष्णुलोक में पहुँचा देता है । उसके पितृगण विष्णुलोक में अलंकृत होकर निवास करते हैं ।। ३-४ ।। भगवान् के मन्दिर का निर्माण करने वाला व्यक्ति नारकीय दुःखों से मुक्त हो जाता है । देवमन्दिर का निर्माण ब्रह्महत्या आदि पापसमूह को विनष्ट करने वाला है ।। ५ ।। यज्ञों के करने से जिस फल की प्राप्ति नहीं होती है, उस फल की प्राप्ति मन्दिर के निर्माण से होती है। देवमन्दिर का निर्माण करने से सभी तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त हो जाता है ।। ६ ।। देवता आदि (गौ, ब्राह्मण आदि) के लिए संग्राम में मारे जाने वालों को जिन फलों की प्राप्ति होती है उस स्वर्ग आदि फल की विष्णु का मन्दिर निर्माण शठतापूर्वक (कंजूसी के कारण) मिट्टी से भी करके, प्राप्त किया जा सकता है ।। ७ ।। एक मन्दिर को बनाने वाला स्वर्गलोक को, तीन मन्दिरों को बनाने वाला ब्रह्मलोक को, पाँच मन्दिरों को बनाने वाला शिवलोक को तथा आठ मन्दिरों को बनाने वाला मनुष्य विष्णु लोक को प्राप्त करता है ।। ८ ।। सोलह मन्दिरों को

मोक्षमाप्नोति च क्रमात् । श्रेष्ठमायतनं विष्णोः कृत्वा यद्धनवाँल्लभेत् ॥ १० ॥ कनिष्ठेनैव तत्पुण्यं प्राप्नोत्यधनवान्नरः। समुत्पाद्य धनं कृत्वा स्वल्पेनापि सुरालयम् ॥ ११ ॥ कारयित्वा हरेः पुण्यं प्राप्नोत्यभ्यधिकं वरान् । लक्षेणाथ सहस्त्रेण शतेनार्धेन वा हरेः ॥ १२॥ कारयन्भवनं याति यत्रास्ते गरुडध्वजः । बाल्ये तु क्रीडमाना ये पांसुभिर्भवनं हरेः ॥ १३ ॥ वासुदेवस्य कुर्वन्ति तेऽपि तल्लोकगामिनः। तीर्थे चायतने पुण्ये सिद्धक्षेत्रे तथाश्रमे ॥ १४॥ कर्तुरायतनं विष्णोर्यथोक्तात्त्रिगुणं फलम् । बन्धूकपुष्पविन्यासैः सुधापङ्केन वैष्णवम् ॥ १५ ॥ ये विलिम्पन्ति भवनं ते यान्ति भगवत्पुरम् । पतितं पतमानं तु तथार्धपतितं नरः ॥ १६॥ समुद्धृत्य हरेर्धाम प्राप्नोति द्विगुणं फलम् । पतितस्य तु यः कर्ता पतितस्य च रक्षिता॥१७॥ विष्णोरायतनस्येह स नरो विष्णुरूपभाक् । इष्टकानिचयस्तिष्ठेद्यावदायतनं हरेः ॥ १८॥ सकुलस्तस्य वै कर्ता विष्णुलोके महीयते । स एव पुण्यवान् पूज्य इहलोके परत्र च ॥ १९॥ कृष्णस्य वासुदेवस्य यः कारयति केतनम्। जातः स एव सुकृती कुलं तेनैव पालितम् ॥ २०॥ विष्णुरुद्रार्कदेव्यादेर्गृहकर्ता स कीर्तिभाक् । किं तस्य वित्तनिचयैर्मूढस्य परिरक्षिणः ॥ २१ ॥ दुःखार्जितैर्यः कृष्णस्य न कारयति केतनम् । नोपभोग्यं धनं यस्य पितृविप्रदिवौकसाम् ॥ २२ ॥ नोपभोगाय बन्धूनां व्यर्थस्तस्य धनागमः। यथा ध्रुवो नृणां मृत्युर्वित्तनाशस्तथा ध्रुवः ॥ २३॥ मूढस्तत्रानुबध्नाति जीवितेऽथ चले धने । यदा वित्तं ना दानाय नोपभोगाय देहिनाम् ॥ २४॥ नापि कीर्त्यै न धर्मार्थं तस्य स्वाम्येऽथ को गुणः। तस्माद्वित्तं समासाद्य दैवाद्वा पौरुषादथ ॥ २५॥ दद्यात्सम्यग् द्विजाग्र्येभ्यः कीर्तनानि च कारयेत् । दानेभ्यश्चाधिकं यस्मात्कीर्तनेभ्यो वरं यतः॥२६॥

बनाने वाला तो सभी प्रकार के लौकिक भोगों को प्राप्त करके अन्त में मुक्ति को प्राप्त कर लेता है । श्रीभगवान् के कनिष्ठ मध्यम तथा श्रेष्ठ मन्दिरों का निर्माण कराकर मनुष्य क्रमशः स्वर्गलोक, विष्णुलोक तथा अन्त में मोक्ष को प्राप्त करता है ।। ९ ।। कोई धनी मनुष्य भगवान् विष्णु के श्रेष्ठ मन्दिर के निर्माण से जिस फल को प्राप्त करता है निर्धन व्यक्ति उस फल को छोटे मन्दिर को ही बनवाकर प्राप्त कर लेता है ।। १० ।। धन कमाकर थोड़े से भी धन से भगवान् विष्णु के मन्दिर का निर्माण करके अथवा कराकर मनुष्य अत्यधिक पुण्यों को तथा वरदानों को प्राप्त करता है ।। ११ ।। एक लाख, अथवा एक हजार, अथवा एक सौ अथवा पचास मुद्राओं को व्यय से श्रीहरि के मन्दिर का निर्माण कराकर मनुष्य भगवान् गरुड़ध्वज के लोक को प्राप्त करता है ।। १२ ।। बचपन में खेलते हुए भी जो मनुष्य धूलि के द्वारा भगवान् वासुदेव के मन्दिर का निर्माण करते हैं वे भी भगवान् के लोक को प्राप्त करते हैं ।। १३।। तीर्थस्थल में, किसी पवित्र क्षेत्र में, किसी सिद्धिक्षेत्र में अथवा महर्षियों के आश्रम में भगवान् विष्णु के मन्दिर का निर्माण करने वालों को उपर्युक्त फलों की अपेक्षा तीन गुना फल प्राप्त होता है ।। १४ ।। बन्धूक पुष्प (दुपहरिया के फूल) को मिलाकर जो लोग चूने से भगवान् के मन्दिर को पोतवाते हैं वे भी श्रीभगवान् के लोक में जाते हैं ।। १५ ।। गिर गए अथवा गिरते हुए अथवा आधा गिरे हुए भगवान् के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराकर मनुष्य दो गुना फल प्राप्त करता है ।। १६ ।। जो मनुष्य श्रीभगवान् के गिरे हुए मन्दिर का जीर्णोद्धार करता है, अथवा उसकी रक्षा करता है वह भगवान् विष्णु के स्वरूप को प्राप्त करता है ।। १७ ।। श्रीभगवान् के मन्दिर के ईंट जब तक रहते हैं । तब तक भगवान् के मन्दिर का निर्माण करने वाला पुरुष इपने परिवार के साथ विष्णुलोक में समादृत होता है ।। १८ ।। जो मनुष्य भगवान् के मन्दिर का निर्माण कराता है, वही इस लोक तथा परलोक में पूज्य होता है ।। १९ ।। वही मनुष्य पुण्यवान् है, उसने ही अपने कुल का पालन किया जिसने भगवान् विष्णु अथवा शंकर, अथवा सूर्य या देवी के मन्दिर का निर्माण किया हो ।।२०।। उस मूर्ख के धनसमूह से कोई लाभ नहीं है जो दुःखपूर्वक धनार्जन करके भगवान् के मन्दिर का निर्माण नहीं कराता है ।। २० ।। जिस मनुष्य का धन पितरों, ब्राह्मणों तथा देवताओं का भोग्य नहीं होता है, और न तो बान्धवों के उपयोगार्थ होता है, उसका धन व्यर्थ है ।। २२ ।। जिस तरह मनुष्य की मृत्यु निश्चित है, उसी तरह धन का नाश भी निश्चित है, अतएव मूर्ख मनुष्य चञ्चल धन तथा जीवन के मोह में बँधा रहता है । जिस धन का उपयोग न तो दान के लिए, न तो प्राणियों के उपभोग के लिए, न तो यश प्राप्ति के लिए होता

अतश्च कारयेद्धीमान् विष्ण्वादेर्मन्दिरादिकम् । विनिवेश्य हरेर्धाम भक्तिमद्भिर्नरोत्तमैः ॥ २७॥ निवेशितं भवेत्कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम् । भूतं भव्यं भविष्यं च स्थूलं सूक्ष्मं तथेतरत् ॥ २८ ॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं विष्णोः समुद्भवम् । तस्य देवाधिदेवस्य सर्वगस्य महात्मनः ॥ २९ ॥ निवेश्य भवनं विष्णोर्न भूयो भुवि जायते । यथा विष्णोर्धामकृतौ फलं तद्वद् दिवौकसाम् ॥ ३०॥ शिवब्रह्मार्कविघ्नेशचण्डीलक्ष्म्यादिकात्मनाम्। देवालयकृतेः पुण्यं प्रतिमाकरणेऽधिकम् ॥ ३१ ॥ प्रतिमास्थापने यागे फलस्यान्तो न विद्यते। मृण्मयाद्दारुजे पुण्यं दारुजादिष्टकोद्भवे ॥ ३२ ॥ इष्टकोत्थाच्छैलजे स्याद्धेमादेरधिकं फलम् । सप्तजन्मकृतं पापं प्रारम्भादेव नश्यति ॥ ३३ ॥ देवालयस्य स्वर्गी स्यान्नरकं स न गच्छति । कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं नयेन्नरः ॥ ३४ ॥ यमो यमभटानाह देवमन्दिरकारिणः । यम उवाच– प्रतिमापूजादिकृतो नानेया नरकं नराः ॥ ३५॥ देवालयाद्यकर्तार आनेयास्ते विशेषतः । विचरध्वं यथान्यायं नियोगो मम पाल्यताम् ॥ ३६॥ नाज्ञाभङ्गं करिष्यन्ति भवतां जन्तवः क्वचित् । केवलं ये जगत्तातमनन्तं समुपाश्रिताः॥ ३७॥ भवद्भिः परिहर्तव्यास्तेषां नात्रास्ति संस्थितिः । यत्र भागवता लोके तच्चित्तास्तत्परायणाः॥ ३८॥ पूजयन्ति सदा विष्णुं ते च त्याज्याः सुदूरतः। यस्तिष्ठन् प्रस्वपन् गच्छन्नुत्तिष्ठन्स्खलिते स्थिते ॥ ३९॥ सङ्कीर्तयन्ति गोविन्दं ते च त्याज्याः सुदूरतः।

है, उस धन का स्वामी होने से कौन सा लाभ है ? ।। २४।। अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह भाग्य अथवा पौरुष के द्वारा धन प्राप्त करके, उसका अच्छी तरह से दान श्रेष्ठ ब्राह्मणों को करे अथवा श्रीभगवान् के नामों का संकीर्तन कराए ।। २५ ।। चूँकि दान करने की अपेक्षा भगवन्नाम संकीर्तन श्रेष्ठ है, अतएव बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् विष्णु आदि के मन्दिर आदि का निर्माण कराए ।। २६ ।। भक्तियुक्त श्रेष्ठ मनुष्य के द्वारा श्रीहरि के धाम का निर्माण कराकर मनुष्य मानों सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् के मन्दिर का निर्माण करा देता है ।। २७ ।। संसार में जो कुछ भी भूतकालिक, वर्तमानकालिक, भविष्यत्कालिक, स्थूल तथा सूक्ष्म वस्तु है, वह एक तृण से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सम्पूर्ण भगवान् विष्णु से उत्पन्न है ।। २८ ।। उन देवाधिदेव, सर्वव्यापक, सर्वश्रेष्ठ भगवान् विष्णु के मन्दिर का निर्माण करके मनुष्य पुनः मर्त्यलोक में नहीं आता है ।। २९ ।। जिस तरह का फल भगवान् विष्णु के मन्दिर का निर्माण कराने का होता है, उसी तरह का फल शिव, ब्रह्मा, सूर्य,गणेश, दुर्गा (चण्डी) तथा लक्ष्मी आदि देवताओं के मन्दिर के निर्माण कराने का भी होता है ।। ३० ।। मन्दिर निर्माण कराने की अपेक्षा मूर्ति निर्माण कराने का अधिक फल होता है।।३१।। मूर्ति स्थापना याग के फल का तो अन्त होता ही नहीं है । मिट्टी की मूर्ति की अपेक्षा काष्ठ की मूर्ति बनवाने का फल अधिक होता है, उससे अधिक फल ईंटों की मूर्ति बनवाने का होता है ।। ३२।। ईंट की मूर्ति की अपेक्षा पत्थर की मूर्ति बनवाने से और उससे भी अधिक सुवर्ण आदि की प्रतिमा बनवाने से फल होता है । इस मन्दिर निर्माणादि कार्य के प्रारम्भ कर देने से सात जन्मों का पाप विनष्ट हो जाता है ।। ३३।। देवालय का निर्माण करने वाला व्यक्ति स्वर्ग लोक में जाता है, वह नरक में नहीं जाता । वह अपने सौ पीढ़ी का उद्धार करके उनको विष्णुलोक में ले जाता है ।। ३४।। देव मन्दिर का निर्माण करने वालों के विषय में यम ने अपने दूतों से कहा ।। ३५ ।। **यम ने कहा–** प्रतिमा (मूर्ति) की पूजा करने वाले मनुष्यों को तुम लोग यहाँ मत लाना । उन मनुष्यों को विशेष रूप से लाना जिन लोगों ने कभी मन्दिर आदि का निर्माण नहीं कराया है ।। ३६ ।। तुम लोग संसारभर में विचरण करो, मेरे आदेश का पालन करो । तुम लोगों की आज्ञा का उल्लंघन कोई भी जीव नहीं कर पायेगा ।। ३७ ।। हे दूतों ! जो जीव केवल अनन्त स्वरूप श्रीभगवान् की आराधना करते हों उनको तुम लोग यहाँ मत लाना, उन जीवों की यहाँ स्थिति नहीं होती ।। ३८ ।। जहाँ पर श्रीभगवान् के भक्त सर्वदा उनमें ही मन लगाकर सदा उन्हीं की आराधना में लगे रहते हैं, उन भागवतों को तुम लोग दूर से ही त्याग देना ।। ३९ ।। जो जीव खड़े-खड़े सोते हुए, चलते हुए

नित्यैर्नैमित्तिकैर्देवं ये यजन्ति जनार्दनम् ॥ ४०॥ नावलोक्या भवद्भिस्ते तद्व्रता यान्ति तद्गतिम्। ये पुष्पधूपवासोभिर्भूषणैश्चातिवल्लभैः॥ ४१॥ अर्चयन्ति न ते ग्राह्या नराः कृष्णालये गताः । उपलेपनकर्तारः सम्मार्जनपराश्च ये ॥ ४२॥ कृष्णालये परित्याज्यास्तेषां पुत्रास्तथा कुलम् । येन चायतनं विष्णोः कारितं तत्कुलोद्भवम् ॥ ४३॥ पुंसां शतं नावलोक्यं भवद्भिर्दुष्टचेतसा । यस्तु देवालयं विष्णोर्दारुशैलमयं तथा ॥ ४४॥ कारयेन्मृण्मयं वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते । अहन्यहनि यज्ञेन यजतो यन्महाफलम् ॥ ४५॥ प्राप्नोति तत्फलं विष्णोर्यः कारयति केतनम् । कुलानां शतमागामि समतीतं तथा शतम् ॥ ४६॥ कारयन् भगवद्धाम नयत्यच्युतलोकताम् । सप्तलोकमयो विष्णुस्तस्य यः कुरुते गृहम् ॥ ४७॥ तारयत्यक्षयाँल्लोकानक्षय्यान् प्रतिपद्यते । इष्टिकाचयविन्यासो यावन्त्यब्दानि तिष्ठति ॥ ४८॥ तावद्वर्षसहस्राणि तत्कर्तुर्दिवि संस्थितिः । प्रतिमाकृद्विष्णुलोकं स्थापको लीयते हरौ ॥ ४९॥ देवसद्मप्रतिकृतिप्रतिष्ठाकृत्तु गोचरे । अग्निरुवाच– यमोक्ता न नयन्त्येतं प्रतिष्ठादिकृतं हरेः । हयग्रीवः प्रतिष्ठाद्यं देवानां ब्रह्मणेऽब्रवीत् ॥ ५० ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये देवालयनिर्माण-माहात्म्यादिवर्णनं नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः॥ ३८ ॥

बैठते हुए, गिरते हुए सर्वदा भगवान् गोविन्द के नामों का संकीर्तन करते हैं, उन्हें तुम लोग दूर से ही त्याग देना ।। ४० ।। जो जीव अपने नित्य तथा नैमित्तिक कर्मों के द्वारा भगवान् जनार्दन की पूजा करते हैं, उन्हें तुम लोग देखना भी नहीं । वे जीव श्रीभगवान् का व्रत करने वाले हैं, और उन्हीं के लोक में जाते हैं ।। ४१ ।। जो मनुष्य भगवान् विष्णु के मन्दिर में जाकर अत्यन्त प्रिय पुष्प, धूप, वस्त्र तथा आभूषण से श्रीभगवान् की अर्चना करते हैं, उनको आप लोग मत ग्रहण करना ।। ४२ ।। जो लोग भगवान् के मन्दिर में जाकर उसको लिपते हैं तथा उसकी सफाई करते हैं, उन्हें, उनके पुत्रों तथा उनके वंश के लोगों के तुम लोग त्याग देना ।। ४३ ।। जो व्यक्ति श्री विष्णु भगवान् का मन्दिर बनवाये हों, उनके वंश में सौ पीढ़ी तक के लोगों को दूषित अन्तःकरण से भी तुम लोग नहीं देखना ।। ४४ ।। जो मनुष्य लकड़ी अथवा पत्थर अथवा मिट्टी से भगवान् विष्णु के मन्दिर का निर्माण करवाता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है ।। ४५ ।। प्रत्येक दिन यज्ञ करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह फल श्रीभगवान् के मन्दिर का निर्माण कराने से ही मिल जाता है।।४६।। श्रीभगवान् के मन्दिर का निर्माण मात्र कराकर मनुष्य अपने से पहले की सौ पीढ़ी के पूर्वजों तथा अपने से सौ पीढ़ी बाद में होने वाले वंशजों को श्रीभगवान् के लोक में पहुँचा देता है ।। ४७ ।। भगवान् विष्णु सातों लोकमय हैं, उनके मन्दिर का जो निर्माण कराता है वह अपने कुल को अक्षयलोक में पहुँचा देता है तथा स्वयं भी अक्षयलोक को प्राप्त करता है ।। ४८ ।। ईंट समूह से निर्मित मन्दिर जितने वर्षों तक बना रहता है, वह मन्दिर का निर्माणकर्ता उतने ही हजार वर्ष पर्यन्त स्वर्गलोक में निवास करता है ।। ४९ ।। भगवान् की मूर्ति को बनाने वाला विष्णुलोक को प्राप्त करता है तथा भगवान् की प्रतिष्ठा कराने वाला श्रीहरि में लीन हो जाता है । देवताओं के मन्दिर तथा उनकी मूर्ति बनाने वाला तथा तत्-तत् देवताओं की प्रतिष्ठा कराने वाला पुरुष तो भगवान् के लोक में जाता है । **अग्निदेव ने कहा–** यम के द्वारा इस प्रकार से आज्ञा पाकर यमदूत भगवान् की प्रतिष्ठा आदि कराने वाले को यमलोक नहीं ले जाते हैं । हयग्रीव भगवान् ने देवताओं की प्रतिष्ठा आदि की विधि का उपदेश इस प्रकार से ब्रह्मा जी को किया है ।। ५० ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का देवालयनिर्माण के माहात्म्य आदि का वर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३८ ॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

विष्ण्वादिदेवताप्रतिष्ठापने भूपरिग्रहविधानम्

अग्निरुवाच– **विष्ण्वादीनां प्रतिष्ठादि वक्ष्ये ब्रह्मञ्शृणुष्व मे । प्रोक्तानि पञ्चरात्राणि सप्तरात्राणि वै मया ॥ १ ॥ व्यस्तानि मुनिभिर्लोके पञ्चविंशतिसंख्यया । हयशीर्षं तन्त्रमाद्यं तन्त्रं त्रैलोक्यमोहनम् ॥ २ ॥ वैभवं पौष्करं तन्त्रं प्रह्लादं गार्ग्यगालवम् । नारदीयं च श्रीप्रश्नं शाण्डिल्यं चेश्वरं तथा ॥ ३ ॥ सत्यशक्तिं शौनकं तन्त्रं वासिष्ठं ज्ञानसागरम् । स्वायम्भुवं कापिलं च ताक्ष्र्यं नारायणीयकम् ॥ ४ ॥ आत्रेयं नारसिंहाख्यमानन्दाख्यं तथारुणम् । बौधायनं तथाष्टाङ्गं विश्वोक्तं तस्य सारतः ॥ ५ ॥ प्रतिष्ठां हि द्विजः कुर्यान्मध्यदेशादिसम्भवः । न कच्छदेशसम्भूतः कावेरीकौङ्कणोद्गतः॥६॥ कामरूपः कलिङ्गोत्थः काञ्चीकाश्मीरके स्थितः। आकाशवायुतेजाम्बुभूरेताः पञ्चरात्रयः ॥ ७ ॥ अचैतन्यास्तमोद्रिक्ताः पञ्चरात्रिविवर्जिताः । ब्रह्माहं विष्णुरमल इति विद्यात्स देशिकः ॥ ८ ॥ सर्वलक्षणहीनोऽपि गुरुः स तन्त्रपारगः । नगराभिमुखाः स्थाप्या देवा न च पराङ्मुखाः ॥ ९ ॥ कुरुक्षेत्रे गयादौ च नदीनां तु समीपतः । ब्रह्मा मध्ये तु नगरे पूर्वे शक्रस्य शोभनम् ॥ १० ॥ अग्नावग्नेश्च मातृणां भूतानां च यमस्य च । दक्षिणे चण्डिकायाश्च पितृदैत्यादिकस्य च ॥ ११ ॥ नैर्ऋते मन्दिरं कुर्याद्वरुणादेश्च वारुणे । वायोर्नागस्य वायव्ये सौम्ये यक्षगुहस्य च ॥ १२ ॥ चण्डीशस्य महेशस्य ऐशे विष्णोश्च सर्वशः । पूर्वदेवकुलं पीड्य प्रासादं स्वल्पकं त्वथ ॥ १३ ॥ समं वाप्यधिकं वापि न कर्तव्यं विजानता । उभयोर्द्विगुणां सीमां त्यक्त्वा चोच्छ्रायसम्मिताम् ॥१४ ॥ प्रासादं कारयेदन्यं नोभयं पीडयेद् बुधः । भूमौ तु शोधितायां तु कुर्याद् भूमिपरिग्रहम्॥ १५ ॥ प्राकारसीमापर्यन्तं**

श्री हयग्रीव भगवान् ने कहा– हे ब्रह्मन् ! आप सुनें मैं विष्णु आदि देवताओं की प्रतिष्ठा की विधि का वर्णन करूँगा । मैंने पञ्चरात्र तथा सप्तरात्र का उपदेश किया है ।। १ ।। उन्हीं ग्रन्थों को मुनियों ने पच्चीस भागों में विभक्त किया है । वे तन्त्र इस प्रकार हैं– (१) हयशीर्ष तत्र, (२) त्रैलोक्यमोहनतन्त्र, (३) वैभव तन्त्र, (४) पौष्कर तन्त्र, (५) प्रह्लाद तन्त्र, (६) गार्ग्य तन्त्र, (७) गालव तन्त्र, (८) नारदीय तन्त्र, (९) श्रीप्रश्न तन्त्र, (१०) शाण्डिल्य तन्त्र, (११) ईश्वरतन्त्र, (१२) सत्यशक्ति तन्त्र, (१३) शौनक तन्त्र, (१४) वासिष्ठ तन्त्र, (१५) स्वायम्भु तन्त्र, (१६) कापिल तन्त्र, (१७) ताक्ष्र्य तन्त्र, (१८) नारायणीय तन्त्र, (१९) आत्रेय तन्त्र, (२०) नृसिंह तन्त्र, (२१) आनन्द तन्त्र, (२२) अरुण तन्त्र, (२३) बौधायन तन्त्र, (२४) अष्टाङ्ग तन्त्र तथा (२५) विश्व तन्त्र । इन तन्त्रों के सार भाग के अनुसार मध्य देश में उत्पन्न ब्राह्मण ही देवताओं की प्रतिष्ठा करें । कच्छदेश, कावेरी, कोंकण, कामरूप, कलिङ्ग, काञ्ची तथा कश्मीर देश में उत्पन्न तथा रहने वाले देव प्रतिष्ठा का कार्य न करें । आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथिवी इन्हीं पाञ्चों को पञ्चरात्र कहा गया है ।। २-७ ।। ये पाञ्चों जड़ तथा उद्रिक्त तमोगुण वाले तथा पञ्चरात्र से रहित हैं। आचार्य को चाहिए कि वे अपने में यह अनुभव करें कि मैं ही ब्रह्म तथा विष्णु स्वरूप हूँ ।। ८ ।। समस्त लक्षणों से रहित किन्तु तन्त्र शास्त्र में पारङ्गत पुरुष को गुरु बनाना चाहिए । देवताओं की स्थापना नगराभिमुख करनी चाहिए नगर की ओर पीठ करके नहीं ।। ९ ।। कुरुक्षेत्र गयाक्षेत्र तथा नदियों के समीप में नगर के बीच में ब्रह्मा का, नगर के पूर्वभाग में इन्द्र का मन्दिर बनाना अच्छा होता है।।१०।। अग्निकोण में अग्नि का, मातृगणों का तथा भूतों का यम का दक्षिण में एवं नैर्ऋत्य कोण में चण्डिका का, पितृगण तथा दैत्य आदि का मन्दिर बनाना चाहिए । पश्चिम दिशा में वरुण का, वायु तथा नाग का वायव्य कोण में, उत्तर दिशा में यक्षों तथा कार्तिकेय का, ईशानकोण में चण्डीश भगवान् शंकर का तथा भगवान् विष्णु का मन्दिर बनाया जा सकता है । जानकार मनुष्य को चाहिए कि पूर्वोक्त देव समूह को संकुचित हो उनके प्रासाद (मन्दिर) को अत्यन्त छोटा,या समान या विशाल नहीं बनाए ।। ११-१३ ।। दो मन्दिरों की ऊँचाई की दुगनी जगह छोड़कर दूसरा मन्दिर बनवाना चाहिए, दोनों में से किसी भी मन्दिर को संकुचित नहीं करना चाहिए । भूमि का शोधन करके उसका मन्दिर निर्माणार्थ परिग्रह करना चाहिए ।। १४-१५ ।। इसके पश्चात् चाहारदिवारी पर्यन्त

ततो भूतबलिं हरेत् । माषं हरिद्राचूर्णं तु सलाजं दधिसक्तुभिः ॥ १६ ॥ अष्टाक्षरेण सक्तूंश्च पातयित्वाष्टदिक्षु च । राक्षसाश्च पिशाचाश्चयेऽस्मिंस्तिष्ठन्ति भूतले ॥ १७ ॥ सर्वे ते व्यपगच्छन्तु स्थानं कुर्यामहं हरेः । हलेन दारयित्वा गां गोभिश्चैवावचारयेत् ॥ १८ ॥ परमाण्वष्टकेनैव रथरेणुः प्रकीर्तितः। रथरेण्वष्टकेनैव त्रसरेणुः प्रकीर्त्यते ॥ १९ ॥ तैरष्टभिस्तु बालाग्रं लिक्षा तैरष्टभिर्मता । ताभिर्यूकारष्टभिः ख्याता ताश्चाष्टौ यवमध्यमः ॥ २० ॥ यवाष्टकैरङ्गुलं स्याच्चतुर्विंशाङ्गुलः करः । चतुरङ्गुलसंयुक्तः स्वहस्तः पद्महस्तकः ॥ २१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विष्णवादिदेवताप्रतिष्ठार्थभूपरिग्रहवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

वास्तुमण्डलदेवतास्थापनपूजार्घ्यदानबलिदानादिविधानकथनम्

हयग्रीव उवाच— **पूर्वमासीन्महद्भूतं सर्वभूतभयङ्करम् । तद्देवैर्निहितं भूमौ स वास्तु-पुरुषः स्मृतः ॥ १ ॥ चतुःषष्टिपदे क्षेत्रे ईशं कोणार्धसंस्थितम्। घृताक्षतैस्तर्पयेत्तं पर्जन्यं पदगं ततः ॥ २ ॥ उत्पलाद्भिर्जयन्तं च द्विपदस्थं पताकया । महेन्द्रं चैककोष्ठस्थं सर्वरक्तपदे रविम् ॥ ३ ॥ वितानेनार्धपदगं सत्यं पादे भृशं घृतैः । व्योम शाकुनमांसेन कोणार्धपदसंस्थितम् ॥ ४ ॥ स्रुचा चार्धपदे वह्निं पूषणं लाजयैकतः । स्वर्णेन वितथं द्विस्थं मन्थनेन गृहाक्षतम् ॥ ५ ॥ मांसौदनेन धर्मेशमेकैकस्मिन् स्थितं द्वयम् । गन्धर्वं द्विपदं गन्धैर्भृशं शाकुनजिह्वया ॥ ६ ॥ एकस्थमर्धसंस्थं च यथा नीलपटैस्तथा। पितृन् कृशरयार्धस्थं दन्तकाष्ठैः पदस्थितम् ॥७॥ दौवारिकं द्विसंस्थं च सुग्रीवं यावकेन तु । पुष्पदन्तं कुशस्तम्बैः पद्मैर्वरुणमेकतः॥८॥**

उड़द, हल्दी के चूर्ण, लावा तथा सत्तू से भूतबलि देनी चाहिए ।। १६ ।। आठों दिशाओं में अष्टाक्षर मन्त्र से सत्तू गिराकर इस मन्त्र को पढ़ना चाहिए- **राक्षसाश्च पिशाचाश्च येस्मिंस्तिष्ठन्ति भूतल। सर्वे ते व्यपगच्छन्तु स्थानं कुर्यामहं हरेः ।'** अर्थात् इस भूमि पर जो भी राक्षस तथा पिशाच हों वे दूर चले जायँ यहाँ मैं श्रीभगवान् का स्थान बनाने जा रहा हूँ । इसके पश्चात् उस भूमि को हल से जोतवाकर उस भूमि पर गोचारण कराना चाहिए ।। १७-१८ ।। आठ परमाणुओं का एक रथरेणु होता है । आठ रथरेणु का एक त्रसरेणु होता है । आठ त्रसरेणु का एक बालाग्र, आठ बालाग्र का एक लिक्षा, आठ लिक्षा का एक यूका, आठ यूका का एक यव,आठ यव का एक अंगुल चौबीस अंगुल का एक हाथ तथा एक हाथ और चार अंगुल का एक पद्म हस्त होता है ।।१९-२१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का विष्णु आदि देवताओं की प्रतिष्ठा के लिए भूमिपरिग्रह नामक उनचालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३९ ॥

श्रीहयग्रीव भगवान् ने कहा— प्राचीनकाल में सभी प्राणियों को भयभीत करने वाला एक महान् प्राणी था । उसको देवताओं ने भूमि में गाड़ दिया, उसे ही वास्तुपुरुष कहा जाता है ।। १ ।। चौसठ कोष्ठों वाले वास्तुमण्डल क्षेत्र के ईशान कोण के आंधे कोष्ठक में स्थित ईश को घृत तथा अक्षत से तृप्त करना चाहिए । उसके पश्चात् एक कोष्ठ में स्थित पर्जन्य को कमल तथा जल से तृप्त करना चाहिए । दो कोष्ठों में स्थित महेन्द्र (इन्द्र) को पताका से, पुनः सम्पूर्ण लाल एक कोष्ठ में स्थित सूर्य को वितान (चंदोवा) से, आधे कोष्ठ में स्थित सत्य को तथा एक कोष्ठ में स्थित भृश को घृत से तथा कोने के आधे कोष्ठ में स्थित व्योम को, शाकुन मांस (पक्षी के माँस) से तृप्त करना चाहिए ।। २-४ ।। आधे कोष्ठ में स्थित वह्नि को स्रुक् से, एक कोष्ठ में स्थित पूषा को लावा से, दो कोष्ठों में स्थित वितथ को सुवर्ण से तथा मन्थन दण्ड से गृहाक्षत को तृप्त करना चाहिए ।। ५ ।। एक कोष्ठ में स्थित यमराज को माँस भात से, दो कोष्ठों में स्थित गन्धर्व को चन्दन से, तथा भृश को शाकुन जिह्वा से तृप्त करना चाहिए ।। ६ ।। एक कोष्ठ अथवा आधे कोष्ठ में स्थित देवताओं की जैसे नीले वस्त्र से पूजा की जाती है, उसी प्रकार की नीली खिचड़ी से पितरों को तृप्त करना

असुरं सुरया द्विस्थं पदेशाय घृताम्भसा । यवैः पापं पदार्धस्थं रोगमध्ये च मण्डकैः॥ ९॥ नागपुष्पैः पदे नागं मुख्यं भक्ष्यैर्द्विसंस्थितम् । मुद्गौदनेन भल्लाटं पदे सोमं पदे तथा ॥ १०॥ मधुना पायसेनाथ शालूकेन ऋषिं द्वये। पदेऽदितिं लोपिकाभिरर्धे दितिमथापरम् ॥ ११॥ पुरिकाभिस्ततश्चापमीशाधः पयसा पदे । ततोऽधश्चापवत्सं तु दध्ना चैकपदे स्थितम् ॥ १२॥ लड्डूकैश्च मरीचिं तु पूर्वकोष्ठचतुष्टये । सवित्रे रक्तपुष्पाणि ब्रह्माधः कोणकोष्ठके॥१३॥ तदधः कोष्ठके दद्यात्सवित्रे च कुशोदकम् । विवस्वतेऽरुणं दद्याच्चन्दनं चतुरङ्घ्रिषु ॥ १४॥ रक्षोऽधः कोणकोष्ठे तु इन्द्रायार्घ्यं निशान्वितम् । इन्द्रजयाय तस्याधो घृतार्घ्यं कोणकोष्ठके ॥ १५॥ चतुष्पदे तु दातव्यमिन्द्राय गुडपायसम् । वाय्वधः कोणदेशे तु रुद्राय पक्वमांसकम् ॥ १६॥ तदधः कोणकोष्ठे तु यक्षायार्धफलं तथा । महीधराय मांसान्नं माषं च चतुरङ्घ्रिषु ॥ १७॥ मध्ये चतुष्पदे स्थाप्या ब्रह्मणे तिलतण्डुलाः । चरकीं मांससर्पिर्भ्यां स्कन्दं कृशरया स्त्रजा ॥ १८॥ रक्तपत्रैर्विदारीं च कन्दर्पं च पलौदनैः । पूतनां पलपित्ताभ्यां मांसासृग्भ्यां च जम्भकम् ॥ १९॥ पित्तासृगस्थिभिः पापं पिलिपित्सं स्त्रजासृजा । ईशाद्यान् रक्तमांसेन अभावादक्षतैर्यजेत् ॥ २०॥ रक्षोमातृगणेभ्यश्च पिशाचादिभ्य एव च । पितृभ्यः क्षेत्रपालेभ्यो बलीन् दद्यात्प्रकामतः ॥ २१॥ अहुत्वैतानसन्तर्प्य प्रासादादीन्न कारयेत् । ब्रह्मस्थाने हरिं लक्ष्मीं गणं पश्चात्समर्चयेत्॥२२॥ महीं नरं वास्तुमयं वर्धन्या सहितं घटम् । ब्रह्माणं मध्यतः कुम्भे ब्रह्मादींश्च दिगीश्वरान् ॥ २३॥ दद्यात्पूर्णाहुतिं पश्चात् स्वस्तिवाच्य प्रणाम्य च। प्रगृह्य

चाहिए एवं एक पद में स्थित देवता की दातून से पूजा करनी चाहिए ।। ७ ।। दो कोष्ठों में स्थित सुग्रीव तथा दौवारिक की पावक (लाक्षारस या महावर) से पूजा करनी चाहिए, कुश के टुकड़े से पुष्पदन्त को तथा एक कोष्ठ में स्थित वरुण की पूजा कमल से करनी चाहिए ।। ८ ।। दो कोष्ठों में स्थित असुर की पूजा मदिरा से, कोष्ठक स्वामी की पूजा घृत मिश्रित जल से, आधे कोष्ठ में स्थित यव से, तथा मध्य में स्थित रोग की पूजा माँड़ से करनी चाहिए ।। ९ ।। एक कोष्ठ में स्थित नाग की नागकेसर से, दो कोष्ठों में स्थित मुख्य की पूजा भक्ष्य पदार्थों से, भल्लाट की मूँग के भात से, एक कोष्ठ में स्थित सोम की मधु तथा पायस (खीर) से, दो कोष्ठों में स्थित ऋषि की शालूक (जाती फल) से, एक पद में स्थित अदिति की लोपिका से, तथा दूसरे आधे कोष्ठ में स्थित दिति की पूड़ी से पूजा करनी चाहिए। ईश के नीचे एक कोष्ठ में स्थित पाप की दूध से और उसके नीचे एक कोष्ठ में स्थित आपवत्स की पूजा दही से करनी चाहिए ।। १०-१२ ।। पूर्व दिशा के चार कोष्ठों में स्थित मरीचि की पूजा लड्डुओं से, ब्रह्मा के नीचे कोने के कोष्ठ में सविता की पूजा लाल पुष्प से करनी चाहिए ।। १३ ।। उसके नीचे के कोष्ठ में सविता को कुशोदक प्रदान करना चाहिए । चार चरणों में विवस्वान् को लाल चन्दन चढ़ाना चाहिए ।। १४ ।। राक्षस के नीले कोने के कोष्ठ में हल्दी मिश्रित अर्घ्य इन्द्र को प्रदान करना चाहिए । उसके नीचे कोने के कोष्ठ को आधे भाग में इन्द्रजय को घी का अर्घ्य देना चाहिए ।। १५ ।। चार कोष्ठों में तो इन्द्र के लिए गुड़ का बना पायस प्रदान करना चाहिए । वायु के नीचे कोने में रुद्र के लिए पका हुआ मांस चढ़ाना चाहिए ।। १६ ।। उसके नीचे कोने के कोष्ठ में यक्ष के लिए आधा फल चढ़ाना चाहिए । महीष के लिए चारों चरणों में मांस, अन्न, तथा उड़द चढ़ाना चाहिए ।। १७ ।। बीच के चार कोष्ठकों में ब्रह्मा के लिए तिल तथा चावल रखना चाहिए चरकीं की माष (उड़द) तथा घी से एवं स्कन्द की खिचड़ी तथा माला से पूजा करनी चाहिए ।। १८ ।। रक्तपत्र से, विदारी की मांसभात से कामदेव की, मांस तथा पित्त से पूतना की, तथा जृम्भक की मांस तथा खून से पूजा करे ।। १९ ।। पाप की पित्त तथा रक्त से, पिलिपिच्छ की माला तथा शोणित से, ईश आदि की रक्त तथा मांस से, अथवा इन सबों के अभाव में अक्षत से पूजा करनी चाहिए ।। २० ।। अपनी इच्छा के अनुसार राक्षस, मातृगण, पिशाचों पितृगणों तथा क्षेत्रपाल आदि के लिए बलि देनी चाहिए ।। २१ ।। इन सबों को आहुति दिए विना अथवा इनकी पूजा किए विना मन्दिर का निर्माण नहीं करना चाहिए। बलि देने के पश्चात् ब्रह्मा के ही कोष्ठक में श्रीहरि, लक्ष्मी तथा गणेश की पूजा करनी चाहिए ।। २२ ।। पृथिवी, वास्तुपुरुष तथा वर्धनी के साथ घट की स्थापना करके उस पर ब्रह्मा की तथा ब्रह्मा आदि दिक्पालों की पूजा करके पूर्णाहुति देनी चाहिए । पुनः स्वस्तिवाचन करके तथा प्रणाम करके हाथ में

कर्करीं सम्यङ्मण्डलं तु प्रदक्षिणम् ॥ २४॥ सूत्रमार्गेण हे ब्रह्मंस्तोयधारां च भ्रामयेत् । पूर्ववत्तेन मार्गेण सप्त बीजानि वापयेत् ॥ २५॥ प्रारम्भं तेन मार्गेण तस्य खातस्य कारयेत् । ततो गर्तं खनेन्मध्ये हस्तमात्रं प्रमाणातः ॥ २६॥ चतुरङ्गुलकं चाधश्चोपलिप्यार्चयेत्ततः । ध्यात्वा चतुर्भुजं विष्णुमर्घ्यं दद्यात्तु कुम्भतः ॥ २७॥ कर्कर्या पूरयेच्छ्वभ्रं शुक्लपुष्पाणि च न्यसेत् । दक्षिणावर्तकः श्रेष्ठं बीजैर्मृद्भिश्च पूरयेत् ॥ २८॥ अर्घ्यदानं विनिष्पाद्य गोवस्त्रादीन् ददेद् गुरौ । कालज्ञाय स्थपतये वैष्णावादित्यपूजनम् ॥ २९॥ ततस्तु खानयेद्यत्नाज्जलान्तं यावदेव तु । पुरुषाधः स्थितं शल्यं न गृहे दोषदं भवेत् ॥ ३०॥ अस्थिशल्ये भिद्यते वै भित्तिर्वै गृहिणोऽसुखम् । यन्नामशब्दं शृणुयात्तत्तु शल्यं तदुद्भवम् ॥ ३१॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विष्वादिदेवताप्रतिष्ठार्थभूपरिग्रहवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

शिलाविन्यासविधानम्

हयग्रीव उवाच– **पादप्रतिष्ठां वक्ष्यामि शिलाविन्यासलक्षणम् । अग्रतो मण्डपः कार्यः कुण्डानां तु चतुष्टयम् ॥ १ ॥ कुम्भन्यासेष्टकान्यासो द्वारस्तम्भोच्छ्रयं शुभम्। पादोनं पूरयेत्खातं तत्र वास्तुं यजेत्समे ॥ २ ॥ इष्टकाश्च सुपक्वाः स्युर्द्वादशाङ्गुलसम्मिताः । स्वविस्तारत्रिभागेन वैपुल्येन समन्विताः ॥ ३ ॥ करप्रमाणा श्रेष्ठा स्याच्छिलाप्यथ शिलामये । नव कुम्भांस्ताम्रमयान्स्थापयेदिष्टकाघटान् ॥ ४ ॥ अद्भिः पञ्चकषायेण सर्वौषधिजलेन च । गन्धतोयेन च तथा कुम्भैस्तोयसुपूरितैः ॥ ५ ॥ हिरण्यव्रीहिसंयुक्तैर्गन्धचन्दनचर्चितैः । आपो हिष्ठेति तिसृभिः शं नो देवीति**

कर्करी (छिद्रयुक्त जल पात्र) लेकर अच्छी तरह से मण्डल की परिक्रमा करनी चाहिए ।। २३-२४ ।। हे ब्रह्मन् सूत्र के साथ-साथ जल धारा गिराना चाहिए और पहले के ही समान उसी मार्ग से सप्तधान बोए ।। २५ ।। उसी मार्ग से उस मन्दिर का नींव का गड्ढा खोदवाना चाहिए । फिर बीच में एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा एवं एक हाथ गहरा गड्ढा खोदवाना चाहिए ।। २६ ।। उसके चार अंगुल नीचे लीपकर पूजन करना चाहिए । फिर चतुर्भुज विष्णु का ध्यान करके घड़े से अर्घ्य देना चाहिए ।। २७ ।। कर्करी के जल से उस गड्ढे को भरकर, उसमें उजला फूल डालें । उसका जल दक्षिणावर्त घूमे तो वह खात श्रेष्ठ होता है । पुनः उस गड्ढे को बीज तथा मिट्टी से भर देना चाहिए ।। २८ ।। अर्घ्य देने के पश्चात् आचार्य के लिए गोदान तथा वस्त्रदान करना चाहिए । उसके पश्चात् ज्योतिषी, राजमिस्त्री, वैष्णव तथा सूर्य की पूजा करनी चाहिए ।। २९ ।। उसके पश्चात् जब तक जल न निकल जाय नींव खुदवाना चाहिए । एक पोरसा के नीचे निकली हुई हड्डी घर के लिए हानिकारक नहीं होती है।।३०।। हड्डी के रहने पर दीवार टूट जाती है तथा गृह स्वामी को सुख नहीं मिलता है । खुदाई के समय जिस नाम का शब्द सुनायी पड़े, हड्डी भी उसी जाति की होती है।।३१।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अर्घ्यदान का विधान वर्णन नामक चालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४० ॥

हयग्रीव भगवान् ने कहा– अब मैं शिलान्यास स्वरूप पादप्रतिष्ठा का वर्णन कर रहा हूँ । सर्वप्रथम मण्डप का निर्माण करके उसमें चार कुण्डों को बनवाना चाहिए ।। १ ।। फिर कलश तथा इष्ट (शिला) का न्यास करके दरवाजे के स्तम्भ को ऊँचा बनवाना शुभ है । फिर खात (गड्ढे) का तीन हिस्सा भरकर उसकी मिट्टी बराबर करके वहीं पर वास्तु का पूजन करना चाहिए ।।२।। शिलाओं को अच्छी तरह से पकी हुई बारह अंगुल लम्बी और चार अंगुल मोटी होनी चाहिए ।। ३ ।। एक हाथ लम्बी शिला श्रेष्ठ मानी गयी है । नव ताम्बों के कलशों की स्थापना इष्टका घट

चाप्यथ ॥ ६ ॥ तरत्समन्दीरिति च पावमानीभिरेव च । उदुत्तमं वरुणमिति कयानश्च तथैव च ॥ ७ ॥ वरुणस्येति मन्त्रेण हंसः शुचिषदित्यपि ।
श्रीसूक्तेन च तथा शिलाः संस्थाप्य सङ्घशः ॥ ८ ॥ शय्यायां मण्डपे प्राच्यां मण्डले हरिमर्चयेत् । जुहुयाज्जनयित्वाग्निं समिधो द्वादशार्णतः ॥ ९॥
आघारावाज्यभागौ तु प्रणवेनैव कारयेत् । अष्टाहुतीस्तथाष्टार्णैराज्यं व्याहृतिभिः क्रमात् ॥ १० ॥ लोकेशायाग्नये चैव सोमाय च ग्रहाय च ।
पुरुषोत्तमायेति च व्याहृतीर्जुहुयात्ततः ॥ ११ ॥ प्रायश्चित्तं पूर्णां मूर्तिमांस धृतांस्तिलान् । वेदाद्यैर्द्वादशान्तेन कुम्भेषु च पृथक् पृथक् ॥ १२॥
प्राङ्मुखस्तु गुरुः कुर्यादष्टदिक्षु विलिप्य च । मध्ये चैकां शिलां कुम्भान् न्यसेदेतान्सुरान् क्रमात्॥ १३ ॥ पद्मं चैव महापद्मं मकरं कच्छपं तथा ।
कुमुदं च तथानन्दं पद्मं शङ्खं च पद्मिनीम् ॥ १४ ॥ कुम्भान्न चालयेत्तेषु न्यसेदष्टेष्टकाः क्रमात्। ईशानान्ताश्च पूर्वादाविष्टकाः प्रथमं न्यसेत्॥१५॥
शक्तयो विमलाद्यास्तु इष्टकानां तु देवताः । न्यसनीया यथायोगं मध्ये न्यस्या त्वनुग्रहा॥१६॥ अव्यङ्गे चाक्षते पूर्णे मुनेरङ्गिरसः सुते । इष्टके त्वं
प्रयच्छेष्टं प्रतिष्ठां कारयाम्यहम् ॥ १७ ॥ मन्त्रेणानेन विन्यस्य इष्टका देशिकोत्तमः । गर्भाधानं ततः कुर्यान्मध्यस्थाने समाहितः ॥ १८ ॥
कुम्भोपरिष्टाद् देवेशं पद्मिनीं न्यस्य देवताम् । मृत्तिकाश्चैव पुष्पाणि धातवो (तून्वै) रत्नमेव च ॥ १९ ॥ लोहादिनिर्मिते चास्त्रं यजेद्वै गर्भभाजने।
द्वादशाङ्गुलविस्तारे चतुरङ्गुलकोच्छ्रये ॥ २० ॥ पद्माकारे ताम्रमये भाजने पृथिवीं यजेत् । एकान्ते सर्वभूतेशे पर्वतासनमण्डिते ॥ २१ ॥
समुद्रपरिवारे त्वं देवि गर्भं समाश्रय । नन्दे नन्दय वासिष्ठे वसुभिः प्रजया सह ॥ २२ ॥ जये भार्गवदायादे प्रजानां विजयावहे! पूर्णेऽङ्गिरस (सो)

के रूप में करनी चाहिए ।। ४ ।। जल, पञ्चकषाय, सर्वौषधि जल, चन्दन के जल से परिपूर्ण सुवर्ण निर्मित धान्य से युक्त, सुगन्धित चन्दन से पूजित कलशों के द्वारा, 'आपोहिष्ठा' इत्यादि तीन मन्त्रों से 'शन्नो देवी इस मन्त्र से, 'तरत् समन्दी' इस मन्त्र से, पवमानी ऋचाओं से, 'उदुत्तमं वरुणम्' इस मन्त्र से 'कयानश्चित्रेया भुवं' इस मन्त्र से 'वरुणस्योत्तम्भन' इत्यादि मन्त्र से 'हंस शुचिषद्' इत्यादि से तथा 'श्रीसूक्त' से एक ही साथ शिलाओं की स्थापना करके मण्डप के भीतर शय्या पर पूर्व मण्डल में श्रीहरि का पूजन करना चाहिए । फिर अग्नि उत्पन्न करके समिधा द्वारा द्वादशाक्षर मन्त्र से होम करना चाहिए ।। ५-९ ।। आधार होम तथा आज्यभाग होम की आहुति प्रणव (ओम्) से देनी चाहिए । अष्टाक्षर मन्त्र से आठ आहुति तथा ओम् भूः स्वाहा, ओम् भुवः स्वाहा, ओम् स्वः स्वाहा ।' इन व्याहृतियों से घी की आहुति देकर क्रमशः लोकेश अग्नि, सोमग्रह तथा पुरुषोत्तम के लिए आहुति देनी चाहिए । पुनः व्याहृतियों से आहुति देनी चाहिए ।। १०-११ ।। उसके पश्चात् प्रायश्चित्त होम करके घी तथा तिल से प्रणव युक्त द्वादशाक्षर मन्त्र से पूर्णाहुति करनी चाहिए । उसके पश्चात् आचार्य को पूर्वाभिमुख होकर भूमि लिपकर स्थापित आठ कलशों पर तथा बीच में लिपकर स्थापित एक शिला पर देवताओं की अलग-अलग स्थापना करनी चाहिए ।। १२-१३।। वे देवता हैं- पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, कुमुद, नन्द, पद्म, शंख तथा पद्मिनी ।।१४ ।। कलशों को हटायें नहीं अपितु आठ शिलाओं की स्थापना क्रमशः पूर्व दिशा से लेकर ईशान कोण पर्यन्त के कुम्भों पर इष्टकाओं की पहले स्थापना करनी चाहिए ।। १५ ।। विमला आदि शक्तियाँ उन इष्टिकाओं की देवता हैं । उनकी क्रमशः स्थापना करके बीच में अनुग्रहा देवी की स्थापना करनी चाहिए ।। १६ ।। हे अङ्गिरा मुनि की पुत्रि ! इष्टका देवि ! आपके सभी अंग अक्षत एवं पूर्ण हैं । मुझे अभीष्ट प्रदान कीजिए मैं आपकी प्रतिष्ठा कर रहा हूँ ।। १७ ।। इस मन्त्र से इष्टका की प्रतिष्ठा करके आचार्य को चाहिए कि वे सावधान होकर बीच में गर्भाधान संस्कार करें ।। १८ ।। कलश के ऊपर देवेश तथा पद्मिनी देवता की स्थापना करके, मिट्टी, पुष्प,धातु तथा रत्न समर्पित करें ।। १९ ।। लोहा आदि से बने गर्भपात्र पर अस्त्र की पूजा करनी चाहिए । बारह अंगुल विस्तृत चार अंगुल ऊँचे कमल के आकार वाले ताम्बे के पात्र पर पृथिवी की पूजा करनी चाहिए ।। २०।। उसके पश्चात् पृथिवी की प्रार्थना करें- हे सभी भूतों की स्वामिनि ! पर्वतों के आसन से सुशोभित तथा समुद्र परिवार वाली पृथिवी देवि ! आप एकान्त में गर्भधारण करे । हे वसिष्ठ की पुत्रि नन्दे ! मुझे धन एवं सन्तान से आनन्दित करे ।। २१-२२ ।। हे भार्गव ऋषि की पुत्रि पूर्णे ! मुझे पूर्णकाम करो ।। २३।।

दायादे पूर्णकामं कुरुष्व माम् ॥ २३ ॥ भद्रे ! काश्यपदायादे कुरु भद्रां मतिं मम । सर्वबीजसमायुक्ते सर्वरत्नौषधीवृते ॥ २४ ॥ जये सुरुचिरे नन्दे वासिष्ठे रम्यतामिह । प्रजापतिसुते देवि चतुरस्रे महीयसि ॥ २५ ॥ सुभगे सुप्रभे भद्रे गृहे काश्यपि रम्यताम् । पूजिते परमाश्चर्ये गन्धमाल्यैरलङ्कृते॥२६॥ भव भूतिकरी देवि गृहे भार्गवि रम्यताम् । देशस्वामिपुरस्वामिगृहस्वामिपरिग्रहे॥२७॥ मनुष्यादिकतुष्ट्यर्थं पशुवृद्धिकरी भव । एवमुक्त्वा ततः खातं गोमूत्रेण तु सेचयेत् ॥ २८ ॥ कृत्वा निधापयेद्गर्भं गर्भाधानं भवेन्निशि । गोवस्त्रादि प्रदद्याच्च गुरवेऽन्येषु भोजनम् ॥ २९ ॥ गर्भं न्यस्येष्टकां न्यस्य ततो गर्भं प्रपूरयेत्। पीठबन्धमतः कुर्यात्ततः प्रासादमानतः ॥ ३० ॥ पीठोत्तमं चोच्छ्रयेण प्रासादस्यार्धविस्तरात् । पादहीनं मध्यमं स्यात् कनिष्ठं चोत्तमार्धतः ॥ ३१ ॥ पीठबन्धोपरिष्टात्तु वास्तुयागं पुनर्यजेत् । पादप्रतिष्ठाकारी तु निष्पापो दिवि मोदते ॥ ३२ ॥ देवागारं करोमीति मनसा यस्तु चिन्तयेत् । तस्य कायगतं पापं तदह्ना हि प्रणश्यति ॥ ३३ ॥ कृते तु किं पुनस्तस्य प्रासादे विधिनैव तु । अष्टेष्टकासमायुक्तं यः कुर्याद् देवतालयम्॥३४॥ न तस्य फलसम्पत्तिर्वक्तुं शक्येत केनचित्। अनेनैवानुमेयं हि फलं प्रासादविस्तरात् ॥ ३५ ॥ ग्राममध्ये च पूर्वस्यां प्रत्यग्द्वारं प्रकल्पयेत् । विदिशासु च सर्वासु ग्रामप्रत्यङ्मुखं भवेत् ॥ ३६ ॥ दक्षिणे चोत्तरे चैव पश्चिमे प्राङ्मुखं भवेत् ॥ ३७ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वशिलाविन्यासविधानादिकथनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

हे कश्यप की पुत्रि! भद्रेः मेरी बुद्धि कल्याणमयी बनाओ । तुम सम्पूर्ण बीजयुक्त तथा सभी रत्नों एवं औषधियों से सम्पन्न हो ।। २४ ।। हे वसिष्ठ पुत्रि ! जये ! रुचिरे ! एवं नन्दे! हे प्रजापति की पुत्रि ! चौकोर तथा पूजनीय पृथिवी देवि आप यहाँ पर रमण करें ।। २५ ।। हे भार्गवि देवि ! आप पूजित तथा परमाश्चर्यमयी चन्दन तथा माला से अलंकृत हैं । हे सुभगे ! तथा सुन्दर प्रभा से युक्त पृथिवी देवि ! आप इस गृह में रमण करें ।। २६ ।। देश के स्वामी, नगर के स्वामी, गृह के स्वामी के अधिकार में रहने वाले मनुष्य आदि की सन्तुष्टि के लिए आप पशुओं की वृद्धि करने वाली बनो। इस प्रकार से पृथिवी की प्रार्थना करके गड्ढे को गोमूत्र से सिंचना चाहिए ।। २७-२८ ।। इस तरह से सारी क्रिया करके रात्रि में गर्भाधान करें । आचार्य को गोदान और वस्त्रदान करना चाहिए तथा दूसरे लोगों को भोजन कराना चाहिए ।। २९ ।। गर्भ की स्थापना करके तथा इष्टका की स्थापना करके फिर गर्भ को भर देना चाहिए । उसके पश्चात् मन्दिर के प्रमाण के अनुसार पीठ बन्ध का निर्माण करना चाहिए ।। ३० ।। मन्दिर के विस्तार के आधा ऊँचा पीठ उत्तम पीठ होता है । उत्तम के एक चौथाई कम ऊँचा मध्यम पीठ होता है । उत्तम पीठ के आधा ऊँचा अधम पीठ होता है ।। ३१ ।। पीठ बन्ध के ऊपर पुनः वास्तु याग करना चाहिए केवल पाद प्रतिष्ठा करने वाला मनुष्य सभी पापों से रहित होकर स्वर्गलोक में आनन्दानुभव करता है ।। ३२ ।। जो मन से देवमन्दिर निर्माण करने को सोचता है, उसी दिन उसके शरीर के सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं ।। ३३ ।। जो विधिपूर्वक प्रासाद का निर्माण करता है उसके विषय में क्या कहना है ? जो आठ इष्टकाओं से देव मन्दिर बनाता है, उससे होने वाले फलरूपी सम्पत्ति का वर्णन कोई भी नहीं कर सकता है । इसी से देवमन्दिर के निर्माण के फल का अनुमान लगा लेना चाहिए ।। ३४-३५ ।। ग्राम के बीच में अथवा गाँव के पूर्व में बने मन्दिर का द्वार पश्चिमाभिमुख होना चाहिए । सभी दिशाओं में बने मन्दिर का मुख पश्चिमाभिमुख होना चाहिए । ग्राम से दक्षिण, उत्तर तथा पश्चिम में बने मन्दिर का मुख पूर्वाभिमुख होना चाहिए ।। ३६-३७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का सर्वशिलाविन्यास के विधान आदि के वर्णन नामक एकतालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४१ ॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

प्रासादलक्षणकथनम्

हयग्रीव उवाच– **प्रासादं सम्प्रवक्ष्यामि सर्वसाधारणं शृणु । चतुरस्त्रीकृतं क्षेत्रं भजेत्षोडशधाबुधः ॥ १ ॥ मध्ये तस्य चतुर्भिस्तु कुर्यादायसमन्वितम्। द्वादशैव तु भागांश्च भित्त्यर्थं परिकल्पयेत् ॥ २ ॥ जङ्घोच्छ्रायस्तु कर्तव्यश्चतुर्भागेण चायतः । जङ्घाया द्विगुणोच्छ्रायो मञ्जर्याः कल्पयेद् बुधः ॥३॥ तुर्यभागेन मञ्जर्याः कार्यः सम्यक्प्रदक्षिणः । तन्मार्गनिर्गमः कार्य उभयोः पार्श्वयोः समः ॥ ४ ॥ शिखरेण समं कार्यमग्रे जगति विस्तरम् । द्विगुणेनापि कर्तव्यं यथाशोभानुरूपतः ॥ ५ ॥ विस्तारान्मण्डपस्याग्रे गर्भसूत्रद्वयेन तु । दैर्घ्यात्पादादिकं कुर्यान्मध्यस्तम्भैर्विभूषितम् ॥ ६ ॥ प्रासादगर्भमानं वा कुर्वीत मुखमण्डपम्। एकाशीतिपदैर्वास्तुं पश्चान्मण्डपमारभेत् ॥ ७ ॥ शुकान्प्राग्द्वारविन्यासे पादान्तःस्थान्यजेत् सुरान् । तथा प्रकारविन्यासे यजेद् द्वात्रिंशदन्तगान्॥ ८॥ सर्वसाधारणं चैतत् प्रासादस्य च लक्षणम् । मानेन प्रतिमाया वा प्रासादमपरं शृणु ॥ ९ ॥ प्रतिमायाः प्रमाणेन कर्तव्या पिण्डिका शुभा । गर्भस्तु पिण्डिकार्धेन गर्भमानास्तु भित्तयः ॥ १० ॥ भित्तेरायाममानेन उत्सेधं तु प्रकल्पयेत् । भित्त्युच्छ्रायात्तु द्विगुणं शिखरं कल्पयेद् बुधः॥ ११॥ शिखरस्य तु तुर्येण भ्रमणं परिकल्पयेत् । शिखरस्य चतुर्थेन अग्रतो मुखमण्डपम् ॥ १२ ॥ अष्टमांशेन गर्भस्य रथकानां तु निर्गमः । परिधेर्गुणभागेन रथकांस्तत्र कल्पयेत् ॥ १३ ॥ तत्तृतीयेन वा कुर्याद्रथकानां तु निर्गमः । वामत्रयं स्थापनीयं रथकत्रितये सदा ॥ १४॥ शिखरार्थं हि सूत्राणि चत्वारि विनिपातयेत्। शुकनासोर्ध्वतः सूत्रं तिर्यग्भूतं निपातयेत् ॥१५॥ शिखरस्यार्धभागस्थं सिंहं तत्र तु कारयेत् । शुकनासां**

श्री हयग्रीव भगवान् ने कहा– अब मैं सर्वसाधारण प्रासाद के निर्माण की विधि बतला रहा हूँ, उसे तुम सुनो । विद्वान् को चाहिए कि वह चौकोर किए गए प्रासाद क्षेत्र को सोलह भागों में विभक्त करे ।। १ ।। उसके बीच के चार भाग को आँगन के लिए बनाए । शेष बारह भाग को दिवार के लिए कल्पित करे ।। २ ।। विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वह चार भाग की जितनी लम्बाई हो उतनी ही दिवार की ऊँचाई करे और दिवार की ऊँचाई के दुगनी शिखर की ऊँचाई करे ।। ३ ।। शिखर की ऊँचाई के चौथाई भाग के बराबर परिक्रमा बनाना चाहिए, और उसी के बराबर दोनों तरफ निकास मार्ग बनाना चाहिए ।। ४ ।। शिखर की लम्बाई के बराबर मन्दिर के आगे का जगमोहन बनाना चाहिए अथवा शोभा के अनुसार दुगना विस्तृत जगमोहन बनाना चाहिए ।। ५ ।। मन्दिर के आगे का सभामण्डप मन्दिर के गर्भसूत्र के दुगना होना चाहिए । मन्दिर की ऊँचाई के बराबर ही पावे के स्तम्भ इत्यादि को बनाना चाहिए उसको बीच के भी स्तम्भों से समलंकृत होना चाहिए।।६।। अथवा प्रासाद के गर्भ का जो विस्तार हो उतना ही विस्तार जगमोहन का विस्तार करना चाहिए । उसके पश्चात् इक्यासी स्तम्भों वाला वास्तुमण्डप को बनवाना चाहिए ।। ७ ।। अग्र द्वार पर शुकों का निकास द्वार पर देवताओं का और चाहारदिवारी पर बत्तीस अन्तगों की स्थापना करके उनकी पूजा करनी चाहिए ।। ८ ।। यही सर्वसाधारण प्रासाद का स्वरूप है । अब प्रतिमा (मूर्ति) के मान से बनाए जाने वाले दूसरे प्रकार के प्रासादों का स्वरूप सुनो ।। ९ ।। प्रतिमा (मूर्ति) के प्रामाण के अनुसार मनोहर पिण्ड मन्दिर के क्षेत्र का निर्धारण करना चाहिए । पिण्ड के आधे भाग में गर्भगृह और गर्भगृह के ही बराबर दिवार को बनाना चाहिए ।। १० ।। दिवार की लम्बाई के अनुसार उसकी ऊँचाई रखनी चाहिए और विद्वान् को चाहिए कि वह दिवार की ऊँचाई के दुगना शिखर की ऊँचाई करे ।। ११ ।। शिखर की ऊँचाई के चौथाई भाग के बराबर परिक्रमा मार्ग बनाना चाहिए और उसी के बराबर जगमोहन बनाना चाहिए ।। १३ ।। गर्भ के अष्टमांश से रथ का निर्गम (मार्ग) बनाना चाहिए या परिधि के त्रितीयांश से रथमार्ग की कल्पना करनी चाहिए ।। १३ ।। अथवा उसके भी तृतीय भाग में रथ के निर्गममार्ग की कल्पना करनी चाहिए । तीनों रथों पर तीन-तीन वाम की स्थापना करनी चाहिए ।। १४ ।। शिखर बनाने के लिए चार सूत्र गिराना चाहिए शुकनासा के ऊपर तिरछा सूत्र पटकना चाहिए ।। १५ ।। शिखर के आधे भाग में सिंह की

स्थिरीकृत्य मध्यसन्धौ विधारयेत् ॥ १६ ॥ अपरे च तथा पार्श्वे तद्वत्सूत्रं विधारयेत् । तदूर्ध्वं तु भवेद्वेदी सकण्ठासनसारकम् ॥ १७ ॥ स्कन्धभग्नं न कर्तव्यं विकरालं तथैव च । ऊर्ध्वं तु वेदिकामानात्कलशं परिकल्पयेत् ॥ १८ ॥ विस्ताराद्द्विगुणं द्वारं कर्तव्यं तु सुशोभनम् । उदुम्बरौ तदूर्ध्वं च न्यसेच्छाखां सुमङ्गलैः ॥ १९ ॥ द्वारस्य तु चतुर्थांशे कार्यौ चण्डप्रचण्डकौ । विष्वक्सेनो वत्सदण्डो शाखार्धोदुम्बरे श्रियम् ॥ २० ॥ दिग्गजैः स्नाप्यमानां तां घटैः साब्जां सुरूपिकाम् । प्रासादस्य चतुर्थांशैः प्राकारस्योच्छ्रयो भवेत् ॥ २१ ॥ प्रासादात्पादहीनं तु गोपुरस्योच्छ्रयो भवेत् । पञ्चहस्तस्य देवस्य एकहस्ता तु पीठिका ॥ २२ ॥ गारुडं मण्डपं चाग्रे एकं भौमादिधाम च । कुर्याद् द्विप्रतिमायामं दिक्षु चाष्टासु चोपरि ॥ २३॥ पूर्वे वराहं दक्षे च नृसिंहं श्रीधरं जले । उत्तरे तु हयग्रीवमाग्नेय्यां जामदग्न्यकम् ॥ २४ ॥ नैर्ऋत्यां रामकं वायौ वामनं वासुदेवकम्! । ईशे प्रासादरचना देया वस्वर्ककादिभिः ॥ २५ ॥ द्वारस्य चाष्टमाद्यंशं त्यक्त्वा वेधो न दोषभाक् ॥ २६ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रासादादीनां लक्षण-वर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

प्रासाददेवतास्थापनभूतशान्त्यादिकथनम्

हयग्रीव उवाच— **प्रासादे देवताः स्थाप्या वक्ष्ये ब्रह्मञ्शृणष्व मे । पञ्चायतनमध्ये तु वासुदेवं निवेशयेत् ॥ १ ॥ वामनं नृहरिं चाश्वशीर्षं तद्वच्च**

मूर्ति बनवाना चाहिए । सूत्र को शुकनासा पर स्थिर करके उसको मध्यसन्धि पर्यन्त ले जाना चाहिए ।। १६ ।। इसी प्रकार से दूसरे भाग में सूत्रपात करना चाहिए । उसके ऊपर वेदी होनी चाहिए उसके ऊपर आसनसार नामक कलश होना चाहिए ।। १७ ।। सिंह को न तो भग्नस्कन्ध वाला बनाना चाहिए और न तो भयंकर बनाना चाहिए । वेदी के प्रमाण के ऊपर कलश की परिकल्पना करनी चाहिए ।। १८ ।। द्वार के विस्तार के दुगुना उसकी ऊँचाई होनी चाहिए ।.मन्दिर के द्वार को अत्यन्त सुन्दर होना चाहिए । द्वार के ऊपर मंगलमय वस्तुओं के साथ गूलर की दो शाखाओं की रचना करनी चाहिए ।। १९ ।। द्वार के चतुर्थांश में चण्ड प्रचण्ड विष्वक्सेन तथा वत्सदण्ड की मूर्ति बनानी चाहिए । गूलर की आधी शाखा में लक्ष्मी की मूर्ति अंकित करनी चाहिए ।। २०।। सुन्दर रूप वाली तथा कमल लिए हुए श्री देवी को दिग्गजों द्वारा कलशों से स्नान कराते हुए अंकित करना चाहिए ।। २० ।। मन्दिर के चतुर्थांश के बराबर परकोटे की ऊँचाई होनी चाहिए । मन्दिर के तीन चौथाई के बराबर गोपुर की ऊँचाई होनी चाहिए यदि देवता की मूर्ति पाँच हाथ की हो तो उसकी पीठिका एक हाथ की होनी चाहिए ।। २२ ।। मन्दिर के आगे एक गरुड़ मण्डप तथा एक भौमादि मण्डप का निर्माण करना चाहिए । दो मूर्ति के बराबर विस्तृत ऊपर आठों दिशाओं में भगवान् की इन मूर्तियों को बनाए । पूर्व में बराह भगवान् की, दक्षिण में नृसिंह भगवान् की, पश्चिम में श्रीधर की, उत्तर दिशा में हयग्रीव भगवान् की, अग्निकोण में श्री परशुराम की मूर्ति का निर्माण कराना चाहिए । नैऋत्य कोण में श्रीराम की, वायव्य कोण में वामन भगवान् की तथा ईशान कोण में वासुदेव भगवान् की मूर्ति होनी चाहिए ।। २३-२५ ।। द्वार के आठवें अंश को छोड़कर जो वेध होता है वह दोषकारक नहीं होता है ।। २६ ।।

इस तरह से आदिमहापुरण अग्निपुराण का प्रासाद आदि का वर्णन नामक बयालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४२ ॥

श्री हयग्रीव भगवान् ने कहा— हे ब्रह्मन ! अब मैं मन्दिर में स्थापित किए जाने वाले देवताओं को बतला रहा हूँ , उसे आप सुनें । पञ्चायतन मन्दिर के मध्य मन्दिर में भगवान् वासुदेव

शूकरम् । आग्नेये नैर्ऋते चैव वायव्ये चेशगोचरे॥२॥ अथ नारायणं मध्ये ह्याग्नेय्यामम्बिकां न्यसेत् । नैर्ऋत्यां भास्करं वायौ ब्रह्माणं लिङ्गमीशके॥३॥ अथवा रुद्ररूपं तु अथवा नवधामसु । वासुदेवं न्यसेन्मध्ये पूर्वादौ रामरामकान् ॥ ४ ॥ इन्द्रादींल्लोकपालांश्च अथवा नवधामसु । पञ्चायतनकं कुर्यान्मध्ये तु पुरुषोत्तमम् ॥ ५ ॥ लक्ष्मीवैश्रवणौ पूर्वे दक्षे मातृगणं न्यसेत् । स्कन्दं गणेशमीशानं सूर्यादीन्पश्चिमे ग्रहान् ॥ ६ ॥ उत्तरे दश मत्स्यादीनाग्नेय्यां चण्डिकां तथा । नैर्ऋत्यामम्बिकां स्थाप्य वायव्ये तु सरस्वतीम् ॥ ७ ॥ पद्मामैशे वासुदेवं मध्ये नारायणं तथा । त्रयोदशालये मध्ये विश्वरूपं न्यसेद्धरिम् ॥ ८ ॥ पूर्वादौ केशवादीन्वा अन्यधामस्वयं हरिः । मृण्मयी दारुघटिता लोहजा रत्नजा तथा ॥ ९ ॥ शैलजा गन्धजा चैव कौसुमी सप्तधा स्मृता । कौसुमी गन्धजा चैव मृण्मयी प्रतिमा तथा ॥ १० ॥ तत्कालपूजिताश्चैताः सर्वकामफलप्रदाः । अथ शैलमयीं वक्ष्ये शिला यत्र च गृह्यते ॥ ११ ॥ पर्वतानामभावे च गृह्णीयाद्भूगतां शिलाम् । पाण्डुरा ह्यरुणा पीता कृष्णा शस्ता तु वर्णिनाम् ॥ १२ ॥ न यदा लभ्यते सम्यग्वर्णिनां वर्णतः शिला । वर्णाद्यापादनं तत्र जुहुयात्सिंहविद्यया ॥ १३ ॥ शिलायां शुक्लरेखाग्र्यंकृष्णाग्र्यं सिंहहोमतः । कांस्यघण्टानिनादा स्यात्पुल्लिङ्गा विस्फुलिङ्गका ॥ १४ ॥ तन्मन्दलक्षणा स्त्री स्याद्रूपाभावान्नपुंसका । दृश्यते मण्डलं यस्यां सगर्भां तां विवर्जयेत् ॥ १५ ॥ प्रतिमार्थं धनं दत्त्वा वनयागं समाचरेत् । तत्र खात्वोपलिप्याथ मण्डपे तु हरिं यजेत् ॥ १६ ॥ बलिं दत्त्वा कर्मशस्त्रं टङ्कादिकमथार्चयेत् । हुत्वाथ शालितोयेन

की स्थापना करनी चाहिए ।। १ ।। वामन, नृसिंह, हयग्रीव तथा वराह भगवान् की मूर्ति की स्थापना क्रमशः अग्निकोण, नैर्ऋत्यकोण, वायव्यकोण तथा ईशान कोण में करना चाहिए ।। २ ।। यदि भगवान् नारायण की मूर्ति मध्य मन्दिर में स्थापित की गयी हो तो अग्निकोण के मन्दिर में अम्बिका (दुर्गा) देवी की, नैऋत्य कोण में सूर्य की, वायव्यकोण में वायु की तथा ईशानकोण में ईश (शंकर जी) की स्थापना करनी चाहिए ।। ३ ।। अथवा रुद्र रूप शंकरजी की स्थापना कराए । अथवा नव मन्दिरों वाले मन्दिर के मध्य मन्दिर में भगवान् वासुदेव की स्थापना करके पूर्व आदि दिशाओं के मन्दिरों में श्रीराम तथा श्री परशुराम आदि की स्थापना करनी चाहिए ।। ४ ।। तथा इन्द्र आदि लोकपालों की स्थापना करनी चाहिए ।। अथवा नव मन्दिरों में पाञ्च आयतन वाले मन्दिर को मध्य में करें । उसके मध्य में भगवान् वासुदेव की स्थापना करनी चाहिए ।। ५ ।। पूर्व दिशा के मन्दिर में लक्ष्मी तथा वैश्रवण (कुबेर) की और दक्षिण दिशा में मातृगणों की स्थापना करनी चाहिए । स्कन्द तथा गणेश की स्थापना ईशानकोण में सूर्य आदि (नवग्रह) की स्थापना पश्चिम में करनी चाहिए ।। ६ ।। उत्तर दिशा में मत्स्य आदि दश अवतारों की, तथा अग्निकोण में चण्डिका देवी की, नैर्ऋत्य कोण में अम्बिका की स्थापना करके वायव्यकोण में सरस्वती देवी की स्थापना करनी चाहिए ।। ७ ।। लक्ष्मी देवी की स्थापना ईशानकोण में बीच में वासुदेव भगवान् की तथा नारायण भगवान् की अथवा त्रयोदश मन्दिर के बीच में विश्वरूप भगवान् की स्थापना करनी चाहिए ।। ८ ।। अथवा पूर्व आदि दिशाओं में केशव आदि द्वादश व्यूहों की स्थापना करके बीच के मन्दिर में स्वयम् भगवान् श्रीहरि की स्थापना करनी चाहिए । मिट्टी की, लकड़ी की, लोहे की, रत्न की, पत्थर की, चन्दन की तथा पुष्प की ये सात प्रकार की प्रतिमाएँ होती हैं । पुष्प, चन्दन तथा मिट्टी की मूर्ति बनाकर उनकी तत्काल पूजा करने से, सभी प्रकार के मनोरथों की पूर्ति होती है । अब मैं पत्थर की मूर्ति का वर्णन कर रहा हूँ कि मूर्ति के लिए किस शिला को लेना चाहिए ।। ९-११ ।। पर्वतों के अभाव में पृथ्वी पर पड़ी हुई शिला को मूर्ति के लिए लेना चाहिए, ब्राह्मणों के लिए उजली, क्षत्रियों के लिए लाल, वैश्यों के लिए पीली तथा शूद्रों के लिए काली शिला होनी चाहिए ।। १२ ।। यदि तत् तत् वर्णों के लिए अपेक्षित वर्ण की शिला न मिले तो उन मूर्तियों में आवश्यक वर्ण का सम्पादन करने वाले नरसिंह मन्त्र से होम करना चाहिए ।। १३ ।। शिला पर उजली रेखा होने पर वह उत्तम शिला होती है । काली रेखा होने पर वह नरसिंह मन्त्र से होम करने पर उत्तम होती है । जिस शिला से कांस्य के बने घण्टे जैसे आवाज निकले तथा काटने पर चिनगारी निकले तो उस शिला को पुल्लिंग समझना चाहिए । जिस शिला में उपर्युक्त लक्षण कम हों उसे स्त्रीलिङ्ग शिला समझना चाहिए और जिस शिला में कोई भी रूप न हो उसे नपुंसक शिला समझना चाहिए । जिस शिला पर मण्डल बना हुआ दिखायी दे उस शिला को गर्भवती समझकर त्याग देना चाहिए ।। १३-१५ ।। मूर्ति के लिए धन देकर बन याग करना चाहिए ।वहाँ पर कुण्ड को लिपकर मण्डप में श्रीहरि का पूजन

अस्त्रेण प्रोक्षयेच्छिलाम् ॥ १७ ॥ रक्षां कृत्वा नृसिंहेन मूलमन्त्रेण पूजयेत् । हुत्वा पूर्णाहुतिं दद्यात्ततो भूतबलिं गुरुः ॥ १८ ॥ अत्र ये संस्थिताः सत्त्वा यातुधानाश्च गुह्यकाः । सिद्धादयो वा ये चान्ये तान्सम्पूज्य क्षमापयेत् ॥ १९ ॥ प्रतिबिम्बार्थमस्माकं यात्रैषा केशवाज्ञया । विष्ण्वर्थं यद् भवेत्कार्यं युष्माकमपि तद्भवेत् ॥ २० ॥ अनेन बलिदानेन प्रीता भवत सर्वथा । क्षेमेण गच्छतान्यत्र मुक्त्वा स्थानमिदं त्वरात् ॥ २१ ॥ एवं प्रबोधिता मुक्त्वा यन्ति तृप्ता यथासुखम् । शिल्पिभिश्च चरुं प्राश्य स्वप्नमन्त्रं जपेन्निशि ॥ २२ ॥ ॐ नमः सकललोकाय विष्णवे प्रभविष्णवे। विश्वाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥ २३ ॥ आचक्ष्व देव देवेश प्रसुप्तोऽस्मि तवान्तिकम् । स्वप्ने सर्वाणि कार्याणि हृदिस्थानि तु यानि मे॥२४॥ ॐ ॐ हुं फट् विष्णवे स्वाहा । शुभे स्वप्ने शुभं सर्वं ह्यशुभे सिंहहोमतः ॥ २५ ॥ प्रातरर्घ्यं शिलायां तु दत्त्वास्त्रेणास्त्रकं यजेत् । कुद्दालटङ्कशस्त्राद्यं मध्वाज्याक्तमुखं चरेत् ॥ २६ ॥ अत्मानं चिन्तयेद्विष्णुं शिल्पिनं विश्वकर्मकम् । शस्त्रं विष्ण्वात्मकं दद्यान्मुखपृष्ठादि दर्शयेत्॥२७॥ जितेन्द्रियष्टङ्कहस्तःशिल्पी तु चतुरस्त्रकाम् । शिलां कृत्वा पिण्डिकार्थं किञ्चिन्न्यूनां तु कल्पयेत् ॥ २८ ॥ रथे स्थाप्य समानीय सवस्त्रां कारुवेश्मनि। पूजयित्वाथ घटयेत् प्रतिमां स तु कर्मकृत् ॥ २९ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रासाददेवतास्थापनभूतशान्तिशिलालक्षणप्रतिमानिर्माणादिनिरूपणं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

करना चाहिए ।। १६ ।। पुनः बलि देकर उसके पश्चात् कर्मोपयोगी शस्त्र टङ्क आदि का पूजन करना चाहिए । पुनः होम करके चावल के जल से अस्त्र मन्त्र (**ओम् अस्त्राय फट्**) से शिला का प्रोक्षण करना चाहिए ।। १७ ।। नृसिंह मन्त्र से रक्षा करके मूल मन्त्र से पूजन करना चाहिए । पुनः हवन करके पूर्णाहुति करके आचार्य भूतबलि देकर वहाँ पर जो कोई भी राक्षस, गुह्यक, सिद्ध अथवा दूसरे कोई जीव हों, उन सबों की अच्छी तरह से पूजा करके इस प्रकार की प्रार्थना करें ।। १८-१९ ।। भगवान् केशव की आज्ञा से हम लोगों की यह मूर्ति के लिए यात्रा हुई है । भगवान् विष्णु का जो कार्य है वही आपका कार्य है ।। २० ।। इस बलिदान से आप लोग पूर्ण रूप से प्रसन्न होएँ । कृपा करके यहाँ से आप लोग शीघ्र अन्यत्र चले जायँ ।। २१ ।। इस प्रकार से निवेदन किए जाने पर तृप्त होकर सभी जीव सुखपूर्वक चले जाते हैं । शिल्पियों को भी रात में हविष्य खाकर इस मन्त्र को जपना चाहिए ।। २२ ।। **(१) ओम् नमः सकललोकाय विष्णवे प्रभविष्णवे। विश्वाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ।** अर्थात् जो भगवान् सम्पूर्ण प्राणियों के निवास स्थान हैं, सर्वव्यापक हैं, सबको उत्पन्न करने वाले हैं, विश्वस्वरूप, विश्वशरीरक तथा स्वप्न के अधिपति हैं, उन श्रीभगवान् को नमस्कार है । **(२) आचक्ष्व देवदेवेश प्रसुप्तोऽस्मि तवान्तिकम्। स्वप्ने सर्वाणि कार्याणि हृदिस्थानि तु यानि मे ।।** अर्थात् हे देवताओं के भी सर्वश्रेष्ठ देव मैं आपके सन्निकट में सोया हूँ । मेरे हृदय में जो कार्य है उन सबों के विषय में आप बतलाइये ।। २४ ।। **ओम् हूं फट् विष्णवे स्वाहा'** इस मन्त्र को जपकर सो जाने पर यदि शुभ स्वप्न हो तो शुभ होता है, यदि अशुभ स्वप्न दिखायी दे तो वह भी नृसिंह मन्त्र से होम करने पर शुभ हो जाता है ।। २५ ।। प्रातःकाल में शिला पर अर्घ्य देकर अस्त्र मन्त्र से अस्त्रों की पूजा करके, कुदाल, कुल्हाड़ी तथा शस्त्र आदि के मुख पर मधु तथा घी लगाए ।। २६ ।। मूर्ति बनवाने वाले को अपने मैं विष्णुस्वरूप की तथा कारीगर में विश्वकर्मास्वरूप की भावना करके उसे विष्णवात्मक शस्त्रों को प्रदान कर उस शस्त्र के मुख तथा पृष्ठ आदि को दिखाना चाहिए ।। २७ ।। जितेन्द्रिय शिल्पी को चाहिए कि वह शिला को चौकोर बनकर उसको पिण्ड के लिए कुछ छोटी बनाए ।। २८ ।। पुनः उस शिला को वस्त्र में लपेटकर अपनी कार्यशाला में लाकर उसकी पूजा करके उसकी मूर्ति बनाए ।। २९ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का प्रासाद, देवता स्थापन, भूतशान्ति, शिलालक्षण तथा मूर्ति निर्माण आदि का वर्णन नामक तैंतालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥४३॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

वासुदेवादिप्रतिमानां लक्षणानि

हयग्रीव उवाच– वासुदेवादिप्रतिमालक्षणं प्रवदामि ते । प्रासादस्योत्तरे पूर्वमुखीं वा चोत्तराननाम् ॥ १ ॥ संस्थाप्य पूज्य च बलिं दत्त्वाथो मध्यसूत्रकम् । शिलां शिल्पी तु नवधा विभज्य नवमेंऽशके ॥ २ ॥ सूर्यभक्ते शिलायां तु भागं स्वाङ्गुलमुच्यते । द्व्यङ्गुलं गोलकं नाम्ना कलानेत्रं तदुच्यते ॥ ३ ॥ भागमेकं त्रिधा कृत्वा पार्ष्णिभागं प्रकल्पयेत् । भागमेकं तथा जानौ ग्रीवायां भागमेव च ॥ ४ ॥ मुकुटं तालमात्रं स्यात् तालमात्रं तथा मुखम् । तालेनैकेन कण्ठं तु तालेन हृदयं तथा ॥ ५ ॥ नाभिमद्रान्तरन्तालं द्वितालाचूरुकौ तथा तालद्वयेन जङ्घा स्यात् सूत्राणि शृणु साम्प्रतम्॥६॥ कार्यं सूत्रद्वयं पादे जङ्घामध्ये तथापरम् । जनौ सूत्रद्वयं कार्यमूरूमध्ये तथापरम् ॥ ७ ॥ मेढ्रे तथापरं कार्यं कट्यां सूत्रं तथापरम् । मेखलाबन्धसिद्ध्यर्थं नाभ्यां चैवापरं तथा ॥ ८॥ हृदये च तथा कार्यं कण्ठे सूत्रद्वयं तथा । ललाटे चापरं कार्यम् मस्तके च तथा परम् ॥ ९ ॥ मुकुटोपरि कर्तव्यं सूत्रमेकं विचक्षणैः । सूत्राण्यूर्ध्वं प्रदेयानि सप्तैव कमलोद्भव ॥ १० ॥ कक्षात्रिकान्तरेणैव षट् सूत्राणि प्रदापयेत् । मध्यसूत्रं तु सन्त्यज्य सूत्राण्येव निवेदयेत् ॥ ११ ॥ ललाटं नासिका वक्त्रं कर्तव्यं चतुरङ्गुलम् । ग्रीवाकर्णौ तु कर्तव्यावायामाच्चतुरङ्गुलौ ॥ १२ ॥ द्व्यङ्गुले हनुके कार्ये विस्ताराच्चिबुकं तथा । अष्टाङ्गुलं ललाटं तु विस्तारेण प्रकीर्तितम् ॥ १३ ॥ परेण द्व्यङ्गुलौ शङ्खौ कर्तव्यावलकान्वितौ । चतुरङ्गुलमाख्यातमन्तरं कर्णनेत्रयोः ॥ १४ ॥ द्व्यङ्गुलौ पृथुकौ कर्णौ कर्णापाङ्गार्धपञ्चमे । भ्रूसमेन तु सूत्रेण कर्णस्त्रोतः प्रकीर्तितम् ॥ १५ ॥ विद्धं षडङ्गुलं कर्णमविद्धं

श्री ह्यग्रीव भगवान् ने कहा– अब मैं वासुदेव अदि की प्रतिमा (मूर्ति) का स्वरूप बतला रहा हूँ । शिल्पी को चाहिए कि वह मन्दिर के उत्तर दिशा में पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख शिला को संस्थापित करके, बलि देने के बाद उसके बीच मे सूत्र लगाकर उसे नवभागों में विभक्त करे । पुनः उसके नवें भाग को बारह भाग में विभक्त करने पर जो बारहवाँ भाग होता है वह स्वाङ्गुल कहलाता है । यदि गोलक दो अंगुल का हो तो उसे कला नेत्र भी कहते हैं ।। १-३ ।। एक भाग को तीन भागों में विभक्त करके उसके पार्ष्णिभाग की कल्पना करनी चाहिए । एक भाग में जानु (घुटना) तथा एक भाग में ग्रीवा करनी चाहिए ।। ४ ।। ताल के बराबर मुकुट तथा उतना ही बड़ा मुख होना चाहिए, एक ताल के बराबर भाग में कण्ठ और उतने ही बड़े भाग में हृदय करना चाहिए ।।५।। नाभि तथा मेढ़ (लिङ्ग) के बीच का अन्तराल एक ताल (बित्त) होना चाहिए । दोनों ऊरुओं को दो बित्ते में होना चाहिए । दो ही ताल में जंघा के बीच में एक सूत लगाए । इसी तरह घुटने में दो सूत लगाए और दोनों ऊरुओं के बीच में एक सूत मेढ़ (लिङ्ग) पर एक सूत लगाए तथा कटि (कमर) पर भी एक सूत लगाए । मेखलाबन्ध (कटिबंध सूत्र बाँधने) के लिए एक सूत तथा नाभि पर भी एक सूत लगाना चाहिए ।। ७-८ ।। इसी तरह हृदय पर एक सूत तथा कण्ठ पर दो सूत लगाना चाहिए । ललाट पर एक सूत्र तथा मस्तक पर दूसरा सूत लगाना चाहिए ।। ८ ।। जानकारों के द्वारा मुकुट के ऊपर एक सूत लगाना चाहिए । हे ब्रह्मन् ! ऊपर के भाग में सात सूत लगाना चाहिए । पुनः बीच के सूत को त्यागकर केवल सूतों को ही निवेदित करना चाहिए ।। ११ ।। ललाट, नासिका तथा मुख का विस्तार चार अङ्गुल में करना चाहिए ।। १२ ।। दो अङ्गुल की ठोढ़ी बनानी चाहिए तथा उतना ही विस्तृत चिबुक होना चाहिए । ललाट का विस्तार आठ अंगुल बतलाया गया है ।। १३ ।। उसके पश्चात् बाल से युक्त दो-दो अंगुल दोनों शंख बनाना चाहिए । कान और नेत्र का अन्तराल चार अंगुल का बतलाया गया है ।। १४ ।। दो-दो अंगुल के मोटे कानों को होना चाहिए, कान तथा भौहों को साढ़े पाँच अंगुल में होना चाहिए । भौहों के ही समान सूत के द्वारा कान का छिद्र बनाना चाहिए ।। १५ ।। छेदे हुए कान को छह अंगुल का तथा विना छेदे हुए कान को चार अंगुल का हेना चाहिए । अथवा विना छेदे हुए तथा छेदे हुए कान का चिबुक (ठोढ़ी) के समान छह अंगुल का होना चाहिए ।। १६ ।। इस तरह मूर्ति के गन्धपात्र (नासिका के छिद्र) आवर्त

चतुरङ्गुलम्। चिबुकेन समं विद्धमविद्धं वा षडङ्गुलम् ॥ १६ ॥ गन्धपात्रं तथावर्तं शष्कुलीं कल्पयेत्तथा । अङ्गुलेनाधरः कार्यस्तस्यार्धेनोत्तराधरः॥१७॥ अर्धाङ्गुलं तथा नेत्रं वक्त्रं तु चतुरङ्गुलम् । आयामेन तु वैपुल्यात्सार्धमङ्गुलमुच्यते ॥ १८ ॥ अव्यात्तमेवं वक्त्रं व्यात्तं द्वयङ्गुलमिष्यते। नासावंशसमुच्छ्रायं मूले त्वेकाङ्गुलं मतम् ॥ १९॥ उच्छ्रायाद् द्वयङ्गुलं चाग्रे करवारोपमा स्मृता । अन्तरं चक्षुषोः कार्यं चतुरङ्गुलमानतः ॥ २०॥ द्वयङ्गुलं चाक्षिकोशं च द्वयङ्गुलं चान्तरं तयोः । तारा नेत्रत्रिभागेण दृक्तारा पञ्चमांशिका ॥ २१॥ त्र्यङ्गुलं (लो) नेत्रस्तिारं (रो) द्रोणी चार्धाङ्गुला मता । तत्प्रमाणा भ्रुवोर्लेखा भ्रुवौ चैव समे मते ॥ २२॥ भ्रूमध्यं द्वयङ्गुलं कार्यं भ्रूदैर्घ्यं चतुरङ्गुलम् । षड्विंशदङ्गुलायामं मस्तकस्य तु वेष्टनम् ॥२३॥ मूर्तीनां केशवादीनां द्वात्रिंशद्वेष्टनं भवेत् । पञ्चनेत्रा त्वधोग्रीवा विस्ताराद्वेष्टनं पुनः ॥ २४॥ त्रिगुणं तु भवेदूर्ध्वं विस्तृताष्टाङ्गुलं पुनः । ग्रीवात्रिगुणमायामं ग्रीवावक्षोन्तरं भवेत् ॥ २५॥ स्कन्धावष्टाङ्गुलौ कार्यौ त्रिकलावंशकौ शुभौ । सप्तनेत्रौ स्मृतौ बाहू प्रबाहू षेडशाङ्गुलौ॥ २६॥ त्रिकलौ विस्तृतौ बाहू प्रबाहू चापि तत्समौ । बाहुदण्डोर्ध्वतो ज्ञेयः परिणाहः कला नव ॥ २७॥ सप्तदशाङ्गुलो मध्ये कूर्परोऽर्धे च षोडश । कूर्परस्य भवेन्नाहस्त्रिगुणः कमलोद्भव ॥ २८॥ नाहः प्रबाहूमध्ये तु षोडशाङ्गुल उच्यते । अग्रहस्ते परीणाहो द्वादशाङ्गुल उच्यते॥ २९॥ विस्तारेण करतलं कीर्तितं तु षडङ्गुलम् । दैर्घ्यं सप्ताङ्गुलं कार्यं मध्या पञ्चाङ्गुला मता ॥ ३०॥ तर्जन्यनामिका चैव तस्मादर्धाङ्गुलं विना । कनिष्ठाङ्गुष्ठकः कार्यौ चतुरङ्गुलसम्मितौ॥३१॥ द्विपर्वोऽङ्गुष्ठकः कार्यः शेषाङ्गुल्यस्त्रिपर्विकाः । सर्वासां पर्वणोऽर्धेन नखमानं विधीयते ॥ ३२॥ वक्षसो यत्प्रमाणं तु जठरं तत्प्रमणतः । अङ्गुलैका भवेन्नाभिर्वेधेन च प्रमाणतः ॥ ३३॥ ततो मेढ्रान्तरं कार्यं तालमात्रं प्रमाणतः । नाभिमध्ये परीणाहो द्विचत्वारिंशदङ्गुलैः ॥ ३४॥ अन्तरं स्तनयोः

तथा शष्कुली (कानों के छिद्र की) भी रचना करनी चाहिए । एक अंगुल में नीचे के ओष्ठ को तथा आधे अंगुल में ऊपर के ओठ को बनाना चाहिए ।। १७ ।। आधे अंगुल का नेत्र तथा मुँह चार अंगुल का होना चाहिएआयाम की अपेक्षा मुख की चौड़ाई डेढ़ अंगुल अधिक होनी चाहिए ।। १८ ।। नासिका की जड़ में ऊँचाई एक अंगुल होनी चाहिए करवीर कुसुम के समान नासिका की अग्रभाग की ऊँचाई दो अंगुल की होनी चाहिए ।। १९ ।। दोनों आँखों को चार अंगुल में होना चाहिए ।। २१ ।। दोनों भौहें एक बराबर और साढ़े तीन अंगुल की होनी चाहिए । भौहें के बीच में दो अंगुल का और भौहों की लम्बाई चार अंगुल की होनी चाहिए ।। २२ ।। श्रीभगवान् श्री केशव आदि मूर्तियों के मस्तक का पूरा विस्तार छब्बीस अथवा बत्तीस अंगुल का होना चाहिए ।। २३ ।। उसके नीचे ग्रीवा (गला) पाञ्चनेत्र अर्थात् दस अंगुल की होनी चाहिए और गले के विस्तार से तीन गुना अर्थात् तीस अंगुल उसका वेष्टन (घेरा) होना चाहिए ग्रीवा की लम्बाई आठ अंगुल की होनी चाहिए।।२४।। ग्रीवा तथा वक्षस्थल का अन्तर ग्रीवा के तीन गुना अर्थात् तीस अंगुल होना चाहिए । दोनों कन्धों को आठ-आठ अंगुल का बनाना चाहिए और दोनों अंसों को तीन-तीन अंगुल का बनाना चाहिए । दोनों भुजाओं को (सात नेत्र) अर्थात् चौदह-चौदह अंगुल का होना चाहिए और यदि प्रवाहु (घुटनों) तक लटकने वाली भुजाएँ हों तो उन्हें सोलह-सोलह अंगुल का होना चाहिए । दोनों बाहुओं तथा प्रबाहुओं को तीन-तीन कला का होना चाहिए ।। २५-२६ ।। ऊपर से भुजदण्डों की मोटाई नव कला होनी चाहिए । मध्य में उसको सत्रह अंगुल होना चाहिए और कूर्पर (कोहुनी) के बीच में सोलह अंगुल ।। २७ ।। हे ब्रह्मन् ! कूर्पर कोहनी का घेरा त्रिगुणी होना चाहिए । प्रलम्बबाहू के मध्य में नाह (घेरा) तो सोलह अंगुल का होता है ।। २८ ।। हाथ के अगले भाग की मोटाई हथेली का विस्तार (छह अंगुल) होता है ।। २९ ।। हथेली की लम्बाई सात अंगुल की होती है । मध्यमा अंगुली की लम्बाई पाञ्च अंगुल की, उससे आधा अंगुल छोटी तर्जनी तथा अनामिका अंगुली को होना चाहिए ।। ३० ।। कनिष्ठा तथा अंगुष्ठ को चार-चार अंगुल का बना होना चाहिए । अंगुष्ठ को दो पर्वों वाला और शेष अँगुलियों को तीन-तीन पर्वों वाली बनाना चाहिए ।। ३१ ।। जिन अंगुलियों का पर्व जितना बड़ा हो उसके ठीक आधे का नख उस अंगुलि का बनाना चाहिए । जितनी बड़ी छाती हो उतना ही बड़ा पेट बनाना चाहिए ।। ३२ ।। नाभि को एक अंगुल गहरी होनी चाहिए।

कार्यं तालमात्रं प्रमाणतः । चूचुकौ यवमानौ तु मण्डलं द्विपदं भवेत् ॥ ३५॥ चतुष्षष्ट्यङ्गुलं कार्यं वेष्टनं वक्षसः स्फुटम् । चतुर्मुखं च तदधो वेष्टनं परिकीर्तितम् ॥ ३६॥ परिणाहस्तथा कट्याश्चतुष्पञ्चदशाङ्गुलैः। विस्तारश्चोरुमूले तु प्रोच्यते द्वादशाङ्गुलः॥ ३७॥ तस्मादभ्यधिकं मध्ये ततो निम्नतरं क्रमात् । विस्तृताष्टाङ्गुलं जानु त्रिगुणा परिणाहतः ॥ ३८॥ जंघामध्ये तु विस्तारः सप्ताङ्गुल उदाहृतः । त्रिगुणाः परिधिश्चास्य जङ्घाग्रं पञ्च विस्तरात् ॥ ३९॥ त्रिगुणा परिधिश्चास्य पादौ तालप्रमाणकौ । आयामादुत्थितौ पादौ चतुरङ्गुलमेव च ॥ ४०॥ गुल्फात्पूर्वं तु कर्तव्यं प्रमाणाच्चतुरङ्गुलम्। त्रिकलं विस्तृतौ पादौ त्र्यङ्गुलो गुह्यकः स्मृतः ॥ ४१॥ पञ्चाङ्गुलस्तु नाहोऽस्य दीर्घा तद्वत्प्रदेशिनी । अष्टमाष्टांशमध्योनाः शेषाङ्गुल्यः क्रमेण तु ॥४२॥ सपादाङ्गुलमुत्सेधमङ्गुष्ठस्य प्रकीर्तितम् । तदेव द्विगुणं कार्यमङ्गुष्ठस्य नखं तथा ॥ ४३॥ अर्धाङ्गुलं तथान्यासां क्रमान्न्यूनं तु कारयेत् । त्र्यङ्गुलौ वृषणौ कार्यौ मेढ्रं तु चतुरङ्गुलम्॥ ४४॥ परिणाहोऽत्र कोषाग्रं कर्तव्यं चतुरङ्गुलम् । षडङ्गुलपरिणाहौ वृषणौः परिकीर्तितौ ॥ ४५॥ प्रतिमा भूषणाढ्या स्यादेतदुद्देशलक्षणम् । अनयैव दिशा कार्यं लोके दृष्ट्वा तु लक्षणम् ॥ ४५॥ दक्षिणे तु करे चक्रमधस्तात् पद्ममेव च । वामे शङ्खं गदाधस्ताद् वासुदेवस्य लक्षणात् ॥ ४७॥ श्रीपुष्टी चापि कर्तव्ये पद्मवीणाकरान्विते । ऊरुमात्रोच्छ्रितायामे मालाविद्याधरौ तथा ॥ ४८॥ प्रभामण्डलसंस्थौ तौ प्रभा हस्त्यादिभूषणा । पद्माभं पादपीठं तु प्रतिमास्वेवमाचरेत् ॥ ४९ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वासुदेवादिप्रतिमालक्षणकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

उसके एक हाथ नीचे मेढ्र (लिङ्ग) बनाना चाहिए ।। ३३ ।। नाभि के बीच की मोटाई बयालिस अंगुल होना चाहिए । दोनों स्तनों का अन्तर एक बित्ता होना चाहिए ।। ३४ ।। चुचुक (स्तन के अग्रभाग) को यव के बराबर होना चाहिए । स्तन का घेरा दो पद का होना चाहिए । वक्षस्थल का घेरा चौसठ अंगुल का होना चाहिए ।। ३५ ।। वक्षःस्थल के नीचे तथा चारों ओर के घेरे को वेष्टन कहा जाता है । कमर का घेरा साठ अंगुल चाहिए । उसका मध्यभाग उससे अधिक और निचला भाग क्रमशः कम होना चाहिए ।। ३७ ।। घुटने का विस्तार आठ अंगुल का और उसका घेरा चौबीस अंगुल का होना चाहिए । जंघा के मध्यभाग का विस्तार सात अंगुल होना चाहिए ।। ३८ ।। उसका घेरा उसके तीन गुना अर्थात् इक्कीस अंगुल का होना चाहिए । जंघा के अग्रभाग का विस्तार पाँच अंगुल और उसका घेरा पन्द्रह अंगुल होना चाहिए । दोनों पैरों को एक-एक बीतों का होना चाहिए ।। ३९ ।। अपने विस्तार से पैरों की ऊँचाई चार अंगुल होनी चाहिए । मुट्ठी से पहले का भाग भी चार अंगुल का ही बनाना चाहिए । गुप्ताङ्ग तीन अंगुल का होना चाहिए । उसकी घेरा पाँच अंगुल का होना चाहिए । उसी प्रकार से पैर के अंगूठे को बड़ा होना चाहिए । अंगूठे के ऊँचाई सवा अंगुल बतलायी गयी है । अन्य अंगुलियों के नख की अपेक्षा अंगूठे के नख को दुगुना करना चाहिए । अन्य अंगुलियों के नख को आधा अुगल का और उनको क्रमशः छोटी-छोटी होनी चाहिए।।४१-४३।। दोनों अण्डकोषों को तीन-तीन अंगुल का तथा शिश्न (लिङ्ग) को चार अंगुल का बनाना चाहिए । उसके ऊपर का भाग चार अंगुल का होना चाहिए ।। ४४ ।। दोनों अण्डकोषों का घेरा छह-छह अंगुल का होना चाहिए । प्रतिमा को भूषणों से भूषित होनी चाहिए । यह प्रतिमा का लक्षण बतलाया गया है ।। ४५ ।। इसी प्रकार से लोक में देखकर लक्षण बनाना चाहिए । भगवान् के ऊपर के दाहिने हाथ में चक्र और नीचे के दाहिने हाथ में पद्म, ऊपर के बाएँ हाथ में शंख और नीचे के बाएँ हाथ में गदा बनानी चाहिए । यही वासुदेव भगवान् की मूर्ति का लक्षण है। भगवान् के सन्निकट में हाथ में कमल लिए हुए लक्ष्मी जी की तथा वीणा लिए हुए पुष्टि देवी की मूर्ति बनानी चाहिए ।।४६-४७।। इन दोनों की ऊँचाई भगवान् के जंघे के बराबर होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रभामण्डल को हाथी आदि से अलंकृत होना चाहिए । भगवान् की चरण चौकी कमल के आकार की होनी चाहिए । इस प्रकार से भगवान् की प्रतिमा की अर्चना करनी चाहिए ।।४६-४९।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का वासुदेवादि प्रतिमा लक्षण वर्णन नामक चौवालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४४ ॥

अथ पञ्चत्वारिंशोऽध्यायः

पिण्डिकादिलक्षणम्

हयग्रीव उवाच– **पिण्डिकालक्षणं वक्ष्ये दैर्घ्येण प्रतिमासमा । उच्छ्रायः प्रतिमार्धं तु चतु;षष्टिपुटां च ताम् ॥ १ ॥ त्यक्त्वा पङक्तिद्वयं चाधस्तदूर्ध्वं यत्तु कोष्ठकम्। समन्तादुभयोः पार्श्वे अन्तस्थं परिमार्जयेत् ॥ २ ॥ ऊर्ध्वं पङ्क्तिद्वयं त्यक्त्वा अधस्ताद्यत्तु कोष्ठकम् । अन्तः सम्मार्जयेद्यत्नात्पार्श्वयोरुभयोः समम् ॥ ३ ॥ तयोर्मध्यगतौ तत्र चतुष्कौ मार्जयेत्ततः । चतुर्धा मार्जयित्वा तु ऊर्ध्वपङ्क्तिद्वयं बुधः । । ४ ॥ मेखला भागमात्रा स्यात् खातं तस्यार्धमानतः । भागं भागं परित्यज्य पार्श्वयोरुभयोः समम् ॥ ५ ॥ दत्त्वा चैकं पदं बाह्ये प्रमाणं कारयेद् बुधः । त्रिभागेण च भागस्याग्रे स्यात्तोयविनिर्गमः ॥ ६ ॥ नानाप्रकारभेदेन भद्रेयं पिण्डिका शुभा । अष्टताला तु कर्तव्या देवी लक्ष्मीस्तथा स्त्रियः ॥ ७ ॥ भ्रुवौ यवाधिके कार्ये यवहीना तु नासिका । गोलकेनाधिकं वक्त्रमूर्ध्वं तिर्यग्विवर्जितम् ॥ ८ ॥ आयते नयने कार्ये त्रिभागोनैर्यवैस्त्रिभिः । तदर्धेन तु वैपुल्यं नेत्रयोः परिकल्पयेत् ॥ ९ ॥ कर्णपाशोऽधिकः कार्यः सृक्कणी समसूत्रतः । नम्रं कलाविहीनं तु कुर्यादंशद्वयं तथा ॥ १० ॥ ग्रीवा सार्धकला कार्या तद्विस्तारोपशोभिता । नेत्रं विना तु विस्तारौ ऊरू जानू च पिण्डिका ॥ ११ ॥ अङ्घ्रिपृष्ठौ स्फिचौ कट्यां यथायोगं प्रकल्पयेत् । सप्तांशोनास्तथाङ्गुल्यो दीर्घं विष्कम्भनाहतम् ॥१२॥ नेत्रैकवर्जितायामा जंघोरू च तथा कटिः । मध्यपार्श्वं च तद्वृत्तं घनं पीनं कुचद्वयम्॥१३॥**

श्री हयग्रीव भगवान् ने कहा– अब मैं पिण्डिका का लक्षण बतला रहा हूँ । पिण्डिका की लम्बाई प्रतिमा के समान ही होनी चाहिए, उसकी ऊँचाई प्रतिमा की ऊँचाई की आधी होनी चाहिए। उसमें चौंसठ खाना बनाना चाहिए । दोनों तरफ से आठ-आठ लाइन खींचने से चौंसठ खाने बन जाते हैं । नीचे की दो पक्ति छोड़कर ऊपर जो खाना हो उसके दोनों बगल में बीच का भाग पूरी तरह से धो देना चाहिए । ऊपर की दो पंक्ति छोड़कर उसके नीचे जो कोष्ठ हो उसके बीच तथा दोनों बगल के भागों को पूरी तरह से धो देना चाहिए ।। १-३ ।। उसके पश्चात् बीच के जो चार कोष्ठक हैं उन सबों को भी धो दे । विद्वान् को चाहिए कि वह ऊपर की दो पंक्तियों को चार भागों में विभक्त करे ।। ४ ।। मेखला जितने भाग में हो उसके आधे भाग में खात (गड्ढा) होनी चाहिए। उसके दोनों भाग में बराबर भाग छोड़कर उसके एक भाग में नाली बनानी चाहिए । उस भाग के आगे से तीन भाग में पानी निकलने का रास्ता होना चाहिए ।। ५-६ ।। पिण्डिका के अनेक प्रकारों में यह भद्रा नामक पिण्डिका है । लक्ष्मी देवी तथा अन्य स्त्रियों की प्रतिमा आठ ताल की होनी चाहिए । दोनों भौहों को नासिका की अपेक्षा एक-एक यव बड़ी तथा नासिका को उससे एक यव छोटी बनाना चाहिए । मुख को नेत्रों को गोलक से बड़ा उससे ऊपर होना चाहिए तथा तिरछा नहीं होना चाहिए ।। ७-८ ।। आंखों को सवा दो यव विस्तृत बनाना चाहिए । उसके आधा आंखों का विस्तार बनाना चाहिए ।। ९ ।। मुख के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक जितनी लम्बाई हो उससे कुछ बड़ा ही सूत्र से नापकर कर्णपाश (कान का घेरा) बनाना चाहिए । उसी तरह (सूत्र से नापकर) एक काला छोटे तथा झुके हुए कन्धों को बनाना चाहिए । ग्रीवा को डेढ़ कला लम्बा तथा डेढ़ कला चौड़ा होना चाहिए । ग्रीवा की अपेक्षा एक नेत्र कम विस्तृत दोनों ऊरुओं को होना चाहिए । दोनों घुटनों, पिण्डिका, चरण, पीठ नितम्ब तथा कटि की यथा योग्य कल्पना करनी चाहिए ।। १०-११ ।। अंगुलियों को लम्बी तथा परस्पर में अनवरुद्ध होना चाहिए । बड़ी अंगुलि की अपेक्षा छोटी अंगुलियों को १/७ भाग छोटी होनी चाहिए । जंघा, ऊरु तथा कटि इन सबों को एक नेत्र कम विस्तृत होना चाहिए । मध्य भाग के बगल का भाग गोला होना चाहिए । दोनों स्तनों को आपस में सटे हुए और मोटा होना चाहिए । स्तनों को ताल फल के बराबर होना चाहिए । कटि को डेढ़ कला अधिक विस्तृत होना चाहिए । शेष सारे चिह्न पहले के समान हों । लक्ष्मी के दाहिने हाथ में

तालमात्रौ स्तनौ कार्यौ कटिः सार्धकलाधिका । लक्ष्म शेषं पुरावत्स्याद्दक्षिणे चाम्बुजं करे ॥ १४ ॥ वामे बिल्वं स्त्रियौ पार्श्वे शुभे चामरहस्तके ।
दीर्घघोणस्तु गरुडश्चक्राङ्काद्यानथो वदे ॥ १५ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पिण्डिकादीनां लक्षणवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

शालग्राममूर्तीनां लक्षणानि

हयग्रीव उवाच– **शालग्रामादिमूर्तीश्च वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदाः । वासुदेवः सितो द्वारि शिलालग्नद्विचक्रकः ॥ १ ॥ ज्ञेयः सङ्कर्षणो लग्नद्विचक्रो रक्त उत्तमः । सूक्ष्मचक्रो बहुच्छिद्रः प्रद्युम्नो नीलदीर्घकः ॥ २ ॥ पीतोऽनिरुद्धः पद्माङ्को वर्तुलो द्वित्रिरेखवान् । कृष्णो नारायणो नाभ्युन्नतः सुषिरदीर्घवान् ॥ ३ ॥ परमेष्ठी साब्जचक्रः पृष्ठछिद्रश्च बिन्दुमान् । स्थूलचक्रोऽसितो विष्णुर्मध्ये रेखा गदाकृतिः ॥ ४ ॥ नृसिंहः कपिलः स्थूलचक्रः स्यात्पञ्चबिन्दुकः । वराहः शक्तिलिङ्गः स्यात्तच्चक्रौ विषमौ स्मृतौ ॥ ५ ॥ इन्द्रनीलनिभः स्थूलस्त्रिरेखालाञ्छितः शुभः । कूर्मस्तथोन्नतः पृष्ठे वर्तुलावर्तकोऽसितः ॥ ६ ॥ हयग्रीवोऽङ्कुशाकाररेखो नीलः सबिन्दुकः । वैकुण्ठ एकचक्रोऽब्जी मणिभः पुच्छरेखकः ॥ ७ ॥ मत्स्यो दीर्घस्त्रिबिन्दुः स्यात्काचवर्णस्तु पूरितः । श्रीधरो वनमालाङ्कः पञ्चरेखस्तु वर्तुलः ॥ ८ ॥ वामनो वर्तुलश्चातिह्रस्वो नीलः सबिन्दुकः । श्यामस्त्रिविक्रमो दक्षरेखो**

कमल होना चाहिए ।। १२-१४ ।। उनके बाऐं हाथ में विल्व हो । उनके बगल में दो चमर धारिणियाँ हों । गरुड़ की नाक बड़ी हो । अब चक्रांकित (शालग्राम) आदि की मूर्तियों का वर्णन कर रहा हूँ ।। १५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का पिण्डिका का स्वरूप वर्णन नामक पैंतालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४५ ॥

श्री हयग्रीव भगवान् ने कहा– अब मैं भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली शालग्राम आदि की मूर्तियों का वर्णन कर रहा हूँ । जिस शालग्राम शिला के द्वार में दो चक्र हों तथा जिसका वर्ण श्वेत हो, वह वासुदेव शिला होती है ।। १ ।। रक्तवर्ण की तथा दो चक्रों वाली शालग्राम शिला संकर्षण कहलाती है तथा वह उत्तम शालग्राम शिला होती हैं । जिस शालग्राम शिला में चक्र छोटे हों, अनेक छिद्र हों नील वर्ण हो, तथा बड़ी मूर्ति हो वह प्रद्युम्न मूर्ति होती है । जिसमें दो तीन रेखाएँ हों, कमल का चिह्न हो और पीतवर्ण हो तथा जो गोल हो वह अनिरुद्ध मूर्ति होती है । वह शालग्रामशिला नारायण मूर्ति होती है जिसका वर्ण काला हो, नाभि उठी हो और छिद्र बड़े हों ।। २-३ ।। जिसमें कमल का चिह्न हो, पृष्ठ में छिद्र हो तथा विन्दुएँ हों वह परमेष्ठिमूर्ति होती है । वे शालग्राम विष्णुमूर्ति होते हैं जिनमें चक्र बड़ा हो,उजला वर्ण हो, मध्य में गदा की आकृति हो ।। ४ ।। शालग्राम की नृसिंह मूर्ति, कपिल वर्ण की, पाञ्च विन्दुओं वाली तथा स्थूलचक्र वाली होती है ।। ५ ।। शालग्राम की वाराह मूर्ति में शक्ति का चिह्न होता है तथा परस्पर में विषम दो चक्र होते हैं । इन्द्र नील के समान वर्ण वाली, स्थूल तीन रेखाओं से चिह्नित शुभ मूर्ति भगवान् कूर्म की होती है, उसका पीठ उठा हुआ श्यामवर्ण होता है तथा वह गोल आवर्त से युक्त होती है ।। ६ ।। हयग्रीव भगवान् की शालग्राम मूर्ति अंकुश के आकार वाली रेखाओं से युक्त, नीलवर्ण की, एवं विन्दुयुक्त होती है । शालग्राम की वैकुण्ठ मूर्ति एक चक्र वाली, कमल के चिह्न से चिह्नित मणि की आभा वाली तथा पुच्छ के समान रेखाओं वाली होती है ।। ७ ।। दीर्घ आकार वाली तीन विन्दुओं वाली तथा कांच के समान चमकने वाली एवं भरी-पूरी शालग्राम मूर्ति मत्स्य भगवान् की होती है । श्रीधर भगवान् की शालग्राम मूर्ति वनमाला से चिह्नित गोल तथा पाँच रेखाओं वाली होती है ।। ८ ।। वामन मूर्ति गोल, अत्यन्त

वामेन रिक्तकः॥ ९ ॥ अनन्तो नागभोगाङ्को नैकाभो नैकमूर्तिमान् । स्थूलो दामोदरो मध्यचक्रोऽधः सूक्ष्मबिन्दुकः ॥ १० ॥ सुदर्शनस्त्वेकचक्रो लक्ष्मीनारायणो द्वयात् । त्रिचक्रश्चाच्युतो देवस्त्रिचक्रो वा त्रिविक्रमः ॥ ११ ॥ जनार्दनश्चतुश्चक्रो वासुदेवश्च पञ्चभिः । षट्चक्रश्चैव प्रद्युम्नः सङ्कर्षणश्च सप्तभिः ॥ १२ ॥ पुरुषोत्तमोऽष्टचक्रो नवव्यूहो नवाङ्कितः । दशावतारो दशभिर्दशैकेनानिरुद्धकः । द्वादशात्मा द्वादशभिरत ऊर्ध्वमनन्तकः ॥ १३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शालग्रामादिमूर्तिलक्षणकथनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

शालग्रामादिपूजाकथनम्

श्रीभगवानुवाच– **शालग्रामादिचक्राङ्कपूजाः सिद्ध्यै वदामि ते । त्रिविधा स्याद्धरेः पूजा काम्याकाम्योभयात्मिका ॥ १ ॥ मीनादीनां तु पञ्चानां काम्यार्था वोभयात्मिका । वराहस्य नृसिंहस्य वामनस्य च मुक्तये ॥ २ ॥ चक्रादीनां त्रयाणां तु शालग्रामार्चनं शृणु । उत्तमा निष्कला पूजा कनिष्ठा सकलार्चना ॥ ३ ॥ मध्यमा मूर्तिपूजा स्याच्चक्राब्जे चतुरस्रके । प्रणवं हृदि विन्यस्य षडङ्गं करदेहयोः ॥ ४ ॥ कृतमुद्रात्रयश्चक्राद्बहिः पूर्वे गुरुं यजेत्। आप्ये गणं वायवे च धातारं नैर्ऋते यजेत् ॥ ५ ॥ विधातारं च कर्तारं हर्तारं दक्षसौम्ययोः । विष्वक्सेनं यजेदीश आग्नेये क्षेत्रपालकम् ॥ ६ ॥**

छोटी, नीलवर्ण की तथा विन्दुओं से युक्त होती है । श्यामवर्ण की दाहिने तरफ रेखा वाली तथा बायीं ओर विन्दुओं से युक्त त्रिविक्रम भगवान् की शालग्राम शिला होती है ।। ९ ।। अनन्त नाम की शालग्राम शिला नाग के फणों के चिह्न से चिह्नित, अनेक प्रकार की आभाओं वाली तथा अनेक मूर्तियों वाली होती है । दामोदर भगवान् की शालग्राम शिला छोटी विन्दुओं वाली बीच में चक्र वाली तथा स्थूल आकार वाली होती है ।। १० ।। एक चक्र वाली शालग्राम शिला सुदर्शन संज्ञक होती है । दो चक्रों वाली शालग्राम शिला लक्ष्मी नारायण संज्ञक होती है । तीन चक्रों वाली शालग्राम शिला अच्युत संज्ञक अथवा त्रिविक्रम संज्ञक होती है ।। ११ ।। चार चक्रों वाली शालग्राम शिला जनार्दन संज्ञक तथा पांच चक्रों वाली वासुदेव संज्ञक होती है । छह चक्रों वाली प्रद्युम्न संकर्षण संज्ञक होती है । आठ चक्रों वाली शालग्राम शिला पुरुषोत्तम संज्ञक तथा नव चक्रों वाली नवव्यूह संज्ञक होती है । दश चक्रों वाली शालग्राम शिला दशावतार संज्ञक तथा ग्यारह चक्रों वाली अनिरुद्ध संज्ञक होती है। द्वादश (बारह) चक्रों वाली शालग्राम शिला द्वादशात्मक संज्ञक तथा इससे अधिक चक्रों वाली अनन्त संज्ञक शिलाएँ होती हैं ।। १३ ।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का शालग्राम आदि मूर्तियों का लक्षण वर्णन नामक छियालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४६ ॥

श्रीभगवान् ने कहा– तुम्हें सिद्धि प्राप्त करने के लिए अब मैं चक्राङ्कित शालग्राम की पूजा आदि का वर्णन कर रहा हूँ । श्रीभगवान् की पूजा तीन प्रकार की होती है, सकाम, निष्काम तथा सकाम निष्काम ।। १ ।। मत्स्य आदि पाँच मूर्तियों की पूजा काम्या तथा काम्याकाम्या दोनों प्रकार की होती है । वराह नृसिंह तथा वामन भगवान् की पूजा मुक्ति प्राप्ति के लिए करनी चाहिए ।। २।। जो चक्र आदि तीन प्रकार के शालग्राम होते हैं, उनके पूजन के विषय में सुनो । उनकी निष्कल (निष्काम) पूजा उत्तम तथा सकल कला से युक्त पूजा कनिष्ठ होती है ।। ३ ।। चतुष्कोण चक्राब्ज मण्डल पर मूर्ति की पूजा मध्यम होती है । ओंकार का हृदय में न्यास करके षडङ्गन्यास तथा करन्यास करना चाहिए ।। ४ ।। पुनः तीन मुद्रा प्रदर्शित करके चक्राब्ज मण्डल से बाहर पूर्व दिशा में गुरु की पूजा करनी चाहिए । पश्चिम दिशा में यम की पूजा, वायव्य कोण में धाता की, नैर्ऋत्य कोण में विधाता की, दक्षिण दिशा में कर्ता की तथा उत्तर दिशा में हर्ता की पूजा करनी चाहिए ।

ऋगादिवेदान्प्रागादावाधारानन्तकं भुवम्। पीठं पद्मं चार्कचन्द्रब्रह्माख्यं मण्डलत्रयम् ॥ ७ ॥ आसनं द्वादशान्तेन तत्र स्थाप्य शिलां यजेत् । व्यस्तेन च समस्तेन स्वबीजेन यजेत्क्रमात् ॥ ८ ॥ पूर्वादावथ वेदाद्यैर्गायत्रीभ्यां जितादिना । प्रणवेनार्चयेत्पश्चान्मुद्रास्तिस्रः प्रदर्शयेत् ॥ ९ ॥ विष्वक्सेनस्य चक्रस्य क्षेत्रपालस्य दर्शयेत् । शालग्रामस्य प्रथमा पूजाऽथो निष्कलोच्यते ॥ १० ॥ पूर्ववत्षोडशारं च सपद्मं मण्डलं लिखेत् । शंखचक्रगदाखड्गैर्गुर्वाद्यं पूर्ववद्यजेत् ॥ ११ ॥ पूर्वे सौम्ये धनुर्बाणान् वेदाद्यै रासनं ददेत्। शिलां न्यसेद् द्वादशार्णैस्तृतीयं पूजनं शृणु ॥ १२ ॥ अष्टारमब्जं विलिखेद् गुर्वाद्यं पूर्ववद् यजेत् । अष्टार्णेनासनं दत्त्वा तेनैव च शिलां न्यसेत् ॥ १३ ॥ पूजयेद् दशधा तेन गायत्रीभ्यां जितं ततः ॥ १४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शालग्रामादिपूजाकथनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

चतुर्विंशतिमूर्तिस्तोत्रकथनम्

श्रीभगवानुवाच— **ओंरूपः केशवः पद्मशङ्खचक्रगदाधरः । नारायणः शंखपद्म गदाचक्री प्रदक्षिणम् ॥ १ ॥ ततो गदी माधवोऽरिशङ्खपद्मी नमामि तम् । चक्रकौमोदकीपद्मशङ्खी गोविन्द ऊर्जितः ॥ २ ॥ मोक्षदः श्रीगदी पद्मी शङ्खी विष्णुश्च चक्रधृक् । शङ्खचक्राब्जगदिनं मधुसूदनमानमे ॥ ३ ॥**

ईशानकोण में विष्वक्सेन की एवं अग्निकोण में क्षेत्रपाल की पूजा करनी चाहिए ।। ५-६ ।। पुनः पूर्व आदि दिशाओं में ऋग्वेद आदि की पूजा करके आधार शक्ति, अनन्त,पृथ्वी, योगपीठ, पद्म, सूर्य, चन्द्रमा, तथा ब्रह्मा नामक तीन मण्डलों की पूजा करनी चाहिए ।। ७ ।। द्वादशाक्षर मन्त्र से आसन देकर उसी पर शालग्राम शिला का पूजन करना चाहिए ।। सभी मूर्तियों का एक साथ अथवा अलग-अलग उनके मन्त्र से क्रमशः पूजन करना चाहिए ।। ८ ।। उसके पश्चात् पूर्व आदि दिशाओं में ओम् तथा दोनों गायत्रियों तथा जितादि से, तथा प्रणव से पूजन करे । सबके अन्त में तीन मुद्राओं को प्रदर्शित करना चाहिए ।। ९ ।। इन मुद्राओं को विष्वक्सेन, चक्र तथा क्षेत्रपाल को दिखाना चाहिए । यह शालग्राम की प्रथम पूजा है । अब निष्कल पूजा बतलायी जा रही है ।। १०।। पहले के ही समान सोलह अरों तथा कमल से युक्त चक्राब्ज मण्डल बनाना चाहिए । शंख, चक्र, गदा तथा खड्ग आदि की तथा गुरु आदि की पूजा पहले की ही भांति करनी चाहिए ।। ११ ।। पूर्वदिशा में धनुष् की तथा उत्तर दिशा में बाणों की पूजा करनी चाहिए। प्रणव से आसन प्रदान करनी चाहिए । द्वादशाक्षर से शिला को स्थापित करके । अब तीसरे प्रकार की पूजा सुनो ।। १२।। आठ आरों वाले चक्राब्ज बनाए। पहले के ही समान गुरु आदि की पूजा करे । अष्टाक्षर मन्त्र से आसन प्रदान करके उसी मन्त्र से शिला को उस पर स्थापित करे । उसी मन्त्र से दस बार पूजा कर फिर दोनों गायत्रियों से तथा जितन्ते मन्त्र से पूजन करें ।। १३-१४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का शालग्राम आदि का पूजन वर्णन नामक सैंतालिसवाँ अध्याय समपूर्ण हुआ ॥ ४७ ॥

श्री भगवान् ने कहा– ओंकार स्वरूप भगवान् केशव व कमल, शंख, चक्र और गदा धारण करते हैं । भगवान् नारायण शंख, पद्म, गदा एवं चक्र धारण करने वाले हैं, मैं उनकी प्रदक्षिणा करता हूँ ।। १ ।। उसके पश्चात् गदा,चक्र, शंख और पद्म धारण करने वाले भगवान् माधव को मैं नमस्कार करता हूँ । चक्र, कौमोदकी गदा, पद्म तथा शंख धारण करने वाले भगवान् गोविन्द तेजः सम्पन्न हैं ।। २ ।। मोक्ष देने वाले श्री विष्णु भगवान् गदा, पद्म, शंख, तथा चक्र धारण करने वाले हैं । शंख, चक्र,पद्म तथा गदा धारण करने वाले भगवान् मधुसूदन को मैं पुनः पुनः भक्तिपूर्वक

भक्त्या त्रिविक्रमः पद्मगदी चक्री च शङ्ख्यपि । शङ्खचक्रगदापद्मी वामनः पातु मां सदा ॥ ४ ॥ गतिदः श्रीधरः पद्मी चक्रशार्ङ्गी च शंख्यपि । हृषीकेशो गदी चक्री पद्मी शङ्खी च पातु नः ॥ ५ ॥ वरदः पद्मनाभस्तु शंखाब्जादिगदाधरः। दामोदरः पद्म शंख गदाचक्री नमामि तम् ॥ ६ ॥ तेने गदी शङ्खचक्री वासुदेवोऽब्जभृज्जगत् । सङ्कर्षणो गदी शङ्खी पद्मी चक्री च पातु वः ॥ ७ ॥ गदी चक्री शङ्खगदी प्रद्युम्नः पद्मभृत्प्रभुः। अनिरुद्धश्चक्रगदी शङ्खी पद्मी च पातु नः ॥ ८ ॥ सुरेशोऽर्यब्जशङ्खाढ्यः श्रीगदी पुरुषोत्तमः । अधोक्षजः पद्मगदी शङ्खी पद्मी च पातु नः ॥ ९ ॥ देवो नृसिंहचक्राब्जगदा शंखी नमामि तम् । अच्युतः श्रीगदी पद्मी चक्री शङ्खी च पातु वः ॥ १० ॥ बालरूपी शङ्खगदी उपेन्द्रश्चक्रपद्म्यपि । जनार्दनः पद्मचक्री शंखधारी गदाधरः ॥ ११ ॥ शङ्खी पद्मी च चक्री च हरिः कौमोदकीधरः । कृष्णः शङ्खी गदी पद्मी चक्री मे भुक्तिमुक्तिदः ॥१२॥ आदिमूर्तिर्वासुदेवस्तस्मात् सङ्कर्षणोऽभवत् । सङ्कर्षणाच्च प्रद्युम्नः प्रद्युम्नादनिरुद्धकः ॥ १३ ॥ केशवादिप्रभेदेन एकैकः स्यात्त्रिधा क्रमात् । द्वादशाक्षरकं स्तोत्रं चतुर्विंशतिमूर्तिमत् ॥ १४॥ यः पठेच्छृणुयाद्वापि निर्मलः सर्वमाप्नुयात् ॥ १५ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये चतुर्विंशतिमूर्तिस्तोत्रं नाम अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

प्रणाम करता हूँ । पद्म, गदा चक्र तथा शंख धारण करने वाले भगवान् त्रिविक्रम और शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करने वाले श्रीवामन भगवान् मेरी रक्षा करें ।। ३-४ ।। पद्म, चक्र, शार्ङ्ग, धनुष् तथा शंख धारण करने वाले भगवान् श्रीधर गति प्रदान करने वाले हैं । गदा, चक्र, पद्म तथा शंख धारण करने वाले भगवान् हृषीकेश हम सबों की रक्षा करें ।। ५ ।। शंख, पद्म, चक्र, तथा गदा धारण करने वाले वराह भगवान् पद्मनाभ हैं । भगवान् दामोदर, पद्म, शंख, गदा एवं चक्र धारण करने वाले हैं, मैं उनको नमस्कार करता हूँ ।। ६ ।। गदा, शंख, चक्र एवं कमल धारण करने वाले भगवान्, वासुदेव ने जगत् की रचना की, गदा, शंख, पद्म तथा चक्र धारण करने वाले भगवान् संकर्षण आप सबों की रक्षा करें ।। ७ ।। गदा, चक्र, शंख, गदा तथा कमल धारण करने वाले भगवान् प्रद्युम्न मेरे स्वामी हैं, चक्र, गदा, शंख तथा पद्म धारण करने वाले भगवान् अनिरुद्ध, हम सबों की रक्षा करें ।। ८ ।। देवताओं के स्वामी, चक्र, पद्म, शंख तथा गदा से सम्पन्न श्री पुरुषोत्तम भगवान् हैं, पद्म, गदा, शंख तथा चक्र धारण करने वाले भगवान् अधोक्षज आप सबों की रक्षा करें ।। ९ ।। चक्र, कमल, गदा तथा शंख धारण करने वाले भगवान् नृसिंह को मैं नमस्कार करता हूँ । गदा, पद्म,चक्र तथा शंख धारण करने वाले श्री अच्युत भगवान् आप सबों की रक्षा करें ।। १० ।। बालस्वरूप भगवान् उपेन्द्र शंख,गदा, चक्र तथा पद्म धारण करने वाले हैं । भगवान् जनार्दन पद्म, चक्र, शंख तथा गदा धारण करने वाले हैं ।। ११ ।। भगवान् श्रीहरि शंख, पद्म, चक्र तथा कौमोदकी धारण करने वाले हैं । भगवान् श्रीकृष्ण शंख, गदा, पद्म, तथा चक्र धारण करने वाले हैं । वे मुझे भोग तथा मोक्ष प्रदान करें ।। १२ ।। भगवान् वासुदेव आदिमूर्ति हैं, उनके पश्चात् भगवान् संकर्षण हुए । संकर्षण से प्रद्युम्न तथा प्रद्युम्न से अनिरुद्ध हुए ।। १३ ।। इनमें से भगवान् की प्रत्येक मूर्ति केशव आदि तीन-तीन रूपों में अभिव्यक्त हुई ।। १४ ।। श्रीभगवान् की चौबीस मूर्तियों से संबद्ध इस द्वादश (बारह) अक्षर (श्लोक) वाले स्तोत्र को जो पढ़ता अथवा सुनता है, वह निर्मल होकर अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त कर लेता है ।। १५ ।।

इस तरह से आदि महापुराण अग्निपुराण का चतुर्विंशति मूर्ति स्तोत्र वर्णन नामक अड़तालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४८ ॥

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मत्स्यादिदशावतारप्रतिमालक्षणवर्णनम्

श्रीभगवानुवाच– **दशावतारं मत्स्यादिलक्षणं प्रवदामि ते । मत्स्याकारस्तु मत्स्यः स्यात्कूर्मः कूर्माकृतिर्भवेत् ॥ १ ॥ नराङ्गो वाथ कर्तव्यो भूवराहो गदादिभृत् । दक्षिणे वामके शङ्खं लक्ष्मीर्वा पद्ममेव वा ॥ २ ॥ श्रीर्वामकूर्परस्था तु क्ष्मानन्तौ चरणानुगौ । वराहस्थापनाद्राज्यं भवाब्धितरणं भवेत्॥३॥ नरसिंहो विवृतास्यो वामोरुधृतदानवः । तद्वक्षो दारयन्माली स्फुरच्चक्रगदाधरः ॥ ४ ॥ छत्री दण्डी वामनः स्यादथवा स्याच्चतुर्भुजः। रामश्चेपुहस्तः स्यात् खड्गी परशुनान्वितः॥ ५ ॥ रामश्चापी शरी खड्गी शङ्खी वा द्विभुजः स्मृतः । गदालाङ्गलधारी च रामो वाथ चतुर्भुजः ॥ ६॥ वामोर्ध्वे लाङ्गलं दद्यादधः शङ्खं सुशोभनम् । मुसलं दक्षिणोर्ध्वे तु चक्रं चाधः सुशोभनम्॥ ७॥ शान्तात्मालम्बकर्णश्च गौराङ्गश्चाम्बरावृतः। ऊर्ध्वपद्मस्थितो बुद्धो वरदाभयदायकः॥ ८॥ धनुस्तूणान्वितः कल्की म्लेच्छोत्सदकरो द्विजः। अथवाश्वत्थस्थितः खड्गी शंखचक्रशरान्वितः॥ ९॥ लक्षणं वासुदेवादिनवकस्य वदामि ते। दक्षिणोर्ध्वे गदा वामे वामोर्ध्वे चक्रमुत्तमम् ॥ १०॥ ब्रह्मेशौ पार्श्वगौनित्यं वासुदेवोऽस्ति पूर्ववत् । शंखी स वरदी वाऽथ द्विभुजो वा चतुर्भुजः॥ ११॥ लाङ्गली मुसली रामो गदापद्मधरः स्मृतः। प्रद्युम्नो दक्षिणे चक्रं शङ्खं वामे धनुः करे ॥ १२॥ गदाधन्वावृतः प्रीत्या प्रद्युम्नो वा धनुःशरी । चतुर्भुजोऽनिरुद्धः स्यात्तथा नारायणो विभुः ॥ १३ ॥ चतुर्मुखश्चतुर्बाहुर्बृहज्जठरमण्डलः । लम्बकूर्चो**

श्रीभगवान् ने कहा– अब मैं आपको मत्स्य आदि दश अवतारों की मूर्तियों का स्वरूप बतला रहा हूँ । मत्स्य भगवान् की मूर्ति मत्स्य के आकार की तथा कूर्म भगवान् की मूर्ति कूर्म के आकार की होनी चाहिए ।। १ ।। दाहिने हाथ में गदा तथा चक्र धारण करने वाले पृथ्वी सहित वराह भगवान् की मूर्ति मनुष्य के अङ्गों वाली बनानी चाहिए । उनके बाएँ हाथ में शंख, अथवा लक्ष्मी अथवा केवल पद्म होना चाहिए ।। २ ।। अथवा उनके बाएँ हाथ में लक्ष्मी और पैरों में पृथ्वी तथा अनन्त (शेषनाग) को होना चाहिए । वराह भगवान् की स्थापना करने से राज्य की प्राप्ति तथा संसार सागर से संतरण होता है ।। ३ ।। नृसिंह भगवान् का मुख खुला हुआ रहता है तथा वे अपनी वायीं जंघे पर दानव (हिरण्यकशिपु) को रखे रहते हैं । चक्र तथा गदा धारण करने वाले वे (श्री नृसिंह भगवान्) उसके वक्षस्थल को फाड़कर माला धारण करते हैं ।। ४ ।। भगवान् वामन को छत्र तथा दण्ड धारण करने वाला होना चाहिए अथवा उन्हें चार भुजाओं वाला होना चाहिए । श्री परशुराम भगवान् को धनुष्, बाण, खड्ग तथा फरसा धारण किए हुए होना चाहिए ।। ५ ।। या तो भगवान् श्री राम को धनुष्, बाण, खड्ग तथा शंख धारण किए हुए होना चाहिए अथवा उनको दो भुजाओं वाला बनाना चाहिए। श्री बलरामजी को गदा तथा हल धारण किए होना चाहिए अथवा उनकी मूर्ति चतुर्भुज होनी चाहिए ।। ६ ।। उनकी चतुर्भुज मूर्ति के बाएँ के ऊपर वाले हाथ में चक्र देना चाहिए तथा नीचे वाला हाथ में सुन्दर शंख, दाहिने ऊपर के हाथ में मूसल तथा नीचे के हाथ में मनोहर शंख समर्पित करना चाहिए ।। ७ ।। बरद तथा अभय मुद्रा में कमल पर बैठी हुयी शान्त स्वरूप, लम्बे कानों वाली, गौराङ्ग तथा वस्त्र से ढंकी हुयी बुद्ध भगवान् की प्रतिमा होनी चाहिए ।। ८ ।। कल्की भगवान् को धनुष तथा तुणीर धारण किए हुए, म्लेच्छों का विनाश्चा करने वाले, ब्राह्मण वंशावतंस, घोड़े पर बैठे हुए तथा खड्ग, शंख, चक्र एवं गदा धारण किए हुए होना चाहिए ।। ९ ।। अब मैं आपको वासुदेव आदि नव व्यूह मूर्तियों का स्वरूप बतलाता हूँ । वासुदेव की मूर्ति पहले के ही समान होनी चाहिए । उनके ऊपर के दाहिने हाथ में गदा तथा ऊपर के बाएँ हाथ में उत्तम चक्र होना चाहिए । उनके दोनों बगल में ब्रह्मा तथा शंकर जी की मूर्ति होनी चाहिए । वेरद मुद्रा के साथ शंख धारण किए हुए हों । उनकी मूर्ति दो भुजाओं वाली अथवा चार भुजाओं वाली होनी चाहिए ।। १०-११ ।। बलराम जी की मूर्ति चतुर्भुज मूर्ति हल, मुसल गदा तथा पद्म धारण किए हुए होनी चाहिए । प्रद्युम्न जी दाहिने हाथ में चक्र तथा चक्र धारण किए हुए एवं बाएँ हाथ में धनुष् बाण धारण करते हैं । अथवा द्विभुज प्रद्युम्न एक हाथ में गदा और दूसरे हाथ में धनुष् धारण करते हैं ।

जटायुक्तो ब्रह्मा हंसाग्रवाहनः ॥ १४ ॥ दक्षिणे चाक्षसूत्रं च स्रुवो वामे तु कुण्डिका । आज्यस्थाली सरस्वती सावित्री वामदक्षिणे ॥ १५ ॥ विष्णुरष्टभुजस्तार्क्ष्ये करे खड्गस्तु दक्षिणे । गदाधरश्च वरदो वामे कार्मुकखेटके ॥ १६॥ चक्रशङ्खौ चतुर्वाहुर्नरसिंहश्चतुर्भुजः । शङ्खचक्रधरो वापि विदारितमहासुरः ॥ १७ ॥ चतुर्बाहुर्वराहस्तु शेषः पाणितले धृतः । धारयन् बाहुना पृथ्वीं वामनः कमलाधरः ॥ १८ ॥ पादलग्ना धरा कार्या पदा लक्ष्मीर्व्यवस्थिता । त्रैलोक्यमोहनस्तार्क्ष्ये अष्टबाहुस्तु दक्षिणे ॥ १९ ॥ चक्रं शङ्खं च मुसलमङ्कुशं वामके करे। शङ्खशार्ङ्गगदापाशान् पद्मीवीणासमन्विते॥२०॥ लक्ष्मीः सरस्वती कार्ये विश्वरूपोऽथ दक्षिणे । मुद्गरं च तथा पाशं शक्तिशूलं शरं करे ॥ २१॥ वामे शङ्खं च शार्ङ्गं च गदां पाशं च तोमरम् । लाङ्गलं परशुं दण्डं छुरिकां चर्म चोत्तमम् ॥ २२॥ विंशद्बाहुश्चतुर्वक्त्रो दक्षिणस्थोऽथ वामके । त्रिनेत्रो वामपार्श्वेऽपि शयितो जलशाय्यपि ॥ २३॥ श्रिया धृतैकचरणो विमलाद्याभिरीडितः । नाभिपद्मे चतुर्वक्त्रो हरिशङ्करकौ हरिः ॥ २४॥ शूलाष्टिधारी दक्षे च गदाचक्रधरोऽपरे। रुद्रकेशवलक्ष्माङ्गो गौरीलक्ष्मीसमन्वितः ॥ २५॥ शङ्खचक्रगदावेदपाणिश्चाश्वशिरा हरिः। वामपादो धृतः शेषे दक्षिणः कूर्मपृष्ठगः॥ २६॥ दत्तात्रेयो द्विबाहुः स्याद्वामोत्सङ्गे श्रिया सह । विष्वक्सेनश्चक्रगदी हली शङ्खी हरेर्गणः॥ २७॥

इत्यादि महापुराण आग्नेये मत्स्यादिदशावतारप्रतिमालक्षणवर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

अथवा वे प्रेमपूर्वक अपने दोनों हाथों में धनुष् तथा बाण धारण करते हैं । अनिरुद्ध भगवान् तथा व्यापक नारायण भगवान् चतुर्भुज हैं ।। १२-१३ ।। ब्रह्माजी की चार भुजाएँ तथा उनका पेट बड़ा है । उनकी लम्बी दाढ़ी लम्बी जटा तथा हंस वाहन हैं ।। १४ ।। दाहिने हाथ में अक्षसूत्र ओर स्रुवा तथा बाएँ हाथ में कमण्डलु और आज्यस्थाली रहती है । उनके बाएँ सरस्वती देवी तथा दाएँ सावित्री देवी रहती हैं ।। १५ ।। विष्णु की मूर्ति आठ भुजाओं वाली गरुड़ पर चढ़ी हुई, दाहिने हाथ में खड्ग, गदा तथा वरद मुद्रा, बाएँ हाथ में धनुष्, खेटक, चक्र तथा शंख धारण किए हुयी होती है । अथवा विष्णु भगवान् की मूर्ति चार भुजाओं वाली होती है । नरसिंह भगवान् की मूर्ति चार भुजाओं वाली शंख एवं चक्र धारण किए हुए महासुर (हिरण्यकशिपु) का विदारण करने वाली होती है ।। १७ ।। शेष को अपने हाथ में धारण किए हुए, चार भुजाओं वाले वराह भगवान् अपने हाथ में पृथिवी को धारण किए हुए हैं । वामन भगवान् लक्ष्मी को धारण करने वाले हैं । यदि श्री लक्ष्मी जी उनके साथ हों तो पृथिवी को उनके पैरों से संलग्न बनाना चाहिए । त्रैलोक्य मोहन श्रीहरि गरुड़ पर सवार हैं । उनकी आठ भुजाएँ हैं । दाहिनी भुजाओं में चक्र, शंख, मुसल तथा अंकुश है और बायीं भुजाएँ शंख, शार्ङ्ग, गदा, पाश, पद्म तथा बगल में सरस्वती की मूर्ति होनी चाहिए । बीस भुजाओं वाले विश्वरूप भगवान् की दाहिनी भुजाओं में- चक्र, शंख, मुसल, अंकुश, पट्टिश, मुद्गर, पाश, शक्ति शूल तथा बाण होना चाहिए और बायीं भुजाओं में शंख, शार्ङ्ग, धनुष्, गदा, पाश, तोमर, हल, परशु, दण्ड, छुरिका तथा उत्तम चर्म होना चाहिए । बायीं ओर जलशायी भगवान् सोए रहते हैं । श्रीदेवी उनके एक चरण को पकड़े रहती हैं, विमला आदि देवियाँ उनकी पूजा करती हैं ।। २१-२४ ।। श्री भगवान् के नाभिकमल पर चतुर्मुख ब्रह्मा जी विराजमान रहते हैं । हरिहर भगवान् की दाहिनी भुजा में शूल तथा शक्ति तथा बायीं भुजा में गदा तथा चक्र बनाना चाहिए । इनके अङ्ग रुद्र तथा केशव के चिह्नों से युक्त, एवं गौरी तथा लक्ष्मी से समन्वित हैं । श्री ह्यग्रीव भगवान् के चार हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा वेद विद्यमान रहते हैं ।। २५-२६ ।। वे बायाँ पैर शेष पर रखते हैं और दाहिना पैर कूर्म के पृष्ठ पर । दत्तात्रेय की दो भुजाएँ होनी चाहिए उनके वाम भाग में श्रीलक्ष्मी जी रहती हैं । श्रीभगवान् के पार्षद विष्वक्सेन, अपनी भुजाओं में चक्र, गदा, हल तथा शंख धारण करते हैं ।। २७ ।।

इस तरह आदि महापुराण अग्निपुराण का मत्स्य आदि दस अवतारों की प्रतिमाओं का स्वरूप वर्णन नामक ऊनचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४९ ॥

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

चण्ड्यादिदेवताप्रतिमालक्षणानि

श्रीभगवानुवाच– **चण्डी विंशतिबाहुः स्याद् बिभ्रती दक्षिणैः करैः। शूलासिशक्तिचक्राणि पाशखेटायुधाभयम् ॥१ ॥ डमरुं शक्तिकां वामैर्नागपाशं च खेटकम् । कुठाराङ्कुशपाशांश्च घण्टायुधगदास्तथा ॥ २ ॥ आदर्शमुद्गरान्हस्तैश्चण्डी वा दशबाहुका । तदधो महिषश्छिन्नमूर्धा पातितमस्तकः ॥३॥ शस्त्रोद्यतकरः क्रुद्धस्तद्ग्रीवासम्भवः पुमान् । शूलहस्तो वमद्रक्तो रक्तस्रङ्मूर्धजेक्षणः ॥ ४ ॥ सिंहेनास्वाद्यमानस्तु पाशबद्धो गले भृशम् । याम्याङ्घ्र्याक्रान्तसिंहा च सव्याङ्घ्रिर्नीचगासुरे ॥ ५ ॥ चण्डिकेयं त्रिनेत्रा च सशस्त्रा रिपुमर्दिनी । नवपद्मात्मके स्थाने पूज्या दुर्गा स्वमूर्तितः ॥६॥ आदौ मध्ये तथेन्द्राद्या नवतत्त्वात्मभिः क्रमात् । अष्टादशभुजैका तु दक्षे मुण्डं च खेटकम् ॥ ७ ॥ आदर्शं तर्जनीं चापं ध्वजं डमरुकं तथा। पाशं वामे बिभ्रती च शक्तिमुद्गरशूलकम् ॥ ८॥ वज्रखड्गाङ्कुशशरांश्चक्रं देवी शलाकया । एतैरेवायुधैर्युक्ताः शेषाः षोडशबाहुकाः॥ ९ ॥ डमरुं तर्जनीं त्यक्त्वा रुद्रचण्डादयो नव । रुद्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ॥ १० ॥ चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका । उग्रचण्डा च मध्यस्था रोचनाभारुणा सिता ॥ ११ ॥ नीला शुक्ला धूम्रिका च पीता श्वेता च सिंहगा । महिषोत्थः पुमाञ्शस्त्री तत्कचग्रहमुष्टिका॥१२॥ आलीढा नव दुर्गाः स्युः स्थाप्याः पुत्रादिवृद्धये । तथा गौरी चण्डिकाद्या कुण्ड्यक्षररदाग्निधृक् ॥ १३ ॥ सैव रम्भा वने सिद्धाऽग्निहीना ललिता तथा । स्कन्धमूर्धकरा वामे द्वितीये धृतदर्पणा ॥ १४ ॥ याम्ये फलाङ्गुलिहस्ता सौभाग्या तत्र चोर्ध्विका । लक्ष्मीर्याम्यकराम्भोजा वामे श्रीफलसंयुता॥१५॥**

श्रीभगवान् ने कहा– चण्डीदेवी के बीस भुजाएँ होनी चाहिए । वे अपने दाहिने हाथों में शूल, कृपाण, शक्ति, चक्र, पाश एवं खेट आयुध, अभय मुद्रा, डमरु तथा शक्ति धारण करती हैं तथा बाएँ हाथों में नागपाश, खेटक, कुठार, अंकुश, पाश, घण्टा, आयुध तथा आदर्श (दर्पण) तथा मुद्‌गर धारण करती हैं । अथवा चण्डी की मूर्ति दस भुजाओं वाली होनी चाहिए । उनके नीचे कटे हुए सिर वाला महिष रहता है जिसका मस्तक गिरा हुआ रहता है ।। १-३ ।। वह अपने हाथ में शास्त्र उठाए रहता है, तथा उसके ग्रीवा से एक पुरुष निकला रहता है । उसके हाथ में त्रिशूल रहता है, खून वमन करते रहता है, उसकी माला, बाल तथा नेत्र लाल रहते हैं ।। ४ ।। देवी का वाहन सिंह उसे खाता रहता है उसका गला जोर से बँधा रहता है । देवी का दाहिना पैर सिंह पर तथा बायाँ पैर नीचे असुर पर रहता है ।। ५ ।। ये चण्डी देवी तीन नेत्रों वाली, शस्त्रों से युक्त तथा शत्रुओं का विनाश करने वाली हैं । नव कमलों से युक्त स्थान पर दुर्गा देवी की मूर्ति तथा इन्द्र आदि की पूजा आदि में तथा मध्य में नव तत्त्वात्मिका शक्तियों के साथ करनी चाहिए ।। ६ ।। चण्डी की एक मूर्ति अठारह भुजाओं वाली होती है । उनकी दाहिनी भुजाओं में- मुण्ड, खेटक, दर्पण, तर्जनी, चाप, ध्वजा, डमरू तथा पाश रहते हैं। वायीं भुजाओं में वे, शक्ति, मुद्गर, शूल, वज्र, खड्ग, अंकुश, बाण, चक्र तथा शलाका धारण किए रहती हैं । सोलह भुजाओं वाली चण्डी देवी भी इन्हीं आयुधों से युक्त रहती हैं ।। ७-९ ।। इनके आयुधों में डमरू तथा तर्जनी ये दो आयुध छूट जाते हैं । रुद्रचण्डा आदि नव शक्तियाँ ये हैं- (१) रुद्रचण्डा, (२) प्रचण्डा, (३) चण्डोग्रा, (४) चण्डनायिका, (५) चण्डा, (६) चण्डवती, (७) चण्डरूपा, (८) अतिचण्डिका तथा (९) उग्रचण्डा । इनमें से आठ-आठ दिशाओं में तथा उग्रचण्डा की पूजा बीच में होती है । इनकी कान्तियाँ गोरोचन, के सदृश पीली, अरुण, काली, नीली, उजली, धूम्रवर्ण की, पीली तथा श्वेत है । ये सब सिंहवाहिनी हैं । महिष से निकले हुए शस्त्र धारण करने वाले पुरुष के बाल को अपनी मुट्ठी में पकड़े रहती हैं ।।१०-१२।। पुत्र आदि की वृद्धि के लिए नव दुर्गा की स्थापना करनी चाहिए । तथा गौरी ही चण्डिका आदि के रूप में कमण्डलु, अक्षमाल, रद (दाँत) तथा अग्नि आदि धारण करने वाली होकर रम्भा कहलाती हैं । वे वन में अग्नि से रहित होकर सिद्ध कहलाती हैं । ललितारूप में वे अपने बाएँ हाथ में स्कन्ध (गर्दन) से युक्त सिर धारण करती हैं, दूसरे हाथ में दर्पण धारण करती हैं ।। १३-१४ ।। वे अपने दाहिने हाथ में फलाङ्गुल धारण करती हैं, तथा उससे ऊपर वाले हाथ में सौभाग्य गदा धारण करती हैं । लक्ष्मी देवी अपने दाहिने हाथ में कमल, धारण करती हैं और

पुस्ताक्षमालिका हस्ता वीणाहस्ता सरस्वती । कुम्भाब्जहस्ता श्वेताभा मकरे वापि जाह्नवी ॥ १६ ॥ कूर्मगा यमुना कुम्भकरा श्यामा च पूज्यते । सवीणस्तुम्बुरुः शुक्लः शूली मात्रग्रतो वृषे ॥ १७ ॥ गौरी चतुर्मुखी ब्राह्मी अक्षमालास्त्रुगन्विता। कुण्डाक्षपात्रिणी वामे हंसगा शाङ्करी सिता॥१८॥ शरचापौ दक्षिणेऽस्या वामे चक्रं धनुर्वृषौ । कौमारी शिखिगा रक्ता शक्तिहस्ता द्विबाहुका ॥ १९ ॥ शङ्खचक्रधरा सव्ये वामे लक्ष्मीर्गदाब्जधृक् । दण्डशङ्खारिगदया वाराही महिषस्थिता ॥ २० ॥ ऐन्द्री गजे वज्रहस्ता सहस्राक्षी तु सिद्धये । चामुण्डा कोटराक्षी स्यान्निर्मांसा तु त्रिलोचना ॥ २१ ॥ निर्मांसा अस्थिसारा वा ऊर्ध्वकेशी कृशोदरी । द्वीपिचर्मधरा वामे कपालं पट्टिशं करे ॥ २२ ॥ शूलं कर्त्री दक्षिणे स्याच्छवारुढास्थिभूषणा । विनायको नराकारो बृहत्कुक्षिर्गजाननः ॥ २३ ॥ बृहच्छुण्डो ह्युपवीती मुखं सप्तकलं भवेत् । विस्ताराद् दैर्घ्यतश्चैव शुण्डं षट्त्रिंशदङ्गुलम् ॥ २४ ॥ कला द्वादश नाडी तु ग्रीवा सार्धकलोच्छ्रिता । षट्त्रिंशदङ्गुलः कण्ठो गुह्यमध्यर्धमङ्गुलम् ॥ २५ ॥ नाभिरूरू द्वादशं च जङ्घे पादे तु दक्षिणे । स्वदन्तं परशुं वामे लड्डुकं चोत्पलं शये ॥ २६ ॥ सुमुखी च बिडालाक्षी पार्श्वे स्कन्दो मयूरगः । स्वामी शाखो विशाखश्च द्विभुजो बालरूपधृक् ॥ २७ ॥ दक्षे शक्ति कुक्कुटेऽथ एकवक्त्रोऽथ षण्मुखः । षड्भुजो वा द्वादशभिर्ग्रामेऽरण्ये द्विबाहुकः॥२८॥ शक्तीषुपाशनिस्त्रिंश गदासत्तर्जनीयुतः। शक्त्या दक्षिणहस्तेषु षट्सु वामे करे तथा॥२९॥ शिखिपिच्छं धनुः खेटं पताकाभयकुक्कुटे। कपालकर्तरीशूलपाशभृद्याम्यसौम्ययोः॥३०॥

बाएँ में श्रीफल ।। १५ ।। सरस्वती देवी अपने हाथों में पुस्तक, अक्षमाला तथा वीणा धारण करती हैं । जाह्नवी (गङ्गा) देवी घड़ियाल पर सवार श्वेतवर्ण की तथा हाथ में घड़ा एवं कमल धारण करती हैं ।। १६ ।। श्याम वर्ण की यमुना देवी हाथ में कुम्भ लिए हुए कच्छप पर सवार रूप से पूजी जाती हैं । श्वेत वर्ण के तुम्बुरु हाथ में वीणा लिए हुए हैं । वृष (बैल) पर सवार शङ्कर जी मातृकाओं के आगे रहते हैं ।। १७ ।। ब्राह्मी देवी गौरवर्ण की, चार मुखों वाली अक्षमाला तथा स्रुक् से समन्वित हैं । हंस पर सवार वे बाएँ हाथ में कुण्ड तथा अक्षपात्र लिए रहती हैं । श्वेतवर्ण वाली शांकरी (पार्वती देवी) दाहिने हाथ में धनुष् बाण तथा बाएँ हाथ में चक्र एवं धनुष् धारण करती हैं । वे वृष पर सवार रहती हैं । कौमारी देवी मयूर वाहना हैं । उनका वर्ण रक्त (लाल) है हाथ में शक्ति धारण किए हुए हैं । उनकी दो भुजाएँ हैं ।। १८-१९ ।। लक्ष्मी देवी अपने दाएँ हाथ में शंख चक्र धारण करती हैं और बाएँ हाथ में गदा एवं कमल धारण करती हैं । महिष पर सवार रहने वाली वाराही देवी दण्ड,शंख, चक्र तथा गदा धारण करने वाली हैं ।। २० ।। ऐन्द्री देवी हाथी पर सवार रहती हैं । वे वज्र हाथ में लिए रहती हैं। उनके एक हजार नेत्र हैं । उनकी सिद्धि प्राप्ति के लिए उपासना करनी चाहिए । चामुण्डा देवी की आँखें कोटर के समान हैं। । उनका शरीर माँस रहित है । उनके तीन नेत्र हैं । अथवा उनके शरीर निर्मांस तथा कंकाल स्वरूप हैं । उनके बाल ऊपर की ओर खड़े तथा कटि पतली है । वे हाथी का चर्म (चाम) पहनती हैं । उनके बाएँ हाथ में कपाल तथा पट्टिश है ।। २०-२२ ।। अपने दाहिने हाथ में शूल तथा कटार लिए रहती हैं । मुर्दे पर सवार वे हड्डियों का आभूषण धारण करती हैं ।। २२ ।। गणेश जी की मूर्ति नराकार होती है, उनका पेट बड़ा तथा मुँह हाथी का होता है । उनका शुण्ड बड़ा यज्ञोपवीत धारण किए हुए, तथा मुँह सात कला का विस्तृत होता है । छत्तीस अंगुल लम्बा उनका शुण्ड होता है ।। २३-२४ ।। उनकी नाड़ी बारह कला की होती है और उनकी ग्रीवा डेढ़ कला ऊँची होती है । उनका कण्ठ छत्तीस अंगुल का तथा गुह्य भाग डेढ़ अंगुल का होना चाहिए ।। २५ ।। उनकी नाभि तथा ऊरु बारह अंगुल के होने चाहिए । वे अपने दाहिने पैर तथा जंघे पर फरसा रखे हुए रहते हैं तथा बाएँ पैर पर लड्डू। उनकी शय्या कमल की होती है ।। २६ ।। स्कन्द मयूर वाहन हैं । उनके दोनों बगल में सुमुखी और विडालाक्षि देवियाँ होती हैं । उनके स्वामी शाख एवं विशाख रहते हैं । उनकी दो भुजाएँ हैं, और वे बालरूपधारी हैं ।। २७ ।। उनकी दाहिनी ओर कुक्कुट पर सवार शक्ति होती है । उनकी मूर्ति या तो एक मुख वाली अथवा छह मुखों वाली होती है । ग्राम में स्कन्द की छह भुजाओं वाली अथवा बारह भुजाओं वाली मूर्ति बनानी चाहिए । अरण्य में उनकी मूर्ति दो भुजाओं वाली होती है । उनकी छह दाहिनी भुजाओं में शक्ति, बाण, पाश, खड्ग, गदा तथा तर्जनी

गजचर्मभृदूर्ध्वास्यपादा स्याद्रुद्रचर्चिका । सैव चाष्टभुजा देवी शिरोडमरुकान्विता ॥ ३१ ॥ तेन सा रुद्रचामुण्डा नाटेश्वर्यथ नृत्यती । इयमेव महालक्ष्मीरुपविष्टा चतुर्मुखी ॥ ३२ ॥ नृवाजिमहिषेभांश्च खादन्ती च करे स्थितान् । दशबाहुस्त्रिनेत्रा च शस्त्रासिडमरुत्रिकम् ॥ ३३ ॥ बिभ्रती दक्षिणे हस्ते वामे घण्टां च खेटकम् । खट्वाङ्गं च त्रिशूलं च सिद्धचामुण्डिकाह्वया ॥ ३४ ॥ सिद्धयोगेश्वरी देवी सर्वसिद्धिप्रदायिका । एतद्रूपा भवेदन्या पाशाङ्कुशयुतारुणा ॥ ३५ ॥ भैरवी रूपविद्या तु भुजैर्द्वादशभिर्युता । एताः श्मशानजा रौद्रा अम्बाष्टकमिदं स्मृतम् ॥ ३६ ॥ क्षमा शिवावृता वृद्धा द्विभुजा विवृतानना। दन्तुरा क्षेमकारी स्याद् भूमौ जानुकरा स्थिता ॥ ३७ ॥ यक्षिण्यः स्तब्धदीर्घाक्ष्यः शाकिन्यो वक्रदृष्टयः । पिङ्गाक्ष्यः स्युर्महारम्या रूपिण्योऽप्सरसः सदा ॥ ३८ ॥ साक्षमालस्त्रिशूली च नन्दीशो द्वारपालकः । महाकालोऽसिमुण्डी स्याच्छूलखेटकरस्तथा ॥ ३९ ॥ कृशो भृङ्गी च नृत्यन्वै कूष्माण्डस्थूलखर्ववान् । गजगोकर्णवक्त्राद्या वीरभद्रादयो गणाः॥४०॥ घण्टाकर्णोऽष्टादशदोः पापरोगं विदारयन् । वज्रासिदण्डचक्रेषु मुसलाङ्कुशमुद्गरान् ॥ ४१ ॥ दक्षिणे तर्जनीं खेटं शक्तिं मुण्डं च पाशकम् । चापं घण्टां कुठारं च द्वाभ्यां चैव त्रिशूलकम् ॥ ४२ ॥ घण्टामालाकुलो देवो विस्फोटकविमर्दनः ॥ ४३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये चण्ड्यादिदेवताप्रतिमालक्षणनिरूपणं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

मुद्रा होनी चाहिए। उनके छह बायीं भुजाओं में मोरपंख, धनुष्, खेट, पताका, अभयमुद्रा तथा कुकुट होनी चाहिए । रुद्रचर्चिका देवी के पैर और मुख ऊपर की ओर होते हैं । उनके दाएँ तथा बाएँ हाथों में कपाल, कर्तरी, शूल तथा पाश रहते हैं । यदि वे ही (रुद्रचर्चिका ही) शिर तथा डमरू धारण करती हैं तो वे आठ भुजाओं वाली देवी होती हैं ।। २८-३१ ।। सिर तथा डमरू से युक्त होने के कारण वे रुद्रचामुण्डा कही जाती हैं । नृत्य करती हुई वे नाटेश्वरी कहलाती हैं । इनकी बैठी हुई चतुर्मुखी मूर्ति महालक्ष्मी कहलाती है ।। ३२ ।। सिद्धचामुण्डिका नामक देवी अपने हाथ में विद्यमान मनुष्य, घोड़ा, महिष तथा हाथी को खाती रहती हैं, उनके दस हाथ और तीन नेत्र होते हैं । वे अपने दाहिने ओर के हाथों में शस्त्र, कृपाण तथा तीन डमरू धारण करती हैं । बायें ओर के हाथों में वे घण्टा, खेट, खट्वांग तथा त्रिशूल धारण करती हैं ।। ३३-३४ ।। सिद्धयोगेश्वरी देवी सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाली हैं । इन्हीं देवी के समान रक्तवर्ण के पाश तथा अंकुश को धारण करने वाली भैरवी नाम की देवी हैं । रूपविद्या नाम की देवी द्वादश भुजाओं से युक्त हैं । ये श्मशान में उत्पन्न होने वाली भयंकर देवियाँ हैं । इनको अम्बाष्टक कहा जाता है ।। ३५-३६।। क्षमा देवी श्रृगालियों से घिरी हुयी, वृद्धावस्था वलाी दो भुजाओं वाली खुले मुख वाली, निकले हुए दाँतों वाली, पृथिवी पर घुटने तथा हाथ को रखकर बैठी हुयी एवं कल्याण करने वाली हैं ।। ३७।। यक्षिणियाँ बड़े-बड़े नेत्रों वाली तथा एक टक से देखने वाली होती हैं, शाकिनियों की दृष्टि टेढ़ी होती है । अप्सराएँ पीले नेत्रों वाली तथा सर्वदा अत्यन्त मनोहर रूप वाली होती हैं ।। ३८ ।। भगवान् शंकर के द्वारपाल नन्दीश्वर एक हाथ में अक्षमाला और दूसरे हाथ में त्रिशूल लिए रहते हैं । महाकाल के हाथों में तलवार, कटा हुआ सिर, शूल तथा खेटक होना चाहिए।।३९।। भृङ्गी का शरीर दुबला पतला होता है, वे नृत्य करते हैं कुष्माण्ड (कोहणा) के समान स्थूल तथा वामनाकृति हैं । वीरभद्र आदि गणों के कान हाथ तथा गौ के कान के समान होते हैं ।। ४० ।। घण्टाकर्ण की अठारह भुजाएँ होती हैं । वे पाप तथा रोग को दूर करने वाले हैं । वे अपनी दाहिनी आठ भुजाओं में वज्र, तलवार, दण्ड, चक्र, बाण, मुसल, अंकुश तथा मुद्गर धारण करते हैं और वायीं ओर की आठ भुजाओं में तर्जनी मुद्रा, खेट, शक्ति, कटा हुआ सिर, पाश, चाप (धनुष्) घण्टा तथा कुठार धारण करते हैं । शेष दो हाथों में वे त्रिशूल धारण करते हैं । घण्टा की माला से अलंकृत घण्टाकर्ण फोड़े-फुन्सी आदि को विनष्ट करते हैं ।। ४०-४३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का चण्डी आदि देवताओं की मूर्तियों के स्वरूप निरूपण नामक पचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५० ॥

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्यादिग्रहदेवताप्रतिमालक्षणानि

श्रीभगवानुवाच— **ससप्ताश्वे सैकचक्रे रथे सूर्यो द्विपद्मधृक् । मषीभाजनलेखन्यौ बिभ्रद्दण्डी तु दक्षिणे ॥ १ ॥ वामे तु पिङ्गलो द्वारि दण्डभृत्स रवेर्गणः । बालव्यजनधारिण्यौ पार्श्वे राज्ञी च निष्प्रभा ॥ २ ॥ अथवाश्वसमारुढः कार्य एकस्तु भास्करः । वरदा द्व्यब्जिनः सर्वे दिक्पाः शस्त्रकराः क्रमात् ॥ ३ ॥ मुद्गरशूलचक्राब्जभृतोऽग्न्यादिविदिक्स्थिताः । सूर्यार्यमादिरक्षोऽन्ताश्चतुर्हस्ता द्विषड्दले ॥ ४ ॥ वरुणः सूर्यनामा च सहस्रांशुस्तथापरः। धाता तपनसंज्ञश्च सविताऽथ गभस्तिकः ॥ ५ ॥ रविश्चैवाथ पर्जन्यस्त्वष्टा मित्रोऽथ विष्णुकः । मेषादिराशिसंस्थाश्च मार्गादिकार्तिकान्तकाः ॥ ६॥ कृष्णो रक्तो मनाग्रक्तः पीतः पाण्डरकः सितः । कपिलः पीतवर्णश्च शुकाभो धवलस्तथा ॥ ७ ॥ धूम्रो नीलः क्रमाद्वर्णाः शक्तयः केसराग्रगाः । इडा सुषुम्णा विश्वार्चिरिन्दुसञ्ज्ञा प्रमर्दिनी ॥ ८ ॥ प्रहर्षिणी महाकाली कपिला च प्रबोधिनी । नीलाम्बरा वनान्तस्था अमृताख्या च शक्तयः ॥ ९॥ वरुणादेश्च तद्वर्णा केसराग्रेषु विन्यसेत् । तेजश्चण्डो महावक्त्रो द्विभुजः पद्मखड्गभृत् ॥ १० ॥ कुण्डिकाजप्यमालीन्दुः कुजः शक्ताक्षमालिकः । बुधश्चापाक्षपाणिः स्याज्जीवः कुण्ड्यक्षमालिकः ॥ ११॥ शुक्रः कुण्ड्यक्षमाली स्यात्किङ्किणीसूत्रवाञ्शनिः ॥ अर्धचन्द्रधरो राहुः केतुः खड्गी च दीपभृत् ॥ १२ ॥ अनन्तस्तक्षकः कर्कः पद्मो महाब्जः शङ्खकः । कुलिकः सूत्रिणः सर्वे फणवक्त्रा महाप्रभाः ॥ १३ ॥ इन्द्रो वज्री गजारुढच्छागगोऽग्निश्च शक्तिमान् । यमो दण्डी च महिषे नैर्ऋतः खड्गवान् करे ॥१४ ॥ मकरे वरुणः पाशी वायुर्वज्रधरो मृगे । गदी कुबेरो मेषस्थ**

श्रीभगवान् ने कहा— सात अश्वों से जुते हुए एक चक्के वाले रथ पर सूर्य कमल को धारण किए हुए हैं । उनकी दाहिनी ओर कलम और दवात धारण किए हुए दण्डी रहते हैं ।।१।। वायीं ओर द्वार पर दण्ड धारी रवि के गण पिङ्गल रहते हैं । सूर्य देव के दोनों बगल में चमर लिए हुए राज्ञी तथा निष्प्रभा नाम की दो चमर धारिणियाँ खड़ी रहती हैं । अथवा घोड़े पर सवार अकेले सूर्य की प्रतिमा बनानी चाहिए । सभी दिक्पालों को क्रमशः वरदमुद्रा वाले दो-दो कमल लिए हुए तथा शस्त्र धारण किए हुए बनाना चाहिए ।। २-३ ।। बारह दल वाले कमल के बारहों दल में (सूर्य तथा अर्यमासे लेकर रक्षः पर्यन्त) द्वादश आदित्यों की स्थापना करनी चाहिए । ये सभी चतुर्भुज हैं तथा मुद्गर, शूल, चक्र तथा कमल धारण करने वाले हैं । ये अग्नि आदि कोणों में स्थित हैं।।४।। वरुण, सूर्य सहस्रांशु, धाता, तपन, सविता, गभस्तिक, रवि, पर्जन्य, त्वष्टा, मित्र और विष्णु ये द्वादशादित्य मेष आदि राशियों में स्थित तथा मार्गशीर्ष से लेकर कार्तिक पर्यन्त के मासों के क्रमशः स्वामी हैं ।। ५-६ ।। इन सभी आदित्यों के क्रमशः काला, लाल, कमल, पीला, पाण्डुरवर्ण, उजला, कपिलवर्ण, पीला, शुक पक्षी के समान कान्ति, धवल, धूम्रवर्ण और नीला वर्ण है । कमलदल के केसर में शक्तियों की स्थापना करनी चाहिए ।। ७ ।। इन्द्रा, सुषुम्णा, विश्वार्चि, इडा, प्रमर्दिनी, प्रहर्षिणी, महाकाली, कपिला, प्रबोधिनी, नीलाम्बरा, वनान्तस्था तथा अमृता ये द्वादश शकितयाँ हैं ।। ८-९ ।। वरुणा आदि द्वादश आदित्यों के वर्ण के समान ही उनकी द्वादश शक्तियों के वर्ण हैं । इनकी स्थापना केसर के अग्रभाग में करनी चाहिए । सूर्य का तेज प्रचण्ड है, विशाल मुख तथा दो भुजाएँ हैं । वे पद्म तथा खड्ग धारण करते हैं ।। १० ।। चन्द्रमा कुण्डिका (कमण्डलु) तथा जपमाली धारण करते हैं । भौम शक्ति तथा अक्षमाला धारण करते हैं । बुध चाप तथा अक्षमाला धारण करते हैं । गुरु कुण्डी (कमण्डलु) तथा अक्षमाला धारण करते हैं ।। ११ ।। शुक्र कुण्डी तथा अक्षमाला, शनि किङ्किणी तथा सूत्र धारण करते हैं । राहु अर्धचन्द्र धारण करते हैं और केतु खड्ग तथा दीपक धारण करते हैं ।। १२ ।। अनन्त, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शङ्ख तथा कुलिक ये सभी नागगण सूत्रधारी, मुख पर फणा वाले तथा महाकान्तिमान हैं ।। १३।। इन्द्र हाथी पर सवार तथा वज्रधारण करते हैं । अग्नि मेष पर सवार तथा शक्तिधारी हैं । महिष वाहन यम दण्ड धारण करते हैं । नरवाहन निर्ऋति खड्ग धारण करते हैं ।। १४ ।। मकरवाहन वरुण

ईशानश्च जटी वृषे ॥ १५ ॥ द्विबाहवो लोकपाला विश्वकर्माक्षसूत्रभृत् । हनुमान् वज्रहस्तः स्यात् पद्भ्यां सम्पीडितासुरः ॥ १६ ॥ वीणाहस्ताः किन्नराः स्युर्मालाविद्याधराश्च खे । दुर्बलाङ्गाः पिशाचाः स्युर्वेताला विकृताननाः ॥ १७ ॥ क्षेत्रपालाः शूलवन्तः प्रेता महोदराः कृशाः ॥ १८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सूर्यादिग्रहदेवताप्रतिमालक्षणवर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

चतुःषष्टियोगिनीप्रतिमालक्षणानि

श्रीभगवानुवाच– **योगिन्यष्टाष्टकं वक्ष्ये इन्द्रादीशान्ततः क्रमात् । अक्षोभ्या रूक्षकर्णी च राक्षसी क्षपणा क्षमा ॥ १ ॥ पिङ्गाक्षी चक्षया क्षेमा इला लीलालया तथा। लोला रक्ता बलाकेशी लालसा विमला पुनः ॥ २ ॥ हुताशा च विशालाक्षी ह्रींकारा बडवामुखी । महाक्रूरा क्रोधना तु भयङ्करी महानना ॥ ३ ॥ सर्वज्ञा तरला तारा ऋग्वेदा तु हयानना। साराख्या रुद्रसङ्ग्राही शबरा तालजङ्घिका।।४।। रक्ताक्षी सुप्रसिद्धा तु विद्युज्जिह्वा करङ्किणी। मेघनादा प्रचण्डोग्रा कालकर्णी वरप्रदा।।५।। चण्डा चण्डवती चैव प्रपञ्चा प्रलयान्तिका । शिशुवक्त्रा पिशाची च पिशितासवलोलुपा ॥ ६ ॥ धमनी तपनी चैव रागिणी विकृतानना । वायुवेगा बृहत्कुक्षिर्विकृता विश्वरूपिका ॥ ७ ॥ यमजिह्वा जयन्ती च दुर्जया च जयन्तिका । बिडाली रेवती चैव पूतना विजयान्तिका।।८।। अष्टहस्ताश्चतुर्हस्ता इच्छास्त्राः सर्वसिद्धिदाः। भैरवश्चार्कहस्तः स्याद्दन्तुरास्यो जटेन्दुभृत्।।९।। खड्गांकुषकुठारेषुविश्वाभयभृदेकतः।**

हाथ में पाश धारण करते हैं । मृगवाहन वायु वज्रधारण करते हैं । मेषवाहन कुबेर गदा धारण करते हैं । वृष वाहन ईशान सिर पर जटा धारण करते हैं ।। १५ ।। सभी लोकपाल दो भुजाओं वाले हैं । विश्वकर्मा अक्षसूत्र धारण करते हैं । हनुमान् हाथ में वज्र धारण करते हैं तथा पैरों से राक्षसों को दबाए रहते हैं ।। १६ ।। किन्नरगण हाथ में वीणा धारण करते हैं, विद्याधर आकाश में माला धारण करते हैं । पिशाच दुर्बल अङ्ग वाले होते हैं तथा वेताल विकृत मुख वाले होते हैं ।। १७ ।। क्षेत्रपाल शूल धारण करते हैं तथा प्रेत दुर्बल तथा बड़े पेट वाले होते हैं ।। १८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का सूर्यादिग्रह देवताओं की प्रतिमा का स्वरूप वर्णन नामक एकावनवाँ अध्याय समपूर्ण हुआ ॥ ५१ ॥

श्रीभगवान् ने कहा– अब मैं चौंसठ योगिनियों को बतलाता हूँ– (योगिनी पीठ पर) पूर्व दिशा से लेकर ईशानकोण पर्यन्त क्रमशः स्थान होता है– (१) अक्षोभ्या (२) रुक्षकर्णी, (३) राक्षसी, (४) क्षपणा (५) क्षमा (६) पिङ्गाक्षी (७) क्षया (८) क्षेमा (९) इला (१०) नीलालया (११) लोला (१२) रक्ता (१३) बलाकेशी (१४) लालसा (१५) विमला (१६) हुताशा (१७) विशालाक्षी (१८) ह्रींकारा (१९) वडवामुखी (२०) महाक्रूरा (२१) क्रोधना (२२) भयङ्करी (२१३) महानना (२४) सर्वज्ञा (२५) तरला (२६) तारा (२७) ऋग्वेदा (२८) ह्यानना (२९) सारा (३०) रुद्रसंग्राही (३१) शम्बरा (३२) तालजंघिका (३३) रक्ताक्षी (३४) सुप्रसिद्धा (३५) विद्युज्जिह्वा (३६) करङ्किणी (३७) मेघनादा (३८) प्रचण्डा (३९) उग्रा (४०) कालकर्णी (४१) वरप्रदा (४२) चन्डा (४३) चण्डवती (४४) प्रपञ्चा (४५) प्रलयान्तिका (४६) शिशुवक्त्रा (४७) पिशाची (४८) पिशिताशा (४९) लोलुपा (५०) धमनी (५१) तापनी (५२) रागिणी (५३) विकृतानना (५४) वायुवेगा (५५) वृहत्कुक्षिः (५६) विकृता (५७) विश्वरूपिका (५८) यमजिह्वा (५९) जयन्ती (६०) दुर्जया (६१) जयन्तिका (६२) विडाली (६३) रेवती (६४) विजयान्तिका ।। १-८ ।। ये योगिनियाँ आठ हाथों वाली तथा चार हाथों वाली, इच्छा के अनुसार अस्त्रों को धारण करने वाली एवं सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाली हैं । बारह भुजाओं वाले भैरव हैं । उनका दाँत निकला हुआ मुख एवं चन्द्रमा तथा जटा वे धारण करते हैं ।। ९ ।। वे अपने एक तरफ के पाँच हाथों में खड्ग, अंकुश, कुठार, बाण तथा विश्व को अभय प्रदान करने वाली मुद्रा धारण करते हैं । और

चापत्रिशूलखट्वाङ्गपाशकार्धवरोद्यतः ॥ १० ॥ गजचर्मधरो द्वाभ्यां कृत्तिवासोऽहिभूषितः । प्रेताशनो मातृमध्ये पूज्यः पञ्चाननोऽथवा ॥ ११ ॥ अविलोमाग्निपर्यन्तं दीर्घाष्टकैकभेदितम् । तत्षडङ्गानि जात्यन्तैरन्वितं च क्रमाद्यजेत् ॥ १२ ॥ मन्दिराग्निदलारूढं सुवर्णरसनान्वितम् । नादबिन्द्विन्दुसंयुक्तं मातृनाथाङ्गदीपितम् ॥ १३ ॥ वीरभद्रो वृषारुढो मात्रग्रे स चतुर्भुजः । गौरी तु द्विभुजा त्र्यक्षा शूलिनी दर्पणान्विता ॥ १४ ॥ त्रिशूलकुण्डिकाकुण्डिवरहस्ता चतुर्भुजा । अब्जस्था ललिता स्कन्दगणादर्शशिलाकया ॥ १५ ॥ चण्डिकादशहस्ता स्यात्खड्गशूलारिशक्तिधृक् । दक्षे वामे नागपाशं चर्माङ्कुशकुठारकः॥१६॥ धनुः सिंहे च महिषः शूलेन प्रहतोग्रतः ॥ १७ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये चतुःषष्ठियोगिनीप्रतिमालक्षणवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

लिङ्गादिलक्षणवर्णनम्

श्रीभगवानुवाच– **लिङ्गादिलक्षणं वक्ष्ये कमलोद्भव तच्छृणु । दैर्घ्यार्ध्यं वसुभिर्भक्त्वा त्यक्त्वा भागत्रयं ततः ॥ १ ॥ विष्कम्भं भूतभागैस्तु चतुरस्रं तु कारयेत् । आयाममृतुभिर्भक्त्वा एकद्वित्रिक्रमात्न्यसेत् ॥ २ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवांशेषु वर्धमानोऽयमुच्यते । चतुरस्रेऽस्य कर्णार्धं गुह्यकोणेषु लाञ्छयेत् ॥ ३ ॥ अष्टाग्रं वैष्णवं भागं सिद्ध्यत्येव न संशयः । षोडशास्रं ततः कुर्याद्द्वात्रिंशास्रं ततः पुनः ॥ ४ ॥ चतुःषष्ट्यस्रकं कृत्वा वर्तुलं**

दूसरे तरफ के पाँच हाथों में चाप, त्रिशूल, खट्वाङ्ग, पाश तथा वरदमुद्रा धारण करते हैं ।। १० ।। शेष दो हाथों में गजचर्म धारण करते हैं । चर्म पहनते हैं । सर्प ही उनके भूषण हैं । प्रेत (मुर्दा) का भक्षण करते हैं मातृकाओं के बीच में पूजे जाते हैं । अथवा उनके पाँच मुँह हैं । अनुलोम क्रम से अग्निकोण पर्यन्त दीर्घाष्टक एक-एक मन्त्र से जाति जिनके अन्त में लगी हो इस तरह से उनके षड्ङ्गों की पूजा क्रमशः करें । (जैसे ओम् हृदयाय नमः,ओम् शिरसे स्वाहा, ओम् शिखायै वषट्, ओम् कवचाय हुम्, ओम् नेत्राभ्यां वषट् ओम् अस्त्राय फट्) ।। ११-१२ ।। वे मन्दिर के अग्नि दल पर आरूढ़ रहते हैं और सुवर्ण की करधनी पहनते हैं । नादविन्दु तथा चन्द्रमा से संयुक्त वे मातृनाथ के अंगों की शोभा से सुशोभित हैं ।। १३ ।। वृष (बैल) पर सवार वीरभद्र माताओं के समक्ष रहते हैं । उनकी चार भुजाएँ हैं । गौरी देवी की दो भुजाएँ और तीन नेत्र हैं । वे शूल और दर्पण धारण करती हैं ।। १४ ।। कमलासन पर विराजमान चतुर्भुजी ललिता देवी त्रिशूल, गगरी, कमण्डलु और वरदमुद्रा धारण करती हैं । वे स्कन्दगण, आदर्श (दर्पण) तथा शलाका से सुशोभित रहती हैं ।। १५ ।। चण्डिका देवी को दस हाथों वाली होना चाहिए । वे दाहिने तरफ के हाथों में खड्ग, शूल, चक्र तथा शक्ति धारण करती हैं । और बाएँ तरफ के हाथों में नागपाश, चर्म, अंकुश, कुठार तथा धनुष धारण करती हैं । सिंह पर सवार होकर महिष को मारती हैं ।। १६-१७।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का चतुष्षष्ठियोगिनी आदि के स्वरूप का वर्णन नामक बावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५२ ॥

श्रीभगवान् ने कहा– हे कमलोद्भव ! (ब्रह्मन् !) अब मैं लिङ्ग आदि का स्वरूप बतलाता हूँ उसे आप सुनें । चौकोर प्रस्तर की लम्बाई को दो भागों में विभक्त करे । पुनः आधे भाग को आठ भागों में विभक्त करके उसके तीन भाग को छोड़कर पाँच भागों में चौकोर विष्कम्भ को बनाए । उसकी चौड़ाई को छह भागों में विभक्त करके एक भाग, दो भाग तथा तीन भाग के क्रम से विभक्त करें ।। १-२ ।। इसमें पहला भाग ब्रह्मा का, दूसरा भाग विष्णु का तथा तीसरा भाग शिव का होता है । इसे ही वर्द्धमान कहते हैं । इसके चतुरस्र चौकोर भाग पर गुह्यकोणों में कर्ण के अर्द्धभाग के समान चिह्नित करना चाहिए ।। ३ ।। निःसन्देह इसका वैष्णव भाग आठ भागों में सिद्ध हो जाता है । पुनः उसको षोडश अस्रों वाला फिर बत्तीस अस्रों वाला एवं चौसठ अस्रों वाला बनाकर

साधयेत्ततः । कर्तयेदथ लिङ्गस्य शिरो वै देशिकोत्तमः ॥ ५ ॥ विस्तारमथलिङ्गस्य अष्टधा संविभाजयेत् । भागार्धार्धं तु संत्यज्य च्छत्राकारं शिरो भवेत् ॥ ६ ॥ त्रिषु भागेषु सदृश आयामो यस्य विस्तरः। तद्विभागसमं लिङ्गं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ७ ॥ दैर्घ्यस्य तु चतुर्थेन विष्कम्भं देवपूजिते । सर्वेषामेव लिङ्गानां लक्षणं शृणु साम्प्रतम्॥ ८ ॥ मध्यसूत्रं समासाद्य ब्रह्मरुद्रान्तिकं बुधः । षोडशाङ्गुललिङ्गस्य षड्भागैर्भाजितो यथा ॥ ९ ॥ तद्वैयमनसूत्राभ्यां मानमन्तरमुच्यते । यवाष्टमुत्तरे कार्यं शेषाणां यवहानितः ॥ १०॥ अर्चाभागं त्रिधा कृत्वा उर्ध्वमेकं परित्यजेत् । अष्टधा तद्द्वयं कृत्वा ऊर्ध्वं भागत्रयं त्यजेत् ॥ ११ ॥ ऊर्ध्वं तु पञ्चमाद्भागाद्भ्राम्यलेखां प्रलम्बयेत् । भागमेकं परित्यज्य संगमं कारयेत्तयोः ॥ १२ ॥ एतत्साधारणं प्रोक्तं लिङ्गानां लक्षणं मया । सर्वसाधारणं वक्ष्ये पिण्डिकां तां निबोध मे ॥ १३ ॥ ब्रह्मभागप्रवेशं च ज्ञात्वा लिङ्गस्य चोच्छ्रयम् । न्यसेद्ब्रह्मशिलां विद्वान् सम्यक्कर्म शिलोपरि ॥ १४ ॥ तथा समुच्छ्रयं ज्ञात्वा पिण्डिकां प्रविभाजयेत् । द्विभागमुच्छ्रितं पीठं विस्तारे लिंगसम्मितम् ॥ १५ ॥ त्रिभागं मध्यतः खातं कृत्वा पीठं विभाजयेत् । स्वमानार्धं त्रिभागेण बाहुल्यं परिकल्पयेत् ॥ १६ ॥ बाहुल्यस्य त्रिभागेण मेखलामथ कल्पयेत् । खातं स्यान्मेखलातुल्यं क्रमान्निम्नं तु कारयेत् ॥ १७ ॥ मेखलाषोडशांशेन खातं वा तत्प्रमाणतः । उच्छ्रायं तस्य पीठस्य विकाराङ्गं तु कारयेत् ॥ १८॥ भूमौ प्रविष्टमेकं तु भागेनैकेन पिण्डिका । कण्ठं भागैस्त्रिभिः कार्यं भागेनैकेन पट्टिका ॥ १९ ॥ द्व्यंशेन चोर्ध्वपट्टं तु एकांशाः शेषपट्टिकाः । भागं भागं प्रविष्टं तु यावत्कण्ठं ततः पुनः ॥ २० ॥ निर्गमं भागमेकं तु यावद्वैशेषपट्टिका । प्रणालस्य त्रिभागेण निर्गमस्तु त्रिभागतः ॥ २१ ॥

उसे गोला कर लेना चाहिए । फिर आचार्य उस लिङ्ग के शिरोभाग को काटें ।। ४-५ ।। पुनः लिङ्ग के विस्तार लम्बाई को आठ भागों में विभक्त करके उसके एक भाग के चौथाई भाग को छोड़कर शिर को छत्राकार बनाना चाहिए ।। ६ ।। जिस लिङ्ग की लम्बाई और चौड़ाई एक समान तीन भागों में विभक्त हो, उसे विभागसम लिङ्ग कहते हैं । वह उपासकों के सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है ।। ७ ।। देवताओं द्वारा पूजित लिङ्ग में लम्बाई के चौथाई भाग में विष्कम्भक होता है । अब आप समस्त लिङ्गों का स्वरूप सुनें ।। ८ ।। विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वह सोलह अंगुल के लिङ्ग को छह भागों में इस तरह से विभक्त करे कि उसका मध्य सूत्र, ब्रह्म भाग एवं रुद्र भाग के बीच से जाय ।। ९ ।। यमन सूत्रों के द्वारा बने हुए उसी मान को अन्तर मान कहते हैं । ऊपर वाले भाग को आठ यव का बनाना चाहिए और उसके नीचे वाले प्रत्येक भाग एक-एक यव छोटे होते जाते हैं ।। १० ।। अर्चाभाग को तीन भागों में विभक्त करके उसके एक भाग के आधे भाग को छोड़ देना चाहिए । उसके दो भागों को आठ भागों में विभक्त करके उसके ऊपर के तीन भागों को छोड़ देना चाहिए ।। ११ ।। पाँचवें भाग के ऊपर घुमाकर एक रेखा नीचे की ओर ले जाय। उसके एक भाग को छोड़कर उन दो रेखाओं को मिला देना चाहिए ।। १२ ।। यह मैंने लिङ्गों का सामान्य लक्षण बतलाया है । अब मैं सर्वसाधारण पिण्डिका बतला रहा हूँ उसे आप समझें ।।१३।। विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वह ब्रह्मभाग में प्रवेश तथा लिंग की ऊँचाई को जानकर कर्मशिला के ऊपर ब्रह्मशिला को अच्छी तरह रखे ।। १४ ।। लिङ्ग की ऊँचाई जानकर पिण्डिका का इस प्रकार से विभाजन करना चाहिए कि पीठ के दो भागों की ऊँचाई लिङ्ग की लम्बाई के समान होए ।। १५ ।। अपने प्रमाण के आधे के तीन भाग में बाहुल्य की कल्पना करनी चाहिए ।। १६ ।। बाहुल्य के तीन भाग में मेखला की कल्पना करनी चाहिए । खात को मेखला के समान और क्रमशः नीचे की ओर उसे (मेखला को) झुका हुआ होना चाहिए ।। १७ ।। मेखला के षोडशांश के बराबर खात का निर्माण करना चाहिए और उसी के प्रमाणानुसार पीठ की ऊँचाई बनानी चाहिए तथा उसके विकार अङ्ग का निर्माण करना चाहिए ।। १८ ।। उसका एक भाग भूमि में प्रविष्ट होना चाहिए और एक भाग से पिण्ड का निर्माण करना चाहिए । उसके तीन भाग से कण्ठ का निर्माण करना चाहिए और एक भाग में पट्टिका का निर्माण करना चाहिए ।। १९ ।। उसके दो भाग में ऊपर का पट्ट तथा एक-एक अंश में शेष पट्टिकाओं का निर्माण करना चाहिए । प्रत्येक भाग को कण्ठ पर्यन्त प्रविष्ट होना चाहिए ।। २० ।। उनके एक भाग में निर्गम जल निकलने का मार्ग बनाना चाहिए

मूलेऽङ्गुल्यग्रविस्तारमग्रे त्र्यंशेन चार्धतः । ईषन्निम्नं तु कुर्वीत खातं तच्चोत्तरेण वै ॥ २२ ॥ पिण्डिकासहितं लिङ्गमेतत्साधारणं स्मृतम् ॥ २३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये लिङ्गादिलक्षणवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

लिङ्गमानव्यक्ताव्यक्तलक्षणादिकथनम्

श्रीभगवानुवाच– **वक्ष्याम्यन्यप्रकारेण लिङ्गमानादिकं शृणु । वक्ष्ये लवणजं लिङ्गं घृतजं बुद्धिवर्धनम् ॥ १ ॥ भूतये वस्त्रलिङ्गं तु लिङ्गं तात्कालिकं विदुः । पक्वापक्वं मृण्मयं स्यादपक्वात्पक्वजं परम् ॥ २ ॥ ततो दारुमयं पुण्यं दारुजाच्छैलजं वरम् । शैलाद्वरं तु मुक्ताजं ततो लौहं सुवर्णजम् ॥ ३ ॥ राजतं कीर्तितं ताम्रं पैत्तलं भुक्तिमुक्तिदम् । रङ्गजं रसलिङ्गं च भुक्तिमुक्तिप्रदं वरम् ॥ ४ ॥ रसजं रसलोहादिरत्नगर्भं तु बन्धयेत्। मानादि नेष्टं सिद्धादिस्थापितेऽथ स्वयंभुवि ॥ ५ ॥ बाणे च स्वेच्छया तेषां पीठप्रासादकल्पना । पूजयेत्सूर्यबिम्बस्थं दर्पणे प्रतिबिम्बितम् ॥ ६ ॥ पूज्यो हरस्तु सर्वत्र लिङ्गे पूर्णार्चनं भवेत् । हस्तोत्तरोच्छ्रितं शैलं दारुजं तद्वदेव हि ॥ ७ ॥ चलमङ्गुलमानेन द्वारगर्भकरैः स्थिरम् । अङ्गुलादग्रहलिङ्गं स्याद्यावत्पञ्चदशाङ्गुलम् ॥ ८ ॥ द्वारमानात्त्रिसंख्याकं नवधागर्भमानतः । नवधागर्भमानेन लिङ्गं धाम्नि च पूजयेत् ॥ ९ ॥ एवं लिङ्गानि षट्त्रिंशज्ज्ञेयानि**

जो शेष पट्टिका पर्यन्त हो । प्रणालिका (नाली) के तीन भाग से तीन भागों से जाने वाले निर्गम को बनाना चाहिए ।। २१ ।। निर्गम के मूल में चौड़ाई अंगुलि के अग्रभाग के समान होना चाहिए उसे आगे अंगुलि के तीन भाग के समान फिर आधी अंगुल के बराबर होना चाहिए ।।२२ ।। निर्गम से उत्तर थोड़ा नीचे खात बनाना चाहिए । पिण्डिका के साथ इसे साधारण लिङ्ग कहा जाता है।।२३।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का (शिवलिङ्ग) आदि के स्वरूप वर्णन नामक तिरपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५३ ॥

श्रीभगवान् ने कहा– अब मैं दूसरे प्रकार से शिवलिंग के प्रमाण आदि का वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनो । अब मैं बुद्धि को बढ़ाने वाले लवणजन्य तथा घृतजन्य लिङ्ग का वर्णन करूँगा।।१।। तत्काल वस्त्र से बनाया गया (शिव) लिङ्ग समृद्धिकारक होता है । मिट्टी का बनाया हुआ लिङ्ग दो प्रकार का होता है । पक्व तथा अपक्व । अपक्व की अपेक्षा पक्व मिट्टी का लिङ्ग श्रेष्ठ होता है ।।२।। उससे भी लकड़ी का बना लिङ्ग अधिक पुण्यप्रद होता है और उससे भी श्रेष्ठ पत्थर का बना लिंग श्रेष्ठ होता है । उससे भी श्रेष्ठ मुक्ता (मोती) का (शिव) लिङ्ग होता है ।। ३ ।। चाँदी, ताम्बा तथा पित्तल का बना हुआ शिवलिङ्ग भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला होता है । रंगा तथा पारद का बना हुआ शिवलिंग भोग तथा मोक्ष प्रदान करने के लिए श्रेष्ठ है ।। ४ ।। पारद के बने लिंग के भीतर पारद लोहा आदि (ताम्बा, रजत एवं सुवर्ण आदि) करके बनवाना चाहिए । सिद्ध पुरुषों के द्वारा स्थापित अथवा स्वयम् उत्पन्न शिवलिंग के विषय में प्रमाण आदि का कोई भी बन्धन नहीं है।।५।। बाण शिवलिंग (नर्मदेश्वर) के विषय में भी यही बात है ।उनके पीठ तथा प्रासाद की कल्पना अपनी इच्छा के अनुसार कर लेनी चाहिए । सूर्य बिम्ब में स्थित शिवलिङ्ग की पूजा दर्पण में प्रतिबिम्बित रूप से करनी चाहिए ।। ६ ।। शिव जी सर्वत्र पूज्य हैं, किन्तु शिवलिङ्ग में उनकी पूजा पूर्ण होती है । पत्थर तथा लकड़ी के बने शिवलिङ्ग को एक हाथ ऊँचा होना चाहिए ।। ७ ।। चल शिवलिङ्ग को अङ्गुल के मान से निर्माण करना चाहिए तथा स्थिर शिवलिङ्ग के द्वार तथा गर्भगृह को हाथ के मान से बनाना चाहिए । गृह में स्थापित शिवलिङ्ग की ऊँचाई एक अंगुल से लेकर पन्द्रह अंगुल पर्यन्त होनी चाहिए । ८ ।। श्रेष्ठ प्रमाण के अनुसार द्वारमान के अनुसार लिङ्ग तीन प्रकार के होते हैं और गर्भमान के अनुसार उन प्रत्येक के नव-नव भेद होते हैं । इस तरह लिङ्गों के सत्ताइस (२७) भेद हुए और गर्भमान के शुद्ध नव भेदों को मिलाकर लिंग भेदों की संख्या छत्तीस हो जाती है । इन्हीं लिंगों की गृह में पूजा करनी चाहिए ।। ९ ।। मध्यमान के अनुसार भी लिङ्गों के (३६) छत्तीस

ज्येष्ठमानतः । मध्यममानेन षट्त्रिंशत्षट्त्रिंशदधमेन च ॥ १० ॥ इत्थमैक्येन लिङ्गानां शतमष्टोत्तरं भवेत् । एकाङ्गुलादि पञ्चान्तं कनिष्ठं चलमुच्यते॥ ११ ॥ षडादिदशपर्यन्तं चललिङ्गं च मध्यमम् । एकादशाङ्गुलादि स्याज्ज्येष्ठं पञ्चदशान्तिकम् ॥ १२ ॥ षडङ्गुलं महारत्नै रत्नैरन्यैर्नवाङ्गुलम्। रविभिर्हेमतारोत्थं लिङ्गं शेषैस्त्रिपञ्चभिः ॥ १३ ॥ षोडशांशे च वेदांशे युगं लुप्तोर्ध्वदेशतः । द्वात्रिंशत्षोडशांशाश्च कोणयोस्तु विलोपयेत् ॥ १४॥ चतुर्निवेशनात्कण्ठो विंशतिस्त्रियुगैस्तथा । पार्श्वाभ्यां विलुप्ताभ्यां घनलिङ्गं भवेद्वरम् ॥ १५॥ धाम्नो युगर्तुनागांशैर्द्वारमानोनितं क्रमात् । लिङ्गे द्वारोच्छ्रयादर्वाग्भवेत्पादोनितं क्रमात् ॥ १६ ॥ गर्भार्धेनाधमं लिङ्गं भूतांशैः स्यात्त्रिभिर्वरम् । तयोर्मध्ये च सूत्राणि सप्त सम्पातयेत्समम्॥ १७ ॥ एवं स्युर्नवसूत्राणि भूतसूत्रैश्च मध्यमम्। द्व्यन्तरो वामभागश्च लिङ्गानां दीर्घतानव ॥ १८ ॥ हस्ताद्विवर्धते हस्तो यावत्स्युर्नव पाणयः । हीनमध्योत्तमं लिङ्गं त्रिविधं त्रिविधात्मकम् ॥ १९ ॥ एकैकलिङ्गमध्येषु त्रीणि त्रीणि च पादशः । लिङ्गानि घटयेद्धीमान्षट्सु चाष्टोत्तरेषु च ॥ २०॥ स्थिरदीर्घप्रमाणैस्तु द्वारगर्भकरात्मिका । भागेशं चाऽऽप्यमीशं च देवेशं तुल्यसंज्ञितम् ॥ २१ ॥ चत्वारि लिङ्गरूपाणि विष्कम्भेण तु लक्षयेत् । दीर्घमायान्वितं कृत्वा लिङ्गं कुर्यात्त्रिरूपकम् ॥ २२ ॥ चतुरष्टाष्टवृत्तं च तत्त्वत्रयगुणात्मकम् । लिङ्गानामीप्सितं दैर्घ्यं तेन कृत्वाऽङ्गुलानि वै ॥ २३॥ ध्वजाद्या यैः सुरैर्भूतैः शिखिभिर्वा हरेत्कृती । तान्यङ्गुलानि यच्छेषं लक्षयेच्च शुभाशुभम् ॥ २४ ॥ ध्वजाद्या ध्वजसिंहेभवृषाः श्रेष्ठाः परेऽशुभाः। स्वरेषु षड्जगान्धारपञ्चमाः

भेद होते हैं और अधममान के अनुसार भी लिङ्गों के छत्तीस (३६) भेद होते हैं ।। १० ।। इस तरह से सबों को जोड़ देने से लिङ्ग के भेदों की संख्या (१०८) एक सौ आठ हो जाती है । एक अंगुल से लेकर पाञ्च अंगुल पर्यन्त लम्बे चल शिवलिंग अधम कोटि के होते हैं ।। ११ ।। छह अंगुल से लेकर (१०) दस अंगुल पर्यन्त लम्बे चल शिवलिंग मध्यम कोटि के होते हैं । ग्यारह (११) अंगुल से लेकर पन्द्रह (१५) अंगुल पर्यन्त के लम्बे चल शिवलिंग उत्तम कोटि के होते हैं । १२ ।। महारत्नों से बने शिवलिंगों को छह अंगुल का, अन्य रत्नों से बने शिवलिंगों को नव अंगुल का, हेमसार (सुवर्णभार) से बने शिवलिंग को बारह अंगुल का तथा उससे भिन्न वस्तुओं से बने शिवलिंग को पन्द्रह अंगुल का होना चाहिए ।। १३ ।। लिङ्गशिला के सोलहवें तथा चतुर्थ भाग में ऊपर से दो भाग को मिटाकर दोनों कोनों के बत्तीसवें तथा सोलहवें भाग को मिटा देना चाहिए ।। १४ ।। उसमें चार अंश मिला देने से कण्ठ बनता है । दोनों बगल के बारह-बारह अंशों को मिटा देने से बना हुआ लिङ्ग श्रेष्ठ चल लिङ्ग होता है । मन्दिर की ऊँचाई को सोलह अंशों में विभक्त करके उसमें चार अंश कम ऊँचा करने से उत्तम द्वार, छह अंश कम करने से मध्यम द्वार तथा आठ अंश कम करने से अधम द्वार होता है । इसी तरह द्वार की ऊँचाई को एक चौथाई कम ऊँचाई उत्तम लिङ्ग, दो चौथाई कम ऊँचाई मध्यम लिङ्ग तथा तीन चौथाई कम ऊँचा अधम कोटि का लिंग होता है।।१५-१६।। गर्भशिला के आधे भाग की ऊँचाई वाला अधम लिंग होता है तथा तीन भाग की ऊँचाई वाला उत्तम लिंग होता है । दोनों के बीच में बराबर-बराबर दूरी पर सात सूत्र बनाए । इस तरह से कुल मिलाकर नव सूत्र हो जाते हैं । इनमें से पाँच सूत्रों की लम्बाई के बराबर ऊँचाई वाला शिवलिङ्ग मध्यम कोटि का होता है । लिङ्गों की लम्बाई में दो-दो अंशों का अन्तर होने से लिङ्गों की संख्या नव हो जाती है ।। १८ ।। यदि हाथ से नापकर शिवलिङ्ग बनाया जाय तो एक-एक हाथ शिवलिङ्गों की लम्बाई बढ़ने से शिवलिङ्ग एक हाथ से लेकर नव हाथ तक लम्बे होंगे । ये शिवलिङ्ग तीन प्रकार के होते हैं, अधम लिङ्ग, मध्यमलिङ्ग तथा उत्तमलिङ्ग ।। १९ ।। एक-एक प्रकार के लिङ्ग में तीन-तीन लिङ्गों को लेना चाहिए । एक हाथ से तीन हाथ तक के लिङ्ग, अधम लिङ्ग, चार हाथ से छह हाथ तक के मध्यम लिङ्ग और सात हाथ से नव हाथ तक के उत्तम लिङ्ग होते हैं । बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह लिङ्गों को छह तथा अष्टोत्तरशत भागों में विभक्त करे । स्थिर तथा दीर्घ प्रमाणों के द्वारा तीन मान होते हैं, द्वारमान । इन्हीं मानों के आधार पर इन लिंगों के तीन नाम हैं- भागेश, जलेश तथा देवेश ।। २०-२१ ।। विस्तार के अनुसार लिंगों के चार रूप होते हैं- लम्बाई तथा चौड़ाई से युक्त करके तीन प्रकार का लिंग बनाना चाहिए।।२२।। ये तीनों प्रकार के शिवलिंग चार अथवा आठ हाथ के होते हैं तथा तत्त्वत्रय के गुण से युक्त होते ह। लिङ्ग की अभिप्रेत लम्बाई का अंगुल बनाकर उसमें आठ, सात, पाँच तथा तीन का भाग देने से जितने अंगुल शेष बचें उनके अनुसार उनका शुभ तथा अशुभ फल जानना चाहिए।।२३-२४।।

शुभदायकाः ॥ २५ ॥ भूतेषु च शुभा भूः स्यादग्निश्चाऽऽहवनीयकः । उक्तायामस्य चार्धांशे नागांशैर्भाजिते क्रमात्॥२६॥ रसभूतांशषष्ठांशत्र्यंशाधिकशरैर्भवेत्। आढ्यानाढ्यसुरेज्यार्क तुल्यानां चतुरस्रता ॥ २७ ॥ पञ्चमं वर्धमानाख्यं व्यासान्नाहप्रवृद्धितः। द्विधा भेदा बहून्यत्र वक्ष्यन्ते विश्वकर्मतः ॥ २८ ॥ आढ्यादीनां त्रिधा स्थौल्यादवधूतं तथाऽष्टधा । त्रिधा हस्ताज्जिनाख्यं च युक्तं सर्वसमेन च ॥२९॥ पञ्चविंशतिलिङ्गानि नाढ्ये देवार्चिते तथा । पञ्चसप्तभिरेकत्वाज्जिनैर्भक्तैर्भवन्ति हि ॥ ३० ॥ चतुर्दशसहस्राणि चतुर्दशशतानि च । एवमष्टाङ्गुलविस्तारो नवैककरगर्भतः ॥ ३१ ॥ तेषां कोणार्धकोणस्थैश्छिन्द्यात्कोणानि सूत्रकैः । विस्तारं मध्यतः कृत्वा स्थाप्यं वा मध्यतस्त्रयम् ॥ ३२ ॥ विभागादूर्ध्वमष्टास्रो द्व्यष्टास्रः स्याच्छिवांशकः । पादाज्जावन्तको ब्रह्मा नाभ्यन्तो विष्णुरित्यतः ॥३३॥ मूर्धान्तो भूतभागेशो व्यक्ताऽव्यक्ते च तद्वति । पञ्चलिङ्गव्यवस्थायां शिरो वर्तुलमुच्यते ॥ ३४ ॥ छत्राभं कुक्कुटाभं वा बालेन्दुपुरुषाकृति । एकैकस्य चतुर्भेदैः कामभेदात्फलं वदे ॥ ३५ ॥ लिङ्गमस्तकविस्तारं वसुभक्तं तु कारयेत् । आद्यभागं चतुर्धा तु विस्तारोच्छ्रायतो भजेत् ॥ ३६ ॥ चत्वारि तत्र सूत्राणि भागभागानुपातनात् । पुण्डरीकं तु भागेन विशालाख्यं विलोपनात्॥३७॥ त्रिशातनात्तु श्रीवत्सं शत्रुकृद्वेदलोपनात्। शिरः सर्वसमे श्रेष्ठं कुक्कुटाभं सुराह्वये ॥३८ ॥ चतुर्भागात्मके लिङ्गे त्रपुषं द्वयलोपनात्।

ध्वजादि में ध्वज (आठ) सिंह (सात) हाथी (पाँच) तथा वृषभ (तीन) शुभ आय (शेष) हैं और उससे भिन्न अशुभ । स्वरों में षड्ज, गान्धार और पञ्चम स्वर शुभ है ।।२५।। भूतों में पृथिवी शुभ है और अग्नियों में आह्वनीय अग्नि शुभ है । उपर्युक्त विस्तार के आधे भाग में आठ से भाग देने पर रस (सात) भूत (पाँच) छह तथा तीन अंश रहने पर शिवलिङ्ग क्रमशः, आढ्य, अनाढ्य, देवपूज्य तथा अर्क (सूर्य) तुल्य हो जाते हैं । ये सभी शिलिङ्ग चतुरस्र होते हैं ।। २६-२७ ।। व्यास की अपेक्षा नाह की अधिकता होने पर वर्द्धमान नामक पाँचवाँ शिवलिंग होता है । इस तरह शिवलिंग के दो भेद होते हैं– (१) जिसमें ब्यास की अपेक्षा नाह बड़ा होता है और (२) जिसमें नाह की अपेक्षा ब्यास बड़ा होता है । विश्वकर्मा के अनुसार शिवलिङ्ग के बहुत से भेद बताए जाते हैं ।। २८।। आढ्य आदि तीनों लिङ्ग के भेद स्थौल्य के कारण प्रत्येक के तीन भेद हो जाते हैं । उन सबों के एक-एक यव न्यूनता के कारण आठ-आठ भेद हो जाते हैं । इस तरह प्रत्येक के चौबीस-चौबीस भेद हो जाते हैं । हस्तमान से बने इन संज्ञक भेद को भी आढ्य अनाढ्य तथा सुरेज्य भेद के साथ मिला देने से प्रत्येक के पच्चीस पच्चीस भेद होते हैं । इस तरह तीनों के समस्त भेदों को मिलाकर शिवलिङ्गों के पच्चहत्तर भेद हो जाते हैं । उन प्रत्येक के साथ एक-एक जिन तथा मध्य के साथ सांकर्य करने से शिवलिङ्गों की संख्या चौदह हजार चौदह सौ अर्थात् पन्द्रह हजार चार सौ (१५४००) हो जाती है । इसी तरह आठ अंगुल प्रमाण का शिवलिंग एकाङ्गुल मान, हस्तमान तथा गर्भमान के भेद से नव प्रकार का होता है ।। ३१ ।। उन सबों के कोणार्ध तथा कोण में विद्यमान सूत्रों के द्वारा कोणों को काटना चाहिए । मध्यभाग के विस्तार को ही प्रमाण मानकर उनके मध्यभाग तथा ऊर्ध्वभाग की कल्पना करनी चाहिए ।। ३२ ।। मध्यभाग से ऊपर आठ कोणों वाला अथवा सोलह कोणों वाला भाग शिवांश होता है । पाद से लेकर जानुपर्यन्त का लिङ्ग का भाग ब्रह्मा का अंश होता है, उससे ऊपर नाभिपर्यन्त का अंश विष्णु का और उससे ऊपर मूर्धापर्यन्त का भाग शिव का होता है । यह सिद्धान्त व्यक्त तथा अव्यक्त सभी प्रकार के लिङ्गों से सम्बन्धित है । पञ्चलिङ्ग व्यवस्था में शिवलिङ्ग का सिर गोल होता है ।। ३३-३४ ।। वह गोला सिर छत्र के समान अथवा कुक्कुटाण्ड के समान होना चाहिए। उसकी आकृति बाल चन्द्रमा से युक्त पुरुष की आकृति वाली होनी चाहिए । इन प्रत्येक शिवलिङ्गों के कामना भेद के कारण चार-चार भेद होते हैं, जिसे मैं बतला रहा हूँ ।।३५।। लिङ्ग के मस्तक के विस्तार को आठ भागों में विभक्त करना चाहिए, उसके प्रथम भाग को विस्तार से चार गुना ऊँचा होना चाहिए ।। ३६ ।। उसके भागों में विभक्त करने के कारण चार भाग हो जाते हैं । उसके एक भाग को मिटा देने से पुण्डरीक नामक शिवलिङ्ग बनता है, दो भागों का लोप करने से विशाल नामक शिवलिङ्ग बनता है, तीन अंशों को मिटा देने से श्रीवत्स नामक शिवलिङ्ग बनता है और चार भागों का लोप करने से शत्रुकृत् (शत्रुओं के विनाशक) नामक शिवलिङ्ग बनता है । चारों ओर से एक समान सिर होने पर वह शिवलिङ्ग श्रेष्ठ होता है तथा सुरेज्य नामक शिवलिङ्ग का सिर कुक्कुटाण्ड के समान होता है ।। ३७-३८ ।। चार भागों वाले शिवलिङ्ग के दो भागों का लोप करने पर त्रपुष् नामक शिवलिङ्ग होता है । अनाढ्य अथवा नामक शिवलिङ्ग का

अनाढ्यस्य शिरः प्रोक्तमर्धचन्द्रं शिरः शृणु ॥ ३९ ॥ अंशात्प्रान्ते युगांशैश्च द्वैकहान्याऽमृताक्षकम् । पूर्णबालेन्दुकुमुदं द्वित्रिवेदक्षयात्क्रमात्॥४०॥ चतुस्त्रिरेखं वदनं मुखलिङ्गमतः शृणु । पूजाभागः प्रकर्तव्यो मूर्त्यग्निपदकल्पितः ॥ ४१ ॥ अर्कांशं पूर्ववत्त्यक्त्वा षट्स्थानानि च वर्तयेत् । शिरोन्नतिः प्रकर्तव्या ललाटं नासिका ततः॥ ४२ ॥ वदनं चिबुकं ग्रीवा युगभागैर्भुजाक्षिभिः । कराभ्यां मुकुलीकृत्य प्रतिमायाः प्रमाणतः ॥ ४३॥ मुखं प्रति समः कार्यो विस्तारादष्टमांशतः । चतुर्मुखं मया प्रोक्तं त्रिमुखं चोच्यते शृणु ॥ ४४ ॥ कर्णपादाधिकास्तस्य ललाटादीनि निर्दिशेत् । भुजौ चतुर्भिर्भागैस्तु कर्तव्यौ पश्चिमोर्जितौ ॥ ४५ ॥ विस्तरादष्टमांशेन मुखानां प्रतिनिर्गमः। एकवक्त्रं तथा कार्यं पूर्वस्यां सौम्यालोचनम्॥ ४६॥ ललाटनासिकावक्त्रग्रीवायां च विवर्तयेत् । भुजाच्च पञ्चमांशेन भुजहीनं विवर्तयेत् ॥ ४७ ॥ विस्तारस्य षडंशेन मुखैर्निर्गमनं हितम् । सर्वेषां मुखलिङ्गानां त्रपुषं वाऽथ कुक्कुटम् ॥ ४८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये लिङ्गमानव्यक्ताव्यक्तलक्षणादिकथनं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पिण्डिकालक्षणम्

श्रीभगवानुवाच— **अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रतिमानां तु पिण्डिकाम् । दैर्घ्येण प्रतिमा तुल्या तदर्धेन तु विस्तृता ॥ १ ॥ उच्छ्रिताऽऽयामतोऽर्धेन सुविस्ताराऽर्धभागतः। तृतीयेन तु वा तुल्यां तत्त्रिभागेन मेखलाम् ॥ २ ॥ खातं च तत्प्रमाणं तु किञ्चिदुत्तरतो नतम् । विस्तारस्य चतुर्थेन तोयमार्गं**

सिर अर्द्धचन्द्राकार होता है । अब उसके विषय में सुनो ।। ३९ ।। शिवलिङ्ग के प्रान्त भाग के चार भागों में एक अंश को हटा देने से अमृताक्ष नामक, दो अंशों को हटाने से पूर्णेन्दु नामक, तीन भागों को हटा देने से बालेन्दु नामक तथा चार अंशों को हटा देने से कुमुद नामक शिवलिङ्ग बनता है ।। ४० ।। इनमें से द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ क्रमशः चतुर्मुख,त्रिमुख और द्विमुख होते हैं । अब मुख लिङ्ग के विषय में सुनो । पूजा भाग की कल्पना तीन प्रकार से करनी चाहिए, मूर्तिपूजा, अग्निपूजा और पदपूजा ।।४१।। पहले के ही समान बारह अंश को छोड़कर निम्नांकित छह स्थानों को बनाना चाहिए। सर्वप्रथम सिर की ऊँचाई बनानी चाहिए, उसके पश्चात् ललाट बनाना चाहिए और उसके पश्चात् नासिका ।।४२।। तदनन्तर मुख, चिबुक् तथा ग्रीवा को बनाना चाहिए। चार भागों में दोनों भुजाओं तथा नेत्रों को बनाना चाहिए । पुनः प्रतिमा के प्रमाण (आकार) के अनुसार मुकुल के समान हाथों को बनाकर विस्तार के अष्टमांश (आठवें भाग) में प्रत्येक मुख को एक समान बनाना चाहिए । इस तरह से चतुर्मुख प्रतिमा के संबन्ध में मैंने कहा । अब मैं तीन मुख वाली मूर्ति के विषय में बतला रहा हूँ सुनो ।।४४।। तीन मुख वाली मूर्ति के चतुर्मुख मूर्ति की अपेक्षा कान तथा पैर बड़े होते हैं । उसके ललाट आदि पहले के ही समान होते हैं । चार भागों में पश्चिम की ओर उठे हुए दोनों भुजाओं को बनाना चाहिए ।।४५।। विस्तार के अष्टमांश के द्वारा मुखों का निर्गम बनाना चाहिए। इसी तरह एक मुख वाले लिङ्ग को बनाए उसका मुख पूर्व की ओर नेत्र सौम्य होने चाहिए ।।४६।। इस लिङ्ग के ललाट, नासिका, तथा टेढ़ी ग्रीवा में उभाड़ होनी चाहिए। इसे भुजा के पाँचवें अंश से किन्तु भुजाओं से रहित रूप में ही बनाना चाहिए । विस्तार के छठें अंश से मुखों का निर्गम बनाना ठीक रहता है । सभी मुख लिङ्ग त्रपुष् अथवा कुक्कुटाण्ड के समान होते हैं ।।४७।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का (शिव) लिङ्ग के प्रमाण आदि तथा उनके व्यक्त एवं अव्यक्त आदि स्वरूप का वर्णन नामक चौवनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५४॥

श्रीभगवान् ने कहा— इसके बाद मैं प्रतिमाओं की पिण्डिका (पीठिका) का वर्णन करूँगा । पिण्डिका की लम्बाई प्रतिमा के समान तथा चौड़ाई प्रतिमा के आधी होनी चाहिए ।। १ ।। पीठिका

तु कारयेत् ॥ ३ ॥ तन्मूलस्य विस्तारमग्रे कुर्यात् तदर्धतः । विस्तारस्य तृतीयेन तोयमार्गं तु कारयेत् ॥ ४ ॥ पिण्डिकार्धेन वा तुल्यं दैर्घ्यमीशस्य कीर्तितम् । ऐशं वा तुल्यदीर्घं च ज्ञात्वा सूत्रं प्रकल्पयेत् ॥ ५ ॥ उच्छ्रायं पूर्ववत्कुर्याद्भागषोडशसंख्यया। अधः षट्कं द्विभागं तु कण्ठे कुर्यात्त्रिभागकम् ॥ ६ ॥ शेषास्त्वेकैकशः कार्याः प्रतिष्ठा निर्गमस्तथा । पट्टिका पिण्डिका चेयं सामान्यप्रतिमासु च ॥ ७ ॥ प्रासादद्वारमानेन प्रतिमाद्वारमुच्यते । गजव्यालकसंयुक्ता प्रभास्यात्प्रतिमासु च ॥ ८ ॥ पिण्डिकाऽपि यथाशोभं कर्तव्या सततं हरेः । सर्वेषामेव देवानां विष्णूक्तं मानमुच्यते ॥ ९ ॥ देवीनामपि सर्वासां लक्ष्म्युक्तं मानमुच्यते ॥ १० ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पिण्डिकालक्षणवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दशदिक्पालयागकथनम्

श्रीभगवानुवाच– **प्रतिष्ठापञ्चकं वक्ष्ये प्रतिमात्मा तु पूरुषः । प्रकृतिः पिण्डिका लक्ष्मीः प्रतिष्ठा योगकस्तयोः ॥ १ ॥ इच्छाफलार्थिभिस्तस्मात्प्रतिष्ठा क्रियते नरैः । गर्भसूत्रं तु निःसार्य प्रासादस्याग्रतो गुरुः ॥ २ ॥ अष्टषोडशविंशान्तं मण्डपं चाधमादिकम् । स्नानार्थं कलशार्थं च यागद्रव्यार्थमर्धतः॥३॥ त्रिभागेणार्धभागेन वेदिं कुर्यात्तु शोभनाम् । कलशैर्घटिकाभिश्च वितानाद्यैर्विभूषयेत् ॥ ४ ॥ पञ्चगव्येन संप्रोक्ष्य सर्वद्रव्याणि धारयेत् । अलङ्कृतो**

की ऊँचाई तथा लम्बाई मूर्ति की ऊँचाई के आधा तथा चौड़ाई के आधा अथवा तृतीय भाग के तुल्य होना चाहिए और पीठिका के तिहाई भाग के बराबर मेखला होनी चाहिए ।। २ ।। उसके (मेखला के) कुछ उत्तर भाग में एक गढ़ा बनाना चाहिए जो उत्तर की ओर कुछ झुका हुआ हो । गढ़े के विस्तार के चौथाई भाग में जल निकलने का मार्ग बनाना चाहिए ।। ३ ।। उसके मूल का विस्तार आगे की ओर आधा करना चाहिए । विस्तार के तिहाई भाग में जल निकलने का मार्ग बनाना चाहिए ।। ४ ।। पिण्डिका के आधे भाग के तुल्य प्रतिमा की लम्बाई होनी चाहिए । अथवा उसी के बराबर प्रतिमा का परिमाण जानकर सूत्र बनाना चाहिए ।। ५ ।। सोलह भाग के बराबर प्रतिमा की ऊँचाई का अधोभाग बारह अंश के बराबर और तीन भाग की संख्या के बराबर कण्ठ बनाना चाहिए।।६।। अवशिष्ट प्रतिष्ठा, निर्गम तथा पट्टिका को एक-एक भाग में बनाना चाहिए । यही सामान्य प्रतिमाओं की पिण्डिका का लक्षण है ।। ७ ।। प्रासाद द्वार के मान के बराबर प्रतिमा द्वार बतलाया गया है । प्रतिमाओं के चारों ओर गज (हाथी) तथा सर्प से युक्त प्रभा होनी चाहिए ।। ८ ।। श्रीभगवान् की पिण्डिका भी सुशोभित बनाना चाहिए । सभी देवताओं के लिए भगवान् विष्णु की प्रतिमा का मान तथा सभी देवियों की प्रतिमा के लिए लक्ष्मी की प्रतिमा का मान बतलाया गया है ।। ९ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का पिण्डिका आदि के स्वरूप का वर्णन नामक पचपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५५ ॥

श्रीभगवान् ने कहा– अब मैं प्रतिष्ठापञ्चक का वर्णन कर रहा हूँ । पुरुष (परमात्मा) प्रतिमास्वरूप हैं और प्रकृति लक्ष्मी पिण्डिका स्वरूप हैं । प्रतिष्ठा प्रकृति (लक्ष्मी) तथा पुरुष (परमात्मा) का संयग कराती हैं ।। १ ।। अतएव मनोभिलषित फल की प्राप्ति चाहने वाले मनुष्य प्रतिष्ठा करते हैं । आचार्य को चाहिए कि गर्भसूत्र को प्रासाद मण्डप के आगे निकालें । आठ हाथ, सोलह हाथ और बीस हाथ के मण्डप क्रमशः अधम, मध्यम तथा उत्तम कोटि के होते हैं । याग मण्डप का आधा भाग स्नान कराने के लिए, कलश रखने के लिए एवं याग सामग्री रखने के लिए होना चाहिए।।२-३।। आधे भाग के तीन हिस्से में मनोहर वेदी बनानी चाहिए और उसे कलश, घटिका तथा चंदोवा आदि से सजाना चाहिए ।। ४ ।। पञ्चगव्य से प्रोक्षण करके सभी द्रव्यों को रखना चाहिए । आचार्य

गुरुर्विष्णुं ध्यात्वा तं च प्रपूजयेत् ॥ ५ ॥ अङ्गुलीयप्रभृतिभिर्मूर्तिपान्प्रार्थनादिभिः । कुण्डे कुण्डे स्थापयेच्च मूर्तिपांस्तत्र पारगान् ॥ ६ ॥ चतुष्कोणे चार्धकोणे वर्तुले पद्मसंन्निभे । पूर्वादौ तोरणार्थं तु पिप्पलोदुम्बरौ वटः ॥ ७ ॥ प्लक्षः सुशोभनं पूर्वं सुभद्रं दक्षतोरणम् । सुकर्माणं सुहोत्रं च आप्ये सौम्ये समुच्छ्रयम् ॥ ८ ॥ पञ्चहस्तं तु संस्थाप्य स्योना पृथिवीति पूजयेत् । तोरणस्तम्भमूले तु कलशान्मङ्गलाङ्कुरान् ॥ ९ ॥ प्रदद्यादुपरिष्टाच्च कुर्याच्चक्रं सुदर्शनम् । पञ्चहस्तप्रमाणस्तु ध्वजः कार्यो विचक्षणैः ॥ १० ॥ वैपुल्यं चास्य कुर्वीत षोडशाङ्गुलसंमितम् । सप्तहस्तोच्छ्रितं चास्य कुर्याद्दण्डं सुरोत्तम ॥ ११ ॥ अरुणोऽग्निनिभश्चैव कृष्णः शुक्लोऽथ पीतकः । रक्तवर्णस्तथा श्वेतश्चैते वर्णाः क्रमाद्ध्वजे ॥ १२ ॥ कुमुदः कुमुदाक्षश्च पुण्डरीकोऽथ वामनः । शङ्कुकर्णः सर्पनेत्रः सुमुखः सुप्रतिष्ठितः ॥ १३ ॥ पूज्या कोटिगणैर्युक्ताः पूर्वाद्या ध्वजदेवताः । जलाढकसुपूरास्तु पक्वबिम्बोपमाघटाः ॥ १४ ॥ अष्टाविंशाधिकशतं कालमण्डन वर्जिताः । सहिरण्या वस्त्रकण्ठाः सोदकास्तोरणाद्बहिः ॥ १५॥ घटाः स्थाप्याश्च पूर्वादौ वेदिकायाश्च कोणगाः । चतुरः स्थापयेत्कुम्भानाजिघ्रेति समन्ततः ॥ १६ ॥ कुम्भेष्वावाह्य शक्रादीन्पूर्वादौ पूजयेत्क्रमात् । इन्द्राऽऽगच्छ देवराज वज्रहस्त गजस्थित ॥ १७ ॥ पूर्वद्वारं च मे रक्ष देवैः सह नमोऽस्तुते । त्रातारमिन्द्रमन्त्रेण अर्चयित्वा यजेद्बुधः ॥ १८ ॥ आगच्छाग्ने शक्तिहस्त छागस्थ बलसंयुत । रक्षाऽऽग्नेयी दिशः देवैः पूजां गृह्णन्नमोऽस्तुते ॥ १९ ॥ अग्निमूर्धेति मन्त्रेण यजेद्वा अग्नये नमः । महिषस्थ यमाऽऽगच्छ दण्डहस्त महाबल ॥ २० ॥ रक्षस्व दक्षिणं द्वारं वैवस्वत नमोऽस्तु । वैस्वतं संयमनमित्यनेन यजेद्यमम् ॥ २१ ॥ नैर्ऋताऽऽगच्छ खड्गाढ्य बलवाहनसंयुत । इदमर्घ्यमिदं पाद्यं रक्षत्वं नैर्ऋतीं दिशम् ॥ २२ ॥ एष ते नैर्ऋतेत्यादि यजेदर्घ्यादिभिर्नरः । मकरारूढ वरुण पाशहस्त

को चाहिए कि वे स्वयम् अलंकृत होकर भगवान् विष्णु का ध्यान करके उनकी पूजा करें ।। ५ ।। प्रत्येक चतुष्कोण, अर्धकोण, वर्तुल (वृत्त) तथा पद्मकुण्डों के सन्निकट अंगूठी आदि (नवीन वस्त्र आदि) से समलंकृत पारङ्गत मूर्तिपालक विद्वानों को प्रार्थनापूर्वक बैठाना चाहिए ।। ६ ।। पूर्व आदि (दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर) दिशाओं में तोरण के लिए पिप्पल, गूलर, बट एवं पाकड़ के पत्तों का प्रयोग उत्तम माना गया है ।। ७ ।। पूर्व दिशा के द्वार का नाम सुशोभन, दक्षिण दिशा के द्वार का नाम सुभद्र, पश्चिम द्वार का नाम सुकर्मा तथा उत्तर द्वार का नाम सुहोत्र होता है । द्वारों को ऊँचा बनाना चाहिए ।। ८ ।। पाञ्च हाथ के तोरण स्तम्भ की स्थापना करके उसकी 'स्योना पृथिवी नो भवा' इत्यादि मन्त्र से पूजा करनी चाहिए । स्तम्भ के मूल में मङ्गलमय कलश तथा अंकुरों को रखना चाहिए । मण्डप द्वार के उत्तर सुदर्शन चक्र बनाना चाहिए । विद्वान् पुरुष को पाञ्च हाथ लम्बा ध्वजा बनाना चाहिए ।। ९-१० ।। उसकी चौड़ाई सोलह अंगुल होनी चाहिए । हे सुरोत्तम! ध्वज का दण्डा सात हाथ ऊँचा करना चाहिए ।। ११ ।। पूर्वादि दिशाओं के ध्वजा का वर्ण क्रमशः अरुण, अग्नि के समान, काला, उजला, पीला, लाल तथा श्वेत होना चाहिए ।। १२ ।। कोटि गुणों से युक्त पूर्वादि ध्वजों के अधिष्ठातृ रूप से (१) कुमुद, (२) कुमुदाक्ष, (३) पुण्डरीक, (४) वामन, (५) शङ्कुकर्ण, (६) सर्पनेत्र, (७) सुमुख तथा (८) सुप्रतिष्ठित की पूजा करनी चाहिए । जल से अच्छी तरह से परिपूर्ण तथा पके हुए विम्ब के समान कलशों को होना चाहिए ।। १४ ।। इन कलशों की स्त्रंख्या एक सौ अट्ठाइस (१२८) होनी चाहिए, ये कालिमा से रहित सुवर्ण से युक्त हों, इनके गले में वस्त्र लपेटा गया होना चाहिए । तथा इन्हें जल से भरा होना चाहिए । इनकी स्थापना तोरण से बाहर करनी चाहिए तथा वेदी के चारों कोनों में चार कलशों की स्थापना (आजिध्रकलशम्)' इत्यादि मन्त्र से करना चाहिए । पूर्वादि दिशाओं के कलशों में इन्द्र आदि देवताओं का आवाहन करके उनकी क्रमशः पूजा करनी चाहिए ।। १५-१६ ।। इन्द्र का आवाहन इस मन्त्र से करना चाहिए- **'इन्द्रागच्छ देवराज वज्रहस्त गजस्थित । पूर्वद्वारं च मे रक्ष देवैः सह नमोस्तु ते ॥'** अर्थात् गज पर सवार तथा वज्रधारण किए हुए हे इन्द्र ! आप देवताओं के साथआइये और मेरे पूर्व द्वार की रक्षा कीजिए, आपको नमस्कार है । पुनः विद्वान् को चाहिए कि 'त्रातारमिन्द्र' इत्यादि मन्त्र से इन्द्र का पूजन करे ।। १७-१८ ।। अग्नि का आवाहन निम्नांकित मन्त्र से करना चाहिए– आगच्छाग्ने शक्तिहस्त छागस्थ बलसंयुत ।। रक्षाग्नेयीं दिशं देवैः पूजां गृह्ण नमोस्तुते ।। अर्थात् छाग पर सवार बलवान् तथा शक्ति हाथ में लिए हुए अग्निदेव ! आप देवताओं के साथ आकर अग्नि दिशा की रक्षा करें और मेरी पूजा स्वीकार करें ।। १९ । तथा 'अग्निमूर्धादिवः' इत्यादि मन्त्र से 'अग्नये नमः' मन्त्र के अन्त में लगाकर पूजन करना चाहिए ।। १९ ।। दक्षिण दिशा में यम का आवाहन

महाबल ॥ २३ ॥ आगच्छ पश्चिमद्वारं रक्ष रक्ष नमोऽस्तु ते । उरुं हि राजा वरुण यजेदर्घ्यादिभिर्गुरुः ॥ २४ ॥ आगच्छ वायो सबल ध्वजहस्तसवाहन । वायव्यं रक्ष देवैस्त्वं समरुद्भिर्नमोऽस्तु ते ॥ २५॥ वात इत्यादिभिश्चार्चेदों नमो वायवेऽपि वा । आगच्छ सोम सबल गदाहस्त सवाहन ॥ २६ ॥ रक्षत्वमुत्तरं द्वारं सकुबेर नमोऽस्तु ते । सोमं राजानमिति वा यजेत्सोमाय वै नमः ॥ २७ ॥ आगच्छेशान सबल शूलहस्त वृषस्थित । यज्ञमण्डपस्यैशानीं दिशं रक्ष नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥ ईशानमस्येति यजेदीशानाय नमोऽपि वा । ब्रह्मन्नागच्छ हंसस्थ स्रुक्स्रुवव्यग्रहस्तक॥२९॥ सलोकोर्ध्वां दिशं रक्ष यज्ञस्याज नमोऽस्तु ते । हिरण्यगर्भेतियजेन्नमस्ते ब्रह्मणेऽपि वा ॥ ३०॥ अनन्तागच्छ चक्राढ्य कूर्मस्थाहि गणेश्वर । अधोदिशं रक्ष रक्ष अनन्तेश नमोऽस्तु ते ॥ ३१ ॥ नमोऽस्तु सर्पेति यजेदनन्ताय नमोऽपि वा ॥ ३२ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दशदिक्पालयागकथनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

इस मंत्र से करना चाहिए- 'महिषस्थ यमागच्छ दण्डहस्त महाबल ।। रक्षत्वं दक्षिणं द्वारं वैवस्वत नमोऽस्तुते ।।' अर्थात् महिष पर सवार महाबलवान् तथा हाथ में दण्ड लिए हुए यमराज आप आएँ। हे वैवस्वत ! दक्षिण द्वार की रक्षा करें,आपको नमस्कार है । यमराज की पूजा- 'वैस्वतं संयमनम्' इत्यादि मन्त्र से करनी चाहिए ।। २०-२१ ।। यज्ञमण्डप के नैऋत्यकोण में नैऋति का आवाहन इस मन्त्र से करना चाहिए- 'नैऋतजागच्छ खड्गाढ्य बलवाहन संयुत ।। इदमर्घ्यमिदं पाद्यं रक्षत्वं नैऋतीं दिशम् ।।' हे बलवाहन ! खड्गधारण किए हुए निऋति देव ! आप आएँ, यह अर्घ्य पाद्य आपके लिए है, आप नैऋत्य दिशा की रक्षा करें । 'एष ते नैऋते, इत्यादि मन्त्र से निऋति देवता को अर्घ्य आदि से पूजन करना चाहिए ।। २२ ।। यज्ञमण्डप की पश्चिम दिशा में वरुण का आवाहन इस मन्त्र से करना चाहिए 'मकरारूढ वरुण ! पाशहस्तमहाबल । आगच्छ पश्चिम द्वारं रक्ष रक्ष नमोऽस्तुते ।। अर्थात् मकर (घड़ियाल) पर सवार महाबलशाली तथा हाथ में पाश लिए हुए वरुण आप आइये और पश्चिम द्वार की रक्षा कीजिए । आपको नमस्कार है । 'उरुं हि राजा वरुणं' इत्यादि मन्त्र से अर्घ्य देकर आचार्य को वरुण की पूजा करनी चाहिए ।। २३-२४ ।। वायव्य दिशा में वायु का इस मन्त्र से आवाहन करना चाहिए- 'आगच्छ वायो सबल ध्वजहस्त सवाहन । वायव्यं रक्ष देवैस्त्वं समरुद्भिर्नमोऽस्तुते।।' अर्थात् हे बाहन सहित बलवान् ध्वजा हाथ में लिए हुए वायो ! आप आइये और देवताओं तथा मरुतों के साथ वायव्य दिशा की रक्षा कीजिए, आपको नमस्कार है । 'वात' इत्यादि मन्त्र से अथवा 'ओम् नमो वायवे' इत्यादि मन्त्र से वायु की अर्चना करनी चाहिए ।।२५।। यज्ञमण्डप की उत्तर दिशा में सोम का आवाहन इस मन्त्र से करें- 'आगच्छ सोम सबल गदाहस्त सबाहन । रक्षत्वमुत्तरं द्वारं सकुबेर नमोस्तुते ।। अर्थात् हे बाहन सहित, बलशाली,गदाधारण करने वाले सोम आप कुबेर के साथ आइये तथा उत्तर द्वार की रक्षा कीजिए आपको नमस्कार है । सोम की पूजा 'सोमाय नमः' इस नाम के मन्त्र से अथवा 'सोमं राजानम्' इत्यादि वैदिक मन्त्र से करनी चाहिए ।। २६-२७ ।। ईशानकोण में ईशान (श्री शंकरजी) का आवाहन इस मन्त्र से करे- 'आगच्छेशान सबल शूलहस्त वृषस्थित । यज्ञमण्डपस्यैशानीं दिशं रक्ष नमोऽस्तुते।।' अर्थात् हे बलशाली ईशान, वृषारूढ़, शूलधारी ईशान आप आएँ और यज्ञमण्डप की ईशान दिशा की रक्षा करें, आपको नमस्कार है । ईशान की पूजा 'ईशानमस्य' इत्यादि वैदिक मन्त्र से अथवा 'ईशानाय नमः' इस मन्त्र से करे- 'ब्रह्मन्नागच्छ हंसस्थ स्रुक्स्रुवा व्यग्रहस्तक। सलोकोर्ध्वां दिशं रक्ष यज्ञस्याज नमोऽस्तुते ।।' अर्थात् हे हंसारूढ़,अपने हाथ में स्रुक् तथा स्रुवा धारण करने वाले ब्रह्मन् आप आइये सम्पूर्ण लोकों के साथ यज्ञ की ऊपर की दिशा की रक्षा कीजिए। हे अज ! आपको नमस्कार है । ब्रह्मा की पूजा 'हिरण्यगर्भ' इत्यादि मन्त्र से अथवा 'नमस्ते ब्रह्मणे' इस मन्त्र से करनी चाहिए।।२९-३०।। अनन्त का आवाहन इस मन्त्र से करना चाहिए- अनन्तागच्छ चक्राढ्य कूर्मस्थाहिगणेश्वर । अधो दिशं रक्ष-रक्ष अनन्तेश नमोऽस्तुते ।' अर्थात् हे कूर्म पर विद्यमान सर्पों के स्वामिन् ! चक्र से सुशोभित, अनन्त ! आप आइये, नीचे की दिशा की रक्षा कीजिए। हे अनन्तेश ! आपको नमस्कार है । अनन्त की पूजा 'अनन्ताय नमः' इस नाम के मन्त्र से अथवा 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः' इत्यादि वैदिक मन्त्र से करनी चाहिए ।। ३१-३२ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का दिक्पालों के याग वर्णन नामक छप्पनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५६ ॥

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कलशाधिवासविधिकथनम्

श्रीभगवानुवाच– **भूमेः परिग्रहं कुर्यात्क्षिपेद्व्रीहींश्च सर्षपान् । नारसिंहेन रक्षोघ्नान्प्रोक्षयेत्पञ्चगव्यतः ॥ १ ॥ भूमिं घटे तु सम्पूज्य सरत्ने साङ्गकं हरिम् । अस्त्रमन्त्रेण करकं तत्र चाष्टशतं यजेत् ॥ २ ॥ अच्छिन्नधारया सिञ्चन्व्रीहीन्संस्कृत्य धारयेत् । प्रदक्षिणं परिभ्राम्य कलशं विकिरोपरि ॥ ३॥ सवस्त्रे कलशे भूयः पूजयेदच्युतं श्रियम् । योगे योगेति मन्त्रेण न्यसेच्छय्यां तु मण्डले ॥ ४ ॥ कुशोपरि तूलिकां च शय्यायां दिग्विदिक्षु च । विद्याधिपान्यजेद्विष्णुं मधुघातं त्रिविक्रमम् ॥ ५ ॥ वामनं दिक्षु वह्न्यादौ श्रीधरं च हृषीकपम् । पद्मनाभं दामोदरमैशान्यां स्नानमण्डपे ॥ ६ ॥ अभ्यर्च्य पश्चादैशान्यां चतुष्कुम्भे सवेदिके । स्नानमण्डपे सर्वद्रव्याण्यानीय निक्षिपेत् ॥ ७ ॥ स्नानकुम्भेषु कुम्भांस्तांश्चतुर्दिक्ष्वधिवासयेत् । कलशाः स्थापनीयास्तु अभिषेकार्थमादरात् ॥ ८ ॥ वटोदुम्बरकाश्वत्थांश्चम्पकाशोकश्रीद्रुमान् । पलाशार्जुनप्लक्षांस्तु कदम्बबकुलाम्रजान् ॥ ९ ॥ पल्लवांस्तु समानीय पूर्वकुम्भे विनिक्षिपेत् ॥ ९ ॥ पद्मकं रोचनां दूर्वां दर्भपिञ्जूलमेव च ॥ १० ॥ जातीपुष्पं कुन्दपुष्पं चन्दनं रक्तचन्दनम् । सिद्धार्थं तगरं चैव तण्डुलं दक्षिणे न्यसेत् ॥ ११ ॥ सुवर्णं रजतं चैव कूलद्वयमृदं तथा । नद्याः समुद्रगामिन्या विशेषाज्जाह्नवीमृदम् ॥ १२ ॥ गोमयं च यवान्शालींस्तिलांश्चैव परे न्यसेत् । विष्णुपर्णीं शालपर्णीं भृङ्गराजं शतावरीम् ॥ १३॥ सहदेवीं वचां सिंहीं बलां व्याघ्रीं सलक्ष्मणाम् । ऐशान्यामपरे कुम्भे मङ्गलानि निवेशयेत् ॥ १४ ॥ वल्मीकमृत्तिकां सप्तस्थानोत्थामपरे न्यसेत् । जाह्नवीबालुकां तोयं विन्यसेदपरे घटे ॥ १५ ॥ वराहवृषनागेन्द्रविषाणोद्धृतमृत्तिकाम् । मृत्तिकां पद्ममूलस्य कुशस्य त्वपरे न्यसेत् ॥ १६ ॥ तीर्थपवित्रमृद्भिश्च युक्तमप्यपरे न्यसेत् । नागकेशरपुष्पं**

श्रीभगवान् ने कहा– भूमि का संस्कार करके नारसिंह मन्त्र पढ़कर रक्षोघ्न मन्त्र तथा नारसिंह मन्त्र से धान तथा पीली सरसों को छींटकर तथा पञ्चगव्य से भूमि का प्रोक्षण करना चाहिए ।।१।। रत्न से युक्त घट पर श्रीहरि तथा भूमि की साङ्ग पूजा करे तथा अष्टोत्तरशत करकों की पूजा करें ।। २ ।। निरवच्छिन्न जल धारा से ब्रीहि (धान) को संस्कारयुक्त करके प्रदक्षिणा करके धान के ऊपर कलश की स्थापना करनी चाहिए ।। ३ ।। पुनः वस्त्र से वेष्टित कलश में भगवान् अच्युत तथा श्रीदेवी की स्थापना करनी चाहिए । फिर- 'योगे योगे' इस मन्त्र से छाया का मण्डल में न्यास करना चाहिए ।। ४ ।। कुश के ऊपर रूई रखकर शय्या स्नान मण्डप को चारों दिशाओं तथा चारों विदिशाओं (कोणों) में विद्याधीशों की पूजा करें, भगवान् विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, तथा वामन की चारों दिशाओं में तथा अग्निकोण से लेकर ईशानकोण पर्यन्त चारों विदिशाओं में श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ तथा दामोदर की पूजा करनी चाहिए ।। ४-६ ।। इन सबों की पूजा करके उसके पश्चात् ईशानकोण में चार कलशों तथा वेदी से युक्त स्नानमण्डप में समस्त द्रव्यों को लाकर स्नान कलशों में डालें । उन कलशों को चारों दिशाओं में स्थापित करें । उन कलशों को आदरपूर्वक अभिषेक के लिए स्थापना करनी चाहिए ।। ७-८ ।। फिर वट, उदूम्बर (गूलर) पिप्पल, चम्पक, अशोक,बिल्व (श्रीद्रुम) पलाश, अर्जुन,प्लक्ष (पाकड़) कदम्ब,बकुल (मौल श्री) तथा आम के पल्लवों को लाकर पूर्वदिशा के कुम्भ में डालें ।। ९।। पद्म (कमल) रोचना,दूर्वा, कुश,हरिद्रा (पिञ्जूल) मालती के पुष्प, कुन्द के पुष्प, चन्दन, लाल चन्दन, सिद्धार्थ (पिल्ली सरसों) तगर तथा चावल दक्षिण दिशा के कलश में डालें ।। १०-११ ।। सुवर्ण, चाँदी, विशेष रूप से समुद्र गामिनी नदी गंगा के दोनों तटों की मिट्टी, गोमय (गोबर) यव, साठी धान तथा तिल पश्चिम दिशा के कलश में डालें।।१२।। विष्णुपर्णी, श्यामलता (शालपर्णी) भृङ्गराज, शतावर, सहदेवी, वच, सैंही, बला, लक्षणसहि व्याघ्री, इन माङ्गलिक औषधियों को ईशानकोण में स्थापित कुम्भ में डालें ।।१३-१४ ।। दूसरे कलश में बाल्मीक की मिट्टी तथा सप्तमृत्तिका को डालना चाहिए । एक दूसरे घड़े में गंगा नदी का जल तथा जंगा नदी का बालू डालना चाहिए ।। १५ ।। एक दूसरे कलश में बराह, बैल, तथा हाथी

च काश्मीरमपरे न्यसेत् ॥ १७ ॥ चन्दनागुरुकर्पूरैः पुष्पं चैवापरे न्यसेत् । वैदूर्यं विद्रुमं मुक्तां स्फटिकं वज्रमेव च ॥ 18॥ एतान्येकत्र निक्षिप्य स्थापयेद्देवसत्तमम् । नदीनदतडागानां सलिलैरपरे न्यसेत् ॥ १९॥ एकाशीतिपदे चान्यान्मण्डले कलशान्न्यसेत् । गन्धोदकाद्यैः सम्पूर्णाञ्श्रीसूक्तेनाभिमन्त्रयेत्॥२०॥ यवान्सिद्धार्थकं गन्धं कुशाग्रं चाक्षतांस्तथा । तिलान्फलं तथा पुष्पमर्घ्यार्थं पूर्वतो न्यसेत् ॥ २१ ॥ पद्मं श्यामलतां दूर्वां विष्णुपर्णीं कुशांस्तथा । पाद्यार्थं दक्षिणे भागे मधुपर्कं तु पश्चिमे ॥ २२ ॥ कक्कोलकं लवङ्गं च तथा जातीफलं शुभम् । उत्तरे ह्याचमनीयमग्नौ दूर्वाक्षतान्वितम् ॥ २३ ॥ पात्रं नीराजनार्थं च तथोद्वर्तनमानिले । गन्धपिष्टान्वितं पात्रमैशान्यां कलशे न्यसेत् ॥ २४ ॥ मुरामांसी चाऽऽमलकं सहदेवीं निशादिकम् । पुष्टिदीपान्न्यसेदष्टौ न्यसेन्नीराजनाय च ॥ २५ ॥ शङ्खं चक्रं च श्रीवत्सं कुलिशं पङ्कजादिकम् । हेमादिपात्रे कृत्वा तु नानावर्णादिपुष्पकम् ॥ २६ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कलशाधिवासविधिकथनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

स्नपनविध्यादिकथनम्

श्रीभगवानुवाच– **ऐशान्यां जनयेत्कुण्डं गुरुर्वह्निं च वैष्णवम् । गायत्र्याऽष्टशतं हुत्वा संपातविधिना घटान् ॥ १ ॥ प्रोक्षयेत्कारुशालायां शिल्पिभिर्मूर्तिपैर्व्रजेत् । तूर्यशब्दैः कौतुकं च बन्धयेद्दक्षिणे करे ॥ २ ॥ विष्णवे शिपिविष्टेति ऊर्णासूत्रेण सर्षपैः। पट्टवस्त्रेण कर्तव्यं देशिकस्यापि**

के शृङ्ग से खोदी गयी मिट्टी को तथा कमल एवं कुश के जड़ की मिट्टी को डालना चाहिए ।। १६ ।। एक कलश में तीर्थ तथा पर्वत की मिट्टी को डालें तथा दूसरे कलश में नागकेशर के पुष्प तथा केशर डालना चाहिए ।। १७ ।। एक दूसरे घड़े में चन्दन, अगरु तथा कर्पूर से युक्त पुष्प डालें, हे देवश्रेष्ठ ब्रह्मन् ! एक दूसरे घट में वैदूर्य, मूँगा, मोती, स्फटिक, तथा हीरा इन सबों को डालकर रखे ।। १८-१९।। दूसरे घट में नदी, नद तथा सरोवर के जल डालना चाहिए । १९ ।। अन्य कलशों की स्थापना इक्यासी खाने वाले मण्डप में करनी चाहिए । सभी कलशों को चन्दन के जल आदि से तथा श्रीसूक्त से अभिमन्त्रित करना चाहिए ।। २० ।। पूर्वदिशा में अर्घ्य के लिए यव, पीली सरसो, चन्दन, कुश का अग्रभाग, अक्षत, तिल,फल तथा पुष्प को रखना चाहिए ।।२१।। दक्षिण दिशा में पाद्य के लिए कमल, श्यामपर्णी, दूर्बा, विष्णुपर्णी तथा कुश को रखना चाहिए । पश्चिम दिशा में मधुपर्क रखना चाहिए ।। २२ ।। उत्तर दिशा में कंकोल, लवङ्ग तथा जातीफल से युक्त जल आचमन के लिए रखना चाहिए। अग्निकोण में नीराजन के लिए दूर्वा तथा अक्षत से युक्त पात्र रखें । इसी तरह वायव्य कोण में उबटन और ईशानकोण में चन्दन तथा पिष्टक (चूर्ण) युक्त एक पात्र को कलश पर रखें ।। २३-२४ ।। ईशानकोण में ही मुरा, मांसी, आँवला, सहदेई तथा हल्दी आदि रखे । नीराजन के लिए सुवर्ण आदि के पात्र में आठ पुष्टि दीपों को तथा शंख, चक्र, श्रीवत्स, कुलिश तथा कमल आदि को तथा अनेक रंग के पुष्पों को रखना चाहिए ।। २५-२६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का कुम्भाधिवास नामक सत्तावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५७ ॥

श्रीभगवान् ने कहा– आचार्य को चाहिए कि वे ईशानकोण में कुण्ड बनाकर उसमें वैष्णवाग्नि की स्थापना करें । अष्टोत्तर शत गायत्री से हवन करके घटों का प्रोक्षण करें । मूर्ति की रक्षा करने वाले शिल्पियों के साथ कार्यशाला में जायँ । तूरी के शब्दों के साथ 'विष्णवे शिपिविष्ट' इत्यादि मन्त्र से मूर्ति के दाहिने हाथ में पीली सरसों से बने कंकण को ऊनी सूते से बाँधें । आचार्य का

कौतुकम् ॥ ३ ॥ मण्डले प्रतिमां स्थाप्य सवस्त्रां पूजितां स्तुवन् । नमस्तेऽर्च्ये सुरेशानि प्रणीते विश्वकर्मणा ॥ ४ ॥ प्रभाविताशेषजगद्धात्रि तुभ्यं नमो नमः । त्वयि सम्पूजयामीशे नारायणमनामयम् ॥ ५ ॥ रहिता शिल्पिदोषैस्त्वमृद्धियुक्ता सदा भव । एवं विज्ञाप्य प्रतिमां नयेत्तां स्नानमण्डपम्॥ ६॥ शिल्पिनं तोषयेद्द्रव्यैर्गुरवे गां प्रदापयेत् । चित्रं देवेति मन्त्रेण नेत्रे चोन्मीलयेत्ततः ॥ ७ ॥ अग्निर्ज्योतीति दृष्टिं च दद्याद्वै भद्रपीठके । ततः शुक्लानि पुष्पाणि घृतं सिद्धार्थकं तथा ॥ ८ ॥ दूर्वां कुशाग्रं देवस्य दद्याच्छिरसि देशिकः । मधुवातेतिमन्त्रेण नेत्रे चाभ्यञ्जयेद्गुरुः ॥ ९ ॥ हिरण्यगर्भमन्त्रेण इमं मेति च कीर्तयेत् । घृतेनाभ्यञ्जयेत्पश्चात्पठन्घृतवतीं पुनः ॥ १०॥ मसूरपिष्टेनोद्वर्त्य अतो देवेति कीर्तयेत् । क्षालयेदुष्णतोयेन सप्त तेऽग्नेति देशिकः ॥ ११ ॥ द्रुपदादिवेत्यनुलिम्पेदापो हिष्ठेति सिञ्चयेत्। नदीजैस्तीर्थजैः स्नानं पावमानीति रत्नजैः ॥ १२ ॥ समुद्रं गच्छ गच्छेति तीर्थमृत्कलशेन च ॥ १२ ॥ शं नो देवीः स्नापयेच्च गायत्र्याऽप्युष्णवारिणा ॥ १३ ॥ पञ्चमृद्भिर्हिरण्येति स्नापयेत्परमेश्वरम् । सिकताद्भिरिमं मेति वल्मीकोद्घटेन च ॥ १४ ॥ तद्विष्णोरिति ओषध्यद्भिर्या ओषधि मन्त्रतः । यज्ञा यज्ञेति काषायैः पञ्चभिर्गव्यकैस्ततः ॥ १५॥ पयः पृथिव्यां मन्त्रेण याः फलीति फलाम्बुभिः । विश्वतश्चक्षुः सौम्येन पूर्वेण कलशेन च ॥ १६ ॥ सोमं राजानमित्येवं विष्णोरराटं दक्षतः । हंसः शुचि पश्चिमेन कुर्यादुद्वर्तनं हरेः॥१७॥ मूर्धानमितिमन्त्रेण धात्रीमांस्युदकेन च। मानस्तोकेति मन्त्रेण गन्धद्वारेति गन्धकैः ॥ १८ ॥ इदमापेति च घटैरेकाशीतिपदस्थितैः । एह्येहि भगवन्विष्णो लोकानुग्रहकारक ॥ १९ ॥ यज्ञभागं गृहाणेमं वासुदेव नमोऽस्तु ते । अनेनाऽऽवाह्य देवेशं कुर्यात्कौतुकमोचनम् ॥ २० ॥ मुञ्चामि

भी कंकण बंधन वस्त्र से करना चाहिए ।। १-३ ।। वस्त्र से युक्त प्रतिमा की स्थापना करके यह प्रार्थना करे- हे सुरेशानि ! आपको नमस्कार है, आप विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित हैं ।। ४ ।। प्रभाव से पूर्ण सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाली आपको नमस्कार है। हे स्वामिनि ! आपमें ही सम्पूर्ण दोषों से रहित भगवान् नारायण की मैं पूजा कर रहा हूँ ।। ५ ।। शिल्पी के दोषों से रहित तुम सदा समृद्धि से सम्पन्न होओ । इस प्रकार से प्रार्थना करके प्रतिमा को स्नान मण्डप में लाना चाहिए ।। ६ ।। द्रव्य प्रदान करके शिल्पी को सन्तुष्ट करे और आचार्य को गोदान करना चाहिए । उसके पश्चात् **'चित्रं देवाना'** इत्यादि मन्त्र से दोनों नेत्रों को खोलना चाहिए ।। ७ ।। **'अग्निर्ज्योति'** इत्यादि मन्त्र से भद्रपीठ पर देखना चाहिए ।। ७।। उसके पश्चात् आचार्य देवता के सिर पर उजले पुष्प, घी, पीली सरसो, दूर्वा तथा कुशाग्र रखें । **'मधुवाता'** इत्यादि मन्त्र से मूर्ति के नेत्रों में आञ्जन लगाएँ ।। ८-९ ।। पुनः **'हिरण्यगर्भः'** इत्यादि मन्त्र को तथा **'इमं मे'** इस मन्त्र को पढ़ना चाहिए। फिर **'घृतवती'** इत्यादि ऋचा को पढ़ते हुए मूर्ति के शरीर में घी लगाना चाहिए ।। १० ।। मसूर के चूर्ण से उबटन लगाकर **'अतो देवा'** इत्यादि मन्त्र को पढ़ना चाहिए । पुनः आचार्य 'सप्त तेऽग्ने' इत्यादि मन्त्र पढ़कर गर्मजल से मूर्ति को स्नान करायें ।। ११ ।। 'द्रुपदादिव' इत्यादि मन्त्र से अनुलेपन करके **'आपोहिष्ठा'** इत्यादि मन्त्र से अभिषेक करना चाहिए । रत्न से स्पर्श कराए गए नदी तथा तीर्थ के जल से **'पवमानी'** ऋचा पढ़कर स्नान कराए ।। १२ ।। पुनः **'समुद्रं गच्छ'** इत्यादि मन्त्र से मिट्टी के कलश से तीर्थोदक का स्नान कराए । **'शन्नो देवीः'** तथा **'गायत्री'** मन्त्र से गर्म जल का स्नान कराना चाहिए ।। १३ ।। **'हिरण्यः'** इत्यादि मन्त्र से श्रीभगवान् को पञ्चमृत्तिका से स्नान कराना चाहिए । **'इमं मे'** इत्यादि मन्त्र से वल्मीक की मिट्टीसे बने घट के द्वारा सिकताजल से स्नान कराना चाहिए ।। १४ ।। **'या औषधिः'** इत्यादि मन्त्र से अथवा **'यज्ञायज्ञ'** इत्यादि मन्त्र से काषाय जल से तथा **'पयः पृथिव्याम्'** इत्यादि मन्त्र से पञ्चगव्य से स्नान कराना चाहिए । **'याः फलिनी'** इत्यादि मन्त्र से फल के जल से स्नान कराना चाहिए । **'विश्वतः चक्षुः'** इत्यादि मन्त्र से पूर्व तथा उत्तर के घट से स्नान कराना चाहिए ।। १५-१६।। 'सोमं राजानम्' इस मन्त्र से अथवा 'विष्णोरराटमसि' इत्यादि मन्त्र से दक्षिण के घट से स्नान कराना चाहिए । **'हंसः शुचिषत्'** इस मन्त्र से पश्चिम के घट से स्नान कराकर श्रीभगवान् को उबटन लगाए ।। १७ ।। 'मानस्तोके' इस मन्त्र से जटामाँसी के जल से एवं **'गन्धद्वाराम्'** इत्यादि मन्त्र से चन्दन के जल से स्नान कराना चाहिए ।। १८ ।। **'इदमाप'** इस मन्त्र से इक्यासी कोष्ठों में स्थित घटों से श्रीभगवान् को स्नान कराना चाहिए । पुनः श्रीभगवान् का इस मन्त्र से आवाहन करना चाहिए- **'एह्येहि भगवन् विष्णो ! लोकानुग्रहकारक । यज्ञभागं गृहाणेमं वासुदेव नमोऽस्तुते।'** अर्थात् हे सम्पूर्ण जीवों पर कृपा करने वाले भगवन् विष्णो, आप आइये; इस यज्ञभाग को स्वीकार कीजिए। हे वासुदेव ! आपको नमस्कार है । इस वाक्य से श्रीभगवान् का आवाहन करके उनका

त्वेति सूक्तेन देशिकस्यापि मोचयेत् । हिरण्मयेन पाद्यं दद्यादतो देवेति चार्घ्यकम् ॥ २१ ॥ मधुवाता मधुपर्कं मयि गृह्णामि चाऽऽचमेत्। अक्षन्नमीमदन्तेति किरेद्दूर्वाक्षतं बुधः ॥ २२॥ काण्डान्निर्मन्थनं कुर्याद्गन्धं गन्धवतीति च । उन्नयामीति माल्यं च इदं विष्णोः पवित्रकम् ॥ २३ ॥ वृहस्पतेवस्त्रयुग्मं वेदाहमुत्तरीयकम् । महाव्रतेन सकलान्पुष्पं चौषधयः क्षिपेत् ॥ २४ ॥ धूपं दद्याद्धूरसीति विभ्राट्सूक्तेन चाञ्जनम् । युञ्जन्तीति च तिलकं दीर्घायुष्ट्वेति माल्यकम् ॥ २५ ॥ इन्द्रच्छत्रेति च्छत्रं तु आदर्शं तु विराजतः । चामरं तु विकर्णेन भूषां रथन्तरेण च ॥ २६ ॥ व्यजनं वायुदैवत्यैःर्मुञ्चामि त्वेति पुष्पकम् । वेदाद्यैः संस्तुतिं कुर्याद्धरेः पुरुषसूक्ततः ॥ २७ ॥ सर्वमेतत्समं कुर्यात् पिण्डिकादौ हरादिके । देवस्योत्थानसमये सौपर्णं सूक्तमुच्चरेत् ॥ २८ ॥ उत्तिष्ठेति समुत्थाप्य शय्याया मण्डपे नयेत् । शाकुनेनैव सूक्तेन देवं ब्रह्मरथादिना ॥ २९ ॥ अतो देवेति सूक्तेन प्रतिमां पिण्डिकां तथा । श्रीसूक्तेन च शय्यायां विष्णो तु सकलीकृतिः ॥ ३० ॥ मृगराजं वृषं नागं व्यजनं कलशं तथा । वैजयन्तीं तथा भेरीं दीपमित्यष्टमङ्गलम्॥३१॥ दर्शयेदश्वसूक्तेन पाददेशे त्रिपादिति। उखां पिधानकं पात्रमम्बिकां दीर्धिकां ददेत्॥३२॥ मुसलोलूखलं दद्याच्छिलां समार्जनीं तथा। तथा भोजनभाण्डानि गृहोपकरणानि च॥३३॥ शिरोदेशे च निद्राख्यं वस्त्ररत्नयुतं घटम्। खण्डखाद्यैः पूरयित्वा शयनस्य विधिः स्मृतः॥३४॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्नपनविध्यादिकथनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

कंकणमोचन करना चाहिए ।।१९-२०।। '**मुञ्चामि त्वा**' इत्यादि सूक्त से आचार्य का भी कंकणमोचन करना चाहिए । '**हिरण्मयेन**' इत्यादि मन्त्र से पाद्य तथा '**अतोदेवा**' इत्यादि मन्त्र से अर्घ्य देना चाहिए ।। २१ ।। 'मधुवाता ऋतायते' इत्यादि मन्त्र से मधुपर्क देना चाहिए तथा '**मयि गृह्णामि**' इत्यादि मन्त्र से आचमन करना चाहिए । '**अक्षन्नमीमदन्त**' इत्यादि मन्त्र से विद्वान् को दुर्वा तथा अक्षत छिड़कना चाहिए ।। २२ ।। '**काण्डात् काण्डात्**' इत्यादि मन्त्र से निमन्थन करना चाहिए तथा '**गन्धवती**' इत्यादि मन्त्र से गन्ध समर्पित करना चाहिए । '**उन्नयाभि**' इस मन्त्र से माला एवं 'इदं विष्णु' इत्यादि मन्त्र से पवित्रक समर्पित करना चाहिए।।२३।। '**वृहस्पते**' इत्यादि मन्त्र से श्रीभगवान् को दो वस्त्र समर्पित करना चाहिए 'वेदाहम्' इत्यादि मन्त्र से सभी पुष्पों तथा औषधियों को चढ़ाना चाहिए ।। २४ ।। 'धूरसि' इत्यादि मन्त्र से धूप देना चाहिए तथा '**विभ्राट्**' सूक्त से आञ्जन समर्पित करना चाहिए । '**युञ्जन्ति**' इस मन्त्र से तिलक करना चाहिए । '**दीर्घायुष्ट्वा**' इस मन्त्र से माला चढ़ाना चाहिए ।। २५ ।। '**इन्द्रच्छत्र**' इस मन्त्र से छत्र समर्पित करना चाहिए तथा 'विराज' इत्यादि मन्त्र से आदर्श (दर्पण) समर्पित करना चाहिए,'**विकर्ण**' इत्यादि मन्त्र से चामर तथा '**रथन्तर**' इत्यादि मन्त्र से भूषण समर्पित करना चाहिए ।। २६ ।। जिन मन्त्रों के देवता वायु हैं, उनसे व्यजन तथा '**मुञ्चामित्वा**' इस मन्त्र से पुष्प समर्पित करना चाहिए ।चारों वेदों के आद्य चार मन्त्रों से तथा पुरुष सूक्त से श्रीहरि की स्तुति करनी चाहिए ।। २७ ।। ये सारी बातें समान रूप से पिण्डिका आदि तथा शंकर आदि की मूर्तियों पर करनी चाहिए । श्रीभगवान् के जगने के समय सुपर्ण सूक्त का पाठ करना चाहिए ।। २८ ।। '**उत्तिष्ठ**' इत्यादि मन्त्र से शय्या से उठाकर शकुन सूक्त का पाठ करते हुए ब्रह्मरथ से श्रीभगवान् को मण्डप में ले आना चाहिए ।। २९ ।। '**अतो देवाः**' इत्यादि सूक्त तथा श्रीसूक्त का पाठ करते हुए प्रतिमा तथा पिण्डिका तथा भगवान् विष्णु की सम्पूर्ण कृति को शय्या पर ले जाना चाहिए ।। ३० ।। सिंह, वृष,नाग, व्यजन, कलश,वैजयन्ती (पताका) भेरी तथा दीपक ये आठ मङ्गल वस्तुएँ हैं ।। ३१।। इन सबों को अश्व सूक्त से श्रीभगवान् को दिखाना चाहिए । 'त्रिपाद्' इत्यादि मन्त्र से श्रीभगवान् के चरणों में ऊखा, हांडी तकिया, पात्र, अम्बिका तथा दर्विका समर्पित करना चाहिए ।। ३२ ।। मुसल, उखल, शिला, सम्मार्जनी (झाड़ू) भोजन पात्र तथा गृह के उपकरण समर्पण करना चाहिए ।। ३३ ।। सिर की ओर वस्त्र, रत्न, मिष्ठान्न आदि से भरकर एकनिद्रा नामक घट रखना चाहिए । यही श्रीभगवान् की शयन की विधि बतलायी गयी है ।। ३४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का स्नपनविधि आदि का वर्णन नामक अट्ठावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।। ५८ ।।

अथैकोनषष्ठितमोऽध्यायः

अधिवासनविधिकथनम्

श्रीभगवानुवाच— हरेः सांनिध्यकरणमधिवासनमुच्यते । सर्वज्ञं सर्वगं ध्यात्वा आत्मानं पुरुषोत्तमम् ॥ १ ॥ ओंकारेण समायोज्या चिच्छक्तिमभिमानिनीम्।
निःसार्याऽऽत्मैकतां कृत्वा स्वस्मिन्सर्वगते विभौ ॥ २ ॥ योजयेन्मरुता पृथ्वीं बह्निबीजेन दीपयेत् । संहरेद्वायुना चाग्निं वायुमाकाशतो नयेत् ॥३॥
अधिभूताधिदेवैस्तु साध्याख्यै (त्मै) र्विभवैः सह । तन्मात्रपातकान्कृत्वा संहरेत्तत्क्रमाद्बुधः ॥ ४ ॥ आकाशं मनसाऽऽहृत्य मनोऽहंकरणे कुरु ।
अहंकारं च महति तं चाप्यव्याकृते नयेत् ॥ ५ ॥ अव्यकृतं ज्ञानरूपे वासुदेवः स ईरितः । सतामव्याकृतां मायामवष्टभ्य-सिसृक्षया ॥ ६ ॥ संकर्षणं
सशब्दात्मा स्पर्शाख्यमसृजत्प्रभुः। क्षोभ्य मायां स प्रद्युम्नं तेजोरूपं समासृजत् ॥ ७ ॥ अनिरुद्धं रसमात्रं ब्रह्माणं गन्धरूपकम् । अनिरुद्धः स च ब्रह्मा
अप आदौ ससर्ज ह ॥ ८ । तस्मिन्हिरणमयं चाण्डं सोऽसृजत्पञ्चभूतवत् । तस्मिन्सङ्क्रमिते जीवशक्तिरात्मोपसंहृता ॥ ९ ॥ प्राणो जीवेन संयुक्तो
वृत्तिमानिति शब्द्यते । जीवो व्याहृतिसंज्ञस्तु प्राणेष्वाध्यात्मिकः स्मृतः ॥ १० ॥ प्राणैर्युक्त ततो बुद्धिः संजाता चाष्टमूर्तिका । अहंकारस्ततो जज्ञे
मनस्तस्मादजायत ॥ ११ ॥ अर्थाः प्रजज्ञिरे पञ्च संकल्पादियुतास्ततः । शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्ध इति स्मृताः ॥ १२ ॥
ज्ञानशक्तियुतान्येतैरारब्धानीन्द्रियाणि तु । त्वक् श्रोत्रघ्राणचक्षूंषि जिह्वाबुद्धीन्द्रियाणि तु ॥ १३ ॥ पादौ पायुस्तथा पाणी वागुपस्थश्च पञ्चमः ।
कर्मेन्द्रियाणि चैतानि पञ्च भूतान्यतः शृणु ॥ १४ ॥ आकाशवायुतेजांसि सलिलं पृथिवी तथा । स्थूलमेभिः शरीरं तु सर्वाधारं प्रजायते ॥ १५ ॥

श्रीभगवान् ने कहा— श्रीभगवान् का सान्निध्य प्रदान करने वाले अधिवासन को मैं बतला रहा हूँ । सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सम्पूर्ण जगत् की आत्मा पुरुषोत्तम श्रीभगवान् का ध्यान करके, अभिमानाश्रय स्वरूप चित् (चैतन्य) शक्ति को ओंकार से संयुक्त करके, उसको निकालकर अपने में सर्वव्यापक विभुस्वरूप परमात्मा से आत्मैक्यबुद्धि करके, पृथिवी तत्त्व को मरुततत्त्व से संयुक्त करना चाहिए और उसे अग्नि तत्त्व के द्वारा प्रदीप्त करे । वायु के द्वारा अग्नि का संहरण करके पुनः वायु को आकाश में मिलाना चाहिए ।। १-३ ।। विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वह साध्यनामक अधिभूत अथवा अधिदैव ऐश्वर्यों के साथ उन तत्त्वों के तन्मात्रा का पातन करके,उनका उन्हीं (भूतों के ही) क्रम से संहार करे ।। ४ ।। मन के द्वारा आकाश को पृथक् करे, मन को अहंकार से संयुक्त करके अहंकार को भी महत् तत्त्व में लीन करे और उस महत्तत्त्व को भी अव्याकृत (प्रकृति) तत्त्व में लीन करे ।। ५ ।। अव्याकृत को ज्ञानस्वरूप में लीन करे, उसी को वासुदेव कहा गया है । उस वासुदेव ने ही सृष्टि करने की इच्छा से उस माया को ही आश्रय बनाकर ।। ६ ।। शब्दस्वरूप उस परमात्मा ने स्पर्शनामक (स्पर्शाधिष्ठातृ देवता) संकर्षण की सृष्टि की । उसके पश्चात् परमात्मा ने माया को क्षुभित करके तेजः स्वरूप अनिरुद्ध की सृष्टि की ।। ७ ।। पुनः उस परमात्मा ने रसस्वरूप अनिरुद्ध की तथा गन्ध स्वरूप ब्रह्मा की सृष्टि की । उस अनिरुद्ध तथा ब्रह्मा ने सर्वप्रथम जल की सृष्टि की ।।८।। उस जल में ही ब्रह्मा ने हिरण्यमय पाञ्च भौतिक अण्ड की सृष्टि की । उसमें आत्मा से उपसंस्कृत जीव शक्ति के संक्रान्त होने पर जीव से संयुक्त प्राण वृत्तिभाव कहा जाता है । व्याहृति संज्ञक जीव ही प्राणों से संयुक्त होने पर आध्यात्मिक कहा जाता है ।। ९-१० ।। उसके पश्चात् प्राणों से संयुक्त बुद्धि आठ मूर्तियों वाली हो गयी । उस बुद्धि से ही अहंकार उत्पन्न हुआ है और अहंकार से मन उत्पन्न हुआ ।। ११ ।। उससे संकल्प आदि से युक्त पाञ्च विषय (अर्थ) उत्पन्न हुए । शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध ये ही पञ्च विषय हैं ।। १२ ।। इन्हीं (पञ्चविषयों अथवा पञ्चतन्मात्राओं) से ही ज्ञानशक्ति से युक्त पाञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न हुयीं । त्वक्, श्रोत्र, घ्राण, चक्षु एवं रसनेन्द्रिय ये पाञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ हैं तथा पाद, पायु, (मलेन्द्रिय) पाणि, वागिन्द्रिय तथा उपस्थ (जननेन्द्रिय) ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं । उनके पश्चात् पञ्चभूतों की उत्पत्ति हुयी । तुम सुनो ।। १३-१४ ।। आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी ये पाँचों स्थूलभूत हैं । इन पाँचों से सबों के आधारभूत शरीर की उत्पत्ति

एतेषां वाचका मन्त्रा न्यासायोच्यन्त उत्तमाः । जीवभूतं मकारं तु देहस्य व्यापकं न्यसेत् ॥ १६ ॥ प्राणतत्त्वं भकारं तु जीवोपाधिगतं न्यसेत् । हृदयस्थं बकारं तु बुद्धितत्त्वं न्यसेद् बुधः ॥ १७ ॥ फकारमपि तत्रैव ह्यहंकारमयं न्यसेत् । मनस्तत्त्वं पकारं तु न्यसेत्संकल्पसंभवम् ॥ १८ ॥ शब्दतन्मात्रतत्त्वं तु नकारं मस्तके न्यसेत् । स्पर्शात्मकं धकारं तु वक्त्रदेशे तु विन्यसेत् ॥ १९ ॥ दकारं रूपतत्त्वं तु दृग्देशे विनिवेशयेत् । थकारं बस्तिदेशे तु रसतन्मात्रकं न्यसेत् ॥ २० ॥ तकारं गन्धतन्मात्रं जङ्घयोर्विनिवेशयेत् । णकारं श्रोत्रयोर्न्यस्य ढकारं विन्यसेत्त्वचि ॥ २१ ॥ डकारं नेत्रयुग्मे तु रसनायां ठकारकम् । टकारं नासिकायां तु ञकारं वाचि विन्यसेत् ॥ २२ ॥ झकारं करयोर्न्यस्य पाणितत्त्वं विचक्षणः । जकारं पादयोर्न्यस्य छं पायौ चमुपस्थके ॥ २३ ॥ विन्यसेत् पृथिवीतत्त्वं ङकारं पादयुग्मके । वस्तौ घकारं गं तत्त्वं तैजसं हृदि विन्यसेत् ॥ २४ ॥ खकारं वायुतत्त्वं तु नासिकायां निवेशयेत् । ककारं विन्यसेन्नित्यं खतत्त्वं मस्तके बुध : ॥ २५ ॥ हृत्पुण्डरीके संन्यस्य यकारं सूर्यदैवतम् । द्वासप्ततिसहस्त्राणि हृदयादभिनिःसृताः ॥ २६ ॥ कलाषोडश संयुक्तं सकारं तत्र विन्यसेत्। तन्मध्ये चिन्तयेन्मन्त्री बिन्दुं वह्नेस्तु मण्डलम् ॥ २७ ॥ हकारं विन्यसेत्तत्र प्रणवेन सुरोत्तम । ॐ आं परमेष्ठ्यात्मने आं नमः पुरुषात्मने ॥ २८ ॥ ॐ वां नमो नित्यात्मने नां च विश्वात्मने नमः। ओं वं नमः सर्वात्मने इत्युक्ताः

होती है ।। १५ ।। इन सबों के वाचक शब्द उत्तम मन्त्रों को न्यास के लिए बतलाए जाते हैं । परमात्मा में व्यापक जीव के वाचक मकार का व्यापक रूप विन्यास करना चाहिए ।। १६ ।। जीव के उपाधि रूप से प्राण तत्त्व के वाचक भकार का न्यास करना चाहिए । बुद्धि तत्त्व के वाचक बकार का हृदय में न्यास करना चाहिए ।। १७ ।। अहंकार के वाचक फकार का भी हृदय में ही न्यास करना चाहिए । संकल्पजन्य पकार का मनस्तत्त्व के रूप में न्यास करना चाहिए ।। १८ ।। शब्दतन्मात्रा के वाचक नकार का मस्तक में न्यास करना चाहिए । स्पर्शतन्मात्रा के वाचक धकार का न्यास मुख में करना चाहिए ।। १९ ।। रूप तन्मात्रा के वाचक दकार का नेत्रों में न्यास करना चाहिए । रसतन्मात्रा के वाचक थकार का बस्ति प्रदेश में न्यास करना चाहिए ।। २० ।। गन्ध तन्मात्रा के वाचक तकार का दोनों जंघाओं में न्यास करना चाहिए । णकार का दोनों श्रोत्रों में न्यास करके ढ़कार का त्वचा में न्यास करना चाहिए ।। २१ ।। डकार का दोनों नेत्रों में, ठकार का जिह्वा में, टकार का नासिका में तथा ञकार का वाणी में न्यास करना चाहिए ।। २२ ।। पाणि इन्द्रिय के वाचक झकार का दोनों हाथों में न्यास करके, विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वह जकार का दोनों पैरों में, झकार का पायु इन्द्रिय में तथा चकार का उपस्थ में (जननेन्द्रिय) में न्यास करे ।। २३ ।। पृथिवी तत्त्व के वाचक ङकार का दोनों पैरों में, घकार का बस्ति में तथा तेज के वाचक 'गकार' का हृदय में न्यास करना चाहिए ।। २४ ।। वायुतत्त्व के वाचक 'खकार' का न्यास नासिका में करना चाहिए । विद्वान् को चाहिए कि वह आकाश तत्त्व के वाचक ककार का मस्तक में न्यास करे ।।२५।। सूर्य देवता के द्वारा अधिष्ठितयकार का हृदय में न्यास करना चाहिए । हृदय से ही बहत्तर हजार नाडियाँ निकली हैं ।। २६ ।। सोलह कलाओं से युक्त सकार का उस हृदय में ही न्यास करना चाहिए । मन्त्रज्ञ को उसके बीच में अग्निमण्डल विन्दु का चिन्तन करना चाहिए ।। २७ ।। हे सुरोत्तम ! उस विन्दु में ही प्रणव (ओम्) से युक्त हकार का न्यास करना चाहिए । **विशेष– यहाँ पर बतलाए गये न्यास मन्त्रों का स्वरूप इस प्रकार का होगा- ओम् मं नः जीवतत्त्वं सर्वदेहे न्यसामि, ओम् भं नमः प्राणतत्त्वे जीवौपाधौ न्यसामि । ओं बं नमः बुद्धितत्त्वं हृदये न्यसामि । ओम् फं नमः अहङ्कारं हृदये न्यसामि । ओम् पं नमः संकल्पात्मकं मनस्तत्त्वं न्यसामि । ओम् नं नमः शब्दतन्मात्रम् मस्तके न्यसामि । ओम् धं नमः स्पर्शतन्मात्रं मुखेन्यसामि। ओम् दं नमः रूपतन्मात्रं नेत्रयोः न्यसामि । ओम् थं नमः रसतन्मात्रं बस्ति देशे न्यसामि। ओम् तं नमः गन्धतन्मात्रं जङ्घयोः न्यसामि । ओम् णं नमः श्रोत्रयोः न्यसामि । ओम् ढं नमः त्वचि न्यसामि । ओम् डं नमः नेत्रयोर्न्यसामि । ओम् ठं नमः रसनायां न्यसामि । ओम् टं नमः नासिकायां न्यसामि । ओं ञं नमः वाचि न्यसामि । ओम् झं नमः पाणितत्त्वं करयोर्न्यसामि । ओम् घं नमः पादयोर्न्यसामि । ओम् छं नमः पायौ न्यसामि। ओम् चं नमः उपस्थे न्यसामि । ओम् ङं नमः पृथिवींतत्त्वं पादयोः न्यसामि । ओम् घं नमः बस्तौ न्यसामि । ओम् गं नमः तैजसतत्त्वं हृदि न्यसामि । ओम् खं नमः वायुतत्त्वं नासिकायां न्यसामि । ओम् कं नमः आकाशतत्त्वं मस्तके न्यसामि । ओम् यं नमः सूर्यं हृदये न्यसामि।**

पञ्चशक्तयः ॥ २९ ॥ स्नाने तु प्रथमा योज्या द्वितीया आसने मता । तृतीया शयने तद्वच्चतुर्थी यानकर्मणि ॥ ३० ॥ अभ्यर्चायां पञ्चमी स्यात् पञ्चोपनिषदः स्मृताः । हुंकारं विन्यसेन्मध्ये ध्यात्वा मन्त्रमयं हरिम् ॥ ३१ ॥ या मूर्त्तिः स्थाप्यते तस्याः मूलमन्त्रं न्यसेत्ततः। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय मूलकम् ॥ ३२ ॥ शिरोघ्राणललाटेषु मुखे कण्ठे हृदि क्रमात् । भुजयोर्जङ्घयोरङ्घ्र्योः केशवं शिरसि न्यसेत्॥ ३३॥ नारायणं न्यसेद्वक्त्रे ग्रीवायां माधवं न्यसेत् । गोविन्दं भुजयोर्न्यस्य विष्णुं च हृदये न्यसेत् ॥ ३४ ॥ मधुसूदनकं पृष्ठे वामनं जठरे न्यसेत् । कट्यां त्रिविक्रमं न्यस्य जङ्घायां श्रीधरं न्यसेत् ॥ ३५ ॥ हृषीकेशं दक्षिणायां पद्मनाभं तु गुल्फके । दामोदरं पादयोश्च हृदयादिषडङ्गकम्॥ ३६॥ एतत्साधारणं प्रोक्तमादिमूर्तेस्तु सत्तम । अथवा यस्य देवस्य प्रारब्धं स्थापनं भवेत् ॥ ३७ ॥ तस्यैव मूलमन्त्रेण सजीवकरणं भवेत् । यस्या मूर्तेस्तु यन्नाम तस्याऽऽद्यं चाक्षरं च यत् ॥ ३८ ॥ तत्स्वरैर्द्वादशैर्भेद्य ह्यङ्गानि परिकल्पयेत् । हृदयादीनि देवेश मूलं च दशमाक्षरम् ॥ ३९ ॥ यथा देवे तथा देहे तत्त्वानि विनियोजयेत् । चक्राब्जमण्डले विष्णुं यजेद्गन्धादिना तथा ॥ ४० ॥ पूर्ववच्चाऽऽसनं ध्यायेद् गात्रं सपरिच्छदम् । शुभं चक्रं द्वादशारं ह्युपरिष्टाद्विचिन्तयेत् ॥ ४१ ॥ त्रिनाभिचक्रं द्विनेमि स्वरैस्तच्च समन्वितम् । पृष्ठदेशे ततः प्राज्ञः प्रकृत्यादीन्निवेशयेत् ॥ ४२ ॥ पूजयेदरकाग्रेषु सूर्यं द्वादशधा पुनः। कलाषोडशसंयुक्तं सोमं तत्र विचिन्तयेत्॥४३॥ सबलत्रितयं नाभौ चिन्तयेद्देशिकोत्तमः । पद्मं च द्वादशदलं पद्ममध्ये विचिन्तयेत्॥४४॥

ओम् सं नमः कलाषोडशं हृदये न्यसामि । ओम् हं नमः हृदये न्यसामि ॥ नोट– इन सम्पूर्ण न्यासों को मूर्ति के न्यासोक्त अङ्गों का स्पर्श करके करना चाहिए । (१) ओं आं नमः परमेष्ठ्यात्मने, (२) ओं आं नमः पुरुषात्मने, (३) ओम् वां नमो निवृत्त्यात्मने, (४) ओम् नां नमः विश्वात्मने, (५) ओं वं नमः सर्वात्मने यह परमात्मा की पाञ्च शक्तियाँ बतलायी गयी हैं ।। २८-२९ ।। स्नान काल में प्रथम शक्ति का ध्यान करना चाहिए, आसन काल में द्वितीय शक्ति का, शयनकाल में तृतीय शक्ति का, यान (सवारी) के समय चतुर्थ शक्ति का और पूजनकाल में पाँचों शक्ति का ध्यान करना चाहिए । इन्हीं को पञ्चोपनिषत् कहा जाता है । मन्त्र स्वरूप श्रीहरि का ध्यान करके बीच में हुंकार का न्यास करना चाहिए ।।३०-३१ ।। उसके पश्चात् जिस मूर्ति की स्थापना करे उसके मूल मन्त्र का न्यास करना चाहिए । ओं नमो भगवते वासुदेवाय' यह मूलमन्त्र है ।। ३२ ।। भगवान् की मूर्तियों का उनके सिर, घ्राण, ललाट, मुख, कण्ठ, हृदय दोनों भुजाओं, दोनों जंघों तथा दोनों पैरों में न्यास करना चाहिए । केशव भगवान् का सिर में न्यास करना चाहिए ।। ३३ ।। नारायण का मुख में न्यास करना चाहिए, ग्रीवा में माधव का न्यास करना चाहिए, गोविन्द का दोनों भुजाओं में न्यास करना चाहिए । विष्णु का हृदय में न्यास करना चाहिए ।। ३४ ।। पृष्ठ में मधुसूदन का न्यास करना चाहिए, वामन का जठर में न्यास करना चाहिए, कटि में त्रिविक्रम का न्यास करना चाहिए और जंघा में श्रीधर का न्यास करना चाहिए ।। ३५ ।। हृषीकेश का दाहिनी जंघा में न्यास करना चाहिए, पद्मनाभ का गुल्फ प्रदेश में न्यास करना चाहिए, दामोदर का दोनों पैरों में न्यास करना चाहिए। इसके पश्चात् हृदयादि षडङ्गन्यास करना चाहिए । ३६ ।। हे देवश्रेष्ठ ! यह सामान्य रूप से आदिमूर्ति का न्यास बतलाया गया है । अथवा जिस मूर्ति की स्थापना की जा रही हो, उसी मूर्ति के मूलमन्त्र से सभी मूर्ति को सजीव बनाना चाहिए । भगवान् की जिस मूर्ति का जो नाम होता है, उस नाम का जो पहला अक्षर होता है।।३७-३८।। हे देवेश ! उसको बारह स्वरों से संयुक्त करके पृथक्-पृथक् द्वादश मन्त्रों की परिकल्पना कर लेनी चाहिए । पुनः हृदयादि षड्ङ्गों तथा दशम मूल अक्षर की कल्पना करनी चाहिए ।।३९।। जिस तरह देवता में तत्त्वों का न्यास करे उसी तरह से अपने देह में भी तत्त्वों का न्यास करना चाहिए । पुनः गन्ध आदि से चक्राब्ज मण्डल पर भगवान् विष्णु की चन्दन आदि से पूजा करनी चाहिए ।।४०।। गात्र तथा परिच्छेद के साथ पहले के ही समान श्रीभगवान् के आसन का ध्यान करना चाहिए, उनके ऊपर द्वादश अर वाले मङ्गलमय चक्र का ध्यान करना चाहिए, जिसमें तीन नाभिचक्र और दो नाभि हों और उसे स्वर से युक्त होना चाहिए । उसके पश्चात् प्राज्ञ पुरुष को मूर्ति के पृष्ठ भाग में प्रकृति आदि का सन्निवेश करना चाहिए ।। ४१-४२ ।। अरों के अग्रभाग में बारह सूर्यों का ध्यान करना चाहिए । वहीं पर सोलह कलाओं से युक्त चन्द्रमा का ध्यान करना चाहिए ।। ४३ ।। श्रेष्ठ आचार्य को बलराम के साथ प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध, इन तीनों का नाभि प्रदेश में ध्यान करना चाहिए।

तन्मध्ये पौरुषीं शक्तिं ध्यात्वाऽऽभ्यर्च्य च देशिकः । प्रतिमायां हरिं न्यस्य तत्र तं पूजयेत्सुरान् ॥ ४५ ॥ गन्ध पुष्पादिभिः सम्यक्साङ्गं सावरणं क्रमात् । द्वादशाक्षरबीजैस्तु केशवादीन्समर्चयेत् ॥ ४६ ॥ द्वादशारे मण्डले तु लोकपालादिकं क्रमात् । प्रतिमामर्चयेत्पश्चाद्गन्धपुष्पादिभिर्द्विजः ॥४७॥ पौरुषेण तु सूक्तेन श्रियः सूक्तेन पिण्डिकाम् । जननादिक्रमात्पश्चाज्जनयेद्वैष्णवानलम् ॥ ४८ ॥ हुत्वाऽग्निं वैष्णवैर्मन्त्रैः कुर्याच्छान्त्युदकं बुधः । तत्सिक्त्वा प्रतिमामूर्ध्नि वह्निप्रणयनं चरेत् ॥ ४९ ॥ दक्षिणेऽग्निंदूतमिति कुण्डे प्रणयेद्बुधः । अग्निमग्नीति पूर्वे तु कुण्डेऽग्निं प्रणयेद्बुधः॥ ५०॥ उत्तरे प्रणयेदग्निमग्निमग्नीहरामहे । अग्निप्रणयने मन्त्रस्त्वमग्ने द्युभिरुच्यते ॥ ५१ ॥ पलाशसमिधानां तु अष्टोत्तरसहस्रकम्। कुण्डे कुण्डे होमयेच्च व्रीहीन्वेदादिकैस्तथा ॥ ५२॥ साज्यांस्तिलान्व्याहृतिभिर्मूलमन्त्रेण वै घृतम्। कुर्यात्ततः शान्तिहोमं मधुरत्रितयेन च ॥ ५३ ॥ द्वादशार्णैः स्पृशेत्पादौ नाभिं हृन्मस्तकं ततः । घृतं दधि पयो हुत्वा स्पृशेन्मूर्धन्यथो ततः ॥ ५४ ॥ स्पृष्ट्वा शिरोनाभिपादांश्चतस्रः स्थापयेन्नदीः । गंगा च यमुना गोदा क्रमान्नाम्ना सरस्वती ॥ ५५ ॥ देहे तु विष्णुगायत्र्या गायत्र्या श्रपयेच्चरुम् । होमयेच्च बलिं दद्यादुत्तरे भोजयेद् द्विजान् ॥ ५६ ॥ मासाधिपानां तुष्ट्यर्थं हेमगां गुरवे ददेत् । दिक्पतिभ्यो बलिं दत्त्वा रात्रौ कुर्याच्च जागरम्॥५७॥ ब्रह्मगीतादिशब्देन सर्वभागधिवासनात् ॥ ५८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये देवताधिवासनविधिकथनं नामैकोनषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥



पद्म के बीच में द्वादश दल पद्म का चिन्तन करना चाहिए ।। ४४ ।। उसके बीच में पुरुष शक्ति का ध्यान करके आचार्य को प्रतिमा में श्रीहरि की स्थापना करके वहीं पर श्रीहरि तथा अन्य देवताओं का चन्दन पुष्प आदि से अच्छी तरह साङ्ग तथा आवरण सहित पूजन करना चाहिए । बारह अक्षर बीजों से केशव आदि (नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर,हृषीकेश, पद्मनाभ, तथा दामोदर की पूजा करनी चाहिए ।। ४५-४६ ।। द्वादशार मण्डल में क्रमशः लोकपाल आदि की पूजा करनी चाहिए । उसके पश्चात् आचार्य गन्ध, पुष्प आदि से प्रतिमा की अर्चना करें ।। ४७ ।। पिण्डिका का पूजन पुरुषसूक्त तथा श्रीसूक्त से करना चाहिए । तदनन्तर जन्मादि संस्कार के क्रम से आचार्य वैष्णवाग्नि की स्थापना करें ।। ४८ ।। विद्वान् को चाहिए कि वह विष्णु मन्त्रों से हवन करके शान्ति जल बनाए । उस प्रतिमा के सिर पर अभिषेक करके अग्नि का प्रणयन करे ।। ४९ ।। 'अग्निदूतम्' इत्यादि मन्त्र से दक्षिण कुण्ड में अग्नि बनाना चाहिए । विद्वान् को पूर्वकुण्ड में 'अग्नीमग्नी' इस मन्त्र से अग्नि बनाना चाहिए ।। ५० ।। उत्तर कुण्ड में 'अग्नीमग्नी हवामहे' इत्यादि मन्त्र से अग्नि बनाना चाहिए ।। 'त्वमग्ने द्युभिः' यह अग्निप्रणयन का मन्त्र है ।। ५१ ।। वेद आदि के मन्त्रों से प्रत्येक कुण्ड में एक हजार आठ पलाश की समिधा तथा ब्रीहि का हवन करना चाहिए ।। ५२ ।। व्याहृतियों से श्रेष्ठ तिलों का, मूलमन्त्र से घी का हवन करने के बाद त्रिमधु (घी, चीनी तथा मधु) से शान्ति होम करना चाहिए ।। ५३ ।। द्वादशाक्षर मन्त्र से दोनों पैर, नाभि, हृदय तथा मस्तक का स्पर्श करना चाहिए उसके पश्चात् घी, दधि तथा दुग्ध का हवन करके सिर का स्पर्श करना चाहिए । मूर्ति के सिर, नाभि और दोनों चरणों का स्पर्श करके उनमें क्रमशः गङ्गा, यमुना, गोदावरी तथा सरस्वती नामक चार नदियों की स्थापना करनी चाहिए।।५४-५५ ।। विष्णुगायत्री तथा गायत्री से अग्नि जलाकर चरु पकाना चाहिए । होम करके उत्तर दिशा में बलि देकर ब्राह्मण भोजन कराए ।। ५६ ।। मासों के स्वामियों की प्रसन्नता के लिए आचार्य को सुवर्ण की गाय देनी चाहिए । दिक्पालों को बलि देकर रात्रि में जागरण करना चाहिए ।। ५७ ।। ब्रह्मगीता आदि का पाठ करने से मनुष्य अधिवासन के सम्पूर्ण फल को प्राप्त करता है ।। ५८।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का देवताधिवासन विधि वर्णन नामक उनसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५९॥



अथ षष्ठितमोऽध्यायः

वासुदेवादिदेवतानां सामन्यः प्रतिष्ठाविधिः

श्रीभगवानुवाच– पिण्डिकास्थापनार्थं तु गर्भागारं तु सप्तधा । विभजेद्ब्रह्मभागे तु प्रतिमां स्थापयेद् बुधः ॥ १ ॥ देवमानुषपैशाचभागेषु न कदाचन । ब्रह्मभागं परित्यज्य किंचिदाश्रित्य चाण्डज ॥ २ ॥ देवमानुषभागाभ्यां स्थाप्या यत्नात्तु पिण्डिका । नपुंसकशिलायां तु रत्नन्यासं समाचरेत् ॥ ३ ॥ नारसिंहेन हुत्वाऽथ रत्नन्यासं स तेन वै । ब्रीहीन् रत्नानि धातूंश्च लोहान्वै चन्दनादिकम् ॥ ४ ॥ पूर्वादिनवगर्तेषु न्यसेन्मध्ये यथारुचि । अथ चेन्द्रादिमन्त्रैश्च गर्तं गुग्गुलुनाऽऽवृतम् ॥ ५ ॥ रत्नन्यासविधिं कृत्वा प्रतिमामालभेद्गुरुः । सशलाकैर्दर्भपुञ्जैः सहदेवैः समन्वितैः ॥६॥ सवाह्यान्तैश्च संस्कृत्य पञ्चगव्येन शोधयेत्। प्रोक्षयेद्दर्भतोयेन नदीतीर्थोदकेन च ॥ ७ ॥ होमार्थे स्थण्डिलं कुर्यात्सिकताभिः समन्ततः । सार्धहस्तप्रमाणं तु चतुरस्त्रं सुशोभनम् ॥ ८ ॥ अष्टदिक्षु यथान्यासं कलशानपि विन्यसेत् । पूर्वाद्यानष्ट वर्णेन अग्निमानीय संस्कृतम् ॥ ९ ॥ त्वमग्ने द्युभिरिति च गायत्र्या समिधो हुनेत् । अष्टार्णेनाष्टशतकमाज्यं पूर्णां प्रदापयेत् ॥ १० ॥ शान्त्युदकं ताम्रपत्रे मूलेन शतमन्त्रितम् । सिञ्चेद्देवस्य तन्मूर्ध्नि श्रीश्च ते ह्यनया ऋचा ॥ ११ ॥ ब्रह्मयानेन चोद्धृत्य उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते । त्वं विष्णोरिति मन्त्रेण प्रासादाभिमुखं नयेत् ॥ १२ ॥ शिबिकायां हरिं स्थाप्य भ्रामयीत पुरादिकम् । गीतवेदादिशब्दैश्च प्रासादद्वारि धारयेत् ॥ १३ ॥ स्त्रीभिर्विप्रैर्मंगलाष्टघटैः संस्नापयेद्धरिम् । ततो गन्धादिनाऽभ्यर्च्य मूलमन्त्रेण देशिकः ॥ १४ ॥ अतो देवेति वस्त्राद्यमष्टाङ्गार्घ्यं निवेद्य च । स्थिरे लग्ने पिण्डिकायां देवस्य त्वेति धारयेत् ॥ १५ ॥ ॐ त्रैलोक्यविक्रान्ताय

श्रीभगवान् ने कहा– पिण्डिका की स्थापना करने के लिए विद्वान् को चाहिए कि वह गर्भगृह को सात भागों में विभक्त करके ब्रह्म भाग में प्रतिमा की स्थापना करे ।। १ ।। देव, मानुष तथा पैशाच भाग में कभी भी प्रतिमा की स्थापना न करे । हे ब्रह्मन् ! ब्रह्म भाग को छोड़कर दैव तथा मानुष दोनों भागों का थोड़ा-थोड़ा अंश लेकर यत्नपूर्वक पिण्डिका की स्थापना करे। यदि नपुंसक शिला हो तो उस पर रत्नन्यास करना चाहिए ।। २-३ ।। नरसिंह मन्त्र से हवन करके उसी मन्त्र से रत्नन्यास करना चाहिए । पूर्व आदि दिशाओं के तथा बीच के एक कुल मिलकर नव गर्तों (गढ़ों) में से इच्छानुसार किसी एक में बीच के गढे में रत्न, धातु, लोहा आदि तथा चन्दन आदि डालना चाहिए । उसके पश्चात् इन्द्र आदि के मन्त्रों से गर्त को गुग्गुलु से भर देना चाहिए ।। ४-५ ।। रत्न न्यास की विधि को करके आचार्य को प्रतिमा का आलम्भन (स्पर्श) करना चाहिए । शलाका, कुश पुञ्ज तथा सहदेवी से भीतर बाहर संस्कृत करके पञ्चगव्य से प्रोक्षण करना चाहिए । पुनः कुश के जल तथा तीर्थ के जल से प्रोक्षण करना चाहिए ।। ६-७ ।। होम करने के लिए डेढ़ हाथ लम्बा चौड़ा चतुरस्त्र तथा मनोहर बालू की वेदी बनाना चाहिए ।। ८ ।। न्यास के अनुसार आठों दिशाओं में कलशों की भी स्थापना करनी चाहिए। उन पूर्व आदि दिशाओं के कलशों को आठ रंग में रङ्गा होना चाहिए । पुनः संस्कार किए गए अग्नि को लाकर '**त्वमग्नेद्युभिः ।**' इस मन्त्र से तथा गायत्री से समिधा का हवन करना चाहिए । अष्टाक्षर मन्त्र से एक सौ आठ घी की आहुति देकर पूर्णाहुति करनी चाहिए ।। ९-१० ।। सौ बार मूलमन्त्र पढ़कर अभिमन्त्रित किए गए जल से आम के पत्ते द्वारा देवता के सिर पर अभिषेक करना चाहिए । तथा '**श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च**' इत्यादि मन्त्र से भी अभिषेक करना चाहिए ।। ११ ।। '**उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते**' इत्यादि मन्त्र को पढ़ते हुए मूर्ति को उठाकर ब्रह्म यान से '**तद्विष्णोः परमं पदम्**' इत्यादि मन्त्र को पढ़ते हुए मन्दिर के सामने लाए ।। १२ ।। श्रीहरि को शिविका पर चढ़ाकर नगर आदि का भ्रमण करना चाहिए गीत तथा वेदपाठ करते हुए श्रीहरि को मन्दिर द्वार पर रखे ।। १३ ।। स्त्रियाँ तथा ब्राह्मण श्रीभगवान् का आठ मङ्गल घटों से स्नान कराएँ । पुनः आचार्य मूलमन्त्र के द्वारा चन्दन आदि से पूजन करके 'अतो देवा' इत्यादि मन्त्र से वस्त्र आदि अष्टाङ्ग अर्घ्य श्रीभगवान् को निवेदित करें । पुनः 'देवस्य त्वा' इत्यादि मन्त्र से स्थिर लग्न में प्रतिमा को पिण्डिका पर रखे ।।१५।। विद्वान् को चाहिए कि वह '**ओं त्रैलोक्यविक्रान्ताय**

नमस्तेऽस्तु त्रिविक्रम । संस्थाप्य पिण्डिकायां तु स्थिरं कुर्याद्विचक्षणः ॥ १६ ॥ ध्रुवाद्यौरिति मन्त्रेण विश्वतश्चक्षुरित्यपि । पञ्चगव्येन संस्नाप्य क्षाल्य गन्धोदकेन च ॥ १७ ॥ पूजयेत्सकलीकृत्य साङ्गं सावरणं हरिम् । ध्यायेत्खं तत्र मूर्तिं तु पृथिवी तस्य पीठिका ॥ १८ ॥ कल्पयेद्विग्रहं तस्य तैजसैः परमाणुभिः । जीवमावाहयिष्यामि पञ्चविंशतितत्त्वगम् ॥ १९ ॥ चैतन्यं परमानन्दं जाग्रत्स्वप्नविवर्जितम् । देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहंकारवर्जितम् ॥ २० ॥ ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं हृदयेषु व्यवस्थितम् । हृदयात्प्रतिमाबिम्बे स्थिरो भव परमेश्वर ॥ २१ ॥ सजीवं कुरु बिम्बं त्वं सबाह्याभ्यन्तरस्थितः । अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो देहोपाधिषु संस्थितः ॥ २२ ॥ ज्योतिर्ज्ञानं परं ब्रह्म एकमेवाद्वितीयकम् । सजीवीकरणं कृत्वा प्रणवेन निबोधयेत् ॥ २३ ॥ सांनिध्यकरणं नाम हृदयं स्पृश्य वै जपेत्। सूक्तं तु पौरुषं ध्यायन्निदं गुह्यं मनुं जपेत् ॥ २४ ॥ नमस्तेऽस्तु सुरेशाय संतोषविभवात्मने । ज्ञानविज्ञानरूपाय ब्रह्मतेजोऽनुयायिने ॥ २५ ॥ गुणातिक्रान्तरूपाय पुरुषाय महात्मने । अक्षयाय पुराणाय विष्णो संनिहितो भव ॥ २६ ॥ यच्च ते परमं तत्त्वं यच्चज्ञानमयं वपुः। तत्सर्वमेकतो नीतमस्मिन्देहे विबुध्यताम् ॥ २७ ॥ आत्मानं संनिधीकृत्य ब्रह्मादिपरिवारकान् । स्वनाम्ना स्थापयेदन्यानायुधादीन्समुद्रया॥ २८ ॥ यात्रावर्षादिकं दृष्ट्वा ज्ञेयः संनिहितो हरिः । नत्वा स्तुत्वा स्तवाद्यैश्च जप्त्वा चाष्टाक्षरादिकम् ॥ २९ ॥ चण्डप्रचण्डौ द्वारस्थौ निर्गत्याभ्यर्चयेद् गुरुः । अथ मण्डपमासाद्य गरुडं स्थाप्य पूजयेत् ॥ ३० ॥ दिगीशान्दिशि देवांश्च स्थाप्य संपूज्य देशिकः। विष्वक्सेनं तु संस्थाप्य शङ्खचक्रादि पूजयेत् ॥ ३१ ॥ सर्वपार्षदकेभ्यश्च बलिं भूतेभ्य अर्पयेत् । ग्रामवस्त्रसुवर्णादि गुरवे दक्षिणां ददेत् ॥ ३२ ॥

त्रिविक्रमाय नमः' इस मन्त्र से पिण्डिका के ऊपर मूर्ति को स्थिर करे ।। १६ ।। '**ध्रुवा द्यौः**' इस मन्त्र से तथा '**विश्वतश्चक्षुः**' इस मन्त्र से पञ्चगव्य से स्नान कराकर तथा चन्दन के जल से प्रक्षालन करके सकलीकरण करके श्रीहरि की साङ्ग तथा सावरण पूजा करनी चाहिए । श्रीभगवान् की आकाशमय मूर्ति का, तथा पृथिवीमय पीठिका का ध्यान करना चाहिए ।। १७-१८ ।। श्रीभगवान् के श्रीविग्रह की तैजस परमाणुमय कल्पना करनी चाहिए । पच्चीस तत्त्वों (प्रकृति, महान्, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ, पञ्चतन्मात्राएँ, पञ्चमहाभूत, मन तथा जीव) में व्याप्त परमात्मात्मक जीवतत्त्व का मूर्ति में आवाहन करना चाहिए ।। १९ ।। ज्ञानस्वरूप, परमानन्द स्वरूप, जाग्रत स्वप्न आदि अवस्थाओं से रहित देह, इन्द्रिय, मन, प्राण तथा अहंकार से रहित, ब्रह्मा से लेकर एक तृण पर्यन्त समस्त वस्तुओं के हृदय में विद्यमान रहने वाले परमात्मा का ध्यान करके प्रार्थना करना चाहिए- '**हृदयात्प्रतिमाविम्बे स्थिरो भव परमेश्वर** ।' अर्थात् हे परमेश्वर हृदय से प्रतिमा बिम्ब में आप स्थिर होइये।।२०-२१।। भगवन्! विम्ब के भीतर बाहर व्यापक आप इसे सजीव बना दें । आप देहोपाधिक (देहधारी) जीवों के हृदय में अंगुष्ठ परिमाणक पुरुष होकर स्थित हैं ।। २२ ।। आप ज्योतिःस्वरूप,ज्ञानस्वरूप, परब्रह्म, एक मात्र तथा अद्वितीय हैं । इस तरह मूर्ति का सजीवीकरण करके प्रणव (ओम्) से परमात्मा को जगाना चाहिए । मूर्ति के हृदय को हाथ से स्पर्श करके पुरुषसूक्त का पाठ करना चाहिए । इसे ही सान्निध्यकरण कहते हैं । उसके पश्चात् इस मन्त्र को जपना चाहिए ।। २४ ।। देवताओं के स्वामी तथा सन्तोषरूपी ऐश्वर्य से युक्त भगवन् आपको नमस्कार है । ज्ञान, विज्ञान स्वरूप तथा ब्रह्मतेजःस्वरूप श्रीभगवान् को नमस्कार है ।। २५ ।। अप्राकृत देश विशेष (वैकुण्ठलोक) में रहने वाले, सम्पूर्ण जगत् की आत्मा, महात्मा, अक्षय स्वरूप तथा पुराण पुरुष श्रीभगवान् को नमस्कार है । हे भगवन् ! विष्णो ! आप इस मूर्ति में सन्निहित होएँ ।। २६ ।। आपका जो परमतत्त्व है तथा आपका जो ज्ञानमय शरीर है, वह सब कुछ इस एक ही मूर्ति शरीर में लीन है, आप जगें ।। २७।। परमात्मा को अपने सन्निहित करके, उनके परिवारभूत ब्रह्मा आदि की उनके नाम से स्थापना करनी चाहिए तथा अन्य देवताओं की भी स्थापना करनी चाहिए तथा मुद्रापूर्वक आयुध आदि की स्थापना करनी चाहिए ।। २८ ।। यात्रा तथा वर्ष आदि देखकर श्रीहरि को सन्निहित (मूर्ति में स्थित) जानना चाहिए । पुनः स्तुति आदि करके तथा अष्टाक्षर मन्त्र जपकर चण्ड तथा प्रचण्ड की द्वार पर स्थापना करके निकलकर आचार्य की पूजा करनी चाहिए । फिर मण्डप में आकर गरुड़ की स्थापना करके उनकी पूजा करनी चाहिए ।। ३० ।। पुनः आचार्य को चाहिए कि वे दिक्पालों तथा अन्य देवताओं की स्थापना करके उनकी पूजा करें । फिर विष्वक्सेन की स्थापना करके शंख चक्र आदि की पूजा करनी चाहिए ।। ३१ ।। पार्षदों के साथ भूतों के लिए बलि प्रदान करनी चाहिए।

यागोपयोगिद्रव्याद्यमाचार्याय नरोऽर्पयेत् । आचार्यदक्षिणार्धं तु ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां ददेत् ॥ ३३ ॥ अन्येभ्यो दक्षिणां दद्याद्भोजयेद्ब्राह्मणांस्ततः । अवारितान्फलं दद्याद्यजमानाय वै गुरुः ॥ ३४ ॥ विष्णुं नयेत्प्रतिष्ठाता चाऽऽत्मना सकलं कुलम् । सर्वेषामेव देवानामेष साधारणो विधिः ॥ ३५॥ मूलमन्त्राः पृथक्तेषां शेषं कार्यं समानकम् ॥ ३६ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये वासुदेवादिदेवताप्रतिष्ठासामान्यविधिकथनं नाम षष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

अथैकषष्ठितमोऽध्यायः

अवभृथस्नानद्वारप्रतिष्ठाध्वजारोपणादिविधिः

श्रीभगवानुवाच– वक्ष्ये चावभृथस्नानं विष्णोर्नुकेति होमयेत् । एकाशीतिपदे कुम्भान्संस्थाप्य स्नापयेद्धरिम् ॥ १ ॥ पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्बलिं दत्त्वा गुरुं यजेत् । द्वारप्रतिष्ठां वक्ष्यामि द्वाराधो हेम वै ददेत् ॥ २ ॥ अष्टभिः कलशैः स्थाप्य शाखोदुम्बरकौ गुरुः । गन्धादिभिः समभ्यर्च्य मन्त्रैर्वेदादिभिर्गुरुः ॥ ३ ॥ कुण्डेषु होमयेद्वह्निं समिदाज्यतिलादिभिः । दत्त्वा शय्यादिकं चाधो दद्यादाधारशक्तिकाम् ॥ ४ ॥ शाखयोर्विन्यसेन्मूले देवौ चण्डप्रचण्डकौ । ऊर्ध्वोदुम्बरके देवीं लक्ष्मीं सुरगणार्चिताम् ॥ ५ ॥ न्यस्याभ्यर्च्य यथान्यायं श्रीसूक्तेन चतुर्मुखम् । हुत्वा तु श्रीफलादीनि आचार्यादेस्तु दक्षिणाम् ॥ ६ ॥ प्रतिष्ठासिद्धद्वारस्य त्वाचार्यः स्थापयेद्धरिम् । प्रासादस्य प्रतिष्ठां तु हृत्प्रतिष्ठेति तां शृणु ॥ ७ ॥ समाप्तौ शुकनासाया वेद्याः प्राग्गर्भमस्तके । सौवर्णं राजतं कुम्भमथवा शुक्लनिर्मितम् ॥ ८ ॥ अष्टरत्नौषधीधातु बीजलौहान्वितं शुभम् । सवस्त्रपूरितं चाद्भिर्मण्डले

आचार्य को दक्षिणा में ग्राम, वस्त्र तथा सुवर्ण आदि प्रदान करना चाहिए ।। ३२ ।। यज्ञोपयोगी द्रव्यों को आचार्य को प्रदान करना चाहिए । आचार्य की दक्षिणा के आधी दक्षिणा ऋत्विजों को देनी चाहिए ।। ३३ ।। उसके पश्चात् अन्य ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर अवारित द्वार भोजन कराना चाहिए । उसके पश्चात् गुरु को चाहिए कि वे यजमान को फल प्रदान (श्रेयोदान) करें ।। ३४ ।। इस तरह भगवान् विष्णु की प्रतिष्ठा करने वाला अपने साथ अपने समस्त वंश वालों को विष्णुलोक पहुँचा देता है । यह सभी देवताओं की समान रूप से प्रतिष्ठा करने की विधि है ।। ३५ ।। केवल देवताओं के मूलमन्त्र पृथक्-पृथक् हैं, शेष कार्य समान रूप से होते हैं ।। ३६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का वासुदेव आदि की प्रतिष्ठा की सामान्य विधि का वर्णन नामक साठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६० ॥

श्रीभगवान् ने कहा– अब मैं अवभृथ स्नान की विधि बतलाता हूँ । 'विष्णोनुकम्' इत्यादि मन्त्र से हवन करके इक्यासी कोष्ठों वाले मण्डल में कलशों की स्थापना करके श्रीभगवान् की स्थापना करनी चाहिए ।। १ ।। पुनः चन्दन तथा पुष्प आदि से पूजा करके आचार्य की पूजा करनी चाहिए । अब मैं द्वार की प्रतिष्ठा बतलाता हूँ । द्वार के नीचे सोना रखे । आचार्य को चाहिए कि गूलर की दो शाखाओं की स्थापना करके आठ कलशों की स्थापना करें । पुनः आचार्य वेद मन्त्रों से चन्दन आदि से गूलर की शाखाओं की पूजा करें ।। ३ ।। कुण्डों की अग्नि में समिधा, घी तथा तिल आदि से हवन करना चाहिए । नीचे शय्या रखकर उसे आधार शक्ति को समर्पित करना चाहिए ।। ४ ।। गूलर के ऊपर देवताओं से पूजित लक्ष्मी देवी की स्थापना करके तथा श्रीसूक्त से अर्चना करके ब्रह्मा की स्थापना करके उनकी पूजा करें । पुनः हवन करके आचार्य को दक्षिण तथा श्रीफल आदि समर्पित करना चाहिए ।। ५-६ ।। प्रतिष्ठासिद्ध द्वार पर आचार्य श्रीहरि की स्थापना करें । मन्दिर की हृत्प्रतिष्ठा नामक प्रतिष्ठा की विधि को आप सुनें ।। ७ ।। शुक की नासिका के समान बनायी गयी वेदी के अन्त में पूर्व गर्भमस्तक पर सुवर्ण अथवा चाँदी के अथवा उजली बनाए

चाधिवासयेत् ॥ ९ ॥ सपल्लवं नृसिंहेन हुत्वा संपातसिंचितम् । नारायणाख्यतत्त्वेन प्राणभूतं न्यसेत्ततः ॥ १० ॥ वैराजरूपं तं ध्यायेत्प्रासादस्य सुरेश्वर । ततः पुरुषवत्सर्वं प्रासादं चिन्तयेद्बुधः ॥ ११ ॥ अधोदत्त्वा सुवर्णं तु तत्त्वभूतं घटं न्यसेत् । गुर्वादौ दक्षिणां दद्याद्ब्राह्मणादेश्च भोजनम्॥१२॥ ततः पश्चाद्वेदिबन्धं तदूर्ध्वं कण्ठबन्धनम् । कण्ठोपरिष्टात्कर्तव्यं विमलामलसारकम् ॥ १३॥ तदूर्ध्वं वृकलं कुर्याच्चक्रं चाद्यं सुदर्शनम् । मूर्तिं श्रीवासुदेवस्य ग्रहगुप्तां निवेदयेत् ॥ १४ ॥ कलशं वाऽथ कुर्वीत तदूर्ध्वं चक्रमुत्तमम् । वेद्याश्च परितः स्थाप्य अष्टौ विघ्नेश्वरास्त्वज॥१५॥ चत्वारो वा चतुर्दिक्षु स्थापनीया गरुत्मतः । ध्वजारोहं प्रवक्ष्यामि येन भूतादि नश्यति ॥ १६ ॥ प्रासादबिम्बद्रव्याणां यावन्तः परमाणवः । तावद्वर्षसहस्राणि तत्कर्ता विष्णुलोकभाक् ॥ १७ ॥ कुम्भाण्डवेदिबिम्बानां भ्रमणाद्वायुनाऽनघ । कण्ठस्याऽऽवेष्टनाज्ज्ञेयं फलं कोटिगुणं ध्वजात्॥१८॥ पताकां प्रकृतिं विद्धि दण्डं पुरुषरूपिणम् । प्रासादो वासुदेवस्य मूर्तिरूपो निबोध मे॥१९॥ धारणाद्धरणीं विद्धि आकाशं सुषिरात्मकम् । तेजस्तत्पावकं विद्धि वायुं स्पर्शगतं तथा ॥ २० ॥ पाषाणादिष्वेवजलं पार्थिवं पृथिवीगुणम् । प्रतिशब्दोद्भवं शब्दं स्पर्शं स्यात्कर्कशादिकम्॥२१॥ शुक्लादिकं भवेद्रूपं रसमाह्लाद दर्शकम् । धूपादिगन्धं गन्धं तु वाग्भेर्यादिषु संस्थिता ॥ २२ ॥ शुकनासाश्रिता नासा बाहू भद्रात्मकौ स्मृतौ । शिरस्त्वण्डं निगदितं कलशाः मूर्धजाः स्मृताः ॥ २३ ॥ कण्ठं कण्ठमितिज्ञेयं स्कन्धो वेदी निगद्यते । पायूपस्थे प्रणाले तु त्वक्सुधा परिकीर्तिता॥२४॥

गए घट की स्थापना करके, वस्त्र से आच्छादित जल से परिपूर्ण उस घट में अष्टरत्न, औषधियों धातु बीज तथा लोहा डालकर मण्डल पर अधिवासित कराना चाहिए ।। ८-९ ।। नृसिंह मन्त्र से हवन करके सम्पात के जल से पल्लव द्वारा उस कलश को सिंचित करना चाहिए । उसके पश्चात् नारायण तत्त्व से उसमें प्राणतत्त्व का न्यास करना चाहिए ।। १० ।। हे सुरेश्वर ! उसके पश्चात् मन्दिर के वैराजरूप का ध्यान करना चाहिए । उसके पश्चात् विद्वान् को सम्पूर्ण मन्दिर का पुष्प रूप से ध्यान करना चाहिए ।। ११ ।। नीचे सुवर्ण रखकर पुरुषाकार स्वरूप घट की स्थापना करें। आचार्य आदि को दक्षिणा देकर ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए ।। १२ ।। उसके पश्चात् वेदि बन्धन तथा उसके ऊपर कण्ठबन्धन करना चाहिए । उसके ऊपर विमलामलसारक करना चाहिए ।। १३ ।। उसके ऊपर वृकल और उसके ऊपर सुदर्शन चक्र द्वारा ग्रहों से रक्षित श्री वासुदेव की मूर्ति स्थापित करें ।। १४ ।। अथवा कलश की स्थापना करके उसके ऊपर उत्तम चक्र सुदर्शन चक्र की स्थापना कर। हे ब्राह्मन् ! वेदी के चारों ओर आठ विघ्नेश्वरों की सथापना करनी चाहिए ।। १५ ।। अथवा चारों दिशाओं में चार गरुडों की स्थापना करनी चाहिए । अब ध्वजारोहण की विधि बतलाता हूँ जिससे भूत प्रेत आदि विनष्ट हो जाते हैं ।। १६ ।। मन्दिर बिम्ब के द्रव्यों के जितने परमाणु होते हैं मन्दिर निर्माण करने वाला उतने हजार वर्षों तक विष्णुलोक में निवास करता है ।। १७ ।। हे निष्पाप ब्रह्माजी! कुम्भाण्ड, वेदी तथा बिम्ब के ऊपर वायु के द्वारा पताका के भ्रमण करने से तथा कण्ठ के आवेष्टन करने (लपेटने) से ध्वजा की अपेक्षा करोड़ गुणा अधिक फल होता है ।। १८।। मेरी पताका को प्रकृति जानों और दण्ड को पुरुष स्वरूप जानो तथा मन्दिर को वासुदेव मूर्ति स्वरूप समझो ।। १९ ।। मन्दिर देवता को धारण करता है अतएव वह धरणी (पृथिवी)स्वरूप है, चूँकि मन्दिर छिद्रात्मक होता है, अतः वह आकाश स्वरूप है, उसका तेज अग्नि स्वरूप है तथा उसका स्पर्श होता है, अतएव वह वायुस्वरूप है ।। २० ।। जिस तरह पाषण आदि में जल रहता है तथा पाषाण स्वयं पार्थिव होता है, अतएव मन्दिर जलात्मक तथा पार्थिव हाता है । उसमें प्रतिध्वनिजन्य शब्द होता है तथा कर्कश आदि स्पर्श होते हैं ।। २१ ।। मन्दिर में जो शुक्ल आदिरूप होता है, वही दर्शक को प्राप्त होने वाला रस होता है । धूप आदि का गन्ध ही मन्दिर का गन्ध है, तथ भेरी आदि के शब्द ही मन्दिर के शब्द हैं ।। २२ ।। मन्दिर की नासिका शुकनासिका में स्थित होती है, उसकी भुजाएँ भद्रात्मक होती हैं, मन्दिर का अण्ड (गुम्बज) भाग ही उसका सिर है और कलश ही मन्दिर पुरुष के बाल हैं ।। २३ ।। मन्दिर का कण्ठ ही उसका कण्ठ है, वेदी ही मन्दिर के स्कन्ध (कन्धे) हैं, नालियाँ ही उसके पायु तथा उपस्थ (मलमूत्र द्वार) हैं और मन्दिर का चूना ही मन्दिर पुरुष का चर्म है ।। २४ ।। मन्दिर का द्वार ही उसका मुख है तथा मन्दिर की प्रतिमा ही

मुखं द्वारं भवेदस्य प्रतिमा जीव उच्यते । तच्छक्तिं पिण्डिकां विद्धि प्रकृतिं च तदाकृतिम् ॥ २५ ॥ निश्चलत्वं च गर्भोऽस्या अधिष्ठाता तु केशवः। एवमेष हरिः साक्षात्प्रासादत्वेन संस्थितः ॥ २६ ॥ जङ्घं त्वस्य शिवो ज्ञेयः स्कन्धे धाता व्यवस्थितः । ऊर्ध्वभागे स्थितो विष्णुरेवं तस्य स्थितस्य हि ॥ २७ ॥ प्रासादस्य प्रतिष्ठां तु ध्वजरूपेण मे शृणु। ध्वजं कृत्वा सुरैर्दैत्या जिताः शस्त्रादिचिह्नितम् ॥ २८ ॥ अण्डोर्ध्वं कलशं न्यस्य तदूर्ध्वं विन्यसेद् ध्वजम् । बिम्बार्धमानं दण्डस्य त्रिभागेनाथ कारयेत् ॥ २९ ॥ अष्टारं द्वादशारं वा मध्ये मूर्तिमताऽन्वितम् । नारसिंहेन तार्क्ष्येण ध्वजदण्डस्तु निर्व्रणः ॥ ३० ॥ प्रासादस्य तु विस्तारो मानं दण्डस्य कीर्तितम् । शिखरार्धेन वा कुर्यात्तृतीयार्धेन वा पुनः ॥ ३१ ॥ द्वारस्य दैर्घ्याद् द्विगुणं दण्डं वा परिकल्पयेत् । ध्वजयष्टिर्देवगृहे ऐशान्यां वायवेऽथवा ॥ ३२ ॥ क्षौमाद्यैश्च ध्वजं कुर्याद्विचित्रं नैकवर्णकम् । घण्टाचामरकिङ्किण्या भूषितं पापनाशनम् ॥ ३३ ॥ दण्डाग्राद्धरणीं यावद् वस्त्रैक्यं विस्तरेण तु । महाध्वजः सर्वदः स्यात्तुर्यांशाद्धीनतोऽर्चितः ॥ ३४ ॥ ध्वजे चार्धेन विज्ञेया पताका मानवर्जिता । विस्तारेण ध्वजः कार्यो विंशदङ्गुलसंन्निभः ॥ ३५ ॥ अधिवासविधानेन चक्रं दण्डं ध्वजं तथा । देववत्सकलं कृत्वा मण्डपस्नपनादिकम् ॥ ३६ ॥ नेत्रोन्मीलनकं त्यक्त्वा पूर्वोक्तं सर्वमाचरेत् । अधिवासयेद्विधिना शय्यायां स्थाप्य देशिकः ॥ ३७ ॥ ततः सहस्रशीर्षेति सूक्तं चक्रे न्यसेद्बुधः । तथा सुदर्शनं मन्त्रं मनस्तत्त्वं निवेशयेत् ॥ ३८ ॥ मनोरूपेण तस्यैव सजीवकरणं स्मृतम् । अरेषु मूर्तयो न्यस्याः केशवाद्याः सुरोत्तम ॥ ३९॥ नाभ्यब्जप्रतिनेमीषु न्यसेत्तत्त्वानि देशिकः । नृसिंहं विश्वरूपं वा अब्जमध्ये निवेशयेत् ॥ ४० ॥ सकलं विन्यसेद्दण्डे

उसका जीव है । उसकी पिण्डिका की ही शक्ति समझो तथा मन्दिर की आकृति ही उसकी प्रकृति है ।। २५ ।। निश्चलता ही उसका गर्भ होता है और उसके (प्रकृति) के अधिष्ठाता भगवान् केशव हैं । इस तरह से भगवान् श्रीहरि स्वयं मन्दिर के रूप में स्थित होते हैं ।। २६ ।। शिव जी ही मन्दिर पुरुष की जंघे हैं, उसके स्कन्ध के स्थान पर ब्रह्मा जी होते हैं । मन्दिर के ऊपरी भाग में भगवान् विष्णु स्थित रहते हैं । इस मन्दिर के रूप में स्थित श्रीहरि की ध्वज रूप से प्रतिष्ठा सुनो । देवताओं ने शस्त्र आदि के चिह्नों से चिह्नित ध्वज का निर्माण करके दैत्यों को परास्त किया ।। २७-२८ ।। गुम्बज के ऊपर कलश की स्थापना करके, उसके ऊपर ध्वज की स्थापना करनी चाहिए । विम्ब के आधा अथवा तिहाई बड़ा ध्वजा का दण्डा रखना चाहिए ।। २९ ।। उसके बीच में मूर्ति से युक्त अष्टार अथवा द्वादशार का निर्माण नारसिंह तथा गरुड़ मन्त्र से करना चाहिए तथा ध्वज के दण्ड को विना किसी छिद्र का होना चाहिए ।। ३० ।। मन्दिर का जितना विस्तार होता है उतना ही बड़ा दण्डा होना चाहिए अथवा शिखर के आधा या तिहाई बड़ा दण्ड को होना चाहिए ।। ३१ ।। अथवा द्वार की लम्बाई के दो गुना बड़ा दण्डे को बनाना चाहिए । ध्वज को देवगृह के ईशानकोण अथवा वायव्य कोण पर लगाना चाहिए ।। ३२ ।। ध्वज का निर्माण अनेक रंगों का अथवा एक रंग का करना चाहिए । घण्टा चामर तथा किंकिणी से युक्त ध्वज पाप का विनाश करने वाला होता है ।।३३।। दण्ड के ऊपर से लेकर पृथिवी पर्यन्त लम्बा तथा एक हाथ चौड़ा वस्त्र लपेट देने से महाध्वज समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है । अथवा उसके चौथाई कम तथा पूजित होना चाहिए । ध्वज के आधा पताका बनाना चाहिए । उसका कोई प्रमाण नहीं है, उसको बीस अंगुल चौड़ाई होना चाहिए ।। ३४-३५ ।। देवता के अधिवासन के ही समान ध्वज, चक्र, तथा दण्ड का अधिवासन विधि के द्वारा मण्डप स्पान आदि करना चाहिए ।। ३६ ।। केवल नेत्रोन्मीलन को छोड़कर पूर्वोक्त अधिवास की सारी क्रियाओं को करना चाहिए । आचार्य को चाहिए कि वे ध्वज को शय्या पर रखकर उसकी सम्पूर्ण अधिवास विधि को करें ।। ३७ ।। उसके पश्चात् पुरुषसूक्त के मन्त्रों का चक्र में न्यास करें और सुदर्शन मंत्र से उसमें मनस्तत्त्व का निवेश करें ।।३८।। मनरूप से उसको ही सजीवीकरण बतलाया गया है। हे सुरोत्तम ! अरों में मूर्तियों का न्यास करना चाहिए ।। ३९ ।। आचार्य नाभि तथा कमल के प्रत्येक दलों (अरों) में तत्त्वों का न्यास करें । कमल के बीच में नृसिंह भगवान् का अथवा शिव रूप भगवान् का न्यास करना चाहिए ।। ४० ।। दण्ड में कला तथा जीव से युक्त सूत्रात्मा का विन्यास करना चाहिए । ध्वज में परमात्मा श्रीहरि का ध्यान

सूत्रात्मानं सजीवकम् । निष्कलं परमात्मानं ध्वजे ध्यायन्न्यसेद्धरिम् ॥ ४१ ॥ तच्छक्तिं व्यापिनीं ध्यायेद् ध्वजरूपां बलाबलाम् । मण्डले स्थाप्य चाभ्यर्च्य होमं कुण्डेषु कारयेत् ॥ ४२ ॥ कलशे स्वर्णकलशं न्यस्य रत्नानि पञ्च च । स्थापयेच्चक्रमन्त्रेण स्वर्णचक्रमधस्ततः ॥ ४३ ॥ पारदेन तु संप्लाव्य नेत्रपट्टेन च्छादयेत् । ततो निवेशयेच्चक्रं तन्मध्ये तु हरिं स्मरेत् ॥ ४४ ॥ ॐ क्षौं नृसिंहाय नमः पूजयेत्स्थापयेद्धरिम् । ततो ध्वजं गृहीत्वा तु यजमानः सबान्धवः ॥ ४५ ॥ दधिभक्तयुते पात्रे ध्वजस्याग्रं निवेशयेत् । ध्रुवाद्येन फडन्तेन ध्वजं मन्त्रेण पूजयेत् ॥ ४६ ॥ शिरस्याधाय तत्पात्रं नारायणमनुस्मरन् । प्रदक्षिणं तु कुर्वीत तूर्यमंगलनिःस्वनैः ॥ ४७ ॥ ततो निवेशयेद्दण्डं मन्त्रेणाष्टाक्षरेण तु । मुञ्चामि त्वेतिसूक्तेन ध्वजं मुञ्चेद्विचक्षणः ॥ ४८ ॥ पात्रं ध्वजं कुञ्जरादिं दद्यादाचार्यके द्विजः । एष साधारणः प्रोक्तो ध्वजस्याऽऽरोहणे विधिः ॥ ४९ ॥ यस्य देवस्य यच्चिह्नं तन्मन्त्रेण स्थिरं चरेत् । स्वर्गच्छेद् ध्वजदानात्तु भुवि राजा बली भवेत् ॥ ५० ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽवभृथस्नानद्वारप्रतिष्ठाध्वजारोपणादिविधिकथनं नामैकषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

अथ द्विषष्ठितमोऽध्यायः

लक्ष्म्यादिदेवताप्रतिष्ठासामान्यविधिः

श्रीभगवानुवाच— **समुदायेन देवादेः प्रतिष्ठां प्रवदामि ते । लक्ष्म्याः प्रतिष्ठां प्रथमं तथा देवीगणस्य च ॥ १ ॥ पूर्ववत्सकलं कुर्यान्मण्डपस्नपनादिकम्। भद्रपीठे श्रियं न्यस्य स्थापयेदष्ट वै घटान् ॥ २ ॥ घृतेनाभ्यज्य मूलेन स्थापयेत्पञ्चगव्यकैः । हिरण्यवर्णां हरिणीं नेत्रे चोन्मीलयेच्छ्रियाः ॥ ३ ॥ तां**

करते हुए न्यास करना चाहिए ।। ४१ ।। परमात्मा की व्यापिका ध्वज स्वरूपिणी, बलाबलात्मिका शक्ति का ध्यान करना चाहिए । उसकी मण्डल में स्थापना करके तथा पूजन करके कुण्ड में होम करना चाहिए ।।४२।। मन्दिर के कलश के ऊपर एक सुवर्ण का कलश रखकर उसमें पञ्चरत्न डालकर उसके नीचे चक्रमन्त्र से सोने का चक्र स्थापित करना चाहिए ।। ४३ ।। पारद से सिंचकर उस कलश को नेत्र पट से ढंक देना चाहिए । उसके (ध्वज के) मध्य में चक्र को निविष्ट करके श्रीहरि का स्मरण करे । ४४ ।। 'ओं क्षौं नृसिंहाय नमः' इस मन्त्र से श्रीहरि की स्थापना तथा पूजन करना चाहिए । उसके पश्चात् अपने बान्धवों के साथ ध्वज लेकर दही तथा भात से युक्त पात्र में ध्वजा के अग्रभाग को स्पर्श कराए । 'ओम् फट्' इस मन्त्र से ध्वज की पूजा करे ।। ४५-४६ ।। उस पात्र को अपने सिर पर रखकर भगवान् नारायण का स्मरण करते हुए गीत तथा वाद्य ध्वनिपूर्वक मन्दिर की प्रदक्षिणा करे ।। ४७ ।। उसके पश्चात् अष्टाक्षर मन्त्र (ओं नमो नारायणाय) से ध्वज के दण्ड को स्थापित करके 'मुञ्चामि त्वा' इस सूक्त से ध्वज को खोल देना चाहिए ।। ४८ ।। पुनः ब्राह्मण यजमान को चाहिए कि वह आचार्य को दक्षिणा में, पात्र, ध्वजा तथा हाथी आदि दान दे। यह ध्वजारोहण की साधारण विधि बतलायी गयी है । ४९ ।। जिस देवता का जो चिह्न हो उसी से उसको स्थिर करना चाहिए । ध्वज दान करने वाला मनुष्य स्वर्गलोक को प्राप्त करता है और इस पृथिवी पर वह बलवान् राजा होता है ।। ५० ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अवभृथस्नान, द्वारप्रतिष्ठा तथा ध्वजारोहणादि विधि वर्णन नामक एकसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६१ ॥

श्रीभगवान् ने कहा— अब मैं आपको समुदित रूप से देवता आदि की प्रतिष्ठा की विधि बतला रहा हूँ । सर्वप्रथम लक्ष्मी की प्रतिष्ठा तथा देवी समूह की प्रतिष्ठा की विधि बतला रहा हूँ ।।१।।

म आवह इत्येवं प्रदद्यान्मधुरत्रयम् । अश्वपूर्वेति पूर्वेण तां कुम्भेनाभिषेचयेत् ॥ ४ ॥ कांसोऽस्मितेति याम्येन पश्चिमेनाभिषेचयेत् । चन्द्रां प्रभासामुच्चार्याऽऽदित्यवर्णेति चोत्तराम् ॥ ५ ॥ उपैतु मेति चाऽऽग्नेयात्क्षुत्पिपासेति नैऋतात् । गन्धद्वारेति वायव्यान्मनसः काममाकुतिम् ॥ ६ ॥ ईशानकलशेनैव शिरः सौवर्णकर्दमात् । एकाशीतिघटैः स्नानं मन्त्रेणायं सृजन्क्षितम् ॥ ७ ॥ आर्द्रां पुष्करिणीं गन्धैरार्द्रामित्यादि पुष्पकैः । तां म आवह मन्त्रेण आनन्द इति चाखिलम् ॥ ८ ॥ श्रायन्तीयेन शय्यायां श्रीसूक्तेन च संनिधिम् । लक्ष्मीबीजेन चिच्छक्तिं विन्यस्याभ्यर्चयेत्पुनः ॥ ९॥ श्रीसूक्तेन मण्डपेऽथ कुण्डेष्वब्जानि होमयेत् । करवीराणि वा हुत्वा सहस्रं शतमेव वा ॥ १० ॥ गृहोपकरणान्तादि श्रीसूक्तेनैव चार्पयेत् । ततः प्रासादसंस्कारं सर्वं कृत्वा तु पूर्ववत् ॥ ११ ॥ मन्त्रेण पिण्डिकां कृत्वा प्रतिष्ठानं ततः श्रियः॥ श्रीसूक्तेन च सान्निध्यं पूर्ववत्प्रत्यृचं जपेत् ॥ १२॥ चिच्छक्तिं बोधयित्वा तु मूलात्सांनिध्यकं चरेत् । भूस्वर्णवस्त्रगोन्नादि गुरवे ब्रह्मणेऽर्पयेत् ॥ १३ ॥ एवं देव्योऽखिलाः स्थाप्य राज्यस्वर्गादिभाग्भवेत्॥१४॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये लक्ष्म्यादिदेवताप्रतिष्ठासामान्यविधिकथनं नाम द्विषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

पहले के ही समान मण्डप स्नान आदि करना चाहिए । भद्रपीठ पर श्रीदेवी की स्थापना करके आठ कलशों की स्थापना करनी चाहिए ।। २ ।। मूलमन्त्र से घी लगाकर पञ्चगव्य से मूर्ति को स्नान कराना चाहिए । पुनः 'हिरण्यवर्णाम् हरिणीम्' इत्यादि मन्त्र से श्रीदेवी का नेत्रोन्मीलन करना चाहिए ।। ३ ।। 'ताम्म आवह' इत्यादि मन्त्र से मधुरत्रय प्रदान करना चाहिए । 'अश्वपूर्वाम्' इत्यादि मन्त्र से पूर्व दिशा के घट से अभिषेक करना चाहिए ।। ४ ।। 'कां सोऽस्मिताम्' इत्यादि मन्त्र से दक्षिण दिशा के घट से तथा पश्चिम दिशा के कलश से 'चन्द्रां प्रभासाम्' मन्त्र का उच्चारण करते हुए अभिषेक करना चाहिए । 'आदित्यवर्णे' इत्यादि मन्त्र से उत्तर दिशा के कलश से अभिषेक करना चाहिए । 'उपैतु मां' इत्यादि मन्त्र से आग्नेय कोण के घट से तथा 'क्षुत्पिपासा' इत्यादि मन्त्र से 'नैऋत्य कोण के घट से अभिषेक करना चाहिए । 'गन्धद्वाराम्' इत्यादि मन्त्र से वायव्यकोण के घट से तथा 'मनसः काममाकूतिम्' इत्यादि मन्त्र से ईशान कोण के कलश से अभिषेक करना चाहिए । 'कर्दमेन प्रजाभूता' मन्त्र से सुवर्ण घट के जल से लक्ष्मी देवी के शिर का अभिषेक करना चाहिए । 'आपः सृजन्तु' इथ्यादि मन्त्र से चन्दन चढ़ाना चाहिए तथा 'आर्द्रां यः करिणीम्' इत्यादि मन्त्र से पुष्प चढ़ाना चाहिए । 'ताम्म आवह' इत्यादि मन्त्र से तथा 'आनन्दः कर्दमः श्रीः' इत्यादि मन्त्र से सम्पूर्ण वस्तुओं को श्री देवी पर चढ़ाना चाहिए ।। ८ ।। 'श्रायन्तीय' इत्यादि सूक्त से श्रीदेवी को शय्या पर लेटाना चाहिए तथा श्रीसूक्त के सम्पूर्ण सत्ताइस मन्त्रों से सन्निधिकरण करना चाहिए । लक्ष्मी बीज मन्त्र के द्वारा चित् शक्ति का मूर्ति में विन्यास करके पुनः पूजन करना चाहिए ।। ९ ।। उसके पश्चात् श्रीसूक्त के द्वारा मण्डप के कुण्डों में कमल का हवन करना चाहिए । अथवा एक सौ या एक हजार करबीर के पुष्पों का हवन करना चाहिए ।। १० ।। पुनः श्रीसूक्त के द्वारा गृहोपयोगी समस्त उपकरणों को अर्पित करना चाहिए । पुनः पहले के ही समान मन्दिर के समस्त संस्कारों को करना चाहिए ।। ११ ।। उसके पश्चात् मन्त्र के द्वारा पिण्डिका की प्रतिष्ठा करके श्रीसूक्त के प्रत्येक मन्त्रों से सान्निध्यकरण करना चाहिए ।। १२ ।। पुनः चित्शक्ति को जगाकर मूलमन्त्र से सन्निधिकरण करना चाहिए । तदनन्तर ब्राह्मण आचार्य को पृथिवी, स्वर्ण, वस्त्र, गौ तथा अन्न आदि का दान देना चाहिए ।। १३।। इसी तरह सभी देवियों की स्थापना करके मनुष्य राज्य तथा स्वर्ग प्राप्ति का पात्र बनता है ।। १४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का लक्ष्मी आदि देवताओं की प्रतिष्ठा की सामान्य विधि का वर्णन नामक बासठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६२ ॥

अथ त्रिषष्ठितमोऽध्यायः

विष्णवादिदेवताप्रतिष्ठासामान्यविधिः पुस्तकलेखनविधिश्च

श्रीभगवानुवाच— **एवं तार्क्ष्यस्य चक्रस्य ब्रह्मणो नृहरेस्तथा । प्रतिष्ठा विष्णुवत्कार्या स्वस्वमन्त्रेण तां शृणु ॥ १ ॥ सुदर्शन महाचक्र शान्त दुष्टभयङ्कर, छिन्धि च्छिन्धि भिन्धि भिन्धि विदारय विदारय परमन्त्रान्ग्रस ग्रस भक्षय भक्षय भूतांस्त्रासय त्रासय हुं फट् सुदर्शनाय नमः ॥ २ ॥ अभ्यर्च्य चक्रं चानेन रणे दारयते रिपून् ॥ ३ ॥ ओं क्षौं नरसिंह उग्ररूप ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल स्वाहा ॥ ४ ॥ नरसिंहस्य मन्त्रोऽयं पातालाख्यस्य वच्मि ते ॥ ५॥ ॐ क्षौं नमो भगवते नरसिंहाय प्रदीप्तसूर्यकोटिसहस्रसमतेजसे वज्रनखदंष्ट्रायुधाय स्फुटविकटविकीर्णकेसरसटाप्रक्षुभितमहार्णवाम्भोदुन्दुभिनिर्घोषाय सर्वमन्त्रोत्तारणाय एह्येहि भगवन्नरसिंह पुरुष परात्पर ब्रह्म सत्येन स्फुर स्फुर विजृम्भ विजृम्भ आक्रम आक्रम गर्ज गर्ज मुञ्च मुञ्च सिंहनादान् विदारय विदारय विद्रावय विद्रावय सर्वमन्त्ररूपाणि मन्त्रजातींश्च हन हन च्छिन्द च्छिन्द संक्षिप संक्षिप सर सर दारय दारय स्फुट स्फुट स्फोटय स्फोटय ज्वालामालासंघातमय सर्वतोऽनन्तज्वालावज्राशनिचक्रेण सर्वपातालानुत्सादयोत्सादय सर्वतोऽनन्तज्वालावज्रशरपञ्जरेण सर्वपातालान्परिवारय परिवारय सर्वपातालासुरवासिनां हृदयान्याकर्षयाकर्षय शीघ्रं दह दह पच पच मथ मथ शोषय शोषय निकृन्तय निकृन्तय तावद्यावन्मे वशमागताः पातालेभ्यः फडसुरेभ्यः फट् मन्त्ररूपेभ्यः फट् मन्त्रजातिभ्यः फट् संशयान्मां भगवन्नरसिंहरूप विष्णो सर्वापद्भ्यः सर्वमन्त्ररूपेभ्यो रक्ष रक्ष हुं फट् नमस्ते ॥ ६ ॥ नरसिंहस्य विद्येऽयं हरिरूपाऽर्थसिद्धिदा । त्रैलोक्यमोहनैर्मन्त्रैः स्थाप्यस्त्रैलोक्यमोहनः॥७॥ गदी दक्षे शान्तिकरो द्विभुजो वा चतुर्भुजः । वामोर्ध्वे कारयेच्चक्रं पाञ्चजन्यमथो ह्यधः ॥ ८ ॥ श्रीपुष्टिसंयुतं कुर्याद्बलेन सह भद्रया । प्रासादे स्थापयेद्विष्णुं गृहे वा मण्डपेऽपि वा ॥ ९ ॥ वामनं चैव वैकुण्ठं हयास्यमनिरुद्धकम् । स्थापयेज्जलशय्यास्थं मत्स्यादींश्चावतारकान् ॥ १० ॥ संकर्षणं विश्वरूपं लिङ्गं वै रुद्रमूर्तिकम् । अर्धनारीश्वरं तद्वद् हरिशंकरमातृकाः ॥ ११ ॥ भैरवं च तथा सूर्यं ग्रहांस्तद्वद्विनायकम् । गौरीमिन्द्रादिभिः**

श्रीभगवान् ने कहा— गरुड़ चक्र, ब्रह्मा तथा भगवान् नृसिंह की प्रतिष्ठा भगवान् विष्णु की प्रतिष्ठा के ही समान करनी चाहिए । उसे आप सुनें ।। १ ।। **सुदर्शन महाचक्र शान्त दुष्ट भयंकर हुं फट् सुदर्शनाय नमः** ।। २ ।। इस मन्त्रसे सुदर्शन चक्र की पूजा करने से मनुष्य संग्राम में शत्रुओं का नाश करता है ।। ३ ।। **ओं क्षौं नरसिंह उग्ररूप ज्वल-ज्वल प्रज्वल प्रज्वल स्वाहा** यह नरसिंह भगवान् का मन्त्र है । मैं तुम्हें पाताल नरसिंह का मन्त्र बतला रहा हूँ ।। ५ ।। **ओं क्षौं नमो भगवते........ रक्ष रक्ष हुं फट् नमो नमस्ते** ।। ६ ।। यह श्री हरिस्वरूपिणी विद्या है जो अर्थसिद्धि प्रदान करने वाली है । त्रैलेक्य मोहन मन्त्रों के द्वारा त्रैलोक्य मोहन की स्थापना करनी चाहिए ।। ७ ।। त्रैलोक्य मोहन भगवान् शान्ति करने वाले हैं । उनकी मूर्ति द्विभुज अथवा चतुर्भुज होती है । उनके दाहिने हाथ में गदा ऊपर के बायें हाथ में चक्र तथा नीचे के बायें हाथ में पाञ्चजन्य बनाना चाहिए ।। ८ ।। साथ में श्री देवी तथा पुष्टि देवी के साथ बलराम तथा सुभद्रा (लक्ष्मी जी का भी एक नाम सुभद्रा है) की मूर्ति बनाना चाहिए । श्रीभगवान् विष्णु की स्थापना मन्दिर, गृह अथवा मण्डप में करनी चाहिए ।। ९ ।। वामन, वैकुण्ठ, हयग्रीव तथा अनिरुद्ध एवं मत्स्य आदि (कूर्म) अवतारों की स्थापना जलशय्या पर करनी चाहिए ।। १० ।। उसी प्रकार से सङ्कर्षण, विश्वरूप, रुद्रमूर्ति लिङ्ग, अर्द्धनारीश्वर, हरिहर, मातृगण, भैरव, सूर्य आदि ग्रह, विनायक (गणेशजी) इन्द्र आदि देवताओं से पूजित गौरी देवी, चित्रजा देवी, तथा बलाबला देवी की स्थापना करनी चाहिए ।। ११-१२ ।। अब मैं पुस्तकों की प्रतिष्ठा विधि तथा लेखन विधि को बतला रहा हूँ । स्वस्तिक

सेव्यां चित्रजां च बलाबलाम् ॥ १२ ॥ पुस्तकानां प्रतिष्ठां च वक्ष्ये लिखनतद्विधिम् । स्वस्तिके मण्डलेऽभ्यर्च्य शरयन्त्रासने स्थितम् ॥ १३ ॥ लेख्यं च लिखितं पुस्तं गुरुं विद्यां हरिं यजेत् । यजमानो गुरुं विद्यां हरिं लिपिकृतं नरम् ॥ १४ ॥ प्राङ्मुखः पद्मिनीं ध्यायेल्लिखित्वा श्लोकपञ्चकम् । रौप्यस्थमष्या हैम्या च लेखन्या नागराक्षरम् ॥ १५ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् । गुरुं विद्यां हरिं प्रार्च्य पुराणादि लिखेन्नरः ॥ १६ ॥ पूर्ववन्मण्डलाद्यैश्च ऐशान्यां भद्रपीठके । दर्पणे पुस्तकं धृत्वा सेचयेत्पूर्ववद्धटैः ॥ १७ ॥ नेत्रोन्मीलनकं कृत्वा शय्यायां तु न्यसेन्नरः । न्यसेत्तु पौरुषं सूक्तं वेदाद्यं तत्र पुस्तके ॥ १८ ॥ कृत्वा सजीवीकरणं प्रार्च्य हुत्वा चरुं ततः । संप्रार्च्य दक्षिणाभिस्तु गुर्वादीन्भोजयेद् द्विजान् ॥ १९ ॥ रथेन हस्तिना वाऽपि भ्रामयेत्पुस्तकं नरैः । गृहे देवालयादौ तु पुस्तकं स्थाप्य पूजयेत् ॥ २० ॥ वस्त्रादिवेष्टितं पाठादावन्ते समर्चयेत् । जगच्छान्तिं चावधार्य पुस्तकं वाचयेन्नरः ॥ २१ ॥ अध्यायमेकं कुम्भाद्भिर्यजमानादि सेचयेत् । द्विजाय पुस्तकं दत्वा फलस्यान्तो न विद्यते ॥ २२ ॥ त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती। नरकादुद्धरन्त्येव जपवापनदोहनात् ॥ २३ ॥ विद्यादानफलं दत्त्वा मष्याक्तं पत्रसंचयम्। यावत्तु पत्रसंख्यानमक्षराणां तथाऽनघ ॥ २४ ॥ तावद्वर्षसहस्राणि विष्णुलोके महीयते । पञ्चरात्रं पुराणानि भारतानि ददन्नरः ॥ २५ ॥ कुलैकविंशमुद्धृत्य परे तत्त्वे तु लीयते ॥ २६ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विष्णवादिदेवताप्रतिष्ठासामान्यविधिकथनं नाम त्रिषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

मण्डल पर पूजा करके, शरयन्त्र रूपी आसन पर पुस्तक को रखकर लिखना चाहिए। और गुरु लिखे हुए पुस्तक, विद्या (सरस्वती) तथा श्रीहरि की पूजा करें यजमान को गुरु, विद्या, श्रीहरि तथा लिपिकार मनुष्य की पूजा करनी चाहिए ।। १३-१४ ।। पूर्वाभिमुख होकर पाञ्च श्लोक लिखकर पद्मिनी देवी का ध्यान करना चाहिए । चाँदी के दवात की स्याही से तथा सोने की कलम से नागराक्षर में ग्रन्थ लिखना चाहिए ।। १५ ।। पुनः ब्राह्मणों को भोजन कराकर अपनी शक्ति के अनुसार उन्हें दक्षिणा देनी चाहिए । फिर मनुष्य को गुरु, विद्या (सरस्वती) तथा श्रीहरि की पूजा करके पुराण आदि लिखना चाहिए ।। १६ ।। तदनन्तर मण्डल आदि की रचना करके ईशानकोण में भद्रपीठ के ऊपर दर्पण पर पुस्तक को रखकर स्थपित कलशों से पुस्तक का अभिषेक करना चाहिए ।। १७ ।। नेत्रोन्मीलन करके पुस्तक को शय्या पर स्थापित करना चाहिए । उस पुस्तक के ऊपर पुरुषसूक्त तथा वेद आदि का न्यास करना चाहिए ।। १८ ।। सजीवीकरण करने के बाद पूजा करके चरु का हवन करना चाहिए । तदनन्तर दक्षिणा आदि से आचार्य आदि की पूजा करके ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए । १९ ।। रथ के द्वारा या हाथी से अथवा मनुष्यों के द्वारा पुस्तक को नगरभ्रमण कराना चाहिए । फिर गृह अथवा देवालय में स्थापना करके पुस्तक की पूजा करनी चाहिए ।। २० ।। पाठ के आदि तथा अन्त में वस्त्र से वेष्टित पुस्तक की पूजा करनी चाहिए । पुस्तक का वाचन जगत् शान्ति के लिए करना चाहिए ।। २१ ।। एक अध्याय पढ़कर कलश के जल से यजमान आदि का अभिषेक करना चाहिए । ब्राह्मण को पुस्तक दान करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है ।। २२ ।। गौ, पृथिवी तथा सरस्वती (पुस्तक) इन तीन वस्तुओं के दान को अतिदान कहा गया है । गौ का दोहन, पृथिवी का वपन तथा सरस्वती (पुस्तक) का पाठ ये तीनों नरक से उद्धार करने वाले होते हैं ।।२३।। स्याही से लिखे गए पत्र समूह (पुस्तक) तथा विद्यादान करने से, हे अनघ ! उसमें जितने पन्ने अथवा अक्षर होते हैं, उतने हजार वर्ष पर्यन्त दाता विष्णुलोक में निवास करता है । पञ्चरात्र, समस्त पुराण तथा महाभारत का दान करके मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ी का उद्धार करके परं तत्त्व में लीन हो जाता है ।। २४-२६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का विष्णु आदि देवताओं की प्रतिष्ठा की सामान्य विधि का वर्णन नामक तिरसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६३ ॥

अथ चतुःषष्ठितमोऽध्यायः

कूपवापीतडागप्रतिष्ठाविधिः

श्रीभगवानुवाच- **कूपवापीतडागानां प्रतिष्ठां वच्मि तां शृणु । जलरूपेण हि हरिः सोमो वरुण उत्तमः ॥ १ ॥ अग्नीषोममयं विश्वं विष्णुरापस्तु कारणम् । हैमं रौप्यं रत्नजं वा वरुणं कारयेन्नरः ॥ २ ॥ द्विभुजं हंसपृष्ठस्थं दक्षिणेनाभयप्रदम् । वामेन नागपाशं तु नदीनागादिसंयुतम् ॥ ३ ॥ यागमण्डपमध्ये स्याद्वेदिका कुण्डमण्डिता । तोरणं वारुणं कुम्भं न्यसेच्च करकान्वितम् । ४ ॥ भद्रके चार्धचन्द्रे वा स्वस्तिके द्वारि कुम्भकान् । अग्न्याधानं चापि कुण्डे कृत्वा पूर्णां प्रदापयेत् ॥ ५ ॥ वरुणं स्नानपीठे तु ये ते शतेति संस्पृशेत् । घृतेनाभ्यञ्जयेत्पश्चान्मूलमन्त्रेण देशिकः ॥ ६ ॥ शं नो देवीति प्रक्षाल्य शुद्धवत्या शिवोदकैः । अधिवासयेदष्टकुम्भान्सामुद्रं पूर्वकुम्भके ॥ ७ ॥ गाङ्गमग्नौ वर्षतोयं दक्षे रक्षस्तु नैर्झरम् । नदीतोयं पश्चिमे तु वायव्ये तु नोदकम् ॥ ८ ॥ औद्भिज्जं चोत्तरे स्थाप्यमैशान्यां तीर्थसम्भवम् । अलाभे तु नदीतोयं यासां राजेति मन्त्रयेत् ॥ ९ ॥ देवं निर्माज्यं निर्मथ्य दुर्मित्रियेति विचक्षणः । नेत्रे चोन्मीलयेच्चित्रं तच्चक्षुर्मधुरत्रयैः ॥ १० ॥ ज्योतिः सम्पूजयेद् हैम्यां गुरवे गामथार्पयेत् । समुद्रज्येष्ठेत्यभिषिञ्चेद्वरुणं पूर्वकुम्भतः ॥ ११ ॥ समुद्रं गच्छ गाङ्गेयात्सोमो धेन्विति वर्षकात् । देवीरापो निर्झराद्भिर्नदद्भिः पञ्चनद्यतः ॥ १२ ॥ उद्भिज्जाद्भिश्चोद्भिदेन पावमान्याऽथ तीर्थकैः । आपो हि ष्ठा पञ्चगव्याद्धिरण्यवर्णेति स्वर्णजात् ॥१३॥ आपो अस्मेति वर्षोत्थैर्व्याहृत्या कूपसम्भवैः।**

श्रीभगवान् ने कहा– अब मैं कुआँ, बावली तथा तडाग की प्रतिष्ठा विधि का वर्णन कर रहा हूँ । उसे आप सुनें । श्रीहरि जल रूप में विद्यमान हैं तथा वरुण उसके उत्तम देवता हैं ।। १।। सम्पूर्ण विश्व अग्नि तथा सोममय है और जलस्वरूप विष्णु जगत् के कारण हैं । मनुष्य को चाहिए कि वह, सुवर्ण, चाँदी, अथवा रत्न की वरुण की मूर्ति बनाए ।। २ ।। वरुण की मूर्ति दो भुजाओं वाली, हंस पर सवार, दाहिने हाथ में अभयमुद्रा, बायें हाथ में नागपाश लिए हुए तथा नदी एवं नागों से अलंकृत होनी चाहिए ।। ३ ।। कुण्ड से सुशोभित, वेदी को यज्ञशाला के बीच में होना चाहिए। करके से युक्त तोरण,वरुण तथा कलश की स्थापना करनी चाहिए ।। ४ ।। यज्ञशाला के द्वार पर भद्रपीठ, अथवा अर्धचन्द्रमण्डल अथवा स्वस्तिक मण्डल के ऊपर कलशों की स्थापना करनी चाहिए। कुण्ड में भी अग्नि की स्थापना करके पूर्णाहुति देनी चाहिए ।। ५ ।। स्नान पीठ पर वरुण की स्थापना करके **'ये ते शतम्'** इत्यादि मन्त्र से उनका स्पर्श करना चाहिए । उसके पश्चात् आचार्य को चाहिए कि वे मूलमन्त्र से वरुण के शरीर में घी लगाएँ ।। ६ ।। **'शन्नो देवी'** इत्यादि मन्त्र से प्रक्षालन करके शुद्धवती ऋचा से शुद्धोदक से स्नान कराना चाहिए । पुनः आठ कलशों का अधिवास कराना चाहिए । पूर्व के कलश में समुद्र का जल, अग्निकोण के कलश में गङ्गाजल, दक्षिण दिशा के कलश में वर्षा का जल,नैर्ऋत्यकोण के कलश में झरने का जल, पश्चिमी दिशा के कलश में नदी का जल, वायव्यकोण के कलश में नद का जल, उत्तर दिशा के कलश में वनस्पति मिश्रित जल, और ईशानकोण के कलश में तीर्थ का जल रखना चाहिए । इन सभी प्रकार के जलों के नहीं उपलब्ध होने पर सभी कलशों में नदी का जल रखकर उसको 'यासां राजा' इत्यादि मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिए ।। ७-९ ।। देवता को अच्छी तरह से नहलाकर **'दुर्मित्रिया'** इत्यादि मन्त्र [illegible]न करके 'चित्रं देवानाम्' इत्यादि मन्त्र से देवता का नेत्रोन्मीलन करे और 'तच्चक्षुर्देवहितम्' इत्यादि मन्त्र से देवता को मधुरत्रय (चीनी, घी, और मधु । अर्पित करे ।। १० ।। पुनः पूर्वदिशा [illegible]लश के जल से वरुण का **'समुद्र ज्येष्ठा '** इत्यादि मन्त्र से अभिषेक करना चाहिए ।। ११ ।। **'समुद्रं गच्छ'** इत्यादि मन्त्र से गंगा जल से **'समो धेनु'** इत्यादि मन्त्र से वर्षा के जल से, **'देवीरापः'** इत्यादि मन्त्र से 'निझर के जल से, **'पञ्चनद्यः'** इत्यादि मन्त्र से नद के जल से, **'उद्भिद्भ्यः'** इत्यादि मन्त्र से औषधि के जल से **'पावमानी'** सूक्त की ऋचा से तीर्थ जल से तथा **'आपोहिष्ठा'** इत्यादि मन्त्र से सुवर्ण के जल से स्नान कराना चाहिए ।। १२-१३ ।। **'आपो अस्मात्'** इत्यादि मन्त्र से वर्षा के जल से **'व्याहृतियों (ओं भूः, ओं भुवः, ओं स्वः, ओं महः, ओं जनः,**

वरुणं च तडागोत्थैर्वरुणाद्भिस्तु वाग्यतः ॥ १४ ॥ आपो देवीति गिरिजैरेकाशीतिघटैस्ततः । स्नापयेद्वरुणस्येति त्वं नो वरुण चार्धकम् ॥ १५॥ व्याहृत्या मधुपर्कं तु बृहस्पतेति वस्त्रकम् । वरुणेति पवित्रं तु प्रणवेनोत्तरीयकम् ॥ १६ ॥ यद्वारुण्येन पुष्पादि प्रदद्याद्वरुणाय तु । चामरं दर्पणं छत्रं व्यजनं वैजयन्तिकम् ॥ १७ ॥ मूलेनोत्तिष्ठेत्युत्थाप्य तां रात्रिमधिवासयेत् । वरुणं वेति सान्निध्यं यद्वारुण्येन पूजयेत् ॥ १८॥ सजीवीकरणं मूलात्पुनर्गन्धादिना यजेत् । मण्डले पूर्ववत्प्राच्र्य कुण्डेषु समिदादिकम् ॥ १९ ॥ वेदादिमन्त्रैर्गङ्गाद्याश्चतस्रो धेनवो दुहेत्। दिक्ष्वथो वै यवचरुं ततः संस्थाप्य होमयेत् ॥ २० ॥ व्याहृत्या वाऽथ गायत्र्या मूलेनाऽऽमन्त्रयेत्तथा । सूर्याय प्रजापतये द्यौः स्वाहा चान्तरिक्षकः॥ २१ ॥ तस्यै पृथिव्यै देहधृत्यै इह स्वधृतये ततः । इह रत्यै चेह रमत्या उग्रो भीमश्च रौद्रकः ॥ २२ ॥ विष्णुश्च वरुणो धाता रायस्पोषो महेन्द्रकः । अग्निर्यमो नैर्ऋतोऽथ वरुणो वायुरेव च ॥ २३ ॥ कुवेर ईशोऽनन्तोऽथ ब्रह्मा राजा जलेश्वरः । तस्मै स्वाहेदं विष्णुश्च तद्विप्रासेति होमयेत् ॥ २४ ॥ सोमो धेन्विति षड्हुत्वा इमं मेति च होमयेत् । आपो हि ष्ठेति तिसृभिरिमा रुद्रेति होमयेत् ॥ २५ ॥ दशदिक्षु बलिं दद्याद् गन्धपुष्पादिनाऽर्चयेत् । प्रतिमां तु समुत्थाप्य मण्डले विन्यसेद्बुधः ॥ २६ ॥ पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्हेमपुष्पादिभिः क्रमात् । जलाशयांस्तु दिग्भागे वितस्तिद्वयसंमितान् ॥ २७ ॥ कृत्वाऽष्टौ स्थण्डिलान्रम्यान्सैकताद्वेदिकोत्तमः । वरुणस्येति मन्त्रेण आज्यमष्टशतं ततः ॥ २८ ॥ चरुं यवमयं हुत्वा शान्तितोयं समाहरेत् । सेचयेन्मूर्ध्नि देवं तु सजीवकरणं चरेत्॥२९॥ ध्यायेत्तु वरुणं युक्तं गौर्यानदनदीगणैः । ॐ वरुणाय ततोऽभ्यर्च्य ततः सांनिध्यमाचरेत् ॥ ३०॥ उत्थाय नागपृष्ठाद्यैर्भ्रामयेत्तैः

ओं तपः, ओं सत्यम्, ये सात व्याहृतियाँ हैं ।) से कुएँ के जल से, वरुणं च इत्यादि मन्त्र से तालाब के जल से, और मौन रहकर वरुण को जल से स्नान कराना चाहिए ।। १४ ।। '**आपो देवी**' इत्यादि मन्त्र से पर्वत के जल से और उसके पश्चात् इक्यासी कलशों से वरुण को स्नान कराना चाहिए । फिर वरुण को '**त्वं नो वरुण**' इत्यादि मन्त्र से अर्घ्य देना चाहिए ।। १५ ।। व्याहृतियों मधुपर्क और '**वृहस्पते**' इत्यादि मन्त्र से वस्त्र प्रदान करना चाहिए । '**वरुण**' इत्यादि मन्त्रसे पवित्र तथा प्रणव के द्वारा उत्तरीय (चादर) प्रदान करना चाहिए ।। १६ ।। '**यद् वारुणेन**' इत्यादि मन्त्र से वरुण को पुष्पादि प्रदान करना चाहिए । इसी प्रकार से वरुण को चामर, दर्पण, छत्र, व्यजन तथा पताका मूलमन्त्र से अर्पित करना चाहिए । '**उत्तिष्ठ**' इत्यादि मन्त्र से उठाकर उस रात्रि में अधिवास कराना चाहिए। 'वरुणं वा' इत्यादि मन्त्र से सन्निधिकरण करके -'**यद्वारुण्येन**' इत्यादि मन्त्र से पूजन करना चाहिए ।। १७-१८ ।। मूल मन्त्र से 'सजीवीकरण करके फिर चन्दन आदि से पूजन करना चाहिए । पहले के ही समान मण्डल में पूजन करके कुण्ड में वेदादि मन्त्रों से समिधा आदि का होम करना चाहिए । पुनः गङ्गा आदि चार धेनुओं को दुहकर चारों दिशाओं में स्थापना करके यव तथा चरु का होम करना चाहिए ।। १९ ।। २० ।। पुनः व्याहृति, अथवा गायत्री अथवा मूलमन्त्र से यव और चरु को अभिमन्त्रित करना चाहिए । पुनः इन मन्त्रों से हवन करना चाहिए— **(१) ओं सूर्याय स्वाहा, (२) ओं प्रजापतये स्वाह, (३) ओं द्यौः स्वाहा, (४) ओं आन्तकाय स्वाहा, (५) ओं निग्रहाय स्वाहा, (६) ओं पृथिव्यै स्वाहा, (७) देहधृत्यै स्वाहा, (८) ओं स्वधृतये स्वाहा, (९) ओं रत्यै स्वाहा, (१०) ओं रमत्यै स्वाहा, (११) ओं उग्राय स्वाहा, (१२) ओं भीमाय स्वाहा, (१३) ओं रौद्राय स्वाहा, (१४) ओं विष्णावे स्वाहा, (१५) ओं वरुणाय स्वाहा, (१६) ओं वायवे स्वाहा, (१७) ओं कुबेराय स्वाहा, (१८) ईशानाय स्वाहा, (१९) ओं अनन्ताय स्वाहा, (२०) ओं ब्रह्मणे स्वाहा, (२१) ओं राज्ञो स्वाहा, (२१) ओं जलेश्वराय स्वाहा** । उसके पश्चात् '**इदं विष्णुर्विचक्रमे**' इत्यादि मन्त्र से तथा '**तद्विष्णोः परमं पदम्**' इत्यादि मन्त्र से होम करना चाहिए।।२१-२४।। पुनः '**सोमो धेनु**' इत्यादि मन्त्र से छह आहुति देकर '**इमं मे**' इत्यादि मन्त्र से होम करना चाहिए । **(१) 'आपो हिष्ठाः' (२) यो वः शिवतमो० (३) तस्मा अरङ्गमा०** इत्यादि तीन ऋचाओं से तथा '**इमा रुद्र**' इत्यादि मन्त्र से होम करना चाहिए ।। २५ ।। पुनः दस दिशाओं में दिक्पाल बलि देनी चाहिए और गन्ध पुष्प आदि से अर्चना करनी चाहिए । पुनः विद्वान् को चाहिए कि वह प्रतिमा को उठाकर उसको मण्डल में स्थापित करे ।। २६ ।। पुनः गन्ध, पुष्प तथा होम आदि से क्रमशः वरुण मूर्ति की पूजा करनी चाहिए । पुनः प्रत्येक दिशा में दो वित्ते के जलाशयों को बनाकर, आचार्य बालू की आठ मनोहर वेदियों को बनाएँ । फिर '**वरुणस्य**' इत्यादि मन्त्र से चरु तथा यव से युक्त घी की एक सौ आठ आहुति देकर फिर शान्तिजल लाएँ और वरुण

समङ्गलैः । आपो हि ष्ठेति च क्षिपेत्त्रिमध्वाक्ते घटे जले ॥ ३१ ॥ जलाशये मध्यगतं सुगुप्तं विनिवेशयेत् । स्नात्वा ध्यायेच्च वरुणं सृष्टिं ब्रह्माण्डसंज्ञिकाम् ॥ ३२ ॥ अग्निबीजेन संदग्ध्वा (ह्य) तद्भस्म प्लावयेन्नरः । सर्वमापोमयं लोकं ध्यायेत्तत्र जलेश्वरम्॥३३॥ तोयमध्यस्थितं देवं ततो यूपं निवेशयेत् । चतुरस्त्रमथाष्टास्त्रं वर्तुलं वा सुकीर्तितम् ॥ ३४ ॥ आराध्य देवतालिङ्गं दशहस्तं तु कूपके । यूपं यज्ञी (ज्ञि) यवृक्षोत्थं मूले हैमं फलं न्यसेत् ॥ ३५ ॥ वाप्यां पञ्चदशकरं पुष्करिण्यां तु विंशकम् । तडागे पञ्चविंशाख्यं जलमध्ये निवेशयेत् ॥३६॥ यागमण्डपाङ्गणे वा यूप ब्रह्मेतिमन्त्रतः । स्थाप्य तद्वेष्टयेद्वस्त्रैर्यूपोपरि पताकिकाम् ॥ ३७ ॥ तदभ्यर्च्य च गन्धाद्यैर्जगच्छान्तिं समाचरेत् ॥ दक्षिणां गुरवे दद्याद्भूगोहेमाम्बुपात्रकम्॥३८॥ द्विजेभ्यो दक्षिणा देया आगतान्भोजयेत्तथा । आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं ये केचित्सलिलार्थिनः ॥ ३९ ॥ ते तृप्तिमुपगच्छन्तु तडागस्थेन वारिणा । तोयमुत्सर्जयेदेवं पञ्चगव्यं विनिक्षिपेत् ॥ ४० ॥ आपो हि ष्ठेति तिसृभिः शान्तितोयं द्विजैः कृतम् । तीर्थतोयं क्षिपेत्पुण्यं गोकुलं चार्पयेद्विजान्॥४१॥ अनिवारितमन्नाद्यं सर्वजन्यं च कारयेत् । अश्वमेधसहस्राणां सहस्रं यः समाचरेत् ॥ ४२॥ एकाहं स्थापयेत्तोयं तत्पुण्यमयुतायुतम् । विमाने मोदते स्वर्गे नरकं न स गच्छति ॥ ४३ ॥ गवादि पिबते यस्मात् तस्मात् कर्तुर्न पातकम् । तोयदानात् सर्वदानफलं प्राप्यदिवं ब्रजेत् ॥ ४४॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कूपवापीतडागादिप्रतिष्ठाकथनं नाम चतुःषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥



देवता के सिर पर उसका अभिषेक करके वरुण देवता का सजीवीकरण करें ।। २७-२९ ।। तदनन्तर गौरी, नद, तथा नदी समूह के साथ वरुण का ध्यान करना चाहिए । **'ओम् वरुणाय नमः'** इस मन्त्र से वरुण का पूजन करके उनका सन्निधिकरण करना चाहिए ।। ३० ।। पुनः प्रतिमा को उठाकर हाथी के पीठ आदि (रथ पर चढ़ाकर अथवा मनुष्य के सिर पर रखकर) पर रखकर मङ्गल गान करते हुए नगर भ्रमण कराना चाहिए । पुनः त्रिमधु मिश्रित जल वाले घट में वरुण मूर्ति को छोड़ दे ।। ३१ ।। जलाशय के बीच में अत्यन्त गोपनीय ढंग से उस मूर्ति को छिपाकर स्नान करके वरुण तथा ब्रह्माण्ड संज्ञक सृष्टि का ध्यान करना चाहिए ।। ३१ ।। अग्नि बीज के द्वारा उस सृष्टि को जलाकर उसके भस्म को भावना के द्वारा बहा देना चाहिए । पुनः सम्पूर्ण लोक का जलरूप से ध्यान करके उसमें जलेश्वर (वरुण) का ध्यान करना चाहिए ।। ३३ ।। उसके पश्चात् जल स्थित देवता वरुण के लिए स्तम्भ को गाड़ना चाहिए । स्तम्भ को चार धारों वाला अथवा आठ धारों वाला अथवा गोल होना चाहिए ।। ३४ ।। देवमूर्ति की आराधना करके कुएँ में गाड़ने के लिए स्तम्भ दश हाथ का होना चाहिए । यूप (स्तम्भ) यज्ञीय वृक्ष का होना चाहिए तथा उसके मूल में यज्ञीय फल को होना चाहिए ।। ३५ ।। बापी में पन्द्रह हाथ का तथा पुष्करिणी में बीस हाथ का यूप स्थापित करके उसको वस्त्र से वेष्टित करना चाहिए तथा उसके ऊपर पताका लगाना चाहिए ।। ३७।। आचार्य को भूमि, गौ तथा सुवर्ण निर्मित जलपात्र का दान देना चाहिए ।। ३८ ।। ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए और आगन्तुकों को भोजन कराना चाहिए । पुनः **'आब्रह्म स्तम्बपर्यन्तं ये केचित् सलिलार्थिनः । ते तृप्तिमुपगच्छन्तु तडागस्थेन वारिणा'** अर्थात् ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त जो कोई भी जीव जल चाहते हों वे इस तडाग के जल से तृप्त होएँ । इस मन्त्र को पढ़ते हुए तड़ाग में जल डालें तथा पञ्चगव्य डालें ।। ४०।। ब्राह्मणों के द्वारा निर्मित शान्तिजल को तथा पवित्र तीर्थ के जलों को 'आपो हिष्ठा' इत्यादि तीन ऋचाओं के द्वारा जल डालकर ब्राह्मण को गोदान देना चाहिए।।४१।। अवारित द्वार (विना किसी रुकावट के) सभी लोगों को भोजन कराना चाहिए । दस लाख अश्वमेघ यज्ञ करने का जो फल होता है, उससे असंख्य गुना अधिक एक दिन के जल प्रतिष्ठा से होती है । वह मनुष्य विमान पर चढ़कर स्वर्गलोक में विहार करता है और नरक में कभी नहीं जाता ।। ४२-४३ ।। चूँकि उस तडाग के जल को जीव आदि पीते हैं। अतएव तडाग प्रतिष्ठा करने वाले को पाप नहीं लगता है । जल दान के द्वारा सभी दानों का फल प्राप्त करके वह स्वर्गलोक का अधिकारी बन जाता है ।। ४४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का कूप, वापी तथा तडाग आदि की प्रतिष्ठा वर्णन नामक चौसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६४ ॥



अथ पञ्चषष्ठितमोऽध्यायः

सभादिस्थापनविधिः

सभादिस्थापनं वक्ष्ये तथैतेषां प्रवर्तनम् । भूमौ परीक्षितायां च वास्तुयागं समाचरेत् ॥ १ ॥ स्वेच्छया तु सभां कृत्वा स्वेच्छया स्थापयेत्सुरान्। चतुष्पथे च ग्रामादौ न शून्ये कारयेत्सभाम् ॥ २ ॥ निर्मलः कुलमुद्धृत्य कर्ता स्वर्गे विमोदते । अनेन विधिना कुर्यात्सप्तभौमं हरेर्गृहम् ॥ ३ ॥ यथा राज्ञां तथाऽन्येषां पूर्वाद्याश्च ध्वजादयः । कोणभुजान्वर्जयित्वा चतुःशालं तु वर्जयेत् ॥ ४ ॥ त्रिशालं वा द्विशालं वा एकशालमथापि वा । व्ययाधिकं न कुर्वीत व्ययदोषकरं हि तत् ॥ ५ ॥ आयाधिके भवेत्पीडा तस्मात्कुर्यात्समं द्वयम् । करराशिं समस्तं तु कुर्याद्वसुगुणं गुरुः ॥ ६ ॥ सप्तार्चिषा कृते भागे गर्गविद्याविचक्षणः । अष्टधा भाजिते तस्मिन्यच्छेषं स व्ययो मतः ॥ ७ ॥ अथवा करराशिं तु हन्यात्सप्तार्चिषा बुधः । वसुभिः संहृते भागे ध्वजादि परिकल्पयेत् ॥ ८ ॥ ध्वजो धूम्रस्तथा सिंहः श्वा सृपस्तु खरो गज; । ध्वाङ्क्षश्चेति क्रमेणैव मायाष्टकमुदाहृतम् ॥ ९ ॥ त्रिशालकत्रयं शस्तं सर्वभेदविवर्जितम् । याम्यां परगृहोपेतं द्विशालं शस्यते सदा ॥ १० ॥ याम्ये शालैकशालं तु प्रत्यक्शालमथापि वा । एकशालद्वयं शस्तं शेषास्त्वन्ये भयावहाः ॥ ११ ॥ चतुःशालं सदा शस्तं सर्वदोषविवर्जितम् । एकं भौमादि कुर्वीत भवनं सप्तभौमकम् ॥ १२ ॥ द्वारवेधादिरहितं पुराणेन विवर्जितम् । देवगृहं देवतायाः प्रतिष्ठाविधिना सदा ॥ १३ ॥ संस्थाप्य मनुजानां च समुदायोक्तकर्मणा। प्रातः सर्वौषधीस्नानं कृत्वा शुचिरतन्द्रितः॥ १४॥ मधुरैस्तु द्विजान्भोज्य पूर्णकुम्भादिशोभितम् । सतोरणं स्वस्तिवाच्य द्विजान्गोपृष्ठहस्तकः ॥ १५ ॥ गृही गृहं प्रविशेच्च दैवज्ञान्प्राच्र्य संविशेत् । गृहे

श्रीभगवान् ने कहा— अब मैं सभा आदि की स्थापना तथा उनके प्रवर्तन की विधि का वर्णन करूँगा । परीक्षित भूमि पर वास्तुयाग करना चाहिए ।। १ ।। अपनी इच्छा के अनुसार सभा का निर्माण करके उसमें अपनी इच्छा के अनुसार ही देवताओं की स्थापना करनी चाहिए । सभा का निर्माण चौराहे पर अथवा ग्राम में कराना चाहिए, शून्य स्थान में नहीं ।। २ ।। सभा का निर्माण कराने वाला निष्पाप पुरुष अपने कुल का उद्धार करके स्वर्गलोक में आनन्दानुभव करता है । इसी विधि से श्रीहरि का सात मंजिल भवन बनवाना चाहिए । राजाओं के ही समान दूसरों के भवन की भी पूर्व आदि दिशाओं में ध्वज आदि संज्ञाएँ होती हैं । कोने की भुजा को छोड़कर चतुःशाल बनवाना चाहिए ।। ४ ।। अथवा एक ही शाला वाला सभा भवन बनाना चाहिए । अधिक व्यय नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसे सभा व भवन में व्यय नामक दोष होता है ।। ५ ।। आय के अधिक होने पर अधिक पीड़ा होती है । इसलिए आय और व्यय दोनों को समान रखना चाहिए । कितने हाथ हों उसको आठ से गुणा करना चाहिए ।। ६ ।। पुनः गर्ग विद्या में बिपुण आचार्य को उसमें सात से भाग देना चाहिए जो भागफल हो उसमें आठ का भाग दें । जो शेष बचे उसे ही व्यय माना जाता है ।। ७ ।। अथवा सभामण्डप की लम्बाई चौड़ाई का गुणा करके जितने हाथ हों उसमें सात का भाग दे । जो भागफल हो उसमें पुनः आठ का भाग देकर ध्वज आदि संज्ञाओं को शेष के आधार पर निर्धारण करना चाहिए । (१) ध्वज, (२) धूम्र, (३) सिंह, (४) श्वान, (५) वृष, (६) खर, (७) हाथी, और (८) कौआ ये क्रमशः ध्वजादि संज्ञाएँ हैं । इन्हें क्रमशः मायाष्टक कहा गया है।। ९ ।। सभी भेदों से रहित तीन त्रिशालक श्रेष्ठ हैं, उत्तर दिशा में तथा दूसरे गृह से युक्त द्विशाल अच्छा होता है ।। १० ।। दक्षिण दिशा में शाल (एक कमरे वाला) शाला को होना चाहिए अथवा सभा की शाला (कमरा) पश्चिम दिशा में होना चाहिए । पश्चिम दिशा में दो एक शाला वाले सभा मण्डप श्रेष्ठ होते हैं, किन्तु अन्य भयावह होते हैं । सभी दोषों से रहित चतुःशाला सभी मण्डप सदा श्रेष्ठ होते हैं । सभामण्डप को एक मंजिला से लेकर सात मंजिला पर्यन्त बनाना चाहिए । उसमें पुरानी सामग्री नहीं होनी चाहिए तथा उसे द्वारबेध आदि से रहित होना चाहिए । देव गृह की प्रतिष्ठा सर्वदा देवता की प्रतिष्ठा विधि से करनी चाहिए । उसकी स्थापना मनुष्य समुदाय के लिए बतलायी गयी विधि से करनी चाहिए । पुनः प्रातःकाल निरालस होकर सर्वोषधि से स्नान

पुष्टिकरं मन्त्रं पठेच्चेमं समाहितः ॥ १६ ॥ ॐ नन्दे नन्दय वासिष्ठे वसुभिः प्रजया सह । जये भार्गवदायादे प्रजानां विजयावहे ॥ १७ ॥ पूर्णेऽङ्गिरसदायादे पूर्णकामंकुरुष्व माम् । भद्रे कश्यपदायादे कुरु भद्रां मतिं मम ॥ १८ ॥ सर्वबीजौषधीयुक्ते सर्वरत्नौषधीवृते । रुचिरे नन्दने नन्दे वासिष्ठे रम्यतामिह ॥ १९ ॥ प्रजापतिसुते देवि चतुरस्रे महीयसि । सुभगे सुव्रते देवि गृहे काश्यपि रम्यताम् ॥ २० ॥ पूजिते परमाचार्यैर्गन्धमाल्यैरलंकृते। भवभूतिकरि देवि गृहे भार्गवि रम्यताम् ॥ २१ ॥ अव्यक्तेऽव्याकृते पूर्णे मुनेरङ्गिरसः सुते । इष्टके त्वं प्रयच्छेष्टं प्रतिष्ठां कारयाम्यहम् ॥ २२ ॥ देशस्वामिपुरस्वामिगृहस्वामि परिग्रहे । मनुष्यधनहस्त्यश्वपशुवृद्धिकरी भव ॥ २३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सभादिस्थापनविधिकथनं नाम पञ्चषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

अथ षट्षष्ठितमोऽध्यायः

देवतासामान्यप्रतिष्ठा

श्रीभगवानुवाच— **समुदायप्रतिष्ठां च वक्ष्ये सा वासुदेववत् । आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वेऽश्विनौ तथा ॥ १ ॥ ऋषयश्च तथा सर्वे वक्ष्ये तेषां विशेषकम्। यस्य देवस्य यन्नाम तस्याऽऽद्यं गृह्य चाक्षरम् ॥ २ ॥ मात्राभिर्भेदयित्वा तु दीर्घाण्यङ्गानि भेदयेत् । प्रथमं कल्पयेद् बीजं सबिन्दुं (न्दु) प्रणवान्वितम् ॥३॥ सर्वेषां मूलमन्त्रेण पूजनं स्थापनं तथा । नियमव्रतकृच्छ्राणां मठसंक्रमवेश्मनाम् ॥ ४ ॥ मासोपवासं द्वादश्या इत्यादिस्थापनं**

करके पवित्र होना चाहिए।।१३-१४ ।। ब्राह्मणों को मधुर भोजन कराकर तथा स्वस्तिवाचन कराकर पूर्णकुम्भों से सुशोभित तथा तोरण युक्त गृह में गौ के पृष्ठ पर हाथ रखकर गृहस्थ को प्रवेश करना चाहिए और दैवज्ञों (ज्योतिषियों) की पूजा करके उसमें रहे ।। पुनः सावधान होकर गृह में पुष्टि बढ़ाने वाले श्लोक १७ से २३ श्लोक पर्यन्त पठित मन्त्र को पढें । मन्त्र का अर्थ है- वसिष्ठ जी की पुत्रि ! नन्दे ! धन और सन्तान के साथ मुझे आनन्दित करें । हे भार्गव ऋषि की पुत्रि ! तथा प्रजाओं को विजय प्रदान करने वाली जये ! मुझे धन एवं सन्तान देकर आनन्द प्रदान करो ।। १७।। हे अङ्गिरा महर्षि की पुत्रि ! पूर्ण ! मुझे पूर्णकाम बनाओ । हे कश्यप ऋषि की पुत्रि ! भद्रे ! मेरी कल्याणमयी बुद्धि बनाओ ।। १८ ।। हे वसिष्ठ ऋषि की पुत्रि ! सभी बीजों की औषधि से युक्त, तथा सम्पूर्ण औषधि से समलंकृत नन्दे ! तुम इस आनन्दप्रद तथा मनोहर गृह में निवास करो ।। १८-१९ ।। हे कश्यप प्रजापति की पुत्रि ! देवि ! सुभगे तथा सुव्रत वाली देवि भद्रे ! तुम इस चतुष्कोण तथा विशाल भवन में रमण करो ।। २० ।। हे सांसारिक ऐश्वर्य प्रदान करने वाली भार्गवि ! देवि तुम बड़े-बड़े आचार्यों के द्वारा गन्ध एवं माला से पूजित इस गृह में रमण करो ।।२१।। आप अभिलषित अर्थ को प्रदान करें मैं आपकी प्रतिष्ठा करवा रहा हूँ ।। २२ ।। देश के स्वामी, नगर के स्वामी तथा गृह के स्वामी के द्वारा अपनायी गयी आप मनुष्य, धन, हाथी, घोड़ा तथा पशु की वृद्धि करें ।। २३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का सभा आदि की स्थापना आदि की विधि का वर्णन नामक पैंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६५ ॥

श्रीभगवान् ने कहा— अब मैं देव समुदाय की प्रतिष्ठा का वर्णन कर रहा हूँ । वह प्रतिष्ठा भी भगवान् वासुदेव की प्रतिष्ठा के ही समान होनी चाहिए । द्वादश आदित्यों, अष्ट वसुओं, एकादश, रुद्रों, साध्य देवों, विश्वेदेवों, दोनों अश्विनकुमारों तथा ऋषियों की प्रतिष्ठा में जो विशेष बातें होती हैं, मैं उन बातों को बतला रहा हूँ। जिस देवता का जो नाम हो उस नाम का पहला अक्षर ले ले।।१-२।। उसका भेद दीर्घ स्वरों को मिलाकर करना चाहिए और उन्हीं अक्षरों से अंगन्यास करना चाहिए । नाम के प्रथम अक्षर को प्रणव तथा अनुस्वार से युक्त करके उसे ही बीज मन्त्र बनाना चाहिए।।३।।

वदे । शिलां पूर्णघटं कांस्यं संभारं स्थापयेत्ततः ॥ ५ ॥ ब्रह्मकूर्चं समाहृत्य श्रपेद्यवमयं चरुम् । क्षीरेण कपिलायास्तु तद्विष्णोरिति साधकः ॥ ६॥ प्रणवेनाभिधायैव दर्व्या संघटयेत्ततः । साधयित्वाऽवतार्याथ विष्णुमभ्यर्च्य होमयेत् ॥ ७ ॥ व्याहृत्या चैव गायत्र्या तद्विप्रासेति होमयेत् । विश्वतश्चक्षुर्वेदाद्यैर्भूरग्नये तथैव च ॥ ८ ॥ सूर्याय प्रजापतये अन्तरिक्षाय होमयेत् । द्यौः स्वाहा ब्रह्मणे स्वाहा पृथ्वी महाराजकः ॥ ९ ॥ तस्मै सोमं च राजानमिन्द्राद्यैर्होममाचरेत् । एवं हुत्वा चरोर्भागान्दद्याद्दिग्बलिमादरात् ॥ १० ॥ समिधोऽष्टशतं हुत्वा पालाशा (शी) श्चाऽऽज्यहोमकम्। कुर्यात्पुरुषसूक्तेन इरावतीतिलाष्टकम् ॥ ११ ॥ हुत्वा तु ब्रह्मविष्णवीशदेवानामनुयायिनाम्। ग्रहाणामाहुतीर्हुत्वा लोकेशानामथो पुनः ॥ १२ ॥ पर्वतानां नदीनां च समुद्राणां तथाऽऽहुतीः । हुत्वा च व्याहृतीर्दद्यात्स्रुवपूर्णाहुतित्रयम् ॥ १३ ॥ वौषडन्तेन मन्त्रेण वैष्णवेन पितामह । पञ्चगव्यं चरुं प्राश्य दत्त्वाऽऽचार्याय दक्षिणाम् ॥१४ ॥ तिलपात्रं हेमयुक्तं सवस्त्रं गामलंकृताम् । प्रीयतां भगवान्विष्णुरित्युत्सृजेद् व्रतं बुधः ॥ १५ ॥ मासोपवासादेरन्यां प्रतिष्ठां वच्मि पूर्वतः । यज्ञेन (ना ऽ ऽ) तोष्य देवेशं श्रपयेद्वैष्णवं चरुम् ॥ १६ ॥ तिलतण्डुलनीवारैः श्यामाकैरथवा यवैः। आज्येनाऽऽघार्य चोत्तार्य होमयेन्मूर्तिमन्त्रकैः ॥ १७ ॥ विष्णवादीनां मासपानां तदन्ते होमयेत्पुनः ॥ १८ ॥ ॐ श्रीं विष्णवे स्वाहा । ॐ विष्णवे विभूषणाय स्वाहा। ॐ विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा । ॐ नरसिंहाय स्वाहा । ॐ पुरुषोत्तमाय स्वाहा ॥ १९ ॥ द्वादशाश्वत्थसमिधो होमयेद् घृतसंप्लुताः । विष्णोरराट मन्त्रेण ततो द्वादश चाऽऽहुतीः ॥ २० ॥ इदं विष्णुरिरावती चरोर्द्वादश चाऽऽहुतीः । हुत्वा चाऽऽज्याहुतीस्तद्वत्तद्विप्रासेति होमयेत् ॥ २१ ॥ शेषहोमं ततः कृत्वा दद्यात्पूर्णाहुतित्रयम् । युञ्जतेत्यनुवाकं तु जप्त्वा प्राश्यी (श्नी) त वै चरुम् ॥ २२ ॥ प्रणवेन स्वशब्दान्ते

सभी देवताओं का पूजन, तथा स्थापना मूलमन्त्र से करना चाहिए । इसके अतिरिक्त, नियमव्रत, कृच्छ्र, मठ, सेतुगृह, मासोपवास, द्वादशी व्रत आदि की मैं स्थापना बतलाऊँगा । शिला, पूर्णघट तथा सामग्री से युक्त कांस्य पात्र लाकर रखना चाहिए ।। ४ -५ ।। ब्रह्मकूर्च को लेकर यव से युक्त चरु को अग्नि पर चढ़ाना चाहिए । **'तद्विष्णोः परमं पदम्'** इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए उसे कपिला गौ के दुग्ध में पकाना चाहिए ।। ६ ।। प्रणव का उच्चारण करते हुए उसे कलछुल से चलाना चाहिए । चरु के पक जाने पर उसे उतार लें तथा भगवान् विष्णु की पूजा करके होम करे ।।७।। व्याहृति से, गायत्री से तथा तद्विप्रासो' मन्त्र से होम करना चाहिए । 'विश्वतश्चक्षुः इत्यादि मन्त्र से, भूमि, अग्नि, सूर्य, प्रजापति, तथा अन्तरिक्ष के लिए आहुति देनी चाहिए । द्युलोक, ब्रह्मा, पृथिवी, महाराज, सोम तथा देवराज इन्द्र आदि के लिए आहुति देनी चाहिए ।। ८-९ ।। इस प्रकार से होम करके चरु के अवशिष्ट अंश की आदरपूर्वक दिग्वलि देनी चाहिए ।। १० ।। समिधा का अष्टोत्तरशत हवन करके, पुरुषसूक्त से पलाश की लकड़ी तथा घी का हवन करना चाहिए । तथा 'इरावती' इत्यादि मन्त्र से तिल की आठ आहुतियाँ देनी चाहिए ।। ११ ।। इस तरह से हवन करके ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तथा अन्य देवताओं के अनुचरों को आहुति प्रदान करना चाहिए । ग्रहों की आहुति देने के पश्चात् लोकेशों की आहुति देनी चाहिए । फिर पर्वतों, नदियों तथा समुद्रों के लिए आहुति देनी चाहि।।१२-१३।। हे पितामह, जिसके अन्त में वौषट् हो उस वैष्णव मन्त्र से पञ्चगव्य तथा चरु का प्राशन करके तथा आचार्य को दक्षिणा देकर, भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए सुवर्ण निर्मित तथा वस्त्र से आच्छादित तिल के पात्र तथा गौ का दान करना चाहिए ।। १४-१५ ।। अब मैं दूसरी, मासोपवास आदि की प्रतिष्ठा को बतला रहा हूँ । जो पहले के ही समान है । यज्ञ के द्वारा भगवान् विष्णु को संतुष्ट करके वैष्णव चरु को पकाना चाहिए ।। १६ ।। तिल, चावल, नीवार, साँवा अथवा यव को घी में भूनकर उतार ले यही चरु है । पुनः मूर्तियों के मन्त्रों से हवन करना चाहिए ।। १७।। उसके पश्चात् मासों के स्वामी विष्णु आदि के लिए होम करना चाहिए ।। १८ ।। वे होम मन्त्र ये हैं– (१) ओं श्री विष्णवे स्वाहा, (२) ओं विष्णवे विभूषणाय स्वाहा, (३) ओं विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा, (४) ओं नरसिंहाय स्वाहा, (५) ओं पुरुषोत्तमाय स्वाहा ।। १९ ।। इसके पश्चात् घी में भिंगोकर पिप्पल की लकड़ी की बारह आहुति 'विष्णोरराटमसि' इत्यादि मन्त्र से देनी चाहिए ।। २०।।

कृत्वा पत्रे तु पैप्पले। ततो मासाधिपानां तु विप्रान्द्वादश भोजयेत् ॥ २३ ॥ त्रयोदशो गुरुस्तत्र तेभ्यो दद्यात् त्रयोदश। कुम्भान्स्वाद्वम्बुसंयुक्तान्सच्छत्रोपानहान्वितान् ॥ २४॥ सुवस्त्रहेममाल्याढ्यान्व्रतपूर्त्यै त्रयोदश। गावः प्रीतिं समायान्तु प्रचरन्तु प्रहर्षिताः ॥ २५ ॥ इति गोपथमुत्सृज्य यूपं तत्र निवेशयेत्। दशहस्तं प्रपाराममठसंक्रमणादिषु ॥ २६ ॥ गृहे च होममेवं च कृत्वा सर्वं यथाविधि। पूर्वोक्तेन विधानेन प्रविशेच्च गृहं गृही ॥ २७ ॥ अनिवारितमन्नाद्यं सर्वेष्वेतेषु कारयेत्। द्विजेभ्यो दक्षिणा देया यथाशक्ति विचक्षणैः ॥ २८ ॥ आरामं कारयेद्यस्तु नन्दने सुचिरं वसेत्। मठप्रदानात्स्वर्लोके शक्रलोके वसेत्ततः॥२९॥ प्रपादानाद्वारुणेन संक्रमेण वसेद्दिवि। इष्टकासेतुकारी च गोलोके मार्गकृद्भवाम्॥३०॥ नियमव्रतकृद्विष्णुः कृच्छकृत्सर्वपापहा (?) गृहं दत्त्वा वसेत्स्वर्गे यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ३१ ॥ समुदायप्रतिष्ठेष्टा शिवादीनां गृहात्मनाम् ॥ ३२ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये देवतासामान्यप्रतिष्ठाकथनं नाम षट्षष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

अथ सप्तषष्ठितमोऽध्यायः

जीर्णोद्धारविधि

श्रीभगवानुवाच– **जीर्णोद्धारविधिं वक्ष्ये भूषितां स्नपयेद्गुरुः। अचलां विन्यसेद्गेहे अतिजीर्णां परित्यजेत् ॥ १ ॥ व्यङ्गां भग्नां च शीलाढ्यां न्यसेदन्यां च पूर्वत्। संहारविधिना तत्र तत्त्वान्संहृत्य देशिकः ॥ २ ॥ सहस्रं नारसिंहेन हुत्वा तामुद्धरेद्गुरुः। दारवीं दाहयेद्वह्नौ शैलजां प्रक्षिपेज्जले॥३॥**

फिर इदं विष्णुः' इत्यादि मन्त्र से तथा 'इरावती' इत्यादि मन्त्र से चरु की बारह आहुति देनी चाहिए। उतनी ही घी की आहुति देकर, 'तद्विप्रासो' मन्त्र से होम करना चाहिए ।। २१ ।। फिर शेष होम करके तीन पूर्णाहुति देनी चाहिए। 'युञ्जते' इत्यादि अनुवाक का पाठ करके चरु का प्रणव के अन्त में अपना नाम जोड़कर पिप्पल के पत्ते में रखकर चरु का प्राशन करना चाहिए। उसके पश्चात् मासस्वामियों के निमित्त बारह ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ।। २३ ।। उनके अतिरिक्त तेरहवें स्थान पर गुरु को भोजन कराकर स्वादिष्ट जल से युक्त तेरह घड़े, छाता तथा उपानह के साथ दान करना चाहिए ।। २४ ।। व्रत की पूर्ति के लिए तेरहों कलशों को सुन्दर वस्त्र से युक्त तेरह सोने की माला से समलंकृत करके देना चाहिए। गौ प्रसन्न रहें खुशी-खुशी विचरण करें एतदर्थ गोमार्ग को छोड़कर गौओं के जल पीने के स्थान, उपवन, मठ अथवा सेतु पर दस हाथ का स्तम्भ गाड़ देना चाहिए ।। २५-२६ ।। फिर अपने घर पर हवन करके पूर्वोक्त सारी विधि का सम्पादन करके अपने गृह में प्रवेश करना चाहिए ।। २७ ।। अनिवारित द्वार भोजन कराकर ब्राह्मणों को दक्षिणा अपनी शक्ति के अनुसार देनी चाहिए ।। २८ ।। बगीचा लगाने वाला दीर्घकाल तक नन्दन वन में निवास करता है ।। २९ ।। पौ शाला दान करने वाला वरुण के लोक में तथा पुल बनाने वाला स्वर्गलोक में निवास करता है। ईंटे का पुल बनवाने वाला भी स्वर्गलोक में जाता है। गायों के लिए मार्ग बनवाने वाला गोलोक में जाता है ।। ३० ।। नियमों और व्रतों का पालन करने वाला भगवान् विष्णु के लोक में जाता है। तथा कुछ व्रतों का पालन करने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है। गृह का दान करने वाला प्रलयकाल पर्यन्त स्वर्गलोक में निवास करता है ।। ३१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का देवता सामान्य की प्रतिष्ठा वर्णन नामक छियासठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६६ ॥

श्रीभगवान् ने कहा– अब मैं जीर्णोद्धार विधि को बतलाता हूँ। आचार्य समलंकृत मूर्ति को स्नान कराएँ। अचल मूर्ति को अपने घर में प्रतिष्ठित कर दें तथा अत्यन्त पूरानी मूर्ति का परित्याग कर दें ।। १ ।। विकृत, टूटी हुयी, अथवा शिला मात्र मूर्ति का भी परित्याग करके आचार्य उसके स्थान पर उसी के समान दूसरी मूर्ति की स्थापना करें। आचार्य संहार विधि से तत्त्वों को उपसंहृत

धातुजां रत्नजां वाऽपि अगाधे वा जलेऽम्बुधौ । यानमारोप्य जीर्णाङ्गं छाद्य वस्त्रादिना नयेत् ॥ ४ ॥ वादित्रैः प्रक्षिपेत्तोये गुरवे दक्षिणां ददेत् । यत्प्रमाणा च यद्द्रव्या तन्मानां स्थापयेद्दिने ॥ ५ ॥ कूपवापीतडागादेर्जीर्णोद्धारे महाफलम् ॥ ६ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये जीर्णोद्धारविधिकथनं नाम सप्तषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अथाष्टषष्ठितमोऽध्यायः

उत्सवविधिकथनम्

श्रीभगवानुवाच– **वक्ष्ये विधिं चोत्सवस्य स्थापिते तु सुरे चरेत् । तस्मिन्नब्दे चैकरात्रं त्रिरात्रं चाष्टरात्रकम् ॥ १ ॥ उत्सवेन विना यस्मात्स्थापनं निष्फलं भवेत्। अयने विषुवे चापि शयनोपवने गृहे ॥ २ ॥ कारकस्यानुकूलो वा यात्रां देवस्य कारयेत् । मङ्गलाङ्कुररोपैस्तु गीतनृत्यादि वाद्यकैः॥३॥ शरावघटिकापाली स्वाङ्कुरारोपणे हिता । यवाञ्शालींस्तिलान्मुद्गान्गोधूमान्सितसर्षपान् ॥ ४ ॥ कुलत्थमाषनिष्पावान् क्षालयित्वा तु वापयेत् । पूर्वादो तु बलिं दद्याद् भ्रमन्दीपैः पुरं निशि ॥ ५ ॥ इन्द्रादेः कुमुदादेश्च सर्वभूतेभ्य एव च । अनुगच्छन्ति ते तत्र प्रतिरूपधरा पुनः ॥ ६॥ पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं तेषां न संशयः । आगत्य देवतागारं देवं विज्ञापयेद्गुरुः ॥ ७ ॥ तीर्थयात्रा त्वया देव श्वः कर्तव्या सुरोत्तम । तस्या (दा) रम्भमनुज्ञातुमर्हः सर्वज्ञ सर्वथा ॥ ८ ॥ देवमेवं तु विज्ञाप्य ततः कर्म समारभेत् । प्ररोहघटिकाढ्यां तु वेदिकां भूषितां व्रजेत् ॥ ९ ॥ चतुःस्तम्भां तु**

करके नारसिंह मन्त्र से एक हजार हवन करके उस पुरानी मूर्ति को उखाड़ें । यदि मूर्ति लकड़ी की हो तो उसे आग में जला दें,यदि पत्थर की हो तो उसे जल में फेंक दें ।। २-३ ।। धातु अथवा रत्न की मूर्ति बनी हो तो उसको समुद्र के अगाध जल में फेंक देना चाहिए । सवारी पर चढ़ाकर तथा जीर्ण अङ्ग को वस्त्र से ढँककर जाना चाहिए ।। ४ ।। बाजा बजाते हुए उसे जल में फेंककर आचार्य को दक्षिणा देनी चाहिए । पुरानी मूर्ति का जो प्रमाण, मूल्य तथा मान हो, उतने ही प्रमाण, मूल्य की मूर्ति का निर्माण करके उसकी दिन में स्थापना करनी चाहिए ।। ५ ।। कुएँ, बावली तथा तड़ाग आदि के भी जीर्णोद्धार का बहुत बड़ा फल होता है ।। ६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का जीर्णोद्धार विधि वर्णन नामक सड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६८ ॥

श्रीभगवान् ने कहा– अब मैं देवता की प्रतिष्ठा हो जाने के पश्चात् किए जाने वालीं उत्सव की विधि को बतला रहा हूँ । प्रतिष्ठा के वर्ष ही एक रात्रि का अथवा तीन रात्रि का अथवा आठ रात्रियों का उत्सव करना चाहिए ।। १ ।। उत्सव के विना प्रतिष्ठा व्यर्थ हो जाती है । यह उत्सव अयनकाल में अथवा विषुवकाल में,अपने शयनकक्ष में, गृह में अथवा उपवन में करना चाहिए ।।२।। अथवा मन्दिर की सुविधा के अनुसार देवयात्रा करनी चाहिए । मङ्गलगान, अङ्कुरारोपण, गीत, नृत्य तथा वाद्य के साथ देवयात्रा करनी चाहिए ।। ३ ।। अङ्कुरारोपण शराव, घटिका तथा (गमला) में करना अच्छा होता है । यव, धान, तिल, मूँग, गेहूँ, पीली सरसों, कुलथी, उड़द तथा निष्पाव को धोकर उपर्युक्त पात्रों में बोना चाहिए । पूर्व आदि दिशाओं में इन्द्रादि दिक्पालों, कुमुदादि (दिग्गजों) तथा समस्त भूतों के लिए बलि देनी चाहिए । रात्रि में दीपक हाथ में लेकर भ्रमण करना चाहिए । ऐसा करने वाले के पीछे-पीछे वे देवता आदि भी विभिन्न रूप धारण करके चलते रहते हैं । ऐसा करने वाले मनुष्य को एक-एक पग में अश्वमेध यज्ञ करने का फल होता है ।। ४-६ ।। आचार्य देवागार में आकर यह विज्ञापन करे कि हे देवोत्तम ! देव ! कल आप तीर्थयात्रा करें । हे सर्वज्ञ! आप इसको आरम्भ करने की आज्ञा दें ।। ८ ।। इस प्रकार से देवता के सन्निकट में प्रार्थना करके कार्य प्रारम्भ करना चाहिए । अंकुर तथा कलश से समलंकृत चार स्तम्भों वाली वेदी के पास आचार्य

तन्मध्ये स्वस्तिके प्रतिमां न्यसेत् । काम्यार्थं लेख्यचित्रेषु स्थाप्य तत्राधिवासयेत् ॥ १० ॥ वैष्णवैः सह कुर्वीत घृताभ्यङ्गं तु मूलतः । घृतधाराभिषेकं वा सकलां शर्वरीं बुधः ॥ ११ ॥ दर्पणं दर्श्य नीराजगीतवाद्यैश्च मङ्गलम् । व्यजनं पूजनं दीपगन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ॥ १२ ॥ हरिद्रामुक्तकाश्मीरशुक्लचूर्णादि मूर्धनि । प्रतिमायाश्च भक्तानां सर्वतीर्थफलं धृते ॥१३॥ स्थापयित्वा समभ्यर्च्य यात्राबिम्बं रथे स्थितम् । नयेद्गुरुर्नदीं नादैश्छत्राद्यै राष्ट्रपालिकाम्॥१४॥ निम्नगां योजनादर्वाक्तत्र वेदीं तु कारयेत् । वाहनादवतार्यैनां तस्यां वेद्यां निवेशयेत् ॥ १५ ॥ चरुं च श्रपयेत्तत्र पायसं होमयेत्ततः । अब्लिङ्गैर्वैदिकै र्मन्त्रैस्तीर्थान्यावाहयेत्ततः ॥ १६ ॥ आपो हि ष्ठोपनिषदैः पूजयेदर्घ्यं मुख्यकैः । पुनर्देवं समादाय तोये कृत्वाऽघमर्षणम् ॥ १७ ॥ स्नायान्महाजनैर्विप्रैर्वेद्यामुत्तार्य तं न्यसेत् । पूजयत्विा तदह्वा च प्रासादं तु नयेत्ततः ॥ १८ ॥ पूजयेत्पावकस्थं तु गुरुः स्याद्भुक्तिमुक्तिकृत् ॥१९॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये उत्सवविधिकथनं नामाष्टषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

अथ नवषष्ठितमोऽध्यायः

स्नपनोत्सवविस्तारकथनम्

अग्निरुवाच– **ब्रह्मन् शृणु प्रवक्ष्यामि स्नपनोत्सवविस्तरम् । प्रासादस्याग्रतः कुम्भान्मण्डपे मण्डले न्यसेत् ॥ १ ॥ कुर्याद् ध्यानार्चनं होमं हरेरादौ च कर्मणि । सहस्रं वा शतं वाऽपि होमयेत्पूर्णया सह ॥ २ ॥ स्नानद्रव्याण्यथाऽऽहृत्य कलशांश्चापि विन्यसेत् । अधिवास्य सूत्रकण्ठान्धारयेन्मण्डले घटान् ॥ ३ ॥ चतुरस्रं पुरं कृत्वा रुद्रैस्तं प्रविभाजयेत् । मध्येन तुचरु स्थाप्य पार्श्वपंक्तिं प्रमार्जयेत् ॥ ४॥ शालिचूर्णादिनाऽऽपूर्य पूर्वादिनवकेषु च।**

जायँ । उस वेदी के बीच में स्वस्तिक मण्डल के ऊपर प्रतिमा को रखें ।। ९ ।। अपने अभिलषित अर्थ को बनाये गए चित्रों में रखकर उसी पर देवता का अधिवास कराना चाहिए ।। १० ।। पुनः वैष्णवों के साथ मूलमन्त्र से देवता के शरीर में घी लगाना चाहिए । अथवा विद्वान् पुरुष को रात्रि भर घी की धारा से अभिषेक करना चाहिए ।। १ ।। देवता को दर्पण दिखाकर नीराजन (आरती) करनी चाहिए तथा गीत एवं वाद्य के द्वारा मङ्गल करना चाहिए । व्यजन तथा पूजन करते हुए, दीप चन्दन तथा पुष्प आदि से यजन करना चाहिए । हल्दी, मोती, केसर उजले चूर्ण, प्रतिमा तथा भक्तों के मस्तक पर लगाने वाला पुरुष सभी तीर्थों का फल प्राप्त करता है ।। १२-१३ ।। यात्रा मूर्ति को नमस्कार करके तथा उसकी पूजा करके रथ पर बैठकर आचार्य को वेद घोष करते हुए तथा छत्र आदि लगाकर राष्ट्र की प्रधान नदी के तट पर लाना चाहिए ।। १४ ।। नदी के एक योजन दूर रहने पर वहीं पर वेदी बनवाना चाहिए और मूर्ति को वाहन से उतारकर उसे वेदी पर रखें ।। १५ ।। वहीं पर चरु पकाना चाहिए तथा खीर का होम करना चाहिए । उसके पश्चात् मन्त्रों से तीर्थों का आवाहन करना चाहिए ।। १६ ।। अर्घ्य देकर 'आपोहिष्ठाः'इत्यादि मन्त्रों से पूजन करना चाहिए।।१७।। महाजनों तथा विप्रों के साथ स्नान करके मूर्ति को जल से निकालकर वेदी पर स्थापित करना चाहिए । उस दिन मूर्ति की वहीं पूजा करके फिर प्रतिमा को मन्दिर में लाना चाहिए । जो आचार्य अग्नि में स्थित देवता की पूजा करते हैं वे लौकिक भोगों तथा मोक्ष को प्राप्त करते हैं ।। १९ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का उत्सव विधि वर्णन नामक अड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६८ ॥

अग्निदेव ने कहा– हे ब्रह्मन् ! आप सुनें । अब मैं स्नपन (स्नान) तथा उत्सव विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ । मन्दिर के आगे मण्डप में मण्डल के ऊपर कलशों को स्थापित करना चाहिए ।। १ ।। कर्म के प्रारम्भ में सर्वप्रथम श्रीहरि का ध्यान, अर्चना तथा होम करना चाहिए । पूर्णाहुति के साथ एक हजार अथवा एक सौ होम करना चाहिए ।। २ ।। उसके पश्चात् स्नानीय

कुम्भमुद्रां ततो बद्ध्वा घटं तत्राऽऽनयेद्बुधः ॥ ५ ॥ पुण्डरीकाक्षमन्त्रेण दर्भांस्तांस्तु विसर्जयेत् । अद्भिः पूर्णं सर्वरत्नयुतं मध्ये न्यसेद् घटम् ॥ ६॥ यवव्रीहितिलांश्चैव नीवाराञ्श्यामकान्क्रमात् । कुलित्थमुद्गसिद्धार्थान्मुक्त्वाऽन्यानष्टदिक्षु च ॥ ७ ॥ ऐन्द्रे तु नवके मध्ये घृतपूर्णं घटं न्यसेत् । पलाशाश्वत्थन्यग्रोधबिल्वोदुम्बरक्षीरिणाम् ॥ ८ ॥ जम्बूशमीकपित्थानां त्वक्कषायैर्घटाष्टकम् । आग्नेयनवके मध्ये मधुपूर्णं घटं न्यसेत् ॥ ९ ॥ गोशृङ्गनगगङ्गाम्बुगजेन्द्रदर्शनेषु च । तीर्थक्षेत्रखलेष्वष्टौ मृत्तिकाः स्युर्घटाष्टके ॥ १०॥ याम्ये तु नवके मध्ये तिलतैलघटं न्यसेत् । नारङ्गमथ जम्बीरं खर्जूरं मृद्बिकां क्रमात् ॥ ११ ॥ नारिकेलं न्यसेत्पूगं दाडिमं पनसं फलम् । नैर्ऋते नवके मध्ये क्षीरपूर्णं घटं न्यसेत् ॥ १२ ॥ कुङ्कुमं नागपुष्पं च चम्पकं मालतीक्रमात् । मल्लिकामथ पुंनागं करवीरं महोत्पलम् ॥ १३ ॥ पुष्पाणि चान्ये नवके मध्ये वै नारिकेलकम् । नादेयमथ सामुद्रं सारसं कौप्यमेव च ॥ १४ ॥ वर्षजं हिमतोयं च नैर्झरं गाङ्गमेव च । उदकान्यथ वायव्ये नवके कदलीजलम् ॥ १५ ॥ सहदेवीं कुमारीं च सिंहीं व्याघ्रीं तथाऽमृताम् । विष्णुपर्णीं शतशिवां वचां दिव्यौषधीर्न्यसेत् ॥ १६ ॥ पूर्वादौ सौम्यनवके मध्ये दधिघटं न्यसेत् । पत्रमेलां त्वचं कुष्ठं बालकं चन्दनद्वयम् ॥ १७ ॥ लतां कस्तूरिकां चैव कृष्णागरुमनुक्रमात् । सिद्धद्रव्याणि पूर्वादौ शान्तितोयमथैकतः ॥ १८ ॥ चन्द्रतारं क्रमाच्छुक्लं गिरिसारं त्रपुं न्यसेत्। घनसारं तथा सीसं पूर्वादौ रत्नमेव च॥१९॥ घृतेनाभ्यज्य चोद्वर्त्य स्नपयेन्मूलमन्त्रतः । गन्धाद्यैः पूजयेद्वह्नौ हुत्वा पूर्णाहुतिं चरेत्॥२०॥ बलिं च सर्वभूतेभ्यो भोजयेद्दत्तदक्षिणः । देवैश्च मुनिभिर्भूपैर्देवं संस्नाप्य चेश्वराः ॥ २१ ॥ बभूवुः स्नापयित्वेत्थं स्नपनोत्सवकं चरेत्। अष्टोत्तरसहस्रेण

द्रव्य को लाकर कलशों की स्थापना करनी चाहिए । उन घटों का अधिवास कराकर जिनके गले में सूत्र बाँधा गया हो ऐसे कलशों को मण्डल पर रखना चाहिए ।। ३ ।। चतुरस्र मण्डप बनाकर उसे ग्यारह भागों में विभक्त करना चाहिए । बीच में नव कलशों की स्थापना करके बगल के भागों को सादा करना चाहिए ।। ४ ।। पूर्व आदि नव कलशों में चावल आदि के चूर्ण से भर करके, कुम्भ मुद्रा बाँधकर वहाँ पर कलश लाना चाहिए ।। ५ ।। पुण्डरीकाक्ष मन्त्र के द्वारा वहाँ पर कुशों को रखकर उन पर जल से भरे कलश में सर्वरत्न डालकर कलश रखना चाहिए ।। ६ ।। आठों दिशाओं के कलशों में क्रमशः यव, धान, तिल, नीवार, साँवाँ, कुलथी, मूँग तथा सरसों को डाल देना चाहिए ।। ७ ।। पूर्व दिशा के नव कलशों में से बीच में घी भरे घड़े को रखना चाहिए । शेष आठ घड़ों में पलाश, पिप्पल, बट, बिल्व, गूलर तथा दूध वाले पेड़, नीम्बू, शमी तथा कैंथ के छाल के रस से बने हुए होना चाहिए । अग्निकोण के नव कलशों में मधु से पूर्णघट को स्थापित करना चाहिए ।। ८-९ ।। शेष आठ घड़ों में गौ के शृङ्ग की, पर्वत की, गङ्गा नदी की, हाथी शाला की, तीर्थ क्षेत्र की तथा खलिहान की मिट्टी डालनी चाहिए ।। १० ।। दक्षिण दिशा में नव घड़ों के बीच में तिल के तेल से भरे घड़े की स्थापना करनी चाहिए । शेष आठ घड़ों में क्रमशः नारङ्गी, जम्बीर, खर्जूर, मुन्नका, नारियल,पूगीफल, अनार तथा कटहल डालना चाहिए । नैर्ऋत्य कोण के नव घड़ों में बीच के घड़े में क्षीर (दुग्ध) भरना चाहिए ।। ११-१२ ।। शेष आठ घड़ों में कुंकुम, नागपुष्प (नागकेसर) चम्पक, मालती, मल्लिका, पुन्नाग, करवीर तथा महोत्पल के पुष्प को डालना चाहिए । पश्चिम दिशा के नव कुम्भों के बीच के कुम्भ में नारियल का जल रखना चाहिए तथा शेष आठ घड़ों में क्रमशः नदी, समुद्र, सरोवर, कुआँ, वर्षा हिम (वर्फ) निर्झर तथा गङ्गा का जल रखना चाहिए । उसके पश्चात् वायव्य कोण के नव कलशों में बीच के कलश में केले का जल रखना चाहिए ।। १३-१५ ।। शेष आठ कलशों में सहदेई, कुमारी, सिंही, अमृता (गुडूची) विष्णुपर्णी, शतशिवा तथा वचा इन दिव्य औषधियों को डालना चाहिए ।। १६ ।। उत्तर दिशा के नव घड़ों के बीच में दही का घड़ा स्थापित करना चाहिए तथा शेष आठ पूर्वादि दिशा के घड़ों में क्रमशः इलायची, वच, कूट, बालछड़,दोनों (लाल तथा उजला) चन्दन, लता, कस्तूरी तथा काला अगरु इन सिद्ध द्रव्यों को डालना चाहिए । ईशानकोण के नव कलशों में बीच के कलश में शान्तिजल रखना चाहिए । शेष आठ कलशों में क्रमशः चन्द्रतार, शुक्ल, गिरिसार (शिलाजीत) रङ्गा, घनसार, कसीस तथा रत्न डालना चाहिए ।। १६-१९ ।। इसके पश्चात् मूर्ति के शरीर में घी लगाकर तथा उबटन लगाकर मूलमन्त्र से स्नान कराना चाहिए । चन्दन आदि से पूजा करके अग्नि में होम करके पूर्णाहुति करना चाहिए ।। २० ।। दक्षिणा देकर समस्त भूतों के लिए बलि प्रदान करनी

घटानां सर्वभाग्भवेत् ॥ २२ ॥ यज्ञावभृथस्नाने च पूर्णसंस्नापनं कृतम् । गौरीलक्ष्मीविवाहादि चोत्सवं स्नानपूर्वकम् ॥ २३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्नपनोत्सवविधिकथनं नाम नवषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

अथ सप्ततितमोऽध्यायः

पादपप्रतिष्ठाविधिः

श्रीभगवानुवाच– **प्रतिष्ठां पादपानां च वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदाम् । सर्वौषध्योदकैर्लिप्तान्पिष्टातकविभूषितान् ॥ १ ॥ वृक्षान्माल्यैरलङ्कृत्य वासोभिरभिवेष्टयेत्। सूच्या सौवर्णया कार्यं सर्वेषां कर्णवेधनम् ॥ २ ॥ हेमशलाकयाऽञ्जनं वेद्यां तु फलसप्तकम् । अधिवासयेच्च प्रत्येकं घटान्बलिं निवेदयेत् ॥ ३ ॥ इन्द्रादेरधिवासेऽथ होमः कार्यो वनस्पतेः । वृक्षमध्यादुत्सृजेद् गां ततोऽभिषेकमन्त्रतः॥ ४॥ ऋग्यजुः साममन्त्रैश्च वारुणैर्मंत्तभैरवैः। वृक्षवेदिककुम्भैश्च स्नपनं द्विजपुंगवाः॥ ५॥ तरूणां यजमानस्य कुर्युश्च यजमानकः । भूषितो दक्षिणां दद्याद् गोगोभूषणवस्त्रकम् ॥ ६॥ क्षीरेण भोजनं दद्याद्यावद्दिनचतुष्टयम् । होमस्तिलाज्यैः कार्यस्तु पलाशसमिधैस्तथा ॥ ७॥ आचार्ये द्विगुणं दद्यात्पूर्ववन्मण्डपादिकम् । पापनाशः परा सिद्धिर्वृक्षारामप्रतिष्ठया ॥ ८॥ स्कन्दायेशो यथा प्राह प्रतिष्ठाद्यं तथा शृणु । सूर्येशगणशक्त्यादेः परिवारस्य वै हरेः ॥ ९ ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पादपप्रतिष्ठाविधिकथनं नाम सप्ततिमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

चाहिए और ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए । बड़े-बड़े राजा देवताओं मुनियों तथा राजाओं के साथ श्री भगवान् को स्नान कराकर प्रशासक हो गए ।। २१।। इस पुराण में उक्त प्रकार से ही देवताओं की स्थापना करके स्नपन उत्सव करनी चाहिए । एक हजार आठ घड़ों से स्नपन क्रिया करके मनुष्य सभी फलों को प्राप्त कर लेता है ।। २२ ।। यज्ञ के अवभृथ स्नान काल में पूर्णरूप से स्नपनोत्सव करना चाहिए । लक्ष्मी तथा गौरी आदि का विवाह उत्सव आदि स्नपन पूर्वक ही करना चाहिए ।। २३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का स्नपनोत्सव विधि वर्णन नामक उनहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६९ ॥

श्रीभगवान् ने कहा– अब मैं भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली वृक्षों की प्रतिष्ठा का वर्णन कर रहा हूँ । सर्वौषधि के जल से युक्त तथा सुगन्धित चूर्णों से समलंकृत वृक्षों को माला से अलंकृत करके, वस्त्रों से लपेटना चाहिए । सोने की सुई से उनका कर्णवेध करना चाहिए ।। १-२ ।। सोने की शलाका से अञ्जन लगाना चाहिए और वेदी पर सात फलों को रखकर उनका अधिवास करना चाहिए। प्रत्येक वृक्ष को घड़े से बलि प्रदान करना चाहिए ।। ३ ।। इन्द्र आदि देवताओं के अधिवास में वनस्पति का ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के मन्त्रों से तथा वरुण के मन्त्रों से एवं मत्तभैरव के मन्त्रों से होम करना चाहिए ।। ४ ।। श्रेष्ठ ब्राह्मणों को वृक्षों के सन्निकट बनी हुई वेदियों के कुम्भों के द्वारा वृक्षों तथा यजमान को स्नपन कराना चाहिए । समलंकृत होकर यजमान ब्राह्मणों को दक्षिणा में गौ, भूमि, सुवर्ण तथा वस्त्र दान दे । चार दिन तक दुग्ध प्रधान भोजन कराए ।। ६ ।। होम तो तिल तथा घी से तथा पलाश की समिधा से करना चाहिए । आचार्य को दूसरे ब्राह्मणों की अपेक्षा दुगनी दक्षिणा देनी चाहिए । तथा पहले के ही समान उन्हें मण्डप आदि दान कर देना चाहिए ।। ७ ।। वृक्षों तथा बगीचों की प्रतिष्ठा कराने से पापों का नाश होता है, तथा परमसिद्धि मिलती है । भगवान् शंकर ने जिस प्रकार से सूर्य, ईश, गणेश, शक्ति तथा श्रीहरि के परिवार की प्रतिष्ठा आदि की विधि को बतलाया उसे आप सुनें ।। ८-९ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का पादप प्रतिष्ठा विधि का वर्णन नामक सत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७० ॥

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

गणपतिपूजाविधिः

ईश्वर उवाच– **गणपूजां प्रवक्ष्यामि निर्विघ्नायाखिलार्थदाम्। गणाय स्वाहा हृदयमेकदंष्ट्रय वै शिरः ॥ १ ॥ गजकर्णिने च शिखा गजवक्त्राय वर्म च । महोदराय सुदण्डहस्तायाक्षि तथाऽस्त्रकम् ॥ २ ॥ गणो गुरुः पार्श्वका च शक्त्यनन्तौ च धर्मकः। मुख्यास्थिमण्डलं चाधश्चोर्ध्व (र्ध्वं) छदनमर्चयेत् ॥ ३ ॥ पद्मकर्णिकबीजं च ज्वलिनीं नन्दयार्चयेत् । सूर्येशा कामरूपा च उदया कामवर्तिनी ॥ ४ ॥ सत्या च विघ्ननाशा च आसनं गन्ध मृत्तिका । यं शोषो, रं च दह्नो, प्लवो लं वं तथाऽमृतम् ॥ ५॥ लम्बोदराय विद्महे महोदराय धीमहि । तन्नो दन्तिः प्रचोदयात् ॥ ६ ॥ गणपतिर्गणाधिपो गणेशो गणनायकः । गणक्रीडो वक्रतुण्ड एकदंष्ट्रो महोदरः ॥ ७ ॥ गणवक्त्रो लम्बकुक्षिर्विकटो विघ्ननाशकः । धूम्रवर्णो महेन्द्राद्याः पूज्या गणपतेः स्मृताः ॥ ८ ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गणपतिपूजाविधिकथनं नामैकसप्रतितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

अथद्विसप्ततितमोऽध्यायः

स्नानविशेषादिविधिः

ईश्वर उवाच– **वक्ष्यामि स्कन्द नित्यादि स्नानं पूजां प्रतिष्ठया । खात्वाऽसिना समुद्धृत्य मृदमष्टाङ्गुलां ततः ॥१॥ सर्वात्मना समुद्धत्य पुनस्तेनैव**

श्रीशंकरजी ने कहा– सम्पूर्ण अर्थों को प्रदान करने वाली गणपति पूजा का वर्णन मैं निर्विघ्नता प्राप्ति के लिए कर रहा हूँ । 'गणाय स्वाहा, हृदयाय नमः इस मन्त्र से हृदय का स्पर्श, 'एकदंष्ट्राय स्वाहा' 'शिर से स्वाहा' इस मन्त्र से शिखा का स्पर्श, गजवक्त्राय स्वाहा, कवचाय हुम्, इस मन्त्र से दोनों भुजमूल का, महोदराय स्वाहा नेत्राभ्यां वौषट्, इस मन्त्र से दोनों नेत्रों का तथा 'सुदण्डहस्ताय स्वाहा अस्त्राय फट्' इस मन्त्र से अस्त्रन्यास करना चाहिए ।। १-२ ।। इस तरह षडङ्गन्यास करके गणपति, गुरु, पार्षद, शक्ति, अनन्त तथा धर्म की पूजा करनी चाहिए । पुनः गणेश जी के मुख्य अस्थि समूह तथा नीचे एवं ऊपर के ओठों की पूजा करनी चाहिए ।। ३ ।। कमल की कर्णिका के बीज की, ज्वलिनी देवी की तथा नन्दा देवी की पूजा करनी चाहिए । सूर्येश, कामरूपा, उदया, कामवर्तिनी, सत्या, विघ्ननाशा, आसन तथा गन्धमृत्तिका का पूजन करना चाहिए ।। ४।। 'यं' शोषण करने वाला वायु तत्त्व है, 'रं' अग्नितत्त्व जलाने वाला' है, 'लं' जलतत्त्व है तथा 'वं' अमृततत्त्व है ।। ५ ।। लम्बोदराय विद्महे महोदराय धीमहि, तन्नोदन्तिः प्रचोदयात् । यही गणेश गायत्री है । इसका अर्थ है कि- लम्बोदर को ही हम सर्वश्रेष्ठ तत्त्वरूप से जानते हैं, हम महोदर का ध्यान करते हैं । वे ही दन्ती श्रीगणेशजी हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करें ।। ६ ।। गणपति, गणाधिप, गणेश, गणनायक, गणक्रीड, वक्रतुण्ड, एकदंष्ट्र, महोदर, गजवक्त्र, लम्बकुक्षि तथा महेन्द्र आदि नामों से भी गणेश जी की पूजा करनी चाहिए ।। ७-८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का गणपतिपूजा विधि वर्णन नामक एकहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७१ ॥

श्रीशंकरजी ने कहा- हे स्कन्द ! अब मैं नित्य-नैमित्तिक तथा प्रायश्चित्त आदि स्नान की विधि तथा प्रतिष्ठा का वर्णन कर रहा हूँ । तलवार से खोदकर आठ अंगुल की मिट्टी का ढेला निकालना

पूजयेत् । शिरसा पयसस्तीरे निधायास्त्रेण शोधयेत् ॥ २॥ तृणादि शिखयोद्धृत्य वर्मणा विभजेत्त्रिधा । एकया नाभिपादान्तं प्रक्षाल्य पुनरन्यया॥३॥ अस्त्राभिलब्धया लक्ष्मीदीप्तया सर्वविग्रहम् । निरुध्याक्षाणि पाणिभ्यां प्राणान्संयम्य वारिणि ॥ ४ ॥ निमज्याऽऽसीत हृद्यस्त्रं स्मरन्कालानलप्रभम्। मलस्नानं विधायेत्थं समुत्थाय जलान्तरात् ॥ ५ ॥ अस्त्रसंध्यामुपास्याथ विधिस्नानं समाचरेत् । सारस्वतादितीर्थानामेकमङ्कुशमुद्रया ॥ ६ ॥ हृदाऽऽकृष्य तथाऽऽस्थाप्य पुनः संहारमुद्रया । शेषं मृद्भागमादाय प्रविश्याऽऽनाभि वारिणि ॥ ७ ॥ वामपाणितले कुर्याद्भागत्रयमुदङ्मुखः। अङ्गैर्दक्षिणमेकाद्यं पूर्वमस्त्रेण सप्तधा ॥ ८ ॥ शिवेन दशधा सौम्यं यजेद्भागत्रयं क्रमात् । सर्वदिक्षु क्षिपेत्पूर्वं हुंफडन्तशरात्मना ॥ ९ ॥ कुर्याच्छिवेन सौम्येन शिवतीर्थं भुजक्रमात्। सर्वाङ्गमङ्गजप्तेन मूर्धादि चरणावधि॥१०॥ दक्षिणेन समालभ्य पठन्नङ्गचतुष्टयम् । पिधाय खानि सर्वाणि सम्मुखीकरणेन च ॥ ११ ॥ शिवं स्मरन्निमज्जेत हरिं गङ्गेति वा स्मरन् । वौषडन्तषडङ्गेन के कुर्यादभिषेचनम् ॥ १२ ॥ कुम्भपात्रेण रक्षार्थं पूर्वादौ विक्षिपेज्जलम्। स्नात्वा राजोपचारेण सुगन्धामलकादिभिः ॥ १३ ॥ स्नात्वा चोत्तीर्य तत्तीर्थं संहारिण्योपसंहरेत् । अथातो विधिशुद्धेन संहितामन्त्रितेन च ॥ १४॥ निवृत्त्यादिविशुद्धेन भस्मना स्नानमाचरेत् । शिरतः पादपर्यन्तं हुंफडन्त शरात्मना ॥ १५ ॥ तेन कृत्वा मलस्नानं विधिस्नानं समाचरेत् । ते तत् पुरुषान् घोरगुह्यकाजातसंचरैः॥ १६ ॥ क्रमेणोद्धूनयेन्मूर्ध्नि वक्त्र हृद्गुह्यविग्रहान् । संध्यात्रये निशीथे च वर्षापूर्वावसानयोः ॥ १७ ॥ सुप्त्वा भुक्त्वा पयः पीत्वा कृत्वा चाऽऽवश्यकादिकम्। स्त्रियं नपुंसकं शूद्रं बिडालशवमूषिकम्॥१८॥ स्नानमाग्नेयकं स्पृष्ट्वा शुच्यम्बुचुलकं चरेत्। सूर्यांशुवर्षसंपर्के

चाहिए ।। १ ।। उसे अच्छी तरह से निकालकर वहाँ की मिट्टी से गड्ढा को भर देना चाहिए । शिर पर रखकर उसे जलाशय के तट पर लाकर अस्त्र मन्त्र (अस्त्राय फट्) से शोधित करना चाहिए।।२।। शिखा मन्त्र शिखायै वौषट् से तृणों को निकालकर कवच मन्त्र (कवचाय हुम्) से उस मिट्टी को तीन भाग में विभक्त करना चाहिए । उसके एक भाग को अपनी नाभि से लेकर पैर तक लगाए फिर उसे धोकर अस्त्र मन्त्र से अभिमन्त्रित करके तथा देदीप्यमान दूसरे भाग की मृत्तिका को अपने सम्पूर्ण शरीर में लगाना चाहिए । दोनों इन्द्रियों के द्वार को रोककर, श्वास को रोककर जल के भीतर डुबकी लगाकर बैठ जाय, और हृदय में कालाग्नि के समान कान्ति वाले अस्त्र का ध्यान करना चाहिए । इस तरह से मलस्नान करके जल के भीतर से निकलना चाहिए ।। ३-५ ।। अस्त्र सन्ध्या करके विधि स्नान करना चाहिए । सर्वप्रथम अंकुश मुद्रा से सारस्वत आदि तीर्थों में से एक को हृदय में आकृष्ट करके उसे हृदय में ही स्थापित करना चाहिए । पुनः संहार मुद्रा के द्वारा बची हुए मिट्टी के भाग को लेकर नाभिपर्यन्त गहरे पानी में प्रवेश करना चाहिए ।। ६-७ ।। उत्तराभिमुख खड़ा होकर उस मिट्टी को बाएँ हाथ पर रखकर उसके तीन भाग करना चाहिए । उसके एक भाग को अस्त्रमन्त्र से सात भागों में विभक्त करके दाहिने भाग के अंगों में लगाना चाहिए ।। ८ ।। दूसरे भाग को शिव मन्त्र (ओं नमः शिवाय) को पढ़कर दश भागों में विभक्त करके उत्तरादि दश दिशाओं में 'हुं फट्' इस मन्त्र से छिड़क देना चाहिए ।। ९ ।। फिर बचे हुए अंश को मङ्गलमय शिव मन्त्र को जपते हुए भुजा से क्रमशः सिर से पैर तक सर्वाङ्ग में लगाना चाहिए ।। १० ।। फिर शिवमन्त्र पढ़ते हुए चार अंगों का स्पर्श करके सम्पूर्ण इन्द्रियों को ढंककर सम्मुखीकरण करना चाहिए ।। ११ ।। फिर शिव का अथवा हरि एवं गङ्गा का स्मरण करते हुए स्नान करना चाहिए। वौषट् पर्यन्त षडङ्ग के द्वारा जल में ही अभिषेक करना चाहिए ।। १२ ।। रक्षा के लिए घड़े से पूर्वादि दिशाओं में जल गिराना चाहिए । फिर सुगन्धित द्रव्य तथा आँवला आदि राजोपचार से स्नान करके जल से बाहर निकलकर संहारिणी मुद्रा से उस तीर्थ का उपसंहार करना चाहिए ।। १३।। उसके पश्चात् विधिपूर्वक शुद्ध किए गए संहिता मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित तथा निवृत्ति आदि से शुद्ध बने हुए भस्म को हुं फट् इस मन्त्र से शिर से लेकर पैर पर्यन्त भस्म लपेटकर स्नान करना चाहिए ।। १४-१५ ।। भस्म स्नान के द्वारा मलस्नान करके विधि स्नान करना चाहिए । तीनों सन्ध्याओं, अर्धरात्रि, वर्षा से पूर्व तथा वर्षा के अन्त में उन घोर गुह्यक तथा अजातसञ्चर मन्त्रों से क्रमशः जो मुख, हृदय तथा गुह्य शरीर वाले नीच जीव हैं, उनको शिर से हटाना चाहिए ।।१६-१७ ।। सोकर, खाकर,

प्राङ्मुखेनोर्ध्वबाहुना ॥ १९ ॥ माहेन्द्रं स्नानमैशेन कार्यं सप्तपदावधि । गोसंघमध्यगः कुर्यात्खुरोत्खातकरेणुभिः ॥ २० ॥ पावनं नवमन्त्रेण स्नानं तद्धर्मणाऽथवा । सद्योजातादिभिर्मन्त्रैरम्भोभिरभिषेचनम् ॥ २१ ॥ मन्त्रस्नानं भवेदेवं वारुणाग्नेययोरपि। मनसा मूलमन्त्रेण प्राणायामपुरःसरम्॥२२॥ कुर्वीत मानसं स्नानं सर्वत्र विहितं च यत् । वैष्णवादौ च तन्मन्त्रैरेवं स्नानानि कारयेत् ॥ २३ ॥ सन्ध्याविधिं प्रवक्ष्यामि मन्त्रैर्भिन्नैः समं गुह । संवीक्ष्य त्रिः पिबेदम्बु ब्रह्मतीर्थेन शंकरैः ॥ २४ ॥ स्वधान्तैरात्मतत्त्वाद्यैस्ततः खानि स्पृशेन्मृदा । सकलीकरणं कृत्वा प्राणायामेन संस्थितः ॥ २५॥ त्रिः समावर्तयेन्मन्त्री मनसा शिवसंहितम् । आचम्य न्यस्य संध्यां च ब्राह्मीं प्रातः स्मरेन्नरः ॥ २६ ॥ हंसपद्मासनां रक्तां चतुर्वक्त्रां चतुर्भुजाम् । अङ्गाक्षमालिनीं दक्षे वामे दण्डकमण्डलुम् ॥ २७ ॥ तार्क्ष्यपद्मासनां ध्यायेन्मध्याह्ने वैष्णवीं सिताम् । शङ्खचक्रधरां वामे दक्षिणे सगदाभयाम् ॥२८॥ रौद्रीं ध्यायेद्वृषाब्जस्थां त्रिनेत्रां शशिभूषिताम् । त्रिशूलाक्षधरां दक्षे वामे साभयशक्तिकाम् ॥ २९ ॥ साक्षिण्यः कर्मणां सन्ध्या आत्मानं तत्प्रभानुगम्। चतुर्थी ज्ञानिनः सन्ध्या निशीथादौ विभाव्यते ॥ ३० ॥ हृद्विन्दुब्रह्मरन्ध्रेषु अरूपा तु परे स्थिता । शिवे चैव परो यस्तु ना सन्ध्या परमोच्यते ॥ ३१॥ पैत्रं मूले प्रदेशिन्याः कनिष्ठायाः प्रजापतेः। ब्राह्ममङ्गुष्ठमूलस्थं तीर्थं दैवं कराग्रतः ॥ ३२ ॥ सव्यपाणितले वह्नेस्तीर्थं सोमस्य वामतः । ऋषीणां तु समग्रेषु अङ्गुलीपर्वसन्धिषु ॥३३ ॥ ततः शिवात्मकैर्मन्त्रैः कृत्वा तीर्थं शिवात्मकम् । मार्जनं संहितामन्त्रैस्तत्तोयेन समाचरेत् ॥ ३४ ॥ वामपाणिपतत्तोययोजनं

दुग्ध पीकर, आवश्यक क्रियाओं (मल मूत्र त्याग आदि) करके, स्त्री, नपुंसक, शूद्र, विडाल, शव तथा चूहे का स्पर्श करके पवित्र जल का आचमन करके अग्नि स्नान करना चाहिए। सूर्य की किरणों तथा वर्षा का सम्पर्क हो जाने पर पूर्वाभिमुख होकर ऊपर की ओर हाथ उठाकर ईशानमन्त्र से महेन्द्र स्नान करना चाहिए ।सात डग (पग) जो समुदाय के साथ चलकर गायों के खूर से उठी धूल उससे नव मन्त्रों से पावन स्नान करना चाहिए, अथवा कवच मन्त्र से पावन स्नान करना चाहिए । सद्योजात० इत्यादि नव मन्त्र पावन स्नान के हैं और जल से अभिषेक करना चाहिए ।।१९-२१ ।। इसी तरह से वारुण तथा आग्नेय भी मन्त्र स्नान होता है । इस स्नान को प्राणायाम करके मूलमन्त्र के द्वारा करना चाहिए ।। २२ ।। यह मानस स्नान सर्वत्र सभी कार्यों में विहित है । वैष्णव आदि कार्यों में वैष्णव मन्त्रों से ही स्नान करना चाहिए ।। २३ ।। हे गुह ! अब मैं विभिन्न मन्त्रों से की जाने वाली सन्ध्या की विधि बतला रहा हूँ । सूर्य की ओर देखकर ब्रह्मतीर्थ से शंकर मन्त्रों को पढ़कर तीन बार जल पीना चाहिए ।। २४ ।। उसके पश्चात् आत्मतत्त्व से लेकर स्वधापर्यन्त के मन्त्रों से इन्द्रियों का मिट्टी से स्पर्श करना चाहिए । पुनः सकलीकरण करके प्राणायाम करना चाहिए।।२५।। पुनः मन्त्रज्ञ को शिवसंहिता की तीन आवृत्ति करना चाहिए । आचमन तथा न्यास करके प्रातःकाल में ब्राह्मी सन्ध्या का स्मरण करना चाहिए ।। २६ ।। हंस पर सवार, लाल कमल पर बैठी हुई तथा रक्तवर्ण वाली चार मुखों तथा चार भुजाओं वाली, दाहिने हाथ में अक्षमाला लिए हुए तथा बाएँ हाथ में दण्ड एवं कमण्डलु धारण किए हुए ब्राह्मी संध्या का ध्यान करना चाहिए ।।२७।। मध्याह्नकाल में गरुड़ के ऊपर कमलासन पर बैठी हुई, श्वेतवर्ण की,बाएँ हाथ में शंख तथा चक्र धारण करने वाली तथा दाहिने हाथ में गदा तथा अभयमुद्रा धारण करने वाली वैष्णवी सन्ध्या का ध्यान करना चाहिए ।। २८ ।। सायंकाल में वृष पर सवार तथा कमल पर बैठी हुयी, तीन नेत्रों वाली, चन्द्रमा से अलंकृत, दाहिने हाथ में त्रिशूल तथा अक्षमाला धारण करने वाली तथा बाएँ हाथ में अभयमुद्रा तथा शक्ति धारण करने वाली रौद्री सन्ध्या का ध्यान करना चाहिए ।। २९ ।। ये सन्ध्याएँ कर्मों की साक्षिणी हैं, अपने को उनकी प्रभा का अनुसरण करने वाला समझना चाहिए । ज्ञानियों की इनसे भिन्न चौथी संन्ध्या है, जो आधी रात्रि आदि में की जाती है ।। ३० ।। यह संध्या रूप रहित हृदय विन्दु तथा ब्रह्मरन्ध्र में, परं शिव स्थान में स्थित है । ऐसा ध्यान करके की जाती है । इससे बढ़कर कोई भी सन्ध्या नहीं है ।। ३१ ।। तर्जनी अंगुलि के मूल में पितृ तीर्थ होता है । कनिष्ठा अंगुलि के मूल में प्रजापति तीर्थ होता है । अंगुष्ठ के मूल में ब्राह्मतीर्थ होता है, अंगुलियों के अग्रभाग में दैवतीर्थ होता है ।। ३२ ।। दाहिने हाथ की हथेली में बह्नितीर्थ होता है और बाएँ हाथ की हथेली में सोमतीर्थ होता है । सभी अंगुलियों के पर्व की सन्धियों में ऋषि तीर्थ होता है ।। ३३ ।। उसके पश्चात् शिवात्मक मन्त्रों के द्वारा शिव तीर्थ बनाकर उसी के जल से शिवसंहिता के मन्त्रों को पढ़कर मार्जन करना चाहिए ।। ३४ ।। बाएँ हाथ से गिरते हुए जल को दाहिने हाथ से मन्त्रों से रोककर

सव्यपाणिना । उत्तमाङ्गे क्रमान्मन्त्रैर्मार्जनं समुदाहृतम् ॥ ३५ ॥ नीत्वा तदुपनासाग्रं दक्षपाणिपुटस्थितम्। बोधरूपं शिवं तोयं वाममाकृष्य स्तम्भयेत्॥३६॥ तत्पापं कज्जलाभासं पिङ्गयाऽऽरिच्य मुष्टिना । क्षिपेद्वज्रशिलायां यत्तद्भवेदघमर्षणम् ॥३७॥ स्वाहान्तशिवमन्त्रेण कुशपुष्पाक्षतान्वितम्। शिवायार्घ्याञ्जलिं दत्त्वा गायत्रीं शक्तितो जपेत् ॥ ३८ ॥ तर्पणं संप्रवक्ष्यामि देवतीर्थेन मन्त्रकात् । तर्पयेद् वै शिवायेति स्वाहाऽन्यान्स्वाहया सुरान्॥३९॥ ह्रां हृदयाय ह्रीं शिरसे ह्रूं शिखायै ह्रैं कवचाय । अस्त्रायाष्टौ देवगणान्हृदाऽऽदित्येभ्य एव च ॥ ४० ॥ हां (तु) वसुभ्यो रुद्रेभ्यो विश्वेभ्यश्चैव मरुद्भ्यः । भृगुभ्यो हामङ्गिरोभ्य ऋषीन्कण्ठोपवीत्यथ ॥ ४१ ॥ अत्रयेऽथ वसिष्ठाय नमश्चाथ पुलस्तये । क्रतवे भारद्वाजाय विश्वामित्राय वै नमः ॥ ४२ ॥ प्रचेतसे मनुष्यांश्च सनकाय वषट् तथा । हां सनन्दायाथ वषट् सनातनाय वै वषट्॥ ४३ ॥ सनत्कुमाराय वषट् कपिलाय तथा वषट् । पञ्चशिखाय द्युभवे संलग्नकरमूलतः ॥ ४४ ॥ सर्वेभ्यो भूतेभ्यो वषड् भूतान्देवपितृनथ । दक्षस्कन्धोपवीती च कुशमूलाग्रतस्तिलैः ॥ ४५॥ कव्यवाहानलायाथ सोमाय च यमाय च । अर्यम्णे चाग्निसोमाय बर्हिषद्भ्यः स्वधायुतान् ॥ ४६ ॥ आज्यपाय च सोमाय विशेषसुरवत्पितृन् । ॐ हामोशनाय पित्रे स्वधा दद्यात्पितामहे ॥ ४७ ॥ शान्तप्रपितामहाय तथा प्रेतपितृंस्तथा । पितृभ्यः पितामहेभ्यः स्वधाऽथ प्रपितामहे ॥ ४८ ॥ वृद्धप्रपितामहेभ्यो मातृभ्यश्च स्वधा तथा । ह्रां मातामहेभ्यः स्वधा ह्रां प्रमातामहेभ्यश्च ॥ ४९ ॥ वृद्धमातामहेभ्यः

सिर पर छिड़कने को मार्जन कहा जाता है ।। ३५ ।। दाहिने हाथ की हथेली में जल लेकर नासिका के अग्रभाग के सन्निकट ले जाकर ज्ञानस्वरूप शिवजल को बाएँ नाक से खींचकर स्तम्भन (श्वांस रोकने की क्रिया) करना चाहिए । पुनः पिङ्गलनाड़ी से काले वर्ण के पाप को खींचकर मुट्ठी में पकड़कर जो वज्र शिला पर पटका जाता है, उसे ही अघमर्षण कहते हैं ।। ३६-३७ ।। ओम् नमः शिवाय स्वाहा इस मन्त्र से, कुश, पुष्प तथा अक्षत से युक्त शिव के लिए अर्घ्य की अंजलि देकर अपनी शक्ति के अनुसार गायत्री का जप करना चाहिए ।। ३८ ।। अब मन्त्रों द्वारा देवतीर्थ से किए जाने वाले तर्पण का मैं वर्णन करता हूँ । 'ओं शिवाय नमः स्वाहा' इस मन्त्र से दो अंजलि जल शिव को देना चाहिए । दूसरे देवताओं को भी इसी तरह स्वाहा लगाकर तर्पण करना चाहिए ।। ३९।। ओं ह्रां हृदयाय नमः ओं ह्रीं शिरसे स्वाहा, ओं ह्रूं शिखायै वौषट्, इस तरह से अङ्गन्यास करके आदित्यादि आठ देवताओं के लिए निम्नांकित मन्त्रों से जल तर्पण करना चाहिए– ओं ह्रां हृदयाय नमः, ओं ह्रॉं आदित्येभ्यो नमः, ओं ह्रॉं वसुभ्यो नमः, ओं ह्रां रुद्रेभ्यो नमः, ओं ह्रां विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, ओं ह्रां मरुद्भयो नमः, ओं ह्रां भृगुभ्यो नमः, ओं ह्रां अङ्गिरोभ्यो नमः इसके पश्चात् यज्ञोपवीत को कण्ठ में माला के तरह करके ऋषियों का तर्पण करना चाहिए ।। ४०-४१ ।। ओं ह्रां अत्रये नमः, ओं ह्रॉं वसिष्ठाय नमः, ओं ह्रॉं पुलस्ताय नमः, ओं ह्रां क्रतवे नमः, ओं ह्रां भारद्वाजाय नमः, ओं ह्रां विश्वामित्राय नमः, ओं ह्रां प्रचेतसे नमः इस तरह से सप्तर्षियों को एक अंजलि तर्पण करना चाहिए । इसके पश्चात् हाथ के जुड़े हुए कर के मूलभाग से सनकादि मनुष्यों को- ओं ह्रां सनकाय वषट्, ओं ह्रां सनन्दाय बषट्, ओं ह्रां सनातनाय वषट्, ओं ह्रां सनत्कुमाराय वषट्, ओं ह्रां कपिलाय वषट्, इन मन्त्रों से दो-दो अञ्जलि जल देना चाहिए ।। ४२-४४।। 'ओं ह्रां सर्वेभ्यो भूतेभ्यो वषट्' इस मन्त्र से वषट् स्वरूप सभी भूतों को तर्पण करना चाहिए । इसके पश्चात् अपसव्य होकर कुश के मूल को आगे करके पितृतीर्थ से तिल और जल से तीन-तीन अञ्जलि इन मन्त्रों से जल देना चाहिए ।। ४५ ।। ओं ह्रां कव्यबाहनाय स्वधा, ओं ह्रां अनलाय स्वधा, ओं ह्रां सोमाय स्वधा, ओं ह्रां यमाय स्वधा, ओं ह्रां अर्यम्णे स्वधा, ओं ह्रां अग्निसोमाय स्वधा, ओं ह्रां वर्हिषद्भ्यः स्वधा ।। ४६ ।। ओं ह्रां आज्यपाय स्वधा, ओं ह्रं सोमपाभ्यः स्वधा । इन मन्त्रों के द्वारा देवताओं के ही समान दिव्य पितरों का तर्पण करना चाहिए । ओं ह्रां ईशानाय स्वधा, ह्रां पित्रे स्वधा इस मन्त्र से पिता का ओं ह्रां पितामहाय स्वधा, इस मन्त्र से पितामह का तथा ओं शान्तप्रपितामहाय स्वधा, इस मन्त्र से प्रपितामह का तर्पण करके इस तरह से अपने समस्त मृत पितरों का,पितामहों का तथा प्रपितामहों का तर्पण करना चाहिए ।। ४७ ।। पुनः बृद्ध प्रपितामहों का तथा माताओं का स्वधा युक्त वाक्य से तर्पण करना चाहिए । ओं ह्रां मातामहेभ्यः स्वधा, ओं ह्रां प्रमातामहेभ्यः स्वधा ।।४९।। ओं ह्रां वृद्धप्रमातामहेभ्यः स्वधा इन मन्त्रों से मातामह, प्रमातामह तथा वृद्धप्रमातामह का तर्पण करना चाहिए । ओं ह्रां सर्वेभ्यः पितृभ्यः स्वधा, ओं ह्रां सर्वेभ्यः मातृभ्यः स्वधा, ओं ह्रां सर्वेभ्य आचार्येभ्यः

सर्वेभ्यः पितृभ्यस्तथा । सर्वेभ्यः स्वधा ज्ञातिभ्यः सर्वाचार्येभ्य एव च ॥ ५० ॥ दिशां दिक्पतिसिद्धानां मातृणां ग्रहरक्षसाम् ॥ ५१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्नानादिविधिकथनं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

अथ त्रिसप्ततिमोऽध्यायः

सूर्यपूजाकथनम्

ईश्वरे उवाच– **वक्ष्ये सूर्यार्चनं स्कन्द कराङ्गन्यासपूर्वकम् । अहं तेजोमयः सूर्य इति ध्यात्वाऽर्घ्यमर्चयेत् ॥ १ ॥ पूरयेद्रक्तवर्णेन ललाटाकृष्टबिन्दुना। तं सम्पूज्य रवेरङ्गैः कृत्वा रक्षावगुण्ठनम् ॥ २ ॥ संप्रोक्ष्य तज्जलैर्द्रव्यं पूर्वास्यो भानुमर्चयेत् । ॐ अं हृद्बीजादि सर्वत्र पूजनं दण्डिपिङ्गलौ ॥ ३॥ द्वारिदक्षे वामपार्श्वे ईशाने अं गणाय च । अग्नौ गुरुं पीठमध्ये प्रभूतं चाऽऽसनं यजेत् ॥ ४ ॥ अग्न्यादौ विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम् । सितरक्तपीतनीलवर्णान्सिंहनिभान्यजेत् ॥ ५॥ पद्ममध्ये रां च दीप्तां रीं सूक्ष्मां रुं जयां क्रमात् । रूं भद्रां रें विभूतीश्च विमलां रैममोघया ॥ ६ ॥ रों रौं (च) विद्युता शक्तिं पूर्वाद्याः सर्वतोमुखाः । रं मध्ये अर्कासनं स्यात्सूर्यमूर्तिं षडक्षरम् ॥ ७ ॥ ॐ हं खं खोलकायेति यजेदावाह्य भास्करम्। ललाटाकृष्टमञ्जल्यां ध्यात्वा रक्तं न्यसेद्रविम् ॥ ८ ॥ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमो मुद्रयाऽऽवाहनादिकम् । विधाय प्रीतये बिम्बमुद्रां गन्धादिकं ददेत् ॥९॥ पद्ममुद्रां बिम्बमुद्रां प्रदर्श्याग्नौ हृदीरितम् । ॐ आं हृदयाय नमः अर्काय शिरसे तथा ॥ १० ॥ भूर्भुवः स्वः सुरेशाय शिखायै नैर्ऋते यजेत् । हुं**

स्वधा ।। ५० ।। फिर ओं ह्रां सर्वाभ्यो दिग्भ्यः स्वधा, ओं ह्रां सर्वेभ्यो दिक्पतिभ्यः स्वधा, ओं ह्रां सिद्धेभ्यः स्वधा,ओं ह्रां मातृभ्यः स्वधा, ओं ह्रां सर्वेभ्यो ग्रहेभ्यः स्वधा, ओं ह्रां रक्षोभ्यः स्वधा। इन मन्त्रों से तर्पण करना चाहिए ।। ५१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का स्नानादि विधि वर्णन नामक बहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७२ ॥

श्रीशंकरजी ने कहा– हे स्कन्द ! अब मैं करन्यास तथा अङ्गन्यासपूर्वक सूर्य की पूजा का वर्णन कर रहा हूँ । मैं तेजोमय सूर्य हूँ' इस तरह से भावना करके अर्घ्य पूजन करना चाहिए । ललाट से आकृष्ट विन्दु के लालवर्ण से उसे रक्तवर्ण का बना दें ।। १ ।। उसकी पूजा करके रवि के अंगों से उसकी रक्षा का घेरा बना देनी चाहिए ।। २ ।। उसी के जल से पूजन के द्रव्य का प्रोक्षण करके, ओं अं हृदयाय नमः । इस तरह 'ओं अं' इस हृदय बीज के द्वारा सर्वत्र पूजन करना चाहिए । द्वार के दाहिने और बाएँ क्रमशः दण्डी तथा पिङ्गल की पूजा करनी चाहिए ।। ३ ।। ईशानकोण में 'ओं अं गणाय नमः' इस मन्त्र से गणपति की पूजा करनी चाहिए । अग्निकोण में गुरु की पूजा करें पीठ के बीच में बहुत से देवताओं के आसन की पूजा करे ।। ४ ।। अग्नि आदि में विमल, सार तथा परमसुख की आराधना करनी चाहिए । उजले, लाल, पीले तथा नीलवर्ण के एवं सिंह के समान आकार वाले देवताओं की पूजा करनी चाहिए ।। ५ ।। पद्म के बीच में (पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः) रां दीप्तायै नमः, रीं सूक्ष्मायै नमः, रुं जयायै नमः, रूं भद्रायै नमः, रें विभूत्यै नमः, रैं विमलायै नमः, रों अमोघायै नमः, रौं विद्युतायै नमः, इस तरह से शक्तियों की पूजा करनी चाहिए। ये शक्तियाँ सर्वत्र व्याप्त हैं । सबों के बीच में 'रं अर्कासनाय नमः' इस तरह से अर्कासन की पूजा करनी चाहिए । षडक्षर स्वरूप सूर्य मूर्ति होनी चाहिए ।। ६-७ ।। ओं हं खं खोलकाय नमः इस मन्त्र से सूर्य का आवाहन करके उनका पूजन करना चाहिए । ध्यानपूर्वक ललाट से लगी हुई अंजलि में रक्तवर्ण के सूर्य की स्थापना करनी चाहिए।।८।। 'ओं ह्रां ह्रीं सःसूर्याय नमः' इस मन्त्र से मुद्रापूर्वक सूर्य का आवाहन करना चाहिए।।९।। पद्ममुद्रा तथा विम्बमुद्रा दिखाकर अग्नि आदि दिशाओं में हृदयादिन्यास करना चाहिए । अग्निकोण में ओं आं हृदयाय नमः । दक्षिण दिशा

कवचाय वायव्ये हां नेत्रायेति मध्यतः॥ ११ ॥ वः अस्त्रायेति पूर्वादौ ततो मुद्राः प्रदर्शयेत् । धेनुमुद्रा हृदादीनां गोविषाणा च नेत्रयोः ॥ १२ ॥ अस्त्रस्य त्रासनी योज्या ग्रहाणां च नमस्क्रिया । सों सोमं बुं बुधं बृं च जीवं भं भार्गवं यजेत् ॥ १३ ॥ दले पूर्वादिकेऽग्न्यादौ भौमं शं शनैश्चरम्। रं राहुं कें केतवे च गन्धाद्यैश्च ख खोल्कया ॥ १४ ॥ मूलं जप्त्वाऽर्घ्यपात्राम्बुं दत्त्वा सूर्याय संस्तुतिः । नत्वा पराङ्मुखं चार्कं क्षमस्वेति ततो वदेत्॥१५॥ शराणुना फडन्तेन समाहृत्याणु संहृतिम् । हृत्पद्मे शिव सूर्येति संहारिण्योपसंस्कृतिम् ॥ १६ ॥ योजयेत्तेजश्चण्डाय रविनिर्माल्यमर्पयेत्। अभ्यर्च्येशजपाद्ध्यानाद्धोमात्सर्वं रवेर्भवेत् ॥ १७ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सूर्यपूजाविधि-कथनं नाम त्रिसप्ततिमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

अथ चतुःसप्ततिमोऽध्यायः

शिवपूजाविधिकथनम्

ईश्वर उवाच– **शिवपूजां प्रवक्ष्यामि आचम्य प्रणवार्घ्यवान् । द्वारमस्त्राम्बुना प्रोक्ष्य होमादिद्वारपान्यजेत् ॥ १ ॥ गणं सरस्वतीं लक्ष्मीमूर्ध्वोदुम्बरके यजेत् । नन्दिगङ्गे दक्षशाखस्थिते वामगते यजेत् ॥ २ ॥ महाकालं च यमुनां दिव्यदृष्टिनिपातितः । उत्सार्य दिव्यान्विघ्नांश्च पुष्पक्षेपान्तरिक्षगान्॥३॥ दक्षपार्ष्णित्रिभिर्घातैर्भूमिष्ठान्यागमन्दिरम् । देहलीं लङ्घयेद्वामशाखामाश्रित्य वै विशेत् ॥ ४ ॥ प्रविश्य दक्षपादेन विन्यस्यास्त्रमुदुम्बरे । ॐ हां**

में ओं अर्काय शिरसे स्वाहा।।१०।। नैऋत्यकोण में ओं भूर्भुवः स्वः शिखायै वषट्' वायव्य कोण में ओं हुं कवचाय हुम्, बीच में 'ओं हां नेत्राभ्यां वषट्' तथा पूर्वादि दिशाओं में 'ओं वः अस्त्राय फट्' इस तरह से हृदयादि न्यास करने के बाद मुद्राओं को दिखाना चाहिए । हृदय आदि में धेनुमुद्रा तथा नेत्रों में गोविषाण मुद्रा दिखानी चाहिए।।१२।। अस्त्र में त्रासनी मुद्रा करनी चाहिए, ग्रहों के लिए नमस्कार मुद्रा करनी चाहिए । सों सोमाय नमः, बुंबुधाय नमः,वृं वृहस्पतये नमः, तया भं भार्गवाय नमः, इन मन्त्रों से पूर्वादि दिशाओं में चन्दन आदि से सोम, बुध, वृहस्पति तथा शुक्र की पूजा करनी चाहिए। अग्निकोण में ओं भं भौमायः नमः, ओं शं शनैश्चराय नमः, ओं रं राहवे नमः तथा कें केतवे नमः इन मन्त्रों से भौम,शनि, राहु तथा केतु की पूजा करनी चाहिए। तथा खोल्काय नमः मन्त्र के द्वारा सूर्य की पूजा करनी चाहिए ।। १४ ।। मूल मन्त्र का जप करके अर्घ्य पात्र के जल को सूर्य को प्रदान करके,उनकी स्तुति करे फिर पीछे की ओर होकर सूर्य को नमस्कार करके, आप क्षमा करें यह उच्चारण करना चाहिए ।। १५ ।। 'अस्त्राय फट्' इस मन्त्र से अणुसंहति को एकत्रित करके, हृदय कमल में संहारिणी मुद्रा से शिव तथा सूर्य का उपसंहार करना चाहिए।।१६।। चण्ड को तेज से संयुक्त करके उन्हें सूर्य का निर्माल्य अर्पित करे ।। इस तरह से सूर्य की पूजा करके ईश के जप, ध्यान तथा होम करने से मनुष्य सूर्य से सब कुछ प्राप्त कर लेता है ।। १७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का सूर्यपूजा विधि वर्णन नामक तिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७३ ॥

श्रीशंकरजी ने कहा– अब मैं शिवपूजा का वर्णन कर रहा हूँ । आचमन करके प्रणव के द्वारा अर्घ्य देना चाहिए । फिर शिवजी के द्वार को अस्त्र जल से प्रोक्षण करके, होम आदि के द्वारा शिवजी के द्वारपालों का पूजन करे ।। १ ।। उदुम्बर (गूलर) शाखा के ऊपर गणेश, सरस्वती तथा लक्ष्मी का पूजन करना चाहिए । दाहिनी ओर शाखा पर स्थित नन्दी तथा गंगा की और बायीं ओर शाखा पर स्थित महाकाल तथा यमुना की पूजा करनी चाहिए । दिव्य दृष्टि डालकर ऊपर की ओर पुष्प फेंककर दिव्य विघ्नों को दूर करने की भावना करनी चाहिए ।। २-३ ।। दाहिने पैर की एंड़ी से तीन बार पृथिवी पर प्रहार करके याग मन्दिर की भूमि में स्थित विघ्नों को दूर करने की भावना करना चाहिए । वाम शाखा को पकड़कर चौखट पार करके यागमण्डप में प्रवेश करना

वास्त्वधिपतये ब्रह्मणे मध्यतो यजेत् ॥ ५ ॥ निरीक्षणादिभिः शस्त्रैः शुद्धानादाय गड्डुकान् । लब्धानुज्ञः शिवान्मौनी गङ्गादिकमनुव्रजेत् ॥ ६ ॥ पवित्राङ्गः प्रजप्तेन वस्त्रपूतेन वारिणा । पूरयेदम्बुधौ तांस्तान् गायत्र्या हृदयेन वा ॥ ७ ॥ गन्धकाक्षतपुष्पादि सर्वद्रव्यसमुच्चयम् । सन्निधीकृत्य पूजार्थं भूतशुद्ध्यादि कारयेत् ॥ ८ ॥ देवदक्षे ततो न्यस्य सौम्यास्यश्च शरीरतः। संहारमुद्रयाऽऽदाय मूर्ध्नि मन्त्रेण धारयेत् ॥ ९ ॥ भोग्यकर्मोपभोगार्थं पाणिकच्छपिकाख्यया । हृदम्बुजे निजात्मानं द्वादशान्तपदेऽथ वा ॥ १० ॥ शोधयेत्पञ्चभूतानि संचिन्त्य सुषिरं तनौ । चरणाङ्गुष्ठयोर्युग्मान्सुषिरान्तर्बहिः स्मरेत् ॥ ११ ॥ शक्तिं हृद्व्यापिनीं पश्चाद्धूङ्कारे पावकप्रभे । रन्ध्रमध्ये स्थितं कृत्वा प्राणरोधं हि चिन्तकः ॥ १२ ॥ निवेशयेद्रेचकान्ते फडन्तेनाथ तेन च । हृत्कण्ठतालुभ्रूमध्यब्रह्मरन्ध्रे विभिद्य च ॥ १३ ॥ ग्रन्थीन्निर्भिद्य हुंकारं मूर्ध्नि विन्यस्य जीवनम् । संपुटं हृदयेनाथ पूरकाहितचेतनम्॥१४॥ हूं शिखोपरि विन्यस्य शुद्धं बिन्द्वात्मकं स्मरेत्। कृत्वाऽथ कुम्भकं शंभावेकोद्घातेन योजयेत् ॥ १५ ॥ रेचकेन बीजवृत्त्या शिवे लीनोऽथ शोधयेत्। प्रतिलोमं स्वदेहे तु विन्द्वन्तं तत्र विन्दुकम् ॥ १६ ॥ लयं नीत्वा महीवातौ जलवह्नी परस्परम् । द्वौ द्वौ साध्यौ तथाऽऽकाशमविरोधेन तच्छृणु ॥ १७॥ पार्थिवं मण्डलं पीतं कठिनं वज्रलाञ्छितम् । ह्रौंमित्यात्मीयबीजेन तन्निवृत्तिकलामयम् ॥ १८ ॥ पादादारभ्य मूर्धान्तं विचिन्त्य चतुरस्रकम् । उद्घातपञ्चकेनैव वायुभूतं विचिन्तयेत् ॥ १९ ॥ अर्धचन्द्रं द्रवं सौम्यं शुभ्रमम्भोजलाञ्छितम् । ह्रींमित्यनेन बीजेन प्रतिष्ठारूपतां गतम् ॥ २० ॥ संयुक्तं राममन्त्रेण पुरुषान्तमकारणम्। अर्घ्यं चतुर्भिरुद्घातैर्वह्निभूतं विशोधयेत् ॥२१॥ आग्नेयं मण्डलं त्र्यस्रं रक्तं स्वस्तिकलाञ्छितम् । हूंमित्यनेन

चाहिए ।। ४।। प्रवेश करते समय पहले दाहिना पैर डालना चाहिए । उदुम्बर की शाखा में पुनः अस्त्रन्यास करना चाहिए । ओं हां वास्त्वधिपतये ब्रह्मणे नमः इस मन्त्र से मध्य में, वास्तु का पूजन करना चाहिए ।। ५ ।। निरीक्षण आदि शस्त्रों के द्वारा शुद्ध गड्डुओं को हाथ में लेकर शिवजी से आज्ञा लेकर मौन होकर गङ्गा आदि नदियों के तट पर जाय ।। ६ ।। पवित्र होकर मन्त्र का जप करके वस्त्र से छाने हुए जल से हृदयबीज (नमः) का पाठ करते हुए गड्डुओं में जल भरे ।। ७ ।। पूजा के लिए चन्दन, अक्षत तथा पुष्प आदि सभी द्रव्यों को एकत्रित करके भूतशुद्धि करनी चाहिए।।८।। देवता की दायीं ओर तथा अपने शरीर की बायीं ओर न्यास करके संहार मुद्रा के द्वारा उसे अपने सिर पर धारण करना चाहिए ।। ९ ।। भोग्य कर्मों का उपभोग करने के लिए पाणिकच्छपी (कूर्म) नामक मुद्रा के द्वारा अपने हृदय कमल में अथवा द्वादश दल कमल के भीतर अपनी आत्मा का चिन्तन करना चाहिए ।। १० ।। पुनः पञ्चभूतों का शोधन करना चाहिए । अपने शरीर के भीतर आकाश का चिन्तन करके, दोनों चरणों के अंगुष्ठों का उस छिद्र के भीतर और बाहर स्मरण करना चाहिए ।। ११ ।। पुनः साधक हृदय में व्याप्त शक्ति को अग्नि के समान प्रभाव वाले ब्रह्मरन्ध्र में स्थित हुंकार से संयुक्त करके । फिर अपने प्राणों को रोककर (प्राणायाम द्वारा कुम्भक करके) रेचक करके अस्त्राय फट् इस मन्त्र से उस हुंकार को, हृदय, कण्ठ, तालु तथा भौहों के बीच में विद्यमान रन्ध्र का भेदन करके ग्रन्थियों का भेदन करके 'हुं' बीज स्वरूप जीव को ब्रह्मरन्ध्र में स्थिर करके फिर हृदयस्थित 'हुं' बीज के द्वारा सम्पुटित उस जीव में पूरक प्राणायाम द्वारा आहित चैतन्य की भावना करके शिखा के ऊपर हुं का विन्यास करे । फिर शुद्ध विन्दु स्वरूप जीव का ध्यान करे । पुनः कुम्भक प्राणायाम करके उसको एक उद्घात शंभु के साथ संलग्न करे ।। १२-१५ ।। तदनन्तर शिव में लीन होकर रेचक रूपी बीजवृत्ति के द्वारा अपने आपका शोधन करना चाहिए । प्रतिलोम (उलटा या अवरोह क्रम) के तरीके से अपने देह में विन्दु पर्यन्त विन्दु को लीन करके पृथिवी तथा वायु एवं जल तथा अग्नि इन दो-दो को परस्पर में लीन करके विना किसी विरोध के उसमें आकाश को लीन करे । उसकी प्रक्रिया को मैं बतलाता हूँ, आप सुनें ।। १६-१७ ।। पार्थिव मण्डल पीला, कठोर, वज्र से चिह्नित हुआ करता है । वह अपने ह्रौं इस बीज से युक्त तथा 'निवृत्ति' कला स्वरूप होता है ।। १८ ।। पैर से लेकर सिर पर्यन्त शरीर की चतुरस्र (चौकोर) रूप से भावना करके उद्घातपञ्चक (पाँच प्राणायाम) के द्वारा उसकी भावना वायुरूप से करनी चाहिए ।। १९ ।। जलीय मण्डल की भावना अर्द्धचन्द्राकार, द्रवस्वरूप, शान्त, धवल, कमल के चिह्न से चिह्नित

बीजेन विद्यारूपं विभावयेत् ॥ २२ ॥ घोराणुत्रिभिरुद्घातैर्जलभूतं विशोधयेत् । षड्स्त्रं मण्डलं वायोर्बिन्दुभिः षड्भिरङ्कितम् ॥ २३ ॥ कृष्णं ह्रेमिति बीजेन जातं शान्तिकलामयम् । संचिन्त्योद्घातयुग्मेन पृथ्वीभूतं विशोधयेत् ॥ २४ ॥ नमो बिन्दुमयं वृत्तं बिन्दुशक्तिविभूषितम् । व्योमाकारं सुवृत्तं च शुद्धस्फटिकनिर्मलम् ॥ २५ ॥ हयौंकारेण फडन्तेन शान्त्यतीत कलामयम् । ध्यात्वैकोद्घातयोगेन सुविशुद्धं विभावयेत् ॥ २६ ॥ आप्याययेत्ततः सर्वं मूलेनामृतवर्षिणा। आधाराख्यमनन्तं च धर्मज्ञानादिपङ्कजम् ॥ २७ ॥ हृदाऽऽसनमिदं ध्यात्वा मूर्तिमावाहयेत्ततः । सृष्ट्वा शिवमयं तस्यामात्मानं द्वादशान्ततः ॥ २८ ॥ अथ तां शक्तिमन्त्रेण वौषडन्तेन सर्वतः । दिव्यामृतेन संप्लाव्य कुर्वीत सकलीकृतम् ॥ २९ ॥ हृदयादिकरान्तेषु कनिष्ठाद्यङ्गलीषु च । हृदादिमन्त्रविन्यासः सकलीकरणं मतम् ॥ ३० ॥ अस्त्रेण रक्ष्य प्राकारं तनुत्रेणाथ तद्बहिः। शक्तिजालमधश्चोर्ध्वं महामुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ ३१॥ आपादमस्तकं यावद्भावपुष्पैः शिवं हृदि। पद्मे यजेत्पूरकेण आकृष्टामृतसद्घृतैः॥ ३२॥ शिवमन्त्रैर्नाभिकुण्डे तर्पयेत शिवानलम् । ललाटे विन्दुरूपं च चिन्तयेच्छुभविग्रहम् ॥ ३३॥ एकं स्वर्णादिपात्राणां पात्रमस्त्राम्बुशोधितम् । विन्दुप्रसूतपीयूषरूपतोयाक्षतादिना ॥ ३४ ॥ हृदाऽऽपूर्य षडङ्गेन पूजयित्वाऽभिमन्त्रयेत्। संरक्ष्य हेतिमन्त्रेण कवचेनावगुण्ठयेत् ॥ ३५ ॥ रचयित्वाऽर्घ्यमष्टाङ्गं सेचयेद्धेनुमुद्रया । अभिषिञ्चेदथाऽऽत्मानं मूर्ध्नि तत्तोयबिन्दुना ॥ ३६ ॥ तत्रस्थं यागसंभारं प्रोक्षयेदस्त्रवारिणा । अभिमन्त्र्य हृदा पिण्डैस्तनुत्राणेन वेष्टयेत् ॥ ३७ ॥ दर्शयित्वाऽमृतां मुद्रां पुष्पं दत्त्वा

तथा 'ह्रीं' इस बीज के द्वारा प्रतिष्ठारूपता को प्राप्त रूप से करनी चाहिए ।। २० ।। राम मन्त्र से संयुक्त, पुरुषपर्यन्त, निष्कारण, तथा अर्घ्य स्वरूप जल तत्त्व का शोधन वह्नि (अग्नि) रूप से करना चाहिए ।। २१ ।। बह्निमण्डल की भावना त्रिकोण, रक्तवर्ण की, स्वस्तिक के चिह्न से चिह्नित 'हूं' बीज से संयुक्त विद्यारूप से करनी चाहिए ।। २२ ।। उसके घोरावस्था के अणुओं का जलरूप से विशोधन तीन प्राणायामों के द्वारा करनी चाहिए। वायुमण्डल का षडस्र (छह कोणों वाले) छह विन्दुओं से चिह्नित, कृष्ण वर्ण का, ह्रीं बीज से उत्पन्न तथा शान्ति कला रूप से चिन्तन करके दो प्राणायामों के द्वारा पृथिवी के रूप में परिणत रूप से उसका विशोधन करना चाहिए ।। २३-२४ ।। आकाश मण्डल का, विन्दुस्वरूप, गोल,विन्दुशक्ति से समलंकृत, व्योमाकार, सुन्दर, शुद्ध स्फटिक के समान निर्मल, 'ह्रौं फट्' बीज से युक्त, शान्त्यतीत कला स्वरूप से चिन्तन करके, एक प्राणायाम के द्वारा अत्यन्त शुद्ध रूप से उसका चिन्तन करना चाहिए ।। २६ ।। उसके पश्चात् आधार संज्ञक अनन्त तथा धर्म ज्ञानादि कमल, इन सबों को अमृत की वर्षा करने वाले मूल के द्वारा सिंचित करना चाहिए ।। २७ ।। यह हृदयरूपी आसन है, इस प्रकार से भावना करके उसमें मूर्ति का आवाहन करना चाहिए । उस मूर्ति में द्वादशान्त के द्वारा शिवमय आत्मा की सृष्टि करनी चाहिए ।। २८ ।। उसके पश्चात् उसे अन्त में वौषट् जोड़कर शक्तिमन्त्र के द्वारा उस मूर्ति को अमृत से स्नान कराकर उसका सकलीकरण करना चाहिए ।। २९।। हृदय आदि से लेकर हाथ पर्यन्त तथा कनिष्ठिका अंगुलियों में हृदयादि मन्त्र का विन्यास करना ही सकलीकरण कहलाता है ।। ३०।। अस्त्र मन्त्र के द्वारा मूर्ति के प्राकार (घेरा) की, कवच मन्त्र के द्वारा उसके बाहर के भाग की तथा नीचे की शक्तिजाल (समूह) से रक्षा करके ऊपर की ओर महामुद्रा दिखानी चाहिए ।। ३१ ।। हृदयकमल के ऊपर भावपुष्पों के द्वारा शिव का आपादमस्तक पूजन करना चाहिए । पूरक के द्वारा आकृष्ट सद्धृत से शिवमन्त्रों से नाभिकुण्ड में शिवाग्नि का तर्पण (शिवाग्नि में होम) करना चाहिए । अपने ललाट प्रदेश में शिव के मङ्गलमय विग्रह की भावना करनी चाहिए ।। ३२-३३ ।। सोने आदि के पात्रों में अस्त्र जल से शोधित एक पात्र को विन्दु से निकले अमृतरूपी जल तथा अक्षत आदि से हृदय पर्यन्त भरकर पडङ्गन्यास के द्वारा पूजन करके अभिमन्त्रित करना चाहिए । चक्र मन्त्र के द्वारा उसकी रक्षा करके उसे कवच मन्त्र के द्वारा घेर देना चाहिए ।। ३४-३५ ।। पुनः अष्टाङ्ग अर्घ्य की रचना करके उसे धेनु मुद्रा से सींचना चाहिए । उसके पश्चात् उसी जल के विन्दु से अपने सिर पर अभिषेक करना चाहिए ।। ३६।। वहाँ पर विद्यमान याग की सामग्री का अस्त्र जल से प्रोक्षण करना चाहिए । फिर उसे हृदय मन्त्र तथा पिण्ड के द्वारा अभिमन्त्रित करके कवच मन्त्र से वेष्टित करना चाहिए ।। ३७ ।। पुनः अमृतामुद्रा दिखाकर तथा अपने आसन पर पुष्प चढ़ाकर, अपने सिर में तिलक लगाना चाहिए एवं मूलमन्त्र से एक पुष्प चढ़ा देना चाहिए ।। ३८ ।। धीर पुरुष को सदा स्नान, देवार्चन, होम, भोजन, याग, योग तथा आवश्यक जप के समय मौन रहना

निजासने । विधाय तिलकं मूर्ध्नि पुष्पं मूलेन योजयेत्॥ ३८॥ स्नाने देवार्चने होमे भोजने यागयोगयोः । आवश्यके जपे धीरः सदा वाचं यमो भवेत्॥३९॥ नादान्तोच्चारणान्मन्त्रं शोधयित्वा सुसंस्कृताम् । पूजामभ्यर्च्य गायत्र्या सामान्यार्घ्यमुपाहरेत् ॥ ४० ॥ ब्रह्मपञ्चकमावर्त्य माल्यमादाय लिङ्गतः । ऐशान्यां दिशि चण्डाय हृदयेन निवेदयेत् ॥ ४१ ॥ प्रक्षाल्य पिण्डिकालिङ्गे अस्त्रतोये ततो हृदा । अर्घ्यपात्राम्बुना सिञ्चेदिति लिङ्गविशोधनम्॥४२॥ आत्मद्रव्यमन्त्रलिङ्गशुद्धौ सर्वान्सुरान्यजेत् । वायव्ये गणपतये हां गुरुभ्योऽर्चयेच्छिवे ॥ ४३ ॥ आधारशक्तिमङ्कुरनिभां कूर्मशिलास्थिताम्। यजेद्ब्रह्मशिलारूढं शिवस्यानन्तमासनम्॥ ४४ ॥ विचित्रकेसरि प्रख्यानन्योन्यं पृष्ठदर्शिनः । कृतत्रेतादिरूपेण शिवस्याऽऽसनपादुकाम्॥४५॥ धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं चाग्निदिङ्मुखान् । कर्पूरकुङ्कुमस्वर्णकज्जलाभान्यजेत्क्रमात् ॥ ४६॥ पद्मं च कर्णिकामध्ये पूर्वादौ मध्यतो नव । वरदाभयहस्ताश्च शक्तयो धृतचामराः॥ ४७ ॥ वामा ज्येष्ठा च रौद्री च काली कलविकारणी । बलविकारणी पूज्या बलप्रमथनी क्रमात् ॥ ४८॥ हां सर्वभूतदमनी केशराग्रे मनोन्मनी क्षित्यादिशुद्धविद्यां तु तत्त्वव्यापकमासनम् ॥ ४९ ॥ न्यसेत्सिंहासने देवं शुक्लं पञ्चमुखं विभुम् । दशबाहुं च खण्डेन्दुं दधानं दक्षिणैः करैः ॥ ५०॥ शक्त्यृष्टिशूलखट्वाङ्गवरदं वामकैः करैः । डमरुं बीजपूरं च नीलाब्जं सूत्रमुत्पलम् ॥ ५१ ॥ द्वात्रिंशल्लक्षणोपेतां शैवीं मूर्तिं तु मध्यतः। हां हं हां शिवमूर्तये स्वप्रकाशं शिवं स्मरन् ॥ ५२ ॥ ब्रह्मादिकारणत्यागान्मन्त्रं नीत्वा शिवास्पदम् । ततो ललाटमध्यस्थ स्फुरत्तारापतिप्रभम् ॥ ५३ ॥ षडङ्गेन समाकीर्णं विन्दुरूपं परं शिवम्। पुष्पाञ्जलिगतं ध्यात्वा लक्ष्मी मूर्तौ निवेशयेत्॥५४॥ ॐ हां हौं शिवाय नम आवाहन्या हृदा ततः। आवाह्य स्थाप्य स्थापन्या संनिधायान्तिकं शिवम् ॥ ५५॥ निरोधयेन्निष्ठुरया

चाहिए।।३९।। मन्त्र के अन्त में नाद (ओम्) के उच्चारण के द्वारा मन्त्र का शोधन करके अच्छी तरह से संस्कारयुक्त पूजा करके गायत्री के द्वारा सामान्य अर्घ्य प्रदान करना चाहिए।। ४० ।। ब्रह्मपञ्चक की आवृत्ति करके लिङ्ग से माला उतारकर हृदय मन्त्र से उसे ईशानकोण में विद्यमान चण्ड को चढ़ा देना चाहिए ।। ४१ ।। हृदयमन्त्र अस्त्र के जल में पिण्डिका तथा लिङ्ग को धोकर अर्घ्यपात्र के जल से उसे सिंचना चाहिए, इसे ही लिंग का विशोधन कहते हैं ।। ४२ ।। आत्मशुद्धि, द्रव्यशुद्धि, मन्त्रशुद्धि तथा लिङ्गशुद्धि के पश्चात् सभी देवताओं का पूजन करना चाहिए । बायव्य दिशा में ओं हां गणपतये नमः, ओं हां गुरुभ्यो नमः तथा ओं हां शिवाय नमः इन मन्त्रों से, गणपति आचार्य तथा शिवजी की पूजा करनी चाहिए ।। ४३ ।। फिर कूर्मशिला पर विद्यमान अंकुर के समान आकार वाली आधारशक्ति की तथा शिला पर रखे गए शिव के अनन्त आसन की पूजा करनी चाहए ।। ४४ ।। कृतयुग, त्रेतायुग,द्वापरयुग तथा कलियुग रूप से विचित्र सिंह के समान आकार वाले परस्पर में एक दूसरे के पृष्ठ को देखने वाले सिंहों की तथा आसन पादुका की पूजा करनी चाहिए ।। ४५ ।। अग्नि दिशा में मुख वाले कर्पूर की समान कान्ति वाले धर्म की, कुंकुम के समान कान्ति वाले ज्ञान की, कुसुम के समान कान्ति वाले वैराग्य की तथा कञ्जल के समान कान्ति वाले ऐश्वर्य की क्रमशः पूजा करनी चाहिए ।। ४६ ।। कर्णिका के बीच में पद्म की तथा बीच में पूर्वादि दिशाओं में वरदान देने वाली, अभयमुद्रा से युक्त चामर धारण करने वाली नव शक्तियों की पूजा करनी चाहिए।।४७ ।। वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकारिणी, बलविकारिणी, बलप्रमथनी, सर्वभूतदमनी तथा मनोन्मनी ये नव शक्तियाँ हैं, इनकी पूजा केसर के अग्र भाग में हां बीज मन्त्र से करनी चाहिए। उसके पश्चात् पृथिवी आदि शुद्धविद्या की तथा तत्त्वव्यापक आसन की पूजा करनी चाहिए।।४८-४९।। सिंहासन के ऊपर शुक्ल वर्ण वाले तथा पाञ्चमुख वाले व्यापक भगवान् शिव की स्थापना करनी चाहिए । उनकी दस भुजाएँ हैं तथा वे खण्डेन्दु को धारण करते हैं । वे अपनी दाहिनी भुजाओं में शक्ति, ऋष्टि, त्रिशूल, खट्वाङ्ग तथा वरद मुद्रा धारण करते हैं तथा बाऐं हाथों में डमरू, बीजपूर, नीलकमल तथा उत्पलसूत्र धारण करते हैं ।। ५०-५१ ।। बत्तीस लक्षणों से युक्त शिव की मूर्ति की स्थापना बीच में करनी चाहिए । ओं हां हं, हाँ शिव मूर्तये नमः । इस मन्त्र से स्वयम्प्रकाश शिव की पूजा करनी चाहिए ।। ५२ ।। ब्रह्म आदि की कारणता को त्याग करने के कारण मन्त्र को

कालकान्त्या फडन्ततः । विघ्नानुत्सार्य मुष्ट्याऽथ लिङ्गमुद्रां नमस्कृतिम् ॥ ५६ ॥ हृदाऽवगुण्ठयेत्पश्चादावाहः संमुखो ततः । निवेशनं स्थापनं स्यात्संनिधानं तवास्मि भोः ॥ ५७ ॥ आकर्मकाण्डपर्यन्तं संनिधेर्योऽपरिक्षयः । स्वभक्तेश्च प्रकाशो यस्तद्भवेदवगुण्ठनम्॥५८॥ सकलीकरणं कृत्वा मन्त्रैः षड्भिरथैकताम् । अङ्गानामङ्गिना सार्धं विदध्यादमृतीकृतम् ॥ ५९ ॥ चिच्छक्तिहृदयं शंभोः शिर ऐश्वर्यमष्टधा । शिखा वशित्वं चाभेद्यं तेजः कवचमैश्वरम् ॥ ६० ॥ प्रतापो दुःसहश्चास्त्रमन्तरायापहारकम् । नमः स्वधा च स्वाहा च वौषट्चेति यथाक्रमम् ॥ ६१ ॥ हृत्पुरः सरमुच्चार्य पाद्यादीनि निवेदयेत् । पाद्यं पादाम्बुजद्वन्द्वे वक्त्रे स्वाचमनीयकम् ॥ ६२ ॥ अर्घ्यं शिरसि देवस्य दूर्वापुष्पाक्षतानि च । एवं संस्कृत्य संस्कारैर्दशभिः परमेश्वरम् ॥ ६३ ॥ यजेत्पञ्चोपचारेण विधिना कुसुमादिभिः । अभ्युक्ष्योद्वर्त्य निर्मृज्य राजिकालवणादिभिः ॥ ६४ ॥ अर्घ्योदबिन्दुपुष्पाद्यैर्गडूकैः स्नापयेच्छनैः । पयोदधिघृतक्षौद्रशर्कराद्यैरनुक्रमात् ॥ ६५ ॥ ईशादिमन्त्रितैर्भुक्त्यै मुक्त्यै तेषां विपर्ययः । तोयधूपान्तरैः सर्वैर्मूलेन स्नपयेच्छिवम्॥६६॥ विरूक्ष्य यवचूर्णेन यथेष्टं शीतलैर्जलैः । स्वशक्त्या गन्धतोयेन संस्नाप्य शुचिवाससा ॥ ६७ ॥ निर्माज्यार्घ्यं प्रदद्याच्च नोपरि भ्रामयेत्करम् । न शून्यमस्तकं लिङ्गं पुष्पैः कुर्यात्ततो ददेत् ॥ ६८ ॥ चन्दनाद्यैः समालभ्य पुष्पैः प्राच्य शिवाणुना। धूपभाजनमस्त्रेण प्रोक्ष्याभ्यर्च्य शिवाणुना ॥ ६९॥ अस्त्रेण पूजितां घण्टां चाऽऽदाय गुग्गुलं दहेत्। दद्यादाचमनं पश्चात्सुधाभं हृदयाणुना ॥७०॥ आरात्रिकं समुत्तार्य तथैवाऽऽचमयेत्पुनः । प्रणम्याऽऽदाय

शिवपरक बनाना चाहिए । फिर ललाट के मध्य में स्थित, चन्द्रमा के समान चमकने वाले, षडङ्ग से युक्त विन्दु स्वरूप परं शिव का पुष्पाञ्जलि में ध्यान करके, उन्हें लक्ष्मी की मूर्ति में स्थापित कर देना चाहिए ।। ५४ ।। उसके पश्चात् ओं हां हौं शिवाय नमः इस मन्त्र से तथा आवहनी मुद्रा से हृदय से आवाहन करके स्थापना के मन्त्र से शिव की स्थापनी मुद्रा से स्थापना करके उनका सन्निधिकरण करना चाहिए ।। ५५ ।। कलाकान्ति नामक निष्ठुर मुद्रा दिखाकर 'ओं फट्' इस मन्त्र से निरोध करना चाहिए । मुष्टि मुद्रा से विघ्नों का उत्सारण करना चाहिए तथा लिङ्ग मुद्रा से नमस्कार करना चाहिए ।। ५६ ।। उसके पश्चात् हृदय से शिव का आवाहन तथा सम्मुखीकरण करना चाहिए । पुनः निवेशन, स्थापन तथा सन्निधान करके, हे देव ! मैं आपका हूँ' इस प्रकार से भावना करनी चाहिए।।५७ ।। कर्मकाण्ड काल पर्यन्त जो सन्निधि बनी रहती है तथा अपनी भक्ति का प्रकाश बना रहता है, उसे ही अवगुण्ठन अथवा (घेरा) कहते हैं ।। ५८ ।। सकलीकरण करके उसके पश्चात् छह मन्त्रों से एकता करनी चाहिए । अंगों का अंगी के साथ अमृतीकरण करना चाहिए ।। ५९ ।। शम्भु का चित्त शक्ति ही हृदय है, उनका आठ प्रकार का ऐश्वर्य ही सिर है, वशित्व ही शिखा है,तेज अभेद्य कवच है । उनका दुःसह प्रताप अस्त्र है तथा क्रमशः नमः, स्वधा, स्वाहा तथा वौषट् ये सभी विघ्न को दूर करने वाले हैं ।। ६१ ।। हृदय मन्त्र के उच्चारणपूर्वक शिव के लिए पाद्य आदि समर्पित करना चाहिए । पाद्य उनके दोनों चरण कमलों में तथा मुखों में आचमनीय समर्पित करे ।। ६२ ।। भगवान् शंकर के सिर पर अर्घ्य, दूर्वा, पुष्प तथा अक्षत छोड़ना चाहिए । इस तरह परमेश्वर भगवान् शंकर को दस संस्कारों से संस्कृत (संस्कारयुक्त) करके उनकी पुष्प आदि से पञ्चोपचार विधि से पूजा करनी चाहिए । जल से राई छिड़ककर तथा नमक आदि सेउबटन लगाकर तथा रगड़कर अर्घ्य ईशादि मन्त्र से अभिमन्त्रित तथा जलविन्दुओं पुष्प, तथा गड्डुओं से शिव जी को दुग्ध, दधि, घी, मधु तथा चीनी आदि से स्नान कराना चाहिए ।। ६३-६५ ।। इन सभी वस्तुओं से स्नान कराने से भोगों तथा मोक्ष की प्राप्ति मनुष्य करता है । इन सभी वस्तुओ से स्नान कराने के पश्चात् शिवजी को जल से स्नान कराना चाहिए तथा धूप दिखाना चाहिए, इस तरह से सभी वस्तुओं से स्नान कराना चाहिए। इन सभी वस्तुओं से मूलमन्त्र पढ़कर स्नान कराना चाहिए । अन्त में यव के चूर्ण से मूर्ति को रगड़कर फिर शीतल जल से यथेष्ट मात्रा में स्नान कराना चाहिए।।६६।। अपनी शक्ति के अनुसार चन्दन के जल से शिवजी को स्नान कराकर उन्हें पवित्र वस्त्र से पोंछना चाहिए । किन्तु शिवजी के सिर पर न तो हाथ घुमाए और न तो उनके सिर को पुष्प से खाली रखें। उसके पश्चात् शिवजी को अर्घ्य देना चाहिए ।। ६७-६८ ।। शिवमन्त्र से उनको चन्दन आदि लगाकर तथा पुष्पों से पूजा करके अस्त्र मन्त्र से धूप के पात्र का प्रोक्षण करना चाहिए और उसकी पूजा

देवाङ्गां भोगाङ्गानि प्रपूजयेत् ॥ ७१ ॥ हृदग्नौ चन्द्रभं चैशे शिवं चामीकरप्रभम् । शिखां रक्तां च नैर्ऋत्ये कृष्णं वर्म च वायवे ॥ ७२ ॥ चतुर्वक्त्रं चतुर्बाहुं दलस्थान्पूजयेदिमान् । दंष्ट्राकरालमप्यस्त्रं पूर्वादौ वज्रसंनिभम् ॥ ७३ ॥ मूले हौं शिवाय नमः ॐ हां हूं हीं हों शिरश्च । हूं शिखा हैं वर्म चास्त्रं परिवारयुताय च ॥ ७४॥ शिवाय दद्यात्पाद्यं च आचामं चार्घ्यमेव च । गन्धं पुष्पं धूपदीपं नैवेद्याचमनीयकम् ॥ ७५ ॥ करोद्वर्तनताम्बूलं मुखवासं च दर्पणम् । शिरस्यारोप्य देवस्य दूर्वाक्षतपवित्रकम् ॥ ७६ ॥ मूलमष्टशतं जप्त्वा हृदयेनाभिमन्त्रितम् । चर्मणा वेष्टितं खड्गरक्षितं कुशपुष्पकैः ॥ ७७ ॥ अक्षतैर्मुद्रया युक्तं शिवमुद्भवसंज्ञया । गुह्यातिगुह्यगुप्त्यर्थं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ॥ ७८ ॥ सिद्धिर्भवति मे येन त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिते । भोगी श्लोकं पठित्वा तु दक्षहस्तेन शंभवे ॥ ७९ ॥ मूलाणुनाऽर्घ्यतोयेन वरहस्ते निवेदयेत् । यत्किंचित्कुर्महे देव सदा सुकृतदुष्कृतम्॥८०॥ तन्मे शिवपदस्थस्य हूं क्षः क्षेपय शंकर । शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत् ॥ ८१ ॥ शिवो जयति सर्वत्र शिवः सर्वमिदं जगत् । श्लोकद्वयमधीत्यैवं जपं देवाय चार्पयेत् ॥ ८२ ॥ शिवाङ्गानां दशांशं च दत्त्वाऽर्घ्यं स्तुतिमाचरेत् । प्रदक्षिणीकृत्य नमेच्चाष्टाङ्गं चाष्टमूर्तये ॥ ८३॥ नत्वा ध्यानादिभिश्चैव यजेच्चित्रेऽनलादिषु ॥ ८४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शिवपूजाविधिकथनं नाम चतुसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

शिवमन्त्र से करना चाहिए ।। ६९ ।। अस्त्र मन्त्र से पूजित घण्टा को लेकर उन्हें गुग्गुल की धूप देनी चाहिए । फिर हृदयमन्त्र के अन्त में स्वधा लगाकर शिवजी को आचमन करना चाहिए ।।७०।। शिवजी की आरती उतारकर आचमन कराना चाहिए । फिर प्रणाम करके उनसे आज्ञा लेकर भोगाङ्गों की पूजा करनी चाहिए ।। ७१ ।। अग्निकोण में चन्द्रमा की कान्ति के समान कान्ति वाले उनके हृदय की, ईशानकोण में मङ्गलमय सुवर्ण की कान्ति वाले सिर की, नैऋत्य कोण में रक्तवर्ण वाली शिखा की तथा वायव्य कोण में कृष्ण वर्ण वाले कवच की पूजा करनी चाहिए।।७२।। उनके चारों मुखों तथा चारों भुजाओं की कमल में विद्यमानरूप से पूजा करनी चाहिए । पूर्व आदि दिशाओं में वज्र के समान कठोर तथा भयंकर उनके दाँतों की पूजा करनी चाहिए ।। ७३ ।। मूल में- ओं हौं शिवाय हृदयाय नमः, ओं हाँ हूं, हीं हों शिरसे स्वाहा, ओं हूं शिखायै वषट्, ओं हैं कवचाय हुम्, ओं हः अस्त्राय फट् इस तरह से न्यास करके सपरिवार शिवजी को पाद्य, आचमन, अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप,नैवेद्य,आचमन, करोद्वर्तन (हाथ में चन्दन लगाना) ताम्बूल, मुखवास तथा दर्पण समर्पित करना चाहिए ।। ७४-७७ ।। उद्भवमुद्रा से अक्षत से युक्त शिवजी की प्रार्थना करनी चाहिए कि भगवन् ! अत्यन्त गोपनीय रक्षा के लिए आप मेरे द्वारा किए गए जप को स्वीकार करें जिससे कि आप पर ही निर्भर मेरी सिद्धि हो ।। ७८ ।। पहले भोगी (सर्प) मन्त्र पढ़कर, दाहिने हाथ से मूलमन्त्र से तथा अर्घ्य के जल से उसे (उस मन्त्र को) शिवजी के श्रेष्ठ हाथ में समर्पित करना चाहिए । पुनः प्रार्थना करना चाहिए कि- भगवन् ! मैं जो कुछ भी पुण्य अथवा पाप कर रहा हूँ,उन सबों को हे शंकर आप विनष्ट कर दें । इसके पश्चात् 'ओं हूं क्षः' का उच्चारण करना चाहिए ।। ७९-८० ।। शिव ही दाता हैं, वे ही भोक्ता हैं, वे ही सम्पूर्ण जगत् स्वरूप हैं । शिवजी की सर्वत्र जय हो, जो शिवजी हैं,वही मैं भी हूँ, इस तरह से दो श्लोक पढ़कर उसे शिव जी को समर्पित करना चाहिए ।। ८१-८२ ।। शिवजी के अंगों के दशांश अर्घ्य प्रदान करना चाहिए फिर अर्घ्य देकर स्तुति करनी चाहिए । प्रदक्षिणा करके अष्टमूर्ति भगवान् शंकर को साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिए ।। ८३ ।। नमस्कार करके ध्यान आदि के द्वारा उनकी पूजा अग्नि आदि में करनी चाहिए ।। ८४।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का शिवपूजा वर्णन विधि नामक चौहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७४ ॥

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

शिवपूजाङ्गहोमविधिः

ईश्वर उवाच– **अर्घपात्रकरो यायादग्न्यागारं सुसंवृतः । यागोपकरणं सर्वं दिव्यं दृष्ट्या च कल्पयेत् ॥ १ ॥ उदङ्मुखः कुण्डमीक्षेत्प्रोक्षणं ताडनं कुशैः । विदध्यादस्त्रमन्त्रेण वर्मणाऽभ्युक्षणं मतम् ॥ २ ॥ खड्गेन खातमुद्धारं पूरणं समतामपि । कुर्वीत वर्मणा सेकं कुट्टनं तु शराणुना ॥ ३ ॥ संमार्जनं समालेपं कलारूपप्रकल्पनम् । त्रिसूत्रीपरिधानं च वर्मणाऽभ्यर्चनं सदा ॥ ४ ॥ रेखात्रयमुदक्कुर्यादेकां पूर्वाननामधः । कुशेन च शिवास्त्रेण यद्वा तांसां विपर्ययः ॥ ५ ॥ वज्रीकरणमंत्रेण हृदा दर्भैश्चतुष्पथम् । अक्षपात्रं तनुत्रेण विन्यसेद्विष्टरं हृदा ॥ ६ ॥ हृदा वागीश्वरीं तत्र ईशमावाह्य पूजयेत्। वह्निं सदाश्रयानीतं शुद्धपात्रोपरि स्थितम् ॥ ७ ॥ क्रव्यादांशं परित्यज्य वीक्षणादिविशोधितम् । औदर्यं चैन्दवं मौनमेकीकृत्यानलत्रयम्॥८॥ ॐ हूं वह्निचैतन्याय वह्निबीजेन विन्यसेत् । संहितामन्त्रितं वह्निं धेनुमुद्रामृतीकृतम् ॥ ९ ॥ रक्षितं हेतिमन्त्रेण कवचेनावगुण्ठितम् । पूजितं त्रिः परिभ्राम्य कुण्डस्योर्ध्वं प्रदक्षिणम् ॥ १० ॥ शिवबीजमिति ध्यात्वा वागीशागर्भगोचरे । वागीश्वरेण देवेन क्षिप्यमाणं विभावयेत् ॥ ११ ॥ भूमिष्ठजानुको मन्त्री हृदाऽऽत्मसंमुखं क्षिपेत् । ततोऽन्तःस्थितबीजस्य नाभिदेशे समूहनम् ॥ १२ ॥ संभृतिं परिधानस्य शौचमाचमनं हृदा । गर्भाग्नेः पूजनं कृत्वा तद्रक्षार्थं शराणुना ॥ १३ ॥ बध्नीयाद्गर्भजं देव्याः कङ्कणं पाणिपल्लवे । गर्भाधानाय संपूज्य सद्योजातेन पावकम्॥१४॥ ततो हृदयमन्त्रेण जुहुयादाहुतित्रयम् । पुंसवनाय वामेन तृतीये मासि पूजयेत् ॥ १५ ॥ आहुतित्रितयं दद्याच्छिरसाऽम्बुकणान्वितम् । सीमन्तोन्नयनं षष्ठे**

श्रीशिवजी ने कहा– मौन होकर अर्घपात्र हाथ में लेकर अग्निशाला में प्रवेश करना चाहिए तथा दिव्यदृष्टि के द्वारा सम्पूर्ण याग सामग्री को एकत्रित करना चाहिए ।। १ ।। उत्तराभिमुख होकर कुण्ड को देखे और कुश से उसका प्रोक्षण एवं ताडन अस्त्र-मन्त्र से करे । कवच मन्त्र से कुण्ड के ऊपर जल छिड़कना चाहिए ।। २ ।। खड्ग से गड्ढा खोदकर उसको पूरा करके बराबर करना चाहिए। कवच मन्त्र से उसको सिंचकर अस्त्र-मन्त्र से उसको कूट दें ।। ३ ।। कुण्ड का संमार्जन, लेप उसकी कलात्मक चित्रकारी त्रिसूत्री वेष्टन तथा पूजन सदा कवच मन्त्र से करना चाहिए ।।४।। कुश अथवा त्रिशूल से दक्षिण से उत्तर की ओर तीन रेखाएँ तथा पश्चिम से पूर्व की ओर उन तीनों रेखाओं के नीचे एक रेखा खींचनी चाहिए । अथवा उन सबों के विपरीत अर्थात् पश्चिम पूर्व की तीन रेखाएँ और उत्तर दक्षिण की एक रेखा खींचनी चाहिए ।। ५ ।। मन में वज्रीकरण मन्त्र पढ़कर कुशों द्वारा चतुष्पथ बनाना चाहिए कवच मन्त्र से अक्षपात्र रखें तथा हृदय मन्त्र से विष्टर रखें ।।६।। मन से उस चतुष्पथ पर वागीश्वरी तथा ईश (शङ्करजी) का आवाहन करके पूजन करना चाहिए । सद्ब्राह्मण के द्वारा लायी गयी अग्नि को शुद्ध पात्र पर रखकर पूजन करें ।। ७ ।। उस अग्नि से क्रव्यादांश अग्नि को नैऋत्य कोण में निकालकर अवलोकन आदि के द्वारा अग्नि का शेधन करना चाहिए । फिर 'ओं हूं बह्नि चैतन्याय नमः' इस मन्त्र को पढ़कर मौन होकर औदर्यअग्नि, ऐंदव (वाडवाग्नि) तथा सामान्य अग्नि तीनों की भावना द्वारा एक साथ स्थापना करनी चाहिए।। ८ ।। संहिता के द्वारा अभिमन्त्रित, धेनु मुद्रा दिखाकर अमृतीकरण की गयी, चक्र मन्त्रसे रक्षित तथा कवचमन्त्र से अवगुण्ठित एवं पूजित अग्नि को कुण्ड के ऊपर प्रदक्षिण क्रम से घुमाना चाहिए ।। ९-१० ।। वागीश्वरी के गर्भ में वागीश्वर के द्वारा शिव बीज रूप से अग्नि डाले गए हैं, इस प्रकार कुण्ड में अग्नि डालते समय भावना करनी चाहिए ।। ११ ।। मन्त्रज्ञ को चाहिए कि वह पृथिवी पर घुटना टेककर अपने हृदय के सामने करके अग्नि को कुण्ड में डाले । उसके पश्चात् कुण्ड के भीतर नाभि प्रदेश में विद्यमान बीज का समूहन करे ।। १२ ।। वस्त्र धारण करके पवित्र होकर हृदयपर्यन्त आचमन करना चाहिए । गर्भाग्नि का पूजन करके उसकी रक्षा के लिए अस्त्र मन्त्र से वागीश्वरी देवी के पाणिपल्लव में गर्भजन्य कङ्कणबन्धन करना चाहिए । सद्योजात मन्त्र से गर्भाधान संस्कार के लिए अग्नि की पूजा करके हृदय मन्त्र से तीन आहुति देनी चाहिए । भावना द्वारा पुंसवन संस्कार के

मासि संपूज्य रूपिणा ॥ १६ ॥ जुहुयादाहुतीस्तिस्त्रः शिखया शिखयैव तु । वक्त्राङ्गकल्पनां कुर्याद्वक्त्रोद्धटननिष्कृती ॥ १७ ॥ जातकर्मनृकर्मभ्यां दशमे मासि पूर्ववत् । वह्निं संधुक्ष्य दर्भाद्यैः स्नानं गर्भमलापहम् ॥ १८ ॥ सुवर्णबन्धनं देव्या कृतं ध्यात्वा हृदाऽर्चयेत् । सद्यः सूतकनाशाय प्रोक्षयेदस्त्रवारिणा ॥ १९ ॥ कुण्डं तु बहिरस्त्रेण ताडयेद्वर्मणोत्क्षिपेत् । अस्त्रेणोत्तरपूर्वाग्रान्मेखलासु बहिः कुशान् ॥ २० ॥ आस्थाप्य स्थापयेत्तेषु हृदा परिधिविस्तरम् । वक्त्राणामस्त्रमन्त्रेण ततो नालापनुत्तये ॥ २१ ॥ समिधः पञ्च होतव्याः प्रान्ते मूले घृतप्लुताः । ब्रह्माणं शंकरं विष्णुमनन्तं च हृदार्चयेत् ॥ २२ ॥ दूर्वाक्षतैश्च पर्यन्तं परिधिस्थाननुक्रमात् । इन्द्रादीशानपर्यन्तान्विष्टरस्थाननुक्रमात् ॥ २३ ॥ अग्नेरभिमुखीभूतान् निजदिक्षु हृदार्चयेत् । निवार्य विघ्नसंघातबालकं पालयिष्यथ ॥ २४ ॥ शैवीमाज्ञामिमां तेषां श्रावयेत्तदनन्तरम् । गृहीत्वा स्रुक्स्रुवावूर्ध्ववदनाधोमुखो क्रमात्॥२५॥ प्रताप्यग्नौ त्रिधा दर्भमूलमध्याग्रकैः स्पृशेत् । कुशस्पृष्टप्रदेशेषु आत्मविद्याशिवात्मकम् ॥ २६ ॥ क्रमात्तत्त्वत्रयं न्यस्य हां हीं हूं संरवैः क्रमात्। स्रुचि शक्तिं स्रुवे शंभुं विन्यस्य हृदयाणुना॥२७॥ त्रिसूत्रीवेष्टितग्रीवौ पूजितौ कुसुमादिभिः । कुशानामुपरिष्टात्तौ स्थापयित्वा स्वदक्षिणे॥२८॥ गव्यमाज्यं समादाय वीक्षणादिविशोधितम् । स्वकं ब्रह्ममयीं मूर्तिं संचिन्त्याऽऽदाय तद्घृतम् ॥ २९ ॥ कुण्डस्योर्ध्वं हृदावर्त्य भ्रामयित्वाऽग्निगोचरे। पुनर्विष्णुमयीं ध्यात्वा घृतमीशानगोचरे ॥ ३० ॥ धृत्वाऽऽदाय कुशाग्रेण स्वाहान्तं शिरसाऽणुना । जुहुयाद्विष्णवे बिन्दुं रुद्ररूपमनन्तरम् ॥ ३१ ॥ भावयन्निजमात्मानं नाभौ धृत्वा प्लवेत्ततः। प्रादेशमात्रदर्भाभ्यामङ्गुष्ठानामिकाग्रकैः ॥३२॥ घृताभ्यां सम्मुखं वह्नेरस्त्रेणाऽऽप्लवमाचरेत् । हृदाऽऽत्मसंमुखं

लिए तीसरे मास में वाममन्त्र से पूजन करना चाहिए ।। १३-१५ ।। शिरोमन्त्र से जलकण से युक्त तीन आहुति देनी चाहिए । रूपी मन्त्र से छठें मास में सीमन्तोन्नयन संस्कार का पूजन करना चाहिए।।१६।। शिखामन्त्र से तीन आहुति देनी चाहिए । निष्कृती पुरुष को चाहिए कि वह उसी मन्त्र से अग्नि के मुख तथा अंगों के निकलने की कल्पना करें । पहले के ही समान जातकर्म तथा नृकर्म संस्कार दसवें मास में करके, गर्भजन्यदोष को दूर करने वाले स्नान अग्नि को जलाकर कुश आदि से कराना चाहिए ।। १८ ।। फिर हृदय में सुवर्णबन्धन की गयी वागीश्वरी देवी का ध्यान करना चाहिए । सद्यः सूतकजन्य दोष का नाश करने के लिए अस्त्रजल से अग्नि का प्रोक्षण करना चाहिए ।। १९ ।। कुण्ड के बाहर अस्त्र मन्त्र से कुश द्वारा ताड़न करना चाहिए कवच मन्त्र से उसे ऊपर उठाना चाहिए। अस्त्र मन्त्र से मेखला के बाहर उत्तर पूर्वाग्र (ईशानकोण) में रख देना चाहिए । उन सबों के ऊपर हृदय मन्त्र से परिधि के विस्तार करनी चाहिए । उसके पश्चात् नालच्छेदनार्थ मूल प्रान्त में पाँच समिधाओं को घी में डुबोकर हवन करना चाहिए तथा हृदय में ब्रह्मा, शङ्कर, विष्णु तथा अनन्त की पूजा करनी चाहिए ।। २०-२२ ।। पुनः दूब तथा अक्षत से परिधि पर स्थित तथा पूर्व दिशा से ईशानकोण पर्यन्त विष्टर पर स्थित अपनी-अपनी दिशाओं में अग्नि के अभिमुख रहने वाले देवताओं की पूजा हृदयमन्त्र से करनी चाहिए । पुनः विघ्न समूह को दूर करके अग्निरूपी बालक की आप सब पालन करें, इस तरह की भगवान् शिव की आज्ञा उन सभी देवताओं को सुनाना चाहिए । स्रुक को ऊर्ध्वमुख तथ स्रुव को अधोमुख लेकर, अग्नि में प्रतप्त करके कुश के मूल, मध्य तथा अग्रभाग से तीन बार स्पर्श कराना चाहिए ।। २३-२५।। कुश के द्वारा स्पर्श किए गए तीनों प्रदेशों में हाँ, ओं हीं ओं ओं हूं इन तीन शब्दों के उच्चारण पूर्वक आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व तथा शिवतत्त्व का न्यास करना चाहिए और हृदयमन्त्र के द्वारा स्रुक् में शक्ति का तथा स्रुव में शम्भु का न्यास करना चाहिए ।। २७ ।। गले में त्रिसूत्री से वेष्टित तथा पुष्प आदि से पूजित उन दोनों (स्रुक तथा स्रुव) को अपनी दाहिनी ओर कुशों के ऊपर स्थापित करना चाहिए ।। २८ ।। वीक्षण आदि से विशोधित गौ का घृत लेकर अपनी ब्रह्ममयी मूर्ति का ध्यान करके उस घी को अपने हाथ में ले लेना चाहिए ।। २९ ।। पुनः उसे हृदयमन्त्र को पढ़ते हुए कुण्ड के ऊपर अग्नि के चारों ओर घुमाकर, पुनः विष्णुमयी अपनी मूर्ति का ध्यान करके घी को ईशानकोण में रख देना चाहिए। फिर कुश के अग्रभाग से शिरोमन्त्र द्वारा स्वाहान्त विष्णु के लिए आहुति देनी चाहिए । उसके पश्चात् रुद्ररूपी विन्दु की भावना करते हुए उसे अपनी नाभि पर रखकर प्लवन करना चाहिए।।३०।।

तद्वत्कुर्यात्संप्लवनं ततः ॥ ३३ ॥ हृदालब्धदग्धदर्भं शस्त्रक्षेपात्पवित्रयेत् । दीप्तेनापरदर्भेण नीराज्यान्येन दीपयेत् ॥ ३४॥ अस्त्रमन्त्रेण निर्दग्धं वह्नौ दर्भं पुनः क्षिपेत् । क्षिप्त्वा घृते कृतग्रन्थिकुशं प्रादेशसंमितम् ॥ ३५ ॥ पक्षद्वयमिडादीनां त्रयं बाह्ये विभावयेत्। क्रमाद्भागत्रयादाज्यं स्रुवेणाऽऽदाय होमयेत् ॥ ३६ ॥ स्वेत्यग्नौ हां घृते भागं शेषमाज्यं क्षिपेत्क्रमात् । ॐ हामग्नये स्वाहा । ॐ हां सोमाय स्वाहा । ॐ हामग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥ ३७॥ उद्घाटनाय नेत्राणां अग्नेर्नेत्रत्रये मुखे। स्रुवेण घृतपूर्णेन चतुर्थी माहुतिं यजेत् ॥ ३८॥ ओं हामग्नयेस्विष्टकृते स्वाहा। अभिमन्त्र्य षडङ्गेन बोधयेद्धेनुमुद्रया ॥ ३९॥ अवगुण्ठ्य तनुत्रेण रक्षेदाज्यं शराणुना । हृदाज्यबिन्दुविक्षेपात्कुर्यादभ्युक्ष्य शोधनम् ॥ ४०॥ वक्त्राभिधारसंधानं वक्त्रैकीकरणं तथा । ॐ हां सद्योजाताय स्वाहा । ॐ हां वामदेवाय स्वाहा । ॐ हामघोराय स्वाहा । ॐ हां तत्पुरुषाय स्वाहा ॥ ॐ हामीशानाय स्वाहा ॥ ४२ ॥ इत्येकैकघृताहुत्या कुर्याद्वक्त्राभिधारकम् ॥ ४३ ॥ ॐ हां सद्योजातवामदेवाभ्यां स्वाहा । ॐ हां वामदेवाघोराभ्यां स्वाहा । ॐ हामघोरतत्पुरुषाभ्यां स्वाहा । ॐ हां तत्पुरुषेशानाभ्यां स्वाहा ॥ ४४ ॥ इतिवक्त्रानुसन्धानं मन्त्रैरेभिः क्रमाच्चरेत् । अग्नितो गतयावायुं निर्ऋतादिशिवान्तया । वक्त्राणामेकतां कुर्यात्स्रुवेण घृतधारया ॥ ४५ ॥ ॐ हां सद्योजातवामदेवाघोरतत्पुरुषेशानेभ्यः स्वाहा ॥ ४६ ॥ इतीष्टवक्त्रे वक्त्राणामन्तर्भावस्तदाकृतिः । ईशेन वह्निमभ्यर्च्य दत्त्वाऽस्त्रेणाऽऽहुतित्रयम् ॥ ४७ ॥ कुर्यात्सर्वात्मना नाम शिवाग्निस्त्वं हुताशन । हृदार्चितौ विसृज्याग्नौ पितरौ विधिपूरणीम् ॥ ४८ ॥ मूलेन वौषडन्तेन दद्यात्पूर्णां यथाविधि । ततो हृदम्बुजे साङ्गं ससेनं भासुरं परम् ॥ ४९ ॥ यजेत्पूर्ववदावाह्य प्रार्थ्याऽऽज्ञां तर्पयेच्छिवम् । यागाग्निशिवयोः कृत्वा नाडीसंधानमात्मना ॥ ५० ॥ शक्त्या मूलाणुना होमं कुर्यादङ्गैर्दशांशतः ।

अंगुष्ठा तथा अनामिका अंगुलियों से पकड़े गए एक-एक वित्ते के दो कुशों के द्वारा अग्नि के सम्मुख अस्त्र मन्त्र से घुमाना चाहिए, उसी तरह से हृदयमन्त्र से अपने सम्मुख उन कुशों को घुमाना चाहिए।।३२-३३।। हृदयमन्त्र से शस्त्रक्षेप के द्वारा जले हुए कुश को पवित्र करना चाहिए, जले हुए दूसरे कुश से उसकी आरती करके उसे दूसरे कुश से जलाना चाहिए ।। ३४ ।। उस जले हुए कुश को अस्त्र मन्त्र से अग्नि में डाल देना चाहिए । घी में एक वित्ते के गांठ लगे हुए कुश को डालकर इडा आदि के दो पक्षों की तथा बाहर की तीन पक्षों की भावना करनी चाहिए ।स्रुव से क्रमशः तीनों भाग में घी लेकर होम करना चाहिए ।। ३५-३६ ।। स्वाहा पूर्व अग्नि में आहुति देकर अवशिष्ट अंश को घी में ही छोड़ देना चाहिए । (१) ओं हां अग्नये स्वाहा, (२) ओं हां सोमाय स्वाहा, (३) ओं हां अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ।। ३७ ।। नेत्रों का उद्घाटन करने (खोलने) के लिए स्रुव के द्वारा अग्नि के तीनों नेत्रों तथा मुख में इस मन्त्र से चौथी आहुति- 'ओं हामग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' देनी चाहिए ।। ३८-३९ ।। षडङ्ग से अभिमन्त्रित करके अग्नि को धेनु मुद्रा से जगाना चाहिए । कवचमन्त्र से अवगुण्ठन करके शरमन्त्र से घी की रक्षा करनी चाहिए ।। ४० ।। हृदयमन्त्र से घृतविन्दु के विक्षेप के द्वारा अभ्युक्षण करके, शोधन, वक्त्राभिधार, संधान तथा वक्त्रैकीकरण (मुखों को एक में मिलाने की क्रिया) करनी चाहिए ।। ४१ ।। ओं हां सद्योजाताय स्वाहा' इस मन्त्र से लेकर 'ओं हामीशानाय स्वाहा' पर्यन्त इन पाञ्च मन्त्रों से एक-एक घी की आहुति देकर वक्त्राभिधार करना चाहिए ।। ४२-४३ ।। अग्निकोण से प्रारम्भ करके वायव्यकोण पर्यन्त तथा नैऋत्य कोण से प्रारम्भ करके ईशानकोण पर्यन्त स्रुव से अग्नि में घी की धारा गिराकर क्रमशः इन मन्त्रों से अग्नि की मुखों की एकता का अनुसन्धान करना चाहिए।।४५।। वे मन्त्र हैं- ओं हां सद्योजाताय स्वाहा, ओं हां वामदेवाय स्वाहा, ओं हां अघोराय स्वाहा, ओं हां तत्पुरुषाय स्वाहा, ओं हां ईशानाय स्वाहा ।। ४६ ।। इस तरह से अभिप्रेत मुख में अन्य मुखों का अन्तर्भाव करने पर अग्नि के अन्य मुख भी उसी प्रकार के हो जाते हैं । ईश मन्त्र से अग्नि की पूजा करके तीन आहुतियाँ अस्त्र मन्त्र से देनी चाहिए ।। ४७ ।। यह प्रार्थना करना चाहिए कि 'हे अग्नि तुम पूर्णरूप से शिवाग्नि हो' पुनः हृदय में विधिपूर्वक जगत् के माता पिता शिव पार्वती की पूजा करके उन्हें अग्नि में डालकर मूलमन्त्र के अन्त में वौषट् लगाकर पूर्णाहुति करनी चाहिए। उसके पश्चात् अपने हृदय कमल में अङ्ग तथा आसन से युक्त परम देदीप्यमान शिव का पहले के ही समान आवाहन करके उनका पूजन तथा तर्पण करना चाहिए ।। ४८-४९ ।। फिर मन में वामाग्नि तथा शिव के बीच नाड़ी का संधान

घृतस्य कार्षिको होमः क्षीरस्य मधुनस्तथा ॥ ५१ ॥ शुक्तिमात्राऽऽहुतिर्दध्नः प्रसृतिः पायसस्य तु । यथावत्सर्वंभक्षाणां लाजानां मुष्टिसंमितम्॥५२॥
खण्डत्रयं तु मूलानां फलानां तु प्रमाणतः । ग्रासार्धमात्रमन्नानां सूक्ष्माणि पञ्च होमयेत् ॥ ५३ ॥ इक्षोरापर्विकं मानं लतानामङ्गुलद्वयम्। पुष्पं पत्रं
स्वमानेन समिधा तु दशाङ्गुलम् ॥ ५४ ॥ चन्द्रचन्दनकाश्मीरकस्तूरीयक्षकर्दमान्। कलायसंमितोनेतान्गुग्गुलं बदरास्थिवत् ॥ ५५ ॥ कन्दानामष्टमं
भागं जुहुयाद्विधिवत्परम् । होमं निर्वर्तयेदेवं ब्रह्मबीजपदैस्ततः ॥ ५६ ॥ थृतेन सुचि पूर्णानां निधायाधोमुखं स्त्रुवम् स्त्रुगग्रे पुष्पमारोप्य पश्चाद्वामेन
पाणिना ॥ ५७ ॥ पुनः सव्येन तौ धृत्वा शङ्खसंनिभमुद्रया। समुद्गतोर्ध्वकायश्च समपादः समुत्थितः ॥ ५८ ॥ नाभौ तन्मूलमाधाय स्त्रुगग्रव्यग्रलोचनः।
ब्रह्मादिकारणत्यागाद्विनिःसृत्य सुषुम्णया ॥ ५९ ॥ वामस्तनान्तमानीय तयोर्मूलमतन्द्रितः । मूलमन्त्रमविस्पष्टं वौषडन्तं समुच्चरेत् ॥ ६० ॥ तदग्नौ
जुहुयादाज्यं यवसंमितधारया। आचामं चन्दनं दत्त्वा ताम्बूलप्रभृतीनपि ॥ ६१ ॥ भक्तया तद्भूतिमावन्द्य विदध्यात्प्रणतिं पराम् । ततो वह्निं समभ्यर्च्य
फडन्तास्त्रेण सम्वरान् ॥६२॥ संहारमुद्रयाऽऽहृत्य क्षमस्वेत्यभिधाय च । भासुरान्परिधींस्तांश्च पूरकेण हृदाऽणुना॥ ६३॥ श्रद्धया परमाऽऽत्मीये
स्थापयेद्धृदयाम्बुजे । सर्वपाकाग्रमादाय कृत्वा मण्डलकद्वयम् ॥ ६४ ॥ अन्तर्बहिर्बलिं दद्यादाग्नेय्यां कुण्डसंनिधौ । ॐ हां रुद्रेभ्यः स्वाहा पूर्वे
मातृभ्यो दक्षिणे तथा ॥ ६५॥ वारुणे हां गणेभ्यश्च स्वाहा तेभ्यस्त्वयं बलिः । उत्तरे हां च यक्षेभ्यः ईशाने हां ग्रहेभ्य उ ॥ ६६ ॥ अग्नौ हामसुरेभ्यश्च

करना चाहिए। ५१ ।। अपनी शक्ति के अनुसार अंगों के दशांश तथा मूल मन्त्र के दशांश का हवन करना चाहिए । घी का हवन स्त्रुव के छिद्र के चौथाई भाग के परिमाण से, दुग्ध, दही तथा मधु का होम सीपी परिमाण से तथा सभी भक्ष्य पदार्थों एवं लावा का होम मुट्ठीभर के परिमाण से करना चाहिए ।। ५१-५२ ।। मूलों का हवन उनके तीन टुकड़े करके करना चाहिए, फलों को काटकर आधा ग्रास के परिमाण का बनाकर करना चाहिए तथा अन्नों के सूक्ष्म भागों की पाँच आहुतियाँ देनी चाहिए ।। ५३ ।। इसके एक-एक गांठ पर्यन्त के टुकड़े का तथा लताओं के दो-दो अंगुल के टुकड़े का हवन करना चाहिए, पत्र तथा पुष्प का उनके परिमाण के अनुसार तथा समिधा का हवन दस-दस अंगुल के टुकड़ों से करना चाहिए ।। ५४ ।। कर्पूर, चन्दन, केसर, कस्तूरी तथा इन सबों के मिश्रण का मसूर के बराबर हवन करना चाहिए तथा गुग्गुल की आहुति वैर की गुठली के बराबर परिमाण की देनी चाहिए ।। ५५ ।। कन्दों के आठवें भाग की आहुति देनी चाहिए । इस प्रकार से विधिपूर्वक आहुति देनी चाहिए । इस तरह से विधिपूर्वक होम पूरा करके अन्त में ब्रह्मबीज मन्त्र द्वारा घी से भरे स्रुक् के ऊपर स्त्रुवा को रखे स्त्रुक् के आगे पुष्प रखकर उसे बाएँ हाथ से पकड़कर, पुनः दाहिने हाथ से उन दोनों सुक् तथा सुव को पकड़कर शंख के समान मुद्रा बनाए दोनों पैरों को उठाकर खड़ा हो जाय ।। ५६-५८ ।। स्त्रुक् के अग्रभाग को देखते हुए उसके मूल को नाभि पर लगाए । ब्रह्मा आदि के कारणत्व का त्याग कर देने से सुषुम्णा नाड़ी से वामस्तन पर्यन्त उन दोनों (स्त्रुक् तथा स्त्रुव) को लाकर अस्पष्ट रूप से मूल मन्त्र का अन्त में वौषट् लगाकर उच्चारण करना चाहिए । यव के समान मोटी धारा से उस (स्त्रुक् के) घी की धारा अग्नि में डालनी चाहिए । पुनः अग्नि को आचमन, चन्दन तथा ताम्बूल आदि देनी चाहिए ।। ६१ ।। भक्तिपूर्वक अग्नि की विभूति की बन्दना करके अग्नि को प्रणाम करना चवाहिए । फिर अग्नि की पूजा करके संहारमुद्रा से फट् लगाकर अन्त में संहार मुद्रा के द्वारा जल को लाकर 'क्षमा कीजिए' यह उच्चारण करना चाहिए । पूरक करते हुए हृदयमन्त्र से देदीप्यमान परिधियों और उनके देवताओं को श्रद्धापूर्वक परमात्मक अपने हृदयकमल में धारण करना चाहिए। सभी पाकों के अग्रभाग को लेकर दो मण्डल बनाकर कुण्ड के सन्निकट अग्निकोण में मण्डप के भीतर तथा बाहर बलि देनी चाहिए ।। ६२-६४।। ओं हां रुद्रेभ्यः स्वाहा इस मन्त्र से पूर्व में, ओं हां मातृभ्यः स्वाहा, इस मन्त्र से दक्षिण में, ओं हाँ गणेभ्यः स्वाहा इस मन्त्र से पश्चिम दिशा में, ओं हां यक्षेभ्यः स्वाहा, इस मन्त्र से उत्तर दिशा में, ओं हां ग्रहेभ्यः स्वाहा, इस मन्त्र से ईशानकोण में, ओं हां असुरेभ्यः स्वाहा, इस मन्त्र से अग्निकोण में, ओं हां रक्षोभ्यः स्वाहा, इस मन्त्र से नैर्ऋत्य कोण में, ओं हां नागेभ्यः स्वाहा, इस मन्त्र से वायव्यकोण में, ओं हां नक्षत्रेभ्यः स्वाहा, इस मन्त्र से यागमण्डप के बीच में, हों आं राशिभ्यः स्वाहा, इस मन्त्र से अग्निकोण में, ओं हां विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा, इस मन्त्रसे नैर्ऋत्य कोण में तथा ओं हां क्षेत्रपालाय स्वाहा, इस मन्त्र से पश्चिम दिशा में बलि देना चाहिए ।। ६५-६७ ।। इसे

रक्षोभ्यो नैर्ऋते बलिः । वायव्ये हां च नागेभ्यो नक्षत्रेभ्यश्च मध्यतः ॥ ६७ ॥ हां राशिभ्यः स्वाहा वह्नौ विश्वेभ्यो नैर्ऋते तथा। वारुण्यां क्षेत्रपालाय अन्तर्बलिरुदाहृतः ॥ ६८ ॥ द्वितीय मण्डले बाह्य इन्द्रायाग्नेर्यमाय च । नैर्ऋताय जलेशाय वायवे धनरक्षिणे ॥ ६९॥ ईशानाय च पूर्वादावीशाने ब्रह्मणे नमः । नैर्ऋते विष्णवे स्वाहा वायसादेर्बलिर्बहिः ॥ ७० ॥ बलिद्वयगतान्मन्त्रान्संहरेन्मुद्रयाऽऽत्मनि॥ ७१॥

इत्याग्नेये महापुराणे शिवपूजाङ्गहोमविधिनिरूपणं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

चण्डपूजा

ईश्वर उवाच— **ततः शिवान्तिकं गत्वा पूजाहोमादिकं मम । गृहाण भगवन्पुण्यफलमित्यभिधाय च ॥ १ ॥ अर्घ्योदकेन देवाय मुद्रयोद्भवसंज्ञया। हृद्बीजपूर्वमूलेन स्थिरचित्तो निवेदयेत् ॥ २ ॥ ततः पूर्ववदभ्यर्च्य स्तुत्वा स्तोत्रैः प्रणम्य च । अर्घ्यं पराङ्मुखं दत्त्वा क्षमस्वेत्यभिधाय च ॥ ३ ॥ नाराचमुद्रयाऽस्त्रेण फडन्तेनाऽऽत्मसंचयम् । संहृत्य दिव्यया लिङ्गं मूर्तिमन्त्रेण योजयेत् ॥ ४॥ स्थण्डिले त्वर्चिते देवे मन्त्रसंहारमात्मनि । नियोज्य विधिनोक्तेन विदध्याच्चण्डपूजनम् ॥ ५ ॥ ॐ चण्डेशानाय नमो मध्यतश्चण्डमूर्तये । ॐ धूलिचण्डेश्वराय हूं फट् स्वाहा तमाह्वयेत् ॥ ६ ॥ चण्डहृदयाय हूं फडों चण्डशिरसे तथा । ॐ चण्डशिखायै हूं फट् चण्डायुष्कवचाय चं ॥ ७ ॥ चण्डास्त्राय तथा हूं फट् चण्डं रुद्राग्निजं स्मरेत्।**

ही अन्तर्वलि कहते हैं । यज्ञमण्डप के बाहर वाले मण्डल में इन्द्राय नमः, अग्नये नमः, यमाय नमः, नैर्ऋत्ये नमः, वरुणा यनमः, वायवे नमः, धनदाय नमः, ईशानाय नमः, इन मन्त्रों से पूर्व आदि आठों दिशाओं के दिक्पालों को पुनः ईशानकोण में ब्रह्मणे नमः मन्त्र से ब्रह्मा के लिए तथा नैर्ऋत्य कोण में विष्णवे स्वाहा मन्त्र से विष्णु के लिए बलि देनी चाहिए । फिर कौए आदि की बलि बाहर देनी चाहिए । इन दोनों प्रकार के बलियों के मन्त्रों का संहार मुद्रा से अपनी आत्मा में संहार करना चाहिए ।। ६९-७१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का शिवपूजाङ्गहोम विधि का निरूपण नामक पचहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७५ ॥

श्री शिवजी ने कहा— इसके पश्चात् शिवजी के सन्निकट जाकर यह प्रार्थना करनी चाहिए कि हे भगवन् ! आप मेरे द्वारा की गयी पूजा तथा होम एवं उनके फल को स्वीकार करें ।। १ ।। तदनन्तर उद्भव मुद्रा के द्वारा हृदयबीजपूर्वक मूल मन्त्र से शान्तचित्त होकर भगवान् शंकर के लिए अर्घ्य का जल प्रदान करें ।। २ ।। उसके पश्चात् पहले के ही समान अर्चना करके, स्तुति करके तथा प्रणाम करके भगवान् शंकर की ओर मुँह करके अर्घ्य देना चाहिए और 'क्षमा करें' यह कहना चाहिए ।। ३ ।। अस्त्राय फट् इस मन्त्र के द्वारा बाण मुद्रा के द्वारा आत्मसंचय करके तथा दिव्य मुद्रा के द्वारा उसका संहार करके लिङ्ग को मूर्तिमन्त्र से संयुक्त करना चाहिए ।। ४ ।। बेदी के ऊपर श्रीशङ्कर जी की पूजा हो जाने पर उपर्युक्त विधि से मंत्र का संहार अपनी आत्मा में करके चण्ड की पूजा ओं चण्डेशानाय नमः इस मन्त्र से करनी चाहिए और मण्डप के मध्य में ओं चण्डमूर्तये नमः इस मन्त्र से पूजा करनी चाहिए । ओं धूलिचण्डेश्वराय नमः इस मन्त्र से चण्ड का आवाहन करना चाहिए ।। ५-६ ।। पुनः 'ओं चन्द्रहृदयाय हूं फट्, ओं चण्डशिरसे स्वाहा, ओं चण्डशिखायै हूं फट्, ओं चण्डाय कवचाय हुम्, ओं चण्डास्त्राय हूं फट्, इस प्रकार से अङ्गन्यास करके रुद्राग्नि से उत्पन्न चण्ड का स्मरण करना चाहिए ।। ७ ।। त्रिशूल तथा टङ्क धारण करने वाले, कृष्ण वर्ण के तथा अक्षसूत्र एवं कमण्डलुधारी टङ्क के आकार पर अथवा अर्धचन्द्र के ऊपर चार मुख वाले

शूलटङ्कधरं कृष्णं साक्षसूत्रकमण्डलुम् ॥ ८॥ टङ्कारेऽर्धचन्द्रे वा चतुर्वक्त्रं प्रपूजयेत् । यथाशक्ति जपं कुर्यादङ्गानां तु दशांशतः॥ ९॥ गोभूहिरण्यवस्त्रादिमणिहेमादिभूषणम् । विहाय शेषनिर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत् ॥ १० ॥ लेह्यचोष्याद्यन्नवरं ताम्बूलं स्रग्विलेपनम्। निर्माल्यं भोजनं तुभ्यं प्रदत्तं तु शिवाज्ञया ॥ ११ ॥ सर्वमेतत्क्रियाकाण्डं मया चण्ड तवाज्ञया । न्यूनाधिकं कृतं मोहात्परिपूर्णं सदाऽस्तु मे॥१२॥ इति विज्ञाप्य देवेशं दत्त्वाऽर्घ्यं तस्य संस्मरन् । संहारमूर्तिमन्त्रेण शनैः संहारमुद्रया ॥ १३ ॥ पूरकान्वितमूलेन मन्त्रानात्मनि योजयेत् । निर्माल्यापनयस्थानं लिम्पेद्गोमयवारिणा ॥ १४ ॥ प्रोक्ष्यार्घ्यादि विसृज्याथ आचान्तोऽन्यसमाचरेत् ॥ १५ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये चण्डपूजाकथनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

कपिलापूजनम्

ईश्वर उवाच– **कपिलापूजनं वक्ष्य एभिर्मन्त्रैर्यजेच्च गाम् । ॐ कपिले नन्दे नमः कपिले भद्रिके नमः ॥ १ ॥ कपिले सुशीले नमः कपिले सुरभिप्रभे । ॐ कपिले सुमनसे नमः भुक्तिमुक्तिप्रदे नमः ॥२ ॥ सौरभेयि जगन्मातर्देवानाममृतप्रदे । गृहाण वरदे ग्रासमीप्सितार्थं च देहि मे ॥ ३॥ बन्दिताऽसि वसिष्ठेन विश्वामित्रेण धीमता । कपिले हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥ ४ ॥ गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च । गावो मे हृदये चापि गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥५ ॥ दत्तं गृहाण मे ग्रासं जप्त्वास्यान्निर्मलः शिवः । प्राच्र्य विद्यापुस्तकानि गुरुपादौ नमेन्नरः ॥ ६ ॥ यजेत्स्नात्वा**

चण्ड की पूजा करनी चाहिए । पुनः अपनी शक्ति के अनुसार अङ्गों का दशांश जप करना चाहिए ।। ८-९ ।। गौ, भूमि, सुवर्ण,वस्त्र आदि मणि तथा सुवर्ण आदि के भूषण को छोड़ शेष निर्माल्य को चण्डेश को निवेदित कर देना चाहिए।।१०।। उसके पश्चात् हे चण्ड ! भगवान् शिव की आज्ञा से लेह्य तथा चोष्य, उत्तम कोटि के अन्न, ताम्बूल, माला, चन्दन तथा निर्माल्य भोजन आपको प्रदान किया है।।११।। हे चण्ड ! मैंने यह सम्पूर्ण कर्मकाण्ड आपकी आज्ञा से किया है,यदि मोहवश किसी प्रकार की न्यूनता अथवा अधिकता हो गयी हो तो वह परिपूर्ण हो जाय।।१२।। इस प्रकार से चण्डेश की प्रार्थना करके तथा अर्घ्य प्रदान करके देवता का स्मरण करते हुए संहारमूर्ति मन्त्र से संहारमुद्रा के द्वारा धीरे-धीरे पूरक प्राणायाम से युक्त मूलमन्त्र से मन्त्रों को अपनी आत्मा में संयुक्त करना चाहिए। निर्माल्य को हटाकर उस स्थान को गोबर तथा वस्त्र से लीप देना चाहिए । पुनः उसका प्रोक्षण करके तथा अर्घ्य आदि देकर उसके बाद में आचमन करे फिर कोई दूसरा काम करे।।१३-१५।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का चण्डपूजा वर्णन नामक छिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७६ ॥

श्री शिवजी ने कहा– अब मैं कपिला पूजन का वर्णन कर रहा हूँ । इन्हीं मन्त्रों से गौ की पूजा करनी चाहिए । (१) ओं कपिले नन्दे नमः, (२) ओं कपिले भद्रिके नमः, (३) ओं कपिले सुशीले नमः, (४) ओं कपिले सुमनसे नमः, (५) ओं कपिले भुक्तिमुक्तिप्रदे नमः ।। १-२ ।। हे सुरभिपुत्रि ! हे जगत् की माँ । देवताओं को अमृत प्रदान करने वाली, आप ग्रास ग्रहण करें तथा मुझे अभिलषित अर्थ प्रदान करें ।। ३ ।। आपकी बन्दना बुद्धिमान वसिष्ठ ने तथा विश्वामित्र ने की है । मैंने जो कुछ भी पाप किया है, हे कपिले ! आप उसे विनष्ट कर दें ।। ४ ।। गाय सदा मेरे आगे रहें, तथा मेरे पीछे रहें, मेरे हृदय में गौ निवास करें मैं गौओं के भीतर निवास करता हूँ ।। ५ ।। मेरे द्वारा दिया गया ग्रास आप स्वीकार करें । इस तरह से पढ़कर निर्मल (पाप रहित) तथा कल्याणमय बना हुआ मनुष्य विद्या तथा पुस्तक की पूजा करके आचार्य के चरणों में प्रणाम करे ।। ६ ।। दोपहर में स्नान करके मनुष्य स्वयम् अष्टपुष्पिका से पूजन करे । पीठमूर्ति तथा शिव

तु मध्याह्ने अष्टपुष्पिकया स्वयम् । पीठमूर्तिशिवाङ्गानां पूजा स्यादष्टपुष्पिका ॥ ७ ॥ मध्याह्ने भोजनागारे सुलिप्ते पाकमानयेत् । ततो मृत्युञ्जयेनैव वौषडन्तेन सप्तधा ॥ ८ ॥ जप्तैः सदर्भशङ्खस्थैः सिञ्चेत्तं वारिबिन्दुभिः । सर्वपाकाग्रमुद्धृत्य शिवाय विनिवेदयेत् ॥ ९ ॥ अथार्ध चुल्लिकाहोम विधानायोपकल्पयेत्। विशोध्य विधिना चुल्लीं तद्वह्निं पूरकाहुतिम् ॥ १०॥ हुत्वा नाभ्यग्निना चैकं ततो रेचकवायुना । वह्निबीजं समादाय कादिस्थानगतिक्रमात् ॥११॥ शिवाग्निस्त्वमिति ध्यात्वा चुल्लिकाग्नौ निवेशयेत् । ॐ हामग्नये च नमो वै हां सोमाय वै नमः ॥ १२ ॥ सूर्याय बृहस्पतये प्रजानां पतये नमः । सर्वेभ्यश्चैव देवेभ्यः सर्वविश्वेभ्य एव च ॥ १३ ॥ हामग्ये स्विष्टकृते पूर्वादावर्चयेदिमान् । स्वाहान्तमाहुतिं दत्त्वा क्षमयित्वा विसर्जयेत्॥१४॥ चुल्ल्या दक्षिणबाहौ च यजेद्धर्माय वै नमः । वामबाहावधर्माय काञ्जिकादिकभाण्डके ॥ १५ ॥ रसपरिवर्तमानाय वरुणाय जलाश्रये । विघ्नराजे गृहद्वारे पेषण्यां सुभगे नमः ॥ १६ ॥ ॐरौद्रिके गिरिके च नभश्चोलूखले यजेत्। बलिप्रियायाऽऽयुधाय नमस्ते मुसले यजेत्॥ १७ ॥ सम्मार्जन्यां देवतोक्ते कामाय शयनीयके । मध्यस्तम्बे च स्कन्दाय दत्त्वा बास्तुबलिं ततः ॥ १८ ॥ भुञ्जीत पात्रे सौवर्णे पद्मिन्यादिदलादिके। आचार्यः साधकः पुत्रः समयी मौनमास्थितः ॥ १९ ॥ वटाश्वत्थार्कवातारिसर्जभल्लातकांस्त्यजेत् । आपोशान पुराऽऽदाय प्राणाद्यैः प्रणवान्वितैः॥ २०॥ स्वाहान्ते चाऽऽहुतीः पञ्च दत्त्वाऽऽदीप्योदरानलम् । नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥ २१ ॥ एतेभ्य उपवायुभ्यः स्वाहाऽऽपोशनवारिणा। भक्तादिकं निवेद्याथ पिबेच्छेषोदकं नरः ॥२२॥ अमृतोपस्तरणमसि प्राणाहुतीस्ततो ददेत् । प्राणाय स्वाहाऽपानाय

के अंगों की पूजा ही अष्टपुष्पिका कहलाती है ।। ७ ।। दोपहर में अच्छी तरह से लिपे हुए भोजनालय में पाक सामग्री लानी चाहिए। उसके पश्चात् मृत्युञ्जयमन्त्र के अन्त में वौषट् लगाकर सात बार जप करे और शंख में कुश रखे गए जल को उस भोजन सामग्री पर छिड़के । सम्पूर्ण भोजन में से थोड़ा-थोड़ा निकालकर उसे शिवजी को निवेदित करना चाहिए ।। ९ ।। उसका आधा भाग चूल्ही में होम करने के लिएअलग कर लेना चाहिए । विधिपूर्वक चूल्हे तथा अग्नि को शुद्ध करके उसमें पूर्णाहुति देनी चाहिए ।। १० ।। एक बार नाभि की अग्नि से होम करके, उसके पश्चात् रेचक वायु से वह्निबीज को लेकर, कादि स्थान गति के क्रमसे तुम ही शिवाग्नि हो इस प्रकार से ध्यान करके उसके चूल्हे की अग्नि में ध्यान के द्वारा स्थापित करना चाहिए ।। ११ ।। (१) ओं हामग्नये नमः, (२) ओं हाँ सोमाय नमः, (३) ओं हाँ सूर्याय नमः, (४) ओं हाँ बृहस्पतये नमः, (५) ओं हाँ प्रजापतये नमः, (६) ओं हाँ सर्वेभ्योदेवेभ्यो नमः, (७) ओं सर्वेभ्यो विश्वदेभ्यो नमः, (८) ओं हामग्नये स्विष्टकृते नमः । इस प्रकार से पूर्व आदि आठों दिशाओं में इन्द्र आदि देवताओं की पूजा करके, इन सभी देवताओं के लिए उनके मन्त्रों के अन्त में स्वाहा लगाकर आहुति देनी चाहिए, फिर क्षमा प्रार्थना करके उनका विसर्जन करना चाहिए ।। १२-१४ ।। चूल्हे के दक्षिण भुजा पर 'ओं धर्माय नमः' इस मन्त्र से धर्म की, बायीं भुजा पर 'ओं अधर्माय नमः' इस मन्त्र से अधर्म की, काञ्जी आदि के पात्र पर 'ओं रस परिवर्तनाय नमः' इस मन्त्र से, जल पात्र के ऊपर 'ओं ब्राह्मणाय नमः' इस मन्त्र से, गृह के द्वार पर 'ओं विघ्नराजाय नमः' इस मन्त्र से गृह के ऊपर 'ओं सुभगे नमः' ओखल पर, 'रौद्रिके गिरिके च नमः' इस मन्त्र से तथा 'नभसे नमः' इस मन्त्र से पूजन करना चाहिए । मुसल पर 'बलिप्रियायायुधाय नमः' इस मन्त्र से पूजन करना चाहिए।।१५-१७ ।। झाड़ू तथा शय्या पर 'कामाय नमः' इस मन्त्र से काम की पूजा करनी चाहिए । मध्यस्तम्ब पर 'स्कन्दाय नमः' इस मन्त्र से स्कन्द की पूजा करके उसके पश्चात् वास्तुबलि देनी चाहिए।।१८।। उसके पश्चात् सोने के पात्र में अथवा कमल के पत्ते पर आचार्य, साधक, पुत्र तथा समयी को मौन होकर भोजन करना चाहिए ।। १९ ।। वट, पीपल, मदार, सर्ज तथा भाल्लातक के पत्ते पर भोजन नहीं करना चाहिए । भोजन करने से पहले आपोशान (जल का आचमन) करके पाँच ग्रास प्राणों को नाम के पहले 'ओं' तथा अन्त में स्वाहा लगाकर प्राणाहुति देकर प्राणाग्नि को उद्दीप्त करना चाहिए।।२०।। पुनः नाग, कूर्म,कृकर,देवदत्त, धनञ्जय इन वायुओं के अधिष्ठातृ देवता के लिए भी 'ओं नागाय स्वाहा, ओं कूर्माय स्वाहा, ओं कृकराय स्वाहा, ओं देवदत्ताय स्वाहा, ओं धनञ्जयाय स्वाहा, इन मन्त्रों

समानाय ततस्तथा ॥ २३ ॥ उदानाय च व्यानाय भुक्त्वा चुल्लकमाचरेत् । अमृतापिधानमसीति शरीरेऽन्नादनाय च ॥ २४ ॥

इत्यादि महापुराणे आग्नेये कपिलापूजनादिविधिकथनं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

पवित्राधिवासनविधिकथनम्

ईश्वर उवाच– **पवित्रारोहणं वक्ष्ये क्रियार्चादिषु पूरणम् । नित्यं तन्नित्यमुद्दिष्टं नैमित्तिकमथापरम् ॥ १ ॥ आषाढादिचतुर्दश्यामथ श्रावणभाद्रयोः । सितासितासु कर्तव्यं चतुर्दश्यष्टमीषु तत् ॥ २ ॥ कुर्याद्वा कार्तिकीं यावत्तिथौ प्रतिपदादिके । वह्निब्रह्माम्बिकेभास्यनागस्कन्दार्कशूलिनाम् ॥ ३ ॥ दुर्गायमेन्द्रगोविन्दस्मरशंभुसुधाभुजाम्। सौवर्णं राजतं ताम्रं कृतादिषु यथाक्रमम् ॥ ४ ॥ कलौ कार्पासजं वाऽपि पट्टपद्मादिसूत्रकम् । प्रणवश्चन्द्रमा वह्निर्ब्रह्मा नागो गुहो हरिः॥५॥ सर्वेशः सर्वदेवाः स्युः क्रमेण नवतन्तुषु । अष्टोत्तरशतान्यर्धं तदर्धं चोत्तमादिकम् ॥ ६ ॥ एकाशीत्यऽथवा सूत्रैस्त्रिंशताऽप्यष्टयुक्तया । पञ्चाशता वा कर्तव्यं तुल्यग्रन्थ्यन्तरालकम् ॥ ७ ॥ द्वादशाङ्गुलमानानि व्यासादष्टाङ्गुलानि च । लिङ्गबिस्तारमानानि चतुरङ्गुलिकानि वा॥८॥ तथैव पिण्डिकास्पर्शं चतुर्थं सार्वदैवतम् । गङ्गावतारकं कार्यं प्रजातेन सुधौतकम् ॥ ९ ॥ ग्रन्थिं कुर्याच्च वामेन अघोरेणाथ**

से पाँच ग्रास की आहुति भात इत्यादि से देकर जल से आपोशान करें और अन्त में बचे जल को पी जाय ।। २१-२२ ।। इसके बाद बचे हुए अन्न की 'अमृतोपस्तरणमसि' इस मन्त्र से आहुति देनी चाहिए ।। २२।। पाँचों प्राणों की आहुतियों के मन्त्र ये हैं– (१) ओं प्राणाय स्वाहा, ओं अपानाय स्वाहा, ओं समानाय स्वाहा, ओं उदानाय स्वाहा तथा ओं व्यानाय स्वाहा । इन पाञ्चों आहुतियों के अन्त में एक चुल्लु जल पीना चाहिए । शरीर में अन्न पचाने के लिए 'अमृतापिधानमसि' इस मन्त्र का उच्चारण चुल्लु का जल पीते समय करना चाहिए।।२३-२४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का कपिलापूजन आदि की विधि का वर्णन नामक सतहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं पवित्राधिरोपण का वर्णन करूँगा जिससे क्रियाओं तथा अर्चा आदि की नित्य पूर्ति होती है । वह दो प्रकार का होता है, नित्य तथा नैमित्तिक ।। १ ।। आषाढ़ मास की आदि (शुक्ल) चतुर्दशी तिथि को तथा श्रावण एवं भाद्रपद मास की शुक्ल एवं कृष्ण दोनों पक्षों की चतुर्दशी एवं अष्टमी तिथि को पवित्र होता है ।। २ ।। अथवा कार्तिक महीने पर्यन्त प्रतिपदादि तिथियों में पवित्रक करना चाहिए । अग्नि, ब्रह्मा, अम्बिका, गणेश, नाग, स्कन्द, सूर्य, शिव, दुर्गा, यम, इन्द्र, गोविन्द, काम तथा शंभु इन देवताओं का पवित्रारोहण करना चाहिए । सत्ययुग, त्रेतायुग, एवं द्वापरयुग में क्रमशः सुवर्ण, चाँदी तथा ताम्बे का पवित्रक होता था ।। ३-४ ।। किन्तु कलियुग में उसे कपास, या पट्टसूत्र या पद्मसूत्र का होना चाहिए । पवित्रक के नव तन्तुओं के क्रमशः ये देवता हैं- प्रणव, चन्द्रमा, अग्नि, ब्रह्मा, नाग, गुह, श्रीहरि, सर्वेश एवं सर्वदेव ।। ५ ।। अष्टोत्तरशत, अथवा उसके आधा चौवन, अथवा उसके आधा सत्ताइस पवित्रक क्रमशः उत्तम, मध्यम तथा अधम कोटि के होते हैं ।। ६ ।। पवित्रकों को इक्यासी अथवा अड़तीस अथवा पच्चास अंगुल का बनाना चाहिए । उनकी ग्रन्थियों का अन्तराल (दूरी) एक समान होनी चाहिए।।७ ।। उनको बारह अंगुल प्रमाण का अथवा आठ अंगुल मान का अथवा जितनी लिङ्ग की लम्बाई हो उतने मान का अथवा चार अंगुल के मान का होना चाहिए । चौथे प्रकार का सार्वदैवत पवित्रक होता है जिसका मान लिङ्ग से लेकर पिण्डिका को स्पर्श करने वाला होता है । इसे अङ्गावतार नामक पवित्रक कहते हैं। इसे सुन्दर रुई से बने सुन्दर घौतवस्त्र का बनाना चाहिए ।। ९ ।। पवित्रक की ग्रन्थि बाएँ हाथ से लगानी चाहिए और अघोरमन्त्र से उसका शोधन करना चाहिए । पुरुषसूक्त का पाठ करते हुए उसको रक्तचन्दन, कुङ्कुम, कस्तूरी, गोरोचन, कर्पूर, हल्दी तथा गेरु आदि से रंगना चाहिए ।

शोधयेत् । रञ्जयेत्पुरुषेणैव रक्तचन्दनकुङ्कुमैः ॥ १० ॥ कस्तूरीरोचनाचन्द्रैर्हरिद्रागैरिकादिभिः। ग्रन्थयो दश कर्तव्या अथवा तन्तुसंख्यया॥११॥ अन्तरं वा यथाशोभमेकद्विचतुरङ्गुलम् । प्रकृतिः पौरुषी वीरा चतुर्थी त्वपराजिता ॥ १२ ॥ जयाऽन्या विजया षष्ठी अजिता च सदा शिवा । मनोन्मनी सर्वमुखी ग्रन्थयोऽभ्यधिकाः शुभाः ॥ १३ ॥ कार्या वा चन्द्रवह्न्यर्कपवित्रं शिववद्धृदि । एकैकं निजमूर्तौ वा पुस्तके गुरुके गणे ॥ १४॥ स्यादेकैकं तथा द्वारदिक्पालकलशादिषु । हस्तादिनवहस्तान्तं लिङ्गानां स्यात्पवित्रकम् ॥ १५ ॥ अष्टाविंशतितो वृद्धं दशभिर्दशभिः क्रमात् । द्व्यङ्गुलाभ्यन्तरास्तत्र क्रमादेकाङ्गुलान्तराः ॥ १६ ॥ ग्रन्थयो मानमप्येषां लिङ्गविस्तारसम्मितम् । सप्तम्यां वा त्रयोदश्यां कृतनित्यक्रियः शुचिः॥१७॥ भूषयेत्पुष्पवस्त्राद्यैः सायाह्ने यागमन्दिरम् । कृत्वा नैमित्तिकीं सन्ध्यां विशेषेण च तर्पणम् ॥ १८ ॥ परिगृहीते भूभागे पवित्रे सूर्यमर्चयेत् । आचम्य सकलीकृत्य प्रणवार्घ्यकरो गुरुः ॥ १९ ॥ द्वाराण्यस्त्रेण संप्रोक्ष्य पूर्वादिक्रमतोऽर्चयेत् । हां शान्तिकलाद्वाराय तथा विद्याकलात्मने ॥ २० ॥ निवृत्तिकलाद्वाराय प्रतिष्ठाख्यकलात्मने । तच्छाखयोः प्रतिद्वारं द्वौ द्वौ द्वाराधिपौ यजेत् ॥ २१ ॥ नन्दिने महाकालाय भृङ्गिणेऽथ गणाय च । वृषभाय च स्कन्दाय देव्यै चण्डाय च क्रमात् ॥ २२ ॥ नित्यं च द्वारपालादीन्प्रविश्य द्वारि पश्चिमे । इष्ट्वा वास्तुं भूतशुद्धिं विशेषार्घ्यकरः शिवः॥२३॥ प्रोक्षणाद्यं विधायाथ यज्ञसंस्कारकृन्नरः । मन्त्रयेद्दर्भदूर्वाद्यैः पुष्पाद्यैश्च हृदादिभिः ॥ २४ ॥ शिवहस्तं विधायेत्थं स्वशिरस्यधिरोपयेत्। शिवोऽहमादिः सर्वज्ञो मम यज्ञप्रदानता ॥ २५॥ अत्यर्थं भावयेद्देवं ज्ञानखड्गकरो गुरुः । नैर्ऋतीं दिशमासाद्य प्रक्षिपेदुदगाननः ॥ २६ ॥ अर्घ्याम्बु

पवित्रक में दस ग्रन्थियों को लगाना चाहिए अथवा पवित्रक के तन्तुओं की संख्या के अनुसार ग्रन्थियों को लगाना चाहिए ।। १०-११ ।। जैसे अच्छा लगे उसके अनुसार ग्रन्थियों का अन्तराल एक अंगुल, दो अंगुल अथवा चार अंगुल का होना चाहिए । ग्रन्थियों की ये दस अधिष्ठातृ देवता हैं- (१) प्रकृति, (२) पौरुषी, (३) वीरा, (४) अपराजिता, (५) जया, (६) विजया, (७) अजिता, (८) सदाशिवा, (९) मनोन्मनी और (१०) सर्वमुखी । ग्रन्थियाँ दस से अधिक भी बनायी जा सकती हैं ।। १२-१३ ।। पवित्रक को चन्द्रमण्डल, अग्निमण्डल तथा सूर्यमण्डल के द्वारा पवित्र एवं शिव के समान मानकर हृदय में धारण करना चाहिए । इन पवित्रकों में से एक-एक पवित्रक को अपनी मूर्ति पर, पुस्तक पर तथा अपने गुरुओं को समर्पित करना चाहिए । एक-एक पवित्रक द्वारपालों दिक्पालों तथा यागमण्डप के कलशों पर चढ़ाना चाहिए । लिंगों का पवित्रक एक हाथ से लेकर नव हाथ तक का लम्बा होना चाहिए।।१४-१५।। एक हाथ के पवित्रक में अट्ठाइस ग्रन्थियाँ होती हैं । इसके पश्चात् प्रत्येक हाथ में दस-दस ग्रन्थियाँ बढ़ती जाती हैं । इस प्रकार नव हाथ के पवित्रक में एक सौ आठ ग्रन्थियाँ होती हैं । उन ग्रन्थियों में क्रमशः एक-एक अंगुल अथवा दो-दो अंगुल का अन्तराल होता है ।।१६ ।। सप्तमी अथवा त्रयोदशी के दिन नित्य क्रिया करके पवित्र होकर सायंकाल को याग मन्दिर को पुष्प तथा वस्त्र आदि से सजा देना चाहिए । नैमित्तिक सन्ध्या करके तथा विशेष रूप से तबीज धारण करके निश्चित पवित्र भूभाग पर सूर्य की अर्चना करनी चाहिए उसके बाद आचार्य सकलीकरण करके प्रणव के द्वारा अर्घ्य प्रदान करें।।१७-१९।। प्रत्येक द्वारों पर जल छिड़ककर उनकी पूर्व आदि के क्रम से पूजा करनी चाहिए । ओं हां शान्तिकलाद्वाराय नमः, (२) ओं हा विधाकलात्मने नमः, (३) ओं हाँ निवृत्तिकलाद्वाराय नमः तथा (४) ओं हां प्रतिष्ठाख्य कलात्मने नमः, ये पूजा के मन्त्र हैं । द्वार शाखाओं के ऊपर प्रत्येक द्वार पर दो-दो द्वारपालों की पूजा करनी चाहिए । इन द्वारपालों के क्रमशः पूजा मन्त्र हैं– (१) ओं हां नन्दिने नमः,(२) ओं हाँ महाकालाय नमः, (३) ओं हां भृङ्गिणे नमः,(४) ओं हां गणाय नमः,(५) ओं हां वृषभाय नमः, (६) ओं हां स्कन्दाय नमः, (७) ओं हां देव्यै नमः तथा (९) ओं हां चण्डय नमः।।२०-२२।। नित्य ही द्वारपाल आदि की पूजा करके पश्चिम द्वार से प्रवेश करके वास्तु पूजन करना चाहिए, फिर भूतशुद्धि करके विशेष अर्घ्य का प्रदान करना कल्याणकारी होता है ।। २३ ।। मनुष्य प्रोक्षण आदि करके यज्ञ संस्कार करे, कुश,दूर्वा तथा पुष्प आदि से हृदयमन्त्र आदि से अभिमन्त्रित करना चाहिए ।। २४ ।। इस प्रकार से शिवहस्त बनाकर आचार्य अपने सिर पर हाथ रखे और यह भावना करे कि

पञ्चगव्यं च समन्तान्मखमण्डपे । चतुष्पथान्तसंस्कारैर्वीक्षणाद्यैः सुसंस्कृतैः॥२७॥ विक्षिप्य विकिरांस्तत्र कुशकूर्च्योपसंहरेत् । तानीशदिशि वर्धन्यामासनायोपकल्पयेत् ॥ २८ ॥ नैर्ऋते वास्तुगीर्वाणा द्वारे लक्ष्मीं प्रपूजयेत् । पश्चिमाभिमुखं कुम्भं सर्वधान्योपरि स्थितम् ॥ २९ ॥ प्रणवेन वृषारूढं सिंहस्थां वर्धनीं ततः। कुम्भे साङ्गं शिवं देवं वर्धन्यामस्त्रमर्चयेत् ॥ ३० ॥ दिक्षु शक्रादिदिक्पालान्विष्णुब्रह्मशिवादिकान् । वर्धनीं सम्यगादाय घटपृष्ठानुगामिनीम् ॥ ३१ ॥ शिवाज्ञां श्रावयेन्मन्त्री पूर्वादीशानगोचरम् । अविच्छिन्नपयोधारां मूलमन्त्रमुदीरयेत् ॥ ३२ ॥ समन्ताद्भ्रामयेदेनां रक्षार्थं शस्त्ररूपिणीम् । पूर्वं कलशमारोप्य शस्त्रार्थं तस्थु वामतः ॥ ३३ ॥ समग्रासनके कुम्भे यजेद्देवं स्थिरासने । वर्धन्यां प्रणवस्थायामायुधं तदनु द्वयोः ॥ ३४ ॥ भगलिङ्गसमायोगं विदध्याल्लिङ्गमुद्रया। कुम्भे निवेद्य बोधासिं मूलमन्त्रजपं तथा॥ ३५ ॥ तद्दशांशेन वर्धन्यां रक्षां विज्ञापयेदपि । गणेशं वायवेऽभ्यर्च्य हरं पञ्चामृतादिभिः ॥ ३६ ॥ हरं स्नापयेत्पूर्ववत्प्राच्य कुण्डे च शिवपावकम् । विधिवच्चरुकं कृत्वा संपाताहुतिशोधितम्॥३७॥ देवाग्न्यात्मविभेदेन दर्व्या तं विभजेत् त्रिधा दत्त्वा भागौ शिवाग्निभ्यां संरक्षेद्भागमात्मनि ॥ ३८ ॥ नरेण वर्मणा देयं पूर्वतो दन्तधावनम् । भस्मघोरशिखाभ्यां वा दक्षिणे पश्चिमे मृदम्॥३९॥ सद्योजातेन च हृदा चोत्तरे वाऽऽमलीफलम् । जलं वामेन शिरसा ईशे गन्धान्वितं जलम् ॥४०॥ पञ्चगव्यं पलाशादिपुटकं वै समन्ततः । ऐशान्यां कुसुमं दद्यादाग्नेय्यां दिशि रोचनाम् ॥ ४१ ॥ अगुरुं निर्ऋताशायां वायव्यां च चतुःसमम् । होमद्रव्याणि सर्वाणि सद्योजातैः कुशैः सह ॥ ४२ ॥ दण्डाक्षसूत्रकौपीनभिक्षापात्राणि रूपिणे । कज्जलं कुंकुमं तैलं शलाका केशशोधिनीम्॥४३॥

मैं ही आदि, सर्वज्ञ शिव हूँ । यज्ञ में मेरी ही प्रधानता होती है । इस प्रकार से आचार्य को ज्ञानरूपी कृपाण हाथ में धारण कर बहुत अधिक भावना करना चाहिए । इसके पश्चात् आचार्य नैर्ऋत्यकोण में आकर उत्तराभिमुख खड़े होकर यज्ञमण्डप में अर्घ्य के जल तथा पञ्चगव्य को छिडकें ।। २५-२६ ।। वीक्षण आदि के द्वारा चतुष्पथ संस्कारपर्यन्त संस्कार करके सरसों को छिड़ककर कुश की कुंची के द्वारा उसे विटोर लें । उन सबों को ईशानकोण में बर्धनी के ऊपर रखकर आसन बनाए ।। २७-२८ ।। इसके पश्चात् नैर्ऋत्य कोण में वास्तु की तथा सरस्वती की पूजा करनी चाहिए और द्वार पर लक्ष्मी की पूजा करनी चाहिए । फिर पश्चिमाभिमुख होकर सर्वधान्य के ऊपर रखे हुए कलश की पूजा करनी चाहिए ।। २९ ।। प्रणव के द्वारा वृषारूढ़ की तथा सिंह पर सवार वर्धनी की पूजा करके कुम्भ पर साङ्ग शिव की तथा वर्धनी पर अस्त्र की पूजा करनी चाहिए ।। ३० ।। दिशाओं में इन्द्र आदि दिक्पालों की तथा ब्रह्मा विष्णु एवं शिव आदि की पूजा करनी चाहिए । घट के पृष्ठ भाग का अनुगमन करने वाली वर्धनी को अच्छी तरह से लेकर पूर्व दिशा से लेकर ईशानकोण पर्यन्त मन्त्रज्ञ आचार्य को भगवान् शंकर की आज्ञा सुनानी चाहिए । मूलमन्त्र को पढ़ते हुए शस्त्रस्वरूपा अविच्छिन्न जलधारा को रक्षार्थ घुमाना चाहिए । शस्त्र के लिए पूर्व दिशा में स्थिर कलश को अपने बायीं ओर स्थापित करके समग्र आसन रूपी कुम्भ के ऊपर स्थिर आसन पर भगवन शंकर की पूजा करनी चाहिए ।। ३१-३३ ।। प्रणवस्थ वर्धनी के ऊपर आयुध की स्थापना करे । उसके पश्चात् उन दोनों का कलश पर लिङ्ग मुद्रा के द्वारा भग एवं लिङ्ग का संयोग कराना चाहिए । फिर ज्ञानरूपी खड्ग तथा मूलमन्त्र के जप को समर्पित करें ।। ३४-३५ ।। उसके दशांश वर्धनी के ऊपर रक्षा का विज्ञापन करना चाहिए । वायव्यकोण में गणेश तथा शिव की पूजा करके पञ्चामृत आदि से स्नान कराकर पूजा करनी चाहिए । एवं कुण्ड में शिवाग्नि की पूजा पहले के ही समान करनी चाहिए । विधिपूर्वक चरु को पकाकर देवता के लिए अपने लिए तथा अग्नि के लिए तीन भागों में करछुल से विभक्त करना चाहिए । शिव और अग्नि के भाग को उन्हें प्रदान करके अपने भाग को सुरक्षित रख देना चाहिए ।। ३६-३७ ।। मनुष्य को चाहिए कि वह पूर्वदिशा में कवच मन्त्र से दन्तधावन प्रदान करें, घोर तथा शिखा मन्त्र से दक्षिण दिशा में भस्म प्रदान करे,सद्योजात मन्त्र से पश्चिम दिशा में मिट्टी रखें, हृदयमन्त्र से बाएँ भाग में जल तथा ईशानकोण में चन्दन मिश्रित जल तथा पलाश आदि के दोने में चारों ओर पञ्चगव्य रखना चाहिए ।। ३९-४०।। ईशानकोण में पुष्प तथा अग्निकोण में गोरोचन रखना चाहिए ।। ४१ ।। नैर्ऋत्य कोण में अगुरु तथा वायव्यकोण में चतुःसम- (कस्तूरी, लवङ्ग, कर्पूर एवं कुंकुम) रखना चाहिए । उत्तर दिशा में नवीन कुशों के साथ सम्पूर्ण हवन सामग्री, दण्ड, अक्षसूत्र, कौपीन, भिक्षापात्र, काजल, कुङ्कुम, तेल, शलाका, कंघी,

ताम्बूलं दर्पणं दद्यादुत्तरे रोचनामपि । आसनं पादुके पात्रं योगपट्टातपत्रकम् ॥ ४४॥ ऐशान्यामीशमन्त्रेण दद्यादीशानतुष्टये । पूर्वस्यां चरुकं साज्यं दद्याद्गन्धादिकं नरे ॥ ४५ ॥ पवित्राणि समादाय प्रोक्षितान्यर्घ्यवारिणा । संहितामन्त्रपूतानि नीत्वा पावकसंनिधिम् ॥ ४६ ॥ कृष्णाजिनादिनाऽऽच्छाद्य स्मरन्संवत्सरात्मकम् । साक्षिणं सर्वकृत्यानां गोप्तारं शिवमव्ययम् ॥ ४७ ॥ स्वेति हेति प्रयोगेण मन्त्रसंहितया पुनः । शेधयेच्च पवित्राणि वाराणामेकविंशतिम् ॥ ४८ ॥ गृहादि वेष्टयेत्सूत्रैर्गन्धाद्यं रवये ददेत् । पूजिताय समाचम्य कृतन्यासः कृतार्घ्यकः ॥ ४९ ॥ नन्दादिभ्योऽथ गन्धाख्यं वास्तोश्चाथ प्रविश्य च । शस्त्रेभ्यो लोकपालेभ्यः स्वनाम्ना शिवकुम्भके ॥ ५० ॥ वर्धन्यै विघ्नराजाय गुरवे ह्यात्मने यजेत् । अथ सर्वौषधीलिप्तं धूपितं पुष्पदूर्वया ॥ ५१ ॥ आमन्त्र्य च पवित्रं तद्विधायाञ्जलिमध्यगम् । ॐ समस्तविधिच्छिद्रपूरणे च विधिं प्रति ॥ ५२ ॥ प्रभवान्मन्त्रयामि त्वां त्वदिच्छावाप्तिकारिकाम् । तत्सिद्धिमनुजानीहि यजतश्चिदचित्पते ॥ ५३ ॥ सर्वथा सर्वदा शंभो नमस्तेऽस्तु प्रसीद मे । आमन्त्रितोऽसि देवेश सह देव्या गणेश्वरैः ॥ ५४ ॥ मन्त्रेशैर्लोकपालैश्च सहितः परिचारकैः । निमन्त्रयाम्यहं तुभ्यं प्रभाते तु पवित्रकम्॥ ५५॥ नियमं च करिष्यामि परमेश तवाज्ञया । इत्येवं देवमामन्त्र्य रेचकेनामृतीकतम् ॥ ५६ ॥ शिवान्तं मूलमुच्चार्य तच्छिवाय निवेदयेत् । जपं स्तोत्रं प्रणामं च कृत्वा शभुं क्षमापयेत्॥५७॥ हुत्वा चरोस्तृतीयांशं तद्द दीत शिवाग्नये । दिग्वासिभ्यो दिगीशेभ्यो भूतमात्रगणैः सह ॥ ५८ ॥ रुद्रेभ्यः क्षेत्रपादिभ्यो नमः स्वाहा बलिस्त्वयम् । दिग्गजाद्यैश्च पूर्वादौ क्षेत्राय चाग्नये बलिः ॥ ५९ ॥ समाचम्य विधिच्छिद्रपूरकं होममाचरेत् । पूर्णां व्याहृतिहोमं च कृत्वा रुन्धीत पावकम् ॥ ६० ॥ तत ओमग्नये स्वाहा स्वाहा सोमाय चैव हि। ओमग्नीषोमाभ्यं स्वाहाऽग्नये स्विष्टकृते तथा ॥ ६१॥ इत्याहुतिचतुष्कं तु दत्त्वा

ताम्बूल, दर्पण तथा गोरोचन भी रखना चाहिए ।। ४२-४३।। ईशानकोण में भगवान् शंकर की प्रसन्नता के लिए ईशमन्त्र से, आसन, खड़ाऊँ, योगपट्ट तथा छाता रखना चाहिए । पूर्व दिशा में घी से युक्त चरु तथा गन्ध आदि प्रदान करे । अर्घ्य के जल से पोंछे गए तथा संहिता मन्त्र से पवित्र बने पवित्रों को लेकर अग्नि के सन्निकट लाएँ ।।४४-४६।। काले मृगचर्म से ढँककर संवत्सरात्मक, सम्पूर्ण कृत्यों के साक्षी तथा रक्षक नित्य शिव को स्मरण करते हुए मन्त्र संहिता के अन्त में स्वाहा पद जोड़कर इक्कीस बार पढ़कर पवित्रों का शोधन करे।।४७-४८।। गृह आदि को सूत्रों से वेष्टित करे तथा सूर्य को चन्दन आदि प्रदान करना चाहिए । पुनः पूजित सूर्य को आचमन कराकर न्यास करके अर्घ्य प्रदान करना चाहिए ।। ४९ ।। उसके बाद नन्द आदि द्वारपालों को तथा वास्तु को चन्दन चढ़ाकर मण्डप में प्रवेश करके शिवकलश पर शस्त्रों तथा लोकपालों की अर्चना करनी चाहिए तथा वर्धनी पर विघ्नराज गुरु एवं आत्मा की पूजा करनी चाहिए ।।५०-५१।। उसके पश्चात् सर्वौषधि से लिप्त तथा धूप से धूपित पवित्रक को अञ्जलि में रखकर तथा पूर्वादि द्वारा आमन्त्रित करके वर्धनी की यह प्रार्थना करनी चाहिए । हे सारे विधियों के दोषों को दूर करने वाली, सभी कार्यों में सिद्धि प्रदान करने वाली वर्धनी आपको में आमन्त्रित कर रहा हूँ, अपनी इच्छा की पूर्ति करने वाली सिद्धि को आज्ञा दो । फिर शंकर जी की प्रार्थना करनी चाहिए कि- हे जड़चेतन जगत् के स्वामिन्! शम्भो आपको नमस्कार है । आप मेरे ऊपर सर्वदा प्रसन्न रहें ।। ५१-५३।। हे देवेश ! आप देवी पार्वती तथा गणेश्वरों, मन्त्रेश्वरों, लोकपालों तथा परिचारकों के साथ आमन्त्रित हैं । मैं आपको निमन्त्रित कर रहा हूँ । हे परमेश ! मैं आपकी आज्ञा से प्रातःकाल पवित्राधिवासन तथा नियमव्रत करूँगा ।। ५४-५५ ।। इस प्रकार से भगवान् शङ्कर को आमन्त्रित करके रेचक प्राणायाम के द्वारा अमृतीकरण करके 'ओं नमः शिवाय' इस मूलमन्त्र का उच्चारण करके शिव जी को निवेदित कर देना चाहिए । फिर जप, स्तुति तथा प्रणाम करके शङ्कर जी से क्षमा प्रार्थना करनी चाहिए ।। ५६-५७ ।। चरु का हवन करके उसके तृतीय भाग को शिवाग्नि में डाल देना चाहिए । पुनः दिग्वासियों दिगीशों (दिक्पालों तथा समस्त भूतों के रुद्रों के लिए) **ओं दिग्वासिभ्यो दिगीशेभ्यो भूतमात्रगणैः सह । रुद्रेभ्यः क्षेत्रपालादिभ्यो नमः स्वाहा**' इस मन्त्र से बलि देनी चाहिए । पुनः पूर्वादि दिशाओं में दिग्गजों, क्षेत्रपालों तथा अग्नि के लिए बलि देनी चाहिए ।। ५८-५९।। पुनः आचमन कराकर

कुर्यात्तु योजनाम् । वह्निकुण्डार्चितं देवं मण्डलाभ्यर्चिते शिवे ॥ ६२ ॥ नाडीसंधानरूपेण विधिना योजयेत्ततः । वंशादिपात्रे विन्यस्य अस्त्रं च हृदयं ततः ॥ ६३ ॥ अधिरोप्य पवित्राणि कलाभिर्वाऽथ मन्त्रयेत् । षडङ्गं ब्रह्ममूलैर्वा हृद्वर्मास्त्रं च योजयेत् ॥ ६४ ॥ विधाय सूत्रैः संवेष्ट्य पूजयित्वाऽङ्गसंभवैः । रक्षार्थं जगदीशाय भक्तिनम्रः समर्पयेत् ॥ ६५ ॥ पूजिते पुष्पधूपाद्यैर्दत्त्वा सिद्धान्तपुस्तके । गुरोः पादान्तिकं गत्वा भक्त्या दद्यात्पवित्रकम् ॥ ६६ ॥ निर्गत्य बहिराचम्य गोमये मण्डलत्रये । पञ्चगव्यं चरुं दन्तधावनं च क्रमाद्यजेत् ॥ ६७ ॥ स्वाचान्तो मन्त्रसंनद्धः कृतसंगीतजागरः । स्वपेदन्तः स्मरन्नीशं बुभुक्षुर्दर्भसंस्तरे ॥ ६८ ॥ अनेनैव प्रकारेण मुमुक्षुरपि संविशेत् । केवलं भस्मशय्यायां सोपवासः समाहितः ॥ ६९ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पवित्राधिवासनविधिकथनं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः

पवित्रारोहणविधिः

ईश्वर उवाच– **अथ प्रातः समुत्थाय कृतस्नानः समाहितः । कृतसंध्यार्चनो मन्त्री प्रविश्य मखमण्डपम् ॥ १ ॥ समादाय पवित्राणि अविसर्जितदैवतः । ऐशान्यां भाजने शुद्धे स्थापयेत्कृतमण्डले ॥ २ ॥ ततो विसर्ज्य देवेशं निर्माल्यमपनीय च । पूर्ववद्भूतले शुद्धे कृत्वाऽऽह्निकमथद्वयम् ॥ ३ ॥ आदित्यद्वारदिक्पालकुम्भेशनौ शिवेऽनले । नैमित्तिकीं सविस्तारां कुर्यात्पूजां विशेषतः ॥ ४ ॥ मन्त्राणां तर्पणं प्रायश्चित्तहोमं शराणुना । अष्टोत्तरशतं**

विधि दोष को दूर करने वाले होम को करना चाहिए । पूर्णाहुति तथा व्याहृति होम करके अग्नि को घेर देना चाहिए ।। ६० ।। इसके पश्चात् 'ओमग्नये स्वाहा' 'ओम सोमाय स्वाहा' 'ओम् अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा' तथा 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इन चार आहुतियों को देकर योजना करनी चाहिए ।। ६१ ।। अग्निकुण्ड में पूजित शिव का मण्डल में पूजित शिव से नाड़ी संधान रूपी विधि के द्वारा संयोग कराना चाहिए । उसके बाद बाँस आदि के पात्र में अस्त्र न्यास तथा हृदय न्यास करके उसके बाद पवित्रकों को रखकर कलाओं द्वारा अभिमन्त्रित करना चाहिए ।। ६२-६३ ।। अथवा ब्रह्मसूत्रों के साथ षडङ्ग अथवा हृदयमन्त्र, अथवा कवचमन्त्र अथवा अस्त्रमन्त्र संयुक्त करना चाहिए ।। ६४ ।। इस तरह पवित्रन्न बनाकर उसे सूत्रों से अच्छी तरह वेष्टित करके अङ्गमन्त्रों से पूजित करके, उसकी रक्षा के लिए भगवान् शंकर को समर्पित कर देना चाहिए ।। ६५ ।। पुष्प तथा धूप आदि से पूजा करके सिद्धान्त पुस्तक का दान करके आचार्य के चरणों के सन्निकट जाकर भक्तिपूर्वक उन्हें पवित्रक प्रदान करना चाहिए ।। ६६ ।। वहाँ से बाहर निकलकर आचमन करके गोबर के बने तीन मण्डलों में क्रमशः पञ्चगव्य, चरु तथा दन्तधावन की, क्रमशः पूजा करनी चाहिए ।। ६७ ।। आचमन करने के पश्चात् मन्त्र जप में तल्लीन होकर संगीत के द्वारा रात्रि में जागरण करना चाहिए । अन्त में भोग की इच्छा वाले पुरुष को रात्रि में श्रीभगवान् शङ्कर का स्मरण करते हुए कुश की शय्या पर सोना चाहिए ।। ६८ ।। इसी प्रकार से मुमुक्षु पुरुष को भी सोना चाहिए । किन्तु उसे भस्म की शय्या पर उपवास करके सोना चाहिए ।। ६९ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण का अग्निपुराण पवित्राधिवासन विधि वर्णन नामक अठहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७८ ॥

श्रीशिवजी ने कहा– उसके पश्चात् प्रातःकाल उठकर स्नान करके सावधानीपूर्वक मन्त्री को चाहिए कि वह सन्ध्यावंदन करके यागमण्डप में प्रवेश करे ।। १ ।। पवित्रकों को लेकर देवताओं का विसर्जन किए विना ही ईशानकोण में उसे मण्डल बनाकर शुद्ध पात्र में स्थापित करना चाहिए ।। २ ।। उसके बाद देवेश भगवान् शंकर को विसर्जित करके निर्माल्य को हटाकर, उसके पश्चात्

कृत्वा दद्यात्पूर्णाहुतिं शनैः ॥ ५ ॥ पवित्रं भानवे दत्त्वा समाचम्य ददीत च । द्वारपालादिदिक्पालकुम्भवर्धनिकादिषु ॥ ६ ॥ संनिधाने ततः शम्भोरुपविश्य निजासने । पवित्रमात्मने दद्याद्गणाय गुरुवह्नये ॥ ७ ॥ ॐ कालात्मना त्वया देव यद्दिष्टं मामके विधौ । कृतं क्लिष्टं समुत्सृष्टं कृतं गुप्तं च यत्कृतम् ॥ ८ ॥ तदस्तु क्लिष्टमक्लिष्टं कृतं क्लिष्टमसंस्कृतम् । सर्वात्मनाऽमुना शंभो पवित्रेण त्वदिच्छया ॥ ९ ॥ ॐ पूरय मखव्रतं नियमेश्वराय स्वाहा । आत्मतत्त्वे प्रकृत्यन्ते पालिते पद्मयोनिना ॥ १०॥ मूलं लयान्तमुच्चार्य पवित्रेणार्चयेच्छिवम् । विद्यातत्त्वे च विद्यान्ते विष्णुकारणपालिते ॥ ११॥ ईश्वरान्तं समुच्चार्य पवित्रमधिरोपयेत् । शिवान्ते शिवतत्त्वे च रुद्रकारणपालिते ॥ १२॥ शिवान्तं मन्त्रमुच्चार्य तस्मै देयं पवित्रकम् । सर्वकारणपालेषु शिवमुच्चार्य सुव्रत ॥ १३॥ मूलं लयान्तमुच्चार्य दद्याद्गङ्गावतारकम् । आत्मविद्याशिवैः प्रोक्तं मुमुक्षूणां पवित्रकम्॥ १४॥ विनिर्दिष्टं बुभुक्षूणां शिवतत्त्वात्मभिः क्रमात् । स्वाहान्तं वा नमोन्तं वा मन्त्रमेषामुदीरयेत् ॥ १५ ॥ ॐ हामात्मतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा । ॐ हां विद्यातत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा ॥ १६॥ ॐ हौं शिवतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा । ॐ हौं सर्वतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा ॥ १७ ॥ नत्वा गङ्गावतारं तु प्रार्थयेत्तं कृताञ्जलिः । त्वं गतिः सर्वभूतानां संस्थितस्त्वं चराचरे ॥ १८॥ अन्तश्चारेण भूतानां द्रष्टा त्वं परमेश्वर। कर्मणा मनसा वाचा त्वत्तो नान्या गतिर्मम ॥ १९ ॥ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं च यत्कृतम् । जपहोमार्चनैर्हीनं कृतं नित्यं मया तव ॥ २० ॥ अकृतं वाक्यहीनं च तत्पूरय महेश्वर । सुपूतस्त्वं परेशान पवित्रं पापनाशनम् ॥ २१॥ त्वया पवित्रितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । खण्डितं यन्मया

शुद्ध पृथिवी पर पहले के ही समान दो आह्निक करके आदित्य, द्वारपाल,दिक्पाल, कुम्भ, शंकर, ईशान, शिव तथा अग्नि की विशेष रूप से विस्तारपूर्वक नैमित्तिक पूजा करनी चाहिए ।। ४ ।। मन्त्रों का तर्पण करके शरमन्त्र से एक सौ आठ बार आहुति देकर पूर्णाहुति करनी चाहिए । सूर्य को पवित्रक देकर आचमन करे । पुनः द्वारपाल, आदि को तथा दिक्पाल कुम्भ एवं वर्धनी आदि पर भी पवित्रक चढ़ाना चाहिए ।। ६ ।। उसके पश्चात् शम्भु के सन्किट में अपने आसन पर बैठकर आत्मा गणपति आचार्य एवं अग्नि को पवित्रक समर्पित करना चाहिए ।। ७ ।। इसके बाद प्रार्थना करना चाहिए कि हे कालात्मन् ! देव मेरे पवित्रारोहण विधि में कठिनाई के कारण जो कुछ भी छूट गया हो अथवा मैंने जो कुछ गुप्त रीति से किया हो, हे शम्भो ! आपकी कृपा से वह क्लिष्ट भी अक्लिष्ट हो जाय, वह क्लिष्ट तथा संस्काररहित भी संस्कारयुक्त इस पवित्रक प्रदान के द्वारा हो जाय ।। ९ ।। इसके पश्चात् 'ओं पूरणमखव्रतं नियमेश्वराय स्वाहा।' इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।।१०।। ब्रह्मा के द्वारा पालित प्रकृति पर्यन्त आत्मतत्त्व पर लय पर्यन्त मूल मन्त्र का उच्चारण करके पवित्रक के द्वारा शिवजी की अर्चना करनी चाहिए ।। ११ ।। विष्णुरूपी कारण के द्वारा पालित विद्या पर्यन्त विद्यातत्त्व पर ईश्वर पर्यन्त मूलमन्त्र का उच्चारण करके पवित्रक चढ़ाना चाहिए ।। १२ ।। रुद्ररूपी कारणतत्त्व के द्वारा पालित शिव पर्यन्त शिवतत्त्व पर शिवपर्यन्त मूलमन्त्र का उच्चारण करके रुद्र को पवित्रक समर्पित करना चाहिए ।। १३ ।। हे सुव्रत ! सभी कारण पालकों के विषय में शिव का उच्चारण करके लय पर्यन्त मूल मन्त्र का उच्चारण करके गङ्गावतार नामक पवित्रक प्रदान करना चाहिए ।। १४ ।। शिवतत्त्व के वेत्ताओं ने मुमुक्षु पुरुषों के लिए आत्मविद्या एवं शिव के क्रम से पवित्रक का उपदेश किया है और बुभुक्षु पुरुषों के लिए शिवतत्त्व एवं आत्मा के क्रम से पवित्रक विधि का उपदेश किया है ।। १५ ।। इन सबों के मन्त्रों के अन्त में या तो स्वाहा पद लगाना चाहिए अथवा नमः पद उच्चारण करना चाहिए ।। १६ ।। (१) ओं हां आत्मतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा, (२) ओं हां विद्यातत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा, (३) ओं हौं शिवतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा तथा (४) ओं हौं सर्वतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा । ये पवित्रक समर्पण के चार मन्त्र है।।१७।। फिर गङ्गावतार को नमस्कार करके हाथ जोड़कर उनकी प्रार्थना करनी चाहिए ।। आप ही सम्पूर्ण जीवों के आश्रय हैं तथा आप ही सम्पूर्ण चराचर में स्थित हैं ।। १८ ।। हे परमेश्वर ! आप ही अन्तर्यामी रूपी से सम्पूर्ण भूतों के द्रष्टा हैं । आपसे भिन्न कोई दूसरा मेरा मनसा, वाचा एवं कर्मणा आश्रय नहीं है ।। १९ ।। मैंने जो कुछ भी मन्त्र से हीन, क्रिया से हीन तथा द्रव्य से हीन कर्म किया है

देव व्रतं वैकल्ययोगतः॥ २२ ॥ एकी भवतु तत्सर्वं तवाऽऽज्ञासूत्रगुम्फितम्। जपं निवेद्य देवस्य भक्त्या स्तोत्रं विधाय च ॥ २३ ॥ नत्वा तु गुरुणाऽऽदिष्टं गृहणीयान्नियमं नरः । चतुर्मासं त्रिमासं वा त्र्यहमेकाहमेव च ॥ २४॥ प्रणम्य क्षमयित्वेशं गत्वाकुण्डान्तिकं व्रती । पावकस्थे शिवेऽप्येवं पवित्राणां चतुष्टयम् ॥ २५ ॥ समारोप्य समभ्यर्च्य पुष्पधूपाक्षतादिभिः । अन्तर्बलिं पवित्रं च रुद्रादिभ्यो निवेदयेत् ॥ २६ ॥ प्रविश्यान्तः शिवं स्तुत्वा सप्रणामं क्षमापयेत् । प्रायश्चित्तकृतं होमं कृत्वा हुत्वा च पायसम्॥२७॥ शनैः पूर्णाहुतिं दत्त्वा वह्निस्थं विसृजेच्छिवम् । होमं व्याहृतिभिः कृत्वा रुन्ध्यान्निष्ठुरयाऽनलम् ॥ २८ ॥अग्न्यादिभ्यस्ततो दद्यादाहुतीनां चतुष्टयम् । दिक्पतिभ्यस्ततो दद्यात्सपवित्रं बहिर्बलिम॥२९॥ सिद्धान्तपुस्तके दद्यात्सप्रमाणं पवित्रकम् ॥ ३० ॥ ॐ हां भूः स्वाहा। ॐ हां भुवः स्वाहा । ॐ हां स्वः स्वाहा। ॐ हां भूर्भुवः स्वः स्वाहा ॥ ३१॥ होमं व्याहृतिभिः कृत्वा दत्त्वाऽऽहुतिचतुष्टयम् ॥ ३२ ॥ ॐ हामग्नये स्वाहा । ॐ हां सोमाय नमः स्वाहा। ॐ हां अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा । ॐ हामग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ॥ ३३ ॥ गुरुं शिवमिवाभ्यर्च्य वस्त्रभूषादिविस्तरैः। समग्रं सफलं तस्य क्रियाकाण्डादि वार्षिकम् ॥ ३४ ॥ यस्य तुष्टो गुरुः सम्यगित्याह परमेश्वरः । इत्थं गुरोः समाराध्य हृदालम्बि पवित्रकम् ॥ ३५॥ द्विजादीन्भोजयित्वा तु भक्त्या वस्त्रादिकं ददेत् । दानेनानेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥ ३६ ॥ भक्तया स्नानादिकं प्रातः कृत्वा शंभोः समाहरेत्। पवित्राण्यष्टपुष्पैस्तं पूजयित्वा विसर्जयेत् ॥ ३७ ॥ नित्यं नैमित्तिकं कृत्वा विस्तरेण यथा पुरा । पवित्राणि समारोप्य प्रणम्याग्नौ शिवं यजेत्॥३८॥ प्रायश्चित्तं ततोऽस्त्रेण हुत्त्वा पूर्णाहुतिं यजेत् । भुक्तिकामः शिवायाथ

तथा जप, होम तथा अर्चना से हीन तथा वाक्य से हीन जो कुछ भी आपकी पूजा मैंने की है अथवा नहीं की है, हे महेश्वर ! उसे आप पूर्ण करें ।। २० ।। हे वरेशान ! आप अत्यन्त पवित्र हैं,आप पवित्र तथा पापों का नाश करने वाले हैं ।। २१ ।। आपने ही सम्पूर्ण स्थावर जङ्गमात्मक जगत् को पवित्र किया है । हे देव ! विकलता के कारण मैंने जो व्रत खण्डित किया है, वह आपकी आज्ञा से सूत्र में गूंथकर एक हो जाय । इस तरह भगवान् शंकर को जप समर्पित करके भक्तिपूर्वक स्तुति करना चाहिए।। २३ ।। पुनः नमस्कार करके आचार्य का आदेश प्राप्त कर मनुष्य को चार मास का, अथवा तीन मास का, अथवा तीन दिन का, अथवा एक दिन का नियम करना चाहिए ।। २४ ।। फिर शिवजी को प्रणाम करके व्रती को क्षमा प्रार्थना करके कुण्ड के सन्निकट जाकर, अग्नि में विद्यमान शिव पर भी इसी प्रकार से चार पवित्रक रखकर उनकी पुष्प, धूप तथा अक्षत आदि से पूजा करके रुद्र आदि को अन्तर्वासित तथा पवित्रक समर्पित करना चाहिए ।। २५-२६ ।। यागमण्डप के भीतर प्रवेश करके,शिव जी की स्तुति करके, प्रणामपूर्वक शिवजी से क्षमा प्रार्थना करनी चाहिए । तदनंतर प्रायश्चित होम करके तथा पायस का हवन करके, पूर्णाहुति होम करने के पश्चात् अग्नि में स्थित शिव का विसर्जन करना चाहिए। फिर व्याहृतियों से होम करके निष्ठुरा मुद्रा के द्वारा अग्नि को घेर देना चाहिए ।। २७-२८ ।। उसके पश्चात् अग्नि आदि को चार आहुति देना चाहिये । फिर पवित्रक के साथ दिक्पालों को बाहर बलि देना चाहिए ।। २९ ।। इसके पश्चात् सिद्धान्त पुस्तक के ऊपर प्रमाणानुकूल पवित्रक चढ़ाना चाहिए ।। ३० ।। ओं भू स्वाहा, ओं हां भुवः स्वाहा,ओं हां स्वः स्वाहा तथा ओम् हां भूर्भुवः स्वः स्वाहा ।। ३१ ।। इन चार मन्त्रों से व्याहृति होम करके निम्नांकित मन्त्रों से चार आहुति देनी चाहिए ।। ३२ ।। (१) ओं हामग्नये स्वाहा, (२) ओं हां सोमाय स्वाहा, (३) ओं हां अग्निषोमाभ्यां स्वाहा, (४) ओं हामग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ।। ३३ ।। शिवजी के ही समान गुरु की पूजा वस्त्र तथा आभूषण आदि से विस्तारपूर्वक करनी चाहिए । परमेश्वर ने कहा है कि जिसके गुरु प्रसन्न रहते हैं, उसके वर्ष भर के किए गए समग्र कर्मकाण्ड सफल होते हैं । इसतरह से गुरु को हृदय तक लटकने वाला पवित्रक पहनाकर ब्राह्मण आदि को भोजन कराकर उन्हें वस्त्र इत्यादि देना चाहिए और कहना चाहिए कि मेरे इस दान से देवेश सदा शिव प्रसन्न होएँ ।। ३४-३६ ।। प्रातःकाल भक्तिपूर्वक स्नान आदि करके शिव जी के पवित्रकों को उठाना चाहिए उसके पश्चात् उनकी अष्टपुष्पिका से पूजा करके शिवजी का विसर्जन करना चाहिए ।। ३७ ।। फिर पहले के ही समान नित्य तथा नैमित्तिक कृत्यों को विस्तार पूर्वक करके, पवित्रकों को स्थापित करके

कुर्यात्कर्मसमर्पणम् ॥ ३९ ॥ त्वत्प्रसादेन कर्मेदं ममास्तु फलसाधकम् । मुक्तिकामस्तुकर्मेदं माऽस्तु मे नाथ बन्धकम् ॥ ४० ॥ बह्निस्थं नाडीयोगेन शिवं संयोजयेच्छिवे । हृदि न्यस्याणुसंघातं पावकं च विसर्जयेत् ॥ ४१॥ समाचम्य प्रविश्यान्तः कुम्भानुगतशम्बरान् । शिवं संयोज्य साक्षेपं क्षमस्वेति विसर्जयेत् ॥ ४२ ॥ विसृज्य लोकपालादीनादायेशात्पवित्रकम् । सति चण्डेश्वरे पूजां कृत्वा दत्त्वा पवित्रकम् ॥ ४३ ॥ तन्निर्माल्यादिकं तस्मै सपवित्रं समर्पयेत् । अथवा स्थण्डिले चण्डं विधिना पूर्ववद्यजेत् ॥ ४४ ॥ यत्किंचिद्वार्षिकं कर्म कृतं न्यूनाधिकं मया । तदस्तु परिपूर्णं मे चण्डनाथ तवाज्ञया ॥ ४५ ॥ इति विज्ञाप्य देवेशं नत्वा स्तुत्वा विसर्जयेत् । त्यक्तनिर्माल्यकः शुद्धः स्नापयित्वा शिवं यजेत् । पञ्चयोजनसंस्थोऽपि पवित्रं गुरुसन्निधौ ॥ ४६ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पवित्रारोहणविधिकथनं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

अथाशीतितमोऽध्यायः

दमनकारोहणविधिः

ईश्वर उवाच– **वक्ष्ये दमनकारोहविधिं पूर्ववदाचरेत् । हरकोपात्पुरा जातो भैरवो दमिताः सुराः ॥ १ ॥ तेनाथ शप्तो विटपो भवेति त्रिपुरारिणा।**

तथा प्रणाम करके अग्नि में शिव की पूजा करनी चाहिए ।। ३८ ।। उसके पश्चात् अस्त्र मन्त्र से प्रायश्चित्त होम करके पूर्णाहुति करनी चाहिए । भोग प्राप्ति की कामना वाले पुरुष को अपने कर्मों को शिवजी को समर्पित करना चाहिए और प्रार्थना करना चाहिए कि हे भगवन् ! आपकी कृपा से यह कर्म मेरे लिए फलप्रद होए । और मुक्ति की कामना वाले को यह प्रार्थना करनी चाहिए कि- हे नाथ! मेरा यह कर्म मेरे लिए बन्धन कारक न बने ।। ३९-४० ।। फिर नाड़ीयोग के द्वारा अग्निस्थ को शिव से संयुक्त करना चाहिए । अणु समूह का हृदय में न्यास करके अग्नि को विसर्जित करना चाहिए ।। ४१ ।। अच्छी तरह से आचमन करके यज्ञमण्डप में प्रवेश करके कलश के जल से शिवजी को स्नान कराकर अपने लिए आक्षेपयुक्त बातें कहकर क्षमा प्रार्थना करके विसर्जन करना चाहिए ।। ४२ ।। लोकपाल आदि का विसर्जन करके शंकर जी पर से पवित्रक उठा लें । चण्डेश्वर के रहने पर उनकी पूजा करके तथा उन्हे पवित्रक देकर, उस निर्माल्य आदि को पवित्रक के साथ चण्डेश्वर को समर्पित करना चाहिए ।। ४३।। अथवा स्थण्डिल पर पहले के समान ही विधिपूर्वक यजन करना चाहिए ।। ४४ ।। हे चण्डनाथ ! मैंने जो कुछ भी कम अथवा अधिक वार्षिक कर्म किया है, वह आपकी आज्ञा से परिपूर्ण हो । इस तरह से देवेश की प्रार्थना करके तथा उन्हें नमस्कार करके एवं स्तुति करके विसर्जन करना चाहिए।।४५ ।। निर्माल्य का त्याग करके शुद्ध होकर शिवजी को स्नान कराकर उनका यजन करना चाहिए । पाँच योजन दूर रहने पर भी आचार्य की सन्निधि में जाकर उन्हें पवित्रक समर्पित करना चाहिए।। ४६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का पवित्रारोहण विधि वर्णन नामक उन्नासिवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७९ ॥

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं दमनकारोहण विधि का वर्णन कर रहा हूँ । पूर्व अध्यायों में वर्णित रीति से पहले दमनक की पूजा करनी चाहिए । प्राचीनकाल में श्रीशङ्कर जी के क्रोध से भैरव उत्पन्न हुए, और उन्होंने देवताओं का दमन किया ।। १ ।। उससे नाराज होकर भगवान् शङ्कर ने वृक्ष होने का उन्हें शाप दिया । पुनः प्रसन्न होकर उन्होंने यह वरदान दिया कि जो लोग तुम्हारी

प्रसन्नेनेरितं चेदं पूजयिष्यन्ति ये नराः ॥ २ ॥ परिपूर्णं फलं तेषामन्यथा न भविष्यति । सप्तम्यां वा त्रयोदश्यां दमनं सहिताणुभिः ॥३॥ संपूज्य बोधयेद्वृक्षं भववाक्येन मन्त्रवित् । हरप्रसादसंभूत त्वमत्र संनिधौ भव ॥ ४ । शिवकार्यं समुद्दिश्य नेतव्योऽसि शिवाज्ञया । गृहेऽप्यामन्त्रणं कुर्यात्सायाह्ने चाधिवासनम् ॥ ५ ॥ यथाविधि समाभ्यर्च्य सूर्यशंकरपावकान् । देवस्य पश्चिमे मूलं दद्यात्तस्य मृदायुतम् ॥ ६ ॥ वामेन शिरसा वाऽथ नालं धात्रीं तथोत्तरे । दक्षिणे भग्नपत्रं च प्राच्यां पुष्पं च धावनम् ॥ ७ ॥ पुटिकास्थं फलं मूलमथैशान्यां यजेच्छिवम् । पञ्चाङ्गमञ्जलौ कृत्वा आमन्त्र्य शिरसि न्यसेत् ॥ ८ ॥ आमन्त्रितोऽसि देवेश प्रातः काले मया प्रभो । कर्तव्यस्तपसोलाभः पूर्णं सर्वं तवाज्ञया ॥ ९ ॥ मूलेन शेषं पात्रस्थं पिधायाथ पवित्रकम् । प्रातः स्नात्वा जगन्नाथं गन्धपुष्पादिभिर्यजेत्॥ १० ॥ नित्यं नैमित्तिकं कृत्वा दमनैः पूजयेत्ततः । शेषमञ्जलिमादाय आत्मविद्याशिवात्मभिः ॥ ११ ॥ मूलाद्यैरीश्वरान्तैश्च चतुर्थाञ्जलिना ततः ॥ १२ ॥ हौं महेश्वराय मखं पूरय पूरय शूलपाणये नमः ॥ १३ ॥ शिवं वह्निं च सम्पूज्य गुरुं प्राचर्याथ बोधयेत् । भगवन्नतिरिक्तं वा हीनं वा यन्मया कृतम् ॥ १४ ॥ सर्वं तदस्तु सम्पूर्णं यच्च दामनकं मम । सकलं चैत्रमासोत्थं फलं प्राप्य दिवं व्रजेत् ॥ १५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दमनकारोहणविधिकथनं नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥



पूजा करेंगे, उनको ही परिपूर्ण फल की प्राप्ति होगी, नहीं तो नहीं ।। २ ।। सप्तमी अथवा त्रयोदशी के दिन संहिता मन्त्रों के द्वारा दमन की अच्छी तरह से पूजा करके मन्त्रज्ञ पुरुष उसे शङ्करजी के वाक्य के अनुसार जगाए । शङ्कर जी की कृपा से उत्पन्न आप इस वृक्ष में निवास करें ।। ३-४ ।। शिवजी के कार्य के लिए आपको शिवजी की आज्ञा से ले जाना है । अपने घर में भैरवजी को आमन्त्रित करके सायंकाल में उनका अधिवास कराना चाहिए ।। ५ ।। विधिपूर्वक सूर्य, शंकर तथा अग्नि की पूजा करके देवता के पश्चिम दिशा में मिट्टी से युक्त मूल रखना चाहिए ।। ६ ।। बाममन्त्र अथवा शिरोमन्त्र से उनके उत्तर ओर नाल अथवा आँवला रखना चाहिए । उनके दक्षिण में भग्नपत्र तथा पूर्व में धावन पुष्प रखना चाहिए ।। ७ ।। ईशानकोण में किसी दोने में फल तथा मूल रखकर शिवजी की पूजा करे तथा अञ्जलि में (पत्र, पुष्प, फल,मूल एवं त्वक्) पञ्चाङ्ग होम करके अभिमन्त्रित करके उसे शिवजी के सिर पर चढ़ा देना चाहिए ।। ८ ।। फिर यह प्रार्थना करनी चाहिए कि– हे देवेश! आपको मैं प्रातःकाल में आमन्त्रित करता हूँ, आपकी आज्ञा से मुझे अपनी तपस्या का सम्पूर्ण फल प्राप्त करना है ।। ९ ।। मूलमन्त्र से अवशिष्ट पवित्रक को पात्र में रखकर ढँक देना चाहिए। प्रातःकाल स्नान करके गन्ध तथा पुष्प आदि से जगन्नाथ की पूजा करनी चाहिए ।। १० ।। पुनः नित्य तथा नैमित्तिक कृत्यों को करके दमनक से पूजा करनी चाहिए । शेष पूजन सामग्री (दमनक) को अञ्जलि में लेकर, आत्मा, विद्या तथा शिवतत्त्व विषयक मन्त्रों के द्वारा 'ओं नमः शिवाय' इस मन्त्र से चौथी अञ्जलि प्रदान करे ।। ११-१२ ।। पुनः यह मन्त्र पढ़ें- 'ओं हौं महेश्वराय मखं पूरय-पूरय शूलपाणये नमः' ।। १३ ।। शिवजी की, अग्नि की तथा आचार्य की पूजा करके यह प्रार्थना करनी चाहिए कि हे भगवन् ! मैंने जो कुछ भी अधिक अथवा कम पूजन किया है, वह सब कुछ पूरा हो जाय । जो दमनक पूजन का फल है वह सम्पूर्ण मुझे प्राप्त होए । इस प्रकार से दामनक पूजन करने वाला मनुष्य चैत्रमास के सारे फलों को प्राप्त करके अन्त में स्वर्गलोक को प्राप्त करता है ।। १५।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का दमनकारोहण विधि वर्णन नामक अस्सीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८० ॥



अथैकाशीतितमोऽध्यायः

समयदीक्षाविधिः

ईश्वर उवाच– **वक्ष्यामि भोगमोक्षार्थं दीक्षां पापक्षयं करीम् । मलमायादिपाशानां विश्लेषः क्रियते यया ॥ १ ॥ ज्ञानं च जन्यते शिष्ये सा दीक्षा भुक्तिमुक्तिदा। विज्ञातकलनामैको द्वितीयः प्रलयाकलः ॥ २ ॥ तृतीयः सकलः शास्त्रेऽनुग्राह्यस्त्रिविधो मतः । तत्राऽऽद्यो मलमात्रेण मुक्तोऽन्यो मलकर्मभिः ॥ ३ ॥ कलादिभूमिपर्यन्तं स्तम्बैस्तु सकलो मतः । निराधाराऽथ साधारा दीक्षाऽपि द्विविधा मता ॥ ४ ॥ निराधारा द्वयोस्तेषां साधारा सकलस्य तु । आधार निरपेक्षेण क्रियते शंभुचर्यया ॥ ५ ॥ तीव्रशक्तिनिपातेन निराधारेति सा स्मृता । आचार्यमूर्तिमास्थाय मदतीव्रादिभेदया ॥ ६॥ शक्त्या यां कुरुते शंभुः सा साधिकरणोच्यते । इयं चतुर्विधा प्रोक्ता सबीजा बीजवर्जिता ॥ ७ ॥ साधिकाराऽनधिकारा यथा तदभिधीयते । समयाचारसंयुक्ता सबीजा जायते नृणाम् ॥ ८ ॥ निर्बीजा त्वसमर्थानां समयाचारवर्जिता । नित्ये नैमित्तिके काम्ये यतः स्यादधिकारिता ॥ ९ ॥ साधिकारा भवेद्दीक्षा साधकाचार्ययोरतः । निर्बीजा दीक्षितानां तु तथा समयि पुत्रयोः ॥ १० ॥ नित्यमात्राधिकारत्वाद्दीक्षा निरधिकारिका । द्विविधेयं द्विरूपा हि प्रत्येकमुपजायते ॥ ११ ॥ एका क्रियावती तत्र कुण्डमण्डलपूर्विका । मनोव्यापारमात्रेण या सा ज्ञानवती मता॥ १२ ॥ इत्थं लब्धाधिकारेण दीक्षाऽऽचार्येण साध्यते । स्कन्ददीक्षां गुरुः कुर्यात्कृत्वा नित्यक्रियां ततः ॥ १३ ॥ प्रणवार्घ्यं कराम्भोजः कृतद्वाराधिपार्चनः। विघ्नानुत्सार्य देहल्यां न्यस्यास्त्रं स्वासने स्थितः॥१४॥ कुर्वीत भूतसंशुद्धिं मन्त्रयोगं यथोदितम् । तिलतण्डुलसिद्धार्थकुशदूर्वाक्षतोदकम्॥ १५॥**

श्री शिवजी ने कहा– भोग तथा मोक्ष को प्राप्त कराने वाली, पापों को विनष्ट करने वाली तथा माया एवं दोषों के बन्धन को खोल देने वाली दीक्षा का वर्णन मैं कर रहा हूँ ।। १ ।। वह दीक्षा शिष्य को ज्ञानी बनाकर उसे लौकिक भोगों तथा मोक्ष को प्रदान करती है । शास्त्र में तीन प्रकार के दीक्षा के अधिकारी बतलाए गए हैं- (१) विज्ञातकल, (२) प्रलयकाल तथा (३) सकल ।।२।। पहले प्रकार का अधिकारी समस्त मलों (दोषों) से मुक्त होता है । दूसरे प्रकार का अधिकारी केवल मल कर्मों से मुक्त होता है तथा तीसरे प्रकार का सकल अधिकारी कला से लेकर भूमि पर्यन्त के बन्धनों से बँधा रहता है । दीक्षा भी दो प्रकार की होती है– (१) निराधारा तथा (२) साधारा ।। ३-४ ।। प्रथम दो प्रकार के अधिकारियों को निराधार दीक्षा दी जाती है । सकल कोटि के अधिकारियों को साधारा दीक्षा दी जाती है । निराधारा दीक्षा आधार निरपेक्ष होकर भगवान् शंकर की पूजा के द्वारा तीव्रशक्ति का निपातन करके दी जाती है, अतएव वह निराधारा कही जाती है ।। ५ ।। आचार्य को अपनी शक्ति शम्भु प्रदान करते हैं उसे साधारा दीक्षा कहते हैं । यह साधारा दीक्षा चार प्रकार की होती है, सबीज दीक्षा, निर्बीज दीक्षा,साधिकारा दीक्षा तथा अनधिकारा दीक्षा। इन चारों के स्वरूप को मैं बतला रहा हूँ । मनुष्यों को समय के अनुसार आचार से युक्त जो दीक्षा दी जाती है, वह सबीज दीक्षा है ।। ६-८ ।। असमर्थ पुरुषों को विना समय तथा विना आचार के जो दीक्षा दी जाती है, वह निर्बीज कहलाती है । नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य कर्मों के अवसर पर साधक तथा आचार्य दोनों को जिसके द्वारा अधिकार प्राप्त होता है उस दीक्षा को साधिकारा दीक्षा कहते हैं । जिन शिष्यों को निर्वीज दीक्षा दी जा चुकी है उनके समय तक पुत्रों को सर्वदा अधिकारी होने के करण उन्हें जो दीक्षा दी जाती है, वह निरधिकारा अथवा अधिकारा दीक्षा कही जाती है । इन साधिकारा तथा निरधिकारा दोनों प्रकार के दीक्षाओं के दो-दो रूप होते हैं ।। ९-११ ।। एक तो क्रियावती दीक्षा होती है जो कुण्ड तथा मण्डलपूर्वक दी जाती है तथा दूसरी ज्ञानवती दीक्षा होती है जो मानसिक व्यापार मात्र से दी जाती है ।। १२ ।। हे स्कन्द ! अधिकार प्राप्त आचार्य इस प्रकार से दीक्षा प्रदान करते हैं । आचार्य को नित्य क्रिया करके दीक्षा देनी चाहिए ।। १३ ।। सर्वप्रथम आचार्य अपने कर कमल में अर्घ्य का जल लेकर प्रणव उच्चारणपूर्वक द्वारपालों की अर्चना करें, पुनः विघ्नों को दूर करके देहली पर अस्त्र को रखें और अपने आसन पर बैठें ।। १४ ।। मन्त्रयोग के द्वारा भूतशुद्धि करके

सयवक्षीरनीरं च विशेषार्घ्यमिदं ततः । तदम्बुना द्रव्यशुद्धिं तिलकं स्वासनात्मनोः॥१६॥ पूजनं मन्त्रशुद्धिं च पञ्चगव्यं च पूर्ववत्।
लाजचन्दनसिद्धार्थभस्मदूर्वाक्षतं कुशान् ॥ १७ ॥ विकिराञ्शुद्धलाजां स्तान्सधूपानस्त्रमन्त्रितान् । शस्त्राम्बुप्रोक्षितानेतान्कवचेनावगुण्ठितान्॥१८॥
नानाप्रहरणाकारान्विघ्नौघविनिवारकान् । दर्भाणां तालमानेन कृत्वा षट्त्रिंशतादलैः ॥ १९ ॥ सप्तजप्तं शिवास्त्रेण वेणीं बोधासिमुत्तमम् ।
शिवमात्मनि विन्यस्य सृष्ट्याधारमभीप्सितम् ॥ २० ॥ निष्कलं च शिवं न्यस्य शिवोऽहमिति भावयेत्। उष्णीषं शिरसि न्यस्य अलं कुर्यात्स्वदेहकम्॥२१॥
गन्धमण्डनकं स्वीये विदध्याद्दक्षिणे करे । विधिनाऽत्रार्चयेदीशमित्थं स्याच्छिव हस्तकः॥२२॥ विन्यस्य शिवमन्त्रेण भास्वरं निजमस्तके ।
शिवादभिन्नमात्मानं कर्तारं भावयेद्यथा ॥ २३ ॥ मण्डले कर्मणां साक्षी कलशे यज्ञरक्षकः। होमाधिकरणं वह्नौ शिष्ये पाशविमोचकः ॥ २४ ॥
स्वात्मन्यनुगृहीतेति षडाधारो य ईश्वरः । सोऽहमेवेति कुर्वीत भावं स्थिरतरं पुनः ॥ २५ ॥ ज्ञानखड्गकरः स्थित्वानैर्ऋत्या भिमुखो नरः ।
सार्घ्याम्बुपञ्चगव्याभ्यां प्रोक्षयेद्यागमण्डपम् ॥ २६ ॥ चतुष्पथान्तसंस्कारैः संस्कुर्यादीक्षणादिभिः । विक्षिप्य विकिरांस्तत्र कुशकूर्चोपसंहरेत्॥२७॥
तानीशदिशि वर्धन्यामासनायोपकल्पयेत् । नैर्ऋते वास्तुगीर्वाणान्द्वारे लक्ष्मीं प्रपूजयेत् ॥ २८ ॥ आप्ये रत्नैः पूरयन्तीं हृदा मण्डपरूपिणीम् ।
साम्बुवस्त्रे सरत्ने च धान्यस्थे पश्चिमानने ॥ २९ ॥ ऐशे कुम्भे यजेच्छम्भुं शक्तिं कुम्भस्य दक्षिणे । पश्चिमस्यां तु सिंहस्थां वर्धनीं खड्गरूपिणीम्॥३०॥
दिक्षु शक्रादिदिक्पालान्विष्णवन्तान्प्रणवासनान् । वाहनायुधसंयुक्तान्हृदाऽभ्यर्च्य स्वनामभिः ॥ ३१ ॥ प्रथमं तां समादाय कुम्भस्याग्राभिगामिनीम्।

तिल, चावल, सरसों, कुश, दूर्वा, अक्षतोदक, यव, नीर (जल) क्षीर मिलाकर अर्घ्य प्रदान करें । इसे ही विशेषार्घ्य कहते हैं ।। १५ ।। उसके पश्चात् उसी जल से समस्त द्रव्यों की शुद्धि करके, अपने आसन पर बैठकर तिलक लगाना चाहिए ।। १६ ।। तदनन्तर पहले के ही समान पूजन मन्त्र की शुद्धि तथा पञ्चगव्य प्राशन करना चाहिए। तदनन्तर लावा, चन्दन, सरसों, भस्म, दूर्वा, अक्षत तथा कुश इन विकर द्रव्यों को तथा लावा तथा धूप को अस्त्र मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिए । शस्त्रमन्त्र से प्रोक्षण किए गए इन वस्तुओं को कवच मन्त्र से अवगुण्ठित करके यह भावना करनी चाहिए कि विघ्नों को दूर करने वाले ये नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र हैं ।। १७-१८ ।। एक वित्ते के कुशों के छत्तीस दलों द्वारा बेणी के समान उत्तम ज्ञानमय खड्ग बनकर शिव के अस्त्र मन्त्र को सात बार जपकर अभिमन्त्रित करना चाहिए । निष्कल एवं सृष्टि के आधारभूत शिव के अपने मनोऽनुकूल रूप का अपने में विन्यास करके, मैं शिवस्वरूप हूँ इस प्रकार से भावना करनी चाहिए।।१९-२१।। अपने सिर पर पगड़ी रखकर अपने शरीर को अलंकृत करना चाहिए । पुनः आचार्य अपने दाहिने हाथ को चन्दन से अलंकृत करें और वहीं पर (हाथ पर ही) विधिपूर्वक शिव की पूजा करें। इस प्रकार करने वाला पुरुष शिवहस्त हो जाता है ।। २२ ।। उस देदीप्यमान हस्त को अपने सिर पर रखकर यह भावना करनी चाहिए कि 'मैं शिव से अभिन्न तथा जगत् का कर्ता हूँ । ऐसी भावना करने वाला आचार्य यज्ञमण्डप में कर्मों का साक्षी,कलश में यज्ञ की रक्षा करने वाला, अग्नि के भीतर होम का आधार, शिष्य के भीतर उसके अज्ञानरूपी बन्धन को विनष्ट करने वाला तथा अपनी आत्मा (अन्तर्यामी रूप से) अनुग्रह करने वाला जो ईश्वर है, वही मैं हूँ' इस प्रकार से अपने मन में सुदृढ़ भावना कर ले।।२३-२५ ।। इसके पश्चात् आचार्य ज्ञानरूपी कृपाण हाथ में लेकर नैर्ऋत्य कोण की ओर मुख करके, अर्घ्य के जल तथा पञ्चगव्य के द्वारा यागमण्डप का प्रोक्षण करे फिर चतुष्पथान्त संस्कारों से तथा अवलोकन आदि के द्वारा संस्कारयुक्त करना चाहिए । फिर पूर्वोक्त विकिर द्रव्यों को विखेरकर उन्हें कुश की कूँची से विटोर लेना चाहिए और उन्हें ईशानकोण में बर्धनी में आसन के लिए रखें। फिर नैर्ऋत्यकोण में वास्तुमण्डल के देवताओं की तथा पश्चिम द्वार पर लक्ष्मी की पूजा करनी चाहिए।।२६-२८।। फिर यह भावना करनी चाहिए कि मण्डपरूपिणी लक्ष्मी यज्ञमण्डप को रत्नों से परिपूर्ण कर रही हैं। इस प्रकार से ध्यान एवं आवाहन करके हृदयमन्त्र (नमः) से उनकी पूजा करनी चाहिए । पुनः ईशानकोण में सप्तधान्य पर स्थित जल से युक्त तथा पञ्चरत्न से युक्त एवं वस्त्रवेष्टित पश्चिमाभिमुख होकर कलश पर भगवान् शंकर की पूजा करनी चाहिए । कुम्भ के दक्षिण में सिंह पर सवार पश्चिम दिशा में शक्ति की पूजा करनी चाहिए तथा खड्गरूपिणी वर्धिनी की पूजा करनी चाहिए।।२९-३०।। पूर्व आदि दिशाओं में प्रणव पर बैठे हुए तथा वाहन एवं

अविच्छिन्नपयोधारां भ्रामयित्वा प्रदक्षिणम् ॥ ३२ ॥ शिवाज्ञां लोकपालानां श्रावयेन्मूलमुच्चरन् । संरक्षत यथायोगं कुम्भं धृत्वाऽथ तां धरेत्॥३३॥ ततः स्थिरासने कुम्भे साङ्गं सम्पूज्य शङ्करम् । विन्यस्य शोध्यमध्वानं वर्धन्यामस्त्रमर्चयेत् ॥ ३४ ॥ ॐ हः, अस्त्रासनाय हूं फट् । ॐ 'ओमस्त्रमूर्तये नम; । ॐ हूं फट्, पाशुपतास्त्राय नमः । ॐ ॐहृदयाय हूं फट्, नमः । ॐ श्रीं शिरसे हूं फट्, नमः । ॐ यं शिखायै हूं फट्, नमः । ॐ गूं कवचाय हूं फट्, नमः । ॐ फट्, अस्त्राय हूं फट्, नमः ॥ ३५ ॥ चतुर्वक्त्रं सदंष्ट्रं च स्मरेदस्त्रं सशक्तिकम् । समुद्गरत्रिशूलासिं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ ३६॥ भगलिङ्गसमायोगं विदध्याल्लिङ्गमुद्रया। अंगुष्ठेन स्पृशेत्कुम्भं हृदा मुष्ट्याऽस्त्रवर्धनीम्॥ ३७ ॥ भुक्तये मुक्तये त्वादौ मुष्टिना वर्धनीं स्पृशेत् । कुम्भस्य मुखरक्षार्थं ज्ञानखड्गं समर्पयेत् ॥ ३८ ॥ शस्त्रं च मूलमन्त्रस्य शतं कुम्भे निवेशयेत् । तद्दशांशेन वर्धन्यां रक्षां विज्ञापयेत्ततः ॥ ३९ ॥ यथेदंकृत यत्नेन भगवन्मखमन्दिरम् । रक्षणीयं जगन्नाथ सर्वाध्वरधर त्वया ॥ ४० ॥ प्रणवस्थं चतुर्बाहुं वायव्ये गणमर्चयेत् । स्थण्डिले शिवमभ्यर्च्य साध्यः कुण्डं व्रजेन्नरः ॥ ४१ ॥ निविष्टो मन्त्रतुष्ट्यर्थं अर्घ्यगन्धघृतादिकम् । वामे सव्ये तु विन्यस्य समिद्दर्भतिलादिकम् ॥ ४२ ॥ कुण्डवह्निस्रुगाज्यादि प्राग्वत्संस्कृत्य भावयेत् । मुख्यतामूर्ध्ववक्त्रस्य हृदि वह्नौ शिवं यजेत् ॥ ४३ ॥ स्वमूर्तौ शिवकुम्भे च स्थण्डिले त्वग्निशिष्ययोः । सृष्टिन्यासेन विन्यस्य शोध्याध्वानं यथाविधि ॥ ४४ ॥ कुण्डमानं मुखं ध्यात्वा हृदाहुतिभिरीप्सितम् । बीजानि सप्तजिह्वानामग्नेर्होमाय भण्यते ॥ ४५ ॥

आयुध से संयुक्त इन्द्र से लेकर विष्णुपर्यन्त दिक्पालों की पूजा करनी चाहिए । उन देवताओं के नाममन्त्र से पूजा करनी चाहिए ।। ३१ ।। पहले उसे (वर्धनी) को हाथ में लेकर उसे कलश के सामने से प्रदक्षिण क्रम से चारों ओर अविच्छिन्न जल की धारा गिराते हुए घुमाना चाहिए ।। ३२ ।। उन देवताओं को मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए भगवान् शंकर की यह आज्ञा सुनानी चाहिए । 'देवगण आप लोग इस यज्ञकुम्भ की रक्षा करें।' उसके पश्चात् एक कलश रखकर उसके ऊपर उस वर्धनी को रख देना चाहिए । उसके पश्चात् स्थिर आसन वाले कलश पर भगवान् शंकर की साङ्ग पूजा करनी चाहिए ।। ३३ ।। तदनन्तर कला आदि षडध्वा का न्यास करके शोधन करें और वर्धनी में अस्त्र की पूजा करनी चाहिए ।। ३४ ।। पूजा के मन्त्र इस प्रकार हैं- (१) ओं हः अस्त्रासनाय हूँ फट् नमः, (२) ओं ओं अस्त्रमूर्तये हूँ फट् नमः, (३) ओं हूं फट् पाशुपतास्त्राय नमः ।। (४) ओं ओं हृदयाय हूँ फट्, नमः (५) ओं श्रीं शिरसे हूँ फट्, नमः (६) ओं यं शिखायै हूँ फट् नमः, (७) ओं गूं कवचाय हूँ फट् नमः (८) ओं फट्, अस्त्राय हूँ फट् नमः ।। ३५ ।। उसके पश्चात् दाढों तथा बड़े-बड़े दाँतों से युक्त चार मुख वाले, हाथ में शक्ति, मुद्गर, त्रिशूल और तलवार धारण किए हुए एवं करोड़ों सूर्य की कान्ति के समान कान्ति वाले पाशुपतास्त्र के स्वरूप का चिन्तन करना चाहिए।। ३६ ।। तदनन्तर लिङ्गमुद्रा को प्रदर्शित करके भगलिङ्ग का संयोग कराना चाहिए । फिर हृदयमन्त्र (हृदयाय नमः) का उच्चारण करते हुए अंगुष्ठ से कुंभ का तथा मुट्ठी से वर्धनी का स्पर्श करना चाहिए ।।३७।। भोग एवं मोक्ष प्राप्ति की इच्छा से पहले वर्धनी का ही स्पर्श करना चाहिए । कलश के मुख भाग की रक्षा के लिए उस पर ज्ञान खड्ग को विन्यस्त करना चाहिए ।। ३८ ।। फिर एक सौ आठ बार मूलमन्त्र का जप करके उसको कलश पर समर्पित करना चाहिए। फिर उसके दशांश मूलमन्त्र का जप करके उसे वर्धानी के रक्षार्थ प्रार्थना करनी चाहिए ।। ३९ ।। सम्पूर्ण यज्ञों को धारण करने वाले भगवन् ! जगन्नाथ बड़े यत्न से निर्मित इस मन्दिर की रक्षा आप करें ।। ४० ।। इसके पश्चात् वायव्यकोण में प्रणव के आसन पर विद्यमान गणेश जी की पूजा करनी चाहिए । पुनः वेदी पर शिव जी की पूजा करके साधक हाथ में अर्घ्य लेकर कुण्ड के सन्निकट में जाय ।। ४१ ।। वहाँ पर बैठकर वह मन्त्र के अधिष्ठातृ देवता की तृप्ति के लिए बाएँ भाग में अर्घ्य, चन्दन तथा घृत आदि को तथा दाहिने भाग में समिधा, कुश एवं तिल आदि को रखकर, पहले के ही समान, कुण्ड, अग्नि, स्रुक् तथा घृत आदि का संस्कार करके अपने हृदय में ऊपर की ओर मुख वाले अग्नि की मुख्यता का ध्यान करें और अग्नि में शिव जी का पूजन करना चाहिए ।। ४२-४३ ।। इसके पश्चात् आचार्य अपने शरीर में शिव कलश में, मण्डल में, अग्नि में और शिष्य के शरीर में सृष्टिन्यास की विधि से न्यास करके, अध्वा का सविधि शोधन करने के पश्चात्

विरेफावन्तिमौ वर्णौ रेफषष्ठखरान्वितौ । इन्दुविन्दुशिखायुक्तौ जिह्वाबीजाद्यनुक्रमात् ॥ ४६ ॥ हिरण्या, कनका रक्ता कृष्णा तदनुसुप्रभा। अतिरिक्ता बहुरूपा रुद्रेन्द्राग्न्याप्यदिङ्मुखाः ॥ ४७ ॥ क्षीरादि मधुरैर्होमं कुर्याच्छान्तिकपौष्टिके । अभिचारे तु पिण्याकसक्तुकञ्चुककाञ्जिकैः ॥ ४८ ॥ लवणैराजिकातक्रकटुतैलैश्च कण्टकैः । समिद्भिरपि वक्राभिः क्रुद्धौ भाष्याणुना यजेत्॥ ४९ ॥ कदम्बकलिकाहोमाद्यक्षिणी सिद्ध्यति ध्रुवम् । बन्धूककिंशुकादीनि वश्याकर्षाय होमयेत् ॥ ५० ॥ बिल्वं राज्याय लक्ष्म्यर्थं पाटलांश्चम्पकानपि । पद्मानि चक्रवर्तित्वे भक्ष्यभोज्यानि संपदे॥५१॥ दूर्वा व्याधिविनाशाय सर्वसत्त्ववशीकृते । प्रियंगुपाटलीपुष्पं चूतपत्रं ज्वरान्तकम् ॥ ५२ ॥ मृत्युञ्जयो मृत्युजित्स्याद् वृद्धिः स्यात्तिलहोमतः । रुद्रशान्तिः सर्वशान्त्या अथ प्रस्तुतमुच्यते ॥ ५३ ॥ आहुत्यष्टशतैर्मूलमङ्गानि तु दशांशतः । संतर्पयेत् मूलेन दद्यात्पूर्णां यथा पुरा ॥ ५४ ॥ तथा शिष्यप्रवेशाय प्रतिशिष्यं शतं जपेत्। दुर्निमित्तापसाराय सुनिमित्तकृते तथा ॥ ५५ ॥ शतद्वयं च होतव्यं मूलमन्त्रेण पूर्ववत् । मूलाद्यष्टास्त्रमन्त्राणां स्वाहान्तैस्तर्पणं सकृत् ॥ ५६ ॥ शिखासंपुटितैर्बीजैर्हूंफडन्तैश्च दीपनम् । ॐ हौं शिवाय स्वाहा इत्यादिमन्त्रैश्च तर्पणम् ॥ ५७ ॥ ॐ हू हौं हीं शिवाय हूं फडित्यादि च दीपनम् । ततः शिवाम्भसा स्थालीं क्षालितां वर्मगुण्ठिताम् ॥ ५८॥ चन्दनादिसमालब्धां बध्नीयात्कटकं गले। वर्मास्त्रजप्तसद्दर्भपत्राभ्यां चरुसिद्धये ॥ ५९ ॥ धर्माद्यैरासने दत्ते सार्धेन्दुकृतमण्डले । न्यस्तायां मूर्तिभूतायां भावपुष्पैः शिवं यजेत् ॥ ६० ॥

कुण्ड की लम्बाई चौड़ाई के अनुसार ही अग्निदेव के लम्बाई चौड़ाई का ध्यान करके अग्नि की सात जिह्वाओं के अन्त में नमः एवं स्वाहा उच्चारण करते हुए अभीष्ट वस्तुओं की आहुति देकर अग्नि देव को तृप्त करना चाहिए । अग्नि के जिह्वाओं के सात बीज हैं। होम में सुविधा के लिए उनको बतलाया जा रहा है ।। ४५।। वर्णमाला के रकार को छोड़कर सभी सात (य् व् ल् श् ष् स ह्) वर्ण यदि रकार तथा छठें स्वर (अ) पर आरूढ़ हों तथा उनके भी ऊपर चन्द्र विन्दु रूपी शिखा हो तो वे क्रमशः अग्नि जिह्वाओं के बीज होते हैं । अर्थात् य्रूँ, रूँ, व्रूँ, श्रूँ, ष्रूँ, स्रूँ, एवं हूँ ये क्रमशः हिरण्या, कनका, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, अतिरिक्ता और बहुरूपा इन अग्निजिह्वाओं के बीज हैं । इन सबों का कुण्ड के क्रमशः ईशान, पूर्व, अग्नि आदि (नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य तथा मध्य दिशाओं) में स्थान होता है ।। ४६-४७ ।। शान्ति तथा पौष्टिक कर्मों में खीर आदि मधुर पदार्थों द्वारा होम करना चाहिए किन्तु अभिचार कर्मों में तो पिण्याक (सरसों की खली) यव की काँजी, नमक, राई, मट्ठा, सरसों के तेल, काँटे से युक्त, टेढ़ी-मेढ़ी लकड़ियों पर क्रुद्ध होकर भाष्य मन्त्र से हवन करना चाहिए ।। ४८-४९ ।। कदम्ब की कली से होम करने से निश्चित रूप से यक्षिणी की सिद्धि होती है तथा दुपहरिया के फूल एवं पलाश के फूल से हवन करके वशीकरण तथा आकर्षण कर्म किया जाता है ।। ५० ।। राज्य की प्राप्ति के लिए बिल्व का, लक्ष्मी (धन सम्पत्ति) की प्राप्ति के लिए पाटल (गुलाब) तथा चम्पा (सोन चम्पा) के फूल का, चक्रवर्तित्व की प्राप्ति के लिए कमल पुष्पों का तथा सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थों का हवन करना चाहिए ।। ५१ ।। व्याधियों के विनाश के लिए दूर्वा का, सभी जीवों को वश में करने के लिए प्रियङ्गु तथा पाटली पुष्प (कदली के पुष्प) का तथा ज्वर का नाश करने के लिए आम के पत्ते का होम करना चाहिए ।। ५२ ।। मृत्युञ्जय मन्त्र का जप करने वाला मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है, तिल का होम करने से अभ्युदय की प्राप्ति होती है। सभी प्रकार की शान्ति के लिए रुद्रशान्ति करनी चाहिए । अब प्रस्तुत विषय का वर्णन किया जा रहा है ।। ५३ ।। मूलमन्त्र से एक सौ आठ आहुति देकर उसके दशांश मूलमन्त्र से ही अङ्गों का तर्पण करना चाहिए और पहले के ही समान मूलमन्त्र से पूर्णाहुति देनी चाहिए ।। ५४ ।। शिष्यों के दीक्षा में प्रवेश करने के लिए प्रत्येक शिष्य के लिए आचार्य सौ-सौ बार मूलमन्त्र का जप करें तथा दुर्निमित्त का निवारण करने के लिए तथा शुभ की प्राप्ति के लिए प्रति शिष्य दो-दो सौ बार मूलमन्त्र से हवन करें । मूल आदि जो आठ मन्त्र हैं उनके अन्त में स्वाहा पद जोड़कर एक-एक बार तर्पण करना चाहिए ।। ५५-५६ ।। शिखा से संपुटित तथा फट् (ओं हूँ फट्) लगाकर बीज मन्त्रों का दीपन होता है । ओं हौं शिवाय स्वाहा इत्यादि मन्त्रों से तर्पण किया जाता है ।। ५७ ।। ओं हू हौं हीं शिवाय हूँ फट् इत्यादि दीपन मन्त्र है । उसके पश्चात् स्थाली को पवित्र जल से प्रक्षालित करके उसे कवच मन्त्र से अवगुण्ठित कर देना चाहिए ।। ५८ ।। पुनः उसमें चन्दन आदि लगाकर और उसके गले में कवच तथा अस्त्र मन्त्र जपकर कुश के

वस्त्रबद्धमुखायां वा स्थाल्यां पुष्पैर्बहिर्भवैः । चुल्ल्यां पश्चिमवक्त्रायां शुद्धायां वीक्षणादिभिः ॥ ६१॥ न्यस्ताहंकारबीजायां न्यस्तायां कुण्डदक्षिणे। धर्माधर्मशरीरायां जप्तायां स्पर्शात्मना ॥ ६२ ॥ स्थालीमारोपयेदस्त्रजप्तां गव्याम्बुमार्जिताम् । गव्यं पयोऽस्त्रसंशुद्धं प्रासादशतमन्त्रितम् ॥ ६३ ॥ तण्डुलान्श्यामकादीनां निक्षिपेत्तत्र तद्यथा। एकशिष्यविधानाय तेषां प्रसृतिपञ्चकम् ॥ ६४ ॥ प्रसृतिं प्रसृतिं पश्चाद्वर्धयेद्द्वयादिषु क्रमात् । कुर्याच्चानलमन्त्रेण विधानं कवचाणुना ॥ ६५ ॥ शिवाग्नौ मूलमन्त्रेण पूर्वास्यश्चरुकं पचेत् । सुस्विन्ने तत्र तच्चुल्ल्यां स्रुवमापूर्य सर्पिषा ॥ ६६॥ स्वाहान्तैः संहितामन्त्रैर्दत्त्वा तप्ताभिधारणम् । संस्थाप्य मण्डले स्थालीं सद्दर्भेस्त्राणुनाकृते ॥ ६७ ॥ प्रणवेन पिधायास्यां तद्देहलेपनं हृदा । सुशीतलो भवत्येवं प्राप्य शीताभिधारणम् ॥ ६८ ॥ विदध्यात्संहितामन्त्रैः शिष्यं प्रति सकृत्सकृत् । धर्माद्यासनके हुत्वा कुण्डमण्डलपश्चिमे ॥ ६९॥ संपातं च स्रुचा हुत्वा शुद्धिं संहितयाऽऽचरेत् । चरुकं सकृदालभ्य तयैव वषडन्तया ॥ ७०॥ धेनुमुद्रामृतीभूतं स्थण्डिले शान्तिकं नयेत् । साज्यभागं स्वशिष्याणां भागो देवाय वह्नये ॥ ७१ ॥ कुर्यात्तु लोकपालादेः समध्वाज्यमिदं त्रयम् । नमोऽन्तेन हृदा दद्यात्तेनैवाऽऽचमनीयकम्॥७२॥ साज्यं मन्त्रशतं हुत्वा दद्यात्पूर्णां यथाविधि । मण्डले कुण्डतः पूर्वे मध्ये वा शंभुकुम्भयोः॥ ७३ ॥ रुद्रमातृगणादीनां निर्वर्त्यान्तर्बलिं हृदा । शिवमध्येऽथ लब्धाज्ञो विधायैकत्वभावनाम् ॥ ७४ ॥ सर्वज्ञतादियुक्तोऽहं समन्ताच्चोपरिस्थितः । ममांशो योजनास्थानमधिष्ठाताऽहमध्वरे ॥ ७५॥

दो पत्रों से सूत्र बाँध देना चाहिए। ऐसा करने से चरु की सिद्धि होती है ।। ५९ ।। धर्म आदि चार पावों वाले चौकी आदि का आसन देकर उसके ऊपर बने हुए अर्धचन्द्राकार मण्डल में उस स्थाली को रख दे और उसे आराध्य देव शिव की मूर्ति मानकर भावपुष्पों के द्वारा शिवजी का पूजन करना चाहिए ।। ६१ ।। अथवा स्थाली के मुख को वस्त्र से बाँध दें और बाहरी पुष्पों से उसकी पूजा करें । पश्चिमाभिमुख रखे हुए शुद्ध चूल्हे के वीक्षण आदि के द्वारा, उसमें अहंकार बीज का न्यास करना चाहिए ।। पुनः उस चूल्हे को कुण्ड के दक्षिण तरफ रखकर यह भावना करनी चाहिए कि चूल्हे का शरीर धर्माधर्ममय है । उसके पश्चात् स्पर्श करके अस्त्र मन्त्र का जप करना चाहिए ।। ६१-६२ ।। उसके पश्चात् अस्त्र मन्त्र के जप से अभिमन्त्रित तथा गाय के घी से माँजी गयी उस स्थाली (बटलोई) को चूल्हे पर रखना चाहिए । तदनन्तर अस्त्र मन्त्र के जप से शुद्ध किए गए गोदुग्ध को प्रासाद मन्त्र (हौं) के सौ बार जप से अभिमन्त्रित करके उसमें डालें । फिर उसमें एक शिष्य के लिए पाँच पसर साँवाँ आदि के चावल को डालना चाहिए ।। ६३-६४ ।। फिर प्रत्येक दूसरे-तीसरे शिष्य के लिए एक-एक पसर चावल बढ़ाते जाना चाहिए । पुनः अस्त्र मन्त्र से आग जलाए तथा कवच मन्त्र (हुम्) से स्थाली को ढँक देना चाहिए ।। ६५ ।। पुनः शिवाग्नि में पूर्वाभिमुख होकर मूलमन्त्र पढ़ते हुए चरु पकाना चाहिए । चरु के अच्छी तरह से पक जाने पर स्रुवा को घी से भरकर उस चूल्हे में संहिता मन्त्रों के अन्त में 'स्वाहा' शब्द लगाकर 'तप्ताभिधार' नामक आहुति देनी चाहिए । अस्त्र मन्त्र से बनाए गए कुश से युक्त मण्डल में स्थाली की स्थापना करके प्रणव के द्वारा चूल्हे के मुख को ढँककर हृदयमन्त्र से लेपन करके सुशीतलो भव इस प्रकार से उच्चारण करके शीताभिधारण नामक आहुति प्रत्येक शिष्य के लिए एक-एक बार देनी चाहिए ।। ६६-६८ ।। कुण्ड तथा मण्डल के पश्चिम भाग में धर्मादि आसन पर हवन करके स्रुक् के द्वारा संपात का हवन कर संहिता मन्त्र से शुद्धि करना चाहिए। फिर संहिता मन्त्र के अन्त में वषट् लगाकर एक बार चरु को लेकर धेनुमुद्रा दिखाकर उसका अमृतीकरण करना चाहिए और उसी मन्त्र से वेदी पर शान्ति होम करना चाहिए ।। ७० ।। उसके पश्चात् आचार्य अपने शिष्यों के लिए अग्निदेवता के लिए तथा लोकपालों के लिए घृतसन्धि चरु का भाग निश्चित करे । इन तीनों भागों को मधु तथा घी से युक्त होना चाहिए । हृदयमन्त्र में नमः पद लगाकर उसी के द्वारा उन्हें भाग अर्पित करे और उसी मन्त्र से उन्हें आचमन प्रदान करे।।७१-७२।। उसके पश्चात् एक सौ आठ बार आहुति देकर यथाविधि पूर्णाहुति देनी चाहिए। इसके पश्चात् मण्डल के भीतर तथा कुण्ड के पूर्वभाग में अथवा शिव एवं कुण्ड के मध्यभाग में हृदयमन्त्र में रुद्रमातृका गण आदि के लिए अन्तर्बलि समर्पित करना चाहिए । फिर शिव से आज्ञा प्राप्त करके,शिव तथा अपने में एकत्व की भावना करके यह सोचना चाहिए कि मैं सर्वज्ञता आदि

शिवोऽहमित्यहंकारी निष्क्रमेद्यागमण्डपात् । न्यस्तपूर्वाग्रसद्दर्भे शस्त्राणुकृतमण्डले ॥ ७६ ॥ प्रणवासनके शिष्यं शुक्लवस्त्रोत्तरीयकम् । स्नातं चोदङ्मुखं मुक्तौ पूर्ववक्त्रं तु भुक्तये ॥ ७७ ॥ ऊर्ध्वकायं समारोप्य पूर्वास्यं प्रविलोकयेत् । चरणादिशिखां यावन्मुक्तौ भुक्तौ विलोमतः ॥ ७८ ॥ चक्षुषा सप्रसादेन शैवं धाम विवृण्वता । अस्त्रोदकेन संप्रोक्ष्य मन्त्राम्बुस्नानसिद्धये॥७९॥ भस्मस्नानाय विघ्नानां शान्तये पापभित्तये । सृष्टिसंहारयोगेन ताडयेदस्त्रभस्मना ॥ ८० ॥ त्रिधाऽऽलभेततन्मूलैरघमर्षायनाभ्यधः । द्वैविध्याय च पापानामालभेत शराणुना ॥ ८२ ॥ तच्छरीरे शिवं साङ्गं सासनं विन्यसेत्ततः । पुष्पादिपूजितस्यास्य नेत्रे नेत्रेण वा हृदा॥८३॥ बद्ध्वा मन्त्रितवस्त्रेण सितेन सदशेन च । प्रदक्षिणक्रमादेनं प्रवेश्य शिवदक्षिणम्॥८४॥ सवस्त्रमासनं दद्याद्यथावर्णं निवेदयेत् । संहारमुद्रयाऽऽत्मानं मूर्त्या तस्य हृदम्बुजे ॥ ८५ ॥ निरुध्य शोधिते काये न्यासं कृत्वा तमर्चयेत् । पूर्वाननस्य शिष्यस्य मूलमन्त्रेण मस्तके ॥ ८६॥ शिवहस्तं प्रदातव्यं रुद्रेशपददायकम् । शिवसेवाग्रहोपायं दत्तहस्तं शिवाणुना ॥ ८७॥ शिवे प्रक्षेपयेत्पुष्पमपनीयार्चकान्तरम् । तत्पात्रस्थानमन्त्राढ्यं शिवदेवगणानुगम्॥ ८८॥ विप्रादीनां क्रमान्नाम कुर्याद्वा स्वेच्छया गुरुः। प्रणतिं कुम्भवर्धन्योः कारयित्वाऽनलान्तिके ॥ ८९ ॥ सदक्षिणासने तद्वत्सौम्यास्यमुपवेशयेत्। शिष्यदेहविनिष्क्रान्तां सुषुम्णामिव चिन्तयेत् ॥ ९० ॥ निजविग्रहलीनां च दर्भमूलेन मन्त्रितम् । दर्भाग्रं दक्षिणे तस्य विधाय करपल्लवे ॥ ९१ ॥ तन्मूलमात्मजङ्घायामग्रं चेति शिखिध्वजे । शिष्यस्य हृदयं गत्वा रेचकेन

गुणों से युक्त सबों के ऊपर चारों ओर विद्यमान हूँ,योजना स्थान मेरा अंश है, ओर मैं यज्ञ में अधिष्ठाता हूँ।। ७३-७५ ।। मैं शिवं हूँ इस प्रकार से अहंकार करके आचार्य यागमण्डप से निकले। जिसमें पूर्वाग्र उत्तम कुश विछाया गया हो ऐसे शस्त्र मन्त्र (हूं फट्) से निर्मित मण्डल में प्रणव आसन पर शुक्ल वस्त्र तथा उत्तरीय धारण किए हुए शिष्य को बैठाए । मोक्षार्थी शिष्य को उत्तराभिमुख तथा बुभुक्षु शिष्य को पूर्वाभिमुख बैठाना चाहिए ।। ७६-७७ ।। शिष्य पूर्वाभिमुख होकर सीधा बैठे और आचार्य मुमुक्षु शिष्य को चरण से लेकर शिखा पर्यन्त तथा बुभुक्षु शिष्य को शिखा से लेकर चरणपर्यन्त देखे ।। ७८ ।। उस समय आचार्य की दृष्टि प्रसन्न तथा शिष्य के लिए शिव के स्वरूप को अभिव्यक्त करने वाली होनी चाहिए । अस्त्र जल से शिष्य का प्रोक्षण करके उसका मन्त्र जल से स्नान सम्पन्न कराना चाहिए ।। ७८ ।। फिर विघ्नों की शान्ति तथा पाप का नाश करने के लिए भस्म स्नान कराना चाहिए। सृष्टि संहार योग के द्वारा अस्त्र भस्म से उसका ताडन करना चाहिए।।८०।। सकलीकरण करने के लिए उस शिष्य को अस्त्रजल से प्रोक्षण करके अस्त्र मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसके नाभि के ऊपर कुश के अग्रभाग से प्रोक्षण करना चाहिए ।। ८१ ।। नाभि के नीचे कुश की जड़ से तीन बार अधमर्षण के लिए स्पर्श करना चाहिए । पापों को दो खण्ड करने के लिए उसे अस्त्र मन्त्र से उसी प्रकार स्पर्श करना चाहिए ।। ८२ ।। तदनन्तर शिष्य के शरीर में शिव का साङ्ग तथा आसन सहित न्यास करना चाहिए । पुनः (उसमें शिव की भावना करके) पुष्प आदि के द्वारा पूजित उस शिष्य के नेत्र में नेत्रमन्त्र (वौषट्) से अथवा हृदयमन्त्र (नमः) को रखकर उजले अभिमन्त्रित वस्त्र की पट्टी बाँध देनी चाहिए । पुनः प्रदक्षिण क्रम से उसको शिव के दक्षिण भाग में लाकर, उत्तम वस्त्र प्रदान करके आसन पर बैठाना चाहिए ।। ८३-८४ ।। तदनन्तर संहार मुद्रा के द्वारा शिवमूर्ति से एकीभूत अपने आपको आचार्य उस शिष्य के हृदय में अपने को अवरुद्ध करें और शिष्य का का शोधन करे । पुनः उसके शरीर में न्यास करके उसकी पूजा करे। पूर्वाभिमुख बैठे शिष्य के सिर पर मूलमन्त्र से उसको रुद्र तथा ईश का पद प्रदान करने वाले शिवहस्त को रखना चाहिए । फिर शिवमन्त्र से उसके हाथ में शिव की सेवा को प्राप्त करने के उपायस्वरूप पुष्प को देकर उस पुष्प को शिव पर ही चढ़वावे । फिर आचार्य उसके आँख की पट्टी को खोल दे । उसके लिए शिव देवगण से अंकित स्थान, पात्र तथा मन्त्र आदि से युक्त उस शिष्य का विप्र आदि के क्रम से अथवा अपनी इच्छा के अनुसार नामकरण करें ।। ८५-८८।। फिर कुम्भ तथा वर्धनी को प्रणाम कराकर शिव की सन्निधि में दाहिनी ओर उत्तराभिमुख शान्तमुद्रा में बैठे हुए शिष्य के शरीर से निकलती हुई सुषुम्णा नाडी की भावना करे ।। ८९-९० ।। आचार्य यह भावना करे कि वह सुषुम्णा नाड़ी शिष्य के शरीर से निकलकर मेरे शरीर में विलीन हो गयी, फिर दर्भ के

शिवाणुना ॥ ९२ ॥ पूरकेण समागत्य स्वकीयं हृदयान्तरम् । शिवाग्निना पुनः कृत्वा नाडीसंधानमीदृशम् ॥ ९३ ॥ हृदा तत्संनिधानार्थं जुहुयादाहुतित्रयम् । शिवहस्तस्थिरत्वार्थं शतं मूलेन होमयेत् ॥ ९४ ॥ इत्थं समयदीक्षायां भवेद्योग्यो भवार्चने ॥ ९५ ॥

इत्यादि महापुराण आग्नेये समयदीक्षाविधिकथनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

संस्कारदीक्षाविधिः

ईश्वर उवाच– **वक्ष्ये संस्कारदीक्षाया विधानं शृणु षण्मुख । आवाहयेन्महेशस्य वह्निस्थस्य शिवो हृदि ॥ १ ॥ संश्लिष्टौ तौ समभ्यर्च्य संतर्प्य हृदयाणुना । तयोः सन्निधये दद्यात्तेनैवाऽऽहुतिपञ्चकम् ॥ २ ॥ कुसुमेनास्त्रलिप्तेन ताडयेत्तं हृदा शिशुम् । प्रस्फुरत्तारकाकारं चैतन्यं तत्र भावयेत्॥ ३॥ प्रविश्य तत्र हुंकारमुक्तं रेचकयोगतः । संहारिण्या तदाकृष्य पूरकेण हृदि न्यसेत् ॥ ४ ॥ ततो वागीश्वरीं योनौ मुद्रयोद्भवसंज्ञया । हृत्संपुटितमन्त्रेण रेचकेन विनिक्षिपेत् ॥ ५ ॥ ॐहां हां हामात्मने नमः ॥ ६ ॥ जाज्वल्यमाने निर्धूमे जुहुयादिष्टसिद्धये । अप्रवृद्धे सधूमे तु होमो वह्नौ न सिद्ध्यति ॥ ७ ॥ स्निग्धः प्रदक्षिणावर्तः सुगन्धिः शस्यतेऽनलः । विपरीतः स्फुलिङ्गी च भूमिस्पृङ् न प्रशस्यते ॥ ८ ॥ इत्येवमादिभिश्चिह्नैर्हुत्वा**

मूल भाग से अभिमन्त्रित कुश के अग्रभाग को शिष्य के पाणिपल्लव में देकर उसके मूलभाग को अपनी जंघा पर रखे । हे स्कन्द ! शिव मन्त्र से रेचक प्राणायाम करते हुए शिष्य के हृदय में प्रवेश की भावना करके आचार्य पूरक प्राणायाम के द्वारा अपने हृदय में लौट जाने की भावना करे । तदनन्तर शिवाग्नि के द्वारा इसी प्रकार से नाड़ी संधान करे ।। ९१-९३ ।। उसके सन्निधान के लिए तीन आहुति हवन करना चाहिए। शिवहस्त की स्थिरता के लिए मूलमन्त्र से सौ बार हवन करना चाहिए । इस प्रकार से शिष्य शिवार्चन में समय दीक्षा के योग्य होता है ।। ९४-९५।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का समयदीक्षा की विधि वर्णन नामक एकासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८१ ॥

श्रीशिवजी ने कहा– हे स्कन्द ! अब मैं संस्कारदीक्षा की विधि का वर्णन करता हूँ उसे सुनो । आचार्य अग्नि में स्थित शिवाशिवमय महेश को अपने हृदय में आवाहन करें ।। १।। परस्पर में सटे हुए अर्धनारीश्वर शिवा एवं शिव की अच्छी तरह से पूजा करके हृदयमन्त्र से उनका संतर्पण करके उन दोनों के सन्निधान के लिए हृदयमन्त्र से ही पाँच आहुति देनी चाहिए ।।२।। अस्त्रमन्त्र से अभिमन्त्रित पुष्प से शिष्य के हृदय में मारना चाहिए । फिर उसके हृदय में चमकते हुए तार के समान ज्ञान की भावना करनी चाहिए ।। ३ ।। हुंकारोच्चारणपूर्वक रेचक प्राणायाम के द्वारा शिष्य के हृदय में प्रवेश करके, उस चैतन्य को आकर्षित करके पूरक प्राणायाम के द्वारा आचार्य अपने हृदय में स्थापित करें ।। ४ ।। फिर उद्भव नाम की मुद्रा के द्वारा हृदयमन्त्र से सम्पुटित रेचक प्राणायाम के द्वारा उसे वगीश्वरी देवी के योनि में निक्षेप करे । उसका मन्त्र है– 'ओं हां, हां, हां आत्मने नमः' ।। ५-६ ।। खूब जलते हुए तथा निर्धूम अग्नि में अभिप्रेत अर्थ की सिद्धि के लिए होम करना चाहिए । अच्छी तरह नहीं जलते हुए अथवा धूम युक्त अग्नि में किया गया होम फलप्रद नहीं होता है ।। स्निग्ध, दक्षिणावर्त ज्वाला वाली तथा सुगन्धि युक्त अग्नि होम के लिए सर्वोत्तम होती है । उसके विपरीत चिनगारी वाली तथा पृथिवी को लपेटने वाली अग्नि होम के लिए नहीं प्रशस्त होती ।। ८ ।। इस प्रकार के लक्षणों से युक्त अग्नि में शिष्य

शिष्यस्य कल्मषम् । पापभक्षणहोमेन दहेद्वातं भवात्मना ॥ ९ ॥ द्विजत्वापादनार्थाय तथा रुद्रांशभावने । आहारबीजसंशुद्धौ गर्भाधानाय संस्थितौ॥१०॥ सीमन्ते जन्मतो नामकरणाय च होमयेत् । शतानि पञ्चमूलेन वौषडादिदशांशतः ॥ ११ ॥ शिथिलीभूतबन्धस्य शक्तावुत्कर्षणं च तम् । आत्मनो रुद्रपुत्रत्वे गर्भाधानं तदुच्यते ॥ १२ ॥ स्वातन्त्र्यात्मगुणव्यक्तिरिह पुंसवनं मतम् । मायात्मनोर्विवेकेन ज्ञानं सीमन्तवर्धनम्॥१३॥ शिवादितत्त्वशुद्धेस्तु स्वीकारो जननं मतम् । बोधनं यच्छिवत्वेन शिवत्वार्हस्य नो मतम् ॥ १४ ॥ संहारमुद्रयाऽऽत्मानं स्फुरद्वह्निकणोपमम् । विदधीत समादाय निजे हृदयपंकजे ॥ १५ ॥ ततः कुम्भकयोगेन मूलमन्त्रमुदीरयेत् । कुर्यात्समरसीभावं तदा च शिवयोर्हृदि ॥ १६ ॥ ब्रह्मादिकारणत्यागक्रमाद्रेचकयोगतः । नीत्वा शिवान्तमात्मानमादायोद्भवमुद्रया ॥ १७ ॥ हृत्संपुटितमन्त्रेण रेचकेन विधानवित् । शिष्यस्य हृदयाम्भोजकर्णिकायां विनिक्षिपेत् ॥ १८ ॥ पूजां शिवस्य वह्नेश्च गुरुः कुर्यात्तदोचिताम् । प्रणतिं चाऽऽत्मने शिष्यं समयाञ्श्रावयेत्तथा ॥ १९॥ देवं न निन्देच्छास्त्राणि निर्माल्यादि न लङ्घयेत् । शिवाग्निगुरुपूजा च कर्तव्या जीविताविधि॥२०॥ बालबालिशवृद्धस्त्रीभोगभुग्व्याधितात्मनाम्। यथाशक्ति ददीतार्थं समर्थस्य समग्रकान् ॥ २१ ॥ व्रताङ्गानि जटाभस्मदण्डकौपीनसंयमान् । ईशानाद्यैर्हृदाद्यैर्वा परिजप्य यथाक्रमात् ॥ २२ ॥ स्वाहान्तसंहितामन्त्रैः पात्रेष्वारोप्य पूर्ववत्। संपाताभिहुतं हुत्वा स्थण्डिलेशाय दर्शयेत् ॥२३॥ रक्षणाय घटाधस्तादारोप्य क्षणमात्रकम्। शिवादाज्ञां

के पापों का हवन करके पाप भक्षण होम के द्वारा उसके पापों को आचार्य जला डालें तथा शिव की भावना के द्वारा उसके दोषों को भी जला दें ।। ९ ।। शिष्य में नवीन रूप से द्विजत्व का सम्पादन करने के लिए, रुद्रांश की भावना के लिए आहार की शुद्धि तथा बीज की शुद्धि के लिए, गर्भाधान की स्थिरता के लिए, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म तथा नामकरण संस्कार के लिए, इन सबों के लिए मूलमन्त्र से एक सौ पाँच- एक सौ पाँच आहुतियाँ देनी चाहिए । फिर वौषट् (चूडाकरण) संस्कार आदि के लिए उसके दशमांश हवन मूलमन्त्र से ही करना चाहिए ।। १०-११।। जिस जीवात्मा का बन्धन शिथिल हो गया है, उसकी शक्ति का जो उत्कर्ष होता है वही उसके रुद्रपुत्र होने का कारण होता है, इसी को गर्भाधान कहा जाता है ।। १२ ।। उसके भीतर जो स्वतन्त्रतापूर्वक आत्मगुणों की अभिव्यक्ति होती है, उसीको यहाँ पर पुंसवन कहा गया है ।। १३ ।। माया तथा आत्मा दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं इस प्रकार के होने वाले ज्ञान को यहाँ पर सीमन्तोन्नयन कहा गया है । शिवादितत्त्व की शुद्धि को स्वीकार करने को ही यहाँ पर जन्म या जातकर्म कहा गया है । मुझमें शिवत्व उद्बुद्ध हो गया है, अथवा मैं शिव हो गया हूँ, इस प्रकार के होने वाले बोध को ही नामकरण कहते हैं ।। १४ ।। संहारमुद्रा के द्वारा देदीप्यमान बह्निकण के समान चैतन्य को खींचकर अपने हृदयकमल में स्थापित करें ।। १५ ।। उसके पश्चात् कुम्भक प्राणायाम के योग के द्वारा मूल मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए और अपने हृदय में शिवा तथा शिव की समरसता की भावना करनी चाहिए ।। १६ ।। ब्रह्मा आदि कारणों का त्याग करके क्रमशः रेचक प्राणायाम के योग से आत्मा को शिव के सन्निकट लाकर उद्भव मुद्रा के द्वारा विधानवेत्ता योगी हृत्सम्पुटित आत्ममन्त्र के द्वारा रेचक प्राणायाम करते हुए शिष्य के हृदय कमल की कर्णिका में उस जीवात्मा को स्थापित कर दे ।। १७-१८ ।। उस समय आचार्य शिव तथा अग्नि की उचित पूजा करे फिर शिष्य को अपने लिए प्रणाम करवाकर उसे समयाचार का उपदेश दें ।। १९ ।। देवता तथा शास्त्र की निन्दा नहीं करनी चाहिए । कभी निर्माल्य आदि को नहीं लांघे,आजीवन शिव, अग्नि तथा गुरु की पूजा करनी चाहिए ।। २० ।। बालक, मूर्ख, वृद्ध, स्त्री, कर्मफलों को भोगने वाले तथा व्याधिग्रस्त को अपनी शक्ति के अनुसार धन देना चाहिए । समर्थ पुरुष को सभी वस्तुओं का दान देना चाहिए ।। २१ ।। उसके पश्चात् व्रत के अङ्गभूत जटा, भस्म, दण्ड, कौपीन तथा संयम पोषक वस्तुओं को ईशान आदि नामों से अथवा हृदय आदि मन्त्रों द्वारा क्रमशः स्वाहान्त संहिता मन्त्रों द्वारा पहले के समान पात्र में रखकर सम्पाताभिहुत नामक संस्कार से संस्कृत हवन करके वेदी के स्वामी शिव को प्रदर्शित करें ।। २२-२३ ।। रक्षा के लिए उन वस्तुओं को क्षणभर घट के नीचे रखकर, शिव से आज्ञा लेकर आचार्य उन्हें

समादाय ददीत व्रतिने गुरुः ॥ २४ ॥ एवं समयदीक्षायां विशिष्टायां विशेषतः। वह्निहोमागमज्ञानयोग्यः संजायते शिशुः ॥ २५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये संस्कादीक्षाविधिकथनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

निर्वाणदीक्षाविधिः

ईश्वर उवाच– **अथ निर्वाणदीक्षायां कुर्यान्मूलादिदीपनम् । पाशबन्धनशक्त्यर्थं ताडनादिकृतेन वा ॥ १ ॥ एकैकया तदाहुत्या प्रत्येकं तत्त्रयेण वा । बीजगर्भशिखार्धं तु हूंफडन्तध्रुवादिना ॥ २ ॥ ॐ हूं हौं हौं हूं फडिति मूलमन्त्रस्य दीपनम् । ॐ हूं ह्रौं हौं हूं फडिति हृदय एवं शिरोमुखे ॥ ३ ॥ प्रत्येकं दीपनं कुर्यात्सर्वस्मिन्क्रूरकर्मणि। शान्तिके पौष्टिके चास्य वषडन्तादिनाऽणुना ॥ ४ ॥ वषड्वौषट्समोपेतैः सर्वकाम्योपरि स्थितैः । हवनं संवरैः कुर्यात्सर्वत्राऽऽप्यायनादिषु ॥ ५ ॥ ततः स्वसव्यभागस्थं मण्डले शुद्धविग्रहम् । शिष्यं संपूज्य तत्सूत्रं सुषुम्णेति विभावितम्॥६॥ मूलेन तच्छिखाबन्धं पादाङ्गुष्ठान्तमानयेत् । संहारेण मुमुक्षोस्तु बध्नीयाच्छिष्यकायके ॥ ७ ॥ पुंसस्तु दक्षिणे भागे वामे नार्या नियोजयेत् । शक्तिं च शक्तिमन्त्रेण पूजितां तस्य मस्तके ॥ ८ ॥ संहारमुद्रयाऽऽदाय सूत्रं तेनैव योजयेत् । नाडीं त्वादाय मूलेन सूत्रे न्यस्य हृदार्चयेत् ॥ ९ ॥ अवगुण्ठ्य तु रुद्रेण हृदयेनाऽऽहुतित्रयम् । प्रदद्यात्संनिधानार्थं शक्तावप्येवमेव हि ॥ १० ॥ ॐ हां वर्णाध्वने नमो हां मन्त्राध्वने नमः । ॐ हां**

व्रती को प्रदान कर दें ।। २४ ।। इस प्रकार से विशेष रूप से विशिष्ट समय दीक्षा के करने से शिष्य होम कर्म तथा आगम ज्ञान के योग्य हो जाता है ।। २५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का संस्कार दीक्षा विधि वर्णन नामक बयासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८२ ॥

श्री शिवजी कहते हैं– पाशबन्धन शक्ति की प्राप्ति के लिए अथवा मण्डन आदि के लिए मूलमन्त्र का दीपन करना चाहिए ।। १ ।। उस समय प्रत्येक के लिए एक-एक बार अथवा तीन-तीन आहुति देकर मन्त्र का दीपन करना चाहिए । आदि में प्रणव और अन्त में हूँ फट् लगाकर बीच में बीज गर्भ एवं शिखाबन्ध स्वरूप हूं का उच्चारण करना चाहिए ।। २ ।। ओं हूँ ह्रौं हौं हूँ फट् यह मूलमन्त्र का दीपन है । ओं हूँ ह्रौं ह्रौं हूँ फट् हृदयायनमः । यह हृदयमन्त्र का दीपन है । ओम् ह्रौं ह्रौं हूँ फट शिरसे स्वाहा यह शिरोमन्त्र का दीपन है । इसी तरह से अन्य अंगों का भी स्पर्श करना चाहिए ।। ३ ।। सभी क्रूर कर्मों में प्रत्येक अंगों का दीपन करना चाहिए ।। शान्ति तथा पौष्टिक कर्मों में वौषट् मन्त्रों को लगाकर प्रत्येक मन्त्रों का दीपन होता है ।।४।। समस्त आप्यायन आदि कर्मों में वषट् एवं वौषट् से युक्त तथा सभी काम्य कर्मों के ऊपर विद्यमान शम्बर मन्त्रों द्वारा दीपन करना चाहिए ।। ५ ।। उसके पश्चात् मण्डल में अपने वामभाग में स्थित शुद्ध शरीर वाले शिष्य का पूजन करके एक उत्तम सूत्र में उसकी सुषुम्णा नाड़ी की भावना करके, मूल मन्त्र के द्वारा उसे शिखाबन्ध तक ले जाकर उसको फिर पैर के अंगूठे पर्यन्त लाएँ, फिर संहार मुद्रा के द्वारा उस सूत्र को शिष्य के शरीर में बाँध देना चाहिए ।। ६-७ ।। पुरुष के दाहिने भाग में तथा नारी के बाएँ भाग में सूत्र बाँधना चाहिए । शक्तिमन्त्र से पूजित शक्ति को संहार मुद्रा द्वारा उसके मस्तक पर लाकर उसे उसी मन्त्र से सूत्र से संयुक्त कर देना चाहिए । मूलमन्त्र से सुषुम्णा नाड़ी को लेकर उसका सूत्र में न्यास करके हृदयमन्त्र से पूजित करना चाहिए।।८-९।। रुद्रमन्त्र से उसे अवगुण्ठित करके हृदयमन्त्र से तीन आहुति देनी चाहिए। ये तीनों आहुतियाँ नाड़ी के सन्निधानार्थ दी जाती हैं। शक्ति के भी सन्निधान के लिए इसी तरह से आहुति देनी चाहिए ।। १० ।। (क) ओं हां तत्त्वध्वने नमः (ख) ओं हां पदाध्वने नमः (ग) ओं हां मन्त्राध्वने नमः (ङ) ओं हां कलाध्वने नमः (च) ओं हां भुवनाध्वने नमः । इन मन्त्रों से छह अध्वानों

कलाध्वने नमः ओं हां भुवनाध्वने नमः ॥ १ २ ॥ न्यस्यास्त्रवारिणा शिष्यं प्रोक्ष्यास्त्रमन्त्रितेन च । पुष्पेण हृदि संताड्य शिष्यदेहे प्रविश्य च॥१ ३॥ गुरुश्च तत्र हूंकारयुक्तं रेचकयोगतः । चैतन्यं हंसबीजस्थं विशिलष्येदायुधाणुना ॥ १ ४ ॥ ॐ हौं हूं फट् ॥ १ ५ ॥ आच्छिदय शक्तिसूत्रेण हां हां स्वाहेति चाणुना । संहारमुद्रया सूत्रे नाडीभूते नियोजयेत् ॥ १ ६ ॥ ॐ हां हां हामात्मने नमः ॥ १ ७ ॥ व्यापकं भावयेदेनं तनुत्रेणावगुण्ठयेत् । आहुतित्रितयं दद्याद्धृदा संनिधिहेतवे ॥ १ ८ ॥ विद्यादेहं च विन्यस्य शान्त्यतीतावलोकनम् । तस्यामितरतत्त्वाद्यं मन्त्रभूतं विचिन्त्येत् ॥ १ ९ ॥ ओं हां हौं शान्त्यतीतकलापाशाय नम इत्यनेनावलोकयेत् ॥ २ ० ॥ द्वे तत्त्वे मन्त्रमप्येकं पदं वर्णाश्च षोडश । तथाऽष्टौ भुवनान्यस्यां बीजनाडीकरद्वयम् ॥ २ १ ॥ विषयं च गुणं चैकं कारणं च सदाशिवम् । सितायां शान्त्यतीतायामन्तर्भाव्य प्रपीडयेत् ॥ २ २ ॥ ॐ हौं शान्त्यतीतकलापाशाय हूं फट् ॥ २ ३ ॥ संहारमुद्रयाऽऽदाय विदध्यात्सूत्रमस्तके । पूजयेदाहुतीस्तिस्त्रो दद्यात्संनिधिहेतवे ॥ २ ४ ॥ तत्त्वे द्वे अक्षरे द्वे च बीजनाडीकरद्वयम्। गुणौ मन्त्रौ तथाऽब्जस्थमेकं कारणमीश्वरम् ॥ २ ५ ॥ पदानि भानुसंख्यानि भुवनानि च सप्त च । एकं च विषयं शान्तौ कृष्णायामच्युतं स्मरेत्॥२ ६॥ ताडयित्वा समादाय मुख्यसूत्रे नियोजयेत् । जहुयान्निजबीजेन सांनिध्यायाऽऽहुतित्रयम् ॥ २ ७ ॥ विद्यायां सप्ततत्त्वानि पदानामेकविंशतिम्। षड्वर्णान्शम्बरं चैकं लोकानां पञ्चविंशतिम् ॥ २ ८ ॥ गुणानां त्रयमेकं च विषयं रुद्रकारणम् । अन्तर्भाव्यातिरिक्तायां बीजनाडी करद्वयम् ॥ २ ९ ॥ तान्यादाय विदध्याच्च पदं द्व्यधिकविंशतिम्। लोकानां च कलानां च षष्ठि गुणचतुष्टयम् ॥ ३ ० ॥ मन्त्राणां त्रयमेकं च विषयं कारणं हरिम्। अन्तर्भाव्य प्रतिष्ठायां शुक्लायां ताडनादिकम्॥३ १॥ विधाय नाभिसूत्रस्थां संनिधायाऽऽहुतीर्यजेत् । ह्रीं भुवनानां

का शोधन करके उनका सूत्र में न्यास करना चाहिए और अस्त्र मन्त्र के जल से शिष्य का प्रोक्षण करना चाहिए । पुनः अस्त्र मन्त्र से अभिमन्त्रित पुष्प के द्वारा शिष्य के हृदय में ताडन करके,आचार्य हुंकारयुक्त रेचक प्राणायाम के द्वारा शिष्य के देह में प्रवेश करे और अस्त्र मन्त्र के द्वारा उसके भीतर हंस बीज में संस्थित जीव चैतन्य को अस्त्र मन्त्र पढ़कर वहाँ से विश्लिष्ट करना चाहिए ।।१२-१४।। **'ओं हौ हूं फट्।'** इस शक्तिसूत्र से तथा **'हां हां स्वाहा'** इस मन्त्र से उस विलग हुए जीव चैतन्य को संहारमुद्रा के द्वारा नाड़ीभूत सूत्र में नियुक्त करना चाहिए।।१५-१६।। ओं हां हां हामात्मने नमः। इस मन्त्र का जप करते हुए जीवात्मा के व्यापक होने की भावना करनी चाहिए एवं उसे कवचमन्त्र से अवगुण्ठित कर देना चाहिए । पुनः सन्निधि करने के लिए हृदयमन्त्र से तीन आहुति देनी चाहिए ।। १७-१८ ।। फिर देह का विन्यास करके उसमें शान्त्यतीत कला का अवलोकन करना चाहिए । उस कला के भीतर मन्त्र के स्वरूप तथा अन्य तत्त्वों की भी भावना करनी चहिए । ओं हां हौं शान्त्यतीतकलापाशाय नमः । इस मन्त्र से शान्त्यतीतकला का अवलोकन करें ।। १९-२० ।। दो तत्त्व, एक मन्त्र, एक पद, सोलह वर्ण, आठ भुवन, कर आदि बीज और नाड़ी,दो कलाएँ, विषय, गुण और एक मात्र कारणभूत सदाशिव इन सबों का श्वेत वर्ण वाली शान्त्यतीतकला में अन्तर्भाव करके **'ओं हौ शान्त्यतीत कलापाशाय हूं फट्'** इस मन्त्र से प्रताडन करना चाहिए ।। २१-२३ ।। संहारमुद्रा के द्वारा उक्त कलापाश को लेकर सूत्र के मस्तक पर रखे और उसकी पूजा करे । पुनः सन्निधान के लिए पूर्ववत् तीन आहुति देनी चाहिए ।। २४ ।। दो तत्त्व, दो अक्षर, दो बीज नाड़ी कर, दो गुण,दो मन्त्र, कमल में विराजमान एक मात्र कारणभूत ईश्वर, बारह पद, सात लोक और, एक विषय और भगवान् अच्युत का कृष्णवर्ण वाली शान्ति कला के भीतर चिन्तन करना चाहिए ।। २५-२६ ।। पुनः ताडन करके सूत्र के मुखभाग में नियोजन करना चाहिए । इसके पश्चात् सान्निध्य के लिए शान्तिकला के अपने बीजमन्त्र (हूं हूं) से तीन आहुति देनी चाहिए ।। २७ ।। अत्यन्त रक्त वर्ण वाली विद्या कला के भीतर सात तत्त्व, इक्कीस पद, छह वर्ण,एक शम्बर,पचीस लोक, तीन गुण, एक विषय, रुद्रस्वरूप कारणतत्त्व बीज नाड़ी और कर इन सबों का अन्तर्भाव करना चाहिए ।। २८-२९ ।। उन सबों को लेकर बाइस पद, साठ लोक,साठ कला, चार गुण, तीन मन्त्र एक विषय,तथा कारण रूप श्रीहरि का शुक्लवर्ण की प्रतिष्ठा में अन्तर्भाव करके ताडनादि कार्य करना चाहिए । तदनन्तर इन सबों की पूर्वोक्त तीन आहुति देनी चाहिए ।। ३०-३१ ।। ह्रीं इस मन्त्र का उच्चारण करके

शतं साग्रं पदानामष्टविंशतिम् ॥ ३२ ॥ बीजनाडीसमीराणां द्वियोनिन्द्रिययोरपि । वर्णं तत्त्वं च विषयमेकैवंगुलपञ्चकम् ॥ ३३ ॥ हेतुं ब्रह्माण्डमन्तस्थं शम्बराणां चतुष्टयम् । वृत्तितौ पीतवर्णायामन्तर्भाव्य प्रताडयेत् ॥ ३४ ॥ आदौ यत्तत्त्वभागान्ते सूत्रे विन्यस्य पूजयेत् । जुहुयादाहुतीस्तिस्त्रः संनिधानाय पावके ॥ ३५ ॥ इत्यादाय कलासूत्रे योजयेच्छिष्यविग्रहात् । सबीजायां तु दीक्षायां समयाचारयागतः ॥ ३६ ॥ देहारम्भकरक्षार्थं मन्त्रसिद्धिफलादपि । इष्टापूर्तादिधर्मार्थं व्यतिरिक्त प्रबन्धकम् ॥ ३७ ॥ चैतन्यबोधकं सूक्ष्मं कलानामन्तरे न्यसेत्। अमुनैव क्रमेणाथ कुर्यात्तर्पणदीपने॥३८॥ आहुतिभिः स्वमन्त्रेण तिसृभिः तिसृभिस्तथा ॥ ३९ ॥ ॐ हौ शान्त्यतीतकलापाशाय स्वाहेत्यादि तर्पणम् । ॐ हां हां हां शान्त्यतीतकलापाशाय हूं फडित्यादिदीपनम् ॥ ४० ॥ तत्सूत्रं व्याप्तिबोधाय कलास्थानेषु पञ्चसु । संगृह्य कुंकुमाद्येन तत्र साङ्गं शिवं यजेत्॥४१॥ हूं फडन्तैः कलामन्त्रैर्भित्त्वा पाशाननुक्रमात् । नमोन्तैश्च प्रविश्यान्तः कुर्याद्ग्रहणबन्धने ॥ ४२ ॥ ॐ हूं हां हां हां हूं फट्शान्त्यतीतकलां गृह्णामि बध्नामि चेत्यादि- र्भिर्मन्त्रैः कलानां ग्रहणबन्धनादिप्रयोगः ॥ ४३ ॥ पाशादीनां च स्वीकारो ग्रहणं बन्धनं पुनः । पुरुषं प्रति निःशेषव्यापारप्रतिपत्तये ॥ ४४ ॥ उपवेश्याथ तत्सूत्रं शिष्यस्कन्धे निवेशयेत् । विस्मृताघप्रमोषाय शतं मूलेन होमयेत्॥ ४५॥ शरावसंपुटे पुंसः स्त्रियाश्च प्रणितोदरे । हृदस्त्रसंपुटं सूत्रं विधायाभ्यर्चयेद्धृदा ॥ ४६ ॥ सूत्रं शिवेन साङ्गेन कृत्वा संपातशोधितम्। निदध्यात्कलशस्याधो रक्षां विज्ञापयेदिति ॥ ४७ ॥ शिष्यं पुष्पं करे दत्त्वा सम्पूज्य कलशादिकम् । प्रणमय्य बहिर्यायाद्यागमन्दिरमध्यतः ॥ ४८॥ मण्डलत्रितयं कृत्वा मुमुक्षूनुत्तराननान्। भुक्तये पूर्ववक्त्रांश्च शिष्यांस्तत्र निवेशयेत्॥४९॥ प्रथमे पञ्चगव्यस्य प्राशयेच्चुलुकत्रयम्। पाणिना कुशयुक्तेन अर्चितानन्तरान्तरम्॥५०॥

एक सौ आठ भुवन, अट्ठाइस पद, बीज नाड़ी सभी की दो-दो संख्या, दो इन्द्रियाँ, एक वर्ण, एक तत्त्व,एक विषय, पाँच गुण, कारण ब्रह्माण्ड और चार शम्बर इन सबों का पीतवर्ण वाली निवृत्ति कला में अन्तर्भाव करके शिष्य के हृदय में प्रताड़न करना चाहिए ।। ३२-३४ ।। इन सबों का ग्रहण करके सूत्र को चरणभाग में स्थापित करके पूजन करना चाहिए और सन्निधिकरण के लिएअग्नि में तीन आहुति हवन करना चाहिए ।। ३५ ।। इस प्रकार आचार्य सूत्र की पाँच कलाओं को लेकर उसे शिष्य के विग्रह में संयोजित करें । सबीजा दीक्षा में तो समयाचार याग से, देहारम्भक की रक्षा के लिए मन्त्र सिद्धि के फल से भी, इष्टापूर्त आदि धूम्र से भिन्न चैत्य बोधक सूक्ष्म कलाओं के भीतर न्यास करना चाहिए । इसी क्रम से तर्पण के दीपन में अपने-अपने मन्त्र से तीन-तीन आहुतियाँ देनी चाहिए ।। ३६-३९ ।। **'ओं ह्रौं शान्त्यतीत कलापाशाय स्वाहा'** इस मन्त्र से तर्पण करना चाहिए तथा **'ओं हां हां हां शान्त्यतीतकलापाशाय हूं फट्'** इस मन्त्र से दीपन करना चाहिए ।। ४० ।। उपर्युक्त सूत्र को व्याप्तिबोध के लिएपाँच कला स्थानों में संगृहीत करके, वहाँ पर कुंकुम आदि से साङ्गशिव की पूजा करनी चाहिए ।। ४१ ।। कलामन्त्रों के अन्त में **'हूं फट्'** लगाकर, उनके उच्चारण द्वारा क्रमशः कलापाशों का भेदन करके, नमस्कारान्त ही उनका ग्रहण और बन्धन भी करना चाहिए ।। ४२ ।। **'ओं हूँ हां हां हां हूं फट् शान्त्यतीतकलान गृह्णामि वध्नामिच।'** इत्यादि मन्त्रों के द्वारा कलाओं का ग्रहण और बन्धन आदि प्रयोग करना चाहिए ।। ४३ ।। पाश आदि का स्वीकार ग्रहण और बन्धन तथा पुरुष के प्रति सम्पूर्ण व्यापारों को ज्ञान कराने के लिए करना चाहिए ।। ४३-४४ ।। उसके पश्चात् शिष्य को बैठाकर उस सूत्र को शिष्य के कन्धे पर रखना चाहिए। भूले पापों का प्रमोष करने के लिए मन्त्र से सौ बार होम करना चाहिए ।। ४५ ।। पुरुष के सूत्र को ढकनी में तथा स्त्री के सूत्र को प्रणीता के भीतर रखकर हृदयमन्त्र तथा अस्त्र मन्त्र से संपुटित करके हृदयमन्त्र से उसकी पूजा करनी चाहिए ।। ४६ ।। साङ्ग शिवमन्त्र से संपात के द्वारा संस्कृत सूत्र को कलश के नीचे रखकर उसकी रक्षा के लिए प्रार्थना करनी चाहिए ।। ४७ ।। शिष्य के हाथ में पुष्प देकर कलश आदि का पूजन करके और उन्हें प्रणाम करके योग मन्दिर के भीतर से बाहर जाना चाहिए ।। ४८ ।। पुनः तीन मण्डल बनाकर मुमुक्षु शिष्यों को उत्तराभिमुख तथा बुभुक्षु शिष्यों को

चरुं ततस्तृतीये तु ग्रासत्रितयसंमितम् । अष्टग्रासप्रमाणं वा दशनस्पर्शवर्जितम् ॥ ५१ ॥ पालाशपुटके मुक्तौ भुक्तौ पिप्पलपत्रके । हृदा संभोजन दत्त्वा पूतैराचामयेज्जलैः ॥ ५२ ॥ दन्तकाष्ठं हृदा कृत्वा प्रक्षिपेच्छोभने शुभम् । न्यूनादिदोषमोषाय मूलेनाष्टोत्तरं शतम् ॥ ५३ ॥ विधाय स्थण्डिलेशायसर्वकर्मसमर्पणम् । पूजाविसर्जनं चास्य चण्डेशस्य च पूजनम् ॥ ५४ ॥ निर्माल्यमपनीयाथ शेषमग्नौ यजेच्चरोः। कलशं लोकपालांश्च पूजयित्वा विसृज्य च ॥ ५५ ॥ विसृजेद्गणमग्निं च रक्षितं यदि बाह्यतः । बाह्यतो लोकपालानां दत्त्वा संक्षेपतो बलिम् ॥ ५६ ॥ भस्मना शुद्धतोयैर्वा स्नात्वा यागालयं विशेत् । गृहस्थान्दर्भशय्यायां पूर्वशीर्षान्सुरक्षितान् ॥ ५७ ॥ हृदा सद्भस्मशय्यायां यतीन्दक्षिणमस्तकान् शिखाबद्धशिखानस्त्रसप्तमाणवकान्वितान् ॥ ५८ ॥ विज्ञाय स्नापयेच्छिष्यांस्ततो यायात्पुनर्बहिः ॥ ५९॥ ॐ हिलि हिलि शूलपाणये स्वाहा॥६०॥ पञ्चगव्यं चरुं प्राश्य गृहीत्वा दन्तधावनम् । समाचम्य शिवं ध्यात्वा शय्यामास्थाय पावनीम् ॥ ६१॥ दीक्षागतं क्रियाकाण्डं संस्मरन्संविशेद्गुरुः । इति संक्षेपतः प्रोक्तो विधिर्दीक्षाधिवासने ॥ ६२ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये निर्वाणदीक्षायामधिवासनविधिकथनं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८३ ॥

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

निर्वाणदीक्षायां निवृत्तिकलाशोधनम्

ईश्वर उवाच– **अथ प्रातः समुत्थाय कृतस्नानादिको गुरुः । दध्यार्द्रमांसमद्यादेः प्रशस्ताऽभ्यवहारिता ॥ १ ॥ गजाश्वारोहणं स्वप्ने शुभं**

पूर्वाभिमुख बैठाना चाहिए ।। ४९ ।। पहले मण्डल में बैठाकर आचार्य कुशयुक्त हाथ से शिष्यों को तीन चुल्लू पञ्चगव्य पिलाएँ बीच में आचमन आदि कराए विना दूसरे मण्डल में उन्हें तीन अथवा आठ ग्रास चरु खिलाएँ । चरु खाते समय दाँत का स्पर्श नहीं होना चाहिए ।। ५१ ।। मुक्ति की कामना वाले शिष्य को पलाश के पत्ते पर तथा भोग चाहने वाले शिष्य को पिप्पल के पत्ते पर हृदयमन्त्र से भोजन परोस करके पवित्र जल से आचमन करना चाहिए ।। ५२ ।। दयमन्त्र से दातून करके उस शुभ दातून को पवित्र स्थान पर फेंक दें । न्यूनातिरिक्त दोष का परिहार करने के लिए मूलमन्त्र से अष्टोत्तरशत हवन करना चाहिए ।। ५३ ।। तदनन्तर खण्डिलाधिपति को सभी कमो को समर्पित करके उनके पूजा का विसर्जन तथा चण्डेश का पूजन करना चाहिए ।। ५४ ।। उसके पश्चात् निर्माल्य को हटाकर शेष चरु को अग्नि में डाल देना चाहिए । कलश तथा लोकपालों की पूजा करके उनका विसर्जन करना चाहिए ।। ५५ ।। पुनः गणेश तथा अग्नि का विसर्जन करना चाहिए । यदि बाहर से रक्षित हो तो बाहर से ही लोकपालों की संक्षेप में बलि देकर भस्म अथवा शुद्ध जल से स्नान करके यागमण्डप में प्रवेश करना चाहिए। गृहस्थ शिष्यों को कुश की शय्या पर पूर्व की ओर सिर करके हृदयमन्त्र से सुरक्षित करके सुलाना चाहिए तथा यतीन्द्र शिष्यों को दक्षिण की ओर शिर करके भस्म की शय्या पर सुलाना चाहिए।।५७।। शिखामन्त्र से शिखा को बाँधे हुए तथा सात अस्त्रमाणवकों से युक्त शिष्यों को बतलाकर उन्हें स्नान कराए और पुनः आचार्य स्वयं मण्डल से बाहर 'ओं हिलि हिलि शूलपाणये स्वाहा।' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए चले जायँ ।। ५८-६० ।। पञ्चगव्य तथा चरु का प्राशन करके तथा दातून लेकर, अच्छी तरह से आचमन करके, शिवजी का ध्यान करके पवित्र शय्या पर जाकर आचार्य दीक्षा में किए गए कर्मकाण्ड का स्मरण करते हुए सो जाएँ । इस तरह से अधिवासन में संक्षेप से दीक्षा विधि का मैंने वर्णन किया ।। ६१-६२ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का निर्वाण दीक्षा में अधिवासन विधि वर्णन नामक तिरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८३ ॥

शिवजी ने कहा– प्रातःकाल उठकर आचार्य को स्नान आदि करके शिष्यों के स्वप्न को जानना चाहिए । स्वप्न में दही,ताजा मांस तथा मदिरा आदि का भोजन करना उत्तम माना जाता

शुक्लांशुकादिकम् । तैलाभ्यङ्गादिकं हीनं होमोऽघोरेण शान्तये ॥ २॥ नित्यकर्मद्वयं कृत्वा प्रविश्य मखमण्डपम् । स्वाहान्तो नित्यवत्कर्म कुर्यान्नैमित्तिके विधौ ॥ ३ ॥ ततः संशोध्य चाऽऽत्मानं शिवहस्तं तथाऽऽत्मनि । विन्यस्य कुम्भगं प्राच्य इन्द्रादीनामनुक्रमात् ॥ ४ ॥ मण्डले स्थण्डिले वाऽपि प्रकुर्वीत शिवार्चनम् । तर्पणं पूजनं वह्नेः पूर्णान्तं मन्त्रतर्पणम् ॥ ५ ॥ दुःस्वप्नदोषमोषाय शस्त्रेणाष्टाधिकं शतम् । हुत्वा हूं संपुटेनैव विदध्यान्मन्त्रदीपनम्॥६॥ अन्तर्बलिविधानं च मध्ये स्थण्डिलकुम्भयोः । कृत्वा शिष्यप्रवेशाय लब्धानुज्ञो बहिर्व्रजेत् ॥ ७ ॥ कुर्यात्समयवत्तत्र मण्डलारोपणादिकम् । संपातहोमं तन्नाडीरूपदर्भकरानुगम् ॥ ८ ॥ तत्संनिधानाय तिस्रो हुत्वा मूलाणुनाऽऽहुतीः । कुम्भस्थं शिवमभ्यर्च्य पाशसूत्रमुपाहरेत् ॥ ९ ॥ स्वदक्षिणोर्ध्वकायस्य शिष्यस्याभ्यर्चितस्य च । तच्छिखायां निबध्नीयात्पादाङ्गुष्ठावलम्बितम् ॥ १० ॥ तं निवेश्य निवृत्तेस्तु व्यप्तिमालोक्य चेतसा । ज्ञेयानि भुवनान्यस्यां शतमष्टाधिकं ततः ॥ ११ ॥ कपालोऽजश्च बुद्धश्च वज्रदेहः प्रमर्दनः । विभूतिरव्ययः शास्ता पिनाकी त्रिदशाधिपः ॥ १२ ॥ अग्नीरुद्रो हुताशी च पिङ्गलः खादको हरः । ज्वलनो दहनो बभ्रुर्भस्मान्तकक्षपान्तकौ ॥ १३ ॥ याम्यमृत्युहरो धाता विधाता कार्यरञ्जकः । कालो धर्मोऽप्यधर्मश्च संयोक्ता च वियोजकः ॥ १४ ॥ नैर्ऋतो मारणो हन्ता क्रूरदृष्टिर्भयानकः । ऊर्ध्वांशको विरूपाक्षो धूम्रलोहितदंष्ट्रवान् ॥ १५ ॥ बलश्चातिबलश्चैव पाशहस्तो महाबलः । श्वेतश्च जयभद्रश्च दीर्घबाहुर्जलान्तकः ॥ १६ ॥ वडवास्यश्च भीमश्च दशैते वारुणाः स्मृताः । दीर्घो लघुवायुवेगः सूक्ष्मस्तीक्ष्णः क्षमान्तकः ॥ १७ ॥ पञ्चान्तकः पञ्चशिखः कपर्दी मेघवाहनः । जटामुकुटधारी च नानारत्नधरस्तथा ॥ १८ ॥ निधीशो रूपवान्धन्यः सौम्यदेहः प्रसादकृत् । प्रकाशोऽप्यथ लक्ष्मीवान्कामरूपो दशोत्तरे ॥ १९॥

है।। १ ।। स्वप्न में हाथी तथा घोड़े पर चढ़ना तथा उजले वस्त्र आदि शुभ हैं । तेल लगाना आदि अशुभ है । उसकी शान्ति के लिए अघोरमन्त्र से होम करना चाहिए ।। २ ।। प्रातः एवं मध्याह्न दो कालों का नित्य कर्म करके आचार्य यज्ञ मण्डप में प्रवेश करें, स्वयं आचमन करके नैमित्तिक कर्मों को भी नित्य कर्मों के ही समान करना चाहिए ।। ३ ।। उसके पश्चात् अपने को शुद्ध करके शिवहस्त को अपने ऊपर रखकर, कलशस्थ शिव का पूजन करके इन्द्र आदि के क्रम से मण्डल अथवा वेदी पर शिव का पूजन करना चाहिए । फिर अग्नि का तर्पण और पूजन करके पूर्णाहुति के बाद मन्त्र का तर्पण करना चाहिए ।। ४-५ ।। दुःस्वप्नजन्य दोष को दूर करने के लिए हुं सम्पुटित शस्त्र मन्त्र से अष्टोत्तरशत हवन करके मन्त्र का दीपन करना चाहिए ।।६।। स्थण्डिल तथा कुम्भ के बीच में अन्तर्बलि का विधान करके शिष्यों के प्रवेश की आज्ञा लेकर बाहर चला जाना चाहिए ।। ७ ।। वहाँ पर आचार्य को समय दीक्षा के ही समान मण्डलारोपण आदि करना चाहिए । फिर उन्हें सम्पात होम सुषुम्णा नाड़ी रूपी कुश को शिष्य के हाथ में देना चाहिए । उसके सन्निधान के लिए वे मूलमन्त्र से तीन आहुति देकर कुम्भस्थ शिव की पूजा करें तथा उन्हें कलापाश सूत्र समर्पित करें ।। ८-९ ।। उसके पश्चात् पूजित शिष्य के ऊपरी शरीर के दक्षिण भाग में उसकी शिखा में बाँध दें तथा उसके पैर के अंगूठे तक लटकता हुआ उसे रखें। इस प्रकार से उस पाश का निवेश करके मन ही मन उसमें निवृत्ति कला की व्याप्ति का अवलोकन करें । इस निवृत्ति कला में ही इन एक सौ आठ भुवनों को जानना चाहिए ।। १०-११।। ये दस रुद्र पूर्व दिशा में विराजते हैं- (१) कपाल, (२) अज,(३) बुद्ध, (४) वज्रदेह, (५) प्रमर्दन, (६) विभूति, (७) अव्यय, (८) शास्ता, (९) पिनाकी, (१०) त्रिदशाधिप, (११) अग्नि, (१२) रुद्र, (१३) अग्नि, (१४) हुताश, (१५) पिङ्गल, (१६) खादक, (१७) ज्वलन, (१८) दहन, (१९) बभ्रु, (२०) भस्मान्तक, (२१) क्षपान्तक, (२२) याम्य (२३) मत्युहर, (२४) धाता, (२५) विधाता, (२६) कार्यरञ्जक, (२७) काल, (२८) धर्म, (२९) अधर्म, (३०) संयोक्ता, (३१) वियोजक, (३२) नैर्ऋत, (३३) मारण, (३४) हन्ता, (३५) क्रूरदृष्टि, (३६) भयानक, (३७) ऊर्ध्वांशक, (३८) विरुपाक्ष, (३९) धूम्र, (४०) लोहित, (४१) दंष्ट्री, (४२) बल, (४३) अतिबल, (४४) पाशहस्त, (४५) महाबल, (४६) श्वेत, (४७) जयभद्र, (४८)

विद्याधरो ज्ञानधरः सर्वज्ञो वेदपारगः । मातृवृत्तश्च पिङ्गाक्षो भूतपालो बलिप्रियः ॥ २० ॥ सर्वविद्याविधाता च सुखदुःखहरो दश । अनन्तः पालको धीरः पातालाधिपतिस्तथा ॥ २१ ॥ वृषो वृषधरो वीर्यो ग्रसनः सर्वतोमुखः । लोहितश्चैव विज्ञेया दशरुद्राः फणिस्थिताः ॥ २२ ॥ शंभुर्विभुर्गणाध्यक्षस्त्र्यक्षस्त्रिदशवन्दितः । संवाहश्च विवाहश्च लाभो लिप्सुर्विचक्षणः ॥ २३॥ अत्ता कुहककालाग्निरुद्रो हाटक एव च । कूष्माण्डश्चैव सत्यश्च ब्रह्मा विष्णुश्च सप्तमः॥ २४ ॥ रुद्रश्चाष्टाविमे रुद्राः कटाहाभ्यन्तरे स्थिताः । एतेषामेव नामानि भुवनानामपि स्मरेत् ॥ २५॥ सद्भावेश्वर महातेजा योगाधिपते पुनः । मुञ्चमुञ्च प्रमथ प्रमथ शर्व शर्व भवो भव ॥ २६ ॥ भवोद्भवः सर्वभूतः सर्वभूतसुखप्रदः। सर्वसांनिध्यकृद्ब्रह्मविष्णुरुद्रपरः अर्चितानर्चितस्तथा ॥ २७ ॥ संस्तुतपूर्वस्थित, ॐ साक्षिन्, ॐ रुद्रान्तक, ॐ पतंग, ॐ शब्द, ॐ सूक्ष्म, ॐ शिव सर्वसर्वद सर्वसांनिध्यकर ब्रह्मविष्णुरुद्रकर, ॐ नमः शिवाय, ॐ नमो नमः ॥ २८ ॥ अष्टाविंशतिपादानि व्योमव्यापिमनोगुह । सद्योहृदस्त्रनेत्राणि मन्त्रवर्णात्मको मतः ॥ २९ ॥ बीजाकारो मकारश्च नाड्याविडापिङ्गलाह्वये । प्राणापानावुभौ वायू घ्राणोपस्थौ तथेन्द्रिये ॥ ३० ॥ गन्धस्तु विषयः प्रोक्तो गन्धादिगुणपञ्चके । पार्थिवं मण्डलं पीतं वज्राङ्कं चतुरस्रकम् ॥ ३१ ॥ विस्तारो योजनानां तु कोटिरस्य शताहता । अत्रैवान्तर्गता ज्ञेया योन्योऽपि चतुर्दश ॥ ३२ ॥ प्रथमा सोमदेवानामश्वाद्या देवयोनयः। मृगःपक्षी च पशवश्चतुर्धा तु सरीसृपः॥ ३३ ॥ स्थावरं पञ्चमं सर्वं योनिः

दीर्घबाहुः, (४९) जलान्तक, (५०) बडवास्थ, (५१) भीम । इनमें से अन्तिम दस वरुण (पश्चिम) दिशा में रहने वाले रुद्र हैं । (५२) दीर्घ, (५३) लघु, (५४) वायुवेग, (५५) सूक्ष्म, (५६) तीक्ष्ण, (५७) क्षपान्तक, (५८) पञ्चान्तक, (५९) पञ्चशिख, (६०) कपर्द, (६१) कपर्दी, (६२) मेघवाहन, (६३) जटामुकुटधारी, (६४) नानारत्नधर, (६५) निधीश, (६६) रूपवान, (६७) धन्य, (६८) सौध्यदेह, (६९) प्रसादकृत, (७०) प्रकाश, (७१) लक्ष्मीवान, (७२) कामरूप, ये रुद्र उत्तर दिशा में अवस्थित हैं । (७३) विद्याधर, (७४) ज्ञानधर, (७५) सर्वज्ञ, (७६) वेदपारग, (७७) मातृवृत्त, (७८) पिङ्गाक्ष, (७९) भूतपाल, (८०) बलिप्रिय, (८१) सर्वविद्याविधाता, (८२) सुखदुःखहर, (८३) अनन्त, (८४) पालक, (८५) धीर, (८६) पातालाधिपति, (८७) वृष, (८८) वृषधर, (८९) वीर्य, (९०) ग्रसन, (९१) सर्वतोमुख, (९२) लोहित, इनमें से अन्तिम दस पाताललोक निवासी रुद्र हैं । (९३) शम्भु, (९४) विभु, (९५) गणाध्यक्ष, (९६) त्र्यक्ष, (९७) त्रिदशवन्दित, (९८) संवाह, (९९) विवाह, (१००) लाभ,(१०१) लिप्सु, (१०२) विचक्षण, (१०३) अत्ता, (१०४) कुहक, (१०५) कालाग्नि (१०६) रुद्र, (१०७) हाटक, (१०८) कुष्माण्ड,(१०९) सत्य, (११०) ब्रह्मा, (१११) विष्णु और (११२) रुद्र ये अन्तिम आठ रुद्र ब्रह्माण्ड कटाह के भीतर अवस्थित हैं । इन्हीं के नाम पर भुवनों का नाम भी स्मरण रखना चाहिए ।। २२-२५ ।। हे गुह पाशसूत्र में निवृत्तिकला के ये अट्ठाइस पद हैं । (१) सद्भावेश्वर, (२) महातेजा, (३) योगाधिपति, (४) मुञ्चमुञ्च, (५) प्रमथ प्रमथ, (६) शर्व शर्व, (७) भव भव, (८) भवोद्भव, (९) सर्वभूत, (१०) र्सभूतसुखप्रद, (११) सर्वसान्निध्यकृत्, (१२) ब्रह्मविष्ण रुद्र पर, (१३) अर्चितानर्चित, (१४) असंस्तुतासंस्तुत, (१५) ओं पूर्वस्थित,(१६) ओं साक्षिन्, (१७) ओं रुद्रान्तक, (१८) ओं पतङ्ग, (१९) ओं शब्द, (२०) ओं सूक्ष्म, (२१) ओं शिव, (२२) ओं सर्व, (२३) ओं सर्वद, (२४) ओं सर्वसान्निध्यकर, (२५) ओं ब्रह्मविष्णारुद्रकर, (२६) ओं नमः, (२७) ओं शिवाय और (२८) ओं नमो नमः । हे स्कन्द उसमें व्यापक आकाश मन है ।। 'ओ नमो वौषट्' ये अभीष्ट मन्त्र वर्ण हैं।।२६-२९।। उसमें अकार और मकार ये दोनों बीजमन्त्र हैं । इडा और पिङ्गला नामक ये दो नाड़ियाँ हैं । प्राण और अपान ये दोनों वायु हैं घ्राण तथा उपस्थ (लिङ्ग) ये दो इन्द्रियाँ हैं । गन्ध आदि पाँच गुणों में से गन्ध नामक गुण उसका विषय है । इसका मण्डल चौकोर, पार्थिव, पीत वर्ण का तथा वज्र के चिह्न से चिह्नित होता है ।। ३० ।। इसका विस्तार सौ कोटि योजन होता है । इसी में चौदह योनियों का भी अन्तर्भाव समझना चाहिए ।। ३२ ।। प्रथम छह योनियाँ सोमदेवों की है और अन्य अश्व आदि देवयोनियाँ । यहाँ उनका विवरण इस प्रकार है- (१) मृग, (२) पशु (३) पक्षी (४) सरीसृप (५) स्थावर और (६) अमानुषी। योनि हैं, (७) पिशाच, (८) राक्षस, (९) यक्ष, (१०) गन्धर्व, (११) सौम्य, (१२) प्राजापत्य तथा ब्राह्म ये आठ देव योनियाँ हैं।

षष्ठी अमानुषी । पैशाचं राक्षसं याक्षं गान्धर्वं चैन्द्रमेव च ॥ ३४ ॥ सौम्यं प्राजेश्वरं ब्राह्मष्टमं परिकीर्तितम् । अष्टानां पार्थिवं तत्त्वमधिकारास्पदं मतम् ॥३५॥ लयस्तु प्रकृतौ बुद्धौ भोगो ब्रह्मा च कारणम् । ततो जाग्रदवस्थानैः समस्तैर्भुवनादिभिः ॥ ३६ ॥ निवृत्तिं गर्भिता ध्यात्वा स्वमन्त्रेण नियोज्य च ॥ ३७ ॥ ॐ हां हूं हां निवृत्तिकलापाशाय हूं फट् तत ॐ हां हां निवृत्तिकलापाशाय स्वाहेत्यनेनाङ्कुशमुद्रया पूरकेणाऽऽकृष्य,ॐ हूं ह्रां हूं निवृत्तिकलापाशाय हूं फडित्यनेन संहारमुद्रया कुम्भकेनाधःस्थानादादाय, ॐ ॐ हूं हां निवृतिकलापाशाय नम इत्यनेनोद्भवमुद्रया रेचकेन कुम्भे संस्थाप्य, ॐ हां निवृत्तिकलापाशाय नम इत्यनेनार्ध्यं दत्वा संपूज्य विमुखेनैव स्वाहान्तेनैव संनिधानायाऽऽहुतित्रयं संतर्पणाहुतित्रयं च दत्त्वा, ॐ हां ब्रह्मणे नम इति ब्रह्माणमावाह्य संपूज्य च स्वाहान्ते संतर्प्य ॥ ३८ ॥ ब्रह्मं स्तवाधिकारेऽस्मिन्मुमुक्षुं दीक्षयाम्यहम् । भाव्यं त्वयाऽनुकूलेन विधिं विज्ञापयेदिति ॥ ३९ ॥ आवाहयेत्ततो देवीं रक्तां वागीश्वरीं हृदा । इच्छाज्ञानक्रियारूपा षड्विधां ह्येककारणम् ॥ ४०॥ पूजयेत्तर्पयेद्देवीं प्रकारेणामुनः ततः। वागीश्वरं विनिः शेषयोनिविक्षोभकारणम् ॥ ४१ ॥ हृत्संपुटार्थबीजादिहूंफडन्तशराणुना । ताडयेद्धृये तस्य प्रविशेत्स विधानवित् ॥ ४२ ॥ ततः शिष्यस्य चैतन्यं हृदि वह्निकणोपमम् । निवृत्तिस्थं युतं पाशैर्ज्येष्ठया विभजेद्यथा । ॐहां हूं हः, हूं फट्॥४३॥ ॐ हां स्वाहेत्यनेनाथ पूरकेणांऽकुशमुद्रया । तदाकृष्य स्वमन्त्रेण गृहीत्वाऽऽत्मनि योजयेत् ॥ ४४ ॥ ओं हां हूं हमात्मने नमः पित्रोर्विभाव्य संयोगं रेचकेन तत् । ब्रह्मादिकारणत्यागक्रमान्नीत्वा शिवास्पदम् ॥ ४६ ॥ गर्भाधानार्थमादाय युगपत्सर्वयोनिषु । क्षिपेद्वागीश्वरीयोनौ वामयोद्भवमुद्रया॥४७॥

इन सबों में पार्थिव तत्त्व का आधिक्य होता है ।। ३३-३५ ।। इनका लय प्रकृति में तथा भोग बुद्धि में होता है । इनके कारण ब्रह्मा हैं। उसके पश्चात् जगत् अवस्था पर्यन्त समस्त भुवन आदि से गर्भित निवृत्ति कल का ध्यान करके उसका प्रत्येक मन्त्र में विनियोग करना चाहिए ।। ३६-३७ ।। वह मन्त्र इस प्रकार है- ओं हां हूं हां निवृत्तिकलापाशाय हूँ फट्, उसके पश्चात् ओं हां हां निवृत्तिकलापाशाय स्वाहा।' इस मन्त्र से अंकुश मुद्रा के प्रदजनपूर्वक पूरक प्राणायाम के द्वारा उक्त कला का आकर्षण करना चाहिए । ओं हूं ह्रां हूं निवृत्तिकलापाशाय हूँ फट् इस मन्त्र को पढ़कर संहारमुद्रा एवं कुम्भक प्राणायाम के द्वारा उसे नाभि के नीचे के स्थान से लेकर ओं ओं हूं हां निवृत्तिकलापाशाय नमः इस मन्त्र को पढ़कर उद्भवमुद्रा प्रदर्शनपूर्वक रेचक प्राणायाम के द्वारा उस कला को कुम्भ में स्थापित करके, ओं हां निवृत्तिकलापाशाय नमः इस मन्त्र से अर्घ्य देकर तथा अच्छी तरह से पूजन करके, ओं हां निवृत्तिकलापाशाय नमः स्वाहा, तर्पण तथा सन्निधान के उद्देश्य से पृथक्-पृथक् तीन-तीन आहुतियाँ देनी चाहिए । उसके पश्चात् ओं हां ब्रह्मणे नमः इस मन्त्र से ब्रह्मा का आवाहन तथा पूजन करके,उसी के अन्त में स्वाहा पद जोड़कर ('ओं हां ब्रह्मणे नमः स्वाहा) तीन आहुतियाँ देकर ब्रह्मा को तृप्त करना चाहिए ।। ३८ ।। इसके पश्चात् ब्रह्मा जी से निवेदन करें कि- हे ब्रह्मन् ! आपके इस अधिकार में मैं मुमुक्षु शिष्य को दीक्षा दे रहा हूँ, अतएव यह विधि आपके अनुकूल होनी चाहिए ।। ३९ ।। उसके पश्चात् हृदय मन्त्र से मन ही मन रक्तवर्ण वाली वागीश्वरी देवी का आवाहन करना चाहिए । वे इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया स्वरूप हैं तथा छह प्रकार के अध्वाओं का एक मात्र कारण हैं ।। ४० ।। उसके पश्चात् इस प्रकार से देवी का पूजन एवं तर्पण करके सम्पूर्ण योनियों में क्षोभ उत्पन्न करने वाले वागीश्वर देव का भी पूजन करना चाहिए । आदि में अपने बीज और अन्त में हूं फट् से युक्त जो अस्त्र मन्त्र है,उसी से विधानज्ञ आचार्य शिष्य के हृदय का ताडन करें और भावना के द्वारा उसके हृदय में प्रवेश करें । उसके पश्चात् हृदय के भीतर अग्निकण के समान प्रकाशमान शिष्य के जीव चैतन्य जो निवृत्ति कला में स्थित होकर पाशों से आबद्ध है, उसे ज्येष्ठा के द्वारा विभक्त करना चाहिए। ओं हां हूं हः, हूं फट्, 'ओं हां स्वाहा, इस मन्त्र से पूरक प्राणायाम तथा अंकुशमुद्रा के द्वारा उस जीव चैतन्य का आकर्षण करके,उसको आत्ममन्त्र से गृहीतकर आत्मा में संयुक्त करें । 'ओं हां हूं हामात्मने नमः' यह आत्ममन्त्र है ।। ४४-४५ ।। उसके पश्चात्, माता-पिता के संयोग का चिन्तन करके प्राणायाम के द्वारा ब्रह्मादि कारणों का क्रमशः त्याग करते हुए, उस जीव चैतन्य को शिवस्वरूप योनियों में तथा वामा, उद्भव मुद्रा के द्वारा वागीश्वरी योनि में डाल देना चाहिए ।। ४६-४७ ।। **'ओं हां हां हामात्मने नमः'** इस मन्त्र से पूजन करना चाहिए तथा पाँच प्रकार

ॐ हां हां हामात्मने नमः ॥ ४८ ॥ पूजयेदप्यनेनैव तर्पयेदपि पञ्चधा । अन्ययोनिषु सर्वासु देहशुद्धिं हृदाऽचरेत् ॥ ४९ ॥ नात्र पुंसवनं स्त्र्यादिशरीरस्यापि संभवात् । सीमन्तोन्नयनं वाऽपि दैवान्यङ्गानि देहवत् ॥ ५० ॥ शिरसा जन्म कुर्वीत युगपत्सर्वदेहिनाम् । तथैव भावयेदेषामधिकारं शिवाणुना ॥ ५१ ॥ भोगं कवचमन्त्रेण शस्त्रेण विषयात्मना । मोहरूपमभेद्यं च लयसंज्ञं विभावयेत् ॥ ५२ ॥ शिवेन स्त्रोतसां शुद्धिं हृदा तत्त्वविशोधनम् । पञ्च पञ्चाऽऽहुतीर्दद्याद्गर्भाधानादिषु क्रमात् ॥ ५३ ॥ मायया मलकर्मादिपाशबन्धनिवृत्तये । निष्कृत्यैव हृदा पश्चाद्यजेत शतमाहुतीः ॥ ५४ ॥ मलशक्तिनिरोधेन पाशानां च वियोजनम् । स्वाहान्तायुधमन्त्रेण पञ्च पञ्चाहुतीर्यजेत् ॥ ५५ ॥ मायाद्यन्तस्य पाशस्य सप्तवारास्त्रजप्तया । कर्तर्या छेदनं कुर्यात्कल्पशस्त्रेण तद्यथा ॥ ५६ ॥ ॐ हूं निवृत्तिकलापाशाय हूं फट् ॥ ५७ ॥ बन्धकत्वं च निर्वर्त्य हस्ताभ्यां च शराणुना । विसृज्य वर्तुलीकृत्य घृतपूर्णे स्त्रुवे धरेत् ॥ ५८ ॥ दहेदनुकलास्त्रेण केवलास्त्रेण भस्मसात् । कुर्यात्पञ्चाऽऽहुतीर्दत्त्वा पाशाङ्कुशनिवृत्तये॥५९॥ ॐ हः, अस्त्राय हूं फट् ॥ ६० ॥ प्रायश्चित्तं ततः कुर्यादस्त्राहुतिभिरष्टभिः । अथाऽऽवाह्य विधातारं पूजयेत्तर्पयेत्तथा॥६१॥ ततः-ॐ हां शब्दस्पर्शशुद्धब्रह्मन् गृहाण स्वाहेत्याहुतित्रयेणाधिकारमस्य समर्पयेत् ॥ ६२ ॥ दग्धनिःशेषपापस्य ब्रह्मन्नस्य पशोस्त्वया । बन्धाय न पुनः स्थेयं शिवाज्ञां श्रावयेदिति ॥ ६३ ॥ ततो विसृज्य धातारं नाड्या दक्षिणया शनैः । संहारमुद्रयाऽऽत्मानं कुम्भकेन निजाणुना ॥ ६४ ॥ राहुमुक्तैकदेशेन चन्द्रबिम्बेन संनिभम् । आदाय योजयेत्सूत्रे रेचकेनोद्भवाख्यया ॥ ६५ ॥ पूजयित्वाऽर्घ्यपात्रस्थतोयविन्दुसुधोपमम् । आप्यायनाय

से तर्पण भी करना चाहिए । इसकी सभी योनियों में हृदयमन्त्र से देहशुद्धि करना चाहिए ।। ४८-४९ ।। यहाँ पुंसवन संस्कार नहीं किया जाता क्योंकि स्त्री आदि शरीर की भी उत्पत्ति संभव है । । देह के समान देव अंगों का सीमन्तोन्नयन भी नहीं करना चाहिए ।। ५० ।। एक ही समय में सभी शरीरधारियों का शिरोमन्त्र से जन्म संस्कार करना चाहिए । उसी तरह सबों के अधिकार की भावना शिवमन्त्र से करना चाहिए ।। ५१ ।। कवच मन्त्र से भोग की, अस्त्र मन्त्र से विषय और आत्मा में मोहरूप लय नामक अभेद्य की भी भावना करनी चाहिए ।। ५२ ।। उसके पश्चात् शिवमन्त्र से स्त्रोतों की शुद्धि और हृदयमन्त्र से तत्त्वशोधन करके, गर्भाधान आदि के लिए क्रमशः पाँच-पाँच आहुतियाँ देनी चाहिए ।। ५२ ।। मायाजन्य मलजन्य तथा कर्मजन्य आदि पाशबन्धों की निवृत्ति के लिए हृदयमन्त्र से प्रायश्चित्त अथवा शुद्धि करके, अग्नि में सौ आहुति देनी चाहिए ।। ५४ ।। मलशक्ति का तिरोधन और पाशों का वियोग सम्पादित करने के लिए स्वाहान्त अस्त्रमन्त्र से पाँच-पाँच आहुति देनी चाहिए ।। ५५ ।। अन्तःकरण में स्थित मल आदि पाश का सात बार अस्त्र मन्त्र का जप कर हाथ में कटार लेकर कलाशस्त्र से छेदन करना चाहिए ।। ५६ ।। ओं हूं निवृत्ति कलापाशाय हूं फट् इस मन्त्र से बन्धन को हटाकर दोनों हाथों से अस्त्रमन्त्र से उसे मसलकर गोलाकार करके घी से भरे स्त्रुव में रखना चाहिए ।। ५८ ।। उसको अनुकला अस्त्रसे जलाकर केवलास्त्र से उसे भस्म कर देना चाहिए। उसके पश्चात् पाँच आहुति पाश बन्ध की निवृत्ति के लिए देना चाहिए ।। ५९ ।। 'ओं हः अस्त्राय हूँ फट' इस मन्त्र से आठ अस्त्र आहुति देकर प्रायश्चित्त करना चाहिए । उसके पश्चात् ब्रह्मा का आवाहन करके उनकी पूजा तथा तर्पण करना चाहिए ।। ६०-६१ ।। उसके पश्चात् ओं हां शब्दस्पर्शशुद्धब्रह्मन् गृहाण स्वाहा' इस मन्त्र से तीन आहुति देकर इसको अधिकार समर्पित करना चाहिए ।। ६२ ।। इसके पश्चात् ब्रह्माजी को शिवजी की इस आज्ञा को सुनाना चाहिए कि हे ब्रह्मन् ! इस पशु के सम्पूर्ण पाप विनष्ट हो चुके हैं अतएव आप इसे पुनः बन्धन में नहीं डालें ।। ६३ ।। उसके पश्चात् ब्रह्माजी को विदा करके संहारमुद्रा के द्वारा एवं कुम्भक प्राणायाम के द्वारा आत्ममन्त्र से राहुमुक्त चन्द्रमा के एक अंश के समान आत्मा को लेकर उद्भव मुद्रा प्रदर्शनपूर्वक रेचक प्राणायाम के द्वारा सूत्र से युक्त करना चाहिए ।। ६४-६५ ।। उसके पश्चात् अर्घ्य पत्र में स्थित अमृत के समान जल विन्दु को लेकर शिष्य की तुष्टि के लिए उसके सिर पर रख दें ।। ६६ ।। उसके पश्चात् माता-पिता का विसर्जन करके शिवमन्त्र के अन्त में वौषट् लगाकर द्वार विधि की पूर्ति के लिए पूर्णाहुति करनी

शिष्यस्य गुरुः शिरसि विन्यसेत् ॥ ६६ ॥ विसृज्य पितरौ दद्याद्वौषडन्तशिवाणुना । पूरणाय विधिः पूर्णा निवृत्तिरिति शोधिता ॥ ६७ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये निर्वाणदीक्षायां निवृत्तिकलाशोधनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

प्रतिष्ठाकलासंशोधनविधिः

ईश्वर उवाच– **तत्त्वयोरथसंधानं कुर्याच्छुद्धविशुद्धयोः । ह्रस्वदीर्घप्रयोगेण नादनादान्तसङ्गिना ॥ १ ॥ ओं हां हूं हूम् अप्तेजो वायुराकाशं तन्मात्रेन्द्रियबुद्धयः। गुणत्रयमहंकारश्चतुर्विंशः पुमानिति ॥ २ ॥ प्रतिष्ठायां निविष्टानि तत्त्वान्येतानि भावयेत् । पञ्चविंशतिसंख्यानि खादियान्ताक्षराणि च ॥ ३ ॥ पञ्चाशदधिका षड्भुवनास्तुल्यसंज्ञिताः। तावन्त एव रूद्राश्च विज्ञेयास्तत्र तद्यथा ॥ ४ ॥ अमरेशः प्रभासश्च नैमिषः पुष्करोऽपि च । तथा षादिश्च दण्डिश्च भावभूतिरथाष्टमः ॥ ५ ॥ नकुलीशो हरिश्चन्द्रः श्रीशैलो दशमः स्मृतः। अन्वीशोऽभ्रातिकेशश्च महाकालोऽथ मध्यमः ॥ ६॥ केदारो भैरवश्चैव द्वितीयाष्टकमीरितम् । ततो गयाकुरुक्षेत्रखलानादिकनादिके ॥ ७ ॥ विमलश्चाट्टहासश्च माहेन्द्रो भीम एव च । वस्वापदं रुद्रकोटिरवियुक्तो महाबलः॥ ८ ॥ गोकर्णो भद्रकर्णश्च स्वर्णाक्षः स्थाणुरेव च । अजेशश्चैव सर्वज्ञो भास्वरस्तदनन्ततः॥ ९॥ सुबाहुमन्द्ररूपी च विशालो जटिलस्तथा । रौद्रोऽथ पिङ्गलाक्षश्च कालदंष्ट्री भवेत्ततः॥ १०॥ विदुरश्चैव घोरश्च प्राजापत्यो हुताशनः । कामरूपी तथा कालः कर्णोऽप्यथ भयानकः ॥ ११॥ मतङ्ग पिङ्गलश्चैव हरो वै धातृसंज्ञकः ।शङ्कुकर्णो विधानश्च श्रीकण्ठश्चन्द्रशूलिना ॥ १२॥ सहैतेन च पर्यन्ताः कथ्यन्तेऽथ**

चाहिए । इस तरह से निवृत्तिकला की शुद्धि हे जाती है । (ओं हूं हां अमुक आत्मने निवृत्तिकला शुद्धिरस्तु स्वाहा फट् वौषट्') यह पूर्णाहुति का मन्त्र होगा ।। ६७ ।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का निर्वाण दीक्षा के अन्तर्गत निवृत्ति कला शोधन नामक चौरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८४ ॥

श्रीशिवजी ने कहा– उसके पश्चात् नाद तथा घोष प्रयत्नों वाले ह्रस्व तथा दीर्घ वर्णों के प्रयोग से शुद्ध तथा अविशुद्ध दोनों प्रकार के तत्त्वों को 'ओं हां हूं हाम्' इस मन्त्र से जोड़ने की भावना करनी चाहिए ।। १ ।। २ ।। उसके पश्चात् जल, तेज,वायु,आकाश इन चार भूतों दस इन्द्रियाँ चार तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ, बुद्धि, सत्त्व, रज,तम,अहङ्कार तथा चौबीसवाँ पुरुष ये सबके सब तत्त्व प्रतिष्ठा कला में निविष्ट हैं, इस तरह की भावना करनी चाहिए । ख से लेकर य तक पच्चीस अक्षर, छप्पन भुवन और उन्हीं के नाम के समान नाम वाले उतने ही रुद्रों की भी प्रतिष्ठा कला में निविष्ट समझना चाहिए ।। ३-५ ।। अमरेश, प्रभास, नैमिष, पुष्कर, आषाद दण्डी, भवभूति, तथा अठवें कुलीश, हरिश्चन्द्र तथा दसवाँ श्री शैलरुद्र हैं । अन्वीश, आभ्रातिकेश्वर, महाकाल, मध्यम केदार तथा भैरव ये द्वितीय अष्टक के रुद्र हैं । इसके पश्चात् गया, कुरुक्षेत्र, खल, अनादिक, नादिक, विमल, चाटुहास, महेन्द्र, भीम, वस्वापद्र, रुद्रकोटि, अविसयुक्त, महाबल, गोकर्ण, भद्रकर्ण, स्वर्णाक्ष, स्थाणु, अजेश, सर्वज्ञ, भास्वरतदनान्तर, सुबाहु, मन्द्ररूपी, विशाल, जटिल, रौद्र, पिङ्गलाक्ष, कालादंष्ट्री, विदुर, घोर प्राजापत्य हुताशन, कामरूपी,काल, कर्ण, भयानक, मतङ्ग,पिङ्गल, हर, धातृसंज्ञक, शङ्कुकर्ण, विधान, श्रीकण्ठ और चन्द्रशूली यह रुद्रों का नाम है । अब पदों को भी बतलाया जा रहा है ।। ११-१३ ।। ओं व्यापिन्, ओं अरूपिन्, ओं प्रमथ, ओं तेजः, ओं ज्योतिः, ओं अरूप,ओं पुरुष, ओं अग्ने, ओं धूम, ओं भस्मन् ओं अनादि ओं नाना ओं, धू धू, ओं भूः, ओं भुवः, ओं स्वः, ओं अनिधन, निधन,उद्भव,शिव,शर्व,

पदान्यपि ॥ १३ ॥ ॐ व्यापिन् ओं अरूपिन् ॐ प्रमथ, ॐ तेजः, ॐ ज्योतिः, ॐ पुरुष, ओमग्ने, ॐधूम, ओम्भस्म (न्), ॐअनादि, ॐ नाना, ॐ धू धू, ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, अनिधन निधन, उद्भव शिव शर्व परमात्मन् महेश्वर महादेव सद्भाव ईश्वर महातेजः, भोगाधिपते मुञ्च प्रमथ सर्व सर्व सर्वेति द्वात्रिंशत्पदानि ॥ १४ ॥ वी (बी) जभावे त्रयोमन्त्रा वामदेवः शिवः शिखा । गान्धारी च सुषुम्णा च नाड्यो द्वौ मारुतौ तथा ॥ १५ ॥ समानोदाननामानौ रसना पायुरिन्द्रिये । रसस्तु विषयो रूपशब्दस्पर्शरसा गुणाः ॥ १६ ॥ मण्डलं वर्तुलं तच्च पुण्डरीकाङ्कितं सितम् । स्वप्नावस्था प्रतिष्ठायां कारणं गरुडध्वजम् ॥ १७ ॥ प्रतिष्ठान्तर्गतं सर्वं संचिन्त्य भुवनादिकम् । सूत्रं देहेऽथ मन्त्रेण प्रविश्यैनां वियोजयेत॥१८॥ ॐ हां ह्रीं हां प्रतिष्ठाकलापाशाय, ॐ फट् । स्वाहान्तेनानेनैव पूरकेणाङ्कुशमुद्रया समाकर्षेत् । ततः ॐ ह्रां हूं ह्रां प्रतिष्ठाकलापाशाय हूं फडित्यनेन संहारमुद्रया कुम्भकेन हृदयादधो नाभिसूत्रादादाय, ॐ हां हूं हां हां प्रतिष्ठाकलापाशाय नम इत्येनेनोद्भवमुद्रया रेचकेन कुम्भे समारोपयेत् । ॐहां ह्रीं प्रतिष्ठाकलापाशाय नम इत्यनेनार्चयित्वा संपूज्य स्वाहान्तेनाऽऽहुतीनां त्रयेण संनिधाय ततः- ॐ हां विष्णवे नम इति विष्णुमावाह्य संपूज्य संतर्प्य ॥ १९ ॥ विष्णो तवाधिकारेऽस्मिन्मुमुक्षुं दीक्षयाम्यहं । भाव्यं त्वयाऽनुकूलेन विष्णुं विज्ञापयेदिति ॥ २० ॥ ततो वागीश्वरीं देवीं वागीशमपि पूर्ववत् । आवाह्याभ्यर्च्य संतर्प्य शिष्यं वक्षसि ताडयेत् ॥ २१ ॥ ॐ हां हां हं फट् ॥ २२ ॥ प्रविशेदप्यनेनैव चैतन्यं विभजेत्ततः । शस्त्रेण पाशसंयुक्तं ज्येष्ठयाऽङ्कुशमुद्रया ॥ २३ ॥ ॐ हां हां हों हूं फट् ॥ २४ ॥ स्वाहान्तेन हृदाऽऽकृष्य तेनैव पुटितात्मना । गृहीत्वा तं नमोन्तेन निजात्मनि नियोजयेत् ॥ २५ ॥ ॐ हां हां होमात्मने नमः॥२६॥ पूर्ववत्पितृसंयोगं भावयित्वोद्भवाख्यया । वामया तदनेनैव

परमात्मन्, महेश्वर, महादेव,सद्भाव, ईश्वर महातेज, भोगाधिपते, मुञ्च, प्रमथ, सर्वसर्व सर्व ये बत्तीस पद हैं ।। १४ ।। प्रतिष्ठा कला के बीज रूप से तीन मन्त्र हैं- वामदेवमन्त्र, शिरोमन्त्र तथा शिखामन्त्र । उसमें दो नाड़ियाँ हैं- गान्धारी तथा सुषुम्णा तथा दो वायु हैं समान और उदान एवं इन्द्रियाँ भी दो हैं- रसनेन्द्रिय तथा मलेन्द्रिय । उसका विषय रस है तथा उसमें रूप, शब्द, स्पर्श तथा रस ये चार गुण विद्यमान पुण्डरीक के चिह्न से चिह्नित धवल वर्ण के गोल मण्डल, स्वप्नावस्था तथा गरुड़ध्वज भगवान् का कारण रूप से ध्यान करना चाहिए ।। १५-१७।। प्रतिष्ठा कला के अन्तर्गत सम्पूर्ण भुवन आदि का ध्यान करें । मन्त्र के द्वारा भावनापूर्वक शरीर में प्रवेश करके उसे उस कलापाश से मुक्त करना चाहिए ।। १८ ।। ओं हां ह्रीं प्रतिष्ठाकलापाशाय ओं फट् स्वाहा' इस स्वाहान्त मन्त्र के द्वारा ही पूरक प्राणायाम तथा अंकुश मुद्रा के द्वारा उस कलापाश का आकर्षण करना चाहिए। उसके पश्चात् ओं हां हूँ हां हूँ प्रतिष्ठाकलापाशाय हूँ फट् इस मन्त्र के द्वारा संहार मुद्रापूर्वक कुम्भक प्राणायाम से उसे हृदय से नीचे नाभिसूत्र से लेकर ओं हाँ हूँ हां हां प्रतिष्ठाकलापाशाय नमः इस मन्त्र से उद्भव मुद्रापूर्वक रेचक प्रणायाम से उसे कलश में स्थापित करना चाहिए । ओं हां ह्रीं प्रतिष्ठाकलापाशाय नमः इस मन्त्रसे अर्चना तथा अच्छी तरह से पूजन करके इसी मन्त्र के अन्त में स्वाहा पद लगाकर सन्निधान के लिए तीन आहुति देनी चाहिए । उसके पश्चात् 'ओं हां विष्णवे नमः' इस मन्त्र से विष्णु का आवाहन, पूजन और संतर्पण करके इस प्रकार से प्रार्थना करना चाहिए- हे भगवन् ! विष्णो ! मैं आपके अधिकार में मैं मुमुक्षु शिष्य को दीक्षा दे रहा हूँ । आप सदा अनुकूल रहें ।। १९-२० ।। इसके पश्चात् वागीश्वरी देवी तथा वागीश की भी पहले के ही समान, आवाहन, पूजन तथा संतर्पण करके शिष्य के हृदय में ताडन करना चाहिए ।। २१ ।। 'ओं हां हं हं फट् यह ताडन का मन्त्र है । इसी मन्त्र से शिष्य के हृदय में प्रवेश करके उसके पाशबद्ध चैतन्य को अस्त्र मन्त्र ज्येष्ठा अंकुश मुद्रा के द्वारा 'ओं हं हं ह्रों हूं फट् स्वाहा' इस मन्त्र से हृदय से निकालकर उसी मन्त्र के अन्त में 'नमः स्वाहा' जोड़कर उससे सम्पुटित मन्त्र के द्वारा जीव चैतन्य को पकड़कर आत्मा में संयुक्त करना चाहिए । ओं हां हं होमात्मने नमः' यह आत्मा में नियोजन का मन्त्र है ।। २२-२६ ।। पहले के ही समान उस जीव चैतन्य के पिता से संयुक्त होने की भावना करके, वामा उद्भव मुद्रा द्वारा

देवीगर्भे निक्षिपेत् ॥ २७ ॥ ॐ हां हं हं हामात्मने नमः ॥ २८ ॥ देहोत्पतौ हृदा ह्येवं शिरसा जन्मना तथा। शिखया वाऽधिकाराय भोगाय कवचाणुना ॥ २९ ॥ तत्त्वशुद्धौ हृदा ह्येवं गर्भाधानाय पूर्ववत्। शिरसा पाशशैथिल्ये निष्कृत्यैवं शतं जपेत् ॥ ३० ॥ एवं पाशवियोगेऽपि ततः शस्त्रात्मजप्तया। छिन्द्यादस्त्रेण कर्तर्या कला बीजवता यथा ॥ ३१॥ ॐह्रीं प्रतिष्ठाकलापाशाय हः फट्॥ ३२॥ विमृज्य वर्तुलीकृत्य पाशमस्त्रेण पूर्ववत्। घृतपूर्णे स्रुवे दत्त्वा कलास्त्रेणैव होमयेत् ॥ ३३ ॥ अस्त्रेण जुहुयात्पञ्च पाशाङ्कुशनिवृत्तये।प्रायश्चित्तनिषेधार्थं दद्यादष्टाऽऽहुतीस्ततः॥३४॥ ॐ हः, अस्त्राय हूं फट् ॥ ३५ ॥ हृदाऽऽवाह्य हृषीकेशं कृत्वा पूजनतर्पणे। पूर्वोक्तविधिना कुर्यादधिकारसमर्पणम् ॥ ३६ ॥ ॐ हां रसशुल्कं गृहाण स्वाहा ॥ ३७ ॥ निःशेषदग्धपाशस्य पशोरस्य हरे त्वया। न स्थेयं बन्धकत्वेन शिवाज्ञां श्रावयेदिति ॥ ३८ ॥ ततो विसृज्य गोविन्दं विद्यात्मानं नियोज्य च। राहुमुक्तार्धदृश्येन चन्द्रबिम्बेन संनिभम् ॥ ३९ ॥ संहारमुद्रया स्वस्थं विधायोद्भवमुद्रया। सूत्रे संयोज्य विन्यस्य तोयविन्दुं यथा पुरा ॥ ४० ॥ विसृज्य पितरौ वह्नेः पूजितौ कुसुमादिभिः। दद्यात्पूर्णां विधानेन प्रतिष्ठाऽपि विशोधिता ॥ ४१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये निर्वाणदीक्षायां प्रतिष्ठाकलासंशोधनविधिकथनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

उसे देवी के गर्भ में स्थापित करना चाहिए ।। २७ ।। देवी के गर्भ में स्थापित करने का मन्त्र 'ओं हां हं होमात्मने नमः।' ।। २८ ।। देहोत्पत्ति के लिए हृदयमन्त्र से, जीवात्मा के जन्म के लिए शिरोमन्त्र से, अधिकार प्राप्ति के लिए शिखामन्त्र से तथा भोग प्राप्ति के लिए कवच मन्त्रसे पाँच-पाँच बार हवन करना चाहिए ।। २९ ।। इसी तरह से तत्त्व की शुद्धि के लिए हृदयमन्त्र से, तथा पहले के ही समान गर्भाधान के लिए हृदयमन्त्र से संस्कार करना चाहिए। पाश की शिथिलता तथा प्रायश्चित्त के लिए शिरोमन्त्र का सौ बार जप करना चाहिए ।। ३० ।। इस प्रकार से पाश का वियोग हो जाने पर भी सत बार अस्त्र मन्त्र के जपपूर्वक कला बीज से युक्त अस्त्र मन्त्र रूपी कटार से उस कलापाश को काट डालना चाहिए ।। ३२ ।। ओं ह्रीं प्रतिष्ठाकलापाशाय हः फट् ।।' यह कलापाश के काटने का मन्त्र है। फिर अस्त्र मन्त्र से पाश को गोल करके पहले के ही समान मसल देना चाहिए और घी से भरे स्रुवा में उसे डालकर कला मन्त्र से हवन करना चाहिए ।। ३३ ।। पाश तथा अंकुश की निवृत्ति के लिए अस्त्र मन्त्रसे पाँच आहुति देनी चाहिए। उसके पश्चात् प्रायश्चित्त की निवृत्ति के लिए, आठ आहुतियाँ देनी चाहिए ।। ३४ ।। 'ओं हः अस्त्राय हूँ फट्' यह आहुति का मन्त्र है ।। ३५ ।। हृदयमन्त्र से भगवान् हृषीकेश का आवाहन करके उनका पूजन तथा तर्पण करना चाहिए। पुनः पूर्वोक्त विधि से अधिकार समर्पण का काम करना चाहिए ।। ३६ ।। अधिकार समर्पण का मन्त्र है- 'ओं हां रसशुल्कं गृहाण स्वाहा' है ।। ३७ ।। उसके पश्चात् यह शिवजी की आज्ञा सुनानी चाहिए कि- हे हरे ! इस पशु (जीव) का सारा पाश भस्म हो चुका है अतएव आप इसके बन्धक न बनें ।। ३८ ।। इसके बाद भगवान् गोविन्द का विसर्जन करके राहु से मुक्त आधे चन्द्र विम्ब के समान विद्यात्मा को नियुक्त करें ।। ३९ ।। संहारमुद्रा के द्वारा उसे आत्मस्थ करके उद्भव मुद्रा के द्वारा उसे सूत्रसे संयुक्त करना चाहिए। पहले के ही समान जल के विन्दुओं को शिष्यों के सिर पर विन्यस्त करके पूजित माता-पिता को विसर्जित करके अग्नि की पुष्प आदि से पूजा करके विधिपूर्वक पूर्णाहुति देनी चाहिए। इस तरह से प्रतिष्ठा कला की भी शुद्धि हो गयी ।। ४०-४१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का प्रतिष्ठाकला संशोधन विधि वर्णन नामक पच्चासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८५ ॥

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

विद्यासंशोधनविधिः

ईश्वर उवाच– **संधानमथ विद्यायाः प्राचीनकलया सह । कुर्वीत पूर्ववत्कृत्वा तत्त्वं वर्णय तद्यथा ॥ १ । ॐ हों क्षौमिति संधानम् ॥ २ ॥ रागश्च शुद्धविद्या च नियतिः कलया सह । कालो माया तथाऽविद्या तत्त्वानामिति सप्तकम् ॥ ३ ॥ रलवाः शषसा वर्णाः षड्विद्यायां प्रकीर्तिताः। पदानि प्रणवादीनि एकविंशतिसंख्यया ॥ ४ ॥ ॐ नमः शिवाय सर्वप्रभवे शिवायेशानसूर्याय तत्पुरुषवक्त्रायाघोरहृदयाय वामदेवगुह्याय सद्योजातमूर्तय ॐ वक्त्रायाघोरहृदयाय वामदेवगुह्याय सद्योजातमूर्तय ॐ नमो नमो गुह्यातिगुह्याय गोप्त्रेऽनिधनाय सर्वाधिपाय ज्योतीरूपाय परमेश्वराय भावेन, ॐ व्योमन् ॥ ५ ॥ ॐ रुद्राणां भुवनानां च स्वरूपमथ कथ्यते । प्रमथो वामदेवः स्यात् सर्वदेवोभवोद्भवः ॥ ६ ॥ वज्रदेहः प्रभुर्धाता क्रमविक्रमसुप्रभाः । वटुः प्रशान्तनामा च परमाक्षरसंज्ञकः ॥ ७ ॥ शिवश्च सशिवो बभ्रु रक्षय शंभुरेव च । अदृष्टरूपनामानौ तथाऽन्यो रूपवर्धनः ॥ ८ ॥ मनोन्मनो महावीर्यश्चित्राङ्गस्तदनन्तरम् । कल्याण इति विज्ञेयाः पञ्चविंशतिसंख्यया ॥ ९ ॥ मन्त्रोघोरोमरौ बीजौ नाड्यौ द्वे तत्र ते यथा । पूषा च हस्तिजिह्वा च व्याननागौ प्रभञ्जनौ ॥ १० ॥ विषयो रूपमेवैकमिन्द्रिये पादचक्षुषी । शब्दः स्पर्शश्च रूपं च त्रय एते गुणाः स्मृताः॥११॥ अवस्थाऽत्र सुषुप्तिश्च रुद्रो देवस्तु कारणम् । विद्यामध्यगतं सर्वं भावयेद्भुवनादिकम् ॥ १२ ॥ ताडनं छेदनं तत्र प्रवेशं च वियोजनम् । आकृष्य ग्रहणं कुर्याद्विद्यया हृत्प्रदेशतः ॥ १३ ॥ आत्मन्यारोप्य संगृह्य कलां कुण्डे निवेशयेत् । वामया योजयेद्योनौ गृहीत्वा द्वादशान्ततः ॥ १४ ॥ कुर्वीत देहसंपत्तिं जन्माधिकारमेव च । भोगं लयं तथा स्रोतः शुद्धिस्तत्त्वविशोधनम् ॥ १५ ॥ निःशेषमलकर्मादिपाशबन्धनिवृत्तये। निष्कृत्यैव विधानेन यजेत शतमाहुतीः ॥ १६ ॥ अस्त्रेण पाशशैथिल्यं मलशक्तितिरोहितम् । छेदनं मर्दनं तेषां वर्तुलीकरणं तथा ॥ १७ ॥ दाहं**

श्री शिवजी ने कहा– पूर्ववर्तिनी प्रतिष्ठा कला के साथ विद्याकला का पूर्ववत् सन्धान तथा तत्त्वों एवं वर्णों का चिन्तन 'ओं हों क्षौम्' इस मन्त्र से करना चाहिए ।। १-२ ।। विद्या कला में राग, शुद्ध, विद्या, नियति, कला, काल, माया तथा अविद्या ये सात तत्त्व तथा र, ल, व, श, ष, स ये छह वर्ण बतलाए गये हैं । साथ ही ओं प्रणव आदि इक्कीस वर्ण भी इसमें बतलाए गए हैं ।। ३-४ ।। ओं नमः शिवाय सर्वप्रभवे शिवाय ईशानसूर्याय तत्पुरुष वक्त्राय अघोर हृदयाय वामदेवगुह्याय सद्योजातमूर्तये । ओं नमो नमो गुह्यातिगुह्याय गोप्त्रे अनिधनाय सर्वाधिपाय ज्योतीरूपाय परमेश्वराय भावेन ओं व्योमन् ।। ५ ।। अब रुद्रों तथा भुवनों का स्वरूप बतलाया जा रहा है । प्रमथ, वामदेव, सर्वदेवोद्भव, भवोद्भव, वज्रदेह, प्रभु, धाता, क्रम, विक्रम, सुप्रभ, वटु, प्रशान्त, परमाक्षर, शिव,सुशिव, बभ्रू, अक्षय, शम्भु, अदृष्ट रूप, अदृष्ट नाम, रूपवर्धन,मनोन्मन, महावीर्य, चित्राङ्ग तथा कल्याण ये पच्चीस रुद्रों तथा भुवनों के नाम हैं ।। ६-९ ।। विद्याकला में अघोर मन्त्र तथा म एवं र दो बीज हैं, पूषा तथा हस्तिजिह्वा ये दो नाड़ियाँ हैं, ब्यान एवं नाग ये दो वायु हैं, रूप नामक एक विषय है तथा पादेन्द्रिय एवं चक्षुरिन्द्रिय दो इन्द्रियाँ हैं । इसमें तीन गुण बतलाए गए हैं, शब्द, स्पर्श एवं रूप ।। १०-११ ।। इसमें सुषुप्ति अवस्था तथा रुद्रदेव कारण हैं । भावना के द्वारा विद्या के भीतर ही भुवन आदि समस्त वस्तुओं का ध्यान करना चाहिए ।। १२ ।। शिष्य के हृदय में ताडन, कलापाश का छेदन, शिष्य के हृदय में प्रवेश, उसके जीव चैतन्य का पाशबन्ध से वियोजन, तथा हृदय प्रदेश से जीव चैतन्य का आकर्षण एवं ग्रहण करना चाहिए ।। १३ ।। इसके पश्चात् सम्पूर्ण मलों तथा कर्म आदि के पाशों से निवृत्ति के लिए, देह सम्पत्ति, जन्म, अधिकार, भोगलय, स्रोतःशुद्धि तथा तत्त्वशुद्धि करना

तदक्षराभावं प्रायश्चित्तमथोदितम् । रुद्रावाहनं पूजा रूपगन्धसमर्पणम् ॥ १८ ॥ ॐ हां रूपगन्धो शुल्कं रुद्र गृहाण स्वाहा ॥ १९ ॥ संश्राव्य शाम्भवीमाज्ञां रुद्रं विसृज्य कारणम् । विधायऽऽत्मनि चैतन्यं पाशसूत्रं निवेशयेत् ॥ २० ॥ विन्दुं शिरसि विन्यस्य विसृजेत्पितरौ ततः । दद्यात्पूर्णां विधानेन समस्तविधिपूरणीम् ॥ २१ ॥ पूर्वोक्तविधिना कार्यं विद्यायां ताडनादिकम् । स्वबीजं तु विशेषः स्यादिति विद्या विशोधिता ॥ २२ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये निर्वाणदीक्षायां विद्याशोधनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

शान्तिशोधनम्

ईश्वर उवाच— **संदध्यादधुना विद्यां शान्त्या सार्धं यथाविधि । शान्तौ तत्त्वत्रयं लीनं भावेश्वरसदाशिवौ ॥ १ ॥ हकारश्च क्षकारश्च द्वौ वर्णौ परिकीर्तितौ । रुद्राः समाननामानो भुवनैः सह तद्यथा ॥ २ ॥ प्रभवः समयः क्षुद्रो विमलः शिव इत्यपि । घनौ निरञ्जनाकारौ श्वशुरौ दीप्तकारणौ॥३॥ त्रिदशेश्वरनामा च त्रिदशः कालसंज्ञकः । सूक्ष्माम्बुजेश्वरश्चेति रुद्राः शान्तौ प्रतिष्ठिताः ॥ ४ ॥ व्योमव्यापिने व्योमव्याप्यरूपाय सर्वव्यापिने शिवायानन्तायानाथायानाश्रिताय ध्रुवाय शाश्वताय योगपीठसंस्थिताय नित्ययोगिने ध्यानाहारायेति द्वादशपदानि ॥ ५ ॥ पुरुषः कवचोमन्त्रो बीजे विन्दूपकारकौ । अलम्बुषायशानाड्यौ वायूकृकरकूर्मकौ ॥ ६ ॥ इन्द्रिये त्वक्करावस्याः स्पर्शस्तु विषयो मतः । गुणौ स्पर्शनिनादौ द्वावेकः**

चाहिए । पुनः प्रायश्चित्त के लिए विधिपूर्वक सौ आहुति देनी चाहिए ।। १५-१६ ।। इसके पश्चात् अस्त्र मन्त्र से पाश की शिथिलता, मलशक्ति का तिरोधान, छेदन,मर्दन,वर्तुलीकरण (गोल बनाना) दाहन अक्षराभाव तथा प्रायश्चित्त करना चाहिए । उसके पश्चात् रुद्रों का आवाहन, पूजन करके उन्हें रूप एवं गन्ध समर्पित करना चाहिए ।। १७-१८ ।। ओं हां रूपगन्धौ शुल्क रुद्र गृहाण; यह रूप एवं गन्ध के समर्पण का मन्त्र है ।। १९ ।। पुनः शिवाज्ञा को सुनाकर कारण रुद्र का विसर्जन करके जीव चैतन्य का आत्मा में स्थापन करना चाहिए और उसे पाशसूत्र में निवेशित करना चाहिए । पुनः जल विन्दु स्वरूप उस चैतन्य का शिष्य के सिर पर विन्यास करके माता-पिता का विसर्जन करना चाहिए । तदनन्तर सम्पूर्ण विधान को पूर्ण करने वाली पूर्णाहुति देनी चाहिए ।। २०-२१ ।। पूर्वोक्त विधि से ही विद्याकला में ताडन आदि करना चाहिए । इसमें विद्याकला के बीज का ही उपयोग करना चाहिए यही इसकी विशेषता है । इस तरह से विद्याकला की शुद्धि हो जाती है ।। २२ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का निर्वाण दीक्षा के अन्तर्गत विद्याशोधन नामक छियासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८६ ॥

श्री शिवजी ने कहा— अब शान्ति कला के साथ विद्याकला का विधिपूर्वक अनुसन्धान करना चाहिए । शान्तिकला में तीन तत्त्व लीन हैं- भाव, ईश्वर तथा सदाशिव ।। १ ।। उसमें दो वर्ण बतलाए गए हैं– हकार तथा क्षकार । इसमें विद्यमान रुद्रों के भी वे ही नाम हैं जो नाम भुवनों के हैं ।। २ ।। प्रभव, समय,क्षुद्र, विमल, शिव, घन, निरञ्जन, अङ्गार, सुशिरा,दीप्त, कारण,त्रिदशेश्वर, कालसूक्ष्म तथा अम्बुजेश्वर । ये चौदह रुद्र शान्तिकला में प्रतिष्ठित हैं ।। ३-४ ।। शान्तिकला में बारह पद विद्यमान हैं- व्योमव्यापिने, व्योमव्याप्यरूपाय, सर्वव्यापिने, शिवाय, अनन्ताय, अनाथाय, अनाश्रिताय, ध्रुवाय, शाश्वताय, योगपीठ संस्थिताय,नित्ययोगिने तथा ध्यानाहाराय ।। ५ ।। पुरुष तथा कवच ये दो मन्त्र हैं, विन्दु तथा पकार ये दो बीज मन्त्र हैं । अलम्बुषा तथा यशा ये दो नाड़ियाँ हैं, कृकर तथा कूर्म ये दो वायु हैं ।। ६ ।। वाणी तथा त्वक् ये दो इन्द्रियाँ हैं । स्पर्श उसका विषय है । स्पर्श तथा शब्द ये दो गुण हैं और ईश्वर ही कारण हैं ।।७।।

कारणमीश्वरः ॥ ७ ॥ तुर्यावस्थितिशान्तिस्थं संभाव्य भुवनादिकम् । विदध्यात्ताडनं भेदं प्रवेशं च वियोजनम् ॥ ८ ॥ आकृष्य ग्रहणं कुर्याच्छान्तेर्वदनसूत्रतः । आत्मन्यारोप्य संगृह्य कलां कुण्डे निवेशयेत् ॥ ९ ॥ ईश तवाधिकारेऽस्मिन्मुमुक्षुं दीक्षयाम्यहम् । भाव्यं त्वयाऽनुकूलेन कुर्याद्विज्ञापनामिति ॥ १० ॥ आवाहनादिकं पित्रोः शिष्यस्य ताडनादिकम् । विधायाऽऽदाय चैतन्यं विधिनाऽऽत्मनि योजयेत् ॥ ११ ॥ पूर्ववत्पितृसंयोगं भावयित्वोद्भवाख्यया । हृत्संपुटात्मबीजेन देवीगर्भे नियोजयेत् ॥ १२ ॥ देहोत्पत्तौ हृदा पञ्च शिरसा जन्महेतवे । शिखया वाऽधिकाराय भोगाय कवचाणुना ॥ १३ ॥ लयाय शस्त्रमन्त्रेण स्रोतः शुद्धौ शिवेन च । तत्त्वशुद्धौ हृदा ह्येवं गर्भाधानादि पूर्ववत् । १४ ॥ वर्मणा पाशशैथिल्यं निष्कृत्यैवं शतं यजेत् । मलशक्तितिरोधाने शस्त्रेणाऽऽहुतिपञ्चकम् ॥ १५ ॥ एवं पाशवियोगेऽपि ततः सप्तास्त्रजप्तया। छिन्द्याच्छस्त्रेण कर्तर्या पाशान्बीजवता यथा ॥ १६ ॥ ॐ हौं शान्तिकलापाशाय हः, हूं फट् ॥ १७ ॥ विमृज्य वर्तुलीकृत्य पाशमस्त्रेण पूर्ववत्। घृतपूर्णे स्रुवे दत्त्वा कलास्त्रेणैव होमयेत् ॥ १८ ॥ अस्त्रेण जुहुयात्पञ्च पाशाङ्कुशनिवृत्तये । प्रायश्चित्तनिषेधाय दद्यादष्टाऽऽहुतीरथ ॥ १९ ॥ ॐ हः, अस्त्राय हूं फट् ॥ २० ॥ हृदेश्वरं समावाह्य कृत्वा पूजनतर्पणे । विदधीत विधानेन तस्मै शुल्कसमर्पणम् ॥ २१ ॥ निःशेषदग्धपाशस्य पशोरस्येश्वर त्वया । न स्थेयं बन्धकत्वेन शिवाज्ञां श्रावयेदिति॥२३॥ विसृजेदीश्वरं देवं रौद्रात्मानं नियोजयेत् । ईशश्चन्द्रमिवाऽऽत्मानं । विधिनात्मनि

शान्तिकला में तुरीयावस्था विद्यमान रहती है । इस तरह से इसमें भुवन आदि की भावना करके शिष्य के हृदय का ताडन, कला पाश का भेदन, शिष्य के हृदय में प्रवेश तथा जीव चैतन्य का पाशबन्ध से विमोचन करना चाहिए ।। ८ ।। पुनः शान्तिकला के मुख्य सूत्र से आकर्षण करके ग्रहण तथा आत्मा में आरोपण करना चाहिए । फिर उसका संग्रह करके कला को कुण्ड में स्थापित करना चाहिए ।। ९ ।। उस समय यह निवेदन करना चाहिए कि हे ईश आपके अधिकार में मैं मुमुक्षु को दीक्षित कर रहा हूँ अतएव आप इसके अनुकूल बनें रहें ।। १० ।। माता-पिता का आवाहन आदि तथा शिष्य का ताडन आदि करके, जीव चैतन्य को विधिपूर्वक ग्रहण करके उसे आत्मा में संयुक्त करना चाहिए ।। ११ ।। उद्भव मुद्रा के प्रदर्शनपूर्वक पहले के ही समान पितृसंयोग की भावना करनी चाहिए । उसके पश्चात् हृदयमन्त्र से संपुटित आत्ममन्त्र के द्वारा उसको वागीश्वरी देवी के गर्भ में भावनापूर्वक डालना चाहिए ।। १२ ।। देहोत्पत्ति के लिए हृदयमन्त्र से पाँच बार, जन्म के लिए शिरोमन्त्र से पाँच बार, अधिकार प्राप्ति के लिए शिखामन्त्र से पाँच बार तथा भोग प्राप्ति के लिए कवचमन्त्र से पाँच बार हवन करना चाहिए । लय के लिए अस्त्र मन्त्र से, तथा स्रोतः शुद्धि लिए शिवमन्त्र से हवन करना चाहिए । इसी तरह से हृदयमन्त्र से तत्त्वशुद्धि और उपर्युक्त रीति से गर्भाधानादि संस्कारों को करना चाहिए ।। १४ ।। कवच मन्त्र से पाश को शिथिल करना चाहिए तथा प्रायश्चित्त के लिए उसे सौ बार जपना चाहिए । मानवशक्ति का तिरोधान करने के लिए अस्त्र-मन्त्र से पाँच आहुति देनी चाहिए ।। १५ ।। इसी प्रकार से जीव चैतन्य से पाश का विमोचन करने में भी करना चाहिए । फिर सात बार बीज से युक्त अस्त्रमन्त्र के जप से अभिमन्त्रित कटार के द्वारा पाश का छेदन करना चाहिए ।। १६ ।। ओं हौं शान्तिकलापाशाय, हूँ फट्' यह पाशच्छेद का मन्त्र है ।। १७ ।। पहले के ही समान अस्त्रमन्त्र से पाश को मसलकर तथा गोल बनाकर उसे घी से भरे स्रुवा में रखकर अस्त्र कला के द्वारा हवन करना चाहिए ।। १८ ।। पाश तथा अंकुश की निवृत्ति के लिए अस्त्र मन्त्र से पाँच बार हवन करना चाहिए । उसके पश्चात् प्रायश्चित्त की निवृत्ति के लिए आठ आहुति देनी चाहिए ।।१९।। 'ओं हः अस्त्राय फट्' यह उसका मन्त्र है ।। २० ।। उसके पश्चात् हृदेश्वर का आवाहन करके उनका पूजन तथा तर्पण करके विधिपूर्वक उनको शुल्क समर्पित करना चाहिए ।। २१ ।। 'ओं हामीश्वर बुद्ध्यंहंकारौ शुल्कं गृहाण स्वाहा ।। २२ ।। पुनः ईश्वर को यह शिव की आज्ञा सुनानी चाहिए कि- हे ईश्वर ! इस पशु (जीव) के सारे पाप भस्म हो चके हैं अतएव आप इसके लिए बन्धन कारक नहीं बनें ।। २३ ।। इसके पश्चात् ईश्वर का विसर्जन करके रुद्रात्मक नियोजन करे । पुनः ईश तथा चन्द्रमा के समान विधिपूर्वक आत्मा में उसका योग कराएँ । पुनः शुद्ध उद्भव

योजयेत् ॥ २४ ॥ सूत्रे संयोजयेदेनं शुद्धयोद्भवमुद्रया । दद्यान्मूलेन शिष्यस्य शिरस्यमृतबिन्दुकम् ॥ २५ ॥ विसृज्य पितरौ वह्नेः पूजितौ कुसुमादिभिः । दद्यात्पूर्णां विधानज्ञो निःशेषविधिपूरणीम् ॥ २६ ॥ अस्यामपि विधातव्यं पूर्ववत्ताडनादिकम् । स्वबीजं तु विशेषः स्याच्छुद्धिः शान्तेरपीडिता ॥ २७ ॥

इत्याग्नेये महापुराणे निर्वाणदीक्षायां शान्तिशोधनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

निर्वाणदीक्षाशेषविधिः

ईश्वर उवाच– **संधानं शान्त्यतीतायाः शान्त्या सार्धं विशुद्धया । कुर्वीत पूर्ववत्तत्र तत्त्ववर्णादि तद्यथा ॥ १ ॥ ॐ ह्रीं क्ष्मों हौं हामिंति संधानानि ॥ २ ॥ उभौ शक्तिशिवौ तत्त्वे भुवनाष्टकमिन्धकम् । दीपकं रोचिकं चैव मोचकं चोर्ध्वगामि च ॥ ३ ॥ व्योमरूपमनाथं च स्यादनाश्रितमष्टकम् । ॐकारपदमीशानो मन्त्रो वर्णाश्च षोडश ॥ ४ ॥ अकारादिविसर्गान्ता बीजेनादहकारकौ । कुहूश्च शङ्खिनी नाड्यौ देवदत्तधनंजयौ॥५॥ मारुतौ स्पर्शनं श्रोत्रमिन्द्रिये विषयो नभः । शब्दो गुणोस्यावस्था तु तुर्यातीता तु पञ्चमी ॥ ६ ॥ हेतुः सदाशिवो देव इति तत्त्वादिसंचयम् । संचिन्त्य शान्त्यतीताख्यं विदध्यात्ताडनादिकम् ॥ ७ ॥ कलापाशं समाताड्य फडन्तेन विभिद्य च । प्रविश्यान्तर्नमोन्तेन फडन्तेन वियोजयेत्॥८॥ शिखाहृत्संपुटीभूतं स्वाहान्तं सृणिमुद्रया । पूरकेण समाकृष्य पाशं मस्तकसूत्रतः ॥ ९ ॥ कुम्भकेन समादाय रेचकेनोद्भवाख्यया।**

मुद्रा के प्रदर्शनपूर्वक इसको (जीव चैत्न्य को) सूत्र से संयुक्त करना चाहिए । पुनः शिष्य के सिर पर मूलमन्त्र के द्वारा अमृत के तुल्य अर्घ्य जल के विन्दुओं को डालना चाहिए ।। २५ ।। पुनः पूजित माता-पिता का विसर्जन करके विधानज्ञ को चाहिए कि बह्नि की कुसुम आदि से पूजा करके समस्त विधियों को पूर्ण करने वाली पूर्णाहुति दे ।। २६ ।। इस शान्तिकला में भी पहले के ही समान ताडन आदि करना चाहिए । इसकी यह विशेषता होती है कि इसमें इसका अपना बीजमन्त्र होता है । इस तरह से शान्तिकला की शुद्धि भी पूरी होती है ।। २७।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का शान्तिशोधन नामक सत्तासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८७ ॥

श्रीशिवजी ने कहा– विशुद्ध शान्ति कला के साथ शान्त्यतीत कला का संधान करना चाहिए । उसमें भी पहले के ही समान तत्त्व तथा वर्णों आदि की भावना करनी चाहिए ।। १।। उस समय ओं ह्रीं क्ष्मौं हौं इस मन्त्र का अनुसन्धान करना चाहिए ।। २ ।। शान्त्यतीत कला में शिव तथा शक्ति ये दो तत्त्व हैं तथा आठ भुवन हैं । इनके नाम हैं- इन्धक, दीपक, रोचिक, मोचक, ऊर्ध्वगामी, व्योमरूप, अनाथ तथा अनाश्रित । इसमें ओंकार पद है, ईशान मन्त्र है । उ से लेकर विसर्ग तक के सोलह वर्ण हैं और दो बीज हैं नाद एवं हकार । कुहू तथा शङ्खिनी ये दो नाड़ियाँ हैं । देवदत्त एवं धनञ्जय ये दो वायु हैं । इसमें दो इन्द्रियाँ हैं- त्वगिन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय । इसका विषय आकाश है । इसमें शब्द नामक गुण तथा तुरीय अवस्था से भिन्न पाँचवीं तुरीयातीतावस्था है ।। ३-६ ।। इसमें हेतु रूप से भगवान् सदाशिव हैं । इस तरह से संक्षेप में तत्त्व आदि को बतलाया गया ।शान्त्यतीतकला का इस प्रकार से ध्यान करके शिष्य के हृदय में ताडन आदि का कार्य करना चाहिए ।। ७ ।। कलापाश का ताड़न करके उसे अस्त्र मन्त्र से काटकर अन्त में 'नमः' वाले मन्त्र (हृदयमन्त्र) से शिष्य के अन्तःकरण में प्रवेश करके, फट् पद से अन्त होने वाले मन्त्र (अस्त्र मन्त्र) से जीव चैतन्य को पाश से अलग करना चाहिए ।। ८ ।। शिखा मन्त्र तथा हृदयमन्त्र से उसे सम्पुटित करके, स्वाहा, मन्त्र (शिरोमन्त्र) का उच्चारण

हृत्संपुटनमोन्तेन वह्निं कुण्डे निवेशयेत् ॥ १० ॥ अस्याः पूजादिकं सर्वं निवृत्तेरिव साधयेत्। सदाशिवं समावाह्य पूजयित्वा प्रतर्प्य च ॥ ११ ॥ सदाऽऽख्यातेऽधिकारेऽस्मिन्मुमुक्षुं दीक्षयाम्यहम् । भाव्यं त्वयाऽनुकूलेन भक्त्या विज्ञापयेदिति ॥ १२ ॥ पित्रोरावाहनं पूजां कृत्वा तर्पणसंनिधी। हृत्सम्पुटात्मबीजेन शिष्यं वक्षसि ताडयेत् ॥ १३ ॥ ॐ हां हूं हां फट् ॥ १४ ॥ प्रविश्य चाप्यनेनैव चैतन्यं विभजेत्ततः। शस्त्रेण पाशसंयुक्तं ज्येष्ठयाऽङ्कुशमुद्रया ॥ १५ ॥ ॐ हां हः, हूं हं फट् ॥ १६ ॥ स्वाहान्तेन तदाकृष्य तेनैव पुटितात्मना । गृहीत्वा तं नमोन्तेन निजात्मनि नियोजयेत्॥१७॥ ॐ हां हं हामात्मने नमः॥ १८ ॥ पूर्ववत्पितृसंयोगं भावयित्वोद्भवाख्यया । वामया तदनेनैव देव्या गर्भे नियोजयेत् ॥ १९ ॥ गर्भाधानादिकं सर्वं पूर्वोक्तविधिनाऽऽचरेत् । मूलेन पाशशैथिल्ये निष्कृत्यैव शतं जपेत् ॥ २० ॥ मलशक्तितिरोधाने पाशानां च वियोजने । पञ्च पञ्चाऽऽहुतीर्दद्यादायुधेन यथा पुरा ॥ २१ ॥ पाशानायुधमन्त्रेण सप्तवाराभिजप्तया । छिन्द्यादस्त्रेण कर्तर्या कलाबीजयुजा यथा ॥ २२ ॥ ॐ हां शान्त्यतीतकलापाशाय हः, हूं फट् ॥ २३ ॥ विमृज्य वर्तुलीकृत्य पाशानस्त्रेण पूर्ववत् । घृतपूर्णे स्रुवे दत्त्वा कलास्त्रेणैव होमयेत् ॥ २४ ॥ अस्त्रेण जुहुयात्पञ्च पाशाङ्कुशनिवृत्तये । प्रायश्चित्तनिषेधार्थं दद्यादष्टाऽऽहुतीस्ततः ॥ २५ ॥ सदाशिवं हृदाऽऽवाह्य कृत्वा पूजनतर्पणे । पूर्वोक्तविधिना कु र्यादधिकारसमर्पणम् ॥ २६ ॥ ॐ हां सदाशिव मनोबिन्दुं शुल्कं गृहाण स्वाहा ॥ २७ ॥ निःशेषदग्धपाशस्य पशोरस्य सदाशिव । बन्धाय न त्वया स्थेयं शिवाज्ञां श्रावयेदिति॥२८॥ मूलेन जुहुयात्पूर्णां विसृजेत्तु सदाशिवम्। ततो विशुद्धमात्मानं शरच्चन्द्रमिवोदितम् ॥ २९ ॥ संहारमुद्रया

करके अंकुशमुद्रा प्रदर्शनपूर्वक पूरक प्राणायाम के द्वारा उसका (कलापाश का) मस्तक सूत्र से आकर्षण करके ।। ९ ।। कुम्भक प्राणायाम से उसे लेकर, रेचक प्राणायाम एवं उद्भव मुद्रा द्वारा, हृदयमन्त्र से सम्पुटित करके नमस्कारान्त मन्त्र से उसे अग्निकुण्ड में स्थापित करना चाहिए ।। ११ ।। इसका पूजन आदि सारा कार्य निवृत्ति कला के ही समान करना चाहिए । पुनः सदाशिव का आवाहन करके उनका पूजन करके तथा तर्पण करके ।। ११ ।। भक्तिपूर्वक यह प्रार्थना करना चाहिए कि- हे सदाशिव! आपके इस अधिकार में मैं मुमुक्षु शिष्य को दीक्षित कर रहा हूँ आप इसके अनुकूल बने रहें ।। १२ ।। उसके पश्चात् माता-पिता का आवाहन,पूजन, तर्पण और सन्निधिकरण करके, हृदयमन्त्र से सम्पुष्टित आत्ममन्त्र के द्वारा शिष्य के वक्षस्थल पर 'ओं हां हूँ हां हं फट्' इस मन्त्र से ताड़न करना चाहिए ।। १३-१४ ।। इस मन्त्र के द्वारा शिष्य के अन्तःकरण में प्रवेश करके उससे पाश से युक्त जीव चैतन्य को ज्येष्ठ अङ्कुश मुद्रा के प्रदर्शनपूर्वक शस्त्र मन्त्र से अलग करना चाहिए ।। १५ ।। ':ओं हां हः हूँ फट् स्वाहा' इस मन्त्र से उसका आकर्षण करके उसी स्वाहान्त मन्त्र से उसका ग्रहण करके उसको नमः अन्त वाले मन्त्र से अपनी आत्मा से संयुक्त करना चाहिए ।। १७ ।। उसका मन्त्र- 'ओं हां हां हामात्मने नमः' है ।। १८ ।। फिर पहले के ही समान वामा उद्भव मुद्रा के द्वारा माता-पिता के संयोग की भावना करके इसी मन्त्र से वागीश्वरी देवी के गर्भ में उसको स्थापित करना चाहिए ।। १९ ।। उसके पश्चात् पूर्वोक्त विधि के द्वारा ही गर्भाधान आदि सम्पूर्ण विधान को करना चाहिए । तदनन्तर मूलमन्त्र से पाश की शिथिलता के लिए मूलमन्त्र का सौ बार जप करना चाहिए ।। २० ।। मलशक्ति का तिरोधान करने के लिए, तथा पाशों का वियोजन करने के लिए, पहले के ही समान प्रत्येक कार्य के लिए अस्त्र मन्त्र से पाँच-पाँच आहुति देनी चाहिए ।। २१ ।। सात बार आयुधमन्त्रसे अभिमन्त्रित कटार के द्वारा पाशों का छेदन 'ओं हां शान्त्यतीतकलापाशाय हः हूँ फट् इस कलाबीज मन्त्र से कर देना चाहिए।।२२-२३ ।। पुनः पाशों को मसलकर गोला करके पहले के ही समान, अस्त्रमन्त्र से घी से भरे स्रुवा में रखकर कलास्त्र मन्त्र से होम कर देना चाहिए ।। २४ ।। उसके पश्चात् पाश तथा अंकुश की निवृत्ति के लिए अस्त्र मन्त्र से पाँच आहुति देनी चाहिए, तदनन्तर प्राश्यश्चित्त की निवृत्ति के लिए आठ आहुतियाँ देनी चाहिए ।। २५ ।। हृदयमन्त्र से सदाशिव का आवाहन, पूजन तथा तर्पण करके,पूर्वोक्त विधि से अधिकार समर्पण करना चाहिए ।। २६ ।। उसका मन्त्र है- 'ओं हां सदाशिव मनोविन्दुं शुल्कं गृहाण स्वाहा' ।। २७ ।। उसके पश्चात् शिव की आज्ञा को सुनाना चाहिए- ' हे सदाशिव ! इस पशु के सम्पूर्ण पाश दग्ध हो चुके हैं, अतएव आप इसके लिए बन्धनकारक न होएँ ।। २८ ।। पुनः मूलमन्त्र से पूर्णाहुति देकर सदाशिव का विसर्जन

रौद्र्या संयोज्य गुरुरात्मनि । कुर्वीत शिष्यदेहस्थमुद्धत्योद्भवमुद्रया ॥ ३० ॥ दद्यादार्घ्यानायास्य मस्तकेऽर्घ्याम्बुबिन्दुकम् । क्षमयित्वा महाभक्त्या पितरौ विसृजेत्तथा ॥ ३१ ॥ खेदितौ शिष्यदीक्षायै यन्मया पितरौ युवाम् । कारुण्यान्मोक्ष (च) यित्वा तद्व्रज त्वं स्थानमात्मनः ॥ ३२ ॥ शिखामन्त्रितकर्तर्या बोधशक्तिस्वरूपिणीम् । शिखां छिन्द्याच्छिखास्त्रेण शिष्यस्य चतुरङ्गुलाम् ॥ ३३ ॥ ॐ क्लीं शिखायै हूं फट्, ओमस्त्राय हूँ फट् ॥ ३४ ॥ स्रुचितां घृतपूर्णायां गोविङ्गोलकमध्यगाम् । संविधायास्त्रमन्त्रेण हूंफडन्तेन होमयेत् ॥ ३५ ॥ ॐ हौं हः, अस्त्राय हूं फट् ॥ ३६॥ प्रक्षाल्य स्रुक्स्रुवौ शिष्यं संस्नाप्याऽऽचम्य च स्वयम् । योजनिकास्थमात्मानं शस्त्रमन्त्रेण ताडयेत् ॥ ३७ ॥ वियोज्याऽऽकृष्य संपूज्य पूर्ववद् द्वादशान्ततः। आत्मीयहृदयाम्भोजकर्णिकायां निवेशयेत् ॥ ३८ ॥ पूरितं स्रुवमाज्येन विहिताधोमुखस्रुचा । नित्योक्तविधिनाऽऽदाय शङ्खसंनिभमुद्रया॥३९॥ प्रसारितशिरोग्रीवो नादोच्चारानुसारतः । समदृष्टिः स्थिरश्शान्तः परभावसमन्वितः ॥ ४० ॥ गृहीत्वा षड्विधाध्वानं श्रु (स्रु) गग्रे प्राणनाडिकम्। सञ्चिन्त्य विंदुवद्ध्यात्वा क्रमशः सप्तधा यथा ।। ४१।। प्रथमं प्राणसंयोगस्वरूपमपरन्ततः। हृदयादिक्रमोच्चार विसृष्टं मंत्रसंज्ञकम् ।। ४२।। पूरकं कुम्मकं कृत्वा व्यादाय वदनं मनाक्।सुषुम्णानुगतं नादस्वरूपं तु तृतीयकम् ।। ४३।। सप्तमे कारणे त्यागात् प्रशान्त विस्वरंलयः। शक्तिनादोर्ध्वसंचारस्तच्छक्ति विस्वरं मतम् ।। ४४ ॥ प्राणस्य निखिलस्यापि शक्तिप्रमेयवर्जितम् । तत्कालविस्वरं षष्ठं शक्तातीतं च सप्तकम्॥ ४५ ॥ तदेतद्योजनस्थानं विषुवं तत्त्वसंज्ञकम् । पूरकं कुम्भकं कृत्वा व्यादाय वदनं मनाक् ॥ ४६ ॥ शनैरुदीरयन्मूलं कृत्वा शिष्यात्मनो लयम्। हकारे तडिदाकारे षडध्वप्राणरूपिणि ॥ ४७॥ उकारं परतो नाभेर्वितस्तिं व्याप्य संस्थितम् । ततः परमकारन्तु हृदयाच्चतुरङ्गुलम्॥४८॥ ओंकारवाचकं विष्णोस्ततोऽष्टाङ्गुलकण्ठकम् । चतुरङ्गुलतालुस्थं मकारं रुद्रवाचकम् ॥ ४९ ॥ तद्वल्ललाटमध्यस्थं बिन्दुमीश्वरवाचकम् । नादं

करना चाहिए । उसके पश्चात् आचार्य शिष्य के शरत्कालीन चन्द्रमा के समान उदित विशुद्ध जीवात्मा को रौद्रीसंकार मुद्रा के द्वारा अपने आत्मा में संयुक्त करके आत्मस्थ कर लें । शिष्य के शरीर में विद्यमान आत्मा का उद्भव मुद्रा के द्वारा उद्धार करके, उसके पोषण के लिए शिष्य के मस्तक पर अर्घ्यजल के एक बूँद को स्थापित करे । इसके बाद परम भक्तिभाव से क्षमा प्रार्थना करके माता-पिता का विसर्जन करना चाहिए ।। ३०-३१ ।। उस समय यह प्रार्थना करनी चाहिए कि- शिष्य को दीक्षा देने के लिए आप दोनों को जो मैंने कष्ट दिया है उसे आप दोनों क्षमा करके अपने स्थान को पधारें ।। ३२ ।। शिखामन्त्र से अभिमन्त्रित कटार से चार अंगुल बड़ी बोधशक्तिस्वरूपिणी शिखा का छेदन करना चाहिए ।। ३३ ।। उसका मन्त्र है- ओं क्लीं शिखायै हूँ फट्, ओमस्त्राय हूं फट् ।। ३४ ।। गाय के गोबर के गोले के भीतर रखी हुयी उस शिखा को घी से भरे स्रुक् में रखकर 'हूं फट्' अन्त वाले अस्त्र मन्त्र से हवन करना चाहिए ।। ३५ ।। हवन का मन्त्र है- 'ओं हौं हः अस्त्राय हूँ फट् ।। ३६ ।। तदनन्तर स्रुक् तथा स्रुवा को धोकर तथा शिष्य को स्नान कराकर तथा स्वयं आचमन करके योजनिका में स्थित आत्मा को अस्त्र मन्त्र से ताड़ित करना चाहिए ।। ३७ ।। से स्पर्श कराकर तथा स्रुवा को घी से भरकर उसे शंख के सदृश मुद्रा से नित्योक्त विधि से पकड़े । उसके पश्चात् नादोच्चारण के अनुसार मस्तक एवं ग्रीवा फैलाकर दृष्टि को समभाव से रख्वाते हुए स्थिर शान्त उसके पश्चात् समान उसका वियोजन, आकर्षण तथा संग्रहण करके पहले के ही समान द्वादशान्त (ललाट के ऊर्ध्व भाग) से जीव चैतन्य को लजे जाकर अपने हृदयकमल की कर्णिका में स्थापित करे ।। ३८ ।। अधोमुख स्रुक् से स्पर्श कराकर तथा स्रुवा को घी से भरकर उसे शंख के सदृश मुद्रा से नित्योक्त विधि से पकड़ें।।३९।। उसके पश्चात् नादोच्चारण के अनुसार मस्तक एवं ग्रीवा फैलाकर दृष्टि को समभाव से रखते हुए स्थिर, शान्त एवं परमभाव से सम्पन्न होकर कलश, मण्डल, अग्नि, शिष्य तथा अपने आत्मा से भी छह प्रकार के अध्वाओं का ग्रहण करके स्रुक् के अग्रभाग में उन्हें प्राणमयी नाड़ी में स्थापित करके उसी भाव से उसका चिन्तन करना चाहिए । फिर क्रमशः सात प्रकार के विषुओं का ध्यान करना चाहिए । वे सातों विषुव इस प्रकार हैं- पहला विषुव प्राण के संयोग स्वरूप है,उसके बाद दूसरा हृदयादिक्रम से उच्चारित मन्त्रसंज्ञक है । तीसरा सुषुम्णा में अनुगत नाद स्वरूप है ।। ४०-४३ ।। चौथा कारण का त्याग करने से सातवें में लीन प्रशान्त विषुव है । शक्ति में लीन हुए नाद का पुनः उज्जीवन होकर जो ऊपर की ओर संचार तथा समता में लय होता है

सदाशिवं देवं ब्रह्मरन्ध्रावसानकम्॥ ५०॥ शक्तिं च ब्रह्मरन्ध्रस्थां त्यजन्नित्यमनुक्रमात् । दिव्यं पिपीलिकास्पर्शं तस्मिन्नेवानुभूय च ॥ ५१ ॥ द्वादशान्ते परे तत्त्वे परमानन्दलक्षणे । भावशून्ये मनोतीते शिवे नित्यगुणोदये ॥ ५२ ॥ विलीयमानमेतस्मिञ्छिष्यात्मानं विभावयेत् । विमुञ्चन्सर्पिषो धारां ज्वालान्तेऽपि परे शिवे॥५३॥ योजनिकास्थिरत्वाय वौषडन्तशिवाणुना । दत्त्वा पूर्णां विधानेन गुणापादनमाचरेत् ॥ ५४ ॥ ॐ हामात्मने सर्वज्ञो भव स्वाहा। ॐ हामात्मने परितृप्तो भव स्वाहा । ॐ हू मात्मनेऽनादिबोधो भव स्वाहा । ॐ हौमात्मने स्वतन्त्रो भव स्वाहा । ॐ हौमात्मन्नलुप्तशक्तिर्भव स्वाहा। ॐ हः, आत्मनेऽनन्तशक्तिर्भव स्वाहा ॥ ५५ ॥ इत्थं षड्गुणमात्मानं गृहित्वा परमाक्षरात् । विधिना भावनोपेतः शिष्य देहे नियोजयेत् ॥ ५६॥ तीव्राणुशक्तिसंपातजनितश्रमशान्तये । शिष्यमूर्धनि विन्यस्येद् अर्घ्यादमृतबिन्दुकम्॥५७॥ प्रणम्यध्येशकुम्भादीञ्शिवाद्दक्षिणमण्डले । सौम्यवक्त्रं व्यवस्थाप्य शिष्यं दक्षिणमात्मनः ॥ ५८ ॥ त्वयैवानुगृहीतोऽयं मूर्तिमास्थाय मामकीम् । देवे वह्नौ गुरौ तस्माद्भक्तिं चाप्यस्य वर्धय ॥ ५९ ॥ इति विज्ञाप्य देवेशं प्रणम्य च गुरुः स्वयम् । श्रेयस्तवास्त्विति ब्रूयादाशिषं शिष्यमादरात्॥६०॥ ततः परमया भक्त्या दत्त्वा देवेऽष्टपुष्पिकाम् । पुत्रकं शिवकुम्भेन संस्नाप्य विसृजेन्मखम् ॥ ६१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये निर्वाणदीक्षाकथनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

उसे शक्ति विषुव कहते हैं । सम्पूर्ण प्राण का शक्ति की सीमा को पार करके उन्मनी में लीन होने को कलाविषुव कहते है, यह छठा विषुव है, सातवाँ विषुव शक्त्यतीतनामक है।।४४-४५।। इसी को तत्त्व विषुव कहते हैं। यही योजना स्थान है । पूरक तथा कुम्भक करके थोड़ा सा मुँह खोलकर धीरे-धीरे मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए विजली जैसी आकृति वाले तथा षडध्वा के प्राणस्वरूप हकार में शिष्य की आत्मा का लय करना चाहिए ।। ४६-४७ ।। नाभि से ऊपर एक वित्ते में विद्यमान उकार का चिन्तन करना चाहिए । उसके चार अंगुल ऊपर अकार का स्थान है ।। ४८ ।। उसके आठ अंगुल ऊपर कण्ठ में अकार के वाचक विष्णु का स्थान है । तालु में विद्यमान चार अंगुल में रुद्र के वाचक मकार का स्थान है ।। ४९ ।। उसी तरह का ललाट के मध्य में विद्यमान विन्दु ईश्वर का वाचक है । उसके पश्चात् ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त नाद स्वरूप देव सदाशिव का स्थान है ।। ५० ।। ब्रह्मरन्ध्र में विद्यमान शक्ति का भी चिन्तन करके उसको भी क्रमशः त्याग देना चाहिए । उसी में दिव्य पिपीलिका के स्पर्श का अनुभव करके द्वादशान्त (ललाट के ऊपर के भाग) में परम तत्त्व, परमानन्दस्वरूप, भावशून्य, मनोतीत, नित्य गुणोदयशाली शिवतत्त्व में शिष्यात्मा के विलीन होने की भावना करनी चाहिए ।। ५१-५२ ।। परम शिव में योजनिका की स्थिरता के लिए 'ओं नमः शिवाय वौषट्' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए अग्नि की ज्वाला में घी की धारा छोड़ते हुए विधिपूर्वक पूर्णाहुति देकर गुणापादन करना चाहिए ।। ५३-५४ ।। गुणापादन के लिए निम्नांकित मन्त्रों से आहुतियाँ देनी चाहिए । (क) ओं हामात्मने सर्वज्ञो भव स्वाहा, (ख) ओं हामात्मने परितृप्तोभव स्वाहा, (ग) ओं हूँमात्मनेऽनादिबोधो भव स्वाहा, (घ) ओं हौमात्मने स्वतन्त्रो भव स्वाहा, (ङ) ओं होमात्मन्नलुप्तशक्ति भव स्वाहा, (च) ओं हः आत्मने ऽनन्तशक्तिर्भव स्वाहा ।। ५५ ।। इस तरह छह गुणों से युक्त आत्मा को परम अक्षर शिद से लेकर भावना से युक्त होकर विधिपूर्वक शिष्य के देह में उसे नियुक्त करना चाहिए ।।५६।। तीव्र एवं मन्द शक्ति संपात जनित श्रम की शान्ति के लिए शिष्य के मस्तक पर न्यासपूर्वक अमृत विन्दु शिष्य के सिर पर रखना चाहिए ।। ५७ ।। शिव से दक्षिण मण्डल में 'शिवरूप से पूजित) ईशान कलश को प्रणाम करके अपने दाहिनी ओर शिष्य को उत्तराभिमुख बैठाकर, भगवान शंकर से यह प्रार्थना करनी चाहिए- हे भगवन् ! चूँकि आपने ही मेरे शरीर में रहकर इस शिष्य को अनुगृहीत किया है, अतएव आप इस शिष्य की भक्ति देवता, अग्नि तथा आचार्य में बढ़ाएँ ।। ५८-५९ ।। इस तरह से भगवान् शंकर की प्रार्थना करके आचार्य को स्वयं उन्हें प्रणाम करना चाहिए और आदरपूर्वक शिष्य को यह आशीर्वाद देना चाहिए कि तुम्हारा कल्याण हो ।। ६० ।। उसके पश्चात् अत्यन्त भक्तिपूर्वक भगवान् शंकर पर अष्टपुष्पिका चढ़ाकर, शिष्यको शिवकुम्भ से स्नान कराकर यज्ञ का विसर्जन करना चाहिए ।। ६१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अगिनपुराण का निर्वाणदीक्षा वर्णन नामक अट्ठासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८८ ॥

अथैकोननवतितमोऽध्यायः

एकतत्त्वदीक्षाविधिः

ईश्वर उवाच– **अथैकतात्त्विकी दीक्षा लघुत्वादुपदिश्यते । सूत्रबन्धादि कुर्वीत यथायोगं निजाणुना ॥ १ ॥ कालाग्न्यादिशिवान्तानि तत्त्वानि परिभावयेत् । शिवतत्त्वे समग्राणि सूत्रे मणिगणानिव ॥ २ ॥ आवाह्य शिवतत्त्वादि गर्भाधानादि पूर्ववत् । मूलेन किं तु कुर्वीत सर्वशुल्कसमर्पणम् ॥ ३ ॥ प्रददीत ततः पूर्णां तत्त्वव्रतोपगर्भिताम् । एकयैव यया शिष्यो निर्वाणमधिगच्छति ॥ ४ ॥ योजनायै शिवे चान्यां स्थिरत्वापादनाय च । दत्त्वा पूर्णां प्रकुर्वीत शिवकुम्भाभिषेचनम् ॥ ५ ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये एकतत्त्वदीक्षाविधिकथनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

अथ नवतितमोऽध्यायः

अभिषेकादिविधिकथनम्

ईश्वर उवाच– **शिवमभ्यर्च्याभिषेकं कुर्याच्छिष्यादिके श्रिये । कुम्भानीशादिकाष्ठासु क्रमशो नव विन्यसेत् ॥ १ ॥ तेषु क्षारोदं क्षीरोदं दध्युदं घृतसागरम् । इक्षुकादम्बरीस्वादुमस्तूदानष्ट सागरान् ॥ २ ॥ निवेशयेद्यथासंख्यमष्टौ विद्येश्वरानथ । एकं शिखण्डिनं रुद्रं श्रीकण्ठं तु द्वितीयकम् ॥ ३ ॥ त्रिमूर्तिमेकरुद्राक्षमेकनेत्रं शिवोत्तमम् । सप्तमं सूक्ष्मनामानमनन्तं रुद्रमष्टमम् ॥ ४ ॥ मध्ये शिवं समुद्रं च शिवमन्त्रं च विन्यसेत् । यागालयान्दिगीशस्य**

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं छोटी होने के कारण एक तत्त्व दीक्षा का उपदेश दे रहा हूँ । यथावसर अपने मन्त्र से सूत्रबन्ध इत्यादि का कार्य कर विधिपूर्वक करना चाहिए ।। १ ।। उसके पश्चात् काल तथा अग्नि आदि से लेकर शिव पर्यन्त के तत्त्वों का चिन्तन करना चाहिए । सूत्र में पिरोए गए मणि के समूह के समान शिवतत्त्व में सभी तत्त्व ओतप्रोत हैं ।। २ ।। शिवतत्त्व आदि का आवाहन पहले के ही समान उनका गर्भाधान आदि संस्कार करना चाहिए, किन्तु समस्त शुल्कों का समर्पण मूलमन्त्र से करना चाहिए ।। २ ।। उसके पश्चात् तत्त्व समूह से उत्पन्न पूर्णाहुति देनी चाहिए जिससे कि एक ही पूर्णाहुति से शिष्य निर्वाण की प्राप्ति कर लेता है ।। ४ ।। दूसरी पूर्णाहुति शिव से युक्त होकर उसके स्थिरत्वापादन के लिए करनी चाहिए । उसके पश्चात् शिवकुम्भ के द्वारा अभिषेक करना चाहिए ।। ५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण के एकतत्त्वदीक्षा विधि वर्णन नामक नवासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८९ ॥

श्रीशिवजी ने कहा– शिवजी की पूजा करके आचार्य को श्री प्राप्ति के लिए शिष्य आदि का अभिषेक करना चाहिए । ईशान आदि दिशाओं में क्रमशः नव कलशों की स्थापना करनी चाहिए ।। १ ।। आठों दिशाओं के आठ कलशों में क्षारोदक, क्षीरोदक, दध्युदक, घृतोदक, इक्षुरसोदक, मद्योदक, स्वादूदक तथा गर्भोदक इन आठ सागरों का आवाहन करके उनमें आठ संख्या

रचिते स्नानमण्डपे ॥ ५ ॥ कुर्यात्करद्वयायामां वेदीमष्टाङ्गुलोच्छ्रिताम् । श्रीपर्णाद्यासने तत्र विन्यस्यानन्तमासनम् ॥ ६ ॥ शिष्यं निवेश्य पूर्वास्यं सकलीकृत्य पूजयेत् । काञ्जिकौदनमृद्भस्मदूर्वागोमयगोलकैः ॥ ७ ॥ सिद्धार्थदधितोयैश्च कुर्यान्निर्मन्थनं ततः। क्षारोदानुक्रमेणाथ हृदा विद्येशशम्बरैः॥८॥ कलशैः स्नपयेच्छिष्यं सुधाधारणयाऽन्वितम् । परिधाप्य सिते वस्त्रे निवेश्य शिवदक्षिणे ॥ ९ ॥ पूर्वोदितासने शिष्यं पुनः पूर्ववदर्चयेत् । उष्णीषं योगपट्टं च मुकुटं कर्तरीं घटीम् ॥ १० ॥ अक्षमालां पुस्तकादि शिबिकाद्यधिकारकम् । दीक्षाव्याख्याप्रतिष्ठाद्यं ज्ञात्वाऽद्यप्रभृति त्वया ॥ ११॥ सुपरीक्ष्य विधातव्यमाज्ञां संश्रावयेदिति । अभिवाद्य ततः शिष्यं प्रणिपत्य महेश्वरम् ॥ १२ ॥ विघ्नज्वालापनोदार्थं कुर्याद्विज्ञापनां यथा । अभिषेकार्थमादिष्टस्त्वयाऽहं गुरुमूर्तिना ॥ १३ ॥ संहितापारगः सोऽयभिषिक्तो मया शिव । तृप्तये मन्त्रचक्रस्य पञ्चपञ्चाऽऽहुतीर्यजेत् ॥ १४ ॥ दद्यात्पूर्णां ततः शिष्यं स्थापयेन्निजदक्षिणे। शिष्यदक्षिणपाणिस्था अङ्गुष्ठाद्यङ्गुलीः क्रमात्॥१५॥ लाञ्छयेदुषरत्वाय दग्धदर्भाङ्गशम्बरैः। कुसुमानि करे दत्त्वा प्रणामं कारयेदमुम् ॥ १६ ॥ कुम्भेऽनले शिवे स्वस्मिंस्ततस्तत्कृत्यमादिशेत् । अनुग्राह्यास्त्वया शिष्याः शास्त्रेण सुपरीक्षिताः ॥ १७ ॥ भूपवन्मानवादीनामभिषेकादभीप्सितम् । ॐ श्रां श्रौं पशुं हूं फडित्यस्त्रराजाभिषेकतः ॥ १८ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेयेऽभिषेकादिविधिकथनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

वाले विद्येश्वरों का भी आवाहन करना चाहिए । विद्येश्वरों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं- (१) शिखण्डी रुद्र, (२) श्रीकण्ठरुद्र, (३) त्रिमूर्तिरुद्र, (४) एकरुद्राक्ष रुद्र, (५) एकनेत्र रुद्र, (६) शिवोत्तम रुद्र, (७) सूक्ष्म रुद्र तथा (८) अनन्त रुद्र ।। २-४ ।। मध्यकलश में शिव, समुद्र तथा शिवमन्त्र का विन्यास करना चाहिए । यागमण्डप की दिशा के स्वामी के लिए बनायी गयी स्नानमण्डप में दो हाथ लम्बी और आठ अंगुल ऊँची एक वेदी बनानी चाहिए । उस पर कमल आदि का आसन बिछाकर उस पर आसनस्वरूप अनन्त का न्यास करके शिष्य को पूर्वाभिमुख बैठाकर सकलीकरण करके उसका पूजन करना चाहिए ।। ५-६ ।। उसके पश्चात्, काञ्जी, भात, मिट्टी, भस्म, दूर्वा, गोबर के गोले, सरसों,दही और जल उसके शरीर में मलकर, हृदयमन्त्र का उच्चारण करके, क्षारोदक आदि के क्रम से नमस्कारपूर्वक हृदयमन्त्र से विद्येश्वरों के कलश जल से शिष्य को स्नान कराना चाहिए ।उस समय शिष्य यह भावना करे कि मुझे अमृत से स्नान कराया जा रहा है । इसके पश्चात् शिष्य को दो नए वस्त्र पहनाकर और उसे शिव के दक्षिणभाग में पूर्वोक्त आसन पर बैठाकर उसकी पूजा करनी चाहिए ।। ७-९ ।। उसके पश्चात् आचार्य अपनी यह आज्ञा सुनाएँ कि- आज से तुम्हें दीक्षा की व्याख्या तथा प्रतिष्ठा आदि को जानकर, पगड़ी, योगपट्टिका, मुकुट, कटार, घटी, अक्षमाला, पुस्तक आदि तथा शिविका आदि के अधिकार की अच्छी तरह से परीक्षा करके उनका प्रयोग करना चाहिए ।। १० ।। उसके पश्चात् आचार्य शिष्य को तथा महेश्वर को प्रणाम करके, विघ्नज्वाला को दूर करने के लिए यह प्रार्थना करनी चाहिए कि- हे शिव ! गुरुमूर्ति स्वरूप आपने मुझे अभिषेक करने के लिए आदेश दिया है, इसलिए मैंने संहिताभाग का पूर्णरूप से अध्ययन किए हुए इस शिष्य का अभिषेक किया है । उसके पचात् मन्त्र चक्र की शान्ति के लिए पाँच-पाँच आहुतियाँ देकर पूजन करना चाहिए ।। १२-१४ ।। उसके पश्चात् पूर्णाहुति देकर शिष्य को आचार्य अपने दाहिनी ओर बैठाएँ और उसके दाहिने हाथ के अंगुष्ठ आदि अंगुलियों को क्रमशः जले हुए दर्भाङ्गशम्बरों से 'उषरत्व' के लिए लांक्षित करे । पुनः उसके हाथ में फूल देकर उससे कलश, अग्नि एवं शिव को प्रणाम करवाये । पुनः उसे कर्तव्य का उपदेश दे ।। १५-१६ ।। 'तुम्हें शास्त्र के अनुसार भली-भाँति परीक्षा करके शिष्यों को अनुगृहीत करना चाहिए ।' मानव आदि की राजा के समान अभिषेक करने से अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है । ओं श्रां श्रीं पशुं हूं फट् यह अस्त्रराज मन्त्र है, इसी के द्वारा शिष्य का अभिषेक करना चाहिए ।। १७-१८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण का अभिषेकादि विधि वर्णन नामक नबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९० ॥

अथैकनवतितमोऽध्यायः

अभिषिक्तेन कर्तव्यस्य तत्तद्देवतापूजनस्य विधिः

ईश्वर उवाच– **अभिषिक्तः शिवं विष्णुं पूजयेद्भास्करादिकान् । शङ्खभेर्यादिनिर्घोषैः स्नापयेत्पञ्चगव्यकैः ॥ १ ॥ योदेवान्देवलोकं स याति स्वं कुलमुद्धरन् । वर्षकोटिसहस्रैस्तु यत्पापं समुपार्जितम् ॥ २ ॥ घृताभ्यङ्गेन देवानां भस्मीभवति पावके । आढकेन घृताद्यैश्च देवान्स्नाप्य सुरो भवेत्॥३॥ चन्दनेनानुलिप्याथ गन्धाद्यैः पूजयेत्तथा । अल्पायासेन स्तुतिभिः स्तुता देवास्तु सर्वदा ॥ ४ ॥ अतीतानागतज्ञानमन्त्रधीभुक्तिमुक्तिदाः। गृहीत्वा प्रश्नसूक्ष्मार्णे हृते द्वाभ्यां शुभाशुभम् ॥ ५ ॥ त्रिभिर्जीवो मूलधातुश्चतुर्भिब्राह्मणादिधीः । पञ्चादौ भूततत्त्वादि शेषे चैवं जयादिकम् ॥ ६॥ एकत्रिकातित्रिकान्ते पदे द्विपमकान्तके । अशुभं मध्यमं मध्येष्विन्द्रस्त्रिषु नृपः शुभः ॥ ७ ॥ संख्यावृन्दे जीविताब्दं यमोऽब्ददशहा ध्रुवम् । सूर्येभास्येशदुर्गाश्रीविष्णुमन्त्रैर्लिखेत्कजे॥ ८॥ कठिन्या जप्तया स्पृष्टे गोमूत्राकृतिरेखया । आरभ्यैकं त्रिकं यावत्त्रिचतुष्कावसानकम् ॥ ९ ॥ मरुद्व्योममरुद्व्योमैश्चतुःषष्टिपदे तथा। अक्षाणां पातनात्स्पर्शाद्विषमादौ शुभादिकम् ॥ १० ॥एकत्रिकादिमारभ्य अन्ते चाष्टत्रिकं तथा । ध्वजाद्यायाः समा हीना विषमाः शोभनादिदाः ॥ ११ ॥ आईपल्लवितैः काद्यैः षोडशस्वरपूर्वगैः । आद्यैस्तैः सस्वरैः काद्यैस्त्रिपुरानाम मन्त्रकाः॥ १२ ॥ ह्रीं**

श्रीशिवजी ने कहा– अभिषिक्त पुरुष शिव, विष्णु तथा सूर्य आदि (दुर्गा एवं गणेश) की पूजा करे । वह इन देवताओं को शंख, भेरी आदि वाद्यों के ध्वनि पूर्वक पञ्चगव्य से स्नान कराए।।१।। जो पुरुष ऐसा करता है, वह अपने कुल का उद्धार करके स्वयं देवलोक जाता है । घी देवताओं के शरीर में मलने वाले पुरुष के करोड़ों हजार वर्ष के पाप अग्नि में भस्म हो जाते हैं । एक आढ़क घी से देवताओं का स्नान कराने वाला पुरुष स्वयं देवता हो जाता है ।। २-३ ।। इसके बाद वह देवताओं के शरीर में चन्दन लगाकर गन्ध आदि से पूजा करे । थोड़े से प्रयास पूर्वक सदा स्तुति करने पर देवतागण अतीत तथा अनागत विषयक ज्ञान मन्त्रज्ञान, भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले हो जाते हैं ।। ४ ।। यदि कोई मन्त्र के शुभाशुभ के विषय में प्रश्न करे तो प्रश्नवाक्य के अक्षरों को गिन लेना चाहिए और उसमें दो का भाग दें यदि एक बचे तो शुभ और दो या शून्य बचे तो अशुभ समझना चाहिए ।। ५ ।। तीन से भाग देने पर मूलधातु रूप जीव का परिचय मिलता है । अर्थात् एक शेष हो तो बात जीव, दो शेष हो तो पित्त जीव और तीन शेष हो तो कफ जीव समझना चाहिए । चार से भाग देने पर ब्राह्मण आदि वर्ण की बृद्धि का ज्ञान प्राप्त होता है । अर्थात् एक शेष रहने पर ब्राह्मण वर्ण दो शेष रहने पर क्षत्रिय वर्ण की तीन शेष रहने पर वैश्य वर्ण की और चार या शून्य शेष रहने पर शूद्र वर्ण की बुद्धि समझनी चाहिए ।। पाँच का भाग देने पर शेष के अनुसार पृथिवी आदि भूत तत्त्वों का ज्ञान होता है। इसी तरह से जय पराजय आदि को भी जाना जा सकता है ।। ६ ।। यदि मन्त्र पद के अन्त में एक त्रिक हो, या अधिक त्रिक हों (तीन बीजाक्षर) हों, अथवा दो प, म, एवं क हों तो इनमें से प्रथम वर्ण अशुभ द्वितीय वर्ण शुभ होता है । यदि मन्त्र पद के अन्त में संख्या समूह हो तो वह जीवनकाल के दस वर्ष को सूचित करता है । यदि दस की संख्या हो तो उस मन्त्र के साधक पर दस वर्ष के पश्चात् यमराज का निश्चित रूप से आक्रमण होता है ।। ७।। सूर्य, गणेश, शिव, दुर्गा, लक्ष्मी तथा श्रीविष्णु भगवान् के मन्त्रों द्वारा जप करने वाला व्यक्ति कमल के पत्ते पर अपनी कनिष्ठा अंगुलि से गोमूत्र की रेखा पर यन्त्र के वर्णों के प्रथम त्रिक से, प्रारम्भ करके चारत्रक पर्यन्त पृथक्-पृथक् लिखे ।। ८-९ ।। और चौसठ कोष्ठों का मण्डल बनाकर (मरुत् (यं) व्योम (हं) और मरुत् (यं) इन तीन बीजों के त्रिक कोष्ठों में लिखे और उन पर पासा फेंके । यदि विषम कोष्ठ का स्पर्श हो तो शुभ तथा समकोष्ठ का स्पर्श होने पर अशुभ समझना चाहिए ।। १० ।। यं, हं, यं इन तीन बीजाक्षरों के आठ त्रिक ध्वजादि आठ आयों के प्रतीक

बीजाः प्रणवाद्याः स्युर्नमोन्ता यत्र पूजने । मन्त्रा विंशतिसाहस्राः शतं षष्ट्यधिकं ततः ॥ १३ ॥ आं ह्रीं मन्त्राः सरस्वत्याश्चण्डिकायास्तथैव च।
तथा गौर्याश्च दुर्गाया आं श्रीमंत्राः श्रियस्तथा ॥ १४ ॥ तथा आं क्षौंमन्त्राः सूर्यस्य आंहौंमन्त्राः शिवस्य च । आं गं मन्त्रा गणेशस्य आं मन्त्राश्च
तथा हरेः ॥ १५ ॥ शतार्धैकाधिकैः काद्यैस्तथा षोडशभिः स्वरैः । काद्यैस्तैः सस्वरैराद्यैः कान्तैर्मन्त्रास्तथाऽखिलाः॥ १६ ॥ रवीशदेवीविष्णूनां
खाब्धीदेवेन्द्रवर्तनात् । शतत्रयं षष्ट्यधिकं प्रत्येकं मण्डलं क्रमात् ॥ १७ ॥ अभिषिक्तो जपेद्ध्यायेच्छिष्यादीन्दीक्षयेद्गुरुः ॥ १८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽभिषिक्तेन कर्तव्यस्य तत्तद्देवतापूजनस्य विधिकथनं नामैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

संक्षेपेण प्रतिष्ठाविधिः

ईश्वर उवाच– **प्रतिष्ठां संप्रवक्ष्यामि क्रमात्संक्षेपतो गुह । पीठं शक्ति शिवो लिङ्गं तद्योगः सा शिवाणुभिः ॥ १ ॥ प्रतिष्ठायाः पञ्च भेदास्तेषां रूपं वदामि ते । यत्र ब्रह्मशिलायोगः सा प्रतिष्ठा विशेषतः ॥ २ ॥ स्थापनं तु यथायोगं पीठ एव निवेशनम् । प्रतिष्ठा भिन्नपीठस्य स्थिरस्थापनमुच्यते॥३॥ उत्थापनं च सा प्रोक्ता लिङ्गोद्धारपुरःसरा । यस्यां तु लिङ्गमारोप्य संस्कारः क्रियते बुधैः ॥ ४ ॥ आस्थापनं तदुद्दिष्टं द्विधा विष्णवादिकस्य च । आसु सर्वासु चैतन्यं नियुञ्जीत परं शिवम् ॥ ५ ॥ यदाधारादिभेदेन प्रासादेष्वपि पञ्चधा । परीक्षामथ मेदिन्याः कुर्यात्प्रासादकाम्यया ॥ ६ ॥**

हैं । इन आयों में जो सम हैं, वे शुभ तथा जो विषम आय हैं वे शुभ होते हैं ।। ११ ।। क आदि अक्षरों को सोलह स्वरों से तथा सोलह स्वरों को क आदि से युक्त करना चाहिए । उन सबों के साथ आ तथा ई यह पल्लव लगा दें । पल्लव युक्त इन सस्वर कादि अक्षरों को आदि में रखकर उनके साथ त्रिपुरा के नाममन्त्रों को पृथक्-पृथक् सन्बद्ध कर दें । उनके आदि में ओं ह्रीं तथा अन्त में 'नमः' जोड़ दें । इसतरह से पूजन के काम में आने वाले मन्त्रों का प्रस्तार बीस हजार एक सौ तक पहुँच जाता है ।। १२-१३ ।। आं ह्रीं बीज से युक्त सरस्वती के मन्त्र होते हैं तथा चण्डी, गौरी तथा दुर्गा के भी मन्त्र ऐसे ही होते हैं। श्री देवी के मन्त्र 'आं श्रीं' बीज से युक्त, सूर्य के मन्त्र 'आं क्षौं' बीजो से युक्त, 'आं हौं' इन बीजों से युक्त शिवजी के मन्त्र, गणेश जी के मन्त्र 'आं गं' इन दो बीजों से युक्त तथा श्रीहरि के मन्त्र आं अं बीज से युक्त होते हैं ।। १४-१५ ।। 'क' आदि व्यञ्जनवर्ण तथा सोलह स्वरों को मिलाकर एक्यावन होते है। । इस प्रकार सस्वर कादि अक्षरों को आदि में और सस्वर 'क्ष' से लेकर 'क' तक के अक्षरों के अन्त में रखने से सम्पूर्ण मन्त्र बनते हैं ।। १६ ।। १४४० खाब्धि देवेन्द्र मण्डलों के होने से सूर्य, शिव, दुर्गा तथा विष्णु इन सबों की तीन सौ साठ मण्डल होते हैं । अभिषिक्त गुरु इन सभी मन्त्रों का जप करे, ध्यान करे तथा शिष्यों को दीक्षित करे ।।१७-१८।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अभिषिक्तपुरुष के द्वारा किए जाने वाले देवताओं के पूजन की विधि का वर्णन नामक एकानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९१॥

श्रीशिवजी ने कहा– हे स्कन्द ! अब मैं क्रमशः संक्षेप से प्रतिष्ठा का वर्णन कर रहा हूँ । पीठ ही शक्ति है, तथा शिव ही लिङ्ग है । उन दोनों (शिव और शक्ति) का संयोग ही प्रतिष्ठा कहलाती है, जो प्रतिष्ठा शिवमन्त्रों से की जाती है ।। १ ।। प्रतिष्ठा के पाँच भेद होते हैं, उन सबों का स्वरूप मैं तुम्हें बतला रहा हूँ । जहाँ पर ब्रह्मशिला का योग होता है, उसे विशेष रूप से प्रतिष्ठा कहते हैं ।। २ ।। जहाँ पीठ पर ही देवता का निवेश किया जाता है उसे स्थापना कहते हैं । दूसरे पीठ की स्थापना को स्थित स्थापन कहते हैं ।। ३ ।। लिङ्गोद्धारपूर्वक की जाने

शुक्लाऽऽज्यगन्धा रक्ता च रक्तगन्धा सुगन्धिनी । पीता कृष्णा सुरागन्धा विप्रादीनां मही क्रमात् ॥ ७ ॥ पूर्वेशोत्तरसर्वत्र पूर्वा चैषां विशिष्यते । आखाते हास्तिके यस्याः पूर्णे मृदधिका भवेत् ॥ ८ ॥ उत्तमां तां महीं विद्यात्तोयाद्यैर्वा समुक्षिताम् । अस्थ्यङ्गारादिभिर्दुष्टामत्यन्तं शोधयेद्गुरुः ॥९॥ नगरग्रामदुर्गार्थं गृहप्रासादकारणम् । खननैर्गोकुलावासैः कर्षणैर्वा मुहुर्मुहुः ॥ १० ॥ मण्डपे द्वारपूजादिमन्त्रतृप्त्यवसानकम् । कर्म निर्वर्त्याघोरास्त्रं सहस्त्रं विधिना यजेत् ॥ ११ ॥ समीकृत्योपलिप्तायां भूमौ संशोधयेद्दिशः। स्वर्णदध्यक्षतै रेखाः प्रकुर्वीत प्रदक्षिणम् ॥ १२ ॥ मध्यादीशानकोष्ठस्थे पूर्णकुम्भे शिवं यजेत् । वास्तुमभ्यर्च्य तत्तोयैः सिञ्चेत्कुद्दालकादिकम् ॥ १३ ॥ बाह्ये रक्षोगणानिष्ट्वा विधिना दिग्बलिं क्षिपेत् । भूमिं संसिच्य संस्नाप्य कुद्दालाद्यं प्रपूजयेत् ॥ १४ ॥ अन्यं वस्त्रयुगच्छन्नं कुम्भं स्कन्धे द्विजन्मनः । निधाय गीतवाद्यादिब्रह्मघोषसमाकुलम् ॥ १५ ॥ पूजां कुम्भे समाहृत्य प्राप्ते लग्नेऽग्निकोष्ठके । कुद्दालेनाभिषिक्तेन मध्वक्तेन तु खानयेत् ॥ १६ ॥ नैर्ऋत्यां क्षेपयेन्मृत्स्नां खाते कुम्भजलं क्षिपेत् । पुरस्य पूर्वसीमान्तं नयेद्यावदभीप्सितम्॥१७॥ अथ तत्र क्षणं स्थित्वा भ्रामयेत्परितः पुरम्। सिञ्चन्सीमान्तचिह्नानि यावदीशानगोचरम् ॥ १८ ॥ अर्घ्यदानमिदं प्रोक्तं तत्र कुम्भपरिभ्रमात् । इत्थं परिग्रहं भूमेः कुर्वीत तदनन्तरम् ॥१९॥ कर्करान्तं जलान्तं वा शल्यदोषजिघांसया । खानयेद्भूकुमारी

वाली प्रतिष्ठा को उत्थापन कहते हैं । जिस प्रतिष्ठा में लिङ्ग को आरोपित करके विद्वद्वर्ग संस्कार करता है, उसे आस्थापन कहते हैं । विष्णु आदि की प्रतिष्ठा दो प्रकार से होती है । इन सभी (पाँचों प्रकार की) प्रतिष्ठाओं में चैतन्य रूप से परं शिव को ही नियुक्त करना चाहिए ।। ४-५ ।। आधार आदि के भेद से प्रासादों (मन्दिरों) की भी प्रतिष्ठा पाँच प्रकार की होती है । मन्दिर बनाने की इच्छा से पहले भूमि की परीक्षा करनी चाहिए ।। ६ ।। शुक्लवर्ण की तथा घी की गन्धवाली पृथ्वी ब्राह्मण के लिए रक्तवर्ण की तथा रक्त के गन्ध वाली क्षत्रियों के लिए, सुगन्धियुक्त तथा पीतवर्ण की वैश्यों के लिए एवं काली तथा मदिरा की गन्धवाली पृथ्वी शूद्रों के लिए उत्तम होती है ।। ७ ।। पूर्व दिशा ईशानकोण एवं उत्तरदिशा में नीचे अथवा बीच में ऊँची एवं चारों ओर नीची पृथिवी प्रासाद के लिए श्रेष्ठ होती है । जिस पृथ्वी को एक हाथ लम्बा एक हाथ चौड़ा तथा एक हाथ गहरा खोदकर उसे गढ्डे में भरने पर यदि मिट्टी अधिक हो जाय तो उस भूमि को उत्तम जानना चाहिए । अथवा जल आदि से भरी हुयी पृथ्वी को उत्तम समझना चाहिए । हड्डी, कोयला आदि से दूषित पृथिवी को आचार्य अच्छी तरह से शोधन करें । ९ ।। नगर, ग्राम तथा दुर्ग के निर्माणार्थ अथवा मन्दिर के निर्माणार्थ भूमि को खननकर, या वहाँ गौ बाँधकर अथवा बार-बार जोतकर शुद्ध करना चाहिए ।। १० ।। द्वार पूजा आदि कर्मों से लेकर मन्त्र तृप्ति पर्यन्त कमर्तों को मण्डप में करके अघोएस्त्र मन्त्र को एक हजार बार विधिपूर्वक जपना चाहिए ।। ११ ।। बराबर करके लिपी हुयी भूमि पर दिशाओं की शुद्धि करनी चाहिए । सुवर्ण, दही तथा अक्षतों के द्वारा प्रदक्षिण क्रम से रेखाओं को बनाना चाहिए । मध्य से ईशानकोण में विद्यमान कोष्ठ में पूर्णकुम्भ पर शिव की पूजा करनी चाहिए । उसके पश्चात् वास्तु का पूजन करके उसके जल से कुद्दाल आदि को सिंचना चाहिए ।। १३ ।। मण्डल से बाहर राक्षसों की पूजा करके विधिपूर्वक दिग्बलि देनी चाहिए । फिर भूमि को अच्छी तरह से सिंचकर तथा कुद्दाल आदि को धोकर उनकी पूजा करनी चाहिए ।। १४ ।। दो वस्त्रों से ढंके हुए दूसरे घड़े को ब्राह्मण के कन्धे पर रखकर गीत, वाद्य आदि के द्वारा तथा वेद पाठपूर्वक कुम्भ की पूजा करनी चाहिए तथा लग्न के आने पर अग्निकोण के कोष्ठ में अभिषिक्त तथा मधु लगाए गए कुद्दाल से खनवाना चाहिए।।१५-१६ ।। खात के नैर्ऋत्य कोण में मिट्टी निकालनी चहिए और गड्ढे में घड़े के जल को छिड़कना चाहिएं पुनः जहाँ तक अभिप्रेत हो वहाँ तक नगर की पूर्व सीमा तक जल को छिड़कते जाना चाहिए ।। १७ ।। इस तरह से रक्षा करके नगर के चारों तरफ नगर के सीमान्त चिह्नों को सिंचते हुए ईशानकोण तक उसे घुमाना चाहिए ।। १८ ।। वहाँ पर कुम्भ को घुमाने को अर्घ्यदान कहते हैं । इस तरह से भूमि का परिग्रह करके, उसके पश्चात् पृथिवी के शल्य दोष

चेद्विधिना शल्यमुद्धरेत् ॥ २० ॥ अकचटतपयशहान्मानवश्चेत्प्रश्नाक्षराणि तु । अग्नेर्ध्वजादिपतिताः स्वस्थाने शल्यमाख्यान्ति ॥ २१ ॥ कर्तुश्चाङ्गविकारेण जानीयात्तत् प्रमाणतः । पश्वादीनां प्रवेशेन कीर्तनैर्विरुतैर्दिशः ॥ २२ ॥ मातृकामष्टवर्गाढ्यां फलके भुवि वा लिखेत् । शल्यज्ञानं वर्गवशात्पूर्वादीशान्ततः क्रमात् ॥ २३ ॥ अवर्गे चैव लोहं तु कवर्गेऽङ्गारमग्नितः । चवर्गे भस्म दक्षे स्यात्टवर्गेऽस्थि च नैर्ऋते ॥ २४॥ तवर्गे चेष्टका चाऽऽप्ये कपालं च पवर्गके । यवर्गे शवकीटादि शवर्गे लोहमादिशेत् ॥ २५ ॥ हवर्गे रजतं तद्वदवर्गाच्चानर्थकानपि । प्रोक्ष्याश्मभिः करापूरैरष्टाङ्गुलमृदन्तरैः ॥ २६ ॥ पादोनं खातमापूर्य सजलैर्मुद्गराहतैः । लिप्तां समप्लवां तत्र कारयित्वा भुवं गुरुः ॥ २७ ॥ सामान्यार्घ्यकरो यायान्मण्डपं वक्ष्यमाणकम् । तोरणद्वाःपतीनिष्ट्वा प्रत्यग्द्वारेण संविशेत् ॥ २८ ॥ कुर्यात्तत्राऽऽत्मशुद्ध्यादिकुण्डमण्डपसंस्कृतिम् ॥ कलशं वर्धनीशक्तं लोकपालशिवार्चनम् ॥ २९ ॥ अग्नेर्ज्वलनपूजादि सर्वं पूर्ववदाचरेत् । यजमानान्वितो यायाच्छिलानां स्नानमण्डपम् ॥ ३० ॥ शिलाः प्रासादलिङ्गस्य पादा धर्मादिसंज्ञकाः । अष्टाङ्गुलोच्छ्रिताः शस्ताश्चतुरस्राः करायताः ॥ ३१ ॥ पाषाणानां शिलाः कार्या इष्टकानां तदर्धतः। प्रासादेऽश्मशिलाः शैल इष्टका इष्टकामये॥३२॥ अङ्किता वज्रवक्राद्यैः पञ्च वा पङ्कजान्विताः। नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णाख्या पञ्चमी मता॥३३॥

को दूर करने के लिए पृथिवी को तब तक खोदें जब तक वहाँ कंकड़ अथवा जल न दिखायी देने लगे । यदि हड्डी की शंका हो तो उसका विधिपूर्वक उद्धार करना चाहिए ।। १९-२०।। इस जगह पर हड्डी है कि नहीं इस प्रकार से प्रश्न करने वाले के मुख से पहला अक्षर- अ, क, च, ट, त, प, य, श तथा ह निकले तो वे वर्ण ही पूर्व दिशा से लेकर ईशानकोण तक बीच में शल्य की विद्यमानता को सूचित करते हैं ।। २१ ।। मन्दिर निर्माण कर्ता के अङ्ग विकार से भी हड्डी की स्थिति को जानना चाहिए । पशुओं के प्रवेश के द्वारा तथा पक्षियों के आवाज के द्वारा भी हड्डी की दिशा जानी जा सकती है ।। २२ ।। किसी तख्ते के ऊपर अथवा भूमि के ऊपर अष्टवर्ग की मातृका (अ, क, च, ट, त, प,य, स) को लिखना चाहिए। पूर्व से लेकर ईशानकोण तक लिखें, उस वर्ग के अक्षर के द्वारा भी हड्डी की दिशा का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है । अवर्ग कहने पर पूर्व दिशा में लोहा, कवर्ग कहने पर अग्निकोण में कोयला,चवर्ग का वर्ण कहने पर दक्षिण दिशा में भस्म, हवर्ग का वर्ण कहने पर नैऋत्य कोण में हड्डी तवर्ग कहने पर पश्चिम दिशा में ईंट, पवर्ग कहने पर वायव्यकोण में कपाल (खोंपड़ी) यवर्ग का वर्ण कहने पर उत्तर दिशा में शव तथा कीड़े आदि तथा शवर्ग का वर्ण कहने पंर ईशानकोण में लोहा बतलाना चाहिए ।। २३-२५ ।। इसी तरह से हवर्ग से चाँदी तथा अवर्ग के वर्ण होने पर अनर्थकारी पदार्थ जानना चाहिए । एक-एक हाथ के नव शिलाखण्डों का प्रोक्षण करके आठ-आठ अंगुल की दूरी पर मिट्टी में गाड़ देना चाहिए । तदनन्तर पानी डालकर उस पर मुग्दर से आघात करना चाहिए। जब वे प्रस्तर तीन चौथाई मिट्टी में धँस जायँ तो गड्ढे को भर देना चाहिए और भूमि को आचार्य बराबर करवा दें ।। २६-२७ ।। इसके पश्चात् आगे बतलाए जाने वाले अघ्य को हाथ में लेकर यज्ञमण्डप में जायँ और तोरणों एवं द्वारों के स्वामियों का पूजन करके पश्चिम द्वार से प्रवेश करें ।। २८ ।। वहाँ पर आत्मशुद्धि आदि करके कुण्ड एवं मण्डप आदि का संस्कार करें । वहाँ पर कलश तथा वर्धनी की स्थापना करके लोकपालों तथा शिव की अर्चना करें ।। २९ ।। पहले के ही समान अग्नि की ज्वाला आदि पूजन आदि सभी कर्मों को करना चाहिए । इसके पश्चात् यजमान के साथ आचार्य शिलाओं के स्नानमण्डप में जायँ ।। ३० ।। वे शिलाएँ प्रासाद लिङ्ग के धर्मादिसंज्ञक पाद हैं । उन शिलाओं की ऊँचाई आठ अंगुल, लम्बाई एक हाथ हो तो अच्छा है । इसी माप की पाषाण शिलाओं को बनवाना चाहिए । ईंटों के शिलाओं का माप इसके आधा होता है । अभिप्रेत अर्थ की प्राप्ति के लिए मन्दिर में शिला चाहे प्रस्तर खण्ड की हों या ईंट की उन्हें वज्र आदि के चिह्न से चिह्नित होना चाहिए अथवा पाँच शिलाओं के कमल के चिह्न से चिह्नित होना चाहिए ।। ३१ ।। इन शिलाओं के नाम क्रमशः हैं- नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता

आसां पद्मो महापद्मः शङ्खोऽथ मकरस्तथा । समुद्रश्चेति पञ्चामी निधिकुम्भाः क्रमादधः ॥ ३४ ॥ नन्दा भद्रा जया पूर्णा अजिता चापराजिता । विजया मङ्गलाख्या च धरणी नवमी शिला ॥ ३५ ॥ सुभद्रश्च विभद्रश्च सुनन्दः पुष्पनन्दकः । जयोऽथ विजयश्चैव कुम्भः पूर्णस्तथोत्तरः ॥ ३६॥ नवानां तु यथासंख्यं निधिकुम्भा अमी नव । आसनं प्रणवं दत्त्वाऽऽताड्योल्लिख्य शराणुना ॥ ३७ ॥ सर्वासामविशेषेण तनुत्रेणावगुण्ठनम् । मृद्भिर्गोमयगोमूत्रकषायैर्गन्धवारिणा ॥ ३८ ॥ अस्त्रेण हुंफडन्तेन मलस्नानं समाचरेत् । विधिना पञ्चगव्येन स्नानं पञ्चामृतेन च ॥ ३९ ॥ गन्धतोयान्तरं कुर्यान्निजनामाङ्किताणुना । फलरत्नसुवर्णानां गोशृङ्गसलिलैस्ततः ॥ ४० ॥ चन्दनेन समालभ्य वस्त्रैराच्छादयेच्छिलाम्। स्वर्णोत्थमासनं दत्त्वा नीत्वा योगं प्रदक्षिणम् ॥ ४१ ॥ शय्यायां कुशतल्पे वा हृदयेन निवेशयेत् ॥ ४२ ॥ त्रिखण्डव्यापकं तत्त्वत्रयं चानुक्रमान्न्यसेत्। बुद्ध्यादौ चित्तपर्यन्ते चित्ततन्मात्रकावधौ ॥ ४३ ॥ तन्मात्रादौ धरान्ते च शिवविद्यात्मनां स्थितिः । तत्त्वानि निजमन्त्रेण तत्त्वेशांश्च हृदार्चयेत्॥४४॥ स्थानेषु पुष्पमालादिचिह्नितेषु यथाक्रमम् ॥ ४५ ॥ ॐ हूं शिवतत्त्वाय नमः । ॐ हूँ शिवतत्त्वाधिपतये रुद्राय नमः । ॐ हां विद्यातत्त्वाय नमः। ॐ हां विद्यातत्त्वाधिपाय विष्णवे नमः । ॐ हामात्मतत्त्वाय नमः ॥ ॐ हामात्मतत्त्वाधिपतये ब्रह्मणे नमः । क्षमाग्नियजमानार्काञ्जलवातेन्दुखानि च । प्रतितत्त्वं न्यसेदष्टौ मूर्तीः प्रतिशिलां शिलाम् ॥ ४७ ॥ स (श) र्वं पशुपतिं चोग्रं रुद्रं भवमथेश्वरम् । महादेवं च भीमं च मूर्तीशांश्च यथाक्रमात्॥४८॥ ॐ धरामूर्तये नमः। ॐ धराधिपतये नमः ॥४९ ॥इत्यादिमन्त्राँलोकपालान्यथासंख्यं निजाणुभिः । विन्यस्य पूजयेत्कुम्भांस्तन्मन्त्रैर्वा

तथा पूर्णा । इन सबों के निधिकुम्भ हैं- पद्म, महापद्म, शङ्ख, मकर तथा समुद्र जो उन शिलाओं के नीचे होते हैं ।। ३३-३४ ।। नवों शिलाओं के क्रमशः नाम हैं- नन्दा, भद्रा, जया, पूर्णा, अजिता, अपराजिता, विजया, मङ्गला तथा धरणी ।। ३५ ।। नवों कुम्भों के निधिकुम्भ क्रमशः ये हैं- सुभद्र, विभद्र, सुनन्द, पुष्पनन्दक, जय,विजय, कुम्भ, पूर्ण और उत्तर ।। ३५-३६।। प्रणवमय आसन देकर अस्त्र मन्त्र से उनका ताड़न तथा उल्लेखन करना चाहिए ।। ३७ ।। समस्त शिलाओं का समान रूप से कवचमन्त्र द्वारा अवगुण्ठन करना चाहिए । अस्त्र मन्त्र के अन्त में हूँ फट् लगाकर उसका उच्चारण करते हुए, मिट्टी, गोबर, गोमूत्र, खटाई, तथा चन्दनयुक्त जल से स्नान कराना चाहिए । उसके पश्चात् विधिर्पूक पञ्चगव्य तथा पञ्चामृत से स्नान कराना चाहिए।। ३८-३९ ।। पुनः अपने नाम से अंकित मंत्र द्वारा गन्ध, फल, रत्न, सुवर्ण तथा गोश्रृङ्ग के जल से स्नान कराना चाहिए ।। ४० ।। पुनः शिला में चन्दन का लेप करके उसे वस्त्रों से आच्छादित कर देना चाहिए । तदनन्तर सोने का आसन देकर प्रदक्षिणक्रम से योग लाकर उसे शय्या पर अथवा कुश की शय्या पर सुला दें । पुनः शिलाओं का अच्छी तरह से पूजन करके बुद्धि से लेकर पृथिवी पर्यन्त के तत्त्वों का न्यास करके उनमें क्रमशः त्रिखण्ड व्यापक तत्त्वत्रय का न्यास करना चाहिए ।। ४१-४२।। बुद्धि से लकर चित्तपर्यन्त तथा चित्त से लेकर तन्मात्रा पर्यन्त और तन्मात्रा से लेकर पृथिवी पर्यन्त के तत्त्वों में क्रमशः शिव, विद्या तथा आत्मा की स्थिति समझना चाहिए। तत्त्वों का उनके अपने मन्त्र से तथा तत्त्वों के अधिष्ठातृ देवताओं की हृदयमन्त्र से अर्चना करनी चाहिए ।। ४३-४४ ।। पुष्पमाला आदि से चिह्नित स्थानों में क्रमशः निम्नांकित मन्त्रों से पूजन करना चाहिए- ओं हूँ शिवतत्त्वाय नमः, ओं हां शिवतत्त्वाधिपाय रुद्राय नमः, ओं हां विद्यातत्त्वाय नमः, ओं हां विद्यातत्त्वाधिपाय विष्णवे नमः । ओं हां आत्मतत्त्वाय नमः, ओं हां आत्मतत्वाधिपाय ब्रह्मणे नमः ।। ४५-४६।। उसके पश्चात् प्रत्येक शिलाओं में पृथिवी, अग्नि,यजमान,सूर्य, जल, वायु, चन्द्रमा, आकाश इन अष्टमूर्तियों का न्यास करके प्रत्येक शिला में क्रमशः- शर्व, पशुपति, उग्र, रुद्र, भव, महेश्वर, महादेव तथा भीम इन आठ मूर्तिस्वामियों का भी न्यास करना चाहिए ।। ४७-४८ ।। उसके पश्चात् ओं धरापतये नमः । ओं धराधिपतये शर्वाय नमः । इन मन्त्रों से मूर्तियों के अधिपतियों की पूजा करनी चाहिए । इन्द्र आदि लोकपालों का न्यास उनके अपने मन्त्रों से करना चाहिए । कुम्भों की पूजा कुम्भ मन्त्रों अथवा उनके अपने मन्त्रों से करनी चाहिए । इन्द्र आदि लोकपालों के बीज मन्त्र क्रमशः इस प्रकार हैं- यूं, व्रूं, श्रूं,

निजाणुभिः । इन्द्रादीनां तु बीजानि वक्ष्यमाणक्रमेण तु ॥ ५० ॥ लूं रूं शूं षूं वूं यूं मूं हूं क्षूमिति ॥ ५१ ॥ उक्तो नवशिलापक्षः शिला पञ्चपदा तथा । प्रतितत्त्वं न्यसेन्मूर्तीः स्पृष्ट्वा पञ्च धरादिकाः ॥ ५२ ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रः ईश्वरश्च सदाशिवः । एते च पञ्चमूर्तीशा यष्टव्यास्तासु पूर्ववत्॥५३॥ ॐ पृथ्वीमूर्तये नमः । ॐ पृथ्वीमूर्त्यधिपतये ओं ब्रह्मणे नमः । इत्यादि मन्त्राः ॥ ५४ ॥ संपूज्य कलशान्पञ्च क्रमेण निजनामभिः। निरुन्धीत विधानेन न्यासो मध्यशिलाक्रमात्। कुर्यात् प्राकारमन्त्रेण भूतिदर्भैस्तिलैस्ततः ॥ ५५ ॥ कुण्डेषु धारिकां शक्तिं विन्यस्याभ्यर्च्य तर्पयेत्॥५६॥ तत्त्वतत्त्वाधिपान्मूर्तिमूर्तीशांश्च घृतादिभिः। ततो ब्रह्मांशशुद्धार्थं मूलाङ्गं ब्रह्मभिः क्रमात् ॥ ५७ ॥ कृत्वा शतादिपूर्णान्तं प्रोक्ष्या शान्तिजलैः शिलाः । पूजयेच्च कुशैः स्पृष्ट्वा प्रतितत्त्वमनुक्रमात् ॥ ५८ ॥ सान्निध्यमथ संधानं कृत्वा शुद्धं पुनर्न्यसेत् । एवं भागत्रये कर्म गत्वा गत्वा समाचरेत् ॥ ५९ ॥ ॐ, आम्, ईम्, आत्मतत्वविद्यातत्त्वाभ्यां नम इति ॥ ६० ॥ संस्पृशेद्दर्भमूलाद्यैर्ब्रह्माङ्गादित्रयं क्रमात् । कुर्यात्तत्त्वानुसंधानं ह्रस्वदीर्घप्रयोगतः ॥ ६१ ॥ ॐ हाम् ॐ विद्यातत्त्वशिवतत्त्वाभ्यां नमः ॥ ६२ ॥ घृतेन मधुना पूर्णांस्ताम्रकुम्भान्सरत्नकान् । पञ्चगव्यार्घ्यसंसिक्ताँल्लोकपालाधिदैवतान् ॥ ६३ ॥ पूजयित्वा निजैर्मन्त्रैः संनिधौ होममाचरेत् । शिलानामथ सर्वासां संस्मरेदधिदेवताः ॥६४॥ विद्यारूपाः कृतस्नाना हेमवर्णाः शिलाम्बराः। न्यूनादिदोषमोषार्थं वास्तुभूमेश्च शुद्धये । यजेदस्त्रेण मूर्धान्तमाहुतीनां शतं शतम् ॥ ६५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रतिष्ठाङ्गशिलान्यासविधिकथनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

श्रूं, स्रूं, हूं क्षूम् ।। ४८-५१ ।। ये मन्त्र नवशिला पक्ष में हैं । यदि पञ्चपदा शिलाएँ हों तो तब प्रत्येक तत्त्वमयी शिलाओं में स्पर्शपूर्वक पृथिवी आदि पाँच मूर्तियों का न्यास करना चाहिए ।।५२।। उन सबों में पहले के ही समान ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदाशिव इन पाँच मर्तियों की भी पूजा करनी चाहिए । उनके मन्त्र- ओं पृथिवी मूर्तये नमः, ओं पृथिवीमूर्त्यधिपतये नमः । ओं ब्रह्मणे नमः । इत्यादि हैं ।। ५३-५४ ।। पुनः क्रमशः पाञ्चकुम्भों की उनके नाममन्त्रों से पूजा करके मध्यशिला के क्रम से उनका विधिपूर्वक न्यास करना चाहिए ।। ५५ ।। उसके पश्चात् कुश तथा तिल के द्वारा अस्त्र-मन्त्र से कुण्डों में धारिका शक्ति का विन्यास करके उनका पूजन करें तथा घी आदि से तत्त्वों, तत्त्वाधिपों, मूर्तियों तथा मूर्तीशों को तृप्त करना चाहिए ।। ५६ ।। उसके पश्चात् ब्रह्मांश की शुद्धि के लिए मूल के अङ्गभूत ब्रह्ममन्त्रों के द्वारा क्रमशः सौ-सौ आहुतियाँ देकर पूर्णाहुति पर्यन्त होम करने के पश्चात् शान्तिजल से शिलाओं का प्रोक्षण करके प्रत्येक तत्त्वों के क्रम से कुशा से स्पर्श करके उनका पूजन करना चाहिए ।। ५७-५८ ।। उसके पश्चात् प्रत्येक तत्त्वों में सान्निध्य एवं संधान करके शुद्ध न्यास करना चाहिए । इस तरह से जाकर तीन भागों में कर्मों को सम्पादित करना चाहिए ।। ५९ ।। इनके मंत्र इस प्रकार हैं- ओं आं ईं आत्मतत्त्वाविद्यातत्त्वाभ्यां नमः ।। ६० ।। इसके पश्चात् कुश के मूल आदि से ब्रह्माङ्ग आदि तीनों का क्रमशः संस्पर्श करना चाहिए । ह्रस्व, दीर्घ के प्रयोग के द्वारा तत्त्वों का अनुसंधान करना चाहिए ।। ६१ ।। उसका मन्त्र है- ओं इं ऊं विद्यातत्त्वशिवतत्त्वाभ्यां नमः' ।। ६२ ।। उसके पश्चात् घी तथा मधु से भरे हुए रत्नों से युक्त, पञ्चगव्य तथा मध्य से सिंचे गए, तथा लोकपालाधिदैवत वाले ताम्बों के घड़ों का उनके (लोकपालों के) मन्त्रों से पूजन करके सन्निधि होम करना चाहिए। उसके पश्चात् समस्त शिलाओं के अधिष्ठातृ देवताओं का ध्यान करना चाहिए ।।। ६३-६४ ।। वे देवता विद्यास्वरूप, स्नान किए हुए सुवर्ण के समान चमकते हुए तथा शिलारूपी वस्त्र धारण किए हुए हैं, ऐसा ध्यान करना चाहिए । न्यूनादि दोषों को दूर करने के लिए तथा वास्तुभूमि के लिए अस्त्र मन्त्र के द्वारा पूर्णाहुति पर्यन्त सौ-सौ आहुतियाँ देनी चाहिए ।। ६५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का प्रतिष्ठा के अङ्गभूत शिलान्यास विधि के वर्णन नामक बानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९२ ॥

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

वास्तुपूजादिविधिः

ईश्वर उवाच– ततः प्रासादमासूत्र्य वर्तयेद्वास्तुमण्डपम् । कुर्यात्कोष्ठचतुःषष्टिं क्षेत्रे चतुरस्त्रके समे ॥ १ ॥ कोणेषु विन्यसेद्वंशो रज्जवोऽष्टौ विकोणगाः। द्विपदाः षट्पदास्तास्तु वास्तुं तत्रार्चयेद्यथा ॥ २ ॥ आकुञ्चितकरं वास्तुमुत्तानमसुराकृतिम् । स्मरेत्पूजासु कुड्यादिनिवेशे त्वधराननम्॥३॥ जानुनी कूर्परौ सक्थि दिशि वातहुताशयोः । पैत्र्यां पादपुटौ रौद्र्यां शिरोऽस्य हृदयेऽञ्जलिः ॥ ४ ॥ अस्य देहे समारूढा देवताः पूजिताः शुभाः । अष्टौ कोणाधिपास्तत्र कोणार्धेष्वष्टसु स्थिताः ॥ ५ ॥ षट्पदास्तु मरीच्याद्या दिक्षु पूर्वादिषु क्रमात् । मध्ये चतुष्पदो ब्रह्मा शेषास्तु पदिकाः स्मृताः॥६॥ समस्तनाडीसंयोगे महामर्माम्बुजं फलम् । त्रिशूलं स्वस्तिकं वज्रं महास्वस्तिकसम्पुटौ ॥ ७ ॥ त्रिकटि मणिबन्धं च सुविशुद्धं पदं तथा। इति द्वादश मर्माणि वास्तोर्भित्त्यादिषु त्यजेत् ॥ ८ ॥ साज्यमक्षतमीशाय पर्जन्यायाम्बुजोदकम् । ददीताथ जयन्ताय पताकां कुङ्कुमोज्ज्वलाम्॥९॥ रत्नवारि महेन्द्राय रवौ धूम्रं वितानकम् । सत्याय घृतगोधूममाज्यभक्तं भृशाय च ॥ १० ॥ विमांसमन्तरिक्षाय शकुन्तेभ्यश्च पूर्ववत् । मधुक्षीराज्यसंपूर्णां प्रदद्याद्वह्नये स्रुचम् ॥ ११ ॥ लाजापूष्णे सुवर्णाम्बु वितथाय निवेदयेत् । दद्याद्गृहक्षते क्षौद्रं यमराजे पलौदनम् ॥ १२ ॥ गन्धं गन्धर्वनाथाय जिह्वां भृङ्गाय पक्षिणः। मृगाय यवपर्णानि याम्यामित्यष्ट देवताः॥ १३ ॥ पित्रे तिलोदकं क्षीरं वृक्षजं दन्तधावनम् । दौवारिकाय देवाय प्रदद्याद्धेनुमुद्रया ॥ १४ ॥ सुग्रीवाय दिशेत्पूपान्पुष्पदन्ताय दर्भकम् । रक्तं प्रचेतसे पद्ममसुराय सुरासवम् ॥ १५ ॥ घृतं गुडौदनं शोषे रोगाय

श्रीशिवजी ने कहा– उसके पश्चात् प्रासाद को आसूत्रित (त्रिसूती से वेष्टित) करके वास्तुमण्डप चौंसठ कोष्ठों वाले चौकोर तथा समतल क्षेत्र में बनाना चाहिए ।। १ ।। उसके कोनों में दो-दो बांसों को विन्यस्त करें तथा विकोणों में जाने वाली आठ रज्जुओं की स्थापना करनी चाहिए । उनको द्विपद तथा षट्पद स्थानों के रूप में विभक्त होना चाहिए । वहीं पर वास्तु देवता की पूजा करनी चाहिए।।२।। पूजाकाल में वास्तु का ध्यान हाथ बिटोरे हुए उत्तान्न पड़े हुए आसुराकृति वाले रूप से करना चाहिए । किन्तु दिवार आदि बनाने के समय उसका ध्यान औंधे मुँह, घुटने, कोहुनी तथा जंघे वायव्य तथा अग्निकोण में सटे हुए रूप से करना चाहिए । उसके दोनों पैर नैर्ऋत्यकोण में तथा शिर ईशानकोण में एवं अंजलि हृदय पर है ।। ३-४ ।। इसके शरीर पर चढ़े हुए देवता की पूजा करने से शुभ होता है । उसके ऊपर कोणों के आठ स्वामी आठ कोणार्धों में स्थित हैं ।। ५ ।। मरीचि आदि ऋषियों का पूजन पूर्व आदि दिशाओं में क्रमशः करना चाहिए । बीच के चार कोष्ठों में ब्रह्मा का पूजन करना चाहिए । शेष देवताओं का पूजन एक-एक कोष्ठों में करना चाहिए ।। ६ ।। समस्त नाड़ी सम्पात,महामर्म, कमल, फल, त्रिशूल,स्वस्तिक,वज्र,महास्वस्तिक,सम्पुट, त्रिकटि, मणिबन्ध तथा सुविशुद्ध पद ये बारह मर्मस्थान हैं, वास्तु की भीति आदि में इनका त्याग कर देना चाहिए ।। ७-८ ।। ईशान के लिए घी युक्त अक्षत,पर्जन्य के लिए कमल का जल तथा जयन्त के लिए कुंकुम के द्वारा रंगी गयी पताका चढ़ानी चाहिए ।। ९ ।। महेन्द्र के लिए रत्न का जल,सूर्य के लिए धूम्रवर्ण का चँदोवा, सत्य के लिए घी मिश्रित गेहूँ तथा भृश के लिए घीभात चढ़ाना चाहिए ।। १० ।। अन्तरिक्ष के लिए विशिष्ट प्रकार का माँस, शकुन्तों के लिए भी वही (ये पूर्वदिशा के देवता हैं) ।। १० ।। अग्नि को मधु, दुग्ध तथा घी से भरा हुआ सुक्, पूषा को लावा तथा वितथ को सुवर्ण का जल चढ़ाना चाहिए । गृहक्षत को मधु तथा यमराज को पलौदन चढ़ाना चाहिए।।११-१२।। गन्धर्वनाथ को गन्ध, भृङ्ग को पक्षी की जीभ, और मृग को यव के पत्ते ये दक्षिण दिशा के आठ देवता हैं ।। १३ ।। पितरों का तिल का जल, और दौवारिक नामक देवता के लिए वृक्ष का दुग्ध तथा दातून धेनु मुद्रा प्रदर्शनपूर्वक चढ़ाना चाहिए ।। १४ ।। सुग्रीव को पूआ, पुष्पदन्त को कुश, प्रचेतस के लिए लाल कमल तथा असुर के लिए सुरा तथा आसव चढ़ाना चाहिए ।। १५ ।।

घृतमण्डकान् । लाजान्वा पश्चिमाशायां देवाष्टकमितीरितम् ॥ १६ ॥ मारुताय ध्वजं पीतं नागाय नागकेशरम् । मुख्ये भक्ष्याणि भल्लाटे मुद्गसूपं सुसंस्कृतम् ॥ १७ ॥ सोमाय पायसं साज्यं शालूकमूषयं दिशेत् । लोपीमदितये दित्यै पुरीमित्युत्तराष्टकम् ॥ १८ ॥ मोदकान्ब्रह्मणः प्राच्यां षट्पदाय मरीचये । सवित्रे रक्तपुष्पाणि ब्रह्माधः कोणकोष्ठके ॥ १९ ॥ तदधः कोष्ठके दद्यात्सावित्र्यै च कुशोदकम् । दक्षिणे चन्दनं रक्तं षट्पदाय विवस्वते ॥ २० ॥ हरिद्रौदनमिन्द्राय रक्षोधः कोणकोष्ठके । इन्द्रजयाय मिष्ठान्नमिन्द्राधस्तान्निवेदयेत् ॥ २१ ॥ वारुण्यां षट्पदासीने मित्रे सगुडमोदनम् । रुद्राय घृतसिद्धान्नं वायुकोणाधरे पदे ॥ २२ ॥ तदधो रुद्रदासाय मांसं मार्द्रमथोत्तरे । ददीत माषनैवेद्यं षट्पदस्थे धराधरे॥२३॥ आपाय शिवकोणाधस्तद्वत्साय च तत्तले । क्रमाद्दद्यादधि क्षीरं पूजयित्वा विधानतः ॥ २४ ॥ चतुष्पदे निविष्टाय ब्रह्मणे मध्यदेशतः । पञ्चगव्याक्षतोपेतं चरुं साज्यं निवेदयेत् ॥ २५ ॥ईशादिवायुपर्यन्तकोणेष्वथ यथाक्रमम् । वास्तुवाह्ये चरक्याद्याश्चतस्त्रः पूजयेद्यथा॥२६॥ चरक्यै सघृतं मांसं विदार्यै दधिपङ्कजम् । पूतनायै पलं पित्तं रुधिरं च निवेदयेत् ॥ २७ ॥ अस्थीनि पापराक्षस्यै रक्तपित्तपलानि च । ततो माषौदनं प्राच्यां स्कन्दाय विनिवेदयेत् ॥ २८ ॥ अर्यम्णे दक्षिणाशायां पूपान्कृसरया युतान् । जम्भकाय च वारुण्यामामिषं रुधिरान्वितम् ॥ २९ ॥ उदीच्यां पिलिपिच्छाय रक्तान्नं कुसुमानि च । यजेद्वा सकलं वास्तुं कुशदध्यक्षतैर्जलैः ॥ ३० ॥ गृहे च नगरादौ च एकाशीतिपदैर्यजेत् । त्रिपदा रज्जवः कार्याः षट्पदाश्च विकोणके॥३१॥ ईशाद्याः पादिकास्तस्मिन्नागाद्याश्च द्विकोष्ठगाः। षट्पदस्था मरीचा (च्या) द्या ब्रह्मा नवपदः स्मृतः॥३२॥

शोष को घी गुड़ तथा भात चढ़ाना चाहिए,रोग को घी मिश्रित माँड़, अथवा लावा चढ़ानाचाहिए ये पश्चिम दिशा के आठ देवता बतलाए गए हैं ।। १६ ।। मारुत की पीला ध्वज, नाग को नागेश्वर, मुख्य को भक्ष्य पदार्थ तथा भल्लाट को सुसंस्कृत (छौंक लगायी हुयी मूंग की दाल चढ़ानी चाहिए ।। १७ ।। सोम को धृत मिश्रित खीर चरक को शालूक, अदिति को लोपी तथा दिति को पूरी चढ़ानी चाहिए । ये उत्तर के आठ देवता हैं ।। १८ ।। ब्रह्माजी को मोदक तथा पूर्वदिशा में छह पदों (कोष्ठों) के अधिष्ठाता मरीचि को भी मिठाई चढ़ाएँ । ब्रह्मा जी से नीचे अग्निकोण के कोष्ठ में सविता को लाल पुष्प चढ़ाना चाहिए ।। १९ ।। उनके नीचे विद्यमान सावित्री को कुश का जल तथा दक्षिण दिशा में विद्यमान छह कोष्ठों के स्वामी विवस्वान को लाल चन्दन चढ़ाना चाहिए ।। २० ।। इन्द्र को हल्दी भात तथा इन्द्र के नीचे नैऋत्य कोण में विद्यमान इन्द्रजय को मिष्ठान्न, चढ़ाना चाहिए ।। २१ ।। ब्रह्माजी से पश्चिम छह पदों में विद्यमान मित्र देवता को गुड़, भात, वायव्यकोण से नीचे के कोष्ठ में रुद्रदेवता को घी में पकाया गया अन्न चढ़ाना चाहिए ।। २२ ।। रुद्र देवता से नीचे के कोष्ठ में विद्यमान रुद्रदास को आर्द्रमांस चढ़ाए। उसके पश्चात् उत्तरवर्ती छह कोष्ठों में विद्यमान पृथ्वीधर को उड़द का बना नैवेद्य चढ़ाना चाहिए ।। २३ ।। ईशानकोण के नीचे विद्यमान आपको तथा उसके भी नीचे विद्यमान आपवस्स की विधिपूर्वक पूजा करके उनके लिए क्रमशः दही तथा दुग्ध चढ़ाना चाहिए ।। २४ ।। उसके पश्चात् वास्तुमण्डल के बीच में चारकोणों में विद्यमान ब्रह्मा जी को पञ्चगव्य, अक्षत तथा घी मिश्रित चरु निवेदित करना चाहिए ।। २५ ।। उसके पश्चात् ईशानकोण को पञ्चगव्य, अक्षत घीमिश्रित चरु निवेदित करना चाहिए ।। २५ ।। उसके पश्चात् ईशानकोण से लेकर वायव्यकोण पर्यन्त चार कोणों में स्थित वास्तुमण्डल से बाहर चरकी आदि की इस प्रकार से पूजा करें ।। २६ ।। चरकी को घी मिश्रित मांस, विदारी को दही और कमल, पूतना को मांस, पित्त तथा खून चढ़ाना चाहिए ।। २७ ।। पापराक्षसी को हड्डी, खून पित्त तथा मांस चढ़ाना चाहिए । उसके पश्चात् पश्चिम दिशा में स्कन्द को उड़द का भात चढ़ाना चाहिए ।। २८ ।। दक्षिण दिशा में अर्यमा को खिचड़ी युक्त पूआ चढ़ाना चाहिए और पश्चिम दिशा में जम्भक को खून युक्त मांस चढ़ाना चाहिए ।। २९ ।। उत्तर दिशा में पिलिपिच्छ को लाल अन्न तथा लाल पुष्प चढ़ाना चाहिए । अथवा सम्पूर्ण वास्तुमण्डल की पूजा कुश, दही, अक्षत तथा जल से करनी चाहिए ।। ३० ।। गृह तथा नगर आदि में वास्तु की पूजा इक्यासी कोष्ठों के द्वारा करनी चाहिए । इस वास्तुमण्डल में

नगरग्रामखेटादौ वास्तुः शतपदोऽपि वा । वंशद्वयं कोणगतं दुर्जयं दुर्धरं सदा ॥ ३३ ॥ यथा देवालये न्यासस्तथा शतपदे हितः । ग्रहाः स्कन्दादयस्तत्र विज्ञेयाश्चैव षट्पदाः ॥ ३४ ॥ चरक्याद्या भूतपदा रज्जुवंशादि पूर्ववत् । देशसंस्थापने वास्तु चतुस्त्रिंशच्छतं भवेत् ॥ ३५ ॥ चतुःषष्ठिपदो ब्रह्मा मरीच्याद्याश्च देवताः । चतुष्पञ्चाशतपदिका आपाद्यष्टौ रसाग्निभिः ॥ ३६ ॥ ईशानाद्या नवपदाः स्कन्दाद्या शतिकाः स्मृताः। चरक्याद्यास्तद्वदेव रज्जुवंशादि पूर्ववत् ॥ ३७ ॥ ज्ञेयो विंशसहस्त्रैस्तु वास्तुमण्डलगः पदैः । न्यासो नवगुणस्तत्र कर्तव्यो देशवास्तुवत् ॥ ३८ ॥ पञ्चविंशत्पदो वास्तुर्वैतालाख्यश्चितौ स्मृतः । अन्यो नवपदो वास्तुः षोडशाङ्घ्रिस्तथाऽपरः ॥ ३९॥ षडस्त्रत्र्यस्त्रवृत्तादेर्मध्ये स्याच्चतुरस्त्रकम् । खाते वास्तुसमं पृष्ठे न्यासे ब्रह्मशिलात्मके ॥ ४० ॥ शावाकस्य निवेशे च मूर्तिसंस्थापने तथा । पायसेन तु नैवेद्यं सर्वेषां च प्रदापयेत् ॥ ४१ ॥ उक्तानुक्ते तु वै वास्तुः पञ्चहस्तप्रमाणतः । गृहप्रासादमानेन वास्तुः श्रेष्ठस्तु सर्वदा ॥ ४२ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वास्तुपूजाविधिकथनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

शिलाविन्यासविधिः

ईश्वर उवाच— **ईशादिषु चरक्याद्याः पूर्ववत्पूजयेद्बहिः । आहुतित्रितयं दद्यात्प्रतिदेवमनुक्रमात् ॥ १ ॥ दत्त्वा भूतबलिं लग्ने शिलान्यासमनुक्रमात्।**

त्रिपद तथा विशेष में जाने वाली षट्पद रस्सियों को पूर्वत् बनानी चाहिए ।। ३१ ।। इन वास्तुमण्डल में ईश आदि देवता एक-एक कोष्ठ में तथा नाग आदि दो-दो कोष्ठों में रहते हैं । मरीच आदि छह कोष्ठों में तथा ब्रह्मा जी का स्थान नव कोष्ठों में रहता है ।। ३१-३२ ।। नगर ग्राम तथा खेट आदि में सौ कोष्ठों वाले वास्तु का विधान है। कोनों में सदा दुर्जय तथा दुर्धर नामक दो बांसों को स्थापित करना चाहिए ।। ३३ ।। जिस तरह से देवालय में न्यास किया जाता है उसी तरह से सौ कोष्ठों में भी न्यास करना चाहिए । इस वास्तुमण्डल में ग्रहों तथा स्कन्द आदि को छह कोष्ठों में स्थित जानना चाहिए ।। ३४ ।। चरकी आदि पाँच-पाँच कोष्ठों में रहती हैं । रस्सी तथा बाँस आदि पहले के ही समान रहते हैं । देश की स्थापना करनी हो तो वास्तुमण्डल का चौंतीस सौ पदों (कोष्ठों) से युक्त निर्माण करना चाहिए ।। ३५ ।। इस वास्तुमण्डल में ब्रह्मा का स्थान चौंसठ कोष्ठों में होता है । मरीचि आदि देवता चौवन-चौवन पदों के अधिष्ठिाता होते हैं । आप इत्यादि देवताओं के स्थान छत्तीस-छत्तीस कोष्ठों में बतलाए गये हैं ।। ३६ ।। ईशान आदि देवताओं के नव-नव पद होते हैं तथा स्कन्द आदि के सौ-सौ पद बतलाए गए हैं। चरकी आदि के भी पद उसी के अनुसार होते हैं, रज्जु तथा बाँस पहले के ही समान होते हैं ।। ३७ ।। बीस हजार कोष्ठों वाला भी वास्तुमण्डल होता है । उसमें देशवास्तु के समान नवगुणा न्यास करना चाहिए ।। ३८ ।। चिता स्थापन के समय बैतालस नामक पच्चीस कोष्ठों वाला वास्तुमण्डल विहित है । एक दूसरा वास्तुमिण्डल नव पदों वाला तथा सोलह पदों वाला भी वास्तुमण्डल होता है ।। ३९ ।। षट्कोण, त्रिकोण तथा वृत्त आदि के बीच में भी चौकोर वास्तुमण्डल का विधान है । इस प्रकार का वास्तु खात (नींव के लिए खोदे गए गढ़े) के लिए उपयुक्त होता है । इसी के समान वास्तु ब्रह्मशिलात्मक पृष्ठ न्यास में, शावक के निवेश में, मूर्ति की स्थापना करने में बनाना चाहिए। वास्तुमण्डल के सभी देवताओं को खीर का नैवेद्य चढ़ाना चाहिए।।४०-४१।। उक्तान्युक्त समस्त कार्यों में वास्तुमण्डल की लम्बाई सामान्यतः पाँच हाथ की करनी चाहिए। गृह एवं प्रासाद के मान के अनुसार ही निर्मित वास्तु सदा श्रेष्ठ माना गया है ।।४२।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का वास्तुपूजा विधि वर्णन नामक तिरानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९३ ॥

श्रीशिवजी ने कहा— पहले के ही समान ईशान आदि तथा चरकी आदि की पूजा वास्तुमण्डल से बाहर करनी चाहिए । क्रमशः प्रत्येक देवता के लिए तीन-तीन आहुति देनी चाहिए।।१।।

मध्यसूत्रे न्यसेच्छक्तिं कुम्भमावन्तमुत्तमम् ॥ २ ॥ नकारारूढमूलेन कुम्भेऽस्मिन्धारयेच्छिलाम् । कुम्भानष्टौ सुभद्रादीन्दिक्षु पूर्वादिषु क्रमात् ॥ ३॥ लोकपालाणुभिर्न्यस्य 'श्वभ्रेषु न्यस्तशक्तिषु । शिलास्तेष्वथ नन्दाद्याः क्रमेण विनिवेशयेत् ॥ ४ ॥ शम्बरैर्मूर्तिनाथानां यथा स्युर्भित्तिमध्यतः । तासु धर्मादिकानष्टौ कोणात्कोणं विभागशः ॥ ५ ॥ सुभद्रादिषु नन्दाद्याश्चतस्त्रोऽग्न्यदिकोणगाः । अजिताद्याश्च पूर्वादिजयादिष्वथविन्यसेत्॥६॥ ब्रह्माणं चोपरि न्यस्य व्यापकं च महेश्वरम् । चिन्तयेदेष चाऽऽत्मानं व्योमप्रासादमध्यगम् ॥ ७ ॥ बलिं दत्त्वा जपेदस्त्रं विघ्नदोषनिवारणम् । शिलापञ्चकपक्षेऽपि मनागुद्दिश्यते यथा ॥ ८ ॥ मध्ये पूर्णशिलान्यासः सुभद्रकलशेऽर्धतः । पद्मादिषु च नन्दाद्याः कोणेष्वग्न्यादिषु क्रमात् ॥९॥ मध्याभावे चतस्त्रोऽपि मातृवद्भावसंमताः । ॐ पूर्णे त्वं महाविद्ये सर्वसंदोहलक्षणे ॥ १० ॥ सर्व (र्वं) संपूर्णमेवात्र कुरुष्वाङ्गिरसः सुते । ॐ नन्दे त्वं नन्दिनी पुंसां त्वामत्र स्थापयाम्यहम् ॥ ११ ॥ प्रासादे तिष्ठ संतृप्ता यावच्चन्द्रार्कतारकम् । आयुः कामं श्रियं नन्दे देहि वासिष्ठि देहिनाम्॥१२॥ अस्मिन् रक्षा सदा कार्या प्रासादे यत्नतस्त्वया । ॐ भद्रे त्वं सर्वदा भद्रं लोकानां कुरु काश्यपि ॥ १३ ॥ आयुर्दा कामदा देवि श्रीप्रदा च सदा भव। ॐ जयेऽत्र सर्वदा देवि श्रीदाऽऽयुर्दा सदा भव॥१४॥ ॐ जयेऽत्र सर्वदा देवि तिष्ठ त्वं स्थापिता मया । नित्यं जयाय भूत्यै च स्वामिनो भव

लग्न के आ जाने पर भूतबलि देकर शिलान्यास का कार्य प्रारम्भ करना चाहिए । मध्यसूत्र में आधारशक्ति का न्यास करना चाहिए । उसके ऊपर अनन्त दैवत उत्तम कुम्भ की स्थापना करनी चाहिए ।। २ ।। उस घट के ऊपर 'न' अक्षर से युक्त मूलमन्त्र के द्वारा शिला की स्थापना करके क्रमशः पूर्व आदि दिशाओं में सुभद्र आदि आठ कुम्भों को लोकपालों के मन्त्रों से स्थापित करना चाहिए । पहले उनके लिए गड्ढा खोदकर आधार शक्ति का न्यास करके कलशों को स्थापित करना चाहिए । उसके पश्चात् उन पर क्रमशः नन्दा आदि शिलाओं को न्यस्त करना चाहिए।।४।। तत्त्वत्रयों के अधिदेवता सम्बन्धी शस्त्रों से युक्त उन शिलाओं को होना चाहिए । जिस तरह दिवारों में मूर्ति तथा शस्त्र अंकित होते हैं उसी तरह उन शिलाओं में देवताओं की मूर्तियाँ तथा शस्त्रों को अंकित होना चाहिए। उन शिलाओं पर एक कोण से दूसरे कोण के विभागपूर्वक धर्म आदि आठ देवताओं की स्थापना करनी चाहिए ।। ५ ।। सुभद्र आदि कलशों पर नन्दा आदि चार शिलाओं को अग्नि आदि चार कोणों में स्थापित करना चाहिए । उसके पश्चात् जय आदि चार कलशों पर अजिता आदि चार शिलाओं को पूर्व आदि चार दिशाओं में स्थापित करना चाहिए ।। ६ ।। उन सबों के ऊपर ब्रह्माजी तथा व्यापक महेश्वर का न्यास करके आकाश तथा मन्दिर के बीच में विद्यमान आत्मा का ध्यान करना चाहिए ।। ७ ।। फिर बलि देकर विघ्न तथा दोष का निवारण करने वाले अस्त्र मन्त्र का जप करना चाहिए । यदि पाँच शिलाओं को स्थापित करना हो तो उस पक्ष में भी मैं थोड़ा कह रहा हूँ ।। ८ ।। यज्ञमण्डप के मध्यभाग में सुभद्र नामक कलश के ऊपर पूर्णा नामक शिला का न्यास करनाचाहिए ।। ९ ।। मध्य शिला के क्रमशः पद्म आदि कलशों पर नन्दा आदि शिलाओं को न्यस्त करना चाहिए ।। ९ ।। मध्यशिला के अभाव में चारही शिलाओं को मातृभाव से स्थापित करना चाहिए । इसके बाद प्रार्थना करनी चाहिए- सर्वसंदोह स्वरूपे ! पूर्णे ! तुम अङ्गिराऋषि की पुत्री हो, इस प्रतिष्ठा में तुम सम्यक् रूप से पूर्ण करो ।। १० ।। हे नन्दे ! तुम समस्त पुरुषों को आनन्दित करने वाली हो, यहाँ पर मैं तुमको स्थापित कर रहा हूँ ।। जब तक चन्द्र सूर्य तथा तारे रहें तब तक तुम इस प्रासाद में तृप्त होकर निवास करो । हे वसिष्ठ पुत्रि ! नन्दे ! तुम शरीरधारियों को आयुः, काम तथा सम्पत्ति प्रदान करो ।। ११-१२ ।। इस मन्दिर में तुम प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने का काम करना। हे कश्यप पुत्रि ! भद्रे ! तुम लोगों का सदा कल्याण करो । हे देवि ! तुम सदा आयु, काम तथा श्रीप्रदान करते रहना । हे जये! देवि ! मेरे द्वारा स्थापित होकर तुम सर्वदा यहाँ निवास करो। हे भार्गव पुत्रि ! तुम गृहस्वामी को सदा विजय तथा ऐश्वर्य प्रदान करो ।। १४-१५ ।। हे रिक्ते ! तुम अतिरिक्त दोषों को दूर करने वाली हो, तुम शुभ हो और सिद्धि तथा मोक्ष प्रदान करने

भार्गवि ॥ १५ ॥ ॐ रिक्तेऽतिरिक्तदोषघ्ने सिद्धिमुक्तिप्रदे शुभे । सर्वदा सर्वदेशस्थे तिष्ठास्मिन्नीशरूपिणि ॥ १६ ॥ गगनायतनं ध्यात्वा तत्र तत्त्वत्रयं न्यसेत् । प्रायश्चित्तं ततो हुत्वा विधिना विसृजेन्मखम् ॥ १७ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शिलाविन्यासविधिकथनं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः

प्रतिष्ठाकालसामग्र्यादिविधिः

ईश्वर उवाच– **वक्ष्येलिङ्गप्रतिष्ठां च प्रासादे भुक्तिमुक्तिदाम् । तां चरेत्सर्वदा मुक्तौ भुक्तौ देवदिने सति ॥ १ ॥ विना चैत्रेण माघादौ प्रतिष्ठामासपञ्चके । गुरुशुक्रोदये कार्या प्रथमे करणत्रये ॥ २ ॥ शुक्लपक्षे विशेषेण कृष्णेऽप्यापञ्चमं दिनम् । चतुर्थी नवमीं षष्ठीं वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ॥ ३ ॥ शोभनास्तिथयः शेषाः क्रूरवारविवर्जिताः । शतभिषा धनिष्ठाऽऽर्द्रा अनुराधोत्तरात्रयम् ॥ ४ ॥ रोहिणी श्रवणश्चेति स्थिरारम्भे महोदयाः । लग्नं च कुम्भसिंहालितुलास्त्रीवृषधन्विनाम्॥५॥ शस्तो जीवो नवर्क्षेषु सप्तस्थानेषु सर्वदा । बुधः षडष्टदिक्सप्ततुर्येषु विनर्तुं सितः॥६॥ सप्तर्तुत्रिदशादिस्थः शशाङ्को बलदः सदा । रविर्दशत्रिषट्संस्थो राहुस्त्रिदशषड्गतः ॥ ७ ॥ षट्त्रिस्थानगताः शस्ता मन्दाङ्गारककेतवः। शुभाः क्रूराश्च पापाश्च सर्व एकादशस्थिताः ॥ ८ ॥ एषां दृष्टिर्मुनौ पूर्णा त्वार्धिकी ग्रहभूतयोः । पादिकी रामदिक्स्थाने चतुरष्टौ पादवर्जिता ॥ ९ ॥**

वाली हो, सर्वज्ञा सभी स्थानों में रहने वाली ईश स्वरूपिणी तुम इस प्रासाद में निवास करो ।। १६ ।। इसके पश्चात् आचार्य आकाश गृह का ध्यान करके उसमें तत्त्वों का न्यास करें । उसके पश्चात् प्रायश्चित्त होम को करके यज्ञ को विसर्जित करना चाहिए ।। १७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का शिलाविन्यास विधि का वर्णन नामक चौरानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९४ ॥

श्री शिवजी ने कहा– अब मैं भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाली मन्दिर में लिङ्ग की प्रतिष्ठा का वर्णन करता हूँ । मोक्ष की इच्छा से इसे कभी भी किया जा सकता है तथा भोग प्राप्ति की इच्छा से इसे देव दिन उत्तरायण में ही करना चाहिए ।। १ ।। चैत्रमास को छोड़कर माघ आदि पाँच महीनों में प्रथम तीन (बव, बालव तथा कौलव) करणों में,गुरु तथा शुक्र के उदित होने पर प्रतिष्ठा करनी चाहिए ।। २ ।। खासकर शुक्लपक्ष में तथा कृष्ण पक्ष में भी प्रथम पाञ्च तिथियों में प्रतिष्ठा करनी चाहिए । चतुर्थी, नवमी, षष्ठी तथा चतुर्दशी तिथि को छोड़कर शेष तिथियाँ प्रतिष्ठा के लिए प्रशस्त हैं । क्रूर वारों में प्रतिष्ठा तिथि को नहीं होना चाहिए ।। ३ ।। शतभिषा, धनिष्ठा, आर्द्रा अनुराधा तीनों उत्तरा, रोहिणी तथा श्रवण ये नक्षत्र प्रतिष्ठा कार्य के लिए शुभ हैं । कुम्भ, सिंह, वृश्चिक, तुला, कन्या, वृष और धनु ये लग्न शुभ हैं ।। लग्न से तृतीय, अष्टम तथा द्वादश स्थान को छोड़कर शेष नव स्थान में गुरु शुभ हैं, सात स्थानों में तो वे सर्वदा शुभ हैं । लग्न से छठें, आठवें, दसवें, सातवें तथा चौथे स्थानों में बुध की स्थिति शुभ होती है । छठें स्थान को छोड़कर यदि इन्हीं स्थानों में शुक्र हों तो प्रतिष्ठा के लिए शुभ होता है ।। ६ ।। प्रथम, तृतीय, षष्ठ,सप्तम और दशम स्थानों में चन्द्रमा बलप्रद होते हैं । लग्न से दशम, तृतीय एवं षष्ठभाव में सूर्य की स्थिति शुभ होती है तथा राहु तृतीय, दशम तथा षष्ठभाव में शुभ होते हैं ।। ७ ।। लग्न से तृतीय एवं षष्ठ स्थान में शनि, मङ्गल तथा केतु की स्थिति शुभ होती है । ग्यारहवें स्थान में शुभ अथवा पाप दोनों प्रकार के ग्रह शुभ होते हैं ।। ८ ।। इन ग्रहों की दृष्टि मुनि पर तो पूरी पड़ती है तथा ग्रह तथा भूतों पर आधी । तृतीय चतुर्थ स्थानों में इनकी दृष्टि चौथाई पड़ती है मीन तथा मेष राशि पर ये पौने चार घड़ी भोग करते हैं तथा वृष

पादन्यूनचतुर्नाडीभोगः स्यान्मीनमेषयोः । वृषकुम्भौ च भुञ्जाते चतस्रः पादवर्जिताः ॥ १० ॥ मकरो मिथुनं पञ्च चापालिहरिकर्कटः । पादोनाः षट्तुलाकन्ये घटिकाः सार्धपञ्च च ॥ ११ ॥ केसरीवृषभः कुम्भः स्थिराः स्युः सिद्धिदायकाः । चरा धनुस्तुलामेषा द्विस्वभावास्तृतीयकाः॥१२॥ कर्कटो मकरोऽलिश्च प्रव्रज्याकार्यनाशकाः । शुभः शुभग्रहैर्दृष्टः शस्तो लग्नः शुभाश्रितः ॥ १३ ॥ गुरुशुक्रबुधैर्युक्तो लग्नो दद्याद्बलायुषी । राज्यं शौर्यं बलं पुत्रान्यशो धर्मादिकं बहु ॥ १४ ॥ प्रथमः स्प्तमस्तुर्यो दशमः केन्द्र उच्यते । गुरुशुक्रबुधास्तत्र सर्वसिद्धिप्रदायकाः ॥ १५ ॥ त्र्येकादशचतुर्थस्था लग्नात्पापग्रहाः शुभाः । अतोऽन्येऽमी च कर्मार्थं योज्यास्तिथ्यादयो बुधैः ॥ १६ ॥ धाम्नः पञ्चगुणां भूमिं त्यक्त्वा वा धामसंमिताम् । हस्ताद्द्वादशसोपानात्कुर्यान्मण्डपमग्रतः ॥ १७ ॥ चतुरस्रं चतुर्द्वारं स्नानार्थं तु तदर्धतः । एकास्यं चतुरास्यं वा रौद्र्यां प्राच्युत्तरेऽथ वा ॥ १८ ॥ हास्तिको दशहस्तो वै मण्डपोऽर्ककराऽथ वा । द्विहस्तोत्तरया वृद्धया शेषं स्यान्मण्डपाष्टकम् ॥ १९ ॥ वेदी चतुस्करा मध्ये कोणस्तम्भेन संयुता । वेदी पादान्तरं त्यक्त्वा कुण्डानि नवपञ्च वा ॥ २० ॥ एकं वा शिवकाष्ठायां प्राच्यां वा तद्गुरोः पदम् । मुष्टिमात्रं शतार्धे स्याच्छते चारत्निमात्रकम् ॥ २१ ॥ हस्तं सहस्रहोमे स्यान्नियुते तु द्विहास्तिकम् । लक्षे चतुष्करं कुण्डं कोटिहोमेऽष्टहस्तकम् ॥ २२ ॥ भगाभमग्नौ खण्डेन्दु दक्षे त्र्यस्रं च नैर्ऋते । षडस्रं वायवे पद्मं सौम्ये चाष्टास्रकं शिवे ॥ २३ ॥ तिर्यक्पातसमं खातमूर्ध्वं मेखलया सह । तद्बहिर्मेखलास्तिस्रो वेदवह्नियमाङ्गुलैः ॥ २४ ॥ अंगुलैः षड्भिरेका वा कुण्डाकारास्तु मेखलाः । तासामुपरि योनिः स्यान्मध्येऽश्वत्थदलाकृतिः ॥ २५ ॥ उच्छ्रायेणाङ्गुलं

एवं कुम्भ राशि पर भी ये पौने चार घड़ी ही भोग करते हैं ।। १० ।। मकर और मिथुन लग्न पर ये पाँच, नाड़ी भोग करते हैं किन्तु धनु, वृश्चिक, सिंह एवं कर्क राशि पर पौने छः घड़ी भोग करते हैं । तुला तथा कन्या राशि पर ये साढ़े पाँच नाड़ी भोग करते हैं ।। ११ ।। सिंह, वृष तथा कुम्भ ये तीन लग्न स्थिर तथा सिद्धिप्रद होते हैं । धनु, तुला तथा मेष ये तीन चरलग्न हैं, तीसरे तीसरे (जैसे मिथुन, कन्या, धनु तथा मीन) ये द्विस्वभाव नाड़ी लग्न हैं । कर्क, मकर तथा वृश्चिक ये तीन लग्न प्रवज्या कार्य के नाशक हैं । शुभग्रहों के द्वारा दृष्ट,लग्न शुभ तथा शुभाश्रित होते हैं ।। १२-१३ ।। यदि लग्न में स्थित, गुरु, शुक्र तथा बुध बल तथा आयु राज्य, शौर्य, बल, पुत्र तथा बहुत अधिक धर्म आदि प्रदान करते हैं ।। १४ ।। प्रथम, सातवाँ, चतुर्थ तथा दसवें स्थान को केन्द्र कहते हैं । केन्द्र में स्थित, गुरु, शुक्र, तथा बुध सभी प्रकार की सिद्धि प्रदान करने वाले होते हैं ।। १५ ।। लग्न से तीसरे, ग्यारहवें तथा चतुर्थ स्थान में विद्यमान पापग्रह शुभ होते हैं । इसलिए इनको तथा इनसे भिन्न शुभगहों तथा तिथियों का विद्वान् पुरुष प्रतिष्ठा आदि कार्यों में उपयोग करें ।। १६ ।। मन्दिर के पाँच गुनी अथवा मन्दिर के बराबर भूमि को छोड़कर एक-एक हाथ के बारह सोपानों वाला यज्ञमण्डप मन्दिर के सामने बनाना चाहिए ।। मण्डप को चौकोर और चार द्वारों वाला होना चाहिए । किन्तु स्नानगृह उसके आधा होना चाहिए मण्डप की माप एक हाथ की, अथवा दस हाथ अथवा बारह हाथ होनी चाहिए । उसमें एक द्वार हो अथवा चार द्वार होना चाहिए । द्वार को ईशानकोण में अथवा पूर्वोत्तर दिशा में होना चाहिए। शेष आठ मण्डपों में उत्तरोत्तर दो-दो हाथ की वृद्धि होनी चाहिए ।। १७-१९ ।। बीच में चार हाथ की वेदी होने चाहिए और उसका सम्बन्ध कोने के स्तम्भ से होना चाहिए । वेदी और पायों के बीच के स्थान को छोड़कर नव अथवा पाँच कुण्डों को बनाना चाहिए ।। २० ।। ईशानकोण अथवा पूर्व दिशा में एक ही कुण्ड बनाना चाहिए वह गुरु का स्थान है । यदि पचास आहुति देनी हो तो मुट्ठी बाँधकर एक हाथ का कुण्ड होना चाहिए । यदि सौ आहुतियाँ देनी हों तो कनिष्ठिका तक के माप का एक हाथ का कुण्ड होना चाहिए ।। २१ ।। एक हजार आहुति देनी हो तो पूरे एक हाथ का कुण्ड होना चाहिए और दस हजार आहुति देनी हो तो दो हाथ का कुण्ड होना चाहिए । एक लाख आहुतियाँ देनी हों तो चार हाथ का कुण्ड होना चाहिए और एक करोड़आहुति देनी हो तो कुण्ड आठ हाथ का होना चाहिए ।। २२ ।। अग्निकोण में कुण्ड भग के आकार का, दक्षिण दिशा में अर्द्धचन्द्र के आकार का नैर्ऋत्यकोण में त्रिकोण, वायव्य कोण में षटकोण, उत्तर दिशा में पद्माकार, ईशानकोण में आठ कोणों वाली तथा पूर्व दिशा में चतुष्कोण कुण्ड होना चाहिए।। २३ ।। कुण्ड को चारों ओर बराबर तथा ढालुवाँ होन चाहिए और

तस्माद्विस्तारेणाङ्गुलाष्टकम् । दैर्घ्यं कुण्डार्धमानेन कुण्डकण्ठसमोऽधरः ॥ २६ ॥ पूर्वाग्नियाम्यकुण्डानां योनिः स्यादुत्तरानना । पूर्वानना तु शेषाणामैशान्येऽन्यतरा तयोः॥ २७ ॥ कुण्डानां यश्चतुर्विंशो भागः सोऽङ्गुल इत्यतः । प्लक्षोदुम्बरकाश्वत्थवटजास्तोरणाः क्रमात् ॥ २८ ॥ शान्तिभूतिबलारोग्यपूर्वाद्या नामतः क्रमात् । पञ्चषटसप्तहस्तानि हस्तखातस्थितानि च ॥ २९ ॥ तदर्द्धविस्तराणि स्युर्युतान्याम्रदलादिभिः । इन्द्रायुधोपमा रक्ता कृष्णा धूम्रा शशिप्रभा ॥ ३० ॥ शुकाभा हेमवर्णा च पताका स्फाटिकोपमा । पूर्वादितोऽब्जजे रक्ता नीलाऽनन्तस्य नैर्ऋते॥३१॥ पञ्चहस्तास्तदर्धाश्च ध्वजा दीर्घाश्च विस्तराः । हस्तप्रदेशिता दण्डा ध्वजानां पञ्चहस्तकाः ॥ ३२ ॥ पर्वताद्राजद्वारान्नद्याः हस्त्यश्वशालतः। बल्मीकाद्दन्तिदन्ताग्रात्तथा वृषभशृङ्गतः । पद्मखण्डाद्वराहाच्च गोष्ठादपि चतुष्पथात् ॥ ३३ ॥ मृत्तिका द्वादश ग्राह्यावैकुण्ठेऽष्टौ पिनाकिनि । न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थचूतजम्बूत्वगुद्भवम् ॥ ३४ ॥ कषायपञ्चकं ग्राह्यमार्तवं च फलाष्टकम् । तीर्थाम्भांसि सुगन्धीनि तथा सर्वौषधीजलम् ॥ ३५॥ शस्तं पुष्पजलं वक्ष्ये रत्नगोशृङ्गवारि च । स्नानायापहरेत्पञ्च पञ्चगव्यामृतं तथा ॥ ३६ ॥ पिष्टनिर्मितवस्त्रादि द्रव्यं निर्मज्जनाय च । सहस्रसुषिरं कुम्भं मण्डलाय च रोचना ॥ ३७ ॥ शतमोषधिमूलानां विजया लक्ष्मणा बला । गुडूच्यतिबला पाठा सहदेवा शतावरी ॥ ३८ ॥ ऋद्धिः सुवर्चला वृद्धिः स्नाने प्रोक्ता पृथक्पृथक् । रक्षायै तिलदर्भाद्यं भस्मस्नानं तु केवलम् ॥ ३९ ॥ यवगोधूमबिल्वानां चूर्णानि च विचक्षणः। विलेपनं सकर्पूरं

ऊपर की ओर उसे मेखला से युक्त होना चाहिए । कुण्ड के बाहर क्रमशः चार, तीन और दो अंगुल चौड़ी तीन मेखलाएँ होनी चाहिए ।। २४ ।। अथवा कुण्ड की एक ही छह अंगुल चौड़ी मेखला होनी चाहिए । उन मेखलाओं के कुण्ड के आकार के बराबर आकार वाली होनी चाहिए । उन मेखलाओं के ऊपर मध्यभाग में योनि होनी चाहिए और उसका आकार पीपल के पत्ते के समान होना चाहिए ।। २५ ।। योनि की ऊँचाई एक अंगुल तथा चौड़ाई आठ अंगुल होना चाहिए । योनि की लम्बाई कुण्ड के आधे भाग के समान होना चाहिए और उसका अधर कुण्ड के कण्ठ के समान होना चाहिए ।। २६ ।। पूर्व अग्निकोण तथा दक्षिण दिशाओं के कुण्ड की योनि उत्तराभिमुखी होनी चाहिए, शेष कुण्डों की योनियाँ पूर्वाभिमुखी तथा ईशानकोण के कुण्ड की योनि उत्तराभिमुखी अथवा पूर्वाभिमुखी होनी चाहिए ।। २७ ।। कुण्डों का चौबीसवाँ भाग अंगुल कहलाता है । यज्ञमण्डप के पूर्व आदि दरवाजों के तोरण क्रमशः पाकड़, गूलर, पीपल तथा वड़ का होना चाहिए ।। २८ ।। पूर्वादि दिशाओं के द्वारों के नाम क्रमशः- शान्तिद्वार, मूर्तिद्वार, बलद्वार तथा आरोग्यद्वार हैं । दरवाजों की ऊँचाई पाँच, छह अथवा सात हाथ होनी चाहिए, इन्हें हाथ भर खुदे हुए गड्ढे में स्थित होना चाहिए ।। २९ ।। उनका विस्तार लम्बाई की अपेक्षा आधा होना चाहिए तथा उन्हें आम के पत्तों से युक्त होना चाहिए । मण्डप की पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः इन्द्रधनुष के समान तिरंगी, लाल, काली, धूम्रवर्ण की, चाँदनी की भाँति सफेद, तागे की कान्ति के समान हरे रंग की, सुनहरी, तथा स्फटिक के समान पताकाएँ होनी चाहिए। ईशान तथा पूर्व के बीच में ब्रह्मा जी के लिए लाल वर्ण की, नैऋत्य तथा पश्चिम के मध्यभाग में अनन्त के लिए नीले रङ्ग की पताका फहरानी चाहिए ।। ३०-३१ ।। ध्वजों की पताकाएँ पाँच हाथ लम्बी तथा उसके आधा चौड़ी होनी चाहिए । ध्वज के दण्डे की ऊँचाई पाँच हाथ की बतलायी गयी है ।। ३२ ।। पर्वत,राजद्वार,नदी, हाथीसार तथा घुड़शाल, विमौट, हाथी के दाँत से खुदी हुयी,बैल के सींग से खुदी हुयी,कमलनाल की, बनैले शूकर से खुदी हुयी, गौशाला तथा चौराहा से बारह प्रकार की मिट्टी लेनी चाहिए । भगवान् विष्णु की स्थापना में इन बारह प्रकार की मिट्टियों को तथा भगवान् शंकर की स्थापना में आठ प्रकार की मिट्टी लेनी चाहिए ।। ३३ ।। बट, गूलर, पीपल, आम तथा जामुन के छाल से उत्पन्न पाँच प्रकार के गोंद लेना चाहिए तथा ऋतु के आठ प्रकार के फलों को, तीर्थ जल के सुगन्धित जल तथा सर्वौषधिजल को लेना चाहिए ।। ३४-३५ ।। प्रशस्त पुष्प से मिश्रित जल, रत्नमिश्रित जल, गोशृङ्ग का जल, इन सबों को देवता के स्नान के लिए एकत्रित करना चाहिए तथा पञ्चगव्य, पञ्चामृत, सहअधारा, गुडूची, अतिबला,पाठा, सहदेई, शतावर,ऋद्धि, सुवर्चला तथा वृद्धि, इन सबों से पृथक्-पृथक् स्नान करना चाहिए । रक्षा के लिए तिल तथा कुश आदि अथवा केवल भस्म स्नान बतलाया गया है।।३६-३९।। विद्वान् पुरुष स्नान के लिए जौ, गेहूँ तथा विल्व के चूर्ण, विलेपन तथा कर्पूर कलश

स्नानार्थं कुम्भगण्डकान् ॥ ४० ॥ खट्वां च तूलिकायुग्मं सोपधानं सवस्त्रकम् । कुर्याद्वित्तानुसारेण शयने लक्ष्यकल्पने ॥ ४१॥ घृतक्षौद्रयुतं पात्रं कुर्यात्स्वर्णशलाकिकाम् । वर्धनीं शिवकुम्भं च लोकपालघटानपि ॥ ४२ ॥ एकं निद्राकृते कुम्भं शान्त्यर्थं कुण्डसंख्यया । द्वारपालादिधर्मादिप्रशान्तादिघटानपि ॥ ४३ ॥ वास्तुलक्ष्मीगणेशानां कलशानपरानपि । धान्यपुञ्जकृताधारान्सवस्त्रान्स्त्रग्विभूषितान् ॥ ४४ ॥ सहिरण्यान्समालब्धान्गन्धपानीय पूरितान् ॥ पूर्णपात्रफलाधारान्पल्लवाढ्यान्सलक्षणान् ॥ ४५ ॥ वस्त्रैराच्छादयेत्कुम्भानाहरेद्गौरसर्षपान् । विकिरार्थं तथा लाजाञ्ज्ञानखड्गं च पूर्ववत् ॥ ४६ ॥ सापिधानां चरुस्थालीं दर्वी च ताम्रनिर्मिताम् । घृतक्षौद्रान्वितं पात्रं पादाभ्यङ्गकृते तथा ॥ ४७ ॥ विष्टरांस्त्रि (स्त्रिं) शता दर्भदलैर्बाहुप्रमाणकान् । चतुरश्चतुरस्तद्वत्पलाशान्परिधीनपि ॥ ४८ ॥ तिलपात्रं हविष्पात्रमर्घपात्रं पवित्रकम् । पलविंशतिमानानि घण्टाधूपप्रदानकम् ॥ ४९ ॥ स्रुक्स्रुवौ पिटकं पीठं व्यजनं शुष्कमिन्धनम् । पुष्पं पत्रं गुग्गुलं च घृतैर्दीपांश्च धूपकम् ॥ ५०॥ अक्षतानि त्रिसूत्रीं च गव्यमाज्यं यवांस्तिलान् । कुशा शान्त्यै त्रिमधुरं समिधो दशपर्विकाः ॥ ५१ ॥ बाहुमात्रं स्रुवं हस्तमर्कादिग्रहशान्तये। समिधोऽर्कपलाशोत्थाः खादिरामार्गपिप्पलाः ॥ ५२ ॥ उदुम्बरशमीदूर्वाः कुशोत्थाः शतमष्ट च । तदभावे यवतिला गृहोपकरणं तथा ॥ ५३ ॥ स्थालीदर्वीपिधानादि देवादिभ्योंऽशुकद्वयम् । मुद्रामुकुटवासांसि हारकुण्डलकङ्कणान् ॥ ५४ ॥ कुर्यादाचार्यपूजार्थं वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् । तत्पादपादहीना च मूर्तिभृदस्त्रजापिनाम् ॥ ५५ ॥ पूजा स्याज्जापिभिस्तुल्या विप्रदैवज्ञशिल्पिनाम् । वज्रार्कशान्तौ नीलातिनीलमुक्ताफलानि

तथा गडुए को स्नान कराने के लिए रखे ।। ४० ।। खाट, दो गद्दा, तकिया, वस्त्र से शयन कक्ष को अपने वित्त के अनुसार सजाए ।। ४१ ।। घी तथा मधु से युक्त पात्र, सोने की सलाई, वर्धनी, शिव कलश तथा लोकपाल कलशों को भी एकत्रित करे ।। ४२ ।। निद्रा के लिए एक कलश और कुण्डों की संख्या के अनुसार शान्तिकलश, द्वारपाल आदि, धर्म आदि तथा प्रशान्त आदि के लिए भी कलश जुटा लेना चाहिए ।। ४३ ।। इसके अतिरिक्त, वास्तु, लक्ष्मी, गणेश के भी कलशों को होना चाहिए। इन कलशों के नीचे आधार भूमि पर धान्यपुञ्ज रखना चाहिए। सभी कलशों को वस्त्र, माला से विभूषित होना चाहिए । सुवर्ण डालकर इनका स्पर्श करना चाहिए तथा सुगन्धित जल से भरा जाना चाहिए । सभी कलशों के ऊपर फल से युक्त पूर्णपात्र होना चाहिए, उन्हें पल्लवों से सुसज्जित तथा उत्तम लक्षणों से युक्त होना चाहिए ।। ४४-४५ ।। कलशों को वस्त्र से ढँककर पीली सरसों तथा लावा विखेरने के लिए लाना चाहिए तथा पहले के ही समान ज्ञानखड्ग को भी सम्पादित करना चाहिए ।। ४६ ।। ढक्कन से युक्त चरुस्थाली, ताम्बे से बनी करछूल तथा पदाभ्यङ्ग के लिए घी तथा मधु का पात्र भी संगृहीत करना चाहिए ।।४७।। तीन सौ कुश के दलों से बने दो-दो हाथ के लम्बे आसन को एकत्रित करना चाहिए और पलाश के बने चार-चार परिधि भी एकत्रित करना चाहिए।। ४८ ।। बीस-बीस खारी का तिलपात्र, हविष्यपात्र तथा, अर्घ्यपात्र तथा पवित्रक को एकत्रित करना चाहिए । घण्टा तथ धूपदानी भी एकत्रित करें ।। ४९ ।। स्रुक्, स्रुव, पिटक (टोकरी) पीठ (चौकी या पीढ़ा) सूखा हुआ इन्धन, पुष्प, पत्र (विल्वपत्र) गुग्गुल, घी के दीपक, धूप, अक्षत, त्रिसूत्री, गौ का घी, जौ, तिल, शान्ति के लिए कुश, त्वमधु, शक्कर और घी, दस पर्व की समिधाएँ ।। ५०-५१ ।। बाँह के बराबर स्रुवा, ग्रहों की शान्ति के लिए लकड़ी, मदार, पलाश, खैर, लहचिचिड़ी, पिप्पल, गूलर, शमी, दूर्वा तथा कुश सभी को एक सौ आठ-आठ करछूल तथा ढक्कन; प्रत्येक देवता आदि के लिए दो-दो वस्त्र देना चाहिए । आचार्य की पूजा के लिए मुद्रा, मुकुट, वस्त्र, हार कुण्डल और कङ्कण जुटाना चाहिए । धन की कंजूसी नहीं करनी चाहिए । मूर्ति धारण करने वाले तथा अस्त्र मन्त्र. का जप करने वाले ब्राह्मणों को आचार्य की अपेक्षा एक चौथाई कम दक्षिणा देनी चाहिए ।। ५४-५५ ।। मन्त्र जप करने वालों के ही समान ब्राह्मणों, दैवज्ञों तथा शिल्पिओं की भी पूजा करनी चाहिए । वज्रमणि, सूर्यकान्तमणि, नीलमणि, अतिनीलमणि, मोती, पुष्परागमणि पद्मरागमणि तथा वैदूर्यमणि इन आठ रत्नों, खस, माधवक्रान्ता, रक्तचन्दन, अगर, श्रीखण्ड, सारिक, कुण्ठ

च ॥ ५६ ॥ पुष्पपद्मादिरागं च वैडू (दू) र्यं रत्नमष्टमम् । उशीरमाधवक्रान्ता रक्तचन्दनकागुरु ॥ ५७ ॥ श्रीखण्डं सारिकं कुण्ठं शङ्खिनी ह्योषधीगणः। हेमताम्रमयो रङ्गं राजतं च सकांस्यकम् ॥ ५८ ॥ सीसकं चेति लोहानि हरितालं मनःशिला। गैरिकं हेममाक्षीकं पारदो वह्निगैरिकम्॥५९॥ गन्धकाभ्रकमित्यष्टौ धातवो व्रीहयस्तथा । गोधूमान्सतिलान्माषान्मुद्गानप्याहरेद्यवान् ॥ ६० ॥ नीवाराञ्श्यामकानेवं व्रीहयोऽप्यष्ट कीर्तिताः॥६१॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रतिष्ठाकालसामग्र्यादिविधिकथनं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

प्रतिष्ठायामधिवासनविधिः

ईश्वर उवाच— **स्नात्वा नित्यद्वयं कृत्वा प्रणवार्घकरो गुरुः । सहायैर्मूर्तिपैर्विप्रैः सह गच्छेन्मखालयम् ॥ १ ॥ शान्त्यादितोरणांस्तत्र पूर्ववत्पूजयेत्क्रमात्। प्रदक्षिणक्रमादेषां शाखायां द्वारपालकान् ॥ २ ॥ प्राचि नन्दिमहाकालौ याम्ये भृङ्गिविनायकौ । वारुणे वृषभस्कन्दौ देवीचण्डौ तथोत्तरे ॥ ३ ॥ तच्छाखामूलदेशस्थौ प्रशान्तशिशिरौ घटौ । पर्जन्याशोकनामानौ भूतसंजीवनामृतौ ॥ ४ ॥ धनदश्रीप्रदौ द्वौ द्वौ पूजयेदनुपूर्वशः । स्वनामभिश्चतुर्थ्यन्तैः प्रणवादिनमोन्तकैः ॥ ५ ॥ लोकग्रहवसुद्वाःस्थस्रवन्तीनां द्वयं द्वयम् । भानुत्रयं युगं वेदो लक्ष्मीर्गणपतिस्तथा ॥ ६ ॥ इति देवा मखागारे तिष्ठन्ति प्रतितोरणम्। विघ्नसंघापनोदाय क्रतोः संरक्षणाय च ॥७॥ वज्रं शक्तिं तथा दण्डं खड्ग पाशं ध्वजं गदाम्। त्रिशूलं चक्रमम्भोजं पताकाश्चार्चयेत्क्रमात्॥८॥**

तथा शंखिनी इन आठ औषधियों; सोना, ताँबा, रांगा, चाँदी, काँसा, सीसा, लोहा और पीतल इन आठ धातुओं; हरिताल, मैनसिल, गेरु, स्वर्णमाक्षिकपारा, बह्निगैरिक, गन्धक तथा अभ्रक ब्रीहि, गेहूँ, तिल, उड़द, मूँग, जौ, तिन्नी साँवा इन आठ धान्यों का भी संग्रह करना चाहिए ।। ५६-६१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का प्रतिष्ठाकाल तथा सामग्री आदि की विधि का वर्णन नामक पच्चानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९५ ॥

श्री शिवजी ने कहा— स्कन्द ! आचार्य को चाहिए कि वह स्नान करके प्रातः एवं मध्याह्न, दोनों समय के नित्य कृत्यों को सम्पादित करके सहायकों तथा मूर्तिरक्षक ब्राह्मणों के साथ यज्ञशाला में प्रवेश करे ।। १ ।। वहाँ पर पहले के ही समान शान्ति आदि तोरणों की क्रमशः पहले के ही समान पूजन करना चाहिए। प्रदक्षिण क्रम से इनके द्वारपालों की भी शाखा पर पूजा करनी चाहिए ।। २ ।। पूर्व दिशा में नन्दी तथा महाकाल की, दक्षिण दिशा में भृङ्गी तथा विनायक की, पश्चिम दिशा में वृषभ एवं स्कन्द की तथा उत्तर दिशा में देवी तथा चण्ड की पूजा द्वारों की शाखाओं पर करनी चाहिए।। ३ ।। उन शाखाओं के मूल देश में दो-दो कलश रखकर उनकी पूजा करनी चाहिए । उनके नाम हैं- प्रशान्त और शिशिर, पर्जन्य और अशोक, भूतसंजीवन तथा अमृत, धनद तथा श्रीपद । इन सबों की पूर्वादि दिशाओं के द्वारों पर क्रमशः पूजा करनी चाहिए । प्रणव के साथ चतुर्थ्यन्त नाम में नमः पद जोड़कर इनकी पूजा करनी चाहिए ।। ५।। यज्ञशाला के प्रत्येक तोरण पर दो लोक,दो ग्रह, दो वसु, दो द्वारपाल, दो नदियाँ, तीन सूर्य,एक युग, एक वेद, लक्ष्मी तथा गणेश इतने देवता रहते हैं ।। ६ ।। विघ्न समूह को दूर करने के लिए तथा यज्ञ की रक्षा करने के लिए क्रमशः वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, ध्वजा, गदा, त्रिशूल, चक्र,कमल तथा पताका की पूजा करनी चाहिए ।। ७-८ ।। उनकी पूजा के मन्त्र-

ओं ह्रूं हः वज्राय हूं फट् ऊँ ह्रूं शक्तये हूं फट्, नम इत्यादिमन्त्रैः ॥ ९ ॥ कुमुदः कुमुदाक्षश्च पुण्डरीकोऽथ वामनः । शङ्कुकर्णः सर्पनेत्रः सुमुखः सुप्रतिष्ठितः । ध्वजाष्टदेवताः पूज्याः पूर्वादौ भूतकोटिभिः ॥ १० ॥ ॐ कुं कुमुदाय नम इत्यादिमन्त्रैः ॥ ११ ॥ हेतुकं त्रिपुरघ्नं च शक्त्याख्यं यमजिह्वकम्। कालं करालिनं षष्ठमेकाङ्घ्रिं भीममष्टकम् ॥१२॥ तथैव पूजयेद्दिक्षु क्षेत्रपालाननुक्रमात् । बलिभिः कुसुमैर्धूपैः सन्तुष्टान्परिभावयेत्॥१३॥ कम्बलास्तृतेष वर्णेषु वंशस्थूणास्वनुक्रमात् । पञ्च क्षित्यादितत्त्वानि सद्योजातादिभिर्यजेत् ॥ १४ ॥ सदाशिवपदव्यापि मण्डपं धाम शांकरम् । पताकाशक्तिसंयुक्तं तत्त्वदृष्ट्याऽवलोकयेत् ॥ १५ ॥ दिव्यान्तरिक्षभूमिष्ठविघ्नानुत्सार्य पूर्ववत् । प्रविशेत्पश्चिमद्वारा शेषद्वाराणि दर्शयेत् ॥ १६ ॥ प्रदक्षिणक्रमाद्गत्वा निविष्टो वेददक्षिणे । उत्तराभिमुखः कुर्याद्भूतशुद्धिं यथा पुरा ॥ १७ ॥ अन्तर्यागं विशेषार्घ्यं मन्त्रद्रव्यादिशोधनम् । कुर्वीत स्वात्मनः पूजां पञ्चगव्यादि पूर्ववत् ॥ १८ ॥ साधारं कलशं तस्मिन्विन्यसेत्तदनन्तरम् । विशेषाच्च शिवं ध्यायेत्तत्त्वत्रयमनुक्रमात् ॥ १९ ॥ ललाटस्कन्धपादान्तं शिवविद्यात्मकं परम् । रुद्रनारायणब्रह्मदैवतं निजसंचरैः ॥ २० ॥ ॐ हं हाम् ॥ २१ ॥ मूर्तीस्तदीश्वरांस्तत्र पूर्ववद्विनिवेशयेत्। तद्व्यापकं शिवं साङ्गं शिवहस्तं च मूर्धनि ॥ २२ ॥ ब्रह्मरन्ध्रप्रविष्टेन तेजसा बाह्यसान्तरम् । तमःपटलमाधूय प्रद्योतितदिगन्तरम् ॥ २३ ॥ आत्मानं मूर्तिपैः सार्धं स्रग्वस्त्रमुकुटादिभिः। भूषयित्वा शिवोऽस्मीति ध्यात्वा बोधासिमुद्धरेत् ॥ २४ ॥ चतुष्पदान्तसंस्कारैः संस्कुर्यान्मखमण्डपम्। विक्षिप्य विकिरादीनि कुशकूर्च्योपसंहरेत् ॥ २५ ॥ आसनीकृत्य वर्धन्या वास्त्वादीन्पूर्ववद्यजेत् । शिवकुम्भास्त्रवर्धन्यौ पूजयेच्च स्थिरासने॥२६॥

ओं ह्रूं हः वज्राय फट्, ओं ह्रूँ हः शक्तये हूं फट् इत्यादि हैं ।। ९ ।। कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शङ्कुकर्ण, सर्पनेत्र, सुमुख और सुप्रतिष्ठित इन ध्वजाओं के आठ देवताओं की करोड़ों भूतों के साथ पूर्वादि दिशाओं में- ओं कुं कुमुदाय नमः इत्यादि मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए ।। ९-११ ।। हेतुक, त्रिपुरघ्न, शक्ति,यमजिह्वा, काल, कराली एकाङ्घ्रि तथा भीम इन आठ क्षेत्रपालों की भी उसी तरह से आठों दिशाओं में क्रमशः पूजन करना चाहिए तथा बलि, पुष्प तथा धूप देकर इनको सन्तुष्ट करना चाहिए ।। १२-१३ ।। उत्तम तथा विछाए गए आसनों पर तथा बाँस के खम्भे पर क्रमशः पृथिवी आदि तत्त्वों की सद्योजात आदिमन्त्रों से पूजा करनी चाहिए ।। १४ ।। सदाशिव पद व्यापी मण्डप जो भगवान् शंकर का धाम है तथा जो पताका एवं शक्ति से संयुक्त है उसका तत्त्वदृष्टि से अवलोकन करना चाहिए ।। १५ ।। पहले के ही समान, द्युलोक अन्तरिक्ष तथा पृथिवी पर विघ्नों को दूर करके पश्चिम द्वार से यज्ञमण्डप में प्रवेश करके शेष द्वारों का अवलोकन करना चाहिए । १६ ।। प्रदक्षिण क्रम से जाकर वेदी के दक्षिण ओर बैठकर उत्तराभिमुख बैठकर पहले के ही समान भूतशुद्धि करनी चाहिए, पञ्चगव्य आदि का निर्माण पहले के ही समान करना चाहिए ।। १८ ।। उसके ऊपर आधारयुक्त कलश की स्थापना करनी चाहिए । उसके पश्चात् तत्त्वत्रय के क्रम से विशेष रूप से शिव का ध्यान करना चाहिए ।। १९ ।। ललाट में शिवतत्त्व का, स्कन्ध प्रदेश में विद्यातत्त्व का तथा पादान्तभाग में उत्तम आत्मतत्त्व का ध्यान करना चाहिए । शिवतत्त्व के रुद्र, विद्यातत्त्व के नारायण तथा आत्मतत्त्व के देवता ब्रह्मा हैं । इन सबों का अपने मन्त्रों से पूजन करना चाहिए । इन सबों के बीज मन्त्र क्रमशः- ऊँ ईं आम् हैं ।। २०-२१ ।। वहाँ पर पहले के ही समान मूर्तियों तथा मूर्तीश्वरों की स्थापना पहले के ही समान करना चाहिए । उनमें व्यापक शिव का साङ्ग पूजन करके सिर पर शिवहस्त रखें ।। २२ ।। भावना के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र से प्रविष्ट हुए तेज से अपने बाहर-भीतर के अन्धकार समूह को विनष्ट करके यह भावना करें कि मूर्तीश्वरों के साथ आत्मा सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशित कर रहा है । पुनः मूर्तिरक्षकों के साथ अपने को भी माला,वस्त्र तथा मुकुट आदि से भूषित करके 'मैं शिव स्वरूप हूँ' इस प्रकार से ध्यान करके ज्ञान खड्ग को उठाएँ ।। २३-२४ ।। पुनः चतुष्पदान्त संस्कारों द्वारा याग मण्डप को संस्कृत करें । पुनः विकिर द्रव्यों को विखेरकर कुश की कूँची से बिटोर लेना चाहिए ।। २५ ।। उन सबों को आसन के नीचे करके वर्धनी के जल से पहले के ही समान वास्तु आदि का पूजन करना चाहिए और शिवकुम्भास्त्र तथा वर्धनी की पूजा

स्वदिक्षुकलशारूढाँल्लोकपालाननुक्रमात् । वाहायुधादिसंयुक्तान्पूजयेद्विधिना यथा ॥ २७ ॥ ऐरावतगजारूढं स्वर्णवर्णं किरीटिनम् । सहस्रनयनं शक्रं वज्रपाणिं विभावयेत् ॥ २८ ॥ सप्तार्चिषं च बिभ्राणमक्षमालां कमण्डलुम् । ज्वालामालाकुलं रक्तं शक्तिहस्तमजासनम् ॥ २९ ॥ महिषस्थं दण्डहस्तं यमं कालानलं स्मरेत् । रक्तनेत्रं खरारूढं खड्गहस्तं च नैर्ऋतम् ॥ ३० ॥ वरुणं मकरे श्वेतं नागपाशधरं स्मरेत् । वायुं च हरिणे नीले कुवेरं मेषसंस्थितम् ॥ ३१ ॥ त्रिशूलिनं वृषे चेशं कूर्मेऽनन्तं तु चक्रिणम् । ब्रह्माणं हंसगं ध्यायेच्चतुर्वक्त्रं चतुर्भुजम् ॥ ३२ ॥ स्तम्भमूलेषु कुम्भेषु वेद्यां धर्मादिकान्यजेत् । दिक्षु कुम्भेष्वनन्तादीन्पूजयन्त्यपि केचन ॥ ३३ ॥ शिवाज्ञां श्रावयेत्कुम्भं भ्रामयेदात्मपृष्ठगम् । पूर्ववत्स्थापयेदादौ कुम्भं तदनुवर्धनीम् ॥ ३४ ॥ शिवं स्थिरासनं कुम्भे शस्त्रार्थं च ध्रुवासनम् । पूजयित्वा यथापूर्वं स्पृशेदुद्भवमुद्रया ॥ ३५ ॥ निजयागं जगन्नाथ रक्ष भक्तानुकम्पया । एभिः संश्राव्य रक्षार्थं कुम्भे खड्गं निवेशयेत् ॥ ३६ ॥ दीक्षास्थापनयोः कुभे स्थण्डिले मण्डलेऽथ वा । मण्डलेऽभ्यर्च्य देवेशं व्रजेद्वै कुण्डसंन्निधौ ॥ ३७ ॥ कुण्डनाभिं पुरस्कृत्य निविष्टा मूर्तिधारिणः । गुरोरादेशतः कुर्युर्निजकुण्डेषु संस्कृतिम् ॥ ३८ ॥ जपेयुर्जापिनोऽसंख्यं मन्त्रमन्ये तु संहिताम् । पठेयुर्ब्राह्मणाः शान्तिं स्वशाखावेदपारगाः ॥ ३९ ॥ श्रीसूक्तं पावमानीश्च मैत्रकं च वृषाकपिम् । ऋग्वेदी पूर्वदिग्भागे सर्वमेतत्समुच्चरेत् ॥४०॥ देवव्रतं तु भारुण्डं ज्येष्ठसाम रथंतरम् । पुरुषं गीतिमेतानि सामवेदी तु दक्षिणे ॥ ४१ ॥ रुद्रं पुरुषसूक्तं च श्लोकाध्यायं

स्थिर आसन पर करनी चाहिए ।। २६ ।। अपनी-अपनी दिशाओं में कलशों पर विद्यमान लोकपालों की क्रमशः विधिपूर्वक पूजा उनके वाहनों तथा आयुधों के साथ करनी चाहिए ।। २७ ।। ऐरावत नाम हाथी पर चढ़े हुए सुवर्ण वर्ण वाले किरीटधारी हजार नेत्रों वाले तथा वज्रहाथ में लिए हुए रूप से इन्द्र का ध्यान करना चाहिए ।। २८ ।। अग्निदेव का ध्यान सात ज्वाला रूपी जिह्वाओं वाले, अक्षमाला तथा कमण्डलु हाथ में लिए हुए, ज्वाला समूह से युक्त, रक्तवर्ण वाले,हाथ में शक्ति लिए हुए तथा मेष पर सवार रूप से करना चाहिए ।। २९ ।। यम का ध्यान महिष पर सवार, हाथ में दण्ड लिए हुए कालानल के समान रूप से करना चाहिए और नैऋत देवता का ध्यान लाल-लाल नेत्र वाले, गदहे पर सवार तथा हाथ में खड्ग लिए हुए रूप से करना चाहिए ।। ३० ।। वरुण का ध्यान घड़ियाल पर चढ़े हुए श्वेतवर्ण के तथा हाथ में नागपाश लिए हुए रूप से करना चाहिए । नील वर्ण के वायु का ध्यान हरिण पर सवाररूप से तथा कुबेर का ध्यान मेष पर सवार रूप से करना चाहिए ।। ३१ ।। शंकर जी का ध्यान त्रिशूल लिए हुए तथा वृष पर सवार रूप से तथा अनन्त का ध्यान चक्र धारण किए हुए तथा कूर्म पर सवार रूप से करना चाहिए । हंस पर सवार ब्रह्मा का ध्यान चार भुजाओं वाले तथा चतुर्मुख रूप से करना चाहिए ।। ३२ ।। स्तम्भों के मूलों में कुम्भों पर तथा वेदी पर धर्म आदि की पूजा करनी चाहिए । कुछ लोग दिशाओं में कलशों पर अनन्त आदि की भी पूजा करते हैं ।। ३३ ।। इसके बाद शिवजी की आज्ञा सुनावे तथा कलश को अपने पृष्ठ तक घुमाए । पहले के ही समान पहले कलश की स्थापना करनी चाहिए और उसके पश्चात् वर्धनी की ।। ३४ ।। स्थिर आसन वाले शिव का कुम्भ में और शस्त्र के लिए ध्रुवासन का पहले के समान पूजन करके उद्भव मुद्रा से उसका स्पर्श करें ।। ३५ ।। फिर रक्षा के लिए भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए कि- हे जगन्नाथ ! भक्तों पर कृपा करके आप यज्ञ की रक्षा करें । इस तरह से रक्षा के लिए प्रार्थना करके कलश में खड्ग की स्थापना करे ।। ३६ ।। दीक्षा और स्थापना के समय भगवान् शिव का पूजन कलश में वेदी पर अथवा मण्डल में करना चाहिए । मण्डल में देवेश शिव का पूजन करके कुण्ड के पास जाना चाहिए ।। ३७ ।। कुण्ड की नाभि को आगे करके बैठे हुए मूर्तिधारी पुरुष आचार्य की आज्ञा से कुण्डों में संस्कार करे ।। ३८ ।। जपकर्ता ब्राह्मण बिना संख्या के ही जप करें तथा दूसरे ब्राह्मण्य संहिता का पाठ करें । अपनी शाखा वेद में पारंगत ब्राह्मण शान्ति पाठ करें ।। ३९ ।। मण्डप के पूर्वदिशा में ऋग्वेदी श्रीसूक्त, पवमानी सूक्त, मैत्रक सूक्त तथा वृषाकपिसूक्त का पाठ करें ।। ४० ।। दक्षिण दिशा में सामवेदी ब्राह्मण देवव्रत, भारुण्ड,ज्येष्ठसाम, रथन्तरसाम तथा पुरुष गीति इन सबों का पाठ करें ।। ४१ ।। पश्चिम दिशा में यजुर्वेदी

विशेषतः । ब्राह्मणं च यजुर्वेदी पश्चिमायां समुच्चरेत् ॥ ४२ ॥ नीलरुद्रं तथाऽथर्वी सूक्ष्मासूक्ष्मं तथैव च । उत्तरेऽथर्वशीर्षं च तत्परस्तु समुद्धरेत्॥४३॥ आचार्यश्चाग्निमुत्पाद्य प्रतिकुण्डं प्रदापयेत् । वह्नेः पूर्वादिकान्भागान्पूर्वकुण्डादितः क्रमात् ॥ ४४ ॥ धूपदीपचरूणां च ददीताग्निं समुद्धरेत् । पूर्ववच्छिवमभ्यर्च्य शिवाग्नौ मन्त्रतर्पणम् ॥ ४५ ॥ देशकालादिसंपत्तौ दुर्निमित्तप्रशान्तये । होमं कृत्वा तु मन्त्रज्ञः पूर्णां दत्त्वा शुभावहाम् ॥ ४६ ॥ पूर्ववच्चरुकं कृत्वा प्रतिकुण्डं निवेदयेत् । यजमानालंकृतास्तु व्रजेयुः स्नानमण्डपम् ॥ ४७ ॥ भद्रपीठे निधायेशं ताडयित्वाऽवगुण्ठयेत् । स्नापयेत्पूजयित्वा तु मृदा काषायवारिणा ॥ ४८॥ गोमूत्रैर्गोमयेनापि वारिणा चान्तराऽन्तरा । भस्मना गन्धतोयेन फडन्तास्त्रेण वारिणा ॥ ४९ ॥ देशिको मूर्तिपैः सार्धं कृत्वा कारणशोधनम् । घर्मजप्तेन संछाद्य पीतर्णेन वाससा ॥ ५० ॥ संपूज्य सितपुष्पैश्च नयेदुत्तरवेदिकाम् । तत्र दत्तासनायां च शय्यायां संनिवेश्य च ॥ ५१ ॥ कुंकुमालिप्तसूत्रेण विभज्य गुरुरालिखेत्। शलाकया सुवर्णस्य अक्षिणी शस्त्रकर्मणा ॥ ५२ ॥ अञ्जयेल्लक्ष्मकृत्पश्चाच्छास्त्रदृष्टेन कर्मणा । कृतकर्मा च शस्त्रेण लक्ष्मीं शिल्पी समुत्क्षिपेत् ॥ ५३ ॥ त्र्यंशादर्धोऽथ पादार्धादर्धाया अर्धतोऽथ वा । सर्वकामप्रसिद्ध्यर्थं शुभं लक्ष्मावतारणम् ॥ ५४ ॥ लिङ्गदीर्घविकारांशे त्रिभक्ते भागवर्णनात् । विस्तारो लक्ष्मदेहस्य भवेल्लिङ्गस्य सर्वतः ॥ ५५ ॥ यवस्य नवभक्तस्य भागैरष्टाभिरावृता । हास्तिके लक्ष्मरेखा च गाम्भीर्याद्विस्तरादपि ॥ ५६ ॥ एवमष्टांशवृद्ध्या तु लिङ्गे सार्धकरादिके । भवेदष्टयवा पृथ्वी गम्भीराऽत्र च हास्तिके ॥ ५७ ॥ शांभवेषु च लिङ्गेषु पादवृद्धेषु सर्वतः । लक्ष्मदेहस्य

विद्वान् रुद्रसूक्त, पुरुषसूक्त, श्लोकाध्याय तथा विशेषरूप से ब्राह्मण भाग का पाठ करें ।। ४२ ।। उत्तरदिशा में अथर्ववेदी विद्वान् नीलरुद्र, सूक्ष्मासूक्ष्म तथा अथर्वशीर्ष का सावधानीपूर्वक पाठ करे ।। ४३ ।। आचार्य अग्नि को उत्पन्न करके उसे प्रत्येक कुण्ड में दें । अग्नि के पूर्व आदि भागों को पूर्वकुण्ड आदि के क्रमसे लेकर धूप दीप और चरु के निमित्त उद्धार करें । पहले के ही समान शिव की पूजा करके शिवाग्नि में मन्त्र तर्पण करना चाहिए ।। ४४-४५ ।। देशकाल आदि की सम्पन्नता तथा दुर्निमित्त के निवारण के लिए मन्त्रवेत्ता आचार्य को होम करके शुभ पूर्णाहुति देनी चाहिए।।४६।। पहले के ही समान चरु का निर्माण करके उसे प्रत्येक कुण्ड में डालना चाहिए । यजमान के द्वारा अलंकृत ब्राह्मण स्नान मण्डप में जायँ ।। ४७ ।। पुनः भद्रपीठ पर शिव की स्थापना करके उनका ताडन करके अवगुण्ठन करना चाहिए । पुनः पूजन करके अस्त्रमन्त्र के अन्त में हूँ फट् लगाकर उच्चारण करते हुए मिट्टी, कषाय जल, गोमूत्र, गोमय, भस्म तथा सुगन्धित जल से स्नान करना चाहिए । प्रत्येक वस्तु से स्नान कराकर बीच-बीच में जल से स्नान कराना चाहिए ।। ४८-४९ ।। आचार्य पुजारियों के साथ कारण शरीर का शोधन करके घर्ममन्त्र से अभिमन्त्रित करके पीले वस्त्र से ढँककर श्वेत पुष्पों से पूजन करके, उसे उत्तर वेदी के पास लाना चाहिए। वहाँ शय्या पर आसन विछाकर उस पर मूर्ति को रख दें ।। ५०-५१ ।। उसके पश्चात् आचार्य केसर से रंगे गए सूत्र के द्वारा मूर्ति के शरीर में प्रत्येक अङ्ग का चिह्न बनाए । पुनः अस्त्रमन्त्र के द्वारा सुवर्ण की शलाका से उसमें नेत्र अंकित करना चाहिए ।। ५२।। पहले चिह्न बनाने वाला गुरु नेत्र चिह्न को अञ्जन से अंकित कर दे, इसक बाद वह शिल्पी, जो मूर्ति निर्माण का कार्य पहले भी कर चुका हो, उस नेत्र चिह्न को शस्त्र के द्वारा खुदाई करे ।।५३।। अर्चा के तीन अंश से कम अथवा एक चौथाई भाग या आधे भाग में सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि के लिए, शुभ लक्षण की अवतारणा करनी चाहिए ।। ५४ ।। शिवलिङ्ग की लम्बाई के मान में तीन से भाग देकर एक भाग को त्याग देने से जो भाग हो वही लिङ्ग के लक्ष्मदेह का सब ओर से विस्तार होना चाहिए ।। ५५ ।। एक हाथ के प्रस्तरखण्ड में जो लक्ष्मरेखा बनेगी उसकी गहराई तथा चौड़ाई उतनी ही होगी जितनी जौ के नौ भागों में से एक छोड़ने और आठ को लेने से होती है ।। ५६ ।। इसी प्रकार से डेढ़ हाथ या दो हाथ आदि के लिङ्ग से लेकर नौ हाथ तक के लिङ्ग में क्रमशः १/८ भाग की वृद्धि करके लक्ष्मरेखा बनानी चाहिए । इस तरह नव हाथ वाले लिङ्ग में आठ जौ के बराबर मोटी और गहरी लक्ष्मरेखा होनी चाहिए ।। ५७ ।।

विष्कम्भो भवेद्वै यववर्धनात् ॥ ५८ ॥ गम्भीरत्वपृथुत्वाभ्यां रेखाऽपि त्र्यंशवृद्धितः । सर्वेषु च भवेत्सूक्ष्मं लिङ्गमस्तकमस्तकम् ॥ ५९ ॥ लक्ष्मक्षेत्रेऽष्टधा भक्ते मूर्ध्नि भागद्वये शुभे । षड्भागपरिवर्तेन मुक्त्वा भागद्वयं त्वधः ॥ ६० ॥ रेखात्रयेण सम्बद्धं कारयेत्पृष्ठदेशगम् । रत्नजे लक्ष्मणोद्धारो यवौ हेमसमुद्भवे ॥ ६१ ॥ स्वरूपलक्षणं तेषां प्रभा रत्नेषु निर्मला । नयनोन्मीलनं वक्त्रे सान्निध्याय च लक्ष्म तत् ॥ ६२ ॥ लक्ष्मणोद्धाररेखां च घृतेन मधुना तथा । मृत्युञ्जयेन सम्पूज्य शिल्पिदोषनिवृत्तये ॥ ६३ ॥ अर्चयेच्च ततो लिङ्गं स्नापयित्वा मृदादिभिः । शिल्पिनं तोषयित्वा तु दद्याद्गां गुरवे ततः ॥ ६४ ॥ लिङ्गं धूपादिभिः प्राच्यं गायेयुर्भर्तृगाः स्त्रियः । सव्येन चापसव्येन सूत्रेणाथ कुशेन वा ॥ ६५॥ स्पृष्ट्वा च रोचनं दत्त्वा कुर्युर्निर्मन्थनादिकम् । गुडलवणधान्याकदानेन विसृजेच्च ताः ॥ ६६ ॥ गुरुमूर्तिधरैः सार्धं हृदा वा प्रणवेन वा । मृत्स्नागोमयगोमूत्रभस्माभिः सलिलान्तरम् ॥ ६७ ॥ स्नापयेत्पञ्चगव्येन पञ्चामृतपुरःसरम् । विरूक्षणं कषायैश्च सर्वौषधिजलेन वा ॥ ६८ ॥ शुभ्रपुष्पफलस्वर्णरत्नशृङ्गयवोदकैः । तथा धारासहस्रेण दिव्यौषधिजलेन च ॥ ६९ ॥ तीर्थोदकेन गाङ्गेन चन्दनेन च वारिणा । क्षीरार्णवादिभिः कुम्भैः शिवकुम्भजलेन च ॥ ७० ॥ विरूक्षणं विलेपं च सुगन्धैश्चन्दनादिभिः । संपूज्य ब्रह्मभिः पुष्पैर्वर्मणा रक्तचीवरैः ॥ ७१॥ रक्तरूपेण नीराज्य रक्षातिलकपूर्वकम् । घृतौधैर्जलदुग्धैश्च कुशाद्यैरर्घ्यसूचितैः ॥ ७२ ॥ द्रव्यैः स्तुत्यादिभिस्तुष्टमर्चयेत्पुरुषाणुना । समाचम्य हृदा देवं ब्रूयादुत्थीयतां प्रभो ॥ ७३ ॥ देवं ब्रह्मरथेनैव क्षिप्रं द्रव्याणि तं नयेत् । मण्डपे पश्चिमद्वारे शय्यायां विनिवेशयेत् ॥ ७४ ॥ शक्त्यादिमूर्तिपर्यन्ते विन्यसेदासने शुभे । पश्चिमे पिण्डिकां तस्य न्यसेद्ब्रह्मशिलां तथा ॥ ७५ ॥ शस्त्रमस्त्रशतालब्धनिद्राकुम्भं ध्रुवासनम् । प्रकल्प्य शिवकोणे च

जो शिवलिङ्ग परस्पर अन्तर रखते हुए सवैया बड़े हों, उसमें लक्ष्मदेह का विस्तार एक-एक जौ बढ़ाकर करना चाहिए । गहराई तथा मोटाई वृद्धि के अनुसार रेखा भी एक तिहाई बढ़ जायेगी। सभी शिवलिङ्गों का ऊपरी भाग ही उनका सूक्ष्म मस्तक है ।। ५८-५९ ।। लक्ष्म का जो क्षेत्र है उसका आठ भाग करके उसके दो भागों को मस्तक के अन्तर्गत रखना चाहिए । अवशिष्ट छह भागों में से नीचे के दो भागों को छोड़कर बीच के भागों में तीन रेखाओं को खींचकर उन्हें पृष्ठभाग तक ले जाकर जोड़ देना चाहिए । रत्नमय लिङ्ग में तथा सोने के लिङ्ग में जौ ही लक्षाणोद्धार का काम करते हैं ।। ६०-६१ ।। रत्नमय लिङ्गों की निर्मल प्रभा ही उनके स्वरूप का परिचायक होती है । मुखभाग में किया जाने वाला नेत्रोन्मीलन आवश्यक है, उसी के सन्निधान के लिए ही लक्ष्म बनाया जाता है । ६२ ।। लक्षणोद्धार रेखा का घी तथा मधु से मृत्युञ्जय मन्त्र द्वारा पूजन करके शिल्पिदोष की निवृत्ति के लिए मृत्तिका आदि से स्नान लिङ्ग का कराकर पूजन करना चाहिए । फिर शिल्पी को सन्तुष्ट करके आचार्य को गोदान देना चाहिए ।। ६३-६४ ।। उसके पश्चात् सौभाग्यवती स्त्रियाँ धूप आदि से लिङ्ग की विशेष पूजा करके मंगलगीत गाएँ । सव्य अथवा अपसव्य सूत्र अथवा कुश से स्पर्श करके तथा रोचना अर्पित करके न्यौछावर दें । उसके पश्चात् यजमान उन्हें गुड़,नमक और धनियाँ देकर लौटा दें ।। ६५-६७ ।। उसके पश्चात् आचार्य मूर्तिरक्षक ब्राह्मणों के साथ हृदयमन्त्र (नमः) अथवा प्रणव मन्त्र के द्वारा मिट्टी, गोबर, गोमूत्र तथा भस्म से पृथक्-पृथक् स्नान कराएँ । एक-एक के पश्चात् जल से स्नान कराता जाय ।। ६७।। उसके पश्चात् पञ्चगव्य, पञ्चामृत, रूक्षता को दूर करने वाले कषाय द्रव्य, सर्वौषधिमिश्रित जल, श्वेतपुष्प, फल,सुवर्ण, रत्न, शृङ्ग जौ मिश्रित जल, सहस्रधारा के जल, दिव्यौषधियुक्त जल, तीर्थजल, गङ्गाजल, चन्दन मिश्रित जल, क्षीरसागर आदि के जल, कलश के जल और शिवकुम्भ के जल से शिवलिङ्ग को स्नान कराएँ ।। ६८-७० ।। रुक्षता को दूर करने वाले विलेपन लगाकर गन्ध एवं चन्दन आदि से पूजन करके ब्रह्ममन्त्रों से पुष्प तथा कवचमन्त्र से लाल वस्त्र चढ़ाना चाहिए । पुनः अनेक प्रकार से आरती उतारकर रक्षा एवं तिलकपूर्वक अर्घ्य के लिए सूचित जल दुग्ध एवं कुशोदक समर्पित करके गीत तथा स्तुतियों से संतुष्ट शिवलिङ्ग की पूजा पुरुषसूक्त के मन्त्रों से करनी चाहिए । पुनः हृदयमन्त्र से आचमन कराकर 'हे प्रभो उठिए' इस तरह से प्रार्थना करके शिवलिङ्ग को ब्रह्मरथ पर बैठाकर सामग्री के साथ उन्हें शीघ्र मण्डप के पश्चिम द्वार पर ले जाकर शय्या पर सुलाए ।। ७१-७४ ।। शय्या के आदि तथा अन्तभाग में भावना के

दत्त्वाऽर्घ्यं हृदयेन तु ॥ ७६ ॥ उत्थाप्योक्तासने लिङ्गं शिरसा पूर्वमस्तकम् । समारोप्य न्यसेत्तस्मिन्सृष्ट्या धर्मादिवन्दनम् ॥ ७७ ॥ दद्याद्धूपं च संपूज्य तथा वासांसि वर्मणा । गृहोपकृतिनैवेद्यं हृदा दद्यात्स्वशक्तितः ॥ ७८ ॥ घृतक्षौद्रयुतं पात्रमभ्यङ्गाय पदान्तिके । देशिकश्च स्थितस्तत्र षट्त्रिंशत्तत्त्वसंचयम् ॥ ७९ ॥ शक्त्यादिभूमिपर्यन्तं स्वतत्त्वाधिपसंयुतम् । विन्यस्य पुष्पमालाभिः त्रिखण्डं परिकल्पयेत् ॥ ८० ॥ मायापदेशशक्त्यन्तं तुर्याशाष्टांशवर्तुलम् । तत्रात्मतत्त्वविद्याख्यं शिवं सृष्टिक्रमेण तु ॥ ८१ ॥ एकशः प्रतिभागेषु ब्रह्मविष्णुहराधिपान् । विन्यस्य मूर्तिंमूर्तीशान्पूर्वादिक्रमतो यथा ॥ ८२ ॥ क्ष्मावह्नियजमानार्कजलवायुनिशाकरान् । आकाशमूर्तिरूपांस्तान्न्यसेत्तदधिनायकान् ॥ ८३ ॥ स (श) र्वं पशुपतिं चोग्रं रुद्रं भवमथेश्वरम् । महादेवं च भीमं च मन्त्रास्तद्वाचका इमे ॥ ८४ ॥ लवशषचयसाश्च हकारश्च त्रिमात्रिकाः । प्रणवो हृदयाणुर्वा मूलमन्त्रोऽथ वा क्वचित् ॥ ८५ ॥ पञ्चकुण्डात्मके यागे मूर्तीः पञ्चाथ वा न्यसेत् । पृथिवीजलतेजांसि वायुमाकाशमेव च ॥ ८६ ॥ क्रमात्तदधिपान्पञ्च ब्रह्माणं धरणीधरम् । रुद्रमीशं सदाख्यं च सृष्टिन्यायेन मन्त्रवित् ॥ ८७ ॥ मुमुक्षोर्वा निवृत्ताद्या अजाताद्यास्तदीश्वराः । त्रितत्त्वं वाऽथ सर्वत्र न्यसेद्व्याप्त्यात्मकारणम् ॥ ८८ ॥ शुद्धे चाऽऽत्मनि विद्येशा अशुद्धे लोकनायकाः । द्रष्टव्या मूर्तिपां श्चैव भोगिनो मन्त्रनायकाः ॥ ८९ ॥ पञ्चविंशत्तथैवाष्ट पञ्च त्रीणि यथाक्रमम् । एषां तत्त्वं तदीशानामिन्द्रादीनां ततो यथा ॥ ९० ॥ ॐ हां शक्तितत्त्वाय नम इत्यादि । ॐ हां शक्तितत्त्वाधिपाय नम इत्यादि । ॐ हां क्ष्मामूर्तये नमः । ॐ हां क्ष्मामूर्त्यधिपाय शिवाय नम इत्यादि । ॐ हां पृथिवीमूर्तये नमः । ॐ हां

द्वारा शक्ति आदि की मूर्ति की शुभ आसन पर विराजमान करे । उसके पश्चिम भाग में शिवलिङ्ग की पिण्डिका तथा ब्रह्मशिला को स्थापित करे ।। ७५ ।। शिवकोण में सौ अस्त्र मन्त्रों से अभिमन्त्रित निद्रा कलश और शिवासन की कल्पना करके हृदयमन्त्र से अर्घ्य देना चाहिए ।। ७६ ।। देवता को उठाकर लिङ्गमय आसन पर शिरोमन्त्र के द्वारा पूर्व की ओर मस्तक करके आरोपित एवं स्थापित करना चाहिए और सृष्टिमन्त्र के द्वारा उसमें धर्म आदि वन्दना का न्यास करना चाहिए ।। ७७ ।। धूप चढ़ाकर शिवलिङ्ग की पूजा करके कवचमन्त्र से वस्त्र अर्पित करना चाहिए । गृह के उपकरण तथा नैवेद्य अपनी शक्ति के अनुसार हृदयमन्त्र से चढ़ाना चाहिए ।। ७८ ।। अभ्यङ्ग कर्म के लिए घी तथा मधु से युक्त पात्र देवता के पैरों के सन्निकट रखना चाहिए । वहाँ पर उपस्थित आचार्य शक्ति से लेकर भूमिपर्यन्त छत्तीस तत्त्वों के समूह को उनके अधिष्ठातृ देवों के साथ स्थापित करके पुष्प मालाओं से उनके तीन भागों की परिकल्पना करें ।। ७९-८० ।। वे तीनों भाग माया से लेकर शक्तिपर्यन्त हैं । उनमें प्रथम भाग चतुष्कोण, द्वितीयभाग अष्टकोण और तृतीयभाग वर्तुलाकार है । प्रथम भाग में आत्मतत्त्व, द्वितीय भाग में विद्यातत्त्व और तृतीय भाग में शिवतत्त्व की स्थिति होती है ।। ८१ ।। उनके सृष्टि क्रम से एक-एक के क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव स्वामी हैं । पुनः मूर्तियों तथा मूर्तीश्वरों का पूर्वादि दिशाओं के क्रम से न्यास करना चाहिए ।। ८२।। पृथ्वी, अग्नि, यजमान, सूर्य, जल, वायु, चन्द्रमा और आकाश ये आठ मूर्ति स्वरूप हैं । इनका न्यास करके इनके अधिपतियों का न्यास करना चाहिए ।। ८३ ।। उनके नाम हैं- शर्व, पशुपति,उग्र, रुद्र, भव, ईश्वर, महादेव और भीम । उनके वाचक मन्त्र ये हैं- लं, रं, शं, षं, वं,पं, सं, हं । ये सभी त्रिमात्रिक हैं । अथवा प्रणव या हृदयमन्त्र या मूलमन्त्र भी कहीं पर इनके प्रयोग में लाए जाते हैं ।। ८४-८५ ।। अथवा पाँच कुण्डों वाले याग में पाँच मूर्तियों पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश का ही न्यास करना चाहिए ।। ८६ ।। मन्त्रज्ञ पुरुष इनके पाँच अधिपतियों- ब्रह्मा, धरणीधर (शेषनाग) रुद्र, ईश तथा सदाशिव का सृष्टिक्रम से न्यास करें ।। ८७ ।। यदि यजमान मुमुक्षु हो तो वह पञ्चमूर्तियों के स्थान में 'निवृत्ति' आदि पाँच कलाओं का तथा उनके आगत आदि अधिपतियों का न्यास करें अथवा सर्वत्र व्याप्ति स्वरूप कालात्मक तत्त्वत्रय का ही न्यास करना चाहिए ।। ८८ ।। शुद्ध आत्मा में विद्येश्वरों को तथा अशुद्ध आत्मा में लोकनायकों को मूर्तिपतियों के रूप में जानना चाहिए । भोगी (सर्प) भी मन्त्रनायक है ।। ८९ ।। क्रमशः पैंतीस, आठ, पाँच और तीन तत्त्व कहे गए हैं । उनके अधिपतियों के मन्त्र इस प्रकार से हैं ।। ९० ।। (१) हां शक्तितत्त्वाय नमः, (२) ओं हां शक्तितत्त्वाधिपाय नमः इत्यादि, (३) ओं हां क्ष्मा मूर्तये नमः इत्यादि, (४) ओं हां क्ष्मामूर्त्यधिपतये ब्रह्मणे नमः, इत्यादि

पृथिवीमूर्त्यधिपाय ब्रह्मणे नम इत्यादि । ॐ हां शिवतत्त्वाधिपाय रुद्राय नम इत्यादि ॥ ९१ ॥ नाभिकन्दात्समुच्चार्य घण्टानादविसर्पणम् । ब्रह्मादिकारणत्यागाद्द्वादशान्तसमाश्रितम् ॥ ९२ ॥ मन्त्रं च मनसाऽभिन्नं प्राप्तानन्दरसोपमम् । द्वादशान्तात्समानीय निष्कलं व्यापकं शिवम्॥९३॥ अष्ट (ष्टा) त्रिंशत्कलोपेतं सहस्रकिरणोज्ज्वलम् । सर्वशक्तिमयं सांगं ध्यात्वा लिङ्गे निवेशयेत् ॥ ९४ ॥ जीवन्यासो भवेदेवं लिङ्गे सर्वार्थसाधकः॥९४॥ पिण्डिकादिषु तु न्यासः प्रोच्यते साम्प्रतं यथा ॥ ९५ ॥ पिण्डिकां च कृतस्नानां विलिप्तां चन्दनादिभिः । सद्वस्त्रैश्च समाच्छाद्य रन्ध्रे च भगलक्षणे॥९६॥ पञ्चरत्नादिसंयुक्तां लिङ्गस्योत्तरतः स्थिताम् । लिङ्गवत्कृतविन्यासां विधिवत्सम्प्रपूजयेत् ॥ ९७ ॥ कृतस्नानादिकां तत्र लिङ्गमूले शिलां न्यसेत् । कृतस्नानादिसंस्कारं शक्त्यान्तं वृषभं तथा ॥ ९८ ॥ प्रणवपूर्वं हुं पूं ह्रीं मध्यादन्यतयेन च । क्रियाशक्तियुतां पिण्डीं शिलामाधाररूपिणीम्॥९९॥ भस्मदर्भतिलैः कुर्यात्प्राकारत्रितयं ततः । रक्षायै लोकपालांश्च सायुधान्योजयेद्बहिः ॥ १०० ॥ ॐ हूं हं क्रियाशक्तये नमः । ॐ हूं ह्रां ह्रः, महागौरी (रि) रुद्रदयिते स्वाहेति च पिण्डिकायाम् । ॐ हामाधारशक्तये नमः । ॐ हां वृषभाय नमः ॥ १०१ ॥ धारिकादीप्तिमत्युग्रा ज्योत्स्ना चैता बलोत्कटाः । तथा धात्री विधात्री च न्येसद्वा पञ्चनायिकाः ॥ १०२ ॥ वामा ज्येष्ठा क्रिया ज्ञाना वेधा तिस्त्रोऽथ वा न्यसेत् । क्रिया ज्ञाना तथेच्छा च पूर्ववच्छान्तिमूर्तिषु ॥ १०३ ॥ तमी मोहा क्षुधा निद्रा मृत्युर्मायाभवज्वराः । पञ्च चाथ महामोहा घोरा रात्रिभयाज्वराः ॥ १०४ ॥ तिस्त्रोऽथ वा क्रिया ज्ञाना तथा बाधादिनायिका । आत्मादित्रिषु तत्त्वेषु तीव्रमूर्तिषु विन्यसेत् ॥ १०५ ॥ अत्रापि पिण्डिका ब्रह्मशिलादिषु यथाविधि । गौर्यादिसंवरैरेव पूर्ववत्सर्वमाचरेत् ॥ १०६ ॥ एवं विधाय विन्यासं गत्वाकुण्डान्तिकं ततः । कुण्डमध्ये

(५) ओं हां पृथिवीमूर्तये नमः, (६) ओं हां पृथिवीमूर्त्यधिपाय ब्रह्मणे नमः इत्यादि, (७) ओं हां शिवतत्त्वाधिपाय रुद्राय नमः इत्यादि, ।। ९१ ।। नाभिमूल से उच्चारण करके घण्टानुवाद के समान चारों ओर फैलने वाले, ब्रह्मादिकारणों के त्यागपूर्वक, द्वादशान्त स्थान को प्राप्त हुए मन से अभिन्न,आनन्दरस को प्राप्त किए हुए के समान मन्त्र को द्वादशान्त पर्यन्त लाकर अड़तीस कलाओं से युक्त, सहस्रों किरणों से देदीप्यमान, सर्वशक्तिमय,निष्कल एवं व्यापक साङ्ग शिव का ध्यान करके उस लिङ्ग में निविष्ट करना चाहिए ।। ९२-९४ ।। इस प्रकार से सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाला अर्थन्यास होता है । अब मैं पिण्डिका आदि के न्यास को बतला रहा हूँ ।। ९५ ।। पिण्डिका को स्नान कराकर उसमें चन्दन आदि का लेप करना चाहिए । अच्छे वस्त्रों से ढंककर उसके भगस्वरूप छिद्र में पञ्चरत्न आदि डालकर उस पिण्डिका को लिङ्ग के उत्तर दिशा में स्थापित करना चाहिए ।। ९६-९७ ।। लिङ्ग के मूल में स्नान कराकर शिला को स्थापित करना चाहिए तथा शक्त्यन्त वृषभ का भी स्नान आदि संस्कार करके स्थापना करनी चाहिए ।। ९८ ।। फिर ओं हूं, ओं पूं ओं ह्रीं इन तीनों बीज मंत्रों में से किसी एक के द्वारा क्रियाशील से युक्त, आधारस्वरूपिणी पिण्डिका का पूजन करना चाहिए और उसके पश्चात् भस्म, कुश तथा तिल से तीन परकोटों का निर्माण करना चाहिए । रक्षा के सायुध के लिए लोकपालों की उसके बाहर नियुक्त करके पूजा करनी चाहिए ।। ९९-१०० ।। पूजा के मन्त्र इस प्रकार हैं- ओं हूं हं क्रियाशक्तये नमः ओं हूं ह्रां हः महागौरी रुद्रदयिते स्वाहा । इस मन्त्र से पिण्डिका की पूजा करनी चाहिए । ओं हां आधारशक्तये नमः । ओं हां वृषभाय नम; ।। १०१ ।। पिण्डी में धारिका,दीप्ता अत्युग्रा, ज्योत्स्ना, बलोत्करी, धात्री एवं विधात्री इन पाञ्च नायिकाओं का अथवा वामा, ज्येष्ठा, क्रिया, ज्ञाना तथा वेधा इन नायिकाओं का न्यास करें । अथवा क्रिया,ज्ञाना तथा इच्छा इन तीनों का न्यास । पहले के ही समान शान्त मूर्तियों में तमी, मोहा, क्षुधा, निद्रा,मृत्यु, माया और भवज्वरा इन पाँचों का अथवा महामोहा, घोरा, रात्रि, माया तथा ज्वरा इन पाँचों का अथवा क्रिया, ज्ञाना तथा बाधा इन तीन नायिकाओं का तीव्र मूर्ति आत्मा आदि तीन तत्त्वों में विन्यास करना चाहिए।।१०२-१०५ ।। यहाँ भी पिण्डिका, तथा ब्रह्मशिला आदि में पहले के ही समान गौरी आदि मन्त्रों से समस्त कार्यों को विधिपूर्वक करना चाहिए ।। १०६ ।। इस तरह से न्यास कर्म

महेशानं मेखलासु महेश्वरम् ॥ १०७ ॥ क्रियाशक्तिं तथाऽन्यासु नादमोष्ठे च विन्यसेत् । घटं स्थण्डिलवह्नीशैर्नाडीसंधानकं ततः ॥ १०८ ॥
पद्मतन्तुसमां शक्तिमुद्घातेन समुद्यताम् । विशन्ती सूर्यमार्गेण निःसरन्तीं समुद्गताम् ॥ १०९ ॥ पुनश्च शून्यमार्गेण विशन्तीं स्वस्य चिन्तयेत्॥१०९॥
एवं सर्वत्र सन्धेयं मूर्तिपैश्च परस्परम् ॥ ११० ॥ सम्पूज्य धारिकां शक्तिं कुण्डे सन्तर्प्य च क्रमात् । तत्त्वतत्त्वेश्वरान्मूर्तिंमूर्तीशांश्च घृतादिभिः॥१११॥
सम्पूज्य तर्पयित्वा तु सन्निधौ संहिताणुभिः । शतं सहस्रमर्धं वा पूर्णया सह होमयेत् ॥ ११२ ॥ तत्त्वतत्त्वेश्वरान्मूर्ति मूर्तीशांश्च करेणुकान् । तथा
संतर्प्य सांनिध्ये जुहुयुर्मूर्तिपा अपि ॥ ११३ ॥ ततो ब्रह्मभिरङ्गैश्च द्रव्यकालानुरोधतः । सन्तर्प्य शान्तिकुम्भाम्भः प्रोक्षिते कुशमूलतः ॥ ११४ ॥
लिङ्गमूलं च संस्पृश्य जपेयुर्होमसंख्यया । संनिधानं हृदा कुयुर्वर्मणा चावगुण्ठनम् ॥ ११५ ॥ एवं संशोध्य ब्रह्मादिविष्णवन्तादिविशुद्धये । विधाय
पूर्ववत्सर्वं होमसंख्याजपादिकम् ॥ ११६ ॥ कुशमध्यगयोगेन (ण) लिङ्गमध्याग्रकं स्पृशेत् । यथा यथा च सन्धानं तदिदानीमिहोच्यते ॥११७॥
ॐ हां हं, ओम्, ओम्, ओम्, एम्, ॐ भूं भूं बाह्यमूर्तये नमः । ॐ हां वां, ओं, अें षां ॐ भूं भूं वां वह्निमूर्तये नम; ॥ ११८ ॥ एवं च
यजमानादिमूर्तिभिरभिसंधेयम् । पञ्चमूर्त्यात्मकेऽप्येवं सन्धानं हृदयादिभिः ॥ ११९ ॥ मूलेन स्वीयबीजैर्वा ज्ञेयं तत्त्वत्रयात्मके । शिलापिण्डी
वृषेष्वेवं पूर्णाछिन्नं सुसंवरैः ॥ १२० ॥ भागाभागविशुद्ध्यर्थं होमं कुर्याच्छतादिकम् । न्यूनादिदोषमोषाय शिवेनाष्टाधिकं शतम् ॥ १२१ ॥
हुत्वाऽथ यत्कृतं कर्म शिवश्रोत्रे निवेदयेत् । एतत्सम्पादितं कर्म त्वच्छक्तौ च मया प्रभो ॥ १२२ ॥ ॐ नमो भगवते रुद्राय रुद्र नमोऽस्तु ते ।

करके कुण्ड के समीप जाकर उसके भीतर महेश्वर का, मेखलाओं में चतुर्भुज का, नाभि में क्रियाशक्ति का तथा ऊर्ध्वभाग में नाद का न्यास करना चाहिए । उसके पश्चात् कलश,वेदी, अग्नि तथा शिव के द्वारा नाड़ी सन्धान कर्म करना चाहिए ।। १०७-१०८ ।। कमल के तन्तु की भाँति सूक्ष्मशक्ति ऊर्ध्वगत वायु की सहायता से ऊपर की ओर उठती है और सूर्यमार्ग से शिव में प्रवेश करती है । पुनः वध्ऊर्ध्वशक्ति मूर्तिपालकों को भी सर्वत्र परस्पर इसी प्रकार की भावना करनी चाहिए । मूर्ति पालकों को भी सर्वत्र परस्पर इसी प्रकार की भावना करनी चाहिए ।। १०९-११०।। कुण्ड में आधारशक्ति का पूजन करके,तर्पण करने के पश्चात् क्रमशः तत्त्व तत्त्वेश्वर, मूर्ति तथा मूर्तीश्वरों का धृत आदि से पूजन एवं तर्पण करना चाहिए । उनकी सन्निधिकरण के लिए संहिता मन्त्रों से एक सौ अथवा एक हजार पूर्णाहुति के साथ होम करना चाहिए ।। १११-११२ ।। इसके पश्चात् मूर्ति की रक्षा करने वाले अन्य ब्राह्मण भी तत्त्व एवं तत्त्वेश्वरों, मूर्ति तथा मूर्तीश्वरों का आचार्य के ही समान तर्पण करके सन्निधि में ही हवन करें ।। ११३ ।। उसके पश्चात् वेदों तथा वेदाङ्गों के द्वारा द्रव्य एवं काल के अनुसार तर्पण करके शान्तिकलश के जल से प्रोक्षित कुश के मूल से लिङ्ग के मूल भाग का स्पर्श करके होम की संख्या के बराबर जप करना चाहिए । उसके पश्चात् हृदयमन्त्र से सन्निधिकरण तथा कवचमन्त्र से अवगुण्ठन करना चाहिए।।११४-११५।। इस प्रकार से शोधन करके लिङ्ग के ऊर्ध्वभाग में ब्रह्मा तथा मूलभाग में विष्णु का पूजन करके शुद्धि के लिए पूर्ववत् समस्त कार्यों को सम्पन्न करना चाहिए और होम संख्या के अनुसार जप आदि करना चाहिए ।। ११६ ।। कुश के मध्यभाग से लिङ्ग के मध्यभाग का तथा अग्रभाग से अग्रभाग का स्पर्श करना चाहिए । उस समय अनुसंधान किया जाने वाला मन्त्र यह है- ओं हां हं ओं, ओं, ओं, एम् ओं भूं भूं बाह्यमूर्तये नमः, ओं हां, वां,ओं, ऊँ ओं षां, ओं, भूं भूं वां वह्निमूर्तये नमः ।। ११८ ।। इसी प्रकार से यजमान आदि मूर्तियों के द्वारा भी अनुसंधान किया जाना चाहिए । पञ्चमूर्त्यात्मक शिव के लिए भी हृदयादि मन्त्रों द्वारा इसी प्रकार से अनुसंधान कर्म करने का विधान है ।। ११९ ।। त्रितत्त्वात्मक स्वरूप में मूलमन्त्र अथवा अपने बीजमन्त्रों द्वारा संधान कर्म करने की विधि है ऐसा जानना चाहिए । शिला, पिण्डी तथा वृषभ के लिए भी इसी तरह संधान आवश्यक है । प्रत्येक भाग की शुद्धि के लिए अपने मन्त्रों द्वारा शतादि होम करना चाहिए तथा उसे पूर्णाहुति द्वारा पृथक् करना चाहिए । न्यूनादि दोषों की निवृत्ति शिवमन्त्र से एक सौ आठ आहुतियाँ देकर किए हुए कर्म को शिव के श्रोत्र में निवेदित करना चाहिए कि हे प्रभो ! आपकी ही शक्ति से मैंने इस कर्म को सम्पादित किया है।।१२०-१२२।। भगवान् रुद्र को नमस्कार है । रुद्र ! आपको मेरा नमस्कार है । यह कर्म विधिपूर्ण हो अथवा अपूर्ण

विधिपूर्णमपूर्णं वा स्वशक्त्याऽऽपूर्य गृह्यताम् ॥ १२३ ॥ ॐ ह्रीं शांकरि पूरय स्वाहा, इति पिण्डिकायाम्॥१२४॥ अथ लिङ्गे न्यसेज्ज्ञानी क्रियाख्यं पीठविग्रहे । आधाररूपिणीं शक्तिं न्यसेद्ब्रह्मशिलोपरि ॥ १२५ ॥ निरोध्य सप्तरात्रं वा पञ्चरात्रं त्रिरात्रकम् । एकरात्रमथो वाऽपि यद्वा सद्योऽधिवासनम् ॥ १२६ ॥ विनाऽधिवासनं यागः कृतोऽपि न फलप्रदः । स्वमन्त्रैः प्रत्यहं देयमाहुतीनां शतं शतम् ॥ १२७ ॥ शिवकुम्भादि पूजां च दिग्बलिं च निवेदयेत् । गुर्वादिसहितो वासो रात्रौ नियमपूर्वकम् । अधिवासः स वसतेवधेर्भावः समीरितः॥ १२८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रतिष्ठायामधिवासनविधिकथनं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

शिवप्रतिष्ठाविधिः

ईश्वर उवाच— **प्रातर्नित्यविधिं कृत्वा द्वारपालप्रपूजनम् । प्रविश्य प्राग्विधानेन देहशुद्ध्यादिमाचरेत् ॥ १ ॥ दिक्पतींश्च समभ्यर्च्य शिवकुम्भं च वर्धनीम् । अष्टपुष्पिकया लिङ्गं वह्निं सन्तर्प्य च क्रमात् ॥ २ ॥ शिवाज्ञातस्ततो गच्छेत्प्रासादं शस्त्रमुच्चरन् । तद्गतान्प्रक्षिपेद्विघ्नान्हुंफडन्तशराणुना॥३॥ तन्मध्येन स्थापयेल्लिङ्गं वेधदोषविशङ्कया । तस्मान्मध्यं परित्यज्य यवार्धेन यवेन वा ॥ ४ ॥ किञ्चिदीशानमाश्रित्य शिलामध्ये निवेशयेत् । मूलेन तामनन्ताख्यं सर्वाधारस्वरूपिणीम् ॥ ५ ॥ सर्वगां सृष्टियोगेन विन्यसेदचलां शिलाम् । अथवाऽनेन मन्त्रेण शिवस्याऽऽसनरूपिणीम् ॥ ६ ॥ ॐ नमो व्यापिनि भगवति स्थिरेऽचले ध्रुवे। ह्रीं लं ह्रीं स्वाहा॥७॥ त्वया शिवाज्ञया शक्ते स्थातव्यमिह संततम् । इत्युक्त्वा स समभ्यर्च्य निरुध्याद्रोधमुद्रया॥८॥**

आप अपनी शक्ति से इसे पूर्ण करके स्वीकार करें ।। १२३ ।। ओं ह्रीं शांकरि ! पूरय स्वाहा। इस मन्त्र के उच्चारणपूर्वक पिण्डिका में न्यास करना चाहिए ।। १२४ ।। इसके पश्चात् ज्ञानी गुरु पीठ विग्रह शिवलिङ्ग में क्रिया का न्यास करे । अधाररूपिणी शक्ति का ब्रह्म शिला के ऊपर न्यास करना चाहिए ।। १२५ ।। सात, पाँच, तीन अथवा एक रात निरोध करके अथवा उसी समय अधिवासन करना चाहिए ।। १२६ ।। अधिवासन के विना किया हुआ भी याग फलप्रद नहीं होता है । प्रतिदिन अपने मन्त्र से सौ-सौ आहुति देनी चाहिए ।। १२७ ।। शिव कलश आदि की पूजा करके दिग्बलि देनी चाहिए। रात्रि में नियमपूर्वक आचार्य वास ही अधिवास कहलाता है । अधिपूर्वक 'वस' धातु से घञ् प्रत्यय करने से अधिवास शब्द व्युत्पन्न होता है ।। १२८।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का प्रतिष्ठान्तर्गत अधिवासन विधि का वर्णन नामक छियानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९६ ॥

श्रीशिवजी ने कहा— प्रातःकाल नित्य विधि करके द्वारपालों का पूजन करें । इसके पश्चात् यागमण्डप में प्रवेश करके पूर्वोक्त विधि से देहशुद्धि आदि करना चाहिए ।। १ ।। दिक्पालों की पूजा करे शिवकलश तथा वर्धनी का पूजन करें । अष्टपुष्पिका के द्वारा क्रमशः लिङ्ग तथा बह्नि को संतप्त करके शिवजी से आज्ञा लेकर अस्त्रमन्त्र 'अस्त्राय फट्' का उच्चारण करते हुए मन्दिर में जप और अस्त्राय हूँ फट् इस मन्त्र का उच्चारण करके मन्दिर के विघ्नों को दूर करना चाहिए ।। २-३ ।। शिला के ठीक बीच में लिङ्ग की स्थापना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वैसा करने पर वेध दोष की आशंका रहती है, अतएव बीच में आधा जौ अथवा एक जौ छोड़कर कुछ ईशानकोण की ओर शिला के बीच में मूर्ति की स्थापना करनी चाहिए । मूलमन्त्र के द्वारा अनन्त नामक सबों के आधार स्वरूपिणी सर्वव्यापिनी अचला शिला का सृष्टियोग के द्वारा न्यास करना चाहिए। अथवा इस मन्त्र के द्वारा शिव के आसन स्वरूपिणी शिला का न्यास करना चाहिए।।४-६।। वह मन्त्र है- ओं नमो व्यापिनि भगवति स्थिरेऽचले ध्रुवे । ह्रौं लं ह्रीं स्वाहा ।। ७ ।। पुनः- हे शक्तिवरूपिणी शिले ! तुम शिवजी की आज्ञा से यहाँ सदा स्थित रहना । यह प्रार्थना करके

वज्रादीनि च रत्नानि तथोशीरादिकौषधीः । लौहान्हेमादिकांस्यान्तान्हरितालादिकांस्तथा ॥ ९ ॥ धान्यप्रभृतिसस्यांश्च पूर्वमुक्ताननुक्रमात् । प्रभारागत्वदेहत्ववीर्यशक्तिमयानिमान् ॥ १० ॥ भावयन्नेकचित्तस्तु लोकपालेशसंवरैः । पूर्वादिषु च गर्तेषु न्यसेदकैकशः क्रमात् ॥ ११ ॥ हेमजं तारजं कूर्मं वृषं वा द्वारसम्मुखम् । सरित्तटमृदा युक्तं पर्वताग्रमृदाऽथ वा ॥ १२ ॥ प्रक्षिपेन्मध्यगर्तादौ यद्वा मेरुं सुवर्णजम्। मधूकाक्षतसंयुक्तामञ्जनेन समन्वितम् ॥ १३ ॥ पृथिवीं राजतीं यद्वा यद्वा हेमसमुद्भवाम्। सर्वबीजसुवर्णाभ्यां समायुक्तां विनिक्षिपेत् ॥ १४ ॥ स्वर्णजं राजतं वाऽपि सर्वलोहसमुद्भवम् । सुवर्णं कृशरायुक्तं पद्मनालं ततो न्यसेत् ॥ १५॥ देवदेवस्य शक्त्यादिमूर्तिपर्यन्तमासनम् । प्रकल्प्य पायसेनाथ लिप्त्वा गुग्गुलुनाऽथ वा ॥ १६ ॥ श्वभ्रमाच्छाद्य वस्त्रेण तनुत्रेणास्त्ररक्षितम् । दिक्पतिभ्यो बलिं दत्त्वा समाचान्तोऽथ देशिकः॥ १७ ॥ शिवेन वा शिलाश्वभ्रसङ्गदोषनिवृत्तये । शस्त्रेण वा शतं सम्यग्जुहुयात्पूर्णया सह ॥ १८ ॥ एकैकाहुतिदानेन संतर्प्य वास्तुदेवताः । समुत्थाप्य हृदा देवमासनं मङ्गलादिभिः ॥ १९ ॥ गुरुर्देवाग्रतो गच्छेन्मूर्तिपैश्च दिशि स्थितैः। चतुर्भिः सह कर्ता च देवयानस्य पृष्ठतः ॥ २० ॥ प्रासादादि परिभ्रम्य भद्राख्यद्वारसंमुखम् । लिङ्गं संस्थाप्य दत्त्वाऽर्घ्यं प्रासादं संनिवेशयेत्॥२१॥ द्वारेण द्वारबन्धेन द्वारदेशेन तच्छिलाः । द्वारबन्धे शिखाशून्ये तदर्धेनाथ तदृते ॥ २२ ॥ वर्जयन्द्वारसंस्पर्शं द्वारेणैव महेश्वरम् । देवगृहसमारम्भे कोणेनापि प्रवेशयेत् ॥ २३ ॥ अयमेव विधिर्ज्ञेयोऽव्यक्तलिङ्गेऽपि सर्वतः। गृहे प्रवेशनं द्वारे लोकेऽपि समीरितम् ॥ २४ ॥ अपद्वारप्रवेशेन विदुर्गोत्रक्षयं गृहम् । अथ पीठे च संस्थाप्य लिङ्गं द्वारस्य सम्मुखम् ॥ २५॥

उसकी अभ्यर्चा करनी चाहिए और रोधमुद्रा के द्वारा उसका निरोध करना चाहिए । हीरे आदि रत्न, उशीर (खस) आदि औषधियाँ, लौह, सुवर्ण, काँस्य आदि धातु तथा हरिताल आदि धान आदि के पौधे इन सभी वस्तुओं को एकत्र करके यह मन में भावना करे कि ये सभी वस्तुएँ- प्रभा, कान्ति,देह, वीर्य तथा शक्ति स्वरूप हैं ।। ९-१० ।। इस तरह से एकाग्रतापूर्वक भावना करते हुए लोकपालों के तथा शिव के मन्त्रों द्वारा उन सबों को पूर्व आदि दिशाओं के गड्ढों में क्रमशः एक-एक करके डाले ।। ११ ।। सोने अथवा ताम्बे के बने हुए कूर्म अथवा वृष को द्वार के सम्मुख रखकर उसे नदी के तट की अथवा पर्वत के शिखर की मिट्टी से युक्त करना चाहिए उसे बीच गड्ढे आदि में डालना चाहिए अथवा सुवर्ण निर्मित मेरु को, मधूक (महुआ) अक्षत और अञ्जन से युक्त करके उसमें डालें अथवा सोने या चाँदी की बनी हुयी पृथ्वी को सम्पूर्ण बीजों और सुवर्ण से संयुक्त करके उस मध्य गर्त में डालें ।। १२-१४ ।। उसके पश्चात् सोने अथवा चाँदी अथवा पूरी तरह से लोहे से बने सुवर्णमय केसरों वाले कमलनाल का उसमें डालें ।। १५ ।। देवाधिदेव भगवान् शंकर की शक्ति से लेकर मूर्तिपर्यन्त अथवा शक्ति से लेकर शक्तिपर्यन्त तत्त्व का देवाधिदेव महादेव के लिए आसन निर्मित करके उसमें पायस (खीर) अथवा गुग्गुल का लेप करें । उसके पश्चात् वस्त्र से गर्त को ढँककर कवच मन्त्र के द्वारा उसकी रक्षा करें । दिक्पालों को बलि देकर आचार्य आचमन करें ।। १६-१७ ।। शिला और गर्त दोष की निवृत्ति के लिए शिवमन्त्र अथवा अस्त्र मन्त्र से सौ आहुतियाँ दें और पूर्णाहुति करें ।। १८ ।। एक-एक पाठ करते हुए उठाकर आचार्य आगे आगे चलें और चारों दिशाओं में स्थित चार मूर्तिरक्षकों के साथ स्वयम् यजमान देवरथ के पीछे-पीछे चलें ।। १९-२० ।। मन्दिर के चारों ओर घुमाकर शिवलिङ्गों को भद्रद्वार के सामने स्नान कराकर अर्घ्य दें ओर उसे मन्दिर के भीतर ले जायँ ।। २१ ।। खुले द्वारा से अथवा द्वार के लिए निश्चित स्थान से शिवलिङ्ग को मन्दिर में ले जाना चाहिए । इन सबों के अभाव में द्वार बंद करने वाली शिला से शून्यमार्ग से प्रवेश करें ।। २२ ।। द्वार से ही महेश्वर को मन्दिर में प्रवेश कराएँ किन्तु द्वार का स्पर्श न होने दें । यदि मन्दिर का निर्माण प्रारम्भ हो रहा हो तो किसी कोने से भी शिवलिंग को मन्दिर में प्रवेश कराया जा सकता है ।। २३ ।। व्यक्त शिवलिङ्ग के भी मन्दिर में प्रवेश करने की यही विधि जाननी चाहिए। लोक में भी द्वार से ही गृह में प्रवेश बतलाया गया है ।। २४ ।। यदि विना द्वार के गृह में प्रवेश किया जाय तो गोत्र का नाश होता है । इसके पश्चात् द्वार के सामने पीठ पर लिङ्ग को स्थापित

तूर्यमङ्गलनिर्घोषैर्दूर्वाक्षतसमन्वितम् । समुत्तिष्ठ हृदेत्युक्त्वा महापाशुपतं पठेत् ॥ २६ ॥ अपनीय घटं श्वभ्राद्देशिको मूर्तिपैः सह । यन्त्रं संधारयित्वा तु विलिप्तं कुङ्कुमादिभिः ॥ २७ ॥ शक्तिशक्तिमतोरैक्यं ध्यात्वा चैव तु रक्षितम् । लयान्तं मूलमुच्चार्य स्पृष्ट्वा श्वभ्रे निवेशयेत् ॥ २८ ॥ अंशेन ब्रह्मभागस्य यद्वा अंशद्वयेन च । अर्धेन वाऽष्टमांशेन सर्वस्याथ प्रवेशनम् ॥ २९ ॥ पिधाय सीसकं नाभिदीर्घाभिः सुसमाहितः । श्वभ्रं बालुकयाऽऽपूर्य ब्रूयात्स्थिरीभवेति च ॥ ३० ॥ ततो लिङ्गे स्थिरीभूते ध्यात्वा सकलरूपिणम् । मूलमुच्चार्य शक्त्यन्तं स्पृष्ट्वा च निष्कलं न्यसेत् ॥ ३१ ॥ स्थाप्यमानं यदा लिङ्गे यां यां दिशमथाऽऽश्रयेत् । तत्तद्दिगीशमन्त्रेण पूर्णान्तं दक्षिणान्वितम् ॥ ३२ ॥ सव्यस्थाने च वक्रे च चलिते स्फुटितेऽथ वा । जुहुयान्मूलमन्त्रेण बहुरूपेण वा शतम् ॥ ३३॥ किं चान्येष्वपि दोषेषु शिवशान्तिं समाश्रयेत् । उक्तन्यासविधिं लिङ्गे कुर्यादेवं न दोषभाक्॥३४॥ पीठबन्धमतः कृत्वा लक्षणस्यांशलक्षणम्। गौरीमन्त्रं लयं नीत्वा सृष्ट्या पिण्डीं च विन्यसेत् ॥ ३५ ॥ संपूर्य पार्श्वसन्धिं च बालुकावज्रलेपतः । ततो मूर्तिधरैः सार्धं गुरुः शान्तिपटोर्ध्वतः ॥ ३६ ॥ संस्नाप्य कलशैरन्यैस्तद्वत्पञ्चामृतादिभिः । विलिप्य चन्दनाद्यैश्च सम्पूज्य जगदीश्वरम् ॥ ३७ ॥ उमामहेशमन्त्राभ्यां तौ स्पृशेल्लिङ्गमुद्रया । ततस्त्रितत्त्वविन्यासं षडर्घादिपुरःसरम् ॥ ३८ ॥ कृत्वा मूर्तिं तदीशानामङ्गानां ब्रह्मणामथ । ज्ञानलिङ्गे क्रियापीठे विन्यस्य स्नानपयेत्ततः ॥ ३९ ॥ गन्धैर्विलिप्य संधूप्य व्यापित्वेन शिवे न्यसेत् । स्रग्धूपदीपनैवेद्यैर्हृदयेन फलानि च ॥ ४० ॥ विनिवेद्य यथाशक्ति समाचम्य महेश्वरम् । दत्त्वाऽर्घ्यं च जपं कृत्वा निवेद्य वरदे करे ॥ ४१ ॥ चन्द्रार्कतारकं यावन्मन्त्रेण शैवमूर्तिपैः । स्वेच्छयैव त्वया नाथ स्थातव्यमिह मन्दिरे ॥ ४२ ॥ प्रणम्यैवं बहिर्गत्वा हृदा वा प्रणवेन वा । संस्थाप्य वृषभं पश्चात्पूर्ववद्बलिमाचरेत्॥४३॥

करके अनेक प्रकार के वाद्यों तथा मङ्गल सूचक ध्वनियों के साथ उस पर दूर्वा और अक्षत चढाएँ तथा 'समुत्तिष्ठ नमः' कहकर महापाशुपत मन्त्र का पाठ करना चाहिए ।। २६ ।। इसके पश्चात् आचार्य मूर्तिपालों के साथ गर्त में रखे हुए कलश को हटाकर उसे यन्त्र में स्थापित करावें तथा मूर्ति को कुंकुम आदि से लिप्त करावें । शक्ति तथा शक्तिमान की एकता का चिन्तन करके मूलमन्त्र का उच्चारण करें और ब्रह्मभाग के एक अंश, दो अंश, आधा अंश अथवा अष्टमांश अथवा सम्पूर्ण ब्रह्म अंश को गर्त में प्रवेश करा दें ।। २९ ।। पुनः नाभिपर्यन्त शीशे का आवरण देकर एकाग्रचित्त से नीचे के गर्त को बालू से पाट दें और- 'भगवन् ! आप सुस्थिर होइए' इस प्रकार से प्रार्थना करें ।। ३० ।। इसके पश्चात् लिङ्ग के स्थिर हो जाने पर उनके 'सकल रूप होने का ध्यान करना चाहिए ।' शक्तिपर्यन्त मूलमन्त्र का उच्चारण करके स्पर्शपूर्वक शिवलिङ्ग के निष्कलीकरण का न्यास करना चाहिए ।। ३१ ।। शिवलिङ्ग की स्थापना के समय जिस-जिस दिशा में जाय उस-उस दिशा के स्वामी के मन्त्रसे हवन तथा पूर्णाहुति करके दक्षिणा देनी चाहिए ।। ३२ ।। यदि मूर्ति दक्षिण की ओर झुक जाय, टेढ़ी हो जाय,या हिले, या फट-फूट जाय तो मूलमन्त्र से अथवा बहुरूप में सौ-सौ आहुतियाँ देनी चाहिए ।। ३३ ।। अन्य प्रकार के भी दोष आने पर शिवभक्ति करनी चाहिए । इस प्रकार से न्यास करने से शिवलिङ्ग में किसी भी प्रकार का दोष नहीं होता है ।। ३४ ।। इसके बाद लिङ्ग के अंशलक्षणस्वरूप पीठबन्ध करके लिङ्ग में गौरी मन्त्र का लय करके सृष्टि मन्त्र से पिण्डी का न्यास करना चाहिए ।। ३५ ।। शिवलिङ्ग के अगल-बगल की संधि को बालू तथा वज्रलेप के द्वारा भरकर मूर्तिपूजकों के साथ आचार्य ऊपर से शान्ति पट रखकर कलशों के जल से तथा पञ्चामृत आदि से शिवलिङ्ग को स्नान कराएँ फिर चन्दन आदि का शिवलिङ्ग में लेप करके जगदीश्वर की पूजा करनी चाहिए ।। ३६-३७ ।। लिङ्गमुद्रा प्रदर्शनपूर्वक उमा तथा महेश के मन्त्र से शिवलिङ्ग के दोनों का स्पर्श करें । उसके पश्चात् अर्घ्यादिपूर्वक तत्त्वत्रयन्यास करके मूर्तिन्यास, दिक्पालन्यास, अङ्गन्यास एवं स्नान कराए ।। ३८-३९ ।। गन्ध का लेपन करके धूप दे ओर व्यापक रूप से शिव का न्यास करना चाहिए । पुनः हृदयमन्त्र से माला, धूप, दीप तथा नैवेद्य एवं फल को अपनी शक्ति के अनुसार निवेदित करके महेश्वर को आचमन कराए । पुनः अर्घ्य देकर जप करे और उसे भगवान् के वरदायक हाथ में मन्त्र के द्वारा निवेदित करे और मूर्तिपालकों के साथ यह प्रार्थना करे- हे नाथ ! आप अपनी इच्छा से इस मन्दिर में तब तक निवास करें जब तक सूर्य चन्द्रमा और तारे रहें ।।४०-४२ ।।

न्यूनादिदोषमोषाय ततो मृत्युजिता शतम् । शिवेन सशिवो हुत्वा शान्त्यर्थं पायसेन च ॥ ४४ ॥ ज्ञानाज्ञानकृतं यच्च तत्पूरय महाविभो । हिरण्यपशुभूम्यादिगीतवाद्यादिहेतवे ॥ ४५ ॥ अम्बिकेशाय तद्भक्त्या शक्त्या सर्वं निवेदयेत् । दानं महोत्सवं पश्चात्कुर्याद्दिनचतुष्टयम्॥४६॥ त्रिसन्ध्यं त्रिदिनं मन्त्री होमयेन्मूर्तिपैः सह । चतुर्थेऽहनि पूर्णां च चरुकं बहुरूपिणा ॥ ४७ ॥ निवेद्य सर्वकुण्डेषु सम्पाताहुतिशोधितम् । दिनचतुष्टयं यावन्न निर्माल्यं तदूर्ध्वतः ॥ ४८ ॥ निर्माल्यापनयं कृत्वा स्नापयित्वा तु पूजयेत् । पूजा सामान्यलिङ्गेषु कार्या साधारणाणुभिः॥४९॥ विहाय लिङ्गचैतन्यं कुर्यात्स्थाणुविसर्जनम् । असाधारणलिङ्गेषु क्षमस्वेति विसर्जनम् ॥ ५० ॥ आवाहनमभिव्यक्तिर्विसर्गः शक्तिरूपता । प्रतिष्ठान्ते क्वचित्प्रोक्तं स्थिराद्याहुतिसप्तकम् ॥ ५१ ॥ स्थिरस्तथाऽप्रमेयश्चानादिबोधस्तथैव च । नित्योऽथ सर्वगश्चैवाविनाशी तृप्त एव च॥५२॥ एते गुणा महेशस्य संनिधानाय कीर्तिताः । ॐ नमः शिवाय स्थिरो भवेत्याहुतीनां क्रमः ॥ ५३ ॥ एवमेतच्च सम्पाद्य विधाय शिवकुम्भवत् । कुम्भद्वयं च तन्मध्यादेककुम्भाम्भसा भवम् ॥ ५४ ॥ संस्नाप्य तद्द्वितीयं च कर्तृस्नानाय धारयेत् । दत्त्वा बलिं समाचम्य बहिर्गच्छेच्छिवाज्ञया॥५५॥ जगती बाह्यतश्चण्डमैशान्यां दिशि मन्दिरे । धामगर्भप्रमाणे च सुपीठे कल्पितासने ॥ ५६ ॥ पूर्ववन्न्याससहोमादि विधाय ध्यानपूर्वकम् । संस्थाप्य विधिव-त्तत्र ब्रह्माङ्गैः पूजयेत्ततः ॥ ५७ ॥ अङ्गानि पुर्वयुक्तानि ब्रह्माणि त्वणुना यथा ॥ ५८ ॥ ओं वं सद्योजाताय हूं फट् नमः । ॐ विं वामदेवाय हूं फट् नमः ॐ वुं अघोराय हुं फट् नमः । ओम् एवं ओं वें तत्पुरुषाय ओं वामीशानाय च हूं फट् नमः ॥ ५९ ॥ जपं निवेद्य सन्तर्प्य विज्ञाप्य नतिपूर्वकम्। देवः सन्निहितो यावत्तावत्त्वं संनिधौ भव॥६०॥ न्यूनाधिकं च यत्किञ्चित्कृतमज्ञानतो मया । त्वत्प्रसादेन चण्डेश तत्सर्वं परिपूरय॥६१॥

इस प्रकार से प्रणाम करके मन्दिर के बाहर निकलकर हृदयमन्त्र अथवा प्रणव से वृषभ की स्थापना करके पहले के समान बलि दें ।। ४३ ।। न्यूनादि दोष के परिहार के लिए मृत्युञ्जय मन्त्र से समिधा की आहुति देकर शान्ति के लिए शिवमन्त्र से होम करे और प्रार्थना करे- हे प्रभो ! मैंने जो कुछ भी ज्ञान अथवा अज्ञान से किया है, उसे आप पूरा करें । सुवर्ण, पशु, भूमि, गीत, वाद्य आदि को प्रदान करने वाले अम्बिकापति शिव को सब कुछ भक्तिपूर्वक समर्पित करना चाहिए । उसके पश्चात् चार दिनों तक दान तथा महोत्सव मनाना चाहिए ।। ४४-४६ ।। मन्त्रज्ञ आचार्य मूर्तिरक्षकों के साथ तीन दिन तक तीनों शाम होम करें । चौथे दिन पूर्णाहुति करके बहुरूप मन्त्र से चरु निवेदित करें । सभी कुण्डों में समपाताहुति के द्वारा शोधित चरु अर्पित करें। उक्त चार दिनों तक निर्माल्य न हटावें, उसके बाद निर्माल्य हटाकर स्नान कराकर पूजन करें सामान्य लिङ्गों के होने पर साधारण मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए ।। ४७-४९ ।। लिङ्ग चैतन्य को छोड़कर स्थाणु बिसर्जन करना चाहिए ।। ५० ।। आवाहन, अभिव्यक्ति, विसर्ग, शक्तिरूपता और प्रतिष्ठा ये पाँच बातें मुख्य हैं । कहीं-कहीं पर स्थिरता आदि गुणों के लिए सात आहुतियाँ देने को कहा गया ।। ५१ ।। स्थिर, अप्रमेय, अनादि, ज्ञानस्वरूप, नित्य, सर्वव्यापक, अविनाशी तथा तृप्त ये गुण महेश के हैं । महेश के संनिधि के लिए इन गुणों के नाम से आहुति देनी चाहिए । आहुति का क्रम है- ओं नमः शिवाय स्थिरो भव 'नम' स्वाहा इत्यादि ।। ५१-५३ ।। इस प्रकार से इस कार्य को सम्पादित करके शिवकलश के ही समान दो और कलशों को तैयार करके, उनमें से एक कलश के जल से शिव को स्नान कराकर दूसरे कलश को यजमान के स्नान के लिए रख देना चाहिए । पुनः बलि देकर तथा आचमन करके शिव की आज्ञा लेकर बाहर जाना चाहिए ।। ५४-५५ ।। यज्ञमण्डप के बाहर मन्दिर के ईशानकोण में चण्ड की पूजा करनी चाहिए । पुनः मन्दिर क गर्भ भाग के बराबर सुन्दर पीठ पर कल्पित आसन पर पहले के ही समान न्यास एवं होम आदि करके ध्यानपूर्वक स्थापना करनी चाहिए । पुनः वहाँ ब्रह्माङ्ग मन्त्रों से विधिपूर्वक पूजन करना चाहिए ।। ५६-५७ ।। ब्रह्म को पहले ही बतला चुका हूँ । अङ्गमन्त्र ये है ।। ५८ ।। ओं वं सद्योजाताय हूँ फट् नमः । ओं विं वामदेवाय हूँ फट् नमः । ओं वुं अघोराय हूँ फट् नमः । इसी तरह- ओं वें तत्पुरुषाय हूं फट् नमः । ओं वीं ईशानाय हूं फट् नमः।।५९।। जप का निवेदन करके तथा तर्पण करके नमस्कारपूर्वक प्रार्थना करना चाहिए। हे चण्डेश जब तक भगवान् शिव यहाँ हैं तब तक आप यहाँ रहें। अज्ञान के कारण मैंने जो कुछ

बाणलिङ्गे बाणलोहे सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि । प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत् ॥ ६२ ॥ अद्वैतभावनायुक्ते स्थण्डिलेशविधावपि । अभ्यर्च्य चण्डं ससुतं यजमानं हि भार्यया ॥ ६३ ॥ पूर्वस्थापितकुम्भेन स्नापयेत्स्नापकः स्वयम् । स्नापकं यजमानोऽपि सम्पूज्य च महेशवत्॥६४॥ वित्तशाठ्यं विना दद्याद्भूहिरण्यादिदक्षिणाम् । मूर्तिपान्विधिवत्पश्चाज्जापकान्ब्राह्मणांस्तथा॥ ६५॥ दैवज्ञं शिल्पिनं प्राच्र्य दीनानाथादि भोजयेत्। यदत्र सम्मुखीभावे खेदितो भगवन्मया ॥ ६६ ॥ क्षमस्व नाथ तत्सर्वं कारुण्याम्बुनिधे मम । इति विज्ञप्तियुक्ताय यजमानाय सद्गुरुः ॥ ६७ ॥ प्रतिष्ठापुण्यसद्भावं स्फुरत्तारकसप्रभम् । कुशपुष्पाक्षतोपेतं स्वकरेण समर्पयेत् ॥ ६८ ॥ ततः पाशुपतं जप्त्वा प्रणम्य परमेश्वरम् । ततोऽपि बलिभिर्भूतान्संनिधाय निबोधयेत् ॥ ६९ ॥ स्थातव्यं भवता तावद्यावत्संनिहितो हरः । गुरुर्वस्त्रादिसंयुक्तं गृह्णीयाद्यागमण्डपम् ॥ ७० ॥ सर्वोपकरणं शिल्पी तथा स्नापनमण्डपम् । अन्ये देवादयः स्थाप्या मन्त्रैरागमसंभवैः॥ ७१ ॥ आदिवर्णस्य भेदाद्वा सुतत्त्वव्याप्तिभाविताः । साध्यप्रमुखदेवाश्च सरिदोषधयस्तथा ॥ ७२ ॥ क्षेत्रपाः किन्नराद्याश्च पृथिवीतत्त्वमाश्रिताः । स्थानं सरस्वती लक्ष्मीनदीनामम्भसि क्वचित् ॥७३॥ भुवनाधिपतीनां च स्थानं यत्र व्यवस्थितिः । अहं बुद्धिप्रधानञ्च त्रितत्त्वं ब्रह्मणः पदम् ॥ ७४ ॥ तन्मात्रादिप्रधानान्तं पदमेतत्त्रिकं हरेः । नाट्येशगणमातॄणां यक्षेशशरजन्मनाम् ॥ ७५ ॥ अण्डजाः शुद्धविद्यान्तं पदं गणपतेस्तथा । मायांशदेशशक्त्यन्तं शिवाशिवोग्ररोचिषाम् ॥ ७६ ॥ पदमीश्वरपर्यन्तं व्यक्तार्चासु च कीर्तितम् । कूर्माद्यं कीर्तितं यच्च यच्च रत्नादिपञ्चकम् ॥ ७७ ॥ प्रक्षिपेत्पीठगर्तायां पञ्चब्रह्मशिलां विना ।

भी कम तथा अधिक किया है, उसे आप कृपापूर्वक पूरा कर दें ।। ६०-६१ ।। जहाँ बाण लिङ्ग (नर्मदेश्वर) हों, जहाँ सुवर्ण लिङ्ग हो, जहाँ स्थिरलिङ्ग (ज्योतिर्लिङ्गादि) हो, तथा स्वयम्भू लिङ्ग हो वहाँ और सब प्रकार की प्रतिमाओं पर चढ़े हुए निर्माल्य पर चण्डेश का अधिकार नहीं होता है ।। ६२ ।। अद्वैत की भावना से युक्त स्थण्डिलेश की स्थापना में भी चण्डेश का आहवान नहीं करना चाहिए । चण्डेश की पूजा करके आचार्य स्वयं पुत्र तथा पत्नी के साथ यजमान को पहले से स्थपित कलश से स्नान कराएँ । यजमान भी स्नान कराने वाले आचार्य को महेश के समान पूजन करके ।। ६३-६४ ।। किसी प्रकार की कंजूसी किए विना आचार्य को दक्षिणा में सुवर्ण तथा भूमि दान देना चाहिए । उसके पश्चात् विधिपूर्वक मूर्तिरक्षकों, मन्त्र जप करने वाले ब्राह्मणों, देवज्ञों तथा शिल्पियों की पूजा करके यजमान दीनानाथों को भोजन कराए । इसके बाद आचार्य- 'हे भगवन् ! यहाँ सम्मुख करने के लिए मैंने जो आपको कष्ट दिया है, वह सब आप क्षमा करें । हे नाथ आप करुणासागर हैं । इस प्रकार से प्रार्थना करने वाले यजमान को अपने हाथ से शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा के पुण्य की सता को चमकते हुए तारे के समान कुश, पुष्प तथा अक्षतपुञ्ज के साथ समर्पित करके भूतगणों को बलि अर्पित करें और प्रार्थना करें- आपको तब तक ठहरना चाहिए जब तक भगवान, शिव यहाँ रहें । आचार्य वस्त्र इत्यादि से युक्त यागमण्डप को ले ।। ७० ।। सभी उपकरणों से युक्तस्थापनामण्डप शिल्पी को देना चाहिए । अन्य देवताओं की स्थापना आगम मन्त्रों से करनी चाहिए । अथवा उनके नाम के आदि वर्ण वाले मन्त्रों से उनकी स्थापना करकें यह भावना करनी चाहिए कि उन देवताओं में सुतत्त्व की व्याप्ति है । साध्य आदि प्रमुख देवता, नदियाँ तथा औषधियाँ क्षेत्रपाल तथा किन्नर आदि पृथिवी तत्त्व के आश्रित हैं । कहीं-कहीं पर सरस्वती तथा लक्ष्मी का स्थान नदियों के जल में बतलाया गया है ।। ७१-७३ ।। भुवनाधिपतियों का स्थान वहीं है जहाँ पर उनकी स्थिति है । अहंकार, बुद्धि तथा प्रधान ये तीन तत्त्व, यक्षराज कार्तिकेय तथा गणेश का स्थान अण्डाजादि शुद्धविद्यान्त तत्त्व है । मायांश देश से लेकर शक्तिपर्यन्त तत्त्व शिवा शिव तथा उग्रतेज वाले सूर्यदेव का है ।। ७४-७६ ।। व्यक्त प्रतिमाओं के लिए ईश्वर पर्यन्त पद बतलाया गया है । स्थापना की सामग्री में जो कूर्म आदि बतलाए गए हैं तथा जो पञ्चरत्नादि बतलाए गए हैं उन सबों को पीठ गर्त में डाल देना चाहिए किन्तु ब्रह्म शिला को नहीं । मन्दिर के गर्भ को छह भागों में विभक्त करके अन्तिम भाग को छोड़ दें और पाँचवें भाग में स्थापना करें । यदि मन्दिर के गर्भ को आठ भागों में विभाजित करके

षड्भिर्विभाजिते गर्भे त्यक्त्वा भागं च पृष्ठतः ॥ ७८ ॥ स्थापनं पञ्चमांशे च यदि वा वसुभाजिते । स्थापनं सप्तमे भागे प्रतिमासु सुखावहम्॥७९॥ धारणाभिर्विशुद्धिः स्यात्स्थापने लेपचित्रयोः । स्नानादि मानसं तत्र शिलारत्नादिवेशनम् ॥ ८० ॥ नेत्रोद्घाटनमन्त्रेष्टमासनादिप्रकल्पनम् । पूजा निरम्बुभिः पुष्पैर्यथा चित्रं न दुष्यति ॥ ८१ ॥ विधिस्तु चललिङ्गेषु सम्प्रत्येव निगद्यते । पञ्चभिर्वा त्रिभिर्वाऽपि पृथक्कुर्याद्विभाजते ॥ ८२ ॥ भागत्रयेण भागांशो भवेद्भागद्वयेन वा । स्वपीठेष्वपि तद्वत्स्याल्लिंगेषु तत्त्वभेदतः ॥ ८३ ॥ सृष्टिमन्त्रेण संस्कारो विधिवत्स्फाटिकादिषु । किं च ब्रह्मशिलारत्नप्रभूतेश्चानिवेदनम् ॥ ८४ ॥ योजनं पिण्डिकायाश्च मनसा परिकल्पयेत् । स्वयंभूबाणलिङ्गादौ संस्कृतौ नियमो न हि ॥ ८५ ॥ स्नापनं संहितामन्त्रैर्न्यासं होमं च कारयेत् । नदीसमुद्ररोहाणं स्थापनं पूर्ववन्मतम् ॥ ८६ ॥ ऐहिकं मृन्मयं लिङ्गं पिष्टिकादि च तत्क्षणात् । कृत्वा सम्पूजयेच्छुद्धं दीक्षणादिविधानतः ॥ ८७ ॥ समादाय ततो मन्त्रानात्मानं संनिधाय च । तज्जले प्रक्षिपेल्लिंगं वत्सरात्कामदं भवेत् ॥ ८८ ॥ विष्ण्वादिस्थापनं चैव पृथङ्मन्त्रैः समाचरेत्॥ ८९ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शिवप्रतिष्ठाविधिकथनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

सातवें भाग में प्रतिमा की स्थापना करें तो वह सुखप्रद होता है ।। ७७-७९ ।। लेप तथा चित्रमय विग्रहों की स्थापना में पञ्चभूतों की धारणाओं द्वारा विशुद्धि होती है। उसमें स्नान आदि कार्य मानसिक किए जाते हैं । उसी प्रकार से मानसिक रूप से ही विग्रहों के शिला तथा रत्नों का निवेश करना चाहिए ।। ८० ।। उनमें नेत्रोन्मीलन तथा आसन आदि की कल्पना अभीष्ट है । उनकी पूजा जल रहित पुष्प से करनी चाहिए ताकि चित्र दूषित न हों ।। ८१ ।। अब चल लिङ्गों की स्थापना की विधि बतलायी जा रही है । गर्भ स्थान को पाँच अथवा तीन भागों में विभक्त करके तीन भाग में अथवा दो भागों में चल लिङ्गों की स्थापना करनी चाहिए । इसी प्रकार से उनके पीठों में भी करना चाहिए । लिङ्गभेद के कारण पूजन की प्रक्रिया में भेद होता है । स्फटिक आदि के लिङ्गों का सृष्टिमन्त्र से विधिवत् संस्कार करना चाहिए । वहाँ पर ब्रह्मशिला एवं रत्नप्रभूति का निवेदन नहीं करना चाहिए ।। ८२-८४ ।। पिण्डिका का योजन मानसिक करना चाहिए । स्वयम्भू लिङ्ग तथा बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर) में संस्कार का नियम नहीं है ।। ८५ ।। उन्हें संहिता मन्त्रों से स्नान कराकर तथा न्यास एवं होम करना चाहिए । नदी से मिले, समुद्र से मिले तथा सुवर्णमय लिङ्गों की स्थापना पहले के ही समान करनी चाहिए ।। ८६ ।। इस लोक में मिट्टी के बनाए गए अथवा आंटे आदि के बनाए गए शिवलिङ्गों का जो पूजन होता है वह तात्कालिक होता है। अर्थात् उनका तत्क्षण निर्माण करके दीक्षा आदि की विधि से शुद्ध करके पूजन करना चाहिए । पूजन के पश्चात् मन्त्रों को लेकर अपने आप में उनकी स्थापना करके लिङ्ग को जल में प्रवाहित कर देना चाहिए । ऐसा करने वाले के अभीष्ट अर्थ की सिद्धि एक वर्ष में होती है । विष्णु आदि देवताओं की स्थापना दूसरे मन्त्रों से करनी चाहिए ।। ८६-८९।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का शिव प्रतिष्ठा विधि वर्णन नामक सत्तानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९७ ॥

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

गौरीप्रतिष्ठाविधिः

ईश्वर उवाच- **वक्ष्ये गौरीप्रतिष्ठां च पूजया सहितां शृणु । मण्डपाद्यं पुरो यच्च संस्थाप्य चाधिरोपयेत् ॥ १ ॥ शय्यायां तांश्च विन्यस्य मन्त्रान्मूर्त्यादिकान्गुह । आत्मविद्याशिवान्तं च कुर्यादीशनिवेशनम् ॥ २ ॥ शक्तिं परां ततो न्यस्य हुत्वा जप्त्वा च पूर्ववत् । संधाय च तथा पिण्डीं क्रियाशक्तिस्वरूपिणीम् ॥ ३ ॥ संदेशव्यापिकां ध्यात्वा न्यस्तरत्नादिकां तथा । एवं संस्थाप्य तां पश्चाद्देवीं तस्यां नियोजयेत् ॥ ४ ॥ परशक्तिस्वरूपां तां स्वाणुना शक्तियोगतः । ततो न्यसेत् क्रियाशक्ति पीठे ज्ञानं च विग्रहे ॥ ५ ॥ ततोऽपि व्यापिनीं शक्ति समावाह्य नियोजयेत् । अम्बिकां शिवनाम्नीं च समावाह्य प्रपूजयेत् ॥ ६ ॥ ओम्, आधारशक्तये नमः । ॐ कूर्माय नमः । ॐ स्कन्दाय च तथा नमः । ॐ ह्रीं नारायणाय नमः। ओम् ऐश्वर्याय नमः । ओम् अधःछादनाय नमः ॥ ७ ॥ ऊँ पद्मासनाय नमोऽथ सम्पूज्याः केशवास्तथा ॥ ८ ॥ ॐ ह्रीं कर्णिकायै नमः । ॐ क्षं पुष्कराक्षेभ्य इहार्चयेत् ॥ ९ ॥ ॐ हां पुष्ट्यै ह्रीं च ज्ञानायै हूं क्रियायै ततो नमः ॥ १० ॥ ॐ नालाय नमः । ॐ रुं धर्माय नमः । रुं ज्ञानाय वै नमः । ॐ वैराग्याय नमः । ॐ वै, अधर्माय नमः । ॐ रुम् अज्ञानाय वै नमः । ओम् अवैराग्याय वै नमः । ओम्, अनैश्वर्याय नमः हूं वाचे हूं च रागिण्यै ह्रूं ज्वालिन्यै ततो नमः । ॐ ह्रौं शमायै च नमो हूं ज्येष्ठायै ततो नमः ॐ ह्रौं रौं क्रौं नवशक्त्यै गौं च गौर्यासनाय च । गौ गौरीमूर्तये नमो गौर्या मूलमथोच्यते ॥ ११-१३ ॥ ॐ ह्रीं सः, महागौरि रुद्रदयिते स्वाहा गौर्यै नमः ॥ १४ ॥ ॐ गां हूं ह्रीं शिवो गूं स्याच्छिखायै कवचाय**

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं पूजा के साथ गौरी की प्रतिष्ठा की विधि का वर्णन कर रहा हूँ सुनो । पहले के समान मण्डप आदि की रचना करके देवी की स्थापना एवं शय्याधिवासन करें ।। १ ।। स्कन्द ! उन सबों का शय्या पर न्यास करके मन्त्रों तथा मूर्ति आदि को आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व एवं शिव तत्त्व का ईश्वर में निवेश करें ।। २ ।। उसके पश्चात् पराशक्ति न्यास करके पूर्ववत् होम् तथा जप करके, क्रियाशक्ति स्वरूपिणी पिण्डी का ध्यान करें कि वह सर्वदेश व्यापिनी तथा रत्न आदि से परिपूर्ण हैं । इस तरह से पिण्डी की स्थापना करके उसके ऊपर देवी को स्थापित करना चाहिए ।। ३-४ ।। पराशक्तिस्वरूपा देवी का उनके मन्त्र से तथा शक्तियोग के द्वारा पीठ पर न्यास करना चाहिए । उसके पश्चात् पीठ में क्रियाशक्ति तथा विग्रह द्वारा पीठ पर न्यास करना चाहिए। उसके पश्चात् पीठ में क्रियाशक्ति तथा विग्रह में ज्ञान शक्ति का न्यास करना चाहिए ।। ५ ।। उसके पश्चात् व्यापिनीशक्ति का आवाहन करने उसको प्रतिमा में नियोजित करें । उसके पश्चात् शिवा नामवाली अम्बिका देवी का आवाहन करके उनका पूजन करना चाहिए ।। ६ ।। पूजा के मन्त्र ये हैं- ओम् आधारशक्तये नमः । ओं कूर्माय नमः । ओं स्कन्दाय नमः । ओं ह्रीं नारायणाय नमः । ओं ऐश्वर्याय नमः । ओं अधः छादनायनमः ओं पदमासनाय नमः । इसके पश्चात् केशव आदि का पूजन करना चाहिए । ओं ह्रीं कर्णिकायै नमः । ओं क्षं पुष्कराक्षेभ्यो नमः । ओं हां पुष्ट्यै नमः । ओं ह्रीं ज्ञानायै नमः । ओं हूँ क्रियायै नमः ।। ७-१० ।। ओं नालाय नमः । ओं रुं धर्माय नमः । ओं रुं ज्ञानाय नमः । ओं वैराग्याय नमः । ओं वं अधर्माय नमः । ओं रुं अज्ञानाय नमः । ओं अवैराग्याय नमः । ओं अनैश्वर्याय नमः । ओं हूं वाचे नमः । ओं हूं रागिण्यै नमः। ओं ह्रूं ज्वालिन्यै नमः । ओं ह्रीं शमायै नमः । ओं हूं ज्येष्ठायै नमः । ओं ह्रौं रौं क्रौं नवशक्त्यै नमः । ओं गौं गौर्यासनाय नमः । ओं गौं गौरीमूर्तये नमः । अब गौरी का मूलमन्त्र बतलाया जा रहा है ।। ११-१३ ।। ओं ह्रीं सः महागौरी रुद्रदयिते स्वाहा गौर्यै नमः ।। १४ ।। ओं गां हृदयाय नमः। ओं गूं शिखायै नमः । ओं गूँ कवचाय नमः । ओं गौं नेत्राय नमः । ओं गों अस्त्राय नमः । ओं गों विज्ञानशक्तये नमः । ओं गूं क्रियाशक्तये नमः।

च । गों नेत्राय च गोम्, अस्त्राय ॐगों विज्ञानशक्तये ॥ १५ ॥ ॐ गूं क्रियाशक्तये नमः पूर्वादौ शक्रादिकान् । ॐ सुं सुभगायै नमो ह्रीं बीजललिता ततः ॥ १६ ॥ ॐ ह्रीं कामिन्यै च नम ॐ ह्रूं स्यात्कामशालिनी । मन्त्रैर्गौरीं प्रतिष्ठाप्य प्रार्च्य जप्त्वाऽथ सर्वभाक् ॥ १७॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गौरीप्रतिष्ठाविधिकथनं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

अथ एकोनशततमोऽध्यायः

सूर्य प्रतिष्ठाविधिः

ईश्वर उवाच– **वक्ष्ये सूर्यप्रतिष्ठाञ्च पूर्ववन्मण्डपादिकम् । स्नानादिकञ्च सम्पाद्य पूर्वोक्त विधिना ततः ॥ १॥ विद्यामासनशय्यायां साङ्गं विन्यस्य भास्करम् । त्रितत्त्वं विन्यसेत् तत्र वेस्वरं स्वादिपञ्चकम् ॥ २॥ शुद्धयादि पूर्ववत् कृत्वा पिण्डीं संशोध्य पूर्ववत् । सदेशपदपर्यन्तं विन्यस्य तत्त्वपञ्चम् ॥ ३॥ शक्ता च सर्वतो मुख्या संस्थाप्य विधिवत् ततः। स्वाणुना विधिवत् सूर्यं शक्त्यन्तं स्थापयेद् गुरुः॥ ४॥ स्वाभ्यन्तमथवादित्यं पादान्तं नाम धारयेत् । सूर्यमन्त्रस्तु पूर्वोक्ताः द्रष्टव्याः स्थापनेऽपि च ॥ ५॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेय सूर्यप्रतिष्ठाविधिकथनं नाम एकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९॥

इसके पश्चात् पूर्वादि दिशाओं में इन्द्र आदि देवताओं का पूजन करना चाहिए ।। १५ ।। ओं सुं सुभगाये नमः । ओं ह्रीं बीजललितायै नमः। ओं ह्रीं कामिन्यै नमः । ओं ह्रूं कामशालिन्यै नम। इन सभी मन्त्रों से गौरी की प्रतिष्ठा करके तथा उनकी पूजा करके तथा मन्त्र जप करके मनुष्य अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त उकर लेता है ।। १६-१७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का गौरीप्रतिष्ठाकथन नामक अठानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९८ ॥

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं सूर्य की प्रतिष्ठा की विधि बतलाऊँगा। पहले के ही समान मण्डप आदि बनाकर पूर्वोक्त विधि से स्नान आदि करके पूर्वोक्त विधि से विद्या तथा साङ्ग सूर्यदेव का आसन शय्या में न्यास करके त्रितत्त्व का, ईश्वर का तथा आकाशादि पाँच भूतों का न्यास करना चाहिए।। १-२।। पहले के ही समान शुद्धि आदि करके पिण्डी का शोधन करे। फिर सदेश पद पर्यन्त तत्त्व पञ्चक का न्यास करे। तदनन्तर सर्वतो मुखी शक्ति के साथ विधिवत् स्थापना करके गुरु सूर्य का मन्त्र बोलते हुए शक्ति पर्यन्त सूर्य की स्थापना करे।। ३-४।। श्री सूर्यदेव का स्वाम्यन्त अथवा पादान्त नाम रखे। सूर्य के मन्त्र पहले कहे गये हैं। स्थापन काल से भी उन्हीं का प्रयोग करना चाहिए ।। ५।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का सूर्यप्रतिष्ठा विधि कथन नामक निन्यानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।। ९९।।

अथ शततमोऽध्यायः

द्वारप्रतिष्ठाविधिः

ईश्वर उवाच– **द्वाराश्रितप्रतिष्ठाया वक्ष्यामि विधिमप्यथ। द्वाराङ्गाणि कषायाद्यैः संस्कृत्य शयने न्यसेत् ॥ १ ॥ मूलमध्याग्रभागेषु त्रयमात्मादिसेश्वरम्। विन्यस्य संनिवेश्याथ हुत्वा जप्त्वाऽनुरूपतः ॥ २ ॥ द्वारादथो यजेद्वास्तुं तत्रैवानन्तमन्त्रतः। रत्नादि पञ्चकं न्यस्य शन्तिहोमं विधाय च ॥ ३ ॥ यवसिद्धार्थकाक्रान्ता ऋद्धिवृद्धिमहातिलाः। गोमृत्सर्षपरागेन्दमोहनीलक्ष्मणामृताः ॥ ४ ॥ रोचनारुग्वचो दूर्वा प्रासादाधश्च पोटलीम्। प्रकृत्योदुम्बरे बद्ध्वा रक्षार्थं प्रणवेन तु ॥ ५॥ द्वारमुत्तरतः किञ्चिदाश्रितं संनिवेशयेत्। आत्मतत्त्वमधो न्यस्य विद्यातत्त्वं च शाखयोः ॥ ६ ॥ शिवमाकाशदेशे च व्यापकं सर्वमण्डले। ततो महेशनाथं च विन्यसेन्मूलमन्त्रतः ॥ ७ ॥ द्वाराश्रितांश्च तल्पादीन्कृतयुक्तैः स्वनामभिः। जुहुयाच्छतमर्धं वा द्विगुणं शक्तितोऽथ वा ॥ ८ ॥ न्यूनादिदोषमोक्षार्थं हेतितो जुहुयाच्छतम्। दिग्बलिं पूर्ववद्दत्त्वा प्रदद्याद्दक्षिणादिकम् ॥ ९ ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये द्वारप्रतिष्ठाविधिकथनं नाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

अथैकाधिकशततमोऽध्यायः

प्रासादप्रतिष्ठा

ईश्वर उवाच– **प्रासादस्थापनं वक्ष्ये तच्चैतन्यसुयोगतः। शुकनाशासमाप्तौ तु पर्ववेद्याश्च मध्यतः ॥१ ॥ आधारशक्तितः पद्मे विन्यस्ते प्रणवेन च। स्वर्णाद्येकतमोद्भूतं पञ्चगव्येन संयुतम् ॥ २ ॥ मधुक्षीरयुतं कुम्भं न्यस्तरत्नादिपञ्चकम्। सवस्त्रं गन्धलिप्तं च गन्धवत्पुष्पधूपितम् ॥ ३ ॥**

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं द्वार प्रतिष्ठा विधि बतला रहा हूँ। द्वार के अवयवों को कषाय आदि औषधियों से परिष्कृत करके शय्या पर रख देना चाहिए ।। १ ।। द्वार के मूल, मध्य तथा अग्रभाग में आत्मा, विद्या तथा ईश्वर का न्यास करके तथा उनकी स्थापना करके उसी के अनुरूप हवन तथा जप करके द्वार पर ही अनन्त मन्त्र से वास्तु पूजन करें। पुनः पञ्चरत्न आदि रखकर शान्तिहोम करना चाहिए ।। २-३ ।। जौ, सरसो, बरहटा, ऋद्धि (एक प्रकार की औषधि) वृद्धि (एक प्रकार की औषधि) महातिल, गोपीचन्दन, सरसों, रागेन्द्र मोहिनी (पोई) लक्ष्मणा, अमृता (गुडूची) गोरोचन, अरुक्, वच, दूर्वा इन सबों को मन्दिर के नीचे डाल दें तथा इन सबों की पोटली बनाकर ऊपर रक्षा के लिए प्रणवमन्त्र से गूलर में द्वार से कुछ उत्तर की ओर किसी चीज के सहारे बाँध दें। इसके पश्चात् नीचे की ओर आत्मतत्त्व का, दोनों शाखाओं में विद्यातत्त्व का ।। ४-६ ।। सम्पूर्ण आकाशमण्डल में सर्वव्यापक शिवतत्व का न्यास करना चाहिए। पुनः मूलमन्त्र से महेशनाथ का न्यास करें ।। ७ ।। उसके पश्चात् द्वार पर रहने वाले द्वारपालों तथा शय्या आदि के नाम से सौ या पचास अपनी शक्ति के अनुसार दो सौ आहुतियाँ देनी चाहिए ।।८।। न्यूनादि दोष के परिहार के लिए अस्त्र मन्त्र से सौ आहुति देनी चाहिए। पुनः पहले की तरह ही दिग्बलि देकर दक्षिणा आदि देनी चाहिए ।। ९ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का द्वारप्रतिष्ठा विधि वर्णन नामक सौवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०० ॥

श्रीशिवजी ने कहा– स्कन्द ! अब मैं मन्दिर की प्रतिष्ठा का वर्णन कर रहा हूँ और उसमें चैतन्य का योग बतला रहा हूँ। जहाँ पर शुकनाश (गुम्बज) की समाप्ति होती है वहीं पर

चूतादिपल्लवानां च कृती कृत्यं च विन्यसेत् । पूरकेण समादाय सकलीकृतविग्रहः ॥ ४ ॥ सर्वात्माभिन्नमात्मानं स्वाणुना स्वान्तमारुतः । आज्ञयाऽऽरोधयेच्छंभौ रेचकेन ततो गुरुः॥ ५ ॥ द्वादशान्तात्समादाय स्फुरद्वह्निकणोपमम् । निक्षिपेत् कुम्भगर्भे च न्यस्ततन्त्रातिबाहिकम् ॥६ ॥ विग्रहं तद्गुणानां च बोधकं च कलादिकम् । क्षान्तं वागीश्वरं तत्त्वव्रातं तत्र निवेशयेत् ॥ ७ ॥ दशनाडीर्दश प्राणानिन्द्रियाणि त्रयोदश । तदधिपांश्च संयोज्य प्रणवाद्यैः स्वनामभिः ॥ ८ ॥ स्वकार्यकारणत्वेन मायाकाशनियामिकाः । विद्येशान्प्रेरकाञ्शंभुं व्यापिनं च सुसंवरैः ॥ ९ ॥ अङ्गानि च विनिक्षिप्य निरुन्ध्याद्रोधमुद्रया । सुवर्णाद्युद्भवं यद्वा पुरुषं पुरुषानुगम् ॥ १० ॥ पञ्चगव्यकषायाद्यैः पूर्ववत्संस्कृतं ततः । शय्यायां कुम्भमारोप्य ध्यात्वा रुद्रमुमापतिम् ॥ ११ ॥ तस्मिंश्च शिवमन्त्रेण व्यापकत्वेन विन्यसेत् । संनिधानाय होमं च प्रोक्षणं स्पर्शनं जपम् ॥ १२॥ सान्निध्यबोधनं सर्वं भागत्रयविभागतः । विधायैवं प्रकृत्यन्ते कुम्भे तं विनिवेशयेत् ॥ १३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रासादप्रतिष्ठावर्णनं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

अथ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

ध्वजारोपणम्

ईश्वर उवाच– **चूलके ध्वजदण्डे च ध्वजे देवकुले तथा। प्रतिष्ठा च यथोद्दिष्टा तथा स्कन्द वदामि ते ॥१॥ तडागार्धप्रवेशाद्वा यद्वा सर्वार्धवेशनात्।**

पूर्ववेदी के मध्य में आधारशक्ति का ध्यान करके प्रणवमन्त्र से कमल का विन्यास करना चाहिए । उसके ऊपर सुवर्ण आदि से निर्मित पञ्चगव्य से युक्त,मधु तथा दुग्ध से युक्त जिसमें पञ्चरत्न डाला गया हो वस्त्रसे ढँके हुए तथा चन्दन लपेटे गए, चन्दन, धूप, पुष्प से पूजित एवं आम आदि के पल्लवों से अलंकृत एक कलश की स्थापना करनी चाहिए ।। १-३।। उसके पश्चात् आचार्य शरीर के द्वारा सकलीकरण करके पूरक प्राणायाम के द्वारा प्राण वायु को खींचकर अपने मन्त्र से आत्मा तथा परमात्मा में अभेद स्थापित करें, फिर भगवान् शंकर की आज्ञा लेकर अपने भीतर की वायु को कुम्भक प्राणायाम के द्वारा रोक दें । और रेचक प्राणायाम के द्वारा द्वादशान्त स्थान से प्रज्वलित अग्निकण के समान जीव चैतन्य को लेकर कलश में स्थापित करें और उसमें आतिवाहिक शरीर का न्यास करके उसके गुणों के बोध का काल आदि का एवं ईश्वर से लेकर पृथिवी पर्यन्त तत्त्व समूह का उसमें निवेश करें । पुनः दस नाड़ियों दस प्राणों तथा तेरह इन्द्रियों को प्राण सहित उनके नाम मन्त्रों से संयुक्त करें ।। ४-८ ।। उसके पश्चात् कार्य एवं कारण रूप से माया पाश की नियामिकाओं, प्रेरक विद्येश्वरों, तथा व्यापक शंभु की उनके मन्त्रों से उसमें स्थापना करनी चाहिए ।। ९ ।। पुनः अङ्गों की स्थापना उस कलश में करके निरोधमुद्रा के द्वारा उसे रोक दें । अथवा सुवर्ण निर्मित तत्त्व से युक्त करें ।। १० ।। पहले की ही भाँति पञ्चगव्य तथा कषाय आदि से उसका संस्कार करके शय्या पर कलश को रखकर उमापति रुद्र का ध्यान करना चाहिए ।। ११ ।। तदनन्तर उसमें शिवमन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिए ।। पुनः देवता का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए, होम,प्रोक्षण, स्पर्श, जप करना चाहिए ।। १२ ।। सन्निधिकरण आदि समस्त कार्यों को तीन भागों में विभक्त करके करना चाहिए । इस तरह से सारा कार्य पूरा करके उस पुरुष को कलश में स्थापित करना चाहिए ।। १३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का प्रासादप्रतिष्ठा वर्णन नामक एकसौ एकवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०१ ॥

श्रीशिवजी ने कहा– हे स्कन्द ! अब मैं देवमन्दिर में जिस प्रकार से चूलक, ध्वजदण्ड तथा ध्वजदण्ड की प्रतिष्ठा बतलायी गयी है, उसे मैं तुमसे बतला रहा हूँ ।। १।। शिखर के

ऐष्टके दारुजः शूलः शैलजे धाम्नि शैलजः ॥ २ ॥ वैष्णवादौ च चक्राढ्यः कुम्भः स्यान्मूर्तिमानतः । स च त्रि.शूलयुक्तस्तु अग्रचूलाभिधो मतः॥३॥ ईशशूलः समाख्यातो मूर्ध्नि लिङ्गसमन्वितः । बीजपूरकयुक्तो वा शिवशास्त्रेषु तद्विधः ॥ ४ ॥ चित्रो ध्वजश्च जङ्घातो यथा जङ्घार्धतो भवेत् । भवेद्वा दण्डमानस्तु यदि वा तद्यदृच्छया ॥ ५ ॥ महाध्वजः समाख्यातो यस्तु पीठस्य वेष्टकः । शक्रैर्ग्रहै रसैर्वाऽपि हस्तैर्दण्डस्तु संमितः॥६॥ उत्तमादिक्रमेणैव विज्ञेयः सूरिभिस्ततः। वंशजः शालजादिर्वा स दण्डः सर्वकामदः ॥ ७ ॥ अयमारोप्यमाणस्तु भङ्गमायाति वै यदि। राज्ञोऽनिष्टं विजानीयाद्यजमानस्य वा तथा ॥ ८ ॥ मन्त्रेण बहुरूपेण पूर्ववच्छान्तिमाचरेत् । द्वारपालादिपूजां च मन्त्राणां तर्पणं तथा ॥ ९ ॥ विधाय चूलकं दण्डं स्नापयेदस्त्रमन्त्रतः । अनेनैवोक्तमन्त्रेण ध्वजं संप्रोक्ष्य देशिकः ॥ १० ॥ मृत्कषायादिभिःस्नानं प्रासादं कारयेत्ततः । विलिप्य रसमाच्छाद्य शय्यायां न्यस्य पूर्ववत् ॥ ११ ॥ चूलके लिङ्गवन्न्यासो न च ज्ञानं न च क्रिया । विशेषार्था चतुर्थी च न च कुण्डस्य कल्पना ॥ १२॥ दण्डे तथात्मतत्त्वं च विद्यातत्त्वं द्वितीयकम् । सद्योजातादिवक्त्राणि शिवतत्त्वं पुनर्ध्वजे ॥ १३ ॥ निष्कलं च शिवं तत्र न्यस्याङ्गनि प्रपूजयेत् । चूलके च ततो मन्त्री सांनिध्ये संहिताणुभिः ॥ १४ ॥ होमयेत्प्रतिभागं च ध्वजे तैस्तु फडन्तकैः । अन्यथाऽपि कृतं यच्च ध्वजसंस्कारणं क्वचित्॥१५॥ अस्त्रयागविधावेवं तत्सर्वमुपदर्शितम् । प्रासादे कारितस्थाने स्रग्वस्त्रादिविभूषिते ॥ १६॥ जङ्घा वेदी तदूर्ध्वे तु त्रितत्त्वादि निवेश्य च । होमादिकं विधायाथ शिवं सम्पूज्य पूर्ववत् ॥ १७ ॥ सर्वतत्त्वमयं ध्यात्वा शिवं च व्यापकं न्यसेत् । अनन्तं कालरुद्रं च विभाव्य

आधे भाग में त्रिशूल का प्रवेश हो अथवा सम्पूर्ण त्रिशूल के आधे भाग को शिखर में प्रवेश होना चाहिए । जहाँ ईंट के मन्दिर का हो वहाँ लकड़ी का त्रिशूल होता है किन्तु पत्थर के बने मन्दिर में पत्थर का ही त्रिशूल होना चाहिए ।। २ ।। विष्णु आदि के मन्दिर को चक्र से अलंकृत होना चाहिए । कलश को मूर्ति के मान (प्रमाण) के अनुसार होना चाहिए । कलश यदि त्रिशूल सेयुक्त हो तो वह अग्रचूल कहलाता है । यदि उसके मस्तक पर त्रिशूल हो तो वह ईशशूल कहलाता है । यदि उसका अग्रभाग विजौरे नीबू से युक्त हो तो वह ईशशूल ही कहलाता है ऐसा शिवशास्त्रों में बतलाया गया है ।। ३-४ ।। यदि ध्वज की लम्बाई जङ्घा के बराबर हो अथवा जङ्घा के आधा हो तो उसे चित्रध्वज कहते हैं । अथवा ध्वज का मान दण्डे के बराबर अथवा अपनी इच्छा के अनुसार रखनी चाहिए ।। ५ ।। मन्दिर के पीठ को आवेष्टित करने वाला ध्वज महाध्वज कहलाता है । जिस दण्ड मे वह ध्वज लगाया जाय उसकी लम्बाई चौदह, नव अथवा छह हाथ होनी चाहिए ।। ६ ।। दण्ड की लम्बाई के इस क्रम को विद्वानों ने उत्तम, मध्यम और अधम बतलाया है । यदि वह दण्ड बाँस का अथवा शाल वृक्ष का हो तो वह सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है ।। ७ ।। इसको आरोपित करते समय यदि दण्ड टूट जाय तो राजा का अथवा यजमान का अनिष्ट होना समझना चाहिए ।। ८ ।। उसके लिए बहुरूप मन्त्र से शान्ति होम द्वारपालों की पूजा तथा मन्त्रों का तर्पण करना चाहिए ।। ९ ।। चूलक बनाकर अस्त्र मन्त्र से उसमें दण्ड को स्थापित करना चाहिए । इस मन्त्र से आचार्य को ध्वज का सम्प्रोक्षण करना चाहिए ।। १० ।। उसके पश्चात् मिट्टी तथा कषैले जल से मन्दिर को स्नान कराना चाहिए । चूलक में गन्ध आदि का लेप करके उसे वस्त्र से आच्छादित करें, पुनः उसे शय्या पर रखकर लिङ्ग के ही समान चूलक में न्यास करना चाहिए किन्तु उसमें ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्ति का न्यास न करें । उसके लिए विशेष अर्थ वाली न तो चतुर्थी विभक्ति की आवश्यकता है और न तो कुण्ड की कल्पना ही आवश्यक है ।। १०-१२ ।। पुनः दण्ड में आत्मतत्त्व तथा विद्यातत्त्व का न्यास करके सद्योजात आदि पाँच मुखों का न्यास करना चाहिए और ध्वज में शिवतत्त्व का न्यास करना चाहिए ।। १३ ।। ध्वज में निष्कल शिव का न्यास करके उनके अंगों की पूजा करनी चाहिए। उसके पश्चात् मन्त्रज्ञ आचार्य चूलक में प्रत्येक भाग के लिए संहिता मन्त्रों के अन्त में फट् लगाकर हवन करे ।। १४ ।। कहीं-कहीं पर इससे भिन्न प्रकार से ध्वज का संस्कार बतलाया गया है, उसे अस्त्र याग विधि में ही बतलाया गया है ।। १५ ।। मन्दिर में बनायी गयी तथा माला एवं वस्त्र से समलंकृत जंघा वेदी के ऊपर तत्त्वत्रय का न्यास करके तथा होम करके पूर्ववत् शिव की पूजा करनी चाहिए ।। १६-१७ ।। इसके पश्चात् सर्वतत्त्वमय शिव का ध्यान करके व्यापक

च पदाम्बुजे ॥ १८ ॥ कूष्माण्डहाटकौ पीठे पातालनरकैः सह । भुवनैर्लोकपालैश्च शतरुद्रादिभिर्वृतम् ॥ १९ ॥ ब्रह्माण्डकमिदं ध्यात्वा जङ्घाया च विभावयेत् । वारितेजोऽनिलव्योतमपञ्चाष्टकसमन्वितम् ॥ २० ॥ सर्वावरणसंज्ञं च बुद्धियोन्यष्टकान्वितम् । योगाष्टकसमायुक्तं नाशावधि गुणात्रयम् ॥ २१ ॥ पटस्थं पुरुषं सिंहं वामं च परिभावयेत् । मञ्जरी वेदिकायां च विद्यादिकचतुष्टयम्॥२२॥ कण्ठे मायां सरुद्रां च विद्याश्चामलसारके। कलशे चेश्वरं बिन्दुं विद्येश्वरसमन्वितम् ॥ २३ ॥ जटाजूटं च तं विद्याच्छूलं चन्द्रार्धरूपकम् । शक्तित्रयं च तत्रैव दण्डे नादं विभाव्य च ॥ २४॥ ध्वजे च कुण्डलीशक्तिमिति धाम्नि विभावयेत् । जगत्यां वाऽथ संधाय लिङ्गं पिण्डिकयाऽथ वा ॥ २५ ॥ समुत्थाप्य सुमन्त्रैश्च विन्यस्ते शक्तिपङ्कजे । न्यस्तरत्नादिके तत्र स्वाधारे विनिवेशयेत् ॥ २६ ॥ यजमानो ध्वजे लग्ने बन्धुमित्रादिभिः सह। धामं प्रदक्षिणीकृत्य लभते फलमीहितम् ॥ २७ ॥ गुरुः पाशुपतं ध्यायन्स्थिरमन्त्राधिपैर्युतम् । अधिपाञ्शस्त्रयुक्तांश्च रक्षणाय निबोधयेत्॥२८॥ ऊनादिदोषशान्त्यर्थं हुत्वा दत्त्वा च दिग्बलिम् । गुरवे दक्षिणां दद्याद्यजमानो दिवं व्रजेत् ॥ २९ ॥ प्रतिमालिङ्गवेदीनां यावन्तः परमाणवः । तावद्युगसहस्राणि कर्तुर्भोगभुजः फलम् ॥ ३० ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ध्वजारोपणादिविधिकथनं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

अथ त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

जीर्णोद्धारविधिः

ईश्वर उवाच– **जीर्णादीनां च लिङ्गानामुद्धारं विधिना वदे । लक्ष्मोज्झितं च भग्नं च स्थूलं वज्रहतं तथा ॥ १ ॥ सम्पुटं सम्पुटितं व्यङ्गं**

न्यास करना चाहिए । भगवान् शिव के चरणकमल में अनन्त तथा कालरुद्र का ध्यान करके पीठ में कुष्माण्ड, हाटक, पाताल तथा नरक की भावना करनी चाहिए । भगवान् शिव के जंघाओं में भुवनों लोकपालों तथा शतरुद्र आदि से ब्रह्माण्ड की भावना करनी चाहिए । उनकी जंघा में ही, जल, तेज,वायु, आकाश, पञ्चाष्टक, सर्वावरणसंज्ञक, बुद्धियोन्यष्टक,योगाष्टक, प्रलयकालापर्यन्त स्थायी त्रिगुण, पटस्थ पुरुष तथा वामसिंह आदि की भावना करनी चाहिए ।। १८-२१।। मञ्जरी वेदी में विद्या आदि चार तत्त्वों की, कण्ठ में माया सहित रुद्र की अमलासार में विद्याओं की तथा कलश में विद्येश्वरों विन्दु तथा शिव की भावना करनी चाहिए ।। २२-२३ ।। चन्द्रार्ध स्वरूप त्रिशूल में जटाजूट की भावना करनी चाहिए । उसी तीनों शक्तियों की एवं दण्ड में नाद की भावना करनी चाहिए और मन्दिर के ध्वज में कुण्डलिनी शक्ति की भावना करनी चाहिए ।। २४ ।। जगतीधाम अथवा पिण्डिका के द्वारा लिङ्ग का निर्माण करके मन्त्रों द्वारा उठाकर उसको शक्ति कमल पर विन्यस्त करें । वहीं पर रत्नादि का न्यास किए हुए अपने आधार में न्यास करना चाहिए ।। २६ ।। प्रासाद शिखरपर ध्वजा के लग जाने पर अपने बान्धवों तथा मित्रों आदि के साथ मन्दिर की प्रदक्षिणा करके यजमान अपने अभिलषित फल को प्राप्त करता है ।। २७ ।। स्थिर मन्त्राधि से युक्त पाशुपत मन्त्र का ध्यान करते हुए रक्षा के लिए शस्त्र से युक्त अधिपों की प्रार्थना करनी चाहिए ।। २८ ।। न्यूनादि दोषों की शान्ति के लिए हवन करके तथा दिग्बलि देकर आचार्य को दक्षिणा देनी चाहिए । ऐसा करने वाला यजमान स्वर्गलोक जाता है ।। २९।। प्रतिमा, लिङ्ग तथा वेदियों की शिलाओं के जितने परमाणु होते हैं उतने हजार युग पर्यन्त मन्दिर निर्माणकर्ता फलों को प्राप्त करता है ।। ३०।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का ध्वजारोपणादि विधि वर्णन नामक एकसौ दूसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०२ ॥

श्रीशिवजी ने कहा– हे स्कन्द ! जीर्ण आदि लिंगों के विधिवत् उद्धार की विधि को मै बतला रहा हूँ । जिसका चिह्न मिट गया हो, जो टूट-फूट गया हो, मैल आदि से स्थूल हो गया

लिङ्गमित्येवमादिकम् । इत्यादिदुष्टलिङ्गानां त्याज्या पिंण्डी तथा वृषः ॥ २ ॥ चालितं चलितं निम्नमत्यर्थं विषमस्थितम् । दिङ्मूढं पातितं लिङ्गं मध्यस्थं पतितं तथा ॥ ३ ॥ एवं विधं च संस्थाप्य निर्व्रणं च भवेद्यदि । नादेयेन प्रवाहेण तदपाक्रियते यदि ॥ ४ ॥ ततोऽन्यत्रापि संस्थाप्य विधिदृष्टेन कर्मणा । सुस्थितं चास्थितं वाऽपि शिवलिङ्गं न चालयेत् ॥ ५ ॥ शतेन स्थापनं कुर्यात्सहस्रेण तु चालनम् । पूजादिभिश्च संयुक्तं जीर्णाद्यमपि सुस्थितम् ॥ ६ ॥ याम्ये मण्डपमीशे च प्रत्यग्द्वारैकतोरणम् । विधाय द्वारपूजादि स्थण्डिले मन्त्र पूजनम् ॥ ७ ॥ दिग्बलिं च बहिर्गत्वा समाचम्य स्वयं गुरुः । ब्रह्मणान्भोजयित्वा तु शंभुं विज्ञापयेत्ततः ॥ ८ ॥ दुष्टं लिङ्गमिदं शम्भो शान्तिरुद्धरणस्य चेत् । रुचिस्तवास्ति विधिना अधितिष्ठ च मां शिव ॥ ९॥ एवं विज्ञाप्य देवेशं शान्तिहोमं समाचरेत् । मध्वाज्यक्षीरदूर्वाभिर्मूलेनाष्टाधिकं शतम् ॥ १० ॥ ततो लिङ्गं च संस्थाप्य पूजयेत्स्थण्डिले तथा । ॐ व्यापकेश्वरायेति तत्त्वेनार्यन्तवादिना ॥ ११ ॥ ॐ व्यापकेश्वराय हृदयाय नमः । ॐ व्यापकेश्वराय शिरसे नमः । इत्याद्यङ्गमन्त्राः ॥ १२ ॥ ततस्तत्राऽऽश्रितं तत्त्वं श्रावयेदस्त्रमन्त्रतः । सत्त्वः कोऽपीह यः कश्चिल्लिङ्गमाश्रित्य तिष्ठति ॥ १३ ॥ लिङ्गं त्यक्त्वा शिवाज्ञाभिर्यत्रेष्टं तत्र गच्छतु । विद्याविद्येश्वरैर्युक्तः शम्भुरत्र भविष्यति ॥ १४ ॥ सहस्रं प्रतिभागे (गं) च ततः पाशुपताणुना । हुत्वा शान्त्यम्बुना प्रोक्ष्य स्पृष्ट्वा कुशैर्जपेत्ततः ॥ १५ ॥ दत्त्वार्घं (र्घ्यं) च विलोमेन तत्त्वतत्त्वाधिपांस्ततः । अष्टमूर्तीश्वराल्लिङ्गपिण्डिकासंस्थितान्गुरुः॥१६॥

हो, जो वज्र से आहत हो गया है, जो सम्पुटित (बंद) हो गया हो, जिसका अंग भंग हो गया हो, इसी प्रकार से अन्य प्रकार से दूषित लिंग के हो जाने पर, उस दूषित लिंग की पिण्डी तथा नन्दी का त्याग कर देना चाहिए ।। १-२ ।। जो शिवलिङ्ग किसी के द्वारा चालित कर दिया गया हो अथवा स्वयं चालित हो गया हो, अत्यन्त नीचा हो गया हो अथवा विषमस्थान में स्थित हो, जो दिङ्मूढ़ हो गया हो, जो किसी के द्वारा गिरा दिया गया हो अथवा मध्यस्थ भी होकर गिर गया हो, ऐसा लिङ्ग यदि निर्व्रण हो तो उसको पुनः ठीक से स्थापित कर देना चाहिए।। ३।। यदि नदी के प्रवाह से लिङ्ग के अन्यत्र बहा दिया गया हो तो उसकी शास्त्रीय विधि के अनुसार अन्यत्र भी स्थापना कर देनी चाहिए । जो शिवलिङ्ग अच्छी तरह से सुस्थित हो तथा सुदृढ़ हो उसे न तो विचलित करना चाहिए और न तो चलाना ही चाहिए ।। ४-५ ।। यदि जीर्ण आदि भी लिंग की पूजा होती रहती है तो वह सुस्थित लिङ्ग है, उसकी सौ बार होम करके स्थापना करनी चाहिए तथा एक हजार बार हवन करके उसको उखाड़ना चाहिए ।। ६ ।। यदि दुःस्थित लिङ्ग हो तो आचार्य को उसके दक्षिण दिशा में मण्डप बनावाना चाहिए और उसके ईशानकोण में पश्चिम द्वार वाला एक दरवाजा लगा दें । द्वार की पूजा आदि करके वेदी पर मन्त्र द्वारा पूजा करनी चाहिए ।। ७ ।। दिग्बलि देकर बाहर जाकर आचमन करें । ब्राह्मण भोजन कराकर भगवान् शिव से यह प्रार्थना करनी चाहिए- शम्भो ! यह लिङ्ग दूषित हो गया है । उसका उद्धार करने से शान्ति होगी, यदि ऐसी आपकी रुचि है, तो हे शिव ! विधिपूर्वक मेरे भीतर आप प्रविष्ट हो जाइए ।। ८-९ ।। इस प्रकार से देवेश की प्रार्थना करने के बाद- मधु, घी, दुग्ध तथा दूर्वा मिलाकर मूल मन्त्र से एक सौ आठ बार शान्ति होम करना चाहिए ।। १० ।। उसके पश्चात् वेदी पर लिङ्ग! की स्थापना करके अत्यन्त तत्त्व को अभिव्यक्त करने वाले- 'ओं व्यापकेश्वराय शिवाय नमः' इस मन्त्र से पूजन करना चाहिए ।। ११ ।। अङ्गन्यास के मन्त्र- 'ओं व्यापकेश्वराय हृदयाय नमः' 'ओं व्यापकेश्वराय शिरसे स्वाहा' इत्यादि हैं ।। १२ ।। उसके पश्चात् अस्त्र मन्त्र के द्वारा तत्त्वापसारण करके यह सुनाना चाहिए- इस लिङ्ग को अपना आश्रय बनाकर यदि कोई जीव निवास करता हो तो वह शिवजी की आज्ञा से इस लिङ्ग का त्याग करके जहाँ इच्छा हो वहाँ चला जाय । विद्येश्वर के साथ यहाँ केवल शम्भु रहेंगे ।।१३-१४।। इसके पश्चात् प्रत्येक भाग के लिए पाशुपतमन्त्र से एक हजार आहुति देकर शान्ति जल से प्रोक्षण करना चाहिए और कुश से लिङ्ग का स्पर्श करके पाशुपत मन्त्र जपना चाहिए ।।१५।। पुनः तत्त्वों एवं तत्त्वाधिपों के लिए विलोम (उत्तरा) क्रम से अर्घ्य देकर आचार्य पिण्डिका में स्थित आठ मूर्तीश्वरों का विसर्जन स्वर्णपाश से करें । इसके पश्चात् वृषभ (नन्दी) के कन्धे पर विद्यमान रस्सी से बाँधकर लाए और शिवमन्त्रों

विसृज्य स्वर्णपाशेन वृषस्कन्धस्थया तथा । रज्ज्वा बद्ध्वा तया नीत्वा शिवमन्त्रं गृणन्ञनैः ॥ १७ ॥ तज्जले निक्षिपेन्मन्त्री पुष्ट्यर्थं जुहुयाच्छतम्। तृप्तये दिक्पतीनां च वास्तुशुद्धौ शतं शतम् ॥ १८ ॥ रक्षां विधाय तद्धाम्नि महापाशुपतास्त्रतः । लिङ्गमन्यत्ततस्तत्र विधिवत्स्थापयेद्गुरुः ॥ १९॥ असुरैर्मुनिभिर्गोत्रैस्तन्त्रविद्भिः प्रतिष्ठितम् । जीर्णं वाऽप्यथ वा भग्नं विधिनाऽपि न चालयेत् ॥ २० ॥ एष एव विधिः कार्यो जीर्णधामसमुद्धृतौ। खड्गे मन्त्रगणं न्यस्य कारयेन्मन्दिरान्तरम् ॥ २१ ॥ संकोचे मरणं प्रोक्तं विस्तारे तु धनक्षयः । तद्द्रव्यं श्रेष्ठद्रव्यं तत्कार्यं तत्प्रमाणकम् ॥ २२॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये जीर्णोद्धार विधिकथनं नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः

प्रासादलक्षणम्

ईश्वर उवाच– **वक्ष्ये प्रासादसामान्यलक्षणं ते शिखिध्वज । चतुर्भागीकृते क्षेत्रे भित्तेर्भागेन विस्तरात् ॥ १ ॥ अद्रिभागेने (ण) गर्भः स्यात् पिण्डिका पादविस्तरात् । पञ्चभागीकृते चापि मध्यभागे तु पिण्डिका ॥ २ ॥ शुषिरं भागविस्तीर्णं भित्तयो भागविस्तरात् । भागौ द्वौ मध्यमे गर्भे ज्येष्ठे भागद्वयेन तु ॥ ३ ॥ त्रिभिस्तु कन्यसो गर्भः शेषभित्तिरिति क्वचित् । षोढा भक्तेऽथ वा क्षेत्रे भित्तिर्भागैकविस्तरात् ॥ ४ ॥ गर्भो भागेन विस्तीर्णो भागद्वयेन पिण्डिका। विस्ताराद्विगुणो वाऽपि सपादद्विगुणोऽपि वा ॥ ५ ॥ अर्धार्धद्विगुणो वाऽपि त्रिगुणः क्वचिदुच्छ्रयः । जगती**

का उच्चारण करते हुए लोगों के साथ उसे उस जल में डाल दें । उसके पश्चात् मन्त्रज्ञ आचार्य सौ बार हवन करें । दिक्पालों की तृप्ति तथा वास्तु की शुद्धि के लिए सौ-सौ बार हवन करना चाहिए ।। १६-१८ ।। उसके पश्चात् महापाशुपतास्त्र से उस मन्दिर की रक्षा करके आचार्य विधिपूर्वक वहाँ दूसरा लिङ्ग स्थापित करें ।। १९ ।। किन्तु असुरों मुनियों तथा तान्त्रिकों के द्वारा विधिपूर्वक स्थापित किया गया लिंग यदि जीर्ण भी हो गया हो अथवा टूट भी गया हो तो उसे चालित नहीं करना चाहिए ।। २० ।। जीर्ण मन्दिर का भी उद्धार करने में इसी विधि को करना चाहिए । खड्ग में मन्त्र समूह का न्यास करके दूसरे मन्दिर का निर्माण कराना चाहिए ।। २१ ।। मन्दिर को संकुचित करने पर कर्ता की मृत्यु होती हैं तथा उसका विस्तार करने पर धन का क्षय होता है । अतएव मन्दिर के द्रव्य अथवा दूसरा कोई श्रेष्ठ द्रव्य लेकर मन्दिर के स्थान पर उसी के प्रमाण वाला दूसरा मन्दिर बनाना चाहिए ।। २२ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का जीर्णोद्धार विधि वर्णन नामक एक सौ तीसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०३ ॥

श्री शिवजी ने कहा– हे स्कन्द ! अब मैं मन्दिर सामान्य का स्वरूप बतला रहा हूँ । चौकोर क्षेत्र को चार भाग में विभक्त करके,उसके एक भाग में भीत का विस्तार करना चाहिए।।१।। क्षेत्र के आठवें भाग में गर्भगृह होना चाहिए और उसके मध्यभाग में पिण्डी होनी चाहिए । जिसका विस्तार गर्भगृह के चौथाई भाग में होना चाहिए ।यदि गर्भ गृह को पाँच भागों में विभक्त किया जाय तो भी उसके एक भाग में पिण्डी होनी चाहिए ।। २ ।। उसके एक भाग में छिद्र को विस्तृत होना चाहिए । भित्तियों का भी विस्तार एक भाग में होनी चाहिए । मध्यम गर्भ में दो भाग तथा ज्येष्ठ गभ्र में भी दो भार्ग करना चाहिए ।। ३ ।। कनिष्ठ गर्भ को तीन भागों में विभक्त होना चाहिए तथा शेष भाग में दिवार होना चाहिए यह कहीं-कहीं का मत है ।। ३ ।। यदि क्षेत्र भाग को छह भागों में विभक्त किया गया हो तो उसके एक भाग में दिवारों का विस्तार होना चाहिए ।। ४ ।। गर्भ का विस्तार एक भाग में होना चाहिए दो भागों में पिण्डी होनी चाहिए। दिवार की ऊँचाई विस्तार से दो गुनी अथवा सवा दो गुनी अथवा ढ़ाई गुनी अथवा तिगुनी भी होने का विधान मिलता है। कहीं-कहीं पर मन्दिर के चारो ओर मन्दिर के आधे या पौन विस्तार का

विस्तरार्धेन त्रिभागेन (ण) क्वचिद्भवेत् ॥ ६ ॥ नेमिः पादेन विस्तीर्णा प्रासादस्य समन्ततः । परिधिस्त्र्यंशको मध्यो रथकांस्तत्र कारयेत् ॥ ७॥ चामुण्डा भैरवं तेषु नाट्येशं च निवेशयेत् । प्रासादार्धेन देवानामष्टौ वा चतुरोऽपि वा ॥ ८ ॥ प्रदक्षिणावहाः कुर्यात्प्रासादादिषु वा नवा । आदित्याः पूर्वतः स्थाप्याः स्कन्दोऽग्निर्वायुगोचरे ॥ ९ ॥ एवं यमादयो न्यस्याः स्वस्यां स्वस्यां दिशि स्थिताः । चतुर्धा शिखरं कृत्वा शुकनासा द्विभागिका ॥ १०॥ तृतीये वेदिका त्वग्ने सकण्ठोऽमलसारकः । वैराजः पुष्पकश्चान्यः कैलासो मणिकस्तथा ॥ ११ ॥ त्रिविष्टपञ्च पञ्चैव मेरूमूर्धनि संस्थितः । चतुरस्त्रस्तु तत्राऽऽद्यो द्वितीयोऽपि तदायतः ॥ १२ ॥ वृत्तो वृत्तायतश्चान्यो ह्यष्टास्त्रश्चापि पञ्चमः । एकैको नवधा भेदैश्चत्वारिंशच्च पञ्च च॥१३॥ प्रासादः प्रथमो मेरुर्द्वितीयो मन्दरस्तथा । विमानं च तथा भद्रः सर्वतोभद्र एव च ॥ १४ ॥ चरुको नन्दकी नन्दिर्वर्धमानस्तथाऽपरः । श्रीवत्सश्चेति वैराजान्ववाये च समुत्थिता ॥ १५ ॥ बलभी गृहराजश्च शालागृहं च मन्दिरम् । विशालश्चमसो ब्रह्ममन्दिरं भुवनं तथा ॥ १६ ॥ प्रभवः शिविका वेश्म नवैते पुष्पकोद्भवाः । बलयो दुन्दुभिः पद्मो महापद्मक एव च ॥ १७ ॥ वर्धनी वान्य उष्णीषः शङ्खश्च कलशस्तथा । खवृक्षश्च तथाऽप्येते वृत्ताः कैलाससंभवाः ॥ १८ ॥ गजोऽथ वृषभो हंसो गरुत्मानृक्षनायकः ॥ भूषणो भूधरश्चान्यः श्रीजयः पृथिवीधरः ॥ १९ ॥ वृत्तायतात्सुमुद्भूता नवैते मणिकाह्वयात्। वज्रं चक्रं तथा चान्यत्स्वस्तिकं वज्रस्वस्तिकम् ॥ २० ॥ चित्रं स्वस्तिकखड्गं च गदा श्रीकण्ठ एव च । विजयो नामतश्चैते त्रिविष्टपसमुद्भवाः ॥ २१ ॥ नगराणामिमाः संज्ञाः लाटादीनामिमास्तथा । ग्रीवार्धेनोन्नतं चूलं पृथुलं स्वत्रिभागतः॥ २२ ॥ दशधा वेदिकां कृत्वा पञ्चभिः स्कन्ध विस्तरः । त्रिभिः कण्ठं तु कर्त्तव्यं चतुर्भिस्तु प्रचण्डकम् ॥ २३ ॥ दिक्षु द्वाराणि कार्याणि न विदिक्षु कदाचन। पिण्डिका कोणविस्तीर्णा मध्यमान्ता ह्युदाहृता ॥ २४ ॥ क्वचित्पञ्चमभागेन महतां गर्भपादतः। उच्छ्रायो द्विगुणस्तेषामन्यथा

जगत् देखा जाता है और चौथाई विस्तार की नेमि जो मन्दिर से लगी होती है उसके तीन अंश में परिधि होती है उसके बीच में रथों को बनाना चाहिए ।। ५-७ ।। उनमें चामुण्डा, भैरव तथा नाट्येश की स्थापना करनी चाहिए । मन्दिर के आधे भाग में चार अथवा आठ परिक्रमाएँ बनानी चाहिए । अथवा मन्दिर के भीतर ही बनावें, अथवा बनावें या नहीं बनाएँ । ९ ।। मन्दिर के पूर्वभाग में आदित्यों की, वायव्यकोण में स्कन्द की तथा यम आदि की उनकी दिशाओं में स्थापना करनी चाहिए । शिखर को चार भागों में विभक्त करके उसके दो भागों में शुकनासिका (गुम्बज) बनाए ।। १० ।। तीसरे भाग में वेदी है और चौथा भाग ही अमलसार नामक सुकण्ठ होना चाहिए । मेरु के शिखर पर पाँच ही प्रासाद (मन्दिर) स्थित है- वैराग, पुष्पक, कैलास, मणिक और त्रिविष्टपक । उनमें पहला चौकोर, दूसरे प्रकार का चतुरस्त्रायत, तीसरे प्रकार का मन्दिर गोल, चौथे प्रकार का वृत्तायत और पाँचवें प्रकार का मन्दिर आठ कोणों वाला होता है । प्रत्येक के नव-नव भेद होने के कारण मन्दिर के भेदों की संख्या पैंतालिस हो जाती है ।। ११-१३ ।। वैराज वर्ग के नव मन्दिर के नाम क्रमशः- मेरु, मन्दर,विमान भद्र, सर्वतोभद्र, चरुक, नन्दिक, नन्दी, वर्धमान और श्रीवत्स है ।। १४-१५ ।। पुष्पक वर्ग के नव मन्दिरों के नाम क्रमशः- वल्लभी, गृहराज, शालागृह,मन्दिर,विशाल, ब्रह्ममन्दिर, भुवन,प्रभव तथा शिविकावेश्म है । कैलास वर्ग के वृत्ताकार नव मन्दिरों के नाम हैं- वलय, दुन्दुभि, पद्म, महापद्म, वर्धनी, उष्णीष शंख, कलश तथा खवृक्ष ।। १६-१८ ।। मणिकनामक वृत्तायत मन्दिर से उत्पन्न होने वाले नव मन्दिरों के नाम हैं- गज, वृषभ, हंस, गरुड़, ऋक्षनायक, भूषण, भूधर, श्रीजय तथा पृथिवीधर ।। १९ ।। त्रिविष्टप वर्ग से उत्पन्न होने वाले नव मन्दिर के नाम हैं- वज्र, चक्र,स्वस्तिक,वज्र स्वस्तिक, चित्र, स्वस्तिक खड्ग, गदा, श्रीकण्ठ तथा विजय ।। २०-२१ ।। नगरों तथा लाट आदि की भी ये ही संज्ञाएँ हैं । शिखर की ग्रीवा के आधे भाग के बराबर ऊँचा चूल (चोटी) होनी चाहिए और उसकी मोटाई कण्ठ के तृतीय अंश के बराबर होनी चाहिए ।। २२ ।। वेदी को दस भागों में विभक्त करके उसके पाँच भागों में स्कन्ध का विस्तार करना चाहिए । तीन भागों में कण्ठ का निर्माण करना चाहिए और चार भागों में उसके प्रचण्ड का निर्माण करना चाहिए ।। २२-२३ ।। मन्दिर का द्वार पूर्व आदि दिशाओं में ही करना चाहिए, विदिशाओं में कदापि नहीं । पिण्डिका

वा निगद्यते ॥ २५ ॥ षष्ट्याऽधिकात्समारभ्य अङ्गुलानां शतादिह । उत्तमान्यपि चत्वारि द्वाराणि दशहानितः ॥ २६ ॥ त्रीण्येव मध्यमानि स्युस्त्रीण्येव कन्यसान्यधः । उच्छ्रयार्धेन विस्तारो ह्युच्छ्रायो ह्यधिकस्त्रिधा ॥ २७ ॥ चतुर्भिरष्टभिर्वाऽपि दशभिर्वाऽङ्गुलैः शुभाः। उच्छ्रायात्पादविस्तीर्णाः शाखास्तद्वदुदुम्बरौ॥२८॥ विस्तारार्धेन बाहुल्यं सर्वेषामेव कीर्तितम् । त्रिपञ्चसप्तनवभिः शाखाभिर्द्वारमिष्टदम् ॥ २९ ॥ अधः शाखाचतुर्थांशे प्रतीहारौ निवेशयेत् । मिथुनैः पादवर्णाभिः शाखाशेषं विभूषयेत् ॥ ३० ॥ स्तम्भविद्धे भृत्यता स्याद्वृक्षविद्धे त्वभूतिता। कूपविद्धे भयं द्वारे क्षेत्रविद्धे धनक्षयः॥ ३१ ॥ प्रासादगृहशालादिमार्गविद्धेषु बन्धनम् । सभाविद्धेन दारिद्र्यं वर्णविद्धै निराकृतिः ॥ ३२ ॥ उलूखलेन दारिद्र्यं शिलाविद्धेन शत्रुता । छायाविद्धेन दारिद्र्यं वेधदोषो न जायते ॥ ३३ ॥ छेदादुत्पाटनाद्वाऽपि तथा प्राकारलक्षणात् । सीमाया द्विगुणत्यागाद्वेधदोषो न जायते ॥ ३४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सामान्यप्रासादलक्षणकथनं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

गृहादिवास्तुकथनम्

ईश्वर उवाच– **नगरग्रामदुर्गादौ गृहप्रासादवृद्धये । एकाशीतिपदै वांस्तुं पूजयेत्सिद्धये ध्रुवम् ॥ १ ॥ प्रागास्या दशधा नाड्यस्तासां नामानि च**

का विस्तार कोण तक होना चाहिए और मध्यमभाग तक उसकी समाप्ति होनी चाहिए ।। २४ ।। कहीं पर द्वार की ऊँचाई गर्भ के चौथे भाग अथवा पाँचवें भाग के बराबर बतलायी गयी है अथवा इस बात को दूसरे प्रकार से बतलाया जाता है ।। २५ ।। एक सौ साठ अंगुल की ऊँचाई से लेकर दस-दस अंगुल घटाते हुए जो चार द्वार बतलाए गए हैं वे उत्तम द्वार हैं । अर्थात् क्रमशः १६०, १५०, १४०, १३० अंगुल ऊँचे द्वार उत्तम कोटि के हैं । तीन (१२०,११०, १०० अंगुल ऊँचे) द्वार मध्यम कोटि के हैं । तीन (९०,८०, ७० अंगुल ऊँचे) द्वार अधम कोटि के होते हैं । ऊँचाई के आधा द्वार की चौड़ाई होनी चाहिए और ऊँचाई चार, आठ अथवा दस अंगुल अधिक हो तो शुभ होता है । ऊँचाई के एक चौथाई के बराबर शाखाओं का विस्तार होना चाहिए और उसी तरह के दोनों उदुम्बरों को होना चाहिए ।। २६-२८ ।। अथवा उन सबों का विस्तार ऊँचाई के चौथाई भाग के बराबर होना चाहिए। तीन, पाँच,सात तथा नव शाखाओं से निर्मित द्वार अभीष्ट फल को प्रदान करने वाला होता है ।। २९ ।। नीचे की शाखा के चौथाई भाग में दो द्वारपालों को बनाना चाहिए । अन्य शाखाओं को स्त्री पुरुष के जोड़ों से अलंकृत करना चाहिए ।। ३० ।। द्वार के ठीक सामने स्तम्भ पड़े तो स्तम्भवेध होता है । स्तम्भवेध होने पर मन्दिर निर्माता सदा दूसरों का दास बना रहता है, वृक्ष वेध के होने पर ऐश्वर्यहीनता होती है । द्वार के कूपविद्ध होने पर भय की प्राप्ति होती है, मन्दिर के क्षेत्रविद्ध होने पर धन का नाश होता है । प्रासाद तथा शाला आदि के मार्गविद्ध होने पर बन्धन की प्राप्ति होती है । उनके समाविद्ध होने पर दरिद्रता होती है और वर्णविद्ध होने पर निरादर होता है ।। ३१-३२ ।। उलूखल विद्ध होने पर दरिद्रता होती है और शिला का बेध होने पर शत्रुता बढ़ता है । मन्दिर के छायाविद्ध होने पर दरिद्रता होती है । इन सबों को कटवा देने,अथवा गिरवा देने से बेध का दोष दूर हो जाता है । बीच में चाहारदिवारी उठा देने से भी वेध दोष दूर हो जाता है । सीमा से दुगनी भूमि छोड़कर यदि ये सभी वस्तुएँ हों तो भी वेध का दोष नहीं लगता है ।। ३३-३४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का सामान्यप्रासाद लक्षण वर्णन नामक एक सौ चौथा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०४ ॥

अध्याय १०५

श्रीशिवजी ने कहा– नगर, ग्राम तथा किला आदि के बनवाने पर गृह तथा मन्दिर की वृद्धि हो इसके लिए इक्यासी पदों वाले वास्तु का अवश्य पूजन करना चाहिए ।। १ ।। उसके

ब्रुवे । शान्ता यशोवती कान्ता विशाला प्राणवाहिनी ॥ २ ॥ सती वसुमती नन्दा सुभद्राऽथ मनोरमा । उत्तरास्या दशान्याश्च एकाशीत्यङ्घ्रिकारिका॥३॥ हरिणी सुप्रभा लक्ष्मीर्विभूतिर्विमला प्रिया । जया ज्वाला विशोका च स्मृतास्ताः सूत्रपाततः ॥ ४ ॥ ईशाद्यष्टकं दिक्षु यजेदीशं धनञ्जयम् । शक्रमर्कं तथा सत्यं भृशं व्योम च पूर्वतः॥ ५ ॥ हव्यवाहं च पूषाणं वितथं भौममेव च । कृतान्तमय गन्धर्वं भृशं मृगं च दक्षिणे ॥ ६ ॥ पितरं द्वारपालं च सुग्रीवं पुष्पदन्तकम् । वरुणं दैत्यशेषो च यक्ष्माणं पश्चिमे सदा ॥ ७ ॥ रोगाहिमुख्यो भल्लाटः सोमशैलादितीदितिम् । नवान्तः पदगो ब्रह्मा पूज्योऽर्धे च षडङ्घ्रिगाः ॥ ८ ॥ ब्रह्मेशान्तरकोष्ठस्थमापाख्यं तु पदद्वये । तदधश्चापवत्साख्यं केन्द्रान्तरेषु षट्पदे ॥ ९ ॥ मरीचिकाऽग्निमध्ये तु सविता द्विपदस्थितः । सावित्री तदधो द्व्यंशे विवस्वान्षट्पदे त्वधः ॥ १० ॥ पितृब्रह्मान्तरे विष्णुमिन्दुमिन्द्रं त्वधो जयम् । वरुणब्रह्मणोर्मध्ये मित्राख्यं षट्पदे यजेत् ॥ ११ ॥ रोगब्रह्मान्तरे नित्यं विष्णुं च रुद्रदासकम् । तदधो द्व्यङ्घ्रिगं यक्ष्म षट्सौम्येषु धराधरम् ॥ १२ ॥ चरकीं स्कन्द विदारीं विकटं पूतनां क्रमात् । जम्भं पापं पिलिपिच्छं यजेदीशादिबाह्यतः ॥ १३ ॥ एकाशीतिपदं वेश्म मण्डपश्च शताङ्घ्रिकः । पूर्ववद्देवताः पूज्या ब्रह्मा तु षोडशांशके॥१४॥ मरीचिश्च विवश्वांश्च मित्रं पृथ्वीधरस्तथा। दशकोष्ठस्थिता दिक्षु त्वन्ये चेशादिकोणगाः॥१५॥ दैत्यमाता तथेशाग्नी मृगाख्यौ पितरौ तथा। पापयक्ष्मानिलौ देवाः सर्वे सार्धाङ्घ्रिके स्थिताः॥१६॥ यज्ञाद्योकः प्रवक्ष्यामि संक्षेपेण क्रमाद्गुह। सदिग्विशत्करैर्दैर्ध्यादष्टाबिंशतिविस्तरात्॥१७॥

लिए पूर्वाभिमुखदस रेखाओं को खिंचवाना चाहिए, उनके नाम हैं- शान्ता, यशोवती, कान्ता,विशाला,प्राणवाहिनी ।। २ ।। स्त्री, वसुमती, नन्दा,सुभद्रा तथा मनोरमा । इसी तरह से उत्तराभिमुख दस रेखाओं के खींचने से एक्यासी पाद बन जाते हैं ।। ३ ।। उत्तराभिमुख खींची जाने वाली रेखाओं के नाम हैं- हरिणी, सुप्रभा, लक्ष्मी, विभूति,विमला,प्रिया, जया,ज्वाला तथा विशोका । इन रेखाओं को सूत पटक पर बनाना चाहिए ।। ४ ।। ईश आदि आठ-आठ देवताओं का प्रत्येक पूर्वादि दिशाओं में पूजन करना चाहिए । पूर्व दिशा में- ईश, घन (पर्जन्य) जय (जयन्तम) इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश तथा व्योम का पूजन करना चाहिए ।। ५ ।। दक्षिण दिशा में, हव्यवाह (अग्नि) पूषा,वितथ, भौम,कृतान्त (यमराज) गन्धर्व, भृश तथा मृग की पूजा दक्षिण दिशा में करनी चाहिए ।। ६ ।। पश्चिम दिशा में सदा पितर,द्वारपाल (दौवारिक) सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, दैत्य (असुर), शेष और यक्ष्मा (पापयक्ष्मा) की पूजा करनी चाहिए ।। ७ ।। रोग, अहि, मुख्य,भल्लट, सोम, शैल (ऋषि) अदिति तथा दिति की पूजा उत्तर दिशा के कोष्ठों में करनी चाहिए । बीच के नव प्रकोष्ठों में ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिए । अवशिष्ट पदों में से चौबीस पदों में वे देवता पूजनीय हैं जो छह-छह प्रकोष्ठों पर अधिकार रखते हैं ।। ८ ।। ब्रह्मा तथा ईश के बीच में दो कोष्ठों में 'आप' की पूजा करनी चाहिए । उससके नीचे वाले दो कोष्ठों में आपवत्स की पूजा करनी चाहिए । उसके पश्चात् केन्द्र के छह पदों में मरीचि का पूजन करें । मरीचि तथा अगिन के बीच के दो पदों में सविता की पूजा करनी चाहिए । उसके नीचे के दो पदों में सावित्री की पूजा करके उनके नीचे के छह पदों में विवस्वान् की पूजा करनी चाहिए ।। ९-१० ।। पितर तथा ब्रह्मा के बीच में विष्णु तथा इन्द्र की दो पदों में पूजा करें, उसके नीचे दो पदों में इन्द्र तथा जय की पूजा करनी चाहिए । वरुण तथा ब्रह्मा के बीच में मित्र नामक देवता की पूजा छह पदों में करनी चाहिए ।। ११ ।। ब्रह्मा तथा रोग के बीच में सदा व्यापक रुद्रदास की पूजा करें उनके नीचे दो पदों में यक्ष्मा की पूजा करनी चाहिए फिर उत्तर दिशा के छह पदों में पृथ्वीधर की पूजा करनी चाहिए ।। १२ ।। मण्डल के बाहर ईशान आदि आठों दिशाओं में क्रमशः चरकी,स्कन्द, विदारी, विदुर, पूतना जम्भ पाप और पिलिपिच्छ की पूजा करनी चाहिए ।। १३ ।। सामान्य गृह के लिए इक्यासी पदों वाले वास्तुमण्डल का निर्माण होना चाहिए । मण्डप में सौ कोष्ठों वाला वास्तुमण्डल होना चाहिए। पहले के ही समान देवताओं की पूजा करना चाहिए तथा ब्रह्मा का पूजन सोलह पदों में करना चाहिए ।। १४ ।। मरीचि, विवस्वान, मित्र तथा पृथ्वीधर दस-दस कोष्ठों में स्थित होते हैं। देवता जो ईशान आदि कोणों में स्थित हैं जैसे- दिति, ईश, अग्नि तथा मृग (पूषा) पितर, पापयक्ष्मा और अनिल इन सभी देवताओं की पूजा डेढ़-डेढ़ पदों में करनी चाहिए ।। १५-१६ ।। हे स्कन्द ! अब मैं क्रमशः यज्ञशाला आदि का संक्षेप से वर्णन कर रहा हूँ । शिव का आश्रय तीस हाथ लम्बा तथा अट्ठाइस हाथ चौड़ा मण्डप

शिवाश्रयः शिवाख्यश्च रुद्रहीनः सदोभयोः । रुद्रद्विगुणितानाहाः पृथुष्णोभिर्विना त्रिभिः ॥ १८॥ स्यादगृहद्विगुणं दैर्घ्यात्तिथिभिश्चैव विस्तरात् । सावित्र्यः सालयः कुड्या अन्येषां पृथक्त्रिंशांशतः ॥ १९ ॥ कुड्यपृथूपजङ्घोच्चात्कुड्यं तु त्रिगुणोच्छ्रयम् । कुड्यसूत्रसमा पृथ्वी वीथीभेदादनेकधा॥२०॥ भद्रे तुल्यं च वीथीभिर्द्वारवीथी विनाऽग्रतः । श्रीजयं पृष्ठतो हीनं भद्रोऽयं पार्श्वयोर्विना ॥ २१ ॥ गर्भपृथुसमा वीथी तदर्धार्धेन वा क्वचित् । वीथ्यर्धेनोपवीथ्याद्यमेकद्वित्रिपुरान्वितम् ॥ २२ ॥ सामान्यान्यगृहं वक्ष्ये सर्वेषां सर्वकामदम् । एकंद्वित्रिचतुःशालमष्टशालं यथाक्रमम् ॥ २३ ॥ एकं याम्ये च सौमास्यं द्वे चेत्पश्चात्पुरोमुखम् । चतुःशालं तु सांमुख्यात्तयोरिन्द्रेन्द्रमुक्तयोः॥२४॥ शिवास्यमम्बुपास्यैष इन्द्रास्ये यमसूर्यकम् । प्राक्सौम्यस्थे च दण्डाख्यं प्राग्याम्ये वातसंज्ञकम् ॥ २५ ॥ आप्येन्दौ गृहवल्याख्यं त्रिशूलं तद्विर्नार्द्धिकृत्। पूर्वशालाविहीनं स्यात्सुक्षेत्रं वृद्धिदायकम॥२६॥ याम्ये हीनं भवेच्छूली विशालं वित्तकृत्परम्। पक्षघ्नं जलहीनौकः सुतघ्नं बहुशत्रुकृत् ॥ २७॥ इन्द्रादिक्रमतो वच्मि ध्वजाद्यष्टौ गृहाण्यहम् । प्रक्षालानुस्त्रगावासमग्नौ तस्य महानसम् ॥ २८ ॥ याम्ये रसक्रिया शय्या धनुः शस्त्राणि रक्षसि । धनभुक्त्याम्बुपेशाख्ये सम्यगन्धौ च मारुते॥२९॥ सौम्ये धनपशू कुर्यादीशे दीक्षावरालयम्। स्वामिहस्तमितं वेश्म विस्तारायामिपिण्डिकम् ॥ ३० ॥ त्रिगुणं हस्तसंयुक्तं कृत्वाऽष्टांशैर्हृतं तथा। तच्छेषोऽयं स्थितस्तेन वायसान्तं ध्वजादिकम् ॥ ३१ ॥ त्रयः पक्षाग्निवेदेषु रसर्षिवसुतो भवेत् । सर्वनाशकरं वेश्म मध्ये चान्ते च संस्थितम्॥३२॥

होता है । लम्बाई तथा चौड़ाई में ग्यारह-ग्यारह हाथ घटा देने से उन्नीस हाथ लम्बा तथा सत्रह हाथ चौड़ा मण्डप शिवसंज्ञक होता है । यदि मण्डप बाइस हाथ लम्बा तथा उन्नीस हाथ चौड़ा अथवा अठारह हाथ लम्बा और पन्द्रह हाथ चौड़ा हो तो वह मण्डप सवित्रसंज्ञक होता है । दीवार की चौड़ाई आठ हाथ होनी चाहिए और ऊँचाई चौड़ाई से दो गुनी होनी चाहिए ।। १७-१९।। दीवार की पृथूपजङ्घा (कुर्सी) से दीवार को तीन गुनी ऊँची होनी चाहिए । कुड्यसूत्रों के ही समान वीथी के भेद से पृथिवी भी अनेक प्रकार की होती है ।। २० ।। भद्रसंज्ञक प्रासाद में बीथियों के ही समान द्वार वीथी होती है, किन्तु उसमें वीथी का अग्रभाग नहीं होता है । श्रीजय नामक प्रासाद में जो द्वारवीथी होती है, उसमें वीथी का पृष्ठभाग नहीं होता है । वीथी के पार्श्वभागों को द्वार वीथी में कम कर दिया जाय तो उससे उपलक्षित प्रासाद की भी भद्र संज्ञा होती है । गर्भ के विस्तार की ही भाँति वीथी का भी विस्तार होता है । कहीं-कहीं पर वह उसके आधे या चौड़ाई भाग के बराबर भली होता है । वीथी के आधे मान से उपवीथी आदि का निर्माण करना चाहिए । वह एक दो या तीन पुरों से युक्त होता है ।। २१-२२ ।। अब मैं अन्य सामान्य गृहों का वर्णन करूँगा जो सबों के सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले होते हैं । जो क्रमशः एक, दो, तीन, चार तथा आठ शालाओं से युक्त होते हैं ।। २३ ।। एक शाला वाले गृह में शाला दक्षिण की ओर होती है तथा उस शाला का मुख उत्तर की ओर होता है । यदि गृह में दो शालाएँ बनवानी हों तो उन्हें पूर्व और पश्चिम में बनवाया जाय और उसका दरवाजा आमने-सामने होना चाहिए। चार शालाओं वाले गृह में दोनों शालाओं के परस्पर सम्मुख होने के कारण दोनों तरफ की दोनों शालाएँ इन्द्रेन्द्रमुख होती हैं । यह गृह उत्तराभिमुख अथवा पश्चिमाभिमुख होता है । गृह के पूर्वाभिमुख होने पर वह यमसूर्यक कहलाता है । उत्तराभिमुख गृह के होने पर वह दण्डसंज्ञक होता है, दक्षिणाभिमुख गृह वातसंज्ञक होता है ।। २४-२५ ।। गृह के कमरों का मुख पूर्व तथा पश्चिम की ओर होने पर गृह गृहवली कहलाता है । पश्चिम भाग में कमरों से रहित गृह त्रिशूलसंज्ञक होता है ओर वह गृहस्वामी को समृद्ध बनाता है । पूर्व की ओर शाला से रहित गृह सुक्षेत्रसंज्ञक होता है और वह गृह स्वामी की वृद्धि करता है ।। २६।। दक्षिण दिशा में शाला से विहीन गृह शूलप्रद विशालसंज्ञक, पित्त को विनष्ट करने वाला, पक्ष को विनष्ट करने वाला, जल से हीन, पुत्र का नाश करने वाला तथा शत्रु को बढ़ाने वाला होता है ।। २७ ।। अब मैं पूर्वादिदिशाओं में बनाए जानेवाले ध्वज आदि आठ गृहों का वर्णन करता हूँ । पूर्व दिशा में स्नान के लिए तथा उसके पश्चात् माला आदि तथा वस्त्र आदि पहनने का घर बनाना चाहिए । अग्निकोण में रसोईघर बनाना चाहिए । दक्षिण दिशा में रसक्रिया तथ शय्या के लिए गृह बनाना चाहिए । नैर्ऋत्य कोण में धनुष् शस्त्रागार बनाना चाहिए । पश्चिम दिशा में धन, भोग तथा अम्बुपेश नामक कक्ष होना चाहिए जिसमें सुगन्धित चीजें हों ।। २८-२९ ।। उत्तर दिशा में धन तथा पशु का गृह

तस्माच्च नवमे भागे शुभ कृन्निलयो मतः । तन्मध्ये मण्डपः शस्तः समो वा द्विगुणायतः ॥ ३३ ॥ प्रत्यगाप्ये चेन्दुयमे हट्टे एव गृहावली । एकैकभवनाख्यानि दिक्ष्वष्टक संख्यया ॥ ३४ ॥ ईशाद्यदितिकान्तानि फलान्येषां यथाक्रमम् । भयं नारीचलत्वं च जयो वृद्धिः प्रतापकः ॥ ३५॥ धर्मःकलिश्च नैस्व्यं च प्राग्द्वारेष्वष्टसु ध्रुवम् । दाहोऽसुखं सुहृन्नाशो धननाशो मृतिर्धनम् ॥ ३६ ॥ शिल्पित्वं तनयः स्याच्च याम्यद्वारफलाष्टकम्। आयुष्प्राव्राज्यसस्यानि धनशान्त्यर्थसंक्षयः ॥ ३७ ॥ शोषं (ष) भोगं चापत्यं च जलद्वारफलानि च । रोगो मदार्तिमुख्यत्वं चार्थायुः कृशता मतिः ॥ ३८ ॥ मानश्च द्वारतः पूर्वं उत्तरस्यां दिशि क्रमात् ॥ ३९ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नगरगृहादिवास्तुप्रतिष्ठाविधिकथनं नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

नगरादिकवास्तुकथनम्

ईश्वर उवाच— **नगरादिकवास्तुं च वक्ष्ये राज्यादिवृद्धये । योजनं योजनार्धं वा तदर्थं स्थानमाश्रयेत् ॥ १ ॥ अभ्यर्च्य वास्तुनगरं प्राकाराढ्यं तु कारयेत्। ईशादि त्रिंशत्पदके पूर्वद्वारं च सूर्यके॥२॥ गन्धर्वाभ्यां दक्षिणे स्याद्वारुण्ये पश्चिमे तथा। सौम्यद्वारं सोम्यपदे कार्या हट्टास्तु विस्तराः॥३॥ येनेभादिसुखं गच्छेत्कुर्याद् द्वारं तु षट्करम्। छिन्नकर्णं विभिन्नं च चन्द्रार्धाभं पुरं न हि ॥ ४ ॥ वज्रसूचीमुखं नेष्टं सकृद् द्वित्रिसमागमम्।**

बनाना चाहिए और ईशानकोण में दीक्षा के लिए उत्तम गृह बनाना चाहिए ।। २९ ।। स्वामी के हाथ से नापे गए गृह के पिण्ड की लम्बाई-चौड़ाई को तीन गुना करके उसमें आठ का भाग देना चाहिए । उसके शेष के अनुसार गृह की ध्वज से लेकर काक पर्यन्त (क्रमशः ध्वज,धूम्र, सिंह, श्वान,वृषभ,खर, हस्ती तथा काक) संज्ञाएँ होती हैं ।। ३०-३१ ।। गृह क्षेत्र के द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, षष्ठ, सप्तम तथा अष्टम भाग में निर्मित गृह सब कुछ नाश करने वाला मध्यभाग तथा अन्तिम भाग में निर्मित गृह सुस्थिर करने वाला होता है ।। ३२ ।। इसलिए नवें भाग में निर्मित गृह शुभप्रद होता है। उसके बीच में रहने वाला मण्डप उत्तम होता है । मण्डप की चौड़ाई घर की चौड़ाई के बराबर अथवा उसके दो गुनी होनी चाहिए ।। ३३ ।। बाजार में ही पूर्व से पश्चिम की ओर गृह पंक्ति देखी जाती है ।। एक-एक भवन के पूर्वादि दिशाओं मे आठ-आठ द्वार हो सकते हैं, इनके फल क्रमशः इस प्रकार हैं- भय, नारी की चपलता, जय, वृद्धि, प्रताप, धर्म, कलह तथा निर्धनता। ये पूर्ववर्ती आठ द्वारों के फल हैं ।। ३४-३५ ।। दाह, असुख, मित्रनाश, धननाश, मरण, धन, शिल्पिता तथा पुत्र ये दक्षिणवर्ती आठ द्वारों के फल हैं ।। ३६।। पश्चिम दिशावर्ती आठ द्वारों के फल क्रमशः हैं- आयु, संन्यास,सस्य, धन, शान्ति, अर्थनाश, शोषण,भोग एवं सन्तान की प्राप्ति ।। ३७ ।। रोग मद, आर्ति, मुख्यता अर्थ, आयु, कृशता और मान ये उत्तर दिशावर्ती आठ द्वारों के फल हैं ।। ३८-३९ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का नगर गृह आदि की वास्तुप्रतिष्ठा विधि का वर्णन नामक एक सौ पाँचवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०५ ॥

श्रीशिवजी ने कहा— अब मैं राज्य आदि की वृद्धि के लिए नगर आदि के वास्तु का वर्णन कर रहा हूँ । नगर वास्तु के लिए एक योजन अथवा आधा योजन वस्तु अधिगृहीत करना चाहिए ।। १।। वास्तु नगर की पूजा करके उसके चारों ओर चहारदिवारी बनाएँ । ईशादि तीस पदों मे सूर्य के सम्मुख पूर्व द्वार बनाना चाहिए ।। २ ।। गन्धर्वों के समीप दक्षिण द्वार वरुण के समीप पश्चिम द्वार सोम के सन्निकट उत्तर द्वार बनाकर बाजार का विस्तार करना चाहिए ।। ३ ।। द्वार छः हाथ का बनाना चाहिए जिससे हाथी आदि आसानी से चले जायँ । नगर को छिन्नकर्ता

चापाभं वज्रनागाभं पुरारम्भे हि शान्तिकृत् ॥ ५ ॥ प्राच्यं विष्णुहरार्कादीन्नत्वा दद्याद्बलिं बली । आग्नेये स्वर्णकर्मारान्पुरस्य विनिवेशयेत् ॥ ६॥
दक्षिणे नृत्यवृत्तीनां वेश्यास्त्रीणां गृहाणि च। नटानां चक्रिकादीनां कैवर्तादेश्च नैर्ऋते ॥ ७ ॥ रथानामायुधानां च कृपाणानां च वारुणे ।
शौण्डिकाः कर्माधिकृता वायव्ये परिकर्मिणः ॥ ८ ॥ ब्राह्मणा यतयः सिद्धाः पुण्यवन्तश्च चोत्तरे । फलाद्यादिविक्रयिण ईशाने च वणिग्जनाः॥९॥
पूर्वतश्च बलाध्यक्षा आग्नेये विविधं बलम् । स्त्रीणामादेशिनो दक्षे काण्डरान्नैर्ऋते न्यसेत् ॥ १० ॥ पश्चिमे च महामात्यान्कोषपालांश्च कारुकान्।
उत्तरे दण्डनाथांश्च नायकद्विजसंकुलान् ॥ ११ ॥ पूर्वतः क्षत्रियान्दक्षे वैश्याञ्शूद्रांश्च पश्चिमे। दिक्षु वैद्यान्वाजिनश्च बलानि च चतुर्दिशम् ॥ १२॥
पूर्वेण चरलिङ्ग्यादीञ्श्मशानादीनि दक्षिणे । पश्चिमे गोधनाद्यं च कृषिकर्तुस्तथोत्तरे ॥ १३ ॥ न्यसेन्म्लेच्छांश्च कोणेषु ग्रामादिषु तथा स्थितिम्।
श्रियं वैश्रवणं द्वारि पूर्वे तौ पश्यतां श्रियम् ॥ १४ ॥ देवादीनां पश्चिमतः पूर्वास्यानि गृहाणि हि । पूर्वतः पश्चिमास्यानि दक्षिणे चोत्तराननाम्॥१५॥
नाकेशविष्ण्वादिधामानि रक्षार्थं नगरस्य च । निर्दैवतं तु नगरग्रामदुर्गगृहादिकम् ॥ १६ ॥ भुज्यते तत्पिशाचाद्यै रागाद्यैः परिभूयते । नगरादि
सदैवं हि जयदं भुक्तिमुक्तिदम् ॥ १७ ॥ पूर्वस्यां श्रीगृहं प्रोक्तमाग्नेय्यां वै महानसम् । शयनं दक्षिणस्यां तु नैर्ऋत्यामायुधाश्रयम् ॥ १८ ॥ भोजनं
पश्चिमायां तु वायव्यां धान्यसंग्रहः। उत्तरे द्रव्यसंस्थानमैशन्यां देवतागृहम् ॥ १९ ॥ चतुःशालं त्रिशालं वा द्विशालं चैकशालकम् । चतुःशालगृहाणां
तु शालालिन्दकभेदतः ॥ २० ॥ शतद्वयं तु जायन्ते पञ्चाशत्पञ्च तेष्वपि । त्रिशालानि तु चत्वारि द्विशालानि तु पञ्चधा ॥ २१ ॥ एकशालानि

(तितर-वितर) नहीं बनाना चाहिए और न तो चन्द्राकार ही ।। ४ ।। वज्रसूचीमुख नगर अनिष्टकारक होता है । जिसमें दो तीन तरफ से आवागमन हो सके जिसका आकार धनुष् के समान हो वह नगर शान्तिकारक होता है ।। ५ ।। विष्णु, शिव तथा सूर्य की पूजा करके तथा उनको नमस्कार करके, उन्हें बलि देनी चाहिए । नगर के अग्निकोण में स्वर्णकारों को बसाना चाहिए ।।६।। दक्षिण दिशा में नृत्य से अपनी जीविका चलाने वाली वेश्याओं का घर होना चाहिए । नैऋत्य कोण में नट, कुम्हार, तथा केवटों आदि का घर होना चाहिए ।। ७ ।। नगर की पश्चिम दिशा में रथों,आयुधों तथा कृपाणों का गृह होना चाहिए । नगर के वायव्यकोण में वैश्यों, कार्याधिकारियों तथा अन्य कर्मचारियों का गृह होना चाहिए ।। ८ ।। उत्तर दिशा में ब्राह्मणों, यतियों, सिद्धों तथा पुण्यवान् पुरुषों को बसाना चाहिए । फल तथा अन्य खाद्य पदार्थों को बेचने वालों तथा व्यापारियों को नगर के ईशानकोण में बसाना चाहिए ।। ९ ।। नगर के पूर्व दिशा में सेनापतियों को अग्निकोण में अनेक प्रकार की सेनाओं को, अन्तःपुर के अध्यक्षों को दक्षिण दिशा में तथा काण्डारनायक (राजकीय कैम्प लगाने वाली) जाति को नगर के नैऋत्य कोण में बसाना चाहिए।।१०।। नगर की पश्चिम दिशा में महामात्यों, कोषाध्यक्षों तथा शिल्पियों को बसाना चाहिए एवं उत्तर दिशा में नायक ब्राह्मणों से बहुल दण्डाधिकारियों को बसाना चाहिए ।। ११ ।। पूर्व दिशा में क्षत्रियों, दक्षिणा दिशा में वैश्यों तथा पश्चिम दिशा में शूद्रों को बसाना चाहिए । नगर के सभी दिशाओं में वैद्यों, घुड़सवारों तथा सिपाहियों को बसाना चाहिए ।। १२ ।। पूर्व दिशा में गुप्तचरों, दक्षिण दिशा में श्मशानों, पश्चिम दिशा में गोधनों तथा उत्तर दिशा में कृषकों को बसाना चाहिए ।। १३ ।। म्लेच्छों को, कोणों तथा ग्राम आदि में बसाना चाहिए । नगर के पूर्व द्वार पर लक्ष्मी तथा कुबेर की स्थापना करनी चाहिए । जो इन दोनों का दर्शन करता है उसे श्री की प्राप्ति होती है ।। १४ ।। पश्चिम दिशा में पूर्वाभिमुख गृहों को बनाना चाहिए । पूर्व दिशा के मन्दिरों को पश्चिमाभिमुख तथा दक्षिण दिशा के मन्दिरों को उत्तराभिमुख होना चाहिए ।। १५ ।। नगर की रक्षा के लिए ब्रह्मा विष्णु तथा शिव जी के मन्दिरों को बनाना चाहिए । देवताओं से रहित नगर, ग्राम, किला तथा गृह आदि का उपभोग पिशाच आदि करते हैं और वहाँ के लोग रोगों से पीड़ित रहते हैं । देवताओं से युक्त नगर सदा विजय, भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले होते हैं ।। १६-१७ ।। राजमहल की पूर्वदिशा में कोषागार, अग्निकोण में रसोईघर, दक्षिण दिशा में शयनकक्ष तथा नैऋृत्यकोण में आयुधागार होते हैं ।। १८ ।। पश्चिम दिशा में भोजन गृह,

चत्वारि एकालिन्दानि वच्मि च । अष्टाविंशदलिन्दानि गृहाणि नगराणि च ॥ २२ ॥ चतुर्भिः सप्तभिश्चैव पञ्चपञ्चाशदेव तु । षडलिन्दानि विंशैव अष्टाभिर्विंश एव हि ॥ २३ ॥ अष्टालिन्दं भवेदेवं नगरादौ गृहाणि हि ॥ २४ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नगरादिवास्तुकथनं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

स्वायंभुवसर्गकथनम्

अग्निरुवाच– **वक्ष्ये भुवनकोषं च पृथ्वीद्वीपादिलक्षणम् । अग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान्द्युतिमांस्तथा ॥ १ ॥ मेधा मेधातिथिर्भव्यः सवनः पुत्र एव च । ज्योतिष्मान्दशमस्तेषां सत्यनामा सुतोऽभवत् ॥ २ ॥ प्रियव्रतसुताः ख्याताः सप्तद्वीपान्ददौ पिता । जम्बूद्वीपमथाग्नीध्रे प्लक्षं मेधातिथेर्ददौ ॥ ३ ॥ वपुष्मते शाल्मलं च ज्योतिष्मते कुशाह्वयम् । क्रौञ्चद्वीपं द्युतिमते शाकं भव्याय दत्तवान् ॥ ४ ॥ पुष्करं सवनायादादग्नीध्रेऽदात्सुते शतम् । जम्बूद्वीपं पिता लक्षं नाभेर्दत्तं हिमाह्वयम् ॥ ५ ॥ हेमकूटं किंपुरुषे हरिवर्षाय नैषधम् । इलावृते मेरुमध्यं रम्ये नीलाचलाश्रितम् ॥ ६ ॥ हिरण्वते श्वेतवर्षं कुरूंस्तु कुरवे ददौ । भद्राश्वाय च भद्राश्वं केतुमालाय पश्चिमम् ॥ ७ ॥ मेरोः प्रियव्रतः पुत्रानभिविषच्य ययौ वनम् । शालग्रामे तपस्तप्त्वा ययौ विष्णवालयं नृपः ॥ ८ ॥ यानि किं पुरुषाद्यानि ह्यष्ट वर्षाणि सत्तम । तेषां स्वाभाविकी सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ॥ ९ ॥**

वायव्य कोण में अन्नागार, उत्तर दिशा में द्रव्यागार तथा ईशानकोण में देवागार होना चाहिए ।। १९ ।। ये राजमहल चतुःशाल, त्रिशाल,द्विशाल एवं एकशाल हुआ करते हैं । चतुःशाल गृहों के शाल तथा अलिन्द की भिन्नता के कारण दो सौ भेद हुआ करते हैं । और उन सबों के भी पचपन-पचपन भेद होते हैं । गृहों के चार तथा द्विशालगृहों के पाँच भेद होते हैं ।। २०-२१।। एकशालागृहों के चार भेद होते हैं । अब मैं अलिन्द (बरामदा) युक्त गृहों के विषय में बतला रहा हूँ । गृह वास्तु तथा नगर वास्तु में अट्ठाइस अलिन्द होते हैं । उनके चार और सात अलिन्दों के कारण पचपन छह अलिन्दों के कारण बीस,आठ अलिन्दों के भी कारण गृह वास्तु के बीस भेद होते हैं । इसी प्रकार नगर आदि में भी आठ अलिन्दों से युक्त वास्तु मण्डल होता है।।२२-२४।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का नगरादि वास्तु वर्णन नामक एक सौ छठाँ अध्याय परिपूर्ण हुआ ॥ १०६॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं भुवनकोष, पृथिवी तथा द्वीप आदि का लक्षण बतलाऊँगा । महाराज प्रियव्रत के दस पुत्र हुए- अग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान, द्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, भव्य, सवन,ज्योतिष्मान् तथा दसवाँ सत्य । इन सबों को पिता ने सात द्वीप प्रदान किया । अग्नीध्र को जम्बूद्वीप,एवं मेघातिथि को प्लक्षद्वीप दिया ।। १-३ ।। वपुषमान को शाल्मलि द्वीप तथा ज्योतिष्मान् को कुश द्वीप दिया। द्युतिमान् को क्रौञ्चद्वीप तथा भव्य को शाकद्वीप प्रदान किया ।। ४ ।।सवन को पुष्करद्वीप पिता ने प्रदान किया । आग्नीध्र ने अपने पुत्रों में लाखों योजन विस्तृत जम्बूद्वीप को अपने पुत्रों में इस प्रकार बाँटा- नाभि को हिमवर्ष, किम्पुरुष को हेमकूटवर्ष, हरिवर्ष को नैषधवर्ष, इलावृत्त को मध्यभाग में मेरुपर्वत से युक्त इलावृत वर्ष, रम्यक् को नीलाचलाश्रित रम्यकवर्ष, हिरण्यवान् को श्वेतवर्ष एवं कुरु को उत्तरकुरुवर्ष प्रदान किया । उन्होंने भद्राश्व को भद्राश्ववर्ष और केतुमाला को सुमेरु पर्वत का पश्चिम प्रदेश दिया । इस तरह से प्रियव्रत अपने पुत्रों को अभिषिक्त करके वन में चले गए और शालग्राम क्षेत्र में तपस्या करके विष्णुलोक को प्राप्त किये ।। ५-८ ।। हे पुरुषश्रेष्ठ वसिष्ठ ! जो किम्पुरुष आदि आठ वर्ष हैं वे विना प्रयास के सुखप्रधान तथा स्वाभाविक रूप से सिद्धि प्रदान करने वाले हैं ।। ९ ।। वहाँ न तो जरा (बुढ़ापा) है, न मृत्यु, वहाँ धर्माधर्म भी नहीं है न तो कलि आदि युग वहाँ हैं न तो कोई अधम कोटि का है और

जरामृत्युभयं नास्ति धर्माधर्मौ युगादिकम् । नाधमं मध्यमं तुल्या हिमाद्देशात्तु नाभितः ॥ १० ॥ ऋषभो मेरुदेव्यां च ऋषभाद्भरतोऽभवत् । ऋषभो दत्तश्रीः पुत्रे शालग्रामे हरिं गतः ॥ ११ ॥ भरताद्भारतं वर्षं भरतात्सुमतिस्त्वभूत् । भरतो दत्तलक्ष्मीकः शालग्रामे हरिं गतः ॥ १२ ॥ स योगी योगप्रस्थाने वक्ष्ये तच्चरितं पुनः। सुमतेस्तेजसस्तस्मादिन्द्रद्युम्नो व्यजायत ॥ १३ ॥ परमेष्ठी ततस्तस्मात्प्रतीहारस्तदन्वयः। प्रतीहारात्प्रतीहर्ता प्रतिहर्त्तुर्भवस्ततः॥ १४ ॥ उद्गीथोऽथ च प्रस्तारो विभुः प्रस्तारतः सुतः ॥ पृथुश्चैव ततो नक्तो नक्तस्यापि गयः सुतः ॥ १५ ॥ नरो गयस्य तनयस्तत्पुत्रोऽभूद्विराट् ततः । तस्य पुत्रो महावीर्यो धीमांस्तस्मादजायत ॥ १६ ॥ महान्तस्तत्सुतश्चाभून्मनस्युस्तस्य चाऽऽत्मजः । त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजा रज (जा) स्तस्याप्यभूत्सुतः॥ १७ ॥ सत्यजिद्रजसस्तस्य जज्ञे पुत्रशतं मुने । विश्वज्योतिः प्रधानास्ते भारतं तैर्विवर्धितम् ॥ १८ ॥ कृतत्रेतादिसर्गेण सर्गः स्वायम्भुवः स्मृतः ॥ १९ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्वायम्भुवसर्गकथनं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

भुवनकोशकथनम्

अग्निरुवाच– जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलिश्चापरो महान् । कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चेति सप्तमः ॥ १ ॥ एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैः समम् ॥ २ ॥ जम्बूद्वीपो द्वीपमध्ये तन्मध्ये मेरुरुच्छ्रितः । चतुरशीतिसाहस्रो भूयिष्ठः षोडशाद्रिराट्॥३॥ द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तारात्षोडशाधः सहस्रवान् । भूयस्तस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकाकारसंस्थितः ॥ ४ ॥ हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे ।

न मध्यम कोटि का सब समान हैं । हिमवर्ष के शासक नाभि से मेरुदेवी में ऋषभ देव उत्पन्न हुए । ऋषभ से भरत उत्पन्न हुए । ऋषभदेव अपने पुत्र भरत को राज्य श्री प्रदान करके श्रीभगवान् के शालग्राम क्षेत्र में चले गए ।। १०-११ ।। भरत के ही नाम पर भारतवर्ष हुआ । भरत के सुमति नामक पुत्र उत्पन्न हुए । भरत भी उन्हें राज्य श्रीप्रदान करके श्रीभगवान् के शालग्राम क्षेत्र चले गए ।।१२।। भरत योग मार्ग के प्रख्यात योगी हुए । मैं उनका चरित्र बतला रहा हूँ । सुमति के तेजस् नामक पुत्र उत्पन्न हुए और उनसे इन्द्रद्युम्न नामक पुत्र उत्पन्न हुए ।। १३ ।। इन्द्रद्युम्न के परमेष्ठी नामक पुत्र हुए और उनसे प्रतिहार नामक उनके पुत्र हुए । प्रतिहार से प्रतिहर्ता तथा प्रतिहर्ता से भव उत्पन्न हुए । उनके उद्गीथ तथा उद्गीथ के प्रस्तार तथा प्रस्तार के विभु पुत्र हुए। उनके पृथु हुए पृथु के नक्त पुत्र हुए तथा नक्त को भी जप नामक पुत्र हुए ।। १४-१५ ।। गय के पुत्र नर थे और उनके पुत्र विराट हुए । विराट् के महावीर्य उत्पन्न हुए और उनके पुत्र धीमान् हुए ।। १६ ।। धीमान् के पुत्र महान्त हुए और उनके पुत्र मनस्यु हुए । उनके पुत्र त्वष्टा हुए और त्वष्टा के पुत्र विरजा हुए । विरजा के पुत्र रजा हुए और रजा के पुत्र सत्यजित् और सत्यजित् के सौ पुत्र हुए। उनमें सबसे प्रधान विश्वज्योति हुए । उन लोगों ने ही भारतवर्ष को विशेष रूप से बढ़ाया । सत्ययुग त्रेतायुग के क्रम से यह स्वायम्भुव मनु का वंश कहा गया है ।। १७-१९।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का स्वायम्भुव सर्ग वर्णन नामक एक सौ सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०७ ॥

अग्निदेव ने कहा– सात द्वीप बतलाए गए हैं- जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलि द्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाकद्वीप और पुष्कर द्वीप ।। १ ।। ये सभी द्वीप समुद्रों से घिरे हुए हैं । इन सबों को घेरने वाले समुद्र क्रमशः क्षारोद, ईक्षूद, सुरोद, घृतोद, दध्युद, दुग्धोद तथा शुद्ध जलोद हैं। इन सबों का भी विस्तार समान रूप से है ।। २ ।। सभी द्वीपों के बीच में जम्बूद्वीप हैं और उसके बीच में ऊँचा सुमेरु पर्वत है । वह चौरासी हजार योजन ऊँचा तथा सोलह पर्वतों का राजा है।।३।। उसके शिखर का विस्तार बत्तीस हजार योजन है और नीचे की ओर सोलह हजार

नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः ॥ ५ ॥ लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशहीनास्तथाऽपरे । सहस्त्रद्वितयोच्छ्रास्तावद्विस्तारिणश्च ते ॥ ६ ॥ भारतं प्रथमं वर्षं ततः किं पुरुषं स्मृतम् । हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विज ॥ ७ ॥ रम्यकं चोत्तरे वर्षं तथैवान्यद्धिरण्मयम् । उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा ॥ ८ ॥ नवसाहस्त्रमेकैकमेतेषां मुनिसत्तम। इलावृतं च तन्मध्ये सौवर्णो मेरुरुच्छ्रितः ॥ ९ ॥ मेरोश्चतुर्दिशं तत्र नवसाहस्त्रविस्तृतम्। इलावृतं महाभाग चत्वारश्चात्र पर्वताः ॥ १० ॥ विष्कम्भा रचिता मेरोर्योजनायुतविस्तृताः ॥ पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः ॥ ११ ॥ विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृत; । कदम्बस्तेषु जम्बूश्च पिप्पलो वट एव च ॥ १२ ॥ एकादशशतायामाः पादपाः गिरिकेतवः । जम्बूद्वीपेति संज्ञास्यात् फलं जम्ब्वा गजोपमम् ॥ १३ ॥ जम्बूनदी रसेनास्यास्त्विदं जाम्बूनदं परम् । भद्राश्वः पूर्वतो मेरोः केतुमालस्तु पश्चिमे॥१४॥ वनं चैत्ररथं पूर्वे दक्षिणे गन्धमादनः । वैभ्राजं पश्चिमे सौम्ये नन्दनं च सरांस्यथ ॥ १५ ॥ अरुणोदं महाभद्रं शीतोदं मानसं तथा । सिताम्भश्चक्रमुञ्जाद्याः पूर्वतः केसराचलाः ॥ १६ ॥ दक्षिणेऽद्रेस्त्रिकूटाद्याः शिखिवास-मुखा जले । शङ्खकूटादयः सौम्ये मेरौ च ब्रह्मणः पुरी ॥ १७ ॥ चतुर्दश सहस्त्राणि योजनानां च दिक्षु च । इन्द्रादिलोकपालानां समन्ताद्ब्रह्मणः पुरः ॥ १८ ॥ विष्णुपादात्प्लावयित्वा चन्द्रं स्वर्गात्पतत्यपि । पूर्वेण शीता भद्राश्वाच्छैलाच्छैलाद्गताताऽर्णवम् ॥ १९ ॥ तथैवालकनन्दाऽपि दक्षिणेनैव भारतम् । प्रयाति सागरं कृत्वा सप्तभेदाऽथ पश्चिमम् ॥ २० ॥ अब्धिं च चक्षुः सौम्याऽब्धिं भद्रोत्तरकुरूनपि । आनीलनिषधा यामौ माल्यवद्गन्धमादनौ ॥ २१ ॥ तयोर्मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः । भारताः

योजन पृथिवी में गड़ा हुआ है । पुनः यह पर्वत कर्णिका के आकार वाला है । इसके दक्षिण ओर हिमवान, हेमकूट, तथा निषध पर्वत स्थित है । उसके उत्तर में नील, श्वेत तथा शृङ्गी नामक पर्वत स्थित है । इन्हें वर्ष पर्वत कहते हैं ।। ४-५ ।। इनमें बीच के दो पर्वत एक-एक लाख योजन लम्बे हैं और अन्य पर्वत दस-दस हजार योजन कम लम्बे हैं । उनकी ऊँचाई तथा चौड़ाई भी दो-दो हजार योजन हैं ।। ६ ।। हे वसिष्ठ! वर्षों में प्रथम भारत वर्ष है ।उसके बाद किंपुरुष वर्ष है । उससे भिन्न तीसरा हरिवर्ष है, इसी तरह से मेरु से दक्षिण के अन्य वर्षों को जानना चाहिए ।। ७ ।। सुमेरु के उत्तर में रम्यक वर्ष तथा हिरण्यमय वर्ष और उत्तरकुरुवर्ष हैं ।। ८ ।। इनमें से प्रत्येक का विस्तार नव-नव हजार योजन है । इन सबों के बीच में इलावृत्त नामक वर्ष है और उसके बीच सुवर्णमय सुमेरु पर्वत है ।। ९ ।। सुमेरु पर्वत के चारों ओर नव-नव हजार योजन में इलावृत्त वर्ष फैला हुआ है । यहाँ पर दस-दस हजार योजन में फैले हुए चार-चार पर्वत हैं जो सुमेरु पर्वत के अर्गला का काम करते हैं । उसके पूर्व में मन्दराचल तथा दक्षिण में गन्धमादन नामक पर्वत है ।। १०-११ ।। उसके पश्चिम में पार्श्व पर्वत तथा उत्तर सुपार्श्व नामक पर्वत बतलाया गया है । इन चारों पर क्रमशः- कदम्ब, जम्बू, पिप्पल तथा वट के वृक्ष हैं जिनका विस्तार ग्यारह-ग्यारह सौ योजनों में है; अतएव ये सुमेरु पर्वत की पताका का काम करते हैं । जम्बू वृक्ष के जम्बू फल हाथी के समान बड़े-बड़े होते हैं, अतएव उस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप है।।१२-१३।। उन फलों के रस से निकलने वाली नदी जम्बू नदी और जम्बूनद है। सुमेरु पर्वत के पूर्व में भद्राश्ववर्ष है ओर पश्चिम में केतुमाल वर्ष है ।। १४ ।। उसके पूर्व में चैत्ररथ नामक वन है, दक्षिण में गन्धमादन पर्वत है । उसके पश्चिम में वैभ्राज तथा नन्दनवन हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ पर निम्नांकित सरोवर है- अरुणोद, महाभद्र, शीतोद, मान सरोवर तथा सिताम्भ । सुमेरु पर्वत के पूर्व ओर चक्र, मुञ्ज आदि के सराचल है । सुमेरु के दक्षिण ओर त्रिकूट आदि, पश्चिम दिशा में शिखिवास आदि तथा उत्तर दिशा में शंखकूट आदि पर्वत हैं । सुमेरु पर्वत के ऊपर ब्रह्मा की पुरी है ।। १४-१७ ।। ब्रह्मपुरी के चारों ओर इन्द्र आदि लोकपालों की नगरी चौदह हजार योजन में फैली हुयी है ।। १८ ।। विष्णु भगवान् के चरणों से निकलकर चन्द्रलोक को प्लावित करती हुयी स्वर्ग से गिरकर मेरुपर्वत से पूर्व भद्राश्व नामक पर्वत से एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर होती हुयी गङ्गा समुद्र पर्यन्त पहुँचती है ।। १८-१९ ।। उसी तरह से अलकनन्दा भी सुमेरु पर्वत के दक्षिण से भारत में आकर सात धाराओं में विभक्त होकर पश्चिम समुद्र में मिल जाती हैं ।। २० ।। पश्चिम में वह अब्धि, चक्षुष्, सौमयाब्धि, भद्र, उत्तरकुरु, आनील तथा निषध देशों में होती हुयी माल्यवान तथा गन्धमादन पर्वत पर आती है, जो आनील

केतुमालाश्च भद्राश्चाः कुरवस्तथा ॥ २२ ॥ पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादाशैलबाह्यतः । जठरो देवकूटश्च मर्यादापर्वतावुभौ ॥ २३ ॥ तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ । गन्धमादनकैलासौ पूर्ववच्चाऽऽयतावुभौ ॥ २४ ॥ अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ । निषधः पारियात्रश्च मर्यादापर्वतावुभौ ॥ २५ ॥ मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथा पूर्वे तथा स्थितौ । त्रिशृङ्गो रुधिरश्चैव उत्तरौ वर्षपर्वतौ ॥ २६ ॥ पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ । जाठराद्याश्च मर्यादाशैला मेरोश्चतुर्दिशम् ॥ २७ ॥ केशरादिषु याः श्रेण्यस्तासु सन्ति पुराणि हि । लक्ष्मीविष्ण्वाग्निसूर्यादिदेवानां मुनिसत्तम ॥ २८ ॥ भौमानां स्वर्गधर्माणां न पापास्तत्र यान्ति च । भद्राश्वेऽस्ति हयग्रीवो वराहः केतुमालके॥२९॥ भारते कूर्मरूपी च मत्स्यरूपः कुरुष्वपि । विश्वरूपेण सर्वत्र पूज्यते भगवान्हरिः ॥ ३० ॥ किं पुरुषाद्यष्टसु क्षुद्भीतिशोकादिकं न च । चतुर्विंशति साहस्रं प्रजा जीवन्त्यनामयाः ॥ ३१ ॥ कृतादिकल्पना नास्ति भौमान्यम्भांसि नाम्बुदाः । सर्वेष्वेतेषु वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचलाः॥३२॥ नद्यश्च शतशस्तेभ्यस्तीर्थभूताः प्रजज्ञिरे । भारते यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि वच्मि ते ॥ ३३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये भुवनकोशकथनं नाम अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

तीर्थमाहात्म्यम्

अग्निरुवाच– माहात्म्यं सर्वतीर्थानां वक्ष्ये यद्भुक्तिमुदित्तदम् । यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ॥ १ ॥ विद्यातपश्च कीर्तिश्च स

तथा निषध देशों में फैले हुए हैं ।। २१ ।। उन दोनों पर्वतों के बीच में कर्णिका रूप से सुमेरु पर्वत स्थित है । मर्यादा पर्वत के बाह्यभाग में स्थित भारत, केतुमाल, भद्राश्व एवं उत्तर कुरुवर्ष इस लोकपद्म के दल हैं । जठर एवं देवकूट ये दो मर्यादापर्वत हैं ।। २२-२३ ।। ये दोनों उत्तर एवं दक्षिण में आनील तथा निषध देश पर्यन्त फैले हुए हैं । गन्धमादन एवं कैलास पूर्व से पश्चिम तक पूर्व के ही समान अस्सी हजार योजन में समुद्र पर्यन्त फैले हुए हैं । निषध और पारियात्र ये दो मर्यादा पर्वत हैं ।। २४-२५ ।। ये दोनों मेरु पर्वत के पूर्व तथा पश्चिम दिशा में स्थित हैं । त्रिशृङ्ग तथा रुधिर ये दोनों उत्तर में वर्ष पर्वत के रूप में विद्यमान् हैं ।। २६ ।। ये दोनों पूर्व से पश्चिम सागर तक फैले हैं । सुमेरु पर्वत के चारों ओर जठर आदि मर्यादा शैल हैं।।२७।। हे मुनिश्रेष्ठ ! केसर आदि पर्वतों के शिखरों पर लक्ष्मी, विष्णु, अग्नि तथा सूर्य आदि देवताओं के नगर हैं ।। २८ ।। ये भौम होते हुए भी स्वर्गीय धर्मों से युक्त नगर हैं । इनमें पापी जीवों का प्रवेश नहीं होता है । भद्रश्व वर्ष में भगवान् विष्णु हयग्रीव रूप से, केतुमाला वर्ष में वराहरूप से, भारतवर्ष में कूर्मरूप से, तथा कुरुवर्ष में मत्स्य रूप से पूजे जाते हैं । विश्वरूप से भगवान् श्रीहरि सर्वत्र पूजे जाते हैं ।। २९-३०।। किं पुरुष आदि आठ वर्षों में भूख, भय तथा शोक आदि नहीं है। वहाँ की प्रजा चौबीस हजार वर्षों तक निरोग रहकर जीती है ।। ३१ ।। वहाँ पर सत्ययुग आदि की कल्पना नहीं है और न वहाँ वर्षा के जल हेते हैं । वहाँ जल भूमि से ही उत्पन्न होता है । इन सभी वर्षों में सात-सात कुलाचल हैं ।। ३२ ।। हजारों नदियाँ हैं और उनसे पवित्र जल उत्पन्न होते हैं ।। भारतवर्ष में जो तीर्थ हैं, उन सबों का वर्णन तुम से करता हूँ ।। ३३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का भुवनकोश वर्णन नामक एक सौ आठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०८ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं तीर्थों का माहात्म्य बतलाता हूँ जो भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है । जिसके दोनों हाथ, दोनों पैर तथा मन सुसंयत हैं ।। १ ।। जो विद्या, तपस्या

तीर्थफलमश्नुते । प्रतिग्रहादुपावृत्तो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ॥ २ ॥ निष्पापस्तीर्थयात्री तु सर्वयज्ञफलं लभेत् । अनुपोष्य त्रिरात्राणि तीर्थान्यनभिगम्य च ॥ ३ ॥ अदत्त्वा काञ्चनं गाश्च दरिद्रो नाम जायते । तीर्थाभिगमने तत्स्याद्यद्यज्ञेनाऽऽप्यते फलम् ॥ ४ ॥ पुष्करं परमं तीर्थं सांनिध्यं हि त्रिसंध्यकम् । दशकोटिसहस्राणि तीर्थानां विप्र पुष्करे ॥ ५ ॥ ब्रह्मा सह सुरैरास्ते मुनयः सर्वमिच्छवः । देवाः प्राप्ताः सिद्धिमत्र स्नात्वा पितृसुरार्चकाः ॥ ६ ॥ अश्वमेधफलं प्राप्य ब्रह्मलोकं प्रयान्ति ते । कार्तिक्यामन्नदानाच्च निर्मलो ब्रह्मलोकभाक् ॥ ७ ॥ पुष्करे दुष्करं गन्तुं पुष्करे दुष्करं तपः । दुष्करं पुष्करे दानं वस्तुं चैव सुदुष्करम् ॥ ८ ॥ तत्र वासाज्जपाच्छ्राद्धात्कुलानां शतमुद्धरेत् । जम्बूमार्गं च तत्रैव तीर्थं तण्डुलिकाश्रमम्॥९॥ कण्वाश्रमं कोटितीर्थं नर्मदा चार्बुदं परम् । तीर्थं चर्मण्वती सिन्धुः सोमनाथः प्रभासकम् ॥ १० ॥ सरस्वत्यब्धिसङ्गश्च सागरं तीर्थमुत्तमम् । पिण्डारकं द्वारका च गोमती सर्वसिद्धिदा ॥ ११ ॥ भूमितीर्थं ब्रह्मतुङ्गं तीर्थं पञ्चनदं परम् । भीमतीर्थं गिरीन्द्रश्च देविका पापनाशिनी ॥ १२ ॥ तीर्थं विनशनं पुण्यं नागोद्भेदमघार्दनम् । तीर्थं कुमारकोटिश्च सर्वदानीरितानि च ॥ १३ ॥ कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम् । य एवं सततं ब्रूयात्सोऽमलः प्राप्नुयाद्दिवम् ॥ १४ ॥ तत्र विष्ण्वादयो देवास्तत्र वासाद्धरिं ब्रजेत् । सरस्वत्यां संनिहित्यां स्नानकृद्ब्रह्मलोकभाक् ॥ १५॥ पांशवोऽपि कुरुक्षेत्रे नयन्ति परमां गतिम् । धर्मतीर्थं सुवर्णाख्यं गङ्गाद्वारमनुत्तमम् ॥ १६ ॥ तीर्थं कनखलं पुण्यं भद्रकर्णह्रदं तथा । गङ्गासरस्वतीसङ्गं ब्रह्मावर्तमघार्दनम् ॥१७॥ भृगुतुङ्गं च कुब्जाम्रं गङ्गोद्भेदमघान्तकम् । वाराणसी वरं तीर्थमविमुक्तमनुत्तमम् ॥ १८ ॥ कपालमोचनं तीर्थं तीर्थराजं

तथा यशस्वी है वही तीर्थों का फल प्राप्त करता है । जो प्रतिग्रह नहीं लेता है, थोड़ा भोजन करता है तथा जितेन्द्रिय होता है, वही तीर्थ का फल प्राप्त करता है ।। २ ।। तीर्थयात्रा करने वाला पुरुष सभी यज्ञों का फल प्राप्त कर लेता है । तीन दिन तक उपवास किए विना तीर्थों में गए विना, सुवर्ण दान दिए विना मनुष्य अगले जन्म में दरिद्र होता है । तीर्थों में जाने से वही फल प्राप्त होता है जो फल यज्ञ से प्राप्त होता है ।। ३-४ ।। हे विप्र वसिष्ठ ! पुष्कर सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है । वहाँ तीनों सन्ध्याओं में दस हजार कोटि तीर्थों का सन्निधान बना रहता है ।। ५ ।। वहाँ पर देवताओं के साथ ब्रह्मा जीं निवास करते हैं । यहाँ पर सब कुछ चाहने वाले देवता तथा मुनियों ने सिद्धि प्राप्त की । स्नान करके पितरों तथा देवताओं की पूजा करने वाले लोग अयश्वमेधयज्ञ करने का फल प्राप्त करके ब्रह्मलोक को प्राप्त करते है। ।। ६-७ ।। पुष्कर जाना कठिन है, पुष्कर में तपस्या करना कठिन है, पुष्कर में दान करना कठिन है तथा पुष्कर में निवास करना कठिन है ।। ८ ।। पुष्कर में निवास, जप एवं श्राद्ध करके मनुष्य अपनी सौ पीढ़ियों का उद्धार कर लेता है । वहाँ पर जम्बूमार्ग तथा तण्डुलिकाश्रम नामक तीर्थ हैं ।। ९ ।। कण्वाश्रम, कोटितीर्थ, नर्मदा तथा अर्बूद (आबू) ये श्रेष्ठ तीर्थ हैं । चर्मण्वती, सोमनाथ, प्रभास क्षेत्र, सरस्वती समुद्र सङ्गम, सागर तीर्थ, ये उत्तम तीर्थ हैं । पिण्डकारक क्षेत्र, द्वारका एवं गोमती ये सभी प्रकार की सिद्धि प्रदान करने वाले तीर्थ हैं ।। १०-११ ।। भूमितीर्थ, ब्रह्मतुङ्गतीर्थ, तथा पञ्चनद, भीम तीर्थ, गिरीन्द्र तीर्थ, पापों को विनष्ट करने वाली देविका नदी, पवित्र विनशन तीर्थ, पापविनाशक नागोद्भेद तीर्थ तथा कुमार कोटि तीर्थ ये समस्त अभिलषित अर्थों को प्रदान करने वाले तीर्थ हैं ।। १२-१३ ।। मैं कुरुक्षेत्र जाऊँगा और वहाँ निवास करूँगा; जो इस प्रकार से सदा कहा करता है, वह सभी पापों से छुटकारा पाकर स्वर्गलोक चला जाता है ।। १४ ।। वहाँ पर विष्णु आदि देवता रहते हैं, वहाँ पर निवास करने वाला पुरुष श्रीहरि को प्राप्त करता है । उसके सन्निकट में रहने वाली सरस्वती नदी में स्नान करने वाली मनुष्य ब्रह्म लोक जाता है ।। १५ ।। कुरुक्षेत्र की धूलि भी परमगति की प्राप्ति करा देती है, धर्मतीर्थ, सुवर्णतीर्थ, तथा उत्तम गङ्गाद्वार (हरिद्वार) पवित्र, कनखल तीर्थ, तथा भद्रकर्ण ह्रद, गङ्गा तथा सरस्वती नदी का सङ्गम तथा पाप विनाशक ब्रह्मावर्त, ये उत्तमतीर्थ हैं ।। १६-१७ ।। भृगुतुङ्ग कुब्जाम्र तथा गङ्गोद्भेद ये पापों को विनष्ट करने वाले हैं । वाराणसी परमतीर्थ है, यह अविमुक्तक्षेत्र है ।।१८।। कपालमोचनतीर्थ तीर्थराज प्रयाग, गोमती तथा गङ्गा का सङ्गम स्थल, ये सभी उत्तम तीर्थ हैं । गङ्गा चाहे कहीं भी हो स्वर्ग

प्रयागकम् । गोमतीगङ्गयोः सङ्गं गङ्गा सर्वत्र नाकदा ॥ १९ ॥ तीर्थं राजगृहं पुण्यं शालग्राममघान्तकम् । बटेशं वामनं तीर्थं कालिकासङ्गमुत्तमम्॥२०॥ लौहित्यं करतोयाख्यं शोणं चाथर्षभं परम् । श्रीपर्वतं कोल्लगिरिः सह्याद्रिर्मलयो गिरिः ॥ २१ ॥ गोदावरी तुङ्गभद्रा कावेरी वरदा नदी । तापी पयोष्णी रेवा च दण्डकारण्यमुत्तमम् ॥ २२ ॥ कालंजरं मुञ्जवटं तीर्थं शूर्पारकं परम् । मन्दाकिनी चित्रकूटं शृङ्गवेरपुरं परम् ॥ २३ ॥ अवन्ती परमं तीर्थमयोध्या पापनाशिनी । नैमिषं परमं तीर्थं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । ॥ २४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये तीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

गङ्गामाहात्म्यम्

गङ्गामाहात्म्यमाख्यास्ये सेव्या सा भुक्तिमुक्तिदा । येषां मध्ये याति गङ्गा ते देशाः पावना वराः ॥ १ ॥ गतिर्गङ्गा तू भूतानां गतिमन्वेषतां सदा । गङ्गा तारयते चोभौ वंशौ नित्यं हि सेविता ॥ २ ॥ चान्द्रायणसहस्राच्च गङ्गाम्भः पानमुत्तमम् । गङ्गा मासं तु संसेव्य सर्वयज्ञफलं लभेत्॥३॥ सकलाघहरी देवी स्वर्गलोकप्रदायिनी । यावदस्थि च गङ्गायां तावत् स्वर्गे स तिष्ठति ॥ ४ ॥ अन्धादयस्तु तां सेव्य देवैर्गच्छन्ति तुल्यताम् । गङ्गातीर्थसमुद्भूतमृद्धारी सोऽघहाऽर्कवत् ॥ ५ ॥ दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गङ्गेतिकीर्तनात् । पुनाति पुण्यपुरुषाञ्शतशोऽथ सहस्रशः॥६॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गङ्गामाहात्म्यवर्णनं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११०॥

प्रदान करती है।।१९।। राजगृह तीर्थ तथा पाप प्रणाशक शालग्राम तीर्थ वटेश तीर्थ, वामनतीर्थ, उत्तमकालिक सङ्गतीर्थ, ये उत्तम तीर्थ हैं।।२०।। लौहित्यतीर्थ, करतोया नदी, शोणभद्र, तथा ऋषभ तीर्थ श्रेष्ठ हैं । श्रीपर्वत, कोलाचल, सहस्त्र्यादि तथा मलयादि गोदावरी, तुङ्गभद्रा, वरदायिनी कावेरी, तापी, पयोष्णी, रेवा (नर्मदा) उत्तम दण्डकारण्य, कालञ्जर तीर्थ, मुञ्जवट, शूर्पारक, मन्दाकिनी, चित्रकूट तथा शृङ्गवेरपुर ये श्रेष्ठ तीर्थ हैं।।२१-२३।। अवन्तिका श्रेष्ठ तीर्थ हैं, अयोध्या पापों को विनष्ट करने वाली है, श्रेष्ठ तीर्थ नैमिषारण्य भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है।।२४।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का तीर्थमाहात्म्य वर्णन नामक एक सौ नवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०९ ॥

अग्निदेव ने कहा— अब मैं गङ्गा के माहात्मय का वर्णन करता हूँ । सेवन करने से गङ्गा भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली हैं । जिन देशों से होकर गङ्गा आती हैं, वे देश उत्तम हैं।।१।। गति चाहने वाले जीवों के लिए गङ्गा गति स्वरूपा हैं । जो नित्य ही गङ्गा का सेवन करता है, वह अपने दोनों वंशों को तार देता है ।। २ ।। हजारों चन्द्रायण व्रत करने की अपेक्षा गङ्गाजल का पान करना उत्तम है । व्यक्ति एक मास तक गङ्गा का सेवन करके समस्त यज्ञों के फल को प्राप्त कर लेता है ।। ३ ।। गङ्गादेवी सभी पापों को विनष्ट करने वाली तथा स्वर्गलोक प्रदान करने वाली हैं । मनुष्य की हड्डी जब तक गङ्गा में पड़ी रहती है तब तक वह मनुष्य स्वर्ग में निवास करता है ।। ४ ।। अन्धे आदि मनुष्य गङ्गा का सेवन करके देवताओं के तुल्य हो जाते है । गङ्गातीर्थ से निकली हुई मिट्टी को धारण करने वाला मनुष्य सूर्य के समान पापों को नष्ट करने वाला होता है । गङ्गा का दर्शन, स्पर्श, जलपान तथा गङ्गा इस नाम का उच्चारण करने वाला मनुष्य अपने सैकड़ों, हजारों पीढ़ियों को पवित्र कर देता है ।। ५-६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का गङ्गामाहात्म्य वर्णन नामक एक सौ दसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११० ॥

अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

प्रयाग-माहात्म्यम्

अग्निरुवाच– **वक्ष्ये प्रयागमाहात्म्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं परम् । प्रयागे ब्रह्मविष्ण्वाद्या देवा मुनिवराः स्थिताः ॥ १ ॥ सरितःसागराः सिद्धा गन्धर्वाप्सरसस्तथा । तत्र त्रीण्यग्निकुण्डानि तेषां मध्ये तु जाह्नवी ॥ २ ॥ वेगेन समतिक्रान्ता सर्वतीर्थपुरस्कृता । तपनस्य सुता तत्र त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥ ३ ॥ गङ्गायमुनयोर्मध्यं पृथिव्या जघनं स्मृतम् । प्रयागं जघनस्यान्तरुपस्थमृषयो विदुः ॥ ४ ॥ प्रयागं सप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरावुभौ। तीर्थं भोगवती चैव वेदी प्रोक्ता प्रजापतेः ॥ ५ ॥ तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्तिमन्तः प्रयागके । स्तवनादस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि ॥ ६ ॥ मृत्तिकालम्भनाद्वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते । प्रयागे सङ्गमे दानं श्राद्धं जप्यादि चाक्षयम् ॥ ७ ॥ न वेदवचनाद्विप्र न लोकवचनादपि । मतिरुत्क्रमणीयान्ते प्रयागे मरणं प्रति ॥ ८ ॥ दशतीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथाऽपराः । तेषां सांनिध्यमत्रैव प्रयागं परमं ततः ॥ ९ ॥ वासुकेर्भोगवत्यत्र हंसप्रपतनं परम् । गवां कोटिप्रदानाद्यत्र्यहं स्नानस्य तत्फलम् ॥ १० ॥ प्रयागे माघमासे तु एवमाहुर्मनीषिणः । सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा॥११॥ गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे । अत्र दानाद्दिवं यान्ति राजेन्द्रो जायतेऽत्र च ॥ १२ ॥ वटमूले सङ्गमादौ मृतो विष्णुपुरीं व्रजेत्। उर्वशीपुलिनं रम्यं तीर्थं सन्ध्यावटस्तथा ॥ १३ ॥ कोटितीर्थं चाश्वमेधं गङ्गायमुनमुत्तमम् । मानसं रजसा हीनं तीर्थं वासरकं परम् ॥ १४ ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रयागमाहात्म्यवर्णनं नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं सर्वोत्तम भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले प्रयाग का माहात्म्य बतलाता हूँ । प्रयाग में ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तथा श्रेष्ठ मुनि निवास करते हैं ।। १ ।। नदियाँ समुद्र, सिद्ध, गन्धर्व तथा अप्सराएँ निवास करती हैं प्रयाग में तीन अग्निकुण्ड हैं, उनके बीच में सभी तीर्थों को साथ लिए गङ्गा बड़े वेग से प्रवाहित होती है । वहाँ पर त्रैलोक्य विख्यात सूर्य कन्या यमुना हैं ।। २-३ ।। गङ्गा तथा यमुना को मध्यभाग पृथिवी का जंघा कहा गया है । ऋषियों ने प्रयाग को जघन (जंघों) का अन्तिम भाग उपस्थ माना है ।। ४ ।। प्रतिष्ठानपुरी (झूसी) के साथ प्रयाग, कम्बल तथा अश्वतर ये दोनों तथा भोगवती तीर्थ ये सबके सब ब्रह्मा के यज्ञ की वेदी कहे गए हैं ।। ५ ।। प्रयाग मे वेद तथा यज्ञ मूर्तिमान रूप से रहते हैं । इस तीर्थ की स्तुति करने तथा नाम संकीर्तन करने से भी तथा इसकी मिट्टी को शरीर में लगाने से भी मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है । प्रयाग के संगम स्थल पर, दान, श्राद्ध तथा जप आदि अक्षय होते हैं ।। ६-७ ।। हे ब्रह्मन् ! वसिष्ठ ! वेद अथवा लोक किसी के भी कहने से प्रयाग तीर्थ के भीतर में शरीर त्याग करने का विचार नहीं त्यागना चाहिए ।। ८ ।। प्रयाग में साठ करोड़ दस हजार तीर्थों का निवास है अतएव प्रयाग सबों से महान तीर्थ है ।। ९ ।। यहाँ पर वासुकि की भोगवती तथा हंस प्रपतन है । करोड़ गायों के दान करने से जो फल प्राप्त होता है वही फल यहाँ पर तीन दिन स्नान करने से होता है ।। १० ।। मनीषियों का कहना है कि माघ मास में गङ्गा सुलभ होती है किन्तु तीन स्थानों पर गङ्गा का मिलना दुर्लभ होता है- हरिद्वार, प्रयाग तथा गङ्गा एवं सागर के संगम स्थल पर । इन स्थानों पर दान करके मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त करता है और पुनः इस लोक में वह राजाओं का भी राजा होता है ।। ११-१२ ।। अक्षयवट के मूल में तथा सङ्गम आदि स्थानों पर शरीर त्यागने पर जीव विष्णुलोक में जाता है । प्रयाग के उर्वशी पुलिन, सन्ध्यावट, कोटितीर्थ, दशाश्वमेघ घाट, उत्तम गङ्गा एवं यमुना का संगम स्थल, जो रजोगुण रहित मानस तीर्थ तथा वासरक तीर्थ, ये सभी तीर्थ मनोहर एवं उत्तम हैं ।। १३-१४।।

इस तरह से आदिमहापुराण, अग्निपुराण का प्रयागमाहात्म्य वर्णन नामक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १११ ॥

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

वाराणसीमाहात्मयम्

अग्निरुवाच– **वाराणसी परं तीर्थं गौर्यै प्राह महेश्वरः । भुक्तिमुक्तिप्रदं पुण्यं वसतां गृणतां हरिम् ॥ १ ॥ रुद्र उवाच- गौरि क्षेत्रं न मुक्तं वै अविमुक्तं ततः स्मृतम्। जप्तं तप्तं हुतं दत्तमविमुक्ते किलाक्षयम् ॥ २ ॥ अश्मना चरणौ हत्वा वसेत्काशीं नहि त्यजेत् । हरिश्चन्द्रं परं गुह्यं गुह्यमाम्रातकेश्वरम् ॥ ३ ॥ जप्येश्वरं परं गुह्यं गुह्यं श्रीपर्वतं तथा । महालयं परं गुह्यं भूमिचण्डेश्वरं तथा ॥ ४ ॥ केदारं परमं गुह्यमष्टौ सन्त्यविमुक्तके। गुह्यानां परमं गुह्यमविमुक्तं परं मम ॥ ५ ॥ द्वियोजनं तु पूर्वं स्याद्योजनार्धं तदन्यथा । वरणा च नदी नासी मध्ये वाराणसी तयोः॥६॥ अत्र स्नानं जपो होमो मरणं देवपूजनम् । श्राद्धं दानं निवासश्च यद्यत्स्याद्भुक्तिमुक्तिदम् ॥ ७ ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वाराणसीमाहात्म्यकथनं नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

नर्मदामाहात्मयम्

अग्निरुवाच– **नर्मदादिकमाहात्म्यं वक्ष्येऽहं नर्मदां पराम् । सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनाद्वारि नार्मदम् ॥ १ ॥ विस्तराद्योजनशतं योजनद्वयमायतम्। षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथाऽपराः ॥ २ ॥ पर्वतस्य समन्तात्तु तिष्ठन्त्यमरकण्टके । कावेरीसङ्गमं पुण्यं श्रीपर्वतमतः शृणु ॥ ३ ॥ गौरी श्रीरूपिणी तेपे तपस्तामब्रवीद्धरिः। अवाप्स्यसि त्वमध्यात्म नाम्ना श्रीपर्वतस्तव ॥ ४ ॥ समन्ताद्योजनशतं महापुण्यं भविष्यति । अत्र दानं ततो**

अग्निदेव ने कहा– गौरी से भी शिवजी ने कहा कि वाराणसी ही उत्तम तीर्थ है । जो लोग यहाँ निवास करते हैं तथा श्रीहरि का नाम स्मरण करते हैं, उनके लिए यह पवित्र तथा भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला है ।। १ ।। रुद्र ने कहा- गौरि ! मैं इस क्षेत्र को मैं कभी नहीं छोड़ता हूँ अतएव इसे अविमुक्त क्षेत्र कहते हैं । इस अविमुक्त क्षेत्र में किए गए जप, तप, हवन तथा दान अक्षय होते हैं ।। २ ।। पत्थर से दोनों पैरों को तोड़कर काशी में बैठा रहे, उसे कभी छोड़े नहीं । हरिश्चन्द्र, आम्रातकेश्वर, जप्येश्वर, श्री पर्वत, महालय, भृगु, चण्डेश्वर और केदार तीर्थ ये आठ तीर्थ अविमुक्त क्षेत्र के परम गोपनीय हैं । सभी गोप्यों में परमगोप्य मेरा अविमुक्त क्षेत्र है ।। ३-५ ।। वह दो योजन लम्बा और आधा योजन चौड़ा है । 'वरण' और 'नसी' इन दो नदियों के बीच में वाराणसी नगरी है।।६।। यहाँ पर रहकर स्नान, जप,होम, मृत्यु, देवपूजन, श्राद्ध, दान तथा निवास जो कुछ भी किया जाय वह भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला होता है।।७।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का वाराणसी माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ बारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११२ ॥

अग्नि ने कहा– अब मैं नर्मदा आदि का माहात्म्य बतलाता हूँ । गङ्गा का जल तो स्पर्श से पवित्र कर देता है किन्तु नर्मदा का जल तो देखने मात्र से पवित्र कर देता है ।। १ ।। नर्मदा तीर्थ सौ योजन लम्बा तथा दो योजन चौड़ा है । यहाँ पर साठ करोड़ तथा साठ हजार तीर्थ निवास करते हैं ।। २ ।। ये सभी तीर्थ अमरकण्टक पर्वत की चारों ओर निवास करते हैं । यहाँ पर कावेरी संगम परम पवित्र है । अब श्री पर्वत का वर्णन सुनो ।। २-३ ।। एक बार श्रीदेवी का रूप धारण करके यहाँ पर गौरी ने तपस्या की तो उनसे भगवान् श्रीहरि ने कहा- देवि! तुम

जप्यं श्राद्धं सर्वमथाक्षयम् ॥ ५ ॥ मरणं शिवलोकाय सर्वदं तीर्थमुत्तमम् । हरोऽत्र क्रीडते देव्या हिरण्यकशिपुस्तथा ॥ ६ ॥ तपस्तप्त्वा बली चाभून्मुनयः सिद्धिमाप्नुवन् ॥ ७ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नर्मदामाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

गयामाहात्म्यम्

अग्निरुवाच– **गयामाहात्म्यमाख्यास्ये गया तीर्थोत्तमोत्तमम् । गयासुरस्तपस्तेपे तत्तपस्तापिभिः सुरैः ॥ १ ॥ उक्तः क्षीराब्धिगो विष्णुः पालयास्मान् गयासुरात्। तथेत्युक्त्वा हरिर्दैत्यं वरं ब्रूहीति चाब्रवीत् ॥ २ ॥ दैत्योऽब्रवीत्पवित्रोऽहं भवेयं सर्वतीर्थतः । तथेत्युक्त्वा गतो विष्णुर्दैत्यं दृष्ट्वा नवा हरिम् ॥ ३ ॥ गताः शून्या मही स्वर्गे देवा ब्रह्मादयः सुराः । गता ऊचुर्हरिं देवाः शून्या भूस्त्रिदिवं हरे ॥ ४ ॥ दैत्यस्य दर्शनादेव ब्रह्माणं चाब्रवीद्धरिः । यागार्थं दैत्यदेहं त्वं प्रार्थय त्रिदशैः सह ॥ ५ ॥ तच्छ्रुत्वा ससुरो ब्रह्मा गयासुरमथाब्रवीत् । अतिथिः प्रार्थयामि त्वां देहं यागाय पावनम् ॥ ६ ॥ गयासुरस्तथेत्युक्त्वाऽपतत्तस्य शिरस्यथ । यागं चकार चलिते देहे पूर्णाहुतिं विभुः ॥ ७ ॥ पुनर्ब्रह्माऽब्रवीद्विष्णुं पूर्णाकालेऽसुरोऽचलत्। विष्णुधर्ममथाऽऽहूय प्राह देवमयीं शिलाम् ॥ ८॥ धारयस्व सुराः सर्वे तस्यामुपरि सन्तु ते । गदाधरो मदीयाऽथ मूर्तिः स्थास्यति साऽमरैः ॥ ९ ॥ धर्मः शिलां देवमयीं तच्छ्रुत्वाऽधारयत्पराम् । या धर्माद् धर्मवत्यां च जाता धर्मव्रता सुता ॥१०॥ मरीचिर्ब्रह्मणः पुत्रस्तामुवाह तपोन्विताम् । यथा**

अध्यात्म ज्ञान प्राप्त करोगी । यह पर्वत तुम्हारे नाम पर श्रीपर्वत कहलायेगा । इसके चारों ओर सौ योजन अत्यन्त पुण्यवान क्षेत्र होगा। यहाँपर किया गया दान, जप तथा श्राद्ध सब कुछ अक्षय होगा ।। ४-५ ।। यहाँ पर मरने वाले को शिवलोक की प्राप्ति होगी तथा यह उत्तम तीर्थ सब कुछ प्रदान करने वाला होगा । यहाँ पर भगवान् शंकर सदा पार्वती के साथ क्रीड़ा करते हैं, यहीं पर हिरण्यकशिपु तपस्या करके बलवान् हो गया तथा मुनियों ने सिद्धि प्राप्त की ।। ६-७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का नर्मदामाहात्म्य वर्णन नामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११३ ॥

अग्निदेव ने कहा– मैं गया का माहात्म्य वर्णन कर रहा हूँ । गया सभी उत्तम तीर्थों में उत्तम है । गयासुर ने तपस्या की उससे संतप्त होकर देवताओं ने क्षीरसागर में शयन करने वाले भगवान् विष्णु के पास जाकर प्रार्थना की कि आप हमारी गयासुर से रक्षा करें । भगवान् ने कहा मैं ऐसा ही करूँगा । श्रीहरि ने दैत्य से कहा कि तुम वर माँगो ।। १-२ ।। दैत्य ने कहा कि मैं सभी तीर्थों से अधिक पवित्र हो जाऊँ । भगवान् ने कहा- ऐसा ही हो । यह कहकर भगवान् चले गए । मनुष्यों ने जब दैत्य को देखा तो वे श्रीहरि के पास गये; पृथिवी खाली हो गयी स्वर्ग में ब्रह्मा इत्यादि देवता भी दैत्य को देखकर श्रीहरि के पास जाकर बोले- श्रीहरे ! पृथिवी और स्वर्गलोक खाली हो गए हैं ।। ४ ।। श्रीहरि ने ब्रह्माजी से कहा- तुम देवताओं के साथ जाकर दैत्य से यज्ञ भूमि बनाने के लिए उसका देह माँगो ।। ५ ।। यह सुनकर ब्रह्माजी देवताओं के साथ गयासुर से बोले- मैं अतिथि हूँ । तुम से तुम्हारा पवित्र शरीर याग करने के लिए माँग रहा हूँ । गयासुर ने कहा- अच्छी बात है । वह पृथिवी पर लेट गया । ब्रह्मा ने उसके सिर के ऊपर याग किया किन्तु पूर्णाहुति के समय उसका शरीर चञ्चल हो गया ।। ७ ।। इस पर ब्रह्मा जी ने विष्णु से कहा कि पूर्णाहुति के समय तो असुर चञ्चल हो गया । इस पर भगवान् ने धर्म को बुलाकर कहा- तुम असुर के शरीर पर धर्ममयी शिला रख दो उसके ऊपर सभी देवता हो जायँ।

हरिः श्रिया रेमे गौर्या शम्भुस्तथा तया ॥ ११ ॥ कुशपुष्पाद्यरण्याच्च आनीयातिश्रमान्वितः । भुक्त्वा धर्मव्रतां प्राह पादसवाहनं कुरु ॥ १२ ॥ विश्रान्तस्य मुनेः पादौ तथेत्युक्त्वा प्रियाऽकरोत् । एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा मुनौ सुप्ते समागतः ॥ १३ ॥ धर्मव्रताऽचिन्तयच्च किं ब्रह्माणं समर्चये । पादसंवाहनं कुर्वे ब्रह्मा पूज्यो गुरोर्गुरुः ॥ १४ ॥ विचिन्त्य पूजयामास ब्रह्माणं चार्हणादिभिः । मरीचिस्तामपश्यत् स शशापोक्तिव्यतिक्रमात्॥१५॥ शिला भविष्यसि क्रोधाद्धर्मव्रताऽब्रवीच्च तम् । पादाभ्यङ्गं परित्यज्य त्वद्गुरुः पूजितो मया ॥ १६ ॥ अदोषाऽहं यतस्त्वं हि शापं प्राप्स्यसि शंकरात् । धर्मव्रता पृथक्शापं धारयित्वाऽग्निमध्यगात् ॥ १७॥ तपश्चचार वर्षाणां सहस्राण्ययुतानि च । ततो विष्णवादयो देवा वरं ब्रूहीति चाब्रुवन् ॥ १८॥ धर्मव्रताऽब्रवीद्देवाञ्शापं निर्वर्तयन्तु मे । देवा ऊचुः- दत्तो मरीचिना शापो भविष्यति न चान्यथा । शिला पवित्रा देवाङ्घ्रिलांक्षिता त्वं भविष्यसि ॥ १९ ॥ देवव्रता देवशिला सर्वदेवादिरूपिणी । सर्वदेवमयी पुण्या नैश्चलायासुरस्य हि ॥ २० ॥ देवव्रतोवाच- यदि तुष्टाःस्थ मे सर्वे मयि तिष्ठन्तु सर्वदा । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्राद्या गौरी लक्ष्मीमुखाः सुराः ॥ २१ ॥ अग्निरुवाच- देवव्रतावचः श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा दिवं गताः । सा धर्मेणासुरस्यास्य धृता देवमयी शिला ॥ २२ ॥ सशिलश्चलितो दैत्यः स्थिता रुद्रादयस्ततः । सदेवश्चलितो दैत्यस्ततो देवैः प्रसादितः ॥ २३ ॥ क्षीराब्धिगो हरिः प्रादात्स्वमूर्तिं श्रीगदाधराम्। गच्छन्तु भोः स्वयं यास्ये मूर्त्या वै देवगम्यया ॥ २४ ॥ स्थितो गदाधरो देवो व्यक्ताव्यक्तोभयात्मकः। नैश्चल्यार्थं स्वयं देवः स्थित आदिगदाधरः ॥ २५ ॥ गदो नामासुरो रौद्रः स हतो विष्णुना पुरा । तदस्थिनिर्मिता चाऽऽद्या गदा या विश्वकर्मणा॥२६॥

देवताओं के साथ मेरी गदाधर मूर्ति भी रहेगी ।। ८-९ ।। यह सुनकर धर्म ने उसके ऊपर देवमयी शिला रख दी । वही धर्म की पत्नी धर्मवती हुयी । उससे एक कन्या उत्पन्न हुयी, धर्मव्रता।।१०।। ब्रह्मा के पुत्र मरीचि ने उस तपस्विनी धर्मव्रता से शादी की । जिस तरह श्रीहरि श्रीदेवी के साथ रमण करते हैं तथा शम्भु गौरी के साथ रमण करते हैं,उसी तरह से महर्षि मरीचि ने उसके साथ रमण किया ।। ११ ।। अरण्य से कुश तथा पुष्प आदि लाकर अत्यन्त श्रान्त महर्षि ने धर्मव्रता से पैर दबाने के लिए कहा ।। १२ ।। अच्छी बात है,यह कहकर धर्मव्रता मुनि का पैर दबाने लगी। जब मुनि सो गए तो उसी के बीच ब्रह्मा जी आए ।। १३ ।। धर्मव्रता ने कहा अब मैं ब्रह्मा जी की पूजा कैसे करूँ ? यह विचार करके उसने ब्रह्मा जी की पूजा पूजन सामग्रियों से की। मरीचि महर्षि ने उसे देखकर अपनी आज्ञा का उल्लघन समझकर उसे शाप दिया ।। १५ ।। उन्होंने क्रोधपूर्वक कहा- तुम शिला हो जाओगी । धर्मव्रता ने कहा- पैर दबाना छोड़कर मैंने आपके पिता जी की पूजा की है ।। १६ ।। मैं निर्दोष हूँ फिर भी आपने मुझे शाप दिया है । अतएव आपको शिवजी का शाप मिलेगा । धर्मव्रता ने शाप को अलग रख दिया और अग्नि के भीतर प्रवेश करके दस हजार वर्ष पर्यन्त उसने तपस्या की । इसके पश्चात् विष्णु आदि देवताओं ने कहा- वरदान माँगो । धर्मव्रता ने कहा आप लोग मेरा शाप दूर कर दें ।।१७-१८।। **देवताओं ने कहा–** मरीचि महर्षि का दिया हुआ शाप अन्यथा नहीं होगा, तुम देवताओं के चरणचिह्नों से चिह्नित पवित्र शिला होओगी । देवव्रता तुम सर्वदेवमयी पवित्र देवशिला होओगी जिससे कि गयासुर का शरीर निश्चल रहे ।। १९-२० ।। **देवव्रत ने कहा–** यदि आप सभी प्रसन्न हैं तो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, गौरी, लक्ष्मी आदि सभी देवता मेरे ऊपर निवास करें ।। २१ ।। **अग्नि ने कहा–** धर्मव्रता की बात सुनकर **देवताओं ने कहा–** ऐसा ही होगा, और वे स्वर्गलोक चले गए । उस देवमयी शिला को, धर्म ने असुर के शरीर पर रख दिया ।। २२ ।। उस शिला के साथ दैत्य चञ्चल हो उठा, तब रुद्र आदि देवता उसके ऊपर चढ़ गए । देवताओं के साथ भी वह दैत्य चञ्चल हो गया । तब देवताओं ने श्री भगवान् को प्रसन्न किया । क्षीरशायी श्रीहरि ने अपनी गदाधारण करने वाली मूर्ति को दिया । देवताओं ! आप लोग जायँ मैं देवताओं के साथ जाने वाली अपनी मूर्ति के साथ जाऊँगा ।। २३-२४ ।। व्यक्तस्वरूप तथा अव्यक्त स्वरूप दोनों प्रकार के स्वरूप वाले आदिगदाधर श्रीभगवान् उसके ऊपर बैठ गए, जिससे कि दैत्य का शरीर स्थिर हो जाय ।। २५ ।। पहले गद नामक एक भयंकर असुर को भगवान् विष्णु

आद्यया गदया हेतिप्रमुखा राक्षसा हताः । गदाधरेण देवेन तस्मादादिगदाधरः ॥ २७ ॥ देवमय्यां शिलायां च स्थिते चाऽऽदिगदाधरे । गयासुरे निश्चलेऽथ ब्रह्मा पूर्णाहुतिं ददौ ॥ २८ ॥ गयासुरोऽब्रवीद्देवान्किमर्थं वञ्चितो ह्यहम् । विष्णूर्वचनमात्रेण किं न स्यां निश्चलो ह्यहम् ॥ २९ ॥ आक्रान्तो यद्यहं देवा दातुमर्हत मे वरम् ॥ ३० ॥ देवा ऊचुः- तीर्थस्य करणे यत्त्वमस्माभिर्निश्चलीकृतः । विष्णोः शम्भोर्ब्रह्मणश्च क्षेत्रं तव भविष्यति ॥ ३१ ॥ प्रसिद्धं सर्वतीर्थेभ्यः पित्रादेर्ब्रह्मलोकदम् । इत्युक्त्वा ते स्थिता देवा देव्यस्तीर्थादयः स्थिताः ॥ ३२॥ यागं कृत्वा ददौ ब्रह्मा ऋत्विग्भ्यो दक्षिणास्तदा । पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं पञ्चाशत्पञ्च चाऽऽर्पयत् ॥ ३३ ॥ ग्रामान्स्वर्णगिरीन्कृत्वा नदीर्दुग्धमधुश्रवाः। सरोवराणि दध्याज्यैर्बहूनन्नादिपर्वतान् ॥ ३४ ॥ कामधेनुं कल्पतरुं स्वर्णरूप्यगृहाणि च । न याचयन्तु विप्रेन्द्रा अल्पानुक्त्वा ददौ प्रभुः ॥ ३५॥ धर्मयागे प्रलोभात्तु प्रतिगृह्य धनादिकम् । स्थिता यदा गयायां ते शप्तास्ते ब्रह्मणा तदा ॥ ३६ ॥ विद्या विवर्जिता यूयं तृष्णायुक्ता भविष्यथ । दुग्धादिवर्जिता नद्यः शैलाः पाषाणरूपिणः ॥ ३७ ॥ ब्रह्माणं ब्राह्मणाश्चोचुर्नष्टं शापेन चाखिलम् । जीवनाय प्रसादं नः कुरु विप्रांश्च सोऽब्रवीत्॥३८॥ तीर्थोपजीविका यूयं सचन्द्रार्कं भविष्यथ । ते युष्मान्पूजयिष्यन्ति गयायामागता नराः ॥ ३९ ॥ हव्यकव्यैर्धनैः श्राद्धैस्तेषां कुलशतं व्रजेत् । नरकात्स्वर्गलोकाय स्वर्गलोकात्परां गतिम् ॥ ४० ॥ गयोऽपि चाकरोद्यागं बह्वन्नं बहुदक्षिणम् । गयापुरी तेन नाम्ना पाण्डवा ईजिरे हरिम् ॥ ४१॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गयामाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

ने मारा था, उसकी हड्डी से विश्वकर्मा ने सर्वप्रथम एक गदा बनायी । उस आदि गदा के द्वारा गदाधारी भगवान् ने हेति आदि राक्षसों को मारा । अतएव वे आदि गदाधर कहे जाते हैं ।। २६-२७ ।। उस देवमयी शिला के ऊपर भगवान् आदि गदाधर के स्थित हो जाने पर, गयासुर स्थिर हो गया उसके पश्चात् ब्रह्मा ने पूर्णाहुति दी ।। २८ ।। गयासुर ने देवताओं से पूछा- मेरे साथ वञ्चना क्यों की गयी ? क्या मैं भगवान् विष्णु के वचनमात्र से स्थिर नहीं हो जाता ?।। १९ ।। कि आप लोगों ने मुझे दबा रखा है ? अतएव आप लोग मुझे वरदान दें ।। ३०।। देवताओं ने कहा- तीर्थ का निर्माण करने के लिए हम लोगों ने तुम्हें निश्चल किया है । तुम ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव का निवास स्थान बनोगे ।। ३१ ।। सभी तीर्थों से प्रसिद्ध, पितृगण को ब्रह्मलोक प्रदान करने वाले तुम होओगे। यह कहकर सभी देवता, देवियाँ तथा तीर्थ वहाँ निवास करने लगे ।। ३२ ।। याग करके ब्रह्मा ने ऋत्विजों को दक्षिणा दी । पाँच कोश के गया क्षेत्र, पचपन गाँव, सोने के पहाड़,दुग्ध तथा दधि की नदियाँ एवं चाँदी के गृह प्रदान किए गए । ब्रह्मा जी ने ब्राह्मणों को यह कहकर ये सारी चीजें प्रदान की कि- अल्पशक्ति वाले मनुष्यों से आप लोग कभी याचना नहीं करेंगे।।३३-३५।। धर्म के याग में लोभ के कारण,धन आदि का दान लेकर जब ब्रह्मा गया में आए तो ब्रह्मा ने शाप दे दिया- तुम सभी विद्याविहीन तथा लोभी हो जाओगे। नदियाँ, दुग्ध आदि रहित तथा पर्वत पाषाण हो जायेंगे ब्राह्मणों ने ब्रह्मा से कहा- हमारे जीवन के लिए आप कृपा करें । ब्रह्माजी ने कहा- जब तक चन्द्रमा तथा सूर्य रहेंगे तब तक तीर्थों से अपनी जीविका चलाएँ । गया में आए हुए लोग आप लोगों की पूजा करेंगे ।। ३८-३९ ।। गया में कव्य, कथा, धन तथा श्राद्ध के द्वारा आप लोगों का सत्कार करने वाले लोगों के सौ पीढ़ी पितृगण नरक से स्वर्गलोक जायेंगे और स्वर्ग में रहने वाले पितृगण परमपद को प्राप्त करेंगे ।। ४० ।। गयासुर ने भी याग करके बहुत अन्न तथा बहुत दक्षिण दिया । इसी से इस नगरी का नाम गयापुरी पड़ा । यहाँ पर पाण्डवों ने श्रीहरि की आराधना किया ।। ४१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का गयामाहात्म्य वर्णन नामक एक सौ चौदहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११४ ॥

अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

गयायात्राविधिः

अग्निरुवाच– उद्यतश्चेद्गयां यातुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः । विधाय कार्पटीवेशं (षं) ग्रामूस्यापि प्रदक्षिणम् ॥ १ ॥ कृत्वा प्रतिदिनं गच्छेत्संयतश्चाप्रतिग्रही । गृहाच्चलितमात्रस्य गयाया गमनं प्रति ॥ २ ॥ स्वर्गारोहणसोपानं पितृणां तु पदे पदे । ब्रह्मज्ञानेन किं कार्यं गोगृहे मरणेन किम् ॥ ३ ॥ किं कुरुक्षेत्रवासेन यदा पुत्रो गयां व्रजेत् । गयां प्राप्तं सुतं दृष्ट्वा पितृणामुत्सवो भवेत् ॥ ४ ॥ पद्भ्यामपि जलं स्पृष्ट्वा अस्मभ्यं किंन दास्यति । ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा ॥ ५ ॥ वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा । काङ्क्षन्ति पितरः पुत्रं नरकाद्भयभीरवः ॥ ६ ॥ गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति । मुण्डनं चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः ॥ ७ ॥ न कालादि गयातीर्थे दद्यात्पिण्डांश्च नित्यशः । पक्षत्रयनिवासी च पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥ ८ ॥ अष्टकासु च वृद्धौ च गयायां मृतवासरे । अत्र मातुः पृथक्श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥ ९ ॥ पित्रादिनवदैवत्यं तथा द्वादशदैवतम् । प्रथमे दिवसे स्नायात्तीर्थे ह्युत्तरमानसे ॥ १० ॥ उत्तरे मानसे पुण्य आयुरारोग्यवृद्धये। सर्वाघौघविघाताय स्नानं कुर्याद्विमुक्तये ॥ ११॥ सन्तर्प्य देवपित्रादीञ्श्राद्धकृत्पिण्डदो भवेत् । दिव्यान्तरिक्षभौमस्था (भूमिष्ठा) न्देवान्संतर्पयाम्यहम्॥१२॥ दिव्यान्तरिक्षभौमादि पितृमात्रादि तर्पयेत् । पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥ १३ ॥ माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही । मातामहः प्रमातामहो वृद्धप्रमातामहः ॥ १४ ॥ तेभ्योऽन्येभ्य इमान्पिण्डानुद्धाराय ददाम्यहम् । ॐ नमः सूर्यदेवाय सोम भौमस्वरूपिणे॥१५॥

अग्नि ने कहा– यदि कोई गया जाने के लिए तैयार हो तो, उसे विधिपूर्वक श्राद्ध करके गेरुआ कपड़ा पहनकर ग्राम की प्रदक्षिणा करके संयत तरीके से विना किसी प्रकार का दान लिए हुए प्रतिदिन चलना चाहिए । जो गया जाने के लिए अपने घर से प्रस्थान करता है, वह पग-पग पर अपने को स्वर्गारोहण का सोपान बनाता है । यदि पुत्र गया जाय तो ब्रह्मज्ञान से, अथवा गोशाला अथवा कुरुक्षेत्र में निवास करने से क्या लाभ है ? गया गए हुए पुत्र को देखकर पितृगण उत्सव मनाते हैं ।। १-४ ।। वे सोचते हैं कि यह अपने पैरों से भी छूकर हमें जल नहीं देगा । पुरुषों को मुक्ति चार प्रकार से होती है- ब्रह्मज्ञान से, गया में श्राद्ध करने से, गोशाला में शरीर त्याग करने से तथा कुरुक्षेत्र में निवास करने से । नरक के भय से डरे हुए पितृगण पुत्र की चाहना करते हैं । वे सोचते हैं कि जो पुत्र गया जायेगा वह हम लोगों की रक्षा करेगा । सभी तीर्थों की यह विधि है कि वहाँ पर जाकर मुण्डन तथा उपवास करना चाहिए ।। ५-७।। गया तीर्थ में जाने का कोई समय निश्चित नहीं है, गया तीर्थ में सदा ही पिण्डदान किया जा सकता है । गया में तीन पस तक निवास करने वाला अपने वंश की सात पीढ़ियों को शुद्ध कर देता है । अष्टका श्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध तथा क्षयाह्न में यहाँ पर माता का पृथक् श्राद्ध किय जाता है,गया से भिन्न स्थल में उसके पति के साथ श्राद्ध किया जाता है ।। ८-९ ।। गया में पिता आदि के क्रम से नव देवताक अथवा द्वादश देवताक श्राद्ध किया जाता है । पहले दिन उत्तर मानस तीर्थ में स्नान करना चाहिए । पवित्र उत्तरमानस तीर्थ में आयु के लिए आरोग्य वृद्धि के लिए, सभी पापों का विनाश करने के लिए तथा मोक्ष प्राप्ति के लिए स्नान करना चाहिए ।। १०-११ ।। देवताओं तथा पितरों का तर्पण करके श्राद्धकर्ता को पिण्डदान करना चाहिए । उसे यह कहना चाहिए कि द्युलोकस्थ, अन्तरिक्षलोकस्थ तथा भूलोकस्थ देवताओं का मैं तर्पण कर रहा हूँ । दिव्य, अन्तरिस्थस्थ तथा भूमिस्थ पिता-माता का तर्पण करना चाहिए।। १२ ।। पिता, पितामह, तथा प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह, प्रमातामह, वृद्धमातामह, मातामही, प्रमातामही, तथा वृद्धप्रमातामही इन सबके तथा अन्य पितरों के उद्धार के लिए मैं पिण्डदान करता हूँ, इस तरह से कहकर कहना चाहिए कि सोम, भौम, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु तथा केतु स्वरूप, श्री सूर्य को नमस्कार है । उत्तर मानस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य अपने सम्पूर्ण कुल

जीवशुक्रशनैश्चारि राहुकेतुस्वरूपिणे । उत्तरे मानसे स्नात्वा उद्धरेत्सकलं कुलम् ॥ १६ ॥ सूर्यं नत्वा व्रजेन्मौनी नरो दक्षिणमानसम् । दक्षिणे मानसे स्नानं करोमि पितृतृप्तये ॥ १७ ॥ गयायामागताः स्वर्गं यान्तु मे पितरोऽखिलाः । श्राद्धं पिण्डं ततः कृत्वा सूर्यं नत्वा वदेदिदम् ॥१८ ॥ ॐ नमो भानवे भर्त्रे भवाय भव मे विभो । भुक्तिमुक्तिप्रदः सर्वपितृणां भव भावितः॥ १९ ॥ कव्यवाहोऽनलः सोमो यमश्चैवार्यमा तथा । अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपाः पितृदेवताः ॥ २० ॥ आगच्छन्तु महाभागा युष्माभी रक्षितास्त्विह । मदीयाः पितरो ये च मातृमातामहादयः॥२१॥ तेषां पिण्डप्रदाताऽहमागतोऽस्मि गयामिमाम् । उदीच्यां मुण्डपृष्ठस्य देवर्षिगणपूजितम् ॥ २२ ॥ नाम्ना कनखलं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । सिद्धानां प्रीतिजननैः पापानां च भयङ्करैः ॥ २३ ॥ लेलिहानैर्महानागै रक्ष्यते चैव नित्यशः । तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति क्रीडन्ते (न्ति) भुवि मानवाः ॥ २४ ॥ फल्गुतीर्थं ततो गच्छेन्महानद्यां स्थितं परम् । नागाज्जनार्दनात्कूपाद्वटाच्चोत्तरमानसात् ॥ २५ ॥ एतद्गयाशिरः प्रोक्तं फल्गुतीर्थं तदुच्यते । मुण्डपृष्ठं नगा द्यौश्च सारात्सारमथान्तरम् ॥ २६ ॥ यस्मिन्फलति श्रीर्गौर्वा कामधेनुर्जलं मही । दृष्टिरम्यादिकं यस्मात्फल्गुतीर्थं न फल्गुवत् ॥ २७ ॥ फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् । एतेन किं न पर्याप्तं नृणां सुकृतकारिणाम् ॥ २८ ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि आसमुद्रात्सरांसि च । फल्गुतीर्थं गमिष्यन्ति वारमेकं दिने दिने ॥ २९ ॥ फल्गुतीर्थे तीर्थराजे करोति स्नानमादृतः । पितृणां ब्रह्मलोकाप्त्या आत्मनो भुक्तिमुक्तये॥३०॥ स्नात्वा श्राद्धी पिण्डदोऽथ नमेद्देवं पितामहम् । कलौ माहेश्वरा लोका अत्र देवो गदाधरः॥३१॥ पितामहो लिङ्गरूपी

का उद्धार कर लेता है ।। १३-१६ ।। सूर्य को नमस्कार करके मनुष्य को मौन होकर दक्षिण मानस तीर्थ में जाना चाहिए । वहाँ स्नान करते समय यह भावना करनी चाहिए कि- मैं पितरों की तृप्ति के लिए दक्षिण मानस में स्नान कर रहा हूँ ।। १७ ।। गया में आए हुए मेरे समस्त पितृगण स्वर्ग जाएँ । पुनः श्राद्ध तथा पिण्ड दान करके यह उच्चारण करना चाहिए ।। १८ ।। सम्पूर्ण जगत् के स्वमी भगवान् सूर्य को नमस्कार है । हे विभो ! आप मेरा कल्याण करें । मेरे द्वारा पूजित होकर आप समस्त पितरों के लिए भोग तथा मोक्षप्रद होएँ ।। १९ ।। हे महाभाग, कव्यवाड्, अनल, सोम, यम, आर्यमा, अग्निष्वान्त, बहिर्षद तथा आज्यप (घृत पान करने वाले) पितृदेवता, आप सभी आएँ, आप सबों के द्वारा मेरे पिता आदि तथा माता एवं मातामह आदि रक्षित रहें । उन सबों को पिण्ड देने वाला मैं इस गया में आया हूँ ।। २० ।। गया में मुण्डपृष्ठ के उत्तर ओर देवर्षियों से पूजित, कनखल नामक तीर्थ है, जो तीनों लोकों में विख्यात है । उसकी रक्षा, सिद्धों को प्रसन्न करने वाले,पापियों के लिए भयंकर जिह्वा को लपलपाते हुए बड़े-बड़े नाग किया करते हैं । वहाँ पर स्नान करने वाले मनुष्य इस लोक में आनन्दपूर्वक रहकर अन्त में स्वर्गलोक जाते हैं ।। २२-२४ ।। उसके पश्चात् महानदी में विद्यमान फल्गु तीर्थ में जाना चाहिए । यह तीर्थ नाग,जनार्दन, कूप, वट तथा उत्तर मानस तीर्थ से भी श्रेष्ठ है । इसे ही फल्गु तीर्थ तथा गया कहते हैं । यह मुण्डपृष्ठ, नग, द्यौ से भी सारतम तीर्थ है । यह आभ्यन्तर तीर्थ है । यहाँ पर लक्ष्मी, कामधेनु, गौ, जल तथा पृथ्वी का किया हुआ दान फलप्रद होता है । देखने में मनोहर होने के कारण इसे फल्गु तीर्थ कहते हैं । यह छोटा तीर्थ नहीं है ।। २५-२७ ।। मनुष्य फल्गु तीर्थ में स्नान करने तथा गदाधर भगवान् का दर्शन करने से पुण्यात्मा पुरुषों को क्या नहीं प्राप्त हो सकता है ? अर्थात् वह पुरुष सब कुछ प्राप्त कर लेता है । पृथिवी पर समुद्र से लेकर जितने भी तीर्थ तथा सरोवर हैं, वे सबके सब प्रतिदिन फल्गु तीर्थ में प्रतिदिन एक बार अवश्य जाते हैं ।। २८-२९ ।। तीर्थराज फल्गुतीर्थ में एक बार आदरपूर्वक जो मनुष्य स्नान करता है, उसके पितृगण ब्रह्मलोक की प्राप्ति कर लेते हैं तथा स्वयं भोग तथा मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी हो जाता हैं ।। ३० ।। श्राद्ध करने वाला पुरुष यहाँ पर स्नान करके तथा पिण्डदान करके ब्रह्मा जी को नमस्कार करे । कलियुग में लोगों के उपास्य देवता महेश्वर हैं, किन्तु गया में उपास्य देवता भगवान् गदाधर हैं ।। ३१ ।। इसके पश्चात् यह भावना करनी चाहिए कि-'यहाँ पर पितामह लिङ्गरूप में हैं । मैं उन्हीं महेश्वर को नमस्कार करता हूँ। मैं गदाधर, बलराम (संकर्षण)

तं नमामि महेश्वरम् । गदाधरं बलं काममनिरुद्धं नरायणम् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मविष्णुनृसिंहाख्यं वराहादीन्नमाम्यहम् । ततो गदाधरं दृष्ट्वा कुलानां शतमुद्धरेत् ॥ ३३ ॥ धर्मारण्यं द्वितीयेऽह्नि मतङ्गस्याऽऽश्रमे वरे । मतङ्गवाप्यां संस्नाप्य श्राद्धकृत्पिण्डदो भवेत् ॥ ३४ ॥ मतङ्गेशं सुसिद्धेशं नत्वा चेदमुदीरयेत् । प्रमाणं देवताः सन्तु लोकपालाश्च साक्षिणः ॥ ३५ ॥ मयाऽऽगत्य मतङ्गेऽस्मिन् पितृणां निष्कृतिः कृता । स्नानतर्पणश्राद्धादि ब्राह्मतीर्थेऽथ कूपके ॥ ३६ ॥ तत्कूपयूपयोर्मध्ये श्राद्धं कुलशतोद्धतो । महाबोधितरुं नत्वा धर्मवान्स्वर्गलोकभाक् ॥ ३७ ॥ तृतीये ब्रह्मसरसि स्नानं कुर्याद्यतव्रतः । स्नानं ब्रह्मसरस्तीर्थे करोमि ब्रह्मभूतये ॥ ३८ ॥ पितृणां ब्रह्मलोकाय ब्रह्मर्षिगणसेविते । तर्पणं श्राद्धकृत्पिण्डं प्रदद्यात्तु प्रसेचनम् । कुर्याच्च वाजपेयार्थी ब्रह्मयूपप्रदक्षिणम् ॥ ३९ ॥ एको मुनिः कुम्भकुशाग्रहस्त आम्रस्य मूले सलिलं ददाति । आम्राश्च सिक्ताः पितरश्च तृप्ता एका क्रिया द्व्यर्थकरीप्रसिद्धा ॥ ४० ॥ ब्रह्माणं च नमस्कृत्य कुलानां शतमुद्धरेत् । फल्गुतीर्थे चतुर्थेऽह्नि स्नात्वा देवादितर्पणम्॥४१॥ कृत्वा श्राद्धं सपिण्डं च गयाशिरसि कारयेत् । पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः ॥ ४२ ॥ तत्र पिण्डप्रदानेन कुलानां शतमुद्धरेत् । मुण्डपृष्ठे पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता ॥ ४३ ॥ मुण्डपृष्ठे शिरः साक्षाद्गयाशिर उदाहृतम् । साक्षाद्गयाशिरस्तत्र फल्गुतीर्थाश्रमं कृतम् ॥ ४४ ॥ अमृतं तत्र वहति पितृणां दत्तमक्षयम् । स्नात्वा दशाश्वमेधे तु दृष्ट्वा देवं पितामहम् ॥ ४५ ॥ रुद्रपादं नरः स्पृष्ट्वा नेह भूयोऽभिजायते । शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं दत्त्वा गयाशिरे ॥ ४६ ॥ नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः । पायसेनाथ पिष्टेन सक्तुना चरुणा तथा ॥ ४७ ॥ पिण्डदानं

प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नृसिंह तथा वराह आदि को नमस्कार करता हूँ । इसके पश्चात् गदाधर भगवान् को नमस्कार करके मनुष्य अपनी सौ पीढ़ी का उद्धार कर लेता है ।।३२-३३।। दूसरे दिन धर्मारण्य के श्रेष्ठ मतङ्ग आश्रम में जाकर मतङ्गवापी में स्नान करना चाहिए तथा श्राद्धकर्ता को पिण्डदान करना चाहिए ।। ३४ ।। वहाँ पर प्रख्यात सिद्धों के स्वामी मतङ्गेश को नमस्कार करके यह कहना चाहिए । सभी देवता इसमें प्रमाण रहें तथा लोकपाल साक्षी रहें कि इस मतङ्ग आश्रम में आकर मैंने पितरों का निस्तार किया है । इसके पश्चात् ब्रह्मतीर्थ स्वरूप ब्रह्मकूप में जाकर स्नान, तर्पण तथा श्राद्ध आदि करना चाहिए ।। ३५-३६ ।। उस कूप तथा कूप के यूप के मध्य में किया गया श्राद्ध सौ पीढ़ियों का उद्धार कर देता है । धार्मिक पुरुष महाबोधिवृक्ष को नमस्कार करके स्वर्गलोक का अधिकारी होता है ।। ३७ ।। नियम और व्रत का पालन करने वाले पुरुष को तीसरे दिन ब्रह्म सरोवर में स्नान करके यह प्रार्थना करनी चाहिए कि- मैं ब्रह्मर्षियों द्वारा सेवित ब्रह्म सरोवर में पितरों के ब्रह्मलोक की प्राप्ति के लिए स्नान कर रहा हूँ । श्राद्धकर्ता पुरुष तर्पण करके पिण्डदान करे फिर वृक्ष का सेचन करे । वाजपेय यज्ञ का फल चाहने वाले पुरुष को ब्रह्मयूप की प्रदक्षिणा करनी चाहिए ।। ३८-३९ ।। उस तीर्थ में रहने वाले एक मुनि अपने हाथ में जल का घड़ा तथा कुश लेकर आम की जड़ में जल देते थे। इससे आम भी सींच गया और पितृगण भी तृप्त हो गए । इस तरह दो प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली उनकी एक ही क्रिया प्रसिद्ध हो गयी ।। ४० ।। ब्रह्मा जी को नमस्कार करके मनुष्य सौ पीढ़ी का उद्धार कर लेता है । चौथे दिन फल्गु तीर्थ में स्नान तथा देवताओं आदि का तर्पण करके तथा सिर में सपिण्डन श्राद्ध करना चाहिए । गया क्षेत्र पाञ्च कोस में है तथा गया सिर एक कोस में है । वहाँ पर पिण्ड दान करके मनुष्य अपने सैकड़ों पीढ़ियों का उद्धार कर लेता है । बुद्धिमान महादेव ने मुण्डपृष्ठ पर अपना पैर रखा था ।। ४१-४३ ।। मुण्डपृष्ठ तीर्थ में साक्षात् गया सिर है,उसे ही गया कहा जाता है । साक्षात् गया शिर में फल्गुतीर्थाश्रम है ।। ४४ ।। वहाँ पर अमृत के तुल्य जल बहता है, पितरों का तर्पण करने से वह जल पितरों के लिए अक्षय बनता है । पुनः दशाश्वमेध तीर्थ में स्नान करके ब्रह्माजी का दर्शन करना चाहिए ।। ४५ ।। रुद्रपाद का स्पर्श करके मनुष्य पुनः इस लोक में नहीं उत्पन्न होता है । गया शिर पर शमी पत्र के बराबर भी पिण्डदान करने वाले पुरुष के नरकस्थ पितृगण भी स्वर्ग चले जाते हैं तथा स्वर्गस्थ पितृगण मुक्त हो जाते हैं । वहाँ पर खीर, आटा, सत्तू, चरु और चावल से पिण्डदान करना

तण्डुलैश्च गोधूमैस्तिलमिश्रितैः । पिण्डं दत्त्वा रुद्रपतेः कुलानां शतमुद्धरेत् ॥ ४८ ॥ तथा विष्णुपदे श्राद्धपिण्डदो ऋणमुक्तिकृत् । पित्रादीनां शतकुलं स्वात्मानं तारयेन्नरः ॥ ४९ ॥ तथा ब्रह्मपदे श्राद्धी ब्रह्मलोकं नयेत्पितृन् ॥ दक्षिणाग्निपदे तद्वद्गार्हपत्यपदे तथा ॥ ५० ॥ पदे चाऽऽहवनीयस्य श्राद्धी यज्ञफलं लभेत् । आवसथ्यस्य चन्द्रस्य सूर्यस्य च गणस्य च ॥ ५१ ॥ अगस्त्यकार्तिकेयस्य श्राद्धी तारयते कुलम् । आदित्यस्य रथं नत्वा कर्णादित्यं नमेन्नरः ॥ ५२ ॥ कनकेशपदं नत्वा गया केदारकं नमेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तः पितृन्ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ५३ ॥ विशालोऽपि गयाशीर्षे पिण्डदोऽभूच्च पुत्रवान् । विशालायां विशालोऽभूद्राजपुत्रोऽब्रवीद्द्विजान् ॥ ५४ ॥ कथं पुत्रादयः स्युर्मे द्विजा ऊचुर्विशालकम्। गयायां पिण्डदानेन तव सर्वं भविष्यति ॥ ५५ ॥ विशालोऽपि गयाशीर्षे पितृपिण्डान्ददौ ततः । दृष्ट्वाऽऽकाशे सितं रक्तं पुरुषांस्तांश्च पृष्टवान्॥५६॥ के यूयं तेषु चैवैकः सितः प्रोचे विशालकम् । अहं सितस्ते जनक इन्द्रलोकं गतः शुभात् ॥ ५७ ॥ मम रक्त पिता पुत्र कृष्णश्चैव पितामहः । अब्रवीन्नरकं प्राप्तास्त्वया मुक्तीकृता वयम् ॥ ५८ ॥ पिण्डदानाद् ब्रह्मलोकं व्रजाम इति ते गताः । विशालः प्राप्तपुत्रादीन् राज्यं कृत्वा हरिं ययौ॥५९॥ प्रेतराजः स्वमुक्त्यै च वणिजं चेदमब्रवीत् । प्रेतैः सर्वैं सहाऽऽर्तः सन्सुकृतं भुज्यते फलम् ॥ ६० ॥ श्रवणद्वादशीयोगे कुम्भः सान्नश्च सोदकः । दत्तः पुरा स मध्याह्ने जीवनायोपतिष्ठते ॥ ६१ ॥ धनं गृहीत्वा मे गच्छ गयायां पिण्डदो भव । वणिग्धनं गृहीत्वा तु गयायां पिण्डदोऽभवत् ॥ ६२ ॥ प्रेतराजः सह प्रेतैर्मुक्तो नीतो हरेः पुरम् । गयाशीर्षे पिण्डदानादात्मानं स्वपितृंस्तथा ॥ ६३ ॥ पितृवंशे मृता ये च

चाहिए । रुद्रपाद में तिल मिश्रित गेहूँ से भी पिण्डदान करके अपनी सौ पीढ़ी का उद्धार कर लेता है ।। ४६-४८ ।। उसी प्रकार से विष्णुपद में श्राद्ध करने वाला तथा पिण्डदान करने वाला पुरुष, पितृऋण से मुक्त हो जाता है, सैकड़ों पितरों तथा अपना उद्धार कर लेता है ।। ४९ ।। ब्रह्मपद में श्राद्ध करने वाला अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचा देता है, उसी तरह से दक्षिणाग्नि पद,गार्हपत्यपद तथा आह्वनीय पद पर श्राद्ध करने वाला पुरुष यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है ।। ४९-५० ।। आवसथ्याग्नि, चन्द्रमा,सूर्य,गणेश,आगस्त्य तथा कार्तिकेय के स्थान में पिण्डदान करने वाला पुरुष अपने कुल को तार देता है । मनुष्य को आदित्य को नमस्कार करके कर्णादित्य को नमस्कार करना चाहिए ।। ५१-५२ ।। कनकेश पद को नमस्कार करके गया केदार को नमस्कार करना चाहिए । ऐसा करने वाला पुरुष अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचा देता है ।। ५३ ।। गया शीर्ष पर पिण्डदान करके विशाल नामक राजा ने पुत्र प्राप्त किया था। विशाला नगरी में विशाल नामक राजपुत्र राज्य करता था । उसने ब्राह्मणों से पूछा- मुझे पुत्र आदि की प्राप्ति कैसे हो सकती है । ब्राह्मणों ने विशाल से कहा- गया में पिण्डदान करके तुम सब कुछ प्राप्त कर लोगे ।। ५४-५५ ।। उसके पश्चात् विशाल ने गयाशीर्ष में पितरों को पिण्डदान किया । उसने आकाश में उजले तथा लाल वर्ण के पुरुषों को देखकर उनसे पूछा आप लोग कौन हैं ?।। ५६।। उनमें से लाल एवं शुभ्रवर्ण के पुरुष ने विशाल से कहा- मैं तुम्हारा पिता सित हूँ, तुम्हारे पुण्य से इन्द्रलोक को प्राप्त कर चुका हूँ । ये रक्त वर्ण के मेरे पिता हैं और कृष्ण वर्ण के मेरे पितामह हैं। हम सब नरक में थे । तुमने हम लोगों को मुक्त कर दिया ।। ५७-५८ ।। तुम्हारे पिण्डदान करने से हम लोग ब्रह्मलोक जा रहे हैं । यह कहकर वे चले गए। विशाल ने भी पुत्र आदि को प्राप्त करके राज्य करके श्रीहरि के लोक में चला गया ।। ५९ ।। एक प्रेतराज था वह अपनी मुक्ति के लिए किसी वणिक से कहा- सभी प्रेतों के साथ मैं दुःखी हूँ और अपने पुण्य का फल मैं प्राप्त कर रहा हूँ ।। ६० ।। पहले द्वादशी के दिन श्रावण के योग में मैंने अन्न और जल के साथ कुम्भ दान किया था वही मेरे जीवन के लिए दो पहर की बोला में मुझे मिलता है।।६१।। आप धन लेकर गया जाएँ और मेरे लिए पिण्डदान करें । वणिक धन लेकर गया गया और वहाँ पर पिण्डदान किया ।। ६२ ।। वह प्रेतराज अन्य प्रेतों के साथ मुक्त हो गया और सबों को श्रीहरि के लोक में पहुँचा दिया । गयाशीर्ष में पिण्डदान करके मनुष्य अपना तथा अपने पितरों का उद्धार कर लेता है ।। ६३ ।। पिण्डदान करते समय यह कहना चाहिए कि- मेरे

मातृवंशे तथैव च । गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवा मृताः ॥ ६४ ॥ ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः । क्रियालोपगता ये च जात्यन्धाः पङ्गवस्तथा ॥ ६५ ॥ विरूपा आमगर्भा ये ज्ञाताज्ञाताः कुले मम । तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥ ६६ ॥ ये केचित्प्रेतरूपेण तिष्ठन्ति पितरो मम । ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्वदा ॥ ६७ ॥ पिण्डो देयस्तु सर्वेभ्यः सर्वैर्वै कुलतारकैः । आत्मनस्तु तथा देयो ह्यक्षयं लोकमिच्छता ॥ ६८ ॥ पञ्चमेऽह्नि गदालोले स्नायान्मन्त्रेण बुद्धिमान् । गदाप्रक्षालने तीर्थे गदालोलेऽतिपावने ॥ ६९ ॥ स्नानं करोमि संसारगदशान्त्यै जनार्दन । नमोऽक्षयवटायैव अक्षय्यस्वर्गदायिने ॥ ७० ॥ पित्रादीनामक्षयाय सर्वपापक्षयाय च । श्राद्धं वटतले कुर्याद्ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥ ७१ ॥ एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता । कि पुनर्बहुभिर्भुक्तैः पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ ७२ ॥ गयायामन्नदाता यः पितरस्तेन पुत्रिणः । वटं वटेश्वरं नत्वा पूजयेत्प्रपितामहम् ॥ ७३ ॥ अक्षयाँल्लभते लोकान्कुलानां शतमुद्धरेत् । क्रमतोऽक्रमतो वाऽपि गयायात्रा महाफला ॥ ७४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गयायात्राविधिवर्णनं नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

अध्याय ११६

अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

गयायात्राविधिः

अग्निरुवाच– गायत्र्यैव महानद्यां स्नातः सन्ध्यां समाचरेत् । गायत्र्यां अग्रतः प्रातः श्राद्धं पिण्डमथाक्षयम् ॥ १ ॥ मध्याह्ने चोद्यति स्नात्वा

पिता के वंश में अथवा माता के वंश में तथा मेरे गुरु, श्वशुर एवं बन्धुओं के वंश में जो मर गए हों,उनसे अतिरिक्त भी जो मेरे बान्धव मरे हैं, मेरे वंश में जिन जीवों का पिण्ड लुप्त हो गया हो,जो पुत्र तथा पत्नी से रहित हो, जिन मृत जीवों का क्रियालोप हो गया हो, जो जन्मान्ध तथा पङ्गुजीव मर गये हों, जो विरूप हो, जो अपक्व गर्भ के रूप में मर गए हों,इस तरह जो भी मेरे वंश के ज्ञात तथा अज्ञात बन्धु रहे हों, वे सबके सब मेरे दिए हुए इस पिण्डदान से सदा के लिए तृप्त हो जायँ ।। ६४-६७ ।। अपने वंश का उद्धार करने वाले समस्त पुरुषों के द्वारा यहाँ पिण्डदान अपने पितरों के उद्देश्य से किया जाना चाहिए । किञ्च जो लोग स्वयं अक्षय लोक प्राप्त करना चाहते हों उन्हें भी यहाँ पर पिण्डदान करना चाहिए ।। ६८ ।। बुद्धिमान पुरुष को पाँचवें दिन गदालोल नामक तीर्थ में स्नान करना चाहिए । उस समय उसे इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए- भगवन् ! जनार्दन ! जिसमें आपकी गदा पायी गयी थी उस अत्यन्त पवित्र गदा लोल तीर्थ में संसार गद (रोग) की शान्ति के लिए स्नान कर रहा हूँ । अक्षय स्वर्ग प्रदान करने वाले अक्षय वट को नमस्कार है, जिससे कि पितरों को अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति हो तथा मेरे समस्त पाप विनष्ट हो जायँ । इसके पश्चात् वट वृक्ष के नीचे श्राद्ध करना चाहिए तथा ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ।। ६९-७१ ।। यहाँ पर एक ब्राह्मण को भोजन कराने से करोड़ ब्राह्मणों को भोजन कराने का फल होता है । यदि अनेक ब्राह्मणों को भोजन कराया जाय तो उसके पुण्य का क्या कहना है । यहाँ पर पितरों के उद्देश्य से जो कुछ भी दिया जाता है, वह अक्षय होता है ।। ७२।। गया में जाकर अन्नदान करने वाले पुत्र से ही पितृगण अपने को पुत्रवान् मानते हैं । वट तथा वटेश्वर को नमस्कार करके प्रपितामह की पूजा करनी चहिए ।। ७३ ।। ऐसा करने वाला स्वयं अक्षय लोकों का अधिकारी होता है तथा अपने वंश की सौ पीढ़ी को तार देता है । गया की यात्रा चाहे क्रमानुसार की जाय अथवा विना क्रम से की जाय तो उससे महान फल की प्राप्ति होती है।। ७४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का गया यात्रा विधि वर्णन नामक एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११५ ॥

अग्नि ने कहा– गायत्री मन्त्र से ही महानदी में स्नान करके सन्ध्या करनी चाहिए । प्रातःकाल में गायत्री के सम्मुख किया गया पिण्डदान अक्षय होता है ।। १ ।। मध्याह्नकाल में तथा

गीतवाद्यैर्ह्युपास्य च । सावित्रीं पुरतः सन्ध्यां पिण्डदानं च तत्तटे ॥ २ ॥ अगस्त्यस्य पदे कुर्याद्योनिद्वारं प्रविश्य च । निर्गतो न पुनर्योनिं प्रविशेन्मुच्यते भवात् ॥ ३ ॥ बलिं काकशिलायां च कुमारं च नमेत्ततः । स्वर्गद्वार्यां सोमकुण्डे वायुतीर्थेऽथ पिण्डदः ॥ ४ ॥ भवेदाकाशगङ्गायां कपिलायां च पिण्डदः । कपिलेशशिवं नत्वा रुक्मिकुण्डे च पिण्डदः ॥ ५ ॥ कोटितीर्थे च कोटीशं नत्वाऽमोघपदे नरः। गदालोले वानरके गोप्रचारे च पिण्डदः ॥ ६ ॥ नत्वा गां वै वैतरण्यामेकविंशकुलद्धृतिः । श्राद्धपिण्डप्रदाता स्यात्क्रौञ्चपादे च पिण्डदः ॥ ७ ॥ तृतीयायां विशालायां निश्चिरायां च पिण्डदः । ऋणमोक्षे पापमोक्षे भस्मकुण्डेऽथ भस्मना ॥ ८ ॥ स्नानकृन्मुच्यते पापान्नमेद्देवं जनार्दनम् । एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन ॥ ९ ॥ परलोकगते मह्यमक्षय्यमुपतिष्ठताम् । गयायां पितृरूपेण स्वयमेव जनार्दनः ॥ १० ॥ तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते वै ऋणत्रयात् । मार्कण्डेयेश्वरं नत्वा नमेद्गृध्रेश्वरं नरः ॥ ११ ॥ मूलक्षेत्रे महेशस्य धारायां पिण्डदो भवेत् । गृध्रकूटे गृध्रवटे धौतपादे च पिण्डदः॥१२॥ पुष्करिण्यां कर्दमाले रामतीर्थे च पिण्डदः । प्रभासेशं नमेत्प्रेतशिलायां पिण्डदो भवेत् ॥ १३ ॥ दिव्यान्तरिक्षभूमिष्ठाः पितरो बान्धवादयः । प्रेतादिरूपा मुक्ताः स्युः पिण्डैर्दत्तैर्मयाऽखिलाः ॥ १४ ॥ स्थानत्रये प्रेतशिला गयाशिरसि पावनी । प्रभासे प्रेतकुण्डे च पिण्डदस्तारयेत्कुलम्॥१५॥ वसिष्ठेशं नमस्कृत्य तदग्रे पिण्डदो भवेत् । गयानाभौ सुषुम्णायां महाकोष्ठ्यां च पिण्डदः ॥ १६ ॥ गदाधराग्रतो मुण्डपृष्ठे देव्याश्च संनिधौ । मुण्डपृष्ठं नमेदादौ क्षेत्रपालादिसंयुतम् ॥ १७ ॥ पूजयित्वा भयं न स्याद्विषरोगादिनाशनम् । ब्रह्माणं च नमस्कृत्य

सायंकाल में स्नान करके गीतों तथा वाद्यों से सावित्री देवी की उपासना करनी चाहिए । पुनः उन्हीं के समक्ष सन्ध्या करके नदी के तट पर पिण्डदान करना चाहिए ।। २ ।। उसके पश्चात् अगस्त्यपद में पिण्डदान करना चाहिए । तदनन्तर योनिद्वार में प्रवेश करके निकलना चाहिए । योनिद्वार से निकलने वाला पुरुष पुनः योनि में नहीं प्रवेश करता वह संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है।।३।। काकशिला पर बलि देकर कुमार कार्तिकेय को नमस्कार करना चाहिए । स्वर्गद्वार में सोमकुण्ड पर तथा वायुतीर्थ में पिण्डदान करना चाहिए ।। ४ ।। उसके पश्चात् आकाशगङ्गा तथा कपिला तीर्थ में पिण्डदान करे। कपिलेश शिव को नमस्कार करके रुक्मकुण्ड पर पिण्डदान करना चाहिए ।। ६ ।। वैतरणी तीर्थ में गौ को नमस्कार करके गया यात्री अपने इक्कीस पीढ़ी का उद्धार कर लेता है । पुनः उस व्यक्ति को क्रौञ्चपाद तीर्थ में पिण्डदान करना चाहिए ।। ७ ।। तृतीय तिथि को विशाला में, निश्चिरा तीर्थ में, ऋणमोचन पर तथा पापमोचन पर पिण्डदान करने वाला तथा भस्मकुण्ड पर भस्म से स्नान करने वाला पुरुष भगवान् जनार्दन को नमस्कार करके पापों से छुटकारा पा लेता है । उसे पिण्डदन करते समय कहना चाहिए- हे जनार्दन ! मैंने यह पिण्ड आपके हाथ में दिया है ।। ८-९ ।। मैं जब परलोक जाऊँ तो यह मेरे लिए अक्षय होकर उपस्थित हो । गया में स्वयं भगवान् जनार्दन पितर रूप से विद्यमान हैं । उनका दर्शन करके जीव तीनों ऋणों (देवऋण, ऋषिऋण एवं पितृऋण) से मुक्ति पा लेता है । पुनः मनुष्य को माकण्डेयेश्वर तथा गृध्रेश्वर को नमस्कार करना चाहिए ।। १०-११ ।। इसके बाद महेश के मूलक्षेत्र धारा में पिण्डदान करना चाहिए । पुनः गृध्रकूट, गृध्रवट तथा धौतपाद पर पिण्ड देना चाहिए ।। १२ ।। पुष्करिणी,कर्दमाल और रामतीर्थ में पिण्डकेश्वर प्रभासेश को नमस्कार करके प्रेतशिला पर पिण्डदान करना चाहिए ।। १३ ।। उस समय कहना चाहिए- दिव्यलोक, अन्तरिक्षलोक तथा भूमिलोक में जो मेरे पितर तथा बान्धव आदि प्रेतरूप में रहते हों वे मेरे द्वारा दिए गए पिण्ड के द्वारा मुक्त हो जायँ ।। १४ ।। पवित्र प्रेतशिला, गयासिर तथा प्रभास क्षेत्र स्थित प्रेतकुण्ड पर पिण्डदान करने वाला पुरुष अपने कुल को तार देता है ।। १५ ।। उसके पश्चात् वसिष्ठेश्वर को नमस्कार करके उनके लिए भी पिण्डदान करना चाहिए । गयानाभि, सुषुम्णा तथा महाकोष्ठी में पिण्डदान करना चाहिए । फिर गदाधर के समक्ष तथा मुण्डपृष्ठ में देवी के सन्निकट पिण्ड देना चाहिए । पहले क्षेत्रपाल आदि से युक्त मुण्डपृष्ठ को नमस्कार करना चाहिए ।। १६-१७ ।। मुण्डपृष्ठ का पूजन करने वाले को किसी प्रकार का भय नहीं होता क्योंकि यह तीर्थ भय तथा रोग

ब्रह्मलोकं नयेत्कुलम् ॥ १८ ॥ सुभद्रां बलभद्रं च प्रपूज्य पुरुषोत्तमम् । सर्वकामसमायुक्तः कुलमुद्धृत्य नाकभाक् ॥ १९ ॥ हृषीकेशं नमस्कृत्य तदग्रे पिण्डदो भवेत् । माधवं पूजयित्वा च देवो वैमानिको भवेत् ॥ २० ॥ महालक्ष्मीं प्रार्च्य गौरीं मङ्गलां च सरस्वतीम् । पितृनुद्धत्य स्वर्गस्थे भुक्तभोगोऽत्र शास्त्रधीः ॥ २१ ॥ द्वादशादित्यमभ्यर्च्य वह्निं रेवन्तमिन्द्रकम् । रोगादिमुक्तः स्वर्गी स्याच्छ्रीकपर्दिविनायकम् ॥ २२ ॥ प्रपूज्य कार्तिकेयं च निर्विघ्नः सिद्धिमाप्नुयात् । सोमनाथं च कालेशं केदारं प्रपितामहम् ॥ २३ ॥ सिद्धेश्वरं च रुद्रेशं रामेशं ब्रह्मकेश्वरम्। अष्टलिङ्गानि गुह्यानि पूजयित्वा तु सर्वभाक् ॥ २४ ॥ नारायणं वराहं च नारसिंहं नमेच्छ्रिये । ब्रह्मविष्णुमहेशाख्यं त्रिपुरघ्नमशेषदम् ॥ २५ ॥ सीतारामं च गरुडं वामनं सम्प्रपूज्य च । सर्वकामानवाप्नोति ब्रह्मलोकं नयेत्पितृन् ॥ २६ ॥ देवैः सार्धं सम्प्रपूज्य देवमादिगदाधरम् । ऋणत्रयविनिर्मुक्तस्तारयेत्सकलं कुलम् ॥ २७ ॥ देवरूपा शिला पुण्या तस्माद्देवमयी शिला । गयायां न हि तत्स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते ॥ २८॥ यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं तं नयेद्ब्रह्म शाश्वतम्। फल्गूग्वीशं फल्गुचण्डीं च प्रणम्याङ्गारकेश्वरम् ॥ २९॥ मतङ्गस्य पदे श्राद्धी भरताश्रमके भवेत् । हंसतीर्थे कोटितीर्थे यत्र पाण्डुशिलानदः॥३०॥ तत्र स्यादग्निधारायां मधुश्रवसि पिण्डदः । इन्देशं किलिकिलेशं नमेद्वृद्धिविनायकम् ॥ ३१॥ पिण्डदो धेनुकारण्ये पदे धेनोर्नमेच्च गाम् । सर्वान्पितृंस्तारयेच्च सरस्वत्यां च पिण्डदः ॥ ३२ ॥ सन्ध्यामुपास्य सायाह्ने नमेद्देवीं सरस्वतीम् । त्रिसन्ध्याकृद्भवेद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ३३॥ गयां प्रदक्षिणीकृत्य गयाविप्रान्प्रपूज्य च । अन्नदानादिकं सर्वं कृतं तत्राक्षयं भवेत् ॥ ३४ ॥ स्तुत्वा सम्प्रार्थयेद्देवमादिदेवं गदाधरम् । गदाधरं

को नष्ट करने वाला है । ब्रह्मा को नमस्कार करने वाला अपने वंश को ब्रह्मलोक में पहुँचा देता है ।। १८ ।। सुभद्रा (लक्ष्मी) बलभद्र तथा पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा करके मनुष्य अपने समस्त अभिलषित अर्थों को प्राप्त करके तथा अपने कुल का उद्धार करके स्वयं स्वर्गलोक का भागी बनता है ।। १९ ।। हृषीकेश भगवान् को नमस्कार करके उनके समक्ष पिण्डदान करना चाहिए। भगवान् माधव की पूजा करके मनुष्य वैमानिक देवता हो जाता है ।। २० ।। भगवती महालक्ष्मी, गौरी तथा मङ्गलमयी सरस्वती देवी की पूजा करके मनुष्य अपने पितरों का उद्धार कर लेता है और स्वयम् भी स्वर्गलोक का भागी बनता है । वहाँ पर भोगों को भोग कर इस लोक में आकशास्त्रज्ञ बनता है ।। २१ ।। पुनः द्वादशादित्य, अग्नि, रेवन्त और इन्द्र का पूजन करके मनुष्य रोग आदि से छुटकारा पा लेता है और अन्त में स्वर्गलोक का निवासी होता है । श्रीकपर्दि विनायक तथा कार्तिकेय का पूजन करने से मनुष्य को निर्विघ्न सिद्धि प्राप्त होती है।।२२।। सोमनाथ,कालेश्र, केदार, प्रपितामह, सिद्धेश्वर, रुद्रेश्वर, रामेश्वर तथा ब्रह्मकेश्वर इन आठ गुप्तलिंगों का पूजन करने से मनुष्य सब कुछ पा लेता है ।। २३-२४ ।। लक्ष्मी प्राप्ति की कामना से भगवान्, नारायण, नृसिंह तथा वाराह को नमस्कार करना चाहिए । ब्रह्मा, विष्णु तथा त्रिपुर विनाशक महेश्वर को नमस्कार करना चाहिए,वे सब कुछ देने वाले हैं ।। २५ ।। सीताराम,गरुड़ तथा वामन की पूजा करके मनुष्य अपने समस्त अभिलषित अर्थो को प्राप्त करके पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचा देता है ।। २६ ।। देवताओं के साथ आदिगदाधर भगवान् की पूजा करके मनुष्य तीनों ऋणों से मुक्त होकर अपने समस्त वंश का उद्धार कर देता है ।। २७ ।। देवस्वरूपा प्रेतशिला पवित्र है, अतएव वह शिला देवमयी है । गया में कोई भी ऐसा स्थान नहीं है जहाँ पर तीर्थ न हो ।। २८ ।। यहाँ पर जिसके नाम से पिण्डदान किया जाता है, उसे शाश्वत ब्रह्म की प्राप्ति होती है । उसके पश्चात् फल्ग्वीश, फल्गुचण्डी एवं अङ्गारकेश्वर को नमस्कार करके मतङ्गपद में श्राद्ध करना चाहिए । उसके पश्चात् भरताश्रम, हंसतीर्थ, कोटितीर्थ, पाण्डुशिलानद, अग्निधारा तथा मधुश्रवातीर्थ में पिण्डदान करना चाहिए । पुनः इन्द्रेश, किलकिलेश, तथा वृद्धिविनायक को नमस्कार करना चाहिए ।। २९-३१ ।। फिर धेनुकारण्य में पिण्डदान करके धेनुपद में गौ को नमस्कार करना चाहिए । सरस्वती तीर्थ में पिण्डदान करने वाला पुरुष अपने समस्त पितरों का उद्धार कर देता है ।। ३२ ।। यहाँ पर सन्ध्या करके सरस्वती देवी को नमस्कार करना चाहिए । यहाँ पर तीन सन्ध्याओं में सन्ध्या करने वाला पुरुष वेदवेदाङ्ग पारङ्गत ब्राह्मण होता है ।।३३।।

गयावासं पित्रादीनां गतिप्रदम् ॥ ३५ ॥ धर्मार्थकाममोक्षार्थं योगदं प्रणमाम्यहम् । देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहंकारवर्जितम् ॥ ३६ ॥ नित्यशुद्धं बुद्धमुक्तं सत्यं ब्रह्म नमाम्यहम् । आनन्दमद्वयं देवं देवदानववन्दितम् ॥ ३७ ॥ देवदेवीवृन्दयुक्तं सर्वं प्रणमाम्यहम् । कलिकल्मषकालार्तिदमनं वनमालिनम्॥३८॥ पालिताखिललोकेशं कुलोद्धरणमानसम् । व्यक्ताव्यक्तविभक्तात्माविभक्तात्मानमात्मनि ॥ ३९ ॥ स्थितं स्थिरतरं सारं वन्दे घोराघमर्दनम्। आगतोऽस्मि गयां देव पितृकार्ये गदाधर॥४०॥ त्वं मे साक्षी भवाद्येह अनृणोऽहमृणत्रयात्। साक्षिणःसन्तु मे देवा ब्रह्मेशानादयस्तथा॥४१॥ मया गयां समासाद्य पितृणां निष्कृतिः कृता । गयामाहात्म्यपठनाच्छ्राद्धादौ ब्रह्मलोकभाक् ॥ ४२ ॥ पितृणामक्षयं श्राद्धमक्षयं ब्रह्मलोकदम्॥४३॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गयायात्राविधिकथनं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पः

अग्निरुवाच— **कात्यायनो मुनीनाह यथा श्राद्धं तथा वदे । गयादौ श्राद्धं कुर्वीत संक्रान्त्यादौ विशेषतः॥ १ ॥ काले चापरपक्षे च चतुर्थ्यामूर्ध्वमेव वा । सम्पाद्य च पदर्क्षे च पूर्वेद्युश्च निमन्त्रयेत् ॥ २ ॥ यतीन्गृहस्थसाधून्वा स्नातकाञ्श्रोत्रियान्द्विजान् । अनवद्यान्कर्मनिष्ठाञ्शिष्टानाचारसंयुतान्॥३॥**

गया की प्रदक्षिणा करके, गया के ब्राह्मणों की पूजा करके वहाँ पर जो अन्नदान आदि किया जाता है, वह सब कुछ अक्षय होता है ।। ३४ ।। पुनः आदिदेव गदाधर की स्तुति करते हुए यह प्रार्थना करनी चाहिए कि- 'मैं धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए, तथा पितरों का उद्धार करने वाले गया में निवास करने वाले भगवान् गदाधर को प्रणाम करता हूँ।।३५-३५१।। मै देव इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा अहंकार से रहित, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं सत्यस्वरूप ब्रह्म को नमस्कार करता हूँ । वे भगवान् आनन्दस्वरूप, अद्वितीय, देवों तथा दानवों से वन्दित सदा देवों तथा देवियों के समूह से युक्त श्रीभगवान् को प्रणाम करता हूँ । वे कलि के कल्मष तथा कालजन्य भय को विनष्ट करने वाले तथा वनमाला धारण करने वाले हैं ।। ३६-३८ ।। वे ही सम्पूर्ण लोकपालों का पालन करते हैं,वे सबों के कुलों का उद्धार करना चाहते हैं, वे व्यक्त तथा अव्यक्त सबमें अपने स्वरूप को विभक्त करके स्थित होते हुए भी वे वस्तुतः अविभक्त आत्मा हैं ।। ३९ ।। वे सर्वत्र स्थित, सबों से अधिक स्थिर तथा सारस्वरूप हैं । ऐसे भगवान् आदि गदाधर को मैं नमस्कार करता हूँ । हे भगवन् ! गदाधर ! मैं पितृकार्य करने के लिए गया आया हूँ ।। ४० ।। आप इसके साक्षी होएँ । मैं तीनों ऋणों से आज मुक्त हो गया । मेरे इस कर्म के साक्षी ब्रह्मा तथा शंकर आदि देवता बनें ।। ४१ ।। मैंने गया में आकर पितरों का उद्धार किया। जो व्यक्ति श्राद्ध आदि में गया माहात्म्य का पाठ करता है, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है ।। ४२ ।। यहाँ पर पितरों के लिए किया गया श्राद्ध अक्षय तथा उन्हें ब्रह्मलोक प्रदान करने वाला होता है ।। ४३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का गया यात्रा विधि वर्णन नामक एक सौ सोलहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११६ ॥

अग्नि ने कहा— महर्षि कात्यायन ने जिस तरह की श्राद्ध विधि मुनियों को बतलाया है, उसे मैं बतला रहा हूँ । गया आदि तीर्थों में विशेष रूप से संक्रान्ति आदि के अवसर पर श्राद्ध करना चाहिए ।। १ ।। अपपक्ष (कृष्ण पक्ष) अपराह्णकाल में चतुर्थी तिथि को अथवा उसके बाद श्राद्ध की सामग्री को एकत्रित करके उत्तम नक्षत्र में श्राद्ध से एक दिन पूर्व ही,संन्यासियों, गृहस्थों, अथवा साधुओं या स्नातकों अथवा वैदिक ब्राह्मणों को निमन्त्रित करना चाहिए । इन ब्राह्मणों को अनिन्दित, कर्मनिष्ठ, शिष्ट तथा आचारनिष्ठ होना चाहिए ।। २-३ ।। सफेद दाग

वर्जयेच्छ्विवत्रिकुष्ठा (ष्ठ्या) दीन्न गृह्णीयान्निमन्त्रितान् । स्नाताञ्शुचींस्तथाऽऽचान्तान्प्राङ्मुखान्देवकर्मणि ॥ ४ ॥ उपवेशयेत्त्रीन्पित्र्योनेकैकमुभयत्र वा । एवं मातामहादेश्च शाकैरपि च कारयेत् ॥ ५ ॥ तदह्नि ब्रह्मचारी स्यादकोपोऽत्वरितो मृदुः । सत्योऽप्रमत्तोऽनध्वन्यो ह्यस्वाध्यायश्च वाग्यतः॥६॥ सर्वांश्च पंक्तिमूर्धन्यान्पृच्छेत्प्रश्ने तथाऽऽसने । दर्भानास्तीर्य द्विगुणान्पित्र्ये दैवादिकं चरेत् ॥ ७ ॥ विश्वान्देवानावाहयिष्ये पृच्छेदावाहयेति च । विश्वे देवास आवाह्य विकीर्याथ यवाञ्जपेत् ॥ ८ ॥ विश्वेदेवाः शृणुतेमं पितृनावाहयिष्येति । पृच्छेदावाहयेत्युक्त उशन्तस्त्वा समाह्वयेत् ॥ ९॥ तिलान्विकीर्याथ जपेदापस्त्वित्यादि पात्रके । सपवित्रे निषिञ्चेद्वा शं नो देवीरिति ह्यृचा ॥ १० ॥ यवोऽसीति यवान्दत्त्वा पित्रे सर्वत्र वै तिलान्। तिलोऽसि सोमदैवत्यो गोसवे देवनिर्मितः ॥ ११ ॥ प्रत्नवद्भिः प्रत्तः स्वधया पितृ (निमा) ल्लोकाँन्प्रीणया हि नः स्वधेति । श्रीश्चतेति ददेत्पुष्पं पात्रे हैमेऽथ राजते । १ २ ॥ औदुम्बरे वा खड्गे वा पूर्णपात्रे प्रदक्षिणम् । देवानामपसव्यं तु पितृणां सव्यमाचरेत् । एकैकस्य एकैकेन सपवित्रकरेषु च ॥ १३ ॥ या दिव्या आपः पयसा संबभूवुर्या अन्तरिक्षा (क्ष्या) उत पार्थिवीर्याः । हिरव्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः शिव स्योना भवन्तु ॥ १४॥ विश्वेदेवा एव वोऽर्घः स्वाहा च पितरेष ते । स्वधैवं पितामहादेः संस्रवान्प्रथमे चरेत् ॥ १५ ॥ पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः । अत्र गन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनदानकम् ॥१६॥ घृताक्तमन्नमुद्धृत्य पृच्छत्यग्नौ करिष्येति । कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो जुहुयात्साग्निकोऽनले ॥ १७ ॥ अनग्निकः

तथा कुष्ठ वाले ब्राह्मणों को नहीं निमन्त्रित करना चाहिए । देवकर्म में स्नान करके पवित्र हुए तथा आचमन किए हुए ब्राह्मणों को पूर्वाभिमुख बैठावें । देव तथा पितृ दोनों कार्यों में तीन-तीन अथवा दोनों में एक-एक ब्राह्मण को बैठाएँ । इसी तरह से मातामह आदि के भी श्राद्ध में करना चाहिए । शाक आदि से भी श्राद्ध करना चाहिए ।। ४-५ ।। श्राद्ध के दिन ब्रह्मचारी रहना चाहिए, क्रोध नहीं करना चाहिए तथा मृदु स्वभाव बनाए रखना चाहिए । सत्यवादी और सावधान रहना चाहिए, ज्यादा रास्ता न चलें । उस दिन स्वाध्याय न करें और मौन रहें ।। ६ ।। पंक्तिपावन श्रेष्ठ ब्राह्मणों को कुश के आसन पर बैठाकर उनसे कुशल क्षेम पूछना चाहिए । फिर आसन पर कुश बिछाएँ । पितरों के लिए दुगना कुश विछाएँ । पुनः देवकार्य करें । पुनः ब्राह्मणों से पूछें कि मैं विश्व देवों का आवाहन करूँगा । इस पर ब्राह्मण कहें कि आवाहन करें । पुनः 'विश्वेदेवास आगत' इत्यादि मन्त्र से आवाहन करके देवासन पर जौ छिड़ककर 'विश्वेदेवाः शृणुतेमं' इत्यादि मन्त्र का जप करें । फिर यजमान पितृ ब्राह्मणों से पूछें कि मैं पितरों का आवाहन करूँगा, पुनः ब्राह्मण आज्ञा दें कि आवाहन करो । इसके बाद 'उशन्तस्त्वा' इत्यादि मन्त्र से पितरों का आवाहन करना चाहिए । पुनः तिल छिड़ककर 'आपस्तु' इत्यादि मन्त्र का जप करना चाहिए । अथवा पवित्र युक्त पात्र में 'शन्नो देवी' इस मन्त्र से जल छिड़कना चाहिए ।। ७-१० ।। 'यवेऽसि' इत्यादि मन्त्र से जौ छिड़कना चाहिए । पितरों के लिए सर्वत्र तिल देना चाहिए । पितरों के पात्र में तिल डालने का मन्त्र 'तिलोऽसि सोमदेवत्यो' इत्यादि है । 'श्रीश्चते' इत्यादि मन्त्र से सोने अथवा चाँदी के अर्घ्य पात्र में पुष्प डालना चाहिए ।। ११-१२ ।। अर्घ्यपात्र गूलर अथवा पत्ते का भी हो सकता है । उसमें प्रदक्षिण क्रम से देवताओं के लिए सव्य होकर तथा पितरों के लिए अपसव्य होकर उपर्युक्त वस्तुएँ डालनी चाहिए । एक-एक के लिए एक-एक अर्घ्यपात्र हाथ में पवित्री पहनकर देना चाहिए।।१३।। तत्पश्चात् देवताओं के अर्घ्यपात्र को बाएँ हाथ में लेकर उसमें रखी हुयी पवित्री को दाहिने हाथ से निकालकर देव भोजन पात्र पर पूर्वाग्र रख देना चाहिए । उसके ऊपर दूसरा जल देकर अर्घ्यपात्र को ढँककर 'या दिव्या आपः पयसा' इत्यादि मन्त्र को पढ़ना चाहिए। पुनः हाथ में जल कुश जौ लेकर पितृ संबन्धी देवताओं का स्वाहान्त संकल्प तथा पितरों का स्वधान्त संकल्प तिल, जल, मोटक लेकर अपसव्य होकर करना चाहिए । इसी प्रकार से पितामह आदि के लिए अर्घ्य देना चाहिए ।। १४-१५ ।। इसके पश्चात् सभी अर्घ्य का अवशेष पहले पात्र में डाल देना चाहिए । अर्थात् प्रपितामह के अर्घ्य में जो जल आदि हो,उसे पितामह के पात्र में डालना चाहिए । उसके बाद वह सब पिता के अर्घ्यपात्र में रख देना चाहिए । पिता के अर्घ्यपात्र को सबसे ऊपर, उसके नीचे पितामह के अर्घ्यपात्र को और उन दोनों के नीचे प्रपितामह के अर्घ्यपात्र को रखकर तीनों को पिता के आसन के बाम भाग में 'पितृभ्यः स्थानमसि' यह कहकर उलट देना चाहिए । उसके पश्चात् वहाँ चन्दन, पुष्प, धूप तथा वस्त्रदान करना चाहिए।। १६।।

पितृहस्ते सपवित्रे तु मन्त्रतः । अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहेति प्रथमाऽऽहुतिः ॥ १८ ॥ सोमाय पितृमतेऽथ यमायाङ्गिरसेऽपरे । हुतशेषं चान्नं पात्रे दत्त्वा पात्रं समालभेत् ॥ १९ ॥ पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्यमुखेऽमृतेऽमृतंजुहोमि स्वाहेति ॥ जप्त्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत्॥२०॥ अपहतेति तिलान्विकीर्यान्नं प्रदापयेत् । जुषध्वमिति चोक्त्वाऽथ गायत्र्यादि ततो जपेत् ॥ २१ ॥ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमो नमः ॥ २२ ॥ तृप्ताञ्ज्ञात्वाऽन्नं विकिरेदपो दद्यात्सकृत्सकृत् । गायत्रीं पूर्ववज्जप्त्वा मधु वातेति वै जपेत् ॥ २३॥ तृप्ताः स्थ इति सम्पृच्छेत्तृप्ताः स्म इति वै वदेत् । शेषमन्नमनुज्ञाप्य सर्वमन्नमथैकतः ॥ २४ ॥ उद्धृत्योच्छिष्ट पार्श्वे तु कृत्वा चैवावनेजनम् । दद्यात्कुशेषु त्रीन्पिण्डानाचान्तेषु परे जगुः ॥ २५ ॥ आचान्तेषूदकं पुष्पाण्यक्षतानि प्रदापयेत् । अक्षय्योदकमेवाथ आशिषः प्रार्थयेन्नरः ॥ २६ ॥ अघोराः पितरः सन्तु गोत्रं नो वर्धतां सदा । दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ॥ २७ ॥ श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहुदेयं च नोऽस्त्विति । अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि ॥ २८ ॥ याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कंचन । स्वधावाचनीयान्कुशानास्तीर्य सपवित्रकान् ॥२९॥ स्वधां वाचयिष्ये पृच्छेदनुज्ञातश्च वाच्यताम् । पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहमुख्यके ॥ ३० ॥ स्वधोच्यतामस्तु स्वधा उच्यमानस्तथैव च । अपो निषिञ्चेदुत्तानं पात्रं कृत्वाऽथ दक्षिणाम् ॥ ३१ ॥ यथाशक्ति प्रदद्याच्च दैवे पित्रेऽ (त्र्येऽ) थ वाचयेत् । विश्वेदेवाः प्रीयन्तां च वाजे वाजे विसर्जयेत् ॥ ३२ ॥ आ मा वाजस्येत्यनुव्रज्य कृत्वा विप्रान्प्रदक्षिणम् । गृहे विशेदमावास्यां मासि मासि चरेत्तथा ॥ ३३ ॥ एकोद्दिष्टं प्रवक्ष्यामि

इसके पश्चात् घृतयुक्त अन्न निकालकर यजमान को ब्राह्मण से पूछना चाहिए कि मैं इसका अग्नि में हवन करूँगा और ब्राह्मण को आज्ञा देनी चाहिए कि करो । यदि यजमान अग्निहोत्री हो तो वह उसका अग्नि में हवन करे ।। १७ ।। यदि यजमान निरग्नि पुरुष हो तो पवित्रीयुक्त पितरों के हाथ में अथवा जल में मन्त्र से आहुति देनी चाहिए । 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा' इस मन्त्र से पहली आहुति तथा 'सोमाय पितृमते स्वाहा' इस मन्त्र से दूसरी आहुति देनी चाहिए । तीसरी और चौथी यम तथा अङ्गिरा के लिए आहुति देनी चाहिए । हवन से अवशिष्ट अन्न को थोड़ा-थोड़ा पात्र में देकर पात्र का स्पर्श करना चाहिए ।। १८-१९ ।। फिर 'पृथिवी ते पात्रम्' इत्यादि मन्त्र पढ़कर 'इदं विष्णुः' इत्यादि मन्त्र से अन्न में ब्राह्मण का अंगूठा छुआना चाहिए ।। २०।। 'अपहताः' इत्यादि मन्त्र से तिल छिड़ककर अन्नदान करना चाहिए । फिर 'जुषध्वम्' कहकर गायत्री आदि का जप करना चाहिए ।। २१ ।। 'देवताभ्यः पितृभ्यश्च' इत्यादि मन्त्र पढ़कर पितरों के तृप्त होने की भावना करनी चाहिए । पुनः सबों को अलग-अलग जल प्रदान करना चाहिए । पहले के ही समान गायत्री जपकर 'मधु वाता ऋतायते' इत्यादि मन्त्र जपना चाहिए ।। २१-२२ ।। इसके पश्चात् ब्राह्मणों से कहे कि आप तृप्त होएँ और ब्राह्मण कहें कि 'हम तृप्त हैं ।' इसके पश्चात् ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर एक में मिला देना चाहिए ।। २४ ।। पिण्ड बनाने के लिए उसे पात्र से बाहर निकालकर पितरों के उच्छिष्ट अन्न के पास ही अवनेजन करके कुशों पर संकल्प पूर्वक तीन पिण्डदान करना चाहिए । दूसरों का मत है कि ब्राह्मण के भोजन के पश्चात् ब्राह्मण हाथ मुँह धोकर आचमन कर लें तब पिण्डदान करना चाहिए ।। २५ ।। आचमन के पश्चात् जल,पुष्प और अक्षत देना चाहिए । इसके पश्चात् अक्षय्योदक देकर इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए मेरे पितृगण सौम्य हों, हमारा वंश सदा बढ़ता रहे, मेरे वंश में दानियों, वेदों तथा सन्तानों की वृद्धि होती रहे । हमारी श्रद्धा में कमी न हो, हम बहुत अधिक दान करते रहें । हमारे यहाँ अन्न बहुत होए और हम अतिथियों को प्राप्त करते रहें । हमारे यहाँ याचक आते रहें और हम किसी से कुछ माँगें नहीं ।। २६-२८।। पुनः स्वधा वाचन के लिए पिण्डों पर पवित्रक सहित कुश बिछाना चाहिए और ब्राह्मणों से पूछना चाहिए-मैं स्वधावाचन करूँगा और ब्राह्मण कहें- कीजिए । इसके पश्चात् श्राद्धकर्ता पुरुष कहे- ब्राह्मणों ! आप लोग मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह के लिए स्वधा वाचन करें । तब ब्राह्मण कहें- अस्तु स्वधा । इसके पश्चात् यजमान पात्र को उत्तान करके दुग्ध मिश्रित दक्षिणाग्र जल धारा कुशों पर गिराना चाहिए ।। २९-३१ ।। फिर देव तथा पितृ श्राद्ध की प्रतिष्ठा के लिए सुवर्ण तथा रजत की दक्षिणा देनी चाहिए । इसके पश्चात् 'विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्' यह कहकर देवताओं का विसर्जन करना चाहिए और 'वाजे वाजे वाजिनो

श्राद्धं पूर्ववदाचरेत् । एकं पवित्रमेकार्घ्यमेकं पिण्डं प्रदापयेत् ॥ ३४ ॥ नावाहनाग्नौकरणं विश्वेदेवा न चात्र हि । तृप्तिप्रश्ने स्वदितमिति वदेत्सुस्वदितं द्विजः ॥ ३५ ॥ उपतिष्ठतामित्यक्षय्ये विसर्गे चाभिरम्यताम् । अभिरताः स्म इत्यपरे शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥ ३६ ॥ सपिण्डीकरणं वक्ष्ये अब्दान्ते मध्यतोऽपि वा । पितृणां त्रीणि पात्राणि एकं प्रेतस्य पात्रकम् ॥ ३७ ॥ सपवित्राणि चत्वारि तिलपुष्पयुतानि च । गन्धोदकेन युक्तानि पूरयित्वाऽभिषिञ्चति ॥ ३८ ॥ प्रेतपात्रं पितृपात्रे ये समाना इतिद्वयात् । पूर्ववत् पिण्डदानादि प्रेतानां पितृता भवेत् ॥ ३९॥ अथाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धं वक्ष्ये सर्वं तु पूर्ववत् । जपेत्पितृमन्त्रवर्जं पूर्वाह्णे तत्प्रदक्षिणम् ॥ ४० ॥ उपचारा ऋजुकुशास्तिलार्थैश्च यवैरिह । तृप्तिप्रश्नस्तु सम्पन्नं सुसम्पन्नं वदेद्द्विजः ॥ ४१ ॥ दध्यक्षतबदराद्याः पिण्डा नान्दीमुखान्पितॄन् । आवाहयिष्ये पृच्छेच्च प्रीयतामिति चाक्षये॥४२॥ नान्दीमुखाश्च पितरो वाचयिष्येऽथ पृच्छति । नान्दीमुखान्पितृगणान्प्रीयन्तामित्यथो वदेत् ॥ ४३ ॥ नान्दीमुखाश्च पितरस्तत्पिता प्रपितामहः । मातामहः प्रमातामहो वृद्धप्रमातृकामहः ॥ ४४ ॥ स्वधाकारान्न युञ्जीत युग्मान्विप्रांश्च भोजयेत् । तृप्तिं वक्ष्ये पितृणां च ग्राम्यैरोषधिभिस्तथा ॥ ४५ ॥ मासं तृप्तिस्तथाऽऽरण्यैः कन्दमूलफलादिभिः । मत्स्यैर्मासद्वयं मार्गैस्त्रयं वै शाकुनेन च ॥ ४६ ॥ चतुरो रौरवेणाथ पञ्च षट्छागलेन तु । कूर्मेण सप्त चाष्टौ च वाराहेण नवैव तु ॥ ४७ ॥ मेषमांसेन दश च माहिषैः पार्वतैः शिवैः। संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन वा ॥ ४८ ॥ वाध्रीनसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादश वार्षिकी । खड्गमांसं कालशाकं लोहितच्छागलो मधु ॥ ४९ ॥ महाशल्काश्च वर्षासु मघाश्राद्धमथाक्षयम्। मन्त्राध्याय्यग्निहोत्री च

नो धनेषु०' इत्यादि मंत्र पढ़कर पितरों का विसर्जन करना चाहिए ।। ३२ ।। 'आमा वाजस्य०' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए ब्राह्मणों के पीछे चलकर उनकी प्रदक्षिणा करके अपने घर में प्रवेश करे। फिर प्रत्येक मास की अमावस्या के दिन इसी प्रकार से श्राद्ध करना चाहिए ।। ३३ ।। अब मैं एकोदिष्ट श्राद्ध का वर्णन कर रहा हूँ । इस श्राद्ध को भी पहले की ही भाँति करना चाहिए । इसमें एक पवित्रक, अर्घ्यपात्र तथा एक ही पिण्डदान किया जाता है ।। ३४ ।। इसमें आवाहन, अग्नीकरण और विश्वेदेव नहीं होते । तृप्ति के स्थान पर ब्राह्मण से 'स्वादितम्' यह प्रश्न करना चाहिए तथा ब्राह्मण को भी 'सुस्वादितम्' यह उत्तर देना चाहिए । अक्षय्य अर्घ्योदक के समय 'उपतिष्ठताम्' कहना चाहिए तथा विसर्जन के समय 'अभिरभ्यताम्' कहना चाहिए और ब्राह्मणों को भी 'अभिरताः स्म' यह कहना चाहिए । शेष कार्य पहले के ही समान करना चाहिए।। ३५-३६ ।। अब मैं सपिण्डीकरण बतला रहा हूँ। इस श्राद्ध को वर्ष के अन्त में अथवा मध्य में करना चाहिए । इसमें पितरों के तीन पात्र तथा प्रेत का एक पात्र होता है ।। ३७ ।। चारों पात्रों को तिल, पुष्प से युक्त चन्दन के जल से भरकर अभिसिञ्चन किया जाता है । 'ये समानाः' इत्यादि यजुर्वेद के १९/४५-४६) दो मन्त्रों से प्रेत के अर्घ्य पात्र को तीनों पितरों के अर्घ्यपात्र से मिलाया जाता है । फिर पिण्डदान आदि करके प्रेत के पिण्ड को पितरों के पिण्ड से मिलाया जाता है । इस तरह से प्रेत पितृकोटि में आ जाता है ।। ३९ ।। अब मैं आभ्युदयिक श्राद्ध का वर्णन करता हूँ। इसमें भी सभी कार्य पहले के ही समान होते हैं । किन्तु इस श्राद्ध में पितृमन्त्रों को न पढ़कर दूसरे मन्त्रों को पढ़ा जाता है । पूर्वाह्ण में पितरों की प्रदक्षिणा की जाती है । अन्य क्रियाओं को सीधे कुशों तिलों और जौ से करना चाहिए । यजमान ब्राह्मणों से 'तृप्ति प्रश्न सम्पन्नम्' कहकर करें तथा ब्राह्मण 'सुसम्पन्नम्' कहकर उत्तर दें ।। ४०-४१ ।। नान्दीमुख पितरों को दधि, अक्षत तथा बेर आदि का पिण्ड देना चाहिए । अक्षय अर्घ्योदक के समय यजमान ब्राह्मणों से 'प्रीयताम्' कहें तथा आवाहन के समय 'आवाहयिष्ये' कहें । फिर ब्राह्मणों से कहें कि मैं नान्दीमुख पितरों से निवेदन करूँगा । नान्दीमुख पितरों में पिता, पितामह, प्रपितामह, मातामह, प्रमातामह, और वृद्धप्रमातामह होते हैं । इस श्राद्ध में स्वधा शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए । अन्त में दो ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ।। ४२-४४।। अब मैं पितरों को तृप्त करने वाली ग्राम्य वस्तुओं तथा औषधियों का वर्णन करता हूँ । वन के कन्दमूल तथा फलों से पितरों की एक मास पर्यन्त तृप्ति होती है, मछली से दो मास तक,हरिण के मांस से तीन मास तक,पक्षी के मांस से चार मास तक, रुरुमृग के मांस से पाँच मांस तक, छाग के मांस से छह मांस तक, कछुए के मांस से सात मांस तक, वराह (वनैला शूकर) के मांस से आठ मास तक, मेष के

शाखाध्यायी षडङ्गवित् । ५० ॥ तृणाचिकेतस्त्रिमधुर्धर्मद्रोणस्य पाठकः । त्रिसु पर्णज्येष्ठ सामज्ञानी स्युः पङ्क्तिपावनाः ॥ ५१॥ काम्यानां कल्पमाख्यास्ये प्रतिपत्सु धनं बहु । स्त्रियः परा द्वितीयायां चतुर्थ्यां धर्मकामदः ॥ ५२ ॥ पञ्चम्यां पुत्रकामस्तु षष्ठ्यां च श्रैष्ठ्यभागपि। कृषिभागी च सप्तम्यामष्टम्यामर्थलाभकः ॥ ५३ ॥ नवम्यां च एकसफा दशम्यां गोगणो भवेत् । एकादश्यां परीवारो द्वादश्यां धनधान्यकम् ॥ ५४ ॥ ज्ञातिश्रैष्ठ्यं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां च शस्त्रतः । मृतानां श्राद्धं सर्वाप्तममावस्यां समीरितम् ॥ ५५ ॥ सप्तव्याधा दशारण्ये मृगाः कालञ्जरे गिरौ । चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥ ५६ ॥ तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः । प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयं तेभ्योऽवसीदत ॥ ५७ ॥ श्राद्धादौ पठिते श्राद्धं पूर्णं स्याद्ब्रह्मलोकदम् । श्राद्धं कुर्याच्च पुत्रादिः पितुर्जीवति तत्पितुः ॥ ५८ ॥ तत्पितुस्तत्पितुः कुर्याज्जीवति प्रपितामहे । पितुः पितामहस्याथ परस्य प्रपितामहात् ॥ ५९ ॥ एवं मात्रादिकस्यापि तथा मातामहादिके । श्राद्धकल्पं पठेद्यस्तु स लभेच्छाद्धकृत्फलम् ॥६०॥ तीर्थे युगादौ मन्वादौ श्राद्धं दत्तमथाक्षयम् । अश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादशी कार्तिके तथा ॥ ६१ ॥ तृतीया चैव माघस्य तथा भाद्रपदस्य च । फाल्गुनस्याप्यमावास्या पौषस्यैकादशी तथा ॥ ६२ ॥ आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी । श्रावणे चाष्टमी कृष्णा तथाऽऽषाढे च पूर्णिमा॥६३॥ कार्तिकी फाल्गुनी तद्वज्ज्येष्ठे पञ्चदशी सिता । स्वायंभुवाद्या मनवस्तेषामाद्याः किलाक्षयः ॥ ६४ ॥ गया प्रयागो गङ्गा च

मांस से नव मास तक, भैंसे के मास से दस मास तक भेंड़े तथा शृगाल के मांस से ग्यारह मास तक और गोदुग्ध से बने खीर से एक वर्ष तक की तृप्ति पितरों की होती है ।। ४५-४८ ।। परिपक्व बकरे के मांस से द्वादशवर्षपर्यन्त पितरों की तृप्ति होती है । वर्षाऋतु के मघानक्षत्र में गेंड़े के मांस तथा कालशाक,लाल बकरे के मांस, मधु तथा बड़ी मछलियों को मिलाकर किए गए श्राद्ध से पितरों की अक्षय तृप्ति होती है । मन्त्रों का अध्ययन करने वाला अग्निहोत्री अपनी वेदशाखा का अध्ययन करने वाला षडङ्गवेत्ता, ऋग्वेद के 'मधुवाता ऋतायते' इत्यादि तीन ऋचाओं का ज्ञाता, धर्मद्रोण का पाठक, त्रिसुपर्ण तथा ज्येष्ठसाम के ज्ञाता ये ब्राह्मण पंक्तिपावन ब्राह्मण होते हैं ।। ४९-५१ ।। अब मैं काम्य श्राद्धों का वर्णन करता हूँ- प्रतिपत् श्राद्ध से बहुत अधिक धन मिलता है, द्वितीया श्राद्ध से श्रेष्ठ स्त्रियाँ मिलती हैं, चतुर्थी श्राद्ध से धर्म और काम की प्राप्ति होती है, पञ्चमी श्राद्ध से पुत्र प्राप्ति होती है, षष्ठी श्राद्ध से श्रेष्ठता प्राप्त होती है, सप्तमी श्राद्ध से कृषि में लाभ होता है, अष्टमी श्राद्ध से अर्थ की प्राप्ति होती है, नवमी श्राद्ध से एक खुर वाले घोड़े आदि की प्राप्ति होती है, दशमी श्राद्ध से गौओं की प्राप्ति होती है,एकादशी श्राद्ध से परिवार बढ़ता है,द्वादशी श्राद्ध से धन धान्य की वृद्धि होती है, त्रयोदशी श्राद्ध से जाति में श्रेष्ठता की प्राप्ति होती है, शस्त्र से मरे जीवों का चतुर्दशी को श्राद्ध किया जाता है और सबों का श्राद्ध अमावस्या को किया जाता है ।। ५२-५५ ।। दशार्ण देश के वन में सात व्याधे थे, वे कलंजर गिरि पर मृग हुए, शरद्वीप में चक्रवाक हुए और मानसरोवर में हंस हुए, वे अब कुरुक्षेत्र में वेदों के पारंगत विद्वान् हुए हैं । उन्होंने अब तक दूर तक का रस्ता तय कर लिया है,उनसे बहुत पीछे रहकर आप लोग क्यों कष्ट का अनुभव कर रहे हैं ? अग्निपुराण के ११७ । ५६-५७ इन दो श्लोकों को श्राद्ध के आरम्भ में पाठ करने से श्राद्धपूर्ण तथा ब्रह्मलोक की प्राप्ति कराने वाला होता है । श्राद्ध पुत्र आदि को करना चाहिए । पिता के जीवित रहने पर पिता को ही श्राद्ध करना चाहिए ।। ५६-५८ ।। प्रपितामह के जीवित होने पर प्रपितामह को ही श्राद्ध करना चाहिए । श्राद्ध करने वाला पुरुष अपने पिता पितामह और प्रपितामह का श्राद्ध करना चाहिए । इसी तरह से माता आदि का तथा मातामह आदि का श्राद्ध करना चाहिए । इस श्राद्धकल्प का पाठ करने से भी श्राद्ध करने का फल प्राप्त होता है ।। ५९-६० ।। तीर्थ में युगादि तथा मन्वादि तिथियों में किया हुआ श्राद्ध अक्षय फलप्रद होता है । आश्विन शुक्ल नवमी, कार्तिक की द्वादशी,माघ की तृतीया,भाद्रपद तथा फाल्गुन की अमावस्या, पौषमास की एकादशी, आषाढ़ की दशमी,माघमास की सप्तमी,श्रावणमास की कृष्णा अष्टमी, अषाढ़ की पूर्णिमा, कार्तिक, फाल्गुन, एवं ज्येष्ठमास की पूर्णिमा, ये तिथियाँ, स्वायम्भुव आदि मनु से सम्बन्ध रखने वाली हैं । इनके आदि भाग

कुरुक्षेत्रं च नर्मदा । श्रीपर्वतः प्रभासश्च शालग्रामो वाराणसी ॥ ६५ ॥ गोदावरी तेषु श्राद्धं श्रीपुरुषोत्तमादिषु ॥ ६६ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये श्राद्धकल्पवर्णनं नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

भारतवर्षवर्णनम्

अग्निरुवाच– **उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् । वर्षं तद्भारतं नाम नवसाहस्त्रविस्तृतम् ॥ १ ॥ कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गं च गच्छताम्। महेन्द्रो मलयः सह्यः सुक्तिमान्हे (म्हि ?) मपर्वतः ॥ २ ॥ विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः । इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रवर्णो गभस्तिमान्॥३॥ नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वस्त्वथ वारुणाः। अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ॥ ४ ॥ योजनानां सहस्त्राणि द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात् । नव भेदा भारतस्य मध्यभेदेऽथ पूर्वत;॥ ५ ॥ किराता यवनाश्चापि ब्राह्मणाद्याश्च मध्यतः। वेदस्मृतिमुखा नद्यः पारियात्रोद्भवास्तथा ॥ ६ ॥ विन्ध्याच्च नर्मदाद्याः स्युःसह्यात्तापी पयोष्णिका । गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणादिकास्तथा ॥ ७ ॥ मलयात्कृतमालाद्यास्त्रिसामाद्या महेन्द्रजाः । कुमाराद्याः शुक्तिमतो हिमाद्रेश्चन्द्रभागका । पश्चिमे कुरुपाञ्चालमध्यदेशादयः स्थिताः॥ ८ ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये भारतवर्षवर्णनं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

में किया हुआ श्राद्ध अक्षय होता है ।। ६१-६४ ।। गया, प्रयाग, गङ्गातट, कुरुक्षेत्र, नर्मदा तट, श्रीपर्वत, प्रभास क्षेत्र, शालग्राम तीर्थ, वाराणसी, गोदावरी नदी तथा पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथपुरी) आदि में श्राद्ध करने का अत्यधिक महत्त्व है ।। ६५-६६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का श्राद्ध कल्प वर्णन नामक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११७ ॥

अग्नि ने कहा– जो समुद्र से उत्तर तथा हिमालय से दक्षिण है वह नव हजार योजन विस्तृत भारतवर्ष है ।। १ ।। स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्त करने वालों की यह कर्मभूमि है । यहाँ पर महेन्द्र, मलय,सह्य, शुक्तिमान, हेमाद्रि, विन्ध्य तथा पारियात्र ये सात कुल पर्वत हैं ।। २ ।। इन्द्रद्वीप, कसेरुद्वीप, ताम्रवर्णद्वीप, गभस्तिमानद्वीप, नागद्वीप, सौम्यद्वीप, गान्धर्वद्वीप और वारुणद्वीप इन आठ द्वीपों से भिन्न यह नवम द्वीप भारत है जो समुद्र से घिरा हुआ है ।। ३-४ ।। यह द्वीप दक्षिण से उत्तर हजारों योजन में फैला हुआ है । नव भागों में विभक्त द्वीपों के बीच में भारत द्वीप है । इसके पूर्व में किरातों और यवनों का निवास है, मध्य में ब्राह्मण आदि रहते हैं । वेदस्मृति आदि नदियाँ परियात्र पर्वत से निकलती हैं । विन्ध्याद्रि से नर्मदा आदि निकली हैं । सह्य पर्वत से तापी तथा पयोष्णी, गोदावरी, भीमरथी तथा कृष्णा आदि नदियाँ निकलती हैं । मलय पर्वत से कृतमाला आदि महेन्द्र पर्वत से त्रिसामा आदि नदियाँ निकलती हैं । शुक्तिमान् पर्वत से कुमारा आदि नदियाँ और हिमालय से चन्द्रभागा आदि नदियाँ निकलती हैं । भारतवर्ष के पश्चिम में कुरु, पाञ्चाल तथा मध्यदेश आदि स्थित हैं ।। ५-८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का भारत वर्ष वर्णन नामक एक सौ अठारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११८ ॥

अथैकोनविंत्यधिकशततमोऽध्यायः

महाद्वीपादिवर्णनम्

अग्निरुवाच– **लक्षयोजनविस्तारं जम्बूद्वीपं समावृतम् । लक्षयोजनमानेन क्षारोदेन समन्ततः ॥ १ ॥ संवेष्ट्य क्षारमुदधिं प्लक्षद्वीपस्तथा स्थितः। सप्तमेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरास्तथा ॥ २ ॥ स्याच्छान्तभयः शिशिरःसुखोदय इतः परः । आनन्दश्च शिवः क्षेमो ध्रुवस्तन्नाम वर्षकम्॥३॥ मर्यादाशैलो गोमेधश्चन्द्रो नारददुन्दुभी । सोमकः सुमनाः शैलो वैभ्राजास्तर्जनाः शुभाः ॥ ४ ॥ नद्यः प्रधानाः सप्तात्र प्लक्षाकान्तिकेषु च । जीवनं पञ्चसाहस्त्रं धर्मो वर्णाश्रमात्मकः ॥ ५ ॥ आर्यकाः कुरवश्चैव विविंशा भाविनश्च ते । विप्राद्यास्तैश्च सोमोऽर्च्यो द्विलक्षश्चैव प्लक्षकः॥६॥ मानेनेक्षुरसोदेन वृतो द्विगुणशाल्मलः। वपुष्मतः सप्त पुत्राः शाल्मलेशास्तथाऽभवन् ॥ ७ ॥ श्वेतोऽथ हरितश्चैव जीमूतो लोहितः क्रमात् । वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभो नाम वर्षकः ॥ ८ ॥ द्विगुणो द्विगुणेनैव सुरोदेन समावृतः । कुमुदश्चानलश्चैव तृतीयस्तु बलाहकः॥ ९ ॥ द्रोणः कङ्कोऽथ महिषःककुद्मान्सप्तनिम्नगाः । कपिलाश्चारुणाः पीताः कृष्णाः स्युर्ब्राह्मणादयः ॥ १० ॥ वायुरूपं यजन्तिस्म सुरोदेनायमावृतः । ज्योतिष्मतः कुशेशाः स्युरुद्भिदो वेणुमान्सुत; ॥ ११ ॥ द्वैरथीं लम्बनी धैर्यः कपिलश्च प्रभाकरः। विप्राद्या दमिमुख्यास्तु ब्रह्मरूपं यजन्ति ते॥१२॥ विद्रुमो हेमशैलश्चद्युतिमान्पुष्पवांस्तथा । कुशेशयो हरिःशैलो वर्षार्थं मन्दराचलः॥ १३॥ वेष्टितोऽयं घृतोदेन क्रौञ्चद्वीपेन सोऽप्यथ । क्रौञ्चेश्वराद्युतिमतः पुत्रास्तन्नामवर्षकाः ॥ १४ ॥ कुशलो मनोनुगश्चोष्णः प्रधानोऽथान्धकारकः। मुनिश्च दुन्दुभिः सप्त सप्त शैलाश्च निम्नगाः ॥ १५ ॥ क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः । देवावृत्पुण्डरीकश्च दुन्दुभिर्द्विगुणो मिथः ॥ १६॥ द्वीपा द्वीपेषु ये शैला यथा द्वीपानि ते तथा । पुष्कराः पुष्कलः**

अग्नि ने कहा– जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन है और तथा एक लाख योजन ही विस्तृत क्षार समुद्र से घिरा हुआ है ।। १ ।। क्षार समुद्र को घेरकर प्लक्षद्वीप स्थित है । मेघातिथि के सात पुत्र प्लक्षद्वीप के स्वामी हैं ।। २ ।। उनके नाम हैं- शान्तभय, शिशिर,सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेम तथा ध्रुव । इन्हीं के नाम पर इस द्वीप के सात वर्ष हैं ।। ३ ।। प्लक्षद्वीप के मर्यादा पर्वत हैं- गोमेध, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि,सोमक,सुनक, वैभ्राज तथा तर्जन ।। ३-४ ।। प्लक्षद्वीप के भीतर बहने वाली सात प्रधान नदियाँ हैं । यहाँ के लोगों का जीवन पाँच हजार वर्ष तथा धर्म वर्णाश्रमात्मक है ।। ५ ।। यहाँ के ब्राह्मण आदि की संज्ञा है- आर्यक, कुरु, विविंश तथा भावी । वे चन्द्रमा की पूजा करते हैं तथा प्लक्षद्वीप का विस्तार दो लाख योजन है।।६।। वह शाल्मलद्वीप से घिरा है, जिसका विस्तार प्लक्षद्वीप से दो गुना है । शाल्मल द्वीप के स्वामी वपुष्मान के सात पुत्र हैं ।। ७ ।। उनके नाम हैं- श्वेत, हरित, जीमूत, लोहित, वैद्युत, मानस तथा सुप्रभ । उन्हीं के नाम वाले यहाँ सात वर्ष हैं ।। ८ ।। यह अपने द्विगुण विस्तार वाले सुरा समुद्र से घिरा हुआ है । यहाँ के सात मर्यादा पर्वत हैं- कुमुद,अनल, बलाहक, द्रोण, कंक, महिष तथा ककुद्मान् यहाँ की सात प्रधान नदियाँ हैं । यहाँ के ब्राह्मण आदि वर्णों के नाम क्रमशः- कपिल, अरुण, पीत तथा कृष्ण हैं । ये वायुरूपधारी श्रीभगवान् की पूजा करते हैं और यह सुरा सागर से घिरा हुआ है ।। ८-१०।। कुश द्वीप के स्वामी ज्योतिष्मान् के सात पुत्र हैं । उनके नाम हैं-उद्भिद्, वेणुमान्, द्वैरथी, लम्बनी, धैर्य, कपिल और प्रभाकर । वहाँ के ब्राह्मण आदि वर्णों के नाम दमी आदि हैं । वे ब्रह्मारूपधारी श्रीभगवान् का पूजन करते हैं ।। ११-१२ ।। इस द्वीप में सात मर्यादा पर्वत हैं- विद्रुम, हेमशैल, द्युतिमान्, पुष्पवान्, कुशेशय, हरिशैल तथा मन्दराचल । यह घी के समुद्र से घिरा हुआ है और वह घृत सागर भी क्रौञ्चद्वीप से घिरा हुआ है । द्युतिमान् के पुत्र क्रौञ्चद्वीप के स्वामी हैं और उन्हीं के नाम वाले यहाँ के सात वर्ष हैं।।१३-१४।। कुशल, मनोनुग, उष्ण, प्रधान अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि ये सात द्युतिमान के पुत्र हैं । वहाँ के सात पर्वत हैं- क्रौञ्च, वामन, अन्धकारक, देवावृत, पुण्डरीक, दुन्दुभि तथा द्विगुण।

धन्याः तिष्यां विप्रादयो हरिम् ॥ १७ ॥ यजन्ति क्रौञ्चद्वीपस्तु दधिमण्डोदकावृतः। संवृतः शाकद्वीपेन भव्याच्छाकेश्वराः सुताः॥ १८॥ जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मणीचकः। कुशोत्तरथो (रोऽथ) मोदाकी द्रुमस्तन्नामवर्षकाः ॥ १९ ॥ उदयाख्यो जलधरो रैवतः श्यामकोद्रकौ । आम्बिकेयस्तथा रम्यः; केशरी सप्तनिम्नगाः॥ २० ॥ मगा मगधमानस्यामन्दगाश्च द्विजातयः । यजन्ति सूर्यरूपं तु शाकः क्षीराब्धिनाऽऽवृतः॥ २१ ॥ पुष्करेणाऽऽवृतः सोऽपि द्वौ पुत्रौ सवनस्य च । महावीतो धातकिश्च वर्षे द्वे नामचिह्निते ॥ २२ ॥ एकोऽद्रिर्मानसाख्योऽत्र मध्यतो वलयाकृतिः । योजनानां सहस्राणि विस्तारोच्छ्रायतःसमः ॥ २३ ॥ जीवनं दशसाहस्रं सुरैर्ब्रह्माऽत्र पूज्यते । स्वादूदकेनोदधिना वेष्टितो द्वीपमानतः ॥ २४ ॥ ऊनातिरिक्तता चापां समुद्रेषु न जायते । उदयास्तमनेष्विन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥ २५ ॥ दशोत्तराणि पञ्चैव अङ्गुलानां शतानि वै । अपां वृद्धिक्षयौ दृष्टौ सामुद्रीणां महामुने ॥ २६ ॥ स्वादूदकात्तु द्विगुणा भूर्हैमी जन्तुवर्जिता । लोकालोकस्ततः शैलो योजनायुतविस्तृतः ॥ २७ ॥ लोकालोकस्तु तमसाऽऽवृतोऽथाण्डकटाहतः। भूमिःसाऽण्डकटाहेन पञ्चाशत्कोटिविस्तरा ॥ २८ ॥

इत्यादिमहापुराणे महाद्वीपादिवर्णनं नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भुवनकोशवर्णनम्

अग्निरुवाच— **विस्तारस्तु स्मृतो भूमेः सहस्राणि च सप्ततिः। उच्छ्रायो दशसाहस्रं पातालं चैकमेककम् ॥ १ ॥ अतलं वितलं चैव नितलं च**

यहाँ की सात नदियाँ भी हैं । उत्तरोत्तर द्विगुण विस्तार वाले हैं ।। १५-१६ ।। उन द्वीपों में जो वर्ष पर्वत हैं वे पूर्ववती द्वीप से द्विगुण विस्तार वाले हैं । वहाँ के ब्राह्मण आदि वर्णों के नाम क्रमशः पुष्कर, पुष्कल, धन्य तथा तिष्य है । वे श्री भगवान् की आराधना करते हैं ।। १७ ।। क्रौञ्चद्वीप दधिमण्डोदक सागर से आवृत्त है । वह सागर भी शाक द्वीप से वेष्टित है । राजा भव्य के सात पुत्र ही वहाँ के स्वामी हैं । उनके नाम हैं- जलद कुमार, सुकुमार, मणीचक, कुशोत्तर, मोदाकी और द्रुम है । उन्हीं के नाम पर वहाँ के वर्षों के नाम हैं ।। १८-१९ ।। यहाँ के भी सात प्रधान पर्वत हैं- उदयगिरि, जलधर, रैवत, श्याम, कोद्रक, अम्बिकेय तथा मनोहर केसरी । वहाँ की सात प्रसिद्धि नदियाँ हैं ।। २० ।। वहाँ के ब्राह्मण आदि वर्णों के नाम क्रमशः- मग, मगध, मानस्य और मन्दग हैं । ये सूर्यरूपधारी श्रीभगवान् की आराधना करते हैं । शाकद्वीप क्षीरसागर से घिरा हुआ है और क्षीरसगर पुष्कर द्वीप से परिवेष्टित है । यहाँ के अधिकारी राजा सवन के दो पुत्र हुए महावीत तथा धातकि । उन्हीं के नाम पर यहाँ के दो वर्ष है। । इसद्वीप के बीच में वलयाकार एक मानस नामक पर्वत है यह हजारों योजन विस्तृत तथा हजारों योजन ऊँचा है।।२१-२३।। यहाँ के जीव दस हजार वर्ष जीते हैं । यहाँ पर देवता ब्रह्मा की पूजा करते हैं । यह पुष्कर द्वीप स्वादिष्ट जल के समुद्र से घिरा है । उस समुद्र का विस्तार उस द्वीप के समान ही है। समुद्रों का जल न तो घटता है और न तो बढ़ता ही है । महामुने ! शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों में चन्द्रमा के उदय तथा अस्तकाल में केवल पाँच से दस अंगुल तक समुद्र का जल घटता बढ़ता है ।। २४-२६ ।। स्वादिष्ट जल वाले समुद्र के दुगने विस्तार वाली तथा जीवों से रहित सुवर्णमयी पृथिवी है । उसके पश्चात् दस हजार योजन में विस्तृत लोकालोक पर्वत है ।।२७।। लोकालोक पर्वत अण्डकटाह के अन्धकार से घिरा हुआ है । पचास करोड़ योजन विस्तृत भूमि अण्डकटाह से आवृत्त है ।। २८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का महाद्वीपादि वर्णन नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११९ ॥

अग्नि ने कहा— वसिष्ठ भूमि का विस्तार सत्तर योजन बतलाया गया है और उसकी ऊँचाई दस हजार योजन बतलाया गया है । अतल, वितल, नितल, प्रकाशमान्, महातल, सुतल,

गभस्तिमत् । महाग्र्यं सुतलं चाग्र्यं पातालं चापि सप्तमम् ॥ २ ॥ कृष्णपीतारुणाः शुक्लशर्कराः शैलकाञ्चनाः । भूमयस्तेषु रम्येषु सन्ति दैत्यादयः सुखम् ॥ ३ ॥ पातालानामधश्चाऽऽस्ते शेषो विष्णुश्च तामसः । गुणानन्त्यात्स चानन्तः शिरसा धारयन्महीम् ॥ ४ ॥ भुवोऽधो नरका नैके न पतेत्तत्र वैष्णवः । रविणा भासिता पृथ्वी यावत्तावन्नभो मतम् ॥ ५ ॥ भूमेर्योजनलक्षं तु वसिष्ठरविमण्डलम् । रवेर्लक्षेण चन्द्रश्च लक्षान्नाक्षत्रमिन्दुतः॥६॥ द्विलक्षाद्बुधश्चाऽऽस्ते बुधाच्छुको द्विलक्षतः । द्विलक्षेणकुजः शुक्राद्भौमाद् द्विलक्षतो गुरुः ॥ ७ ॥ गुरोर्द्विलक्षतः सौरिर्लक्षात्सप्तर्षयः शनेः । लक्षाद् ध्रुवोह्यृषिभ्यस्तु त्रैलोक्यं चोच्छ्रयेण च ॥ ८ ॥ ध्रुवात्कोट्या महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः । जनो द्विकोटितस्तस्माद्यत्राऽऽसन्सनकादयः॥९॥ जनात्तपश्चाष्टकोट्या वैराजा यत्र देवताः । षण्णवत्या तु कोटीनां तपसः सत्यलोककः ॥ १० ॥ अपुनर्मारका यत्र ब्रह्मलोको हि स स्मृतः । पादगम्यस्तु भूर्लोको भुवः सूर्यान्तरः स्मृतः ॥ ११ ॥ स्वर्गलोको ध्रुवान्तस्तु नियुतानि चतुर्दश । एतदण्डकटाहेन वृतो ब्रह्माण्डविस्तरः ॥ १२॥ वारिवह्न्यनिलाकाशैस्ततो भूतादिना बहिः । वृतं दशगुणैरण्ड भूतादिर्महता तथा ॥ १३ ॥ दशोत्तराणि शेषाणि एकैकस्मान्महामुने । महान्तं च समावृत्य प्रधानं समवस्थितम् ॥ १४ ॥ अनन्तस्य न तस्यान्तः संख्यानं नापि विद्यते । हेतुभूतमशेषस्य प्रकृतिः साऽपरा मुने ॥ १५ ॥ असंख्यातानि चाण्डानि तत्र जातानि चेदृशाम् । दारुण्यग्निर्यथा तैलं तिले तद्वत्पुमानिति ॥ १६ ॥ प्रधाने च स्थितो व्यापी चेतनात्माऽऽत्मवेदनः।

तलातल तथा पाताल ये सात पाताल (भूमि के नीचे के लोक) हैं । ये सबके सब दस-दस हजार योजन विस्तृत हैं ।। १-२ ।। इन पाताल लोकों की भूमियाँ क्रमशः काली, पीली, लाल, उजली, कंकरीली, पत्थरीली और सुवर्णमयी हैं । ये सबके सब मनोहर हैं तथा इन लोकों में दैत्य सुखपूर्वक निवास करते हैं ।। ३ ।। पातालों के नीचे विष्णु के तामस स्वरूप शेष विद्यमान हैं । ये अपने शिर पर पृथिवी को धारण करते हैं । गुणों की अनन्तता के कारण इनको अनन्त कहा जाता है ।। ४ ।। पृथ्वी के नीचे अनेक नरक हैं, किन्तु उनमें वैष्णव नहीं जाते हैं । जितनी पृथिवी को सूर्य प्रकाशित करते हैं उतना ही परिमाण आकाश का भी है ।। ५ ।। हे वसिष्ठ ! पृथिवी से एक लाख योजन की दूरी पर सूर्यमण्डल है । सूर्य से एक लाख योजन की दूरी पर चन्द्रमण्डल है और चन्द्रमण्डल से एक लाख योजन की दूरी पर नक्षत्रमण्डल है ।। ६ ।। नक्षत्रमण्डल से दो लाख योजन की दूरी पर बुध है । बुध से दो लाख योजन की दूरी पर शुक्र है । शुक्र से दो लाख योजन की दूरी पर भौम है तथा भौम से दो लाख योजन की दूरी पर गुरु हैं ।। ७ ।। गुरु से दो लाख योजन की दूरी पर शनैश्चर हैं और उनसे एक लाख योजन की दूरी पर सप्तर्षिमण्डल है । सप्तर्षिमण्डल से एक लाख योजन की दूरी पर ध्रुव हैं । ध्रुवमण्डल पर्यन्त ही त्रिलोकी (भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक) है ।। ८ ।। ध्रुव से करोड़ योजन ऊपर महर्लोक है, जहाँ पर कल्पान्तवासी भृगु आदि महर्षि रहते हैं । उससे दो करोड़ योजन ऊपर जनलोक है, जहाँ पर सनकादि महर्षि रहते हैं ।। ९ ।। जनलोक से आठ करोड़ योजन ऊपर तपोलोक है जहाँ पर वैराज देवता निवास करते हैं । तपोलोक से छयानबे करोड़ योजन की दूरी पर सत्यलोक है ।। १० ।। यहाँ पर रहने वाले जीवों की मृत्यु नहीं होती । इसे ही ब्रह्मलोक कहते हैं । जहाँ पर पैरों से चलकर जाया जा सके उसे भूर्लोक कहते हैं । सूर्यमण्डल तथा पृथिवी के बीच के स्थान को भुवर्लोक कहते हैं । उसके ऊपर ध्रुवलोक पर्यन्त के भाग को स्वर्गलोक कहते हैं । उसका विस्तार चौदह लाख योजन है । यही (भूर्भुवः स्वः ही) अण्डकटाह से घिरा हुआ विस्तृत ब्रह्माण्ड है ।। ११-१२ ।। बाहर से वह ब्रह्माण्ड क्रमशः जल, अग्नि, वायु और आकाशरूपी आवरणों से घिरा हुआ है । इन सबों के ऊपर भूतादि (अहंकार) का आवरण है । ये सभी आवरण क्रमशः उत्तरोत्तर दस-दस गुना बड़े हैं । अहंकाररूपी आवरण महत्त्वरूपी आवरण से घिरा हुआ है ।।१३।। हे महामुने ! ये सभी आवरण एक दूसरे की अपेक्षा दस-दस गुने बड़े हैं । महत् तत्त्व प्रधान से आवृत्त है ।। १४ ।। वह प्रधान अनन्त है, उसकी कोई सीमा नहीं है । वह सबों का कारण है । उसे ही अपराप्रकृति कहते हैं ।। १५ ।। जिस तरह काष्ठ में अग्नि होती है तथा तिल में तेल रहता है, उसी तरह व्यापक पुरुष प्रधान में स्थित है । वह ज्ञाता चेतन आत्मा है । प्रधान तथा पुरुष दोनों धर्मी हैं (परस्पर में संयुक्त रहने वाले हैं) और सबों की आत्माभूत विष्णु की शक्ति से आवृत्त हैं । उन दोनों के परस्पर में संयुक्त होने का कारण वह विष्णुशक्ति ही है । अर्थात्

प्रधानं च पुमांश्चैव सर्वभूतात्मभूतया ॥ १७ ॥ विष्णुशक्त्या महाप्राज्ञ वृतौ संश्रयधर्मिणौ । तयोः सैव पृथग्भावे कारणं संश्रयस्य च ॥ १८ ॥ क्षोभकारणभूतश्च सर्गकाले महामुने । यथा शैत्यं जले वातो बिभर्ति कणिकागतम् ॥ १९ ॥ जगच्छक्तिस्तथा विष्णोः प्रधानप्रतिपादिकाम् । विष्णु शक्तिं समासाद्य देवाद्याः सम्भवन्ति हि ॥ २० ॥ स च विष्णुः स्वयं ब्रह्म यतःसर्वमिदं जगत् । योजनानां सहस्राणि भास्करस्य रथो नव॥२१॥ ईशादण्डस्तथैवास्य द्विगुणो मुनिसत्तम । सार्धकोटिस्तथा सप्त नियुतान्यधिकानि वै॥२२॥ योजनानां तु तस्याक्षस्तत्र चक्रं प्रतिष्ठितम्। त्रिनाभिमतिपञ्चारं षण्नेमि द्व्ययनात्मकम् ॥ २३ ॥ संवत्सरमयं कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठितम् । चत्वारिंशत्सहस्राणि द्वितीयाक्षो विवस्वतः॥२४॥ पञ्चान्यानि तु सार्धानि स्यन्दनस्य महामते । अक्षप्रमाणमुभयोः प्रमाणं तद्युगार्धयोः ॥ २५ ॥ ह्रस्वोऽक्षस्तद्युगार्धं च ध्रुवाधारं रथस्य वै । हयाश्च सप्त च्छन्दांसि गायत्र्यादीनि सुव्रत ॥ २६ ॥ उदयास्तमनं ज्ञेयं दर्शनादर्शनं रवेः । यावन्मात्रप्रदेशे तु वसिष्ठावस्थितो ध्रुवः ॥ २७ ॥ स्वयमायाति तावत्तु भूमेराभूतसंप्लवम् । ऊर्ध्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्र व्यवस्थितः ॥ २८ ॥ एतद् विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भास्वरम् । निर्धूतदोषपङ्कानां यतीनां स्थानमुत्तमम् ॥ २९ ॥ ततो गङ्गा प्रभवति स्मरणात्पापनाशिनी । दिवि रूपं हरेर्ज्ञेयं शिशुमाराकृति प्रभोः ॥ ३० ॥ स्थितः पुच्छै ध्रुवस्तत्र भ्रमन्भ्रामयति ग्रहान् । स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिर्वरैः ॥ ३१ ॥ गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः। हिमोष्णवारिवर्षाणां कारणं भगवान् रविः ॥ ३२ ॥ ऋग्वेदादिमयो विष्णुः स शुभाशुभकारणम् । रथस्त्रिचक्रः सोमस्य कुन्दाभास्तस्य वाजिनः ॥ ३३ ॥ वाम दक्षिणतो युक्ता दश तेन चरत्यसौ । त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतानि च॥३४॥ त्रयस्त्रिंशत्तथा देवा; पिबन्ति क्षणदाकरम् । एकां कलां च पितर एकामास्मिन्

वह दोनों को मिलाती है ।। १६-१८ ।। जिस तरह से जल में रहने वाली शीतलता को वायु उसके अनेक कणों को धारण करके उसकी शीतलता को भी धारण करता है; उसी तरह से विष्णु शक्ति भी प्रकृति तथा पुरुषमय जगत् को धारण करती है । विष्णु शक्ति को ही प्राप्त करके देवता आदि भी प्रकट होते हैं ।। १९-२० ।। वे विष्णु स्वयं ब्रह्म हैं उनसे ही सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है । सूर्य का रथ नवहजार योजन विस्तृत है ।। २१ ।। हे मुनिश्रेष्ठ उसका ईशादण्ड (हरीश) अठारह हजार योजन लम्बा है । उसकी धूरी डेढ़ करोड़ सात लाख योजन विस्तृत है और उसी में वह चक्र प्रतिष्ठित है । उसकी तीन नाभि पाञ्च और छह (ऋतुमय) नेमि तथा दो (उत्तरायण तथा दक्षिणायन) अयन (गृह) हैं । इस तरह संवत्सरमय रथ चक्र में ही कालचक्र प्रतिष्ठित हैं । सूर्य का दूसरी धूरी साढ़े पैंतालिस हजार योजन विस्तृत है ।। २२-२४ ।। हे महाबुद्धिमान् वसिष्ठ ! उसके दोनों धूरों के बराबर उसके युगार्धों का विस्तार है । रथ की छोटी धूरी तथा उसका युगार्ध ध्रुव के आधार पर टिका है । हे सुव्रत सूर्य के रथ के सात घोड़े गायत्री आदि सात छन्द स्वरूप हैं ।। २५-२६ ।। सूर्य का दिखायी देना ही सूर्योदय और नहीं दिखायी देना ही सूर्यास्त कहलाता है । हे वसिष्ठ जितने प्रदेश पर्यन्त ध्रुव स्थित है, भूमि से लेकर उतने प्रदेश पर्यन्त का प्रलयकाल में नाश हो जाता है ।सप्तर्षिमण्डल से लेकर ध्रुवमण्डल पर्यन्त आकाश का देदीप्यमान स्थान विष्णु का तृतीयपद है । यही दोषरूपी पङ्क से रहित यतियों का उत्तम स्थान है ।। २७-२९ ।। स्मरण करने से वहाँ से ही सभी पापों को विनष्ट करने वाली गङ्गा उत्पन्न होती है । आकाश में प्रभु श्रीहरि का शिशुमार के आकार का रूप समझना चाहिए ।। ३० ।। उस (शिशुमार चक्र) के पुच्छभाग में ध्रुव स्थित है और वे घूमते हुए समस्त ग्रहों को घुमाते रहते हैं । भगवान् का वह रथ विभिन्न आदित्य देवों, श्रेष्ठ ऋषियों, गन्धर्वों, अप्सराओं तथा श्रेष्ठ सर्पों एवं राक्षसों से अधिष्ठित है । प्रत्येक वर्ष होने वाले ठंढी,गर्मी तथा बरसात के कारण भगवान् सूर्य हैं । भगवान् विष्णु ऋग्वेदादि स्वरूप तथा समस्त शुभों एवं अशुभों के कारण हैं । सोम (चन्द्रमा) के रथ में तीन चक्र हैं और घोड़े कुन्द के समान श्वेत वर्ण के हैं ।। ३१-३३ ।। दस घोड़े से युक्त अपने बाएँ और दाएँ विचरण करते हैं । चन्द्रमा की अमृतमयी किरणों का पान तैंतिस हजार तैंतिस सो तैंतिस देवता पान करते हैं । उसकी एक कला का पान अमावस्या के दिन

संस्थिताः ॥ ३५ ॥ वाय्वग्निद्रव्यसंभूतो रथश्चन्द्रसुतस्य च । अष्टाभिस्तुरगैर्युक्तो बुधस्तेन चरत्यपि ॥ ३६ ॥ शुक्रस्यापि रथोऽष्टाश्वो भौमस्यपि रथस्तथा । बृहस्पते रथोऽष्टाश्वः शनेश्चाष्टाश्वको रथः ॥ ३७ ॥ स्वर्भानोश्च रथोऽष्टाश्वः केतोश्चाष्टाश्वको रथः । यदद्य वैष्णवः कायस्ततो विप्र वसुन्धरा ॥ ३८ ॥ पद्माकारा समुद्भूता पर्वताद्यादि संयुता । ज्योतिर्भुवननद्यद्रिसमुद्रवनकं हरिः ॥ ३९ ॥ यदस्ति नास्ति तद्विष्णुर्विष्णुज्ञानविजृम्भितम्। न विज्ञानमृते किंचिज्ज्ञानं विष्णुः परं पदम् ॥ ४० ॥ तत् कुर्याद्येन विष्णुः स्यात्सत्यं ज्ञानमनन्तकम् । पठेत्भुवनकोशं हि यः सोऽवाप्तसुखात्मभाक्॥४१॥ ज्योतिः शास्त्रादिविद्याश्च शुभाशुभाधिपो हरिः॥ ४२ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये भुवनकोशवर्णनं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ज्योतिःशास्त्रकथनम्

अग्निरुवाच– **ज्योतिःशास्त्रं प्रवक्ष्यामि शुभाशुभविवेकदम् । चातुर्लक्षस्य सारं यत्तज्ज्ञात्वा सर्वविद्भवेत् ॥ १ ॥ षट्काष्टके विवाहो न न च द्विर्द्वादशे स्त्रियाः । न त्रिकोणे ह्यथ प्रीतिः शेषे च समसप्तके ॥ २ ॥ द्विर्द्वादशे त्रिकोणे च मैत्री क्षेत्रपर्योयदि । भवेदेकाधिपत्यं च ताराप्रीतिरथापि वा ॥ ३ ॥ तथाऽपि कार्यः संयोगो न तु षट्काष्टके पुनः । जीवे भृगौ चास्तमिते म्रियते च पुमान्स्त्रियाः ॥ ४ ॥ गुरुक्षेत्रगते सूर्ये सूर्यक्षेत्रगते गुरौ।**

अमानामक कला में स्थित पितृगण किया करते हैं ।। ३४-३५ ।।। चन्द्रमा के पुत्र बुध का रथ वायु तथा अग्नि द्रव्य से उत्पन्न है । वह आठ घोड़ों से युक्त है बुध उसी से संचरण करते हैं।।३६।। शुक्र तथा भौम के भी रथ में आठ-आठ घोड़े हैं ।। ३७ ।। राहु तथा केतु के भी रथ में आठ-आठ घोड़े हैं । हे विप्र ! जो भगवान् विष्णु का जलमय शरीर है, उसी से पद्म के आकार वाली पर्वतों तथा समुद्रों से युक्त पृथिवी उत्पन्न हुयी । अग्नि, भुवन, नदी, पर्वत, समुद्र तथा वन श्रीहरि स्वरूप है। जो है और जो नहीं वह सब भगवान् विष्णु के विज्ञान से उत्पन्न भगवान् विष्णु का शरीर है । विज्ञान से भिन्न किसी भी वस्तु की सत्ता नहीं है । भगवान् विष्णु विज्ञान स्वरूप हैं । वे ही परमपद हैं । वही कार्य करना चाहिए जिससे कि सत्य स्वरूप ज्ञान स्वरूप एवं अनन्त स्वरूप भगवान् विष्णु की प्रसन्नता हो । जो भुवनकोश का पाठ करता है वह सुख का भागी होता है ।। ३८-४१ ।। अब मैं ज्योतिःशास्त्र का वर्णन करूँगा । उसमें विवेचित समस्त शुभों तथा अशुभों के वामी भगवान् श्रीहरि हैं ।। ४२ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का भुवनकोश वर्णन नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२० ॥

अग्नि ने कहा– अब मैं ज्योतिषशास्त्र का वर्णन करता हूँ जो शुभ तथा अशुभ का ज्ञान प्रदान करने वाला है । चार लाख श्लोकों में निबद्ध ज्योतिष् शास्त्र के सारांश को जानकर मनुष्य सर्वज्ञ हो सकता है ।। १ ।। यदि कन्या की राशि से वर की राशि संख्या परस्पर छह-आठ, नव-पाँच तथा दो-बारह हो तो विवाह शुभ नहीं होता है । शेष यदि दस-चार, ग्यारह-तीन और सात हो तो विवाह शुभ होता है ।। २ ।। यदि वर एवं कन्या की राशियों के स्वामियों में मित्रता हो तो अथवा दोनों के ताराओं (जन्म नक्षत्रों) में मित्रता हो तो नव-पाँच तथा दो बारह का दोष होने पर भी विवाह कर लेना चाहिए । किन्तु षडष्टक (छह- आठ) के दोष में शादी नहीं करनी चाहिए। गुरु तथा शुक्र के अस्त रहने पर विवाह करने से बधू के पति का नाश होता है।।३-४।।

विवाहं न प्रशंसन्ति कन्यावैधव्यकृद्भवेत् ॥ ५ ॥ अतिचारे त्रिपक्षं स्याद्वक्रे मासचतुष्टयम् । व्रतोद्वाहौ न कुर्वीत गुरोर्वक्रातिचारयोः ॥ ६ ॥ चैत्रे पौषे न रिक्तासु हरौ सुप्ते कुजे रवौ । चन्द्रक्षये चाशुभं स्यात्सन्ध्याकालः शुभावहः ॥ ७ ॥ रोहिणी चोत्तरा मूलं स्वाती हस्तोऽथ रेवती । तुले न मिथुने शस्तो विवाहः परिकीर्तितः ॥ ८ ॥ विवाहे कर्णवेधे च व्रते पुंसवने तथा । प्राशने चाऽऽद्यचूडायां विद्धर्क्षं च विवर्जयेत् ॥ ९ ॥ श्रवणे मूलपुष्ये च सूर्यमङ्गलजीवके । कुम्भे सिंहे च मिथुने कर्म पुंसवनं स्मृतम् ॥ १० ॥ हस्ते मूले मृगे पौष्णे बुधे शुक्रे च निष्कृतिः । अर्केन्दुजीवभृगुजे मूले ताम्बूलभक्षणम् ॥ ११ ॥ अन्नस्य प्राशनं शुक्रे जीवे मृगे च मीनके । हस्तादिपञ्चके पुष्ये कृत्तिकादित्रये तथा ॥ १२ ॥ अश्विन्यामथ रेवत्यां नवान्नफलभक्षणम् । पुष्यो हस्तस्तथा ज्येष्ठा रोहिणी श्रवणाश्विनी ॥ १३ ॥ स्वातिसौम्ये च भैषज्यं कुर्यादन्यत्र वर्जयेत् । पूर्वात्रयं मघा याम्यं पावनं श्रवणत्रयम् ॥ १४ ॥ भौमादित्यशनेर्वारे स्नातव्यं रोगमुक्तितः । पार्थिवे चाष्टह्रींकारं मध्ये नाम च दिक्षु च ॥ १५ ॥ ह्रींपुटे पार्थिवे दिक्षु ह्रीं विदिक्षु लिखेद्वसून् । गोरोचनाकुङ्कुमेन भूर्जे वस्त्रे गले धृतम् ॥ १६ ॥ शत्रवो वशमायान्ति मन्त्रेणानेन निश्चितम् । श्रीं ह्रीं सम्पुटं नाम श्रीं ह्रीं (च) पत्राष्टके क्रमात् ॥ १७ ॥ गोरोचनाकुङ्कुमेन भूर्जेऽथ सुभगावृते। गोमध्यवागमः पत्रे हरिद्राया रसेन च ॥ १८ ॥ शिलापट्टेऽरीन्स्तम्भयति भूमावधोमुखी कृतम् । ॐ हूँ सः सम्पुटं नाम ओं हूं सः पत्राष्टके क्रमात् ॥ १९ ॥ गोरोचनाकुङ्कुमेन भूर्जे मृत्युनिवारणम् । एकपञ्चनवप्रीत्यै

गुरु के क्षेत्र (धनु और मीन) में सूर्य के होने पर तथा सूर्य के क्षेत्र (सिंह) में गुरु के होने पर वह विवाह शुभ नहीं होता, वह कन्या के लिए वैधव्यकारक होता है ।। ५ ।। अतिचार होने पर तीन पक्ष तक तथा वक्र होने पर चार मास तक उपनयन तथा विवाह नहीं करना चाहिए । गुरु के वक्री तथा अतिचारी होने पर उपनयन नहीं करना चाहिए ।। ६ ।। चैत्र तथा पौष मासों में रिक्ता तिथियों में भगवान् के सो जाने पर भौम तथा रविवार को एवं चन्द्रमा का क्षय होने पर विवाह शुभ नहीं होता है । विवाह के लिए सन्ध्याकाल का समय शुभ होता है ।। ७ ।। रोहिणी, तीनों उत्तरा, मूल, स्वाती, हस्त तथा रेवती नक्षत्र में, तुला को छोड़कर मिथुन आदि (लग्नों में विवाह करना शुभ होता है) ।। ८ ।। विवाह, कर्णवेध, उपनयन, पुंसवन, अन्नप्राशन तथा चूड़ाकरण संस्कार में विद्ध नक्षत्र का त्याग कर देना चाहिए । (विद्ध नक्षत्र को पञ्चशलाकाचक्र से जाना जा सकता है) ।। ९ ।। श्रवण, मूल तथा पुष्य, नक्षत्रों में रवि, मङ्गल तथा वृहस्पतिवारों में, एवं कुम्भ, सिंह एवं मिथुन लग्नों में पुंसवन कर्म करने का विधान है ।। १० ।। हस्त, मूल, मृगशिरा तथा रेवती नक्षत्रों में, बुध तथा शुक्रवारों में बालक का निष्क्रमण करना चाहिए । रविवार, सोमवार, गुरुवार तथा शुक्रवार तथा मूल नक्षत्र में ताम्बूल सेवन करना चाहिए ।। ११ ।। शुक्र तथा वृहस्पतिवार को मकर तथा मीन लग्न में हस्त आदि पाञ्च नक्षत्रों में पुष्य नक्षत्र में तथा कृत्तिका आदि तीन नक्षत्रों में अन्नप्राशन करना शुभ होता है ।। १२ ।। अश्विनी, रेवती, पुष्य, हस्त,ज्येष्ठा, रोहिणी तथा श्रवण नक्षत्र में नवीन अन्न तथा नवीन फल खाना चाहिए । स्वाती तथा मृगशिरा नक्षत्र में भैषज्य सेवन करना चाहिए, अन्य नक्षत्रों में नहीं । तीनों पूर्वा, मघा, भरणी, स्वाती तथा श्रवण से तीन नक्षत्रों में- रवि, शनि और भौमवारों को रोगमुक्त व्यक्ति को स्नान करना चाहिए ।। १३-१४।। मिट्टी के चौकोर पट्ट पर आठों दिशाओं में- ह्रीं लिखकर बीच में शत्रु का नाम लिखे । अथवा चौकोर वस्त्र या चौकोर भोज पर आठों दिशाओं में ह्रीं लिखकर बीच में गोरोचन तथा कुंकुम से शत्रु का नाम लिखकर गले में धारण करना चाहिए ।। १५-१६ ।। ऐसा करने तथा श्रीं ह्रीं के बीच में शत्रु का नाम लिखने पर शत्रु वशवर्ती हो जाता है। श्रीं ह्रीं ऐसा आठ भोजपत्र खण्डों पर गोरोचन एवं कुंकुम से लिखकर भूमि में गाड़ देने पर तो विदेश गया हुआ व्यक्ति शीघ्र घर आ जाता है । उसी यन्त्र को हल्दी के रस से शिलापट्ट पर लिखकर नीचे मुँह करके पृथिवी पर रख दे तो शत्रु का स्तम्भन हो जाता है ।। १७-१८ ।। भोजपत्र के आठ खण्डों पर ओं हूँ सः बीच में नाम ओं हूँ सः इस तरह से गोरोचन तथा कुंकुम से लिखकर धारण करने से मृत्यु का निवारण होता है । यह यन्त्र एक, पाँच और नव बार लिखने से परस्पर में प्रेम होता है, दो छह,और बारह बार लिखने से दो वियुक्त व्यक्तियों का संयोग होता है, तीन, सात, तथा ग्यारह बार लिखने से लाभ होता है तथा चार, आठ एवं बारह बार लिखने से शत्रुता होती है ।। १९-२० ।। लग्न से क्रमशः तन, धन, सहज (भाई) मित्र, पुत्र, शत्रु,

द्विषड्द्वादश योगकाः ॥ २० ॥ त्रिसप्तैकादशे लाभो वेदाष्टद्वादशे रिपुः । तनुर्धनं च सहजः सुहृत्सुतौ रिपुस्तथा ॥ २१ ॥ जायानिधनधर्मौ च कर्माऽऽयव्ययकं क्रमात् । स्फुटं मेषादिलग्नेषु नवताराबलं वदेत् ॥ २२ ॥ जन्म सम्पद्विपत्क्षेमं प्रत्यरिः साधकः क्रमात् । निधनं मित्रपरममित्रं ताराबलं विदुः ॥ २३ ॥ वारे ज्ञगुरुशुक्राणां सूर्याचन्द्रमसोस्तथा । माघादिमासषट्के तु क्षौरमाद्यं प्रशस्यते ॥ २४ ॥ कर्णवेधो बुधे जीवे पुष्ये श्रवणचित्रयोः । पञ्चमेऽब्दे चाध्ययनं षष्ठीप्रतिपदं त्यजेत् ॥ २५ ॥ रिक्तां पञ्चदशीं भौमं प्राच्र्य वाणीं हरिं श्रियम् । माघादिमासषट्के तु मेखलाबन्धनं शुभम् ॥ २६ ॥ चूडाकरणमाद्यं च श्रावणादौ न शस्यते । अस्तं याते गुरौ शुक्रे क्षीणे च शशलाञ्छने ॥ २७॥ उपनीतस्य विप्रस्य मृत्युं जाड्यं विनिर्दिशेत् । क्षौरर्क्षे शुभवारे च समावर्तनमिष्यते ॥ २८ ॥ शुभक्षेत्रे विलग्नेषु शुभयुक्तेक्षितेषु च । अश्विनीमघाचित्रासु स्वातीयाम्योत्तरासु च ॥ २९ ॥ पुनर्वसौ च पुष्ये च धनुर्वेदः प्रशस्यते । भरण्यार्द्रा मघाऽश्लेषा बह्निभगर्क्षयोस्तथा ॥ ३० ॥ जिजीविषुर्न कुर्वीत वस्त्रप्रावरणं नरः। गुरौ शुक्रे बुधे वस्त्रं विवाहादौ न भादिकम् ॥ ३१ ॥ रेवत्यश्विधनिष्ठासु हस्तादिषु च पञ्चसु । शङ्ख विद्रुमरत्नानां परिधानं प्रशस्यते ॥ ३२ ॥ याम्यसार्प धनिष्ठासु त्रिषु पूर्वेषु चानले । क्रीतं हानिकरं द्रव्यं विक्रीतं हानिकृद्भवेत् ॥ ३३ ॥ अश्विनीस्वातिचित्रासु रेवत्यां वारुणे हरौ । क्रीतं लाभकरं द्रव्यं विक्रीतं हानिकृद्भवेत् ॥ ३४ ॥ भरणी त्रीणि पूर्वाणि आर्द्राश्लेषामघानिलाः । वह्निज्येष्ठाविशाखासु स्वामिनो नोपतिष्ठते ॥ ३५ ॥ द्रव्यं दत्तं प्रयुक्तं वा यत्र निक्षिप्यते धनम् । उत्तराश्रवणे शाक्रे कुर्याद्राजाभिषेचनम् ॥ ३६ ॥ चैत्रं ज्येष्ठं तथा भाद्रमाश्विनं पौषमेव च । माघं चैव

जाया (पत्नी) मृत्यु, धर्म, कर्म, आय तथा व्यय ये बारह भाव होते हैं । मेष आदि लग्नों से स्पष्ट नव ताराओं का बल बतलाना चाहिए । जन्म, सम्पत्, विपत् , क्षेम, प्रत्यरि, साधक, निधन, मित्र तथा परममित्र ये नवतारा बल क्रमशः होते हैं ।। २१-२३ ।। बुध, गुरु एवं शुक्रवार सूर्य तथा सोमवारों को; माघ आदि छह मासों में प्रथम क्षौरकर्म शुभ होता है ।। २४।। बुध एवं वृहस्पतिवारों को पुष्य, श्रवण तथा चित्रा नक्षत्रों में कर्णवेध संस्कार करना चाहिए । पाँचवें वर्षा में विद्यारम्भ करना चाहिए किन्तु षष्ठी प्रतिपदा रिक्ता (चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी) और पूर्णिमा तिथियों एवं भौमवार को छोड़कर शेष वारों एवं तिथियों में, सरस्वती, लक्ष्मी एवं विष्णु का पूजन करके विद्यारम्भ करना चाहिए । माघ से लेकर आषाढ़ तक छह मासों में उपनयन शुभ होता है ।। २५-२६ ।। प्रथम चूड़ाकरण श्रावण आदि मासों में नहीं करना चाहिए । गुरु तथा शुक्र अस्त हो जाने पर चन्द्रमा के क्षीण होने पर यदि ब्राह्मण का उपनयन संस्कार किया जाय तो उसकी मृत्यु अथवा जड़ता होती है । समावर्तन संस्कार क्षौर के नक्षत्रों तथा शुभवार में ही करना चाहिए ।। २७-२८ ।। शुभग्रह का लग्न हो, लग्न में शुभग्रह बैठा हो या उसे शुभग्रह देख रहा हो तो अश्विनी, मघा, चित्रा, स्वाती तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, तथा पुष्य नक्षत्र में धनुर्वेद को प्रारम्भ करना शुभ होता है ।। २९ ।। जीवन की इच्छा वाले मनुष्य को भरणी, आर्द्रा, मघा, अश्लेषा, कृत्तिका तथा पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में नवीन वस्त्र नहीं धारण करना चाहिए । गुरु, शुक्र और बुधवारों में नवीन वस्त्र धारण करना शुभ होता है । किन्तु विवाह आदि के अवसर पर वस्त्र धारण करने के लिए नक्षत्र आदि का विचार नहीं करना चाहिए ।। ३०-३१ ।। रेवती, अश्विनी, धनिष्ठा, हस्ता नक्षत्र से लेकर पाञ्च नक्षत्रों में शंख, मूँगा तथा रत्नों को धारण करना शुभ होता है।।३२।। भरणी, आश्लेषा, धनिष्ठा तीनों पूर्वा और कृत्तिका इन नक्षत्रों में खरीदी गयी वस्तु हानिकर होती है और बेचा गया द्रव्य, लाभकर होता है ।। ३३ ।। अश्विनी,स्वाती, चित्रा, रेवती, शतभिषा और श्रवण इन नक्षत्रों में खरीदा हुआ सामान लाभकर होता है तथा बेचना हानिकर होता है ।। ३४ ।। भरणी, तीनों पूर्वा, आर्द्रा, आश्लेषा, मया, स्वाती, कृत्तिका, ज्येष्ठा और विशाखा में न तो नौकरी प्रारम्भ करना चाहिए, न दूसरों को द्रव्य देना चाहिए न तो व्यापार द्रव्य देना चाहिए और न तो थाती धरोहर के रूप में रखना चाहिए । तीनों उत्तरा श्रवण और ज्येष्ठा इन नक्षत्रों में राज्याभिषेक करना चाहिए ।। ३५-३६ ।। चैत्र, ज्येष्ठ, भाद्रपद, आश्विन, पौष तथा माघ महीनों को छोड़कर शेष मासों में गृहारम्भ करना चाहिए ।। ३७ ।। अश्विनी, रोहिणी, मूल, तीनों

परित्यज्य शेषमासे गृहं शुभम् ॥३७॥ अश्विनी रोहिणीमूलमुत्तरात्रयमैन्दवम् । स्वाती हस्तोऽनुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते॥३८॥ आदित्यभौमवर्जं तु वापीप्रासादके तथा । सिंहराशिगते जीवे गुर्वादित्ये मलिम्लुचे ॥ ३९ ॥ बाले बृद्धेऽस्तगे शुक्रे गृहकर्मविवर्जयेत् । अग्निदाहौ भयं रोगो राजपीडा धनक्षतिः ॥ ४० ॥ संग्रहे तृणकाष्ठानां कृते श्रवणपञ्चके । गृहप्रवेशनं कुर्याद्धनिष्ठोत्तरवारुणे ॥ ४१ ॥ नौकाया घटने द्वित्रिपञ्चसप्तत्रयोदशी। नृपदर्शो धनिष्ठासु हस्तपौष्णाश्विनीषु च ॥ ४२ ॥ पूर्वात्रयं धनिष्ठाऽऽर्द्रा वह्निः सौम्यविशाखयोः । आश्लेषा चाश्विनी चैव यात्रासिद्धिस्तु सम्पदा॥४३॥ त्रिषूत्तरेषु रोहिण्यां सिनीवाली चतुर्दशी । श्रवणा चैव हस्ता च चित्रा चैवाष्टमी तथा॥४४॥ गोषु यात्रां न कुर्वीत प्रवेशं नैव कारयेत् । अनिलोत्तररोहिण्यां मृगमूलपुनर्वसौ ॥ ४५ ॥ पुष्यश्रवणहस्तेषु कृषिकर्मसमाचरेत्। पुनर्वसूत्तरास्वातीभगमूलेन्द्रवारुणे ॥ ४६ ॥ गुरोः शुक्रस्य वारे वा वारे च सोमभास्वतोः । वृषलग्ने च कर्तव्यं कन्यायां मिथुने तथा ॥ ४७ ॥ द्विपञ्चदशमी सप्ततृतीया च त्रयोदशी । रेवती रोहिणीन्द्राग्निहस्तमैत्रोत्तरेषु च ॥ ४८ ॥ मन्दारवर्जं बीजानि वापयेत्सम्पदर्थ्यपि । रेवतीहस्तमूलेषु श्रवणे भगमैत्रयोः ॥ ४९ ॥ पितृदैवे तथा सौम्ये धान्यच्छेदं मृगोदये । हस्तचित्राऽदितिस्वातीरेवत्यां श्रवणत्रये ॥ ५० ॥ स्थिरे लग्ने गुरोर्वारेऽथ वा भार्गवसोम्ययोः । याम्यादितिमघाज्येष्ठासूत्तरेषु प्रवेशयेत् ॥ ५१ ॥ ॐ धनदाय सर्वधनेशाय देहि मे धनं स्वाहा । ॐ नवे हर्षे, इलादेवि लोकसंवर्धिनि कामरूपिणि देहि मे धनं स्वाहा ॥ ५२॥ पत्रस्थं लिखितं धान्यराशिस्थं धान्यवर्धनम् । त्रिपूर्वासु विशाखायां धनिष्ठावारुणेऽपि च ॥ ५३॥ एतेषु षट्सु विज्ञेयं धान्यनिष्क्रमणं बुधैः देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठोदङ्मुखे रवौ ॥ ५४ ॥ मिथुनस्थे रवौ दर्शाद्यदि स्याद्द्वादशी तिथिः । सदा तत्रैव कर्तव्यं शयनं चक्रपाणिनः ॥ ५५ ॥

उत्तरा, मृगशिर, स्वाती, हस्त एवं अनुराधा ये नक्षत्र गृहारम्भ के लिए शुभ हैं ।। ३८ ।। बावली खोदवाने तथा मकान बनवाने में रविवार तथा भौमवार वर्जित है। जब गुरु सिंह राशि के हों तथा सूर्य धनु एवं मीन राशि के हों, मलमास का महीना हो शुक्र बाल, वृद्ध अथवा अस्त हों तो गृहकर्म नहीं करना चाहिए ।। ३९ ।। श्रवण पञ्चक (श्रवण,धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद तथा रेवती) में तृणों तथा काष्ठ का संग्रह करने से आग लगने का भय, राजा से पीड़ा तथा धनक्षय का भय होता है ।। ४०-४१ ।। द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी तथा त्रयोदशी तिथियों में नाव बनवानी चाहिए । धनिष्ठा, हस्त, रेवती तथा अश्विनी नक्षत्र राजा का दर्शन करने के लिए उत्तम होते हैं ।। ४२ ।। तीनों पूर्वा, धनिष्ठा, आर्द्रा, कृत्तिका, मृगशिरा, विशाखा आश्लेषा तथा अश्विनी युद्ध यात्रा में विजय प्रदान करने वाली होती हैं ।। ४३ ।। तीनों उत्तरा, रोहिणी, श्रवण, हस्त तथा चित्रा नक्षत्र, अष्टमी, अमावस्या तथ चतुर्दशी तिथियों में न तो गौओं को बाहर ले जाय और न तो नयी गायों को लाएँ ।। ४४-४४।। स्वाती, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिर, मूल, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण और हस्त नक्षत्र में कृषि कार्य करना चाहिए । पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, स्वाती, पूर्वाफाल्गुनी, ज्येष्ठा और शतभिष, नक्षत्रों में, द्वितीया, पञ्चमी, दशमी, सप्तमी तृतीया और त्रयोदशी तिथियों में, वृहस्पति, शुक्र, सोम तथा रविवारों में, वृष, कन्या तथा मिथुन लग्नों में खेती का कार्य प्रारम्भ करना चाहिए ।। ४५-४७।। सम्पत्ति प्राप्ति की इच्छा वाले पुरुष को केवल मंगल तथा शनिवार को छोड़कर; रेवती, रोहिणी, ज्येष्ठा, कृत्तिका, हस्त, अनुराधा तथा तीनों उत्तरा इन नक्षत्रों में बीज वपन करना चाहिए ।। ४८ ।। रेवती, हस्त, मूल, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा, मघा तथा मृगशिरा इन नक्षत्रों में तथा मकर लग्न में धान्य छेदन अच्छा होता है । हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, स्वाती रेवती तथा श्रवण आदि तीन नक्षत्रों में भी धान्यच्छदन शुभ होता है।।४९-५०।। स्थिरलग्न,गुरु, बुध तथा शुक्रवारों में, भरणी, पुनर्वसु, मघा, ज्येष्ठा तथा तीनों उत्तरा में धान को बखार आदि में रखना चाहिए ।। ५१ ।। ओं धनदाय सर्वधनेशाय देहि मे धनं स्वाहा । ओं नवे वर्षे ! इलादेवि ! संवर्धिनि कामरूपिणि देहि मे धनं स्वाहा ।। ५२।। इन दोनों मन्त्रों को पत्ते पर अथवा भोजपत्र पर लिखकर धान्यराशि में रख देने से धान की वृद्धि होती है । तीनों पूर्वा विशाखा, धनिष्ठा और शतभिषा इन छह नक्षत्रों में बखार से धान्य (अनाज)

सिंहतौलिगते चार्के दर्शाद्यद्द्वादशीद्वयम् । आदाविन्द्रसमुत्थानं प्रबोधश्च हरेः क्रमात् ॥ ५६ ॥ तथाा कन्यागते भानौ दुर्गोत्थाने तथाऽष्टमी । त्रिपादेषु च ऋक्षेषु यदा भद्रा तिथिर्भवेत् ॥ ५७ ॥ भौमादित्यशनैश्चारी विज्ञेयं तत्त्रिपुष्करम् । सर्वकर्मण्युपादेया विशुद्धिश्चन्द्रतारयोः॥५८॥ जन्माश्रितस्त्रिषष्ठश्च सप्तमी दशमस्तथा । एकादशः शशी येषां तेषामेव शुभं वदेत् ॥ ५९ ॥ शुक्लपक्षे द्वितीयश्च पञ्चमो नवमः शुभः । मित्रातिमित्रसाधकसंपत्क्षेमादितारकाः ॥ ६० ॥ जन्मना मृत्युमाप्नोति विपदा धनसंक्षयम् । प्रत्यरौ मरणं विद्यान्निधने याति पञ्चताम् ॥ ६१ ॥ कृष्णाष्टमीदिनादूर्ध्वं यावच्छुक्लाष्टमी दिनम् । तावत्कालं शशी क्षीणः पूर्णस्तत्रोपरि स्मृतः ॥ ६२ ॥ वृषे च मिथुने भानौ जीवे चन्द्रेन्द्रदैवते । पौर्णमासीगुरोवरि महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता ॥ ६३ ॥ ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापत्ये रविस्तथा । पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता ॥ ६४॥ स्वात्यन्तरे यन्त्रनिष्ठे इन्द्रस्योत्थापयेद्ध्वजम् । हर्यृक्षपादे चाश्विन्यां सप्ताहान्ते विसर्जयेत् ॥ ६५ ॥ सर्वं हेमसमं दानं सर्वे ब्रह्मसमा द्विजाः । सर्वं गङ्गासमं तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ ६६ ॥ ध्वाङ्क्षी महोदरी घोरा मन्दा मन्दाकिनी तिला । राक्षसी च क्रमेणार्कात्सङ्क्रान्तिर्नामभिः स्मृता ॥ ६७॥ बालवे कौलवे नागे तैतिले करणे यदि। उत्तिष्ठन्सङ्क्रमत्यर्कस्तदा लोकः सुखी भवेत् ॥ ६८॥ गरे बवे बणिग्विष्टौ किंस्तुघ्ने शकुनौ व्रजेत्। राज्ञो दोषेण लोकोऽयं पीड्यते सम्पदा समम्॥ ६९॥ चतुष्पाद्विष्टिवाणिज्ये शयितः सङ्क्रमेद्रविः । दुर्भिक्षं राजसङ्ग्रामो दम्पत्योः संशयो भवेत्॥७०॥ कृत्तिकायां नवदिनं त्रिरात्रं रोहिणीषु च । मृगशिरः पञ्चरात्रमार्द्रासु प्राणनाशनम् ॥ ७१ ॥ पुनर्वसौ च पुष्ये च सप्तरात्रं विधीयते । नवरात्रं

बाहर निकालना चाहिए ।। ५३ ।। सूर्य के उत्तरायण रहने पर देवता, बगीचा तथा तड़ाग, बापी आदि की प्रतिष्ठा करानी चाहिए ।। ५४ ।। सूर्य के मिथुन राशि के होने पर शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि हो तो उस समय श्रीहरि का शयन कराना चाहिए ।। ५५।। सिंह तथा तुला राशि के सूर्य के होने पर क्रमशः सिंह राशि के सूर्य के होने पर शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन श्रीहरि का पार्श्व परिवर्तनोत्सव तथा तुला राशि के सूर्य के होने पर शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन श्रीहरि का प्रबोधोत्सव मनाना चाहिए ।। ५६ ।। कन्या राशि के सूर्य के होने पर शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि को दुर्गा जी को जगाना चाहिए । त्रिपाद नक्षत्र (जिन नक्षत्रों के तीन चरण दूसरी राशि में प्रविष्ट होते हैं- जैसे कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा और पूर्वाभाद्रपद) में जब भद्रा, द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथियों में रवि शनि तथा भौमवार को पड़े तो त्रिपुष्कर योग होता है । समस्त कार्यों में चन्द्रमा तथा तारा का बल देखना चाहिए ।। ५७-५८ ।। जन्म राशि से तृतीय, षष्ठ, सप्तम, दसम, एकादश जिनके राशि हों उनके लिए चन्द्रमा शुभ होता है ।। ५९ ।। शुक्ल पक्ष में द्वितीय, पञ्चम तथा नवम चन्द्रमा शुभ होता है । मित्र, अतिमित्र, साधक,संपत् तथा क्षेम आदि तारा शुभ होते हैं । जन्म का तारा मृत्युकारक, विपदा नामक तारा से धन का विनाश, प्रत्यरि नामक तारा से मृत्यु तथा निधन नामक तारा से मृत्यु होती है । अतएव इन तारों में कोई नया काम अथवा यात्रा नहीं करना चाहिए ।। ६०-६१ ।। कृष्णपक्ष की अष्टमी से शुक्लपक्ष की अष्टमी तक चन्द्रमा क्षीण रहता है तथा उसके बाद वह पूर्ण होता है ।। ६२।। अथवा मिथुन राशि के सूर्य के होने पर मृगशिरा अथवा ज्येष्ठा नक्षत्र में यदि गुरु हों तो गुरुवार को पड़ने वाली पूर्णिम महाज्येष्ठी पूर्णिमा होती है ।। ६३ ।। स्वातीनक्षत्र के आने से पूर्व ही यन्त्र पर इन्द्रेवता का पूजन करना चाहिए । एक सप्ताह के पश्चात् श्रवण अथवा अश्विनी नक्षत्र में उसका विसर्जन कर देना चाहिए ।। ६५ ।। जब सूर्यग्रहण लगता है, उस समय सभी प्रकार के दान सुवर्ण दान के समान होते हैं, सभी ब्राह्मण ब्रह्म के समान होते हैं तथा सभी जल गङ्गा के समान होते हैं ।। ६६।। रवि आदि वारों में होने वाली सूर्य की संक्रान्तियों के नाम क्रमशः- ध्वाङ्क्षी, महोदरी, घोरा, मन्दा, मन्दाकिनी,तिला तथा राक्षसी होते हैं ।। ६७।। बालव,कौलव, नाग तथा तैतिल नामक करणों में यदि सूर्य का संक्रमण होता हो तो संसार के लोग सुखी होते हैं । गर, वव, वणिक्, विष्टि तथा बालव नामक करणों में सूर्य की संक्रान्ति के होने पर राजा के दोष से प्रजा सम्पत्ति के साथ दुखी होती है ।। ६७-६९ ।। चतुष्पात्, विष्टि तथा नाग करण

तथाऽश्लेषा श्मशानान्तं मघासु च ॥ ७२ ॥ द्वौ मासौ पूर्वफाल्गुन्यामुत्तरासु त्रिपञ्चकम् । हस्ते तु दृश्यते चित्रास्वर्धमासं तु पीडनम् ॥ ७३ ॥ मासद्वयं तथा स्वातिविशाखा विंशतिर्दिनम् । मैत्रे चैव दशाहानि ज्येष्ठास्वेवार्धमासकम् ॥ ७४ ॥ मूलेन जायते मोक्षः पूर्वाषाढा त्रिपञ्चकम् । उत्तरा दिनविंशत्या द्वौ मासौ श्रवणेन च ॥ ७५॥ धनिष्ठा चार्धमासं च वारुणे च दशाहकम् । न च भाद्रपदे मोक्ष उत्तरासु त्रिपञ्चकम् ॥ ७६॥ रेवती दशरात्रं च अहोरात्रं तथाऽश्विनी । भरण्यां प्राणहानिः स्याद्गायत्री होमतः शुभम् ॥ ७७ ॥ पञ्चधान्यतिलाज्याद्यैर्धेनुदानं द्विजे शमम् । सूर्यदशाषडाब्दा स्यादिन्दोः पञ्चदशैव तु ॥ ७८ ॥ अष्टौ वर्षाणि भौमस्य दशसप्त दश बुधे । दशाब्दानि दशा पङ्गोरूनविंशद्गुरोर्दशा ॥ राहोर्द्वादशवर्षाणि भार्गवस्यैकविंशतिः॥ ७९॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ज्योतिःशास्त्रकथनम् नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२१॥

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालगणनम्

अग्निरुवाच— **कालः समागणो वक्ष्ये गणितं कालबुद्धये । कालः समागणोऽर्कघ्नो मासैश्चैत्रादिभिर्युतः॥ १ ॥ द्विघ्नो द्विष्ठः सवेदः स्यात्पञ्चाङ्गाष्टयुतो गुणः । त्रिष्ठो मध्यो वसुगुणः पुनर्वेदगुणश्च सः ॥ २ ॥ अष्टरन्ध्राग्निहीनः स्यादधःसैकरसाष्टकैः । मध्यो हीनः षष्टिहतो लब्धयुक्तस्तथोपरि ॥ ३॥**

में सूर्य का संक्रमण होने पर दुर्भिक्ष होता है, राजा का संग्राम होता है तथा पति-पत्नी के जीवन का संशय होता है ।। ७० ।। कृत्तिका नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो जाय तो वह नव दिन तक रहता है, रोहिणी में उत्पन्न होने पर वह तीन रात तक रहता है, आर्द्रा में यदि रोग उत्पन्न हो तो प्राणनाशक होता है ।। ७१ ।। पुनर्वसु अथवा पुष्य नक्षत्रों में उत्पन्न होने वाला रोग सात रात तक रहता है; आश्लेषा नक्षत्र में उत्पन्न नक्षत्र नव रात तक बना रहता है और मघा में उत्पन्न रोग अत्यन्त घातक होता है ।। ७२ ।। पूर्वाफाल्गुनी में उत्पन्न रोग दो मास तक रहता है । तीनों उत्तरा में उत्पन्न रोग पन्द्रह दिन तक रहता है । हस्त तथा चित्रा नक्षत्रों में उत्पन्न रोग दो मास तक कष्ट देता है ।। ७३ ।। स्वाती नक्षत्रों में उत्पन्न रोग दो मास तक, विशाखा नक्षत्र में उत्पन्न रोग बीस दिन तक, अनुराधा में उत्पन्न रोग दस दिन तक और ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न रोग पन्द्रह दिन तक कष्ट देता है ।। ७४ ।। मूल नक्षत्र में उत्पन्न रोग से छुटकारा नहीं मिलता है। पूर्वाषाढ़ा में उत्पन्न होने वाला रोग पन्द्रह दिन तक रहता है । उत्तराषाढ़ा में उत्पन्न होने वाला रोग बीस दिन तक रहता है, श्रवण नक्षत्र में उत्पन्न होने वाला रोग दो मास तक रहता है ।। ७५ ।। धनिष्ठा का रोग आधे मास तक, शतभिषा नक्षत्र का रोग दस दिन तक, भाद्रपद में उत्पन्न रोग से छुटकारा नहीं मिलता है, तथा तीनों उत्तरा में उत्पन्न होने वाला रोग पन्द्रह दिन रहता है ।। ७५-७६।। रेवती का रोग दस रात तक रहता है और अश्विनी नक्षत्रका रोग एक दिन और एक रात रहता है । भरणी नक्षत्र रोग से मृत्यु संभव होता है और गायत्री के होम से कल्याण होता है ।। ७७।। पञ्चधान्य तिल तथा घी के होम ब्राह्मण को तथा धेनु दान करने से शान्ति होती है । सूर्य की दशा आठ वर्ष, चन्द्रमा की पन्द्रह वर्ष, भौम की आठ वर्ष, बुध की सत्रह वर्ष, केतु की दस वर्ष, वृहस्पति उन्नीस वर्ष, राहु की बारह वर्ष तथा शुक्र की इक्कीस वर्ष की दशा होती है । (यह अष्टोत्तरी दशा का क्रम है।) ।। ७८-७९ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का ज्योतिःशास्त्र वर्णन नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२१ ॥

अध्याय १२२

अग्नि ने कहा— अब मैं वर्षों के समुदाय स्वरूप काल का वर्णन कर रहा हूँ । और काल का ज्ञान प्राप्त करने के लिए गणित बतला रहा हूँ । (सृष्टिकाल के समुदाय से अथवा संवत्सर

न्यूनः सप्तकृतो वारस्तदधस्तिथिनाडयः । सगुणो द्विगुणश्चोर्ध्वं त्रिभिरूनो गुणः पुनः ॥ ४ ॥ अधः खरामसंयुक्तो रसार्काष्टपलैर्युतः । अष्टाविंशच्छेषपिण्डस्तिथिनाड्या अधः स्थितः ॥ ५ ॥ गुणस्तिसृभिरूनोऽर्धं द्वाभ्यां च गुणयेत्पुनः । मध्ये रुद्रगुणः कार्यो ह्यधः सैको नवाग्निभिः ॥६॥ लब्धहीनो भवेन्मध्यो द्वाविंशतिविवर्जितः। षष्टिशेषे ऋणं ज्ञेयं लब्धमूर्धं (र्ध्वं (?) विनिक्षिपेत् ॥ ७ ॥ सप्तविंशतिशेषस्तु ध्रुवो नक्षत्रयोगयोः। मासि मासि क्षिपेद्वारं द्वात्रिंशदघटिकास्तिथौ ॥ ८ ॥ द्वे पिण्डे द्वे नक्षत्रे नाड्य एकादश ह्यृणे । वारस्थाने तिथिं दद्यात्सप्तभिर्भागमाहरेत् ॥ ९ ॥ शेषवाराश्च सूर्याद्या घटिकासु च पातयेत् । पिण्डकेषु तिथिं दद्याद्धरेच्चैव चतुर्दश ॥ १० ॥ ऋणं धनं धनमृणं क्रमाज्ज्ञेयं चतुर्दशे । प्रथमे त्रयोदशे पञ्च द्वितीयद्वादशे दश ॥ ११ ॥ पञ्चदश तृतीये च तथा चैकादशे स्मृतम् । चतुर्थे दशमे चैव भवेदेकोनविंशतिः॥ १२ ॥ पञ्चमे नवमे चैव द्वाविंशतिरुदाहृताः । षष्ठाष्टमे त्वखण्डाःस्युश्चतुर्विंशतिरेव च ॥ १३ ॥ सप्तमे पञ्चविंशः स्यात्खण्डशः पिण्डकाद्भवेत् । कर्कटादे हरेद्राशिमृतुवेदत्रयैः क्रमात् ॥ १४ ॥ तुलादौ प्रातिलोम्येन त्रयो वेदरसाः क्रमात् । मकरादौ दीयते (न्ते) (?) च रसवेदत्रयः क्रमात् ॥ १५ ॥ मेषादौ प्रातिलोम्येन

आदि के आरम्भ काल समुदाय से) बारह से गुणा करके उसमें चैत्र आदि मासों की संख्या मिला देनी चाहिए ।। १ ।। फिर उसको दो से गुणा करके दो स्थानों में रखें प्रथम स्थान में चार जोड़े और द्वितीय स्थान में आठ सौ पैंसठ जोड़ना चाहिए । इस तरह जो अङ्क आए उसे सगुण कहते हैं । फिर उसे तीन स्थान में रखें । उसमें बीच वाली संख्या को आठ से गुणा करके फिर उसे चार से गुणा करना चाहिए ।। २ ।। इस तरह तीनों का संस्कार करके उन सबों का नाम ऊर्ध्व, मध्य तथा अधः रखना चाहिए । फिर अधः अङ्ग में ३८८ घटाना चाहिए और मध्य अङ्ग में ८७ । फिर उसमें साठ का भाग देकर जो शेष बचे उसे अलग लिखना चाहिए ।। ३ ।। प्रथम अथवा ऊर्ध्व स्थान में रखी संख्या में सात का भाग देने से जो शेष बचे उसे रवि आदि वारों को जानना चाहिए । शेष दो स्थानों का जो अंक होता है वह तिथि आदि का ध्रुव होता है । सगुण को दो से गुणा करके तीन घटाना चाहिए । फिर उसके नीचे सगुण को लिखकर उसमें तीस जोड़ना चाहिए । पुनः तीनों स्थानों में क्रमशः- ६, १२ तथा ८ पलों को जोड़ दें । फिर ६० का भाग देकर प्रथम स्थान में अट्ठाइस का भाग देकर शेष को लिखना चाहिए । उसके नीचे तिथि ध्रुवा को लिखना चाहिए । सबको मिलाने पर ध्रुवा हो जायेगा । पुनः उसी सगुण को आधा करना चाहिए और उसमें तीन घटाना चाहिए । और दो से गुणा करना चाहिए ।। ४ ।। मध्य को ग्यारह से गुणा करें । अधः में एक जोड़ना चाहिए । द्वितीय स्थान में उनचालिस से भाग देकर लब्धि को प्रथम स्थान में घटाना चाहिए उसी को मध्य कहते हैं । मध्य में बाइस घटाना चाहिए उसमें ६० से भाग देने पर जो शेष हो उसे ही ऋण कहते हैं । लब्धि को ऊर्ध्व (नक्षत्र ध्रुवा) में मिला देना चाहिए । सत्ताइस से भाग देने पर जो शेष होता है वह नक्षत्र तथा योग का ध्रुवा होता है ।। ५-७ ।। अब महीने का ध्रुवा बतलाया जा रहा है । तिथि की ध्रुवा और नक्षत्र ध्रुवा को प्रत्येक मास में जोड़कर वार के स्थान में सात का भाग देने पर जो शेष बचे उसे ही तिथि का दण्ड एवं पल समझना चाहिए । नक्षत्र के लिए सत्ताइस (२७) का भाग देकर शेष के अनुसार अश्विनी आदि नक्षत्रों का दण्ड पल आदि समझना चाहिए।।८-९।। अब तिथि आदि के मान को स्पष्ट करने के लिए उसके संस्कार को बतलाते हैं । चतुर्दशी आदि तिथियें में कही गयी घड़ियों को क्रमशः जोड़ना घटाना तथा घटाना जोड़ना चाहिए। जैसे चतुर्दशी में शून्य घड़ी तथा त्रयोदशी और प्रतिपदा में पाँच घड़ी क्रमशः ऋण तथा धन करना चाहिए। द्वितीया तथा द्वादशी में दश घड़ी का ऋण एवं धन करना चाहिए।।१०-११ ।। तृतीया एवं एकादशी में पन्द्रह घड़ी का ऋण एवं धन करना चाहिए । चतुर्थी एवं दशमी में उन्नीस घड़ी का धन एवं ऋण करना चाहिए ।। १२ ।। पञ्चमी एवं नवमी में बाइस घड़ी का धन एवं ऋण करना चाहिए षष्टी तथा अष्टमी में चौबीस (२४) घड़ी का धन एवं ऋण करना चाहिए एवं सप्तमी में (२५) पच्चीस घड़ी का धन एवं ऋण संस्कार करना चाहिए। यह अंशात्मक फल चतुर्दशी आदि तिथियों में किया जाता है ।। १३-१३-१/२ ।। कर्क आदि तीन राशियों (कर्क, सिंह एवं कन्या) में क्रमशः छह, चार और तीन तथा तुला आदि तीन राशियों (तुला, वृश्चिक तथा धनु) में इसके विपरीत क्रमशः तीन चार एवं छह का संस्कार करना चाहिए । यही अखण्ड कहलाता है । मकर आदि तीन राशियों में (मकर, कुम्भ तथा मीन) में क्रमशः छह, चार तथा तीन का संस्कार करना चाहिए

त्रयो वेदरसाः क्रमात् । खेषवः खयुगा मैत्रं मेषादौ विकला धनम् ॥ १६ ॥ कर्कटे प्रातिलोम्यं स्यादृणमेतत्तुलादिके। चतुर्गुणा तिथिर्ज्ञेया विकलाश्चेह सर्वदा ॥ १७ ॥ हन्याल्लिप्ता गतागामिपिण्डसंख्याफलान्तरैः । षष्ट्याऽऽप्तं प्रथमोच्चार्ये हानौ देयं धने धनम् ॥ १८ ॥ द्वितीयोच्चरिते वर्गे वैपरीत्यमिति स्थितिः । तिथिर्द्विगुणिता कार्या षड्भागपरिवर्जिताः॥ १९ ॥ रविकर्मविपरीता तिथिनाडी समायुता । ऋणे शुद्धे तु नाड्यः स्युर्ऋणं शुध्येत नो यदा ॥ २० ॥ सषष्टिकं प्रदेयं तत्षष्ट्याधिक्ये च तत्त्यजेत् । नक्षत्रं तिथिमिश्रं स्याच्चतुर्भिर्गुणिता तिथिः ॥ २१ ॥ तिथिस्त्रिभागं संयुक्ता ऋणेन च तथान्विता । तिथिरत्र चिता कार्या तद्वेदाद्योगशोधनम् ॥ २२ ॥ रविचन्द्रौ समौ कृत्वा योगो भवति निश्चलः । एकोना तिथिर्द्विगुणा सप्तभिन्नाकृतिर्द्विधा ॥ २३ ॥ तिथिश्च द्विगुणैकोना कृताङ्कै करणं निशि । कृष्णचतुर्दश्यन्ते शकुनिः पर्वणीह चतुष्पदम् । प्रथमे तिथ्यर्धतो हि किंस्तुघ्नं प्रतिपन्मुखे ॥ २४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कालगणनं नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

युद्धजयार्णवीयनानायोगाभिधानम्

अग्निरुवाच– **वक्ष्ये जयशुभाद्यर्थं सारं युद्धजयार्णवे । अ इ उ ए ओ स्वराः स्युः क्रमान्नन्दादिका तिथिः ॥ १ ॥ कादिहान्ता भौमरवी ज्ञसोमौ**

तथा मेष आदि तीन राशियों में इसके विपरीत तीन, चार एवं छह का संस्कार करना चाहिए ।। १४-१५ ।। (इसी को कलात्मक फल संस्कार कहते हैं।) मेष आदि तीन राशियों में क्रमशः ५०, ४० तथा १२ का धन करना चाहिए । कर्कादि तीन राशियों में इनके विपरीत १२, ४० तथा ५० का धन करना चाहिए । तुल आदि छह राशियों में भी इसी प्रकार से ऋण संस्कार करना चाहिए । चतुर्गुणित तिथियों में विकलात्मक फल संस्कार किया जाता है ।। १६-१७ ।। गत तथा आगामी खण्डों के अन्तर से कला को गुणित करना चाहिए और ६० से भाग दें । लब्धि को प्रथमोच्चार में ऋण फल रहने पर भी धन करना चाहिए और धन रहने पर भी धन करना चाहिए ।। १८ ।। द्वितीयोच्चरित वर्ग के रहने पर विपरीत करना चाहिए । तिथि को द्विगुणित करना चाहिए और उसका छठा भाग उसमें घटा देना चाहिए ।। १८ ।। सूर्य संस्कार के विपरीत तिथि दण्ड को मिलाना चाहिए । ऋण फल को घटा देने पर स्पष्ट रूप से तिथि का मान होता है । यदि ऋणफल न घटे तो उसमें साठ (६०) जोड़ देना चाहिए । यदि फल साठ (६०) से अधिक हो तो उसमें साठ घटाकर शेष का संस्कार करना चाहिए । इससे तिथि के साथ-साथ नक्षत्र का भी मान निकल आयेगा । उसके बाद चौगुनी तिथि में तिथि का त्रिभाग मिलाकर उसमें से ऋणफल निकाल देना चाहिए ।। २०-२१।। तिथि का मान स्पष्ट हो गया सूर्य और चन्द्रमा को योग करके भी 'योग' का मान निश्चित होता है । तिथि की संख्या से एक घटाकर उसे दूना करके फिर गुणनफल से एक घटाने पर चर इत्यादि करण बन जाते हैं । कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्द्ध से शकुनि,चतुष्पद, किंस्तुघ्न और नाग ये चार स्थिर करण होते हैं । इस तरह शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि के पूर्वार्द्ध में किंस्तुघ्नकरण होता है ।। २२-२४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का काल गणना नामक एक सौ बाइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२२ ॥

अध्याय १२३

अग्नि ने कहा– अब मैं युद्धजयार्णव में विजयरूपी शुभ प्रयोजन की सिद्धि के लिए सारतत्त्व का वर्णन करूँगा । अ, इ, उ, ए तथा ओ ये पाँच स्वर हैं जो क्रमशः नन्दा आदि

गुरुभार्गवौ । शनिर्दक्षिणनाड्यां तु भौमार्कशनयः परे ॥ २ ॥ खार्णवः खरसैर्गुण्यो रुद्रैर्भागं समाहरेत् । रसाहतं तु तत्कृत्वा पूर्वभागेन भाजयेत्॥३॥ वह्निभिश्चाऽऽहतं कृत्वा रूपं तत्रैव निक्षिपेत् । स्पन्दनं नाड्याः पलानि सप्राणस्पन्दनं पुनः ॥ ४ ॥ अनेनैव तु मानेन उदयन्ति दिने दिने । स्फुरणैस्त्रिभिरुच्छ्वास उच्छ्वासैस्तु पलं स्मृतम् ॥ ५ ॥ षष्टिभिश्च पलैर्लिप्ता लिप्ताषष्टिस्त्वहर्निशम् । पञ्चमार्धोदये बालकुमारयुववृद्धकाः॥६॥ मृत्युर्येनोदयस्तेन चास्तमेकादशांशकैः । कुलागमे भवेद्भङ्गः समृत्युः पञ्चमोऽपि वा ॥ ७ ॥ शनिचक्रे चार्धमासं ग्रहाणामुदयः क्रमात् । विभागैः पञ्चदशभिः शनिभागस्तु मृत्युदः ॥ ८ ॥ दशकोटिसहस्राणि अर्बुदं न्युर्बुदं हरेत् । त्रयोदश च लक्षाणि प्रमाणं कूर्मरूपिणः ॥ ९॥ मघादौ कृत्तिकाद्यतस्तद्देशान्तः शनिस्थितौ । राहुचक्रे च सप्तोर्ध्वमधः सप्त च संलिखेत् ॥ १०॥ वाय्वग्न्योश्चैव नैर्ऋत्ये पूर्णिमाऽऽग्नेय भागतः । अमावास्यां वायवे च राहुर्वैतिथिरूपकः ॥ ११॥ रकारं दक्षभागे तु हकारं वायवे लिखेत् । प्रतिपदादौ ककारादीन्सकारं नैर्ऋते पुनः ॥ १२॥ राहोर्मुखे तु भङ्गः स्यादिति राहुरुदाहृतः । विष्टिरग्नौ पौर्णमास्यां करालीन्द्रे तृतीयकम् ॥ १३॥ घोरा याम्यां तु सप्तम्यां दशम्यां रौद्रसौम्यगा । चतुर्दश्यां तु वायव्ये चतुर्थ्यां वरुणाश्रये ॥ १४॥ शुक्लाष्टम्यां दक्षिणे च एकादश्यां भृशं त्यजेत् । रौद्रश्चैव तथा श्वेतो मैत्रः सारभटस्तथा॥१५॥

(भद्रा, जया,रिक्ता तथा पूर्णा) तिथियों को सूचित करते हैं ।। १ ।। 'कैसे लेकर ह' पर्यन्त व्यञ्जन वर्णों को उनके नीचे क्रमशः भौम, रवि, बुध, सोम, वृहस्पति, शुक्र तथा शनि को लिखना चाहिए । किन्तु शनि, मङ्गल तथा सूर्य को दाहिनी ओर लिखना चाहिए ।। २ ।। ४० (चालीस) का साठ से गुणा करके ग्यारह से भाग देना चाहिए । भजन फल में छह से गुणा करके फिर उसमें ग्यारह से भाग देना चाहिए । लब्धि तीन से गुणा करके एक मिला दें तो उतने ही बार नाड़ी के स्फुरण पल होते हैं । उसके बाद भी अहर्निश नाड़ी का स्फुरण होता रहता है । तीन स्फुरण का एक उच्छ्वास होता है । उच्छ्वास को अणु भी कहते हैं । छह उच्छ्वासों का एक पल होता है । साठ पलों का एक लिप्ता (दण्ड) होता है । और साठ दण्ड का एक रात एक दिन (अहोरात्र) होता है । अ, इ, उ,ए तथा ओ इन पाँचों स्वरों की क्रमशः, बाल, कुमार, युवा, वृद्ध तथा मृत्यु ये पाँच संज्ञाएँ होती हैं। इनमें से किसी एक का स्वर का उदय होने पर उसका अस्त पाँचवें खण्ड पर होता है । इनमें से प्रत्येक के अस्त होने का काल मान दिन को ग्यारहवाँ अंश ५ दण्ड २७ पल हुआ करता है । अर्थात् किसी स्वर के उदय होने पर दूसरा स्वर ५ दण्ड पल पर उदित होगा । मृत्युस्वर के उदित होने पर युद्ध करने पर पराजय के साथ-साथ मृत्यु भी होती है ।। ३-७ ।। **शनिचक्र का वर्णन–** शनिचक्र में ग्रहों का उदय आधे मास पर होता है । इन पन्द्रह विभागों में शनि का भाग युद्ध के लिए मृत्यु कारक होता है । अर्थात् शनि प्रत्येक राशि पर ३ मास रहता है अतएव इसमें दिनों की संख्या ३०X३० = ९०० हुई। इसमें पन्द्रह का भाग देने पर ९००/१५ = ६० लब्धि हुआ । अतएव शनिचक्र में प्रत्येक ग्रह साठ-साठ दिन पर उदित होते हैं । इनमें से जब शनि को उदय का समय आता है तो वह युद्ध के लिए मृत्युदायक होता है । उस समय में युद्ध नहीं करना चाहिए । दस करोड़ हजार तथा तेरह लाख इतने का ही दशांश मिला दें तो उतने ही योजन में कूर्मरूपी शनिबिम्ब के पृष्ठ का क्षेत्रफल होता है । अर्थात् शनि विम्ब पृष्ठ का क्षेत्रफल ११००१४३०००० ग्यरह अरब, चौदह लाख तीस हजार योजन होता है । मघा के प्रथम चरण से लेकर कृत्तिका नक्षत्र के अन्तिम चरण तक शनि की स्थिति होती है ।। ९ ।। **राहुचक्र का वर्णन–** राहुचक्र के लिए सात खड़ी तथा सात पड़ी रेखाएँ खींचनी चाहिए। उसमें वायव्यकोण से अग्नि कोण तक शुक्ल पक्ष की तिथियों को लिखना चाहिए । एवं अग्निकोण से ईशानकोण को लिए हुए वायव्य कोण तक कृष्णपक्ष की अमावस्या पर्यन्त की तिथियों को लिखना चाहिए । इसी तरह तिथि रूपी राहु का न्यास होता है । र को दक्षिण दिशा में और ह को वायव्य कोण में लिखना चाहिए ।। १०-११ ।। प्रतिपद् आदि तिथियों के सहारे ककार आदि को लिखना चाहिए, सकार को नैर्ऋत्यकोण में लिखना चाहिए । यह कहलाता है राहुचक्र । राहुमुख में यात्रा करने से यात्रा भंग होता है ।। १२ ।। **भद्रानिवास का वर्णन–** पूर्णिमा तिथि को होने वाली भद्रा का नाम विष्टि तथा उसका निवास अग्निकोण में होता है । तृतीया तिथि को होने वाली भद्रा का नाम कराली होता है और उसका निवास पूर्वदिशा में होता है ।सप्तमी तिथि को होने वाली भद्रा का नाम घोरा तथा उसक निवास

सावित्रो विरोचनश्च जयदेवोऽभिजित्तथा । रावणो विजयश्चैव नन्दी वरुण एव च ॥ १६॥ यमसौम्यौ भवश्चान्ते दश पञ्च मुहूर्तकाः । रौद्रे रौद्राणि कुर्वीत श्वेते स्नानादिकं चरेत् ॥ १७॥ मैत्रे कन्याविवाहादि शुभं सारभटे चरेत् । सावित्रे स्थापनाद्यं वा विरोचने नृपक्रिया ॥ १८॥ जयदेवे जयं कुर्याद्रावणे रणकर्म च । विजये कृषिवाणिज्यं पटबन्धं च नन्दिनि ॥ १९॥ वरुणे च तडागादि नाशकर्म यमे चरेत् । सौम्ये सौम्यादि कुर्वीत भवेल्लग्नमहर्दिवा ॥ २०॥ योगा नाम्नाऽविरुद्धाः स्युर्योगा नाम्नैव शोभनाः । राहुरिन्द्रात्समीरं च वायोर्दक्षं यमच्छिवम् ॥ २१॥ शिवादाप्यं जलादग्निरग्नेः सौम्यं ततस्त्रयम् । ततश्च संक्रमं हन्ति चतस्रो घटिका भ्रमन् ॥ २२ ॥ राहुचक्रम् चण्डीन्द्राणी वाराही च मुशली गिरिकर्णिका । बला चातिबला क्षीरी मल्लिकाजातियूथिकाः ॥ २३ ॥ यथालाभं धारयेत्ताः श्वेतार्कश्च शतावरी । गुडूची वागुरी दिव्या ओषध्यो धारिता जये॥२४॥ ॐ नमो भैरवाय खड्गपरशुहस्ताय ॐ हूं बिघ्नविनाशाय ॐ हूं फट् ॥ २५ ॥ अनेनैव तु मन्त्रेण शिखाबन्धादिकृज्जये । तिलकं चाञ्जनं चैव धूपलेपनमेव च ॥ २६ ॥ स्नानपानानि तैलानि योगधूलिमतः शृणु । सुभगा मनः शिला तालं लाक्षारससमन्वितम् ॥ २७॥ तरुणीक्षीरसंयुक्तो ललाटे तिलको वशे । विष्णुक्रान्ता च सर्पाक्षी सहदेवी च रोचना ॥ २८ ॥ अजादुग्धेन संपिष्टं तिलको वश्यकारकः । प्रियंगुकुङ्कुमं कुष्ठं मोहनी तगरं घृतम् ॥ २९ ॥ तिलको वश्यकृच्चैव रोचना रक्तचन्दनम् । निशा मनःशिला तालं प्रियंगुः सर्षपास्तथा ॥ ३०॥

दक्षिण दिशा में होता है । सप्तमी तथा दशमी तिथि को होने वाली भद्रा का नाम रौद्रा तथा उसका निवास क्रमशः ईशानकोण तथा उत्तर दिशा में होता है ।। १३ ।। चतुर्दशी तिथि को भद्रा वायव्यकोण में, चतुर्थी तिथि को पश्चिम दिशा में, शुक्ल पक्ष की अष्टमी तथा एकादशी के दक्षिण दिशा में भद्रा रहती है । प्रत्येक शुभ कार्य में भद्रा का त्याग करना चाहिए ।। १४ ।। पन्द्रह मुहूर्त होते हैं- रौद्र, श्वेत,मैत्र, सारभट, सावित्र, विरोचन, नन्दी,वरुण, यम, सौम्य तथा भव ।। १५-१६ ।। रौद्र मुहूर्त में भयंकर कार्यों को करना चाहिए, श्वेत में स्नान आदि करना चहिए। मैत्र मुहूर्त में कन्या का विवाह आदि करना चाहिए । सारभट में शुभ कार्यो को करना चाहिए ।। १५-१७ ।। सावित्र में स्थापना आदि कार्यों को करना चाहिए, विरोचन में राज्य कार्य करना चाहिए । जय मुहूर्त में विजय कार्य को करना चाहिए, रावण मुहूर्त में युद्ध कार्य करना चाहिए ।। १८ ।। विजय में कृषि एवं व्यापार कर्म करना चाहिए, नन्दी मुहूर्त में वस्त्र बनाने का कार्य करना चाहिए, वरुण मुहूर्त में तडाग (बावली) निर्माण आदि कार्य करना चाहिए तथा यम मुहूर्त में नाश करने का कार्य करना चाहिए ।। १९ ।। सौम्य मुहूर्त में सौम्य कार्य करना चाहिए । इन मुहूर्तों में लग्न दिनभर एवं रात्रिभर रहता है । अपने नाम से ही योग विरुद्ध होता है तथा अपने नाम से ही शोभन होता है ।। २० ।। दैनिक राहु प्रतिदिन पूर्व दिशा से वायुकोण तक,वायुकोण से दक्षिणदिशा तक, दक्षिण दिशा से ईशानकोण तक, ईशानकोण से पश्चिम दिशा तक, पश्चिम से अग्निकोण तक, एवं अग्निकोण से उत्तर दिशा तक, तीन-तीन दिशा करके चार घटियों में भ्रमण करता है ।। २१-२२ ।। (अब औषधियों के लेपादि द्वारा विजय का वर्णन किया जा रहा है ।) चण्डी, इन्द्राणी (सिन्धुवार) वाराही (वाराहीकंद) मुशली (तालमूली) गिरिकर्णिका (अपराजिता) बला (कुट) अतिबला (कंघी) क्षीरी (सिरखोला) मल्लिका (मोतियाँ) जहाती (चमेली) यूथिका (जूही) श्वेतार्क (सफेद मदार) शतावरी, गुडूची, वागुरी इन दिव्य औषधियों को धारण करके संग्राम में जाने से विजय की प्राप्ति होती है ।। २३-२४ ।। 'ओं नमो भैरवाय खड्गपरशुहस्ताय ओं हूँ विघ्नविनाशकाय ओं हूँ फट् ।। २५ ।। इस मन्त्रसे शिखा बाँधकर युद्ध करने से विजय की प्राप्ति होती है । अब तुम तिलक, अञ्जन, धूपलेपन, स्नान, पान, तैल तथा योगधूलि का विवरण सुनो ।। २६ ।। सुभगा (नील दूर्वा) मैनसिल, हरताल इन सबको लाक्षारस में मिलाकर, स्त्री के दूध में घोंटकर ललाट में तिलक करने से शत्रु वश में हो जाता है । विष्णुकान्ता सर्पाक्षी (महिकंद) सहदेइया, गोरोचन,इनको बकरी के दूध में पिसकर तिलक लगाने से शत्रु वश में हो जाता है ।। २७-२८ ।। प्रियंगु नाग केसर, कुंकुम, कुठ, चमेली, तगर, घी इन सबको मिलाकर तिलक लगाने से वह वश्यकारक होता है । गोरोचन, रक्तचन्दन, निशा (हल्दी) मैनसिल, हरिताल, प्रियंगु (नागकेसर) तथा सरसों, मोहनी (चमेली) दूर्वा, विष्णुकांता,सहदेइया और जटामांसी इन सबों को बिजौरा नींबू के रस में पिसकर ललाट में किया हुआ तिलक

मोहनी हरिता कान्ता सहदेवी शिखा तथा । मातुलुङ्गरसैः पिष्टं ललाटे तिलको वशे ॥ ३१ ॥ सेन्द्राः सुरा वशं यान्ति किं पुनः क्षुद्रमानुषाः। मञ्जिष्ठा चन्दनं रक्तं कटुकन्दा विलासिनी ॥ ३२ ॥ पुनर्नवासमायुक्तो लेपोऽयं भास्करो वशे । चन्दनं नागपुष्पं च मञ्जिष्ठा तगरं वचा ॥ ३३॥ लोध्रं प्रियंगुरजनी मांसीतैलं वशंकरम् ॥ ३४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धजयार्णवीयनानायोगाभिधानं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

युद्धजयार्णवीयज्योतिःशास्त्रकारः

अग्निरुवाच– **ज्योतिःशास्त्रादिसारं च वक्ष्ये युद्धजयार्णवे । वेलामन्त्रौषधाद्यं च यथोमामीश्वरोऽब्रवीत् ॥ १ ॥** देव्युवाच- **देवैर्जिता दानवाश्च येनोपायेन तद्वद । शुभाशुभविवेकाद्यं ज्ञानं युद्धजयार्णवम् ॥ २ ॥** ईश्वर उवाच– **मूलदेवच्छया जाता शक्तिः पञ्चदशाक्षरा । चराचरं ततो जातं यामाराध्याखिलार्थवित् ॥ ३ ॥ मन्त्रपीठं प्रवक्ष्यामि पञ्चमन्त्रसमुद्भवम् । ते मन्त्राः सर्वमन्त्राणां जीविते मरणे स्थिताः ॥ ४ ॥ ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यवेदमन्त्राः क्रमेण ते । सद्योजातादयो मन्त्रा ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रकः ॥ ५ ॥ ईशः सप्तशिखा देवाः शब्दाद्याः पञ्च च स्वराः । अ इ उ ए ओ कलाश्च मूलं ब्रह्मेतिकीर्तितम् ॥ ६ ॥ काष्ठमध्ये यथा वह्निरप्रवृद्धो न दृश्यते । विद्यमाना तथा देहे शिवशक्तिर्न दृश्यते ॥ ७ ॥ आदौ शक्तिःसमुत्पन्ना ओंकारस्वरभूषिता । ततो बिन्दुर्महादेवि एकारेण व्यवस्थितः ॥ ८ ॥ जातो नाद उकारस्तु नदते हृदि संस्थितः । अर्धचन्द्रादिकारस्तु**

वश्यकारक होता है ।। २९-३१ ।। इन सबों के तिलक लगाने से इन्द्र आदि देवता भी बश में हो जाते हैं सामान्य मनुष्य की कौन सी बात है ।। ३१ ।। मञ्जिष्ठ, रक्तचन्दन, सहिजन,विलासिनी तथा पुनर्नवा, इनको मिलाकर लेप करने से सूर्य वश में हो जाते हैं । चन्दन (मलय चन्दन) नागपुष्प (सोनचम्पा) मञ्जीठ, तगर, वच, लोध्र, प्रियंगु (नागकेसर) तथा रजनी (जटामांसी) इन सबों के सम्मिश्रण से बना हुआ तैल वश्यकारक होता है ।। ३२-३४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का युद्ध जयार्णवीय अनेकयोग वर्णन नामक एक सौ तेइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२३ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं युद्ध जयार्णव विषयक ज्योतिष शास्त्र का सार बतलाऊँगा । जैसा कि शिव जी ने पार्वती से युद्ध में विजय प्राप्ति की बेला, मन्त्र तथा औषधि आदि को बतलाया था ।। १ ।। **पार्वती जी ने कहा–** उस युद्ध जयार्णव विषयक ज्ञान तथा शुभ एवं अशुभ का विवेक आदि मुझे बतलाइये ।। २ ।। **श्री शिव जी ने कहा–** मूलदेव परमात्मा की इच्छा से पन्द्रह अक्षरों वाली शक्ति उत्पन्न हुयी उसी से चराचर जगत् की उत्पत्ति हुयी ।उस शक्ति की आराधना करके मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है ।। ३ ।। अब मैं पाँच मंत्रों के योग से बने मन्त्रपीठ का वर्णन करूँगा। ये मन्त्र सभी मन्त्रों के जीवन एवं करण अर्थात् सद्भाव तथा असद्भाव में स्थित हैं । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के मन्त्र प्रथम मन्त्र हैं । सद्योजात आदि द्वितीयमन्त्र हैं, ब्रह्मा, विष्णु, एवं रुद्र ये तृतीय प्रकार के मन्त्र हैं, ईश, सप्तशिखा (अग्नि) तथा इन्द्र आदि देवता चौथे प्रकार के मन्त्र हैं और अ, इ,उ, ए तथा ओ ये पाँचवें प्रकार के मन्त्र हैं ; इन स्वरों को मूलब्रह्म भी कहते हैं ।। ४-६ ।। जिस तरह काष्ठ की अग्नि की प्रतीति विना जलाए नहीं होती है उसी तरह से विद्यमान भी शिवशक्ति की प्रतीति नहीं होती है ।। ७ ।। हे महादेवि ! सर्वप्रथम ओंकार स्वर से विभूषित शक्ति उत्पन्न हुयी उसके पश्चात् विन्दु एकार के रूप में परिणत हुआ ।। ८ ।। फिर नाद पैदा हुआ उससे उकार पैदा हुआ और वह हृदय में स्थित हुआ।

मोक्षमार्गस्य बोधकः ॥ ९ ॥ अकारोऽव्यक्त उत्पन्नो भोगमोक्षप्रदः परः । अकार ऐश्वरे मुक्तिर्निवृत्तिश्च कला स्मृता ॥ १० ॥ अकारो बीजः प्राणाख्या इडा शक्तिः स्थिरा स्मृता । इकारश्च प्रतिष्ठाख्यो रसोयानश्च पिङ्गला ॥ ११ ॥ क्रूरा शक्तिरीबीजः स्याद्धरबीजोऽग्निरूपवान् । विद्यासम्माना गान्धारी शक्तिश्च दहनी स्मृता ॥ १२ ॥ ए शान्तिर्वायुपस्पर्शो ओवायुश्चलक्रिया । ओंकारः शान्त्यतीताख्यः खशब्दयूथपालिनः॥१३॥ पञ्च वर्गाः स्वरा जाताः कुजज्ञगुरुभार्गवाः । शनिः क्रमादकाराद्याः ककाराद्यास्त्वधः स्थिताः ॥ १४ ॥ एतन्मूलमतः सर्वं ज्ञायते सचराचरम् । विद्यापीठं प्रवक्ष्यामि प्रणवः शिव ईरितः ॥ १५॥ उमा सोमः स्वयं शक्तिर्वामा ज्येष्ठा च रौद्र्यपि । ब्रह्मा विष्णुः क्रमाद्रुद्रो गुणाः सर्गादयस्त्रयः॥१६॥ रत्ननाडीत्रयं चैव स्थूलः सूक्ष्मः परोऽपरः । चिन्तयेच्छ्वेतवर्णं तं मुञ्चमानं परामृतम् ॥ १७ ॥ प्लाव्यमानं यथाऽऽत्मानं चिन्तयेत्तं दिवानिशम् । अजरत्वं भवेद्देवि शिवत्वमुपगच्छति ॥ १८ ॥ अंगुष्ठादौ न्यसेदङ्गान्नेत्रमध्येऽथ देहके । मृत्युञ्जयं ततःप्राच्य रणादौ विजयी भवेत् ॥ १९ ॥ शून्यो निरालयः शब्दः स्पर्शस्तिर्यङ्नतं स्पृशेत् । रूपस्योर्ध्वगतिः प्रोक्ता जलस्याधः समाश्रिता ॥ २० ॥ सर्वस्थानविनिर्मुक्तो गन्धो मध्ये च मूलकम्। नाभिमूले स्थितं कन्दं शिवरूपं तु मण्डितम् । शक्तिव्यूहेन सोमोऽर्को हरिस्तत्र व्यवस्थितः ॥ २१ ॥ दशवायुसमोपेतं पञ्चतन्मात्रमण्डितम्॥२२॥

अर्धचन्द्र से इकार पैदा हुआ, जो मोक्षमार्ग का बोधक है ।। ९ ।। उसके पश्चात् भोग तथा मोक्षप्रद अकार उत्पन्न हुआ और अकार सर्वशक्तिमान प्रवृत्ति तथा निवृत्ति की कला है ।। ९-१०।। (यही पाँचों स्वरों की उत्पत्ति का प्रकार है ।) अकार शरीर के प्रधान शक्ति प्राणरूप से स्थिर है । इसी को इडा भी कहते हैं । प्रतिष्ठा नामक इकार शरीर में रसरूप से तथा पालक रूप से स्थित है । इसे ही पिङ्गला कहते हैं ।। ११ ।। ई बीज क्रूरा शक्ति है । हरीबीज (उकार) स्वर शरीर में अग्निरूप से रहता है । यही समान का बोध कराने वाली विद्या है । इसे ही गान्धारी भी कहते हैं । यह दहनात्मिका शक्ति से युक्त है ।। १२ ।। एकार स्वर शरीर में जलरूप से विद्यमान रहती है । इसमें शान्ति की क्रिया विद्यमान रहती है । ओकार स्वर शरीर में वायुरूप से विद्यमान रहता है तथा उसमें चलन क्रिया होती रहती है । ओंकार शान्त्यतीत नाम से बोधित होता है और वह शब्द नामक गुण वाले आकाश रूप से शरीर में विद्यमान रहता है ।। १३।। इस तरह से उत्पन्न होने वाले पाँचों स्वरों (अ, इ, उ, ए तथा ओ) के स्वामी क्रमशः भौम, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि हैं । इन पाँचों स्वरों के नीचे क्रमशः ककार आदि वर्ण होते हैं । शब्दब्रह्म मूलक ही यह सम्पूर्ण सचराचर जगत् है ।। १४ ।। अब मैं विद्यापीठ का वर्णन करूँगा । विद्यापीठ में शिव प्रणव रूप से कहे गए है। और उमा स्वयं सोम स्वरूपा (अमृतस्वरूपा) हैं । उन्हीं को वामाशक्ति, ज्येष्ठा शक्ति तथा रौद्री शक्ति भी कहते हैं । ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र ये तीनों गुण हैं । इन्हीं से जगत् की सृष्टि, पालन तथा संहार होते हैं ।। १५-१६ ।। शरीर के भीतर तीन रत्न नाड़ियाँ हैं, स्थूल, सूक्ष्म तथा पर । साधक को यह ध्यान करना चाहिए कि रत्न नाड़ी त्रय का वर्ण श्वेत है, इनसे सदा अमृत का स्राव हो रहा है, उससे आत्मा अहर्निश आप्लावित होती रहती है । हे देवि ! इस प्रकार से चिन्तन करने वाला साधक शिवतत्त्व को प्राप्त कर लेता है ।। १७-१८ ।। इसके पश्चात् साधक अंगुष्ठ आदि अंगों में नेत्र में तथा देह में मृत्युञ्जय का न्यास करे । इस तरह से मृत्युञ्जय का न्यास करें । इस तरह से मृत्युञ्जय की पूजा करके साधक संग्राम आदि में विजयी होता है ।। १९ ।। आकाश शून्य, निराश्रय और शब्द गुणात्मक है, वायु स्पर्श गुण वाला, तिरछी गति वाला और झुककर स्पर्श करने वाला होता है । रूप अर्थात् अग्नि की ऊर्ध्वगति बतलायी गयी है और जल की नीचे की ओर गति होती है ।। २० ।। गन्धगुणवती पृथ्वी सभी स्थानों को छोड़कर मध्य में विद्यमान है, वह सबों का मूल है । नाभि के मूल में कन्द रूप से श्रीशिवजी सुशोभित हो रहे हैं ।। २१ ।। वहीं पर शक्तिव्यूह के साथ सोम, सूर्य

कालानलसमाकारं प्रस्फुरन्तं शिवात्मकम् । तज्जीवं जीवलोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥ तस्मिन्नष्टे मृतं मन्ये मन्त्रपीठेऽनिलात्मकम् ॥ २३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धजयार्णवीयज्योतिःशास्त्रसारवर्णनं नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

अथ पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

युद्धजयार्णवीयनानाचक्राणि

ईश्वर उवाच– **ॐ ह्रीं कर्णमोटनि बहुरूपे बहुदंष्ट्रे हूं फट्, ॐ हः, ॐ ग्रस ग्रस कृन्त कृन्त च्छक च्छक हूं फट्, नमः ॥ १ ॥ पठ्यमानो ह्ययं मन्त्रः क्रुद्धः संरक्तलोचनः । मारणे पातने वाऽपि मोहनोच्चाटने भवेत् ॥ कर्णमोटी महाविद्या सर्ववर्णेषु रक्षिका ॥ २ ॥ इति नानाविद्या (द्याः) पञ्चोदयं प्रवक्ष्यामि स्वरोदय समाश्रितम् । नाभिहृदन्तरं यावत्तावच्चरति मारुतः ॥ ३ ॥ उच्चाटयेद्रणादौ तु कर्णाक्षीणि प्रभेदयेत् । करोति साधकः क्रुद्धो जपहोमपरायणः ॥ ४ ॥ हृदयात्पायुकं कण्ठं ज्वरादाहारिमारणे । कण्ठोद्भवो रसो वायुः शान्तिकं पौष्टिकं रसम् ॥ ५ ॥ दिव्यं स्तम्भं समाकर्षं गन्धो नासान्तिको भ्रुवः । गन्धलीनं मनः कृत्वा स्तम्भयेन्नात्र संशयः ॥ ६ ॥ स्तम्भनं कीलनाद्यं च करोत्येव हि साधकः । चण्डघण्टा कराली च सुमुखी दुर्मुखी तथा ॥ ७ ॥ रेवती प्रथमा घोरा वायुचक्रे तु ता यजेत् । उच्चाटकारिका देव्यः स्थितास्तेजसि संस्थिताः॥८॥ सौम्या च भीषणी देवी जया च विजया तथा । अजिता चापराजिता महाकोटी च रौद्रया ॥ ९ ॥ शुष्ककाया प्राणहरा रसचक्रे**

तथा श्रीहरि विद्यमान हैं। वहीं पर पञ्चतन्मात्राओं से समलंकृत दस प्राणवायुओं से युक्त कालाग्नि के समान देदीप्यमान श्रीशिवजी विद्यमान हैं। वे ही सम्पूर्ण जड़ जङ्गमात्मक जीवलोक के आत्मा हैं । उसके मन्त्रपीठ के नष्ट हो जाने पर वायुस्वरूप जीव का नाश हो जाता है, ऐसा मैं मानता हूँ ।। २२-२३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का युद्धजयार्णवीय ज्योतिःशास्त्र का सार वर्णन नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२४ ॥

श्रीशिवजी ने कहा– ओं ह्रीं कर्णमोटनि बहुरूपे बहुदंष्ट्रे हूँ फट्, ओं हः ग्रस ग्रस, कृन्त, कृन्त, च्छक च्छक हूँ फट् नमः ।। १ ।। इस मन्त्र को पढ़ने वाला पढ़ने मात्र से क्रुद्ध हो जाता है, उसकी आँखें लाल हो जाती हैं । इस मन्त्र को ही कर्णमोटी महाविद्या कहते हैं, यह सभी वर्णों में रक्षा करने वाली है । यह मन्त्र, मारण, पातन, मोहन तथा उच्चाटन करने का काम करने वाला है ।। २ ।। अब मैं स्वरोदय से सम्बद्ध, पञ्चोदय का वर्णन कर रहा हूँ । नाभि से लेकर हृदयपर्यन्त जो स्थान है, उसे मारुत चक्र कहते हैं । क्रुद्ध साधक जप तथा होम करके उससे संग्राम आदि में उच्चाटन कर्म करे तथा उसके कर्ण तथा नेत्रों को वायु से प्रभेदन करे ।। ३-४ ।। शत्रु के मारण कार्य में लगा हुआ साधक हृदय से लेकर गुदा मार्ग तक जाने वायु से ज्वरदाह कार्य करे । इसी को वायुचक्र कहते हैं। हृदय से लेकर कण्ठ तक जाने वाली वायुरस है । इसे ही रसचक्र कहते हैं । इससे शान्ति कर्म किया जाता है, इसका रस पौष्टिक है ।।५।। भौंहें से लेकर नासिका तक जाने वाली वायु को दिव्य कहते हैं । इसे ही तेजश्चक्र कहते हैं । इसका गुण गन्ध है । इससे स्तम्भन तथा आकर्षण का कार्य होता है । साधक नासिकाग्र में अपने मन को लगाकर निःसंदेह स्तम्भन का कार्य कर देता है ।। ६ ।। यह साधक स्तम्भन तथा कीलन तो करता ही है । साधक को चाहिए कि वह वायुचक्र में तेज में स्थित रहने वाली तथा उच्चाटन क्रिया करने वाली चन्द्रघण्टा, कराली, सुमुखी, दुर्मुखी, रेवती, प्रथमा तथा घोरा इन देवियों की पूजा करे ।। ७-८ ।। सौम्या, भीषणा, देवी, जया, विजया, अजिता, अपराजिता, महाकोटि,

स्थिता अमूः । विरूपाक्षी परा दिव्यास्तथा चाऽऽकाशमातरः ॥ १० ॥ संहारी जातहारी च दंष्ट्राला शुष्करेवती । पिपीलिका पुष्टिहरा महापुष्टिप्रवर्धना॥११॥ भद्रकाली सुभद्रा च भद्रभीमा सुभद्रिका । स्थिरा च निष्ठुरा दिव्या निष्कम्पा गदिनी तथा ॥ १२ ॥ द्वात्रिंशन्मातरश्चक्रे अष्टाष्टक्रमशः स्थिताः । एक एव रविश्चन्द्र एकश्चैकैकशक्तिक ॥ १३ ॥ भूतभेदेन तीर्थानि यथा तोयं महीतले । प्राण एको मण्डलैश्च भिद्यते भूतपञ्जरे ॥ १४ ॥ वामदक्षिणयोगेन दशधा सम्प्रवर्तते । वि (वि) न्दुमुण्डविचित्रं च तत्त्ववस्त्रेण वेष्टितम् ॥ १५ ॥ ब्रह्माण्डेन कपालेन पिबेत परमामृतम् । पञ्चवर्गबलाद्युद्धे जयो भवति तच्छृणु ॥ १६ ॥ अआकचटतपयाः श आद्यो वर्ग ईरितः । इईखछठथफराः षो वर्गश्च द्वितीयकः । उऊगजजडदबलाः सो वर्गस्य तृतीयकः। एऐघझढधभवा हो वर्गश्च चतुर्थकः ॥ १८ ॥ आ औ अं अः, ङञणना मो वर्गः पञ्चमो भवेत् । वर्णाश्चाभ्युदये नृणां चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ १९ ॥ बालः कुमारो युवा स्याद् वृद्धे मृत्युश्च नामतः । अत्मपीडाशोषकः स्यादुदासीनश्च कालकः॥२०॥ कृत्तिका प्रतिपद्भौम आत्मनो लाभदः स्मृतः । षष्ठी भौमो मघा पीडा आर्द्रा चैकादशी कुजः ॥ २१ ॥ मृत्युर्मघा द्वितीया ज्ञो लाभश्चाऽऽर्द्रा च सप्तमी । बुधोऽहनि भरणीज्ञः श्रवणं काल ईदृशः ॥ २२ ॥ जीवो लाभाय च भवेत्तृतीया पूर्वफाल्गुनी । जीवोऽष्टमी धनिष्ठाऽऽर्द्रा जीवोऽश्लेषा त्रयोदशी ॥ २३ ॥ मृत्यौ शुक्रश्चतुर्थी स्यात् पूर्वभाद्रपदा श्रिये । पूर्वाषाढा च नवमी शुक्रः पीडाकरो भवेत् ॥ २४ ॥ भरणी भूतजा शुक्रो यमदण्डो हि हानिकृत् । कृत्तिका पञ्चमी मन्दो लाभाय तिथिरीरिता॥२५॥ आ (अ) श्लेषा दशमी मन्दो योगः पीडाकरो भवेत्।

रौद्री, शुष्ककाया एवं प्राणहरा ये ग्यारह देवियाँ रस चक्र में स्थित हैं ।। ९ ।। विरूपाक्षी, परा,दिव्या, आकाश मातृकएँ संहारी, जातमातृका, दंष्ट्राला, शुष्करेवती, पिपीलिका, पुष्टिहरा, महापुष्टि, प्रवर्धना, भद्रकाली, सुभद्रा, भद्रभीमा सुभद्रिका, स्थिरा, निष्ठुरा, निष्कम्पा तथा गदिनी एवं रेवती ।। १०-१२ ।। ये बारह मातृकाएँ हैं ये क्रमशः- मारुत, वायु, रस एवं दिव्य इन चारों चक्रों में आठ-आठ करके स्थित हैं ।। १२ ।। सूर्य और चन्द्रमा भी एक ही हैं और उनकी शक्तियाँ भी भूतभेद से एक ही हैं, जैसे पृथ्वी पर नदी का एक ही जल स्थान भेद के कारण तीर्थ (पवित्र) समझा जाता है । जैसे शरीर के भीतर अस्थिपञ्जर में रहने वाला एक ही प्राण भिन्न-भिन्न मण्डलों में विभक्त हो जाता है ।। १३-१४ ।। एक ही वाम वाण तथा दक्षिण अङ्गों के योग से दस रूप में प्रवर्तित हो जाता है । वहीं वायु तत्त्वरूपी वस्त्र में वेष्टित होकर विचित्र विन्दुरूपी मुण्ड के द्वारा कपालरूपी ब्रह्माण्ड के अमृत का पान करता है ।। १५ ।। अब तुम्हें मैं जिस तरह से पञ्चवर्ग के बल से विजय होती है, उसे बतला रहा हूँ, सुनो ।। १६ ।। अ, आ, क, च, ट, त, प, य तथा श यह प्रथम वर्ग कहा गया है । इ, ई, ख, छ, ठ, थ, फ, र तथा ष यह द्वितीय वर्ग है ।। १७ ।। उ, ऊ, ग, ज, ड, द, ब, ल तथा स यह तृतीय वर्ग है । ए, ऐ, घ, झ, ढ, ध, भ, व तथा ह यह चतुर्थ वर्ग है ।। १८ ।। ओ, औ, अं, अः, ङ, ञ, ण, न तथा म यह पञ्चमवर्ग है । ये वर्ण मनुष्यों का कल्याण करने वाले तथा पैंतालिस हैं ।। १९ ।। इन वर्गों के क्रमशः नाम- बाल, कुमार, युवा, वृद्ध तथा मृत्यु है ।। १९ ।। अब तिथि, वार तथा नक्षत्रों के योग से काल ज्ञान का वर्णन किया जा रहा है । काल तीन प्रकार के होते हैं आत्मपीड, शोषक तथा उदासीन ।। २० ।। यदि मङ्गलवार को प्रतिपद तिथि तथा कृत्तिका नक्षत्र हो तो वह प्राणी के लिए लाभकारक होता है । यदि भौमवार को षष्ठी तिथि तथा मघा नक्षत्र हो तो वह पीड़ाकारक हेता है । यदि भौमवार को एकादशी तिथि तथा आर्द्रा नक्षत्र हो तो वह मृत्युकारक होता है ।। २१ ।। यदि बुधवार को द्वितीया तिथि तथा मघा नक्षत्र हो अथवा सप्तमी तिथि एवं आर्द्रा नक्षत्र हो तो लाभ होता है, बुधवार को भरणी नक्षत्र का योग हानिकारक होता है, एवं बुधवार को श्रवण नक्षत्र के आने पर कालयोग (मृत्युयोग) होता है ।। २२ ।। यदि बृहस्पतिवार को तृतीया तिथि एवं पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र हो तो लाभकर होता है । वृहस्पतिवार को अष्टमी तिथि धनिष्ठा नक्षत्र का योग हानिकारक होता है एवं आर्द्रा नक्षत्र एवं त्रयोदशी तिथि का योग मृत्युकारक होता है ।। २३ ।। शुक्रवार को चतुर्थी तिथि और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र का योग श्रीवर्धक होता है । शुक्रवार को नवमी तिथि और पूर्वाषाढ़ नक्षत्र का योग पीड़ाकारक होता है ।। २४ ।। शुक्रवार को भरणी नक्षत्र और चतुर्दशी तिथि का योग यमदण्ड योग (मृत्युकारक) और

मघा शनिः पूर्णिमा च योगो मृत्युकरः स्मृतः॥ २६ ॥ इति तिथियोगः। पूर्वेत्तराग्निनैर्ऋत्यदक्षिणानिलचन्द्रगाः । ब्रह्माद्याः स्युर्दृष्टयः स्युः प्रतिपन्नवमीमुखाः॥२७॥ राशिभिः सहिता दृष्टा ग्रहाद्याः सिद्धये स्मृताः । मेषाद्याश्चतुरः कुम्भा जयः पूर्णोऽन्यथा मृतिः ॥ २८ ॥ सूर्यादि रिक्ता पूर्णा च क्रमादेवं प्रदापयेत्। रणे सूर्ये फलं नास्ति सोमे भङ्ग प्रशाम्यति ॥ २९ ॥ कुजेन कलहं विद्याद्बुधः कामाय वै गुरुः । जयाय मनसे शुक्रो मन्दे भङ्गो रणे भवेत् ॥ ३०॥ देयानि पिङ्गलाचक्रे सूर्यगानि (णि) च भानि हि । मुखे नेत्रे ललाटेऽथ शिरोहस्तोरुपक्षके ॥ ३१ ॥ पादे मृतिस्त्रित्रऋक्षे स्यात्त्रीणि पक्षेऽर्थनाशनम्। मुखस्थे च भवेत्पीडा शिरःस्थे कार्यनाशनम् ॥ ३२ ॥ कुक्षिस्थिते फलं स्याच्च राहुचक्रं वदाम्यहम् । इन्द्राच्च नैर्ऋतं गच्छेन्नैर्ऋतात्सोममेव च ॥ ३३ ॥ सोमाद्धुताशनं वह्नेरप्यामाप्याच्छिवालयम् । रुद्राद्यमं यमाद्वायुं वायोश्चन्द्रं व्रजेत्पुनः ॥ ३४ ॥ भुङ्क्ते चतस्रो नाडीस्तु राहुः पृष्ठे जयो रणे । अग्रतो मृत्युमाप्नोति तिथिराहु वदामि ते ॥ ३५ ॥ आग्नेयादि शिवान्तं च पूर्णिमामादितः प्रिये । पूर्वे कृष्णाष्टमीं यावद्राहुदृष्टौ जयो भवेत् ॥ ३६ ॥ ऐशान्याग्नेयनैर्ऋत्यवायव्ये फणिराहुकः । मेषाद्या दिशि पूर्वादौ यत्राऽऽदित्योऽग्रतो मृति॥३७॥ तृतीया कृष्णपक्षे तु सप्तमी दशमी तथा। चतुर्दशी तथा शुक्ले चतुर्थ्येकादशी तिथिः ॥ ३८ ॥ पञ्चदशी विष्टयः स्युः पूर्णिमाऽऽग्नेयवायवे ।

अनिष्टकारक होता है । शनिवार को कृतिका नक्षत्र तथा पञ्चमी तिथि का योग लाभकारक होता है ।। २५ ।। शनिवार को आश्लेषा नक्षत्र तथा दशमी तिथि का योग पीडाप्रद होता है तथा शनिवार को मघा नक्षत्र तथा पूर्णिमा तिथि का योग मृत्युकारक होता है ।। २६ ।। पूर्व उत्तर, अग्नि, नैर्ऋत्य, दक्षिण वायव्य, पश्चिम तथा ईशान इनमें से एक दिशा दूसरी दिशा को देखती है । प्रतिपदा तथा नवमी आदि तिथियों में मेष आदि राशियों को मिलाना चाहिए । राशियों के साथ देखे गए ग्रह आदि सिद्धिप्रद होते हैं । मेष आदि चार राशियाँ तथा कुम्भ राशि पूर्ण विजयप्रद होते हैं। इनसे भिन्न राशियाँ युद्ध में मृत्युप्रद होती हैं ।। २७-२८ ।। रविवार आदि दिन तथा रिक्ता तथा पूर्णा तिथियों को पूर्वादि दिशाओं के साथ मिलाना चाहिए । रविवार के साथ इन तिथियों का कोई विशेष फल युद्ध में नहीं होता है । सोम का सम्बन्ध सन्धिकारक होता है ।। २९ ।। मङ्गल के साथ सम्बध होने पर कलह होता है। बुध का सम्बन्ध होने पर इच्छा की पूर्ति होती है और बृहस्पति का सम्बन्ध होने पर विजयप्राप्ति होती है । तथा शनिश्चर का सम्बन्ध होने पर संग्राम में पराजय होता है ।। ३० ।। पिङ्गलाचक्र में (एक पक्षी का आकार बनाकर) उसके मुख नेत्र, ललाट, सिर, हाथ, कमर, पंख तथा पैर में क्रमशः सूर्य नक्षत्र के तीन-तीन नक्षत्रों को लिखना चाहिए । पैर वाले तीन नक्षत्रों में युद्ध करने पर मृत्यु होती है, पंख वाले तीन नक्षत्रों में धन का नाश होता है, मुख वाले तीन नक्षत्रों में पीड़ा होती है । शिर के तीन नक्षत्रों में युद्ध करने पर कार्य का नाश होता है ।। ३१-३२ ।। कुक्षि वाले तीन नक्षत्रों में युद्ध करने से उत्तम फल की प्राप्ति होती है । अब मैं राहु चक्र का वर्णन कर रहा हूँ । राहु पूर्व से नैऋत्यकोण तक, नैऋत्यकोण से उत्तर दिशा तक ।। ३३ ।। उत्तर दिशा से अग्निकोण तक, अग्निकोण से पश्चिम तक, पश्चिम से ईशानकोण तक, ईशानकोण से दक्षिण दिशा तक, दक्षिण दिशा से वायव्यकोण तक तथा वायव्यकोण से उत्तरदिशा तक राहु चार चार नाड़ियों का भोग करता है । राहु को पीछे करके युद्ध करना विजयप्रद होता है और राहु के सम्मुख युद्ध करने से मृत्यु होती है । अब मैं तिथि राहु का वर्णन कर रहा हूँ ।। ३४-३५ ।। पूर्णिमा तिथि के पश्चात् कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तिथि से लेकर अष्टमी तिथि पर्यन्त राहु पूर्व दिशा में रहता है । उसमें रण करने से विजय की प्राप्ति होती है । इसी तरह ईशानकोण से अग्नि कोण तक और नैऋत्यकोण से वायव्य कोण तक राहु का भ्रमण होता है ।। ३६ ।। सूर्य की मेषादि राशियों को पूर्वादि दिशाओं में रखना चाहिए । अर्थात् मेष, सिंह तथा धनु का सूर्य पूर्व में, वृष, कन्या तथा मकर का सूर्य दक्षिण दिशा, मिथुन, तुला और कुम्भ का सूर्य पश्चिम में और कर्क, वृश्चिक तथा मीन राशि का सूर्य उत्तर दिशा में रहता है । सूर्य को सम्मुख रखकर युद्ध करने पर मृत्यु होती है ।। ३७ ।। कृष्णपक्ष की तृतीया, सप्तमी, दशमी तथा चतुर्दशी तिथियों में भद्रा होती है, शुक्लपक्ष की चतुर्थी, एकादशी तथा पूर्णिमा तिथि को भद्रा होती है । भद्रा का निवास अग्निकोण से वायव्यकोण तक होता है ।। ३८ ।। अ, क, च, ट, त, प, य तथा श ये आठ वर्ण हैं । इनके स्वामी सूर्य आदि ग्रह (सूर्य, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शनि तथा राहु हैं ।। ३९ ।। इनके वाहन क्रमशः गृध्र, उल्लू, बाज, पिङ्गल,

अकचटतपयशा वर्गाः सूर्यादयोग्रहाः ॥ ३९ ॥ गृध्रोलूकश्येनकाश्च पिङ्गलः कौशिकः क्रमात् । सारसश्च मयूरश्च गोरङ्क पक्षिणः स्मृताः ॥ ४०॥ आदौ साध्यो हुतो मन्त्र उच्चाटे पल्लवः स्मृतः। वश्ये ज्वरे तथाऽऽकर्षे प्रयोगः सिद्धिकारकः ॥ ४१ ॥ शान्तौ प्रीतौ नमस्कारो बौषट्पुष्टौ वशादिषु। हुं मृत्यौ प्रीतिसंनाशे विद्वेषोच्चाटने च फट् ॥ ४२ ॥ वषट्सुते च दीप्त्यादौ मन्त्राणां जातयश्च षट् । ओषधीः सम्प्रवक्ष्यामि महारक्षाविधायिनीः ॥ ४३ ॥ महाकाली तथा चण्डी वाराही चेश्वरी तथा। सुदर्शना तथेन्द्राणी गात्रस्था रक्षयन्ति तम् ॥ ४४ ॥ बला चातिबला भीरुर्मुसली सहदेव्यपि । जाती च मल्लिका यूथी गारुडी भृङ्गराजकः ॥४५॥ चक्ररूपा महौषध्यो धारिता विजयादिदाः । ग्रहणे च महादेवि उद्धताः शुभदायिकाः ॥ ४६ ॥ मृदा च कुञ्जरं कृत्वा सर्वलक्षणलक्षितम् । तस्य पादतले कृत्वा स्तम्भयेच्छत्रुमात्मनः ॥ ४७ ॥ नासाग्रे चैकवृक्षे च वज्राहतप्रदेशके । वल्मीकमृदमाहृत्य मातरौ योजयेत्ततः ॥ ४८ ॥ ॐ नमो महाभैरवाय विकृतदंष्ट्रोग्ररूपाय पिङ्गलाक्षाय त्रिशूलखड्गधराय वौषट् ॥ ४९ ॥ पूजयेत्कर्दमां देवीं स्तम्भयेच्छस्त्रजालकम् । अग्निकार्यं प्रवक्ष्यामि रणादौ जयवर्धनम् ॥ ५० ॥ श्मशाने निशि काष्ठाग्नौ नग्नो मुक्तशिखो नरः । दक्षिणास्यस्तु जुहुयान्नृमांसं रुधिरं विषम् ॥ तुषास्थिखण्डमिश्रं तु शत्रुनाम्ना शताष्टकम् ॥ ५१ ॥ ॐ नमो भगवति कौमारि लल लल लालय लालय घण्टादेवि, अमुकं मारय मारय सहसा नमोऽस्तु ते भगवति विद्ये स्वाहा ॥ ५२ ॥ अनया विद्यया होमान्धत्वं जायते रिपोः ॥ ५३ ॥ ॐ वज्रकाय वज्रतुण्ड कपिल पिङ्गल करालवदनोर्ध्वकेश महाबल रक्तमुख तडिज्जिह्व महारौद्र दंष्ट्रोत्कट कह करालिन् महादृढप्रहार लङ्केश्वर सेतुबन्ध शैलप्रवाह गगनचर, एह्येहि भगवन्महाबलपराक्रम भैरवो ज्ञापयति, एह्येहि महारौद्र दीर्घलाङ्गुलेन, अमुकं वेष्टय

कौशिक (उल्लू) सारस, मयूर और गोरङ्कपक्षी हैं । हवन करके पहले मन्त्र को सिद्ध कर लेना चाहिए । उच्चाटन के कार्य में मन्त्र का पल्लव रूप से प्रयोग करना चाहिए । वशीकरण, ज्वर तथा आकर्षण के कार्य में पल्लव का प्रयोग सिद्धिकारक होता है ।। ४०-४१ ।। पुष्टि तथा वशीकरण में मन्त्र के अन्त में) वौषट् का उच्चारण करना चाहिए तथा शान्ति और प्रीति में नमः शब्द का, मारण प्रीतिविनाश में हुम् शब्द का, विद्वेशीकरण एवं उच्चाटन में फट् शब्द का तथा पुत्र प्राप्ति के प्रयोग में तथा दीप्ति में वषट् का उच्चारण करना चाहिए । इस तरह मन्त्रों की छह जातियाँ होती हैं ।। ४२ ।। अब मैं महारक्षा करने वाली औषधियों को बतलाता हूँ ।। ४३ ।। महाकाली, चण्डी, वाराही (वाराही कन्द) ईश्वरी, सुदर्शना तथा इन्द्राणी (सिन्धुवार) इन औषधियों को जो अपने शरीर में धारण करता है, उसकी ये रक्षा करती हैं ।। ४४ ।। बला,(कुट) अतिबला (कंघी) भीरु (शतावरी) मुसली (तालमूली) सहदेई,जाती (चमेली) मल्लिका (मोतिया) जूही, गारुडी, भृङ्गराज एवं चक्ररूपा इन औषधियों को धारण करने से विजय की प्राप्ति होती है । हे महादेवि! इन औषधियों को ग्रहण में उखाड़ कर धारण करने से रण में विजय आदि शुभ की प्राप्ति होती है ।। ४५-४६ ।। समस्त लक्षणों से युक्त मिट्टी का हाथी बनाकर उसके पैरों के नीचे शत्रु के स्वरूप को दबा कर अपने शत्रु का स्तम्भन करना चाहिए ।। ४७ ।। या पर्वत के ऊपर जहाँ एक ही वृक्ष हो उसके नीचे अथवा जहाँ पर विजली गिरी हो वहाँ पर वल्मीक की मिट्टी से एक स्त्री की मूर्ति बनाए उसमें दो माताओं का आवाहन करना चाहिए । 'ओं नमो महाभैरवाय विकृतदंष्ट्रोग्ररूपाय पिंगलाक्षाय त्रिशूलखड्गधराय वौषट्' इस मन्त्र से उस मृत्तिकामयी देवी की पूजा करें तो शत्रु के शस्त्र समूह का स्तम्भन हो जाता है ।। ४८-४९ ।। अब रण में विजय दिलाने वाले अग्नि कार्य का मैं वर्णन करूँगा ।। ५० ।। आधी रात को श्मशान में जाकर नंगे होकर, शिखा खोलकर, दक्षिणाभिमुख होकर शत्रु के नाम से मनुष्य के मांस, खून, विष, भूसी तथा हड्डी मिलाकर आठ सौ बार आहुति दी जाय तो शत्रु अंधा हो जाता है । हवन का मंत्र है- 'नमो भगवति कौमारि, लल, लल, लालय, लालय घण्टादेवि ! अमुकं (शत्रुकानाम) मारय मारय नमोस्तुते देवि भगवति विद्ये स्वाहा ।। ५०-५३ ।। ओं वज्रकाय वज्रतुण्ड कपिल.........वै तेहुं फट् ।। ५४ ।। इस मन्त्र का अड़तिस बार जप करने से हनुमान् जी समस्त

वेष्टय जम्भय जम्भय खन खन वैते हूं फट्॥५४॥ अष्ट (ष्टा) त्रिंशच्छतं देवि हनुमान्सर्वकर्मकृत्। पठेह (द्ध) नुमत्संदेशाद्भङ्गमायान्ति शत्रवः॥५५॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धजयार्णवीयनानाचक्रप्रतिपादनं नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५॥

अथ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रनिर्णयः

ईश्वर उवाच– **वक्ष्याम्यृक्षात्मकं पिण्डं शुभाशुभविवृद्धये । यस्मिन्नृक्षे भवेत्सूर्यस्तदादौ त्रीणि मूर्धनि ॥ १ ॥ एकं मुखे द्वयं नेत्रे हस्तपादे चतुष्टयम् । हृदि पञ्च सुते जानौ आयुर्वृद्धिं विचिन्तयेत् ॥ २ ॥ शिरःस्थे तु भवेद्राज्यं सुखं स्याद् वक्त्रयोगतः । नेत्रयोः कान्तिसौभाग्यं हृदये द्रव्यसंग्रहः ॥ ३ ॥ हस्ते धृतं तस्करत्वं गतासुरध्वगः पदे । कुम्भाष्टके भानि लिख्य सूर्यकुम्भस्तु रिक्तकः ॥ ४ ॥ अशुभः सूर्यकुम्भः स्याच्छुभः पूर्वादिसंस्थितः । फणिराहुं प्रवक्ष्यामि जयाजयविवेकदम् ॥ ५ ॥ अष्टात्रिंशल्लिखेद्बिन्दून्पुनर्भाज्यास्त्रिभिस्त्रिभिः । अथ ऋक्षाणि चत्वारि रेखास्तत्रैव दापयेत् ॥ ६ ॥ यस्मिन्नृक्षे स्थितो राहुस्तदृक्षं फणिमूर्धनि । तदादि विन्यसेद्भानि सप्तविंशत्क्रमेण तु ॥ ७ ॥ वक्त्रे सप्तगते ऋक्षे म्रियते सर्व आहवे । स्कन्धे भङ्गं विजानीयात्सप्तभेषु च मध्यतः ॥ ८ ॥ उदरस्थेन पूजा च जयश्चैवाऽऽत्मनस्तथा । कटिदेशे स्थिते योध आहवे**

कार्य सिद्ध कर देते हैं और उन्हीं के प्रभाव से शत्रु का नाश हो जाता है ।। ५५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का युद्धजयार्णवीय नानाचक्रप्रतिपादन नामक एक सौ पच्चीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२५ ॥

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं शुभ तथा अशुभ फल के ज्ञान के लिए नक्षत्रात्मक पिण्ड का वर्णन करूँगा । जिसका शुभ अथवा अशुभ जानना हो उसकी मनुष्य मूर्ति बनाए । उस समय मूर्ति जिस नक्षत्र का सूर्य हो उससे तीन नक्षत्र सिर में एक मुख में, दो नेत्र में हाथ और पैर में चार, हृदय में पाँच और आठ घुटने में लिखकर उसकी आयु का विचार करना चाहिए।।१-२।। सिर वाले नक्षत्र में संग्राम करने से राज्य का लाभ होता है, मुख वाले नक्षत्र में सुख, नेत्र वाले नक्षत्र में सुन्दर सौभाग्य, हृदय वाले नक्षत्र में द्रव्य संग्रह, हाथ वाले नक्षत्र में चोरी और पैर वाले नक्षत्रों में रास्ते में ही मृत्यु होती है ।। ३ ।। अब कुम्भ चक्र बतलाया जा रहा है । आठ कुम्भों को पूर्व आदि आठ दिशाओं में स्थापित करके नाम नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिनकर प्रत्येक घटों में तीन-तीन नक्षत्रों के स्थापित करना चाहिए । इस तरह चौबीस नक्षत्रों से चार नक्षत्र जो शेष रह जाते हैं उन्हें ही सूर्य कुम्भ कहा जाता है । सूर्य कुम्भ में संग्राम करना अशुभ होता है और पूर्व आदि दिशाओं में कुम्भों में स्थापित नक्षत्रों में शुभ होता है ।। ४ ।। अब मैं विजय तथा पराजय का विवेक कराने वाले सर्पाकार राहु का वर्णन करता हूँ । सर्वप्रथम अट्ठाइस विन्दुओं को लिखना चाहिए उसमें तीन-तीन का आठ विभाग करें । शेष चार विन्दुओं पर रेखा करनी चाहिए ।। ६ ।। जिस नक्षत्र पर राहु हो उसी नक्षत्र को सर्प के सिर पर रखना चाहिए उसी नक्षत्र को प्रथम बनाकर सत्ताइस नक्षत्रों को क्रमशः रखना चाहिए ।। ७ ।। यदि सर्प के मुख में पड़े सात नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र युद्ध यात्री का जन्म नक्षत्र में पड़ता है तो उसको युद्ध में मृत्यु होती है । यदि स्कन्ध वाले सात नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र युद्धगामी का जन्म नक्षत्र हो तो युद्ध में उसका पराजय होता है । सर्प के पेट में पड़ने वाले सात नक्षत्रों में यदि कोई नक्षत्र योद्धा का जन्म नक्षत्र हो तो उसको सम्मान तथा विजयश्री मिलती है । यदि योद्धा का जन्म नक्षत्र सर्प के सात कटिस्थानीय नक्षत्रों में पड़ता हो तो वह युद्ध में शत्रु के प्राणों का हरण करने

हरते परान् ॥ ९ ॥ पुच्छस्थितेन कीर्तिः स्याद्राहुदृष्टे च भे मृतिः। पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि रविराहुबलं तव ॥ १०॥ रविः शुक्रो बुधश्चैव सोमः सौरिर्गुरुस्तथा। लोहितः सैंहिकश्चैव एते यामार्धभागिनः ॥ ११ ॥ सौरिं रविं च राहुं च कृत्वा यत्नेन पृष्ठतः । स जयेत्सैन्यसंघातं द्यूतमध्वानमाहवम्॥१२॥ रोहिणी चोत्तरास्तिस्रो मृगः पञ्चस्थिराणि हि । अश्विनी रेवती स्वाती धनिष्ठा शततारका ॥ १३ ॥ क्षिप्राणि पञ्च भान्येव यात्रार्थी चैव योजयेत्। अनुराधा हस्तमूलं मृगः पुष्यं पुनर्वसुः ॥ १४ ॥ सर्वकार्येषु चैतानि ज्येष्ठा चित्रा विशाखया । पूर्वास्तिस्रोऽग्निर्भरणी मघार्द्राश्लेषा दारुणाः॥१५॥ स्थावरेषु स्थिरं ह्यृक्षं यात्रायां क्षिप्रमुत्तमम् । सौभाग्यार्थे मृदून्येव उग्रेषूग्रं तु कारयेत् ॥ १६ ॥ दारुणे दारुणं कुर्याद्वक्ष्ये चाधोमुखादिकम् । कृत्तिका भरण्यश्लेषा विशाखा पितृनैर्ऋतम् ॥ १७ ॥ पूर्वात्रयमधोवक्त्रं कर्म चाधोमुखं चरेत् । एषुकूपतडागादि विद्याकर्म भिषक्क्रिया॥१८॥ स्थाप्यनं नौकाकूपादि विधानं खननं तथा । रेवती चाश्विनी चित्रा हस्तः स्वा (स्तस्वा) ती पुनर्वसुः ॥ १९ ॥ अनुराधा मृगो ज्येष्ठा नव वै पार्श्वतोमुखाः। एषु राज्याभिषेकं च पट्टबन्धं गजाश्वयोः ॥ २० ॥ आरामगृहप्रासादं प्राकारं क्षेत्रतोरणम् । ध्वजचिह्नपताकाश्च सर्वानेतांश्च कारयेत्॥२१॥ द्वादशी सूर्यदग्धा तु चन्द्रेणैकादशी तथा । भौमेन दशमी दग्धा तृतीया वै बुधेन च ॥ २२ ॥ षष्ठी च गुरुणा दग्धा द्वितीया भृगुणा तथा । सप्तमी सूर्यपुत्रेण त्रिपुष्करमथो वदे ॥ २३ ॥ द्वितीया द्वादशी चैव सप्तमी वै तृतीयया । रविभौमस्तथा सौरिः षडेते तु त्रिपुष्कराः ॥ २४॥

वाला होता है ।। ८-९ ।। यदि योद्धा का जन्म नक्षत्र उसके पुच्छभाग के नक्षत्रों में पड़ता हो तो युद्ध करने से योद्धा को यश मिलता है तथा राहु के द्वारा दृष्ट नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र युद्ध का हो तो योद्धा की मृत्यु होती है । अब मैं सूर्य से राहु तक के बलों का वर्णन कर रहा हूँ ।। १० ।। (**विशेष-** अब यहाँ पर अर्द्धयामेश का वर्णन किया जाता है । जिस तरह चार प्रहर का एक दिन हो पर दिन भर में आठ अर्धप्रहर होते हैं यदि दिन का मान बत्तीस दण्ड हो तो एक अर्धप्रहर का मान चार दण्ड होता है । अभिप्राय यह है कि दिन मान में आठ का भाग देने पर जो लब्धि होती है, वही अर्धप्रहर का मान होता है । यहाँ पर पुराणकार रवि आदि सातवारों में प्रत्येक अर्धप्रहर का स्वामी कौन है इस बात को बतलाते हुए केवल रविवार के अध्रप्रहरों के स्वामी का वर्णान किया गया है ।) रवि, शुक्र, बुध, सोम, शनि, गुरु, भौम तथा राहु, ये आठ गृह यामार्द्ध के स्वामी हैं ।। ११ ।। जो योद्धा शनि, सूर्य तथा राहु को पीठ के पीछे करके युद्ध करता है वह सैन्य समूह पर विजय प्राप्त करता है तथा जूआ, मार्ग तथा युद्ध में सफल होता है ।। १२ ।। रोहिणी, तीनों उत्तरा तथा मृगशिरा ये पाञ्च नक्षत्र स्थिरसंज्ञक हैं । अश्विनी, रेवती, स्वाती, धनिष्ठा, शतभिषा ये पाँच नक्षत्र क्षिप्र संज्ञक हैं । यात्री को इन नक्षत्रों का लाभ प्राप्त करना चाहिए ।। १३ ।। अनुराधा, हस्त, मूल, मृगशिरा, पुष्य, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, चित्रा तथा विशाखा; ये नक्षत्र सभी कार्यों के लिए शुभ हैं ।। १४ ।। तीनों पूर्वा, कृत्तिका, भरणी, मघा, आर्द्रा, आश्लेषा ये सभी नक्षत्र दारुण संज्ञक हैं ।। १५ ।। स्थिर कार्यों को स्थिर नक्षत्रों में करना चाहिए । यात्रा क्षिप्र नक्षत्रों में करनी चाहिए, सौभाग्य के कार्यों को मृदु नक्षत्रों में करना चाहिए, उग्र नक्षत्रों में उग्र कार्यों को करना चाहिए तथा दारुण (भयंकर) कार्यों को दारुण नक्षत्रों में करना चाहिए । अब मैं अधोमुख आदि नक्षत्रों को बतलाता हूँ ।। १६ ।। कृत्तिका, भरणी, आश्लेषा, विशाखा, मघा, मूल तथा तीनों पूर्वा ये अधोमुखसंज्ञक नक्षत्र हैं । इन नक्षत्रों में, कूप, तडाग आदि का खनना, विद्यारम्भ चिकित्साकार्य, स्थापना कार्य, नौका का निर्माण तथा कूप खनन करना चाहिए ।। १७-१८ ।। रेवती, अश्विनी, चित्रा, हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा तथा ज्येष्ठा; ये नव नक्षत्र पार्श्वमुख संज्ञक हैं । इन नक्षत्रों में राज्याभिषेक, हाथी तथा घोड़े को पट्टे बाँधना, बगीचा, गृह, प्रासाद, चाहारदिवारी, खेत की मेड़ बाँधना तथा ध्वजा पताका आदि के निर्माण आदि का कार्य करना चाहिए ।। २०-२१ ।। रविवार को द्वादशी, सोमवार को एकादशी, मङ्गलवार को दशमी, बुधवार को तृतीया, गुरुवार को षष्ठी, शुक्रवार को द्वितीया तथा शनिवार को यदि सप्तमी हो तो दग्धयोग होता है । अब मैं त्रिपुष्कर योग को बतला रहा हूँ ।। २२-२३ ।। द्वितीया, द्वादशी तथा सप्तमी ये तीनों तिथियाँ तथा रविवार, भौमवार तथा शनिवार, इस तरह ये छहों त्रिपुष्कर हैं ।। २४ ।। विशाखा, कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ तथा पूर्वाभाद्रपद ये छह नक्षत्र त्रिपुष्कर हैं । अर्थात् रवि, शनि तथा भौमवारों में

विशाखा कृत्तिका चैव उत्तरे द्वे पुर्नवसुः । पूर्वभाद्रपदा चैव षडेते तु त्रिपुष्कराः ॥ २५ ॥ लाभो हानिर्जयो वृद्धिः पुत्रजन्म तथैव च । नष्टं भ्रष्टं विनष्टं वा तत्सर्वं त्रिगुणं भवेत् ॥ २६ ॥ अश्विनी भरणी चैव अश्लेषा पुष्यमेव च । स्वातिश्चैव विशाखा च श्रवणं सप्तमं पुनः ॥ २७ ॥ एतानि दृढचक्षूंषि पश्यन्ति च दिशो दश । यात्रासु दूरगस्यापि आगमः पुण्यगोचरे ॥ २८ ॥ आषाढे रेवती चित्रा केकराणि पुनर्वसुः । एषु पञ्चसु ऋक्षेषु निर्गतस्याऽऽगमो भवेत् ॥ २९ ॥ कृत्तिका रोहिणी सौम्यं फल्गुनी च मघा तथा । मूलं ज्येष्ठाऽनुराधा च धनिष्ठा शततारकाः ॥ ३० ॥ पूर्वभाद्रपदा चैव चिपिटानि च तानि हि । अध्वानं व्रजमानस्य पुनरेवाऽऽगमो भवेत् ॥ ३१ ॥ हस्त उत्तरभाद्रश्च आर्द्राऽऽषाढा तथैव च । नष्टार्थाश्चैव दृश्यन्ते संग्रामो नैव विद्यते ॥ ३२ ॥ पुनर्वक्ष्यामि गण्डान्तमृक्षमध्ये यथा स्थितम् । रेवत्यन्ते (न्तं) चतुष्कं तु अश्विन्यादि चतुष्टयम्॥३३॥ उभयोर्याममात्रं तु वर्जयेत्तत्प्रयत्नतः । अश्लेषान्ते मघादौ तु घटिकानां चतुष्टयम् ॥ ३४ ॥ द्वितीयं गण्डमाख्यातं तृतीयं भैरवि शृणु । ज्येष्ठामूलयोर्मध्य उग्ररूपं तु यामकम् ॥ ३५ ॥ न कुर्याच्छुभकर्माणि यदीच्छेदात्मजीवितम् । दारके जातकाले च म्रियेते पितृमातरौ॥३६॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नक्षत्रनिर्णयप्रतिपादनं नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

अथ सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नानाबलानि

ईश्वर उवाच– **विष्कम्भे घटिकास्तिस्त्रः शूले पञ्च विवर्जयेत्। षट्षड्गण्डेऽतिगण्डे च नव व्याघातवज्रयोः॥१॥ परिघे च व्यतीपात उभयोरपि**

यदि कोई उपर्युक्त नक्षत्र अथवा तिथि हो तो त्रिपुष्कर योग होता है । इस योग में, लाभ, हानि, वृद्धि, पुत्रजन्म, नाश-विनाश तथा भ्रष्टता ये सबके सब तिगुने होते हैं ।। २५-२६ ।। अश्विनी, भरणी, आश्लेषा, पुष्य, स्वाती, विशाखा तथा श्रवण ये सात नक्षत्र दृढ़चक्षुसंज्ञक हैं । ये दशो दिशाओं में देखते हैं, इन नक्षत्रों में खोयी हुई वस्तु तथा यात्रा करने वाला पुरुष बड़े ही पुण्य से लौटता है ।। २७-२८ ।। उत्तराषाढ़ तथा पूर्वाषाढ़, रेवती, चित्रा तथा पुनर्वसु ये पाँच नक्षत्र केकर संज्ञक हैं । अर्थात् मध्याक्ष हैं । इन नक्षत्रों में गयी हुयी वस्तु तथा गया हुआ आदमी लौटकर आते हैं ।। २९ ।। कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, मघा, मूल, ज्येष्ठा, अनुराधा, शतभिषा तथा पूर्वभाद्रपद, ये चिपिटाक्ष अर्थात् मन्दाक्ष है इन नक्षत्रों में गया हुआ आदमी तथा खोयी हुयी वस्तु कुछ ही विलम्ब से लौटते हैं ।। ३०-३१ ।। हस्त, उत्तराभाद्रपद, आद्रा तथा पूर्वाषाढ़ा इन नक्षत्रों में की गयी यात्रा असफल होती है तथा किया गया युद्ध शीघ्र समाप्त हो जाता है ।। ३२ ।। अब मैं नक्षत्रों के बीच में होने वाले गण्डान्त दोष को बतला रहा हूँ । रेवती नक्षत्र के अन्त के चार दण्ड और अश्विनी नक्षत्र के आदि के चार दण्ड गण्डान्त होते हैं । इन दोनों नक्षत्रों का एक-एक प्रहर शुभ कार्यों में त्याग देना चाहिए ।। ३३ ।। आश्लेषा के अन्तिम चार दण्ड तथा मघा के आदि के चार दण्ड द्वितीय गण्डान्त हैं । हे भैरवि अब तीसरा गण्डान्त सुनो ।। ३४ ।। ज्येष्ठा तथा मूल इन दो नक्षत्रों के बीच का एक प्रहर अत्यन्त भयानक होता है । अपना जीवन चाहने वाले व्यक्ति को इस काल में कोई भी शुभ कार्य नहीं करना चाहिए । इस काल में यदि बच्चा पैदा हो तो उसके माता-पिता नहीं जीवित रहते हैं ।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का नक्षत्रनिर्णयप्रतिपादन नामक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२६ ॥

श्रीशिवजी ने कहा– विष्कुम्भ योग में तीन घड़ी, शूलयोग में पाँच घड़ी, गण्ड तथा अतिगण्डयोगों में छह घड़ी तथा व्याघात एवं वाज्रयोगों में नव-नव घड़ी का त्याग कर देना चाहिए।।१।।

तद्दिनम् । वैधृते (तौ) तद्दिनं चैव यात्रायुद्धादिकं त्यजेत् ॥ २ ॥ ग्रहैः शुभाशुभं वक्ष्ये देवि मेषादिराशितः । चन्द्रशुक्रौ च जन्मस्थौ वर्जितौ शुभदायकौ ॥ ३ ॥ द्वितीयो मङ्गलोऽथार्कः सौरिश्चैव तु सैंहिकः । द्रव्यनाशमलाभं च आहवे भङ्गमादिशेत् ॥ ४ ॥ सोमो बुधो भृगुर्जीवो द्वितीयस्थाःशुभावहाः । तृतीयस्थो यदा भानुः शनिभौमो भृगुस्तथा ॥ ५ ॥ बुधश्चैवेन्दु राहुश्च सर्वे ते फलदा ग्रहाः । बुधशुक्रौ चतुर्थौ च शेषाश्चैव भयावहाः ॥ ६ ॥ पञ्चमस्थो यदा जीवः शुक्रःसौम्यश्च चन्द्रमाः । ददेत चेप्सितं लाभं षष्ठे स्थाने शुभो रविः ॥ ७ ॥ चन्द्रः सौरिर्मङ्गलश्च ग्रहा देवि स्वराशितः । बुधश्च शुभदः षष्ठे त्यजेत्षष्ठं गुरुं भृगुम् ॥ ८ ॥ सप्तमोऽर्कः शनिर्भौमो राहुर्हान्यै सुखाय च । जीवो भृगुश्च सौम्यश्च ज्ञशुक्रौ चाष्टमौ शुभौ ॥ ९ ॥ शेषा ग्रहास्तथा हान्यै ज्ञभृगू नवमौ शुभौ । शेषा हान्यै च लाभाय दशमौ भृगुभास्करौ ॥ १० ॥ शनिर्भौमश्च राहुश्च चन्द्रः सौम्यः शुभावहः । शुभाश्चैकादशे सर्वे वर्जयेद्दशमं गुरुम् ॥ ११ ॥ बुधशुक्रौ द्वादशस्थौ शेषान्द्वादशगांस्त्यजेत् । अहोरात्रे द्वादश स्यू राशयस्तान्वदाम्यहम्॥१२॥ मीनो मेषोऽथ मिथुनं चतस्रो नाडयो वृषः । षट्कषट्कर्कसिंहकन्याश्च तुलापञ्च च वृश्चिकः ॥१३॥ धनुर्नक्रो घटश्चैव सूर्यगो राशिराद्यकः । चरस्थिरद्विस्वभावा मेषाद्याः स्युर्यथाक्रमम् ॥ १४ ॥ कुलीरो मकरश्चैव तुलामेषादयश्चराः । चरकार्यं जयं काममाचरेच्च शुभाशुभम् ॥ १५ ॥ स्थिरो वृषो हरिः कुम्भो वृश्चिकः स्थिरकार्यके । शीघ्रः समागमो नास्ति रोगार्तो नैव मुच्यते ॥ १६ ॥ मिथुनं कन्यका मीनो धनुश्च द्विस्वभावकः।

परिघ तथा व्यतिपात इन दोनों योगों में वह पूरा दिन छोड़ देना चाहिए । तथा वैधृतियोग में भी पूरे उस दिन का त्याग कर देना चाहिए । इन योगों के दिनों में यात्रा अथवा युद्ध आदि नहीं करना चाहिए ।। २ ।। हे महादेवि ! अब मैं ग्रहों के अनुसार मेषादि राशियों द्वारा प्राप्त होने वाले शुभ तथा अशुभ आदि का वर्णन कर रहा हूँ । जन्म स्थान में वर्जित भी चन्द्रमा तथा शुक्र शुभप्रद होते हैं ।। ३ ।। जन्म लग्न से दूसरे स्थान में विद्यमान मङ्गल, सूर्य, शनिश्चर तथा राहु, द्रव्य का नाश, अप्राप्त की अप्राप्ति तथा युद्ध में पराजय को सूचित करते हैं ।। ४ ।। किन्तु द्वितीय स्थान में विद्यमान सोम, बुध, शुक्र और गुरु शुभप्रद हैं । यदि तृतीय स्थान में सोम, बुध, शनि, भौम, शुक्र, बुध, चन्द्रमा तथा राहु हो तो वे सबके सब शुभफल प्रदान करने वाले होते हैं । चौथे स्थान में विद्यमान बुध एवं शुक्र शुभफल प्रदान करने वाले हैं, और दूसरे सभी ग्रह भयानक फल देते हैं ।। ६ ।। पांचवें स्थान में विद्यमान वृहस्पति, शुक्र, बुध तथा चन्द्रमा, अभीष्ट फललाभ को सूचित करते हैं । छठें स्थान में रवि का रहना शुभ होता है ।। ७ ।। हे देवि ! अपनी राशि से छठें भाव में विद्यमान चन्द्रमा, शनि, मङ्गल तथा बुध शुभफल देने वाले होते हैं किन्तु अपनी राशि से छठें स्थान में विद्यमान गुरु तथा शुक्र का त्याग कर देना चाहिए ।। ८ ।। सातवें भाव में विद्यमान सूर्य, शनि, भौम तथा राहु हानिकारक होते हैं किन्तु इन्हीं स्थानों में गुरु, शुक्र तथा बुध सुखप्रद होते हैं । बुध, तथा शुक्र आठवें स्थान में शुभ होते हैं ।। ९ ।। किन्तु आठवें स्थान में रहने वाले अन्य ग्रह हानिकारक होते हैं । बुध तथा शुक्र नवम भाव में शुभ होते हैं तथा शेष ग्रह हानिकारक होते हैं । दशम स्थान में शुक्र तथा सूर्य लाभप्रद होते हैं ।। १० ।। इसी स्थान के शनि, भौम, राहु, चन्द्रमा तथा बुध शुभप्रद होते हैं । एकादश में विद्यमान सभी ग्रह शुभ होते हैं किन्तु दशम में विद्यमान गुरु का त्याग कर देना चाहिए ।। ११ ।। द्वादशभाव में विद्यमान बुध तथा शुक्र शुभ होते हैं तथा अन्य ग्रह अशुभ होते हैं । उनका त्याग यात्रा आदि में कर देना चाहिए । एक दिन रात में बारह राशियाँ भोग करती हैं, अब मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ ।। १२ ।। मीन, मेष तथा मिथुन इन प्रत्येक राशियों का मान चार घड़ी, वृष, कर्क, सिंह तथा कन्या इन राशियों का मान छह-छह दण्ड तुला, वृश्चिक, धनु, कर्क तथा कुम्भ इन प्रत्येक राशियों का मान पांच-पांच दण्ड होता है । सूर्य जिस राशि के होते हैं, वही राशि प्रथम राशि होती है । मेष आदि राशियाँ क्रमशः,चर, स्थिर तथा द्विस्वभावसंज्ञक होती है ।। १३-१४ ।। कर्क, मकर, तुला तथा मेष राशियाँ चरसंज्ञक हैं । इन राशियों में शुभ तथा अशुभ अस्थिर कार्य करना चाहिए । वृष, सिंह, कुम्भ तथा वृश्चिक ये स्थिर राशियाँ हैं । इन राशियों में स्थिर कार्य करना चाहिए। इनमें यात्रा करने से शीघ्र समागम नहीं होता और न तो चिकित्सा

द्विस्वभावाः शुभाश्चैते सर्वकार्येषु नित्यशः ॥ १७ ॥ यात्रा वाणिज्य सङ्ग्रामे विवाहे राजदर्शने । वृद्धिं जयं तथा लाभं युद्धे जयमवाप्नुयात्॥१८॥ अश्विनी विंशत्ताराश्च (रा च) तुरगस्याऽऽकृतिर्यथा । यदत्र कुरुते वृष्टिमेकरात्रं प्रवर्षति ॥ यमभे तु यदा वृष्टिः पक्षमेकं तु वर्षति ॥ १९॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानाबलवर्णनं नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

अथाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कोटचक्रम्

ईश्वर उवाच– **कोटचक्रं प्रवक्ष्यामि चतुरस्त्रं पुरं लिखेत् । चतुरस्त्रं पुनर्मध्ये तन्मध्ये चतुरस्त्रकम् ॥ १ ॥ नाडीत्रितयचिह्नाढ्यं मेषाद्याः पूर्वदिङ्मुखाः । कृत्तिका पूर्वभागे तु अश्लेषाऽऽग्नेयगोचरे ॥ २ ॥ भरणी दक्षिणे देया विशाखां नैर्ऋते न्यसेत् । अनुराधां पश्चिमे च श्रवणं वायुगोचरे ॥ ३ ॥ धनिष्ठां चोत्तरे न्यस्य ऐशान्यां रेवती तथा । वाह्यानाड्यां स्थितान्येव अष्टौ ह्यृक्षाणि यत्नतः ॥ ४ ॥ रोहिणी पुष्यफल्गुन्यः स्वाती ज्येष्ठा क्रमेण तु । अभिजिच्छततारा तु अश्विनी मध्यनाडिका ॥ ५ ॥ कोटमध्ये तु या नाडी कथयामि प्रयत्नतः । मृगश्चाभ्यन्तरे पूर्वं तस्याऽऽग्नेये पुनर्वसुः ॥ ६ ॥ उत्तराफल्गुनी याम्ये चित्रानैर्ऋतसंस्थिता । मूलं तु पश्चिमे न्यस्योत्तराषाढां तु वायवे ॥ ७ ॥ पूर्वभाद्रपदा सौम्ये रेवती ईश गोचरे । कोटस्याभ्यन्तरे नाडी ह्यृक्षाष्टकसमन्विता ॥ ८ ॥ आर्द्राहस्तस्तथाऽऽषाढ़ा तुर्यमुत्तरभाद्रकम् । मध्येस्तम्भचतुष्कं तु दद्यात्कोटस्य कोटरे ॥ ९ ॥ एवं दुर्गस्य विन्यासं बाह्ये स्थानं दिशाधिपात् । आगन्तुको यदा योद्धा ऋक्षवान्स्यात्फलान्वितः ॥ १० ॥ कोटमध्ये ग्रहाः सौम्या**

प्रारम्भ करने पर शीघ्र ही रोग से मुक्ति मिलती है ।। १५-१६ ।। मिथुन, कन्या, मीन तथा धनु ये द्विस्वभाव राशियाँ हैं । द्विस्वभाव राशियाँ सभी कार्यों के लिए शुभ होती हैं ।। १७ ।। इन राशियों में, यात्रा,व्यापार, संग्राम, विवाह, राजा का दर्शन, वृद्धि, विजय तथा लाभ होते हैं तथा युद्ध में विजय की प्राप्ति होती है ।। १८ ।। अश्विनी नक्षत्र की बीस तारा होती है और उसका आकार घोड़े के समान होता है । यदि इस नक्षत्र में वर्षा प्रारम्भ हो तो एक रात तक वर्षा खूब होती है, यदि भरणी नक्षत्र में वर्षा प्रारम्भ हो तो वह एक पक्ष तक चलती रहती है ।।१९।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अनेक प्रकार के बलों का वर्णन नामक एक सौ सत्ताइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२७ ॥

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं कोटचक्र का वर्णन कर रहा हूँ पहले चतुर्भुज लिखना चाहिए, फिर उसके भीतर दूसरा चतुर्भुज लिखना चाहिए, फिर उसके भीतर तीसरा चतुर्भुज लिखना चाहिए और उसके भीतर चौथा चतुर्भुज लिखना चाहिए । इस तरह कोटचक्र बन जाता है ।। १ ।। उसे तीन नाड़ियों से चिह्नित करके उसके पूर्व आदि प्रत्येक दिशाओं में मेषादि तीन-तीन राशियों को लिखना चाहिए । उसके प्रथम नाड़ी अथवा बाह्य नाड़ी के पूर्व दिशा में कृत्तिका, अग्निकोण में आश्लेषा, दक्षिण दिशा में भरणी, नैर्ऋत्यकोण में विशाखा पश्चिम दिशा में अनुराधा, वायव्यकोण में श्रवण, उत्तरदिशा में धनिष्ठा तथा ईशानकोण में रेवती नक्षत्र को लिखना चाहिए । ये बाह्य नाड़ी के आठ नक्षत्र हैं, इन्हें यत्नपूर्वक लिखना चाहिए ।। २-४ ।। मध्यनाड़ी में भी उसी क्रम से, रोहिणी, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, स्वाती, ज्येष्ठा, शतभिषा अभिजित् तथा अश्विनी इन आठ नक्षत्रों को लिखना चाहिए ।। ५ ।। कोटचक्र के भीतर जो अन्तनाड़ी है, उसके भी नक्षत्रों को मैं बतलाता हूँ । उसके पूर्व में मृगशिरा, आग्नेयकोण में पुनर्वसु, दक्षिण में उत्तरा फाल्गुनी, नैर्ऋत्यकोण में चित्रा, पश्चिम में मूल, वायव्यकोण में उत्तराषाढ़ नक्षत्र, उत्तर में पूर्वाभादपद और ईशानकोण में रेवती नक्षत्र को लिखना चाहिए । इस तरह कोटचक्र की यह आभ्यन्तर नाड़ी आठ नक्षत्रों से युक्त होती है ।। ६-८ ।। आर्द्रा, हस्त पूर्वाषाढ़ा तथा उत्तराभाद्रपद ये चार नक्षत्र

यदा ऋक्षान्विताः पुनः। जयं मध्येस्थितानां तु भङ्गमागामिनो विदुः॥११॥ प्रवेशभे प्रवेष्टव्यं निर्गमभे च निर्गमेत्। भृगुः सौम्यस्तथा भौम ऋक्षान्तं सकलं यदा॥१२॥ तदा भङ्गं विजानीयाज्जयमागन्तुकस्य च। प्रवेशर्क्षचतुष्के तु संग्रामं चाऽऽरभेद्यदा। तदा सिध्यति तर्दुर्गं न कुर्यात्तत्र विस्मयम्॥१३॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कोटचक्रवर्णनं नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

अथैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अर्घकाण्डम्

ईश्वर उवाच– **अर्घमानं प्रवक्ष्यामि उल्कापातोऽथ भूश्चला । निर्घातो ग्रहणं वेशो दिशां दाहो भवेद्यदा ॥ १ ॥ लक्षयेन्मासि मास्येवं यद्येते स्युश्च चैत्रके । अलंकारादि संगृह्य षड्भिर्मासैश्चतुर्गुणम् ॥ २ ॥ वैशाखे चाष्टमे मासि षड्गुणम् सर्वसङ्ग्रहम् ॥ ज्येष्ठे मासि तथाऽऽषाढ़े यवगोधूमधान्यकैः ॥ ३ ॥ श्रावणे घृततैलाद्यैराश्विने वस्त्रधान्यकैः । कार्तिके धान्यकैः क्रीतैर्मासे स्यान्मार्गशीर्षके ॥ ४ ॥ पुष्ये (पौषे) कुङ्कुमगन्धाद्यैर्लाभो धान्यैश्च माघके । गन्धाद्यैः फाल्गुने क्रीतैरर्घकाण्डमुदाहृतम् ॥ ५ ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽर्घकाण्डप्रतिपादनं नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

कोटचक्र के भीतर स्तम्भ होते हैं ।। ९ ।। इस तरह से चक्र के लिख देने पर बाहर का स्थान दिशाओं के स्वामियों का होता है । जिस दिन जो नक्षत्र हो आगन्तुक योद्धा यदि उस दिन उसी दिशा से प्रवेश करता है तो अवश्य विजयी होता है ।। १० ।। कोट के बीच में जो नक्षत्र है उन नक्षत्रों में जब शुभग्रह आएँ तो बीच वाले की विजय होती है तथा आक्रमण करने वाले की पराजय होती है ।। ११ ।। प्रवेश करने वाले नक्षत्र में प्रवेश करना चाहिए तथा निर्गम नक्षत्र में निकलना चाहिए । शुक्र, मङ्गल तथा बुध ये जब नक्षत्र के अन्त में रहें तब आक्रमणकारी की पराजय होती है । यदि प्रवेश नक्षत्र में युद्ध प्रारम्भ हो तो वह दुर्ग वश में होता है, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का कोटचक्र वर्णन नामक एक सौ अट्ठाइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२८ ॥

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं अर्घकाण्ड का वर्णन करता हूँ । उल्कावात, भूकम्प, तूफान, ग्रहण, वेश (सूर्य और चन्द्रमा का मण्डल) तथा दिशाओं में गर्मी का उत्पन्न होना यदि हो तो उसका प्रत्येक मास में ध्यान रखना चाहिए । यदि ये चैत्र मासमें हों तो अलंकार (आभूषण) आदि का संग्रह करना चाहिए, छह मास में उनका चौगुना मूल्य हो जायेगा ।। १-२ ।। वैशाख मास में ये लक्षण दिखाई दें तो सभी चीजों का संग्रह करना चाहिए । उनका आठ मास में छह गुना मूल्य मिलेगा। ज्येष्ठ तथा आषाढ़ के महीने में ये लक्षण दिखायी दें तो जौ,गेहूँ, तथा धान्य आदि के संग्रह से लाभ होगा ।। ३ ।। श्रावण मास में इनमें से कोई लक्षण हो तो घी तथा तेल के संग्रह से लाभ होता है । आश्विन महीने में इन लक्षणों के दिखायी देने पर वस्त्र तथा अन्न के संग्रह से लाभ होता है । कार्तिक तथा अग्रहायण मास में इनमें से कोई भी लक्षण दिखायी दें तो अन्न खरीदकर रखने से लाभ होता है । पौष मास में इन लक्षणों के आविर्भूत होने पर कुंकुम तथा सुगन्धित पदार्थों के संग्रह से लाभ होता है तथा माघ महीने में इन लक्षणों के दिखायी देने पर अनेकों से लाभ होता है । फाल्गुन के महीने में इन लक्षणों के दिखायी देने पर सुगन्धित द्रव्यों के क्रय करने से लाभ होता है । इस तरह से अर्घकाण्ड का वर्णन किया गया ।। ४-५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अर्घकाण्डप्रतिपादन नामक एक सौ उनतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२९ ॥

अथत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मण्डलादिकथनम्

ईश्वर उवाच– **मण्डलानि प्रवक्ष्यामि चतुर्धा विजयाय हि । कृत्तिका च मघा पुष्यं पूर्वा चैव तु फल्गुनी ॥ १ ॥ विशाखा भरणी चैव पूर्वभाद्रपदा तथा । आग्नेयं मण्डलं भद्रे तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ २ ॥ यद्यत्र चलते वायुर्वेष्टनं शशिसूर्ययोः । भूमिकम्पोऽथ निर्घातो ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः ॥ ३ ॥ धूमज्वाला दिशां दाहः केतोश्चैव प्रदर्शनम् । रक्तवृष्टिश्चोपतापः पाषाणपतनं तथा ॥ ४ ॥ नेत्ररोगोऽतिसारश्च अग्निश्च प्रबलो भवेत् । स्वल्पक्षीरास्तथा गावः स्वल्पपुष्पफला द्रुमाः ॥ ५ ॥ विनाशश्चैव शस्यानां स्वल्पवृष्टिं विनिर्दिशेत् । चतुर्विधाः प्रपीड्यन्ते क्षुधार्ता अखिला नराः ॥ ६ ॥ सैन्धवा यामुनाश्चैव गुर्जरा भोजबाह्लिकाः । जालंधरं च काश्मीरं सप्तमं चोत्तरापथम् ॥ ७ ॥ देशाश्चैते विनश्यन्ति तस्मिन्नुत्पातदर्शने । हस्तचित्रामघास्वाती मृगो वाऽथ पुनर्वसुः ॥ ८ ॥ उत्तराफल्गुनी चैव अश्विनी च तथैव च । यदाऽत्र भवते किंचिद्वायव्यं तं वि (तद्वि) निर्दिशेत् ॥ ९ ॥ नष्टभूताः प्रजाः सर्वा हाहाभूता विचेतसः । डाहलः कामरूपश्च कलिङ्ग कोशलस्तथा ॥ १० । अयोध्या च अवन्ती च नश्यन्ते (न्ति) कोङ्कणान्ध्रकाः। अश्लेषा चैव मूलं तु पूर्वाषाढा तथैव च ॥ ११ ॥ रेवती वारुणं ह्यृक्षं तथा भाद्रपदोत्तरा। यदाऽत्र चलते किंचिद्वारुणं तं वि (तद्वि) निर्दिशेत् ॥ १२ ॥ बहुक्षीरघृता गावो बहुपुष्पफला दुमाः । आरोग्यं तत्र जायेत बहुशस्या च मेदिनी ॥ १३ ॥ धान्यानि च समर्घाणि सुभिक्षं पार्थिवं भवेत् । परस्परं नरेन्द्राणां सङ्ग्रामो दारुणो भवेत् ॥ १४ ॥ ज्येष्ठा च रोहिणी चैव अनुराधा च वैष्णवम्। धनिष्ठा चोत्तराषाढ़ा अभिजित् सप्तमं तथा ॥ १५ ॥ यदात्र चलते किंचिन्माहेन्द्रं तं वि (तद्वि) निर्दिशेत् । प्रजाः समुदितास्तस्मिन्सर्वरोगविवर्जिताः॥१६॥ सन्धिं कुर्वन्ति राजानः सुभिक्षं पार्थिवं शुभम् । ग्रासस्तु विविधो ज्ञेयो मुखपुच्छकरो महान् ॥ १७ ॥ चन्द्रो राहुस्तथाऽऽदित्य एकराशौ यदि**

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं विजय प्राप्ति के साधनभूत चार प्रकार के मण्डलों का वर्णन कर रहा हूँ। कृत्तिका, मघा, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, विशाखा भरणी तथा पूर्वाभाद्रपदा इन सबों को आग्नेय मण्डल कहते हैं । हे भद्रे ! उसका मैं लक्षण बतला रहा हूँ ।। १-२ ।। यदि इन नक्षत्रों में वायु विशेष चले, सूर्य तथा चन्द्रमा में परिवेश (चारों तरफ का घेरा) दिखायी दे, भूकम्प हो, वज्रपात हो, सूर्य तथा चन्द्रमा में ग्रहण लगे, धुआँ अथवा ज्वाला दिखायी दे, दिग्दाह हो, पुच्छल तारा दिखायी दे, खून की वर्षा हो, गर्मी बढ़े तथा पत्थर पड़े ।। ३-४ ।। तो प्रजाओं मे नेत्र का रोग, अति सार हैजा तथा अग्नि का भय बढ़ता है । गाएँ कम दूध देती हैं, पेड़ों में पुष्प तथा फल कम लगते हैं ।। ५ ।। धान आदि का विनाश होता है तथा वर्षा बहुत कम होती है। चारों प्रकार के वर्ण भूख से व्याकुल होकर अत्यधिक दुखी होते हैं ।। ६ ।। इस प्रकार के उत्पात के दिखायी देने पर सिन्धु प्रदेश, यामुन प्रदेश, गुर्जर प्रदेश, भोज, बाहलीक, जालंधर, कश्मीर तथा उत्तरापथ प्रदेश विल्कुल नष्ट हो जाते हैं ।। ७ ।। हस्त, चित्रा, मघा, स्वाती, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी तथा अश्विनी इन नक्षत्रों को वायव्य मण्डल कहते हैं । यदि इन नक्षत्रों में उपर्युक्त कोई लक्षण होता है तो चारों ओर हाहाकार मच जाता है । प्रजाएँ नष्ट तथा बेहोश हो जाती हैं । इस मण्डल में, डाहल, कामरूप, कलिङ्ग, कोसल, अयोध्या, अवन्तिका, कोङ्कण तथा आन्ध्रप्रदेश विनष्ट हो जाते हैं ।। ८-१० ।। आश्लेषा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, रेवती, शतभिषा, उत्तराभाद्रपद, यदि इन नक्षत्रों में कोई उपर्युक्त उत्पात दिखायी देता है तो उसे बारुण मण्डल कहना चाहिए ।। ११-१२ ।। इस मण्डल में गाएँ बहुत घी तथा दुग्ध देती हैं, वृक्षों में बहुत अधिक पुष्प तथा फल लगते हैं । लोग स्वस्थ होते हैं तथा पृथिवी धन धान्य से भर जाती है। अन्नों के सामान्य मूल्य होते हैं, पृथिवी पर सुभिक्ष होते हैं । राजाओं में परस्पर में भयंकर संग्राम होता है ।। १३-१४ ।। ज्येष्ठा, रोहिणी, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराषाढा तथा अभिजित्

स्थितः । मुखग्रासस्तु विज्ञेयो जामित्रे पुच्छ उच्यते ॥ १८ ॥ भानोः पञ्चदशे ह्यृक्षे यदा चरति चन्द्रमाः । तिथिच्छेदे तु सम्प्राप्ते सोमग्रासं विनिर्दिशेत् ॥ १९ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मण्डलादिकथनं नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

अथैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

(घातचक्रादि)

ईश्वर उवाच– प्रदक्षिणमकारादीन्स्वरान्पूर्वादितो लिखेत् । चैत्राद्यं भ्रमणाच्चक्रं प्रतिपत्पूर्णिमातिथिः ॥ १ ॥ त्रयोदशी चतुर्दशी अष्टम्येका च सप्तमी । प्रतिपत्त्रयोदश्यन्तास्तिथयो द्वादश स्मृताः ॥ २ ॥ चैत्रचक्रे तु संस्पर्शाज्जयलाभादिकं विदुः । विषमे तु शुभं ज्ञेयं समे चाशुभमीरितम्॥३॥ युद्धकाले समुत्पन्ने यस्य नाम ह्युदाहृतम् । मात्रारूढं तु यन्नाम आदित्यो गुरुरेव च ॥ ४ ॥ जयस्तस्य सदाकालं सङ्ग्रामे चैव भीषणे । ह्रस्वनाम (मा) यदा योधे म्रियते ह्यनिवारितः ॥ ५ ॥ प्रथमो दीर्घ आदिस्थो द्वितीयो मध्य अन्तकः । द्वौ मध्ये न प्रथमान्तौ जायेते नात्र संशयः॥ ६॥ पुनश्चान्ते यदा चाऽऽदौ स्वरारूढं तु दृश्यते । ह्रस्वस्य मरणं विद्याद्दीर्घस्यैव जयो भवेत् ॥ ७ ॥ नरचक्रं प्रवक्ष्यामि ह्यृक्षपिण्डात्मकं यथा । प्रतिमामालिखेत्पूर्वं पश्चादृक्षाणि विन्यसेत् ॥ ८ ॥ शीर्षे त्रीणि मुखे चैकं द्वे ऋक्षे नेत्रयोर्न्यसेत् । वेदसंख्यानि हस्ताभ्यां कर्णऋक्षद्वयं पुनः॥ ९॥

इन सात नक्षत्रों को माहेन्द्रमण्डल कहते हैं । इन नक्षत्रों में उपर्युक्त कोई लक्षण दिखायी देता है तो सम्पूर्ण प्रजा रोग से मुक्त होती है ।। १५-१६ ।। राजा गण आपस में सन्धि कर लेते हं, पृथिवी पर सुभिक्ष होता है ।। १६ ।। ग्रास अनेक प्रकार का होता है मुखग्रास तथा पुच्छग्रास ।। १७ ।। यदि सूर्य चन्द्रमा तथा राहु एक राशि पर हों तो मुखग्रास होता है । राहु से सातवें स्थान को पुच्छग्रास कहते हैं ।। १८ ।। यदि सूर्य से पन्द्रहवें नक्षत्र पर चन्द्रमा संचरण करते हों तथा पूर्णिमा तिथि हो तो उसे सोमग्रास कहना चाहिए ।। १९ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का मण्डल आदि का वर्णन नामक एक सौ तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३० ॥

श्रीशिवजी ने कहा– पूर्वा आदि आठों दिशाओं में प्रदक्षिण क्रम से अकार आदि स्वरों को लिखना चाहिए । इस चक्र को चैत्र चक्र या घातचक्र कहते हैं । इसमें शुक्ल पक्ष की प्रतिपद, पूर्णिमा त्रयोदशी तथा चतुर्दशी, अष्टमी,सप्तमी तिथि को तथा कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को छोड़कर प्रतिपद् से त्रयोदशी तक की बारह तिथियों को लिखना चाहिए । चैत्र चक्र में पूर्वादि दिशाओं में स्पर्श वर्णों (क से लेकर म तक के वर्ण) के द्वारा जय-पराजय, लाभ-हानि आदि को जानना चाहिए । विषम दिशा, विषम वर्ण तथा विषम स्वर के होने पर शुभ होता है तथा सम दिशा, सम वर्ण तथा सम स्वर में अशुभ होता है ।। १-३ ।। युद्धकाल के आने पर सेनापति जिसका नाम लेकर बुलाए, उसके नाम का आदिवर्ण यदि दीर्घ हो तो भीषण संग्राम में भी विजय होती है । यदि उसके नाम के आदि में ह्रस्व वर्ण हो तो पराजय होती है । जैसे- आदित्य और गुरु ये दो नाम हैं । सेनापति यदि आदित्य का नाम लेकर उसको बुलाता है तो उसके नाम के आदि में गुरु हैं, अतएव सेनापति की विजय होगी । यदि गुरु को बुलाता है तो पराजय क्योंकि उसके नाम का आदि वर्ण ह्रस्व है । जिस योद्धा के नाम के आदि में दीर्घ स्वर होता है, वह उत्तम जिसके बीच में मध्य स्वर होता है वह मध्यम तथा जिसके नाम के अन्त में दीर्घ स्वर होता है,वह अधम होता है । जिसका नाम दीर्घ स्वर से प्रारम्भ होकर दीर्घ स्वर से ही समाप्त होता है वह विजय प्राप्त करता है । जिसका नाम ह्रस्व से प्रारम्भ होकर ह्रस्व से ही समाप्त होता है उसकी मृत्यु होती है ।। ४-७ ।। अब मैं नक्षत्र समूह स्वरूप नरचक्र का वर्णन कर रहा हूँ । पहले

हृदये भूतसंख्यानि षड्ऋक्षाणि तु पादयोः । नामऋक्षं स्फुटं कृत्वा चक्रमध्ये तु विन्यसेत् ॥ १० ॥ नेत्रे शिरोदक्षकर्णे याम्यहस्ते च पादयोः । हृद्ग्रीवावामहस्ते तु पुनर्गुह्ये तु पादयोः ॥ ११ ॥ यस्मिन्नृक्षे स्थितः सूर्यः सौरिभौमस्तु सैंहिकः । तस्मिन्स्थाने स्थिते विद्याद्घातमेव न संशयः॥१२॥ जयचक्रं प्रवक्ष्यामि आदिहान्तांश्च वै लिखेत् । रेखास्त्रयोदशाऽऽलिख्य षडरेखास्तिर्यगालिखेत् ॥ १३ ॥ दिग्ग्रहा मुनयः सूर्या ऋत्विग्रुद्रस्तिथिः क्रमात् । मूर्छनास्मृतिवेदर्क्षजिना अकडमा ह्यधः ॥ १४ ॥ आदित्याद्याःसप्तहृते नामान्ते बलिनो ग्रहाः । आदित्यसौरिभौमाख्या जये सौम्याश्च सन्धये ॥ १५ ॥ रेखा द्वादश चोद्धृत्य षट् च याम्यास्तथोत्तराः । मनुश्चैव तु ऋक्षाणि नेत्रे च रविमण्डलम् ॥ १६ ॥ तिथयश्च रसा वेदा अग्निः सप्तदशाथ वा । वसुरन्ध्राः समाख्याता अकटपानधो न्यसेत् ॥ १७ ॥ एकैकमक्षरं न्यस्त्वा (स्य) शेषाण्येवं क्रमान्न्यसेत् । नामाक्षरकृतं पिण्डं वसुभिर्भाजयेत्ततः ॥ १८ ॥ वायसान्मण्डलयोऽत्युग्रो मण्डलाद्रासभो वरः । रासभाद्वृषभः श्रेष्ठो वृषभात्कुञ्जरो वरः ॥ १९॥ कुञ्जराच्च पुनः सिंहः सिंहाच्चैव खरुर्वरः । खरोश्चैव बली धूम्र एवमादि बलाबलम् ॥ २० ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये घातचक्रादि वर्णनं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥



मनुष्य की आकृति बनानी चाहिए फिर उसमें नक्षत्रों का विन्यास करना चाहिए ।। ८ ।। सूर्य नक्षत्र से नाम नक्षत्र तक की गणना करें फिर उसमें से तीन नक्षत्र का शिरोभाग में, मुख में एक नक्षत्र, नेत्रों में दो नक्षत्र, हाथों में चार नक्षत्र, फिर कानों में दो नक्षत्र, हृदय में पाँच नक्षत्र और पैरों में छह नक्षत्र का विन्यास करना चाहिए । फिर नाम नक्षत्र को चक्र के मध्य में लिखना चाहिए।।९-१०।। नेत्र, शिरोभाग, दाहिना कान, दाहिना हाथ, दाहिना पैर, हृदय, ग्रीवा, बायाँ हाथ, गुप्ताङ्ग तथा पैर इनमें से जिस स्थान में सूर्य, शनि, मङ्गल तथा राहु के नक्षत्र पड़ते हैं, उसी स्थान में घात होगा (चोट लगेगी) यह जानना चाहिए ।। ११-१२ ।। अब मैं जयचक्र का वर्णन करता हूँ । पहले तेरह रेखाएँ खींचें । फिर छह रेखाएँ पट खींचनी चाहिए । उसमें उनसे अ से लेकर ह तक के समस्त वर्णों को लिखें ।। १२ ।। फिर ऊपर वाली पंक्ति के कोष्ठों में क्रमशः- दस, नव, बारह, चार, ग्यारह,पन्द्रह, चौबीस, अठारह, चार, सत्ताइस तथा चौबीस लिखना चाहिए । उसके नीचे ही अ, क्रम आदि वर्णों को क्रमशः लिखना चाहिए ।। १४ ।। शत्रु के नाम के तथा व्यंजन वर्णों को सामने जो अंक पड़ें उनको जो अंक उसमें सात का भाग दें । जो शेष हो उसे छह ग्रहों का भाग जानें । एक शेष होने पर सूर्य का, दो शेष होने पर चन्द्रमा का, तीन शेष होने पर भौम का, चार शेष होने पर बुध का, पाँच शेष होने पर गुरु का, छह शेष होने पर शुक्र का तथा सात शेष होने पर शनि का भाग समझना चाहिए । यदि सूर्य, भौम तथा शनि का भाग आए तो विजय होती है तथा सौम्य ग्रहों के भाग के आने पर संधि होती है ।।१३-१५।। अब द्वितीय जयचक्र बतलाया जा रहा है) पूर्व से पश्चिम बारह रेखाएँ खींचें तथा दक्षिण से उत्तर रेखाएँ खींचें । उसके ऊपर वाली पंक्ति के कोष्ठों में क्रमशः चौदह, सत्ताइस, दो, बारह, पन्द्रह, छह, चार, तीन, सत्रह, आठ और आठ लिखें । उसके नीचे 'अ से लेकर ह' तक के वर्णों को लिखें । फिर द्वन्द्वी प्रतिद्वन्द्वी के नाम के स्वर के समक्ष जो अंक आएँ उनको अलग-अलग जोड़कर उसमें आठ का भाग दें । जो शेष आए उसको क्रमशः वायु मण्डल, रासभ, वृषभ, कुञ्जर, सिंह स्वरूप और धूम्र ये आठ शेषों के नाम होते हैं । वायस की अपेक्षा मण्डल बलवान् होता है । मण्डल से रासभ, रासभ से वृषभ, वृषभ से कुञ्जर, कुञ्जर से सिंह, सिंह से श्वरु तथा श्वरु से धूम्र उत्तरोत्तर बलवान् होते हैं ।। १६-२० ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का घातचक्रादि वर्णन नामक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३१ ॥



अथ द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सेवाचक्रादि वर्णनम्

ईश्वर उवाच– **सेवाचक्रं प्रवक्ष्यामि लाभालाभार्थसूचकम् । पिता माता तथा भ्राता दम्पती च विशेषतः ॥ १ ॥ तस्मिंश्चक्रे तु विज्ञेयं यो यस्माल्लभते फलम्। षडूर्ध्वाः स्थापयेद्रेखा भिन्नाश्चाष्टौ तु तिर्यगाः ॥ २ ॥ कोष्ठकाः पञ्चत्रिंशच्च तेषु वर्णान्समालिखेत् । स्वरान्पञ्च समुद्धृत्य स्पर्शान्पश्चात्समालिखेत् ॥ ३ ॥ ककारादिहकारान्तान्हीनाङ्गांस्त्रीन्विवर्जयेत् । सिद्धः साध्यः सुसिद्धिश्च अरिमृत्युश्च नामतः ॥ ४ ॥ अरिर्मृत्युश्च द्वावेतौ वर्जयेत्सर्वकर्मसु ॥ एषां मध्ये यदा नाम लक्षयेत्तु प्रयत्नतः ॥ ५ ॥ आत्मपक्षे स्थिताः सत्त्वाः सर्वे ते शुभदायकः । आत्मनाशश्चतुर्थस्तु पञ्चमो मृत्युदायकः । स्थानमेवार्थलाभाय मित्रभृत्यादिबा न्धवाः ॥ ७ ॥ सिद्धः साध्यः सुसिद्धश्च सर्वे ते फलदायकाः । अरिमृत्युश्च द्वावेतौ वर्जयेत्सर्वकर्मसु ॥ ८ ॥ अकारान्तं यथा प्रोक्तम् इ उ ए विदुस्तथा । पुनश्चैवांशकान्वक्ष्ये वर्गाष्टकसुसंस्कृतान् ॥ ९ ॥ देवाः अकारवर्गे तु दैत्याः कवर्गमाश्रिताः । नागाश्चैव चवर्गाः (र्गे) स्युगन्धर्वाश्च टवर्गजाः ॥ १० ॥ तवर्गे ऋषयः प्रोक्ता पवर्गे राक्षसाः स्मृताः । पिशाचाश्च यवर्गे च शवर्गे मानुषाः स्मृताः ॥ ११ ॥ देवेभ्यो बलिनो दैत्या देत्येभ्यः पन्नगास्तथा पन्नगेभ्यश्च गन्धर्वा गन्धर्वादृषयो वराः ॥ १२ ॥ ऋषिभ्यो राक्षसाः शूरा राक्षसेभ्यः पिशचकाः । पिशाचेभ्यो मानुषाः स्युर्दुर्बलं बर्जयेद्बली ॥ १३ ॥ पुनर्मैत्रविभागं तु ताराचक्रं क्रमाच्छृणु। नामाद्यक्षरमृक्षं तु स्फुटं कृत्वा तु पूर्वतः ॥ १४ ॥ ऋक्षे तु संस्थितास्तारा नवत्रिका यथाक्रमात् । जन्मसम्पद्विपत्क्षेमं नामार्क्षात्तारका इमाः ॥ १५ ॥ प्रत्यरि धनदा षष्ठी**

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं सेवाचक्र का वर्णन करता हूँ जो लाभ तथा हानि का सूचक है । यह पिता, माता, भाई, पति-पत्नी के लिए विशेष रूप से विचारणीय है ।। १ ।। इसी चक्र से जो जिससे जिस प्रकार का फल प्राप्त करता है, उसे वही जानना चाहिए । पूर्व से पश्चिम छह रेखाओं के खींचे और उत्तर से दक्षिण आठ रेखाओं को ।। २ ।। इस तरह से पैंतिस कोष्ठों का चक्र बन जायेग । उसी में वर्णो को लिखें । ऊपर से पाँच कोष्ठों में पाँच स्वरों को (अ, इ, उ, ए तथा ओ) लिखे । उसके पश्चात् स्पर्शवर्णों को लिखना चाहिए ।। ३ ।। क से लेकर ह तक के वर्णों में से तीन (ङ, ञ, ण) वर्णों को नहीं लिखना चाहिए । सबसे नीचे वाले पाँच कोष्ठों में, सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध, शत्रु तथा मृत्यु लिखना चाहिए । सभी कामों में अरि तथा मृत्यु का परित्याग करना चाहिए ।। ४ ।। इन सबों में नाम के अक्षरों का पता लगाना चाहिए ।। ५ ।। अपने पक्ष में रहने वाले सभी जीव शुभप्रद होते हैं । दूसरे कोष्ठक के जीव पोषण करने वाले और तृतीय कोष्ठ के जीव धन प्रदान करने वाले होते हैं ।। ६ ।। चतुर्थ कोष्ठक के जीव आत्मनाशक तथा पाञ्चवें कोष्ठक के जीव मृत्युदायक होते हैं । मित्र, भृत्य तथा बान्धवों से होने वाले लाभ का विचार इस चक्र से करना चाहिए ।। ७ ।। सिद्ध, साध्य तथा सुसिद्ध ये तीन शुभफल देने वाले हैं । अरि तथा मृत्यु कोष्ठक के जीवों का सभी कर्मों में त्याग करना चाहिए ।। ८ ।। अकारान्त वर्णों में अ, इ, उ तथा ए वर्णो को भी समझना चाहिए । अब मैं आठ वर्णों से सुसंस्कृत विभिन्न अंशों का वर्णन कर रहा हूँ ।। ९ ।। अवर्ग (अ,इ, उ) ए तथा ओ के स्वामी देवता हैं, कवर्ग के स्वामी दैत्य हैं, चवर्ग के स्वामी नाग हैं, टवर्ग के स्वामी गन्धर्व हैं ।। १० ।। तवर्ग के स्वामी ऋषि हैं तथा पवर्ग के स्वामी मनुष्य हैं । देवताओं से दैत्य बली हैं, दैत्यों से नाग बली हैं । नागों से गन्धर्व बली हैं और गन्धर्वों से ऋषि बली हैं ।। ११ ।। ऋषियों से राक्षस बली होते हैं, राक्षसों से पिशाच बली हैं । पिशाचों से मनुष्य बली हैं । बली को दुर्बल का त्याग कर देना चाहिए ।। १३ ।। अब आप मित्रता का विभाग और ताराचक्र को सुनें । सर्वप्रथम नाम के अक्षर द्वारा उसका नक्षत्र जान लेना चाहिए ।। १४।।

नैधनामैत्रके परे । परमैत्राऽन्तिम तारा जन्मतारा तु शेभना ॥ १६ ॥ सम्पत्तारा महाश्रेष्ठा विपत्तारा तु निष्फला। क्षेमतारा सर्वकार्ये प्रत्यरा अर्थनाशिनी ॥ १७ ॥ धनदा राज्यलाभाय नैधना कार्यनाशिनी । मैत्रतारा च मित्राय परमित्रा हितावहा ॥ १८ ॥ मात्रा वै स्वरसंज्ञा स्यान्नाममध्ये क्षिपेत्प्रिये। विंशत्या च हरेद्भागं यच्छेषं तत्फलं भवेत् ॥ १९ ॥ उभयोर्नाममध्ये तु लक्षयेच्च धनं ह्यृणम् । हीन मात्रा हयृणं ज्ञेयं धनं मात्रादिकं पुनः ॥ २० ॥ धनेन मित्रता नृणामृणेनैव ह्युदास (सि) ता । सेवाचक्रमिदं प्रोक्तं लाभालाभादिदर्शकम् ॥ २१ ॥ मेषमिथुनयोः प्रीतिर्मैत्री मिथुनसिंहयोः । तुलासिंहौ महामैत्री एवं धनुर्घटे पुनः ॥ २२ ॥ मित्रसेवां न कुर्वीत मित्रौ (त्रे) मीनवृषौ मतौ। वृषकर्कटयोर्मैत्री कुलीरघटयोस्तथा॥२३॥ कन्यावृश्चिकयोरेवं तथा मकरकीटयोः । मीनमकरयोर्मैत्री तृतीयैकादशे स्थिता ॥ २४ ॥ तुलामेषौ महामैत्री विद्विष्टौ वृषवृश्चिकौ । मिथुनधनुषोः प्रीतिः कर्कटमकरयोस्तथा ॥ मृगकुम्भकयोः प्रीतिः कन्यामीनौ तथैव च ॥ २५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सेवाचक्रादिवर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नानाबलानि

ईश्वर उवाच– **गर्भजातस्य वक्ष्यामि क्षेत्राधिपस्वरूपकम् । नातिदीर्घः कृशः समाङ्गो गौरपैत्तिकः ॥ १ ॥ रक्ताक्षो गुणवाञ्शूरो गृहे सूर्यस्य**

नक्षत्रों में नव त्रिक वाले तारा विद्यमान हैं । नाम नक्षत्र से ये तारे क्रमशः होते हैं- जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यरि, धनदा, नैधन, मैत्रक और परमैत्रक । जन्म तारा शुभ होती है।।१५-१६।। सम्पत् तारा महाश्रेष्ठ होती है, और विपत् तारा निष्फल होती है । क्षेम तारा सभी कार्यों में कल्याण करने वाली होती है, प्रत्यरि तारा धन का नाश करने वाली होती है ।। १७ ।। धनदा तारा राज्य का लाभ कराने वाली होती है और नैधन तारा कार्य का नाश करने वाली होती है । मैत्र तारा मित्रता कराती है, परमैत्र तारा कल्याणकारिणी होती है ।। १८ ।। हे प्रिये ! नामाक्षरों के स्वरों की संख्या में वर्णों की संख्या जोड़ देनी चाहिए । उसमें बीस का भाग दें । शेष से फल को जानना चाहिए । स्वल्पशेष वाला व्यक्ति अधिक शेष वाले व्यक्ति से लाभ प्राप्त करता है ।। १९ ।। (नामाक्षरों में स्वरों की संख्या के अनुसार विचार) सेव्य तथा सेवक दोनों के नामों में से जिसके नाम में अधिक स्वर होता है वह धनी तथा जिसके नामाक्षर में कम स्वर हों वह ऋणी होता है । धन स्वर मित्रता कारक तथा ऋण स्वर दासता कारक होता है । इस तरह से लाभ तथा हानि के सूचक सेवाचक्र को बतलाया गया है ।। २०-२१ ।। मेष तथा मिथुन राशि वालों में प्रीति होती है, मिथुन तथा सिंह राशि वालों में मित्रता होती है, तुला तथा सिंह राशि वालों में महामैत्री होती है, तथा धनुष् एवं कुम्भ राशि वालों में मैत्री नहीं होती है ।। २२ ।। मीन तथा वृष राशि वालों में भी मित्रता होती है । इसी तरह वृष तथा कर्क राशि वालों में, कर्क तथा कुम्भ राशि वालों में, कन्या तथा वृश्चिक राशि वालों में, मकर एवं वृश्चिक राशि वालों में, मीन तथा मकर राशि वालों में मित्रता होती हैं । मिथुन एवं कुम्भ राशि वालों में, तुला और मेष राशि वालों में परस्पर में महामैत्री होती है । वृष एवं वृश्चिक रशि वालों में परस्पर में वैर होता है। मिथुन एवं धनु राशि वालों में, कर्क तथा मकर रशि वालों में, सिंह तथा कुम्भ राशि वालों में प्रेम होता है । इसी तरह से कन्या तथा मीन राशि वालों में भी प्रेम होता है ।। २३-२५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का सेवाचक्रादि वर्णन नामक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३२ ॥

श्रीशिवजी ने कहा– राशियों के स्वामी सूर्यादि के क्षेत्र में उत्पन्न शिशु का जन्म फल क्षेत्राधिप के अनुसार मैं वर्णन करूँगा । जो शिशु सूर्य के गृह अर्थात् सिंह राशि में जन्म लेता

जायते । सौभाग्यो मृदुसारश्च जातश्चन्द्रगृहोदये ॥ २ ॥ वाताधिकोऽतिलुब्धादिर्जातो भूमिभुवो गृहे । बुद्धिमान्सुभगो मानी जातः सौम्यगृहोदये॥३॥ बृहत्क्रोधश्च सुभगो जातो गुरुगृहे नरः । त्यागी भोगी च सुभगो जातो भृगुगृहोदये ॥ ४ ॥ बुद्धिमान्सुभगो मानी जातश्चाऽऽर्किगृहे नरः । सौम्यलग्ने तु सौम्यः स्यात्क्रूरः स्यात्क्रूरलग्नके ॥ ५ ॥ दशाफलं गौरि वक्ष्ये नामराशौ तु संस्थितम् । गजाश्वधनधान्यानि राज्यश्रीर्विपुला भवेत्॥६॥ पुनर्धनागमश्चापि दशायां भास्करस्य तु । द्रव्यस्त्रीदा चन्द्रदशा भूमिलाभः सुखं कुजे ॥ ७ ॥ भूमिर्धान्यं धनं बौधे गजाश्वादिधनं गुरौ। खाद्यपानधनं शुक्रे शनौ व्याध्यादि संयुतः ॥ ८ ॥ स्थानसेवा दिवाध्यानं वाणिज्यं राहुदर्शने । वामनाडीप्रवाहे स्यान्नाम चेद्विषमाक्षरम् ॥ ९ ॥ तदा जयति संग्रामे शनिभौमस (सु ?) सैंहिकाः । दक्षनाडीप्रवाहेऽर्के वाणिज्ये (ज्यं) चैव निष्फलम् ॥ १० ॥ संग्रामे जयमाप्नोति समनामा नरो ध्रुवम् । अधश्चारे जयं विद्यादूर्ध्वचारे रणे मृतिम् ॥ ११ ॥ ॐ हूं, ॐ हूं, ॐ स्फ्रे, अस्त्रं मोटय, ॐ चूर्णय चूर्णय, ॐ सर्वशत्रुं मर्दय मर्दय, ॐ हं, ॐ ह्रः फट् ॥ १२ ॥ सप्तवारं न्यसेन्मन्त्रं ध्यात्वाऽऽत्मानं तु भैरवम् । चतुर्भुजं दशभुजं विंशद्बाह्वात्मकं शुभम् ॥ १३ ॥ शूलखट्वाङ्गहस्तं तु खड्गकट्टारिकोद्यतम् । भक्षणं परसैन्यानामात्मसैन्यपराङ्मुखम् ॥ १४ ॥ सम्मुखं शत्रुसैन्यस्य शतमष्टोत्तरं जपेत् । जपाड्डमरुकाच्छब्दाच्छस्त्रं त्यक्त्वा पलायते ॥ १५ ॥ परसैन्यं (न्ये) शृणु भङ्गं प्रयोगेण पुनर्वदे । श्मशानाङ्गारमादाय विष्ठां चोलूककाकयोः ॥ १६ ॥ कर्पटे प्रतिमां लिख्य

है, वह समान शारीर वाला, कभी कृश कभी स्थूल, गौर वर्णवाला, पित्त प्रकृति वाला लाला नेत्रों वाला, गुणी तथा वीर होता है । चन्द्रमा के गृह अर्थात् कर्क लग्न में जन्म लेने वाला सौभाग्यवान् तथा कोमल शरीर वाला होता है ।। १-२ ।। भौम के गृह अर्थात् मेष तथा वृश्चिक लग्न में जन्म लेने वाला वातरोगी तथा लोभी प्रकृति का होता है । बुध के गृह अर्थात् मिथुन तथा कन्या लग्न में जन्म लेने वाला व्यक्ति, बुद्धिमान्, सुन्दर तथा मानी होता है । बृहस्पति के गृह अर्थात् धनु तथा मीन लग्न में जन्म लेने वाला व्यक्ति महाक्रोधी तथा सुन्दर होता है । शुक्र के गृह अर्थात् तुला तथा वृष लग्न में जन्म लेने वाला शिशु त्यागी,भोगी तथा सुन्दर शरीर वाला होता है ।। ३-४ ।। शनि के गृह में अर्थात् मकर तथा कुम्भ लग्न में जन्म लेने वाला शिशु बुद्धिमान्, सुन्दर तथा मानी होता है । सौम्य लग्न (वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर तथा मीन) में जन्म लेने वाला शिशु सौम्य स्वभाव वाला तथा क्रूर लग्न (मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु तथा कुम्भ) में जन्म लेने वाला शिशु क्रूर स्वभाव वाला होता है ।। ५ ।। गौरि ! अब मैं नाम राशि के अनुसार सूर्यादि ग्रहों का दशा फल बतला रहा हूँ । सूर्य की दशा में हाथी- घोड़ा धन-धाय, विपुल राज्यलक्ष्मी, तथा धनागम होता है । चन्द्रमा की दशा में द्रव्य तथा स्त्री की प्राप्ति होती है । भौम की दशा में भूमि का लाभ तथा सुख की प्राप्ति होती है ।। ६-७ ।। बुध की दशा में धन धान्य की प्राप्ति होती है । गुरु की दशा में हाथी-घोड़े तथा धन की प्राप्ति होती है । शुक्र की दशा में खाने-पीने की वस्तुओं और धन की प्राप्ति होती है । शनि की दशा में रोग आदि होते हैं ।। ८ ।। राहु की दशा में नौकरी, धर्म-कर्म तथा बाणिज्य का लाभ होता है । यदि वायीं नाड़ी चले और नाम के अक्षर विषम हों तो वह समय शनि, भौम तथा राहु का होता है, उस समय संग्राम करने पर विजय की प्राप्ति होती है । दाहिनी नाड़ी चलते समय यदि नाम का अक्षर सम हों तो वह समय सूर्य का होता है । उसमें व्यापार कार्य निष्फल होता है ।। ९-१० ।। सम अक्षरों के नाम वाला व्यक्ति संग्राम में निश्चय ही विजय प्राप्त करता है । किन्तु पैदल संग्राम करने से विजय की प्राप्ति होती है और सवारी पर चढ़कर संग्राम करने से युद्ध में मृत्यु होती है ।। ११ ।। ओं हूं ओं हूं ओं स्फ्रें अस्त्रं मोटय, ओं चूर्णय चूर्णय, ओं सर्वशत्रुं मर्दय, मर्दय ओं हूं हूं फट् ।। १२ ।। इस मन्त्र का सात बार न्यास करना चाहिए । अपने हृदय में चार, दस तथा बीस भुजाओं वाले, अपने शुभ हाथों में त्रिशूल, खट्वाङ्ग, खड्ग कटार धारण करने वाले, शत्रु सेना का भक्षण करने वाले और अपनी सेना की पीछे से रक्षा करने वाले भैरवजी का ध्यान करके, शत्रु सेना का अष्टोत्तर शत जप करना चाहिए । इस मन्त्र का जप करने से तथा डमरू का शब्द सुनकर शत्रु की सेना अपना शस्त्र छोड़कर भाग जाती है ।। १३-१५ ।। अब मैं शत्रु की सेना के पराजय का दूसरा प्रयोग बतलाता हूँ । श्मशान का कोयला तथा उल्लू एवं कौए के बीट को लेकर उससे कपड़े पर शत्रु की प्रतिमा बनाकर उसके सिर, मुख, ललाट, हृदय, गुप्ताङ्ग, पैर, पीठ तथा

साध्यस्यैवाक्षरं यथा । नामाथ नवधाऽऽलिख्य रिपोश्चैव यथाक्रमम् ॥ १७ ॥ मूर्ध्नि वक्त्रे ललाटे च हृदये गुह्यपादयोः । पृष्ठे तु बाहुमध्ये तु नाम वै नवधा लिखेत् ॥ १८ ॥ मोटयेद्युद्धकाले तु उच्चरित्वा (समुच्चार्य) तु विद्यया । तार्क्ष्यचक्रं प्रवक्ष्यामि जयार्थं त्रिमुखाक्षरम् ॥ १९ ॥ क्षिप ॐ स्वाहा तार्क्ष्यात्मा शत्रुरोगविषादिनुत् । दुष्टभूतग्रहर्तस्य व्याधितस्याऽऽतुरस्य च ॥ २० ॥ करोति यादृशं कर्म तादृशं सिध्यते खगात् । स्थावरं जङ्गमं चैव लूताश्च कृत्रिमं विषम् ॥ २१ ॥ तत्सर्वं नाशमायाति सधकस्यावलोकनात् । पुनर्ध्यायेन्महातार्क्ष्यं द्विपक्षं मानुषाकृतिम् ॥ २२ ॥ द्विभुजं वक्रचञ्चुं च गजकूर्मधरं प्रभुम् । असंख्योरगपादस्थमागच्छन्तं खमध्यतः ॥ २३ ॥ ग्रसन्तं चैव खादन्तं तुदन्तं चाऽऽहवे रिपून् । चञ्च्वा हताश्च द्रष्टव्याः केचित्पादैश्च चूर्णिताः ॥ २४ ॥ पक्षपातैश्चूर्णिताश्च केचिन्नष्टा दिशो दश । तार्क्ष्यध्यानान्वितो यश्च त्रैलोक्ये ह्यजयो भवेत् ॥२५॥ पिच्छिकां तु प्रवक्ष्यामि मन्त्रसाधनजां क्रियाम् ॥ २६ ॥ ॐ हूं पक्षिन्क्षिप, ओं हूं सः, महाबलपराक्रम सर्वसैन्यं भक्षय, भक्षय, ॐ मर्दय मर्दय, ॐ चूर्णय चूर्णय, ॐ विद्रावय विद्रावय, ॐ हूं खः, ॐ भैरवो ज्ञापयति स्वाहा ॥ २७ ॥ अमुं चन्द्रग्रहणे तु जपं कृत्वा तु पिच्छिकाम् । मन्त्रयेद्भ्रामयेत्सैन्य सम्मुखं गजसिंहयोः ॥ २८ ॥ ध्यानाद्रवान्मर्दयेच्च सिंहारूढो मृगाविकान् । शब्दाद्भङ्गं प्रवक्ष्यामि दूरं मन्त्रेण बोधयेत् ॥२९॥ मातृणां चरुकं दद्यात्कालरात्र्या विशेषतः । श्मशानभस्मसंयुक्तं मालती चामरी तथा । कार्पास मूलमात्रं तु तेन दूरं तु बोधयेत् ॥ ३० ॥ ओम्, अहे हे महेन्द्रि, अहे महेन्द्रि भञ्ज हि । ॐ जहि मसानं हि खाहि खाहि किलि किलि, ॐ हुं फट्॥३१॥ अरेर्नाशं दूरशब्दाज्जप्तया भङ्गविद्यया। अपराजिता च धत्तूरस्ताभ्यां तु तिलकेन हि ॥ ३२ ॥ ॐ किलि किलि विकिलि, इच्छाकिलि भूतहनि शङ्खिनि, उमे दण्डहस्ते रौद्रि माहेश्वरि, उल्कामुखि ज्वालामुखि शङ्कुकर्णे शुष्कजङ्घेऽलम्बुषे हर हर सर्वदुष्टान्खन खन, ॐ यन्मांनिरीक्षयेद्देवि तांस्तान्मोहय, ॐ रुद्रस्य हृदये स्थिता रौद्रि

भुजाओं पर शत्रु का नव बार नाम लिखे ।। १६-१८ ।। उस कपड़े को मोड़कर संग्राम के समय अपने पास रखने से तथा पूर्वोक्त मन्त्र पढ़ने से विजय की प्राप्ति होती है ।। १८ ।। अब मैं विजयप्रद त्रिमुखाक्षर तार्क्ष्यचक्र का वर्णन कर रहा हूँ । 'क्षिप ओं स्वाहा तार्क्ष्यात्मा शत्रुरोगविषादिनुत् ।' यह त्रिमुखाक्षर मन्त्र है । इस मन्त्र के अनुष्ठान से दुष्ट बाधा, भूतबाधा, ग्रहबाधा तथा अनेक प्रकार की व्याधियाँ विनष्ट होती हैं । इस मन्त्र के अनुष्ठान से गरुड़ सभी प्रकार के कार्यों को सिद्ध कर देते हैं ।। १९-२० ।। सभी प्रकार के विष; चाहे स्थावर हों, जंगम हों, लूताजन्य हों या कृत्रिम हों, इस मन्त्र के साधक का दर्शन करने मात्र से विनष्ट हो जाते हैं । फिर दो पंखों वाले तथा मनुष्य के आकार वाले,दो भुजाओं वाले, टेढ़ी चोंच वाले, हाथी तथा कछुए को अपनी चोंच में पकड़े हुए, अपने पैरों में असंख्य सर्पों को पकड़े हुए, आकश मार्ग से आते हुए,संग्राम में शत्रुओं को निगलते हुए, खाते हुए, चोंच से नोचते हुए, महा गरुड़ का ध्यान करना चाहिए ।। २१-२३ ।। फिर ध्यान करना चाहिए कि महागरुड़ की चोंच से कुछ शत्रु मर चुके हैं, कुछ पंखों के आघात से चूर-चूर हो गए हैं तथा कुछ दसों दिशाओं में भाग चुके हैं । इस तरह से जो गरुड़ का ध्यान करता है वह त्रैलोक्य विजयी होता है ।। २४-२५ ।। अब मैं मन्त्रानुष्ठान से सिद्ध होने वाली पिच्छिका क्रिया का वर्णन करता हूँ।।२६।। ओं हूं पक्षिन् क्षिप, ओं हूं सः महाबल पराक्रम सर्वसैन्यं भक्षय-भक्षय, ओं मर्दय-मर्दय, ओं चूर्णय चूर्णय, ओं विद्रावय-विद्रावय, ओं हूं खः ओं भैरवोज्ञापयति स्वाहा ।। २७ ।। इस पिच्छिका विद्या को चन्द्रग्रहण में जप करके सिद्ध कर लेना चाहिए । ऐसा करने वाला साधक संग्राम में सेना के सम्मुख हाथी और सिंह को भी खदेड़ देता है ।। २८ ।। इस मन्त्र के ध्यान से शत्रु की सेना को उसी प्रकार से विनष्ट कर देता है, जिस तरह सिंह हरिणों तथा मेषों को विनष्ट कर देता है ।। २८ ।। अब मैं दूर रहकर केवल मन्त्र साधन से शत्रु के नाश का उपाय बतला रहा हूँ ।। २९ ।। कालरात्रि (आश्विन शुक्ल अष्टमी) के दिन मातृकाओं को चरु प्रदान करे । श्मशान के भस्म, मालतीपुष्प, चामरी तथा कपास की जड़ से ही दूर से शत्रु को सम्बोधित करें ।। ३० ।। उसका मन्त्र है- 'ओं अहे हे महेन्द्रि अहे महेन्द्रि भञ्ज हि । ओं जहि मसानं हि खाहि-खाहि किलि-किलि, ओं हूं फट् ।। ३१ ।। इस भङ्ग विद्या का दूर से ही जप करने से शत्रु का नाश हो जाता है । इस मन्त्र का जप अपराजिता तथा धतूरे के रस को मिलाकर तिलक करके करना चाहिए ।। ३२ ।। ओं किलि, किलि विकिलि.........इच्छा किलि भूतहनि ततः कुरु स्वाहा ।। ३३ ।। इन

सौम्येन भावेनाऽऽत्मरक्षां ततः कुरु स्वाहा ॥ ३३ ॥ बाह्यतो मातृः संलिख्य सकलाकृतिवेष्टिताः । नागपत्रे लिखेद्विद्यां सर्वकामार्थसाधिनीम्॥३४॥ हस्ताद्यैर्धारिता पूर्वं ब्रह्मरुद्रेन्द्रविष्णुभिः । गुरुसंग्रामकाले तु विद्यया रक्षिताः सुराः ॥ ३५ ॥ रक्षया नारसिंह्या च भैरव्या शक्तिरूपया । सर्वे (वै) त्रैलोक्यमोहिन्या गौर्या देवासुरे रणे ॥ ३६ ॥ बीजसम्पुटितं नाम कर्णिकायां दलेषु च । पूजाक्रमेण चाङ्गानि रक्षायन्त्रं स्मृतं शुभे ॥ ३७ ॥ मृत्युञ्जयं प्रवक्ष्यामि नामसंस्कारमध्यगम् । कलाभिवेष्टितं पश्चात्सकारेण निबोधितम् ॥ ३८॥ जकारं बिन्दुसंयुक्तमोंकारेण समन्वितम् । धकरोदरमध्यस्थं वकारेण निबोधितम् ॥ ३९ ॥ चन्द्रसम्पुटमध्यस्थं सर्वदुष्टविमर्दकम् । अथवा कर्णिकायां च लिखेन्नाम च कारणम् ॥ ४०॥ पूर्वे दले तथोंकारं स्वदक्षे चोत्तरे लिखेत् । आग्नेयादौ च हूंकारदले षोडशके स्वरान् ॥ ४१ ॥ चतुस्त्रिंशद्दले काद्यान्बाह्ये मन्त्रं च मृत्युजित् । लिखेद्वै भूर्जपत्रे तु रोचनाकुङ्कमेन च ॥ ४२ ॥ कर्पूरचन्दनाभ्यां च श्वेतसूत्रेण वेष्टयेत् । सिक्थकेन परिच्छाद्य कलशोपरि पूजयेत् ॥ ४३ ॥ यन्त्रस्य धारणाद्रोगाः शाम्यन्ति रिपवो मृतिः । विद्यां तु भेलखीं वक्ष्ये विप्रयोगमृतेर्हरीं (रा) म्॥४४॥ ओं बातले वितले विडालमुखि, इन्द्रपुत्रि, उद्भवे वायुदेवेन खीलि, आः, जी हाजा मयि वाह, इहादि दुःखनित्यकण्ठोच्चैर्मुहूर्तान्वय, अह मां यस्यामहमुपाडि, ॐ भेलखि, ॐ स्वाहा॥४५॥ नवदुर्गासप्तजप्तान्मुखस्तम्भो मुखस्थितात् ॥ ४६ ॥ ॐ चण्डि, ॐ हूं फट् स्वाहा॥४७॥ गृहीत्वा सप्तजप्तं तु खड्गयुद्धेऽपराजितः ॥ ४८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धजयार्णवीये नानाबलवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

सर्वार्थमातृकाओं को लिखना चाहिए । इस विद्या को पहले ब्रह्म, रुद्र, इन्द्र तथा विष्णु आदि ने पहले अपने हाथ में धारण किया था । संग्राम के समय वृहस्पति ने इसे धारण करके इसके द्वारा देवताओं की रक्षा की थी ।। ३४-३५ ।। देवासुर संग्राम में रक्षा स्वरूपिणी नारसिंही शक्तिरूपिणी भैरवी तथा त्रैलोक्य मोहिनी गौरी ने भी देवताओं की रक्षा की थी ।। ३६ ।। अष्टदल कमल की कर्णिका तथा दलों में गौरी के बीजमन्त्र ह्रीं से सम्पुटित अपना नाम लिखना चाहिए । पुनः पूजा के क्रम से गौरी जी के अङ्ग देवताओं का न्यास करें। हे शुभे ! इस तरह से रक्षा यन्त्र बन जाता है ।। ३७ ।। अब मैं नाम संस्कार के बीच में रहने वाले मृत्युञ्जय को बतला रहा हूँ। जो सभी कलाओं से वेष्टित है । अर्थात् उससे सभी कार्यों की सिद्धि हो जाती है तथा जो सकार से प्रबोधित होता है ।। ३८ ।। पहले ओं लिखकर जं लिखे, फिर धकार के पेट में वकार को लिखकर उसे चन्द्रविन्दु से संपुटित करे । अर्थात् 'ओं जंध्वम्' यह मन्त्र सभी दुष्टों का विनाश करने वाला है । अथवा कमल की कर्णिका में अपना नाम एवं प्रयोजन लिखना चाहिए ।। ३९-४० ।। कमल के पूर्वादि दलों में ओंकार लिखें, कोणों में 'हूं' लिखें उसके बाहर वाले सोलह दलों में अ आ आदि स्वरों को लिखें । उसके बाहर वाले चौंतिस दलों में क से क्ष पर्यन्त व्यंजनों को लिखे । इस यंत्र को गोरोचन तथा कुंकुम से लिखकर उजले धागे से वेष्टित करके, रेशमी वस्त्र से आच्छंदित करे कलश पर रखकर उसकी पूजा करें । इस यंत्र को धारण करने से रोग शान्त हो जाते हैं और शत्रु का विनाश होता है ।। ३९-४३ ।। अब मै। भेलखी विद्या को बतला रहा हूँ जो वियोग में मृत्यु से बचाती है ।। ४४ ।। ॐ वातले वितले....भेलखि, ॐ स्वाहा ।' ।। ४५ ।। यह भेलखि विद्या का स्वरूप है । नवरात्र के समय इस मन्त्र को सिद्ध करके संग्राम के समय इसे सात बार जपने पर शत्रु का मुखस्तम्भन होता है।।४६।। ओं चण्डि ओं हूं फट् स्वाहा इस मन्त्र को संग्राम के समय सात बार जपने से खड्ग युद्ध में विजय होती है।।४७-४८।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अनेक बल वर्णन नामक एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३३ ॥

अथ चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रैलोक्यविजयविद्या

ईश्वर उवाच— **त्रैलोक्यविजयां वक्ष्ये सर्वयन्त्रविमर्दिनीम् ॥ १ ॥ ॐ हूं क्षूं ह्रूं, ॐ नमो भगवति दंष्ट्रिणि भीमवक्त्रे महोग्ररूपे हिलि हिलि रक्तनेत्रे किलि किलि महानिस्वने कुलु, विद्युज्जिह्वे कुलु ओं निर्मांसे कट कट गोनसाभरणे चिलि चिलि शवमालाधारिणि द्रावय, ॐ महरौद्रि सार्द्रचर्मकृताच्छेदे विजृम्भ, ॐ नृत्यासिलताधारिणि भृकुटीकृतापाङ्गे विषमनेत्रकृतानने वसामेदो विलिप्तगात्रे कह कह, ॐ हस हस क्रुद्ध, क्रुद्ध, ॐ नीलजीमूतवर्णे अभ्रमालाकृताभरणे विस्फुर, ॐ घण्टारवावकीर्णदेहे, ॐ सिंसिस्थेऽरुणवर्णे, ॐ ह्रां हीं हूं रौद्ररूपे ह्रूं ह्रीं क्लीम्, ॐ ह्रीं ह्रूंमोमाकर्ष, ॐ धून धून, ॐ हे हः खः, वज्रिणि। भिन्द, ॐ महाकाये छिन्द ॐ करालिनि किटि किटि महाभूतमातः सर्वदुष्टनिवारिणि जये, ॐ विजये ॐ त्रैलोक्य विजये हूं फट् स्वाहा ॥ २ ॥ नीलवर्णां प्रेतसंस्थां विंशहस्तां यजेज्जये । न्यासं कृत्वा तु पञ्चाङ्गं रक्तपुष्पाणि होमयेत् । सङ्ग्रामे सैन्यभङ्गः स्यात्त्रैलोक्यविजयापठात् ॥ ३ ॥ ॐ बहुरूपाय स्तम्भय स्तम्भय, ॐ मोहय, ॐ सर्वशत्रून्द्रावय, ॐ ब्रह्माणमाकर्षय विष्णुमाकर्षय, ॐ महेश्वरमाकर्षय, ओमिन्द्रं टालय, ॐ पर्वतांश्चालयचालय, ॐ सप्तभुजंगं नाममृन्मूर्तिसंस्थं विद्यादरिं ततः ॥ ५ ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धजयार्णवीयत्रैलोक्यविजयविद्यावर्णनं नाम चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

श्रीशिवजी ने कहा— अब मैं सभी यन्त्रों को विनष्ट करने वाली विद्या को बतला रहा हूँ ।। १ ।। ओं हूं क्षूं हूं.........विजये हूं फट् स्वाहा ।। २ ।। यह मन्त्र का स्वरूप है । इसका अर्थ है कि- ओं हूँ क्षूं हूं ओं बड़ी-बड़ी दाढ़ों से भयंकर आकृति वाली अत्यन्त उग्ररूप वाली भगवति आपको नमस्कार है । आप रणाङ्गण में क्रीड़ा करें । हे लाल नेत्रों वाली आप किलकारी करें । हे भयंकर आवाज वाली भगवति ! कुलु ! हे विद्युत् के समान जिह्वा वाली ! कुलु ! हे मांसरहित शरीर वाली आप शत्रुओं को आच्छादित करें । हे गोन साभरण वाली ! अलंकृत होइये। हे शवमाला को धारण करने वाली आप शत्रुओं को भगाइये । हे महारौद्रि ! खून से लथपथ चमड़े को पहनने वाली ! अपना मुख खोलिए । हे नृत्य करती हुयी खड्ग को धारण करने वाली टेढ़ी भौंहों से युक्त तिरछे नेत्रों से देखने वाली, विषमनेत्र के कारण विकृत मुख वाली अपने अङ्गों में मज्जा तथा मेदा को लपेटने वाली, अट्टहास कीजिए, अट्टहास कीजिए । हँसिए-हँसिए । क्रोध कीजिए, क्रोध कीजिए । नीलमेघ के समान वर्णवाली मेघमाला को अलङ्कार रूप से धारण करने वाली, विशेष रूप से प्रकाशित होइए । घण्टारव के द्वारा शत्रुओं के शरीर को विकीर्ण करने वाली । सिंसिस्थित, रक्त वर्ण वाली ! ॐ ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, रौद्रे रूपे ! हूं, ह्रीं, क्ली, ॐ ह्रीं, ह्रूं ओम्, अप शात्रुओं को खींचिए, खूब धूनिए, कँपाइये । ॐ हे हः खः वज्रहस्ते । शत्रुओं का भेदन कीजिए । ॐ भयंकर शरीर वाली ! शत्रुओं को काट डालिए । भयंकररूप वाली देवि ! शत्रुओं को डराइये । हे महाभूतों की माता, सभी दुष्टों का निवारण करने वाली ओं जये! ओं विजये ! ओं त्रैलोक्य विजये ! हूँ फट् स्वाहा ।। २ ।। विजय प्राप्ति के लिए नीलवर्ण की प्रेत की सवारी करने वाली, तथा बीस हाथों वाली देवी की पूजा करनी चाहिए । इस मन्त्र का पञ्चाङ्ग न्यास करके लाल पुष्पों से हवन करना चाहिए । इस त्रैलोक्य विजय विद्या के पाठ से शत्रु की सेना पराजित हो जाती है ।। ३ ।। बहुरूप को नमस्कार है । आप शत्रुओं का स्तम्भन कीजिए । सम्मोहन कीजिए । सभी शत्रुओं को खदेड़िए । ब्रह्मा का आकर्षण कीजिए । विष्णु का आकर्षण कीजिए । महेश्वर का आकर्षण कीजिए । इन्द्र को विचलित कीजिए । पर्वतों को विचलित कीजिए । सातों सागरों का शोषण कीजिए । शत्रुओं को काटिए । बहुरूप को नमस्कार है ।। ४ ।। इस मन्त्र को जपते समय मिट्टी की शत्रु की मूर्ति बनाकर उसके सिर बैठे हुए सर्प का ध्यान करना चाहिए ।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराणा का युद्धजयार्णवीय त्रैलोक्य विजय विद्या का वर्णन नामक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३४ ॥

अथ पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सङ्ग्रामविजयविद्या

ईश्वर उवाच– **सङ्ग्रामविजयां विद्यां पदमालां वदाम्यहम् ॥ १ ॥ ॐ ह्रीं चामुण्डे श्मशानवासिनि खट्वाङ्गकपालहस्ते महाप्रेतसमारूढे महाविमानसमाकुले कालरात्रि महागणपरिवृते महामुखे बहुभुजे घण्टाडमरुकिङ्किणि हस्ते, अट्टाट्टहासे किलि, किलि, ॐ हूं फट्, दंष्ट्राघोरान्धकारिणि नादशब्दबहुले गजचर्मप्रावृतशरीरे मांसदिग्धे लेलिहानोग्रजिह्वे महाराक्षसि रौद्रदंष्ट्राकराले भीमाट्टाट्टहासे स्फुरद्विद्युत्प्रभे चल चल, ॐ चकोरनेत्रे चिलि चिलि,ॐ ललज्जिह्वे, ॐ भीं भृकुटिमुखि हुंकारभयत्रासनि कपालमालावेष्टितजटामुकुटशशाङ्कधारिणि, अट्टाट्टहासे किलि किलि, ॐ हूं दंष्ट्राघोरान्धकारिणि सर्वविघ्नविनाशिनि, इदं कर्म साधय साधय, ॐ शीघ्रं कुरु कुरु, ॐ फट्, ओमङ्कुशेन शमय प्रवेशय, ॐ रं रं कम्पय कम्पय, ॐ चालय, ॐ रुधिरमांसमद्यप्रिये हन हन, ॐ कुट्ट, ॐ छिन्द, ॐ मारय, ओमनुक्रमय, ॐ वज्रशरीरं पातय, ॐ त्रैलोक्यगतं दुष्टमदुष्टं वा गृहीतमगृहीतं वाऽऽवेशय, ॐ नृत्य, ॐ वन्द, ॐ कोटराक्ष्यूर्ध्वकेश्युलूकवदने करङ्किणि दह, ॐ पच पच, ॐ गृह्ण, ॐ मण्डलमध्ये प्रवेशय, ॐ किं विलम्बसि ब्रह्मसत्येन विष्णुसत्येन रुद्रसत्येनर्षिसत्येनाऽऽवेशय, ॐ किलि किलि ॐ खिलि खिलि विलि विलि, ॐ विकृतरूपधारिणि कृष्णभुजङ्गवेष्टितशरीरे सर्वग्रहावेशनि प्रलम्बौष्ठिनि भ्रूभङ्गलग्ननासिके विकटमुखि कपिलजटे ब्राह्मि भञ्ज, ॐ ज्वलामुखि स्वन, ॐ पातय, ॐ रक्ताक्षि घूर्णय भूमिं पातय, ॐ शिरो गृह्ण चक्षुर्मीलय, हस्तपादौ गृह्ण मुद्रां स्फोटय, ॐ फट्, ॐ विदारय, ॐ त्रिशूलेन च्छेदय, ॐ वज्रेण हन, ॐ दण्डेन ताडय ताडय, ॐ चक्रेण च्छेदय च्छेदय, ॐ शक्त्या भेदय दंष्ट्रया कीलय ॐ कर्णिकया पाटय, ओमङ्कुशेन गृह्ण, ॐ शिरोक्षिज्वरमैकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं चातुर्थिकं डाकिनीस्कन्दग्रहान्मुञ्च मुञ्च, ॐ पच, ओमुत्सादय, ॐ भूमिं पातय,**

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं संग्राम विजय विद्या के पदसमूह का वर्णन कर रहा हूँ ।। १ ।। ओं ह्रीं चामुण्डे ! श्मशानवासिनि......... ओं विच्चे हूँ फट् स्वाहा ।। २ ।। यह मन्त्र का स्वरूप है। इसक अर्थ है कि- ओं ह्रीं चामुण्डे ! श्मशान में निवास करने वाली, हाथ में खट्वाङ्ग तथ कपालधारण करने वाली । महाप्रेत पर सवारी करने वाली ! बड़े विमानों से घिरी रहने वाली ! कालरात्रि! महागणों से घिरी हुयी । बड़े मुख वाली ! तथा महाभुजाओं वाली ! हाथ में घण्टा डमरु तथा किङ्किणी धारण करने वाली, अट्टहास करने वाली देवि आप क्रीड़ा कीजिए, क्रीड़ा कीजिए । ओं हूं फट्। अपने दाढ़ों से भयंकर अधकार को फैलाने वाली ! बहुत अधिक आवाज करने वाली ! अपने शरीर को हाथी के चर्म से अलंकृत करने वाली । मांस से लथपथ शरीर वाली ! भयंकर जिह्वा को लपलपाने वाली ! महाराक्षसि ! भयंकर दाँतों के कारण भयंकर लगने वाली, चमकती हुई बिजली के समान कान्ति वाली ! मुझे संग्राम में विजय दिलाने के लिए चलिए, चलिए । चकोर के समान नेत्र वाली ! चिलि, चिलि ! हे लपलपाती हुई जिह्वा वाली ! ॐ भीं टेढ़ी भौंहों से युक्त मुख वाली !तथा हुंकार जन्य भय से भयभीत करने वाली ! नरमुण्डों से वेष्टित जटामुकुट में चन्द्रमा को धारण करने वाली ! अट्टहास करने वाली ! रणभूमि में क्रीड़ा करो, क्रीड़ा करो । ओं हूँ अपने दाढ़ों से घोर अन्धकार प्रकट करने वाली! सभी विघ्नों का विनाश करने वाली देवि ! मेरे इस कार्य को सिद्ध करें । सिद्ध करें । शीघ्रता कीजिए, शीघ्रता कीजिए । ॐ फट् । अंकुश से शान्त कीजिए तथा प्रवेश कराइये । ॐ रक्त से रंग दीजिए रंग दीजिए । कम्पाइये, कंपाइये । ओं चलाइए । ओं शत्रुओं के रुधिरे मांस तथा मद्य से प्रेम करने वाली, उन्हें मारिए, मारिए । कूटिए, कूटिए, मारिए । उनका पीछा कीजिए। वज्र के समान शरीर वाले को भी मार गिराइये । त्रैलोक्य में रहने वाले चाहें दुष्ट हों या अदुष्ट गृहीत हों या अगृहीत आप उसे आविष्ट कीजिए । नर्तन कीजिए, ओं वन्द ! हे ऊर्ध्वकेशि । हे

ॐ गृह्ण, ॐ ब्रह्माण्येहि, ॐ माहेश्वर्येहि (ॐ) कौमार्येहि, ॐ वैष्णव्येहि, ॐ वाराह्येहि, ओमैन्द्र्येहि, ॐ चामुण्डे एहि ॐ रेवत्येहि, ओमकाशरेवत्येहि, ॐ हिमवच्चारिण्येहि, ॐ रुरुमर्दिन्यसुर क्षयंकर्याकाशगामिनि पाशेन बन्ध बन्ध, अङ्कुशेन कट कट समयं तिष्ठ,ॐ मण्डलं प्रवेशय, ॐ गृह्ण मुखं बन्ध, ॐ चक्षुर्बन्ध हस्तपादौ च बन्ध दुष्टग्रहान्सर्वान्बन्ध, ॐ दिशो बन्ध, ॐ विदिशो बन्ध, अधस्ताद् बन्ध, ॐ सर्वं बन्ध, ॐ भस्मना पानीयेन वा मृत्तिकया सर्षपैर्वा सर्वानावेशय, ॐ पातय, ॐ चामुण्डे किलि किलि, ॐ विच्चे हुं फट् स्वाहा॥ २॥ पदमाला जयाख्येयं सर्वकामप्रसधिका। सर्वदा होमजप्याद्यैः पाठाद्यैश्च रणे जयः ॥ ३ ॥ अष्टाविंशभुजा ध्येया असिखेटकषट्करौ। गदादण्डयुतौ चान्यौ शरचापधरौ परौ ॥ ४ ॥ मुष्टिमुद्गरयुक्तौ च शङ्खखड्गयुतौ परौ। ध्वजवज्रधरौ चान्यौ सचक्रपरशू परौ॥५॥ डमरुदर्पणाढ्यौ च शक्तिकुन्तधरौ परौ। हलेन मुसलेनाऽऽढ्यौ पाशतोमरसंयुतौ ॥ ६ ॥ ढक्कापणव संयुक्तावभयौ मुष्टिकान्वितौ । तर्जयन्ती च महिषं घातनी होमतोऽरिजित् ॥ त्रिमध्वाक्ततिलैर्होमो

उलूकवदने ! हे करङ्किणि ! आप शत्रुओं को जलाइये । पकाइये-पकाइये । उन्हें पकड़िए । मण्डल के भीतर प्रवेश कराइये । ओं क्यों विलम्ब कर रही हैं ? ब्रह्मा के सत्य से, विष्णु के सत्य से, रुद्र के सत्य से तथा ऋषियों के सत्य से आविष्ट कीजिए । ओं किलि-किलि ! ओं खिलि-खिलि, ओं विलि-विलि । ओं विकृत रूप धारण करने वाली ! अपने शरीर पर काले सर्प को लपेटने वाली ! सभी ग्रहों को आविष्ट करने वाली देवि ! लम्बे ओंठों वाली ! टेढ़ी भौंहों तक सटी हुई नाक वाली, विकट मुटि, पीली जय वाली । हे बाह्मि ! शत्रुओं को पराजित कीजिए। ओं मुह में ज्वाला वाली देवि ! आवाज कीजिए । ओं शत्रुओं को गिराइए । हे लाल नेत्रों वाली । शत्रुओं को चक्र से काटिये । भूमि पर गिराइए । ओं उनके सिर को पकड़िए । उनकी आँखें बन्द कीजिए ।शत्रुओं के हाथ पैर जकड़ दीजिए । उनकी अंगमुद्रा फोड़ दीजिए । ओं फट् । ओं शत्रुओं का विदारण कीजिए । ओं उन्हें त्रिशूल से छेदिए । ओं वज्र से मारिए । ओं दण्डे से ताडन कीजिए । ओं चक्र से काटिए । ओं शक्ति से भेदन कीजिए । दाढ़ से कीलित कीजिए । कर्णिका से काट डालिए । ओम् अंकुश से पकड़िए ओं शिरोज्वर को, अक्षिज्वर को, एकह्निक ज्वर को, द्वयाह्निक ज्वर को, त्र्याह्निक ज्वर को, चातुर्थिक ज्वर को, अकिनियों को, स्कन्दग्रहों को शत्रु की सेना पर छोड़िए-छोड़िए । ओं पकाइए । उच्छिन्न कीजिए । ओं भूमि पर गिराइए। ओं पकड़िए । ओं ब्रह्माणि ! आइये । ओं माहेश्वरी ! आइये । ओं कौमारि ! आइए । ओं वैष्णवि ! आइये । ओं वाराहि ! आइए । ओम् ऐन्द्रि ! आइए । ओं चामुण्डे ! आइए । ओं रेवति! आइए । ओम् आकाश रेवति ! आइए । ओं हिमवच्चारिणि ! आइए । ओं रुरुमर्दिनि ! तथा असुरों का विनाश करने वाली । आकाशमार्ग से चलने वाली ! पाश से बाँधिए बाँधिए । अंकुश से ढंकिए, ढँकिए । अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर रहिए । मण्डल में प्रवेश कराइये । ओं शत्रुओं को पकड़ लीजिए,उनका मुँह बाँध दीजिए । नेत्र बाँध दीजिए । हाथ पैर बाँध दीजिए । समस्त दुष्ट ग्रहों को बाँध दीजिए । ओं दिशाओं को बाँध दीजिए । ओं विदिशाओं को बाँध दीजिए । नीचे बाँध दीजिए । ओं सर्वकुछ बाँध दीजिए। ओम् भस्म से, जल से, मिट्टी से अथवा सरसों से सबों को आविष्ट कीजिए । शत्रुओं को गिरा दीजिए । हे चामुण्डे ! क्रीड़ा कीजिए, क्रीड़ा कीजिए । ओं विच्चे हूँ फट् स्वाहा ।। २ ।। यह जय नामक पदमाला सभी कर्मों को सिद्ध करने वाली है । इसका सर्वदा,होम करने से, जप करने से तथा पाठ करने से संग्राम में विजय की प्राप्ति होती है ।। ३ ।। इनकी अट्ठाइस भुजाओं का ध्यान करना चाहिए । इनकी छह भुजाओं में तलवार और खेटक है । दो भुजाओं में गदा और दण्ड है । दो भुजाओं में बाण और धनुष् हैं । दो भुजाओं में शंख और खड्ग है । दो भुजाओं में ध्वजा और वज्र है, दो भुजाओं में चक्र और फरसे हैं, दो भुजाओं में डमरु तथा दर्पण हैं,दो भुजाओं में शक्ति और भाले हैं, दो भुजाओं में हल और मुसल हैं, दो भुजाओं में पाश और तोमर है, दो भुजाओं में ढक्का और पणव है और दो भुजाओं की मुष्टि बँधी है । महिषासुर को भयभीत करने वाली तथा उसका बध करने वाली हैं । इस मन्त्र से हवन करने वाले के शत्रुओं को जीतने वाली हैं, हवन त्रिमधु (घी, चीनी

न देया यस्य कस्यचित् ॥ ७ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धजायर्णवे सङ्ग्रामविजयविद्यावर्णनं नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

अथ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रचक्रम्

ईश्वर उवाच— **अथ चक्रं प्रवक्ष्यामि यात्रादौ च फलप्रदम् । अश्विन्यादौ लिखेच्चक्रं त्रिनाडीपरिभूषितम् ॥ १ ॥ अश्विन्यार्द्रादिभिः पुनर्वसुश्चोत्तरफाल्गुनी । हस्ता (स्तो) ज्येष्ठा तथा मूलं वारुणं चाप्यजैकपात् ॥ २ ॥ नाडीयं प्रथमा चान्या याम्यं मृगशिरस्तथा । पुष्यं भाग्यं तथा चित्रा मैत्रं चाऽऽप्यं च वासवम् । अहिर्बुध्नं तृतीयाऽथ कृत्तिका रोहिणी ह्यहिः । चित्रा स्वाती विशाख च श्रवणा रेवती च भम् ॥ ४ ॥ नाडीत्रितयसंजुष्टग्रहाज्ज्ञेयं शुभाशुभम् । चक्रं फणीश्वरं तत्तु त्रिनाडीपरिभूषितम् ॥ ५ ॥ रविभैमार्कराहुस्थमशुभं स्याच्छुभं परम् । देशग्रामयुता भ्रातृभार्याद्या एकशः शुभाः ॥ ६ ॥ अ भ कृ रो मृ अ पु पु आ म पू उ ह चि स्वा वि अनु ज्ये मू पू उ श्र ध श पू उ रे ॥ ७ ॥ अत्रसप्तविंशति नक्षत्राणि ज्ञेयानि ॥ ८ ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नक्षत्रचक्रवर्णनं नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

और मधु) से करना चाहिए । इसको सबको नहीं बतलाना चाहिए ।। ३-७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का युद्धजयार्णवीय संग्राम विजय विद्या नामक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३५॥

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं यात्रा आदि में फल प्रदान करने वाले चक्र का वर्णन करता हूँ । तीन नाड़ियों में समलंकृत चक्र को लिखना चाहिए । उसमें अश्विनी आदि नक्षत्रों के प्रथम अक्षर को लिखना चाहिए । पहली नाड़ी में अश्विनी, आर्द्रा पुनर्वसु उत्तराफाल्गुनी, हस्त ज्येष्ठा, मूल, शतभिषा तथा पूर्वभाद्रपद इन नव नक्षत्रों को लिखना चाहिए ।। १-२ ।। इसे ही प्रथम नाड़ी कहते हैं । दूसरी नाड़ी में भरणी, मृगशिरा, पुष्य पूर्वा फाल्गुनी, चित्रा, अनुराधा, शतभिषा, ज्येष्ठा तथा उत्तराभाद्रपदा लिखना चाहिए । तीसरी नाड़ी के नक्षत्र हैं कृत्तिका, रोहिणी,आश्लेषा, मघा, स्वाती, विशाखा, उत्तराषाढा, श्रवण तथा रेवती ।। ३-४ ।। इन तीनों नाड़ियों से युक्त ग्रह के द्वारा शुभ तथा अशुभ को जानना चाहिए । इस तीन नाड़ी से भूषित चक्र को फणीश्वर चक्र भी कहते हैं ।। ५ ।। इस चक्रगत नक्षत्र पर यदि सूर्य,मङ्गल, शनिश्चर और राहु हो तो वह अशुभ होता है तथा इनसे भिन्न ग्रहों द्वारा अधिष्ठित नक्षत्र शुभ होता है । देश, ग्राम,भाई तथा भार्या आदि यदि एक नाड़ी में पड़ें तो शुभ होते हैं ।। ६ ।। अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती,विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा,शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा उत्तराभाद्रपदा और स्वाती ये सत्ताइस नक्षत्र फणीश्वर चक्र के हैं ।। ७-८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का नक्षत्रचक्र वर्णन नामक एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३६ ॥

अथ सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

महामारीविद्याकथनम्

ईश्वर उवाच– **महामारीं प्रवक्ष्यामि विद्यां शत्रुविमर्दिनीम् ॥ १ ॥ ॐ ह्रीं महामारि रक्ताक्षि कृष्णवर्णे यमस्याऽऽज्ञाकारिणि सर्वभूतसंहारकारिणि, अमुकं हन हन, ॐ दह दह, ॐ पच पच, ॐ छिन्द छिन्द, ॐ मारय मारय, ओमुत्सादयोत्सादय, ॐ सर्वसत्त्ववशंकरि सर्वकामिके हुं फट् स्वाहेति ॥ २ ॥ ॐ मारि हृदयाय नमः ॐ महामारी शिरसे स्वाहा । ॐ कालरात्रि शिखायै वौषट् । ॐ कृष्णवर्णे खः कवचाय हुम् । ॐ तारकाक्षि विद्युज्जिह्वे सर्वसत्त्वभयङ्करि रक्ष रक्ष सर्वकार्येषु हं त्रिनेत्राय वषट् । ॐ महामारि सर्वभूतदमनि महकालि, अस्त्राय हुं फट् ॥ ३ ॥ एष न्यासो महादेवि कर्तव्यः साधकेन तु । शवादि वस्त्रमादाय चतुरस्त्रं त्रिहस्तकम् ॥ ४ ॥ कृष्णवर्णा त्रिवक्त्रां च चतुर्बाहुं समालिखेत्। पटे विचित्रवर्णैश्च धनुः शूलश्च कर्तृकाम् ॥ ५ ॥ खट्वाङ्गं धारयन्ती च कृष्णाभं पूर्वमाननम् । तस्य दृष्टिनिपातेन भक्षयेदग्रतो नरम् ॥ ६ ॥ द्वितीयो याम्यभागे तु रक्तजिह्वं भयानकम् । लेलिहानं करालं च दंष्ट्रोत्कटभयानकम् ॥ ७ ॥ तस्य दृष्टिनिपातेन भक्ष्यमाणं हयादिकम् । तृतीयं च मुखं देव्याः श्वेतवर्णं गजादिनुत् ॥ ८ ॥ गन्धपुष्पादिमध्वाज्यैः पश्चिमाभिमुखं यजेत् । मन्त्रस्मृतेरक्षिरोगः शिरोरोगादि नश्यति ॥ ९ ॥ वश्याः स्युर्यक्षरक्षाश्च (क्षांशि) नाशमायान्ति शत्रवः । समिधो निम्बवृक्षस्य ह्यजारक्तविमिश्रिताः ॥ १० ॥ मारयेत्क्रोधसंयुक्तो होमादेव न संशयः । परसैन्यमुखोभूत्वा सप्ताहं जुहुयाद्यदि ॥ ११ ॥ व्याधिभिगृह्यते सैन्यं भङ्गो भवति वैरिणः । समिधोऽष्टसहस्त्रं तु यस्य नाम्ना तु होमयेत् ॥ १२॥**

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं शत्रुओं का विशेष रूप से मर्दन करने वाली महामारी विद्या का वर्णन कर रहा हूँ ।। १ ।। ओं ह्रीं महामारि........ हुं फट् स्वाहेति ।। यह मंत्र का स्वरूप है । अर्थात् ओं ह्रीं लालनेत्रों वाली ! काले वर्ण वाली ! यमराज की आज्ञा का पालन करने वाली ! सभी जीवों का संहार करने वाली ! महामारि ! अमुक को मारिए । मारिए । ओं जलाइये जलाइये । ओं पकाइये-पकाइये । काटिए-काटिए । ओं मारिए-मारिए । ओं उजाड़िए-उजाड़िए । ओं सभी जीवों को वश में करने वाली ! भक्तों की सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली । हूँ फट् स्वाहा ।। २ ।। इस महामारी विद्या का अङ्गन्यास इस प्रकार है- ॐ मारि हृदयाय नमः ।ॐ महामारि शिरसे स्वहा । ॐ कालरात्रि शिखायै वोषट् । ॐ कृष्णवर्णे, खः कवचायहुम्। ओं तारकाक्षि ! विद्युज्जिह्वे सर्वसत्त्वभयंकरि रक्ष-रक्ष सर्वकार्ये त्रिनेत्राय वषट् । ॐ महामारी ! सर्वभूतदमनि ! महाकालि ! अस्त्राय हुं फट् ।। ३ ।। हे महादेवि ! साधक को यह अङ्गन्यास अवश्य करना चाहिए । मुर्दे का कपड़ा लेकर तीन हाथ लम्बा तीन हाथ चौड़ा फाड़ लें । उस पर काले वर्ण की, तीन मुखों वाली, तथा चार भुजाओं वाली देवी का चित्र बनाए । कपड़े पर चितकबरा रंग से धनुष, त्रिशूल और कर्तृका आदि अस्त्र बनाए ।। ४-५ ।। खट्वाङ्ग धारण करने वाली देवी का एक मुख पूर्वाभिमुख कृष्णवर्ण का होना चाहिए । उसको ऐसा बनाना चाहिए कि दृष्टि पड़े तो यह मुख सामने के मनुष्य को खा जायेगा ।। ६ ।। दूसरा मुख दक्षिण दिशा में हो । जो लपलपाती हुई लाल जिह्वा से भयंकर तथा निकले हुए दाँतों के कारण भयानक दिखायी पड़े। उसे देखने में ऐसा लगना चहिए कि वह घोड़े आदि को खा जायेगा । तीसरा मुख देवी का श्वेत वर्ण का होना चाहिए और उसे ऐसा लगना चाहिए कि वह हाथी आदि को खा जायेगा ।। ८।। पश्चिमाभिमुख होकर देवी की चन्दन, पुष्प आदि मधु तथा घी से पूजन करना चाहिए । इस मन्त्र का स्मरण करने मात्र से नेत्र के रोग तथा शिरोरोग आदि विनष्ट हो जाते हैं ।। ९ ।। इससे यक्ष तथा राक्षस वश में हो जाते हैं तथा शत्रुओं का विनाश हो जाता है । बकरी के खून को मिलाकर निम्ब की लकड़ी से क्रुद्ध होकर हवन करने पर शत्रु का मारण निःसंदेह होता है । यदि शत्रु की सेना की ओर मुख करके एक सप्ताह तक हवन किया जाय तो शत्रु की सेना व्याधिग्रस्त होकर भाग जाती है ।। १०-११ ।। जिसके नाम से आठ हजार समिधा का हवन कर दिया

अचिरान्म्रियते सोऽपि ब्रह्मणा यदि रक्षितः । उन्मत्तसमिधो रक्तविषयुक्त सहस्त्रकम् ॥ १३ ॥ दिनत्रयं ससैन्यश्च नाशमायाति वै रिपुः । राजिकालवणैर्होमाद्भङ्गोऽरेः स्याद्दिनत्रयम् ॥ १४ ॥ खररक्तसमायुक्तहोमादुच्चाटयेद्रिपुम् । काकरक्तसमायोगाद्धोमादुत्सादनं ह्यरेः ॥ १५ ॥ वधाय कुरुते सर्वं यत्किंचिन्मनसेप्सितम् । अथ सङ् ग्रामसमये गजारूढस्तु साधकः ॥ १६ ॥ कुमारीद्वयसंयुक्तो मन्त्रसंनद्धविग्रहः। दूरशङ्खादिवाद्यानि विद्यया ह्यभिमन्त्रयेत् ॥ १७ ॥ महामायापटं गृह्य उच्छेत्तव्यं रणाजिरे । परसैन्यमुखो भूत्वा दर्शयेत्तं महापटम् ॥ १८ ॥ कुमारीर्भोजयेत्तत्र पश्चात्पिण्डीं च भ्रामयेत् । साधकश्चिन्तयेत्सैन्यं पाषाणमिव निश्चलम् ॥ १९ ॥ निरुत्साहं विभग्नं च मुह्यमानं च भावयेत् । एष स्तम्भो मया प्रोक्तो न देयो यस्य कस्यचित् ॥ २० ॥ त्रैलोक्यविजया माया दुर्गैवं भैरवी तथा । कुब्जिका भैरवी रुद्रो नारसिंह पटादिना ॥ २१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये महामारीविद्यावर्णनं नाम सप्तत्रिंशदधिकशततमेऽध्यायः ॥ १३७ ॥

अथाष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

षट्कर्माणि

ईश्वर उवाच– **षट्कर्माणि प्रवक्ष्यामि सर्वमन्त्रेषु तच्छृणु। आदौ साध्यं लिखेत्पूर्वं चान्ते मन्त्रसमन्वितम्॥१॥ पल्लवः स तु विज्ञेयो महोच्चाटकरः**

जाय उसकी रक्षा यदि ब्रह्मा कर रहे हों तो भी वह शीघ्र मर जाता है । यदि धतूरे की एक हजार समिधा से तीन दिन तक रक्त तथा विष मिलाकर इस मन्त्र से हवन किया जाय तो शत्रु अपनी सेना के साथ विनष्ट हो जाता है । राई तथा नमक से तीन दिन तक इस मन्त्र से हवन करने पर शत्रु की पराजय हो जाती है ।। १२-१४ ।। गधे का रक्त मिलाकर राई तथा नमक का होम किया जाय तो शत्रु का उच्चाटन हो जाता है । कौए के रक्त को मिलाकर यदि उसका (राई तथा नमक का) होम किया जाय तो शत्रु का विनाश हो जाता है । इस मन्त्र से शत्रु का विनाश करने के लिए जो कुछ भी किया जाय उसी में सफलता मिलती है ।। १५ ।। साधक को चाहिए कि वह संग्राम के समय हाथी पर सवार होकर दो कुमारियों के साथ अपने शरीर को सुरक्षित करके दूर से शंख आदि वाद्यों को इस महामारी विद्या से अभिमन्त्रित करे ।।१६-१७।। इस महामायापट को लेकर रणाङ्गण में फहराए । शत्रु की सेना की ओर मुख करके उसे महापट को दिखाए। वहीं पर कुमारियों को भोजन कराए । उसके पश्चात् पिण्डी को घुमाए और उस समय साधक को यह ध्यान करना चाहिए कि शत्रु की सेना पत्थर के समान निश्चल निरुत्साह मोहित तथा विमुग्ध हो गयी है ।। १६-१९-१/२ ।। यह मैंने स्तम्भन विद्या बतलाया है, इसका उपदेश सबों को नहीं देना चाहिए । यह त्रैलोक्य विजय माया विद्या है । वे ही दुर्गा एवं भैरवी हैं । कुब्जिका, भैरवी, रौद्रि तथा नृसिंह नामों को भी इसी तरह से वस्त्र आदि से बनाया जा सकता है ।। १९-२१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का महामारी विद्या वर्णन नामक एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३७ ॥

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं सभी मन्त्रों से किए जाने वाले षट्कर्मों का वर्णन करूँगा उसे सुनो । (इसके छह सम्प्रदाय हैं- पल्लव,योग, रोधक, सम्पुट, ग्रन्थन और विदर्भ ।) जिसका उच्चाटन करना हो पहले उसका नाम लिखना चाहिए ,फिर उच्चाटन का मन्त्र लिखना चाहिए । यह महान उच्चाटनकारी पल्लव सम्प्रदाय है ।। १।। पहले मन्त्र फिर साध्य का नाम लिखना

परः । आदौ मन्त्रस्ततः साध्यो मध्ये साध्यः पुनर्मनुः ॥ २ ॥ योगाख्यः सम्प्रदायोऽयं कुलोत्सादेषु योजयेत् । आदौ मन्त्रपदं दद्यान्मध्ये साध्यं नियोजयेत् ॥ ३ ॥ पुनश्चान्ते लिखेन्मन्त्रं साध्यं मन्त्रपदं पुनः । रोधकः सम्प्रदायस्तु स्तम्भनादिषु योजयेत् ॥ ४ ॥ अधोऽर्ध्वं याम्यवामे तु मध्ये साध्यं तु योजयेत् । संपुटः स तु विज्ञेयो वश्याकर्षेषु योजयेत् ॥ ५ मन्त्राक्षरं यदा साध्यं प्रथितं चाक्षराक्षरम् । प्रथमः सम्प्रदायः स्यादाकृष्टिवशकारकः॥६॥ मन्त्राक्षरद्वयं लिख्य एकं साध्याक्षरं पुनः। विदर्भः सतु विज्ञेयो वश्यकर्षेषु योजयेत् ॥ ७ ॥ आकर्षणादि यत्कर्म वसन्ते चैव कारयेत् । तापज्वरे तथा वश्ये स्वाहा चाऽऽकर्षणे शुभम् ॥ ८ ॥ नमस्कारपदं चैव शान्तिवृद्धौ प्रयोजयेत् । पौष्टिकेषु वषट्कारमाकर्षे वशकर्मणि ॥ ९ ॥ विद्वेषोच्चाटने मृत्यौ फट्स्यात्खण्डी कृतोऽशुभे । लाभादौ मन्त्रदीक्षादौ वषट्कारस्तु सिद्धिदः ॥ १० ॥ यमोऽसि यमराजोऽसि कालरूपोऽसि धर्मराट् । मयादत्तमिमं शत्रुमचिरेण निपातय ॥ ११ ॥ निपातयामि यत्नेन निवृत्तो भव साधक । संहृष्टमनसा ब्रूयाद्देशिकोऽरिपुसूदनः ॥ १२ ॥ पद्मे शुक्ले यमं प्राच्र्य होमादेतत्प्रसिध्यति । आत्मानं भैरवं ध्यात्वा ततो मध्ये कुलेश्वरीम् ॥ १३ ॥ रात्रौ वार्तां विजानाति आत्मनश्च परस्य च । दुर्गे दुर्गरक्षणीति दुंर्गां प्राच्र्यारिहा भवेत् । जप्त्वा हसक्षमलवरयुं भैरवीं घातयेदरिम् ॥ १४ ॥

इत्यदिमहापुराण आग्नेये षट्कर्मकथनं नामाष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्ययः ॥ १३८ ॥

चाहिए। बीच में साध्य का नाम रखने के लिए अन्त में फिर मन्त्र लिखना चाहिए। यह किसी के वंश का विनाश करने के लिए प्रयोग करना चाहिए । पहले मन्त्र के शब्द को लिखें फिर साध्य का नाम लिखें फिर अन्त में मन्त्र लिखें फिर साध्य का नाम फिर मन्त्र इसको रोधक सम्प्रदाय कहते हैं । इसका प्रयोग स्तम्भन आदि की क्रियाओं में करना चाहिए ।।२-४।। बीच में साध्य का नाम लिखकर उसके ऊपर नीचे, बाएँ दाएँ मन्त्र लिखना चाहिए, इसको सम्पुट सम्प्रदाय कहते हैं इसका प्रयोग वशीकरण तथा आकर्षण की क्रिया में करनी चाहिए ।। ५।। जब मन्त्र का एक अक्षर लिखकर साध्य के नाम का एक अक्षर लिखा जाय फिर एक अक्षर मन्त्र का और एक अक्षर साध्य का इस तरह से साध्य के नाम को जब ग्रथित कर दिय जाय तो वह ग्रन्थन सम्प्रदाय है । इसका भी प्रयोग आकर्षण और वशीकरण में करना चाहिए ।। ६ ।। जब मन्त्र के दो अक्षर लिए साध्य के नाम का एक अक्षर लिखा जाय तो इसे विदर्भ सम्प्रदाय कहते हैं । इसका भी प्रयोग वशीकरण और आकर्षण में करना चाहिए ।। ७ ।। आकर्षण आदि कर्मों को वसन्त ऋतु में करना चाहिए । ताप ज्वर तथा वशीकरण एवं आकर्षण में स्वाहा पद को जोड़ना चाहिए ।। ८ ।। शान्ति कर्म तथा वृद्धिकर्म में नमः पद का प्रयोग करना चाहिए । पौष्टिक कर्म आकर्षण तथा वशीकरण में वषट् पद का प्रयोग करना चाहिए ।। ९ ।। हे शुभे! विद्वेषीकरण, उच्चाटन तथा मारण में फट् शब्द का अलग से प्रयोग करना लाभ आदि में तथा मन्त्र की दीक्षा आदि में वषट् पद को जोड़ना चाहिए ।। १० ।। साधक को मन्त्र देते समय उपदेष्टा को कहना चाहिए- तुम यम, यमराज हो, कालस्वरूप धर्मराज हो । मेरे द्वारा उपदिष्ट होकर आप शीघ्र ही शत्रु का विनाश करे ।। ११ ।। शत्रु विनाशक आचार्य को कहना चाहिए। हे साधक ! तुम आश्वस्त रहो मैं होतन पूर्वक शत्रु को विनष्ट कर रहा हूँ ।। १२ ।। उजले कमल पर यमराज की पूजा करने से मारण कर्म सिद्ध हो जाता है । अपना भैरवरूप से ध्यान करके उसके भीतर कुलेश्वरी का ध्यान करना चाहिए ।। १३ ।। ऐसा करने वाला सधक रात्रि में अपनी तथा शत्रु की स्थिति को जान लेता है । दुग की रक्षा करने वाली दुर्गा हैं । दुर्गा की पूजा करके साधक शत्रु का विनाश कर देता है । 'ह, स, क्ष, म, ल, व र युम्' इस भैरवी मन्त्र का जप करके मनुष्य अपने शत्रु का विनाश कर देता है ।। १४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का षट्कर्म वर्णन नामक एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३८ ॥

अथैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

षष्टिसंवत्सरेषु केषांचन नामानि तेषां फलानां च वर्णनम्

ईश्वर उवाच— **षष्ट्यब्दानां प्रवक्ष्यामि शुभाशुभमतः शृणु । प्रभवे यज्ञकर्माणि विभवे सुखिनो जनाः ॥ १ ॥ शुक्ले तु सर्वसस्यानि प्रमोदेन प्रमोदिताः । प्रजापतौ प्रवृद्धिः स्यादङ्गिरा भोगवर्धनः ॥ २ ॥ श्रीमुखे वर्धते लोको भावे भावः प्रवर्धते । युना च प्लवते शक्रो धाता सर्वौषधीकरः॥३॥ ईश्वरे क्षेममारोग्यं बहुधान्यः सुभिक्षदः । प्रमाथी मध्यवर्षस्तु विक्रमे सस्यसम्पदः ॥ ४ ॥ वृषो वृष्यति सर्वांश्च चित्रभानुश्च चित्रताम् । सुभानुः (नौ) क्षेममारोग्यं तारणे जलदाः शुभाः ॥ ५ ॥ पार्थिवे सस्यसम्पत्तिरतिवृष्टिस्तथा व्यये । सर्वजित्युत्तमा वृष्टिः सर्वधारी सुभिक्षदः॥ ६ ॥ विरोधी जलदान्हन्ति विकृतिश्च भयङ्करः । खरे भवेत्पुमान्वीरो नन्दने नन्दते (ति) प्रजा ॥ ७ ॥ विजयः शत्रुहन्ता च जयो रोगादि मर्दयेत् । ज्वरार्त्तो मन्मथे लोको दुष्करे दुष्कराः प्रजाः ॥ ८ ॥ दुर्मखे दुर्मुखो लोको हेमलम्बेन सम्पदः । संवत्सरो महादेवि विलम्बस्तु सुभिक्षदः ॥ ९ ॥ विकारी शत्रुकोपाय शर्वरी सर्वदा क्वचित् । प्लवे प्लवन्ति तोयानि शोभने शुभकृत्प्रजा ॥ १० ॥ राक्षसे निष्ठुरो लोको विविधं धान्यमानले। सुवृष्टिः पिङ्गले क्वापि कालयुक्ते धनक्षयः॥११॥ सिद्धार्थे सिध्यते सर्वं रौद्रे रौद्रं प्रवर्तते । दुर्मतौ मध्यमा वृष्टिर्दुन्दुभिः क्षेमधान्यकृत्॥१२॥**

श्रीशिवजी ने कहा— अब मैं साठ संवत्सरों के शुभ तथा अशुभ फलों का वर्णन कर रहा हूँ, उसे तुम सुनो । प्रभव नामक संवत्सर में यज्ञ कर्म होते हैं, विभव नामक संवत्सर में प्रजा सुखी होती है ।। १ ।। शुक्ल नामक संवत्सर में सस्य सम्पत्ति की समृद्धि होती है । प्रमोद नामक संवत्सर में प्रजा प्रमोदित होती है । प्रजापति नामक संवत्सर में प्रजा की वृद्धि होती है तथा अङ्गिरा नामक संवत्सर में भोगों की वृद्धि होती है । श्रीमुख नामक संवत्सर में प्रजाओं की वृद्धि होती है तथा भावनामक संवत्सर में भाव की वृद्धि होती है । युवा नामक संवत्सर में इन्द्र प्रसन्न होते हैं तथा धाता नामक संवत्सर में सभी औषधियाँ उत्पन्न होती हैं ।। २-३ ।। ईश्वर नामक संवत्सर में क्षेम तथा आरोग्य की प्राप्ति होती है, बहुधान्य नामक संवत्सर में सुभिक्ष होता है । प्रमाथी संवत्सर मध्यम कोटि का होता है और विक्रम नामक संवत्सर में सस्य संपत्ति की वृद्धि होती है ।। ४ ।। वृषनामक संवत्सर सम्पूर्ण प्रजाओं का पोषण करता है । चित्रभानु विचित्रता प्रदान करता है । सुभानु नामक संवत्सर क्षेम तथा आरोग्य प्रदान करता है और तारण नमक संवत्सर में मेघ शुभप्रद होते हैं ।। ५ ।। पार्थिव नामक संवत्सर में सस्य सम्पत्ति होती है, 'व्यय' में अतिवृष्टि होती है, सर्वजित् संवत्सर में उत्तम वृष्टि होती है और सर्वधारी नामक संवत्सर में धान्यादि की वृद्धि होती है ।। ६ ।। निरोधी संवत्सर मेघों को विनष्ट करता है । विकृति संवत्सर भयंकर होता है, खर संवत्सर में मनुष्यों में वीरता आती है और नन्दन संवत्सर में प्रजा आनन्दित होती है ।। ७ ।। विजय संवत्सर शत्रुनाशक होता है और जय रोगों का विनाशक होता है। 'मन्मथ' नामक संवत्सर में प्रजा ज्वर से पीड़ित होती है और 'दुष्कर' संवत्सर में प्रजा दुष्कर्म में प्रवृत्त होती है ।। ८ ।। दुर्मुख संवत्सर में प्रजा कटुभाषी होती है, 'हेमलम्ब से सम्पत्ति की प्राप्ति होती है और हे महादेवि ! विलम्ब नामक संवत्सर अन्न की प्रचुरता होती है ।। ९ ।। विकारी संवत्सर में शत्रु का कोप होता है और शर्वरी कभी-कभी सव कुछ प्रदान करने वाला होता है । प्लव नामक संवत्सर में जलाशयों में बाढ़ आती है और 'शोभ' संवत्सर में प्रजा अच्छे कार्यों को करती है ।। १० ।। 'राक्षस' नामक संवत्सर में लोग निष्ठुर हो जाते हैं; अनल नामक संवत्सर में अनेक प्रकार के धान्यों की उत्पत्ति होती है । पिङ्गल संवत्सर में सुवृष्टि होती है और 'कालायुक्त' नामक संवत्सर में धन का क्षय होता है ।। ११ ।। सिद्धार्थ नामक संवत्सर में सम्पूर्ण कार्यों की सिद्धि होती है । रौद्र नामक संवत्सर में संसार में रौद्रभाव की वृद्धि होती है । दुर्मति नामक संत्सर में वर्ण मध्यम कोटि की होती है और दुन्दुभि नामक संवत्सर में धान्य तथा कल्याण की

स्रवन्ते (ति) रुधिरोद्गारी रक्ताक्षः क्रोधनो जयः । क्षये क्षीणधनो लोकः षष्टिसंवत्सराणि तु ॥ १३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धजयार्णवे षष्टिसंवत्सरवर्णनं केषाञ्चन नामानि तेषां फलानां च वर्णनम् नामैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

अथ चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

वश्यादियोगाः

ईश्वर उवाच– **वश्यादियोगान्वक्ष्यामि लिखेद्द्व्यष्टपदे त्विमान् । भृङ्गराजः सहदेवी मयूरस्य शिखा तथा ॥ १ ॥ पुत्रं जीवकृतं जली ह्यधःपुष्पा रुदन्तिका । कुमारी रुद्रजटा स्याद्विष्णुक्रान्ता सितोऽर्ककः ॥ २ ॥ लज्जालुका मोहलता कृष्णधत्तूरसंज्ञिता । गोरक्षः कर्कटी चैव मेषशृङ्गी स्नुही तथा ॥ ३ ॥ ऋत्विजो वह्नयो नागाः पक्षौ मुनिमनू शिवः। वसवो दिक्शराः वेदा ग्रहर्तुरविचन्द्रमाः ॥ ४ ॥ तिथयश्च क्रमाद्भागा ओषधीनां प्रदक्षिणम् । प्रथमेन चतुष्केण धूपश्चोद्वर्तनं परम् ॥ ५ ॥ तृतीयेनाञ्जनं कुर्यात्स्नानं कुर्याच्चतुष्कतः । भृङ्गराजानुलोमाच्च चतुर्धा लेपनं स्मृतम्॥६॥ मुनयो दक्षिणे पार्श्वे युगाद्याश्चोत्तराः स्मृताः । भुजगाः पादसंस्थाश्च ईश्वरा मूर्ध्नि संस्थिताः ॥ ७ ॥ मध्येन सार्कशशिभिर्धूपः स्यात् सर्वकार्यके । एतैर्विलिप्तदेहस्तु त्रिदशैरपि पूज्यते ॥ ८ ॥ धूपस्तु षोडशाद्यस्तु गृहाद्युद्वर्तने स्मृतः। युगाद्याश्चाञ्जने प्रोक्ता बाणाद्याः स्नानकर्मणि॥९॥ रुद्राद्या भक्षणे प्रोक्ताः पक्षाद्याः पानके स्मृताः । ऋत्विग्वेदर्तुनयनैस्तिलकं लोकमोहनम् ॥ १० ॥ सूर्यत्रिदशपक्षैश्च शैलैः स्त्री लेपतो वशा ।**

वृद्धि होती है ।। १२ ।। 'रुधिरोद्गारी' और 'रक्ताक्ष' नामक संवत्सर में खून की धारा बहती है क्रोधन नामक संवत्सर विजयप्रद होता है । क्षय नामक संवत्सर में प्रजा का धन क्षीण होता है। इस तरह से साठ संवत्सरों में से कुछ का वर्णन किया गया ।। १३ ।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का युद्ध जयार्णवीय साठ संवत्सरों में से कुछ संवत्सरों के फल का वर्णन नामक एक सौ उनचालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३९॥

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं वशीकरण आदि योगों का वर्णन कर रहा हूँ । इन औषधियों को सोलह कोष्ठों में लिखना चाहिए ।। १ ।। भृङ्गराज, सहदेवी, मयूरशिखा, पुत्रजीवक, अधःपुष्पा, रुदन्तिका, कुमारी, रुद्रजटा, विष्णुक्रान्ता, श्वेतार्क, लज्जालुका, मोहलता, काला धतूर, गोरक्षकर्कटी, मेषशृंगी तथा स्नुही ।। २-३ ।। इन सोलहों औषधियों को क्रमशः वेद (४) बह्नि (३) नाग (८) पक्ष (२) मुनि (७) मनु (१४) शिव (११) वसु (८) दिक् (१०) शर (५) वेद (४) ग्रह (९) ऋतु (६) रवि (१२) चन्द्रमा (१) तथा तिथि (१५) इन भागों में सूचित करे । औषधियों से धूप तथा उबटन (लेप) करना अच्छा होता है ।। ४-५ ।। तृतीय चतुष्क की औषधियों से अञ्जन करना चाहिए तथा चतुर्थ चतुष्क की औषधियों से स्नान करना चाहिए। भृङ्गराज से लेकर क्रमशः चार औषधियों से स्नान करना चाहिए । अधः पुष्पा को दाहिनी ओर धारण करना चाहिए तथा लाजवन्ती आदि को वायीं ओर धारण करना चाहिए । मयूर शिखा को पैर में तथा घृतकुमारी को मस्तक पर धारण करना चाहिए ।। ६-७ ।। सभी कार्यों में रुद्रजटा, गोरखककड़ी और मेदाशृङ्गी का धूप लेना चाहिए । इन सबों का लेप अपने शरीर में लगाने वाला पुरुष देवताओं के द्वारा भी पूजित होता है ।। ८ ।। भृगराज आदि चार औषधियों का ग्रहादिजनित बाधा दूर करने के लिए उद्वर्तन के कार्य में प्रयोग करना चाहिए । युगादि से सूचित लज्जालु का (लाजवन्ती) आदि चार औषधियों का अञ्जन करना चाहिए ।। ९ ।। बाण आदि से सूचित श्वेतार्क आदि चार औषधियों से स्नान करना चाहिए ।। ९ ।। घृत कुमारी आदि चार औषधियाँ भक्षण करने के लिए बतलायी गयी हैं और पुत्र जीवक आदि से संयुक्त जल का पान बतलाया गया है । ऋत्विक (भंगरैया) वेद (लाजवन्ती) ऋतु (काला धतूर) तथा नेत्र (पुत्र जीवक) इन औषधियों को घिसकर बनाया गया चन्दन सम्पूर्ण लोगों को मोहित करने वाला बतलाया गया है ।। १० ।। सूर्य (गोरखककड़ी) त्रिदश (काला धतूर) पक्ष (पुत्रजीवक) और पर्वत (अधः

चन्द्रेन्द्रफणिरुद्रैश्च योनिलेपाद्वशाः स्त्रियः ॥ ११ ॥ तिथिदिग्युगबाणैश्च गुटिका तु वशंकरी । भक्ष्ये भोज्ये तथा पाने दातव्या गुटिका वशे ॥१२॥ ऋत्विग्ग्रहाक्षिशैलैश्च शस्त्रस्तम्भे मुखे धृता । शैलेन्द्रवेदरन्ध्रैश्च अङ्गलेपाज्जले वसेत् ॥ १३ ॥ बाणाक्षिमनुरुद्रैश्च गुटिका क्षुत्तृषादिनुत् । त्रिषोडशदिशाबाणैर्लेपात्स्त्री दुर्भगा शुभा ॥ १४ ॥ त्रिदशाक्षि दिशानेत्रैर्लेपात्क्रीडेच्च पन्नगैः । त्रिदशाक्षेशभुजगैर्लेपात्स्त्री सूयते सुखम् ॥ १५॥ सप्तादिङ्मुनिरन्ध्रैश्च द्यूतजिद्वस्त्रलेपतः। त्रिदशाक्ष्यब्धिमुनिभिर्ध्वजलेपाद्रतौ सुतः॥ १६ ॥ग्रहाब्धिसर्प्यत्रिदशैर्गुटिका स्याद्वशंकरी । ऋत्विग्पदस्थितौषध्याः प्रभावः प्रतिपादितः ॥ १७ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वश्यादियोगवर्णनं नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४० ॥

अथैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

षट्त्रिंशत् पद्निर्दिष्टौषधीनां वैज्ञानिकः प्रभावः

ईश्वर उवाच— **षट्त्रिंशत्पदसंस्थानमोषधीनां वदे फलम् । अमरीकरणं नृणां ब्रह्मरुद्रेन्द्रसेवितम् ॥ १ ॥ हरीतक्याक्ष धात्र्यश्च मरीचं पिप्पली शिफा । वह्निः शुण्ठी पिप्पली च गुडूची बचनिम्बकाः ॥ २ ॥ वासकः शतमूली च सैन्धवं सिन्धुवारकम् । कण्टकारी मोक्षुरका बिल्वं पौनर्नवं**

पुष्पा) इन सबों का लेप करने से स्त्री वशवर्तिनी हो जाती है । चन्द्रमा (मेढसिंगी) इन्द्र (रुद्रदन्तिका) नाग (मयूर शिखा) तथा रुद्र (घृतकुमारी) इन औषधियों का योनि में लेप करने से स्त्रियाँ वश में हो जाती हैं । तिथि (सेंहुड़) दिक् (अपराजिता) युग (लाजवन्ती) तथा बाण (श्वेतार्क) इन औषधियों की गोली लोगों को वश में करने वाली होती है । अर्थात् जिसको वश में करना हो उसके भोजन आदि में इन औषधियों की गोली मिला देनी चाहिए ।। ११-१२ ।। ऋत्विक (भङ्गरैया) ग्रह (मोहलता) नेत्र (पुत्रजीवक) तथा पर्वत (अधःपुष्पा) इन औषधियों को यदि मुख में धारण किया जाय तो शत्रुओं के अस्त्र शस्त्र का स्तम्भन हो जाता है । अर्थात् शत्रु घातक आघात नहीं कर सकता है । शैल, (अधः पुष्पा) इन्द्र (रुद्रदन्ती) वेद (लाजवन्ती) तथा रन्ध्र (मोहलता) इन औषधियों का अपने शरीर में लेप करके मनुष्य पानी के भीतर भी निवास कर सकता है ।। १३ ।। बाण (श्वेतार्क) नेत्र (पुत्रजीवक) मनु (रुद्ररन्ती) तथा रुद्र (घृतकुमारी) इन औषधियों से बनायी गयी गोली भूख प्यास का निवारण करती है । तीन (सहदेवी) सोलह (भंगरैया) दिशा (अपराजिता) तथा बाण (श्वेतार्क) इन औषधियों का लेप करने से दुर्भगा स्त्री भी सुभगा हो जाती है ।। १४ ।। त्रिदश (काला धतूर) अक्षि (पुत्र जीवक) दिशा (विष्णुक्रान्ता) और नेत्र (सहदेइया) इन दवाओं का अपने शरीर में लेप करे वाला मनुष्य सर्प से खेल सकता है । त्रिदश (काला धतूरा) नेत्र (पुत्रजीवक) शिव (घृतकुमारी) और सर्प (मयूर शिखा) इन दवाओं का लेप करने से स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती है ।। १५ ।। तथा रन्ध्र (मोहलता) इन औषधियों का वस्त्र पर लेप करने से जुए में जीत होती है । त्रिदश (काला धतूरा) नेत्र (पुत्रजीवक) अब्धि (अधःपुष्पा) तथा मनु (रुद्रदन्तिका) इन औषधियों क लिङ्ग मे लेप करके रति करने से पुत्र की उत्पत्ति होती है ।।१६।। ग्रह (मोहलता) अब्धि (अधः पुष्पा) सूर्य (गोरख ककड़ी) और त्रिदश (काला धतूरा) इन औषधियों से बनायी गयी गोली सबको वश में करने वाली होती है । इस तरह से सोलह कोष्ठों में लिखी जाने वाली सोलह औषधियों के प्रभाव का मैंने वर्णन किया ।। १७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का वश्य आदि योग वर्णन नामक एक सौ चालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १४० ॥

श्रीशिवजी ने कहा— अब मैं छत्तीस पदों में निर्दिष्ट औषधियों का फल बतला रहा हूँ इन औषधियों से मनुष्य का अमरीकरण होता है, इसका सेवन, ब्रह्मा, रुद्र तथा इन्द्र आदि देवताओं ने किया है ।। १ ।। हरीतकी (हरे) अक्ष धात्री (बहेड़ा) मरीच (गोल मीर्च) पिप्पली, शिफा (जटामांसी) बह्नि (भिलावा) शुण्ठि (सोंठ) पिप्पली गुडुच, वच, निम्ब, वासक (अडूसा) शतमूली

बला ॥ ३ ॥ एरण्डमुण्डीरुचको भृङ्गः क्षारोऽथ पर्पटः । धन्याको जीरकश्चैव शतपुष्पी जवानिका ॥ ४ ॥ विडङ्ग खदिरश्चैव कृतमालो हरिद्रया। वचा सिद्धार्थ एतानि षट्त्रिंशत्पदगानि हि ॥ ५ ॥ क्रमादेकादिसंज्ञानि ह्योषधानि महान्ति हि । सर्वरोगहराणि स्युरमरीकरणानि च ॥ वलीपलितभेतृणि सर्वकोष्ठगतानि तु । एषां चूर्णं च वटिका रसेन परिभाविता ॥ ७ ॥ अवलेहः कषायो व मोदको गुडखण्डकः । मधुतो घृततो वाऽपि घृतं तैलमथापि वा ॥ ८ ॥ सर्वात्मनोपयुक्तं हि मृतसंजीवनं भवेत् । कर्षार्धं कर्षमेकं वा पलार्धं पलमेककम् ॥ ९ ॥ यथेष्टाचारनिरतो जीवेद्वर्षशतत्रयम् । मृतसंजीवनीकल्पे योगो नास्मात्परोस्ति हि ॥ १० ॥ प्रथमान्नवकाद्योगात्सर्वरोगैः प्रमुच्यते। द्वितीयाच्च तृतीयाच्च चतुर्थान्मुच्यते रुजः ॥ ११ ॥ एवं षट्काच्च प्रथमाद्द्वितीयाच्च तृतीयतः। चतुर्थात्पञ्चमात्षष्ठात्तथा नव चतुष्कतः ॥ १२ । एकद्विचित्रत्रिचतुपञ्चषट्सप्ताष्टमतोऽनिलात्। अग्निभास्करषड्विंशसप्तविंशैश्च पित्ततः ॥ १३ ॥ बाणर्तुशैलवसुभिस्तिर्थाभिर्मुच्यते कफात् । वेदाग्निभिर्बाणगुणैः षड्गुणैः स्याद्वशे धृते॥१४॥ ग्रहादिग्रहणान्तैश्च सर्वैरेव विमुच्यते । एकद्वित्रिरसैः शैलैर्वसुग्रहशिवैः क्रमात् ॥ १५ ॥ द्वात्रिंशत्तिथिसूर्यैश्च नात्र कार्या विचारणा । षट्त्रिंशत्पदकज्ञानं न देयं यस्य कस्यचित् ॥ १६ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये षट्त्रिंशत्पदनिर्दिष्टौषधीनां वैज्ञानिकः प्रभावो नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्ययः ॥ १४१ ॥

(शतावरी) सैंधव से सेंधा नमक (सिन्धुवार, कण्टकादि (कटेरी) गोक्षुरक (गोखरू) बिल्व, पुनर्नवा, बला (बरियार) रेंड मुण्डीरुचक (बिजौरा नीबू) भृङ्ग (दाल चीनी) क्षार (यवक्षार) पर्पस (पित्त पापड़ा) च्वनियाँ, जीरा,सौंफ, अजवाइन, वायविडङ्ग, खैर, कृतमाल, (अमलतास) हल्दी, वचा, सिद्धार्थ (सफेद सरसों) ये छत्तीस पदों में स्थापित औषधियाँ हैं ।। २-५ ।। इनकी क्रमशः एक दो आदि संख्या हैं । ये महान् औषधियाँ हैं । ये सभी रोगों को दूर करने वाली तथा अमर बना देने वाली हैं । इन सभी औषधियों के लेप से शरीर में झुर्री नहीं पड़ती है और बालों का पकना रुक जाता है । इनका चूर्ण, अथबा इनके रस से भावित वटी, या अवलेह, अथवा काढा, लड्डू अथवा या गुड खण्ड, यदि घी या मधु के साथ खााया जाय तो अथवा इनके रस से भावित घी या तेल का जिस किसी भी तरह से उपयोग किया जाय तो मुर्दे में भी जान आ जाय । इन सबों का आधा कर्ष अथवा एक कर्ष अथवा आधा पल या एक पल, की मात्रा में सेवन करने वाला पुरुष यथेष्ट आहार विहार में तत्पर होकर तीन सो वर्ष पर्यन्त जीवित रहता है । मृतसंजीवनी कल्प में इनसे बढ़कर कोई भी दूसरा योग नहीं है ।। ६-१० ।। इन औषधियों में से प्रथम नवक (नव औषधियों के समूह) का सेवन करके मनुष्य सभी रोगों से मुक्त हो जाता है । इसी तरह द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ नवक के भी सेवन से मनुष्य रोगों से छुटकार पा लेता है।।११।। इसी तरह प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम तथ षष्ठ षट्क के सेवन से तथा नव चतुष्क में से किसी एक भी चतुष्क के सेवन से मनुष्य रोग मुक्त हो जाता है ।। १२ ।। इनमें से प्रथम,द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम और अष्टम कोष्ठ की औषधियों के सेवन से मनुष्य वातरोग से छुटकारा पा लेता है । तृतीय,द्वादश, छब्बीसवें तथा सत्ताइसवें कोष्ठ की औषधियों के सेवन से मनुष्य पित्त रोग से मुक्त होता है ।। १३ ।। पञ्चम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम तथा पञ्चदश कोष्ठक की औषधियों के सेवन से कफ रोग से मुक्ति मिलती है । चतुर्थ, तृतीय, पञ्चम तथा षष्ठ कोष्ठ की औषधियों के सेवन से वशीकरण की सिद्धि होती है ।। १४ ।। प्रथम, द्वितीय, तृतीय, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम, एकादश, बत्तीस, पन्द्रह तथा बारहवें पद की औषधियों का सेवन करके मनुष्य ग्रह से लेकर ग्रहण पर्यन्त सभी दोषों से छुटकारा पा लेता है। इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है। इन छत्तीस पद की औषधियों का ज्ञान सहसा सबको नहीं दे देना चाहिए।।१५-१६।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का छत्तीसकोष्ठों द्वारा निर्दिष्ट औषधियों का वैज्ञानिक प्रभाव वर्णन नामक एक सौ एकतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥१४१॥

अथद्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मन्त्रौषधादि

ईश्वर उवाच– **मन्त्रौषधानि चक्राणि वक्ष्ये सर्वप्रदानि च। चौरनाम्नो वर्णगुणो विघ्नो मात्राश्चतुर्गुणाः ॥ १ ॥ नाम्ना हृते भवेच्छेषश्चौरोऽथ जातकं वदे। प्रश्ने ये विषमा वर्णास्ते गर्भे पुत्रजन्मदाः ॥ २ ॥ नामवर्णैः समैः काणो वामेऽक्षिण विषमैः पुनः। दक्षिणाक्षि भवेत्काणं स्त्रीपुंनामाक्षरस्य च ॥३॥ मात्रावर्णाश्चतुर्निघ्ना वर्णपिण्डे गुणे कृते। समे स्त्री विषमे ना स्याद्विशेषे च मृतिः स्त्रियाः ॥ ४ ॥ प्रथमं रूपशून्येऽथ प्रथमं म्रियते पुमान्। प्रश्नं सूक्ष्माक्षरैर्गृह्य द्रव्यैर्भोगेऽखिले मतम् ॥ ५ ॥ शनिचक्रं प्रवक्ष्यामि तस्य दृष्टिं परित्यजेत्। राशिस्थः सप्तमे दृष्टिचतुर्दशष्वर्धिका ॥ ६ ॥ एकद्व्यष्टद्वादशमः पाददृष्टिश्च तत्त्यजेत्। दिनाधिपः प्रहरभाक्शेषा यामार्धभागिनः ॥ ७ ॥ शनिभागं त्यजेद्युद्धे दिनराहुं वदामि ते। रवौ पूर्वेऽनिले मन्दे गुरौ याम्येऽनले भृगौ ॥ ८ ॥ अग्नौ कुजे भवेत्सौम्ये स्थिते राहुर्बुधे सदा। फणिराहुस्तु प्रहरमैशे वह्नौ च राक्षसे ॥ ९ ॥ वायौ संवेष्टयित्वा च शत्रुं हन्तीशसम्मुखम्। तिथिराहुं प्रवक्ष्यामि पूर्णिमाऽऽग्नेयगोचरे ॥ १० ॥ अमावास्यां वायवे च राहुः**

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं सब कुछ प्रदान करे वाले मन्त्र, औषधि तथा चक्रों का वर्णन करूँगा। जिन व्यक्तियों पर चोरी करने का संदेह हो, उनके नाम पर किसी वस्तु (वृक्ष अथवा फूल या देवताा) का नाम बोले। उस वस्तु के नाम के अक्षरों की संख्या को दुगनी करके एक स्थान पर रखें। उस नाम के मात्राओं की संख्या में चार से गुणा करके और गुणनफल को दूसरे स्थान पर रखें। पहली संख्या से दूसरी संख्या में भाग दें। यदि कुछ शेष रहे तो वह व्यक्ति चोर है। यदि पूरा-पूरा कट जाय तो वह व्यक्ति चोर नहीं है ।। १ ।। गर्भ में पुत्र है कि पुत्री? इस इच्छा से पूछे उस प्रश्न वाक्य के सभी अक्षरा को जोड़ लें। यदि योगफल के अक्षरों की संख्या विषम है तो उससे पुत्रोत्पत्ति की सूचना मिलती है और अक्षरों की संख्या सम होने पर पुत्री की उत्पत्ति की सूचना मिलती है ।। २ ।। प्रश्नकर्ता से किसी वस्तु का नाम लेने को कहना चाहिए। यदि नाम के वर्णों की संख्या सम हो तो पुत्र दायीं आँख का काना होगा और यदि विषम हो तो वह बायीं आँख का काना होगा। स्त्री तथा पुरुष दोनों के नामों के अक्षरों तथा मात्राओं की संख्या को पृथक्-पृथक् चार से गुणा करना चाहिए और गुणनफल को अलग-अलग रखना चाहिए। पहली संख्या मात्रा पिण्ड है और दूसरी संख्या वर्णपिण्ड है। वर्णपिण्ड में तीन से भाग दे। यदि सम शेष हो तो कन्या की उत्पत्ति होती है विषम शेष हो तो पुत्र की उत्पत्ति होती है। यदि शून्य शेष हो तो पति से पहले पत्नी की मृत्यु होती है ।। ३-४ ।। यदि मात्रा पिण्ड में तीन से भाग देने पर शून्य शेष रहे तो पत्नी से पहले पति की मृत्यु होती है। यदि समस्त भाग में सूक्ष्म अक्षर वाले द्रव्यों द्वारा प्रश्न को ग्रहण करके विचार करने पर अभीष्ट फल का ज्ञान होता है ।। ५ ।। अब मैं शनिचक्र का वर्णन करूँगा। जहाँ पर शनि की दृष्टि हो उस लग्न का परित्याग कर देना चाहिए। शनि जिस राशि पर रहता है उसकी सातवीं राशि पर उसकी पूर्ण दृष्टि होती है। अपनी राशि से चौथी तथा दसवीं राशि पर उसकी आधी दृष्टि होती है। पहली दूसरी आठवीं तथा बारहवीं राशि पर उसकी चौथाई दृष्टि होती है। अतएव उन राशियों का शुभकर्म में त्याग कर देना चाहिए। जिस दिन का जो ग्रह स्वामी होता है, उस दिन का प्रथम प्रहर उस ग्रह का होता है। शेष ग्रह उस दिन के आधे-आधे प्रहर के अधिकारी होते हैं ।। ६-७ ।। दिन का जो भाग शनि ग्रह का हो उसका युद्ध में त्याग कर देना चाहिए। अब मैं तुम्हें दिन राहु को बतला रहा हूँ। रविवार को राहु पूर्व में, शनिवार को वायव्यकोण में, गुरुवार को दक्षिण दिशा में, शुक्रवार को अग्निकोण में, भौमवार को राहु अग्निकोण में, बुधवार को उत्तर दिशा में ।। ८ ।। फणिराहु, ईशानकोण, अग्निकोण, नैर्ऋत्यकोण तथा वायव्यकोण में क्रमशः एक-एक प्रहर रहा करता है और अपने सामने खड़े शत्रु को लपेटकर मार डालता है।।९।। अब मैं तिथि राहु को बतला रहा हूँ। पूर्णिमा को राहु अग्निकोण में, अमावस्या को वायव्यकोण में। सम्मुख राहु सदा शत्रु का नाश करता है। पूर्व से पश्चिम तीन खड़ी रेखाएँ खींचें और उत्तर से दक्षिण की ओर तीन पड़ी रेखाएँ खींचें। सूर्य जिस राशि पर स्थित हो उसे सामने वाली दिशा में लिखकर उन रेखाओं पर प्रदक्षिण क्रम से शेष ग्यारह राशियों को लिखें। उसके

सम्मुखशत्रुहा । काद्या जान्ताःसम्मुखे स्युर्झाद्या दान्ताश्च दक्षिणे ॥ ११ ॥ शुक्ले त्यजेत्कुज गुणान्धाद्या मान्ताश्च पूर्वतः । याद्या हान्ता उत्तरे स्युस्तिथिदृष्टं विवर्जयेत्॥१२॥ पूर्वाश्च दक्षिणास्तिस्रो रेखा वै मूलभेदके । सूर्यराश्यादि संलिख्य दृष्टौ हानिर्जयोऽन्यथा ॥ १३ ॥ विष्टिराहुं प्रवक्ष्यामि अष्टौ रेखास्तु पातयेत् । शिवाद्यमं यमाद्वायुं वायोरिन्द्रं तमोऽम्बुपम् ॥ १४ ॥ नैर्ऋताच्च नयेच्चन्द्रं चन्द्रादग्निं ततो जले । जलादीशे चरेद्राहुर्विष्ट्या सह महाबलः ॥ १५॥ ऐशान्यां च तृतीयादौ सप्तम्यादौ च याम्यके । एवं कृष्णे सिते पक्षे वायौ राहुश्च हन्त्यरीन् ॥ १६ ॥ इन्द्रादीन्भैरवादींश्च ब्रह्माण्यादीन्ग्रहादिकान्। अष्टाष्टकं च पूर्वादौ याम्यादौ वातयोगिनीम् ॥ १७ ॥ यां दिशं वहते वायुस्तत्रस्थो घातयेदरीन् । दृढीकरणमाख्यास्ये कण्ठे बाह्वादिधारिता ॥ १८ ॥ पुष्योद्धता काण्डलक्ष्यं वारयेच्छरपुङ्खिका । तथाऽपराजितापाठाद्वाभ्यां खड्गं निवारयेत्॥१९॥ ॐ नमो भगवति वज्रशृङ्खले हन हन, ॐ भक्ष भक्ष, ॐ खाद, ओम् अरे रक्तं पिब कपालेन रक्ताक्षि रक्तपटे भस्माङ्गि भस्मलिप्तशरीरे वज्रायुधे वज्रप्राकारनिचिते पूर्वां दिशं बन्ध बन्ध, दक्षिणां दिशं बन्ध बन्ध, ओमुत्तरां दिशं बन्ध बन्ध, पश्चिमां दिशं बन्ध बन्ध नागान्बन्ध बन्ध नागपत्नीर्बन्ध बन्ध, ओमसुरान्बन्ध बन्ध ॐ यक्षराक्षसपिशाचान्बन्ध बन्ध, ॐ प्रेतभूतगन्धर्वादयो ये केचिदुपद्रवास्तेभ्यो रक्ष रक्ष, ओमूर्ध्वं रक्ष रक्ष, अधो रक्ष रक्ष, ॐ क्षुरिकं बन्ध बन्ध, ॐ ज्वल महाबले घटि घटि, ॐ मोटि मोटि सटावलिवज्राग्निवज्रप्राकारे हुं फट्, ह्रीं ह्रूं श्रीं फट्,

---

पश्चात् क से लेकर ज तक के वर्णों को सामने की दिशा में लिखना चाहिए । 'झ'से लेकर 'द' तक के वर्णों को दक्षिण दिशा में लिखना चाहिए । ध से लेकर म तक के वर्ण पूर्व दिशा में और 'य' से लेकर 'ह' तक के वर्णों को उत्तर दिशा में लिखना चाहिए । ये राहु के गुण हैं । शुक्लपक्ष में राहु के गुणों का त्याग करना चाहिए तथा तिथि राहु का भी त्याग करना चाहिए । यदि राहु की दृष्टि सामने हो तो हानि होती है अन्यथा विजय होती है ।। १०-१३ ।। अब मैं विष्टि राहु का वर्णन करता हूँ । ईशानकोण से दक्षिण दिशा तक दक्षिनदिशा से वायव्यकोण तक, वायव्यकोण से पूर्व दिशा तक, पूर्वदिशा से नैऋत्यकोण तक, नैऋत्यकोण से उत्तर दिशा तक, उत्तर दिशा से अग्निकोण तक, अग्निकोण से पश्चिम दिशा तक तथा पश्चिम दिशा से ईशानकोण तक इस तरह से आठ रेखाएँ खींचनी चाहिए । इन रेखाओं पर विष्टि (भद्रा) के साथ राहु विचरण करते हैं । कृष्णपक्ष की तृतीया आदि तिथियों में विष्टि राहु की स्थिति ईशानकोण में होती है और सप्तमी आदि तिथियों में दक्षिण दिशा में होती है । इसी प्रकार से शुक्ल पक्ष की अष्टमी आदि तिथियों में राहु की स्थिति नैऋत्यकोण में होती है और चतुर्थी आदि तिथियों में उत्तर दिशा में। इसी तरह कृष्ण एवं शुक्ल पक्ष में वायु के आश्रित रहने वाले सम्मुख राहु शत्रुओं का विनाश करते हैं । विष्टि राहु चक्र के पूर्व आदि दिशाओं में इन्द्र आदि दिक्पालों, भैरवादि (असिताङ्गभैरव, रुरुभैरव, चण्डभैरव (या कालभैरव) क्रोधभैरव, उन्मत्तभैरव, कपालिभैरव, भीषणभैरव तथा संहारभैरव) ब्रह्माणी आदि (माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री चामुण्डा तथा चण्डिका) शक्तियों तथा ग्रहों आदि की स्थापना करनी चाहिए ।। १५-१६ ।। पूर्व आदि प्रत्येक दिशाओं में आठ अष्टकों की भी स्थापना करनी चाहिए । दक्षिण आदि दिशाओं में वातयोगिनी की स्थापना करनी चाहिए । वायु जिस दिशा में बहती है उसके साथ रहकर राहु उस दिशा के शत्रुओं का वध करता है ।। १७ ।। अब मैं अंकों के सुदृढ़ करने का उपाय बतला रहा हूँ । पुष्य नक्षत्र में अपराजिता मन्त्र पढ़कर उखाड़ी गयी शरपुंखिका (शरफोंका) को यदि भुजाओं आदि में धारण किया जाय तो वह शत्रुओं के बाण का लक्ष्य बनने से बचाती है । यदि अपराजिता मन्त्र तथा पाठा औषधि को कण्ठ में धारण किया जाय तो वह दोनों के प्रभाव से तलवार के वार से बच जाता है ।। १८-१९ ।। अपराजिता मन्त्र का स्वरूप यह है- 'ओं नमो भगवति वज्रशृंखले हन-हन,

ह्रीं हः, फूं फें फः सर्वग्रहेभ्यः सर्वव्याधिभ्यः सर्वदुष्टोपद्रवेभ्यो ह्रीमशेषेभ्यो रक्ष रक्ष ॥ २० ॥ ग्रहज्वरादिभूतेषु सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ २१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मन्त्रौषधादिवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

अथत्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कुब्जिकापूजा

कुब्जिकाक्रमपूजां च वक्ष्ये सर्वार्थसाधनीम् । ययाऽसुरा जिता देवैः शस्त्राद्यै राज्यसंयुतैः ॥ १ ॥ मायाबीजं च गुह्याङ्गे षट्कमस्त्रं करे न्यसेत्। काली कालीति हृदयं दुष्टचाण्डालिका शिरः ॥ २ ॥ ह्रीं स्फें ह स ख क छ ड ओंकारो भैरवः शिखा । भेलखी कवचं दूतीनेत्राख्या रक्तचण्डिका ॥ ३ ॥ ततो गुह्यकुब्जिकास्त्रं मण्डले स्थानके यजेत् । अग्नौ कूर्चशिरो रुद्रे नैर्ऋत्येऽथ शिखाऽनिले ॥ ४ ॥ कवचं मध्यतो नेत्रमस्त्रं दिक्षु च मण्डले । द्वात्रिंशता कर्णिकायां स्त्रों हसक्षमलनववषट्सचात्ममन्त्रबीजकम् ॥ ५ ॥ ब्रह्माणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णवी तथा । वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डा चण्डिकेन्द्रकात् ॥ ६ ॥ यजेद्रवलकसहाञ्शिवेन्द्राग्नियमेऽग्निपे । यजे तु कुसुममालामद्रिकाणां च पञ्चकम् ॥ ७ ॥ जालंधरं पूर्णगिरिं कामरूपं क्रमाद्यजेत् । मरुदीशाग्निनैर्ऋत्ये मध्ये वै वज्रकुब्जिकाम् ॥ ८ ॥ अनादि विमलः पूज्यः सर्वज्ञविमलस्ततः। प्रसिद्धविमलश्चाथ संयोगविमलस्ततः ॥ ९ ॥ समयाख्योऽथ विमल एतद्विमलपञ्चकम् । मरुदीशाननैर्ऋत्ये वह्नौ चोत्तरशृङ्गके ॥ १० ॥ कुब्जार्थं

ओं......ह्रीमशेषेभ्यो रक्ष-रक्ष ।। २० ।। ग्रह पीड़ा, ज्वर पीड़ा तथा भूत आदि की पीड़ा आदि समस्त कार्यों में इसका उपयोग करना चाहिए।।२१।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का मन्त्रौषधादि वर्णन नामक एक सौ बयालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १४२ ॥

श्रीशिवजी ने कहा— अब मैं कुब्जिका देवी की पूजा का वर्णन करूँगा । यह पूजा सभी अर्थों को प्रदान करने वाली है । इसी के प्रभाव से राज्य पर स्थित देवताओं ने शस्त्रों से दैत्यों पर विजय प्राप्त किया ।। १ ।। मायाबीज ह्रीं का गुप्ताङ्ग में न्यास करना चाहिए । हृदयादि मन्त्रों का हाथों में तथा हृदयादि में न्यास करें । काली-काली यह हृदयमन्त्र है ।। २ ।। दुष्ट चाण्डालिका यह शिरोमन्त्र है । ह्रीं स्फ्रें ह, स, ख, क, छ, ड,ओंकारो भैरवः यह शिखामन्त्र है, भेलखी दूती यह कवच मन्त्र है, रक्त चण्डिका यह नेत्र मन्त्र है तथा गुह्यकुब्जिका यह अस्त्र मन्त्र है । इस तरह से अङ्गन्यास तथा करन्यास करके इनका मण्डल में यथा स्थान पूजन करना चाहिए ।। ३ ।। मण्डल के अग्निकोण में कूर्च मन्त्र (हुम्) नैर्ऋत्यकोण में शिरोमन्त्र (स्वाहा) नैर्ऋत्यकोण में शिखा मन्त्र (वौषट्) वायव्यकोण में कवचमन्त्र (हुम्) मध्यभाग में नेत्र मन्त्र (वौषट्) तथा समस्त मण्डल में अस्त्रमन्त्र (फट्) का पूजन करना चाहिए ।। ४ ।। बत्तीस दल वाले कमल की कर्णिका में स्त्रों, ह, स, क्ष, म, ल, न, व, व, ष, ट, स, च तथा आत्मबीज मन्त्र 'आम' का न्यास एवं पूजन करना चाहिए ।। ५ ।। इसके पश्चात् कमल की पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः ब्रह्माणी, माहेशी, कौमारी, वैष्णवी वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा तथा चण्डिका (महालक्ष्मी) इन शक्तियों का न्यास एवं पूजन करना चाहिए ।। ६ ।। इसके बाद क्रमशः ईशानकोण, पूर्वदिशा, अग्निकोण, दक्षिण दिशा, नैर्ऋत्यकोण और पश्चिम दिशा में क्रमशः- र, व, ल, क, स तथा ह का न्यास एवं पूजन करना चाहिए । तदनन्तर इन्हीं दिशाओं में कुसुम माला तथा पाँच पर्वतों की पूजा करनी चाहिए ।। ७ ।। वे पाँच पर्वत- जालन्धर, पूर्णगिरि और कामरूप आदि हैं । इसके पश्चात् वायव्यकोण, ईशानकोण, अग्निकोण, नैर्ऋत्यकोण तथा मध्यभाग में वज्रकुब्जिका का पूजन करना चाहिए ।। ८ ।। इसके पश्चात् वायव्य-शिखर, ईशान-शिखर, नैर्ऋत्य-शिखर, अग्नि-शिखर तथा उत्तर-शिखर पर क्रमशः अनादि-विमल, सर्वज्ञ-विमल, प्रसिद्ध

खिङ्खिनी षष्ठी सोपन्ना सुस्थिरा तथा । रत्नसुन्दरी चैशाने शृङ्गे चाऽऽष्टादिनाथकाः ॥ ११ ॥ मित्र औडीशषष्ठ्याख्यौ वर्षा अग्न्यम्बुपेऽनिले। भवेद्गगनरत्नं स्याच्चाऽऽप्ये कवचरत्नकम् ॥ १२ ॥ ब्रूं मर्त्यः पञ्चनामाख्यो मरुदीशानवह्निगः । याम्याग्नेये पञ्चरत्नं ज्येष्ठा रौद्री तथाऽन्तिका॥१३॥ तिस्रो ह्यासां महावृद्धाः पञ्चप्रणवतोऽखिलाः । सप्तविंशत्यष्टाविंशभेदात्संपूजनं द्विधा ॥ १४ ॥ ॐ एं गूं क्रमगणपतिं प्रणवं बटुकं यजेत् । चतुरस्रे मण्डले च दक्षिणे गणपं यजेत् ॥ १५ ॥ वामे च बटुकं कोणे गुरून् षोडशनाथकान् । वायव्यादौ चाष्टादश प्रतिषट्कोणके ततः॥१६॥ ब्रह्माद्याश्चाष्ट परितस्तन्मध्ये च नवात्मकः। कुब्जिका कुलटा चैव क्रमपूजा तु सर्वदा ॥ १७ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कुब्जिकापूजाकथनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कुब्जिकापूजा

ईश्वर उवाच– **श्रीमतीं कुब्जिकां वक्ष्ये धर्मार्थादिजयप्रदाम् । पूजयेन्मूलमन्त्रेण परिवारयुते न वा ॥ १ ॥ ओम्, ऐं ह्रीं श्रीं खैं ह्रें हसक्षमलचवयं भगवति,अम्बिके ह्रांह्रीं क्षीं क्षौं क्षू क्रीं कुब्जिके ह्राम्, ॐ ङ ञ न ण मेऽघोरमुखि व्रां छ्रां छीं किलि किलि क्षौं विच्चे ख्यों श्रीं क्रोम्, ओं ह्रोम् ऐं वज्रकुब्जिनि स्त्रीं त्रैलोक्यकर्षिणी ह्रीं कामाङ्गद्राविणि ह्रीं स्त्रीं महाक्षोभकारिणि, ऐं ह्रीं क्षौम्, ऐं ह्रीं श्रीं फें क्षौं नमो भगवति क्षौ कुब्जिके ह्रों ह्रों क्रैं ङ ञ णनमेऽघोरमुखि छ्रां छ्रां विच्चे, ॐ किलि किलि ॥ २ ॥ कृत्वा कराङ्गन्यासं च सन्ध्यावन्दनमाचरेत् । वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री**

विमल, संयोग-विमल एवं समय-विमल इन पाँच विमलों की पूजा करनी चाहिए।। ९-१० ।। इन्हीं शृंगों पर कुब्जिका की प्रसन्नता के लिए क्रमशः खिंखिनी, षष्ठी, सोपन्ना, सुस्थिरा तथा रत्न सुन्दरी की पूजा करनी चाहिए । ईशानकोण के शिखर पर आठ आदि नाथों का पूजन करना चाहिए ।। ११ ।। उसके पश्चात् अग्निकोण के शिखर पर मित्र की, पश्चिम दिशा के शिखर पर औडीश वर्ष की तथा वायव्यकोण के शिखर पर षष्ठि की पूजा करनी चाहिए । पश्चिम दिशा के शिखर पर गगनरत्न और कवचरत्न की पूजा करनी चाहिए ।। १२ ।। वायव्य, ईशान और अग्निकोण में ब्रूं बीज के साथ पञ्चनामा मर्त्य का पूजन करना चाहिए । दक्षिण दिशा, और अग्निकोण में पञ्चरत्न की पूजा करनी चाहिए । ज्येष्ठा, रौद्री तथा अन्तिका इन तीनों की भी पूजा वहीं करनी चाहिए । इनके साथ सम्बन्ध रखने वाली पाँच महावृद्धाएँ हैं, इन सबों की पूजा प्रणवोच्चारण पूर्वक करनी चाहिए। इन सबों का पूजन सत्ताइस तथा अट्ठाइस के भेद से दो प्रकार से करना का बतलाया गया है ।। १४ ।। चतुरस्र मण्डल में ओं एं गूं क्रमगणपतये नमः इस मन्त्र से दहिनी ओर गणपति का तथा ओं बटुकाय नमः इस मन्त्र से वायीं ओर वटुक का पूजन करना चाहिए।। १५ ।। वायव्य आदि कोणों में चार गुरुओं का तथा वायव्य आदि अठारह षट्कोणों में सोलह नाथों का पूजन करना चाहिए ।। १६ ।। पुनः मण्डल के चारों ओर ब्रह्मा आदि आठ देवताओं की तथा मध्यभाग में नवमी कुब्जिका तथा कुलटा देवी की पूजा करनी चाहिए । इसी प्रकार से सदा कुब्जिका देवी की पूजा करनी चाहिए ।। १७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का कुब्जिकापूजा वर्णन नामक एक सौ तैंतालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १४३ ॥

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं ऐश्वर्य सम्पन्न तथा धर्म, अर्थ तथा विजय प्रदान करने वाली कुब्जिका का वर्णन करता हूँ । देवी का पूजन मूलमन्त्र से परिवार के साथ करनी चाहिए ।।१।। ओं ऐं ह्रीं श्रीं..............ओं किलिकिलि ।। २ ।। यह कुब्जिका मन्त्र है । करन्यास तथा अङ्गन्यास करके सन्ध्यावन्दन करना चाहिए । वाम-संध्या, ज्येष्ठा-सन्ध्या तथा रौद्री-सन्ध्या तीनों

सन्ध्यात्रयमनुक्रमात् ॥ ३ ॥ कुलवागीशि विद्महे । महाकौलीति धीमहि। तन्नः कौली प्रचोदयात् ॥ ४ ॥ मन्त्राः पञ्च प्रणवाद्याः पादुकां पूजयामि च । मध्ये नाम चतुर्थ्यन्तं द्विनवात्मकबीजकाः ॥ ५ ॥ नमोन्ता वाऽथ षष्ट्या तु सर्वे ज्ञेया वदामि तान् । कौलीशनाथः सुकला जन्मतः कुब्जिका ततः ॥ ६ ॥ श्रीकण्ठनाथः कौलेशो गगनानन्दनाथकः । चटुला देवी मैत्रीशी कराली तूर्णनाथकः ॥ ७ ॥ अतलादेवी श्रीचन्द्रा देवीत्यन्तास्ततस्त्विमे। भगात्मपुंगणदेवमोहिनीं पादुकां यजेत् ॥ ८ ॥ अतीतभुवनानन्दरत्नाढ्यां पादुकां यजेत् । ब्रह्मज्ञानाऽथ कमला परमा विद्यया सह ॥ ९ ॥ विद्या देवी गुरुशुद्धिस्त्रिशुद्धिं प्रवदामि ते । गगनश्चटुली चाऽऽत्मा पद्मानन्दौ मणिः कला ॥ १० ॥ कमलो माणिक्यकण्ठो गगनः कुमुदस्ततः । श्रीपद्मो भैरवानन्दो देवः कमल इत्यतः॥ ११ ॥ शिवो भवोऽथ कृष्णश्च नवसिद्धाश्च षोडश । चन्द्रपूरोऽथ गुल्मश्च शुभः कामोऽतिमुक्तकः ॥ १२ ॥ कण्ठो वीरः प्रयोगोऽथ कुशलो देवभोगकः । विश्वदेवः खड्गदेवो रुद्रो धाताऽसिरेव च ॥ १३ ॥ मुद्रास्फोटो वंशपूरो भोजः षोडश सिद्धकाः । जात्यस्तु देहस्तु षेढान्यासेन यन्त्रितः ॥ १४ ॥ प्रक्षिप्य मण्डले पुष्पं मण्डलान्यथ पूजयेत् । अनन्तं च महान्तं च सर्वदा शिवपादुकाम् ॥ १५ ॥ महाव्याप्तिं च शून्यं च पञ्चतत्त्वात्ममण्डलम् । श्रीकण्ठनाथपादुकां शंकरानन्तकौ यजेत् ॥ १६ ॥ सदाशिवः पिङ्गलश्च भृग्वानन्दश्च नाथकः।

सन्ध्याओं को क्रमशः करना चाहिए ।। ३ ।। कुलवागीशि विद्महे । महाकौलीति धीमहि । तन्नः कौली प्रचोदयात् । यह कौली गायत्री है । अर्थात् हे कुलवागीश्वरि देवि ! हम आपको जानते हैं । हम महाकौली रूप से आपका ध्यान करते हैं । वे महाकौली देवी हमारी बुद्धि को प्रेरित करें ।। ४ ।। इनके पाँच मन्त्र हैं, जिनके आदि में प्रणव और अन्त में नमः पद का प्रयोग होता है । बीच में पाँच नाथों के नाम हैं, मन्त्रों के अन्त में श्री पादुकां पूजयामि यह जोड़ना चाहिए । मध्य में देवता का चतुर्थ्यन्त नाम रखना चाहिए । ये सभी मन्त्र अठारह-अठारह अक्षर के हैं। उन का नाम जानने योग्य है । उन्हें मैं बतला रहा हूँ । (१) कौलीशनाथ के साथ सुकला देवी हैं जो जन्म से ही कुब्जा हैं, (२) श्रीकण्ठनाथ के साथ चटुला देवी हैं, (३) कौलेशनाथ के साथ मैत्रीशी देवी हैं जिनका स्वरूप भयंकर है, (४) गगनानन्दनाथ के साथ कराली देवी हैं और (५) तूर्णनाथ के साथ श्रीचन्द्रादेवी हैं । इन देवियों की पादुकाओं का विशेषण इस तरह से है । सुकला देवी की पादुका का विशेषण 'भगात्मपुंगण देवमोहिनी है । चटुला देवी की पादुका का विशेषण 'अतीतभुवनानन्दरत्नाढ्या है । मैत्रेशी देवी की पादुका का विशेषण ब्रह्मज्ञानाढ्या है, अतलादेवी की पादुका का विशेषण कमलाढ्या है और श्रीचन्द्रादेवी की पादुका का विशेषण परमविद्याढ्या है ।। ५-९ ।। **(विशेष–** इस तरह से पाञ्चों नाथों के मन्त्र होंगे- (१) ओं कौलीशनाथाय नमस्तस्मै पादुकां पूजयामि । (२) ओं श्रीकण्ठनाथाय नमस्तस्मै पादुकां पूजयामि । (३) ओं कौलेशनाथाय नमस्तस्मै पादुकां पूजयामि । (४) ओं गगनानन्दनाथाय नमस्तस्मै पादुकां पूजयामि । (५) तूर्णनाथाय नमस्तस्मै पादुकां पूजयामि ।) पाँचों देवियों के मन्त्र इस तरह से होंगे- (१) ओं चटुलादेव्यै नमस्तस्यै भगात्मपुंगलादेवमोहिनी पादुकां पूजयामि, (२) ओं सुकलादेव्यै नमस्तस्यै अतीतभुवनानन्दरत्नाढ्यां पादुकां पूजयामि, (३) ओं मैत्रेशी देव्यै नमस्तस्यै ब्रह्मज्ञानाढयां पादुकां पूजयामि, (४) ओं अतलदेव्यैनमस्तस्यै कमलाढ्यं पादुकां पूजयामि तथा (५) ओं चन्द्रादेव्यै नमस्तस्यै परमविद्याढ्यां पादुकां पूजयामि । अब मैं तुम्हें त्रिशुद्धि बतला रहा हूँ, विद्या, देवी तथा गुरु की शुद्धि को त्रिशुद्धि कहते हैं, नवीन सिद्ध सोलह हैं- (१) गगनानन्द, (२) चटुली, (३) आत्मानन्द, (४) परमनन्द, (५) मणि, (६) कला, (७) कमल, (८) माणिक्य, (९) कण्ठ, (१०) गगन, (११) कुमुद, (१२) श्रीपद्म, (१३) भैरवानन्द, (१४) कमलदेव, (१५) शिव अथवा भव तथा (१६) कृष्ण ।। १०-११ ।। ये सोलह सिद्ध हैं- (१) चन्द्रपूर,(२) गुल्म, (३) शुभकाम, (४) अतिमुक्तक, (५) वीरकण्ठ, (६) प्रयोग, (७) कुशल, (८) देवभोगक, (९) विश्वदेव, (१०) खड्गदेव, (११) रुद्र, (१२) धाता, (१३) असि, (१४) मुद्रास्फोट, (१५) वंशपूर (१६) तथा भोज । इनका देह भी छह प्रकार के न्यासों से यन्त्रित होने के कारण आत्मा की समान जाति वाला (सच्चिदानन्दस्वरूप) हो गया है ।। १२-१४ ।। मण्डलों की पूजा पुष्प के द्वारा करनी चाहिए । अनन्त, महान्, शिव पादुका, महाव्याप्ति, शून्य, पञ्चतत्त्वात्ममण्डल, श्रीकण्ठनाथपादुका, शंकर तथा अनन्त की पूजा करनी चाहिए ।। १५-१६ ।। सदाशिव, पिङ्गल, भृग्वानन्द, नाथसमूह, लाङ्गूलानन्द तथा संवर्त इन सबों का पूजन मण्डल

लाङ्गूलानन्दसंवर्तौ मण्डलस्थानके यजेत् ॥ १७ ॥ नैर्ऋत्ये श्रीमहाकालः पिनाकी च महेन्द्रकः । खड्गो भुजङ्गो बाणश्च अघासिः शब्दको वशः॥१८॥ आज्ञारूपो नन्दरूपो बलिं दत्त्वा क्रमं यजेत् ॥ १९ ॥ ह्रीं खं खं हूं सौं वटुकाय, अरु अरु, अर्घं पुष्पं धूपं दीपं गन्धं बलिं पूजां गृह्ण गृह्ण नमस्तुभ्यम् ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं क्षें क्षेत्रपालायावतरावतर महाकपिलजटाभार भास्वर त्रिनेत्र ज्वालामुख, एह्येहि गन्धपुष्पबलिपूजां गृह्ण गृह्ण खः खः, ॐ कः, ॐ लः, ॐ महाडामराधिपतये स्वाहा ॥ २० ॥ बलिशेषेऽथ यजेद्धीं हूं हां श्रीं वै त्रिकूटकम् । वामे च दक्षिणे ह्यग्रे याम्ये निशानाथपादुकाः ॥ २१ ॥ दक्षे तमोरिनाथस्य ह्यग्रे कालानलस्य च । उड्डियाणं जालंधरं पूर्णं वै कामरूपकम् ॥ २२ ॥ गगनानन्ददेवं च स्वर्गानन्दं सवर्गकम् । परमानन्ददेवं च सत्यानन्दस्य पादुकाम् ॥ २३ ॥ नागानन्दं च वर्गाख्यमुक्तं ते रत्नपञ्चकम् । सौम्ये शिवे यजेत्षट्कं सुरनाथस्य पादुकम् ॥ २४ ॥ श्रीमत्समयकोटीशं विद्याकोटीश्वरं यजेत् । कोटीशं बिन्दुकोटीशं सिद्धकोटीश्वरं तथा ॥ २५ ॥ सिद्धचतुष्कमाग्नेय्याममरीशेश्वरं यजेत् । चक्रीशनाथं कुरङ्गेशं वृत्रेशं चन्द्रनाथकम् ॥ २६ ॥ यजेद्गन्धादिभिश्चैतान्याम्ये विमलपञ्चकम् । यजेदनादिविमलं सर्वज्ञविमलं ततः॥ २७ ॥ यजेद्योगीशविमलं सिद्धाख्यं समयाख्यकम् । नैर्ऋत्ये चतुरो वेदान्यजेत्कन्दर्पनाथकम् ॥ २८ ॥ पूर्वाः शक्तश्चि सर्वाश्च कुब्जे पादुकां यजेत् । नवात्मकेन मन्त्रेण पञ्चप्रणवकेन वा ॥ २९ ॥ सहस्राक्षमनवद्यं विष्णुं शिवं सदा यजेत् । पूर्वाच्छिवान्तं ब्रह्मादि ब्रह्माणी च महेश्वरी ॥ ३० ॥ कौमारी वैष्णवी चैव वाराही शक्रशक्तिका । चामुण्डा च महालक्ष्मीः पूर्वादीशान्तमर्चयेत् ॥ ३१ ॥ डाकिनी राकिनी पूज्या लाकिनी काकिनी तथा । शाकिनी याकिनी पूज्या वायव्यादुग्रषट्सु च ॥३२॥ यजेद्ध्यात्वा ततो देवीं द्वात्रिंशद्वर्णकात्म (त्मि) काम। पञ्चप्रणवकेनापि

स्थान में करना चाहिए ।। १७ ।। मण्डल के नैर्ऋत्यकोण में श्री महाकाल, पिनाकी, महेन्द्र खड्ग, भुजङ्ग, बाण, अघासि, शब्द, वश, आज्ञारूप तथा नन्दरूप को बलि देकर उनकी क्रमशः पूजा करनी चाहिए ।। १८-१९ ।। उसके पश्चात् वटुक को अर्घ्य, पुष्प, धूप, दीप, गन्ध तथा बलि देकर क्षेत्रपालको पुष्प, धूप, दीप, गन्ध, तथा बलि देनी चाहिए । बलि का मन्त्र है- 'ह्रीं खं खं हूं सौं वटुकाय.........महाऽमराधिपतये स्वाहा ।। २० ।। तदनन्तर दाएँ, बाएँ और सामने 'ह्रीं ह्रूं ह्रां श्रीं त्रिकूटाय नमः।' इस मन्त्र से बलि देनी चाहिए । फिर दाहिने निशानाथ की पादुका का, वायीं ओर तमोऽरिनाथ की पादुका का तथा सामने कालानल की पादुका का पूजन करना चाहिए ।। २१ ।। इसके पश्चात् उड्डियान, जाालंधर, पूर्णगिरि, और कामरूप की पूजा करनी चाहिए।।२२।। तदनन्तर गगनान्द देव समूहसहित स्वर्गानन्द, परमानन्द तथा सत्यानन्द की पादुका का तथा नागानन्द देव का पूजन करना चाहिए । इस तरह से मैंने तुम्हें वर्ग नामक पञ्चरत्न को बताया ।। २३ ।। उत्तर तथा ईशानकोण में सुरानाथ की पादुका की, श्रीमत् समयकोटीश्वर की, विद्या कोटीश्वर की, कोटीश्वर की, विन्दुकोटीश्वर की तथा सिद्ध कोटीश्वर की पूजा करनी चाहिए ।। २४-२५ ।। तदनन्तर चार सिद्ध (१) योगक्रीड़ा, (२) समय, (३) सहज, (४) परावर समुदाय की अमरीशेश्वर, क्रीशनाथ कुरङ्गेश्वर,वृत्रेश्वर तथ चन्द्रनाथ की पूजा करनी चाहिए। इन सबों की गन्ध आदि से पूजा करनी चाहिए । पुनः दक्षिण दिशा में अनादि विमल, सर्वज्ञविमल, योगीश विमल, सिद्धविमल तथा समयविमल, इन पाँचों विमलों की पूजा करनी चाहिए। पुनः नैर्ऋत्यकोण में चार वेदों की, कन्दर्पनाथ की, पूर्वेक्त सभी शक्तियों की तथा कुब्जिका देवी की श्री पादुका की पूजा करनी चाहिए । कुब्जिका की श्रीपादुका की पूजा नवाक्षर मन्त्र- (ओं ह्रां ह्रीं कुब्जिकायै नमः) से अथवा पाँच प्रणव से करनी चाहिए ।। २६-२९ ।। पूर्व दिशा से लेकर ईशानकोणपर्यन्त सहस्राक्ष इन्द्र की, अनवद्य विष्णु की तथा शिव की सदा पूजा करनी चहिए । ब्रह्मा आदि दस दिक्पालों की, ब्रह्माणी की,माहेश्वरी की, कौमारी की, वैष्णवी की, वाराही की, इन्द्रशक्ति की,चामुण्डा की तथा महालक्ष्मी की पूर्व से लेकर ईशानकोण तक पूजन करना चाहिए ।। ३०-३१ ।। वायव्यकोण से लेकर छह उग्र दिशाओं में क्रमशः डाकिनी, शाकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी तथा याकिनी की पूजा करनी चाहिए ।। ३२ ।। इसके पश्चत् बत्तीस वर्ण

ह्रींकारेणाथ वा यजेत् ॥ ३३ ॥ नीलोत्पलदलश्यामा षड्वक्त्रा षट्प्रकारिका । चिच्छक्तिरष्टादशाख्या बाहुद्वादशसंयुता ॥ ३४ ॥ सिंहासनसुखासीना प्रेतपद्मोपरि स्थिता । कुलकोटिसहस्राढ्या कर्कोटो मेखलास्थितः ॥ ३५ ॥ तक्षकेणोपरिष्टाच्च गले हारश्च वासुकिः । कुलिकः कर्णयोर्यस्याः कूर्मः कुण्डलमण्डलः॥३६॥ भ्रुवोः पद्मो महापद्मो वामे नागः कपालकः । अक्षसूत्रं च खट्वाङ्गं शङ्खं पुस्तं च दक्षिणे ॥ ३७ ॥ त्रिशूलं दर्पणं खड्गं रत्नमालाऽङ्कुशं धनुः । श्वेतमूर्धं मुखं देव्या अर्धश्वेतं तथाऽपरम् ॥ ३८ ॥ पूर्वास्यं पाण्डरं क्रोधि दक्षिणं कृष्णवर्णकम् । हिमकुन्देन्दुभं सौम्यं ब्रह्मा पादतले स्थितः ॥३९॥ विष्णुस्तु जघने रुद्रो हृदि कण्ठे तथेश्वरः । सदाशिवो ललाटे स्याच्छिवस्तस्योर्ध्वतः स्थितः ॥ ४० ॥ आघूर्णिका कुब्जिकैवं ध्येया पूजादिकर्मसु॥४१॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कुब्जिकापूजाकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मालिनीमन्त्राः

ईश्वर उवाच– नानामन्त्रान्प्रवक्ष्यामि षोढान्यासपुरःसरम् । न्यासस्त्रिधा तु षोढा स्युः शाक्तशांभवयामलाः ॥ १ ॥ शांभवे शब्दराशिः षट्षोडशग्रन्थिरूपवान्। त्रिविद्या तद्ग्रहो न्यासस्त्रितत्वात्माभिधानकः॥ २ ॥ चतुर्थो वनमालायाः श्लोक द्वादश रूपवान् । पञ्चमो रत्नपञ्चात्मा

(व्यञ्जन वर्ण) शरीर वाली कुब्जिका देवी का ध्यान करके उनका पूजन करना चाहिए । उनका पूजन 'ओं, ओं, ओं, ओं, ओं कुब्जिकायै नमः' इस मन्त्र से करना चाहिए अथवा 'ओं ह्रीं कुब्जिकायै नमः' इस मन्त्र से करना चाहिए ।। ३३ ।। कुब्जिका देवी के अङ्गों की कान्ति नीलकमल के समान नीलवर्ण का है । उनके छह मुख हैं और वे छह-छह प्रकार के हैं । वे चैतन्यशक्तिस्वरूपा, अष्टादशाक्षर मन्त्र के द्वारा प्रतिपाद्य तथा बारह भुजाओं वाली हैं ।। ३४ ।। सिंहासन पर सुखपूर्वक बैठी हुई हैं और प्रेतपद्म पर स्थित हैं । वे सहस्रों कोटि कुल से सम्पन्न हैं, कर्कोटक नामक सर्प उनकी करधनी का काम करता है ।। ३५ ।। उनके ऊपर तक्षक नाग बैठा है और वासुकि नामक नाग ही उनकी गले का हार है । उनके दोनों कानों का कुण्डल कुलिक नामक नाग का है उनके कुण्डल की गोई का कूर्मनामक नाग करता है ।। ३६ ।। उनकी दोनों भैंहों में पद्म तथा महपद्म नामक नाग स्थित है । उनके वामहस्त में नाग, कपाल, अक्षसूत्र,खट्वाङ्ग, शङ्ख तथ पुस्तक है । उनके दाहिने हाथ में त्रिशूल, दर्पण, खड्ग, रत्नमाला, अंकुश और धनुष है ।। ३७ ।। देवी के ऊपर की ओर दो मुख हैं, एक मुँह पूर्ण रूप से सफेद है और दूसरा आधा सफेद है । उनका पूर्वदिशा का मुख पाण्डुवर्ण का है दक्षिण दिशा का मुख क्रोध से युक्त तथा पश्चम दिशा का मुख कृष्णवर्ण (काला) का है। उत्तर दिशा का मुख हिम, कुन्द तथा चन्द्रमा की आभा वाला है । उनके पैरों के नीचे ब्रह्मा स्थित हैं ।। ३८-३९ ।। उनके जंघों में विष्णु का निवास है, हृदय में रुद्र का निवास है तथा कण्ठ में ईश्वर का निवास है । उनके ललाट में सदाशिव स्थित हैं तथा उनके ऊपर शिव स्थित हैं ।। ४० ।। कुब्जिका देवी झूमती हुई सी दिखायी देती हैं । पूजा आदि कर्मों में कुब्जिका देवी का ऐसा ही ध्यान करना चाहिए ।। ४१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का कुब्जिका पूजा वर्णन नामक एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १४४ ॥

अध्याय १४५

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं छह प्रकार के न्यासपूर्वक अनेक मन्त्रों का वर्णन करूँगा । ये छहों प्रकार के न्यास शाक्त, शाम्भव तथा यामल के भेद से तीन प्रकार के होते हैं ।। १ ।। शाम्भव न्यास में षट्षोडश ग्रन्थि स्वरूप प्रथम न्यास होता है । तीन विद्याएँ और उनका ग्रहण द्वितीय न्यास होता है तथा त्रितत्त्वात्मक नामक तीसरा न्यास होता है ।। २ ।। वनमाला न्यास

नवात्मा षष्ठ ईरितः ॥ ३ ॥ शाक्ते पक्षे च मालिन्यास्त्रिविद्यात्मा द्वितीयकः । अघोर्यष्टकरूपोऽन्यो द्वादशाङ्गश्चतुर्थकः ॥ ४ ॥ पञ्चमस्तु षडङ्गः स्याच्छक्तिश्चान्याऽस्त्रचण्डिका। क्लीं ह्रीं क्लीं श्रीं क्रूं फट् त्रयं स्यात्तूर्याख्यं सर्वसाधकम् ॥ ५ ॥ मालिन्या नादिफान्तं स्यान्नादिनी च शिखा स्मृता । अ ग्रसनी शिरसि स्याच्छिरोमालानिवृत्तिः शः ॥ ६ ॥ ट शान्तिश्च शिरो भूयाच्चामुण्डा च त्रिनेत्रगा । ढ प्रियदृष्टिर्द्विनेत्रे च नासागागुह्यशक्तिनी॥७॥ न नारायणी द्विकर्णे च दक्षकर्णे त मोहिनी । ज प्रज्ञा वामकर्णस्था वक्त्रे च वज्रिणी स्मृता ॥ ८ ॥ क कराली दक्षदंष्ट्रा वामांसा ख कपालिनी। ग शिवा ऊर्ध्वदंष्ट्रा स्याद् घ घोरा वामदंष्ट्रिका ॥ ९ ॥ उ शिखा दन्तविन्यासा ई माया जिह्वा स्मृता । अ स्यान्नागेश्वरी वाचि व कण्ठे शिखिवाहिनी॥१०॥ भ भीषणी दक्षस्कन्धे वायुगा म वामके । ड नामा दक्षबाहौ तु ढ वामे च विनायका ॥ ११ ॥ प पूर्णिमा द्विहस्ते तु ओंकारद्यङ्गुलीयके । अं दर्शनी वामाङ्गुल्य अः स्यात्सञ्जीवनी करे ॥ १२ ॥ ट कपालिनी कपालं शूलदण्डे त दीपनी । त्रिशूले च जयन्ती स्याद् वृद्धिर्यः साधनी स्मृता ॥ १३ ॥ जीवे श परमाख्याद्ध प्राणे च अम्बिका स्मृता । दक्षस्तने छ शारीरा न वामे पूतना स्तने ॥ १४ ॥ अ स्तनक्षीर आ मोटी लम्बोदर्युदरे च थ । नाभौ संहारिका क्ष स्यान्महाकाली नितम्ब म ॥ १५ ॥ गुह्ये स कुसुममाला ष शुक्रे शुक्रदेविका । उरुद्वये त तारा

चौथा न्यास है और इसमें बारह श्लोक हैं । रत्न पञ्चात्मा नामक पाँचवाँ न्यास है और नवात्मा नामक छठा न्यास है ।। ३ ।। शाक्त पक्ष में मालिनी का न्यास प्रथम, त्रिविद्यात्मक न्यास द्वितीय, अघोर्यष्टकन्यास तृतीय, द्वादशाङ्ग न्यास चतुर्थ, षडङ्गन्यास पञ्चम और अस्त्रचण्डिका नाम का न्यास षष्ठ न्यास है । क्लीं ह्रीं क्लीं श्रीं क्रूं फट् यह छः बीज मन्त्रों का जो छह प्रकार का न्यास है यही तीसरा अर्थात् यामलन्यास कहलाता है । इन छहों में से जो चौथा 'श्रीं' बीज का जो न्यास है वह सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाला है ।। ४-५ ।। 'न्' से लेकर 'फ' तक जो न्यास बतलाये गए हैं वे सबके सब मालिनी न्यास हैं । न से प्रारम्भ होने वाली शक्ति का शिखा में न्यास करना चाहिए । 'अ' ग्रसनी शक्ति तथा 'श' शिरोमाला निवृत्तिशक्ति का भी स्थान सिर में ही है । अतएव उन दोनें का न्यास वहीं किया जाना चाहिए। 'ह' शान्ति का भी प्रतीक है और उसका भी न्यास सिर में ही होता है । 'च' चामुण्डा का प्रतीक है और उसका न्यास नेत्रत्रय में होता है । 'ढ्' प्रिय दृष्टि का प्रतीक है और उसका न्यास दोनों नेत्रों में होना चाहिए । 'नी' गुह्यशक्ति का प्रतीक है और उसका न्यास नसिका में होना चाहिए ।। ६-७ ।। 'न' नारायणी देवी का प्रतीक है और इसका स्थान दोनों कान है । 'त' मोहिनी शक्ति स्वरूप है, इसका न्यास दाहिने कान में होना चाहिए । 'ज' प्रज्ञा का प्रतीक है और इसका न्यास बाएँ कान में होता है । वज्रिणी देवी का स्थान मुख में बतलाया गया है । 'क' कराली देवी का प्रतीक है और इसका स्थान दाहिनी दाढ़ में है । 'ख' कपालिनी देवी का प्रतीक है और इसका न्यास बाएँ कन्धे पर होता है ।'ग' शिवा देवी का प्रतीक है और इसका न्यास ऊपर की दाढ़ में होता है । 'घ' घोरादेवी का प्रतीक है और इसका न्यास दाँतों में होता है । 'ई' माया शक्ति का प्रतीक है और इसका न्यास जिह्वा में बतलाया गया है ।'अ' नागेश्वरी शक्ति का प्रतीक है और इसका न्यास कण्ठ में होता है ।। ८-१० ।। 'भ' भीषणी शक्ति का प्रतीक है, इसका न्यास दाहिने कन्धे में होता है, 'म' वायुवेगा शक्ति का प्रतीक है और इसका न्यास बाएँ कन्धे पर होता है । 'ड' नामा शक्ति का प्रतीक है, इसका न्यास दाहिनी भुजा में होता है । 'ढ' विनायकशक्ति का प्रतीक है और इसका न्यास बायीं भुजा पर होता है ।। ११ ।। 'प' पूर्णिमा का प्रतीक है और इसका न्यास स्थान दोनों हाथ है प्रणव ओं आद्या शक्ति का प्रतीक है और इसका न्यास अंगुलियों में होता है । 'अं' दर्शनी शक्ति का प्रतीक है और इसका स्थान बायीं अंगुलियों में है । 'अः' सञ्जीवनी शक्ति का प्रतीक है, इसका स्थान हाथ में है ।। १२ ।। 'ट' कपालिनी शक्ति का प्रतीक है, इसका स्थान सिर में है । दीपनी शक्ति का प्रतीक 'त' है और इसका न्यास शूलदण्ड में होता है । जयन्ती का स्थान त्रिशूल में है । 'य' वृद्धि का प्रतीक है और वह साधनी शक्ति का प्रतीक है ।। १३।। परमा देवी का प्रतीक श है और उसका न्यास जीव में होता है । अम्बिका देवी का न्यास प्राण में होता है । शारीरा शक्ति के प्रतीक 'छ्' का न्यास दाहिने स्तन में होता है और पूतनादेवी के प्रतीक 'न' का न्यास बाएँ स्तन में होता है ।। १४ ।। आमोटी देवी के प्रतीक 'अ' का न्यास स्तन के दुग्ध में होता है लम्बोदरी देवी के प्रतीक आ का न्यास पेट में होता है । संहारिका देवी

स्याद् ज्ञान दक्षजानुनि ॥ १६ ॥ वामे स्यादौ क्रिया शक्तिरो गायत्री च जङ्गगा । ओ सावित्री वामजङ्घा दक्षे दो दोहनी पदे ॥ १७ ॥ फ फेत्कारी वामपदे नवात्मा मालिनी मनुः। अ श्रीकण्ठः शिखायां स्यादा वक्त्रे स्यादनन्तकः ॥ १८ ॥ इ सूक्ष्मो दक्षनेत्रे स्यादी त्रिमूर्तिस्तु वामके। उ दक्षकर्णेऽमरीश ऊ कर्णेऽर्धांशकोऽपरे ॥ १९ ॥ ऋ भावभूतिर्नासाग्रे वामनासा तिथीश ॠ । ऌ स्थणुर्दक्षगण्डे स्याद्वामगण्डे हरश्च ॡ ॥२०॥ कटीशो दन्तपङ्क्तावे भूतीशश्चोर्ध्वदन्त ऐ । सद्योजात ओ अधर ऊर्ध्वोष्ठेऽनुग्रहीश औ ॥ २१ ॥ अं क्रूरो घाटकायां स्यादः महासेनजिह्वया । क क्रोधीशो दक्षस्कन्धे खश्चण्डीशश्च बाहुषु ॥ २२ ॥ पञ्चान्तकः कर्पूरे गो घ शिखी दक्षकङ्कणे । ङ एकपादश्चाङ्गुले वामस्कन्धे च कूर्मकः॥२३॥ छ एकनेत्रो बाहौ स्याच्चतुर्वक्त्रो ज कूर्परे । झ राजसः कङ्कणगो ञ सर्वकामदोऽङ्गुलौ ॥ २४ ॥ ट सोमेशो नितम्बे स्याद्दक्ष ऊरौ ठ लाङ्गली । ड दारुको दक्षजानौ जङ्घा ढोऽर्धजलेश्वरः ॥ २५ ॥ ण उमाकान्तकोऽङ्गुल्यस्त आषाढी नितम्बके । थ दण्डी वाम ऊरौ स्याद् भिदो वामजानुनि॥२६॥ ध मीनो वामजङ्घायां मेषश्चरणाङ्गुली । प लोहितो दक्षकुक्षौ फ शिखी वामकुक्षिगः ॥ २७॥ व गलण्डः पृष्ठवंशे भ नाभौ च द्विरण्डकः। म महाकालो हृदये य वाणीशस्त्वचिस्मृतः ॥ २८ ॥ र रक्ते स्याद्भुजङ्गेशो ल पिनाकी च मांसके। व खड्गीशः स्वात्मनि स्याद्वकश्चास्थिनि

के प्रतीक 'क्ष' का न्यास नाभि में होता है तथा महाकाली के प्रतीक 'म्' का न्यास नितम्ब में होता है । कुसममाला देवी के प्रतीक 'स' का गुप्ताङ्ग में न्यास होता है तथा शुक्रदेविका देवी के प्रतीक का न्यास शुक्र में होता है । तारा देवी के प्रतीक 'ता' का न्यास दोनों जंघाओं में होता है तथा ज्ञाना देवी के प्रतीक 'द' का न्यास दाहिनी घुटना में होता है ।। १६ ।। बायीं क्रियाशक्ति के प्रतीक 'औ' का न्यास बायीं घुटना में होता है । गायत्री शक्ति के प्रतीक ओ का न्यास जंघा में होता है । सावित्री शक्ति के प्रतीक 'ओं' का न्यास बायीं जंघा में होता है, दोहिनी शक्ति के प्रतीक 'द' का न्यास पैर में होता है ।। १७ ।। फेत्कारी देवी के प्रतीक 'फ' का न्यास बाएँ पैर में होता है। अब मैं नव अक्षरों वाले मालिनी मन्त्र का न्यास कहूँगा । श्रीकण्ठ के प्रतीक अ का न्यास शिखा में, अनन्त के प्रतीक आ का न्यास मुख में होता है ।। १८ ।। सूक्ष्म के प्रतीक इ का दाहिनी आँख में और त्रिमूर्ति के प्रतीक 'ई' का न्यास बायीं आँख में होता है । अमरीश के प्रतीक उ का न्यास दाहिने कान में और अर्धांशक के प्रतीक ऊ का दाहिने कान में न्यास करना चाहिए ।। १९ ।। भावभूति के प्रतीक ऋ का न्यास नासिका के अग्रभाग में तथा तिथियों के स्वामी के प्रतीक ॠ का न्यास बायीं नाक में होता है । स्थाणु के प्रतीक ऌ का दाहिने कपोल पर न्यास होता है तथा हर के प्रतीक ॡ का न्यास बाएँ कपोल पर होता है ।। २० ।। कटीश के प्रतीक 'ए' का दन्त पंक्ति में, भूतीश के प्रतीक ऐ का दाँतों की ऊपर की पंक्ति में, सद्योजात के प्रतीक ओ का अधर में और अनुग्रहीश के प्रतीक औ का ऊपर के ओष्ठ में न्यास करना चाहिए ।।२१।। क्रूर के प्रतीक अं का गले की घण्टी में, महासेन के प्रतीक अः का जिह्वा में, कोधीश के प्रतीक क का दाहिने कन्धे में और चण्डीश के प्रतीक ख का बाहुओं में न्यास करना चाहिए ।। २२ ।। पञ्चान्तक के प्रतीक 'ग' का कूर्पर में, शिखी के प्रतीक 'घ' का दाहिने कङ्कण में, एकपाद के प्रतीक-'ङ' का अंगुलि में और कूर्मक के प्रतीक 'च' का बायीं कन्धे में न्यास करना चाहिए ।।२३।। एकनेत्र के प्रतीक 'छ' का भुजा में, चतुर्वक्त्र के प्रतीक 'ज' का कूर्पर में, रजोगुण के प्रतीक 'झ' का कंकण में और सर्वकामद के प्रतीक 'ञ' का अंगुलि में न्यास करना चाहिए ।। २४ ।। सोमेश्वर के प्रतीक 'एका नितम्ब में, लाङ्गली के प्रतीक 'ठ' का दाहिनी जांघ में, दारुक के प्रतीक 'ड' का दाहिने घुटने में, और अर्धजलेश्वर के प्रतीक 'ढ' का जंघा में न्यास करना चाहिए ।।२५।। उमाकान्त के प्रतीक 'न' का अंगुलियों में आषाढ़ी के प्रतीक 'त' का नितम्ब में, दण्डी के प्रतीक 'थ' का बायीं जंघा में और भिद के प्रतीक 'द' का बायें घुटने में न्यास करना चाहिए ।। २६।। मीन के प्रतीक 'ध' का बायीं जंघा में, मेष के प्रतीक न का चरणों की अंगुलि में, लोहित के प्रतीक प का दाहिनी कोंख में तथा शिखी के प्रतीक 'फ' का बायीं कोंख में न्यास करना चाहिए।।२७।। गलण्ड के प्रतीक 'ब' का पृष्ठवंश में,द्विरण्डक के प्रतीक 'भ' का नाभि में, महाकाल के प्रतीक म का हृदय में और वाणीश के प्रतीक 'य' का त्वचा में न्यास करना चाहिए ।।२८।। भुजङ्गेश के प्रतीक 'र' का रक्त में, पिनाकी के प्रतीक 'ल' का मांस में, खड्गीश के प्रतीक 'व' का अपनी आत्मा (शरीर) में और वक के प्रतीक 'श' का हड्डी में न्यास

शः स्मृतः ॥ २९ ॥ ष श्वेतश्चैव मज्जायां स भृगुः शुक्रधातुके । प्राणे हो नकुलीशः स्यात्क्ष संवर्तश्च कोषगः ॥ रुद्रशक्तीः प्रपूज्य ह्रीं वीजेनाखिलमाप्नुयात् ॥ ३० ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मालिनीमन्त्रादिन्यासविधिकथनं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४५ ॥

अथ षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अष्टाष्टकदेव्यः

ईश्वर उवाच– **त्रिखण्डीं सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्माविष्णुमहेश्वरीम् ॥ १ ॥ ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः । नमश्चामुण्डे नमश्चाऽऽकाशमातृणां सर्वकामार्थसाधनीनामजरामरीणां सर्वत्राप्रतिहतगतीनां स्वरूपरूपपरिवर्तनीनां सर्वसत्त्ववशीकरणोत्सादनोन्मूलनसमस्तकर्मप्रवृत्तानां सर्वमातृगुह्य हृदयं परमसिद्धं परकर्मच्छेदनं परमसिद्धिकरं मातृणां वचनं शुभम् ॥ २ ॥ ब्रह्मखण्डपदे रुद्रैरेकाविंशाधिकं शतम् ॥ ३ ॥ तद्यथा- ॐ नमश्चामुण्डे ब्रह्माणि, अघोरेऽमोघे वरदे विच्चे स्वाहा । ॐ नमश्चामुण्डे चण्डि, अघोरेऽमोघे वरदे विच्चे स्वाहा । ॐ नमश्चामुण्ड ईशानि अघोरेऽमोघे वरदे विच्चे स्वाहा ॥ ४ ॥ यथाक्षरपदानां हि विष्णुखण्डं द्वितीयकम् ॥ ५ ॥ ॐ नमश्चामुण्ड ऊर्ध्वकेशि ज्वलितशिखरे विद्युज्जिह्वे तारकाक्षि पिङ्गलभ्रुवे विकृतदंष्ट्रे क्रुद्धे, ॐ मांसशोणित सुरासवप्रिये हस हस, ॐ नृत्य नृत्य ॐ विजृम्भय विजृम्भय, ॐ मायात्रैलोक्यरूपसहस्रपरिवर्तिनीनामों बन्ध बन्ध, ॐ कुट्ट कुट्ट चिरि चिरि हिरि हिरि भिरि भिरि त्रासनि त्रासनि भ्रामणि भ्रामणि, ॐ द्रावणि द्रावणि क्षोभणि क्षोभणि मारणि मारणि संजीवनि संजीवनि हेरि हेरि गेरि गेरि घेरि घेरि, ॐ सुरि सुरि, ॐ नमो मातृगणाय नमो नमो विच्चे॥६॥ एकत्रिंशत्पदं शम्भोः शतमन्त्रैकसप्ततिः । हे घौं पञ्चप्रणवाद्यन्तां त्रिखण्डीं च जपेद्यजेत् ॥ ७ ॥ हे घो श्रीकुब्जिकायै नमः पदसंधौ तु योजयेत्।**

बतलाया गया है ।। २९ ।। श्वेत के प्रतीक 'ब' का मज्जा में, भृगु के प्रतीक 'स' का शुक्र में एवं धातु में, नकुलीश के प्रतीक 'ह' का प्राण में तथा संवर्त के प्रतीक 'क्ष' का कोष में न्यास करना चाहिए । ह्रीं बीज के द्वारा रुद्र शक्तियों का पूजन करके मनुष्य सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त कर सकता है ।। ३० ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का मालिनीमन्त्र आदि के न्यास विधि का वर्णन नामक एक सौ पैंतालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।। १४५ ।।

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर विषयक त्रिखण्डी का वर्णन करूँगा ।। १ ।। 'ब्रह्म खण्डपद का स्वरूप यह है- ओं नमो भगवते रुद्राय नमः........ मातृणां वचनं शुभम् ।। २ ।। इस ब्रह्मखण्ड पद में रुद्रमन्त्र सम्बन्धी एक सौ इक्कीस अक्षर हैं ।। ३ ।। (अब विष्णुखण्ड पद बतलाया जा रहा है) (१) ओं नमश्चामुण्डे ब्रह्माणि अघोरेऽमोघे.............(८) ओं नमश्चामुण्डे ईशानि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा ।। ४ ।। यह यथोचित अक्षरों वाले पदों का दूसरा विष्णुखण्डपद है ।। ५ ।। महेश्वर खण्ड पद इस प्रकार से है- ओं नमश्चामुण्डे ऊर्ध्वकेशि ज्वलित शिखरे विद्युज्जिह्वे............................मातृगणाय नमो नमो विच्चे ।। ६ ।। यह शम्भु का खण्ड पद एकतीस पदों का है । इसमें एक सौ एकहत्तर अक्षर हैं । इन तीनों मन्त्रों के समूह को त्रिखण्डी कहते हैं । त्रिखण्डी मन्त्र के आदि और अन्त में हे घों और ओम् ओम् ओम् ओम् जोड़कर उसका जप एवं पूजन करना चाहिए ।। ७ ।।

अकुलादि त्रिमध्यस्थं कुलादेश्च त्रिमध्यगम् ॥ ८ ॥ मध्यमादि त्रिमध्यस्थं पिण्डं पादे त्रिमध्यगम् । त्रयार्धमात्रा संयुक्तं प्रणवाद्यं शिखा शिवाम्॥९॥ ॐ क्षौं शिखा भैरवाय नमः स्खीं स्खीं स्खें स बीजत्र्यक्षरः ॥ १० ॥ ह्रां ह्रीं ह्रैं निर्बीजं त्र्यर्ण द्वात्रिंशद्वर्णकं परम् । क्षादयश्च ककारान्ता अकुला च कुलक्रमात् ॥ ११ ॥ शशिनी भानुनी चैव पावनी शिव इत्यतः । गान्धारी रणश्च पिण्डाक्षो चपला गजजिह्विका ॥ १२॥ म मृषा भयसारा स्यान्मध्यमा फोऽजराय च । कुमारी न कालरात्री द संकटा ध कालिका ॥ १३ ॥ फ शिवा भवे घोरा ण ट बीभत्सा त विद्युता। ठ विश्वम्भरा शंसिन्या द ज्वालामालया तथा ॥ १४ ॥ कराली दुर्जया रङ्गी वामा ज्येष्ठा च रौद्र्यपि । ख काली च कुलालम्बी अनुलोमा द पिण्डिनी ॥ १५ ॥ आ वेदिनि इ रुषी वै शान्तिमूर्तिः कलाकुला ॥ ऋ खड्गिनी उ बलिता ऌ कुला ॡ तथा यदि ॥ १६ ॥ सुभगा वेदनादिन्या कराली, अं च मध्यमा । अः अपेतरयाः पीठे पूज्याश्च शक्तयः क्रमात् ॥ १७ ॥ स्खां स्खीं स्खौं महाभैरवाय नमः ॥ १८ ॥ अक्षोद्या ह्यृक्षकर्णी च राक्षसी क्षपणक्षया । पिङ्गाक्षी चाक्षया क्षेमा ब्रह्माण्यष्टकसंस्थिताः ॥ १९ ॥ इला लीलावती नीला लङ्का लङ्केश्वरी तथा। लालसा विमला माला माहेश्वर्यष्टके स्थिताः ॥ २० ॥ हुताशना विशालाक्षी हूंकारी वडवामुखी । हाहारवा तथा क्रूरा क्रोधा बाला खरानना ॥ २१ ॥ कौमार्या देहसम्भूताः पूजिताः सर्वसिद्धिदाः । सर्वज्ञा तरला तारा ऋग्वेदा च हयानना ॥ २२ ॥ सारासारस्वयंग्राहा शाश्वती वैष्णवीकुले। तालुजिह्वा च रक्ताक्षी विद्युज्जिह्वा करङ्किणी ॥ २३ ॥ मेघनादा प्रचण्डोग्रा कालकर्णी कलिप्रिया । वाराहीकुलसम्भूताः पूजनीया जयार्थिना ॥ २४ ॥ चम्पा चम्पावती चैव प्रचम्पा ज्वलितानना । पिशाची पिचुवक्त्रा च लोलुपा ऐन्द्रीसम्भवाः ॥ २५ ॥ पावनी याचनी चैव वामनीदमनी तथा। विन्दुवेला

त्रिखण्डी मन्त्र पद की संधियों में हें घों श्रीकुब्जिकायै नमः जोड़ना चाहिए । मन्त्रपिण्ड चार प्रकार के हैं- (क) अकुलादि त्रिमध्यग, (ख) कुलादित्रिमध्यग, (ग) मध्यमादि त्रिमध्यग तथा (घ) पादत्रिमध्यग साढ़े तीन मात्राओं से युक्त प्रणव को आदि में लगाकर इसका जप एवं पूजन करना चाहिए । इसके पश्चात् भैरव के शिखा मन्त्र का जप करना चाहिए ।। ८-९ ।। ओं क्षौ शिखा भैरवाय नमः । यह भैरव का शिखामन्त्र है । स्खां, स्खीं, स्खें ये तीन सबीज त्र्यक्षर हैं । 'ह्रां ह्रीं ह्रें' ये निर्बीज त्र्यक्षर हैं । ब से लेकर क्ष तक विलोम क्रम से बत्तीस वर्णों को वर्णमाला अकुला कही गयी है और अनुलोम क्रम से वही वर्णमाला सकुला कही गयी है ।। १०-११ ।। शशिनी, भानुनी, पावनी, शिव, गन्धारी, 'ण' पिण्डाक्षी, चमला, गजजिह्विका ।। १२ ।। 'म', मृषा, भयसारा, मध्यमा, 'फ', अजरा, 'य', कुमारी, 'न', कालरात्री, 'द', संकटा, 'ध', कालिका, 'फ', शिवा, 'ण', भवघोरा, 'ट', विभत्सा, 'त' विद्युता, उ विश्वम्भरा, और शंखिनी, द ज्वालामालिनी, कराली, दुर्जया, रङ्गी, वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री, 'ख' काली, 'क' कुलालम्बी, अनुलोमा, 'द' पिण्डिनी, आ वेदिनी, इ रूपी, 'वै' शान्तिमूर्ति, कलाकुला, 'ऋ' खड्गिनी, 'ड' वचलिता, 'ऌ' कुला 'ॡ' सुभगा, वेदनादिनी, 'आ' कराली, 'अ' मध्यमा तथा 'अः' अपेतरया, इन शक्तियों का पीठ पर क्रमशः पूजन करना चाहिए ।। १०-१७ ।। 'स्खां, स्खीं, स्खौं महाभैरवाय नमः' यह महाभैरव का पूजन मन्त्र है ।। १८ ।। (अब शक्तियों के आठ अष्टकों का क्रमशः वर्णन किया जाता है)- अक्षोद्या, ऋक्षकर्णी, राक्षसी, क्षपणा क्षया, पिङ्गाक्षी, अक्षया और क्षेमा ये आठ शक्तियाँ ब्रह्माणी में स्थित हैं ।। १९ ।। इला, लीलावती, नीला, लङ्का, लङ्केश्वरी, लालसा, विमला तथा माला ये आठ शक्तियाँ माहेश्वरी में स्थित हैं ।। २० ।। हुताशना, विशालाक्षी,हुंकारी, बडवामुखी, हाहारवा, क्रूरा, क्रोधा, वाला तथा खरानना ये आठ शक्तियाँ कौमारी के देह से उत्पन्न हैं और पूजा करने पर हर प्रकार की सिद्धि प्रदान करने वाली हैं ।। २१।। सर्वज्ञा, तरला,तारा, ऋग्वेदा, हयानना सारासार स्वयंग्राहा और शाश्वती ये- वैष्णवी शक्ति के कुल में उत्पन्न हैं ।। २२ ।। तालुजिह्वा, रक्ताक्षी, विद्युज्जिह्वा, करङ्किणी, मेघनादा, प्रचण्डोग्रा, कालकर्णी और कलिप्रिया ये शक्तियाँ वाराही शक्ति के कुल में उत्पन्न हैं और विजय प्राप्ति की इच्छा वाले को इनकी पूजा करनी चाहिए ।। २३-२४ ।। चम्पा, चम्पावती, प्रचम्पा, ज्वलितानना

बृहत्कुक्षी विद्युता विश्वरूपिणी ॥ २६ ॥ चामुण्डाकुलसम्भूता मण्डले पूजिता जये । यमजिह्वा जयन्ती च दुर्जया च यमान्तिका॥२७॥ विडाली रेवती चैव जया च विजया तथा । महालक्ष्मी कुले जाता अष्टाष्टकमुदाहृतम् ॥ २८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽत्रष्टाष्टकदेवीकथनं नाम षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽत्रध्यायः ॥ १४६ ॥

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्वरितापूजादि

ईश्वर उवाच– **ॐगुह्यकुब्जिके हुंफट्, मम सर्वोपद्रवान्यन्त्रमन्त्रतन्त्रचूर्णप्रयोगादिकं येन कृतं कारितं कुरुते करिष्यति कारयिष्यति तान्सर्वान्हन हन दंष्ट्राकरालिनि हैं ह्रीं हूं गुह्यकुब्जिकायै स्वाहा ह्रौम्, ॐ खे वों गुह्यकुब्जिकायै नमः ॥ १ ॥ ह्रीं सर्वजनक्षोभणी जनानुकर्षिणी ततः । ॐ खे ख्यां सर्वजनवशंकरी तथा स्याज्जनमोहिनी ॥ २ ॥ ॐ ख्यौं सर्वजनस्तम्भनी ऐं खं खां क्षोभणी तथा । ऐं त्रितत्त्वं बीजं श्रेष्ठं कुले पञ्चाक्षरी तथा ॥ ३ ॥ फं श्रीं क्षीं श्रीं ह्रीं क्षे वच्छे क्षे क्षे हूं फट् ह्रीं नमः । ॐ ह्रां क्षे वच्छे क्षे क्षों ह्रीं फट् ॥ ४ ॥ नवेयं त्वरिता प्रोक्ता पुनर्ज्ञेयाऽर्चिता जये । ह्रौं सिंहायेत्यासनं स्याद्धीं क्षे हृदयमीरितम् ॥ ५॥ वच्छेऽथ शिरसे स्वाहा त्वरितायाः शिरः स्मृतः । क्षें ह्रीं शिखायै वौषट् स्याद्भवेत्क्षें कवचाय हुम॥६॥ हूं नेत्रत्रयाय वौषड्ह्रींमन्तं च फडन्तकम् । ह्रींकारी खेचरी चण्डा छेदनी क्षोभणी क्रिया ॥ ७ ॥ क्षेमकारी च ह्रींकारी फट्कारी नव शक्तयः । अथ दूतीः प्रवक्ष्यामि पूज्या इन्द्रादिगाश्च ताः॥ ८ ॥ ह्रीं नले बहुतुण्डे च खगे ह्रीं खेचरे ज्वालिनि ज्वल ख खे छ च्छे शवविभीषणे**

पिशाची, पिचुवक्त्रा तथा लोलुपा ये शक्तियाँ इन्द्राणी से उत्पन्न हैं ।। २५ ।। पावनी, याचनी, वामनी, दमनी, विन्दुवेला, वृहत्कुक्षि विद्युता और विश्वरूपिणी ये शक्तियाँ चामुण्डा के कुल में उत्पन्न है। तथा विजयार्थी के लिए पूज्य हैं ।। २६ ।। यमजिह्वा, जयन्ती,दुर्जया, यमन्तिका,विडाली, रेवती, जया तथा विजया ये महालक्ष्मी के कुल में उत्पन्न हैं। इस तरह से शक्तियों के आठ अष्टक का वर्णन किया गया है ।। २७-२८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण के अग्निपुराण अष्टाष्टक देवी वर्णन नामक एक सौ छियालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १४६ ॥

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं त्वरिता देवी गुप्त अंगों तथा तत्त्वों को बतला रहा हूँ । ओं गुह्यकुब्जिके हूँ फट् ....गुह्यकुब्जिकायै नमः ।। १ ।। इस मन्त्र से गुह्य कुब्जिका का पूजन तथा जप करना चाहिए । 'ह्रीं सर्वजनक्षोभणी, जनानुकर्षिणी...............ओं ह्रां क्षे वच्छे क्षे-क्षें क्षौ ह्रीं फट् ।। २-४ ।। यह नवीन त्वरिता कही गयी है । इसे बारंबार जपना चाहिए । पूजा करने पर यह विजय प्रदान करने वाली होती है । 'ह्रौं सिंहाय नमः' इस मन्त्र से आसन की पूजा करके देवी को सिंहासन समर्पित करना चाहिए । 'ह्री क्षे हृदयाय नमः' इस मन्त्र से हृदय का स्पर्श करें । वच्छेऽथशिरसे स्वाहा' इस मन्त्र से शिर का स्पर्श करें । यह त्वरिता मन्त्र का शिरोन्यास बतलाया गया है । 'क्षें ह्रीं शिखायै वौषट्' इस मन्त्र से शिखा का स्पर्श करें । 'क्षें कवचाय हुम्' इस मन्त्र से दोनों भुजाओं का स्पर्श करना चाहिए । 'हूं नेत्रत्रयाय वौषट्' इस मन्त्र से दोनों नेत्रों तथा ललाट के मध्य भाग का स्पर्श करना चाहिए । 'ह्रीं अस्त्राय फट्' इस मन्त्र से अस्त्र न्यास करना चाहिए ।। ५-६-१/२ ।। ह्रींकारी, खेचरी, चण्डा, छेदनी, क्षोभणी, क्रिया, क्षेमकारी, ह्रींकारी, तथा फट्कारी ये नव शक्तियाँ हैं ।। ७ ।। अब मैं दूतियों

च च्छे चण्डे छेदनि करालि ख खे छे खे खरहाङ्गी ह्वीं क्षे वच्क्षे कपिले ह क्षे हूं क्रूं तेजीवति रौद्रि मातः ह्वी फे बे फेफे वक्त्रे वरी फे पुटि पुटि घोरे ह्रूं फट् ब्रह्म वेतालि मध्ये ॥ ९ ॥ गुप्ताङ्गानि च तत्वानि त्वरितायाः पुनर्वदे । ह्वौं हूं हः हृदये प्रोक्तं ह्वीं ह्वश्च शिरः स्मृतम् ॥ १० ॥ फां ज्वल ज्वलेति च शिखा वर्म इले ह्वं हुं हुम् । क्रौं क्षूं श्रीं नेत्रमित्युक्तं क्षौमस्त्रं वै ततश्च फट् ॥ ११ ॥ हु खे वच्छे क्षेः, ह्वीं क्षें हुं फट् वा ॥ हुं शिरश्चैवमध्ये स्यात्पूर्वादौ खे सदा शिवे ॥ १२ ॥ व ईशश्छे मनोन्मानी मक्षे तार्क्षो ह्रीं च माधवः ॥ क्षें ब्रह्मा हुं तथाऽऽदित्यो दारुणं फट् स्मृताः सदा ॥ १३॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्वरितापूजादिविधिकथनं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

अथाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सङ्ग्रामविजयपूजा

ईश्वर उवाच– ॐ डे ख ख्यां सूर्याय सङ्ग्रामविजयाय नमः । ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रीं ह्रः ॥ १ ॥ षडङ्गानि तु सूर्यस्य सङ्ग्रामे जयदस्य हि ॥ २॥ ॐ हं खं खौल्काय स्वाहा । स्फूं, ह्रूं हुं क्रूम्, ॐ ह्रों क्रेम् ॥ ३ ॥ प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम् । धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्याद्यष्टकं यजेत् ॥ ४ ॥ अनन्तासनं सिंहासनं पद्मासनमतः परम् । कर्णिका केशराण्येव सूर्यसोमाग्निमण्डलम् ॥ ५ ॥ दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला तथा । अमोघा विद्युता पूज्या नवमी सर्वतोमुखी ॥ ६ ॥ सत्त्वं रजस्तमश्चैव प्रकृतिं पुरुषं तथा । आत्मानं चान्तरात्मानं परमात्मानमर्चयेत् ॥ ७ ॥

का वर्णन कर रहा हूँ, उन सबों का पूर्व आदि दिशाओं में पूजन करना चाहिए ।। ८ ।। ह्रीं नले बहुतुण्डे च खगे ह्रीं खेचरे...........फट् ब्रह्मवेतालिमध्ये ।। ९ ।। अब मैं त्वरिता देवी के गुप्त अंगों तथा तत्त्वों का पुनः वर्णन कर रहा हूँ । 'ह्रौं हूं ह्रः हृदयाय नमः' इससे हृदय का न्यास करें । ह्रीं ह्रः शिरसे स्वाहा' इस मन्त्र से शिरोन्यास करें । 'फां ज्वल ज्वल शिखायै वौषट् इस इस मन्त्र से शिखा का न्यास करे । 'इले ह्व हु कवचाय हुम्' इस मन्त्र से कवच का न्यास करे । 'क्रों क्षूं श्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्' इस मन्त्र से नेत्र तथा ललाट के मध्य भाग का स्पर्श करे। 'क्ष्रौं अस्त्राय फट्' इस मन्त्र से अस्त्र न्यास करना चाहिए ।। १०-११ ।। मध्य में हुं स्वाहा लिखकर उसके पूर्वादि आठों दिशाओं में या तो 'हुं से वच्छे, क्षेः ह्रीं क्षे हूं फट्' इस मन्त्र के अक्षरों को क्रमशः लिखे अथवा खे सदाशिवे, व ईशः, छे मनोन्मनी, मक्षेतार्क्षः, ह्रीं माधवः, क्षें ब्रह्मा, हुम् आदित्यः, दारुणं फट्' को क्रमशः पूर्वादि दिशाओं में लिखकर पूजन करे । ये आठों दिशाओं में पूजनीय देवता बतलाए गए हैं ।। १२-१३ ।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का त्वरिता के पूजा आदि वर्णन नामक एक सौ सैंतालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १४७ ॥

श्रीशिवजी ने कहा– अब मैं संग्राम में विजय प्रदान करने वाले सूर्य देव के पूजन का वर्णन करता हूँ । 'ओं डे ख ख्यां सूर्याय संग्राम विजयाय नमः । यह सूर्य के पूजन का मन्त्र है । ह्रां, ह्री, ह्रूं, ह्रें, ह्रीं, ह्रः यह संग्राम में विजय देने वाले सूर्य का षडङ्ग है । अर्थात् इन मन्त्रों द्वारा षडङ्गन्यास करना चाहिए ।। १-२ ।। ओं हं खं ख खौल्काय नमः ।' यह पूजन का मन्त्र है । 'स्फूं हूं हुं क्रूं ओं ह्रों क्रेम् ।' यह छह अंग न्यास के बीज मन्त्र हैं ।। ३ ।। पीठ स्थान में प्रभूत, विमल, सार, आराध्य एवं परमसुख का पूजन करना चाहिए । पीठ के पायों तथा चारों दिशाओं में धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य का पूजन करना चाहिए ।। ४ ।। इसके पश्चात् अनन्तासन, सिंहासन एवं पद्मासन का पूजन करना चाहिए। उसके पश्चात् कर्णिका एवं केसर की पूजा करके सूर्यमण्डल, सोममण्डल तथा अग्निमण्डल की पूजा करनी चाहिए ।। ५ ।। उसके पश्चात् दीप्ता, सूक्ष्मा जया भद्रा, विभूति, विमला अमोघा,

सर्वे सिन्धुसमायुक्ता मायानिलसमन्विताः । उषा प्रभा च सन्ध्या च साया माया बलान्विताः ॥ ८ ॥ विन्दुविष्णुसमायुक्ता द्वारपालास्तथाऽष्टकम्। सूर्यं चण्डं प्रचण्डं च पूजयेद्गन्धकादिभिः ॥ पूजया जपहोमाद्यैर्युद्धादौ विजयो भवेत् ॥ ९ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सङ्ग्रामविजयपूजाकथनं नामाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

अथैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

अयुत लक्षकोटिहोमः

ईश्वर उवाच– होमाद्रणादौ-विजयो राज्याप्तिर्विघ्ननाशनम् । कृच्छ्रेण-शुद्धिमुत्पाद्य प्राणयामशतेन च ॥ १ ॥ अन्तर्जले च गायत्रीं जप्त्वा षोडशाधाऽऽचरेत् । प्राणायामांश्च पूर्वाह्णे जुहुयात्पावके हविः ॥ २ ॥ भैक्ष्ययावकभक्षी च फलमूलाशनोऽपि वा । क्षीर सक्तु घृताहार एकमाहारमाश्रयेत्॥३॥ यावत्समाप्तिर्भवति लक्षहोमस्य पार्वति । दक्षिणा लक्षहोमान्ते गावो वस्त्राणि काञ्चनम् ॥ ४ ॥ सर्वोत्पातसमुत्पत्तौ पञ्चभिर्दशभिर्द्विजैः । नास्ति लोके स उत्पातो यो ह्यनेन न शाम्यति ॥ ५ ॥ मङ्गल्यं परमं नास्ति यदस्मादतिरिच्यते । कोटिहोमं तु यो राजा कारयेत्पूर्ववद्द्विजैः । न तस्य शत्रवः संख्ये जातु तिष्ठन्ति कर्हिचित् । अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः शुकाः ॥ ७ ॥ राक्षसाद्याश्च शाम्यन्ति सर्वे च रिपवो रणे । कोटिहोमे तु वरयेद्ब्राह्मणान्विंशतिंतथा ॥ ८ ॥ शतं चाथ सहस्त्रं वा यथेष्टां भूतिमाप्नुयात् । कोटिहोमं तु यः कुर्याद्द्विजो भूपोऽथ वा च विट् ॥ ९ ॥ यदिच्छेत्प्राप्नुयात्तत्तत्सशरीरो दिवं व्रजेत् । गायत्र्या ग्रहमन्त्रैर्वा कूष्माण्डैर्जातवेदसैः ॥ १०॥ ऐन्द्रवारुणवायव्ययाम्याग्नेयैश्च

विद्युता तथा सर्वतोमुखी इन नव शक्तियों का पूजन करना चाहिए ।। ७ ।। ये सभी अनुस्वार से युक्त आदि अक्षर से युक्त होकर तथा अन्त में नमः पद के साथ चतुर्थ्यन्त होकर पूजा के मन्त्र हो जाते हैं । जैसे सं सत्त्वाय नमः इत्यादि । फिर उसी प्रकार से उषा, प्रभा, सन्ध्या, साया, माया, बला, विन्दु, विष्णु और आठ द्वारपालों की पूजा करनी चाहिए । उसके पश्चात् गन्ध आदि से सूर्य, चण्ड तथा प्रचण्ड की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार से पूजा, जप तथ होम करने से युद्ध आदि में विजय की प्राप्ति होती है ।। ८-९ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का संग्रामविजय पूजा वर्णन नामक एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १४८ ॥

श्रीशिवजी ने कहा– होम से रण आदि में विजय प्राप्ति, राज्य की प्राप्ति तथा विघ्न का विनाश होता है । उपवास तथा सौ बार प्राणायाम के द्वारा आत्मशुद्धि करके, जल के भीतर गायत्री का जप करके सोलह बार प्राणायाम करे । पूर्वाह्नकाल में अग्नि में हविष्य का हवन करना चाहिए ।। १-२ ।। इस कार्य में भिक्षा माँगकर जौ का एक शाम भोजन कर अथवा फल, मूल दुग्ध, सत्तू, या घी का एक ही बार भोजन करे ।। ३ ।। हे पार्वति ! यह सब तक तव करें जब तक एक लाख होम न हो जाय । लक्षहोम की पूर्ति के अन्त में गाय, वस्त्र तथा सुवर्ण की दक्षिणा देनी चाहिए ।। ४ ।। अनेक प्रकार के यदि उत्पात होने लगें तो इस कार्य को पाँच अथवा दस ब्राह्मणों से करवाना चाहिए । संसार में कोई भी ऐसा उत्पात नहीं है जो लक्षहोम से शान्त न हो जाय ।। ५ ।। इससे बढ़कर कोई भी मङ्गलकारक वस्तु नहीं है । इस प्रकार से जो राजा ब्राह्मणों द्वारा कोटि होम करवाता है, संग्राम में उसके सामने कोई भी शत्रु टिक नहीं पाता है । उसके राज्य में न तो अतिवृष्टि, अनावृष्टि होते हैं, न तो चूहे, टिड्डी एवं शुकों का उत्पात होता है । उसके राज्य के राक्षस आदि शान्त हो जाते है। और युद्ध में सभी शत्रु भी शान्त हो जाते हैं ।। ६-७ ।। कोटिहोम में बीस ब्राह्मणों का वरण करना चाहिए ।। ८ ।। अथवा अपनी शक्ति के अनुसार सौ या एक हजार ब्राह्मणों का वरण करें । जो ब्राह्मण, या राजा या वैश्य

वैष्णवैः । शाक्तेयैः शाम्भवैः सोरैर्मन्त्रैर्होमार्चनात्ततः ॥ अयुतेनाल्पसिद्धिः स्याल्लक्षहोमोऽखिलार्तिनुत्। सर्वपीडादि (वि) नाशाय कोटिहोमोऽखिलार्थदः॥ यवव्रीहितिलक्षीरघृतकुशप्रसातिकाः । पङ्कजोशीरबिल्वाम्रदला होमे प्रकीर्तिताः ॥ १३ ॥ अष्टहस्तप्रमाणेन कोटिहोमेषु खातकम् । तस्यार्धप्रमाणेन लक्षहोमे विधीयते ॥ १४ ॥ होमोऽयुतेन लक्षेण कोट्याद्याज्यैः प्रकीर्तितः ॥ १५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽयुतलक्षकोटिहोमकथनं नामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

अथ पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

मन्वन्तराणि

अग्निरुवाच– **मन्वन्तराणि वक्ष्यामि आद्यः स्वायंभुवो मनुः । आग्नीध्राद्यास्तस्य सुता यमो नाम तदा सुराः ॥ १ ॥ और्वाद्याश्च सप्तर्षय इन्द्रश्चैव शतक्रतुः । पारावताः सतुषिता देवाः स्वारोचिषेऽन्तरे ॥ २ ॥ विपश्चित्तत्र देवेन्द्र ऊर्जस्तम्भादयो द्विजाः । चैत्रकिंपुरुषाः पुत्रास्तृतीयश्चोत्तमो मनुः ॥ ३ ॥ सुशान्तिरिन्द्रो देवाश्च सुधामाद्या वशि (सि) ष्ठजाः । सप्तर्षयोऽजाद्याः पुत्राश्चतुर्थस्तामसो मनुः ॥ ४ ॥ स्वरूपाद्याः सुरगणाः शिखरीन्द्रः सुरेश्वरः । ज्योतिर्होमादयो विप्राः नव ख्यातिमुखाः सुताः ॥ ५ ॥ रैवते वितथश्चेन्द्रो अमिताभास्तथा सुराः । हिरण्यरोमाद्या मुनयो बलबन्धादयः सुतः ॥ ६ ॥ मनोजवश्चाक्षुषेऽथ इन्द्रः स्वात्यादयः सुरा । सुमेधाद्याः महर्षयः पुरुप्रभृतयः सुताः ॥ ७ ॥ विवस्वतः सुतो विप्रः**

कोटि होम करते हैं, वे जो चाहते हैं वह सब कुछ उन्हें प्राप्त हो जाता है और अन्त में वे सशरीर स्वर्गलोक चले जाते हैं ।। ९ ।। गायत्री, ग्रहों के मन्त्र, कूष्माण्डों, जातवेदा, इन्द्र, वरुण, वायु, यम, अग्नि,विष्णु, शक्ति, शम्भु तथा सूर्य के मन्त्रों से होम कराकर इन देवताओं की अर्चना करनी चाहिए ।। १०-११ ।। दस हजार होम से अल्पसिद्धि होती है, लक्षहोम से सम्पूर्ण दुःखों का विनाश होता है । सभी कष्टों के विनाश तथा सम्पूर्ण सम्पत्तियों की प्राप्ति के लिए कोटि होम करना चाहिए ।। १२ ।। जौ, धन, तिल, दुग्ध, घी, कुश, प्रसातिका (छोटे दाने का चावल) कमल, खस, वेल की पत्ते तथा आम के पत्ते से होम बतलाया गया है ।। १३ ।। कोटिहोम में कुण्ड आठ हाथ का होना चाहिए । लक्षहोम में चार हाथ का ।। १४ ।। अयुत (दस हजार) या लक्ष (एक लाख) या कोटि (एक करोड़) होम घी आदि से करना चाहिए ।। १५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अयुतहोम, लक्षहोम तथा कोटिहोम वर्णन नामक एक सौ उनचसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १४९ ॥

अग्नि ने कहा– अब मैं मन्वन्तरों का वर्णन कर रहा हूँ । प्रथम स्वायम्भुव मनु हुए । आग्नीध्र आदि उनके पुत्र हुए और उस समय के देवता यम आदि थे ।। १ ।। और्व आदि सप्तर्षि हुए और इन्द्र शतक्रतु थे । दूसरे मन्वन्तर का नाम स्वारोचिष था । इस मन्वन्तर में पारावत और तुषित नाम के देवता थे । उनके चैत्र तथा किम्पुरुष आदि पुत्र थे । उस समय विपश्चित् नाम के इन्द्र और ऊर्जस्वन्त आदि सप्तर्षि थे । तीसरे उत्तम मनु हुए ।। ३ ।। उस समय सुशान्ति नामक इन्द्र, सुदामा आदि देवता तथा वसिष्ठ के पुत्र सप्तर्षि तथा उनके अज आदि पुत्र थे । चौथे तामस व मनु हुए ।। ४ ।। उस समय स्वरूप आदि देवता, शिखरीन्द्र नामक इन्द्र, ज्योतिर्होम आदि सप्तर्षि हुए तथा ख्याति आदि उनके नव पुत्र हुए ।। ५ ।। पाँचवें रैवत नामक मन्वन्तर में वितथ नामक इन्द्र, अमिताभ नामक देवता, हिरण्यरोमा आदि सप्तर्षि हुए तथा उनके बलवन्ध आदि पुत्र हुए ।। ६ ।। छठें चाक्षुष् नामक मन्वन्तर में मनोजव नामक इन्द्र, स्वाती आदि देवता सुमेधा आदि महर्षि तथा पुरु आदि उनके पुत्र हुए ।। ७ ।। इसके पश्चात् सातवें मनु विवस्वान (सूर्य) के पुत्र श्राद्धदेव नामक मनु हुए । उस समय, आदित्य, वसु तथा रुद्र आदि देवता, पुरन्दर

श्राद्धदेवो मनुस्ततः । आदित्यवसुरुद्राद्या देवा इन्द्रः पुरन्दरः ॥ ८ ॥ वसिष्ठ काश्यपोऽथात्रिर्जमदग्निः सगोतमः । विश्वामित्रभरद्वाजौ मुनयः सप्त साम्प्रतम् ॥ ९ ॥ इक्ष्वाकुप्रमुखाः पुत्रा अंशेन हरिराभवत् । स्वायंभुवे मानसोऽभूदजितस्तदनन्तरे ॥ १० ॥ सत्यो हरिर्देववरो वैकुण्ठो वामनः क्रमात् । छायाजः सूर्यपुत्रस्तु भविता चाष्टमो मनुः ॥ ११ ॥ पूर्वजस्य सवर्णोऽसौ सावर्णिर्भविताऽष्टमः । सुतपाद्या देवगणा दीप्तिमद्द्रौणिकादयः॥१२॥ मुनयो बलिरिन्द्रश्च विरजप्रमुखाः सुताः । नवमो दक्षसावर्णिः पाराद्याश्च तदा सुराः ॥ १३ ॥ इन्द्रश्चैवाद्भुतस्तेषां सवनाद्या द्विजोत्तमाः । घृतकेत्वादयः पुत्रा ब्रह्मसावर्णिरित्यतः ॥ १४ ॥ सुखादयो देवगणास्तेषां शान्तिः शतक्रतुः । हविष्याद्याश्च मुनयः सुक्षेत्राद्याश्च तत्सुताः ॥ १५॥ धर्मसावर्णिकश्चाथ विहङ्गाद्यास्तदा सुराः । गणश्चेन्द्रो निश्चराद्या मुनयः पुत्रका मनोः ॥ १६ ॥ सर्वत्र गाद्या रुद्राख्यः सावर्णिर्भविता मनुः । ऋतधामा सुरेन्द्रश्च हरिताद्याश्च देवताः ॥ १७ ॥ तपस्याद्याः सप्तर्षयः सुता वै देववन्मुखाः । मनुस्त्रयोदशो रौच्यःसूत्रामण्यादयः सुराः ॥ १८ ॥ इन्द्रो दिवस्पतिस्तेषां दानवादि विमर्दनः । निर्मोहाद्याः सप्तर्षयश्चित्रसेनादयः सुताः ॥ १९ ॥ मनुश्चतुर्दशो भौत्यः शुचिरिन्द्रो भविष्यति । चक्षुषाद्याः सुरगणाः अग्निबाह्वादयो द्विजाः ॥ २० ॥ चतुर्दशस्य भौत्यस्य पुत्रा ऊरुमुखा मनोः । प्रवर्तयन्ति वेदांश्च भुवि सप्तर्षयो द्विजाः॥२१॥ देवा यज्ञभुजस्ते तु भूर्मनुपुत्रैः पाल्यते । ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन्मनवस्तु चतुर्दश ॥ २२ ॥ इन्द्राद्याश्च हरिर्वेदं द्वापरान्ते विभेद सः । आद्यो वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसंमितः ॥ २३ ॥ एकश्चाऽऽसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्धा व्यकल्पयत् । आध्वर्यवं यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्हौत्रं तथा मुनिः ॥ २४ ॥ औद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वं चाप्यथर्वभिः। प्रथमो व्यासशिष्यस्तु पैलो ह्यृग्वेदपारगः॥२५॥ इन्द्रः प्रमतये प्रादाद्बाष्कलाय च संहिताम् । बौध्यादिभ्यो

नामक इन्द्र, वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र तथा भरद्वाज ये सप्तर्षि हुए, जो इस समय विद्यमान हैं ।। ९ ।। इनके इक्ष्वाकु आदि पुत्र हुए । इन सभी मन्वन्तरों में श्रीहरिके अंशावतार हुए । स्यायम्भुव मन्वन्तर में भगवान् मानस के नाम से अवतीर्ण हुए ।। १० ।। शेष छह मन्वन्तरों में क्रमशः अजित, सत्य, हरि, देववर,वैकुण्ठ तथा वामन रूप से श्रीहरि का अवतार होगा । आठवें सावर्णि मनु छाया के गर्भ से उत्पन्न सूर्य के पुत्र होंगे ।। ११ ।। अपने पूर्वज श्राद्धदेव के समान वर्ण वाले होने के कारण इन्हें सावर्णि मनु कहा जाता है । इनके समय में सुतपा आदि देवता परम तेजस्वी अश्वत्थामा आदि सप्तर्षि, बलि इन्द्र और इनके विरज आदि पुत्र होंगे ।। १२ ।। नवें मनु दक्षसावर्णि होंगे, और उस समय पर आदि देवता होंगे।।१३।। इस समय अद्भुत नामक इन्द्र तथा सवन आदि सप्तर्षि होंगे । उनके धृतकेतु आदि पुत्र होंगे । इसके पश्चात् दसवें ब्रह्मसावर्णि नामक मनु होंगे ।। १३-१४ ।। उस समय सुख आदि देवता तथा शान्ति नमाक इन्द्र होंगे । उस समय हविष्य आदि सप्तर्षि और सुक्षेत्र आदि उन मनु के पुत्र होंगे ।। १५ ।। ग्यारहवें मनु धर्म सावर्णी होंगे । उस समय विहंग आदि संज्ञक देवता होंगे। गणसंज्ञक इन्द्र निश्चर आदि सप्तर्षि तथा सर्वत्रग आदि मनुपुत्र होंगे । बारहवें मनु रुद्रसावर्णिसंज्ञक देवता होंगे ।। १६-१७ ।। तपस्य आदि सप्तर्षि होंगे तथा देववान् आदि मनु पुत्र होंगे। तेरहवें मनु रौच्य संज्ञक होंगे और सूत्रामणि आदि संज्ञक देवता होंगे । उन देवताओं के इन्द्र दिवस्पति होंगे जो दानवों आदि का विनाश करने वाले होंगे । उस समय के सप्तर्षि निर्मोह आदि होंगे। चित्रसेन आदि मनुपुत्र होंगे ।। १८-१९ ।। चौदहवें मनु भौत्यसंज्ञक होंगे । उस समय शुचिसंज्ञक इन्द्र, चाक्षुष आदि देवता तथा अग्निवाहु आदि सप्तर्षि होंगे । उरुमुख आदि उन मनु के पुत्र होंगे । उस समय सप्तर्षि द्विजगण पृथ्वी पर वेदों का प्रवर्तन करेंगे । देवता यज्ञभाग के भोक्ता होंगे तथा पृथिवी का पालन मनुपुत्र करेंगे । हे ब्रह्मन (वसिष्ठ) ब्रह्मा के एक दिन में ये चौदह मनु हुआ करते हैं ।। २०-२२ ।। ब्रह्मा के एक दिन में उतने ही इन्द्र आदि भी हुआ करते हैं । द्वापर युग के अन्त में श्रीहरि ने (नया स्वरूप धारण करके) वेदों का विभाजन किया । आदिवेद चार चरणों वाला था और उसमें एक लाख ऋचाएँ थीं ।। २३ ।। यजुर्वेद एक था महर्षि व्यास ने उसको चार भागों में विभक्त किया । उन्होंने अध्वर्यु का काम यजुर्भाग से किया, होता का

ददौ सोऽपि चतुर्धा निजसंहिताम् ॥ २६ ॥ यजुर्वेदतरोः शाखा सप्तविंशन्महामतिः । वैशम्पायननामाऽसौ व्यासशिष्यश्चकार वै ॥ २७ ॥ काण्वा वाजसनेयाद्या याज्ञवल्क्यादिभिः स्मृताः । सामवेदतरोः शाखा व्यासशिष्यः स जैमिनिः ॥ २८ ॥ सुमन्तुश्च सुकर्मा च एकैकां संहितां ततः । गृह्णाते च सुकर्माख्यः सहस्रं संहितां गुरुः ॥ २९ ॥ सुमन्तुश्चाथर्वतरुं व्यासशिष्यो बिभेद तम् । शिष्यानध्यापयामास पैप्पलादीन्सहस्रशः ॥ ३० ॥ पुराणसंहितां चक्रे सूतो व्यासप्रसादतः ॥ ३१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मन्वन्तरवर्णनं नाम पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

अथैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

वर्णेतरधर्माः

अग्निरुवाच– **मन्वादयो भुक्तिमुक्ति (क्ती) धर्मांश्चीर्त्वाऽऽप्नुवन्ति यान् । प्रोचे परशुरामाय वरुणोक्तांस्तु पुष्करः ॥ १ ॥** पुष्कर उवाच– **वर्णाश्रमेतराणां ते धर्मान्वक्ष्यामि सर्वदान् । मन्वादिभिर्निगदितान्वासुदेवादितुष्टिदान् ॥ २ ॥ अहिंसा सत्यवचनं दया भूतेश्वनुग्रहः । तीर्थानुसरणं दानं ब्रह्मचर्यममत्सरः ॥ ३ ॥ देवद्विजातिशुश्रूषा गुरूणां च भृगूत्तम । श्रवणं सर्वधर्माणां पितृणां पूजनं तथा ॥ ४ ॥ भक्तिश्च नृपतौ नित्यं तथा सच्छास्त्रनेत्रता । आनृशंस्यं तितिक्षा च तथा चाऽऽस्तिक्यमेव च ॥ ५ ॥ वर्णाश्रमाणां सामान्यं धर्माधर्मं समीरितम् । यजनं याजनं दानं**

कार्य ऋग्वेद की ऋचाओं के माध्यम से किया, उद्गाता का कर्म सामवेद के मन्त्रों से किया और ब्रह्मा का काम अथर्ववेद के मन्त्रों से होना निश्चित किया । व्यास जी के प्रथम शिष्य पैल ऋग्वेद में पारंगत हुए ।। २४-२५ ।। इन्द्र ने प्रमति तथा वाष्कल को संहिता का ज्ञान प्रदान किया । बौध्य ने भी अपनी संहिता को चार भागों में विभक्त करके अपनी संहिता प्रदान की ।। २६ ।। व्यास जी के महाबुद्धिमान शिष्य वैशम्पायन ने यजुर्वेद रूपी वृक्ष को सत्ताइस शाखाओं का विभाग किया ।। २७ ।। यजुर्वेद की काण्व शाखा तथा वाजसनेयी शाखा आदि का विभाग याज्ञवल्क्य आदि महर्षियों ने किया । सामवेद रूपी वृक्ष की शाखाओं का विस्तार ब्यासजी के शिष्य जैमिनि महर्षि ने किया ।। २८ ।। उसके पश्चात् सुमन्तु तथा सुकर्मा महर्षि ने एक-एक संहिता का विस्तार किया ।। २९ ।। व्यासजी के शिष्य सुमन्तु ने अथर्ववेदरूपी वृक्ष की शाखाओं का विभाग किया और उसका अध्ययन पैप्पल आदि हजारों शिष्यों को कराया ।। ३० ।। सूत जी ने व्यास जी की कृपा से पुराण संहिता की रचना की ।। ३१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का मन्वन्तर वर्णन नामक एक सौ पचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५० ॥

अग्नि देव ने कहा– जिन धर्मों का पालन करके मनु आदि राजर्षियों ने भोग तथा मोक्ष को प्राप्त किया, वरुण के द्वारा उनका उपदेश प्राप्त करके पुष्कर ने उनका उपदेश परशुराम जी को दिया।।१।। **पुष्कर ने कहा–** परशुराम जी ! मैं वर्ण धर्मों, आश्रम धर्मों तथा उनसे भिन्न धर्मों का वर्णन करूँगा जिनका उपदेश मनु आदि ने दिया है तथा वासुदेव आदि को प्रसन्न करने वाले हैं ।। २ ।। हे भृगुवर्य! सभी वर्णों तथा आश्रमों के सामान्य धर्म ये हैं- अहिंसा, सत्यभाषण, दया करना, सम्पूर्ण जीवों पर कृपा करना, तीर्थों का सेवन करना, दान देना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, मत्सरता का त्याग करना, देवता तथा ब्राह्मणों की सेवा करना, गुरुओं की सेवा करना, सभी धर्मों का श्रवण करना, पितरों का पूजन करना, मनुष्यों के स्वामी श्रीभगवान् में सदा भक्ति करना, सत्शास्त्रों का अध्ययन करना, क्रूरता का त्यग करना, सहनशीलता बनाए रखना तथा अस्तिकता । इन सबों से विपरीत अधर्म है ।। ३-५ ।। यज्ञ करना तथा यज्ञ कराना,

वेदाद्यध्यापनक्रिया ॥ ६ ॥ प्रतिग्रहं चा ध्ययनं विप्रकर्माणि निर्दिशेत् । दानमध्ययनं चैव यजनं च यथाविधि ॥ ७ ॥ क्षत्रियस्य सवैश्यस्य कर्मेदं परिकीर्तितम् । क्षत्रियस्य विशेषेण पालनं दुष्टनिग्रहः ॥ ८ ॥ कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यस्य परिकीर्तितम् । शूद्रस्य द्विजसुश्रूषाा सर्व शिल्पानि वाऽप्यथ ॥ ९ ॥ मौञ्जी बन्धनतो जन्म विप्रादेश्च द्वितीयकम् । अनुलोम्येन वर्णानां जातिर्मातृसमा स्मृता ॥ १० ॥ चण्डालो ब्राह्मणीपुत्रः शूद्राच्च प्रतिलोमतः । सूतस्तु क्षत्रियाज्जातो वैश्याद्वै देवलस्तथा ॥ ११ ॥ पुक्कसः क्षत्रियापुत्रः शूद्रात्स्यात्प्रतिलोमजः। मागधः स्यात्तथा वैश्याच्छूद्रादायोगवो भवेत् ॥ १२ ॥ वैश्यायां प्रतिलोमेभ्यः प्रतिलोमाः सहस्त्रशः । विवाहः सदृशैस्तेषां नोत्तमैर्नाधमैस्तथा ॥ १३ ॥ चण्डालकर्म निर्दिष्टं वध्यानां घातनं तथा । स्त्रीजीवनं तु तद्रक्षा प्रोक्तं वैदेहकस्य च ॥ १४ ॥ सूतानामश्वसारथ्यं पुक्कसानां च व्याधता । स्तुतिक्रिया मागधानां तथा चाऽऽयोगवस्य च ॥ १५ ॥ रङ्गावतरणं प्रोक्तं तथा शिल्पैश्च जीवनम् । बहिर्ग्राम विवासश्च मृतचेलस्य धारणम् ॥ १६ ॥ न संस्पर्शस्तथैवान्यैश्चण्डालस्य विधीयते । ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा देहत्यागोऽत्र यः कृतः ॥ १७ ॥ स्त्रीबालाद्युपपतौ वा बाह्यानां सिद्धिकारणम् । संकरे जातयो ज्ञेयाः पितुर्मातुश्च कर्मतः ॥ १८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वर्णेतरधर्मवर्णनं नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

दान देना तथा वेदों को पढ़ाना, दान लेना तथा अध्ययन करना ये ब्राह्मणों के कर्म बतलाए गए हैं । क्षत्रियों तथा सभी वैश्यों के धर्म हैं दान देना, अध्ययन करना, तथा विधिपूर्वक यज्ञ करना।।७।। प्रजा का पालन करना तथा दुष्टों का निग्रह करना ये दो कर्म क्षत्रियों के विशेष कर्म हैं । वैश्यों के सामान्य कर्म हैं- कृषि करना, गोरक्षा करना तथा व्यापार करना । द्विजों की सेवा करना तथा सभी प्रकर के शिल्पों को करना शूद्रों के कर्म हैं ।। ८-९ ।। मौञ्जी बन्धन (यज्ञोपवीत संस्कार) के द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों के बालकों का दूसरा जन्म होता है । अतएव वे द्विज कहलाते हैं । अनुलोम विवाह से उत्पन्न सन्तान की जाति माता की जाति के समान होती है ।। १० ।। प्रतिलोम विवाह से ब्राह्मणी में उत्पन्न शूद्र का पुत्र चाण्डाल होता है । क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न पुत्र सूत कहलाता है तथा वैश्य से ब्राह्मणी में उत्पन्न पुत्र देवल कहलाता है ।। ११ ।। क्षत्रिया माता के गर्भ से विलोम विवाह से उत्पन्न शूद्र का पुत्र पुक्कस कहलाता है। क्षत्रियों में उत्पन्न वैश्य पिता का पुत्र मागध तथा वैश्या में उत्पन्न शूद्र पिता का पुत्र प्रतिलोम विवाह जन्य आयोगव कहलाता है ।। १२ ।। पुनः प्रतिलोम विवाहों से उत्पन्न प्रतिलोम पुत्रों की संख्या हजारों है । समान जातियों में ही विवाह होना चाहिए न तो उत्तमों के साथ विवाह करना चाहिए और न तो अधमों के साथ ।। १३ ।। वध करने के योग्य जीवों का बध करना चाण्डाल का कर्म बतलाया गया है । वैदेहक का कर्म स्त्रियों के जीवन की रक्षा करना कहा गया ।। १४ ।। सूतों का कर्म सारथि का काम करना तथा आखेट करना है । मागधों का कर्म स्तुति करना है । आयोगव का कर्म रंगावतरण तथा शिल्प के द्वारा जीवन यापन करना है ।। १५ ।। चाण्डाल को ग्राम के बाहर निवास करना चाहिए, मुर्दे का कपड़ा धारण करना चाहिए तथा दूसरों का स्पर्श नहीं करना चाहिए । ब्राह्मण तथा गौ के लिए देहत्याग करना तथा स्त्री, बालक आदि की रक्षा के लिए देह त्याग करना वर्ण बाह्यों की सिद्धि का कार्य होता है । पिता तथा माता के कर्मों से वर्णसंकर जातियों को जानना चाहिए ।। १६-१८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का वर्णेत्तरधर्म का वर्णन नामक एक सौ एकावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५१ ॥

अथद्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

गृहस्थवृत्तिः

पुष्कर उवाच— **आजीवं तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा । क्षत्रविट्शूद्रधर्मेण जीवन्नैव तु शूद्रजात् ॥ १ ॥ कृषिवाणिज्यगौरक्ष्यं कुसीदं च द्विजश्चरेत् । गोरसं गुडलवणलाक्षामांसानि वर्जयेत् ॥ २ ॥ भूमिं भित्त्वौषधीश्छित्त्वा हत्वाकीटपिपीलिकान् । पुनन्ति खलु यज्ञेन कर्षका देवपूजनात् ॥ ३ ॥ हलमष्टगवं धर्मं षड्गवं जीवितार्थिनाम् । चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं धर्मघातिनाम् ॥ ४ ॥ ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा । सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्या कदाचन ॥ ५ ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गृहस्थवृत्तिवर्णनं नाम द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

अथत्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मचर्याद्याश्रमधर्माः

पुष्कर उवाच— **धर्ममाश्रमिणां वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु । षोडशर्तुर्निशाः स्त्रीणामाद्यास्तिस्रस्तु गर्हिताः ॥ १ ॥ व्रजेद्युग्मासु पुत्रार्थी कर्माऽऽधानिकमिष्यते । गर्भस्य स्पष्टताज्ञाने सवनं स्पन्दनात्पुरा ॥ २ ॥ षष्टेऽष्टमे वा सीमन्तं पुत्रीयं नामभं शुभम् । अच्छिन्ननाड्यां कर्तव्यं जातकर्म विचक्षणैः ॥ ३ ॥ अशौचे तु व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते । शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु ॥ ४ ॥ गुप्तदासात्मकं नाम**

पुष्कर ने कहा— ब्राह्मण अपने जीवन पर्यन्त अपने शास्त्रीय कर्म के द्वारा अथवा उसे क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के कर्म से जीवन निर्वाह करना चाहिए किन्तु कभी भी केवल शूद्र के धर्म से जीवन का निर्वाह नहीं करना चाहिए ।। १ ।। द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) को कृषि, व्यापार, गौ की रक्षा तथा लेन-देन का काम करना चाहिए किन्तु गोरस, गुड़, नमक, लाह तथा मांस का व्यापर नहीं करना चाहिए ।। २ ।। भूमि को जोतकर, औषधियों को काटने तथा इन कार्यों में कीड़े तथा चिंटी के मारने से होने वाले पाप से शुद्धि किसानों की यज्ञ करने तथा देवपूजन करने से होती है ।। ३ ।। आठ बैलों से हल चलाना धार्मिक है । जीविका चलाने वालों के लिए छह बैलों का हल धार्मिक है । क्रूर व्यक्ति हल में चार बैलों को जोतते हैं और धर्मघाती जीव हल में केवल दो बैल जोतते हैं ।। ४ ।। ब्राह्मण ऋत तथा अमृत से जीविका चलाए, अथवा जीवित और प्रमृत से जीविका चलाए अथवा सत्य एवं प्रभृत से जीविका चलाए किन्तु श्वान वृत्ति से जीविका नहीं चलाए ।। ५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का गृहस्थवृत्ति वर्णन नामक एक सौ बावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५२ ॥

पुष्कर ने कहा— अब मैं विभिन्न आश्रम के लोगों के धर्मों का वर्णन करूँगा जो भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है । स्त्रियों की रजस्वला होने से लेकर सोलह रात्रियाँ ऋतुकाल (गर्भाधान) के योग्य होती हैं । उनमें प्रथत तीन रात्रियाँ निन्दित होती हैं ।। १ ।। गर्भाधान काल में पुत्रार्थी को युग्म संख्या वाली रात्रियों में स्त्री समागम करना चाहिए । गर्भाधान हो गया इस बात का स्पष्ट रूप से ज्ञान हो जाने पर, गर्भ के स्पन्दन करने से पहले ही पुंसवन संस्कार करना चाहिए । गर्भ के छठें अथवा आठवें मास में सीमन्तोन्नयन संस्कार करना चाहिए । उस दिन पुल्लिंगसंज्ञक

प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः । बालं निवेदयेद्भर्त्रे तव पुत्रोऽयमित्युत ॥ ५ ॥ यथाकुलं तु चूड़ाकृद्ब्राह्मणस्योपनायनम् । गर्भाष्टमोऽष्टमे वाऽब्दे गर्भादेकादशे नृपे ॥ ६ ॥ गर्भात्तु द्वादशे वैश्ये षोडशाब्दादितो नहि । मुञ्जानां वल्कलानां तु क्रमान्मौञ्ज्यः प्रकीर्तिताः ॥ ७ ॥ मार्गवैयाघ्रवास्तानि चर्माणि व्रतचारिणाम् । पर्णपिप्पलबिल्वानां क्रमाद्दण्डाः प्रकीर्तिताः ॥ ८ ॥ केशदेशललाटास्यतुल्याः प्रोक्ताः क्रमेण तु । अवक्राः सत्वचः सर्वे नाग्निप्लुष्टास्तु दण्डकाः ॥ ९ ॥ वासोपवीते कार्पासक्षौमोर्णानां यथाक्रमम् । आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षितम् ॥ १० ॥ प्रथमं तत्र भिक्षेत यत्र भिक्षं ध्रुवं भवेत । स्त्रीणाममन्त्रतस्तानि विवाहस्तु समन्त्रकः ॥ ११ ॥ उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः । आचारमग्निकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च ॥ १२ ॥ आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः । श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ् क्त उदङ्मुखः ॥ सायं प्रातश्च जुहुयान्नामेध्यं व्यस्तहस्तकम् । मधुमांसं जनैः सार्धं गीतं नृत्यं च वै त्यजेत् ॥ १४ ॥ हिंसां परापवादं वा अश्लीलं च विशेषतः। दण्डादि धारयेन्नष्टमप्सु क्षिप्त्वाऽन्यधारणम् ॥ १५ ॥ वेदस्वीकरणं कृत्वा स्नायाद्वै दत्तदक्षिणः । नैष्ठिको ब्रह्मचारी वा देहान्तं निवसेद्गुरौ ॥ १६ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ब्रह्मचर्याद्याश्रमवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

शत्रु नक्षत्र होना चाहिए। विज्ञ पुरुष को चाहिए कि वह पुत्र के बालच्छेदन से पहले ही उसका जातकर्म संस्कार करे ।। २-३ ।। जनना शौच के समाप्त हो जाने पर पुत्र का नामकरण संस्कार करना चाहिए । ब्राह्मण के नाम के अन्त में शर्मा तथा क्षत्रिय के नाम के अन्त में वर्मा शब्द जोड़ना चाहिए ।। ४ ।। वैश्य के नाम के अन्त में गुप्त तथा शूद्र के नाम के अन्त में दास शब्द जोड़ना चाहिए । इस संस्कार को करते समय पत्नी पुत्र को 'यह आपका पुत्र है' यह कहकर पति की गोद में दे दे ।। ५ ।। कुलाचार के अनुसार पुत्र का चूड़ाकरण संस्कार करना चाहिए । ब्राह्मण का उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार गर्भ के अथवा जन्म के आठवें वर्ष में करना चाहिए । क्षत्रिय बालक का गर्भ के ग्यारहवें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार करना चाहिए । गर्भ के बारहवें वर्ष में वैश्य का यज्ञोपवीत संस्कार करना चाहिए । किन्तु यज्ञोपवीत संस्कार सोलहवें वर्ष के बाद में नहीं करना चाहिए । वर्णों की मेखला क्रमशः मुञ्ज अथवा बल्कल की होनी चाहिए।।६-७।। ब्रह्मचारियों के चर्म वर्णानुसार क्रमशः मृग, व्याघ्र तथा बकरे का होना चाहिए । उनके दण्ड भी क्रमशः पलाश, पिप्पल तथा विल्व के होने चाहिए ।। ८ ।। ब्राह्मण का दण्ड उसके केश तक, क्षत्रिय का ललाट तक तथा वैश्य का मुख तक लम्बा दण्ड होना चाहिए । सबों के दण्डों को सीधा, छाल से युक्त तथा अग्नि से नहीं जले हुए होना चाहिए ।। ९ ।। उनके वस्त्र तथा यज्ञोपवीत को क्रमशः कपास, रेशम तथा ऊन का होना चाहिए । भिक्षाटन के समय ब्राह्मण ब्रह्मचारी वाक्य के आदि में भवत् शब्द का प्रयोग करे, क्षत्रिय ब्रह्मचारी मध्य में तथा वैश्य ब्रह्मचारी अन्त में ।। १० ।। पहले उससे भिक्षा माँगे जिससे भिक्षा मिलना निश्चित हो । स्त्रियों के सभी संस्कार विना मन्त्र के होते हैं, केवल विवाह संस्कार समन्त्र होते हैं ।। ११ ।। आचार्य शिष्य का उपनयन संस्कार करके उसे पवित्र रहने की शिक्षा दे । फिर उसे सदाचार, अग्निहोत्र तथा सन्ध्योपासन की शिक्षा दे ।। १२ ।। पूर्वाभिमुख भोजन करने वाला आयुष्य का उपभोग करता है, दक्षिणाभिमुख भोजन करने वाला यश का, पश्चिमाभिमुख भोजन करने वाला लक्ष्मी का तथा उत्तराभिमुख भोजन करने वाला सत्य का ।। १३ ।। प्रतिदिन सायंकाल एवं प्रातःकाल होम करना चाहिए, अग्नि में अपवित्र वस्तु न डालें, होम करते समय अंगुलियों को सटाए रहे । ब्रह्मचारी को मदिरापान मांस भोजन तथा लोगों के साथ नृत्य करना तथा गीत गाना इत्यादि त्याग देना चाहिए ।।१४।। विशेष रूप से उसे हिंसा, दूसरे की निन्दा तथा अश्लील बातों को त्यागना चाहिए । वह सदा दण्ड धारण किए रखे । दण्ड के नष्ट हो जाने पर उसे जल में डाल दे और दूसरा दण्ड धारण कर ले।। १५ ।। वेदाध्ययन पूरा हो जाने पर वह गुरु को दक्षिणा देकर व्रतान्त स्नान करे अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर आजीवन गुरुकुल में निवास करे।। १६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का ब्रह्मचर्याश्रम वर्णन नामक एक सौ तिरपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५३ ॥

अथ चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

विवाह वर्णनम्

पुष्कर उवाच– **विप्रश्चतस्रो विन्देत भार्यास्तिस्रस्तु भूमिपः । द्वे च वैश्यो यथाकामं भार्यैकामपि चान्त्यजः ॥ १ ॥ धर्मकार्याणि सर्वाणि न कार्याण्यसवर्णया। पाणिग्राह्यः सवर्णासु गृह्णीयात्क्षत्रिया शरम् ॥ २ ॥ वैश्या प्रतोदमादद्याद्दशां वै चान्त्यजा तथा । सकृत्कन्या प्रदातव्या हरंस्तां चौरदण्डभाक् ॥ ३ ॥ अपत्यविक्रयासक्ते निष्कृतिर्न विधीयते । कन्यादानं शचीयोगो विवाहोऽथ चतुर्थिका ॥ ४ ॥ विवाहमेतत्कथितं नाम कर्मचतुष्टयम् । नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ ॥ ५ ॥ पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते । मृते तु देवरे देया तदभावे यथेच्छया॥६॥ पूर्वात्रितयमाग्नेयं वायव्यं चोत्तरात्रयम् । रोहिणी चेति चरणे भगणः शस्यते सदा ॥ ७ ॥ नैकगोत्रां तु वरयेन्नैकार्षेयां च भार्गव। पितृतः सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पञ्चमात्तथा ॥ ८ ॥ आहूय दानं ब्राह्मं स्यात्कुलशीलयुताय तु । पुरुषांस्तारयेत्तज्जो नित्यं कन्याप्रदानतः ॥ ९ ॥ तथा गोमिथुनादानाद्विवाहस्त्वार्ष उच्यते । प्रार्थिते दीयते यस्य प्राजापत्यः स धर्मकृत् ॥ १० ॥ शुल्केन चाऽऽसुरो मन्दो गान्धर्वो वरणान्मिथः । राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाच्छलात् ॥ ११ ॥ वैवाहिकेऽह्नि कुर्वीत कुम्भकारमृदा शचीम्। जलाशये तु तां पूज्य वाद्याद्यैः तां गृहं नयेत् ॥ १२॥ प्रसुप्ते केशवे नैव विवाहः कार्य एव हि । पौषे चैत्रे कुजदिने रिक्ताविष्टितिथौ न च ॥ १३ ॥ न शुक्रजीवेऽस्तमिते न शशाङ्के ग्रहार्दिते । अर्कार्कि**

श्रीपुष्कर ने कहा– परशुरामजी ! ब्राह्मण अपनी कामना के अनुसार चार स्त्रियों से विवाह कर सकता है, क्षत्रिय तीन स्त्रियों से, वैश्य दो स्त्रियों से तथा शूद्र एक ही स्त्री से ।। १ ।। सभी धार्मिक कार्यों को अपनी सवर्णा स्त्री से ही करनी चाहिए असवर्णा स्त्री के साथ नहीं । सवर्णा स्त्री के साथ विवाह होते समय उसका हाथ पकड़ना चाहिए, क्षत्रिया स्त्री के साथ विवाह होते समय उसके हाथ में बाण पकड़ाए, वैश्या के हाथ में चाबुक तथा शूद्रा के हाथ में वस्त्र पकड़ाना चाहिए । कन्यादान एक बार ही करना चाहिए, कन्या का हरण करने वाला चोरी के दण्ड का पात्र होता है ।। ३ ।। जो अपनी कन्या (संतान) को बेंचता है, उसका पाप से कभी उद्धार नहीं होता । कन्यादान, शची योग (मातृपूजा) विवाह तथा चतुर्थी कर्म इन चारों कर्मों का एक ही नाम विवाह है ।। ४ ।। पति के मर जाने पर, सन्यासी हो जाने पर, नपुंसक हो जाने पर तथा पतित हो जाने पर, इन पाँच प्रकार की आपत्तियों में पत्नी को दूसरा पति करने का अधिकार है । पति के मर जाने पर उसका विवाह उसके देवर के साथ कर देना चाहिए यदि देवर न हो तो फिर किसी दूसरे के साथ उसका विवाह कर देना चाहिए ।। ५-६ ।। वर अथवा कन्या का वरण करने के लिए तीनों पूर्वा, आग्नेय (कृत्तिका) स्वाती तीनों उत्तरा तथा रोहिणी ये नक्षत्र शुभ माने गए हैं ।। ७ ।। परशुराम अपने समान गोत्र तथा समान प्रवर में उत्पन्न कन्या का वरण नहीं करना चाहिए । पिता से ऊपर की सात पीढ़ियों तथा माता से पाँच पीढ़ियों के बाद ही खानदान में उत्पन्न कन्या का वरण करना चाहिए ।। ८ ।। अच्छे कुल तथा शीलवान् वर को अपने घर पर बुलाकर कन्यादान देना ब्राह्मविवाह कहलाता है । उससे उत्पन्न बालक कन्यादानजनित पुण्य के प्रभाव से अपने पूर्वजों का उद्धार कर देता है ।। ९ ।। वर से एक गाय तथा एक बैल लेकर उसके बदले में कन्या प्रदान करने को आर्ष विवाह कहते हैं । जब किसी के याचना करने पर उसे कन्या प्रदान की जाती है तो उसे धार्मिक प्राजापत्य विवाह कहा जाता है ।। १० ।। कीमत लेकर जो कन्या प्रदान की जाती है उसे आसुर विवाह कहते हैं, यह नीच कर्म है । जब कन्या तथा वर परस्पर में एक दूसरे का वरण कर लेते हैं तो उसे गान्धर्व विवाह कहते हैं । युद्ध करके कन्या का हरण करने को राक्षस विवाह कहते हैं और छलपूर्वक कन्या का अपहरण कर लेने को पैशाच विवाह कहते हैं ।। ११ ।। विवाह के दिन कुम्हार के घर से मिट्टी लाकर शची (इन्द्राणी की मूर्ति बनानी चाहिए । उस मूर्ति की पूजा जलाशय पर करके बाजे-गाजे के साथ उसे घर लाना चाहिए । आषाढ़ से कार्तिक तक जब भगवान् विष्णु शयन करते हों तो विवाह नहीं

भौमयुक्ते भे व्यतीपातहते न हि ॥ १४ ॥ सौम्यं पित्र्यं च वायव्यं सावित्रं रोहिणी तथा । उत्तरात्रितयं मूलं मैत्रं पौष्णं विवाहभम् ॥ १५ ॥
मानुषाख्यस्तथा लग्नो मानुषख्यांशकः शुभः । तृतीये च तथा षष्ठे दशमैकादशेऽष्टमे ॥ १६ ॥ अर्कार्किचन्द्रतनयाः प्रशस्ता न कुजोऽष्टमः ॥
सप्तान्त्याष्टमवर्गेषु शेषाः शस्ता ग्रहोत्तमाः ॥ १७ ॥ तेषामपि तथा मध्यात्षष्ठः शुक्रो न शस्यते । वैवाहिके भे कर्तव्या तथैव च चतुर्थिका ॥ १८॥
न दातव्या ग्रहास्तत्र चतुराद्यास्तथैकगाः । पर्ववर्जं स्त्रियं गच्छेत्सत्या दत्ता सदा रतिः ॥ १९ ॥

इत्यादिमहापुरण आग्नेये विवाहभेदकथनं नाम चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्ययः ॥ १५४ ॥

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

आचार वर्णनम्

पुष्कर उवाच– **ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय विष्ण्वादीन्दैवतान् स्मरेत् ॥ उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ॥ १ ॥ रात्रौ च दक्षिणे कुर्यादुभे सन्ध्ये यथा दिवा। न मार्गादौ जले वीथ्यां सतृणायां सदाऽऽचरेत् ॥ २ ॥ शौचं कृत्वा मृदाऽऽचम्य भक्षयेद्दन्तधावनम् । नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ॥ ३ ॥ क्रियास्नानं तथा षष्ठं षोढास्नानं प्रकीर्तितम् । अस्नातस्याफलं कर्म प्रातः स्नानं चरेत्ततः ॥ ४ ॥ भूमिष्ठमुद्धतात्पुण्यं ततः प्रस्त्रवणोदकम् । ततोऽपि सारसं पुण्यं तस्मान्नादेयमुच्यते ॥ ५ ॥ तीर्थतोयं ततः पुण्यं गाङ्गं पुण्यं तु सर्वतः । संशोधितमलः पूर्वं निमग्नश्च**

करना चाहिए और न तो पौष तथा चैत्र मास में, मंगलवार को, एवं रिक्त तथा भद्रा तिथियों में विवाह नहीं करना चाहिए ।। १२-१३ ।। जब शुक्र तथा वृहस्पति अस्त हों जब चन्द्रग्रहण लगने वाला हो, जब सूर्य, शनिश्चर अथवा मङ्गल लग्न स्थन में हों और व्यतिपात दोष आ पड़ा हो, तो उस समय भी विवाह नहीं करना चाहिए ।। १४ ।। मृगशिरा, मघा, स्वाती, हस्त, रोहिणी, तीनों उत्तरा, मूल, अनुराधा तथा रेवती, ये विवाह के नक्षत्र हैं ।। १५ ।। पुरुषवाची लग्न तथा उसके नवमांश शुभ होते हैं । लग्न से तीसरे, छठें, ग्यारहवें तथा आठवें सूर्य, शनिश्चर, चन्द्रमा तथा बुध शुभ माने गए हैं किन्तु लग्न से आठवें बुध शुभ नहीं है ।। १६ ।। इसके अतिरिक्त शेष ग्रह सातवें आठवें तथा बारहवें गृह में शुभ होते हैं, किन्तु उनमें भी षष्ठ गृह में शुक्र शुभ नहीं होता है । विवाह के ही समान विवाह के ही नक्षत्र में चतुर्थी कर्म भी करना चाहिए ।। १६-१८ ।। यदि लग्न में चार ग्रह एक साथ हों तो भी कन्यादान नहीं करना चाहिए । पर्व के दिन स्त्री समागम नहीं करना चाहिए ऐसा करने से शची के वरदान से रति में सदा प्रसन्नता होती है ।। १९ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का विवाह भेद वर्णन नामक एक सौ चौवनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५४ ॥

श्रीपुष्कर ने कहा– ब्राह्म मुहूर्त में उठकर विष्णु आदि देवताओं का स्मरण करना चाहिए । दिन में उत्तराभिमुख होकर मल एवं मूत्र का त्याग करना चाहिए । रात्रि में दक्षिणाभिमुख होकर मलमूत्र का त्याग करना चाहिए । दोनों सन्ध्याओं में उत्तराभिमुख होकर ही मलमूत्र त्याग करें । रास्ते में, जल में, गली में तथा तृण से ढँकी भूमि पर मलमूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए ।।१-२।। मिट्टी से हाथ पैर शुद्ध करके स्नान करना चाहिए । स्नान छह प्रकार के बतलाए गए हैं- नित्य, नैमित्तिक, काम्य, क्रियाङ्ग, मलकर्षण तथा क्रिया स्नान। स्नान नहीं करने वाले की सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं । अतएव स्नान प्रातःकाल अवश्य करना चाहिए ।। ३-४ ।। भूमि खोदकर निकाले गए जल की अपेक्षा झरने का जल पवित्र होता है । उससे भी सरोवर का जल पवित्र होता है और उससे भी नदी का जल पवित्र होता है ।। ५ ।। उससे भी अधिक पवित्र तीर्थ का जल होता है और गङ्गा का जल सबसे अधिक पवित्र होता है । जलाशय में प्रवेश

जलाशये ॥ ६ ॥ उपस्पृश्य ततः कुर्यादम्भसः परिमार्जनम्। हिरण्यवर्णास्तिसृभिः शं नो देवीति चाप्यथ ॥ ७ ॥ आपो हि ष्ठेति तिसृभिरिदमापस्तथैव च । ततो जलाशये मग्नः कुर्यादन्तर्जलं जपम् ॥ ८ ॥ तत्राऽऽघमर्षणं सूक्तं द्रुपदां वा तथा जपेत् । युञ्जते मन इत्येवं सूक्तं वाऽप्यथ पौरुषम्॥९॥ गायत्रीं तु विशेषेण अघमर्षणसूक्तके । देवता भाववृत्तस्तु ऋषिश्चैवाघमर्षणः ॥ १० ॥ छन्दश्चानुष्टुभं तस्य भाववृत्तो हरिः स्मृतः । आपीडमानः शाटीं तु देवतापितृतर्पणम् ॥ ११ ॥ पौरुषेण तु सूक्तेन ददेच्चैवोदकाञ्जलिम् । ततोऽग्निहवनं कुर्याद्दानं दत्त्वा तु शक्तितः ॥ १२ ॥ ततः समभिगच्छेत योगक्षेमार्थमीश्वरम् । आसनं शयनं यानं जायाऽपत्यं कमण्डलुः ॥ १३ ॥ आत्मनः शुचिरेतानि परेषां न शुचि र्भवेत् । भाराक्रान्तस्य गुर्विण्याः पन्था देयो गुरुष्वपि ॥ १४ ॥ न पश्येच्चार्कमुद्यन्तं नास्तं यान्तं न चाम्भसि । नेक्षेन्नग्नां स्त्रियं कूपं शूनास्थानमघौघिनाम्॥१५॥ कार्पासास्थि तथा भस्म नाऽऽक्रामेद्यच्च कुत्सितम् ॥ अन्तःपुरं वित्तगृहं परदौत्यं व्रजेन्न हि ॥ १६ ॥ नाऽऽरोहेद्विषमां नावं न वृक्षं न च पर्वतम्। अर्थायतनशास्त्रेषु तथैव स्यात् कुतूहली ॥ १७ ॥ लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी विनश्यति । मुखादिवादनं नेहेद्विना दीपं न रात्रिगः ॥ १८ ॥ नाद्वारेण विशेद्वेश्म न च वक्त्रं विरागयेत् । कथाभङ्गं न कुर्वीत न च वासोविपर्ययम् ॥ १९ ॥ भद्रं भद्रमिति ब्रूयान्नानिष्टं कीर्तयेत्क्वचित् । पालाशमासनं वर्ज्यं देवादिच्छायया व्रजेत् ॥ २० ॥ न मध्ये पूज्ययोर्यायान्नोच्छिष्टस्तारकादिदृक् । नद्यां नान्यां नदीं ब्रूयान्न कण्डूयेद्द्विहस्तकम्॥२१॥ असन्तर्प्य पितॄन्देवान्नदीपारं च न व्रजेत् । मलादि प्रक्षिपेन्नाप्सु न नग्नः स्नानमाचरेत् ॥ २२ ॥ ततः समभिगच्छेत योगक्षेमार्थमीश्वरम्।

करके मल प्रक्षालन (स्नान) करना चाहिए । फिर आचमन करके निम्नांकित मंत्रों से मार्जन करना चाहिए- हिरण्य वर्णाम् आदि तीन ऋचाओं से, शं नो देवीरभीष्टय इत्यादि मन्त्र से, आपो हिष्ठ आदि तीन ऋचाओं से, तथा 'इदमापः' इत्यादि मन्त्र से मार्जन करना चाहिए।। ६-७ ।। इसके पश्चात् जलाशय के भीतर ही रहकर जप करना चाहिए । जप अघमर्षण सूक्त का अथवा 'द्रुपदादिवे० इत्यादि मन्त्र का, फिर 'युञ्जते मनः' सूक्त का अथवा पुरुष सूक्त का करना चाहिए ।। ८-९ ।। विशेष रूप से गायत्री का जप करना चाहिए । अघमर्षण सूक्त के भाववृत्त देवता तथा अघमर्षण ऋषि हैं । उस सूक्त का अनुष्टुप् छन्द है । भाववृत शब्द से श्रीहरि को कहा जाता है । पुनः वस्त्र बदलकर धोती निचोड़ने से पूर्व ही देवताओं तथा पितरों का तर्पण करना चाहिए ।।१०-११।। इसके पश्चात् पुरुषसूक्त से जलाञ्जलि देना चाहिए पुनः अपनी शक्ति के अनुसार दान देकर अग्निहोत्र करना चाहिए ।। १२ ।। फिर अपने योगक्षेम की प्राप्ति के लिए परमात्मा के शरण में जाना चाहिए । आसन, शय्या, सवारी, स्त्री, सन्तान तथा कमण्डलु ये यदि अपने हों तो पवित्र होती हैं, दूसरे की ये चीजें पवित्र नहीं होती हैं । यदि भार से लदा हुआ कोई व्यक्ति आ जाय तो उसे अपने गुरुजनों से भी पहले रास्ता दे देना चाहिए ।। १४ ।। उदय होते हुए तथा अस्त होते हुए तथा जल में प्रतिबिम्बित सूर्य को नहीं देखना चाहिए । नंगी स्त्री, कुआँ तथा कसाई खाना को नहीं देखना चाहिए ।। १५ ।। कपास (रुई) हड्डी, भस्म तथा अपवित्र वस्तुओं को नहीं लाँघना चाहिए। दूसरे के अन्तःपुर एवं खजाना घर में नहीं प्रवेश करना चाहिए । दूसरे के दूत का कार्य नहीं करना चाहिए ।। १६ ।। टूटी हुई नाव पर, वृक्ष पर और पर्वत पर नहीं चढ़ना चाहिए । अर्थ, गृह तथा शास्त्र के विषय में कुतूहल रखना चाहिए ।। १७ ।। ढेले को फोड़ने वाला, घास को तोड़ने वाला तथा दाँत से नख काटने वाला व्यक्ति विनष्ट हो जाता है । मुँख से सीटी नहीं बजाना चाहिए, रात्रि में विना दीपक के नहीं चलना चाहिए ।। १८ ।। घर में दरवाजे से ही प्रवेश करना चाहिए । मुँह को कभी विकृत नहीं बनाना चाहिए । किसी के बातचीत में बाधा नहीं डालना चाहिए, दूसरे का कपड़ा नहीं बदलना चाहिए ।। १९ ।। हमेशा कल्याण हो, कल्याण हो यही बोलना चाहिए । किसी का अनिष्ट नहीं मनाना चाहिए । पलाश के आसन पर नहीं बैठना चाहिए । देवताओं आदि की छाया बचाकर चलना चाहिए ।। २० ।। दो पूज्य व्यक्तियों के बीच में नहीं चलना चाहिए और जूठे मुँह तारा आदि नहीं देखना चाहिए किसी नदी में उससे भिन्न दूसरी नदी का नाम न ले और दोनों हाथों स्त्रे खुजलाना नहीं चाहिए ।। २१।। देवताओं तथा पितरों का तर्पण किए विना नदी को पार नहीं करना चाहिए । पानी में मल आदि नहीं डाले और न तो नंगा होकर स्नान करना चाहिए ।। २२ ।। स्नान के बाद योगक्षेम के

स्रजं नाऽऽत्मनाऽपनयेत्खरादिकरजस्त्यजेत् ॥ २३ ॥ हीनान्नावहसेत्कृच्छ्रेन्नादेशे (?) निवसेच्च तैः । वैद्यराजनदीहीने म्लेच्छस्त्रीबहुनायके॥२४॥ रजस्वलादिपतितैर्न भाषेत्केशवं स्मरेत् । नासंवृतमुखः कुर्याद्धासं जृम्भां तथा क्षुतम् ॥ २५ ॥ प्रभोरप्यवमानं स्वं गोपयेद्वचनं बुधः । इन्द्रियाणां नानुकूली वेगरोधं न कारयेत् ॥ २६ ॥ नोपेक्षितव्यो व्याधिः स्याद्रिपुरल्पोऽपि भार्गव । रथ्यातिगः सदाऽऽचामेद्बिभृयान्नाग्निवारिणी ॥ २७ ॥ न हुं कुर्याच्छिवं पूज्यं पादं पादेन नाऽऽक्रमेत् । प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा कस्यचिन्नाप्रियं वदेत् ॥ २८ ॥ वेदशास्त्रनरेन्द्रर्षिदेवनिन्दां विवर्जयेत् । स्त्रीणामीर्षा न कर्तव्या विश्वासं तासु वर्जयेत् ॥ २९ ॥ धर्मश्रुतिं देवरतिं कुर्याद्धर्मादि नित्यशः । सोमस्य पूजां जन्मर्क्षे विप्रदेवादिपूजनम् ॥ ३० ॥ षष्ठीचतुर्दश्यष्टम्यामभ्यङ्गं वर्जयेत्तथा । दूराद्गृहान्मूत्रविष्ठे नोत्तमैर्वैरमाचरेत् ॥ ३१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये आचारकथनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

अथ षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

द्रव्यशुद्धिः

पुष्कर उवाच— **द्रव्यशुद्धिं प्रवक्ष्यामि पुनः पाकेन मृण्मयम्। शुध्येन्मूत्रपुरीषाद्यैः स्पृष्टं ताम्रं सुवर्णकम् ॥१ ॥ आवर्तितं चान्यथा तु वारिणाम्लेन ताम्रकम् । क्षारेण कांस्यलोहानां मुक्तादेः क्षालनेन तु ॥ २ ॥ अब्जानां चैव भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च । शाकरज्जुमूलफलवैदलानां तथैव**

लिए दईश्वर की शरण में जाना चाहिए । मनुष्य को अपनी माला स्वयम् नहीं उतारनी चाहिए । गदहे आदि की धूल से बचना चाहिए ।। २३ ।। छोटे लोगों को कष्ट में पड़े देखकर उनका मजाक नहीं उड़ाना चाहिए नीच लोगों के साथ बूरे स्थान में नहीं निवास करना चाहिए । वैद्य, राजा तथा नदी से रहित स्थान में न रहें । जहाँ के स्वामी म्लेच्छ, स्त्री तथा अनेक लोग हों वहाँ नहीं निवास करना चाहिए ।। २४ ।। रजस्वला स्त्री तथा पतितों से बातचीत न करें और बातचीत यदि कर भी लें तो उसके पश्चात् भगवान् का नाम स्मरण कर लेना चाहिए । मुँह को ढँके विना न तो जोर से हँसना चाहिए न जम्भाई लेनी चाहिए और न तो छिंकना चाहिए ।। २५ ।। विद्वान् पुरुष अपने स्वामी तथा अपने अपमान की बात को गुप्त रखे, इन्द्रियों के अनुकूल न चले,ओर न तो मल एवं मूत्र के वेग को न रोके ।। २६ ।। रोग की उपेक्षा न करे ओर न तो छोटे शत्रु की ही उपेक्षा करे । गली को लाँघकर आने पर सदा आचमन करना चाहिए । कभी भी अग्नि तथा जल को धारण नहीं करना चाहिए ।। २७ ।। अपने कल्याणकारी पूज्य पुरुष के प्रति हुंकार नहीं करना चाहिए, कभी पैर से पैर न दबाए । सामने अथवा परोक्ष में किसी की बुराई नहीं करनी चाहिए ।। २८ ।। वेद, शास्त्र, राजा, महर्षि तथा देवता की निन्दा का त्याग करना चाहिए । कभी भी स्त्रियों से ईर्ष्या नहीं करना चाहिए तथा उन पर विश्वास भी नहीं करना चाहिए ।। २९ ।। प्रतिदिन धर्म का श्रवण, देवताओं की पूजा तथा धर्म का पालन करना चाहिए ।। ३० ।। षष्ठी, चतुर्दशी तथा अष्टमी के दिन तेल नहीं लगाए । मलमूत्र घर से दूर करना चाहिए और सज्जन पुरुषों से कभी वैर नहीं करना चाहिए ।। ३१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का आचार वर्णन नामक एक सौ पचपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५५ ॥

श्रीपुष्कर ने कहा— अब मैं द्रव्यशुद्धि का वर्णन करूँगा । मलमूत्र से अपवित्र हुए मिट्टी, ताम्बे तथा सुवर्ण के पात्र को पुनः आग में पकाकर शुद्ध कर लेना चाहिए ।। १ ।। ताँबे का वर्तन खटाई तथा जलसे मलने से शुद्ध होता है, कांसे तथा लोहे के वर्तन नमक और जल से शुद्ध होते हैं, मोती आदि की शुद्धि जल से धो लेने मात्र से हो जाती है ।। २ ।। सीप के

च ॥ ३ ॥ मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि । उष्णाम्बुना सस्नेहानां शुद्धिः सम्मार्जनाद्गृहे ॥ ४ ॥ शोधनात्प्रक्षणाद्वस्त्रे मृत्तिकाद्भिर्विशोधनम्। बहुवस्त्रे प्रोक्षणाच्च दारवाणां च तक्षणात् ॥ ५ ॥ प्रोक्षणात्संहतानां तु द्रवाणां च तथोत्प्लवात् । शयनासनयानानां शूर्पस्य शकटस्य च ॥ ६ ॥ शुद्धिः संप्रोक्षणाज्ज्ञेया पलालेन्धनयोस्तथा । सिद्धार्त्रकानां कल्केन शृङ्गदन्तमयस्य च ॥ ७ ॥ गोबालैः पलपात्राणामस्थ्नां स्याच्छृङ्गवत्तथा । निर्यासानां गुडानां च लवणानां च शोषणात् ॥ ८ ॥ कुसुम्भकुसुमानां च ऊर्णाकार्पासयोस्तथा । शुद्धं नदीगतं तोयं पुण्यं तद्वत्प्रसारितम् ॥ ९॥ मुखवर्जं च गौः शुद्धा शुद्धमश्वाजयोर्मुखम् । नारीणां चैव वत्सानां शकुनीनां शुनो मुखम् ॥ १० ॥ मुखैः प्रस्रवणे वृत्ते मृगयायां सदा शुचि । भुक्त्वा क्षुत्त्वा तथा सुप्त्वा पीत्वा चाम्भो विगाह्य च ॥ ११ ॥ रथ्यामाक्रम्य चाऽऽचमेद्वासो विपरिधाय च । मार्जारश्चङ्क्रमाच्छुद्धश्चतुर्थेऽह्नि रजस्वला ॥ १२ ॥ स्नाता स्त्री पञ्चमे योग्या दैवे पित्र्ये च कर्मणि । पञ्चापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्तमृत्तिकाः ॥ १३ ॥ एकां लिङ्गे मृदं दद्यात्करयोस्त्रिद्विमृत्तिकाः । ब्रह्मचारिवनस्थानां यतीनां च चतुर्गुणम् ॥ १४ ॥ श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपैः । शुद्धिः पर्युक्ष्य तोयेन मृगलोम्नां प्रकीर्तिता ॥ १५ ॥ पुष्पाणां च फलानां च प्रोक्षणाज्जलतोऽखिलम्॥१६॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये द्रव्यशुद्धिकथनं नाम षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

बने वर्तन तथा पत्थर के बने वर्तनों की शुद्धि जल से धो लेने से हो जाती है । शाक, रस्सी, मूल, फल तथा बाँस की बनी वस्तुओं की शुद्धि भी जल से ही हो जाती है ।। ३ ।। यज्ञ के कामों में यज्ञ पात्रों की शुद्धि केवल हाथ से पोंछ लेने से हो जाती है । घी तथा तेल लगे पात्रों की शुद्धि गर्म जल से धो लेने से हो जाती है । गृह की शुद्धि झाड़ने से होती है ।। ४ ।। वस्त्र की शुद्धि शोधन तथा जल से सिंचने से होती है । मिट्टी तथा जल से वस्त्र को शुद्ध कर लेना चाहिए । यदि बहुत अधिक वस्त्र अशुद्ध हो गए हों तो उन पर जल छिड़क देना चाहिए । काष्ठ के पात्रों की शुद्धि छिल देने मात्र से होती है ।। ५ ।। शय्या आदि संहता वस्तुओं की शुद्धि जल से पोंछ देने से हो जाती है । घी तेल आदि द्रवों की शुद्धि कुश से उत्पलवन करने मात्र से हो जाती है । शय्या, आसन, सवारी, सूप, गाड़ीं पुआल तथा इन्धन की शुद्धि जल छिड़क देने मात्र से होती है । सींग तथा दाँत की बनी वस्तुओं की शुद्धि पीली सरसों के पिसकर लेप करने से होती है ।। ६-७ ।। तुम्बी आदि पात्रों की शुद्धि गौ के पूंछ के बालों को दुआ देने से होती है । शंख आदि हड्डी से बने पात्रों की शुद्धि संगीत के ही समान पीली सरसों को पीसकर लेप करने से होती है । गोंद, गुड़, नमक, कुसुम्भ के फूल, ऊन तथा रुई की शुद्धि धूप में सुखा लेने मात्र से हो जाती है । नदी का जल तथा बेंचने के लिए फैलाई गयी वस्तुएँ सदा ही शुद्ध रहते हैं ।। ८-९ ।। गौ के मुँह को छोड़कर उसके सभी अङ्ग शुद्ध हैं । घोड़े तथा बकरे के मुँह शुद्ध होते हैं । स्त्रियें का मुँह सदा शुद्ध रहता है । दूध दूहने के समय बछड़ों के, फल गिरते समय पक्षियों के तथा शिकार खेलते समय कुत्तों के मुँह शुद्ध माने गए हैं ।। १० ।। भोजन करने, थूकने, सोने, पानी पीने, नहाने तथा सड़क आदि पर घूमने के पश्चात् आचमन अवश्य करना चाहिए । विलाव घूमने से शुद्ध रहती है, रजस्वला स्त्री चौथे दिन शुद्ध होती है। ऋतुमती स्त्री पाँचवें दिन देवकार्य तथा पितृकार्य में सम्मिलित होने के योग्य होती है।।११-१२।। शौच के पश्चात् पाँच बार गुदा में, दस बार बाएँ हाथ में फिर दोनों हाथों में सात बार, लिङ्ग में एक बार, फिर दोनों हाथों में दो-तीन बार मिट्टी लगाना चाहिए । ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा संन्यासियों को इसके चार गुणा करनाचाहिए ।। १३-१४ ।। तसर के कपड़ों की शुद्धि बेल के फल के गूदे से होती है, रेशमी कपड़ों की शुद्धि पीली सरसों से होती है अर्थात् इन्हें पानी में घोलकर उसमें कपड़ा डाल दें फिर शुद्ध जल से धो लें । मृगचर्म, फूल तथा फल इन सबों की शुद्धि जल छिड़कने से होती है ।। १५-१६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का द्रव्यशुद्धि वर्णन नामक एक सौ छप्पनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५६ ॥

अथ सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

शावाशौचादि

पुष्कर उवाच– **प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि सूतिकाशुद्धिमेव च । दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ॥ १ ॥ जनने च तथा शुद्धिर्ब्राह्मणानां भृगूत्तम । द्वादशाहेन राजन्यः पक्षाद्वैश्योऽथ मासतः ॥ २ ॥ शूद्रोऽनुलोमतो दासे स्वामितुल्यं त्वशौचकम् । षड्भिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु॥३॥ ब्राह्मणः शुद्धिमाप्नोति क्षत्रियस्तु तथैव च । विट्शूद्रयोनिः शुद्धः स्यात्क्रमात्परशुरामक ॥ ४ ॥ षड्रात्रेण त्रिरात्रेण षड्भिः शूद्रे तथा विशः । आदन्तजननात्सद्य आचूडान्नैशिकी श्रुतिः ॥ ५ ॥ त्रिरात्रमा व्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम् । ऊनत्रैवार्षिके शूद्रे पञ्चाहाच्छुद्धिरिष्यते॥६॥ द्वादशाहेन शुद्धिः स्यादतीते वत्सरत्रये । गतैः संवत्सरैः षड्भिः शुद्धिर्मासेन कीर्तिता ॥ ७ ॥ स्त्रीणामकृतचूडानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता । तथा च कृतचूडानां त्र्यहाच्छुध्यन्ति बान्धवाः ॥ ८ ॥ विवाहितासु नाऽऽशौचं पितृपक्षे विधीयते । पितृगृहे प्रसूतानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता ॥ ९ ॥ सूतिका दशरात्रेण शुद्धिमाप्नोति नान्यथा । विवाहिता हि चेत्कन्या म्रियते पितृवेश्मनि ॥ १० ॥ तस्यास्त्रिरात्राच्छुध्यन्ति बान्धवा नात्र संशयः। समानं लघ्वशौचं तु प्रथमेन समापयेत् ॥ ११ ॥ देशान्तरस्थः श्रुत्वा तु कुल्यानां मरणोद्भवौ ॥ १२ ॥ यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् । अतीते दशरात्रे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ १३ ॥ तथा संवत्सरेऽतीते स्नात एव विशुध्यति । मातामहे तथाऽतीत आचार्ये च तथामृते ॥ १४ ॥**

श्रीपुष्कर ने कहा– अब मैं प्रेत शुद्धि मरणाशौच तथा सूतिका शुद्धि (जनना शौच) का वर्णन करूँगा । समान गोत्र वालों को दस दिनों तक मरणाशौच होता है ।। १ ।। हे परशुराम जी ब्राह्मणों को जननाशौच भी दस दिनों का ही होता है । क्षत्रियों को बारह दिन का जननाशौच होता है, वैश्यों को पन्द्रह दिन का तथ शूद्रों को एक मास का जननाशौच होता है । यह अनुलोम अर्थात् सजातीय माता पिता से उत्पन्न हुआ हो ऐसे शूद्र के लिए अशौच कहा गया है । सेवक का भी जननाशौच उतने ही दिनों का होता है जितने दिनों का जननाशौच उसके स्वामी के गृह में होता है । क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों के भी घर में दस दिनों का ही जननाशौच होता है ।। २-३ ।। हे परशुराम जी ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र की भी शुद्धि किसी-किसी के मत में इसी क्रम से होती है ।। ४ ।। वैश्य तथा शूद्र की जननाशौच की शुद्धि पन्द्रह दिन में होती है । दाँत निकलने से पहले ही यदि बच्चा मर जाता है तो उसके मरणाशौच की शुद्धि सद्यः हो जाती है । चूडाकरण पर्यन्त तक मरने पर एक रात्रि का अशौच होता है । यज्ञोपवीत होने के समय तक बालक की मृत्यु होने पर तीन रात्रियों का अशौच होता है तथा उसके पश्चात् दस रात्रियों का अशौच होता है । तीन वर्ष से कम उम्र के शूद्र बालक के मरने पर पाँच दिन का अशौच होता है ।। ५-६ ।। तीन वर्ष से अधिक उम्र वाले शूद्र बालक की मृत्यु हो जाने पर बारह दिन पर शुद्धि होती है । छह वर्ष से अधिक उम्र वाले शूद्र बालक की मृत्यु हो जाने पर एक मास पर शुद्धि होती है ।। ७ ।। मुण्डन से पहले स्त्री शिशु की मृत्यु होने पर एक रात्रि का अशौच होता है । मुण्डन होने के बाद बालिका का मृत्यु होने पर उसके बान्धवों की शुद्धि तीन दिन पर होती है ।। ८ ।। विवाहित बालिका की मृत्यु हो जाने पर उसके पिता को अशौच नहीं होता है । यदि पिता के घर में बच्चा पैदा हो तो एक रात्रि की अशुद्धि होती है ।। ९ ।। सूतिका शौच की शुद्धि दस दिन में ही होती है, उससे कम में नहीं । यदि विवाहिता कन्या पिता के घर में ही मर जाती है तो उसके पिता आदि बान्धवों की शुद्धि तीन रात्रियों में हो जाती है । समान तथा लघु अशौच को पहले दूर करना चाहिए असमान अशौच को उसके बाद यह धर्मराज का वचन है ।। १०-११ ।। परदेश में रहने वाला व्यक्ति यदि अपने कुल के मरण अथवा जन्म का समाचार सुनता है तो उसके कुल वालों को अशौच में जितने दिन बाकी रहते है। उतने ही दिन का उसे अशौच लगता है । यदि मरण के दस दिन के बाद में उसे मृत्यु का समाचार सुनने को मिले तो तीन रात्रि के बाद उसकी शुद्धि होती है ।। १२-१३ ।। एक वर्ष के बाद में

रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशोधनम् । सपिण्डे ब्राह्मणे वर्णाः सर्व एवाविशेषतः ॥ १५ ॥ दशरात्रेण शुध्यन्ति द्वादशाहेन भूमिपः । वैश्याः पञ्चदशाहेन शूद्रा मासेन भार्गव ॥ १६ ॥ उच्छिष्टसंनिधावेकं तथा पिण्डं निवेदयेत् । कीर्तयेच्च तथा तस्य नामगोत्रे समाहितः ॥ १७ ॥ भुक्तवत्सु द्विजेन्द्रेषु पूजितेषु धनेन च । विसृष्टाक्षततोयेषु गोत्रनामानुकीर्तनैः ॥ १८ ॥ चतुरङ्गुलविस्तारं तत्खातं तावदन्तरम् । वितस्तिदीर्घं कर्तव्यं विकर्षूणां तथा त्रयम् ॥ १९ ॥ विकर्षूणां समीपे च ज्वालयेज्ज्वलनत्रयम् । सोमाय वह्नये राम यमाय च समासतः ॥ २० ॥ जुहुयादाहुतीः सम्यक्सर्वत्रैव चतुस्त्रयः । पिण्डनिर्वापणं कुर्यात्प्राग्वदेव पृथक्पृथक् ॥ २१ ॥ अन्नेन दध्ना मधुना तथा मासेन पूरयेत् । मध्ये चेदधिमासः स्यात्कुर्यादभ्यधिकं तु तत् ॥ २२ ॥ अथवा द्वादशाहेन सर्वमेतत्समापयेत् । संवत्सरस्य मध्ये च यदि स्यादधिमासकः ॥ २३ ॥ तथा द्वादशके श्राद्धे कार्यं तदधिकं भवेत् । संवत्सरे समाप्ते तु श्राद्धं श्राद्धवदाचरेत् ॥ २४ ॥ प्रेताय तत ऊर्ध्वं च तस्यैव पुरुषत्रये । पिण्डान्विनिर्वपेत्तद्वच्चतुरस्तु समाहितः ॥ २५ ॥ सम्पूज्य दत्त्वा पृथिवी समाना इति चाप्यथ । योजयेत्प्रेतपिण्डं तु पिण्डेष्वन्येषु भार्गव ॥ २६ ॥ प्रेतपात्रं च पात्रेषु तथैव विनियोजयेत् । पृथक् पृथक् प्रकर्तव्यं कर्मैतत्कर्मपात्रके ॥ २७ ॥ मन्त्रवर्जमिदं कर्म शूद्रस्य तु विधीयते । सपिण्डीकरणं स्त्रीणां कार्यमेवं तदा भवेत् ॥ २८ ॥ श्राद्धं कुर्याच्च प्रत्यब्दं प्रेते कुम्भान्नमब्दकम् । गङ्गायाः सिकता धारा यथा वर्षति वासवे ॥ २९ ॥ शक्या गणयितुं लोके

समाचार सुनने पर स्नान कर लेने मात्र से शुद्धि हो जाती है । नाना तथा आचार्य की मृत्यु हो जाने पर भी तीन रात्रि का ही अशौच होता है ।। १४ ।। जितने महीने का गर्भस्राव होता है, उतने ही दिन का अशौच होता है । सपिण्ड ब्राह्मण वंश में मृत्यु होने पर उस वंश के सभी लोग सामान्य रूप से दस दिन में शुद्ध हो जाते हैं। क्षत्रियवंश के लोग बारह दिन में शुद्ध होते हैं । हे परशुराम ! वैश्यवंश के लोग पन्द्रह दिन में तथा शूद्र वंश के लोग एक मास में मरणाशौच से शुद्ध होते हैं ।। १५-१६ ।। श्राद्ध कर्म में ब्राह्मण भोजन के पश्चात् उस उच्छिष्ट के सन्निकट ही वेदी बनाकर प्रेत के लिए पिण्डदान करें और ध्यानस्थ होकर उसके नाम तथा गोत्र का उच्चारण करना चाहिए ।। १७ ।। ब्राह्मणों के भोजन कर लेने पर उनका धन से पूजन करना चाहिए । उनके पश्चात् नाम तथा गोत्र के उच्चारणपूर्वक उनके लिए जल तथा अक्षत छोड़ना चाहिए ।। १८ ।। उसके पश्चात् चार-चार अंगुल, चौड़ा तथा गहरा एवं एक वित्ता लम्बा एक गड्ढा खोदना चाहिए । पुनः वहाँ तीन सूखे कण्डों को रखें ।। १९ ।। कण्डों के समीप में ही तीन जगह अग्नि जलाए और उनमें क्रमशः सोम, वह्नि तथा यम तीनों के लिए चार-चार आहुति संक्षेप रूप से देनी चाहिए । पुनः वहाँ पर पहले के ही समान अलग-अलग पिण्डदान करना चाहिए ।। २०-२१ ।। अन्न, दही, मधु तथा उड़द से पिण्ड को पूर्ण कर देना चाहिए । यदि संवत्सर के बीच में कोई अधिक मास पड़ता हो तो उसके लिए एक अधिक पिण्डदान कर देना चाहिए ।। २२ ।। अथवा द्वादशाह के ही दिन इन सभी पिण्डों को दे देना चाहिए । यदि संवत्सर के बीच में अधिक मास हो तो द्वादशाह के ही दिन उस मास के ही लिए एक अधिक पिण्ड दे देना चाहिए । संवत्सर समाप्त हो जाने पर श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करना चाहिए ।। २३-२४ ।। सपिण्डीकरण श्राद्ध में प्रेत के लिए एक पिण्ड देकर उनकी तीन पीढ़ियों के लिए तीन पिण्डदान करना चाहिए । इस तरह चारों पिण्डों का दान एकाग्रतापूर्वक करना चाहिए ।। २५ ।। हे भृगुनन्दन ! पिण्डों का पूजन तथा उसका दान करके- 'पृथिवी ते पात्रम्' तथा 'य समाना०' इत्यादि मन्त्रों से श्राद्ध का कार्य करके प्रेत के पिण्ड के तीनों टुकड़ों को पिता-पितामह तथा प्रपितामह के पिण्ड से मिला देना चाहिए।। २६ ।। इस तरह से प्रेत के पात्रों को भी पितरों के पात्रों से मिला देना चाहिए । इन सभी पिण्डों को पृथक्-पृथक् कर्मपात्रों में देना चाहिए ।। २७ ।। शूद्र के श्राद्धकर्म को विना मन्त्र के ही कराना चाहिए । स्त्रियों का सपिण्डीकरण श्राद्ध इसी प्रकार से करना चाहिए ।। २८ ।। पितरों का श्राद्ध प्रत्येक वर्ष करना चाहिए और वर्ष पर्यन्त प्रेत के लिए अन्न तथा जल से भरे कुम्भ का दान करना चाहिए ।। २८ ।। वर्षा के हो जाने पर सम्भव है कि गङ्गाजी की बालू की रेत गिन ली जाए किन्तु अतीतकालिक पितरों की गणना करना

न त्वतीताः पितामहाः । काले सततगस्थैर्य नास्ति तस्मात्क्रियां चरेत् ॥ ३० ॥ देवत्वे यातनास्थाने प्रेतः श्राद्धं कृतं लभेत् । नोपकुर्यान्नरः शोचन्प्रेतस्याऽऽत्मन एव वा ॥ ३१ ॥ भृग्वग्निपाशकाम्भोभिर्मृतानामात्मघातिनाम् । पतितानां च नाऽऽशौचं विद्युच्छस्त्रहताश्च ये॥३२॥ यतिव्रतिब्रह्मचारिनृपकारुकदीक्षिताः । राजाज्ञाकारिणो ये च स्नायाद्वै प्रेतगाम्यपि ॥ ३३ ॥ मैथुने कूटधूमे च सद्यः स्नानं विधीयते। द्विजं न निर्हरेत्प्रेतं शूद्रेण तु कथञ्चन ॥ ३४ ॥ न च शूद्रं द्विजेनापि तयोर्दोषो हि जायते । अनाथविप्रप्रेतस्य वहनात्स्वर्गलोकभाक् ॥ ३५ ॥ सङ् ग्रामे जयमाप्नोति प्रेतेऽनाथे च काष्ठदः । संकल्प्य बान्धवं प्रेतमपसव्येन तां चितिम् ॥ ३६ ॥ परिक्रम्य ततः स्नानं कुर्युः सर्वे सवाससः । प्रेताय च तथा दद्युस्त्रींस्त्रींश्चैवोदकाञ्जलीन् ॥ ३७ ॥ द्वार्यश्मनि पदं दत्त्वा प्रविशेयुस्तथा गृहम् । अक्षतान्निक्षिपेद्वह्नौ निम्बपत्रं विदश्य च ॥ ३८ ॥ पृथक् शयीरन्भूमौ च क्रीतलघ्वा (घ्व) शनो भवेत् । एकः पिण्डः दशाहे तु श्मश्रुकर्मकरः शुचिः ॥ ३९ ॥ सिद्धार्थकैस्तिलैर्विद्वान्मज्जेद्वासोऽपरं दधत्। अजातदन्ते तनये शिशौ गर्भस्रुते तथा ॥ ४० ॥ कार्यो नैवाग्निसंस्कारो नैव चास्योदकक्रिया । चतुर्थे च दिने कार्यस्तथाऽस्थ्नां चैव संचयः॥४१॥ अस्थिसंचयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते ॥ ४२ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शावाशौचकथनं नाम सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५७ ॥

असंभव है । क्योंकि समय तो सदा चलता ही रहता है । अतएव श्राद्ध कर्म प्रतिवर्ष अवश्य करना चाहिए ।। २९-३० ।। प्रेत चाहे स्वर्ग में अथवा नरक में किन्तु किया गया श्राद्ध उसे मिलता है । अतएव मनुष्य को अपने लिए तथा प्रेत के लिए सोच नहीं करना चाहिए।। ३१ ।। पर्वत से कूदकर,आग में जलकर, अपने जेल में फाँसी लगाकर तथा पानी में डूबकर मरने वाले तथा पतितों के मरने से उसके वंश वालों को अशौच नहीं होता है । विजली से मरे हुए तथा शस्त्र से मरे हुए प्रेतों का भी अशौच उसके बांधवों को नहीं लगता है ।। ३२ ।। संन्यासी, ब्रह्मचारी, राजा, बढ़ई तथा राजाज्ञा का पालन करने वाले यदि मुर्दनी में जायँ तो इनको स्नान कर लेना चाहिए।। ३३ ।। मैथुन करने पर तथा चिता का धुआँ लगने पर तुरन्त स्नान कर लेना चाहिए। ब्राह्मण को चाहिए कि वह अपने कुल के मुर्दे को शूद्रों से न ढोआवे और न तो ब्राह्मण को शूद्र का ही शव ले जाना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से दोनों को ही दोष लगता है । जो व्यक्ति अनाथ ब्राह्मण के शव को ढोता है वह स्वर्गलोक का भागी होता है ।। ३४-३५ ।। जो अनाथ शव को जलाने के लिए लकड़ी देता है उसे संग्राम में विजय की प्राप्ति होती है । संकल्प करके अपसव्य होकर चिता की परिक्रमा करके सबों को कपड़ा पहने ही स्नान कर लेना चाहिए और प्रेत के निमित्त तीन-तीन अञ्जलि जल देना चाहिए ।। ३६-३७ ।। दरवाजे पर आकर पत्थर पर पहले पैर रखकर उसके बाद ही घर में प्रवेश करना चहिए । अग्नि में अक्षत डालना चाहिए और निम्ब का पत्ता चबाना चाहिए ।। ३८ ।। जिसके घर का शव जलाया गया हो उसे सबों से अलग भूमि पर सोना चाहिए तथा खरीदकर जलपान करना चाहिए । दशाह पर्यन्त प्रतिदिन एक-एक पिण्ड के हिसाब से पिण्डदान करना चाहिए । दशाह के दिन क्षौरकर्म कराकर मनुष्य पवित्र हो जाता है । उस दिन पीली सरसों तथा तिल का उबटन लगाकर स्नान कर दूसरा वस्त्र धारण करना चाहिए ।। ३९ ।। जिस शिशु के दाँत नहीं निकले हों उसकी मृत्यु हो जाने पर अथवा गर्भस्राव हो जाने पर उसका अग्नि संस्कार नहीं करना चाहिए और न तो उसके लिए जलदान करे । शवदाह के चौथे दिन उसका अस्थिसंचय करना चाहिए । अस्थिसंचय के बाद ही अंगस्पर्श का विधान है ।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का शावाशौच वर्णन नामक एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५७ ॥

अथाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

स्त्रावाद्यशौचम्

पुष्कर उवाच— **स्त्रावाशौचं प्रवक्ष्यामि मन्वादिमुनिसंमतम् । रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्त्रावे त्र्यहेण वा ॥ १ ॥ चातुर्मासिकपातान्ते दशाहं पञ्चमासतः । राजन्ये च चतू रात्रं वैश्ये पञ्चाहमेव च ॥ २ ॥ अष्टाहेन तु शूद्रस्य द्वादशाहादतः परम् । स्त्रीणां विशुद्धिरुदिता स्नानमात्रेण वै पितुः॥३॥ न स्नानं हि सपिण्डे स्यात्त्रिरात्रं सप्तमाष्टयोः । सद्यः शौचं सपिण्डानामा दन्तजननात्तथा ॥ ४ ॥ आचूडादेकरात्रं स्यादाव्रताच्च त्रिरात्रकम् । दशरात्रं भवेदस्मान्मातापित्रोस्त्रिरात्रकम् ॥ ५ ॥ अजातदन्ते तु मृते कृतचूडेऽर्भके तथा । प्रेते न्यूने त्रिभिर्वर्षैर्मृते शुद्धिस्तु नैशिकी॥६॥ द्व्यहेन क्षत्रिये शुद्धिस्त्रिभिर्वैश्ये मृते तथा । शुद्धिः शूद्रे पञ्चभिः स्यात्प्राग्विवाहाद्द्विषट् त्वहः ॥ ७ ॥ यत्र त्रिरात्रं विप्राणामशौचं संप्रदृश्यते । तत्र शूद्रे द्वादशाहः षण्नवक्षत्रवैश्ययोः ॥ ८ ॥ द्व्यब्दे नैवाग्निसंस्कारो मृते तं निखनेद्भुवि । न चोदकक्रिया तस्य नाम्नि चापि कृते सति ॥ ९॥ जातदन्तस्य वा कार्या स्यादुपनयनाद्दश । एकाहाच्छुध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः ॥ १० ॥ हीने हीनतरे चैव त्र्यहश्चतुरहस्तथा । पञ्चाहे नाग्निहीनस्तु दशाहाद्ब्राह्मणब्रुवः॥११॥ क्षत्रियो नवसप्ताहाच्छुध्येद्विप्रो गुणैर्युतः । दशाहात्सगुणो वैश्यो विंशाहाच्छूद्र एव च ॥ १२ ॥ दशाहाच्छुध्यते**

पुष्करजी ने कहा— मैं मनु आदि मुनियों के मतानुसार गर्भस्राव आदि से होने वाले अशौच का वर्णन कर रहा हूँ । जितने मास का गर्भस्राव हुआ हो माता को उतनी ही रात्रियों का अथवा तीन दिन का अशौच लगता है ।। १ ।। चौथे मास पाँचवें मास तक के गर्भपात के लिए यह नियम है कि जितने मास का गर्भपात हुआ हो उतनी ही रात्रियों का माता को अशौच लगता है । क्षत्रियों को चार रात्रि का और वैश्यों को पाँच दिन का अशौच होता है । शूद्र माता को आठ दिन से लेकर बारह दिन तक का अशौच लगता है । इसके बाद स्त्रियों की शुद्धि हो जाती है । पिता की शुद्धि तो स्नान करने मात्र से ही हो जाती है ।। २-३ ।। छह मास तक के गर्भस्राव में सपिण्ड पुरुषों की सद्यःशुद्धि हो जाती है, उन्हें स्नान भी करने की आवश्यकता नहीं है । किन्तु सात या आठ मास का गर्भस्राव होने पर सपिण्ड पुरुषों को भी तीन रात का अशौच लगता है । जितने मास में दाँत निकलते हैं उतने मास का बालक यदि मर जाए तो सपिण्ड पुरुषों की तत्काल शुद्धि हो जाती है ।। ४ ।। चूडाकरण से पहले बालक मृत्यु हो जाय तो सपिण्डों की एक रात्रि का अशौच होता है और यज्ञोपवीत संस्कार से पहले बालक की मृत्यु होने पर तीन रात्रियों का अशौच लगता है । इसके बाद बालक की मृत्यु होने पर सपिण्ड पुरुषों को भी दस रात्रियों का अशौच होता है । जिस बालक के दाँत नहीं निकले हों अथवा जिसका केवल चूडाकरण संस्कार हुआ हो उसकी मृत्यु हो जाने पर पिता को तीन रात्रि का अशौच लगता है । तीन वर्ष से कम अवस्था के बालक के मरने पर रात्रिभर में ही शुद्धि हो जाती है ।। ४-६ ।। क्षत्रिय बालक की मृत्यु होने पर उसके सपिण्डों की शुद्धि दो दिन पर होती है, वैश्य बालक की मृत्यु होने पर उसके सपिण्डों की शुद्धि तीन दिन पर होती है और शूद्र बालक की मृत्यु होने पर उसके सपिण्डों की शुद्धि पाँच दिन पर होती है । विवाह से पूर्व मृत्यु होने पर बारह दिन पर शुद्धि होती है ।। ७ ।। जहाँ पर ब्राह्मणों की शुद्धि तीन रात्रि पर बतलायी गयी है वहीं पर क्षत्रियों की छह दिन पर,वैश्यों की नव दिन पर और शूद्रों की बारह दिन पर शुद्धि होती है ।। ८ ।। दो वर्ष के बालक के मरने पर उसका अग्नि संस्कार नहीं करना चाहिए उसे भूमि में गाड़ देना चाहिए उसके लिए जलक्रिया भी नहीं करना चाहिए । अथवा जिस बालक का नामकरण हो गया हो दाँत निकल आये हों उसके निमित्त जल क्रिया नहीं करनी चाहिए । जिसका उपनयन संस्कार हो गया हो उसकी मृत्यु होने पर दश दिन का अशौच लगता है । अग्निहोत्र करने वाले तथा तीनों वेदों का पाठ करने वाला ब्राह्मण को एक रात में शुद्धि होती है । जो दो वेदों का अध्ययन करता है उसको तीन दिन का अशौच होता है तथा जो एक वेद का अध्ययन करता है उसको चार दिन का अशौच लगता है । जो न तो वेदाध्ययन करता है और न तो अग्निहोत्र ही करता है उसे

विप्रो द्वादशाहेन भूमिपः । वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥ १३ ॥ गुणोत्कर्षे दशाहाप्तौ त्र्यहमेकाहकं त्र्यहे । एकाहाप्तौ सद्यः शौचं सर्वत्रैवं समूहयेत् ॥ १४ ॥ दासान्तेवासिभृतकाः शिष्याश्चैकत्रवासिनः । स्वामितुल्यमशौचं स्यान्मृते पृथक्पृथग्भवेत् ॥ १५ ॥ मरणादेव कर्तव्यं संयोगो यस्य नाग्निभिः । दाहादूर्ध्वमशौचं स्याद्यस्य वैतानिको विधिः ॥ १६ ॥ सर्वेषामेव वर्णानां त्रिभागात्स्पर्शनं भवेत् । त्रिचतुष्पञ्चदशभिः स्पृश्यवर्णाः क्रमेण तु ॥ १७ ॥ चतुर्थे पञ्चमे चैव सप्तमे नवमे तथा । अस्थिसंचयनं कार्यं वर्णानामनुपूर्वशः ॥ १८ ॥ अहस्त्वदत्तकन्यासु प्रदत्तासु त्र्यहं भवेत् । पक्षिणी संस्कृतास्वेव स्वस्त्रादिषु विधीयते ॥ १९ ॥ पितृगोत्रं कुमारीणां व्यूढानां भर्तृगोत्रता । जलप्रदानं पित्रे च उद्वाहे चोभयत्र तु ॥ २० ॥ दशाहोपरि पित्रोश्च दुहितुर्मरणे त्र्यहम् ॥ सद्यः शौचं सपिण्डानां पूर्वं चूडाकृतेर्द्विज ॥ २१ ॥ एकाहतो ह्या विवाहादूर्ध्वं हस्तोदकात्त्र्यहम् । पक्षिणी भ्रातृपुत्रस्य सपिण्डानां च सद्यतः ॥ २२ ॥ दशाहाच्छुध्यते विप्रो जन्महानौ स्वयोनिषु । षड्भिस्त्रिभिरहै केन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु ॥ २३ ॥ एतज्ज्ञेयं सपिण्डानां वक्ष्ये चानौरसादिषु । अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च ॥ २४ ॥ परपूर्वासु च स्त्रीषु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते । वृथा संकरजातानां प्रव्रज्यासु च तिष्ठताम् ॥ २५ ॥ आत्मनस्त्यागिनां चैव निवर्तेतोदकक्रिया । मात्रैकया द्विपितरौ

पाँच दिन का अशौच लगता है । जो ब्राह्मणनामधारी है उसे दस दिन का अशौच लगता है ।। ९-११ ।। गुणवान् ब्राह्मण सात दिन में शुद्ध होता है, गुणवान् क्षत्रिय नव दिन में शुद्ध होता है, गुणवान् वैश्य दस दिन में शुद्ध होता है तथा गुणवान् शूद्र बीस दिन में शुद्ध होता है ।। १२ ।। साधारण ब्राह्मण दस दिन में शुद्ध होता है, साधारण क्षत्रिय बारह दिन में शुद्ध होता है, साधारण वैश्य पन्द्रह दिन में शुद्ध होता है और साधारण शूद्र एक मास में शुद्ध होता है ।। १३ ।। गुणों की अधिकता हो तो दस दिन का अशौच तीन दिन में तीन दिन का अशौच एक दिन में और एक दिन का अशौच सद्यः समाप्त हो जाता है । इसी तरह से सर्वत्र विचार कर लेना चाहिए ।। १४ ।। दास, छात्र, भृत्य शिष्य एवं एक साथ रहने वाले लोगों को उतने दिनों का ही अशौच पृथक् पृथक् होता है, जितने दिन का अशौच स्वामी अथवा आचार्य को होता है ।। १५ ।। जो अग्निहोत्र नहीं करते हैं उनको मरणकाल से ही अशौच लग जाता है और जो लोग अग्निहोत्र कर्म करते हैं, उनको दाह के पश्चात् अशौच लगता है ।। १६ ।। सभी वर्ण के लोगों को अशोच लगने के पश्चात् अशौच का एक अंश बीत जाने पर शारीरिक स्पर्श का अधिकार प्राप्त हो जाता है, अतएव ब्राह्मण आदि वर्ण के लोग क्रमशः तीन, चार, पाँच तथा दस दिन के पश्चात् स्पर्श करने के योग्य हो जाते हैं ।। १७ ।। ब्राह्मण आदि वर्णों का अस्थि संचय क्रमशः चौथे, पाँचवें, सातवें तथा नौवें दिन करना चाहिए ।। १८ ।। जिस कन्या का वाग्दान नहीं हुआ है उसकी मृत्यु हो जाने पर उसके माता-पिता को एक दिन का अशौच लगता है और जिस कन्या का वाग्दान हो चुका है उसकी मृत्यु हो जाने पर उसके माता-पिता को तीन दिन का अशौच होता है ।। १९ ।। यदि व्याही हुई बहन अथवा पुत्री की मृत्यु हो तो एक दिन और एक रात का अशौच लगता है । अविवाहिता कन्या का गोत्र वही होता है, जो गोत्र उसके माता-पिता का होता है । विवाहिता कन्याओं का गोत्र उनके पति का गोत्र होता है । विवाहिता कन्या की मृत्यु हो जाने पर उसके लिए जलदान उसके पिता और पति दोनों को करना चाहिए ।। २० ।। हे द्विज ! यदि दस दिन के पश्चात् तथा चूड़ाकरण से पहले कन्या की मृत्यु हो जाय तो माता-पिता को तीन दिन का अशौच लगता है और सपिण्डों की सद्यः शुद्धि हो जाती है ।। २१ ।। चूड़ाकरण के पश्चात् तथा वाग्दान से पहले कन्या की मृत्यु हो जाने पर एक दिन का अशौच लगता है, वाग्दान के पश्चात् तथा विवाह से पूर्व तीन दिन का अशौच लगता है और उसके पश्चात् मृत्यु होने पर उस कन्या के भतीजों को दो दिन तथा एक रात्रि का अशौच लगता है, किन्तु उसके सपिण्डों की सद्यः शुद्धि हो जाती है ।। २२ ।। यदि कोई ब्राह्मण किसी ब्राह्मण के घर हुयी मृत्यु अथवा जन्म में सम्मिलित होता है तो उसकी शुद्धि दस दिन में होती है । यदि वह किसी क्षत्रिय या वैश्य या शूद्र के यहाँ जन्म मरण में सम्मिलित होता है तो उसकी शुद्धि क्रमशः छह दिन,तीन दिन तथा एक दिन में होती है ।। २३ ।। अशौच सम्बन्धी यह जो नियम निश्चित किया गया है, वह सपिण्डों के ही साथ सम्बन्ध रखता है । अब मैं जो औरस नहीं हैं, उन लोगों के विषय में बतलाऊँगा । जो औरस पुत्र नहीं है अथवा जो स्त्री दूसरे पति के साथ रहने लगी

भ्रातरावन्यगामिनौ ॥ २६ ॥ एकाहः सूतके तत्र मृतके तु द्व्यहो (हं) भवेत् । सपिण्डानामशौचं हि समानोदकतां वदे ॥ २७ ॥ बाले देशान्तरस्थे च पृथक्पिण्डे च संस्थिते । सवासा जलमाप्लुत्य सद्य एव विशुध्यति ॥ २८ ॥ दशाहेन सपिण्डास्तु शुध्यन्ति प्रेतसूतके । त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु स्नानाच्छुध्यन्ति गोत्रिणः ॥ २९ ॥ सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते । समानोदकभावस्तु निवर्तेताऽऽचतुर्दशात् ॥ ३० ॥ जन्मनामस्मृते वै तत्तत्परं गोत्रमुच्यते । विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम् ॥ ३१ ॥ यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् । अतिक्रान्ते दशाहे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ ३२ ॥ संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुध्यति । मातुले पक्षिणी रात्रिः शिष्यत्विग्बान्धवेषु च ॥ ३३ ॥ मृते जामातरि प्रेते दौहित्रे भगिनीसुते । श्यालके तत्सुते चैव स्नानमात्रं विधीयते ॥ ३४ ॥ मातामह्यां तथाऽऽचार्ये मृते मातामहे त्र्यहम् । दुर्भिक्षे राष्ट्रसम्पाते आगतायां तथाऽऽपदि ॥ ३५ ॥ उपसर्गमृतानां च दाहे ब्रह्मविदां तथा । सत्रिव्रति ब्रह्मचारिसङ्ग्रामे देशविप्लवे ॥ ३६ ॥ दाने यज्ञे विवाहे च सद्यः शौचं विधीयते । विप्रगोनृपहन्तृणामनुक्तं चाऽऽत्मघातिनाम् ॥ ३७ ॥ असाध्यव्याधियुक्तस्य स्वाध्याये चाक्षमस्य च । प्रायश्चित्तमनुज्ञातमग्नितोयप्रवेशनम् ॥ ३८ ॥ अपमानात्तथा क्रोधात्स्नेहात्परिभवाद्भयात् । उद्बध्य म्रियते नारी पुरुषो वा कथंचन ॥ ३९ ॥ आत्मघाती चैकलक्षं वसेत्स नरकेऽशुचौ । वृद्धः श्रौतस्मृतेर्लुप्तः परित्यजति यस्त्वसून् ॥ ४० ॥ त्रिरात्रं तत्र चाशौचं द्वितीयेचास्थिसंचयम् ॥

हो अथवा जो दूसरे पति को छोड़कर आयी हो ओर अपनी पत्नी बनकर रहने लगी हो, उसके मरने पर तीन रात्रि के पश्चात् शुद्धि हो जाती है । जिनका स्वधर्म त्यागकर देने के कारण जीवन व्यर्थ हो गया हो, जो वर्णसंकर पुत्र हों, जो संन्यासी का जीवन व्यतीत करते हों, जो आत्मघाती हों, ऐसे लोगों की मृत्यु हो जाने पर उनके निमित्त जलदान नहीं करना चाहिए ।।२४-२५।। यदि एक ही माता के दो पिता से दो पुत्र उत्पन्न हों तो उनके जन्म में एक दिन का सूतक लगता है और मृत्यु में दो दिन का सूतक लगता है । यहाँ तक सपिण्डों के अशौच का वर्णन किया गया अब समानोदक का वर्णन किया जा रहा है ।। २६-२७ ।। जिसके दाँत नहीं निकले हों ऐसे बालक की, परदेश में रहने वाले किसी सपिण्ड पुरुष की अथवा भिन्न पिण्ड वाले पुरुष की मृत्यु का यदि समाचार सुना जाय तो वस्त्र के साथ स्नान कर लेने मात्र से शुद्धि हो जाती है ।। २८ ।। सपिण्ड पुरुष मृत्यु तथा जन्म के कारण होने वाले अशौच से दस दिन पर शुद्ध होते हैं, समान वंश के ही लोग ऐसे समाचार को सुनकर तीन रात्रि में शुद्ध होते हैं तथा समान गोत्र के लोग स्नान कर लेने मात्र से शुद्ध हो जाते हैं ।। २९ ।। सात पीढ़ी बीत जाने पर सपिण्डता समाप्त हो जाती है, और चौदह पीढ़ी के पश्चात् समानोदकता भी समाप्त हो जाती है ।। ३० ।। किसी-किसी के मतानुसार अपने वंश में उत्पन्न हुए पुरुष का नाम याद नहीं आने पर समानोदक भाव समाप्त हो जाता है । उसके पश्चात् केवल गोत्र का सम्बन्ध रह जाता है । दशाह बीतने से पहले किसी परदेशी व्यक्ति की मृत्यु का समाचार सुन लेने पर दशाह में जितने दिन अवशिष्ट रहते हैं, उतने ही दिन का अशौच लगता है । यदि दशाह बीतने पर समाचार सुने तो तीन रात्रि का अशौच होता है ।। ३०-३२ ।। मरने के एक वर्ष बाद समाचार सुनने पर तो आचमन कर लेने मात्र से ही शुद्धि हो जाती है । मामा, शिष्य, ऋत्विक् तथा बान्धवों की मृत्यु हो जाने पर दो दिन तथा एक रात्रि का अशौच होता है । दामाद, नाती, बहन का लड़का,साला तथा साला के पुत्र के मरने पर स्नान मात्र कर लेने से शुद्धि हो जाती है ।। ३३-३४ ।। नानी, आचार्य तथा नाना के मरने पर तीन दिन का अशौच होता है । राष्ट्र में दुर्भिक्ष (अकाल) पड़ने पर, विपत्ति आने पर तथा जलकर मर जाने पर ब्रह्मज्ञानी के मरने पर, यज्ञकर्ता के मरने पर, ब्रह्मचारी के मरने पर, संग्राम में मरने पर, राष्ट्र में विप्लव होने पर, दान करने के समय, यज्ञ में तथा विवाह में मृत्यु हो जाने पर तत्काल शुद्धि हो जाती है । ब्राह्मण, गौ, राजा का वध करने वाले के मर जाने पर किसी भी प्रकार का अशौच नहीं बतलाया गया है ।। ३५-३७ ।। असाध्य रोग से ग्रस्त तथा वेदाध्यन करने में असमर्थ व्यक्ति के लिए अग्नि अथवा जल में प्रवेश कर जाना प्रायश्चित्त बतलाया गया है ।। ३८ ।। आत्मघाती जीव एक लाख वर्ष तक अपवित्र नरक में निवास करते हैं । जिसके श्रौत तथा स्मार्त कर्मों का लोप हो गया है, ऐसे वृद्ध पुरुष के मरने पर तीन रात्रि का अशौच होता है । उसके मरने के दूसरे दिन अस्थि संचय, तीसरे दिन जलक्रिया

तृतीये तूदकं कार्यं चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् ॥४१ ॥ विद्युदग्निहतानां च त्र्यहं शुद्धिः सपिण्डके । पाषण्डाश्रिता भर्तृघ्न्यो नाशौचोदकगाः स्त्रियः॥४२॥ पितृमात्रादिपाते तु आर्द्रवासा ह्युपोषितः॥ अतीतेऽब्दे प्रकुर्वीत प्रेतकार्यं यथाविधि ॥ ४३ ॥ यः कश्चित्तु हरेत्प्रेतमसपिण्डं कथंचन । स्नात्वा सचैलं स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥ ४४ ॥ यद्यन्नमत्ति तेषां तु दशाहेनैव शुध्यति । अनदन्नन्नमह्नैव न वै तस्मिन्गृहे वसेत् ॥ ४५ ॥ अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः । पदे पदे यज्ञफलं शुद्धिः स्यात्स्नानमात्रतः ॥ ४६ ॥ प्रेतीभूतं द्विजः शूद्रमनुगच्छंस्त्र्यहाच्छुचिः । मृतस्य बान्धवैः सार्धं कृत्वा च परिदेवनम् ॥ ४७ ॥ वर्जयेत्तदहोरात्रं दानश्राद्धादिकामतः । शूद्रायाः प्रसवो गेहे शूद्रस्य मरणं तथा ॥ ४८ ॥ भाण्डानि तु परित्यज्य त्र्यहाद्भूलेपतः शुचिः । न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण नाययेत् ॥ ४९ ॥ नयेत्प्रेतं स्नापितं च पूजितं कुसुमैर्दहेत् । नग्नदेहं दहेन्नैव किञ्चिद्देहं परित्यजेत् ॥ ५० ॥ गोत्रजस्तु गृहीत्वा तु चितां चाऽऽरोपयेत्तदा । आहिताग्निर्यथन्यायं दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः ॥ ५१ ॥ अनाहिताग्निरेकेन लौकिकेनापरस्तथा । अस्मात्त्वमभिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ॥ ५२ ॥ असौ स्वर्गाय लोकाय मुखाग्निं प्रददेत्सुतः । सकृत्प्रसिञ्चन्त्युदकं नामगोत्रेण बान्धवाः ॥ ५३ ॥ अपोनः शोशुचदयं दशाहं च सुतोर्पयेत् । ब्राह्मणे दश पिण्डाःस्युः क्षत्रिये द्वादश स्मृताः ॥ ५५ ॥ वैश्ये पञ्चदश प्रोक्ता शूद्रे त्रिंशत्प्रकीर्तिताः । पुत्रो वा पुत्रिकाऽन्यो वा पिण्डं दद्याच्च पुत्रवत् ॥ ५६ ॥ विदश्य निम्बपत्राणि नियतो द्वारि वेश्मनः । आचम्य

और चौथे दिन श्राद्ध कर देना चाहिए ।। ४०-४१ ।। जो विजली अथवा अग्नि से जलकर मर गए हों ऐसे लोगों की सपिण्ड से शुद्धि तीन दिन पर होती है । पाखण्ड करने वाली तथा अपने पति को मारने वाली स्त्री के मरने पर न तो अशौच लगता है और न तो उसके लिए जल ही देना चाहिए ।। ४२ ।। पिता तथा माता के मरने का समाचार यदि एक वर्ष पर भी मिले तो वस्त्र के साथ स्नान करके रात्रि में उपवास करना चाहिए तथा विधिपूर्वक समस्त प्रेतकार्य करना चाहिए ।। ४३ ।। जो कोई व्यक्ति किसी असपिण्ड शव को ढ़ोता है, वह वस्त्र के साथ स्नान करे, अग्नि का स्पर्श करें तथा घी को चाटकर शुद्ध हो जाता है ।। ४४ ।। यदि वह मरे हुए व्यक्ति के घर का अन्न खाता है तो उसकी शुद्धि दस दिन में होती है । उसको न तो उसके घर का अन्न खाना चाहिए और न तो उसके घर में निवास करना चाहिए ।। ४५ ।। जो कोई अनाथ ब्राह्मण के शव को ढ़ोता है वह ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य पद-पर पर यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है । उसकी शुद्धि केवल स्नान कर लेने से ही हो जाती है ।। ४६ ।। मरे हुए शुद्र के पीछे-पीछे चलने वाला तथा मरे हुए शूद्र के बान्धवों के साथ रुदन करने वाला ब्राह्मण तीन दिन में शुद्ध होता है।। ४७ ।। उन दिनों उसे दान तथा श्राद्ध आदि नहीं करना चाहिए । यदि ब्राह्मण के घरमें किसी शूद्रा स्त्री को बच्चा पैदा हो जाय अथवा कोई शूद्र मर जाय तो तीसरे दिन घर के भाण्डों को बाहर निकाल देना चाहिए तथा सारी भूमि लीप देनी चाहिए तब जाकर पवित्रता होगी । अपने सजातीय लोगों के रहने पर मृत ब्राहाण को शूद्रों से नहीं ढ़ोवाना चाहिए ।।४९।। मूर्दे को स्नान कराकर तथा पुष्पों से पूजा करके ही जलाना चाहिए । शव को नंगे करके न नहलाएँ और उसके थोड़े से शरीर को जलने से बचा देना चाहिए ।। ५० ।। शव को सगोत्रीय व्यक्ति उठाकर चिता पर रखे । इसके पश्चात् अग्नि होत्री पुरुष को नियमानुसार तीनों अग्नियों से जलाएँ ।। ५१ ।। जो अग्निहौत्री न हो किन्तु उसका उपनयन संस्कार हुआ हो उसे एक (आह्वनीय) अग्नि से जलाना चाहिए । अन्य साधारण पुरुषों को लौकिक अग्नि से जलाना चाहिए । पुत्र को अपने पिता के मुख में अग्नि देते समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिए- 'अस्मात् त्वमभिजातोऽसि, त्वदयं जायतां पुनः । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ।।' इसके पश्चात् मृतक के बान्धव उसका नाम तथा गोत्र का उच्चारण करके एक बार प्रेत के लिए जलदान करें ।। ५१-५३ ।। इसी तरह से मरे हुए नाना तथा आचार्य की भी जलक्रिया करनी चाहिए । मरे हुए मित्र, ब्याही हुई पुत्री, श्वशुर तथा ऋत्विजों के लिए जलदान करना अपनी इच्छा पर निर्भर करता है ।। ५४ ।। पुत्र अपने पिता के लिए, 'अपोनः शोशुचदयम्' इत्यादि मन्त्र पढ़कर दस दिन तक जल देना चाहिए । ब्राह्मण के लिए दस पिण्ड देना चाहिए तथा क्षत्रिय के लिए बारह, वैश्य के लिए पन्द्रह तथा शूद्र के लिए तीस पिण्डदान करना चाहिए । पुत्र, पुत्री अथवा दूसरा कोई जो भी पिण्डदान करे वह पुत्रभाव से करे ।। ५५-५६ ।। शवदाह करके लौटने पर मन को

चाग्निमुदकं गोमयं गौरसर्षपान् ॥ ५७ ॥ प्रविशेयुः समाभ्य स्युर्निर्मांसा भूमिशायिनः ॥ ५८ ॥ क्रीतलब्धाशनाः स्नाता आदिकर्ता दशाहकृत् । अभावे ब्रह्मचारी तु कुर्यात्पिण्डोदकादिकम् ॥ ५९ ॥ यथेदं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते । जननेऽप्येवमेव स्यान्निपुणां शुद्धिमिच्छताम्॥६०॥ सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोश्च सूतकम् । मातुलं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥ ६१ ॥ पुत्रजन्मदिनेछ्राद्धं कर्तव्यमिति निश्चितम् । तदहस्तत्प्रदानार्थं गोहिरण्यादिवाससाम् ॥ ६२ ॥ मरणं मरणेनैव सूतकं सूतकेन तु । उभयोरपि यत्पूर्वं तेनाऽऽशौचेन शुध्यति ॥ ६३ ॥ सूतके मृतकं चेत्स्यान्मृतके त्वथ सूतकम् । तत्राधिकृत्य मृतकं शौचं कुर्यान्न सूतकम् ॥ ६४ ॥ समानं लघ्वशौचं तु प्रथमेन समापयेत् । असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा ॥ ६५ ॥ शावान्तः शाव आयाते पूर्वाशौचेन शुध्यति । गुरुणा लघु बाध्येत लघुना नैव तद्गुरु ॥ ६६ ॥ मृतके सूतके वाऽपि रात्रि मध्येऽन्यदापतेत् ॥ तच्छेषेणैव शुध्येरन् रात्रिशेषे द्व्यहाधिकात् ॥ ६७ ॥ प्रभाते यद्यशोचं स्याच्छुध्येरंश्च त्रिभिर्दिनैः । उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते ॥ ६८ ॥ दानादि विनिवर्तेत भोजने कृत्यमाचरेत् । अज्ञाते पातकं नाऽऽद्ये भोक्तुरेकमहोऽन्यथा ॥ ६९ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्त्रावाशौचकथनं नामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

शान्त करके दरवाजे पर आकर नीम के पत्ते को चबाए, फिर आचमन करके, अग्नि, जल, गोबर तथा पीली सरसों का स्पर्श करके, पत्थर पर धीरे-धीरे पैर रखकर घर में धीरे-धीरे प्रवेश करना चाहिए । उस दिन से बाँधवों को क्षार तथा नमक का त्याग कर देना चाहिए, माँस नहीं खाना चाहिए तथा पृथिवी पर सोना चाहिए ।। ५७-५८ ।। चिता में आग लगाने वाले को खरीदकर भोजन करना चाहिए । तथा स्नान करना चाहिए और उसे ही दशगात्र कर्म करना चाहिए । अभाव में किसी ब्रह्मचारी को पिण्डदान तथा जलदान की क्रिया करनी चाहिए ।। ५९ ।। जिस तरह सपिण्डों को मरणाशौच लगता है, उसी तरह सैं अच्छी तरह से शुद्धि चाहने वालों को मरणाशौच भी मनाना चाहिए ।। ६० ।। मरणाशौच तो समापन रूप से सभी सपिण्डों को लगता है किन्तु जननाशौच तो विशेष रूप से माता-पिता को ही लगता है । इसमें भी माता को ही विशेष रूप से जननाशौच लगता है । वही स्पर्श के अधिकार से वंचित रहती है, पिता की शुद्धि तो स्नान करने मात्र से हो जाती है। जिस दिन पुत्र जन्म हो उस दिन नान्दीमुखश्राद्ध अवश्य करना चाहिए । वह दिन, गौ, सुवर्ण आदि वस्त्र आदि का दान करने के लिए उत्तम माना जाता है।।६१-६२।। मरणाशौच मरण के साथ और जननाशौच जन्म के साथ लगता है । इन दोनों में जो अशौच पहले होता है उसी अशौच के साथ दूसरा अशौच भी निवृत्त हो जाता है ।। ६३ ।। यदि जननाशौच में ही मरणाशौच हो जाय तो जननाशौच के अधिकार में मरणाशौच की निवृत्ति नहीं होती है ।। ६४ ।। यदि एक ही तरह का दो अशौच हो जाय जैसे जननाशौच में जननाशौच, अथवा मरणाशोच में मरणाशौच तो पहले अशौच के साथ ही द्वितीय अशौच भी निवृत्त हो जाता है । किन्तु असमान अशौच के होने पर दूसरे अशौच के साथ पहला अशौच निवृत्त होता है। यह धर्मराज का वचन है ।। ६५ ।। मरणाशौच के अन्त में ही यदि मरणाशौच आ जाय तो पहले अशौच की निवृत्ति के साथ ही द्वितीय भी अशौच निवृत्त हो जाता है । गुरु अशौच के साथ लघु अशौच बाधित हो जाता है किन्तु लघु अशौच के द्वारा गुरु अशौच नहीं बाधित होता है ।। ६६ ।। मरणाशौच अथवा जननाशौच में अन्तिम रात्रि के मध्य में भी यदि दूसरा अशौच हो जाता है तो उसी के साथ वह अशौच भी समाप्त हो जाता है । यदि अन्तिम रात्रि के बीत जाने पर प्रातःकाल अशौच हो तो फिर सपिण्डों के शुद्धि उसके तीन दिन बाद होती है । इन दोनों प्रकार के अशौचों में उस कुल का अन्न दस दिन तक नहीं खाया जा सकता है ।। ६८ ।। अशौच में दान इत्यादि भी करने का अधिकार समाप्त हो जाता है । अशौच में दूसरे के यहाँ का भोजन करने पर प्रायश्चित्त करना होता है । अनजान में भोजन कर लेने पर पाप नहीं लगता है, किन्तु जानकर भोजन करने पर एक दिन का अशौच लगता है ।। ६९ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का गर्भस्त्रावणजन्य अशौच आदि वर्णन नामक एक सौ अठावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५८ ॥

अथैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

असंस्कृतादिशौचम्

पुष्कर उवाच– **संस्कृतस्यासंस्कृतस्य स्वर्गो मोक्षो हरिस्मृतेः । अस्थ्नां गङ्गाम्भसि क्षेपात्प्रेतस्याभ्युदयो भवेत् ॥ १ ॥ गङ्गातोये नरस्यास्थि यावत्तावद्दिविस्थितिः। आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया ॥ २ ॥ तेषामपि तथा गाङ्गे तोयेऽस्थ्नां पतनं हितम् । तेषां दत्तं जलं चान्नं गगने तत्प्रलीयते ॥ ३ ॥ अनुग्रहेण महता प्रेतस्य पतितस्य च । नारायणबलिः कार्यस्तेनानुग्रहमश्नुते ॥ ४ ॥ अक्षयः पुण्डरीकाक्षस्तत्र दत्तं न नश्यति । पतनात्त्रायते यस्मात्तस्मात्पात्रं जनार्दनः॥ ५ ॥ पततां भुक्तिमुक्त्यादिप्रद एको हरिध्रुवम् । दृष्ट्वा लोकान्म्रियमाणान्सहायं धर्ममाचरेत्॥६॥ मृतोऽपि बान्धवः शक्तो नानुगन्तुं नरं मृतम् । जायावर्जं हि सर्वस्य याम्यः पन्था विभिद्यते ॥ ७ ॥ धर्म एको व्रजत्येनं यत्रक्वचनगामिनम् । श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चाऽऽपराह्णिकम् ॥ ८ ॥ न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वाऽस्य न वा कृतम् । क्षेत्रापणगृहासक्तमन्यत्रगतमानसम् ॥ ९ ॥ वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति । न कालस्य प्रियः कश्चिद्द्वेष्यश्चास्य न विद्यते ॥ १० ॥ आयुष्ये कर्मणि क्षीणे प्रसह्य हरते जनम् । नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि ॥ ११ ॥ कुशाग्रेणापि संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति । औषधानि न मन्त्रान्धास्त्रायन्ते मृत्युनाऽन्वितम्॥१२॥ वत्सवत्प्राकृतं कर्म कर्तारं विन्दति ध्रुवम्। अव्यक्तादि व्यक्तमध्यमव्यक्तनिधनं जगत् ॥१३॥ कौमारादि यथा देहे तथा देहान्तरागमः । नवमन्यद्यथा**

श्रीपुष्कर जी ने कहा– मृतक का दाह संस्कार हुआ हो अथवा नहीं हुआ हो, श्रीहरि का स्मरण करने से उसका स्वर्ग तथा मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है । मृतक की हड्डियों को गङ्गा जी में डाल देने से उसका कल्याण हो जाता है ।। १ ।। मृतक की हड्डियाँ जब तक गङ्गा जी में रहती हैं, तब तक उसका स्वर्ग मे निवास होता है । यद्यपि आत्मघाती तथाा पतितों की क्रिया करने का विधान नहीं है पतित मनुष्य के लिए भी उनकी हड्डियों को गङ्गाजल में डालना कल्याणकारी होता है । उनके उद्देश्य से दिया हुआ अन्न तथा जल आकाश में लीन हो जाता है ।।२-३।। यदि पतित मृतक पर बहुत बड़ी कृपा करनी हो तो उसका नारायण बलि कर देना चाहिए, उससे भगवान् नारायण की कृपा को वह जीव प्राप्त करता है ।। ४ ।। भगवान् नारायण अक्षय हैं,उनके लिए किया हुँआ कर्म विनष्ट नहीं होता । भगवान् जनार्दन को पात्र इसलिए कहा जाता है कि वे जीव का पतन होने से रक्षा करते हैं ।। ५ ।। पतित जीवों को भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले एक मात्र श्रीहरि हैं । संसार के सभी जीव मरणशील हैं, यह देखकर अपने सच्चे सहायक धर्म का अनुष्ठान करना चाहिए ।। ६ ।। पतिव्रता पत्नी को छोड़कर कोई मरकर भी मृतक मनुष्य के पीछे नहीं चल सकता है, क्योंकि सबों के लिए यम का मार्ग अलग-अलग होता है ।। ७ ।। जीव जहाँ कहीं भी जाता है, उसके साथ केवल धर्म ही जाता है । अतएव जिस धार्मिक कार्य को कल करना हो उसे आज ही कर लेना चाहिए और जिसे अपराह्ण में करना हो उसे पूर्वाह्ण में ही कर लेना चाहिए ।। ८ ।। धर्म कर लिया हो अथवा नहीं किया हो मृत्यु किसी की प्रतीक्षा नहीं करती है । चाहे कोई खेत में हो अथवा दुकान पर,गृह में आसक्त हो अथवा अन्यत्र उसका मन लगता हो, जैसे बकरी के बच्चे को लेकर भेड़िया चला जाता है, उसी तरह मृत्यु भी उसे पकड़कर ले जाती है । काल का कोई न तो प्रिय है और न तो कोई द्वेष्य ।। ९-१० ।। आयु तथा कर्म के समाप्त हो जाने पर मृत्यु बलपूर्वक उस जीव का अपहरण कर लेती है । जिसका काल नहीं आया हो वह सैकड़ों बाणों से विद्ध होने पर भी नहीं मरता है और जिसकी मृत्यु आ गयी है, वह कुश के भी छू जाने पर मर जाता है । जिसकी मृत्यु आ गयी है उसकी रक्षा न तो औषधि कर पाती है और न तो मन्त्र आदि । किया हुआ कर्म जीव को उसी तरह से अनुगमन करता है जिस तरह से बछड़ा गौ का अनुसरण करता है । जगत् के सभी प्राणी जन्म से पहले अव्यक्त रहते हैं, बीच में व्यक्त हो जाते हैं और मर जाने के पश्चात् पुनः अव्यक्त हो जाते हैं ।। ११-१३ ।। जिस तरह से शरीर में कौमार आदि अवस्थाएँ आती

वस्त्रं गृह्णात्येवं शरीरकम् । देही नित्यमवध्योऽयं यतः शोकं ततस्त्यजेत् ॥ १४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽसंस्कृतादिशौचकथनं नामैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥

अथषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

वानप्रस्थाश्रमः

पुष्कर उवाच– **वानप्रस्थयतीनां च धर्मं वक्ष्ये यथा शृणु । जटित्वमग्निहोत्रित्वं भूशय्याऽजिनधारणम् ॥ १ ॥ वने वासः पयोमूलनीवारफलवृत्तिता। प्रतिग्रहनिवृत्तिश्च त्रिः स्नानं ब्रह्मचारिता ॥ २ ॥ देवातिथीनां पूजा च धर्मोऽयं वनवासिनः । गृही ह्यपत्यापत्यं च दृष्ट्वाऽरण्यं समाश्रयेत् ॥ ३॥ तृतीयमायुषो भागमेकाकी वा सभार्यकः । ग्रीष्मे पञ्चतपा नित्यं वर्षास्वभ्रावकाशिकः ॥ ४ ॥ आर्द्रवासाश्च हेमन्ते तपश्चोग्रं चरेद्बली । अपरावृत्तिमास्थाय व्रजेद्दिशमजिह्मगः ॥ ५ ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वानप्रस्थाश्रमकथनं नाम षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

अथैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

यतिधर्माः

पुष्कर उवाच– **यतिधर्मं प्रवक्ष्यामि ज्ञानमोक्षादिदर्शकम् । चतुर्थमायुषो भागं प्राप्य सङ्गात्परिव्रजेत् ॥ १ ॥ यदह्नि विरजेद्धीरस्तदह्नि च**

हैं, उसी प्रकार से उसे देह की भी प्राप्ति होती है । जिस तरह से मनुष्य दूसरे नवीन वस्त्र को धारण करता है, उसी प्रकार वह दूसरा शरीर धारण करता है । चूँकि जीव नित्य तथा अवध्य है, अतएव उसके लिए शोक नहीं करना चाहिए ।। १४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का असंस्कृत आदि के शौच का वर्णन नामक एक सौ उनसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५९ ॥

श्रीपुष्करजी ने कहा– वानप्रस्थों का तथा यतियों का जैसा धर्म है, उसका मैं वर्णन कर रहा हूँ उसे तुम सुनो । जटाधारण, अग्निहोत्र करना, पृथिवी पर सोना, चर्मधारण करना, वन में निवास करना, जल, मूल, नीवार तथा फल खाकर जीवनयापन करना, दान नहीं लेना, तीन बार स्नान करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, देवता एवं अतिथि का पूजन करना, यही वनवासियों (वानप्रस्थों) का धर्म है ।। १-२ ।। पुत्र का पुत्र हो जाने पर गृहस्थ को वन में चला जाना चाहिए । आयु के तृतीयभाग को अकेले अथवा पत्नी के साथ वन में निवास करे । उसे गर्मी के दिन में पञ्चाग्नि तापनी चाहिए तथा वर्षा के दिनों में बादलों के नीचे निवास करना चाहिए ।। ३-४ ।। हेमन्त ऋतु में भींगा कपड़ा पहनकर रहना चाहिए । इस तरह से घोर तपस्या करनी चाहिए। उसे अपरावृत्ति अपनाकर निष्कपटभाव से दिशाओं में चला जाना चाहिए ।। ५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का वानप्रस्थ आश्रम वर्णन नामक एक सौ साठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १६० ॥

श्रीपुष्कर जी ने कहा– अब मैं ज्ञान तथा मोक्ष का प्रदर्शन करने वाले यतिधर्म का वर्णन कर रहा हूँ । अपनी आयु का चौथा भाग आ जाने पर संग का परित्याग करके यतिधर्म को

परिव्रजेत् । प्राजापत्यां निरुप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ॥ २ ॥ आत्मन्यग्नीन्समारोप्य प्रव्रजेद् ब्राह्मणो गृहात् । एक एव चरेन्नित्यं ग्राममन्नार्थमाश्रयेत्॥३॥ उपेक्षकोऽसंचयि (य) को मुनिर्ज्ञानसमन्वितः । कपालं वृक्षमूलं च कुचेलमसहायता ॥ ४ ॥ समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् । नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवनम् ॥ ५ ॥ कालमेव प्रतीक्षेत निदेशं भृतको यथा । दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ॥ ६ ॥ सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् । अलाबुदारुपत्राणि मृण्मयं वैष्णवं यतेः ॥ ७ ॥ विधूमे न्यस्तमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने । वृत्ते शरावसम्पाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥ ८ ॥ माधूकरमसंक्लृप्तं प्राक्प्रणीतमयाचितम् । तात्कालिकं चोपपन्नं भैक्षं पञ्चविधं स्मृतम् ॥ ९ ॥ पाणिपात्री भवेद्वाऽपि पात्रे पात्रात्समाचरेत् । अवेक्षेत गतिं नृणां कर्मदोषसमुद्भवाम् ॥ १० ॥ शुद्धभावश्चरेद्धर्मं यत्र तत्राऽऽश्रमे रतः । समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम्॥११॥ फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बु प्रसादकम् । न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ॥ १२ ॥ अजिह्मः पण्डकः पङ्गुरन्धो बधिर एव च । सद्भिश्च मुच्यतेऽसद्भिरज्ञानात्संसृतो द्विजः ॥ १३ ॥ अह्नि रात्र्यां च याञ्जन्तून्हिनस्त्यज्ञानतो यतिः। तेषां स्नात्वा विशुद्ध्यर्थं प्राणायामान्षडाचरेत्॥१४॥ अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् । चर्मावनद्धं दुर्गन्धं पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ १५ ॥ जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् । रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥ १६ ॥ धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । ह्रीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं

अपनाना चाहिए ।। १ ।। जिस दिन वैराग्य हो जाय उसी दिन संन्यास ले लेना चाहिए । ब्राह्मण को चाहिए कि वह प्राजापत्य नामक इष्टि करके उसमें सब कुछ दक्षिणा में दे दे और आह्वनीय आदि अग्नियों का अपने में आरोप करके घर से निकल जाय । वह अकेला ही सदा विचरण करे, भोजन प्राप्त करने के लिए ग्राम में जाय ।। २-३ ।। उस मननशील पुरुष को उपेक्षा करने वाला, संग्रही तथा ज्ञानी होना चाहिए । उसे भिक्षापात्र धारण करना चाहिए, वृक्ष के जड़ में सोना चाहिए, मैली कुचैली लंगोटी धारण करना चाहिए, किसी सहायक को नहीं रखना चाहिए, उसे सबों के प्रति समानता का भाव रखना चाहिए। यही मुक्त पुरुष का लक्षण है । न तो किसी की मृत्यु की प्रशंसा करे और न तो किसी के जन्म की ।। ४-५ ।। संन्यासी पुरुष काल की उसी तरह से प्रतीक्षा करे जिस तरह कोई सेवक अपने स्वामी की आज्ञा की प्रतीक्षा करता है । उसे देखकर चलना चाहिए और छानकर पानी पीना चाहिए ।। ६ ।। उसे सत्य बोलना चाहिए और अपने मन के अनुकूल ही आचरण करना चाहिए । लौकी की तुमड़ी, काठ का पात्र (कमण्डलु) मिट्टी का पात्र तथा त्रिदण्ड यही संन्यासी का लक्षण है । संन्यासी को सदा भिक्षा उस समय माँगना चाहिए जब ग्राम में धुआँ निकलना बन्द हो गया हो, उपयोग करने के बाद मूसल रख दिया गया हो, आग बुझायी गयी हो, लोग भोजन कर चुके हों तथा घर के बर्तन माँजे जा चुके हों ।। ८ ।। संन्यासी के लिए पाँच प्रकार की भिक्षा बतलायी गयी है- मधुकरी असंक्लृप्त जिसके विषय में पहले से कोई भी संकल्प न हो, प्राक्प्रणीत (जो पहले से ही देने के लिए तैयार रखी गयी हो), अयाचित (जो विना माँगे ही मिल जाय) तथा जो भोजन के समय तत्काल मिल जाय ।। ९ ।। संन्यासी को या तो करपात्री होना चाहिए अथवा दूसरे के पात्र से अपने हाथ रूपी पात्र में उसे भिक्षा ले लेनी चाहिए । वह मनुष्यों के कर्म दोष जन्य नारकीयादि गतियों का सदा चिन्तन करे । वह जहाँ कहीं भी आश्रम में रहे और शुद्ध भाव से धर्माचरण करे । सभी जीवों के प्रति समानता का भाव रखे, केवल आश्रम के चिह्नों को धारण करना धर्म का कारण नहीं है ।। १०-११ ।। निर्मली का फल यद्यपि जल को साफ करता है किन्तु उसके नाम लेने मात्र से पानी स्वच्छ नहीं होता हैं ।। १२ ।। अज्ञानवश संसार के बन्धन में पड़ा हुआ तथा लँगड़ा, लूला, अन्धा, बहरा भी वह ब्राह्मण यदि निष्कपट भाव से संन्यासी हो जाय तो सत् एवं असत् से मुक्त हो जाता है । संन्यासी रात्रि में तथा दिन में जो जीवों को मारता है, उसके प्रायश्चित्त के लिए वह स्नान करके प्रतिदिन छह प्राणायाम करे ।। १३-१४ ।। संन्यासी अपने शरीर को अस्थियों के स्तम्भ पर टिके हुए, मांस तथा खून से भरे हुए, चमड़े से बँधे हुए मूत्र तथा पुरीष (मल) की दुर्गन्ध से भरे हुए, जरा एवं शोक से परिपूर्ण, रोग के घर दुख से भरे हुए, मलिन, अनित्य एवं भूतों के डेरा के समान समझकर उसके प्रति निःस्पृह रहे ।। १५-१६ ।। धैर्य, क्षमा, अपने मन को वश में रखना, चोरी न करना, पवित्र रहना, इन्द्रियों को वश में रखना,

धर्मलक्षणम् ॥ १७ ॥ चतुर्विधं भैक्षवस्तु कुटीचकबहूदकौ । हंसःपरमहंसश्च यो यः पश्चात् स उत्तमः ॥ १८ ॥ एकदण्डी त्रिदण्डी वा योगी मुच्येत बन्धनात् । अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ॥ १९ ॥ यमाः पञ्चाथ नियमाः शौचं सन्तोषणं तपः । स्वाध्यायेश्वरपूजा च पद्मकाद्यासनं यतेः ॥ २० ॥ प्राणायामस्तु द्विविधः सगर्भोऽगर्भ एव च । जपध्यानयुतो गर्भो विपरीतस्त्वगर्भकः ॥ २१ ॥ प्रत्येकं त्रिविधः सोऽपि पूरकुम्भकरेचकैः । पूरणात्पूरको वायोर्निश्चलत्वाच्च कुम्भकः॥ २२ ॥ रेचनाद्रेचकः प्रोक्तो मात्राभेदेन च त्रिधा । द्वादशस्तु चतुर्विंशः षट्त्रिंशन्मात्रिकोऽपरः ॥ २३ ॥ तालो लघ्वक्षरो मात्रा प्रणवादि चरेच्छनैः । प्रत्याहारो जापकानां ध्यानमीश्वरचिन्तनम् ॥ २४ ॥ मनोधृतिर्धारणा स्यात्समाधिर्ब्रह्मणि स्थितिः । अयमात्मा परं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तकम् ॥ २५ ॥ विज्ञानमानन्दं ब्रह्म तत्त्वमस्यहमस्मि तत् । परं ब्रह्म ज्योतिरात्मा वासुदेवो विमुक्त ओम् ॥ २६ ॥ देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहंकारवर्जितम् । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिमुक्तं ब्रह्म तुरीयकम् ॥ २७ ॥ नित्यशुद्धबुद्ध मुक्तसत्यमानन्दमद्वयम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिरक्षरं सर्वगं हरिः ॥ २८ ॥ योऽसावादित्यपुरुषः सोऽसावहमखण्ड ओम् । सर्वारम्भपरित्यागी समदुःखसुखः क्षमी॥२९॥ भावशुद्धश्च ब्रह्माण्डं भित्त्वा ब्रह्म भवेन्नरः। आषाढ्यां पौर्णमास्यां,च चातुर्मास्यं व्रतं चरेत् ॥ ३० ॥ ततो व्रजेन्नवम्यादौ

लज्जा करना, ज्ञानी होना,सत्य बोलना और क्रोध न करना ये दस धर्म के स्वरूप हैं ।। १७ ।। संन्यासी चार प्रकार के होते हैं- कुटीचक, बहूदक, हंस तथा परमहंस । इनमें पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर कोटि के संन्यासी उत्तम होते हैं ।। १८ ।। एक दण्ड अथवा त्रिदण्ड धारण करने वाला योगी संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है । अहिंसा, सत्य बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना पाँच यम कहलाते हैं । पवित्रता, सन्तोष करना, तपस्या करना, वेदाध्ययन करना, ईश्वर की पूजा करना ये पाँच नियम कहलाते हैं । पद्म आसन आदि से बैठना ही आसन कहलाता है ।। १९-२० ।। प्राणायाम दो प्रकार का होता है- सगर्भ एवं अगर्भ । जिसमें जप तथा ध्यान किया जाय वह सगर्भ प्राणायाम है । जिसमतें जप तथा ध्यान नहीं किया जाय वह अगर्भ प्राणायाम है ।। २१ ।। ये दोनों प्रकार के प्राणायाम पूरक, कुम्भक तथा रोचक के भेद से तीन-तीन प्रकार के होते हैं- जिसमें वायु को अपने भीतर भरा जाता है, उसे पूरक कहते हैं। जिसमें बायु को रोक लिया जाता है उसे कुम्भक कहते हैं । जिसमें वायु नासिका के मार्ग से बाहर निकाली जाती है, उस प्राणायाम को रेचक कहते हैं । मात्रा के भेद से इन प्राणायामों के भी तीन-तीन भेद होते हैं । पहला बारह मात्रा का होता है, दूसरा चौबीस मात्रा का तथा तीसरा छत्तीस मात्रा का प्राणायाम होता है । एक ह्रस्व वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है अथवा एक बार ताली बजाने में जो समय लगता है, उसे मात्रा कहते हैं । प्राणायाम में धीरे-धीरे प्रणव का जप करना चाहिए । इन्द्रियों के संयम को प्रत्याहार कहते हैं । जापक के द्वारा ध्यानपूर्वक मन से ईश्वर का चिन्तन करना ही धारण है । ब्रह्म में होने वाली स्थिति को समाधि कहते हैं । यह आत्मा ही परंब्रह्म है । वह सत्यस्वरूप ज्ञान स्वरूप तथा अनन्तस्वरूप है।।२२-२५।। ब्रह्म विज्ञान स्वरूप आनन्दस्वरूप है । ब्रह्म ही मेरी आत्मा है और मैं ब्रह्मात्मक हूँ । परं ब्रह्म ज्योतिस्वरूप, सबों की आत्मा, वासुदेव एवं प्रणवस्वरूप हैं । वे समस्त दोषों से रहित हैं । वे देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण तथा अहंकार से रहित हैं ।। २६ ।। ब्रह्म जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से रहित तुरीयस्वरूप है ।। २७ ।। वह नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्यस्वरूप, आनन्दस्वरूप और अभेद स्वरूप हैं । संन्यासी को यह चिन्तन करना चाहिए कि मैं ही परंब्रह्म, परंज्योति, अक्षर, सर्वव्यापक तथा श्रीहरि स्वरूप हूँ । क्योंकि मेरी आत्मा परंब्रह्म हैं ।। २८।। जो आदित्यमण्डल में विद्यमान, ओम शब्द वाच्य, अखण्ड पुरुष है वह मैं ही हूँ । उसको सभी काम्य कर्मों का परित्याग कर देना चाहिए सुख और दुःख दोनों में समान भाव वाला होना चाहिए। क्षमावान होना चाहिए ।। २९ ।। भावशुद्ध पुरुष ब्रह्माण्ड का भेदन करके ब्रह्मस्वरूप हो जाता है । आषाढ़ी ओर पौर्णमासी को उसे चातुर्मास्य व्रत करना चाहिए । चातुर्मास्य के अन्त में ऋतुओं

ह्यृतुसंधिषु वापयेत् । प्रायश्चित्तं यतीनां च ध्यानं वायुयमस्तथा ॥ ३१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये यतिधर्मकथनं नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

अथद्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

धर्मशास्त्रकथनम्

पुष्कर उवाच– **मनुर्विष्णुर्याज्ञवल्क्यो हारीतोऽत्रिर्यमोऽङ्गिराः । वसिष्ठदक्षसंवर्तशातातपपराशराः ॥ १ ॥ आपस्तम्बोशनोव्यासाः कात्यायनबृहस्पती। गौतमः शङ्खलिखितौ धर्ममेते यथाऽब्रुवन् ॥ २ ॥ तथा वक्ष्ये समासेन भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु । प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥ ३ ॥ काम्यं कर्म प्रवृत्तं स्यान्निवृत्तं ज्ञानपूर्वकम् । वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ॥ ४ ॥ अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम् । सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ॥ ५ ॥ तच्चाग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः । सर्वभूतेषु चाऽऽत्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि ॥ ६ ॥ समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति । आत्मज्ञाने समे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान् ॥ ७ ॥ एतद्द्विजन्मसामर्थ्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः । वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राऽऽश्रमे वसन् ॥ ८ ॥ इहैव लोके तिष्ठन्हि ब्रह्मभूयाय कल्पते । स्वाध्यायानामुपाकर्म श्रावण्यां श्रवणेन तु ॥ ९ ॥ हस्ते चौषधिवारे च पञ्चम्यां श्रावणस्य च । पौषमासस्य रोहिण्यामष्टकायामथापि वा ॥ १० ॥ जलान्ते छन्दसां कुर्यादुत्सर्गं विधिवद्बहिः।**

के संधिकाल में नवमी आदि तिथियों को क्षौर आदि कर्म कराकर निकल पड़ना चाहिए । ध्यान करना तथा वायु का नियमन करना यही संन्यासियों का प्रायश्चित्त है ।। ३०-३१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का यतिधर्म वर्णन नामक एक सौ एकसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १६१ ॥

श्रीपुष्करजी ने कहा– मनु, विष्णु,याज्ञवल्क्य हारीत, अत्रि, यम, अङ्गिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, उशना, व्यास, कात्यायन, वृहस्पति,गौतम, शङ्ख तथा लिखित ने जैसा धर्म बतलाया है,उसे मैं बतला रहा हूँ । यह भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है, इसे तुम सुनो । वैदिक कर्म दो प्रकार के होते हैं- प्रवृत्त और निवृत्त । काम्य कर्मों को प्रवृत्त कर्म कहते हैं और ज्ञानपूर्वक किए जाने वाले निष्काम कर्मों को निवृत्त कर्म कहते हैं ।। १-३ ।। वेदाभ्यास, तपस्या, ज्ञानार्जन, इन्द्रियों को संयमित करना, अहिंसा और गुरुसेवा, ये परमकल्याणकारक हैं । इन सभी कर्मों में श्रेष्ठ आत्मज्ञान को बतलाया गया है ।। ५ ।। उसे सभी कर्मों में श्रेष्ठ इसलिए बतलाया गया है कि उससे मोक्ष की प्राप्ति होती है । सभी भूतों के भीतर परमात्मा की व्याप्ति और परमात्मा की भी सभी भूतों में व्याप्ति समान रूप से जानने वाला पुरुष परमात्मा का यजन करने वाला है । वह मोक्ष को प्राप्त करता है ।। ६।। आत्मज्ञान तथा शम की प्राप्ति हो जाने पर मुमुक्षु पुरुष को वेदाभ्यास करने का प्रयत्न करना चाहिए ।। ७ ।। वेदाभ्यास करने का सामर्थ्य (अधिकार) द्विजों को विशेष रूप से ब्राह्मणों का होता है । वेदों तथा शास्त्रों के अर्थ तथा अभिप्राय को जानने वाला पुरुष चाहे जहाँ कहीं भी निवास करे, इस लोक में ही रहकर वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है ।। ८-९ ।। इस स्वाध्याय का उपक्रम (प्रारम्भ) श्रावणी (श्रावण की पूर्णिमा) अथवा श्रवण नक्षत्र से युक्त , या हस्त नक्षत्र से युक्त सोमवार या श्रावण शुक्ल पञ्चमी अथवा पौषमास की रोहिणी अथवा अष्टका के दिन करना चाहिए । पुनः वेदाध्ययन

त्र्यहं प्रेतेष्वनध्यायः शिष्यर्त्विग्गुरुबन्धुषु ॥ ११ ॥ उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखाश्रोत्रिये तथा। सन्ध्यागर्जितनिर्घाते भूकम्पोल्कानिपातने॥ १२॥
समाप्तवेदं ह्यनिशमारण्यकमधीत्य च । पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके ॥ १३ ॥ ऋतुसंधिषु भुक्त्वा वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ।
पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारशूकरैः ॥ १४ ॥ कृतेऽन्तरे त्वहोरात्रं शक्रपाते तथोच्छ्रये । श्वक्रोष्टुगर्दभोलूक सामवानार्तनिस्वने॥१५॥
अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशानपतितान्तिके । अशुभासु च तारासु विद्युत्स्तनितसम्प्लवे ॥ १६ ॥ भुक्त्वाऽऽर्द्रपाणिरम्भोन्तरर्धरात्रेऽतिमारुते । पांशुवर्षे
दिशां दाहे सन्ध्यानीहारभीतिषु ॥ १७ ॥ धावतः प्राणिबाधे च विशिष्टे गृहमागते । खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौकावृक्षादिरोहणे ।
सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान्विदुः ॥ १८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये धर्मशास्त्रवर्णनं नाम-द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

अथत्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पकथनम्

पुष्कर उवाच– **श्राद्धकल्पं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु । निमन्त्र्य विप्रान्पूर्वेद्युः स्वागतेनापराह्णतः ॥ १ ॥ प्राच्योपवेशयेत्पीठे युग्मान्दैवेऽथ**
पित्र्यके। अयुग्मान्प्राङ्मुखान्दैवे त्रीन्पित्र्ये चैकमेव वा ॥ २ ॥ मातामहानामप्येवं तन्त्रं वा वैश्वदेविकम् । पाणिप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टरार्थं कुशानपि॥३॥

का उत्सर्ग गृह्यसूत्र में बतलाए गए नियम के अनुसार गाँव के बाहर जलाशय के सन्निकट में करना चाहिए । किसी शिष्य अथवा ऋत्विक् अथवा आचार्य अथवा किसी बन्धु की मृत्यु हो जाने पर तीन दिन का अनध्याय करना चाहिए ।। ९-११ ।। उपाकर्म करने के समय, तथा अपनी शाखा के वेद के किसी विद्वान् का निधन हो जाने पर, भी तीन दिन का अनध्याय रखना चाहिए। सन्ध्या के समय, मेघ के गर्जने पर, आकाश में उत्पात सूचक शब्द के होने पर,भूकम्प के होने पर अथवा उल्कापात के होने पर, वेद के समाप्त होने पर तथा रात दिन आरण्यक ग्रन्थ का अध्ययन करके, पूर्णिमा, चतुर्दशी दोनों पक्षों की अष्टमी तथा राहु का सूतक होने पर, दो ऋतुओं के सन्धिकाल में, श्राद्ध आदि में भोजन करने पर तथा श्राद्ध का दान लेने पर, एक-एक दिन का उपवास करना चाहिए । वेदाध्ययन करने वालों के बीच में किसी पशु, मेढक, नेवला, घोड़ा, सर्प, बिल्ली अथवा शूकर के आ जाने पर भी एक दिन तथा एक रात का अनध्याय रखना चाहिए । इन्द्र ध्वज के उतारे जाने पर तथा इन्द्र ध्वज के फहराए जाने पर भी एक दिन तथा एक रात का अनध्याय रखना चाहिए ।। १२-१४ ।। कुत्ता, सियार, गदहा, उल्लू, सामगान की आवाज, बाँस की आवाज, किसी आर्तप्राणी की आवाज अपवित्र वस्तु मूदों, शूद्र, अन्त्यज, श्मशान तथा पतित आदि का सान्निध्य होने पर, तात्कालिक अनध्याय होता है।।१५-१६।। भोजन करके गीले हाथ, जल के भीतर आधी रात्रि के समय, बहुत अधिक हवा चलने पर, धूल की वृष्टि होने पर, दिग्दाह के होने पर, सन्ध्याकाल के समय, कुहरा पड़ने पर तथा किसी प्रकार का भय उपस्थित होने पर वेदाध्ययन नहीं करना चाहिए ।। १७ ।। दौड़ते समय, किसी प्राणी के प्राण संकट में होने पर, किसी विशिष्ट पुरुष के आ जाने पर,गदहा,ऊँट, सवारी, हाथी, कुत्ता, तथा नौका में, एवं वृक्ष पर चढ़ने के समय वेदाध्ययन बन्द रखना चाहिए । ये सैंतिस प्रकार के तात्कालिक अनध्याय हैं ।। १८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का धर्मशास्त्र वर्णन नामक एक सौ बासठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १६२ ॥

श्रीपुष्करजी ने कहा– अब मैं श्राद्धकल्प का वर्णन कर रहा हूँ उसे आप सुनें । यह भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाला है । श्राद्ध करने से एक दिन पूर्व ब्राह्मणों को निमन्त्रित करना

आवाहयेदनुज्ञातो विश्वेदेवास इत्यृचा । यवैरन्ववकीर्याथ भाजने सपवित्रके ॥ ४ ॥ शं नो देव्याः पयः क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा । या दिव्या इति मन्त्रेण हस्ते ह्यर्घं विनिक्षिपेत् ॥ ५ ॥ दत्त्वोदकं गन्धमाल्यं धूपदानं प्रदीपकम् । अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणामप्रदक्षिणम् ॥ ६ ॥ द्विगुणांस्तु कुशान्कृत्वा ह्युशन्तस्त्वेत्यृचा पितॄन् । आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायान्तु नस्ततः ॥ ७ ॥ यवार्थास्तु तिलैः कार्याः कुर्यादर्घ्यादि पूर्ववत् । दत्त्वाऽर्घ्यं संस्रवाञ्शेषान्पात्रे कृत्वा विधानतः ॥ ८ ॥ पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः ।अग्नौ करिष्य आदाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतम् ॥ ९ ॥ कुरुष्वेति ह्यनुज्ञातो हुत्त्वाऽग्नौ पितृयज्ञवत् । हुतशेषं प्रदद्यात्तु भाजनेषु समाहितः ॥ १० ॥ यथालाभोपपन्नेषु रौप्येषु तु विशेषतः । दत्त्वाऽन्नं पृथ्वी पात्रमिति पात्राभिमन्त्रणम् ॥ ११ ॥ कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत्। सव्याहृतिकां गायत्रीं मधु वाता इति त्र्यृ (तृ) चम् ॥ १२॥ जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेऽपि वाग्यताः । अन्नमिष्टं हविष्यं च दद्याज्जप्त्वा पवित्रकम् ॥ १३ ॥ अन्नमादाय तृप्ताःस्थ शेषं चैवानुमन्य च। तदन्नंविकिरेद्भूमौ दद्याच्चापः सकृत्सकृत् ॥ १४ ॥ सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः । उच्छिष्टसंनिधौ पिण्डान्प्रदद्यात्पितृयज्ञवत् ॥ १५ ॥

चाहिए । अपराह्णकाल में ब्राह्मणों के आ जाने पर उनका स्वागत करके तथा पूजन करके उन्हें पीठ पर बैठाना चाहिए । दैव कार्य में युग्म (दो चार छह आदि) ब्राह्मणों को तथा पितृ कार्य में अयुग्म (एक-तीन-पाँच आदि) ब्राह्मणों को निमन्त्रित करना चाहिए । अथवा दैव कार्यों में अयुग्म ब्राह्मणों को पूर्वाभिमुख बैठाना चाहिए तथा पितृ कार्य में तीन अथवा एक ही ब्राह्मण को निमन्त्रित करना चाहिए ।। १-२ ।। इसी तरह से मातामह (नाना) आदि का भी श्राद्ध कर्म करना चाहिए और वैश्वदेविक कर्म में भी ऐसा ही करना चाहिए । आए हुए ब्राह्मणों का हाथ धुलाकर उनके बैठने के लिए कुश का आसन देना चाहिए ।।३ ।। इसके पश्चात् ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर- 'विश्वे देवास आगत' इत्यादि मन्त्र के द्वारा विश्वेदेवों का आवाहन करना चाहिए । इसके पश्चात् पवित्रक से युक्त विश्वेदेवों के पात्र में जौ डालना चाहिए ।। ४ ।। 'शंनोदेवी' इत्यादि मन्त्र से जल डालकर 'यवोऽसि०' इत्यादि मन्त्र से जौ छोड़ना चाहिए । 'या दिव्या आपः' इत्यादि मन्त्र से अर्घ को ब्राह्मण के हाथ में रखना चाहिए। पुनः जल,गन्ध,माला धूप तथा दीप दिखाना चाहिए ।। ५ ।। इसके पश्चात् अपसव्यहोकर पितरों के लिए अप्रदक्षिण क्रम से वस्तुएँ प्रदान करनी चाहिए । कुशों को दुबर करके (द्विगुण मोड़कर) 'उशन्तस्त्वा०' इत्यादि मन्त्र से पितरों का आवाहन करना वचाहिए । पुनः पितृ ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर 'आयान्तु नः पितरः' इत्यादि मन्त्र को पढ़ते हुए पितरों का आवाहन करना चाहिए ।। ६-७ ।। पितृ कार्य में जौ के स्थान पर तिलों से कार्य करना चाहिए । पितरों को भी विश्वेदेवों के ही समान अर्घ्य आदि प्रदान करना चाहिए। ब्राह्मणों को अर्घ्य दान करके संस्रव (ब्राह्मण के हाथ से चुए हुए जल) को पितृ पात्र में विधिपूर्वक लेना चाहिए । पुनः भूमि पर दक्षिणाग्रकुश रखकर पितृभ्यः स्थानमसि' इस वाक्य को बोलकर कुशे पर उस पात्र को अधोमुख करके लुढका दें । इसके पश्चात् श्राद्धकर्ता घृत से प्लुत अन्न को लेकर ब्राह्मण से अग्निकरण के लिए आज्ञा लेनी चाहिए ।। ८-९ ।। ब्राह्मणों से अग्निकरण की आज्ञा प्राप्त करके पितृयज्ञ के ही समान अग्नि में उस अन्न की दो आहुति प्रदान करनी चाहिए । हवन से बचे हुए अन्न को सावधान होकर ब्राह्मणों के लिए परसना चाहिए ।।१०।। उस समय जो भी पात्र उपलब्ध हो उसी में उस अन्न को परसना चाहिए , यदि सम्भव हो तो चाँदी के पात्र में ही उस अन्न को परसें । अन्न को परसकर 'पृथिवी ते पात्रम् द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखे०' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर पात्र को अभिमन्त्रित करें ।। ११ ।। उसके पश्चात् 'इदं विष्णु०' इत्यादि मन्त्र पढ़कर अन्न में ब्राह्मण के अंगूठे का स्पर्श कराएँ । उसके पश्चात् तीनों व्याहृतियों से युक्त गायत्री तथा 'मधुवाताऋतायते०' इत्यादि तीन ऋचाओं का पाठ करना चाहिए । पुनः ब्राह्मणों से अन्न ग्रहण करने के लिए प्रार्थना करे जब तक ब्राह्मण मौन होकर भोजन करते रहें तब तक उनके मनोनुकूल वस्तुओं को पूछ-पूछकर परसता रहे । ब्राह्मणों के भोजन काल में पूर्वोक्त मन्त्र अथवा पवमानी मन्त्र का पाठ करते रहना चाहिए ।। १३ ।। इसके पश्चात् हाथ में अन्न लेकर ब्राह्मणों से पूछे कि क्या आप लोग तृप्त हो गए ? तो ब्राह्मण भी कहें कि हम तृप्त हो गए । पुनः यजमान पूछे कि शेष अन्न का क्या किया जाय ? तो ब्राह्मण कहें कि इसे अपने बान्धवों के साथ भोजन करें । इसके पश्चात् यजमान उस अन्न को हाथ में लेकर ब्राह्मणों के आगे उनके उच्छिष्ट के सन्निकट ही दक्षिणाग्रकुश भूमि पर रखे और उन कुशों पर तिलजल छोड़कर रख दे । पुनः

मातामहानामप्येवं दद्यादाचमनं ततः। स्वस्तिवाच्यं ततः कुर्यादक्षय्योदकमेव च॥१६॥ दत्त्वा तु दक्षिणां शक्त्या स्वधाकारमुदाहरेत्। वाच्यतामित्यनुज्ञातः स्वपितृभ्यः स्वधोच्यताम् ॥ १७ ॥ कुर्युरस्तु स्वधेत्युक्ते भूमौ सिञ्चेत्ततो जलम् । प्रीयन्तामिति वा दैवं विश्वेदेवा जलं ददेत्॥१८॥ दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च । श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोऽस्त्विति ॥ १९ ॥ इत्युक्त्वा तु प्रिया वाचः प्रणिपत्य विसर्जयेत् । वाजे वाज इति प्रीतपितृपूर्वं विसर्जनम् ॥ २० ॥ यस्मिंस्तु संस्रवाः पूर्वमर्घपात्रे निपातिताः । पितृपात्रं तदुत्तानं कृत्वा विप्रान्विसर्जयेत्॥२१॥ प्रदक्षिणमनुव्रज्य भुक्त्वा तु पितृसेवितम् । ब्रह्मचारी भवेत्तां तु रजनीं ब्राह्मणैः सह ॥ २२ ॥ एवं प्रदक्षिणं कृत्वा वृद्धौ नान्दीमुखान्पितृन् । यजेत दधिकर्कन्धुमिश्रान्पिण्डान्यवैः क्रियाः ॥ २३ ॥ एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकार्घैकपवित्रकम् । आवाहनाग्नौकरणरहितं ह्यपसव्यवत् ॥ २४ ॥ उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने पितृविसर्जने । अभिरम्यतामिति वदेद् ब्रूयुस्तेऽभिरताः स्म ह ॥ २५ ॥ गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् । अर्घार्थपितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥ २६ ॥ ये समाना इति द्वाभ्यां शेषं पूर्ववदाचरेत् । एतत्सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया सह ॥ २७ ॥ अर्वाक्सपिण्डीकरणं यस्य संवत्सराद्भवेत् । तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजे ॥ २८ ॥ मृताहनि च कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम् । प्रति

ब्राह्मणों को कुल्ला करने के लिए एक-एक बार जल देना चाहिए ।। १४ ।। उसके पश्चात् तिल से युक्त सम्पूर्ण अन्न को लेकर दक्षिणाभिमुख होकर पितृयज्ञ के ही समान ब्राह्मणों के उच्छिष्ट के सन्निकट में ही पिण्डदान करना चाहिए ।। १५ ।। इसी तरह से मातामह आदि के लिए भी पिण्डदान करना चाहिए । पुनः ब्राह्मणों को आचमन कराना चाहिए । इसके पश्चात् ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराना चाहिए और ब्राह्मणों से अक्षय्योदक कराए ।। १६ ।। पुनः अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर, ब्राह्मणों से प्रार्थनापूर्वक कहे कि मैं अब स्वधा वाचन कराऊँगा और ब्राह्मण यह आज्ञा दें कि तुम स्वधावाचन करो । इस तरह आज्ञा पाकर ब्राह्मणों से प्रार्थना करे कि आप लोग मेरे पितरों तथा मातामहादिकों के लिए स्वधावाचन करें। तब ब्राह्मण कहें- स्वधा । इसके पश्चात् यजमान पृथिवी पर जल छोड़ें । अथवा विश्वेदेवाः प्रियन्ताम् यह कहकर पृथिवी पर जल छोड़ना चाहिए । इसके पश्चात् ब्राह्मणों की आज्ञा प्राप्त करके यजमान इस मन्त्र का पाठ करें-

'दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च । श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहुदेयंचनोऽस्त्विति ॥

अर्थात् मेरे देने वाले बढें वेद तथा सन्तान बढें, हमारी श्रद्धा कम न होए और हमारी सन्तान भी बढ़ती रहे । हमारे पास दान करने के लिए बहुत धन हो ।। १९ ।। इसके पश्चात् ब्राह्मणों से प्रियवाणी बोले और प्रणाम करके उन्हें विसर्जित करे । वाजे-बाजे0 (यजुर्वेद १८) इत्यादि मन्त्र पढ़कर पितरों का विसर्जन करना चाहिए ।। २० ।। जिस अर्घ्यपात्र में पहले संस्रव डाला गया था उसको सीधा (उत्तान) करके ब्राह्मणों को विदा करना चाहिए ।। २१ ।। इसके पश्चात् ब्राह्मणों के पीछे-पीछे ग्राम की सीमा तक जाना चाहिए और ब्राह्मणों के कहने पर उनकी प्रदक्षिणा करके लौटना चाहिए । फिर अपने बान्धवों के साथ पितृ सेवित अन्न का भोजन करके रात्रि में ब्रह्मचारी रहना चाहिए और ब्राह्मणों को भी उस रात्रि में ब्रह्मचारी रहना चाहिए ।। २२ ।। इसी तरह से पुत्रजन्म आदि के अवसर पर सव्य होकर पितरों का यजन करना चाहिए । तिल से किए जाने वाले सभी कर्मों को जौ से करना चाहिए ।। २३ ।। एकोद्दिष्ट श्राद्ध विना वैश्वदेव्य के होता है । उसमें एक ही अर्घ्य पात्र तथा एक ही पवित्रक दिया जाता है । इसमें आवाटक तथा अग्नीकरण की क्रिया नहीं होती और सारी क्रियाएँ अपसव्य होकर की जाती हैं ।। २४ ।। इसमें अक्षय्यमस्तु के स्थान पर 'उपतिष्ठताम्' पद का प्रयोग किया जाता है । ब्राह्मणों का 'वाजे-बाजे०' इत्यादि मन्त्र से विसर्जन करते समय 'अभिरम्यताम्' कहना चाहिए और ब्राह्मण भी कहें कि 'अभिरताः स्मः' ।। २५ ।। सपिण्डीकरण श्राद्ध में पूर्वोक्त विधि से अर्घ्य के लिए, गन्ध, जल और तिल से युक्त चार अर्घ्यपात्रों को निर्मित करें । इनमें से तीन पितरों का पात्र होता है और एक पात्र प्रेत का होता है । इनमें से प्रेत के पात्र का जल पितरों के पात्रों में डालना चाहिए । उस समय 'ये समाना०' इत्यादि दो मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिए । शेष क्रियाओं को पूर्ववत्

संवत्सरं कार्यं श्राद्धं वै मासिकान्नवत् ॥ २९ ॥ हविष्यान्नेव वै मासं पायसेन तु वत्सरम् । मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः ॥ ३० ॥ ऐणरौरववाराहशाशैर्मांसैर्यथाक्रमम् । मासवृद्ध्याऽभितृप्यन्ति दत्तैरेव पितामहाः ॥ ३१ ॥ खड्गामिषं महाशल्कं मधुयुक्तान्नमेव च । लोहामिषं कालशाकं मांसं वार्धीनसस्य च ॥ ३२ ॥ यद्ददाति गयास्थश्च सर्वमानन्त्यमुच्यते । तथा वर्षात्रयोदश्यां मघासु च न संशयः ॥ ३३ ॥ कन्यां प्रजां वन्दिनश्च पशून्मुख्यान्सुतानपि । घृतं कृषिं च वाणिज्यं द्विशफैकशफं तथा ॥ ३४ ॥ ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान्स्वर्णरूप्ये सकुप्यके। ज्ञातिश्रैष्ठ्यं सर्वकामानाप्नोति श्राद्धदः सदा ॥ ३५ ॥ प्रतिपत्प्रभृतिष्वेतान्वर्जयित्वा चतुर्दशीम् । शस्त्रेणतु हता ये वै तेषां तत्र प्रदीयते ॥ ३६ ॥ स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्यं क्षेत्रं बलं तथा । पुत्रश्रैष्ठ्यं ससौभाग्यमपत्यं मुख्यतां सुतान् ॥ ३७ ॥ प्रवृत्तचक्रतां पुत्रान्वाणिज्यं प्रभुतां तथा । अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमां गतिम् ॥ ३८ ॥ धनं विद्यां भिषक्सिद्धिं रूप्यं गाश्चाप्यजाविकम् । अश्वानायुश्च विधिवद्यः श्राद्धं संप्रयच्छति ॥ ३९ ॥ कृत्तिकादिभरण्यन्ते स कामानाप्नुयादिमान् । वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः ॥ ४० ॥ प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितृञ्श्राद्धेन तर्पिताः। आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ॥ ४१ ॥ प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः ॥ ४२ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये श्राद्धकल्पवर्णनं नाम त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

करना चाहिए । सपिण्डीकरण तथा एकोद्दिष्ट दोनों श्राद्धों को माता के लिए भी करना चाहिए ।। २७ ।। जिसका सपिण्डीकरण श्राद्ध एक वर्ष पूरा होने से पहले भी कर दिया जाता है उसके लिए भी जल से भरे घड़े तथा अन्न का दान ब्राह्मण को एक वर्ष तक करना चाहिए ।। २८ ।। एक वर्ष तक प्रतिमास क्षयाह्न तिथि को एकोद्दिष्ट करना चाहिए । उसके पश्चात् वर्ष में एक बार क्षयाह्न तिथि को एकोद्दिष्ट करना चाहिए । इसे भी मासिक श्राद्ध के ही समान करना चाहिए ।। २९ ।। मासिक श्राद्ध हविष्यान्न से तथा वार्षिक श्राद्ध पायस से करना चाहिए । यह श्राद्ध क्रमशः मछली के मांस, हिरण के मांस, कौरभ्रमपक्षी के मांस, बकरे के मांस, विशेष प्रकार के हिरण के मांस, शूकर के मांस तथा खरगोश के मांस से करना चाहिये । इस प्रकार से मासिक श्राद्ध के पितृगण तृप्त होते हैं ।। ३०-३१ ।। गया में जाकर अपने पितरों के लिए गैंडे के मांस, मछली के मांस, शहद युक्त अन्न बूढ़े बकरे के मांस तथा कालशाक मांस से श्राद्ध करने वाला व्यक्ति अपने पितरों को अनन्तकाल के लिए सुखी तथा निश्चिन्त बना देता है ।। ३२-३३ ।। वर्षा ऋतु की त्रयोदशी जिसका मघा नक्षत्र से योग हो उसमें श्राद्ध करने वाले पितरों के लिए अक्षय होता है। चतुर्दशी तिथि को छोड़कर प्रतिपद से अमावश्या तक श्राद्ध करने वाला पुरुष कन्या, प्रजा, वन्दीजन, पशु, पुत्र, घृत, कृषि, वाणिज्य, दोखुर वाले पशु, ब्रह्मतेज से युक्त पुत्र, सुवर्ण, चाँदी, जाति में श्रेष्ठता तथा समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है ।। ३३-३५ ।। जो लोग आयुधों से मारे गये हैं उनको छोड़कर अन्य लोगों का श्राद्ध प्रतिपदा तथा चतुर्दशी तिथि को नहीं करना चाहिए । इन दो तिथियों में आयुध से मारे गये ही लोगों का श्राद्ध होता है ।। ३६ ।। विधिपूर्वक श्राद्ध करने वाला व्यक्ति स्वर्ग,सन्तान, ओजस, शौर्य, क्षेत्र, बल, पुत्र, श्रेष्ठता, सौभाग्य, समृद्धि, प्रधानता, शुभ, अप्रतिहतशासन, वाणिज्य आदि, नैरुज्य, यश,शोकाराहित्य, परंजाति, धन, विद्या, चिकित्सा में सफलता, रंगा-शीशा आदि, गौ, बकरी भेंड़, अश्व तथा आयु।।३६-३९।। जो व्यक्ति कृत्तिका से लेकर भरणी पर्यन्त के सत्ताइस नक्षत्रों में अपने पितरों के लिए श्राद्ध करता है वह अपने सभी अभिलषित पदार्थों को प्राप्त कर लेता है । पितरों के श्राद्ध करने वाले से पितरों के देवता वसु, रुद्र तथा सूर्य आदि प्रसन्न होकर उसे आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग तथा सुख प्रदान करते हैं और प्रसन्न होकर पितृगण उसे राज्य प्रदान करते हैं ।। ४०-४२।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का श्राद्धकल्प वर्णन नामक एक सौ तिरसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १६३ ॥

अथचतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

नवग्रहहोमः

पुष्कर उवाच– **श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समारभेत् । दृष्ट्यायुः पुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन्पुनः ॥ १ ॥ सूर्यः सोमो मङ्गलश्च बुधश्चाथ बृहस्पतिः। शुक्रः शनैश्चरोराहुः केतुश्चेति ग्रहाः स्मृताः ॥ २ ॥ ताम्रकात्स्फटिकाद्रक्तचन्दनात्स्वर्णकादुभौ । रजतादयशः सीसाद्ग्रहाः कार्याः क्रमादिमे ॥ ३ ॥ सुवर्णैर्वा यजेल्लिख्य गन्धमण्डलकेषु वा । यथावर्णं प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च ॥ ४ ॥ गन्धाश्च बलयश्चैव धूपो देयस्तु गु (गौ) ग्गुलः । कर्तव्या मन्त्रवन्तश्च चरवःप्रतिदैवतम् ॥ ५ ॥ आकृष्णेन इमं देवा अग्निर्मूर्द्धादिवः ककुत् । उद्बुध्यस्वेति च ऋचो यथासंख्यं प्रकीर्तिताः ॥ ६ ॥ वृहस्पते अति यदर्यस्तथैवाल्पात्परिश्रुतः। शं नो देवीस्तथा काण्डात्केतुं कृण्वन्निमास्तथा ॥ ७ ॥ अर्कः पलाशः खदिरो ह्यपामार्गोऽथ पिप्पलः । उदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात् ॥ ८ ॥ एकैकस्याम (स्य अ) ष्टशतमष्टाविंशतिरेव वा होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव समन्विताः ॥ ९ ॥ गुडौदनं पायसं च हविष्यं क्षीरयष्टिकम् । दध्योदनं हविः पूपान्मासं चित्रान्नमेव च ॥ १० ॥ दद्याद्ग्रहक्रमादेतद्द्विजेभ्यो भोजनं बुधः । शक्तितो वा यथालाभं सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ ११ ॥ धेनुः शङ्खस्तथाऽनड्वान् हेम वासो हयस्तथा। कृष्णा गौरायसश्छाग एता वै दक्षिणाः क्रमात् ॥ १२ ॥ यश्च यस्य यदा इष्टः स तं यत्नेन पूजयेत् । ब्रह्मणैषां वरो दत्तः पूजिताः पूजितस्य च ॥ १३ ॥ ग्रहाधीना**

श्रीपुष्करजी ने कहा– लक्ष्मी, शान्ति, दृष्टि, आयु तथा पुष्टि की कामना करने वाले पुरुष को तथा अभिचार कर्म करने वाले पुरुष को ग्रहयज्ञ करना चाहिए ।। १ ।। सूर्य, सोम, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु ये नवग्रह बतलाए गए हैं ।। २ ।। सूर्य की मूर्ति ताँबे की, चन्द्रमा की स्फटिक की, मङ्गल की लाल चन्दन की, बुध तथा बृहस्पति की सुवर्ण की, शुक्र की चाँदी की, शनि की लोहे की तथा राहु एवं केतु की रंगे की मूर्ति बनानी चाहिए ।। ३ ।। अथवा चन्दन का मण्डल बनाकर उनमें सोने से ग्रहों का चित्र बनाकर उनकी पूजा करनी चाहिए । जिस ग्रह का जो वर्ण है उसी के अनुसार उन्हें वस्त्र तथा फल प्रदान करना चाहिए ।। ४ ।। ग्रहों को चन्दन,कंकण चढ़ाना चाहिए तथा उन्हें गुग्गुल का धूप देना चाहिए। प्रत्येक ग्रहों के मन्त्रों से उनके लिए चरु का निर्माण करना चाहिए ।। ५ ।। आकृष्णेन० (यजु० वे० ३३/४३) इत्यादि मन्त्र सूर्य का, 'इमं देवाः' (यजु० वे० ९/४०) चन्द्रमा का, 'अग्निमूर्द्धा दिवःककुत्०' (यजु० १३/१४) इत्यादि मन्त्र मङ्गल का 'उद्बुध्यस्वः' (यजु० १५/५४) इत्यादि मन्त्र बुध का, 'वृहस्पते अदित' (यजु० २६/३) इत्यादि मन्त्र वृहस्पति का, 'अन्नात् परिश्रुतो०' (यजु० वे० १९/७५) इत्यादि मन्त्र शुक्र का, शन्नो देवीं (यजु० ३६/१) इत्यादि मन्त्र शनि का 'काण्डात् काण्डात्' (यजु० १३/२०) इत्यादि मन्त्र राहु का 'केतुं कृण्वन्न केतवे०' (यजु० वे० २९/३७) इत्यादि मन्त्र केतु का है ।। ६-७ ।। इन ग्रहों की क्रमशः मदार, पलाश, खैर, अपामार्ग, पिप्पल, गूलर, शमी, दूर्वा तथा कुश ये क्रमशः समिधाएँ हैं ।।८।। प्रत्येक ग्रह के लिए एक सौ आठ अथवा अट्ठाइस आहुति देनी चाहिए । आहुति मधु, घी तथा दही मिलाकर देनी चाहिए । विद्वान् पुरुष को गुड, भात, खीर, हविष्य, क्षीरान्न, दही, भात, हविष्य, पूआ तथा उड़द तथा खिचड़ी ग्रहों के लिए क्रमशः प्रदान करना चाहिए । और ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए । अथवा अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों का सत्कार करके विधिपूर्वक ग्रहों के क्रमानुसार, गाय, शंख, सांढ, सोना, वस्त्र, घोड़ा, काली गौ, लोहा तथा बकरा दान करना चाहिए । ये नवों वस्तुएँ ग्रहों के अनुसार दक्षिणा होती हैं ।। ९-१२ ।। जो ग्रह जिसके

नरेन्द्राणामुच्छ्रयाः पतनानि च । भावाभावौ च जगतस्तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः ॥ १४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नवग्रहहोमवर्णनं नाम चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

अथपञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

नानाधर्माः

अग्निरुवाच– **ध्येय आत्मा स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत्प्रभुः । अनन्यविषयं कृत्वा मनो बुद्धिः (द्धिं) स्मृतीन्द्रियम् ॥ १ ॥ श्राद्धं तु ध्यायिने देयं गव्यं दधि घृतं पयः । प्रियंगवो मसूराश्च वार्ताकुः कोद्रवो नहि ॥ २ ॥ सैंहिकेयो यदा सूर्यं ग्रसते पर्वसंधिषु । हस्तिच्छाया तु सा ज्ञेया श्राद्धदानादिकेऽक्षया ॥ ३ ॥ पित्रे (त्र्ये) चैव यदा सोमो हंसे चैव करे स्थिते । तिथिर्वैवस्वती नाम सा छाया कुञ्जरस्य तु ॥ ४ ॥ अग्नीकरणशेषं तु न दद्याद् वैश्वदेविके । अग्न्यभावे तु विप्रस्य हस्ते दद्यात्तु दक्षिणे ॥ ५ ॥ न स्त्री दुष्यति जारेण न विप्रो वेदकर्मणा । बलात्कारोपभुक्ता चेद्वैरिहस्तगताऽपि वा ॥ ६ ॥ संत्यजेद्दूषितां नारीमृतुकालेन शुध्यति। य आत्मव्यतिरेकेण द्वितीयं नात्र पश्यति ॥ ७ ॥ ब्रह्मभूतः स एवेह योगी चाऽऽत्मरतोऽमलः । विषयेन्द्रियसंयोगात्केचिद्योगं वदन्ति वै ॥ ८ ॥ अधर्मो धर्मबुद्ध्या तु गृहीतस्तैरपण्डितैः । आत्मनो मनसश्चैव संयोगं च तथाऽपरे ॥ ९ ॥ वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि । एकीकृत्य विमुच्येत बन्धाद्योगोऽयमुत्तमः ॥ १० ॥ कुटुम्बैः पञ्चभिर्ग्रामः षष्ठस्तत्र**

आठवें आदि स्थानों में होने के कारण दुष्ट होता है, उसको उस ग्रह की प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिए । ब्रह्मा ने इन ग्रहों को वरदान दिया है कि जो तुम लोगों की पूजा करे, उसका तुम लोग कल्याण करो ।। १३ ।। राजाओं के उत्थान एवं पतन ग्रहों के अधीन होते हैं । जगत् के सद्भाव तथा अभाव भी ग्रहों के अधीन होते हैं । अतएव ग्रह पूज्यतम हैं ।। १४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का नवग्रह होम वर्णन नामक एक सौ चौसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १६४ ॥

अग्निदेव ने कहा– वसिष्ठ यह जो हृदय के भीतर ध्येय परमात्मा दीपक के समान आत्मा रूप से स्थित है उस परमात्मा का ध्यान मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों को अन्य विषयों से हटाकर करना चाहिए। इस तरह से परमात्मा का ध्यान करने वाले पुरुष को ही श्राद्ध करने के लिए गौ के दुग्ध, दधि और घी देना चाहिए । उन्हें पियंगु, मसूर, वार्ताकु और कोदो नहीं देना चाहिए।।२।। जब पर्व के सन्धिकाल में राहु सूर्य को ग्रसता है उस समय हस्तिछाया नामक योग होता है, उस समय किए गए श्राद्ध तथा दान आदि अक्षय होते हैं ।। ३ ।। जब चन्द्रमा, मघा,हंस तथा हस्तनक्षत्र पर स्थित होता है उस समय वैवस्वती तिथि होती है वह भी हस्तीच्छाया योग होता है ।। ४ ।। अग्निकरण से बचे हुए अन्न को वलिवैश्वदेव में नहीं देना चाहिए । यदि वहाँ पर अग्नि न हो तो उसे ब्राह्मण के दाहिने हाथ पर दे देना चाहिए ।। ५ ।। स्त्री जार कर्म से दूषित नहीं होती और ब्राह्मण वैदिक कर्म से दूषित नहीं होता है । यदि कोई शत्रु उसे पकड़कर उसके साथ बलात्कार कर लेता है तो उस नारी का परित्याग ऋतुकाल पर्यन्त कर देना चाहिए । इसके पश्चात् वह शुद्ध हो जाती है ।। ६ ।। जो पुरुष केवल अपनी आत्मा में ही रमण करता है वह आत्माराम तथा निर्दोष योगी इस लोक में ही ब्रह्मतुल्य हो जाता है ।। ७ ।। कुछ लोग विषयों से इन्द्रियों के होने वाले संयोग को ही योग कहते हैं, उन मूर्खों ने अधर्म को ही धर्म मान लिया है । दूसरे प्रकार के लोग आत्मा तथा मन के संयोग को योग कहते हैं ।। ८-९ ।। मन को समस्त वृत्तियों से रहित बनाकर उसका क्षेत्रज्ञ परमात्मा से एकाकार करने वाला सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है ।

महत्तरः । देवासुरमनुष्यैर्वा स जेतुं नैव शक्यते ॥ ११ ॥ बहिर्मुखानि (णि) सर्वाणि कृत्वा चाभिमुखानि वै । मनस्येवेन्द्रियग्रामं मनश्चाऽऽत्मनि योजयेत्॥१२॥ सर्वभावविनिर्मुक्तं क्षेत्रज्ञं ब्रह्मणि न्यसेत् । एतज्ज्ञानं च ध्यानं च शेषोऽन्यो ग्रन्थविस्तरः ॥ १३ ॥ यन्नास्ति सर्वलोकस्य तदस्तीति विरुध्यते । कथ्यमानं तथाऽन्यस्य हृदये नावतिष्ठते ॥ १४ ॥ स्वसंवेद्यं हि तद्ब्रह्म कुमारी स्त्रीसुखं यथा । अयोगी नैव जानाति जात्यन्धो हि घटं यथा ॥ १५ ॥ संन्यसन्तं द्विजं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति भास्करः । एष मे मण्डलं भित्त्वा परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ १६ ॥ उपवासव्रतं चैव स्नानं तीर्थं फलं तपः । द्विजसम्पादनं चैव सम्पन्नं तस्य तत्फलम् ॥ १७ ॥ एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः । सावित्र्यास्तु परं नास्ति पावनं परमं स्मृतम् ॥ १८ ॥ पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगन्धर्ववह्निभिः । भुञ्जते मानुषाः पश्चान्नैता दुष्यन्ति केनचित् ॥ १९ ॥ असवर्णेन यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषिच्यते । अशुद्धा तु भवेन्नारी यावच्छल्यं न मुञ्चति ॥ २० ॥ निःसृते तु ततः शल्ये रजसा शुध्यते ततः । ध्यानेन सदृशं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम् ॥ २१ ॥ श्वपाकेष्वपि भुञ्जानो ध्यानेन हि विशुध्यति । आत्मा ध्याता मनो ध्यानं ध्येयो विष्णुः फलं हरिः ॥ २२ ॥ अक्षयाय यतिः श्राद्धे पङ्क्तिपावनपावनः । आरूढो नैष्ठिकं धर्मं यस्तु प्रच्यवते द्विजः ॥ २३ ॥ प्रायश्चित्तं न पश्यामि येन शुध्येत्स आत्महा । ये च प्रव्रजिताः पत्न्यां या चैषां बीजसंततिः ॥ २४ ॥ विदुरा नाम चाण्डाला जायन्ते नात्र संशयः । शतिको म्रियते गृध्रः श्वाऽसौ द्वादशिकस्तथा ॥ २५ ॥ भासो विंशतिवर्षाणि शूकरो दशभिस्तथा। अपुष्पो विफलो वृक्षो जायते कण्टकावृतः ॥ २६ ॥ ततो दावाग्निदग्धस्तु स्थाणुर्भवति सानुगः । ततो

यही उत्तम योग है । पाँच परिवारस्वरूप ज्ञानेन्द्रियों से ग्राम बनता है, छठा मन उन सबों से महान् है । देवता, असुर तथा मनुष्य उस पर विजय नहीं प्राप्त कर सकते हैं ।। १०-११ ।। समस्त बहिर्मुख इन्द्रियों को आत्मा के प्रति अभिमुख बनाकर समस्त इन्द्रियों को मन में लगाना चाहिए तथा मन को आत्मा में लगाना चाहिए ।। १२ ।। सभी भावनाओं से रहित आत्मा का न्यास ब्रह्म में करना चाहिए । इसे ही ज्ञान तथा ध्यान कहते हैं । इससे भिन्न सारी बातें ग्रन्थ का विस्तार मात्र हैं ।। १३ ।। जिसका अनुभव किसी को नहीं है, उसका सद्भाव बतलाना लोकविरुद्ध है, यदि उसका उपदेश भी किया जाय तो वह बात किसी के मन में नहीं बैठती है ।। १४ ।। जिस तरह कोई कुमारी स्त्री-पुरुष संयोगजन्य सुख का स्वयं अनुभव करती है, उसी तरह ब्रह्म स्वंतः अनुभव करने योग्य है, उसको अयोगी व्यक्ति उसी तरह नहीं जान सकता जिस तरह जन्मान्ध पुरुष घट के स्वरूप को नहीं जानता है ।। १५ ।। संन्यास लेने वाले पुरुष को देखकर सूर्य भी अपने स्थान से इसलिए विचलित हो जाता है कि यह पुरुष मेरा भेदन करके परंब्रह्म को प्राप्त करने वाला है ।। १६ ।। उपवास, व्रत, तीर्थस्नान, तीर्थ के फल तथा तपस्या ये यदि ब्राह्मण के द्वारा सम्पादित कराए जायँ तो ये अपने फल को प्रदान करते हैं ।। १६-१७।। एक-अक्षर वाला (ओम्) प्रणव ही परंब्रह्म है, प्राणायाम ही परमतप है । गायत्री से बढ़कर कोई दूसरा मन्त्र पवित्र करने वाला नहीं है । वही परम पावन मन्त्र है ।। १८ ।। स्त्रियों का सर्वप्रथम भोग सोम, गन्धर्व तथा अग्नि देवता करते हैं, इसके पश्चात् मनुष्य उनका उपभोग करते हैं किन्तु वे किसी के भी उपभोग से दूषित नहीं होती है ।। १९ ।। असवर्ण पुरुष के द्वारा स्त्री के योनि में जो गर्भ आहित किया जाता है, उससे वह तब तक दूषित रहती है, जब तक कि उस गर्भ का प्रसव नहीं हो जाता है ।। २० ।। उस गर्भ का प्रसव हो जाने पर रजोदर्शन हो जाने पर वह शुद्ध हो जाती है । ध्यान से बढ़कर किए गए पाप कर्मों का दूसरा कोई प्रायश्चित्त नहीं है ।।२१।। चाण्डालों के साथ भी भोजन करके मनुष्य ध्यान से शुद्ध हो जाता है । जो व्यक्ति यह ध्यान करता है कि आत्मा ध्यान करने वाला है, मन ही ध्यान है, ध्यान करने वाले योग्य भगवन् विष्णु हैं और ध्यान का फल भगवान् श्रीहरि की प्राप्ति है ।। २२ ।। इस प्रकार का ध्याता श्राद्ध में अक्षयत्व की प्राप्ति के लिए पंक्तिपावनों को भी पवित्र करने वाला होता है । जो द्विज ब्रह्मचारी व्रत में आरूढ़ होकर उससे स्खलित हो जाता है,उस आत्मघाती पुरुष को पवित्र बनाने वाला कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है ।। २३ ।। जो संन्यासी पत्नी में गर्भाधान करके अपनी संतान पैदा करता है उससे विदुर नामक चाण्डाल उत्पन्न होते हैं इसमें किसी भी प्रकार के संदेह नहीं है । ये संन्यासी मरने के बाद सौ वर्ष तक गीध, बारह वर्ष तक कुत्ता, बीस वर्ष तक कौआ तथा दस वर्ष

वर्षशतान्यष्टौ द्वे च तिष्ठत्यचेतनः ॥ २७ ॥ पूर्णे वर्षसहस्रे तु जायते ब्रह्मराक्षसः । प्लवेन लभते मोक्षं कुलस्योत्सादनेन वा ॥ योगमेव निषेवेत नान्यं मन्त्रमघापहम् ॥ २८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानाधर्मवर्णनं नाम पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

अथषट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

वर्णधर्मादिकथनम्

पुष्कर उवाच– **वेदस्मार्तं प्रवक्ष्यामि धर्मं वै पञ्चधा स्मृतम् । वर्णत्वमेकमाश्रित्य योऽधिकारः प्रवर्तते ॥ १ ॥ वर्णधर्मः स विज्ञेयो यथोपनयनं त्रिषु । यस्त्वाश्रमं समाश्रित्य पदार्थः सविधीयते ॥ २ ॥ उक्त आश्रमधर्मस्तु भिन्नपिण्डादिको यथा । उभयेन निमित्तेन यो विधिः संप्रवर्तते ॥ ३॥ नैमित्तिकः स विज्ञेयः प्रायश्चित्तविधिर्यथा । ब्रह्मचारी गृही वाऽपि वानप्रस्थो यतिर्नृप ॥ ४ ॥ उक्त आश्रमधर्मस्तु धर्मः स्यात्पञ्चधाऽपरः । षाड्गुण्यस्याभिधाने यो दृष्टार्थः स उदाहृतः ॥ ५ ॥ स त्रेधा मन्त्रयागाद्य दृष्टार्थ इति मानवाः । उभयार्थो व्यवहारस्तु दण्डधारणमेव च ॥ ६ ॥ तुल्यार्थानां विकल्पः स्याद्यागमूलः प्रकीर्तितः । वेदे तु विहितो धर्मः स्मृतौ तादृश एव च ॥ ७ ॥ अनुवादं स्मृतिः सूते कार्यार्थमिति मानवाः । गुणार्थः परिसंख्यार्थो वाऽनुवादो विशेषतः ॥ ८ ॥ विशेषदृष्ट एवासौ फलार्थ इति मानवाः । स्यादष्टचत्वारिंशद्भिः संस्कारैर्ब्रह्मलोकगः ॥ ९ ॥**

तक शूकर होता है । इसके पश्चात् वे पुष्पों तथा फलों से रहित काँटों से घिरे वृक्ष के रूप में उत्पन्न होते हैं ।। २४-२६ ।। इसके पश्चात् दावाग्नि से जलकर अपने अनुयायियों के साथ वह ठूंठा वृक्ष होता है । इसके पश्चात् एक हजार वर्ष तक वह अचेनावस्था में पड़ा रहता है । एक हजार वर्ष बीत जाने पर वह ब्रह्मराक्षस होता है । इसके पश्चयात् उसका मोक्ष या तो योगरूपी नौका से अथवा वंश के नाश से होता है । अतएव योग का ही सेवन करना चाहिए । उससे भिन्न कोई दूसरा मार्ग पापों से मुक्ति दिलाने वाला नहीं है ।। २७-२८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का विविध धर्म वर्णन नामक एक सौ पैसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १६५ ॥

श्रीपुष्करजी ने कहा– अब मैं वैदिक तथा स्मार्त धर्मों का वर्णन करता हूँ । यह धर्म पाँच प्रकार का बतलाया गया है । किसी एक वर्ण (जाति) को लेकर जो अधिकार प्रारम्भ होता है,उसे वर्णधर्म कहते हैं जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों के लिए उपनयन संस्कार । जो धर्म किसी आश्रम विशेष के लिए विहित होता है, उसे आश्रम धर्म कहते हैं । जैसे भिन्न पिण्डादिक क्रियाएँ।।१-२।। लौकिक तथा पारलौकिक दोनों प्रकार के निमित्तों को लेकर वेदों द्वारा किए जाने वाले विधान को नैमित्तिक धर्म कहते हैं । जैसे प्रायश्चित्त का विधान । हे राजन् ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा यति के धर्म आश्रम धर्म हैं । दूसरे प्रकार से भी धर्म के पाँच भेद हैं । जो षाडगुण्य का विधान वेद करता है उसे दृष्टार्थ धर्म कहते हैं ।। ३-५ ।। उसके तीन भेद होते हैं मन्त्र याग आदि तथा अदृष्टार्थ । इस प्रकार के मनु मतानुयायियों का मत है । व्यवहार उभयार्थक लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार का होता है । तथा दण्ड धारण धर्म का पाँचवाँ भेद है । जिन धर्मों का प्रयोजन अथवा फल एक ही होता है, वे धर्म विकल्प कहे जाते हैं । विकल्प भी यागमूलक ही होता है । वेदों में जिस प्रकार का धर्म बतलाया गया है, स्मृतियों में भी उसी प्रकार का धर्म बतलया गया है ।। ६-७ ।। मनु का अभिप्राय है कि स्मृतियाँ कार्यों को दृष्टि में रखकर वैदिक धर्म का अनुवाद करती हैं । किसी धर्म के गुण अथवा परिसंख्या के लिए खास रूप से अनुवाद किया जाता है । जहाँ पर विशेष रूप से दिखायी पड़ता है, उसे फलार्थ कहते हैं, यह मनु का मत है ।। ८ ।। मनुष्य अड़तालिस संस्कारों से संस्कृत होकर ब्रह्मलोक

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं ततः । जातकर्म नामकृतिरन्नप्राशनचूडकम् ॥ १० ॥ संस्कारश्चोपनयनं वेदव्रतचतुष्टयम् । स्नानं स्वधर्मचारिण्या योगः स्याद्यज्ञपञ्चकम् ॥ ११ ॥ देवयज्ञः पितृयज्ञो मनुष्यभूतयज्ञकौ । ब्रह्मयज्ञः सप्त पाकयज्ञसंस्थाः पुरोष्टकाः ॥ १२ ॥ पार्वणश्राद्धं श्रावण्याग्रहायणी च चैत्र्यपि । आश्वयुजी सप्तहविर्यज्ञसंस्थास्ततः स्मृताः ॥ १३ ॥ अग्न्याधेयमग्निहोत्रं दर्शः स्यात्पौर्णमासकः । चातुर्मास्याग्रहायणेष्टिर्निरूढः पशुबन्धकः ॥ १४ ॥ सौत्रामणिः सप्तसोमसंस्थाऽग्निष्टोम आदितः । अत्यग्निष्टोम उक्थ्यश्च षोडशी वाजपेयकः॥१५॥ अतिरात्रोऽथाप्तोर्यामो ह्यष्टौ चाऽऽत्मगुणास्ततः । दया क्षमाऽनसूया च अनायासोऽथ मङ्गलम् ॥ १६ ॥ अकार्पण्यास्पृहाशौचं यस्यैते स परं व्रजेत्। प्रचारे मैथुने चैव प्रस्रावे दन्तधावने ॥ १७ ॥ स्नानभोजनकाले च षट्सु मौनं समाचरेत् । पुनर्दानं पृथक्पाकं सार्पिषं पयसाऽन्वितम्॥१८॥ दन्तच्छेदनमुष्णं च सप्त शत्रुषु वर्जयेत् । स्नात्वा पुष्पं न गृह्णीयाद्देवायोग्यं तदीरितम् ॥ १९ ॥ अन्यगोत्रोऽप्यसम्बद्धः प्रेतस्याग्नि ददाति यः । पिण्डं चोदकदानं च स दशाहं समापयेत् ॥ २० ॥ उदकं च तृणं भस्म द्वारं पन्थास्तथैव च । एभिरन्तरितं कृत्वा पङ्क्तिदोषो न विद्यते ॥ २१॥ पञ्चप्राणाहुतीर्दद्यादनामाङ्गुष्ठ योगतः ॥ २२ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वर्णधर्मादिवर्णनं नाम षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६६ ॥

को प्राप्त करता है । वे संस्कार क्रमशः इस प्रकार हैं- (१) गर्भाधान, (२) पुंसवन, (३) सीमन्तोन्नयन, (४) जातकर्म, (५) नामकरण, (६) अन्नप्राशन, (७) चूड़ाकरण, (८) उपनयन संस्कार, (९-१२) चार वेदव्रत (वेदाध्ययन आदि) (१३) व्रत (१४) विवाह, (१५-१९) पञ्चयज्ञ (देवयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, भूतयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ), (२०-२६) सात पाक यज्ञ संस्था (२७-३४) अष्टका- अष्टका सहित तीन पार्वण श्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री और आश्वयुजी, (२५-४१) सात हविर्यज्ञसंस्था- अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्श-पौर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रहाणेष्टि, निरूढ पशुबन्ध तथा सौत्रामणि, तथा (४२-४८) सात सोमसंस्था अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम,उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र ओर आप्तोर्याम । आत्मा के आठ गुण बतलाये गये हैं- दया, क्षमा, अनसूया, अनायास, मङ्गल, अकापर्ण्य,अस्पृहा और शौच । जिसमें ये गुण होते हैं वह परम धाम को प्राप्त करता है ।। ९-१६।। मार्गगमन, मैथुन, मलमूत्र त्याग, दन्त धावन स्नान तथा भोजन इन छह कालों में मौन रहना चाहिए ।। १७ ।। किसी वस्तु का दान करके पुनः उसका दान देना, अलग भोजन बनाकर खाना, घी के साथ जल पीना, दुग्ध के साथ जल पीना, दाँत से नख काटना, अत्यधिक गर्म जल पीना, ये सात शत्रु हैं, इनका त्याग करना चाहिए ।। १८ ।। स्नान करके फूल नहीं तोड़ना चाहिए । वह देवताओं के योग्य नहीं रह जाता है ।। १९।। यदि दूसरे गोत्र का असम्बद्ध व्यक्ति किसी मरे हुए को अग्नि देता है तो उसे भी पिण्डदान, जलदान तथा दशगात्र करना चाहिए ।। २० ।। जल, तृण, भस्म, द्वार तथा मार्ग का अन्तराल होने पर पंक्तिदोष नहीं लगता है ।। २१ ।। भोजन से पहले अनामिका तथा अंगुष्ठ से पञ्चप्राणों को आहुति देना चाहिए ।। २२ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का वर्णाश्रम धर्मादि वर्णन नामक एक सौ छियासठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १६६ ॥

अथसप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अयुतलक्षकोटिहोमः

अग्निरुवाच– **श्रीशान्तिविजयाद्यर्थं ग्रहयज्ञं पुनर्वदे । ग्रहयज्ञोऽयुतहोमलक्षकोट्यात्मकस्त्रिधा ॥ १ ॥ वेदैरैशे ह्यग्निकुण्डाद्ग्रहानावाह्य मण्डले । सौम्ये गुरुर्बुधश्चैशे शुक्रः पूर्वदले शशी ॥ २ ॥ आग्नेये दक्षिणे भौमो मध्ये स्याद्भास्करस्तथा । शनिराप्येऽथ नैर्ऋत्ये राहुः केतुश्च वायवे॥३॥ ईशश्चोमा गुहो विष्णुर्ब्रह्मेन्द्रौ यमकालकौ । चित्रगुप्तश्चाधिदेवा अग्निरापः क्षितिर्हरिः ॥ ४ ॥ इन्द्रैन्द्री देवता च प्रजेशोऽहिर्विधिः क्रमात् । एते प्रत्यधिदेवाश्च गणेशो दुर्गयाऽनिलः ॥ ५ ॥ खमश्विनौ च सम्पूज्य यजेद्बीजैश्च वेदजैः । अर्कः पलाशः खदिरो ह्यपामार्गश्च पिप्पलः॥६॥ उदुम्बरः शमी-दूर्वा-कुशाश्च समिधः क्रमात् । मध्वाज्यदधिसंमिश्रा होतव्याश्चाष्टधा शतम् ॥ ७ ॥ एकाष्टचतुरः कुम्भान्पूर्य पूर्णाहुतिं तथा । वसोर्धारां ततो दद्याद्दक्षिणां च ततो ददेत् ॥ ८ ॥ यजमानं चतुर्भिस्तैरभिषिञ्चेत्समन्त्रकैः । सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ९॥ वासुदेवो जगन्नाथस्तथा संकर्षणः प्रभुः । प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते ॥ १० ॥ आखण्डलोऽग्निर्भगवान्यमो वै नैर्ऋतस्तथ । वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ॥ ११ ॥ ब्रह्मणा सहितः शेषो दिक्पालाः पान्तु वः सदा । कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः ॥ १२॥ बुद्धिर्लज्जा वपुःशान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः । एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मपत्न्यः समागताः ॥ १३ ॥ आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः। ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ॥१४॥ देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च ॥ १५ ॥ देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः । अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च ॥ १६ ॥ औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये । सरितः**

अग्निदेव ने कहा– मैं श्री शान्ति तथा विजय प्रदान करने वाले ग्रहयज्ञ का पुनः वर्णन कर रहा हूँ । ग्रहयज्ञ तीन प्रकार का होता है- अयुत होमात्सक, लक्षहोमात्मक तथा कोटिहोमात्मक।।१।। अग्निकुण्ड से ईशानकोण में वेद मन्त्रों के द्वारा मण्डल के भीतर ग्रहों का आवाहन करके, मण्डल के उत्तर में गुरु, ईशानकोण में बुध, पूर्व दिशा में शुक्र, अग्निकोण में चन्द्रमा, दक्षिण दिशा में भौम, मध्य में सूर्य, पश्चिम दिशा में शनि, नैर्ऋत्यकोण में राहु तथा वायव्यकोण में केतु की स्थापना करें ।। २-३ ।। ग्रह-मण्डल के शिव, उमा, स्कन्द, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, काल तथा चित्रगुप्त ये अधिदेवता हैं । अग्नि, जल, पृथिवी,हरि, इन्द्र, इन्द्राणी, प्रजापति, अहि तथा ब्रह्मा ये नवग्रह मण्डल के प्रत्यधिदेवता हैं । गणेश, दुर्गा, वायु, आकश तथा अश्विनी कुमारों की पूजा करके वेद के बीजमन्त्रों से ग्रहों का पूजन करना चाहिए ।। ३-५ ।। ग्रहों की समिधाओं के क्रमशः नाम ये हैं- मदार, पलाश, खैर,अपामार्ग (लहचिचिड़ा) पिप्पल, गूलर,शमी,दूर्वा और कुश। शहद, घी और दही मिलाकर एक सौ आठ बार आहुति प्रत्येक ग्रह को देनी चाहिए । उसके पश्चात् तेरह घड़ों को भरकर पूर्णाहुति देनी चाहिए । इसके पश्चात् वसोधीरा तथा दक्षिणा देना चाहिए ।। ६-८ ।। इसके पश्चात् चार अंगों से यजमान का अभिषेक इन मन्त्रों से करना चाहिए ।। ८-१/२ ।। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर देवता आपका अभिषेक करें । जगत्स्वामी वासुदेव तथा प्रभु संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध आपको विजय प्रदान करें ।। ९-१० ।। इन्द्र, अग्नि, भगवान् यम, निर्ऋति, वरुण, पवन, कुबेर, शिव, ब्रह्मा तथा शेषनाग ये दशों दिक्पाल आपकी सदा रक्षा करें । कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, मति, बुद्धि, लज्जा, वपु:, शान्ति, तुष्टि, कान्ति, मातृगण तथा धर्म की पत्नियाँ आकर आपका अभिषेक करें ।। ११-१३ ।। सूर्य, चन्द्रमा, भौम, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु प्रसन्न होकर आपका अभिषेक करें ।। १४ ।। देव, दानव, गन्धर्व,यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषि, मनु, गौ, देवमातृगण, देव पत्नियाँ, द्रुम, नाग, दैत्य, अप्सरागण, समस्त अस्त्र तथा शस्त्र समूह,राजागण, वाहनसमूह, औषधियाँ, रत्न तथा काल के समस्त अवयव, नदियाँ सभी सागर पर्वत, तीर्थ तथा

सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ॥ १७ ॥ एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये । अलङ्कृतस्ततो दद्याद्धेमगोऽन्नभुवादिकम् ॥ १८ ॥ कपिले सर्वदेवानां पूजनीयाऽसि रोहिणि । तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ १९ ॥ पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम् । विष्णुना विधृतो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ २० । धर्म त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारकः । अष्टमूर्तैरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ २१ ॥ हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः । अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ २२ ॥ पीतवस्त्रयुगं यस्माद्वासुदेवस्य वल्लभम् । प्रदानात्तस्य वै विष्णुरतः शान्तिं प्रच्यच्छ मे ॥ २३ ॥ विष्णुस्त्वं मत्स्यरूपेण यस्मादमृतसंभवः । चन्द्रार्कवाहनो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ २४ ॥ यस्मात्वं पृथिवी सर्वा धेनुः केशवसंनिभा । सर्वपापहरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ २५ ॥ यस्मादायसकर्माणि तवाधीनानि सर्वदा । लाङ्गलाद्यायुधादीनि अतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ २६ ॥ यस्मात्वं सर्वयज्ञानामङ्गत्वेन व्यवस्थितः। योनिर्विभावसोर्नित्यमतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥ २७ ॥ गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश । यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिहलोके परत्र च ॥ २८ ॥ यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च । शय्या ममाप्यशून्याऽस्तु दत्ता जन्मनि जन्मनि ॥ २९ ॥ यथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वे देवाः प्रतिष्ठिताः । तथा शान्तिं प्रयच्छन्तु रत्नदानेन मे सुराः ॥ ३० ॥ यथा भूमिप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् । दानान्यन्यानि मे शान्तिर्भूमिदानाद्भवत्विह ॥ ३१ ॥ ग्रहयज्ञोऽयुतहोमो दक्षिणाभी रणे जितिः। विवाहोत्सवयज्ञेषु

जल वाले नद,ये सभी आपके समस्त मनोरथें की सिद्धि के लिए तुम्हारा अभिषेक करें। इसके पश्चात् अलंकृत होकर यजमान को सुवर्ण, गौ, अन्न तथा पृथिवी आदि का दान करना चाहिए।।१५-१८ ।। (गोदान करते समय यजमान पढ़ें)- हे कपिले ! हे रोहिणी ! तुम समस्त देवताओं के पूज्य हो। चूँकि तुम समस्त देवमयी तथा समस्त तीर्थमयी हो, अतएव मुझे शान्ति प्रदान करो ।।१९।। (शंख का दान करते हुए यजमान पढ़ें)- हे शङ्ख ! तुम समस्त पवित्र वस्तुओं में पवित्र तथा मंगलमय वस्तुओं से अधिक मंगलमय हो, भगवान् विष्णु तुम्हें सदा धारण किया करते हैं; अतएव मुझे शान्ति प्रदान करो ।। २० ।। हे धर्म तुम वृषरूप से संसार को आनन्द प्रदान करने वाले हो । तुम अष्टमूर्ति भगवान् शंकर के वाहन हो; अतएव मुझे शान्ति प्रदान करो ।। २१ ।। (सुवर्णदान करते समय यजमान पढ़ें कि) हे सुवर्ण ! तुम हिरण्यगर्भ के गर्भ में स्थित हो, तुम अग्निदेव के वीर्य से उत्पन्न हो एवं अनन्तपुण्य फल प्रदान करने वाले हो; अतएव मुझे शान्ति प्रदान करो।।२२।। (पीताम्बर दान करते समय यजमान पढ़ें) पीताम्बर युगल चूँकि भगवान् वासुदेव को अत्यन्त प्रिय है, अतएव इसका दान करने से भगवान् वासुदेव मुझे शान्ति प्रदान करें ।। २३ ।। (अश्वदान करते समय यजमान पढ़ें)- हे अश्व ! तुम स्वरूपतः विष्णु हो, क्योंकि तुम अमृत के साथ उत्पन्न हुए हो । तुम चन्द्रमा और सूर्य को सदा वहन करते हो, अतएव मुझे शान्ति प्रदान करो ।।२४।। (पृथ्वी का दान करते समययजमान पढ़ें)- हे पृथिवी ! तुम समग्र रूप में धेनुरूपिणी हो । तुम भगवान् केशव के ही समान समस्त पापों का सदा विनाश करती हो; अतएव मुझे शान्ति प्रदान करो ।। २५ ।। (लौहदान करते समय यजमान पढ़ें कि)- हे लौह ! हल तथा आयुध आदि का निर्माण तुम्हारे अधीन है; अतएव मुझे शान्ति प्रदान करो ।। २६ ।। छागदान करते समय यजमान पढ़ें कि) हे छाग ! तुम सभी यज्ञों के अंग हो तथा अग्निदेव के नितय वाहन हो, अतएव मुझे तुम शान्ति प्रदान करो ।। २७ ।। (गोदान करते समय यजमान पढ़ें कि) गायों के अंगों में चौदहों भुवन का निवास है, अतएव मेरा इस लोक में तथा परलोक में मंगल हो ।।२८ ।। (शय्यादान करते समय यजमान पढ़ें कि) चूँकि भगवान् केशव तथा भगवान् शिव की शय्या सर्वदा अशून्य रहा करती है, अतएव मेरे द्वारा दान की गयी शय्या प्रत्येक जन्म में अशून्य रहे ।। २९ ।। (रत्नदान करते समय यजमान यह पढ़ें कि) चूँकि समस्त रत्नों में सभी देव प्रतिष्ठित रहते हैं, अतएव रत्नदान करने से प्रसन्न होकर देवगण मुझे शान्ति प्रदान करें ।। ३० ।। (भूमिदान करते समय यजमान पढ़ें कि) चूँकि अन्य दानों से भूमिदान जन्य पुण्य का सोलहवें भाग के बराबर भी पुण्य नहीं होता; अतएव भूमिदान के द्वारा मुझे शान्ति की प्राप्ति हो ।। ३१ ।। दक्षिणादानपूर्वक किया गया ग्रहों का अयुत होम संग्राम में विजय प्रदान करने वाला होता है । इसको विवाहोत्सव में यज्ञों में तथा प्रतिष्ठा आदि कर्मों में करना चाहिए ।। ३२ ।। सभी कामनओं की सिद्धि के लिए लक्षहोम तथा कोटिहोम बतलाए गएहैं । अयुतहोम में अपने घर में अथवा यज्ञमण्डप में मेखला

प्रतिष्ठादिषु कर्मसु ॥ ३ २ ॥ सर्वकामाप्तये लक्षकोटिहोमद्वयं मतम् । गृहदेशे मण्डपेऽथ अयुते हस्तमात्रकम् ॥ ३ ३ ॥ मेखलायोनिसंयुक्तं कुण्डं चत्वार ऋत्विजः । स्वयमेकोऽपि वा लक्षे सर्वं दशगुणं हि तत् ॥ ३ ४ ॥ चतुर्हस्तं द्विहस्तं वा तार्क्ष्यं चात्राधिकं यजेत् । सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः ॥ ३ ५ ॥ विषयापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे । पूर्ववत्कुण्डमामन्त्र्य लक्षहोमं समाचरेत् ॥ ३ ६ ॥ वसोर्धारां ततो दद्याच्छय्याभूषादिकं ददेत् । तत्रापि दश चाष्टौ च लक्षहोमे तथर्त्विजः ॥ ३ ७ ॥ पुत्रान्नराज्यविजयभुक्तिमुक्त्यादि चाऽऽप्नुयात् । दक्षिणाभिः फलेनास्माच्छत्रुघ्नः कोटिहोमकः ॥ ३ ८ ॥ चतुर्हस्तं चाष्टहस्तं कुण्डं द्वादश च द्विजाः । पञ्चविंश षोडशं वा घटो द्वारे चतुष्टयम् ॥ ३ ९ ॥ कोटिहोमी सर्वकामी विष्णुलोकं स गच्छति । होमस्तु ग्रहमन्त्रैर्वा गायत्र्या वैष्णवैरपि ॥ ४ ० ॥ जातवेदोमुखैः शैवैर्वैदिकैः प्रथितैरपि । तिलैर्यवैघृतैर्धान्यैरश्वमेधफलादिभाक्॥४१॥ विद्वेषणाभिचारेषु त्रिकोणं कुण्डमिष्यते । समिधो वामहस्तेन श्येना स्थ्यनलसंयुताः ॥ ४ २ ॥ रक्तभूषैर्मुक्तकेशैर्ध्यायद्भिरशिवं रिपोः । दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु यो द्वेष्टि हुंफडिति च ॥ ४ ३ ॥ छिन्द्यात्क्षुरेण प्रतिमां पिष्टरूपं रिपुं हनेत् । यजेदेवं पीडकं वा यः स कृत्वा दिवं व्रजेत् ॥ ४ ४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽयुतलक्षकोटिहोमवर्णनं नाम सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

तथा योनि से युक्त एक हाथ का कुण्ड बनाना चाहिए । और चार ऋत्विजों का वरण करना चाहिए । अथवा स्वयं अकेले यजमान भी इसमें रह सकता है । लक्षहोम में सारी वस्तुएँ इसके दस गुनी होती है ।। ३३-३४ ।। इसमें चार हाथ या दो हाथ के गरुड़ की पूजन करना चाहिए जो अयुतहोम की विधि से अधिक है । गरुड का पूजन करते समय यजमान यह पढ़ें कि- हे गरुड! आपका शरीर सामध्वनि से युक्त है । आप भगवान् विष्णु के वाहन हैं । आप सदा विषों को दूर करने वाले हैं, अतएव मुझे शान्ति प्रदान करें । अयुतहोम के ही समान कुण्ड का आवाहन करके लक्षहोम करना चाहिए ।। ३५-३६ ।। अन्त में वसोर्धारा देकर शय्या तथा आभूषण आदि का दान करना चाहिए । लक्षहोम में ऋत्विजों की संख्या अठारह होती है ।। ३७ ।। इस होम को करने वाला पुरुष-पुत्र, अन्न, राज्य, विजय, भोग तथा मोक्ष आदि को प्राप्त करता है ।। ३७ ।। दक्षिणा दान पूर्वक किया गया कोटि होम का फल इसके दस गुना होता है, और यह शत्रुओं का विनाश करने वाला होता है ।। ३८ ।। कोटिहोम में कुण्ड चार हाथ तथा आठ हाथ का होता है । इसमें बारह ऋत्विज या पच्चीस ऋत्विज या सोलह ऋत्विज होते हैं । इसमें दरवाजे पर चार घटों की स्थापना करनी चाहिए ।। ३९ ।। कोटिहोम करने वाला समस्त अभिलषित पदार्थों को प्राप्त करके विष्णुलोक को जाता है । इसमें ग्रहमन्त्रों, गायत्री, विष्णु के मन्त्र, अग्नि के मन्त्र तथा शिव के प्रख्यात वैदिक मन्त्रों से होम करना चाहिए । तिल, जौ, घी तथा धान्य से होम करने वाला व्यक्ति अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त करता है ।। ४०-४१ ।। विद्वेषण तथा अभिचार कर्मों में त्रिकोण कुण्ड बनाना चाहिए । बाएँ हाथ से समिधा डालनी चाहिए तथा अग्नि में बाजपक्षी की हड्डियों का होम करना चाहिए । लाल वस्त्र पहनकर तथा केश खोलकर हवन करने से शत्रुओं का अमंगल होता है । होम का मन्त्र है- 'दुर्मित्रियाः तस्मै सन्तु यो द्वेष्टि हूं फट् ।' ।। ४२-४३ ।। शत्रु की प्रतिमा को छूरे से काटना चाहिए तथा आटे की शत्रु की मूर्ति का वध करना चाहिए । इस प्रकार से पीड़ा देने वाले शत्रु का विनाश करने के लिए जो यज्ञ करता है, वह स्वर्गलोक को जाता है ।। ४४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अयुत, लक्ष एवं कोटिहोम का वर्णन नामक एक सौ सड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।। १६७ ।।

अथाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

महापातकादिकथनम्

पुष्कर उवाच– दण्डं कुर्यान्नृपो नृणां प्रायश्चित्तमकुर्वताम् । कामतोऽकामतो वाऽपि प्रायश्चित्तं कृतं चरेत् ॥ १ ॥ मत्तक्रुद्धातुराणां च न भुञ्जीत कदाचन । महापातकिना स्पृष्टं यच्च स्पृष्टमुदक्यया ॥ २ ॥ गणान्नं गणिकान्नं च वार्धुषेर्गायकस्य च । अभिशप्तस्य षण्डस्य यस्याश्चोपपतिर्गृहे॥३॥ रजकस्य नृशंसस्य बन्दिनः कितवस्य च । मिथ्यातपस्विनश्चैव चौरदण्डिकयोस्तथा ॥ ४ ॥ कुण्डगोलस्त्रीजितानां वेदविक्रयिणस्तथा । शैलूषतन्तुवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च ॥ ५ ॥ कर्मारस्य निषादस्य चेलनिर्णेजकस्य च । मिथ्याप्रव्रजितस्यान्नं पुंश्चल्यास्तैलिकस्य च ॥ ६ ॥ आरूढपतितस्यान्नं विद्विष्टान्नं च वर्जयेत् । तथैव ब्राह्मणास्यान्नं ब्राह्मणेनानिमन्त्रितः ॥ ७ ॥ ब्राह्मणान्नं च शूद्रेण नाद्याच्चैव निमन्त्रिः। एषामन्यतमस्यान्नममत्या वा त्र्यहं क्षिपेत् ॥ ८ ॥ मत्या भूक्त्वाऽऽचरेत्कृच्छ्रं रेतो विण्मूत्रमेव च । चण्डालश्वपचान्नं तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥९॥ अनिर्दशं च प्रेतान्नं गवाऽऽघ्रातं तथैव च । शूद्रोच्छिष्टं शुनोच्छिष्टं पतितान्नं तथैव च ॥ १० ॥ तप्तकृच्छ्रं प्रकुर्वीत अशौचे कृच्छ्रमाचरेत् । अशौचे यस्य यो भुङ्क्ते सोऽप्यशुद्धस्तथा भवेत् ॥ ११ ॥ मृतपञ्चनखात्कूपादमेध्येन सकृद्युतात् । अपः पीत्वा त्र्यहं तिष्ठेत्सोपवासो द्विजोत्तमः ॥ १२ ॥ सर्वत्र शूद्रे पादः स्याद्द्वित्रयं वैश्यभूपयोः । विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः ॥ १३ ॥ प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् । शुष्काणि जग्ध्वा मांसानि प्रेतान्नं करकाणि च ॥ १४ ॥ क्रव्यादशूकरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः । गोनराश्वखरोष्ट्राणांछत्राकं ग्रामकुक्कुटम् ॥ १५ ॥ मांसं जग्ध्वा कुञ्जरस्य तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति । अमाश्राद्धे तथा भुक्त्वा ब्रह्मचारी मधु त्वदन् ॥ १६ ॥ लशुनं गृञ्जनं

श्रीपुष्करजी ने कहा– प्रायश्चित्त नहीं करने वालों को राजा को चाहिए कि उन्हें दण्ड दें । इच्छा अथवा अनिच्छा से किए गए दुष्कर्म का प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिए ।। १ ।। मदमत्त, क्रोधी तथा आतुर पुरुषों को अन्न नहीं खाना चाहिए । किसी महापातकी तथा रजस्वला स्त्री के द्वारा भी दिए हुए अन्न को नहीं खाना चाहिए ।। २ ।। ज्योतिषी, गणिका (वेश्या) अधिक लाभ कमाने वाले,गायक, अभिशप्त, नपुंसक, तथा अपने घर में उपपति को रखनी वाली स्त्री का अन्न नहीं लेना चाहिए ।। ३ ।। धोबी, क्रूर, बन्दी, छली, मिथ्या तपस्या करने वाले, चोर, दण्ड देने वाले (जल्लाद) कुण्डगोलक, स्त्रियों द्वारा पराजित, वेदों का विक्रय करने वाले, नट, जुलाहा, कृतघ्न, लोहार, निषाद, रंगरेज, झूठे संन्यासी, व्यभिचारिणी स्त्री, तेली, आरूढ पतित, तथा द्वेषी पुरुष के अन्न का परित्याग करना चाहिए ।। ४-६ ।। उसी तरह विना निमन्त्रण के ब्राह्मण का भी अन्न नहीं लेना चाहिए । निमन्त्रण पाने पर भी शूद्र को ब्राह्मण का अन्न नहीं खाना चाहिए । इनमें से किसी का भी अन्न अनजान में भी खा लेने पर तीन दिन तक उपवास करना चाहिए ।। ७-८ ।। खा लेने पर तो कृच्छ्र व्रत करना चाहिए । वीर्य, विष्ठा, मूत्र से स्पृष्ट अथवा चाण्डाल का अन्न खा लेने पर चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ।। ९ ।। मृत व्यक्ति के उद्देश्य से प्रदत्त, गौ के द्वारा सूंघा हुआ, शूद्र का जूठा, कुत्ते का जूठा तथा पतित का अन्न खाने पर तप्तकृच्छ्र करना चाहिए । अशौच होने पर भी कृच्छ्र व्रत करना चाहिए। किसी के यहाँ अशौच हो जाने पर उसके यहाँ जो अन्न खा लेता है, तो वह भी उसी के समान अशुद्ध हो जाता है।।९-११।। जिस कुएँ में पाँच नख वाले पशु मर गए हों अथवा जिस कुएँ का एक बार भी अमेध्य पदार्थ से संस्पर्श हो गया है,उस कुएँ का जल पी लेने पर ब्राह्मण को तीन दिन का उपवास करना चाहिए।।१२।। ब्राह्मण की अपेक्षा शूद्र को चौथाई, वैश्य को आधा तथा क्षत्रिय को तीन चौथाई पाप लगता है । ग्रामशूकर, गदहा, ऊँट,गीदड़, बन्दर तथा कौए इनके मल मूत्र का भक्षण करने पर ब्राह्मण को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ।। १३ ।। सूखे मांस, मरे हुए का अन्न, करक, कच्चा मांस खाने वाले, शूकर, ऊँट, गीदड़, बन्दर, कौआ, गौ, मनुष्य, घोड़ा, गदहा,

चाद्यात्प्राजापत्यादिना शुचिः । भुक्त्वा चान्द्रायणं कुर्यान्मां (न्मा) सं चाऽऽत्मकृतं तथा ॥ १७ ॥ पेलुगव्यं च पेयूषं तथा श्लेष्मातकं मृदम् । वृथा कृशरसंयावपायसापूपशष्कुलीः ॥ १८ ॥ अनुपाकृतमांसानि देवान्नानि हवींषि च । गवां च महिषीणां च वर्जयित्वा तथाऽप्यजाम् ॥ १९॥ सर्वे क्षीराणि वर्ज्यानि तासां चैवाप्यनिर्दशम् । शशकः शल्लकी गोधा खड्गः कूर्मस्तथैव च ॥ २० ॥ भक्ष्याः पञ्चनखाः प्रोक्ताः परिशेषाश्च वर्जिताः । पाठीनरोहितान्मत्स्यान्सिंहतुण्डांश्च भक्षयेत् ॥ २१ ॥ यवगोधूमजं सर्वं पयसश्चैव विक्रियाः । वागषाड्गवचक्रादीन्सस्नेहमुषितं तथा॥२२॥ अग्निहोत्रपरीद्धाग्निब्राह्मणः कामचारतः । चान्द्रायणं चरेन्मासं वीरहत्यासमं हि तत् ॥ २३ ॥ ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः। महान्ति पातकान्याहुः संयोगश्चैव तैः सह ॥ २४ ॥ अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम् । गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समान ब्रह्महत्यया ॥ २५ ॥ ब्रह्मोज्झ्यवेदनिन्दा च कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः । गर्हितान्नाज्ययोर्जग्धिः सुरापानसमानि षट्॥२६॥ निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च । भूमिवज्रमणीनां च रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ॥ २७ ॥ रेतः सेकः स्वयोनीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च। सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः ॥ २८ ॥ गोवधोऽयाज्यसंयाज्यं पारदार्यात्मविक्रयः । गुरुमातुपितृत्यागः स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्य च॥२९॥ परिवेत्ता चानुजेन परिवेदनमेव च । तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम् ॥ ३० ॥ कन्याया दूषणं चैव वार्धुष्यं व्रतलोपनम् । तडागारामदाराणामपत्यस्य च विक्रयः ॥ ३१ ॥ व्रात्यता बान्धवत्यागो भृताध्यापनमेव च । भृताच्चाध्ययनादानमविक्रयस्य विक्रयः ॥ ३२ ॥ सर्वाकारेष्वधीकारो महायन्त्रप्रवर्तनम् । हिंसौषधीनां स्त्र्याजीवः क्रियालङ्

ऊँट, छत्ताशाक, तथा गाँव के मूर्गे एवं हाथी के माँस को खा लेने पर तप्तकृच्छ्र से ही शुद्धि होती है ।। १४-१५ ।। अमाश्राद्ध में भोजन करने वाले, मदिरा पीने वाले, लशून तथा गृञ्जन खाने वाले, ब्रह्मचारी की शुद्धि प्राजापत्य व्रत से होती है ।। १६ ।। अपने लिए पकाए हुए मांस, पेलुगव्य (अण्डकोष का मांस) पेयूष (व्यायी हुई गौ अथवा भैंस के सात दिन के अन्दर का दुग्ध) श्लेष्मातक (बहुवार मिट्टी) दूषित खिचड़ी, लप्सी, खीर पूआ-पूड़ी, संस्कार रहित मांस, देवान्न तथा हविष्य का भोजन कर लेने पर चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।।१७-१८।। गाय, भैंस तथा बकरी के दुग्ध को छोड़कर अन्य पशुओं का दुग्ध नहीं पीना चाहिए । खरगोश, स्याही, गोह, गेंडा तथा कछुआ ये पाँच नख वाले जीव भक्ष्य कहे गए हैं । इनसे भिन्न पशुओं का मांस अभक्ष्य है । पाठीन (मोटी मछली) सेहू तथा सिंहतुण्ड मछलियाँ भक्षणीय हैं ।। १९-२१ ।। अग्निहोत्री ब्राह्मण यदि अपनी इच्छा से जौ, गेहूँ से बनी हुई तथा फटे दूध में बनी हुई वस्तुएँ वागषाड् गव चक्र आदि तथा तेल, घी आदि चिकने पदार्थों से संस्कृत किन्तु वासी वस्तुओं को खा ले तो उसे एक मास का चान्द्रायण व्रत करना चाहिए क्योंकि वह दोष वीर हत्या के समान माना जाता है ।। २२-२३ ।। ब्रह्महत्या, मदिरापान, चोरी तथा गुरुपत्नी के साथ सहगमन ये महापातक हैं । इन पापों के करने वालों का संसर्ग भी महापातक है ।। २४ ।। झूठ को बढ़ावा देना, राजा के समीप किसी की चुगली करना, गुरु पर झूठा दोषारोपण करना ये ब्रह्महत्या के समान हैं ।। २५ ।। अधीतवेद का परित्याग, वेद की निन्दा, कूट साक्ष्य (झूठी गवाही) अपने मित्र का वध, निन्दित अन्न तथा निन्दित घृत का भक्षण ये छह मदिरापान के समान माने गए हैं ।। २६ ।। धरोहर को चुरा लेना, मनुष्य, घोड़ा,चाँदी, पृथिवी, हीरा तथा मणियों की चोरी सुवर्ण की चोरी के समान माने गए हैं ।। २७ ।। अपने वंश की स्त्रियों की योनि में, कुमारियों में, शूद्राओं में, मित्र के पुत्र की स्त्रियों में वीर्यपात करना ये गुरुतल्पगमन के समान महापातक हैं ।।२८।। गौ का वध, अयोग्य व्यक्ति से यज्ञ कराना, परस्त्रीगमन, अपने को बेचना तथा गुरुमाता, पिता, पुत्र, स्वाध्याय एवं अग्नि का परित्याग करना, परिवेत्ता, अथवा परिवित्ति होना, इन दोनों में से किसी को कन्यादान करना,इनका यज्ञ कराना, कन्या को दूषित करना, ब्याज से जीविका निर्वाह करना, व्रत का त्याग करना, सरोवर उद्यान एवं पुत्र को बेचना,समय पर यज्ञोपवीत ग्रहण न करना, बान्धवों का त्याग करना,वेतन लेकर अध्यापन कार्य करना, वेतनभोगी गुरु से पढ़ना, न बेचने योग्य वस्तु को बेंचना, सुवर्ण आदि के खान का काम करना, विशाल यन्त्र चलाना,

घनमेव च ॥ ३३ ॥ इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणां चैव पातनम् । योषितां ग्रहणं चैव स्त्रीनिन्दकसमागमः ॥ ३४ ॥ आत्मार्थं च क्रियारम्भो निन्दितान्नादनं तथा । अनाहिताग्नितास्तेयमृणानां चाऽऽनपक्रिया॥३५॥ असच्छास्त्राधिगमनं दौःशील्यं व्यसनक्रिया । धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ॥ ३६ ॥ स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो नास्तिक्यं चोपपातकम् । ब्राह्मणस्य रुजः कृत्यं घ्रातिरध्रेयमद्ययोः ॥ ३७ ॥ भैक्ष्यं पुंसि च मैथुन्यं जातिभ्रंशकरं स्मृतम् । श्वखरोष्ट्रमृगेन्द्राणामजाव्योश्चैव मारणम् ॥ ३८ ॥ संकीर्णकरणं ज्ञेयं मीनाहिनकुलस्य च । निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम् ॥ ३९ ॥ अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम् । कृमिकीटकयोर्हत्या मद्यानुगतभोजनम् । फलैधः कुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम् ॥ ४० ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये महापातकादिवर्णनं नामाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

अथैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्तानि

पुष्कर उवाच– **एतत्प्रभृतिपापानां प्रायश्चित्तं वदामि ते । ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटीं कृत्वा वने वसेत् ॥ १ ॥ भिक्षेताऽऽत्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम् । प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धेत्रिरवाक्शिराः ॥ २ ॥ यजेत वाऽश्वमेधेन स्वर्जिता गोसवेन वा । जपन्वाऽन्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत्॥३॥ सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणायोपपादयेत्। व्रतैरेतैर्व्यपोहन्ति महापातकिनो मलम् ॥ ४ ॥ उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत्।**

औषधियों का विनाश करना, स्त्रियों से जीवन निर्वाह करना, क्रियाओं का लंघन करना, इन्धन के लिए हरे वृक्षों को काटना, स्त्रियों का संग्रह करना, स्त्रियों की निन्दा करने वाले का सम्बन्ध करना, केवल अपने स्वार्थ के लिए सभी कर्मों को प्रारम्भ करना, निन्दित पुरुष का अन्न खाना,अग्निहोत्र न करना, चोरी करना, मद्यपान करने वाली स्त्री से समागम करना,स्त्री, शूद्र, वैश्य अथवा क्षत्रिय का वध करना, तथा नास्तिकता अपनाना, ये सभी उपपातक हैं ।। २९-३६ ।। ब्राह्मण को सताना मद्य तथा लहसुन आदि को सूंघना, भिक्षा से निर्वाह करना तथा गुदा मैथुन करना ये सभी जातिभ्रंशकर पातक हैं ।। ३७ ।। कुत्ता, गदहा, ऊँट,सिंह, हाथी,भेंड और बकरी का संकरीकरण करना, मछली, सर्प और नेवला को मारना, निन्दित मनुष्य से धन लेना, व्यापार करना, शूद्र की सेवा करना तथा मृषाभाषण करना ये अपात्रीकरण पातक हैं । कृमि एवं कीटों को मारना मदिरामिश्रित भोजन करना, फल, पुष्प,एवं काष्ठ की चोरी करना, तथा धैर्य का परित्याग करना ये सभी मलिनीकरण पातक कहे गए हैं ।। ३८-४० ।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का महापातक आदि वर्णन नामक एक सौ अड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १६८ ॥

श्रीपुष्करजी ने कहा– अब मैं आपको इन पापों का प्रायश्चित्त बतलाता हूँ । ब्रह्महत्या करने वाले को कुटी बनाकर बारह वर्ष तक वन में निवास करना चाहिए ।। १ ।। अपनी आत्मा की शुद्धि के लिए वह मृतक के सिरोध्वज को लेकर भिक्षा माँगे । अथवा धधकती हुई अग्नि में नीचे मुख करके तीन बार गिरे ।। २ ।। अथवा स्वर्ग प्रदान करने वाला अश्वमेध याग या गोसव याग करे । अथवा किसी भी वेद का पाठ करते हुए सौ योजन तक चलता रहे ।। ३ ।। अथवा किसी वेदज्ञ ब्राह्मण को अपना सर्वस्व दान कर दे । महापातकी मनुष्य इन व्रतों के द्वारा अपने पापों को धो डालते है गोवध करने वाला एवं उपपातकी मनुष्य एक मास तक जौ पीकर रहे । वह सिर का मुण्डन कराकर उस गौ के चर्म को ओढ़कर गोशाला में निवास करे । वह दिन के

कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ॥ ५ ॥ चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितम् । गोमूत्रेण चरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः ॥ ६ ॥ दिवाऽनुगच्छेद्गाश्चैव तिष्ठन्नूर्ध्वं रजः पिबेत् । वृषभैकादशा गास्तु दद्याद्विचरितव्रतः॥ ७ ॥ अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत्! । पादमेकं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत् ॥ ८ ॥ योजने पादहीनं स्याच्चरेत्सर्वं निपातने । कान्तारेष्वथ दुर्गेषु विषमेषु भयेषु च ॥ ९ ॥ यदि तत्र विपत्तिः स्यादेकपादो विधीयते । घण्टाभरणदोषेण तथैवार्धं विनिर्दिशेत् ॥ १० ॥ दमने दामने रोधे शकटस्य नियोजने । स्तम्भशृङ्खलपाशेषु मृते पादोनमाचरेत् ॥ ११ ॥ शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च लाङ्गूलच्छेदने तथा। यावकं तु पिबेत्तावद्यावत्सुस्था तु गौर्भवेत् ॥ १२ ॥ गोमतीं च जपेद्विद्यां गोस्तुतिं गोमतीं स्मरेत् । एका चेद्बहुभिर्दैवाद्यत्र व्यापादिता भवेत् ॥ १३ ॥ पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक् । उपकारे क्रियमाणे विपत्तौ नास्ति पातकम् ॥ १४ ॥ एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनस्तथा । अवकीर्णी च शुद्ध्यर्थं चान्द्रायणमथापि वा ॥ १५ ॥ अवकीर्णी तु कालेन गर्दभेन चतुष्पथे । पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि ॥ १६ ॥ कृत्वाऽग्निं विधिवद्धोमानन्ततस्तु समित्यृचा । चन्द्रेन्द्रगुरुवह्नीनां जुहुयात्सर्पिषाऽऽहुतिम्॥१७॥ अथवा गार्दभं चर्म वसित्वाऽब्दं चरेन्महीम् । हत्वा गर्भमविज्ञातं ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥ १८ ॥ सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णांसुरां पिबेत् । गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा ॥ १९ ॥ सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु । स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति ॥ २० ॥ गृहीत्वा मुशलं राजा सकृद्धन्यात्स्वयं गतम् । वधेन शुध्यते स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव वा ॥ २१ ॥ गुरुतल्पो निकृत्यैव शिश्नं च वृषणं स्वयम् ।

चतुर्थ प्रहर में नियमित रूप से लवणहीन अन्न का भोजन करे ।। उसके पश्चात् वह इन्द्रियों को वश में करके दो महीने तक गोमूत्र से नित्य स्नान करे । दिन में गौओं के पीछे-पीछे चलता रहे और खड़ा होकर गौओं के खुर से उड़ती धूलि का पान करे । इस व्रत के समाप्त होने पर वह ग्यारह बैल तथा ग्यारह गायों का दान करे ।। ५-७ ।। यह सब न करने के स्थिति में वह अपना सर्वस्व किसी वेदज्ञ ब्राह्मण को दान कर दे । यदि रोकने के कारण गौ मर जाय तो एक चौथाई प्रायश्चित्त, बाँधने के कारण मर जाय तो आधा प्रायश्चित्त, यदि गाड़ी में जोतने से बैल मर जाय तो तीन चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिए और बैल यदि मारने से मर जाय तो पूरा प्रायश्चित्त करना चाहिए । वनों, दुर्गों, विषमस्थानों तथा भयस्थानों में यदि कोई विपत्ति हो तो एक चौथाई ही प्रायश्चित्त करना चाहिए ।। ८-९ ।। यदि अलंकार के लिए घण्टा आदि बाँधने के कारण बैल की मृत्यु हो जाय तो आधा प्रायश्चित्त करना चाहिए ।। १० ।। यदि दमन करने बाँधने, रोकने,गाड़ी में जोतने, खूँटा में बाँधने, रस्सी अथवा फंदे में फँसाने के कारण बैल की मृत्यु हो जाने पर तीन चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिए ।। ११ ।। यदि बैल की सींग टूट जाय या पूँछ कट जाय तो तब तक जौ पीकर रहना चाहिए जब तक बैल स्वस्थ्य न हो जाय ।। १२।। वह गोमती विद्या का जप करे तथा गौ की स्तुति स्वरूप गोमती का स्मरण करता रहे । यदि किसी कारणवश अनेक मनुष्य मिलकर किसी एक गौ को मारें तो उन सबों को गोहत्या को बाँट-बाँटकर अपने अपने हिस्से का प्रायश्चित्त करना चाहिए । यदि उपकार करते समय गौ की मृत्यु हो जाय तो गो हत्या का पाप नहीं लगता है ।। १३-१४ ।। उपपातकियों को भी इन्हीं व्रतों को करना चाहिए । अवकीर्णी मनुष्य को अपनी शुद्धि के लिए चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ।। १५ ।। अथवा अवकीर्णी मनुष्य रात्रि में चौराहे पर जाकर निर्ऋति देवता के उद्देश्य से पाकयज्ञ की विधि से काले गदहे का पूजन करे ।। १६ ।। उसके पश्चात् वह बुद्धिमान ब्रह्मचारी अग्निसंचय करके 'समासिञ्चन्तु मरुतः' इत्यादि ऋचा से चन्द्रमा, इन्द्र, वृहस्पति और अग्नि के उद्देश्यसे घृत की आहुति दे । अथवा गर्दभ का चर्म धारण करके एक वर्ष तक पृथिवी पर विचरण करे।।१७।। अनजाने में गर्भ की हत्या करने पर, ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त करना चाहिए ।। १८ ।। यदि ब्राह्मण अज्ञानवश मदिरा पान कर ले तो अग्निवर्णसुरा का पान करे, अग्निवर्ण गोमूत्र का या अग्निवर्ण जल का पान करे ।। १९ ।। सुवर्ण चुराने वाला ब्राह्मण राजा के समक्ष जाकर अपना दोष बतलाकर यह प्रार्थना करे कि आप मुझे दण्ड दीजिए ।। २० ।। स्वयं आए हुए उसे राजा मूसल लेकर उसे एक बार मारे चोर की शुद्धि वध से होती है ब्राह्मण की तपस्या से ।। २१ ।। गुरुपत्नी के साथ समागम करने वाले को चाहिए कि वह अपने से ही अपने लिङ्ग तथा अण्डकोश

निधाय चाञ्जलौ गच्छेदा निपाताच्च नैर्ऋतिम् ॥ २२ ॥ चान्द्रायणान्वा त्रीन्मासानभ्यसेन्नियतेन्द्रियः । जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वाऽन्यतमनिच्छया॥२३॥
चरेत् सांतपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया । संकरीपात्रकृत्यासु मासं शोधनमैन्दवम् ॥ २४ ॥ मलिनीकरणीयेषु तप्तं स्याद्यावकं त्र्यहम् । तुरीयो
ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः ॥ २५ ॥ वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः । मार्जारनकुलौ हत्वा चाषं मण्डूकमेव च ॥ २६ ॥
श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत् । चतुर्णामपि वर्णानां नारीं हत्वाऽनवस्थिताम् ॥ २७ ॥ अमत्यैव प्रमाथ्य स्त्रीं शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ।
सर्पादीनां वधे नक्तमनस्थ्नां वायुसंयमः ॥ २८ ॥ द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मतः । चरेत् सांतपनं कृच्छ्र व्रतं निर्वाप्य शुध्यति॥२९॥
भक्षभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च । पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥ ३० ॥ तृणकाष्ठद्रुमाणां तु शुष्कान्नस्य गुडस्य च ।
चेलचर्मामिषाणां तु त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥ ३१ ॥ मणिमुक्ताप्रबालानां ताम्रस्य रजतस्य च । अयः कांस्योपलानां च द्वादशाहं कणान्नभुक्॥३२॥
कार्पासकीटजीर्णानां द्विशफैकशफस्य च । पक्षिगन्धौषधीनां तु रज्ज्वा चैव त्र्यहं पयः ॥ ३३ ॥ गुरुतल्पव्रतंकुर्याद्रेतः सिक्त्वास्वयोनिषु । सख्युः
पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ॥ ३४ ॥ पितृष्वस्त्रेयीं भगिनीं स्वस्त्रीयां मातुरेव च । मातुश्च भ्रातुराप्तस्य गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ३५॥
अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु । रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सन्तापनं चरेत् ॥ ३६ ॥ मैथुनं वा समासेव्य पुंसि योषिति वा द्विजः ।
गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ ३७ ॥ चण्डालान्त्यस्त्रियोर्गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च । पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु

को काटकर अपने अञ्जलि में लेकर दक्षिण दिशा में तब तक चलता रहे जब तक कि स्वयं गिर न जाय । अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर वह तीन मास तक चान्द्रायण व्रत करे। जिस कर्म के करने से जातिभ्रंश होता है, उस कर्म को करने वाले को सांतपन कृच्छ्र करना चाहिए। यदि वह अनिच्छा से ऐसा कर्म करता है तो उसे प्राजापत्य व्रत करना चाहिए ।। २२-२३।। संकरीकरण अथवा अपात्रीकरण पातक करने पर एक मास तक चान्द्रायण व्रत करने से शुद्धि होती है । मलिनीकरण पातक करने पर तीन दिन तक तप्तपावक का पान करना चाहिए । क्षत्रिय का वध करने पर ब्रह्म हत्या के चौथाई प्रायश्चित्त करने का विधान है । वैश्य का वध करने पर ब्रह्महत्या के अष्टमांश तथा सदाचारी शूद्र का वध करने पर षोडशांश प्रायश्चित्त का विधान है ।। २४-२५।। बिल्ली, नेवला,नीलकण्ठ, मेढक, कुत्ता, गोह, उलूक, काक अथवा चोरों में से किसी भी वर्ण की स्त्री की हत्या करने पर शूद्र हत्या का प्रायश्चित्त करना चाहिए । अज्ञानवश भी स्त्री की हत्या करने पर शूद्रहत्या का प्रायश्चित्त करना चाहिए । सर्प आदि का वध करने पर नक्तव्रत करे तथा अस्थिहीन जीव की हत्या करने पर प्राणायाम करना चाहिए।।२६-२८।। दूसरे के घर से अल्पवस्तु को चुराने पर कृछ्रसंतापन व्रत करना चाहिए ।। २९ ।। खाने योग्य भोज्य पदार्थों, सवारी शय्या आसन, पुष्प, मूल तथा फल को चुराने वाले की शुद्धि पञ्चगव्य लेने से होती है ।। ३० ।। तृण, काष्ठ, वृक्ष, सूखाअन्न, गुड, वस्त्र, चमड़ा तथा मांस की चोरी करने वाले की शुद्धि तीन रात तक उपवास करने से होती है ।। ३१ ।। मणि, मोती, मूँगा, ताम्बा, चाँदी, लोहा, कांस्य तथा पत्थर की चोरी करने वाले की शुद्धि बारह दिन तक अन्न का कण मात्र खाकर रहने से होती है ।। ३२ ।। कपास, रेशम,दो खुर वाले पशु तथा एक खुर वाले पशु, पक्षी, सुगन्धित द्रव्य तथा रस्सी चुराने वाले को तीन दिन तक दूध पीकर रहना चाहिए ।। ३३ ।। मित्र की पत्नी, पुत्र की पत्नी, कुमारी तथा शूद्रा की योनि में रेतः पात करने वाले ब्राह्मण को गुरुपत्नी गमन करने वाले के लिए विहित प्रायश्चित्त करना चाहिए ।। ३४ ।। फुफेरी बहन, मौसेरी बहन और सभी ममेरी बहन के साथ सहगमन करने वाले को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ।। ३५ ।। मनुष्येत्तर योनि में,रजस्वला स्त्री में, योनि के अतिरिक्त अन्य स्थान में तथा जल में रेतःपात करने वाले को कृछ्र संतापन व्रत करना चाहिए ।। ३६।। पुरुष अथवा स्त्री के साथ गाड़ी में अथवा जल में मैथुन करके अथवा दिन में मैथुन करके वस्त्र के साथ स्नान करना चाहिए ।। ३७ ।। यदि अज्ञान में कोई ब्राह्मण चाण्डाल अथवा शूद्रा स्त्री के साथ सहगमन करता है, अथवा भोजन

गच्छति ॥ ३८ ॥ विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि । यत्पुंसः परदारेषु तदेनां चारयेद्व्रतम् ॥ ३९ ॥ सा चेत्पुनः प्रदुष्येत सदृशेनोपमन्त्रितः। कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तदस्याः पावनं स्मृतम् ॥ ४० ॥ यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः । तद्भैक्ष्यभुग्जपेन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥ ४१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रायश्चित्तवर्णनं नामैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

अथसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्तानि

पुष्कर उवाच– **महापापानुयुक्तानां प्रायश्चित्तानि वच्मि ते । संवत्सरेण पतति पतितेन सहाऽऽचरन् ॥ १ ॥ याजनाध्यापनाद्यौन्नान तु यानाशनासनात् । यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः ॥ २ ॥ स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गस्य शुद्धये । पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैः सह ॥ ३ ॥ निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसंनिधौ । दासीघटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्सदा ॥ ४ ॥ अहोरात्रमुपासीरन्नशौचं बान्धवैः सह । निवर्तयेरंस्तस्मात्तु ज्येष्ठांशं भाषणादिकम् ॥ ५ ॥ ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान्गुणतोऽधिकः । प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णं कुम्भमपां नवम् ॥ ६॥ तेनैव सार्धं प्राश्येयुः स्नात्वा पुण्यजलाशये । एवमेव विधिं कुर्युर्योषित्सु पतितास्वपि ॥ ७ ॥ वस्त्रान्नपानं देयं तु वसेयुश्च गृहान्तिके । येषां**

करता है या उससे कोई वस्तु दान में लेता है तो वह पतित हो जाता है और यदि वह जानकर ऐसा करता है तो वह उसके तुल्य हो जाता है ।। ३८।। पति को चाहिए कि वह दुष्टा स्त्री को एक घर में रोककर रखे और उसे दूसरे परस्त्रीगामी पुरुष से उपदेश दिलाए । उस व्रत की शिक्षा दिए जाने पर भी स्त्री यदि वैसा कार्य करती है तो उसकी शुद्धि कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत से ही होती है ।। ३९-४० ।। यदि कोई ब्राह्मण किसी वेश्या के साथ एक रात भी सहगमन करता है तो उसकी शुद्धि तीन वर्ष तक भिक्षा माँगकर खाने तथा उपयुक्त मन्त्र का जप करने से ही होती है ।। ४१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का प्रायश्चित्त वर्णन नामक एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १६९ ॥

श्रीपुष्करजी ने कहा– अब मैं तुम्हें महापापियों के प्रायश्चित्तों को बतला रहा हूँ । पतितों के साथ व्यवहार रखने वाला मनुष्य एक वर्ष में पतित हो जाता है ।। १ ।। यज्ञ कराना, पढ़ाना, यौन सम्बन्ध रखना एक सवारी में चलना तथा भोजन करना इन सभी बातों का यदि कोई किसी पतित के साथ सम्बन्ध रखता है, वह मनुष्य पतित हो जाता है ।। २ ।। उस संसर्गजन्य दोष की शुद्धि के लिए उस पतित के लिए निर्दिष्ट ही प्रायश्चित्त को करना चाहिए । पतित व्यक्ति की शुद्धि के लिए उसके सपिण्ड तथा उसके बान्धवों को एक साथ उदक क्रिया करनी चाहिए ।।३।। निन्दित दिन को सन्ध्याकाल में उस पतित के जाति भाई को ऋत्विक् तथा गुरुजनों के सन्निकट पतित पुरुष की जीवितावस्था में ही दासी के द्वारा जल से भरे घड़े को भरे हुए के समान पैर से फेंकवा देना चाहिए और एक दिन तथा एक रात का उपवास रखकर बान्धवों के साथ अशौच मनाना चाहिए । उसके पश्चात् वे उस पतित के साथ भाषण आदि न करें और न तो उसे धन में ज्येष्ठांश प्रदान करें ।। ४-५ ।। यदि गुणवान् हो तो पतित का छोटा भाई ही ज्येष्ठांश का अधिकारी होता है । यदि पतित बाद में प्रायश्चित्त कर ले तो उसके सपिण्ड और बान्धव उसके साथ पवित्र जलाशय में स्नान करके जल से भरे नवीन घड़े को जल में फेंक दें । स्त्रियों के भी पतित हो जाने पर इसी तरह का कार्य करना चाहिए ।। ६-७ ।। पतित स्त्री को अन्न, वस्त्र

द्विजानां सावित्री नानूद्येत यथाविधि ॥ ८ ॥ तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्युपनाययेत् । विकर्मस्थाः परित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत्॥९॥ जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः । मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्परिग्रहात् ॥ १० ॥ व्रात्यानां यजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च। अभिचारमहीनानां त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥ ११ ॥ शरणागतं परित्यज्य वेदं विप्लाव्य च द्विजः । संवत्सरं यताहारस्तत्पापमपसेधति ॥ १२ ॥ श्वशृगालखरैर्दष्टो ग्राम्यैः क्रव्याद्भिरेव च । नरोष्ट्राश्वैर्वराहैश्च प्राणायामेन शुध्यति ॥ १३ ॥ स्नातकव्रतलोपे च कर्मत्यागो ह्यभोजनम् । हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः ॥ १४ ॥ स्नात्वाऽनश्नन्नहःशेषमभिवाद्य प्रसादयेत् । अवगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने ॥ १५ ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम् । चाण्डालादिरविज्ञातो यस्य तिष्ठेत वेश्मनि ॥ १६ ॥ सम्यग्ज्ञातस्तु कालेन तस्य कुर्वीत शोधनम्। चान्द्रायणं पराकं वा द्विजानां तु विशोधनम् ॥ १७ ॥ प्राजापत्यं तु शूद्राणां शेषं तदनुसारतः । गुडं कुसुम्भं लवणं तथा धान्यानि यानि च ॥१८॥ कृत्वा गृहे ततो द्वारि तेषां दद्याद्धुताशनम् । मृण्मयानां तु भाण्डानां त्याग एव विधीयते ॥ १९ ॥ द्रव्याणां परिशेषाणां द्रव्यशुद्धिर्विधीयते। कूपैकपानसक्ता ये स्पर्शात्संकल्पदूषिताः ॥ २० ॥ शुध्येयुरुपवासेन पञ्चगव्येन वाऽप्यथ । यस्तु संस्पृश्य चण्डालमश्नीयाच्च स्वकामतः॥२१॥ द्विजश्चान्द्रायणं कुर्यात्तप्तकृच्छ्रमथापि वा । भाण्डसंकुलसंगीर्णश्चाण्डालादिजुगुप्सितैः ॥ २२ ॥ भुक्त्वा पीत्वा तथा तेषां षड्रात्रेण विशुध्यति। अन्त्यानां भुक्तशेषं तु भक्षयित्वा द्विजातयः ॥ २३ ॥ व्रतं चान्द्रायणं कुर्युस्त्रिरात्रं शूद्र एव तु । चण्डालकूपभाण्डेषु अज्ञानात्पिबते जलम् ॥ २४॥

देना चाहिए तथा घर के सन्निकट रहने का स्थान देना चाहिए ।। ७ ।। जिन ब्राह्मणों को समय से विधि के अनुसार गायत्री का उपदेश नहीं दिया गया हो उन सबों से तीन प्राजापत्य व्रत कराकर उनका विधिपूर्वक उपनयन संस्कार करना चाहिए । निषिद्ध आचरण करने के कारण जिन ब्राह्मणों का परित्याग कर दिया गया हो उनसे भी इसी प्रकार का प्रायश्चित्त करवाना चाहिए।।८-९।। असत् परिग्रह के कारण दूषित ब्राह्मण एक साल तक गोशाला में दुग्ध पीकर निवास करके तथा प्रतिदिन सावधानीपूर्वक तीन हजार गायत्री का जप करके शुद्ध होता है ।। १० ।। संस्कारहीन मनुष्यों का यज्ञ कराकर, अपने गुरुजनों से भिन्न लोगों का अन्त्येष्टि कर्म करके, अभिचार कर्म अथवा अहीन यज्ञ कराकर ब्राह्मण तीन प्राजापत्य व्रत करके शुद्ध होता है ।। ११ ।। शरणागत का परित्याग करके, अधिकारी मनुष्य को वेदोपदेश करके ब्राह्मण एक वर्ष तक नियमित आहार करके शुद्ध होता है ।। १२ ।। कुत्ते, गीदड़, गधे, ग्राम मांस भक्षी पशुओं, मनुष्य, ऊँट अथवा घोड़े या शूकर के द्वारा काट लिए जाने पर मनुष्य प्राणायाम करके शुद्ध हो जाता है ।। १३ ।। स्नातक के व्रत का लोप होने पर तथा नित्य कर्म का उल्लंघन होने पर निराहार रहना चाहिए। ब्राह्मण के लिए हुंकार करके तथा अपने से बड़े लोगों के लिए हुंकार का प्रयोग करके मनुष्य को स्नान करके दिन के शेष भाग में उपवास करना चाहिए तथा उन्हें प्रणाम करके प्रसन्न करना चाहिए । ब्राह्मण पर प्रहार करने के लिए डंडा उठाने पर प्राजापत्य व्रत करना चाहिए । यदि प्रहार कर दिया गया हो तो अतिकृच्छ्र तथा प्रहार करने से ब्राह्मण का खून निकल आया हो तो कृच्छ्र एवं अतिकृच्छ्र दोनों व्रतों को करना चाहिए ।। १४-१५ ।। विना जाने में यदि ब्राह्मण के घर में चाण्डाल आकर निवास करे तो भली-भाँति जान लेने पर ब्राह्मण को उसका प्रायश्चित्त करना चाहिए । चान्द्रायण अथवा पराक् व्रत करने से ब्राह्मणों की शुद्धि होती है ।। १६-१७ ।। शूद्रों की शुद्धि 'प्राजापत्य व्रत करने से हो जाती है । शेष कर्म उन्हें द्विजों की भाँति करना चाहिए। घर में जो गुड़, कुसुम्भ, नमक तथ धान्य आदि पदार्थ हों उन्हें घर से बाहर निकालकर दरवाजे पर अग्नि में डाल देना चाहिए । मिट्टी के पात्रों को तो फेंक ही देना चाहिए ।। १९ ।। शेष द्रव्यों की अच्छी तरह से शुद्धि कर लेनी चाहिए । चाण्डाल के स्पर्श से दूषित एक कुएँ का जल पीने वाले जो ब्राह्मण हैं वे उपवास करने से अथवा पञ्चगव्य का पान करने से शुद्ध होते हैं। जो ब्राह्मण अपनी इच्छा से चाण्डाल का स्पर्श करके भोजन कर लेता है उसे चान्द्रायण व्रत अथवा तप्तकृच्छ्र करना चाहिए ।। २०-२१ ।। चाण्डाल आदि घृणित जातियों के स्पर्श से जिनके पात्र अपवित्र हो गए हैं, उन पात्रों में भोजन करने वाले ब्राह्मणों को षड्रात्र व्रत करने से शुद्धि होती है । अन्त्यज का उच्छिष्ट खाने वाले ब्राह्मण को अपनी शुद्धि के लिए चान्द्रायण व्रत करना

द्विजः सान्त (सांत) पनं कुर्याच्छूद्रश्चोपवसेद्दिनम् । चण्डालेन तु संस्पृष्टो यस्त्वपः पिबते द्विजः ॥ २५ ॥ त्रिरात्रं तेन कर्तव्यं शूद्रश्चोपवसेद्दिनम्। उच्छिष्टेन यदि स्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः ॥ २६ ॥ उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति । वैश्येन क्षत्रियेणैव स्नानं नक्तं समाचरेत् ॥ २७॥ अध्वानं प्रस्थितो विप्रः कान्तारे यद्यदूनके । पक्वान्नेन गृहीतेन मूत्रोच्चारं करोति वै ॥ २८ ॥ अनिधायैव तद्द्रव्यमङ्के कृत्वा तु संस्थितम् । शौचं कृत्वाऽन्नमभ्युक्ष्य अर्कस्याग्नेश्च दर्शयेत् ॥ २९ ॥ म्लेच्छैर्गतानां चारैर्वा कान्तारे वा प्रवासिनाम् । भक्ष्याभक्ष्यविशुद्ध्यर्थं तेषां वक्ष्यामि निष्कृतिम्॥३०॥ पुनः प्राप्य स्वदेशं च वर्णानामनुपूर्वशः। कृच्छ्रस्यान्ते ब्राह्मणस्तु पुनः संस्कारमर्हति ॥ ३१ ॥ पादोनान्ते क्षत्रियश्च अर्धान्ते वैश्य एव च । पादं कृत्वा तथा शूद्रो दानं दत्त्वा विशुध्यति ॥ ३२ ॥ उदक्या तु सवर्णा या स्पृष्टा चेत्स्यादुदक्यया । तस्मिन्नेवाहनि स्नाता शुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ३३ ॥ रजस्वला तु नाश्नीयात्संस्पृष्टा हीनवर्णया। यावन्न शुद्धिमाप्नोति शुद्धिस्नानेन शुध्यति ॥ ३४ ॥ मूत्रं कृत्वा व्रजन्वर्त्म स्मृतिभ्रंशाज्जलं पिबेत् । अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥ ३५ ॥ मूत्रोच्चारं द्विजः कृत्वा अकृत्वा शौचमात्मनः । मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रं तु यवान्पीत्वा विशुध्यति ॥ ३६ ॥ ये प्रत्यवसिता विप्राः प्रव्रज्यादिबलात्तथा। अनाशकनिवृत्ताश्च तेषां शुद्धिः प्रचक्ष्यते॥३७॥ चारयेत्त्रीणि कृच्छ्राणि चान्द्रायणमथापि वा । जातकर्मादिसंस्कारैः संस्कुर्यात्तं तथा पुनः ॥ ३८ ॥ उपानहममेध्यं च यस्य संस्पृशते मुखम्। मृत्तिकागोमये तत्र पञ्चगव्यं च शोधनम् ॥ ३९ ॥ वापनं विक्रयं चैव नीलवस्त्रादिधारणम् । तपनीयं हि विप्रस्य त्रिभिर्कृच्छ्रैर्विशुध्यति ॥ ४०॥

चाहिए और शूद्र को त्रिरात्र व्रत करना चाहिए । जो द्विज चाण्डालों के कुएँ अथवा पात्र का जल अनजाने में पी लेता है उसे सांतपनकृछ्र करना चाहिए और शूद्र को ऐसा करने पर एक दिन का उपवास करना चाहिए ।। २२-२४ ।। जो द्विज चाण्डाल का छुआ हुआ जल पीता है उसे त्रिरात्र व्रत करना चाहिए और शूद्र को ऐसा करने पर एक दिन का उपवास करना चाहिए । यदि ब्राह्मण उच्छिष्ट, कुत्ता अथवा शूद्र क स्पर्श कर ले तो शुद्धि के लिए उसे एक रात उपवास करके पञ्चगव्य पीना चाहिए । वैश्य अथवा क्षत्रिय के स्पर्श होने पर रात्रि भर उपवास करना चाहिए ।। २६-२७ ।। मार्ग में चलता हुअ ब्राह्मण यदि वन अथवा जल रहित प्रदेश में पक्वान्न हाथ में लिए हुए मल-मूत्र का त्याग करता है तो उस द्रव्य को अलग न रखकर, अपनी गोद में रखे हुए ही आचमन आदि से पवित्र होकर अन्न का प्रोक्षण करके उसे सूर्य एवं अग्नि को दिखाना चाहिए ।। २८-२९ ।। जो प्रवासी मनुष्य म्लेच्छों, चोरों के निवासभूत देश अथवा वन में भोजन कर लेते हैं अब मैं उनके भक्ष्याभक्ष्य विषय की शुद्धि का उपाय बतला रहा हूँ । ऐसा करने वाले ब्राह्मण को अपने ग्राम में आकर पूर्ण कृछ्र, क्षत्रिय को तीन चौथाई, वैश्य को आधा तथा शूद्र को एक चौथाई कृछ्र करना चाहिए । शूद्र की शुद्धि दान कर लेने मात्र से भी हो जाती है ।। ३०-३२ ।। यदि किसी स्त्री का समान वर्ण वाली रजस्वला स्त्री से स्पर्श हो जाता है तो वह उसी दिन स्नान करके शुद्ध हो जाती है । अपने से हीन वर्ण वाली रजस्वला स्त्री से यदि किसी रजस्वला स्त्री का संस्पर्श हो जाय तो उसे तब तक भोजन नहीं करना चाहिए जब तक वह शुद्ध नहीं हो जाती है ।। ३३-३४ ।। रास्ते में चलते समय पेशाब करके भूल जाने के कारण यदि कोई जल पी लेता है तो वह दिन रात (चौबीस घंटों) का उपवास करके और पञ्चगव्य पीकर शुद्ध होता है ।। ३५ ।। जो मूत्र त्याग करने के पश्चात् आचमन आदि से अपने को पवित्र किए विना ही गल्ती से भोजन कर लेता है, वह तीन रात्रि तक जौ पीकर शुद्ध होता है ।।३६।। जो ब्राह्मण संन्यास लेकर गृहस्थाश्रम का परित्याग कर चुके हैं और पुनः संन्यासाश्रम से गृहस्थाश्रम में लौटना चाहते हैं, मैं उनकी शुद्धि के विषय में बतला रहा हूँ ।। ३७ ।। उनसे तीन चान्द्रायण अथवा प्राजापत्य व्रत कराना चाहिए और उन्हें पुनः जातकर्म आदि संस्कारों से संस्कृत करना चाहिए ।। ३८ ।। जिसके मुख से उपानह आदि अमेध्य वस्तुएँ छू जायँ उसके मुख पर मिट्टी और गोबर को फेरना चाहिए और पञ्चगव्य पीना चाहिए ।। ३९ ।। नील की खेती, वनील का विक्रय तथा नीले वस्त्र धारण करना ये ब्राह्मण को पतित बनाने वाले हैं । तीन कृछ्र व्रत करके वह

अन्त्यजातिश्वपाकेन संस्पृष्टा स्त्री रजस्वला । चतुर्थेऽहनि शुद्धा सा त्रिरात्रं तत्र आचरेत् ॥ ४१ ॥ चाण्डालश्वपचौ स्पृष्ट्वा तथा पूयं च सूतिकाम्। शवं तत्पार्श्विनं स्पृष्ट्वा सद्यः स्नानेन शुध्यति ॥ ४२ ॥ नारं स्पृष्ट्वा तु सस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुध्यति । रथ्याकर्दमतोयेन अधो नाभेर्मृदोदकैः॥४३॥ वान्तो विविक्तः स्नात्वा तु घृतं प्राश्य विशुध्यति । स्नानात्क्षुरकर्मकर्ता कृच्छ्रकृद्ग्रहणेऽन्नभुक् ॥ ४४ ॥ अपाङ्क्तेयाशी गव्याशी शुना दष्टस्तथा शुचिः । कृमिदष्टश्चाऽऽत्मघाती कृच्छ्राज्जप्याच्च होमतः ॥ ४५ ॥ होमाद्यैश्चानुपातेन पूयन्ते पापिनोऽखिलाः ॥ ४६ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रायश्चित्तवर्णनं नाम सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

अथैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्तानि

पुष्कर उवाच– **प्रायश्चित्तं रहस्यादि वक्ष्ये शुद्धिकरं परम् । पौरुषेण तु सूक्तेन मासं जप्यादिनाऽघहा ॥ १ ॥ मुच्यते पातकैःसर्वैर्जप्त्वा त्रिरघमर्षणम् । वेदजप्याद्वायुयमाद्गायत्र्या व्रततोऽघहा ॥ २ ॥ मुण्डनं सर्वकृच्छ्रेषु स्नानं होमो हरेर्यजिः । उत्थितस्तु दिवा तिष्ठेदुपविष्टस्तथा निशि॥३॥ एतद्वीरासनं प्रोक्तं कृच्छ्रकृत्तेन पापहा । यथाकथञ्चित्पिण्डानां चत्वारिंशच्छतद्वयम् ॥ ४ ॥ मासेन भक्षयेदेतत्सुरचान्द्रायणं चरेत् । त्र्यहमुष्णं पिबेदा (द) पस्त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत् । अष्टभिः प्रत्यहं ग्रासैर्यतिचान्द्रायणं स्मृतम् ॥ ५ ॥ प्रातश्चतुर्भिः सायं च शिशुचान्द्रायणं स्मृतम्।**

शुद्ध होता है ।। ४० ।। यदि रजस्वला स्त्री का किसी चाण्डाल से स्पर्श हो जाय तो वह त्रिरात्र व्रत करके चौथे दिन शुद्ध होती है ।। ४१ ।। चाण्डाल, श्वपाक, मज्जा, सूतिका, मूर्दा तथा उसके साथ रहने वाले व्यक्ति का स्पर्श हो जाने पर स्नान कर लेने से सद्यः शुद्धि हो जाती है ।। ४२ ।। मनुष्य की हड्डी का स्पर्श हो जाने पर स्नान कर लेने से ब्राह्मण की शुद्धि हो जाती है । गली के कीचड़ तथा पानी का छीटा पड़ जाने पर नाभि के नीचे मिट्टी तथा जल से धोकर स्नान कर लेने से शुद्धि हो जाती है ।। ४३ ।। वमन अथवा विरेचन के पश्चात् स्नान करके घृत का प्राशन करने से शुद्धि होती है ।। ४३ ।। क्षौर कर्म के पश्चात् स्नान करने से तथा ग्रहण को भोजन करने वाले की प्राजापत्य व्रत से शुद्धि होती है ।। ४४ ।। पंक्तिदूषक मनुष्यों के साथ पंक्ति में बैठकर भोजन करने वाला, कुत्ते अथवा कीट से दंशित मनुष्य की शुद्धि पञ्चगव्य पीने से होती है । आत्महत्या की चेष्टा करने वाले मनुष्य की शुद्धि 'प्राजापत्यव्रत' एवं 'होम' से होती है । होमादिक के अनुष्ठान एवं पश्चात्ताप से सभी प्रकार के पापियों की शुद्धि होती है ।। ४५-४६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का प्रायश्चित्त वर्णन नामक एक सौ सत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७० ॥

श्रीपुष्करजी ने कहा– अब मैं गुप्तरूप से किए गए पापों के प्रायश्चित्तों का वर्णन करूँगा जो अत्यन्त शुद्धिकारक है । एक महीने तक पुरुष सूक्त का जप करने वाले के सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ।। १ ।। तीन बार अघमर्षण सूक्त का जप करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है । वेदमन्त्र, वायुसूक्त यमसूक्त के जप एवं गायत्री मन्त्र के जप से मनुष्य अपने सारे पापों को विनष्ट कर डालता है ।। २ ।। सभी प्रायश्चित्तों में मुण्डन, स्नान, होम तथा भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए । कृच्छ्रव्रत को करने वाले को दिन खड़े-खड़े और रात्रि बैठकर बिताना चाहिए।।३।। इसे ही वीरासन कहा जाता है । इससे मनुष्य अपने पापों को विनष्ट कर देता है । प्रतिदिन आठ ग्रास भोजन करने को यति चान्द्रायण कहते हैं ।। ४ ।। प्रातःकाल चार ग्रास

पिबेत् ॥ ६ ॥ त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षी भवेत्त्र्यहम्। तप्तकृच्छ्रमिदं प्रोक्तं शीतैः शीतं प्रकीर्तितम् ॥ ७ ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रं पयसा दिवसानेकविंशतिम् । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥ ८ ॥ एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् । एतच्च प्रत्यहाभ्यस्तं महासांतपनं स्मृतम् ॥ ९ ॥ त्र्यहाभ्यस्तमथैकैकमतिसान्तपनं स्मृतम् । कृच्छ्रं पराकसंज्ञं स्याद्द्वादशाहमभोजनम् ॥ १० ॥ एकभक्तं त्र्यहाभ्यस्तं क्रमान्नक्तमयाचितम् । प्राजापत्यमुपोष्यान्ते पादः स्यात्कृच्छ्रपादकः ॥ ११ ॥ फलैर्मासं फलं कृच्छ्रं बिल्वैः श्रीकृच्छ्र ईरितः । पद्माक्षैः स्यादामलकैः पुष्पकृच्छ्रं तु पुष्पकैः ॥ १२ ॥ पत्रकृच्छ्रं तथ पत्रैस्तोयकृच्छ्रं जलेन तु । मूलकृच्छ्रं तथा मूलैर्दध्ना क्षीरेण तक्रतः ॥ १३ ॥ मासं वायव्यकृच्छ्रं स्यात्पाणिपूरान्नभोजनात्। तिलैर्द्वादशरात्रेण कृच्छ्रमाग्नेयमार्तिनुत् ॥ १४ ॥ पक्षं प्रसृत्या लाजानां ब्रह्मकूर्चं तथा भवेत् । उपोषितश्चतुर्दश्यां पञ्चदश्यामनन्तरम् ॥ १५ ॥ पञ्चगव्यं समश्नीयाद्धविष्याशीत्यनन्तरम् । मासेन द्विर्नरः कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १६ ॥ श्रीकामः पुष्टिकामश्च स्वर्गकामोऽघनष्टये । देवताराधनपरः कृच्छ्रकारी स सर्वभाक् ॥ १७ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रहस्यादिप्रायश्चित्तवर्णनं नामैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

और सायंकाल चार ग्रास भोजन करने को शिशु चान्द्रायण कहते हैं । एक माह में किसी भी प्रकार से दो सौ चालिस ग्रास भोजन करने को सुरचान्द्रायण कहते हैं ।। ५ ।। तीन दिन गर्म जल, तीन दिन गर्म दुग्ध, तीन दिन गर्म घी और तीन दिन वायु पीकर रहने को तप्त कृच्छ्र कहा गया है । इसी तरह से तीन दिन ठंढा जल, तीन दिन ठंढा दुग्ध, तीन दिन ठंढा घी और तीन दिन वायु पीकर विताने को शीतकृच्छ्र कहते हैं ।। ६-७ ।। इक्कीस दिन तक केवल दुग्ध पीकर रहने से कृच्छ्रातिकृच्छ्रव्रत होता है । एक दिन गोमूत्र, गोबर, दुग्ध, दधि, घी तथा कुशोदक पीकर तथा एक दिन उपवास करके विताने को सान्तपन कृच्छ्र कहते हैं । कृच्छ्र सान्तःपन की एक-एक वस्तु का एक-एक दिन सेवन करके पाँच दिन तक विताने को महासान्तपन व्रत कहते हैं ।। ८-९ ।। उन्हीं वस्तुओं को तीन-तीन दिन पर सेवन करके विताने को अतिसांतपन कहते हैं । बारह दिन तक उपवास करके विताने को पराकसंज्ञक कृच्छ्र कहते हैं ।। १० ।। तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल और तीन दिन विना माँगी हुई वस्तु का भोजन करके अन्तिम तीन दिन उपवास रखे,इसे ही प्राजापत्य व्रत कहा गया है । इसी के एक चौथाई अनुष्ठान को पादकृच्छ्र कहते हैं ।। ११ ।। एक मास तक फल खाकर विताने को फलकृच्छ्र और बेल (श्रीफल) खाकर विताने से श्रीकृच्छ्र होता है । इसी प्रकार कमलगट्टा खाकर विताने से पद्माक्षकृच्छ्र होता है । आँवला खाकर विताने से आमलक कृच्छ्र होता है । पुष्प खाकर एक मास विताने को पुष्पकृच्छ्र कहते हैं ।। १२ ।। इसी क्रम से केवल पत्ता खाकर एक मास विताने को पत्रकृच्छ्र कहते हैं। केवल जल पीकर विताने से जलकृच्छ्र, केवल मूल का भोजन करके विताने से मूलकृच्छ्र, दुग्ध, दधि और तक्र पीकर विताने से क्रमशः दुग्धाकृच्छ्र, दधिकृच्छ्र तथा तक्रकृच्छ्र होते हैं ।।१३।। एक मास तक अञ्जलि भर अन्न के भोजन से बायव्यकृच्छ्र होता है । बारह दिन तक केवल तिल क भोजन करके रहने से आग्नेय कृच्छ्र होता है, जो दुःखों का विनाश करने वाला है ।।१४।। एक पक्ष तक एक पसर लावा (खील) का भोग करें चतुर्दशी अमावस्या एवं पूर्णिमा को उपवास रखें । इसके बाद पञ्चगव्य पान करके हविष्यान्न का भोजन करें । इसे ब्रह्मकूर्चव्रत कहते हैं ।।१५।। इस व्रत को महीने में दो बार करने वाला मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है । जो मनुष्य धन पुष्टि, स्वर्गप्राप्ति एवं पापनाश की इच्छा से देवताओं का आराधन और कृच्छ्रव्रत करता है, वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है ।। १७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का गुप्तपापों के प्रायश्चित्त का वर्णन नामक एक सौ एकहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७१ ॥

अथद्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सर्वपापप्रायश्चित्तानि

पुष्कर उवाच– **परदारपरद्रव्यजीवहिंसादिके यदा । प्रवर्तते नृणां चित्तं प्रायश्चित्तं स्तुतिस्तदा ॥ १ ॥ विष्णवे विष्णवे नित्यं विष्णवे विष्णवे नमः । नमामि विष्णुं चित्तस्थमहंकारगतं हरिम् ॥ २ ॥ चित्तस्थमीशमव्यक्तमनन्तमपराजितम् । विष्णुमीड्यमशेषेण ह्यनादिनिधनं विभुम् ॥ ३ ॥ विष्णुश्चित्तगतो यन्मे विष्णुर्बुद्धिगतश्च यत् । यच्चाहंकारगो विष्णुर्यद्विष्णुर्मयि संस्थितः ॥ ४ ॥ करोति कर्मभूतोऽसौ स्थावरस्य चरस्य च । तत्पापं नाशमायातु तस्मिन्नेव हि चिन्तिते ॥ ५ ॥ ध्यातो हरति यत्पापं स्वप्ने दृष्टस्तु भावनात् । तमुपेन्द्रमहं विष्णुं प्रणतार्तिहरं हरिम् ॥ ६ ॥ जगत्यस्मिन्निराधारे मज्जमाने तमस्यधः । हस्तावलम्बनं विष्णुं प्रणमामि परात्परम् ॥ ७ ॥ सर्वेश्वरेश्वर विभो परमात्मन्नधोक्षज । हृषीकेश हृषीकेश हृषीकेश नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥ नृसिंहानन्त गोविन्द भूतभावन केशव । दुरुक्तं दुष्कृतं ध्यातं शमयाघं नमोऽस्तुते ॥ ९ ॥ यन्मया चिन्तितं दुष्टं स्वचित्तवशवर्तिना । अकार्यं महदत्युग्रं तच्छमं नय केशव ॥ १० ॥ ब्रह्मण्यदेव गोविन्द परमार्थपरायण । जगन्नाथ जगद्धातः पापं प्रशमयाच्युत॥ ११ ॥ यथाऽपराह्णे सायाह्ने मध्याह्ने च यथा निशि । कायेन मनसा वाचा कृतं पापमजानता ॥ १२ ॥ जानता च हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव । नामत्रयोच्चारणतः पापं यातु मम क्षयम् ॥ १३ ॥ शारीरं मे हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव । पापं प्रशमयाद्य त्वं वाक्कृतं मम माधव ॥ १४ ॥**

श्रीपुष्करजी कहते हैं– जब मनुष्यों का मन दूसरे की स्त्री, दूसरे के धन के हरण तथा जीवों की हिंसा करने में लगता है ते श्रीभगवान् विष्णु की स्तुति करने से उन पापों का प्रायश्चित्त हो जाता है ।। १ ।। (उस समय भगवान् विष्णु की स्तुति इस प्रकार से करनी चाहिए) सम्पूर्ण जड़ों तथा चेतनों में व्यापक भगवान् विष्णु को नित्य ही बारम्बार नमस्कार है । अपने चित्त में स्थित तथा असमर्थ आत्मा में विद्यमान श्रीहरि भगवान् विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ ।। २ ।। चित्त के भीतर विद्यमान, सम्पूर्ण जगत् के नियामक अव्यक्त (किसी भी लौकिक प्रमाण के द्वारा नहीं जानने योग्य) अनन्त (देश, काल एवं वस्तु की सीमा से रहित) किसी से भी पराजित नहीं होने वाले, सबों के द्वारा स्तुति किए जाने योग्य आदि तथा अतिरहित एवं व्यापक भगवान् विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ ।। ३ ।। जो भगवान् विष्णु मेरे चित्त में स्थित हैं तथा मेरी बुद्धि में व्यापक हैं; जो भगवान् विष्णु अहंकार में स्थित हैं तथा जो भगवान् विष्णु मेरे भीतर अन्तर्यामी रूप से स्थित हैं ।। ४ ।। चर एवं स्थावर समस्त जीवों के कर्मों को जो भगवान् विष्णु करते हैं, वे सभी पाप उन भगवान् विष्णु का चिन्तन करने मात्र से विनष्ट हो जायँ ।। ५ ।। ध्यान करने मात्र से जो भगवान् पापों का नष्ट कर देते हैं, तथा स्वप्न में भावना करने से दर्शन देकर पापों को नष्ट करते हैं, उन शरणागत जीवों के कष्टों को दूर करने वाले भगवान् विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ ।। ६ ।। इस घोर अन्धकारमय निराधार संसार सागर में डूबने वाले जीवों को अपनी हाथों का सहारा देने वाले परात्पर भगवान् विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ ।। ७ ।। हे समस्त स्वामियों के स्वामिन् ! हे विभो ! हे परमात्मन् ! हे अधोक्षज !! हे हृषीकेश !!! आपको नमस्कार है ।। ८ ।। हे नृसिंह ! हे अनन्त ! हे गोविन्द ! हे भूतभावन ! केशव ! मेरे जो दुरुक्त, दृष्कृत तथा मन से चिन्तित पाप हैं उन्हें आप विनष्ट कर दें; आपको नमस्कार है ।। ९ ।। अपने चित्त के वशवर्ती होने के कारण मैंने जो कुछ पाप का चिन्तन किया है, अत्यन्त उग्र महान् अकार्य कर्म किया है हे केशव ! उसे आप शान्त कर दें ।। १० ।। हे ब्रह्मण्यदेव! हे गोविन्द ! हे परमार्थपरायण भगवान् ! हे जगन्नाथ ! हे जगत् का पालन करने वाले ! हे अच्युत! आप मेरे पाप को विनष्ट कर दें ।। ११ ।। मैंने अपराह्ण में, सायंकाल या मध्याह्न में जो कुछ भी जाने-अनजाने पाप कर्म किया है, वह समस्त पाप श्रीभगवान् के हृषीकेश, पुण्डरीकाक्ष, तथा माधव इन तीन नामों के उच्चारण करने से विनष्ट हो जायँ।।१२-१।। हे हृषीकेश ! हे पुण्डरीकाक्ष ! हे माधव मेरे जो भी शारीरिक अथवा वाचिक पाप हैं; उन्हें आप शान्त कर दें ।।१४।।

यद्भुञ्जन्यत्स्वपंस्तिष्ठन्गच्छञ्जाग्रद्यदा स्थितः । कृतवान्पापमद्याहं कायेन मनसा गिरा ॥ १५ ॥ यत्स्वल्पमपि यत्स्थूलं कुयोनिनरकावहम् । तद्यातु प्रशमं सर्वं वासुदेवानुकीर्तनात् ॥ १६ ॥ परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं च यत् । तस्मिन्प्रकीर्तिते विष्णौ यत्पापं तत्प्रणश्यतु ॥ १७ ॥ यत्प्राप्य न निवर्तन्ते गन्धस्पर्शादिवर्जितम् । सूरयस्तत्पदं विष्णोस्तत्सर्वं शमयत्वघम् ॥ १८ ॥ पापप्रणाशनं स्तोत्रं यः पठेच्छृणुयादपि । शारीरैर्मानसैर्वाग्जैः कृतैः पापैः प्रमुच्यते ॥ १९ ॥ सर्वपापग्रहादिभ्यो याति विष्णोः परं पदम् । तस्मात्पापे कृते जप्यं स्तोत्रं सर्वाघमर्दनम् ॥ २० ॥ प्रायश्चित्तमघौघानां स्तोत्रं व्रतकृते वरम् । प्रायश्चित्तैः स्तोत्रजपैर्व्रतैर्नश्यति पातकम् । ततः कार्याणि संसिद्ध्यै तानि वै भुक्तिमुक्तये ॥ २१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वपापप्रायश्चित्ते पापनाशनस्तोत्रवर्णनं नाम द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

अथत्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चितम्

अग्निरुवाच– **प्रायश्चित्तं ब्रह्मणोक्तं वक्ष्ये पापोपशान्तिदम् । स्यात्प्राणवियोगफलो व्यापारो हननं स्मृतम् ॥ १ ॥ रागाद्द्वेषात्प्रमादाच्च स्वतः परत एव वा । ब्राह्मणं घातयेद्यस्तु वा भवेद्ब्रह्मघातकः॥ २ ॥ बहूनामेककार्याणां सर्वेषां शस्त्रधारिणाम् । यद्येको घातकस्तत्र सर्वे ते घातकाः स्मृताः॥ ३ ॥ आक्रोशितस्ताडितो वा धनैर्वा परिपीडितः । यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ४ ॥ औषधाद्युपकारे तु न पापं स्यात्कृते**

मैंने भोजन करते हुए, सोते हुए, ठहरते हुए, चलते हुए, जागते हुए, बैठते हुए, जो कोई भी पाप शरीर, मन तथा वाणी से किया है, कुयोनि तथा नरक में गिराने वाले जो भी छोटे बड़े पाप हैं वे सब भगवान् वासुदेव के नाम संकीर्तन से विनष्ट हो जायँ ।। १५-१६ ।। जो परंधाम, परंब्रह्म, तथा परं पवित्र है,उन भगवान् विष्णु के नाम संकीर्तन से मेरे जो भी पाप हों वे विनष्ट हो जायँ ।। १७ ।। दिव्यसूरिजन भगवान् विष्णु के जिस गन्ध तथा स्पर्श आदि से रहित जिस पद को प्राप्त करके पुनः इस संसारचक्र में नहीं आते, वह मेरे पापों को प्रणष्ट करें ।। १८ ।। इस पापविनाशक स्तोत्र को जो मनुष्य पढ़ता अथवा सुनता है वह अपने किए हुए शारीरिक, मानसिक तथा वाचिक पापों से मुक्त हो जाता है ।। १९ ।। सभी पापों तथा ग्रहों से मुक्त होकर वह भगवान् विष्णु के परंपद को जाता है । अतएव पाप करने पर इस सर्वपाप विनाशक स्तोत्र का पाठ करना चाहिए ।। २० ।। यह स्तोत्र पापों के प्रायश्चित्त के समान है, कृच्छ्र आदि व्रत करने वालों के लिए श्रेष्ठ है । प्रायश्चित्तों के करने, स्तोत्र का पाठ करने तथा व्रत करने से पाप नष्ट हो जाता है । अतएव उन्हें सिद्धि भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रायश्चित्तों, स्तोत्रपाठों तथा व्रतों को करना चाहिए ।। २१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का सभी पापों के प्रायश्चित्तस्वरूप पापनाशन स्तोत्र का वर्णन नामक एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७२ ॥

श्रीअग्निदेव ने कहा– वसिष्ठ जी ! अब मैं श्रीब्रह्मा जी के द्वारा वर्णित पापों को विनष्ट करके शान्ति देने वाले प्रायश्चित्त का वर्णन कर रहा हूँ । जिसके द्वारा प्राण का शरीर से वियोग हो जाय उसे हनन कहते हैं ।। १ ।। जो राग द्वेष अथवा प्रमाद के कारण स्वयं अथवा दूसरे से ब्राह्मण को मारता है उसे ब्रह्मघाती कहते हैं ।। २ ।। यदि अनेक शस्त्र धारण करने वाले मनुष्यों का एक ही उद्देश्य हो और उनमें से यदि कोई एक भी हत्या करता है तो वे सब हत्यारे कहे जाते हैं ।। ३ ।। जिसके द्वारा आक्रोशित, ताडित अथवा धन के विषय में परिपीड़ित होकर अपने प्राणों का त्याग करता है, तो उस ब्राह्मण को सताने वाले व्यक्ति को ब्रह्मघाती कहा जाता है ।। ४ ।। उपकार आदि करने की दृष्टि औषधि देने से यदि किसी ब्राह्मण की मृत्यु हो जाती है तो

मृते । पुत्रं शिष्यं तथा भार्यां शासतो न मृते ह्यघम् ॥ ५ ॥ देशं कालं वयः शक्तिं पापं चावेक्ष्य यत्नतः । प्रायश्चित्तं प्रकल्प्यं स्याद्यत्र चोक्ता न निष्कृतिः ॥ ६ ॥ गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा सद्यः प्राणान्परित्यजेत् । प्रास्येदात्मानमग्नौ वा मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ ७ ॥ शिरः कपाली ध्वजवान्भैक्षाशी कर्म वेदयन् । ब्रह्महा द्वादशाब्दानि मितभुक्शुद्धिमाप्नुयात् ॥ ८ ॥ षड्भिर्वर्षैः शुद्धचारी ब्रह्महा पूयते नरः । विहितं यदकामानां कामात्तु द्विगुणं स्मृतम् ॥ ९ ॥ प्रायश्चित्तं प्रवृत्तस्य वधे स्यात्तु त्रिवार्षिकम् । ब्रह्मघ्नि क्षत्रे द्विगुणं विट्शूद्रेज्ञेयस्तु षोडशः ॥ १० ॥ अन्यत्र विप्रे सकलं पादोनं क्षत्रिये मतम् । वैश्येऽर्धपादं क्षत्रे स्याद्वृद्धस्त्रीबालरोगिषु ॥ ११ ॥ तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतम् । वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रो ज्ञेयस्तु षोडशः ॥ १२ ॥ अप्रदुष्टां स्त्रियं हत्त्वा शूद्रहत्याव्रतं चरेत् । पञ्चगव्यं पिबेद्गोघ्नो मासमासीत संयतः ॥ १३ ॥ गोष्ठेशयो गोऽनुगामी गेप्रदानेन शुध्यति । कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रं वा पादह्रासो नृपादिषु ॥ १४ ॥ अतिवृद्धामतिकृशामतिबालां च रोगिणीम् । हत्वा पूर्वविधानेन चरेदर्धं व्रतं द्विजः ॥ १५ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्तया दद्याद्धेमतिलादिकम् । मुष्टिचपेटकीलेन तथा शृङ्गादिमोटने ॥ १६ ॥ लगुडादिप्रहारेण गोवधं तं विनिर्दिशेत्। दमने दामने चैव शकटादौ च योजने ॥ १७ ॥ स्तम्भशृङ्खलापाशैर्वा मृते पादोनमाचरेत् । काष्ठे सान्तपनं कुर्यात्प्राजापत्यं तु लोष्टके ॥ १८ ॥ तप्तकृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रे चाप्यतिकृच्छ्रकम् । मार्जारगोधानकुलमण्डूकश्वपतत्रिणः ॥ १९ ॥ हत्वा त्र्यहं पिबेत्क्षीरं कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत् । व्रतं

पाप नहीं लगता है । शासन की दृष्टि से यदि पुत्र, शिष्य या पत्नी को दण्ड देने पर उसकी मृत्यु हो जाय तो उसको मृत्यु का पाप नहीं लगता है ।। ५ ।। देश, काल, अवस्था, शक्ति तथा पाप को दृष्टि पथ में रखकर प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिए, क्योंकि उसके विना पाप से छुटकारा नहीं मिलता है ।। ६ ।। यदि केई गौ अथवा ब्राह्मण के लिए अपने प्राणों की आहुति दे देता है, तो ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है ।। ७ ।। मृतक के शिर का कपाल लेकर, हाथ में ध्वजा लिए हुए भिक्षान्न का भोजन करते हुए, मैंने ब्रह्मण की हत्या की है, इस तरह से कहते हुए बारह वर्ष तो नियमित आहार करे तो उसे ब्रह्महत्या से मुक्ति मिल जाती है ।। ८ ।। यदि कोई अनिच्छा से ब्राह्मण का बध करता है तो वह छह वर्ष तक शुद्ध आचरण करके पवित्र होता है और इच्छापूर्वक ब्रह्महत्या करने वाले की शुद्धि बारह वर्ष में होती है ।। ९ ।। ब्रह्महत्या में प्रवृत्त ब्राह्मण को तीन वर्ष तक प्रायश्चित्त करना चाहिए, ब्रह्मघाती क्षत्रिय को छह वर्ष तक, ब्रह्मघाती वैश्य को नव वर्ष तक तथा ब्रह्मघाती शूद्र को बारह वर्ष तक प्रायश्चित करना चाहिए ।। १० ।। अन्य पापों का ब्राह्मण को सम्पूर्ण, क्षत्रिय को तीन चौथाई, वैश्य को आधा तथा शूद्र, वृद्ध, स्त्री, बालक एवं रोगी को एक चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिए ।। ११ ।। क्षत्रिय का वध करने पर ब्रह्महत्या की एक चौथाई, वैश्य का वध करने पर अष्टमांश तथ सदाचारी शूद्र का वध करने पर षोडशांश प्रायश्चित्त माना गया है ।। १२ ।। निरपराध स्त्री का वध करने पर शूद्र हत्या के प्रायश्चित्त के समान प्रायश्चित्त करना चाहिए, गो हत्या करने वाले को एक मास तक पञ्चगव्य पीकर संयमपूर्वक रहना चाहिए ।। १३ ।। उसे गोशाला में शयन करना चाहिए गौ के पीछे चलना चाहिए और गोदान करना चाहिए । ऐसा करने से वह शुद्ध होता है । उसे कृच्छ्र तथा अतिकृच्छ्रव्रत भी करना चाहिए । यही पाप राजा के द्वारा किए जाने पर प्रायश्चित्त चतुर्थांश कम हो जाता है ।। १४ ।। यदि किसी ब्राह्मण से अत्यन्त वृद्ध, अत्यन्त दुबली-पतली, अत्यन्त छोटी उम्र की तथा रोगिणी गौ की हत्या हो जाय तो उसे उपर्युक्त विधान से आधा व्रत करना चाहिए ।। १५ ।। वह अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मण भोजन कराए तथा सुवर्ण एवं तिल आदि का दान करे। मुष्टिप्रहार, चपेटा प्रहार, कील तथा शृङ्ग आदि मोड़ने तथा लाठी आदि से मारने से यदि गौ की मृत्यु हो जाय तो उसे गोहत्या कहते हैं । मारने, बाँधने, गाड़ी आदि में जातेने, रोकने अथवा रस्सी आदि का फँदा लगाने से गौ की मृत्यु हो जाय तो तीन चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिए ।। १६-१७ ।। काठ से गो हत्या करने वाला सान्तपन व्रत करे और ढेले से मारकर गोवध करने वाला प्राजापत्य व्रत करे । पत्थर से मारकर गोहत्या करने वाला तप्तकृच्छ्र व्रत करे और शस्त्र से गोहत्या करने वाला अतिकृच्छ्रव्रत करे ।। १८ ।। विल्ली, गोह, नेवला, मेढ़क, कुत्ते और पक्षी की हत्या हो जाने पर तीन दिनें तक दुग्ध पीकर कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करना चाहिए । यदि उपर्युक्त हत्या एकान्त में हो गयी हो तो उसके प्रायश्चित्त के लिए व्रत भी एकान्त

रहस्ये रहसि प्रकाशेऽपि प्रकाशकम् ॥ २० ॥ प्राणायामशतं कार्यं सर्वपापानुपत्तये । पनसं द्राक्षमधुकं खार्जूरं तालमैक्षवम् ॥२१॥ माध्वीक टङ्कमाध्वीकं मैरेयं नारिकेलजम्। न मद्यान्यपि मद्यानि पैष्टी मुख्या सुरा स्मृता ॥ २२ ॥ त्रैवर्णस्य निषिद्धानि पीत्त्वा तप्त्वाह्यपः शुचिः । कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि॥२३॥ सुरापानापनुत्त्यर्थं वनवासी जटी ध्वजी । अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च ॥ २४ ॥ पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः । मद्यभाण्डस्थिताश्चापः पीत्वा स्यात्षड्दिनं व्रती ॥ २५ ॥ चाण्डालस्य तु पानीयं पीत्वा सप्तदिनं व्रती । चण्डालकूपभाण्डेषु पीत्वा सान्तपनं चरेत् ॥ २६ ॥ पञ्चगव्यं त्रिरात्रान्ते पीत्वाऽन्त्यजजलं द्विजः। मत्स्यकण्टकशम्बूकशङ्खशुक्तिकपर्दिकान्॥२७॥ पीत्वा नवोदकं चैव पञ्चगव्येन शुध्यति । शवकूपोदकं पीत्वा त्रिरात्रेण विशुध्यति ॥ २८ ॥ अन्त्यावसायिनामन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् । आपत्काले शूद्रग्रहे मनस्तापेन शुध्यति ॥ २९ ॥ शूद्रभाजनभुग्विप्रः पञ्चगव्यादुपोषितः। कन्दुपक्वं स्नेहपक्वं स्नेहं च दधिसक्तवः ॥ ३० ॥ शूद्रादनिन्द्यान्येतानि गुडक्षीररसादिकम् । अस्नातभुक्चोपवासी दिनान्ते तु जपाच्छुचिः ॥ ३१॥ मूत्रोच्चार्यशुचिर्भुक्त्वा त्रिरात्रेण विशुध्यति । केशकीटावपन्नं च पादस्पृष्टं च कामतः ॥ ३२ ॥ भ्रूणघ्नावेक्षितं चैव संस्पृष्टं वाऽप्युदक्यया । काकाद्यैरवलीढं च शुना संस्पृष्टमेव च ॥ ३३ ॥ गवाद्यैरन्नमाघ्रातं भुक्त्वा त्र्यहमुपावसेत् । रेतो विण्मूत्रभक्षी तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ३४ ॥ चान्द्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके मतः । पक्षत्रयेऽतिकृच्छ्रं स्यात्षण्मासे कृच्छमेव च ॥ ३५ ॥ आब्दिके पादकृच्छ्रं स्यादेकाहः पुनराब्दिके । पूर्वेद्युर्वार्षिकं श्राद्धं परेद्युः पुनराब्दिकम्॥३६॥

में करना चाहिए और यदि सर्वसंवद्य रूप से हत्या हुयी हो तो प्रायश्चित्त व्रत भी सर्वसंवेद्य रूप से करना चाहिए ।।१९-२० ।। सभी पापों का विनाश करने के लिए सौ प्राणायाम करना चाहिए। कटहल, अंगूर, महुआ, खजूर, ताड़, ईख और मुनक्के के रस तथा टंकमाध्वीक,मैरेय, नारियल का रस ये मारक होते हुए भी मद्य नहीं हैं । पैष्टी ही मुख्य मदिरा मानी गयी है । ये सब मदिराएँ द्विजों के लिए निषिद्ध हैं । मदिरापायी ब्राह्मण खौलते हुए जल को पीकर पवित्र होता है । अथवा एक वर्ष तक रात में चावल के कणों का भोजन करे अथवा तिल्ली की खल्ली खाए ।।२१-२३।। सुरापानजन्य पाप का प्रणाश करने के लिए वन में निवास करे जटा एवं ध्वजा को धारण करे । अज्ञानवश मल,मूत्र और मदिरा से संस्पृष्ट पदार्थ का भक्षण कर लेने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य तीनों वर्णों के लोग पुनः संस्कार करने के योग्य होते हैं । सुरापात्र में रखे हुए जल को पी लेने पर छह दिन का व्रत करना चाहिए ।। २१-२५ ।। चाण्डाल का जल पी लेने पर सात दिन का व्रत करना चाहिए । चाण्डाल के कुएँ तथा पात्र के जल पी लेने पर सान्तपन व्रत करना चाहिए ।। २६ ।। शूद्र का जल पी लेने पर ब्राह्मण को तीन दिन के बाद पञ्चगव्य लेना चाहिए । मछली, कांटे, घोंघा, शंख,सीपी और कौड़ी के जल एवं नवीन एकत्रित जल को पीने पर पञ्चगव्य पीने से शुद्धि होती है । शवयुक्त कुएँ का जल पी लेने पर तीन रात का व्रत करके मनुष्य शुद्ध होता है ।। २७-२८ ।। चाण्डाल के घर का अन्न खाने पर चान्द्रायण व्रत करना चाहिए । आपत्तिकाल में शूद्र के घर में भोजन करके पश्चाताप कर लेने से शुद्धि हो जाती है ।।२९।। शूद्र के पात्र में भोजन करने वाला ब्राह्मण पञ्चगव्य के पीने से ही शुद्ध हो जाता है । तेल तथा घी में पके हुए पदार्थ, तेल, दही, सत्तू, गुड़,दुग्ध तथा रस आदि शूद्र से स्पृष्ट हो जाने पर अपवित्र नहीं होते हैं । विना स्नान किए हुए भोजन कर लेने पर उपवास करना चाहिए और शाम को गायत्री का जप करके शुद्धि होती है ।। ३०-३१ ।। मूत्र त्याग करके पवित्र हुए विना भोजन करने वाला तीन रात्रि तक व्रत करने से पवित्र होता है । जो केश तथा कीड़े से युक्त हो, पैर से छूआ गया हो, भ्रूण हत्या करने वाले से देखा गया हो, जिसे रजस्वला स्त्री ने छू लिया हो, जिसे कौए आदि खालिए हों, जिसे कुत्ते ने छू लिया हो, गौ आदि ने सूंघ लिया हो, ऐसा अन्न खाकर तीन दिन तक उपवास करना चाहिए । रेतस् (वीर्य) मल तथा मूत्र का भक्षण करने वाले को प्राजापत्य व्रत करना चाहिए ।। ३२-३४ ।। नवश्राद्ध में चान्द्रायण, मासिकश्राद्ध में पराकव्रत, त्रिपाक्षिक श्राद्ध में अतिकृच्छ्र, षाण्मासिक श्राद्ध में प्राजापत्य और वार्षिक श्राद्ध में एकपाद प्राजापत्य

निषिद्धभक्षणे भुक्ते प्रायश्चित्तमुपोषणम् । भूस्तृणं लशुनं भुक्त्वा शिग्रुकं कृच्छ्रमाचरेत् ॥ ३७ ॥ अभोज्यानां तु भुक्त्वाऽन्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव च। जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं पयः पिबेत् ॥ ३८ ॥ मधु मांसं च योऽश्नीयाच्छावं सूतकमेव वा । प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं ब्रह्मचारी यतिर्व्रती॥३९॥ अन्यायेन परस्वापहरणं स्तेयमुच्यते । मुसलेन हतो राज्ञा स्वर्णस्तेयी विशुध्यति ॥ ४०॥ अधः शायी जटाधारी पर्णमूलफलाशनः। एककालं समश्नानो द्वादशाब्दे विशुध्यति ॥ ४१ ॥ रुक्मस्तेयी सुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः । स्तेयं कृत्वा सुरां पीत्वा कृच्छ्रं चाब्दं चरेन्नरः ॥४२॥ मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च । अयस्कांस्योपलानां च द्वादशाहं कणान्नभुक् ॥ ४३ ॥ मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च । वापीकूपतडागानां शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ ४४ ॥ भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च । पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥ ४५॥ तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च । चेलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥ ४६॥ पितुः पत्नीं च भगिनीमाचार्यतनयां तथा आचार्याणी सुतां स्वां च गछंश्च गुरुतल्पगः ॥ ४७ ॥ गुरुतल्पेऽभिभाष्यैनस्तप्ते स्वर्णाद्ययोमये । सूर्मी ज्वलन्तीं चाऽऽश्लिष्य मृत्युना स विशुध्यति ॥ ४८ ॥ चान्द्रायणान्वा त्रीन्मासानभ्यस्य गुरुतल्पगः । एवमेव विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि ॥ ४९ ॥ यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां कारयेद्व्रतम् । रेतः सिक्त्वा कुमारीषु चाण्डालीषु सुतासु च ॥ ५० ॥ सपिण्डापत्यदारेषु प्राणत्यागो विधीयते । यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः ॥ ५१ ॥ तद्भैक्ष्यभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति । पितृव्यदारगमने भ्रातृभार्यागमे तथा ॥ ५२ ॥ चाण्डालीं पुक्कसीं वाऽपि स्नुषां च

व्रत करना चाहिए। पहले और दूसरे दोनों दिन वार्षिक श्राद्ध हो तो, दूसरे दिन के वार्षिक श्राद्ध में एक दिन का उपवास करना चाहिए ।।३५-३६ ।। निषिद्ध वस्तु का भोजन कर लेने पर प्रायश्चित्त के लिए उपवास करना चाहिए । भूतृण (छत्राक) लहसुन तथा श्वेत मरीच (शिग्रुक) खा लेने पर एक पाद प्राजापत्य व्रत करना चाहिए । अभोज्यान्न, शूद्र का अन्न,स्त्री अथवा शूद्र का उच्छिष्ट, या अभक्ष्य मांस का भक्षण करने पर सात दिन तक केवल दुग्ध पीकर रहना चाहिए । जो ब्रह्मचारी, संन्यासी अथवा व्रतस्थ द्विज, मधु,मांस, जननाशौच या मरणाशौच का अन्न खा लेता है उसे प्राजापत्य कृच्छ्र करना चाहिए ।। ३७-३९ ।। अन्यायपूर्वक दूसरे के धन को ले लेना ही चोरी है । सुवर्ण चुराने वाले की शुद्धि तब होती है, जब राजा उसको मूसल से मारता है ।। ४० ।। उसे भूमि पर सोना चाहिए, जटा धारण करना चाहिए, पत्ता मूल और फल खाना चाहिए और बारह वर्ष पर्यन्त एक शाम भोजन करना चाहिए तब उसकी शुद्धि हेती है ।। ४१।। सुवर्ण चुराने वाला, मदिरा पीने वाला, ब्रह्महत्या करने वाला और गुरुपत्नी के साथ समागम करने वाला, इनमें से चोरी करने वाले और मदिरा पीने वाले को एक वर्ष का कृच्छ्रव्रत करना चाहिए।।४२।। मणि,मोती, मूँगा, ताम्बा, चाँदी, लोहा, कांसा और पत्थर चुराने वाले को बारह दिन तक अन्न का कण खाकर विताना चाहिए ।। ४३ ।। मनुष्य, स्त्री, खेत, घर,वापी, कूप एवं तडाग का अपहरण करने वाले की शुद्धि चान्द्रायण व्रत करने से होती है ।। ४४ ।। भक्ष्य, भोजन, सवारी, शय्या, आसन, पुष्प, कन्द, और फल की चोरी करने वाले की शुद्धि पञ्चगव्य पीने से होती है ।। ४५ ।। तृणा,काष्ठ, वृक्ष, सूखाअन्न, गुड, वस्त्र, चर्म और मांस की चोरी करने वाले की शुद्धि तीन रात उपवास करने से होती है ।। ४६।। सौतेली माँ, बहन, गुरुपुत्री, और अपनी पुत्री से समागम करने वाला गुरुपत्नीगामी कहा गया है । गुरुपत्नीगमन करने पर अपने पाप की घोषणा करके जलते हुए लोहें की शय्या पर तप्त लौहमयी स्त्री का आलिङ्गन करके, प्राण त्याग करने से शुद्धि होती है । अथवा गुरुपत्नीगामी को तीन मास तक चान्द्रायण व्रत करना चाहिए । पतित स्त्रियों के लिए भी ऐसा ही विधान है ।। ४७-४९।। पुरुष के परस्त्रीगामी होने पर जो विधान बतलाया गया है, वही उनसे करवाना चाहिए । कुमारी कन्या, चाण्डाली, पुत्री, अपने सपिण्ड, तथा पुत्र की पत्नी में वीर्यसेचन करने वाले को प्राणत्याग कर देना चाहिए। द्विज एक रात तक शूद्रा का सेवन करके जिस पाप का संचय करता है, उसका विनाश वह तीन वर्ष तक भिक्षान्न खाकर गायत्री का जप करके कर पाता है ।। ५०-५१ ।। चाची, भाभी

भगिनीं सखीम् । मातुः पितुः स्वसारं च निक्षिप्तां शरणागताम् ॥ ५३ ॥ मातुलानीं स्वसारं च सगोत्रामन्यमिच्छतीम् । शिष्यभार्यां गुरोर्भार्यां गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ५४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रायश्चित्तवर्णनं नाम त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

अथ चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्तानि

अग्निरुवाच— **देवाश्रयार्चनादीनां प्रायश्चित्तं तु लोपतः । पूजालोपे चाष्टशतं जपेद्द्विगुणपूजनम् ॥ १ ॥ पञ्चोपनिषदै मन्त्रैर्हुत्वा ब्राह्मणभोजनम्। सूतिकान्त्यजकोदक्यास्पृष्टे देवे शतं जपेत् ॥ २ ॥ पञ्चोपनिषदैः पूजां द्विगुणं स्नानमेव च । विप्रभोज्यं होमलोपे होमस्नानं तथाऽर्चनम् ॥ ३ ॥ होमद्रव्ये मूषिकाद्यैर्भक्षिते कीटसंयुते । तावन्मात्रं परित्यज्य प्रोक्ष्य देवादि पूजयेत् ॥ ४ ॥ अंकुरार्पणमात्रं तु च्छिन्नं भिन्नं परित्यजेत् । अस्पृश्यैश्चैव संस्पृष्टे अन्यपात्रे तदर्पणम् ॥ ५ ॥ दैवमानुषविघ्नघ्नं पूजाकाले तथैव च । मन्त्रद्रव्यादिव्यत्यासे मूलं जप्त्वा पुनर्यजेत् ॥ ६ ॥ कुम्भे नष्टे शतजपो देवे तु पतिते करात् । भिन्ने नष्टे चोपवासः शतहोमाच्छुभं भवेत् ॥ ७ ॥ कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते । प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परम् ॥८॥ चान्द्रायणं पराको वा प्राजापत्यमघौघनुत्। सूर्येशशक्तिश्रीशादिमन्त्रजप्यमघौघनुत् ॥ ९ ॥ गायत्री प्रणवस्तोत्रमन्त्रजप्यमघान्तकम्।**

चाण्डाली, पुक्कसी, पुत्रवधू, बहन, सखी, मौसी, बुआ, निक्षिप्ता, शरणागता, मामी, सगोत्रा बहन, दूसरे को चाहने वाली स्त्री, शिष्य की पत्नी अथवा गुरु की पत्नी से गमन करके चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ।। ५२-५४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अनेकविध प्रायश्चित्त वर्णन नामक एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७३ ॥

अग्निदेव ने कहा— किसी देवता अथवा मन्दिर की पूजा का लोप हो जाने पर प्रायश्चित्त करना चाहिए । देवता की पूजा का लोप हो जाने पर उस देवता का अष्टोत्तरशतजप करना चाहिए और देवता की पूजा दुगनी करनी चाहिए ।। १ ।। इसके पश्चात् पञ्चोपनिषद् मन्त्रों से हवन करके ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए । सूतिका स्त्री, अन्त्यज अथवा रजस्वला स्त्री द्वारा मूर्ति का स्पर्श कर लिए जाने पर सौ बार गायत्री मन्त्र का जप करना चाहिए ।। २ ।। दो गुना स्नान करके पञ्चोपनिषन्मंत्रों से पूजन एवं ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए । होमका नियमभङ्ग होने पर, होम, स्नान एवं पूजन कराना चाहिए ।। ३ ।। होम सामग्री को चूहे आदि से खा लिए जाने पर अथवा उसके कीड़े आदि से युक्त होने पर उतनी होम सामग्री छोड़कर, शेष होम सामग्री का प्रोक्षण करके देवता आदि की पूजा करनी चाहिए ।। ४ ।। देवता को भले ही अंकुर मात्र अर्पित करें किन्तु छिन्न भिन्न सामग्री का परित्याग कर देना चाहिए । अस्पृश्य मनुष्यों का स्पर्श हो जाने पर, पूजा द्रव्य को दूसरे पात्र में रख देना चाहिए ।। ५ ।। पूजा के समय मन्त्र में किसी प्रकार की त्रुटि होने पर,दैव एवं मानुष विघ्नों का विनाश करने वाले गणपति के बीजमन्त्र का जप करके पुनः पूजन करना चाहिए । देवमन्दिर के कलश के नष्ट हो जाने पर सौ बार मन्त्र का जप करना चाहिए । देवमूर्ति के हाथ से छूटकर गिर जाने और नष्ट हो जाने पर उपवास करें और सौ बार होम करें तो शुभ होता है ।। ६-७ ।। जिस पुरुष को पाप कर देने के पश्चात् पश्चात्ताप होता है उसके लिए एकमात्र प्रायश्चित्त श्रीहरि का संस्मरण है ।। ८ ।। चान्द्रायण,पराक् एवं प्राजापत्यव्रत, पापसमूहों का विनाश करने वाले हैं । सूर्य शिव, शक्ति एवं विष्णु के मन्त्र का जप भी पापों को विनष्ट करता है । गायत्री, प्रणव,पाप प्रणाशनस्तोत्र एवं मन्त्रों का जप पापों को विनष्ट करता

काद्यैराबीजसंयुक्तैराद्यैराद्यै स्तदन्तकैः ॥ १० ॥ सूर्येशशक्तिश्रीशादिमन्त्राः कोट्यधिकाः पृथक् । ओं ह्रीमाद्याश्चतुर्थ्यन्ता नमोन्ताः सर्वकामदाः॥११॥ नृसिंहद्वादशाष्टार्णमालामन्त्राद्यघौघनुत् । आग्नेयस्य पुराणस्य पठनं श्रवणादिकम् ॥ १२ ॥ द्विविद्यारूपको विष्णुरग्निरूपस्तु गीयते । परमात्मा देवमुखं सर्ववेदेषु गीयते ॥ १३ ॥ प्रवृत्तौ तु निवृत्तौ तु इज्यते भुक्तिमुक्तिदः । अग्निरूपस्य विष्णोर्हि हवनं ध्यानमर्चनम् ॥ १४ ॥ जप्यं स्तुतिश्च प्रणतिःशरीरस्थाद्यघौघनुत् । दश स्वर्णानि दानानि धान्यद्वादशमेव च ॥ १५ ॥ तुलापुरुषमुख्यानि (णि) महादानानि षोडश । अन्नदानानि मुख्यानि सर्वाण्यघहराणि हि ॥ १६ ॥ तिथिवारर्क्षसंक्रान्तियोगमन्वादिकालके । व्रतादि सूर्येशशक्तिश्रीशादेरघघातनम् ॥ १७ ॥ गङ्गा गया प्रयागश्च काश्ययोध्या ह्यवन्तिका । कुरुक्षेत्रं पुष्करं च नैमिषं पुरुषोत्तमम् ॥ १८ ॥ शालग्रामप्रभासाद्यं तीर्थं चाघौघघातकम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिरिति ध्यानमघौघनुत् ॥ १९ ॥ पुराणं ब्रह्म चाऽऽग्नेये ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः । अवताराः सर्वपूजाः प्रतिष्ठाप्रतिमादिकम् ॥ २० ॥ ज्योतिःशास्त्रपुराणानि स्मृतयस्तु तपो व्रतम् । अर्थशात्रं च सर्गाद्या आयुर्वेदो धनुर्मतिः ॥ २१ ॥ शिक्षा छन्दो व्याकरणं निरुक्तं चाभिधानकम्। कल्पो न्यायश्च मीमांसा ह्यन्यत्सर्वं हरिः प्रभुः ॥ २२ ॥ एको द्वयोर्यतो यस्मिन्यः सर्वमिति वेद यः । तं दृष्ट्वाऽन्यस्य पापानि विनश्यन्ति हरिश्च सः ॥ २३ ॥ विद्याष्टादशरूपश्च सूक्ष्मःस्थूलोऽपरो हरिः । ज्योतिः सदक्षरं ब्रह्म परं विष्णुश्च निर्मलः ॥ २४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रायश्चित्तकथनं नाम चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

है । गायत्री, प्रणव, पाप प्रणाशनस्तोत्र एवं मन्त्रों का जप पापों को विनष्ट करने वाला है । सूर्य, शिव, शक्ति और विष्णु के 'क' से प्रारम्भ होने वाले और 'रां' बीज से युक्त रादि आदि और रान्त मन्त्र करोड़गुना फल देने वाले हैं । इसके अतिरिक्त 'ओं ह्रीम्' से प्रारम्भ होने वाले 'नमः' से पूरा होने वाले मन्त्र सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं ।। ९-११ ।। नृसिंह भगवान् के द्वादशाक्षर एवं 'अष्टाक्षर' मन्त्र का जप सम्पूर्ण पाप समूह को विनष्ट कर देने वाला है । अग्निपुराण पाठ तथा श्रवण आदि करके मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ।। १२ ।। भगवान् विष्णु द्विविद्या स्वरूप हैं । वे ही अग्निरूप से वर्णित किए जाते हैं । परमात्मा श्री विष्णु ही मुखस्वरूप अग्निदेव हैं, जिनका सम्पूर्ण वेदों में गान किया गया है । भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले उन परमेश्वर का प्रवृत्ति एवं निवृत्ति मार्ग से भी पूजन किया जाता है । अग्निरूप से स्थित भगवान् विष्णु के उद्देश्य से हवन, जप,ध्यान, पूजन, स्तवन एवं नमस्कार शरीर के समस्त पापों को विध्वंस करने वाला है ।। १३-१४।। दस प्रकार के सुवर्णदान, बारह प्रकार के धान्यदान तुलापुरुष आदि सोलह महादान, सर्वश्रेष्ठ अन्न दान,ये सभी महापापों का अपहरण करने वाले हैं ।। १६ ।। शुभ तिथि, वार, नक्षत्र, संक्रान्ति, योग तथा मन्वादि काल में किए जाने वाले सूर्य, शिव, शक्ति तथा नारायण के व्रत आदि पापों के विनाशक होते हैं ।। १७ ।। गङ्गा, गया, प्रयाग, काशी, अयोग्या, उज्जैन, कुरुक्षेत्र, पुष्कर, नैमिषारण्य, पुरुषोत्तम क्षेत्र, शालग्राम क्षेत्र, तथा प्रभास क्षेत्र आदि तीर्थ पाप समूह का विनाश करते हैं । 'मैं' ब्रह्मस्वरूप हूँ' मैं परं ज्योतिस्वरूप हूँ इस प्रकार से ध्यान करना पापसमूह को दूर करता है ।। १८-१९ ।। ब्रह्मपुराण और अग्निपुराण, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, भगवान् के अवतार, सभी देवताओं की प्रतिमा की प्रतिष्ठा एवं पूजन, ज्योतिष्, पुराण एवं स्मृतियाँ, तप, व्रत, अर्थशास्त्र, सृष्टि के आदि तत्त्व, आयुर्वेद, धनुर्वेद, शिक्षा, छन्दःशास्त्र, निरुक्त, कोष, कल्प, न्याय, मीमांसा शास्त्र एवं अन्य सब कुछ भी भगवान् विष्णु की विभूतियाँ हैं ।। २०-२२ ।। जो यह जानता है कि जो परमात्मा एक है और जिसके सगुण एवं निर्गुण ये दो रूप हैं, यह सम्पूर्ण जगत् जिससे उत्पन्न होता है, जो स्वयं जगदात्मा है तथा सम्पूर्ण जगत् जिसमें लीन होता है, उस पुरुष का दर्शन करने मात्र से दूसरे लोगों के पाप विनष्ट हो जाते हैं । वह स्वयं परमात्मस्वरूप होता है ।। २३ ।। भगवान् श्रीहरि ही अष्टादश विद्यास्वरूप हैं । सम्पूर्ण स्थूल तथा सूक्ष्म वस्तुएँ श्रीभगवान् के दूसरे रूप हैं । भगवान् विष्णु समस्त दोषों से रहित, ज्योतिस्वरूप, सत्स्वरूप, अक्षरस्वरूप तथा परंब्रह्म हैं ।। २४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का प्रायश्चित्त वर्णन नामक एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७४ ॥

अथ पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

व्रतपरिभाषा

अग्निरुवाच— **तिथिवारर्क्षदिवसमासर्त्वब्दार्क संक्रमे । नृस्त्रीव्रतादि वक्ष्यामि वसिष्ठ शृणु तत्क्रमात् ॥ १ ॥ शास्त्रोदितो हि नियमो व्रतं तच्च तपो मतम् । नियमास्तु विशेषास्तु व्रतस्यैव दमादयः ॥ २ ॥ व्रतं हि कर्तृसंतापतप इत्यभिधीयते । इन्द्रियग्रामनियमान्नियमश्चाभिधीयते ॥ ३॥ अनग्नयस्तु ये विप्रास्तेषां श्रेयोऽभिधीयते । व्रतोपवासनियमैर्नानादानैस्तथा द्विजः (जाः) ॥ ४ ॥ ते स्युर्देवादयः प्रीता भुक्तिमुक्तिप्रदायकाः । उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह ॥ ५ ॥ उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः । कांस्यं मांसं मसूरं च चणकं कोरदूषकम् ॥ ६ ॥ शाकं मधु परान्नं च त्यजेदुपवसन्स्त्रियम् । पुष्पालङ्कारवस्त्राणि धूपगन्धानुलेपनम् ॥ ७ ॥ उपवासे न शस्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम् । दन्तकाष्ठं पञ्चगव्यं कृत्वा प्रातर्व्रतं चरेत् ॥ ८ ॥ असकृज्जलपानाच्च ताम्बूलस्य च भक्षणात् । उपवासः प्रदुष्येत दिवा स्वप्नाच्च मैथुनात् ॥ ९ ॥ क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । देवपूजाऽग्निहरणं सन्तोषोऽस्तेयमेव च ॥ १० ॥ सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः । पवित्राणि जपेच्चैव जुहुयाच्चैव शक्तितः ॥ ११ ॥ नित्यस्नायी मिताहारो गुरुदेवद्विजार्चकः । क्षारं क्षौद्रं च लवणं मधु मांसानि वर्जयेत् ॥ १२ ॥ तिलमुद्गादृते शस्यं शस्ये गोधूमकोद्रवौ । चीनकं देवधान्यं च शमीधान्यं तथैक्षवम् ॥ १३ ॥ शितधान्यं तथा पण्यं मूलं क्षारगणः स्मृतः । ब्रीहिषष्टिकमुद्गाश्च कलायाः सतिला यवाः ॥ १४ ॥ श्यामाकाश्चैव नीवारा गोधूमाद्या व्रते हिताः । कूष्माण्डालाबुवार्ताकान्पालङ्कीं पूतिकां त्यजेत् ॥ १५ ॥ चरुभैक्ष्यं सक्तुकणाः शाकं दधिघृते पयः । श्यामाकशालिनीवारा य (या) वकं मूलतण्डुलम् ॥ १६ ॥ हविष्यं व्रतनक्तादावग्निकार्यादिके**

अग्निदेव ने कहा— हे वसिष्ठ ! अब मैं, तिथि, वार, नक्षत्र, दिन, मास, ऋतु तथा वर्ष आदि से सूर्य के संयोग के कारण होने वाले व्रतों का वर्णन करूँगा, उसे आप क्रमशः सुनें।।१।। शास्त्रों में बतलाए गए नियमों को ही व्रत कहते हैं और उन्हीं को ही तप कहा जाता है । व्रतों के विशेष नियमों को ही दम आदि कहा जाता है ।। २ ।। व्रत करने वालों को संतप्त करने के कारण ही व्रतों को तप कहा जाता है । इन्द्रिय समूह का नियमन किए जाने के कारण उन्हें ही नियम कहा जाता है ।। ३ ।। जो ब्राह्मण अग्न्याधान आदि नहीं करते हैं, अर्थात् अग्निहोत्री नहीं हैं उनके लिए, व्रत, उपवास एवं नियम तथा नाना प्रकार के दानों से कल्याण की प्राप्ति होती है ।। ४ ।। उक्त व्रत उपवास आदि के पालन से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् तथा देवता आदि भोग तथा मोक्ष प्रदान करते हैं । पापों से पराङ्मुख होकर गुणों के संसर्ग में रहने को ही व्रत कहते हैं ।। ५ ।। उपवास करने वाला व्यक्ति सभी भोगों का त्याग करके सद्गुणों का पालन करता है। उपवास में कांस्यपात्र, मांस, मसूर की दाल, चना, कोदो, शाक, मदिरा, परान्न, स्त्री, पुष्प, अलंकार, वस्त्र धूप, गन्धानुलोपन, दन्तधावन तथा अञ्जन आदि का सेवन नहीं करना चाहिए । प्रातःकाल दतौन करके तथा पञ्चगव्य प्राशन करके व्रत करना चाहिए ।। ६-८ ।। बार-बार जल पान करने से, पान खाने से, दिन में सोने से तथा मैथुन करने से उपवास दूषित हो जाता है।।९।। क्षमा, सत्य, दया, शौच, इन्द्रिय निग्रह, देवपूजन,होम, सन्तोष, चोरी न करना, ये दस प्रकार के धर्म सभी धर्मों में समान रूप से बतलाए गए हैं ।। १० ।। उस दिन अपनी शक्ति के अनुसार, पवित्र कारक मन्त्रों का जप और हवन करना चाहिए । नित्यस्नान, अल्पाहार, गुरु, देवता और ब्राह्मणों का पूजन, खारी वस्तुएँ, शहद, नमक, मधु, (मदिरा) तथा मांस का व्रत में त्याग करना चाहिए ।। ११-१२ ।। तिल तथा मुंग को छोड़कर, धान्य, धान्य में गेहूँ, कोदौ, चना, देवधान्य, शमीधान्य (उड़द) सावाँ, बाजार की वस्तुएँ तथा मूली, इन सबों की गणना क्षार समूह में की गयी है । ब्रीहि, षष्ठिक, मूंग, मटर, तिल, जौ,सावाँ, नीवार तथा गेहूँ आदि । ये व्रत में हितकारी हैं ।। १३-१४ ।। कुष्माण्ड, बैगन, लौकी, पालक और पोय ये वस्तुएँ व्रत में त्याज्य

हितम् । मधु मांसं विहायान्यद्व्रते वा हितमीरितम् ॥ १७ ॥ त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम्। त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्द्विजः॥१८॥ एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् । त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन्द्विजः॥१९॥ गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥ २० ॥ पृथक्सांतपनं द्रव्यैः षडहः सोपवासकः । सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासान्तपनोऽघहा॥२१॥ द्वादशाहोपवासेन पराकः सर्वपापहा । महापराकस्त्रिगुणस्त्वयमेव प्रकीर्तितः ॥ २२ ॥ पौर्णमास्यां पञ्चदशग्रास्यमावास्यभोजनः । एकापाये ततो वृद्धौ चान्द्रायणमतोऽन्यथा ॥ २३ ॥ कपिलागोः पलं मूत्रमर्धाङ्गुष्ठं च गोमयम् । क्षीरं सप्तपलं दद्याद्दध्नश्चैव पलद्वयम् ॥ २४ ॥ घृतमेकपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम् । गायत्र्याऽऽगृह्य गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ॥ २५ ॥ आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि । तेजोऽसीति तथा चाऽऽज्यं देवस्येति कुशोदकम् ॥ २६ ॥ ब्रह्मकूर्चो भवत्येवमापो हिष्ठेत्यृचं जपेत् । अघमर्षणसूक्तेन संयोज्य प्रणवेन वा ॥ २७ ॥ पीत्वा सर्वाघनिर्मुक्तो विष्णुलोकी ह्युपोषितः । उपवासी सायंभोजी यतिः षष्ठात्मकालवान् ॥ २८॥ मांसवर्जी चाश्वमेधी सत्यवादी दिवं व्रजेत् । अग्न्याधेयं प्रतिष्ठां च यज्ञदानव्रतानि च ॥ २९ ॥ देवव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः । माङ्गल्यमभिषेकं च मलमासे विवर्जयेत् ॥ ३० ॥ दर्शाद्दर्शस्तु चान्द्रः स्यात्त्रिंशाहश्चैव सावनः । मासः सौरस्तु संक्रान्तेर्नाक्षत्रो भविवर्तनात् ॥ ३१ ॥ सौरो मासो विवाहादौ यज्ञादौ सावनः स्मृतः।

हैं ।। १५ ।। जौ ये हविष्य हैं, इनको व्रत में रात्रिव्रत आदि में तथा अग्निकार्य करने में अपनाना चाहिए ।। १५-१६ ।। अथवा मांस मदिरा आदि को छोड़कर सभी वस्तुएँ व्रत आदि में हितकारी हैं । प्राजापत्य व्रत करने वाले द्विज को चहिए कि वह तीन दिन तक प्रातःकाल, तीन दिन तक सायंकाल एवं तीन दिन तक विना माँगी हुयी वस्तुओं का भोजन करे और इसके पश्चात् तीन दिन तक उपवास करे ।। १७-१८ ।। अतिकृच्छ्र व्रत करने वाला द्विज पूर्ववत् तीन दिन प्रातःकाल तीन दिन सायंकाल तथा तीन दिन विना माँगी हुयी वस्तुओं का एक-एक ग्रास भोज करे और अन्त में तीन दिन उपवास करे ।। १९ ।। गोमूत्र, गोबर, दुग्ध, दधि,घी तथा कुश का जल इन सबों को मिलाकर प्रथम दिन पीए इसके पश्चात् दूसरे दिन उपवास करे यह सांतपन कृच्छ्र नामक व्रत है ।। २० ।। उपर्युक्त द्रव्यों को अलग-अलग एक-एक दिन के क्रम से छह दिनों तक सेवन करने के पश्चात् सातवें दिन उपवास करने को महासांतपन कृच्छ्र कहते हैं । यह पापों का विनाश करने वाला है ।। २१ ।। लगातार बारह दिनों के उपवास से पूरा होने वाला व्रत पराक कहलाता है । इससे सभी पाप नष्ट होते हैं । इसके तीन गुणा छत्तीस दिन के उपवास से पूरा होने वाले व्रत को महापराक् कहते हैं ।। २२ ।। पूर्णिमा को पन्द्रहग्रास भोजन करके प्रतिदिन एक-एक ग्रास कम करा जाय, अमावस्या को उपवास करे तथा प्रतिपदा को एक ग्रास भोजन करके प्रतिदिन एक-एक ग्रास बढ़ाता रहे इसे ही चान्द्रायण कहते हैं । इसके विपरीत क्रम से भी यह व्रत किया जाता है ।। २३ ।। कपिला गौ का मूत्र एक पल,गोबर आधे अंगूठे के बराबर, दुग्ध सात पल, दो पल घी, एक पल, तथा कुशोदक एक पल । इन सबों को मिलाते समय गायत्री मन्त्र से गोमूत्र डालें, 'गन्धद्वारां दुराधर्षाम्०' (श्रीसूक्त) इस मन्त्र से गोबर मिलाना चाहिए, 'आप्याय स्व० (यजु० १२/१२२) इस मन्त्र से दुग्ध मिलाना चाहिए, 'दधिक्राब्णो०' (चजु० २३/३२) इस मन्त्र से दही मिलाना चाहिए । 'तेजोऽसि शुक्रमसि०' (यजु० २२/२) इस मन्त्र से घी मिलाना चाहिए, 'देवस्य०' (यजु० २०/३) इस मन्त्र से कुशोदक मिलाना चाहिए । इस प्रकार जो वस्तु तैयार होती है, उसे ब्रह्मकूर्च कहते हैं । ब्रह्मकूर्च के तैयार होने पर दिन भर उपवास करे । सायंकाल अघमर्षण मंत्र अथवा प्रणव के साथ 'आपोहिष्ठा' (यजु० ११/५०) मन्त्र को पढ़कर उसे पी लें । ऐसा करने वाला सभी पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त करता है ।। २४-२७।। दिन भर उपवास करके केवल सायंकाल भोजन करने वाला, दिन के आठ भागों में केवल छठें भाग में भोजन करने वाला संन्यासी, मांस त्यागी, अश्वमेध यज्ञ करने वाला तथा सत्यवादी पुरुष, स्वर्गप्राप्त करते हैं । अग्न्याधान प्रतिष्ठा, यज्ञदान व्रत देवव्रत, वृषोत्सर्ग, चूड़ाकरण, मेखलाबन्ध (यज्ञोपवीत) विवाह आदि माङ्गलिक कार्य तथा अभिषेक, इन सभी कार्यों को अधिकमास में नहीं करना चाहिए ।। २८-३० ।। एक अमावस्या से दूसरी अमावस्या तक एक चान्द्रमास होता है । तीस दिनों का सावन मास होता है । एक संक्रान्ति से दूसरी

आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते ॥ ३ २ ॥ आषाढीमवधिं कृत्वा यः स्यात्पक्षस्तु पञ्चमः । कुर्याच्छ्राद्धं तत्र रविः कन्यां गच्छतु वा न वा ॥ ३ ३ ॥ मासि संवत्सरे चैव तिथिद्वैधं यदा भवेत् । तत्रोत्तरोत्तमा ज्ञेया पूर्वा तु स्यान्मलिम्लुचा॥३४॥ उपोषितव्यं नक्षत्रं येनास्तं याति भास्करः । दिवा पुण्यास्तु तिथयो रात्रौ नक्तव्रते शुभाः ॥ ३५ ॥ युग्माग्निकृतभूतानि षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः । रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतुर्दश्याऽथ पूर्णिमा ॥ ३६ ॥ प्रतिपदा त्वमावास्या तिथ्योर्युग्मं महाफलम् । एतद्व्यस्तं महाघोरं हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥ ३७ ॥ नरेन्द्रमन्त्रिव्रतिनां विवाहोपद्रवादिषु । सद्यः शौचं समाख्यातं कान्तारापदि संसदि ॥ ३८ ॥ आरब्धदीर्घतपसां न राजा व्रतहा स्त्रियाः । गर्भिणी सूतिका नक्तं कुमारी च रजस्वला ॥ ३९ ॥ यदाऽशुद्धा तदाऽन्येन कारयेत क्रियाः सदा । क्रोधात्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभङ्गो भवेद्यदि ॥ ४० ॥ दिनत्रयं न भुञ्जीत मुण्डनं शिरसोऽथवा । असामर्थ्ये व्रतकृतौ पत्नीं वा कारयेत्सुतम् ॥ ४१ ॥ सूतके मृतके कार्यं प्रारब्धं पूजनोज्झितम् । व्रतस्थं मूर्च्छितं दुग्धपानाद्यैरुद्धरेद्गुरुः ॥ ४२ ॥ अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः। हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्॥४३॥ कीर्तिसन्ततिविद्यादिसौभाग्यारोग्यवृद्धये । नैर्मल्यभुक्तिमुक्त्यर्थं कुर्वे व्रतपते व्रतम् ॥ ४४ ॥ इदं व्रतं मया श्रेष्ठं गृहीतं पुरतस्तव । निर्विघ्नां सिद्धिमायातु त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥ ४५ ॥ गृहीतेऽस्मिन्व्रतवरे यद्यपूर्णे म्रिये ह्यहम् । तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु प्रसन्ने त्वयि सत्पतौ ॥ ४६ ॥ व्रतमूर्तिं

संक्रान्ति तक सौरमास होता है । नक्षत्र के अनुसार जो मास चलता है, यज्ञ आदि में सावन मास लिया जाता है, वार्षिक कृत्य तथा पितृकार्य में चान्द्रमास लिया जाता है ।।३१-३२।। आषाढ़ी पूर्णिमा को अवधि मानकर, उससे पाँचवाँ पक्ष जो होता है, अर्थात् आश्विन कृष्णपक्ष में पितरों का श्राद्ध करना चाहिए । सूर्य चाहे कन्या राशि का हो या न हो । इस मास तथा वर्ष की तिथियों में यदि द्विविधा हो जाय तो उसमें बाद की ही होने वाली तिथि को उत्तम समझना चाहिए और पूर्व तिथि को मलिन मानना चाहिए ।। ३४ ।। जिस नक्षत्र में सूर्य अस्त हो उसी में उपवास करना चाहिए । दिन में किए जाने वाले व्रतों के लिए तिथियाँ दिन में ही पुण्य मानी जाती हैं और रात्रिव्रत में तिथियाँ रात्रि में शुभ मानी जाती हैं ।। ३५ ।। द्वितीया के साथ तृतीया का चतुर्थी के साथ पञ्चमी का षष्ठी के साथ सप्तमी का, अष्टमी के साथ नवमी का,एकादशी के साथ द्वादशी का और चतुर्दशी के साथ पूर्णिमा का एवं अमावस्या के साथ प्रतिपद् का वेध उत्तम है । इसी तरह षष्ठी सप्तमी में भी समझना चाहिए । इन तिथियों का मेल महान फल देने वाला है । इसके विपरीत अर्थात् प्रतिपदा से द्वितीया का, तृतीया से चतुर्थी आदि का जो युग्मभाव है बड़ा भयानक होता है । वह पहले के किए हुए समस्त पुण्यों को नष्ट कर देता है ।। ३६-३७ ।। राजा, मन्त्री एवं व्रतचारी पुरुषों के विवाह में उपद्रव आदि में, दुर्गम स्थानों में, संकट के समय तथा युद्ध के अवसर पर तत्काल शुद्धि होती है । जिसने दीर्घकाल में समाप्त होने वाले व्रत को प्रारम्भ किया है वह स्त्री यदि रजस्वला हो जाय तो वाह उसके व्रत में बाधक नहीं होता है । गर्भवती स्त्री, प्रसवगृह में पड़ी हुई स्त्री अथवा रजस्वला कन्या जब अशुद्ध होकर व्रत करने योग्य न रह जाय, तो दूसरों से उसे शुभ कार्यों को कराना चाहिए ।। ३८-३९ ।। क्रोध, प्रमाद अथवा लोभ के कारण यदि व्रत भङ्ग हो जाय तो तीन दिन तक उपवास करना चाहिए अथवा सिर का मुण्डन करा लेना चाहिए । सामर्थ्य के अभाव में व्रती को अपनी पत्नी अथवा अपने पुत्र से व्रत करा लेना चाहिए ।। ४०-४१ ।। आरम्भ किए हुए व्रत का पालन जननाशौच तथा मरणाशौच में भी करना चाहिए केवल पूजन का कार्य बंद कर देना चाहिए । यदि व्रती पुरुष उपवास के कारण मूर्छित हो जाय तो गुरु को उसे दुग्ध पिलाकर अथवा अन्य किसी उत्तम उपाय से होश में लाना चाहिए । जल, फल, मूल, दुग्ध, हविष्य (घी) ब्राह्मण की इच्छापूर्ति, गुरु के वचन तथा औषध ये आठ वस्तुएँ व्रत नाशक नहीं होती हैं ।। ४२-४३ ।। व्रती पुरुष को व्रताधिष्ठातृ देवता से प्रार्थना करना चाहिए कि-'व्रतपते ! मैं कीर्ति, सन्तति, विद्या आदि सौभाग्य तथा आरोग्य की वृद्धि, निर्मलता, भोग तथा मोक्ष के लिए इस व्रत को कर रहा हूँ ।। ४४ ।। मैंने इस श्रेष्ठ व्रत को आपके समक्ष ग्रहण किया है, हे जगत् स्वामिन् ! आपकी कृपा से मुझे निर्विघ्नपूर्वक सिद्धि की प्राप्ति होए ।। ४५ ।। हे सन्तों के पालक ! इस व्रत को ग्रहण करने के पश्चात् इसकी पूर्ति हुए विना ही यदि मेरी मृत्यु हो जाय तो भी आपकी कृपा से यह व्रत अवश्यपूर्ण हो जाय ।। ४६।।

जगद्भूतिं मण्डले सर्वसिद्धये । आवाहये नमस्तुभ्यं संनिधौ भव केशव ॥ ४७ ॥ मनसा कल्पितैर्भक्त्या पञ्चगव्यजलैः शुभैः । पञ्चामृतैः स्नापयामि त्वमेव भव पापहा ॥ ४८ ॥ गन्धपुष्पोदकैर्युक्तमर्घ्यमर्घ्यपते शुभम् । गृहाण पाद्यमाचाम अर्घ्यार्हं कुरु मां सदा ॥ ४९ ॥ वस्त्रं वस्त्रपते पुण्यं गृहाण कुरु मां सदा । भूषणाद्यैः सुवस्त्राद्यैश्छादितं व्रतसत्पते ॥ ५० ॥ सुगन्धिगन्धं विमलं गन्धमूर्ते गृहाण वै । पापगन्धविहीनं मां कुरु त्वं हि सुगन्धिकम् ॥ ५१ ॥ पुष्पं गृहाण पुष्पादिपूर्णं मां कुरु सर्वदा । पुष्पगन्धं सुविमलमायुरारोग्यवृद्धये ॥ ५२ ॥ दशाङ्गं गुग्गुलुघृतयुक्तं धूपं गृहाण वै । सु धूपधूपितं मां त्वं कुरु धूपित सत्पते ॥ ५३ ॥ दीपमूर्ध्वशिखं दीप्तं गृहाणाखिलभासकम् । दीपमूर्ते प्रकाशाढ्यं सर्वदोर्ध्वगतिं कुरु॥५४॥ अन्नादिकं च नैवेद्यं गृहाणान्नादिसत्पते । अन्नादिपूर्णं कुरु मामन्नदं सर्वदायकम् ॥ ५५ ॥ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं मया प्रभो। यत्पूजितं व्रतपते परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ ५६ ॥ धर्मं देहि धनं देहि सौभाग्यं गुणसन्ततिम् । कीर्तिं विद्यां देहि चाऽऽयुः स्वर्गं मोक्ष च देहि मे ॥ ५७॥ इमां पूजां व्रतपते गृहीत्वा व्रज साम्प्रतम् । पुनरागमनायैव वरदानाय वै प्रभो ॥ ५८ ॥ स्नात्वा व्रतवता सर्वव्रतेषु व्रतमूर्तयः । पूज्याः सुवर्णजास्ता वै शक्त्या वै भूमिशायिना॥ ५९॥ जपो होमश्च सामान्य व्रतान्ते दानमेव च। चतुर्विंशा द्वादश वा पञ्च वा त्रय एककः॥६०॥ विप्राः प्रपूज्या गुरवा भोज्याः शक्तया तु दक्षिणा। देया गावः सुवर्णाद्याः पादुकोपानहौ पृथक्॥६१॥ जलपात्रं चान्नपात्रमृत्तिकाछत्रमासनम्। शय्यावस्त्रयुगं कुम्भाः परिभाषेयमीरिता॥६२॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये व्रतपरिभाषावर्णनं नाम पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

हे केशव ! आप व्रत की मूर्ति हैं तथा संसार के ऐश्वर्य हैं । अपने सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि के लिए मै। आपका इस मण्डल मे आवाहन करता हूँ आपको नमस्कार है। आप मेरे सन्निकट आएँ।।४७।। अपने मन से कल्पित पञ्चगव्य के पवित्र जल तथा पञ्चामृत से मैं आपको पुष्प तथा जल से युक्त पवित्र अर्घ्य तथा पाद्य को स्वीकार कीजिए तथा आचमन कीजिए और मुझे अर्घ पाने के योग्य बनाइये ।। ४९ ।। हे वस्त्रों के स्वामी ! तथा व्रतों के स्वामी ! इस पवित्र वस्त्र को आप ग्रहण कीजिए और मुझे सदा सुन्दर वस्त्र तथा आभूषणों से आच्छादित किए रहिए ।।५०।। हे गन्धपते ! आप मेरे इस सुगन्धि युक्त निर्मल गन्ध को ग्रहण कीजिए आप मुझे पाप की दुर्गन्ध से रहित बनाकर पुण्य की सुगन्धि से सम्पन्न बनाइए ।। ५१ ।। हे भगवन् ! आप पुष्पों को स्वीकार करें और मुझे पुष्प आदि से परिपूर्ण बनाएँ । अत्यन्त शुद्ध पुष्प की सुगन्धि से आयु तथा आरोग्य की वृद्धि होती है ।। ५२ ।। दशाङ्ग, तथा गुग्गुल तथा घृत से युक्त धूप आप स्वीकार करें । हे सत्यते ! आप धूपित होकर मुझे सुन्दर धूप से धूपित करें ।। ५३ ।। हे दीपमूर्ते ! ऊपर की ओर ज्वाला से युक्त देदीप्यमान,सम्पूर्ण वस्तुओं को प्रकाशित करने वाले, तथा प्रकाश से परिपूर्ण दीप को स्वीकार करें तथा मुझे सर्वदा ऊर्ध्वगामी बनाएँ ।। ५४ ।। हे अन्न आदि उत्तम वस्तुओं के स्वामिन् ! आप अन्न आदि से निर्मित नैवेद्य को स्वीकार कीजिए और मुझे अन्नादि से परिपूर्ण बनाइए ताकि मैं अन्न दान तथा सर्वस्वदान कर सकूँ ।। ५५ ।। हे व्रतों के स्वामिन् मैंने मन्त्रों से हीन क्रिया से हीन तथा भक्ति से हीन जो पूजन किया है, वह परिपूर्ण होए ।। ५६।। आप मुझे,धर्म, धन, सौभाग्य, गुणसमूह, कीर्ति, विद्या, आयु, स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करें । हे व्रतपते ! आप मेरी इस पूजा को स्वीकार करके पुनः यहाँ आने तथा मुझे वरदान देने के लिए इस समय यहाँ से पधारें ।। ५७-५८ ।। व्रती को चाहिए कि वह सभी व्रतों में स्नान करके स्वर्ण निर्मित व्रत की मूर्ति की अपनी शक्ति के अनुसार पूजन करे और भूमि पर सोए ।। ५९ ।। व्रत के अन्त में सामान्य रूप से जप, होम तथा दान करना चाहिए और अपनी शक्ति के अनुसार चौबीस या बारह या पाँच या तीन या एक ब्राह्मण तथा गुरु की पूजा करके भोजन कराना चाहिए तथा अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा में सबों को अलग-अलग गौ, सुवर्ण, पादुका, उपानह, (जूता) जलपात्र, अन्नपात्र, मृत्तिका, छत्र, आसन, शय्या, जुड़वा वस्त्र और घड़े देना चाहिए । यही व्रत की परिभाषा बतलायी गयी है ।। ५९-६२ ।।

इस तरह से अदिमहापुराण अग्निपुराण का व्रतों की परिभाषा वर्णन नामक एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७५ ॥

अथ षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रतिपद्व्रतानि

अग्निरुवाच– **वक्ष्ये प्रतिपदादीनि व्रतान्यखिलदानि ते । कार्तिकाश्वयुजे चैत्रे प्रतिपद्ब्राह्मणस्तिथिः ॥ १ ॥ पञ्चदश्यां निराहारः प्रतिपद्यर्चयेदजम्। ओंतत्सद्ब्रह्मणे नमो गायत्र्या वाऽब्दमेककम् ॥ २ ॥ अक्षमालां स्रुवं दक्षे वामे स्रु च (चं) कमण्डलुम् । लम्बकूर्चं च जटिलं हैमं ब्रह्माणमर्चयेत्॥३॥ शक्त्या क्षीरं प्रदद्यात्तु ब्रह्मा मे प्रीयतामिति । निर्मलो भोगभुक्स्वर्गे भूमौ विप्रो धनी भवेत् ॥ ४ ॥ धन्यं व्रतं प्रवक्ष्यामि अधन्यो धन्यतां व्रजेत्। मार्गशीर्षे प्रतिपदि नक्तं हुत्वाऽप्युपोषितः ॥ ५ ॥ अग्नये नम इत्यग्निं प्राच्यार्ब्दं सर्वभाग्भवेत् । प्रतिपद्येकभक्ताशी समाप्ते कपिलाप्रदः ॥ ६ ॥ वैश्वानरपदं याति शिखिव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ७ ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रतिपद्व्रतवर्णनं नाम षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

अथ सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्वितीयाव्रतानि

अग्निरुवाच– **द्वितीयाव्रतकं वक्ष्ये भुक्तिमुक्त्यादिदायकम् । पुष्पाहारो द्वितीयायामश्विनौ पूजयेत्सुरौ ॥ १ ॥ अब्दं स्वरूपसौभाग्यं स्वर्गभाग्जायते व्रती । कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां यमं यजेत् ॥ २ ॥ अब्दमुपोषितः स्वर्गं गच्छेन्न नरकं व्रती । अशून्यशयनं वक्ष्ये अवैधव्यादिदायकम्॥३॥**

अग्निदेव ने कहा– अब मैं सम्पूर्ण अभिलषित अर्थों को प्रदान करने वाले प्रतिपद् व्रतों को बतलाता हूँ कार्तिक आश्विन तथा चैत्र की प्रतिपदाएँ ब्रह्मा की तिथियाँ हैं । पूर्णिमा के दिन निराहार रहकर प्रतिपदा के दिन ब्रह्माजी की पूजा करनी चाहिए । 'ओम् तत्सद् ब्रह्मणे नमः' इस मन्त्र से अथवा गायत्री मन्त्र से पूजा करनी चाहिए । यह व्रत एक वर्ष तक करें । जिसके दाहिने हाथ में स्फटिक की माला और स्रुवा हों और बाएँ हाथ में स्रुक् एवं कमण्डलु हों, ऐसी ब्रह्मा जी की सुवर्ण की प्रतिमा का पूजन करना चाहिए । उनकी दाढ़ी लम्बी और सिर पर जटा होनी चाहिए । मन में यह उद्देश्य रखकर उन पर दूध चढ़ाना चाहिए कि ब्रह्मा जी मुझपर प्रसन्न होएँ । ऐसा करने वाला मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्ग में उत्तम भोगों को भोगता है और पृथिवी पर धनवान् ब्राह्मण के रूप में जन्म लेता है ।। २-४ ।। अब मैं धन्य व्रत का वर्णन करता हूँ, इसके अनुष्ठान से अधन्य भी धन्य हो जाता है । मार्गशीर्ष मास के प्रतिपदा तिथि को उपवास करके रात में अग्नये नमः इस मन्त्र से हवन करें और अग्नि की पूजा करें । इस तरह से एक वर्ष तक प्रत्येक मास की प्रतिपद् तिथि को अग्नि की आराधना करने वाला मनुष्य समस्त सुखों को प्राप्त कर लेता है । प्रत्येक प्रतिपदा को एक दिन में एक समय भोजन करके रहें। सालभर में व्रत की समाप्ति होने पर ब्राह्मण को कपिला गौ का दान करना चाहिए । ऐसा करने वाला मनुष्य वैश्वानर के पद को प्राप्त करता है, इसे शिखीव्रत कहते हैं ।। ५-७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का प्रतिपद् व्रत वर्णन नामक एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७६ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाले द्वितीया तिथि के व्रतों का वर्णन करता हूँ । प्रत्येक मास की द्वितीया तिथि को पुष्पाहार करके रहे और अश्विनी कुमार

कृष्णपक्षे द्वितीयायां श्रावणस्य चरेदिदम् । श्रीवत्सधारिञ्श्रीकान्त श्रीधामञ्श्रीपतेऽव्यय ॥ ४ ॥ गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामदम् । अग्नयो मा प्रणश्यन्तु मा प्रणश्यन्तु देवताः॥ ५ ॥ पितरो मा प्रणश्यन्तु मत्तो दाम्पत्यभेदतः । लक्ष्म्या विमुच्यते देवो, न कदाचिद्यथा भवान् ॥६॥ तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे विभिद्यताम् । लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयनं विभो ॥ ७॥ शय्या ममाप्यशून्याऽस्तु तथैव मधुसूदन । लक्ष्मीं विष्णुं यजेदब्दं दद्याच्छय्यां फलानि च ॥ ८ ॥ प्रतिमासं च सोमाय दद्यादर्घ्यं समन्त्रकम् । गगनाङ्गणसंदीप दुग्धाब्धिमथनोद्भव॥९॥ भाभासितदिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते । ॐ श्रीं श्रीधराय नमः सोमात्मानं हरिं यजेत् ॥ १० ॥ घं टं हं सं श्रियै नमो दशरूपमहात्मने । घृतेन होमो नक्तं च शय्यां दद्याद्द्विजातये ॥ ११ ॥ दीपान्नभाजनैर्युक्तं छत्रोपानहमासनम्। सेदकुम्भं च प्रतिमां विप्रायाथ च पात्रकम् ॥ १२ ॥ यत एवं च कुरुते भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् । कान्तिव्रतं प्रवक्ष्यामि कार्तिकस्य सिते चरेत् ॥ १३ ॥ नक्तभोजी द्वितीयायां पूजयेद्बलकेशवौ । वर्षं प्राप्नोति वै कान्तिमायुरारोग्यकादिकम् ॥ १४ ॥ अथ विष्णुव्रतं वक्ष्ये मनोवाञ्छितदायकम् । पौषशुक्लद्वितीयादि कृत्वा दिनचतुष्टयम् ॥ १५ ॥ पूर्वं सिद्धार्थकैः स्नानं ततः कृष्णतिलैः स्मृतम् । वचया च तृतीयेऽह्नि सर्वौषध्या चतुर्थके ॥ १६ ॥ मुरा मांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीद्वयम् । सटी

नामक दोनों देवताओं का पूजन करना चाहिए ।। १ ।। एक वर्ष तक इस व्रत के करने से सुन्दर स्वरूप की एवं सौभाग्य की प्राप्ति होती है । कार्तिक मास के शुक्लपक्ष की द्वितीया तिथि के दिन यम की पूजा करनी चाहिए ।। २ ।। फिर एक वर्ष तक प्रत्येक शुक्ल द्वितीया को उपवासपूर्वक व्रत करें । ऐसा करने वाला मनुष्य स्वर्ग में जाता है नरक में नहीं जाता । अब मैं अशून्यशयन नामक व्रत बतलाता हूँ । इसके करने से स्त्रियाँ विधवा नहीं होतीं और पुरुष को स्त्री सुख प्राप्त होता है ।। ३ ।। श्रावणमास के कृष्णपक्ष की द्वितीया तिथि को इस व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए । (इस व्रत में श्रीभगवान् से यह प्रार्थना करनी चाहिए)- हे वक्षस्थल में श्रीवत्सचिह्न धारण करने वाले भगवन् ! आप श्री देवी के धाम और पति हैं । आप निर्विकार हैं । धर्म, अर्थ और काम प्रदान करने वाले मेरे गार्हस्थ्य का कभी नष्ट न हो । मेरे घर के अग्निहोत्र की आग कभी न बुझे और न तो मेरे देवता कभी अदृश्य हों । मेरे पितरों का कभी प्रणाश न हो और न तो मेरे दाम्पत्य में कभी भेद होए । हे भगवन्! जिस तरह आप कभी लक्ष्मी जी से कभी अलग नहीं होते हैं, उसी तरह से हे भगवन् मेरा कलत्र से सम्बन्ध कभी भी न टूटे ।। ४-६ ।। हे वरदा ! जिस तरह आपकी शय्या कभी भी लक्ष्मी से शून्य नहीं होती है उसी तरह से हे मधुसूदन ! कभी भी मेरी शय्या शून्य न होए । इस तरह से एक वर्ष तक प्रत्येक मास की कृष्ण द्वितीया के दिन लक्ष्मीजी तथा भगवान् की पूजा करें अन्त में शय्या तथा फल का दान करें ।। ७-८ ।। प्रत्येक मास में उसी तिथि को चन्द्रमा को मन्त्रोच्चारणपूर्वक अर्घ्य देना चाहिए। (अर्घ्य का मन्त्र है) हे गगनरूपी प्राङ्गण को प्रकाशित करने वाले चन्द्रदेव! आपका आविर्भाव क्षीरसागर के मन्थन से हुआ है । आप अपनी कान्ति से सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करते हैं। आप भगवती लक्ष्मी के अनुज हैं, आपको नमस्कार है ।। ९ ।। उसके पश्चात् श्रं श्रीधराय नमः' इस मन्त्र से सोमस्वरूप श्रीहरि का पूजन करना चाहिए ।। १० ।। घं टं हं सं श्रियै नमः इस मन्त्र से लक्ष्मी जी की तथा दशरूपमहात्मजे नमः इस मन्त्र से श्रीभगवान् की पूजा करनी चाहिए । रात्रि में घी से होम करना चाहिए और ब्राह्मण को शय्या दान देना चाहिए ।। ११ ।। इसी के साथ दीपक, अन्न से भरा हुआ पात्र, छाता, जूता, आसन, जल से भरा हुआ कलश, श्रीहरि की प्रतिमा तथा पात्र भी ब्राह्मण को दे देना चाहिए । इस प्रकार से इस व्रत का पालन करने वाला भोग तथा मोक्ष प्राप्त करता है ।। १०-१२ ।। अब मैं कान्तिव्रत का वर्णन करता हूँ । इसको कार्तिकमास में करना चाहिए । रात्रि में भोजन करने के पश्चात् द्वितीया तिथि के आने पर व्रती को बलराम और श्रीकृष्ण भगवान् की पूजा करनी चाहिए । उसके पश्चात् एक वर्ष तक प्रत्येक शुक्ल पक्ष की द्वितीया को ऐसा करने वाला व्यक्ति कान्ति आयु तथा आरोग्य आदि को प्राप्त करता है ।। १३-१४ ।। अब मैं मनोवाञ्छित फल देने वाले विष्णु व्रत का वर्णन करूँगा । इस व्रत को पौष शुक्ल द्वितीया से लेकर चार दिन तक विशेष स्नान करना चाहिए । पहले दिन पीली सरसों से स्नान करें, दूसरे दिन, काले तिल को जल में मिलाकर स्नान करें, तीसरे दिन वचा जल में डालकर स्नान कर और चौथे दिन सर्वौषधी से स्नान करें ।। १५-१६ ।। मुरा,

चम्पकमुस्तं च सर्वौषधिगणः स्मृतः ॥ १७ ॥ नाम्ना कृष्णाच्युतानन्त हृषीकेशेति पूजयेत् । पादे नाभ्यां चक्षुषि च क्रमाच्छिरसि पुष्पकैः ॥ १८॥ शशिचन्द्रशशाङ्केदुसंज्ञाभिश्चार्घ्य इन्दवे । नक्तं भुञ्जीत च नरो यावत्तिष्ठति चन्द्रमाः ॥ १९ ॥ षण्मासं पारणं चाब्दं प्राप्नुयात्सकलं व्रती । एतद्व्रतं नृपैः स्त्रीभिः कृतं पूर्वं सुरादिभिः ॥ २० ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये द्वितीयाव्रतकथनं नाम सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७७ ॥

अथाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

तृतीयाव्रतानि

अग्निरुवाच– **तृतीयाव्रतान्याख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदानि ते । ललितायां तृतीयायां मूलगौरीव्रतं शृणु ॥ १ ॥ तृतीयायां चैत्रशुक्ले ऊढा गौरी हरेण हि । तिलस्नातोऽर्चयेच्छंभुं गौर्या हैमफलादिभिः ॥ २ ॥ नमोऽस्तु पाटलायै च पादौ देव्याः शिवस्य च । शिवायेति च संकीर्त्य जयायै गुल्फयोर्यजेत् ॥ ३ ॥ त्रिपुरघ्नाय रुद्राय भवान्यै जङ्घयोर्द्वयोः । शिवं रुद्रेश्वरायेति विजयायै च जानुनी ॥ ४ ॥ ईशायेति कटिं देव्याः शंकरायेति शंकरम् । कुक्षिद्वयं च कोटव्यै शूलिनं शूलपाणये ॥ ५ ॥ मङ्गलायै नमस्तुभ्यमुदरं चाभिपूजयेत् । सर्वात्मने नमो रुद्रमैशान्यै च कुचद्वयम् ॥ ६॥ शिवं देवात्मने तद्वत्ह्लादिन्यै कण्ठमर्चयेत् । महादेवाय च शिवमनन्तायै करद्वयम् ॥ ७ ॥ त्रिलोचनायेति हरं बाहुं कालानलप्रिये । सौभाग्यायै**

मांसी, वचा, कूठ, शैलेय दोनों प्रकार की रजनी, सटी, चम्पा तथा मुस्ता ये सभी सर्वौषधि में आते हैं ।। १७ ।। श्रीभगवान् के, कृष्ण, अच्युत, अनन्त तथा हृषीकेश इन चार नामों से उनके क्रमशः पैर, नाभि, नेत्र तथा शिर की पूजा करें ।। १८ ।। इसके पश्चात् चन्द्रमा के शशी, चन्द्र, शशाङ्क तथा इन्दु इन चार नाम से चन्द्रमा को अर्घ्य देना चाहिए । जब तक चन्द्रमा दिखायी पड़े तब तक ही रात्रि में भोजन करना चाहिए ।। १९ ।। इस प्रकार एक वर्ष तथा छह मास तक व्रत करने से व्रती की सारी कामना पूर्ण हो जाती है। प्राचीनकाल में देवताओं, स्त्रियों तथा राजाओं ने इसे किया है ।। २० ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का द्वितीया व्रत वर्णन नामक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७७ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाले तृतीय तिथि के व्रतों का वर्णन करूँगा । ललितासंज्ञक तृतीया तिथि को मूलगौरी व्रत किया जाता है ।। १ ।। चैत्र शुक्ल तृतीया को भगवान शङ्कर ने गौरी से विवाह किया था अतएव उस दिन तिलमिश्रित जल से स्नान करके सुवर्ण तथा फल आदि से गौरी के साथ भगवान् शिव की पूजा करनी चाहिए।।२।। 'पाटलायै नमः' उस मन्त्र से गौरी के तथा शिवाय नमः इस मन्त्र से शिवजी के चरणों की पूजा करें । जयायै नमः इस मन्त्र से गौरी के तथा त्रिपुरध्नाय नमः इस मन्त्र से शिवजी के टखनों की पूजा करे । भवान्यै नमः' इस मन्त्र से गौरी के तथा रुद्राय नमः इस मन्त्र से शिवजी के दोनों जंघों की पूजा करे । विजयायै नमः इस मन्त्र से पार्वती जी के तथा रुद्रेश्वराय नमः इस मन्त्र से शिवजी के घुटनों की पूजा करनी चाहिए ।। ३-४ ।। ईशायै नमः इस मन्त्र से पार्वती जी के तथा शंकराय इस मन्त्र से शंकर जी के कटिभाग की पूजा करनी चाहिए । कोटव्यै नमः इस मन्त्र से पार्वती जी के तथा शूलपाणये नमः इस मन्त्र से शिवजी की कुक्षि का पूजन करना चाहिए । मङ्गलायै नमः इस मन्त्र से पार्वती जी के तथा तुभ्यं नमः मन्त्र से शिवजी के उदर की पूजा करनी चाहिए । सर्वात्मने नमः इस मन्त्र से शिवजी के तथा ईशान्यै नमः इस मन्त्र से पार्वती जी के स्तन युगल की पूजा करनी चाहिए ।। ५-६ ।। देवात्मने नमः इस मन्त्र से शिवजी के तथा

महेशाय भूषणानि प्रपूजयेत् ॥ ८ ॥ अशोकमधुवासिन्यै ईश्वरायेति चोष्ठकौ । चतुर्मुखप्रिया चाऽऽस्यं हराय स्थाणवे नमः॥ ९ ॥
नमोऽर्धनारीशहरममिताङ्ग्यै च नासिकाम् । नम उग्राय लोकेशं ललितेति पुनर्भ्रुवौ ॥ १० ॥ शर्वाय पुरहन्तारं वासन्त्यै चैव तालुकम् । नमः
श्रीकण्ठनाथायै शितिकण्ठाय केशकम् ॥ ११ ॥ भीमोग्राय सुरूपिण्यै शिरः सर्वात्मने नमः । मल्लिकाशोककमलकुन्दं तगरमालती ॥ १२ ॥
कदम्बं करवीरं च बाणमम्लानकुङ्कुमम् । सिन्धुवारं च मासेषु सर्वेषु क्रमशः स्मृतम् ॥ १३ ॥ उमामहेश्वरौ पूज्य सौभाग्याष्टकमग्रतः ।
स्थापयेद्घृतनिष्पावकुसुम्भक्षीर जीवकम् ॥ १४ ॥ तृणराजेक्षुलवणं कुस्तुम्बरुमथाष्टकम् । चैत्रे शृङ्गोदकं प्राश्य देवदेव्यग्रतः स्वपेत् ॥ १५ ॥
प्रातः स्नात्वा समभ्यर्च्य विप्रदाम्पत्यमर्चयेत् । तदष्टकं द्विजे दद्याल्ललिता प्रीयतां मम ॥ १६ ॥ शृङ्गोदकं गोमयं च मन्दारं बिल्वपत्रकम् ।
कुशोदकं दधिक्षीरं कार्तिके पृषदाज्यकम् ॥ १७ ॥ गोमूत्राज्यं कृष्णतिलं पञ्चगव्यं क्रमाशनम् । ललिता विजया भद्रा भवानी कुमुदा शिवा॥१८॥
वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमला सती । चैत्रादौ दानकाले च प्रीयतामिति वाचयेत् ॥ १९ ॥ फलमेकं परित्याज्यं व्रतान्ते शयनं ददेत्।
उमामहेश्वरं हैमं वृषभं च गवा सह॥२०॥ गुरुं च मिथुनान्यर्च्य वस्त्राद्यैर्भुक्तिमुक्तिभाक्। सौभाग्यारोग्यरूपायुः सौभाग्यशयनव्रतात् ॥ २१ ॥ नभस्ये

ह्लादिन्यै नमः इस मन्त्र से पार्वती जी के कण्ठ की अर्चना करनी चाहिए । महादेवाय नमः इस मन्त्र से शिवजी के तथा अनन्तायै नमः इस मन्त्र से पार्वती जी के दोनों हाथों की अर्चना करनी चाहिए ।। ७ ।। त्रिलोचनाय नमः इस मन्त्र से शिवजी के तथा कालानल प्रियायै नमः इस मन्त्र से पार्वती जी के बाहुओं की पूजा करनी चाहिए । महेशायनमः इस मन्त्र से शिवजी के तथा सौभाग्यायै नमः इस मन्त्र से पार्वती जी के आभूषणों की पूजा करनी चाहिए ।। ८ ।। अशोक मधुवासिन्यै नमः इस मन्त्र से पार्वती जी के तथा ईश्वराय नमः इस मन्त्र से शिवजी के दोनों ओष्ठों की पूजा करनी चाहिए । चतुर्मुख प्रियायै नमः इस मन्त्र से पार्वती जी के हरास्थाणवे नमः इस मन्त्र से शिवजी के मुख की पूजा करनी चाहिए ।। ९ ।। अमिताङ्ग्यै नमः इस मन्त्र से पार्वती जी की तथा अर्धनारीश्वराय नमः इस मन्त्र से शिवजी की नासिका का पूजन करना चाहिए । ललितायै नमः इस मन्त्र से पार्वती जी की तथा उग्राय नमः इस मन्त्र से शंकर जी की भौंहों की पूजा करनी चाहिए ।। ९-१० ।। शर्वाय नमः इस मन्त्र से शिवजी के तथा वासन्त्यै नमः इस मन्त्र से पार्वती जी के तालु का पूजन करें । शितिकण्ठाय नमः इस मन्त्र से शिव जी के तथा श्रीकण्ठनाथायै नमः इस मन्त्र से पार्वती जी के केश की पूजा करें । भीमोग्राय नमः इस मन्त्र से शिवजी के तथा सुरूपिण्यै नमः इस मन्त्र से पार्वती जी के शिरोभाग की पूजा करें । सर्वात्मने नमः इस मन्त्र से पूजन का उपसंहार करना चाहिए ।। ११ ।। शिवजी की पूजा के लिए चैत्र आदि मास के क्रमश से ये पुष्प संग्राह्य हैं- मल्लिका, अशोक, कमल, कुन्द, तगर, मालती, कदम्ब, कनेर, नीले रंग का सदाबहार, अम्लान, कुंकुम और सेन्धुवार ।। १२-१३ ।। पार्वती तथा शिवजी का पूजन करके उनके सम्मुख अष्ट सौभाग्य द्रव्य रखना चाहिए । घृत मिश्रित निष्पाव (एक तरह की दाल) कुसुम्भ (केसर) दुग्ध,जीवक (एक प्रकार की औषधि) दूर्वा, ईख, नमक और कुस्तुम्बुरु (धनियाँ) ये अष्ट सौभाग्यद्रव्य हैं ।। १४ ।। चैत्रमास में पार्वती के शिखर आदि का जलपान करके भगवान् शंकर तथा पार्वतजी के समक्ष सोना चाहिए ।। १५ ।। प्रातःकाल स्नान करके गौरी तथा शंकर का पूजन करके ब्राह्मण दम्पत्ती की अर्चना करनी चाहिए और उस सौभाग्य द्रव्य को ललिताप्रीयतां मम यह कहकर ब्राह्मण को दान कर देना चाहिए ।। १६ ।। चैत्र में शृङ्गजल (झरने का जल) वैशाख में गोबर, ज्येष्ठ में मन्दार, आषाढ़ में विल्वपत्र, श्रावण में कुशोदक, भाद्रपद में दही, आश्विन में दुग्ध, कार्तिक में घृतमिश्रित दही, अगहन में गोमूत्र, पौष में घी, माघ में काली तिल और फाल्गुन में पञ्चगव्य का सेवन करके इस व्रत को करना चाहिए।।१७।। चैत्रादिमासों में क्रमशः ललिता,विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा, शिवा, वासुदेवी, गौरी, मङ्गला, कमला तथा सती इन नामों के साथ प्रीयतां मम इस वाक्यांश का उच्चारण करके ब्राह्मण को सौभाग्याष्टक का दान करना चाहिए ।। १८-१९ ।। व्रत के अन्त में किसी एक फल का सदा के लिए त्याग कर देना चाहिए और गुरु को तकिया से युक्त शय्या तथा उमामहेश्वर की सुवर्ण निर्मित प्रतिमा तथा गौ के साथ वृषभ का दान देना चाहिए ।। २० ।। गुरु तथा ब्राह्मण दम्पती का वस्त्र आदि से पूजन करके मनुष्य भोग एवं मोक्ष्क्ष दोनों का पात्र बनता है । इस

वाऽथ वैशाखे कुर्यान्मार्गशिरस्यथ । शुक्लपक्षे तृतीयायां ललितायै नमो यजेत् ॥ २२ ॥ प्रतिपक्षं ततः प्राच्र्य व्रतान्ते मिथुनानि च । चतुर्विंशतिमभ्यर्च्य वस्त्राद्यैर्भुक्तिमुक्तिभाक् ॥ २३ ॥ उक्तो मार्गो द्वितीयोऽयं सौभाग्यव्रतमावदे । फाल्गुनादितृतीयायां लवणं यस्तु वर्जयेत्॥२४॥ समाप्ते शयनं दद्याद्गृहं चोपस्करान्वितम् । सम्पूज्य विप्रमिथुनं भवानी प्रीयतामिति ॥ २५ ॥ सौभाग्यार्थं तृतीयोक्ता गौरीलोकादिदायिनी । माघे भाद्रे च वैशाखे तृतीयाव्रतकृत्तथा ॥ २६ ॥ दमनकतृतीयाकृच्चैत्रे दमनकैर्यजेत् । आत्मतृतीया मार्गस्य प्राच्र्येच्छाभोजनादिना ॥ २७ ॥ गौरी काली उमा भद्रा दुर्गा कान्तिः सरस्वती । वैष्णवी लक्ष्मीः प्रकृतिः शिवा नारायणी क्रमात् । मार्गतृतीयामारभ्य सौभाग्यं स्वर्गमाप्नुयात॥२८॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये तृतीयाव्रतकथनं नामाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

अथैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

चतुर्थीव्रतानि

अग्निरुवाच– **चतुर्थीव्रतान्याख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदानि ते । माघे शुक्लचतुर्थ्यां तु उपवासी यजेद्गणम् ॥ १ ॥ पञ्चम्यां च तिलान्नादी वर्षान्निर्विघ्नतः सुखी । गं स्वाहा मूलमन्त्रोऽयं गामाद्यं हृदयादिकम् ॥ २ ॥ आगच्छोल्काय चाऽऽवाह्य गच्छोल्काय विसर्जनम् । ऊल्कान्तैर्गादिगन्धाद्यैः**

सौभाग्यशयन व्रत के अनुष्ठान से सौभाग्य, आरोग्य, रूप तथा आयु की प्राप्ति होती है ।। २१ ।। भाद्रपद, वैशाख तथा मार्गशीर्ष के महीनों में शुक्ल पक्ष की तृतीया के दिन ललितायै नमः, इस मन्त्र से ललितादेवी की आराधना करनी चाहिए । उसके पश्चात् व्रत की समाप्ति होने पर प्रत्येक पक्ष में चौबीस ब्राह्मण दम्पती की पूजा वस्त्र आदि से करनी चाहिए । ऐसा करके मनुष्य भोग तथा मोक्ष दोनों को प्राप्त कर लेता है ।। २२-२३ ।। यह तो सौभाग्यव्रत बतलाया गया । अब मैं सौभाग्यव्रत का दूसरा प्रकार बतला रहा हूँ । जो पुरुष फाल्गुन आदि मासों की तृतीया तिथि को नमक का परित्याग कर देता है । व्रत के समाप्त हो जाने पर शय्या गृह का घर की सारी सामग्री दान कर दे । ब्राह्मण दम्पती की पूजा करके दान देते समय भवानी प्रीयताम् यह कहना चाहिए। यह सौभाग्य तृतीया व्रत गौरी आदि के लोकों को प्रदान करता है । इसी प्रकार माघ, भाद्रपद तथा वैशाख मास के भी तृतीया को व्रत करना चाहिए।। २४-२६ ।। चैत्रमास में दमनक तृतीया का व्रत करके पार्वती की पूजा दमनक पुष्पों से करनी चाहिए । मार्गशीर्ष में आत्मतृतीया का व्रत किया जाता है । इसमें पार्वती जी का पूजन करके ब्राह्मण की इच्छानुसार भोजन कराना चाहिए ।। २७ ।। मार्गशीर्ष की तृतीया से प्रारम्भ करके क्रमशः पौष आदि मासों में उपर्युक्त व्रत का अनुष्ठान करके पूजन करते समय इन नामों का प्रीयताम् से युक्त करके उच्चारण करना चाहिए गौरी, काली, उमा, भद्रा, दुर्गा, कान्ति, सरस्वती, वैष्णवी, लक्ष्मी प्रकृति शिवा तथा नारायणी मार्गशीर्ष मास की तृतीया से इस व्रत को प्रारम्भ करके मनुष्य सौभाग्य तथा स्वर्ग को प्राप्त करता है ।। २८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का तृतीयाव्रत वर्णन नामक एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७८ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं तुम्हें भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले चतुर्थी तिथि के व्रतों को बतलाऊँगा । माघ मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी के दिन उपवास रखें तथा गणेश जी की पूजा करें ।। १ ।। इसके पश्चात् पञ्चमी को तिल मिश्रित अन्न को खाएँ ऐसा करने वाला मनुष्य वर्ष पर्यन्त निर्विघ्न तथा सुखी रहता है । गं स्वाहा यह गणेश जी का मूलमन्त्र है । गां हृदयाय नमः, गीं शिरसे स्वाहा, गूं शिखायै वषट्, गैं कवचाय हुम्, गौं नेत्राभ्यां वषट् तथा गः अस्त्राय फट् इस तरह से हृदयादि न्यास करें । आगच्छोल्काय नमः कहकर गणेश जी का आवाहन करना

पूजयेन्मोदकादिभिः ॥ ३ ॥ ओं महोल्काय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्ती प्रचोदयात् । मासि भाद्रपदे चापि चतुर्थीकृच्छिवं व्रजेत् ॥४॥ चतुर्थ्यङ्गारकेऽभ्यर्च्य गणं सर्वमवाप्नुयात् । चतुर्थ्यां फाल्गुने नक्तमविघ्नाख्या चतुर्थ्यपि ॥ ५ ॥ चतुर्थ्यां दमनैः पूज्य चैत्रे प्राच्र्य गणं सुखी॥६॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये चतुर्थीव्रतकथनं नामैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

षष्ठी व्रतानि

अग्निरुवाच— **षष्ठीव्रतानि वक्ष्यामि कार्तिकादौ समाचरेत् । षष्ठ्यां फलाशनोऽर्घ्याद्यैर्भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ १ ॥ स्कन्दषष्ठीव्रतं प्रोक्तं भाद्रे षष्ठ्यामथाक्षयम्। कृष्णषष्ठीवृतं वक्ष्ये मार्गशीर्षे चरेच्च तत् । अनाहारो वर्षमेकं भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ २ ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये षष्ठीव्रतकथनं नामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

अथद्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

सप्तमीव्रतानि

अग्निरुवाच— **सप्तमीव्रतकं वक्ष्ये सर्वेषां भुक्तिमुक्तिदम् । माघमासेऽब्जके शुक्ले सूर्यं प्राच्र्य विशोकभाक् ॥ १ ॥ सर्वावाप्तिस्तु सप्तम्यां**

चाहिए तथा गच्छोल्काय नमः कहकर गणेश जी का विसर्जन करना चाहिए । गं उल्काय नमः इस मन्त्र से गणेशजी का पूजन चन्दन आदि तथा मोदक आदि से करना चाहिए ।। ३ ।। इसके पश्चात्- 'ओं महोल्काय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि, तन्नो दन्ती प्रचोदयात्' इस गणेश गायत्री का जप करना चाहिए । भाद्रपद मास की चतुर्थी तिथि को गणेश जी की पूजा करने वाला शिवलोक को जाता है । अंगारक चतुर्थी (भौमवार से युक्त चतुर्थी को गणेश जी की पूजा करके मनुष्य समस्त अभिलषित अर्थों को प्राप्त कर लेता है । फाल्गुन की चतुर्थी अविघ्ना चतुर्थी है । उस दिन रात्रि में ही भोजन करना चाहिए । चैत्रमास की चतुर्थी को गणेश जी की पूजा दमनक नामक पुष्प से करके मनुष्य सुखी हो जाता है ।। ४-६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का चतुर्थीव्रत वर्णन नामक एक सौ उन्नासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७९ ॥

अग्निदेव ने कहा— अब मैं आरोग्य, स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करने वाले पञ्चमी व्रत का वर्णन कर रहा हूँ । श्रावण, भाद्रपद तथा आश्विन और कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष की पञ्चमी को वासुकि, तक्षक, कालीय, मणिभद्र, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक एवं धनञ्जयनामक नागों का पूजन करना चाहिए ।। १-२ ।। ये सभी नाग, अभय, आयु, विद्या, यश एवं लक्ष्मी प्रदान करने वाले हैं ।। ३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का पञ्चमीव्रत वर्णन नामक एक सौ अस्सीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८० ॥

अग्निदेव ने कहा— अब मैं भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले सप्तमी व्रतों का वर्णन करूँगा । माघमास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को सूर्य की कमल से पूजा करके मनुष्य शोकरहित

मासि भाद्रेऽर्कपूजनात्। पौषे मासि सितेऽनशनन्प्राच्यार्कं पापनाशनम् ॥ २ ॥ कृष्णपक्षे तु माघस्य सर्वावाप्तिस्तु सप्तमी। फाल्गुने तु सिते नन्दा सप्तमी चार्कपूजनात् ॥ ३ ॥ मार्गशीर्षे सिते प्राच्र्य सप्तमी चापराजिता। मार्गशीर्षे सिते चाब्दं पुत्रीया सप्तमी स्त्रियाः ॥ ४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सप्तमीव्रतकथनं नाम द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

अथत्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अष्टमीव्रतानि

अग्निरुवाच– **वक्ष्ये व्रतानि चाष्टम्यां रोहिण्यां प्रथमं व्रतम्। मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां रोहिण्यामर्धरात्रके ॥ १ ॥ कृष्णो जातो यतस्तस्यां जयन्ती स्यात्ततोऽष्टमी सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते चोपवासतः ॥ २ ॥ कृष्णपक्षे भाद्रपदे अष्टम्यां रोहिणीयुते। उपोषितोऽर्चयेत्कृष्णं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥३॥ आवाहयाम्यहं कृष्णं बलभद्रं च देवकीम्। वसुदेवं यशोदां गाः पूजयामि नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥ योगाय योगपतये योगेशाय नमो नमः। योगादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः ॥ ५ ॥ स्नानं कृष्णाय दद्यात्तु अर्घ्यं चानेन दापयेत्। यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञानां पतये नमः ॥ ६ ॥ यज्ञादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः ॥ गृहाण देव पुष्पाणि सुगन्धीनि प्रियाणि ते ॥ ७ ॥ सर्वकामप्रदे देव भव मे देववन्दित। धूपधूपित धूपत्वं धूपितैस्त्वं गृहाण मे ॥ ८ ॥ सुगन्ध (न्धि) धूपगन्धाढ्यं कुरु मां सर्वदा हरे। दीपदीप्तमहादीपं दीपदीप्तिद सर्वदा ॥ ९ ॥ मया दत्तं गृहाण**

हो जाता है ।। १ ।। भाद्रपदमास के कृष्णपक्ष की सप्तमी तिथि को सूर्य की पूजा करने से मनुष्य समस्त अभिलषित पदार्थों को प्राप्त करता है ।। पौषमास की सप्तमी तिथि को निराहार रहकर सूर्य की पूजा करने से मनुष्य के समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं ।। २ ।। माघमास के कृष्णपक्ष की सप्तमी सभी फलों को प्रदान करने वाली हैं। फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी नन्दा सप्तमी है। सूर्य की पूजा करने से समस्त फलों की प्राप्ति होती है ।। ३ ।। मार्गशीर्ष मास की शुक्ल सप्तमी को सूर्य की पूजा करनी चाहिए। यह अपराजिता सप्तमी है। इस सप्तमी से प्रारम्भ करके एक वर्ष तक सप्तमी व्रत करने वाली स्त्रियाँ पुत्र प्राप्ति करती हैं। इसे पुत्रीया सप्तमी कहते हैं ।। ४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का सप्तमी व्रत वर्णन नामक एक सौ बयासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८२ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं अष्टमी तिथि को किए जाने वाले व्रतों का वर्णन करूँगा। उनमें पहला व्रत रोहिणी नक्षत्र से युक्त अष्टमी का व्रत है। भाद्रपद मास के रोहिणी नक्षत्र से युक्त कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को आधी रात के समय भगवान् श्रीकृष्ण का प्रादुर्भाव हुआ थां अतएव इस अष्टमी के दिन भगवान् श्रीकृष्ण की जयन्ती मनायी जाती है। इस तिथि को उपवास करने वाला मनुष्य अपने सात जन्म के किए हुए पापों से मुक्त हो जाता है ।। १-२ ।। भाद्रपद मास की रोहिणी से युक्त अष्टमी तिथि को उपवास रहकर भगवान् श्रीकृष्ण की अर्चना करने वाले मनुष्य को भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है ।। ३ ।। मैं श्रीकृष्ण, बलराम, देवकी, वसुदेव तथा गायों का आवाहन करके उनका पूजन करता हूँ आप सबों को मेरा नमस्कार है। इस मन्त्र से आवाहन करना चाहिए ।। ४ ।। योगस्वरूप, योग के स्वामी, योगेश्वर तथा योग से आविर्भूत होने वाले भगवान् गोविन्द को बारम्बर नमस्कार है। यह भगवान् को नमस्कार करने का मन्त्र है ।। ५ ।। भगवान् श्रीकृष्ण को स्नान कराकर अर्घ्य देते समय यह कहें- यज्ञस्वरूप, यज्ञों के स्वामी तथा यज्ञपति भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है ।। ६ ।। भगवान् को पुष्प चढ़ाते हुए यह मन्त्र कहें- यज्ञ आदि से आविर्भूत होने वाले भगवान् गोविन्द को बारम्बर नमस्कार है। हे भगवन्! आप सुगन्धित तथा प्रिय पुष्पों को स्वीकार करें ।। ७ ।। श्रीभगवान् को धूप अर्पित

त्वं कुरु चोर्ध्वगतिं च माम् । विश्वाय विश्वपतये विश्वेशाय नमो नमः ॥ १० ॥ विश्वादिसम्भवायैव गोविन्दाय निवेदितम् । धर्माय धर्मपतये धर्मेशाय नमो नमः ॥ ११ ॥ धर्मादिसम्भवायैव गोविन्द शयनं कुरु । सर्वाय सर्वपतये सर्वेशाय नमो नमः ॥ १२ ॥ सर्वादिसम्भवायैव गोविन्दाय च पावनम् । क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव ॥ १३ ॥ गृहाणार्घ्यं शशाङ्केदं रोहिण्या सहितो मम । स्थण्डिले स्थापयेद्देवं सचन्द्रां रोहिणीं यजेत् ॥ १४ ॥ देवकीं वसुदेवं च यशोदां नन्दकं बलम् । अर्धरात्रे पयोधाराः पातयेद्गुडसर्पिषा ॥ १५ ॥ वस्त्रहेमादिकं दद्याद्ब्राह्मणान्भोजयेद्व्रती। जन्माष्टमीव्रतकरः पुत्रवान्विष्णुलोकभाक् ॥ १६ ॥ वर्षे वर्षे तु यः कुर्यात्पुत्रार्थी वेत्ति नो भयम् । पुत्रान्देहि धनं देहि आयुरारोग्य संततिम् ॥१७॥ धर्मं कामं च सौभाग्यं स्वर्गं मोक्षं च देहि मे ॥ १८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये जयन्त्यष्टमीव्रतकथनं नाम त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

अथ चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अष्टमीव्रतानि

अग्निरुवाच— ब्रह्मादिमातृयजनाज्जपेन्मातृगणाष्टमीम्। कृष्णाष्टम्यां चैत्रमासे पूज्याब्दं कृष्णमर्थभाक् ॥१ ॥ कृष्णाष्टमीव्रतं वक्ष्ये मासे मार्गशिरे चरेत्। नक्तं कृत्वा शुचिर्भूत्वा गोमूत्रं प्राशयेन्निशि ॥२॥ भूमिशायी निशायां च शंकरं पूजयेद्व्रती । पौषे शम्भुं घृतं प्राश्य माघे क्षीरं महेश्वरम्॥३॥

करते हुए कहें कि- हे भगवन् ! आप देवताओं से बन्दित हैं । मेरी सभी इच्छाओं को पूर्ण कीजिए । धूपों से धूपित आप मेरे द्वारा अर्पित किए जाने वाले धूप को स्वीकार करें ।। ८ ।। हे श्रीहरे ! आप मुझे सुगन्धित धूप के गन्ध से परिपूर्ण बनाएँ । भगवान् को दीप देते समय यह कहना चाहिए- हे दीपक को प्रकाश प्रदान करने वाले प्रभो ! सर्वदा मेरे द्वारा दिए जाने वाले दीपक के प्रकाश से प्रकाशित महादीप को स्वीकार करें ।। ९ ।। श्रीभगवान् को अपना सर्वस्व समर्पित कराते हुए कहना चाहिए- विश्वस्वरूप, विश्व के स्वामी, विश्वेश तथा सम्पूर्ण विश्व आदि की सृष्टि करने वाले भगवान् गोविन्द को मेरा सब कुछ निवेदित है ।। १० ।। भगवान् को शयन कराते समय कहना चाहिए- धर्मस्वरूप, धर्म के स्वामी, धर्मेश, धर्म आदि से आविर्भूत होने वाले भगवन् गोविन्द ! आप शयन करें आपको बारम्बर नमस्कार है । हे सर्वस्वरूप! सर्वपते ! हे सर्वेश ! आपको नमस्कार है ।। १२ ।। सबों के आदि कारण भगवान् गोविन्द को बारम्बार नमस्कार है । रोहिणी सहित चन्द्रमा को अर्घ्य देने का मन्त्र है- हे क्षीरसागर से उत्पन्न होने वाले तथा अत्रि महर्षि के नेत्र से उत्पन्न होने वाले चन्द्र ! रोहिणी के साथ आप मेरे द्वारा दिए गए अर्घ्य को स्वीकार करें । इसके पश्चात् वेदी पर श्रीभगवान् की स्थापना करें तथा चन्द्रमा के साथ रोहिणी का पूजन करें ।। १३-१४ ।। इसके पश्चात् आधी रात्रि के समय देवकी, वसुदेव, यशोदा, नन्द तथा बलराम जी को गुड़ तथा घी मिश्रित दुग्ध की धारा से स्नान कराएँ ।। १५ ।। व्रती को चाहिए कि वह ब्राह्मणों को भोजन कराकर वस्त्र तथा सुवर्ण का दान दें । जन्माष्टमी व्रत करने वाला पुत्रवान् होता है तथा विष्णु भगवान् के लोक में जाता है । पुत्र प्राप्ति की इच्छा से जो व्यक्ति इस व्रत को प्रतिवर्ष करता है उसको किसी भी प्रकार का भय नहीं होता । उसे भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए- भगवन् आप मुझे पुत्र, धन, आयु, आरोग्य, संतान, धर्म, काम, सौभाग्य, स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान कीजिए ।। १६-१८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का जयन्ती अष्टमी व्रत वर्णन नामक एक सौ तिरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८३ ॥

अध्याय १८४

अग्निदेव ने कहा– चूँकि ब्रह्मा आदि देवताओं ने मातृकाओं का पूजन किया है अतएव मातृगणों की अष्टमी के दिन पूजा करनी चाहिए । चैत्र मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को

महादेवं फाल्गुने च तिलाशी समुपोषितः । चैत्रे स्थाणुं यवाशी च वैशाखेऽथ शिवं यजेत् ॥ ४ ॥ कुशोदाशी पशुपतिं ज्येष्ठे शृङ्गोदकाशनः । आषाढे गोमयाश्युग्रं श्रावणे शर्वमर्कभुक् ॥ ५ ॥ त्र्यम्बकं च भाद्रपदे बिल्वपत्राशनो निशि । तण्डुलाशी चाऽऽश्वयुजे ईशं रुद्रं तु कार्तिके ॥ ६॥ दध्याशी होमकारी स्याद्वर्षान्ते मण्डले यजेत् । गोवस्त्रहेम गुरवे दद्याद्विप्रेभ्य ईदृशम् ॥ ७ ॥ प्रार्थयित्वा द्विजान्भोज्य भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्। नक्ताशी त्वष्टमीषु स्याद्वत्सरान्ते च धेनुदः ॥ ८ ॥ पौरन्दरं पदं याति स्वर्गतिव्रतमुच्यते । अष्टमी बुधवारेण पक्षयोरुभयोर्यदा ॥ ९ ॥ तदा व्रतं प्रकुर्वीत अथ वा सगुडाशिता । तस्यां नियमकर्तारो न स्युः खण्डितसम्पदः ॥ १०॥ तण्डुलस्याष्टमुष्टीनां वर्जयित्वाऽङ्गुलीद्वयम् । भक्तं कृत्वा चाऽऽम्रपुटे सकुशे सकुलाम्बिकाम् ॥ ११ ॥ सात्त्विकं पूजयित्वाङ्गं भुञ्जीत च कथाश्रवात् । शक्तितो दक्षिणां दद्यात्कर्कटीतण्डुलान्विताम्॥१२॥ धीरो द्विजोऽस्य भार्याऽस्ति रम्भा पुत्रस्तु कौशिकः । दुहिता विजया तस्य धीरस्य धनदो वृषः ॥ १३ ॥ कौशिकस्तं गृहीत्वा तु गोपालैश्चारयन्वृषम्। गङ्गायां स्नानकृत्येऽथ नीतश्चौरैर्वृषस्तदा ॥ १४ ॥ स्नात्वा वृषमपश्यन्स वृषं मार्गितुमागतः। विजयाभगिनी युक्तो ददर्श स सरोवरे ॥ १५ ॥ दिव्यस्त्रीयोषितां वृन्दमब्रवीद्देहि भोजनम् । स्त्रीवृन्दमूचे व्रतकृद्भुङ्क्ष्व त्वमतिथिर्यतः ॥ १६ ॥ व्रतं कृत्वा स बुभुजे प्राप्तवान्वनपालकम् । गतो

भगवान् कृष्ण की पूजा करके एक वर्ष तक उस पूजा को करने वाला अर्थ की प्राप्ति करता है ।। १ ।। अब मैं कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को होने वाले व्रतों का वर्णन करूँगा । सायंकाल पर्यन्त उपवास करके पवित्र होकर रात्रि में गोमूत्र का पान करना चाहिए ।। २ ।। उसे भूमि पर शयन करना चाहिए और आधी रात को भगवान् शंकर की पूजा करनी चाहिए । पौष मास में आधी रात को घृतपान करके शम्भु का पूजन करें और माघ मास में दुग्ध पान करके भगवान् शंकर की पूजा करें ।। ३ ।। फाल्गुन मास में उपवास के पश्चात् तिल का भोजन करके महादेव का पूजन करना चाहिए । चैत्रमास में जौ खाकर स्थाणु का पूजन करें तथा वैसाख में शिव का पूजन करें और कुशोदक से पारण करें । ज्येष्ठमास में पशुपति की पूजा करें और शृङ्गी के जल से पारण करें । आषाढ़मास में उग्र की पूजा करें और गोमय से पारण करें, श्रावण मास में शर्व की पूजा करें और मन्दार के पुष्प से पारण करें, भाद्रपद मास में त्र्यम्बक की पूजा करें और रात्रि में विल्वपत्र खाए । आश्विन मास में ईश की पूजा करे और चावल से पारण करे, कार्तिक मास में रुद्र की पूजा करे और दही से पारण करे । वर्ष का अन्त होने पर होम करे और सर्वतोभद्र या लिङ्गतोभद्र मण्डल में शिवजी का पूजन करे । उसके पश्चात् आचार्य को गौ, वस्त्र, सुवर्ण आदि दान में दे और अन्य ब्राह्मणों को भी इन्हीं वस्तुओं का दान देना चाहिए।।४-७।। ब्राह्मणों की प्रार्थना करके उन्हें भोजन कराना चाहिए ऐसा करने वाला मनुष्य भोग तथा मोक्ष दोनों को प्राप्त कर लेता है ।। ७ ।। प्रत्येक मास के दोनों पक्षों की अष्टमी तिथि को रात्रि में भोजन करने वाला तथा वर्ष के अन्त में गोदान करने वाला मनुष्य इन्द्र के पद को प्राप्त करता है । इसे स्वर्गतिव्रत कहते हैं । जिस मास की दोनों पक्षों में से किसी एक पक्ष की अष्टमी को बुधवार पड़े तो उस दिन व्रत करना चाहिए अथवा गुड़ खाना चाहिए । उस अष्टमी को व्रत करने वाले की सम्पत्ति कभी विनष्ट नहीं होती है ।। ९-१० ।। दो अंगुलियों को छोड़कर आठ मुट्ठी चावल का भात बनाएँ और उसे आम के पत्तों के दोनों में रखें । फिर कुलाम्बिका सहित बुध का पूजन करें और बुधाष्टमी व्रत की कथा सुनने के बाद भोजन करें । ब्राह्मण को ककड़ी सहित चावल का दान करें और यथाशक्ति दक्षिणा दें ।। ११-१२ ।। बुधाष्टमी की कथा इस प्रकार है । धीर नामक ब्राह्मण की पत्नी का नाम रम्भा था । उसके पुत्र का नाम कौशिक था । उसकी पुत्री का नाम विजया तथा बैल का नाम धनद था ।। १३ ।। कौशिक उस बैल को लेकर ग्वालों के साथ चराया करता था । जिस समय कौशिक गंगा में स्नान कर रहा था उसी समय चोरों ने बैल को चुरा लिया ।। १४ ।। स्नान करके जब उसने बैल को नहीं देखा तो बैल को खोजने के लिए अपनी बहन विजया के साथ एक सरोवर पर आया और वहाँ पर देवताओं के स्त्री समूह को देखकर उनसे भोजन माँगा ।। १५ ।। स्त्रियों के समूह ने कहा कि चूँकि आप मेरे अतिथि हैं अतएव व्रत करके भोजन कीजिए ।। १६ ।। उसने व्रत करके भोजन किया और उसके पश्चात् उसकी भेंट वनपालक से हुई । इसके पश्चात् उसने बैल प्राप्त करके अपनी बहन विजया के साथ अपने पिता धीर के पास आया । धीर ने विजया का विवाह यम के साथ कर दिया और उसके

धीरः स वृषभो विजया सहितस्तदा॥१७॥ धीरेण विजया दत्ता यमायान्तरितः पिता । व्रतप्रभावात्कौशिकोऽपि ह्ययोध्यायां नृपोऽभवत्॥१८॥ पित्रोऽस्तु नरके दृष्ट्वा विजयाऽऽर्त्तिं यमे गता । मृगयामागतं प्रोचे मुच्यते नरकात्कथम् ॥ १९ ॥ व्रतद्वयाद्यमः प्रोचे प्राप्य तत्कौशिको ददौ । बुधाष्टमीद्वयफलं स्वर्गतौ पितरौ ततः ॥ २० ॥ विजया हर्षिता चक्रे व्रतं भुक्तादिसिद्धये । अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ ॥ २१ ॥ चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः । त्वामशोक हराभीष्ट मधुमाससमुद्भव ॥ २२ ॥ पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु । चैत्रादौ मातृपूजाकृदष्टम्यां जयते रिपून् ॥ २३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽष्टमीव्रतकथावर्णनं नाम चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

अथ पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

नवमीव्रतानि

अग्निरुवाच- नवमीव्रतकं वक्ष्ये भुक्तिमुक्त्यादिसिद्धिदम् । देवीं पूज्याऽऽश्विने शुक्ले गौर्याख्यानवमीव्रतम् ॥ १ ॥ पिष्टकाख्या तु नवमी पिष्टाशी देविपूजनात्। अष्टम्यामाश्विने शुक्ले कन्यार्के मूलभे यदा ॥ २ ॥ अघार्दना सर्वदा वै महती नवमी स्मृता । दुर्गा तु नवगेहस्था एकागारस्थिताऽथवा ॥ ३ ॥ पूजिताऽष्टादशभुजा शेषाः षोडशसत्कराः । शेषाः षोडशहस्ताः स्युरञ्जनं डमरुं तथा ॥ ४ ॥ रुद्रचण्डा प्रचण्डा च

पश्चात् उसकी मृत्यु हो गयी । बुधाष्टमी व्रत के प्रभाव से कौशिक भी अयोध्या का राजा हुआ ।। १७-१८ ।। एक समय जब यम शिकार खेलने गए तो उस समय विजया ने अपने माता-पिता को नरक में पड़े हुए देखा । यमराज के लौटने पर उसने अपने माता-पिता के उद्धार का उपाय पूछा ।। १९ ।। यम ने बतलाया कि इनका उद्धार बुधाष्टमी के दो व्रतों के फल से होगा। इसके पश्चात् दो बुधाष्टमी व्रत के फल का संकल्प किया । उसी से उसके माता-पिता स्वर्ग चले गए ।। २० ।। प्रसन्न होकर विजया ने भोग आदि की प्राप्ति के लिए बुधाष्टमी व्रत किया । जो लोग चैत्रमास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र में अशोक वृक्ष की आठ कलियों का रस चूसते हैं उन्हें किसी प्रकार का शोक नहीं होता है ।। २१ ।। अशोक की कलियों का रस चूसते समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिए- हे भगवान् शंकर को प्रिय अशोक आप मधुमास में उत्पन्न होते हो मैं शोक से सन्तप्त होकर तुम्हारा रसपान करता हूँ । मुझे सदा के लिए शोक रहित बना दो ।। २२ ।। चैत्र आदि मासों की अष्टमी तिथि को मातृकाओं की पूजा करने वाला मनुष्य शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है ।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अष्टमी व्रत वर्णन नामक एक सौ चौरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८४ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाले नवमी व्रत का वर्णन करूँगा । आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में गौरी नवमी का व्रत करके देवी का पूजन करना चाहिए।।१।। इसी नवमी को पिष्टका नवमी होती है । उस व्रत को करने वाले को देवी का पूजन करके पिष्टान्न का भोजन करना चाहिए । आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की जिस नवमी का मूल नक्षत्र के साथ योग हो और सूर्य कन्या राशि पर स्थित हों उसे महानवमी कहते हैं । वह नवमी सदा पापों का विनाश करने वाली होती है । इस दिन नव दुर्गाओं को नव स्थानों में अथवा एक स्थान में स्थित करके उनका पूजन करना चाहिए ।। २-३ ।। मध्य में अष्टादश भुजा महालक्ष्मी एवं दोनों पार्श्वभागों में सोलह भुजाओं वाली शेष दुर्गाओं का पूजन करना चाहिए । अञ्जन तथा डमरु के साथ इस क्रम से दुर्गाओं की स्थापना करनी चाहिए- रुद्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका चण्डा, चण्डवती, पूज्या,चण्डरूपा और अतिचण्डिका । इन सबों के मध्य भाग

चण्डोग्रा चण्डनायिका । चण्डा चण्डवती पूज्या चण्डरूपाऽतिचण्डिका ॥ ५ ॥ क्रमान्मध्ये चोग्रचण्डा दुर्गा महिषमर्दिनी । ओं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा, दशाक्षरो मन्त्रः ॥ ६ ॥ दीर्घाकारादिमन्त्रादिर्नवनेत्रो नमोऽन्तकः । षड्भिः पदैर्नमःस्वरावषट्कारहृदादिकम् ॥ ७ ॥ अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्त न्यस्याङ्गानि जपेच्छिवाम् । एवं जपति यो गुह्यं नासौ केनापि बाध्यते ॥ ८ ॥ कपालं खेटकं घण्टां दर्पणं तर्जनीं धनुः । ध्वजं डमरुकं पाश वामहस्तेषु बिभ्रतीम् ॥ ९ ॥ शक्तिमुद्गरशूलानि वज्रं खड्गं च कुन्तकम् । शंखं चक्रं शलाकां च आयुधानि च पूजयेत् ॥ १० ॥ पशुं च काली कालीति जप्त्वा खड्गेन घातयेत् । कालि कालि वज्रेश्वरि लौहदण्डायै नमः ॥ ११ ॥ तदुत्थं रुधिरं मांसं पूतनायै च नैर्ऋते । वायव्यां पापराक्षस्यै चरक्यै नम ईश्वरे ॥ १२ ॥ विदारिकायै चाऽऽग्नेय्यां महाकौशिकमग्नये । तस्याग्रतो नृपः स्नायाच्छत्रुं पिष्टमयं हरेत् ॥ १३ ॥ दद्यात्स्कन्दविशाखाभ्यां ब्राह्म्याद्या निशि ता यजेत् । जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ॥ १४ ॥ दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते । देवीं पञ्चामृतैः स्नाप्य पूजयेच्चार्हणादिना । ध्वजादिरथयात्रादिबलिदानं वरादिकृत् ॥ १५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नवमीव्रतकथनं नाम पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८५ ॥

में अष्टादश भुजाओं वाली उग्रचण्डा महिषमर्दिनी का पूजन करना चाहिए । ओं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा' यह दशाक्षर मन्त्र है ।। ४-६ ।। इस मन्त्र के आदि में दीर्घाकार से युक्त ओंकार है। इसके अतिरिक्त नव अक्षर हैं । इसके अन्त में नमः पद लगाना चाहिए । इस मन्त्र के जप के पहले हृदयादि न्यास करना चाहिए- जैसे ओं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा नमः हृदयाय नमः,ओं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा नमः शिरसे स्वाहा । ओं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा नमः शिखायै वषट् । ओं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा नमः कवचाय हुम् । ओं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा नमः नेत्राभ्यां वषट् । ओं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा नमः अस्त्राय फट् । इसी तरह से अंगुष्ठा से लेकर कनिष्ठिका पर्यन्त करन्यास करना चाहिए । इसके पश्चात् इस मन्त्र का जप करना चाहिए । इस प्रकार से जो इस मन्त्र का जप करता है उसे कोई बाधा नहीं हो सकती है ।। ७-८ ।। देवी अपने वाम हाथों में क्रमशः- कपाल, खेटक, घण्टा, दर्पण,तर्जनी, धनुष, ध्वजा,डमरुएवं पाश धारण करती हैं ।। ९ ।। वे दक्षिण हाथ में शक्ति, मुद्गर, त्रिशूल, वज्र, खड्ग, कुन्त, शंख, चक्र एवं शलाका धारण करती हैं । उनके इन आयुधों की भी पूजा करनी चाहिए ।। १० ।। कालि, कालि वज्रेश्वरि लौहदण्डयै नमः इस मन्त्र को पढ़कर खड्ग से काटकर देवी को पशु बलि देनी चाहिए ।। ११ ।। उससे निकले हुए खून एवं मास को पूतना देवी के लिए नैर्ऋत्यकोण में, पापराक्षसी देवी के लिए वायव्यकोण में,चरकी देवी के लिए ईशान कोण में विदारिका देवी के लिए अग्निकोण में और महाकौशिक के लिए अग्निकोण में चढ़ाना चाहिए । इसके पश्चात् राजा उसी के समक्ष स्नान करे स्कन्द तथा विशाख के लिए आंटे के बनाए हुए शत्रु की बलि देनी चाहिए । इसके पश्चात् रात्रि में ब्राह्मी आदि शक्तियों की पूजा करें ।। १२-१३ ।। इसके पश्चात् हे जयन्ती, मङ्गला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, क्षमा, शिवा, धात्री, स्वाहा और स्वधा आपको नमस्कार है ।। १४ ।। इस मन्त्र से देवी की स्तुति करके देवी को पञ्चामृत से स्नान कराना चाहिए और उनकी विविध उपचारों से पूजा करनी चाहिए। देवी के उद्देश्य से किया गया ध्वजदान, रथयात्रा एवं बलिदान कर्म अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति कराने वाला होता है ।। १५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का नवमी व्रत वर्णन नामक एक सौ पच्चासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।। १८५ ।।

अथ षाडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

दशमीव्रतम्

अग्निरुवाच– **दशमीव्रतकं वक्ष्येधर्मकामादिदायकम् । दशम्यामेकभक्ताशी समाप्ते दशधेनुदः । दिशश्च काञ्चनीर्दद्याद्ब्राह्मणाधिपतिर्भवेत्॥१॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नवमीव्रतकथनं नाम षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८६ ॥

अथ सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

एकादशीव्रतम्

अग्निरुवाच– **एकादशी व्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । दशम्यां नियताहारो मांसमैथुनवर्जितः ॥ १ ॥ एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि। द्वादश्येकादशी यत्र तत्र संनिहितो हरिः ॥ २ ॥ तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणे । एकादशीकला यत्र परतो द्वादशी गता ॥ ३ ॥ तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणे। दशम्येकादशीमिश्रा नोपोष्या नरकप्रदा ॥ ४ ॥ एकादश्या निराहारो भुक्त्वा चैवापरेऽहनि । भोक्ष्येऽहं पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥ ५ ॥ एकादश्यां सिते पक्षे पुष्यर्क्षं तु यदा भवेत् । सोपोष्याऽक्षय्यफलदा प्रोक्ता सा पापनाशिनी ॥ ६ ॥ एकादशी द्वादशी या श्रवणेन च संयुता । विजया सा तिथिः प्रोक्ता भक्तानां विजयप्रदा ॥ ७ ॥ एषैव फाल्गुने मासि पुष्यर्क्षेण च संयुता । विजया प्रोच्यते सद्भिः**

अग्निदेव ने कहा– अब मैं दशमीतिथि के धर्म तथा काम को प्रदान करने वाले व्रतों का वर्णन करूँगा । दशमी तिथि को एक समय भोजन करके व्रत करें और व्रत पूरा होने पर दश गायों का तथा सुवर्ण निर्मित प्रतिमा का दान करें । ऐसा करके मनुष्य समस्त ब्राह्मणों का स्वामी होता है ।। १ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का दशमीव्रत वर्णन नामक एक सौ छियासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८६ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले एकादशी व्रतों का वर्णन करता हूँ । दशमी तिथि को स्थित आहार करके मांस तथा मैथुन का त्याग करना चाहिए ।। १।। दोनों ही पक्षों में एकादशी तिथि के दिन भोजन नहीं करना चाहिए वहाँ पर श्रीभगवान् का सन्निधान (निवास) होता है ।। २ ।। उस एकादशीव्रत को करके त्रयोदशी तिथि में यदि पारणा किया जाय तो सौ यज्ञ करने का फल होता है । जिस दिन एकादशी की एक कलाभी हो ओर उसके पश्चात् द्वादशी तिथि आए उस दिन व्रत के बाद त्रयोदशी में पारण करने से सौ यज्ञों के करने का फल होता है ।। दशमी विद्धा एकादशी नहीं करनी चाहिए उससे नर्क होता है ।। ३-४ ।। एकादशी के दिन निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करने से पूर्व श्रीभगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए कि- हे पुण्डरीकाक्ष ! आज मैं भोजन करूँगा । हे अच्युत ! आप मेरी रक्षा करें ।। ५ ।। यदि शुक्लपक्ष की एकादशी के दिन पुष्य नक्षत्र हो तो उस दिन अवश्य उपवास करना चाहिए। क्योंकि वह एकादशी पापों का विनाश करने वाली तथा अक्षय फल देने वाली होती है ।। ६ ।। जो एकादशी अथवा द्वादशी तिथि श्रवण नक्षत्र से युक्त होती है उसे विजया तिथि कहते हैं, वह भक्तों को विजय प्रदान करने वाली होती है ।। ७ ।। वही तिथि यदि फाल्गुन मास में पुष्यनक्षत्र से युक्त हो तो उसे सज्जनों ने विजया तिथि कहा है और वह करोड़ों गुना अधिक फल प्रदान करने वाली होती है ।। ८ ।। एकादशी के दिन भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए वह सबों का उपकार करने वाली होती है । ऐसा करने वाला मनुष्य इस लोक में धन तथा पुत्र

कोटिकोटिगुणोत्तरा ॥ ८ ॥ एकादश्यां विष्णुपूजा कार्या सर्वोपकारिणी। धनवान्पुत्रवांल्लोके विष्णुलोके महीयते ॥ ९ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये एकादशीव्रतकथनं नाम सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८७ ॥

अथाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्वादशीव्रतानि

अग्निरुवाच– द्वादशीव्रतकं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥ १ ॥ उपवासेन भैक्ष्येण चैवं द्वादशिकव्रती। चैत्रे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां मदनं हरिम् ॥ २ ॥ पूजयेद्भक्तिमुक्त्यार्थी मदनद्वदशीव्रती । माघशुक्ले तु द्वादश्यां भीमद्वादशिकव्रती ॥ ३ ॥ नमो नारायणायेति यजेद्विष्णुं ससर्वभाक् । फाल्गुने च सिते पक्षे गोविन्दद्वादशीव्रती ॥ ४ ॥ विशोकद्वादशीकारी यजेदाश्वयुजे हरिम् । लवणं मार्गशीर्षे तु कृष्णमभ्यर्च्य यो नरः ॥ ५ ॥ ददाति शुक्लद्वादश्यां स सर्वरसदायकः । गोवत्सं पूजयेद्भाद्रे गोवत्सद्वादशीव्रती ॥ ६ ॥ माघ्यां तु समतीतायां श्रवणेन तु संयुता । द्वादशी या भवेत् कृष्णा प्रोक्ता सा तिलद्वादशी ॥ ७ ॥ तिलैः स्नानं तिलैर्होमो नैवेद्यं तिलमोदकम् । दीपश्च तिलतैलेन तथा देयं तिलोदकम् ॥ ८ ॥ तिलाश्च देया विप्रेभ्यः फलं होमोपवासतः । ओं नमो भगवतेऽथो वासुदेवाय वै यजेत् ॥ ९ ॥ सकुलः स्वर्गमाप्नोति षट्तिलद्वादशी व्रती । मनोरथद्वादशीकृत्फाल्गुने तु सितेऽर्चयेत् ॥ १० ॥ नामद्वादशीव्रतकृत्केशवाद्यैश्च नामभिः । वर्षं यजेद्धरिं स्वर्गी न भवेन्नारकी नरः ॥ ११ ॥ फाल्गुनस्य सितेऽभ्यर्च्य सुमतिद्वादशी व्रती । मासि भाद्रपदे शुक्ले अनन्तद्वादशीव्रती ॥ १२ ॥ आश्लेषर्क्षे तु मूले

को प्राप्त करता है और अन्त में विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥ ९ ॥

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का एकादशीव्रत वर्णन नामक एक सौ सत्तासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८७ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले द्वादशी तिथि के व्रतों का वर्णन करूँगा । द्वादशी तिथि को एक शाम रात को विना माँगे हुए अन्न का भोजन करना चाहिए। चैत्रमास के शुक्ल पक्ष में मदन द्वादशी नामक व्रत किया जाता है । उस दिन भोग तथा मोक्ष को चाहने वाले पुरुष को चाहिए कि वह व्रत करके भगवान् श्रीहरि की पूजा करे । माघमास के शुक्लपक्ष की द्वादशी को व्रत करके 'ओं नमो नारायणाय' इस मन्त्र से भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए । ऐसा करने वाला मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है ॥ ३ ॥ फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में गोविन्द द्वादशी का व्रत करना चाहिए ॥ ४ ॥ आश्विन मास में विशोकद्वादशी का व्रत करने वाले को श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए । अगहन मास के द्वादशी के दिन भगवान् श्रीकृष्ण की अर्चना करके नमक (लवण) का दान करता है, उसे समस्त रसों के दान करने का फल प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ भाद्रपद मास में गोवत्स द्वादशी का व्रत करने वाले को गोवत्स (गाय के बछड़े) का पूजन करना चाहिए। माघमास के बीत जाने पर फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष की द्वादशी यदि श्रवण नक्षत्र से युक्त हो तो उसे तिल द्वादशी कहते हैं ॥ ६-७ ॥ उस दिन तिल मिश्रित जल से स्नान करें, तिल का होम करें, तिल के लड्डू का भोग लगाएँ, तिल के तेल का दीपक जलाएँ तथा पितरों को तिल एवं जल का दान करें । ब्राह्मणों को तिल दान करें होम तथा उपवास के अन्त में फलदान करें एवं 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्र से भगवान् की पूजा करें ॥ ८-९ ॥ इस प्रकार छह तिल द्वादशी व्रत को करने वाला मनुष्य अपने वंश के साथ स्वर्गलोक को प्राप्त करता है । फाल्गुन शुक्ल द्वादशी को मनोरथ द्वादशी का व्रत करने वाला श्रीहरि की अर्चना करे । इसी तिथि को नाम द्वादशी का व्रत करने वाला श्रीभगवान् के

वा माघे कृष्णाय वै नमः । यजेत्तिलांश्च जुहुयात्तिलद्वादशीकृन्नरः ॥ १३ ॥ सुमतिद्वादशीकारी फाल्गुने तु सिते यजेत । जय कृष्ण नमस्तुभ्यं वर्षः स्याद्भुक्तिमुक्तिगः ॥ पौषशुक्ले तु द्वादश्यां संप्राप्तिद्वादशीव्रती ॥ १४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानाद्वादशीव्रतकथनं नामाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८८ ॥

अथैकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रवणद्वादशीव्रतम्

अग्निरुवाच— **श्रवणद्वादशीं वक्ष्ये मासि भाद्रपदे सिते । श्रवणेन युता श्रेष्ठा महती सा ह्युपोषिता ॥ १ ॥ संगमे सरितां स्नानाच्छ्रवणद्वादशीफलम्। बुधश्रवणसंयुक्ता दानादौ सुमहाफला ॥ २ ॥ निषिद्धमपि कर्तव्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् । द्वादश्यां च निराहारो वामनं पूजयाम्यहम् ॥ ३ ॥ उदकुम्भे स्वर्णमयं त्रयोदश्यां तु पारणम्। आवाहयाम्यहं विष्णुं वामनं शङ्खचक्रिणम् ॥ ४ ॥ सितवस्त्रयुगाच्छन्ने घटे सच्छत्रपादुके । स्नापयामि जलैः शुद्धैर्विष्णुं पञ्चामृतादिभिः ॥ ५ ॥ छत्रदण्डधरं विष्णुं वामनाय नमो नमः । अर्घ्यं ददामि देवेश अर्घ्यार्हाद्यैः सदाऽर्चितः ॥ ६ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रजाकीर्तिसर्वैश्वर्ययुतं कुरु । वामनाय नमो गन्धं होमोऽनेनाष्टकं शतम् ॥ ७ ॥ ॐ नमो वासुदेवाय शिरः सम्पूजयेद्धरेः । श्रीधराय मुखं**

केशव आदि नामों से उनकी पूजा करे । ऐसा एक वर्ष तक व्रत करने वाला मनुष्य स्वर्ग में ही जाता है, वह नर्क में कभी नहीं जाता है ।। १०-११ ।। फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी को सुमतिद्वादशी कहते हैं। इस का व्रत करने वाला मनुष्य भगवान् विष्णु का पूजन करे । भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष को अनन्तद्वादशी का व्रत होता है ।। १२ ।। माघमास के शुक्ल पक्ष में तिल द्वादशी का व्रत करने वाला मनुष्य 'कृष्णाय नमः' इस मन्त्र से भगवान् की पूजा करे और तिल का इसी मन्त्र से होम करे ।। १३ ।। फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में सुमति द्वादशी का व्रत करने वाला व्रती 'जयकृष्ण नमस्तुभ्यम्' इस मन्त्र से भगवान् की पूजा करके भोग एवं मोक्ष को प्राप्त करता है । पौष मास के शुक्ल पक्ष की द्वदशी तिथि को सम्प्राप्ति द्वादशी का व्रत होता है।।१४-१५।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अनेक द्वादशी व्रतों का वर्णन नामक एक सौ अट्ठासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८८ ॥

अग्निदेव ने कहा— अब मैं भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष में होने वाली श्रवण द्वादशी व्रत का वर्णन करूँगा । यह द्वादशी यदि श्रवण नक्षत्र से युक्त हो तो अत्यन्त श्रेष्ठ फल को देने वाली होती है । इसमें उपवास करना चाहिए ।। १ ।। नदियों के संगम स्थल में स्नान करने से श्रवण द्वादशी का फल होता है ।यदि यह बुध दिन तथा श्रवण नक्षत्र से युक्त हो तो दान इत्यादि करने का सुन्दर तथा महान फल होता है । इस व्रत को करके निषिद्ध होने पर भी त्रयोदशी में पारण करनी चाहिए । द्वादशी के दिन निराहार रहकर जलपूर्ण कलश के ऊपर वामन भगवान् की सुवर्ण प्रतिमा का पूजन मैं वामन भगवान् की पूजा कर रहा हूँ यह कहकर करनी चाहिए और त्रयोदशी में पारण करना चाहिए । आवाहन करते हुए कहें कि- मैं शंखचक्रधारी, वामनरूपधारी भगवान् विष्णु का आवाहन करता हूँ ।। ३-४ ।। भगवान् को स्नान कराते समय कहें- मैं एक जोड़े धवल वस्त्र से आच्छादित, छत्र तथा पादुका से युक्त घड़े के ऊपर शुद्धजल तथा पञ्चामृत आदि से विष्णु भगवान् को स्नान करा रहा हूँ । भगवान् को अर्घ्य समर्पित करते हुए कहें- छत्र तथा दण्ड धारण करने वाले वामन रूप धारी भगवान् विष्णु को बारम्बार नमस्कार है । हे देवेश! आप अर्घ्य के अधिकारी पुरुषों तथा दूसरे लोगों के द्वारा पूजित हैं । मैं आपको अर्घ्य समर्पित कर रहा हूँ आप मुझे भोग, मोक्ष, सन्तान, यश और सभी प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त करें।।६।। वामनाय नमः इस मन्त्र से श्रीभगवान् को गन्ध प्रदान करे और इसी मन्त्र से एक सौ आठ आहुतियाँ भी दे ।। ७ ।। ओं नमो वासुदेवाय इस मन्त्र से श्रीभगवान् के शिर की पूजा करे, श्रीधराय

तद्वत्कण्ठे कृष्णाय वै नमः ॥ ८ ॥ नमः श्रीपतये वक्षो भुजौ सर्वास्त्रधारिणे । व्यापकाय नमो नाभिं वामनाय नमः कटिम् ॥ ९ ॥ त्रैलोक्य जननायेति मेढ्रं जङ्घे यजेद्धरेः । सर्वाधिपतये पादौ विष्णोः सर्वात्मने नमः ॥ १० ॥ घृतपक्वं च नैवेद्यं दद्याद्दध्योदनैर्घटान् । रात्रौ च जागरं कृत्वा प्रातः स्नात्वा च संगमे ॥ ११ ॥ गन्धपुष्पादिभिः पूज्य वदेत्पुष्पाञ्जलिस्त्विदम् । नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञितः ॥ १२ ॥ अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव । प्रीयतां देवदेवेश मम नित्यं जनार्दन ॥ १३ ॥ वामनो बुद्धिदो दाता द्रव्यस्थो वामनः स्वयम् । वामनः प्रतिगृह्णाति वामनो मे ददाति च ॥ १४ ॥ द्रव्यस्थो वामनो नित्यं वामनाय नमो नमः । प्रदत्तदक्षिणो विप्रान्संभोज्यान्नं स्वयं चरेत् ॥ १५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये श्रवणद्वादशीव्रतकथनं नामैकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

अथनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अखण्डद्वादशीव्रतम्

अग्निरुवाच– **अखण्डद्वादशीं वक्ष्ये व्रतसम्पूर्णताकृतम् । मार्गशीर्षे सिते विष्णुं द्वादश्यां समुपोषितः ॥ १ ॥ पञ्चगव्यजले स्नातो यजेत्तत्प्राशनो व्रती । यवव्रीहियुतं पात्रं द्वादश्यां हि द्विजेऽर्पयेत् ॥ २ ॥ सप्तजन्मनि यत्किंचिन्मया खण्डं व्रतं कृतम् । भगवंस्त्वत्प्रसादेन तदखण्डमिहास्तु मे॥३॥ यथाऽखण्डं जगत्सर्वं त्वमेव पुरुषोत्तम । तथाऽखिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्तु वै ॥ ४ ॥ एवमेवानुमासं च चातुर्मास्यो विधिः स्मृतः।**

नमः इस मन्त्र से भगवान् के मुख की पूजा करें । कृष्णाय नमः इस मन्त्र से भगवान् के कण्ठ की पूजा करें ।। ८ ।। श्रीपते नमः इस मन्त्र से श्रीभगवान् के वक्षःस्थल की सर्वास्त्रधारिणे नमः इस मन्त्र से उनके भुजाओं की, व्यापकाय नमः इस मन्त्र से उनके नाभि की तथा वामनाय नमः इस मन्त्र से उनके कटि की पूजा करनी चाहिए ।। ९ ।। त्रैलोक्य जननाय नमः इस मन्त्र से श्रीभगवान् के लिङ्ग की सर्वाधिपतये नमः मन्त्र से उनके जंघों की तथा सर्वात्मने नमः मन्त्र से उनके चरणों की पूजा करनी चाहिए ।। १० ।। घी में पके हुए पकवान तथा दही भात का कुम्भ समर्पित करना चाहिए रात्रि में जागरण करे तथा प्रातः काल संगम में स्नान करे ।। ११ ।। गन्ध तथा पुष्प आदि से भगवान् की पूजा करके इस मन्त्र से पुष्पअञ्जलि देनी चाहिए। हे बुध तथा श्रवण संज्ञक भगवन् गोबिन्द ! आपको बारम्बार नमस्कार है । आप मेरे समस्त पापों को विनष्ट करके हर प्रकार का कल्याण प्रदान करें । हे देवताओं के भी देव भगवन् जनार्दन! आप मुझमें नित्य ही रहें ।। १२-१३ ।। भगवान् वामन बुद्धि प्रदान करने वाले हैं । द्रव्य में भगवान् वामन विद्यमान रहते हैं । वामन ही ग्रहण करते है और वे ही मुझे प्रदान करते हैं ।।१४।। भगवान् वामन द्रव्यों में नित्य ही स्थित हैं उनको मेरा बारम्बार नमस्कार है । व्रती को चाहिए कि वह ब्रह्मणों को दक्षिणा देकर स्वयं भोजन करे ।। १५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का श्रवणद्वादशी व्रत वर्णन नामक एक सौ नवासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८९ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं सम्पूर्ण व्रतों को पूर्ण करने वाले अखण्ड द्वादशी व्रत का वर्णन करूँगा । अगहन मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि को उपवास करके भगवान् विष्णु का पूजन करे ।। १ ।। व्रत करने वाले मनुष्य को चाहिए कि वह पञ्चगव्य के जल से स्नान करके उसका पान करे फिर भगवान् का पूजन करे । द्वादशी के दिन जौ तथा धान्य से युक्त पात्र को ब्राह्मण को प्रदान करे ।। २ ।। भगवान् से प्रार्थना करे कि हे भगवन् सात जन्म तक मैंने जो भी खण्डित किया है वह मेरा व्रत आपकी कृपा से आज अखण्ड हो जाय ।। ३ ।। हे पुरुषोत्तम! जिस तरह से यह सम्पूर्ण अखण्ड जगत् आप हैं उसी तरह मेरे सारे व्रत अखण्ड हो जायँ ।। ४ ।। इसी तरह प्रत्येक मास में करके चातुर्मास्य व्रत करना चाहिए । दूसरे चैत्र आदि के महीनों

अन्यच्चैत्रादिमासेषु सक्तुपात्राणि चार्पयेत् ॥ ५ ॥ श्रावणादिषु चाऽऽरभ्य कार्तिकान्तेषु पारणम् । सप्तजन्मसु वैकल्यं व्रतानां सकल कृते । आयुरारोग्यसौभाग्यराज्यभोगादिमाप्नुयात् ॥ ६ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽखण्डद्वादशीव्रतकथनं नाम नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

अथैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

त्रयोदशीव्रतानि

अग्निरुवाच– **त्रयोदशीव्रतानीह सर्वदानि वदामि ते । अनङ्गेन कृतामादौ वक्ष्येऽनङ्गत्रयोदशीम् ॥ १ ॥ त्रयोदश्यां मार्गशीर्षे-शुक्लेऽनङ्गहरं यजेत् । मधु संप्राशयेद्रात्रौ घृतहोमस्तिलाक्षतैः ॥ पौषे योगेश्वरं प्राच्र्य चन्दनाशी कृताहुतिः । महेश्वरं मौक्तिकाशी माघेऽभ्यर्च्य दिवं व्रजेत् ॥ ३॥ काकोलं प्राश्य वीरं तु फाल्गुने पूजयेद्व्रती । कर्पूराशी स्वरूपं च चैत्रे सौभाग्यवान्भवेत् ॥ ४ ॥ महारूपं तु वैशाखे यजेज्जातीफलाश्यपि । लवङ्गाशी ज्येष्ठमासे प्रद्युम्नं पूज्येद्व्रती ॥ ५ ॥ तिलोदाशी तथाऽऽषाढे उमाभर्तारमर्चयेत् । श्रावणे गन्धतोयाशी पूजयेच्छूलपाणिनम् ॥ ६ ॥ सद्योजातं भाद्रपदे प्राशिता अगरुमर्चयेत् । सुवर्णवारि सम्प्राश्य आश्विने त्रिदशाधिपम् ॥ ७ ॥ विश्वेश्वरं कार्तिके तु मदनाशी यजेद्व्रती । शिवं हैमं तु वर्षान्ते संछाद्याऽम्रदलेन तु ॥ ८ ॥ वस्त्रेण पूजयित्वा तु दद्याद्विप्राय गां तथा । शयनं छत्रकलशान्पादुकारसभाजनम् ॥ ९ ॥ त्रयोदश्यां सिते**

में सत्तू के पात्र का दान करना चाहिए ।। ५ ।। चातुर्मास्य को श्रावणमास से प्रारम्भ करके कार्तिकमास में पारण करना चाहिए । इस व्रत के करने से सात जन्मों मे किए गये व्रतों में जो कमी होती है उसकी पूर्ति हो जाती है । इस व्रत को करने वाला आयु, आरोग्य, सौभाग्य, राज्य तथा भोग आदि को प्राप्त करता है ।। ६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अखण्ड द्वादशीव्रत वर्णन नामक एक सौ नबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १९० ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं सब कुछ प्रदान करने वाले त्रयोदशी तिथि के व्रतों का वर्णन करूँगा । सर्वप्रथम मैं अनङ्ग त्रयोदशी व्रत को बतलाता हूँ, इसे सर्वप्रथम अनङ्ग ने किया था।।१।। मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी को कामदेव स्वरूप हर की पूजा करें । रात्रि में मधु का भोजन करें और अक्षत मिश्रित घृत का होम करें । पौष में योगेश्वर का पूजन करके चन्दन का प्राशन करें, माघ में महेश्वर की पूजा करके मौक्तिक (रास्ना नामक पौधे के जल) का आहार करें । इस व्रत को करने वाला मनुष्य स्वर्गलोक को प्राप्त करता है ।। ३ ।। फाल्गुन मास में मनुष्य वीरभद्र का पूजन करके काकोल का प्राशन करे । चैत्रमास की त्रयोदशी को माहेश्वर की पूजा करें तथा कर्पूर का प्राशन करें, ऐसा करके वह सौभाग्यवान् होता है ।। ४ ।। वैशाख मास में जातीफल का भोजन महारूप की पूजा करके करें। ज्येष्ठ मास में व्रती को प्रद्युम्न स्वरूप शंकर की पूजा करके लवंग का प्राशन करना चाहिए ।। ५ ।। आषाढ़ मास में व्रती को तिल का जल पीकर उमापति का पूजन करना चाहिए । श्रावणमास में व्रती को चन्दन का जल पीकर शूलपाणि भगवान् शंकर की पूजा करनी चाहिए ।। ६ ।। भाद्रपद मास में व्रती, अगरु का जल पीकर सद्योजात भगवान् शंकर की पूजा करें । आश्विन मास की त्रयोदशी को सुवर्ण का जल पीकर त्रिदशाधिप भगवान् शंकर की पूजा करनी चाहिए ।। ६-७ ।। कार्तिक मास की त्रयोदशी के दिन लवण का पान करके व्रती को विश्वेश्वर की पूजा करनी चाहिए। इस व्रत के पूरा होने पर सुवर्ण निर्मित शिवलिङ्ग को आम्र के पत्तों तथा वस्त्र से आच्छादित करके सत्कारपूर्वक ब्राह्मण को दान देना चाहिए।

चैत्रे रतिप्रीतियुतं स्मरन् । अशोकाख्यं नगं लिख्य सिन्दूररजनीमुखैः ॥ १० ॥ अब्दं यजेत्तु कामार्थी कामत्रयोदशीव्रतम् ॥ ११ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्रयोदशीव्रतकथनं नामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

अथद्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

चतुर्दशीव्रतानि

अग्निरुवाच— **व्रतं वक्ष्ये चतुर्दश्यां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । कार्तिके तु चतुर्दश्यां निराहारो यजेच्छिवम् ॥ १ ॥ वर्ष भोगधनायुष्मान्कुर्वञ्शिवचतुर्दशीम्। मार्गशीर्षे सितेऽष्टम्यां तृतीयायां मुनिव्रतः ॥ २ ॥ द्वादश्यां वा चतुर्दश्यां फलाहारो यजेत्सुरम् । त्यक्त्वा फलानि दद्यात्तु कुर्वन्फलचतुर्दशीम् ॥३॥ चतुर्दश्यामथाष्टम्यां पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः । अनश्नन्पूजयेच्छंभुं स्वर्ग्युभयचतुर्दशीम् ॥ ४ ॥ कृष्णाष्टम्यां तु नक्तेन तथा कृष्णचतुर्दशीम् । इह भोगानवाप्नोति परत्र च शुभां गतिम् ॥ ५ ॥ कार्तिके च चतुर्दश्यां कृष्णायां स्नानकृत्सुखी । आराधिते महेन्द्रे तु ध्वजाकारासु यष्टिषु ॥ ६ ॥ ततः शुक्लचतुर्दश्यामनन्तं पूजयेद्धरिम् । कृत्वा दर्भमयं चैव वारिधानी समन्वितम् ॥ ७ ॥ शालिप्रस्थस्य पिष्टस्य पूपनाम्नः कृतस्य च । अर्धं विप्राय दातव्यमर्धमात्मनि योजयेत् ॥ ८ ॥ कर्तव्यं सरितां चान्ते कथां कृत्वा हरेरिति । अनन्तसंसारमहासमुद्रे मग्नान्समभ्युद्धर वासुदेव ॥ ९ ॥ अनन्तरूपे विनियोजयस्व ह्यनन्तरूपाय नमो नमस्ते । अनेन पूजयित्वाऽथ सूत्रं बद्ध्वा**

उसके साथ ब्राह्मण को गौ, शय्या, छत्र, कलश, पादुका तथा रसपात्र भी दान में दे देना चाहिए ।। ८-९ ।। चैत्रशुक्ल त्रयोदशी सिन्दूर एवं काजल से अशोक वृक्ष का चित्र बनाकर रति तथा प्रीति में युक्त कामदेव का स्मरण करना चाहिए । इस प्रकार से कामनायुक्त साधक एक वर्ष तक कामदेव का पूजन करे । यह कमत्रयोदशी व्रत कहलाता है ।। १०-११ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का त्रयोदशीव्रत वर्णन नामक एक सौ एकानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १९१ ॥

अग्निदेव ने कहा— अब मैं चतुर्दशी तिथि को किए जाने वाले व्रतों का वर्णन करूँगा । यह व्रत भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाला है । कार्तिक की चतुर्दशी को निराहार रहकर शिवजी की पूजा करनी चाहिए ।। १ ।। एक वर्ष तक शिव चतुर्दशी व्रत को करने वाला मनुष्य भोग, धन तथा आयु को प्राप्त करता है । अगहन मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी, तृतीया, द्वादशी या चतुर्दशी को मौन रहकर फलाहार करें और देवता का पूजन करें । कुछ फलों का सदा के लिए त्याग करके उन फलों का दान करें । इस प्रकार से फल चतुर्दशी का व्रत करने वाले पुरुष को शुक्ल एवं कृष्ण दोनों पक्षों की चतुर्दशी तथा अष्टमी तिथि को उपवास पूर्वक भगवान् शिव की पूजा करनी चाहिए । इन दोनों चतुर्दशियों को व्रत करने वाला स्वर्ग को प्राप्त करता है ।। २-४ ।। कृष्णपक्ष की अष्टमी तथा चतुर्दशी को नक्त व्रत (केवल रात्रि में भोजन) करने से साधक को इस लोक में भोगों की प्राप्ति होती है तथा परलोक में शुभगति होती है ।।५ ।। कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को स्नान करके ध्वज के आकार वाले बाँस के दण्डे पर इन्द्र की आराधना करने वाला मनुष्य सुखी होता है ।। ६ ।। उसके पश्चात् शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को अनन्त श्रीहरि के कुश निर्मित विग्रह को जलपूर्ण कलश के ऊपर स्थापित करके उनकी पूजा करें ।। ७ ।। एक सेर साठी के चावल के आटे का पूआ बनवावे । उसका आधा भाग ब्राह्मण को दे दें और आधा अपने उपयोग में लाएँ ।। ८ ।। अनन्त भगवान् की पूजा नदी के तट पर अनन्त संसार महासमुद्रे इत्यादि मन्त्र से करें और अनन्त की कथा भी सुनना चाहिए । मन्त्र का अर्थ है- हे वासुदेव ! अनन्त भवसागर में डूबते हुए जीवों का आप उद्धार करें और अपने अनन्त स्वरूप में लगा लें । आप अनन्त रूप वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है । इस मन्त्र से पूजा करके

तु मन्त्रितम् । स्वके करे वा कण्ठे वा त्वनन्तव्रतकृत्सुखी ॥ १० ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानाचतुर्दशीव्रतकथनं नाम द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

अथ त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

शिवरात्रिव्रतम्

अग्निरुवाच– **शिवरात्रिव्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु । माघफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णा या तु चतुर्दशी ॥ १ ॥ कामयुक्ता तु सोपोष्या कुर्वञ्जागरणं व्रती । शिवरात्रिव्रतं कुर्वे चतुर्दश्यामभोजनम् ॥ २ ॥ रात्रिजागरणेनैव पूजयामि शिवं व्रती । आवाहयाम्यहं शंभुं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥३॥ नरकार्णवकोत्तारनावं शिव नमोऽस्तु ते । नमः शिवाय शान्ताय प्रजाराज्यादिदायिने ॥ ४ ॥ सौभाग्यारोग्य विद्यार्थं स्वर्गमार्गप्रदायिने । धर्मं देहि धनं देहि कामभोगादि देहि मे ॥ ५ ॥ गुणकीर्तिसुखं देहि स्वर्गं मोक्षं च देहि मे । लुब्धकः प्राप्तवान्पुण्यं पापीसुन्दरसेनकः ॥ ६ ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शिवरात्रिव्रतकथनं नाम त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥

अथ चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अशोकपूर्णिमादिव्रतम्

अग्निरुवाच- अशोकपूर्णिमां वक्ष्ये भूधरं च भुवं यजेत् । फाल्गुन्यां सितपक्षायां वर्षं स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक् ॥ १ ॥ कार्तिक्यां तु वृषोत्सर्गं

अभिमन्त्रित सूत्र को अपनी भुजा अथवा कण्ठ में बाँधने वाला अनन्त व्रत करने वाला मनुष्य सुखी होता है ।। ९-१० ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का चतुर्दशी व्रत वर्णन नामक एक सौ बानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १९२ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले शिवरात्रि व्रत का वर्णन करता हूँ तुम उसे सुनो । माघ तथा फाल्गुन मास के बीच में जो कृष्णापक्ष की चतुर्दशी अर्थात् फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी आती है उस दिन कामनापूर्वक उपवास करे और रात्रि में जागरण करें और कहें कि मैं शिवरात्रि का व्रत निराहार रहकर कर रहा हूँ ।। १-२ ।। और रात्रि में जागरण करके शिवजी का पूजन कर रहा हूँ । मैं भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाले शिवजी का आवाहन करता हूँ ।। ३ ।। नरकरूपी सागर से पार करने वाले शिवजी को नमस्कार है । ज्ञान स्वरूप तथा प्रजाओं के राज्य आदि प्रदान करने वाले शिव जी को नमस्कार है ।। ४ ।। सौभाग्य, आरोग्य, विद्या (ज्ञान) धन तथा स्वर्ग का मार्ग प्रदान करने वाले शिवजी को नमस्कार है । हे शिव जी आप मुझे धर्म, धन, काम तथा भोग आदि प्रदान करें । पूर्वकाल में पापी सुन्दरसेनक व्याध ने भी इस व्रत के प्रभाव से पुण्यगति को प्राप्त कर लिया ।। ५-६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का शिवरात्रि व्रत वर्णन नामक एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १९३ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं अशोक पूर्णिमा का वर्णन करता हूँ । फाल्गुन पूर्णिमा के दिन भूदेवी तथा बाराह भगवान् का पूजन करना चाहिए । ऐसा करने वाला मनुष्य भोग तथा मोक्ष

कृत्वा नक्तं समारचेत्। शैवं पदमवाप्नोति वृषव्रतमिदं परम् ॥ २ ॥ पित्र्या याऽमावसी (स्या) तस्यां पितृणां दत्तमक्षयम् । उपोष्याब्दं पितृनिष्ट्वा निष्पापः स्वर्गमाप्नुयात् । पञ्चदश्यां च माघस्य पूज्याजं स्वर्गमाप्नुयात् । वक्ष्ये सावित्र्यमावास्यां भुक्तिमुक्तिकरीं शुभाम् ॥ ४ ॥ पञ्चदश्यां व्रती ज्येष्ठे वटमूले महासतीम् । त्रिरात्रोपोषिता नारी सप्तधान्यैः प्रपूजयेत् ॥ ५ ॥ प्ररूढैः कण्ठसूत्रैश्च रजन्यां कुङ्कुमादिभिः । वटावलम्बनं कृत्वा नृत्यगीतैः प्रभातके ॥ ६ ॥ नमः सावित्र्यै सत्यवते नैवेद्यं चार्पयेद्द्विजे । वेश्म गत्वा द्विजान्भोज्य स्वयं भुक्त्वा विसर्जयेत् ॥ ७ ॥ सावित्री प्रीयतां देवी सौभाग्यादिकमाप्नुयात् ॥ ८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये तिथिव्रतवर्णनं नाम चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥

अथ पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

वारव्रतानि

अग्निरुवाच– **वारव्रतानि वक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदानि हि । करः पुनर्वसुः सूर्ये स्नाने सर्वौषधी शुभा ॥ १ ॥ श्राद्धी चाऽऽदित्यवारे तु सप्तजन्मस्वरोगभाक् । सङ्क्रान्तौ सूर्यवारो यः सोऽर्कस्य हृदयः शुभः ॥ २ ॥ कृत्वा हस्ते सूर्यवारं नक्तेनाब्दं स सर्वभाक् । चित्राभसोमवाराणि सप्त कृत्वा सुखी भवेत् ॥ ३ ॥ स्वात्यां गृहीत्वा चाङ्गारं सप्तनक्त्यार्तिवर्जितः । विशाखायां बुधं गृह्य सप्तनक्ती ग्रहार्तिनुत् ॥ ४ ॥ अनुराधे**

को प्राप्त करता है ।। १ ।। कार्तिक की पूर्णिमा को वृषोत्सर्ग करके रात्रिव्रत का अनुष्ठान करना चाहिए । इससे मनुष्य शिवलोक को प्राप्त करता है । इस व्रत को वृषोत्सर्ग व्रत कहते हैं ।।२।। आश्विन मास की अमावस्या के दिन पितरों के उद्देश्य से जो कुछ भी प्रदान किया जाता है, वह अक्षय होता है । मनुष्य किसी भी वर्ष उपवास करके पितरों का पूजन करके पापरहित होकर स्वर्ग को प्राप्त कर लेता है ।। ३ ।। माघ मास की अमावस्या के दिन ब्रह्मा जी की पूजा करके मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करता है। अब मैं भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली वटसावित्री अमावस्या का वर्णन करूँगा ।।४।। तीन रात्रि तक उपवास करके ज्येष्ठमास की अमावस्या के दिन प्रातःकाल स्त्री को चाहिए कि वटवृक्ष के मूल में, सप्तधान्य से सावित्री का पूजन करे । रात्रि जब कुछ शेष रहे तो वट में कण्ठसूत्र लपेटकर कुकुमादि से पूजन करे। प्रातःकाल वट के सन्निकट में नृत्य करे और गीत गाए ।। ५ ।। सावित्र्यै नमः सत्यवते नमः कहकर ब्राह्मण को नैवेद्य प्रदान करे । घर जाकर ब्राह्मण भोजन कराए और स्वयं भोजन न करे । फिर सावित्री देवी प्रीयताम् कहकर व्रत का विसर्जन करे । ऐसा करने वाली नारी सौभाग्य आदि प्राप्त करती है ।। ६-८ ।।

इस तरह से आदि महापुराण अग्निपुराण का तिथिव्रत वर्णन नामक एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १९४ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले वारव्रतों का वर्णन कर रहा हूँ । जब रविवार को हस्त अथवा पुनर्वसु नक्षत्र का योग हो तो समस्त शुभ औषधियों से स्नान करें ।। १ ।। इस रविवार को श्राद्ध करने वाला मनुष्य सात जन्मों तक रोग से पीड़ित नहीं होता है । संक्रान्ति के दिन यदि रविवार पड़े तो उसे आदित्य हृदय माना जाता है ।। २ ।। हस्तनक्षत्र से युक्त रविवार से प्रारम्भ करके एक वर्ष तक प्रत्येक रविवार को केवल रात्रि में भोजन करने वाला सब कुछ प्राप्त कर लेता है । चित्रा नक्षत्र से युक्त सात सोमवार व्रत को करके मनुष्य सुखी हो जाता है ।। ३ ।। स्वाती नक्षत्र से युक्त सात मङ्गलवार के व्रत को करने से पीड़ा की शान्ति होती है । विशाखा नक्षत्र से युक्त सात बुधवार के रात्रिव्रत को करने से ग्रहों का कष्ट दूर होता

देवगुरुं सप्तनक्ती ग्रहार्तिनुत् । शुक्रं ज्येष्ठासु संगृह्य सप्तनक्ती ग्रहार्तिनुत् ॥ मूले शनैश्चरं गृह्य सप्तनक्ती ग्रहार्तिनुत् ॥ ५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वारव्रतवर्णनं नाम पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥

अथ षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रव्रतानि

अग्निरुवाच— नक्षत्रव्रतकं वक्ष्ये भे हरिः पूजितोऽर्थदः । नक्षत्रपुरुषं चाऽऽदौ चैत्रमासे हरिं यजेत् ॥ १ ॥ मूले पादौ यजेज्जङ्घे रोहिणीष्वर्चयेद्धरिम्। जानुनी चाश्विनीयोगे आषाढागुरुसंज्ञके ॥ २ ॥ मेढ्रं पूर्वोत्तराष्वेव कटिं वै कृत्तिकासु च । पार्श्वे भाद्रपदाभ्यां तु कुक्षिं वै रेवतीषु च ॥ ३ ॥ स्तनौ चैवानुराधासु धनिष्ठासु च पृष्ठकम् । भुजौ पूज्यौ विशाखासु पुनर्वस्वङ्गुलीर्यजेत् ॥ ४ ॥ आश्लेषासु नखान्पूज्य कण्ठं ज्येष्ठासु पूजयेत् । श्रोत्रे विष्णोश्च श्रवणे मुखं पुष्ये हरेर्यजेत् ॥ ५ ॥ यजेत्स्वातिषु दन्ताग्रमास्यं वारुणभेऽर्चयेत् । मघासु नासां नयने मृगशीर्षे ललाटकम् ॥६॥ चित्रासु चाऽऽर्द्रासु कचानब्दान्ते स्वर्णकं हरिम्। गुडपूर्णे घटेऽभ्यर्च्य शय्यागोर्थादि दक्षिणा ॥ ७ ॥ नक्षत्रपुरुषो विष्णुः पूजनीयः शिवात्मकः । शांभवनीयव्रतकृन्मासभे पूजयेद्धरिम् ॥ ८ ॥ कार्तिके कृत्तिकायां च मृगशीर्षे मृगास्यके । नामभिः केशवाद्यैस्तु अच्युताय नमोऽपि वा ॥ ९ ॥ कार्तिके कृत्तिकाभेऽह्नि मासनक्षत्रगं हरिम् । शांभवायनीयव्रतकं करिष्ये भुक्तिमुक्तिदम् ॥ १० ॥ केशवादि महामूर्तिमच्युतं सर्वदायकम् ।

है ।। ४ ।। अनुराधा नक्षत्र से युक्त सात वृहस्पतिवारों को रात्रिव्रत करने से ग्रह की बाधा दूर होती है । ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त सात शुक्रवार को रात्रि व्रत करने से ग्रह की बाधा दूर होती है । मूल नक्षत्र से युक्त सात शनिवार को रात्रि व्रत करने से ग्रह की बाधा दूर होती है ।। ५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का वारव्रत वर्णन नामक एक सौ पच्चानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १९५ ॥

अग्निदेव ने कहा— अब मैं नक्षत्र व्रत का वर्णन करूँगा । नक्षत्र विशेष में श्रीहरि का पूजन करने से वे सभी अर्थों को प्रदान करते हैं । सर्वप्रथम चैत्रमास में नक्षत्रपुरुष श्रीहरि का पूजन करना चाहिए ।। १ ।। मूलनक्षत्र में श्रीहरि के पैरों की पूजा करे, रोहिणी में उनके जंघों की, अश्विनी नक्षत्र के आने पर उनके जानुओं की, पूर्वाषाढा तथा उत्तराषाढा में उनके दोनों ऊरुओं की पूजा करनी चाहिए।। २ ।। पूर्वा फाल्गुनी तथा उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में उनके लिंग की पूजा करनी चाहिए । कृत्तिका नक्षत्र में कटि प्रदेश का; पूर्वाभाद्रपदा तथा उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र में दोनों पार्श्वों की, रेवती में कुक्षि प्रदेश की, अनुराधा नक्षत्र में उनके दोनों स्तनों की, धनिष्ठा नक्षत्र में पृष्ठभाग की, विशाखा नक्षत्र में उनके दोनों भुजाओं की, तथा पुनर्वसु नक्षत्र में उनके अंगुलियों की पूजा करे ।। ३-४ ।। आश्लेषा नक्षत्र में उनके नखों की, ज्येष्ठा नक्षत्र में कण्ठ की, श्रवण नक्षत्र में विष्णु के श्रोत्रों की, और पुष्य नक्षत्र में श्रीहरि के मुख की पूजा करनी चाहिए ।। ५।। स्वाती नक्षत्र में श्रीभगवान् के दाँतों के अग्रभाग की, शतभिषा नक्षत्र में उनके मुख की, मघा नक्षत्र में नासिका की और मृगशिरा में ललाट की पूजा करनी चाहिए ।। ६ ।। चित्रा तथा आर्द्रा नक्षत्र में श्रीभगवान् के केशों की पूजा करनी चाहिए । वर्ष के अन्त में गुड़ से भरे हुए घड़े पर विष्णु की स्वर्ण प्रतिमा की पूजा करके उसके साथ शय्या, गौ, द्रव्य तथा दक्षिणा आदि का दान ब्राह्मण को देना चाहिए ।। ४-७ ।। शिवस्वरूप नक्षत्र पुरुष विष्णु पूजनीय हैं । शाम्भवनीय व्रत करने वाले को मास नक्षत्र में श्रीहरि की अर्चना करनी चाहिए ।। ८ ।। कार्तिक में कृत्तिका नक्षत्र में और मार्गशीर्ष मास के मृगशिरा नक्षत्र में केशव आदि नामों से भगवान् अच्युत को नमस्कार करना चाहिए ।। ९ ।। व्रती को संकल्प करना चाहिए कि- मैं कार्तिक मास की कृत्तिका

आवाहयाम्यहं देवमायुरारोग्यवृद्धिदम् ॥ ११ ॥ कार्तिकादौ सदा देयमन्नं मासचतुष्टयम् । फाल्गुनादौ च कृशरमाषाढादौ च पायसम् ॥ १२ ॥ देवाय ब्राह्मणेभ्यश्च नक्तं नैवेद्यमाशयेत् । पञ्चगव्यजले स्नातस्तस्यैव प्राशनाच्छुचिः ॥ १३ ॥ अर्वाग्विसर्जनाद्द्रव्यं नैवेद्यं सर्वमुच्यते । विसर्जिते जगन्नाथे निर्माल्यं भवति क्षणात् ॥ १४ ॥ नमो नमस्तेऽच्युत मे क्षयोऽस्तु, पापस्य वृद्धिं समुपैति पुण्यम् । ऐश्वर्यवित्तादिसदाऽक्षयं मे, क्षयं च मा संततिरभ्युपैतु ॥ १५ ॥ यथाऽच्युतस्त्वं परतः परस्तात्, स ब्रह्मभूतः परतः परात्मन् । तथाऽच्युत त्वं कुरु वांछितं मे, मया कृतं पापहराप्रमेय॥१६॥ अच्युतानन्द गोविन्द प्रसीद यदभीप्सितम् । अक्षयं माममेयात्मन् कुरुष्व पुरुषोत्तम ॥ १७ ॥ सप्तवर्षाणि सम्पूज्य भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् । अनन्तव्रतमाख्यास्ये नक्षत्रव्रतकेऽर्थदम् ॥ १८ ॥ मार्गशीर्षे मृगशिरे (शीर्षे) गोमूत्राशी यजेद्धरिम् । अनन्तं सर्वकामानामनन्तो भगवान्फलम्॥१९॥ ददात्यनन्तं च पुनस्तदेवान्यत्र जन्मनि । अनन्तपुण्योपचयं करोत्येतन्महाव्रतम् ॥ २० ॥ यथाभिलषितप्राप्तिं करोत्यक्षयमेव च । पादादि पूज्य नक्ते तु भुञ्जीयात्तैल वर्जितम् ॥ घृतेनानन्तमुद्दिश्य होमो मासचतुष्टयम्। चैत्रादौ शालिना होमः पयसा श्रावणादिषु ॥ २२ ॥ मान्धाताऽभूद्युवनाश्वादनन्तव्रतकात्सुतः ॥ २३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नक्षत्रव्रतवर्णानं नाम षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा तिथि को मास एवं नक्षत्र में स्थित श्रीहरि का पूजन करूँगा तथा भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाले शाम्भवायनीय व्रत का अनुष्ठान करूँगा ।। १० ।। जो केशव आदि महामूर्तियों के रूप में स्थित हैं तथा आयु एवं आरोग्य की वृद्धि करने वाले हैं, मैं उन सर्वप्रद भगवान् अच्युत का आवाहन करता हूँ ।। ११ ।। व्रती मनुष्य को कार्तिक से माघ मास पर्यन्त चार मास सदा अन्नदान करना चाहिए । उसे फाल्गुन आदि चार मासों में खिचड़ी और आषाढ आदि चार मासों में पायस (खीर) दान करना चाहिए ।। १२ ।। रात्रि में देवताओं तथा ब्राह्मणों को खीर का भोग लगाना चाहिए । पञ्चगव्य के जल से स्नान तथा आचमन करके मनुष्य पवित्र हो जाता है ।। १३ ।। मूर्ति के विसर्जन से पूर्व उसे समर्पित किए गये सभी द्रव्य नैवेद्य कहलाते हैं । किन्तु जगदीश्वर श्रीहरि के विसर्जन के पश्चात् वह सब कुछ तत्काल निर्माल्य हो जाता है ।। १४ ।। व्रती को भगवान् के समक्ष यह प्रार्थना करनी चाहिए कि- हे भगवन् अच्युत आपको बारम्बर नमस्कार है । मेरे पापों का विनाश हो और पुण्य की वृद्धि हो मेरे ऐश्वर्य एवं धन आदि अक्षय हों एवं मेरी संतान परम्परा कभी उच्छिन्न न हो ।। १५ ।। हे अच्युत जिस तरह आप परात्पर हैं और ब्रह्मा में स्थित रहकर अपनी मर्यादा से कभी च्युत नहीं होते हैं उसी प्रकार आप मेरे मनोभिलषित अर्थ की सिद्धि कीजिए । हे परमेश्वर आप मेरे द्वारा किए गए पापों को प्रणष्ट कर दें ।। १६ ।। हे अच्युत ! अनन्त ! गोविन्द ! अप्रमेयस्वरूप पुरुषोत्तम ! आप मुझ पर प्रसन्न हों और मेरे मनोभिलषित अर्थ को अक्षय करें । इस प्रकार सात वर्षों तक श्रीहरि का पूजन करके मनुष्य भोग एवं मोक्ष का अधिकारी हो जाता है ।। १७ ।। अब मैं नक्षत्र व्रत के प्रसंग में सभी अर्थों को प्रदान करने वाले अनन्त व्रत का वर्णन करूँगा । जब अगहन महीने में मृगशिरा नक्षत्र आए तो गोमूत्र का प्राशन करके श्रीहरि का पूजन करना चाहिए । ऐसा करने वाले को अनन्त भगवान् समस्त अभिलषित अर्थ प्रदान करते हैं ।। १९ ।। वे पुनर्जन्म में भी व्रत कर्ता को अनन्त पुण्य फल से सम्पन्न करते हैं । यह महाव्रत अनन्त पुण्य का संचय करने वाला है । यह अभिलषित फल की प्राप्ति कराकर उसेअक्षय बनाता है ।। २० ।। भगवान् अनन्त के चरणकमल आदि का पूजन करके रात्रि को तैल रहित भोजन करना चाहिए । भगवान् अनन्त के उद्देश्य से अगहन से फल्गुन तक घृत का,चैत्र से आषाढ़ तक अगहनी के चावल का और श्रावण से कार्तिक तक दुग्ध का हवन करना चाहिए । अनन्त व्रत के प्रभाव से ही युवनाश्व को मान्धाता पुत्र रूप में प्राप्त हुए थे ।। २१-२३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का नक्षत्रव्रत वर्णन नामक एक सौ छियानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १९६ ॥

अथ सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

दिवसव्रतानि

अग्निरुवाच– दिवसव्रतकं वक्ष्ये ह्यादौ धेनुव्रतं वदे । यश्चोभयमुखीं दद्यात्प्रभूतकनकान्विताम् ॥ १ ॥ दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेत्स याति परमं पदम्। त्र्यहं पयोव्रतं कृत्वा काञ्चनं कल्पपादपम् ॥ २ ॥ दत्त्वा ब्रह्मपदं याति कल्पवृक्षव्रतं स्मृतम् । दद्याद्विंशत्पलादूर्ध्वं महीं कृत्वा तु काञ्चनीम् ॥ ३॥ दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेद्रुद्रगः स्याद्दिवाव्रती । पक्षे पक्षे त्रिरात्रं तु भक्तेनैकेन यः क्षपेत् ॥ ४ ॥ विपुलं धनमाप्नोति त्रिरात्रव्रतकृद्दिनम्। मासे मासे त्रिरात्राशी एकभक्ती गणेशताम् ॥ ५ ॥ यस्त्रिरात्रव्रतं कुर्यात्समुद्दिश्य जनार्दनम् । कुलानां शतमादाय स याति भवनं हरेः ॥ ६ ॥ नवम्यां च सिते पक्षे नरो मार्गशिरस्यथ । प्रारभेत त्रिरात्राणां व्रतं तु विधिवद्व्रती ॥ ७ ॥ ओं नमो वासुदेवाय सहस्र वा शतं जपेत् । अष्टम्यामेकभक्ताशी दिनत्रयमुपावसेत् ॥ ८ ॥ द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं कार्तिके कारयेद्व्रतम् । विप्रान्संभोज्य वस्त्राणि शयनान्यासनानि च ॥ ९ ॥ छत्रोपवीतपात्राणि ददत्संप्रार्थयेद्द्विजान् । व्रतेऽस्मिन्दुष्करे चापि विकलं यदभून्मम ॥ १० ॥ भवद्भिस्तदनुज्ञातं परिपूर्णं भवत्विति । भुक्तभोगो व्रजेद्विष्णुं त्रिरात्रव्रतकव्रती ॥ ११ ॥ कार्तिकव्रतकं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । दशम्यां पञ्चगव्याशी एकादश्यामुपोषितः॥ १२ ॥ कार्तिकस्य सितेऽभ्यर्च्य विष्णुं देवो विमानगः । चैत्रे त्रिरात्रं नक्ताशी अजापञ्चप्रदः सुखी ॥ १३ ॥ त्रिरात्रं पयसः पानमुपवासपरस्त्र्यहम् । षष्ठ्यादि कार्तिके शुक्ले कृच्छ्रो माहेन्द्र उच्यते ॥ १४ ॥ पञ्चरात्रं पयःपीत्वा दध्याहारो ह्युपोषितः । एकादश्यां कार्तिके तु कृच्छ्रोऽयं भास्करोऽर्थदः ॥ १५ ॥ यवागूं यावकं शाकं

अग्निदेव ने कहा– अब मैं दिनों के व्रतों का वर्णन कर रहा हूँ । सबसे पहले धेनु व्रत को बतलाता हूँ । जो मनुष्य प्रभूत स्वर्ण राशि के साथ उभयमुखी गौ का दान करके एक दिन तक पयोव्रत का अनुष्ठान करता है, वह परमपद को प्राप्त करता है । जो मनुष्य तीन दिन तक पयोव्रत करके स्वर्णमय कल्पवृक्ष का दान करता है वह ब्रह्मपद को प्राप्त करता है । इसे कल्पवृक्ष व्रत कहते हैं ।। १-२ ।। बीस पल से अधिक स्वर्ण की पृथिवी बनाकर उसका दान करना चाहिए और एक दिन पयोव्रत करना चाहिए । ऐसा करने वाला रुद्र पद का भागी होता है।।३।। जो मनुष्य प्रत्येक पक्ष में तीन रात्रियों में एक भुक्तव्रत करता है वह दिन में निराहार रहकर त्रिरात्रव्रत करने वाला पुरुष प्रभूत धन प्राप्त करता है । प्रत्येक मास में तीन तीन रात्रि पर एक भुक्त व्रत करने वाला मनुष्य गणेशत्व को प्राप्त करता है ।। ५ ।। जो मनुष्य भगवान् जनार्दन के उद्देश्य से त्रिरात्रव्रत का अनुष्ठान करता है वह अपने सौ पीढ़ी के साथ भगवान् जनार्दन के धाम बैकुण्ठलोक को प्राप्त करता है ।। ६ ।। व्रतानुरागी मनुष्य अगहन महीने के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि से विधिपूर्वक त्रिरात्रव्रत का अनुष्ठान करे । 'ओं नमोभगवते वासुदेवाय' इस मन्त्र का एक हजार अथवा एक सौ बार जप करे अष्टमी के दिन में एक बार दिन में भोजन करे और नवमी, दशमी एवं एकादशी को उपवास करे, द्वादशी को भगवान् विष्णु का पूजन करे । इस व्रत को कार्तिक में करना चाहिए ।। ७-८ ।। व्रत की समाप्ति पर ब्राह्मणों को भोजन कराकर,उन्हें वस्त्र, शय्या, आसन, छत्र, यज्ञोपवीत और पात्रदान करना चाहिए । दान देते समय ब्राह्मणों से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि- इस दुष्कर व्रत के अनुष्ठान में मेरे द्वारा जो त्रुटि हुई हो वह आप लोगों की आज्ञा से परिपूर्ण हो जाय ।। ९-१० ।। इस त्रिरात्रव्रत को करने वाला मनुष्य इस लोक में समस्त भोगों को भोगकर अन्त में भगवान् विष्णु की सन्निधि को प्राप्त करता है ।। ११ ।। अब मैं भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले कार्तिक व्रत के विषय में बतला रहा हूँ । दशमी तिथि को पञ्चगव्य का प्राशन करके एकादशी तिथि को उपवास करना चाहिए । इस व्रत के पालन में कार्तिक के शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन श्री विष्णु भगवान् का पूजन करने वाला मनुष्य विमानचारी होता है ।। १२ ।। चैत्रमास में त्रिरात्रव्रत करके केवल रात्रि में भोजन करने वाला मनुष्य व्रत के अन्त में पाँच बकरियों का दान करके सुखी होता है ।। १३ ।। कार्तिक के शुक्ल

दधि क्षीरं घृतं जलम् । पञ्चम्यादि सिते पक्षे कृच्छ्रः सान्तपनः स्मृतः॥ १६ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दिवसव्रतकथनं नाम सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥

अथाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

मासव्रतानि

अग्निरुवाच– **मासव्रतकमाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । आषाढादिचतुर्मासाभ्यङ्गं वर्जयेत्सुधीः ॥ १ ॥ वैशाखे पुष्पलवणं त्यक्त्वा गोदो नृपो भवेत् । गोदो मासोपवासी च भीमव्रतकरो हरिः ॥ २ ॥ आषाढादि चतुर्मासं प्रातःस्नायी च विष्णुगः । माघे मास्यथ चैत्रे वा गुडधेनुप्रदो भवेत् ॥ ३ ॥ गुडव्रतस्तृतीयायां गौरीशः स्यान्महाव्रती । मार्गशीर्षादिमासेषु नक्तकृद्विष्णलोकभाक् ॥ ४ ॥ एकभक्तव्रती तद्वद्द्वादशीव्रतकं पृथक् । फलव्रती चतुर्मासं फलं त्यक्त्वा प्रदापयेत् ॥ ५ ॥ श्रावणादिचतुर्मासं व्रतैः सर्वं लभेद्व्रती । आषाढस्य सिते पक्ष एकादश्यामुपोषितः॥६॥ चातुर्मास्यव्रतानां तु कुर्वीत परिकल्पनम् । आषाढ्यां चाथ संक्रान्तौ कर्कटस्य हरिं यजेत् ॥ ७ ॥ इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव । निर्विघ्नां सिद्धिमायातु प्रसन्ने त्वयि केशव ॥ ८ ॥ गृहीतेऽस्मिन्व्रते देव यद्यपूर्णे म्रिये ह्यहम् । तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ ९ ॥ मांसादि**

पक्ष की षष्ठी से प्रारम्भ करके तीन दिन तक केवल दुग्धपान करके रहे, उसके पश्चात् तीन दिन तक उपवास करे इसे माहेन्द्रकृच्छ्र कहा जाता है ।। १४ ।। कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी से पञ्चरात्र व्रत प्रारम्भ करना चाहिए । इसमें पहले दिन दुग्धपान करना चाहिए, दूसरे दिन दधि का आहार करे उसके पश्चात्! तीन दिन तक उपवास करे, यह अर्थप्रद भास्कर कृच्छ्र कहलाता है। शुक्ल पक्ष की पञ्चमी से प्रारम्भ करके क्रमशः जौ की लप्सी, शाक, दधि, दुग्ध, घृत एवं जल इन वस्तुओं का आहार करना चाहिए इसे सांतपन कृच्छ्र कहते हैं।।१५-१६।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का दिवसव्रत वर्णन नामक एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १९७ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं भोग तथ मोक्ष को प्रदान करने वाले मास व्रतों का वर्णन करूँगा । आषाढ़ मास से प्रारम्भ होने वाले चातुर्मास्य व्रत में अभ्यङ्ग (तैल, उबटन आदि) का त्याग करना चाहिए ।। १ ।। वैशाख मास में पुष्प तथा लवण का त्याग करके गोदान करने वाला व्यक्ति राजा होता है ।एक मास तक उपवास करके गोदान करने वाला पुरुष इस भीष्म व्रत के प्रभाव से श्रीहरिस्वरूप हो जाता है ।। २ ।। आषाढ़ से प्रारम्भ होने वाले चातुर्मास्य में नियमपूर्वक प्रातःस्नान करने वाला मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है । माघ अथवा चैत्र मास की तृतीया को गुड़ की धेनु का दान करे इसे गुडव्रत कहा गया है । इस महान्व्रत का अनुष्ठान करने वाला शिवस्वरूप हो जाता है । मार्गशीर्ष आदि मासों में नक्तव्रत करने वाला मनुष्य विष्णुलोक का अधिकारी होता है ।। ३-४ ।। एक भुक्त व्रत का पालन करने वाला मनुष्य उसी प्रकार से पृथक् द्वादशी व्रत का पालन करे, फलव्रत करने वाले को फलों का त्याग करके चतुर्मास्य में उन फलों का त्याग करना चाहिए ।। ५ ।। श्रावण से प्रारम्भ होने वाले चातुर्मास्य में व्रतों के अनुष्ठान से व्रत कर्ता सब कुछ प्राप्त कर लेता है । चातुर्मास्य व्रत की विधि यह है कि- आषाढ़ शुक्ल एकादशी को उपवास करके चातुर्मास्य व्रतों की परिकल्पना करें । आषाढ़मास की पूर्णिमा अथवा कर्क की संक्रान्ति में विष्णु भगवान् की पूजा करनी चाहिए ।। ६-७ ।। फिर भगवान् से प्रार्थना करें कि- हे भगवन् केशव ! आपके समक्ष मैंने इस व्रत को प्रारम्भ किया है आपकी कृपा से यह व्रत निर्विघ्न रूप से पूर्ण हो ।। ८ ।। हे भगवन् यदि इस व्रत को प्रारम्भ करके मैं बीच में ही मर जाऊँ, तो भी हे जनार्दन ! आपकी कृपा से यह व्रत पूर्ण हो जाए । इस व्रत में ब्राह्मण को चाहिए कि वह मांस आदि तथा तैल का त्याग करे श्रीहरि की आराधना करे और

त्यक्त्वा विप्रः स्यात्तैलत्यागी हरिं यजेत् । एकान्तोपवासी च त्रिरात्री विष्णुलोकभाक् ॥ १० ॥ चान्द्रायणी विष्णुलोकी मौनी स्यान्मुक्तिभाजनम्। प्राजापत्यव्रती स्वर्गी सक्तुयावकभक्षकः ॥ ११ ॥ दुग्धाद्याहारवान्स्वर्गी पञ्चगव्याम्बुभुक्तथा । शाकमूलफलाहारी नरो विष्णुपुरीं व्रजेत्॥१२॥ मांसवर्जी यवाहारो रसवर्जी हरिं व्रजेत् । कौमुदव्रतमाख्यास्ये आश्विने समुपोषितः ॥ १३ ॥ दादश्यां पूजयेद्विष्णुं प्रलिप्याब्जोत्पलादिभिः । घृतेन तिलतैलेन दीपनैवेद्यमर्पयेत् ॥ १४ ॥ ओं नमो वासुदेवाय मालत्या मालया यजेत् । धर्मकामार्थमोक्षांश्च प्राप्नुयात्कौमुदव्रती ॥ १५ ॥ सर्वं लभेद्धरिं प्राच्य मासोपवासकव्रती ॥ १६ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मासव्रतकथनं नामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥

अथ नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नानाव्रतानि

अग्निरुवाच— ऋतुव्रतान्यहं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदानि ते । इन्धनानि तु यो दद्याद्वर्षादि चतुरो ह्यृतून् ॥ १ ॥ धृतधेनुप्रदश्चान्ते ब्राह्मणोऽग्निव्रती भवेत् । कृत्वा मौनं तु सन्ध्यायां मासान्ते घृतकुम्भदः ॥ २ ॥ तिलघण्टा वस्त्रदाता सुखी सारस्वतव्रती । पञ्चामृतेन स्नपनं कृत्वाऽब्दं धेनुदो नृपः॥३॥ एकादश्यां तु नक्ताशी चैत्रे भक्तं निवेदयेत् । हैमं विष्णोः पदं याति मासान्ते विष्णुसद्व्रती ॥ ४ ॥ पायसाशी गोयुगदः श्रीभाग्देवीव्रती

तीन रात्रि तक उपवास करे ऐसा करने वाला विष्णुलोक का अधिकारी होता है ।। १० ।। चान्द्रायण व्रत करने वाला विष्णुलोक का और मौन व्रत करने वाला मोक्ष का अधिकारी होता है । सत्तू एवं जौ का भक्षण करके, दुग्ध आदि का आहार करके अथवा पञ्चगव्य एवं जल पीकर अनापत्य व्रत करने वाला स्वर्ग का अधिकारी होता है । शाक तथा मूल एवं फल का आहार करने वाला विष्णुलोक को जाता है ।। १२ ।। मांस एवं रस का त्याग करके जौ का आहार करने वाला व्रती श्रीहरि को प्राप्त करता है । अब मैं कौमुदव्रत का वर्णन करूँगा । आश्विन के शुक्ल पक्ष की एकादशी को उपवास करे । द्वादशी को श्री विष्णु भगवान् के अंगों में चन्दन आदि का लेप करके उनकी पूजा कमल तथा उत्पल (नीलकमल) आदि से करनी चाहिए । उसके पश्चात् तिल के तैल से परिपूर्ण दीपक तथा घी में पकाए हुए पक्वान्न का नैवेद्य समर्पित करना चाहिए । भगवान् को मालती पुष्पों की माला समर्पित करे । ओं नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्र से व्रत का विसर्जन करे । इस तरह कौमुद्रव्रत का अनुष्ठान करने वाला चारों पुरुषार्थों को प्राप्त कर लेता है । मासोपवास व्रत करने वाला पुरुष श्रीविष्णु भगवान् का पूजन करके सब कुछ प्राप्त कर लेता है ।। १३-१६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का मासव्रत वर्णन नामक एक सौ अठानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १९८ ॥

अग्निदेव ने कहा— अब मैं तुम्हें भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाले ऋतुओं के व्रतों को बतला रहा हूँ । जो वर्षा आदि चार ऋतुओं (वर्षा, शरद्, हेमन्त तथा शिशिर) में इन्धन का दान करता है तथा व्रत के अन्त में घृत गौ दान करता है, वह अग्नि व्रत का पालन करने वाला मनुष्य अगले जन्म में ब्राह्मण होता है । जो एक मास तक मौन व्रत का पालन करके मास के अन्त में घी का घड़ा, तिल, घण्टा तथा वस्त्र का दान करता है वह सारस्वत व्रत करने वाला मनुष्य सुखी होता है ।। १-२ ।। एक वर्ष तक पञ्चामृत से स्नान करके वर्ष के अन्त में गोदान करने वाला राजा होता है ।। ३ ।। भगवान् विष्णु का व्रत करने वाला मनुष्य चैत्र की एकादशी को नक्तभुक्त व्रत करके चैत्रमास के समाप्त होने पर विष्णुभक्त ब्राह्मण को भगवान् विष्णु की

भवेत् । निवेद्य पितृदेवेभ्यो यो भुङ्क्ते स भवेन्नृपः ॥ ५ ॥ वर्षव्रतानि चोक्तानि संक्रान्तिव्रतकं वदे । संक्रान्तौ स्वर्गलोकी स्याद्रात्रिजागरणान्नरः॥६॥ अमावस्यां तु संक्रान्तौ शिवार्कयजनात्तथा । उत्तरे त्वयने चेज्यः प्रातःस्नानेन केशवः ॥ ७ ॥ द्वात्रिंशत्पलमानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते । घृतक्षीरादिनाऽऽस्नाप्य प्राप्नोति विषुवादिषु ॥ ८ ॥ स्त्रीणामुमाव्रतं श्रीदं तृतीयास्वष्टमीषु च । गौरी महेश्वरं चापि यजेत्सौभाग्यमाप्नुयात् ॥ ९ ॥ उमामहेश्वरौ प्राच्य अवियोगादि चाऽप्नुयात् । मूलव्रतकरी स्त्री च उमेशव्रतकारिणी ॥ १० ॥ सूर्यभक्ता तु या नारी ध्रुवं सा पुरुषो भवेत् ॥ ११॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानाव्रतवर्णनं नाम नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥

अथ द्विशततमोऽध्यायः

दीपदानव्रतम्

अग्निरुवाच– **दीपदानव्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । देवद्विजातिकगृहे दीपदोऽब्दं स सर्वभाक् ॥ १ ॥ चा (च) तुर्मासे (सं) विष्णुलोकी कार्तिके स्वर्गलोक्यपि । दीपदानात्परं नास्ति न भूतं न भविष्यति ॥ २ ॥ दीपेनाऽऽयुश्च चक्षुष्मान्दीपाल्लक्ष्मीसुतादिकम् । सौभाग्यं दीपदः प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥ ३ ॥ विदर्भराजदुहिता ललिता दीपदानभाक् । चारुधर्मक्ष्मापपत्नी शतभार्यादिकाऽभवत् ॥ ४ ॥ ददौ दीपसहस्त्रं सा विष्णोरायतने सती । पृष्टा सा दीपमाहात्म्यं सपत्नीभ्य उवाच ह ॥ ५ ॥** ललितोवाच– **सौवीरराजस्य पुरा मैत्रेयोऽभूत्पुरोहितः । तेन चाऽऽयतनं**

स्वर्णप्रतिमा का दान करने वाला व्यक्ति भगवान् विष्णु के पद (लोक) को प्राप्त करता है ।। ४ ।। एक वर्ष तक खीर का भोजन करके वर्ष के अन्त में गोयुग्म का दान करने वाला मनुष्य श्री देवी व्रत के प्रभाव से श्रीसम्पन्न होता है । पितरों तथा देवों को निवेदित करके भोजन करने वाला मनुष्य अगले जन्म में राजा होता है ।। ५ ।। अब तक मैंने वर्ष व्रतों का वर्णन किया अब मैं संक्रान्ति व्रतों को बतलाता हूँ । संक्रान्ति के दिन रात्रि जागरण करने वाला मनुष्य स्वर्गलोक को प्राप्त करता है ।। ६ ।। यदि संक्रान्ति अमावस्या तिथि को हो तो शिव एवं सूर्य की पूजा करने से स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है । उत्तरायणसंबन्धिनी मकर संक्रान्ति में प्रातःकाल स्नान करके भगवान् श्रीकेशव की अर्चना करनी चाहिए ।। ७ ।। उद्यापन में बत्तीस पल सुवर्ण का दान करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ।। ७ ।। विषुव में मनुष्य सब कुछ प्राप्त कराकर सब कुछ प्राप्त कर लेता है ।। ८ ।। तृतीया तथा अष्टमी आदि तिथियों में उमाव्रत स्त्रियों के लिए सर्व लक्ष्मीप्रद होता है । उन तिथियों में उमा तथा महेश्वर की पूजा करने स्त्रियाँ अखण्ड सौभाग्य प्राप्त करती हैं । उन्हें कभी भी पति का वियोग नहीं प्राप्त होता है ।। ९ ।। मूलव्रत तथा उमेश व्रत करने वाली तथा सूर्यभक्त स्त्रियाँ अगले जन्म में पुरुष होती हैं ।। १०-११ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अनेक व्रत वर्णन नामक एक सौ निन्यानवेबाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १९९ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले दीपदान व्रत का वर्णन करूँगा । देवता तथा ब्राह्मण के घर में एक वर्ष तक दीपदान करने से सब कुछ प्राप्त हो जाता है ।। १ ।। चातुर्मास्य में दीपदान करने वाला विष्णुलोक को तथा कार्तिक मास में दीपदान करने वाला स्वर्गलोक को प्राप्त करता है । दीपदान से बढ़कर कोई व्रत न हुआ न होगा और न है।।२।। दीपदान करने वाला मनुष्य, आयु, नेत्रज्योति, लक्ष्मी तथा पुत्र आदि की प्राप्ति करता है । दीपदान करने वाला मनुष्य सौभाग्य प्राप्त करके स्वर्गलोक में पूजित होता है ।। ३ ।। **ललिता की कथा–** विदर्भ राजा की राजकुमारी का नाम ललिता था । वह चारु धर्म नामक राजा की पत्नी थी । वह दीपदान के प्रभाव से ही राजा चारुधर्म की सौ पत्नियों में सर्वप्रथम राजमहिषी

विष्णोः कारितं देविकातटे ॥ ६ ॥ कार्तिके दीपकस्तेन दत्तः संप्रेरितो मया । वक्त्रप्रान्तेन नश्यन्त्या मार्जारस्य तदा भयात् ॥ ७ ॥
निर्वाणवान्प्रदीप्तोऽभूद्धरन्त्या मूषिकया तदा । मृता राजात्मजा जाता राजपत्नी शताधिका ॥ ८ ॥ असंकल्पितमप्यस्य प्रेरणं यत्कृतं मया ।
विष्ण्वायतनदीपस्य तस्येदं भुज्यते फलम् ॥ ९ ॥ जातिस्मरा ह्यतो दीपान्प्रयच्छामि त्वहर्निशम् । एकादश्यां दीपदो वै विमाने दिवि मोदते ॥१०॥
जायते दीपहर्ता तु मूको वा जड एव च । अन्धे तमसि दुष्पारे नरके पतते किल ॥ ११ ॥ विक्रोशमानांश्च नरान्यमकिंकर आह तान् ।
विलापैरलमत्रापि किं वो विलपिते फलम् ॥ १२ ॥ यदा प्रमादिभिः पूर्वमत्यन्तसमुपेक्षितः । जन्तुर्जन्मसहस्रेभ्यो ह्येकस्मिन्मानुषो यदि ॥ १३ ॥
तत्राप्यतिमूढात्मा किं भोगानभिधावति । स्वहितं विषयास्वादैः क्रन्दनं तदिहाऽऽगतम् ॥ १४ ॥ भुज्यते च कृतं पूर्वमेतत्किं वो न चिन्तितम् ।
परस्त्रीषु कुचाभ्यङ्गं प्रीतये दुःखदं हि वः ॥ १५ ॥ मुहूर्तविषयास्वादोऽनेककोट्यब्ददुःखदः । परस्त्रीहारि यद्गीतं हा मातः किं विलप्यते ॥ १६॥
कोऽतिभारो हरेर्नाम्नि जिह्वया परिकीर्तने । वर्तितैलेऽल्पमूल्येऽपि यदग्निर्लभ्यते सदा ॥ १७ ॥ दानाशक्तैर्हरेर्दीपो हृतस्तद्वोऽतिदुःखदम्। इदानीं
किं विलापेन सहध्वं यदुपागतम्॥१८॥ अग्निरुवाच– ललितोक्तं च ताः श्रुत्वा दीपदानाद्दिवं ययुः । तस्माद्दीपप्रदानेन व्रतानामधिकं फलम्॥१९॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दीपदानवर्णनं नाम द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥

हुई।। ४ ।। उसने भगवान् विष्णु के मन्दिर में एक हजार दीपों का दान किया था । अपनी सपत्नियों द्वारा पूछे जाने पर उसने दीपदान का महत्त्व इस प्रकार से बतलाया ।। ५ ।। ललिता ने कहा- प्राचीन काल में सौबीर राजा का एक पुरोहित हुआ । उसका नाम मैत्रेय था। उसने देविका नदी के तट पर भगवान् विष्णु का मन्दिर बनवाया ।। ६ ।। मेरे द्वारा प्रेरित किए जाने पर उसने भगवान् के मन्दिर में दीपदान किया । विडाल के भय से भागती हुई एक चूहिया ने अपने मुख के अग्रभाग से उस दीपक की बत्ती को आगे बढ़ा दिया । बत्ती के बढ़ जाने से वह बूझता हुआ दीपक प्रदीप्त हो गया । मरकर वही चुहिया राजकुमारी हुई और राजा चारुधर्मा की रानियों में पटरानी हुई ।। ७-८ ।। विना किसी संकल्प के मेरे द्वारा विष्णु मन्दिर के दीप की जो बत्ती बढ़ा दी गयी,उसी का मैं फल भोग रही हूँ ।। ९ ।। अपने पूर्वजन्म की याद होने से मैं सदा दीपदान करती रहती हूँ । एकादशी के दिन दीपदान करने वाला विमान पर आरूढ़ होकर स्वर्गलोक में प्रमुदित होता है ।। १० ।। मन्दिर का दीपक चुराने वाला गूँगा अथवा मूर्ख होता है । वह दुर्लंध्य अन्धतामिस्र नामक नरक में जाता है ।। ११ ।। उस नरक में रुदन करते हुए जीवों को देखकर यमदूत ने कहा- अब विलाप करना व्यर्थ है, तुम लोग विलाप क्यों करते हो ? ।। १२ ।। प्रमादवश तुम लोगों ने पहले ही धर्म की उपेक्षा कर दी है । हजारों जन्म प्राप्त करने के पश्चात् किसी एक जन्म में जीव मनुष्य होता है फिर भी न जाने क्यों वह मनुष्य भोगों के पीछे दौड़ता रहता है ।। १३ ।। यदि विषयों के आस्वाद में अपना कल्याण समझे तो तुम लोग यहाँ आकर क्यों रोते हो ? ।। १४ ।। तुम लोगों ने यह नहीं सोचा कि मनुष्य अपने पूर्वकृत कर्मों का फल भोगता है । आप लोगों को परस्त्री के स्तनमर्दन ने जितना सुख दिया वह उतना ही दुखप्रद होगा ।। १५ ।। एक मुहूर्त के विषयों का आस्वाद अनेक करोड़ वर्ष पर्यन्त दुःख देता है । तुमने जो परस्त्री का अपहरण किया तो अब हाय माँ ! कहकर क्यों चिल्लाते हो ।। १६।। अपनी जीभ से भगवान् का नाम लेने में कौन सा भार है ? बत्ती तथा तेल के मूल्य तो अत्यन्त कम हैं और अग्नि तो सर्वत्र सुलभ है ।। १७ ।। दीपदान करने में समर्थ होकर भी तुमने जो दीप चुराया वही तुम्हें अत्यन्त कष्ट देता है । अब विलाप करने से क्या लाभ है, जो आ पड़ा है उसे भोगो ।। १८ ।। अग्निदेव ने कहा- ललिता की बातों को सुनकर उसकी सभी सौतों ने दीपदान करके स्वर्ग लोक को प्राप्त कर लिया । अतएव दीपदान करने से सभी व्रतों से अधिक फल प्राप्त होता है ।। १९ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का दीपदान वर्णन नामक दो सौवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २०० ॥

अथैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नवव्यूहचक्रम्

अग्निरुवाच– **नवव्यूहार्चनं वक्ष्ये नारदाय हरीरितम् । मण्डलेऽब्जेऽर्चयेन्मध्ये अबीजं वासुदेवकम् ॥ १ ॥ आबीजं चसंकर्षणमं प्रद्युम्नं च दक्षिणे । अः अनिरुद्धं नैर्ऋते ते ओं नारायणमप्सु च ॥ २ ॥ तत्सद्ब्रह्माणमनिले हूं विष्णुं क्ष्रौं नृसिंहकम् । उत्तरे भूर्वराहं च ईशे द्वारि च पश्चिमे॥३॥ कं टं सं शं गरुत्मन्तं पूर्ववक्त्रं च दक्षिणे । खं छं वं हुं फडिति च खं ठं फं शं गदां विधौ ॥ ४ ॥ बं णं मं क्षं कोणे शं चं धं दं भं हं श्रियं यजेत् । दक्षिणे चोत्तरे पुष्टिं गं डं बं शं स्वबीजकम् ॥ ५ ॥ पीठस्य पश्चिमे धं वं वनमालां च पश्चिमे । श्रीवत्सं चैव सं हं लं छं तं यं कौस्तुभं जले ॥ ६ ॥ दशमाङ्गक्रमाद्विष्णोर्नमोऽनन्तमधोऽर्चयेत् । दशाङ्गादिमहेन्द्रादीन्पूर्वादौ चतुरो घटान् ॥ ७ ॥ तोरणानि वितानं च अग्न्यनिलेन्दुबीजकैः। मण्डलानि क्रमाद्ध्यात्वा तनुं वन्द्य ततः प्लवेत् ॥ ८ ॥ अम्बरस्थं ततो ध्यात्वा सूक्ष्मरूपमथाऽऽत्मनः । सितामृते निमग्नं च चन्द्रबिम्बात्स्रुतेन च ॥ ९ ॥ तदेव चाऽऽत्मनो बीजममृतं प्लवसंस्कृतम् । उत्पद्यमानं पुरुषमात्मानमुपकल्पयेत् ॥ १० ॥ उत्पन्नोऽस्मि स्वयं विष्णुर्बीजं द्वादशकं न्यसेत् । हृच्छिरस्तु शिखा चैव कवचं चास्त्रमेव च ॥ ११ ॥ वक्षोमूर्धशिखापृष्ठलोचनेषु न्यसेत्पुनः । अस्त्रं करद्वये न्यस्य ततो दिव्यतनुर्भवेत् ॥१२॥ यथाऽऽत्मनि तथा देवे शिष्यदेहे न्यसेत्तथा । अनिर्माल्य स्मृता पूजा यद्धरेः पूजनं हृदि ॥१३ ॥ सनिर्माल्या मण्डलादौ**

अग्निदेव ने कहा– जिसे श्रीभगवान् ने नारद जी को बतलाया उस नव व्यूहों की पूजा का वर्णन मैं करता हूँ । चक्राब्ज मण्डल के बीच में अ बीज वाले वासुदेव की पूजा करनी चाहिए।।१।। आ बीज वलो संकर्षण की अग्निकोण में और दक्षिण में अ बीज वाले प्रद्युम्न की पूजा करनी चाहिए । अः बीज वाले अनिरुद्ध की पूजा नैर्ऋत्य कोण में तथा ओं बीज मन्त्र वाले नारायण की पश्चिम दिशा में पूजा करनी चाहिए ।। २ ।। वायव्यकोण मैं तत्सद् ब्रह्म का, उत्तर दिशा में हूं बीजमन्त्र वाले विष्णु तथा क्ष्रौं बीजमन्त्र वाले नृसिंह की पूजा करनी चाहिए। और वाराह भगवान् की पूजा क्रमशः ईशानकोण और पश्चिमद्वार पर करनी चाहिए ।। ३ ।। दक्षिण दिशा में पूर्वाभिमुख गरुड की पूजा कं टं शं सं बीजमन्त्र से पूजा करें । चन्द्रमण्डल में खं छं बं हुं फट् तथा खं ठं फं शं इन बीजमन्त्र से युक्त गदा की पूजा करनी चाहिए ।। ४ ।। बं णं मं क्षं तथा शं, धं, दं, भं, हं इन बीजों से युक्त श्रीदेवी की पूजा कोणभाग में करनी चाहिए। दक्षिण तथा उत्तर दिशा में गं डं बं शं इन बीजमन्त्रों से पुष्टिदेवी की पूजा करनी चाहिए ।। ५ ।। पीठ के पश्चिम भाग में धं वं इस बीजमन्त्र से युक्त वनमाला की पूजा करनी चाहिए तथा पश्चिम में ही सं हं लं इस बीजमन्त्र से श्रीवत्स की पूजा करनी चाहिए। जल में छं तं यं इस बीजमन्त्र से श्रीवत्स की पूजा करनी चाहिए । जल में छं तं यं इस बीजमन्त्र से युक्त कौस्तुभमणि की पूजा करनी चाहिए ।। ६ ।। इसके पश्चात् दशमाङ्ग क्रम से भगवान् विष्णु की तथा उनके नीचे अनन्त की उनके नाम के अन्त में नमः पद जोड़कर पूजन करना चाहिए । दस अंगों (पांच अंगन्यास तथा पाँच करन्यास) आदि तथा दस दिक्पालों की पूर्व आदि दिशाओं में पूजन करना चाहिए तथा चार घटों की भी चारों दिशाओं में पूजा करनी चाहिए ।। ७ ।। अग्नि, वायु के तथा चन्द्रमा के बीजों से तोरण वितान एवं मण्डलों का क्रमशः ध्यान करके, फिर वन्दना करके अमृत से अपने शरीर को प्लावित करना चाहिए ।। ८ ।। पुनःआकाश में स्थित आत्मा के सूक्ष्म रूप का ध्यान करके यह भावना करनी चाहिए कि चन्द्रमण्डल से भरे हुए श्वेत अमृत में यह सराबोर है ।। ९ ।। प्लवन से जिसका संस्कार किया गया है, वह अमृत ही आत्मा का बीज है । उस अमृत से उत्पन्न होने वाले पुरुष को अपनी आत्मा मानना चाहिए ।। १० ।। इसके पश्चात् यह भावना करनी चाहिए कि मैं स्वयं विष्णु उत्पन्न हुआ हूँ । उसके पश्चात् बारह बीजों का, हृदय,सिर, शिखा, कवच, अस्त्र,वक्षःस्थल, मूर्धा, शिखा, पृष्ठ तथा नेत्र में न्यास करना चाहिए । फिर दोनों हाथों में अस्त्र का न्यास करके साधक दिव्य शरीर वाला हो जाता है ।। ११-१२ ।। जिस

बद्धनेत्राश्च शिष्यकाः । पुष्पं क्षिपेयुर्यन्मूर्तौ तस्य तन्नाम कारयेत् ॥ १४ ॥ निवेश्य वामतः शिष्यांस्तिलव्रीहिघृतं हुनेत् । शतमष्टोत्तरं हुत्वा सहस्रं कायशुद्धये ॥ १५ ॥ नवव्यूहस्य मूर्तीनामङ्गानां च शताधिकम् । पूर्णान्दत्त्वा दीक्षयेत्तान्गुरुः पूज्यश्च तैर्धनैः ॥ १६ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नवव्यूहार्चनं नामैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥

अथ द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुष्पवर्गकथनम्

अग्निरुवाच– **पुष्पगन्धधूपदीपनैवेद्यैस्तुष्यते हरिः । पुष्पाणि देवयोग्यानि ह्ययोग्यानि वदामि ते ॥ १ ॥ पुष्पं श्रेष्ठं मालती च तमालो भुक्तिमुक्तिमान् । मल्लिका सर्वपापघ्नी यूथिका विष्णुलोकदा ॥ २ ॥ अतिमुक्तमयं तद्वत्पाटला विष्णुलोकदा । करवीरैर्विष्णुलोकी जपापुष्पैश्च पुण्यवान् ॥ ३ ॥ पावन्तीकुब्जकाद्यैश्च तगरैर्विष्णुलोकभाक् । कर्णिकारैर्विष्णुलोकः कुरुण्ठैः पापनाशनम् ॥ ४ ॥ पद्मैश्च केतकीभिश्च कुन्दपुष्पैः परा गतिः । बाणपुष्पैर्बर्बराभिः कृष्णाभिर्हरिलोकभाक् ॥ ५ ॥ अशोकैस्तिलकस्तद्वदाटरूषभवैस्तथा । मुक्तिभागी बिल्वपत्रैः शमीपत्रैःपरागतिः॥६॥ विष्णुलोकी भृङ्गराजैस्तमालस्य दलैस्तथा । तुलसी कृष्णगौराख्या कह्लारोत्पलकानि च ॥ ७ ॥ पद्मं कोकनदं पुण्यं शताब्जमालया हरिः । नीपार्जुनकदम्बैश्च बकुलैश्च सुगन्धिभिः ॥ ८ ॥ किंशुकैर्मुनिपुष्पैस्तु गोकर्णैर्नागकर्णकैः । सन्ध्यापुष्पैर्बिल्वतकैरञ्जनीकेतकीभवैः ॥ ९ ॥**

तरह से अपने शरीर में न्यास करे उसी तरह से देवता तथा शिष्य के देह में न्यास करना चाहिए । अपने हृदय में जो श्रीहरि की पूजा की जाती है वह अनिर्माल्य पूजा होती है ।। १३ ।। जो मण्डल आदि में तथा शिष्यों के नेत्र को बाँधकर पूजा की जाती है, वह सनिर्माल्य पूजा होती है । शिष्य अपने आँख बाँधकर जिस मूर्ति पर पुष्प डाले उसी से उसका नामकरण कराए ।। १४।। आचार्य को चाहिए कि शिष्यों को अपनी बायीं तरफ बैठाकर तिल, धान तथा घी की एक सौ आठ आहुति दे और शरीर की शुद्धि के लिए एक हजार आठ आहुति देनी चाहिए। नवव्यूहों की मूर्तियों के लिए तथा अंगों के लिए सौ से अधिक आहुति देनी चाहिए। उसके पश्चात् पूर्णाहुति देकर आचार्य शिष्यों को दीक्षा दें और शिष्यों को चाहिए कि वे आचार्य की धन से पूजा करें।।१५-१६।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का नवव्यूह वर्णन नामक दो सौ एकवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २०१ ॥

अग्निदेव ने कहा– श्रीभगवान् पुष्प, गन्ध, धूप,दीप तथा नैवेद्य से प्रसन्न होते हैं । अब मैं तुम्हें देवताओं के लिए योग्य तथा अयोग्य पुष्पों को बतला रहा हूँ ।। १ ।। मालती पुष्प सभी पुष्पों में उत्तम है । तमाल पुष्प भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है । मल्लिका पुष्प समस्त पापों को नष्ट करता है तथा यूथिका (जूही) विष्णुलोक प्रदान करती है ।। २ ।। अतिमुक्तक (मोगरा) ओर लोध्रपुष्प विष्णुलोक प्रदान करने वाले हैं । करवीर कुसुमों से पूजा करने वाले को वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है । जयापुष्प चढ़ाकर मनुष्य पुण्यार्जन करता है ।। ३।। पाबन्ती, कुब्जक तथा तगर पुष्पों से पूजन करने वाला विष्णुलोक का अधिकारी होता है । कर्णिकार (कणेर) से पूजा करने वाला वैकुण्ठ को प्राप्त करता है । कुरण्ट (पीली कटसरैया) के पुष्पों से पूजन करने से पापों का नाश होता है ।। ४ ।। कमल, केतकी तथा कुन्द के पुष्पों से पूजा करने से परम गति की प्राप्ति होती है, बाणपुष्प वर्वर पुष्प तथा काली तुलसी के पुष्प से पूजा करने वाला श्रीहरि के लोक में जाता है ।। ५ ।। अशोक तिलक तथा आटरूष के पुष्पों से पूजा करने से मुक्ति मिलती है । विल्वपत्र तथा शमी पत्र से पूजन करने से मुक्ति मिलती है ।। ६ ।। भृङ्गराज के पुष्प तथा तमाल के पत्र से पूजन करने से विष्णु के लोक की प्राप्ति होती है । काली तुलसी, गोरी तुलसी, कह्लार, उत्पल (नीलकमल) पद्म तथा कोकनद (लाल कमल) ये पुण्यप्रद हैं ।। ७ ।। सौ लाल कमल के पुष्पों की माला से भगवान् परम प्रसन्न होते हैं । नीव (कदम्ब), अर्जुन, कदम्ब, सुगन्धित बकुल (मौल श्री) किंशुक, (पलाश) मुनि (अगस्त्य पुष्प) गोकर्ण, नागकर्ण (सरण्ड)

कूष्माण्डतिमिरोत्थैश्च कुशकाश शरोद्भवैः । द्यूतादिभिर्मरुबकैः पत्रैरन्यैःसुगन्धकैः ॥ १० ॥ भुक्तिर्मुक्तिः पापहानिर्भक्त्या सर्वैस्तु तुष्यति । स्वर्णलक्षाधिकं पुष्पं माला कोटिगुणाधिका ॥ ११ ॥ स्ववनेऽन्यवने पुष्पैस्त्रिगुणं वनजैः फलम् । विशीर्णैर्नार्चयेद्विष्णुं नाधिकाङ्गैर्न मोटितैः॥१२॥ काञ्चनारैस्तथोन्मत्तैर्गिरिकर्णिकया तथा । कुटजैः शाल्मलीयैश्च शिरीषैर्नरकादिकम् ॥ १३ ॥ सुगन्धैर्ब्रह्मपद्मैश्च पुष्पैर्नीलोत्पलैर्हरिः। अर्कमन्दारधत्तूरकुसुमैरर्च्यते हरः ॥ १४ ॥ कुटजैः कर्कटीपुष्पैः केतकीं न शिवे ददेत् । कूष्माण्डनिम्बसम्भूतं पैशाचं गन्धवर्जितम् ॥ १५ ॥ अहिंसा इन्द्रियजयः क्षान्तिर्ज्ञानं दया श्रुतम् । भावाष्टपुष्पैः सम्पूज्य देवान्स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक् ॥ १६ ॥ अहिंसा प्रथमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः। सर्वपुष्पं दयाभूते पुष्पं शान्तिर्विशिष्यते ॥ १७ ॥ शमः पुष्पं तपः पुष्पं ध्यानं पुष्पं च सप्तमम् । सत्यं चैवाष्टमं पुष्पमेतैस्तुष्यति केशवः ॥ १८॥ एतैरेवाष्टभिः पुष्पैस्तुष्यत्येवार्चितो हरिः । पुष्पान्तराणि सन्त्यत्र बाह्यानि मनुजोत्तम् ॥ १९ ॥ भक्त्यादयान्वितैर्विष्णुः पूजितः परितुष्यति । वारुणं सलिलं पुष्पं सौम्यं घृतपयोदधि ॥ २० ॥ प्राजापत्यं तथाऽन्नादि आग्नेयं धूपदीपकम् । फलपुष्पादिकं चैव वानस्पत्यं तु पञ्चमम् ॥ २१ ॥ पार्थिवं कुशमूलाद्यं वायव्यं गन्धचन्दनम् । श्रद्धाख्यं विष्णुपुष्पं च सर्वदा चाष्टपुष्पिका ॥ २२ ॥ आसनं मूर्तिपञ्चाङ्गं विष्णुर्वा चाष्टपुष्पिकाः (का) । विष्णोस्तु वासुदेवाद्यैरीशानाद्यैः शिवस्य वा ॥ २३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पुष्पवर्गवर्णनं नाम द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥

सन्ध्या पुष्पी (चमेली) विल्वातक रञ्जनी केती, कुष्माण्ड, ग्राम कर्कटी, कुश, कास, सरपत, विभीतक मरुआ तथा अन्य सुगन्धित पत्रों द्वारा भक्तिपूर्वक पूजन करने से भगवान् श्रीहरि प्रसन्न होते हैं । इनसे पूजन करने वाले के पाप विनष्ट हो जाते हैं और उसे भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है ।। १० ।। एक लाख सुवर्ण भार की अपेक्षा एक पुष्प अच्छा होता है, पुष्पों की माला उससे करोड़गुनी अच्छी होती है । अपने तथा दूसरे के उद्यान के पुष्पों की अपेक्षा वन्य पुष्पों का तीन गुना फल होता है ।। ११ ।। कंकर गिरे हुए, अधिकांग एवं मसले हुए पुष्पों से श्रीभगवान् की पूजा नहीं करनी चाहिए ।। १२ ।। कचनार, धतूर, गिरिकर्णिका, कुटज, शाल्मली (सेमर) एवं शिरीष पुष्पों से भगवान् विष्णु का पूजन नहीं करना चाहिए । इनसे पूजा करने वाले का नरक में पतन होता है । भगवान् विष्णु की पूजा लाल कमल तथा नीलकमल से होती है । भगवान् शिव की पूजा, आक,मदार एवं धतूर के पुष्पों से करनी चाहिए ।। १३-१४ ।। कुटज, कर्कटी पुष्प तथा केतकी पुष्प को शिवजी पर नहीं चढ़ाना चाहिए । कुष्माण्ड तथा निम्ब के पुष्प तथा निर्गन्ध पुष्प पिशाचों को समर्पित करना चाहिए ।। १५ ।। अहिंसा, जितेन्द्रियत्व, क्षमा, ज्ञान, दया तथा श्रवण इन भाव पुष्पों से देवताओं की पूजा करके मनुष्य भोग तथा मोक्ष को प्राप्त करता है ।। १६ ।। इनमें अहिंसा प्रथम पुष्प है, इन्द्रियों का निग्रह द्वितीय पुष्प है, सभी जीवों पर दया करना तीसरा पुष्प है और शान्ति चौथा विशेष पुष्प है ।। १७ ।। इसी तरह पाँचवाँ छठाँ और सातवाँ पुष्प क्रमशः, शम, तप एवं ध्यान है । आठवाँ भावपुष्प सत्य है । इन सबों से श्रीभगवान् केशव सन्तुष्ट होते हैं ।। १८ ।। इन आठ भावपुष्पों से पूजित होकर श्रीहरि प्रसन्न होते ही हैं । हे मनुजोत्तम ! वसिष्ठ दूसरे पुष्प बाह्यपुष्प हैं ।। १९ ।। दया करने वाले जीवों द्वारा पूजित होकर भगवान् विष्णु परितुष्ट हो जाते हैं ।। १९ ।। जल वारुण पुष्प है, घी, दुग्ध, दधि,सौम्यपुष्प हैं, अन्न आदि प्राजापत्य पुष्प हैं, धूप,दीप आग्नेय पुष्प हैं, फल, पुष्प आदि पञ्चम वनस्पत्य पुष्प हैं, कुशमूल आदि पार्थिव पुष्प हैं, गन्ध, चन्दन वायव्य पुष्प हैं तथा श्रद्धा आदि भाव वैष्णव पुष्प हैं । ये अष्टपुष्पिकाएँ सब कुछ प्रदान करने वाली हैं ।। २०-२२।। आसन (योग पीठ) मूर्ति निर्माण, पञ्चाङ्गन्यास तथा आठ पुष्पिकाएँ ये विष्णुस्वरूप हैं । अष्टपुष्पिका के द्वारा पूजा करने से भगवान् श्रीहरि प्रसन्न होते हैं । भगवान् विष्णु की पूजा वासुदेव आदि नामों से तथा शिव जी की पूजा ईशान आदि नामों से करनी चाहिए ।। २३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का पुष्पवर्ग वर्णन नामक दो सौ दोवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २०२ ॥

अथ त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकस्वरूपम्

अग्निरुवाच– **पुष्पाद्यैः पूजनाद्विष्णोर्न याति नरकान्वदे । आयुषोऽन्ते नरः प्राणैरनिच्छन्नपि मुच्यते ॥ १ ॥ जलमग्निर्विषं शस्त्रं क्षुद्व्याधिः पतनं गिरेः । निमित्तं किंचिदासाद्य देही प्राणैर्विमुच्यते ॥ २ ॥ अन्यच्छरीरमादत्ते यातनीयं स्वकर्मभिः । भुङ्क्तेऽथ पापकृद्दुःखं सुखं धर्माय संगतः ॥ ३ ॥ नीयते यमदूतैस्तु यमं प्राणिभयंकरैः । कुपथे दक्षिणद्वारि धार्मिकः पश्चिमादिभिः ॥ ४ ॥ यमाज्ञप्तैः किंकरैस्तु पात्यते नरकेषु च। स्वर्गे तु नीयते धर्माद्वशिष्ठाद्युक्तिसंश्रयात् ॥ ५ ॥ गोघाती तु महावीच्यां वर्षलक्षं तु पीड्यते । ताम्रकुम्भे महादीप्ते ब्रह्महा भूमिहारकः ॥ ६ ॥ महाप्रलयकं यावद्रौरवे पीड्यते शनैः । महारौरवके रौद्रे गृहक्षेत्रादिदीपकः । दह्यते कल्पमेकं च चौरस्तामिस्त्रके पतेत् ॥ ८ ॥ नैककल्पं तु शूलाद्यैर्भिद्यते यमकिंकरैः । महातामिस्त्रके सर्पजलौकाद्यैश्च पीड्यते ॥ ९ ॥ यावद्भूमिर्मातृहाद्या असिपत्रवनेऽसिभिः ॥ नैककल्पं तु नरके करम्भवालुकासु च ॥ १० ॥ येन दग्धो जनस्तत्र दह्यते वालुकादिभिः । काकोले कृमिविष्ठाशी एकाकी मिष्टभोजनः ॥ ११ ॥ कुट्टले मूत्ररक्ताशी पञ्चयज्ञक्रियोज्झितः । सुदुर्गन्धे रक्तभोजी भवेच्चाभक्ष्यभक्षकः ॥ १२ ॥ तैलपाके तु तिलवत्पीड्यते परपीडकः । तैलपाके तु पच्येत शरणागतघातकः ॥ १३ ॥ निरुच्छ्वासे-दाननाशी रसविक्रयकोऽध्वरे । नाम्ना वज्रकटाहे च महापाते तदाऽनृती ॥ १४ ॥ महाज्वाले पापबुद्धिः**

अग्निदेव ने कहा– पुष्प आदि से पूजा करने वाला मनुष्य जिन नरकों में नहीं जाता है,उन नरकों का मैं वर्णन करता हूँ । न चाहकर भी जो आयु समाप्त हो जाने पर मनुष्य अपने प्राणों को छोड़ देता है ।। १ ।। जो मनुष्य जल, अग्नि में गिरकर, विष से,शस्त्र के द्वारा मारा जाकर,भूख के कारण, रोग से अथवा पर्वत से गिरकर; इनमें से किसी भी कारण से अपने प्राणों का त्याग कर देता है ।। २ ।। वह पुनर्यातना के योग्य दूसरे शरीर को अपने कर्मों के अनुसार प्राप्त करता है । वह अपने पापों का फल दुःख भोगता है और पुण्य का फल सुख भोगता है।।३।। प्राणियों के लिए भयंकर यमदूत उसे ले जाते हैं । पापी को दक्षिण द्वार पर वे कुमार्ग से ले जाते हैं और धार्मिक जीवों को पश्चिम आदि द्वारों पर ले जाते हैं ।। ४ ।। यम की आज्ञा पाकर यमदूत उसे नरकों में डाल देते हैं । वसिष्ठ आदि की उक्तियों का अनुसरण करने वाले धार्मिक जीवों को वे स्वर्ग में ले जाते है ।। ५ ।। गौ की हत्या करने वाला एक लाख वर्ष तक महावीचि नामक नरक में दुःख पाता है । ब्राह्मण की हत्या करने वाला दहकते हुए ताम्रकुम्भ में डाल दिया जाता है । दूसरे की भूमि को हड़प लेने वाला महाप्रलय काल पर्यन्त रौरव नामक नरक में धीरे-धीरे दुःसह पीड़ा प्राप्त करता है । स्त्री,बालक, तथा वृद्धों की हत्या करने वाला पापी चौदह इन्द्रों के राज्यकाल पर्यन्त महारौरव नामक नरक में पीड़ा प्राप्त करता है । दूसरों के घर तथा क्षेत्र को जलाने वाला अत्यन्त भयंकर महारौरव नामक नरक में एक कल्प पर्यन्त पकाया जाता है । चोरी करने वाला महातामिस्र नामक नरक में गिराया जाता है ।। ६-८ ।। अनेक कल्प तक यमदूत उसे भालों से छेदते रहते हैं । उसके पश्चात् वह महातामिस्र नामक नरक में सर्पों तथा जोंकों द्वारा सताया जाता है ।। ९ ।। अपनी माता आदि का वध करने वाले मनुष्य असिपत्र वन नामक नरक में डाले जाते हैं,उनके अंग तलवार से तब तक काटे जाते हैं, जब तक पृथ्वी की स्थिति रहती है । जो लोग दूसरों के हृदय को जलाते हैं वे लोग अनेक कल्पों तक करम्भबालुका नामक नरक में जलती हुई बालू की रेत में भूने जाते हैं । दूसरों को दिए विना अकेले मिष्टान्न भोजन करने वाला काकोल नामक नर्क में कृमि होकर विष्ठा का भक्षण करता है ।। १०-११।। पञ्चयज्ञ की क्रिया का त्याग करने वाला कुट्टल नामक नरक में मूत्र एवं रक्त का पान करते हैं । अभक्ष्य वस्तओं का भक्षण करने वाला अत्यन्त दुर्गंधयुक्त नरक में रक्त का भोजन करता है ।।१२।। दूसरों को दुःख देने वाला तैलपाक नामक नरक में तिल के समान पेरा जाता है । शरणागत को मारने वाला तैलपाक नामक नरक में पकाया जाता है ।। १३ ।। यज्ञ में दान का नाश करने

क्रकचेऽगम्यगामिनः । संकरीगुडपाके च प्रतुदेत्परमर्मकृत् ॥ १५ ॥ क्षारह्रदे प्राणिहन्ता क्षुरधारे च भूमिहृत् । अम्बरीषे गोस्वर्णहृद्द्रुमच्छिद्वज्रशस्त्रके॥१६॥ मधुहर्ता परीतापे कालसूत्रे परार्थहृत् । कश्मलेऽत्यन्तमांसाशी उग्रगन्धे ह्यपिण्डदः ॥ १७ ॥ दुर्धरे ह्युत्कोचभक्षी बन्दिग्राहरताश्च ये । मञ्जूषे नरके लोहेऽप्रतिष्ठे श्रुतिनिन्दकः ॥ १८ ॥ पूतवक्त्रे कूटसाक्षी परिलुण्ठे धनापहा । बालस्त्रीवृद्धघाती च कराले ब्राह्मणार्तिकृत् ॥ १९ ॥ विलेपे मद्यपो विप्रो महाप्रेते तु भेदिनः। तथाऽऽक्रम्य पारदाराञ्ज्वलन्तीमायसीं शिलाम् ॥ २० ॥ शाल्मलाख्ये तमालिङ्गेन्नारी बहुनरंगमा । आस्फोटजिह्वोद्धरणं स्त्रीक्षणान्नेत्रभेदनम् ॥ २१ ॥ अङ्गारराशौ क्षिप्यन्ते मातृपुत्र्यादिगामिनः । चौराः क्षुरैश्च भिद्यन्ते स्वमांसाशी च मांसभुक् ॥ २२ ॥ मासोपवासकर्ता वै न याति नरकं नरः । एकादशीव्रतकरो भीष्मपञ्चकसद्व्रती ॥ २३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नरकस्वरूपवर्णनं नाम त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०३ ॥

अथ चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

मासोपवासव्रतम्

अग्निरुवाच– **व्रतं मासोपवासं च सर्वोत्कृष्टं वदामि ते। कृत्वा तु वैष्णवं यज्ञं गुरोराज्ञामवाप्य च ॥ १ ॥ कृच्छ्राद्यैः स्वबलं बुद्ध्वा कुर्यात्मासोपवासकम्।**

वाला व्यक्ति निरुच्छ्वास नामक नरक में पड़ता है । रस निक्रय करने वाला वज्रकटाह नामक नरक में पड़ता है । मिथ्यावादी महापात नामक नरक में पड़ता है ।। १४ ।। पापपूर्ण विचारवाला महाज्वाल नामक नरक में पड़ता है । अगम्या गमन करने वाला क्रकच नामक नरक में, वर्णसंकर सन्तान उत्पन्न करने वाला गुडपाक नामक नरक में और दूसरे के मर्म को पीड़ा पहुँचाने वाला प्रतुद नामक नरक में पड़ता है ।। १५ ।। प्राणी हिंसा करने वाला क्षारहृद में तथा भूमि का हरण करने वाला क्षुरधार नामक नरक में जाता है और पेड़ों को काटने वाला वज्रशास्त्र नरक में जाता है ।।१६।। शहद चुराने वाला परीताप नामक नरक में,दूसरे का धन चुराने वाला कालसूत्र नामक नरक में,अधिक मांस खाने वाला 'कश्मल नामक नरक में और पितरों को पिण्डदान नहीं करने वाला उग्रगन्ध नामक नरक में यमदूतों द्वारा ले जाया जाता है ।। १७ ।। घुसखोर दुर्धर नामक नरक में,निरपराध मनुष्यों को कैद करने वाला 'लौहमय मंजूष' नामक नरक में ले जाकर यमदूतों द्वारा कैद कर दिया जाता है ।। १८ ।। झूंठी गवाही देने वाला 'पूतिवक्त्र' नरक में, धन का अपहरण करने वाला परिलुण्ठ नामक नरक में,बालक,स्त्री एवं वृद्ध की हत्या करने वाला तथा ब्राह्मण को पीड़ा देने वाला 'कराल' नामक नरक में,मदिरा पीने वाला ब्राह्मण 'विलेप' नामक नरक में और मित्रों में परस्पर भेदन्भाव करने वाले पुरुष तथा अनेक पुरुषों से संभोग करने वाली स्त्री को 'शाल्मल' नामक नरक में जलती हुई लौहमयी शिला के रूप में अपनी उस प्रिया या प्रिय का आलिङ्गन करना पड़ता है ।। १९-२०।। चुगली करने वालों की जीभ नरक में खींचकर निकाल ली जाती है । परस्त्री को कुदृष्टिसे देखने वाले की आँख फोड़ दी जाती है ।। २१ ।। माता और पुत्री के साथ व्यभिचार करने वाले को जलते अंगारों पर फेंक दिया जाता है । चोरों को छूरे से काटा जाता है माँस भक्षण करने वाले को उसी का मांस काट कर खिलाया जाता है ।। २२ ।। एक मास का उपवास व्रत,एकादशीव्रत अथवा भीष्म पञ्चक व्रत करने वाले मनुष्य नरक में नहीं जाते हैं ।। २३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का नरकों का स्वरूप वर्णन नामक दो सौ तीनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २०३ ॥

अग्निदेव ने कहा– मैं तुम्हें सर्वोत्कृष्ट मासोपवास व्रत को बतला रहा हूँ । विष्णुयज्ञ करके आचार्य की आज्ञा लेकर कृच्छ्र आदि व्रतों के द्वारा अपने बल को जानकर मासोपवास व्रत

वानप्रस्थो यतिर्वाऽथ नारी वा विधवा मुने ॥ २ ॥ आश्विनस्यामले पक्ष एकादश्यामुपोषितः । व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु ॥ ३ ॥
अद्यप्रभृत्यहं विष्णो यावदुत्थानकं तव । अर्चये त्वामनश्नन्हि यावत्त्रिंशद्दिनानि तु ॥ ४ ॥ कार्तिकाश्विनयोर्विष्णो यावदुत्थानकं तव । म्रिये
यद्यन्तरालेऽहं व्रतभङ्गो न मे भवेत् ॥ ५ ॥ त्रिकालं पूजयेद्विष्णुं त्रिःस्नातो गन्धपुष्पकैः । विष्णोर्गीतादिकं जप्यं ध्यानं कुर्याद्व्रती नरः ॥ ६ ॥
वृथावादं परिहरेदर्थाकाङ्क्षां विवर्जयेत् । नाव्रतस्थं स्पृशेत्कंचिद्विकर्मस्थान्न चालयेत् ॥ ७ ॥ देवतायतने तिष्ठेद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु । द्वादश्यां
पूजयित्वा तु भोजयित्वा द्विजान्व्रती ॥ ८ ॥ समाप्य दक्षिणां दत्त्वा पारणं तु समाचरेत् । भुक्तिमुक्तिमवाप्नोति कुर्यात् तां तु त्रयो दशीम् ॥ ९॥
कारयेद्वैष्णवं यज्ञं यजेद्विप्रांस्त्रयोदश । तावन्ति वस्त्रयुग्मानि (णि) भाजनान्यासनानि च ॥ १० ॥ छत्राणि सपवित्राणि तथोपानद्युगानि च ।
योगपट्टोपवीतानि दद्याद्विप्राय तैर्मतः ॥ ११ ॥ अन्यविप्राय शय्यायां हैमं विष्णुं प्रपूज्य च । आत्मनश्च तथा मूर्तिं वस्त्राद्यैश्च प्रपूजयेत् ॥ १२ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विप्रविष्णुप्रसादतः । विष्णुलोकं गमिष्यामि विष्णुरेव भवाम्यहम् ॥ १३ ॥ व्रज व्रज देवबुद्धे विष्णोः स्थानमनामयम् ।
विमानेनामलस्तत्र तिष्ठ विष्णुस्वरूपधृक् ॥ १४ ॥ द्विजानुक्त्वाऽथ तां शय्यां गुरवेऽथ निवेदयेत् । कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं नयेद्व्रती॥१५॥
मासोपवासी यद्देशे स देशो निर्मलो भवेत् । किं पुनस्तत्कुलं सर्वं यत्र मासोपवासकृत् ॥ १६ ॥ व्रतस्थं मूर्च्छितं दृष्ट्वा क्षीराज्यंचैव पाययेत् । नैते

करना चाहिए ।। १ ।। वानप्रस्थ, अथवा संन्यासी अथवा कोई विधवा स्त्री आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में एकादशी के दिन उपवास करे । और तीस दिन तक चलने वाले इस व्रत को प्रारम्भ करे।।२-३।। हे भगवन्! विष्णु आज से लेकर विष्णु उत्थान एकादशी पर्यन्त विना भोजन किए ही तीस दिन तक आपकी अर्चना करूँगा ।। ४ ।। आश्विन से लेकर कार्तिक मास के आपके जगने वाली एकादशी के बीच में ही यदि मैं मर भी जाऊँ तो मेरा व्रत भंग न हो ।। ५ ।। व्रती को चाहिए कि वह तीनों कालों में स्नान करके तीनों कालों में भगवान् विष्णु की अर्चना करे चन्दन तथा पुष्प आदि से करे तथ विष्णु सम्बन्धी गान, जप और ध्यान करे । इसे किसी के साथ विवाद नहीं करना चाहिए और न तो धन की इच्छा करनी चाहिए । उसे किसी भी व्रतहीन मनुष्य का स्पर्श नहीं करना चाहिए और न तो शास्त्र निषिद्ध कर्मों में लगे हुए मनुष्यों को किसी भी प्रकार की प्रेरणा देनी चहिए ।। ६-७ ।। उसे तीस दिन तक देवमन्दिर में ही रहना चाहिए। कार्तिक शुक्ल द्वादशी के दिन श्रीभगवान् की पूजा करके ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे और उसके पश्चात् स्वयं पारण करे । इस तरह से तेरह पूर्ण मासेपवास व्रत करने वाला मनुष्य भोग एवं मोक्ष को प्राप्त कर लेता है । व्रत के अन्त में विष्णु याग करे और तेरह ब्राह्मणों का पूजन करे ।। ८-९ ।। उसके पश्चात् उन ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर किसी ब्राह्मण को तेरह ऊर्ध्व वस्त्र अधोवस्त्र, पात्र, आसन, छत्र, पवित्री, पादुका, योग पट्ट और यज्ञोपवीतों का दान करें ।। १०-११ ।। उसके पश्चात् अपनी तथा श्रीविष्णु की स्वर्णमयी प्रतिमा का पूजन करके,उसे किसी दूसरे ब्राह्मण को दान करे और उस ब्राह्मण का वस्त्र आदि से सत्कार करे ।। १२ ।। इसके पश्चात् व्रती यह कहें कि-'मैं समस्त पापों से मुक्त होकर ब्राह्मण एवं विष्णु भगवान् की कृपा से मैं विष्णुलोक को प्राप्त करूँगा तथा विष्णु स्वरूप हो जाऊँगा ।। १३ ।। इसके उत्तर में ब्राह्मणों को यह कहन चाहिए कि- हे देवबुद्धि ! तुम भगवान् विष्णु के रोग-शोक रहित लोक में जाओ और विष्णु स्वरूप होकर और निर्मल तुम विमान में प्रतिष्ठित होओ ।। १४ ।। ब्राह्मणों से इस प्रकार कहकर व्रती उस शय्या को आचार्य को दान में दे दे । इस प्रकार का व्रती अपनी सौ पीढ़ी का उद्धार करके स्वयं विष्णुलोक को जाता है ।। १५ ।। मासोपवास व्रत करने वाला जिस देश में रहता है, वह देश निर्मल हो जाता है । जिस वंश में मासोपवास करने वाला पुरुष होता है,उस वंश के विषय में क्या कहना है ?।। १६ ।। व्रती यदि मूर्छित हो जाय तो उसे दुग्ध तथा घी ही पिलाना चाहिए। इससे व्रत की क्षति नहीं होती है क्योंकि ब्राह्मणों के द्वारा अनुमोदित

व्रतं विनिघ्नन्ति हविर्बिप्रानुमोदितम् ॥ १७ ॥ क्षीरं गुरोर्हितौषध्य आपोमूलफलानि च । विष्णुर्महौषधं कर्ता व्रतमस्मात्समुद्धरेत् ॥ १८॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मासोपवासव्रतकथनं नाम चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०४ ॥

अथ पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

भीष्मपञ्चकव्रतम्

अग्निरुवाच– **भीष्मपञ्चकमाख्यास्ये व्रतराजं तु सर्वदम् । कार्तिकस्यामले पक्ष एकादश्यां समाचरेत् ॥ १ ॥ दिनानि पञ्च त्रिःस्नायी पञ्चव्रीहितिलैस्तथा । तर्पयेद्देवपित्रादीन्मौनी सम्पूजयेद्धरिम् ॥ २ ॥ पंचगव्येन संस्नाप्य देवं पञ्चामृतेन च । चन्दनाद्यैः समालिप्य गुग्गुलं सघृतं दहेत् ॥ ३ ॥ दीपं दद्याद्दिवारात्रौ नैवेद्यं परमान्नकम् । ॐ नमो वासुदेवाय जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥ ४ ॥ जुहुयाच्च घृताभ्यक्तांस्तिलव्रीहींस्ततो व्रती। द्वादशाक्षर मन्त्रेण स्वाहाकारान्वितेन च ॥ ५ ॥ कमलैः पूजयेत्पादौ द्वितीये बिल्वपत्रकैः । जानुसक्थि तृतीयेऽथ नाभिं भृङ्गरजेन तु ॥ ६ ॥ बाणबिल्वजपाभिस्तु चतुर्थे पञ्चमेऽहनि । मालत्या भूमिशायी स्यादेकादस्यां तु गोमयम् ॥ ७ ॥ गोमूत्रं दधि दुग्धं च पञ्चमे पञ्चगव्यकम् । पौर्णमास्यां चरेन्नक्तं भुक्तिं मुक्तिं लभेद्व्रती ॥ ८ ॥ भीष्मः कृत्वा हरिं प्राप्तस्तेनैव भीष्मपञ्चकम् । ब्रह्मणः पूजनाद्यैश्च उपवासादिकं व्रतम् ॥ ९॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये भीष्मपञ्चकव्रतकथनं नाम पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०५ ॥

इन वस्तुओं से व्रत की क्षति नहीं होती है । हविष्य, दुग्ध, आचार्य की आज्ञा से ली हुई औषधि, जल, मूल और फल । इस व्रत में भगवान् विष्णु ही महौषध हैं इसी विश्वास से व्रती व्रत पूर्ण कर पाता है ।। १६-१८ ।।

इस प्रकार आदिमहापुराण अग्निपुराण का मासोपवास व्रत वर्णन नामक दो सौ चौथा अध्यायसम्पूर्ण हुआ ॥ २०४ ॥

अग्निदेव ने कहा– मैं सब कुछ प्रदान करने वाले भीष्मपञ्चक व्रत का वर्णन कर रहा हूँ, इस व्रत को कार्तिक शुक्ल एकादशी के दिन करना चाहिए ।। १ ।। व्रती पुरुष पाँच दिनों तक त्रिकाल स्नान करके पञ्चव्रीहि से देवताओं की तथा तिल से पितरों की अर्चना करे और मौन होकर श्रीहरि की विधिपूर्वक पूजा करे ।। २ ।। पञ्चगव्य तथा पञ्चामृत से श्रीभगवान् को स्नान कराकर उन्हें चन्दन आदि का लेप करें तथा घी एवं गुग्गुल की धूप दे ।। ३ ।। दिन में तथा रात्रि में दीप दे तथा खीर का भोग लगाए । 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्र का अष्टोत्तरशत जप करे ।। ४ ।। उसके पश्चात् व्रती घृत मिश्रित तिल तथा व्रीहि का हवन करे । इसके पश्चात् द्वादशाक्षर मन्त्र के अन्त में स्वाहा शब्द जोड़कर हवन करे । पहले दिन श्रीभगवान् के दोनों चरणों की पूजा कमलों से करे,दूसरे दिन उनके ऊरुओं की पूजा विल्वपत्रों से करे । तीसरे दिन उनकी नाभि की पूजा भृङ्गराज से करे ।। ५-६ ।। चौथे दिन बाणपुष्प, विल्वपत्र और जपापुष्पों द्वारा पूजन करे । पाँचवें दिन मालती पुष्प से श्रीभगवान् के सर्वाङ्ग का पूजन करना चाहिए । व्रत करने वाले को भूमि पर शयन करना चाहिए । उसे एकादशी को गोबर,द्वादशी को गोमूत्र, त्रयोदशी को दधि,चतुर्दशी को दुग्ध और अन्तिम दिन पञ्चगव्य का आहार करना चाहिए । उसे पूर्णिमा के दिन रात्रि में भोजन करना चाहिए । इस व्रत को करने वाला भोग तथा मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।। ७-८ ।। भीष्म जी ने इसी व्रत को करके भगवान् श्रीहरि को प्राप्त किया था इसीलिए इस व्रत को भीष्मपञ्चक कहते हैं । ब्रह्माजी ने भी पाञ्च दिन के उपवास वाले इस व्रत को करके श्रीहरि को प्राप्त किया था। इसीलिए यह व्रत पाञ्च उपवास आदि से युक्त है।। ९।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का भीष्मपञ्चक व्रत वर्णन नामक दो सौ पाँचवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २०५ ॥

अथ षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

अगस्त्यार्घ्यदानकथनम्

अग्निरुवाच– **अगस्त्यो भगवान्विष्णुस्तमभ्यर्च्याऽऽप्नुयाद्धरिम् । अप्राप्ते भास्करे कन्यां सत्रिभागैस्त्रिभिर्दिनैः ॥ १ ॥ अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय पूजयित्वा ह्युपोषितः। काशपुष्पमयीं मूर्तिं प्रदोषे विन्यसेद्घटे ॥ २ ॥ मुनेर्यजेत्तां कुम्भस्थां रात्रौ कुर्यात्प्रजागरम् । अगस्त्यमुनिशार्दूल तेजोराशे महामते ॥ ३ ॥ इमां मम कृतां पूजां गृह्णीष्व प्रियया सह । आवाह्यार्घ्यं च सांमुख्यं प्रार्चयेच्चन्दनादिना ॥ ४ ॥ जलाशयसमीपे तु प्रातर्नीत्वाऽर्घ्यमर्पयेत्। काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसंभव ॥ ५ ॥ मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते । आतापिर्भक्षितो येन वातापिश्च महासुरः॥६॥ समुद्रः शोषितो येन सोऽगस्त्यः संमुखोऽस्तु मे । अगस्तिं प्रार्थयिष्यामि कर्मणा मनसा गिरा ॥ ७ ॥ अर्चयिष्याम्यहं मैत्रं परलोकाभिकाङ्क्षया । द्वीपान्तरसमुत्पन्नं देवानां परमं प्रियम् ॥ ८ ॥ राजानं सर्ववृक्षाणां चन्दनं प्रतिगृह्यताम् । धर्मार्थकाममोक्षाणां भाजनी पापनाशनी ॥ ९ ॥ सौभाग्यारोग्यलक्ष्मीदा पुष्पमाला प्रगृह्यताम् । धूपोऽयं गृह्यतां देव भक्तिं मे ह्यचलां कुरु ॥ १० ॥ ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च शुभां गतिम् । सुरासुरैर्मुनिश्रेष्ठ सर्वकामफलप्रद ॥ ११ ॥ वस्त्रव्रीहिफलैर्हेम्ना दत्तस्त्वर्घ्यो ह्ययं मया । अगस्त्यं बोधयिष्यामि यन्मया मनसोद्धृतम् ॥१२॥ फलैरर्घ्यं प्रदास्यामि गृहाणार्घ्यं महामुने । अगस्त्य एवं खननाद्धरित्रीं पूजामपत्यं बलमीहमानः । उभौ कर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो वै**

अग्निदेव ने कहा– अगस्त्य भगवान् विष्णुस्वरूप हैं,उनकी अर्चना करके श्रीहरि को प्राप्त किया जा सकता है । जब भगवान् सूर्य कन्याराशि पर नहीं हों । उससमय साढ़े तीन दिन का उपवास करे ।। १ ।।उपवास करके अगस्त्य मुनि की पूजा करके उनको अर्घ्य प्रदान करना चाहिए । प्रदोष काल में अगस्त्य मुनि की काशपुष्पमयी मूर्ति की कलश पर स्थापना करनी चाहिए।।२।। कुम्भ पर विद्यमान मुनि की पूजा करके रात्रि में जागरण करना चाहिए । अगस्त्य मुनि का आवाहन इस मन्त्र से करना चाहिए- **अगस्त्य मुनि शार्दूल तेजोराशे महामते । इमां मम कृतां पूजां गृह्णीष्व प्रियया सह ।** अर्थात् हे मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य आप तेज की राशि तथा महाबुद्धिमान् हैं । अपनी पत्नी के साथ मेरे द्वारा की गयी पूजा को आप स्वीकार करें । इस तरह सेआवाहन करके अर्घ्य देकर उनकी चन्दन आदि से पूजा करनी चाहिए ।। ३-४ ।। प्रातःकाल अगस्त्य महर्षि की मूर्ति को जलाशय के समीप लाकर उन्हें अर्घ्य प्रदान करना चाहिए । अर्घ्य देने का मन्त्र है- **काशपुष्प प्रतीकाश अग्निमारुतसंभव। मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोस्तु ते ।** अर्थात् काश पुष्प के समान वर्ण वाले ! अग्नि और वायु से उत्पन्न ! मित्रा वरुण के पुत्र ! कुम्भयोनि ! आपको नमस्कार है ।। ५ ।। फिर अगस्त्य मुनि की प्रार्थना करते हुए कहना चाहिए कि जिन्होंने महान् राक्षस अतापी तथा वातापी का भक्षण किया तथा जिन्होंने समुद्र को सोख लिया वे अगस्त्य मुनि मेरे पर प्रसन्न होएँ । मैं मन, वाणी और कर्म से अगस्त्य मुनि की प्रार्थना करता हूँ ।। ६-७ ।। मैं महर्षि अगस्त्य की पूजा परलोक प्राप्ति की कामना से कर रहा हूँ । महर्षि को चन्दन चढ़ाते समय कहना चाहिए कि- दूसरे द्वीप में उत्पन्न होने वाले,देवताओं को अत्यन्त प्रिय सभी वृक्षों के राजा चन्दन को आप स्वीकार करें ।। ८ ।। धर्म,अर्थ, काम एवं मोक्ष के पात्र, पापों को विनष्ट करने वाली सौभाग्य, आरोग्य तथा लक्ष्मी को प्रदान करने वाली माला को आप स्वीकार करें ।। ९ ।। धूप देते कहना चाहिए कि- हे देव ! इस धूप को आप स्वीकार करें मेरी भक्ति को अचल बनाएँ,मेरे लिए अभिलषित वर प्रदान करें तथा परलोक में शुभ गति प्रदान करें ।। १० ।। हे देव असुर तथा मुनियों में श्रेष्ठ ! सम्पूर्ण अभिलषित फल प्रदान करने वाले,वस्त्र, यव, फल तथा सुवर्ण से युक्त मेरे द्वारा किये गए अर्घ्य को आप स्वीकार करें। जो मेरे मन में है वह यह है कि मैं अगस्त्य मुनि को जगाऊँगा ।। ११-१२ ।। फिर कहना चाहिए कि मैं फलों से अर्घ्य प्रदान कर रहा हूँ महामुनि उसे आप स्वीकार करें । अगस्त्य मुनि को अर्घ्य प्रदान करने का वैदिक मन्त्र यह है- **अगस्त्य एव रवननाद्** ....

जगाम ॥ १३ ॥ राजपुत्रि नमस्तुभ्यं मुनिपत्नि महाव्रते । अर्घ्यं गृह्णीष्व देवेशि लोपामुद्रे यशस्विनि ॥ १४ ॥ पञ्चरत्नसमायुक्तं हेमरूप्यसमन्वितम्। सप्तधान्यवृतं पात्रं दधिचन्दनसंयुतम् ॥ १५ ॥ अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय स्त्रीशूद्राणामवैदिकम् । अगस्त्य मुनिशार्दूल तेजोराशे च सर्वद ॥ १६ ॥ इमां मम कृतां पूजां गृहीत्वा व्रज शान्तये । त्यजेदगस्त्यमुद्दिश्य धान्यमेकं फलं रसम् ॥ १७ ॥ ततोऽन्नं भोजयेद्विप्रान्घृतपायसमोदकान्। गां वासांसि सुवर्णं च तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ १८ ॥ घृतपायसयुक्तेन पात्रेणाऽऽछादिताननम्। सहिरण्यं च तं कुम्भं ब्राह्मणायोपकल्पयेत्॥१९॥ सप्तवर्षाणि दत्त्वाऽर्घ्यं सर्वे सर्वमवाप्नुयुः। नारी पुत्रांश्च सौभाग्यं पतिं कन्यां नृपो भुवम् ॥ २० ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽगस्त्यार्घ्यदानकथनं नाम षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०६ ॥

अथ सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

कौमुदव्रतम्

अग्निरुवाच— **कौमुदाख्यं मयोक्तं च चरेदाश्वयुजे सिते । हरिं यजेन्मासमेकमेकादश्यामुपोषितः ॥ १ ॥ आश्विने शुक्लपक्षेऽहमेकाहारो हरिं जपन् । मासमेकं भुक्तिमुक्त्यै करिष्ये कौमुदं व्रतम् ॥ २ ॥ उपोष्य विष्णुं द्वादश्यां यजेद्देवं विलिप्य च । चन्दनागुरुकाश्मीरैः कमलोत्पलपुष्पकैः॥३॥**

वै जगाम ॥ १५ ॥ अर्थात् अगस्त्य महर्षि प्रजा सन्तति, बल एवं पुष्टि के सचेष्ट होकर कुदाल या खनित्र से धरती को खोदते रहे । उन तेजस्वी ऋषि ने दोनों प्रकार की इन्दियों (ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय) का पोषण किया । देवताओं के प्रति उनकी सारी आशीः प्रार्थना सत्य हुई ।। १३ ।। इसके पश्चात् लोपामुद्रा को इस मन्त्र से अर्घ्य प्रदान करें । महान व्रत का पालन करने वाली राजपुत्री अगस्त्य की पत्नी देवेश्वरी लोपामुद्रा को नमस्कार है आप मेरे अर्घ्य को स्वीकार करें ।। १४ ।। अगस्त्य महर्षि के लिए पञ्चरत्न, सुवर्ण एवं रजत से युक्त एवं सप्तधान्य से पूर्णपात्र एवं दधि तथा चन्दन से युक्त अर्घ्य प्रदान करे । स्त्रियों एवं शूद्रों को 'काश पुष्प प्रतीकाशा' इत्यादि पौराणिक मन्त्रों से ही अर्घ्य देना चाहिए।। १५ ।। अगस्त्यमुनि का विसर्जन करते समय कहना चाहिए- हे मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य ! आप तेजःपुञ्ज से प्रकाशित और सब कुछ देने वाले हैं । मेरे द्वार की गयी इस पूजा को ग्रहण कर आप शान्तिपूर्वक पधारिए ।। १६ ।। इस प्रकार अगस्त्य मुनि का विसर्जन करके उनके उद्देश्य से किसी एकधान्य, फल और रस का त्याग करना चाहिए । उसके पश्चात् ब्राह्मणों को धृतमिश्रित खीर ओर लड्डू आदि पदार्थों का भोजन कराना चाहिए और उन्हें गौ, वस्त्र, सुवर्ण एवं दक्षिणा देनी चाहिए ।। १७-१८ ।। उसके पश्चात् उस कुम्भ को धृतमिश्रित खीर से युक्त पात्र से ढँककर,उसमें सुवर्ण रखकर,वह कलश ब्राह्मण को दान दे देना चाहिए । इस प्रकार सात वर्षों तक अगस्त्य को अर्घ्य देकर कोई भी मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है । इसके द्वारा कोई भी स्त्री सौभाग्य एवं पुत्रों को, कन्या पति को और राजा पृथिवी को प्राप्त कर सकता है ।। १९-२० ।।

इस प्रकार आदिमहापुराण अग्निपुराण का अगस्त्य ऋषि के लिए अर्घ्य दान विधि का वर्णन नामक दो सौ छठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २०६ ॥

अग्निदेव ने कहा– वसिष्ठ ! अब मैं तुम्हें कौमुदव्रत को बतला रहा हूँ ।। इस व्रत को आश्विन शुक्ल में प्रारम्भ किया जाता है ।एकादशी के दिन उपवास करके एक मास तक श्रीहरि का पूजन करना चाहिए ।। १ ।। उस समय यह संकल्प करना चाहिए कि आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में एक समय भोजन करके, भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए एक मास तक मैं कौमुदव्रत करूँगा ।। २ ।। उसके पश्चात् व्रत समाप्त होने पर एकादशी के दिन उपवास करना चाहिए और द्वादशी के दिन भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए । भगवान् के श्रीविग्रह में चन्दन, अगर

कह्लारैर्वाऽथ मालत्या दीपं तैलेन वाग्यतः । अहोरात्रं च नैवेद्यं पायसापूपमोदकैः ॥ ४ ॥ ओं नमो वासुदेवाय विज्ञाप्याथ क्षमापयेत् । भोजनादि द्विजे दद्याद्यावद्देवः प्रबुध्यते ॥ ५ ॥ तावन्मासोपवासः स्यादधिकं फलमप्यतः ॥ ६ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कौमुदव्रतकथनं नाम सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०७ ॥

अथाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्रतदानादिसमुच्चयः

अग्निरुवाच– व्रतदानानि सामान्यं प्रवदामि समासतः । तिथौ प्रतिपदादौ च सूर्यादौ कृत्तिकासु च ॥ १ ॥ विष्कु (ष्क) म्भादौ च मेषादौ काले च ग्रहणादिके। यत्काले यद्व्रतं दानं यद्द्रव्यं नियमादि यत् ॥ २ ॥ तद्द्रव्याख्यं च कालाख्यं सर्वं वै विष्णुदैवतम् । रवीशब्रह्म लक्ष्म्याद्याः सर्वे विष्णोर्विभूतयः ॥ ३॥ तमुद्दिश्य व्रतं दानं पूजादि स्यात्तु सर्वदम् । जगत्पते समागच्छ आसनं पाद्यमर्घ्यकम् ॥ ४ ॥ मधुपर्कं तथाऽऽचामं स्नानं वस्त्रं च गन्धकम् । पुष्पं धूपश्च दीपश्च नैवेद्यादि नमोऽस्तु ते ॥ ५ ॥ इति पूजाव्रते दाने दानवाक्यं समं शृणु । अद्यामुकसगोत्राय विप्रायामुकशर्मणे ॥ ६ ॥ एतद्द्व्यं विष्णुदैवं सर्वपापोपशांतये । अयुरारोग्यवृद्ध्यर्थं विजयाय धनाय च । धर्मायैश्वर्यकामाय तत्पापशमनाय च॥ ८॥ संसारमुक्तये दानं तुभ्यं संप्रददे ह्यहम्। एतद्दानप्रतिष्ठार्थं तुम्यमेतद्ददाम्यहम् ॥ ९ ॥ एतेन प्रीयतां नित्यं सर्वलोकपतिः प्रभुः। यज्ञदानव्रतपते

और केसर का लेप करके, कज्जल, उत्पल, कल्हार एवं मालती पुष्पों से विष्णु भगवान् की पूजा करनी चाहिए । व्रती को चाहिए कि मौन रहकर तैल पूर्ण दीपक प्रज्ज्वलित करे और दोनों समय खीर मालपूआ, लड्डुओं का नैवेद्य समर्पित करे ।। ३-४ ।। उसके पश्चात् 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय इस मन्त्र का जप करके भगवान् से क्षमा प्रार्थना करे । उसके पश्चात् तब तक ब्राह्मण को भोजन आदि का दान करे जब तक प्रबोधिनी एकादशी न आ जाय। इस व्रत के द्वारा मासोपवास करने से अधिक फल की प्राप्ति होती है ।। ५-६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का कौमुदव्रत वर्णन नामक दो सौ सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २०७ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं सामान्य रूप से व्रतों एवं दानों का वर्णन संक्षेप में कर रहा हूँ । प्रतिपदा आदि तिथियों में,रविवार आदि दिनों में, कृत्तिका आदि नक्षत्रों में; विष्कुम्भ आदि योगों में, मेष आदि राशियों में तथा ग्रहण आदि के समय में, जिस समय में जो व्रत करना चाहिए तथा जिस द्रव्य का दान देना चाहिए तथा जिस नियम को करना चाहिए वे सभी द्रव्य सभी काल विष्णुदैवत होते हैं। अर्थात् उनके देवता भगवान् विष्णु होते हैं ।। १-२ ।। सूर्य, शिव, ब्रह्मा तथा लक्ष्मी आदि सभी भगवान् विष्णु की विभूतियाँ हैं, अतएव भगवान् विष्णु के उद्देश्य से किया गया व्रत, दान तथा पूजा आदि सब कुछ प्रदान करने वाला होता है । पूजक को यह प्रार्थना करनी चाहिए कि- हे जगत् स्वामिन् ! आप आइये,आसन, पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क,आचमन, स्नान, वस्त्र, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य आदि स्वीकार करें, आपको नमस्कार है ।। ३-५ ।। पूजा व्रत और दान में उपर्युक्त मन्त्र से भगवान् विष्णु की पूजा करे । अब दान का सामान्य संकल्प सुनो । आज मैं अमुक गोत्र वाले, अमुक शर्मा आप ब्राह्मण देवता को समस्त पापों की शान्ति आयु और आरोग्य वृद्धि, सौभाग्य के उदय,गोत्र एवं संतति संसार से मुक्ति प्राप्त करने के लिए विष्णु देवता सम्बन्धी इस द्रव्य का दान करता हूँ ।। ६-८ ।। मैं इस दान की प्रतिष्ठा के लिए आपको यह अतिरिक्त सुवर्ण आदि द्रव्य समर्पित करता हूँ । मेरे इस दान से सर्वल्लोकेश्वर भगवान् श्रीहरि सदा प्रसन्न हों । यज्ञ, धन और व्रतों के स्वामी मुझे विद्या एवं यश आदि प्रदान करें । मुझे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षरूपी चारों पुरुषार्थों तथा मनोऽभिलषित वस्तुओं से

विद्याकीर्त्यादि देहि मे ॥ १० ॥ धर्मकामार्थमोक्षांश्च देहि मे मनसेप्सितम् यः पठेच्छृणुयान्नित्यं व्रतदानसमुच्चयम् ॥ ११ ॥ स प्राप्तकामो विमलो भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् । तिथिवारर्क्षसंक्रान्तियोगमन्वादिकं व्रतम् ॥ नैकधा वासुदेवादेर्नियमात्पूजनाद्भवेत् ॥ १२ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये व्रतदानसमुच्चयकथनं नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०८ ॥

नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः

दानपरिभाषाकथनम्

अग्निरुवाच– **दानधर्मान् प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदान् शृणु । दानमिष्टं तथा पूर्त्तं धर्मं कुर्वन् हि सर्वभाक् ॥ १ ॥ वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च । अन्नप्रदानमारामाः पूर्त्तं धर्मं च मुक्तिदम् ॥ २ ॥ अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानाञ्चानुपालनम् । आतिथ्यं वैश्वदेवञ्च प्राहुरिष्टञ्चनाकदम् ॥ ३ ॥ ग्रहोपरागे यद्दानं सूर्य्यसङ्क्रमणेषु च । द्वादश्यादौ च यद्दानं पूर्त्तं तदपि नाकदम् ॥ ४ ॥ देशे काले च पात्रे च दानं कोटिगुणं भवेत् । अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ॥ ५ ॥ युगादिषु च सङ् क्रान्तौ चुर्दश्यष्टमीषु च । सितपञ्चदशीसर्व द्वादशीष्वष्टकासु च ॥ ६ ॥ यज्ञोत्सवविवाहेषु तथा मन्वन्तरादिषु । वैधृते दुष्टदुःस्वप्ने द्रव्यब्राह्मणलाभत ॥ ७ ॥ श्रद्धा वा यद्दिने तत्र सदा वा दानमिष्यते । अयने द्वे विषुवे द्वे चतस्रः षडशीतयः ॥ ८ ॥ चतस्रो विष्णुपद्यश्च सङ् क्रान्त्यो द्वादशोत्तमाः । कन्यायां मिथुने मीने धनुष्यपिरवेर्गतिः ॥ ९ ॥ षडशीतिमुखाः प्रोक्ताः षडशीतिगुणाः फलैः ।**

सम्पन्न करें ।। १० ।। जो व्यक्ति व्रतदान समुच्चय का नित्यपाठ करता है वह अपने समस्त अभिलषित वस्तुओं को प्राप्त कर भोग एवं मोक्ष को प्राप्त करता है । तिथि, वार, नक्षत्र संक्रान्ति, योग तथा मन्वन्तर आदि के व्रत भगवान् वासुदेव के अनेक बार पूजन करने से सिद्ध होते हैं ।। ११-१२ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का व्रतदान समुच्चय नामक दो सौ आठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २०८ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले दानधर्मों का वर्णन कर रहा हूँ, उन्हें तुम सुनो । दान के दो भेद होते हैं, इष्ट और पूर्त । दानधर्म का आचरण करने वाला सब कुछ प्राप्त कर लेता है ।। १ ।। बावली, कुआँ, तालाब, देवमन्दिर, अन्न का सदावर्त करना एवं बगीचे आदि बनवाना ये सब मोक्ष प्रदान करने वाले पूर्तधर्म कहलाते हैं ।। २ ।। अग्निहोत्र करना, सत्य बोलना, वेदाध्ययन करना, अतिथि सत्कार करना तथा बलिवैश्वदेव करना ये स्वर्गलोक प्रदान करने वाले इष्टधर्म कहे गए हैं ।। ३ ।। ग्रहण काल में सूर्य की संक्रान्ति होने पर तथा द्वादशी आदि तिथियों में जो दान दिया जाता है वह स्वर्ग प्रदान करने वाला पूर्त धर्म कहलाता है ।। ४ ।। देश, काल और पात्र के अनुसार दिया गया दान करोड़ गुना फल देने वाला होता है । सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन प्रवेश के समय पुण्यमय विषुव काल में व्यतीपात, तिथिक्षय, युगारम्भ, संक्रान्ति, चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, द्वादशी, अष्टकाश्राद्ध, यज्ञ, उत्सव, विवाह, मनवन्तरारम्भ, वैधृतियोग, दुःस्वप्नदर्शन, धन एवं ब्राह्मण की प्राप्ति के समय दान देना चाहिए अथवा जिस दिन श्राद्ध हो उस दिन या सर्वदा दान दिया जा सकता है ।। ५-७ ।। दोनों अयन और दोनों विषुव ये चार संक्रान्तियाँ, 'षडशीतिमुखा' नाम से प्रसिद्ध चार संक्रान्तियाँ- ये बारह संक्रान्तियाँ ही दान के लिए उत्तम बतलाई गयी हैं ।। ८ ।। कन्या, मिथुन, मीन और धनु राशियों में जो सूर्य की संक्रान्तियाँ होती हैं वे षडशीति मुखा कही जाती हैं और दिये गए दान का छियासी गुना फल देने वाली होती हैं ।। ९ ।। उत्तरायण और दक्षिणायन अर्थात् मकर एवं

अतीतानागते पुण्ये द्वे उदग्दक्षिणायने॥ १०॥ त्रिंशत् कर्कटके नाड्यो मकरेविंशतिः स्मृताः । वर्त्तमाने तुलामेषे नाड्यस्तूभयतो दश ॥ ११ ॥ षडशीत्यां व्यतीतायां षष्टिरुक्तास्तु नाडिकाः । पुण्याख्या विष्णुपद्याञ्च प्राक्पश्चादपि षोडश ॥ १२ ॥ श्रवणाश्विधनिष्ठासु नागदैवतमस्तके । यदा स्याद्रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते ॥ १३॥ नवम्यां शुलपक्षस्य कार्त्तिके निरगात् कृतम् । त्रेता सिततृतीयायां वैशाखे द्वापरं युगम् ॥ १४॥ दर्शे वै माघमासस्य त्रयोदश्यां नभस्यके । कृष्णकलिं विजानीयाज् ज्ञेया मन्वन्तरादयः॥ १५॥ अश्वयुकच्छुक्लनवमी द्वादशी कार्तिके तथा । तृतीया चैव माघस्य तथा भाद्रपदस्य च॥ १६॥ फाल्गुनस्याप्यमावास्या पौषस्यैकादशी तथा । आषाढ़स्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥ १७॥ श्रावणे चाष्टमी कृष्णा तथाषाढ़े च पूर्णिमा । कार्त्तिके फाल्गुने तद्वज् ज्यैष्ठे पञ्चदशी तथा ॥ १८ ॥ ऊर्ध्वे चैवाग्रहायण्या अष्टकास्तिस्त्र ईरिताः। अष्टकाख्या चाष्टमी स्यादासुदानानि चाक्षयम् ॥ १९ ॥ गयागङ्गाप्रयागादि तीर्थे देवालयादिषु । अप्रार्थितानि दानानि विद्यार्थं कन्यका न हि॥२०॥ दद्यात् पूर्वमुखो दानं गृह्णीयादुत्तरामुखः । आयुर्विवर्द्धते दातुर्ग्रहीतुः क्षीयते न तत् ॥ २१॥ नाम गोत्रं समुचार्य्य सम्प्रदानस्य चात्मनः। सम्प्रदेयं प्रयच्छन्ति कन्यादाने पुनस्त्रयम् ॥ २२ ॥ स्नात्वाभ्यर्च्य व्याहृतिभिर्दद्याद् दानन्तु सोदकम् । कनकाश्वतिला नागा दासीरथमहीगृहाः॥२३॥ कन्या च कपिला धेनुर्महादानानि वै दश । श्रुतशौर्यतपः कन्यायाज्यशिष्यादुपागतम्॥ २४ ॥ शुल्कं धनं हि सकलं शुल्कं शिल्पानुवृत्तितः । कुशीदकृषिवाणिज्यप्राप्तं यदुपकारतः ॥ २५ ॥ पाशकद्यूतचौर्यादि प्रतिरूपकसाहसैः । व्याजेनोपार्जितं कृत्स्नं त्रिविधं त्रिविधं फलम् ॥ २६॥

कर्क राशि की संक्रान्तियों के अतीत और अनागत अर्थात् पूर्व तथा पर घटिकाएँ पुण्यमयी होती हैं ।। १० ।। कर्क की संक्रान्ति की तीस-तीस घड़ी और मकर की संक्रान्ति की बीस-बीस घड़ी पूर्व और पर की दान के लिए विहित हैं । तुला और मेष की संक्रान्ति के वर्तमान होने पर उसके पूर्व और पर की दस-दस घड़ियाँ पुण्यकाल मानी गयी हैं ।। ११ ।। षड्सीतिमुखा संक्रान्तियों के व्यतीत होने पर साठ घड़ी का समय पुण्यकाल माना गया है। विष्णुपदा के नाम से प्रख्यात् संक्रान्तियों के पूर्व एवं पर की सोलह-सोलह घड़ियों को पुण्य काल माना जाता है ।। १२ ।। श्रवण, अश्विनी, धनिष्ठा एवं आश्लेषा के प्रथम चरण में जब रविवार का योग होता है तो उसे व्यतीपात योग कहते हैं ।। १३ ।। कार्तिक के शुक्लपक्ष की नवमी को सत्ययुग तथा वैशाख के शुक्लपक्ष की तृतीया को त्रेता युग प्रारम्भ हुआ, माघ की अमावश्या को द्वापर युग तथा भाद्रकृष्ण त्रयोदशी को कलियुग की उत्पत्ति जाननी चाहिए । मनवन्तरों का आरम्भ काल इस प्रकार जाननी चाहिए- आश्विन के शुक्लपक्ष की नवमी, कार्तिक की द्वादशी, माघ तथा भाद्रपद की तृतीया, फाल्गुन की अमावस्या, पौष की एकादशी, आषाढ़ की दशमी, माघ की सप्तमी, श्रावण मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी, आषाढ़ की पूर्णिमा, कार्तिक, फल्गुन एवं ज्येष्ठ की पूर्णिमा ।। १४-१८ ।। अगहन (मार्गशीर्ष) की पूर्णिमा के बाद जो तीन अष्टमी तिथियाँ आती हैं उन्हें तीन अष्टका कहा गया हैं । अष्टमी का नाम अष्टका है इन अष्टकाओं में दिया हुआ दान अक्षय फल देने वाला होता है ।। १९ ।। गया, गंगा औ प्रयाग आदि तीर्थों में, तथा मन्दिरों में किसी के बिना माँगे दिया हुआ दान उत्तम होता है ।। २० ।। दाता को पूर्वाभिमुख होकर दान देना चाहिए ओर ग्रहीता को उत्तराभिमुख होकर दान लेना चाहिए ऐसा करने से दान देने वाले की आयु बढ़ती है किन्तु दान लेने वाले की आयु क्षीण नहीं होती है ।। २१ ।। अपने और दान लेने वाले के नाम एवं गोत्र का दिए जाने वाली वस्तु का दान किया जाता है । कन्यादान में दाता एवं ग्रहीता के नाम एवं गोत्र का तीन बार उच्चारण किया जाता है ।। २२ ।। स्नान तथा पूजन करके हाथ में जल लेकर व्याहृतियों (भूर्भुवः स्वः) का उच्चारण करके संकल्पपूर्वक दान देना चाहिए। सुवर्ण, घोड़ा, तिल, हाथी, दासी, रथ, भूमि, गृह, कन्या तथा कपिला गौ का दान ये दस महादान हैं ।। २३ ।। विद्या, पराक्रम, तपस्या, कन्या, यजमान और शिष्य से मिला हुआ सम्पूर्ण धन दान नहीं, शुल्क रूप है । शिल्प कला से प्राप्त धन भी शुल्क स्वरूप ही होता है ।। २४ ।। व्याज, खेती, व्यापार और दूसरे का उपकार करके प्राप्त किया हुआ धन; पासे, जूए, चोरी आदि प्रतिरूपक और साहसपूर्ण कर्म से उपार्जित धन; तथा छल-कपट से पाया हुआ धन ये तीनों प्रकार के धन क्रमशः सात्विक राजस् एवं तामस् फल देने वाले होते हैं ।। २५-२६ ।।

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तञ्चप्रीतिकर्मणी । भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधंस्त्रीधनं स्मृतम् ॥ २७ ॥ ब्रह्मक्षत्रविशां द्रव्यं शूद्रस्यैषामनुग्रहात् । बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः ॥ २८ ॥ कुलानान्तु शतं हन्यादप्रयच्छन् प्रतिश्रुतम् । देवानाञ्च गुरुणाञ्च मातापित्रोस्तथैव च ॥ २९ ॥ पुण्यं देयं प्रयत्नेन यत् पुण्यञ्चार्जितं क्वचित् । प्रतिलाभेच्छयादत्तं यद्धनं तदपार्थकम् ॥ ३० ॥ श्रद्धया साध्यते धर्मो दत्तं वार्य्यपि चाक्षयम् । ज्ञानशीलगुणोपेतः परपीडावहिष्कृतः ॥ ३१ ॥ अज्ञानां पालनात् त्राणात् तत् पापं परमं स्मृतम् । मातुः शतगुणं दानं सहस्रं पितुरुच्यते ॥ ३२॥ अनन्तं दुहितुर्दानं सोदर्ये दत्तमक्षयम् । अमनुष्ये समं दानं पापे ज्ञेयं महाफलम् ॥ ३३॥ वर्णसंङ्करे द्विगुणं शूद्रं दानं चतुर्गुणम् । वैश्ये चाष्टगुणं क्षत्रे षोडशत्वं द्विजब्रुवे ॥ ३४ ॥ वेदाध्याये शतगुणमनन्तं वेदबोधके। पुरोहिते याजकादौ दानमक्षयमुच्यते ॥ ३५ ॥ श्रीविहीनेषु यद् दत्तं तदनन्तं च यज्वनि । अतपस्यनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ॥ ३६॥ अभ्यस्यश्मप्लवेनैव सह तेनैव मज्जति । स्नातः सम्यगुपस्पृश्य गृह्णीयात् प्रयतः शुचिः॥३७॥ प्रतिग्रहीता सावित्रीं सर्वदैव प्रकीर्त्तयेत् । ततस्तु कीर्त्तयेत् सार्द्धं द्रव्येण सह दैवतम् ॥ ३८ ॥ प्रतिग्राहीपठेदुच्चैः प्रतिगृह्यद्विजोत्तमात्। मन्दं पठेत् क्षत्रियात् तु उपांशु च तथाविशः ॥ ३९ ॥ मनसा च तथा शूद्रात् स्वस्तिवाचनकं तथा। अभयं सर्वदैवत्यं भूमिर्वै विष्णु देवता ॥ ४०॥

(१) विवाह के समय अग्नि के समक्ष मिला हुआ, (२) ससुराल जाते समय प्रसन्नता के लिए प्राप्त हुआ (३) पति द्वारा दिया गया (४) भाई से मिला हुआ (५) माता से प्राप्त हुआ तथा (६) पिता से प्राप्त- ये छह प्रकार के धन स्त्री धन माने गए हैं ।। २७ ।। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों के अनुग्रह से प्राप्त हुआ धन शूद्र का होता है । गौ, घर, सौय्या तथा स्त्रियों का दान अनेक व्यक्तियों को नहीं देना चाहिए ।। २८ ।। प्रतिज्ञा करके फिर न देने से प्रतिज्ञाकर्ता के सौ कुलों का नाश हो जाता है । कहीं पर भी अर्जित किया हुआ पुण्य देवता, आचार्य एवं माता-पिता को प्रयत्न पूर्वक समर्पित कर देना चाहिए । दूसरे लाभ की इच्छा रखकर किये गये धन का दान व्यर्थ होता है ।। २९-३० ।। धर्म की सिद्धि श्रद्धा से होती है । श्रद्धापूर्वक दिया गया जल भी अक्षय, फल देने वाला होता है । जो ज्ञान, शील और सद्गुणों से सम्पंत्र हो एवं दूसरों को कभी पीड़ा न पहुँचाता हो वह दान का उत्तम पात्र माना जाता है ।। ३१ ।। माता को दिया हुआ दान सौ गुना तथा पिता को दिया हुआ दान हजार गुना फल देने वाला होता है । पुत्री को दिया हुआ दान अनन्त फल देने वाला होता है । पुत्री को दिया हुआ दान अनन्त फल देने वाला तथा सहोदर भाई को दिया हुआ दान अक्षय फल देता है । मनुष्येत्तर प्राणियों को दिया गया दान बराबर होता है तथा पापी मनुष्य को दिया गया दान बिल्कुल निष्फल होता है ।। ३२-३३।। वर्णसंकर को दिया गया दान दो गुना, शूद्र को दिया गया दान चौगुना, वैश्य अथवा क्षत्रिय को दिया गया दान आठ गुना तथा ब्राह्मणव्रती (नाम मात्र के ब्राह्मण) को दिया गया दान सोलह गुना फल देने वाला होता है ।। ३४ ।। वेदपाणी ब्राह्मण को दिया गया दान सौ गुना था वेद को पढ़ाने वाले ब्राह्मण को दिया गया दान अनन्त फल देने वाला होता है पुरोहित तथा यज्ञ कराने वाले को दान देने से अक्षय फल की प्राप्ति होती है ।। ३५ ।। धनहीन ब्राह्मणों को और यज्ञकर्ता ब्राह्मण को दिया हुआ दान अनन्त फल देने वाला होता है । तपोहीन स्वाध्याय रहित तथा दान लेने की इच्छा रखने वाला ब्राह्मण जल में पत्थर की नौका पर बैठे हुए के समान है । वह उस नाव के साथ ही डूब जाता है । ब्राह्मण को स्नान करके तथा जल का आचमन करके प्रयत्नपूर्वक पवित्र होने पर ही दान लेना चाहिए ।। ३६-३७ ।। दान लेने वाले को हमेशा गायत्री का जप करना चाहिए तथा उसके साथ ही दान लिए हुए द्रव्य तथा उसके देवता का उच्चारण करना चाहिए ।। ३८ ।। दान लेने वाले को चाहिए कि वह श्रेष्ठ ब्राह्मण से दान लेकर जोर-जोर से मन्त्र का जप करे, क्षत्रिय से दान लेकर धीरे-धीरे मन्त्र का उच्चारण करे तथा वैश्य से दान लेकर उपांसु जप करे । शूद्र से दान लेकर वह मानसिक जप करे तथा स्वस्तिवाचन करे ।। ३९ ।। अभय के सर्व देवगण देवता हैं, भूमि के विष्णु देवता हैं दासी तथा दास के प्रजापति देवता बतलाए गए हैं । हाथी के देवता प्रजापति कहे गए हैं एवं घोड़े के देवता यम बतलाए गए हैं ।। ४०-४१ ।। एक खुर वाले पशुओं के देवता सर्वदेवगण, महिष के यम, उष्ट्र के निऋति, धेनु के रुद्र, बकरे के अग्नि, भेंड़, सिंह एवं वराह के देवता जल देवता हैं, वन्य पशुओं के वायु, जलपात्र और कलश आदि जलाशयों के वरुण देवता हैं ।। ४२-४३ ।। समुद्र से उत्पन्न होने वाले रत्नों

कन्या दासस्तथा दासी प्राजापत्याः प्रकीर्त्तिताः। प्राजापत्यो गजः प्रोक्तस्तुरगो यमदैवतः ॥ ४१ ॥ तथा चैकशफं सर्वं याम्यश्च महिषस्तथा ॥ ऊष्ट्रश्च नैर्ऋतो धेनू रौद्री छागोऽनलस्तथा ॥ ४२ ॥ आप्यो मेषो हरि क्रीड़ आरण्याः पशवोऽनिलाः । जलाशयं वारूणं स्याद् वारिधानी घटादयः ॥ ४३॥ समुद्रजानि रत्नानि हेमलौहानि चानलः । प्राजपत्यानि शस्यानि पक्वान्नमपि सत्तमम्॥ ४४ ॥ गान्धर्वं गन्धमित्याहुर्वस्त्रं वार्हस्पतं स्मृतम् । वायव्याः पक्षिणः सर्वे विद्या ब्राह्मी तथाङ्गकम् ॥ ४५ ॥ सारस्वतं पुस्तकादि विश्वकर्मा तु शिल्पके । वनस्पतिर्द्रुमादीनां द्रव्यदेवा हरेस्तनुः॥ ४६॥ छत्रं कृष्णाजिनं शय्या रथ आसनमेव च । उपानहौ तथा यानमुत्तनाङ्गिर ईरितम् ॥ ४७ ॥ रणोपकरणं शस्त्रं ध्वजाद्यं सर्वदैवतम् । गृहश्च सर्वदैवत्यं सर्वेषां विष्णुदेवता ॥ ४८ ॥ शिवो वा न ततो द्रव्यं व्यतिरिक्तं यतोऽस्ति हि । द्रव्यस्य नाम गृह्णीयाद् ददानीति तथा वदेत् ॥ ४९॥ तोयं दद्यात् ततो हस्ते दाने विधिरयं स्मृतः । विष्णुर्दाता विष्णुर्द्रव्यं प्रतिगृह्णामि वै वदेत् ॥ ५०॥ स्वस्ति प्रतिग्रहंधर्मं भुक्तिमुक्ति फलद्वयम् । गुरून् भृत्यान् न जिहीर्षुरर्चिष्यन् देवताः पितृन् ॥ ५१ ॥ सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्नतु तृप्येत् स्वयं ततः। शूद्रीयं न तु यज्ञार्थं धनं शूद्रस्य तत्फलम्॥ ५२॥ गुड़तक्ररसाद्याश्च शूद्राद् ग्राह्या निवर्त्तिना । सर्वतः प्रतिगृह्णीयादवृत्त्याकर्षितो द्विजः ॥ ५३ ॥ नाध्यापनाद् याजनाद् वा गर्हिताद् वा प्रतिग्रहात्। दोषो भवति विप्राणां ज्वलनार्कसमाहिते ॥ ५४ ॥ कृते तु दीयते गत्वा त्रेतास्वानीय दीयते। द्वापरे याचमानाय कलौह वनुगमान्विते॥ ५५॥ मनसा पात्रमुद्दिश्य जलं भूमौ विनिक्षिपेत् । विद्यते सागरस्यान्तो नान्तोदानस्य विद्यते॥ ५६॥ अद्य सोमार्कग्रहण सङ्क्रान्त्यादौ च कालके । गङ्गागयाप्रयागादौ तीर्थदेशे महागुणे ॥ ५७ ॥ तथा चामुकगोत्राय तथा चामुकशर्मणे । वेदवेदाङ्गयुक्ताय पात्राय सुमहात्मने॥ ५८॥ यथानाम

तथा स्वर्ण लौहादि धातुओं के अग्नि, पकवान और धान्यों के प्रजापति, सुगन्ध के गन्धर्व, वस्त्र के बृहस्पति, सभी पक्ष के वायु, विद्या एवं विद्यांगों के ब्रह्मा, पुस्तक आदि की सरस्वती देवी, शिल्प के विश्वकर्मा एवं वृक्षों के देवता वनस्पति हैं । ये समस्त द्रव्य तथा समस्त देवता भगवान् श्रीहरि के शरीर हैं ।। ४४-४६।। छत्र कृष्ण मृगचर्म, सौय्या, रथ, आसन, उपानह तथा वाहन इन सबों के देवता उत्तानांगिरा महिर्ष गहे गये हैं ।। ४७ ।। युद्ध की सामग्री, शस्त्र और ध्वज आदि के देवता सर्वदेव गण हैं । गृह के भी देवता सर्वदेवगण हैं । सभी वस्तुओं के देवता विष्णु अथवा शिव हैं । क्योंकि कोई भी वस्तु उनसे भिन्न नहीं है । दान देते समय पहले द्रव्य का नाम लेकर अन्त में दादा को ददामि कहना चाहिए ।। ४८-४९ ।। इसके बाद संकल्प का जल प्रतिग्रहीता के हाथ में देना चाहिए यही दान कि विधि बताई गई है । प्रतिग्रहीता को कहना चाहिए कि विष्णु दान देने वाले हैं और विष्णु ही द्रव्य हैं और मैं इस दान को ग्रहण करता हूँ ।।५०।। इस प्रकार से लिया हुआ दान कल्याणकारी तथा भोग एवं मोक्ष रूपी फल को प्रदान करने वाला होता है । गुरुजनों के पूजन के लिए भृत्यों के उद्धार करने की इच्छा से तथा देवताओं एवं पितरों की पूजा करने के लिए सबसे जितना हो सके उतना दान लेना चाहिए, उसमें किसी प्रकार का संतोष नहीं करना चाहिए । यज्ञ करने के लिए शूद्र का धन नहीं लेना चाहिए, शूद्र का धन लेने से उस यज्ञ का फल शूद्र को ही प्राप्त होता है ।। ५१-५२ ।। वृत्तिविहीन ब्राह्मण को शूद्र से गुड़, तक्र तथा रस आदि लेना चाहिए । जीविका के दुःखी ब्राह्मण को सबसे दान लेना चाहिए ।। ५३ ।। पढ़ाने, यज्ञ कराने तथा निन्दित दान लेने से ब्राह्मणों को दोष नहीं लगता है, क्योंकि ब्राह्मण स्वभाव से ही अग्नि तथा सूर्य के समान निर्दोष होते हैं ।। ५४ ।। सत्ययुग में प्रतिग्रहीता के घर जाकर, त्रेता में प्रतिग्रहीता को घर लाकर, द्वापर में प्रतिग्रहीता के याचना करने पर तथा कलियुग में उसके खुशामद करने पर लोग दान देते है। ।। ५५ ।। दान के पात्र को देने के लिए मन में संकल्प करके भूमि पर जल गिराना चाहिए । सागर का अन्त हो सकता है, किन्तु दान का कोई अन्त नहीं है ।। ५६ ।। दाता को इस प्रकार संकल्प करना चाहिए- आज मैं चन्द्रमा अथवा सूर्य के ग्रहण या संक्रान्ति के समय गंगा, गया अथवा प्रयाग आदि अनन्त गुण सम्पन्न तीर्थदेश में अमुक गोत्र वाले वेदों तथा वेदांगों के वेत्ता महात्मा एवं सत्पात्र अमुक शर्मा को विष्णु आदि देवता वाले अमुक महाद्रव्य का पुत्र, पौत्र, गृह, ऐश्वर्य, पत्नी, धर्म, अर्थ, सद्गुण, कीर्ति, विद्या, महतीकामना, सौभाग्य तथा आरोग्य की वृद्धि के लिए सभी पातकों तथा

महाद्रव्यं विष्णुरुद्रादि दैवतम् । पुत्रपौत्रगृहैश्वर्य्यं पत्नीधर्मार्थसद्गुणा ॥ ५९॥ कीर्त्तिविद्यामहाकाम सौभाग्यारोग्यवृद्धये । सर्वपापोपशान्त्यर्थं स्वर्गार्थं भुक्तिमुक्तये ॥ ६० ॥ एतत् तुभ्यं सम्प्रददे प्रीयतां मे हरिः शिवः । दिव्यान्तरीक्षभौमादि समुत्पातौघ घातकृत् ॥ ६१ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाप्त्यै ब्रह्मलोकप्रदोऽस्तु मे। यथानामसगोत्राय विप्रायामुकशर्मणे॥६२॥ एतद्दानप्रतिष्ठार्थं सुवर्णं दक्षिणां ददे। अनेन दानवाक्येन सर्वदानानि वै ददेत्॥६३॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये दानपरिभाषाकथनं नाम नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०९ ॥

दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

महादानानि

अग्निरुवाच– **सर्वदानानि वक्ष्यामि महादानानि षोडश । तुलापुरुष आद्यन्तु हिरण्यगर्भदानकम् ॥ १॥ ब्रह्माण्डं कल्पवृक्षश्च गोसहस्रञ्च पञ्चमम्। हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वश्च सप्तमम् ॥ २॥ हिरण्याश्वरथस्तद्वद्धेमहस्तिरथस्तथा । पञ्चलाङ्गलकन्तद्वद्धरादानं तथैव च ॥ ३ ॥ विश्वचक्रं कल्पलता सप्तसागरकं परम् । रत्नधेनुर्महाभूत घटः शुभदिनेऽर्पयेत् ॥ ४ ॥ मण्डपे मण्डले दानं देवान् प्राच्यार्पयेद् द्विजे । मेरुदानानि पुण्यानि मेरवो दश तान् शृणु ॥ ५ ॥ धान्यद्रोणसहस्रेण उत्तमोऽर्द्धार्द्धतः परौ । उत्तमः षोडशद्रोणः कर्त्तव्यो लवणाचलः ॥ ६॥ दशभारैर्गुडाद्रिः स्यादुत्तमोऽर्द्धार्द्धतः परौ । उत्तमःपलसाहस्रैः स्वर्णमेरुस्तथा परौ ॥ ७ ॥ दशद्रोणैस्तिलाद्रिः स्याद् पञ्चभिश्च त्रिभिः क्रमात् । कार्पासपर्वतो विंशभारैश्च दशपञ्चभिः॥ ८॥ विंशत्या घृतकुम्भानामुत्तमः स्याद् घृताचलः । दशभिः पलसास्त्रैरुत्तमो रजताचलः ॥ ९॥ अष्टभारैः शर्कराद्रिर्मध्यो**

उपपातकों की शान्ति के लिए, स्वर्गलोक की प्राप्ति, भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए आपको दान दे रहा हूँ । इससे देवलोक, अन्तरिक्ष एवं पृथिवीलोक सम्बन्धी सभी उत्पातों का विनाश करने वाले भगवान् श्रीहरि और शिव मुझ पर प्रसन्न होएँ ।। ५७-६१ ।। उसके पश्चात् पुनः यह संकल्प पढ़ें कि- 'अमुक नाम तथा गोत्र वाले ब्राह्मण अमुक शर्मा को मैं इस दान की प्रतिष्ठा के लिए सुवर्ण की दक्षिणा दे रहा हूँ। इस दान वाक्य से ही सभी प्रकार के दानों को देना चाहिए।। ६२-६३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण के दान परिभाषा वर्णन नामक दो सौ नवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २०९ ॥

अग्नि देव ने कहा– अब मैं सभी प्रकार के दानों का वर्णन करता हूँ । सोलह प्रकार के महादान हैं- सर्वप्रथम तुलापुरुष दान, पुनः हिरण्यगर्भ दान, ब्रह्माण्डदान, कल्पवृक्षदान, पाँचवाँ सहस्र गोदान, छठाँ सोने के गौ का दान, सातवाँ सुवर्ण के घोड़े का दान, सुवर्णमय अश्वयुक्त रथ का दान, सुवर्णरचित हस्तीरथ का दान, पाँच हलों का दान, भूमिदान, विश्वचक्रदान, कल्पलतादान, उत्तम सप्तसमुद्रदान, रत्नधेनु का दान, और जलपूर्ण कुम्भदान । इन दानों को शुभ दिन को मण्डलाकार मण्डप में देवाओं का पूजन करके ब्राह्मण को देना चाहिए ।। १-४।। मेरुदान भी पुण्यमय है। मेरु दस हैं, उन्हें सुनो । एक हजार द्रोण धान्य का उत्तम धान्य मेरु होता है, पाँच सौ दोण का मध्यम और ढाई सौ द्रोण का अधम माना गया है । सोलह द्रोण का उत्तम लवणाचल बनाना चाहिए ।। ५-६ ।। दस भार का गुड़ पर्वत उत्तम होता है, पाच भार का मध्यम और ढाई भार का अधम । सुवर्ण मेरु सहस्र पल का उत्तम होता है, पाँच सौ पल का मध्यम और ढाई सौ पल का अधम होता है ।। ७ ।। तिल पर्वत दस द्रोण का उत्तम होता है, पाँच द्रोण का मध्यम और तीन द्रोण का अधम होता हैं । कपास पर्वत बीस भार का उत्तम

मन्दोऽर्द्धतोऽर्द्धतः। दश धेनूः प्रवक्ष्यामि या दत्त्वा भुक्तिमुक्तिभाक् ॥ १० ॥ प्रथमा गुड़धेनुः स्याद् घृतधेनुस्तथाऽपरा । तिलधेनुस्तृतीया च चतुर्थी जलधेनुका॥ ११॥ क्षीरधेनुर्मधुधेनुः शर्करादधिधेनुके । रसधेनुः स्वरूपेण दशमी विधिरुच्यते ॥ १२ ॥ कुम्भाः स्युर्द्रवधेनूनामितरासान्तु राशयः । कृष्णाजिनञ्चतुर्हस्तं प्रागग्रीवं विन्यसेद् भुवि ॥ १३ ॥ गोमयेनानुलिप्तायां दर्भानास्तीर्य्य सर्वतः । लघ्वैणकाजिनं तद्वद् वत्सस्यपरिकल्पयेत्॥१४॥ प्राङ्मुखी कल्पयेद्धेनुमुदक्पादांसवत्सकाम् । उत्तमागुड़धेनुःस्यात्सदाभारचतुष्टयात् ॥ १५ ॥ वत्सं भारेण कुर्वीत भाराभ्यां मध्यमा स्मृता । अर्द्धभारेण वत्सः स्यात् कनिष्ठा भारकेण तु ॥ १६ ॥ चतुर्थांशेन वत्सः स्याद् गुडवित्तानुसारतः । पञ्च कृष्णलकामाषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥ १७ ॥ पलं सुवर्णाश्चत्वारस्तुला पलशतं स्मृतम् । स्याद् भारो विंशतितुला द्रोणस्तु चतुराढ़कः ॥ १८ ॥ धेनुवत्सौगुड़स्योभौ सितसूक्ष्माम्बरावृतौ । शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुचिमुक्ताफलेक्षणौ ॥ १९ ॥ सितसूत्रशिरालौ च सितकम्बलकम्बलौ। ताम्रगड्डुकपृष्ठौ तौ सितचामररोमकौ॥२०॥ विद्रुमभ्रूयुगावेतौ नवनीतस्तनान्वितौ । क्षौमपुच्छौ कांस्यदोहाविन्द्रनीलकतारकौ ॥ २१ ॥ सुवर्णशृङ्गाभरणौ रजत रसंयुतौ । नानाफलमया दन्ता गन्धघ्राण प्रकल्पितौ ॥ २२ ॥ रचयित्वा यजेद्धेनुमिमैर्मन्त्रैर्द्विजोत्तम ! । या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता ॥ २३ ॥ धेनुरूपेण सा देवी मम शान्तिं प्रयच्छतु । देहस्था या च रुद्राणी शङ्करस्य सदा प्रिया ॥ २४ ॥ धेनुरूपेण सा देवी मम

होता है, दस भार का मध्यम और पाँच भार का निकृष्ट ।। ८ ।। घृतपर्वत बीस घृतपूर्ण कुम्भों का उत्तम होता है, रजतपर्वत दस हजार पलों का उत्तम होता है । शर्करा (चीनी) पर्वत आठ भार का उत्तम होता है, चार भार का मध्यम होता है और दो भार का मन्द होता है ।। ९ ।। अब मैं दस धेनुओं का वर्णन करता हूँ जिनका दान करके मनुष्य भोग एवं मोक्ष का अधिकारी बनता है।।१०।। पहली गुड़धेनु होती दूसरी धृतधेनु होती है, तीसरी तिलधेनु होती है और चौथी जलधेनु होती है ।। ११ ।। पाँचवी क्षीरधेनु छठीं मधुधेनु, सातवीं शर्करा धेनु, आठवीं दधिधेनु, नवीं रसधेनु और दसवीं गौ साक्षात् धेनु होती है। । अब मैं इनके दान की विधि बतलाता हूँ ।। १२ ।। तरल पदार्थों की धेनुओं के प्रतिनिधिरूप से घड़ों में उन पदार्थों को भरकर कुम्भदान करना और अन्य धेनुओं के रूप में उन द्रव्यों की राशि का दान करना चाहिए ।। १२ ।। गोबर से लिपी-पुती भूमि पर सब तरफ कुश बिछाकर उसके ऊपर चार हाथ का काले मृग का चर्म रखना चाहिए । मृगचर्म की ग्रीवा पूर्वाभिमुख होनी चाहिए । छोटे कृष्ण मृगचर्म वत्स के स्थान पर होना चाहिए ।। १३-१४ ।। वत्स सहित धेनु का मुख पूर्व की ओर और पैर उत्तर की ओर होना चाहिए । चार भार गुड़ से बनी गुडधेनु सदा उत्तम होती है ।। १५ ।। एक भार गुड़ का गोवत्स बनाना चाहिए । दो भार गुड़ की गौ मध्यम होती है उसका बछड़ा आधे भार का होता है । कनिष्ठा गौ एक भार गुड़ की होती है ।। १५-१६ ।। उसके साथ चौथाई भार का बछड़ा होना चाहिए । पाँच गुञ्जे का एक माशा होता है सोलह माशे का एक सुवर्ण होता है, चार सुवर्ण का एक पल होता है और सौ पल का एक तुला होता है । बीस तुला का एक भार होता है एवं चार आढक (चौंसठ पल) का एक द्रोण होता है ।। १७-१८ ।। गुड़निर्मित धेनु और वत्स को श्वेत एवं सूक्ष्म वस्त्र से ढँकना चाहिए । सीपी से उसके कान ईख से पैर पवित्र मोतियों से नेत्र, श्वेत धागों से शिरा तथा अलक सफेद कम्बल से उसके गल कम्बल (ललरी) ताम्बे के डील और पीठ और श्वेत चँवर का उन दोनों का रोम बनाना चाहिए ।। १९ ।। उसके भौंहों को मूँगे से, उनके स्तनों को नवनीत (मक्खन) से रेशमी वस्त्र से उनके पूँछ, काँसे का दोहन पात्र, और नीलमणि से उनके नेत्रों को बनाना चाहिए। सोने का उन दोनों की सींग ओर चाँदी का खुर बनाना चाहिए । उनके दाँत अनेक फलों के तथा नाक सुगन्धित तब द्रवय का बनाना चाहिए ।।२०-२२ ।। हे द्विजोत्तम ! इस तरह से धेनु का निर्माण करके इन मन्त्रों से उसकी पूजा करे ।। २२ ।। जो सभी प्राणियों की लक्ष्मी है तथा जो देवताओं के भीतर विद्यमान हैं वे धेनुस्वरूपा देवी मुझे शान्ति प्रदान करें ।। २३ ।। जो शरीर के भीतर रहकर रुद्राणी कहलाती हैं और जो भगवान् शंकर की प्रियतमा है। वे देवी धेनु रूप से मेरे पापों को दूर करें ।। २४।। जो देवी विष्णु के वक्षस्थल पर लक्ष्मी रूप से तथा अग्नि की जो स्वाहा नाम की पत्नी हैं, जो सूर्य, चन्द्रमा तथा तारों की शक्ति है। वे धेनु रूप से मुझे श्री प्रदान करें ।। २५ ।। जो ब्रह्मा

पापं व्यपोहतु । विष्णुवक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः ॥ २५ ॥ चन्द्रार्कऋक्षशक्तिर्या धेनुरूपा तु सा श्रिये । चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मी र्धनदस्य च ॥ २६ ॥ लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा घेनु र्वरदास्तु मे । स्वधात्वं पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां यतः ॥ २७॥ सर्वपापहरा धेनुस्तस्माच्छान्ति प्रयच्छ मे । एवमामन्त्रितां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ २८ ॥ समानं सर्वधेनूनां विधानं चैतदेव हि । सर्वयज्ञफलं प्राप्य निर्मलो भुक्तिमुक्तिभाक् ॥ २९ ॥ स्वर्णशृङ्गी शफै रौप्यैः सुशीला वस्त्रसंयुक्ता । कांस्योपदोहादातव्या क्षीरिणी गौः सदक्षिणा ॥ ३० ॥ दातास्याः स्वर्गमप्नोति वत्सरान् रोमसम्मितान् । कपिला चेत्तारयति भूयश्चासप्तमं कुलम् ॥ ३१ ॥ स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां कांस्यदोहनकान्विताम् । शक्तितो दक्षिणायुक्तां दत्त्वा स्याद् भुक्तिमुक्तिभाक् ॥ ३२ ॥ सवत्सरोमतुल्यानि युगान्युभयतोमुखीम् । दत्त्वा स्वर्गमवाप्नोति पूर्वेण विधिना ददेत्॥३३॥ आसन्नमृत्युना देया सवत्सा गौस्तु पूर्ववत् । यमद्वारे महाघोरे तप्ता वैतरणी नदी । तां तर्तुञ्च ददाम्येनां कृष्णां वैतरणीञ्च गाम् ॥ ३४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये महादानवर्णनं नाम दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१०॥

एकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नानादानानि

अग्निरुवाच— **एकाङ्गां दशगुर्दद्याद् दश दद्याच्च गोशती । शतं सहस्रगुर्दद्यात् सर्वे तुल्यफला हि ते॥ १॥ प्रासादा यत्र सौवर्णा वसोर्धारा च यत्र सा । गन्धर्वाप्सरसो यत्र तत्र यान्ति सहस्रदाः॥ २॥ गवां शतप्रदानेन मुच्यते नरकार्णवात् । दत्त्वा वत्सतरीं चैव स्वर्गलोके महीयते ॥ ३॥**

जी की लक्ष्मी हैं, कुबेर की लक्ष्मी हैं, तथा लोकपालों की लक्ष्मी है, वे धेनुरूप से मुझे वरप्रदान करें ।। २६ ।। हे देवि ! आप पितरों की स्वधा तथा यज्ञभोक्ता देवताओं के लिए स्वाहा हैं अतएव आप सभी पापों को नष्ट करने वाली गौ रूप से मुझे शान्ति प्रदान करें ।। २७ ।। इस प्रकार से अभिमन्त्रित गौ को ब्राह्मण को दान दे देना चाहिए ।। २८ ।। अन्य सभी धेनुओं के दान का विधान यहीं है । धेनुदान करने वाला समस्त यज्ञों का फल प्राप्त करके निष्पाप हो जाता है और भोग तथा मोक्ष का अधिकारी होता है ।। २९ ।। सोने के सींगों वाली, चाँदी के खुरों वाली, सीधी-सादी वस्त्र से आच्छादित दुग्ध देने वाली गाय का काँसे के दोहन पात्र तथा दक्षिणा के साथ दान देना चाहिए ।। ३० ।। गोदान करने वाला व्यक्ति उतने वर्षों तक स्वर्ग में निवास करता है जितने रोएँ गौ के शरीर में होते हैं । कपिला गौ का दान करने से दाता के सात पीढ़ी के लोग तर जाते हैं ।। ३१ ।। सोने के सींग वाली, चाँदी के खुर वाली, काँसे के दोहनपात्र वाली कपिला गौ का शक्ति के अनुसार दक्षिणा के साथ दान देने से दाता भोग एवं मोक्ष का भागी होता है ।। ३२ ।। उभयतोमुखी (सवत्सा गौ का) पूर्वोक्तविधि से दान देकर दाता उतने युगों तक स्वर्गलोक में निवास करता है जितने रोएँ उस गौ के शरीर में होते है ।। ३३ ।। मरणासन्न मनुष्य को भी पूर्वोक्त विधि से ही सवत्सा गौ का दान करना चाहिए और उसे यह संकल्प करना चाहिए- अत्यन्त भयंकर यमलोक के द्वार पर तप्तजल से युक्त वैतरणी नदी प्रवाहित होती है उसको पार करने के लिए मैं इस कृष्ण वर्णा वैतरणी गौ का दान करता हूँ ।। ३४।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का महादान वर्णन नामक दो सौ दसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २१० ॥

अग्निदेव ने कहा— वसिष्ठ जिसके पास दस गायें हों वह एक एक गौ का, जिसके पास सौ गायें हों वह दस गयों का तथा जिसके पास एक हजार गौ हों उसको सौ गायें का दान करनने से ही एक समान फल मिलता है ।। १ ।। एक हजार गायों का दान करने वाला उस लोक में जाता है जहाँ के भवन सुवर्ण के बने होते हैं और सम्पत्तियों की धारा बहती रहती है एवं

गोदानादायुरारोग्यसौभाग्यस्वर्गमाप्नुयात् । इन्द्रादिलोकपालानां या राजमहिषी शुभा ॥ ४ ॥ महिषीदानमाहात्म्यादस्तु मे सर्वकामदा । धर्मराजस्य साहाय्ये यस्याः पुत्रः प्रतिष्ठितः॥ ५॥ महिषासुरस्य जननी या सास्तु वरदा मम । महिषीदानाच्च सौभाग्यं वृषदानाद् दिवं व्रजेत् ॥ ६ ॥ संयुक्तहलपङ्क्त्याख्यं दानं सर्वफलप्रदम् । पङ्क्तिर्दशहला प्रोक्ता दारुजा वृषसंयुता ॥ ७ ॥ सौवर्णपट्टसन्नधान् दत्त्वा स्वर्गे महीयते । दशानां कपिलानान्तु दत्तानां ज्येष्ठपुष्करे ॥ ८ ॥ तत् फलञ्चाक्षयं प्रोक्तं वृषभस्य तु मोक्षणे । धर्मोसि त्वञ्चतुष्पादश्चतस्त्रस्ते प्रिया इमाः ॥ ९ ॥ नमो ब्रह्मण्यदेवेश ! पितृभूतर्षिपोषक ! । त्वयि मुक्तेऽक्षया लोका मम सन्तु निरामयाः ॥ १० ॥ मा मे ऋणोऽस्तु दैवत्यो भौतः पैत्रोऽथ मानुषः। धर्मस्त्वं त्वत्प्रपन्नस्य या गतिः साऽस्तु मे ध्रुवा ॥ ११ ॥ अङ्कयेच्चक्रशूलाभ्यां मन्त्रेणानेन चोऽत्सृजेत् । एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः॥१२॥ मुच्यते प्रेतलेकात् तु षण्मासे चब्दिकादिषु । दशहस्तेन कुण्डेन त्रिंशत्कुण्डान्निवर्त्तनम् ॥ १३ ॥ तान्येव दशविस्ताराद् गोचर्मे तत्प्रदोऽघभित् । गोभूहिरण्यसंयुक्तं कृष्णाजिनन्तु योऽर्पयेत् ॥ १४ ॥ सर्वदुष्कृत कर्माऽपि सायुज्यं ब्रह्मणो ब्रजेत् । भाजनं तिलसम्पूर्णं मधुना पूर्णमेव च ॥ १५॥ दद्यात् कृष्णतिलानाञ्च प्रस्थमेकञ्च मागधम् । शय्यां दत्त्वा तु सगुणं भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्॥१६॥ हैमीं प्रतिकृतिं कृत्वा दत्त्वा स्वर्गस्तथात्मनः । विपुलन्तु गृहं कृत्वा दत्त्वा स्याद् भुक्तिमुक्तिभाक् ॥ १७ ॥ गृहं मठं सभां स्वर्गी दत्त्वा स्याच्च प्रतिश्रयम् । दत्त्वा कृत्वा गोगृहञ्च निष्पापः स्वर्गमाप्नुयात् ॥ १८ ॥ यममाहिषदानात् तु निष्पापः स्वर्गमाप्नुयात् । ब्रह्मा हरो हरिर्देवैर्मध्ये च यमदूतकः ॥ १९ ॥ पाशी

जहाँ अप्सराएँ निवास करती हैं ।। २ ।। सौ गायों का दान करके मनुष्य नरक सागर से मुक्त हो जाता है । और बछिया का दान करके दाता स्वर्गलोक में पूजित होता है ।। ३ ।। गोदान से दीर्घायुष्ट्व, आरोग्य, सौभाग्य एवं स्वर्ग की प्राप्ति हाती है ।। ३ ।। जो इन्द्र आदि लोकपालों की मंगलमयी राजमहिषी हैं वे देवी इस महिषी दान के माहात्म्य से मुझे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करें । जिनका पुत्र धर्मराज की सहायता में नियुक्त है एवं जो महिषासुर की जननी हैं, वे देवी मुझे वर प्रदान करें । महिषी का दान करने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है तथा वृषभ दान से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।। ४-६ ।। संयुक्त हल पंक्ति नामक दान समस्त फलों को प्रदान करता है । काष्ठ के बने हुए दस हलों की पंक्ति, जो सुवर्णमय पट्टे से परैस्पर जुड़ी हो ओर प्रत्येक हल के साथ आवश्यक संख्या में बैल भी हों तो उसका दान संयुक्त हल पंक्ति दान कहलाता है । वह दान करके मनुष्य स्वर्गलेक में पूजित होता है ।। ७ ।। ज्येष्ठ पुष्कर तीर्थ में दस कपिला गायों के दान करने का फल अक्षय होता है तथा वृषोत्सर्ग करने का भी फल अक्षय होता है । वृषोत्सर्गे करते समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिए- देवेश्वर ! तुम चार चरणों से युक्त साक्षात् धर्म हो। ये तुम्हारी चार प्रियतमाएँ हैं । पितरों, मनुष्यों और ऋषियों का पोषण करने वाले वेदमूर्ति वृष ! तुम्हें छोड़ने से मुझे निरामय तथा अक्षय लोकों की प्राप्ति है।।८-१०।। मैं देवऋण, भूतऋण, पितृऋण, तथा मनुष्य ऋण से मुक्त हो जाऊँ । तुम धर्मस्वरूप हो तुम्हारे शरणागतों की जो गति होती है, वह नित्य गति मुझे प्राप्त होए ।। ११ ।। वृष को इस मन्त्र से शंख तथा चक्र से अंकित करना चाहिए और उसको छोड़ देना चाहिए । जिस मृतजीव के एकादशाह के दिन वृषोत्सर्ग किया जाता है वह छह मास अथवा एक वर्ष में प्रेतलोक से अवश्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है । दस हाथ के दण्ड से तीस दण्ड परिमित भूमि को निवर्तन कहते हैं ।। १२-१३ ।। दस निवर्तन परिमित भूमि की 'गो चर्म' संज्ञा होती है । इतनी भूमि का दान करने वाले के समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं । जो व्यक्ति, गौ, सुवर्ण के साथ कृष्ण मृगचर्म का दान करता है, वह सभी प्रकार के पापों को करने वाला होकर भी ब्रह्मसायुज्य को प्राप्त करता है ।। १४ ।। तिल एवं मधु से भरे पात्र मगधदेशीय मान के अनुसार एक प्रस्थ (चौंसठ पल) काली तिल का दान करे । उसके साथ उत्तम गुणों से युक्त शैय्या का दान करने से दाता को भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है ।। १५-१६ ।। अपनी सोने की प्रतिमा बनाकर दान करने वाले को स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है । विशल गृह का निर्माण कराकर उसका दान करने वाले को भोग एवं मोक्ष दोनों को प्राप्त करता है ।। १७ ।। गोशाला बनाकर दान देने वाला पाप रहित होकर स्वर्गलोक को प्राप्त करता है ।। १८ ।। देवता सम्बन्धी महिष दान करने से मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्गलोक

तस्य शिरश्छित्वा तं दद्यात् स्वर्गभाग् भवेत्। त्रिमुखाख्यमिदं दानं गृहीत्वा तु द्विजोऽघभाक् ॥ २०॥ चक्रं रूपमयं कृत्वा के धृत्वा तत् प्रदापयेत्। हेमयुक्तं द्विजायैतत् कालचक्रमिदं महत् ॥ २१॥ आत्मतुल्यन्तु यो लौहं ददेन्न नरकं व्रजेत् । पञ्चाशत्पलसंयुक्तं लौहदण्डन्तु योर्पऽयेत् ॥ २२॥ वस्त्रेणाच्छाद्य विप्राय यमदण्डो न विद्यते । मूलं फलादि वा द्रव्यं संहतं वाथ चैकशः ॥ २३॥ मृत्युञ्जयं समुद्दिश्य दद्यादायुर्विवर्द्धये । पुमान् कृष्णातिलैः कार्य्यो रौप्यदन्तः सुवणदृक् ॥ २४ ॥ खड्गोद्यतकरो दीर्घो जवाकुसुममण्डलः। रक्ताम्बरधरः स्त्रग्वी शङ्खमालाविभूषितः ॥ २५ ॥ उपानद्युगयुक्ताङ्घ्रिः कृष्णाकम्बलपार्श्वकः । गृहीतमांसपिण्डश्च वामे वै कालपूरुषः ॥ २६॥ सम्पूज्य तञ्च गन्धाद्यैः ब्राह्मणायोपपादयेत् । मरणव्याधिहीनः स्याद्राजराजेश्वरो भवेत् ॥ २७॥ गोवृषो तु द्विजे दत्त्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् । रेवान्ताधिष्ठितञ्चाश्वं हैमं दत्त्वा न मृत्युभाक्॥२८॥ घण्टादिपूर्णमप्येकं दत्त्वा स्याद् भुक्तिमुक्तिभाक् । सर्वान् कामनवाप्नोति यः प्रयच्छति काञ्चनम् ॥ २९ ॥ सुवर्णे दीयमाने तु रजतं दक्षिणेष्यते। अन्येषामपि दानानां सुवर्णं दक्षिणा स्मृता ॥ ३०॥ सुवर्णं रजतं ताम्रं तण्डुलं धान्यमेव च । नित्यश्राद्धं देवपूजा सर्वमेतददक्षिणम् ॥ ३१ ॥ रजतं दक्षिणा पित्रे धर्मकामार्थसाधनम् । सुवर्णं रजतं ताम्रं मणिमुक्तावसूनि च ॥ ३२ ॥ सर्वमेतन्महाप्राज्ञो ददाति वसुधां ददत् । पितृश्च पितृलोकस्थान् देवस्थाने च देवताः ॥ ३३॥ सन्तर्पयति शान्तात्मा यो ददाति वसुन्धराम् । खर्वटे खेटकं वापि ग्रामं वा शस्यशालिनम् ॥ ३४ ॥ निवर्त्तनशतं वापि तदर्द्धं वा गृहादिकम् । अपि गोचर्ममात्रां वा दत्वोर्वीं सर्वभाक् भवेत् ॥३५॥ तैलविन्दुर्यथा चाप्सु प्रसर्पेद् भूगतं तथा । सर्वेषामेवदानानामेकजन्मानुगं

को जाता है । देवताओं के साथ ब्रह्मा विष्णु एवं शिव के बीव में पाशधारी यमदूत की स्वर्णमयी मूर्तियाँ स्थापित करके यमदूत के शिर का छेदन करे; पुनः उस मूर्तिमण्डल का ब्राह्मण को दान दे दे । ऐसा करने से दाता तो स्वर्गलोक का भागी होता है, किन्तु उस 'त्रिमुख' नामक दान को ग्रहण करके ब्राह्मण पाप का भागी होता है।।१९-२०।। चाँदी का चक्र बनवाकर जल में रखना चाहिए । पुनः उसके निमित्त होम करे, फिर उस चक्र को ब्राह्मण को दान दे दें । यह महान् 'कालचक्र' नामक दान कहा गया है ।। २१ ।। जो अपने वजन के बराबर लोहे का दान करता है वह नरक में नहीं जाता है । जो पचास पल का लौहदण्ड वस्त्र से ढँककर ब्राह्मण को दान करता है, उसे यमदण्ड का भय नहीं होता है ।। २२ ।। दीर्घायुष्ट्व प्राप्ति की इच्छा से मृत्यु पर विजय प्राप्ति करने के लिए फल, मूल एवं द्रव्य को एक साथ अथवा पृथक्-पृथक् दान करना चाहिए ।। २३ ।। काले तिल का पुरुष बनाकर उसके चाँदी के दाँत और सोने की आँख बनवाना चाहिए । वह अपने हाथ में बड़ी तलवार लेकर हाथ उठाये हुए हो, वह जपाकुसुम से सुशोभित, लालवस्त्र धारण किए हुए हो, वह शंख की माला से अलंकृत हो ।। २४-२५।। उसके दोनों पैर में उपानह होना चाहिए, उसके बगल में काला कम्बल होना चाहिए। उस कालपुरुष को बाएँ हाथ में मांसपिण्ड लिए हुए होना चाहिए।। २६ ।। इस तरह के कालपुरुष का निर्माण करके उसकी चन्दन आदि से पूजा करके उसे ब्राह्मण को दान दे दे। ऐसा करने वाला मनुष्य मृत्यु एवं व्याधि से रहित होकर राजराजेश्वर हो जाता है।। २७ ।। दो बैलों की जोड़ी का ब्राह्मण को दान देकर मनुष्य भोग एवं मोक्ष का अधिकारी होता है। हेमन्त ऋतु में सुवर्ण के घोड़े का दान करने वाले मनुष्य की अपमृत्यु नहीं होती।। २८ ।। जो मनुष्य घण्टा आदि से परिपूर्ण एक भी सुवर्ण के घोड़े का दान करता है वह अपने सभी अभिलषित पदार्थों को प्राप्त करके भोग एवं मोक्ष का अधिकारी होता है ।। २९ ।। सुवर्ण का दान करने पर उसकी दक्षिणा चाँदी होती है, दूसरे भी दानों की दक्षिणा सुवर्ण की बतलायी गयी है ।। ३० ।। सोना, चाँदी, ताम्बा, चावल तथा धान्य, नित्यश्राद्ध, तथा नित्य देवपूजन ये सभी विना दक्षिणा के होते हैं।। ३१ ।। पितृकार्य में चाँदी की दक्षिणा देने से धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति होती है । पृथ्वीदान करने वाला बुद्धिमान मनुष्य सोना, चाँदी, ताम्बा, मणि, मुक्ता तथा धन इन सबों की दक्षिणा देता है । पृथ्वी का दान करने वाला शान्तात्मा पुरुष पितृलोक में पितरों को तथा देवलोक में देवताओं को तृप्त करता है ।। ३२-३३ ।। सस्य से सुशोभित खर्वट, अथवा खेटक अथवा ग्राम अथवा सौ निवर्तन या पचास निवर्तन, पृथिवी या गृह आदि अथवा गोचर्म परिमित पृथ्वी का दान करके मनुष्य समस्त अभिलषित पदार्थों को प्राप्त कर लेता है ।। ३४-३५ ।। जिस तरह तेल का विन्दु जल

फलम् ॥ ३६ ॥ हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् । त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य कन्यादो ब्रह्मलोकभाक् ॥ ३७॥ गजं सदक्षिणं दत्त्वा निर्मलः स्वर्गभाग् भवेत् । अश्वं दत्त्वायुरारोग्य सौभाग्य स्वर्गमाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ दासीं दत्त्वा द्विजेन्द्राय अप्सरोलोकमाप्नुयात्। दत्त्वा ताम्रमयीं स्थालीं पलानां पञ्चभिः शतैः ॥ ३९ ॥ अर्द्धैस्तदर्द्धैरर्द्धैर्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् । शकटं वृषसंयुक्तं दत्त्वा यानेन नाकभाक् ॥ ४० ॥ वस्त्रदानाल्लभेदायुरारोग्यं स्वर्गमक्षयम् । धान्यगोधूमकलमयवादीन् स्वर्गभाग् ददत् ॥ ४१॥ आसनं तैजसं पात्रं लवणं गन्धचन्दनम् । धूपं दीपञ्च ताम्बूलं लोहं रूप्यञ्च रत्नकम् ॥ ४२॥ दिव्यानि नानाद्रव्याणि दत्त्वा स्याद् भुक्तिमुक्तिभाक् । तिलांश्च तिलपात्रञ्च दत्त्वा स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ४३ ॥ अन्नदानात् परं नास्ति न भूतं न भविष्यति । हस्त्यश्वरथदानानि दासीदासगृहाणि च ॥ ४४॥ अन्नदानस्य सर्वाणि कलां नार्हन्ति षोडशीम् । कृत्वापि सुमहत् पापं यः पश्चादन्नदो भवेत् ॥ ४५ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो लोकानाप्नोति चाक्षयान् । पानीयञ्च प्रपां दत्त्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ४६ ॥ अग्निं काष्ठञ्च मार्गादौ दत्त्वा दीप्त्यादिमाप्नुयात् । देवगन्धर्वनारीभिर्विमाने सेव्यते दिवि ॥ ४७ ॥ घृतं तैलञ्च लवणं दत्त्वा सर्वमवाप्नुयात् । छत्रोपानहकाष्ठादि दत्त्वा स्वर्गे सुखी वसेत् ॥ ४८ ॥ प्रतिपत् तिथिमुख्येषु विष्कुम्भादिकयोगके। चैत्रादौ वत्सरादौ च अश्विन्यादौ हरिं हरम्॥४९॥ ब्रह्माणं लोकपालादीन् प्राच्यं दानं महाफलम्। वृक्षारामान् भोजनादीन् मार्गसंवाहनादिकान् ॥ ५० ॥ पादाभ्यङ्गादिकं दत्त्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्।

अथवा पृथ्वी पर गिरकर फैल जाता है, उसी तरह सभी दानों का फल एक जन्म तक मिलता ही है ।। ३६ ।। सुवर्ण, पृथिवी तथा गौरी कन्या के दान का फल सात जन्मों तक प्राप्त होता है । कन्यादान करने वाला पुरुष अपनी इक्कीस पीढ़ी का उद्धार करके ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है ।। ३७ ।। दक्षिणा के साथ हाथी का दान करके मनुष्य सभी पापों से रहित होकर स्वर्ग प्राप्त करता है । अश्व का दान करके वह आयु, आरोग्य, सौभाग्य तथा स्वर्ग को प्राप्त करता है ।। ३८ ।। श्रेष्ठ ब्राह्मण को दासी का दान देकर मनुष्य अप्सराओं के लोक को प्राप्त करता है। पाँच सोया, ढाई सौ या सवा सौ पल की ताम्बे की स्थाली का दान करने वाला भोग एवं मोक्ष को प्राप्त करता है। बैल से युक्त गाड़ी का दान करने वाला मनुष्य विमान से स्वर्गलोक जाता है ।। ३९-४० ।। वस्त्र का दान करने वाला, आयु, आरोग्य तथा अक्षय स्वर्ग प्राप्त करता है। धान, गेहूँ कलम तथा यव आदि का दान करने वाला स्वर्ग का अधिकारी होता है ।। ४१ ।। आसन, घी, नमक, पात्र, गन्ध, चन्दन, धूप, दीप, ताम्बूल, लोहा, चाँदी, रत्न तथा अनेक प्रकार के दिव्य द्रव्यों का दान करके मनुष्य भोग तथा मोक्ष का अधिकारी होता है। तिलों तथा तिल के पात्र का दान करके मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है ।। ४१-४३ ।। अन्न के दान से बढ़कर न तो कोई दान है न हुआ और न होगा। हाथी, घोड़ा, रथ, दासी तथा गृह के दान का फल अन्न दान के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं होते हैं।। ४४ ।। बहुत बड़ा पाप करने के पश्चात् भी जो व्यक्ति अन्नदान करने वाला हो जाता है, वह सभी पापों से छूटकारा पाकर अक्षय लोकों को प्राप्त करता है। जल तथा प्याऊ का दान करके मनुष्य भोग तथा मोक्ष को प्राप्त करता है।। ४५-४६ ।। रास्ते आदि अग्नि तथा काष्ठ आदि का दान करके मनुष्य दीप्ति आदि को प्राप्त करता है और स्वर्गलोक में विमान के भीतर देव-गन्धर्वों की रमणियों के द्वारा सुसेवित होता है ।। ४७ ।। घी, तेल तथा नमक का दान करके मनुष्य सम्पूर्ण अभिलषित पदार्थों को प्राप्त करता है। छाता उपानह तथा काष्ठ आदि का दान करके वह स्वर्गलोक में सुख प्राप्त करता है।। ४८ ।। प्रतिपद आदि मुख्य तिथियों में विष्कम्भक आदि योगों में, चैत्र आदि महीनों में तथा अश्विनी आदि नक्षत्रों में श्रीहरि, यिशवजी तथा ब्रह्मा जी की पूजा करके दिया गया दान महान् फल देने वाला होता है । वृक्ष, बगीचा, भोजन मार्ग के पाथेय तथा उपानह आदि का दान करके मनुष्य भोग एवं मोक्ष दोनों को प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है ।। ४९-५० ।। इस संसार में गौ, पृथिवी एवं सरस्वती (विद्या) ये तीनों एक समान फल देने वाली हैं। ब्रह्म विषयिणी विद्या (वेदविद्या) का दान करके मनुष्य ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है । ब्रह्मज्ञान के दान करने का फल सप्तद्वीपा वसुन्धरा के दान करने के फल के समान होता है ।। ५१-५२।। जो मनुष्य समस्त प्राणियों को

त्रीणि तुल्यफलानीह गावः पृथ्वी सरस्वती ॥ ५१ ॥ ब्राह्मीं सरस्वतीं दत्त्वा निर्मलो ब्रह्मलोकभाक् । सप्तद्वीपमहीदः स ब्रह्मज्ञानं ददाति यः॥५२॥ अभयं सर्वभूतेभ्यो दद्यात् सर्वभाङ् नरः । पुराणं भारतं वापि रामायणमथापि वा ॥ ५३॥ लिखित्वा पुस्तकं दत्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्। वेदशास्त्रं नृत्यगीतं योऽध्यापयति नाकभाक् ॥ ५४ ॥ वित्तं दद्यादुपाध्याये छात्राणां भोजनादिकम्। किमदत्तं भवेत् तेन धर्मकामादिदर्शिना॥५५॥ वाजपेयसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् । तत्फलम् सर्वमाप्नोति विद्यादानान्न संशयः॥ ५६॥ शिवालये विष्णुगृहे सूर्य्यस्य भवने तथा । सर्वदानप्रदः स स्यात् पुस्तकं वाचयेत् तु यः ॥ ५७॥ त्रैलोक्ये चतुरो वर्णाश्चत्वारश्च श्रमाः पृथक् । ब्रह्माद्या देवताः सर्वा विद्यादाने प्रतिष्ठिताः॥५८॥ विद्या कामदुघा धेनुर्विद्या चक्षुरनुत्तमम्। उपवेदप्रदानेन गन्धर्वैं सह मोदते ॥ ५९ ॥ वेदाङ्गानाञ्च दानेन स्वर्गलोकमवाप्नुयात् । धर्मशास्त्र प्रदानेन धर्मेण सह मोदते ॥ ६०॥ सिद्धान्तानां प्रदानेन मोक्षमाप्नोत्यसंशयम् । विद्यादानमवाप्नोति प्रदानात् पुस्तकस्य तु ॥ ६१ ॥ शास्त्राणि च पुराणानि दत्वा सर्वमवाप्नुयात् । शिष्यांश्च शिक्षयेद् यस्तु पुण्डरीकफलं लभेत् ॥ ६२ ॥ येन जीवति तद्दत्वा फलस्यान्तो न विद्यते । लोके श्रेष्ठतमं सर्वमात्मनश्चापि यत्प्रियम् ॥ ६३॥ सर्वं पितृणां दातव्यं तेषामेवाक्षयार्थिना । विष्णुं रुद्रं पद्मयोनिं देवीविघ्नेश्वरादिकान् ॥ ६४॥ पूजयित्वा प्रदद्याद् यः पूजाद्रव्यं स सर्वभाक्। देवालयं च प्रतिमां कारयन् सर्वमाप्नुयात् ॥ ६५॥ सम्मार्जनं चोपलेपं कुर्वन् स्यान्निर्मलःपुमान् । नानामण्डलकार्यग्रे मण्डलाधिपतिर्भवेत् ॥ ६६॥ गन्धं पुष्पं धूपदीपं नैवेद्यञ्च प्रदक्षिणम् । घण्टाध्वजवितानञ्च प्रेक्षणं वाद्यगीतकम् ॥ ६७॥ वस्त्रादि दत्त्वा देवाय भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् । कस्तूरिकां शिह्लकञ्च श्रीखण्डमगुरून्तथा॥ ६८ ॥ कर्पूरञ्च तथा मुस्तं गुग्गुलुं विजयं ददेत् । घृतप्रस्थेन संस्थाप्य

अभयदान देता है, वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है । जो पुराण, महाभारत अथवा रामायण को लिखकर उस पुस्तक का दान करता है, वह भोग तथा मोक्ष दोनों को प्राप्त कर लेता है । जो वेद शास्त्र. तथा नृत्य गीत आदि का अध्यापन करता है वह स्वर्गलोक का अधिकारी होता है ।। ५३-५४।। धर्म तथा काम आदि को जानने वाला जो व्यक्ति छात्रों को भोजन देता है तथा उपाध्याय (अध्यापक आचार्य) को वृत्ति (वेतन) देता है उसने क्या दान नहीं किया है ।। ५५ ।।सहस्र वाजपेय यज्ञों में विधिपूर्वक दान देने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस सम्पूर्ण फल की प्राप्ति विद्यादान से हो जाती है । इसमें किसी भी प्रकार का संदेह नहीं है ।। ५६ ।। जो शिवमन्दिर, विष्णुमन्दिर अथवा सूर्य मन्दिर में ग्रन्थवाचन करता है वह समस्त दानों का फल प्राप्त कर लेता है ।। ५७ ।। त्रैलोक्य में जो ब्राह्मण आदि चार वर्ण और ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रम हैं, वे तथा ब्रह्मा आदि देवता विद्यादान में प्रतिष्ठित हैं ।। ५८ ।। विद्या कामधेनु है और विद्या उत्तम नेत्र है । गान्धर्व आदि उपवेदों का दान करने से मनुष्य गन्धर्वों के साथ सुख पाता है ।। ५९।। वेदाङ्गों के दान से वह स्वर्गलोक को प्राप्त करता है और धर्मशास्त्र के दान से वह धर्म के सान्निध्य को प्राप्त करता है और प्रमुदित होता है ।। ६० ।। सिद्धान्तों का दान करके दाता निश्चय ही मोक्ष प्राप्त करता है । पुस्तक का दान करके दाता विद्यादान का फल प्राप्त करता है।।६१।। शास्त्रों तथा पुराणों का दान करके दाता सब कुछ पा लेता है । शिष्यों को शिक्षा दान करने वाला व्यक्ति पुण्डरीक याग का फल प्राप्त करता है ।। ६२ ।। जो अपनी जीविका के साधन का दान कर देता है, उसके फल का कोई अन्त ही नहीं है । जो व्यक्ति अपने पितरों को अक्षय्य लोकों की प्राप्ति कराना चाहता है वह संसार की समस्त श्रेष्ठ वस्तुएँ तथा अपने को प्रिय लगने वाली वस्तु का दान पितरों के निमित्त करे ।। ६३ ।। विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा, देवी तथा गणेश आदि देवताओं की पूजा करके पूजा द्रव्य का ब्राह्मण को दान करने वाला व्यक्ति सब कुछ प्राप्त कर लेता है । देव मन्दिर तथा देव प्रतिमा का निर्माण कराने वाला समस्त अभिलषित वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है ।। ६४-६५ ।। मन्दिर में झाडू बहारू तथा प्रक्षालन करने वाला व्यक्ति सभी पापों से मुक्त हो जाता है । देव प्रतिमा के सम्मुख विविध मण्डलों का निर्माण करने वाला मण्डलाधिपति होता है ।। ६६ ।। देवता को गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, प्रदक्षिणा, घण्टा, ध्वज, चन्दोवा तथा वस्त्र आदि समर्पित करने से, उनके दर्शन करने तथा उनके सम्मुख गाने-बजाने से मनुष्य भोग एवं मोक्ष दोनों को प्राप्त करता है । भगवान् को कस्तूरी, सिंहल देश का चन्दन,

संक्रान्त्यादौ स सर्वभाक् ॥ ६९ ॥ स्नानं पलशतं ज्ञेयमभ्यङ्गं पञ्चविंशतिः । पलानान्तु सहस्त्रेण महास्नानं प्रकीर्त्तितम् ॥ ७०॥ दशापराधास्तोयेन क्षीरेण स्नापनाच्छतम् । सहस्रं पयसा दध्ना घृतेनायुतमिष्यते ॥ ७१॥ दासीदासमलङ्कारं गोभूम्यश्वगजादिकम्। देवाय दत्त्वा सौभाग्यं धनायुष्मान् व्रजेद् दिवम् ॥ ७२ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानादानकथनं नामैकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २११॥

द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

मेरुदानानि

अग्निरुवाच— **काम्यदानानि वक्ष्यामि सर्वकामप्रदानि ते । नित्यपूजां मासि मासि कृत्वाथो काम्यपूजनम् ॥ १ ॥ व्रतार्हणं गुरोः पूजा वत्सरान्ते महार्चनम् । अश्वं वै मार्गशीर्षे तु कमलं पिष्टसम्भवम् ॥ २॥ शिवाय पूज्य यो दद्यात् सूर्यलोके चिरं वसेत् । गजं पौषेपिष्टमयं त्रिसप्तकुलमुद्धरेत्॥३॥ माघे चाश्वरथं पैष्टं दत्त्वा न नरकं व्रजेत् । फाल्गुने तु वृषं पैष्टं स्वर्गभुक् स्यान्महीपतिः॥ ४॥ चैत्रे चेक्षुमयीं गावं दासदासीसमन्विताम् । दत्त्वा स्वर्गे चिरं स्थित्वा तदन्ते स्यान्महीपतिः ॥ ५ ॥ सप्तव्रीहींश्च वैशाखे दत्त्वा शिवमयो भवेत् । बलिमण्डलकञ्चान्नैःकृत्वाषाढ़े शिवो भवेत् ॥ ६॥ विमानं श्रावणे पौष्पं दत्त्वा स्वर्गी ततो नृपः। शतद्वयं फलानान्तु दत्त्वोद्धृत्य कुलं नृपः ॥ ७ ॥ गुग्गुलादि दहेद् भाद्रे स्वर्गी स स्यात् ततो नृपः।**

अगरु, कर्पूर तथा मुस्त आदि सुगन्धित द्रव्य और विजय गुग्गुल समर्पित करना चाहिए । संक्रान्ति के दिन भगवान् को एक प्रस्थ घी से स्नान कराकर मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है ।।६७-६९।। सौ पल घी से भगवान् का स्नान होता है, पच्चीस पल से अभ्यङ्ग होता है तथा एक हजार पल घी से महास्नान होता है ।। ७० ।। भगवान् को जल से स्नान कराने से दस अपराध, दुग्ध से स्नान करने से सौ अपराध, दुग्ध एवं दधि दोनों से स्नान करने से सहस्र अपराध एवं घृत से स्नान कराने से दस हजार अपराध विनष्ट होते हैं ।। ७१ ।। देवताओं के लिए दासी दास, अलंकार, गौ, भूमि, हाथी, घोड़े और सौभाग्य द्रव्य का दान देकर मनुष्य धन एवं दीर्घायु से युक्त होकर स्वर्गलोक को प्राप्त करता है ।। ७२ ।।

इस प्रकार से आदि महापुराण आग्नेय पुराण का अनेक प्रकार के दानों की महिमा वर्णन नामक दो सौ ग्यारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २११॥

अग्निदेव ने कहा— वसिष्ठ अब मैं आपको काम्य दानों को बतलाता हूँ, वे समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले होते हैं । प्रत्येक मास में प्रतिदिन पूजन करते हुए एक दिन जो विशेष रूप से पूजन किया जाता है, उसे काम्यपूजन कहते हैं ।। १ ।। वर्ष के पूर्ण हो जाने पर गुरुपूजन एवं महापूजन के व्रत का विसर्जन किया जाता है ।। १ ।। अगहन (मार्गशीर्ष के महीने में शिवजी का पूजन करके आटा से बने अश्व एवं कमल का दान करने वाला चिरकाल तक सूर्यलोक में निवास करता है ।। २ ।। पौषमास में आटे से बने हाथी का दान करके मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार कर लेता है । माघ के महीने में आटे से बने रथ एवं घोड़े का दान करके मनुष्य नरक में नहीं जाता है । फाल्गुन मास में आँटे से निर्मित वृष का दान करके मनुष्य स्वर्ग का भोग करके राजा होता है ।। ३-४ ।। चैत्रमास में दास-दासियों से परिपूर्ण एवं गुड़ से भरे घर का दान देकर मनुष्य चिरकाल तक स्वर्गलोक में निवास करने के पश्चात् राजा होता है ।। ५ ।। वैशाख मास में सप्तधान्य का दान करके मनुष्य शिव जी के सायुज्य को प्राप्त करता है । ज्येष्ठ तथा आषाढ़ मास में अन्न की बलि देने वाला शिवस्वरूप हो जाता है ।। ६ ।। श्रावण मास में पुष्प रथ का दान करके मनुष्य स्वर्ग सुख भोगने के पश्चात् राजा होता है । दो सौ फलों का दान करने वाला व्यक्ति अपने सम्पूर्ण कुल का उद्धार करके राजपद को प्राप्त करता

क्षीरसर्पिर्भृतं पात्रमाश्विने स्वर्गदं भवेत् ॥ ८ ॥ कार्त्तिके गुड़खण्डाज्यं दत्त्वा स्वर्गी ततो नृपः । मेरुदानं द्वादशकं वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदम् ॥ ९ ॥ मेरुव्रते तु कार्त्तिक्यां रत्नमेरुं ददेद् द्विजे । सर्वेषाञ्चैव मेरूणां प्रमाणं क्रमशः शृणु ॥ १०॥ वज्रपद्ममहानीलनीलस्फटिकसंज्ञितः । पुष्पं मरकतं मुक्ता प्रस्थमात्रेण चोत्तमः॥ ११॥ मध्योऽर्द्धः स्यात् तदर्द्धोऽधो वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् । कर्णिकायां न्यसेन् मेरुं ब्रह्मविष्णवीशदैवतम् ॥ १२ ॥ माल्यवान् पूर्वतः पूज्यस्तत्पूर्वे भद्रसंज्ञितः । अक्षरक्षस्ततः प्रोक्तो निषधो मेरुदक्षिणे ॥ १३॥ हेमकूटोऽथ हिमवान् त्रयं सौम्ये तथा त्रयम् । नीलःश्वेतश्च शृङ्गी च पश्चिमे गन्धमादनः ॥ १४॥ वैकङ्कः केतुमालः स्यान् मेरूर्द्वादशसंयुतः । सोपवासोऽर्चयेद् विष्णुं शिवं वा स्नानपूर्वकम्॥१५॥ देवाग्रे चार्च्य मेरुञ्च मन्त्रैर्विप्राय वै ददेत् । विप्रायामुकगोत्राय मेरुन्द्रव्यमयं परम् ॥ १६॥ भुक्तौ मुक्तौ निर्मलत्वे विष्णुदैवं ददामि ते । इन्द्रलोके ब्रह्मलोके शिवलोके हरेः पुरे ॥ १७॥ कुलमुद्धृत्य क्रीडेत विमाने देवपूजितः । अन्येष्वपि च कालेषु संक्रान्त्यादौ प्रदापयेत् ॥ १८ ॥ पलानान्तु सहस्रेण हेममेरुं प्रकल्पयेत् । शृङ्गत्रयसमायुक्तं ब्रह्मविष्णुहरान्वितम् ॥ १९॥ एकैकं पर्वतं तस्य शतैकैकेन कारयेत् । मेरुणा सह शैलास्तु ख्यातास्तत्र त्रयोदश ॥ २०॥ अयने ग्रहणादौ च विष्णवग्रेहरिमर्च्य च । स्वर्णमेरुंद्विजायार्प्य विष्णुलोके चिरं वसेत् ॥२१॥ परमाणवो यावन्त इह राजा भवेच्चिरम्। रौप्यमेरुं द्वादशाद्रियुतं सङ्कल्पतो ददेत्॥२२॥ प्रागुक्तं च फलं तस्य विष्णुविप्रं प्रपूज्य च। भूमिमेरुञ्च विषयं मण्डलं ग्राममेव

है ।। ७ ।। भाद्रपद के महीने में गुग्गुल का दान करने से स्वर्गसुख भोगने के पश्चात् राजा होता है । आश्विन के महीने में दुग्ध एवं घी से भरे पात्र का दान करने वाले को स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।। ८ ।। कार्तिकमास में गुड़ खाण एवं घी का दान करने वाला मनुष्य स्वर्ग सुख भोगने के पश्चात् राजा होता है । अब मैं भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाले बारह मेरुदानों का वर्णन कर रहा हूँ ।। ९ ।। मेरुव्रत करने वाले को कार्तिक मास की पूर्णिमा को रत्नमेरु का दान ब्राह्मण को देना चाहिए । अब क्रमशः समस्त मेरुओं के प्रमाण को सुनो ।। १० ।। हीरे, माणिक्य, नीलमणि, वैदूर्यमणि, स्फटिकमणि, पुखराज, मरकतमणि और मोती इनके एक प्रस्थ का मेरु उत्तम होता है । इसे आधे परिमाण का मध्यम और उसके आधे परिमाण का निकृष्ट होता है। रत्नमेरु का दान करने वाले को धन की कंजूसी त्याग देनी चाहिए । द्वादश दल कमल का निर्माण करके उसकी कर्णिका पर मेरु की स्थापना करे । इसके ब्रह्मा, विष्णु और शिव देवता ।।११-१२।। उस मेरु के पूर्व दिशा में तीन दल हैं उनमें क्रमशः माल्यवान् भद्राश्व तथा ऋक्ष पर्वतों का पूजन करना चाहिए । मेरु के दक्षिण वाले दल में निषध, हेमकूट और हिमवान् की पूजा करनी चाहिए । मेरु से उत्तर वाले तीन दलों में क्रमशः नील, श्वेत और शृङ्गी का पूजन करना चाहिए । मेरु से पश्चिम वाले दलों में गन्धमादन, वैकङ्क तथा केतुमाल का पूजन करना चाहिए । इस तरह बारह पर्वतों से युक्त मेरु पर्वत का पूजन करना चाहिए ।। १३-१४ ।। व्रती उपवास रखकर स्नान करके भगवान् विष्णु अथवा शंकरजी की पूजा करे ।। १५ ।। देवता के समक्ष मन्त्रों से मेरु की पूजा करके, उसे ब्राह्मण को दान दे दे । दान का संकल्प करते समय देशकाल का उच्चारण करके कहे- 'मैं इस द्रव्य निर्मित उत्तम मेरु पर्वत का, जिसके देवता भगवान् विष्णु हैं अमुक गोत्र वाले ब्राह्मण को दान देता हूँ । इस दान से मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो जाय और मुझे भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति हो ।। १६ ।। वह मनष्य अपने वंश का उद्धार करके देवताओं द्वारा सम्मनित होकर विमान पर बैठकर इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक, शिवलोक तथा वैकुण्ठ धाम में क्रीड़ा करता है । दूसरे संक्रान्ति आदि के भी समय में मेरु पर्वत का दान करना एवं करवाना चाहिए।।१७-१८।। एक सहस्रपल सुवर्ण से महामेरु का निर्माण कराकर उसके तीन शिखर बनायें जिन पर ब्रह्मा, विष्णु और शिव की स्थापना करायें ।। १९ ।। महामेरु के साथ के प्रत्येक पर्वत को सौ-सौ पल सुवर्ण का बनवाए । मेरु के साथ उसके तेरह पर्वत विख्यात हैं ।। २० ।। उत्तरायण अथवा दक्षिणायन की संक्रान्ति में अथवा सूर्य चन्द्र के ग्रहणकाल में विष्णु की प्रतिमा के समक्ष सुवर्ण मेरु की स्थापना करे । उसके पश्चात् श्रीहरि और स्वर्ण मेरु की पूजा करके उसे ब्राह्मण को दान देना चाहिए । ऐसा करने वाला मनुष्य चिरकाल तक विष्णुलोक में निवास करता है ।।२१।। जो व्यक्ति बारह पर्वतों से युक्त मेरु का पूजन संकल्प पूर्वक करता है। वह उतने वर्षों तक राज्य का उपभोग क ता है, जितने कि इस पृथिवी पर परमाणु हैं।।२२।।

च ॥ २३॥ परिकल्प्याष्टमांशेन शेषांशाः पूर्ववत् फलम् । द्वादशाद्रिसमायुक्तं हस्तिमेरुस्वरूपिणम् ॥ २४॥ ददेत् त्रिपुरुषैर्युक्तं दत्त्वानन्तं फलं लभेत् । त्रिपञ्चारवैरश्वमेरुं हयद्वादशसंयुतम् ॥ २५ ॥ विष्ण्वादीन् पूज्य तं दत्त्वा भुक्तभोगो नृपो भवेत् । अश्वसङ्ख्याप्रमाणेन गोमेरुं पूर्ववद् ददेत्॥२६॥ पट्टवस्त्रैर्भारमात्रैवस्त्रमेरुश्च मध्यतः । शैलैर्द्वादशवस्त्रैश्च दत्त्वा तच्चाक्षयं फलम् ॥ २७॥ घृतपञ्चसहस्त्रैश्च पलानामाज्यपर्वतः । शतैः पञ्चभिरेकैकः पर्वतेऽस्मिन् हरिं यजेत् ॥ २८॥ विष्णवग्रे ब्राह्मणायार्प्य सर्वं प्राप्य हरिं व्रजेत् । एवं च खण्डमेरूञ्च कृत्वा दत्त्वाप्नुयात् फलम्॥२९॥ धान्यमेरुः पञ्चखारोऽपरः एकैकखारकाः । स्वर्णत्रिशृङ्गकाः सर्वे ब्रह्मविष्णु महेश्वरान् ॥ ३०॥ सर्वेषु पूज्य विष्णुं वा विशेषादक्षयं फलम् । एवं दशांशमानेन तिलमेरुं प्रकल्पयेत् ॥ ३१॥ शृङ्गाणि पूर्ववत् तस्य तथैवान्यनगेषु च । तिलमेरुं प्रदायाथ बन्धुभिर्विष्णुलोकभाक्॥३२॥ नमो विष्णुस्वरूपाय धराधराय वै नमः । ब्रह्मविष्ण्वीशशृङ्गाय धरानाभिस्थिताय च ॥ ३३ ॥ नगद्वादशनाथाय सर्वपापापहारिणे। विष्णुभक्ताय शान्ताय त्राणं मे कुरु सर्वथा ॥ ३४ ॥ निष्पापः पितृभिः सार्द्धं विष्णुं गच्छामि ओं नमः । त्वं हरिस्तु हरेरग्रे अहं विष्णुश्च विष्णवे। निवेदयामि भक्त्या तु भुक्तिमुक्त्यर्थहेतवे ॥ ३५ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये मेरुदानकथनं नाम द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१२॥

इसके अतिरिक्त वह पूर्वोक्त फल को प्राप्त करता है । 'भूमिमेरु' का दान विष्णु एवं ब्राह्मण की पूजा करके करना चाहिए । एक नगर, जनपद अथवा ग्राम के आठवें अंश से भूमि मेरु की कल्पना करके अवशिष्ट अंशों से शेष बारह पर्वतों की कल्पना करनी चाहिए , भूमिमेरु के दान का फल भी पूर्ववत् होता है ।। २३ ।। द्वादश पर्वतों से युक्त मेरु का हाथियों से निर्माण करके तीन पुरुषों से युक्त इस हस्तिमेरु का दान करने वाला मनुष्य अनन्त फल को प्राप्त करता है ।। २४ ।। पन्द्रह घोड़ों का 'अश्वमेरु' होता है । इसके साथ बारह पर्वतों के स्थान पर बारह अश्वों को होना चाहिए ।।२५।। विष्णु आदि देवताओं का पूजन करके उस अश्वमेरु का दान करने वाला इस जन्म में अनेक प्रकार के भोगों को प्राप्त करके दूसरे जन्म में राजा होता है । गो मेरु का भी अश्वमेरु के ही समान संख्या परिमाण से निर्माण करके उसी विधि से उसका दान करना चाहिए ।। २६ ।। एक भार रेशमी वस्त्रों का वस्त्र मेरु होता है । उसे बीच में रखकर बारह पर्वतों के स्थान पर बारह वस्त्रों को रखकर जो दान करता है, उसे अक्षय्य फल की प्राप्ति होती है ।। २७ ।। पाँच हजार पल घी से घृतपर्वत होता है । पाँच-पाँच सौ पल घृत के उसके एक-एक पर्वत होते हैं । उस 'आज्यपर्वत' पर श्रीहरि का यजन करना चाहिए ।। २८ ।। भगवान् विष्णु के समक्ष 'आज्यपर्वत' का दान करके मनुष्य इस लोक में सब कुछ प्राप्त करके अन्त में श्रीहरि के लोक में जाता है । इसी प्रकार से खाण मेरु का दान करके मनुष्य फल को प्राप्त करता है ।। २९ ।। पाँच खारी धान्य का 'धान्यमेरु' होता है । इसके साथ बारह पर्वत एक-एक खारी धान्य के होते हैं । इन सबों के तीन-तीन स्वर्णमय शिखर होते हैं। सभी शिखरों पर ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की पूजा करे ।। ३० ।। सबों पर विष्णु भगवान् की पूजा करने से अक्षय फल की प्राप्ति होती है । इसी प्रकार से तिल मेरु का निर्माण करना चाहिए उसके दशमांश से प्रत्येक बारहों पर्वतों का निर्माण करना चाहिए । पुनः पूर्वोक्त प्रकार से प्रत्येक के शिखरों का निर्माण करे । इस 'तिलमेरु' का दान करके मनुष्य अपने बन्धु-बान्धवों के साथ विष्णु लोक को प्राप्त करता है ।। ३१-३२ ।। (तिलमेरु का दान करते समय इस प्रकार से मन्त्र पढ़ना चाहिए) विष्णु स्वरूप तिलमेरु को नमस्कार है । ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश जिसके शिखर हैं, जो पृथिवी की नाभि पर स्थित हैं ।। ३३ ।। जो सहवर्ती बारह पर्वतों का स्वामी तथा समस्त पापों को विनष्ट करने वाला है, वह शान्त तथा भगवान् विष्णु के भक्त मेरी रक्षा करें ।। ३४ ।। मैं निष्पाप होकर पितरों के साथ विष्णुलोक को जा रहा हूँ । ओम नमः । आप विष्णुस्वरूप हैं, विष्णु के सम्मुख विष्णु स्वरूप दाता मैं, विष्णु स्वरूप ब्राह्मण को भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए भक्तिपूर्वक तुम्हारा दान कर रहा हूँ ।। ३५।।

इस प्रकार आदिमहापुराण अग्नि महापुराण का मेरुदान वर्णन नामक दो सौ बारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २१२ ॥

त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

पृथ्वीदानानि

अग्निरुवाच– **पृथ्वीदानं प्रवक्ष्यामि पृथिवी त्रिविधा मता । शतकोटिर्योजनानां सप्तद्विपाससागरा ॥ १॥ जम्बुद्वीपावधिः सा च उत्तमा मेदिनीरिता। उत्तमां पञ्च भिभारैः काञ्चनैश्च प्रकल्पयेत् ॥ २ ॥ तदर्द्धान्तरजं कूर्मं तथा पद्मं समादिशेत् । उत्तमा कथिता पृथ्वी द्व्यंशेनैव तु मध्यमा॥ ३॥ कन्यसा च त्रिभागेन त्रिहान्या कूर्मपङ्कजे । पलानान्तु सहस्रेण कल्पयेत् कल्पपादपम् ॥ ४ ॥ मूलदण्डं सपत्रञ्च फलपुष्पसमन्वितम्। पञ्चस्कन्धन्तु सङ्कल्प्य पञ्चानां दापयेत् सुधी ॥ ५ ॥ एतद्दाता ब्रह्मलोके पितृभिर्मोदते चिरम् । विष्णवग्रे कामधेनुन्तु पलानां पञ्चभिःशतैः ॥ ६॥ ब्रह्मविष्णु महेशाद्या देवा धेनौ व्यवस्थिताः । धेनुदानं सर्वदानं सर्वदम् ब्रह्मलोकदम् ॥ ७॥ विष्णग्रे कपिलां दत्त्वा तारयेत् सकलं कुलम् । अलङ्कृत्य स्त्रियं दद्यादश्वमेधफलं लभेत् ॥ ८ ॥ भूमिं दत्त्वा सर्वभाक् स्यात् सर्वशस्यप्ररोहिणीम्। ग्रामं वाथ पुरं वापि खेटकञ्च ददत् सुखी। कार्त्तिक्यादौ वृषोत्सर्गं कुर्वंस्तारयते कुलम् ॥ ९ ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पृथ्वीदानवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१३॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं पृथ्वीदान का वर्णन कर रहा हूँ । पृथिवी तीन प्रकार की होती है । सौ करोड़ योजन विस्तार वाली सात द्वीपों तथा समुद्रों सहित जम्बूदीप पर्यन्त पृथिवीउत्तम मानी गयी है । पाँच भार सुवर्ण से उत्तम पृथिवी की कल्पना करनी चाहिए ।। १-२ ।। उसके आधे सुवर्ण से कूर्म एवं कमल का निर्माण करना चाहिए । यह उत्तम पृथिवी बतलायी गयी है उसके आधे में मध्यम पृथिवी मानी गयी है ।। ३ ।। इसके तृतीय भाग से निर्मित पृथिवी कनिष्ठा मानी गयी है । इसके साथ पृथिवी के तृतीय भाग में कूर्म एवं कमल का निर्माण करना चाहिए । एक हजार पल सुवर्ण से, मूल, दण्ड, पत्ते, फल, पुष्प तथा पाँच स्कन्धों से युक्त कल्प वृक्ष की कल्पना करके उसे पाँच ब्राह्मणों को दान कर देना चाहिए ।। ४-५ ।। इसका दान करने वाला ब्रह्मलोक में पितृगण के साथ, चिरकाल पर्यन्त आनन्द का उपभोग करता है । पाँच सौ पल सुवर्ण से कामधेनु का निर्माण कराके भगवान् विष्णु के सम्मुख दान करें ।। ६ ।। ब्रह्मा, विष्णु तद्यथा महेश आदि समस्त देवताओं का गौ में निवास है । धेनुदान करने से अपने आप सभी दान हो जाते हैं । यह दान समस्त अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति कराने वाला तथा ब्रह्मलोक की प्राप्ति कराने वाला है ।। ७ ।। श्रीविष्णुभगवान् के समक्ष कपिला गौ का दान करने वाला अपने सम्पूर्ण कुल का उद्धार कर देता है । कन्या को अलंकृत करके दान करने से अश्वमेघ यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है ।। ८ ।। जिसमें समस्त प्रकार के सस्य उत्पन्न हो सकें इस प्रकार की भूमि का दान करके मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है । ग्राम, नगर अथवा खेटक (छोटे गाँव) का दान करने वाला सुखी होता है । कार्तिक मास की पूर्णिमा को वृषोत्सर्ग करने वाले अपने कुल का उद्धार कर देता है ।। ९ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का पृथिवी दान वर्णन नामक दो सौ तेरहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २१३ ॥

चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

मन्त्रमाहात्म्यकथनम्

अग्निरुवाच– **नाडीचक्रं प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञानाज् ज्ञायते हरिः । नाभेरधस्ताद् यत् कन्दन्मङ्कुरास्तत्र निर्गताः ॥ १ ॥ द्वासप्ततिसहस्राणि नाभिमध्ये व्यवस्थिताः । तिर्य्यगूर्ध्वमघश्चैव व्याप्तन्ताभिः समन्ततः ॥ २॥ चक्रवत् संस्थिता ह्येताः प्रधाना दशनाडयः । इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा च तथैव च ॥ ३ ॥ गान्धारी हस्तिजिह्वा च पृथा चैव यथा तथा । अलम्बुषा हुहुश्चैव शङ्खिनी दशमी स्मृता ॥ ४ ॥ दशप्राणवहाह्येता नाडयःपरिकीर्त्तिताः । प्राणोऽपानःसमानश्च उदानो व्यान एव च ॥ ५॥ नागःकूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः । प्राणस्तु प्रथमो वायुर्दशानामपि स प्रभुः॥ ६ ॥ प्राणःप्राणयते प्राणं विसर्गात् पूरणं प्रति । नित्यमापूरयत्येष प्राणिनामुरसि स्थितः ॥ ७॥ निः वासोच्छ्वासकासैस्तु प्राणो जीवसमाश्रितः। प्रयाणं कुरुते यस्मात् तस्मात् प्राणः प्रकीर्त्तितः ॥ ८ ॥ अधोनयत्वपानस्तु आहारञ्च नृणामधः । मूत्रशुक्रवहो वायुरपानस्तेन कीर्त्तितः ॥ ९ ॥ पीतभक्षितमाघ्रातं रक्तपित्तकफानिलम् । समन्नयति गात्रेषु समानो नाम मारुतः ॥ १० ॥ स्पन्दयत्यधरं वक्त्रं नेत्ररागप्रकोपनम्। उद्वेजयति मर्माणि उदानो नाम मारुतः ॥ ११ ॥ व्यानो विनामयत्यङ्गं व्यानो व्याधिप्रकोपनः । प्रतिदानं तथा कण्ठाद् व्यापनाद् व्यान उच्यते॥१२॥ उद्गारे नाग इत्युक्तःकूर्मश्चोन्मीलने स्थितः । कृकरो भक्षणे चैव देवदत्तो विजृम्भिते ॥ १३ ॥ धनञ्जयः स्थितो घोषे मृतस्यापि न मुञ्चति । जीवःप्रयाति दशधा नाड़ीचक्रं हि तेन तत्॥ १४॥ सङ्क्रान्तिः विषुवञ्चैव अहोरात्रायनानि च। अधिमास ऋणञ्चैव ऊनरात्रधनं तथा ॥ १५॥**

अग्निदेव ने कहा– अब मैं नाड़ीचक्र का वर्णन करता हूँ जिसके ज्ञान वे श्रीहरि का ज्ञान हो जाता है । नाभि के नीचे जो कन्द (मूलाधार) है उससे अंकुर निकले हुए हैं ।। १ ।। नाभि के मध्य में बहत्तर हजार नाड़ियाँ स्थित हैं । इन नाड़ियों ने शरीर को ऊपर नीचे, दाएँ-बाएँ सब ओर से व्याप्त कर रखा है ।। २ ।। ये नाड़ियाँ चक्राकार होकर स्थित हैं । उनमें दस नाड़ियाँ प्रधान हैं । इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पृथा, यशा, अलम्बुषा, हुहु तथा दसवीं शंखिनी नाड़ी बतलायी गयी है ।। ३-४ ।। दस प्राणों का वहन करने वाली ये नाड़ियाँ बतलायी गयी हैं । प्राण दस हैं- प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान ।। ५ ।। नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त एवं धनञ्जय । इनमें पहला प्राण वायु इन दसों प्राणों का स्वामी है ।। ६ ।। यह प्राण रिक्तता की पूर्ति करने के लिए प्राणों को प्रेरित करता है और समस्त प्राणियों के हृदयदेश में स्थित रहकर अपान वायु द्वारा मल-मूत्रादि के त्याग से होने वाली रिक्तता की पूर्ति करता है ।। ७ ।। जीव के आश्रित रहने वाला यह प्राण श्वास, उच्छ्वास एवं कास आदि के द्वारा प्रयाण करता है, इसीलिए इसे प्राण कहा जाता है ।। ८ ।। अपान वायु मनुष्यों के आहार को नीचे की ओर ले जाता है । वह मूत्र एवं शुक्र आदि को भी नीचे की ओर ले जाता है । इस अपनयन के कारण ही यह प्राण अपान कहलाता है ।। ९ ।। समान वायु मनुष्य द्वारा खाये, पीये तथा सूंघे गए पदार्थों को तथा रक्त, पित्त, कफ एवं वात को समान रूप से सभी अंगों में ले जाने का कार्य करता है, अतएव इसे समान कहा जाता है ।। १० ।। उदान नामक वायु मुख एवं अधरों को स्पन्दित करता है, नेत्रों में लालिमा को बढ़ाता है और मर्मस्थानों को उद्वेगित करता है, अतएव यह उदान कहलाता है ।। ११ ।। व्यान वायु अंगों को पीडित करता है और व्याधि को प्रकुपित करता है । यह कण्ठ को अवरुद्ध कर देता है तथा व्यापन शील होता है । इसीलिए इसे व्यान कहा जाता है ।। १२ ।। नाग वायु वमन तथा डकार की क्रिया कराती है, कूर्म वायु आँखों को खोलने का काम करती है, कृकर वायु भक्षण क्रिया में तथा देवदत्त वायु जँभाई लेने में अधिष्ठित होती है ।। १३ ।। धनंजय वायु का स्थान घोष है और मर जाने पर भी यह मृतक शरीर का त्याग नहीं करती है । इन दस प्राण वायुय के साथ जीव प्रयाण करता है अतएव प्राणों के समान नाड़ीचक्र भी दस प्रकार का होता है ।। १४ ।। संक्रान्ति, विषुव,

ऊनरात्रं भवेद्विक्का अधिमासो विजृम्भिका । ऋणञ्चात्र भवेत् कासो निश्वासो धनमुच्यते ॥ १६ ॥ उत्तरं दक्षिणं ज्ञेयं वामं दक्षिणसञ्ज्ञितम् । मध्ये तु विषुवं प्रोक्तं पुटद्वयविनिः स्मृतम्॥१७॥ सङ्क्रान्तिः पुनरस्यैव स्वस्थानात् स्थानयोगतः । सुषुम्णा मध्यमे ह्यङ्गे इडा वामे प्रतिष्ठिता ॥ १८ ॥ पिङ्गला दक्षिणे विप्र ! उर्ध्वं प्राणो ह्यहः स्मृतम् । अपानो रात्रिरेवं स्यादेको वायुर्दशात्मकः॥ १९ ॥ आयामो देहमध्यस्थःसोमग्रहणमिष्यते । देहातितत्वमायामम् आदित्यग्रहणं विदुः ॥ २०॥ उदरं पूरयेत् तावद् वायुनायावदीप्सितम् । प्राणायामो भवेदेष पूरको देहपूरकः॥ २१ ॥ पिधाय सर्वद्वाराणि निश्वासोच्छ्वासवर्जितः। सम्पूर्णः कुम्भवत् तिष्ठेत् प्राणायामः स कुम्भकः ॥ २२ ॥ मुञ्चेद् वायुं ततस्तूर्ध्वं श्वासेनैकेन मन्त्रवित् । उच्छ्वासयोगयुक्तश्च वायुमूर्ध्वं विरेचयेत्॥२३॥ उच्चरति स्वयं यस्मात् स्वदेहावस्थितःशिवः । तस्मात् तत्त्वविदाञ्चैव स एव जप उच्यते ॥२४॥ अयुते द्वे सहस्रैकं षट्शतानि तथैव च । अहोरात्रेण योगीन्द्रो जपसङ्ख्यां करोति सः ॥ २५॥ अजपानामगायत्री ब्रह्मविष्णुमहेश्वरी । अजपां जपते यस्तां पुनर्जन्म न विद्यते॥२६॥ चन्द्राग्निरविसंयुक्ता आद्या कुण्डलीनी मता । हृत्प्रदेशे तु सा ज्ञेया अङ्कुराकारसंस्थिता ॥ २७॥ सृष्टिन्यासो भवेत् तत्र स वै सर्गावलम्बनात् । स्रवन्तं चिन्तयेत् तस्मिन्नमृतं सात्त्विकोत्तमः ॥ २८ ॥ देहस्थः सकलो ज्ञेयो निष्फलो देहवर्जितः । हंसहंसेति यो ब्रूयाद्धंसो देवःसदाशिवः ॥ २९ ॥ तिलेषु च यथा तैलं पुष्पे गन्धःसमाश्रितः । पुरुषस्य तथा देहे स बाह्याभ्यन्तरं स्थितः ॥ ३०॥ ब्रह्मणो हृदये स्थानं कण्ठे विष्णुः समाश्रितः । तालुमध्ये स्थितो रुद्रो ललाटे तु महेश्वरः ॥ ३१ ॥ प्राणाग्रन्तु शिवं विद्यात् तस्यान्ते तु परात्परम् । पञ्चधा

अहोरात्र, अयन, अधिमास, ऋण, उनरात्र. एवं धन से सूर्य की गति से होने वाली दस दशाएँ शरीर में होती हैं ।। १५ ।। हिक्का (हिचकी आने) को उनरात्र ऋण कहते हैं और निःश्वास को धन कहते हैं ।। १६ ।। शरीर के वाम नाड़ी को उत्तरायण और दक्षिण नाड़ी को दक्षिणायन कहते हैं । दोनों के बीच में नासिका के दोनों छिद्रों से निकलने वाली श्वास वायु को विषुव कहते हैं ।।१७।। यह विषुव वायु जब अपने स्थान से चलकर दूसरे स्थान से संक्रान्त होती है तो इसे संक्रान्ति कहते हैं । हे विप्र ! शरीर के मध्यभाग में सुषुम्णा नाड़ी है, वाम भाग में इडा ओर दक्षिण भाग में पिंगला स्थित है । ऊर्ध्वगति वाला प्राण दिन कहलाता है और अधोगति वाली अपान वायु को रात्रि कहा गया है । इस तरह एक ही प्राण वायु दस प्रकार का हो जाता है ।।१८-१९।। शरीर के भीतर जो प्राण वायु का आयाम (बढ़ना) है उसे चन्द्रग्रहण कहते हैं । वही जब देह से ऊपर तक बढ़ जाता है तो उसे सूर्यग्रहण कहते हैं ।। २१ ।। साधक अपने देह में जितनी वायु भर सके भर ले, इसे ही देह को पूर्ण करने वाला पूरक प्राणायाम कहते हैं ।। २१ ।। श्वास निकलने के सभी द्वारों को बन्द करके जब साधक श्वासोच्छ्वास की सभी क्रियाओं से रहित होकर परिपूर्ण कुम्भ की तरह स्थित हो जाय तो इसे कुम्भक प्राणायाम कहते हैं ।। २२ ।। उसके पश्चात् मन्त्रवेत्ता साधक एक ही नासिका के रन्ध्र से वायु को निकाले । इस प्रकार उच्छ्वास योग से युक्त होकर वह वायु का ऊपर की ओर विरेचन करे ।। २३ ।। अपने देह में स्थित रहकर शिव स्वयम् 'सोऽहं हंसः' इस रूप से उच्चारण करता है, इसलिए तत्त्ववेत्ता पुरुष उसे ही जप मानते हैं ।। २४ ।। इस तरह एक तत्त्ववेत्ता योगीन्द्र दिन-रात भर में इक्कीस हजार छह सौ जप करता है ।। २५ ।। यह ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर से सम्बन्ध रखने वाली अजपा नामक गायत्री है । इस अजपा गायत्री का जप करने वाले का पुनर्जन्म नहीं होता है ।। २६ ।। चन्द्रमा, अग्नि एवं सूर्य से सम्बन्धित मूलाधार में रहने वाली आद्या कुण्डलिनी शक्ति हैं जो हृदय प्रदेश में अंकुर के समान स्थित है ।। २७ ।। सात्त्विक पुरुषों में उत्तम योगी, सृष्टि क्रम को आधार बनाकर सृष्टि न्यास करे, तथा ब्रह्मरंध्र में विद्यमान शिव से कुण्डलिनी के मुखभाग में झरते हुए अमृत का चिन्तन करे ।। २८ ।। शिव के दो रूप हैं- सकल एवं निष्कल- साकार देह में रहने वाले शिव सकल हैं तथा देह से रहित शिव निष्कल हैं । 'हंस' सदाशिव का नाम है । वे 'हंस हंस का जप करते रहते हैं ।। २९ ।। जिस तरह तिलों में तेल रहता है और पुष्पों में सुगन्ध रहती है, उसी तरह पुरुष (जीवात्मा) के देह के भीतर बाहर सदाशिव विराजमान हैं।।३०।। ब्रह्मा का स्थान हृदय में है, कण्ठ में विष्णु विराजमान हैं । तालु स्थान में रुद्र स्थित हैं और ललाट में महेश्वर विराजमान हैं ।। ३१ ।। प्राणों के अग्रभाग में सदाशिव को जानना चाहिए उनके

सकलः प्रोक्तो विपरीतस्तु निष्फलः ॥ ३२ ॥ प्रासादं नादमुत्थाप्य शततन्तु जपेद् यदि । षण्मासात् सिद्धिमाप्नोति योगयुक्तो न संशयः ॥ ३३॥ गमागमस्य ज्ञानेन सर्वपापक्षयो भवेत् । अणिमादिगुणैश्वर्यं षड्भिर्मासैरवाप्नुयात् ॥ ३४॥ स्थूलः सूक्ष्मः परश्चेति प्रासादः कथितो मया । ह्रस्वो दीर्घः प्लुतश्चेति प्रासादं लक्षयेत् त्रिधा ॥ ३५ ॥ ह्रस्वो दहति पापानि दीर्घो मोक्षप्रदो भवेत् । आप्यायने प्लुतश्चेति मूर्ध्नि विन्दुविभूषितः ॥ ३६॥ आदावन्ते च ह्रस्वस्य फट्कारो मारणे हितः । आदावन्ते च हृदयमाकृष्टौ सम्प्रकीर्त्तितम् ॥ ३७ ॥ देवस्य दक्षिणां मूर्त्तिं पञ्च लक्षं स्थितो जपेत्। जपान्ते घृतहोमस्तु दशसाहस्रिको भवेत् ॥ ३८ ॥ एवमाप्यायितो मन्त्रो वश्योच्चटादि कारयेत् । ऊर्ध्वे शून्यमधः शून्यं मध्ये शुन्यं निरामयम्॥३९॥ त्रिशून्यं यो विजानाति मुच्यतेऽसौ ध्रुवं द्विजः। प्रासादं यो न जानाति पञ्चमन्त्रमहातनुम् ॥ ४०॥ अष्टत्रिंशत्कलायुक्तं न स आचार्य उच्यते । तथोङ्कारञ्च गायत्रींरुद्रादीन् वेत्त्यसौ गुरुः॥ ४१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मन्त्रमाहात्म्यकथनं नाम चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१४॥

पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सन्ध्याविधिः

अग्निरुवाच– **ओंकारं यो विजानाति स योगी स हरिः पुमान् । ओङ्कारमभ्यसेत् तस्मान्मन्त्रसारन्तु सर्वदम् ॥ १ ॥ सर्वमन्त्रप्रयोगेषु प्रणवः**

अन्त में परात्पर ब्रह्म विद्यमान हैं । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश्वर एवं सदाशिव इन पाँच रूपों में सकल (सगुण साकार) परमात्मा हैं किन्तु निष्कल (निर्गुण) परमात्मा इनके विपरीत स्वभाव का है ।। ३२ ।। जो योगी इस अनाहत नाद को प्रासाद तक उठाकर अनवरत जप करता है वह छह मास में सिद्धि प्राप्त कर लेता है, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ।। ३३।। गमनागमन के ज्ञान से समस्त पापों का क्षय हो जाता है और योगी छह मास में ही अणिमा आदि सिद्धियों, गुणों एवं ऐश्वर्यों को प्राप्त कर लेता है ।। ३४ ।। मैंने तीन प्रकार के प्रासाद का वर्णन किया है– स्थूल, सूक्ष्म और ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत के भेद से प्रासाद को तीन प्रकार से लक्षित करना चाहिए । ३५ ।। ह्रस्व प्रासाद पापों को जलाता है, दीर्घ प्रासाद मोक्ष प्रदान करनें में समर्थ होता है । यह प्रासाद मस्तक पर विन्दु से विभूषित होता है ।। ३६ ।। ह्रस्व प्रासाद के आदि तथा अन्त में फट् लगाकर जप किया जाता है तो वह मारण क्रिया में हितकारक होता है । यदि उसके आदि और अन्त में नमः। पद लगाकर जपा जाय तो आकर्षण क्रिया में सहायक बतलाया गया है ।। ३७ ।। यदि महादेवजी की दक्षिणा मूर्ति सम्बन्धी मन्त्र का पाँच लाख बैठकर जप किया जाय तथा जप के अन्त में घी का दस हजार होम कर दिया जाय तो वह मन्त्र आप्यायित (सिद्ध) हो जाता है । इस प्रकार से सिद्ध हुआ मन्त्र वशीकरण और उच्चाटन आदि कार्यों का साधक होता है ।। ३८।। जो ऊपर शून्य, नीचे शून्य और मध्य में भी शून्य है उस त्रिशून्य निरामय मन्त्र. को जो जानता है, वह द्विज निश्चय ही मुक्त हो जाता है । पाँच मन्त्रों के मेल से महाकलेवर घा अड़तीस कलाओं से युक्त प्रासाद मन्त्र को नहीं जानता है, वह आचार्य नहीं कहला सकता है ।। ४० ।। जो ओंकार गायत्री तथा रुद्रादि मन्त्रों को जानता है, वही गुरु कहलाता है ।। ४१।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का मन्त्र माहात्म्य वर्णन नामक दो सौ चौदहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २१४ ॥

अग्निदेव ने कहा– वसिष्ठ ! जो ओंकार को विशेष रूप से जानता है, वह योगी और विष्णुस्वरूप है । अतएव समस्त मन्त्रों के सार स्वरूप तथा सब कुछ प्रदान करने वाले ओंकार

प्रथमःस्मृतः । तेन सम्परिपूर्णं यत् तत् पूर्णं कर्म नेतरत् ॥ २॥ ओङ्कारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः । त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम् ॥ ३ ॥ योऽधीतेऽहन्यहन्येतास्त्रीणिवर्षाण्यतन्द्रितः । स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतःखमूर्त्तिमान् ॥ ४॥ एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामपरन्तपः। सावित्र्यास्तु परन्नास्ति मौनात् सत्यं विशिष्यते ॥ ५ ॥ सप्तावर्त्ता पापहरा दशभिःप्रापयेद् दिवम् । विंशावर्त्ता तु सा देवी नयते हीश्वरालयम्॥ ६॥ अष्टोत्तरशतं जप्त्वा तीर्णः संसारसागरात् । रुद्रकुष्माण्डजप्येभ्यो गायत्री तु विशिष्यते ॥ ७ ॥ न गायत्र्याः परञ्जप्यं न व्याहृतिसमं हुतम् । गायत्र्याः पादमप्यर्द्धमृगर्द्धमृचमेव वा ॥ ८॥ ब्रह्महत्या सुरापानं सुवर्णस्तेयमेव च । गुरुदारागमश्चैव जप्येनैव पुनाति सा ॥ ९ ॥ पापे कृते तिलै र्होमो गायत्री जप ईरितः । जप्त्वा सहस्रं गायत्र्या उपवासी स पापहा ॥ १०॥ गोघ्नः पितृघ्नो मातृघ्नो ब्रह्महा गुरुतल्पगः । ब्रह्मघ्नः स्वर्णहारी च सुरापो लक्षजप्यतः॥ ११ ॥ शुध्यते वाऽथ वा स्नात्वा शतमन्तर्जले जपेत् । अपः शतेन पीत्वा तु गायत्र्याः पापहा भवेत् ॥ १२ ॥ शतं जप्ता तु गायत्री पापोपशमनी स्मृता । सहस्रं जप्ता सा देवी उपपातकनाशिनी ॥ १३॥ अभीष्टदा कोटिजप्ता देवत्वं राजतामियात् । ओङ्कारं पूर्वमुच्चार्य्य भूर्भुवः स्वस्तथैव च ॥ १४ ॥ गायत्री प्रणवश्चान्ते जपे चैवमुदाहृतम् । विश्वामित्र ऋषिश्छन्दो गायत्रं सविता तथा ॥ १५॥ देवतोपनये जप्ये विनियोगो हुते तथा। अग्निर्वायू रविर्विद्युत् यमो जलपतिर्गुरुः॥१६॥ पर्जन्य इन्द्रो गन्धर्वः पूषा च तदनन्तरम्। मित्रोऽथ वरुणस्त्वष्टा वसवो मरुतः शशी॥१७॥

का अभ्यास करना चाहिए ।। १ ।। सभी मन्त्रों के प्रयोग में ओंकार का सर्वप्रथम स्मरण किया जाता है । उससे युक्त ही कर्म परिपूर्ण होता है, उससे रहित नहीं ।। २ ।। ओंकार जिनके पूर्व में प्रयुक्त होता है, वे तीन महाव्याहृतियाँ- ओं भूः, ओं भुवः, ओं स्वः तद्यथा त्रिपदा गायत्री 'तत्सवितु वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो योनः प्रचोदयात् को ब्रह्म का मुख समझना चाहिए ।।३।। जो व्यक्ति इन सबों का तीन वर्ष तक विना किसी आलस्य के प्रतिदिन जप करता है वह आकाश शरीरक होकर वायुरूप से परब्रह्म के सान्निध्य को प्राप्त कर लेता है ।। ४ ।। एक अक्षर वाला ओंकार ही परब्रह्म है तथा प्राणायाम ही परम तप है । गायत्री से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है और मौन रहने की अपेक्षा सत्य बोलना श्रेष्ठ है ।। ५ ।। गायत्री की सात बार आवृत्ति करने से पाप विनष्ट हो जाते हैं, दश बार आवृत्ति करने से स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है, बीस बार गायत्री का प्रतिदिन जप करने वाले को गायत्री देवी स्वयम् ईश्वर के सन्निकट में पहुँचा देती हैं ।। ६ ।। गायत्री का अष्टोत्तरशत (१०८) जप करने वाला संसार सागर को पार कर लेता है । रुद्रमन्त्र तथा कुष्माण्ड मन्त्र के जप से गायत्री मंत्र का जप श्रेष्ठ है ।। ७ ।। गायत्री से बढ़कर कोई भी जपने योग्य मंत्र नहीं है और व्याहृति होम से बढ़कर कोई होम नहीं है । गायत्री के एक चरण, आधा चरण सम्पूर्ण ऋचा अथवा आधी ऋचा का भी केवल जप करने से गायत्री देवी साधक को ब्रह्महत्या, मदिरापान, सुवर्ण की चोरी तथा गुरुपत्नी गमन आदि पापों से पवित्र कर देती हैं ।। ८-९ ।। किसी भी पाप के करने पर उसके प्रायश्चित्त रूप से तिल का हवन तथा गायत्री का जप बतलाया गया है । उपवास पूर्वक एक सहस्र गायत्री का जप करने वाला अपने पापों को नष्ट कर देता है ।। १० ।। गो वध, पितृवध, मातृवध, ब्रह्महत्या, अथवा ब्राह्मण की जीविका का अपहरण करने वाला गुरुपत्नी का गमन करने वाला, सोने की चोरी करने वाला तथा सुरापान करने वाला महापातकी भी, गायत्री का एक लाख जप करके शुद्ध हो जाता है । अथवा स्नान करके जल के भीतर वह एक सौ बार गायत्री का जप करे । उसके पश्चात् गायत्री से अभिमंत्रित जल से सौ आचमन करे । इससे भी मनुष्य पापरहित हो जाता है ।। ११-१२ ।। गायत्री का एक सौ बार जप करने पर वह समस्त पापों का उपशमन करने वाली मानी गयी है । एक हजार जप करने पर वह उपपातकों का भी नाश करती हैं ।। १३ ।। एक करोड़ जप करने पर गायत्री देवी जप करने वाले को अभीष्ट फल प्रदान करती हैं तथा जप करने वाला देवत्व एवं राजत्व को भी प्राप्त कर लेता है ।। १३ ।। गायत्री के आदि में ओंकार तथा उसके बाद 'भूर्भुवः स्वः' का उच्चारण करना चाहिए उसके पश्चात् गायत्री मन्त्र का और अन्त में ओंकार का प्रयोग करना चाहिए । जप में मन्त्र का यही स्वरूप बतलाया गया है ।। १४ ।। गायत्री मन्त्र के विश्वामित्र ऋषि गायत्री छन्द और सविता देवता हैं । उपनयन, जप तथा होम में इसका विनियोग करना चाहिए ।। १५ ।। गायत्री के चौबीस अक्षरों के देवता क्रमशः ये हैं- अग्नि, वायु, रवि, विद्युत्,

अङ्गिरा विश्वनासत्यौ कस्तथा सर्वदेवताः । रुद्रो ब्रह्मा च विष्णुश्च क्रमशोऽक्षरदेवताः॥ १८॥ गायत्र्याः जपकाले तु कथिताः पापनाशनाः ।
पादाङ्गुष्ठौ च गुल्फौ च नलकौ जानुनी तथा ॥ १९ ॥ जङ्घे शिश्नश्च वृषणौ कटिर्नाभिस्तथोदरम् । स्तनौ हृदयं ग्रीवा मुखं तालु च नासिके॥२०॥
चक्षुषी च भ्रुवोर्मध्यं ललाटं पूर्वमाननम् । दक्षिणोत्तरपार्श्वे द्वे शिर आस्यमनुक्रमात् ॥ २१॥ पीतः श्यामश्च कपिलो मरकतोऽग्निसन्निभः ।
रुक्मविद्युद्धूम्रकृष्णरक्तगौरेन्द्रनीलभाः॥ २२॥ स्फाटिकस्वर्णपाण्ड्वाभाः पद्मरागोऽखिलद्युतिः । हेमधूम्ररक्तनीलरक्तकृष्णसुवर्णभाः॥ २३॥
शुक्लकृष्णपालाशाभा गायत्र्या वर्णकाः क्रमात् । ध्यानकाले पापहरा हुतैषा सर्वकामदा ॥ २४ ॥ गायत्र्या तु तिलैर्होमःसर्वपापप्रणाशनः ।
शान्तिकामो यवैःकुर्यादायुष्कामो घृतेन च॥ २५॥ सिद्धार्थकैः कर्मसिद्ध्यै पयसा ब्रह्मवर्चसे । पुत्रकामस्तथादध्ना धान्यकामस्तु शालिभिः॥
२६॥ क्षीरिवृक्षसमिद्भिस्तु ग्रहपिडोपशान्तये । धनकामस्तथा विल्वैः श्रीकामः कमलैस्तथा॥ २७ ॥ आरोग्यकामो दूर्वाभिर्गुरूत्पाते स एव हि ।
सौभाग्येच्छुर्गुग्गुलुना विद्यार्थी पायसेन च ॥ २८॥ अयुतेनोक्तसिद्धिःस्याल्लक्षेणमनसेप्सितम् । कोट्याब्रह्मबधान् मुक्तःकुलोद्धारीहरिर्भवेत्॥२९॥
ग्रहयज्ञमुखो वापि होमोऽयुतमुखोऽर्थकृत् । आवाहनञ्च गायत्र् यास्तत ओङ्कारमभ्यसेत्॥ ३०॥ स्मृत्वौङ्कारन्तु गायत्र्या निबध्नीयाच्छिखां ततः।
पुनराचम्य हृदयं नाभिं स्कन्धौ च संस्पृशेत् ॥ ३१ ॥प्रणवस्य ऋषीर्ब्रह्मा गायत्रीच्छन्दएव च । देवोऽग्निः परमात्मा स्याद् योगो वै सर्वकर्मसु॥३२॥

यम, जलपति, गुरु, पर्जन्य, इन्द्र, गन्धर्व, पूषा, मित्र, वरुण, त्वष्टा, वसुगण, मरुद्गण, चन्द्रमा, अंगिरा, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, प्रजापति सहित समस्त देवगण, रुद्र ब्रह्मा और विष्णु ।।१६-१८।। गायत्री जप के समय उपर्युक्त देवताओं का उच्चारण किया जाय तो वे जपकर्ता के पापों का विनाश करते हैं ।। १८ ।। गायत्री मन्त्र के एक-एक अक्षर का अपने अंगों में क्रमशः इस प्रकार न्यास करें । पैरों के दोनों अंगुष्ठ, दोनों गुल्फ, नलक (दोनों पिण्डलियों) घुटने, दोनों जंघे, उपस्थ, वृषण, कटिभाग, नाभि, उदर, स्तनमण्डल, हृदय, ग्रीवा, मुख, (अधरोष्ठ) तालु, नासिका, नेत्रद्वय,भ्रूमध्य, ललाट, पूर्वआनन (उत्तरोष्ठ) दक्षिण पार्श्व, उत्तरपार्श्व, सिर और सम्पूर्ण मुखमण्डल ।। १९-२१ ।। गायत्री के चौबीस अक्षरों के वर्ण क्रमशः इस प्रकार हैं- पीत, श्याम, कपिल, मरकतमणिसदृश, अग्नितुल्य, रुक्म (सुवर्ण) सदृश, विद्युतप्रभ, धूम्र, कृष्ण, रक्त, गौर, इन्द्रनीलमणि सदृश, स्फटिकमणितुल्य, स्वर्णिम, पाण्डु, पुखराज के समान, अखिलद्युति, हेमाभधूम्र, रक्तनील, रक्तकृष्ण, सुवर्णाभ, शुक्ल, कृष्ण और पलाश वर्ण ।। २२-२३ ।। गायत्री ध्यान करनेवाले के पापों का नाश कर देती हैं तथा हवन करने पर सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओं को प्रदान करती हैं ।। २४ ।। गायत्री मन्त्र से तिलों का होम, सम्पूर्ण पापों का विनाश करता है । शान्ति चाहने वाला जौ का हवन करे और दीर्घायु चाहने वाला घी का हवन करे।।२५।। कर्म की सिद्धि के लिए पीली सरसो से तथा ब्रह्मतेज चाहने वाला दुग्ध से हवन करे । पुत्र की प्राप्ति की इच्छा से दधि का हवन करना चाहिए और अधिक धान्य चाहने वाला अगहनी के चावल से हवन करे ।। २६ ।। ग्रहहीड़ा की शान्ति के लिए खैरवृक्ष की समिधाओं का, धन की कामना करने वाला विल्वपत्र का, लक्ष्मी चाहने वाला कमल पुष्पों का, आरोग्य चाहने वाला तथा महान उत्पात से आतंकित मनुष्य दुर्वा का हवन करे ।। २७ ।। सौभाग्याभिलाषी गुग्गुल का और विद्याकामी खीर का हवन करे ।। २८ ।। दस हजार आहुतियों से उपर्युक्त कामनाओं की सिद्धि होती है और एक लाख आहुतियों से साधक मनोभिलषित वस्तु को प्राप्त कर लेता है । एक करोड़ आहुतियों से हवन कर्ता ब्रह्महत्या के महापातक से मुक्त होकर, अपने कुल का उद्धार करके श्रीहरि स्वरूप हो जाता है ।। २९ ।। ग्रहों की शान्ति के लिए होम किया जा रहा हो तो उसमें भी गायत्री से दस हजार आहुतियाँ देने पर अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है । **सन्ध्या विधि का वर्णन**– सर्वप्रथम गायत्री का आवाहन करके ओंकार का उच्चारण करना चाहिए, फिर गायत्री मंत्र का ओंकार का उच्चारण करके शिखाबन्धन करना चाहिए । पुनः आचमन करके हृदय, नाभि और दोनों कन्धों का स्पर्श करना चाहिए ।। ३०-३१ ।। प्रणव (ओंकार) के ऋषि ब्रह्मा तथा छन्द गायत्री है। इसके अग्नि अथवा परमात्मा देवता हैं । इसका सभी कर्मों के आरम्भ में प्रयोग होता है । इस तरह इसका विनियोग का मन्त्र होगा- 'ओंकारस्य ब्रह्मा ऋषिः गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता, शुक्लोवर्णः सर्वकर्मारम्भे विनियोगः ।। ३२ ।। गायत्री

शुक्ला चाग्निमुखी दिव्या कात्यायनसगोत्रजा । त्रैलोक्यवरणा दिव्या पृथिव्याधारसंयुता ॥ ३३॥ अक्षसूत्रधरा देवी पद्मासनगता शुभा । ओं तेजोऽसि महोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि देवानान्धामनामासि विश्वमसि विश्वायुःसर्वमसि सर्वायुः ओं अभि भूः । आगच्छ वरदे । देवि ! जप्ये ! मे सन्निधौ भव ॥ ३४ ॥ व्याहृतीनान्तु सर्वासामृषिरेव प्रजापतिः। व्यस्ताश्चैव समस्ताश्च ब्राह्ममक्षरमोमिति ॥ ३५॥ विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गोतमः । ऋषिरत्रिर्वसिष्ठश्च काश्यपश्च यथाक्रमम् ॥ ३६॥ अग्निर्वायू रविश्चैव वाक्पतिर्वरुणस्तथा। इन्द्रो विष्णुर्व्याहृतीनां दैवतानि यथाक्रमम्॥३७॥ गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च वृहती पङ्क्तिरेव च । त्रिष्टुप् च जगती चेति छन्दांस्याहुरनुक्रमात् ॥ ३८ ॥ विनियोगे व्याहृतीनां प्राणायामे च होमके । आपोहिष्ठेत्यृचा चापान्द्रुपदादीति वा स्मृता ॥ ३९ ॥ तथाहिरण्यवर्णाभिःपावमानीभिरन्ततः । विप्रुषोऽष्टौ क्षिपेदूर्ध्वमाजन्मकृतपापजित्॥ ४०॥ अन्तर्जले ऋतञ्चेति जपेत् त्रिरघमर्षणम् । आपोहिष्ठेत्यृचोऽस्याश्च सिन्धुद्वीप ऋषिः स्मृतः ॥ ४१ ॥ ब्रह्मस्नानाय छन्दोऽस्य गायत्री देवता जलम्। मार्जने विनियोगस्य ह्यावभृथके क्रतोः ॥ ४२ ॥ अघमर्षणसूक्तस्य ऋषिरेवाघमर्षणम् । अनुष्टुप् च भवेच्छन्दो भाववृत्तस्तु दैवतम् ॥ ४३॥ आपोज्योतीरस इति गायत्र्यास्तु शिरः स्मृतम् । ऋषिः प्रजापतिस्तस्य छन्दोहीनं यजुर्यतः॥ ४४ ॥ ब्रह्माग्निवायुसूर्य्याश्च देवताः परिकीर्त्तिताः ।

का ध्यान शुक्लाचाग्निमुखी- इत्यादि मन्त्र से करना चाहिए । मन्त्र का अर्थ है- गायत्री देवी शुक्लवर्ण के हैं,, अग्नि ही उनका मुख है, दिव्य गुणसम्पन्न वे कात्यायन गोत्र वाली हैं । दिव्यगुणों से युक्त गायत्री देवी का त्रैलोक्य ही आवरण है । वे पृथिवी रूपी आधार से संयुक्त हैं ।। ३३ ।। गायत्री देवी अक्षसूत्र धारण करती हैं तथा कल्याणकारिणी वे पद्मासन पर विराजमान हैं ।।३३।। इसके पश्चात् गायत्री देवी का आवाहन निम्नांकित मन्त्र से करना चाहिए- ओम् तेजोऽसि महोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि,देवानां धामनामसि, विश्वमसि विश्वायुःसर्वमसि सर्वायुः ओम् अभिभूः ।' आगच्छ वरदेदेवि ! जप्ये मे सन्निधौ भव ।। ३४ ।। अर्थात्- सभी व्याहृतियों के ऋषि प्रजापति ही हैं । वे व्यष्टि एवं समष्टि दोनों रूपों से परब्रह्मस्वरूप एकाक्षर ब्रह्म ओंकार में स्थित हैं ।।३५।। विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ तथा कश्यप ये सातों व्याहृतियों के क्रमशः ऋषि हैं ।। ३६ ।। सप्तव्याहृतियों के क्रमशः ये सात देवता हैं- अग्नि, वायु, सूर्य, वाक्पति, वरुण, इन्द्र तथा विष्णु ।। ३७ ।। इन सातों व्याहृतियों के क्रमशः छन्द ये हैं- गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती ।। ३८ ।। प्राणायाम करने तथा होम करने में व्याहृतियों का विनियोग करना चाहिए । सप्त व्याहृतियों के विनियोग का स्वरूप निम्नांकित है- सप्त व्याहृतीनां विश्वामित्रजमदग्न्यग्निभरद्वाजगोतमात्रिवसिष्ठकश्यपा ऋषयो गायत्र्युष्णिगनुष्टु बृहती पंक्तित्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांसि अग्निवायवादित्य बृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वेदेवा देवताः अनादिष्टप्रायश्चित्ते प्राणायामे विनियोगः ।। ओं आपोहिष्ठा इत्यादि तीन ऋचाओं तथा द्रुपद्रादि ऋचा तथा 'हिरण्यवर्णाभिः' इत्यादि आठ पवमानी ऋचाओं से जल के आठ छींटे ऊपर छिड़कना चाहिए, ऐसा करने वाला जन्म मरण के पापों को विनष्ट कर देता है ।। ४० ।। (१) ओं आपो हिष्ठा मयो भुवः, (२) ओं तान ऊर्जे दधातन, (३) ओं महेरणाय चक्षसे, (४) ओं यो वः शिवतमो रसः । (५) ओं तस्य भाजयते हनः, (६) ओं उशतीरिवमातरः, (७) ओं तस्मा अरंगमामव । (८) ओं आपोजनयथाचनः ।। ओं द्रुपदादिव मुमूचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव । पूतो पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ।। जल के भीतर 'ऋतञ्च' इत्यादि अघमर्षण मन्त्र का तीन बार जप करना चाहिए। 'आपोहिष्ठाः' इत्यादि तीन ऋचाओं के ऋषि सिन्ण्धुद्वीप हैं ।। ४१ ।। इसका छन्द गायत्री है और देवता जल हैं । इसका विनियोग यज्ञ के अवभृथ स्नान के ब्रह्मस्नान के मार्जन में होता है।।४२।। अघमर्षण सूक्त के ऋषि अघमर्षण हैं । इसका छन्द अनुष्टुप् है और भाववृत्त रस के देवता हैं ।। ४३ ।। 'आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम् ' यह गायत्री का शिरोभाग है। इसके प्रजापति ऋषि हैं । यह छन्दरहित यजुर्मन्त्र है क्योंकि यजुर्वेद के मन्त्र किसी नियत अक्षर वाले छन्द में आबद्ध नहीं हैं ।। ४४ ।। इस शिरोमन्त्र के ब्रह्मा, अग्नि, वायु तथा सूर्य देवता कहे गये हैं । प्राणायाम से वायु, वायु से अग्नि और अग्नि से जल की उत्पत्ति होती है ।उसी जल से शुद्धि होती है । इसीलिए जल का आचमन निम्नलिखित मन्त्र से करना चाहिए- 'अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वमूर्तिषु । तपो यज्ञो वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम् ।।' उदुत्यं जातवेदसम् ० इस मन्त्र के ऋषि प्रष्कण्व कहे जाते हैं । इसके गायत्री छन्द और सूर्य देवता हैं । इसका विनियोग

प्राणरोधात् तु वायुः स्याद् वायोरग्निश्च जायते ॥ ४५ ॥ अग्नेरापस्ततः शुद्धिस्ततश्चाचमनञ्चरेत् । अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वमूर्त्तिषु ॥ ४६॥ तपोयज्ञवषट्कार आपो ज्योतिरसोऽमृतम् । उदुत्यं जातवेदसमृषि;प्रष्कन्न उच्यते ॥ ४७॥ गायत्रीच्छन्द आख्यातं सूर्यश्चैव तु दैवतम् । अतिरात्रे नियोगः स्यादग्नीषोमो नियोगकः ॥ ४८ ॥ चित्रं देवेति ऋचके ऋषिः कौत्स उदाहृतः । त्रिष्टुप् छन्दो दैवतञ्च सूर्य्योऽस्याः परिकीर्त्तितम् ॥ ४९॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सन्ध्याविधि वर्णनं नाम पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१५॥

षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

गायत्रीनिर्वाणम्

अग्निरुवाच– **एवं सन्ध्याविधिं कृत्वा गायत्रीञ्च जपेत् स्मरेत् । गायञ्छिष्यान् यतस्त्रायेद् भार्य्यां प्राणांस्तथैव च ॥ १ ॥ ततः स्मृतेयं गायत्री सावित्रीयं ततो यतः । प्रकाशनात् सा सवितुर्वाग्रूपत्वात्सरस्वती॥ २॥ तज्ज्योतिः परमं ब्रह्म भर्गस्तेजो यतःस्मृतम् । भा दीप्ताविति रूपं हि भ्रस्जः पाकेऽथ तत् स्मृतम् ॥ ३ ॥ ओषध्यादिकं पचति भ्राजृ दीप्तौ तथा भवेत् । भर्गः स्याद् भ्राजत इति बहुलं छन्द ईरितम् ॥ ४ ॥ वरेण्यं सर्वतेजोभ्यः श्रेष्ठं वै परमं पदम् । स्वर्गापवर्गकामैर्वा वरणीयं सदैव हि ॥ ५ ॥ वृणोतेर्वरणार्थत्वाज्जाग्रत्स्वप्नादिवर्जितम् । नित्यशुद्धबुद्धमेकं सत्यन्तद्धीमहीश्वरम्॥६॥ अहं ब्रह्म परंज्योतिर्ध्यायेम हि विमुक्तये । तज् ज्योतिर्भगवान् विष्णुर्जगज्जन्मादिकारणम् ॥ ७ ॥ शिवं केचित् पठन्तिस्म शक्तिरूपं पठन्ति च। केचित् सूर्य्यङ्केचिदग्निं वेदगा अग्निहोत्रिणः ॥ ८ ॥ अग्न्यादिरूपी विष्णुर्हि वेदादौ ब्रह्म गीयते । तत् पदं परमं विष्णोर्देवस्य सवितुः स्मृतम् ॥९॥**

अतिरात्र विनियोग में होता है तद्यथा इसके नियोक्ता अग्नि तथा सोम हैं ।। ४८ ।। 'चित्रं देवानाम्०' इत्यादि ऋचा के ऋषि कौत्स हैं, छन्द अनुष्टुप् तथा इसके देवता सूर्य बतलाये गये हैं ।।४९।।

इस तरह से आदि महापुराण अग्निपुराण का सन्ध्या विधि वर्णन नामक दो सौ पन्द्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २१५ ॥

अग्निदेव ने कहा– इस प्रकार संध्याविधि करके गायत्री का स्मरण करना चाहिए । चूँकि इसका ज्ञान करने वाला अपने शिष्यों, पत्नी तथा अपने प्राणों की रक्षा करता है ।। १ ।। इसीलिए इसे गायत्री कहा जाता है । चूँकि यह सविता से वाग्रूपा सरस्वती के रूप में प्रकट् हुई अतएव इसे सावित्री कहते हैं ।। २ ।। गायत्री के 'तत् ' पद से ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म परमात्मा अभिहित किये जाते हैं । भर्गः पद तेज का वाचक है, क्योंकि भा धातु दीप्त्यर्थक है । 'भ्रस्ज' पाके इस पाकार्थक भ्रस्ज धातु से भी भर्गशब्द की सिद्धि होती है ।। ३ ।। क्योंकि सूर्य का तेज औषधि आदि को भी पकाता है । भ्राजृदीप्तौ धतु से भी भर्ग शब्द व्युत्पन्न होता है । बहुलं छन्दसि' इस वैदिक सूत्र के अनुसार 'भ्राजते' इति भर्ग शब्द की व्युत्पत्ति होती है ।। ४ ।। गायत्री का 'वरेण्यं' पद समस्त तेजों से श्रेष्ठ परम पद को बतलाता है । स्वर्ग तथा मोक्ष को चाहने वाले मनुष्यों के द्वारा सेवनीय होने के कारण वह वरेण्य कहा गया है ।। ५ ।। क्योंकि 'वृञ्' धातु वरणार्थक है । गायत्री के धीमहि पद का अभिप्राय है कि 'हम जाग्रत एवं सुषुप्ति आदि अवस्थाओं से अतीत, नित्य, शुद्ध, बुद्ध एकमात्र सत्य एवं ज्योतिः स्वरूप परब्रह्म परमेश्वर का ध्यान मुक्ति प्राप्ति के लिए करते हैं ।। ६ ।। वह ज्योति जगत् के जन्म, पालन एवं संहार के कारण स्वरूप भगवान् विष्णु ही हैं ।। ७ ।। कुछ लोग शिव को वह ज्योति मानते हैं, कुछ लोग शक्ति को, कुछ लोग सूर्य को, वैदिक अग्निहोत्री विद्वान् अग्नि को ही वह ज्योति मानते हैं ।। ८ ।। अग्नि आदि का रूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु ही वेद आदि में ब्रह्म शब्द से कहे

महदाज्यं सूयते हि स्वयं ज्योतिर्हरिः प्रभुः । पर्जन्यो वायुरादित्यःशीतोष्णाद्यैश्च पाचयेत् ॥ १० ॥ अग्नौ प्रास्ताहुतिःसम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नन्ततः प्रजाः ॥ ११॥ दधातेर्वा धीमहीति मनसा धारयेमहि । नोऽस्माकं यश्च भर्गश्च सर्वेषां प्राणिनां धियः॥ १२ ॥ चोदयात् प्रेरयेद् बुद्धिर्भोक्तृणां सर्वकर्मसु । दृष्टादृष्टविपाकेषु विष्णुसूर्य्याग्निरूपवान् ॥ १३ ॥ ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वाऽश्वभ्रमेव वा । ईशावास्यमिदं सर्वं महदादिजगद्धरिः॥ १४॥ स्वर्गाद्यैः क्रीडते देवो योऽहं स पुरुषः प्रभुः। आदित्यान्तर्गतं यच्च भर्गाख्यं वै मुमुक्षुभिः॥ १५ ॥ जन्ममृत्युविनाशाय दुःखस्य त्रिविधस्य च । ध्यानेन पुरुषोऽयञ्च द्रष्टव्यःसूर्यर्यमण्डले ॥ १६॥ तत्त्वं सदसि चिद् ब्रह्म विष्णोर्यत् परमं पदम् । देवस्य सवितुर्भर्गो वरेण्यं हि तुरीयकम् ॥ १७ ॥ देहादिजाग्रदाब्रह्म अहं ब्रह्मेति धीमहि । योऽसावादित्यपुरुषःसोऽसावहमनन्त ओम्। ज्ञानानि शुभकर्मादीन् प्रवर्त्तयति यःसदा ॥ १८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गायत्रीनिर्वाणकथनं नाम षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१६॥

सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

गायत्रीनिर्वाणम्

अग्निरुवाच– **लिङ्गमूर्त्तिं शिवं स्तुत्वा गायत्र्या योगमाप्तवान्। निर्वाणं परमं ब्रह्म वसिष्ठोऽन्यश्च शङ्करात्॥१॥ नमः कनकलिङ्गाय वेदलिङ्गाय**

जाते हैं । अतएव देवस्य सवितुः- जगत् को उत्पन्न करने वाले श्रीविष्णु देव का ही वह परमपद माना गया है ।।९।। स्वयं ज्योतिः स्वयम् प्रकाश' प्रभु श्रीहरि ही महदादि को उत्पन्न करते हैं। वे ही पर्जन्य, वायु, आदित्य एवं शीतग्रीष्म आदि ऋतुओं द्वारा अन्न का पोषण करते हैं ।।१०।। अग्नि में विधिपूर्वक दी गयी आहुति सूर्य तक पहुँचती है, सूर्य से वृष्टि, वृष्टि से अन्न और अन्न से प्रजाओं की उत्पत्ति होती है ।। ११ ।। 'डुधाञ्' धातु से भी धीमहि पद की सिद्धि होती है और उसका अर्थ है कि हम मन से चिन्तन-धारण करते हैं । यः अर्थात् जो परमात्मा श्रीविष्णु का वह तेज (नः) हम सभी प्राणियों की (धियः) बुद्धि वृत्तियों को (प्रचोदयात्) प्रेरित करे वे ईश्वर ही कर्मफल का भोग करने वाले समस्त प्राणियों के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष परिणामों से युक्त समस्त कर्मों में विष्णु, सूर्य एवं अग्निरूप से स्थित हैं ।।१२-१३।। यह जीव ईश्वर की ही प्रेरणा के अनुसार स्वर्ग अथवा नर्क में जाता है । यह सम्पूर्ण जगत् परमात्मा से व्याप्त है अतएव महत् आदि सम्पूर्ण जगत् परमात्म स्वरूप है ।। १४ ।। वे सर्वसमर्थ हंस स्वरूप परमपुरुष स्वर्गादि लोकों से क्रीड़ा करते हैं । आदित्यमण्डल के भीतर जो भर्ग नामक परमात्मा का तेज है मुमुक्षु पुरुषों के जन्म तथा मृत्यु जन्य दुःख का विनाश करने के लिए तथा त्रिविध तापों का नाश करने के लिए इसी तेज का सूर्यमण्डल के भीतर ध्यान के माध्यम से दर्शन करना चाहिए।।१६।। 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्य उसी ज्ञान स्वरूप ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं । सम्पूर्ण लोकों का निर्माण करने वाले सविता देवता का जो वरणीय भर्ग है, वह विष्णु का परमपद है और वही गायत्री का ब्रह्मस्वरूप चतुर्थ पाद है ।। १७ ।। गायत्री के 'धीमहि' पद का अभिप्राय है कि देहादि की जाग्रदवस्था में सामान्य जीव से लेकर ब्रह्मपर्यन्त मैं ही ब्रह्म हूँ और आदित्यमण्डल में जो पुरुष है वह भी मैं ही हूँ । मैं सर्वप्रकार से परिपूर्ण ओम् हूँ । (प्रचोदयात्) पद के कर्ता रूप से उन परमेश्वर को ग्रहण करना चाहिए जो सदा ज्ञान तथा शुभ कर्मों को प्रवर्तित करते हैं ।। १८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का गायत्री निर्वाण वर्णन नामक दो सौ सोलहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २१६ ॥

अग्निदेव ने कहा– वसिष्ठ किसी अन्य वसिष्ठ ने गायत्री जप पूर्वक लिङ्गमूर्ति शिव की स्तुति करके भगवान् शंकर से निर्वाणस्वरूप परंब्रह्म को प्राप्त किया ।। १ ।। उन वसिष्ठ ने

वै नमः । नमः परमलिङ्गाय व्योमलिङ्गाय वै नमः ॥ २ ॥ नमःसहस्रलिङ्गाय वह्निलिङ्गाय वै नमः । नमः पुराणलिङ्गाय श्रुतिलिङ्गाय वै नमः ॥३॥ नमः पाताललिङ्गाय ब्रह्मलिङ्गाय वै नमः । नमो रहस्यलिङ्गाय सप्तद्वीपोर्ध्वलिङ्गिने ॥ ४॥ नमःसर्वात्मलिङ्गाय सर्वलोकाङ्गलिङ्गिने । नमस्त्वव्यक्तलिङ्गाय बुद्धिलिङ्गाय वै नमः ॥ ५॥ नमोऽहङ्कारलिङ्गाय भूतलिङ्गाय वै नमः । नमः इन्द्रियलिङ्गाय नमस्तन्मात्रलिङ्गिने ॥ ६॥ नमः पुरुषलिङ्गाय भावलिङ्गाय वै नमः । नमो रजोर्द्धलिङ्गाय सत्त्वलिङ्गाय वै नमः ॥ ७॥ नमस्ते भवलिङ्गाय नमस्त्रैगुण्यलिङ्गिने । नमोऽनागतलिङ्गाय तेजोलिङ्गाय वै नमः ॥ ८॥ नमो वायूदूर्ध्वलिङ्गाय श्रुतिलिङ्गाय वै नमः । नमस्तेऽथर्वलिङ्गाय सामलिङ्गाय वै नमः ॥ ९ ॥ नमो यज्ञाङ्गलिङ्गाय यज्ञलिङ्गाय वै नमः ॥ नमस्ते तत्त्वलिङ्गाय देवानुगतलिङ्गिने ॥ १० ॥ दिश नः परमं योगमपत्यं मत्समं तथा । ब्रह्म चैवाक्षयं देव ! शमञ्चैव परं विभो ! ॥ ११॥ अक्षयत्वञ्च वंशस्य धर्मे च मतिमक्षयाम् । अग्निरुवाच– वसिष्ठेन स्तुतः शम्भुस्तुष्टः श्रीपर्वते पुरा । वसिष्ठाय वरं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ १२॥

इत्यादि महापुराण आग्नेये गायत्रीनिर्वाणवर्णनं नाम सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २१७॥

अष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

राज्याभिषेककथनम्

पुष्करेण च रामाय राजधर्मं हि पृच्छते । यथादौ कथितं तद्वद् वशिष्ठ ! कथयामि ते ॥ १॥ पुष्कर उवाच– राजधर्मं प्रवक्ष्यामि सर्वस्मात् राजधर्मतः। राजा भवेत् शत्रुहन्ता प्रजापालः सुदण्डवान् ॥ २॥ पालयिष्यति वः सर्वान् धर्मस्थान् व्रतमाचरेत् । संवत्सरं स वृणुयात् पुरोहितमथ

इस प्रकार से स्तुति की- 'कनकलिङ्ग को नमस्कार है, वेदलिङ्ग को नमस्कार है, परमलिङ्ग को नमस्कार को तथा व्योमलिङ्ग को नमस्कार है ।। २ ।। सहस्रलिङ्ग को नमस्कार है, अग्निलिङ्ग को नमस्कार है, पुराणलिङ्ग को नमस्कार है, तथा श्रुतिलिङ्ग को नमस्कार है ।। ३ ।। पाताललिङ्ग को नमस्कार है, ब्रह्मलिङ्ग को नमस्कार है, रहस्यलिङ्ग को नमस्कार है तथा सप्तद्वीपोर्ध्वलिङ्ग को नमस्कार है ।। ४ ।। सर्वात्मलिङ्ग को नमस्कार है, सर्वलोकाङ्गलिङ्ग को नमस्कार है, अव्यक्तलिङ्ग को नमस्कार है तथा बुद्धिलिङ्ग को नमस्कार है ।। ५ ।। अहंकारलिङ्ग को नमस्कार है, भूतलिङ्ग को नमस्कार है, इन्द्रियलिङ्ग को नमस्कार है तथा तन्मात्रलिङ्ग को नमस्कार है ।। ६ ।। पुरुषलिङ्ग को नमस्कार है, भावलिङ्ग को नमस्कार है, रजोर्द्धलिङ्ग को नमस्कार है तथा सत्त्वलिङ्ग को नमस्कार है ।। ७ ।। भवलिङ्ग को नमस्कार है, त्रैगुण्यलिङ्ग को नमस्कार है, अनागतलिङ्ग को नमस्कार है तथा तेज़ोलिङ्ग को नमस्कार है ।। ८ ।। वायूर्ध्वलिङ्ग को नमस्कार है, श्रुतिलिङ्ग को नमस्कार है, अथर्वलिङ्ग को नमस्कार है, तथा सामलिङ्ग को नमस्कार है ।। ९ ।। यज्ञांगलिङ्ग को नमस्कार है, तत्त्वलिङ्ग को नमस्कार है तथा देवानुगतलिङ्ग को नमस्कार है ।। १० प्रभो आप मुझे परमयोग का उपदेश दीजिए और मेरे समान मुझे पुत्र प्रदान कीजिए । भगवन् मुझे अविनाशी परब्रह्म एवं परमशान्ति की प्राप्ति कराइये । मेरा वंश कभी भी क्षीण न होए और मेरी बुद्धि सदा धर्म में लगी रहे ।। ११-१२ ।। **अग्निदेव ने कहा–** प्राचीन काल में श्री शैल पर वसिष्ठ के इस प्रकार से स्तुति करने पर भगवान् शंकर प्रसन्न हो गए और वसिष्ठ को वरदान देकर वहीं अन्तर्ध्यान हो गए ।। १३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का गायत्री से निर्वाण प्राप्ति का वर्णन नामक दो सौ सत्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २१७ ॥

अध्याय २१८

अग्निदेव ने कहा– वसिष्ठ पूर्वकाल में परशुराम जी के पूछने पर पुष्कर ने उनसे जिस प्रकार राजधर्म का वर्णन किया था, वही मैं तुमसे बतला रहा हूँ ।। १ ।। **पुष्कर ने कहा–**

द्विजम् ॥ ३ ॥ मन्त्रिणश्चाखिलात्मज्ञान् महिषीं धर्मलक्षणाम् । संवत्सरं नृपः काले ससम्भारोऽभिषेचनम् ॥ ४ ॥ कुर्य्यान् मृते नृपेनात्र कालस्य नियमःस्मृतः । तिलैःसिद्धार्थकैःस्नानं सांवत्सरपुरोहितौ॥ ५॥ घोषयित्वा जयं राज्ञो राजा भद्रासने स्थितः । अभयं घोषयेद् दुर्गान् मोचयेद्राजपालके॥६॥ पुरोधसोऽभिषेकात् प्राक् कार्य्यैन्द्री शान्तिरेव च । उपवास्य भिषेकाहे वेद्यग्नौ जुहुयान्मनून् ॥ ७ ॥ वैष्णवानैन्द्रमन्त्रांस्तु सावित्रान् वैश्वदैवतान् । सौम्यान् स्वस्त्ययनं शर्म आयुष्याभयदान्मनून् ॥ ८ ॥ अपराजिताञ्च कलसं वह्नेर्दक्षिणपार्श्वगम् । सम्पातवन्तं हैमञ्च पूजयेद् गन्धपुष्पकैः ॥ ९॥ प्रदक्षिणावर्त्तशिखस्तप्तजाम्बूनदप्रभः। रथौघमेघनिर्घोषो विधूमश्च हुताशनः॥ १०॥ अनुलोमः सुगधिश्च स्वस्तिकाकारसंनिभः। प्रसन्नार्चिमहाज्वालःस्फुलिङ्गरहितो हितः॥ ११॥ न व्रजेयुश्च मध्येन मार्जारमृगपक्षिणः । पर्वतोग्रमृदा तावन्मूर्द्धानं शोधयेन्नृपः ॥ १२॥ वल्मीकाग्रमृदा कर्णौ वदनं केशवालयात् । इन्द्रालयमृदा ग्रीवां हृदयन्तु नृपाजिरात्॥ १३॥ करिदन्तोद्धतमृदा दक्षिणन्तु तथा भुजम् । वृषशृङ्गोद्धतमृदा वामञ्चैव तथा भुजम् ॥ १४ ॥ सरोमृदा तथा पृष्ठमुदरं सङ्गमान् मृदा । नदीतटद्वयमृदा पार्श्वे संशोधयेत् तथा ॥ १५॥ वेश्याद्वारमृदा राज्ञःकटिशौचं विधीयते। यज्ञस्थानात् तथैवोरू गोस्थानाज्जानुनी तथा ॥ १६ ॥ अश्वस्थानात् तथा जंघे रथचक्रमृदाङ्घ्रिके । मूर्द्धानं पञ्चगव्येन भद्रासनगतं नृपम्॥१७॥ अभिषिञ्चदमात्यानां चतुष्टयमथो घटैः। पूर्वतो हेमकुम्भेन घृतपूर्णेन ब्राह्मणः ॥१८॥ रूप्यकुम्भेन याम्ये च क्षीरपूर्णेन क्षत्रियः। दध्ना

मैं सम्पूर्ण राजधर्मों से संगृहीत करके राजधर्म का उपदेश कर रहा हूँ । राजा को शत्रुओं को मारने वाला, प्रजाओं का पालन करने वाला तथा सुन्दर दण्ड का प्रयोग करने वाला होना चाहिए।।२।। धर्ममार्ग पर चलने वाले आप सबों का मैं पालन करूँगा । अपनी इस प्रतिज्ञा का उसे पालन करना चाहिए ।संवत्सर का फल बतलाने वाले एक ब्राह्मण पुरोहित का वरण करना चाहिए ।।३।। राजभार ग्रहण करने के एक वर्ष के बाद उसे सभी आत्मतत्त्ववेत्ता मन्त्रियों तथा धार्मिक प्रवृत्ति वाली राजमहिषी का वरण करना चाहिए । और विशेष समारोह के साथ अभिषेक कराना चाहिए।।४।। पहले राजा के मर जाने पर शीघ्र ही राजासन ग्रहण करना चाहिए ।ऐसा होने पर समय का कोई नियम नहीं है ज्योतिषी और पुरोहित द्वारा तिल, सरसों आदि सामग्रियों से राजा स्नान करे ।।५।। वह भद्रासन पर विराजमान होकर सम्पूर्ण राज्य में राजा की विजय घोषणा करे । वह अभय घोषणा कराकर समस्त कैदियों को मुक्त कर दे ।। ६ ।। अभिषेक से पहले वह पुरोहित द्वारा ऐन्द्रीशान्ति कराये । राजा अभिषेक के दिन उपवास करके वेदी पर स्थापित अग्नि में मन्त्रपाठपूर्वक हवन करे ।। ७ ।। विष्णु, इन्द्र, सविता, विश्वेदेव तथा सोम देवता सम्बन्धी वैदिक ऋचाओं का तथा स्वस्त्ययन, शान्ति, आयुष्य तथा अभय प्रदान करने वाले मन्त्रों का पाठ करे ।। ८ ।। उसके पश्चात् अग्नि के दक्षिण तरफ हो, अपराजिता देवी एवं सुवर्ण कलश की, जिसमें जल गिरने के लिए अनेक छिद्र बने हुए हों स्थापना करके चन्दन और फूलों द्वारा उनका पूजन करे ।। ९ ।। यदि अग्नि की शिखा दक्षिणावर्त हो, तप्त सुवर्ण के समान उसकी कान्ति हो रथ और मेघ के समान उसकी ध्वनि निकलती हो, धुआँ विल्कुल नहीं दिखायी देता हो, अग्निदेव अनुकूल होकर हविष्य ग्रहण करते हों, होम की अग्नि सेउत्तम गन्ध निकलती हो, अग्नि से स्वस्तिक के आकार की लपटें निकलती हों, उसकी शिखा स्वच्छ हो ओर ऊँचे तक उठ रही हो और अग्नि से चिनगारी नहीं निकलती हो, तो इस प्रकार की अग्नि की ज्वाला श्रेष्ठ और कल्याणकारी होती है ।। १०-११ ।। राजा और अग्नि के बीच से किसी बिल्ली, पशु अथवा पक्षियों को नहीं जाना चाहिए । राजा सर्वप्रथम पर्वताग्र की मिट्टी से अपने शिरोभाग को शुद्ध करे ।। १२।। बल्मीक (बाँवी) की मिट्टी से दोनों कानों को, मुख को भगवान् के मन्दिर की धूलि से, ग्रीवा को इन्द्र के मन्दिर की धूलि से और राजा के आँगन की मिट्टी से हृदय को शुद्ध करे ।। १३ ।। हाथी के दाँतों से खोदी गयी मिट्टी से दाहिनी भुजा को तथा बायीं भुजा को बैल के शृङ्ग से खोदी गयी मिट्टी से शुद्ध करनी चाहिए ।। १४ ।।सरोवर की मिट्टी से पीठ को, दो नदियों के सङ्गम की मिट्टी से पेट को, नदी के दोनों तटों की मिट्टी से दोनों पसलियों को शुद्ध करे ।। १५ ।। वेश्या के द्वार की मिट्टी से राजा के कमर की शुद्धि का विधान है ।यज्ञस्थल की मिट्टी से उसके दोनों ऊरुओं की तथा गोशाला कीं मिट्टी से दोनों घुटनों के शुद्धि का विधान है ।। १६ ।। अश्वशाला की मिट्टी से दोनों जंघों की तथा रथ के पहिये की मिट्टी से दोनों चरणों

च ताम्रकुम्भेन वैश्यः पश्चिमगेन च ॥ १९ ॥ मृण्मयेन जलेनोदक् शूद्रामात्याऽभिषेचयेत् । ततोऽभिषेकं नृपतेर्वह्व च प्रवरो द्विजः ॥ २०॥ कुर्वीत मधुना विप्रश्छन्दोगश्च कुशोदकैः । सम्पातवन्तं कलशं तथा गत्वा पुरोहितः ॥ २१॥ विधाय वह्निरक्षान्तु सदस्येषु यथाविधि । राजश्रियाभिषेके च ये मन्त्राः परिकीर्तिताः॥ २२॥ तैस्तु तद्वान्महाभाग ! ब्राह्मणानां स्वनैस्तथा । ततः पुरोहितो गच्छेद् वेदिमूलन्तदेव तु ॥ २३ ॥ शतच्छिद्रेण पात्रेण सौवर्णेनाभिषेचयेत्। या औषधित्योषधीभीरथेत्युक्तोति गन्धकैः ॥ २४॥ पुष्पैः पुष्पवतीत्येव ब्राह्मणेति च वीजकैः। रत्नैराशुः शिशानश्च ये देवाश्च कुशोदकैः॥ २५॥ यजुर्वेद्यथर्ववेदी गन्धद्वारेति संस्पृशेत् । शिरः कण्ठं रोचनया सर्वतीर्थोदकैर्द्विजाः॥ २६॥ गीतवाद्यादिनिर्घोषैश्चामरव्यजनादिभिः । सर्वौषधिमयं कुम्भं धारयेयुर्नृपाग्रतः॥२७॥ तं पश्येद् दर्पणं राजा घृतं वै मङ्गलादिकम् । अभ्यर्च्य विष्णुं ब्रह्माणमिन्द्रादींश्च ग्रहेश्वरान् ॥ २८ ॥ व्याघ्रचर्मोत्तरां शय्यामुपविष्टः पुरोहितः । मधुपर्कादिकं दत्त्वा पट्टबन्धं प्रकारयेत् ॥ २९॥ राज्ञो मुकुटबन्धञ्च पञ्चचर्मोत्तरं ददेत् । ध्रुवाद्यैरिति च विशेद् वृषजं वृषदंशजम् ॥ ३०॥ द्वीपिजं सिंहजं व्याघ्रजातञ्चर्म तदासने । अमात्यसचिवादींश्च प्रतीहारः प्रदर्शयेत् ॥ ३१॥ गोऽजावि गृहदानाद्यै सांवत्सरपुरोहितौ । पूजयित्वा द्विजान् प्राच्य ह्यन्यभूगोऽन्नमुख्यकैः॥ ३२ ॥ वह्निं प्रदक्षिणीकृत्य गुरुं

की तथा पञ्चगव्य से सिर की शुद्धि करनी चाहिए । उसके पश्चात् चार आमात्य भद्रासन पर बैठे हुए राजा का कलशों से अभिषेक करें । पूर्व दिशा में घी से भरे सुवर्ण-कलश से ब्राह्मण अभिषेक करें।।१७-१८।। दक्षिण-दिशा में क्षत्रिय दुग्ध से परिपूर्ण चाँदी के घड़े से अभिषेक करें । पश्चिम भाग से वैश्य ताम्बे के दधि से परिपूर्ण घटसे राजा का अभिषेक करे ।। १९ ।। शूद्र आमात्य उत्तर की ओर से जल से परिपूर्ण मिट्टी के घड़े से राजा का अभिषेक करें । उसके पश्चात् श्रेष्ठ ऋग्वेदी ब्राह्मण राजा का अभिषेक मधु से करे, सामवेदी ब्राह्मण कुशोदक से राजा का अभिषेक करे ।।१९-२०।। उसके पश्चात् पुरोहित जल गिरने के लिए बनाये गए अनेक छिद्रों से युक्त सुवर्ण कलश के पास जाकर सदस्यों के बीच अग्नि रक्षा का कार्य सम्पादित करे तथा अभिषेक के लिए बतलाये गये मन्त्रों से राजा का अभिषेक करे । हे महाभाग ! उस समय ब्राह्मणों को वेदपाठ करते रहना चाहिए ।। २१-२२।। उसके पश्चात् पुरोहित वेदी के सन्निकट जाय और अभिषेक के लिए बने सुवर्ण के सौ छिद्रों वाले कलश से राजा का अभिषेक करे ।। 'या ओषधिः' इत्यादि मन्त्र से औषधियों द्वारा 'अथेत्युक्ताः' इत्यादि मन्त्रों से गन्धों द्वारा 'पुष्पवतीः०' इत्यादि मन्त्रों से फूलों द्वारा 'ब्राह्मणः०' इत्यादि मन्त्र से वीजों द्वारा 'आशुः शिशानः०' इत्यादि मन्त्र. से रत्नों द्वारा तथा 'ये देवाः' इत्यादि मन्त्र से कुशोदक से राजा का अभिषेक करना चाहिए।।२३-२५।। यजुर्वेदी तथा अथर्ववेदी ब्राह्मण 'गन्ध द्वारां दुरिघर्षाम् ०' इत्यादि मन्त्र से गोरोचन द्वारा राजा के मस्तक तथा कण्ठ में तिलक लगायें । इसके पश्चात् अन्य ब्राह्मण समस्त तीर्थों के जल से राजा का अभिषेक करें ।। २६ ।। उसके पश्चात् गीत, वाद्य आदि निर्घोषों के साथ चमर व्यजन आदि के साथ सर्वौषधि से युक्त कलश को राजा के समक्ष लेकर खड़े हों ।।२७।। राजा को चाहिए कि सर्वप्रथम वह उस कलश को देखे उसके पश्चात् दर्पण तथा घृत आदि मांगलिक वस्तुओं को देखे । तत्पश्चात् विष्णु, ब्रह्मा तथा इन्द्र आदि देवताओं एवं ग्रहपतियों का पूजन करके राजा को व्याघ्र के चर्म से युक्त आसन पर बैठना चाहिए । फिर पुरोहित मधुपर्क आदि प्रदान कर राजा के सिर पर मुकुट बाँधे ।। २८-२९ ।। पाँच प्रकार के चर्मों से युक्त आसन पर बैठकर राजा को मुकुट बाँधना चाहिए । 'ध्रुवाद्यैः०' इत्यादि मन्त्र से राजा उस आसन पर बैठे । उस आसन में, वृष, वृषभांश, वृक (भेड़िया) व्याघ्र तथा सिंह इन्हीं पाँच जानवरों के चर्म का उपयोग होना चाहिए । अभिषेक के पश्चात् प्रतिहार को चाहिए कि वह राजा को आमात्य और सचिव आदि को दिखावे ।। ३०-३१ ।। उसके पश्चात् राजा गौ, बकरी, भेंड तथा गृह आदि का दान देकर संवत्सर (ज्योतिषी) तथा पुरोहित का पूजन करे । तदनन्तर पृथिवी, अन्न तथा गौ आदि का दान देकर अन्य ब्राह्मणों का भी पूजन करे ।। ३२ ।। उसके पश्चात् राजा अग्नि की प्रदक्षिणा करके, पुरोहित को प्रणाम करे । पुनः वृषभ के पृष्ठ का स्पर्श करके सवत्सा गौ की पूजा करे । तदनन्तर अभिमन्त्रित अश्व पर सवार होकर उससे उतरकर हाथी की पूजा करे । पुनः हाथी पर बैठकर

नत्वाथ पृष्ठतः। वृषमालभ्य गां वत्सां पूजयित्वाथ मन्त्रितम् ॥ ३३ ॥ अश्वमारुह्य नागञ्च पूजयेत् तं समारुहेत् । परिभ्रमेद्राजमार्गे बलयुक्तः प्रदक्षिणम् । पुरं विशेच्च दानाद्यैः प्राच्र्यसर्वान् विसर्जयेत् ॥ ३४ ॥

इत्यादि महापुराण आग्नेये राज्याभिषेकवर्णनं नाम अष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २१८॥

ऊनविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अभिषेकमन्त्राः

पुष्कर उवाच– **राजदेवाद्यभिषेकमन्त्रान् वक्ष्येऽघमर्दनान् । कुम्भात् कुशोदकैःसिञ्चेत् तेन सर्वं हि सिध्यति ॥ १ ॥ सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥ २॥ भवन्तु विजयायैते इन्द्राद्या दशदिग्गताः । रुद्रो धर्मो मनुर्दक्षो रुचिः श्रद्धा च सर्वदा ॥ ३॥ भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च सनकश्च सनन्दनः । सनत्कुमारोऽङ्गिराश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः॥ ४॥ मरीचिः कश्यपः पान्तु प्रजेशाः पृथिवीपतिः। प्रभासुरा वर्हिषद अग्निष्वात्ताश्च पान्तु ते ॥ ५ ॥ क्रव्यादाश्चोपहूताश्च आज्यपाश्च सुकालिनः । अग्निभिश्चाभिषिञ्चन्तु लक्ष्म्याद्या धर्मवल्लभाः॥६॥ आदित्याद्याः कश्यपस्य बहुपुत्रस्य वल्लभा । कृशाश्वस्याग्निपुत्रस्य भार्य्यायश्चारिष्टनेमिनः॥ ७॥ अश्विनाद्याश्च चन्द्रस्य पुलहस्य तथा प्रियाः । भूता च कपिशा दंष्ट्री सुरसा सरमा दनुः ॥ ८ ॥ श्येनी भासी तथा क्रौञ्ची धृतराष्ट्री शुकी तथा ॥ पत्न्यस्त्वामभिषिञ्चन्तु अरुणश्चार्कसारथिः ॥९॥ आयतिर्नियतीरात्रिर्निद्रा लोकस्थितौ स्थिताः। उमा मेना शची पान्तु धूमोर्न्नानिर्ऋतिर्जये ॥१०॥ गौरी शिवा च ऋद्धिश्च वेला या चैव नड्वला। अशिक्री च तथा ज्योत्स्ना देवपत्न्यो वनस्पतिः॥ ११ ॥ महाकल्पश्च कल्पश्च मन्वन्तरयुगानि च। संवत्सराणि वर्षाणि पान्तु त्वामयनद्वयम्॥१२॥ ऋतवश्च**

वह प्रदक्षिणक्रम से राजमार्ग पर सेना के साथ कुछ दूर तक यात्रा करे । फिर वह दान आदि के द्वारा सबको सम्मानित करके विदा कर दे और स्वयं राजधानी में प्रवेश करे।।३३-३४।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण के राज्याभिषेक वर्णन नामक दो सौ अठारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २१८ ॥

पुष्कर ने कहा– अब मैं राजा और देवता आदि के अभिषेक सम्बन्धी सम्पूर्ण पापों को विनष्ट करने वाले मन्त्रों का वर्णन कर रहा हूँ । कलश से कुशोदक द्वारा राजा का अभिषेक करना चाहिए उससे उसके समस्त मनोरथों की सिद्धि होती है ।। १ ।। अभिषेक के समय इन मन्त्रों का पाठ करना चाहिए)- राजन् ! ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर आदि समस्त देवता आपका अभिषेक करें । भगवान् वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध इन्द्र आदि दस दिक्पाल, रुद्र, धर्म, मनु, दक्ष, रुचि तथा श्रद्धा आपको हमेशा विजय प्रदान करें ।। २-३ ।। पृथिवी के स्वामी इस राजा की रक्षा, भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरीचि तथा कश्यप ये प्रजेश करें । वर्हिषद् तथा अग्निष्वत्ता नामक पितृगण अपनी प्रभा से आपकी रक्षा करें ।। ४-५ ।। क्रव्याद (राक्षस) उपहूता (आवाहित) आज्यपा (घृतपान करने वाले देवता तथा पितृगण) तथा सुकाली (सुन्दर समय लाने वाले देवता) अग्नियाँ तथा धर्म प्रिया लक्ष्मी आदि आपकी अभिषेक करें ।। ६ ।। अनेक पुत्रों वाले महर्षि कश्यप के आदित्य आदि प्रिय पुत्रगण, अग्नि के पुत्र कृशाश्व तथा अरिष्टनेमि की पत्नियाँ भी आपका अभिषेक करें।।७।। चन्द्रमा की अश्विनी इत्यादि पत्नियाँ पुलह की प्रियपत्नियाँ, भूता, कपिशा, दंष्ट्री, सुरसा, सरमा, दनु, श्येनी, भासी, क्रौञ्ची, धृतराष्ट्री तथा शुकी ये पत्नियाँ आपका अभिषेक करें तथा सूर्य के सारथि भी ।। ८-९ ।। आयति, नियति, रात्रि, तथा निद्रा, लोक की व्यवस्था करने में सदा तत्पर रहने वाली, उमा, मेना, शची, धूमा, ऊर्णा, निर्ऋति, गया, गौरी, शिवा, ऋद्धि, वेला, नड्वला, अशिक्री, तथा ज्योत्स्ना आदि देव पत्नियाँ एवं वनस्पति आपकी रक्षा करें ।। १०-११ ।। महाकल्प, कल्प, मन्वन्तर, युग, संवत्सर, वर्षा तथा उत्तरायण एवं दक्षिणायन ये दोनों अयन

तथा मासापक्षारात्र्यहनी तथा । सन्ध्यातिथिमुहूर्त्तांश्च कालस्यावयवाकृतिः॥ १३॥ सूर्य्याद्याश्च ग्रहाः पान्तु मनुः स्वायम्भुवादिकः। स्वायम्भुवः स्वरोचिष औत्तमिस्तामसो मनुः ॥ १४॥ रैवतश्चाक्षुषःषष्ठो वैवस्वत इहेरितः । सावर्णी ब्रह्मपुत्रश्च धर्मपुत्रश्च रुद्रजः ॥ १५ ॥ दक्षजो रौच्यभौत्यौ च मनवस्तु चतुर्दश । विश्वभुक् च विपश्चिच्च सुचित्तिश्च शिखी विभुः॥ १६ ॥ मनोजवस्तथौजस्वी बलिरद्भुतशान्तयः । वृषश्च ऋतधामा च दिवस्पृक् कविरिन्द्रकः ॥ १७ ॥ रेवन्तश्च कुमारश्च तथा वत्सविनायकः । वीरभद्रश्च नन्दी च विश्वकर्मा पुरोजवः ॥ १८॥ एते त्वामभिषिञ्चतु सुरमुख्याः समागताः । नासत्यौदेवभिषजौ ध्रुवाद्या वसवोऽष्ट च ॥ १९॥ दश चाङ्गिरसो वेदास्त्वाभिषिञ्चन्तु सिद्धये । आत्मा ह्यायुर्मनो दक्षो मदः प्रणस्तथैव च ॥ २० ॥ हविष्मांश्च गरिष्ठश्च ऋतः सत्यश्च पान्तु वः। क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यः कालकामो धुरिर्जये ॥ २१ ॥ पुरूरवा माद्रवाश्च विश्वेदेवाश्च रोचनः। अङ्गारकाद्याः सूर्यस्त्वान्निर्ऋतिश्च तथा यमः ॥ २२॥ अजैकपादहिर्बुध्नो धूमकेतुश्च रुद्रजाः। भरतश्च तथा मृत्युः कापालिरथ किङ्किणिः॥ २३॥ भवनो भावनः पान्तु स्वजन्यः स्वजनस्तथा । क्रतुश्राश्च मूर्द्धा च याजनोऽभ्युशनास्तथा ॥ २४ ॥ प्रसवश्चाव्ययश्चैव दक्षश्च भृगवः सुराः । मनोऽनुमन्ता प्राणश्च नयोपानश्चवीर्यवान् ॥ २५॥ वीतिहोत्रो नयःसाध्यो हंसो नारायणोऽवतु । विभुश्चैव प्रभुश्चैव देवश्रेष्ठा जगद्धिताः ॥ २६ ॥ धाता मित्रोऽर्यमा पूषा शक्रोऽथ वरुणो भगः । त्वष्टा विवस्वान् सविता विष्णुर्द्वादश भास्कराः ॥ २७ ॥ एक ज्योतिश्च द्विज्योतिस्त्रिःश्चतुर्ज्योतिरेव च । एकशक्रो द्विशक्रश्च त्रिशक्रश्च महाबलः॥ २८ ॥ इन्द्रश्च मेत्यादिशतु ततः प्रतिमकृत् तथा । मितश्च सम्मितश्चैव अमितश्च महाबलः॥ २९॥ ऋतजित्सत्यजिच्चैव सुषेणः सेनजित् तथा । अतिमित्रोऽनुमित्रश्च पुरुमित्रोऽपराजितः॥३०॥ ऋतश्च ऋतवाग् धाता विधाता धारणो ध्रुवः । विधारणो महातेजा वासवस्य परः सखा ॥ ३१ ॥ ईदृक्षश्चाप्यदृक्षश्च एतादृगमिताशनः । क्रीडितश्च सदृक्षश्च सरभश्च महातपाः॥३२॥ धर्त्ता धुर्य्यो धुरिभीम अभिमुक्तः क्षपात्सह। धृतिर्वसुरनाधृष्यो रामः कामो जयो विराट्॥३३॥ देवा एकोनञ्चाशन्मरुतस्त्वामवन्तु ते।

आपकी रक्षा करें ।। १२ ।। ऋतुएँ, मास, पक्ष, रात्रि.,ख दिन, सन्ध्या, तिथि और मुहूर्त ये काल के छोटे-छोटे अवयव आपकी रक्षा करें ।। १३ ।। सूर्य आदि ग्रह, स्वायँभुव आदि मनु, आपकी रक्षा करें । स्वायम्भुव, स्वरोचिष् , उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष् , वैवश्वत, सावर्णि, ब्रह्मपुत्र धर्मपुत्र, रुद्रपुत्र., ब्रह्मपुत्र, रौच्य तथा भौत्य ये चतुर्दश मनु आपकी रक्षा करें ।।१४-१५।। विश्वभुक् , विपश्चित् , शिखी, विभु, मनोजव, ओजस्वी, बलि, अद्भुत, शान्तियाँ, वृष, ऋतधामा, दिवस्पृक्, कवि, इन्द्र, रैवन्त, कुमार (कार्तिकेय) वत्सविनायक, वीरभद्र, नन्दी, विश्वकर्मा,, पुरोजव, देवताओं के वैद्य अश्विनी कुमार तथा ध्रुव आदि आठ वसु ये यहाँ पर पधारे हुए मुख्य देवता आपकी रक्षा करें ।। १६-१९ ।। महीर्षि अंगिरा के कुल में उत्पन्न दस देवता तथा चारों वेद सिद्धि के लिए आपका अभिषेक करें । आत्मा, आयु, मन, दक्ष, मद, प्राण, हविष्मान्, गरिष्ठ, ऋत एवं सत्य, ये सभी तुम्हारी रक्षा करें ।! २०।। क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम तथा धूरि ये तुम्हें विजय प्रदान करें ।। २१ ।। पुरूरवा, मार्द्रव, विश्वेदेव, रोचन, अङ्गारक (भौम) आदि ग्रह, सूर्य, निर्ऋति तथा यम ये सब तुम्हारी रक्षा करें ।। २२ ।। अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, धूम्रकेतु, रुद्र के पुत्र, भरत, मृत्यृ, कापालि, किंकिणि, भवन, भावन, स्वजन्य, स्वजन ये तुम्हारी रक्षा करें ।। २३ ।। क्रतुश्रवा, मूर्धा, याजन और उशना प्रसव, अव्यय, दक्ष, भृगुवंशी महर्षिगण, देवता, मनु, अनुमन्ता, प्राण, नव, बलवान् अपान, वीतिहोत्र, नय, साध्य, हंस तथा नारायण ये सब तुम्हारी रक्षा करें । ये सभी श्रेष्ठ देवता सम्पूर्ण जगत् में व्यापक, स्वामी तथा जगत् के कल्याणकारी हैं ।। २४-२६ ।। धाता, मित्र, अर्यमा, पूषा, शक्र, वरुण, भग, त्वष्टा, विवस्वान, सविता, विष्णु, बारहो सूर्य, एक ज्योति, द्विज्योति, त्रिज्योति तथा चतुर्ज्योति, एकशक्र, द्विशक्र तथा महाबलवान् त्रिशक्र, इन्द्र, प्रतिमकृत्, मित, सम्भित और महाबलवान् अमित, ऋतजित्, सत्यजित, सुषेण, सेनजित्, अतिमित्र, अनुमित्र, पुरुमित्र अपराजित ये सब तुम्हारी रक्षा करें ।। २७-३० ।। ऋत्, ऋतवाक्, धाता, विधाता, धारण, ध्रुव, महातेजस्वी विधारण, इदृक्ष, अदृक्ष, एतादृक्, अमिताशन, क्रीडित, सदृश, महातपा सरभ, धर्ता, धुर्य, धुरि, भीम, अभिमुक्त,

चित्राङ्गदश्चित्ररथः चित्रसेनश्च वै कलिः ॥ ३४॥ उर्णायुरुग्रसेनश्च धृतराष्ट्रश्च नन्दकः ॥ हाहा हूहूर्नारदश्च विश्वावसुश्च तुम्बरुः ॥ ३५॥ एते त्वामभिषिञ्चन्तु गन्धर्वा विजयाय ते । पान्तु ते कुरूपामुख्या दिव्याश्चाप्सरसाङ्गणाः ॥ ३६ ॥ अनवद्या सुवेशी च मेनकाः सह जन्यया । क्रतुस्थला घृताची च विश्वाची पुञ्जिकस्थला ॥ ३७॥ प्रम्लोचा चोर्वशी रम्भा पञ्चचूड़ा तिलोत्तमा । चित्रलेखा लक्ष्मणा च पुण्डरीका च वारुणी॥३८॥ प्रह्लादो विरोचनोऽथ बलिर्बाणोऽथ तत्सुताः । एते चान्येऽभिषिञ्चन्तु दानवा राक्षसास्तथा ॥ ३९ ॥ हेतिश्चैव प्रहेतिश्च विद्युत्स्फुर्जथुरग्रकाः। यक्षः सिद्धात्मकः पातु माणिभद्रश्चनन्दनः॥ ४०॥ पिङ्गाक्षो द्युतिमांश्चैव पुष्पवन्तो जयावहः । शङ्खःपद्मश्च मकरः कच्छपश्च निधिर्जये ॥ ४१॥ पिशाचा ऊर्ध्वकेशाद्या भूता भूम्यादिवासिनः । महाकालं पुरस्कृत्य नरसिंहश्च मातरः ॥ ४२ ॥ गुहः स्कन्दो विशाखस्त्वान्नैगमेयोऽभिषिञ्चतु। डाकिन्यो याश्च योगिन्यः खेचरा भूचराश्च याः ॥ ४३ ॥ गरुड़श्चारुणः पान्तु सम्पातिप्रमुखाः खगाः । अनन्ताद्या महानागाःशेषवासुकितक्षकाः॥४४॥ ऐरावतो महापद्मः कम्बलाश्वतरावुभौ । शङ्खःकर्कोटकश्चैव धृतराष्ट्रो धनञ्जयः॥ ४५॥ कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः। सुप्रतीकोऽञ्जनो नागाःपान्तुत्वां सर्वतः सदा ॥ ४६ ॥ पैतामहस्तथा हंसो वृषभः शङ्करस्य च । दुर्गासिंहश्च पान्तु त्वां यमस्य महिषस्तथा ॥ ४७॥ उच्चैःश्रवाश्चाश्वपतिस्तथा धन्वन्तरिः सदा । कौस्तुभः शङ्खराजश्च वज्रंशूलञ्चचक्रकम् ॥ ४८॥ नन्दकोऽस्त्राणि रक्षन्तु धर्मश्च व्यवसायकः । चित्रगुप्तश्चदण्डश्च पिङ्गलोमृत्युकालकौ बालखिल्यादिमुनयो व्यासवाल्मीकिमुख्यकाः। पृथुर्दिलीपो भरतो दुष्यन्तःशक्रजिद् बली ॥ ५० ॥ मल्लः ककुत्स्थश्चानेन युवनाश्वो जयद्रथः। मान्धातामुचुकुन्दश्च पान्तुत्वाञ्च पुरूरवाः॥ ५१॥ वास्तुदेवाः पञ्चविंशत् तत्त्वानि विजयायते । रुक्मभौमःशिलाभौमः पातालो नीलमूर्त्तिकः॥५२॥ पीतरक्तः क्षितिश्चैव श्वेतभौमो रसातलम्। भूर्ल्लोकोऽथ भुवर्मुख्या जम्बूद्वीपादयःश्रिये॥५३॥ उत्तराः कुरवः पान्तु रम्या हिरण्यकस्तथा। भद्राश्वः केतुमालश्च

अक्षपात्, सह, धृति, वसु, अनाधृष्य, राम, काम, जय तथा विराट् ये सब तुम्हारी रक्षा करें ।। ३१-३३ ।। उनचास मरुत् नामक देवता तुम्हारी रक्षा करें । चित्राङ्गद, चित्ररथ, चित्रसेन, कलि, उणायु, उग्रसेन, धृतराष्ट्र, नन्दक, हाहा, हूहू, नारद, विश्वावसु तथा तुम्बरु ये तुम्हारा अभिषेक करें तथा गन्धर्व आपको विजय प्रदान करें ।। ३४-३५।। प्रधान-प्रधान ऋषिगण तथा दिव्य अप्सराओं का समूह तुम्हारी रक्षा करे ।। ३६ ।। अनवद्या, सुकेशी, मेनका, जन्या, क्रतुस्थला, घृताची, विश्वाची, पुञ्जिका स्थला, प्रम्लोचा, उर्वशी, रम्भा, पञ्चचूड़ा, तिलोत्तमा, चित्रलेखा, लक्ष्मणा, पुण्डरीका, वारुणी, ये दिव्य अप्सराएँ आपकी रक्षा करें ।। ३७-३८ ।। प्रह्लाद, विरोचन, बलि, बाण, बाणपुत्र ये सभी तथा अन्य दानव एवं राक्षस आपका अभिषेक करें ।। ३९।। हेतु, प्रहेति, विद्युत् , स्फुर्जथु, उग्रक, यक्ष, सिद्ध, मणिभद्र और नन्दन ये सब तुम्हारी रक्षा करें ।। ४० ।। पिङ्गाक्ष, द्युतिमान् पुष्पवन्त, जयावह, शंख, पद्म, मकर और कच्छप ये निधियाँ तुम्हें विजय प्रदान करें ।। ४१ ।। पिशाच, भूमि आदि के निवासी भूत महाकाल एवं नरसिंह को आगे करके माताएँ, गुह, स्कन्द, विशाख तथा नैगमेय आपका अभिषेक करें ।। ४२।। पृथिवी एवं आकाश में विचरण करने वाली डाकिनियाँ एवं योगिनियाँ, गरुड, अरुण तथा सम्पाति आदि पक्षिगण आपकी रक्षा करें ।। ४३ ।। अनन्त आदि महानाग, शेष, वासुकि, तक्षक, ऐरावत, महापाल, कम्बल, अश्वतर, शंख, कर्कोटक, धृतराष्ट्र, धनञ्जय, कुमुद, ऐरावत, पद्म, पुष्पदन्त,वामन, सुप्रतीक तथा अञ्जन एवं समस्त नाग आपकी सदा सब ओर से रक्षा करते रहें ।।४४-४६।। ब्रह्मा जी का वाहन हंस, शंकर जी का वाहन वृषभ, दुर्गा जी का वाहन सिंह तथा यम का वाहन महिष आपकी रक्षा करे ।। ४७ ।। अश्वराज उच्चैःश्रवा, धन्वन्तरि वैद्य, कौस्तुभमणि, शंखराज पाञ्चजन्य, वज्र, शूल, चक्र एवं नन्दक खड्ग आदि अस्त्र आपकी रक्षा करें । दृढ़ निश्चय रखने वाले धर्म, चित्रगुप्त, दण्ड, पिङ्गल, मृत्यु, काल, बालखिल्य आदि मुनि, व्यास एवं बाल्मीकि आदि महर्षि पृथु, दिलीप, भरत, दुष्यन्त, बलवान् इन्द्रजित्, मनु, ककुत्स्थ, अनेना, युवनाश्व, जयद्रथ, मान्धाता, मुचुकुन्द और पृथिवीपति, पुरूरवा ये सब तुम्हारी रक्षा करें।।४८-५१।। वास्तुदेवता एवं पच्चीस तत्त्व आपको विजय प्रदान करें ।। ५१।। रुक्मभौम, शिलाभौम, पाताल, नीलमूर्ति, पीतरक्त, क्षिति, श्वेतभौम, रसातल, भूर्लोक, आदि लोक, तथा जम्बूद्वीप

वर्षश्चैव बलाहकः॥ ५४॥ हरिवर्षःकिम्पुरुष इन्द्रद्वीपः कशेरुमान् । ताम्रवर्णो गभस्तिमान् नागद्वीपश्च सौम्यकः ॥ ५५ ॥ गन्धर्वो वरुणोयश्च नवमः पान्तु राज्यदाः । हिमवान् हेमकूटश्च निषधो नील एव च ॥ ५६॥ श्वेतश्च शृङ्गवान् मेरुर्माल्यवान् गन्धमादनः । महेन्द्रो मलयःसह्यःशुक्तिमानृक्षवान्गिरिः ॥ ५७॥ विन्ध्यश्च पारियात्रश्च गिरयःशान्तिदास्तु मो । ऋग्वेदाद्याःषडङ्गानि इतिहासपुराणकम्॥ ५८॥ आयुर्वेदश्च गन्धर्वधनुर्वेदोपवेदकाः । शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गतिः॥ ५९॥ छन्दोगानि च वेदाश्च मीमांसा न्यायविस्तरः । धर्मशास्त्रं पुराणञ्च विद्याह्येताश्चतुर्दशः॥ ६०॥ सांख्यं योगः पाशुपतं वेदा वै पञ्चरात्रकम् । कृतान्तपञ्चकं ह्येतद् गायत्री च शिवा तथा ॥ ६१ ॥ दुर्गा विद्या च गान्धारी पान्तु त्वां शान्तिदाश्च ते । लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलाब्धयः॥६२॥ चत्वारः सागराः पान्तु तीर्थानि विविधानि च । पुष्करश्च प्रयागश्च प्रभासो नैमिषः परः॥ ६३ ॥ गयाशीर्षो ब्रह्मशिरस्तीर्थमुत्तरमानसम् । कालोदको नन्दिकुण्डस्तीर्थं पञ्चनदस्तथा ॥ ६४॥ भृगुतीर्थं प्रभासञ्च तथा चामरकण्टकम् । जम्बुमार्कश्च विमलः कपिलस्य तथाश्रमः ॥ गङ्गाद्वारकुशावर्त्तौ विन्ध्यको नीलपर्वतः । वराहपर्वतश्चैव तीर्थङ्कनखलं तथा॥६६॥ कालञ्जरश्च केदारो रुद्रकोटिस्तथैव च । वाराणसी महातीर्थं बदर्य्याश्रम एव च॥ ६७॥ द्वारका श्रीगिरिस्तीर्थं तीर्थञ्च पुरुषोत्तमः । शालग्रामोऽथ वाराहः सिन्धुसागरसङ्गमः॥ ६८॥ फल्गुतीर्थं विन्दुसरः करवीराश्रमस्तथा । नद्यो गङ्गासरस्वत्यःशतद्रुर्गण्डकी तथा॥ ६९॥ अच्छोदा च विपाशा च वितस्ता देविका नदी । कावेरी वरुणा चैव निश्चिरा गोमती नदी ॥ ७० ॥ पारा चर्मण्वती रूपा मन्दाकिनी महानदी । तापी पयोष्णी वेणा च गौरी वैतरणी तथा ॥ ७१ ॥ गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा प्रणी तथा । चन्द्रभागा शिवा गौरी अभिषिञ्चन्तु पान्तु वः॥ ७२ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये अभिषेकमन्त्रवर्णनं नामोनविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१९॥

आदि आपको श्री प्रदान करें ।। ५२-५३ ।। उत्तर कुरु, रम्यक, हिरण्यक, भद्राश्व, केतुमाल, बलाहक, हरिवर्ष, किंपुरुष, इन्द्रद्वीप, कशेरुमान् , ताम्रवर्ण गभस्तिमान, मागद्वीप, सौम्यक, गन्धर्व, वरुण एवं नवम आदि राज्य देने वाले वर्ष तुम्हारी रक्षा करें ।। ५४-५५।। हिमवान्, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, शृंगवान्, मेरु, माल्यवान्, महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान् पर्वत, विन्ध्य तथा परिपात्र ये सभी तुम्हें शान्ति प्रदान करें ।। ५६-५८ ।। ऋग्वेद आदि चारो वेद, छहों वेदाङ्ग, इतिहास, पुराण, आयुर्वेद, गान्धर्व वेद और धनुर्वेद आदि उपवेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष् छन्द, ये छह वेदाङ्ग, चार वेद, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण ये चौदह विद्याएँ तुम्हारी रक्षा करें ।। ६० ।। सांख्य, योग, पाशुपत, वेद तथा पाञ्चरात्र ये सिद्धान्तपञ्चक हैं । इन पाञ्चों से भिन्न, गायत्री, शिवा, दुर्गा, विद्या तथा गान्धारी नामक देवियाँ तुम्हारी रक्षा करें और तुम्हें शान्ति प्रदान करें ।। ६१।। लवण, इक्षुरस, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध तथा जल के समुद्र, चारों सागर तथा अनेक प्रकार के तीर्थ तुम्हारी रक्षा करें ।।६२।। पुष्कर, प्रयाग, प्रभास, नैमिष, गयाशीर्ष, ब्रह्मशिरः, उत्तर मानस, कालोदक, नन्दीकुण्ड, पञ्चनद तीर्थ, भृगुतीर्थ, अमरकण्टक, जम्बूमार्ग, विमल, कपिलाश्रम, गंगाद्वार, कुशावर्त, विन्ध्य, नीलगिरि, वराहपर्वत, कनखलतीर्थ, कालञ्जर, केदार, रुद्रकोटि, महातीर्थ, वाराणसी, बदरिकाश्रम, द्वारका, श्रीशैल, पुरुषोत्तमतीर्थ, शालग्राम, वाराह, सिंधु एवं समुद्र के संगमतीर्थ फल्गु तीर्थ, विन्दुसर, करवीराश्रम, गंगानदी, सरस्वती तथा गण्डकी नदी ये सभी नदियाँ तुम्हारा अभिषेक करें।।६३-६९।। अच्छोदा, विपाशा, वितस्ता देविका नदी, कावेरी, वरुणा, निश्चिरा, गोमती, पारा, चर्मण्वती, रूपा, महानदी, मन्दाकिनी, तापी, पयोष्णी, वेणा, वैतरणी, गोदावरी, भीमरथी, तुङ्गभद्रा, अरणी, चन्द्रभागा, शिवा तथा गौरी आदि पवित्र. नदियाँ तुम्हारा अभिषेक करें और रक्षा करें ।। ७०-७२।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अभिषेक सम्बन्धी मन्त्र वर्णन नामक दो सौ उन्नीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २१९ ॥

विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सहायसम्पत्तिः

पुष्कर उवाच– **सोऽभिषिक्तःसहामात्यो जयेच्छत्रून् नृपोत्तमः। राज्ञा सेनापतिः कार्यो ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथवा ॥ १ ॥ कुलीनो नीतिशास्त्रज्ञः प्रतीहारश्च नीतिवित् । दूतश्च प्रियवादी स्यादक्षीणोऽतिबलान्वितः ॥ २ ॥ ताम्बूलधारी ना स्त्री वा भक्तःक्लेशसहप्रियः । सान्धिविग्रहिकः कार्य्यःषाड्गुण्यादि विशारदः ॥ ३ ॥ खड्गधारी रक्षकः स्यात् सारथिःस्याद् बलादिवित् । सदाध्यक्षो हितो विज्ञो महानसगतो हि सः॥ ४ ॥ सभासदस्तु धर्मज्ञा लेखकोऽक्षरविद्धितः । आह्वाने कालविज्ञाःस्युर्हिता दौवारिकाजनाः॥ ५॥ रत्नादिज्ञो धनाध्यक्षः अनुद्वारे हितो नरः । स्यादायुर्वेदविद् वैद्यो गजाध्यक्षोऽथ हस्तिवित् ॥ ६ ॥ जितश्रमो गजारोहो हयाध्यक्षो हयादिवित् । दुर्गाध्यक्षो हितो धीमान् स्थपतिर्वास्तुवेदविद् ॥ ७ ॥ यन्त्रमुक्ते पाणिमुक्ते अमुक्ते मुक्तधारिते । अस्त्राचार्य्यो नियुद्धे च कुशलो नृपतेर्हितः॥ ८॥ वृद्धश्चान्तःपुराध्यक्षः पञ्चाशद्वार्षिकाः स्त्रियः । सप्तत्यब्दास्तु पुरुषाश्चरेयुःसर्वकर्मसु ॥ १०॥ जाग्रत्स्यादायुधागारे ज्ञात्वावृत्तिर्विधीयते । उत्तमाधममध्यानि बुध्वा कर्माणि पार्थिवः ॥ ११॥ उत्तमाधममध्यानि पुरुषाणि नियोजयेत्। जयेच्छुः पृथिवीं राजा सहायानानयेद्धितान् ॥ १२॥ धर्मिष्ठान् धर्मकार्य्येषु शूरान् सङ्ग्रामकर्मसु ।**

पुष्कर जी ने कहा– उत्तम राजा को चाहिए कि अभिषेक हो जाने पर वह अपने मन्त्री को साथ लेकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे। राजा को ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय सेनापति बनाना चाहिए।। १ ।। प्रतीहार को कुलीन, नीतिशास्त्र का ज्ञाता नीति को जानने वाला होना चाहिए । दूत को प्रिय बोलने वाला, कमजोर नहीं, अत्यन्त बलवान् होना चाहिए ।। २ ।। राजा को पान देने वाला स्त्री या पुरुष कोई भी हो सकता है । उसे राजभक्त क्लेश सहिष्णु और राजा का प्रिय होना चाहिए । सन्धिविग्रहिक (विदेश सचिव) उसे होना चाहिए जो सन्धि, विग्रह, यान, आसन,द्वैधीभाव तथा समाश्रय) इन छह गुणों का जानकार एवं इनका प्रयोग करने में समर्थ हो ।। ३ ।। रक्षक को खड्गधारण करने वाला तथा सारथि को सेना आदि की जानकारी रखने वाला होना चाहिए । रसोइया के अध्यक्ष को राजा का हितैषी और चतुर होने के साथ-साथ सदा महानस (रसोईघर) में उपस्थित रहना चाहिए ।। ४ ।। सभासद् को धर्म का ज्ञाता होना चाहिए और लेखक को हितकारी तथा कई प्रकार की लिपियों का ज्ञाता होना चाहिए । दौवारिक (द्वाररक्षा के कार्य में नियुक्त पुरुष को ऐसा होना चाहिए जो स्वामी के हित में संलग्न हो और इस बात को जाने कि राजा उसे कब-कब अपने पास बुलाते हैं ।। ५ ।। धनाध्यक्ष को रत्न आदि को पहचानने वाला तथा धन बढ़ाने के साधनों में तत्पर रहने वाला होना चाहिए । वैद्य को आयुर्वेद का जानकार होना चाहिए । गजाध्यक्ष को भी गजविद्या से परिचित होना चाहिए ।। ६ ।। हाथी सवार को परिश्रम से थकने वाला नहीं होना चाहिए । अश्वों के अध्यक्ष को अश्वविद्या का जानकार होना चाहिए । दुर्ग (किले) के अध्यक्ष को राजा का हितैषी और बुद्धिमान होना चाहिए । शिल्पी को वास्तुविद्या का जानकार होना चाहिए ।। ७ ।। अस्त्राचार्य को मशीन से हथियार चलाने, हाथ से शस्त्रों का प्रयोग करने, शस्त्र को न छोड़ने, छोड़े हुए शस्त्र को रोकने अथवा निवारण करने में निपुण, युद्ध की कला में कुशल, और राजा का हितैषी होना चाहिए ।। ८ ।। रनिवास का अध्यक्ष पचास वर्ष की स्त्री तथा सत्तरवर्ष के बूढ़े वृद्ध पुरुष को होना चाहिए । पचास वर्ष की स्त्रियों तथा सत्तरवर्ष के बूढ़े पुरुषों को रनिवास के समस्त कार्यों में नियुक्त किया जाना चाहिए।।९।। शस्त्रागार में ऐसे पुरुष को नियुक्त करना चाहिए जो सदा सावधान रहकर पहरा देता रहे । भृत्यों के कार्यों को जानकर उनके लिए तदनुकूल ही जीविका प्रदान करना चाहिए । राजा को चाहिए कि वह उत्तम मध्यम एवं अधम कार्यों का विचार करके उनके लिए वैसे ही पुरुषों की नियुक्त करे ।। १० ।। पृथिवी पर विजय चाहने वाले राजा को अपने हितैषी सहायकों का संग्रह करना चाहिए । धर्म के कार्यों में धर्मात्मा पुरुषों को, युद्ध में शूरवीरों को और धनोपार्जन के कार्यों में अर्थकुशल व्यक्तियों को लगाना चाहिए । राजा को इस बात का ध्यान रखना

निपुणानर्थकृत्येषु सर्वत्र च तथाशुचीन् ॥ १२॥ स्त्रीषु षण्डान् नियुञ्जीत तीक्ष्णान् दारुणकर्मसु । यो यत्र विदितो राज्ञा शुचित्वेन तु तत्रारम्॥१३॥ धर्मे चार्थे च कामे च नियुञ्जीताधमेऽधमान् । राजा यथार्हं कुर्य्याच्च उपधाभिः परीक्षितान् ॥ १४ ॥ समन्त्री च यथान्यायात् कुर्य्याद्धस्तिवनेचरान्। तत्पदान्वेषणे यत्तानध्यक्षांस्तत्र कारयेत्॥ १५॥ यस्मिन् कर्मणि कौशल्यं यस्य तस्मिन् नियोजयेत् । पितृपैतामहान् भृत्यान् सर्वकर्मसु योजयेत्॥१६॥ विना दायादकृत्येषु तत्र ते हि समागताः । परराजगृहान् प्राप्तान्जनान् संश्रयकाम्यया ॥ १७॥ दुष्टानप्यथ वाऽदुष्टान् संश्रयेत् प्रयत्नतः । दुष्टं ज्ञात्वा विश्वसेन्न तद्वृत्तिंवर्त्तयेद्वशे॥१८॥ देशान्तरागतान्पार्श्वे चारैर्ज्ञात्वा हि पूजयेत् । शत्रवोऽग्निर्विषं सर्पोनिस्त्रिंशमपि चैकतः॥ १९॥ भृत्यावशिष्टं विज्ञेयाः भृत्याश्च तथैकतः । चारचक्षुर्भवेद्राजा नियुञ्जीत सदाचरान्॥ २०॥ जनस्याविहितान् सौम्यांस्तथा ज्ञातान् परस्परम् । वणिजो मन्त्रकुशलान् सांवत्सर चिकित्सकान् ॥ २१ ॥ तथा प्रव्रजिताकारान् बलाबलविवेकिनः । नैकस्य राजा श्रद्दध्याच्छ्रद्दध्याद्बहुवाक्यतः॥२२॥ रागापरागौ भृत्यानां जनस्य च गुणागुणान् । शुभानामशुभानाञ्च ज्ञानं कुर्य्याद्वशाय च॥ २३॥ अनुरागकरं कर्म चरेज्जह्याद् विरागजम् । जनानुरागया लक्ष्म्या राजा स्याज्जनरञ्जनात् ॥ २४॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सहायसम्पत्तिवर्णनं नाम विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२०॥

चाहिये कि सभी कार्यों में नियुक्त पुरुष शुद्ध आचार-विचार वाले हों ।। १२ ।। राजा को चाहिए कि वह स्त्रियों के देखभाल में नपुंसकों को नियुक्त करे,कठोर कार्यों में तीक्ष्ण स्वभाव वाले पुरुषों को वह लगाये । राजा धर्म, अर्थ एवं काम के साधनों में उसी व्यक्ति को वहाँ नियुक्त करे जहाँ के लिए जिसे वह उपयोगी समझे ।। १३ ।। राजा के लिए यह उचित है कि वह तरह-तरह से अपने लिए उपयोगी पुरुषों की परीक्षा करके उन्हें यथायोग्य कार्यों में नियुक्त करे । निकृष्ट कार्यों में वह उसी श्रेणी के पुरुषों को नियुक्त करे ।। १४ ।। मन्त्री से सलाह लेकर कुछ व्यक्तियों को यथोचित वृत्ति देकर हाथियों के जंगल में नियुक्त करे और उनका पता लगाते रहने के लिए कई उत्साही अध्यक्षों को नियुक्त करे ।। १५ ।। जिसकी जिस कार्य में कुशलता हो, उसे उसी कार्य में नियुक्त करना चाहिए । पिता तथा पितामह के भृत्यों को सभी कार्यों में नियुक्त करना चाहिए ।। १६ ।। केवल उत्तराधिकारी के कार्यों में उनकी नियुक्ति नहीं करे क्योंकि उस कार्य में वे सबके सब एक समान हैं ।जो लोग दूसरे राजा के आश्रय को त्यागकर अपने पास शरण प्राप्त करने के लिए आएँ,वे दुष्ट हों या साधु उन्हें शरण अवश्य प्रदान करें ।यदि वेदुष्ट सिद्ध हो जायँ तो उनका विश्वास न करे और उनकी जीविका वृत्ति को अपने ही अधीन रखे ।। १७-१८ ।। जो लोग दूसरे देशों से अपने पास आए हों उनके विषय में गुप्तचरों द्वारा सारी बातें जानकर उनका यथोचित सत्कार करे ।। १८।। शत्रु, अग्नि, विष, सर्प और तलवार एक ओर तथा दुष्ट भृत्य एक ओर, इनमें दुष्ट भृत्यों को ही अधिक भयंकर समझना चाहिए।।१९।। राजा को सदा चारचक्षु होना चाहिए अर्थात् गुप्तचरों द्वारा ही सारी बातों का पता लगाना चाहिए । इसलिए उसे सदा गुप्तचर तैनात किए रहना चाहिए ।। २० ।। गुप्तचरों को ऐसा होना चाहिए जिन्हें लोग पहचानते न हों । वे परस्पर में एक दूसरे को भी नहीं पहचानते हों, उनका स्वभाव शान्त होना चाहिए । उनमें कोई वैश्य के रूप में हो तो कोई मन्त्र तन्त्र में कुशल हो, कोई ज्योतिषी हो तो कोई वैद्य हो ।। २१ ।। कोई संन्यासी वेषधारी हो तो कोई बलाबल का विचार करने वाला हो । राजा को किसीएक गुप्तचर की बात पर विश्वास नहीं करना चाहिए, जब वह बहुतों के मुँह से एक तरह की बात सुने तब ही उस पर विश्वास करे ।। २२ ।। राजा को यह जानना चाहिए कि किस भृत्य का उसके प्रति अनुराग है तथा किसकी उसके प्रति उदासीन भावना है। किस व्यक्ति में कौन सा गुण है और कौन सा दोष ? उसे लोगों को अपने वश में करने के लिए शुभ तथा अशुभ का ज्ञान रखना चाहिए ।। २३ ।। राजा को ऐसा ही काम करना चाहिए कि लोगों का उसके प्रति अनुराग बढ़े और विरागसमाप्त हो । लोगों के अनुराग प्राप्ति रूपी लक्ष्मी को प्राप्त कर राजा प्रजाओं का अनुरञ्जन करने वाला हो सकता है ।।२४।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का सहायकसम्पत्ति वर्णन नामक दो सौ बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२० ॥

एकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अनुजीविवृत्तम्

पुष्कर उवाच– **भृत्यः कुर्य्यात् तु राजाज्ञां शिष्यवत्सच्छ्रियाः पतेः । न क्षिपेद् वचनं राज्ञो अनुकूलं प्रियं वदेत् ॥ १ ॥ रहोगतस्य वक्तव्यमप्रियं यद्धितं भवेत् । न नियुक्तो हरेद् वित्तं नोपेक्षेत् तस्य मानकम्॥ २॥ राज्ञश्च न तथाकार्य्यं वेशभाषाविचेष्टितम् । अन्तःपुरचराध्यक्षो वैरभूतैर्निराकृतैः॥३॥ संसर्गं न ब्रजेद्भृत्यो राज्ञो गुह्यञ्च गोपयेत् । प्रदर्श्य कौशलं किञ्चिद्राजानन्तु विशेषयेत्॥ ४॥ राज्ञा यच्छ्रावितं गुह्यं न तल्लोके प्रकाशयेत् । आज्ञाप्यमाने वान्यस्मिन् किङ्करोमीति वा वदेत् ॥ ५ ॥ वस्त्रं रत्नमलङ्कारं राज्ञा दत्तं च धारयेत् । नानिर्दिष्टो द्वारि विशेन्नायोग्ये भुवि राजदृक्॥६॥ जृम्भान्निष्ठीवनङ्कासं कोपं पर्य्यन्तिकाश्रयम् । भृकुटीं वातमुद्गारं तत्समीपे विवर्जयेत्॥ ७॥ स्वगुणख्यापने युक्त्या परानेव नियोजयेत् । शाठ्यं लौल्यं सपैशून्यं नास्तिक्यं क्षुद्रता तथा ॥ ८ ॥ चापल्यञ्च परित्याज्यं नित्यं राजानुजीविना । श्रुतेन विद्याशिल्पैश्च संयोज्यात्मानमात्मना ॥ ९ ॥ राजसेवां ततः कुर्य्याद् भूतये भूतिवर्द्धनः । नमस्कार्य्याः सदा चास्य पुत्रबल्लभमन्त्रिणः॥ १०॥ सचिवैर्नास्य विश्वासो राजचित्तप्रियञ्चरेत् । त्यजेद् विरक्तं रक्तात् तु वृत्तिमीहेत राजवित्॥११॥ अपृष्टश्चास्य न ब्रूयात् कामं कुर्य्यात् तथापदि । प्रसन्नो वाक्यसंग्रही रहस्ये न च शङ्कते॥१२॥**

श्रीपुष्कर जी ने कहा– भृत्यको राजा की आज्ञा का पालन उसी तरह करना चाहिए जैसे कोई शिष्य अपने गुरु की आज्ञा का पालन करता है तथा पतिव्रता अपने पति की आज्ञा का पालन करती है । राजा की बात की कभी उपेक्षा नहीं करना चाहिए और सदा उसके अनुकूल बचन बोलना चाहिए ।। १ ।। यदि कोई राजा को हित की बात बतानी हो और वह सुनने में अप्रिय लगे तो उसे एकान्त में ही कहना चाहिए । किसी काम में नियुक्त होने पर राजकीय धन का अपहरण नहीं करना चाहिए और न तो वह राजा के सम्मान की उपेक्षा ही करे ।।२।। राजा की बोलचाल और वेशभूषा की नकल नहीं करनी चाहिए । अन्तःपुर के सेवकों के अध्यक्ष का कर्तव्य है कि वह ऐसे लोगों के साथ न बैठे जिनका राजा के साथ बैर हो तथा जो लोग राज दरबार से अपमानपूर्वक निकाल दिए गए हों ।। ३ ।। भृत्य को राजा की गुप्त बातों को दूसरों के समक्ष प्रकट नहीं करना चाहिए । अपनी कोई भी कुशलता दिखाकर राजा को विशेष प्रसन्न एवं सम्मानित करना चाहिए ।। ४ ।। राजा जिस गुप्त बात को बतलाए उसे समाज में प्रकाशित न करे,यदि राजा कोई आज्ञा न दे तो यह पूछना चाहिए कि मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ।। ५ ।। राजा जिस वस्त्र, रत्न अथवा अलंकार को प्रदान करे, उसे धारण करना चाहिए । विना आज्ञा के दरवाजे पर अथवा अन्य किसी स्थान पर जहाँ राजा की दृष्टि पड़ती हो, नहीं बैठना चाहिए।। ६ ।। जम्भाई लेना, थूकना, खाँसना, क्रोध प्रकट करना, खाट पर बैठना, भौंहें टेढ़ी करना, अपान वायु छोड़ना तथा डकार लेना आदि कार्य राजा के सन्निकट नहीं करना चाहिए ।। ७ ।। अपने गुणों को राजा के समक्ष प्रकट करने के लिए युक्तिपूर्वक दूसरों को ही नियुक्त करना चाहिए ।। शठता, लोलुपता, चुगुली, नास्तिकता तथा क्षुद्रता, एवं चपलता- इन दोषों को राजसेवकों को त्याग देना चाहिए ।। ८ ।। पहले स्वयं प्रयत्न करके वेद विद्या अथवा शिल्पकला की योग्यता प्राप्त करनी चाहिए । उसके पश्चात् अपनी सम्पत्ति बढ़ाना चाहने वाले पुरुष को अभ्युदय के लिए राजा की सेवा में प्रवृत्त होना चाहिए । राजा के प्रिय पुत्रों तथा उनके मन्त्रियों को सदा नमस्कार करना चाहिए ।। ९-१० ।। केवल मन्त्रियों के साथ रहने से राजा का अपने ऊपर विश्वास नहीं होता है । अतएव उनके हार्दिक अभिप्राय के अनुकूल सदा प्रिय कार्य करना चाहिए । राजा के स्वभाव को समझने वाले पुरुष के लिए उचित है कि वह विरक्त राजा को त्याग दे और अनुरक्त राजा से ही वृत्ति प्राप्त करने की चेष्टा करे ।। ११ ।। विना पूछे राजा के समक्ष कोई बात न कहे, किन्तु आपत्ति काल में ऐसा किया जा सकता है । राजा प्रसन्न हो तो वह सेवक के विनययुक्त वचन को मानता है । प्रेमी सेवक को किसी रहस्य युक्त स्थान में देखकर भी वह उस पर संदेह नहीं करता है ।। १२ ।। उसके दरबार में आने पर राजा उससे

कुशलादिपरिप्रश्नं सम्प्रयच्छति चासनम् । तत्कथाश्रवणाद्धृष्टो अप्रियाण्यपि नन्दते॥ १३॥ अल्पं दत्तं प्रगृह्णाति स्मरेत् कथान्तरेष्वपि । इति रक्तस्य कर्त्तव्यं सेवामन्यस्य वर्जयेत् ॥ १४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेय अनुजीविवृत्तकथनं नामैकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२१॥

द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दुर्गसम्पत्तिः

दुर्गसम्पत्तिमाख्यास्ये दुर्गदेशे वसेन्नृपः । वैश्यशूद्रजनप्रायोऽह्यनाहार्य्यस्तथापरैः॥ १॥ किञ्चिद् ब्राह्मणसंयुक्तो बहुकर्मकरस्तथा । अदेवमातृको भक्तजलो देशः प्रशस्यते ॥ परैरपीडितः पुष्प फलधान्यसमन्वितः । अगम्यः परचक्राणां व्यालतस्करवर्जितः॥ षण्णामेकतमं दुर्गं तत्र कृत्वा वसेद् बली । धनुदुर्गं महीदुर्गं नरदुर्गं तथैव च ॥ ४ ॥ वार्क्षञ्चैवाम्बु दुर्गञ्च गिरिदुर्गञ्च भार्गव । सर्वोत्तमं शैलदुर्गमभेद्यं चान्यभेदनम् ॥ ५ ॥ पुरं तत्र च हट्टाद्य देवतायतनादिकम् । अनुयन्त्रायुधोपेतें सोदकं दुर्गमुत्तमम् ॥ ६ ॥ राजरक्षां प्रवक्ष्यामि रक्ष्यो भूपो विषादितः । पञ्चाङ्गस्तु शिरीषः स्यान्मूत्रपिष्टो विषार्दनः ॥ ७ ॥ शतावरी छिन्नरुहा विषघ्नी तण्डुलीयकम् ! कौषातकी च कह्लारी ब्राह्मी चित्रपटोलिका ॥ ८ ॥ मण्डकूपर्णी वाराही धात्र्यानन्दकमेव च । उन्मादिनी सोमराजी विषघ्नं रत्नमेव च ॥९॥ वास्तुलक्षणसंयुक्ते वसन् दुर्गे सुरान्यजेत् । प्रजाश्च पालयेद् दुष्टाञ्जयेद्

कुशल प्रश्न करता है, आसन निर्दिष्ट करता है, उसकी चर्चा सुनकर प्रसन्न होता है उसकी प्रिय बात सुनकर भी प्रसन्न होता है । बुरा नहीं मानता है ।। १३ ।। उसकी दी हुई छोटी सी भी वस्तु को स्वीकार करता है और बात-चीत में उसे याद रखता है । इन्हीं लक्षणों से यह जानकर कि राजा अनुरक्त है कि विरक्त, अनुरक्त राजा की सेवा करनी चाहिए ।। १४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अनुजीवियों के व्यवहार वर्णन नामक दो सौ इक्कीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२१ ॥

श्रीपुष्करजी ने कहा– अब मैं दुर्ग सम्पत्ति का वर्णन करता हूँ । राजा को दुर्ग देश में (किले के भीतर) रहना चाहिए । साथ में रहने वाले मनुष्यों में वैश्यों एवं शूद्रों की संख्या अधिक होनी चाहिए । दुर्ग ऐसे स्थान में होना चाहिए जहाँ शत्रुओं की जोर न चले ।। १ ।। दुर्ग में कुछ ब्राह्मणों को भी होना चाहिए । राजा का दुर्ग वहाँ होना चाहिए जहाँ बहुत अधिक काम करने वाले लोग रहते हों । वहाँ जल के लिए वर्षा के जल की प्रतीक्षा न करनी पड़े वही स्थान दुर्ग के लिए श्रेष्ठ होता है ।। २ ।। जहाँ शत्रु पीड़ा न दे सके, जो फल-फूल एवं धान्य-सम्पत्ति से सम्पन्न हो । जो शत्रु की सेना के लिए अगम्य हो तथा जो सर्प तथा चोरों से रहित हो ऐसा ही देश दुर्ग के लिए उत्तम होता है ।। ३ ।। हे भृगुनन्दन ! बली राजा को, धन दुर्ग, महीदुर्ग, नरदुर्ग, वृक्षदुर्ग, जलदुर्ग तथा गिरिदुर्ग इन छह प्रकार के दुर्गो में एक-एक प्रकार का दुर्ग बनाकर उसमें निवास करना चाहिए । इनमें सर्वोत्तम शैल दुर्ग होता है, जो दूसरों के लिए अभेद्य तथा शत्रुओं का भेदन करने वाला होता है ।। ४-५ ।। दुर्ग ही राजा का नगर होता है । वहाँ हाट-बाजार तथा देव मन्दिर को होना चाहिए । जिसके चारों ओर यन्त्र लगे होना चाहिए तथा उसे अस्त्र शस्त्रों से पूर्ण होना चाहिए । जिसके चारों ओर जल से भरी खाई होती है, वह दुर्ग उत्तम होता है ।। ६ ।। अब मैं तुम्हें राजा की रक्षा के विषय में बतलाता हूँ । राजा को विष खाने पर उसकी रक्षा करनी चाहिए । शिरीष वृक्ष की जड़, छाल, पत्ता, फूल और फल इन पाँचों अंगों को गोमूत्र में पीसकर सेवन करने से विष का निवारण होता है ।। ७ ।। शतावरि, गुडुचि और चौराई विष का नाश करने वाली है । कौषतकी, (कड़वी तरोई) कह्लारी (करियारी) ब्राह्मी, चित्रपटोलिका (कड़वी परोरी) मण्डूकपर्णी वाराहीकन्द, आँवला, आनन्दक,भाँग और सोमराजी

दानानि दापयेत् ॥ १० ॥ देवद्रव्यादिहरणात् कल्पन्तु नरके वसेत् । देवालयानि कुर्वीत देवपूजारतो नृपः ॥ ११॥ सुरालयाः पालनीयाः स्थापनीयाश्च देवताः । मृण्मयाद् दारुजं पुण्यं दारुजादिष्टकामयम् ॥ १२ ॥ ऐष्टकाच्छैलजं पुण्यं शैलजात् स्वर्णरत्नजम् । क्रीडन् सुरगृहं कुर्वन् भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्॥१३॥ चित्रकृद् गीतवाद्यादि प्रेक्षणीयादि दानकृत् । तैलाज्य मधुदुग्धाद्यैः स्नाप्य देवं दिवं व्रजेत् ॥ १४ ॥ पूजयेत् पालयेद् विप्रान् द्विजस्वं न हरेन्नृपः । सुवर्णकं गामेकां भूमेरप्येकमङ्गुलम् ॥ १५ ॥ हरन्नरकमाप्नोति यावदाहूतसम्प्लवम् । दुराचारन्न द्विषेच्च सर्वपापेष्वपि स्थितम् ॥ १६॥ नैवास्ति ब्राह्मणवधात् पापं गुरुतरं क्वचित् । अदैवं दैवतं कुर्य्युः कुर्युर्दैवमदैवतम् ॥ १७॥ ब्राह्मणा हि महाभागास्तान्नमस्येत् सदैव तु । ब्राह्मणी रुदती हन्ति कुलं राज्यं प्रजास्तथा ॥ १८ ॥ साध्वीस्त्रीणां पालनञ्च राजा कुर्य्याच्च धार्मिकः। स्त्रिया प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्यैकदक्षया ॥ १९ ॥ सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया । यस्मै दद्यात् पितात्वेनां शुश्रूषेत् तं पतिं सदा ॥ २० ॥ मृते भर्त्तरि स्वर्य्यायात्ब्रह्मचर्ये स्थिताङ्गना । परवेश्मरुचिर्नस्यान्नस्यात्कलहशालिनी॥ २१॥ मण्डनं वर्जयेन्नारी तथा प्रोषितभर्तृका । देवताराधन परा तिष्ठेद् भर्तृहिते रता ॥२२॥ धारयेन्मङ्गलार्थाय किञ्चिदाभरणं तथा । भर्त्ताग्निं या विशेन्नारी सापि स्वर्गमवाप्नुयात्॥ २३॥ श्रियः सम्पूजनङ्कार्यं

(बाकुची) ये औषधियाँ विषनाशक हैं, रत्न भी विषनाशक होते हैं ।। ८-९ ।। राजा वास्तु के लक्षण से युक्त दुर्ग में निवास करते हुए देवताओं का पूजन करें, प्रजाओं का पालन करें, दुष्टों पर विजय प्राप्त करे और दान करे ।। १० ।। देवताओं के द्रव्य (धन) का अपहरण करने पर राजा को एक कल्प तक नरक में निवास करना होता है । देवता के पूजन में संलग्न राजा को देवता का मन्दिर बनवाना चाहिए ।। ११ ।। मन्दिरों की उसे रक्षा करनी चाहिए तथा देवताओं की प्रतिष्ठा करनी चाहिए । मिट्टी की मूर्ति से लकड़ी की देवमूर्ति बनाने का अधिक पुण्य होता है । उसकी अपेक्षा ईंट की मूर्ति बनाने का अधिक पुण्य होता है । ईंट की अपेक्षा पत्थर की मूर्ति बनवाने का अधिक पुण्य होता है । उसकी अपेक्षा सुवर्ण एवं रत्न की मूर्ति बनवाने का अधिक पुण्य होता है। क्रीड़ा में भी देवमन्दिर बनवाने से राजा भोग एवं मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।। १२-१३ ।। राजा को चाहिए कि वह देव मन्दिर में चित्र बनवावे, गाना-बजाना कराये,दर्शनीय वस्तुओं का दान करे तथा तेल,घी, मधु आदि से देवता को स्नान कराये । ऐसा करने वाला व्यक्ति स्वर्गलोक प्राप्त करता है ।। १४ ।। राजा को चाहिए कि वह ब्राह्मणों की पूजा करे, उनका पालन करे तथा ब्राह्मणों की सम्पत्ति का अपहरण न करे ।। १४ ।। यदि राजा ब्राह्मण का थोड़ा सा भी सोना, एकगौ, अथवा एक अंगुल भी भूमि छीन लेता है तो उसे महाप्रलय होने तक नरक में पड़े रहना पड़ता है ।। १५।। यदि ब्राह्मण दुराचारी हो अथवा सभी प्रकार के पापों को करने वाला हो तो भी राजा को उनसे द्वेष नहीं करना चाहिए । ब्राह्मण के वध से बढ़कर कोई भी दूसरा पाप नहीं है ।। १६ ।। महाभाग ब्राह्मण यदि चाहें तो जो देवता नहीं है, उसे भी देवता बना दें और जो देवता हैं उसे भी देवपद से नीचे उतार दें । अतएव ब्राह्मण को सदा नमस्कार ही करना चाहिए ।। १७ ।। यदि राजा के अत्याचार से दुखी होकर ब्राह्मणी रोती है तो वह राजा के कुल, राज्य तथा प्रजा का विनाश्पा कर देती है । धार्मिक राजा को चाहिए कि वह साध्वी स्त्रियों का पालन करे ।। १८ ।। स्त्री को घर के काम काज में दक्ष तथा सदा प्रसन्न रहने वाली होना चाहिए । वह घर की समस्त वस्तुओं को साफ सुथरी रखे तथा खर्च सोच समझकर करने वाली होनी चाहिए । पिता जिसको कन्यादान दे दे उसे पति की सेवा शुश्रुषा करनी चाहिए ।। २० ।। पति की मृत्यु हो जाने पर ब्रह्मचर्य का पालन करने वाली स्त्री स्वर्गलोक में जाती है । वह दूसरे के घर में रहना पसन्द न करे और लड़ाई-झगड़ा से दूर रहे ।। २१ ।। जिसका पति परदेश में हो वह नारी अपना शृंगार न करे । सदा पति के कल्याण की कामना करती हुई देवाराधन में लगी रहे ।। २२ ।। वह मंगल के लिए एक दो आभूषणों को धारण किए रहे । पति के मरने पर जो नारी उसी के साथ सती हो जाती है, वह भी स्वर्गलोक प्राप्त करती है ।। २३ ।। लक्ष्मी की पूजा और घर की सफाई आदि रखना गृहिणी का मुख्य कार्य है । कार्तिक मास की द्वादशी के दिन भगवान् विष्णु की पूजा करके वह बछड़े सहित गौ का दान करे ।।२४ ।। सावित्री

गृहसम्मार्जनादिकम् । द्वादश्यां कार्त्तिके विष्णुं गां सवत्सां ददेत् तथा ॥ २४ ॥ सावित्र्या रक्षितो भर्त्तासत्याचारव्रतेन च । सप्तम्यां मार्गशीर्षे तु सितेभ्यर्च्यदिवाकरम्। पुत्रानाप्नोति च स्त्रीह नात्र कार्या विचारणा ॥ २५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दुर्गसम्पत्तिकथनं नाम द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२२॥

त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्माः

पुष्कर उवाच— ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद् दशग्रामाधिपं नृपः। शतग्रामाधिपञ्चान्यं तथैव विषयेश्वरम् ॥ १ ॥ तेषां भोगविभागश्च भवेत् कर्मानुरूपतः। नित्यमेव तथा कार्यंतेषाञ्चारैःपरीक्षणम् ॥ २॥ ग्रामे दोषान् समुत्पन्नान् ग्रामेशः प्रशमं नयेत् । अशक्तोदशपालस्य स तु गत्वानिवेदयेत्॥ ३॥ श्रुत्वापि दशपालोऽपि तत्र युक्तिमुपाचरेत् । वित्ताद्याप्नोति राजा वै विषयात् तु सुरक्षितात् ॥ ४ ॥ धनवान् धर्ममाप्नोति धनवान् काममश्नुते । उच्छिद्यन्ते विना ह्यर्थैः क्रिया ग्रीष्मे सरिद् यथा ॥ ५ ॥ विशेषो नास्ति लोकेषु पतितस्याधनस्य च । पतितान्न तु गृह्णन्ति दरिद्रो न प्रयच्छति॥६॥ धनहीनस्य भार्यापि नैका स्यादुपवर्त्तिनी । राष्ट्रपीडाकरो राजा नरके वसते चिरम्॥ ७॥ नित्यं राज्ञा तथा भाव्यं गर्भिणीसहधर्मिणी । यथास्वं सुखमुत्सृज्य गर्भस्यसुखमावहेत्कि॥ ८॥ कियज्ञैस्तपसा तस्य प्रजा यस्य न रक्षिताः। सुरक्षिताः प्रजा यस्य स्वर्गस्तस्य गृहोपमः॥ ९ ॥ अरक्षिताः

ने अपने सदाचार और व्रत के प्रभाव के कारण अपने पति की मृत्यु से रक्षा की । मार्गशीर्ष (अगहन) मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन सूर्य की पूजा करने से स्त्री को पुत्र की प्राप्ति होती है । इस विषय में किसी भी प्रकार का संदेह करने की आवश्यकता नहीं है ।। २५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का राजा की दुर्गसम्पत्ति का वर्णन नामक दो सौ बाइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२२॥

श्रीपुष्कर जी ने कहा— राजा को चाहिए कि वह प्रत्येक गाँव का एक-एक अधिपति नियुक्त करे फिर दस-दस गावों तथा सौ-सौ गावों का एक एक अध्यक्ष नियुक्त करे । सबके ऊपर एक ऐसे अधिपति को वह नियुक्त करे जो सम्पूर्ण राज्य का स्वामी हो ।। १ ।। उन सबों के कार्यों के अनुसार उन सबों के भोग सामग्री (भरण पोषण के साधनों) का विभाजन करना चाहिए। गुप्तचरों के माध्यम से सदा उन अध्यक्षों की परीक्षा उसे करवाते रहनी चाहिए।। २ ।। यदि ग्राम में कोई दोष उत्पन्न हो जाय तो ग्रामाधिपति उस दोष को शान्त करे । यदि वह उस दोष को दूर करने में समर्थ न हो तो वह दस ग्रामों के अधिपति से जाकर उन सब बातों को बतलाए ।। ३ ।। दस ग्रामों के अधिपति को चाहिए कि वह सारी बातें सुनकर दोष को शान्त करने का उपाय करे राज्य को सुरक्षित रहने पर ही राजा सम्पत्ति आदि प्राप्त करता है ।। ४ ।। धनवान् ही धर्म की प्राप्ति कर पाता है, धनवान् ही अपनी सारी कामनाओं को पूर्ण कर पाता है । जिस तरह ग्रीष्म ऋतु में नदियाँ सूख जाती हैं, उसी तरह धन के विना सारी क्रियाएँ विनष्ट हो जाती हैं ।। ५ ।। लोकों में पतित तथा निर्धन में कोई भेद नहीं माना जाता है, पतित से कोई कुछ लेता नहीं है और दरिद्र किसी को कुछ देता नहीं है ।। ६ ।। धनहीन व्यक्ति की पत्नी भी उसकी आज्ञा का पालन नहीं करती है । अतएव राष्ट्र को पीड़ा पहुँचाने वाला राजा चिरकाल तक नरक में निवास करता है ।। ७ ।। जिस तरह गर्भिणी नारी अपने सुख का ख्याल न रखकर अपने गर्भस्थ शिशु को सुख पहुँचाना चाहती है, उसी तरह राजाको भी अपने सुख की परवाह न कर प्रजा को सुख पहुँचाने का प्रयास करना चाहिए ।। ८ ।। जिसकी प्रजा सुरक्षित नहीं है उस राजा के यज्ञ करने अथवा तपस्या करने से क्या लाभ है । जिस राजा की प्रजा सुरक्षित होती

प्रजा यस्य नरकं तस्य मन्दिरम् । राजा षड्भागमादत्ते सुकृताद् दुष्कृतादपि॥ १०॥ धर्मागमो रक्षणाच्च पापमाप्नोत्यरक्षणात् । सुभगा विटभीतेव राजवल्लभ तस्करैः॥ ११॥ भक्ष्यमाणाः प्रजा रक्ष्याःकायस्थैश्च विशेषतः। रक्षिता तद्भयेभ्यस्तु राज्ञो भवति सा प्रजा ॥ १२ ॥ अरक्षिता सा भवति तेषामेवेह भोजनम् । दुष्टसम्मर्दनं कुर्य्याच्छास्त्रोक्तं करमाददेत्॥ १३॥ कोषे प्रवेशयेदर्द्धं नित्यञ्चार्द्धं द्विजे ददेत् । निधिं द्विजोत्तमः प्राप्य संगृह्णीयात् सकलं तथा ॥ १४ ॥ चतुर्थमष्टमं भागं तथाषोडशमं द्विजः । वर्णक्रमेण दद्याच्च निधिपात्रे तु धर्मतः ॥ १५॥ अनृतन्तु वदन् दण्ड्यः सुवित्तस्यांशमष्टमम् । प्रनष्टस्वामिकं ऋक्थं राजात्र्यब्दं निधापयेत्॥१६॥ अर्वाक् त्र्यब्दाद्धरेत् स्वामी परेण नृपति र्हरेत् । ममेदमिति यो ब्रूयात् सोर्थयुक्तो यथाविधि ॥ १७ ॥ सम्पाद्य रूपसंख्यादीन् स्वामी तद् द्रव्यमर्हति। बालदायादिकं ऋक्थं तावद्राजानुपालयेत् ॥ १८ ॥ यावत् स्यात् स समावृत्तो यावद्वातीतशैशवः। बालपुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणं निष्कुलासु च॥ १९ ॥ पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च । जीवन्तीनान्तु तासां ये संहरेयुः स्वबान्धवाः॥ २० ॥ ताञ्छिष्याच्चौरदण्डेन धार्मिकःपृथिवीपतिः। सामान्यतोहृतञ्चौरैस्तद्वैदद्यात्स्वयंनृपः॥ २१॥ चौररक्षाधिकारिभ्यो राजापि हृतमाप्नुयात् । अहृते यो हृतं ब्रूयान्निःसार्य्यो दण्ड्य एव सः ॥ २२ ॥ न तद्राज्ञा प्रदातव्यं गृहे यद् गृहगैर्हृतम् । स्वराष्ट्रपण्यादादद्याद्राजा

है, उसके लिए स्वर्ग घर के समान सुलभ है ।। ९ ।। जिस राजा की प्रजा अरक्षित है उसका नरक ही निवास स्थान बनता है, क्योंकि राजा तो प्रजा के पुण्य एवं पाप दोनों का षष्ठांश लेता है।।१०।। प्रजा की रक्षा करने से उसे धर्म की प्राप्ति होती है और उसकी रक्षा न करने से उसको पाप ही मिलता है। जिस तरह दुराचारी पुरुषों से पतिवव्रता की रक्षा करनी चाहिए उसी तरह राजा के प्रिय कर्मचारी तथा चोरों के शोषण से प्रजा की भी रक्षा की जानी चाहिए ।। ११ ।। विशेष रूप से कायस्थों के द्वारा शोषण की जाती हुई प्रजा की रक्षा तो अवश्य करनी चाहिए । उन सबों के भयसे रक्षित प्रजा राजा की प्रजा हो जाती है ।। १२ ।। यदि प्रजा की रक्षा उन सबों से नहीं की गयी तो प्रजा उन्हीं सबों का ग्रास बन जाती है । राजा को चाहिए कि वह दुष्टों का दमन करे और शास्त्रोक्त कर प्रजाओं से ले ।। १३ ।। राजा को चाहिए कि वह प्राप्त कर के राजस्व का आधा भाग तो कोष में जमा करा दे और आधा ब्राह्मण के हाथ में दे दे । श्रेष्ठ ब्राह्मण को चाहिए कि उसा सम्पत्ति को प्राप्त करके सम्पूर्ण धन ले ले ।। १४ ।। पुनः वह ब्राह्मण प्राप्त निधि का चतुर्थ यात्र एवं आठवाँ भाग तथा सोलहवाँ भाग क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र को धर्मानुसार बाँट दे । धन को धर्मानुसार सुपात्र के हाथ में ही देना चाहिए ।। १५ ।। झूठ बोलने वाले मनुष्यको दण्ड देना उचित है, राजा को इसके धन का आठवाँ भाग दण्ड के रूप में ले लेना चाहिए । जिस धन का स्वामी लापता हो उस धन को राजा तीन वर्षों तक अपने अधिकार में रखे । तीन वर्ष से पूर्व यदि धन का स्वामी आ जाय तो वह उस धन को ले सकता है । उसके बाद राजा को स्वयम् उस धन को ले लेना चाहिए ।। १६ ।। जो मनुष्य 'यह मेरा धन है' इस प्रकार से कहकर उससे अपना सम्बन्ध बतलाता है, उसये विधिपूर्वक उस धन का रूप और संख्या बतलाना चाहिए । इस प्रकार अपने को उस धन का स्वामी सिद्ध कर देने पर वह उस धन का अधिकारी होता है।।१७।। जो धन छोटे बालक के हिस्से का हो उस धन की रक्षा राजा तब तक करता रहे जब तक उस बालक का समावर्तन संस्कार न हो जाय अथवा जब तक उसकी शैशवावस्था न समाप्त हो जाय। इसी तरह जिनके कुल में कोई न हो अथवा जिनके कुल में बच्चे छोटे हों ऐसी स्त्रियों की भी रक्षा राजा को करनी चाहिए ।। १८-१९ ।। यदि पतिव्रता स्त्रियाँ भी विधवा हों अथवा रोगिणी हों तो इसी प्रकार उनकी भी रक्षा करनी चाहिए । यदि उनके जीते जी कोई उनका धन अपहरण कर ले तो धर्मात्मा राजा को उसे चोर का दण्ड देना चाहिए ।। २० ।। यदि कोई सामान्य चोर किसी प्रजा का धन चुराता है तो राजा को चाहिए कि उतना ही धन उस प्रजा को स्वयं दे दे, और जिन लोगों को चोर से रक्षा करने का काम सौंपा गया हो उनसे उतना धन वसूल करे ।। २१ ।। चोरी न होने पर भी जो मनुष्य अपने धन को चुराया हुआ बतलाता है वह दण्डनीय है, राजा उसे राज्यसे बाहर निकाल दे ।। २२ ।। यदि घर का धन घरवालों ने ही चुराया हो तो राजा उस धन को न दे। अपने राज्य के भीतर जितनी दुकानें हों उनके आय का बीसवाँ भाग राजा को कर के रूप में ले लेना चाहिए ।। २३ ।। परदेश से माल मँगाने में जो खर्च तथा नुकसान होता है, उसका ब्यौरा बतलाने वाला बीजक देख

विंशतिमं द्विज॥ २३॥ शुल्कांशं परदेशाच्च क्षयव्ययप्रकाशकम् । ज्ञात्वा सङ्कल्पयेच्छुल्कं लाभं वणिग् यथाप्नुयात् ॥ २४ ॥ विंशांशं लाभमादद्यात् दण्डनीयस्ततोऽन्यथा । स्त्रीणां प्रविजितानाञ्च तरशुल्कं विवर्जयेत् ॥ २५ ॥ तरेषु दासदोषेण नष्टं दासांस्तु दापयेत् । शूकधान्येषु षड्भागं शिम्बिधान्ये तथाष्टमम्॥ २६॥ राजावन्यार्थमादद्यात् देशकालानुरूपकम् । पञ्चषभागमादद्यात् राजा पशुहिरण्ययोः॥ २७॥ गन्धौषधिरसानाञ्च पुष्पमूल फलस्य च। पत्र शाकतृणानाञ्च वंश वैणवचर्मणाम् ॥ २८॥ वैदलानाञ्च भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च । षड्भागमेव चादद्यान् मधुमांसस्य सर्पिषः॥ २९॥ म्रियन्नपि न चादद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तथा करम् । यस्य राज्ञस्तु विषये श्रोत्रियःसीदति क्षुधा ॥ ३० ॥ तस्य सीदति तद्राष्ट्रं व्याधिदुर्भिक्षतस्करैः। श्रुतं वृत्तन्तु विज्ञाय वृत्तिं तस्य प्रकल्पयेत्॥ ३१॥ रक्षेच्च सर्वसत्त्वेन पिता पुत्रमिवौरसम् । संरक्ष्यमाणो राज्ञा यःकुरुते धर्ममन्वहम् ॥ ३२ ॥ तेनायुर्वर्द्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च । कर्म कुर्य्युर्नरेन्द्रस्य मासेनैकञ्च शिल्पनः। भुक्तमात्रेण ये चान्ये स्वशरीरोपजीविनः॥३३॥

इत्यादिमहापुराणआग्नेये राजधर्मवर्णनं नाम त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२३॥

चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्माः

पुष्कर उवाच– **वक्ष्येऽन्तःपुरचिन्ता च धर्माद्याः पुरुषार्थकाः । अन्योऽन्यरक्षया तेषां सेवा कार्य्या त्रिया नृपैः ॥ १ ॥ धर्ममूलोऽर्थविटपस्तथा कर्मफलो महान् । त्रिवर्ग पादपस्तत्र रक्षया फलभाग् भवेत्॥ २॥ कामाधीनाःस्त्रियो राम ! तदर्थं रत्नसंग्रहः । सेव्यास्ता नातिसेव्याश्च भूभुजा**

कर तथा माल पर दिये जाने वाले कर का विचार करके, प्रत्येक व्यापारी पर कर लगाना चाहिए जिससे कि व्यापारी को लाभ होता रहे ।।२४।। आय का बीसवाँ ही भाग कर के रूप में लेना चाहिए, यदि कोई कर्मचारी उससे अधिक वसूल करता है तो राजा द्वारा वह दण्डनीय है । स्त्रियों तथा सन्यासियों से नाव का शुल्क नहीं लेना चाहिए ।। २५ ।। यदि मल्लाहों की गलती से नाव पर कोई चीज नुकसान हो जाय तो उसे मल्लाहों से ही दिलवाना चाहिए । राजा को शूकधान्य का छठा भाग तथा शिम्बिधान्य का आठवाँ भाग कर के रूप में लेना चाहिए।। २६।। इसी प्रकार उसे जंगली फल मूलों में से देशकाल के अनुसार उचित मात्रा में ही कर रूप में लेना चाहिए । पशुओं का पाँचवाँ और सुवर्ण का छठा भाग राजा के लिए ग्राह्य है ।। २७ ।। गन्ध, औषधि, रस, फूल, मूल, फल, पत्र, शाक, तृण, बाँस, वेणु तथा चर्म एवं बाँस को चीरकर बनायी गयी टोकरियाँ, पत्थर के बर्तन, मधु, मांस एवं घी पर आमदनी का छठा भाग ही कर के रूप में लेना चाहिए ।। २८-२९ ।। ब्राह्मणों से कोई प्रियवस्तु अथवा कर नहीं लेना चाहिए । जिस राजा के राज्य में कोई वेदज्ञ भूख से पीड़ित रहता है, उस राजा का राज्य विमारी, आकाल तथा चोरों से पीड़ित होता रहता है ।। ३०।। अतएव ब्राह्मण की विद्या तथा उसके आचरण को जानकर उसके लिए अनुकूल जीविका का प्रबन्ध करना चाहिए । जिस तरह पिता अपने औरस पुत्र की रक्षा करता है, उसी तरह राजा को विद्वान् तथा सदाचारी ब्राह्मण का पालन करना चाहिए ।। ३१ ।। राजा से सुरक्षित होकर जो ब्राह्मण प्रतिदिन धर्म करता है,उससे राजा की आयु बढ़ती है, उसके धन एवं राष्ट्र की समृद्धि होती है ।। ३२ ।। शिल्पियों को चाहिए कि वे मास में एक दिन केवल भोजन करके राजा का निःशुल्क कार्य करें । इसी तरह से मजदूरी से अपनी जीविका चलाने वाले दूसरे लोगों को भी मास में एक दिन राजा का निःशुल्क कार्य करना चाहिए ।। ३४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का राजधर्म वर्णन नामक दो सौ तेइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२३ ॥

श्रीपुष्करजी ने कहा– अब मैं अन्तःपुर के विषय में बतलाता हूँ । धर्म, अर्थ तथा काम ये तीन पुरुषार्थ त्रिवर्ग हैं । इनकी एक दूसरे के द्वारा रक्षा करते हुए सभी राजाओं को इनका

विषयैषिणा॥ ३ ॥ आहारो मैथुनं निद्रा सेव्या नाति हि रुग् भवेत् । मञ्चाधिकारे कर्त्तव्याः स्त्रियः सेव्याः स्वरामिकाः ॥ ४ ॥ दुष्टान्याचरते या तु नाभिनन्दति तत्कथाम् । ऐक्यं द्विषद्भिर्व्रजति गर्वं वहति चोद्धता॥ ५॥ चुम्बितामार्ष्टि वदनं दत्तं न बहुमन्यते । स्वपित्यादौ प्रसुप्तापि तथा पश्चाद् विबुध्यते॥ ६॥ स्पृष्टा धुनोति गात्राणि गात्रञ्च विरुणद्धिया । ईषच्छृणोति वाक्यानि प्रियाण्यपि पराङ्मुखी ॥ ७ ॥ न पश्यत्यग्रदत्तन्तु जघनञ्च निगूहति । दृष्टे विवर्णवदना मित्रेष्वथ पराङ् मुखी ॥ ८ ॥ तत्कामितासु च स्त्रीसु मध्यस्थेव च लक्ष्यते । ज्ञातमण्डनकालापि न करोति च मण्डनम् ॥ ९ ॥ या सा विरक्ता तान् त्यक्त्वा सानुरागां स्त्रियं भजेत् । दृष्ट्वैव हृष्टा भवति वीक्षिते च पराङ्मुखी ॥ १० ॥ दृश्यमाना तथाऽन्यत्र दृष्टिं क्षिपति चञ्चलाम् । तचाप्युपावर्त्तयितुं नैव शक्नोत्यशेषतः॥ ११॥ विवृणोति तथाङ्गानि स्वस्या गुह्यानि भार्गव। गर्हितञ्च तथैवाङ्गं प्रयत्नेन निगूहति ॥१२॥ तद्दर्शने च कुरुते बालालिङ्गनचुम्बनम् । आभाष्यमाणा भवति सत्यवाक्या तथैव च॥ १३॥ स्पृष्टा पुलकितैरङ्गैः स्वेदेनैव च भज्यते । करोति च तथा राम! सुलभद्रव्ययाचनम्॥ १४॥ ततःस्वल्पमपि प्राप्य करोति परमां मुदम् । नामसङ्कीर्त्तनादेव मुदिता बहुमन्यते ॥ १५॥ करजाङ्काङ्कितान्यस्य फलानि प्रेषयत्यपि । तत्प्रेषितञ्च हृदये विन्यसत्यपि चादरात्॥ १६॥ आलिङ्गनैश्च गात्राणि लिम्पतीवामृतेन या। सुप्ते स्वपित्यथादौ च तथा तस्य विबुध्यते॥१७॥ उरू स्पृशति चात्यर्थं सुप्तश्चैनं विवुध्यते। कपित्थचूर्णयोगेन तथा दध्नः स्त्रजा तथा॥१८॥

सेवन करना चाहिए ।। १ ।। त्रिवर्ग एक वृक्ष के समान है । धर्म उसकी जड़ है, अर्थ ही उसकी शाखाएँ हैं और काम उसका फल है । मूल सहित उस वृक्ष की रक्षा करने से राजा उसके फल का भागी होता है ।। २-३ ।। हे राम ! स्त्रियाँ काम के अधीन होती हैं, उन सबों के लिए ही रत्नों का संग्रह किया जाता है । विषय सुख की इच्छा रखने वाले राजाओं को उनका सेवन करना चाहिए, किन्तु बहुत अधिक सेवन नहीं करना चाहिए ।। ३ ।। भोजन, मैथुन तथा निद्रा इन सबों का बहुत अधिक सेवन नहीं करना चाहिए । बहुत अधिक सेवन करने से रोग होता है । उन्हीं स्त्रियों को अपने पलंग पर बैठाना चाहिए जो अपने में अनुराग रखती हों ।। ४ ।। जो स्त्री दुष्टाचरण वाली हो, जो अपने स्वामी की चर्चा भी पसंद नहीं करती बल्कि उनके शत्रुओं से मित्रता रखती हो, तथा उद्दण्डतापूर्वक गर्व धारण किए रहती हो ।। ५ ।। चुम्बन करने पर अपना मुंह पोंछती हो, स्वामी की दी हुई वस्तु का अधिक आदर नहीं करती, स्वामी से पहले सो जाती हो, पहले सोकर भी पति के पश्चात् ही जगती हो ।। ६ ।। छू लेने पर जो अपने अंगों को झटकती हो, एक-एक अंग पर अवरोध उत्पन्न करती हो, पति के प्रियवचन को बहुत कम सुनती हो तथा उनसे सदा पराङ्मुख रहती हो ।। ७ ।। सामने जाकर देने पर दी जाने वाली वस्तु को नहीं देखती हो, अपने जघन को हमेशा छिपाये रखती हो, स्वामी को देखते ही जो उदास हो जाती हो, जो स्वामी के मित्रों से पराङ्मुख रहती हो ।। ८ ।। स्वामी जिन स्त्रियों से अनुराग रखते हों उनके प्रति जो उदासीन दिखायी दे तथा जो शृंगार का समय उपस्थित जानकर भी शृंगार न करती हो । वह विरक्त स्त्री होती है । उस स्त्री का परित्याग करके अनुरागिणी स्त्री का सेवन करना चाहिए । जो पति को देखकर ही प्रसन्न होती है और दूसरी ओर मुख किए रहने पर भी कनखियों से देखती है ।। १० ।। स्वामी के द्वारा देखे जाने पर अपनी चञ्चल दृष्टि को अन्यत्र हटा लेती है । फिर भी वह अपनी दृष्टि को पूरी तरहसे हटा नहीं पाती है ।। ११ ।। वह अपने गुप्त अंगों को भी कभी-कभी अभिव्यक्त कर देती है तथा जो अंग देखने में सुन्दर नहीं हैं,उन अंगों को प्रयत्नपूर्वक छिपाती है ।। १२ ।। स्वामी के समक्ष वह छोटे बच्चे का आलिङ्गन और चुम्बन करने लगती है । बातचीत में भाग लेती है और सत्य बोलती है ।। १३ ।। स्वामी के द्वारा स्पर्श किए जाने पर उसके अंग पसीने-पसीने हो जाते हैं और वह रोमाञ्चित हो जाती है । वह स्वामी से सुलभ वस्तुओं की ही याचना करती है ।। १४।। स्वामी से थोड़ी सी भी वस्तु प्राप्त करके बहुत अधिक प्रसन्न होती है। स्वामी का नाम लेने मात्र से प्रसन्न होकर उसका बहुत सम्मान करती है ।। १५ ।। स्वामी के पास वह अपनी अंगुलियों के चिह्न से युक्त फल भेजती है । स्वामी के द्वारा प्रेषित फलों को वह आदरपूर्वक हृदय से लगाती है ।। १६ ।। स्वामी के आलिङ्गन को पाकर मानों वही अपने अंगों पर अमृत का लेप लगा लेती है । अपने स्वामी के सोने पर ही वह सोती है और उनसे पहले ही जग जाती है ।। १७ ।। वह स्वामी के ऊरुओं

घृतं सुगन्धि भवति दुग्धैः क्षिप्तैस्तथा यवैः । भोज्यस्य कल्पनैवं स्याद् गन्धमुक्तिः प्रदर्श्यते ॥ १९ ॥ शौचमाचमनं राम ! तथैव च विरेचनम्। भावना चैव पाकश्च बोधनं धूपनं तथा॥ २०॥ वासनञ्चैव निर्दिष्टं कर्माष्टकमिदं स्मृतम् । कपित्थविल्वजं वाम्र करवीरकपल्लवैः ॥ २१॥ कृत्वोदकन्तु यद् द्रव्यं शौचितं शौचनन्तु तत् । तेषामभावे शौचन्तु मृगदर्पाम्भसा भवेत् ॥ २२ ॥ नखं कुष्ठं धनं मांसी स्पृक्शैलेयजं जनम् । तथैव कुङ्कुमं लाक्षा चन्दनागुरुनीरदम् ॥ सरलं देवकाष्ठञ्च कर्पूरं कान्तया सह । बालःकुन्दुरुकश्चैव गुग्गुलुः श्रीनिवासकः ॥ २४ ॥ सह सर्जरसेनैवं धूपद्रव्यैकविंशतिः । धूपद्रव्यगणादस्मादेकविंशाद् यथेच्छया ॥ २५ ॥ द्वे द्वे द्रव्ये समादाय सर्जभागैर्नियोजयेत् । नखपिण्याकमलयैःसंयोज्य मधुना तथा॥ २६॥ धूपयोगा भवन्तीह यथावत् स्वेच्छया कृताः। त्वचन्नाड़ीं फलं तैलं कुङ्कुमं ग्रन्थि पर्वकम् ॥ २७ ॥ शैलेयन्तगरं क्रान्तां चोलङ्कर्पूरमेव च । मांसीं सुराञ्च कुष्ठञ्च स्नानद्रव्याणि निर्दिशेत् ॥ २८ ॥ एतेभ्यस्तु समादायद्रव्यत्रयमथेच्छया । मृगदर्पयुतं स्नानं कार्य्यं कन्दर्पवर्द्धनम् ॥ २९॥ त्वङ्मुरानलदैस्तुल्यै र्बालकार्द्धसमायुतैः। स्नानमुत्पलगन्धि स्यात् सतैलं कुङ्कुमायते ॥ ३० ॥ जातीपुष्पसुगन्धि स्यात् तगरार्द्धेन योजितम् । सद् व्यामकं स्याद् वकुलैस्तुल्यगन्धि मनोहरम् ॥ ३१ ॥ मञ्जिष्ठातगरं चोलं त्वचं व्याघ्रनखं नखम् । गन्धपत्रञ्च विन्यस्य गन्धतैलं भवेच्छुभम्॥ ३२॥ तैलं निपीड़ितं राम ! तिलैः पुष्पाधिवासितैः । वासनात् पुष्पसदृशं गन्धेन तु भवेद् ध्रुवम् ॥ ३३॥ एलालवङ्गकक्कोलजातीफलनिशाकराः । जातीपत्रिकया सार्द्धं स्वतन्त्रा मुखवासकाः॥ ३४॥ कर्पूरं कुङ्कुमं कान्ता मृगदर्पं हरेणुकम् । कक्कोलैलालवङ्गञ्च

का स्पर्श करके उन्हें सोने से जगाती है ।। १७ ।। हे राम ! दही के मलाई के साथ थोड़ा स कपित्थ चूर्ण मिलादेने से जो घी तैयार होता है उसकी सुगन्धि उत्तम होती है । घी दूध आदि के साथ जौ, गेहूँ आदि के आँटे का मेल होने से उत्तम खाद्य पदार्थ तैयार होता है । अब भिन्न-भिन्न पदार्थों में सुगन्धि डालने का प्रकार बतलाया जाता है ।। १८-१९ ।। शौच, आंचमन, विरेचन, भावना, पाक, बोधन, धूपन और वासन, ये आठ प्रकार के कर्म बतलाये गये हैं ।। २० ।। कपित्थ, विल्व, जामुन, आम्रएवं करवीर के पल्लवों से जल को शुद्ध करके उसके द्वारा जो किसी द्रव्य को धोकर या अभिषिक्त करके पवित्र किया जाता है, वह उस द्रव्य का शौचन या पवित्रीकरण कहलाता है ।। २१ ।। उन पल्लवों के अभाव में कस्तूरी मिश्रित जलसे द्रव्य की शुद्धि होती है ।। २२ ।। नख, कूट, धन (नागरमोथा) जटामांसी, स्पृक्क्, शिलाजीत, जल, केसर, लाक्षा, चन्दन, अगरु, नीरद ।। २३ ।। सरल, देवदारु, कपूर, कान्ता, सुगन्ध, बाला, कुन्दुरुक, गुग्गूल, श्रीनिवास ।। २४ ।। और करायल, ये धूप के इक्कीस द्रव्य हैं । इन इक्कीस द्रव्यों में से अपनी इच्छा के अनुसार दो-दो द्रव्य लेकर उनमें करायल मिलायें। फिर सबमें नख (एक प्रकार का सुगन्धित द्रव्य) पिण्याक (तिल की खली) और मलय चन्दन का चूर्ण मिलाकर सबको मधु से युक्त करें ।। २५-२६ ।। इस प्रकार अपनी इच्छानुसार तैयार किए गये धूपयोग होते हैं । त्वचा (छाल) नाड़ी (डंठल, फल, तिल का तेल, केसर, गन्थिपर्वा, शिलाजीत, तगर, विष्णुकान्ता, चोल, कर्पूर, जटामांसी, मुरा, कूट ये समस्त द्रव्य स्नानोपयोगी हैं) ।। २७-२८।। इन द्रव्यों में से अपनी इच्छानुसार तीन द्रव्य लेकर उनमें कस्तूरी मिला दें । इन सबों से मिश्रित जलसे यदि स्नान करें तो वह काम वर्धक होता है ।।२९।। त्वचा, मुरा, नलद, इन सबों को समान मात्रा में लेकर इनमें आधा सुगन्धबाला मिला दें । फिन इनसे मिश्रित जल से स्नान करने पर शरीर से कमल जैसी सुगन्धि निकलती है । इनके ऊपर यदि तेल लगा लें तो शरीर का रंग कुंकुम जैसा हो जाता है ।। ३० ।। यदि उपर्युक्त द्रव्यों में आधा तगर मिला दिया जाय तो शरीर से चमेली के पुष्प जैसी सुगन्धि निकलती है । इनमें यदि ध्व्यामक नाम की औषधि मिला दी जाय, तो मौलश्री जैसी मनोहारी सुगन्धि निकलती है ।। ३१ ।। यदि तिल के तेल मञ्जिष्ठ, तगर, चोल, त्वचा, व्याघ्रनख, नख, एवं गन्धपत्र मिला दिया जाय तो अत्यन्त सुगन्धित तैल तैयार होता है ।। ३२ ।। यदि तिलों को सुगन्धित फूलों से वासित करके उनका तेल पेरा जाय तो निश्चय ही वह तेल उस फूल के ही समान सुगन्धित होता है ।। ३३ ।।इलायची, लवंग, काकोल, (कबावचीनी) जायफल और कर्पूर ये स्वतंत्र रूप से एक-एक भी यदि जायफल की पत्ती के साथ खाये जायँ तो मुँह की सुगन्धित रखने वाले होते हैं ।।३४।। कर्पूर, केसर कान्ता,

जाती कोशकमेव च ॥ ३५॥ त्वक्पत्रं त्रुटिमुस्तौ च लतां कस्तूरिकं तथा । कण्टकानि लवङ्गस्य फलपत्रे च जातितः॥ ३६ ॥ कटुकञ्च फलं राम! कार्षिकाण्युपकल्पयेत् । तच्चूर्णे खदिरं सारं दद्यात् तुर्य्यं तु वासितम् ॥ ३७ ॥ सहकाररसेनास्मात् कर्त्तव्या गुटिकाः शुभाः। मुख न्यस्ताः सुगन्धास्तामुखरोगविनाशनाः ॥ ३८ ॥ पूगं प्रक्षालितं सम्यक् पञ्चपल्लववारिणा । शक्त्या तु गुटिकाद्रव्यैर्वासितं मुखवासकम् ॥ ३९ ॥ कटुकं दन्तकाष्ठञ्च गोमूत्रे वासितं त्र्यहम् । कृतञ्च पूगवद्राम मुखसौगन्धिकारकम् ॥ ४०॥ त्वक्पथ्ययोःसमावंशौ शशिभागार्द्धसंयुतौ । नागवल्लीसमो भाति मुखवासो मनोहरः॥ ४१॥ एवं कुर्य्यात् सदा स्त्रीणां रक्षणं पृथिवीपतिः । न चासां विश्वसेज्जातु पुत्रमातुर्विशेषतः। न स्वपेत् स्त्रीगृहे रात्रौ विश्वासः कृत्रिमो भवेत् ॥ ४२ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेय राजधर्मवर्णनं नाम चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२४॥

पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्माः

राजपुत्रस्य रक्षा च कर्त्तव्या पृथिवीक्षिता । धर्मार्थकामशास्त्राणि धनुर्वेदञ्च शिक्षयेत्॥ १॥ शिल्पानि शिक्षयेच्चैवमाप्तैर्मिथ्याप्रियंवदैः। शरीररक्षाव्याजेन रक्षिणोऽस्य नियोजयेत् ॥ २॥ न चास्य सङ्गो दातव्यः क्रुद्धलुब्धविमानितैः। अशक्यन्तु गुणाधानं कर्त्तुं तं बन्धयेत् सुखैः ॥ ३॥ अधिकारेषु सर्वेषु विनीतं विनियो जयेत्। मृगयां पानमक्षांश्च राज्यनाशं त्यजेन्नृपः॥ ४॥ दिवास्वप्नं वृथाट्याञ्च वाक्पारुष्यं विवर्जयेत् । निन्दाञ्च

कस्तूरी, मेडका फल, कबाव चीनी, इलायची, लवंग, जायफल, सुपारी, त्वक्पत्र, त्रुटि (छोटी इलायची) मोथा, लता, कस्तूरी, लवंग के काँटे, जायफल के फल और पत्ते और कटुक फल इन सबों को एक-एक कर्ष भर एकत्रित करके इनका चूर्ण बना लें और उसमें चौथाई भाग वासित किया हुआ खैर सार मिलावें ।। ३५-३७ ।। फिर आम के रस में घोंटकर इनकी सुन्दर गोलियाँ बना लें । इन गोलियों को मुख में डाले रहने से मुख के समस्त रोग विनष्ट हो जाते हैं ।। ३८ ।। पूर्वोक्त पाँच पल्लवों के गले से छोई हुई सुपारी को यथाशक्ति उपर्युक्त गोली के द्रव्यों सेसुवासित कर दिया जाय तो वह मुख को सुगन्धित करने वाली होती है ।। ३९ ।। हे राम ! यदि कटुक और दातौन को गोमूत्र में भिंगोकर तीन दिन तक रख जाय तो वह भी उपर्युक्त सुपारी के ही समान मुख में सुगन्धि उत्पन्न करता है ।। ४० ।। वचा एवं जंगी हरे को बराबर-बराबर मात्रा में लेकर उनके आधाकर्पूर मिला दिया जाय और उसको मुँह में डाला जाय तो वह भी ताम्बूल के समान मुँह में सुगन्धि उत्पन्न करता है ।। ४१ ।। इस प्रकार से राजा अपने सुगन्धित आदि गुणों से स्त्रियों को वशीभूत करके सदा उनकी रक्षा करे, किन्तु कभी भी उन पर विश्वास न करे । विशेष रूप से पुत्र. की माता पर तो विल्कुल विश्वास न करे । सारी रात स्त्री के घर में न सोये क्योंकि उनके द्वारा दिलाया हुआ विश्वास दिखावटी होता है ।। ४२।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अन्तःपुरविषयक राजधर्म वर्णन नामक दो सौ चौबीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२४ ॥

श्रीपुष्करजी ने कहा– राजा को अपने पुत्र की रक्षा करनी चाहिए और उसे धर्मशास्त्र, कामशास्त्र, अर्थशास्त्र और धनुर्वेद की शिक्षा देनी चाहिए ।। १ ।। साथ में उसको अनेक प्रकार के शिल्पों की भी शिक्षा दिलानी चाहिए । उसके शिक्षकों को विश्वसनीय एवं सदा प्रिय बोलने वाला होना चाहिए ।। शरीर रक्षा के बहाने राजा उसके रक्षकों को नियुक्त करे ।। २ ।। क्रोधी, लोभी तथा अपमानित पुरुषों के संग से उसे सदा दूर रखना चाहिए । राजकुमार में गुणों का आधान करना सरल नहीं होता है अतएव उसके लिए राजकुमार को सुखों से बाँधना चाहिए।। ३।। पुत्र के शिक्षित हो जाने पर उसे सभी अधिकारों में नियुक्त करना चाहिए । मृगया, मद्यपान और जुआ ये राज्य को नष्ट करने वाले दोष हैं अतएव राजा को इनका परित्याग कर देना चाहिए।।४।।

दण्डपारुष्यमर्थदूषणमुत्सृजेत्।। ५।। आकाराणां समुच्छेदो दुर्गादीनामसत्क्रिया । अर्थानां दूषणं प्रोक्तं विप्रकीर्णत्वमेव च।। ६।। अदेशकाले यद् दानमपात्रे दानमेव च । अर्थेषु दूषणं प्रोक्तमसत्कर्म प्रवर्तनम् ।। ७ ।। कामं क्रोधं मदं मानं लोभं दर्पञ्च वर्जयेत् । ततो भृत्यजयं कृत्वा पौरजानपदं जयेत् ।। ८ ।। जयेद् वाह्यानरीन् पश्चाद् वाह्याश्च त्रिविधारयः । गुरवस्ते यथा पूर्वं कुल्यानन्तरकृत्रिमाः ।। ९ ।। पितृपैतामहं मित्रं सामन्तञ्च तथा रिपोः । कृत्रिमञ्च महाभाग ! मित्रं त्रिविधमुच्यते।। १०।। स्वाम्यमात्यं जनपदा दुर्गं दण्डस्तथैव च । कोषो मित्रञ्च धर्मज्ञ ! सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते।।११।। मूलं स्वामी स वै रक्ष्यस्तस्माद्राज्यं विशेषतः। राज्याङ्गद्रोहिणं हन्यात् काले तीक्ष्णो मृदुर्भवेत् ।। १२ ।। एवं लोकद्वयं राज्ञो भृत्यैर्हासं विवर्जयेत्। भृत्याः परिभवन्तीह नृपं हर्षणसत्कथम्।। १३।। लोकसंग्रहणार्थाय कृतकव्यसनो भवेत् । स्मितपूर्वाभिभाषी स्यात् लोकानां रञ्जनं चरेत् ।। १४।। दीर्घसूत्रस्य नृपतेःकर्महानिर्धुवं भवेत् । रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि ।। १५।। अप्रिये चैव वक्तव्ये दीर्घसूत्रः प्रशस्यते । गुप्तमन्त्रो भवेद्राजा नापदो गुप्तमन्त्रतः।। १६ ।। ज्ञायते हि कृतं कर्म नारब्धं तस्य राज्यकम् । आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ।। १७ ।। नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां गृह्यतेऽन्तर्गतं पुनः । नैकस्तु मन्त्रयेन् मन्त्रं न राजा बहुभिः सह।। १८।। बहुभिर्मन्त्रयेत् कामं राजा मन्त्रान् पृथक् पृथक् । मन्त्रिणामपि नो कुर्य्यान् मन्त्री मन्त्रप्रकाशनम्।।१९।। क्वापि कस्यापि विश्वासो भवतीह सदा नृणाम् । निश्चयश्च तथामन्त्रे कार्य्यं एकेन सूरिणा।।२०।।

राजा को दिन में सोना, व्यर्थ घूमना तथा कटु बोलना त्याग देना चाहिए । उसे परनिन्दा, कठोरदण्ड और अर्थदूषण का भी परित्याग कर देना चाहिए ।। ५ ।। सुवर्ण आदि के खानों का विनाश और दुर्ग आदि का मरम्मत न कराना ये अर्थदूषण हैं । धन को थोड़ा-थोड़ा करके अनेक स्थानों पर रखना, अयोग्य देश और अयोग्य काल में अपात्र को दान देना और बुरे कार्यों में धन लगाना-यह भी अर्थदूषण (धन का दुरुपयोग) है ।। ६-७ ।। काम, क्रोध, मद, मान, लोभ तथा गर्व को जीतना चाहिए । उसके पश्चात् भृत्यों को अपने वश में करना चाहिए ।। ८ ।। इसके पश्चात् बाह्य शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना चाहिए । बाह्य शत्रु तीन प्रकार के होते हैं- (१) वे शत्रु जिनके साथ पुस्तैनी दुश्मनी है, (२)अपने राज्य की सीमा पर रहने वाले सामन्त और (३) कृत्रिम शत्रु (जो शत्रु बन गये हैं।) ।। ९ ।। हे महाभाग ! मित्र भी तीन प्रकार के होते हैं- (१) वे मित्र जिनकी पिता-पितामहों से मित्रता चली आ रही है, (२) शत्रु के सामन्त मित्र तथा (३) कृत्रिम मित्र ।। १० ।। हे धर्मज्ञ परशुरामजी ! राज्य के सात अंग हैं- (१) स्वामी, (२) आमात्य, (३) जनपद, (४) दुर्ग, (५) दण्ड, (६) कोष तथा (७) मित्र ।। ११ ।। राज्य की जड़ स्वामी है, अतएव उसकी विशेष रूप से रक्षा की जानी चाहिए । उसकी अपेक्षा राज्य की विशेष रूप से रक्षा की जानी चाहिए । राज्य के अंग के द्रोहियों को मार देना चाहिए । समयानुसार राजा को कठोर भी होना चाहिए और कोमल भी ।। १२ ।। ऐसा करने से राजा के दोनों लोक सुधर जाते हैं । राजा को अपने भृत्यों से मजाक नहीं करना चाहिए । सबके साथ बैठकर हँसी मजाक करने वाले राजा को उसके भृत्य अपमानित भी कर देते हैं ।। १३ ।। लोगों को मिलाये रखने के लिए राजा को बनावटी व्यसन भी करना चाहिए । राजा को मुस्कुराकर बोलना चाहिये और प्रजाओं का अनुरंजन भी करना चाहिए ।। १४ ।। देर से किसी कार्य को प्रारम्भ करने वाले राजा के कार्यों की हानि अवश्य होती है । राग, दर्प, मान, द्रोह, पाप करने तथा अप्रिय बात कहने में देर करने वाला राजा प्रशंसित होता है । राजा को कोई भी मन्त्रणा गुप्त रखनी चाहिए मन्त्रणा को गुप्त रखने वाले राजा पर कोई भी विपत्ति नहीं आती है ।। १५-१६ ।। राजा का कोई भी काम पूरा हो जाने पर ही दूसरे लोगों को ज्ञात होना चाहिए । उसके आरब्ध कर्म को कोई भी नहीं जानने पाए ।। मनुष्य के आकार, इशारे, चाल-ढाल, बात-चीत, आँख तथा मुँह के विकार से उसके अन्दर की बात ज्ञात हो जाती है ।।१७।। राजा को न तो अकेले ही किसी गुप्त विषय पर विचार करना चाहिए और न तो बहुत लोगों के साथ बैठकर ही कोई मन्त्रणा करनी चाहिए।।१८।। राजा अनेक लोगों के साथ अलग-अलग किसी बात पर विचार करे । मन्त्री को भी चाहिए कि वह राजा के साथ की गयी मन्त्रणा को अन्य मन्त्रियों को न बतलाये ।।१९।। मनुष्यों को सदा किसी एक पर ही विश्वास जमता है । अतएव राजा को एक ही मन्त्री के साथ बैठकर गुप्त मन्त्रणा का निश्चय करना चाहिए ।। २० ।। विनय का त्याग करने से राजा का

नश्येदविनयाद्राजा राज्यञ्चविनयाल्लभेत् । त्रैविधेभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिञ्च शाश्वतीम्॥ २१॥ आन्वीक्षिकीञ्चार्थविद्यां वार्त्तारम्भांश्च लोकतः। जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ॥ २२ ॥ पूज्या देवा द्विजाःसर्वे दद्याद् दानानि तेषु च । द्विजे दानञ्चाक्षयोऽयं निधिः कैश्चिन्न नाश्यते॥२३॥ सङ्ग्रामेष्वनिवर्त्तित्वं प्रजानां परिपालनम् । दानानि ब्राह्मणानाञ्च राज्ञो निःश्रेयसम्परम् ॥ २४ ॥ कृपणानाथवृद्धानां विधवानाञ्च योषिताम् । योगक्षेमञ्च वृत्तिञ्च तथैव परिकल्पयेत् ॥ २५॥ वर्णाश्रमव्यवस्थानं कार्य्यं तापस पूजनम् । न विश्वशेच्च सर्वत्र तापसेषु च विश्वसेत्॥२६॥ विश्वासयेच्चापि परं तत्त्वभूतेन हेतुना । वकवच्चिन्तयेदर्थं सिंहवच्च पराक्रमेत् ॥ २७॥ वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत्। दृढ़प्रहारी च भवेत् तथा शूकरवन्नृपः ॥ २८॥ चित्राकारश्च शिखिवद् दृढ़भक्तिस्तथाश्ववत् । भवेच्च मधुराभाषी तथाकोकिलवन्नृपः॥ २९॥ काकशङ्की भवेन् नित्यमज्ञातां वसतिं वसेत् । नापरीक्षितपूर्वञ्च भोजनं शयनं स्पृशेत् ॥ ३० ॥ नाविज्ञातां स्त्रियं गच्छेन्नाज्ञातं नावमारुहेत् । राष्ट्रकर्षी भ्रस्यते च राज्यार्थाच्चैव जीवितात् ॥ ३१ ॥ भृतो वत्सो जातबलःकर्मयोग्यो यथा भवेत् । तथा राष्ट्रं महाभाग ! भृतं कर्मसहं भवेत्॥३२॥ सर्वं कर्मेदमायत्तं विधाने दैवपौरुषे । तयोर्दैवमचिन्त्यं हि पौरुषे विद्यते क्रिया ॥ जनानुरागप्रभवा राज्ञो राज्यमहीश्रियः ॥ ३३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये राजधर्मकथनं नाम पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२५॥



नाश हो जाता है । विनय की रक्षा करने से उसे राज्य की प्राप्ति होती है । राजा को चाहिये कि वह तीनों वेदों के ज्ञाता से त्रयीविद्या, शाश्वतदण्डनीति, आन्वीक्षिकी (अध्यात्म विद्या) तथा अर्थशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करे । उसे वार्ता का ज्ञान लोक से प्राप्त करना चाहिए । जितेन्द्रिय राजा ही अपने वश में प्रजाओं को रख सकता है ।। २१-२२ ।। समस्त देवता और ब्राह्मण उसके लिए पूज्य हैं । उन ब्राह्मणों को दान देना चाहिए । ब्राह्मणों को दिया गया दान अक्षय निधि है, उसको कोई विनष्ट नहीं कर सकता ।। २३ ।। संग्राम में पीठ न दिखाना, प्रजा का पालन करना और ब्राह्मणों को दान देना ये राजा के लिए परम कल्याण की बातें हैं ।। २४ ।। कृपणों, अनाथों, वृद्धों और विधवा स्त्रियों के भरण-पोषण (योग क्षेम) और आजीविका का प्रबन्ध राजाको करना चाहिए ।। २५ ।। राजा को वर्णधर्म तथा आश्रम धर्म की व्यवस्था करनी चाहिए, तपस्वियों की पूजा करनी चाहिए । सबों पर उसे विश्वास नहीं करना चाहिए । उसे तपस्वियों पर विश्वास करना चाहिए ।। २६ ।। यथोचित युक्तियों के द्वारा उसे दूसरों पर अपना विश्वास जमा लेना चाहिए । उसे बगुले के समान अर्थ की चिन्ता करनी चाहिए और सिंह के समान अपना पराक्रम प्रदर्शित करना चाहिए ।। २७ ।। राजा को चाहिए कि वह भेंड़िये के समान शत्रुओं को झपट ले, खरगोश के समान शीघ्र ही अदृश्य हो जाय, उसे शूकर के समान सुदृढ़ प्रहार करना चाहिए।।२८।। उसे मयूर के समान विचित्र आकार धारण करना चाहिए और अश्व के समान उसकी परमात्मा में स्वामि भक्ति होनी चाहिए । राजा को कोयल के समान मधुरभाषी होना चाहिए।।२९।। उसे कौए के समान चौकन्ना होना चाहिए । रात में उसे वहाँ रहना चाहिए जो स्थान किसी को मालूम न हो । पहले परीक्षण किए विना भोजन और शय्या को नहीं स्वीकार करना चाहिए ।। ३०।। विना जानी हुई स्त्री के साथ सहगमन न करे और न तो अज्ञात नौका पर चढ़े । अपने राज्य की प्रजा का शोषण करने वाला राजा राज्य और जीवन दोनों खो देता है ।। ३१ ।। महाभाग! जिस तरह पाला हुआ बछड़ा काम करने के योग्य होता है उसी तरह पालित राष्ट्र राजा के काम आता है ।। ३२ ।। यह सम्पूर्ण कर्म दैव और पुरुषार्थ के अधीन है। इनमें दैव तो अचिन्त्य है, किन्तु पुरुषार्थ में कर्म का स्थान है । राजा के प्रति प्रजा के प्रेम से ही राजा के राज्य, पृथिवी तथा श्रीवृद्धि होती है ।। ३३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का (राजपुत्र आदि के रक्षा विषयक) राजधर्म का वर्णन नामक दो सौ पच्चीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२५ ॥



षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सामाद्युपायकथनम्

पुष्कर उवाच– **स्वयमेव कर्म दैवाख्यं विद्धि देहान्तरार्जितम् । तस्मात् पौरुषमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः॥ १॥ प्रतिकूलं तथा दैवं पौरुषेण विहन्यते । सात्त्विकात् कर्मणः पूर्वात् सिद्धिःस्यात् पौरुषं विना ॥ २ ॥ पौरुषं दैवसम्पत्त्या काले फलति भार्गव। दैवं पुरुषकारश्च द्वयं पुंसःफलावहम्॥ ३॥ कृषेर्वृष्टिसमायोगात् काले स्युः फलसिद्धयः ॥ सधर्मं पौरुषं कुर्यान् नालसो न च दैववान् ॥ ४ ॥ सामादिभिरुपायैस्तु सर्वेसिध्यन्त्युपक्रमाः । साम चोपप्रदानञ्च भेददण्डौ तथापरौ॥ ५॥ मायोपेक्षेन्द्रजालञ्च उपायाःसप्त ताञ्छृणु । द्विविधिं कथितं साम तथ्यञ्चातथ्यमेव च॥ ६॥ तत्राप्यतथ्यं साधूनामाक्रोशायैव जायते । महाकुलीना ह्यृजवो धर्मनित्या जितेन्द्रियाः॥ ७॥ सामसाध्या अतथ्यैश्च गृह्यन्ते राक्षसा अपि । तथा तदुपकाराणां कृतानाञ्चैव वर्णनम् ॥ ८ ॥ परस्परन्तु ये द्विष्टाः क्रुद्धभीतावमानिताः । तेषां भेदं प्रयुञ्जीत परमं दर्शयेद् भयम् ॥ ९॥ आत्मीयान् दर्शयेदाशां येन दोषेण विभ्यति । परास्तेनैव ते भेद्या रक्ष्यो वै ज्ञातिभेदकः ॥ १० ॥ सामन्तकोपो वाह्यस्तु मन्त्रामात्यात्मजादिकः। अन्तःकोषञ्चोपशाम्यं कुर्वन्शत्रोश्च तं जयेत् ॥ ११ ॥ उपायश्रेष्ठं दानं स्याद् दानादुभयलोकभाक् । न सोऽस्ति नाम दानेन वशगो यो न जायते॥१२॥ दानवानेव शक्नोति संहतान्भेदितुं परान् । त्रयासाध्यं साधयेत् तं दण्डेन च कृतेन च॥ १३॥ दण्डे सर्वं स्थितं दण्डो नाशयेद्**

श्रीपुष्करजी ने कहा– हे परशुरामजी ! दूसरे जन्म के शरीर से उपार्जित अपने ही कर्म को दैव जानो । अतएव मेधावी पुरुष पुरुषार्थ को ही श्रेष्ठ मानते हैं ।। १ ।। पौरुष के द्वारा प्रतिकूल दैव का भी निवारण कियाजाता है तथा पूर्वकृत सात्त्विक कर्मों के कारण पुरुषार्थ के विना भी सिद्धि प्राप्त हो जाती है ।। २ ।। हे भृगुनन्दन ! पुरुषार्थ ही दैव की सहायता प्राप्त करके समय पर फल प्रदान करता है । दैव और पुरुषार्थ ये दोनों मनुष्यों को फल प्रदान करते हैं ।। ३ ।। जिस तरह की गयी कृषि वर्षा का योग प्राप्त कर समय पर फल प्रदान करती है, उसी तरह पौरुष रूपी वर्षा का योग पाकर पुरुषार्थ समय पर फ़ल प्रदान करता है । अतएव धर्मानुष्ठानपूर्वक पुरुषार्थ करना चाहिए, आलसी न बने और न तो दैव पर भरोसा करके बैठा रहे ।।४।। साम आदि उपायों से समस्त प्रारम्भ किए गए कार्य सिद्ध होते हैं ।साम, दान, दण्ड, भेद, माया, उपेक्षा और इन्द्रजाल- ये सात उपाय बतलाये गये हैं, उन्हें सुनो । साम दो प्रकार के होते हैं, तथ्य एवं अतथ्य ।। ५-६ ।। अतथ्य साम सज्जनों के आक्रोश का कारण बनता है । अच्छे कुल में उत्पन्न, सरल, धर्मपरायण और जितेन्द्रिय पुरुष साम से ही वश में होते हैं ।। अतथ्य के सामने तो राक्षस भी वशवर्ती हो जाते हैं । उनके किए हुए उपकारों का वर्णन भी उनको वश में करने का अच्छा साधन है ।। ७-८ ।। आपस में द्वेष रखने वाले, क्रुद्ध,भयभीत तथा अपमानित लोगों के प्रति भेद नीति को अपनाना चाहिए और उन्हें अत्यन्त भयभीत भी करे ।। ९ ।। अपनी ओर से तो आशा दिलाये रहे और जिस दोष से शत्रुगण डरते हों, उसी दोष को प्रकट करके उनमें भेद उत्पन्न करना चाहिए । शत्रु के कुटुम्ब में भेद उत्पन्न करने वाले की रक्षा करनी चाहिए ।। १० ।। सामन्त का क्रोध बाहरी कोप है और पुत्र, आमात्य तथा मन्त्री आदि का क्रोध भीतरी कोप में आता है । अतएव पहले भीतरी कोप को शान्त करके फिर सामन्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना चाहिए ।। ११ ।। सभी उपायों में दान श्रेष्ठ उपाय है । उससे दोनों लोक सुधरते हैं । संसार में कोई भी ऐसा नहीं है जो दान के द्वारा वशवर्ती न बनाया जा सके ।। १२ ।। दान करने वाला व्यक्ति ही संगठित शत्रुओं में भेद डाल सकता है । साम, दान तथा भेद इन तीनों से जो असाध्य है उसकी सिद्धि दण्ड से करनी चाहिए ।। १३ ।। दण्ड में सब कुछ स्थित है । दण्ड का अनुचित प्रयोग दण्डकर्ता का ही नाश कर देता है । जो दण्ड के पात्र नहीं हैं उनको दण्ड देने वाला तथा जो दण्ड के पात्र हैं उनके दण्ड नहीं देने वाला राजा स्वयं विनष्ट हो जाता है ।। १४ ।। यदि राजा दण्ड के द्वारा सबों का पालन न करे तो देव, दैत्य, सर्प, सिद्ध,

दुष्प्रणीकृतः। अदड्यान् दण्डयन्नश्येद् दड्यान्नाजाप्यदण्डयन् ॥ १४ ॥ देवदैत्योरगनराः सिद्धा भूताः पतत्रिणः । उत्क्रमेयुःस्वमर्य्यादां यदि दण्डान् न पालयेत् ॥ १५ ॥ यस्माददान्तान् दमयत्यदण्ड्यान् दण्डयत्यपि । दमनाद् दण्डनाच्चैव तस्माद् दण्डं बिदुर्बुधाः॥ १६॥ तेजसा दुर्निरीक्ष्यो हि राजा भास्करवत् ततः । लोकप्रसादं गच्छेत दर्शनाच्चन्द्रवत् ततः ॥ १७ ॥ जगद्व्याप्नोति वै चारैरतो राजासमीरणः । दोषनिग्रहकारित्वाद्राजा वैवस्वतः प्रभुः॥ १८॥ यदादहति दुर्बुद्धिं तदा भवति पावकः। यदा दानं द्विजातिभ्यो दद्यात् तस्माद्धनेश्वरः॥ १९॥ धनधाराप्रवर्षित्वाद् देवादौ वरुणः स्मृतः । क्षमया धारयन् लोकान् पार्थिवःपार्थिवो भवेत् । उत्साहमन्त्रशक्त्याद्यै रक्षेद् यस्माद्धरिस्ततः ॥ २०॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सामाद्युपायकथनं नाम षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२६॥

सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दण्डप्रणयनम्

पुष्कर उवाच— **दण्डप्रणयनं वक्ष्ये येन राज्ञः परा गतिः । त्रियवं कृष्णलं विद्धि माषस्तत्पञ्चकं भवेत्॥ १॥ कृष्णलानां तथा षष्ट्या कर्षार्द्धं राम! कीर्त्तितम् । सुवर्णश्च विनिर्दिष्टो राम ! षोडशमाषकः ॥ २ ॥ निष्कः सुवर्णाश्चत्वारो धरणं दशभिस्तु तैः। ताम्ररूप्यसुवर्णानां मानमेतत् प्रकीर्त्तितम् ॥ ३ ॥ ताम्रिकैः कार्षिको राम ! प्रोक्ताः कार्षापणो बुधैः । पणानां द्वे शते सार्द्धं प्रथमः साहसः स्मृतः ॥ ४ ॥ मध्यमः पञ्चविज्ञेयः सहस्रमपि चोत्तमः । चौरैरमूषितो यस्तु मूषितोऽस्मीति भाषते॥ ५॥ तत्प्रदातरि भूपाले स दण्ड्यस्तावदेव तु । यो यावद् विपरीतार्थं मिथ्या वा**

भूत, एवं पक्षीगण अपनी मर्यादा का अतिक्रमण करने लग जायेंगे ।। १५ ।। चूँकि यह उद्दण्डों का दमन करता है तथा अदण्ड्यों को भी दण्ड देता है अतएव दमन करने एवं दण्ड देने के कारण विद्वान् पुरुष इसे दण्ड कहते हैं ।।१६ ।। जब राजा अपने तेज से इस प्रकार तप रहा हो कि उसके देखना कठिन हो जाय तब वह 'भास्करवत्' होता है । जब वह अपने दर्शन देने मात्र से जगत् को प्रसन्न कर रहा हो तब वह'चन्द्रवत्' होता है ।। १७ ।। राजा अपने गुप्तचरों के द्वारा जगत् में व्याप्त रहता है अतएव समीरण (वायु) के तुल्य है तथा दोषी व्यक्तियों को दण्ड देकर उनका वह निग्रह करता है अतएव राजा यमराज के सदृश है ।। १८ ।। जब वह अपने दण्ड के द्वारा दुष्टबुद्धि वाले लोगों को जला देने का काम करता है तब वह 'पावक' के समान होता है चूँकि वह ब्राह्मणों को दान देता है, अतएव वह कुबेर है ।। १९ ।। वह देवताओं के यज्ञादि के निमित्त धन की धारा बहा देता है अतएव वह वरुण के तुल्य है । जब राजा अपनी क्षमा रूपी गुण के द्वारा पृथिवी को धारण करता है तब वह पृथिवी के तुल्य होता है । चूँकि राजा अपनी उत्साहशक्ति तथा मन्त्र शक्ति के द्वारा लोक की रक्षा करता है, अतएव वह श्रीहरि के तुल्य है ।। २० ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का साम आदि उपाय वर्णन नामक दो सौ छब्बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२६ ॥

श्रीपुष्कर जी ने कहा— अब मैं राजा के द्वारा किए जाने वाले दण्ड प्रयोग का वर्णन करूँगा । जिसके द्वारा राजा को परम गति की प्राप्ति होती है । तीन गौ का एक कृष्णल होता है तथा पाँच कृष्णल का एकमाष होता है ।। १ ।। हे राम ! साठ कृष्ण का एक आधा कर्ष होता है । सोलह माष का एक सुवर्ण होता है ।। २ ।। हे राम ! चार सुवर्ण का एक निष्क होता है और दस निष्क का एक धरण होता है । यह ताम्बा, चाँदी और सुवर्ण की माप बतलायी गयी है ।। ३ ।। विद्वानों ने ताम्बे के कर्ष को 'कार्षिक' एवं 'कर्षापण' कहा है । प्रथम साहसिक

योवदेत् तु तम् ॥ ६ ॥ तौ नृपेण ह्यधर्मज्ञौ दाप्यौ तद् द्विगुणं दमम् । कूटसाक्ष्यन्तु कुर्वाणांस्त्रीन् वर्णांश्च प्रदापयेत् ॥ ७ ॥ विवासयेद् ब्राह्मणन्तु भोज्यो विधिर्न हीरितः । निक्षेपस्य समं मूल्यं दण्ड्यो निक्षेपभुक् तथा ॥ ८ ॥ वस्त्रादिकस्य धर्मज्ञ ! तथाधर्मो न हीयते । यो निक्षेपं घातयति यश्चानिक्षिप्य याचते ॥ ९ ॥ तावुभौ चौरवच्छास्यौ दण्ड्यौ वा द्विगुणं दमम् । अज्ञानाद्यः पुमान् कुर्य्यात् परद्रव्यस्य विक्रयम् ॥ १० ॥ निर्दोषो ज्ञानपूर्वन्तु चौरवद्दण्डमर्हति । मूल्यमादाय यः शिल्पं न दद्याद् दण्ड्य एव सः॥ ११॥ प्रतिश्रुत्याप्रदातारं सुवर्णं दण्डयेन्नृपः । भृतिं गृह्य न कुर्य्याद् यः कर्माष्टौ कृष्णलादमः॥ १२॥ अकाले तु त्यजन् भृत्यं दण्ड्यः स्यात् तावदेव तु । क्रीत्वा विक्रीय वा किञ्चिद् यस्येहानुशयो भवेत् ॥ १३ ॥ सोऽनतर्दशाहात् तत्स्वामी दद्याच्चैवाददीत च । परेण तु दशाहस्य नादद्यान्नैव दापयेत्॥ १४॥ आददद्धि ददच्चैव राज्ञा दण्ड्याः शतानि षट् । वरे दोषानविख्याप्य यः कन्यां वरयेदिह॥ १५॥ दत्ताप्यदत्ता सा तस्य राज्ञा दण्ड्याः शतद्वयम् । प्रदाय कन्यां योऽन्यस्मै पुनस्तां सम्प्रयच्छति॥१६॥ दण्डःकार्य्यो नरेन्द्रेण तस्याप्युत्तमसाहसः । सत्यङ्कारेण वाचा च युक्तं पुण्यमसंशयम्॥ १७॥ लुब्धोऽन्यत्र च विक्रेता षट्शतं दण्डमर्हति । दद्याधेनुं न यःपालो गृहीत्वा भक्तवेतनम्॥ १८॥ स तु दण्ड्यः शतं राज्ञा सुवर्णं वाप्यरक्षिता । धनुःशतं परीणाहोग्रामस्य तु समन्ततः॥ १९॥ द्विगुणं त्रिगुणं वापि नगरस्य च कल्पयेत् । वृतिं तत्र. प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो नावलोकयेत्॥ २०॥ तत्रापरिवृते धान्ये हिंसिते नैव दण्डनम् । गृहं

कार्य का दण्ड ढाई सौ पण माना गया है ।। ४ ।। मध्यम साहस का दण्ड पाँच सौ पण है और उत्तम साहसिक कार्य का दण्ड एक हजार पण है । चोरों के द्वारा धन के नहीं चुराये जाने पर भी जो राजा से धन प्राप्त करने के लिए जो कहता है कि मेरे यहाँ चोरी हो गयी है और उसके उस कथन के असत्य सिद्ध हो जाने पर उससे उतना ही धन वसूल करना चाहिए जितने धन की वह माँग किए रहता है ।। ५ ।। जो चोरी गये धन के विपरीत जितना अधिक बतलाता है अथवा जितना झूठ बोलता है, उन दोनों से राजा को उसके दो गुना धन वसूलना चाहिए क्योंकि वे दोनों धर्म के जानकार नहीं हैं ।। ६ ।। राजा को झूठी गवाही देने वाले क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन तीनों वर्णों को कठोर दण्ड देना चाहिए किन्तु झूठी गवाही देने वाले ब्राह्मण को राज्य से बाहर निकाल देना चाहिए, क्योंकि उसके लिए दूसरा दण्ड नहीं बतलाया गया है ।। ७ ।। हे धर्मज्ञ ! धरोहर के रूप में रखे गये वस्त्र आदि धरोहर को जो हड़प लेता है, उसके ऊपर धरोहर के मूल्य के बराबर दण्ड लगाना चाहिए । ऐसा करने से धर्म की क्षति नहीं होती है ।। ८ ।। तजो धरोहर को नष्ट कर देता है अथवा ज़ो धरोहर रखे विना ही उसकी माँग करता है, उन दोनों को चोर के समान दण्ड देना चाहिए । अथवा उनसे उसके दो गुना मूल्य वसूलना चाहिए ।। ९ ।। यदि कोई अज्ञानवश दूसरे के धन को बेच देता है और अपना अपराध स्वीकार कर लेता है तो वह निर्दण्ड्य है । यदि कोई जानकर दूसरे की सम्पत्ति बेंच लेता है तो उसे चोर के समान दण्ड देना चाहिए । जो मूल्य लेकर भी अपने हाथ के कान को नहीं देता है वह भी दण्डनीय है ।। ११ ।। जो देने की प्रतिज्ञा करके भी न दे उस पर राजा को सुवर्ण (सोलह माष) का दण्ड लगाना चाहिए। जो मजदूरी लेकर भी काम न करे उस पर राजा को आठ कृष्णल का दण्ड लगाना चाहिए ।। १२ ।। जो असमय में भृत्य का त्याग कर दे उस पर भी उतना ही दण्ड लगाना चाहिए । किसी वस्तु को खरीदने अथवा बेंचने पर वस्तु के विषय में पश्चात्ताप होता है वह धन का स्वामी दस दिन के भीतर मूल्य लौटाकर माल ले जा सकता है । दस दिन बीत जाने के पश्चात् माल न तो लिया जा सकता है और न तो दिया ही जा सकता है ।। १३-१४ ।। उचित आदान-प्रदान करने वाले पर राजा को छह सौ का दण्ड लगाना चाहिए । जो बर के दोष को बताये विना ही किसी कन्या का वरण करता है, तो वह वचन के द्वारा दी हुई कन्या भी नहीं दी हुई के समान होती है और उस पर राजाको दो सौका जुर्माना लगाना चाहिए ।। १५ ।। जो वचन द्वारा किसी को कन्या देकर भी उसे पुनः किसी दूसरे को दे देता है उस पर राजा को उत्तम दण्ड लगाना चाहिए ।।१६ ।। वाणी द्वारा कहकर उसे कार्यरूप में सत्यकरने पर निःसंदेह पुण्य की प्राप्ति होती है, जो किसी वस्तु को एक जगह देने की प्रतिज्ञा करके लोभवश दूसरे के हाथ बेंच देता है, उस पर छह सौ का दण्ड लगाना चाहिए ।। १७ ।। जो ग्वाला भोजन तथा वेतन लेकर के भी पालने के लिए ली हुई गौ को नहीं लौटाता है अथवा उसकी अच्छी तरह से रक्षा

तड़ागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन् ॥ २१॥ शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादज्ञानाद् द्विशतो दमः। मर्यादाभेदकाः सर्वे दण्ड्याः प्रथमसाहसम् ॥ २२ ॥ शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति । वैश्यश्च द्विशतं राम ! शूद्रश्च वधमर्हति ॥ २३॥ पञ्चाशद् ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिशंसने। वैश्ये वाप्यर्द्ध पञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः॥२४॥ क्षत्रियस्याप्नुयाद् वैश्यःसाहसं पूर्वमेव तु । शूद्रःक्षत्रियमाक्रुश्य जिह्वाच्छेदनमाप्नुयात्॥ २५॥ धर्मोपदेशं विप्राणां शूद्रःकुर्वंश्च दण्डभाक् । श्रुतदेशादिवितथी दाप्यो द्विगुणसाहसम् ॥ २६॥ उत्तमःसाहसस्तस्य यः पापैरुत्तमान् क्षिपेत् । प्रमादाद्यैर्मया प्रोक्तं प्रीत्या दण्डार्द्धमर्हति ॥ २७ ॥ मातरं पितरं ज्येष्ठं भ्रातरं श्वशुरं गुरुम् । आकारयङ्च्छतं दण्ड्यः पन्थानं चाददद्गुरोः॥ २८॥ अन्त्यजातिर्द्विजातिन्तु येनाङ्गेनापराध्नुयात्। तदेव छेदयेत् तस्य क्षिप्रमेवाविचारयन्॥ २९॥ अवनिष्ठीवतो दर्पाद् द्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः । अपमूत्रयतो मेढ्रमपशब्दयतो गुदम्॥३०॥ उत्कृष्टासनसंस्थस्य नीचस्याधोनिकृन्तनम् । यो यदङ्गं च रुजयेत् तदङ्गं तस्य कर्त्तयेत्॥ ३१॥ अर्द्धपादकराःकार्य्याः गोगजाश्वोष्ट्रघातकाः। वृक्षन्तु विफलं कृत्वा सुवर्णं दण्डमर्हति॥ ३२॥ द्विगुणं दापयेच्छिन्ने पथि सीम्नि जलाशये । द्रव्याणि यो हरेद् यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा॥३३॥ स तस्योदपाद्य तुष्टिन्तु राज्ञे दद्यात् ततो दमम्। यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेच्छिन्द्याच्च तां प्रपाम्॥३४॥ स दण्डं प्राप्नुयात् मासं दण्ड्यः स्यात् प्राणिताडने।

नहीं कर पाता है उस पर सौ सुवर्ण का दण्ड लगाना चाहिए ।। १८ ।। गाँव के चारों ओर सौ धनुष ऊँचे घेरे में तथा नगर के चारों ओर दो या तीन धनुष ऊँचे घेरे में खेती करनी चाहिए, जिससे कि वह खेती को खड़ा होकर भी ऊँट न देख सके ।। २० ।। विना घेरे हुए स्थान में की गयी खेती को यदि कोई जानवर चर लेता है, तो उसके लिए उसका स्वामी दण्डनीय नहीं है । जो भय दिखाकर दूसरे के गृह, तड़ाग, बगीचा या खेत हड़पने की चेष्टा करता है, राजा को उस पर पाँच सौ का दण्ड लगाना चाहिए, यदि वह अज्ञानवश ऐसा करता है तो उस पर दो सौ का जुर्माना लगाना चाहिए । किसी प्रकार की मर्यादा का उल्लंघन करने वाले पर पृथम साहस का दण्ड लगाना चाहिए ।। २१-२२।। ब्राह्मण से द्रेष करने वाले क्षत्रिय पर सौ का दण्ड और वैश्य पर दो सौ का दण्ड लगाना चाहिए और उसे कैद में डाल दें। हे राम ! ब्राह्मण का अपमान करने वाले शूद्र का वध कर देना चाहिए ।। २३ ।। क्षत्रिय को कलंकित करने वाले ब्राह्मण को पचास का दण्ड देना चाहिए, वैश्य पर दोषारोपण करने पर उसे पचीस का दण्ड देना चाहिए तथा शूद्र को कलंकित करने पर उसे बारह का दण्ड देना चाहिए ।। २४ ।। यदि वैश्य क्षत्रिय को अपमानित करे तो उसे प्रथम साहस (ढाई सौ पण) का दण्ड देना चाहिए, यदि शूद्र क्षत्रिय को अपमानित करे तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिए ।। २५ ।। ब्राह्मणों को उपदेश देने वाला शूद्र भी दण्ड का पात्र होता है । जो अपने शास्त्र-ज्ञान तथा देश-काल आदि का झूठा परिचय दे उसे झूठे साहस का दण्ड देना चाहिए ।। २६ ।। उस व्यक्ति को राजा उत्तम साहस (एक हजार पण) का दण्ड दे जो उत्तम पुरुषों पर पापाचारी होने का आक्षेप लगाता है ।यदि वह यह कहे कि मेरे मुख से यह प्रमादवश निकल गया है और उस पुरुष के प्रति स्नेह प्रदर्शित करे तो उसका दण्ड घटाकर आधा कर देना चाहिए ।। २७ ।। जो माता, पिता, ज्येष्ठ भाई, श्वशुर तथा गुरु का नाम लेकर बुलाये अथवा अपने से बड़े को आगे जाने का रास्ता न दे उस पर राजा सौ पण का दण्ड लगाये ।। २८ ।। जो व्यक्ति अपने जिस अंग से अपने से बड़े व्यक्ति का अपराध करे राजा उसके उस अंग को विना विचार किए ही काट डाले ।। २९ ।। राजा को उस व्यक्ति के ओष्ठों को काट लेना चाहिए जों घमण्ड में आकर अपने से बड़े पुरुष की ओर थूकता है । इसी तरह से अपने से बड़े पुरुष की ओर मुँह करके पेशाब करने वाले के लिङ्ग को तथा अपने से बड़े पुरुष की ओर पीठ करके अपान वायु छोड़ने वाले के गुदा को काट देना चाहिए ।। ३० ।। यदि कोई नीच व्यक्ति अपने से उत्कृष्ट पुरुष के आसन पर बैठता है तो उसके अधोभाग को काट देना चाहिए । जो किसी के जिस अंग को व्रण युक्त बनाता है, राजा को चाहिए कि वह उसके उस अंग को काट दे ।। ३१ ।। गौ, हाथी, घोड़ा तथा ऊँट को मारने वाले के हाथ एवं पैरों को आधा-आधा काट देना चाहिए । जो किसी के वृक्ष के फल को तोड़ ले तो उसको सुवर्ण का दण्ड लगाना चाहिए ।। ३२ ।। जो रास्ता, खेत की सीमा तथा जलाशय को काट दे उससे हुई हानि का दूना दण्ड वसूल करना चाहिए । जो जाने अथवा अनजाने में किसी दूसरे के द्रव्यों का अपहरण करता है तो सर्वप्रथम वह धन स्वामी को धन लौटा कर उसे

धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्यधिकं वधः॥ ३५ ॥ शेषेऽप्येकादशगुणं तस्य दण्डं प्रकल्पयेत् । सुवर्णरजतादीनां नृस्त्रीणां हरणे वधः॥ ३६॥ येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते । तत् तदेव हरेदस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥ ब्राह्मणः शाकधान्यादि अल्पं गृह्णन्न दोषभाक् । गोदेवार्थं हरंश्चापि हन्याद् दुष्टं बधोद्यतम्॥ ३८॥ गृहक्षेत्रापहर्त्तारं तथा पत्न्यभिगामिनम् । अग्निदं गरदं हन्यात् तथा चाभ्युद्यतायुधम् ॥ ३९ ॥ राजा गवाभिचाराद्यं हन्याच्चैवाततायिनः। परस्त्रियं न भाषेत प्रतिषिद्धो विशेन्नहि॥ ४०॥ अदण्ड्या स्त्री भवेद्राज्ञा वरयन्ती पतिं स्वयम् । उत्तमां सेवमानः स्त्रीं जघन्योबधमर्हति॥ ४१॥ भर्त्तारं लङ्घयेद् या तां श्वभिःसङ्घातयेत् स्त्रियम् । सवर्णदूषितां कुर्य्यात् पिण्डमात्रोपजीविनीम् ॥ ४२ ॥ ज्यायसा दूषिता नारी मुण्डनं समवाप्नुयात् । वैश्यागमे तु विप्रस्य क्षत्रियस्यान्त्यजागमे॥ ४३॥ क्षत्रियः प्रथमं वैश्यो दण्ड्यःशूद्रागमे भवेत् । गृहीत्वा वेतनं वेश्या लोभादन्यत्र गच्छति॥ ४४॥ वेतनं द्विगुणं दद्याद् दण्डञ्च द्विगुणं तथा । भार्य्या पुत्राश्च दासाश्च शिष्यो भ्राता च सोदरः॥४५॥ कृतापराधास्ताड्याः स्यूरज्ज्वा वेणुदलेन वा । पृष्ठेन मस्तके हन्याच्चौरस्याप्नोति किल्विषम् ॥ ४६ ॥ रक्षास्वधिकृतै र्यस्तु प्रजाऽत्यर्थं विलुप्यते। तेषां सर्वस्वमादाय राजाकुर्य्यात्प्रवासनम्॥ ४७॥ ये नियुक्ताः स्वकार्य्येषु हन्युः कार्य्याणि कर्मिणाम् । निर्घृणाः क्रूरमनसस्तानि निःस्वान् कारयेन्नृपः ॥ ४८ ॥ अमात्यः प्राड्विवाको वा यः कुर्य्यात् कार्य्यमन्यथा । तस्य सर्वस्वमादाय तं राजा विप्रवासयेत् ॥ ४९ ॥ गुरुतल्पोभयः कार्य्यं सुरापाने सुराध्वजः । स्तेयेषु श्वपदं विद्यात् ब्रह्महत्याशिरःपुमान्॥ ५०॥ शूद्रादीन् घातयेद्राजा पापान् विप्रान् प्रवासयेत् । महापातकिनां

सन्तुष्ट करे । उसके पश्चात् राजा को भी जुर्माना दे।। ३३ ।। जो कुएँ पर से रस्सी अथवा घड़े को चुरा लेता है अथवा पौशाले को नष्ट कर देता है तो उसे एक मास के कैद की सजा देनी चाहिए । किसी प्राणी को मारने पर भी उसे वही दण्ड देना चाहिए।।३४।। दस घड़े से अधिक अनाज की चोरी करने वाले को प्राण दण्ड देना चाहिए । दस घड़े से कम अन्न की चोरी करने वाले चोर पर चोरी किए गए अन्न के ग्यारह गुना का दण्ड लगाना चाहिए । सुवर्ण, चाँदी आदि तथा पुरुष एवं स्त्री का अपहरण करने वाले को प्राणदण्ड देना चाहिए ।। ३६ ।। राजा का कर्तव्य है कि चोर जिस-जिस अंग से किसी को जिस प्रकार से दुखी करता है, उसके उस-उस अंग को उसके बदले में कटवा दे ।। ३७ ।। ब्राह्मण यदि थोड़ी मात्रा में शाक तथा अन्न आदि ले लेता है तो वह दोषी नहीं होता । गो सेवा एवं देव पूजनार्थ कोई वस्तु लेने वाला ब्राह्मण दण्ड का पात्र नहीं होता है । किसी का बध करने वाले को भी प्राणदण्ड देना चाहिए।। ३८ ।। दूसरों के घर तथा खेत का अपहरण करने वाले, परस्त्री के साथ अभिगमन करने वाले, आग लगाने वाले, विष देने वाले तथा हथियार उठाकर मारने के लिए तैयार पुरुष को प्राणदण्ड देना चाहिए ।। ३९ ।। गायों को मारने वाले तथा आततायी पुरुष का राजा को वध कर देना चाहिए । परायी स्त्री से बात-चीत न करे और मना करने पर भी दूसरे के घर में प्रवेश नहीं करना चाहिए।।४०।। स्वेच्छा से पति का वरण करने वाली स्त्री राजा से दण्ड पाने के योग्य नहीं होती किन्तु यदि नीच वर्ण का पुरुष उत्तम वर्ण की स्त्री के साथ समागम करता है तो वध कर देने के योग्य है ।। ४१ ।। जो स्त्री अपने स्वामी का उल्लंघन करके दूसरे के साथ व्यभिचार करती है, उसको कुत्तों से नोचवा देना चाहिए, जो स्त्री सजातीय परपुरुष से दूषित हो उसको सम्पत्ति के अधिकार से वंचित करके शरीर निर्वाह मात्र के लिए अन्न देना चाहिए ।। ४२ ।। पति के ज्येष्ठ भ्राता से दूषित नारी के सिर के बालों को मुँडवा देना चाहिए । यदि ब्राह्मण वैश्य जाति की स्त्री से और क्षत्रिय नीच जाति की स्त्री से समागम करे तो उसके लिए भी यही दण्ड है ।। ४३ ।। यदि क्षत्रिय अथवा वैश्य शूद्रा के साथ व्यभिचार करे तो उस प्रथम साहस (ढाई सौ पण) का दण्ड देना चाहिए । यदि वेश्या वेतन लेकर लोभ के कारण अन्य पुरुष के पास चली जाय तो उससे दो गुना वेतन वसूलना चाहिये तथा दो गुना दण्ड भी वसूलना चाहिए ।। ४४।। स्त्री, पुत्र, दास, पुत्र एवं सहोदर भाई यदि अपराध करें तो उन्हें रस्सी अथवा बाँस की छड़ी से पीटना चाहिए । पीठ पर मारना चाहिए सिर पर नहीं । सिर पर प्रहार करने वाले को चोरी करने का पाप लगता है ।। ४५-४६ ।। रक्षा के कार्य में नियुक्त प्रजाओं से अत्यधिक धन ऐंठता है राजा को चाहिए कि उसका सब्रस्व छीनकर उसे राज्य से बाहर निकाल दे ।। ४७ ।। जिनको अपने

वित्तं वरुणायोपपादयेत् ॥ ५१ ॥ ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः। भाण्डारकोषदाश्चैव सर्वां स्तानपि घातयेत् ॥ ५२ ॥ राष्ट्रेषु राष्ट्राधिकृतान् सामन्तान् पापिनो हरेत् । सन्धिं कृत्वा तु ये चौर्य्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः ॥ ५३ ॥ तेषां छित्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवेशयेत्। तड़ागदेवतागारभेदकान् घातयेन्नृपः॥ ५४॥ समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि । स हि कार्षापणं दण्ड्यस्तममेध्यञ्च शोधयेत् ॥ ५५ ॥ प्रतिमासंक्रमभिदो दद्युः पञ्चशतानि ते । समैश्च विषमं यो वा चरते मूल्यतोऽपिवा॥ ५६॥ समाप्नुयान्नरः पूर्वं दमं मध्यममेव वा । द्रव्यमादाय वणिजामनर्घेणावरुन्धताम् ॥ ५७ ॥ राजा पृथक् पृथक् कुर्य्याद् दण्डमुत्तमसाहसम् । द्रव्याणां दूषको यश्च प्रतिच्छन्दकविक्रयी॥५८॥ मध्यमं प्राप्नुयाद् दण्डं कूटकर्त्ता तथोत्तमम् । कलहापकृतं देयं दण्डश्च द्विगुणस्ततः अभक्ष्यभक्ष्ये विप्रे वा शूद्रे वा कृष्णलो दमः । तुलाशासनकर्त्ता च कूटकृन्नाशकस्य च ॥ ६० ॥ एभिश्च व्यवहर्त्ता यःस दाप्यो दममुत्तमम् । विषाग्निदां पतिगुरु विप्रापत्यप्रमापिणीम् ॥ ६१ ॥ विकर्णकरनासौष्ठीं कृत्वा गोभिः प्रवासयेत् । क्षेत्रवेश्मग्रामवनविदारकास्तथा नराः॥ ६२॥ राजपत्न्यभिगामी च दग्ध्व्यास्तु कटाग्निना । ऊनं वाप्यधिकं वापि लिखेद् यो राजशासनम् ॥ ६३ ॥ पारजायिकचौरौ च मुञ्चतो दण्ड उत्तमः । राजयानासनारोढुर्दण्ड उत्तमसाहसः ॥ ६४॥ यो मन्येताजितोऽस्मीति

कार्य में लगाया जाय वे यदि काम करने वालों के कामों को विनष्ट कर दें तो उन निर्दयी तथा क्रूर अन्तःकरण वालों की सारी सम्पत्ति राजा ले ले ।। ४८ ।। यदि कोई मन्त्री अथवा प्राड्विवाक (न्यायाधीश) विपरीत कार्य करे तो राजा को चाहिए कि उसका सब कुछ छीनकर उसे अपने राज्य से बाहर कर दे ।। ४९ ।। गुरुपत्नी गामी के शरीर पर भग का चिह्न अंकित करवा दे और सुरापायी के शरीर पर शराब खाने के ध्वज का चिह्न बनवा दे । चोरी करने वाले के शरीर पर कुत्ते के पैर का चिह्न बनवा देना चाहिए । और ब्रह्महत्या करने वाले के सिर पर पुरुषमुण्ड का चिह्न अंकित करवा दे ।। ५०।। राजा को चाहिए कि पापी शूद्रों आदि को मार दे और ब्राह्मणों को अपने राज्य से निकाल दे । एवं महापात की पुरुषों की सम्पत्ति वरुण देवता को अर्पित कर दे । अर्थात् जल में बहा दे।। ५१।। गाँव के भी जो लोग चोरों को भोजन देते हों तथा उनके लिए भण्डार तथा कोष का प्रबन्ध करते हों उन लोगों को मरवा दे ।। ५२ ।। राजा को चाहिए कि आधिकारिक पद पर नियुक्त पापी सामन्तों की सम्पत्ति को वह छीन ले । जो चोर रात्रि में सेंध लगाकर चोरी करने का कार्य करते हों राजा को उचित है कि उनके दोनों हाथों को कटवाकर उन्हें तीक्ष्ण शूली पर चढ़ा दे । तडाग तथा मन्दिर को नष्ट करने वालों को राजा को मरवा देना चाहिए ।। ५३-५४ ।। जो व्यक्ति विना किसी विपत्ति के राजमार्ग पर मल-मूत्रादि अपवित्र वस्तुओं को छोड़ता है, उस पर कर्षापण का जुर्माना लगाना चाहिए तथा उसी से उस अपवित्र वस्तु की सफाई भी करानी चाहिए ।। ५५ ।। प्रतिमा तथा सीढ़ी को तोड़ने वाले पर पाँच सौ कर्षापण का दण्ड लगाना चाहिए । जो अपने प्रति समान बर्ताव करने वाले के साथ विषम बर्ताव करता है अथवा किसी वस्तु का मूल्य निर्धारित करने में बेईमानी करता है, उस पर मध्यम साहस (पाँच सौ पण) का दण्ड लगाना चाहिए।।५६।। जो लोग बनिये से बहुमूल्य पदार्थ लेकर उसका दाम रोक लें, राजा को चाहिए कि उन लोगों पर वह पृथक्-पृथक् उत्तम साहस (एक हजार पण) का दण्ड लगाये।।५७।। जो बनिया वस्तु को दूषित करके अर्थात् बढ़िया वस्तु में घटिया किस्म की वस्तु मिलाकर बेंचता है उस पर मध्यम साहस का दण्ड लगाना चाहिए। जो जालसाजी का काम करता है उस पर उत्तम साहस (एक हजार पण) का दण्ड लगाना चाहिए । जो व्यक्ति कलहपूर्वक अपकार करने वाला हो, उस पर उससे दूना दण्ड लगाना चाहिए।।५९।। अभक्ष्य भक्षण करने वाले ब्राह्मण अथवा शूद्र पर कृष्णल का दण्ड लगाना चाहिए। जो तुला शासन (दण्डी मारने) का काम करे अथवा जालसाजी का काम करे, अथवा जो ऐसे लोगों से व्यवहार करे उन सबों पर उत्तम साहस का दण्ड लगाना चाहिए ।। ६० ।। जहर देने वाली, आग लगाने वाली तथा पति, गुरु, ब्राह्मण और सन्तान की हत्या करने वाली स्त्री के हाथ, कान, नाक एवं ओंठ कटवाकर बैल की पीठ पर बैइाकर उसे राज्य से बाहर निकलवा देना चाहिए ।। ६१ ।। खेत, घर, ग्राम एवं वन को विनष्ट करने वाले मनुष्यों को तथा राजपत्नी के साथ समागम करने वाले मनुष्य को घास-फूस की आग में जलवा देना चाहिए ।। ६२।। जो राजा की आज्ञा को कम करके अथवा बढ़ा-चढ़ाकर लिखता है तथा परस्त्रीगामी पुरुषों एवं चोरों को विना दण्ड दिए ही छोड़ देता है, उसको उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिए ।। ६३ ।। राजा की सवारी अथवा राजा को आसन पर बैठने वाले को भी उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिए ।। ६४।।

न्यायेनापि पराजितः । तमायान्तं पराजित्य दण्डयेद् द्विगुणं दमम् ॥ ६५ ॥ आह्वानकारी बध्यःस्यादनाहूतमथाह्वयन् । दाण्डिकस्य च यो हस्तादभियुक्तःपलायते। हीनः पुरुषकारेण तद् दद्याद् दाण्डिको धनम् ॥ ६६ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दण्डप्रणयनकथनं नाम सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२७॥

अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

युद्धयात्रा

पुष्कर उवाच– **यदा मन्येत नृपतिराक्रन्देन बलीयसा । पार्ष्णिग्राहोऽभिभूतो मे तदा यात्रां प्रयोजयेत् ॥ १ ॥ पुष्टा योधा भृता भृत्याः प्रभृतञ्च बलं मम । मूलरक्षासमर्थोऽस्मि तैर्गत्वा शिवरे व्रजेत् ॥ २ ॥ शत्रोर्वा व्यसने यायात् दैवाद्यैः पीडितं परम् । भूकम्पायां दिशं याति याञ्च केतुर्व्यदूषयत् ॥ ३ ॥ विद्विष्टनाशकं सैन्यं सम्भूतान्तःप्रकोपनम् । शरीरस्फुरणे धन्ये तथा सुस्वप्नदर्शने ॥ ४॥ निमित्ते शकुने धन्यं जाते शत्रुपरं व्रजेत्। पदातिनागबहुलां सेना प्रावृषि योजयेत् ॥ ५ ॥ हेमन्ते शिशिरे चैव रथवाजिसमाकुलाम् । चतुरङ्गबलोपेतां वसन्ते वा शरन्मुखे ॥ ६ ॥**

जो न्यायानुसार पराजित होकर भी अपने को अपराजित मानता है, उसके समक्ष आने पर पुनः पराजित करके उस पर दो गुना दण्ड लगाना चाहिए ।। ६५।। जो आमन्त्रित नहीं है उसको भी बुलाकर लाने वाला बध के योग्य है । जो अपराधी दण्ड देने वाले के हाथ से छूटकर भाग जाता है,वह पुरुषार्थ से हीन है, उसको शारीरिक दण्ड न देकर धन का दण्ड लगाना चाहिए ।।६६।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का दण्डप्रयोग वर्णन नामक दो सौ सत्ताइसवाँ अध्यायसम्पूर्ण हुआ ॥ २२७॥

श्रीपुष्करजीने कहा– जब राजा यह जान ले कि मेरे किसी बलवान् आक्रन्द (मित्र राजा) के द्वारा मेरा पार्ष्णिग्रह (शत्रु राजा) पराजित कर दिया गया है तो उस समय वह युद्ध करने के लिए यात्रा करे ।। १ ।। जब राजा यह जान जाये कि मेरे योद्धा हृष्ट-पुष्ट हैं, भृत्यों का अच्छी तरह से भरण-पोषण किया जा चुका है, मेरे पास प्रभूत मात्रा में सेना है, मैं अपने मूल की रक्षा करने में समर्थ हूँ, तब वह सेना से घिरकर अपने शिविर में जाय ।। २ ।। जब शत्रु पर कोई विपत्ति हो, वह दैवी इत्यादि बाधा से अत्यधिक पीड़ित हो उसी समय उसे शत्रु राजा पर आक्रमण करना चाहिए । जिस दिशा में भूकम्प आया हो तथा जो दिशा केतु के द्वारा दूषित की गयी हो,उसी दिशा में आक्रमण करना चाहिए ।। ३ ।। जिस समय सेना में शत्रु को विनष्ट कर देने का उत्साह हो, शत्रु राजा के प्रति सेना के मन में क्रोध हो, शुभ अंग स्फुरित हो रहे हों, अच्छे स्वप्न दिखायी देते हों, शुभ शकुन हो रहे हों उस समय शत्रु पर आक्रमण करना चाहिए।।४।। वर्षाकाल में आक्रमण करने हों तो उस समय ऐसी सेना को भेजना चाहिए जिसमें हाथियें तथा पैदल सेना की संख्या अधिक हो ।। ५ ।। हेमन्त तथा शिशिर ऋतुओं में हाथी एवं घोड़ों की जिसमें संख्या अधिक हो ऐसी सेना को भेजना चाहिए। वसन्त अथवा शरद् ऋतु में चतुरंगिणी सेना को आक्रमण करने के लिए भेजना चाहिए ।। ६।। जिसमें पैदलों की संख्या अधिक हो ऐसी ही सेना शत्रुओं पर विजय प्राप्त करती है । यदि प्रस्थान के समय दाहिना अंग फड़के तो यह उत्तम शकुन है ।। ७ ।। यदि सेना के प्रस्थानकाल में बायाँ अंग, अथवा पीठ या हृदय फड़के तो वह अच्छा शकुन नहीं होता । इस तरह से शरीर के चिह्नों, फोड़े-फुंसियों तथा अंगों के फड़कने का फल अच्छी तरह से जान लेना चाहिए । पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के

सेना पदातिबहुला शत्रून् जयति सर्वदा । अङ्गदक्षिणभागे तु शस्तं प्रस्फुरणं भवेत् ॥ ७ ॥ न शस्तन्तु तथा वामे पृष्ठस्य हृदयस्य च। लाञ्छनं पिटकञ्चैव विज्ञेयं स्फुरणं तथा ॥ ८॥ विपर्य्ययेणाभिहितं सव्ये स्त्रीणां शुभं भवेत् ।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धयात्रावर्णनं नामाष्टाविंशत्यधिकद्विशततोऽध्यायः ॥ २२८॥

ऊनत्रिंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

स्वप्नाध्यायः

पुष्कर- उवाच– **स्वप्नं शुभाशुभं वक्ष्ये दुःस्वप्नहरणं तथा । नाभिं विनान्यत्र गात्रे तृणवृक्षसमुद्भवः॥ १॥ चूर्णनं मूर्ध्नि कांस्यानां मुण्डनं नग्नता तथा ॥ मलिनाम्बरधारित्वगभ्यङ्गः पङ्कदिग्धता ॥ २ ॥ उच्चात् प्रपतनञ्चैव विवाहो गीतमेव च । तन्त्रीवाद्यविनोदश्च दोलारोहणमेव च॥३॥ अर्जनं पद्मलोहानां सर्पाणमथ मारणम् ॥ रक्तपुष्पद्रुमाणाञ्च चण्डालस्य तथैव च ॥ ४॥ वराहाश्वखरोष्ट्राणां तथा चारोहणक्रिया । भक्षणं पक्षिमांसानां तैलस्य कृशरस्य च॥ ५॥ मातुः प्रवेशो जठरे चितारोहणमेव च । शक्रध्वजाभिपतनं पतनं शशिसूर्य्ययोः ॥ ६ ॥ दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पानाञ्च दर्शनम् । देवद्विजातिभूतानां गुरूणां कोप एव च ॥ ७ ॥ नर्त्तनं हसनञ्चैव विवाहो गीतमेव च । तन्त्रीवाद्यविहीनानां वाद्यानामपि वादनम् ॥ ८॥ स्रोतोवहाधोगमनं स्नानं गोमयवारिणा । पङ्कोदकेन च तथा मशीतोयेन वाप्यथ ॥ ९॥ आलिङ्गनं कुमारीणां पुरुषाणाञ्च मैथुनम् । हानिश्चैव स्वगात्राणां विरेको वमनक्रिया ॥ १० ॥ दक्षिणाशाप्रगमनं व्याधिनाभिभवस्तथा । फलानामुपहानिश्च धातूनां भेदनं तथा ॥ ११॥ गृहाणाञ्चैव पतनं गृहसम्मार्जनं तथा । क्रीड़ा पिशाचक्रव्यादवानरान्त्यनरैरपि ॥ १२ ॥ परादभिभवञ्चैव तस्माच्च व्यसनोद्भवः।**

इसके विपरीत फल बतलाया गया है । स्त्रियों का बायाँअंग फड़कना शुभ होता है ।। ८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का युद्धयात्रा वर्णन नामक दो सौ अट्ठाइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२८॥

श्रीपुष्करजी ने कहा– अब मैं शुभ एवं अशुभ स्वप्नों के विषय में बतलाऊँगा तथा दुःस्वप्न का नाश का उपाय भी बतलाऊँगा । नाभि को छोड़कर के शरीर के अन्य अंगों में तृण और वृक्षों का उगना ।। १ ।। मस्तक पर काँसे के बर्तन को रखकर फोड़ना, सिर मँडाना नग्न होना, मैले वस्त्र पहनना, तेल लगाना, कीचड़ लपेटना ।। २ ।। ऊँचे से गिरना, विवाह होना, गीत सुनना, वीणा आदि की आवाज सुनकर मन बहलाना, झूले पर चढ़ना ।। ३ ।। पद्म तथा लोहों का उपार्जन करना, सर्पों को मारना, लाल फूल से भरे हुए वृक्षों तथा चाण्डाल को देखना, सूअर, कुत्ते, गधे तथा ऊँटों पर चढ़ना, पक्षियों का मांस भक्षण करना, तेल पीना, खिचड़ी खाना ।। ४-५ ।। माता के गर्भ में प्रवेश करना, चिता पर चढ़ना, इन्द्र की ध्वजा का टूटकर गिर जाना, चन्द्रमा और सूर्य का गिरना।। ६ ।। दिव्य,अन्तरिक्ष और भूलोक में होने वाले उत्पातों को दिखायी देना, देवता, ब्राह्मण, राजा एवं गुरुओं का कोप होना ।। ७ ।। नाचना, हँसना, विवाह होना, गीत गाना, वीणा को छोड़कर अन्य प्रकार के वाद्यों को स्वयम् बजाना ।। ८ ।। नदी में डूबकर नीचे जाना,गोबर, कीचड़ तथा स्याही मिले हुए जल से स्नान करना ।। ९ ।। कुमारी कन्याओं का आलिंगन, पुरुषों का परस्पर में मैथुन, अपने अंगों की हानि, वमन एवं विरेचन करना ।। १० ।। दक्षिण दिशा की ओर जाना, रोग से पीड़ित होना, फलों की हानि तथा धातुओं का भेदन ।। ११ ।। घरों का गिरना, घरों में झाड़ू लगाना, पिशाचों, राक्षसों, वानरों एवं चाण्डालों आदि के साथ क्रीड़ा करना ।। १२ ।। शत्रु से अपमानित होना, उसकी ओर

काषायवस्त्रधारित्वं तद्वस्त्रैः क्रीडनं तथा ॥ १३ ॥ स्नेहपानावगाहौ च रक्तमाल्यानुलेपनम् । इत्यधन्यानि स्वप्नानि तेषामकथनं शुभम् ॥ १४॥ भूयश्च स्वपनं तद्वत् कार्य्यं स्नानं द्विजार्चनम्। तिलैर्होमो हरिर्ब्रह्मशिवार्कगणपूजनम् ॥ १५ ॥ तथास्तुतिप्रपठनं पुंसूक्तादिजपस्तथा । स्वप्नास्तु प्रथमे यामे संवत्सर विपाकिनः ॥ १६॥ षड्भिर्मासैर्द्वितीये तु त्रिभिर्मासैस्त्रियामिकाः । चतुर्थे त्वर्द्धमासेन दशाहादरुणोदये ॥ १७ ॥ एकस्यामथ चेद्रात्रौ शुभं वा यदि वाऽशुभम् । पश्चाद् दृष्टस्तु यस्तत्र तस्य पाकं विनिर्दिशेत् ॥ १८ ॥ तस्मात् तु शोभने स्वप्ने पश्चात् स्वापो न शस्यते । शैलप्रासादनागाश्ववृषभारोहणं हितम् ॥ १९॥ द्रुमाणां श्वेतपुष्पाणां गगने च तथा द्विज ! । द्रुमतृणोद्भवो नाभौ तथा च बहुबाहुता ॥ २० ॥ तथा च बहुशीर्षत्वं पलितोद्भव एव च। सुशुक्लमाल्यधारित्वं सुशुक्लाम्बरधारिता ॥ २१॥ चन्द्रार्कताराग्रहणं परिमार्जनमेव च । शक्रध्वजालिङ्गनञ्च ध्वजोच्छायक्रिया तथा ॥ २२॥ भूम्यम्बुधाराग्रहणं शत्रूणाञ्चैव विक्रिया । जयो विवादे द्यूते च संग्रामे च तथा द्विज ॥ २३ ॥ भक्षणञ्चार्द्रमांसानां पायसस्य च भक्षणम् । दर्शनं रुधिरस्यापि स्नानं वा रुधिरेण च ॥ २४ ॥ सुरारुधिरमद्यानां पानं क्षीरस्य वाप्यथ । अस्त्रैर्विचेष्टनं भूमौ निर्मलं गगनं तथा ॥ २५॥ मुखेन दोहनं शस्तं महिषीणां तथा गवाम् । सिंहीनां हस्तिनीनाञ्च बड़वानां तथैव च ॥ २६ ॥ प्रासादो दैवविप्रेभ्यो गुरुभ्यश्च तथा द्विज ! । अमीसां चाभिषेकस्तु गवां शृङ्गच्युतेन च ॥ २७ ॥ चन्द्राद् भ्रष्टेन् वा राम ! ज्ञेयं राज्यप्रदं हि तत् । राज्याभिषेकश्च तथाछेदनं शिरसोऽप्यथ ॥ २८ ॥ मरणं बह्निलाभश्च वह्निदाहो गृहादिषु । लब्धिश्च राजलिङ्गानां तन्त्रीवाद्याभिवादनम्॥ २९॥ यस्तु पश्यति स्वप्नान्ते राजानं कुञ्जरं हयम् । हिरण्यं वृषभं गाञ्च कुटुम्बस्तस्य वर्द्धते ॥ ३०॥ वृषेभगृहशैलाग्र वृक्षारोहणरोदनम् । घृतविष्ठानुलेपो वा अगम्यागमनं

से संकट प्राप्त होना, गेरुआ वस्त्र धारण करना, गेरुए वस्त्रों से क्रीड़ा करना ।। १३ ।। तेल पीना या तेल में स्नान करना, लाल फूलों की माला पहनना एवं लाल चन्दन लगाना- ये सब के सब बुरे स्वप्न हैं । इन्हें दूसरों के समक्ष प्रकट नहीं करना चाहिए ।। १४ ।। ऐसे स्वप्नों को देखकर फिर से सो जाना चाहिए फिर जगकर स्नान करे एवं ब्राह्मणों की पूजा करे । तिल से हवन करें, श्रीहरि, ब्रह्मा, शिव एवं सूर्य के गण की पूजा करे ।। १५ ।। फिर स्तुति पाठ करे, पुरुष सूक्त आदि का जप करे । रात्रि के प्रथम प्रहर में दिखायी देने वाले स्वप्नों का फल एक वर्ष में प्राप्त होता है ।। १६ ।। रात्रि के द्वितीय प्रहर के स्वप्नों का फल छह मास में, तीसरे प्रहर का फल तीन मासों में और चतुर्थ प्रहर के स्वप्न का फल आधे मास में एवं अरुणोद के समय देखे गए स्वप्न का फल दस दिन में प्राप्त होता है ।। १७ ।। एक ही रात्रि में शुभ एवं अशुभ दोनों प्रकार के स्वप्न दिखें तो जो स्वप्न पीछे दिखायी पड़े उसी का फल बतलाना चाहिए ।।१८।। अतएव शुभ स्वप्न देखने के पश्चात् सोना नहीं चाहिए ।स्वप्न में पर्वत, महल, हाथी, घोड़े और बैल पर चढ़ना हितकारी होता है ।। १९ ।। हे द्विज ! यदि पृथिवी पर आकाश में, श्वेत पुष्पों से परिपूर्ण वृक्ष दिखायी दे, अपनी नाभि से वृक्ष या तिनका उत्पन्न हो तथा अपनी भुजाएँ अधिक दिखायी दें।। २० ।। अपने मस्तक दिखायी दें,सिर के बाल पक जायँ तो उसका फल उत्तम होता है । उजली माला धारण करना, उजले वस्त्र धारण करना ।। २१ ।। चन्द्रमा, सूर्य एवं तारों को पकड़ना, परिमार्जन करना, इन्द्र की ध्वजा का आलिङ्गन करना, ध्वजा को ऊपर उठाना ।। २२ ।। पृथिवी पर पड़ती हुई जल की धारा को अपने ऊपर रोकना,शत्रुओं की बुरी दशा देखना तथा विवाद, जूआ एवं संग्राम में विजय देखना ।। २३ ।। खून से लथपथ मांस खाना, खीर खाना, खून देखना, खून से नहाना ।। २४ ।। सुरा, खून तथा मदिरा का पान करना, दूध पीना, अस्त्रों से घायल होकर पृथिवी पर छटपटाना, स्वच्छ आकाश का देखना।।२५।। भैंस, गाय, सिंहनी, मादा हाथी तथा घोड़ी को मुँह से दूहना । ये सभी अच्छे स्वप्न हैं ।। २६ ।। स्वप्न में देवता, ब्राह्मण तथा गुरुजनों की प्रसन्नता गौ के सींग अथवा चन्द्रमा से निकले जलसे अभिषेक करना । हे राम ! इन सभी स्वप्नों को राज्यप्रद जानना चाहिए । अपना राज्याभिषेक होना अपना सिर काटा जाना, मरना,आग में पड़ जाना, घर आदि में आग लगना,राजचिह्नों को प्राप्त करना, अपने हाथ से वीणा बजाना ये सभी स्वप्न राज्यप्रद होते हैं ।। २७-२९ ।। जो व्यक्ति स्वप्न के अन्त में राजा, हाथी, घोड़ा, सुवर्ण, बैल तथा गौ को देखता

तथा। सितवस्त्रं प्रसन्नाम्भः फली वृक्षो नभोऽमलम् ॥ ३१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्वप्नाध्यायवर्णनं नामोनत्रिंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२९॥

त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शकुनानि

पुष्कर उवाच– **औषधानि च युक्तानि धान्यं कृष्णमशोभनम् । कार्पासं तृणशुष्कञ्च गोमयं वैधनानि च॥ १॥ अङ्गारं गुड़सर्जौ च मुण्डाभ्यक्तञ्च नग्नकम् । अयः पङ्कं चर्मकेशौ उन्मत्तञ्च नपुंसकम्॥ २॥ चण्डालश्वपचाद्यानि नरा बन्धनपालकाः । गर्भिणी स्त्री च विधवाः पिण्याकादीनि वै मृतम्॥ ३॥ तुषभस्मकपालास्थि भिन्नभाण्डमशस्तकम् । अशस्तो वाद्यशब्दश्च भिन्नभैरवझर्झरः॥ ४॥ एहीति पुरतः शब्दः शस्यते न तु पृष्ठतः। गच्छेति पश्चाच्छब्दोऽग्र्यः पुरस्तात् तु विगर्हितः ॥ ५ ॥ क्व यासि तिष्ठ मा गच्छ किन्ते तत्र गतस्य च । अनिष्टशब्दा मृत्यर्थं क्रव्यादश्च ध्वजादिगः॥ ६ ॥ स्खलनं वाहनानाञ्च शस्त्रभङ्गस्तथैव च । शिरोघातश्च द्वाराद्यैश्छत्रवासादिपातनम् ॥ ७॥ हरिमभ्यर्च्यसंस्तुत्यस्यादमङ्गल्यनाशनम्। द्वितीयन्तु ततो दृष्ट्वा विरुद्धं प्रविशेद्गृहम्॥ ८॥ श्वेताःसुमनसःश्रेष्ठा पूर्णकुम्भो महोत्तमः। मांसं मत्स्या दूरशब्दा वृद्ध एकःपशुस्त्वजः ॥ ९ ॥ गावस्तुरङ्गमा नागा देवाश्च ज्वलितोऽनलः। दूर्वार्द्रगोमयं वेश्यास्वर्णरूप्यश्च रत्नकम्॥ १०॥ वचासिद्धार्थकौषध्यो मुद्ग आयुधखड्गकम् । छत्रं**

है उसके कुटुम्ब की वृद्धि होती है ।। ३० ।। बैल, हाथी, महल की छत, पर्वत शिखर तथा वृक्ष पर चढ़ना, रोना, शरीर में घी या विष्ठा का लग जाना एवं अगम्या स्त्री के साथ समागम करना, ये सभी शुभ स्वप्न हैं ।। ३१।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का (शुभ एवं अशुभ) स्वप्नों का वर्णन नामक दो सौ उनतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२९ ॥

श्रीपुष्करजी ने कहा– खेत में लगे हुए अन्न और काला धान्य यात्रा के समय देखना अशुभ है । कपास,सूखा तृण,सूखा गोबर, धन, अंगार, गुड़, करायल, मूंड मुड़ाकर तेल लगाया हुआ नंगा साधु, लोहा, कीचड़, चमड़ा बाल, पागल मनुष्य, हिजड़ा ।। १-२ ।। चाण्डाल तथा श्वपच आदि,बन्धन का पालन करने वाला मनुष्य, गर्भिणी स्त्री,विधवा, तिल की खली, मृत्यु।।३।। भूसी, राख, खोपड़ी, हड्डी एवं फूटा हुआ वर्तन- युद्ध यात्राकाल में इनका दिखायी देना अशुभ होता है । वाद्यों का ऐसा शब्द जिसमें फूटे हुए झाँझ की भयंकर ध्वनि सुनायी पड़े अशुभ होता है ।। ४ ।। आओ'- इस तरह का शब्द यदि सामने से सुनायी पड़े तो शुभ होता है और पीछे से सुनायी पड़े तो अशुभ । जाओ-यह शब्द यदि पीछे से सुनायी पड़े तो शुभ होता है और आगे से सुनायी पड़े तो अशुभ ।। ५ ।। कहाँ जाते हो, ठहरो ! मत जाओ, वहाँ से तुम्हें क्या लाभ है ? इस प्रकार के शब्दों का सुनायी देना अनिष्ट सूचक होता है, यदि ध्वजा आदि पर मांसाहारी पक्षी गृध्र आदि बैठ जायँ।। ६ ।। वाहन लड़खड़ा कर गिर पड़े, हथियार टूट जायँ, दरवाजे आदि से सिर में चोट लग जाय, छत्र एवं वस्त्र आदि को कोई गिरा दे तो अशुभ शकुन की सूचना मिलती है ।। ७ ।। श्री भगवान् की पूजा करके उनकी स्तुति करने से अमंगल का नाश होता है । यदि दूसरी बार भी अपशकुन हो जाय तो घर लौट जाना चाहिए ।।८।। यात्रा के समय श्वेत पुष्पों का दिखायी देना श्रेष्ठ माना गया है, भरे हुए घड़े का दिखायी देना अत्यन्त उत्तम है । मांस, मछली, दूर का कोलाहल, अकेला वृद्ध पुरुष, बकरा ।। ९ ।। गौ, घोड़ा, तथा हाथी, देव प्रतिमा, प्रज्वलित अग्नि, दूर्वा ताजा गोबर, वेश्या, सुवर्ण, चाँदी, रत्न ।। १० ।। बच, सरसों आदि औषधियाँ, मूँग, तलवार नामक हथियार, छाता, पीढ़ा, राजचिह्न

पीठं राजलिङ्गं शवं रुदितवर्जितम् ॥ ११॥ फलं घृतं दधि पयो अक्षतादर्शमाक्षिकम् । शङ्ख इक्षुःशुभं वाक्यं भक्तवादित्रगीतकम्॥ १२॥ गम्भीरमेघस्तनितं तड़ित् तुष्टिश्चमानसी । एकतःसर्वलिङ्गानि मनसस्तुरूष्टरेकतः ॥ १३॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शकुनविचारकथनं नाम त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३०॥

एकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शकुनानि

पुष्कर उवाच– **तिष्ठतो गमने प्रश्ने पुरुषस्य शुभाशुभम् । निवेदयन्ति शकुना देशस्य नगरस्य च ॥ १॥ सर्वः पापफलो दीप्तो निर्दिष्टो दैवचिन्तकैः। शान्तःशुभफलश्चैव दैवज्ञैःसमुदाहृतः ॥ २॥ षट्प्रकारा विनिर्दिष्टो शकुनानाञ्च दीप्तयः । वेलादिग्देशकरणरुतजातिविभेदतः॥ ३ ॥ पूर्वा पूर्वा च विज्ञेया सा तेषां बलवत्तरा । दिवाचरो रात्रिचरस्तथा रात्रौ दिवाचरः॥ ४॥ क्रूरेषु दीप्ता विज्ञेया ऋक्षजग्नग्रहादिषु। धूमिता सा तु विज्ञेया याङ्गमिष्यति भास्करः॥ ५॥ यस्यां स्थितः सा ज्वलिता मुक्ता चाङ्गारिणी मता । एतास्तिस्त्रः दीप्ता पञ्च शान्तास्तथापराः॥ ६ ॥ दीप्तायां दिशि दिग्दीप्तं शकुनं परिकीर्तितम् । ग्रामेऽरण्या वने ग्राम्यास्तथा निन्दितपादपः॥ ७ ॥ देशे चैवाशुभे ज्ञेयो देशदीप्तो द्विजोत्तमः। क्रियादीप्तो विनिर्दिष्टः स्वजात्यनुचितक्रियः॥ ८॥ रुतदीप्तश्च कथितो भिन्नभैरवनिस्वनः। जातिदीप्तस्तथा ज्ञेयः केवलं मांसभोजनः ॥ ९॥ दीप्ताच्छान्तो**

रोदन रहित मूर्दा ।। ११ ।। फल, घी, दही, दूध, अक्षत, दर्पण, मधु, शंख तथा ईख ये सभी शुभ सूचक हैं । शुभ सूचक वाक्य तथा भक्त पुरुषों का गाना बजाना ।। १२ ।। मेघ की गम्भीर गर्जना, बिजली चमकना शुभ शकुन तथा दूसरी ओर मनस्तोष- ये दोनों बराबर हैं ।।१३।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का शुभाशुभ शकुन वर्णन नामक दो सौ तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३०॥

श्रीपुष्करजी ने कहा- राजा के ठहरने, जाने अथवा प्रश्न करने के समय होने वाले शकुन उसके देश एवं नगर के लिए शुभ एवं अशुभ शकुन की सूचना देते हैं ।। १ ।। शकुन दो प्रकार के होते हैं- दीप्त एवं शान्त । दैव विचारकों ने सभी प्रकार के दीप्त शकुनों का फल अशुभ एवं शान्त शकुनों का फल शुभ बतलाया है ।। २ ।। दीप्त शकुन छह प्रकार के होते हैं- वेला दीप्त, दिग्दीप्त, देशदीप्त, क्रियादीप्त, रुतदीप्त और जातिदीप्त ।। ३ ।। इनमें पूर्व-पूर्व को अधिक बलवान जानना चाहिए । यदि दिन में चलने वाले जीव रात्रि में चलते हुए एवं रात्रि में चलने वाले दिन में चलते हुए दिखायी दें तो उसे बेला दीप्त समझना चाहिए ।। ४ ।। जिस समय नक्षत्र, लग्न एवं ग्रह आदि क्रूरावस्था को प्राप्त हो जायँ तो वह भी बेला दीप्त ही शकुन है । सूर्य जिस दिशा में जाने वाले हों वह 'धूमिता', जिसमें विद्यमान हों वह 'ज्वलिता' तथा जिस दिशा को छोड़ आयें हों वह 'अंगारिता' होती है। ।ये तीन दिशायें दीप्त और शेष पाँच दिशाएँ शान्त मानी जाती हैं ।। ६ ।। दीप्त दिशा में होने वाला शकुन दिग्दीप्त कहलाता है । यदि गाँवों में जंगली एवं जंगलों में ग्रामीण पशु दिखायी दें तो वह निन्दित देश होता है । इसी प्रकार जहाँ निन्दित वृक्ष हों वह स्थान भी निन्दित होता है ।। ७ ।। हे विप्रवर ! अशुभ देश में होने वाला शकुन देशदीप्त होता है। अपने वर्ण धर्म के विपरीत कर्म करने वाला पुरुष क्रियादीप्त कहलाता है । उसका दिखलायी देना क्रियादीप्त शकुन के अन्तर्गत आता है ।। ८ ।। फटी हुई भयंकर आवाज का सुनायी देना रुतदीप्त कहलाता है । केवल मांस भोजन करने वाले प्राणी को जातिदीप्त कहते हैं । उसका दर्शन जातिदीप्त शकुन है ।। ९ ।। दीप्तों से विपरीत शान्त शकुन होते हैं । उसमें भी उपर्युक्त समस्त भेदों को यत्नपूर्वक जानना चाहिए । यदि दीप्त और

विनिर्दिष्टः सर्वैर्भेदैः प्रयत्नतः । मिश्रैर्मिश्रो विनिर्दिष्टास्तस्य वाच्यं फलाफलम् ॥ १०॥ गोश्वोष्ट्रगर्दभश्वानः सारिका गृहगोधिका । चटका भासकूर्माद्याः कथिता ग्रामवासिनः ॥ ११ ॥ अजाविशुकनागेन्द्राः कोलो महिषवायसौ । ग्राम्यारण्या विनिर्दिष्टाःसर्वेऽन्ये वनगोचराः ॥ १२ ॥ मार्जारकुक्कुटौ ग्राम्यौ तौ चैव वनगोचरौ । तयोर्भवति विज्ञानं नित्यं यै रूपभेदतः ॥ १३॥ गोकर्णशिखिचक्राह्वखरहारीतवायसाः । कुलाहकुक्कुभश्येनफेरुखञ्जनवानराः॥ १४ ॥ शतघ्नचटकश्यामचासश्येनकपिञ्जलाः । तित्तिरिः शतपत्रश्च कपोतश्च तथा त्रयः॥ १५॥ खञ्जरीटकदात्यूहशुकराजीवकुक्कुटाः । भारद्वाजश्चसारङ्ग इति ज्ञेया दिवाचराः ॥ १६ ॥ वागुर्युलूकशरभक्रौञ्चाः शशकच्छपाः। लोमासिका: पिङ्गलिकाः कथिता रात्रिगोचराः ॥ १७ ॥ हंसाश्च मृगमार्जारनकुलर्क्षभुजङ्गमाः । वृकारिसिंहव्याघ्रोष्ट्रग्रामशूकरमानुषाः ॥ १८ ॥ श्वाविद्वृषभगोमायुवृककोकिलसारसाः । तुरङ्गकौपीननरा गोधा ह्युभयचारिणः ॥ १९॥ बलप्रस्थानयोःसर्वेपुरस्तात् सञ्चारिणः । जयावहाविनिर्दिष्टाः पश्चान्निधनकारिणः॥ २०॥ गृहाद्गम्य यदा चासो व्याहरेत् पुरतः स्थितः । नृपावमानं वदति वामः कलहभोजने ॥ २१ ॥ याने तद्दर्शनं शस्तं सव्यमङ्गस्य वाप्यथ। चौरैर्मोषमथाख्याति मयूरो भिन्ननिःस्वनः॥२२॥ प्रयातस्याग्रतो राम! मृगः प्राणहरो भवेत्। ऋक्षाखुजम्बुकव्याघ्रसिंहमार्जारगर्दभाः॥२३॥ प्रतिलोमास्तथा राम ! खरश्च विकृतस्वनः। वामःकपिञ्जलःश्रेष्ठस्तथा दक्षिणसंस्थितः ॥ २४ ॥ पृष्ठतो निन्दितफलस्तित्तिरिस्तु न शस्यते । एणा वराहाः पृषता वामा भूत्वा तु दक्षिणाः॥ २५ ॥ भवन्त्यर्थकरा नित्यं विपरीता विगर्हिताः । वृषाश्वजम्बुकव्याघ्राः सिंहमार्जारगर्दभाः॥ २६॥ वाञ्छितार्थकरा ज्ञेया दक्षिणाद् वामतो गताः । शिवा श्यामाननाच्छूच्छूः पिङ्गला गृहगोधिका ॥ २७ ॥ शूकरी परपुष्टा च पुन्नामानश्च वामतः ।

शान्त शकुन मिश्रित हों तो उनका फल भी मिश्रित होता है । इस प्रकार से विचार करके उसके फलाफल को जानना चाहिए ।। १० ।। गौ, घोड़ा, ऊँट, गर्दभ, कुत्ता, सारिका, गृहगोह, चटका (गौरया) भास (चील) तथा कछुए आदि ग्रामीण जीव बतलाये गये हैं ।। ११ ।। बकरा, भेंड़, शुक, गजराज, सूअर, भैंसा और कौआ- ये सभी प्राणी ग्रामीण और जंगली भी होते हैं । इन सबों से भिन्न प्राणी जंगली होते हैं ।। १२ ।। विडाल, और मुर्गा ये दोनों ग्राम्य तथा जंगली दोनों प्रकार के होते हैं । इनके रूप में भेद होता है, और उसी से ये पहचाने जाते हैं ।। १३।। गोकर्ण (खच्चर) मोर, चक्रवाक, गदहे, हारीत, कौए, कुलाह, कुकुभ, बाज, गीदड़, खञ्जरीट, वानर ।। १४ ।। शतघ्न चटक, कोयल, नीलकण्ठ, कपिञ्जल (चातक) तीतर, शतपत्र, कबूतर, खञ्जन, दातयूह (जल कौआ) शुक, राजीव, मुर्गा, भरदूल और सारंग, ये दिन में चलने वाले जीव हैं ।। १५-१६ ।। वागुरी, उल्लू, शरभ, क्रौञ्च, खरगोश, कछुआ, लोमासिका और पिङ्गलिका ये रात्रि में चलने वाले प्राणी हैं ।। १७ ।। हंस, मृग, विलाव, नेवला, रीछ,सर्प, वृकारि, सिंह, व्याघ्र, ऊँट, ग्रामीण सुअर, मनुष्य, श्वाविद, वृषभ, गोमायु, वृक, कोयल, सारस, घोड़े, कौपीन धारी मनुष्य, गोह, ये सभी प्राणी ग्राम्य तथा अरण्यवासी दोनों प्रकार के होते हैं ।। १८-१९ ।। सेना तथा सेना के प्रस्थान के समय ये सभी प्राणी यदि संघ बनाकर समक्ष आएँ तो ये विजय प्रद बतलाये गए हैं, किन्तु यदि ये पीछे से आएँ तो मृत्युकारक बतलाये गये हैं ।। २० ।। यदि अपने घोसले से निकलकर नीलकण्ठ सामने आकर बोलता है तो राजा के अपमान को सूचित करता है । यदि वह बायें भाग में आये तो वह कलह तथा भोजन में बाधा को सूचित करता है ।। २१ ।। यात्रा के समय नीलकण्ठ का दर्शन शुभ माना गया है, उसके वाम अंग का दर्शन भी शुभ माना गया है । यदि यात्रा के समय मयूर जोर-जोर से बोलता है तो वह चोरों द्वारा अपने धन की चोरी की सूचना देता है ।। २२ ।। हे राम ! प्रस्थान के समयमृग आगे-आगे चले तो वह प्राण लेनें वाला होता है । ऋक्ष,चूहा, सियार, व्याघ्र, सिंह, मर्जार यदि विपरीत दिशा में जायँ और गदहा जोर-जोर से बोले कपिञ्जल पक्षी बायीं अथवा दायीं ओर स्थित हो, तो ये सभी उत्तम माने गये हैं ।। २३-२४ ।।कपिञ्जल पक्षी पीछे हो तो उसका बुरा फल होता है, किन्तु यात्राकाल में तित्तिर का दिखायी देना अच्छा नहीं होता है। मृग, वराह और चितकबरे मृग बायीं ओर होकर दाहिनी ओर जायँ तो सदा कार्यसाधक होते हैं किन्तु दाहिनी ओर से बायीं ओर यदि जायँ तो वे बुरे फल को सूचित करते हैं ।। २५।। बैल, घोड़ा-सियार, व्याघ्र, सिंह, मार्जार

स्त्रीसञ्ज्ञाभासकारूषकपि श्रीकर्णच्छित्कराः॥ २८॥ कपिश्रीकर्णपिप्पीका रुरुश्येनाश्च दक्षिणाः। जातोक्षाहिशशक्रोडगोधानां कीर्त्तनं शुभम्॥२९॥ ततः सन्दर्शनं नेष्टं प्रतीपं वानरर्क्षयोः। कार्य्यकृद् बलीशकुनः प्रस्थितस्य हि योऽन्वहम्॥ ३०॥ भवेत् तस्य फलं वाच्यं तदेव दिवसं बुधैः । मत्ता भक्ष्यार्थिनो बाला वैरशक्तास्तथैव च॥३१॥ सीमान्तमभ्यन्तरिता विज्ञेया निष्फला द्विज ! । एकद्वित्रिचतुर्भिस्तु शिवा धन्यारुतैर्भवेत् ॥ ३२ ॥ पञ्चभिश्च तथाषड्भिरधन्या परिकीर्त्तिता । सप्तभिश्च तथाधन्या निष्फला परतोभवेत्॥ ३३॥ नृणां रोमाञ्चजननी वाहनानां भयप्रदा । ज्वालानला सूर्य्यमुखी विज्ञेया भयवर्द्धनी ॥ ३४॥ प्रथमं सारङ्गे दृष्टे शुभे देशे शुभं ददेत् । संवत्सरं मनुष्यस्य अशुभं च शुभं तथा ॥ ३५॥ तथाविधं नरः पश्येत् सारङ्गं प्रथमेऽहनि । आत्मनश्च तथात्वेन ज्ञातव्यं वत्सरं फलम् ॥ ३६ ॥

- इत्यादिमहापुराण आग्नेये शकुनविचारवर्णनं नामैकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३१ ॥

द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शकुनानि

पुष्कर उवाच— **विशन्ति येन मार्गेण वायसा बहवः पुरम् । तेन मार्गेण रुद्धस्य पुरस्य ग्रहणं भवेत् ॥ १॥ सेनायां यदि वासार्थे निविष्टो वायसो रुवन्। वामो भयातुरस्त्रस्तो भयं वदति दुस्तरम् ॥ २ ॥ छायाङ्गवा नोपानच्छत्रवस्त्रादिकुट्टने । मृत्युस्तत्पूजने पूजा तदिष्टकरणे शुभम् ॥ ३ ॥**

तथा गधे यदि बायीं ओर से दाहिनी ओर जायँ तो अभिलषित अर्थ की प्राप्ति सूचित करते हैं ।। २६।। सियारिन, श्यामानना, छुच्छु (छुछुंदर) पिंगला, गृह गोधा शूकरी, कोयल तथा पुलिंग नाम वाले पक्षी यदि बायीं ओर हों तथा स्त्रीलिङ्ग नाम वाले जीव, भास, कारूष, बन्दर, श्रीकर्ण, छिब्बर, कपि, श्रीकर्ण, पिप्पीत्यिका, रुरु, बाज, ये दक्षिण दिशा में हों तो शुभ माने गये हैं।।२८।। यात्राकाल में जातिक, ऋक्ष, सर्प, खरगोश, शूकर तथा गोह का नाम लेना शुभ है ।। २९ ।। विपरीत दिशा में रीछ एवं वानर का दिखायी देना अशुभ है । प्रस्थान करने पर जो कार्य सिद्ध करने वाला, बलवान् शकुन जिस-जिस दिन दिखायीदे, उसका फल विद्वान् पुरुषों का उसी-उसी दिन के लिए बतलाना चाहिए।।३०।। हे द्विज ! पागल, भोजनार्थी, बालक तथा वैरी पुरुष यदि गाँव अथवा नगर की सीमा के भीतर दिखायी पड़ें तो इनके देखने का कोई भी फल नहीं होता है । यदि युद्धयात्रा के समय सियारि एक, दो, तीन या चार बार बोले तो वहशुभ माना गया है ।। ३२ ।। यदि वह पाँच और छह बार बोले तो अशुभ और सात बार बोले तो उसका बोलना शुभ माना गया है । उससे अधिक बार यदि वह बोले तो उसका बोलना निष्फल होता है ।। ३३ ।। यदि सूर्य की ओर उठती हुयी कोई ऐसी ज्वाला दिखायी पड़े जिसको देखकर रोंगटे खड़े हो जायँ और वाहन भयभीत हो जायँ तो उसे भय को बढ़ाने वाली जानना चाहिए।।३४।। यदि किसी उत्तम देशमें पहले सारंग का दर्शन हो जाय तो वह एक वर्ष तक के लिए शुभ की सूचना देने वाला होता है । उसे देखने से अशुभ में भी शुभ होता है ।। ३५।। अतएव यात्रा के प्रथम दिन ऐसे सारंग का दर्शन करना चाहिए तथा अपने लिए एक वर्ष तक शुभ फल की प्राप्ति समझना चाहिए ।। ३६।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का शुभ एवं अशुभ शकुन विचार वर्णन नामक दो सौ इकतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३१ ॥

श्रीपुष्करजी ने कहा— शत्रु के नगर में जिसमार्ग से बहुत से कौए प्रवेश करें,उसी मार्ग से घेरा डालने पर उस नगर पर राजा का अधिकार होता है ।। १ ।। यदि सेना में निवास के लिए प्रवेश किया हुआ कौआ भयभीत होकर रोता हुआ बायीं ओर भागता है तो अपार भय को सूचित करता है ।। २ ।। छाया (राबुटी आदि) अङ्ग, वाहन, उपानह, छत्र तथा वस्त्र आदि से उस कौए को कुचल डालने पर मृत्यु की सूचना मिलती है । उसकी पूजा करने पर राजा की पूजा होती है तथा उसको इष्ट कार्य करने पर राजा का शुभ होता है ।। ३ ।। यदि कौआ दरवाजे

प्रोषितागमकृत् काकःकुर्वन् द्वारि गतागतम् । रक्तं दग्धं गृहे द्रव्यं क्षिपन् वह्निनिवेदकः॥ ४॥ न्यसेद्रक्तं पुरस्ताच्च निवेदयति बन्धनम् । पीतं द्रव्यं तथा रुक्म रूप्यमेव तु भार्गव ॥ ५॥ यच्चैवोपनयेद् द्रव्यं तस्य लब्धिविनिर्दिशेत् । द्रव्यं वापनयेद्यत्तु तस्य हानिं विनिर्दिशेत् ॥ ६ ॥ पुरतो धनलब्धिःस्यादाममांसस्यछर्दने । भूलब्धिःस्यान् मृदुःक्षेपे राज्यं रत्नार्पणे महत्॥ ७॥ यातुः काकोऽनुकूलस्तुक्षेमः कर्मक्षयो भवेत् । न त्वर्थसाधको ज्ञेयः प्रतिकूलो भयावहः॥ ८॥ सम्मुखेऽभ्येति विरुवन् यात्राघातकरो भवेत् । वामःकाकः स्मृतो धन्यो दक्षिणोऽर्थविनाशकृत् ॥ ९ ॥ वामोऽनुलोमगः श्रेष्ठो मध्यमो दक्षिणःस्मृतः । प्रतिलोमगतिर्वामो गमनप्रतिषेधकृत्॥ १०॥ निवेदयति यात्रार्थमभिप्रेतं गृहे गतः । एकाक्षिचरणस्त्वर्कं वीक्षमाणो भयावहः ॥ ११॥ कोटरे वासमानश्च महानर्थकरो भवेत् । न शुभस्तूपरे काकः पङ्काङ्कः स तु शस्यते ॥ १२॥ अमेध्यपूर्णवदनः काकः सर्वार्थसाधकः । ज्ञेयाः पतत्रिणोऽन्येपि काकवद् भृगुनन्दन! ॥ १३ ॥ स्कन्धावारापसव्यस्थाः श्वानो विप्रविनाशकाः । इन्द्रस्थाने नरेन्द्रस्य पुरेशस्य तु गोपुरे॥ १४॥ अन्तर्गृहे गृहेशस्य मरणाय भवेद्भषन् । यस्य जिघ्रति वामाङ्गं तस्य स्यादर्थसिद्धये ॥ १५॥ भयाय दक्षिणं चाङ्गं तथाभुजमदक्षिणम्। यात्राघातकरो यातुर्भवेत् प्रतिमुखागताः ॥ १६॥ मार्गावरोधको मार्गे चौरान् वदति भार्गव !॥ अलाभोऽस्थिमुखः पापो रज्जुचीरमुखस्तथा ॥ १७ ॥ सोपानत्कमुखो धन्यो मांसपूर्णमुखोऽपि च। अमङ्गल्यमुखद्रव्यं केशश्चैवाशुभं तथा॥१८॥ अवमूत्र्यागतो याति यस्य

पर बार-बार आता है तो वह किसी परदेशी के अपने यहाँ आने की सूचना देता है । यदि वह किसी जली हुई लाल वस्तु को घर के ऊपर डाल देता है, तो वह घर में आग लगने की सूचना देता है ।। ४ ।। कौआ यदि किसी लाल द्रव्य को लाकर सामने रखदेता है तो वह बन्धन की सूचना देता है । हे भृगुनन्दन ! यदि वह किसी पीली वस्तु को सामने लाकर रख देता है तो वह सोना, चाँदी की प्राप्ति की सूचना देता है ।। ५ ।। कौआ जिस द्रव्य को लाकर सामने डाल देता है वह उसकी प्राप्ति की सूचना देता है और जिस वस्तु को लाकर अपने यहाँ से उठाकर ले जाता है, उस वस्तु की हानि होने की सूचना देता है ।। ६ ।। यदि कौआ कच्चा मांस लाकर डाल दे तो वहधन प्राप्ति की मिट्टी गिरा देता है तो भूमि की प्राप्ति की तथा कोई रत्न लाकर गिरा देता है तो महान् राज्य की प्राप्ति की सूचना देता है ।। ७ ।। यदि कौआ अनुकूल दिशा की ओर जाता है तो वह कल्याणकारी तथा कार्यसाधक होता है यदि वह प्रतिकूल दिशा की ओर जाय तो प्रयोजन विनाश तथा भय को सूचित करता है ।। ८ ।। यदि रोता हुआ कौआ सामने आता है तो वह यात्रा का विधातक होता है और बायीं ओर जाना शुभ तथा दाहिनी ओर जाना उद्देश्य विनाशक होता है ।। ९ ।। यदि कौआ बायीं ओर होकर अनुकूल दिशा की ओर जाता है तो श्रेष्ठ, यदि दाहिनी ओर होकर अनुकूल दिशा की ओर जाय तो मध्यम और यदि बायीं ओर होकर प्रतिकूल दिशा की ओर जाय तो वह यात्रा का निषेध करने वाला होता है ।। १० ।। यदि यात्रा के समय कौआ घर पर आ जाय तो वह यात्रा की अनुकूलता को सूचित करता है । यदि वह एक पैर उठाकर सूर्य की ओर देखे तो भय की सूचना देता है ।। ११ ।। यदि वह खोंखले में बैठकर बोले तो महान् अनर्थकारी होता है । कौए का भूमि पर बैठे होना भी शुभ नहीं है किन्तु उसका कीचड़ में लिपटे रहना शुभ है ।। १२ ।। यदि कौए के मुख में कोई अपवित्र वस्तु हो तो वह समत प्रयोजनों की सिद्धि को सूचित करता है । हे भृगुनन्दन ! कौए के ही समान अन्य पक्षियों के भी विषय में जानना चाहिए ।। १३ ।। यदि सेना की छावनी की बायीं ओर कुत्ता आ जाय तो वह ब्राह्मणों के विनाश कीसूचना दूता है । यदि पूर्व की ओर आ जाय तो राजा के विनाश की तथा यदि वह गोपुर पर आ जायतो वह पुराधीश की मृत्यु की सूचना देता है ।। १४ ।। कुत्ता यदि गृह के भीतर जाकर रोता है तो वह गृहस्वामी की मृत्यु कोसूचित करता है । वह जिस-जिस के बायें अंग को सूंघता है, उसके शुभ को वहसूचित करता है ।। १५ ।। यदि वह किसी के दाहिने अंग को तथा बायी भुजा को सूंघता है तो वह उसके ऊपर आनेवाली विपत्ति को सूचित करता है । यदि वह प्रतिकूल दिशा में जाता है तो वह यात्रा का निषेध करता है ।। १६ ।। हे भार्गव !यदि वह मार्ग को रोकता है तो वह चोरों की सूचना देता है । यदि वह अपने मुख में हड्डी लिए रहता है तो उस यात्रा से कोई लाभ नहीं होता । यदि वहअपने मुँह में रस्सी अथवा चिथड़ा लिए रहता है तो वह भी शुभ नहीं होता ।। १७ ।।

तस्य भयं भवेत् । यस्यावमूत्र्य व्रजति शुभं देशं तथाद्रुमम् ॥ १९ ॥ मङ्गल्यञ्च तथा द्रव्यं तस्य स्यादर्थसिद्धये । श्ववच्च राम ! विज्ञेयास्तथा वै जम्बुकादयः॥ २०॥ भयाय स्वामिनो ज्ञेयमनिमित्तं रुतं गवाम् । निशि चौरभयाय स्याद् विकृतं मृत्यवे तथा ॥ २१ ॥ शिवाय स्वामिनो रात्रौ बलीवर्दोनदन् भवेत् । उत्सृष्टवृषभो राज्ञो विजयं सम्प्रयच्छति॥ २२॥ अभयं भक्षयन्त्यश्च गावो दत्तास्तथास्वकाः । त्यक्तस्नेहाःस्ववत्सेषु गर्भक्षयकरा मताः॥ २३॥ भूमिं पादैर्विनिघ्नन्त्यो दीना भीता भयावहाः । आर्द्राङ्ग्यो हृष्टरोमाश्च शृङ्गलग्नमृदः शुभाः॥ २४ ॥ महिष्यादिषु चाप्येतत् सर्ववाच्यं विजानता । आरोहणं तथाऽन्येन सपर्याणस्य वाजिनः॥ २५॥ जलोपवेशनं नेष्टं भूमौ च परिवर्त्तनम् । विपत्करं तुरङ्गस्य सुप्तं वाप्यनिमित्ततः ॥ २६॥ यवमोदकयोर्द्वेषस्त्वकस्माच्च न शस्यते । वदनाद्रुधिरोत्पत्तिर्वेपनं न च शस्यते ॥ २७॥ क्रीडन् वकैः कपोतैश्च सारिकाभिर्मृतिं वदेत् । साश्रुनेत्रो जिह्वया च पादलेहो विनष्टये॥२८॥ वामपादेन च तथा विलिखंश्च वसुन्धराम् । स्वपेद्वा वामपार्श्वेन दिवा वा न शुभप्रदः॥ २९॥ भयाय स्यात्सकृन्मूत्री तथा निद्राविलाननः । आरोहणं न चेद् दद्यात् प्रतीपं वा गृहं व्रजेत् ॥ ३० ॥ यात्राविघातमाचष्टे वामपार्श्वं तथा स्पृशन् । हृषमाणःशत्रुयोधं पादस्पर्शी जयावहः॥ ३१॥ ग्रामे व्रजति नागश्चेन् मैथुनं देशहा भवेत् । प्रसूता नागवनिता मत्ता चान्ताय भूपतेः॥३ २॥ आरोहणं न चेद् दद्यात् प्रतीपं वा गृहं व्रजेत! । मदं वा वारणो जह्याद्राजघातकरो भवेत् ॥ ३ ३ ॥ वामं दक्षिणपादेन पादमाक्रमते शुभः । दक्षिणञ्च तथा दन्तं परिमार्ष्टिकरेण च॥३ ४॥ वृषोऽश्वः कुञ्जरो वापि रिपुसैन्यगतोऽशुभः । खण्डमेघातिवृष्ट्या तु सेनानाशमवाप्नुयात्॥३ ५॥

यदि वह अपने मुँह में जूता अथवा मांस लिए रहता है तो वह शुभ होता है । किन्तु यदि वह अपने मुख में कोई अमंगलकारी वस्तु अथवा केश पकड़े रहता है तो अमंगल की सूचना देता है।।१८।। यदि वह सामने पेशाब करके चला जाता है तो उसको होने वाले भय को सूचित करता है । तथा किन्तु जिसके समक्ष पेशाब करके वह किसी शुभ देश, वृक्ष अथवा मांगलिक द्रव्य के पास चला जाता है उसके प्रयोजन की वह सूचना देता है । हे राम ! कुत्ते के ही समान सियार आदि को भी जानना चाहिए ।। १९-२० ।। यदि विना किसी कारण के ही गायें डकारने लग जायँ तो जानना चाहिए कि गोस्वामी के ऊपर विपत्ति आने वाली है । यदि वे रात में बोलें तो चोरों के भय को सूचित करती हैं और यदि गायें विकृत स्वर में डकारने लग जायँ तो स्वामी की मृत्यु को सूचित करती हैं ।। २१।। रात्रि में बैलों का डकारना स्वामी के लिए कल्याणकारी होता है । यदि छोड़ा हुआ बैल (सांड़) रात्रि में बोले तो राजा को विजय प्रदान करता है ।।२२।। यदि अपनी दी हुयी एवं अपने घर पर विद्यमान रहने वाली गायें अभक्ष्य भक्षण करने लगें एवं अपने बछड़े से भी स्नेह करना छोड़ दें तो इससे वे गर्भक्षय की सूचना देती हैं ।। २३ ।। अपने पैरों से पृथिवी को खोदने वाली, दीन तथा भयत्रस्त गायें आने वाले भय को सूचित करती हैं । जिन गायों का शरीर भींगा हो, रोम-रोम प्रसन्नता से खिल उठा हो सींगों में मिट्टी लगी हो ऐसी गायें शुभ की सूचना देती हैं ।।२४।। विज्ञपुरुषों को भैंस आदि के भी विषय में इसी तरह से शकुन समझना चाहिए ।।२४।। जिस पर जिन कसा हुआ हो ऐसे अपने घोड़े पर दूसरे पुरुष का चढ़ना, उसका पानी में बैठ जाना, अथवा विना किसी कारण के ही भूमि पर एक ही जगह चक्कर लगाना अशुभ होता है ।।२५।। जई तथा गुड़ सेअरुचि हो जाना ठीक नहीं होता है। उसके मुख से अचानक खून निकलने लगना तथा उसका शरीर काँपने लगना भी ठीक नहीं होता ।। २७ ।। यदि घोड़ा बगुलों, कबूतरों तथा सारिकाओं से क्रीड़ा करने लगे तो वह मृत्यु की सूचना देता है । यदि उसके नेत्र से आँसू गिरने लगें तथा वह अपनी जीभ से अपना पैर चाटने लगे तो वह विनाश को सूचित करता है ।। २८ ।। यदि वह अपने बायें पैर से पृथिवी खोदने लगे अथवा वायीं करवट सोने लगे या दिन में सोये तो वह शुभ लक्षण नहीं है ।। २९ ।। यदि घोड़ा एक बार ही पेशाब करता है तथा निद्रा के कारण जिसका मुँह मलिन रहता है तो वह आने वाले भय की सूचना देता है। यदि वह अपने ऊपर चढ़ने न दे, या चढ़ते समय उलटे घर में घुस जाय, अथवा सवार की बायीं बगल को चाटने लगे तो वह यात्रा में होने वाले विघ्न को सूचित करता है ।। ३०।। यदि वह शत्रु योद्धा को देखकर हिनहिनाने लगे तथा स्वामी का पैर चाटने लगे तो वह विजयप्रद होता है ।। ३१ ।। यदि हाथी ग्राम मैथुन करे तो वह देश के लिए हानिकारक होता है । गाँव में बच्चा देने वाला अथवा पागल हो जाने वाला मादा हाथी राजा के विनाश को सूचित करता है ।। ३२ ।। यदि हाथी अपने ऊपर चढ़ने न दे,उल्टे चढ़ते

प्रतिकूलग्रहर्क्षात् तु तथासम्मुखमारुतात्। यात्राकाले रणे वापि छत्रादिपतनं भयम्॥ ३६॥ हृष्टा नराश्चानुलोमा ग्रहा वै जयलक्षणम् । काकैर्योधाभिभवनं क्रव्याद्भिर्मण्डलक्षयः। प्राचीपश्चिमकैशानी सौम्या प्रेष्ठा शुभा च दिक् ॥ ३७ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये शकुनविचारवर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३२॥

त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

यात्रामण्डलचिन्तादिः

पुष्कर उवाच– **सर्वयात्रां प्रवक्ष्यामि राजधर्मसमाश्रयात् । अस्तङ्गते नीचगते विकले रिपुराशिगे ॥ १॥ प्रतिलोमे च विध्वस्ते शुक्रे यात्रां विसर्जयेत्। प्रतिलोमे बुधे यात्रां दिक्पतौ च तथा ग्रहे ॥ २ ॥ वैधृतौ च व्यतीपाते नागे च शकुनौ तथा । चतुष्पादे च किन्तुघ्ने तथा यात्रां विवर्जयेत्॥ ३॥ विपत्तारे नैधने च प्रत्यरौ चाथ जन्मनि । गण्डे विवर्जयेद् यात्रां रिक्तायाञ्च तिथावपि॥ ४॥ उदीची च तथा प्राची तयोरैक्यं प्रकीर्त्तितम् । पश्चिमा दक्षिणा या दिक्तयोरैक्यं तथैव च ॥ ५ ॥ वाय्वग्निदिक्समुद्भूतं परिघं न तु लङ्घयेत् । आदित्यचन्द्रशौरास्तु दिवसाश्च न शोभना॥ ६॥ कृत्तिकाद्यानिपूर्वेण मघाद्यानि च याम्यतः । मैत्राद्यान्यपरेचाथ वासवाद्यानिवाप्युदक्॥ ७॥ सर्वद्वाराणि शस्तानि छायामानं वदामि ते । आदित्ये विंशतिर्ज्ञेयाश्चन्द्रे षोडश कीर्त्तिताः ॥ ८॥ भौमे पञ्चदशैवोक्ताश्चतुर्दश तथा बुधे । त्रयोदश तथा जीवे शुक्रे द्वादश कीर्त्तिताः॥ ९॥**

समय हाथीसार में चला जाय वह अचानक मद की धारा बहाने लगे तो राजा के विनाश को सूचित करता है ।। ३३ ।। हाथी का दाहिने पैर को बायें पैर पर रखना और सूँडसे दाहिने दाँत को रगड़ना शुभप्रद होता है ।। ३४ ।। यदि अपना बैल, घोड़ा अथवा हाथी शत्रु की सेना में चला जाय तो वह शुभ नहीं होता है । यदि थोड़ी दूर में बादल घिरकर अत्यधिक वर्षा होने लगे तो उससे सेना के नाश की सूचना मिलती है।। ३५ ।। सामने से हवा का आना छत्र आदि का गिर पड़ना तो उससे आने वाले भय की सूचना मिलती है ।।३६ ।। लड़ने वाले योद्धा यदि हर्ष एवं उत्साह से परिपूर्ण हों तथा ग्रह अनुकूल हों तो वह विजय प्राप्ति का सूचक होता है । यदि कौए एवं मांसाहारी जीव जन्तु योद्धाओं का तिरस्कार करें तो मण्डल का नाश होता है । पूर्व, पश्चिम, ईशान दिशाएँ प्रसन्न एवं शान्त हों तो, प्रिय एवं शुभ फल की प्राप्ति होती है ।। ३७।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का शकुन विचार वर्णन नामक दो सौ बत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३२ ॥

श्रीपुष्करजी कहते हैं– कि अब मैं राजधर्म का आश्रय सबकी यात्रा के विषय में कह रहा हूँ । जब शुक्र अस्त हो,नीच स्थान में स्थित हो, अन्धा हो, शत्रु की राशि पर स्थित हो, अथवा प्रतिकूल राशि पर स्थित हो या विध्वस्त हो तो यात्रा नहीं करनी चाहिए । यदि बुध प्रतिकूल अथवा दिक्स्वामी एवं ग्रह प्रतिकूल हों तो यात्रा नहीं करनी चाहिए ।। १-२ ।। वैधृति,व्यतीपात, नाग, शकुनि, चतुष्पाद तथा किंस्तुघ्न योग में भी यात्रा नहीं करनी चाहिए ।। ३ ।। विपत्, निधन, प्रत्यरि एवं जन्म नक्षत्रों में तथा रिक्ता तिथि में भी यात्रा नहीं करनी चाहिए ।। ४ ।। उत्तर एवं पूर्व इन दोनों दिशाओं में एकता मानी गयी है इसी तरह दक्षिण एवं पश्चिम इन दोनों दिशाओं की एकता मानी गयी है ।। ५ ।। वायव्यकोण से लेकर अग्निकोण तक जो परिवघदण्ड होता है, उसका उल्लंघन करके यात्रा नहीं करनी चाहिए । रवि, सोम एवं शनैश्चर ये दिन यात्रा के लिए शुभ नहीं होते हैं ।। ६ ।। कृत्तिका से लेकर सात नक्षत्र जो पूर्व दिशा में रहते हैं, मघा से लेकर जो सात नक्षत्र दक्षिण दिशा में रहते हैं, अनुराधा आदि जो सात नक्षत्र पश्चिम दिशा में रहते हैं तथा घनिष्ठा आदि सात नक्षत्र उत्तर दिशा में रहते हैं ।। ७ ।। ये सभी नक्षत्र अपनी-अपनी

एकादश तथा सौरे सर्वकर्मसु कीर्त्तिताः । जन्मलग्ने शक्रचापे सम्मुखेन व्रजेन्नरः ॥ १० ॥ शकुनादौ शुभे यायाज्जयाय हरिमास्मरन् । वक्ष्ये मण्डलचिन्तान्ते कर्त्तव्यं राजरक्षणम् ॥ ११ ॥ स्वाम्यमात्यं तथा दुर्गं कोषो दण्डस्तथैव च । मित्रञ्जनपदश्चैव राज्यं सप्ताङ्गमुच्यते ॥ १२॥ सप्ताङ्गस्य तु राज्यस्य विघ्नकर्तॄन् विनाशयेत् । मण्डलेषु च सर्वेषु वृद्धिः कार्य्यो महीक्षिता ॥ १३ ॥ आत्ममण्डलमेवात्र प्रथमं मण्डलंभवेत् । सामन्तास्तस्य विज्ञेया रिपवो मण्डलस्य तु॥ १४॥ उपेतस्तु सुहृज्ज्ञेयःशत्रुमित्रमतः परम् । मित्रमित्रं ततो ज्ञेयं मित्रमित्रारिपुस्ततः ॥ १५॥ एतत् पुरस्तात् कथितं पश्चादपि निबोध मे । पार्ष्णिग्राहस्ततः पश्चात् ततस्त्वाक्रन्द उच्यते ॥ १६ ॥ आसारस्तु ततोऽन्यः स्यादाक्रन्दासार उच्यते । जिगीषोःशत्रुयुक्तस्य विमुक्तस्य तथा द्विज ! ॥ १७ ॥ नात्रापि निश्चयः शक्यो वक्तुं मनुजपुङ्गव । निग्रहानुग्रहे शक्तो मध्यस्थःपरिकीर्त्तितः॥१८॥ निग्रहानुग्रहे शक्तः सर्वेषामपि यो भवेत् । उदासीनः स कथितो बलवान् पृथिवीपतिः ॥ १९॥ न कस्यचिद्रिपुर्मित्रङ्कारणाच्छत्रुमित्रके । मण्डलं तव सम्प्रोक्तमेतद् द्वादश राजकम् ॥ २०॥ त्रिविधा रिपवो ज्ञेयाः कुल्यानन्तरकृत्रिमाः। पूर्वपूर्वो गुरुस्तेषां दुश्चिकित्स्यतमो मतः॥ २१॥ अनन्तरोऽपि यः शत्रुः सोऽपि मे कृत्रिमो मतः । पार्ष्णिग्राहो भवेच्छत्रोर्मित्राणि रिपवस्तथा ॥ २२ ॥ पार्ष्णिग्राहमुपायैश्च शमयेच्च तथास्वकम्। मित्रेण शत्रोरुच्छेदं प्रसंशन्ति पुरातनाः॥ २३॥ मित्रञ्च शत्रुतामेति सामन्तत्त्वादनन्तरम् । शत्रुं जिगीषुरुच्छिन्द्यात् स्वयं शक्नोति चेद् यदि ॥ २४॥

दिशा के द्वार हैं तथा सभी द्वार अपनी दिशा में यात्रा के लिए उत्तम होते हैं अब मैं छाया मान का वर्णन करता हूँ ।। ७ ।। रविवार को बीस अंगुल सोमवार को सोलह, मंगलवार को पंद्रह अंगुल, बुधवार को चौदह अंगुल, वृहस्पतिवार को तेरह अंगुल, शुक्रवार को बारह अंगुल तथा शनिवार को ग्यारह अंगुल छाय सभी कर्मों में बतलायी गयी है । मनुष्य को अपने जन्मलान में तथा सामने इन्द्रधनुष उदित होने पर यात्रा नहीं करनी चाहिए ।। ९-१० ।। शुभ शकुन होने पर श्रीहरि का स्मरण करते हुए यात्रा करनी चाहिए । अब मैं मण्डल का विचार बतलाता हूँ। राजा की रक्षा करनी चाहिए ।। ११ ।। राजा, मन्त्र, दुर्ग, कोष, दण्ड, मित्र और जनपद- ये राजा के सात अंग बतलाये गये हैं ।। १२ ।। इन सातों अंगों से युक्त राज्य में जो विघ्न डाले उसका विनाश कर देना चाहिए । राजा को चाहिए कि वह सभी मण्डलों में वृद्धि करे ।। १३ ।। यहाँ सबसे पहला मण्डल आत्ममण्डल होता है उस मण्डल के शत्रु सामन्तों को जानना चाहिए।।१४।। विजगीषु राजा के सामने का सीमावर्ती सामन्त उसका शत्रु है । उस शत्रु राज्य से जिसकी सीमा लगी है वह उस शत्रु का शत्रु होने से विजगीषु का मित्र है । इस प्रकार शत्रु, मित्र, अरिमित्र, मित्रमित्र तथा अरिमित्रमित्र ये पाँच मण्डल के आगे रहने वाले हैं । इनका वर्णन किया जा चुका है, अब मण्डल के पीछे रहने वालों को मुझसे सुनिये ।। १५ ।। पीछे रहने वालों में सर्वप्रथम पार्ष्णिग्राह हैं, उसके पीछे रहने वाला 'आक्रन्द' कहलाता है ।। १६ ।। उसके पीछे रहने वाला 'आसार' कहलाता है । फिर आक्रन्दसार कहलाता है । हे द्विज ! विजगीषु शत्रु से युक्त हो या मुक्त उसके विजय के विषय में कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है । विजगीषु तथा दोनों के निग्रह तथा अनुग्रह करने में समर्थ राजा मध्यस्थ कहलाता है।।१७-१८।। विजगीषु शत्रु तथा मध्यस्थ इन तीनों के निग्रह एवं अनुग्रह करने में जो समर्थ होता है ।। १९ ।। न तो कोई किसी का शत्रु होता है और न कोई किसी का मित्र; सभी कारणवश शत्रु और मित्र होते हैं । इस तरह से मैंने आपको द्वादश राजमण्डलों को बतलाया ।। २० ।। शत्रुओं के भी तीन भेद होते हैं,- कुल्या, अनन्तर तथा कृत्रिम । इनमें पूर्व-पूर्व शत्रु बड़ा होता है, अर्थात् कृत्रिम की अपेक्षा अनन्तर बड़ा शत्रु होता है और अनन्तर से कुल्या बड़ा शत्रु होता है ।। २१ ।। जो अनन्तर शत्रु होता है उसे भी हम कृत्रिम ही मानते हैं । प्राष्र्णिग्राह राजा शत्रु का मित्र होता है, किन्तु प्रयास करने से वह शत्रु का शत्रु भी हो सकता है ।। २२ ।। अतएव पार्ष्णिग्राह को अनेक प्रकार के उपायों से शान्त करके सदा अपने वश में उसे रखना चाहिए। प्राचीन नीतिज्ञ अपने मित्र द्वारा शत्रु को विनष्ट करा डालने के कार्य की प्रशंसा करते हैं ।। २३ ।। सामन्त (सीमा निवासी) होने के कारण मित्र भी आगे चलकर शत्रु हो जाता है । अतएव

प्रतापवृद्धौ तेनापि नामित्राज्जायते भयम् । यथास्य नोद्विजेल्लोको विश्वासश्च यथा भवेत् । जिगीषुर्धर्मविजयी तथालोकं वशं नयेत् ॥ २५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये यात्रामण्डलचिन्तादिवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३३॥

चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

षाड्गुण्यम्

पुष्कर उवाच– **सामभेदौ मया प्रोक्तौ दानदण्डौ तथैव च । दण्डःस्वदेशे कथितःपरदेशे ब्रवीमि ते॥ १॥ प्रकाशश्चाप्रकाशश्च द्विविधो दण्ड उच्यते। लुण्ठनं ग्रामघातश्च शस्यघातोऽग्निदीपनम्॥ २॥ प्रकाशोऽथ विषं वह्निर्विविधैः पुरुषैर्वधः । दूषणञ्चैव साधूनामुदकानाञ्च दूषणम् ॥ ३॥ दण्डप्रणयनं प्रोक्तमुपेक्षां शृणु भार्गव ! । यदा मन्येत नृपति रणे न मम विग्रहः ॥ ४ ॥ अनर्थायानुबन्धः स्यात् सन्धिना च तथा भवेत् । सामलब्धास्पदञ्चात्र दानञ्चार्थक्षयङ्करम् ! ॥ ५ ॥ भेददण्डानुबन्धः स्यात् तदोपेक्षां समाश्रयेत् । न चायं ममशक्नोति किञ्चित् कर्तुमुपद्रवम् ॥ ६॥ न चाहमस्य शक्नोमि तत्रोपेक्षां समाश्रयेत् । अवज्ञोपहतस्तत्र राज्ञा कार्यो रिपुर्भवेत् ॥ ७॥ मायोपायं प्रवक्ष्यामि उत्पातैरनृतैश्चरन् । शत्रोरुद्वेजनं शत्रोः शिविरस्थस्य पक्षिणः॥ ८॥ स्थूलस्य तस्य पुच्छस्तां कृत्वोल्कां विपुलां द्विज। विसृजेच्च ततश्चैवमुल्कापातं प्रदर्शयेत् ॥ ९ ॥ एवमन्ये दर्शनीया उत्पाता बहवोऽपि च । उद्वेजनं तथा कुर्य्यात् कुहकैर्विविधैर्द्विषाम्॥ १०॥ सांवत्सरास्तापसाश्च नाशं ब्रूयुः परस्य च । जिगीषुः पृथिवीं राजा तेन चोद्वेजयेत् परान् ॥ ११ ॥ देवतानां प्रसादश्च कीर्त्तनीयः परस्य तु । आगतन्नोऽमित्रबलं प्रहरध्वमभीतवत् ॥ १२॥ एवं ब्रूयाद्रणे प्राप्ते**

विजगीषु राजा को चाहिए कि यदि अपने में शक्ति हो तो स्वयं ही उस शत्रु का विनाश कर दे ।। २४ ।। प्रताप बढ़ जाने पर वह उस शत्रु से भी किसी प्रकार का भय नहीं होता है । विजगीषु राजा को धर्म विजयी होना चाहिए तथा उसे लोगों को इस प्रकार से अपने वश में करना चाहिए कि कोई भी उससे उद्विग्न न हो तथा सबों का उस पर विश्वास हो ।। २५-२६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का यात्रा मण्डल आदि का विचार आदि वर्णन नामक दो सौ तैंतीसवाँअध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३३ ॥

श्रीपुष्कर जी ने कहा– पहले साम, भेद, दान और दण्ड का वर्णन किया जा चुका है । राजा अपने देश में दण्ड का भेद कैसे करे ? इस बात का वर्णन किया जा चुका है,अब इस बात का वर्णन किया जा रहा है कि वह शत्रु के देश में इन चारों उपायों का किस प्रकार से प्रयोग करे ।। १ ।। दण्ड दो प्रकार का होता है- गुप्त एवं प्रकाश । लूटना, गावों को विनष्ट कर देना, खेती नष्ट कर देना तथा शत्रु के ग्राम में आग लगा देना ये प्रकाश दण्ड हैं । विष दे देना,चुपके से आग लगा देना,अनेक प्रकार के पुरुषों द्वारा वध करा देना, सत्पुरुषों पर दोष लगाना तथा पानी को दूषित करना ये गुप्तदण्ड हैं ।। २-३ ।। हे भृगुनन्दन ! यह मैने दण्ड प्रयोग बतलाया अब मैं उपेक्षा को बतलाता हूँ, सुनो ! राजा जब यह समझे कि युद्ध में मेरी किसी के साथ वैर विरोध नहीं है ।। ४ ।। व्यर्थ का लगाव अनर्थ का ही कारण होगा संधि का भी परिणाम ऐसा ही होने वाला है,यहाँ साम का प्रयोग किया गया किन्तु सफल नहीं हुआ । दान की भी नीति से केवल धन का ही क्षय होगा ।। ५।। भेद एवं दण्ड का भी प्रयोग व्यर्थ ही होगा- तो फिर वह राजा उपेक्षा की नीति को अपनाए । उस समय राजा को चाहिए कि वह अवज्ञा के द्वारा ही शत्रु को उपहत करे ।। ५-७ ।। अब मैं मायामय उपायों का वर्णन करता हूँ । राजा को चाहिए कि वह झूठे उत्पातों का प्रदर्शन करके शत्रु को उद्विग्न करे । वह शत्रु के शिविर में रहने वाले बड़े पक्षी के पूँछ में जलता हुआ लूक बाँध दे फिर उसको शत्रु की छावनी पर छोड़ दे जिससे प्रतीत हो कि उसकी छावनी पर उल्कापात हो रहा है । इस तरह से वह शत्रु को उल्कापात से डराये।। ८-९ ।। इस तरह राजा शत्रु को अनेक प्रकार का उत्पात प्रदर्शित करे । इन्द्रजालिकों को भेजकर भी वह शत्रुओं को अनेक प्रकार के इन्द्रजालों से उद्विग्न करे ।। १०।।

भग्नाःसर्वे परे इति । क्ष्वेडाः किलकिलाः कार्य्या वाच्यःशत्रुर्हतस्तथा॥१३॥ देवाज्ञाबृंहितो राजा सन्नद्धः समरं प्रति । इन्द्रजालं प्रवक्ष्यामि इन्द्रं कालेन दर्शयेत् ॥ १४॥ चतुरङ्गं बलं राजा सहायार्थं दिवौकसाम् । बलन्तु दर्शयेत् प्राप्तं रक्तवृष्टिञ्चरेद्रिपौ ॥ १५॥ छिन्नानि रिपुशीर्षाणि प्रासादाग्रेषु दर्शयेत् । षाड्गुण्यं सम्प्रवक्ष्यामि तद्वरौ सन्धिविग्रहौ॥१६॥ सन्धिश्च विग्रहश्चैव यानमासनमेव च । द्वैधीभावःसंशयश्च षड्गुणाः परिकीर्त्तिताः ॥ १७॥ पणबन्धः स्मृतः सन्धिरपकारस्तु विग्रहः । जिगीषोः शत्रुविषये यानं यात्राऽभिधीयते ॥ १८ ॥ विग्रहेण स्वके देशे स्थितिरासनमुच्यते । बलार्द्धेन प्रयाणन्तु द्वैधीभावः स उच्यते ॥ १९॥ उदासीनो मध्यमो वा संश्रयात्संश्रय स्मृतः । समेन सन्धिरन्वेष्योऽहीनेन स बलीयसा ॥ २० ॥ हीनेन विग्रहः कार्य्यःस्वयं राज्ञा बलीयसा । तत्रापि शुद्धपार्ष्णिस्तु बलीयांसं समाश्रयेत् ॥ २१ ॥ आसीनः कर्मविच्छेदं शक्तः कर्त्तुं रिपोर्यदा । अशुद्धपार्ष्णिश्चासीत विगृह्य वसुधाधिपः ॥ २२ ॥ अशुद्धपार्ष्णिर्बलवान् द्वैधीभावं समाश्रयेत् । बलिना विगृहीतस्तु योऽसन्देहेन पार्थिवः ॥ २३ ॥ संश्रयस्तेन वक्तव्यो गुणानामधमो गुणः। बहुक्षयव्ययायासं तेषां यानं प्रकीर्त्तितम्॥ २४॥ बहुलाभकरं पश्चात् तदा राजा समाश्रयेत् । सर्वशक्तिविहीनस्तु तदा कुर्य्यात् तु संश्रयम् ॥ २५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये षाड्गुण्यकथनं नाम चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३४॥

ज्योतिषी तथा तपस्वी जाकर उसके नाश की भविष्यवाणी करें । इस तरह पृथिवी पर विजय प्राप्त करने की इच्छा वाला राजा अपने शत्रुओं को उद्विग्न करे ।। ११ ।। उसको यह प्रचार कराना चाहिए कि मुझे देवता का प्रसाद प्राप्त हो चुका है । शत्रुओं के मित्रों की सेना नहीं आयी है । अपने सैनिकोंसे कहे कि 'निर्भय होकर प्रहार करो ।'वह कहे कि संग्राम से शत्रु की सेना पलायन कर चुकी है । ऐसा कहकर राजा गर्जना करे खिलखिलाकर हँसे और घोषणा करे कि मेरा शत्रु मारा गया ।। १२-१३ ।। देवताओं की आज्ञा से समृद्धि प्राप्त राजा कवच आदि धारण करके युद्ध में जाय । अब मैं इन्द्रजाल के विषय में बतलाता हूँ । राजा को चाहिए कि वह समयानुसार इन्द्रजाल का प्रदर्शन करे ।। १४ ।। इन्द्रजाल के द्वारा राजा शत्रुओं को प्रदर्शित करे कि उसकी सहायता करने के लिए देवताओं की चतुरंगिणी सेना भी आ गयी है । वह शत्रुओं पर रक्त की वर्षा कराये । फिर शत्रुओं के कटे हुए सिर उनके छतों पर माया द्वारा उनमें सन्धि और विग्रह प्रधान गुण हैं ।। १६ ।। सन्धि,विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संशय ये राजा के छह गुण कहे गए हैं ।। १७ ।। किसी शर्त पर शत्रु के साथ मेल करना सन्धि है,युद्ध आदि के द्वारा शत्रु की हानि करना विग्रह कहलाता है । विजय प्राप्त करने की इच्छा से शत्रु के राज्य पर आक्रमण करना ही यात्रा या यान है ।। १८ ।। विग्रह प्रारम्भ कर के अपने ही देश में स्थित रहना आसन कहलाता है । अपनी आधी सेना के द्वारा युद्ध यात्रा करना द्वैधीभाव कहलाता है ।। १९ ।। उदासीन अथवा मध्यम राजा की शरण लेना संश्रय कहलाता है । जो अपने से कमजोर न होकर अपने बराबर हो या अपने से बलवान् हो उसके साथ सन्धि करने का विचार करना चाहिए ।। २० ।। बलवान् राजा को अपने से कमजोर शत्रु के साथ स्वयं विग्रह करना चाहिए। हीनावस्था में भी यदि अपना पार्ष्णिग्राह शुद्ध स्वभाव का हो तब ही बलवान् राजा का आश्रय ग्रहण करना चाहिए ।। २१ ।। यदि युद्ध के लिए यात्रा न करके बैठे रहने पर भी राजा अपने शत्रु के कार्य का नाश कर सके तो पार्ष्णिग्राह का स्वभाव शुद्ध न होने पर भी राजा को चाहिए कि वह विग्रह प्रारम्भ करके चुपचाप बैठा रहे ।। २२ ।। पार्ष्णिग्राह का स्वभाव शुद्ध न होने पर राजा को द्वैधीभाव नीति को अपनाना चाहिए । यदि राजा किसी बलवान् राजा के विग्रह का शिकार हो जाय तो उसे संश्रय को अपनाना चाहिए । यह राजा के छह गुणों में अधम गुण है। यदि संश्रय के योग्य अवस्था में विद्यमान राजा युद्ध की यात्रा करता है तो उसमें उसके बहुत क्षय, व्यय तथा प्रयास करना पड़ता है ।। २३-२४ ।। यदि संश्रय करने से राजा को बहुत अधिक लाभ की आशा हो तो उसे संश्रय ही करना चाहिए। राजा की जब सब प्रकार की शक्ति समाप्त हो जाय तब वह संश्रय नामक गुण का सहारा लेता है ।। २५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का षाड्गुण्य वर्णन नामक दो सौ चौंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३४ ॥

पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

प्रात्यहिकराजकर्म

पुष्कर उवाच– **अजस्त्रं कर्म वक्ष्यामि दिनं प्रति यदा चरेत् । द्विमुहूर्त्तावशेषायां रात्रौ निद्रां त्यजेन्नृपः॥ १॥ वाद्यवन्दिस्वनैर्गीतैः पश्येद् गूढांस्ततो नरान् । विज्ञायते न ये लोकास्तदीया इति केनचित् ॥ २ ॥ आयव्ययस्य श्रवणं ततःकार्य्यं यथाविधि । वेगोत्सर्गं ततः कृत्वा राजा स्नानगृहं व्रजेत् ॥ ३ ॥ स्नानं कुर्य्यान्नृपः पश्चाद्दन्तधावनपूर्वकम् । कृत्वा सन्ध्यां ततो जप्यं वासुदेवं प्रपूजयेत् ॥ ४ ॥ वह्नौ पवित्रान् जुहुयात् तर्पयेदुदकैः पितृन् । दद्याद् सकाञ्चनीं धेनुं द्विजाशीर्वादसंयुतः॥ ५॥ अनुलिप्तोऽलंकृतश्च मुखं पश्येच्च दर्पणे । ससुवर्णे धृते राजा शृणुयाद् दिवसादिकम्॥ ६॥ औषधं भिषजोक्तं च मङ्गलालम्भनञ्चरेत् । पश्येद्गुरुं तेन दत्ताशीर्वादोऽथ व्रजेत् सभाम्॥ ७॥ तत्रस्थो ब्राह्मणान् पश्येदमात्यान् मन्त्रिणस्तथा । प्रकृतीश्च महाभाग ! प्रतीहारनिवेदिताः॥ ८ ॥ श्रुत्वेतिहासं कार्य्याणि कार्य्याणां कार्य्यनिर्णयम् । व्यवहारं ततः पश्येन् मन्त्रं कुर्य्यात् तु मन्त्रिभिः॥ ९ ॥ नैकेन सहितःकुर्य्यान् न कुर्य्याद्बहुभिः सह । न च मूर्खैर्नचानाप्तैर्गुप्तं न प्रकटं चरेत्॥ १०॥ मन्त्रं स्वधिष्ठितं कुर्य्याद् येन राष्ट्रं न बाधते । आकारग्रहणे राज्ञो मन्त्ररक्षा परा मता॥ ११॥ आकारैरिङ्गितैः प्राज्ञ मन्त्रं गृह्णन्ति पण्डिताः । सांवत्सराणां वैद्यानां मन्त्रिणां वचने रतः॥१२ ॥ राजा विभूतिमाप्नोति धारयन्ति नृपं हि ते । मन्त्रकृत्वाथव्यायामञ्चक्रे यानेच शस्त्रके॥ १३॥ निःसत्त्वादौ नृपः स्नातः पश्येद् विष्णुं सुपूजितम् । हुतञ्च पावकं पश्येद् विप्रान् पश्येत् सुपूजितान् ॥१४ ॥ भूषितो भोजनं कुर्य्याद् दानाद्यैःसुपरीक्षितम् । भुक्त्वा गृहीतताम्बूलो**

श्रीपुष्करजी ने कहा– अब मैं उन कर्मों का वर्णन कर रहा हूँ जिन कर्मों को राजा को प्रतिदिन करना चाहिए । जब रात्रि दो मुहूर्त्त बची रहे तो राजा को वाद्यों एवं बन्दीजनों की स्तुतियों तथा मंगल गीतों को सुनकर जग जाना चाहिए । इसके पश्चात् वह अपने गुप्तचरों से मिले। गुप्तचरों को ऐसा होना चाहिए कि कोई नहीं जान सके कि ये राजा के कर्मचारी हैं ।। १-२ ।। इसके पश्चात् उसे विधि पूर्बक आय-व्यय सुनना चाहिए । इसके पश्चात् मल-मूत्र त्याग करके राजा स्नानगृह में जाय।। ३ ।। वहाँ राजा दतौन करके फिर स्नान करे । उसके पश्चात् राजा सन्ध्योपासन करके भगवान् वासुदेव का पूजन करे ।। ४ ।। उसके पश्चात् राजा अग्नि में पवित्रता पूर्वक हवन करे । इसके पश्चात् उसे पितरों का तपर्ण करना चाहिए । इसके पश्चात् सुवर्ण से युक्त गौ का दान करके ब्राह्मणों का आशीर्वाद प्राप्त करे ।। ५ ।। उसके पश्चपात् राजा चन्दन एवं आभूषण से अलंकृत होकर दर्पण में अपना मुख देखे । इसके पश्चात् घी में अपना मुख देखकर दिवस का फल श्रवण करे ।। ६ ।। फिर वह वैद्य की बतायी हुई दवा को चखकर मांगलिक वस्तुओं का स्पर्श करे । पुनः गुरु का दर्शन करके उनसे आशीर्वाद प्राप्तकर सभा में जाय।।७।। सभा में ब्राह्मणों, आमात्यों तथा मन्त्रियों को देखकर प्रतीहारी के द्वारा सूचना पाकर आयी हुई जनता से मिले ।। ८ ।। पुनः इतिहास का श्रवण करके उसे आवश्यक कार्यों का निर्णय करना चाहिए । इसके पश्चात् वह प्रजाओं के मामले मुकदमों को सुने तथा मन्त्रियों को साथ गुप्त परामर्श करे ।। ९ ।। वह न तो एक मन्त्रि के साथ मन्त्रणा करे और न तो बहुत मन्त्रियों के साथ एक ही बार बैठकर वह मंत्रणा करे । वह भूखों तथा अविश्वसनीय पुरुषों के साथ भी मंत्रणा न करे । वह मंत्रणा को सदा गुप्त रखें किसी के समक्ष प्रकट न करे ।। १० ।। मन्त्रणा या अच्छी तरह से छिपाकर रखे जिससे राज्य में किसी प्रकार की बाधा न हो । मन्त्रणा की रक्षा का सबसे बड़ा उपाय यह है कि राजा अपने आकार में परिवर्तन न होने दे ।। ११ ।। राजा के आकार एवं चेष्टाओं को ही देखकर बुद्धिमान लोग उसकी मंत्रणा को जान लेते हैं । राजा ज्योतिषियों, वैद्यों तथा मन्त्रियों की बातों को माने ।। १२ ।। ऐसा करने से वह ऐश्वर्य को प्राप्त करता है, क्योंकि ये लोग राजा को अहितकर कार्यों से रोकते हैं । मन्त्रणा करने के पश्चात् राजा को रथ आदि वाहनों के चलाने तथा शस्त्र चलाने का अभ्यास करते हुए कुछ व्यायाम करना

वामपार्श्वेन संस्थितः।। १५ ।। शास्त्राणि चिन्तयेद् दृष्ट्वा योधान् कोष्ठायुधं गृहम् । अन्वास्य पश्चिमां सन्ध्यां कार्य्याणि च विचिन्त्य तु ।। १६ ।। चरान्सम्प्रेष्यभुक्त्वान्नमन्तःपुरचरो भवेत् । वाद्यगीतैरक्षितोऽन्यैरेवं नित्यञ्चरेन् नृपः ।। १७ ।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रात्यहिकराजकर्मकथनं नाम पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।। २३५।।

षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

रणदीक्षा

पुष्कर उवाच– **यात्राविधानपूर्वन्तु वक्ष्ये साङ्ग्रामिकं विधिम् । सप्ताहेन यदा यात्राभविष्यति महीपतेः।। १।। पूजनीयो हरिःशम्भुर्मोदकाद्यैर्विनायकः। द्वितीयेऽहनि दिक्पालान् सम्पूज्य शयनञ्चरेत् ।। २ ।। शय्यायां वा तदग्रेऽथ देवान् प्रार्च्य मनुं स्मरेत् । नमः शम्भो त्रिनेत्राय रुद्राय वरदाय च ।।३।। वामनाय विरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः । भगवन् ! देवदेवेश ! शूलभृद्वृषवाहन।। ४।। इष्टानिष्टे ममाचक्ष्व स्वप्ने सुप्तस्य शाश्वत ! । यज्जाग्रतो दूरमिति पुरोधा मन्त्रमुच्चरेत्।। ५।। तृतीयेऽहनि दिक्पालान् रुद्रांस्तान् दिक्पतीन्यजेत् । ग्रहान् यजेच्चतुर्थेऽह्नि पञ्चमे चाश्विनौ यजेत् ।। ६ ।। मार्गे या देवतास्तासां नद्यादीनाञ्च पूजनम् । दिव्यान्तरीक्षभौमस्थदेवानाञ्च तथाबलिः।। ७।। रात्रौ भूतगणानाञ्च वासुदेवादिपूजनम् । भद्रकाल्याःश्रियः कुर्य्यात् प्रार्थयेत् सर्वदेवताः।। ८।। वासुदेवःसङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः । नारायणोऽब्जजो विष्णुर्नारसिंहो वराहकः।। ९।। शिव ईशस्तत् पुरुषो**

चाहिए ।। १३ ।। युद्ध आदि के अवसर पर राजा स्नान करके अच्छी तरह से पूजित भगवान् विष्णु का, हवन करने से प्रज्ज्वलित अग्नि का, तथा सुपूजित ब्राह्मणों का दर्शन करे ।। १४।। दान आदि करने के पश्चात् वस्त्रों एवं आभूषणों से अलंकृत होकर राजा अच्छी तरह से परीक्षित भोजन करे । भोजन करके पान खाकर कुछ देर तक बायीं करवट लेटे ।। १५ ।। वह योद्धाओं अन्न भण्डार तथा शस्त्रागार का निरीक्षण करके शास्त्रों का अध्ययन करे ।। सायं संध्या करने के पश्चात् आवश्यक कार्यों का विचार करके गुप्तचरों को उनके कार्यों पर प्रेषित करे फिर भोजन करके अन्तःपुर में प्रवेश करे । वहाँ संगीत एवं वाद्यों से मनोरञ्जन करने के पश्चात् दूसरों से अपनी रक्षा का समुचित प्रबन्ध करके सो जाय । इस तरह से वह प्रतिदिन कार्य करे ।। १६-१७।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का राजा की दिनचर्या वर्णन नामक दो सौ पैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।। २३५ ।।

श्रीपुष्करजी ने कहा– हे राम ! अब मैं रणयात्रा की विधि बतलाते हुए संग्राम करने के नियमों को बतलाता हूँ । जब राजा की युद्धयात्रा एक सप्ताह में होने वाली हो तो पहले दिन श्रीहरि, भगवान् शंकर तथा मोदक आदि से गणेशजी की पूजा करनी चाहिए । दूसरे दिन दिक्पालों की पूजा करके शयन करना चाहिए ।। १-२ ।। शय्या पर अथवा उसके सामने देवताओं की पूजा करके इस मंत्र को पढ़ना चाहिए ।। वरदान देने वाले त्रिनेत्र भगवान् शंकर को नमस्कार है ।।३ ।। वामन, विरूप और स्वप्नाधिपति को नमस्कार है । हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! हे शूलधारी ! हे वृषवाहन ! आप मेरे सो जाने पर स्वप्न में यह बतला दें कि इस युद्ध में मेरा इष्ट होने वाला है ? या अनिष्ट ? ।। उससमय पुरोहित को (यज्जाग्रतो दूरम्) इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ।। ४-५ ।।तीसरे दिन दिशाओं की रक्षा करने वाले रुद्रों दिक्पतियों की पूजा करनी चाहिए ।चौथे दिन ग्रहों की पूजा करनी चाहिए और पाँचवें दिन अश्विनी कुमारों की पूजा करनी चाहिए ।। ६ ।। मार्ग में पड़ने वाले देवी-देवों की तथा नदियों की पूजा करनी चाहिए । द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा भूमि पर रहने वाले देवताओं को बलि देनी चाहिए ।। ७ ।। रात्रि में भूतगण तथा वासुदेव आदि देवताओं एवं भद्रकाली तथा लक्ष्मी आदि देवियों की पूजा करनी चाहिए । इसके पश्चात् सभी देवताओं से प्रार्थना करनी चाहिए ।। ८ ।। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न,

ह्यघोरो राम ! सत्यजः । सूर्य्यः सोमः कुजश्चान्द्रिजीवशुक्रशनैश्चराः ॥ १० ॥ राहुकेतुर्गणपतिः सेनानी चण्डिका ह्युमा । लक्ष्मीःसरस्वती दुर्गा ब्रह्माणी प्रमुखागणाः॥११॥ रुद्रा इन्द्रादयो वह्निनागास्ताक्ष्योऽपरे सुराः । दिव्यान्तरीक्षभूमिष्ठा विजयाय भवन्तु मे॥ १२॥ मर्दयन्तु रणे शत्रून् सम्प्रगृह्योपहारकम्। सपुत्रमातृभृत्योऽहं देवा वःशरणाङ्गतः ॥ १३॥ चमूनां पृष्टतो गत्वा रिपुनाशा नमोस्तु वः । विनिवृत्तः प्रदास्यामि दत्तादभ्यधिकं बलिम् ॥ १४ ॥ षष्ठेऽह्नि विजयस्नानं कर्त्तव्यं चाभिषेकवत् । यात्रादिने सप्तमे च पूजयेच्च त्रिविक्रमम्॥ १५॥ नीराजनोक्तमन्त्रैश्च आयुधं वाहनं यजेत् । पुण्याहजयशब्देन मन्त्रमेतन्निशामयेत् ॥ १६॥ दिव्यान्तरीक्षभूमिष्ठाः सन्त्वायुर्दाःसुराश्च ते । देवसिद्धिं प्राप्नुहि त्वं देवयात्रास्तु सा तव॥१७॥ रक्षन्तु देवताः सर्वा इति श्रुत्वा नृपो व्रजेत् । गृहीत्वा सशरञ्चापं धनुर्नागेति मन्त्रतः॥ १८॥ तद् विष्णोरिति जप्त्वाथ दद्याद्रिपुमुखे पदम्। दक्षिणं पदं द्वात्रिंशद् दिक्षु प्राच्यादिषु क्रमात् ॥ १९ ॥ नागं रथं हयञ्चैव धुर्य्यां श्चैवारुहेत् क्रमात् । आरुह्य वाद्यैर्गच्छेत पृष्ठतो नावलोकयेत्॥२०॥ क्रोशमात्रं गतस्तिष्ठेत् पूजयेद्देवता द्विजान्। परदेशं व्रजेत् पश्चादात्मसैन्यं हि पालयन्॥ २१॥ राजा प्राप्य विदेशन्तु देशपालन्तु पालयेत् । देवानां पूजनं कुर्य्यान् न छिन्द्यादायमत्रतु॥ २२॥ नावमानयेत् तद् देश्यानागत्य स्वपुरं पुनः । जयं प्राप्यार्च्चयेद्देवान् दद्याद् दानानि पार्थिवः॥२३ ॥ द्वितीयेऽहनि संग्रामो भविष्यति यदा तदा । स्नापयेद्गजमश्वादि यजेद् देवं नृसिंहकम्॥ २४॥ छत्रादिराजलिङ्गानि शस्त्राणि निशि वै गणान्। प्रातर्नृसिंहकं पूज्य वाहनाद्यमशेषतः॥२५॥ पुरोधसा हुतं पश्येद् वह्निं हुत्वा द्विजान् यजेत्। गृहीत्वा सशरञ्चापं गजाद्यारुह्य वै व्रजेत्॥२६॥

अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नरसिंह, वराह ।। ९ ।। शिव, ईश, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव,सद्योजात, सूर्य, सोम, भौम, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर ।। १० ।। राहु, केतु, गणपति, कार्तिकेय, चण्डिका, उमा लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, ब्रह्माणी आदि गण ।। ११ ।। रुद्र, इन्द्रादिदेव, बह्नि, नाग, गरुड़ तथा दूसरे देवता जो द्युलोक अन्तरिक्ष तथा पृथिवी पर रहने वाले हैं, मुझे विजय प्रदान करें ।। १२ ।। मेरे द्वारा दिये गये उपहार को स्वीकार करके युद्ध में शत्रुओं का मर्दन करें । हे देवों ! मैं अपने पुत्रों माता तथा भृत्यों के साथ आपकी शरण में आया हूँ ।। १३।। आप लोग सेना के पीछे जाकर हमारे शत्रुओं का नाश करें । आप लोगों को नमस्कार है । युद्ध विजय प्राप्त करके लौटने पर इस समय जो मैंने पूजा दी है उससे भी अधिक पूजा प्रदान करूँगा।।१४।। छठे दिन अभिषेक स्नान के ही समान विजय स्नान करना चाहिए । यात्रा के दिन सातवें दिन त्रिविक्रम भगवान् की पूजा करनी चाहिए ।। १५ ।। नीराजन के मन्त्रोंसे आयुधों एवं वाहनों की पूजा करनी चाहिए । ब्राह्मण राजा को (पुण्याह) उएवं 'जय' शब्द के साथ इस मन्त्र को सुनायें ।। १६ ।। द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा भूमि पर रहने वाले देवता आपको आयु प्रदान करें । तुम देवताओं की सिद्धि प्राप्त मत करो और आपकी वह यात्रा देवयात्रा बन जाय ।। १७ ।। सभी देवता आपकी रक्षा करें । इस मन्त्र को सुनकर राजा को युद्धयात्रा करनी चाहिए । 'धन्वना गा०' (यजु० वे० २/३९) इत्यादि मन्त्र से वह धनुष् एवं बाण धारण करे ।। १८ ।। तद्विष्णोः० (यजु० ६/५) इत्यादि मन्त्र का जप करते हुए वह शत्रु के समक्ष दाहिना पैर बढ़ाकर बत्तीस पग आगे जाय । फिर क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर में जाने के लिए क्रमशः हाथी, रथ, घोड़े तथा भार ढ़ोने में समर्थ जानवर पर सवार होए एवं जुझाऊ बाद्य बजाकर आगे बढ़े,पीछे की ओर न देखे ।। १९-२० ।। एक कोश जाकर रुक जाय तथा देवता एवं ब्राह्मणों की पूजा करे,पीछे से आती हुई अपनी सेना की रक्षा करते हुए राजा को दूसरे के देश में यात्रा करनी चाहिए ।। २१ ।। विदेश में भी जाकर राजा को अपने देश के आचार का पालन करना चाहिए । वह देवताओं की पूजा करे तथा दूसरों की आय नष्ट न करे।।२२।। वह उस देश के निवासियों का अपमान न करे । विजयप्राप्त करके स्वदेश लौटने पर राजा देवताओं का पूजन करे और दान दे ।। २३ ।।जब दूसरे दिन संग्राम प्रारम्भ होने वाला हो तो पहले दिन हाथी,घोड़े आदि वाहनों को नहलावे । और भगवान् नृसिंह की पूजा करे ।। २४ ।। रात्रि में छत्र आदि राजचिह्नों अस्त्र-शस्त्रों तथा भूतगणों की अर्चना करके प्रातःकाल भगवान् नृसिंह एवं समस्त वाहन आदि की पूजा करे ।। २५ ।। पुरोहित के द्वारा हवन किए गये अग्निदेव का दर्शन करके वह स्वयं भी उसमें आहुति डाले और ब्राह्मणों का सत्कार करके, धनुष बाण लेकर, हाथी आदि पर सवार होकर युद्ध करने के लिए जाय ।। २६ ।। शत्रु के देश में अदृश्य रहकर प्रकृति-कल्पना (मोर्चाबंदी) करनी चाहिए। यदि अपने पास थोड़े से सैनिक हों तो उन्हें एक स्थान पर संगठित

देशे त्वदृश्यः शत्रूणां कुर्य्यात् प्रकृतिकल्पनाम्। संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद् बहून् ॥ २७ ॥ सूचीमुखमनीकं स्यादल्पानांबहुभिः सह। व्यूहाःप्राण्यङ्गरूपाश्च द्रव्यरूपाश्च कीर्त्तिताः॥ २८॥ गरुडो मकरव्यूहश्चक्रः श्येनस्तथैव च । अर्द्धचन्द्रश्च वज्रश्च शकटव्यूह एव च ॥ २९ ॥ मण्डलः सर्वतोभद्रः सूचीव्यूहश्च ते नराः । व्यूहानामथ सर्वेषां पञ्चधा सैन्यकल्पना॥ ३०॥ द्वौ पक्षावनुपक्षौ द्वाववश्यंपञ्चमं भवेत् । एकेन यदि वा द्वाभ्यां भागाभ्यां युद्धमाचरेत्॥ ३१॥ भागत्रयं स्थापयेत् तु तेषां रक्षार्थमेव च । न व्यूहकल्पना कार्य्या राज्ञो भवति कर्हिचित् ॥ ३२ ॥ मूलच्छेदे विनाशःस्यान्न युध्येच्च स्वयं नृपः । सैन्यस्य पश्चात् तिष्ठेत् तु क्रोशमात्रं महीपतिः ॥ ३३ ॥ भग्नसन्धारणं तत्र योधानां परिकीर्त्तितम्। प्रधानभङ्गे सैन्यस्य नावस्थानं विधीयते॥ ३४॥ न संहतान् न विरलान् योधान् व्यूहे प्रकल्पयेत् । आयुधानान्तु सम्मर्दो यथा न स्यात् परस्परम्॥३५॥ भेत्तुकामः परानीकं संहतैरैव भेदयेत् । भेदरक्ष्याः परेणापि कर्त्तव्याःसंहतास्तथा ॥ ३६॥ व्यूहं भेदावहं कुर्य्यात् परव्यूहेषु चेच्छया । गजस्य पादरक्षार्थाश्चत्वारस्तु तथा द्विज॥ ३७॥ रथस्य चाश्वश्चत्वारःसमास्तस्य च चर्मिणः । धन्विनश्चर्मिभिस्तुल्याःपुरस्ताच्चर्मिणो रणे ॥ ३८ ॥ पृष्ठतो धन्विनःपश्चाद्धन्विनां तुरगा रथाः। रथानां कुञ्जराः पश्चाद् दातव्याःपृथिवीक्षिता॥३९॥ पदाति कुञ्जराश्वानां धर्मकार्य्यं प्रयत्नतः । शूराःप्रमुखतो देयाःस्कन्धमात्रप्रदर्शनम्॥ ४०॥ कर्त्तव्यं भीरुसङ्घेन शत्रुविद्रावकारकम्। दारयन्ति पुरस्तात् तु न देया भीरवः पुरः॥४१॥

रखकर युद्ध में प्रवृत्त करे और यदि अधिक सैनिक हों तो उन्हें अपनी इच्छानुसार फैला दे ।।२७ ।।थोड़े से सैनिकों का अधिक संख्या वाले योद्धाओं के साथ युद्ध करने के लिए 'सूचीमुख' नामक व्यूह उपयोगी होता है । व्यूह दो प्रकार के होते हैं प्राणियों के शरीर की भाँति तथा द्रव्यस्वरूप ।। २८ ।। गरुड़व्यूह, मकरव्यूह, चक्रव्यूह, श्येनव्यूह, अर्द्धचन्द्रव्यूह, वज्रव्यूह, शकटव्यूह, सर्वतोभद्रमण्डलव्यूह तथा सूचीव्यूह ये नौ व्यूह प्रख्यात हैं । सभी व्यूहों के सैनिकों को पाँच भागों में विभक्त किया जाता है ।। २९-३० ।। दो पक्ष दो अनुपक्ष तथा एक पाँचवाँ भाग चाहिए।।३१।। और शेष तीन भागों को उनकी रक्षा के लिए रखना चाहिए । स्वयं राजा को कहीं भी व्यूह में नहीं नियुक्त करना चाहिए क्योंकि राजा ही सबों की मूल है । मूल के उच्छिन्न होने पर तो विनाश हो जायेगा अतएव राजा को कहीं भी रहकर स्वयं युद्ध नहीं करना चाहिए । उसको सेना से एक कोश पीछे रहना चाहिए ।। ३२-३३ ।। वहाँ रहकर राजा को चाहिए कि युद्ध से भागे हुए सैनिकों को धैर्यधारण कराये । युद्ध में सेनापति के मारे जाने पर सेना रुक नहीं पाती है ।। ३४ ।।व्यूह योद्धाओं को न तो बहुत सटाकर खड़ा करना चाहिए और न तो बहुत दूर-दूर खड़ा करना चाहिए (उनको इतनी ही दूरी पर खड़ा करना चाहिए कि उनके हथियार आपस में टकराएँ नहीं ।। ३५।। शत्रु की मोर्चाबंदी को तोड़ने की इच्छा वाले राजा को संहत सेना के द्वारा ही उसे तोड़ने का प्रयास करना चाहिए । यदि शत्रु की सेना भी राजा की मोर्चेबन्दी को तोड़ने का प्रयासकर रही हो तो उसे अपने मोर्चे की रक्षा संहतसेना के द्वारा ही करनी चाहिए।।३६।। अपनी इच्छा के अनुसार सेना को ऐसा व्यूह बनाये कि वह शत्रु की सेना में प्रवेश करके उसका व्यूहभेदन कर सके । हाथी के पैर की रक्षा के लिए चार रथों को नियुक्त करना चाहिए । रथ की रक्षा के लिए चार घुड़सवार, उनकी रक्षा के लिए उतने ही ढाल-तलवार से युद्ध करने वाले सैनिक तथा उनकी रक्षा के लिए उतनी ही संख्या में धनुर्धारियों को तैनात करना चाहिए ।। ३७-३८ ।। उनके पीछे धनुर्धारी योद्धाओं को उनके पीछे घुड़सवारों को, घुड़सवारों के पीछे रथ और रथों के पीछे राजा को हाथियों की सेना नियुक्त करनी चाहिए।।३९।। पैदल, हाथी सवार और घुड़सवारों को प्रयत्नपूर्वक धर्मानुकूल युद्ध में संलग्न रहना चाहिए । युद्ध के प्रमुख स्थलों पर शूरवीरों को ही नियुक्त करना चाहिए । उनको ऐसा खड़ा करें कि उनके कन्धे मात्र दिखायी पड़ें ।। ४० ।। राजा की वीरसेना को ऐसा प्रयास करना चाहिए कि शत्रुओं की सेना पलायन कर जाय ।यदि आगे भीरु पुरुषों को खड़ा कर दिया जाय तो वे भागकर व्यूह को स्वयं ही तोड़ देते हैं ।। ४१ ।। जब युद्ध में शूरवीर आगे रहते हैं तो वे भीरु पुरुषों को संग्राम में प्रोत्साहित करते हैं । जो ऊँचे कद के तोते की नाक के समान नाक वाले, तथा सीधे देखने वाले होते हैं ।। ४२ ।। जिनकी दोनों भौंहें मिली हुई हों, जो क्रोधी,कलहप्रिय, सदा हर्ष एवं उत्साह में भरे रहने वाले तथा काम परायण हों । उन्हें शूरवीर समझना चाहिए।।४३।। संगठित

प्रोत्साहयन्त्येव रणे भीरून् शूराः पुरस्थिताः। प्रांशवःशुकनाशाश्च ये चाजिह्मेक्षणा नराः॥ ४२ ॥ संहतभ्रूयुगाश्चैव क्रोधनाः कलहप्रियाः। नित्यहृष्टाः प्रदृष्टाश्च शूराज्ञेयाश्च कामिनः॥ ४३॥ संहतानां हतानां च रणापनयनक्रिया । प्रतियुद्धं गजानाञ्च तोयदानादिकञ्च यत् ॥ ४४ ॥ आयुधानयनं चैव पत्तिकर्म विधीयते । रिपूणां भेत्तुकामानां स्वसैन्यस्य तु रक्षणम्॥ ४५॥ भेदनं संहतानाञ्च चर्मिणां कर्म कीर्त्तितम् । विमुखीकरणं युद्धे धन्विनाञ्च तथोच्यते ॥ ४६ ॥ दुरापसरणं यानं सुहतस्य तथोच्यते । त्रासनं रिपुसैन्यानां रथकर्म तथोच्यते ॥ ४७ ॥ भेदनं संहतानाञ्च भेदानामपि संहतिः । प्राकारतोरणाट्टालद्रुमभङ्गश्च सद्गजे ॥ ४८ ॥ पत्तिभूर्विषमा ज्ञेया रथाश्वस्यतथा समा । सकर्मदा च नागानां युद्धभूमिरुदाहृता ॥ एवं विरचितव्यूहःकृतपृष्ठदिवाकरः । तथानुलोमशुक्रार्किदिक्पालमृदुमारुताः॥ ५० ॥ योधानुत्तेजयेत् सर्वान् नामगोत्रावदानतः। भोगप्राप्त्या च विजये स्वर्गप्राप्त्या मृतस्य च ॥ ५१ ॥ जित्वारीन् भोगसम्प्राप्तिः-मृतस्य च परागतिः । निष्कृतिः स्वामिपिण्डस्य नास्ति युद्धसमा गतिः॥ ५२ ॥ शूराणां रक्तमायाति तेन पापं त्यजन्ति ते । घातादिदुःखसहनं रणे तत् परमं तपः ॥ ५३॥ वराप्सरः सहस्राणि यान्ति शूरं रणे मृतम्। स्वामीसुकृतमादत्ते भग्नानां विनिवर्त्तिनाम्॥ ५४॥ ब्रह्महत्याफलं तेषां तथा प्रोक्तं पदे पदे । त्यक्त्वा सहायान् यो गच्छेद् देवास्तस्य विनष्टये॥५५॥ अश्वमेधफलं प्रोक्तं शूराणामनिवर्त्तिनाम् । धर्मनिष्ठे जयो राज्ञि योद्धव्याश्च समाःसमैः॥ ५६॥ गजाद्यैश्च गजाद्याश्च न हन्तव्याः पलायिनः । न प्रेक्षकाः प्रविष्टाश्च अशस्त्राः पतितादयः॥ ५७ ॥ शान्ते निद्राभिभूते च अर्द्धोतीर्णे नदीवने। दुर्दिने कूटयुद्धानि शत्रुनाशार्थमाचरेत् ॥ ५८॥ बाहू

वीरों में जो मारे जायँ, अथवा घायल हों उनको युद्धभूमि से दूर ले जाना युद्ध के भीतर जाकर हाथियों को पानी पिलाना ।। ४४ ।। तथा हथियार पहुँचाना ये सब पैदल सेना के काम हैं । अपनी सेना का भेदन करने की इच्छा रखने वाले शत्रुओं से उसकी रक्षा करना और संगठित होकर युद्ध करने वाले शूरवीरों का व्यूह तोड़ डालना- ये ढाल तलवार लेकर लड़ने वाली सेना के काम हैं ।। ४५।। युद्ध में विपक्षी योद्धाओं को मार भगाना धनुर्धरवीरों का काम है ।। ४६ ।। अत्यन्त घायल योद्धा को युद्धभूमि से दूर ले जाना पुनः युद्ध में आना एवं शत्रु की सेना में भय उत्पन्न करना, ये सभी रथी योद्धा के काम हैं ।। ४७ ।। संगठित व्यूह को तोड़ना तथा रथ टूटे हुए व्यूह को जोड़ना चहारदिवारी, तोरण (सदर दरवाजा) अटालिका और वृक्षों को भंग करना- यह अच्छे हाथी का पराक्रम है ।। ४८ ।। ऊँची-नीची भूमि पैदल सेना के लिए उपयोगी होती है रथ एवं अश्वों के लिए समतल भूमि अच्छी होती है । कीचड़ से युक्त भूमि हाथियों के लिए अच्छी होती है । इस तरह से युद्ध भूमि बतलायी गयी है ।। ४९ ।। इस प्रकार राजा को चाहिए कि वह ब्यूह रचना करके जबसूर्य पीठ की ओर हों,शुक्र, शनैश्चर और दिक्पाल अपने अनुकूल हों, सामने से मन्द-मन्द हवा आ रही हो, उस समय उत्साहपूर्वक युद्ध करना चाहिए तथा अपने नाम एवं गोत्र की प्रशंसा करते हुए सम्पूर्ण योद्धाओं का उत्साह बढ़ाते रहना चाहिए। योद्धाओं को बतलाना चाहिए कि विजय प्राप्ति होने पर उत्तम-भोगों की प्राप्ति होगी और मारे जाने पर स्वर्ग का सुख प्राप्त होगा ।। ५०-५१ ।। वीर पुरुष विजय प्राप्त करके भोगों को प्राप्त करता है और युद्ध में मारे जाने पर उसे परमगति की प्राप्ति होती है । युद्ध में मारे जाने पर स्वामी के खाये हुए अन्न के भरण से मुक्ति मिल जाती है, अतएव युद्ध के समान कोई दूसरी श्रेष्ठ गति नहीं है ।। ५२ ।। शूरवीरों के शरीर से जब खून निकलता है तब वे पापमुक्त हो जाते हैं । युद्ध में जो शस्त्र प्रहार का कष्ट भोगना पड़ता है, वही बहुत बड़ी तपस्या है । रण में प्राण त्याग करने वाले के साथ हजारों सुन्दरी अप्सराएँ चलती हैं । युद्धमें पीठ दिखाने वाले का सम्पूर्ण पुण्य स्वामी को मिल जाता है ।। ५३-५४ ।। युद्ध से पलायन करने वाले को पग-पग पर ब्रह्महत्या का पाप लगता है । जो अपने सहायकों को छोड़कर भाग जाता है देवता उसका विनाश कर देते हैं ।। ५५ ।। युद्ध से पलायन नहीं करने वाले शूरवीरों को अश्वमेधयज्ञ करने का फल प्राप्त होता है । जो राजा धर्म का पाजलन करता है, उसको ही विजय प्राप्त होता है । जो राजा धर्म का पालन करता है, उसको ही विजय प्राप्त होती है । युद्ध में अपने समान योद्धा के साथ ही युद्ध करना चाहिए ।। ५६ ।। हाथी सवार आदि सैनिक हाथी सवार आदि के साथ ही युद्ध करे । वे युद्ध से भागने वालों को न मारें । उन्हें युद्ध देखने वालों, शस्त्रहीनों तथा भूमि पर गिरे हुओं को नहीं मारना चाहिए ।। ५७ ।। जो योद्धा शान्त हो या थक गया हो, सो गया हो, नदी या जंगल के बीच में पड़ा हो उसको भी नहीं मारना चाहिए। शत्रु का नाश करने

प्रगृह्य विक्रोशेद् भग्ना भग्नाः परे इति । प्राप्तं मित्रं बलं भूरि नायकोऽत्र निपातितः ॥ ५९ ॥ सेनानीर्निहतश्चायं भूपतिश्चापि विप्लुतः । विद्रुतानान्तु योधानां सुखं घातो विधीयते॥ ६०॥ धूपाश्च देया धर्मज्ञ ! तथा च परमोहनाः । पताकाश्चैव सम्भारो वादित्राणां भयावह॥ ६१॥ सम्प्राप्य विजयं युद्धे देवान् विप्रांश्च संयजेत् । रत्नानि राजगामीनि अमात्येन कृते रणे॥६२॥ तस्य स्त्रियो न कस्यापि नक्ष्यास्ताश्च परस्य च । शत्रुं प्राप्य रणे मुक्तं पुत्रवत् परिपालयेत् ॥ ६३ ॥ पुनस्तेन न योद्धव्यं देशाचारादि पालयेत् । ततश्च स्वपुरं प्राप्य ध्रुवेभे प्रविशेद् गृहम् ॥ ६४॥ देवादिपूजनं कुर्य्याद्रक्षेद् योधकुटुम्बकम्। संविभागं परावाप्तैःकुर्य्याद् भृत्यजनस्य च। रणदीक्षा मयोक्ता ते जयाय नृपतेर्ध्रुवा ॥ ६५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रणदीक्षाकथनं नाम षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३६॥

सप्तत्रिंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्रीस्तोत्रम्

पुष्कर उवाच– **राजलक्ष्मीस्थिरत्वाय यथेन्द्रेण पुरा श्रियः। स्तुतिः कृता तथा राजा जयार्थं स्तुतिमाचरेत् ॥ १ ॥** इन्द्र उवाच– **नमस्ये सर्वलोकानां जननीमब्धिसम्भवाम् । श्रियमुन्निद्रपद्माक्षीं विष्णुवक्षःस्थलस्थिताम् ॥ २ ॥ त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा सुधा त्वं लोकपावनि । सन्ध्या रात्रिः प्रभाभूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती ॥ ३ ॥ यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने । आत्मविद्या च देवी ! त्वं विमुक्तिफलदायिनि॥४॥ आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्त्वमेव च । सौम्या सौम्यैर्जगद्रूपैस्त्वयैतद् देवि ! पूरितम् ॥ ५ ॥ का त्वन्या त्वामृते देवि ! सर्वयज्ञमयं वपुः।**

के लिए दुर्दिन में कूट युद्ध करना चाहिए ।। ५८ ।। कूट युद्ध करने वाला अपनी भुजाओं को उठाकर चिल्लाये कि हमारे शत्रु भाग गये-भाग गये। हमारे मित्र की सेना आ गयी है ।शत्रु का सेना नायक मारा गया ।। ५९ ।। उसके सेनापति तथा राजा भी मारे गये। जब शत्रुओं की सेना यह सुनकर भाग चले तो उसको मारना आसान हो जाता है ।। ६०।। शत्रुओं को मोहित करने के लिए कृत्रिम धूप की सुगन्धि फैलानी चाहिए । पताकाएँ फहरानी चाहिए तथा वाद्यों की भयंकर ध्वनि सुनानी चाहिए ।। ६१ ।। युद्ध में विजय प्राप्त करके राजा देवताओं एवं ब्राह्मणों की अच्छी तरह से पूजा करे । आमात्य के द्वारा किए गये युद्ध में रत्न प्राप्त हुए हों उन्हें राजा को ही मिलने चाहिए ।। ६२ ।। स्त्री पर किसी का भी अधिकार नहीं होता । यदि शत्रु की भी स्त्री हो तो उसकी रक्षा करनी चाहिए । यदि संग्राम में सहायकों से रहित शत्रु राजा मिल जाय तो उसका पालन पुत्र के समान करना चाहिए ।। ६३ ।। उसके साथ पुनः युद्ध करना उचित नहीं होता है । उसके प्रति देशोचित आचार आदि का पालन करना चाहिए । युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् अपने नगर में जाकर ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रों (तीनों उत्तरा) में राजमहल में प्रवेश करना चाहिए ।। ६४ ।। फिर देवताओं की पूजा करके योद्धाओं के परिवार की रक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए । शत्रु के यहाँ से प्राप्त सम्पत्ति का कुछ भाग भृत्यों में भी बाँट देना चाहिए। इस प्रकार मैंने आपको रक्षा दीक्षा बतलाया, इसके अनुसार युद्ध करने से निश्चित रूप से विजय की प्राप्ति होती है।। ६५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का रणदीक्षा वर्णन नामक दो सौ छत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३६॥

श्रीपुष्करजी ने कहा– पूर्वकाल में इन्द्र ने राज्यलक्ष्मी की स्थिरता के लिए जिस प्रकार से स्तुति की थी, उसी तरह से राजा भी अपने विजय प्राप्ति के लिए लक्ष्मी जी की स्तुति करे।।१।। **इन्द्र ने कहा–** जो सम्पूर्ण जगत् की माता हैं, जो समुद्र से उत्पन्न हैं, जिनके नेत्र विकसित कमल के समान सुन्दर हैं तथा जो भगवान् विष्णु के वक्षस्थल में स्थित हैं, उन श्री देवी को मैं नमस्कार करता हूँ ।। २ ।। हे जगत् को पवित्र करने वाली देवि ! तुम ही सिद्धि हो, रात्रि हो, प्रभा हो, भूति हो, मेधा हो, श्रद्धा हो और सरस्वती हो ।। ३ ।। हे शोभामयि देवि ! आप ही यज्ञविद्या

अध्यास्ते देव ! देवस्य योगिचिन्त्यं गदाभृतः॥ ६ ॥ त्वया देवी ! परित्यक्तं सकलं भुवनत्रयम् । विनष्टप्रायमभवत् त्वयेदानीं समेधितम् ॥ ७॥ दाराः पुत्रास्तथागारं सुहृद्धान्यधनादिकम् । भवत्येतन्महाभागे ! नित्यं त्वद्वीक्षणान् नृणाम् ॥ ८ ॥ शरीरारोग्यमैश्वर्य्यमरिपक्षक्षयः सुखम् । देवि! त्वद्दृष्टिदृष्टानां पुरुषाणां न दुर्लभम्॥ ९॥ त्वमम्बा सर्वभूतानां देवदेवो हरिः पिता । त्वयैतद् विष्णुना चाम्ब! जगद् व्याप्तं चराचरम् ॥ १०॥ मनः कोषं तथागोष्ठं मा गृहं मा परिच्छदम् । मा शरीरं कलत्रञ्च त्यजेथाः सर्वपावनि॥ ११॥ मा पुत्रान् मा सुहृद्वर्गान् मा पशून् मा विभूषणम् । त्यजेथा मम देवस्य विष्णोर्वक्षःस्थलालये ॥ १२ ॥ सत्त्वेन सत्यशौचाभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः । त्यजन्ते ते नराः सद्यः सन्त्यक्ता ये त्वयामले॥१३॥ त्वयावलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः । कुलैश्वर्य्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि ॥ १४ ॥ स श्लाघ्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान् । स शूरः स च विक्रान्तो यस्त्वया देवी ! वीक्षितः ॥ १५ ॥ सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः । पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवल्लभे ! ॥ १६ ॥ न ते वर्णयितुं शक्ता गुणान् जिह्वापि वेधसः। प्रसीद देवी !पद्माक्षि ! नास्मांस्त्याक्षीः कदाचन॥१७॥ एवं स्तुता ददौ श्रीश्च वरमिन्द्राय चेप्सितम् । सुस्थिरत्वञ्च राज्यस्य संग्रामविजयादिकम् ॥ १८ ॥ स्वस्तोत्रपाठश्रवणकर्तृणां भुक्तिमुक्तिदम् । श्रीस्तोत्रं सततं तस्मात् पठेच्च शृणुयान्नरः ॥ १९ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये श्रीस्तोत्रकथनं नाम सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३७ ॥

हैं, महाविद्या हैं और गुह्यविद्या हैं । हे मोक्षरूपी फल प्रदान करने वाली देवि ! आप ही आत्मविद्या भी हैं ।। ४ ।। आपही आन्विक्षिकी (दर्शनशास्त्र) त्रयी (ऋक्, यजुएवं सामवेद) वार्ता (जीविका प्रधान,कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य आदि)एवं दण्डनीति स्वरूप हैं । हे देवि ! आपके सौम्य, असौम्य दोनों प्रकार के रूपों से यह जगत् व्याप्त है ।। ५ ।। हे देवि ! आपसे भिन्न कौन सी दूसरी स्त्री है जो कौमोदकी गदा को धारण करने वाले, सर्वयज्ञशरीरक देवाधिदेव तथा योगिचिन्त्य श्री भगवान् के शरीर को अपना निवास स्थान बना सके ।। ६ ।। हे देवि ! आपके द्वारा परित्यक्त होकर यह सम्पूर्ण त्रिलोकी विनष्ट प्राय हो गयी थी,अब पुनः आपकी दयादृष्टि से यह समृद्ध हो गयी है ।। ७ ।। हे देवि ! आपकी ही दयादृष्टि को पाकर सभी लोग, स्त्री, पुत्र, गृह, मित्र तथा धान्य-धन आदि प्राप्त करते हैं ।। ८ ।। हे देवि ! जिन पुरुषों पर आपकी दया दृष्टि पड़ जाती है, उन्हें शारीरिक आरोग्य, ऐश्वर्य, शत्रु पक्ष का क्षय तथा सुख की प्राप्ति दुर्लभ नहीं होते हैं।।९।। आपही सम्पूर्ण जीवों की माँ हैं तथा देवाधिदेव भगवान् विष्णु सम्पूर्ण जगत् के पिता हैं, हे माँ ! आप तथा भगवान् विष्णु के द्वारा यह चराचर जगत् व्याप्त है ।। १० ।। हे सम्पूर्ण जगत् को पवित्र करने वाली देवि ! आप हमारे कोष,गोष्ठ, मेरे गृह, मेरे साज-सामान, मेरे शरीर तथा स्त्री का त्याग कभी न करें ।। ११ ।। हेभगवान् विष्णु के वक्षःस्थल में निवास करने वाली देवि! आप मेरे पुत्रों,मित्र मण्डली, पशुओं तथा आभूषणों का कभी भी त्याग न करें ।। १२ ।। हे निर्मल स्वरूप वाली देवि ! जिन मनुष्यों को आप त्याग देती हैं,उन्हें सत्य, समता, पवित्रता तथा शील आदि गुण भी त्याग देते हैं ।। १३ ।। हे देवि ! आपकी दयादृष्टि जिस मनुष्य पर पड़ जाती है, वे निर्गुण मनुष्य भी शीघ्र ही शील आदि गुणों कुल तथा ऐश्वर्य से सम्पन्न हो जाते हैं।।१४।। हे देवि ! जिसको आप कृपापूर्वक देख लेती हैं वही मनुष्य प्रशंसनीय, गुणी, धन्य, कुलीन, बुद्धिमान, शूरवीर धन और पराक्रमी हो जाता है ।। १५।। हे भगवान् विष्णु की प्रियतमे लक्ष्मी देवि ! जिससे आप अपना मुख फेर लेती हैं, उसके शील आदि समस्त गुण दोष के रूप में परिणत हो जाते हैं ।। १६ ।। आपके गुणों का कात्स्न्यैंन वर्णन ब्रह्माजी भी अपने मुख से नहीं कर सकते हैं, हे देवि ! आप प्रसन्न होइये, हे पद्माक्षि ! आप कभी भी हम लोगों का परित्याग न करें ।। १७ ।। **श्रीपुष्करजी कहते हैं-** इन्द्र के द्वारा इस प्रकार से स्तुति किए जाने पर श्रीलक्ष्मीजी ने उन्हें राज्य के सुस्थिर रहने का तथा संग्राम में विजयप्राप्ति आदि काअभिप्रेत वरदान प्रदान किया ।। १८ ।। उन्होंने अपने इस स्तोत्र का पाठ करने वाले तथा श्रवण करने वालों के लिए भोग तथा मोक्ष प्रदान करने का वरदान दिया । अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह इस लक्ष्मी की स्तुति का सदा पाठ करे तथा श्रवण करे ।। १९ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का श्रीलक्ष्मीस्तोत्र वर्णन नामक दो सौ सैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३७ ॥

अष्टत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

रामोक्तनीतिः

अग्निरुवाच— नीतिस्ते पुष्करोक्ता तु रामोक्ता लक्ष्मणाय या । जयाय तां प्रवक्ष्यामि शृणु धर्मादिवर्द्धनीम् ॥ १ ॥ राम उवाच— न्यायेनार्जनमर्थस्य वर्द्धनं रक्षणं चरेत् । सत्पात्रप्रतिपत्तिश्च राजवृत्तं चतुर्विधम् ॥ २ ॥ नयस्य विनयो मूलं विनयःशास्त्रनिश्चयात् । विनयो हीन्द्रियजयस्तैर्युक्तः पालयेन्महीम् ॥ ३ ॥ शास्त्रं प्रज्ञा धृतिर्दाक्ष्यं प्रागल्भ्यं धारयिष्णुता । उत्साहो वाग्मितौदार्य्यमापत्कालसहिष्णुता ॥ ४ ॥ प्रभावः शुचिता मैत्री त्यागःसत्यं कृतज्ञता। कुलशीलं दमश्चेति गुणाः सम्पत्तिहेतवः॥ ५॥ प्रकीर्णविषयारण्ये धावन्तं विप्रमाथिनम् । ज्ञानाङ्कुशेन कुर्वीत वश्यमिन्द्रियदन्तिनम्॥६॥ कामःक्रोधस्तथा लोभो हर्षो मानो मदस्तथा । षड्वर्गमुत्सृजेदेनमस्मिंस्त्यक्ते सुखी नृपः॥ ७ ॥ आन्वीक्षिकीं त्रयीं वार्त्तां दण्डनीतिं च पार्थिवः । तद्विद्यैस्तत्क्रियोपेतैश्चिन्तयेद् विनयान्वितः॥ ८ ॥ आन्वीक्षिक्यार्थविज्ञानं धर्माधर्मौ त्रयीस्थितौ । अर्थानर्थौ तु वार्त्तायां दण्डनीत्यां नयानयौ ॥ ९ ॥ अहिंसा सूनृता वाणी सत्यं शौचं दया क्षमा । वर्णिनां लिङ्गिनां चैव सामान्यो धर्म उच्यते॥ १०॥ प्रजाःसमनुगृह्णीयात् कुर्य्यादाचारसंस्थितिम्। वाक्सूनृता दया दानं हीनोपगतरक्षणम् ॥ ११ ॥इति वृत्तं सतां साधुहितं सत्पुरुषव्रतम् । आधिव्याधिपरीताय अद्य श्वो वा विनाशिने॥ १२॥ को हि राजा शरीराय धर्मापेतं समारचेत् । न हि स्वसुखमन्विच्छन् पीडयेत् कृपणं जनम्॥१३॥ कृपणः पीड्यमानो हि मन्युना हन्ति पार्थिवम् । क्रियतेऽभ्यर्हणीयाय स्वजनाय यथाञ्जलिः ॥ १४ ॥ ततः साधुतरःकार्य्यो दुर्जनाय शिवार्थिना। प्रियमेवाभिधातव्यं

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ ! मैंने आपको श्रीपुष्करजी के द्वारा वर्णित नीति का उपदेश दिया अब श्रीराम द्वारा श्रीलक्ष्मणजी को दी गयी नीति का वर्णन करता हूँ। जो विजय को प्रदान करने वाली एवं धर्म को बढ़ाने वाली है ।। १ ।। **श्रीराम ने कहा**- लक्ष्मण! न्याय के द्वारा धन का अर्जन करके उसको बढ़ाना चाहिए तथा उसकी रक्षा करनी चाहिए । पुनः उसे सत्पात्र में लगाना चाहिए । इस तरह राजा के चार प्रकार के व्यवहार बतलाये गये हैं ।। २ ।। नय (न्याय) का मूल विनय (विनम्रता) है और उसकी प्राप्ति शास्त्रों के निश्चयसे होती है । इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना ही विनय है। जितेन्द्रिय होकर ही पृथिवी की रक्षा करनी चाहिए ।। ३ ।। शास्त्रज्ञान, प्रज्ञा, धैर्य, दक्षता, प्रगल्भता (बोलने की चतुरता) धारण करने की शक्ति, उत्साह, वाग्मिता, औदार्य तथा आपत्ति के समय सहने की शक्ति, प्रभाव, पवित्रता, मैत्री, त्याग, सत्य, कृतज्ञता, कुलशील तथा दम ये सम्पत्ति प्राप्त कराने वाले गुण हैं ।। ४-५ ।। विस्तृत विषयरूपी बन में दौड़ते हुए निरंकुश तथा विप्रमाथी (विनाशकारी) इन्द्रियरूपी हाथी को ज्ञानरूपी अंकुश से अपने वश में करना चाहिए ।। ६ ।। काम, क्रोध, लोभ, हर्ष, मान तथा मद इन छहों के समुदाय का त्याग कर देना चाहिए । इन सबों का त्याग करके राजा सुखी हो जाता है ।। ७ ।। राजा को चाहिए कि वह आन्विक्षिकी, त्रयी, वार्ता तथा दण्डनीति के अभिज्ञ पुरुषों तथा इन सबों का अनुष्ठान करने वाले पुरुषों के साथ विनम्रता पूर्वक बैठकर चिन्तन करे ।। ८ ।। आन्विक्षिकी से अर्थविज्ञान की प्राप्ति होती है, धर्म एवं अधर्म का ज्ञान त्रयी से होता है ।। ९ ।। अहिंसा, मधुर वचन बोलना, सत्य बोलना, पवित्रता रखना, दया तथा क्षमा ये चारों वर्णों के तथा चारों आश्रमों के लोगों के सामान्य धर्म है ।। १० ।। राजा को चाहिये कि वह प्रजाओं पर अनुग्रह करे, सदाचार के पालन में संलग्न रहे, मधुरवाणी, दीनों पर दया, देश एवं काल के अनुसार सत्पात्र को दान, दीनों तथा शरणागतों की रक्षा एवं सत्पुरुषों के संग-ये सत्पुरुषों के आचार हैं ।। ११ ।। यह शरीर मानसिक चिन्ताओं तथा रोगों से घिरा हुआ है । आज अथवा कल इसका विनाश निश्चित है । इसके लिए कौन राजा धर्म के विपरीत आचरण करेगा?।। १२।। अपने सुख प्राप्ति की इच्छा से दुखी लोगों को पीड़ा नहीं देना चाहिए । क्योंकि सताया गया दुःखी मनुष्य अपने क्रोध के द्वारा अत्याचारी राजा का विनाश कर देता है।। १३ ।। जिस तरह अपने

सत्सु नित्यं द्विषत्सु च॥ १५॥ देवास्ते प्रियवक्तारः पशवःक्रूरवादिनः। शुचिरास्तिक्यपूतात्मा पूजयेद् देवताः सदा॥ १६॥ देवतावद् गुरुजनमात्मवच्च सुहृज्जनम्। प्रणिपातेन हि गुरुं सतोऽमृषानुचेष्टितैः ॥ १७॥ कुर्वीताभिमुखान् भृत्यैर्देवान् सुकृतकर्मणा। सद्भावेन हरेन् मित्रं सम्भ्रमेण च बान्धवान्॥ १८ ॥ स्त्रीभृत्यान् प्रेमदानाभ्यां दाक्षिण्येनेतरं जनम्। अनिन्दापरकृत्येषु स्वधर्मपरिपालनम्॥ १९॥ कृपणेषु दयालुत्वं सर्वत्र मधुरा गिरः। प्राणैरप्युपकारित्वं मित्रायाव्यभिचारिणे ॥ २०॥ गृहागते परिष्वङ्गः शक्त्या दानं सहिष्णुता। स्वसमृद्धिष्वनुत्सेकः परवृद्धिष्वमत्सरः॥२१॥ अपरोपतापि वचनं मौनव्रतचरिष्णुता। बन्धुभिर्बद्धसंयोगः स्वजने चतुरस्रता। उचितानुविधायित्वमिति वृत्तं महात्मनाम् ॥ २२ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रामोक्तनीतिकथनं नामाष्टत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३८॥

ऊनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्माः

राम उवाच– **स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रञ्च दुर्गं कोषो बलं सुहृत्। परस्परोपकारीदं सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते॥ १॥ राज्याङ्गानां वरं राष्ट्रं साधनं पालयेत् सदा। कुलं शीलं वयः सत्त्वं दाक्षिण्यं क्षिप्रकारिता ॥ २ ॥ अविसंवादिता सत्यं वृद्धसेवा कृतज्ञता। दैवसम्पन्नता बुद्धिरक्षुद्रपरिवारता ॥ ३॥**

पूजनीय लोगों को आदरपूर्वक हाथ जोड़ा जाता है, कल्याणकामी राजा को उससे भी अधिक सत्कार दुष्टों का करना चाहिए ।। १४ ।। चाहे सज्जन पुरुष हों अथवा दुर्जन सदा प्रिय ही बोलना चाहिए क्योंकि प्रियवादियों को देवता कहा गया है और अप्रियवादी को पशु ।। १५ ।। भीतर एवं बाहर से पवित्र रहकर राजा को आस्तिकता द्वारा अन्तःकरण को पवित्र बनाकर सदा देवताओं की पूजा करनी चाहिए । उसे गुरुजनों का देवताओं के समान ही सम्मान करना चाहिए तथा मित्रों को अपने समान मानकर उनका सम्मान करना चाहिए ।। १६।। राजा अपने ऐश्वर्य की रक्षा के लिए गुरुजनों को प्रतिदिन प्रणाम द्वारा अनुकूल बनाए, सज्जनों को अपने भृत्यों के सत्य व्यवहार के द्वारा तथा अपने पुण्यकर्मों के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करना चाहिए ।। १७ ।। मित्रों के मन को अपने सद्भाव के द्वारा, बान्धवों को विशेष सम्मान के द्वारा अनुकूल बनाना चाहिए, स्त्री को प्रेम के द्वारा, भृत्यों को दान के द्वारा तथा इनसे भिन्न लोगों का हृदय अपनी अनुकूलता दिखाकर जीतना चाहिए ।। १८ ।। दूसरे लोगों की निन्दा न करना अपने वर्ण एवं आश्रम के धर्मों का अच्दी तरह से पालन करना, दीनों पर दया दिखलाना, सबों से मधुर भाषण करना, अपने अनन्य मित्र के प्रति प्राण देकर भी उसका उपकार करने के लिए तैयार रहना ।। २० ।। घर पर आये मित्रों को हृदयसे लगना, उनके प्रति अत्यन्त स्नेह प्रकट करना, आवश्यकता हो तो उनके लिए यथा शक्ति धन देना, दूसरों के कठोर व्यवहार एवं कटुवचन को बर्दास्त करना, अपनी समृद्धि के काल में अत्यन्त हर्षाभिव्यक्ति न करना, दूसरों की वृद्धि को देखकर ईर्ष्या न करना ।। २१ ।। दूसरों को संतप्त करने वाली वाणी न बोलना, मौनव्रत धारण करना, अपने बान्धवों के साथ अटूट सम्बन्ध बनाये रखना अपने लोगों के साथ चतुरस्र सम्बन्ध बनाना, अपने लोगों की उचित बातों को ज़स्वीकार करना और उसके अनुसार कार्य करना ये महात्माओं के आचार हैं ।। २२ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का रामोक्तनीति वर्णन नामक दो सौ अड़तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३८ ॥

श्रीराम ने कहा– स्वामी, आमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, सेना, मित्र ये परस्पर में एक दूसरे के उपाकरक सात अंग हैं ।। १ ।। राजा को राज्य के अंगों में श्रेष्ठ तृतीय अंग राष्ट्र एवं उसके साधन का पालन करना चाहिए । कुलीनता, सत्त्व (निर्विकारता) युवावस्था, शील, दाक्षिण्य (सबों के प्रति अनुकूल बने रहना) शीघ्रकारिता, अविसंवादिता (परस्पर विरोधी बातों को न कहना)

शक्यसामन्तता चैव तथा च दृढ़भक्तिता। दीर्घदर्शित्वमुत्साहः शुचिता स्थूललक्षिता॥ ४॥ विनीतत्वं धार्मिकता साधोश्चनृपतेर्गुणाः। प्रख्यातवंशमक्रूरं लोकसंग्रहिणं शुचिम्॥ ५॥ कुर्वीतात्महिताकाङ्क्षी परिचारं महीपतिः। वाग्मी प्रगल्भःस्मृतिमानुदग्रो बलवान् वशी ॥ ६ ॥ नेता दण्डस्य निपुणःकृतशिल्पपरिग्रहः। पराभियोगप्रसहःसर्वदुष्ट प्रतिक्रिया ॥ ७॥ परवृत्तान्ववेक्षी च सन्धिविग्रहतत्त्ववित्। गूढ़मन्त्रप्रचारज्ञो देशकालविभागवित्॥८॥ आदाता सम्यगर्थानां विनयोक्ता च पात्रवित्। क्रोधलोभभयद्रोहदम्भचापलवर्जितः॥ ९॥ परोपतापपैशून्यमात्सर्य्येर्षानृतातिगः। वृद्धोपदेशसम्पन्नः शक्तो मधुरदर्शनः॥ १० ॥ गुणानुरागस्थितिमानात्मसम्पद्गुणाःस्मृताः। कुलीनाः शुचयः शूराःश्रुतवन्तोऽनुरागिणः ॥ ११ ॥ दण्डनीतेः प्रयोक्तारः सचिवाःस्युर्महीपतेः। सुविग्रहो जानपदःकुलशीलकलान्वितः॥ १२ ॥ वाग्मी प्रगल्भश्चक्षुष्मान्नुत्साही प्रतिपत्तिमान्। स्तम्भचापलहीनश्च मैत्रःक्लेशसहः शुचिः ॥ १३ ॥ सत्यसत्त्वधृतिस्थैर्य्यप्रभावारोग्यसंयुतः। कृतशिल्पश्च दक्षश्च प्रज्ञावान्धारणान्वितः॥ १४ ॥ दृढ़िभक्तिरकर्त्ता च वैराणां सचिवो भवेत्। स्मृतिस्तत्परतार्थेषु चित्तज्ञो ज्ञाननिश्चयः॥ १५ ॥ दृढ़ता मन्त्रगुप्तिश्च मन्त्रिसम्पत् प्रकीर्त्तिता। त्रय्यां च दण्डनीत्यां च

सत्य बोलना, वृद्धों की सेवा करना, कृतज्ञता (दूसरों के द्वारा किए गये उपकार को याद रखना) दैवसम्पन्नता, बुद्धि (शुश्रुषा आदि आठ गुणों से युक्त प्रज्ञा) दुष्ट परिवार सेयुक्त न होना ।। २-३।। शक्यसामन्तता (आस-पास के छोटे राजाओं को अपने वश में किए रहना) सुदृढ़ अनुराग, दीर्घदर्शिता, उत्साह, शुद्धचिन्तन, स्थूललक्षता (अत्यन्त मनस्वी होना) ।। ४ ।। विनीतता एवं धार्मिकता, ये अच्छे राजा के गुण हैं ।। ४ ।। जो प्रख्यात वंश में उत्पन्न हो, क्रूर स्वभाव का न हो तथा गुणवान् लोकसंग्रह करने वाले तथा पवित्र लोगों को राजा को अपना परिवार बनाना चाहिए।। ५।। वाग्मी (उत्तम वक्ता) प्रगल्भः (सभा में निर्भय होकर सबों का उचित उत्तर देने वाला) स्मृतिमान् , (सभी बातों को याद रखने वाला, उदग्र (ऊँचा कद वाला) बलवान् वशी (जितेन्द्रिय) दण्डनेता (चतुरंगिणी सेना का सम्यक् संचालन करने वाला) निपुण (व्यवहार कुशल) शिल्प विद्या को जानने वाला, पराभियोग प्रसहः शत्रुओं द्वारा किए गये आक्रमण आदि से उत्पन्न कष्ट को बर्दास्त करने वाला) सर्वदृष्ट प्रतिक्रियः (सभी प्रकार के संकटों को दूर करने वाले उपाय को सहसा जान लेने वाला) ।। ७ ।। परच्छिद्रान्वेशी (शत्रुओं के दोषों का गुप्तचर द्वारा पता लगाने वाला) संधि तथा विग्रह के तत्व को जानने वाला गूढ़मन्त्र प्रचारज्ञ (मन्त्रणा को गुप्त रखने तथा उसका प्रचार कराने की विधि को जानने वाले ।) देशकाल विभागवित् (किस प्रकार की सेना किस देश तथा किस काल में विजय प्राप्त कर पायेगी, इस बात को जानने वाले) ।। ८ ।। प्रजाओं से न्याय पूर्वक धन लेने वाला, उसका उचित कार्य एवं उत्तम पात्र में विनियोग करने वाला, सत्पात्र का ज्ञान रखने वाला, क्रोध, लोभ, भय, द्रोह, दम्भ, तथा चपलता इन दोषों से दूर रहने वाला ।। ९ ।। परोपताप (दूसरों को दुःख देना) पिशुनता (चुगली करना) मात्सर्य (डाह करना) ईर्ष्या (दूसरों के उत्कर्ष को न सह सकना) तथा असत्यभाषण करना-इन दुर्गुणों से परे रहना, वृद्धजनों के उपदेश को मानकर चलने वाला, श्लक्ष्ण (मधुरभाषी) देखने में सौम्य लगने वाला ।। १०।। सद्गुणों में अनुराग रखने वाला, ये सभी राजा के आत्मसम्पत्ति के गुण बतलाये गये हैं । उत्तम कुल में उत्पन्न, पवित्र, शूरवीर, शास्त्रज्ञ तथा राजा में अनुराग रखने वाले, दण्डनीति का प्रयोग करने वाले, राजा के मन्त्रियों को होना चाहिए ।। ११।। जिसे अन्याय से हटाना कठिन न हो, जिसका जन्म उसी जनपद में हुआ हो, जो कुलीन, सुशील, शारीरिक बल से सम्पन्न, वाग्मी, सभा में निर्भीक होकर बोलने वाला (प्रगल्भ) चक्षुष्मान् शास्त्र रूपी नेत्रों से देखने वाला) उत्साही (शोर्य, अमर्ष एवं दक्षता से युक्त) प्रतिभाशाली, स्तब्धता एवं चपलता से रहित, मित्रों को बनाने वाला, सभी प्रकार के क्लेशों को सह सकने में समर्थ, पवित्र (किसी से घूस आदि नहीं लेने वाला) ।। १२-१३ ।। सत्य, सत्त्व (निर्विकारता) धैर्य, स्थिरता, प्रभाव तथा आरोग्य आदि गुणों सेयुक्त, कृतशिल्प, दक्ष, प्रज्ञावान, धारणा सम्पन्न, स्वामी के प्रति अविचलभक्ति रखने वाला, किसी से वैर न रखने वाला, दूसरों द्वारा किए गये विरोधों को शान्त करने वाला इस प्रकार के मनुष्य को राजा का बुद्धि सचिव एवं कर्मसचिव होना चाहिए।। १४ ।। स्मृति (अनेक वर्षों की बातों को याद रखना) अर्थतत्परता, शत्रुओं के चित्त को पहचानना ज्ञान निश्चय, दृढ़ता तथा मन्त्रगुप्ति ये मन्त्रिसम्पत् के गुण बतलाये गए हैं ।। १५ ।। राजा के पुरोहित को त्रयी (ऋक्, यजुः एवं सामवेद) तथा दण्डनीति में कुशल होना चाहिए । वह अथर्ववेद में बतलायी गयी विधि के अनुसार

कुशलः स्यात् पुरोहितः ॥ १६ ॥ अथर्ववेदविहितं कुर्य्याच्छान्तिकपौष्टिकम् । साधुतैषाममात्यानां तद्विद्यैःसह बुद्धिमान् ॥१७॥ चक्षुष्मत्तां च शिल्पञ्च परीक्षेत गुणद्वयम् । स्वजनेभ्यो विजानीयात् कुलं स्थानमवग्रहम् ॥ १८ ॥ परिकर्मसु दक्षञ्च विज्ञानं धारयिष्णुताम् । गुणत्रयं परीक्षेत प्रागल्भ्यं प्रीतितांतथा॥ १९॥ कथायोगेषु बुध्येत वाग्मित्वं सत्यवादिताम् । उत्साहं च प्रभावं च तथाक्लेशसहिष्णुताम् ॥ २०॥ धृतिं चैवानुरागं च स्थैर्य्यञ्चापदि लक्षयेत् । भक्तिं मैत्रीं च शौचं च जानीयाद् व्यवहारतः॥ २१ ॥ संवासिभ्यो बलं सत्त्वमारोग्यं शीलमेव च । अस्तब्धतामचापल्यं वैराणां चाप्यकीर्त्तनम्॥ २२॥ प्रत्यक्षतो विजानीयाद् भद्रतां क्षुद्रतामपि । फलानुमेयाः सर्वत्र परोक्षगुणवृत्तयः ॥ २३॥ शस्याकरवती पुण्या खनिद्रव्यसमन्विता । गोहिता भूरिसलिला पुण्यैर्जनपदैर्युता ॥ रम्या सकुञ्जरबला वारिस्थलपथान्विता। अदेवमातृका चेति शस्यते भूरिभूतये॥२५॥ शूद्रकारुवणिक्प्रायो महारम्भः कृषीबलः । सानुरागो रिपुद्वेषी पीडासहकरः पृथुः॥ २६ ॥ नानादेश्यैः समाकीर्णो धार्मिकः पशुमान् बली । ईदृग्जनपदः शस्तोऽमूर्खव्यसनिनायकः॥ २७ ॥ पृथुसीमं महाखातमुच्चप्राकारतोरणम् । पुरं समावसेच्छैल सरिन्मरुवनाश्रयम् ॥ २८ ॥ जलवद्धान्यधनवद् दुर्गं कालसहं महत् । औदकं पार्वतं वार्क्षमैरिणं धन्विनं च षट्॥ २९॥ ईप्सितद्रव्यसम्पूर्णः पितृपैतामहोचितः। धर्मार्जितो व्ययसहः कोषो धर्मादिवृद्धये॥ ३०॥ पितृपैतामहो वश्यः संहतो दत्तवेतनः। विख्यातपौरुषो जन्यः कुशलःशकुनैर्वृतः॥ ३१ ॥ नानाप्रहरणोपेतो

राजा के लिए पुष्टि कर्म तथा शान्तिकर्म करता रहे ।। १६ ।। बुद्धिमान राजा को चाहिए कि वह विभिन्न शास्त्रों के विद्वानों द्वारा अपने आमात्यों के शास्त्रज्ञान तथा शिल्पज्ञान की परीक्षा कराता रहे ।। १७ ।। राजा को अपने लोगों के कुल स्थान तथा अवग्रह (उसे नियन्त्रित करने वाले बन्धुजन) को जानना चाहिए ।। १८ ।। परिकर्म (दुर्ग आदि के निर्माण में दक्षता) विज्ञान (अपनी बुद्धि से अपूर्व बात को जानकर बतलाना) तथा धारयिष्णुता (कौन सा कार्य पूरा हुआ और कौन सा कार्य अशिष्ट है) इन तीन बातों की परीक्षा विद्वानों द्वारा लेनी चाहिए । मन्त्रियों की प्रगल्भता, प्रतिभा एवं वाग्मिता सत्यवादिता की परीक्षा बातचीत के प्रसंग में राजा को स्वयं लेनी चाहिए ।। १९ ।। उत्साह, प्रभाव, क्लेशों की सहिष्णुता, क्षमता, धैर्य, स्वामिविषयक अनुराग और स्थिरता इन गुणों की परीक्षा आपत्तिकाल में करनी चाहिए ।। २० ।। राजा के प्रति भक्ति,मैत्री तथा आचार-विचार की पवित्रता की परीक्षा व्यवहार के माध्यम से करनी चाहिए।। २२ ।। बल, सत्त्व (सुख एवं दुःख में विकार राहित्य) आरोग्य, शील, अस्तब्धता (मान एवं गर्व का अभाव) तथा चापल्य राहित्य की परीक्षा पड़ोस के लोगों के माध्यम से करनी चाहिए । वैर न करने के स्वभाव,भद्रता (भलमनसाहत) तथा क्षुद्रता को प्रत्यक्षतः देखकर जानना चाहिए । जिनके गुण एवं व्यवहार परोक्ष हैं, प्रत्यक्ष नहीं हैं,उनके कार्यों को देखकर उनके गुणों एवं व्यवहारों का अनुमान करना चाहिए।। २२-२३ ।। जहाँ पर खेती की उपज अधिक हो, जहाँ पर विभिन्न वस्तुओं की खानें हों,जहाँ पर विक्रय के योग्य तथा अनेक प्रकार के खनिजद्रव्य निकलते हों,गायों के योग्य घासों से युक्त,जहाँ पर प्रचुर मात्रा में जल उपलब्ध हो,जो पवित्र जनपदों से युक्त हो ।। २४ ।। जो मनोहर हो,जहाँ के जंगलों में हाथी रहते हों, जहाँ पर जलमार्ग एवं स्थलमार्ग विद्यमान हों,जहाँ पर सिंचाई के लिए वर्षा पर निर्भर नहीं रहना पड़ता हो, इस प्रकार की भूमि खेती के लिए उत्तम मानी जाती है ।। २५।। जहाँ पर शूद्र,कारीगर तथा बनिया रहते हों,जहाँ पर खेती अच्छी तरह से की जाती हो, जहाँ के निवासी परस्पर में अनुरक्त हों, शत्रुओं से द्वेष करने वाले हों, पीड़ा को सह सकने में समर्थ हों,जो बहुत विस्तृत हों ।। २६ ।। जहाँ पर अनेक देशों के लोग रहते हो, जो धार्मिक, पशु सम्पत्ति से परिपूर्ण हो,धन-धान्य से परिपूर्ण हों, जहाँ का मुखिया न तो मूर्ख हो और न तो किसी प्रकार का व्यसनी हो, इस प्रकार का जनपद राजा के लिए उत्तम माना गया है ।। २७ ।। जिसकी सीमा बहुत बड़ी एवं विस्तृत हो जिसके चारों ओर खाइयाँ बनी हों, जिसके परकोटे और फाटक बहुत ऊँचे हों, जो पर्वत, नदी, मरुभूमि तथा वन का आश्रय लेकर बना हो, ऐसे पुर में राजा को निवास करना चाहिए ।। २८ ।। जो जल,धन एवं धान्य से परिपूर्ण हो वह दुर्ग दीर्घकाल तक शत्रु के आक्रमण को सह सकने में समर्थ होता है ।। ये दुर्ग पाँच प्रकार के होते हैं- जलमय, पर्वतमय, वृक्षमय, ऐरिण (वीरान स्थान पर बना हुआ) तथा धान्वन (वालुकामय प्रदेश में बना हुआ) हो ।। २९ ।। मनोवांछित सम्पत्ति से परिपूर्ण, पितृ पितामहों से अर्जित, धर्मपूर्वक कमाया हुआ,जिसका व्यय किया जा सके इस प्रकार का कोष, धर्मवृद्धि आदि में सहायक होता है ।। ३० ।। जो पिता-पितामह के काल से ही रह रहे हों,जो राजा के

नानायुद्धविशारदः। नानायोधसमाकीर्णो नीराजितहयद्विपः॥ ३२ ॥ प्रवासायासदुःखेषु युद्धेषु च कृतश्रमः। अद्वैधक्षत्रियप्रायो दण्डो दण्डव्रतां
मतः ॥ ३३॥ योगविज्ञान सत्त्वाढ्यं महापक्षं प्रियं वदम् । आयतिक्षममद्वैधं मित्रं कुर्वीत सत्कुलम्॥ ३४॥ दूरादेवाभिगमनं स्पष्टार्थहृदयानुगा ।
वाक् सत्कृत्य प्रदानञ्च त्रिविधो मित्रसंग्रहः॥ ३५॥ धर्मकामार्थसंयोगो मित्रात् तु त्रिविधं फलम् । औरसं तत्र सन्नद्धं तथा वंशक्रमागतम् ॥ ३६॥
रक्षितं व्यसनेभ्यश्च मित्रं ज्ञेयं चतुर्विधम् । मित्रे गुणाः सत्यताद्याःसमानसुखदुःखता॥ ३७॥ वक्ष्येऽनुजीविनां वृत्तं सेवी सेवेत भूपतिम् । दक्षता
भद्रता दार्ढ्यं क्षान्तिःक्लेशसहिष्णुता ॥ ३८ ॥ सन्तोषः शीलमुत्साहो मण्डयत्यनुजीविनम् । यथाकालमुपासीत राजानं सेवको नयात्॥ ३९॥
परस्थानगमनं क्रौर्य्यमौद्धत्यं मत्सरं त्यजेत् । विगृह्य कथनं भृत्यो न कुर्य्याज् ज्यायसा सहः ॥ ४० ॥ गुह्यं मर्म च मन्त्रञ्च न च भर्त्तुः प्रकाशयेत्।
रक्ताद् वृत्तिं समीहेत विरक्तं सन्त्यजेन् नृपम्॥ ४१ ॥ अकार्य्ये प्रतिषेधश्च कार्य्ये चापि प्रवर्त्तनम् । सङ्क्षेपादिति सद्वृत्तं बन्धुमित्रानुजीविनाम्॥४२॥
आजीव्यः सर्वसत्त्वानां राजा पर्जन्यवद् भवेत। आयद्वारेषु चाप्त्यर्थं धनं चाददतीति च॥४३॥ कुर्य्यादुद्योगसम्पन्नानध्यक्षान् सर्वकर्मसु । कृषिर्वणिक्पथो
दुर्गं सेतुःकुञ्जरबन्धनम्॥ ४४॥ खन्याकरबलादानं शून्यानां च निवेशनम् । अष्टवर्गमिमं राजा साधुवृत्तोऽनुपालयेत्॥ ४५॥ आमुक्तिकेभ्यश्चौरेभ्यःपौरेभ्यो

वश में रहते हों, जो संगठित हों,जिनको वेतन दे दिया जाता हो,जिनका पौरुष प्रख्यात हो,जो राजा के ही जनपद में उत्पन्न हुए हों, जो युद्ध की कला में कुशल हों तथा जो कुशल सैनिकों के ही साथ रहते हों ।। ३१ ।। जो अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित हों तथा जो अनेक प्रकार की युद्धकला में कुशल हों, जिनके दल में अनेक योद्धा युद्ध में मारे जा चुके हों, जो अपने घोड़े एवं हाथियों की आरती उतारते हों ।। ३२ ।। जो परदेश निवास,युद्ध सम्बन्धी परिश्रम तथा दुःख सहन करने के अभ्यासी हों,जिन्होंने युद्ध में परिश्रम किया हो, जिनके मन में किसी प्रकार का संशय न हो तथा जिनमें क्षत्रियजाति के लोग अधिक हों, इस प्रकार के सैनिक दण्डनीति वेत्ताओं के मतानुसार प्रशस्त होते हैं ।। ३३ ।। जो दूसरों के लिए सब कुछ उत्सर्ग कर सकें विज्ञानवान् तथा सत्त्व (सुख दुःख में कभी भी विकृत न होना) इन गुणों से युक्त महापक्ष (बहुत अधिक बन्धु बान्धवों वाला) प्रियभाषी भविष्यत्काल में भी साथ देने में समर्थ, एवं संशय रहित, एवं कुलीन पुरुष को ही राजा को अपना मित्र बनाना चाहिए।। ३४ ।। मित्र संग्रह के तीन प्रकार हैं- (१) मित्र के आने पर दूर से ही उसकी अगवानी करना, हृदय खोलकर स्पष्ट बातें करना,सत्कारपूर्वक किसी वस्तु को प्रदान करना ।। ३५ ।। मित्रों से तीन प्रकार के फलों की प्राप्ति होती है- धर्म, अर्थ एवं काम । मित्र को चार प्रकार का जानना चाहिए - औरस (माता-पिता के सम्बन्ध वाले) मित्रता के सम्बन्ध से युक्त, कुलक्रम से मित्र रूप में चले आने वाले एवं जिसकी विपत्ति में रक्षा की गयी हो । सत्य बोलना तथा सुख-दुःख में समान रूप से भाग लेना ये मित्र के गुण हैं ।।३६-३७।। अब मैं अनुजीवियों के व्यवहार का वर्णन करता हूँ । सेवकोचित गुणों से सम्पन्न पुरुष को राजा की सेवा करनी चाहिए । दक्षता, भद्रता (लोकप्रियता) दृढ़ता, क्षमा, कष्ट सहने की शक्ति।।३८।। सन्तोष, शील और उत्साह ये सभी गुण राजसेवक को अलंकृत करते हैं । सेवक को समयानुसार राजा की न्यायपूर्वक सेवा करनी चाहिए ।। ३९ ।। उसे दूसरे के स्थान पर जाना, क्रूरता, उद्धतता और मत्सर को त्याग देना चाहिए । अपने से बड़े अधिकारी की बात काटकर उसे सभा में नहीं बोलना चाहिए ।। ४० ।। उसे राजा की मन्त्रणा तथा उसके गुप्त कर्मों को किसी के समक्ष प्रकट नहीं करना चाहिए । उसे चाहिए कि अपने से अनुरक्त स्वामी से ही जीविका प्राप्त करे अपने से विरक्त रहने वाले राजा को वह छोड़ दे ।। ४१ ।। यदि राजा अनुचित कार्य में प्रवृत्त हो तो उसे राजा को मना करना चाहिए तथा यदि राजा उचित कार्य करता हो तो उसमें उसे राजा का साथ देना चाहिए । इस तरह से संक्षेप में बन्धु, मित्र तथा अनुजीवियों के व्यवहार का वर्णन किया गया ।। ४२ ।। राजा को मेघ के समान समस्त प्राणियों की जीविका प्रदान करने वाला होना चाहिए । उसे अपने यहाँ के समस्त आय के साधनों पर विश्वस्त लोगों की ही नियुक्ति करनी चाहिए ।। ४३ ।। जो उद्योग से सम्पन्न हों ऐसे ही पुरुषों को उसे सर्वत्र अध्यक्ष बनाना चाहिए । खेती, व्यापारियों के उपयोग में आने वाले स्थल एवं जलमार्ग, पर्वत आदि दुर्ग, सेतु बन्ध कुञ्जजर बन्धन (जहाँ से हाथी पकड़े जाते हों) ।। ४४ ।। सुवर्ण आदि के खान, वन जहाँ कीमती पेड़ उत्पन्न होते हों तथा शून्य स्थान को बसाना ये अष्टवर्ग बतलाये

राजबल्लभात् । पृथ्वीपतिलोभाच्च प्रजानां पञ्चधा भयम् ॥ ४६ ॥ अवेक्ष्यैतद् भयं काले आददीत करं नृपः । अभ्यन्तरं शरीरं स्वं वाह्यं राष्ट्रञ्च रक्षयेत्॥ ४७॥ दण्ड्यांस्तान् दण्डयेद्राजा स्वं रक्षेच्च विषादितः । स्त्रियः पुत्रांश्च शत्रुभ्यो विश्वसेन्न कदाचन ॥ ४८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये राजधर्मवर्णनं नामोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३९॥

चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

षाड्गुण्यम्

राम उवाच— मण्डलं चिन्तयेन् मुख्यं राजा द्वादशराजकम् । अरिर्मित्रमरेर्मित्रं मित्रमित्रमतः परम् ॥ १॥ तथारिमित्रमित्रञ्च विजिगीषोः पुरःस्मृता। पार्ष्णिग्राहःस्मृतःपश्चादाक्रन्दस्तदनन्तरम् ॥ २ ॥ आशारावनयोश्चैवं विजिगीषोश्च मण्डलम् । अरेश्च विजिगीषोश्च मध्यमो भूम्यनन्तरः॥३॥ अनुग्रहे संहतयोर्निग्रहे व्यस्तयोः प्रभुः । मण्डलाद् वहिरेतेषामुदासीनो बलाधिकः॥ ४॥ अनुग्रहे संहतानां व्यस्तानाञ्च वधे प्रभुः। सन्धिञ्च विग्रहं यानमासनादि वदामि ते॥ ५॥ बलवद् विगृहीतेन सन्धिं कुर्य्याच्छिवाय च । कपाल उपहारश्च सन्तानः सङ्गतस्तथा उपन्यासः प्रतीकारःसंयोगः पुरुषान्तरः। अदृष्टनर आदिष्ट आत्मापि स उपग्रहः ॥ ७॥ परिकमस्तथा छिन्नस्तथा च परदूषणम् । स्कन्धोपनेयः सन्धिश्च सन्धयःषोडशेरिताः॥८॥

गये हैं । राजा को इनका सदा पालन करना चाहिए ।। ४५ ।। आयुत्तिक (राजकर्मचारी) चोर, राजा के शत्रु, राजा के प्रियसम्बन्धी तथा राजा के लोभ इन पाँचों से प्रजा को पाँच प्रकार के भय होते हैं ।। ४६ ।। इस भय का निवारण करके राजा प्रजा से समयानुसार कर ले । राज्य के दो भेद हैं- आभ्यन्तर एवं वाह्य । राजा का अपना शरीर ही अभ्यन्तर राज्य है तथा राष्ट्र बाह्य राज्य है । राजा को इन दोनों की रक्षा करनी चाहिए।। ४७ ।। जो राज्य को हानि पहुँचाने वाले हैं वे दण्डनीय हैं । राजा को दण्डनीयों को दण्ड देना चाहिए तथा अपनी विष आदि से रक्षा करनी चाहिए । उसे स्त्रियों, पुत्रों एवं शत्रुओं पर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए ।। ४८ ।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का राजधर्म वर्णन नामक दो सौ उनतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३९ ॥

श्रीराम ने कहा— राजा को चाहिए कि वह राजद्वादशमण्डल का चिन्तन करे (१) अरि (२) मित्र, (३) अरिमित्र, (४) मित्रमित्र तथा (५) अरिमित्रमित्र ये विजयप्राप्ति के इच्दुक राजा के सामने वाले राजा कहे गये हैं ।। १ ।। विजगीषु के पीछे चार राजा होते हैं । पहले पार्ष्णिग्राह, उसके बाद आक्रन्द पुनः इन दोनों के आसार अर्थात् पार्ष्णिग्राहासार एवं आक्रन्दासार। इस तरह विजगीषु मण्डल होता है ।। २ ।। अरि और विजगीषु दोनों के राज्य से जिसकी सीमा मिलती है, वह राजा मध्यम होता है ।। ३।। यदि अरि और विजगीषु परस्पर में संगठित हों तो मध्यम राजा सेना और कोष आदि की सहायता देकर उन दोनों पर अनुग्रह करने में समर्थ होता है और यदि ये दोनों संगठित न हों तो मध्यम राजा उन दोनों का एक-एक करके वध करने में समर्थ होता है ।। ३ ।। इन सबों के मण्डल से बाहर जो अधिक बलशाली राजा होता है, उसे उदासीन कहा जाता है । विजगीषु अरि और मध्यम ये तीनों यदि संगठित हों तो उदासीन इन पर अनुग्रह मात्र कर सकता है । यदि ये परस्पर में असंगठित हों तो वह इन सबों का वध करने में समर्थ होता है ।। ४ ।। अब मैं तुम्हें सन्धि, विग्रह, यान एवं आसन के विषय में बतला रहा हूँ। यदि किसी बलवान् के साथ युद्ध छिड़ जाय और अपने पक्ष की स्थिति शोचनीय हो तो, कल्याणकामी राजा को सन्धि कर लेनी चाहिए । कपाल, उपहार, सन्तान एवं संगत ।।६।। उपन्यास, प्रतीकार, संयोग, पुरुषान्तर,अदृष्टनर, आदिष्ट, आत्मामिष,उपग्रह ।। ७ ।। परिक्रय, उच्छिन्न, परदूषण तथा स्कन्धोपनेय इस तरह से सन्धि के सोलह भेद बतलाये गये हैं।। ८ ।।

परस्परोपकारश्च मैत्रः सम्बन्धकस्तथा। उपहाराश्च चत्वारस्तेषु मुख्याश्च सन्धयः ॥ ९॥ बालोबृद्धो दीर्घरोगस्तथा बन्धुवहिष्कृतः । भीरुको भीरुकजनो लुब्धोलुब्धजनस्तथा॥ १०॥ विरक्तप्रकृतिश्चैव विषयेष्वतिशक्तिमान् । अनेकचित्तमन्त्रश्च देवब्राह्मणनिन्दकः॥ ११॥ दैवोपहतकश्चैव दैवनिन्दक एव च । दुर्भिक्षव्यसनोपेतो बलव्यसनसङ्कुलः ॥ १२॥ स्वदेशस्थो बहुरिपुर्मुक्तः कालेन यश्च ह । सत्यधर्मव्यपेतश्च विंशतिः पुरुषा अमी ॥ १३॥ एतैःसन्धिं न कुर्वीत विगृह्णीयात् तु केवलम् । परस्परापकारेण पुंसां भवति विग्रहः॥ १४ ॥ आत्मनोऽभ्युदयाकाङ्क्षी पीड्यमानः परेण वा । देशकालबलोपेतः प्रारभेतेह विग्रहम् ॥ १५ ॥ राज्यस्त्रीस्थानदेशानां ज्ञानस्य च बलस्य च । अपहारो मदो मानः पीडा वैषयिकी तथा॥१६॥ ज्ञानात्मशक्तिधर्माणां विघातो दैवमेव च । मित्रार्थञ्चापमानश्च तथा बन्धुविनाशनम्॥ १७॥ भूतानुग्रहविच्छेदस्तथा मण्डलदूषणम् । एकार्थाभिनिवेशित्वमिति विग्रहयोनयः ॥ १८॥ सपन्त्यां वास्तुजं स्त्रीजं वाग्जातमपराधजम् । वैरं पञ्चविधं प्रोक्तं साधनैःप्रशमं नयेत् ॥ १९॥ किञ्चित्फलं निष्फलं वा सन्दिग्धफलमेव च । तदात्वे दोषजननमायत्याञ्चैव निष्फलम्॥ २०॥ आयत्याञ्च तदात्वे च दोषसञ्जननं तथा । अपरिज्ञातवीर्य्येण परेण स्तोभितोऽपि वा॥ २१॥ परार्थं स्त्रीनिमित्तञ्च दीर्घकालं द्विजैः सह। अकालदैवयुक्तेन बलोद्धतसखेन च ॥ २२ ॥ तदात्वे फलसंयुक्तमायत्यां फलवर्जितम् । आयत्यां फलसंयुक्तं तदात्वे निष्फलं तथा॥ २३॥ इतीमं षोडशविधं न कुर्य्यादेव विग्रहम् । तदात्वायतिसंशुद्धं कर्म राजा सदाचरेत् ॥ २४॥ हृष्टं पुष्टं बलं मत्त्वा गृह्णीयाद् विपरीतकम् । मित्रमाक्रन्द आसारो यदा स्युर्दृढभक्तयः॥ २५॥

इन सभी सन्धियों में चार प्रकार की सन्धियाँ मुख्य हैं- (१) परस्परोपकार संन्धि, (२) मैत्र सन्धि, (३) सम्बन्धज सन्धि एवं (४) उपहार सन्धि ।। ९ ।। बालक, वृद्ध, दीर्घ रोगी, अपने बान्धवों से बहिष्कृत, डरपोक, भीरु सैनिकों वाला, लोभी, लालची सेवकों वाला, ।। १० ।। आमात्य आदि प्रकृतियों के अनुराग से वंचित, विषयों में अत्यन्त आसक्ति वाला, अस्थिर चित्त वाला, अनेक लोगों के समक्ष मन्त्रणा को प्रकट करने वाला, देवताओं एवं ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला, ।। ११ ।। दैव का मारा हुआ, दैव (भाग्य) की निन्दा करने वाला, जिसके ऊपर दुर्भिक्ष का संकट आया हुआ हो,जिसकी सेना विपत्ति में फँस गयी हो।। १२ ।। जो अयोग्य देश (जहाँ पर उसकी सेना पहुँच न सके) में स्थित, जिसके बहुत अधिक शत्रु हों, जोउचित समय में अपनी सेना को नियुक्त न कर सका हो,जो सत्य एवं धर्म से रहित हो, ये बीस प्रकार के पुरुष ऐसे हैं कि इनके साथ सन्धि नहीं करनी चाहिए । इनसे केवल विग्रह करे ।। १३ ।। परस्पर में एक दूसरे का अपकार करने को विग्रह कहते हैं ।। १४ ।। राजा को चाहिए कि वह अपने अभ्युदय की इच्छा से अथवा शत्रु से पीड़ित होकर देश काल की अनुकूलता एवं सैन्य सम्पत्ति से सम्पन्न होने पर काल की अनुकूलता एवं सैन्य सम्पत्ति से सम्पन्न होने पर विग्रह प्रारम्भ करे ।। १५ ।। राज्य, स्त्री, स्थान, देश, ज्ञान तथा बल इनमें से किसी का भी अपहरण विग्रह का कारण बन सकता है । तथा मद, मान एवं जनपद की पीड़ा ।। १६ ।। ज्ञानविघात, अर्थविघात, शक्तिविघात, धर्मविघात, दैव,मित्रों के प्रयोजन की सिद्धि, अपमान, बन्धुवर्ग का विनाश।।१७।। प्राणियों को दिये गये अभयदान में बाधा पहुँचाना,मण्डलदूषण (द्वादश राजमण्डल में से किसी को भी राजा के विरुद्ध कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करना) जो स्त्री,भूमि आदि एक को अभिप्रेत हो उसी को लेने का दूसरे का भी दुराग्रह होना, ये बीस प्रकार के विग्रह के कारण हैं ।। १८ ।। परस्पर में सौतेले भाइयों का विरोध, किसी वस्तु अथवा भूमि को लेकर होने वाला वैमनस्य, किसी स्त्री को लेकर होने वाला वैमनस्य, किसी के कटु वचन के कारण होने वाले वैमनस्य तथा किसी अपराध के कारण होने वाले वैमनस्य इस तरह से पाँच प्रकार के वैर बतलाये गए हैं। इन सबों को साधनों के द्वारा शान्त करना चाहिए ।। १९ ।। (१) जिस विग्रह से बहुत कम फल प्राप्त हों (२) जो विग्रह निष्फल हो, (३) जिस विग्रह के फल की प्राप्ति में संदेह हो, (४) जिस विग्रह से उसी समय दोष उत्पन्न हो जाय, (५) जिस विग्रह का फल भविष्यत् काल में भी न प्राप्त हो ।। २० ।। (६) जो वर्तमान एवं भविष्यत् दोनों कालों में दोषजनक हो, (७) जो विग्रह अज्ञात बल एवं पराक्रम वाले शत्रु के साथ किया जाय, (८) जो विग्रह दूसरों के द्वारा किया जाय ।। २१ ।। (९) जो दूसरों के लिए किया जाय, (१०) जो विग्रह किसी स्त्री की प्राप्ति के लिए किया जाय,(११) जो विग्रह दीर्घकाल तक किया जाय, (१२) जो विग्रह श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ किया जाय, (१३) जो विग्रह वरदान आदि प्राप्त करके दैवबल सम्पन्न शत्रु के साथ

परस्य विपरीतञ्च तदा विग्रहमाचरेत् । विगृह्य सन्धाय तथा सम्भूयाथ प्रसङ्गतः ॥ २६॥ उपेक्षया च निपुणैर्यानं पञ्चविधं स्मृतम् । परस्परस्य सामर्थ्यं विघातादासनं स्मृतम् ॥ २७॥ अरेश्च विजिगीषोश्च यानवत् पञ्चधा स्मृतम् । बलिनोर्द्विषतोर्मध्ये वाचात्मानं समर्पयन् ॥ २८ ॥ द्वैधीभावेन तिष्ठेत काकाक्षिवदलक्षितः। उभयोरपि सम्पाते सेवेत बलवत्तरम् ॥ २९॥ यदा द्वावापि नेच्छेतां संश्लेषं जातसंविदौ । तदोपसर्पेत् तच्छत्रुमधिकं वा स्वयं व्रजेत्॥ ३०॥ उच्छिद्यमानो बलिना निरुपायप्रतिक्रियः । कुलोद्भूतं सत्यमार्य्यमासेवेत बलोत्कटम् ॥ ३१॥ तद्दर्शनोपास्तिकता नित्यं तद्भावभाविता। तत्कारितप्रश्रयिता वृत्तं संश्रयिणः श्रुतम्॥३२॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये षाड्गुण्यकथनं नाम चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४०॥

एकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सामादिः

राम उवाच— **प्रभावोत्साहशक्तिभ्यां मन्त्रशक्तिः प्रशस्यते । प्रभावोत्साहवान् काव्योजितो देवपुरोधसा॥ १॥ मन्त्रयेतेह कार्य्याणि नानाप्तैर्नाविपश्चिता। अशक्यारम्भवृत्तीनां कुतः क्लेशादृते फलम् ॥ २ ॥ अविज्ञातस्य विज्ञानं विज्ञातस्य च निश्चयः। अर्थद्वैधस्य सन्देहच्छेदनं शेषदर्शनम् ॥ ३॥**

किया जाय, (१४) जो विग्रह अधिक बलशाली मित्र वाले शत्रु के साथ प्रारम्भ किया जाय ।। २२ ।। (१५) जो विग्रह वर्तमान काल में तो फलप्रद हो किन्तु भविष्यत् काल में निष्फल हो जाय तथा (१६) जो विग्रह भविष्यत् काल में फल युक्त होए किन्तु वर्तमान काल में निष्फल हो, इस तरह से इन सोलह प्रकार के विग्रहों को नहीं करना चाहिए।। २३।। राजा को ऐसा ही कर्म करना चाहिए जो वर्तमान एवं भविष्यत् दोनों कालों में अत्यन्त शुद्ध हो ।। २४ ।। राजा जब यह जान ले कि हमारी सेना हृष्ट-पुष्ट होने से उत्साहशक्तिसम्पन्न है और शत्रु की स्थिति इसके विपरीत है तब वह विग्रह प्रारम्भ करे । जब मित्र,आक्रन्द तथा आक्रन्दसार राजा में दृढ़भक्ति रखते हों उस समय राजा को शत्रु के साथ विग्रह करना चाहिए।। २५ ।। नीतिज्ञ पुरुषों ने पाँच प्रकार का यान (गमन) बतलाया है-(१) विगृह्यगमन, (२) सन्धायगमन, (३) सम्भूयगमन, (४) प्रसंगतः गमन और (५) उपेक्षापूर्वक गमन ।। २६।। जब विजिगीषु तथा अरि एक दूसरे पर आक्रमण करने के सामर्थ्य से रहित होने के कारण एक दूसरे का विघात न करके बैठे रहते हैं तो उसे आसन कहते हैं । यान के ही समान आसन भी पाँच प्रकार का बतलाया गया है । उनके नाम भी यान वाले ही होते हैं ।। २७ ।। दो बलवान् शत्रुओं के बीच में पड़कर वाणी से दोनों को ही आत्मसमर्पण करना चाहिए ।। २८ ।। वह काकाक्षिन्याय से गुप्त रूप दोनों को ही अपना बनाये रखे और इसी को द्वैधीभाव की नीति कहते हैं । यदि दोनों ही संगठित होकर आक्रमण करें तो राजा को चाहिए कि उन दोनों में जो बलवान् शत्रु हो उसी को अपना आश्रय बना ले ।। २९ ।। यदि वे दोनों ही आपस में विचार करके किसी भी शर्त पर संधि न करना चाहें तो राजा को चाहिए कि वह अपनी आत्मरक्षा के लिए उन दोनों के शत्रु राजा के शरण में चला जाय अथवा किसी दूसरे बलवान् राजा की शरण ले ।। ३० ।। यदि बलवान् शत्रु विजिगीषु का विनाश ही करने लगे उस समय विजिगीषु को चाहिए कि वह किसी कुलीन,सत्यवादी, आर्यवृत्ति वाले बलशाली राजा की शरण में चला जाय ।। ३१ ।। उस आश्रयदाता राजा के दर्शन के लिए उसकी आराधना करना, सदा उसके अभिप्राय के अनुकूल चलना, उसके लिए कार्य करना तथा उसके प्रति आदर का भाव रखना यह आश्रय ग्रहण करने वाले राजा का व्यवहार होना चाहिए ।। ३२ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्नि पुराण का द्वादश राज मण्डल वर्णन नामक दो सौ चालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २४० ॥

श्रीराम ने कहा— प्रभावशक्ति तथा उत्साहशक्ति से मन्त्र शक्ति श्रेष्ठ होती है । प्रभाव और उत्साह इन दोनों शक्तियों से सम्पन्न शुक्राचार्य को वृहस्पति ने मन्त्र के बल से जीत लिया था।।१।। जो नीतिशास्त्र का विद्वान् तथा विश्वस्त न हो उसके साथ राजा को (कार्यों के विषय में) मन्त्रणा नहीं करनी चाहिए। जो अशक्य कार्य को करना प्रारम्भ कर देता है उसको केवलक्लेश

सहायाः साधनोपाया विभागो देशकालयोः । विपत्तेश्चप्रतीकारः पञ्चाङ्गो मन्त्र इष्यते॥ ४॥ मनःप्रसादः श्रद्धा च तथा करणपाटवम् । सहायोत्थानसम्पच्च कर्मणां सिद्धिलक्षणम्॥ ५॥ मदः प्रमादः कामश्च सुप्तप्रलपितानि च । भिन्दन्ति मन्त्रं प्रच्छन्नाः कामिन्यो रमतां तथा ॥ ६॥ प्रगल्भःस्मृतिमान् वाग्मी शस्त्रे शास्त्रे च निष्ठितः। अभ्यस्तकर्मा नृपतेर्दूतो भवितुमर्हति ॥ ७ ॥ निसृष्टार्थो मितार्थश्च तथा शासनहारकः। सामर्थ्यात् पादतो हीनो दूतस्तु त्रिविधःस्मृतः ॥ ८ ॥ नाविज्ञातं पुरं शत्रोः प्रविशेच्च न संसदम् । कालमिक्षेत कार्य्यार्थमनुज्ञातश्च निष्पतेत्॥ ९॥ छिद्रञ्च शत्रोर्जानीयात् कोषमित्रबलानि च । रागापरागौ जानीयाद् द्रष्टिगात्रविचेष्टितैः॥ १०॥ कुर्य्याच्चतुर्विधं स्तोत्रं पक्षयोरुभयोरपि । तपस्विव्यञ्जनोपेतैः सुचरैः सह संवसेत् ॥ चरः प्रकाशोदूतःस्यादप्रकाशश्चरो द्विधा। वणिक् कृषीबलो लिङ्गीभिक्षुकद्यात्मकाश्चराः॥ १२ ॥ यायादरिं व्यसनिनं निष्फले दूतचेष्टिते। प्रकृतिव्यसनं यत् स्यात् तत्समीक्ष्य समुत्पतेत् ॥ १३॥ अनयाद् व्यस्यति श्रेयस्तस्मात् तद् व्यसनं स्मृतम् । हुताशनो जलं व्याधिदुर्भिक्षं मरकं तथा ॥ १४ ॥ इतिपञ्चविधं दैवं व्यसनं मानुषं परम् । दैवं पुरुषकारेण शान्त्या च प्रशमं नयेत् ॥ १५॥ उत्थापितेन नीत्या च मानुषं व्यसनं हरेत्। मन्त्रो मन्त्रफलावाप्तिःकार्य्यानुष्ठानमायतिः॥ १६॥ आयव्ययौ दण्डनीतिरमित्रप्रतिषेधनम् । व्यसनस्य प्रतीकारो राज्यराजाभिरक्षणम्॥ १७॥

की ही प्राप्ति होती है, कोई फल नहीं मिलता है ।। २ ।। अविज्ञात (परोक्ष) का ज्ञान, विज्ञात के विषय में निश्चय करना, किसी कर्तव्य का कार्य के विषय में संदेह उत्पन्न होने पर संदेह को दूर करना तथा शेष कार्य की उपलब्धि ये सब मन्त्रणा के फल हैं ।। ३ ।। सहायक, कार्यसिद्धि के उपाय, देश एवं काल का विभाग, विपत्ति का निवारण तथा कर्तव्य की सिद्धि ये मन्त्रणा के पाञ्च अंग हैं ।। ४ ।। मन की प्रसन्नता, मन्त्र में श्रद्धा,इन्द्रियों की पटुता, सहाय सम्पत्ति तथा उत्थान सम्पत्ति, ये कर्मों की सिद्धि के लक्षण हैं ।। ५ ।। मदिरापान, प्रमाद, काम (काम की भावना से प्रेरित होकर स्त्रियों पर विश्वास करना) स्वाप काल में बड़बड़ाना, लुक-छिपकर बात सुनने वाले लोग तथा पार्श्ववर्तिनी कामिनियाँ एवं उपेक्षित तोता मैना आदि जीव ये मन्त्रणा का भेदन (लोगों के बीच में प्रकाश) कर देते हैं ।। ६ ।। राजा के दूत को प्रगल्भ,स्मृतिमान (सभी बातें याद रखने वाला) वाक्पटु,शस्त्रविद्या तथा शास्त्रविद्या का ज्ञात तथा दूतोचित कार्योंं के करने में अभ्यस्त होना चाहिए।। ७ ।। सर्वश्रेष्ठ दूत निसृष्टार्थ होता है अर्थात् उसको अपनी इच्छा के अनुसार राजाकी ओर से संधिविग्रह आदि करने की छूट होती है । मितार्थ दूत मध्यम कोटि का होता है उसको परमित मात्रा में कार्य करने की छूट होती है । अधम कोटि का दूत राजा के संदेश मात्र का वहन करता है । इस तरह से उत्तम,मध्यम एवं अधम ये दूतों के तीन भेद होते हैं।।८।। दूत को चाहिए कि वह अपने आगमन की सूचना दिए विना शत्रु के नगर में तथा संसद् में प्रवेश न करे । वह कार्यसिद्धि के लिए प्रतीक्षा करे और आज्ञा मिलने पर ही जाय ।। ९ ।। दूत को शत्रु की दुर्बलता, कोष, मित्र तथा सेना के विषयमें जानकारी प्राप्त करना चाहिए । उसे शत्रु राजा की दृष्टि तथा अनुरक्ति एवं विरक्ति का पता लगाना चाहिए ।। १० ।। उसे दोनों पक्षों के कुल, नाम, द्रव्य और सत्कर्म की प्रशंसा करनी चाहिए तथा तपस्वी के वेश में रहने वाले गुप्तचरों के साथ निवास करना चाहिए ।। ११ ।। गुप्तचर दो प्रकार के होते हैं- गुप्त एवं प्रकट। प्रकट पर को दूत कहते हैं और गुप्तचर को गुप्तचर कहा जाता है । गुप्त वणिक (व्यापारी) किसान, लिङ्गी (ब्रह्मचारी) तथा भिक्षुक आदि के रूप में शत्रु के नगर में निवास करते हैं ।। १२।। जब दूत की चेष्टाएँ निष्फल हो जायँ तथा शत्रु विपत्तिग्रस्त हो जाय तब तथा प्रजा पर आने वाली विपत्ति को दूर करके राजा को शत्रु पर आक्रमण करना चाहिए ।। १३ ।। विपत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं-दैव एवं मानुष । अनय (अन्याय) से राजा अपने कल्याण को विनष्ट कर देता है, अतएव उसे व्यसन कहते हैं । आग लगना, अतिवृष्टि, व्याधि, अकाल तथा महामारी ये पाँच प्रकार के दैव व्यसन हैं । मानुष व्यसन इन सबों से भिन्न ही होता है । दैवव्यसन की शान्ति पुरुषार्थ तथा अथर्ववेदोक्त शान्ति कर्म करने से करनी चाहिए ।। १४-१५ ।। मानुष व्यसन की शान्ति उन्नति कारक कर्मों तथा साम आदि नीतियों से करनी चाहिए ।।१६।। मन्त्र, मन्त्रफल की प्राप्ति, कार्य का अनुष्ठान, भावी उन्नति का सम्पादन, आय-व्यय, दण्डनीति, शत्रु का निवारण, विपत्ति को दूर करने के उपाय, राजा एवं राज्य की रक्षा- ये सभी आमात्य के कार्य हैं, यदि आमात्य व्यसनग्रस्त हो तो वह इन सबों को विनष्ट कर देता है ।। १७ ।। सुवर्ण, धान्य, वस्त्र,

इत्यमात्यस्यकर्मेदं हन्ति सव्यसनान्वितः। हिरण्यधान्यवस्त्राणि वाहनं प्रजया भवेत्॥ १८॥ तथान्ये द्रव्यनिचया हन्ति सव्यसना प्रजा । प्रजानामापदिस्थानां रक्षणं कोषदण्डयोः॥१९॥ पौराद्याश्चोपकुर्वन्ति संश्रयादिह दुर्दिनम् । तूष्णीं युद्धं जनत्राणं मित्रामित्रपरिग्रहः॥ २०॥ सामन्तादिकृते दोषे नश्येत् तद्व्यासनाच्च तत् । भृत्यानां भरणं दानं प्रजामित्रपरिग्रहः॥ २१॥ धर्मकामादिभेदश्च दुर्गसंस्कारभूषणम् । कोषात् तद्व्यासनाद्धन्ति कोषमूलो हि भूपतिः॥ २२॥ मित्रामित्रावनीहेम साधनं रिपुमर्दनम्। दूरकार्य्याशुकारित्वं दण्डात् तद्व्यासनाद्धरेत्॥ २३॥ संस्तम्भयति मित्राणि अमित्रं नाशयत्यपि। धनाद्यैरुपकारित्वं मित्रात् तद्व्यासनाद्धरेत्॥ २४ ॥ राजा सव्यसनी हन्याद्राजकार्य्याणि यानि च । वाग्दण्डयोश्च पारुष्यमर्थदूषणमेव च॥ २५॥ पानं स्त्री मृगयाद्यूतं व्यसनानि महीपतेः। आलस्यं स्तब्धता दर्पःप्रमादो द्वैधकारिता॥ २६॥ इति पूर्वोपदिष्टञ्च सचिवव्यसनं स्मृतम् । अनावृष्टिश्च पीडादी राष्ट्रव्यसनमुच्यते ॥ २७॥ विशीर्णयन्त्रप्राकारपरिखात्वमशस्त्रता। क्षीणया सेनया नद्धं दुर्गव्यसनमुच्यते ॥ २८ ॥ व्ययीकृतःपरिक्षिप्तोऽप्रजितोऽसञ्चितस्तथा । दूषितो दूरसंस्थश्च कोषव्यसनमुच्यते॥ २९॥ उपरुद्धं परिक्षिप्तममानितविमानितम् । अभूतं व्याधितं श्रान्तं दूरायातं नवागतम् ॥ ३०॥ परिक्षीणं प्रतिहतं प्रहताग्रतरं तथा। आशानिर्वेदभूयिष्ठमनृतप्राप्तमेव च॥३१॥ कलत्रगर्भं निक्षिप्तमन्तःशस्यं तथैव च । विच्छिन्न विविधासारं शून्यमूलं तथैव च ॥ ३२ ॥ अस्वाम्यसंहतं वापि भिन्नकूटं तथैव च। दुष्पार्ष्णिग्राहमर्थञ्च बलव्यसनमुच्यते॥३३॥ दैवोपपीडितं मित्रं ग्रस्तं शत्रुबलेन च। कामक्रोधादिसंयुक्तमुत्साहादरिभिर्भवेत्॥३४॥ अर्थस्यदूषणं क्रोधात् पारुष्यं वाक्यदण्डयोः। कामजं मृगयाद्यूतं

वाहन तथा अन्य द्रव्यों का संग्रह ये प्रजा के कार्य हैं । यदि जनपद की प्रजा व्यसनी हो तो वह इन सबों को विनष्ट कर देती है ।। १८ ।। आपत्तिग्रस्त प्रजाओं की रक्षा, कोष एवं दण्ड की रक्षा,गुप्त युद्ध करना,आपत्तिग्रस्त लोगों की रक्षा करना, मित्रों तथा शत्रुओं का संग्रह करना तथा सामन्त आदि से होने वाली बाधाओं का निवारण दुर्ग का आश्रय ग्रहण करने से होता है ।। विपत्ति में प्रजा भी दुर्ग में आश्रय ग्रहण करती है, अतएव दुर्ग की सहायता नागरिक आदि भी करते हैं ।। २० ।। भृत्यों का भरण पोषण, दान देना, मित्र एवं अमित्र का परिग्रह, धर्म एवं काम का विभाजन, दुर्ग की मरम्मत तथा उसका अलंकरण कोष से होता है । कोष का मूल राजा होता है । व्यसनी राजा इन सबों को विनष्ट कर देता है ।। २२ ।। मित्र, अमित्र तथा भूमि को अपने वश में रखना, शत्रुओं का मर्दन करना, दूर के कार्य को शीघ्र पूरा करना ये सभी दण्ड (सेना) के कार्य हैं । सेना पर आपत्ति आने से ये विनष्ट हो जाते हैं ।। २३ ।। मित्र राजा के मित्रों की राजा के प्रति आस्था बनाये रखता है।उसके शत्रुओं का विनाश करता है,वह धन आदि के द्वारा राजा का उपकार करता है । ये सभी कार्य मित्र के संकटग्रस्त होने पर विनष्ट हो जाते हैं ।। २४ ।। राजा यदि व्यसनी हो जाय तो वह राज्य के समस्त कार्यों को विनष्ट कर देता है । कठोर वचन बोलना अत्यन्त कठोर दण्ड देना, उसमें अर्थ सम्बन्धी दोष होना,मदिरा पीना, *स्त्रियों में अत्यन्त आसक्ति का होना, मृगया का व्यसन,* जूआ खेलना, ये सभी राजा के व्यसन हैं ।। २५ ।। आलस्यकरना, स्तब्धता (अभिमानी होना) गर्व, प्रमाद, संशयग्रस्त बनाना, ये दोष पूर्वोक्त राजा के बतलाये गये दोष सचिव के दोष होते हैं ।। २६ ।। अनावृष्टि (सूखा पड़ना) तथा पीड़ा आदि राष्ट्र के व्यसन कहे जाते हैं ।। २७ ।। यंत्र (अस्त्र शस्त्र आदि) प्राकार, (परकोटा) खाईं आदि का जीर्ण-शीर्ण होना, शस्त्रों का अभाव तथा दुर्ग में तैनात सेना का दुर्बल होना ये सभी दुर्ग के व्यसन कहे जाते हैं ।। २८ ।। अपव्यय के द्वारा व्यय किया जाना, मण्डल के अनेक स्थानों में थोड़ा-थोड़ा बाँट दिया जाना, अधिकारी आदि जिसे खा डाले हों, जो संचित न हो, चोर आदि जिसे चुरा लिए हों तथा जो दूरवर्ती स्थान में स्थित हो, ये कोष के दोष हैं।।२९।। सेना का चारों ओर से अवरुद्ध हो जाना जिस पर घेरा पड़ गया हो, जिसका आदर, नहीं किया गया हो, जो सेना अपमानित हुई हो, जिस सेना का ठीक से भरण-पोषण नहीं किया गया हो, जो व्याधिग्रस्त हो गयी हो, जो श्रान्त हो गयी हो, जो दूर से आयी हो, जो अभी नई-नई आयी हो ।। ३० ।। जो पूर्णरूप से क्षीण हो गयी हो, प्रतिहत हो जिसके आगे बढ़ने का वेग समाप्त कर दिया गया हो, जिसके अधिक लोग आशाजनित निर्वेद से भरे हों, जो अविश्वस्त हो गयी हो।। ३१ ।। जिसमें स्त्रियों की संख्या अधिक हो, जिसके भीतर बहुत अधिक कष्ट हो, अर्थात् जो सेना बहुत दुःखी हो गयी हो, जिसके विभिन्न आसार विच्छिन्न हो गये हों, जिसका सेनापति शून्य हो गया है ।। ३२।। जिस सेना के पीछे संहत रूप से अथवा भिन्न कूट रूप

व्यसनं पानकं स्त्रियः॥३५॥ वाक्पारुष्यं परं लोके उद्वेजनमनर्थकम्। असिद्धसाधनं दण्डस्तंयुक्त्यावनयेन् नृपः॥ ३६॥ उद्वेजयति भूतानि दण्डपारुष्यवान् नृपः भूतान्युद्वेज्यमानानि द्विषतां यान्ति संश्रयम् ॥ ३७ ॥ विवृद्धाः शत्रवश्चैव विनाशाय भवन्ति ते । दूष्यस्य दूषणार्थञ्चपरित्यागो महीयसः॥ ३८॥ अर्थस्य नीतितत्त्वज्ञैरर्थदूषणमुच्यते । पानात् कार्य्यादिनो ज्ञानं मृगयातोऽरितक्षयः॥ ३९॥ जितश्रमार्थं मृगया विचरेद्रक्षिते वने। धर्मार्थप्राणनाशादि द्यूते स्यात् कलहादिकम्॥ ४०॥ कालातिपातो धर्मार्थपीड़ास्त्रीव्यसनाद् भवेत् । पानदोषात् प्राणनाशःकार्य्याकार्य्याविनिश्चयः॥४१॥ स्कन्धावारनिवेशज्ञो निमित्तज्ञो रिपुं जयेत् । स्कन्धावारस्य मध्ये तु सकोषं नृपतेर्गृहम्॥ ४२ ॥ मौलीभूतं श्रेणिसुहृद्द्विषदाटविकं बलम् । राजहर्म्यं समावृत्यक्रमेण विनिवेशयेत् ॥ ४३॥ सैन्यैकदेशःसन्नद्धः सेनापतिपुरःसरः। परिभ्रमेच्चत्वरांश्च मण्डलेन वहिर्निशि ॥ ४४॥ वार्ताः स्वका विजानीयाद् दरसीमान्तचारिणः । निर्गच्छेत् प्रविशेच्चैव सर्व एवोपलक्षितः ॥ ४५ ॥ साम दानञ्च भेदश्च दण्डोपेक्षेन्द्रजालकम् । मायोपायाःसप्त परे निक्षिपेत् साधनाय तान् ॥ ४६ ॥ चतुर्विधं स्मृतं साम उपकारानुकीर्त्तनात् । मिथः सम्बन्धकथनं मृदूपूर्वञ्च भाषणम् ॥ ४७॥ आयाते दर्शनं वाचा तवाहमिति चार्पणम्। यःसम्प्राप्तधनोत्सर्ग उत्तमाधममध्यमः॥४८॥ प्रतिदानं तदा तस्य गृहीतस्यानुमोदनम्। द्रव्यदानमपूर्वं च स्वयंग्राहप्रवर्त्तनम्॥४९॥

से दुष्ट पार्ष्णिग्रह की सेना लगी हुई हो । इस तरह से सेना में विद्यमान व्यसन को सेना का व्यसन कहते हैं ।। ३३ ।। जो देव से पीड़ित हो, उत्साह सम्पन्न शत्रु कीसेना के द्वारा से ग्रस्त हो, काम एवं क्रोध से जो युक्त हो, इस प्रकार का मित्र व्यसनग्रस्त माना जाता है ।। ३४ ।। अर्थदूषण, वाणी एवं दण्ड की कठोरता ये तीन क्रोधजन्य व्यसन हैं । आखेट, जूआ, मद्यपान तथा स्त्रीसङ्ग ये कामजन्य व्यसन हैं ।। ३५।। वाणी की कठोरता लोगों के बीच में उद्विग्नता को उतपन्न करने वाली तथा अनर्थ करने वाली होती है, राजाको चाहिए कि वह युक्ति द्वारा दण्डस्थ असिद्ध साधन को शान्त करे ।। ३६।। कठोर दण्ड देने वाला राजा जीवों के बीच में उद्वेग उत्पन्न कर देता है । जब प्रजा उद्विग्न हो जाती है तो वही राजा के शत्रु के शरण में चली जाती है ।। ३७ ।। जब विजिगीषु के शत्रु समृद्ध हो जाते हैं तब वे विजिगीषु के विनाश के कारण बन जाते हैं । दूषणीय मनुष्य के दूषण के लिए उससे प्राप्त होने वाले किसी महान् अर्थ के त्याग को नीतिशास्त्र के तत्त्वज्ञों ने अर्थदूषण कहा है ।। ३८ ।। पान के द्वारा कार्य का विनाश करने वाले का ज्ञान होता है । आखेट से शत्रु का विनाश सम्भव है ।। ३९ ।। थकान पर विजय प्राप्त करने के लिए राजाको सुरक्षित वन में शिकार करना चाहिए । जूए में धर्म, अर्थ तथा प्राण आदि के नाश एवं कलह आदि होते हैं ।। ४० ।। स्त्री सम्बन्धी व्यसन से प्रत्येक कर्तव्य कार्यों के करने में बहुत विलम्ब हो जाता है । मद्यपान करने से कार्यों का नाश हो जाता है तथा क्या करना चाहिए क्या नहीं करना चाहिए इस बात का निश्चय नहीं हो पाता है ।। ४१ ।। वही शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकता है जो छावनी में प्रवेश करने की कला को जानता हो तथा शकुन का ज्ञान रखता हो । छावनी के बीच में कोष तथा राजा का निवास होना चाहिए ।। ४२।। राजगृह को घेरकर चारों तरफ क्रमशः इन सेनाओं को बसाना चाहिए- (१) मौल सेना (जो सेना पिता पितामह के काल से मूल रूप से चली आ रही हो) (२) भूत सेना (जिस सेना का राजा अच्छी तरह से भरण-पोषण करता हो) (३) श्रेणिसेना (जनपद निवासियों की सेना) (४) मित्रों की सेना (५) द्विषद् वल (जिन शत्रुओं को राजा ने अपने वश में कर लिया हो उनकी सेना तथा (६) आटविक सेना (वन प्रदेश के अधिपतियों की सेना) ।। ४३ ।। सेना का चौथाई भाग युद्ध की सज्जा से सुसज्जित होकर रात्रि में बाहर चक्कर लगायें ।। ४४ ।। सीमा के अन्त में दूरसंचरण करने वालों के गुप्तचरों के माध्यम से राजा इस बात का पता लगाये कि उसके शत्रुओं की उसके प्रति कैसी गतिविधि है । राजा की जानकारी में ही कोई भी छावनी से निकले अथवा प्रवेश करे ।। ४५ ।। राजा को शत्रुओं को वश में करने के लिए साम, दान, दण्ड, भेद, उपेक्षा, इन्द्रजाल और माया इन सात उपायों का प्रयोग करना चाहिए ।। ४६ ।। साम के चार भेद बतलाये गये हैं- (१) दूसरे के उपकार का वर्णन करना (२) परस्पर केसम्बन्ध का वर्णन करना (३) मधुरवाणी में बातचीत करना (४) तथा शत्रु के समक्ष आते देखकर मैं आपका हूँ इस प्रकार से कहकर अपना समर्पण करना ।। ४७ ।। उत्तम, अधम एवं मध्यम प्रकार से प्राप्त सम्पत्ति का दान पाँच प्रकार का होता है- (१) जो सम्पत्ति जिस रूप से प्राप्त हुई हो उसको उसी तरह से

देयश्च प्रतिमोक्षश्च दानं पञ्चविधं स्मृतम् । स्नेहरागापनयनसंहर्षोत्पादनं तथा ॥ ५०॥ मिथो भेदश्च भेदज्ञैर्भेदश्च त्रिविधःस्मृतः । बधोऽर्थहरणं चैव परिक्लेशस्त्रिधा दमः॥ ५१॥ प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकद्विष्टान् प्रकाशतः । उद्‌विजेत हतैर्लोकस्तेषु पिण्डः प्रशस्यते॥ ५२॥ विशेषेणोपनिषद्योगैर्हन्याच्छस्त्रादिना द्विषः । जातिमात्रं द्विजं नैव हन्यात्सामोत्तरं वशे ॥ ५३ ॥ प्रलिम्पन्निव चेतांसि दृष्ट्वासाधु पिबन्निव । ग्रसन्निवामृतं साम प्रयुञ्जीत प्रियं वचः॥ ५४॥ मिथ्याभिशस्तः श्रीकाम आहूयाप्रतिमानितः। राजद्वेषी चातिकर आत्मसम्भावितस्तथा ॥ ५५ ॥ विच्छिन्नधर्मकामार्थः क्रुद्धो मानी विमानितः। अकारणात् परित्यक्तः कृतवैरोऽपि सान्त्वितः ॥ ५६ ॥ हृतद्रव्यकलत्रश्च पूजार्होऽप्रतिपूजितः । एतांस्तु भेदयेच्छत्रौ स्थितान् नित्यान् सुशङ्कितान् ॥ ५७ ॥ आगतान् पूजयेत् कामैर्निजांश्च प्रशमं नयेत् । सामदृष्ट्वानुसन्धानमत्युग्रभयदर्शनम्॥५८॥ प्रधानदानमानं च भेदोपायाः प्रकीर्त्तिताः । मित्रं हतं काष्ठमिव घुणजग्धं विशीर्य्यते॥ ५९॥ त्रिशक्तिर्देशकालज्ञो दण्डेनास्तं नयेदरीन् । मैत्रीप्रधानं कल्याणबुद्धिं सान्त्वेन साधयेत्॥६०॥ लुब्धं क्षीणञ्च दानेन मित्रानन्योऽन्यशङ्कया। दण्डस्य दर्शनाद् दुष्टान् पुत्रभ्रातादि सामतः॥६१॥ दानभेदैश्चमूमुख्यान्

लौटा देना (२) यदि विना दिए हुए कोई किसी वस्तु को ले लेता है, उसका अनुमोदन करना (३) जो वस्तु पहले से नहीं दी गयी हो उसको भण्डार से निकालकर नूतनतया दान करना, (४) स्वयं ग्राह प्रवर्त्तनम् (यह कहना कि अमुक व्यक्ति से अमुक वस्तु ले लो, वह वस्तु तुम्हारी ही हो जायेगी और (५) दिये गये ऋण आदि को छोड़ देना (नहीं लेना) ।। ४९ ।। स्नेह तथा राग को दूर कर देना, (२) हर्ष को उत्पन्न करना एवं परस्पर में भेद उत्पन्न कर देना भेद के जानकारों ने तीन प्रकार का भेद बतलाया गया है ।। ५० ।। दम भी तीन प्रकार का होता है- वध कर देना, सम्पत्ति का अपहरण कर लेना तथा ताडन आदि के द्वारा दुख देना ।। ५१ ।। वध दो प्रकार का होता है- प्रकट एवं गुप्त । जो व्यक्ति सभी लोगों के द्वेष का पात्र हो उसका प्रकट रूप से वध कर देना चाहिए । किन्तु जिन लोगों का वध करने से जनता में उद्विग्नता उत्पन्न हो ऐसे लोगों का वध गुप्त रूप से ही करना उचित होता है । विशेष रूप से ऐसे लोगों का वध रहस्यात्मक ढंग से आग आदि लगवाकर, या दूसरों से शस्त्र आदि का प्रयोग कराके उसका वध करना चाहिए ।। ५२ ।। जो जातिमात्र से भी ब्राह्मण हो उसका वध न करके उसे साम के द्वारा अपने वश में करना चाहिए ।। ५३ ।। प्रियवचन बोलना ही साम कहलाता है, उसका प्रयोग ऐसा करें कि लगे कि जैसे चित्त में अमृत का लेप हो रहा है । उसको इस तरह से देखे कि ऐसा लगे कि वह सामने वाले को प्रेम से पी लेना चाहता हो और बोले ऐसा कि सुनने वाले को लगे कि अमृत की वर्षा हो रही है ।। ५४ ।। जिस पर झूँठा कलंक लगाया गया हो, जो धन प्राप्त करना चाहता हो, जिसे अपने पास बुलाकर अपमानित किया गया हो, जो राजा से द्वेष करता हो, जिस पर बहुत अधिक कर लगाया गया हो, जो अपने को सम्भावित (सम्मानित) व्यक्ति मानता हो ।। ५५ ।। जिसके धर्म, अर्थ एवं काम छिन्न-भिन्न हो गये हों, जो कुपित, मानी एवं अपमानित हो, जिसे विना किसी कारण के राज्य से निकाल दिया गया हो, जो मन में वैर रखते हुए भी नीति के प्रयोग के कारण शान्त रहता हो, ।। ५६ ।। जिसकी सम्पत्ति तथा स्त्री को छीन लिया गया हो, जो पूजा अथवा सत्कार के योग्य हो किन्तु उसका सत्कार नहीं किया गया हो, ऐसे लोगों के होने के विषय में शंका यदि सिद्ध हो जाय तो ऐसे लोग यदि शत्रु पक्ष के हों तो उनमें भेद उत्पन्न कर देना चाहिए ।। ५७ ।। यदि वे अपने पास आयें तो उनका सम्मान करना चाहिए तथा यदि ऐसे लोग अपने हों तो उनको सामप्रयोग से शान्त करना चाहिए । समान दृष्टि का अनुसन्धान करना, अत्यन्त उग्र भय का प्रदर्शन एवं उच्चकोटि का दान तथा मान ये भेद के उपाय बतलाये गये हैं ।। ५८ ।। जब भेदनीति के द्वारा फूट डाल दी जाती है तब वह लगे हुए घुन वाले काष्ठ के समान विशीर्ण हो जाता है । देश एवं काल को जानने वाले तथा प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति एवं मन्त्रशक्ति से सम्पन्न राजा अपने शत्रु का विनाश दण्ड के नीति के द्वारा करे ।। ५९ ।। जिसके भीतर मैत्रीभाव प्रधान हो तथा जो कल्याण बुद्धि से युक्त हो उसको सामनीति के द्वारा अपने वश में करे ।। ६० ।। लोभी तथा आर्थिक दृष्टि से क्षीण पुरुष को दान से अपना मित्र बनाये । परस्पर में एक दूसरे पर शंका करने के कारण जिनमें फूट पड़ गयी हो, ऐसे दुष्ट लोगों को दण्ड का भय दिखलाकर वश में करें, पुत्र एवं भाई आदि को सामनीति के द्वारा वश में करना चाहिए ।। ६१ ।। दान एवं भेद की नीति से सेनापतियों,

योधान् जनपदादिकान्। भेद दण्डाभ्यामपराद्धकान् ॥ ६२ ॥ देवताप्रतिमानान्तु पूजयांन्तर्गतैर्नरैः । पुमान् स्त्रीवस्त्रसंवीतो निशि चाद्भुतदर्शनः॥६३॥ वेतालोल्कापिशाचानां सामन्ताटविकान् शिवानां च स्वरूपिणी । कामतो रूपधारित्वं शस्त्राग्न्यश्माम्बुवर्षणम् ॥ ६४ ॥ तमोऽनिलोऽनलो मेघ इति मायाह्यमानुषी। जघान कीचकं भीम आस्थितः स्त्रीस्वरूपताम् ॥ ६५ ॥ अन्याये व्यसने युद्धे प्रवृत्तस्यानिवारणम् । उपेक्षेयं स्मृता भ्रातोपेक्षितश्च हिडम्बिया॥ ६६॥ मेघान्धकारवृष्ट्यग्नि पर्वताद्भुतदर्शनम् । दरस्थानं च सैन्यानां दर्शनं ध्वजशालिनाम् ॥ ६७॥ छिन्नपाटितभिन्नानां संसृतानां च दर्शनम् । इतीन्द्रजालं द्विषतां भीत्यर्थमुपकल्पयेत्॥ ६८॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सामादिदण्डविधानं नामैकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४१ ॥

द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजनीतिः

राम उवाच— **षड्विधन्तु बलं व्यूह्य देवान् प्रार्च्य रिपुं व्रजेत् । मौलं भूतं श्रोणिसुहृद् द्विषदाटविकं बलम् ॥ १ ॥ पूर्वं पूर्वं गरीयस्तु बलानां व्यसनं तथा । षड्ङ्गं यन्त्रकोषाभ्यां पदात्यश्वरथद्विपैः ॥ २॥ नद्यद्रिवनदुर्गेषु यत्र यत्र भयं भवेत् । सेनापतिस्तत्र गच्छेद् तत्र व्यूहीकृतैर्बलैः ॥ ३॥ नायकः पुरतो यायात् प्रवीरपुरुषावृतः । मध्ये कलत्रं स्वामी च कोषः फल्गु च यद् बलम् ॥ ४ ॥ पार्श्वयोरुभयोरश्वा वाजिनां पार्श्वयो रथाः।**

योद्धाओं एवं जनपद के लोगों को अपने वश में करना चाहिए । सामन्तों, अपराधियों तथा आटविकों को भेद एवं दण्ड नीति के द्वारा अपने वश में करना चाहिए ।। ६२ ।। जिसमें देवताओं की प्रतिमा बनी हो, ऐसे स्तम्भों के भीतर खड़ा होकर माया का प्रदर्शन करना रात्रि में स्त्री का कपड़ा पहनकर किसी पुरुष द्वारा अद्भुत रूप प्रदर्शित करना, वेताल, उल्का एवं पिशाच का रूप धारण करके मुख से ज्वाला निकालना ये सभी मानुषी माया के स्वरूप हैं ।। ६३ ।। अपने मनोऽनुकूल रूप धारण करना, शस्त्र, अग्नि, पतीर एवं जल की वर्षा करना, अन्धकार फैलाना, आँधी फैलाना, अग्नि फैला देना तथा बादल फैला देना यह अमानुषी माया है । भीम ने रात्रि में स्त्री का रूप बनाकर कीचक को मार डाला था ।। ६४-६५ ।। अन्याय, युद्ध तथा व्यसन क्रिया में प्रवृत्त अपने आदमी को न रोकना उपेक्षा है ।भीम के साथ लड़ने वाले अपने भाई हिडिम्ब की हिडिम्बा ने उपेक्षा कर दी, उसने उसे लड़ने से मना नहीं किया ।। ६६ ।। मेघ, अन्धकार, वर्षा, अग्नि, पर्वत एवं अन्य अद्भुत वस्तुओं को दिखाना, दूर खड़ी हुई ध्वजशालिनी सेनाको दिखाना, शत्रु पक्ष के सैनिकों को कटे हुए, फाड़े हुए तथा विदीर्ण अंगों से बहती हुई रक्त की धारा को प्रदर्शित करना ये सब के सब इन्द्रजाल हैं । इन्द्रजाल की कल्पना शत्रुओं को डराने के लिए करनी चाहिए ।। ६७-६८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का सामादि दण्ड विधान नामक दो सौ इकतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २४१ ॥

श्रीराम ने कहा— छह प्रकार की सेना को व्यूहवद्ध करके तथा अपने इष्ट देवताओं का पूजन करके राजा को शत्रु पर आक्रमण करना चाहिए । मौल, भूत, श्रेणि, सुहृद् , शत्रु तथा आटविक ये छह प्रकार की सेनायें होती हैं ।। १ ।। इनमें पर-पर की अपेक्षा पूर्व-पूर्व की सेना तथा उन सेनाओं का व्यसन गरिष्ठ माना गया है । पैदल, घुड़सवार, रथ एवं हाथी सवार ये चार सेना का अङ्ग हैं और यन्त्र तथा कोष को मिलाकर सेना के अङ्ग छह हो जाते हैं ।। २ ।। नदी दुर्ग, पर्वत दुर्ग तथा वन दुर्ग में जहाँ-जहाँ भय हो, वहाँ वहाँ सेनापति को अपनी व्यूहीकृत सेना के साथ जाना चाहिए ।। ३ ।। एक सेनानायक उत्कृष्ट वीर योद्धाओं के साथ पहले जाय । विजगीषु राजा और उसके अन्तःपुर को सेना के बीच में चलना चाहिए। खजाना तथा फल्गु

रथानां पार्श्वयोर्नागा नागानां चाटवीबलम् ॥ ५ ॥ पश्चात् सेनापतिःसर्वं पुरस्कृत्य कृती स्वयम्। यायात सन्नद्धसैन्यौघः खिन्नानाश्वासयञ्छनैः॥६॥ यायाद् व्यूहेन महता मकरेण पुरोभये । श्येनेनोद्धतपक्षेण सूच्या वा वीरवक्त्रया ॥ ७॥ पश्चाद् भये तु शकटं पार्श्वयोर्बज्रसञ्ज्ञितम् । सर्वतः सर्वतोभद्रं भये व्यूहं प्रकल्पयेत्॥ ८॥ कन्दरे शैलगहने निमग्ना वनसङ्कटे । दीर्घाध्वनि परिश्रान्तं क्षुत्पिपासाहितक्लमम् ॥ ९॥ व्याधिदुर्भिक्षमरकपीड़ितं दस्युविद्रुतम्। पङ्कपांशुजलस्कन्धं व्यस्तं पुञ्जीकृतं पथि ॥ १०॥ प्रसुप्तं भोजनव्यग्रमभूमिष्ठमसुस्थितम् । चौराग्निभयवित्रस्तं वृष्टिवातसमाहतम्॥ ११॥ इत्यादौ स्वचमूं रक्षेत् परसैन्यं च घातयेत् । विशिष्टो देशकालाभ्यां भिन्नविप्रकृतिर्बली ॥ १२ ॥ कुर्य्यात् प्रकाशयुद्धं हि कूटयुद्धं विपर्य्यये । तेष्ववस्कन्दकालेषु परं हन्यात् समाकुलम्॥ १३॥ अभूमिष्ठं स्वभूमिष्ठः स्वभूमौ चोपजायतः । प्रकृतिप्रग्रहाकृष्टं पाशैर्वनचरादिभिः ॥ १३ ॥ हन्यात् प्रवीरपुरुषैर्भङ्गदानापकर्षणैः। पुरस्ताद् दर्शनं दत्त्वा तल्लक्षकृतनिश्चयान् ॥ १५ ॥ हन्यात् पश्चात् प्रवीरेण बलेनोपेत्य वेगिना । पश्चाद् वाङ्गुलीकृत्य हन्याद् दूरेणपूर्वतः॥ १६॥ आभ्यों पार्श्वाभिघातौ तु व्याख्यातो कूटयोधने । पुरस्ताद् विषमे देशे पश्चाद्धन्यात् तु वेगवान् ॥ १७॥ पुरः पश्चात् तु विषमे एवमेव तु पार्श्वयोः। प्रथमं योधयित्वा तु दूष्यामित्राटवीबलैः॥१८॥ श्रान्तं मन्दं निराक्रन्दं हन्यादश्रान्तवाहनम् । दूष्यामित्रबलैर्वापि

(बेगार करने वाले लोग) को भी सेना के बीच में ही चलना चाहिए ।। ४ ।। स्वामी के अगल-बगल में घुड़सवारों की सेना चलनी चाहिए ।घुड़सवार सेना के बगल में रथ सेना रथों के बगल में हाथी सवारों की सेना होनी चाहिए ।। ५ ।। यात्रा के समय कुशल एवं प्रधान सेनापति को स्वामी के पीछे रहकर सबको आगे करके चलना चाहिए । सेनापति को चाहिए कि वह श्रान्त सैनिकों को बार-बार प्रोत्साहित करता रहे ।। ६ ।। यदि यात्रा के समय आगे से शत्रु के आक्रमण का भय हो तो उसे मकरव्यूह वाली महती सेना के साथ प्रस्थान करना चाहिए । यदि किसी तिर्यग् दिशा से शत्रु के आक्रमण का भय हो तो खुले पंख वाले श्येन व्यूह के साथ तथा संकरे मार्ग से यात्रा के समय शत्रु का भय हो तो जिसके अग्रभाग में वीर योद्धा हों ऐसे सूचीमुख व्यूह के साथ यात्रा करनी चाहिए ।। ७ ।। पीछे से भय की आशंका हो तो शकट व्यूह सेना की, अगल-बगल से भय की संभावना हो तो वज्रव्यूह सेना की सब ओर से भय की संभावना हो तो सर्वतोभद्र व्यूह की कल्पना करनी चाहिए ।। ८ ।। जो सेना पर्वत की कन्दरा में, पर्वतीय दुर्गम स्थान एवं गहनवन में, नदी एवं संकीर्णवन में फंस गयी हो, लम्बा रास्ता तय करने के कारण थक गयी हो, भूख एवं प्यास से पीड़ित हो गयी हो ।। ९ ।। व्याधि, दुर्भिक्ष (आकाल) एवं महामारी से पीड़ित हो, लुटेरों से भगायी गयी हो, कीचड़,धूल अथवा पानी में फँस गयी हो, विक्षिप्त हो गयी हो, रास्ता चौड़ा होने के कारण एकत्रित हो गयी हो ।। १० ।। जो सेना सोयी हुयी हो, खाने-पीने में लगी हुयी हो, अयोग्य भूमि पर स्थित हो, बैठी हुयी हो चोरों तथा आग के भय से डरी हुई हो, वर्षा एवं आँधी की चपेट में आ गयी हो, ।। ११ ।। उस समय शत्रु का आक्रमण होने पर अपनी सेना की रक्षा करनी चाहिए तथा शत्रु की सेना पर घातक प्रहार करना चाहिए। यदि विजिगीषु के अनुकूल देश एवं काल के कारण विजिगीषु राजा बढ़ा-चढ़ा हो तथा शत्रु की सेना में फूट पड़ गयी हो उस समय विजिगीषु को प्रकट युद्ध करना चाहिए । यदि परिस्थिति प्रतिकूल हो तो उसे कपट युद्ध करना चाहिए ।। १२ ।। यदि शत्रु की सेना उपर्युक्त प्रतिकूल परिस्थितियों में हो, यदि विपत्तिग्रस्त शत्रु की सेना अयोग्य भूमि पर हो और अपनी सेना अनुकूल भूमि पर हो, राजा अपनी भूमि पर स्थित हो उस समय उसे आक्रमण करके शत्रु को मार डालना चाहिए ।। १३ ।। पाशस्वरूप होकर प्रकृति प्रग्रह (अपने मण्डल से) दूर परकीय भूमि में अपनी सेना को पीछे हटकर या भागकर खींच लाने वाले आटविकों तथा अमित्र सैनिकों को प्रकृष्ट वीर योद्धाओं द्वारा मरवा डालना चाहिए ।। १४ ।। विजिगीषु को चाहिए कि वह थोड़ी से सेना को आगे से युद्ध के लिए उद्यत दिखाये, जब शत्रु सेना उसी को लक्ष्य बनाकर आक्रमण करे उस समय विजिगीषु प्रकृष्ट वीरों की सेना लेकर पीछे से शत्रु की सेना पर आक्रमण करके उसका विनाश कर दें ।। १५ ।। अथवा थोड़ी सी अपनी सेना को एकत्रित करके उसे युद्ध के लिए उद्यत दिखाये, जब शत्रुओं का ध्यान उस ओर चला जाय तब सामने से उस पर आक्रमण करके उसे मार डाले ।। १६ ।। इन दोनों प्रकार के कूट युद्धों द्वारा ही अगल-बगल तथा दोनों बगल से आक्रमण करके विषम स्थिति में विद्यमान शत्रु का वध करे । पहले दुष्यबल, अमित्रबल

भङ्गं दत्त्वा प्रयत्नवान् ॥ १९॥ जितमित्येव विश्वस्तं हन्यान् मन्त्रव्यपाश्रयः । स्कन्धावारपुरग्राम शस्य स्वामि प्रजादिषु ॥ २० ॥ विश्रम्यन्तं परानीकमप्रमत्तो विनाशयेत् । अथवा गोग्रहाकृष्टं तल्लक्ष्यं मार्गबन्धनात् ॥ २१॥ अवस्कन्दभयाद्रात्रिप्रजागरकृतश्रमम् । दिवासुप्तं समाहन्यान्निद्राव्याकुलसैनिकम्॥ २२॥ निशि विश्रब्धसंसुप्तं नागैर्वा खड्गपाणिभिः । प्रयाणे पूर्वयायित्वं वनदुर्गप्रवेशनम्॥ २३॥ अभिन्नानामनीकानां भेदनं भिन्नसंग्रहः । विभीषिकाद्वारघातं कोषरक्षेभकर्म च ॥ अभिन्नभेदनं मित्रसन्धानं रथकर्म च । वनदिङ्मार्गविचये वीवधासारलक्षणम्॥२५॥ अनुयानापसरणे शीघ्रकार्य्योपपादनम् । दीनानुसरणं घातः कोटीनां जघनस्य च ॥ २६॥ अश्वकर्माघ पत्तेश्च सर्वदा शस्त्रधारणम् । शिविरस्य च मार्गादेः शोधनं वस्तिकर्म च ॥ २७ ॥ संस्थूलस्थाणुवल्मीकवृक्षगुल्मापकण्टकम् । सापसारा पदातीनां भूर्नातिविषमा मता॥ २८॥ स्वल्पवृक्षोपला क्षिप्र लङ्घनीयनगा स्थिरा । निःशर्करा विपङ्का च सापसारा च वाजिभूः ॥ २९ ॥ निस्थाणुवृक्षकेदारा रथभूमिरकर्दमा । मर्दनीयतरुच्छेद्य व्रततीपङ्कवर्जिता ॥ ३० ॥ निर्झरागम्यशैला च विषमा गजमेदिनी । उरस्यादीनि भिन्नानि प्रतिगृह्णन् बलानि हि॥ ३१॥ प्रतिग्रह इति ख्यातो

तथा आटविक बल- इन सबों के साथ युद्ध कराकर शत्रु की सेना को लड़ाकर श्रान्त कर देना चाहिए।। १८ ।। जब शत्रु की सेना श्रान्त, हतोत्साह तथा निराक्रन्त (मित्र रहित) हो जाय और अपने वाहन थके न हों, उससमय आक्रमण करके शत्रुओं का वध कर देना चाहिए । अथवा दुष्य एवं अमित्र सेना को युद्ध के पीछे हटने का आदेश दे दे । जब शत्रु की सेना को यह विश्वास हो जाय कि मेरी जीत हो गयी है तब मन्त्र बल का आश्रय लेकर आक्रमण करके शत्रु सेनाको मार गिराना चाहिए ।। १९ ।। छावनी, नगर, ग्राम, सस्य, स्वामी तथा प्रजा आदि को लूटने वाली शत्रु की सेना का सावधानी पूर्वक विनाश करा देना चाहिए ।। २० ।। अथवा शत्रु राजा की गायों का अपहरण करके उन्हें दूसरी ओर खींचें और शत्रु की सेना जब उस लक्ष्य की ओर बढ़े तब उसे मार्ग में ही रोककर मार डाले ।। २१ ।। अथवा अपने ऊपर रात्रि में आक्रमण के भय से जगी हुई एवं श्रान्त शत्रु की सेना जब दिन में सो रही हो उस समय उन्हें मरवा डालना चाहिए ।। २२ ।। अथवा रात्रि में ही निश्चिन्त सोयी हुई शत्रु की सेना को हाथियों या खड्गधारी पुरुषों से मरवा डालना चाहिए । वन दुर्ग में प्रवेश करने में यात्रा में सबसे हाथी सवारों की ही सेना आगे चलनी चाहिए । वे ही वनदुर्ग में प्रवेश कर जाते हैं । शत्रुओं की ठोस सेना पंक्ति को तोड़ना हाथी सेना का काम है । जहाँ पर व्यूह टूटने से सैनिकों की पंक्ति टूट जाती है, वहाँ पर हाथियों को खड़े करके हाथी सवार उस पंक्ति को जोड़ देते हैं । शत्रु की सेना में भय पैदा करना तथा शत्रु के दरवाजे को तोड़ डालना खजाने को सेना के साथ ले चलना ये हाथी सवार सेना के कार्य हैं ।। २३-२४ ।। शत्रु की अभिन्न सेना का भेदन तथा मित्रों का संधान करना ये दोनों कार्य रथ सेना के भी हैं । घुड़सवार सेना का कार्य है कि- वन में कहाँ उपद्रव हो रहा है, कहाँ नहीं ? दिशाओं का शोधन करना, वीवध (आगे जाती हुई सेना को पीछे से वेतन एवं भोजन पहुँचाने की व्यवस्था को वीवध कहते हैं । एवं आसार (मित्रसेना को आसार कहते हैं ।) की रक्षा करना ।। २५ ।। भागती हुई शत्रुसेना का शीघ्रता से पीछा करना, शीघ्रतापूर्वक किसी कार्य को पूरा करना, अपनी सेना की जहाँ दयनीय दशा हो वहाँ शीघ्र पहुँचकर उसकी सहायता करना, शत्रु सेना के अग्रभाग पर प्रहार करना तथा उसके पीछे भाग पर प्रहार करना ।। २६ ।। सर्वदा शस्त्र धारण किए रहना ये पैदल सेना के कार्य हैं । विष्टि (वेगार करने वालों) का कार्य है छावनी बनाने योग्य स्थान तथा मार्ग का पता लगाना ।। २७ ।। जहाँ मोटे-मोटे ठूंठे पड़े हों,बाँवियाँ हों, वृक्ष तथा लताएँ हों, किन्तु काँटेदार झाड़ियाँ न हों, भाग निकलने के लिए मार्ग हों, तथा जो ऊँची नीची न हो वह भूमि पैदल सेना के संचार योग्य होती हैं ।। २८ ।। वह भूमि अश्वसेना के योग्य होती हे, जहाँ पर वृक्ष एवं पत्थर कम हों, जहाँ के पर्वत आसानी से पार किए जा सकें, जो कढड़ी हों, जो कंकड़ीली तथा कीचड़ वाली न हो जहाँ से भाग निकलने के लिए रास्ते हों ।। २९ ।। रथ सेना के लिए वह भूमि उपर्युक्त होती है- जहाँ पर, ठूंठे पेड़, खेत तथा कीचड़ न हों । जहाँ पर विद्यमान पेड़ तथा लताएँ कुचल डालने तथा काटने योग्य हों, भूमि कीचड़ से रहित हो, झरने तथा लाँघने योग्य पर्वत हों तथा भूमि ऊँची नीची हो तो वह भूमि हाथी सेना के लिए उचित होती है ।। ३० ।। जो सेनाओं के हृदय में आपस में भेद पड़ जाने पर उनको आपस में मेल-मिलाप कराता है, उसे प्रतिग्रह कहते हैं। वह

राजकार्य्यान्तरक्षमः । तेन शून्यस्तु यो व्यूहः स भिन्न इव लक्ष्यते ॥ ३२ ॥ जयार्थी न च युध्येत मतिमानप्रतिग्रहः । यत्र राजा तत्र कोषः कोषाधीना हि राजता ॥ ३३ ॥ योधेभ्यस्तु ततो दद्याद् किञ्चिद् दातुं न युज्यते । द्रव्यलक्षं राजघाते तदर्द्धं तत्सुतार्दने ॥ ३४ ॥ सेनापतिवधे तद्वद् दद्याद्धस्त्यादिमर्दने । अथवा खलु युध्येरन् पत्यश्वरथदन्तिनः॥ ३५॥ यथा भवेदसम्बाधो व्यायामविनिवर्त्तने । असङ्करेण युद्धेरन् सङ्करः सङ्कुलावहः ॥ ३६॥ महासङ्कुलयुद्धेषु संश्रयेरन् मतङ्गजम् । अश्वस्य प्रतियोद्धारो भवेयुः पुरुषास्त्रयः॥ ३७॥ इति कल्प्यास्त्रयश्चाश्वा विधेयाः कुञ्जरस्य तु । पादगोपा भवेयुश्च पुरुषा दश पञ्च च॥ ३८॥ विधानमिति नागस्य विहितं स्यन्दनस्य च । अनीकमिति विज्ञेयमिति कल्प्या नव द्विपाः॥ ३९ ॥ तथानीकस्य रन्ध्रन्तु पञ्चधा च प्रचक्षते । इत्यनीकविभागेन स्थापयेद् व्यूहसम्पदः॥ ४०॥ उरस्यकक्षपक्षांस्तु कल्प्यानेतान् प्रचक्षते। उरःकक्षौ च पक्षौ च मध्यं पृष्ठं प्रतिग्रहः ॥ ४१॥ कोटी च व्यूहशास्त्रज्ञैः सप्ताङ्गो व्यूह उच्यते । उरस्यकक्षपक्षास्तु व्यूहोऽयं सप्रतिग्रहः॥४२॥ गुरोरेष च शुक्रस्य कक्षाभ्यां परिवर्जितः । तिष्ठेयुः सेनापतयः प्रवीरैःपुरुषैर्वृताः॥ ४३॥ अभेदेन च युध्येरन् रक्षेयुश्च परस्परम् । मध्यव्यूहे फल्गु सैन्यं युद्धवस्तु जघन्यतः॥४४॥ युद्धं हि नायकप्राणं हन्यते तदनायकम् । उरसि स्थापयेन्नागान् प्रचण्डान् कक्षयो रथान्॥४५॥ हयांश्च पक्षयोर्व्यूहो

राजा के अन्तरंग कार्यों को सिद्ध करने में समर्थ होता है । जिस व्यूह में प्रतिग्रह होता है, वह भिन्न के सदृश प्रतीत होता है । विजिगीषु को प्रतिग्रह के विना युद्ध नहीं करना चाहिए । जहाँ राजा रहे वहीं कोष रहना चाहिए । राजा का राजत्व कोष के द्वारा ही सुरक्षित रहता है ।। ३३ ।। राजा को विजयी योद्धाओं को कोष से कुछ देना चाहिए । पुरस्कार देने वाले राजा के लिए कौन युद्ध नहीं करता है ? जब शत्रु राजा मारा जाय तो सैनिकों को एक लाख पुरस्कार देना चाहिए तथा शत्रु राजा के पुत्र आदि के मारे जाने पर आधा लाख पुरस्कार देना चाहिए ।। ३४।। शत्रु के सेनापति के मारे जाने पर भी उतना ही पुरस्कार सैनिकों को देना चाहिए । शत्रु के हाथी तथा रथ का नाश करने पर भी उचित पुरस्कार बाँटना चाहिए ।। ३४ ।। अथवा पैदल, घुड़सवार, रथ तथा हाथी सेना को इस प्रकार से युद्ध करना चाहिए कि उनके थकावट दूर करने अथवा पीछे लौटने में किसी प्रकार की परेशानी न हो ।। ३५ ।। सभी योद्धाओं को पृथक्-पृथक् रहकर युद्ध करना चाहिए । घालमेल करके लड़ना संकुलावह (भयावह) होता है ।। ३६ ।। यदि महासंकुल युद्ध हो जाय तो पैदल सेना को हाथियों का सहारा लेना चाहिए । एक एक अश्वसैनिक के प्रति योद्धा के रूप में आगे तीन-तीन पैदलसैनिक पुरुषों को होना चाहिए ।। ३७ ।। एक हाथीसवार के आगे प्रतियोद्धा के रूप में तीन-तीन घुड़सवार सैनिक तैनात करना चाहिए। हाथी के पादरक्षक के रूप में पन्द्रह सैनिकों को नियुक्त करना चाहिए ।। ३८ ।। इस तरह से हाथी का विधान किया गया है । इसी तरह से रथी सेना का विधान जानना चाहिए । एक गजव्यूह की जो विधि बतलायी गयी है, उसी तरह नव हाथियों का व्यूह बनाना चाहिए । उसे जो विधि बतलायी गयी है, उसी तरह नव हाथियों का व्यूह बनाना चाहिए । उसे अनीक कहते हैं । (एक अनीक में पैंतालिस अश्व, एक सौ पैंतीस पैदल सैनिक प्रतियोद्धा होते हैं । इतने ही अश्व तथा पैदल पादरक्षक हुआ करते हैं ।) एक अनीक से दूसरे अनीक की दूरी पाँच धनुष होती है । इस तरह अनीक विभाग के द्वारा व्यूह सम्पत्ति को स्थापित करना चाहिए ।। ३९-४० ।। व्यूह उरस्य, कक्ष तथा पक्ष की कल्पना करनी चाहिए । अर्थात् व्यूह के मध्य में उपर्युक्त रीति से नौ हाथियों द्वारा कल्पित एक अनीक को उरस्य कहा जाता है । उसके पार्श्वभाग में एक-एक अनीक की दो सेनाएँ कक्ष कहलाती हैं । कक्ष के बाहरी भाग में दोनों ओर रहने वाली एक-एक अनीक की दो सेनाएँ हो जाती हैं, वे पक्ष कहलाती हैं । इस तरह इस पाँच अनीक वाली सेना के व्यूह में ३४५ हाथी, २२५ अश्व, ६७५ पैदल प्रतियोद्धा सैनिक और इतने ही पादरक्षक होते हैं । इस तरह उरस्य, कक्ष, पक्ष, मध्य, पृष्ठ, प्रतिग्रह तथा कोटि इन सात अंगों को लेकर व्यूह शास्त्र के विद्वानों ने व्यूह को सात अंगों वाला बतलाया है।।४१-४२।। वृहस्पति के अनुसार सेना में उरस्य, कक्ष, पक्ष तथा प्रतिग्रह को होना चाहिए। शुक्राचार्य के अनुसार सेना को दोनों कक्षों से रहित होना चाहिए । सेनापतियों को सदा प्रकृष्ट वीर पुरुषों से घिर कर युद्ध के मैदान में खड़ा होना चाहिए । उन सबों को एक साथ युद्ध करना चाहिए तथा परस्पर में एक दूसरे की रक्षा करनी चाहिए ।। ४३ ।। सारहीन सेना को व्यूह के मध्य में रखना चाहिए तथा युद्ध की सामग्री को व्यूह के पीछले भाग में रखना चाहिए । नायक (राजा या विजिगीषु) ही युद्ध का प्राण होता है । उसके मारे जाने पर सेना भी मारी जाती है । व्यूह के मध्य में प्रचण्ड हाथियों को रखना

मध्यभेदि प्रकीर्त्तितः । मध्येदेशे हयानीकं रथानीकञ्च कक्षयोः ॥ ४६॥ पक्षयोश्च गजानीकं व्यूहोऽन्तर्भेद्ययं स्मृतः। रथस्थाने हयान् दद्यात् पदातींश्च हयाश्रये॥ ४७॥ रयथाभावे तु द्विरदान् व्यूहे सर्वत्र दापयेत् । यदि स्याद् दण्डबाहुल्यमाबाधःसम्प्रकीर्त्तितः ॥ ४८ ॥ मण्डलासंहतो भोगो दण्डस्ते बहुधा शृणु । तिर्य्यग्वृत्तिस्तु दण्डःस्याद् भोगोऽन्यावृत्तिरेव च ॥ ४९ ॥ मण्डलः सर्वतोवृत्तिः पृथग्वृत्तिरसंहतः । प्रदरो दृढ़कोऽसह्यः चापो वै कुक्षिरेव च ॥ ५०॥ प्रतिष्ठःसुप्रतिष्ठश्च श्येनो विजयसञ्जयौ । विशालो विजयः शूची स्थूणाकर्णचमूमुखौ॥ ५१॥ सर्पास्यो वलयश्चैव दण्डभेदाश्च दुर्जयाः अतिक्रान्तःप्रतिक्रान्तः कक्षाभ्याञ्चैकपक्षतः॥ ५२॥ अतिक्रान्तस्तु पक्षाभ्यां त्रयोऽन्ये तद्विपर्य्यये । पक्षोरस्यैरतिक्रान्तः प्रतिष्ठोऽन्यो विपर्य्ययः ॥ ५३ ॥ स्थूणापक्षो धनुःपक्षो द्विस्थूणो दण्ड ऊर्ध्वगः । द्विगुणोऽन्तस्त्वतिक्रान्तपक्षोऽन्यस्य विपर्य्ययः ॥ ५४ ॥ द्विचतुर्दण्ड इत्येते ज्ञेया लक्षणतः क्रमात्। गोमूत्रिकाहि सञ्चारी शकटो मकरस्तथा॥५५॥ भोगभेदाः समाख्यातास्तथा पारिप्लवङ्गकः। दण्डपक्षौ

चाहिए और दोनों कक्षों में रथों को ।। ४५ ।। घुड़सवारों को व्यूह के दोनों पक्षभाग में स्थापित करना चाहिए । इस व्यूह को मध्यभेदी व्यूह कहते हैं । यदि व्यूह के मध्यभाग घुड़सवारों को तथा दोनों कक्षों में रथियों को, दोनों पक्षों में गजसैनिकों को स्थापित किया जाय तो, इस व्यूह को अन्तर्भेदी व्यूह कहते हैं ।।४६।। यदि रथियों के स्थान पर घुड़सवारों को स्थापित कर दिया जाय और घुड़सवार के स्थान पर पदातियों को स्थापित कर दिया जाय तो यह एक दूसरे प्रकार का अन्तर्भेदी व्यूह कहलाता है ।। ४७।। रथ के अभाव में सर्वत्र व्यूह में हाथियों को ही नियुक्त करना चाहिए । यदि सेना की व्यूह में बहुलता हो तो उस व्यूह को आवाप व्यूह कहते हैं ।। ४८ ।। मण्डल, असंहत, भोग तथा दण्ड ये चार प्रकार के व्यूह होते हैं । इनके भी अनेक भेदों को सुनो । दण्ड के आकार वाला तिर्यग् वृत्ति (दायें से बायें तथा बायें से दाएं लम्बा) जो व्यूह होता है वह दण्डव्यूह है । भोग (सर्प की फणा) के आकार की जिस व्यूह की रचना की जाती है, वह भोग व्यूह है । गोलाकार तथा जिसके सैनिकों का मुख सब ओर हो, इस प्रकार का जो व्यूह होता है उसे मण्डलव्यूह कहते हैं । जिस व्यूह में अनीकों को दूर-दूर खड़ा किया जाता है, वह असंहत व्यूह होता है ।।४९ ।। दण्डव्यूह के सत्रह भेद हैं- (१) प्रदर, (२) दृढ़क, (३) असह्य, (४) चाप, (५) कुक्षि, (६) प्रतिष्ठ, (७) सुप्रतिष्ठ, (८) श्येन, (९) विजय, (१०) संजय, (११) विशाल, (१२) विजय, (१३) सूची, (१४) स्थूणाकर्ण, (१५) चमूमुख, (१६) सर्पास्य एवं (१७) वलय ये दण्डव्यूह के सत्रह दुर्जय भेद हैं ।। ५०-५१ ।। यदि कक्षभाग के सैनिक अतिक्रान्त (आगे की ओर निकले हों और शेष दो (पक्ष एवं उरस्य) भाग के सैनिक भीतर की ओर दबे हों तो यह प्रदर नामक व्यूह होता है । यदि दण्डव्यूह के कक्ष एवं पक्ष दोनों स्थान के सैनिक भीतर की ओर दबे (प्रतिक्रान्त) हों और उरस्य भाग के सैनिक आगे निकले हों तो यह दृढ़क नामक दण्डव्यूह होता है । यदि दण्डव्यूह के दोनों पक्ष ही निकले (अतिक्रान्त) हों तो वह असह्य नामक दण्ड व्यूह होता है । प्रदर, दृढ़क तथा असह्य को क्रमशः विपरीत स्थितियों में कर दिया जाय तो वे ही क्रमशः, चाप, चापकुक्षि एवं प्रतिष्ठ नामक व्यूह होते हैं । यदि दोनों पक्ष (अतिक्रान्त) निकले हों तथा उरस्य प्रतिक्रान्त (दबा हुआ) हो तो सुप्रतिष्ठ नामक व्यूह होता है । इसी की विपरीत स्थिति कर देने पर श्येन नामक व्यूह होता है ।। ५३ ।। आगे बताये जाने वाला स्थूणाकर्ण ही जिस खड़े दण्डे के आकार वाले दण्डव्यूह के दोनों पक्ष हों उसको विजय कहते हैं । दो चाप व्यूह ही जिसके दोनों पक्ष हों वह ढाई व्यूहों का समूह एवं तेरह अनीक सेना वाला व्यूह संजय कहलाता है । एक के ऊपर एक के क्रम से स्थापित दो स्थूणाकर्णों को विशाल विजय कहते हैं । ऊपर-ऊपर स्थापित पक्ष, कक्ष आदि के क्रम से जो दण्ड सीधा खड़ा होता है उस व्यूह का नाम सूची है । जिसके दोनों पक्ष द्विगुणित हों उस दण्ड व्यूह को स्थूणाकर्ण कहते हैं । जिसके तीन-तीन पक्ष निकले हों वह चतुर्गुण पक्ष वाला गयारह अनीक से युक्त व्यूह चमूमुख कहलाता है । जिसके तीन-तीन पक्ष प्रतिक्रान्त (भीतर की ओर दबे हुए हों) वह सप्रास्य नामक व्यूह होता है । दो दण्ड व्यूह मिलकर दस अनीक सेनाओं का वलय व्यूह बनता है । चार दण्ड मिलकर बीस अनीक सेनाओं का दुर्जय नामक दण्ड व्यूह बनता है । इस प्रकार इनके क्रमशःलक्षण बतलाये गये हैं ।। ५४ ।। गोमूत्रिका, अहिंसंचारी, संचारी शकट,मकर तथा परि पतन्तिक, ये भोग व्यूह के पाँच भेद हैं । मार्ग में चलते हुए गो मूत्र से जो रेखा बन जाती है, उसी के आकार में सेना तैनात करने को गो मूत्रिका व्यूह कहते हैं । सर्प के चलने

युगोरस्य शकटस्तद्विपर्य्यये॥ ५६॥ मकरो व्यतिकीर्णश्च शेषः कुञ्जरराजिभिः । मण्डलव्यूह भेदौ तु सर्वतोभद्रदुर्जयौ ॥ ५७॥ अष्टानीको द्वितीयस्तु प्रथमःसर्वतोमुखः । अर्द्धचन्द्रक उद्ध्वाङ्गो वज्रभेदस्तु संहतेः ॥ ५८॥ तथा कर्कटशृङ्गी च काकपादी च गोधिका । त्रिचतुःपञ्चसैन्यानां ज्ञेया आकारभेदतः ॥ ५९ ॥ दण्डस्य स्युःसप्तदश व्यूहा द्वौ मण्डलस्य च । असङ्घातस्य षट् पञ्च भोगस्यैव तु सङ्गरे ॥ ६० ॥ पक्षादीनामथैकेन हत्वा शेषैः परिक्षिपेत् । उरसा वा समाहत्य कोटिभ्यां परिवेष्टयेत्॥ ६१॥ परे कोटी समाक्रम्य पक्षाभ्यामप्रतिग्रहात् । कोटिभ्याञ्जघनं हन्यादुरसा च प्रपीडयेत्॥ ६२॥ यतःफल्गु यतो भिन्नं यतश्चान्यैरधिष्ठितम् । ततश्चारिबलं हन्यादात्मनश्चोपबृंहयेत्॥ ६३॥ सारं द्विगुणसारेण फल्गु सारेण पीडयेत् । संहतञ्च गजानीकैः प्रचण्डैर्दारयेद् बलम्॥ ६४॥ स्यात् कक्षपक्षोरस्यैश्च वर्त्तमानस्तु दण्डकः । तत्र प्रयोगो दण्डस्य स्थानं तुर्य्येण दर्शयेत् ॥ ६५ ॥ स्याद् दण्डसमपक्षाभ्यामतिक्रान्तः प्रदारकः । भवेत् स पक्षकक्षाभ्यामतिक्रान्तो दृढः स्मृतः ॥ ६६ ॥ कक्षाभ्याञ्च प्रतिक्रान्तव्यूहो सऽह्यः स्मृतो यथा । कक्षपक्षावधः स्थाप्योरस्यैःक्रान्तश्च खातकः ॥ ६७ ॥ द्वौ दण्डौ बलयः प्रोक्तो व्यूहो रिपुविदारणः । दुर्जयश्चतुर्वलयः शत्रोर्बलविमर्दनः॥६८॥ कक्षपक्षोरस्यैर्भोगो विषयं परिवर्त्तयन्। सर्पचारी गोमूत्रिका शकटः शकटाकृतिः॥ ६९॥ विपर्य्ययोऽमरः प्रोक्तः सर्वशत्रुविमर्दकः।

से जो रेखा भूमि पर बन जाती है, उसी आकार में सेना को तैनात करने से जो व्यूह बनता है उसे अहिसंचारी व्यूह कहते हैं ।। ५५ ।। जिस दण्ड व्यूह के कक्ष और पक्ष आगे पीछे के क्रम से दण्डव्यूह के ही समान स्थित हों किन्तु उरस्य भाग दुगना हो तो उसे शकट व्यूह कहते हैं । इसके विपरीत स्थिति में स्थित मकर व्यूह कहलाता है ।। ५६ ।। इन दोनों व्यूहों में से किसी के भी मध्यभाग में हाथी घोड़े आदि आवाय मिला दिये जायँ तो वह परिपतन्तिक नामक व्यूह होता है ।। ५६ ।। मण्डल व्यूह के दो भेद होते हैं- सर्वतोभद्र एवं दुर्जय ।। ५७ ।। जिस मण्डलाकार व्यूह का चारों ओर मुख होता है उसे सर्वतोभद्र व्यूह कहते हैं । इसमें पाँच अनीक सेना होती हे । जिस सर्वतोभद्र व्यूह में एक अनीक उरस्य भाग में और एक-एक अनीक दोनों कक्षों में मिला देने से आठ अनीक सेना हो जाती है वह दुर्जय नामक व्यूह होता है । असंहत व्यूह के तीन भेद होते हैं-अर्द्धचन्द्रक, उर्द्धाङ्ग और वज्र ।। ५८ ।। कर्कट, शृङ्गी, काकपादी और गोधिका ये भी असहंत के ही भेद हैं । कर्कट शृंगी तथा अर्द्धचन्द्र ये तीन-तीन अनीक के व्यूह होते हैं । अर्द्धाङ्ग एवं काकपादी ये चार-चार अनीक में व्यूह हैं । वज्र एवं गोधिका ये दोनों व्यूह पाँच-पाँच अनीक के होते हैं । इन सबों में आकार का भेद होता है ।। ५९ ।। इस तरह समरांगण में दण्ड के सत्रह, मण्डल के दो, असहंत के छहतो भोडा व्यूह के पाँच भेद होते हैं।।६०।। पक्ष आदि में से किसी एक अङ्ग की सेना द्वारा शत्रु के व्यूह का भेदन करके शेष अनीकों द्वारा उसे घेर लेना चाहिए । अथवा उरस्य भाग के द्वारा शत्रु सेना पर प्रहार कर दोनों कोटियों (पक्षों) द्वारा उसको घेर लेना चाहिए ।। ६१ ।। शत्रु सेना की दोनों कोटियों (प्रपक्षों) पर अपने व्यूह के पक्षों द्वारा आक्रमण करके शत्रु के जघन भाग को अपने प्रतिग्रह तथा दोनों कोटियों द्वारा विनष्ट कर देना चाहिए । तथा उरस्यगत सेना द्वारा शत्रु पक्ष को पीड़ित करना चाहिए।।६२।। व्यूह के जिस भाग में सारहीन सैनिक हों जहाँ सेना में फूट पड़ गयी हो, तथा जहाँ पर दूसरों के द्वारा अधिष्ठित सेना है, वहीं-वहीं पर शत्रु की सेना का विनाश करना चाहिए तथा अपनी सेना को बढ़ाना चाहिए ।। ६३ ।। विजिगीषु को चाहिए कि वह शत्रु की बलिष्ठ सेना को उसके दो गुना बलिष्ठ सेना से पीड़ित करे तथा निर्बल सेना को सबल सेना के द्वारा पीड़ित करे । यदि शत्रु की सेना संगठित हो तो उसे प्रचण्ड गज सैनिकों द्वारा विदीर्ण करना चाहिए ।। ६४ ।। जिस व्यूह के कक्ष, पक्ष तथा उरस्य सम मात्रा में स्थित हों वह व्यूह दण्डक कहलाता है । दण्ड के प्रयोग तथा स्थान को चतुर्थ अंश से प्रदर्शित करना चाहिए ।। ६५।।दण्ड के समान ही जिस व्यूह के दोनों पक्ष बाहर निकले रहते हैं उस व्यूह को प्रदारक कहते हैं । जिस व्यूह के पक्ष और कक्ष बाहर निकले रहते हैं उस व्यूह को दृढ़क कहते हैं ।। ६६ ।। जिस व्यूह के दोनों कक्ष भीतर की ओर दबे रहते हैं, उस व्यूह को असह्य कहते हैं । कक्ष एवं पक्ष को नीचे स्थापित करके उरस्य द्वारा बाहर निकला हुआ व्यूह चाप कहलाता है ।। ६७ ।। दो दण्ड व्यूह को मिलाकर एक वलय व्यूह होता है । यह व्यूह शत्रुओं का विदारण करने वाला होता है । शत्रु की सेना को विशेष रूप से मर्दित करने वाला दुर्जय व्यूह चार बलय व्यूह को मिलाकर बनता है ।। ६८।।

स्यात् कक्षपक्षोरस्यानामेकोभावस्तु मण्डलः॥ ७०॥ चक्रपद्मादयो भेदा मण्डलस्य प्रभेदकाः । एवञ्च सर्वतोभद्रो बज्राक्षवर काकवत् ॥ ७१ ॥ अर्द्धचन्द्रश्च शृङ्गाटो ह्यचलो नामरूपतः । व्यूहा यथासुखं कार्य्याः शत्रूणां बलवारणाः॥ ७२॥ अग्निरुवाच– रामस्तु रावणं हत्वा अयोध्यां प्राप्तवान् द्विज ! । रामोक्तनीत्येन्द्रजितं हतवांल्लक्ष्मणः पुरा ॥ ७३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये राजनीतिकथनं नाम द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४२ ॥

त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुरुषलक्षणम्

अग्निरुवाच– रामायोक्ता मया नीतिः स्त्रीणां राजन् ! नृणां वदे । लक्षणं यत् समुद्रेण गर्गायोक्तं यथा पुरा ॥ १ ॥ समुद्र उवाच– पुंसाञ्च लक्षणं वक्ष्ये स्त्रीणाञ्चैव शुभाशुभम् । एकाधिको द्विशुक्लश्च त्रीगम्भीरस्तथैव च ॥ २ ॥ त्रित्रिकस्त्रिप्रलम्बश्च त्रिभिर्व्याप्नोति यस्तथा । त्रिबलीमांस्त्रिविनतस्त्रिकालज्ञश्च सुव्रत ! ॥ ३ ॥ पुरुषः स्यात् सुलक्षण्यो विपुलश्च तथा त्रिषु । चतुर्लेखस्तथा यश्च तथैव च चतुःसमः॥ ४॥ चतुष्किष्कुश्चतुर्दंष्ट्रः शुक्लकृष्णस्तथैव च । चतुर्गन्धश्चतुर्ह्रस्वः सूक्ष्मदीर्घश्च पञ्चसु ॥ ५॥ षडुन्नतोऽष्टवंशश्च सप्तस्नेहो नवामलः । दशपद्मो दशव्यूहो न्यग्रोधपरिमण्डलः ॥ ६ ॥ चतुर्दशसमद्वन्द्वः षोडशाक्षश्च शस्यते । धर्मार्थकामसंयुक्तोधर्मो ह्येकाधिको मतः॥ ७ ॥ तारकाभ्यां विना नेत्रे शुक्लदन्तो द्विशुक्लकः । गम्भीरस्त्रिश्रवो नाभिःसत्त्वश्चैकं त्रिकं स्मृतम् ॥ ८ ॥ अनसूया दया क्षान्तिर्मङ्गलाचारयुक्तता। शौचं स्पृहा त्वकार्पण्यमनायासश्च

कक्ष, पक्ष तथा उरस्य जब विषम रूप से स्थित हों तो भोग नामक व्यूह होता है । सर्पचारी सर्प की गति के समान होता है। गोमूत्रिका का व्यूह चलते समय गोमूत्र की जो रेखा बन जाती है, उसकी आकृति का होता है । शकट व्यूह शकट (गाड़ी) के आकार का होता है ।। ६९ ।। मकर व्यूह की स्थिति शकट व्यूह के ठीक विपरीत होती है ।यह समस्त शत्रुओं का विशेष रूप से मर्दन करने वाला व्यूह है । मण्डल व्यूह में कक्ष, पक्ष तथा उरस्य एक समान स्थिति में रहते हैं ।। ७० ।। चक्रव्यूह तथा पद्मव्यूह आदि मण्डल व्यूह के ही प्रभेद हैं । इसी तरह सर्वतोभद्र, वज्र, अक्षवर काक ।। ७१ ।। अर्द्धचन्द्र, शृगाट तथा अचल आदि व्यूह होते हैं । इन व्यूहों के नाम आकार के अनुसार हैं। शत्रु की सेना को रोकने में समर्थ अपने मन के अनुसार व्यूहों की रचना करनी चाहिए ।। ७२ ।। **अग्निदेव ने कहा–** हे द्विज ! श्रीराम ने रावण को मार कर अयोध्या को प्राप्त किया । श्रीराम के द्वारा उक्त नीति के अनुसार ही श्री लक्ष्मण ने इन्द्रजीत का वध किया ।। ७३ ।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का राजनीति वर्णन नामक दो सौ बयालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २४२ ॥

अग्निदेव ने कहा– मैंने राम के प्रति वर्णित नीतिवर्णन किया अब मैं पूर्वकाल में समुद्र के द्वारा आचार्य गर्ग को उपदिष्ट स्त्री एवं पुरुष के लक्षणों का वर्णन कर रहा हूँ ।। १ ।। **समुद्र ने कहा–** मैं पुरुष तथा स्त्रियों के शुभ तथा अशुभ लक्षणों का वर्णन करता हूँ। एकाधिक, द्विशुक्ल, त्रिगम्भीर, त्रित्रिक, त्रिप्रलम्ब, त्रिकव्यापक, त्रिबलिमान् , त्रिविनत, त्रिकालज्ञ ।। २ ।। तथा त्रिविपुल पुरुष सुन्दर लक्षणों वाला माना जाता है । इसी तरह चतुर्लेख, चतुःसम, ।। ४ ।। चतुष्किष्कू, चतुर्दंष्ट्र, चतुःकृष्ण, चतुर्गन्ध, चतुर्ह्रस्व, पञ्चसूक्ष्म, पञ्चदीर्घ ।। ५ ।। षडुन्नत, अष्टवंश, सप्तस्नेह, नवामल, दशपद्म, दशव्यूह,न्यग्रोधपरिमण्डल ।। ६ ।। चतुर्दश समद्वन्द्व तथा षोड्शाक्ष, इन लक्षणों वाला पुरुष श्रेष्ठ होता है ।धर्म,अर्थ और काम से संयुक्त धर्म एकाधिक कहा जाता है।। ७।। जिसके दोनों नेत्र तारका (पुतली से रहित) हो तथा दन्त पंक्ति उज्जवल होती है, वह पुरुष द्विशुक्ल है । जिसके स्वर, नाभि एवं सत्त्व गम्भीर हों वह पुरुष त्रिगम्भीर कहलाता

शौर्य्यता॥ ९॥ त्रित्रिकस्त्रिप्रलम्बः स्याद् वृषणे भुजयोर्नरः। दिग्देशजातिवर्गांश्च तेजसा यशसा श्रिया ॥ १० ॥ व्याप्नोतियस्त्रिकव्यापी त्रिवलीमान् नरस्त्वसौ । उदरे बलयस्तिस्त्रो नरं त्रिविनतं शृणु॥ ११॥ देवतानां द्विजानाञ्च गुरूणां प्रणतस्तु यः । धर्मार्थकामकालज्ञोऽस्त्रिकालज्ञोऽभिधीयते॥१२॥ उरो ललाटं वक्त्रञ्च त्रिविस्तीर्णो विलेखवान् । द्वौ पाणी द्वौ तथा पादौ ध्वजच्छत्रादिभिर्युतौ ॥ १३ ॥ अङ्गुल्यो हृदयं पृष्ठं कटिः शस्तं चतुःसमम्। षण्णवत्यङ्गुलोत्सेधश्चतुष्किष्कुप्रमाणतः ॥ १४॥ दंष्ट्राश्चतस्त्रश्चन्द्राभाश्चतुःकृष्णं वदामि ते । नेत्रतारौ भ्रुवौ श्मश्रुःकृष्णाः केशास्तथैव च॥ १५॥ नासायां वदने स्वेदे कक्षपोर्विडगन्धकः । ह्रस्वं लिङ्गं तथा ग्रीवा जङ्घे स्याद् वेदह्रस्वकम् ॥ १६ ॥ सूक्ष्माण्यङ्गुलिपर्वाणि नखकेशद्विजत्वचः । हनूनेत्रे ललाटे च नासा दीर्घा स्तनान्तरम् ॥ १७॥ वक्षः कक्षौ नखा नासोन्नतं वक्त्रं कृकाटिका। स्निग्धास्त्वक्केशदन्ताश्च लोम दृष्टिर्नखाश्च वाक्॥१८॥ जान्वोरुर्वोश्च पृष्ठस्थवंशौ द्वौ करनासयोः । नेत्रे नासापुटौ कर्णौ मेढ्रं पायुमुखेऽमलम्॥ १९॥ जिह्वोष्ठे तालुनेत्रे तु हस्तपादौ नखास्तथा । शिश्नाग्रवक्त्रं शस्यन्ते पद्माभा दश देहिनाम् ॥ २० ॥ पाणिपादं मुखं ग्रीवा श्रवणे हृदयं शिरः । ललाटमुदरं पृष्ठं वृहन्तः पूजिता दश ॥ २१ ॥ प्रसारितभुजस्येह मध्यमाग्रद्वयान्तरम् । उच्छ्रायेण समं यस्य न्यग्रोधपरिमण्डलः॥ २२॥ पादौ गुल्फौ स्फिचौ पार्श्वौ वङ्क्षणौ वृषणौ कुचौ । कर्णौष्ठे सक्थिनौ जङ्घे हस्तौ बाहू तथाक्षिणी ॥२३॥ चतुर्दशसमद्वन्द्व एतत् सामान्यतो नरः । विद्याचतुर्दश द्व्यक्षैः पश्येद् यः षोडशाक्षकः॥२४॥

है ।। ८ ।। अनसूया, दया, क्षान्ति मङ्गलाचार (सदाचार) सम्पन्नतम, शौच, स्पृहा, औदार्य, अश्रान्तता तथा शौर्य इन गुणों से विभूषित पुरुष त्रित्रिक है । जिसके वृषण (लिङ्ग) तथा दोनों भुजाएँ लम्बे हों वह त्रि प्रलम्ब पुरुष है ।। ९ ।। जो पुरुष अपने तेज,यश एवं श्री से दिशाओं,देश एवं जाति में व्यापक हो वह त्रिकव्यापी है । जिस मनुष्य के उदर में तीन रेखाएँ हों वह त्रिवलीमान् है । जो देवता, द्विज एवं गुरुजनों के समक्ष विनम्र रहता है, वह त्रिविनत मनुष्य है ।। १०-११ ।। जो धर्म, अर्थ एवं काम के काल को जानता है, उसे त्रिकालज्ञ पुरुष कहते हैं ।। १२ ।। वह मनुष्य त्रिविपुल है जिसके वक्षःस्थल ललाट एवं मुख विस्तीर्ण हों । वह मनुष्य चतुर्लेख है जिसके दोनों हाथ एवं दोनों पैर ध्वज एवं छत्र आदि चिह्नों से चिह्नित होते हैं ।। १३ ।। अंगुलि, हृदय, पृष्ठ एवं कटि ये चारों अंग जिसके समान होते हैं वह चतुस्सम है । जिसके शरीर की ऊँचाई छानबे अंगुल होती है, वह चतुष्किष्कु प्रमाण वाला पुरुष है ।। १३४ ।। जिसके चारों दाँत चन्द्रमा के समान चमकने वाले होते हैं वह चतुर्दंष्ट्र पुरुष है । अब मैं तुम्हें चतुःकृष्ण बतलाता हूँ । जिसके नेत्र के दोनों तारे, भौंहें, दाढ़ी,मूंछ तथा केश काले हों वह चतुःकृष्ण कहलाता है ।। १५ ।। नासिका, मुख तथा कक्ष युग्म में उत्तम गन्ध से युक्त मनुष्य चतुर्गन्ध कहलाता है । चतुर्ह्रस्व मनुष्य वह है जिसके लिङ्ग, ग्रीवा तथा दोनों जंघे छोटे हों ।। १६ ।। अंगुलियों के पर्व, नख, केश, दन्त तथा त्वचा जिसके सूक्ष्म हों वह पञ्च सूक्ष्म पुरुष है । हनु, नेत्र,ललाट, नासिका एवं वक्षःस्थल जिसके विशाल हों वह पञ्चदीर्घ पुरुष है ।। १७ ।। वक्षःस्थल, कक्ष, नख, नासिका, मुख एवं कृकाटिका (गर्दन की घंटी) ये छह अंग जिसके उठे हुए हों वह षडुन्नत पुरुष है । त्वचा, केश, दाँत, रोम, दृष्टि, नख एवं वाणी ये सात जिसके स्निग्ध हों वह सप्त स्नेह पुरुष है ।। १८ ।। जानुद्वय, अष्टवंश पृष्ठ, हस्तद्वय एवं नासिका इन सबों के उन्नत होने पर पुरुष अष्टवंश कहलाता है । नेत्रद्वय, नासिकापुटद्वय, कर्णद्वय, शिश्न, गुदा एवं मुख जिसके निर्मल हों वह नवामल पुरुष है ।। १९ ।। जिह्वा, ओष्ठ, तालु, नेत्र, हाथ, पैर, नख, शिश्नाग्र, एवं मुख ये दस अंग जिसके कमल की कान्ति से युक्त हों वह दश पद्म पुरुष है ।। २०।। हाथ, पैर,मुख, ग्रीवा, दोनों कान, हृदय, शिर, ललाट, उदर तथा पृष्ट जिसके वृहत् हों वह पूजित पुरुष दशव्यूह कहलाता है । जिस पुरुष की ऊँचाई भुजाओं के फैलाने पर दोनों मध्यमा अंगुलियों के मध्यमान्तर के समान होता है, उसे न्यग्रोध परिमण्डल कहते हैं ।। २२ ।। जिसके दोनों चरण, दोनों गुल्फ, दोनों नितम्ब, दोनों पार्श्व, दोनों वङ्क्षण, दोनों स्तन, दोनों कान, दोनों ओष्ठ, दोनों कटि, दोनों जंघे, दोनों हाथ, दोनों बाहु तथा दोनों नेत्र समान हों, वह चतुर्दश समद्वन्द्व है । यह सामान्य मनुष्य होता है । जो अपने दोनों नेत्रों से चौदहों विद्याओं को देखता है वह षोडशाक्ष

रूक्षं शिराततं गात्रमशुभं मांस वर्जितम् । दुर्गन्धिविपरीतं य च्छस्तं दृष्ट्या प्रसन्नया॥ २५॥ धन्यस्य मधुरा वाणी गतिर्मत्तेभसन्निभा। एककूपभवं रोम भये रक्षा सकृत् सकृत् ॥ २६॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पुरुषलक्षणकथनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

स्त्रीलक्षणम्

समुद्र उवाच– **शस्ता स्त्री चारुसर्वाङ्गी मत्तमातङ्गगामिनी । गुरूरुजघना ग्रा च मत्तपारावतेक्षणा ॥ १॥ सुनीलकेशी तन्वङ्गी विलोमाङ्गी मनोहरा। समभूमिस्पृशौ पादौ संहतौ च तथा स्तनौ॥ २॥ नाभिः प्रदक्षिणावर्त्ता गुह्यमश्वत्थपत्रवत् । गुल्फौ निगूढौ मध्येन नाभिरङ्गुष्ठमानिका ॥ ३ ॥ जठरं न प्रलम्बञ्च रोमरूक्षा न शोभना । नर्क्षवृक्षनदीनाम्नी न सदा कलहप्रिया ॥ ४ ॥ न लोलुपा न दुर्भाषा शुभा देवादिपूजिता । गण्डैर्मधूकपुष्पाभैर्न शिराला न लोमशा॥ ५॥ न संहतभ्रूकुटिला पतिप्राणा पतिप्रिया । अलक्षणापि लक्षण्या यत्राकारस्ततो गुणाः। भुवङ्कनिष्ठिका यस्या न स्पृशेन् मृत्युरेव सा॥६॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्त्रीलक्षणकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः। २४४ ॥

है ।। २३-२४।। रुक्ष, शिराओं से व्याप्त, दुर्गन्धि युक्त, एवं मांसरहित शरीर अशुभ होता है, इसके विपरीत गुणों वाले एवं प्रसन्न नेत्रों से युक्त शरीर प्रशस्त होता है ।।२५।। धन्य पुरुष की वाणी मधुर और चाल मदमत्त हाथी के समान होती है । उसके एक रोम कूप से एक ही रोम निकलता है । ऐसे पुरुष की भय से रक्षा बार-बार होती है ।। २७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का पुरुष लक्षण वर्णन नामक दो सौ तैंतालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २४३ ॥

समुद्र ने कहा– वह स्त्री उत्तम होती है जिसके सभी अङ्ग सुन्दर होते हैं । जो मत्त हाथी के समान चलने वाली हो जिसके उरू एवं नितम्ब भाग भारी हों तथा जिसके नेत्र मत्त पारावत के समान हों ।। १ ।। जिसके केश नीले-नीले, शरीर पतला तथा अङ्ग रोम रहित हों । जो देखने में सुन्दर, जिसके दोनों पैर समान रूप से पृथिवी का स्पर्श करने वाले, तथा स्तन आपस में सटे हुए हों ।। २ ।। जिसकी नाभि दक्षिणावर्त हों, योनि पिप्पल के पत्ते के समान हों, गुल्फ (घुटने) छिपे हुए हों तथा जिसकी नाभि अंगूठे के बराबर हों ।। ३ ।। पेट लम्बा अथवा लटकता हुआ न हो, जिसके शरीर में रोएँ होने के कारण रुक्ष शरीर हो वह स्त्री अच्छी नहीं होती । जिसके नाम नक्षत्रों, वृक्षों तथा नदियों के नाम पर हों तथा जो कलह करने वाली,वह भी स्त्री अच्छी नहीं होती है ।। ४ ।। जो नारी लोलुप न हो तथा कटु वचन बोलने वाली न हो, वह देवता आदि से पूजित शुभ लक्षणा है । जिसके कपोल मधूक (महुआ) के पुष्प के समान गोरे हों तथा जिसकी नाड़ियाँ न दिखायी देती हों और न तो जिसके शरीर रोमों से भरे हों, वह नारी शुभ होती है ।। ५ ।। जिसके दोनों टेढ़े भोंहें आपस में सट गयी हों वह भी नारी अच्छी नहीं होती है, जिसके प्राण पतियों में ही बसतें हो, जो पति को प्रिय हो, वह लक्षणों से रहित होने पर भी शुभ लक्षणों से युक्त मानी गयी है । जहाँ सुन्दर आकृति होती है, वहाँ शुभ गुण होते हैं । जिसकी कनिष्ठिका अंगुलि धरती से न सटे वह मृत्यु स्वरूपा होती है ।। ६।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का स्त्रियों के लक्षण वर्णन नामक दो सौ चौवालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

चामरादिलक्षणम्

अग्निरुवाच— **चामरो रुक्मादण्डोऽग्र्यः छत्रं राज्ञःप्रशस्यते । हंसपक्षैर्विरचितं मयूरस्य शुकस्य च॥ १॥ पक्षैर्वाथ बलाकाया न कार्य्यं मिश्रपक्षकैः। चतुरस्त्रं ब्राह्मणस्य वृत्तं राज्ञश्च शुक्लकम्॥ २॥ त्रिचतुःपञ्चषट्सप्तअष्टपर्वश्च दण्डकः । भद्रासनं क्षीरवृत्तैः पञ्चाशदङ्गुलोच्छ्रयैः॥३॥ विस्तारेण त्रिहस्तं स्यात्सुवर्णाद्यैश्च चित्रितम् । धनुर्द्रव्यत्रयं लोहं श्रृङ्गंदारु द्विजोत्तम॥ ४॥ ज्याद्रव्यत्रितयञ्चैव वंशभङ्गत्वचस्तथा । दारुचापप्रमाणन्तु श्रेष्ठं हस्तचतुष्टयम् ॥ ५ ॥ तदेव समहीनन्तु प्रोक्तं मध्यकनीयसि । मुष्टिग्रहनिमित्तानि मध्येद्रव्याणि कारयेत्॥ ६॥ स्वल्पकोटिस्त्वचा शृङ्गं शार्ङ्गलोहमये द्विज! । कामिनीभ्रूलताकाराकोटिःकार्य्यासुसंयता ॥ ७ ॥ पृथग् वा विप्र! मिश्रं वा लौहं शार्ङ्गन्तु कारयेत् । शार्ङ्गं समुचितं कार्य्यं रुक्मविन्दूविभूषितम्॥८॥ कुटिलं स्फुटितञ्चापं सच्छिद्रञ्च न शस्यते । सुवर्णं रजतं ताम्रं कृष्णायो धनुषि स्मृतम्॥ ९॥ माहिषं शारभं शार्ङ्गं रौहिषं वा धनुः शुभम् । चन्दनं वेतसं सालं धावलं ककुभन्तरु॥ १०॥ सर्वश्रेष्ठं धनुर्वंशैगृहीतैः शरदिश्रितैः। पूजयेत् तु धनुः खड्ग मन्त्रैः त्रैलोक्य मोहनैः॥ ११॥ आयसश्चाथ वंशस्य शरस्याप्यशरस्य च। ऋज्वोहेमवर्णाभाः स्नायुश्लिष्टाः सुपत्रकाः॥ १२॥ रुक्म पुंखाः सुपुंखास्ते तैलधौताः सुवर्णकाः। यात्रायामभिषेकादौ यजेद् बाणधनुर्मुखान् ॥ १३॥ सपताकास्त्रसंग्राह सांवत्सरकान् नृपः । ब्रह्मा वै मेरुशिखरे स्वर्गंगङ्गातटेऽयजेत्॥१४॥ लोहदैत्यं स ददृशे विघ्नं यज्ञे तु चिन्तयन् । तस्य चिन्तयतो वह्नेः पुरुषोऽभूद् बली महान् ॥ १५ ॥ ववन्देऽजञ्च तं देवा अभ्यनन्दन्त हर्षिताः।**

अग्निदेव ने कहा— वसिष्ठ ! सुवर्णदण्ड मण्डित चामर उत्तम होता है । राजा के लिए हंस पक्ष, मयूरपक्ष अथवा शुकपक्ष से निर्मित छत्र उत्तम होता है । अथवा बलाका के पक्ष से भी निर्मित्त छत्र हो सकता है,किन्तु राजा के छत्र को मिश्रित पक्षोंसे निर्मित नहीं होना चाहिए । ब्राह्मण का छत्र चतुरस्र (चौकोर) होना चाहिए और क्षत्रिय का गोल । एवं उजला होना चाहिए।।२।। तीन, चार, पाँच,छह, सात या आठ पर्वों से युक्त दण्ड प्रशस्त होता है ।। २ ।। राजा का भद्रासन वीरवृक्ष (दूध वाले वृक्ष) के काष्ठ से निर्मित, पचास अंगुल ऊँचा, तीन हाथ चौड़ा तथा सुवर्ण आदि से अलंकृत होना चाहिए ।। ३।। धनुष् के निर्माण के लिए लौह, शृंग या काष्ठ का प्रयोग करना चाहिए । प्रत्यञ्चा के लिए भी तीन द्रव्यों का उपयोग किया जा सकता है- वंश, भंग एवं चर्म ।। ४ ।। धनुष् के काष्ठ को चार हाथ लम्बा होना चाहिए । उसी में एक-एक हाथ कम मध्यम एवं अधम कोटि का धनुष् होता है ।। ५ ।। मुट्ठी में पकड़ने के लिए धनुष् के मध्यभाग को द्रव्य से निर्मित कराना चाहिए ।। ६ ।। हे द्विज! शृङ्गके तथा लोहे के बने धनुष् की कोटि एवं शृङ्ग को स्वल्प होना चाहिए और उसकी कोटि को कामिनी के भौंहें के आकार के समान सुन्दर एवं सुसंयत बनवाना चाहिए ।। ७ ।। हे विप्र ! धनुष् को शृङ्ग तथा लोहा दोनों द्रव्यों को मिलाकर बनावाये अथवा पृथक्-पृथक् बनवाये । शृंग से बने धनुष को सुवर्ण के विन्दुओं से समलंकृत करना चाहिए ।। ८ ।। टेढ़ा, फटा हुआ तथा छिद्रयुक्त धनुष अच्छा नहीं होता है । सुवर्ण, रजत, ताम्र, एवं कृष्ण लौह का धनुष् के निर्माण के लिए उपयोग किया जा सकता है ।। ९ ।। शृंग से निर्मित धनुषों में महिष, शरभ एवं रोहिण मृग के शृंगों से बने धनुष् प्रशस्त होते हैं । चन्दन, वेतस, साल, धव तथा अर्जुन के वृक्ष से बना हुआ दारुमय धनुष् उत्तम होता है ।। १० ।। इनमें भी शरद् ऋतु में काटे गये, पर्के बाँसों से निर्मित धनुष् सर्वोत्तम होता है । धनुष् एवं खड्ग की पूजा त्रैलोक्यमोहन मन्त्रों से करनी चाहिए ।। ११ ।। लोहे, बाँस, सरकंडे अथवा उससे भिन्न किसी अन्य वस्तु से बने बाण सीधे, स्वर्ण के समान चमकते हुए, स्नायुश्लिष्ट,सुवर्णपुख भूषित, तैलधौत, सुनहले एवं उत्तम पंख युक्त होने चाहिए। यात्रा एवं अभिषेक काल में राजा को, धनुष बाण आदि अस्त्रों,पताका,अस्त्र संग्रह एवं दैवज्ञ का भी पूजन करना चाहिए ।। १२-१३ ।। एक बार ब्रह्मा जी ने सुमेरु पर्वत के शिखर पर स्वर्ग गंगा

तस्मात् स नन्दकःखड्गो देवोक्तो हरिरग्रहीत् ॥ १६ ॥ तं जग्राह शनैर्देवो विकोषः सोऽम्यपद्यत । खड्गो नीलो रत्नमुष्टिस्ततोऽभूच्छतबाहुकः॥१७॥ दैत्यः सगदयादेवान् द्रावयामास वै रणे । विष्णुना खड्गच्छिन्नानि दैत्यगात्राणि भूतले॥ १८॥ पतितानि तु संस्पर्शान् नन्दकस्य च तानि हि । लोहभूतानि सर्वाणि हत्वा तस्मै हरिर्वरम् ॥ १९ ॥ ददौ पवित्रमङ्गं ते आयुधाय भवेद् भुवि । हरिप्रसादाद् ब्रह्मापि विना विघ्नं हरिं प्रभुम्॥२०॥ पूजयामास यज्ञेन वक्ष्येऽथो खड्गलक्षणम् । खटीखट्टरजाता ये दर्शनीयास्तु ते स्मृताः॥ २१॥ कायच्छिदस्त्वार्षिकाःस्युर्दृढासूर्पारकोद्भवाः । तीक्ष्णाश्छेदसहा वङ्गास्तीक्ष्णाः स्युश्चाङ्गदेशजाः ॥ २२ ॥शतार्द्धमङ्गुलनाञ्च श्रेष्ठं खड्गं प्रकीर्त्तितम् । तदर्द्धं मध्यमं ज्ञेयं ततोहीनं न धारयेत्॥२३॥ दीर्घं सुमधुरं शब्दं यस्य खड्गस्य सत्तम ! । किङ्किणी सदृशं तस्य धारणं श्रेष्ठमुच्यते॥ २४॥ खड्गः पद्मपलाशाग्रो मण्डलाग्रश्च शस्यते । करवीरदलाग्राभो घृतगन्धो वियत्प्रभः॥ २५॥ समाङ्गुलस्थाःशस्यन्ते व्रणाःखड्गेषु लिङ्गवत् । काकोलूकसवर्णाभा विषमास्ते न शोभनाः॥२६॥ खड्गे न पश्येद् वदनमुच्छिष्टो न स्पृशेदसिम् । मूल्यं जातिं न कथयेन् निशि कुर्य्यान् न शीर्षके ॥ २७ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये चामरादिलक्षणकथनं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४५ ॥

के तट पर यज्ञ किया ।। १४ ।। उसी समय उन्होंने एक लौहमय दैत्य को देखा और चिन्ता करने लगे कि कहीं यह दैत्य हमारे यज्ञ में विघ्न न करे । उस समय अग्नि से एक महान बली पुरुष प्रकट हुआ ।। १५ ।। उसने ब्रह्माजी की स्तुति की और देवताओं ने उसका हर्षित होकर अभिनन्दन किया । उससे वह नन्दक नामक खड्ग हो गया है और देवताओं के कहने पर श्रीहरि ने उसका ग्रहण किया ।। १६ ।। जब श्री भगवान् ने उसको पकड़ा तो वह म्यान से बाहर हो गया । उसका रंग नीला और उसकी मुष्टि रत्नमयी थी । भगवान् के पकड़ते ही वह सौ हाथ का लम्बा हो गया ।। १७ ।। वह लौहमय दैत्य देवताओं को लड़ाई में गदा से मार मार कर भगाने लगा । भगवान् ने अपने उस नन्दक खड्ग से उस दैत्य के शरीर को टुकड़े-टुकड़े कर दिया । नन्दक खड्ग के संस्पर्श से दैत्य का शरीर पृथिवी पर गिर पड़ा । और सब के सब लौहमय हो गये । श्रीहरि ने उस दैत्य को मारकर उसे वरदान दिया।।१८-१९।। तुम्हारे पवित्र अंग आयुध बनाने के काम आयेंगे । श्रीभगवान् की कृपा से ब्रह्माजी ने निर्विघ्नतापूर्वक श्रीहरि की यज्ञ द्वारा पूजा की । अब मैं खड्ग का लक्षण बतलाता हूँ ।। २० ।। खटीखट्टर देश में बने खड्ग दर्शनीय होते हैं ।। २१ ।। ऋषीक देश के बने खड्ग शरीर को चीर डालने वाले होते हैं । शूर्पारक देश के बने खड्ग अत्यन्त दृढ़ होते हैं । बङ्गदेश के बने खड्ग तीक्ष्ण तथा आघात को सहने वाले होते हैं । अङ्गदेश के बने खड्ग तीक्ष्ण होते हैं ।। २२ ।। पचास अंगुल लम्बा खड्ग श्रेष्ठ माना गया है । इससे अर्द्धपरिमाण का मध्यमा और उससे हीन परिमाण के खड्ग को धारण नहीं करना चाहिए ।। २३ ।। जिस खड्ग की ध्वनि गम्भीर मधुर एवं किंकिणी के समान होती है उसको धारण करना श्रेष्ठ माना गया है ।। २४ ।। जिस खड्ग का अग्रभाग कमलपत्र के समान अथवा मण्डल के समान हो अथवा करवीर पत्र के समान हो तथा जिससे घी की सुगन्धि निकलती हो एवं जिसकी कान्ति आकाश के समान नीली हो उस खड्ग को धारण करना श्रेष्ठ होता है ।। २५ ।। खड्ग में समांगुल पर स्थित लिङ्ग केसमान व्रण प्रशंसनीय है। यदि वे काक या उलूक के समान वर्ण या प्रभा से युक्त एवं विषम हों तो मंगलमय नहीं माने जाते हैं ।। २६ ।। खड्ग में अपना मुख नहीं देखना चाहिए ।। उसे जूठे हाथ नहीं छूना चाहिए । खड्ग की जाति एवं मूल्य भी किसी को नहीं बतलाना चाहिए और रात्रि में तलवार को सिरहाने रखकर नहीं सोना चाहिए ।। २७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का चामर आदि का लक्षण वर्णन नामक दो सौ छियालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २४५ ॥

षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

रत्नपरीक्षा

अग्निरुवाच– रत्नानां लक्षणं वक्ष्ये रत्नं धार्य्यमिदं नृपैः । वज्रं मरकतं रत्नं पद्मरागञ्च मौक्तिकम्॥ १॥ इन्द्रनीलं महानीलं वैदूर्य्यंगन्धशस्यकम्। चन्द्रकान्तं सूर्य्यकान्तं स्फटिकं पुलकं तथा॥ २॥ कर्केतनं पुष्परागं तथाज्योतिरसं द्विज !॥ स्फटिकं राजपट्टञ्च तथा राजमयं शुभम् ॥ ३॥ सौगन्धिकं तथा गञ्जं शङ्खब्रह्ममयं तथा । गोमेदं रुधिराक्षञ्च तथाभल्लातकं द्विज!॥ ४॥ धूलिं मरकतञ्चैव तुथकं सीसमेव च । पीलुं प्रवालकञ्चैव गिरिवज्रं द्विजोत्तम! ॥ ५॥ भुजङ्गममणिञ्चैव तथा वज्रमणिं शुभम् । टिट्टिभञ्च तथा पिण्डं भ्रामणञ्च तथोत्पलम्॥ ६॥ सुवर्णप्रतिबद्धानि रत्नानि श्रीजयादिके । अन्तःप्रभत्वं वैमल्यं सुसंस्थानत्वमेव च ॥ ७॥ सुधार्य्या नैव धार्य्यास्तु निष्प्रभा मलिनास्तथा । खण्डाः सशर्करा ये च प्रशस्तं वज्रधारणम्॥८॥ अम्भस्तरति यद् वज्रमभेद्यं विमलं च यत्। षट्कोणं शक्रचापाभं लघुचार्कनिभं शुभम्॥९॥ शुकपक्षनिभःस्निग्धःकान्तिमान्विमलस्तथा। स्वर्णचूर्णनिभैःसूक्ष्मैर्मरकतश्चविन्दुभिः॥ १०॥ स्फटिकजाः पद्मरागाः स्यू रागवन्तोऽतिनिर्मलाः। जातवङ्गा भवन्तीह कुरुविन्दसमुद्भवाः॥११॥ सौगन्धिकोत्था काषायमुक्ताफलास्तु शुक्तिजाः । विमलास्तेभ्य उत्कृष्टा ये च शङ्खोद्भवा मुने !॥१२॥ नागदन्तभवाश्चाग्र्याः कुम्भशूकरमत्स्यजाः। वेणुनागभवाः श्रेष्ठा मौक्तिकं नागजं वरम्॥ १३॥ वृत्तत्वं शुक्लता स्वाच्छ्यं महत्वं मौक्तिके गुणाः । इन्द्रनीलं शुभं क्षीरे राजते भ्राजतेऽधिकम्॥१४॥ रञ्जयेत् स्वप्रभावेण तममूल्यं विनिर्दिशेत्। नीलरक्तन्तु वैदूर्य्यं श्रेष्ठं हारादिकं भजेत् ॥ १५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रत्नपरीक्षाकथनं नाम षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४६ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं रत्नों का लक्षण बतलाता हूँ । राजाओं को रत्न धारण करना चाहिए । वज्र (हीरा) मरकत, पद्मराग, (मुक्ता ।। १ ।। महानील, इन्द्रनील वैदूर्य, गन्धसस्य, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, स्फटिक, पुलक ।। २ ।। कर्केतन, पुष्पराग, ज्योतीरस, राजपट्ट, राजमय, शुभ ।। ३ ।। सौगन्धिक गञ्ज, शंख, ब्रह्ममय, गोभेद, रुधिराक्ष, भल्लातक ।। ३४ ।। धूलि, मरकत, तुष्यक, सीस, पीलु, प्रवाल, गिरिवज्र, ।। ५ ।। भुजङ्गमणि, वज्रमणि, टिटिभ, भ्रमर और उत्पल ।। ये सभी रत्न हैं ।। ६ ।। श्रीएवं विजय प्राप्ति के लिए उपयुक्त रत्नों को सुवर्णमण्डित कराकर धारण करना चाहिए । जिसके भीतर प्रभा हो, विमलता हो तथा सुसंस्थानता हो उन्हीं रत्नों को धारण करना चाहिए । निष्प्रभ मलिन खण्डित एवं किरकिरीयुक्त रत्नों को नहीं धारण करना चाहिए । सभी रत्नों में हीरा को धारण करना श्रेष्ठ है ।। ७-९ ।। जो हीराजल में तैर सके, अभेद्य हो, निर्मल हो, खट्कोण हो, इन्द्रधनुष् के समान कान्ति वाला हो, छोटे हो, तथा सूर्य के समान देदीप्यमान हो उसको धारण करना शुभ है ।। ९ ।। अथवा तोते के पंख के समान वर्ण वाला हो, स्निग्ध हो, कान्तिमान तथा विमल हो वह हीरा शुभ है । मरकतमणि सुवर्णचूर्ण के समान सूक्ष्म विन्दुओं से युक्त होने पर अच्छी मानी गयी है ।। १० ।। स्फटिक एवं पद्मराग को रागयुक्त एवं अत्यन्त स्वच्छ होना चाहिए । वे कुरुविन्द से उत्पन्न होते हैं तथा वङ्गदेश में होते हैं ।। ११ ।। मुक्ताफल सुगन्धियुक्त, काषाय एवं सीपी से उत्पन्न तथा स्वच्छ होते हैं । उन सबों में जो शंख से उत्पन्न होते हैं वे उनकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं । हाथी के दाँत, हाथी के कुम्भ स्थल, से उत्पन्न सूकर, वेणुनाग से उत्पन्न तथा मेघों से उत्पन्न मोती अत्यन्त उत्तम हैं ।। १२-१३ ।। गोला, उजलापन, स्वच्छता तथा बड़ा होना मोती के गुण हैं । उत्तम इन्द्रनीलमणि दुग्ध में रखने पर अत्यधिक प्रकाशित एवं सुशोभित होता है ।। १४ ।। जो रत्न अपने प्रभाव से सबको रञ्जित कर दे वह अमूल्य होता है । उसका मूल्य नहीं आंका जा सकता है । नील एवं रक्त अभाव वाला वैदूर्य श्रेष्ठ होता है तथा यह हार में पिरोने योग्य होता है।। १५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का रत्न परीक्षा वर्णन नामक दो सौ छियालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २४६ ॥

सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वास्तुलक्षणम्

अग्निरुवाच– **वास्तुलक्ष्म प्रवक्ष्यामि विप्रादीनां च भूरिह । श्वेतारक्ता तथा पीता कृष्णा चैव यथाक्रमम् ॥ १ ॥ घृतरक्तान्नमद्यानां गन्धाढ्या वसतश्च भूः । मधुरा च कषया च अम्लाद्युपरसा क्रमात्॥ २॥ कुशैःशरैस्तथाकाशैर्दूर्वाभिर्या च संश्रिता । प्राच्र्य विप्रांश्च निःशल्यां खातपूर्वन्तु कल्पयेत् ॥ ३ ॥ च तुष्षष्टिपदं कृत्वा मध्ये ब्रह्मा चतुष्पदः । प्राक्तेषां वै गृहस्वामी कथितस्तु तथार्यमा॥ ४॥ दक्षिणेन विवस्वांश्च मित्रः पश्चिमतस्तथा। उदङ्महीधरश्चैव आपवत्सौ च वह्निगे ॥ ५॥ सावित्रश्चैवसविता जयेन्द्रौ नैर्ऋतेऽम्बुधौ । रुद्रव्याधी च वायव्ये पूर्वादौ कोणगाद् बहिः ॥ ६ ॥ महेन्द्रश्च रविःसत्योभृशः पूर्वेऽथ दक्षिणे । सौम्ये भल्लाटसोमौ च अदितिर्धनदस्तथा ॥ ७॥ नागःकरग्रहश्चैशे अष्टौ दिशि दिशिस्मृताः। आद्यन्तौ तु तयोर्देवौ प्रोक्तावत्र गृहेश्वरौ॥ ९ ॥ पर्जन्यः प्रथमो देवो द्वितीयश्च करग्रहः । महेन्द्ररविसत्याश्च भृशोऽथगगनं तथा॥१०॥ पवनः पूर्वतश्चैव अन्तरीक्षधनेश्वरौ। आग्नेये चाथ नैर्ऋत्ये मृगसुग्रीवकौ सुरौ ॥ ११॥ रोगो मुख्यश्च वायव्ये दक्षिणे पुष्पवित्तदौ । गृहक्षतो यमभृशौ गन्धर्वो नागपैतृकः ॥ १२॥ आप्ये दौवारिकसुग्रीवौ पुष्पदन्तोऽसुरो जलम् । यक्ष्मा रोगश्च शोषश्च उत्तरे नागराजकः ॥ १३ ॥ मुख्यो भल्लाटशशिनौ अदितिश्च कुवेरकः । नागोहुताशःश्रेष्ठो वै शक्र सूर्य्यौ च पूर्वतः॥ १४॥ दक्षे गृहक्षतः पुष्प आप्ये सुग्रीव उत्तमः। पुष्पदन्तो ह्युदग्**

अग्निदेव ने कहा– अब मैं वास्तु के लक्षणों का वर्णन करता हूँ। वास्तु शास्त्र में क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के लिए क्रमशः श्वेत, रक्त, पीत एवं कृष्ण वर्ण की भूमि निवास योग्य बतलायी गयी है ।। १ ।। जिस भूमि में घृत के समान गन्ध हो वह ब्राह्मणों के जिसमें रक्त के समान गन्ध हो, वह क्षत्रियों के लिए, जिसमें अन्न के समान गन्ध हो वह वैश्यों के तथा जिसमें मद्य के समान गन्ध हो वह शूद्रों के निवास के योग्य होती है ।। जिस भूमि में मधुर रस हो ब्राह्मणों के, जिसमें कषाय रस हो वह क्षत्रियों के,जिसमें अम्ल आदि रस हों वह वैश्यों तथा शूद्रों के निवास योग्य होती है ।। २ ।। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों को क्रमशः कुश, सरपत, काश तथा दुर्वा से युक्त भूमि में गृह बनाना चाहिए । पहले ब्राह्मणों की पूजा करके निशल्यभूमि में पहले खात खनना चाहिए।। ३ ।। तदनन्तर चौसठ पदों से युक्त वास्तुमण्डल के मध्य के चार पदों में ब्रह्मा की स्थापना करें । उन चार पदों के पूर्व में गृहस्वामी अर्यमा की स्थापना बतलायी गयी है ।। ४ ।। उसके दक्षिण में विवस्वान (सूर्य) का तथा पश्चिम में मित्र का स्थान होता है । उत्तर दिशामें महीधर तथा अग्निकोण में आप एवं वत्स की पूजा करनी चाहिए ।। ५ ।। ईशानकोण में सविता की पूजा करनी चाहिए तथा नैर्ऋत्यकोण के अम्बुधि में जय तथा इन्द्र की पूजा करनी चाहिए ।। वायव्यकोण में रुद्र तथा व्याधि की पूजा करनी चाहिए । पूर्व आदि दिशाओं में कोणवर्ती दिशासे पृथक् निम्नांकित देवताओं की पूजा करनी चाहिए ।। ६ ।। महेन्द्र, सत्य तथा भृश की पूर्व में पूजा करें, दक्षिण दिशा में गृहक्षत, यम, भृंग तथा गन्धर्व आदि की पूजा करें, इसके पश्चात् पश्चिम दिशा में पुष्पदन्त, असुर, वरुण और यज्ञ की पूजा करनी चाहिए, उत्तर दिशा में भल्लाट, सोम, अदिति और धनद की पूजा करनी चाहिए ।। ७-८ ।। ईशानकोण में नाग और करग्रह की पूजा करें । प्रत्येक दिशा के आठ देवता हैं, उनमें प्रथम एवं अन्तिम देवता वास्तुमण्डल के गृहस्वामी कहे गए हैं ।। ९ ।। पर्जन्य प्रथम देवता हैं, करग्रह (जयन्त) देवता द्वितीय हैं । महेन्द्र, रवि, सत्य, भृश तथा गगन अन्य देवता हैं ।। १० ।। पूर्व में पवन, अन्तरिक्ष एवं धनेश्वर (कुबेर) देवता हैं । अग्निकोण के देवता मृग तथा नैर्ऋत्यकोण के देवता सुग्रीव हैं ।।११।। वायव्यकोण के देवता रोग दक्षिण दिशाके पूषा एवं वितथ हैं । गृहक्षत, यम, भृश, गन्धर्व, नाग एवं पितरों की स्थापना करनी चाहिए ।। १२ ।। वास्तुमण्डल के पश्चिम दिशा में दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, असुर, वरुण, पापयक्ष्मा, रोगा तथा शोष स्थित हैं । उत्तर दिशा में नागराज ।। १३ ।। मुख्य, भल्लाट, सोम, अदिति, कुबेर, नाग एवं अग्नि सुशोभित हैं । पूर्व दिशा

द्वारि भल्लाटः पुष्पदन्तकः॥ १५॥ शिलेष्टकादिविन्यासं मन्त्रैः प्राच्यं सुरांश्चरेत्। नन्दे ! नन्दय वासिष्ठे ! वसुभिः प्रजया सह ॥ १६ ॥ जये ! भार्गवदायादे ! प्रजानां जयमावह ! पूर्णेऽङ्गिरसदायादे ! पूर्णकामं कुरुष्व माम्॥ १७॥ भद्रे! काश्यपदायादे ! कुरु भद्रां मतिं मम ! सर्ववीजसमायुक्ते! सर्वरत्नौषधैर्वृते॥ १८॥ रुचिरे ! नन्दने ! नन्दे वासिष्ठे ! रम्यतामिह । प्रजापतिसुते ! देवि! चतुरस्त्रे ! महीमये ॥ १९ ॥ सुभगे ! सुव्रते ! भद्रे! गृहे काश्यपि ! रम्यताम्। पूजिते ! परमाचार्य्यैर्गन्धमाल्यैरलङ्कृते ! ॥ २० ॥ भवभूतिकरे! देवि ! गृहे भार्गवि ! रम्यताम्। अव्यङ्ग्ये ! चाक्षते! पूर्णे ! मुनेरङ्गिरसः सुते ! ॥ २१ ॥ इष्टके ! त्वं प्रयच्छेष्टं प्रतिष्ठां कारयाम्यहम् । देशस्वामिपुरस्वामिगृहस्वामिपरिग्रहे ! ॥ २२॥ मनुष्यधनहस्त्यश्वपशुवृद्धिकरी भव । गृहप्रवेशेऽपि तथाशिलान्यासं समाचरेत् ॥ २३॥ उत्तरेण शुभः प्लक्षो वटः प्राक् स्याद् गृहादितः । उदुम्बरश्च याम्येन पश्चिमेऽश्वत्थ उत्तमः ॥ २४ ॥ वामभागे तथोद्यानं कुर्य्याद् वासं गृहे शुभम् । सायं प्रातस्तु घर्माप्तौशीतकाले दिनान्तरे ॥ २५॥ वर्षारात्रे भुवः शोषे सेक्तव्या रोपितद्रुमाः । विडङ्गघृतसंयुक्तान् सेचयेच्छीतवारिणा॥ २६॥ फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैस्तिलैर्यवैः । घृतशीतपयःसेकः फलपुष्पाय सर्वदा ॥ २७ ॥ मत्स्याम्भसा तु सेकेन वृद्धिर्भवति शाखिनः। आविकाजसकृच्चूर्णं यवचूर्णं तिलानि च ॥ २८ ॥ गोमांसमुदकञ्चेति सप्तरात्रं निधापयेत् । उत्सेकं सर्ववृक्षाणां फलपुष्पादिवृद्धिदम् ॥ २९॥ मत्स्योदकेन शीतेन आम्राणां सेक इष्यते । प्रशस्तं चाप्यशोकानां

में इन्द्र और सूर्य श्रेष्ठ हैं ।। १४ ।। दक्षिण दिशा में गृहक्षत पुण्यमय हैं, पश्चिम में सुग्रीव उत्तम हैं । उत्तर द्वार पर पुष्पदन्त स्थित हैं । भल्लाट को ही पुष्पदन्त कहा गया है ।। १५ ।। इन वास्तुदेवताओं का मन्त्रों से पूजन करके शिला एवं इष्टिका आदि का विन्यास करें । फिर निम्नांकित मन्त्रों से नन्दा आदि देवियों का पूजन करें । वसिष्ठ नन्दिनी ! नन्दे मुझे धन एवं प्रजा से संयुक्त करके आनन्दित करो ।। १६ ।। हे जये ! भार्गव पुत्रि ! हम आपकी प्रजा हैं हमें विजय प्रदान करें । हे अंगिरा पुत्रि ! पूर्णे ! हमें पूर्णकाम बना दो ।। १७ ।। हे कश्यपपुत्रि भद्रे! मेरी बुद्धिको कल्याणमयी बना दो । हे वसिष्ठ पुत्रि नन्दे ! सभी प्रकार के बीजों से सम्पन्न तथा सभी रत्नौषधियों से युक्त इस मनोहर नन्दनवन में आप विहार करें ।। १८ ।। हे प्रजापति पुत्रि भद्रे ! तुम उत्तम लक्षणों एवं श्रेष्ठ व्रत को धारण करने वाली हो, कश्यप नन्दिनी तुम भूमिम इस चतुरस्त्रभवन में निवास करो ।। १९ ।। हे भार्गव पुत्रि देवि ! आप सम्पूर्ण विश्व को ऐश्वर्य प्रदान करने वाली हैं । श्रेष्ठ आचार्यों द्वारा पूजित एवं गन्ध एवं मालाओं से समलंकृत मेरे इस गृह में आप रमण करें ।। २० ।। हे अंगिरा ऋषि की पुत्रि पूर्णे आप सम्पूर्ण अंगों से युक्त तथा सम्पूर्ण अंगों से युक्त मेरे इस गृह में निवास करें ।। २१ ।। हे इष्टिके ! मैं गृह की प्रतिष्ठा करा रहा हूँ, तुम मुझे अभिलषित भोग प्रदान करो । देशस्वामी, नगरस्वामी एवं गृहस्वामी के परिग्रह में रहकर आप मेरे,मनुष्यों धनों, हाथी, घोड़ों तथा पशुओं की वृद्धि करें । गृहप्रवेश के समय भी उसी प्रकार से शिलान्यास करना चाहिए ।। २२-२३ ।। गृह के उत्तर में प्लक्ष (पाकड़) का वृक्ष शुभ होता है , पूर्व में गृह से पहले वट, दक्षिण दिशा में उदुम्बर (गूलर) एवं पश्चिम में पिप्पलशुभ होता है ।। २४ ।। गृह के वामभाग में उद्यान लगाना चाहिए। ऐसे गृह में निवास करना शुभ होता है । गर्मी के दिनों में सायंकाल एवं प्रातःकाल दोनों समय, ठंढी के दिन में एक दिन बीच डाल के और वर्षा के समय जब भूमि सूख जाय तब रोपे गए वृक्षों को सींचना चाहिए।।२५।। वृक्षों को वायविडंग तथा घृत मिश्रित शींतल जल से सींचना चाहिए ।। २६ ।। जिन वृक्षों में फल लगना बंद हो गया हो उन्हें कुलथी, उड़द, मूंग, तिल तथा तिल एवं घृत मिश्रित शीतल जल से सींचना चाहिए । ऐसा करने से हमेशा फल एवं फूल लगते रहते हैं ।। २७ ।। मछली वाले जल से वृक्षों को सींचने से वृक्ष बढ़ते हैं । भेंड़ एवं बकरी की लेंड़ी के चूर्ण, यव के चूर्ण, तिल, गोबर एवं जल मिलाकर सात रात तक ढंककर रखना चाहिए । इस तरह के खाद देकर सींचने से सभी प्रकार के वृक्षों के फल एवं पुष्प की वृद्धि होती है ।। २८-२९ ।। मछली के ठंढे जल से आमों को सींचना चाहिए । अशोक के वृक्ष पर कामिनियों का पाद-प्रहार अच्छा होता है ।। ३० ।। खजूर तथा नारियल आदि की नमक मिश्रित जल से सींचने से वृद्धि होती

कामिनीपादताड़नम् ॥ ३० ॥ खर्जूरनारिकेलादेर्लवणाद्भिर्विवर्द्धनम् । विडङ्गमत्स्यमांसाद्भिः सर्वेषां दोहदं शुभम्॥ ३१॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वास्तुलक्षणकथनं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४७ ॥

अष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुष्पादिपूजाफलम्

अग्निरुवाच– **पुष्पैस्तु पूजनाद् विष्णुः सर्वकार्य्येषु सिद्धिदः । मालती मल्लिका यूथी पाटला करवीरकम् ॥ १ ॥ पावन्तिरतिमुक्तश्च कर्णिकारः कुरण्टकः । कुब्जकस्तगरो नीपो बाणो वर्वरमल्लिका ॥ २॥ अशोकस्तिलकः कुन्दः पूजायै स्यात् तमालजम् । विल्वपत्रं शमीपत्रं पत्रं भृङ्गरजस्य तु॥ ३॥ तुलसीकालतुलसीपत्रं वासकमर्च्चने । केतकीपत्रपुष्पं च पद्मं रक्तोत्पलादिकम् ॥ ४ ॥ नार्क्कन्नोन्मत्तकङ्काञ्ची पूजने गिरिमल्लिका । कौटजं शाल्मलीपुष्पं कण्टकारीभवन्नहि॥ ५॥ घृतप्रस्थेन विष्णोश्च स्नानङ्गोकोटिसत्फलम् । आढ़केन तु राजा स्यात् घृतक्षीरैर्दिवं व्रजेत् ॥ ६ ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पुष्पादिपूजाफलकथनं नामाष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४८ ॥

ऊनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

धनुर्वेदः

अग्निरुवाच– **चतुष्पादं धनुर्वेदं वदे पञ्चविधं द्विज ! । रथनागाश्वपत्तीनां योधांश्चाश्रित्य कीर्त्तितम् ॥ १ ॥ यन्त्रमुक्तं पाणिमुक्तं मुक्तसन्धारितं**

है । वायविडंग मछली तथा जलसे सींचने पर सभी वृक्षों में उत्तम दोहद होता है ।। ३१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का वास्तुलक्षण वर्णन नामक दो सौ सैंतालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २४७ ॥

अग्निदेव ने कहा– पुष्पों से पूजा करने से भगवान् विष्णु सभी कार्यों में सिद्धि प्रदान करते हैं । मालती,मल्लिका, यूथिका, गुलाब, कनेर ।। १ ।। पावन्ती, अतिमुक्तक, कर्णिकार, कुरण्टक, कुबजक, तगर, नीप (कदम्ब) बाण, वनमल्लिका ।। २ ।। अशोक, तिलक, कुन्द और तमाल इनके पुष्प पूजा के लिए उपयोगी होते हैं । विल्वपत्र, शमीपत्र, भृङ्गराजपत्र, तुलसी, काली तुलसी तथा वासक अडूसा के पत्र पूजन में ग्राह्य हैं ।। ३ ।। केतकीपत्र, पुष्प, पद्म तथा रक्त कमल आदि भी पूजा में ग्राह्य हैं ।। ३४ ।। मदार, धत्तूर, गुञ्ञा, पर्वतीय मल्लिका, कुटज, सेमर तथा कटेरी के पुष्पों से भगवान् विष्णु की पूजा नहीं करनी चाहिए ।। ५ ।। एक प्रस्थ घी से भगवान् विष्णु का अभिषेक करने वाले को करोड़ गौओं के दान का फल मिलता है, एक आढक घी से अभिषेक कराने वाले को राज्य की प्राप्ति होती है तथा घी एवं दुग्ध से भगवान् विष्णु का अभिषेक करने वाले को स्वर्ग मिलता है ।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का पुष्प आदि से पूजा करने के फल का वर्णन नामक दो सौ अड़तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २४८ ॥

अग्निदेव ने कहा– हे द्विज! अब मैं चार पादों वाला धनुर्वेद का वर्णन कर रहा हूँ । उसके पाँच भेद होते हैं- धनुर्वेद, रथ, हाथी, घोड़े तथा पैदल योद्धाओं को लेकर प्रवृत्त होता है।।१।।

तथा। अमुक्तं बाहुयुद्धञ्च पञ्चधा तत् प्रकीर्त्तितम्॥ २॥ तत्र शस्त्रास्त्रसम्पत्त्या द्विविधं परिकीर्त्तितम्। ऋजुमायाविभेदेन भूयो द्विविधमुच्यते॥ ३॥ क्षेपणी चापयन्त्राद्यैर्यन्त्रमुक्तं प्रकीर्त्तितम्। शिलातोमरयन्त्राद्यं पाणिमुक्तं प्रकीर्त्तितम्॥ ४॥ मुक्तसन्धारितं ज्ञेयं प्रासाद्यमपि यद् भवेत्। खड्गादिकममुक्तञ्च नियुद्धं विगतायुधम्॥ ५॥ कुर्य्याद् योग्यानि पात्राणि योद्धुमिच्छुर्जितश्रमः। धनुःश्रेष्ठानि युद्धानि प्रासमध्यानि तानि च॥६॥ तानि खड्गजघन्यानि बाहुप्रत्यचराणि च। धनुर्वेदे गुरुर्विप्रः प्रोक्तो वर्णद्वयस्य च॥ ७॥ युद्धाधिकारः शूद्रस्य स्वयं व्यापादि शिक्षया। देशस्थैः शङ्करै राज्ञः कार्य्या युद्धे सहायता॥ ८॥ अङ्गुष्ठगुल्फपाण्यंघ्रयः शिलष्टाः स्युःसहिता यदि। दृष्टं समपदं स्थानमेतल्लक्षणतस्तथा॥ ९॥ बाह्याङ्गुलिस्थितौ पादौ स्तब्धजानुबलावुभौ। त्रिवितस्त्यन्तरास्थानमेतद् वैशाखमुच्यते॥ १०॥ हंसपंक्त्याकृतिसमे दृश्येते यत्र जानुनी। चतुर्वितस्तिविच्छिन्ने तदेतन्मण्डलं स्मृतम्॥ ११॥ हलाकृतिमयं यञ्च स्तब्धजानूरुदक्षिणम्। वितस्त्यःपञ्च विस्तारे तदालीढं प्रकीर्त्तितम्॥ १२॥ एतदेव विपर्य्यस्तं प्रत्यालीढमिति स्मृतम्। तिर्य्यग्भूतो भवेद् वामो दक्षिणोऽपि भवेदृजुः॥ १३॥ गुल्फौ पार्ष्णिग्रहौ चैव स्थितौ पञ्चाङ्गुलान्तरौ। स्थानं जातं भवेदेतद् द्वादशागुलमायतम्॥ १४॥ ऋजुजानुर्भवेद् वामो दक्षिणः सुप्रसारितः। अथवा दक्षिणञ्जानु कुब्जं भवति निश्चलम्॥ १५॥ दण्डायतो भवेदेष चरणः सह जानुना। एवं विकटमुद्दिष्टं द्विहस्तान्तरमायतम्॥ १६॥ जानुनी द्विगुणे स्यातामुत्तानौ चरणावुभौ। अनेन विधियोगेन सम्पुटं परिकीर्त्तितम्॥ १७॥ किञ्चिद् विवर्त्तितौ पादौ समदण्डायतौ स्थिरौ। दृष्टमेव यथान्यायं षोडशांगुलमायतम्॥ १८॥ स्वस्तिकेनात्र कुर्वीत प्रणामं प्रथमं द्विज! कार्मुकं गृह्य वामेन बाणं दक्षिणकेन तु॥ १९॥ वैशाखे यदि वाजाते स्थितौ वाप्यथ वायतौ। गुणान्तन्तु

यन्त्रमुक्त, पाणिमुक्त, मुक्तसन्धारित, अमुक्त एवं बाहुयुद्ध ये उसके पाँच भेद होते हैं ।। २ ।। शास्त्रास्त्रों की सम्पन्नता के भेद से उसके पुनः दो भेद होते हैं- पुनः वह दो प्रकार का होता है। तथा माया (छल-प्रपञ्चों से परिपूर्ण) धनुर्वेद ।। ३ ।। क्षेपणी तथा धनुष् आदि से जिसमें यन्त्र फेंका जाता है उसको यन्त्रमुक्त धनुर्वेद कहते हैं। शिलाखण्ड एवं तोमर यन्त्र से युक्त को पाणिमुक्त धनुर्वेद कहते हैं ।। ४ ।। जिसमें प्रास (भाला) आदि शस्त्र का शत्रु पर प्रहार करके पुनः उसे धारण कर लिया जाय उसे मुक्त सन्धारित कहते हैं। खड्गादि से किए जाने वाले युद्ध को अमुक्त कहते हैं तथा जिसमें अस्त्र-शस्त्र से रहित होकर भुजाओं से लड़ा जाय उसे नियुद्ध अथवा बाहुयुद्ध कहते हैं ।। ५ ।। युद्ध करने की इच्छा वाले पुरुष को श्रम रहित होकर युद्ध के योग्य पात्रों का संग्रह करना चाहिए। जिस युद्ध में धनुष का प्रयोग हो वह श्रेष्ठ युद्ध है, जिस युद्ध में भाले आदि शस्त्रों का प्रयोग हो वह मध्यम कोटि का होता है ।। ६ ।। जिसमें खड्ग आदि का प्रयोग हो वह अधम युद्ध होता है तथा जिसमें बाहुयुद्ध किया जाय वह अधम माधम कोटि का युद्ध होता है। धनुर्वेद में क्षत्रिय एवं वैश्य इन दो वर्णों का गुरु ब्राह्मण को बतलाया गया है ।।७।। आपत्तिकाल में स्वयं शिक्षा करके शूद्र को भी युद्ध करने का अधिकार है। देश में रहने वाले वर्णसंकरों को राजा की सहायता से युद्ध में करनी चाहिए ।। ८ ।। अंगूठा, गुल्फ, हाथ एवं पैर- ये एक साथ रहकर परस्पर सटे हुए हों तो लक्षण के अनुसार इन्हें 'समपद' नामक स्थान कहा गया है ।। ९ ।। यदि दोनों पैर बाह्य अंगुलियों के बल पर स्थित हों, दोनों घुटने स्तब्ध हों तथा दोनों पैरों के बीच की दूरी तीन बित्ता हो तो यह वैशाख नामक स्थान कहलाता है ।। १० ।। जिसमें दोनों घुटने हंस पंक्ति के आकार के दिखायी पड़ते हों दोनों के बीच की दूरी चार बित्ता हो तो उसे मण्डल कहते हैं ।। ११ ।। जिसमें दाहिना जंघा और घुटना तना हुआ हो तथा दोनों पैरों के बीच की दूरी पाँच बित्ता हो तो उसे आलीढ कहते हैं ।। १२ ।। इसके विपरीत जहाँ बायाँ जंघा और बायाँ घुटना दोनों तने हुए हों तथा दोनों पैरों के बीच की दूरी पाँच बित्ता हो तो उसे प्रत्यालीढ कहते हैं। जिसमें बायाँ पैर टेढ़ा और दाहिना पैर सीधा हो तथा दोनों गुल्फ और पार्ष्णिभाग पाँच अंगुल की दूरी पर हो तो यह बारह अंगुल बड़ा स्थानक कहलाता है ।। १३-१४ ।।यदि बायें पैर का घुटना सीधा हो और दाहिना पैर अच्छी तरह से फैलाया गया हो अथवा दाहिना घुटना ककुब्जाकार एवं निश्चल हो, अथवा घुटने के साथ ही दाहिना पैर दण्डाकार विशाल दिखायी देता हो तो वह विकट नामक स्थान कहलाता है। इसमें दोनों पैरों की दूरी दो हाथ बड़ी होती है ।।१५-१६ ।। जिसमें दोनों घुटने-दुहरे और दोनों पैर उत्तान हो जाय तो इस प्रकार से बनने वाला स्थान सम्पुट कहलाता है ।। १७ ।। जहाँ पर कुछ घुमे हुए दोनों

ततः कृत्वा कार्मुके प्रियकार्मुकः ॥ २० ॥ अधःकोटिन्तु धनुषः फलदेशन्तु पत्रिणः । धरण्यां स्थापयित्वा तु तोलयित्वा तथैव च॥ २१॥
भुजाभ्यामत्र कुब्जाभ्यां प्रकोष्ठाभ्यां शुभव्रत । तस्य बाणं धनुः श्रेष्ठं पुङ्खदेशे च पत्रिणः ॥ २२ ॥ विन्यासो धनुषश्चैव द्वादशाङ्गुलमन्तरम् । ज्यया
विशिष्टः कर्त्तव्यो नातिहीनो न चाधिकः ॥ २३ ॥ निवेश्य कार्मुकं नाभ्यां नितम्बे शरसङ्करम् । उत्क्षिपेदुत्थितं हस्तमन्तरेणाक्षिकर्णयोः॥ २४॥
पूर्वेण मुष्टिना ग्राह्यस्तनाग्रे दक्षिणे शरः । हरणन्तु ततः कृत्वा शीघ्रं पूर्वंप्रसारयेत् ॥ २५ ॥ नाभ्यन्तरा नैव वाह्या नोर्ध्वका नाधरा तथा । न च
कुब्जा न चोत्ताना न चला नातिवेष्टिता ॥ २६ ॥ समा स्थैर्य्यगुणोपेता पूर्वदण्डमिव स्थिता । छादयित्वा ततो लक्ष्यं पूर्वेणानेन मुष्टिना॥ २७॥
उरसा तूत्थितो यन्ता त्रिकोणविनतस्थितः । स्रस्तांशे निश्चलग्रीवो मयूराञ्चितमस्तकः ॥ २८ ॥ ललाटनाशावक्त्रांसाः कुर्य्युरश्वसमम्भवेत् । अन्तरं
त्र्यङ्गुलं ज्ञेयं चिबुकस्यांसकस्य च॥ २९॥ प्रथमं त्र्यङ्गुलं ज्ञेयं द्वितीये द्व्यङ्गुलं स्मृतम् । तृतीयेऽङ्गुलमुद्दिष्टमायतश्चिबुकांसयोः॥ ३०॥ गृहीत्वा
सायकं पुङ्खात् तर्जन्याङ्गुष्ठकेन तु। अनामया पुनर्गृह्य तथा मध्यमयापि च॥ ३१॥ तावदाकर्षयेद् वेगाद् यावद् बाणः सुपूरितः । एवंविधमुपक्रम्य
मोक्तव्यं विधिवत् खगम् ॥ ३२ ॥ दृष्टिमुष्टिहतं लक्ष्यं भिन्द्याद् बाणेन सुव्रत ! । मुक्त्वा तु पश्चिमं हस्तं क्षिपेद् वेगेन पृष्ठतः॥३३॥ एतदुच्छेदमिच्छन्ति
ज्ञातव्यं हि त्वया द्विज!। कूर्परं तदधः कार्य्यमाकृष्य तु धनुष्मता॥ ३४॥ ऊर्ध्वं विमुक्तके कार्य्ये लक्षश्लिष्टन्तु मध्यमम् । श्रेष्ठं प्रकृष्टं विज्ञेयं

पैर समान रूप से दण्ड के समान विशाल एवं स्थिर दिखायी दें वहाँ पर दोनों पैरों की दूरी सोलह अंगुल ही देखी गयी है ।। १८ ।। हे द्विज ! योद्धाओं को चाहिए कि वे बाएँ हाथ से धनुष एवं दाहिने हाथ से बाण लेकर बाणों को स्वस्तिक के आकार का चलाकर अपने गुरुजनों को प्रणाम करें ।। १९ ।। धनुष् का प्रेमी योद्धा 'वैशाख' स्थान के सिद्ध हो जाने पर वर्तमान या भविष्यत् काल में जब कभी भी आवश्यकता हो जाने पर डोरी चढ़ाकर धनुष् की निचली कोटि और बाण के फाल देश को भूमि पर टिकाकर रखे और हे शुभव्रत! मुड़ी हुई दोनों भुजाओं एवं कलाइयों द्वारा नापे ।। २०-२१।। उसयोद्धा के बाण से धनुष् को सदा बड़ा होना चाहिए एवं मुष्टि के सामने बाण के पुंख तथा धनुष् के डंडे में बारह अंगुल का अन्तराल होना चाहिए।।२२।। यदि ऐसी स्थिति हो तो धनुष् के दण्ड को प्रत्यञ्चा से युक्त कर देना चाहिए । उसे अधिक छोटा या बड़ा नहीं होना चाहिए ।। २३ ।। धनुष् को नाभि स्थान में और बाण समूह को नितम्ब स्थान पर रखकर उठे हुए हाथ को आँख एवं कान के बीव में करके बाण को छोड़ना चाहिए ।। २४ ।। पहले बाण को मुट्ठी में पकड़े और उसे दाहिने स्तनाग्र की सीध में रखें । फिर उसे प्रत्यञ्चा पर ले जाकर डोरी को खींचकर शीघ्र उसे फैलाए ।। २५ ।। डोरी को न तो भीतर होना चाहिए न बाहर न ऊँचा न नीचे, न उसे कुब्ज होना चाहिए और न उत्तान न तो चंचल और न तो अतयन्त आवेष्टित ।। २७ ।। उसे सम, स्थिर एवं दण्ड के समान स्थिर होना चाहिए । इस प्रकार पहले इस मुष्टि से लक्ष्य को आच्छादित करके बाण को छोड़ना चाहिए ।। २७ ।। धनुर्धर योद्धा को चाहिए कि वह प्रयत्न पूर्वक अपनी छाती ऊँची रखे । वह इस तरह झुककर खड़ा होए कि उसका शरीर त्रिकोण मालूम हो । कंधा ढीला, ग्रीवा निश्चल और मस्तक को मयूर की भाँति शोभित होना चाहिए ।। २८ ।। ललाट, नासिका, मुख एवं कंधे को समावस्था में रखना चाहिए । ठोढ़ी और कंधे के बीच तीन अंगुल का अन्तराल होना चाहिए।। २९ ।। पहली बार तीन अंगुल काअंतराल, दूसरी बार दो अंगुल का अंतराल और तीसरी बार तीन अंगुल काअंतराल ठोढ़ी और कंधे के बीच में होना चाहिए ।। ३० ।। उसे बाण से पंख की ओर से तर्जनी एवं अंगूठे से पकड़ना चाहिए । फिर उसे मध्यमा एवं आनामिका से पकड़कर तब तक जोर से खींचते रहना चाहिए जब तक बाण पूरा-पूरा धनुष् पर न आ जाय। इस प्रकार से उपक्रम करके बाण को विधिपूर्वक छोड़ना चाहिए ।। ३१-३२ ।। हे सुव्रत ! पहले दृष्टि एवं मुष्टि से आहत हुए लक्ष्य को ही बाणसे विदीर्ण करना चाहिए । बाण को छोड़कर पिछला हाथ बड़े वेगसे पीठ की ओर ले जाना चाहिए, क्योंकि शत्रु इस हाथ को काट डालना चाहता है, यह आपको जानना चाहिए । धनुर्धारी को चाहिए कि वह कोहुनी को खींचकर उसके नीचे कर ले ।। ३३-३४।। और बाण छोड़ते समय उसको ऊपर करे,कोहनी को आँखसे सटाना मध्यम कोटि का बचाव है और शत्रु के लक्ष्य से उसे दूर रखना उत्तम, यह धनुश शास्त्र के विशारदों को विशेष रूप से

धनुःशास्त्रविशारदैः॥ ३५॥ ज्येष्ठस्तु सायको ज्ञेयो भवेद् द्वादशमुष्टयः । एकादश तथा मध्यः कनीयान् दशमुष्टयः॥ ३६॥ चतुर्हस्तं धनुः श्रेष्ठं त्रयः सार्द्धन्तु मध्यमम् । कनीयस्तु त्रयः प्रोक्तं नित्यमेव पदातिनः। अश्वे रथे गजे श्रेष्ठे तदेव परिकीर्त्तितम् ॥ ३७ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये धनुर्वेदवर्णनं नामोनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४९ ॥

पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

धनुर्वेदकथनम्

अग्निरुवाच– **पूर्णायतं द्विजः कृत्वा ततो मांसैर्गदायुधान् । सुनिर्धौतं धनुः कृत्वा यज्ञभूमौ विधापयेत् ॥ १ ॥ ततो बाणं समागृह्य दंशितः सुसमाहितः। तूणमासाद्य बध्नीयाद् दृढां कक्षाञ्च दक्षिणाम् ॥ २ ॥ विलक्ष्यमपि तद् वाणं तत्र चैव सुसंस्थितम् । ततः समुद्धरेद् बाणं तूणाद् दक्षिणपाणिना ॥ ३ ॥ तेनैव सहितं मध्ये शरं संगृह्य धारयेत् । वामहस्तेन वै कक्षां धनुस्तस्मात्समुद्धरेत्॥ ४॥ अविषण्ण मतिर्भूत्वा गुणे पुङ्खं निवेशयेत् । सम्पीड्य सिंहकर्णेन पुङ्खेनापि समे दृढम्॥ ५॥ वामकर्णोपविष्टञ्च फलं वामस्य धारयेत् । वर्णान् मध्यमया तत्र वामाङ्गुल्या च धारयेत्॥ ६॥ मनो लक्ष्यगतं कृत्वा मुष्टिना च विधानवित् । दक्षिणे गात्रभागे तु कृत्वा वर्णं विमोक्षयेत् ॥ ७ ॥ ललाटपुटसंस्थानं दण्डं लक्ष्ये निवेशयेत् । आकृष्य ताडयेत् तत्र चन्द्रकं षोडशाङ्गुलम्॥ ८॥ मुक्त्वा बाणं ततःपश्चादुल्काशिक्षस्तदा तया । निगृह्णीयान् मध्यमया ततोऽङ्गुल्या**

जानना चाहिए।।३५।। उत्तम कोटि का बाण बारह मुट्ठी के माप का होता है। ग्यारह मुट्ठी का बाण मध्यम कोटि का होता है तथा अधम कोटि का बाण अधम कोटि का होता है।।३६।। चार हाथ का धनुष् उत्तम होता है, साढ़े तीन हाथ का मध्यम और तीन हाथ का अधम । पैदल सेना को सदा उत्तम कोटि का ही धनुष् धारण करना चाहिए।।३७।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का धनुर्वेद वर्णन नामक दो सौ उनचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २४९ ॥

अग्निदेव ने कहा– द्विज को चाहिए कि अपनी लम्बाई के बराबर धनुष् का निर्माण कराए । फिर गदा आदि आयुधों को मांस से धोकर एवं धनुष् को अच्छी तरह धोकर यज्ञभूमि में रखे ।। १ ।। पुनः युद्धार्थी सावधानी पूर्वक बाण को लेकर पुनः तुणीर ले और उसे दृढ़तापूर्वक पीठ की ओर दाहिनी काँख के पास बाँधे ।। २ ।। ऐसा करने से विलक्ष्यबाण उस तुणीर में सुस्थिर रहता है। फिर दाहिने हाथ से तुणीर के भीतर से बाण को निकाले ।। ३ ।। उसके साथ ही बाएँ हाथ से धनुष् को वहाँ से उठा ले और उसके मध्य भाग में शर का संधान करे ।।४।। योद्धा को अपने में विषाद नहीं आने देना चाहिए । उत्साह सम्पन्न होकर धनुष् की डोरी पर बाण के पुंख भाग को रखना चाहिए । पुनः सिंह कर्ण नामक मुष्टि द्वारा प्रत्यञ्चा को दृढ़तापूर्वक दबाकर समभाव से संधान करे। यदि बाएँ हाथ से बाण को चलाना हो तो, बाण को बाएँ हाथ में लेना चाहिए । और दाहिने हाथ में धनुष् की मुट्ठी पकड़ना चाहिए । इसके पश्चात् प्रत्यञ्चा पर बाण को इस प्रकार रखना चाहिए कि खींचने पर उसका पुंख बायें कान के पास आ जाय । उस समय बाण का बाएँ हाथ की मध्यमा अंगुलि से भी धारण किए रखना चाहिए ।। ६ ।। धनुर्विद्या के विधान को जानने वाला पुरुष धनुष् को मुट्ठी से दृढ़ता पूर्वक धारण किए रहे । मन तथा दृष्टि को लक्ष्य पर लगाए रखकर बाण को शरीर के दाहिने ओर करके बाण को चलाना चाहिए।।७।। धनुष् का दण्ड इतना बड़ा हो कि उसकी लम्बाई ललाट के बराबर आ जाय तथा लक्ष्यवेध के लिए सोलह अंगुल के चन्द्रक बाण का प्रयोग धनुष् की डोरी को अच्छी तरह से खींचकर करना चाहिए ।। ८ ।। इस तरह से एक बाण का प्रहार करके फिर तत्काल ही तुणीर से अंगुष्ठ एवं तर्जनी द्वारा बार-बार बाण निकाले और उसे मध्यमा अंगुलि से भी दबाकर अपने

पुनः पुनः ॥ ९ ॥ अक्षिलक्ष्यं क्षिपेत् तूणाच्चतुरस्त्रञ्च दक्षिणम् । चतुरस्त्रगतं वेध्यमभ्यसेच्चादितः स्थितः॥ १०॥ तस्मादनन्तरं तीक्ष्णं परावृत्तं गतञ्च यत् । निम्नमुन्नतवेधञ्च अभ्यसेत् क्षिप्रकं ततः ॥ ११॥ वेध्यस्थानेष्वथैतेषुसत्त्वस्य पुटकाद्धनुः । हस्तावापशतैश्चित्रैस्तर्जयेद् दुस्तरैरपि॥१२॥ तस्मिन् वेध्यगते विप्र ! द्वे वेध्ये दृढसञ्ज्ञके । द्वे वेध्ये दुष्करे वेध्ये द्वे तथा चित्रदुष्करे ॥ १३ ॥ न तु निम्नञ्च तीक्ष्णञ्च दृढबेध्ये प्रकीर्त्तिते । निम्नं दुष्करमुद्दिष्टं वेध्यमूर्ध्वगतञ्च यत्॥ १४॥ मस्तकायनमध्ये तु चित्रदुष्करसञ्ज्ञके । एवं वेध्यगणं कृत्वा दक्षिणेनेतरेण च ॥ १५ ॥ आरोहेत् प्रथमं वीरो जितलक्षस्ततो नरः । एष एव विधिः प्रोक्तस्तत्र द्रष्टः प्रयोक्तृभिः॥ १६॥ अधिकं भ्रमणं तस्य तस्माद् बेध्यात् प्रकीर्त्तितम् । लक्ष्यं स योजयेत् तत्र पत्रिपत्रगतं दृढ़म् ॥ १७ ॥ भ्रान्तं प्रचलितञ्चैव स्थिरं यच्च भवेदति । समन्तात् ताडयेद् भिन्द्याच्छेदयेद् व्यथयेदपि ॥ १८ ॥ कर्मयोगविधानज्ञो ज्ञात्वैवं विधिमाचरेत् । मनसा चाक्षुषा दृष्ट्या योगशिक्षुर्यमं जयेत् ॥ १९॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये धनुर्वेदकथनं नाम पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५० ॥

एकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

धनुर्वेदकथनम्

अग्निरुवाच– **जितहस्तो जितमतिर्जितदृग्लक्ष्यसाधकः । नियतां सिद्धिमासाद्य ततो वाहनमारुहेत्॥ १॥ दशहस्तो भवेत् पाशो वृत्तः करमुखस्तथा।**

वश में करे और शीघ्र ही दृष्टिगत लक्ष्य की ओर चलाए । चारों ओर तथा दक्षिण की ओर लक्ष्य वेध करता रहे । योद्धा को चाहिए कि वह पहले से ही चारों ओर बाण चलाकर सब ओर के लक्ष्य को बेधने का अभ्यास करे ।। ९-१० ।। उसके पश्चात् वह तीक्ष्ण, परावृत, गत, निम्न, उन्नत तथा क्षिप्त वेध का अभ्यास करता रहे ।। ११ ।। बेध्य लक्ष्य के उपर्युक्त जो स्थान हैं उनमें सत्त्व (बल एवं धैर्य) का पुट देते रहे, विचित्र. एवं दुस्तर रीति से सैकड़ों बार हाथ से बाणों के निकालने एवं छोड़ने की क्रिया द्वारा धनुष् का तर्जन करे अर्थात् धनुष् का टंकार करे।।१२।। हे विप्र! उस वेध्य में से दो भेद दृढ़ वेध्य के, दो भेद दुष्कर बेध्य के तथा दो भेद चित्रदुष्कर वेध्य के होते हैं ।। १३ ।। नतनिम्न और तीक्ष्ण ये दो भेद दृढ़वेध्य के बतलाए गये हैं । दुष्कर वेध्य के भी दो भेद हैं निम्न और ऊर्ध्वगत ।। १४ ।। चित्रदुष्कर वेध्य के भी दो भेद हैं- मस्तकायन एवं मध्य । इस प्रकार इन बेध्यगणों को सिद्ध करके वीर पुरुष को चाहिए कि वह शत्रु की सेना पर दाएँ अथवा बाएँ पार्श्व से आक्रमण करे । ऐसा करने वाला पुरुष अपने लक्ष्य पर विजय प्राप्त कर लेता है । प्रयोक्ता पुरुषों ने बेध्य के विषय में यही विधि बतलाया एवं देखा है ।। १५-१६ ।। योद्धा के लिए उस वेध्य की अपेक्षा भ्रमण को उत्तम बतलाया गया है । वह लक्ष्य को अपने बाण के पुंख भाग से आच्छादित करके उसकी ओर दृढ़तापूर्वक शर का संधान करे ।। १७ ।। जो लक्ष्य भ्रमणशील, अधिक चञ्चल और स्थिर हो उस पर सब ओर से प्रहार करे उसका भेदन और छेदन करते हुए उसको पीड़ित करना चाहिए ।। १८ ।। कर्मयोग के विधान को जानने वाले को इस प्रकार से समझ-बूझकर ही विधि का अनुष्ठान करना चाहिए । जिसने मन, नेत्र एवं दृष्टि के साथ लक्ष्य एकता की विधि को जान लिया है, वह संग्राम में यमराज को भी जीत ले सकता है ।। १९ ।।

इस प्रकार से आदिमहापुराण अग्निपुराण का धनुर्वेद (२) वर्णन नामक दो सौ पच्चासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २५० ॥

अग्निदेव ने कहा– जिसने हाथ,मन और दृष्टि को जीत लिया है, वह लक्ष्य साधक नियत सिद्धि को प्राप्त करके युद्ध करने के लिए वाहन पर चढ़े ।। १ ।। 'पाश' को दस हाथ

गुणकार्पासमुञ्जानां भङ्गस्नाय्वर्कवर्मिणाम्॥ २॥ अन्येषां सुदृढानाञ्च सुकृतं परिवेष्टितम् । तया त्रिंशत्समं पाशं बुधः कुर्य्यात् सुवर्त्तितम् ॥ ३ ॥ कर्त्तव्यं शिक्षकैस्तस्य स्थानं कक्षासु वै तदा । वामहस्तेन संगृह्य दक्षिणेनोद्धरेत् ततः॥ ४॥ कुण्डलस्याकृतिं कृत्वा भ्राम्यैकं मस्तकोपरि । क्षिपेत् तृणमये तूर्णं पुरुषे चर्मवेष्टिते ॥ ५॥ बल्गिते च प्लुते चैव तथा प्रव्रजितेषु च । समयोगविधिं कृत्वा प्रयुञ्जीत सुशिक्षितम्॥ ६॥ विजित्वा तु यथान्यायं ततो बन्धं समाचरेत् । कट्यां बद्ध्वा ततः खड्गं वामपार्श्वावलम्बितम् ॥ ७ ॥ दृढं विगृह्य वामेन निष्कर्षेद् दक्षिणेन तु । षडङ्गुलपरीणाहं सप्तहस्तसमुच्छ्रितम्॥ ८॥ अयोमय्यःशलाकाश्च वर्माणि विविधानि च । अर्द्धहस्ते समे चैव तिर्य्यगूर्ध्वगतं तथा॥ ९॥ योजयेद् विधिना येन तथात्वं गदतः शृणु । तूणचर्मावनद्धाङ्गं स्थापयित्वा नवं दृढम् ॥ १० ॥ करेणादाय लगुडं दक्षिणाङ्गुलकं नवम् । उद्यम्यघातयेद् यस्य नाशस्तेन शिशोर्दृढम्॥ ११॥ उभाभ्यामक्षहस्ताभ्यां कुर्य्यात् तस्य निपातनम् । अक्लेशेन ततः कुर्वन् बधे सिद्धिः प्रकीर्त्तिता । वाहानां श्रमकरणं प्रचारार्थं पुरा तव ॥ १२ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये धनुर्वेदवर्णनं नामैकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५१ ॥

बड़ा, गोलाकार तथा हाथ को सुख देने वाला होना चाहिए । इसके लिए डोरी, कपास, या मुञ्ज अथवा हरिण की तांत अथवा आक के छिलकों की बनानी चाहिए ।। २ ।। इनके अतिरिक्त अन्य सुदृढ़ वस्तुओं का भी सुन्दर पाश हो सकता है । उन वस्तुओं की कई आवृत्ति करके उसे अच्छी तरह से बट लेना चाहिए । विज्ञ पुरुष तीस आवृति करके बटे हुए सूत्र या रस्सी का ही पाश बनाते हैं ।। ३ ।। शिक्षकों को पाश की शिक्षा देने के लिए कक्षा में उसके लिए स्थान बनाना चाहिए ।। पाश को बाएँहाथ में लेकर दाहिने हाथसे उधेड़ना चाहिए । फिर उसे कुण्डलाकार बनाकर शत्रु के सिर के ऊपर फेंकना चाहिए । पहले उसका प्रयोग प्रधान तृण के बने हुए अथवा चमड़े से वेष्टित पुरुष पर करना चाहिए ।। ४-५ ।। उसके पश्चात् उछलते कूदते हुए तथा तेजी से चलते हुए पुरुष के ऊपर उसका सफल प्रयोग करके युद्धार्थी को सुशिक्षित बनाना चाहिए । सुशिक्षित योद्धाको पाश के द्वारा यथोचित रीति से जीत लेने पर ही शत्रु के प्रति पाशबन्धन की क्रिया करनी चाहिए ।। ६ ।। उसके पश्चात् कमर में तलवार बाँधकर उसे बायीं बगल में लटका लेना चाहिए ।। ७ ।। उसकी म्यान को बायीं हाथ से अच्छी तरह पकड़कर दाहिने हाथसे तलवार निकालना चाहिए । उस तलवार की चौड़ाई छह अंगुल और लम्बाई सात हाथ होनी चाहिए ।। ८ ।। युद्धार्थी अपनी रक्षा के लिए आधे अथवा पूरे हाथ में लोहे की बनी हुई शलाकाओं तथा कवचों को धारण कर ले एवं इसी प्रकार की वस्तुओं को अगल-बगल तथा ऊपर नीचे भी धारण कर लेना चाहिए।। ९ ।। युद्ध में विजय प्राप्ति के लिए जिस प्रकार से जिस विधि को करना चाहिए उसे मैं बतलाता हूँ सुनो ! युद्धार्थी तुणीर के चमड़े से मढ़ी हुई नयी तथा मजबूत एक लाठी अपने पास रखे । उस लाठी को दाहिने हाथ की अंगुलियों से उठाकर जिसके ऊपर जोर से प्रहार करेगा उस शत्रु का नाश अवश्य हो जायेगा ।। ११ ।। इस क्रिया में सिद्धि मिल जाने पर वह दोनों हाथ से लाठी को उठाकर शत्रु के ऊपर प्रहार करे । इस तरह वह अनायास ही शत्रु का वध कर सकता है । इस तरह से युद्ध में सिद्धि की बात बतलायी गयी । रणभूमि में अच्छी तरह से संचरण करने के लिए अपने वाहनों से श्रम करते रहना चाहिए, इस बात को मैं पहले कह चुका हूँ ।। १२ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का धनुर्वेद वर्णन नामक दो सौ एकावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २५१ ॥

द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

धनुर्वेदकथनम्

अग्निरुवाच– भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं स्मृतम् । सम्पातं समुदीशञ्च श्येनपातमथाकुलम्॥ १॥ उद्धूतमवधूतञ्च सव्यं दक्षिणमेव च । अनालक्षितविस्फोटौ करालेन्द्रमहासखौ ॥ २॥ विकरालनिपातौ च विभीषणभयानकौ । समग्रार्द्ध तृतीयांश पादपादार्द्धवारिजाः॥ ३॥ प्रत्यालीढमथालीढं वराहं लुलितं तथा । इति द्वात्रिंशतो ज्ञेयाःखड्गचर्मविधौ रणे॥ ४॥ परावृत्तमपावृत्तं गृहीतं लघुसंज्ञितम् । ऊर्ध्वात् क्षिप्रमधःक्षिप्तं सन्धारितविधारितम् ॥ ५ ॥ श्येनपातं गजपातं ग्राहग्राह्यं तथैव च । एवमेकादशविधा ज्ञेयाः पाशविधा रणाः ॥ ६॥ ऋज्वायतं विशालञ्च तिर्य्यग्भ्रामितमेव च । पञ्चकर्म विनिर्दिष्टं व्यस्ते पाशे महात्मभिः॥ ७॥ छेदनं भेदनं पातो भ्रमणं शयनं तथा । विकर्त्तनं कर्त्तनञ्च चक्रकर्मेदमेव च ॥ ८ ॥ आस्फोटः क्ष्वेदनं भेदस्त्रासान्दोलितकौ तथा। शूलकर्माणि जानीहि षष्ठमाघातसञ्ज्ञितम् ॥ ९॥ दृष्टिघातं भुजाघातं पार्श्वघातं द्विजोत्तम!। ऋजुपक्षेषुणापातं तोमरस्य प्रकीर्त्तितम्॥ १०॥ आहतं विप्र ! गोमूत्रप्रभूतं कमलासनम् । ततोर्ध्वगात्रं नमितं वामदक्षिणमेव च ॥ ११ ॥ आवृत्तञ्च परावृत्तं पादोद्धूतमवप्लुतम् । हंसमर्दं विमर्दञ्च गदाकर्म प्रकीर्त्तितम् ॥ १२॥ करालमवघातञ्च दंशोपप्लुतमेव च। क्षिप्तहस्तं स्थितं शून्यं परशोस्तु विनिर्दिशेत् ॥ १३॥ ताडनं छेदनं विप्र ! तथा चूर्णनमेव च । मुद्गरस्य तु कर्माणि तथा प्लवनघातनम् ॥ १४॥ संश्रान्तमथ विश्रान्तं गोविसर्गं सुदुर्द्धरम् । भिन्दिपालस्य कर्माणि लगुडस्य च तान्यपि ॥ १५ ॥ अन्त्यं मध्यं परावृत्तं निदेशान्तं द्विजोत्तम । वज्रस्यैतानि कर्माणि पट्टिशस्य च तान्यपि ॥ १६ ॥ हरणं छेदनं घातो बलोद्धारणमायतम् । कृपाणकर्म निर्दिष्टं पातनं स्फोटनं तथा ॥ १७॥ त्रासनं रक्षणं घातो बलोद्धरणमायतम् । क्षेपणोकर्म निर्दिष्टं यन्त्रकर्मैतदेव तु॥ १८ ॥सन्त्यागमवदंशश्च वराहोद्धूतकं तथा । हस्तावहस्तमालीनमेकहस्तावहस्तके॥१९॥

अग्निदेव ने कहा– भ्रान्त, उद्भ्रन्त, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत, प्लुत, सम्पात,समुदीर्ण, श्येनपात, आकुल ।। १ ।। उद्धूत, अवधूत, सव्य, दक्षिण, अनालक्षित, विस्फोट, करालेन्द्र, महासख ।। २ ।। विकराल, निपात, विभीषण, भयानक, समग्र, अर्द्ध तृतीयांश, पाद, पादार्ध वारिज ।। ३ ।। प्रत्यालीढ, आलीढ, वाराह, और लुलित संग्राम में ढाल एवं तलवार चलाने के एक बत्तीसहाथों (प्रकार) को जानना चाहिए । परावृत, अपावृत, गृहीत, लघु, ऊर्ध्वक्षिप्त, अधःक्षिप्त, सन्धारित, विधारित ।। ४-५ ।। श्येनपात, गजपात एवं ग्रहग्राह्य युद्ध में ग्यारह प्रकार के पाश फेंकने के इन प्रकारों को जानना चाहिए ।। ६ ।। ऋजु, आयत, विशाल, तिर्यक्, भ्रामित व्यस्तपाश में इन पाँच कर्मों को महात्माओं ने बतलाया है ।। ७ ।। छेदन, भेदन, पात, भ्रमण, शयन, विकर्तन एवं कर्तन, ये सात कर्म चक्र के हैं ।। ८ ।। आस्फोट, स्वेदन, भेद, त्रास, आन्दोलितक, और आघात इन सूत्र के छह कर्मों को जानो ।। ९ ।। हे द्विजोत्तम! दृष्टिघात,भुजाघात, पार्श्वघात, ऋजुपात, पक्षपात एवं इषुपात ये तोमर के कर्म बतलाये गये हैं ।। १० ।। हे विप्र ! आहत,विहृत, प्रभूत, कमलासन, ऊर्ध्वगात्र, नमितगात्र, वाम, दक्षिण, आवृत, परावृत, पादोद्धूह, अवप्लुत, हंसमर्द और विमर्द ये गदा के कर्म कहे गये हैं ।। ११-१२ ।। कराल, अवघात,वंशोपप्लुत, क्षिप्तहस्त, स्थित और शून्य इन्हें परशु का कर्म जानना चाहिए।।१३।। हे विप्र ! ताडन, छेदन, चूर्णन, प्लवन एवं घातन ये मुद्गर के कर्म हैं ।। १४ ।। श्रान्त, विश्रान्त, गोविसर्ग और सुदुर्द्धर ये भिन्दिपाल एवं लाठी दोनों के कर्म बतलाये गये हैं ।। १५ ।। हे द्विजोत्तम ! अन्त्य, मध्य परावृत्त एवं निदेशान्त ये पट्टीश एवं वज्र के समान रूप से कर्म हैं ।। १६ ।। हरण, छेदन, घात, भेदन, रक्षण, पातन एवं स्फोटन ये कृपाण (तलवार) के काम हैं ।। १७ ।। त्रासन, रक्षण, घात, बलोद्धरण और आयत ये क्षेपणी (गोफलन) एवं यन्त्र के समान रूप से काम हैं ।। १८ ।। संत्याग, अवदंश, वराहोद्धूतक, हस्त, अवहस्त, आलीन,

द्विहस्तबाहुपाशे च कटिरेचितकोद्गते । उरोललाटघाते च भुजाविधमनन्तथा ॥ २० ॥ करोद्धूतं विमानञ्च पादाहति विपादिकम् । गात्रसंश्लेषणं शान्तं तथागात्रविपर्य्ययः॥ २१॥ ऊद्र्ध्वप्रहारं घातञ्च गोमूत्रं सव्यदक्षिणे । पारकं तारकं दण्डं करवीरन्धमाकुलम् ॥ २२॥ तीर्यग्बन्धमपामार्गं भीमवेगं सुदर्शनम् । सिंहाक्रान्तं गजाक्रान्तं गर्द्दभाक्रान्तमेव च ॥ २३ ॥ गदाकर्माणि जानीयान्नियुद्धस्याथ कर्म च । आकर्षणं विकर्षञ्च बाहूनां मूलमेव च ॥ २४॥ ग्रीवाविपरिवर्त्तञ्च पृष्टभङ्गं सुदारुणम्। पर्य्यासनविपर्य्यासौ पशुमारमजाविकम् ॥ २५॥ पादप्रहारमास्फोटं कटिरेचितकं तथा । गात्राश्लेषं स्कन्धगतं महीव्याजनमेव च ॥ २६॥ उरोललाटघातञ्च विस्पष्टतरणं तथा । उद्धूतमवधूतञ्च तिर्य्यङ्मार्गगतं तथा ॥ २७॥ गजस्कन्धमवक्षेपमपराङ्मुखमेव च । देवमार्गमधोमार्गममार्गगमनाकुलम् ॥ २८ ॥ यष्टिघातमवक्षेपो वसुधादारणं तथा । जानुबन्धं भुजाबन्धं गात्रबन्धं सुदारुणम् ॥ २९॥ विपृष्टं सोदकं शुभ्रं भुजावेष्टितमेव च । सन्नद्धैः संयुगे भाव्यं सशस्त्रैस्तैर्गजादिभिः॥ ३०॥ वराङ्कुशधरौ चोभौ एको ग्रीवागतोऽपरः । स्कन्धगौ द्वौ च धानुष्कौ द्वौ च खड्गधरौ गजे ॥ ३१ ॥ रथे रणे गजे चैव तुरङ्गाणां त्रयं भवेत् । धानुष्काणां त्रयं प्रोक्तं रक्षार्थे तुरगस्य च॥ ३१॥ धन्विनो रक्षणार्थाय चर्मिणन्तु नियोजयेत् । स्वमन्त्रैः शस्त्रमभ्यर्च्य शास्त्रं त्रैलोक्यमोहनम् । यो युद्धे याति स जयेदरीन् सम्पालयेद् भुवम् ॥ ३३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये धनुर्वेदकथनं नाम द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५२ ॥

एक हस्त अवहंस्तक ।। १९ ।। द्विहस्त, बाहुपाश कटिरेचितक, उद्गत, उरोघात, ललाटघात, भुजाविधमन ।। २० ।। करोद्धूत, विमान, पादाहति, विपादिक गात्र संश्लेषण शान्त एवं गात्र विपर्यय।।२१।। ऊर्ध्वप्रहार घाता गोमूत्र सव्य, दक्षिण, पारक, तारक, दण्ड, कबरी, बन्ध, आकुल ।। २२ ।। तिर्यग्बन्ध, अपामार्ग, भीमवेग, सुदर्शन, सिंहाक्रान्त, गजाक्रान्त और गर्दभाक्रान्त।।२३।। ये गदा युद्ध के प्रकार हैं । अब मल्लयुद्ध के प्रकार बतलाये जा रहे हैं । आकर्षण,विकर्षण, बाहुमूल, ग्रीवा विपरिवर्त, सुदारुण, पृष्ठभंग, पर्यासन, विपर्यास, पशुमार अजाविक ।। २५ ।। पादप्रहार, आस्फोट, कटिरेचितक, गात्रश्लेष,स्कन्धगत, महीव्याजन ।। २६ ।। उरोघात, ललाटघात,विस्पष्टकरण, उद्धूत, अवधूत, तिर्यङ् मार्गगत।।२७।। गजस्कन्ध,अवक्षेप, अपराङ्मुख, देवमार्गगमन, अधोमार्गगमन, अमार्गगमन, आकुल ।। २८ ।। यष्टिघात, अवक्षेप, वसुधादारण, जानुबन्ध, भुजाबन्ध, गात्रबन्ध, सुदारुण।।२९।। विपृष्ठ, सोदक, श्वभ्र, एवं भुजावेष्टित ।। २९ ।। युद्ध में कवच धारण करके शस्त्रास्त्रों से सज्जित होकर तथा हाथी आदि पर बैठकर उपस्थित होना चाहिए ।। ३०।। हाथी पर उत्तम अंकुश धारण किए हुए दो महावत होना चाहिए । उसमें से एक को हाथी के कन्धे पर और दूसरे को उसके कन्धे पर सवार होना चाहिए ।। इसके अतिरिक्त सवारों में दो धनुर्धारी तथा दो खड्गधारी होना चाहिए ।। ३१ ।। युद्ध में रथ एवं हाथी की रक्षा के लिए तीन-तीन घुड़सवार सैनिक होना चाहिए । घोड़े की रक्षा के लिए तीन-तीन धनुर्धर पैदल सैनिक होना चाहिए ।। ३२ ।। धनुर्धर की रक्षा के लिए चर्म या ढाल लिए हुए योद्धाओं की नियुक्ति करनी चाहिए ।। जो प्रत्येक शस्त्र का उनके अपने मन्त्र से पूजन करके 'त्रैलोक्य मोहन' कवच का पाठ करके युद्ध में जाता है, वह शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके पृथिवी का पालन करता है ।। ३३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का धनुर्वेद वर्णन नामक दो सौ बावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २५२ ॥

त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यवहारकथनम्

अग्निरुवाच– **व्यवहारं प्रवक्ष्यामि नयानयविवेकदम् । चतुष्पाच्च चतुःस्थानश्चतुःसाधन उच्यते ॥ १॥ चतुर्हितश्चतुर्व्यापी चतुष्कारी च कीर्त्यते । अष्टाङ्गोऽष्टादशपदः शतशाखस्तथैव च ॥ २॥ त्रियोनिद्व्र्यभियोगश्च द्विद्वारो द्विगतिस्तथा । धर्मश्च व्यवहारश्च चरित्रं राजशासनम्॥३॥ चतुष्पाद् व्यवहाराणामुत्तरः पूर्वसाधकः । तत्र सत्ये स्थितो धर्मो व्यवहारस्तु साक्षिषु॥ ४॥ चरित्रसंग्रहे पुंसां राजाज्ञायान्तु शासनम् । सामाद्युपायसाध्यत्वाच्चतुःसाधन उच्यते ॥ ५ ॥ चतुर्णामाश्रमाणाञ्च रक्षणात् स चतुर्हितः । कर्त्तारं साक्षिणश्चैव सत्यान्राजानमेव च॥ ६॥ व्याप्नोति पादगो यस्माच्चतुर्व्यापी ततःस्मृतः । धर्मस्यार्थस्य यशसो लोकपंक्तेस्तथैव च ॥ ७ ॥ चतुर्णाङ्करणादेष चतुष्कारी प्रकीर्त्तितः । राजा सपुरुषः सभ्याः शास्त्रं गणकलेखकौ॥ ८॥ हिरण्यमग्निरुदकमष्टाङ्गः समुदाहृतः । कामात् क्रोधाच्च लोभाच्च त्रिभ्यो यस्मात् प्रवर्तते ॥ ९॥ त्रियोनिः कीर्त्यते तेन त्रयमेतद् विवादकृत् । द्व्यभियोगस्तु विज्ञेयः शङ्कातत्त्वाभियोगतः ॥ १० ॥ शङ्कासद्भिस्तु संसर्गात् तत्त्वषोढादि दर्शनात्। पक्षद्वयाभिसम्बन्धाद् द्विद्वारः समुदाहृतः ॥ ११ ॥ पूर्ववादस्तयोः पक्षः प्रतिपक्षस्त्वनन्तरः। भूतच्छलानुसारित्वाद् द्विगतिःसमुदाहृतः ॥ १२॥ ऋणं देयमदेयञ्च येन यत्र तथा च यत्। दानग्रहणधर्मश्च ऋणादानमिति स्मृतम्॥ १३॥ स्वद्रव्यं यत्र विश्रम्भान् निक्षिपत्यविशङ्कितः। निक्षेपन्नाम तत्**

अग्निदेव ने कहा– अब मैं व्यवहार का वर्णन करता हूँ जिससे कि न्याय एवं अन्याय का ठीक-ठीक ज्ञान होता है । उसके चार चरण चार साधन और चार स्थान कहे गये हैं ।। १।। वह चार का हितकारी, चार में व्याप्त और चार का कर्ता कहा जाता है । वह आठों अंगों, अठारह पद, सौ शाखाओं, तीन योनियों, दो अभियोगों, दो द्वारों तथा दो गतियों वाला है।।२।। धर्म,व्यवहार चरित्र और राजशासन ये व्यवहारशास्त्र के चार चरण हैं । इनमें पूर्व-पूर्व पाद उत्तरोत्तर पाद के साधक हैं ।। ३ ।। इनमें धर्म का आधार सत्य है,व्यवहार का आधार साक्षी है, चरित्र का आधार पुरुषों का संग्रह है और शासन राजा की आज्ञा पर आधारित होता है ।। ४ ।। व्यवहारशास्त्र को चतुस्साधन इसलिए कहा जाता है कि वह साम आदि (दान, दण्ड और भेद) चार उपायों से साध्य है ।। ५ ।। (ब्रह्मचर्य), गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास) इन चारों आश्रमों का पालक होने के कारण वह चार का हितकारी कहा जाता है । अभियोक्ता, साक्षी, सभासद तथा राजा इन चारों में इसकी एक-एक चरण से स्थिति है ।। ६ ।। चूँकि वह इन सबों में पादशः स्थित है, अतएव वह चतुर्व्यापी कहा जाता है । धर्म, अर्थ, यश एवं लोकप्रियता की वृद्धि करवाने वाला होने के कारण इसे चतुष्कारी कहा जाता है ।। ७ ।। इसको अष्टाङ्ग इसलिए कहा जाता है कि अपने लोगों से युक्त (१) राजा, (२) सभ्य, (३) शास्त्र, (४) गणक, (५) लेखक, (६) सुवर्ण, (७) अग्नि और (८) जल इसके आठ अंग हैं ।। ८ ।। चूँकि व्यवहार की प्रवृत्ति काम, क्रोध एवं लोभ इन तीनों से होती है अतएव इसे त्रियोनि कहा जाता है । ये तीनों ही विवाद के जनक हैं ।। ९ ।। इसको दो अभियोग वाला इसलिए कहा जाता है कि अभियोग के दो भेद होते हैं- (१) शंकाभियोग एवं (२) तत्त्वाभियोग ।। १० ।। असत् पुरुषों के संसर्ग से शंका होती है और षोढा (चिह्न या प्रमाण) आदि के देखने से तत्त्वज्ञान होता है । दो पक्षों से सम्बन्ध होने के कारण इसे द्विद्वार कहते हैं।।११।। उन दोनों में पूर्वपाद को पक्ष तथा उत्तरपाद को प्रतिपक्ष कहते हैं ।भूत (वास्तविकता) तथा छल का अनुसरण करने के कारण इसे द्विगति कहा जाता है ।। १२ ।। ऋण की देयता, (२) अदेयता, (३) ऋण देने के अधिकारी, (४) ऋण के पात्र, (५) ऋण के प्रकार, (६) ऋण की देने की विधि तथा (७) ऋण वसूलने की विधि इन सबों को ऋणदान कहते हैं ।। १३ ।। जब कोई मनुष्य विश्वास करके विना किसी शंका के किसी के पास अपनी वस्तु धरोहर के रूप में रख देता है तब उसे विद्वान लोग निक्षेप नामक व्यवहारपद कहते हैं ।। १४ ।। जहाँ पर अनेक वणिक् मिलकर कार्य करते हैं तो उसे सम्भूयसमुत्थान

प्रोक्तं व्यवहारपदं बुधैः ॥ १४ ॥ वणिक्प्रभृतयो यत्र कर्म सम्भूय कुर्वते । तत् सम्भूयसमुत्थानं व्यवहारपदं विदुः॥ १५॥ दत्त्वा द्रव्यञ्च सम्यग् यः पुनरादातुमिच्छति । दत्ताप्रदानिकं नाम तद् विवादपदं स्मृतम् ॥ १६ ॥ अभ्युपेत्य च शुश्रूषां यस्तां न प्रतिपद्यते । अशुश्रूषाभ्युपेत्यैतद् विवादपदमुच्यते ॥ १७॥ भृत्यानां वेतनस्योक्ता दानादानविधिक्रिया। वेतनस्यानपाकर्म तद् विवादपदं स्मृतम्॥ १८॥ निक्षिप्तं वा परद्रव्यं नष्टं लब्ध्वा प्रहृत्य वा । विक्रीयते परोक्षं यत् स ज्ञेयोऽस्वामिविक्रयः ॥ १९ ॥ विक्रीय पण्यं मूल्येन क्रेत्रे यच्च न दीयते । विक्रीयासम्प्रदानं तद् विवादपदमुयते ॥ २०॥ क्रीत्वा मूल्येन यत् पण्यं क्रेता न बहुमन्यते । क्रीत्वा मूल्येन तत् पण्यं दुष्क्रीतं मन्यते क्रयी ॥ २१ ॥ पाषण्डनैगमादीनां स्थितिः समय उच्यते । समयस्यानपाकर्म तद् विवादपदं स्मृतम्॥ २२॥ सेतुकेदारमर्य्यादाविकृष्टाकृष्टनिश्चयाः । क्षेत्राधिकारे यत्र स्युर्विवादः क्षेत्रजस्तु सः ॥ २३॥ वैवाहिको विधिः स्त्रीणां यत्र पुंसाञ्च कीर्त्यते । स्त्रीपुंसंयोगसंज्ञन्तु तद् विवादपदं स्मृतम् ॥ २४ ॥ विभागोऽर्थस्य पैत्रस्य पुत्रैर्यस्तु प्रकल्प्यते । दायभागमिति प्रोक्तं तत् विवादपदं बुधैः ॥ २५॥ सहसा क्रियते कर्म यत् किञ्चित् बलदर्पितैः । तत् साहसमिति प्रोक्तं विवादपदमुच्यते ॥ २६ ॥ देशजातिकुलादीनां यत्क्रोशत्यङ्गसंयुतम्। यद् वचः प्रतिकूलार्थं वाक्पारुष्यं तदुच्यते॥ २७॥ परगात्रेष्वभिद्रोहो हस्तपादायुधादिभिः । अग्न्यादिभिश्चोपघातैर्दण्डपारुष्यमुच्यते ॥ २८॥ अक्षवर्जशलाकाद्यैर्देवनं द्यूतमुच्यते । पञ्चक्रीडावयोभिश्च प्राणिद्यूतसमाह्वयः॥२९॥ प्रकीर्णकः पुनर्ज्ञेयो व्यवहारो निराश्रयः । राज्ञामाज्ञाप्रतीघातस्तत्कर्माकरणं तथा॥ ३०॥ व्यवहारोऽष्टादशपदस्तेषां भेदोऽथ वै शतम् । क्रियाभेदान्मनुष्याणां शतशाखो निगद्यते॥३१॥ व्यवहारान् नृपः पश्येज् ज्ञानिविप्रैरकोपनः । शत्रु मित्रसमाः सभ्या अलोभाः

संज्ञक व्यवहार पद कहते हैं ।। १५ ।।यदि कोई मनुष्य विधिपूर्वक किसी वस्तु का दान करने के बाद में उसे फिर ले लेना चाहता है तो उसे दत्ताप्रदानिक नामक व्यवहारपद कहते हैं । जो शुश्रूषा करने के लिए स्वीकार करके भी उसको नहीं सम्पादित करता है उसे 'अभ्युपेत्य-अशुश्रूषा' नामक व्यवहार पद कहते हैं ।। १७ ।। भृत्यों के वेतन देने तथा न देने से सम्बन्ध रखने वाले विवाद को वेतन-अनपाकर्म नामक व्यवहार पद कहते हैं ।। १८ ।। धरोहर के रूप में रखे गए अथवा दूसरे के द्रव्य को प्राप्त करे अथवा चुराकर धन स्वामी के परोक्ष में द्रव्य को बेचे जाने से सम्बद्ध विवाद अस्वामि विक्रय नामक विवाद पद कहा जाता है ।। १९ ।। यदि कोई व्यापारी किसी पण्य वस्तु का मूल्य लेकर पुनः उस वस्तु को क्रेता को नहीं देना चाहता है तो उससे सम्बद्ध विवाद को विक्रीयासम्पादन नामक विवाद कहते हैं ।। २० ।। यदि कोई क्रेता मूल्य देकर वस्तु को खरीद लेने के बाद यह समझता है कि यह खरीददारी ठीक नहीं हुई है तो फिर भी उसे यदि वह मूल्य देकर खरीद लेता है तो क्रेता उसे दुष्क्रीत मानता है ।। २१ ।। पाषण्डी एवं नैगम आदि की स्थिति को समय कहते हैं । इनसे सम्बद्ध विवाद को समयानपाकर्म कहते हैं ।। २२ ।। क्षेत्र (खेत) के अधिकार के विषय में सेतु, केदार (खेत के क्षेत्रफल) के घटने अथवा बढ़ने से सम्बद्ध विवाद को क्षेत्रज्ञ विवाद कहते हैं ।। २३ ।। जिस विवाद का सम्बन्ध स्त्री एवं पुरुष के विवाह से होता है उसे स्त्रीपुंसयोग कहते हैं ।। २४ ।। जब पुत्रगण पिता की सम्पत्ति को बाँटते हैं, उससे सम्बद्ध विवाद को दायभाग कहते हैं ।। २५ ।। अपने बल के अभिमान से लोग जिस काम को सहसा कर डालते हैं, उससे सम्बद्ध विवाद को साहस कहा जाता है ।। २६ ।। किसी के देश,काल एवं जाति पर दोषारोपण करके जो प्रतिकूल अर्थ से युक्त व्यंग्यपूर्ण वचन कहा जाता है उसे वाक्यारुष्य कहते हैं ।। २७ ।। किसी द्रोह के कारण दूसरे के अंगों पर हाथ पैर अथवा आयुध आदि से प्रहार करना अथवा अग्नि आदि से आघात करने को दण्डपारुष्य कहते हैं ।। २८ ।। पासे, वज्र (चमड़े की पट्टी) तथा शलाका (हाथी दाँत की गोटियों) से की जाने वाली क्रीड़ा को द्यूत कहते हैं तथा पशुओं एवं पक्षियों (बटेर) आदि से की जाने वाली क्रीड़ा को प्राणीद्युत् कहते हैं ।। २९ ।। राजा की आज्ञा का उल्लंघन करना अथवा उसका कार्य न करना निराश्रय 'प्रकीर्णक' नामक व्यवहार पद माना जाता है ।।३०।। व्यवहार अट्ठारह पदों वाला होता है तथा मनुष्यों के क्रियाभेद के कारण उसके सौ भेद हो जाते हैं ।। ३१ ।। क्रोध रहित राजा ज्ञानी ब्राह्मणों के साथ व्यवहार का विचार करे और ऐसे लोगों को सभासद बनाए जो निर्लोभ,

श्रुतिवेदिनः ॥ ३२ ॥ अपश्यता कार्य्यवशात् सभ्यैर्विप्रं नियोजयेत् । रागाल्लोभाद् भयाद् वापि स्मृत्यपेतादिकारिणः॥ ३३ ॥ सभ्याः पृथक् पृथक् दण्ड्या विवादाद् द्विगुणो दमः । स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेण धर्षितःपरैः ॥ ३४ ॥ आवेदयति यद्राज्ञे व्यवहारपदं हि तत् । प्रत्यर्थिनोऽग्रतो लेख्यं यथा वेदितमर्थिना ॥ ३५॥ समामासतदर्द्धाहर्नामजात्यादिचिह्नितम् । श्रुतार्थस्योत्तरं लेख्यं पूर्वावेदकसन्निधौ ॥ ३६॥ ततोऽर्थी लेखयेत् सद्यः प्रतिज्ञातार्थसाधनम् । तत्सिद्धौ सिद्धिमाप्नोति विपरीतमतोऽन्यथा ॥ ३७ ॥ चतुष्पाद् व्यवहारोऽयं विवादेषूपदर्शितः । अभियोगमनिस्तीर्य्य नैनं प्रत्यभियोजयेत्॥ ३८॥ अभियुक्तश्च नान्येन त्यक्तं विप्रकृतिं नयेत् । कुर्य्यात् प्रत्यभियोगन्तु कलहे साहसेषु च ॥ ३९ ॥ उभयोः प्रतिभूर्ग्राह्याः समर्थः काम्यनिर्णये । निह्नवे भावितो दद्याद्धनं राज्ञे तु तत्समम्॥ ४०॥ मिथ्याभियोगाद् द्विगुणमभियोगाद्धनं हरेत् । साहसस्तेयपारुष्येष्वभिशापात्यये स्त्रियाः॥ ४१॥ विचारयेत्सद्य एवं कालोऽन्यत्रेच्छया स्मृतः । देशाद् देशान्तरं याति सृक्कणी परिलेढ़ि च॥४२॥ ललाटं खिद्यते चास्य मुखवैवर्ण्यमेव च। स्वभावाद् विकृतं गच्छेन्मनोवाक्कायकर्मभिः॥ ४३॥ अभियोगेऽथ वा साक्ष्ये वाग्दुष्टः परिकीर्त्तितः । सन्दिग्धार्थं स्वतन्त्रो यः साधयेद् यश्च निष्पतेत्॥ ४४ ॥ न चाहूतो वदेत् किञ्चिद्धीनो दण्ड्यश्च स स्मृतः। साक्षिषूभयतः सत्सु

तथा वेदज्ञ हों तथा शत्रु एवं मित्र को समान दृष्टि से देखने वाले हों ।। ३२ ।। यदि राजा कर्मवशात् स्वयं व्यवहार का विचार न कर सके तो वह इस कार्य के लिए सभासदों के साथ विद्वान् ब्राह्मण को नियुक्त करे । यदि सभासद राग, लोभ अथवा भय के कारण धर्मशास्त्र के विरुद्ध कार्य करें तो राजा प्रत्येक सभासद को पृथक् पृथक् विवाद पद के दुगने अर्थदण्ड से दण्डित करे।।३३।। यदि कोई मनुष्य दूसरों के द्वारा धर्मशास्त्र एवं समाचार के विरुद्ध धर्षित किए जाने पर राजा के पास आवेदन करता है तो उसे व्यवहार पद कहते हैं ।। ३४ ।। वादी जो निवेदन किया हो,उसे राजा वर्ष, मास, पक्ष, दिन, नाम तथा जाति आदि से चिह्नित करके प्रतिवादी के सामने लिख ले ।। ३५ ।। वादी के आवेदन को सुनकर प्रतिवादी को उसके समक्ष ही अपना उत्तर लिखना चाहिए ।। ३६ ।। तब वादी उसी समय अपने निवेदन का प्रमाण लिखाये । निवेदन के प्रमाणित हो जाने पर वादी जीत जाता है, अन्यथा वह हार जाता है ।। ३७ ।। विवादों में व्यवहार के चार पाद बतलाये गये हैं ।। जब तक अभियुक्त के वर्तमान अभियोग का निर्णय नहीं हो जाय तब तक उसके ऊपर दूसरा अभियोग न चलाये ।। ३८ ।। आवेदन के समय जो कुछ हो गया हो उसके विपरीत कुछ नही कहना चाहिए । कलह अथवा साहसिक कृत्य हो जाने पर पहले के आवेदन का निर्णय होने से पूर्व भी प्रतिवादी पर दूसरा अभियोगचलाया जा सकता है ।। ३९ ।। सभासदों को चाहिए कि वे दोनों (वादी एवं प्रतिवादी) के विवादों में समर्थ पुरुष को प्रतिभूः बनाये । निह्नव होने पर (अर्थी द्वारा लगाये गये अभियोग को यदि प्रत्यर्थी ने अस्वीकार कर दिया और अर्थी ने गवाही आदि देकर अपने दावे को पुनः उससे स्वीकार करा लिया) तो इस दशा में प्रत्यर्थी राजा को संभावित धन प्रदान करे।। ४० ।। यदि अर्थी द्वारा लगाया गया अभियोग मिथ्या सिद्ध हो जाय तो अर्थी अभियोग में कहे गये धन का दुगुना धन राजा को दे । साहस (हत्या) अस्तेय (चोरी-डकैती) वाक्पारुष्य अथवा दण्डपारुष्य, अभिशाप (पातक का अभियोग) अत्यय (प्राणघात) तथा स्त्रियों के चरित्र से संबद्ध विवाद होने पर उसका विचार शीघ्र करना चाहिए, इन सबों के अतिरिक्त प्रकार का विवाद होने पर विचार का समय सभासद आदि के विचारानुसार रखा जा सकता है ।। ४१ ।। जो व्यक्ति स्थिर न रहकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर आता जाता है, जो अपने दोनों गलफरों को चाट्ता है, वाद के समय जिसके ललाट पर पसीना दिखायी देने लगता है, जिसका मुख सूखने लगता है, जिसका स्वभाव विकृत हो जाता है बातों का ठीक से उत्तर न देकर इधर-उधर की बातें करने लगता है इस तरह से अभियोग अथवा साक्ष्य (गवाही) के समय स्वभावतः मन, वाणी एवं क्रिया से विकृत पुरुष को उसको वाक् दुष्ट समझना चाहिए ।। ४३ ।। जिसे अधमर्ण ने अस्वीकार कर दिया, उस संदिग्ध अर्थ के जो स्वतंत्र रूप से सिद्ध करता है, जिसकी बातें झूंठी हो जायँ, जो राजा के द्वारा बुलाये जाने पर उसके समक्ष कुछ भी न बोल सके उसे भी हीन तथा दण्ड्य समझना चाहिए।।४४।। वादी एवं प्रतिवादी दोनों वादियों के साक्षी का प्राप्त होना जब सम्भव हो तो पूर्ववादी की ही गवाही लेनी चाहिए । जो वादी के उत्तर में यह कहे कि "मैंने बहुत पहले इस क्षेत्र

साक्षिणः पूर्ववादिनः॥ ४५॥ पूर्वपक्षेऽधरीभूते भवन्त्युत्तरवादिनः। सगणश्चेद् विवादः स्यात् तत्र हीनन्तु दापयेत्॥ ४६॥ दत्तं पणं वसुञ्चैव धनिनो धनमेव च । छलं निरस्य दूतेन व्यवहारान् नयेन् नृपः॥ ४७ ॥ भूतमप्यर्थमन्यस्तं हीयते व्यवहारतः । निह्नते तु निखिलानेकमेकदेशविभावितम्॥४८॥ दाप्यः सर्वान् नृपेणार्थान् न ग्राह्यस्त्वनिवेदितः । स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु बलवान् व्यवहारतः ॥ ४९ ॥ अर्थशास्त्राद्धि बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थितः । प्रमाणं लिखितं भुक्तिः साक्षिणश्चेति कीर्त्तितम् ॥ ५० ॥ एषामन्यतमाभावे दिव्यान्यतममुच्यते । सर्वेष्वेव विवादेषु बलवत्युत्तरा क्रिया॥५१॥ आधौ प्रतिग्रहे क्रीते पूर्वा तु बलवत्तरा । पश्यतोऽब्रुवतो भूमेर्हानिर्विंशतिवार्षिकी॥ ५२॥ परेण भुज्यमानस्य धनस्य दशवार्षिकी । आधिसीमोपनिःक्षेप जडबालधनैर्विना ॥ ५३॥ तथोपनिधिराजस्त्रीश्रोत्रियाणां धनैरपि । आध्यादीनां विहर्त्तारं धनिने दापयेद्धनम्॥ ५४॥ दण्डयञ्च तत्समं राज्ञे शक्त्यपेक्ष्यमथापि वा । आगमोऽप्यधिको भुक्तिं विना पूर्वक्रमागताम् ॥ ५५ ॥ आगमोऽपि

को दान में पाया था और उसी समय से यह क्षेत्र हमारे कब्जे में है । उसी को यहाँ पूर्ववादी कहा गया है । जिसने पहले अभियोग उपस्थापित किया उसे यहाँ पूर्ववादी नहीं कहा गया है । यदि कोई यह कहे कि इसे पहले सम्पत्ति दान में मिली थी और इसने इससम्पत्ति का उपयोग किया, यह ठीक है किन्तु अमुक व्यक्ति इस सम्पत्ति को इसके यहाँ से खरीद ली और उस सम्पत्ति को मुझे दे दिया तब पूर्व पक्ष असाध्य होने से दुर्बल हो जाता है । ऐसा होने पर उत्तरवादी ही द्रष्टव्य है । उसी की गवाही ली जानी चाहिए ।। ४५ ।।यदि विवाद किसी शर्त के साथ हो तो वादी के पराजित हो जाने पर पण (शर्त) के धन को राजा को दिलवाना चाहिए किन्तु जो अर्थी धनी है उसे राजा को विवाद के आस्पदभूत धन को ही दिलाना चाहिए ।। ४६ ।। राजा को चाहिए कि वह छल का परित्याग करके वास्तविकता का आश्रय ले और दूतों के माध्यम से व्यवहारों का निर्णय करे ।। ४७ ।। यदि यथार्थ वस्तु भी लेखबद्ध न हो तो वह व्यवहार में पराजय का कारण बनती है । अभियोग पत्र में लिखित एक बात को भी यदि प्रत्यर्थी स्वीकार कर लेता है, तो राजा को चाहिए कि उस अभियोग पत्र में लिखी सारी वस्तुओं को वह अर्थी को दिलवावे। किन्तु जिस वस्तु का उल्लेख पहले अभियोग पत्र में नहीं किया गया हो और बाद में उसको सूचीबद्ध किया गया हो तो राजा उसको नहीं दिलवावे ।। ४८ ।। जो दो धर्मशास्त्रीय वाक्यों में विरोध की प्रतीति हो तो वहाँ पर उत्सर्गापवाद न्याय के अनुसार ही प्रबलता एवं दुर्बलता का निर्णय करना चाहिए । नियम है कि उत्सर्ग अथवा सामान्य वाक्य कीअपेक्षा अपवाद अथवा विशेष वाक्य प्रबल होता है । इस उत्सर्गापवाद की प्रतीति व्यवहार के द्वारा होती है ।। ४९ ।। जहाँ पर अर्थशास्त्र एवं धर्मशास्त्र के वाक्यों में परस्पर में विरोध हो तो अर्थशास्त्र की अपेक्षा धर्मशास्त्रीय वाक्य ही बलवान् होता है ।। (मानुष प्रमाण) तीन प्रकार के होते हैं- (१) लिखत, (२) भुक्ति और (३) साक्षी ।। ५० ।। यदि इन तीनों प्रमाणों में से किसी भी प्रमाण की उपलब्धि न हो तो फिर व्यवहार में किसी दिव्य प्रमाण को अपनाना चाहिए । सभी प्रमाणों में उत्तरक्रिया बलवती मानी गयी हे । अर्थात् यदि उत्तरवादी अपनी बात सिद्ध कर ले जाय तो वह विजयी होता है और पूर्ववादी पराजित हो जाता है ।। ५१ ।। आधी (वस्तु को गिरवी रखने) प्रतिग्रह दान के विषय में तथा खरीदी हुई वस्तु के विषय में जो विवाद होता है, उसमें पूर्वक्रिया ही बलवती होती है । यदि भूमिस्वामी की आँखों के सामने ही कोई उसकी भूमि का उपयोग करता है और भूमिस्वामी उसे नहीं बोलता है तो बीस वर्ष के पश्चात् वह भूमि भूमिस्वामी की नहीं रह जाती है ।।५२।। इस तरह धनस्वामी के धनका का यदि दूसरा व्यक्ति उपभोग करता है और धन स्वामी उसे नहीं बोलता है,तो दस वर्षों के बाद वह धन स्वामी का नहीं रह जाता है । आधि,सीमा और निःक्षेप (धरोहर) सम्बन्धी धन को,जड़ और बालकों के धन को, उपनिधि, राजा, स्त्री तथा श्रोत्रिय ब्राह्मण के धन को छोड़कर ही यह नियम लागू होता है अर्थात् इससे धन का उपयोग करने पर भी कोई इनके धन का स्वामी नहीं हो सकता है । आधि से लेकर श्रोत्रिय पर्यन्त धन का चिरकाल से उपभोग के बल पर अपहरण करने वाले पुरुष से उस धन को लेकर धन के वास्तविक स्वामी को दिला दे ।। ५४ ।। और अपहरण कर्ता से उस धन के बराबर अथवा अपहरणकर्ता की शक्ति के अनुसार उससे कम अथवा अधिक धन राजा को दिलवाया जाय । स्वत्व के कारणभूत जो प्रतिग्रह तथा क्रय आदि है उन्हें आगम कहते हैं । वह आगम भोग (भुक्ति) की अपेक्षा प्रबल होता है । स्वत्व का बोध कराने के लिए आगम सापेक्ष भोग ही प्रमाण है । किन्तु पिता पितामह आदि के क्रमसे जिस धन का उपभोग होता चला आ रहा है, उसको छोड़कर अन्य प्रकार के उपभोग से आगम प्रबल होता है । पूर्व परम्परा प्राप्त भोग तो आगम से भी प्रबल होता है । जहाँ

बले नैव भुक्तिः स्तोकापि यत्र न । आगमेन विशुद्धेन भोगो याति प्रमाणताम् ॥ ५६ ॥ अविशुद्धागमो भोगः प्रामाण्यं नाधिगच्छति । आगमस्तु कृतो येन सोऽभियुक्तस्तमुद्धरेत् ॥ ५७ ॥ न तत्सुतस्तत्सुतो वा भुक्तिस्तत्र गरीयसी । योऽभियुक्तः परेतः स्यात् तस्य ऋक्थात् तमुद्धरेत् ॥ ५८॥ न तत्र कारणं भुक्तिरागमेन विना कृता । बलोपाधिविनिर्वृत्तान् व्यवहारन् निवर्त्तयेत्॥ ५९॥ स्त्रीनक्तमन्तरागारवहिःशत्रुकृतस्तथा । मत्तोन्मत्तार्त्तव्यसनिबालभीतप्रयोजितः ॥ ६० ॥ असम्बद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिध्यति । प्रनष्टाधिशतं देयं नृपेण धनिने धनम् ॥ ६१॥ विभावयेन्न चेल्लिङ्गैस्तत्समं दातुमर्हति । देयञ्चौरहृतं द्रव्यं राज्ञा जनपदाय तु ॥ ६२ ॥ अशीतिभागो वृद्धिः स्यान् मासि मासि सबन्धके । वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिचतुष्पञ्चकमन्यथा ॥६३॥ सन्ततिस्तु पशुस्त्रीणां रसस्याष्टगुणा परा। वस्त्रधान्यहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणा तथा॥ ६४॥ ग्रामान्तरात्

पर थोड़ा सा भी उपभोग नहीं होता वह आगम भी बलवान् नहीं होता है ।। ५५ ।। विशुद्धआगम से भोग प्रमाणित होता है । जहाँ विशुद्ध आगम नहीं है वह भोग प्रामाणिक नहीं हो सकता है ।। ५६।। जिस पुरुष ने आगम (अर्जन) किया है वही अभियुक्त है, उसे ही उस आगम की प्रामाणिकता सिद्ध करने की आवश्यकता होती है, उसके पुत्र अथवा पौत्र को उस आगम के उद्धार (प्रमाणिकता सिद्ध) करने की आवश्यकता नहीं है । उन्हें तो केवल भोग को ही प्रमाणित करना चाहिए ।। ५७ ।। जो अभियुक्त व्यवहार के निर्णयसे पहले ही मर जाता है तब उसका धन के उत्तराधिकारियों को ही लिखितादि प्रमाणों द्वारा उस धनागम की प्रामाणिकता सिद्ध करना चाहिए । क्योंकि आगम के अभाव में भोग की प्रामाणिकता नहीं स्वीकार की जा सकती है ।। ५८।। जो मामला बलप्रयोग अथवा भय आदि उत्पातों के कारण चलाये गये हों, उन पर विचार न करके उन्हें लौटा देना चाहिए । इसी तरह जिसे किसी स्त्री ने चलाया हो, जो रात्रि में प्रस्तुत किया गया हो, जिसका सम्बन्ध घर के भीतर घटी घटना से हो,अथवा जिसका सम्बन्ध गाँव के बाहर एकान्त में घटी घटना से हो अथवा जिसे किसी ने शत्रुता वश बनाकर चलाया हो ऐसे वादों को विचारे विना ही लौटा देना चाहिए ।। ५९ ।। जो मादक द्रव्यपीकर मदमत्त हो गया हो, जो भूत-प्रेत-पिशाच आदि के आवेश अथवा ग्रहावेश के कारण उन्मत्त हो गया हो, रोगी हो गया हो, इष्टजन विप्रयोग अथवा अनिष्टवस्तु संयोग के कारण व्यसनग्रस्त हो, नाबालिग हो, शत्रु आदि से भयभीत हो गया हो, ऐसे लोगों के द्वारा चलाया गया अभियोग सिद्ध नहीं होता है ।।६०।। जिनका अभियुक्त से कोई भी सम्बन्ध नहीं हो ऐसे लोगों के द्वारा भी चलाया हुआ अभियोग सिद्ध नहीं होता है । यदि किसी का चोरों द्वारा चुराया गया धन शौल्किक को प्राप्त हो जाय और वह राजा को समर्पित कर दिया जाय तो राजा को चाहिए कि वह उस धन को धनस्वामी को लौटा दे । यह तब करना चाहिए यदि जब वह उस धन के रूप रंग राशि आदि चिह्नों को बतला दे । यदि वह उसके रूप, रंग आदि चिह्नों को बतलाने में असमर्थ होता है और अपने को धन का स्वामी बतलाता हो तो उसे मिथ्यावादी समझकर उससे उतना ही सम्पत्ति वसूल करनी चाहिए।।६१।। चोरों द्वारा चुराये गये तथा राजा को प्राप्त धन को राजा को चाहिए कि वह जिस नागरिक का धन हो उसे लौटा दे ।। ६२ ।। यदि कोई वस्तु बन्धक रखकर ऋण लिया गया हो तो उस पर प्रतिमास १/८० भाग ब्याज धर्मसंगत होता है । बन्धक रहित ऋण लेने पर ब्राह्मणादि वर्णों के क्रम से दो भाग, तीन भाग, चार भाग एवं पाँच भाग अधिक ब्याज धर्मसंगत होता है ।। ६३।। मादा पशुओं के खरीदने के लिए लिए गये ऋण के ब्याज के रूप में उस पशु की सन्तान को ही लिया जा सकता है । तेल घी आदि रस द्रव्यों का चिरकाल तक बढ़कर ब्याज अधिक से अधिक अपने मूल के आठ गुना हो सकता है, इससे अधिक नहीं ।क्रमशः वस्त्र, अन्न तथा सुवर्ण का चिरकाल तक बढ़कर सर्वाधिक ब्याज क्रमशः चार गुना, तीन गुना और दो गुना होता है, इससे अधिक नहीं ।। ६४ ।। व्यापार करने के लिए दुर्गम वन प्रदेश को पार करके गावों में रहने वाले लोग ऋणदाता को दस प्रतिशत ब्याज दें और समुद्र पार करके व्यापार करने वाले लोग ऋणदाता को बीस प्रतिशत ब्याज दें । अथवा सभी लोगों को चाहिए कि सभी जाति ऋणदाताओं को अपनी पूर्व स्वीकृति के अनुसार धनवृद्धि (ब्याज) प्रदान करें ।। ६५ ।।

तु दशकं सामुद्रादपि विंशतिम् । दद्युर्वा स्वीकृतां वृद्धिं सर्वे सर्वासु जातिषु ॥ ६५ ॥ प्रपन्नं साधयन्नर्थं न वाच्यो नृपतेर्भवेत् । साध्यमानो नृपं गच्छेद् दण्ड्यो दाप्यश्च तद्धनम् ॥ ६६ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये व्यवहारवर्णनं नाम त्रिपञ्चशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५३ ॥

चतुःपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यवहारकथनम्

अग्निरुवाच– **गृहीतार्थः क्रमाद् दाप्यो धनिनामधमर्णिकः । दत्त्वा तु ब्राह्मणायादौ नृपतेस्तदनन्तरम्॥ १॥ राज्ञा धमर्णिको दाप्यः साधिताद् दशकं स्मृतम् । पञ्चकन्तु शतं दाप्यः प्राप्तार्थो ह्युत्तमर्णिकः ॥ २ ॥ हीनजातिं परिक्षीणमृणार्थं कर्म कारयेत् । ब्राह्मणस्तु परिक्षीणः शनैर्दाप्यो यथोदयम्॥ ३॥ दीयमानं न गृह्णाति प्रयुक्तं यः स्वकं धनम् । मध्यस्थस्थापितं तत् स्याद् वर्द्धते न ततःपरम् ॥ ४ ॥ ऋक्थग्राह ऋणं दाप्यो योषिद्ग्रहस्तथैव च। पुत्रोऽनन्याश्रितद्रव्यः पुत्रहीनस्य ऋक्थिनः ॥ ५ ॥ अविभक्तैः कुटुम्बार्थं यदृणन्तु कृतं भवेत् । दद्युस्तदृक्थिनः प्रेते प्रोषिते वा कुटुम्बिनि॥६॥ न योषित् पतिपुत्राभ्यां न पुत्रेण कृतं पिता। दद्यादृते कुटुम्बार्थान्न पतिः स्त्रीकृतं तथा॥७॥ गोपशौण्डिकशैलूषरजकव्याधयोषिताम्।**

जो व्यक्ति पहले ऋण लिया हो और ऋणदाता उससे प्रामाणिक ऋण वसूल कर रहा हो तो राजा को उसे ऋण वसूलने से नहीं रोकना चाहिए । यदि न्यायसंगत ऋण की वसूली करने पर कोई उसकी शिकायत राजा के पास करता है तो राजा को उसे दण्डित करना चाहिए और उससे उस न्यायसंगत ऋण को लौटवाना चाहिए।। ६६ ।।

इस प्रकार आदिमहापुराण अग्निपुराण का व्यवहार वर्णन नामक दो सौ तिरपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २५३ ॥

अग्निदेव ने कहा– यदि ऋण देने वाले के ऋणदाता अनेक हों तो राजा उन्हें ग्रहण क्रम से ऋण लेने वाले से धन दिलवावे । (अर्थात् जो पहले ऋण दिया हो उसको पहले और जो बाद में दिया हो उसे बाद में धन दिलवाना चाहिए । यदि ऋणदाता अनेक जातियों के हों तो पहले ब्राह्मण को धन लौटाना चाहिए उसके पश्चात् क्षत्रिय आदि को ।। १ ।। अभियोग के सिद्ध हो जाने पर राजा को चाहिए कि ऋण लेने वाले से दस प्रतिशत दण्ड के रूप में वसूल करे और ऋणदाता से पाञ्च प्रतिशत धन वसूल करे और उस धन को न्यायालय के कर्मचारियों को दे दे ।। २ ।।यदि ऋणदाता की अपेक्षा ऋण लेने वाला हीन जाति का हो और निर्धन हो जाने के कारण ऋण लौटाने की स्थिति में न हो तो ऋणदाता को चाहिए कि वह उससे उसके स्वरूपानुरूप काम करवाकर ऋण वसूल कर ले और ऋण लेने वाला यदि ब्राह्मण हो और निर्धन होने के कारण ऋण नहीं लौटा पा रहा हो तो उसे ऋण लौटाने का अवसर देकर उसके शक्ति अनुसार धीरे-धीरे उससे ऋण वसूल कर ले ।। ३ ।। ऋण के रूप में दिये गये धन को दिए जाने पर भी जो नहीं लेता है, उसके धन को यदि मध्यस्थ व्यक्ति के यहाँ रख दिया जाय तो फिर उस पर ब्याज नहीं बढ़ता है ।। ४ ।। (दूसरे का धन जब खरीदे बिना भी अपने अधिकार में आता है तो उसे रिक्थ कहते हैं ।) विभाग द्वारा जो रिक्थ को ग्रहण करता है उसे रिक्थग्राही कहते हैं । जो जिसके द्रव्य को रिक्थ के रूप में लेता है, उसी से उसके ऋण को दिलवाना चाहिए । उसी तरह जो जिसकी स्त्री को ग्रहण करता है, वही उसके ऋण को चुकाता है । ऋक्थ धन का स्वामी यदि पुत्रहीन हो तो उसके ऋण को उस कृत्रिमपुत्र को चुकाना चाहिए जो उसी के धन पर अपना जीवन निर्वाह करता है ।। ५ ।। संयुक्त परिवार में परिवार के पालन-पोषण के लिए जो ऋण लिया जाता है, उस कुटुम्बी के मर जाने पर अथवा विदेश चले जाने पर उस ऋण को सभी रिक्थियों को चुकाना चाहिए ।। ६ ।। पति के किये हुए ऋण को स्त्री न चुकाए,

ऋणं दद्यात् पतिस्त्वासां यस्माद् वृत्तिस्तदाश्रया ॥ ८ ॥ प्रतिपन्नं स्त्रिया देयं पत्या वा सह यत् कृतम् । स्वयं कृतं वा यदृणं नान्यस्त्री दातुमर्हति॥९॥ पितरि प्रोषिते प्रेते व्यसनाभिप्लुतेऽथवा । पुत्रपौत्रैर्ऋणं देयं निह्नवे साक्षिभावितम्॥ १०॥ सुराकामद्यूतकृतंदण्डशुल्कावशिष्टकम्। वृथा दानं तथैवेह पुत्रो दद्यान्न पैतृकम् ॥ ११ ॥ भ्रातृणामथ दम्पत्योः पितुः पुत्रस्य चैव हि । प्रतिभाव्यमृणं ग्राह्यमविभक्तं न च स्मृतम् ॥ १२॥ दर्शने प्रत्यये दाने प्रतिभाव्यं विधीयते । आधौ तु वितथे दाप्या वितथस्य सुता अपि॥ १३॥ दर्शनप्रतिभूर्यत्र मृतः प्रात्ययिकोऽपि वा । न तत्पुत्रा धनं दद्युर्दद्युर्दानाय ये स्थिताः ॥ १४॥ बहवः स्युर्यदि स्वांशैर्दद्युःप्रतिभुवो धनम् । एकच्छायाश्रितेष्वेषु धनिकस्य यथारुचि॥ १५॥ प्रतिभूर्दापितो यत्र प्रकाशं धनिने धनम् । द्विगुणं प्रतिदातव्यमृणिकैस्तस्य तद् भवेत्॥ १६॥ स्वसन्तति स्त्रीपशव्यंधान्यं द्विगुणमेव च । वस्त्रं चतुर्गुणं प्रोक्तं रसश्चाष्टगुणस्तथा ॥ १७॥ आधिः प्रणश्येत् द्विगुणे धने यदि न मोक्ष्यते । काले कालकृतं नश्येत् फलभोगे न नश्यति ॥ १८॥ गोप्याधिभोगे

पुत्र के किए हुए ऋण को माता न चुकाये और पिता भी न चुकाए । स्त्री के द्वारा किए हुए ऋण को पति न चुकाए,किन्तु यह नियम समूचे परिवार के भरण-पोषण के लिए किए गये ऋण पर लागू नहीं होता है ।। ७ ।। ग्वाले, शराब बनाने वाले, नट, धोबी तथा व्याधे की स्त्रियों द्वारा लिएगए ऋण को उनके पति अवश्य लौटायें । क्योंकि उनकी जीविका उनकी स्त्रियों के अधीन ही चलती है।। ८ ।। यदि ऋण लेकर मर जाय तो उस ऋण को उसकी पत्नी को ही चुकाना होगा,अथवा पति और पत्नी दोनों एक साथ मिलकर जो ऋण लिए हों उस ऋण को भी पति के मर जाने पर उसकी पत्नी को ही चुकाना होगा । अथवा पत्नी स्वयं जो ऋण लेती है, उसको भी वही चुकायेगी, इसके अतिरिक्त किसी दूसरे प्रकार के ऋण का देनदार स्त्री नहीं होती है ।।९।। यदि ऋण लेकर पिता परदेश चला जाय अथवा मर जाय तो उसके अभाव में उस ऋण को उसके पुत्र अथवा पौत्र चुकायें। यदि उसके पुत्रऔर पौत्र उसे न स्वीकार करें तो अर्थी न्यायालय में अभियोग ले जाकर साक्षी द्वारा उसे प्रमाणित कर दे ।। १० ।। जो ऋण शराब पीने के लिए अथवा परस्त्री गमन करने के लिए या जूआ खेलने के लिए लिया गया हो अथवा जो ऋण दण्ड याशुल्क का अवशिष्ट भाग हो अथवा जो व्यर्थदान के लिए (धूर्तों और नचनियों को देने के लिए) लिया गया ऋण हो उसे पिता के ऋण को पुत्र न चुकाए ।। ११ ।। भाइयों के, पति-पत्नी के तथा पिता-पुत्र के ऋण को प्रतिभाव्य रूप से लेना चाहिए उसे विभक्त नहीं माना गया है ।। १२ ।। विश्वास के लिए किसी दूसरे पुरुष के साथ जो समय, शर्त या मर्यादा निश्चित की जाती है, उसे प्रातिभाय कहते हैं । विषय के भेद के कारण उसके तीन भेद होते हैं दर्शन विषयक प्रातिभाव्य, प्रत्यय विषयक प्रातिभाव्य और दान विषयक प्रातिभाव्य इनमें से दो प्रकार के प्रातिभाव्य दर्शन प्रातिभाव्य एवं विश्वास प्रातिभाव्य की बात झूठी हो जाने पर स्वयं धनी को ऋण चुकाना चाहिए । अथवा उसके पुत्रों को ऋण चुकाना चाहिए ।। १३ ।। जब दर्शन प्रातिभाव्य (प्रतिभूः) अथवा विश्वास प्रतिभूः मर जायँ तो उसे पुत्रों को वह ऋण नहीं चुकाना चाहिए । किन्तु दानप्रतिभूः के मर जाने पर उसके पुत्रों को ऋण चुकाना चाहिए ।। १४ ।। यदि किसी ऋण लेने वाले के अनेक प्रतिभूः हों तो ऋण लेने वाले के मर जाने पर उन सभी प्रतिभू को अपने हिस्से के अनुसार उस ऋण को लौटाना चाहिए । यदि वे सबके सब एक ही आश्रय में रहते हों तो वे अपनी रुचि के अनुसार हिस्सा लगाकर ऋण धनिक को लौटा दें ।। १५ ।। ऋण देने वाले व्यक्ति के द्वारा स्त्री पर दबाव दिये जाने पर प्रतिभूः राजा के समक्ष जितना धन धनी को देता है, ऋणी को उसके दो गुना धन प्रतिभू को लौटाना चाहिए ।। १६ ।। मादा पशु के लिए दिए गये ऋण के ब्याज के रूप में उसकी सन्तति को लिया जा सकता है । अन्न का अधिक से अधिक ब्याज उसके दो गुना होता है। वस्त्र का अधिक से अधिक ब्याज चार गुना होता है और रस का अधिकसे अधिक ब्याज आठ गुना होता है ।। १७ ।। यदि कोई वस्तु बन्धक रखकर ऋण लिया गया हो उसका ब्याज बढ़ते-बढ़ते दो गुना हो गया हो। उस पर भी सारा धन चुकाकर उस वस्तु को छुड़ा नहीं लिया जाता है तो वह वस्तु नष्ट हो जाती है । जो धन समय विशेष पर लौटाने की शर्त पर लिया जाता है और उसके बदले में कोई वस्तु बन्धक रखी जाती है तो समय बीत जाने पर वह वस्तु धनदाता की हो जाती है । किन्तु जिस वस्तु का फल बन्धक रखने वाला भोगता है, वह वस्तु कभी भी नष्ट नहीं होती । उस पर उसके स्वामी का स्वत्व बना रहता है । जैसे बगीचा आदि के बन्धक रखने पर ।। १८ ।। यदि कोई गोपनीय आदि ऋणदाता

न वृद्धिः सोपकारेऽथ भाविते । नष्टो देयो विनष्टश्च देवराजकृतादृते॥ १९॥ आधेः स्वीकरणात् सिद्धीरक्ष्यमाणोऽप्यसारताम्। यातश्चेदन्य आधेयो धनभाग् वा धनी भवेत् ॥ २० ॥ चरित्रं बन्धककृतं सवृद्धिं दापयेद्धनम् । सत्यङ्कारकृतं द्रव्यं द्विगुणं प्रतिदापयेत् ॥ २१॥ उपस्थितस्य मोक्तव्य आधिर्दण्डोऽन्यथा भवेत् । प्रयोजके सति धनं कुलेऽन्यस्याधिमाप्नुयात् ॥ २२ ॥ तत्कालकृतमूल्यो वा तत्र तिष्ठेदवृद्धिकः। विना धारणकाद् वापि विक्रीणीते ससाक्षिकम् ॥ २३॥ यदा तु द्विगुणीभूतमृणमाधौ तथा खलु । मोच्यश्चाधिस्तदुत्पाद्य प्रविष्टे द्विगुणे धने॥ २४॥ व्यसनस्थमनाख्याय हस्तेऽन्यस्य यदर्पयेत् । द्रव्यं तदौपनिधिकं प्रतिदेयं तथैव तत् ॥ २५॥ न दाप्योऽपहृतं तत् तु राजदैवकतस्करैः । प्रेषश्चेन् मार्गिते दत्ते दाप्यो दण्डश्च तत्समम् ॥ २६ ॥ आजीवन् स्वेच्छया दण्ड्यो दाप्यस्तच्चापि सोदयम् । याचितान्वाहितन्यासे निक्षेपेष्वप्ययं विधिः॥ २७ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये व्यवहारकथनं नाम चतुःपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५४ ॥

को उपयोग में तो उस पर दिये हुए धन पर ब्याज नहीं लगता है। यदि बन्धक में कोई उपकारी प्राणी हो तो उससे काम लेकर उसकी शक्ति क्षीण कर दी गयी हो तो उस पर दिये गये ऋण पर वृद्धि नहीं जोड़ी जा सकती है ।यदि देवता अथवा राजा के कोप के विना ही वह नष्ट अथवा विनष्ट हो गयी हो तो ऋणदाता को उस बन्धक वस्तु का मूल्य देना चाहिए ।। १९ ।। आधि चाहे गोप्य हो अथवा भोग्य उसके स्वीकार करने मात्र से आधिग्रहण की सिद्धि हो जाती है । उस आधि की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने पर भी वह यदि कालवश निस्सार हो जाय अर्थात् वृद्धिरहित मूलधन के लिए पर्याप्त न रह जाया तो ऋण लेने वाले को कोई दूसरी वस्तु बन्धक के रूप में रखना चाहिए अथवा ऋणदाता को धन लौटा देना चाहिए ।। २० ।। चरित्रको ही बन्धक बनाकर उसके द्वारा जो द्रव्य अपने अथवा दूसरे के अधीन किया जाता है उसको चरित्रबन्धक कृत कहते हैं । ऐसे धन को ब्याज सहित लौटा देना चाहिए ।अथवा राजा ऋण लेने वाले से वृद्धि सहित धन ऋणदाता को दिलवावे । यदि सत्य को बन्धक बनाकर कोई द्रव्य ऋणदाता से लिया गया हो तो ऋण लेनेवाले को उस धन को दो गुना करके ऋणदाता को लौटाना चाहिए ।। २१ ।। यदि ऋण लेने वाला व्यक्ति धन लौटाकर बन्धक लेने के लिए उपस्थित हो तो धनदाता को चाहिए कि वह धन लेकर उसके बन्धक को लौटा दे । यदि वह ऐसा नहीं करता है तो राजा के दण्ड का भागी होता है । यदि ऋण देने वाला कहीं दूर चला गया है तो उसके कुल के किसी विश्वसनीय व्यक्ति को ब्याज सहित ऋण देकर बन्धक की वस्तु को प्राप्त कर लेनी चाहिए ।।२२।। उस समय तक उस बन्धक को छुड़ाने का जो मूल्य हो उसे निश्चित करके उस बन्धक कोधनी के लौटने तक उस धनी के यहाँ ही रहने दे । किन्तु उस दशा में उसधन पर कोई ब्याज नहीं लगेगा। यदि ऋण लेने वाला व्यक्ति दूर चला गया हो और नियत समय तक न लौटे तो धनदाता को चाहिए कि वह ऋणी व्यक्ति के विश्वसनीय पुरुषों और गवाहों के समक्ष उस बन्धक की वस्तु को बेचकर अपना प्राप्तव्य धन प्राप्त कर ले ।। २३ ।। यदि लिया हुआ ऋण अपनी ब्याज वृद्धि के क्रम से दो गुना होकर बन्धक पर चढ़ जाय और ऋणदाता को बन्धक से दो गुना धन प्राप्त हो जाय तो ऋणदाता को चाहिए कि वह बन्धक ऋणग्राही को लौटा दे ।। २४ ।। यदि कोई व्यक्ति विपत्ति में पड़कर कोई वस्तु बन्धक रखता है और जब कभी भी वह उसे माँगता है तो ऋणदाता को उसे ज्यों का त्यों लौटा देना चाहिए । यदि उपनिधि की वस्तु राजा ने बलपूर्वक ले ली हो अथवा दैवी बाधा के कारण वह विनष्ट हो गयी हो तो जिसके यहाँ यह वस्तु रखी गयी हो उसको उस वस्तु को देने अथवा लौटाने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है । उस दशा में उस धरोहर को रखने वाला व्यक्ति उस वस्तु के अनुसार उसका मूल्य लौटा सकता है और राजा को भी उतना ही द्रव्य लौटाया जा सकता है ।। २५-२६ ।। जो व्यक्ति माल धनी की अनुमति प्राप्त किए विना ही उपनिधि की वस्तु को भोगता है अथवा उससे व्यापार करता है, वह दण्ड का पात्र है । यदि उसने उस वस्तु का उपभोग किया है तो उसे उस वस्तु को ब्याज के साथ लौटाना चाहिए और उतना ही दण्ड राजा को भी देना चाहिए । अथवा यदि व्यापार करके उससे लाभ कमाया है तो उसे लाभ सहित माल धनी को लौटा देना चाहिए । सयाचित, अन्वाहित, न्यास और निक्षेप आदि के विषय में भी यही नियम लागू होता है।। २७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का व्यवहार वर्णन नामक दो सौ चौवनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २५४ ॥

पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

दिव्यप्रमाणकथनम्

अग्निरुवाच— **तपस्विनो दानशीलाः कुलीनाः सत्यवादिनः । धर्मप्रधाना ऋजवः पुत्रवन्तो धनान्विताः॥ १ ॥ पञ्चयज्ञक्रियायुक्ताः साक्षिणः पञ्च वा त्रयः। यथाजाति यथावर्णं सर्वे सर्वेषु वा स्मृताः॥ २॥ स्त्रीवृद्धबालकितवमत्तोन्मत्ताभिशस्तकाः । रङ्गावतारिपाषण्डिकूटकृद्विकलेन्द्रियाः॥३॥ पतिताप्तार्थसम्बन्धिसहायरिपुतस्कराः । असाक्षिणः सर्वसाक्षी चौर्य्यपारुष्यसाहसे॥ ४॥ उभयानुमतः साक्षी भवत्येकोऽपि धर्मवित् । अब्रुवन् हि नरःसाक्ष्यमृणंसदशबन्धकम्॥ ५॥ राज्ञा सर्वं प्रदाप्यः स्यात् षट् चत्वारिंशकेऽहनि । न ददाति हि यःसाक्ष्यं जानन्नपि नराधमः ॥ ६ ॥ स कूटसाक्षिणां पापैस्तुल्यो दण्डेन चैव हि । साक्षिणः श्रावयेद्वादि प्रतिवादि समीपगान् ॥ ७ ॥ ये पातककृतां लोका महापातकिनां तथा । अग्निदानाञ्च ये लोका ये च स्त्रीबालघातिनाम् ॥ ८ ॥ तान् सर्वान् समवाप्नोति यःसाक्ष्यमनृतं वदेत् । सुकृतं यत् त्वया किञ्चिज्जन्मान्तरशतैः कृतम् ॥ ९ ॥ तत् सर्वं तस्य जानीहि यं पराजयसे मृषा । द्वैधे बहूनां वचनं समेषु गुणिनां तथा ॥ १० ॥ गुणिद्वैधे तु वचनं ग्राह्यं ये गुणवत्तराः। यस्योचुः साक्षिणः सत्यां प्रतिज्ञां स जयी भवेत्॥११॥ अन्यथा वादिनो यस्य ध्रुवस्तस्य पराजयः । उक्तेऽपि साक्षिभिः सक्ष्ये यद्यन्ये गुणवत्तराः॥१२॥**

अग्निदेव ने कहा— तपस्वी, दानशील, कुलीन, सत्यवादी, धर्म की प्रधानता देने वाले, मन, वाणी और कर्म से सरलता का व्यवहार करने वाले, पुत्रवान् धनिक, प्रतिदिन पञ्चयज्ञ करने वाले, इस प्रकार अपने जाति अथवा वर्ग के पाँच या तीन व्यक्ति साक्षी हो सकते हैं, अथवा अपनी जाति अथवा वर्ग के सभी लोग सबों के साक्षी हो सकते हैं ।। १-२ ।। किन्तु स्त्री, वृद्ध, बालक, कितव (धूर्त) मत्त (शराब पीकर मदमत्त बना रहने वाला) उन्मत्त (भूत-प्रेत अथवा ग्रह के आवेश के कारण पागल बने रहने वाला) अभिशस्त (पातकी) रङ्गमञ्च पर आकर नट का काम करने वाला, पाषण्डी, कूटकारी (जालसाजी करके झगड़ा लगाने वाला) विकलेन्द्रिय (अन्धा, लंगड़ा, काना आदि) ।। ३ ।। पतित, आप्त (सगे सम्बन्धी अथवा मित्र) अर्थ से सम्बन्ध रखने वाला,सहायक, शत्रु, चोर, चोरी, वाक्पारुष्य एवं साहसिक कार्यों में सबों में साक्षी बनने वाले, ये सभी साक्षी नहीं हो सकते हैं ।। ४ ।। जिसके वादी और प्रतिवादी दोनों साक्षी रूप से स्वीकार करें इस प्रकार का एक भी धार्मिक पुरुष साक्षी हो सकता है । जो व्यक्ति साक्षी बनने के लिए स्वीकार करके भी राजा अथवा न्यायालय में कुछ भी नहीं बोलता है, राजा को चाहिए कि वह उससे छियालिसवें दिन ऋण, ब्याज तथा अपना दशांश तथा बन्धक की वस्तु सबके सब वसूल करे ।। ५ ।। जो नराधम जानते हुए भी गवाही नहीं देता है, उसको वही पाप लगता है, जो कूटसाक्षी (झूठी गवाही देने वाले) होते हैं और उसको राजा वही दण्ड दे जो कूटसाक्षियों को दिया जाता है ।। ६ ।। न्यायाधिकारी को चाहिए कि वह वादी एवं प्रतिवादी के समीप में विद्यमान सभी साक्षियों को कहे कि- पातकियों,महापातकियों,आग लगाने वालों, स्त्रियों तथा बालकों का वध करने वालों को जो लोक प्राप्त होते हैं, वे ही लोक उन साक्षियों को प्राप्त होते हैं, जो साक्षी झूठी गवाही करते हैं ।। ८ ।। आप लोगों ने सैकड़ों जन्मों में जो कुछ भी पुण्य अर्जित किया है, वेसब के सब पुण्य उसी को प्राप्त होंगे, जिसको आप लोग झूठी गवाही देकर पराजित करोगे।।९।। जब साक्षियों के वचन परस्पर विरोधी हों तो बहुसंख्यक साक्षी जिस बात को कहें उसे ही स्वीकार करनी चाहिए । यदि समान संख्या वाले साक्षी परस्पर विरोधी बातों को कहें तो उस दशा में गुणवान् साक्षियों की बातों को स्वीकार करना चाहिए । यदि गुणवान् साक्षियों की भी परस्पर विरोधी बातें हों तो जो अधिक गुणवान् साक्षी हो उसकी ही बात स्वीकार करनी चाहिए ।। १० ।। जिसकी प्रतिज्ञा को साक्षी सत्य बतलायें वही विजयी होता है और जिसकी बातों को वे असत्य बतलायें उसका पराजय निश्चित होता है ।। ११ ।। साक्षियों के गवाही दे देने पर भी दूसरे गुणवान् पुरुष अथवा पूर्वसाक्षियों की अपेक्षा दुगनी संख्या वाले साक्षी पूर्वसाक्षियों की गवाही को असत्य बतलायें तो पूर्वसाक्षियों को कूट (झूठी गवाही करने वाले) साक्षी माना

द्विगुणा वान्यथा ब्रूयुः कुटाः स्युः पूर्वसाक्षिणः । पृथक् पृथग् दण्डनीयाः कूटकृत्साक्षिणस्तथा ॥ १३ ॥ विवादाद् द्विगुणं दण्डं विवास्यो ब्राह्मणः स्मृतः। यःसाक्ष्यं श्रावितोऽन्येभ्यो निह्नुते तत् तमोवृतः ॥ १४ ॥ स दाप्योऽष्टगुणं दण्डं ब्राह्मणन्तु विवासयेत् । वर्णिनां हि बधो यत्र तत्र साक्ष्येऽनृतं वदेत्॥१५॥ यः कश्चिदर्थोऽभिमतः स्वरुच्या तु परस्परम् । लेख्यं तु साक्षिमत् कार्य्यं तस्मिन् धनिकपूर्वकम् ॥ १६ ॥ समामासतदर्द्धाहर्नामजातिस्वगोत्रजैः । सब्रह्मचारिकात्मीयपितृनामादिचिह्नितम् ॥ १७ ॥ समाप्तेऽर्थे ऋणी नाम स्वहस्तेन निवेशयेत् । मतं मेऽमुकपुत्रस्य यदत्रोपरिलेखितम्॥ १८॥ साक्षिणश्च स्वहस्तेन पितृनामकपूर्वकम् । अत्राहममुकः साक्षी लिखेयुरिति ते समाः॥ १९॥ अलिपिज्ञ ऋणीयः स्याल्लेखयेत् स्वमतन्तु सः । साक्षी वा साक्षिणान्येन सर्वसाक्षिसमीपतः ॥ २० ॥ उभयाभ्यर्थितेनैतन् मया ह्यमुकसूनुना । लिखितं ह्यमुकेनेति लेखकोऽर्थान् ततो लिखेत्॥ २१॥ विनापि साक्षिभिर्लेख्यं स्वहस्तलिखितञ्च यत् । तत् प्रमाणं स्मृतं सर्वं बलोपाधिकृतादृते ॥ २२॥ ऋणं लेख्यकृतं देयं पुरुषैस्त्रिभिरेव तु । आधिस्तु भुज्यते तावद् यावत् तन्न प्रदीयते ॥ २३॥ देशान्तरस्थे दुर्लेख्ये नष्टोन्मृष्टे हृते तथा । भिन्ने छिन्ने तथा दग्धे लेख्यमन्यत् तु कारयेत् ॥२४॥ सन्दिग्धार्थविशुद्ध्यर्थं स्वहस्तलिखितन्तुयत्। युक्तिप्राप्तिक्रियाचिह्नसम्बन्धागमहेतुभिः॥ २५॥ लेख्यस्य पृष्ठेऽभिलिखेत् प्रविष्टिमधमर्णिनः । धनी चोपगतं दद्यात् स्वहस्तपरिचिह्नितम् ॥ २६ ॥ दत्त्वर्णं पाटयेल्लेख्यं शुद्ध्यै चान्यत् तु

जाता है ।। १२ ।। झूठी गवाही देने वाले साक्षियों को राजा को अलग-अलग दण्ड देना चाहिए । विवाद में पराजित होने पर उसमें जो दण्ड बतलाया गया हो, उससे दो गुना दण्ड झूठी गवाही देने वाले को देना चाहिए । यदि दण्ड का भागी ब्राह्मण हो तो उसे देश से निकाल देना चाहिए ।। १३ ।। जो व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के समान ही अपने साक्षित्व को स्वीकार करके पीछे चलकर किसी राग-द्वेष के कारण गवाही देनेसे इनकार कर देता है, न्यायाधिकारी को चाहिए कि विवाद में पराजित होने वाले को दिये जाने वाले दण्ड से आठ गुना दण्ड उस गवाही न देने वाले को दे । यदि दण्ड का पात्र ब्राह्मण हो तो उसे दण्ड न देकर देश से निकाल दे ।। १४ ।। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के प्राणदण्ड की सम्भावना हो तो उनके रक्षार्थ साक्षी को झूठ ही बोलना चाहिए सत्य नहीं बोलना चाहिए ।। १५ ।। धनी और अधर्मण के बीच जो सुवर्ण आदि द्रव्य परस्पर अपनी ही रुचि से, इस शर्त के साथ कि- 'इतने समय में इतना देना है और प्रतिमास इतना ब्याज है' इस व्यवस्थापूर्वक रखा जाता है उस अर्थ को लेकर कालान्तर में कोई मतभेद या विवाद उपस्थित होने पर कैसे निर्णय होगा ? इस बात के लिए ऋण लेते एवं देते समय ही एक लेखापत्र तैयार कर लेना चाहिए । उसमें पूर्वोक्त प्रकार के साक्षियों का तथा धनिक का भी उल्लेख होना चाहिए ।। १६ ।। उस लेखापत्र में वर्ष, मास, पक्ष, दिन, ऋण देने और लेने वाले के नाम, जाति तथा गोत्र का भी उल्लेख होना चाहिए । उसके साथ-साथ शाखा प्रयुक्त गौण नाम (उपाधि) तथा धनी एवं ऋणी के पिता आदि के नाम का भी उल्लेख होना चाहिए ।। १७ ।। लेखापत्र के विषय के लिख जाने के पश्चात् ऋणी भी अपने पिता के नाम के उल्लेखपूर्वक अपना नाम लिखे और यह भी लिखे कि मैं उपर्युक्त लेख के विषय से सहमत हूँ ।। १८ ।। इसके पश्चात् साक्षी भी अपने पिता के नाम का उल्लेख करते हुए यह लिखे कि अमुक का पुत्र अमुक मैं इस लेखापत्र के विषय का साक्षी हो रहा हूँ । साक्षियों की संख्या सम होनी चाहिए विषम नहीं ।। १९ ।। जो ऋणी पढ़ने में असमर्थ है वह अपने अभिमत अर्थ को सभी साक्षियों (गवाहों) के सामने ही किसी दूसरे साक्षी से लिखवाये अथवा उन्हीं साक्षियों में से कोई एक साक्षी उसके अभिमत अर्थ को लिख दे ।।२० ।। सबों के लिख लेने के पश्चात् लेखापत्र तैयार करने वाला लेखक भी उस पर लिखे कि ऋणी तथा ऋणदाता दोनों के कहने से अमुक का पुत्र अमुक मैंने इस लेखापत्र को लिखा है ।। २१ ।। साक्षियों के न होने पर भी ऋणी के हाथ का लिखा हुआ लेखापत्र पूर्ण प्रमाण माना जाता है । लेकिन उस लेखापत्र को बल अथवा छल के प्रयोग से लिखा हुआ नहीं होना चाहिए ।। २२ ।। लेखापत्र लिखकर लिया गया ऋण तीन पीढ़ियों तक ही देय होता है । किन्तु बन्धक की वस्तु तब तक धनी के उपभोग में रहती है जब तक कि ऋणी लिए हुए ऋण को लौटा न दे ।। २३ ।। यदि लेखापत्र देशान्तर में हो, उसकी लिखावट दोषपूर्ण हो, नष्ट हो गया हो अष्थवा उसके अक्षर घिस गये हों अथवा उसे किसी ने चुरा लिया हो, छिन्न-भिन्न अथवा दग्ध हो गया हो तो धनी को चाहिए कि ऋणी की अनुमति लेकर दूसरा लेखापत्र तैयार करवा ले।। २४ ।। संदिग्ध अर्थ की शुद्धि के लिए

कारयेत् । साक्षिमच्च भवेत् यत् तु तद् दातव्यं ससाक्षिकम् ॥ २७ ॥ तुलाग्न्यापो विषं कोषो दिव्यानीह विशुद्धये । महाभियोगेष्वेतानि शीर्षकस्थेऽभियोक्तरि ॥ २८ ॥ रुच्या वान्यतरः कुर्य्यादितरो वर्त्तयेच्छिरः । विनापि शीर्षकात् कुर्य्यान्नृपद्रोहेऽथ पातके ॥ २९ ॥ नासहस्राद्धरेत् फालं न तुलां न विषं तथा । नृपार्थेष्वभियोगेषु वहेयुः शुचयःसदा॥ ३०॥ सहस्रार्थे तुलादीनि कोषमल्पेऽपि दापयेत् । शतार्द्धं दापयेच्छुद्धमशुद्धो दण्डभाग् भवेत् ॥ ३१ ॥ सचेलस्नातमाहूय सूर्योदय उपोषितम्। कारयेत् सर्वदिव्यानि नृपब्राह्मणसन्निधौ॥ ३२॥ तुला स्त्रीबालवृद्धान्धपङ्गुब्राह्मणरोगिणाम् । अग्निर्जलं वा शूद्रस्य यवाःसप्त विषस्य वा ॥ ३३ ॥ तुलाधारणविद्वद्भिरभियुक्तस्तुलाश्रितः । प्रतिमानसमीभूतो रेखां कृत्वावतारितः ॥ ३४॥ आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च । अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम्॥३५॥ त्वं तुले ! सत्यधामासि पुरा देवैर्विनिर्मिता । सत्यं वदस्व कल्याणि ! संशयान् मां विमोचय ॥ ३६ ॥ यद्यस्मि पापकृन्मातस्ततो मां त्वमधो नय। शुद्धश्चेद् गमयोर्ध्वं मां तुलामित्यभिमन्त्रयेत् ॥ ३७ ॥ करौ विमृदितव्रीहेर्लक्षयित्वा ततो न्यसेत् । सप्ताश्वत्थस्य पत्राणि तावत्

स्वहस्तलिखित जो लेखापत्र होता है अर्थात् ऋणी अपने हाथ से दूसरा लेखापत्र तैयार कर देता है । उसकी प्रामाणिकता युक्ति प्राप्ति, क्रिया, असाधारण चिह्न, सम्बन्ध एवं आगम के द्वारा होती है ।। २५ ।। ऋणी जब जब धन धनी को लौटाये तब तब उस लेखापत्र पर अंकित करते जाय और धनी भी जितना धन पाये अपने हाथ से उस लेखापत्र के पृष्ठ पर अंकित करते जाय अपना हस्ताक्षर भी कर दे ।। २६ ।। ऋणी को चाहिये कि जब वह ऋण चुकता कर दे तो उस लेखापत्र को फाड़ डाले अथवा उस ऋण की चुकता की शुद्धि के लिए दूसरा पत्र लिखवा ले । यदि लेखापत्र में साक्षियों का उल्लेख हो तो ऋण साक्षियों के समक्ष ही चुकता करना चाहिए ।। २७ ।। तुला,अग्नि, जल, विष तथा कोष ये पाँच दिव्यप्रमाण विशेष रूप से शुद्धि करने वाले हैं। महाभियोग लगने पर और अभियोग करने वाला व्यवहार के जय-पराजय लक्षण चतुर्थपाद में पहुँच गया हो तभी इन दिव्य प्रमाणों का प्रयोग करना चाहिए ।।२८ ।। वादी और प्रतिवादी दोनों में से कोई अपनी रुचि के अनुसार किसी दिव्य प्रमाण के लिए प्रस्तुत हो और दूसरा शारीरिक अथवा आर्थिक दण्ड के लिये तैयार हो । राजद्रोह या महापातक का संदेह होने पर शीर्षक के विना भी तुला आदि दिव्य प्रमाणों को स्वीकार करना चाहिए ।। २९ ।। एक हजार पण से कम का अभियोग होने पर तुला, अग्नि (फाल) और विष इन तीन दिव्य प्रमाणों को नहीं स्वीकार करना चाहिए । किन्तु राजद्रोह और महापातक के अभियोग में सत्पुरुष को इन्हीं (तुला, अग्नि और विष) दिव्य प्रमाणों को स्वीकार करना चाहिए ।। ३० ।। एक हजार पण के अभियोग में तुला आदि तीन दिव्य प्रमाणों को ही स्वीकार करना चाहिए किन्तु अल्प अभियोग में भी कोष नामक दिव्य प्रमाण को उपस्थित करना चाहिए । शपथ ग्रहण करने वाले के शुद्ध सिद्ध हो जाने पर उसे पचास पण दिलाना चाहिए, यदि शपथकर्ता अशुद्ध सिद्ध हो जाय तो उसको दण्ड देना चाहिए ।। ३१ ।। न्यायाधिकारी को चाहिए कि दिव्य प्रमाण के लिए उद्यत पुरुष को पहले दिन उपवास कराये तथा दूसरे दिन सूर्योदय के समय वस्त्र सहित स्नान करने पर उसे बुलाये । फिर राजा और ब्राह्मण के समक्ष उससे सभी दिव्य प्रमाणों को ग्रहण कराये ।। ३२ ।। किसी भी जाति अथवा वय की स्त्री किसी भी जाति का सोलह वर्ष की अवस्था से कम अवस्था का बालक कम से कम अस्सी वर्ष की अवस्था का बूढ़ा, अन्धा, लंगड़ा, ब्राह्मण, रोगी इन सबों पर लगे अपराध का निवारण करने के लिए'तुला' नामक दिव्य प्रमाण ही ग्राह्य हैं । क्षत्रिय के लिए अग्नि, वैश्य के लिए जलमात्र तथा शूद्र के लिए सात जौ प्रमाण का विष इनकी शुद्धि के लिए आवश्यक है ।। ३३ ।। जो लोग तराजू उठाना या तौलना जानते हों ऐसे व्यक्त अभियुक्त को तुला के एक पलड़े में बैठाकर दूसरे पलड़े में मिट्टी अथवा पतीर का उतने ही वजन का टुकड़ा रखकर अभियुक्त को उससे ठीक-ठीक तौले । फिर अभियुक्त को पलड़े पर से उतार कर खड़िया से उसमें रेखा बना दे ।। ३४ ।। उतरने के पश्चात् वह अभियुक्त निम्नांकित मन्त्र को पढ़कर उस तुला को अभिमन्त्रित करे- सूर्य, चन्द्रमा, वायु,अग्नि, आकाश, भूमि, जल, हृदय, यम, दिन, रात, दोनों संध्यायें, तथा धर्म ये सब के सब मनुष्य के समस्त व्यापारों को जानते हैं ।। ३५ ।। हे तुले ! तुम सत्य का धाम हो, पूर्वकाल में देवताओं ने तुम्हारा निर्माण किया है, अतएव हे कल्याणि ! तुम सत्य को प्रकट करने और मुझे संशय से मुक्त कर दो ।। ३६।। हे माता ! यदि मैं पापी हूँ तो तुम मुझे नीचे की ओर ले जाओ, अब मैं शुद्ध हूँ तो तुम मुझे ऊपर की ओर उठा दो ।। ३७ ।। अग्नि का दिव्य प्रमाण ग्रहण करने वाले के हाथों में धान मसलकर,

सूत्रेणवेष्टयेत्॥ ३८॥ त्वमेव सर्वभूतानामन्तश्चरसि पावक ! । साक्षिवत् पुण्यपापेभ्यो ब्रूहि सत्यङ्करे मम॥ ३९॥ तस्येत्युक्तवतो लौहं पञ्चाशत्पलिकं समम् । अग्निवर्णं न्यसेत् पिण्डं हस्तयोरुभयोरपि ॥ ४० ॥ स तमादाय सप्तैव मण्डलानि शनैर्व्रजेत् । षोडशाङ्गुलकं ज्ञेयं मण्डलं तावदन्तरम्॥४१॥ मुक्त्वाग्निं मृदितव्रीहिरदग्धः शुद्धिमाप्नुयात् । अन्तरा पतिते पिण्डे सन्देहे वा पुनर्हरेत् ॥ ४२ ॥ पवित्राणां पवित्र ! त्वं शोध्यं शोधय पावन !। सत्येन माभिरक्षस्व वरुणेत्यभिशस्यकम् ॥ ४३ ॥ नाभिदघ्नोदकस्थस्य गृहीत्वोरू जलं विशेत् । समकालमिषुं मुक्तमानीयान्यो जवीनरः॥ ४४॥ यदि तस्मिन् निमग्नाङ्गं पश्येच्च शुद्धिमाप्नुयात् । त्वं विष ! ब्रह्मणः पुत्र ! सत्यधर्मे व्यवस्थित ! ॥ ४५ ॥ त्रायस्वास्मादभीशापात् सत्येन भव मेऽमृतम् । एवमुक्त्वा विषं साङ्गं भक्षयेद्धिमशैलजम् ॥ ४६ ॥ यस्य वेगैर्विना जीर्णं शुद्धिं तस्य विनिर्दिशेत् । देवानुग्रान् समभ्यर्च्य तत् स्नानोदकमाहरेत्॥४७॥ संश्राव्यपाययेत् तस्माज्जलात् तु प्रसृतित्रयम् । आचतुर्दशमादह्नो यस्य नोराजदैविकम्॥ ४८॥ व्यसनं जायते घोरं स शुद्धः स्यादसंशयम् । सत्यवाहनशस्त्राणि गोवीजकनकानि च। देवतागुरुपादाश्च इष्टापूर्त्तकृतानि च । इत्येते सुकराः प्रोक्ता शपथाः स्वल्पसंशये॥५०॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दिव्यप्रमाणकथनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५५ ॥

हाथ के काले तिल आदि चिह्नों को देख लेना चाहिए,फिर उनके ऊपर सात पीपल के पत्ते को रखकर और हाथों कोसूत्रसे वेष्टित कर दें ।। ३८ ।। इसके पश्चात् अभियुक्त अग्नि की प्रार्थना करते हुए कहे कि- अग्निदेव ! आप समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में विचरण करते हैं । आप सबको पवित्र करने वाले हैं और आप सब कुछ जानते हैं । आप साक्षी के समान मेरे पुण्य एवं पाप का निरीक्षण करके सत्य को प्रकट कीजिए ।। ३९ ।। इसके पश्चात् शपथ करने वाले के दोनों हाथों में पचास पल का जलता हुआ लौह पिण्ड रख दे।।४०।। दिव्य ग्रहण करने वाला मनुष्य उसे लेकर धीरे-धीरे सातमण्डलों तक चले, मण्डल की लम्बाई और चौड़ाई सोलह-सोलह अंगुल की होनी चाहिए, एक मण्डल से दूसरे मण्डल की दूरी भी उतनी ही होनी चाहिए।।४१।। इसके बाद शपथ ग्रहण करने वाला अग्नि को गिराकर हाथों से धान मसले, यदि उसका हाथ नहीं जला रहता है तो वह शुद्ध माना जाता है । यदि बीच में ही लौह पिण्ड गिर जाय अथवा किसी प्रकार का सन्देह हो तो वह लौह पिण्ड लेकर चले ।। ४२।। जल का दिव्य ग्रहण करने वाला व्यक्ति जल की प्रार्थना करते हुए कहे- हे वरुण देवता! आप सभी पवित्र वस्तुओं से अधिक पवित्र हैं । हे पवित्र बनाने वाले देव आप मुझे पवित्र बना दें । मेरी रक्षा आप सत्य के बल पर करें । इस प्रकार से जल की वह प्रार्थना करें ।। ४३ ।। फिर वह नाभिपर्यन्त जल में खड़े पुरुष की जांघ पकड़कर जल में प्रवेश करे । उसी समय कोई व्यक्ति बाण चलाये । उस बाण को कोई व्यक्ति जितने समय में दौड़कर ले आये, उतने समय तक वह यदि जल में डुबा रहता है तो वह विजयी मान लिया जाता है ।। ४४ ।। विष का दिव्य प्रमाण ग्रहण करने वाला विष की प्रार्थना करते हुए कहे कि- हे विष ! आप ब्रह्माजी के पुत्र हैं । आप हमेशा सत्य धर्म का पालन करते हैं । आप इस अभिशाप से मेरी रक्षा करें सत्य के बल पर मेरे लिए आप अमृत हो जायँ ।। ४५ ।। इस प्रकार से प्रार्थना करके हिमालय से उत्पन्न साङ्ग विष को खा जाय । यदि विना किसी वेग के यह विष पच जाय तो उस व्यक्ति को शुद्ध घोषित कर देना चाहिए।। ४६ ।। कोष दिव्य प्रमाण को स्वीकार करने वाले के लिए न्यायाधिकारी उग्र देवताओं का पूजन करें और उन देवताओं के अभिषेक का जल ले आये । फिर शपथकर्ता को यह बतलाकर उसमें से तीन पसर जल पिला दे । यदि चौदहवें दिन तक राजा अथवा देवता से घोर पीड़ा न प्राप्त हो तो निःस्संदेह वह व्यक्ति शुद्ध होता है ।। ४८ ।। अल्प मूल्य वाली वस्तु के अभियोग में संदेह होने पर, सत्य,वाहन, शस्त्र, गौ, बीज, सुवर्ण, देवता, गुरुचरणतथा इष्टापूर्त इनका शपथ सहज साध्य होता है ।। ५० ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का व्यवहार वर्णन नामक दो सौ पचपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २५५ ॥

षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

दायभागविभागकथनम्

अग्निरुवाच– **विभागश्चेत् पिता कुर्य्यादिच्छया विभजेत् सुतान् । ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन सर्वे वा स्युः समांशिनः ॥ १ ॥ यदि दद्यात् समानंशान् कार्य्याः पत्न्या समांशिका । न दत्तं स्त्रीधनं यासां भर्त्रा वा श्वशुरेण वा ॥ २ ॥ शक्तस्यानीहमानस्य किञ्चिद् दत्त्वा पृथक् क्रिया । न्यूनाधिकविभक्तानां धर्म्यश्च पितृ ना कृतः ॥ ३ ॥ विभजेयुःसुताः पित्रोरूर्ध्वमृक्थमृणंसमम् । मातुर्दुहितरः शेषमृणात् ताभ्य ऋतेऽन्वयः॥ ४॥ पितृद्रव्याविनाशेन यदन्यत् स्वयमर्जयेत् । मैत्रमौद्वाहिकश्चैव दायादानां न तद् भवेत्॥ ५॥ समान्यार्थसमुत्थाने विभागस्तु समः स्मृतः । अनेकपितृकाणान्तु पितृतो भागकल्पना॥ ६॥ भूर्यापिता मघेपात्ता निबन्धो द्रव्यमेव वा। तत्र स्यात् सदृशं स्वाम्यं पितुः पुत्रस्य चोभयोः ॥ ७ ॥ विभक्तेषु सुतो जातःसवर्णायां विभागभाक् । दृश्याद् वा तद्विभागः स्यादायव्ययविशोधितात्॥ ८॥ क्रमादभ्यागतं द्रव्यं हृतमभ्युद्धरेच्च यः । दायादेभ्यो न तद् दद्याद् विद्यया**

विशेष– (दाय शब्द का तात्पर्य उस धन से है जिस पर धनस्वामी के साथ सम्बन्ध होने के कारण दूसरे व्यक्ति का स्वामित्व हो जाता है । दाय के दो भेद हैं- अप्रतिबन्ध और सप्रतिबन्ध। पुत्रों एवं पौत्रों का अपने पिता पितामह के साथ पुत्रत्व एवं पौत्रत्व स्वाभाविक है, इसरीलिए उनका पिता पितामह के धन पर विना किसी प्रयास के ही स्वामित्व आ जाता है, अतएव उनका वह अप्रतिबन्ध दाय होता है । किन्तु भाइयों अथवा भतीजों आदि का अपने भाई अथवा चाचा के धन पर स्वामित्व तब होता है,जबकि उनकी अपनी कोई संतान न हो अथवा धन स्वामी की मृत्यु हो जाय । इसलिए उनको प्राप्त होने वाला वह दाय सप्रतिबन्ध दाय होता है । जिस धन के अनेक स्वामी हों उस धन को बाँट-बाँट कर प्रत्येक स्वामी के हिस्से को अलग कर देने को विभाग कहा जाता है ।) **अग्निदेव ने कहा**– यदि पिता अपने जीवन काल में ही अपने पुत्रों को धन बाँट दे तो वह अपनी इच्छा के अनुसार किसी को अधिक धन दे सकता है अथवा सबों को एक समान ही धन दे सकता है ।। १ ।। यदि वह अपने सभी पुत्रों को एक समान धन का हिस्सा प्रदान करता है तो उसे अपनी स्त्रियों को भी एक समान ही धन का हिस्सा प्रदान करना चाहिए जिन स्त्रियों को न तो पति ने धन प्रदान किया है और न तो श्वशुर ने धन प्रदान किया है ।। २ ।। जो पुत्र धनोपार्जन में समर्थ होने के कारण पिता के धन को नहीं लेना चाहता है, उसे भी धन का थोड़ा-बहुत हिस्सा प्रदान कर विभाजन का कार्य पूर्ण करना चाहिए । पिता के द्वारा दिया हुआ न्यूनाधिक भाग यदि सर्वसम्मत हो तो वह निवृत्त नहीं हो सकता क्योंकि वह पिता के द्वारा किया गया है ऐसा स्मृतिकारों ने कहा है ।। ३ ।। माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् सभी पुत्रों को पिता के धन तथा ऋण को बराबर-बराबर बाँट लेना चाहिए । जो माता का धन हो उसको माता का ऋण चुकाने के बाद जितना बचे उसे पुत्रियाँ आपस में बाँट लें, यदि पुत्रियाँ न हों तो पुत्र ही मातृधन को भी आपस में बाँट लें ।। ४ ।। पिता के धन को क्षति पहुँचाए विना जो धन स्वयम् अर्जित किया गया हो, मित्र से प्राप्त हुआ हो अथवा विवाह में मिला हो उस पर दायादों का अधिकार नहीं होता है ।। ५ ।। यदि सभी भाई एक साथ रहकर उस सम्पत्ति को बढ़ाये हों तो उसमें सभी भाइयों का एक समान हिस्सा होता है । यद्यपि पितामह के धन पर पौत्रों का स्वाभाविक स्वत्व होता है फिर यदि वे अनेक पिता के पुत्र हों तो पिता के अनुसार ही पितामह के धन का विभाजन पौत्रों में होगा । अर्थात् यदि किसी पिता के एक पुत्र किसी पिता के चार पुत्र और किसी पिता के तीन पुत्र होने पर भी दो पुत्र वाले पिता के पुत्रों को सम्मिलित रूप से उतना ही धन मिलेगा जितना चार पुत्रों वाले पिता के पुत्रों को सम्मिलित रूप से पितामह का धन मिलेगा । पितामह के द्वारा अर्जित भूमि, निबन्ध अथवा द्रव्य में पिता एवं पुत्र दोनों का समापन रूप से स्वामित्व होता है ।। ७ ।। धन का विभाग हो जाने के पश्चात् भी सवर्णा स्त्री में उत्पन्न पुत्र धन के विभाग का अधिकारी होता है । अथवा आय और व्यय का संतुलन करने के पश्चात् दृश्य धन में उसका विभाग होता है ।। ८ ।। पिता-पितामह आदि के क्रम से सम्प्राप्त धन यदि दूसरों ने बलपूर्वक ले लिया हो और असमर्थता के कारण कोई भी पुत्र उसे नहीं ले पाया हो, उसको उन भाइयों में से यदि कोई अपने प्रयास से उसे प्राप्त कर लेता है तो वह उस धन को स्वयं ले सकता है दूसरे भाइयो को बाँटने की उसे आवश्यकता नहीं होती । अथवा अपनी विद्या

लब्धमेव च॥ ९॥ पितृभ्यां यस्य यद् दत्तं तत् तस्यैव धनं भवेत् । पितुरूर्ध्वं विभजतां माताप्यंशं समं हरेत् ॥ १० ॥ असंस्कृतास्तु संस्कार्य्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः । भगिन्यश्च निजादंशाद् दत्त्वांशन्तु तुरीयकम् ॥ ११ ॥ चतुःस्त्रिद्व्येकभागाः स्युर्वर्णशो ब्राह्मणात्मजाः । क्षत्रजास्त्रिद्व्येकभागा विड्जास्तु द्व्येकभागिनः ॥ १२ ॥ अन्योऽन्यापहृतं द्रव्यं विभक्ते यत्तु दृश्यते । तत् पुनस्ते समैरंशैर्विभजेरन्निति स्थितिः॥ १३॥ अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः । उभयोरप्यसावृक्थी पिण्डदाता च धर्मतः॥ १४॥ औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समःपुत्रिकासुतः । क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु सगोत्रेणेतरेण वा ॥ १५॥ गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढ़जस्तु सुतः स्मृतः । कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतो मतः ॥ १६ ॥ क्षतायामक्षतायां वा जातः पौनर्भवः सुतः । दद्यान्मात पिता वा यं सः पुत्रो दत्तको भवेत्॥ १७॥ क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः कृत्रिमः स्यात् स्वयं कृतः । दत्तात्मा तु स्वयं दत्तो गर्भे वित्तः सहोढ़जः ॥ १८ ॥ उत्सृष्टो गृहते यस्तु सोपविद्धो भवेत् सुतः । पिण्डदोंऽशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः॥ १९॥ सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु मया विधिः । जातोऽपि दास्यां शुद्रस्य कामतोंऽशहरो भवेत् ॥ २० ॥ मृते पितरि कुर्य्युस्तं भ्रातरस्त्वर्द्धभागिकम् । अभ्रातृको हरेत् सर्वंदुहितृणां सुतादृते॥ २१॥ पत्नी दुहितरश्चैव पितरो भ्रातरस्तथा। तत्सुतो गोत्रजो बन्धुः शिष्यः सब्रह्मचारिणः॥२२॥ एषामभावे पूर्वस्य धनभागुत्तरोत्तरः।

विभाजन करें तो माता भी पुत्रों के समान ही धनांश की अधिकारिणी होती है ।। १० ।। विभाजन के समय जिन भाइयों का संस्कार नहीं हुआ हो उन भाइयों के संस्कार करने का भार उन भाइयों पर होता है जिनका संस्कार पहले हो चुका रहता है अथवा वे अपने छोटे भाइयों का संस्कार संयुक्त धन से करें । जिन बहनों का विवाह संस्कार नहीं हुआ हो उन सबों का विवाह सभी भाई अपने धन के चतुर्थांश को देकर सम्पन्न करें ।। ११ ।। ब्राह्मण से ब्राह्मणी आदि विभिन्न वर्णों की स्त्रियों में उत्पन्न हुए पुत्र धन का क्रमशः चार भाग तीन भाग एवं दो भाग को प्राप्त करते हैं । इसी तरजह से क्षत्रिय से क्षत्रिया आदि विभिन्न वर्णों की स्त्रियाँ उत्पन्न हुए पुत्र पिता के धन का क्रमशः तीन भाग, दो भाग एवं एक भाग प्राप्त करें और वैश्य से वैश्या में उत्पन्न पुत्र को पिता के धन का दो भाग और शूद्रा में उत्पन्न पुत्र को एक भाग मिलना चाहिए ।। १२ ।। धन विभाग के पश्चात् जो धन भाइयों द्वारा एक दूसरे से अपहृत किया गया हो, उसका पता चल जाने पर सब भाइयों को उसे समान रूप से बाँट लेना चाहिए ।। यही शास्त्रीय मर्यादा है ।। १३ ।। पुत्रहीन पुरुष के द्वारा दूसरे के क्षेत्र में नियोग की विधि से उत्पन्न पुत्र दोनों पिताओं के धन और पिण्डदान का अधिकारी होता है ।। १४ ।। अपने समान वर्ण की स्त्री जब धर्मविवाह के अनुसार विवाह करके घर में लायी जाती है तो उसे धर्मपत्नी कहते हैं । अपनी धर्मपत्नी में स्वकीय वीर्य से उत्पन्न पुत्र औरस पुत्र कहलाता है । यह सभी प्रकार के पुत्रों में मुख्य होता है । दूसरा पुत्रिका पुत्र होता है,वह भी औरस पुत्र के समान होता है। अपने समान गोत्र वाले अथवा दूसरे गोत्र वाले पुरुष के द्वारा अपनी पत्नी में उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज कहलाता है ।। १५ ।। पति के घर में ही रहकर जो स्त्री उससे छिपे तौर पर पुत्र उत्पन्न करती है, उसे गूढ़ज पुत्र कहते हैं । अविवाहिता कन्या से उत्पन्न पुत्र को कानीन कहते हैं, वह नाना का पुत्र माना जाता है ।। १६ ।। जो क्षतयोनि अथवा अक्षतयोनि विधवा में सजातीय पुरुष द्वारा पुत्र उत्पन्न होता है उसे 'पौनर्भव' कहते हैं । जिस पुत्र को उसके माता-पिता दूसरे को दे देते हैं और वह लेने वाला व्यक्ति उसे पुत्र मान लेता है तो उसे दत्तक पुत्र कहते हैं ।। १७ ।। जिसे किसी माता-पिता ने बेचा तथा किसी माता-पिता ने खरीदा हो उसे क्रीतपुत्र कहते हैं । जो मातृ-पितृविहीन बालक आप मुझे अपना पुत्र बना लें, इस तरह से आत्मसमर्पण करता है, वह दत्तात्मा पुत्र है । जो विवाह से पूर्व ही गर्भ में आ गया और गर्भवती के साथ विवाह होने पर उसके साथ परिणीत हो गया वह 'सहोढज' पुत्र होता है ।। १८ ।। जिसे माता-पिता ने त्याग दिया हो, उस समान वर्ण के पुत्र को यदि किसी ने ले लिया तो वह उसका अपविद्ध पुत्र माना जाता है । ये जो बारह प्रकार के पुत्र बतलाये गये हैं, उनमें पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर पुत्र-पिण्डदाता और धनांश के भागी होते हैं ।। १९।। मैंने यह सजातीय पुत्रों में धन विभाग की विधि बतलायी है ।। १९ ।। शूद्र द्वारा दासी में उत्पन्न पुत्र भी पिता की इच्छा के अनुसार धनांश का भागी होता है ।। २० ।। पिता की मृत्यु के पश्चात् शूद्र की विवाहिता पत्नी में उत्पन्न पुत्र अपने पिता के दासी पुत्रों का भी भाई के रूप में आधा भाग प्रदान करे । यदि शूद्र की परिणीता से कोई पुत्र न हो तो वह भ्रातृहीन दासी पुत्र पूरे

क्रमेणाचार्य्यसच्छिष्यधर्मभ्रात्रेकतीर्थिनः॥ २४॥ संसृष्टिनस्तु संसृष्टी सोदरस्य तु सोदरः । दद्याश्चापहरेश्चांशं जातस्य च मृतस्य च ॥ २५॥
अन्योदर्य्यस्तु संसृष्टी नान्योदर्य्यधनं हरेत् । असंसृष्ट्यपि चादद्यात् सोदर्य्यो नान्यमातृजः ॥ २६ ॥ पतितस्तत् सुतः क्लीः पङ्गुरुन्मत्तकोजडः
अन्धोऽचिकित्स्यरोगाद्या भर्त्तव्यास्तु निरंशकाः ॥ २७ ॥औरसाः क्षेत्रजास्त्वेषां निर्दोषा भागहारिणः । सुताश्चैषां प्रभर्त्तव्या यावद् वै भर्त्तृसात्कृताः॥२८॥
अपुत्रा योषितश्चैषां भर्त्तव्या साधुवृत्तयः । निर्वास्या व्यभिचारिण्यः प्रतिकूलास्तथैव च ॥ २९ ॥ पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम् ।
आधिवेदनिकञ्चैव स्त्रीधनं परिकीर्त्तितम् ॥ ३०॥ बन्धुदत्तं तथा शुल्कमन्वाधेयकमेव च । अप्रजायामतीतायां बान्धवास्तदवाप्नुयुः ॥ ३१॥
अप्रजास्त्रीधनं भर्त्तुर्ब्राह्मयादिषु चतुर्ष्वपि । दुहितॄणां प्रसूता चेच्छेषे तु पितृगामि तत्॥ ३२॥ दत्त्वा कन्यां हरन् दण्ड्यो व्ययं दद्याच्च सोदयम् ।
मृतायां दत्तमादद्यात् परिशोध्योभयव्ययम् ॥ ३३ ॥ दुर्भिक्षे धर्मकार्य्ये च व्याधौ संप्रतिरोधके । गृहीतं स्त्रीधनं भर्त्ता न स्त्रियै दातुमर्हति॥ ३४॥

से जो धन वह अर्जित करता है, उसे भी वह दायादों में न बाँटे ।। ९ ।। माता-पिता अपना जो धन जिसको दे दें वह धन उसी का होता है । यदि पिता के मरने पर पुत्रगण पिता के धन का धन का अधिकारी होता है । किन्तु यह तब ही संभव है जबकि उसकी परिणीता पत्नी की कोई पुत्री न हो ।। २१ ।। यदि पुत्रहीन पुरुष के उपर्युक्त बारह प्रकार के पुत्रों में से कोई भी पुत्र न हो तो उसके मर जाने के पश्चात् उसके धन के अभाव में क्रमशः- पत्नी, पुत्रियाँ, माता-पिता, सहोदर भाई, असहोदर भाई, भ्रातृपुत्र, गोत्रजपुरुष,बन्धु-बान्धव, शिष्य तथा सहपाठी होते हैं। इनमें पूर्व-पूर्व के अभाव में उत्तरोत्तर धन के भागी होते हैं । सभी लोगों के लिए धन के विभाजन की यही विधि शास्त्रों में बतलायी गयी है ।। २२-२३ ।। वानप्रस्थ यति (संन्यासी) और नैष्ठिक ब्रह्मचारियों के धन के भागी क्रमशः आचार्य, श्रेष्ठशिष्य और एक आश्रम में रहने वाले धर्मभ्राता होते हैं ।। २४ ।। बँटे हुए धन को फिर से एक में यदि मिला दिया जाय तो उसे संसृष्ट कहते हैं । इस प्रकार का संसृष्ट धन जिन लोगों के पास होता है, वह संसृष्टी कहलाते हैं । यदि कोई संसृष्टी मर जाय तो दूसरा संसृष्टी उस मृत संसृष्टी के धन को उसके मरने के पश्चात् उसकी भार्या में उत्पन्न पुत्र को दे दे । यदि पुत्र न हो तो वह स्वयं ले ले । यदि सहोदर संसृष्टी मर जाय तो दूसरा सहोदर संसृष्टी उसकी मृत्यु के पश्चात् पैदा हुए पुत्र को उसका अंश दे दे । यदि पुत्र न हो तो स्वयं ही उस संसृष्टी के अंश को ले ले । असहोदर भाई-संसष्टी होने पर भी उसके अंश को नहीं ले सकता है ।। २५ ।। अन्य माता के उदर से पैदा हुआ सौतेला भाई भी यदि संसृष्टी है तो वह संसृष्टी भ्राता के धन को ले सकता है । किन्तु यदि वह संसृष्टी नहीं है तो वह उस धन को नहीं ले सकता है । अथवा असंसृष्टी भी उस संसृष्टी केधन को ले सकता है यदि वह संसृष्टी उस असंसृष्टी का भाई रहा हो तब ।। २६ ।। पतित, उसका पुत्र, नपुंसक, लंगड़ा, उन्मत्त, जड़, अन्धा, असाध्य रोग से ग्रस्त, ये सभी केवल भरण-पोषण के अधिकारी हैं, हिस्सा बँटाने के अधिकारी नहीं हैं ।। २७ ।। इन सबों के औरस तथा क्षेत्रज पुत्र यदि क्लीबत्व आदि दोषों से ग्रस्त नहीं हों तो वे धनांश पाने के अधिकारी होते हैं । इनकी पुत्रियों का भी तब तक भरण-पोषण करना चाहिए जब तक कि वे अपने पतियों के घर चली नहीं जाती हैं ।। २८ ।। इन क्लीब पतित आदि की सदाचारिणी स्त्रियों का भरण-पोषण करना चाहिए, किन्तु यदि वे व्यभिचारिणी अथवा प्रतिकूल आचरण करने वाली हों तो उन्हें घर से निकाल देना चाहिए ।। २९ ।। जिस धन को स्त्री के माता-पिता ने दिया हो विवाह काल में अग्नि के समीप पति एवं भाई आदि ने दिया हो तथा जो आधिवेदनिक धन (जब किसी स्त्री का पति दूसरा विवाह करता है तो उसके लिए उसे पत्नीसे आज्ञा लेनी होती है । उसके लिए पति अपनी पूर्व पत्नी को धन देता है । उस धन को आधिवेदनिक कहते हैं तथा उस पूर्व पत्नी को अधिविन्ना कहते हैं ।) हो; वे सभी धन स्त्री के धन होते हैं ।। ३० ।। जिस कन्या के माता-पिता के बान्धवों ने दिया हो तथा जो वरपक्ष की ओर से कन्या के लिए शुल्क रूप में मिला हो तथा विवाह के पश्चात् पति के गृह में पत्नी को भेंट के रूप में मिला हो वह स्त्री का धन होता है । यदि कोई सन्तानहीन स्त्री दिवंगत हो जाती है तो उसके धन को उसके बान्धव पति आदि ले सकते हैं ।। ३१ ।। ब्राह्म, दैव, आर्ष एवं प्राजापत्य इन चार प्रकार के विवाहों में से किसी भी विधि से विवाहित स्त्री यदि निःसन्तान मर जाती है तो उसके धन का स्वामी उसका पति होता है । यदि उस स्त्री की पुत्री सन्तान हो तो उस स्त्री का धन पुत्रियों को मिलना चाहिए । शेष गान्धर्व, आसुर, राक्षस तथा पैशाच विधि से ब्याही गयी स्त्री यदि निस्संतान मर जाती है तो उसके धन का स्वामी उसका पिता होता है ।। ३२ ।। जो कन्यादान करके पुनः उस कन्या को नहीं देता है, अपने घर में ही रोक लेता है वह राजा के द्वारा दण्डनीय होता है तथा कन्या पक्ष वालों का स्वागत करने में वरपक्ष का जितना कुछ भी खर्च हो जाता है, वह सारा खर्च सूद सहित उसे वर पक्ष वालों को देना

अधिवित्तस्त्रियै दद्यादाधिवेदनिकं समम् । न दत्तं स्त्रीधनं यस्यै दत्तेत्वर्द्धं प्रकीर्त्तितम् ॥ ३५ ॥ विभागनिह्नवे ज्ञातिबन्धुसाक्ष्यभिलेखितैः । विभागभावना ज्ञेया गृहक्षेत्रैश्च यौतकैः ॥ ३६॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दायविभागकथनं नाम षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५६ ॥

सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सीमाविवादादिनिर्णयः

अग्निरुवाच– **सीम्नो विवादे क्षेत्रस्य सामन्ताः स्थविरा गणाः । गोपाःसीमाकृषाणा ये सर्वे च वनगोचराः॥ १ ॥ नयेयुरेते सीमानं स्थलाङ्गारतुषद्रुमैः । सेतुवल्मीकनिम्नास्थिचैत्याद्यैरुपलक्षिताम् ॥ २॥ सामन्ता वा समं ग्रामाश्चत्वारोऽष्टौ दशापि वा । रक्तस्त्रग्वसनाः सीमान्नयेयुः क्षितिधारिणः ॥ ३ ॥ अनृते तु पृथग् दण्ड्या राज्ञा मध्यमसाहसम् । अभावे ज्ञातृचिह्नानां राजा सीम्नः प्रवर्त्तकः ॥ ४ ॥ आरामायतनग्रामनिपानोद्यानवेश्मसु। एष एव विधिर्ज्ञेयो वर्षाम्बुप्रवहेषु च ॥ ५ ॥ मर्य्यादायाः प्रभेदेषु क्षेत्रस्य हरणे तथा । मर्य्यादायाथ दण्ड्याः**

चाहिए । यदि वाग्दत्ता कन्या की मृत्यु हो जाता है तो वह अपने खर्च का कन्यापक्ष वालों के खर्च से मिलान करे तथा उसका जो अधिक खर्च हुआ हो वही खर्च कन्यापक्ष वालों से ले ।।३३।। दुर्भिक्ष पड़ने पर,धार्मिक कार्य करने के लिए, रोग अथवा बन्धन से मुक्ति पाने के लिए, दूसरा धन नहीं मिलने पर पति यदि स्त्री धन का उपयोग करता है तो वह उस धन को लौटाने के लिए बाध्य नहीं होता है ।। ३४ ।। जिस स्त्री को श्वशुर अथवा पति से स्त्रीधन नहीं प्राप्त हुआ हो, उस स्त्री के रहते हुए, पति यदि दूसरा विवाह करता है तो उस विवाह में जितना खर्च हुआ हो उतना ही धन उस स्त्री को भी देना चाहिए । यह जो धन से मिलता है उसे अधिवित्त कहते हैं और यह आधिवेदनिक धन के समान होता है । किन्तु जिस स्त्री के पति एवं श्वशुर से धन प्राप्त हुआ हो उसे तो विवाह के खर्च के आधा ही अधिवित्त देना चाहिए ।। ३५ ।। विभाग का अपलाप करने पर यदि संदेह हो तो कुटुम्बीजनों, पिता के बन्धु-बान्धवों आदि साक्षियों तथा अभिलेख (विभाजन पत्र) के सहयोग से विभाग का निर्णय करना चाहिए । इसी प्रकार यौतक (दहेज में मिले धन) तथा पृथक् किए गये गृह और खेत आदि के आधार पर भी विभाग का निर्णय किया जा सकता है ।। ३६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का दायविभाग वर्णन नामक दो सौ छप्पनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २५६ ॥

अग्निदेव ने कहा– जब खेत की सीमा के विषय में विवाद हो तो उस विवाद का निर्णय सामन्त (सब ओर उस खेत से सटकर रहने वाले, स्थविर (बूढ़े लोग) का समूह गोप (चरवाहे) सीमावर्ती किसान तथा वन में रहने वाले लोग करें ।। १ ।। ये सभी लोग सीमा का निर्णय ऊँची भूमि,अंगार (कोयला) धान की भूसी तथा वृक्षों के माध्यम से करें । उस सीमा की प्रतीति सेतु (पुल) बल्मीक गाड़ी हुई हड्डी, गाड़े गये पत्थर या मन्दिर आदि से होती है ।। २ ।। सामन्त अथवा निकटवर्ती ग्रामों के चार,आठ या दश लोग,लाल धोती पहनकर तथा सिर पर मिट्टी रखकर सीमा का निर्धारण करें ।। ३ ।। सीमा के निर्धारण करने के विषय में असत्य भाषण करने पर राजा को सभी सामन्तों को पृथक्-पृथक् मध्यमसाहस का दण्ड देना चाहिए । यदि सीमा का द्योतक कोई चिह्न न हो तो फिर राजा को ही सीमा का निर्णय स्वयं करना चाहिए ।। ४ ।। बगीचा, आयतन (मन्दिर या खलिहान) ग्राम, कूप या वापी, उद्यान तथा गृह एवं वर्षा आदि के जल बहने की नाली) आदि की सीमा के निर्धारण के विषय में इसी विधि को अपनाना चाहिए ।। ५ ।। मर्यादा का भेदन, सीमा का उल्लंघन तथा क्षेत्र के हरण करने पर राजा को चाहिये

स्युरधमोत्तममध्यमाः॥ ६॥ न निषेध्योऽल्पबाधस्तु सेतुः कल्याणकारकः। परभूमिं हरन् कूपःस्वल्पक्षेत्रो बहूदकः ॥ ७ ॥ स्वामिने योऽनिवेद्यैव क्षेत्रे सेतुं प्रकल्पयेत्। उत्पन्ने स्वामिनो भोगस्तदभावे महीपतिः ॥ ८ ॥ फालाहतमपि क्षेत्रं यो न कार्य्यात्र कारयेत्। स प्रदाप्योऽकृष्टफलं क्षेत्रमन्येन कारयेत्॥ ९॥ मासानष्टौ तु महिषी शस्यघातस्य कारिणी। दण्डनीया तदर्द्धन्तु गौस्तर्द्धमजाविकम्॥ १०॥ भक्षयित्वोपविष्टानां यथोक्ताद् द्विगुणो दमः। सममेषां विवीतेऽपि खरोष्ट्र महिषीसमम् ॥ ११ ॥ यावत् शस्यं विनष्टन्तु तावत् क्षेत्री फलं लभेत्। पालस्ताड्योऽथ गोस्वामी पूर्वोक्तं दण्डमर्हति॥१२॥ पथि ग्रामविवीतान्ते क्षेत्रे दोषो न विद्यते। अकामतः कामचारे चौरवद् दण्डमर्हति॥ १३॥ महोक्षौत्सृष्टपशवः सूतिकागन्तुका च गौः। पालो येषान्तु ते मोच्या दैवराजपरिप्लुताः ॥ १४ ॥ यथार्पितान् पशून् गोपः सायं प्रत्यर्पयेत् तथा। प्रमादमृतनष्टश्च प्रदाप्यः कृतवेतनः ॥ १५ ॥ पालदोषविनाशे तु पाले दण्डो विधीयते। अर्द्धत्रयोदशपणः स्वामिनो द्रव्यमेव च ॥ १६॥ ग्रामेच्छया गोपचारो

कि वह अपराधियों को क्रमशः अधम, उत्तम और मध्यम साहस का दण्ड दे।। ६ ।। जिस (सेतु) पुल के बनाने में दूसरे की भूमि तो थोड़ी जा रही हो, घाटा बहुत कम हो रहा हो और बहुत अधिक कल्याण की सम्भावना हो, ऐसे सेतु तथा दूसरे की थोड़ी सी भूमि लेकर बहुत अधिक जल देने वाले कुएँ के निर्माण में बाधा नहीं उपस्थित करनी चाहिए। उसे बनने देना चाहिए ।।७।। क्षेत्र स्वामी को बतलाये विना उसके क्षेत्र में जो पुल का निर्माण करता है, वह सेतु का निर्माण हो जाने पर उसके फल का भोग स्वयं नहीं कर सकता है। उसका फल भोग क्षेत्रस्वामी ही करेगा और क्षेत्र स्वामी के अभाव में उसका फल भोक्ता राजा होता है ।। ८ ।। जो किसान एक खेत को जोतकर भी उसमें अन्न नहीं उपजाता है तो राजा को चाहिए कि वह उस किसान से क्षेत्र स्वामी को संभावित कृषि का मूल्य दिलवावे तथा दूसरे किसान से उस खेत में कृषि कार्य करवाये ।। ९ ।। यदि किसी की भैंस किसी के धान्य आदि को चर जाती है तो उस पर आठ माष का दण्ड लगाना चाहिए। यदि गौ उस धान आदि को चरती है तो उस पर आधा और भेंड़ बकरी आदि के चरने पर उसके भी आधा दण्ड लगाना चाहिए ।। १० ।। यदि भैंस आदि खेत को चरकर वहीं पर बैठ जायँ तो उन पर उपर्युक्त मात्रा से दो गुना दण्ड लगना चाहिए। जिस खेत में अधिक मात्रा में घास एवं काष्ठ उपजते हैं उस खेत को क्षेत्र स्वामी से लेकर जब रखाया जाता है तो उसे विवीत कहते हैं। उस विवीत को भी हानि पहुँचाने वाले भैंस आदि पशुओं पर भी उपर्युक्त दण्ड लगाना चाहिए। यदि उस विवीत को गदहा और ऊँट हानि पहुँचायें तो उन पर भी वही दण्ड लगाना चाहिए ।। ११ ।। पशु खेत की फसल को जितनी क्षति पहुँचायें उसका सामन्त आदि से अनुमान लगवाकर गोस्वामी उसका मूल्य क्षेत्र स्वामी को दे और गौ आदि को चराने वालों को तो कुछ शारीरिक दण्ड ही देना चाहिए ।। १२ ।। यदि खेत रास्ते में पड़ता हो, गाँव के सन्निकट में हो अथवा विवीत (सुरक्षित) खेत के सन्निकट में हो उसकी फसल को किसी का पशु अनजान में ही क्षतिग्रस्त कर देते हैं तो उसके लिए गोस्वमी अथवा गोपाल पर दण्ड नहीं लगाना चाहिए। किन्तु यदि कोई जान बूझकर अपने पशुओं से उस फसल को क्षतिग्रस्त करता है तो फिर गोस्वमी तथा गोपाल (चरवाहे) दोनों को उस प्रकार से दण्डित करना चाहिए जैसे चोर को दण्डित किया जाता है ।। १३ ।। साँढ अथवा देवी देवता आदि की प्रसन्नता के लिए अथवा वृषोत्सर्ग विधि से छोड़े गये पशु, दस दिन के भीतर की व्यायी हुई गौ तथा किसी कारणवश अपने समूह से विछड़कर आया हुआ पशु तथा जिसका कोई चरवाहा न हो, इस प्रकार के देवोपहत तथा राजोपहत पशु, दण्डनीय नहीं होते, छोड़ देने के योग्य होते हैं ।। १४ ।। गोपाल को चाहिए कि गोस्वामी प्रातःकाल जितने पशुओं को उसे चराने के लिए दें, सायंकाल वह उतने ही पशुओं को उसे लाकर लौटा दे। यदि उसकी लापरवाही से कोई पशु मर जाता है अथवा खो जाता है तो राजा को उस पशु का मूल्य गोस्वामी को उससे दिलवाना चाहिए ।।१५।। यदि चरवाहे के दोष के कारण कोई पशु विनष्ट हो जाता है तो उस पर साढ़े तेरह पण का दण्ड लगाना चाहिए और गोस्वामी को उस पशु का मूल्य उससे दिलवाना चाहिए ।। १६ ।। ग्रामवासियों की इच्छा से अथवा राजा की आज्ञा से गोचर भूमि को छोड़ देना चाहिए उसको जोतना अथवा बोना नहीं चाहिए। ब्राह्मण सभी स्थानों से सर्वदा तृण, काष्ठ और पुष्प ले सकता है ।। १७।। गाँव और खेत के बीच की दूरी सौ धनुष होनी चाहिए। अर्थात् ग्राम के चारों ओर सौ धनुष् चौड़ी भूमि को परती छोड़ देना चाहिए, खर्वट (बड़े गांवों) के बाहर दो सौ धनुष् भूमि छूटी रहनी

भूमिराजवशेन वा । द्विजस्तृणैधःपुष्पाणि सर्वतः स्ववदाहरेत्॥ १७॥ धनुःशतं परीणाहो ग्रामक्षेत्रान्तरं भवेत् । द्वे शते खर्वटस्य स्यान्नगरस्य चतुःशतम् ॥ १८॥ स्वं लभेतान्यविक्रीतं क्रेतुर्दोषोऽप्रकाशिते । हीनाग्रहो हीनमूल्ये वेलाहीने च तस्करः॥ १९॥ नष्टापहृतमासाद्य हर्त्तारं ग्राहयेन्नरम् । देशकालातिपत्तौ वा गृहीत्वा स्वयमर्पयेत् ॥ २०॥ विक्रेतुर्दर्शनाच्छुद्धिः स्वामी द्रव्यं नृपो दमम् । क्रेता मूल्यं समाप्नोति तस्माद् यस्तत्र विक्रयी ॥ २१ ॥ आगमेनोपभोगेन नष्टं भाव्यमतोऽन्यथा । पञ्चबन्धो दमस्तस्य राज्ञे तेनाप्यभाविते ॥ २२॥ हृतं प्रनष्टं यो द्रव्यं परहस्तादवाप्नुयात् । अनिवेद्य नृपे दण्ड्यः स तु षण्णवतिं पणान्॥ २३॥ शौल्किकैः स्थानपालैर्वा नष्टापहृतमाहृतम् । अर्वाक् संवत्सरात् स्वामी लभते परतो नृपः ॥ २४ ॥ पणानेकशफे दद्याच्चतुरः पञ्च मानुषे । महिषोष्ट्रगवां द्वौ द्वौ पादं पादमजाविके ॥ २५॥ स्वकुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुतादृते । नान्वे सति सर्वस्वं देयंयच्चान्यसंश्रुतम्॥ २६॥ प्रतिग्रहः प्रकाशःस्यात् स्थावरस्य विशेषतः । देयं प्रतिश्रुतञ्चैव दत्त्वा नापहरेत् पुनः ॥ २७ ॥ दशैकपञ्चसप्ताहमासत्र्यहार्द्धमासिकम् । वीजायोवाह्यरत्नस्त्रीदोह्यपुंसां परीक्षणम् ॥ २८॥ अग्नौ सुवर्णमक्षीणं द्विपलं रजते शते। अष्टौ त्रपुणि सीसे च ताम्रे पञ्चदशायसि ॥ २९॥ शते दशपलावृद्धिरौर्णे कार्पासिके तथा । मध्ये पञ्चपला ज्ञेया सूक्ष्मे तु त्रिपला मता ॥ ३०॥

चाहिये । और नगर के चारों ओर चार सौ धनुष चौड़ी भूमि परती रहनी चाहिए ।। १८ ।। द्रव्य का स्वामी अपनी वस्तु, दूसरे के द्वारा बेची हुई यदि किसी खरीददार के पास देखे तो उसे पकड़कर अपने अधिकार में ले ले । यहाँ पर 'विक्रीत' शब्द दत्त एवं आहित का उपलक्षण है । अर्थात् यदि किसी दूसरे की रखी हुई वस्तु उसे बताये विना दूसरे के यहाँ रख दे, या दूसरे को दे दे और उस पर यदि वस्तु स्वामी की दृष्टि पड़ जाय तो स्वामी को उस वस्तु को हठात् ले लेना चाहिए, क्योंकि उससे उसका स्वामित्व निवृत्त नहीं हुआ है । यदि खरीदने वाला उस वस्तु को खरीदकर छिपाये रखे तो उसमें उसका अपराध माना जाता है । यदि किसी हीन पुरुष से कोई खरीदने वाला एकान्त में तथा रात्रिआदि की वेला में कम मूल्य देकर किसी वस्तु को खरीदता है तो वह भी चोर के समान दण्डनीय है ।। १९ ।। यदि अपनी चोरी गयी अथवा खोयी हुई वस्तु को स्वामी किसी के पास देखे तो वह उसे स्थान पाल आदि से पकड़वा दे । यदि देशकाल के अनुकूलता के अभाव में कोई स्थानपाल आदि राज्य के कर्मचारी नहीं मिलते हैं तो धन स्वामी स्वयं उसे पकड़ ले और राज्य कर्मचारियों को उसे समर्पित कर दे ।। २० ।। यदि वह यह कहे कि मैंने चोरी नहीं की है, इसे मैंने अमुक से खरीदा है और वह यदि विक्रेता को पकड़वा देता है तो उसको निरपराध मान लिया जाता है । जो उस अपहृत वस्तु का विक्रेता होता है उससे धन स्वामी द्रव्य को प्राप्त करता है, राजा जुर्माना पाता है और उस वस्तु को खरीदने वाला उससे उस द्रव्य का मूल्य पा जाता है ।। २१ ।। वस्तु का स्वामी लेख्य आदि आगम या उपभोग का प्रमाण देकर खोयी हुई वस्तु को अपनी सिद्ध कर सकते हैं । सिद्ध न करने पर राजा उससे वस्तु का पञ्चमांश दण्ड के रूप में ग्रहण करे ।। २२।। जो व्यक्ति अपनी खोयी या चुरायी गयी वस्तु को राजा को बिना बतलाये ही दूसरे से ले लेता है, राजा को उस पर छान्नबे पण का दण्ड लगाना चाहिए ।। २३ ।। यदि किसी खोयी हुई अथवा चुरायी गयी वस्तु को शौल्किक या स्थान पालक राजा के पास लाता है तो उस वस्तु के स्वामी को एक वर्ष के भीतर ही प्रमाण देकर प्राप्त कर लेना चाहिए । एक वर्ष के बाद राजा स्वयं उसे ले लेता है ।। २४।। यदि खा लेने के पश्चात् एक खुर वाले घोड़े आदि पशु मिलें तो उसकी रक्षा के निमित्त पाँच पण राजा को देना चाहिए । मनुष्य के लिए भी पाञ्च पण, भैंस, ऊँट और गौ के लिए दो-दो पण एवं भेंड़, बकरी के लिए चौथाई-चौथाई ।। २५ ।। अपने कुटुम्ब का जिससे विरोध न हो ऐसी वस्तु का दान करना चाहिए । अपनी जीविका का उपरोध करके दान नहीं करना चाहिए । पत्नी और पुत्र का दान नहीं देना चाहिए । सन्तान के रहने पर सर्वस्व का दान नहीं करना चाहिए । जो वस्तु जिसे देने की प्रतिज्ञा की गयी हो उसे ही उस वस्तु का दान देना चाहिए दूसरे को नहीं।।२६।। स्थावर वस्तुओं का प्रतिग्रह (दान) सबों के समक्ष ही स्वीकार करना चाहिए । जिसको जो वस्तु देने की प्रतिज्ञा की गयी हो उसको उस वस्तु का दान अवश्य दे देना चाहिए । जिस वस्तु का दान दे दे उस वस्तु को पुनः कभी न ले ।। २७ ।। बीज की दश दिन,लोहे की एक दिन, वाहन की पाँच दिन, रत्नों की सात दिन, दासी की एक मास, दूध देने वाले पशु की तीन दिन, और दास की एक पक्ष तक परीक्षण अवधि होती है ।। २८ ।। अग्नि में डालने पर सुवर्ण क्षीण नहीं होता है, चाँदी सौ पल में दो पल,सीसा और रंगा आठ-आठ पल,ताम्बा

कार्मिके रोमबद्धे च त्रिंशद्भागः क्षयो मतः । न क्षयो न च वृद्धिस्तु कौशेये वल्कलेषु च ॥ ३१ ॥ देशं कालञ्च भोगञ्च ज्ञात्वा नष्टे बलाबलम्। द्रव्याणां कुशला ब्रूयुर्यत् तद् दाप्यमसंशयम् ॥ ३२ ॥ बलाद् दासीकृतश्चौरैर्विक्रीतश्चापि मुच्यते । स्वामीप्राणप्रदो भक्तत्यागात् तं निष्क्रयादपि॥३३॥ प्रव्रज्यावसितो राज्ञो दास आमरणान्तिकः । वर्णानामानुलोम्येन दास्यं न प्रतिलोमतः ॥ ३४ ॥ राजा कृत्वा पुरे स्थानं ब्राह्मणान् न्यस्य तत्र तु । त्रैविद्यं वृत्तिमद् ब्रूयात् स्वधर्मः पाल्यतामिति ॥ ३६ ॥ निजधर्माविरोधेने यस्तु सामयिको भवेत् । सोऽपि यत्नेन संरक्ष्यो धर्मो राजकृतश्च यः॥३७॥ गणद्रव्यं हरेद् यस्तु सम्विदं लङ्घयेच्च यः। सर्वस्वहरणं कृत्वा तं राष्ट्राद् विप्रवासयेत्॥ ३८॥ कर्त्तव्यं वचनं सर्वैः समूहहितवादिभिः। यस्तत्र विपरीतः स्यात् स दाप्यः प्रथमं दमम् ॥ ३९ ॥ समूहकार्य्यप्रहितो यल्लभेत् तत्तदर्पयेत् । एकादशगुणं दाप्यो यद्यसौ नार्पयेत् स्वयम्॥४०॥ वेदज्ञाः शुचयोऽलुब्धा भवेयुः कार्य्यचिन्तकाः । कर्त्तव्यं वचनं तेषां समूहहितवादिनाम् ॥ ४१ ॥ श्रेणिनैगमपाषण्डगणानामप्ययं विधिः। भेदश्चैषां नृपो रक्षेत् पूर्ववृत्तिञ्च पालयेत्॥४२॥ गृहीतवेतनः कर्म त्यजन् द्विगुणमावहेत्। अगृहीते समं दाप्यो भृत्यैरक्ष्य उपस्करः॥४३॥ दाप्यस्तुदशमं

पाँच पल और लोहा दस पल क्षीण होता है ।। २९ ।। ऊन तथा मोटे सूत से बुने हुए कपड़े आदि में प्रत्येक सौ पल की वृद्धि होती है, मध्यम कोटि के धागे से बुनने पर पाँच पल की और सूक्ष्म धागे से बुनने पर तीन पल की वृद्धि होती है ।। ३० ।। कार्मिक (अनेकरंग के चित्रों सेयुक्त) और रोमवद्ध (किनारे पर गुच्छों सेयुक्त) वस्त्रमें तीसवाँ भाग क्षीण होता है, किन्तु रेशम तथा वल्कलसे बुने हुए वस्त्र में न तो क्षय ही होता है और न तो वृद्धि ही होती है ।। ३१ ।। उपर्युक्त द्रव्यों के नष्ट होने पर द्रव्य ज्ञान कुशल व्यक्ति, देश, काल, उपयोग तथा नष्ट हुए वस्तु के सारासार की परीक्षा करके जितनी हानि का निर्णय करे, राजा उस हानि की पूर्ति शिल्पियों से अवश्य कराये ।। ३२ ।। जिसको बलपूर्वक दास बनाया गया है तथा जिसे चोरों ने चुराकर बेंच दिया है ये दोनों प्रकार के मनुष्य दासभाव से मुक्त कर दिये जाने योग्य होते हैं । जो स्वामी को प्राणसंकट से बचा दे वह भी दासभाव से मुक्त कर दिये जाने के योग्य होता है । जो स्वामी से भरण पोषण प्राप्त करके उसका दास्य स्वीकार कर लेता है, वह व्यक्ति अपने भरण पोषण में स्वामी का जितना धन खर्च करा चुका हो उतना धन यदि वापस कर दे तो दासभाव से छुटकारा पाया जा सकता है । जितना धन लेकर स्वामी ने किसी के पास किसी को बन्धक रख दिया है अथवा जितना धन देकर किसी धनी ने ऋणग्राही को ऋणदाता से छुड़ाया है, उतना धन सूद सहित वापस कर देने पर आहित दास भी दासभाव से छुटकारा पा जाता है ।। ३३ ।। प्रव्रज्यावसित (आरूढपतित) मनुष्य यदि उसका प्रायश्चित्त न कर ले तो वह जीवन पर्यन्त राजा का दास होता है । चारों वर्णों के अनुलोम क्रम से ही दास होते हैं, प्रतिलोम क्रम से नहीं ।। ३४ ।। विद्या प्राप्त स्नातक यदि आयुर्वेदादि शिल्प को जानने के लिए गुरुगृह में रहना चाहे तो एक समय की सीमा निर्धारित करके रहे ।यदि समय से पहले ही शिल्प का ज्ञान प्राप्त कर ले तो भी उतने दिन तक गुरु के गृह में निवास करे तब ही उसकी वह विद्या फलप्रद होती है । उन दिनों वह गुरु के घर में भोजन करे और उस विद्या से प्राप्त धन को गुरु को समर्पित करे ।। ३५ ।। राजा को चाहिए कि वह अपने नगर में भवन बनाये और उसमें तीनों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण को जीविका प्रदान कर बसाये और उनसे प्रार्थना करे कि आप लोग इस भवन में रहकर अपने धर्म का अनुष्ठान करें ।। ३६ ।। उस भवन में बसाये गये ब्राह्मणों को चाहिए कि वे अपने धर्म में बाधा न डालते हुए जो सामयिक और राजा के द्वारा निर्धारित धर्म हो प्रयत्न पूर्वक उसका भी पालन करें ।। ३७ ।। जो मनुष्य, समूह या संस्था या द्रव्य हरण करता है या मर्यादा का उल्लंघन करता हो, राजा को चाहिए कि वह उसके सर्वस्व का अपहार कर ले और उसे राज्यसे निकाल दे ।। ३८ ।। अपने समाज के हितैषी मनुष्यों के कथनानुसार ही सभी मनुष्यों को कार्य करना चाहिए। जो मनुष्य समाज के विपरीत आचरण करे राजा उसे प्रथम साहस का दण्ड दे ।। ३९ ।।समूह के कार्य को पूरा करने के लिए राजा के पास भेजा गया मनुष्य राजा से जो कुछ भी प्राप्त करे वह समाज के श्रेष्ठ व्यक्तियों को बुलाकर समर्पित कर दे । यदि वह स्वयम् उसे लाकर नहीं देता है तो राजा उसके ग्यारह गुना अधिक धन दिलवावे ।। ४० ।। जो मनुष्य वेदों के जानकार, पवित्र अन्तःकरण वाले, निर्लोभ तथा कार्यों के औचित्य एवं अनौचित्य पर विचार करने वाले हों उन समूह के हितैषी मनुष्यों के वचन पालन करने योग्य होते हैं, क्योंकि वे मनुष्य समूह के

भागं बाणिज्यपशुशस्यतः । अनिश्चित्यभृतिं यस्तु कारयेत् स महीक्षिता ॥ ४४ ॥ देशं कालञ्च योऽतीयात् कर्म कुर्य्याच्च योऽन्यथा । तत्र तु स्वामिनश्छन्दोऽधिकं देयं कृतेऽधिके ॥ ४५ ॥ यो यावत् कुरुते कर्म तावत् तस्य तु वेतनम् । उभयोरप्यसाध्यञ्चेत् साध्ये कुर्य्याद् यथाश्रुतम्॥४६॥ अराजदैविकं नष्टं भाण्डं दाप्यस्तु वाहकः । प्रस्थानविघ्नकृच्चैव प्रदाप्यो द्विगुणां भृतिम् ॥ ४७॥ प्रक्रान्ते सप्तमं भागं चतुर्थं पथि सन्त्यजन् । भृतिमर्द्धपथे सर्वां प्रदाप्यस्त्याजकोऽपि च ॥ ४८ ॥ ग्लहे शतिकवृद्धेस्तु सभिकः पञ्चकं शतम् । गृह्णीयाद् धूर्त्तकितवादितराद् दशकं शतम्॥४९॥ स सम्यक्पालितो दद्याद्राज्ञे भागं यथाकृतम् । जितमुद्ग्राहयेज्जेत्रे दद्यात् सत्यं वचः क्षमी ॥ ५० ॥ प्राप्ते नृपतिना भागे प्रसिद्धे धूर्त्तमण्डले । जिते समभिके स्थाने दापयेदन्यथा न तु ॥ ५१॥ द्रष्टारो व्यवहाराणां साक्षिणश्च त एव हि । राज्ञा सचिह्ना निर्वास्याः कूटाक्षोपधिदेविनः॥५२॥ द्यूतमेकमुखं कार्य्यं तस्करज्ञानकारणात् । एष एव विधिर्ज्ञेयः प्राणिद्यूते समाह्वये ॥ ५३॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सीमाविवादादिनिर्णयकथनं नाम सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५७ ॥

कल्याणकारी बातों को कहने वाले होते हैं ।। ४१ ।। श्रेणी एक व्यापार से जीविका चलाने वाले, नैगम (वेदोक्त धर्म का पालन करने वाले, पाखण्डी तथा गाज (अस्त्र शस्त्र से जीविका चलाने वाले) इन सबों के लिए भी यही विधि है । राजा को चाहिए कि वह इनकी पूर्ववृत्ति तथा भेदों की रक्षा करे ।। ४२ ।। जो भृत्य वेतन लेकर काम करना छोड़ दे उसे स्वामी को उस वेतन की राशि से दो गुना धन वापस लौटाना चाहिए । यदि वह वेतन न लिया हो तो उससे उसके वेतन के बराबर धन लेना चाहिए । भृत्यों को सदा खेती आदि के समाप्त की रक्षा करनी चाहिए।।४३।। जो वेतन का निश्चय किए विना भृत्य से काम लेता है राजा को चाहिए कि वह भृत्य को उससे उसके व्यापार, पशु और खेती का दसवाँ भाग दिलाये ।। ४४ ।। जो भृत्य देश एवं काल का अतिक्रमण करके लाभ को औसत से कम कर देता है, स्वामी को चाहिए कि उसे भी अपनी इच्छा के अनुसार ही वेतन दे। यदि वह औसत से अधिक लाभ कराता है, उस भृत्य को स्वामी को अधिक वेतन देना चाहिए ।। ४५ ।। जो जितना काम करता है, उस भृत्यका उतना ही अधिक या कम वेतन होता है। दो व्यक्ति से एक ही साथ असाध्य कार्य कराये । जो उस कार्य को पूरा करे उसे अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार वेतन देना चाहिए ।। ४६ ।। यदि भारवाहक से राजा एवं देवता के पात्र के अतिरिक्त दूसरे का पात्र फूट जाय तो राजा को भारवाहक से पात्र दिलाना चाहिए ।यात्रा में विघ्न करने वाले भृत्य पर उसके वेतन के दो गुना अर्थदण्ड लगाना चाहिए ।। ४७ ।। जो भृत्य प्रारम्भ में ही काम छोड़ दे उससे उसके वेतन का सातवाँ भाग, यदि वह रास्ता में कुछ चलकर काम छोड़ दे तो वेतन का चौथा भाग, यदि आधे रास्ते में जाकर काम छोड़ दे तो उसका सारा वेतन काट लेना चाहिए । इसी तरह भृत्य का त्याग करने वाले स्वामी से भी राजा भृत्य को दिलाये ।। ४८ ।। परस्पर की स्वीकृति से जुआरियों द्वारा कल्पित शर्त को ग्लह कहते हैं । जो जुआरियों के खेलने के लिए सभा भवन प्रदान करता है, उसे समिक कहते हैं । ग्लह या दाव में सौ या इससे अधिक वृद्धि करने वाले धूर्त जुआरी से सभिक को प्रत्येक सैकड़ा पाँच पण अपने भरण पोषण के लिए लेना चाहिए और दूसरों से प्रत्येक सैकड़ा पर दस पण लेना चाहिए ।। ४९ ।। राजा के द्वारा भली-भाँति सुरक्षित द्युत का अधिकारी 'सभिक' अपनी आय में से राजा को उचित मात्रा में भाग प्रदान करे । वह जीता हुआ धन जीतने वाले को दिलाये तथा क्षमापरायण होकर वह सत्यभाषण करे ।। ५० ।। जब जुए का प्रसिद्ध जुआरी समूह तथा सभिक राजा के समक्ष आये और राजा को उसका उचित भाग प्रदान कर दे तो राजा को जीतने वाले को जीता हुआ धन दिला दे, अन्यथा नहीं ।। ५१ ।। द्यूत के व्यवहार को देखने वाले सभासद के पद पर राजा उन जुआरियों को ही नियुक्त करे तथा साक्षी भी उन जुआरियों को ही । कृत्रिम पाशे से छल पूर्वक जुआ खेलने वालों के ललाट में चिह्न बनाकर उन्हें अपने देश से निकाल दे ।। ५२ ।। चोरों को पहचानने के लिए राजा किसी एक ही जुआरी को प्रधान बनाये । यही विधि प्राणिद्यूत समाह्वय (घुड़दौड़) आदि में भी जानना चाहिए ।। ५३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण के सीमाविवाद आदि के निर्णय वर्णन नामक दो सो सत्तावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २५७ ॥

अष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वाक्पारुष्यादिप्रकरणम्

अग्निरुवाच– **सत्यासत्यान्यथा स्तोत्रैर्न्यूनाङ्गेन्द्रियरोगिणाम् । क्षेपं करोति चेद् दण्ड्यः पणानर्द्धत्रयोदश ॥ १ ॥ अभिगन्तास्मि भगिनीं मातरं वा तवेति च । शपन्तं दापयेद्राजा पञ्चविंशतिकं दमम्॥ २॥ अर्द्धोऽधमेषु द्विगुणः परस्त्रीषूत्तमेषु च । दण्डप्रणयनं कार्य्यं वर्णजात्युत्तराधरैः ॥ ३॥ प्रातिलोम्यापवादेषु द्विगुणत्रिगुणा दमाः। वर्णानामानुलोम्येन तस्मादेवार्द्धहानितः॥ ४॥ बाहुग्रीवानेत्रसक्थिविनाशे वाचिके दमः । शक्तस्ततोऽर्द्धिकः पादनाशाकर्णकरादिषु॥ ५॥ अशक्तस्तु वदन्नेवं दण्डनीयः पणान् दश । तथा शक्तः प्रतिभुवं दद्यात् क्षेमाय तस्य तु॥ ६॥ पतनीयकृते क्षेपे दण्डो मध्यमसाहसः। उपपातकयुक्ते तु दाप्यः प्रथमसाहसम् ॥ ७ ॥ त्रैविद्यनृपदेवानां क्षेप उत्तमसाहसः । मध्यमो ज्ञातिपूगानां प्रथमो ग्रामदेशयोः ॥ ८॥ असाक्षिकहते चिह्नैर्युक्तिभिश्चागमने च । द्रष्टव्यो व्यवहारस्तु कूटचिह्नकृताद् भयात् ॥ ९॥ भस्मपङ्करजःस्पर्शे दण्डो दशपणः स्मृतः । अमेध्यपार्ष्णिनिष्ठ्यूत स्पर्शने द्विगुणः स्मृतः ॥ १० ॥ समेष्वेवं परस्त्रीषु द्विगुणस्तूत्तमेषु च । हीनेष्वर्द्धं दमो मोहमदादिभिरदण्डनम् ॥ ११॥ विप्रपीडाकरं छेद्यमङ्गमब्राह्मणस्य**

अग्निदेव ने कहा– जो सत्य वचन, असत्यवचन तथा अन्यथा स्तुति के द्वारा किसी न्यूनाङ्ग (लंगड़े-लूले आदि) न्यूनेन्द्रिय (काना, बहरा, अन्धा आदि) तथा रोगियों के ऊपर आक्षेप करता है, उस पर राजा साढ़े तेरह पण का दण्ड लगाये ।। १ ।। यदि कोई गुस्से में आकर किसी से यह कहे कि मैं तुम्हारी बहन के साथ समागम करूँगा, तुम्हारी माँ के साथ समागम करूँगा इत्यादि इस तरह से अश्लील भाषण करने वाले पर राजा पच्चीस पण का अर्थ दण्ड लगाये ।। २ ।। यदि गाली देने वाले की अपेक्षा गाली पाने वाला अधम कोटि का है तो उसको गाली देने के अपराध में श्रेष्ठपुरुष पर उपर्युक्त दण्ड का आधा दण्ड लगाना चाहिए, यदि परायी स्त्री तथा उच्च जाति वाले को गाली दी गयी हो तो उस पर उपर्युक्त दण्ड का दो गुना दण्ड लगाना चाहिए । वर्ण एवं जाति की हीनता और श्रेष्ठता को देखकर राजा को दण्ड की व्यवस्था करनी चाहिए ।। ३ ।। वर्णों के प्रातिलोम्यापवाद में अर्थात् निम्न वर्ण के पुरुष द्वारा उच्च वर्ण के पुरुष पर आक्षेप किए जाने पर दो गुना और तीन गुना दण्ड का विधान है । इसी तरह 'आनुलोम्यापवाद) अर्थात् उच्च वर्ण के पुरुषद्वारा हीन वर्ण के पुरुष पर आक्षेप किए जाने पर क्रमशः आधे-आधे दण्ड की कमी होती जाती है ।। ४ ।। यदि कोई मनुष्य वाणी द्वारा दूसरों को इस प्रकार धमकावे कि 'मैं तुम्हारी बाँह उखाड़ लूँगा',मैं तुम्हारी गर्दन तोड़ दूँगा, मैं तुम्हारी आँखें फोड़ दूँगा', मैं तुम्हारी जाँघ तोड़ दूँगा ।' तो राजा उस पर सौ पण का दण्ड लगाये । जो पैर, नाक, कान और हाथ आदि तोड़ने को कहे, उस पर पचास पण का अर्थदण्ड लगाना चाहिए।।५।। यदि कोई असमर्थ मनुष्य ऐसा कहे तो राजा उस पर दस पण का दण्ड लगाये और यदि कोई समर्थ मनुष्य असमर्थ मनुष्य को ऐसा कहे तो उससे पूर्वोक्त सौ पण का दण्ड वसूल करना चाहिए। साथ ही असमर्थ मनुष्य की रक्षा के लिए समर्थ मनुष्य से कोई जमानतदार भी माँगे ।। ६ ।। यदि किसी को पतित सिद्ध करने के लिए कोई उस पर आक्षेप करता है तो उस पर मध्यमसाहस का दण्ड लगाना चाहिए।। ७ ।। वेदविद्या सम्पन्न ब्राह्मण, राजा अथवा देवता की निन्दा करने वालों पर उत्तम साहस का दण्ड लगाना चाहिए, जातियों के समूह की निन्दा करने वाले पर मध्यम साहस का तथा देश या ग्राम की निन्दा करने वाले पर प्रथम साहस का दण्ड लगाना चाहिए ।। ८ ।। यदि कोई मनुष्य राजा के पास आकर इस आशयका अभियोग पत्र देता है कि अमुक व्यक्ति ने मुझे एकान्त स्थान में मारा है, तो राजा को इस कार्य का चिह्नों से, युक्तियों से, आशय (जनापवाद) से तथा दिव्य प्रमाण से निर्णय करना चाहिए । अभियोग लगाने वाला अपने शरीर पर कपटपूर्ण तो चिह्न नहीं बना लिया है, इस प्रकार के संदेह के कारण उसका परीक्षण आवश्यक है ।। ९ ।। किसी दूसरे पर राख, कीचड़ तथा धूल फेंकने वाले पर दश पण का राजदण्ड लगाए और उस पर अपवित्र मल-मूत्र आदि डालने, या एंड़ी छुआने अथवा थूक देने पर बीस पण का दण्ड लगाये ।। १० ।। यह दण्ड समान वर्ण वालों के लिए बतलाया गया है, किन्तु दूसरे की स्त्री अथवा अपने से उत्तम वर्ण वालों के साथ इस प्रकार का व्यवहार करने वालों पर इसके दो गुना दण्ड लगाना चाहिए । यदि कोई उत्तम वर्ण का व्यक्ति अपने से हीन वर्ण के

तु । उद्गूर्णे प्रथमो दण्डःसंस्पर्शे तु तदर्द्धिकः ॥ १२॥ उद्गूर्णे हस्तपादे तु दशविंशतिकौ दमौ । परस्परन्तु सर्वेषां शस्त्रे मध्यमसाहसः ॥ १३॥ पादकेशांशुककरोल्लुञ्चनेषु पणान् दश । पीडाकर्षांशुक्रावेष्टपादाध्यासे शतं दमः ॥ १४॥ शोणितेन विना दुःखं कुर्वन् काष्ठादिभिर्नरः । द्वात्रिंशतं पणान् दाप्यो द्विगुणं दर्शनेऽसृजः ॥ १५ ॥ करपाददतो भङ्गे छेदने कर्णनाशयोः । मध्यो दण्डो व्रणोद्भेदे मृतकल्पहते तथा ॥ १६ ॥ चेष्टाभोजनवाग्रोधे नेत्रादिप्रतिभेदने। कन्धराबाहुसक्थ्याञ्च भङ्गे मध्यमसाहसः ॥ १७॥ एकं घ्नतां बहूनाञ्च यथोक्ताद् द्विगुणा दमाः । कलहापहृतं देयं दण्डस्तु द्विगुणः स्मृतः ॥ १८ ॥ दुःखमुत्पादयेद् यस्तु स समुत्थानजं व्ययम् । दाप्यो दण्डञ्च यो यस्मिन् कलहे समुदाहृतः ॥ १९ ॥ तरिकः स्थलजं शुल्कं गृह्णन् दण्ड्यः पणान् दश । ब्राह्मणप्रातिवेश्यानामेतदेवानिमन्त्रणे ॥ २० ॥ अभिघाते तथा भेदे छेदे कुड्यावपातने । पणान् दाप्यः पञ्चदशविंशतिं सव्ययं तथा॥ २१॥ दुःखोत्पादिगृहे द्रव्यं क्षिपन् प्राणहरं तथा । षोडशाद्यः पणान् दाप्यो द्वितीयो मध्यमं दमम्॥ २२॥

व्यक्ति के साथ इस प्रकार का व्यवहार करता है तो उसय पर पाँच पण का दण्ड लगाना चाहिए ।यदि कोई मदमत्त अथवा अनजाने में इस प्रकार का व्यवहार करता है तो उसके लिए उसे दण्डित नहीं करना चाहिए ।। ११ ।। यदि कोई ब्राह्मणेत्तर ब्राह्मण को पीड़ित करता है तो वह जिस अंग से ब्राह्मण को पीड़ित करे उसके उस अंग को काट देना चाहिए । यदि वह ब्राह्मण का वध करने के लिए शस्त्र उठाता है तो उसे प्रथम साहस का दण्ड देना चाहिए, यदि वह ब्राह्मण को मारने की इच्छा से शस्त्र का स्पर्श करता है तो उसको प्रथम साहस का आधा दण्ड देना चाहिए।।१२।। अपने समान जाति वाले मनुष्य को मारने के लिए हाथ उठाने वाले को दस पण, लात उठाने वाले को बीस पण तथा एक दूसरे का बध करने के लिए शस्त्र उठाने वाले सभी वर्ण के लोगों को मध्यम साहस का दण्ड देना चाहिए ।। १३ ।। पैर, केश, कपड़ा तथा हाथ इनमें से किसी को पकड़कर खींचने अथवा झटका देने पर राजा को अपराधी को दस पण का दण्ड देना चाहिए । किसी दूसरे को कपड़े में लपेटकर जोर-जोर से दबाने, घसीटने और पैरों से आघात करने पर आक्रामक से सौ पण का दण्ड राजा वसूल करे ।। १४ ।। यदि कोई किसी पर लाठी से इस प्रकार से प्रहार करता है कि उसको कष्ट तो होए किन्तु खून नहीं निकले तो ऐसे आक्रामक से बत्तीस पण का दण्ड वसूल करना चाहिए । किन्तु उसके प्रहार से यदि शरीर से खून निकलने लगता है तो ऐसे आक्रामक से चौसठ पण का दण्ड वसूलना चाहिए ।। १५ ।। किसी के हाथ-पाँव अथवा दाँत तोड़ने वाले अथवा नाक कान के काटने वाले, घाव को कुचल देने अथवा मारकर मृतक तुल्य बना देने वाले को मध्यम साहस के दण्ड से दण्डित करना चाहिए ।। १६ ।। चेष्टा, भोजन तथा वाणी को रोकने वाले को, नेत्र आदि को फोड़ने आदि का काम करने वाले को तथा कन्धा, बाँह अथवा जंघा को तोड़ने वाले को मध्यम साहस के दण्ड से दण्डित करना चाहिए ।। १७ ।। यदि किसी एक व्यक्ति का बहुत से लोग मिलकर अङ्ग-भंग कर दें तो जिस-जिस अपराध के लिए जो-जो दण्ड बतलाया गया है, उससे दो गुना दण्ड प्रत्येक को देना चाहिए । यदि कलह के समय कोई किसी की वस्तु चुरा लेता है, तो राजा की आज्ञा से उसे उस वस्तु को मालधनी को लौटाना चाहिए और अपहरण के अपराध में उस वस्तु के मूल्य के दो गुना मूल्य उसे राजा को दण्ड के रूप में देना चाहिए ।। १८९ ।। यदि कोई मनुष्य किसी पर प्रहार करके उसे घायल कर देता है तो उस व्यक्ति के घाव को करने, स्वस्थ होने तथा चिकित्सा में जितना व्यय होता है, उतना धन उस व्यक्ति को राजा दिलाये तथा जिस अपराध के लिए जो दण्ड बताया गया है उतना अर्थदण्ड भी उससे वसूल करे ।। १९ ।। नाव से लोगों को पार उतारने वाला नाविक लोगों से यदि स्थलमार्ग का शुल्क लेता है तो उस पर दस पण का दण्ड लगाना चाहिए । यदि यजमान के पास वैभव हो और पड़ोस में विद्वान् ब्राह्मण रहते हों तो श्राद्ध आदि में उन ब्राह्मणों को निमन्त्रण न देने पर उस यजमान पर भी राजा वही दण्ड लगाये ।। २० ।। किसी की दिवाल पर किसी वस्तु से आघात करने वाले पर पाँच पण का दण्ड लगाये उसे फोड़ देने वाले पर दश पण का एवं दिवाल को तोड़कर गिरा देने वाले पर पैंतिस पण का दण्ड लगाया जाय, साथ ही उससे दिवाल के पुनर्निर्माण में होने वाला व्यय भी दिवाल स्वामी को दिलाया जाय ।। २१ ।। किसी के घर में दुःख देने वाली वस्तु (काँटा आदि) फेंकने वाले पर सोलह पण का दण्ड लगाना चाहिए और शीघ्र प्राण हरने वाली वस्तु (सर्प आदि) फेंकने वाले पर मध्यम साहस का दण्ड पाँच सौ पण राजा लगाये ।। २२ ।। क्षुद्र

दुःखे च शोणितोत्पादे शाखाङ्गच्छेदने तथा । दण्डःक्षुद्रपशूनां स्याद् द्विपणप्रभृतिः क्रमात् ॥ २३ ॥ लिङ्गस्य छेदने मृत्तौ मध्यमो मूल्यमेव च। महापशूनामेतेषु स्थानेषु द्विगुणा दमाः ॥ २४॥ प्ररोहिशाखिनां शाखास्कन्ध सर्वविदारणे । उपजीव्यद्रुमाणन्तु विंशतेर्द्विगुणा दमाः॥ २५॥ यः साहसं कारयति स दाप्यो द्विगुणं दमम् । यस्त्वेवमुक्त्वाहं दाता कारयेत् स चतुर्गुणम् ॥ २६ ॥ आर्य्याक्रोशातिक्रमकृद् भ्रातृजायाप्रहारदः । संदिष्टस्याप्रदाता च समुद्रगृहभेदक ॥ २७॥ सामन्तकुलिकादीनामपकारस्य कारकः । पञ्चशत्पणिको दण्ड एषामिति विनिश्चयः॥ २८॥ स्वच्छन्दविधवागामी विक्रुष्टे नाभिधावकः। आकारणे च विक्रोष्टा चण्डालश्चोत्तमान् स्पृशन् ॥ २९ ॥ शुद्रः प्रव्रजितानाञ्च दैवे पैत्र्ये च भोजकः। अयुक्तं शपथं कुर्वन्नयोग्य योग्यकर्मकृत्॥ ३०॥ वृषक्षुद्रपशूनाञ्च पुंस्त्वस्य प्रतिघातकृत् । साधारणस्यापलापी दासीगर्भविनाशकृत्॥ ३१॥ पितापुत्रस्वसृभ्रातृदम्पत्याचार्य्यशिष्यकाः । एषामपतितान्योऽन्यत्यागी च शतदण्डभाक् ॥ ३२ ॥ वसानस्त्रीन् पणान् दण्ड्यो नेजकस्तु परांशुकम्। विक्रयावक्रयाधान याचितेषु पणान् दश ॥ ३३ ॥ तुलाशासनमानानां कूटकृन्नाणकस्य च। एभिश्च व्यवहर्त्ता यः सदाप्यो दण्डमुत्तमम्॥ ३४॥ अकूटं कूटकं ब्रूते कूटं यश्चाप्यकूटकम्। स नाणकपरीक्षी तु दाप्यः प्रथमसाहसम्॥ ३५॥ भिषङ् मिथ्याचरन् दाप्यस्तिर्य्यक्षु प्रथमं दमम् । मानुषे

पशु को पीड़ा देने वाले पर दो पण, मारकर उसके शरीर से खून निकाल देने वाले पर चार पण, सींग तोड़ देने वाले पर छह पण एवं उसके अङ्ग-भंगकर देने वाले पर आठ पण का दण्ड लगाना चाहिए ।। २३ ।। क्षुद्र पशु का लिङ्गच्छेदन करने अथवा उसे मार डालने वाले पर मध्यम साहस का दण्ड लगाना चाहिए तथा अपराधी से पशु स्वामी को पशु का मूल्य दिलवाना चाहिए। बड़े पशुओं के साथ इस प्रकार का व्यवहार करने वाले पर इसके दो गुना दण्ड लगाना चाहिए ।। २४ ।। जिनकी शाखा को काटकर अलग लगा देने पर जो वृक्ष लग जाते हैं, ऐसे दूध वाले वृक्ष प्ररोहिशाखी कहलाते हैं । उन प्ररोहिशाखी वृक्षों की तथा जिन वृक्षों की डालियाँ अंकुरित तो नहीं होतीं किन्तु जीविका के साधन बनते हैं जैसे आम आदि वृक्षों की शाखा छेदन करने पर बीस पण का दण्ड लगाना चाहिए, स्कन्ध छेदन करने पर चालीस पण का तथा उसका मूलच्छेदन करने पर अस्सी पण का दण्ड लगाना चखहिए ।। २५ ।। जो व्यक्ति चोरी आदि कार्यों को करवाता है, उसके ऊपर चोरी गयी वस्तु के मूल्य के दो गुना का दण्ड लगाना चाहिए । जो व्यक्ति चोरी करके भी अपने अपराध को नहीं स्वीकार करता है, उसके ऊपर वस्तु के मूल्य के चार गुना धन का दण्ड लगाना चाहिए ।। २६ ।। जो डकैती आदि साहस के कार्यों को करवाता है, उस पर उस अपराध के लिए निर्धारित दण्ड के दो गुना दण्ड लगाना चाहिए। जो व्यक्ति मर्यादा का उल्लंघन करता है, जो अपनी भौजाई या भवह को मारता है, जो देने की प्रतिज्ञा करके नहीं देता है, जो दूसरे के घर का ताला तोड़कर उसके घर में प्रवेश करता है, जो सामन्तों तथा अपने कुटुम्बियों का अपकार करता है, उस पर राजा को पचास पण का दण्ड लगाना चाहिए । यही धर्मशास्त्र का निर्णय है ।। २७-२८ ।। अपनी इच्छा के अनुसार विधवा के साथ सहगमन करने वाले, किसी संकटग्रस्त मनुष्य के पुकारने पर दोड़कर उसकी रक्षा नहीं करने वाले, अकारण ही लोगों को रक्षा के लिए पुकारने वाले, उत्तम जाति का होकर चाण्डालों का स्पर्श करने वाले ।। २९ ।। दैव एवं पैत्र्य कार्य में संन्यासी को भोजन कराने वाले, शूद्र,अनुचित शपथ करने वाले, अयोग्य होकर भी योग्य का कर्म करने वाले ।। ३० ।। बैल एवं छोटे पशु बकरे आदि को बधिया करने वाले, साधारण बातों में भी झूठ बोलकर ठगी करने वाले तथा दासी का गर्भपात कराने वाले ।। ३१ ।। पिता-पुत्र, बहन-भाई, पति-पत्नी तथा आचार्य शिष्य में पतित न होने पर भी यदि एक दूसरे का परित्याग करते हैं तो राजा को उन पर एक सौ पण का दण्ड लगाना चाहिए ।। ३२ ।। यदि कोई धोबी दूसरे का वस्त्र पहने तो उस पर तीन पण का दण्ड लगाना चाहिए, यदि भोग पर दे, बन्धक रखे या मँगनी दे तो उस पर दस पण का दण्ड लगाना चाहिए ।। ३३ ।। तुलादण्ड, शासनमान (प्रस्थ-द्रोण इत्यादि) तथा नाणक (मुद्रा) के चिह्नों से चिह्नित निठक इत्यादि) इनमें जो कूट करने (नापने या तौलने में कमी वेशी करने वाला सुवर्ण इत्यादि में ताम्बा इत्यादि मिलाकर ठगने) वाला हो तथा उससे जो कूट तुला इत्यादि व्यवहार करता हो उस पर उत्तम साहस का दण्ड लगाना चाहिए।। ३४ ।। नाणक की परीक्षा करने वाला वह व्यक्ति जो कूट (दल प्रपञ्च करने वाले) को कूटरहित बतलाता है तथा जो कूट नहीं करता है उसको कूट करने वाला बतलाता है, उस पर राजा को प्रथम साहस का दण्ड लगाना चाहिए ।। ३५ ।। जो वैद्य आयुर्वेद को जाने विना भी यदि पशु-पक्षियों की मिथ्या चिकित्सा

मध्यमंराजमानुषेषूत्तमं तथा ॥ ३६ ॥ अबन्ध्यं यश्च बध्नाति बध्यं यश्च प्रमुञ्चति । अप्राप्तव्यवहारञ्च स दाप्यो दममुत्तमम् ॥ ३७॥ मानेन तुलया वापि योंऽशमष्टमकं हरेत् । द्वाविंशतिपणान् दाप्यो वृद्धौ हानौ च कल्पितम्॥ ३८॥ भेषजस्नेहलवणगन्धधान्यगुणादिषु । पण्येषु प्रक्षिपन् हीनं पणान् दाप्यस्तु षोड़श ॥ ३९॥ सम्भूय कुर्वतामर्घसबाधं कारुशिल्पिनाम् । अर्थस्य ह्रास वृद्धिं वा सहस्त्रो दण्ड उच्यते ॥ ४० ॥ राजनि स्थाप्यते योर्थः प्रत्यहं तेन विक्रयः । क्रयो वा निस्त्रवस्तस्माद् बणिजां लाभकृत् स्मृतः ॥ ४१॥ स्वदेशपण्ये तु शतं बणिग् गृह्णीत पञ्चकम् । दशकं पारदेश्ये तु यः सद्यः क्रयविक्रयी॥ ४२॥ पण्यस्योपरि संस्थाप्य व्ययं पण्य समुद्भवम् । अथोऽनुग्रहकृत् कार्य्यः क्रेतुर्विक्रेतुरेव च॥ ४३॥ गृहीतमूल्यं यः पण्यं क्रेतुर्नैव प्रयच्छति । सोदयं तस्य दाप्योऽसौ दिग्लाभं वा दिगागते ॥ ४४ ॥ विक्रीतमपि विक्रेयं पूर्वे क्रेतर्य्यगृह्णाति । हानिश्चेत् क्रेतृदोषेण क्रेतुरेव हि सा भवेत् ॥ ४५ ॥ राजदैवोपघातेन पण्ये दोषमुपागते । हानिर्विक्रेतु रेवासौ याचितस्याप्रयच्छतः ॥ ४६॥ अन्यहस्ते च विक्रीतं दुष्टं वाऽदुष्टवद् यदि । विक्रीणीते दमस्तत्र तन्मूल्याद् द्विगुणो भवेत् ॥ ४७ ॥ क्षयं वृद्धिञ्च बणिजा पण्यानामविजानता। क्रीत्वा नानुशयः कार्य्यः कुर्वन् षड् भागदण्डभाक् ॥ ४८॥ समवायेन बणिजां लाभार्थं कर्म कुर्वताम् । लाभालाभौ यथाद्रव्यं यथा वा संविदा

करता है तो उस पर प्रथम साहस का दण्ड देना चाहिये,मनुष्यों की मिथ्या चिकित्सा करने वाले को मध्यम साहस का दण्ड देना चाहिए और राज्य कर्मचारियों की मिथ्या चिकित्सा करने वाले वैद्य को उत्तम साहस के दण्ड से दण्डित करना चाहिए ।। ३६ ।। जो राज्य कर्मचारी अबन्ध्य व्यक्ति को भी राजा की आज्ञा के विना कैदकर देता है तथा जिसे कैद करवाना चाहिए उसे अभियोग का निर्णय हुए विना ही पहले ही छोड़ देता है उस पर राजा को उत्तम साहस का दण्ड लगाना चाहिए।। ३७ ।। जो व्यापारी कूट तुलामान के द्वारा पण्य कपास आदि द्रव्यों के अष्टमांश की चोरी करता है उस पर राजा को बाइस पण का दण्ड लगाना चाहिए । यदि वह दण्ड कम अथवा अधिक प्रतीत हो तो उसके अनुसार ही उसके दण्ड में कमी वेशी की जा सकती है ।। ३८।। जो व्यापारी दवा, तेल, नमक, सुगन्धित द्रव्य, अनाज तथा गुड़ आदि पण्य द्रव्यों को कम तौलता है, उस पर राजा को सोलह पण का दण्ड लगाना चाहिए ।। ३९ ।। यदि व्यापारियों का समूह संगठित होकर पण्य वस्तुओं का इस प्रकार से मूल्य बढ़ायें अथवा कम करें कि कारुओं तथा शिल्पियों को कष्ट होने लगे तो राजा को ऐसे व्यापारियों पर एक हजार पण का दण्ड लगाना चाहिए ।। ४० ।। राजा जिस वस्तु का जो मूल्य निर्धारित कर दे व्यापारियों को चाहिए कि वे प्रतिदिन उस वस्तु को उसी भाव में बेचें और खरीदें । उससे होने वाला लाभ ही व्यापारियों के लिए लाभप्रद होता है ।। ४१ ।। व्यापारी को चाहिए कि वह देशी पण्य वस्तुओं पर पाँच प्रतिशत लाभ कमाये और यदि वह जल्दी बेच सके तो देशी वस्तुओं पर उसे दस प्रतिशत लाभ कमाना चाहिए ।। ४२ ।। राजा को चाहिए कि दूकान का खर्च पण्य वस्तु का मूल्य इस प्रकार से निर्धारित करे कि उससे क्रेता और विक्रेता दोनों को लाभ मिले ।। ४३ ।। यदि कोई व्यापारी किसी वस्तु का मूल्य लेकर उस वस्तु को क्रेता को नहीं देना चाहता है तो राजा को चाहिए कि वह उस वस्तु को ब्याज सहित व्यापारी से क्रेता को दिलवाये । यदि क्रेता परदेशी हो तो परदेश में ले जाकर उस वस्तु को बेचने से संभावित लाभ और उसके अनुसार ब्याज के साथ उस वस्तु का मूल्यक्रेता को दिलवाये ।। ४४ ।। यदि पहला ग्राहक माल में किसी प्रकार का सन्देह होने पर वस्तु को न लेना चाहे तो व्यापारी उस बेची हुई वस्तु को भी दूसरे के हाथ बेच सकता है । यदि विक्रेता के देने पर भी ग्राहक न ले और वह पण्य वस्तु राजा या दैव की बाधा से नष्ट हो जाय तो वह हानि क्रेता के ही दोष से होने के कारण वही उस हानि को सहन करेगा बेचने वाला नहीं ।। ४५ ।। यदि ग्राहक के माँगने पर भी उस बेंची हुई पण्य वस्तु को बेंचने वाला नहीं दे और वह पण्य द्रव्य राजा या दैव के कोप से विनष्ट हो जाय तो वह हानि विक्रेता की होगी ।। ४६ ।। यदि कोई व्यापारी दूसरे के हाथ बेची हुई वस्तु को दूसरे के हाथ बेंचता है, अथवा दोषयुक्त वस्तु को दोष रहित बतलाकर बेंचता है तो राजा को उस पर, उस वस्तु के मूल्य का दो गुना दण्ड लगाना चाहिए ।। ४७ ।। यदि किसी वस्तु के खरीदने के पश्चात् अचानक हुई उस वस्तु के मूल्य की कमी या वृद्धि के कारण घाटा होने पर उसे वस्तु को लेने में अनुशय (आना कानी) नहीं करना चाहिए । इसी तरह से वस्तु के बेंचने के पश्चात् अनजाने में हुई मूल्य

कृतौ ॥ ४९ ॥ प्रतिषिद्धमनादिष्टं प्रमादाद् यच्च नाशितम् । स तद् दद्याद् विप्लवाच्च रक्षिताद् दशमांशभाक् ॥ ५० ॥ अर्थप्रक्षेपणाद् विंशं भागं शुल्कं नृपो हरेत् । व्यासिद्धं राजयोग्यञ्च विक्रीतं राजगामि तत् ॥ ५१ ॥ मिथ्या वदन् परीमाणं शुल्कस्थानादपक्रमन्। दाप्यस्त्वष्टगुणं यश्च सव्याजक्रयविक्रयी॥ ५२॥ देशान्तरगते प्रेते द्रव्यं दायाद बान्धवाः। ज्ञातयो वा हरेयुस्तदागतास्तैर्विना नृपः॥ ५३॥ जिह्मं त्यजेयुर्निर्लाभमशक्तोऽन्येन कारयेत् । अनेन विधिराख्यात ऋत्विक् कर्षककर्मिणाम् ॥ ५४ ॥ ग्राहकैर्गृह्यते चौरो लोप्त्रेणाथ पदेन वा । पूर्वकर्मापराधी वा तथैवाशुद्धवासकः॥५५॥ अन्येऽपि शङ्कया ग्राह्या जातिनामादिनिह्नवैः । द्यूतस्त्रीपानशक्ताश्च शुष्कभिन्नमुखस्वराः॥ ५६॥ परद्रव्यगृहाणाञ्च पृच्छका गूढचारिणः । निरायाव्ययवन्तश्च विनष्टद्रव्यविक्रयाः ॥ ५७॥ गृहीतः शङ्कया चौर्य्येनात्मानञ्चेद् विशोधयेत्। दापयित्वा हृतं द्रव्यं चौरदण्डेन दण्डयेत् ॥५८॥ चौरं प्रदाप्यापहृतं घातयेद् विविधैर्बधः । सचिह्नं ब्राह्मणं कृत्वा स्वराष्ट्राद् विप्रवासयेत् ॥ ५९॥ घातितेऽपहृते दोषो ग्रामभर्त्तुरनिर्गते। स्वसीम्नि

की कमी या वृद्धि के कारण घाटा प्रतीत होने पर व्यापारी को भी वस्तु के देने में आनाकानी नहीं करना चाहिए । यदि वह किसी प्रकार की आनाकानी करता है तो राजा उस पर वस्तु के मूल्य का छठा भाग का दण्ड लगाये ।। ४८ ।। यदि कुछ व्यापारी एक साथ मिलकर व्यापार करते हैं तो उस व्यापार में होने वाले लाभ अथवा हानि में उनका पृथक्-पृथक् अपना हिस्सा उतना ही होगा जितना कि वे अपना धन उसमें सन्निवेष्टित किए होंगे । अथवा पूर्वकृत निर्णयों के अनुसार वे लाभ अथवा हानि प्राप्त करेंगे ।। ४९ ।। यदि उन व्यापारियों में से कोई व्यापारी साझीदारों के मना करने पर भी प्रमादवश किसी प्रकार की क्षति करता है, तो उसे ही उस क्षति की पूर्ति करनी होगी और जो व्यक्ति किसी विप्लव से पण्य द्रव्य की रक्षा करता है तो वह उस पण्य द्रव्य से होने वाले लाभांश के दशमांश का भागीदार होता है ।। ५० ।। राजा चूँकि पण्य द्रव्यों के मूल्य का निर्धारण करता है अतएव उसे शुल्क के रूप में मूल्यका बीसवाँ भाग लेना चाहिए । यदि कोई व्यापारी राजा के द्वारा निषिद्ध एवं राजोपयोगी वस्तु को लाभ के लोभ से किसी दूसरे के हाथ बेचता है तो राजा विना मूल्य के ही उस वस्तु को ले सकता है ।। ५१ ।। जो व्यक्ति शुल्क स्थान में मिथ्या परिमाण बतलाता है अथवा वहाँ से खिसक जाने की चेष्टा करता है तथा जो कोई बहाना बनाकर किसी विवादास्पद वस्तु का क्रय-विक्रय करता है, इन सबों पर पण्य वस्तु के मूल्य से आठ गुना दण्ड लगाना चाहिए ।। ५२ ।। यदि समूहवद्ध होकर काम करने वालों में से कोई व्यक्ति देशान्तर में जाकर मर जाता है तो उसके हिस्से के धन को, दायाद, बान्धव अथवा सजातीय लोग पाते हैं, इनमें से किसी को भी नहीं होने पर उसके धन का स्वामी राजा होता है ।। ५३ ।। संघबद्ध होकर काम करने वालों में यदि कोई जिह्म (कुटिल अथवा वञ्चक) हो उसको किसी भी प्रकार का लाभ दिये विना संघसे बाहर कर देना चाहिए । इसी कथन से ही, कृषक तथा शिल्पकर्मोपजीवियों नट आदि के भी जीवन यापन की व्याख्या हो गयी ।। ५४।। किसी के यहाँ चोरी होने पर सिपाहियों को उस व्यक्ति को पकड़ना चाहिए जो व्यक्ति चोरी के लिए प्रख्यात हों, अथवा जिसके पास चोरी का समान मिल जाय, अथवा चोरी के दिन से ही चोर के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए जब पता लग जाय तो उसको बन्दी बनाना चाहिये । जो पहले से ही चौर्य कर्म का अपराधी रहा हो ऐसे व्यक्ति को भी संदेह में बन्दी बनाया जा सकता है । इसी तरह से जिसका कोई निश्चित निवास का स्थान न हो उसको भी बन्दी बनाना चाहिए ।। ५५ ।। पूछने पर जो व्यक्ति अपनी जाति अथवा नाम छिपाये, बतलाये नहीं, जो जुआरी हो, वेश्यागामी हो, शराबी हो, चोरी के विषय में पूछने पर जिसका मुँह सूख जाय, स्वतः विकृत हो जाय ।। ५६ ।। जो दूसरों के द्रव्य के विषय में पता लगाता चले तथा दूसरों का घर पूछता चले, जो रहस्यात्मक रूप से घूमता रहे, जिसकी अपनी तो कोई भी आय न हो किन्तु व्यय खूब करता हो, जो पुराने फूटे-टूटे द्रव्यों को बेचने वाला हो, उसको भी चोरी के सन्देह में कैदी बनाया जा सकता है, यदि पकड़ा गया व्यक्ति अपनी निर्दोषता को नहीं सिद्ध कर सके तो राजा को चाहिये कि उससे चोरी का सामान दिलवाये और उस व्यक्ति को चोरों के लिए निर्धारित दण्ड दे ।। ५८ ।। राजा को चाहिये कि वह चोर से चोरी का सामान मालधनी को दिलवाकर उसे अनेक प्रकार का शारीरिक दण्ड देते हुए मारवा डाले । यदि चोरी करने वाला व्यक्ति ब्राह्मण हो तो उसके ललाट में चोर का चिह्न बनवाकर राजा उसे अपने देशसे निष्कासित कर दे ।। ५९ ।। यदि गाँव में किसी मनुष्य का वध हो जाय,अथवा धन की चोरी हो जाय और चोर के गाँव

दद्याद् ग्रामस्तु पदं वा यत्रगच्छति ॥ ६० ॥ पञ्चग्रामी वहिः क्रोशाद् दशग्राम्योऽथवा पुनः । वन्दिग्राहांस्तथा वाजिकुञ्जराणाञ्च हारिणः ॥ ६१॥ प्रसह्य घातिनश्चैव शूलमारोपयेन् नरान् । उत्क्षेपकग्रन्थिभेदौ करसन्दंशहीनकौ ॥ ६२॥ कार्य्यौ द्वितीयापराधे करपादैकहीनकौ । भक्तावदाशाग्न्युदकमन्त्रोपकरणव्ययान् ॥ ६३॥ दत्त्वा चौरस्य हन्तुर्वा जानतो दम उत्तमः । शस्त्रावपाते गर्भस्य पातने चोत्तमो दमः॥ ६४॥ उत्तमो वाऽधमो वापि पुरुषस्त्रीप्रमापणे । शिलां बद्ध्वा क्षिपेदप्सु नरघ्नीं विषदां स्त्रियम् ॥ ६५ ॥ विषाग्निदां निजगुरुनिजापत्यप्रमापणीम्। विकर्णकरनासौष्ठीं कृत्वागोभिःप्रमापयेत्॥ ६६॥ क्षेत्रवेश्मवनग्रामविवीतखलदाहकाः । राजपत्न्याभिगामी च दग्धव्यास्तु कटाग्निना॥ ६७॥ पुमान् संग्रहणे ग्राह्यः केशाकेशिपरस्त्रियाः। स्वजातावुत्तमो दण्ड आनुलोम्ये तु मध्यमः ॥ ६८ ॥ प्रातिलोम्ये वधः पुंसां नार्य्याः कर्णावकर्त्तनम्। नीवीस्तनप्रावरणनाभिकेशावमर्दनम्॥ ६९॥ अदेशकालसम्भाषं सहावस्थानमेव च । स्त्रीनिषेधे शतं दद्याद् द्विशतन्तुदमं पुमान्॥ ७०॥ प्रतिषेधे तयोर्दण्डो यथासंग्रहणे तथा । पशून् गच्छंश्छतं दाप्यो हीनां स्त्रीं गाश्च मध्यमम् ॥ ७१ ॥ अवरुद्धासु दासीषु भुजिष्यासु तथैव च । गम्यास्वपि

से बाहर निकलने का कोई चिह्न न दिखायी दे तो सारा दोष ग्राम के स्वामी के ऊपर आ जाता है । वह चोर को पकड़कर राजा के समक्ष उपस्थित करे अथवा जितना सामान चोरी हो गया है, उतना अपने पास से दे । यदि चोर के गाँव से बाहर निकल जाने का चिह्न प्राप्त हो जाता है तो,फिर जिस गाँव के ओर चोर के जाने का चिह्न मिलता है, उस गाँव के ही अधिपति के ऊपर सारा दोष आ जाता है । वही चोर को पकड़वावे अथवा चोरी का सामान दे ।। ६० ।। यदि अनेक गाँवों के बीच एक कोस की सीमा से बाहर चोरी की घटना हुई हो और अधिक जनसमूह के दौड़ धूप से चोर का पदचिह्न मिट गया हो तो पाँच गाँव के अथवा दस गाँव के लोग मिलकर उस चोर को पकड़वावें और चोरी का सामान लौटवाने का भार अपने ऊपर लें । बन्दी को गुप्त रूप से छुड़ाकर भगा ले जाने वाले, घोड़ों तथा हाथियों की चोरी करने वाले तथा बलपूर्वक किसी की हत्या करने वाले लोगों को राजा को चाहिये कि वह उन्हें शूली पर चढ़वादे ।। ६१।। वस्त्र आदि की चोरी करने वाले तथा गठरी उठाने वाले चोरों के प्रथम अपराध में राजा को चाहिए कि उनके तर्जनी और अंगूठे को कटवा दे, दूसरे बार उसी अपराध को करने पर उन्हें एक हाथ एवं एक पैर से हीन कर दे ।। ६२ ।। जो व्यक्ति चोरों को खाने के लिए भोजन, रहने के लिए स्थान, सर्दी में तापने के लिए अग्नि, पीने के लिए पानी, चोरी करने की सलाह, चोरी करने के साधन तथा जाने के लिए मार्ग देकर चोरी कराता है तथा हत्या करने वालों को जानता है, उस व्यक्ति को उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिए।।६३।। दूसरे के शरीर पर घातक शस्त्र से प्रहार करने तथा किसी गर्भवती स्त्री के गर्भ को गिराने वाले को भी उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिए ।। ६४ ।। किसी भी स्त्री अथवा पुरुष की हत्या करने पर हत्या करने वाले व्यक्ति के शील आदि को ध्यान में रखकर उस पर राजा उत्तम अथवा अधम साहस का दण्ड लगाये । पुरुष की हत्या करने वाली अथवा दूसरों को विष देकर मारने वाली स्त्री के गले में पत्थर बाँधकर पानी में फेंक देना चाहिए।। ६५ ।। विष देने वाली, आग लगाने वाली तथा अपने पति, गुरु या सन्तान को मारने वाली स्त्री के नाक, कान, हाथ और ओष्ठ कटवा कर उसे साँड़ से मरवा डालना चाहिए ।। ६६ ।। खेत, घर, वन,ग्राम, रक्षित भूभाग तथा खलिहान में आग लगाने वाले तथा राजपत्नी के साथ समागम करने वाले मनुष्य को सरकंडों से ढक कर आग से जला देना चाहिए ।। ६७ ।। केश पकड़कर परस्त्री के साथ क्रीड़ा करने वाले मनुष्य को व्यभिचार के अपराध में पकड़ना चाहिए । सजातीय परस्त्री से समागम करने वाले पर एक हजार पण का दण्ड लगाना चाहिए । अपने से नीच जाति की स्त्री के साथ समागम करने वाले पर पाँच सौ पण का दण्ड लगाना चाहिए ।। ६८ ।। अपने से उच्च जाति की नारी के साथ समागम करने वाले का वध कर देना चाहिए और उस स्त्री के नाक और कान को कटवा देना चाहिए। जो पुरुष परस्त्री की नीवीं, स्तन, कञ्चुकी, नाभि एवं केश का स्पर्श करता है जो अनुचित देशकाल में बातचीत करता है अथवा उसके साथ एक आसन पर बैठता है, उसे भी व्यभिचार के अभियोग में पकड़ना चाहिए । जो स्त्री मना करने पर भी पर पुरुष के साथ बातचीत करती है, उस पर सौ पण का दण्ड लगाना चाहिए और जो पुरुष मना करने पर भी परस्त्री के साथ बातचीत करता है उस पर दोसौ पण का दण्ड लगाना चाहिए।। ६९-७० ।। वे दोनों मना करने पर भी बाद में बातचीत करते हुए पाये जायें तो उन पर व्यभिचार का दण्ड लगाना चाहिए । पशु के साथ समागम करने वाले पर सौ पण का दण्ड लगाना चाहिए तथा नीच स्त्री अथवा गौ के साथ समागम करने वाले पर पाँच सौ पण का दण्ड लगाना चाहिए ।। ७१ ।। यदि कोई किसी की खरीदी हुई दासी अथवा रखेल स्त्री के साथ उन सबों के स्वामी के समर्थ होने पर भी यदि समागम करता

पुमान् दाप्यः पञ्चाशत् पणिकं दमम् ॥ ७२ ॥ प्रसह्य दास्यभिगमे दण्डो दशपणः स्मृतः । कुबन्धेनाङ्क्य गमयेदन्त्याप्रव्रजितागमे॥ ७३॥ न्यूनं वाप्याधिकं वापि लिखेद् यो राजशासनम् । पारदारिकचौरं वा मुञ्चतो दण्ड उत्तमः ॥ ७४ ॥ अभक्षैर्दूषयन् विप्रं दण्ड उत्तमसाहसम् । कूटस्वर्णव्यवहारी विमांशस्य च विक्रयी ॥ ७५॥ अङ्गहीनश्च कर्त्तव्योदाप्यश्चोत्तमसाहसम्। शक्तोह्यमोक्षयन्स्वामी दंष्ट्रिणःशृङ्गिणस्तथा॥ ७६॥ प्रथमं साहसं दद्यात् विक्रुष्टे द्विगुणं तथा । अचौरञ्चौरेऽभिवदन् दाप्यः पञ्चशतं दमम्॥ ७७॥ राज्ञोऽनिष्टप्रवक्तारं तस्यैवाक्रोशकं तथा । मृताङ्गचैलविक्रेतुर्गुरोस्ताड़यितुस्तथा ॥ ७८ ॥ तन्मन्त्रस्य च भेत्तारं छित्त्वा जिह्वां प्रवासयेत् । राजयानासनारोढुर्दण्डो मध्यमसाहसः ॥ ७९ ॥ द्विनेत्र भेदिनो राजद्विष्टादेशकृतस्तथा । विप्रत्वेन च शूद्रस्य जीवतोऽष्टशतो दमः ॥ ८०॥ यो मन्येताजितोऽस्मीति न्यायेनाभिपराजितः। तमायान्तं पुनर्जित्वा दण्डयेद् द्विगुणं दमम् ॥ ८१ ॥ राज्ञाऽन्यायेन यो दण्डो गृहीतो वरुणाय तम्। निवेद्यदद्याद् विप्रेभ्यः स्वयं त्रिंशद्गुणीकृतम् ॥ ८२ ॥ धर्मश्चार्थश्च कीर्त्तिश्च लोकपङ्क्तिरुपग्रहः । प्रजाभ्यो बहुमानञ्च स्वर्गस्थानञ्च शाश्वतम् पश्यतो व्यवहारांश्च गुणाः स्युःसप्त भूपतेः ॥ ८३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वाक्पारुष्यादिप्रकरणकथनं नामाष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५८ ॥

है तो उस पर पचास पण का दण्ड लगाना चाहिए ।। ७२ ।। दासी के साथ बलात्कार करने वाले पर दस पण का दण्ड लगाना चाहिए । चाण्डाली अथवा संन्यासिनी के साथ समागम करने वाले के ललाट पर भग का चिह्न दाग कर उसे देश से निर्वासित कर देना चाहिए ।। ७३ ।। जो मनुष्य राजाज्ञा को कम करके अथवा अधिक करके लिखता है अथवा दूसरे की स्त्री को चुराने वाले को छोड़ देता है, उस पर राज्य कर्मचारी पर राजा को उत्तम साहस का दण्ड लगाये ।। ७४ ।। जो व्यक्ति ब्राह्मण को अभक्ष्य पदार्थ का भोजन कराकर उसे दूषित करता है उस पर राजा को एक हजार पण का दण्ड लगाना चाहिए । जो व्यकित नकली सोना बेचता है अथवा खराब मांस बेचता है उस पर एक हजार पण का दण्ड लगाये तथा उसके अंगहीन बना दे । यदि पशुओं का स्वामी समर्थ होकर भी अपने दाढ़ों तथा सींगवाले पशुओं से मारे जाते हुए मनुष्य को नहीं बचाता है तो उस पर प्रथम साहस का दण्ड लगाना चाहिए । यदि पशुओं से आक्रांत व्यक्ति चिल्लाता है कि मुझे बचाओ, उस हालत में भी उसे यदि पशु स्वामी नहीं बचाता है तो उस पर उसके दो गुना दण्ड लगाना चाहिए।। ७५-७६ ।। जो व्यक्ति अपने कुल पर कलंक लगने के भय से घर में घुसे हुए परस्त्री लम्पट को चोर-चोर चिल्लाकर घर से बाहर निकालता है, उस पर राजा पाँच सौ पण का दण्ड लगाये ।। ७७ ।। जो व्यक्ति राजा को अच्छी नहीं लगने वाली बात कहता है, राजा की निन्दा करता है, राजा की मन्त्रणा का भेदन करता है, उस मनुष्य की जीभ काटकर राज्य से बाहर निकाल देना चाहिए ।। ७८ ।। जो मूर्दे के कफन को उतारकर बेचता है तथा अपने गुरुजनों को पीटता है एवं राजा के वाहन तथा आसन पर बैठता है । उसको मध्यम साहस का दण्ड देना चाहिए।। ७९ ।। जो व्यक्ति क्रोध में आकर किसी की दोनों आँख फोड़ देता है उस अपराधी को, जो राजा के अनन्य हितचिन्तकों में न होते हुए भी, राजा के लिए अनिष्ट सूचक फलादेश करता है, उस ज्योतिषी को तथा जो ब्राह्मण बनकर जीविका चलाता है, उस शूद्र को आठ सौ पण के दण्ड से दण्डित करना चाहिए।। ८० ।। जो मनुष्य न्याय से पराजित होकर भी अपने को अपराजित मानता है उसको पुनःन्याय से पराजित करके उस पर दो गुना दण्ड लगाना चाहिए।। ८१ ।। राजा ने अन्यायपूर्वक जो अर्थदण्ड लिया हो, उसे तीस गुना करके वरुण देवता को निवेदित करके, राजा ब्राह्मणों को दान दे दे ।। ८२ ।। जो राजा धर्मपूर्वक व्यवहारों को देखता है, उसे, धर्म, अर्थ, कीर्ति, लोकपंक्ति, उपग्रह (अर्थसंग्रह) प्रजाओं से बहुत अधिक सम्मान और स्वर्गलोक में सनातन स्थान, ये सात गुण प्राप्त होते हैं ।। ८३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का वाक्पारुष्य आदि प्रकरण वर्णन नामक दो सौ अठावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २५८ ॥

ऊनषष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

ऋग्विधानम्

अग्निरुवाच– **ऋग्यजुःसामाथर्वविधानं पुष्करोदितम् । भुक्तिमुक्तिकरं जप्याद्धोमाद्रामाय तद् वदे ॥ १॥** पुष्कर उवाच– **प्रतिवेदन्तु कर्माणि कार्य्याणि प्रवदामि ते । प्रथमं ऋग्विधानं वै श्रृणु त्वं भुक्ति मुक्तिदम् ॥ २॥ अन्तर्जले तथा होमे जपतो मनसेप्सितम् । कामं करोति गायत्री प्राणायामाद् विशेषतः॥ ३॥ गायत्र्या दशसाहस्त्रो जपो नक्ताशिनो द्विज ! । बहुस्नातस्य तत्रैव सर्वकल्मषनाशनः ॥ ४॥ दशायुतानि जप्त्वाऽथ हविष्याशी स मुक्तिभाक् । प्रणवो हि परं ब्रह्म तज्जपः सर्वपापहा॥ ५॥ ओंकारशतं जप्त्वा नाभिमात्रोदके स्थितः । जलं पिवेत् स सर्वैस्तु पापैर्वै विप्रमुच्यते॥ ६॥ मात्रात्रयं त्रयो वेदास्त्रयो देवास्त्रयोऽग्नयः । महाव्याहृतयः सप्त लोका होमोऽखिलाघहा ॥ ७ ॥ गायत्री परमा जप्या महाव्याहृतयस्तथा । अन्तर्जले तथा राम ! प्रोक्तश्चैवाघमर्षणः ॥ ८॥ अग्निमीले पुरोहितं सूक्तोऽयं वह्निदैवतः । शिरसा धारयन् वह्निं यो जपेत् परिवत्सरम्॥ ९॥ होमं त्रिषवणं भैक्ष्यमनग्निज्वलनञ्चरेत् । अतः परमृचः सप्त वाय्वाद्या याः प्रकीर्त्तिताः॥ १०॥ ता जपन् प्रयतो नित्यमिष्टान् कामान् समश्नुते। मेधाकामो जपेन्नित्यं सदसन्यमिति त्यृचम् ॥ ११ ॥ अन्वयो यन्निमाः प्रोक्ताः नवर्चो मृत्युनाशनाः । शुनःशेपमृषिं बद्धः सन्निरुद्धोऽथ वा जपेत् ॥१२॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो गदीवाप्यगदो भवेत् । य इच्छेच्छाश्वतं कामं मित्रं प्राज्ञं पुरन्दरम्॥ १३॥ ऋग्भिः षोड़शभिः**

अग्निदेव ने कहा– अब मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के उस विधान को बतलाता हूँ, जिसका उपदेश पुष्करजी ने श्रीपरशुरामजी को दिया था तथा जिसके जप करने तथा होम करने से भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है ।। १ ।। **श्रीपुष्करजी ने कहा–** परशुराम ! अब मैं तुमको प्रत्येक वेद से किये जाने वाले कर्तव्य कर्मों का उपदेश देता हूँ । सर्वप्रथम मैं तुम्हें उस ऋग्विधान को बतलाता हूँ, जिससे भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है । उसे तुम सुनो ।। २ ।। जो व्यक्ति प्राणायामपूर्वक जल के भीतर खड़ा होकर गायत्री का जप करते हैं, अथवा उससे होम करने पर सम्पूर्ण मनोभिलषित अर्थ की प्राप्ति होती है ।। ३ ।। हे ब्रह्मन ! दिनभर उपवास करके बहुत बार स्नान करते हुए गायत्री मन्त्र का दस हजार जप करता है तथा केवल रात्रि में भोजन करता है उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ।। ४ ।। जो व्यक्ति केवल हविष्य का भोजन करके गायत्री का एक लाख जप करता है, उसको मुक्ति की प्राप्ति होती है। प्रणव ही परमवेद है, उसका जप करने से समस्त पापों का विनाश हो जाता है ।। ५ ।। जो व्यक्ति नाभिपर्यन्त जल में खड़ा होकर सौ बार ओंकार का जप करके उस अभिमन्त्रित जल को पीता है, उसके समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं ।। ६ ।। प्रणव की प्रथम तीन मात्राएँ अ, उ और म् ये ही ऋग्, यजुः एवं साम तीनों वेद हैं, ये ही तीनों (ब्रह्मा, विष्णु एवं शङ्कर) देवता हैं और ये ही तीनों (गार्हपत्य, आहवनीय एवं दक्षिणाग्नि) अग्नियाँ हैं । ओम् के पश्चात् ओम् (भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्) ये सात व्याहृतियाँ हैं वे ही सातों लोक हैं, इन सबों से युक्त गायत्री से होम करने से समस्त पापों का विनाश हो जाता है ।। ७ ।। हे राम ! सप्तव्याहृतियों को पहले उसके पश्चात् गायत्री मन्त्र को लगाकर जल के भीतर जप करना चाहिए । इस जप से सभी पापों का नाश होता है । इसी तरह अघमर्षण मन्त्र- 'ऋतञ्च सत्यञ्च इत्यादि का भी जप जल के भीतर डूबकर करना चाहिए । इससे सभी पापों का विनाश होता है ।। ८ ।। अग्निमीले पुरोहितम् इत्यादि ऋग्वेद का प्रथमसूक्त अग्निदेवता का सूक्त है । जो व्यक्ति अपने शिर पर अग्निपात्र धारण करके एक वर्ष तक इस सूक्त का जप करता है । तीनों सन्ध्याओं में स्नान करके जो इस सूक्त के मन्त्रों से हवन करता है,गृहस्थों के घर में आग बूझ जाने के बाद उनके यहाँ से भिक्षान्न लेकर जीवन का निर्वाह करता है । इस सूक्त के पश्चात् जो वायु आदि की सात ऋचायें कहीं गयी हैं उनका सावधानी पूर्वक एवं श्रद्धा पूर्वक जप करने वाला मनुष्य समस्त अभिलषित पदार्थों को प्राप्त कर लेता है ।। ९-१० ।। जो व्यक्ति उत्तम मेधा प्राप्त करना चाहे वह ऋग्वेद के 'सदस्पतिम्०' इत्यादि तीन ऋचाओं का पाठ करे ।। ११ ।। 'अन्वयो यन्त्य०' इत्यादि जो नव ऋचायें हैं, वे अकालमृत्यु का नाश करने वाली बतलायी गयी हैं । जो व्यक्ति जेल में पड़ा

कुर्य्यादिन्द्रस्येति दिने दिने । हिरण्यस्तूपमित्येतज्जपन् शत्रून् प्रबाधते ॥ १४ ॥ क्षेमी भवति चाध्वानो ये ते पन्था जपन् नरः । रौद्रीभिः षड्भिरीशानं स्तूयाद् यो वै दिने दिने ॥ १५ ॥ चरुं वा कल्पयेद्रौद्रं तस्य शान्तिः परा भवेत् । उदुत्युदन्तमादित्यमुपतिष्ठन् दिने दिने ॥ १६ ॥ क्षिपेज्जलाञ्जलीन् सप्त मनोदुःखविनाशनम् । द्विषन्तमित्यथार्द्धर्च्चं यद् विप्रान्तं जपन् स्मरेत् ॥ १७ ॥ आगस्कृत् सप्तरात्रेण विद्वेषमाधिगच्छति। आरोग्यकामी रोगी वा प्रस्कन्नस्योत्तमं जपन् ॥ १८ ॥ उत्तमस्तस्य चार्द्धर्च्चो जपेद् वै रिपुनाशने । उदयेप्यायुरक्षय्यं तेजो मध्यन्दिने जपेत्॥१९॥ अस्तं प्रतिगते सूर्य्ये द्विषन्तं प्रतिबाधते । न वयश्चेतिसूक्तानि जपन् शत्रून् नियच्छति॥ २०॥ एकादश सुपर्णस्य सर्वकामान् विनिर्दिशेत्। आध्यात्मिकीः क इत्येता जपन् मोक्षमवाप्नुयात् ॥ २१ ॥ आ नो भद्रा इत्यनेन दीर्घमायुरवाप्नुयात् । त्वं सोमेति च सूक्तेन नवं पश्येन्निशाकरम्॥२२॥ उपतिष्ठेत् समित्पाणिर्वासांस्याप्नोत्यसंशयम् । आयुरीप्सन्निममिति कौत्ससूक्तं सदा जपेत् ॥ २३ ॥ आपनः शोशुचदिति स्तुत्वा मध्ये दिवाकरम्। यथा मुञ्चति चेषीकां तथा पापं प्रमुञ्चति॥ २४॥ जातवेदस इत्येतज्जपेत् स्वस्त्ययनं पथि । भयैर्विमुच्यते सर्वैः स्वस्तिमानाप्नुयात् गृहान् ॥२५॥ व्युष्टायाञ्च यथा रात्र्यामेतद् दुःस्वप्ननाशनम् । प्रमन्दिनेति सूयन्त्या जपेद् गर्भविमोचनम् ॥ २६ ॥ जयन्निन्द्रमिति स्नातो वैश्वदेवन्तु सप्तकम् । मुञ्चत्याज्यं तथा जुह्वन् सकलं किल्विषं नरः ॥ २७ ॥ इमामिति जपन् शश्वत् कामानाप्नोत्यभीप्सितान् । मानस्तोक इति द्वाभ्यां त्रिरात्रोपोषितः

हो वह 'शुनःशेपो यमह्वद्०' इत्यादि तीन ऋचाओं का जप करे ।। १२ ।। इन मन्त्रों का जप करने वाला व्यक्ति समस्त पापों से मुक्त हो जाता है और रोगी भी निरोग हो जाता है । जो व्यक्ति अपनी शाश्वत कामनाओं की पूर्ति करना चाहता है तथा बुद्धि एवं इन्द्र के समान मित्र को प्राप्त करना चाहता है, वह प्रतिदिन 'इन्द्रस्य०' इत्यादि सोलह मन्त्रों का जप करे । जो व्यक्ति हिरण्यस्तूपम्० इत्यादि मन्त्र का जप करता है, उसके शत्रु का विनाश हो जाता है ।। १३-१४ ।। 'ये ते पन्थाः०' इत्यादि का जप करने वाला मनुष्य मार्ग में कल्याण को प्राप्त करता है । जो व्यक्ति रुद्र देवता के छह ऋचाओं से रुद्र देवता की स्तुति करता है , प्रतिदिन अथवा उन मन्त्रों से रुद्र देवता को चरु प्रदान करता है, उसको परम शान्ति की प्राप्ति होती है ।। १५ ।। जो व्यक्ति 'उदुत्यं जातवेदसम्०' इत्यादि ऋचा से प्रतिदिन सूर्य भगवान् की प्रार्थना करता है तथा इस मन्त्र से भगवान् सूर्य को सात अञ्जलि अर्घ्य प्रदान करता है उसके मानसिक दुःख का विनाश हो जाता है ।। १६ ।। द्विषन्तम्० इत्यादि ऋचा से लेकर 'तद्विप्रासो०' इत्यादि मन्त्र पर्यन्त सात मन्त्रों का जप एवं चिन्तन करने वाले मनुष्य का अपराधी सात दिनों में ही दूसरों के द्वेष का पात्र बन जाता है ।। १७ ।। आरोग्य की कामना करने वाले मनुष्य के लिए 'पुरीप्यासोऽग्नयः' इत्यादि आधी ऋचा उत्तम है । इस ऋचा का उत्तरार्द्ध शत्रु का नाश करने के लिए उत्तम है । सूर्योदय के लिए इस आधी ऋचा का जप करना चाहिए ।। १८ ।। सूर्योदय के समय इसका जप करने से अक्षय आयु तथा मध्याह्न में जप करने से अक्षय तेज तथा सूर्यास्त के समय जप करने से शत्रु का नाश होता है ।। १९ ।। 'न वयः' इत्यादि सूक्तों का जप करने वाला पुरुष शत्रुओं को विनष्ट कर देता है ।। २० ।। सुवर्णसे सम्बन्धित ग्यारह ऋचाओं का पाठ करने वाले की सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण होती हैं । अध्यात्म से सम्बन्ध रखने वाली (क०' इत्यादि ऋचाओं का जप करने वाला मोक्ष को प्राप्त करता है ।। २१ ।। 'आनो भद्राः' इत्यादि दस ऋचाओं का जप करने से दीर्घायुष्ट्व की प्राप्ति होनी है । त्वं सोमः इत्यादि ऋचा को पढ़ते हुए शुक्लपक्ष की चन्द्रमा का दर्शन करे ।। २२ ।। जो हाथ में समिधा लेकर उक्त मन्त्र से चन्द्रमा का उपस्थान करता है, वह निस्संदेह वस्त्र प्राप्त करता है । दीर्घआयु चाहने वाला 'इमं०' इत्यादि कौत्ससूक्त का सदा जप करे ।। २३ ।। 'अपनः शोशुचदघम्०' इत्यादि ऋचा से सूर्यदेव की स्तुति करने वाला उसी प्रकार से अपने पापों को त्याग देता है जैसे कोई मनुष्य तिनका से सींक को अलग कर देता है ।। २४ ।। जो व्यक्ति रास्ते में चलते हुए 'जातवेदसे०' इत्यादि मन्त्र का जप करता है वह कल्याण को प्राप्त करता है । वह सभी त्रासों से छूट जाता है और सकुशल घर लौट आता है ।। २५ ।। जो व्यक्ति प्रातःकाल तथा रात्रि में इस ऋचा का जप करता है उसके दुःस्वप्न विनष्ट हो जाते हैं । 'प्रमन्दिने०' इत्यादि ऋचा का जप करने से प्रसव करने वाली स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती है ।। २६ ।। 'इन्द्रम्०' इत्यादि ऋचा का स्नान करके जप करके सात बार बलिवैश्वदेव करके घृत का होम करने वाला मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ।। २७ ।। 'इमाम्०' इस ऋचा का जप करने वाला समस्त अभीष्ट कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।तीन

शुचिः ॥ २८ ॥ औदुम्बरीश्च जुहुयात्समिधश्चाज्यसंस्कृताः । छित्त्वा सर्वान् मृत्युपाशान् जीवेद्रोगविवर्जितः ॥ २९ ॥ ऊर्ध्वबाहुरनेनैव स्तुत्वा शम्भुं तथैव च । मानस्तोकेति च ऋचा शिखाबन्धे कृते नरः॥ ३०॥ अधृष्यः सर्वभूतानां जायते संशयं विना । चित्रमित्युपतिष्ठेत त्रिसन्ध्यं भास्करं तथा॥ ३१॥ समित्पाणिर्नरो नित्यमीप्सितं धनमाप्नुयात् । अथ स्वप्नेति च जपन् प्रातर्मध्यन्दिने दिने ॥ ३२ ॥ दुःस्वप्नञ्चार्दते कृत्स्नं भोजनञ्चाप्नुयाच्छुभम् । उभे पुनामीति तथा रक्षोघ्नः परिकीर्त्तितः ॥ ३३ ॥ उभे वासा इति ऋचो जपन् कामानवाप्नुयात् । तमागन्मिति च जपन् मुच्यते चाततायिनः ॥ ३४ ॥ कया शुभेति च जपन् जातिश्रैष्ठ्यमवाप्नुयात् । इमन्नृसोममित्येतत् सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ ३५ ॥ पितरित्युपतिष्ठेत नित्यमर्थमुपस्थितम् । अग्ने नयेति सूक्तेन घृतहोमश्च मार्गगः ॥ ३६॥ वीरान्यमवाप्नोति सुश्लोकं यो जपेत् सदा । कङ्कतो नेति सूक्तेन विघ्नान् सर्वान् व्यपोहति ॥ ३७ ॥ यो जात इति सूक्तेन सर्वान् कामानवाप्नुयात्। गणानामिति सूक्तेन स्निग्धमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ३८ ॥ यो मे राजन्नितीमान्तु दुःस्वप्नशमनीमृचम् । अध्वनि प्रस्थितो यस्तु पश्येच्छत्रुं समुत्थितम्॥३९॥ अप्रशस्तं प्रशस्तं वा कुविदङ्ग इमं जपेत् । द्वाविंशकं जपन् सूक्तमाध्यात्मिकमनुत्तमम्॥ ४०॥ पर्वसु प्रयतो नित्यमिष्टान् कामान् समश्नुते । कृणुष्वेति जपन् सूक्तं जुह्वदाज्यं समाहितः॥ ४१॥ अरातीनां हरेत् प्राणान् रक्षांस्यपि विनाशयेत्। उपतिष्ठेत् स्वयं वह्निं परित्यृचा दिने दिने॥४२॥ तं रक्षति स्वयं वह्निर्बिश्वतो विश्वतोमुखः। हंसः शुचिः सदित्येतच्छुचिरीक्षेद् दिवाकरम् ॥ ४३ ॥ कृषिं प्रपद्यमानस्तु स्थालीपाकं यथाविधि । जुहुयात् क्षेत्रमध्ये तु स्वनीस्वाहास्तु पञ्चभिः ॥४४॥

दिन तक उपवास करके पवित्रतापूर्वक 'मानस्तोके०' इत्यादि दो ऋचाओं से घृतयुक्त गूलर की समिधाओं का हवन करना चाहिए । ऐसा करने वाला मनुष्य मृत्यु के समस्त पाशों का छेदन करके निरोग हो जाता है दोनों ऋचाओं से भगवान् शंकर की स्तुति करके शिखा बाँध लेने वाला मनुष्य समस्त भूत प्राणियों के लिए निश्चित रूप से अजेय हो जाता है ।। ३० ।। चित्रम् ० इत्यादि मन्त्र से तीनों सन्ध्याओं में हाथ में समिधा लेकर भगवान् सूर्य का उपस्थान करना चाहिए। ऐसा करने वाला मनुष्य अपने अभिलषित धन को प्राप्त करता है ।। ३१ ।। 'स्वप्ने नाभ्युप्या०' इत्यादि ऋचा का तीनों संध्याओं में जप करने से समस्त दुःस्वप्नों का नारश होता है और जप करने वाला सुन्दर भोजन प्राप्त करता है ।। ३२ ।। उभे पुनामि रोदसी०' इत्यादि ऋचा से राक्षसों का विनाश करने वाला मनुष्य समस्त अभिलषित पदार्थों को प्राप्त कर लेता है ।। ३३ ।। तमागन्म् ० इत्यादि ऋचा का जप करने वाला मनुष्य आततायियों के भय से मुक्त हो जाता है ।।३४।। 'कया शुभाः सवयसः इस ऋचा का जप करने वाला मनुष्य अपनी जाति में श्रेष्ठता को प्राप्त करता है । 'इमं नु सोमम् ० इस ऋचा का जप करने वाले मनुष्य की समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ।। ३५ ।। पितुं न स्तोषं० इस मन्त्र से उपस्थान करने वाले को नित्य ही धन की प्राप्ति होती है । 'अग्ने नय०' इस ऋचा से घृत का होम करने से परलोक में उत्तम मार्ग की प्राप्ति होती है ।। ३६ ।। सुश्लोक का जप करने वाला मनुष्य वीरों को सन्मार्ग पर ले चलता है । कंकतो न० इस सूक्त का जप सब प्रकार के विघ्नों का प्रभाव दूर कर देता है ।। ३७ ।।'यो जात एव प्रथमो०'इत्यादि सूक्त का जप करने वाला मनुष्य अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है ।'गणनां त्वा०' इत्यादि सूक्त के जप से सर्वोत्तम स्निग्ध पदार्थ की प्राप्ति होती है ।। ३८।। यो मे राजन् ० यह ऋचा दुःस्वप्नों का शमन करने वाली है । रास्ते में जाता हुआ मनुष्य किसी छोटे अथवा बड़े खड़े शत्रु को देखे तो वह 'कुविदङ्ग०' इत्यादि मन्त्र का जप करे । इस मन्त्र का जप करने से उसकी रक्षा हो जाती है ।। ३९ ।। जो मनुष्य पर्वकाल आने पर सावधानीपूर्वक इस सूक्त का आध्यात्मिक विधि से बाइसबार जप करता है, वह अपने समस्त अभिलषित अर्थों को प्राप्त कर लेता है ।। ४० ।। 'कृष्णुष्व पाजः' इस सूक्त का ध्यानपूर्वक जप करते हुए घी का होम करना चाहिए । ऐसा करने वाला मनुष्य अपने शत्रुओं का प्राण ले सकता है और राक्षसों का भी विनाश कर सकता है ।। ४१ ।। जो मनुष्य 'परि०' इत्यादि ऋचा से प्रतिदिन अग्नि का उपस्थापन करता है, उसकी विश्वतोमुख अग्नि सब ओर से स्वयम् रक्षा करते हैं ।। ४२ ।। 'हंसः शुचिषत' इत्यादि मन्त्र को पवित्र होकर पढ़ते हुए सूर्य का दर्शन करना चाहिए । ऐसा करने वाले मनुष्य को सूर्य पवित्र बना देते हैं ।। ४३ ।। कृषि कार्य को करने वाला मनुष्य मौन

इन्द्राय च मरुद्भ्यस्तु पर्जन्याय भगाय च । यथालिङ्गन्तु विहरेल्लाङ्गलन्तु कृषीबलः॥ ४५॥ युक्तो धान्याय सीतायै सुनासीरमथोत्तरम्। गन्धमाल्यैर्नमस्कारैर्यजेदेताश्च देवताः॥ ४६॥ प्रवापने प्रलवने खलसीतापहारयोः । अमोघं कर्म भवति वर्द्धते सर्वदा कृषिः॥ ४७ ॥ समुद्रादिति सूक्तेन कामानाप्नोति पावकात् । विश्वानर इति द्वाभ्यां य ऋग्भ्यां वह्निमर्चति ॥ ४८ ॥ स तरत्यापदः सर्वा यशः प्राप्नोति चाक्षयम् । विपुलां श्रियमाप्नोति जयं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ४९ ॥ अग्ने त्वमिति च स्तुत्वा धनमाप्नोति वाञ्छितम् । प्रजाकामो जपेन् नित्यं वरुणदैवतत्रयम् ॥ ५०॥ स्वस्त्या त्रयं जपेत् प्रातः सदा स्वस्त्ययनं महत् । स्वस्ति पन्था इति प्रोच्य स्वस्तिमान् प्रव्रजेऽध्वनि ॥ ५१ ॥ विजिहीष्ववनस्पते शत्रूणां व्याधितं भवेत् । स्त्रिया गर्भप्रमूढ़ाया गर्भमोक्षणमुत्तमम्॥ ५२॥ अच्छावदेति सूक्तञ्च वृष्टिकामः प्रयोजयेत् । निराहारः क्लिन्नवासा न चिरेण प्रवर्षति॥५३॥ मनसः काम इत्येतां पशुकामो नरो जपेत् । कर्दमेन इति स्नायात् प्रजाकामः शुचिर्व्रतः॥ ५४॥ अश्वपूर्वा इति स्नायाद्राज्यकामस्तु मानवः । रोहिते चर्म्मणि स्नायात् ब्राह्मणस्तु यथाविधि ॥ ५५ ॥ राजा चर्मणि वैयाघ्रे छागे वैश्यस्तथैव च । दशसाहस्त्रिको होम प्रत्येकं परिकीर्त्तितः॥ ५६॥ आ गाव इति सूक्तेन गोष्ठे गां लोकमातरम् । उपतिष्ठेद् व्रजेच्चैव यदिच्छेत् ताः सदाक्षयाः ॥ ५७ ॥ उपेति तिसृभीराज्ञो दुन्दुभिमभिमन्त्रयेत् । तेजो बलश्च प्राप्नोति शत्रुश्चैव नियच्छति॥ ५८॥ तृणपाणिर्जपेत् सूक्तं रक्षोघ्नं दस्युभिर्वृतः । ये के च ज्येमृत्यृचंजप्त्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥ ५९॥

होकर खेत के बीच में स्थाली पाक होम करे । इस समय वह पाँच-पाँच आहुतियाँ उन देवताओं के निमित्त 'इन्द्राय स्वाप्त' मरुद्भ्राः स्वाहा, पर्जन्याय स्वाहा तथा भगाय स्वाहा इन मन्त्रों से अग्नि में डाले ।। ४४ ।। इसके पश्चात् जिस तरह स्त्री की योनि में बीज वपन के लिए जननेन्द्रिय का व्यापार होता है उसी तरह किसान धान्य का बीजवपन करने के लिए हराई के साथ हल का संयोग करे और शुनासीराविमां० इस ऋचा का जप भी करे । तदनन्तर गन्ध, माल्य तथा नमस्कार के द्वारा इनके अधिष्ठात् देवता का यजन करे ।। ४५-४६ ।। ऐसा करने से बीज बोन, फसल काटने और फसल को खलिहान में लाने के समय किये गये समस्त कार्य अमोघ होते हैं । उसका कोई भी कार्य व्यर्थ नहीं होता है ।। उसकी कृषि सदा बढ़ती ही रहती है ।। ४७।। समुद्रादुर्मिः इस सूक्त के जप से मनुष्य अग्निदेव से अपने समस्त अभिलषित अर्थों की प्राप्ति कर लेता है । जो मनुष्य 'विश्वानि नो० इत्यादि दो ऋचाओं से अग्नि देवता का पूजन करता है, वह समस्त विपत्तियों को पार कर जाता है और अक्षय यश को प्राप्त कर लेता है ।। ४८ ।। वह विपुल सम्पत्ति को प्राप्त करता है तथा सर्वोत्तम विजय प्राप्त करता है । अग्ने त्वम् ० इस ऋचा से अग्नि की स्तुति करने पर मनोभिलषित धन की प्राप्ति होती है ।संतान प्राप्ति की कामना करने वाले मनुष्य को वरुण देवतजाक तीन ऋचाओं का नित्य जप करना चाहिए ।। ५० ।। मनुष्य को प्रातःकाल सदा 'स्वस्तिन इन्द्रो०' इत्यादि तीन मन्त्रों का जप करना परम कल्याणकारी होता है । 'स्वस्तिपन्थामनु०' इत्यादि मन्त्र का जप करते हुए यात्रा करने वाला व्यक्ति सकुशल यात्रा करता है ।। ५१ ।। विजिहीष्व वनस्पते० इत्यादि मन्त्र का जप करने से शत्रु व्याधिग्रस्त हो जाता है। इस मन्त्र का जप करने से गर्भ की वेदना से मूर्छित स्त्री गर्भ की वेदना से भली-भाँति छुटकारा पा जाती है । उसको आसानी से प्रसव हो जाता है ।। ५२ ।। वृष्टि के कामना से मनुष्य को निराहार रहकर गीला वस्त्र पहने हुए 'अच्छवद०'इत्यादि सूक्त का जप करना चाहिये। ऐसा करने से शीघ्र ही बहुत अधिक वर्षा होती है ।। ५३ ।। पशु की कामना करने वाला मनुष्य 'मनसः कामम् ०' इत्यादि ऋचा का जप करे । सन्तान की कामना करने वाले मनुष्य को पवित्रतापूर्वक व्रत रखकर 'कर्दमेन०' इत्यादि मन्त्र से स्नान करना चाहिए ।। ५४ ।। राज्य की कामना करने वाला मनुष्य को 'अश्वपूर्वाम्० इत्यादि मन्त्र को पढ़ते हुए स्नान करना चाहिए । ब्राह्मण विधिपूर्वक रोहित मृग के चर्म पर, क्षत्रिय व्याघ्रचम्र पर और वैश्य बकरे के चर्म पर स्नान करे ।। ५५।। प्रत्येक के लिए दस-दस हजार होम करने का विधान है ।। ५६ ।। अक्षय गोधन के चाहने वाला मनुष्य गोष्ठ जाकर 'आगावो अगमन्नुत०' इस सूक्त को पढ़ते हुए लोकमाता गौ को प्रणाम करे, गायों की स्तुति करके गायों के साथ गोचर भूमि तक जाय ।। ५७ ।। राजा कापे चाहिये कि वह 'उप०' इत्यादि तीन मन्त्रों से दुन्दुभि को अभिमन्त्रित करे । ऐसा करने वाला पराजित करता है ।। ५८ ।। यदि मनुष्य दस्युओं से घिर जाय तो वह अपने हाथ में

जीमूतसूक्तेन तथा सेनाङ्गान्यभिमन्त्रयेत् । यथा लिङ्गं ततो राजा विनिहन्ति रणे रिपून् ॥ ६० ॥ प्राग्नेयेति त्रिभिः सूक्तैर्धनमाप्नोति चाक्षयम् । अमीवहेति सूक्तेन भूतानि स्थापयेन्निशि॥ ६१॥ सम्बाधे विषमे दुर्गे बन्धे वा निर्गतः क्वचित् । पलायन् वा गृहीतो वा सूक्तमेतत् तथा जपेत्॥६२॥ त्रिरात्रं नियतोपोष्य श्रापयेत् पायसञ्चरुम्। तेनाहुतिशतं पूर्णं जुहुयात् त्र्यम्बकेत्यृचा ॥ ६३ ॥ समुद्दिश्य महादेवं जीवेदब्दशतं सुखम्। तच्चक्षुरित्यृचा स्नात उपतिष्ठेद् दिवाकरम्॥ ६४॥ उद्यन्तं मध्यगञ्चैव दीर्घमायुर्जिजीविषुः । इन्द्रा सोमेति सूक्तन्तु कथितं शत्रुनाशनम्॥६५॥ यस्य लुप्तं व्रतं मोहाद् व्रात्यैर्वा संसृजेत् सह । उपोष्याज्यं स जुहुयात् त्वमग्ने व्रतपा इति ॥ ६६ ॥ आदित्येत्यृक् च सम्राजं जप्त्वा वादे जयी भवेत् । महीति च चतुष्केण मुच्यते महतो भयात् ॥ ६७ ॥ ऋचं जप्त्वा यदि ह्येतत् सर्वकामानवाप्नुयात् । चत्वारिंशतिं चैन्द्रं जप्त्वा नाशयते रिपून् ॥ ६८ ॥ वाचं महीति जप्त्वा च प्राप्नोत्यारोग्यमेव च । शत्रो भवेति द्वाभ्यान्तु भुक्त्वान्नं प्रयतः शुचिः ॥ ६९ ॥ हृदयं पाणिना स्पृष्ट्वा व्याधिभिर्नाभिभूयते । उत्तमेदमिति स्नातो हुत्वा शत्रुं प्रमापयेत् ॥ ७० ॥ शन्नोग्न इति सूक्तेन हुतेनान्नमवाप्नुयात् । कन्यावारर्षिसूक्तेन दिग्दोषाद् विप्रमुच्यते ॥ यदद्य कच्चेत्युदिते जप्तेवश्यं जगद् भवेत् । यद्वागिति च जप्तेन वाणी भवति संस्कृता ॥ ७२ ॥ वाचो विदमिति त्वेतां जपन् वाचं समश्नुते । पवित्राणां पवित्रन्तु पावमान्यो त्यृचो मताः ॥७३॥ वैखानसा ऋचस्त्रिंशत्पवित्राः परमा मताः । ऋचो द्विषष्टिः प्रोक्ताश्च परस्येत्यृषिसत्तम!॥७४॥ सर्वकल्मषनाशाय पावनाय शिवाय च। स्वादिष्टयेतिसूक्तानां सप्तषष्टिरुदाहृता ॥ ७५ ॥ दशोत्तराण्यृचाश्चैताः पावमान्यः शतानि षट् । एतज्जपंश्च

तृण लेकर 'रक्षोध्नम्०' इत्यादि सूक्त का जप करे ।'ये के च ज्मा०' इस ऋचा का जप करने से दीर्घायुष्ट्व की प्राप्ति होती है ।। ५९ ।। राजा को चाहिए कि वह जीभूत सूक्त सेसेना के समस्त अङ्गों को उसके चिह्न के अनुसार अभिमन्त्रित करे । ऐसा रके वह संग्राम में शत्रुओं का विनाश करने में समर्थ होता है ।। ६० ।। जो मनुष्य 'प्राग्नये०' इत्यादि तीन सूक्तों का जप करता है, उसको अक्षय धन की प्राप्ति होती है । 'अमीवहा०' इस सूक्त का पाठ करके रात्रि में भूतों की स्थापना करे ।। ६१ ।। फिर संकट पड़ने पर, विषम एवंदुर्गम स्थल में, बन्धन में अथवा बन्धन से मुक्त हो जाने की अवस्था में भागते हुए अथवा पकड़े जाते समय सहायता की इच्छा से इससूक्त का जप करना चाहिए ।। ६२ ।। तीन रात्रि तक नियमपूर्वकउपवास करके खीर और चरु पकाये । पुनः 'त्र्यम्बक यजामडे०' इत्यादि ऋचा से भगवान् शंकर की प्रसन्नता के लिए एक सौ आहुति का हवन करे । ऐसा करने वाला मनुष्य सुखपूर्वक सौ वर्ष तक जीता है ।। ६४ ।। 'तच्चक्षुर्देवहितम् ० इत्यादि ऋचा से मयाह्न कालिक एवं सूर्य का उपस्थान करने वाला जीने की इच्छा वाला मनुष्य, अपनी दीर्घ आयु को प्राप्त करता है ।। ६४ ।। 'इन्द्रा सोमा०' इस मन्त्र से ऽ.रमभ होने वाला सूक्त शत्रुओं का विनाशक कहा गया है ।। ६५ ।। मोह के कारण जिसका व्रत भङ्ग हो गया है अथवा व्रात्य संसर्ग के कारण जो पतित हो गया है । वह मनुष्य उपवास करके 'त्वमग्ने व्रतपा०' इत्यादि ऋचा से घी का हवन करे ।। ६६ ।।'आदित्य०' और 'सम्राजा०' इन दो मन्त्रों का जप करने से मनुष्य शास्त्रार्थ में विजयी होता है । मही० इत्यादि चार ऋचाओं का जप करने से मनुष्य बहुत बड़े भय से छूट जाता है ।। ६७ ।। यदि० आदि ऋचा करके मनुष्य समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है । इन्द्र देवता के बयालीसवीं ऋचा का जप करने से शत्रुओं का विनाश होता है ।। ६८ ।। वाचं मही० इत्यादि ऋचा का जप करने से आरोग्य लाभ होता है । शन्नोभव० इत्यादि दो ऋचाओं का जप करके भोजन करे । फिर वह हृदय का स्पर्श करे । ऐसा करने वाला तथा सदा पवित्र रहने वाला मनुष्य कभी भी रोगी नहीं होता है।।६९।। मनुष्य को चाहिये कि वह स्नान कनरके 'उत्तमेदम्०' इत्यादि मन्त्र से हवन करे । ऐसा करके वह अपने शत्रुओं का विनाश कर डालता है ।। ७० ।। शन्नो अग्नि० इस सूक्त से हवन करके मनुष्य अन्न प्राप्त करता है और कन्या वा० इत्यादि सूक्त का जप करके मनुष्य दिग्भ्रम के दोष से मुक्त हो जाता है ।। ७१।। सूर्योदय के समय (यदद्य कच्च०' इत्यादि मन्त्र का जप करने पर सम्पूर्ण जगत् वशीभूत हो जाता है । यद् वाग् ० इत्यादि ऋचा का जप करने से वाणी संस्कारयुक्त हो जाती है ।। ७२ ।। वचो विदम् ० इत्यादि ऋचा का जप करने से वाव शक्ति प्राप्त हो जाती है । पवमानी ऋचाएँ सबसे अधिक पवित्र करनेवाली मानी गयी हैं ।। ७३ ।।

जुहृश्च घोरं मृत्युभयं जयेत् ॥ ७६ ॥ आपोहिष्ठेति वारिस्थो जपेत् पापभयार्दने । प्रदेवत्रेति नियतो जपेच्च मरुधन्वसु ॥ ७७॥ प्राणान्तिके भये प्राप्ते क्षिप्रमायूस्तु विन्दति । प्रावेपमेत्यृचमेकां जपेच्च मनसा निशि॥ ७८॥ व्युष्टायामुदिते सूर्य्ये द्यूते जयमवाप्नुयात्। मा प्रगामेति मूढ़श्च पन्थानं पथि विन्दति॥ ७९॥ क्षीणायुरिति मन्येत यं कञ्चित्सुहृदं प्रियम् । यत्तेममिति स्नातस्तस्य मूर्द्धानमालभेत् ॥ ८१ ॥ सहस्त्रकृत्वः पञ्चाहं तेनायुर्विन्दते महत् । इदं मेध्येति जुहुयात् घृतं प्राज्ञः सहस्त्रशः ॥ ८१॥ पशुकामो गवां गोष्ठे अर्थकामश्चतुष्पथे । वयः सुपर्णा इत्येतां जपन् वै विन्दते श्रियम् ॥ ८२ ॥ हविष्यान्तीयमभ्यस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते । तस्य रोगा विनश्यन्ति कायाग्निर्वर्द्धते तथा ॥ ८३ ॥ या ओषधयः स्वस्त्ययनं सर्वव्याधिविनाशनम् । वृहस्पते ! अतीत्येतद् वृष्टिकामः प्रयोजयेत् ॥ ८४॥ सर्वत्रेति परा शान्तिर्ज्ञेया प्रतिरथस्तथा । सूक्तं संर्सकाश्यपं नित्यं प्रजाकामस्य कीर्त्तितम् ॥ ८५ ॥ अहंरुद्रेति इत्येतत् वाग्मी भवति मानवः । न योनौ जायते विद्वान् जपन्रात्रीतिरात्रिषु ॥ ८६ ॥ रात्रिसूक्तं जपन्रात्रौ रात्रिं क्षेमी नयेन्नरः । कल्पयन्तीति च जपन् नित्यं कृतवारिनाशनम् ॥ ८७ ॥ आयुष्यञ्चैव वर्चस्वं सूक्तं दाक्षायणं महत् । उत देवा इति जपेदामयघ्नं धृतव्रतः ॥ ८८ ॥ अयमग्ने जरित्येतज्जपेदग्निभये सति । अरण्यानीत्यरण्येषु जपेत् तद्भयनाशनम् ॥ ८९ ॥ ब्राह्मीमासाद्यसूक्ते द्वे

वैखानस सम्बन्धी तीस ऋचायें भी परम राजा तेज और बल को प्राप्त करता है तथा अपने शत्रु को पवित्र करने वाली मानी गयी हैं । हे ऋषि श्रेष्ठ परशुराम 'परस्य०' इत्यादि बासठ ऋचाएँ भी पवित्र मानी गयी हैं।। ७४ ।। स्वादिष्ट्या इत्यादि सड़सठ सूक्त समस्त पापों का प्रणाश करने वाले, सबको पवित्र करने वाले तथा कल्याणकारी कहे गये हैं ।। ७५ ।। पावमानी ऋचाएँ छह सौदस बतलायी गयी हैं । इन ऋचाओं का जप करने वाला तथा इनसे हवन करने वाला मनुष्य मृत्यु के भय को जीत लेता है ।। ७६ ।। पाप के भय का विनाश करने के लिए 'आपोहिष्ठा' इत्यादि ऋचा का जल में खड़ा होकर जप करना चाहिए । प्राणान्तक भय के उपस्थित होने पर मनुष्य को 'प्रदेवत्रा०' इत्यादि मन्त्र का जप नियमपूर्वक मरुभूमि में करें ।। ७७ ।। ऐसा करके मनुष्य शीघ्र भयमुक्त होकर दीर्घायु को प्राप्त करता है ।। 'प्रावेपा मा वृहतः' इसऋचा का मानसिक जप रात्रि में करे । सूर्योदय के समय इसका जप करने से मनुष्य द्यूत में विजयी होता है ।।७८।। मा प्रगाम् ० इस मन्त्रका जप करके उचित मार्ग को प्राप्त कर लेता है ।। ७९ ।। यदि अपने किसी प्रिय मित्र को क्षीणायु समझे तो स्नान करके यत्ते यमम् ० इत्यादि मन्त्र का जप करते हुए उसके शिर का स्पर्श करें ।। ८० ।। पाँच दिन तक एक-एक हजार बार ऐसा करने से रोगी लम्बी आयु प्राप्त करता है । इदमित्थ्या० इस मन्त्र से विद्वान् पुरुष को एक हजार घी की आहुतियाँ देनीचाहिए।। ८१ ।। पशु की कामना करने वाला गौशाला में हवन करे और धन चाहने वाला चौराहे पर । वयःसुपर्णा० इस ऋचपाका जप करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।। ८२ ।। हविष्यान्त० इत्यादि ऋचा का जप करके मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । उसके रोग विनरूष्ट हो जाते हैं तथा उसकी जाठराग्नि प्रबल हो जाती है ।। ८३ ।। 'या ओषधयः' इत्यादि मन्त्र कल्याणकारी माना जाता है, यह समस्त व्याधियों का विनाश कर देता है । वृष्टि की कामना करने वाला मनुष्य 'वृहस्पते अति०' इत्यादि मन्त्र का प्रयोग करे ।। ८४ ।। सर्वत्र० इत्यादि ऋचपा के जप से अनुपम पराशान्ति की प्राप्ति होती है ।सन्तान की कामना करनेवाले मनुष्य कोसंकाश्य सूक्त का जप करना चाहिए ।। ८५ ।। अहं रुद्र० इस ऋचा का जप करने से मनुष्य वाग्मी हो जाता है । रात्री व्यखरायती० इस ऋचाका रात्रि में जप करने वाला विद्वान् पुरुष पुनः जन्म मरण के चक्र में नहीं पड़ता है ।। ८६ ।।रात्रि में रात्रिसूक्त का जप करने वाला मनुष्य कुशलपूर्वक रात्रि व्यतीत करता है । कल्पयन्ती० इस ऋचा का नित्य जप करने वाला शत्रुओं का विनाश करने में समर्थ होता है ।। ८७ ।। दाक्षायण सूक्त के जप से लम्बी आयु और बहुत अधिक वर्चस्व की प्राप्ति होती है । उतदेवाः यह मन्त्र रोगनाशक है । इसका जप व्रत धारण करके करना चाहिए ।। ८८ ।। यदि आग का भय उपस्थित हो जाय तो उस समय 'अयमाग्नेजरिता त्वे०' इत्यादि ऋचा का जप करना चाहिए । यदि जंगल में भय लगने लग जाय तो 'अलण्यान्यरण्यानि०' इत्यादि मंत्र का जप करना चाहिए ऐसा करने से भय समाप्त हो जाता है ।। ८९।। ब्राह्मी को प्राप्त करके ब्रह्मसूक्त के दो ऋचाओं का जप करना चाहिए और पृथक्-पृथक् जल अथवा घी से ब्राह्मीलता और शतावरी को ग्रहण करना चाहिए । ऐसा करने वाला मेधा और शत्रु का विनाश करने वाली 'शाश इत्था०' इत्यादि ऋचा है । अतएव संग्राम में विजय प्राप्त करने की इच्छा वाले वीर को इस ऋचा का जप करना चाहिए । 'ब्राह्मणाग्निः संविदानः' यह ऋचा

ऋचं ब्राह्मीं शतावरीम् । पृथगद्भिर्घृतैर्वाथ मेधां लक्ष्मीञ्च विन्दति ॥ ९० ॥ सास इत्यसपत्नघ्नं संग्रामं विजिगीषतः । ब्रह्मणोऽग्निः संविदानं गर्भमृत्यु निवारणम् ॥ ९१ ॥ अपैहीति जपेत् सूक्तं शुचिर्दुःस्वप्ननाशनम् । येनेदमिति वै जप्त्वा समाधिं विन्दते परम् ॥ ९२ ॥ मयो भूर्वात इत्येतत् गवां स्वस्त्ययनं परम् । शाम्बरीमिन्द्रजालं वा मायामेतेन वारयेत् ॥ ९३॥ महीत्रीणामवरोस्त्विति पथि स्वस्त्ययनं जपेत् । अग्नये विद्विषन्नेवं जपेच्च रिपुनाशनम् ॥ ९४ ॥ वास्तोष्पतेन मन्त्रेण यजेत गृहदेवताः । जपस्यैष विधिः प्रोक्तो हुते ज्ञेयो विशेषतः ॥ ९५ ॥ होमान्ते दक्षिणा देया पापशान्तिर्हुतेन तु । हुतं शाम्यति चान्नेन अन्नहेमप्रदानतः ॥ ९६ ॥ विप्राशिषस्त्वमोघाः स्युर्वहिःस्नानन्तु सर्वतः । सिद्धार्थका यवा धान्यं पयो दधि घृतं तथा ॥ ९७ ॥ क्षीरवृक्षास्तथेघ्मन्तु होमा वै सर्वकामदाः । समिधः कण्टकिन्यश्च राजिका रुधिरं विषम् ॥ ९८ ॥ अभिचारे तथा शैलम् अशनं शक्तवः पयः । दधि भैक्ष्यं फलं मूलमृग्विधानमुदाहृतम् ॥ ९९॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये ऋग्विधानकथनं नामोनषष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५९ ॥

षष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

यजुर्विधानम्

पुष्कर उवाच– **यजुर्विधानं वक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु । ओंकारपूर्विका राम ! महाव्याहृतयो मताः॥ १॥ सर्वकल्मषनाशिन्यः सर्वकामप्रदास्तथा। आज्याहुतिसहस्रेण देवानाराधयेद् बुधः ॥ २॥ मनसः काङ्क्षितं राम ! मनसेप्सितकामदम् । शान्तिकामो यवैः कुर्य्यात् तिलैः पापापनुत्तये ॥ ३॥**

गर्भ मृत्यु का निवारण करने वाली है ।। ९१ ।। पवित्र होकर 'अपेहि०' इस सूक्त का जप करने से दुःस्वप्न का नाश होता है । 'येनेदम् ०' इस ऋचा का जप करने वाला मनुष्य परम समाधि में स्थित हो जाता है ।। ९२ ।। 'मयोभूर्वातः' यह ऋचा गौओं के लिए परममंगलकारक हैं । इसके जप से शाम्बरी माया अथवा इन्द्रजाल का निवारण किया जा सकता है।। ९३ ।। 'महित्रीणामवोऽस्तु०' इस ऋचा का रास्ते में जप करने से कल्याण होता है । द्वेष मात्र के प्रति विद्वेष रखने वाला मनुष्य प्राग्नये० इत्यादि ऋचा का जप करे ।ऐसा करने से उसके शत्रु का विनाश होता है ।। ९४ ।। वास्तोष्पते० इस मन्त्र से गृह देवता का पूजन करे । यह जप की विधि बतलायी गयी है अब हवन की जो विशेष विधि है, उसे जाननी चाहिए ।। ९५ ।। होम के अन्त में दक्षिणा देनी चाहिए, होम से पाप की शान्ति होती है । होम की शान्ति अन्न से होती है और सुवर्ण दान से अन्न की शान्ति होती है ।। ९६ ।। ब्राह्मणों के द्वारा दिये जाने वाले आशीर्वाद कभी व्यर्थ नहीं होते हैं । यजमान को सब ओर से बाहर स्नान करना चाहिए । सिद्धार्थक (सरसों) यव, धान, दुग्ध, दही, घी तथा क्षीरवृक्ष की समिधाएँ जिस होम में प्रयुक्त होती हैं उससे सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं ।। ९७।। अभिचार कर्म में काँटों से युक्त समिधा, राई, रुधिर एवं विष का हवन करना चाहिए। होमकाल में शिलोंछवृत्ति से प्राप्त अन्न, भिक्षान्न, सत्तू, दूध, दही एवं फल-मूल का भोजन करना चाहिए। इस तरह से मैंने ऋगविधान का वर्णन किया ।। ९९।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का ऋग्विधान वर्णन नामक दो सौ उनसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २५९ ॥

श्रीपुष्कर जी ने कहा– हे परशुराम ! अब मैं आपको भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाले यजुर्विधान सुनाता हूँ, उसे आप सुनें । हे राम ओंकारपूर्वक महाव्याहृतियाँ समस्त पापों का विनाश करने वाली तथा समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाली बतलायी गयी है । विद्वान् पुरुष को चाहिए कि इनके द्वारा एक हजार घृता हुतियाँ देकर देवताओं की आराधना करे ।। १-२ ।। हे राम

धान्यैः सिद्धार्थकैश्चैव सर्वकामकरैस्तथा । औदुम्बरीभिरिध्माभिः पशुकामस्य शस्यते ॥ ४ ॥ दध्ना चैवान्न कामस्य पयसा शान्तिमिच्छता।
अपामार्गसमिद्भिस्तु कामयन् कनकं बहु ॥ ५ ॥ कन्याकामो घृताक्तानि युग्मशो ग्रथितानि तु । जातीपुष्पाणिजुहुयाद् ग्रामार्थी तिलतण्डुलान्॥६॥
वश्यकर्मणि शाखोटवासापामार्गमेव च । विषासृङ्मिश्रसमिधो व्याधिघातस्य भार्गव॥ ७॥ क्रुद्धस्तु जुहुयात् सम्यक् शत्रूणां बधकाम्यया।
सर्वव्रीहिमयीं कृत्वा राज्ञःप्रतिकृतिं द्विज ! ॥ ८ ॥ सहस्रशस्तुजहुयाद्राजा वशगतो भवेत् । वस्त्रकामस्य पुष्पाणि दूर्वा व्याधिविनाशिनी ॥ ९॥
ब्रह्मवर्चसकामस्य वासोग्रञ्च विधीयते । प्रत्यङ्गिरेषु जुहुयात् तुषकण्टकभस्मभिः ॥ १० ॥ विद्वेषणे च पक्ष्माणि काककौशिकयोस्तथा । कापिलञ्च
घृतं हुत्वा तथा चन्द्रग्रहे द्विज॥ ११॥ वचाचूर्णेन सम्पातात् समानीय च तां वचाम् । सहस्रमन्त्रितां भुक्त्वा मेधावी जायते नरः॥ १२ ॥
एकादशाङ्गुलं शङ्कु लौहं खादिरमेव च । द्विषतो वधोऽसीति जपन् निखनेद्रिपुवेश्मनि॥१३॥ उच्चाटनमिदं कर्म शत्रूणां कथितं तव । चक्षुष्या इति
जप्त्वा च विनष्टञ्चक्षुराप्नुयात्॥ १४ ॥ उपयुञ्जत इत्येतदनुवाकं तथान्नदम् । तनूनपाग्ने सदिति दूर्वां हुत्वार्त्तिवर्जितः॥ १५॥ भेषजमसीति
दध्याज्यैर्होमःपशूपसर्गनुत् । त्रियम्बकं यजामहे होमः सौभाग्यवर्द्धनः ॥ १६॥ कन्यानाम गृहीत्वा तु कन्यालाभकरः परः । भयेषु तु जपन् नित्यं
भयेभ्यो विप्रमुच्यते ॥ १७ ॥ धुत्तूरपुष्पं सघृतं हुत्वा स्यात्सर्वकामभाक् । हुत्वा तु गुग्गुलं राम ! स्वप्ने पश्यति शङ्करम्॥ १८॥ युञ्जते
मनोऽनुवाकं जप्त्वा दीर्घायुराप्नुयात्। विष्णोरराटमित्येतत् सर्वबाधाविनाशनम् ॥ १९॥ रक्षोघ्नञ्च यशस्यञ्च तथैव विजयप्रदम्। अयं नो अग्निरित्येतत्

मनुष्य जो कुछ चाहता है, उसकी इससे प्राप्ति हो जाती है । शान्ति चाहने वाला मनुष्य प्रणवयुक्त व्याहृतियों से यवकी आहुति दे । पापों से मुक्ति चाहने वालों को उन मन्त्रों से तिल की आहुति देनी चाहिए ।। ३ ।। धान्य एवं पीली सरसों से आहुति देने वालों की सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं । पशुओं की कामना करने वाला मनुष्य इन महाव्याहृतियों से गूलर की लकड़ी का हवन करे ।। ४ ।। अन्न की कामना करने वाले को दही से, शान्ति चाहने वाले को दुग्ध से तथा प्रचुर सुवर्ण चाहने वाले को अपमार्ग की समिधा से हवन करना चाहिए ।। ५ ।। कन्या चाहने वाला मनुष्य एक में गुथे गये दो घी में डुबाये गये जाति पुष्पों (जुही) के फूलों से हवन करना चाहिए । ग्राम चाहने वाले को तिल एवं चावल से हवन करना चाहिए ।। ६ ।। वशीकरण कर्म में शाखोट (सिहोर) वासा (अड्सा) तथा अपामार्ग की समिधा से हवन करना चाहिए । हे भार्गव ! व्याधियों का विनाश करने के लिए विष एवं रुधिर से मिश्रित समिधा का हवन करना चाहिए।।७।। शत्रुओं का विनाश करने के लिए क्रुद्ध होकर उक्त समिधाओं का अच्छी तरह से हवन करना चाहिए । हे द्विज सभी धान्यों से राजा की मूर्ति बनाकर उनका ओंकारयुक्त व्याहृतियों से एक हजार हवन करने से राजा वश में हो जाता है ।। ८ ।। वस्त्र चाहने वाले को इन मन्त्रों से युक्त फूलों का हवन करना चाहिए , और रोग से मुक्ति चाहने वाले को दूर्वा से हवन करना चाहिए ।। ९ ।। ब्रह्मतेज चाहने वाला व्यक्ति भगवत् प्रीत्यर्थ उत्तम वस्त्र समर्पित करे । विद्वेषण कर्म में प्रत्यङ्गिरा प्रोक्त विधि के अनुसार अग्नि में धान की भूसी, काँटा एवं भस्म के साथ कौओं और उल्लुओं के पंख का होम करना चाहिए ।। १० ।। हे राम ! चन्द्रग्रहण के समय गायत्री मन्त्र से घी की आहुति देकर बचे घी में वचा का चूर्ण मिलाकर सम्पात नामक आहुति देनी चाहिए। अवशिष्ट वचा को लेकर एक हजार बार गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिए । उस वचा को खाने से मनुष्य मेधावी होता है ।। १२ ।।। लोहे अथवा खैर की ग्यारह अंगुल लम्बा शंकु (कील) द्विषतो वधोऽक्षिण इत्यादि मन्त्र का जप करते हुए शत्रु के घर में गाड़ दे ।। १३ ।। यह मैने तुम्हें शत्रुओं का उच्चाटन कर्म बतलाया । चक्षुष्पा० इत्यादि मन्त्र का जप करने से मनुष्य के नेत्र की खोयी हुई ज्योति पुनः लौट आती है ।। १४ ।। उपयुञ्जत० इत्यादि अनुवाक अन्न को प्राप्त कराने वाला होता है । तनूपा अग्नेऽसि० इस मन्त्र से दूर्वा की आहुति करने से संकट दूर होता है ।। १५ ।। भेषजमासि० इत्यादि मन्त्र से दधि एवं घी का हवन करने से पशुओं पर आने वाली विपत्ति दूर हो जाती है । त्रयम्बकं यजामहे० इस मन्त्रसे होम करने से सौभाग्य की वृद्धि होती है ।। १६ ।। कन्या का नाम लेकर अथवा उसकी प्राप्ति के उद्देश्य से इस मन्त्र से होम करने से उस कन्या की प्राप्ति होती है । भय उपस्थित होने पर 'त्रयम्बकम् ०' मन्त्र का जप करने से सभी प्रकार के भयों से मुक्ति मिलती है ।। १७ ।। इस मन्त्र से घृत युक्त धत्तूर पुष्प से होम करने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है । जो व्यक्ति इस मन्त्र से गुग्गुल से होम

संग्रामे विजयप्रदम् ॥ २१॥ इदमापः प्रवहत स्नाने पापापनोदनम् । विश्वकर्मन्नु हविषा सूचीं लौहीं दशाङ्गुलाम् ॥ २१॥ कन्याया निखनेद् द्वारि साऽन्यस्मै न प्रदीयते । देव ! सवितरेतेन हुतेनैतेन चान्नवान्॥ २२॥ अग्नौ स्वाहेति जुहुयाद् बलकामो द्विजोत्तम ! । तिलैर्यवैश्च धर्मज्ञ ! तथापामार्गतण्डुलैः ॥ २३ ॥ सहस्रमन्त्रितां कृत्वा तथा गोरोचनां द्विज ! । तिलकञ्च तथा कृत्वा जनस्य प्रियतामियात् ॥ २४ ॥ रुद्राणाञ्च तथा जप्यं सर्वाघविनिसूदनम् । सर्वकर्मकरो होमस्तथा सर्वत्र शान्तिदः॥ २५॥ अजाविकानामश्वानां कुञ्जराणां तथा गवाम् । मनुष्याणां नरेन्द्राणां बालानां योषितामपि ॥ २६ ॥ ग्रामाणां नगराणाञ्च देशानामपि भार्गव ! उपद्रुतानां धर्मज्ञ ! व्याधितानां तथैव च ॥ २७॥ मरके समनुप्राप्ते रिपुजे च तथा भये। रुद्रहोमः परा शान्तिः पायसेन घृतेन च ॥ २८॥ कुष्माण्डघृतहोमेन सर्वान् पापान् व्यपोहति । शक्तुयावकभैक्षाशी नक्तं मनुजसत्तम!॥ २९॥ बहिःस्नानरतो मासान् मुच्यते ब्रह्महत्यया । मधुवातेति मन्त्रेण होमादितोऽखिलं लभेत् ॥ ३० ॥ दधि क्राव्णोति हुत्वा तु पुत्रान् प्राप्नोत्यसंशयम् । तथा घृतवतीत्येतदायुष्यं स्यात् घृतेन तु ॥ ३१ ॥ स्वस्तिन इन्द्र इत्येतत् सर्वबाधाविनाशनम् । इह गावः प्रजायध्वमिति पुष्टिविवर्धनम्॥ ३२॥ घृताहुतिसहस्रेण तथाऽलक्ष्मीविनाशनम् । स्रुवेण देवस्य त्वेति हुत्वापामार्गतण्डलुम्॥ ३३॥ मुच्यते विकृताच्छीघ्रमभिचारान्न संशयः । रुद्र ! यत्ते पलाशस्य समिद्भिः कनकं लभेत् ॥ ३४ ॥ शिवो भवेत्यग्न्युत्पाते व्रीहिभिर्जुहुयान्नरः । याः सेना इति चैतच्च तस्करेभ्यो भयापहम् ॥ ३५ ॥ यो अस्मभ्यमवातीयाद्धुत्वा कुष्णतिलान् नरः । सहस्रशोऽभिचाराच्च मुच्यते विकृताद् द्विज ! ॥३६ ॥ अन्नेनान्नपतेत्येवं

करता है वह स्वप्न में भगवान् शंकर का दर्शन कर पाता है ।। १८ ।। युञ्जते मनः इस अनुवाक का जप करने से दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है। विष्णो रराटमसि० यह मन्त्र सभी बाधाओं का विनाशक, राक्षसों का विनाश करने वाला तथा यश प्रदान करने वाला एवं विजय प्रदान करने वाला है ।। १९ ।। अयंनो अग्निः यह मंत्र संग्राम में विजय प्रदान करने वाला है । इदमापः प्रवहतः इस मन्त्र का जप करते हुए स्नान करने से पापों का अपनोदन होता है । विश्वकर्मन्नहविषा० इस मन्त्र से दस अंगुल लम्बी लोहे की सूई को अभिमन्त्रित करके जिस कन्या के द्वार पर गाड़ दे वह कन्या दूसरे के घर नहीं जाती है ।। २१ ।। देव सवित् ० इस मन्त्र से हवन करके मनुष्य प्रचुर अन्न सम्पन्न हो जाता है।।२२।। हे धर्मज्ञ परशुराम बल की कामना करने वाला मनुष्य अग्नौ स्वाहा० इस मन्त्र से तिल, यव, अपामार्ग एवं तण्डुल से युक्त होम सामग्री से होम करे । इसी मन्त्र से एक हजार बार गोरोचन को अभिमन्त्रित करके उसका तिलक लगाये तो वह लोकप्रिय हो जाता है ।। २३-२४ ।। रुद्र मन्त्रों का जप सम्पूर्ण पापों का विनाशक होता है । उन मन्त्रों द्वारा किया गया होम सभी कामों को सिद्ध करने वाला तथा सर्वत्र शान्ति प्रदान करने वाला होता है ।। २५ ।। हे भार्गव ! बकरी, भेड़, घोड़े, हाथी, गौ, मनुष्य, राजा, बालक तथा स्त्री ।। २६ ।। ग्राम, नगर और देश यदि विविध उपद्रवों से पीड़ित एवं रोगग्रस्त हो गये हों अथवा महामारी एवं शत्रुओं का भय उपस्थित हो गया हो तो घृतमिश्रित खीर से रुद्रदेवता के लिए किया गया होम परम शान्तिप्रद होता है ।। २७-२८ ।। रुद्रमन्त्रों से कुष्माण्ड एवं घृत का होम सम्पूर्ण पापों का विनाशक होता है । जो मनुष्य केवल रात में सत्तू, यव की लप्सी तथा भिक्षान्न भोजन करते हुए एक मास तक बाहर नदी या जलाशय में स्नान करता है, वह ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है ।। २९ ।। मधुवाता० इत्यादि मन्त्र से हवन करने वाला मनुष्य इस लोक में सब कुछ प्राप्त कर लेता है । दधिक्राव्णो० इस मन्त्र से हवन करने वाला गृहस्थ निश्चित रूप से पुत्रों को प्राप्त करता है । इसी तरह घृतवती० इत्यादि मन्त्र से घी का हवन आयु को बढ़ाता है ।। ३१ ।। स्वस्ति न इन्द्रो० इत्यादि मन्त्र सभी बाधाओं को विनष्ट करने वाला है । इह गावः प्रजायध्वम् ० यह मन्त्र पुष्टिवर्धक है । इस मन्त्र से एक हजार घी की आहुति देने पर दरिद्रता दूर होती है।। ३२ ।। देवस्य त्वा० इस मन्त्र से स्रुव से अपामार्ग एवं तण्डुल का हवन करने वाला विकृत अभिचार से शीघ्र छुटकारा पा जाता है ।। ३३ ।। रुद्रयत्ते० इस मन्त्र से पलाश की समिधा से हवन करने वाला मनुष्य सुवर्ण की प्राप्ति करता है । अग्नि का उपद्रव होने पर शिवोभव० इस मन्त्र से धान्य की आहुति देनी चाहिए ।। ३४ ।। या सेनाः इस मन्त्र से हवन करने से चोरों को भय से मुक्ति मिलती है ।। ३५ ।। यो अस्मभ्यमरातीयात्०

हुत्वा चान्नमवाप्नुयात् । हंसः शुचिषदित्यतज्जप्तं तोयेऽघनाशनम् ॥ ३७॥ चत्वारि शृङ्गेत्येतत् तु सर्वपापहरं जले । देवा यज्ञेति जप्वा तु ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३८॥ वसन्तेति च हुत्वाज्यम् आदित्यात् वरमाप्नुयात् ॥ सुपर्णोऽसीति चेत्यस्य कर्मव्याहृतिवद् भवेत् ॥ ३९ ॥ नमःस्वाहेति त्रिर्जप्त्वा बन्धनान् मोक्षमाप्नुयात् । अन्तर्जले त्रिरावर्त्य द्रुपदा सर्वपापमुक् ॥ ४० ॥ इह गावः प्रजायध्वं मन्त्रोऽयं बुद्धिवर्द्धनः । हुतन्तु सर्पिषा दध्ना पयसा पायसेन वा॥ ४१॥ शंनो देवीति मंत्रेण हुत्वा पर्णफलानि च । आरोग्यं श्रियमाप्नोति जीवितञ्च चिरं तथा॥ ४२॥ ओषधीः प्रतिमोदध्वं वपने लवनेऽर्थकृत् । अश्वावती पायसेन होमाच्छान्तिमवाप्नुयात् ॥ ४३ ॥ तस्मा इति च मन्त्रेण बन्धनस्थो विमुच्यते । युवा सुवासा इत्येव वसांस्याप्नोति चोत्तमम् ॥ ४४ ॥ मुञ्चन्तु मा शपथ्यानि सर्वान्तकविनाशनम् । मा माहिंसीस्तिलाज्येन हुतं रिपुविनाशनम् ॥ ४५ ॥ नमोऽस्तु सर्वसर्पेभ्यो घृतेन पायसेन तु । कृणुष्व पाज० इत्येतदभिचारविनाशनम् ॥ ४६॥ दूर्वाकाण्डायुतं हुत्वा काण्डात् काण्डेति मानवः । ग्रामे जनपदे वापि मरकन्तु शम नयेत् ॥ ४७ ॥ रोगार्त्तो मुच्यते रोगात् तथा दुःखात् तु दुःखितः । औदुम्बरीश्च समिधो मधुमान्नो वनस्पतिः॥४८॥ हुत्वा सहस्रशो राम ! धनमाप्नोति मानवः । सौभाग्यं महदाप्नोति व्यवहारे तथा जयम् ॥ ४९ ॥ अपां गर्भमिति हुत्वा देवं वर्षापयेद् ध्रुवम् । अपः पिवेति च तथा हुत्वा दधि घृतं मधु॥ ५०॥ प्रवर्त्तयति धर्मज्ञ! महावृष्टिमनन्तरम् । नमस्ते रुद्र ! इत्येतत् सर्वोपद्रवनाशनम् ॥ ५१॥ सर्वशान्तिकरं प्रोक्तं महापातकनाशनम् । अध्यवोचदित्यनेन रक्षणं व्याधितस्य तु ॥ ५२॥ रक्षोघ्नञ्चयशस्यञ्च चिरायुः पुष्टिवर्द्धनम् । सिद्धार्थकानां क्षेपेण पथि चैतज्जपन् सुखी ॥ ५३॥ असौ यस्ताम्र इत्येतत् पठन् नित्यं दिवाकरम् । उपतिष्ठेत धर्मज्ञ ! सायं प्रातरतन्द्रितः ॥ ५४ ॥ अन्नमक्षयमाप्नोति

इस मन्त्र से काले तिलों से एक हजार होम करता है, वह विकृत अभिचार से मुक्ति पा लेता है ।। ३६ ।। जो मनुष्य 'अन्नपते० इस मन्त्र से अन्न का हवन करता है, वह प्रचुर अन्न प्राप्त करता है । हंसः शुचिषत् ० इस मन्त्र का जल में जप करने से पाप का विनाश होता है ।। ३७ ।। जल में 'चत्वारिशृङ्गा' इस मन्त्र का जप पाप विनाशक होता है । 'देवा यज्ञमतन्वत०' इस मन्त्र का जप करने वाला मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजित होता है ।। ३८ ।। वसन्तोऽस्यासीद्० इस मन्त्र से घी का होम करने वाला मनुष्य सूर्य से वरदान प्राप्त करता है । सुपर्णोऽसि० इस मन्त्र से साध्य कर्म व्याहृतियों से साध्य कर्म के समान ही होता है ।। ३९ ।। नमः स्वाहा० इत्यादि मन्त्र को तीन बार जप करने वाला मनुष्य बन्धन से मुक्ति प्राप्त करता है । द्रुपदादिव० इत्यादि मन्त्र का जल के भीतर तीन आवृत्ति जप करने वाला मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है ।। ४० ।। इह गावः प्रजायध्वम्० इस मन्त्र से घी, दही, दूध अथवा खीर से हवन करने से बुद्धि बढ़ती है।।४१।। शंनोदेवीः इस मन्त्र से पलाश के फलों की आहुति देने से मनुष्य आरोग्य, लक्ष्मी और लम्बी आयु प्राप्त करता है ।। ४२ ।। ओषधीः प्रतिमोदध्वम् ० इस मन्त्र से बीज के बोने तथा फसल के काटने के समय होम करने से धन की प्राप्ति होती है । अश्वावर्ती० इत्यादि मन्त्र से खीर का होम करने से शान्ति की प्राप्ति होती है ।। ४३ ।। तस्मा अरंगमा० इस मन्त्र से होम करने पर बन्धनग्रस्त मनुष्य मुक्त होता है । युवा सुवासा० इस मन्त्र से हवन करने पर मनुष्य उत्तम वस्त्रों को प्राप्त करता है ।। ४४ ।। मुञ्चन्तुमा शयध्या० इस मन्त्र से हवन करने पर शाप या शपथ आदि समस्त पापों से मनुष्य मुक्त हो जाता है । मामाहिंसीः इत्यादि मन्त्र से घृत मिश्रित तिल से होम करने से शत्रुओं का विनाश होता है ।। ४५ ।। नमोस्तु सर्पेभ्यः इत्यादि मन्त्र से घृत से होम तथा कृणुष्व पाजः इस मन्त्र से खीर से किया गया होम अभिचार का विनाशक होता है।।४६।। काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ति० इत्यादि मन्त्र से दूर्वा का दस हजार होम करके मनुष्य ग्राम या जनपद में फैली हुई महामारी को शान्त करे । इससे रोगग्रस्त मनुष्य रोग से तथा दुःखग्रस्त मनुष्य दुःख से छुटकारा पा लेता है । हे परशुराम ! मधुमान्नो वनस्पतीः इस मन्त्र से गूलर की एक हजार समिधाओं का हवन करके धन को प्राप्त कर लेता है तथा महान् सौभाग्य एवं व्यवहार में विजय प्राप्त करता है ।। ४७-४९ ।। अपां गर्भ इस मन्त्र से होम करके मनुष्य निश्चय ही पर्जन्यदेव से वर्षा करवा लेता है, अपः पिब० इत्यादि मन्त्र से दधि धृत एवं मधु का हवन करके यजमान तत्काल महावृष्टि करवा लेता है ।। ५० ।। नमस्ते रुद्र० इत्यादि मन्त्र से होम

दीर्घमायुश्च विन्दति । प्रमुञ्च धन्वन्नित्येतत् षड्भिरायुधमन्त्रणम् ॥ ५५ ॥ रिपूणां भयदं युद्धे नात्र कार्य्या विचारणा । मानो महान्त मित्येवं बालानां शान्तिकारकम् ॥ ५६ ॥ नमो हिरण्यबाहवे इत्यनुवाकसप्तकम् । राजिकां कटुतैलाक्तां जुहुयाच्छत्रुनाशनीम् ॥ ५७॥ नमो वः किरिकेभ्यश्च पद्मलक्षाहुतैर्नरः । राज्यलक्ष्मीमवाप्नोति तथा विल्वैः सुवर्णकम् ॥ ५८ ॥ इमा रुद्रायेति तिलैर्होमाच्च धनमाप्यते । दूर्वाहोमेन चान्येन सर्वव्याधिविवर्जितः ॥ ५९॥ आशुः शिशान इत्येतदायुधानाञ्च रक्षणे । संग्रामे कथितं राम! सर्वशत्रुनिवर्हणम् ॥ ६०॥ राजसामेति जुहुयात् सहस्रं पञ्चभिर्द्विज ! । आज्याहुतीनां धर्मज्ञ ! चक्षुरोगाद् विमुच्यते ॥ ६१ ॥ शन्नो वनस्पते गेहे होमः स्याद् वास्तुदोषनुत् । अग्न आयूंषि हुत्वाज्यं द्वेषं नाप्नोति केनचित् ॥ ६२ ॥ अपां फेनेति लाजाभिर्हुत्वा जयमवाप्नुयात् । भद्रा उतेन्द्रियैर्हीनो जपन् स्यात् सकलेन्द्रियः ॥ ६३ ॥ अग्निश्च पृथिवी चेति वशीकरणमुत्तमम् । अध्वनेति जपन् मन्त्रं व्यवहारे जयीभवेत्॥ ६४॥ ब्रह्म राजन्यमिति च कर्म्मारम्भे तु सिद्धिकृत् । संवत्सरोऽसीतिघृतैर्लक्षहोमादरोगवान् ॥ ६५ ॥ केतुं कृण्वन्नितीत्येतत् संग्रामे जयवर्द्धनम् । इन्द्रोऽग्निर्धर्म इत्येतद्रणे धर्मनिबन्धनम्॥ ६६॥ धन्व नागेति मन्त्रश्च धनुर्ग्राहणिकः परः । यजीतेति तथा मन्त्रो विज्ञेयो ह्यभिमन्त्रणे॥ ६७॥ मन्त्रश्चाहिरित्येतच्छराणां मन्त्रणे भवेत् । वह्नीनां पितरित्येतत् तूणमन्त्रः प्रकीर्त्तितः ॥ ६८ ॥ युञ्जन्तीति तथाश्वानां योजने मन्त्र उच्यते । आशुः शिशान इत्येतद् यात्रारम्भणमुच्यते ॥ ६९ ॥

करने से सभी उपद्रवों का नाश होता है । यह मन्त्र सभी प्रकार की शान्ति करने वाला तथा महापातक का नाश करने वाला कहा गया है ।। ५१ ।। अध्यवोचद्० इस मन्त्र से होम करने से व्याधिग्रस्त मनुष्य की रक्षा होती है ।। ५२ ।। इस मन्त्र से किया गया होम राक्षसों का विनाशक यशःप्रद तथा दीर्घायु एवं पुष्टि का वर्धक होता है ।। ५२ ।। रास्ते में सफेद सरसों को फेंकते हुए इस मन्त्र का जप करने वाला यात्री सुखी होता है ।। ५३ ।। असौ यस्ताम्र० इस मन्त्र को पढ़ते हुए प्रतिदिन प्रातःकाल एवं सायंकाल आलस्य रहित होकर सूर्य का उपस्थान करने वाला मनुष्य अक्षय अन्न एवं दीर्घ आयु को प्राप्त करता है ।। ५४ ।। प्रमुञ्च धन्वन्० इत्यादि छह मन्त्रों से आयुधों को अभिमन्त्रित करने से संग्राम में शत्रु भयभीत होते हैं इसमें तनिक भी सन्देह नहीं ।। ५५ ।। मानो महान्तम्० इस मन्त्र का जप एवं होम बालकों के लिए शान्तिकारक होता है ।। ५६ ।। नमोहिरण्य बाहवे० इत्यादि सात अनुवाकों से सरसों के तेल में मिलायी गयी राई का होम करने से शत्रुओं का नाश होता है ।। ५७ ।। नमो वः किरिकेभ्यः इस आधे मन्त्र से एक लाख कमल पुष्पों का हवन करने से मनुष्य राज्यलक्ष्मी प्राप्त करता है तथा विल्व से एक लाख हवन करके सुवर्ण राशि को प्राप्त करता है ।। ५८ ।। इमा रुद्राय० इत्यादि मन्त्र से तिल का होम करने से धन की प्राप्ति होती है । इसी मन्त्र से घृतसिक्त दुर्वा का होम करने से वह सभी व्याधियों से मुक्त हो जाता है ।। ५९ ।। आशुः शिशानः इस मन्त्र का जप हे राम संग्राम में आयुध की रक्षा करता है तथा समस्त शत्रुओं का विनाश करने वाला होता है ।। ६०।। हे धर्मज्ञ द्विज ! वाजश्च मे० इत्यादि पाँच मन्त्रों से घृत की एक हजार आहुतियाँ देकर नेत्र रोग से मुक्त हो जाता है ।। ६१ ।। शन्नोवनस्पते० इत्यादि मन्त्र से घर में होम करने पर वास्तुदोष दूर होता है । अग्न आयूंषि० इत्यादि मन्त्र से घी का होम करने वाला व्यक्ति किसी का द्वेषपात्र नहीं होता है ।। ६२ ।। अपांफेनेन० इस मन्त्र से लावा का होम करके वीर विजय प्राप्त करता है । भद्राउत० इस मन्त्र का जप करने वाला इन्द्रिय विहीन भी व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों से सम्पन्न हो जाता है ।। ६३ ।। अग्निश्च पृथिवी च० यह सर्वोत्तम वशीकरण मन्त्र है । अध्वना० इत्यादि मन्त्र का जप करने वाला मनुष्य व्यवहार में विजयी होता है ।। ६४ ।। ब्रह्मक्षत्रं पवते० इस मन्त्र का कार्य के प्रारम्भ में जप करना सिद्धिप्रद होता है । संवत्सरोऽसि० इस मन्त्र से घी की एक लाख आहुति देने वाला निरोग हो जाता है ।। ६५ ।। केतुं कृण्वन्न० यह मन्त्र संग्राम में विजय प्रदान करने वाला है । इन्द्रोऽग्निधर्म० यह मन्त्र संग्राम में धर्मानुकूल विजय दिलाता है ।। ६६ ।। धन्वनागा० इस मन्त्र का जप धनुष् ग्रहण करने के समय उत्तम माना गया है । यजीत० इत्यादि मन्त्र से धनुष् की प्रत्यञ्चा को अभिमन्त्रित करना चाहिए ।। ६७ ।। अहिरिव भोगैः इत्यादि मन्त्र का प्रयोग बाणों को अभिमन्त्रित करने में किया जाता है । बह्वीना पिता० इत्यादि मन्त्र का प्रयोग तुणीर को अभिमन्त्रित करने में किया जाता है ।। ६८ ।। युञ्जन्त्यस्य० इत्यादि

विष्णोः क्रमेति मन्त्रश्च रथारोहणिकः परः । आजंघेतीति चाश्वानां ताडनीयमुदाहृतम् ॥ ७० ॥ या सेना अभित्वरीति परसैन्यमुखे जपेत् । दुन्दुभ्य इति चाप्येतद् दुन्दुभीताड़नं भवेत् ॥ ७१ ॥ एतैः पूर्वहुतैर्मन्त्रैः कृत्वैवं विजयी भवेत् । यमेन दत्तमित्यस्य कोटिहोमाद् विचक्षणः॥ ७२॥ रथमुत्पादयेच्छीघ्रं संग्रामे विजयप्रदम् । आकृष्णोति तथैतस्य कर्मव्याहृतिवद् भवेत्॥ ७३॥ शिवसंकल्प जापेन समाधिं मनसो लभेत् । पञ्चनद्यः पञ्चलक्षं हुत्वा लक्ष्मीमवाप्नुयात्॥ ७४॥ यदा बध्नन् दाक्षायणा मन्त्रेणानेन मन्त्रितम् । सहस्रकृत्वः कनकं धारयेद्रिपुवारणम् ॥ इमं जीवेभ्य इति च शिलां लोष्टञ्चतुर्दिशम् । क्षिपेद् गृहे तदा तस्य न स्याच्चौरभये निशि ॥ ७६ ॥ परिमेगामनेनेति वशीकरणमुत्तमम् । हन्तुमभ्यागतस्तत्र वशीभवति मानवः॥ ७७॥ भक्ष्यताम्बूलपुष्पाद्यं मन्त्रितन्तु प्रयच्छति । यस्य धर्मज्ञ ! वशगः सोऽस्य शीघ्रं भविष्यति ॥ ७८ ॥ शन्नो मित्र इतीत्येतत् सदा सर्वत्र शान्तिदः । गणानां त्वा गणपतिं कृत्वा होमञ्चतुष्पथे ॥ ७९ ॥ वशेकुर्य्याज्जगत्सर्वं सर्वधान्यैरसंशयम् । हिरण्यवर्णाः शुचयो मन्त्रोऽयमभिषेचने॥ ८०॥ शन्नो देवीरभिष्ठये तथा शान्तिकरः परः । एकचक्रेति मन्त्रेण हुतेनाज्येन भागशः ॥ ८१॥ गृहेभ्यः शान्तिमाप्नोति प्रसादं न च संशयः । गावो भग इति द्वाभ्यां हुत्वाज्यङ्गा अवाप्नुयात् ॥ ८२ ॥ प्रवादांशः सोपदिति ग्रहयज्ञे विधीयते । देवेभ्यो वनस्पत इति द्रुमयज्ञे विधीयते ॥ ८३॥ गायत्री वैष्णवी ज्ञेया तद्विष्णोः परमं पदम् । सर्वपापप्रशमनं सर्वकामकरं तथा ॥ ८४॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये यजुर्विधानवर्णनं नाम षष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६० ॥

मन्त्र का प्रयोग अश्वों को रथ में जोतने में किया जाता है । आशुः शिशानः इस मन्त्र का प्रयोग यात्रा प्रारम्भ करने के लिये बतलाया जाता है ।। ६९ ।। विष्णोः क्रमोऽसि० इस मन्त्र का पाठ रथारोहण के समय करना चाहिए । आजङ्घन्वित० इस मन्त्र का जप घोड़ों को हाँकने के लिए प्रथम बार चाबुक उठाते समय करना चाहिए ।। ७० ।। याः सेना अभित्वरीः इत्यादि मन्त्र का जप शत्रुसेना के सम्मुख करना चाहिए । दुन्दुभ्यः इत्यादि मन्त्र पढ़कर नगाड़ा बजाना चाहिए ।। ७१ ।। उपर्युक्त मन्त्रों से पहले हवन करने के पश्चात् उन मन्त्रों से उपर्युक्त कर्मों को करने वाला अवश्य विजयी होता है । विद्वान् पुरुष यमेन दत्तम्० इस मन्त्र से एक करोड़ होम करने वाला विजय प्रदान करके नया रथ पैदा कर सकता है ।। ७२ ।। आकृष्णेन० इत्यादि मन्त्र से साध्य कर्म व्याहृतियों के ही समान होता है ।। ७३ ।। शिवसंकल्प सूक्त का जप करने से मानसिक समाधि लग जाती है । पञ्चनद्यः इत्यादि मन्त्र से पाँच लाख जप करने वाला मनुष्य लक्ष्मी प्राप्त करता है ।। ७४ ।। यदा बध्नन् दाक्षायणा० इत्यादि मन्त्र से एक हजार बार अभिमन्त्रित करके सुवर्ण धारण करना चाहिए । यह मन्त्र शत्रुओं का निवारण करने वाला है ।। ७५ ।। इमं जीवेभ्यः० मन्त्र जपने वाले को रात में चोरों से भय नहीं होता ।। ७६ ।। परीमे गामनेषत्० यह उत्तम वशीकरण मन्त्र है । इस मन्त्र के प्रयोग से मारने के लिए भी आया हुआ मनुष्य वश में हो जाता है ।। ७७ ।। हे धर्मज्ञ ! उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित यदि भक्ष्य पदार्थ, ताम्बूल तथा पुष्प आदि किसी को दिया जाय तो वह शीघ्र ही देने वाले के वशीभूत हो जायेगा ।। ७८ ।। शन्नो मित्रः इत्यादि मन्त्र सदा सर्वत्र शान्ति प्रदान करता है । गणानां त्वा गणपतिं इस मन्त्र से चौराहे पर सभी धान्यों से होम करके मनुष्य निश्चित रूप से सम्पूर्ण जगत् को अपने वश में कर लेता है। हिरण्यवर्णाः शुकयः इत्यादि मन्त्र का प्रयोग अभिषेक में करना चाहिए ।। ७९ ।। शन्नोदेवीरभीष्टये० यह मन्त्र परम शान्तिकारक है । एकचक्र० इस मन्त्र से आज्यभागपूर्वक ग्रहों के लिएं घी की आहुति देने पर साधक को शान्ति मिलती है और निश्चित रूप से उसे ग्रहों की कृपा प्राप्त होती है ।। ८१।। गाव उपावताम् ० तथा भग प्रणेतः इत्यादि दो मन्त्रों से घी का हवन करके मनुष्य गायों को प्राप्त करता है ।। ८२ ।। प्रवादां शःसोपत्० इस मन्त्र का प्रयोग ग्रहयज्ञ में होता है 'देवेभ्यो वनस्पते० इस मन्त्र का प्रयोग द्रुमयज्ञ (वृक्षयज्ञ) में किया जाता है।।८३।। गायत्री को विष्णु स्वरूपा जानना चाहिए । सभी पापों का प्रशमन और सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला वही भगवान् विष्णु का परम पद है ।। ८४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का यजुर्विधान वर्णन नामक दो सौ साठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६० ॥

एकषष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सामविधानम्

पुष्कर उवाच– **यजुर्विधानं कथितं वक्ष्ये साम्नां विधानकम् । संहितां वैष्णवीं जप्त्वा हुत्वा स्यात् सर्वकामभाक् ॥ १ ॥ संहितां छान्दसीं साधु जप्त्वा प्रीणाति शङ्करम् । स्कान्दीं पैत्र्यां संहिताञ्च जप्त्वा स्यात् तु प्रसादवान् ॥ २ ॥ यत इन्द्रं भजामहे हिंसादोष विनाशनम् । अवकीर्णी मुच्यते च अग्निस्तिग्मेति वै जपन् ॥ ३ ॥ सर्वपापहरं ज्ञेयं परितोयञ्च तासु तम् । अविक्रेयञ्च विक्रीय जपेद् घृतवतीति च ॥ ४॥ अयानो देव ! सवितर्ज्ञेयं दुःस्वप्ननाशनम् । अबोध्यग्निरितिमन्त्रेण घृतं राम ! यथाविधि ॥ ५ ॥ अभ्युक्ष्य घृतशेषेण मेखलाबन्ध इष्यते । स्त्रीणां यासान्तु गर्भाणि पतन्ति भृगुसत्तम॥ ६॥ मणिं जातस्य बालस्य बध्नीयात् तदनन्तरम् । सोमं राजानमेतेन व्याधिभिर्विप्रमुच्यते॥ ७॥ सर्पसाम प्रयुञ्जानो नाप्नुयात् सर्पजं भयम् । मा पापत्वाय इत्येत तद्धुत्वा विप्रसहस्रशः ॥ ८ ॥ शतावरिमणिं बद्ध्वा नाप्नुयाच्छस्त्रतो भयम् । दीर्घतमसोऽर्क इति हुत्वान्नं प्राप्नुयाद् बहु ॥ ९ ॥ स्वमध्यायन्तीति जपन् न म्रियते पिपासया । त्वमिमा ओषधी ह्येतज्जप्त्वा व्याधिं न प्राप्नुयात् ॥ १० ॥ पथिदेवव्रतं जप्त्वा भयेभ्यो विप्रमुच्यते । यदिन्द्रोऽनुनदिति हुतं सौभाग्यवर्द्धनम्॥ ११॥ भगो न चित्र इत्येतत् नेत्रयो रञ्जनं हितम् । सौभाग्यवर्द्धनम् राम ! नात्र कार्य्या विचारणा ॥ १२ ॥ जपेदिन्द्रेति वर्गञ्च तथा सौभाग्यवर्द्धनम् । परिप्रिया दिवः कविः काम्यां संश्रावयेत् स्त्रियम् ॥ १३ ॥ सा**

श्रीपुष्करजी ने कहा– मैंने यजुर्विधान का वर्णन किया अब मैं साम मन्त्रों के विधान का वर्णन कर रहा हूँ । वैष्णवीं संहिता का पाठ करके तथा उसका दशांश होम करके मनुष्य अपनी समस्त कामनाओं को पूर्ण कर लेता है ।। १ ।। छान्दसी संहिता का जप करके मनुष्य भगवान् शंकर को प्रसन्न कर लेता है ।स्कान्दी संहिता एवं पितृसंहिता का पाठ करके मनुष्य प्रसन्नता को प्राप्त कर लेता है ।। २ ।। यत् इन्द्रं भजामहे यह मन्त्र हिंसा दोष का विनाश करता है । 'अग्निस्तिग्मेन० इस मन्त्र का जप करने वाला अवकीर्णी (जिस का ब्रह्मचर्यावस्था में ही ब्रह्मचर्य खण्डित हो गया हो) पुरुष भी अपने पापों से मुक्त हो जाता है ।। ३ ।। परीतोऽषिञ्चतासुतम्० यह मन्त्र सभी पापों को विनष्ट करने वाला है । जिसने प्रमादवश अविक्रेय वस्तु को भी बेंच लिया हो उसे प्रायश्चित्त रूप से घृतवती भुवना० इत्यादि मन्त्र का जप करना चाहिए ।। ४ ।। अद्य नो देव सवितः इस मन्त्र को दुःस्वप्न का विनाशक जानना चाहिए । हे भृगुश्रेष्ठ राम ! अबोध्यग्निः इस मन्त्र से विधिवत् घी का होम करना चाहिए। पुनः अवशिष्ट घी से मेखला आदि का सेचन करे। उस मेखलाबन्ध को ऐसी स्त्रियों को धारण कराये जिसके गर्भ गिर जाते हों । बालक के उत्पन्न हो जाने पर उपर्युक्त मन्त्र से ही अभिमन्त्रित करके मणि पहनाना चाहिए । सोमं राजानम्०' मन्त्र के जप से रोगी निरोग हो जाता है ।। ५-७ ।।सर्पसाम का प्रयोग करने वाले मनुष्य को कभी भी सर्पों का भय नहीं होता है । हे विप्र मा पापत्वाय इस मन्त्र से एक हजार आहुति देकर शतावरि युक्त मणि बाँधने वाले को शस्त्र का भय नहीं होता है ।। ८ ।। दीर्घतमसोऽर्कः इस मन्त्र का हवन करने वाले को प्रचुर मात्रा में अन्न की प्राप्ति होती है ।। ९ ।। समध्यायन्ति० इस मन्त्र का जप करने वाला प्यास से नहीं मरता है । त्वमिमा ओषधी० इस मन्त्र का जप करने वाला मनुष्य कभी व्याधिग्रस्त नहीं होता है ।। १० ।। रास्ते में देवव्रत साम का जप करके मनुष्य भय से छुटकारा पा लेता है । यदिन्द्रोऽनुनयदिति० इस साम मन्त्र से हवन करने से सौभाग्य की वृद्धि होती है ।। ११ ।। भगो न चित्रो० इस मन्त्र से आँखों में अंजन लगाना हितकारक होता है । हे राम ! यह मन्त्र सौभाग्य को बढ़ाने वाला है, इसमें किसी भी प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिए ।। १२ ।। इस तरह से इन्द्र० इस पद से प्रारम्भ होने वाले साममन्त्र के वर्ग का जप करने से सौभाग्य की वृद्धि होती है । परिप्रिया दिवः कविः उस स्त्री को सुनाये जिसको पुरुष चाहता है । ऐसा करने से वह स्त्री उस पुरुष को चाहने लगती है ।। १३ ।। रथन्तरसाम और वामदेव्यसाम ये दोनों ब्रह्मतेज को बढ़ाने वाले हैं ।। १४ ।। इन्द्रामिद्गाथिनो० इस

तङ्कामयते राम ! नात्र कार्य्या विचारणा । रथन्तरं वामदेव्यं ब्रह्मवर्चसवर्द्धनम्॥ १४॥ प्राशयेद् बालकं नित्यं वचाचूर्णं घृतप्लुतम् । इन्द्रमिद्राथिनो जप्त्वा भवेच्छ्रुतिधरस्त्वसौ॥ १५॥ हुत्वा रथन्तरं जप्त्वा पुत्रमाप्नोत्यसंशयम् । मयि श्रीरिति मन्त्रोऽयं जप्तव्यःश्रीविवर्द्धनः ॥ १६ ॥ वैरूप्यस्याष्टकं नित्यं प्रयुञ्जानः श्रियं लभेत्। सप्ताष्टकं प्रयुञ्जानः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ १७ ॥ गव्येषुणेति यो नित्यं सायं प्रातरतन्द्रितः । उपस्थानं गवां कुर्य्यात् तस्य स्युस्ताः सदा गृहे॥ १८॥ घृताक्तन्तु यवद्रोणं वात आवातु भेषजम् । अनेन हुत्वा विधिवत् सर्वां मायां व्यपोहति ॥ १९ ॥ प्रदेवो दासेन तिलान् हुत्वा कार्मणकृन्तनम् । अभित्वा शूर नोनुमो वषट्कारसमन्वितम् ॥ २० ॥ वासकेध्मसहस्रन्तु हुतं युद्धे जयप्रदम् । हस्त्यश्वपुरुषान् कुर्य्याद् बुधःपिष्टमयान्शुभान्॥ २१॥ परकीयानथोद्देश्य प्रधानपुरुषांस्तथा । सुस्विन्नान् पिष्टकवरान् क्षुरेणोत्कृत्य भागशः॥ २२॥ अभित्वा शूरणोनुमो मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् । कृत्वा सर्षपतैलाक्तान् क्रोधेन जुहुयात् ततः ॥ २३ ॥ एतत् कृत्वा बुधः कर्म संग्रामे जयमाप्नुयात् । गारुडं वामदेव्यञ्च रथन्तरवृहद्रथौ । सर्वपाप प्रशमनाः कथिताः संशयं विना ॥ २४॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सामविधानवर्णनं नामैकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६१ ॥

द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथर्वविधानम्

पुष्कर उवाच– **साम्नां विधानं कथितं वक्ष्ये चाथर्वणामथ । शान्तातीयं गणं हुत्वा शान्तिमाप्नोति मानवः ॥ १ ॥ भैषज्यञ्च गणं हुत्वा सर्वान्**

साममन्त्र का जप करके घी में मिलाया हुआ वचा का चूर्ण यदि प्रतिदिन बालक को खिलाया जाय तो वह बालक श्रुतिधर हो जाता है । एक बार सुनने से ही उसे शास्त्र की पंक्तियाँ याद हो जाती हैं ।।१५।। सन्तान चाहने वाला मनुष्य रथन्तर साम का जप करके यदि उससे होम करता है तो निश्चय ही उसे पुत्र की प्राप्ति होती है । मयि श्रीः इस मन्त्र का जप करना चाहिए इससे लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।। १६ ।। जो मनुष्य 'वैरुप्य साम' के आठ मन्त्रों का प्रतिदिन पाठ करता है उसे लक्ष्मी की प्राप्ति निश्चित रूप से होती है ।। १७ ।। जो मनुष्य सप्ताष्टक का प्रयोग करता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं ।। १७ ।। जो मनुष्य आलस्य रहित होकर सायंकाल एवं प्रातःकाल गव्येषुणो० इत्यादि साममन्त्र से गायों की स्तुति करता है, उसके गृह में गायें सदा निवास करती हैं।।१८।। वात आवातुभेषजम्० इस मन्त्र से एक द्रोण तिलमिश्रित यव का जो विधिपूर्वक होम करता है वह सम्पूर्ण माया को विनष्ट कर देता है ।। १९ ।। प्रदेवो दासेन० इत्यादि साम मन्त्र से तिलों का हवन करके मनुष्य अभिचार कर्म को शान्त कर देता है । अभित्वा शूरनोनुम० इस साममन्त्र से अडूसा की एक हजार समिधा का होम करने से युद्ध में विजय की प्राप्ति होती है ।।२०।। बुद्धिमान् पुरुष आँटे के सुन्दर-सुन्दर हाथी, घोड़े तथा पुरुषों का निर्माण करे । फिर शत्रुपक्ष के प्रधान-प्रधान वीरों को लक्ष्य बनाकर उन पसीजे हुए आँटे के बने पुरुषों को छुरे से टुकड़े-टुकड़े काट डाले ।। २२ ।। उसके पश्चात् मन्त्रवेत्ता पुरुष 'अभित्वा शूरणोनुम० इस मन्त्र से उन टुकड़ों को सरसों के तेल में भिंगोकर क्रोधपूर्वक हवन करे ।। २३।। बुद्धिमान् पुरुष इस अभिचार कर्म को करके संग्राम में विजय प्राप्त करता है । गरुड, वामदेव्य, रथन्तर एवं बृहद्रथ साम निस्संदेह समस्त पापों का शमन करने वाले बतलाये गये हैं ।। २४।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का साम विधान नामक दो सौ एकसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६१ ॥

अध्याय २६२

श्रीपुष्करजी ने कहा– परशुराम ! मैंने सामविधान का वर्णन किया अब मैं अथर्वविधान को बतला रहा हूँ । शान्तातीयगण के उद्देश्य से हवन करके मनुष्य शान्ति प्राप्त करता है ।।१।।

रोगान् व्यपोहति । त्रिसप्तीयं गणं हुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २ ॥ क्वचिन्नाप्नोति च भयं हुत्वा चैवाभयं गणम् । न क्वचिज्जायते राम ! गणं हुत्वा पराजितम् ॥ ३ ॥ आयुष्यञ्च गणं हुत्वा अपमृत्युं व्यपोहति । स्वस्तिमाप्नोति सर्वत्र हुत्वा स्वस्त्ययनङ्गणम् ॥ ४ ॥ श्रेयसा योगमाप्नोति शर्मवर्मगणं तथा । वास्तोष्पत्यगणं हुत्वा वास्तुदोषान् व्यपोहति ॥ ५ ॥ तथा रौद्रगणं हुत्वा सर्वान् दोषान् व्यपोहति । एतैर्दशगुणैर्होमो ह्यष्टादशसु शान्तिषु॥ ६॥ वैष्णवीं शान्तिरैन्द्री च ब्राह्मी रौद्री तथैव च । वायव्या वारुणी चैव कौवेरी भार्गवी तथा ॥ ७ ॥ प्रजापत्या तथा त्वाष्ट्री कौमारी वह्निदेवता । मारुद्गणा च गान्धारी शान्तिनैर्ऋतकी तथा ॥ ८ ॥ शान्तिराङ्गिरसी याम्या पार्थिवी सर्वकामदा । यस्त्वां मृत्युरिति ह्येतज्जप्तं मृत्युविनाशनम् ॥ ९ ॥ सुपर्णस्त्वेति हुत्वा च भुजगैर्नैव बाध्यते । इन्द्रेण दत्तमित्येतत् सर्वकामकरं भवेत्॥ १०॥ इन्द्रेण दत्तमित्येतत् सर्वबाधाविनाशनम्। इमा देवीति मन्त्रश्च सर्वशान्तिकरः परः॥ ११॥ देवाः मरुत् इत्येतत् सर्वकामकरं भवेत् । यमस्यलोकादित्येतत् दुःस्वप्नशमनं परम्॥ १२॥ इन्द्रश्च पञ्चबणिजेति पुण्यलाभकरं परम् । कामो मे वाजीति हुतं स्त्रीणां सौभाग्यवर्द्धनम् ॥ १३ ॥ तुभ्यमेव जपेन्नित्यमयुतन्तु हुतं भवेत् । अग्ने गोभिर्न इत्येतन् मेधावृद्धिकरं परम्॥ १४॥ ध्रुवं ध्रुवेणेति हुतं स्थानलाभकरं भवेत् । अलक्तजीवेति शुना कृषिलाभकरं भवेत् ॥ १५॥ अहन्ते भग्न इत्येतत् भवेत् सौभाग्यवर्द्धनम्। ये मे पाशास्तथाप्येतद् बन्धनान्मोक्षकारणम् ॥ १६ ॥ शपत्वहन्निति रिपून् नाशयेद्धोम जाप्यतः । त्वमुत्तममितीत्येतद् यशोबुद्धिविवर्द्धनम्॥ १७॥ यथामृगमतीत्येतत् स्त्रीणां सौभाग्यवर्द्धनम् । येन चेहदिदञ्चैव गर्भलाभकरं भवेत् ॥ १८॥ अयन्ते योनिरित्येतत्

भैषज्यगण के उद्देश्य से हवन करके मनुष्य समस्त रोगों को दूर कर लेता है । त्रिसप्तीयगण के उद्देश्य से होम करने वाला मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ।। २ ।। अभयगण के उद्देश्य से होम करने वाला मनुष्य कहीं भी भय को नहीं प्राप्त करता है । अपराजितगण के उद्देश्य से होम करने वाला मनुष्य कभी भी पराजित नहीं होता है ।। ३ ।। आयुष्यगण के उद्देश्य से होम करने वाले मनुष्य की कभी भी अपमृत्यु नहीं होती है ।। स्वस्त्ययनगण के उद्देश्य से होम करने से कल्याण की प्राप्ति होती है ।। ४ ।। शर्मवर्गगण के उद्देश्य से होम करने वाला मनुष्य कल्याण को प्राप्त करता है । वास्तोपत्यगण के उद्देश्य से होम करने वाला मनुष्य वास्तुदोषों को दूर करता है ।। ५ ।। रौद्रगण के उद्देश्य से होम करने वाला मनुष्य सभी दोषों को विनष्ट कर देता है। अठारह प्रकार की शान्तियों में इन दस गणों से होम करना चाहिए ।। ६ ।। ये अठारह शान्तियाँ हैं- वैष्णवी, ऐन्द्री, ब्राह्मी, रौद्री, वायव्या, वारुणी, कौवेरी, भार्गवी ।। ७ ।। प्राजापत्या, त्वाष्ट्री, कौमारी, आग्नेयी,मरुद्गणी, गान्धारी, नैर्ऋतिकी ।। ८ ।। आङ्गिरसी, याम्या एवं समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली पार्थिवी शान्ति । 'यस्त्वां मृत्युः' इत्यादि आथर्वण मन्त्र का जप मृत्यु का विनाश करने वाला है ।। ९ ।। सुपर्णस्त्वा० इस मन्त्र से होम करने वाले को सर्पों से भय नहीं प्राप्त होता है । इन्द्रेण दत्तो० इत्यादि मन्त्र सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला है ।। १० ।। इन्द्रेण दत्तो० यह मन्त्र समस्त बाधाओं को भी दूर करता है । इमाया देवी० यह आथर्वण मन्त्र सभी प्रकार की शान्ति के लिए श्रेष्ठ है ।। ११ ।। देवाः मरुतः यही आयर्थ्वण मन्त्र सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है । यमस्य लोका० यह मन्त्र दुःस्वप्न को शान्त करने के लिए उत्तम है ।। १२ ।। इन्द्रश्च पञ्चवणिजः यह मन्त्र सर्वोत्तम पुण्य का लाभ कराने वाला है । कामो मे बाजी० यह मन्त्र स्त्रियों के सौभाग्य की वृद्धि करने वाला है ।। १३ ।। तुम्यमेव० इत्यादि आथर्वण मन्त्र का प्रतिदिन दस हजार जप करना चाहिए । अग्ने गोभिर्न यह मन्त्र सर्वश्रेष्ठ मेधा को बढ़ाने वाला है ।। १४ ।। यदि ध्रुवं ध्रुवेण इत्यादि मन्त्र से होम किया जाय तो उससे स्थान की प्राप्ति होती है । अलक्त जीवेति शुना० यह मन्त्र कृषि का लाभ कराने वाला माना जाता है ।। १५ ।। अहंते भग्न० यह मन्त्र सौभाग्य की वृद्धि करने वाला है । ये मे पाशाः० यह मन्त्र बन्धन से मुक्ति दिलाने वाला है ।। १६ ।। शपत्वहन्० इस मन्त्र का जप एवं इससे होम करके मनुष्य अपने शत्रुओं का विनाश करे । त्वमुत्तमम् यह मन्त्र यश एवं बुद्धि को बढ़ाने वाला है ।। १७ ।। यथा मृगाः यह मन्त्र स्त्रियों के सौभाग्य को बढ़ाने वाला है । येन चैव दिशञ्चैव यह मन्त्र गर्भ की प्राप्ति कराता है ।। १८ ।। अयन्ते योनिः यह मन्त्र पुत्र का लाभ कराने वाला है । शिवः शिवाभिः- यह मन्त्र सौभाग्य को विशेष रूप से बढ़ाने वाला है ।। १९।।

पुत्रलाभकरं भवेत् । शिवः शिवाभिरित्येतद् भवेत् सौभाग्यवर्द्धनम् ॥ १९ ॥ वृहस्पतिर्नः परिपातु पथि स्वस्त्ययनं भवेत् । मुञ्चामि त्वेति कथितमपमृत्यु निवारणम् ॥ २० ॥ अथर्व शिरसोऽध्येता सर्वपापैः प्रमुच्यते। प्राधान्येन तु मन्त्राणां किञ्चित् कर्म तवेरितम् ॥ २१ ॥ वृक्षाणां यज्ञियानां तु समिधः प्रथमं हविः । आज्यञ्च व्रीहयश्चैव तथा वै गौरसर्षपाः॥ २२॥ अक्षतानि तिलाश्चैव दधिक्षीरे च भार्गव । दर्भास्तथैव दूर्वाश्च विल्वानि कमलानि च॥ २३॥ शान्तिपुष्टिकराण्याहुर्द्रव्याण्येतानि सर्वशः। तैलं कणानि धर्मज्ञ! राजिका रुधिरं विषम्॥२४ ॥ समिधः कण्टकोपेता अभिचारेषु योजयेत् । आर्षं वै दैवतं छन्दो विनियोगज्ञ आचरेत्॥ २५॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये अथर्वविधानकथनं नाम द्विषष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६२ ॥

त्रिषष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

उत्पातशान्तिः

पुष्कर उवाच– **श्रीसूक्तं प्रतिवेदञ्च ज्ञेयं लक्ष्मीविवर्द्धनम् । हिरण्यवर्णां हरिणीमृचः पञ्चदश श्रियः ॥ १॥ रथेष्वक्षेषु वाजेति चतस्रो यजुषि श्रियः। श्रावन्तीयं तथा साम श्रीसूक्तजं सामवेदके॥ २॥ श्रियं धातर्मयि धेहि प्रोक्तमाथर्वणे तथा । श्रीसूक्तं यो जपेद् भक्त्या हुत्वा श्रीस्तस्य वै भवेत् ॥ ३ ॥ पद्मानि चाथ विल्वानि हुत्वाज्यं वा तिलान् श्रियः। एकन्तु पौरुषं सूक्तं प्रतिवेदन्तु सर्वदम् ॥ ४ ॥ सूक्तेन दद्यान् निष्पापो ह्येकैकया जलाञ्जलिम्। स्नात एकैकया पुष्पं विष्णोर्दत्त्वाघहा भवेत् ॥ ५ ॥ स्नात एकैकया दत्वा फलं स्यात् सर्वकामभाक्। महापापोपपापान्तो भवेज्**

वृहस्पतिर्नः परिपातु० यह मन्त्र मार्ग में मंगलकारक होता है । मुञ्चामित्वा० यह मन्त्र अपमृत्यु को दूर करने वाला है ।। २० ।। अथर्वशिरः का अध्ययन करने वाला पुरुष समस्त पापों से रहित हो जाता है । यह मैंने आपको प्रधानरूप से मन्त्रों द्वारा साध्य कुछ कर्मों को बतलाया है ।। २१ ।। यज्ञीय वृक्षों की समिधाएँ ही मुख्य रूप से हविष्य होती हैं । घी, धान्य तथा पीली सरसों।।२२।। अक्षत (चावल) तिल, दहि, दूध, कुश, दुर्वा, विल्व और कमल ये सभी द्रव्य पूर्णरूप से शान्तिकारक एवं पुष्टिकारक हैं ।। २३ ।। हे धर्मज्ञ! तेल, कण, राई, रुधिर, विष तथा काण्टों वाली समिधाएँ, इन सबों का प्रयोग अभिचार कर्मों में करना चाहिए । जो मन्त्रों के, ऋषि, देवता, छन्द और विनियोग को जाने वही उन-उन मन्त्रों द्वारा कथित कर्मों का अनुष्ठान करे।।२५।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अथर्व विद्या वर्णन नामक दो सौ बासठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६२ ॥

श्रीपुष्कर जी ने कहा– परशुरामजी ! प्रत्येक वेद के श्रीसूक्त को जानना चाहिए वह लक्ष्मी की वृद्धि करने वाला है । हिरण्यवर्णाम् हरिणीम्० इत्यादि पन्द्रह ऋचाएँ ऋग्वेदीय श्रीसूक्त के हैं ।। १ ।। रथे० (२९/४३) अक्षराजाय० (३०/१८) वाजः (१८/३४) और चतस्रः (१८/३२) ये चार मन्त्र यजुर्वेदीय श्रीसूक्त के हैं । श्रावन्तीय साम सामवेद का श्रीसूक्त है ।। २।। श्रियं धातर्मयि धेहि० यह मन्त्र अथर्ववेदीय श्रीसूक्त का है । जो भक्तिपूर्वक श्रीसूक्त का जप एवं होम करता है, उसे निश्चित रूप से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।। ३ ।। श्रीदेवी की प्रसन्नता के लिए, कमल, विल्व, तिल अथवा घी की आहुति देनी चाहिए । प्रत्येक वेद में एक ही पुरुषसूक्त मिलता है जो सब कुछ देने वाला है ।। ४ ।। जो पुरुष स्नान करके पुरुष सूक्त के एक-एक मन्त्र से भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए एक-एक अंजलि जल और एक-एक फूल समर्पित करता है वह अपने पापों को विनष्ट करके दूसरों के भी पापों को विनष्ट कर देता है ।। ५।। स्नान करके जो व्यक्ति पुरुषसूक्त के एक-एक मन्त्र से भगवान् के लिए एक-एक फल समर्पित करता है उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं । पुरुषसूक्त का जप करने से मनुष्य के महापापों तथा

जप्त्वा तु पौरुषम् ॥ ६ ॥ कृच्छ्रैर्विशुद्धो जप्त्वा च हुत्वा स्नात्वाथ सर्वभाक् । अष्टादशभ्यः शान्तिभ्यस्तिस्त्रोऽन्याः शान्तयो वराः ॥ ७ ॥ अमृता चाभया सौम्या सर्वोत्पातविमर्दनाः । अमृता सर्वदैवत्या अभया ब्रह्मदैवता ॥ ८॥ सौम्या च सर्वदैवत्या एका स्यात् सर्वकामदा । अभयाया मणिः कार्य्यो वरुणस्य भृगूत्तम ! ॥ ९ ॥ शतकाण्डोऽमृतायाश्च सौम्यायाः शङ्खजो मणिः । तद्दैवत्यास्तथा मन्त्राः सिद्धौ स्यान्मणिबन्धनम् ॥ १० ॥ दिव्यान्तरीक्षभौमादि समुत्पातार्दना इमा । दिव्यान्तरीक्षभौमन्तु अद्भुतं त्रिविधं शृणु॥ ११॥ ग्रहर्क्षवैकृतं दिव्यमान्तरीक्षं निबोध मे । उल्कापातश्च दिग्दाहः परिवेशस्तथैव च ॥ १२ ॥ गन्धर्वनगरञ्चैव वृष्टिश्च विकृता च या। चरस्थिरभवं भूमौ भूकम्पमपि भूमिजम् ॥ १३॥ सप्ताहाभ्यन्तरे वृष्टावद्भुतं निष्फलं भवेत् । शान्तिं विना त्रिभिर्वर्षैरद्भुतं भयकृद् भवेत् ॥ १४ ॥ देवतार्चाः प्रनृत्यन्ति वेपन्ते प्रज्वलन्ति च । आरटन्ति च रोदन्ति प्रस्विद्यन्ते हसन्ति च ॥ १५ ॥ अर्च्चाविकारोपशमोऽभ्यर्च्य हुत्वा प्रजापतेः। अनग्निर्दीप्यते यत्र राष्ट्रे व भृशनिःस्वनम् ॥ १६ ॥ न दीप्यते चेन्धनवांस्तद्राष्ट्रं पीड्यते नृपैः । अग्निवैकृत्यशमनमग्निमन्त्रैश्च भार्गव॥ १७॥ अकाले फलिता वृक्षाः क्षीरं रक्तं स्त्रवन्ति च । वृक्षोत्पातप्रशमनं शिवं पूज्य च कारयेत्॥ १८॥ अतिवृष्टिरनावृष्टिर्दुर्भिक्षायोभयं मतम् । अनृतौ त्रिदिनारब्धवृष्टिर्ज्ञेया भयाय हि॥ १९॥ वृष्टिवैकृत्यनाशः स्यात् पर्जन्येन्द्वर्कपूजनात् । नगरादपसर्पन्ते समीपमुपयान्ति च ॥ २०॥ नद्यो ह्रदप्रश्रवणा विरसाश्च भवन्ति च। सलिलाशय वैकृत्ये जप्तव्यो वारुणो मनुः॥ २१॥ अकालप्रसवा नार्य्यः कालतो वा प्रजास्तथा। विकृतप्रसवाश्चैव युग्मप्रसवनादिकम्॥ २२॥ स्त्रीणां प्रसववैकृत्ये स्त्रीविप्रादि प्रपूजयेत् ।

उपपापों का अन्त हो जाता है ।। ६ ।। कृच्छ्रव्रत करके शुद्ध हुआ मनुष्य पुरुष सूक्त का जप और होम करके सब कुछ पा लेता है ।। ६ ।। अठारह प्रकार की शान्तियों में से तीन प्रकार की शान्तियाँ श्रेष्ठ हैं ।। ७ ।। अमृता, अभया और सौम्या । ये सभी प्रकार के उत्पातों को विनष्ट कर देती हैं । अमृता शान्ति सर्व दैवत्या होती है । अभया शान्ति के अधिष्ठाता ब्रह्माजी हैं।।८।। सौम्या शान्ति भी सर्वदेवग होती हैं । इनमें से प्रत्येक शान्ति समस्त कामनाओं को पूर्ण कर देने वाली होती है । हे भृगु श्रेष्ठ ! अभया शान्ति के लिए वरुण वृक्ष की मणि बनाना चाहिए।।९।। अमृता शान्ति के लिए दुर्वा की मणि बनाना चाहिए और साम्या शान्ति के लिए शंख की मणि बनाना चाहिए । जिस शान्ति का मणि बन्धन करना हो उस शान्ति से संबद्ध देवता के मन्त्रों से सिद्ध करके मणि को बाँधना चाहिए ।। १० ।। ये शान्तियाँ दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम उत्पातों का मर्दन करने वाली होती हैं । दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम ये तीन प्रकार के उत्पात बतलाए जाते हैं उसे आप सुनें ।। ११ ।। ग्रहों एवं नक्षत्रों की विकृति से होने वाले उत्पात को दिव्य उत्पात कहते हैं । अब अन्तरिक्ष उत्पात के विषय में सुनें । उल्कापात, दिग्दाह तथा परिवेश।।१२।। (सूर्य पर घेरा पड़ना) गन्धर्वनगर और विकृत वृष्टि ये अन्तरिक्ष सम्बन्धी उत्पात हैं । भूमि पर स्थिर एवं जंगम जीवों द्वारा होने वाले उत्पात तथा भूकम्प ये भौम उत्पात हैं ।।१३।। इन तीनों प्रकार के उत्पातों के दिखायी देने के पश्चात् एक सप्ताह के भीतर यदि वृष्टि हो जाय तो अद्भुत निष्फल हो जाता है । यदि शान्ति नहीं की जाय तो ये अद्भुत तीन वर्षों के भीतर संसार के लिए भय का फल प्रदान करते हैं ।। १४ ।। जब देवताओं की मूर्तियाँ, काँपती, जलती शब्द करती, रोती, पसीने-पसीने होती तथा हँसती हैं तो मूर्ति के विकार की शान्ति के लिए उनकी पूजा करके प्राजापत्य याग करना चाहिए ।। १५ ।। जिस राष्ट्र में विना जलाये ही आग (जोर से आवाज करती हुई) जल जाती है और इन्धन डालने पर भी वह नहीं जलती है वह राष्ट्र राजाओं के द्वारा पीड़ित होता है ।। १६ ।। भृगुनन्दन ! अग्नि सम्बन्धी विकृति की शान्ति के लिए, अग्निदेवता के मन्त्रों से होम करना चाहिए ।। १७ ।। जब वृक्ष असमय में फल देने लगे और दूध तथा रक्त बहायें तो वह वृक्षजनित भौम उत्पात होता है । इस उत्पात की शान्ति शिव की पूजा करके करानी चाहिए ।। १८ ।। अतिवृष्टि तथा अनावृष्टि ये दोनों दुर्भिक्ष के कारण होते हैं । वर्षा ऋतु को छोड़कर दूसरी ऋतु में तीन दिन तक वर्षा का होना भयजनक होता है ।। १९ ।। वृष्टिजन्य विकार का नाश पर्जन्य, चन्द्रमा तथा सूर्य के पूजन से होता है । नदियाँ जिस नगर से दूर चली जाती हैं अथवा नगर के अत्यन्त सन्निकट चली जाती हैं, जहाँ के सरोवर और झरने सूख जाते हैं ।। २०।। इस तरह के जलाशय सम्बन्धी विकार के उत्पन्न हो जाने पर उसकी शान्ति कराने के लिए वरुण का मन्त्र जपना चाहिए ।। २१ ।। जहाँ की नारियाँ कुसमय में प्रसव करें अथवा समय से प्रसव न करें, या विकृत गर्भ पैदा करें अथवा एक साथ दो या उससे अधिक

बडवा हस्तिनी गौर्वा यदि युग्मं प्रसूयते॥ २३॥ विजात्यं विकृतं वापि षड्भिर्मासैम्रियेत वै । विकृतं वा प्रसूयन्ते परचक्रभयं भवेत्॥ २४॥ होमः प्रसूतिवैकृत्ये जपो विप्रादिपूजनम् । यानि यानान्ययुक्तानि युक्तानि न वहन्ति च॥ २५॥ आकाशे तूर्य्यनादाश्च महद्भयमुपस्थितम् । प्रविशन्ति यदा ग्राममारण्या मृगपक्षिणः ॥ २६ ॥ अरण्यं यान्ति वा ग्राम्याः जलं यान्ति स्थलोद्भवाः । स्थलं वा जलजा यान्ति राजद्वारादिके शिवाः ॥२७॥ प्रदोषे कुक्कुटो वासे शिवा चार्कोदये भवेत् । गृहे कपोतः प्रविशेत् क्रव्याद् वा मूर्ध्नि लीयते ॥ २८ ॥ मधुरां मक्षिकां कुर्य्यात् काको मैथुनगो दृशि । प्रासादतोरणोद्यान द्वारप्राकारवेश्मनाम् ॥ २९ ॥ अनिमित्तन्तु पतनं दृढ़ानां राजमृत्यवे । रजसा वाथ धूमेन दिशो यत्र समाकुलाः॥ ३०॥ केतूदयोपरागौ च छिद्रता शशिसूर्य्ययोः। ग्रहर्क्षविकृतिर्यत्र तत्रापि भयमादिशेत् ॥ ३१॥ अग्निर्यत्र न दीप्येत स्त्रवन्ते चोदकुम्भकाः । मृतिर्भयं शून्यतादिरुत्पातानां फलं भवेत् । द्विजदेवादिपूजाभ्यः शान्तिर्जप्यैस्तु होमतः ॥ ३२ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये उत्पातशान्तिकथनं नाम त्रिषष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६३ ॥

चतुःषष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

देवपूजावैश्वदेवबलिः

पुष्कर उवाच– देवपूजादिकं कर्म वक्ष्ये चोत्पातमर्दनम् । आपोहिष्टेति तिसृभिः स्नातोऽर्घ्यं विष्णवेऽर्पयेत् ॥ १ ॥ हिरण्यवर्णा इति च पाद्यञ्च

बच्चे पैदा करें ।। २२ ।। वहाँ की स्त्रियों के प्रसवविकृति की शान्ति करने के लिए स्त्रियों तथा ब्राह्मणों आदि की पूजा करनी चाहिए ।। २२ ।। घोड़ी, हस्तिनी अथवा गौ जहाँ पर जोड़े बच्चे पैदा करें अथवा विकारयुक्त विसजातीय सन्तान को उत्पन्न करें अथवा छह महीने में ही मर जायँ या विकारयुक्त बच्चा दें तो वहाँ पर शत्रु के आक्रमण का भय होत है ।। २३-२४ ।। इस तरह के प्रसूति विकार के उत्पन्न होने पर जप तथा ब्राह्मण आदि का पूजन करना चाहिए । जहाँ पर अयोग्य पशु वाहन में आकर जुत जाते हैं और अयोग्य और योग्य पशु उस वाहन को नहीं खिंच पाते हैं । तथा आकाश में तुर्यनाद होने लगता है तो उस समय महान् भय उपस्थित होता है ।। २५ ।। जब वन्य पशु एवं पक्षी ग्राम मे प्रवेश कर जाते हैं या ग्राम्य जीव अरण्य में प्रवेश कर जाते हैं अथवा स्थल के जीव जल में प्रवेश कर जायें या जल में उत्पन्न होने वाले जीव स्थल पर चले जायँ या राजद्वार पर सियारिनें आ जाती हैं ।। २६-२७ ।। प्रदोषकाल (सायंकाल) में मुर्गे बोलने लगें अथवा सूर्योदय होने पर सियारिनें बोलने लगें, घर में कबूतर प्रवेश कर जाय या सिर पर कौआ बैठ जाय ।। २८ ।। साधारण मक्खी मधु बनाने में लगें अथवा सबों के सामने कौए मैथुन में प्रवृत्त होने लगें, दृढ़ प्रासाद, तोरण, द्वार, परकोटा और भवन विना कारण के ही गिरने लगें तो इससे राजा की मृत्यु की सूचना मिलती है ।। २९ ।। जहाँ की दिशाएँ धूल अथवा धुएँ से भर जायँ,केतु का उदय होने लगे, सूर्य चन्द्रमा में ग्रहण लगे, अथवा सूर्य चन्द्रमा में छिद्र दिखायी देने लगे तथा ग्रहों एवं नक्षत्रों में विकार हो जाय वहाँ भी आने वाले भय की भविष्यवाणी करनी चाहिए ।। ३१ ।। जहाँ पर आग न जले,जल भरे घड़े अकारण ही चूने लग जायँ तो इन उत्पातों के फल मृत्यु, भय एवं महामारी आदि होते हैं । इन सबों की शान्ति ब्राह्मण तथा देवता की पूजा से तथा मन्त्रों का जप एवं होम से होती है ।। ३२ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का उत्पात शान्ति वर्णन नामक दो सौ तिरसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६३ ॥

अध्याय २६४

श्रीपुष्करजी ने कहा– अब मैं उत्पातों को विनष्ट करने वाले देवपूजा आदि कर्मों का वर्णन करता हूँ । मनुष्य को चाहिए कि वह स्नान करके आपोहिष्ठा० इत्यादि तीन मन्त्रों से भगवान्

तिसृभिर्द्विज ! । शन्न आपो ह्याचमनमिदमापोऽभिषेचनम्॥ २॥ रथे अक्षे चतसृभिर्गन्धं युवेति वस्त्रकम् । पुष्पं पुष्पवतीत्येवं धूपं धूरऽसि चाप्यथ॥३॥ तेजोऽसि शुक्रं दीपं स्यान्मधुपर्कं दधीति च । हिरण्यगर्भ इत्यष्टावृचः प्रोक्ता निवेदने॥ ४॥ अन्नस्य मनुजश्रेष्ठ ! पानस्य च सुगन्धिनः। चामरव्यजनोपानच्छत्रं यानासने तथा ॥ ५ ॥ यत् किञ्चिदेवमादि स्यात् सावित्रेण निवेदयेत् । पौरुषन्तु जपेत् सूक्तं तदेव जुहुयात् तथा ॥ ६ ॥ अर्च्चाभावे तथा वेद्यां जले पूर्णघटे तथा। नदीतीरेऽथ कमले शान्तिः स्याद् विष्णुपूजनात् ॥ ७ ॥ ततो होमः प्रकर्त्तव्यो दीप्यमाने विभावसौ । परि संमृज्य पर्य्युक्ष्य परिस्तीर्य्य परिस्तरैः॥ ८॥ सर्वान्नाग्रं समुद्धृत्य जुहुयात् प्रयतस्ततः । वासुदेवाय देवाय प्रभवे चाव्याय च ॥ ९॥ अग्नये चैव सोमाय मित्राय वरुणाय च । इन्द्राय च महाभाग ! इन्द्राग्निभ्यां तथैव च ॥ १० ॥ विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यः प्रजानां पतये नमः । अनुमत्यै तथा राम ! धन्वन्तरय एव च ॥ ११॥ वास्तोषपत्यै ततो देव्यै ततः स्विष्टिकृतेऽग्नये । सचतुर्थ्यन्तनाम्ना तु हुत्वा तेभ्यो बलिं हरेत्॥१२॥ तक्षोपतक्षमभितः पूर्वेणाग्निमतः परम्। अश्वानामपि धर्मज्ञ ! ऊर्णानामानि चाप्यथ॥ १३॥ निरुन्धीधूम्रिणीका च अस्वपन्ती तथैव च । मेघपत्नी च नामानि सर्वेषामेव भार्गव ! ॥ १४ ॥ आग्नेयाद्याःक्रमेणाथ ततःशक्तिषु निक्षिपेत् । नन्दिन्यै च सुभाग्यै च सुमङ्गल्यै च भार्गव!॥१५॥ भद्रकाल्यै ततो दत्त्वा स्थूणायाञ्च तथा श्रिये। हिरण्यकेश्यै च तथा वनस्पतय एव च ॥ १६ ॥ धर्माधर्ममयौ द्वारे गृहमध्ये ध्रुवाय च । मृत्यवे च वहिर्द्द्याद् वरुणायोदकाशये ॥ १७॥ भूतेभ्यश्च वहिर्दद्याच्छरणे धनदाय च । इन्द्रायेन्द्रपुरुषेभ्यो दद्यात् पूर्वेण मानवः ॥ १८ ॥

विष्णु को अर्घ्य प्रदान करे ।। १ ।। फिर हिरण्यवर्णाम् इन मन्त्रों से भगवान् को पाद्य समर्पित करे । शन्नो आपः इस मन्त्र से भगवान् को आचमन कराये,इदमापः मन्त्र से भगवान् का अभिषेक कराये ।। २ ।। रथे० अक्षे० चतस्र० इन तीन मन्त्रों से श्रीभगवान् के अंगों में चन्दन लगाये, युवा सुवासा मन्त्र से उन्हें वस्त्र समर्पित करे । पुष्पवतीः इस मन्त्र से पुष्प चढ़ाये, धूरसि धूर्व० इत्यादि मन्त्र से धूप दे ।। ३ ।। तेजोऽसि शुक्रमसि० इस मन्त्र से दीप, दधिक्राब्णो० इस मन्त्र से मधुपर्क, हिरण्यगर्भः इत्यादि आठ मन्त्रों से श्रीभगवान् को सुगन्धित अन्न एवं पान निवेदित करे ।। ४ ।। पुनः सावित्र मन्त्रों से चामर, व्यजन, उपानह, छत्र, वाहन, आसन आदि जो कुछ भी हो निवेदित करे ।। ५ ।। सबके अन्त में पुरुष सूक्त का पाठ करे तथा उसी के मन्त्रों से होम करे । मूर्ति के अभाव में वेदी पर स्थित जल पूर्ण कलश पर अथवा नदी के तट पर अथवा कमल के पुष्प में भगवान् विष्णु की पूजा करने से शान्ति होती है ।। ७ ।। फिर जब रात्रि में आग घरों में जलने लगे तब होम करना चाहिए । भूमिस्थ वेदी अच्छी तरह से मार्जन एवं प्रोक्षण करके उसके चारों ओर कुश विछाये । फिर सम्पूर्ण भोजन का थोड़ा-थोड़ा अग्रभाग निकालकर प्रदीप्त अग्नि में सावधानी पूर्वक होम करे । आहुति के मन्त्र हैं- (१) वासुदेवाय स्वाहा (२) देवाय स्वाहा (३) प्रभवे स्वाहा (४) अव्ययाय स्वाहा (५) अग्नये स्वाहा (६) सोमाय स्वाहा (७) मित्राय स्वाहा (८) वरुणाय स्वाहा (९) इन्द्राय स्वाहा (१०) इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा (११) विश्वेभ्योदेवेभ्यः स्वाहा (१२) प्रजापतये स्वाहा (१३) अनुमत्यै स्वाहा ()१४) धन्वन्तरये स्वाहा (१५) वास्तोष्पतये स्वाहा (१६) देव्यै स्वाहा (१७) अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । इस तरह से देवताओं के चतुर्थ्यन्त नामों से आहुति देकर उनके लिए बलि प्रदान करे ।। ८-१२ ।। धर्मज्ञ अग्नि कोण से प्रारम्भ करके अग्निकोण में तथा दक्षिण में उपतक्षा, नैर्ऋत्य कोण में अश्वाओं, ऊर्णाओं को पश्चिम में, निरुन्धियों को वायव्यकोण में, धूम्रिणी को उत्तर में, अस्वपन्ती को ईशानकोण में और मेघपत्नी को पश्चिम में बलि दे ।। १३ ।। (विशेष इन सबों के बलि का मन्त्र है- तक्षायै नमः, उपतक्षायै नमः, अश्वाभ्यो नमः,ऊर्णाभ्यो नमः, निरुन्ध्यै नमः, धूम्रिणीकायै नमः, अस्वपन्त्यै नमः तथा मेघ्रपत्न्यैनमः) इसके पश्चात् अग्नि आदि दिशाओं में नन्दिनी आदि शक्तियों को उनके चतुर्थ्यन्त नामों से बलि प्रदान करे । हे भार्गव ! वे शक्तियाँ हैं- नन्दिनी, सुभगा, सुमंगला तथा भद्रकाली । स्थूणा (स्तम्भ) पर श्री हिरण्यकेशी तथा वनस्पति के लिए बलि दे ।। १६ ।। द्वार पर धर्म एवं अधर्म को गृह के भीतर ध्रुव को तथा गृह से बाहर मृत्यु के लिए बलि दे। वरुण

यमाय तत् पुरुषेभ्यो दद्याद् दक्षिणतस्तथा । वरुणाय तत्पुरुषेभ्यो दद्यात् पश्चिमतस्तथा ॥ १९ ॥ सोमाय सोमपुरुषेभ्यो मध्ये दद्यात् तथैव च॥२०॥ आकाशे विश्वेदेवाय स्थण्डिलाय क्षितौ तथा । दिवा दिवाचरेभ्यश्च रात्रौ रात्रिचरेषु च ॥ २१ ॥ बलिं वहिस्तथा दद्यात् सायं प्रातस्तु प्रत्यहम् । पिण्डनिर्वपणं कुर्य्यात् प्रातःसायं न कारयेत् ॥ २२॥ पित्रे तु प्रथमं दद्यात् तत्पित्रे तदनन्तरम् । प्रपितामहाय तन्मात्रे पितृमात्रे ततोऽर्पयेत्॥ २३॥ तन्मात्रे दक्षिणाग्रेषु कुशेष्वेवं यजेत् पित्तृन् । इन्द्रवारुणवायव्या याम्या वा नैर्ऋताश्च ये॥ २४॥ ते काकाः प्रतिगृह्णन्तु इमं पिण्डं मयोद्धृतम् । काकपिण्डन्तु मन्त्रेण शुनः पिण्डं प्रदापयेत् ॥ २५ ॥ विवस्वत; कुले जातौ द्वौ श्यामशबलौ शुनौ । तेषां पिण्डं प्रदास्यामि पथि रक्षन्तु मे सदा ॥ २६ ॥ सौरभेयः सर्वहिताः पवित्राः पापनाशनाः । प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः॥ २७॥ गोग्रासञ्च स्वस्त्ययनं कृत्वा भिक्षां प्रदापयेत् । अतिथीन् दीनान् पूजयित्वा गृही भुञ्जीत च स्वयम् ॥ २८ ॥ ओं भूः स्वाहा ओं भुवः स्वाहा ओं स्वः स्वाहा ओं भू र्भुवः स्वः स्वाहा । ओं देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। ओं पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। ओं आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। ओं मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। ओं एनस एनसोऽवयजनमसि स्वाहा । यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार यच्चाविद्वांस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयवजनमसि

को जल में बलि दें।। १७ ।। घर के बाहर भूतबलि दे, पूर्व दिशा में बलि दें ।। १८।। दक्षिण दिशा में यम तथा यमपुरुषों को बलि दे । पश्चिम दिशा में वरुण पुरुषों के लिए बलि प्रदान करे ।। १९ ।। उत्तर दिशा में सोम तथा सोम पुरुष के लिए बलि प्रदान करे । मध्य में ब्रह्म तथा ब्रह्मपुरुष के लिए बलि दे ।। २० ।। विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः इस मन्त्र से आकाश की ओर विश्वेदेव के लिए बलि देनी चाहिए । स्थण्डिलाय नमः इस मन्त्र से पृथिवी पर स्थण्डिल को बलि दे। दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः इस मन्त्र से दिन में दिवाचर भूतों के लिए बलि दे। रात्रिचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः इस मन्त्र से रात्रि में चलने वाले भूतों के लिए बलि प्रदान करे ।। २१।। जो बलियाँ घर के बाहर दी जाती हैं, उन्हें प्रतिदिन सायंकाल एवं प्रातःकाल देते रहना चाहिए । यदि दिन में श्राद्ध सम्बन्धी पिण्डदान दिया जाय तो फिर सायंकाल बलि नहीं देनी चाहिए।। २२ ।। पितृश्राद्ध करते समय दक्षिणाग्रकुशों पर सर्वप्रथम पिता को पिण्डदान दे, फिर पितामह को और उसके पश्चात् प्रपितामह को । इस तरह पहले माता को पिण्डदान दे, उसके पश्चात् पितामही को और उसके बाद प्रपितामही को ।। २३ ।। (बने पाकों में से बलिवैश्वदेव के पश्चात् पाँच बलियाँ दी जाती हैं । सर्वप्रथम गोबलि दी जाती है किन्तु यहाँ पर सर्वप्रथम काक बलि बतलायी गयी है । काक बलि इन्द्रवरुण० इत्यादि मन्त्र से देना चाहिए । अर्थात् इन्द्रवरुण, वायु, यम एवं निऋति देवता की दिशाओं में रहने वाले कौए मेरे द्वारा दिए जाने वाले इस पिण्ड को ग्रहण करें ।। २४ ।। इसके पश्चात् विवस्वतः इत्यादि मन्त्र से श्वानबलि देना चाहिए । मन्त्र का अर्थ है- विवस्वान् के कुल में श्याम और शबल दो श्वान उत्पन्न हुए हैं, मैं उन दोनों को प्रसन्न करने के लिए बलि देता हूँ । वे मार्ग में सदा मेरी रक्षा करें ।। २६ ।। इसके पश्चात् सौरभेयः इत्यादि मन्त्र से गोबलि देनी चाहिए । मन्त्र का अर्थ है- त्रैलोक्य की माताएँ, सुरभि गौ की पुत्रियाँ, सबों का कल्याण करने वाली, पवित्र एवं पापों का विनाश करने वाली गायें मेरे द्वारा दिये जाने वाले ग्रास को ग्रहण करें ।। २७ ।। इस मन्त्र द्वारा गोग्रास देकर स्वस्त्ययन करना चाहिए । इसके पश्चात् याचकों को भिक्षा दिलावे । फिर अतिथियों एवं दीन जनों की पूजा करके गृहस्थ को स्वयं भोजन करना चाहिए ।। २८ ।। जिस पुरुष ने अग्नि का आधान नहीं किया है, उसे निम्नांकित मन्त्रों से जल में अन्न की आहुति देनी चाहिए । (१) ओं भूः स्वाहा, (२) ओं भुवः स्वाहा, (३) ओं स्वः स्वाहा, (४) ओं भूर्भुवः स्वः स्वाहा, (५) ओं देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा, (६) ओं पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा, (७) ओं आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा, (८) ओं मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा, (९) ओं एनसएनसोऽवयजनमसि स्वाहा, (१०) यच्चाहमेनो वद्वांश्चकार यच्चाविद्वांस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा, (११) ओं अग्नये स्विष्टकृते

स्वाहा। अग्नये स्विष्टिकृते स्वाहा। ओं प्रजापतये स्वाहा । विष्णुपूजावैश्वदेवबलिसंकीर्त्तितो मया ॥ २९॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये देवपूजावैश्वदेवबलिःकथनं नाम चतुःषष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६४ ॥

पञ्चषष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दिक्पालादिस्नानम्

अग्निरुवाच– **सर्वार्थसाधनं स्नानं वक्ष्ये शान्तिकरं शृणु । स्नानपयेच्च सरित्तीरे ग्रहान् विष्णुं विचक्षणः ॥ १ ॥ देवालये ज्वरात्त्यादौ विनायकग्रहार्दिते । विद्यार्थिना ह्रदे गेहे जयकामस्य तीर्थके ॥ २॥ पद्मिन्यां स्नापयेत् नारीं गर्भो यस्याः स्त्रवेत् तथा । अशोकसन्निधौ स्नायाज्जातो यस्या विनश्यति ॥ ३ ॥ पुष्पार्थिनीञ्च पुष्पाढ्ये पुत्रार्थिनीञ्च सागरे । गृहसौभाग्यकामानां सर्वेषां विष्णुसन्निधौ ॥ ४ ॥ वैष्णवे रेवतीपुष्ये सर्वेषां स्नानमुत्तमम्। स्नानकामस्य सप्ताह पूर्वमुत्सादनं स्मृतम् ॥ ५॥ पुनर्नवां रोचनाञ्च शताङ्गं गुरुणी वचम् । मधूकं रजनी द्वे च तगरं नागकेशरम् ॥ ६ ॥ अम्बरीञ्चैव मञ्जिष्ठां मांसीयासकमर्दनैः । प्रियङ्गुसर्षपं कुष्ठं बलां ब्राह्मीञ्च कुङ्कुमम् ॥ ७॥ पञ्चगव्यं शक्तुमिश्रं उद्वर्त्त्य स्नानमाचरेत् । मण्डले कर्णिकायाञ्च विष्णुं ब्रह्माणमर्चयेत् ॥ ८ ॥ दक्षे वामे हरं पूर्वं पत्रे पूर्वादिके क्रमात् । लिखेदिन्द्रादिकान् देवान् सायुधान् सहबान्धवान् ॥ ९ ॥ स्नानमण्डलकान् दिक्षु कुर्य्याच्चैव विदिक्षु च । विष्णुब्रह्मेशशक्रादींस्तदस्त्राण्यर्च्य होमयेत् ॥ १० ॥ एकैकस्य त्वष्टशतं**

स्वाहा और (१२) ओं प्रजापतये स्वाहा ।। इस प्रकार से तुम्हें मैंने विष्णु का पूजन और बलिवैश्वदेव का वर्णन किया ।। २९।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का देवपूजा और वैश्वदेवबलि का वर्णन नामक दो सौ चौसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६४ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं सम्पूर्ण अर्थों को सिद्ध करने वाले और शान्तिकारक स्नान का वर्णन करता हूँ । बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह नदी के तट पर श्रीविष्णु भगवान् और ग्रहों को स्नान कराये ।। १ ।। ज्वरजनित पीड़ा आदि के होने पर तथा विनाक एवं ग्रहोंसे पीड़ित होने पर रोगी को देवालय में स्नान कराना चाहिए । विद्यार्थी को किसी जलाशय अथवा घर में ही स्नान करना चाहिए । विजय की कामना करने वाले को तीर्थ में स्नान कराना चाहिए ।। २ ।। जिस नारी का गर्भ गिर जाता हो उसे कमलिनी पर स्नान कराना चाहिए । जिसका पुत्र उत्पन्न होकर मर जाता हो उसे अशोकवृक्ष के सन्निकट स्नान कराना चाहिए ।।३ ।। जिस नारी को रजोदर्शन नहीं होता हो उसे पुष्प से परिपूर्ण स्थान में स्नान कराना चाहिए और पुत्र चाहने वाली नारी को सागर में स्नान कराना चाहिए । जो लोग घर में सौभाग्य की प्राप्ति की कामना करते हों उन सभी लोगों को भगवान् विष्णु की प्रतिमा के सन्निकट स्नान करना चाहिएँ।। ४ ।। श्रवण, रेवती एवं पुष्य नक्षत्रों में सबों के लिए स्नान करना प्रशस्त है ।। ४ ।। स्नान करने की कामना करने वाले को एक सप्ताह पहले से ही उबटन लगाना चाहिए ।। ५ ।। पुनर्नवा (गधपूर्णा) रोचना, सप्ताङ्ग (तिनिश) अगुरु की छाल, मधूक, (महुआ) दो प्रकार की हल्दी (सोंठ हल्दी और दारुहल्दी) तगर, नाग केसर ।। ६ ।।अम्बरी,मञ्जिष्ठा, (मजीठ) जटामांसी, यासक, कर्दभ, (यक्ष कर्दभ), प्रियंगु, सर्षप, कूट, बला, ब्राह्मी,कुंकुम, तथा सत्तू मिश्रित पंचगव्य इनका उबटन लगाकर स्नान करना चाहिए ।। ७ ।। उसके बाद ताम्रपत्र पर अष्टदल कमल का निर्माण करे सर्वप्रथम उसकी कर्णिका में श्रीविष्णु भगवान् का उनके दाहिने भाग में ब्रह्माजी का एवं वामभाग में शंकरजी को चित्रित करके और उनका पूजन करें ।। ८ ।। पुनः पूर्व आदि दिशाओं के दलों में इन्द्र आदि दिक्पालों को, उनके आयुधों को तथा उनके बान्धवों को लिखे ।। ९ ।। उसके पश्चात् पूर्व आदि दिशाओं में तथा अग्नि आदि कोण में भी आठ स्नानमण्डलों का निर्माण करे।

समिधस्तु तिलान् घृतम् । भद्रः सुभद्रः सिद्धार्थः कलशाः पुष्टिवर्द्धनाः ॥ ११ ॥ अमोघश्चित्रभानुश्च पर्जन्योऽथ सुदर्शनः । स्थापयेत् तु धटानेतान् साश्विरुद्रमरुद्गणान् ॥ १२॥ विश्वेदेवास्तथा दैत्या वसवो मुनयस्तथा । आवेशयन्तु सुप्रीतास्तथान्या अपि देवताः॥ १३॥ ओषधीर्निक्षिपेत् कुम्भे जयन्तीं विजयां जयाम् । शतावरीं शतपुष्पां विष्णुक्रान्तापराजिताम् ॥ १४ ॥ ज्योतिष्मतीमतिबलाञ्चन्दनोशीरकेशरम्। कस्तूरीकाञ्च कर्पूरं बालकं पत्रकं त्वचम् ॥ १५॥ जातीफलं लवङ्गञ्चमृत्तिकां पञ्चगव्यकम् । भद्रपीठे स्थितं साध्यं स्नापयेयुर्द्विजाबलात्॥ १६॥ राज्याभिषेकमन्त्रोक्त देवानां होमकाः पृथक्। पूर्णाहुतिं ततो दत्त्वा गुरवे दक्षिणां ददेत् ॥ १७ ॥ इन्द्रोऽभिषिक्तो गुरुणा पुरा दैत्यान् जघान ह । दिक्पालस्नानं कथितं संग्रामादौ जयादिकम् ॥ १८॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दिक्पालस्नानकथनं नाम पञ्चषष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६५ ॥

षट्षष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

विनायकस्नानम्

पुष्कर उवाच– **विनायकोपसृष्टानां स्नानं सर्वकरं वदे । विनायकः कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थं विनियोजितः॥ १॥ गणानामाधिपत्ये च केशवेशपितामहैः। स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति॥ २॥ विनायकोपसृष्टस्तु क्रव्यादानधिरोहति । व्रजमानस्तथात्मानं मन्यतेऽनुगतं परैः॥ ३॥ विमना**

उन मण्डलों में विष्णु, ब्रह्म, शिव तथा इन्द्र आदि देवताओं तथा उनके अस्त्रों की पूजा करके होम करे ।। १० ।। प्रत्येक के लिए अष्टोत्तरशत समिधाओं तिलों तथा घी का होम करे । पुनः भद्र, सुभद्र, सिद्धार्थ, पुष्टिवर्द्धन, अमोघ, चित्रभानु, पर्जन्य एवं सुदर्शन नामक आठ कलशों की स्थापना करके उनमें क्रमशः अश्विनी कुमार, रुद्र, मरुद्गण, विश्वेदेव, दैत्य, वसु एवं मुनियों की पूजा करे ।। ११-१२।। आवाहन करते हुए उनसे प्रार्थना करे कि- आप लोग तथा अन्य देवता भी प्रसन्नतापूर्वक इन कलशों में आविष्ट हों जायँ ।। १३ ।। इसके पश्चात् कलशों में, जयन्ती विजया, जया, शतावरी, शतपुष्प, विष्णुकान्ता, अपराजिता ।। १४ ।। ज्योतिष्मती, अतिबला, चन्दन, उशीर (खश) केशर, कस्तूरी, कर्पूर, बला, पत्रक (पत्ते) त्वचा (दल) जायफल तथा लवङ्ग आदि औषधियों एवं मृत्तिका एवं पञ्चगव्य डालना चाहिए ।। १५ ।। उसके पश्चात् भद्रपीठ पर बैठे हुए साध्य (यजमान) को ब्राह्मण गण बलपूर्वक स्नान करायें ।। १६ ।। इसके पश्चात् राज्याभिषेक के मन्त्रों में बतलाये गये देवताओं के लिए पृथक्-पृथक् होम करना चाहिए । फिर राजा पूर्णाहुति करे और आचार्य को दक्षिणा दे ।। १७ ।। इस तरह से इन्द्र को जब वृहस्पति ने अभिषिक्त किया था तब इन्द्र दैत्यों को मारे । इस तरह से आपको मैंने दिक्पाल स्नान को बतलाया । इससे संग्राम आदि में विजय की प्राप्ति होती है ।। १८।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का दिक्पाल स्नान वर्णन नामक दो सौ पैंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६५ ॥

श्रीपुष्करजी ने कहा– जो लोक विघ्नराज विनायक से पीड़ित हैं, उनको सभी प्रकार का सुख प्रदान करने वाले विनायक स्नान का वर्णन मैं करता हूँ । कर्मों में विघ्न और उसकी सिद्धि के लिए विष्णु, शंकर और ब्रह्मा ने विनायक को पुष्पदन्त आदि गणों का अधिपति बनाया ।। १ ।। जो व्यक्ति विनायक से पीड़ित रहता है वह स्वप्न में जल में बहुत अधिक स्नान करता है, वह बहुत अधिक गहरे जल में अपने को बूड़ते हुए तथा मूंड मुड़ाये लोगों को देखता है । वह कच्चा मांस खाने वाले गृद्धों तथा व्याघ्रों के पृष्ठ पर चढ़ता है ।। २ ।। जब वह कहीं चलता है तो उसे लगता है कि शत्रु मेरा पीछा कर रहा है ।। ३ ।। वह विक्षिप्तचित्त होता है । उसके द्वारा किये जाने वाले समस्त कार्य व्यर्थ होते हैं । वह अकारण ही दुःखी रहता है ।

विफला रम्भः संसीदत्यनिमित्ततः । कन्या वरं न चाप्नोति न चापत्यं वराङ्गना ॥ ४ ॥ आचार्य्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं लभेत् । धनी न लाभमाप्नोति न कृषिञ्च कृषीबलः ॥ ५ ॥ राजा राज्यं न चाप्नोति स्नपनं तस्य कारयेत् । हस्तपुष्याश्वयुक्सौम्ये वैष्णवे भद्रपीठके ॥ ६ ॥ गौरसर्षपकल्केन साज्येनोत्सादितस्य च । सर्वोषधैः सर्वगन्धैः प्रलिप्तशिरसस्तथा ॥ ७॥ चतुर्भिः कलशैः स्नानं तेषु सर्वौषधीः क्षिपेत् । अश्वस्थानाद् गजस्थानाद् वल्मीकात् सङ्गमाद्ध्रदात् ॥ ८ ॥ मृत्तिकां रोचनां गन्धं गुग्गुलुं तेषु निक्षिपेत् । सहस्राक्षं शतधारमृषभिः पावनं कृतम्॥९॥ तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते । भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः॥ १०॥ भगमिन्द्रश्च वायुश्वच भगं सप्तर्षयो ददुः। यत् ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि ॥ ११ ॥ ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नन्तु सर्वदा । दर्भपिञ्जलिमादाय वामहस्ते ततो गुरुः ॥ १२॥ स्नातस्य सार्षपं तैलं श्रुवेणौदुम्बरेण च । जुहुयान् मूर्द्धनि कुशान् सव्येन परिगृह्य च॥ १३॥ मितश्च सम्मितश्चैव तथा शालककण्टकौ । कुष्माण्डो राजपुत्रश्च एतैःस्वाहासमन्वितैः॥१४॥ नामभिर्बलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः । दद्याच्चतुष्पथे शूर्पे कुशानास्तीर्य्य सर्वतः ॥ १५॥ कृताकृतांस्तण्डुलांश्च पललौदनमेव च । मत्स्यान् पक्कांस्तथैवामान् पुष्पं चित्रं सुरां त्रिधा ॥ १६ ॥ मूलकं पूरिकां पूपांस्तथैवैण्डविकास्त्रजः । दध्यन्नं पायसं पिष्टं मोदकं गुडमर्पयेत्॥१७॥ विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत् ततोऽम्बिकाम्। दूर्वासर्षपपुष्पाणां दत्त्वार्घ्यं पूर्णमञ्जलिम् ॥ १८ ॥ रूपं देहि यशो देहि सौभाग्यं

विघ्नराज के द्वारा सतायी गयी कन्या को जल्दी वर नहीं मिलता है और विवाहिता स्त्री संतान नहीं प्राप्त करती है ।। ४ ।। श्रोत्रिय को आचार्य पद नहीं मिलता है और शिष्य अध्ययन नहीं कर पाता है ।धनी व्यक्ति लाभ नहीं कमा पाता है और न तो किसान को खेती में ही लाभ होता है ।। ५ ।। राजा अपना राज्य भी नहीं प्राप्त कर पाता है । इस तरह के लोगों को विनायक स्नान कराना चाहिए । हस्त,पुष्य, अश्विनी, मृगशिरा तथा श्रवण नक्षत्र में किसी भद्रपीठ पर स्वस्तिवाचनपूर्वक स्नान करने का विधान है ।। ६ ।। पीली सरसों पीसकर उसे घी से ढीली करके उबटन बनाना चाहिए । उसे उस मनुष्य को सम्पूर्ण शरीर में मले फिर उसके सिर पर सर्वौषधि के साथ समस्त सुगन्धित द्रव्यों का लेप करे ।। ७ ।। उसको चार कलशों से स्नान कराने हेतु उन कलशों में सर्वौषधि डाले, अश्वशाला, गजशाल, बल्मीक (बाँवी) नदी का संगम तथा जलाशय से लायी गयी पाँच प्रकार की मिट्टी,गोरोचन, गन्ध (चन्दन कुंकुम आदि) तथा गुग्गुल भी उन कलशों में डाले ।। ८ ।। आचार्य पूर्व दिशा के कलश को उठाकर सहस्राक्षम्० मन्त्र पढ़ते हुए यजमान को स्नान कराये । मन्त्र का अर्थ है कि- जिसके हजारों नेत्र हैं, जिसकी सैकड़ों धाराएँ हैं तथा जिसे महर्षियों ने पावन बनाया उस पवित्र जल से मैं तुम्हारा अभिषेक कर रहा हूँ । यह पवित्र जल तुम्हें पवित्र बना दे ।। ९ ।। इसके बाद आचार्य दक्षिण दिशा के कलश से भग ते वरुणो राजा० इत्यादि मन्त्र से यजमान को स्नान कराये । मन्त्र का अर्थ है कि- 'राजावरुण, सूर्य, वृहस्पति, इन्द्र, वायु तथा सप्तर्षि गण ने तुम्हें कल्याण प्रदान किया है।।१०।। इसके पश्चात् आचार्य पश्चिम दिशा के कलश से यत् ते केशेषु० इत्यादि मन्त्र से यजमान को स्नान कराये । मन्त्र का अर्थ है- तुम्हारे केशों में, सीमन्त में, ललाट में, कानों में और नेत्रों में जो दुर्भाग्य है उसे जल देवता सदा के लिए शान्त कर दें ।। ११ ।। इसके पश्चात् आचार्य चौथा कलश लेकर उपर्युक्त तीनों मन्त्रों को पढ़ते हुए यजमान को स्नान करायें ।) इस प्रकार से स्नान करने वाले यजमान के मस्तक पर बायें हाथ में लिए हुए दर्भसमूह को रखकर आचार्य उस पर गूलर की स्रुवा से सरसों का तेल उठाकर डाले ।। १२-१३ ।। उस समय आचार्य इन मन्त्रों को पढ़ें- ॐ मिताय स्वाहा, सम्मिताय स्वाहा, शालकाय स्वाहा, कण्टकाय स्वाहा, कुष्माण्डाय स्वाहा, राजपुत्राय स्वाहा । इन स्वाहायुक्त चतुर्थ्यन्तमितादि नामों से आचार्य यजमान के सिर पर तेल डाले।।१४ ।। मस्तक पर तेल डालने के पश्चात् अग्नि में भी उपर्युक्त मन्त्रों से आहुति दें ।) फिर होम से बचे चरु द्वारा नमः पद से युक्त इन्द्र आदि को बलि देना चाहिए । फिर सूप में वस्त्र एवं कुश विछाकर, उसमें कच्चे-पके चावल, पिसे हुए तिल से युक्त ओदन (भात) अनेक प्रकार के पुष्प, तीन प्रकार की (गौड़ी, माधवी एवं पैष्टी) सुरा।।१५-१६।। मूली, पूड़ी, मालपुआ, पीठ के मालाएँ, दही मिश्रित अन्न, खीर,मिठाई और गुड़ इन सबों को एक साथ रखकर चौराहे पर रख दे ।। १७ ।। इसके पश्चात् विनायक की माता अम्बिका को दूर्वा, सरसों तथा पुष्पों

सुभगे ! मम । पुत्रं देहि धनं देहि सर्वान् कामांश्च देहि मे॥१९॥ भोजयेद् ब्राह्मणान् दद्यात् वस्त्रयुग्मं गुरोरपि। विनायकं ग्रहान् प्राच्र्य श्रियं कर्मफलं लभेत्॥ २०॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विनायकस्नानकथनं नाम षट्षठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६६ ॥

सप्तषष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

माहेश्वरस्नानलक्षकोटिहोमादयः

पुष्कर उवाच– **स्नानं माहेश्वरं वक्ष्ये राजादेर्जयवर्द्धनम् । दानवेन्द्राय बलये यज्जगादोशनाः पुरा ॥ १॥ भास्करेऽनुदिते पीठे प्रातः संस्नापयेद् घटैः। ओं नमो भगवते रुद्राय च बलाय च। पाण्डुरोचितभस्मानुलिप्तगात्राय । तद् यथा जय जय सर्वान् शत्रून् मूकयस्व कलविग्रहविवादेषु भञ्जय । ओं मथ मथ सर्वपथकान् योऽसौ युगान्तकाले दिधक्षति इमां पूजां रौद्रमूर्त्तिः सहस्रांशुः शुक्लः स ते रक्षतु जीवितम् । संवर्त्तकाग्नितुल्यश्च त्रिपुरान्तकरः शिवः । सर्वदेवमयः सोऽपि सोऽपि तव रक्षतु जीवितं लिखि खिलि लिखि स्वाहा ॥ एवं स्नातस्तु मन्त्रेण जुहुयात् तिलतण्डुलम्॥२॥ पञ्चामृतैस्तुसंस्नाप्य पूजयेच्छूलपाणिनम् । स्नानान्यन्यानि वक्ष्यामि सर्वदा विजयाय ते॥ ३॥ स्नानं घृतेन कथितमायुष्यवर्द्धनं परम् । गोमयेन च लक्ष्मीः स्याद् गोमूत्रेणाघमर्दनम्॥४॥ क्षीरेण बलवृद्धिः स्याद् दध्ना लक्ष्मीविवर्द्धनम्। कुशोदकेन पापान्तः पञ्चगव्येन सर्वभाक् ॥ ५ ॥ शतमूलेन**

से भरी हुई अञ्जलि स्वरूप अर्घ्य देकर निम्न प्रकार से प्रार्थना करे ।। १८ ।। हे सौभाग्यवती अम्बिके ! मुझे, रूप, यश, सौभाग्य, पुत्र, धन तथा समस्त अभिलषित काम्य पदार्थों को दे दीजिए।।१९।। इसके पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराये तथा आचार्य को दो वस्त्र दान में दे । इस प्रकार से विनायक एवं ग्रहों की अर्चना करके मनुष्य लक्ष्मी तथा समस्त कर्मों में सफलता को प्राप्त करता है ।। २० ।।

इस प्रकार से आदिमहापुराण अग्निपुराण का विनायक स्नान कथन नामक दो सौ छासठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६६ ॥

श्रीपुष्करजी ने कहा– हे परशुरामजी ! अब मैं आपको माहेश्वर स्नान का वर्णन सुनाता हूँ जिससे कि राजा आदि की विजय श्री की वृद्धि होती है । जिसका पूर्वकाल में शुक्राचार्य ने राजा बलि को उपदेश दिया था । १ ।। प्रातःकाल आचार्य यजमान को भद्रपीठ पर बैठाकर घड़ों से स्नान कराते हुए- ओं नमो भगवते रुद्राय० इत्यादि मन्त्र को पढ़े । मन्त्र का अर्थ है- 'अपने अंगों में धवल भस्म का अनुलेपन किए हुए महाबलशाली भगवान शंकर को नमस्कार है । आपकी जय हो,जय हो । आप समस्त शत्रुओं को गूँगा बना दें । कलह, विग्रह (युद्ध) तथा विवाद होने पर आप उन्हें भग्न कर दें,भग्न कर दें । उन्हें मथ डालिये, मथ डालिए, जो भगवान् रौद्र प्रलयकाल में सम्पूर्ण लोकों को भस्म कर डालते हैं, वे ही भगवान् रुद्र समस्त प्रतिपक्षियों को भस्म कर डालें । इस पूजा को स्वीकार करके रौद्रमूर्ति, असंख्य ज्योतियों से सुशोभित शुक्लवर्ण भगवान् रुद्र तुम्हारी जीवन की रक्षा करें । प्रलयकालीन अग्नि के समान तेजस्वी,त्रिपुर को जलानेवाले, भगवान् शिव, सम्पूर्ण देवों की आत्मा स्वरूप हैं, वे तुम्हारे जीवन की रक्षा करें । लिखि, लिखि, लिखि स्वाहा ।। इस प्रकार से स्नान करने के पश्चात् यजमान तिल एवं चावल का होम करे ।। २ ।। इसके पश्चात् पञ्चामृत से शूलपाणि भगवान् शिव को स्नान कराकर उनकी पूजा करनी चाहिए ।। २ ।। अब मैं आपको अन्य स्नानों को बतलाऊँगा जिनसे सर्वदा विजय की प्राप्ति होती है ।। ३ ।। आयुष्य की वृद्धि के लिए घी से स्नान करना सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है । गोबर (गोमय) से स्नान करने से लक्ष्मी की वृद्धि होती है तथा गोमूत्र से स्नान करने से पापों का विनाश होता है ।। ४ ।। दूध से स्नान करने से बल की वृद्धि होती है और दही से स्नान करने से लक्ष्मी की वृद्धि होती है । कुशोदक से स्नान करने से पापों का नाश होता है

सर्वाप्तिर्गोशृङ्गोदकतोऽघजित् । पलाशविल्वकमलकुशस्नानन्तु सर्व्वदम् ॥ ६॥ वचा हरिद्रे द्वे मुस्तं स्नानं रक्षोहणं परम् । आयुष्यञ्च यशस्यञ्च धर्म्ममेधाविवर्द्धनम्॥ ७॥ हैमाद्भिश्चैव माङ्गल्यं रूप्यताम्रोदकैस्तथा । रत्नोदकैस्तु विजयः सौभाग्यं सर्वगन्धकैः॥ ८॥ फलाद्भिश्च तथारोग्यं धात्र्यद्भिः परमां श्रियम् । तिलसिद्धार्थकैर्लक्ष्मीः सौभाग्यञ्च प्रियङ्गुणा ॥ ९ ॥ पद्मोत्पलकदम्बैश्च श्रीर्बलं बलाद्रुमोदकैः । विष्णुपादोदकस्नानं सर्वस्नानेभ्य उत्तमम्॥ १०॥ एकाकी एककामायेत्येकोर्क विधिवच्चरेत् । आक्रन्दयति सूक्तेन प्रबध्नीयान् मणिं करे॥ ११॥ कुष्ठपाठा वचा शुण्ठीशङ्खलोहादिको मणिः । सर्वेषामेव कामानामीश्वरो भगवान् हरिः ॥ १२ ॥ तस्य संपूजनादेव सर्वान् कामान् समश्नुते । स्नापयित्वा घृतक्षीरैः पूजयित्वा च पित्तहा॥१३॥ पञ्चमुद्गबलिं दत्त्वा अतिसारात् प्रमुच्यते । पञ्चगव्येन संस्नाप्य वातव्याधिं विनाशयेत् ॥ १४ ॥ द्विस्नेहस्नपनात् श्लेष्मरोगहा चातिपूजया । घृतं तैलं तथा क्षौद्रं स्नानन्तु त्रिरसं परम् ॥ १५ ॥ स्नानं घृताम्बु द्विस्नेहं समलं घृततैलकम् । क्षौद्रमिक्षुरसं क्षीरं स्नानं त्रिमधुरं स्मृतम्॥ १६॥ घृतमिक्षुरसं तैलं क्षौद्रञ्च त्रिरसं श्रिये । अनुलेपस्त्रिशुक्लस्तु कर्पूरोशीरचन्दनैः ॥ १७ ॥ चन्दनागरुकर्पूरमृगदर्पैः सकुङ्कुमैः। पञ्चानुलेपनं विष्णोः सर्वकामफलप्रदम्॥१८॥ त्रिसुगन्धञ्च कर्पूरं तथा चन्दन कुङ्कुमैः । मृगदर्पं सकर्पूरं मलयं सर्वकामदम् ॥ १९ ॥ जातीफलं सकर्पूरं चन्दनञ्च त्रिशीतकम्। पीतानि शुक्लवर्णानि तथा शुक्लादि भार्गव॥२०॥ कृष्णानि चैव रक्तानि पञ्चवर्णानि निर्दिशेत् । उत्पलं पद्मजाती

होता है और पञ्चगव्य से स्नान करने से समस्त कामनाओं की प्राप्ति होती है ।। ५ ।। शतमूल से स्नान करने पर सभी कामनाओं की प्राप्ति होती है । गोशृङ्ग के जल से स्नान करने पर पापों का नाश होता है । पलाश,विल्वपत्र, कमल एवं कुश के जल से स्नान करना सर्वप्रद होता है ।। ६ ।। वचा दो प्रकार की हल्दी तथा मोथा मिश्रित जल से किया गया स्नान राक्षसों का उत्तम विनाशक है । उससे आयु यश धर्म एवं मेधा की वृद्धि होती है ।। ७ ।। सुवर्ण, रजत एवं ताम्बे के जल से स्नान मंगलकारी होता है । रत्नमिश्रित जल से स्नान विजयप्रद, सभी प्रकार के गन्धों से मिश्रित जल से स्नान सौभाग्यप्रद होता है ।। ८ ।। फल के जल से स्नान आरोग्यप्रद, आँवले के जल से परमलक्ष्मी की प्राप्ति तिल तथा पीली सरसों मिश्रित जल से स्नान लक्ष्मीप्रद एवं प्रियङ्गु से स्नान सौभाग्यवर्द्धक होता है ।। ९ ।। पद्म, उत्पल (नीलकमल) तथा कदम्बमिश्रित जल से स्नान लक्ष्मीप्रद एवं बलावृक्ष के जल से स्नान करने पर बल की प्राप्ति होती है । श्रीभगवान् के चरणामृत से स्नान करना सभी स्नानों से उत्तम होता है ।। १० ।। एक मनुष्य को एक समय में एक ही कामना मन में लेकर विधिपूर्वक स्नान करना चाहिए । स्नानकर्ता आक्रन्दयति० सूक्त से अपने हाथ में मणि (कंकण) बाँधे ।। ११ ।। वह मणि, कूट, पाण, वचा, सोंठ, शंख अथवा लोहे आदि की होनी चाहिए । समस्त कामनाओं के स्वामी भगवान् श्रीहरि हैं ।। १२ ।। उन श्रीभगवान् की पूजा करने से सभी कामनाओं की पूर्ति हो जाती है । जो मनुष्य धृतमिश्रित दुग्ध से श्रीभगवान् को स्नान कराता है, उसका पित्त रोग शान्त हो जाता है ।।१३।। पाँच मूँगों की बलि देने वाला मनुष्य अतिसार रोग से मुक्त हो जाता है । पञ्चगव्य से श्रीहरि को स्नान कराने वाला वातरोग का नाश करता है ।। १४ ।। द्विस्नेह द्रव्य से स्नान कराकर अत्यन्त श्रद्धापूर्वक श्रीभगवान् की पूजा करने वाला मनुष्य कफ सम्बन्धी रोग से मुक्त हो जाता है । घी, तेल एवं मधु से श्रीभगवान् का कराया गया स्नान त्रिरस स्नान कहलाता है । यह उत्तम प्रकार का स्नान है । मधु (शहद) ईख के रस एवं दुग्ध को मिलाकर किया जाने वाला स्नान त्रिमधुर स्नान कहलाता है ।। १६ ।। घी,ईख का रस एवं मधु से किया गया त्रिरस स्नान लक्ष्मीप्रद होता है । कर्पूर, उशीर (खश) तथा चन्दन का किया जाने वाला लेप त्रिशुक्ल लेप कहलाता है ।। १७ ।। चन्दन,अगुरु, कर्पूर,कस्तूरी एवं कुंकुम इन पांचों के मिश्रण से किया गया अनुलेपन यदि भगवान् विष्णु को अर्पित किया जाय तो वह समस्त अभिलषित फलों को प्रदान करने वाला होता है ।। १८ ।। कर्पूर, चन्दन तथा कुंकुम को त्रिसुगन्ध कहते हैं । अथवा कस्तूरी, कर्पूर और चन्दन को त्रिसुगन्ध कहते हैं । यह समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है ।। १९ ।। जायफल, कर्पूर और चन्दन को त्रिशीत कहते हैं । पीला, सुग्गपंखी,शुक्ल कृष्ण एवं लाल ये पञ्चवर्ण कहे गये हैं ।। २० ।। उत्पल (नीलकमल) पद्म, जातीपुष्प तथा त्रिशीत श्रीभगबान् के पूजन में उपयोगी है ।। २१ ।। कुंकुम,रक्तकमल और लाल उत्पल ये त्रिरक्त कहे जाते हैं।

च त्रिशीतं हरिपूजने ॥ २१ ॥ कुङ्कुमं रक्तपद्मानि त्रिरक्तं रक्तमुत्पलम् । धूपदीपादिभिः प्रार्च्य विष्णुं शान्तिर्भवेन् नृणाम् ॥ २२ ॥ चतुरस्त्रकरे कुण्डे ब्राह्मणाश्चाष्ट षोडश । लक्षहोमं कोटिहोमं तिलाज्ययवधान्यकैः । ग्रहानभ्यर्च्य गायत्र्या सर्वशान्तिः क्रमाद् भवेत् ॥ २३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये माहेश्वरस्नानलक्षकोटिहोमादिकथनं नाम सप्तषष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६७ ॥

अष्टषष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नीराजनादिविधिः

पुष्कर उवाच– **कर्म सांवत्सरं राज्ञां जन्मर्क्षे पूजयेच्च तम् । मासि मासि च संक्रान्तौ सूर्य्यसोमादि देवताः ॥ १ ॥ अगस्त्यस्योदयेऽगस्त्यञ्चातुर्मास्ये हरिं यजेत् । शयनोत्थापने पञ्चदिनं कुर्य्यात् समुत्सवम् ॥ २ ॥ प्रौष्ठपदे सिते पक्षे प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात् । शिविरात् पूर्वदिग्भागे शक्रार्थं भवनञ्चरेत्॥३॥ तत्र शक्राध्वजं स्थाप्य शचीं शक्रञ्च पूजयेत् । अष्टम्यां वाद्यघोषेण तान्तु यष्टिं प्रवेशयेत्॥ ४॥ एकादश्यां सोपवासो द्वादश्यां केतुमुत्थितम् । यजेद् वस्त्रादिसंवीतं घटस्थं सुरपं शचीम् ॥ ५ ॥ वर्द्धस्वेन्द्र ! जितामित्र ! वृत्रहन् ! पाकशासन। देव ! देव ! महाभाग ! त्वं हि भूमिष्ठतां गतः ॥ ६॥ त्वं प्रभुः शाश्वतश्चैव सर्वभूतहिते रतः । अनन्ततेजा वैराजो यशोजयविवर्द्धनः ॥ ७ ॥ तेजस्ते वर्द्धयन्त्वेते देवाः शक्रः सुवृष्टिकृत् । ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च कार्त्तिकेयो विनायकः॥ ८ ॥ आदित्या वसवो रुद्राः साध्याश्च भृगवो दिशः । मरुद्गणा लोकपाला ग्रहा यक्षादिनिम्नगाः॥९॥ समुद्रा श्रीर्मही गौरी चण्डिका च सरस्वती । प्रवर्द्धयन्तु ते तेजो जय शक्र ! शचीपते तव चापि जयान् नित्यं मम**

भगवान् की धूप, दीप आदि से अच्छी तरह से पूजन करने से लोगों की शान्ति होती है ।। २२ ।। चार हाथ के चौकोर कुण्ड में आठ या सोलह ब्राह्मण, तिल, घी, यव एवं चावल से लक्ष होम अथवा कोटिहोम करें । गायत्री से ग्रहों की अच्छी तरह से पूजा करने से क्रमशः सभी प्रकार की शान्ति होती है ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का माहेश्वरस्नान एवं लक्षकोटि होम वर्णन नामक दो सौ सड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६७ ॥

श्रीपुष्करजी ने कहा– अब मैं राजाओं के करने योग्य सांवत्सर कर्म का वर्णन करता हूँ । राजा को अपने जन्म नक्षत्रमें नक्षत्र देवता की पूजा करनी चाहिए । उसे प्रत्येक मास में तथा संक्रान्ति के समय सूर्य चन्द्रमा आदि देवताओं की पूजा करनी चाहिए ।। १ ।। राजा को चाहिए कि वह अगस्त्य नक्षत्रके समय अगस्त्य की और चातुर्मास्य में श्रीहरि की पूजा करे । वह हरिशयनी और हरि प्रबोधिनी एकादशी के समय पाँच दिन का उत्सव करे ।। २ ।। भाद्रपद के शुक्ल पक्ष में,प्रतिपद तिथि को शिवर की पूर्वदिशा में इन्द्र पूजन के लिए भवन निर्माण कराये ।।३ ।। उस भवन में इन्द्रध्वज की स्थापना करके वहाँ प्रतिपद् तिथि से अष्टमी तक शची और इन्द्र की पूजा करे । अष्टमी के दिन वाद्य घोष के साथ उस पताका में ध्वजदण्ड का प्रवेश कराये ।।४।। पुनः एकादशी के दिन उपवास करके द्वादशी के दिन ध्वजोत्तोलन करे । फिर एक कलश पर वस्त्र आदि से युक्त देवराज इन्द्र और शची की स्थापना करके उनका पूजन करे ।। ५ ।। इसके बाद इन्द्र की प्रार्थना करते हुए कहे- शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाले ! पाकशासन! देव ! देव ! आपका अभ्युदय हो । आप कृपापूर्वक इस पृथिवी पर पधारे हैं । आप सनातन प्रभु, सम्पूर्ण भूतों के हित में तत्पर रहने वाले, अनन्त तेज से सम्पन्न, विराट् तथा यश एवं विजय की वृद्धि करने वाले हैं ।। ७ ।। हे इन्द्र ! आप सुन्दर वृष्टि करने वाले हैं । यह देवता आपके तेज को बढ़ायें । ब्रह्मा, विष्णु, महेश,कार्तिकेय, विनायक ।। ८ ।। आदित्यगण, वसुगण, रुद्र, साध्यगण, भृगुकुल में उत्पन्न महर्षिगण, दिशाएँ, मरुद्गण, लोकपाल, ग्रह, यक्ष आदि नदियाँ ।। ९।।

सम्पद्यतां शुभम् । प्रसीद राज्ञां विप्राणां प्रजानामपि सर्वशः॥ ११॥ भवत्प्रसादात् पृथिवी नित्यं शस्यवती भवेत् । शिवं भवतु निर्विघ्नं शाम्यन्तामीतयो भृशम् ॥ १२ ॥ मन्त्रेणेन्द्रं समभ्यर्च्य जितभूः स्वर्गमाप्नुयात् । भद्रकालीं पटे लिख्य पूजयेदाश्विने जये॥ १३॥ शुक्लपक्षे तथाष्टम्यामायुधं कार्मुकं ध्वजम् । छत्रञ्च राजलिङ्गानि शस्त्राद्यं कुसुमादिभिः॥ १४॥ जाग्रन्निशि बलिं दद्याद् द्वितीयेऽह्नि पुनर्यजेत् । भद्रकालि ! महाकालि ! दुर्गे ! दुर्गार्त्तिहारिणि ! ॥ १५ ॥ त्रैलोक्यविजये ! चण्डि ! मम शान्तौ जये भव । नीराजनविधिं वक्ष्ये ऐशान्यां मन्दिरं चरेत् ॥ १६॥ तोरणत्रितयं तत्र गृहे देवान् यजेत् सदा । चित्रां त्यक्त्वा यदा स्वातिं सविता प्रतिपद्यते ॥ १७ ॥ ततः प्रभृति कर्त्तव्यं यावत् स्वातौ रविः स्थितः। ब्रह्मा विष्णुश्च शम्भुश्च शक्रश्चैवानलानिलौ ॥ १८ ॥ विनायकः कुमारश्च वरुणो धनदो यमः । विश्वेदेवा वैश्रवसो गजाश्चाष्टौ च तान्यजेत्॥१९॥ कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्पदन्तश्च वामनः । सुप्रतीकोऽञ्जनो नीलः पूजा कार्य्या गृहादिके ॥ २० ॥ पुरोधा जुहुयादाज्यं समित् सिद्धार्थकं तिलाः । कुम्भा अष्टौ पूजिताश्च तैः स्नाप्या गजोत्तमाः ॥ २१ ॥ अश्वाः स्नाप्याः ददेत् पिण्डान् ततो हि प्रथमं गजान् । निष्क्रामयेत् तोरणैस्तु गोपुरादि न लङ्घयेत् ॥ २२ ॥ विक्रमेयुस्ततः सर्वे राजलिङ्गं गृहे यजेत् । वारुणे वरुणं प्राच्यं रात्रौ भूतबलिं ददेत् ॥ २३॥ विशाखायां गते सूर्य्ये आश्रमे निवसेन् नृपः । अलङ्कुर्य्याद् दिने तस्मिन् वाहनन्तु विशेषतः ॥ २४ ॥ पूजिता राजलिङ्गाश्च कर्त्तव्या नरहस्तगाः । हस्तिनं तुरगं छत्रं खड्गं चापञ्च दुन्दुभिम्॥ २५॥ ध्वजं पताकां धर्मज्ञ ! कालज्ञस्त्वभिमन्त्रयेत् । अभिमन्त्र्य ततः सर्वान् कुर्य्यात् कुञ्जरधूर्गतान् ॥ २६॥ कुञ्जरोपरिगौ स्यातां सांवत्सरपुरोहितौ । मन्त्रितांश्च समारुह्य तोरणेन विनिर्गमेत् ॥ २७॥ निस्क्रम्य नागमारुह्य तोरणेनाथ निर्गमेत्। बलिं विभज्य विधिवद्राजा

समुद्र, श्रीदेवी, भूदेवी, गौरी, चण्डिका तथा सरस्वती ये सबके सब आपके तेज की वृद्धि करें । शची के पति इन्द्र आपकी जय हो ।। १० ।। आपकी विजय से मेरा सदा शुभ होए । आप समस्त राजाओं,ब्राह्मणों तथा प्रजाओं पर प्रसन्न होइये ।। ११ ।। आपकी कृपा से पृथ्वी सदा सस्यों से भरी-पूरी होए । सब लोगों का निर्विघ्न कल्याण हो तथा ईतियाँ पूर्णरूप से शान्त हो जायँ ।। १२ ।। इन मन्त्रों से इन्द्र की पूजा करने वाला राजा सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतकर अन्त में स्वर्ग प्राप्त करता है । आश्विन मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि को किसी पट पर भद्रकाली का चित्र बनाए और विजय प्राप्ति के लिए राजा उसकी पूजा करें । साथ ही आयुध, धनुष, ध्वज, छत्र, राजचिह्न तथा शस्त्र आदि की फूल आदि से पूजा करें ।। १३-१४।। रात्रि के समय जागरण करके देवी को बलि अर्पित करें फिर दूसरे दिन देवी की पूजा करे । पूजन के अन्त में प्रार्थना करते हुए कहें- भद्रकाली, महाकाली, दुर्गार्त्तिहारिणी दुर्गे ! ।। १५ ।। त्रैलोक्य पर विजय प्राप्त करने वाली चण्डि ! आप मुझे सदा विजय एवं शान्ति प्रदान करें । अब मैं नीराजन की विधि को बतलाता हूँ । ईशानकोण में देवमन्दिर का निर्माण कराये। वहाँ तीन दरवाजे लगवाकर मन्दिर के गर्भगृह में सदा देवताओं की पूजा करकें ।। १६ ।। जब सूर्य चित्र नक्षत्र को छोड़कर स्वाती नक्षत्र में प्रवेश करते हैं; उस समय से लेकर जब तक सूर्य स्वाति नक्षत्र पर रहें तब तक देवताओं का पूजन करना चाहिए । ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, अग्नि, वायु, विनायक, कार्तिकेय, वरुण, कुबेर, यम, विश्वेदेव, विश्रवा के पुत्र तथा अष्टदिग्गज इन सबों की पूजा करनी चाहिए।।१७-१८।। कुमुद, ऐरावत, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन और नील ये अष्टदिग्गज हैं । इनकी पूजा गृह आदि में करना चाहिए ।। २० ।। उसके पश्चात् पुरोहित को घी,समिधा श्वेत सर्षप और तिल का होम करना चाहिए । पूजा किये गये आठ कलशों से जल निकाल कर उससे उत्तम हाथियों को स्नान कराना चाहिए ।। २१ ।। उसके पश्चात् घोड़ों को भी स्नान कराना चाहिए । उन सबों को फिर ग्रास दे । पहले हाथियों को तोरणद्वार से बाहर निकाले किन्तु गोपुर आदि का उल्लंघन नहीं कराना चाहिए ।। २२ ।। उसके पश्चात् सब लोग बाहर निकलें और राजचिह्नों की पूजा घर में ही की जाय ।। पश्चिम दिशा में वरुण की अच्छी तरह से पूजा करके रात्रिमें भूतबलि देनी चाहिए ।।२३।। जब सूर्य विशाखा नक्षत्र पर जाय उस समय राजा आश्रम में निवास करे । उस दिन वाहन को विशेष रूप से अलंकृत करना चाहिए ।। २४ ।। राजा राजचिह्नों की पूजा करके उनके लिए अधिकृत लोगों के अर्थों में उन्हें दे । धर्मज्ञ परशुराम ! फिर कालज्ञ ज्योतिषी हाथी, घोड़े, छत्र, खड्ग, चाप, नगाड़ा, ध्वजा एवं पताका को अभिमन्त्रित करें । फिर अभिमन्त्रित करके उन्हें हाथी के पीठ पर रखें ।। २५-२६ ।। फिर ज्योतिषी

कुञ्जरधूर्गतः ॥ २८॥ उल्मूकानान्तु निचयमादीपितदिगन्तरम् । राजा प्रदक्षिणं कुर्य्यात् त्रीन् वारान् सुसमाहितः॥२९॥ चतुरङ्गबलोपेतः सर्वसैन्येन नादयन् । एवं कृत्वा गृहं गच्छेद् विसर्जितजनावलिः। शान्तिर्नीराजनाख्येयं वृद्धये रिपुमर्दनी ॥ ३० ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नीराजनादिविधिवर्णनं नामाष्टषष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६८ ॥

ऊनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

छत्रादिमन्त्रादयः

पुष्कर उवाच– **छत्रादिमन्त्रान् वक्ष्यामि यैस्तत् पूज्य जयादिकम् । ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च ॥ १ ॥ सूर्यस्य च प्रभावेण वर्द्धस्व त्वं महामते। पाण्डरस्त्रीप्रतीकाश हिमकुन्देन्दुसुप्रभ !॥ २॥ यथाम्बुदश्छादयते शिवायैनां वसुन्धराम् । तथाछादय राजानं विजयारोग्यवृद्धये॥३॥ गन्धर्वकुलजातस्त्वं मा भूयाः कुलदूषकः । ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च॥ ४॥ प्रभावाच्च हुताशस्य बर्द्धस्व त्वं तुरङ्गम। ! तेजसा चैव सूर्य्यस्य मुनीनां तपसा तथा॥ ५॥ रुद्रस्यब्रह्मचर्य्येण पवनस्य बलेन च । स्मर त्वं राजपुत्रोऽसि कौस्तुभन्तु मणिं स्मर॥ ६॥ यां गतिं ब्रह्महा गच्छेत् पितृहा मातृहा तथा । भूम्यर्थेऽनृतवादी च क्षत्रियश्च पराङ्मुखः॥ ७ ॥ व्रजेस्त्वं तां गतिं क्षिप्रं मा तत् पापं भवेत् तव । विकृतिं मापगच्छेस्त्वं युद्धेऽध्वनि तुरङ्गम !॥ ८॥ रिपून् विनिघ्नन् समरे सह भर्त्ता सुखी भव। शक्रकेतो! महावीर्य्यः सुपर्णस्त्वामुपाश्रितः ॥ ९ ॥**

और पुरोहित हाथी पर चढ़ें । इस प्रकार से अभिमन्त्रित वाहनों पर आरूढ़ होकर तोरण द्वार से बाहर निकलें ।। २७ ।। इस प्रकार द्वार से निकलकर राजा हाथी पर चढ़कर बलि का विभाजन करके हाथी के पीठ पर बैठे ही बैठे विधिपूर्वक दान दे ।। २८ ।। इसके पश्चात् राजा सुस्थिर चित् होकर चतुरंगिणी सेना के साथ सम्पूर्ण सेना के द्वारा जयघोष कराते हुए दिग्दिगन्त को प्रकाशित करने वाले,जलते मसालों के समूह की तीन परिक्रमा करे ।। २९ ।। इस प्रकार से राजा जन समूह को विदा करके अपने राजभवन में प्रवेश करे । यह नीराजन नाम की शान्ति शत्रुओं का मर्दन करने वाली तथा राजा की वृद्धि करने वाली है ।। ३० ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का नीराजनादि विधि वर्णन नामक दो सौ अड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६८ ॥

श्रीपुष्कर जी ने कहा– श्रीपरशुराम ! अब मैं छत्र आदि राजचिह्नों के मन्त्रों को कह रहा हूँ जिन मन्त्रों से छत्रादि की पूजा करके विजय आदि की प्राप्ति की जाती है । छत्र की पूजा करके राजा प्रार्थना करते हुए कहे- हे महामते छत्रदेव ! आप हिम, कुन्द तथा चन्द्रमा के समान सुन्दर प्रभा वाले हैं, तथा पाण्डरवर्ण की स्त्री के समान कान्ति वाले हैं । ब्रह्मा, सोम तथा वरुण के सत्यवाक्य से एवं सूर्य के प्रभाव से तुम वृद्धि को प्राप्त करो ।। १-२ ।। जिस प्रकार मेघ मंगल के लिए इस पृथिवी को आच्छादित करता है, उसी प्रकार आप भी वृद्धि एवं आरोग्य के लिए इस राजा को आच्छादित करो ।। ३ ।। इसके बाद अश्व की प्रार्थना करते हुए कहें- अश्व तुम गन्धर्वकुल में उत्पन्न हुए हो, अपने कुल को दूषित करने वाला मत बनना, ब्रह्मा, सोम एवं वरुण के सत्यवाक्य से तथा अग्नि के प्रभाव से तुम वृद्धि को प्राप्त करो ।। ४ ।। सूर्य के बल से तुम आगे ही बढ़ते रहना। याद करो तुम अश्वराज उच्चैःश्रवा के पुत्र हो, अपने साथ ही प्रकट हुए कौस्तुभ नामक रत्न को याद करो ।। ६ ।। ब्रह्मघाती, मातृघाती तथा पितृघाती पृथिवी के लिए झूठ बोलने वाले तथा युद्ध से पलायन करने वाले क्षत्रिय की जो गति होती है, तुम भी युद्ध से पीठ दिखाने पर उसी गति को प्राप्त होओगे, अतएव इस प्रकार का कलंक तुमको न लगे ऐसा ही करना ।। ७ ।। हे तुरंगम ! युद्ध के मार्ग पर चलते हुए तुम विकृत मत होना । समराङ्गण

पतत्रिराड्वैनतेयस्तथा नारायणध्वजः। काश्यपेयोऽमृताहर्त्ता नागारिर्विष्णुवाहनः॥ १०॥ अप्रमेयो दुराधर्षो रणे देवारिसूदनः । महाबलो महावेगो महाकायोऽमृताशनः ॥ ११॥ गरुत्मान् मारुतगतिस्त्वयि सन्निहितः स्थितः । विष्णुना देवदेवेन शक्रार्थं स्थापितो ह्यसि ॥ १२ ॥ जयाय भव मे नित्यं वृद्धयेऽथ बलस्य च । साश्ववर्मायुधान् योधान् रक्षास्माकं रिपून् दह ॥ १३ ॥ कुमुदैरावतौ पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः । सुप्रतीकोऽञ्जनो नील एतेऽष्टौ देवयोनयः ॥ १४॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च बनान्यष्टौ समाश्रिताः । भद्रो मन्दो मृगश्चैव गजः संकीर्ण एव च॥ १५॥ वने वने प्रसूतास्ते स्मर योनिं महागज । पान्तु त्वां वसवो रुद्रा आदित्याः समरुद्गणाः ॥ १६ ॥ भर्तारं रक्ष नागेन्द्र समयः परिपाल्यताम् । ऐरावताधिरुढ़स्तु वज्रहस्तः शतक्रतुः॥१७॥ पृष्ठतोऽनुगतस्त्वेष रक्षतु त्वां स देवराट् । अवाप्नुहि जयं युद्धे सुस्थश्चैव यदा व्रज ॥ १८॥ अवाप्नुहि बलञ्चैव ऐरावतसमं युधि। श्रीस्ते सोमाद् बलं विष्णोस्तेजः सूर्य्याज्जवोऽनिलात् ॥ १९॥ स्थैर्य्यं गिरेर्जयं रुद्राद् यशो देवात् पुरन्दरात् । युद्धे रक्षन्तु नागास्त्वां दिशश्च सह दैवतैः ॥ २० ॥ अश्विनौ सह गन्धर्वैः पान्तु त्वां सर्वतो दिशः। मनवो वसवो रुद्रा वायुः सोमो महर्षयः ॥ २१ ॥ नागकिन्नरगन्धर्वयक्षभूतगणा ग्रहाः । प्रमथास्तु सहादित्यैर्भूतेशो मातृभिः सह ॥ २२ ॥ शक्रः सेनापतिः स्कन्दो वरुणश्चाश्रितस्त्वयि । प्रदहन्तु रिपून् सर्वान् राजा विजयमृच्छतु॥२३॥ यानि प्रयुक्तान्यरिभिर्दूषणानि समन्ततः । पतन्तु तव शत्रूणां हतानि तव तेजसा॥ २४॥ कालनेमिबधे यद्वद् युद्धे त्रिपुरघातने। हिरण्यकाशिपोर्युद्धे बधे सर्वासुरेषु च ॥२५ ॥ शोभितासि तथैवाद्य शोभस्व समयं स्मर । नीलश्वेतामिमां दृष्ट्वा नश्यन्त्वाशु नृपारयः॥ २६॥ व्याधिभिर्विविधैर्घोरैः

में शत्रुओं का विनाश करते हुए तुम अपने स्वामी के साथ ही सुखी होना ।। ८ ।। इसके पश्चात् राजा ध्वज की प्रार्थना करते हुए कहे- हे इन्द्रध्वज ! आपमें महापराक्रमी, भगवान् नारायण के वाहन पक्षिराज, विनिता के पुत्र सुपर्ण (गरुड़) प्रतिष्ठित हैं । वे महर्षि कश्यप के पुत्र,बलपूर्वक अमृत को छीन लेने वाले,सर्पों के शत्रु तथा भगवान् विष्णु के वाहन हैं ।।९-१०।। उनके बल का पता नहीं लगाया जा सकता है, वे दुराधर्ष हैं, संग्राम में देवशत्रुओं को मारने वाले, महाबलवान् एवं महावेग सम्पन्न हैं । वे बहुत बड़े शरीर वाले तथा अमृत को खाने वाले हैं ।। ११।। उनकी गति वायु के समान है । इस प्रकार के गरुड आप में स्थित हैं । देवताओं के भी पूजनीय भगवान् विष्णु ने देवराज इन्द्र के लिए आपको स्थापित किया था ।।१२।। तुम मुझे सदा विजय प्रदान करो । मेरे बल की वृद्धि करो । घोड़े, कवच तथा आयुधों के साथ मेरे योद्धाओं की रक्षा करो तथा मेरे शत्रुओं को जला डालो ।। १३ ।। इसके पश्चात् गज की प्रार्थना करते हुए राजा कहे- कुमुद, ऐरावत, पद्म, पुष्पदन्त, वामन सुप्रतीक, अञ्जन और नील ये आदि दिग्गज देवयोनि के हैं ।। १४ ।। उन्हीं के पुत्र एवं पौत्र आठवनों में निवास करते हैं । भद्र, मन्द, मृग एवं संकीर्ण जाति के गज विभिन्न वनों में उत्पन्न हुए हैं । हे महागज तुम अपनी योनि को याद करो ।। १५ ।। तुम्हारी रक्षा, वसुगण, रुद्रगण एवं मरुद्गण करें । हे नागेन्द्र ! तुम अपने स्वामी की रक्षा करो, अपनी प्रतिज्ञा का पालन करो ।। १६ ।। वज्रधारी इन्द्र तुम्हारे पीछे चलते हुए तुम्हारी रक्षा करें । वे देवगणों के राजा हैं । तुम युद्ध में विजय प्राप्त करो और सदा स्वस्थ रहकर आगे बढ़ते रहो ।। १७-१८ ।। युद्ध में तुम ऐरावत के समान बल प्राप्त करो, तुम चन्द्रमा से श्री, विष्णु से बल, सूर्यसे तेज, वायु से वेग, ।। १९ ।। पर्वत से स्थैर्य, रुद्र से विजय और देवराज इन्द्र से यश प्राप्त करो ।। १९ ।। गन्धर्वों के साथ दोनों अश्विनीकुमार तुम्हारी सम्पूर्ण दिशाओं में रक्षा करें ।। २० ।। मनुगण, वसुगण, रुद्रगण, वायु, सोम, महर्षिगण, नाग, किन्नर, गन्धर्व, यक्ष, भूतगण, सभी ग्रह, प्रमथगण, आदित्यगण मातृगण के साथ भूतेश भगवान् शंकर, ।। २२ ।। इन्द्र, सेनापति कार्तिकेय तथा वरुण तुममें अधिष्ठित हैं । समस्त शत्रुओं को जलाकर तुम भस्म कर दो और राजा को विजय की प्राप्ति होए ।। २३ ।। इसके पश्चात् पताके की प्रार्थना करते हुए कहे- पताके ! शत्रु ने चारों ओर से जो घातक प्रयोग किए हों वे सबके सब तुम्हारे तेज से गिरकर विनष्ट हो जायँ ।। २४ ।। तुम जिस प्रकार कालनेमि वध एवं त्रिपुरसंहार के युद्ध में हिरण्यकशिपु के संग्राम में तथा सम्पूर्ण दैत्यों के वध के समय सुशोभित हुई हो, आज उसी

शस्त्रैश्च युधि निर्जिताः । पूतना रेवती लेखा कालरात्रीति पठ्यसे ॥ २७॥ दहन्त्वाशु रिपून् सर्वान् पताके ! त्वामुपाश्रिताः । सर्वमेधे महायज्ञे देवदेवेन शूलिना ॥ २८॥ शर्वेण जगतश्चैव सारेण त्वं विनिर्मितः । नन्दकस्यापरां मूर्त्तिं स्मर शत्रुनिवर्हण ! ॥ नीलोत्पलदलश्याम ! कृष्ण ! दुःस्वप्ननाशन ? । असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः ॥ ३० ॥ श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपालस्तथैव च । इत्यष्टौ तव नामानि पुरोक्तानि स्वयम्भुवा ॥ नक्षत्रं कृत्तिका तुभ्यं गुरुर्देवो महेश्वरः । हिरण्यञ्च शरीरन्ते दैवतन्ते जनार्दनः ॥ ३२ ॥ राजानं रक्ष निस्त्रिंश सबलं सपुरं तथा । पिता पितामहो देवः स त्वं पालय सर्वदा॥ ३३॥ शर्मप्रदस्त्वं समरे वर्मन् सैन्ये यशोऽद्य मे। रक्ष मां रक्षणीयोऽहं तवाघ ! नमोऽस्तु ते ॥ ३४ ॥ दुन्दुभे! त्वं सपत्नानां घोषाद्धृदयकम्पनः । भव भूमिपसैन्यानां सदा विजयवर्द्धनः॥ ३५॥ यथा जीमूतघोषेण हृष्यन्ति वरवारणाः । तथास्तु तव शब्देन हर्षोऽस्माकं मुदावह ॥ ३६॥ यथा जीमूतशब्देन स्त्रीणां त्रासोऽभिजायते । तथा तु तव शब्देन त्रस्न्त्वस्मद्द्विषो रणे ॥ ३७ ॥ मन्त्रैः सदार्चनीयास्ते योजनीया जयादिषु । घृतकम्बलविष्णवादेस्त्वभिषेकञ्च वत्सरे । राज्ञोऽभिषेकः कर्त्तव्यो दैवज्ञेन पुरोधसा ॥ ३८॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये छत्रादिमन्त्रादयः कथनं नामोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६९ ॥

प्रकार सुशोभित होओ । तुम अपनी प्रतिज्ञा को स्मरण करो ।। २५ ।। इस नील तथा श्वेत वर्ण की पताका को देखकर राजा के शत्रु शीघ्र ही अनेक प्रकार की व्याधियों तथा शस्त्रों के द्वारा जीते जाकर विनष्ट हो जायँ ।। २६ ।। तुम, पूतना, रेवती, लेखा और कालरात्रि आदि नामों से प्रख्यात हो । पताके ! हम तुम्हारा आश्रय ग्रहण करते हैं । तुम शीघ्र ही हमारे शत्रुओं को जला डालो ।। २७ ।। सर्वमेध नामक यज्ञ में देवाधिदेव भगवान् शंकर ने तुम्हारा निर्माण जगत् के सारतत्त्व से किया था ।। २८ ।। इसके पश्चात् खड्ग की प्रार्थना करते हुए कहे- हे शत्रुओं को विनष्ट करने वाले खड्ग ! तुम इस बात को याद रखो कि तुम भगवान् नारायण के 'नन्दक' नामक खड्ग की तुम दूसरी मूर्ति हो। तुम्हारा शरीर नीलकमल के समान श्यामवर्ण का है तुम कृष्णवर्ण के हो तथा बुरे स्वप्नों को विनष्ट करने वाले हो । प्राचीनकाल में स्वयम्भू ब्रह्माजी ने, असि, विशसन, खड्ग, तीक्ष्णधार, दुरासद, ।। ३ ।। श्रीगर्भ, विजय तथा धर्मपाल आपके इन आठ नामों को बतलाया ।। ३१ ।। तुम्हारा नक्षत्र कृतिका है,भगवान् शंकर ही तुम्हारे गुरु हैं । तुम्हारा शरीर सुवर्णमय है और तुम्हारे अधिष्ठातृ देवता भगवान् जनार्दन हैं ।। ३२ ।। खड्ग सेना और नगर के साथ राजा की रक्षा करो तुम्हारे पिता ब्रह्माजी हैं । इस प्रकार के तुम हम लोगों की सदा रक्षा करो ।। ३३ ।। इसके पश्चात् कवच की प्रार्थना करते हुए कहना चाहिए- हे कवच! तुम संग्राम में कल्याण प्रद हो, आज मेरी सेना को यश प्रदान करो । हे निष्पाप ! तुम मेरी रक्षा करो मैं तुम्हारे द्वारा रक्षा किए जाने योग्य हूँ । तुम्हें मेरा नमस्कार है ।। ३४ ।। इसके पश्चात् दुन्दुभि की प्रार्थना करते हुए कहना चाहिए- हे दुन्दुभि ! तुम अपने घोष से शत्रुओं के हृदय को कँपा देने वाली हो, मेरे राजा की सेना को बढ़ाने वाली तुम बन जाओ ।। ३५ ।। जिस तरह मेघ की ध्वनि को सुनकर श्रेष्ठ गजराज प्रसन्न होते हैं, उसी तरह तुम्हारी आवाज हब सबों के हर्ष को बढ़ाने व वाली बन जाय ।। ३६ ।। जिस तरह से मेघ की ध्वनि सुनकर रमणियाँ भयभीत हो जाती हैं, उसी तरह तुम्हारी ध्वनि को संग्राम में सुनकर मेरे शत्रु भयभीत हो जायँ ।। ३७।। इस प्रकार उपर्युक्त मन्त्रों से राजोपकरणों की पूजा करनी चाहिए और उनका प्रयोग करना चाहिए कि वह प्रतिवर्ष राजा का रक्षाबन्धन करके भगवान् विष्णु का अभिषेक तथा राजा का अभिषेक करे ।। ३८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का छत्रादि के मन्त्र आदि का वर्णन नामक दो सौ उनहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६९ ॥

सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

विष्णुपञ्जरम्

पुष्कर उवाच— **त्रिपुरञ्जघ्नुषः पूर्वं ब्रह्मणा विष्णुपञ्जरम् । शङ्करस्य द्विजश्रेष्ठ ! रक्षणाय निरूपितम् ॥ १॥ वागीशेन च शक्रस्य बलं हन्तुं प्रयास्यतः। तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि तत्त्वं शृणु जयादिमत् ॥ २ ॥ विष्णुः प्राच्यां स्थितश्चक्री हरिर्दक्षिणतो गदी । प्रतीच्यां शार्ङ्गधृग् विष्णुर्जिष्णुः खड्गी ममोत्तरे ॥ ३ ॥ हृषीकेशो विकोणेषु तच्छिद्रेषु जनार्दनः । क्रोडरूपी हरिर्भूमौ नरसिंहोऽम्बरे मम ॥ ४॥ क्षुरान्तमलं चक्रं भ्रमत्येतत् सुदर्शनम्। अस्यांशुमाला दुष्प्रेक्ष्या हन्तुं प्रेतनिशाचरान्॥ ५॥ गदा चेयं सहस्रार्चिःप्रदीप्तपावकोज्ज्वला । रक्षोभूतपिशाचानां डाकिनीनाञ्च नाशनी॥ ६॥ शार्ङ्गविस्फूर्जितञ्चैव वासुदेवस्य मद्रिपून् । तिर्य्यङ्मनुष्यकुष्माण्ड प्रेतादीन् हन्त्वशेषतः ॥ ७ ॥ खड्गधारोज्ज्वलज्योत्स्नानिर्धूता ये समाहिताः । ते यान्तु शाम्यतां सद्यो गरुडेनेव पन्नगाः ॥ ८ ॥ ये कुष्माण्डास्तथा यक्षा दैतेया ये निशाचराः । प्रेता विनायकाः क्रूरा मनुष्या जम्भगाः खगाः ॥ ९ ॥ सिंहादयश्च पशवो दन्दशूकाश्च पन्नगाः । सर्वे भवन्तु ते सौम्याः कृष्णशङ्खरवाहताः ॥ १०॥ चित्तवृत्तिहरा ये मे ये जनाः स्मृतिहारकाः । बलौजसाञ्च हर्त्तारश्छायाविभ्रंशकाश्चये॥ ११॥ ये चोपभोगहर्त्तारो ये च लक्षणनाशकाः । कुष्माण्डास्ते प्रणश्यन्तु विष्णुश्चक्ररवाहताः॥१२॥ बुद्धिस्वास्थ्यं मनःस्वास्थ्यं स्वास्थ्यमैन्द्रियकं तथा । ममास्तु देवदेवस्य वासुदेवस्य कीर्त्तनात् ॥ १३ ॥ पृष्ठे पुरस्तान् मम दक्षिणोत्तरे विकोणतश्चास्तु जनार्दनो हरिः । तमीड्यमीशानमनन्तमच्युतं जनार्दनं प्रणिपतितो न सीदति ॥ १४ ॥ यथा परं ब्रह्म हरिस्तथा**

श्रीपुष्कर जी ने कहा— हे द्विजश्रेष्ठ ! त्रिपुर को विनष्ट करने की इच्छा वाले भगवान् शंकर की रक्षा करने के लिए ब्रह्माजी ने उन्हें विष्णुपञ्जर का उपदेश दिया ।। १ ।। इसी प्रकार वृहस्पति ने बल नामक दैत्य का वध करने के लिए प्रयास करने वाले इन्द्र की रक्षा के लिए जिस स्तोत्र का उपदेश दिया था मैं उसका स्वरूप बतला रहा हूँ, सुनिये ।। २ ।। मेरे पूर्वभाग में चक्रधारी भगवान् विष्णु एवं दाहिनी ओर गदाधारी स्थित हैं । पश्चिम दिशा में शार्ङ्गधारी भगवान् विष्णु तथा हमारे उत्तर में खड्गधारी विष्णु भगवान् स्थित हैं ।। ३ ।। दिशाओं के कोणों में भगवान् हृषीकेश और उनके बीच में भगवान् जनार्दन स्थित हैं । वराह भगवान् मेरी रक्षा पृथिवी पर भगवान् नृसिंह आकाश में मेरी रक्षा करें ।। ४ ।। जिसके किनारे-किनारे छूरे लगे हैं इस प्रकार का निर्मल सुदर्शन चक्र घूम रहा है । जब वह प्रेतों एवं पिशाचों को मारने के लिए उद्यत होता है तो इसकी ज्वाला की ओर देखना किसी के लिए कठिन हो जाता है ।। ५ ।। भगवान् विष्णु की यह कौमोदकी गदा जलते हुए हजारों पावक के समान दीप्त है । यह राक्षस, भूत, पिशाच एवं डाकिनियों का विनाश करने वाली है ।। ६ ।। भगवान् वासुदेव के शार्ङ्ग धनुष् का टंकार मेरे शत्रु मनुष्य, जानवर, कुष्माण्ड और प्रेत आदि का पूर्णरूप से विनाश करे ।। ७ ।। जो मेरे शत्रु भगवान् विष्णु के खड्ग की धारा के जल में स्नान कर चुके हैं वे उसी प्रकार से शान्त हो जायँ जिस तरह गरुड के द्वारा मारे गये सर्प शान्त हो जाते हैं ।। ८ ।। जो कुष्माण्ड, यक्ष, दैत्य, निशाचर, प्रेत, विनायक, क्रूर मनुष्य, शिकारी पक्षी ।। ९ ।। सिंह आदि पशु, डँसने वाले सर्प आदि हैं वे भगवान् कृष्ण की शंख ध्वनि से आहत होकर सौम्यभाव को प्राप्त कर लें ।। १० ।। जो मेरी चित्तवृत्ति को हर लेने वाले हैं जो मेरी स्मृति को विनष्ट करते हैं, मेरे बल तथा तेज को हरण करने वाले हैं, जो मेरी कान्ति को विलुप्त करने वाले हैं तथा जो मेरे शुभ लक्षणों को नष्ट कर देने वाले हैं, वे कुष्माण्डगण भगवान् विष्णु के चक्र के वेगसे आहत होकर विनष्ट हो जायँ ।। ११-१२ ।। देवाधिदेव भगवान् वासुदेव के नाम संकीर्तन से मेरी बुद्धि, मन तथा इन्द्रियाँ स्वस्थ्य हों ।। १३ ।। मेरे आगे-पीछे, दायें-बायें तथा कोणवर्तिनी दिशाओं में श्रीहरि भगवान् जनार्दन का निवास हो । इन सम्पूर्ण जगत् के प्रणम्य, सम्पूर्ण जगत् के स्वामी, अनन्त, अपनी प्रतिज्ञा से कभी च्युत न होने वाले भगवान् जनार्दन को प्रणाम करने

परो जगत्स्वरूपश्च स एव केशवः । सत्येन तेनाच्युतनामकीर्त्तनात् प्रणाशयेत् तु त्रिविधं ममाशुभम् ॥ १५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विष्णुपञ्जरकथनं नाम सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७० ॥

एकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

वेदशाखादिकीर्त्तनम्

पुष्कर उवाच— **सर्वानुग्राहका मन्त्राश्चतुर्वर्गप्रसाधकाः । ऋगथर्व तथा साम यजुः संख्या तु लक्षकम् ॥ १ ॥ भेदः साङ्ख्यायनश्चैक आश्वलायनो द्वितीयकः । शतानि दश मन्त्राणां ब्राह्मणा द्विसहस्रकम् ॥ २ ॥ ऋग्वेदो हि प्रमाणेन स्मृतो द्वैपायनादिभिः । एकोनद्विसहस्रन्तु मन्त्राणां यजुषस्तथा शतानि दश विप्राणां षडशीतिश्च शाखिकाः । काण्वमाध्यन्दिनी संज्ञा कठी माध्यकठी तथा ॥ ४ ॥ मैत्रायणी च संज्ञा च तैत्तिरीयाभिधानिका। वैशम्पायनिकेताद्याः शाखा यजुषि संस्थिताः॥ ५ ॥ साम्नः कौथुमसंज्ञैका द्वितीयाथर्वणायनी । गानान्यपि च चत्वारि वेद आरण्यकं तथा ॥ ६॥ उक्था ऊहचतुर्थञ्च मन्त्रा नवसहस्रकाः । सचतुःशतकाश्चैव ब्रह्मसङ्घटकाः स्मृताः ॥ ७ ॥ पञ्चविंशतिरेवात्र साममानं प्रकीर्त्तितम् ।सुमन्तुर्जाजलिश्चैव श्लोकायनिरथर्वके ॥ ८॥ शौनकः पिप्पलादश्च मुञ्जकेशादयोऽपरे । मन्त्राणामयुतं षष्टिशतञ्चोपनिषच्छतम् ॥ व्यासरूपी स भगवान् शाखाभेदाद्यकारयत्। शाखाभेदादयो विष्णुरितिहासः पुराणकम् ॥ १० ॥ प्राप्य व्यासात् पुराणादि सूतो वै लोमहर्षणः । सुमतिश्चाग्निवर्च्चाश्च मित्रयुः शांशपायनः॥११॥**

वाला जीव कभी दुखी नहीं होता ।। १४ ।। जिस तरह श्रीहरि ही परंब्रह्म हैं, उसी तरह वे भगवान् केशव ही सम्पूर्ण जगत् से श्रेष्ठ, सम्पूर्ण जगत् शरीरक हैं । उनका सत्य स्वरूप भगवान् अच्युत के नाम का कीर्तन करने मात्र से मेरे तीनों (दैहिक, दैविक एवं भौतिक) अशुभ विनष्ट हो जायँ ।। १५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का विष्णुपञ्जर वर्णन नामक दो सौ सत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २७० ॥

श्रीपुष्करजी ने कहा– वेद के मन्त्र सम्पूर्ण जगत् को अनुगृहीत करने वाले तथा चारों (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले हैं । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इनके मन्त्रों की संख्या एक लाख है ।। १ ।। ऋग्वेद की एक शाखा सांख्यायन और दूसरी शाखा आश्वलायन है । इन दो शाखाओं में एक सहस और ऋग्वेदीय ब्राह्मण भाग में दो सहस्र मन्त्र हैं ।। २ ।। श्रीकृष्ण द्वैपायन आदि महर्षियों ने ऋग्वेद को प्रमाण रूप से स्वीकार किया है । यजुर्वेद में १९०० एक हजार नौ सौ मन्त्र हैं ।। ३ ।। इसके ब्राह्मण ग्रन्थों में एक हजार मन्त्र है । अन्य शाखाओं में एक हजार छियासी मन्त्र हैं ।यजुर्वेद की मुख्य रूप से काण्वी, माध्यन्दिनी, कठी, माध्यकठी, मैत्रायणी, तैत्तिरीया एवं वैशम्पायनीया नामक शाखायें हैं ।। ५ ।। सामवेद की मुख्य रूप से दो शाखायें हैं- कौथुमी और आथर्वणायनी (राणायणीया) इसमें मुख्य रूप से चार गान हैं ।। ६ ।। वेद, आरण्यक, उक्थ और ऊह । इस वेद में ब्रह्मविषयक नव हजार चार सौ पच्चीस मन्त्र हैं । यहाँ तक सामवेद का वर्णन किया गया ।। ७ ।। अथर्ववेद के शाखाप्रवर्तक ऋषि, सुमन्तु, जाजलि, श्लोकायनि, शौनक, पिप्पलाद और मुञ्जकेश आदि हैं । इसमें सोलह हजार मन्त्र और एक सौ उपनिषद् हैं ।। ९ ।। व्यास रूप से अवतार लेकर भगवान् विष्णु ने ही वेदों की शाखाओं आदि का विभाजन किया। वेदों की शाखायें, इतिहास और पुराण ये सबके सब विष्णुस्वरूप हैं ।। १० ।। भगवान् व्यास से पुराण आदि का ज्ञान प्राप्त कर लोमहर्षण सूतजी ने उसका प्रवचन किया । उनके छह शिष्य हुए- सुमति,

कृतव्रतोऽथ सावर्णिः षट्शिष्यास्तस्य चाभवन् । शांशयापायनादयश्चक्रुः पुराणानान्तु संहिताः ॥ १२ ॥ ब्राहमादीनि पुराणानि हरिविद्या दशाष्ट च। महापुराणे ह्याग्नेये विद्यारूपो हरिः स्थितः।। १३।। सप्रपञ्चो निष्प्रपञ्चो मूर्त्तामूर्त्तस्वरूपधृक् । तं ज्ञात्वाभ्यर्च्य संस्तूय भुक्तिं मुक्तिमवाप्नुयात्।।१४।। विष्णुर्जिष्णुर्भविष्णुश्च अग्निसूर्य्यादिरूपवान्। अग्निरूपेण देवादेर्मुखं विष्णुः परा गतिः ॥ १५ ॥ वेदेषु सपुराणेषु यज्ञमूर्त्तिश्च गीयते । आग्नेयाख्यं पुराणन्तु रूपं विष्णोर्महत्तरम् ॥ १६।। आग्नेयाख्यपुराणस्य कर्त्ता श्रोता जनार्दनः । तस्मात् पुराणमाग्नेयं सर्ववेदमयं महत्।। १७।। सर्व विद्यामयं पुण्यं सर्वज्ञानमयं वरम् । सर्वात्मा हरिरूपं हि पठतां शृण्वतां नृणाम्।। १८।। विद्यार्थिनश्च विद्यादमर्थिनां श्रीधनप्रदम् । राज्यार्थिनांराज्यदञ्च धर्मदं धर्मकामिनाम्।। १९।। स्वर्गार्थिनां स्वर्गदञ्च पुत्रदं पुत्रकामिनाम् । गवादिकामिनां गोदं ग्रामदं ग्रामकामिनाम् ॥ २० ॥ कामार्थिनां कामदञ्च सर्व सौभाग्यसम्प्रदम्। गुणकीर्त्तिप्रदं नृणां जयदं जयकामिनाम्।।२१।। सर्वेप्सूनां सर्वदन्तु मुक्तिदं मुक्तिकामिनाम्। पापघ्नं पापकर्तृणामाग्नेयं हि पुराणकम्।।२२।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वेदशाखादिकीर्त्तनवर्णनं नामैकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७१ ॥

द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दानादिमाहात्म्यम्

पुष्कर उवाच– **ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन् मात्रं मरीचये । लक्षार्द्धार्द्धन्तु तद् ब्राह्मं लिखत्वा सम्प्रदापयेत् ॥ १ ॥ वैशाख्यां पौर्णमास्याञ्च स्वर्गार्थी जलधेनुमत् । पाद्मं द्वादशसाहस्रं ज्येष्ठे दद्याच्च धेनुमत् ॥ २ ॥ वराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः । त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवं प्राह**

अग्निवर्चा, मित्रयु, शांशपायन,कृतव्रत और सावर्णि ।। ११ ।। शांशपायन आदि ने पुराणों की संहिता का निर्माण किया ।। १२ ।। भगवान् श्रीहरि ही ब्राह्म आदि अठारह पुराणों एवं अठारह विद्याओं में स्थित हैं । वे सप्रपञ्च-निष्प्रपञ्च, मूर्त एवं अमूर्त रूप धारण करने वाले श्रीहरि अग्निमहापुराण में विद्या रूप से स्थित हैं । उन श्रीहरि को जानकर,पूजन करके तथा उनकी स्तुति करके मनुष्य भोग एवं मोक्ष को प्राप्त कर ले सकता है ।। १३-१४ ।। भगवान् विष्णु विजयशील, प्रभावसम्पन्न तथा अग्निसूर्य आदि के रूप में स्थित हैं । वे भगवान् विष्णु ही देवता आदि के मुख हैं । वे ही सबों के परम गति हैं ।। १५ ।। वेदों तथा पुराणों में उनका गान यज्ञमूर्ति रूप से किया गया है । यह अग्निपुराण भगवान् विष्णु का विराट् रूप है ।। १६ ।। अग्निपुराण के श्रोता एवं वक्ता जनार्दनस्वरूप होते हैं । अतएव यह महान् अग्निपुराण सर्ववेदमय, सर्वविद्यामय और सर्वज्ञानमय है । पढ़ने एवं सुनने वालों के लिए यह पुराण सबों की आत्मा श्रीहरिस्वरूप है ।।१७-१८।। यह विद्यार्थियों को विद्या प्रदान करता है तथा धन चाहने वालों को लक्ष्मी एवं धन प्रदान करता है । राज्य चाहने वालों को यह राज्य प्रदान करता है तथा धर्म चाहने वालों को धर्म प्रदान करता है ।। १९ ।।स्वर्ग चाहने वालों को यह स्वर्ग प्रदान करता है तथा पुत्र चाहने वालों को पुत्र । गौ आदि को चाहने वालों को यह गौ प्रदान करता है तथा ग्राम चाहने वालों को ग्राम ।।२०।। यह कामार्थियों को काम सम्पूर्ण सौभाग्य, गुण तथा कीर्त्ति प्रदान करता है । विजयाभिलाषी पुरुषों को यह विजय प्रदान करता है ।। २१ ।। सब कुछ चाहने वालों को यह सब कुछ देता है एवं मुक्ति चाहने वालों को मुक्ति प्रदान करता है । यह अग्निपुराण पापियों के पाप का विनाश कर देता है ।। २२ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का वेदशाखादि वर्णन नामक दो सौ एकहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २७१ ॥

श्रीपुष्करजी ने कहा– परशुरामजी ! प्राचीनकाल में ब्रह्माजी ने जिस पच्चीस हजार श्लोक वाले ब्राह्मपुराण का उपदेश दिया था उसको लिखकर ब्राह्मण को दान देना चाहिए ।। १।।

चार्पयेत् ॥ ३ ॥ जलधेनुमदाषाढ्यां विष्णोः पदमवाप्नुयात् । चतुर्दशसहस्राणि वायवीयं हरप्रियम् ॥ ४॥ श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान् वायुरिहाब्रवीत्। दद्याल्लिखित्वा तद् विप्रे श्रावण्यां गुड़धेनुमत् ॥ ५ ॥ यत्राधिकृत्य गायत्री कीर्त्त्यते धर्मविस्तरः । वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते ॥ ६ ॥ सारस्वतस्य कल्पस्य प्रोष्ठपद्यान्तु तद् ददेत् । अष्टादशसहस्राणि हेमसिंहसमन्वितम्॥ ७॥ यत्राह नारदो धर्मान् वृहत्कल्पाश्रितानिह । पञ्चविंशसहस्राणि नारदीयं तदुच्यते ॥ ८ ॥ सधेनुञ्चाश्विने दद्यात् सिद्धिमात्यन्तिकीं लभेत् । यत्राधिकृत्य शत्रूणां धर्माधर्मविचारणा ॥ ९ ॥ कार्त्तिक्यां नवसाहस्रं मार्कण्डेयमथार्पयेत् । अग्निना यद् वसिष्ठाय प्रोक्तञ्चाग्नेयमेव तत् ॥ १० ॥ लिखित्वा पुस्तकं दद्यान् मार्गशीर्ष्यां स सर्वदः । द्वादशैव सहस्राणि सर्वविद्यावबोधनम् ॥ ११ ॥ चतुर्दशसहस्राणि भविष्यं सूर्य्यसम्भवम् । भवस्तु मनवे प्राह दद्यात् पौष्यां गुड़ादिमत्॥ १२॥ सावर्णिना नारदाय ब्रह्मवैवर्त्तमीरितम् । रथन्तरस्य वृत्तान्तमष्टादशसहस्रकम् ॥ १३ ॥ माघ्यां दद्याद् वराहस्य चरितं ब्रह्मलोकभाक् । यत्राग्निलिङ्गमध्यस्थो धर्मान् प्राह महेश्वरः ॥ १४ ॥ आग्नेयकल्पे तल्लिङ्गमेकादशसहस्रकम् । तद् दत्त्वा शिवमाप्नोति फाल्गुन्यां तिलधेनुमत्॥ १५॥ चतुर्विंशसहस्राणि वाराहं विष्णुनेरितम्। भूमौ वराहचरितं मानवस्य प्रवृत्तितः॥ १६॥ सहेमगरुड़ञ्चैत्र्यां पदमाप्नोति वैष्णवम् । चतुरशीतिसाहस्रं स्कान्दं स्कन्देरितं महत्॥१७॥

स्वर्ग चाहने वाला व्यक्ति वैशाख मास की पूर्णिमा को जलधेनु के साथ ब्राह्मपुराण का दान दे । पद्मपुराण की जो पाद्मसंहिता है उसमें बारह हजार श्लोक हैं; उसको लिखकर ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को धेनु के साथ दान दे ।। २ ।। महर्षि पराशर ने वराहकल्प को अभिमत बनाकर तेइस हजार श्लोकों वाला विष्णुपुराण कहा है, इसको आषाढ़ मास की पूर्णिमा को जलधेनु के साथ प्रदान करे ।ऐसा करने वाला विष्णुलोक को प्राप्त करता है ।। ३ ।। वायव्यपुराण चौदह हजार श्लोकों वाला है, वह भगवान् शंकर को अत्यन्त प्रिय है ।। ४ ।। इस पुराण में वायुदेव ने श्वेतकल्प के प्रसंग में धर्म का वर्णन किया है । इस पुराण को लिखकर श्रावण मास की पूर्णिमा को गुड़धेनु के साथ ब्राह्मण को दान दे ।। ५ ।। जिस पुराण में गायत्री को आधार बनाकर धर्म का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । जिस पुराण में वृत्रासुर की कथा वर्णित है । इसका वर्णन सारस्वतकल्प के प्रसंग में हुआ है । इस पुराण को ही भागवत कहते हैं । इसमें अठारह हजार श्लोक हैं । सुवर्ण सिंह के साथ ही इसका दान देना चाहिए ।। ६-७ ।। जिस पुराण में नारदजी ने बृहत् कल्प के अनुसार धर्मों का वर्णन किया है, उसे नारदीय पुराण कहते हैं । इसमें पच्चीस हजार श्लोक हैं ।। ८ ।। आश्विन मास की पूर्णिमा के दिन गौ के साथ इसका दान करने पर आत्यन्तिकी सिद्धि की प्राप्ति होती है । जिस पुराण में प्रतिपक्षियों के धर्म एवं अधर्म का विचार किया गया है उसे मार्कण्डेय पुराण कहते हैं । उसमें नव हजार श्लोक हैं । उसका कार्तिक पूर्णिम को ब्राह्मण को दान देना चाहिए ।। ९ ।। जिस पुराण में अग्निदेव ने महर्षि वसिष्ठ को उपदेश दिया है उसे अग्निपुराण कहते हैं । उसको लिखकर मार्गशीर्ष पूर्णिना को ब्राह्मण को दान देने से सब कुछ की प्राप्ति होती है । इस पुराण में बारह हजार ही श्लोक हैं । यह सभी विद्याओं का ज्ञान कराने वाला है ।। ११ ।। भविष्यपुराण सूर्यसम्भव है अर्थात् इसमें सूर्यदेव की महिमा गायी गयी है । इसमें चौदह हजार श्लोक हैं । भगवान् शंकर ने मनु को इसका उपदेश दिया । पौषमास की पूर्णिमा को गुड़ आदि के साथ इसका दान देना चाहिए ।। १२ ।। ब्रह्मवैवर्त पुराण का उपदेश सावर्णि मनु ने नारदजी को दिया । इसमें अठारह हजार श्लोक हैं और रथन्तरकल्प का इसमें वृत्तान्त है । माघमास की पूर्णिमा को इसका दान करना चाहिए । वराह भगवान् के चरित्र से युक्त जो वराह पुराण है उसका भी दान माघमास की पूर्णिमा को करना चाहिए। ऐसा करने वाला दाता ब्रह्मलोक का भागी होता है ।। १३ ।। जिस पुराण में अग्निमय लिङ्ग में स्थित होकर भगवान् महेश्वर ने आग्नेय कल्प के वृत्तान्तों से युक्त धर्मों का उपदेश किया है वह बारह हजार श्लोकों वाला- लिङ्गपुराण है। फाल्गुन मास की पूर्णिमा को तिलधेनु के साथ इसका दान करने वाला मनुष्य शिवलोक को प्राप्त करता है।।१४-१५।। भगवान् विष्णु के द्वारा प्रोक्त वराह पुराण भगवान् ने देवी के प्रति मानव जगत् की प्रवृत्ति से लेकर वराह चरित्र आदि उपाख्यानों का वर्णन किया है । इसमें चौबीस हजार श्लोक हैं ।। १६।। चैत्र की पूर्णिमा को सुवर्ण के सिंहासन पर रखकर इसका दान करने वाला व्यक्ति भगवान् विष्णु के लोक को प्राप्त करता है । स्कन्द के द्वारा प्रोक्त स्कान्दपुराण में चौरासी हजार श्लोक हैं । यह सबसे बड़ा महापुराण

अधिकृत्य सधर्मांश्च कल्पे तत् पुरुषेऽर्पयेत् । वामनं दशसाहस्त्रं धौमकल्पे हरेः कथाम् ॥ १८ ॥ दद्यात् शरदि विषुवे धर्मार्थादि निबोधनम् । कूर्मञ्चाष्टसहस्त्रञ्च कूर्मोक्तञ्च रसातले ॥ १९॥ इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन दद्याद् तद्धेमकूर्मवत् । त्रयोदशसहस्त्राणि मात्स्यं कल्पादितोऽब्रवीत्॥ २०॥ मत्स्यो हि मनवे दद्याद् विषुवे हेममत्स्यवत् । गारुडञ्चाष्टसाहस्त्रं विष्णुक्तं तार्क्षकल्पके॥ २१॥ विश्वाण्डाद् गरुडोत्पत्तिं तद् दद्याद्धेम हंसवत् । ब्रह्म ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्वा वव्रीत् तु यत् ॥ २२ ॥ तच्च द्वादशसाहस्त्रं ब्रह्माण्डं तद् द्विजेऽर्पयेत् । भारते पर्वसमाप्तौ वस्त्रगन्धस्त्रगादिभिः॥२३॥ वाचकं पूजयेदादौ भोजयेत् पायसैर्द्विजान्। गोभूग्रामसुवर्णादि दद्यात् पर्वणि॥ २४॥ पर्वणि समाप्ते भारते विप्रं संहितापुस्तकान् यजेत् । शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्रादिनावृतान् ॥ २५ ॥ नरनारायणौ पूज्यौ पुस्तकान् कुसुमादिभिः । गोऽन्नभूहेम दत्त्वाथ भोजयित्वा क्षमापयेत् ॥ २६ ॥ महादानानि देयानि रत्नानि विविधानि च । मासकौ द्वौ त्रयश्चैवमासे मासे प्रदापयेत्॥ २७॥ अयनादौ श्रावकस्य दानमादौ विधीयते ।श्रोतृभिः सकलैः कार्य्यं श्रावके पूजनं द्विज॥ २८॥ इतिहासपुराणानां पुस्तकानि प्रयच्छति । पूजयित्वायुरारोग्यं स्वर्गमोक्षमवाप्नुयात्॥ २९॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दानादिमाहात्म्यकथनं नामद्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७२ ॥

है ।। १७ ।। इस पुराण में स्कन्द ने तत्पुरुषकल्प की कथा का शैवमत का आश्रय लेकर प्रवचन किया है । इसका भी दान चैत्र पूर्णिमा को करें । वामन पुराण में दस हजार श्लोक हैं । इसमें धौम कल्प की श्रीभगवान् की कथा बतलायी गयी है ।। १८ ।। यह पुराण धर्म, अर्थ आदि का निबोधक है, शरत् पूर्णिमा के दिन इसका दान विषुव की संक्रान्ति के समय करना चाहिए । कूर्मपुराण में आठ हजार श्लोक हैं, कूर्मरूपधारी श्री भगवान् ने इसका प्रवचन इन्द्रद्युम्न के प्रसंग में रसातल में किया है । इसका सुवर्णनिर्मित कच्छप के साथ दान करना चाहिए ।। १९ ।। कल्प के आदि में मत्स्य भगवान् ने मनु को तेरह हजार श्लोकों वो मत्स्यपुराण का श्रवण कराया था ।। इसका दान विषुव के समय हेमनिर्मित मत्स्य के साथ करना चाहिए ।। २० ।। तार्क्ष्य कल्प में भगवान् ने आठ हजार श्लोक वाले गरुड पुराण का प्रवचन किया । विश्व अण्ड से गरुड की उत्पत्ति हुई है । गरुड पुराण का दान स्वर्ण हंस के साथ करना चाहिए ।। २१ ।। ब्रह्माजी ने ब्रह्माण्ड के विषय में जिस पुराण का प्रवचन किया है, वह बारह हजार श्लोकों वाला पुराण ब्रह्माण्ड पुराण है । उसका भी ब्राह्मण को दान देना चाहिए।। २२ ।। महाभारत के समय प्रत्येक पर्व की समाप्ति पर कथावाचक की पूजा वस्त्र, चन्दन एवं माला आदि से करनी चाहिए । कथा के प्रारम्भ में यजमान कथावाचक की पूजा करे और कथा की समाप्ति होने पर ब्राह्मणों को खीर का भोजन कराना चाहिए ।। २३ ।। प्रत्येक पर्व की समाप्ति पर गौ, भूमि, ग्राम तथा सुवर्ण आदि की दक्षिणादेनी चाहिए । कथा के पूर्ण होने पर कथावाचक ब्राह्मण तथा महाभारत संहिता की पूजा करे । ग्रन्थ को पवित्र स्थान पर रखकर और रेशमी वस्त्र से आच्छादित करके उसकी पूजा पुष्प आदि से करे । फिर नर-नारायण की पूजा करे । पुनः अन्न, भूमि, सुवर्ण आदि की दक्षिणा ब्राह्मण को देकर तथा भोजन कराकर उनसे क्षमा प्रार्थना करे ।। २४-२६ ।। श्रोता को विविध रत्नों का महादान करना चाहिए । प्रत्येक मास में कथावाचक को दो या तीन माशे सुवर्ण का दान करे ।। २७ ।। अयन के प्रारम्भ में भी पहले उसके लिए सुवर्ण के दान का विधान है । हे द्विजश्रेष्ठ ! समस्त श्रोताओं को कथावाचक का पूजन करना चाहिए ।। २८ ।। जो मनुष्य इतिहासों एवं पुराणों का पूजन करके दान करता है, वह आयु, आरोग्य स्वर्ग एवं मोक्ष को प्राप्त करता है ।। २९ ।।

इस प्रकार आदिमहापुराण अग्निपुराण का दान आदि के माहात्म्य का वर्णन नामक दो सौ बहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २७२ ॥

त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूर्यवंशकीर्त्तनम्

अग्निरुवाच– **सूर्य्यवंशं सोमवंशं राज्ञां वंशं वदामि ते । हरेर्ब्रह्मा पद्मगोभून् मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः ॥ १॥ मरीचेः कश्यपस्तस्माद् विवश्वांस्तस्य पत्न्यपि । संज्ञा राज्ञी प्रभा तिस्रो राज्ञी रैवतपुत्रिका ॥ २ ॥ रेवन्तं सुषुवे पुत्रं प्रभातं प्रभा रवेः । त्वाष्ट्री संज्ञा मनुं पुत्रं यमलो यमुनां यमम् ॥ ३॥ छाया संज्ञा च सावर्णिं मनुं वैवस्वतं सुतम् । शनिञ्च तपतीं विष्टिं संज्ञायाञ्चाश्विनौ पुनः ॥ ४ ॥ मनोर्वैवस्वतस्यासन् पुत्रा दश च तत्समाः । इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्टः शर्य्यातिरिव च॥ ५॥ नरिष्यन्तस्तथा प्रांशुर्नृगदृष्टौनरसत्तमौ। करुषश्च पृषधश्च अयोध्यायां महाबलाः॥ ६॥ कन्येला च मनोरासीत् बुधात्तस्यां पुरुरवाः। पुरुरवसमुत्पाद्य सेला सुद्युम्नतां गता ॥ ७ ॥ सुद्युम्नादुत्कलगयो विनताश्वस्त्रयो नृपाः । उत्कलस्योत्कलं राष्ट्र विनताश्वस्य पश्चिमा॥ ८॥ दिक् पूर्वा राजवर्य्यस्य गयस्य तु गयापुरी । वसिष्ठवाक्यात् सुद्युम्नः प्रतिष्ठानमवापह॥ ९॥ तत् पुरूरवसे प्रादात्सुद्युम्नो राज्यमाप्य तु । नरिष्यतः शकाः पुत्रा नाभागस्य च वैष्णवः॥१०॥ अम्बरीषः प्रजापालो धार्ष्टकं धृष्टतः कुलम् । सुकल्यानर्त्तौ शर्य्यातेर्वैरेवानर्त्ततो नृपः॥ ११॥ आनर्त्तविषयश्चासीत् पुरी चासीत् कुशस्थली । रेवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नामधार्मिकः ॥ १२ ॥ ज्येष्ठः पुत्रशतस्यासीद्राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम् । सकन्यासहितः श्रुत्वा गान्धर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके ॥ १३ ॥ मूहूर्तभूतं देवस्य मर्त्ये बहुयुगं गतम् । आजगाम जवेनाथ स्वां पुरीं यादवैर्वृताम् ॥ १४॥ कृतां द्वारवतीं नाम बहुद्वारां मनोरमाम् । भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्तां वासुदेवपुरोगमैः ॥ १५॥ रेवतीं बलदेवाय ददौ ज्ञात्वाह्यनिन्दिताम्।**

अग्निदेव ने कहा– अब मैं आपको सूर्यवंश एवं सोमवंश के राजाओं का वर्णन सुनाता हूँ । श्रीहरि के नाभिकमल पर ब्रह्माजी उत्पन्न हुए । ब्रह्माजी के पुत्र मरीचि महर्षि हुए ।। १।। मरीचि के कश्यप और कश्यप से विवस्वान् (सूर्य) की उत्पत्ति हुई । विवश्वान् की तीन पत्नियाँ थीं-संज्ञा, रात्री और प्रभा रैवत की पुत्री राज्ञी ने ।। २ ।। रेवन्त नामक पुत्र को जन्म दिया। सूर्य की प्रभा नामक पत्नी ने प्रभात नामक पुत्र को जन्म दिया । विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा ने मनु तथा तथा जुड़वी सन्तान यम एवं यमुना को जन्म दिया ।। ३ ।। (छाया की संज्ञा जो स्त्रीरूप से प्रतिष्ठित थीं, उसे छाया संज्ञा कहते हैं ।) छाया संज्ञा ने सूर्य के अंश से सावर्णि मनु तथा शनि नामक पुत्र को एवं तपती एवं विष्टि नामक कन्याओं को जन्म दिया । फिर (बड़वारूप धारण करने वाली) संज्ञा ने अश्विनी कुमारों को जन्म दिया ।। ४ ।। वैवस्वत् मनु के उन्हीं के समान पराक्रमी दस पुत्र थे- इच्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, पुरुषों में श्रेष्ठ नृग एवं दिष्ट,करुष एवं पृषध्र । ये दसों अयोध्या के महाबली राजा हुए ।। ६ ।। मनु की पुत्री इला थी, उसके गर्भ से बुध के अंश से पुरुरवा का जन्म हुआ । पुरुरवा को उत्पन्न करके वह इला पुरुष रूप में परिणत हो गयी और उसका नाम सुद्युद्यम्न हुआ ।। ७ ।। सुद्युम्न के तीन राजा हुए-उत्कल, गय और विनताश्व । उत्कल का उत्कल राष्ट्र हुआ, विनताश्व पश्चिम प्रदेश के राजा हुए ।।८।। गय पूर्व दिशा के राजा हुए और उनकी राजधानी गया थी। वसिष्ठ महर्षि की आज्ञा पाकर गय प्रतिष्ठान पुरी में आये और उसी को अपनी राजधानी बनाये ।। ९ ।। उन्होंने सुद्युम्न का राज्य प्राप्त कर उसे पुरुरवा को दे दिया । नरिष्यन्त के पुत्र शक कहलाये और नाभाग के पुत्र परम वैष्णव अम्बरीष हुए । वे प्रजाओं के पालक हुए । धृष्ट से धार्ष्टक वंश का विस्तार हुआ । शर्याति की दो सन्तानें हुईं, सुकन्या और आनर्त के पुत्र राजा रेव हुए ।। ११ ।। रेव का राज्य आनर्तदेश में था और उनकी राजधानी कुशस्थली थी । रेव के रैवत नामक पुत्र थे और वे परम धार्मिक और ककुद्मी के नाम से प्रसिद्ध हुए ।। १२ ।। वे अपने पिता के सौ पुत्रों में से सबसे बड़े थे अतएव उन्हें ही पिता का राज्य मिला । एक बार वे अपनी पुत्री के साथ ब्रह्मलोक गये और वहीं ब्रह्माजी के सन्निकट संगीत सुनने लगे।।१३।। वहाँ ब्रह्मलोक के एक मुहूर्त का समय बीता किन्तु तब तक मर्त्यलोक के कई युग बीत चुके थे । वे वेगपूर्वक जब अपनी नगरी लौटे तो देखे कि वहाँ पर मनोहर द्वारिकापुरी थी जिसके रक्षक यादव थे । उसमें अनेक द्वार थे । भगवान्वासुदेव की संरक्षकता में उस नगरी की रक्षा भोज वंशीय अन्धकवंशीय वृष्णिवंशीय आदि कर

तपः सुमेरुशिखरे तप्त्वा विष्णवालयंगतः॥ १६॥ नाभागस्य च पुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ । करूषस्य तु कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥१७॥
शूद्रत्वञ्च पृषध्रोऽगाद्धर्षयित्वा गुरोश्च गाम् । मनुपुत्रादथेक्ष्वाकोर्विकुक्षिर्देवराडभूत्॥ १८॥ विकुक्षेस्तु ककुत्स्थोऽभूत् तस्य पुत्रः सुयोधनः । तस्य
पुत्रः पृथुर्नाम विश्वगश्वः पृथोः सुतः॥ १९ ॥ आयुषस्तस्य च पुत्रोऽभूद् युवनाश्वस्तथा सुतः। युवनाश्वाच्च श्रावन्तः पूर्वेश्रावन्तिकी पुरी ॥ २०॥
श्रावन्ताद् बृहदश्वोभूत् कुबलाश्वस्ततो नृपः । धुन्धुमारत्वमगमद् धुन्धोर्नाम्ना च वै पुरा ॥ २१ ॥ धुन्धुमारास्त्रयो भूपा दृढ़ाश्वो दण्ड एव च ।
कपिलोऽथ दृढाश्वात् तु हर्य्यश्वः प्रमोदकः॥ २२ ॥ हर्य्यश्वाच्च निकुम्भोऽभूत् संहताश्वनिकुम्भतः । अकृशाश्वो रणाश्वश्च संहताश्वसुतावुभौ ॥ २३॥
युवनाश्वो रणाश्वश्च मान्धाता युवनाश्वतः । मान्धातुः पुरुकुत्सोभूत् मुचुकुन्दो द्वितीयकः ॥ २४ ॥ पुरुकुत्सात्त्रसदस्युश्च सम्भूतो नर्मदाभवः ।
सम्भूतस्य सुधन्वाभूत् त्रिधन्वाथसुधन्वनः॥ २५॥ त्रिधन्वनस्तु तरुणस्तस्य सत्यव्रतःसुतः । सत्यव्रतात् सत्यरथो हरिश्चन्द्रश्च तत्सुतः॥ २६॥
हरिश्चन्द्राद्रोहिताश्वो रोहिताश्वाद् वृकोऽभवत् । वृकाद् बाहुश्च बाहोश्च सगरस्तस्य च प्रिया॥ २७ ॥ प्रभा षष्टिसहस्त्राणां सुतानां जननी ह्यऽभूत् ।
तुष्टादौर्वान् नृपादेकं भानुमत्यशसमञ्जसम्॥ २८॥ खनन्तः पृथिवीं दग्धा विष्णुना बहुसागराः। असमञ्जसोऽंशुमांश्च दिलीपोंऽशुमतोऽभवत्॥२९॥
भगीरथो दिलीपात् तु येन गङ्गावतारिता । भगीरथात् तु नाभागो नाभागदम्बरीषकः॥ ३०॥ सिन्धुद्वीपोऽम्बरीषात्तु श्रुतायुस्तत्सुतः स्मृतः ।
श्रुतायोर्ऋतपर्णोऽभूत् तस्य कल्माषपादकः ॥ ३१ ॥कल्माषाङ्घेःसर्वकर्मा ह्यनरण्यस्ततोऽभवत् । अनरण्यात् तु निघ्नोऽथ अनमित्रस्ततोरघुः॥३२॥

रहे थे ।। १५ ।। उन्होंने अपनी पुत्री अनन्दिता रेवती का विवाह बलदेव जी से कर दिया और स्वयं तपस्या करने के लिए सुमेरुपर्वत के शिखर पर चले गये और अन्त में उन्होंने भगवान् विष्णु का लोक प्राप्त किया ।। १६ ।। नाभाग के दो पुत्र थे जो वैश्या के गर्भ से उत्पन्न हुए थे और तपस्या करके ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लिए । करुष के पुत्र कारुष कहलाये । वे क्षत्रिय थे और संग्राम में दुर्मद हो जाते थे ।। १७ ।। पृषध्र ने भूल से गुरु की गौ की हिंसा कर दी थी अतएव वे शूद्र हो गये । मनु के पुत्र इक्ष्वाकु के पुत्रविकुक्षि हुए जो इन्द्र बन गये।।१८।। विकुक्षि के पुत्र ककुत्स्थ हुए और उनके पुत्र सुयोधन हुए । उनके पुत्र का नाम पृथु था । पृथु के पुत्र विष्वगश्व हुए ।। १९ ।। विश्वगश्व के पुत्र आयु हुए और उनके पुत्र युवनाश्व हुए । युवनाश्व के पुत्र श्रावन्त हुए उन्होंने ही पूर्व में श्रावन्तिकी पुरी बसायी ।। २० ।। श्रावन्ति के पुत्रबृहदश्व हुए और बृहदश्व के पुत्र राजा कुबलाश्व हुए । इन्होंने धुन्धुनामक प्रसिद्ध दैत्य का वध किया, उसी के नाम पर ये धुन्धुमार कहलाये ।। २१ ।। धुन्धुमार के तीन पुत्र हुए जो राजा थे-दृढ़ाश्व, दण्ड एवं कपिल । दृढ़ाश्व के हर्यश्व एवं प्रमोदक नाम के दो पुत्र हुए ।। २२ ।। हर्यश्व के पु॰ निकुम्भ हुए और उनके पुत्र संहताश्व हुए । संहताश्व के दो पुत्र अकृशाश्व एवं रणाश्व ।। २३ ।। रणाश्व के पुत्र का नाम युवनाश्व हुआ और युवनाश्व के पुत्र मान्धाता । मान्धाता के एक पुत्र पुरुकुत्स हुए और दूसरे मुचुकुन्द ।। २४ ।। पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु का जन्म नर्मदा के गर्भ से हुआ था । उनको सम्भूत भी कहा जाता था । सम्भूत के पुत्र सुधन्वा हुए और सुधन्वा के त्रिधन्वा ।।२५।। त्रिधन्वा के पुत्र तरुण हुए और तरुण के पुत्र सत्यव्रत ।सत्यव्रत के पुत्र सत्यरथ हुए और उनके पुत्र हरिश्चन्द्र हुए ।। २६ ।। हरिश्चन्द्र के पुत्र का नाम रोहिताश्व हुआ और उनके पुत्र का नाम वृक। वृक के पुत्र बाहु और उनके पुत्र सगर । उनकी प्रियतमा पत्नी प्रभा साठ हजार पुत्रों की माता महर्षि और्व की कृपा से बनी । भानुमति के गर्भ से राजा सगर का एक ही पुत्र असमञ्जस हुआ।।२८।। जब सगर के साठ हजार पुत्र पृथिवी को खन रहे थे उस समय कपिल रूप से अवतीर्ण भगवान् विष्णु ने क्रोध करके उन्हें भस्म कर दिया । असमञ्जस के पुत्र का नाम अंशुमान हुआ और उनके पुत्र दिलीप हुए ।। २९ ।। दिलीप ने पुत्र भगीरथ हुए उन्होंने ही गंगा को पृथिवी पर उतारा । भगीरथ के नाभाग उत्पन्न हुए और नाभाग से अम्बरीष ।। ३०।। अम्बरीष के पुत्र सिन्धुद्वीप हुए और उनके पुत्र को श्रुतायु नाम से स्मरण किया जाता है ।। श्रुतायु के पुत्र ऋतुपर्ण हुए और उनके पुत्र कल्माषपाद हुए ।। ३१ ।। कल्माषपाद से सर्वकर्मा उत्पन्न

रघोरभूद् दिलीपस्तु दिलीपाच्चाप्यजो नृपः । दीर्घबाहुरजात् कालस्त्वजापालस्ततोऽभवत् ॥ ३३ ॥ ततो दशरथो जातस्तस्य पुत्रचतुष्टयम् । नारायणात्मकाः सर्वे रामस्तस्याग्रजोऽभवत्॥ ३४॥ रावणान्तकरो राजा ह्ययोध्यायां रघूत्तमः । वाल्मीकिर्यस्य चरितं चक्रे तन्नारदश्रवात्॥ ३५॥ रामपुत्रौ कुशलवौ सीतायां कुलवर्धनौ । अतिथिश्च कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः॥ ३६॥ निषधात् तु नलो जज्ञे नभोऽजायत वै नलात् । नभसः पुण्डरीकोऽभूत् सुधन्वा च ततोऽभवत् ॥ ३७ ॥ सुधन्वनो देवानीको ह्यहीनाश्वश्च तत्सुतः । अहीनाश्वात् सहस्राश्वश्चन्द्रालोकस्ततोऽभवत्॥३८॥ चन्द्रालोकतस्तारापीडोऽस्माच्चन्द्रपर्वतः । चन्द्रगिरेर्भानुरथः श्रुतायुस्तस्य चात्मजः। इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः सूर्य्यवंशधराःस्मृताः ॥ ३९ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सूर्य्यवंशकीर्त्तनकथनं नाम त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७३ ॥

चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सोमवंशवर्णनम्

अग्निरुवाच— **सोमवंशं प्रवक्ष्यामि पठितं पापनाशनम् । विष्णुनाभ्यब्जजोब्रह्मा ब्रह्मपुत्रोऽत्रिरत्रितः ॥ १॥ सोमश्चक्रे राजसूयं त्रैलोक्यं दक्षिणां ददौ । समाप्तेऽवभृथे सोमं तद्रूपालोकनेच्छवः॥ २॥ कामबाणाभितप्ताङ्ग्यो नवदेव्यःसिसेविरे । लक्ष्मीर्नारायणं त्यक्त्वा सिनीवाली च कर्दमम् ॥ ३॥ द्युति विभावसुं त्यक्त्वा पुष्टिर्धातारमव्ययम्। प्रभा प्रभाकरं त्यक्त्वा हविष्मन्तं कुहुः स्वयम् ॥ ४॥ कीर्त्तिर्जयन्तं भर्त्तारं वसुर्मारीच**

हुए और उनके पुत्र अनरण्य हुए । अनरण्य के पुत्र निघ्न हुए और उनके पुत्र अनमित्र हुए और उनके पुत्र रघु हुए ।। ३२ ।। रघु के पुत्र दिलीप हुए और दिलीप के पुत्र अज हुए । अज के पुत्र दीर्घबाहु हुए और उनके पुत्र का नाम काल हुआ । काल के पुत्र अजापाल हुए ।। ३३ ।। उनसे दशरथ उत्पन्न हुए और दशरथ के चार पुत्र हुए । वे सबके सब नारायण स्वरूप थे और उन सबों में श्रेष्ठ राम थे ।।३४।। रघुवंश में श्रेष्ठ श्रीराम ने रावण का वध किया और अयोध्या के राजा हुए । महर्षि बाल्मीकि ने देवर्षि नारदजी से सुनकर श्रीराम के चरित्र का निबन्धन रामायण रूप में किया ।। ३५ ।। श्रीराम के कुल को बढ़ाने वाले दो पुत्र लव एवं कुश श्रीसीता के गर्भ से उत्पन्न हुए । कुश के पुत्र का नाम अतिथि हुआ और उनके पुत्र निषध हुए ।। ३६ ।। निषध के पुत्र नल हुए और नल के पुत्र नभ हुए । नभ के पुत्र का नाम पुण्डरीक हुआ और उनके पुत्र का नाम सुधन्वा ।। ३७ ।। सुधन्वा के पुत्र देवानीक हुए और उनके पुत्र अहीनाश्व । अहीनाश्व के पुत्र सहस्राश्व हुए और उनके पुत्र चन्द्रालोक ।। ३८ ।। चन्द्रालोक के पुत्र तारापीड हुए और उनके पुत्र चन्द्रपर्वत हुए । चन्द्रपर्वत के पुत्र भानुरथ हुए और उनके पुत्र श्रुतायु हुए । इस तरह से मैंने सूर्यवंश के इच्वाकुवंश में उत्पन्न राजाओं का वर्णन किया।। ३९।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का सूर्यवंश वर्णन नामक दो सौ तिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २७३ ॥

अग्निदेव ने कहा— मैं सोमवंश का वर्णन कर रहा हूँ, जिसके पढ़ने मात्र से पापों का नाश हो जाता है । भगवान् विष्णु के नाभि कमल से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए उनके पुत्रमहर्षि अत्रि हुए। अत्रि से सोम की उत्पत्ति हुई । सोम ने राजसूय यज्ञ किया और दक्षिणा में उन्होंने त्रैलोक्य को दे दिया ।। १ ।। यज्ञ के अन्त में जब अवभृथ स्नान समाप्त हुआ तो उनको देखने के लिए नव देवियाँ उनके पास आयीं और कामबाण से संतप्त होकर उनकी सेवा करने लगीं ।। २ ।। लक्ष्मी (कान्ति) नारायण को छोड़कर, सिनीवाली कर्दम को छोड़कर, द्युति विभावसु को

कश्यपम् । धृतिस्त्यक्त्वा पतिं नन्दीं सोममेवाभजत् तदा ॥ ५ ॥ स्वकीया इव सोमोऽपि कामयामास तास्तदा । एवं कृतापचारस्य तासां भर्तृगणास्तदा॥ ६॥ न शशाकापचाराय शापैः शस्त्रादिभिः पुनः । सप्तलोकैकनाथत्वमवाप्तस्तपसा ह्युत ॥ ७॥ विबभ्राम मतिस्तस्य विनयादनया हता। वृहस्पतेः स वै भार्य्यां तारां नाम यशश्विनीम् ॥ ८ ॥ जहार तरसा सोमो ह्यवन्याङ्गिरःसुतम् । ततस्तद्युद्धमभवत् प्रख्यातं तारकामयम् ॥ ९॥ देवानां दानवानाञ्च लोकक्षयकरं महत् । ब्रह्मा निवार्य्योशनसं तारामङ्गिरसे ददौ ॥ १०॥ तामन्तःप्रसवां दृष्ट्वा गर्भं त्यजाब्रवीद् गुरुः । गर्भस्त्यक्तः प्रदीप्तोऽथ प्राहाहं सोमसम्भवः ॥ ११ ॥ एवं सोमाद् बुधः पुत्रः पुत्रस्तस्य पुरूरवाः । स्वर्गं त्यक्त्वोर्वशी सा तं वरयामास चाप्सराः॥१२॥ तया सहाचरद्राजा दशवर्षाणि पञ्च च । पञ्च षट् सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ महामुने॥ १३॥ एकोऽग्निरभवत् पूर्वं तेन त्रेता प्रवर्त्तिता । पुरूरवा योगशीलो गन्धर्वलोकमीयिवान्॥ १४॥ आयुर्दृढायुरश्वायुर्धनायुर्धृतिमान् वसुः । दिविजातःशतायुश्च सुषुवे चोर्वशी नृपान्॥१५॥ आयुषो नहुषः पुत्रो वृद्धशर्मा रजिस्तथा । दर्भो विपाप्मा पञ्चाग्न्यं रजेः पुत्रशतंह्यभूत् ॥ १६ ॥ राजेया इति विख्याता विष्णुदत्तवरो रजिः । देवासुरे रणे दैत्यानवधीत् सुरयाचितः॥ १७॥ गतायेन्द्राय पुत्रत्वं दत्त्वा राज्यं दिवं गतः। रजेः पुत्रैर्हृतं राज्यं शक्रस्याथ सुदुर्मनाः॥ १८॥ ग्रहशान्त्यादि विधिना गुरुरिन्द्राय तद् ददौ । मोहयित्वा रजिसुतानासंस्ते निजधर्मगाः॥ १९॥ नहुषस्य सुताः सप्त यतिर्य्ययातिरुत्तमः । उद्धवः पञ्चकश्चैव शर्य्यातिमेघपालकौ ॥ २० ॥ यतिः कुमारभावेऽपि विष्णुं ध्यात्वा हरिं गतः। देवयानी शुक्रकन्या ययातेः पत्न्यऽभूत् तदा ॥ २१ ॥

को त्यागकर, पुष्टि अविनाशी धाता को त्यागकर, प्रभा प्रभाकर को त्यागकर तथा कुहू हविष्यमान् को त्यागकर स्वयं सोम के पास चली आयीं ।। ३-४ ।। कीर्ति अपने पति जयन्त को त्यागकर, वसु मरीचिनन्दन कश्यप को त्यागकर एवं धृति अपने पति नन्दी को त्यागकर सोम की ही उस समय सेवा करने लगी ।। ५ ।। सोम भी उस समय उन समस्त रमणियों की सकामभाव से उसी तरह से कामना करने लगे जिस तरह से कोई अपनी पत्नी की सकामभाव से कामना करता है । सोम के द्वारा किये जाने वाले इस प्रकार के अपचार को देखकर भी उन समस्त देवियों के पतिगण उस समय सोम को शाप देकर अथवा शस्त्र के द्वारा उस अत्याचार का बदला लेने में समर्थ नहीं हो सके,अपितु सोम ही अपनी तपस्या के बल से भू आदि सातों लोकों के स्वमी हो गये।।६-७।। अत्याचार करने के कारण चन्द्रमा की बुद्धि विनय से पथभ्रान्त हो गयी ।उन्होंने बलपूर्वक देवगुरु तथा अंगिरा नन्दन वृहस्पति जी की यशस्विनी पत्नी तारा का अपहरण कर लिया।।८।। उस समय देवों एवं दानवों में जगत् का विनाश करने वाला महान् युद्ध हुआ जो युद्ध तारकामय नामक युद्ध के नाम से विख्यात है ।। ९ ।। इसके पश्चात् ब्रह्माजी आकर चन्द्रमा की सहायता करने वाले शुक्राचार्य को रोक दिए और वृहस्पति को उनकी पत्नी तारा दिलवा दिये । तारा को गर्भवती देखकर वृहस्पति ने कहा कि तुम इस गर्भ का त्याग कर दो ।। १० ।। वृहस्पति के कहने से तारा ने उस गर्भ का त्याग कर दिया । त्याग करते ही उत्पन्न उस तेजस्वी पुत्र ने कहा कि मैं चन्द्रमा का पुत्र हूँ ।। ११ ।। इस तरह से सोम से बुध उत्पन्न हुए । बुध के पुत्र पुरुरवा हुए । उर्वशी नामक प्रसिद्ध अप्सरा ने स्वर्ग लोक को त्यागकर सकामभावना से पुरुरवा को पतिरूप से स्वीकार किया ।। १२ ।। हे महामुने ! उस अप्सरा के साथ राजा पुरुरवा ने उनसठ वर्षों तक विहार किया ।। १३ ।। पहले अग्नि एक ही थे राजा पुरुरवा ने ही उन्हें तीन (गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि) रूपों से प्रकट किया । राजा पुरुरवा योगी थे । अन्त में उन्होंने गन्धर्वलोक को प्राप्त किया ।। १४ ।। राजा पुरुरवा ने आठ राजपुत्रों को उत्पन्न किया- आयु, दृढायु, अश्वायु, धनायु, धृतिमान्, वसु, दिविजात और शतायु ।। १५ ।। आयु के पाँच पुत्र हुए- नहुष, वृद्धशर्मा, रजि, दर्भ, एवं विपाप्मा । रजि के सौ पुत्र हुए ।। १६ ।। रजि के सभी पुत्र राजेय के नाम से विख्यात हुए । राजा रजि को भगवान् विष्णु का वरदान प्राप्त हुआ था। देवता के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर राजा रजि ने दैत्यों का वध किया था ।। १७ ।। इन्द्र राजा रजि के पुत्रत्व को स्वीकार किये और रजि इन्द्र को स्वर्गलोक का राज्य प्रदान कर स्वयं दिव्यलोक को चले गये । कुछ समय रजि के पुत्रों ने इन्द्र का राज्य छीन लिया । इससे अत्यन्त दुखी हुए वृहस्पति ग्रहशान्ति आदि की विधि से रजि के अपने धर्म का आचरण नहीं करने वाले पुत्रों को मोहित करके इन्द्र को स्वर्ग का राज्य दे दिया ।। १८-१९ ।। राजा नहुष के सात पुत्र हुए-उनके नाम थे- यति, ययाति, उत्तम, उद्धव, पञ्चक, शर्याति और मेघपालक ।। २० ।। यति

वृषपर्वजा शर्मिष्ठा ययातेः पञ्च तत्सुताः । यदुश्च तुर्वसुश्चैव देवयानी व्यजायत॥२२॥ द्रुह्यश्चानूश्च पूरुश्च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी । यदुः पूरूश्चाभवतां तेषां वंशविवर्धनौ ॥ २३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सोमवंशवर्णनं नाम चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७४ ॥

पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

यदुवंशवर्णनम्

अग्निरुवाच— **यदोरासन् पञ्च पुत्रा ज्येष्ठस्तेषु सहस्त्रजित् । नीलाञ्जिको रघुः क्रोष्टुःशतजिच्चसहस्त्रजित् ॥ १ ॥ शतजिद्धैहयो रेणुहयो हय इतित्रयः। धर्मनेत्रो हैहयस्य धर्मनेत्रस्य संहनः॥ २॥ महिमा संहनस्यासीन् महिम्नो भद्रसेनकः । भद्रसेनाद् दुर्गमोऽभूद् दुर्गमात् कनकोऽभवत्॥३॥ कनकात् कृतवीर्य्यस्तु कृताग्निः करवीरकः । कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत् कृतवीर्य्यात् तु सोऽर्जुनः॥ ४ ॥ दत्तोऽर्जुनाय तपते सप्तद्वीपमहीशताम् । ददौ बाहुसहस्त्रञ्च अजेयत्वं रणेऽरिणा ॥ ५॥ अधर्मे वर्तमानस्य विष्णुहस्तान् मृतिर्ध्रुवा । दश यज्ञसहस्त्राणि सोऽर्जुनः कृतवान् नृपः॥ ६॥ अनष्टद्रव्यता राष्ट्रे तस्य संस्मरणादभूत् । न नूनं कार्त्तवीर्य्यस्य गतिं यास्यन्ति वै नृपाः॥ ७॥ यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च । कार्त्तवीर्य्यस्य च शतं पुत्राणां पञ्च वै पराः॥ ८॥ सूरसेनश्च सूरश्च धृष्टोक्तःकृष्ण एव च । जयध्वजश्च नामासीदावन्त्यो नृपतिर्महान् ॥ ९॥ जयध्वजात् तालजङ्घस्तालजङ्घात् ततःसुताः। हैहयानां कुलाः पञ्च भोजाश्चावन्तयस्तथा ॥ १० ॥ वीतिहोत्राः स्वयं जाताः शौण्डिकेयास्तथैव च । वीतिहोत्रादनन्तोऽभूदनन्ताद् दुर्जयो नृपः ॥ ११ ॥ क्रोष्टोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातो हरिःस्वयम् । क्रोष्टोस्तु वृजिनीवांश्च स्वाहाऽभूद् वृजिनीवतः॥१२॥**

ने कुमारावस्था में ही भगवान् विष्णु का ध्यान करके श्रीभगवान् को प्राप्त कर लिया । उस समय शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी राजा ययाति की पत्नी हुई ।। २१ ।। और वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा भी उनकी पत्नी हुई । ययाति के पाँच पुत्र हुए- यदु और तुर्वसु ये दो पुत्र देवयानी के हुए ।। २२ ।। वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने तीन पुत्रों को उत्पन्न किया- द्रुह्यु, अनु और पुरु। उनमें यदु और पुरु ये दो ही सोमवंश का विस्तार करने वाले हुए ।। २३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्नि पुराण का सोमवंश वर्णन नामक दो सौ चौहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २७४ ॥

अग्निदेव ने कहा— यदु के पाँच पुत्र थे नीलाञ्जिक रघु, क्रोष्टु,शतजित् और सहस्त्रजित् । इनमें सहस्त्रजित् सबसे बड़े थे ।। १ ।। शतजित् के तीन पुत्र हुए- हैहय, रेणुह्य और हय। हैहय के पुत्र धर्मनेत्र और धर्मनेत्र के पुत्र संहत हुए ।। २ ।। सहंत के पुत्र महिमा हुए और महिमा के पुत्र भद्रसेन । भद्रसेन के पुत्र दुर्गम हुए और दुर्गम के कनक ।। ३ ।। कनक के चार पुत्र हुए- कृतवीर्य, कृताग्नि,करवीरक और कृतौजा । कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन हुए।। ४ ।। अर्जुन की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने उन्हें वरदान में- सातों द्वीपों का आधिपत्य, एक हजार भुजायें, संग्राम में शत्रु से अपराजेयता प्रदान किया ।। ५ ।। उन्होंने यह भी कहा कि जब तुम अधर्मगामी हो जाओगे तो तुम्हारी भगवान् विष्णु के हाथों मृत्यु होगी ।उस राजा अर्जुन ने दस हजार यज्ञ किया ।। ६ ।। अर्जुन के स्मरण करने मात्र से राष्ट्र में कोई भी वस्तु भूलती नहीं थी । यज्ञ, दान, तपस्या, पराक्रम और शास्त्रज्ञान के द्वारा कोई भी कृतवीर्यनन्दन अर्जुन की गति को नहीं प्राप्त कर सकता है ।। ७ ।। कार्तवीर्य अर्जुन के सौ पुत्र थे उनमें पाँच प्रधान थे ।। ८ ।। उनके नाम थे- सूरसेन, सूर, धृष्टोक्त, कृष्ण एवं जयध्वज । जयध्वज अवन्ती देश के महाराज थे ।। ९ ।। जयध्वज के पुत्र तालजंघ हुए और तालजंघ के अनेक पुत्र हुए जो तालजंघ के नाम से ही प्रसिद्ध थे । हैहयवंशी क्षत्रियों के पाँच कुल हैं- भोज, अवन्ती, वीतिहोत्र,

स्वाहापुत्रो रुपद्गुश्च तस्य चित्ररथः सुतः। शशबिन्दुश्चित्ररथात् चक्रवर्ती हरौ रतः॥ १३॥ शशविन्दोश्च पुत्राणां शतानामभवच्छतम् ।धीमतां चारुरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम्॥ १४॥ पृथुश्रवाःप्रधानोऽभूत् तस्य पुत्रः सुयज्ञकः । सुयज्ञस्योशनाः पुत्रस्तितिक्षुरुशनः सुतः॥ १५॥ तितिक्षोस्तु मरुत्तोऽभूत् तस्मात् कम्बलबर्हिषः। पञ्चाशद्रुक्मकवचाद्रुक्मेषुः पृथुरुक्मकः॥१६॥ हविर्ज्यामघः पापघ्नो ज्यामघः स्त्रीजितोऽभवत् । सेव्यायां ज्यामघादासीद् विदर्भस्तस्य कौशिकः ॥ १७ ॥ लोमपादः क्रथः श्रेष्ठात् कृतिःस्याल्लोमपादतः। कौशिकस्य चिदिः पुत्रस्तस्माच्चैद्या नृपाःस्मृताः॥१८॥ क्रथाद्विदर्भपुत्राच्च कुन्तिः कुन्तेस्तु धृष्टकः । धृष्टस्य निधृतिस्तस्य उदर्काख्यो विदूरथः॥ १९॥ दशार्हपुत्रो व्योमस्तु व्योमाज्जीमूत उच्यते । जीमूतपुत्रो विकलस्तस्य भीमरथः सुतः॥ २०॥ भीमरथान् नवरथस्ततो दृढरथोऽभवत् । शकुन्तिश्च दृढरथात् शकुन्तेश्च करम्भकः॥ २१॥ करम्भाद्देवरातोऽभूत् देवक्षेत्रश्च तत्सुतः। देवक्षेत्रान् मधुर्नाम मधोर्द्रवरसोऽभवत्॥ २२॥ द्रवरसात् पुरुहूतोऽभूज्जन्तुरासीत् तु तत्सुतः । गुणी तु यादवो राजा जन्तुपुत्रस्तु सात्वतः ॥ २३ ॥ सात्त्वताद् भजमानस्तु वृष्णिरन्धक एव च । देवावृधश्च चत्वारस्तेषां वंशास्तु विश्रुताः॥ २४॥ भजमानस्य वाह्योऽभूद् वृष्टिः कृमिर्निमिस्तथा । देवावृधाद् वभ्रुरासीत् तस्य श्लोकोऽत्रगीयते ॥ २५॥ यथैव शृणुमो दूरात् गुणास्तद्वत् समन्तिकात्। वभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ॥ २६ ॥ चत्वारश्च सुता वभ्रोर्वासुदेवपरा नृपाः। कुहुरो भजमानस्तु शिनिःकम्बलवर्हिषः॥ २७॥ कुहुरस्य सुतो धृष्णुर्धृष्णोस्तु तनयो धृतिः । धृतेः कपोतरोमाभूत् तस्य पुत्रस्तु तित्तिरिः॥ २८॥ तित्तिरेस्तु नरः पुत्रस्तस्य चन्दनदुन्दुभिः। पुनर्वसुस्तस्य पुत्र

स्वयंजात और शौण्डिकेय ।। १० ।। वीतिहोत्रसे अनन्त की उत्पत्ति हुई और अनन्त से दुर्जय की ।। ११ ।। अब मैं क्रोष्टु के वंश का वर्णन करता हूँ जिस वंश में स्वयं श्रीहरि अवतीर्ण हुए । क्रोष्टु से वृजिनीवान् की उत्पत्ति हुई और वृजिनीवान् से स्वाहा की उत्पत्ति हुई ।। १२ ।। स्वाहा के पुत्र रुषद्गु हुए और रुषद्गु के चित्ररथ पुत्र हुए । चित्ररथ के पुत्र शशविन्दु हुए । वे चक्रवर्ती राजा हुए और भगवद्भक्त थे ।। १३ ।। शशविन्दु के दस हजार पुत्र थे । वे सबके सब बुद्धिमान, सुन्दर, प्रभूत सम्पत्ति एवं तेजस्सम्पन्न थे ।। १४ ।। उन सबों में प्रधान पृथुश्रवा थे । पृथुश्रवा के पुत्र सुयज्ञ हुए । उनके पुत्र का नाम उशना और उशना के पुत्र तितिक्षु थे ।। १५ ।। तितिक्षु के पुत्र मरुत हुए और उनके पुत्र कम्बलवर्हिष हुए । उनका दूसरा नाम रुक्म कवच था । रुक्मकवच के पचास पुत्र हुए जिनमें प्रधान थे- रुक्मेषु, पृथुरुक्मक, हवि, ज्यामघ और पापघ्न आदि । इनमें ज्यामघ अपनी स्त्री के वशीभूत रहने वाले थे ।। १६ ।। उससे उसकी पत्नी सेव्या के गर्भ से विदर्भ की उत्पत्ति हुई । विदर्भ के कौशिक, लोमपाद तथा क्रथ नामक पुत्र हुए । इनमें लोमपाद श्रेष्ठ थे और उनके पुत्र कृति हुए ।। १७ ।। कौशिक के पुत्र चिदि हुए और उनके ही वंशज चेहा राजा हुए ।। १८ ।। विदर्भ पुत्र क्रथ के पुत्र कुन्ति हुए और उनके पुत्र धृष्ट हुए । धृष्ट के पुत्र निधृति एवं निधृति के पुत्र विदूरथ हुए ।। १९ ।। ये दशार्ह नाम से प्रख्यात थे। दशार्ह के पुत्र ब्योम हुए और उनके पुत्र जीमूत हुए । जीमूत के पुत्र विकल हुए और उनके पुत्र भीमरथ हुए ।। २० ।। भीमरथ से नवरथ उत्पन्न हुए और उनसे दृढ़रथ उत्पन्न हुए। दृढ़रथ के पुत्र शकुन्ति हुए और शकुन्ति के पुत्र देवक्षेत्र हुए । देवक्षेत्र से मधु उत्पन्न हुए और उनसे द्रवरस ने जन्म लिया ।। २२ ।। द्रवरस से पुरुहूत उत्पन्न हुए और पुरुहूत के पुत्र जन्तु हुए। जन्तु के पुत्र का नाम सात्त्वत् था । वे गुणवान् यदुवंशी राजा थे ।। २३ ।। सात्त्वत् के चार पुत्र थे- भजमान् , वृष्णि, अन्धक एवं देवावृध । इन चारों के वंश विख्यात हैं ।। २४ ।। भजमान के चार पुत्र थे- बाह्य, वृष्टि, निमि तथा कृमि । देवावृध के बभ्रु पुत्र हुए उनके विषय में यह श्लोक गाया जाता है ।। २५ ।। 'हम गुणों को जैसा दूर से सुनते हैं वैसा सन्निकट से देखते भी हैं। बभ्रु मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं और देवावृध देवताओं के समान हैं ।। २६ ।। बभ्रु के चार राजा पुत्र हुए । वे थे- कुहुर, भजमान, शिनि और कम्बल बर्हिष । ये सभी भगवान् वासुदेव के भक्त थे ।। २७ ।। कुहुर के पुत्र का नाम धृष्णु था, उनके पुत्र का नाम धृति हुआ । धृति के पुत्र कपोतरोमा हुए और उनके पुत्र तित्तिरि हुए ।। २८ ।। तित्तिरि के पुत्र का नाम नर था उनके पुत्र का नाम आनकदुन्दुभि हुआ। उनके पुत्र पुनर्वसु हुए और उनके पुत्र आहुक हुए । वे आहुकी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे ।। २९ ।। आहुक के देवक और उग्रसेन नामक पुत्र हुए । देवक के

आहुकश्चाहुकीसुतः॥ २९॥ आहुकाद् देवको जज्ञे उग्रसेनस्ततोऽभवत्। देववानुपदेवश्च देवकस्य सुताःस्मृताः॥ ३०॥ तेषां स्वसारः सप्तासन् वसुदेवाय ता ददौ । देवकी श्रुतदेवी च मित्रदेवी यशोधरा ॥ ३१॥ श्रीदेवीसत्यदेवी च सुरापी चेति सप्तमी । नवोग्रसेनस्यसुताः कंसस्तेषाञ्च पूर्वजः॥ ३२॥ न्यग्रोधश्च सुनामा च कङ्कः शङ्कुश्च भूमिपः । सुतनूराष्ट्रपालश्च युद्धमुष्टिः सुमुष्टिकः ॥ ३३॥ भजमानस्य पुत्रोऽथ रथमुख्यो विदूरथः । राजाधिदेवः शूरश्च विदूरथसुतोऽभवत् ॥ ३४॥ राजाधिदेवपुत्रौ द्वौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः । शोणाश्वस्य सुताः पञ्च शमी शत्रुजिदादयः॥३५॥ शमीपुत्रः प्रतिक्षेत्रः प्रतिक्षेत्रस्य भोजकः । भोजस्य हृदिकः पुत्रो हृदिकस्य दशात्मजाः॥ ३६॥ कृतवर्मा शतधन्वा देवार्हो भीषणादयः । देवार्हात् कम्बलवर्हिरसमौजास्ततोऽभवत् ॥ ३७॥ सुदंष्ट्रश्च सुवासश्च धृष्टोऽभूदसमौजसः । गान्धारी चैव माद्री च धृष्टभार्य्ये बभूवतुः॥ ३८॥ सुमित्रोऽभूच्च गान्धार्य्यां माद्री जज्ञे युधाजितम् । अनमित्रः शनिधृर्ष्टात् ततो वै देवमीढुषः ॥ ३९ ॥ अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्यापि प्रसेनकः। सत्राजितः प्रसेनोऽथ मणिं सूर्य्यात् स्यमन्तकम्! ॥ ४० ॥ प्राप्यारण्ये चरन्तन्तु सिंहो हत्वाग्रहीन् मणिम् । हतो जाम्बवता सिंहो जाम्बवान् हरिणा जितः॥४१॥ तस्मान् मणिं जाम्बवतीं प्राप्यागाद् द्वारकां पुरीम् । सत्राजिताय प्रददौ शतधन्वा जघान तम् ॥ ४२ ॥ हत्वा शतधनुं कृष्णो मणिमादाय कीर्त्तिभाक् । बलयादवमुख्याग्रे अक्रूरान् मणिमर्पयत् ॥ ४३ ॥ मिथ्याभिशस्तिं कृष्णस्य त्यक्त्वा स्वर्गी च सम्पठन् । सत्राजितो भङ्गकारः सत्यभामा हरिः प्रिया॥ ४४॥ अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे सत्यकस्तु शिनेःसुतः । सत्यकात् सात्यकिर्जज्ञे युयुधानाद् धुनिर्ह्यभूत् ॥ ४५ ॥ धुनेर्युगन्धरः पुत्रः स्वाद्योऽभूत् स युधाजितः । ऋषभक्षेत्रको तस्य ह्यृषभाच्च स्वफल्ककः ॥ ४६ ॥ स्वफल्कपुत्रो ह्यक्रूरः अक्रूराच्च सुधन्वकः।

देववान् उपदेव (सहदेव और देवरक्षित) आदि पुत्र हुए ।। ३० । उन सबों की सात बहनें थीं उन सबों का ब्याह वसुदेव से हुआ । उन सबों का नाम था- देवकी, श्रुतदेवी, मित्रदेवी, यशोधरा, श्रीदेवी, सत्यदेवी और सुरापी ।। ३१ ।। उग्रसेन के नव पुत्र थे उन सबों में बड़ा कंस था ।। ३२ ।। उन सबों का नाम है- न्यग्रोध, सुनामा, कंक, राजा शंकु, सुतनु, राष्ट्रपाल युद्धमुष्टि, सुमुष्टिक एवं कंस।।३३।। भजमान के पुत्र विदूरथ रथियों में श्रेष्ठ थे । उनके पुत्र राजाधिदेव शूर के भी नाम से विख्यात थे ।। ३४ ।। राजाधिदेव के दो पुत्र हुए शोणाश्व और श्वेतवाहन । शोणाश्व के शमी और शत्रुजित् आदि पाँच पुत्र हुए ।। ३५ ।। शमी के पुत्र का नाम प्रतिक्षेत्र था और उनके पुत्र का नाम भोज हुआ । भोज के पुत्र हृदिक हुए और उनके कृतवर्मा, शतधन्वा, देवार्ह और भीषण आदि दस पुत्र हुए ।। ३६ ।। देवार्ह के पुत्र कम्बलवर्हि और उनके पुत्र असमौजा हुए ।। ३७ ।। असमौजा के तीन पुत्र हुए- सुदंष्ट्र सुवास और धृष्ट । धृष्ट की दो पत्नियाँ थीं गान्धारी और माद्री ।। ३८ ।। गान्धारी से सुमित्रा का जन्म हुआ और माद्री से युधाजित् का । धृष्ट के पुत्र अनमित्र और शिनि हुए और शिनि के पुत्र देवमीढुष ।। ३९।। अनमित्र के पुत्र निघ्न और निघ्न के पुत्र प्रसेन और सत्राजित् हुए । प्रसेनजित् सूर्य के स्यमन्तक मणि को प्राप्त कर मृगया के लिए जंगल में विचर रहे थे । उनको मारकर एक सिंह ने उनसे वह मणि ले ली।।४०।। तत्पश्चात जाम्बवान् ने उस सिंह को मार डाला । उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने जाम्बवान् को युद्ध में परास्त किया और उनसे जाम्बवती तथा मणि को पाकर वे द्वारिकापुरी लौट आये । वहाँ आकर उन्होंने वह मणि सत्राजित् को दे दी । किन्तु मणि के लोभ से शतधन्वा ने उसे मार डाला ।। ४१-४२ ।। श्रीकृष्ण ने शतधन्वा को मारकर वह मणि छीन ली और यश के भागी बने। इसके पश्चात् उन्होंने बलराम और यादव मुख्यों के समक्ष उस मणि को उन्होंने अक्रूर को अर्पित कर दी ।। ४३ ।। इससे श्रीकृष्ण के मिथ्या कलंक का मार्जन हुआ । जो इस प्रसंग का पाठ करता है, उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है । सत्राजित् के पुत्र भङ्गकार हुए और उनकी पुत्री भगवान् श्रीकृष्ण की प्रियतमा सत्यभामा हुई ।। ४४ ।। अनामित्र के पुत्र शिनि हुए और शिनि के पुत्र सत्यक हुए । सत्यक से सात्यकि की उत्पत्ति हुई । वे युयुधान नाम से भी प्रसिद्ध हुए । उनके पुत्र धुनि हुए ।। ४५ ।। धुनि के पुत्र युगन्धर हुए । युधाजित् के पुत्र स्वाध्य हुए। स्वाध्य के दो पुत्र हुए ऋषभ एवं क्षेत्रक । ऋषभ के श्वफल्क नामक पुत्र हुए ।। ४६ ।। श्वफल्क के पुत्र का नाम अक्रूर हुआ और अक्रूर के पुत्र सुधन्वक हुए । शूर के वसुदेव आदि पुत्र तथा

शूरात् तु वसुदेवाद्याः पृथा पाण्डोः प्रियाऽभवत्॥४७॥ धर्माद् युधिष्ठिरः पाण्डोर्वायोः कुन्त्यां वृकोदरः । इन्द्राद् धनंजयो माद्र्यां नकुलःसहदेवकः॥४८॥ वसुदेवाच्च रोहिण्यां रामःसारणदुर्गमौ । वसुदेवाच्च देवक्यामादौ जातः सुसेनकः॥ ४९॥ कीर्त्तिमान् भद्रसेनश्च जारुख्यो विष्णुदासकः । भद्रदेहः कंस एतान् षड्गर्भान् निजघान ह ॥ ५० ॥ ततो बलस्ततः कृष्णः सुभद्रा भद्रभाषिणी । चारुदेष्णश्च शाम्बाद्याःकृष्णाज्जाम्बवतीसुताः ॥ ५१॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये यदुवंशवर्णनं नाम पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७५ ॥

षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

द्वादशसंग्रामाः

अग्निरुवाच— **कश्यपो वसुदेवोऽभूद् देवकी चादितिर्वरा । देवक्यां वसुदेवात् तु कृष्णोऽभूत् तपसान्वितः ॥ १ ॥ धर्मसंरक्षणार्थाय ह्यधर्महरणाय च । सुरादेः पालनार्थञ्च दैत्यादेर्मथनाय च ॥ २ ॥ रुक्मिणी सत्यभामा च सत्या नग्नजिती प्रिया । सत्यभामा हरेः सेव्या गान्धारी लक्ष्मणा तथा॥३॥ मित्रविन्दा च कालिन्दी देवी जाम्बवती तथा । सुशीला च तथा माद्री कौसल्या विजया जया ॥ ४ ॥ एवमादीनि देवीनां सहस्राणि तु षोडश । प्रद्युम्नाद्याश्च रुक्मिण्यां भीमाद्याःसत्यभामया ॥ ५ ॥ जाम्बवत्याञ्च शाम्बाद्याः कृणस्यासंस्तथापरे । शतं शतसहस्राणां पुत्राणां तस्य धीमतः॥ ६॥ अशीतिश्च सहस्राणि यादवाः कृष्णरक्षिताः । प्रद्युम्नस्य तु वैदर्भ्यामनिरुद्धो रणप्रियः॥ ७॥ अनिरुद्धस्य वज्राद्या यादवाःसुमहाबलाः।**

पृथा नाम की पुत्री हुई जो महाराज पाण्डु की प्रियपत्नी हुई ।। ४७ ।। पाण्डु की पत्नी पृथा (कुन्ती) के गर्भ से धर्म के अंश से युधिष्ठिर, वायु के अंश से भीमसेन तथा इन्द्र के अंश से अर्जुन उत्पन्न हुए । माद्री के गर्भ से अश्विनी कुमारों के अंश से नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए ।। ४८ ।। वसुदेव के अंश से रोहिणी के गर्भ से तीन पुत्र हुए- बलराम, सारण और दुर्गम और वसुदेव के अंश से देवकी के गर्भ से पहले छह पुत्र हुए- सुसेनक, कीर्त्तिमान्, भद्रसेन, जारुख्य, विष्णुदास और भद्रदेह । कंस ने देवकी के इन छहों पुत्रों को मार दिया था ।।४९-५०।। उसके पश्चात् बलराम और कृष्ण का जन्म हुआ । उसके पश्चात् शुभ वचन बोलने वाली सुभद्रा का जन्म हुआ । चारुदेष्ण और साम्ब आदि भगवान् कृष्ण के पुत्र हुए । ये सभी जाम्बवती के पुत्र थे ।। ५१।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का यदुवंश वर्णन नामक दो सौ पचहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २७५ ॥

श्री अग्निदेव ने कहा— वसिष्ठ ! महर्षि कश्यप ही वसुदेव के रूप में अवतीर्ण हुए और नारियों में श्रेष्ठ अदिति देवकी के रूप में अवतीर्ण हुईं । वसुदेव के अंश से देवकी के गर्भ से भगवान् श्रीकृष्ण का प्रादुर्भाव हुआ । वे बड़े तपस्वी थे ।। १ ।। धर्म का संरक्षण करने के लिए, अधर्म का नाश करने के लिए, देवताओं आदि का पालन करने के लिए तथा दैत्यों आदि का विनाश करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार हुआ था ।। २ ।। रुक्मिणी, सत्यभामा, नग्नजिती तथा सत्या ये भगवान् की प्रिय रानियाँ थीं । सत्यभामा तो भगवान् की अत्यन्त प्रिया थीं । उनके अतिरिक्त गान्धारी, लक्ष्मणा,मित्रविन्दा और देवी कालिन्दी, जाम्बवती, सुशीला, माद्री, कौसल्या, विजया, जया ।। ३-४ ।। इत्यादि श्रीकृष्ण भगवान् की सोलह हजार नारियाँ थीं। प्रद्युम्न आदि का जन्म रुक्मिणी के गर्भ से हुआ था तथा भीम आदि का सत्यभामा के गर्भ से ।। ५ ।।शाम्ब आदि जाम्बवती के पुत्र थे । इस तरह से इनके अतिरिक्त भगवान् श्रीकृष्ण के और भी अनेक पुत्र थे । परंबुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्रों की संख्या लगभग एक करोड़ अस्सी हजार थी । ये समस्त यादव भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा रक्षित थे ।। ६ ।। प्रद्युम्न के अंश से

तिस्रः कोट्यो यादवानां षष्ठिर्लक्षाणि दानवाः ॥ ८ ॥ मनुष्ये बाधका ये तु तन्नाशाय बभूव सः । कर्त्तुं कर्मव्यवस्थानं मनुष्यो जायते हरिः ॥९॥ देवासुराणां संग्रामा दायार्थं द्वादशाभवन् । प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयो वामनो रणः ॥ १० । संग्रामस्त्वथ वाराहश्चतुर्थोऽमृतमन्थनः । तारकामयसंग्रामः षष्ठो ह्याजीवको रणः ॥ ११ ॥ त्रैपुरश्चान्धकबधो नवमो वृत्रघातकः । जितो हालाहलश्चाथ घोरः कोलाहलो रणः ॥ १२ ॥ हिरण्यकशिपोश्चोरो विदार्य्य च नखैः पुरा । नारसिंहो देवपालः प्रह्लादं कृतवान् नृपम् ॥ १३ ॥ देवासुरे वामनश्च छलित्वा बलिमूर्जितम् । महेन्द्राय ददौ राज्यं काश्यपोऽदितिसम्भवः ॥ १४ ॥ वराहस्तु हिरण्याक्षं हत्वा देवानपालयत् । उज्जहार भुवं मग्नां देवदेवैरभिष्टुतः ॥ १५॥ मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकीम् । सुरासुरैश्च मथितं देवेभ्यश्चामृतं ददौ॥ १६॥ तारकामयसंग्रामे तदा देवाश्च पालिताः । निवार्य्येन्द्रं गुरून् देवान् दानवान् सोमवंशकृत् ॥१७॥ विश्वामित्रवशिष्ठात्रिकवयश्च रणे सुरान् । अपालयन्ते निर्वार्य्य रागद्वेषादि दानवान् ॥ १८॥ पृथ्वीरथे ब्रह्मयन्तुरीशस्य शरणो हरिः । ददाह त्रिपुरं देवपालको दैत्यमर्दनः ॥ १९ ॥ गौरीं जिहीर्षुणा रुद्रमन्धकेनार्दितं हरिः । अनुरक्तश्च रेवत्यां चक्रे चान्धासुरार्दनम् ॥ २०॥ अपां फेनमयो भूत्वा देवासुररणे हरन् । वृत्रं देवहरं विष्णुर्देवधर्मानपालयत् ॥ २१ ॥ शाल्वादीन् दानवान् जित्वा हरिः परशुरामकः । अपालयत्

से विदर्भ राजकुमारी रुक्मवती के गर्भ से अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ । प्रद्युम्न युद्ध के प्रेमी थे ।। ७ ।। अनिरुद्ध के वज्र आदि पुत्र हुए । ये समस्त यादव अत्यन्त बलवान् थे । सम्पूर्ण यादवों की संख्या तीन करोड़ थी उस समय साठ लाख दानव थे । जो मनुष्य योनि मेंउत्पन्न हुए थे । जो इन बाधक दानवों का विनाश करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण अवतीर्ण हुए थे ।। ८ ।। कर्मों को व्यवस्थित करने के लिए ही श्रीहरि मनुष्यरूप से अवतीर्ण होते हैं ।। ९ ।। देवों और दानवों में दायभाग के लिए बारह संग्राम हुए । उनमें पहला संग्राम नारसिंहीसंग्राम हुआ, दूसरा वामन संग्राम हुआ ।। १० ।। तीसरा वाराह युद्ध हुआ, चौथा अमृतमन्थन नामक युद्ध हुआ, पाँचवाँ तारकामय संग्राम हुआ और छठा आजीवक नामक युद्ध हुआ ।। ११ ।। सातवाँ त्रैपुर युद्ध हुआ, आठवाँ अन्धकवध नामक युद्ध हुआ, नौवाँ वृत्र विघातक युद्ध हुआ, दसवाँ जित नामक युद्ध हुआ, ग्यारहवाँ हालाहल नामक युदृध हुआ और बारहवाँ घोर कोलाहल नामक युद्ध हुआ ।। १२।। प्राचीनकाल में भगवान् देवताओं के रक्षक नृसिंह ने अपने नखों से हिरण्यकशिपु के हृदय को फाड़कर उसे मार दिया और प्रह्लाद को राजा बनाया ।। १३ ।। भगवान् वामन महर्षि कश्यप के अंश से अदिति के गर्भ से अवतीर्ण हुए । देवासुर संग्राम में जब बलि ने इन्द्र के राज्य को जीत लिया था, उस समय भगवान् ने बलि को छल लिया और इससे इन्द्र का राज्य लेकर इन्द्र को लौटा दिया ।। १४ ।। वराह भगवान् ने हिरण्याक्ष का वध करके देवताओं की रक्षा की । जल के भीतर डूबी हुई पृथिवी का उन्होंने उद्धार किया । उस समय सभी देवताओं ने वराह भगवान् की स्तुति की ।। १५ ।। अमृत मन्थन के समय श्रीभगवान् ने समुद्र मन्थन के लिए मन्दराचल को मथानी बनाया, वासुकी नाग को उस मथानी का नेत्र (रस्सी बनाया, देवता और असुर दोनों ने मिलकर अमृत का मन्थन किया । उस अमृत को श्रीभगवान् ने देवताओं को पिलाया ।। १६ ।। तारकामय संग्राम के समय भगवान् ब्रह्मा ने इन्द्र, वृहस्पति, देवताओं तथा दानवों को युद्ध से रोककर देवताओं की रक्षा की तथा सोमवंश की स्थापना की ।। १७ ।। आजीवक युद्ध में श्रीभगवान् ने विश्वामित्र, वसिष्ठ तथा अत्रि आदि ऋषियों ने रागद्वेष आदि से युक्त दानवों का निवारण किया देवताओं का पालन किया ।। १८ ।। पृथिवी रूपी रथ में वेदरूपी घोड़ों को जोतकर भगवान् शंकर त्रिपुर का विनाश करने के लिए चले। उससमय देवताओं के रक्षक और दैत्यों का विनाश करने वाले श्रीभगवान् ने श्रीशंकरजी को शरण दिया और बाण बनकर स्वयं ही त्रिपुर का विनाश किये ।। १९ ।। पार्वती का अपहरण करने के इच्छुक अन्धकासुर ने जब भगवान् शंकर को दुख दिया तो उस समय रेवती में अनुराग रखने वाले श्रीहरि ने अन्धकासुर का विनाश कर दिया ।। २० ।। देवासुर संग्राम में वृत्रासुर का विनाश करने के लिए भगवान् विष्णु जल का फेन बन गये और इन्द्र के वज्र में लग गये । इस प्रकार उन्होंने देवराज इन्द्र और देवधर्म का पालन करने वाले देवताओं को संकट से बचाया ।। २१ ।। जित नामक संग्राम के अवसर पर भगवान् परशुराम ने शाल्व आदि दैत्यों पर विजय प्राप्त किया और दुष्ट क्षत्रियों का विनाश करके देवताओं का उन्होंने पालन किया ।। २२ ।। ग्यारहवें हालाहल संग्राम में

सुरादींश्च दुष्टक्षत्रं निहत्य च ॥ २२ ॥ हालाहलं विषं दैत्यं निराकृत्यमहेश्वरात् । भयं निर्णाशयामास देवानां मधुसूदनः ॥ २३॥ देवासुरे रणे यश्च दैत्यः कोलाहलो जितः। पालिताश्च सुराः सर्वे विष्णुनाधर्मपालनात् ॥ २४ ॥ राजानो राजपुत्राश्च मुनयो देवता हरिः । यदुक्तं यच्च नैवोक्तमवतारा हरेरिमे॥ २५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये द्वादशसंग्रामकथनं नाम षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७६ ॥

सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजवंशवर्णनम्

अग्निरुवाच– **तुर्वसोश्च सुतो वर्गो गोभानुस्तस्य चात्मजः। गोभानोरासीत् त्रैशानिस्त्रैशानेस्तु करन्धमः ॥ १ ॥ करन्धमान् मरुतोऽभूद् दुष्यन्तस्य चात्मजः । दुष्यन्तस्य वरूथोभूद् गाण्डीरस्तुवरूथतः॥ २॥ गाण्डीराच्चैव गान्धारः पञ्च जानपदास्ततः। गान्धाराः केरलाश्चोलाः पाण्ड्याः कोला महाबलाः ॥ ३ ॥ द्रुह्यस्तु वभ्रुसेतुश्च वभ्रु सेतोः पुरोवसुः । ततो गान्धारा गान्धारैर्धर्मो धर्माद् घृतोऽभवत् ॥ ४ ॥ घृतात् तु विदुषस्तस्मात् प्रचेतास्तस्य वै शतम्। अनडुश्च सुभानुश्चचाक्षुषः परमेषुकः॥ ५॥ सुभानोस्सीत् कालानलःकालानलजसृञ्जयः । पुरञ्जयः सृञ्जयस्य तत्पुत्रो जनमेजयः॥ ६॥ तत्पुत्रस्तुमहाशालस्तत्पुत्रोऽभून् महामनाः । तस्मादुशीनरोब्रह्मन्! नृगायान्तुनृगस्ततः॥ ७॥ नरायान्तु नरश्चासीत् कृमिस्तु कृमितःसुतः । दशायां सुव्रतौ जज्ञे शद्वत्यां शिविस्तथा॥ ८॥ शिवेः पुत्रास्तु चत्वारः पृथुदर्भश्च वीरकः । कैकेयो भद्रकस्तेषां नाम्ना जनपदाःशुभाः॥९॥**

श्रीभगवान् मधुसूदन ने हालाहल के रूप में उत्पन्न दैत्य का श्रीशंकरजी के द्वारा विनाश कराकर देवताओं का भय दूर किया ।। २३ ।। देवासुर संग्राम में जो कोलाहल नामक दैत्य था उसको परास्त करके भगवान् विष्णु ने धर्म पालन पूर्वक देवताओं की रक्षा की ।। २४ ।। राजा, राजकुमार मुनि और देवता-सबके सब भगवत् स्वरूप हैं । मैंने यहाँ पर जिनको बतलाया तथा जिनका वर्णन मैंने नहीं किया है, वे सबके सब भगवान् के ही स्वरूप हैं ।। २५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का द्वादश संग्रामों का वर्णन नामक दो सौ छिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २७६ ॥

श्रीअग्निदेव ने कहा– वसिष्ठ तुर्वसु के पुत्र वर्ग और वर्ग के पुत्र गोभानु हुए गोभानु के पुत्र वैशानि और वैशानि के पुत्र करन्धम हुए ।। १ ।। करन्धम के पुत्र मरुत्त हुए और उनके पुत्र दुष्यन्त हुए । दुष्यन्त के पुत्र बरूथ हुए और उनके पुत्र गाण्डीर हुए ।। २ ।। गाण्डीर के पुत्र गान्धार हुए और उनके पाँच पुत्र हुए- उन्हीं के नाम पर गन्धार, केरल, चोल, पाण्ड्य और कोल इन पाँच जनपदों की प्रसिद्धि हुई । ये सबके सब गान्धार पुत्र महाबलवान् थे ।। ३ ।। द्रुह्यु से वभ्रुसेतु और पुरोवसु का जन्म हुआ । उनसे गान्धार नामक पुत्रों की उत्पत्ति हुई । गान्धारों से धर्म की उत्पत्ति हुई और धर्मसे धृत नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई ।। ४ ।। धृत से विदुष का जन्म हुआ और उनसे प्रचेता का जन्म हुआ । प्रचेता के सौ पुत्र हुए जिनमें,अनडु, सुभानु, चाक्षुष एवं परमेषु ये चार प्रधान थे ।। ५ ।। सुभानु के पुत्र का लानल हुए और उनके पुत्र सृञ्जय हुए । सृञ्जय के पुत्रपुरञ्जय थे और उनके पुत्र जनमेजय ।। ६ ।। जनमेजय के पुत्र महाशाल हुए और उनके पुत्र महामना हुए । महामना के आत्मज उशीनर हुए और उनकी नृगा नामक पत्नी से नृग की उत्पत्ति हुयी ।। ७ ।। नृग की नरा नामकी पत्नी से नर की उत्पत्ति हुयी और कृमि नामक पत्नी से कृमि का जन्म हुआ । नृग की दशा नामक पत्नी से सुव्रत की उत्पत्ति हुयी और दृषद्वतीसे शिवि की उत्पत्ति हुयी ।। ८ ।। शिवि के चार पुत्र हुए- पृथुदर्भ, वीरक,कैकेय और भद्रक। इन चारों के नाम से चार जनपदों की प्रख्याति हुयी ।। ९ ।। उशीनर के पुत्र तितिक्षु हुए, तितिक्षु के रुषद्रथ पुत्र हुए, उनके भी पैल नामक पुत्र हुए और पैल से सुतपा नामक पुत्रों की

तितिक्षुरुशीनरजस्तितिक्षोश्च रुषद्रथः । रुषद्रथादभूत् पैलः पैलाच्च सुतपाःसुतः ॥१०॥ महायोगी बलिस्तस्मादङ्ग वङ्गश्च मुख्यकः । पुण्ड्रः कलिङ्गो बालेयो बलिर्योगी बलान्वितः ॥ ११ ॥ अङ्गाद् दधिवाहनोऽभूत् तस्माद् दिविरथो नृपः । दिविरथाद् धर्मरथस्तस्य चित्ररथःसुतः॥ १२॥ चित्ररथात् सत्यरथो लोमपादश्च तत्सुतः । लोमपादाच्चतुरङ्गः पृथुलाक्षश्चतत्सुतः॥ १३॥ पृथुलाक्षाच्च चम्पोभूच्चम्पाद्धर्य्यङ्गकोऽभवत् । हर्य्यङ्गाच्च भद्ररथो वृहत्कर्मा च तत्सुतः ॥ १४ ॥ तस्मादभूद् वृहद्भानुर्वृहद्भानोर्वृहात्मवान् । तस्माज् जयद्रथोह्यासीज् जयद्रथाद् वृहद्रथः॥ १५॥ वृहद्रथाद् विश्वजिच्च कर्णो विश्वजितोऽभवत् । कर्णस्य वृषसेनस्तु पृथुसेनस्तदात्मजः । एतेऽङ्गवंशजा भूपाः पुरोर्वंशं निबोध मे ॥ १६॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये राजवंशवर्णनं नाम सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७७ ॥

अष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुरुवंशवर्णनम्

अग्निरुवाच– पुरोर्जनमेजयोऽभूत् तत्सुतः । प्राचीन्नन्तान् मनस्युस्तु तस्माद्वीतमयो नृपः ॥ १ ॥ शुन्धुर्वीतमयाच्चाऽभूच्छुन्धोर्बहुविधः सुतः। बहुविधाच्चसंयातिरहोवादी च तत्सुतः प्राचीनन्तस्तु॥ २॥ तस्य पुत्रोऽथ भद्राश्वो भद्राश्वस्य दशात्मजाः । ऋत्तेयुश्च कृषेयुश्च सन्नदेयुस्तथात्मजः॥३॥ घृतजेयुश्च चितेयुश्च स्थण्डिलेयुश्च सत्तमः। धर्मेयुः सन्नतेयुश्च कृतेयुर्मतिनारकः ॥ ४॥ तंसुरोधः प्रतिरथः पुरस्तो मतिनारजाः। आसीत् प्रतिरथात् कण्वः कण्वान् मेघातिथिस्त्वभूत्॥५॥ तं सुरोधाच्च चत्वारो दुष्यन्तोऽथ प्रवीरक। सुमन्तश्चानयो वीरो दुष्यन्ताद् भरतोऽभवत् ॥ ६ ॥ शकुन्तलायान्तु

उत्पत्ति हुयी ।। १० ।। सुतपा से महायोगी बलि का जन्म हुआ और उनके पुत्र अङ्ग, बङ्ग, मुख्यक, पुण्डू और कलिङ्ग हुए । ये सभी 'बालेय' कहलाये और बलियोगी तो इन सबोंसे बलवान् थे।।११।। अङ्ग के पुत्र दधिवाहन हुए और उनके पुत्र राजा दिविरथ हुए । दिविरथ के पुत्र धर्मरथ हुए और उनके पुत्र चित्ररथ हुए ।। १२ ।। चित्ररथ के पुत्र सत्यरथ हुए और उनके पुत्र लोमपाद हुए । लोमपाद के पुत्र चतुरङ्ग हुए और उनके पुत्र पृथुलाक्ष हुए ।। १३ ।। पृथु लाक्ष के पुत्र चम्प हुए और उनके पुत्र हर्यङ्ग हुए । हर्यङ्ग के पुत्र भद्ररथ हुए और उनके पुत्र वृहत्कर्मा हुए ।।१४।। उनसे बृहद्भानु की उत्पत्ति हुई और उनके पुत्र बृहदात्मवान् हुए । बृहदात्मवान् के पुत्र जयद्रथ हुए और उनके पुत्र बृहद्रथ हुए ।। १५ ।।बृहद्रथ के पुत्र विश्वजित हुए और उनके पुत्र कर्ण हुए। कर्ण के पुत्र वृशसेन हुए और उनके पुत्र पृथुसेन हुए । इतने अंगवंशीय राजा हुए। अब तुम मुझसे पुरुवंश के राजाओं का वर्णन सुनो ।। १६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण के राजवंश वर्णन नामक दो सौ सतहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २७७ ॥

अग्निदेव ने कहा– पुरु के पुत्र जनमेजय हुए और जनमेजय के पुत्र प्राचीन्मत्त हुए । प्राचीन्नन्त के पुत्र मनस्यु हुए और उनके पुत्र राजा वीतमय हुए ।। १ ।। वीतमय के पुत्र शन्धु हुए और उनसे बहुविध नामक पुत्र की उत्पत्ति हुयी । बहुविध का पुत्र संयाति हुआ और संयाति का पुत्र रहोवादी हुआ ।। २ ।। रहोवादी का पुत्र भद्राश्व हुआ और भद्राश्व के दस पुत्र हुए । ऋचेयु, कृषुयु, संनतेयु, घृतेयु, चितेयु, स्थण्डिलेयु, धर्मेयु (द्वितीया) संनतेयु, कृतेयु, और मतिनार ।। ३-४ ।। मतिनार के तीन पुत्र हुए तंसुरोध, प्रतिरथ ओर पुरस्त । प्रतिरथ के कण्व और कण्व के पुत्र मेघातिथि हुए ।। ५ ।। तंसुरोध के चार पुत्र हुए- दुष्यन्त, प्रवीर, सुमन्त और अनय । दुष्यन्त के पुत्र वीर भरत हुए ।। ६ ।। वे शकुन्तला के महाबली पुत्र थे । उनके ही वंशीय

अध्याय २७८

बली यस्य नाम्ना तु भारताः । सुतेषु मातृकोपेन नष्टेषु भरतस्य च॥ ७॥ ततोमरुद्भिरानीय पुत्रः स तु वृहस्पतेः। संक्रामितो भरद्वाजःक्रतुभिर्वितथोऽभवत्॥८॥ स चापि वितथः पुत्रान् जनयामास पञ्च वै । सुहोत्रञ्चसुहोतारं गयं गर्भं तथैव च ॥ ९॥ कपिलश्च महात्मानं सुकेतुञ्च सुतद्वयम् । कौशिकञ्च गृत्सपतिं तथा गृत्सपतेः सुताः ॥ १० ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्या काशेदीर्घतमाः सुताः । ततो धन्वन्तरिश्चासीत् तत्सुतोऽभूच्च केतुमान् ॥ ११॥ केतुमतो हेमरथो दिवोदास इति श्रुतः । प्रतर्दनो दिवोदासाद् भर्गवत्सौ प्रतर्दनात्॥ १२॥ वत्सादनर्क आसीच्च अनर्कात् क्षेमकोऽभवत् । क्षेमकाद् वर्षकेतुश्च वर्षकेतोर्विभुः स्मृतः ॥ १३ ॥ विभोरनर्त्तः पुत्रोऽभूद् विभोश्च सुकुमारकः । सुकुमारात् सत्यकेतुर्वत्सभूमिस्तु वत्सकात् ॥ १४ ॥ सुहोत्रस्य वृहत्पुत्रो वृहतस्तनयास्त्रयः । अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च वीर्य्यवान् ॥ १५॥ अजमीढस्य केशिन्यां जज्ञे जह्नुः प्रतापवान् । जह्नोरभूदजकाश्वो बलाकाश्वस्तदात्मजः ॥ १६ ॥ बलाकाश्वस्य कुशिकः कुशिकात् गाधिरिन्द्रकः । गाधेः सत्यवती कन्या विश्वामित्रः सुतोत्तमः॥१७॥ देवरातःकतिमुखा विश्वामित्रस्य ते सुताः । शुनःशेपोऽष्टकश्चान्यो ह्यजमीढ़ात् सुतोऽभवत् ॥ १८॥ नीलिन्यां शान्तिरपरः पुरुजातिः सुशान्तितः। पुरुजातेस्तु वाह्याश्वो वाह्याश्वात् पञ्च पार्थिवाः ॥ १९ ॥ मुकुलः सृञ्जयश्चैव राजा वृहदिषुस्तथा । यवीनरश्च कृमिलः पाञ्चाला इति विश्रुताः । मुकुलस्य तु मौकुल्याः क्षत्रोपेता द्विजातयः। चञ्चाश्वो मुकुलाज् जज्ञे चञ्चश्वान्मिथनुं ह्यभूत् ॥ २१ ॥ दिवोदास ह्यहल्या च अहल्यायां शरद्वतात्। शतानन्दः शतानन्दात् सत्यधृन् मिथुनं ततः॥ २२॥ कृपः कृपी दिवोदासान् मैत्रेयः सोमपस्ततः । सृञ्जयात् पञ्चधनुषः

राजा भारत कहलाये । जब माता के क्रोध करने के कारण भरत के पुत्र नष्ट हो गये थे उस समय राजा के यज्ञ करने पर मरुद्गणों ने वृहस्पति के पुत्र भरद्वाज को लाकर उन्हें पुत्ररूप से अर्पित किया।। वे वितथ के नाम से प्रख्यात हुए ।। ८ ।। वितथ ने भी पाँच पुत्रों को उत्पन्न किया-सुहोत्र, सुहोता, गय, गर्भ और कपिल । इनके अतिरिक्त उन्होंने और दो पुत्रों को उत्पन्न किया-महात्मा और सुकेतु ।। ९ ।। उसके बाद उन्होंने कौशिक तथा गृत्सपति नामक दो और पुत्रों को उत्पन्न किया । गृत्सपति के अनेक पुत्र थे उनमें ब्राह्मण,क्षत्रिय और बैश्य सभी थे । इनके अतिरिक्त उनके काश और दीर्घतमा भी पुत्र थे ।। १० ।। दीर्घतमा के पुत्र धन्वन्तरि हुए और धन्वन्तरि के पुत्र केतुमान हुए ।। ११ ।। केतुमान के पुत्र हेमरथ हुए जो दिवोदास के नाम से प्रख्यात हुए। दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन हुए और प्रतर्दन के दो पुत्र हुए भर्ग एवं वत्स ।। १२ ।। वत्स के पुत्र अनर्क हुए और अनर्क के पुत्र क्षेमक हुए । क्षेमक के पुत्र वर्षकेतु हुए और वर्षकेतु के पुत्र विभु हुए ।' १३ ।। विभु के दो पुत्र उत्पन्न हुए आनर्त और सुकुमार । सुकुमार के पुत्र सत्यकेतु हुए और सत्यकेतु के पुत्र वत्सभूमि हुए ।। १४ ।। वितथ पुत्र सुहोत्र के पुत्र बृहत्पुत्र हुए और बृहत्पुत्र के भी तीन पुत्र हुए- अजमीढ़, द्विपुरुमीढ़ और पराक्रमी पुरुमीढ़ ।। १५ ।। अजमीढ़ की केशिनी नाम की पत्नी से प्रतापी जह्नु का जन्म हुआ । जह्नु के पुत्र अजकाश्व हुए और उनके पुत्र बलाकाश्व हुए ।। १६ ।। बलाकाश्व के पुत्र कुशिक हुए और उनके पुत्र इन्द्रत्व को प्राप्त करने वाले गाधि हुए ।। गाधि की पुत्री का नाम सत्यवती था और उनके पुत्र का नाम विश्वामित्र ।।१७।। विश्वामित्र के देवरात और कतिमुख नाम के पुत्र हुए । अजमीढ़ से शुनः शेप और अष्टक नाम के अन्य पुत्रभी हुए ।। १८ ।। उनकी नीलिनी नामक पत्नी के गर्भ से एक और पुत्र हुआ जिसका नाम शान्ति था । शान्ति के पुत्र पुरुजाति थे । पुरुजाति के पुत्र बाह्याश्व थे और बाह्याश्व के पाँच पृथिवीपति पुत्र हुए ।। १९ ।। उनके नाम थे- मुकुल, सृञ्जय, राजा बृहदिषु, यवीनर तथा कृमिल। ये सभी पाञ्चाल के नाम से विख्यात थे ।। २० ।। मुकुल के वंशज मौकुल्य कहलाये । वे क्षात्रधर्म से युक्त ब्राह्मण थे । मुकुल के पुत्र का नाम चञ्चाश्व था। चञ्चाश्व की दो जुड़वी संतानें हुईं।।२१।। जिसमें पुत्र का नाम दिवोदास था और कन्या का नाम अहल्या । अहल्या के गर्भ से शरद्वान् गौतम के अंश से शतानन्द की उत्पत्ति हुई । शतानन्द से सत्यधृक् हुए । सत्यधृक् से भी दो जुड़वी सन्तानें हुईं ।। २२ ।। उनमें पुत्र का नाम कृप और कन्या का नाम कृपी था । दिवोदास से मैत्रेय और मैत्रेय से सोमक हुए । सृञ्जय के पुत्र पञ्च धनुष हुए और उनके पुत्र

सोमदत्तश्च तत्सुतः॥२३॥ सहदेवः सोमदत्तात् सहदेवात् तु सोमकः । आसीच्च सोमकाज् जन्तुर्जन्तोश्च पृषतः सुतः ॥ २४ ॥ पृषताद् द्रुपदस्तस्माद् धृष्टद्युम्नोऽथ तत्सुत। धृष्टकेतुश्च धूमिन्यामृक्षोऽभूदजमीढ़तः॥ २५॥ ऋक्षात् संबरणो जज्ञे कुरुः संवरणात् ततः । यः प्रयागादपाक्रम्य कुरुक्षेत्रञ्चकार ह॥ २६॥ कुरोःसुधन्वा सुधनुःपरिक्षिच्चारिपंजयः । सुधन्वनः सुहोत्रोऽभूत् सुहोत्राच्च्यवनो ह्यभूत् ॥ २७ ॥ वसूपरिचरस्यांशात् सप्तासन् गिरिकासुताः । वृहद्रथः कुशो वीरो यदुः प्रत्यग्रहो बलः॥ २८॥ मत्स्यकाली कुशाग्रोऽतो ह्यासीद्राज्ञो वृहद्रथात् । कुशाग्राद् वृषभो जज्ञे तस्य सत्यहितः सुतः॥२९॥ सुधन्वा तत्सुतश्चोर्ज ऊर्जादासीच्च सम्भवः । सम्भवाच्च जरासन्धःसहदेवश्च तत्सुतः॥ ३०॥ सहदेवादुदापिश्च उदापेः श्रुतकर्मकः । परिक्षितस्य दायादो धार्मिकः जनमेजयः ॥ ३१॥ जनमेजयात् त्रसदस्युर्जह्नोस्तु सुरथः सुतः । श्रुतसेनोग्रसेनौ च भीमसेनश्च नामतः ॥ ३२॥ जनमेजयस्य पुत्रौ तु सुरथो महिमांस्तथा । सुरथाद् विदूरथोऽभूदृक्ष आसीद् विदूरथात् ॥ ३३ ॥ ऋक्षस्य तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत् सुतः । प्रतीपो भीमसेनात् तु प्रतीपस्य तु शान्तनुः ॥ ३४ ॥ देवापिर्बाह्लिकश्चैव सोमदत्तस्तु शान्तनोः । वाह्लिकात् सोमदत्तोऽभूद् भूरिर्भूरिश्रवाःशलः॥३५॥ गङ्गायां शान्तनोर्भीष्मः काल्यां विचित्रवीर्य्यकः। कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्य्यके ॥ ३६ ॥ धृतराष्ट्रञ्च पाण्डुञ्चविदुरञ्चाप्यजीजनत् । पाण्डोर्युधिष्ठिरः कुन्त्यां भीमश्चैवार्जुनस्त्रयः॥ ३७॥ नकुलःसहदेवश्च पाण्डोर्माद्र्याञ्च दैवतः । अर्जुनस्य च सौभद्रः परिक्षिदभिमन्युतः ॥ ३८॥ द्रौपदी पाण्डवानाञ्च प्रिया तस्यां युधिष्ठिरात् । प्रतिविन्ध्यो भीमसेनाच्च श्रुतकीर्त्तिर्धनञ्जयात् ॥ ३९ ॥ सहदेवात्

धनुष हुए और उनके पुत्र सोमदत्त हुए ।। २३ ।। सोमदत्त के पुत्र सहदेव और सहदेव से सोमक हुए । सोमक के पुत्र जन्तु हुए और जन्तु के पुत्र पृषत हुए ।। २४ ।। पृषत के पुत्र द्रुपद हुए और उनके पुत्र धृष्टद्युम्न हुए । धृष्टद्युम्न से धृष्टकेतु की उत्पत्ति हुई । अजमीढ़ की धूमिनी नामक पत्नी के गर्भ से ऋक्ष की उत्पत्ति हुई ।। २५ ।। ऋक्ष के पुत्र संवरण हुए और संवरण के पुत्र कुरु हुए जो प्रयाग से हटकर कुरुक्षेत्र तीर्थ की स्थापना किए ।। २६ ।। कुरु के चार पुत्र हुए- सुधन्वा, सुधनुः, परीक्षित और रिपुंजय । सुधन्वा के पुत्र सुहोत्र हुए और सुहोत्र के पुत्र च्यवन हुए ।। २७ ।। उपरिचर वसु के अंश से च्यवन की पत्नी गिरिका के सात पुत्र हुए- बृहद्रथ, कुश, वीर, यदु, प्रत्यग्रह, बल और मत्स्यकाली । बृहद्रथ से कुशाग्र की उत्पत्ति हुई ।।२९।। सत्यहित से सुधन्वा, सुधन्वा से ऊर्ज, ऊर्ज से संभव और संभव से जरासंध की उत्पत्ति हुई । जरासन्ध के पुत्र सहदेव हुए ।। ३० ।। सहदेव से उदापि और उदापि से श्रुतकर्मा की उत्पत्ति हुई । कुरुनन्दन के पुत्र परीक्षित् के पुत्र जन्मेजय हुए । वे बड़े धार्मिक थे ।। ३१ ।। जनमेजय से त्रसद्स्यु का जन्म हुआ । अजमीढनंदन जह्नु के चार पुत्र थे- सुरथ, श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन ।। ३२ ।।जनमेजय के दो और पुत्र थे सुरथ एवं महिमान् । सुरथ से विदूरथ उत्पन्न हुए और विदूरथ से ऋक्ष उत्पन्न हुए ।। ३३ ।। इस द्वितीय ऋक्ष के पुत्र भीमसेन हुए । भीमसेन के पुत्र प्रतीप हुए और प्रतीप के पुत्र शान्तनु ।। ३४ ।। शान्तनु के तीन पुत्र हुए-देवापि, बाहलीक और सोमदत्त । बाह्लीक से सोमदत्त और सोमदत्त से भूरि, भूरिश्रवा और शल का जन्म हुआ।।३५।। शान्तनु के पुत्र भीष्म गंगा के गर्भ से उत्पन्न हुए तथा उनकी काल्या नाम की पत्नी से विचित्र वीर्य की उत्पत्ति हुयी । विचित्रवीर्य की पत्नी के गर्भ से कृष्ण द्वैपायन ने धृतराष्ट्र पाण्डु और विदुर को उत्पन्न किया ।। ३६।। पाण्डु की कुन्ती नामक पत्नी के गर्भ से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तीन पुत्र उत्पन्न हुए ।। ३७ ।। माद्री नाम की पत्नी के गर्भ से पाण्डु के नकुल एवं सहदेव पैदा हुए । ये सबके सब देवता के अंश से उत्पन्न थे । अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु हुए और अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित ।। ३८ ।। द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की पत्नी थी । द्रौपदी के गर्भ से युधिष्ठिर के अंश से प्रतिबिन्ध्य, भीमसेन के अंश से सुतसोम, अर्जुन के अंश से श्रुतकीर्ति, सहदेव के अंश से श्रुतकर्मा और नकुल के अंश से शतानीक उत्पन्न हुए ।। ३९।। भीमसेन के ही अंश से हिडिम्बा के गर्भ से घटोत्कच की उत्पत्ति हुई ।। ४० ।। ये सभी भूतकालिक राजा हैं । भविष्यत् कालिक राजाओं की कोई संख्या नहीं है । भूतकालिक राजा काल

श्रुतकर्मा शतानीकस्तु नाकुलिः । भीमसेनाद्धिडिम्बायामन्य आसीद् घटोत्कच ॥ ४० ॥ एते भूता भविष्याश्च नृपाः संख्या न विद्यते । गताः कालेन कालो ह हरिस्तं पूजयेद् द्विज ! । होममग्नौ समुद्दिश्य कुरु सर्वप्रदं यतः॥ ४१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पुरुवंशवर्णनं नामाष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७८ ॥

ऊनशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सिद्धौषधानि

अग्निरुवाच– **आयुर्वेदं प्रवक्ष्यामि सुश्रुताय यमब्रवीत् । देवो धन्वन्तरिः सारं मृतसञ्जीवनीकरम् ॥ १॥** सुश्रुत उवाच– **आयुर्वेदं मम ब्रूहि नराश्वेभरुग्गर्दनम्। सिद्धयोगान् सिद्धमन्त्रान् मृतसञ्जीवनीकरान्** धन्वन्तरि उवाच– **रक्षन् बलं हि ज्वरितं लङ्घितं भोजयेद्भिषक् । सविश्वं लाजमण्डन्तु तृड्ज्वरान्तं श्रृतं जलम् ॥ ३ ॥ मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः। षडहे च व्यतिक्रान्ते तिक्तकं पाययेद् ध्रुवम् ॥ ४॥ स्नेहयेत् त्यक्तदोषन्तु ततस्तञ्च विरेचयेत्। जीर्णाः षष्ठिकनीवार रक्तशालिप्रमोदकाः॥ ५॥ तद्विधास्ते ज्वरेष्विष्टा यवानां विकृतिस्तथा । मुद्गा मसूराश्चणकाः कुलत्थाश्च सकुष्ठकाः ॥ ६ ॥ आटक्यो नारकाद्याश्च कर्क्कोटककटल्वकम् । पटोलं सफलं निम्बं पर्पटं दाडिमं ज्वरे॥ ७॥ अधोगे वमनं शस्तमूर्ध्वगे च विरेचनम् । रक्तपित्ते तथापानं षडङ्गं शुण्ठिवर्जितम् ॥ ८॥ शक्तुगोधूमलाजाश्च यवशालिमसूरकाः। सकुष्ठचणका मुद्गा भक्ष्या गोधूमका हिताः॥९॥ साधिता घृतदुग्धाभ्यां क्षौद्रं वृषरसो मधु। अतीसारे पुराणानां शालीनां भक्षणं हितम् ॥ १०॥ अनभिष्यन्दि यच्चात्रं लोध्रवल्कलसंयुतम् । मारुतं**

कवलित हो गये । काल भगवान् श्रीहरि का स्वरूप हैं । विप्रवर ! तुम श्रीहरि का ही पूजन करो । उन्हीं के उद्देश्य से अग्नि में हवन करो । वे भगवान् ही सब कुछ देने वाले हैं ।। ४१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का पुरुवंश वर्णन नामक दो सौ अठहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २७८ ॥

अग्निदेव ने कहा– वसिष्ठ ! अब मैं उस आयुर्वेद का वर्णन कर रहा हूँ जिसको भगवान् धन्वन्तरि ने सुश्रुत को उपदेश दिया था । यह आयुर्वेद का सार है और मृत पुरुष को भी जीवित बना देने वाला है ।। १ ।। **सुश्रुत ने कहा–** मुझे आप मनुष्य, घोड़े तथा हाथी के रोगों को दूर करने वाले आयुर्वेद, मृत जीवों को भी जीवन प्रदान करने वाले सिद्धियोगों तथा सिद्धमन्त्रों का उपदेश दें ।। २ ।। **धन्वन्तरि ने कहा–** वैद्य को चाहिए कि वह ज्वराक्रान्त व्यक्ति के बल पर ध्यान देते हुए उससे उपवास कराये । सोंठ से युक्त धान के लावा का मांड, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खश, चन्दन, सुगन्धबाला और सोंठके साथ श्रुत (अर्धपक्व) जल प्यास एवं ज्वर की शान्ति के लिए दें । छह दिन बीत जाने पर चिरायते जैसे कड़ुए द्रव्य का काढ़ा अवश्य दें।।३-४।। ज्वर निकालने के लिए यदि आवश्यकता हो तो स्नेहन कराना चाहिए । दोष के शान्त हो जाने पर रोगी को विरेचन द्रव्य देकर उसे विरेचन कराना चाहिए । साठी, तीन्नी, लाल अगहनी तथा प्रमोदक धान के पुराने चावल का भात इत्यादि ज्वर में पथ्य होते हैं । यव के बने पदार्थ, मूँग, मसूर, चना, कुलथी, सोंठ, अरहर, खेखशा, कायफर, उत्तम फल के छिलके के साथ परवल, फल के साथ निम्ब, पित्तपापड़ा एवं अनार भी ज्वर में हितकारी हैं ।। ५-७ ।। यदि रक्तपित्त नामक रोग अधोगामी हाता है तो वमन हितकारी होता है और यदि वह ऊर्ध्वगामी होता है तो विरेचन हितकारी होता है । इसमें विना सोंठ के षडङ्ग (नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, चन्दन एवं सुगन्ध बाला) का क्वाथ देना चाहिए ।। ८ ।। इस रोग में जौ का सत्तू, गेहूँ का आँटा, धान का लावा, यव के बने भोज्य पदार्थ, अगहनी का चावल, सोंठ, चना और मूँठा खाने योग्य होते हैं । घी एवं दूध से बनाये गये गेहूँ के पदार्थ (दलिया हलुआ) आदि भी हितकारक हैं । बलवर्धक रस

वर्जयेद् यत्नः कार्य्यो गुल्मेषुसर्वथा ॥ ११॥ वाट्यं क्षीरेण चाश्नीयाद् वास्तूकं घृतसाधितम् । गोधूमशालयस्तिक्ता हिता जठरिणामथ ॥ १२॥ गोधूमशालयो मुद्‌गा ब्रह्मक्षर्द्दखदिरोऽभया । पञ्चकोलं जाङ्गलाश्च निम्बधात्र्यः पटोलकाः॥ १३॥ मातुलुङ्गरसाजातिशुष्कमूलकसैन्धवाः । कुष्ठिनाञ्च तथा शस्तं पानार्थे खदिरोदकम्॥ १४॥ मसूरमुद्गौ पेयार्थे भोज्या जीर्णाश्च शालयः । निम्बपर्पटकैःशाकैर्जाङ्गलानां तथा रसः ॥ १५॥ विडङ्ग मरिचं मुस्तं कुष्ठं लोध्रं सुवर्चिका । मनः शिला च वालेयः कुष्ठहा मूत्रपेषितः ॥ १६ ॥ अपूपकुष्ठकुल्माष यवाद्या मेहिनां हिताः । यवान्नविकृतिर्मुद्गा कुलत्था जीर्णशालयः ॥ १७ ॥ तिक्तरुक्षाणि शाकानि तिक्तानि हरितानि च । तैलानि तिलशिशुग्रु विभीतकेङ्गुदानि च॥१८॥ मुद्‌गाः सयवगोधूमा धान्यं वर्षस्थितञ्च चत् । जाङ्गलस्य रसःशस्तो भोजने राजयक्ष्मिणाम् ॥ १९॥ कौलत्थमौद्‌गको रास्नाशुष्कमूलकजाङ्गलैः। पूपैर्वा विस्किरैःसिद्धैर्दधिदाड़िमसाधितैः॥ २०॥ मातुलुङ्गरसक्षोद्रद्राक्षाव्योषादिसंस्कृतैः । यवगोधूमशाल्यन्नैर्भोजयेच्छ्‌वासकासिनम् ॥ २१॥ दशमूलवलारास्नाकुलत्थैरुपसाधिताः। पेयाः पूपरसाः क्वाथाः श्वासहिक्कानिवारणाः॥ २२॥ शुष्कमूलककौलत्थमूलजाङ्गलजैरसैः । यवगोधूमशाल्यन्नं जीर्णं सोशीरमाचरेत् ॥ २३॥ शोथवान् सगुड़ां पथ्यां खादेद् वा गुड़नागरम् । तक्रञ्च चित्रकञ्चोभौ ग्रहणीरोगनाशनौ ॥ २४ ॥ पुराणयवगोधूमशालयो जाङ्गलो रसः । मुद्गामलकखर्जूरमृद्वीकावदराणि च ॥२५॥ मधु सर्पिः पयः शक्रं निम्बपर्पटकौ वृषम् । तक्रारिष्टाश्च शस्यन्ते सततं वातरोगिणाम्॥२६॥ हृद्रोगिणो विरेच्यास्तु पिप्पल्यो हिक्किनां हिताः । तक्रारनालसीधूनि मुक्तानि शिशिराम्भसा ॥२७॥ मुक्ताः सौवर्चलाजादि मद्यं शस्तं मदात्यये।

और छोटी मक्खी का शहद भी हितकारी होता है । अतिसार में पुराना अगहनी का भात लाभप्रद होता है ।। ९-१० ।। जो अन्न कफ बढ़ाने वाला न हो तथा पठानी लोध के साथ क्वाथ से सिद्ध किया गया हो वही गुल्म रोग में देना चाहिए । इसमें वायुकारक अन्न त्याग देना चाहिए और वायु से रोगी को बचाना चाहिए ।। ११ ।। उदररोगों में दूध के साथ बाटी खाना चाहिए, घी से बनाया हुआ बथूआ, गेहूँ, अगहनी चावल तथा तिक्त औषधि हितकारी होते हैं ।। १२ ।। गेहूँ, अगहनी के चावल, मूँग, पलाशबीज, खैर, हरे, पञ्चकोल (पिप्पली, पिपलामूल, चाभ, चिता एवं सोंठ) जांगल-रस, नीम्ब का पञ्चांग (फूल, पत्ती, फल, छाल एवं मूल) आँवला, परवल, ।। १३ ।। बिजौरा नीबू का रस, चमेली की पत्ती, सूखी मूली एवं सेंधा नमक, ये कुष्ठरोगियों के लिए हितकारक हैं । इन्हें पीने के लिए खैर मिलाकर तैयार किया गया जल प्रशस्त माना गया है ।। १४ ।। पेय बनाने के लिए मूँग एवं मसूर का प्रयोग करना चाहिए, खाने के लिए पुराने अगहनी के चावल का उपयोग करना चाहिए नीम तथा पित्तपापड़ा का साक एवं जांगलरस; कुष्ठ रोगियों के लिए हितकारक है ।। १५ ।। वायविडङ्ग, कालीमिर्च, नागरमोथा, कूठ, पठानी लोध, हुरहुर, मैनसिल तथा वच- इन्हें गोमूत्र में पिसकर लगाने से कुष्ठरोग का नाश होता है ।। १६ ।। प्रमेह के रोगियों को- पूआ, कूट, कुल्माष (घुघुरी) और जो आदि लाभप्रद हैं । जौ के भोज्य पदार्थ, मूँग, कुलथी, पुराना अगहनी का चावल तिक्त रूक्ष एवं तिक्त हरे शाक हितकारी होते हैं । तिल सहजन, बहेड़ा और इंगुदी के तेल कुष्ठ में लाभप्रद हैं ।।१७-१८।। मूँग, जौ, गेहूँ और एक वर्ष तक रखे हुए पुराने धान का चावल तथा जांगल रस- ये राजयक्ष्मा के रोगियों के भोजन के लिए प्रशस्त हैं ।। १९ ।। दमा एवं खाँसी के रोगियों को, कुल्थी, मूँग, रास्ना, सूखीमूली, मूँग का पूआ, दही और अनार के रस से सिद्ध किये गये विष्किर, ।। २० ।। जांगलरस, विजौरे का रस, मधु, दाल और व्योष (सोंठ, मिर्च, पिप्पल) से संस्कृत जौ गेहूँ और चावल खिलाना चाहिए ।। २१ ।। दशमूल, बल (वरियार) रास्ना और कुल्थी से बनाये गये तथा पूपरस से युक्त क्वाथ, श्वास एवं हिचकी को दूर करने वाले होते हैं ।। २२।। सूखी मूली, कुल्थी, मूल (दशमूल) जांगलरस, पुराना जौ, गेहूँ और चावल खस के साथ लेना चाहिए । इससे भी श्वास एवं कास का नाश होता है ।। २३ ।। शोथ में गुड़ सहित या गुड़ सहित लेना चाहिए । चित्रक तथा मट्ठा दोनों संग्रहणी रोग के नाशक हैं ।। २४ ।। पुराना जौ, गेहूँ, चावल, जांगलरस, मूँग, आँवला, खजूर, मुनक्का, छोटी वेर, मधु, घी, दूध, शक्र (इन्द्रयव) नीम, पित्तपापड़ा, वृष (बलवर्द्धक द्रव्य) तथा तक्रारिष्ट ये सभी वातरोगियों के लिए प्रशस्त माने गये हैं ।। २५-२६ ।। हृदय के रोगियों को विरेचन कराना चाहिए, ये उसी के क्षय के रोगी

सक्षौद्रपयसा लाक्षां पिवेच्च क्षतवान् नरः ॥२८ ॥ क्षयं मांसरसाहारो वह्निसंरक्षणाज्जयेत् । शालयो भोजने रक्ता नीवारकलमादयः ॥ २९॥ यवान्न विकृतिर्मांसं शाकं सौवर्चलं शटी । पथ्या तथैवार्शसां यन् मण्डलं तक्रञ्च वारिणा ॥ ३० ॥ मुस्ताभ्यासस्तथा लेपश्चित्रकेण हरिद्रया । यवान्नविकृतिः शालिर्वास्तूकं ससुवर्चलम्॥ ३१॥ त्रपुषवारुगोधूमाः क्षीरेक्षुघृतसंयुताः । मूत्रकृच्छ्र च शस्ताः स्युः पाने मण्डसुरादयः॥ ३२॥ लाजाःशक्तुस्तथा क्षौद्रं शून्यं मांसंपरूषकम् । वार्त्ताकुलावशिखिनश्छर्दिघ्नाः पानकानि च॥३३॥ शाल्यन्नं तोयपयसी केवलोष्णे शृतेऽपि वा । तृष्णाघ्ने मुस्तगुड़योर्गुटिका वा मुखे धृता ॥ ३४ ॥ यवान्नविकृतिः पूपं शुष्कमूलेकजं तथा । शाकं पटोलवेत्राग्रमुरुस्तम्भ विनाशनम् ॥ ३५॥ मुद्गाढ़कमसूराणां सतिलैर्जाङ्गलैरसैः । सैन्धवघृतद्राक्षासुण्ठ्यामलककोलजैः॥ ३६॥ यूषैः पुराणगोधूमयवमुद्गादिकं लघु । काकमारी च वेत्राग्रं वास्तुकञ्च सुवर्चला ॥ ३८ ॥ वातशोणितनाशाय तोयं शस्तं सितं मधु । नासारोगेषु च हितं घृतं दूर्वाप्रसाधितम्॥ ३९॥ भृङ्गराजरसे सिद्धं तैलं धात्रीरसेऽपि वा । नश्यं सर्वामयेष्विष्टं मूर्ध्वजं तृद्धवेषु च ॥ ४०॥ शीततोयान्नपानञ्च तिलानां विप्र ! भक्षणम् । द्विजदार्ढ्यकरं प्रोक्तं तथा तुष्टिकरं परम् ॥ ४१ ॥ गण्डूषं तिलतैलेन द्विजदार्ढ्यकरं परम् । विडङ्गचूर्णं गोमूत्रं सर्वत्र कृमिनाशने॥४२॥ धात्रीफलान्यथाज्यञ्च शिरोलेपनमुत्तमम् । शिरोरोगविशाय स्निग्धमुष्णञ्च भोजनम् ॥ ४३ ॥ तैलं च वस्तमूत्रञ्च कर्णपूरणमुत्तमम् । कर्णशूलविनाशाय शिरः शूलाय वा द्विज ! ॥ ४४॥ गिरिमृच्चन्दनं लाक्षा मालती कलिका तथा । संयोज्य या कृता वर्त्तिःक्षतशुक्रहरी तु सा ॥ ४५॥ व्योषं त्रिफलया युक्तं तुच्छकञ्च तथा जलम्।

को भोजन में लाल अगहनी धान का चावल, नीवार तथा कलम आदि लाभप्रद होते हैं, हिचकी वालों के लिए पिप्पली हितकारी होती है । छाँछ, आरनाल, सीधु तथा मोती ठंढे जल से लेने से हिचकी के रोग में विशेष लाभ होता है ।। २७ ।। मदात्यय रोग में, मोती, नमक युक्त जीरा तथा मधु हितकर होता है । उरःक्षत का रोगी दूध एवं मधु के साथ लाह को लेवे।।२८।। मांसरस (जटामांसी) के आहार और अग्नि संरक्ष (भूख बढ़ाने वाली वस्तुओं से) क्षय को जीतना चाहिए। हितकारी हैं ।। २९ ।। बवासीर में बने भोज्य पदार्थ, नीमा, जटामांसी, शाक, संचर, नमक कचूर, हरे, माँड़ तथा जल मिलाया हुआ मट्ठा हितकारी है ।। ३० ।। मूत्रकृच्छ्र में मोथा, हल्दी के साथ चित्रक का लेप, यवान्न विकृति, अगहनी का भात,बथुआ, सोंचर नमक, लाह, दूध, ईख के रस और घी से युक्त गेहूँ, ये खाने के लिए लाभकारी हैं । पीने के लिए माँड़ सुरा आदि देना चाहिए ।। ३१-३२ ।। वमन में लावा, सत्तू, मधु, जटामांसी परूषक (फालसा) वैगन का भर्ता, मोरपंख का भस्म तथा पानक देना चाहिए ।। ३३ ।। अगहनी के चावल का जल, केवल गर्म या शीतोष्ण गर्म दुग्ध ये तृष्णा (प्यास) के नाशक हैं । मोथा और गुड़ से बनी हुई गोली यदि मुख में रखी जाय तो प्यास बुझ जाती है ।। ३४ ।। जौ के बने भोज्य पदार्थ, पूआ, सूखीमूली, परवल की शाक, बेंत के अग्रभाग के नर्मिहिस्सा और करेला गांठ की जकड़न को दूर करने वाले हैं ।। ३५ ।। सारे शरीर में फोड़े फुन्सी के निकले (विसर्पि होने) पर रोगी को मूँग, अरहर, मसूर के जूस, तिलयुक्त जांगलरस, सेंधा नमक के साथ घी, दाख, सोंठ, आँवला और उन्नाय के जूस के साथ पुराने गेहूँ, जौ और अगहनी के चावल का सेवन करना चाहिए । उसे चने के साथ मधु (शहद) मुनक्का और अनार से बना जल पिलाना चाहिए ।। ३६-३७।। बातरक्त के रोगी को लाल साठी का चावल, गेहूँ, जौ, मूँग आदि हल्का अन्न देना चाहिए । काकमाची (काली मकोय) वेत्राग्र, बथुआ, सुवर्चला आदि की शाक देना चाहिए । मधु और मिश्री मिलाकर जल पिलाना चाहिए ।। ३८ ।। नासिका के रोग में दूर्वा से संस्कृत घृत हितकारी होता है । आँवले के रस या भृंगराज के रस से सिद्ध किये गये तेल का नस्य दिया जाय तो सिर के समस्त कृमि रोगों में लाभप्रद होता है ।। ३९-४० ।। विप्रवर ! ठंढे जल के साथ लिया गया अन्न और तिलों का भक्षण दाँतों को मजबूत बनाने वाला तथा परमतृप्तिकारक होता है ।।४१।। तिल के तेलसे कुल्ला करने से दाँत अत्यन्त मजबूत होते हैं । सभी प्रकार के कृमियों के नाश के लिए वायविडंग चूर्ण और गोमूत्र का प्रयोग करना चाहिए ।। ४२ ।। आँवले को घी में पिसकर यदि सिर में लेप किया जाय तथा स्निग्ध एवं गर्म भोजन किया जाय तो सिर के रोगों का विनाश होता है ।। ४३ ।। कर्णशूल अथवा शिरःशूल के विनाश के लिए तेल तथा बकरे के मूत्र से कान को भर देना चाहिए ।। ४४ ।। पहाड़ी मिट्टी, सफेद चन्दन, लाह और चमेली की कली इन सबों को पीसकर बनायी हुई बत्ती उरःक्षत तथा शुक्रदोष को दूर करती है ।। ४५ ।।

सर्वाक्षिरोगशमनं तथा चैव रसाञ्जनम्॥ ४६॥ आज्यभृष्टं शिलापिष्टं लोध्रकाञ्जिकसैन्धवैः । आश्च्योतनविनाशाय सर्वनेत्रामये हितम् ॥ ४७॥ गिरिमृच्चन्दनैर्लेपो वहिर्नेत्रस्य शस्यते । नेत्रामयविघातार्थं त्रिफलां शीलयेत् सदा ॥ ४८॥ रात्रौ तु मधुसर्पिर्भ्यांदीर्घमायुर्जिजीविषुः । शतावरीरसे सिद्धौ वृष्यौ क्षीर घृतौ स्मृतौ ॥ ४९ ॥ कलम्बिकानि माषाश्च वृष्यौ क्षीरघृतौ तथा । आयुष्या त्रिफला ज्ञेया पूर्ववन्मधुकान्विता॥५०॥ मधुकादिरसोपेता बलीपलितनाशिनी । वचासिद्धघृतं विप्र ! भूतदोषविनाशनम् ॥ ५१॥ कव्यं बुद्धिप्रदञ्चैव तथा सर्वार्थसाधनम् । बलाकल्ककषायेण सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ॥ ५२॥ रास्नासहचरैर्वापि तैलं वातविकारिणाम् । अनभिष्यन्दि यच्चान्नं तद् व्रणेषु प्रशस्यते ॥ ५३ ॥ सक्तुपिण्डी तथैवाम्ला पाचनाय प्रशस्यते । पक्वस्य च तथा भेदे निम्बचूर्णञ्च रोपणे॥ ५४॥ तथा सूच्युपचारश्च बलिकर्म विशेषतः । सूतिका च तथा रक्षा प्राणिनान्तु सदा हिता॥ ५५॥ भक्षणं निम्बपत्राणां सर्पदष्टस्य भेषजम् । तालनिम्बदलं केश्यं जीर्णं तैलं तथा घृतम् ॥ ५६ ॥ धूमो वृश्चिकदष्टस्य शिखिपत्रधृतेन वा । अर्कक्षीरेण संपिष्टं लोपा वीजं पलाशजम् ॥ ५७॥ वृश्चिकार्त्तस्य कृष्णा वा शिवा च फलसंयुता । अर्कक्षीरं तिलं तैलं पललञ्च गुड़ं समम् ॥ ५८ ॥ पानाज्जयति दुर्वारं श्वविषं शीघ्रमेव तु । पीत्वा मूलं त्रिवृत्ततुल्यं तण्डुलीयस्य सर्पिषा ॥ ५९ ॥ सर्पकीटविषाण्याशु जयत्यतिबलान्यपि । चन्दनं पद्मकं कुष्टं लताम्बूशीरपाटलाः ॥ ६० ॥ निर्गुण्डी शारिवा सेलुर्लूताविषहरो गदः । शिरोविरेचनं शस्तं गुड़नागरकं

व्योष (सोंठ, काली मिर्च और पीपल) त्रिफला एवं तूतिया थोड़ा जल मिलाकर डालें । यह तथा रसाञ्जन (रासोत) ये नेत्र के समस्त रोगों को दूर करने वाले हैं ।। ४६ ।। लोध, काँजी तथा सेंधा नमक को घी में भून कर पीस दें और उसका आँखों पर लेप करें तो नेत्र के सभी प्रकार के रोगों का विनाश होता है और आँखों से आँसू निकलने के दोष को दूर करता है ।। ४७ ।। पहाड़ी मिट्टी और सफेद चन्दन का आँखों के ऊपर लेप करना नेत्र के लिए हितकारी है । नेत्र के रोगों का विनाश करने के लिए सदा त्रिफला का सेवन करना चाहिए ।। ४८ ।। दीर्घ जीवी होने की इच्छा वाले को रात्रि में घी तथा मधु के साथ त्रिफला खाना चाहिए । शतावरी के रस में सिद्ध घी तथा दूध बलवर्धक (वृष्य) होता है ।। ४९।। कलम्बिका (करेमू के शाक) और उड़द भी बल वर्द्धक होते हैं । इसी तरह घी एवं दुग्ध भी बलवर्धक होते हैं । पूर्ववत् मुलहठी के साथ त्रिफला आयु को बढ़ाने वाली होती है ।। ५० ।। महुआ के फूल के रस के साथ यदि त्रिफला ली जाय तो बुढ़ापे के चिह्न बाल गिरना पकना आदि नष्ट हो जाते हैं । हे विप्र ! वचा के साथ पकाये गये घी का सेवन भूत दोष को दूर करता है ।। ५१ ।। उसका कव्य बुद्धि को देने वाला तथा सम्पूर्ण मनोरथों को सिद्ध करने वाला होता है । खरेटी के पतरी पर पिसे हुए कल्क से सिद्ध क्वाथ द्वारा बनाया हुआ अञ्जन नेत्रों के लिए हितकारी होता है ।। ५२ ।। रास्ना या सहचरी (झिंटी) से सिद्ध तैल वातरोगियों के लिए हितकारी होता है । जिस अन्न से श्लेष्मा न बढ़े, वह व्रण रोग में हितकारी होता है ।। ५३ ।। सत्तु के पिण्डी और आमड़ा पाचन के लिए श्रेष्ठ होते हैं । घाव के फटने तथा घाव के भरने में नीम का चूर्ण श्रेष्ठ है ।। ५४ ।। उसी प्रकार सूच्युपचार से भी घाव के बहने और भरने में लाभ होता है । बलिकर्म से सूतिका को लाभ होता है। रक्षा कर्म प्राणियों के लिए सदा हितकारक होता है ।। ५५ ।। नीम की पत्तों का चबाना सर्पदंश की दवा है । पीसकर लगायी हुयी पताल निम्ब की पत्ती, पुराना तेल अथवा घी केश के लिए हितकारक होता है ।। ५६ ।। जिसको विच्छू ने काट लिया हो उसको मोरपंख और घी का धूम लगाना चाहिए । या आक के दूध से पीसे हुए पलाश के बीज का लेप करने से बिच्छू का विष उतर जाता है ।। ५७ ।। जिसको विच्छू ने काट लिया हो उसको पीपल या बड़ी हरड़ जायफल के साथ पिलाना चाहिए । आक का दूध, तिल, तैल, पलल (मांस) तथा गुड़ को समान मात्रा में पीसकर पीने से कुत्ते का भयंकर विष समाप्त हो जाता है ।। ५८ ।। चौरठ का जड़ और निशा ये समान मात्रा में घी के साथ पीने से मनुष्य अत्यन्त बलवान् होता है । वह सर्पविष तथा कीटों के विष पर भी विजय प्राप्त कर लेता है ।। ५९ ।। चन्दन, पदमक, कूट, जूही की लता का पानी, खस, गुलाब, निर्गुण्डी, शारिवा, सेलु- ये मकड़ी के विषय का नाश करने वाली औषधियाँ हैं ।। ६० ।। द्विज ! शिरोविरोचन के लिए गुड़ के साथ सोंठ हितकारी है । स्नेहपान तथा बस्ती कर्म में तेल ओर घृत सर्वोत्तम है ।। ६१ ।। पसीना कराने में अग्नि तथा स्तम्भन

द्विज॥ ६१॥ स्नेहपाने तथा वस्तौ तैलं घृतमनुत्तमम् । स्वेदनीयः परो वह्निः शीताम्भः स्तम्भनं परम्॥ ६२॥ त्रिवृद्धि रेचने श्रेष्ठा वमने मदनं तथा। वस्तिर्विरेको वमनं तैलं सर्पिस्तथा मधु । वातपित्तबलाशानां क्रमेण परमौषधम् ॥ ६३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सिद्धौषधादिकथनं नामोनशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७९ ॥

अशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सर्वरोगहराण्यौषधानि

धन्वन्तरिरुवाच– **शारीरमानसागन्तु सहजा व्याधयो मताः । शारीरा ज्वरकुष्ठाद्याः क्रोधाद्या मानसा मताः ॥ १ ॥ आगन्तवो विघातोत्था सहजाः क्षुज्जराद्यः । शारीरागन्तुनाशाय सूर्य्यवारे घृतं गुड़म्॥ २॥ लवणं सहिरण्यञ्च विप्रायापूपमर्पयेत् । चन्द्रे चाभ्यङ्गदो विप्रे सर्वरोगैः प्रमुच्यते॥ ३॥ तैलं शनैश्चरे दद्यादाश्विने गोरसान्नदः । घृतेन पयसा लिङ्गं संस्नाप्यस्याद्रुगुज्झितः॥ ४॥ गायत्र्या हावयेद् वह्नौ दूर्वां त्रिमधुराप्लुताम्। यस्मिन् भे व्याधिमाप्नोति तस्मिन् स्नानं बलिः शुभे ॥ ५ ॥ मनसानां रुजादीनां विष्णोः स्तोत्रं हरे र्भवेत् । वातपित्तकफा दोषा धातवश्च तथा शृणु ॥ ६ ॥ भुक्तं पक्वाशयादन्नं द्विधा याति च सुश्रुत ! । अंशेनैकेन किट्टत्वं रसताञ्चापरेण च ॥ ७॥ किट्टभागो मलस्तत्र विण्मूत्रस्वेददूषिकाः। नासामलं कर्णमलं तथा देहमलञ्च यत् ॥ ८॥ रसभागाद्रसस्तत्र समाच्छोणिततां व्रजेत् । मांसं रक्तात् ततो मेदो मेदसोऽस्थ्नंश्च सम्भवः ॥ ९ ॥ अस्थ्नो मज्जा ततः शुक्रं शुक्राद्रागस्तथौजसः । देशमार्त्तिं बलं शक्तिं कालं प्रकृतिमेव च ॥ १० ॥ ज्ञात्वा चिकित्सितं कुर्य्याद् भेषजस्य तथा**

में शीत जल श्रेष्ठ हैं । रेचन में निशोथ तथा वमन में मैनफल श्रेष्ठ हैं ।। ६२ ।। वस्ती, विरेचन तथा वमन एवं तेल, घी तथा मधु क्रमशः वात, पित्त एवं कफ के परमौषध हैं ।। ६३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का सिद्धौषध वर्णन नामक दो सौ नवासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २७९ ॥

भगवान् धन्वन्तरि ने कहा– सुश्रुत ! शारीर, मानस, आगन्तुक तथा सहज ये चार प्रकार की व्याधियाँ होती हैं । ज्वर, कुष्ठ आदि शारीर रोग हैं । क्रोध आदि मानस व्याधियाँ हैं ।।१।। चोट आदि से होने वाले रोग आगन्तुक होते हैं और भूख, बुढ़ापा आदि सहज रोग हैं । शरीर तथा आगन्तुक रोगों का नाश करने के लिए रविवार को ब्राह्मण को घी, गुड़, नमक, सुवर्ण तथा पूआ का दान करना चाहिए ।। २ ।। जो सोमवार को ब्राह्मणों को उबटन दान करता है, वह समस्त रोगोंसे छूट जाता है ।। ३ ।। शनिवार को तेल का दान करें और आश्विन मास में गोरस तथा अन्न का दान दें ऐसा करने वाला समस्त रोगों से छुटकारा पा जाता है ।। ३ ।। घी तथा दुग्ध से शिवलिङ्ग को स्नान कराने वाला रोगों से मुक्ति पा लेता है । त्रिमुधु (घी, गुड तथा शहद) में डुबायी गयी दुर्वा का अग्नि में गायत्री से होम करें । जिस नक्षत्र में रोग पैदा हो उसी शुभ नक्षत्र में स्नान करें और बलि दें ।। ५ ।। भगवान् विष्णु की स्तुति मानस रोग को दूर करता है। अब वात, पित्त, कफ तथा धातुओं (रस, रक्त, मांस,मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र) के दोषों का वर्णन सुनो ।। ६ ।। सुश्रुत ! खाया हुआ अन्न पक्वाशय में जाकर दो भागों में विभक्त हो जाता है । उसका एक अंश किट्ट बन जाता है और दूसरा अंश रस बन जाता है ।। ७ ।। किट्ट भाग ही मल और विष्ठा, मूत्र एवं स्वेद के रूप में परिणत होता है । वही नासामल, कर्णमल तथा देहमल होता है ।। ८ ।। रस भाग अपने सम्पूर्ण भाग से शोणित के रूप में परिणत होता है । रक्त से मांस बनता, मांस से भेदा बनता है और मेदा से अस्थि बनती है ।। ९ ।। अस्थि से मज्जा बनती है, मज्जा से शुक्र बनता है। शुक्र से राग और राग से ओज पैदा होता है । चिकित्सक को चाहिए कि वह देश, पीड़ा रोगी की शक्ति, काल, प्रकृति तथा औषधि के बल को

बलम् । तिथिं रक्तान् त्यजेद् भौमं मन्दभं दारुणोग्रकम् ॥ ११ ॥ हरिगोद्विजचन्द्रार्कसुरादीन् प्रतिपूज्य च । शृणु मन्त्रमिमं विद्वन् ! भेषजारम्भमाचरेत्॥१२॥ ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्काऽनिलानलाः । ऋषयश्चौषधिग्रामा भूतसङ्घाश्च पान्तु ते॥ १३॥ रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा । सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते ॥ १४ ॥ वातश्लेष्मातको देशो बहुवृक्षो बहूदकः । अनूप इति विख्यातो जाङ्गलस्तद्विवर्जितः॥१५॥ किञ्चिद्वृक्षोदको देवस्तथा साधारणः स्मृतः । जाङ्गलः पित्तबहुलो मध्यः साधारणः स्मृतः ॥ १६ ॥ रुक्षः शीतश्चलो वायुः पित्तमुष्णं कटुत्रयम् । स्थिराम्लास्निग्धमधुरं बलाशञ्चप्रचक्षते ॥ १७ ॥ वृद्धिः समानैरेतेषां विपरीतैर्विपर्य्ययः । रसाः स्वादूवम्ललवणाः श्लेष्मला वायुनाशनाः ॥ १८॥ कटूवम्ललवणा ज्ञेयास्तथा पित्तविवर्धना ॥ १९ ॥ तिक्तस्वादुकषायाश्च तथा पित्तविनाशनाः । रसस्यैतद् गुणं नास्ति विपाकस्यैतदिष्यते॥ २०॥ वीर्य्योष्णाः कफवातघ्नाः शीताः पित्तविनाशनाः । प्रभावतस्तथा कर्म ते कुर्वन्ति च सुश्रुत ॥ २१ ॥ शिशिरे च वसन्ते च निदाघे च तथा क्रमात्। चयप्रकोपप्रशमाः कफस्य तु प्रकीर्तिताः ॥ २२ ॥ निदाघवर्षारात्रौ च तथा शरदि सुश्रुत । चयप्रकोपप्रशमाः पवनस्य प्रकीर्तिताः ॥ २३॥ मेघकाले च शरदि हेमन्ते च यथाक्रमात् । चयप्रकोपप्रशमास्तथा पित्तस्य कीर्तिताः॥ २४॥ वर्षादयो विसर्गास्तु हेमन्ताद्यास्तथा त्रयः । शिशिराद्यातथादानं ग्रीष्मान्ता ऋतवस्त्रयः॥ २५॥ सौम्यो विसर्गस्त्वादानमाग्नेयं परिकीर्तितम् । वर्षादींस्त्रीनृतून् सोमश्चरन् पर्य्यायशो रसान॥२६॥ जनयत्यम्ललवणमधुरांस्त्रीन् यथाक्रमम् । शिशिरादीनृतूनर्कश्चरन् पर्यायशो रसान्॥ २७॥ विवर्धयेत् तथा तिक्तकषायकटुकान् क्रमात् । यथा रजन्यो वर्धन्ते बलमेकं हि वर्धते॥ २८॥ क्रमशोऽथ मनुष्याणां हीयमानासु हीयते । रात्रिभुक्तदिनानाञ्च वयसश्च तथैव च ॥ २९॥ आदिमध्यावसानेषु

जानकर ही चिकित्सा करें ।। १० ।। चिकित्सा प्रारम्भ करने में वह रिक्ता तिथियों (४, १४, ९) भौमवार, (दारुण एवं उग्र नक्षत्रों का त्याग कर दें ।। ११ ।। विष्णु, गौ, ब्राह्मण, चन्द्रमा, तथा सूर्य आदि की पूजा करके रोगी के उद्देश्य से निम्नांकित 'ब्रह्मदक्ष०' इत्यादि दो मन्त्रों का उच्चारण करके चिकित्सा प्रारम्भ करें ।। १२ ।। मन्त्र का अर्थ है- ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनी कुमार, रुद्र, इन्द्र, भूमि, चन्द्रमा, सूर्य, अनिल, अनल, ऋषि, ओषधि समूह तथा भूत समूह ये सभी तुम्हारी रक्षा करें ।। १३ ।। जैसे ऋषियों के लिए रसायन, देवताओं के लिए अमृत उत्तम नागों के लिए सुधा है उसी तरह यह औषध तुम्हारे लिए गुणकारी होए ।। १४ ।। बहुत वृक्ष तथा अधिक जल वाला देश अनूप कहलाता है । यह वात एवं कफ उत्पन्न करने वाला होता है । जांगल देश अनूप देश के गुण एवं प्रभाव से रहित होता है ।। १५ ।। थोड़े वृक्ष तथा थोड़े जल वाला देश साधारण कहलाता है । जांगल देश अधिक पित्त उत्पन्न करने वाला तथा साधारण देश मध्यम पित्त उत्पन्न करने वाला होता है ।। १६ ।। वायु, रुक्ष, शीत एवं चंचल होता है । पित्त उष्ण होता है और कटुत्रय पीतकर होते हैं । कफ, स्थिर, अम्ल, स्निग्ध तथा मधुर होता है ।।१७।। समान वस्तुओं के प्रयोग से इनकी वृद्धि होती है तथा असमान वस्तुओं के प्रयोग से इनकी कमी होती है । मधुर, अम्ल एवं लवण रस कफकारक एवं वायुनाशक होते हैं ।। १८ ।। कटु, तिक्त एवं कषाय रस वायुवर्द्धक होते हैं । एवं कफनाशक होते हैं । कटु, अम्ल तथा लवण रस पित्तवर्धक होते हैं ।। १९ ।। तिक्त, स्वादु तथा कषाय रस पित्त विनाशक होते हैं । यह रसों का गुण नहीं हैं अपितु उनके विपाक का यह गुण या प्रभाव है ।। २० ।। उष्ण वीर्य पदार्थ कफनाशक और शीतवीर्य पदार्थ पीतनाशक होते हैं । हे सुश्रुत ! अपने प्रभाव से ही वे सब वैसा कार्य करते हैं ।। २१ ।। शिशिर, वसन्त तथा ग्रीष्म ऋतुओं में कफ के क्रमशः संचय, प्रकोप एवं प्रशम होते हैं ।। २२ ।। हे सुश्रुत ! ग्रीष्म में वायु का संचय होता है, वर्षा ऋतु में तथा रात्रि में वायु का प्रकोप होता है तथा शरद् ऋतु में वायु का प्रशम होता है ।। २३ ।। इसी तरह पित्त का संचय वर्षा ऋतु में प्रकोप शरद ऋतु में और प्रशम हेमन्त ऋतु में होता है ।। २४।। वर्षा से हेमन्त (वर्षा, शरद् और हेमन्त) तीन ऋतुएँ औषधियों के लिए विसर्ग काल होती हैं एवं शिशिर से ग्रीष्म पर्यन्त (शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म) तीन ऋतुएँ औषधियों के लिए आदान काल हैं ।। २५ ।। विसर्गकाल को सौम्य तथा आदानकाल को आग्नेय कहा गया है । वर्षा आदि तीन ऋतुओं में संचरण करता हुआ चन्द्रमा औषधियों में क्रमशः अम्ल, लवण एवं मधुर

कफपित्तसमीरणाः । प्रकोपं यान्ति कोपादौ काले तेषाञ्चयः स्मृतः ॥ ३० ॥ प्रकोपोत्तरके काले शमस्तेषां प्रकीर्तितः । अतिभोजनतो विप्र ! तथा चाभोजनेन च ॥ ३१ ॥ रोगा हि सर्वे जायन्ते वेगोदीरणधारणैः । अन्नेन कुक्षेर्द्वावंशावेकं पानेन पूरयेत् ॥ ३२ ॥ आश्रयं पवनादीनां तथैकमवशेषयेत् । व्याधेर्निदानस्य तथा विपरीतमथौषधम् ॥ ३३ ॥ कर्त्तव्यमेतदेवात्र मयासारं प्रकीर्तितम् । नाभेरूर्ध्वमधश्चैव गुदश्रोण्योस्तथैव च ॥ ३४॥ बलाशपित्तवातानां देहे स्थानं प्रकीर्तितम् । तथापि सर्वगाश्चैतेदेहे वायुर्विशेषतः ॥ ३५ ॥ देहस्य मध्ये हृदयंस्थानं तन्मनसः स्मृतम्। कृशोऽल्पकेशश्चपलो बहुवाग् विषमानलः॥ ३६॥ व्योमगश्च तथास्वप्ने वातप्रकृतिरुच्यते । अकालपलितः क्रोधी प्रस्वेदी मधुरप्रियः ॥ ३७॥ स्वप्ने च दीप्तिमत्प्रेक्षी पित्तप्रकृतिरुच्यते । दृढाङ्गः स्थिरचित्तश्च सुप्रभः स्निग्धमूर्द्धजः॥ ३८॥ शुद्धाम्बुदर्शी स्वप्ने च कफप्रकृतिको नरः । तामसा राजसाश्चैव सात्विकाश्च तथास्मृताः ॥ ३९ ॥ मनुष्या मुनिशार्दूल ! वातपित्तकफात्मकाः । रक्तपित्तं व्यवायाच्च गुरुकर्मप्रवर्त्तनैः॥ ४०॥ कदन्नभोजनाद् वायुर्देहे शोकाच्च कुप्यति । विदाहिनां तथोल्कानामुष्णान्नध्वनिसेविनाम् ॥ ४१ ॥ पित्तं प्रकोपमायाति भयेन च तथा द्विज ! । अत्यम्बुपानगुर्वन्नभोजिनां भुक्तशायिनाम्॥ ४२॥ श्लेष्मा प्रकोपमायाति तथा ये चालसा जनाः । वाताद्युत्थानि रोगाणि ज्ञात्वा शाम्यानि लक्षणैः॥४३॥ अस्थिभङ्गः कषायत्वमास्ये शुष्कास्यता तथा। जृम्भणं लोमहर्षश्च वातिकव्याधिलक्षणम् ॥४४॥ नखनेत्रसिराणान्तु पीतत्वं कटुता

रसों को उत्पन्न करता है ।। २६ ।। शिशिर आदि तीन ऋतुओं में संचरण करता हुआ सूर्य, तिक्त, कषाय एवं कटु रसों को बढ़ाता है । रात्रियाँ जैसे-जैसे बढ़ती हैं, वैसे-वैसे औषधियों का बल बढ़ता है ।। २७-२८ ।। जैसे-जैसे रात्रियाँ घटती हैं, मनुष्यों का बल क्रमशः उसी तरह घटता है । रात में, तथा आयु के प्रारम्भ में कफ प्रकुपित होता है, दिन में और आयु के मध्य में वात प्रकुपित होता है, भोजन के बाद और आयु के अन्तकाल में पित्त प्रकुपित होता है। इन सबों के प्रकोप के आदि में इनका संचय होता है ।। २९-३० ।। इन सबों (कफ, वात-पित्त) के प्रकोप के अन्त में इनका शमन होता है । हे विप्र ! अत्यधिक भोजन करने से, अत्यधिक उपवास करने से तथा मल-मूत्र के वेग को रोकने से सभी रोग उत्पन्न होते हैं ।। ३१ ।। पेट के दो भाग को अन्न से और एक भाग को जल से भरना चाहिए तथा अवशिष्ट चौथाई भाग को वायु के संचरण के लिए खाली रखना चाहिए ।। ३२ ।। व्याधि का निदान और विपरीत औषध करना चाहिए, इन सबों का सार यही है, जो मैंने बतलाया है ।। ३३ ।। नाभि के ऊपर कफ का स्थान होता है, नाभि के नीचे पित्त का स्थान होता है, गुद तथा श्रोणीभाग वात का स्थान होता है । फिर भी ये तीनों सम्पूर्ण शरीर में विचरण करते रहते हैं । उनमें भी वायु विशेष रूप से सम्पूर्ण शरीर में संचरण करती है ।। ३४-३५ ।। देह के मध्य में हृदय स्थान है । वह मन का स्थान कहा गया है । जो स्वभावतः दुबला पतला, कम बालों वाला, चंचल, बहुत बोलने वाला तथा विषमा नल (अर्थात् जिसकी जठराग्नि कभी कम करती हो और कभी नहीं करती हो) हो तथा स्वप्न में आकाश में उड़ने वाला व्यक्ति होता है, वह वात प्रकृति का पुरुष कहलाता है ।। ३६ ।। समय से पहले ही जिसके बाल पकने और झड़ने लगते हैं, जो क्रोधी हो, जिसे पसीना अधिक होता हो, जो मीठी वस्तुएँ खाना पसंद करता हो और स्वप्न में अग्नि देखता हो, वह पित्त प्रकृति का पुरुष होता है ।। ३७ ।। वह मनुष्य कफ प्रकृति वाला होता है, जिसके अङ्ग दृढ़ होते हैं, चित्त स्थिर होता है, कान्ति सुन्दर होती है, बाल चिकने होते हैं तथा जो स्वप्न में शुद्ध जल को देखता है ।। ३८ ।। इसी प्रकार मनुष्य भी तीन प्रकार के होते हैं, राजस, तामस एवं सात्त्विक ।। ३९ ।। मुनि श्रेष्ट ! सभी मनुष्य, वात, पित्त और कफ वाले होते हैं । मैथुन तथा भारी कामों में रहने से रक्तपित्त होता है ।। ४० ।। कदन्न (खराब कोदो आदि अन्न) के खाने से तथा शोक करने से वायु कुपित होती है । देह में जलन पैदा करने वाले तथा कटु तिक्त कषायरस के अन्न सेवन करने से, मार्ग में अधिक चलने तथा भय करने से पित्त प्रकुपित होता है।।४१।। अत्यधिक जल पीने वाले, भारी अन्न खाने, भोजन करके तुरन्त सो जाने वाले और आलसियों को कफ प्रकुपित होता है ।। ४२ ।। उत्पन्न हुए बात आदि रोगों को उनके लक्षण से जानकर उनका शमन करना चाहिये ।। ४३ ।। अस्थिभङ्ग (हड्डियों में दर्द होना, मुख में कषैलापन आ जाना, मुँह सूखना, जम्भाई आना, रोंगटे खड़ा होना, ये सब वात व्याधि के लक्षण हैं ।। ४४।।

मुखे । तृष्णा दाहोष्णता चैव पित्तव्याधिनिदर्शनम् ॥ ४५॥ आलस्यञ्च प्रसेकश्च गुरुता मधुरास्यता । उष्णाभिलाषिता चेति श्लैष्मिकव्याधिलक्षणम्॥४६॥ स्निग्धोष्णमन्नमभ्यङ्गस्तैलपानादि वातनुत्। आज्यं क्षीरं सिताद्यञ्च चन्द्ररश्म्यादि पित्तनुत्॥ ४७॥ सक्षौद्रं त्रिफलातैलं व्यायामादि कफापहम् । सर्वरोगप्रशान्त्यै स्याद् विष्णोर्ध्यानञ्च पूजनम्॥ ४८॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वरोगहरौषधकथनं नाम शीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८० ॥

एकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

रसादिलक्षणम्

धन्वन्तरिरुवाच– **रसादिलक्षणं वक्ष्ये भेषजानां गुणं शृणु । रसवीर्य्यविपाकज्ञो नृपादीन् रक्षयेन्नरः ॥ १ ॥ रसाः स्याद्वम्ललवणाः सोमजाः परिकीर्त्तितः । कटुतिक्तकषायाणि तथाग्नेया महाभुज ! ॥ २ ॥ त्रिधा विपाको द्रव्यस्य कट्वम्ललवणात्मकः । द्विधा वीर्य्यं समुद्दिष्टमुष्णं शीतं तथैव च ॥ ३ ॥ अनिर्देश्यप्रभावश्च औषधीनां द्विजोत्तम ! । मधुरश्च कषायश्च तिक्तश्चैव तथा रसः ॥ ४॥ शीतवीर्य्याः समुद्दिष्टाः शेषास्तूष्णाः प्रकीर्त्तिताः । गुडुची तत्र तिक्तापि भवत्युष्णातिवीर्य्यतः ॥ ५ ॥ उष्णा कषायापि तथा पथ्या भवति मानद ! । मधुरोऽपि तथा मांस उष्ण एव प्रकीर्त्तितः॥६॥ लवणो मधुरश्चैव विपाकमधुरौ स्मृतौ। अम्लोष्णश्च तथा प्रोक्तः शेषाः कटुविपाकिनः॥ ७॥ वीर्य्यपाके विपर्य्यस्त प्रभावात् तत्र निश्चयः। मधुरोऽपि कटुः पाके यच्च क्षौद्रं प्रकीर्त्तितम् ॥ ८ ॥ क्वाथयेत् षोड़शगुणं पिबेद् द्रव्याच्चतुर्गुणम् । कल्पनैषा कषायस्य यत्र नोक्तो**

नख, नेत्र तथा नाड़ियों का पीला होना, मुँह में कटुता आ जाना, प्यास लगना तथा शरीर में गर्मी प्रतीत होना ये सभी पित्त व्याधि के लक्षण हैं ।। ४५ ।। आलस्य लगना, मुँह में पानी आना, शरीर का भारीपन, मुँह का मीठा हो जाना गर्मी की चाहत ये सभी कफ व्याधि के लक्षण हैं ।। ४६ ।। स्निग्ध तथा गर्म-गर्म भोजन करने से, तेल के मालिश तथा चीनी आदि को भोजन में लेने से तथा चन्द्रमा की चाँदनी का सेवन करने से पित्त रोग समाप्त होते हैं ।। ४७ ।। शहद के साथ त्रिफला का तेल लेने तथा व्यायाम करने से कफजन्य रोग दूर होते हैं । भगवान् विष्णु का ध्यान तथा पूजन करने से सभी रोग दूर होते हैं ।। ४८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का सर्वरोगहर वर्णन नामक दो सौ अस्सीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८० ॥

श्रीधन्वन्तरि भगवान् ने कहा– सुश्रुत ! अब मैं औषधियों का रस तथा गुण आदि का वर्णन कर रहा हूँ, उसे आप सुनें । औषधियों के रस, गुण तथा विपाक को जानने वाला ही चिकित्सक राजा आदि की रक्षा कर सकता है ।। १ ।। हे महाबाहो ! चन्द्रमा से स्वादु, अम्ल और लवण रस उत्पन्न हैं और कटु तिक्त एवं कषाय रस अग्नि से उत्पन्न माने जाते हैं ।। २।। द्रव्य का विपाक तीन प्रकार का होता है- कटु, अम्ल और लवण स्वरूप । वीर्य दो प्रकार के कहे गये हैं- शीत एवं उष्ण ।। ३ ।। हे द्विजोत्तम ! औषधियों का प्रभाव अवर्णनीय है । मधुर, कषाय और तिक्त रस वाली औषधियाँ शीतवीर्य होती हैं । शेष औषधियाँ उष्ण वीर्य कही जाती हैं । उनमें भी गुडुची तिक्त होने पर भी अत्यन्त वीर्यप्रद होने से उष्ण मानी जाती है ।। ५ ।। होमानद ! कषाय होने पर भी हरे उष्णवीर्य होती हैं । जटामांसी मधुर होने पर भी उष्ण वीर्य होती हैं ।। ६ ।। लवण एवं मधुर रस ये दोनों विपाक में मधुर माने गये हैं । अम्लोष्ण का भी विपाक मधुर होता है, शेष रसों का विपाक कटु होता है ।। ७ ।। इसमें कोई संदेह नहीं है कि विशेष वीर्ययुक्त द्रव्य के विपाक में, उसके प्रभाव के कारण, विपरीतता भी आ जाती है । बतलाया

विधिर्भवेत्॥ ९॥ कषायन्तु भवेत् तोयं स्नेहपाके चतुर्गुणम् । द्रव्यतुल्यं समुद्धृत्य द्रव्यं स्नेहं क्षिपेदुधः ॥ १० ॥ तावत्प्रमाणं द्रव्यस्य स्नेहपादं ततः क्षिपेत् । तोयवर्जन्तु यद् द्रव्यं स्नेहद्रव्यं तथाभवेत्॥ ११॥ संवर्तितौषधः पाकः स्नेहानां परिकीर्त्तितः । तत्तुल्यता ते लेह्यस्य तथा भवति सुश्रुत॥ १२॥ स्वच्छमल्पौषधं क्वाथं कषायञ्चोक्तवद् भवेत् । अक्षं चूर्णस्य निर्दिष्टं काषायस्य चतुष्पलम् ॥ १३ ॥ मध्यमैषा स्मृता मात्रा नास्ति मात्राविकल्पना । वयः कालं बलं वह्निं देशं द्रव्यं रुजं तथा ॥ १४ ॥ समवेक्ष्य महाभाग ! मात्रायाः कल्पना भवेत् । सौम्यास्तत्र रसाः प्राज्ञे विज्ञेया धातुवर्धनाः ॥ १५ ॥ मधुरास्तु विशेषेण विज्ञेया धातुवर्धनाः। दोषाणाञ्चैव धातूनां द्रव्यं समगुणन्तु यत्॥ १६॥ तदेव वृद्धये ज्ञेयं विपरीतं क्षयावहम् । उपस्तम्भत्रयं प्रोक्तं देहेऽस्मिन् मनुजोत्तम ! ॥ १७॥ आहारो मैथुनं निद्रा तेषु यत्नः सदा भवेत् । असेवनात् सेवनाच्च अत्यन्तं नाशमाप्नुयात् ॥ १८ ॥ क्षयस्य बृंहणं कार्य्यं स्थूलदेहस्य कर्षणम् । रक्षणं मध्यकायस्य देहभेदास्त्रयो मताः॥ १९॥ उपक्रमद्वयं प्रोक्तं तर्पणं वाप्यतर्पणम् । हिताशी च मिताशी च जीर्णाशी च तथा भवेत् ॥ २० ॥ औषधीनां पञ्चविधा तथा भवति कल्पना । रसः कल्कः शृतः शीतः फाण्टश्च मनुजोत्तम ! ॥ २१ ॥ रसश्च पीडको ज्ञेयः कल्क आलोडिताद् भवेत् । क्वथितश्च शृतो ज्ञेयः शीतः पर्य्युषितो निशाम् ॥ २२ ॥ सद्योऽभिशृतपूतं यत् तत् फाण्टमभिधीयते । करणानां शतञ्चैव षष्टिश्चैवाधिकास्मृता॥ २३॥ यो वेत्ति स हयोजेयः स्यात् सम्बन्धे बाहुशौण्डिकः। आहारशुद्धिरग्न्यर्थमग्निमूलं बलं नृणाम् ॥ २४ ॥ ससिन्धु त्रिफलाञ्चाद्यात् सुराज्ञि अभिवर्णदाम् । जाङ्गलञ्च रसं सिन्धुयुक्तं दधि पयःकणम्॥२५॥

गया है कि मधुर भी शहत परिणाम में कटु होता है ।। ८ ।। द्रव्य के सोलह गुणा पानी लेकर उसको उबाले और जब द्रव्य के चार गुना जल बच जाय तो उस बचे हुए जल को छानकर पीयें । यही क्वाथ निर्माण की विधि है, जहाँ विधि क्वाथ की नहीं बतलायी गयी है, वहाँ यही विधि जानना चाहिए ।। ९ ।। स्नेहपाक में स्नेह (तेल) से कषाय द्रव्य को चौगुना होना चाहिए। यदि विभिन्न क्वाथ हों तो वे तैल के बराबर भी हो सकते हैं । तेल का परिपाक तब समझना चाहिये जबकि उसमें डाली हुई औषधियाँ उफनते हुए तेल में डालकर ऐसी हो जायँ कि उन्हें ठंढा करके यदि हाथ पर रगड़ा जाय तो उनकी बत्ती सी बन जाय । विशेष बात यह है कि उस बत्ती को यदि आग में जलाया जाय तो उसमें चिड़चिड़ाहट नहीं होना चाहिए । ऐसा होने पर उसे सिद्ध तैल समझना चाहिए ।। १०-११।। हे सुश्रुत ! लेह्य औषधि द्रव्यों में भी, इसी के समान प्रक्षेप आदि होते हैं ।। १२ ।। निर्मल तथा उचित औषध प्रक्षेप द्वारा निर्मित क्वाथ उत्तम होता है । चूर्ण की मात्रा एक तोला होती है और कषाय की मात्रा चार पल (चार तोला) होती है ।। १३ ।। यह मध्यममात्रा बतलायी गयी है । वैसे तो मात्रा का कोई निश्चित परिमाण नहीं है । हे महाभाग ! मात्रा की कल्पना अवस्था, काल, रोगी की शक्ति, उसकी जठराग्नि, देश, द्रव्य तथा रोग को देखकर ही करनी चाहिए ।। १४ ।। हे प्राज्ञ ! सौम्य (मधुर) रसों को धातु वर्द्धक जानना चाहिए ।। १५ ।। मधुर रस की औषधियाँ तो विशेष रूप से शरीर की धातुओं को बढ़ाती हैं । दोष, धातु एवं द्रव्य समान गुण युक्त होने पर शरीर की वृद्धि करते हैं । इसके विपरीत होने पर वे हानिकारक होते हैं ।। हे मनुजोत्तम ! इस शरीर में तीन उपसाम्भ (खम्भे) बतलाये गये हैं- आहार, मैथुन और निद्रा । इसलिए मनुष्य को इन सबों के प्रति सावधानी रखनी चाहिए। इन सबों के अत्यन्त परित्याग अथवा अत्यधिक सेवन से शरीर क्षीण होता है ।। १७-१८ ।। कृश शरीर का पोषण करना चाहिये, स्थूल शरीर का कर्षण करना चाहिए तथा मध्यम शरीर का रक्षण करना चाहिए । इस तरह से देह के तीन भेद बतलाये गये हैं ।। १९ ।। आहार आदि उपक्रमों के दो भेद बतलाये गये हैं, तर्पण एवं अतर्पण । मनुष्य को हिताशी (हितकारक वस्तुओं का भोजन करने वाला) मिताशी (अल्प भोजन करने वाला) तथा जीर्णाशी (पूर्णभुक्त अन्न के पच जाने पर ही भोजन करने वाला) होना चाहिए ।। २० ।। हे मनुष्योत्तम! औषधियों के निर्माण पाँच तरह से होते हैं- रस, कल्क, क्वाथ, शीत कषाय तथा फाण्ट ।। २१ ।। औषधि के निचोड़ने से रस बनता है, मन्थन करने से कल्क बनता है, उबालने से क्वाथ बनता है रात्रिभर रखने से शीत होता है तथा तत्काल कुछ गर्म करके छान लेने से फाण्ट होता है ।। २२ ।। इसी तरह चिकित्सक के एक सौ साठ साधन होते हैं । जो वैद्य उसे जानता है, वह अजेय होता है । इस प्रकार का वैद्य बाहुशौण्डिक कहलाता है । आहार शुद्धि अग्नि के संरक्षण, संवर्द्धन तथा संशुद्धि आदि के लिए आवश्यक है । मनुष्य के बल का मूल, अग्नि ही है ।। २४ ।। बल के लिए

रसाधिकं समं कुर्य्यान्नरो वाताधिकोऽपि वा । निदाघे मर्दनं प्रोक्तं शिशिरे च समं बहु ॥ २६ ॥ वसन्ते मध्यमं ज्ञेयं निदाघे मर्दनोल्वणम् । त्वचन्तु प्रथमं मर्द्यमङ्गञ्च तदनन्तरम् ॥ २७॥ स्नायुरुधिरदेहेषु अस्थि भातीव मांसलम् । स्कन्धौ बाहू तथैवेह तथा जङ्घे सजानुनी॥ २८॥ अरिवन् मर्दयेत् प्राज्ञो जत्रु वक्षश्च पूर्ववत् । अङ्गसन्धिषु सर्वेषु निष्पीड्य बहुलं तथा॥ २९॥ प्रसारयेदङ्गसन्धीन् न क्षेपेण न चाक्रमात् । नाजीर्णे तु श्रमं कुर्य्यान् भुक्त्वा पीतवान् नरः ॥ ३० ॥ दिनस्य तु चतुर्भाग ऊर्ध्वन्तु प्रहरार्द्धके । व्यायामं नैव कर्त्तव्यं स्नायाच्छीताम्बुना सकृत् ॥ ३१ ॥ वार्य्युष्णश्च श्रमं जह्याद्ध्रदा श्वासं न धारयेत् । व्यायामश्च कफं हन्यात् वातं हन्याच्च मर्दनम् ॥ ३२ ॥ स्नानं पित्ताधिकं हन्यात् तस्यान्ते चातपाः प्रियाः । आतपक्लेशकर्मादौ क्षेमव्यायामिनो नराः ॥ ३३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रसादिलक्षणवर्णनं नामैकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८१ ॥

द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

वृक्षायुर्वेदः

धन्वन्तरिरुवाच– **वृक्षायुर्वेदमाख्यास्ये प्लक्षश्चोत्तरतः शुभः । प्राग्वटो याम्यतस्त्वाम्र आप्येऽश्वत्थः क्रमेण तु ॥ १ ॥ दक्षिणां दिशमुत्पन्नाः समीपे कण्टकद्रुमाः । उद्यानं गृहवासे स्यात् तिलान् वाप्यथ पुष्पितान् ॥ २ ॥ गृह्णीयाद्रोपयेद् वृक्षान् द्विजञ्चन्द्रं प्रपूज्य च । ध्रुवाणि पञ्च वायव्यं**

नमक के साथ त्रिफला खाना चाहिए । कान्तिप्रद उत्तम पेय, जांगल रस, नमक के साथ दही, दुग्ध तथा पिप्पली का सेवन करना चाहिए ।। २५ ।। जो रस अधिक हो गये हों उन्हें समावस्था में लाना चाहिए । वातप्रकृति के मनुष्य को अपनी परिस्थिति के अनुसार गर्मी में अङ्गमर्दन कराना चाहिए । शिशिर ऋतु में साधारण या अधिक, वसन्त ऋतु में मध्यम और ग्रीष्म ऋतु में विशेष रूप से अङ्गों का मर्दन करना चाहिए ।। २६ ।। पहले त्वचा का मर्दन करना चाहिए, फिर अंगों का मर्दन करना चाहिए, ।। २७ ।। स्नायु और रुधिर से परिपूर्ण शरीर में अस्थियाँ अत्यन्त मांसल प्रतीत होती हैं । इसी तरह कंधे, भुजायें, दोनों जानु तथा दोनों जंघे भी अत्यन्त मांसल प्रतीत होते हैं । बुद्धिमान् मनुष्य इनका शत्रु के समान मर्दन करे । जत्रु (हँसली) तथा वक्षस्थल को साधारण रूप से मलना चाहिए ।। २८।। समस्त अंग संधियों को खूब मलकर उन्हें फैला देना चाहिए । किन्तु उनका प्रसारण हठात् अथवा क्रमविरुद्ध रूप से नहीं करना चाहिए । अजीर्णावस्था में मनुष्य को भोजन करके तथा जल पीकर श्रम नहीं करना चाहिए ।। ३० ।। दिन के चार प्रहर होते हैं । प्रथम प्रहर के आधा बीत जाने पर व्यायाम नहीं करना चाहिए । ठंढे जल से एक बार स्नान करना चाहिए ।। ३१ ।। गर्म जल थकावट को दूर करता है । हृदय के श्वास को अवरुद्ध नहीं करना चाहिए । व्यायाम कफ को नष्ट करता है तथा मर्दन वायु को नष्ट करता है ।। ३२ ।। स्नानपित्ताधिक्य को नष्ट करता है । स्नान के पश्चात् धूप का सेवन प्रिय होता है । व्यायाम करने वाले मनुष्य धूप और कड़े परिश्रम को करने में समर्थ होते हैं ।।३३।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का रसादिलक्षण वर्णन नामक दो सौ एकासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८१ ॥

श्रीधन्वन्तरि ने कहा– सुश्रुत ! अब मैं वृक्षायुर्वेद को बतला रहा हूँ । गृह के उत्तर में पाकड़ का पेड़ शुभ होता हे, पूर्व दिशा में वट, दक्षिण दिशा में आम और पश्चिम दिशा में पिप्पल का पेड़ शुभ होता है ।। १ ।।घर के समीप दक्षिण दिशा में उत्पन्न काँटेदार वृक्ष भी शुभ है । आवास स्थान के सन्निकट उद्यान लगाये अथवा उसके चारों ओर पुष्पित तिल से सुशोभित करे।।२।।

हस्तं प्राजेशवैष्णवम् ॥ ३ ॥ नक्षत्राणि तथा मूलं शस्यन्ते द्रुमरोपणे । प्रवेशयेन्नदीवाहान् पुष्करिण्यान्तु कारयेत्॥ ४॥ हस्तो मघा तथा मैत्रमाद्यं पुष्यं सवासनम् । जलाशयसमारम्भे वारुणञ्चोत्तरात्रयम् ॥ ५॥ संपूज्य वरुणं विष्णुं पर्जन्यं तत् समाचरेत् । अरिष्टाशोकपुन्नागशिरीषाः सप्रियङ्गवः॥६॥ अशोकः कदलीजम्बुस्तथा बकुलदाडिमाः । सायं प्रातस्तु घर्मर्त्तौ शीतकाले दिनान्तरे ॥ ७ ॥ वर्षारात्रौ भुवः शोषे सेक्तव्या रोपिता द्रुमाः । उत्तमं विंशतिर्हस्ता मध्यमं षोड़शान्तरम् । विफलाः स्युर्घनाः वृक्षाः शस्त्रेणादौ हि शोधनम् ॥ ९ ॥ विडङ्गघृतपङ्काक्तान् सेचयेच्छीतवारिणा । फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैर्यवैस्तिलैः ॥ १०॥ घृतशीतपयःसेकः फलपुष्पाय सर्वदा । अविकाजशकृच्चूर्णं यवचूर्णं तिलानि च ॥ ११॥ गोमांसमुदकञ्चैव सप्तरात्रं निधापयेत्। उत्सेकः सर्ववृक्षाणां फलपुष्पादिवृद्धिदः ॥ १२॥ मत्स्याम्भसा तु सेकेन वृद्धिर्भवति शाखिनः । विडङ्गतण्डुलोपेतं मत्स्यं मांसं हि दोहदम् । सर्वेषामविशेषेण वृक्षाणां रोगमर्दनम्॥ १३॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वृक्षायुर्वेदकथनं नामद्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८२ ॥

त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नानारोगहराण्यौषधानि

धन्वन्तरिरुवाच– **सिंही शटी निशायुग्मं वत्सकं क्वाथसेवनम् । शिशोः सर्वातिसारेषु स्तन्यदोषेषु शस्यते॥ १॥ शृङ्गीं सकृष्णातिविषां चूर्णितां मधुना लिहेत् । एका चातिविषा काशच्छर्दिज्वरहरी शिशोः ॥२॥ बालैः सेव्या वचा साज्या सदुग्धा वाथ तैलयुक् । यष्टिकां शङ्खपुष्पीं वा बालः**

ब्राह्मण और चन्द्रमा की पूजा करके वृक्षों को लगाना चाहिए । वृक्षारोपण के लिए तीनों उत्तरा, स्वाती, हस्त, रोहिणी, श्रवण और मूल- ये सभी नक्षत्र प्रशस्त माने गये हैं ।। ३ ।। उद्यान में पुष्करिणी बनाये और उसमें नदी के प्रवाह का प्रवेश कराये ।। ४ ।। जलाशयारम्भ के लिए, हस्त, मघा, अनुराधा, पुष्य, ज्येष्ठा, शतभिष तथा तीनों उत्तरा नक्षत्र प्रशस्त हैं ।। ५ ।। वरुण, विष्णु तथा इन्द्र का पूजन करके इस कार्य को प्रारम्भ करना चाहिए । नीम, अशोक (श्वेत), पुन्नाग, शिरीष, प्रियङ्गु, अशोक (रक्त), केला, जामुन, मौलश्री और अनार के वृक्षों को रोपना चाहिए।। ६ ।। ग्रीष्म ऋतु में सायंकाल एवं प्रातःकाल दोनों समय, शीतकाल में दिन में वर्षा काल में भूमि के सूख जाने पर रात्रि में रोपे हुए वृक्षों को सींखना चाहिए ।। ७।। वृक्षों के बीच में बीस हाथ का अन्तर उत्तम और बारह हाथ का अन्तर मध्यम कहा गया है । बारह हाथ के अन्तराल वाले वृक्षों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित करते रहना चाहिए ।। ८ ।। घने वृक्ष फलहीन होते हैं अतएव उन्हें काट छाँटकर शुद्ध करते रहना चाहिए ।। ९ ।। इसके पश्चात् वायविडङ्ग, घी तथा पङ्कमिश्रित शीतल जल से उनको सिंचते रहना चाहिए । वृक्षों में फल नहीं लगने पर कुलथी, उड़द, मूँग, यव, तिल तथा घृत मिश्रित शीतल जल से यदि वृक्षों को सींचा जाय तो उनमें सर्वदा फल लगते रहते हैं ।। १० ।। भेड़, बकरी के विष्ठा का चूर्ण, यव का चूर्ण, तिल एवं जल- इनको एकत्र करके सात दिन तक एक स्थान पर रखें, उसके बाद उससे सींचना सभी वृक्षों के फल एवं पुष्पों को बढ़ाने वाला होता है ।। ११-१२ ।। विडंग चावल के साथ मछली का जल, वृक्षों का दोहद है । इसके सेचन से सभी वृक्षों के रोग विनष्ट होते हैं ।। १४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का 'वृक्षायुर्वेद' का वर्णन नामक दो सौ बयासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८२ ॥

श्रीधन्वन्तरि भगवान् ने कहा– सिंही (अडूसा) शटी (कचूर) दोनों प्रकार की हल्दी और इन्द्रयव- इनका क्वाथ बालकों के सभी प्रकार के अतिसार तथा माता के दूध के दोषों में

क्षीरान्वितां पिबेत् ॥ ३ ॥ वाग्रूपसम्पद्युक्तायुर्मेधाश्रीर्वर्धते शिशोः । वचाह्यग्निशिखावासाशुण्ठीकृष्णानिशागदम् ॥ ४ ॥ सयष्टिसैन्धवं बालः प्रातर्मेधाकरं पिबेत् । देवदारुमहाशिग्रुफलत्रयपयोमुचाम् ॥ ५ ॥ क्वाथः सकृष्णा मृद्वीका कल्कः सर्वान् कृमीन् हरेत् । त्रिफलाभृङ्गविश्वानां रसेषु मधुसर्पिषोः ॥ ६ ॥ मेषीक्षीरे च गोमूत्रे सिक्तं रोगे हितं शिशोः । नाशारक्तहरो नस्याद् दूर्वारस इहोत्तमः ॥ ७ ॥ लशुनार्द्रकशिग्रूणां रसः कर्णस्य पूरणम् । तैलमार्द्रकजात्यं वा शूलहा चौष्ठरोगनुत् ॥ ८॥ जातीपत्रं फलं व्योषं कवलं मूत्रकं निशा । दुग्धक्वाथेऽभयाकल्के सिद्धं तैलं द्विजार्त्तिनुत्॥९॥ धान्याम्बु नारिकेलं गोमूत्रं क्रमूकविश्वयुक् । क्वाथितं कवलं कार्य्यमधिजिह्वाधिशान्तये ॥ १० ॥ आधितं लाङ्गलीकल्के तैलं निर्गुण्डिकारसैः। गण्डमालागलगण्डौ नाशयेन् नस्यकर्मणा ॥ ११ ॥ पल्लवैरर्कपूतीकस्नुहीरुग्घातजातिकैः । उद्वर्त्तयेत् सगोमूत्रैः सर्वत्वग्दोषनाशनैः॥१२॥ वाकुची सतिला भुक्ता वत्सरात् कुष्ठनाशनी । पथ्या भल्लातकी तैलगुडपिण्डी तु कुष्ठजित् ॥ १३ ॥ यूतीकवह्निरजनी त्रिफलाव्योषचूर्णयुक् । तक्रं गदाङ्कुरे पेयं भक्ष्या वा सगुडाऽभया ॥ १४॥ फलदार्वीविषाणान्तु क्वाथो धात्रीरसोऽथवा । पातव्यो रजनीकल्कः क्षौद्रक्षौद्रप्रमेहिणा ॥ १५ ॥ वासागर्भो व्याधिघात क्वाथ एरण्डतैलयुक् । वातशोणितहृत् पानात् पिप्पली स्यात् प्लीहाहरी ॥ १६ ॥ सेव्या जठरिणा कृष्णा स्नुक्क्षीरबहुभाविता। पयो वा रुच्यदन्त्यग्नि विड्ङ्गव्योषकल्कयुक् ॥ १७ ॥ ग्रन्थिकोग्राभया कृष्णा विडङ्गोक्ता घृते स्थिता ।

प्रशस्त है ।। १ ।। शृङ्गी (पीपल) और अतीस के साथ काकड़ शृङ्गी का अथवा केवल अतीस का चूर्ण करके बालकों को मधु के साथ चटायें । इससे खांसी, वमन और ज्वर नष्ट होते हैं।।२।। बालकों को दूध, अथवा घी अथवा तेल के साथ बच का सेवन कराना चाहिए, अथवा मुलहठी और शंखपुष्पी को दूध के साथ उसे पिलाना चाहिए ।। ३ ।। इससे बालकों की वाक्शक्ति तथा रूप सम्पत्ति के साथ-साथ आयु, बुद्धि और कान्ति की वृद्धि होती है । वच, कलिहारी, अड़ूसा, सोंठ, पीपल, हल्दी, कूट, मुलहठी और सैन्धव- इनका चूर्ण बालकों को प्रातःकाल पिलाना चाहिए । इनका सेवन बालकों के लिए बुद्धिवर्द्धक होता है ।। ४ ।। देवदास, बड़ा सहजन, त्रिफला और नागर मोथा- इनका क्वाथ अथवा पिप्पल और मुनक्का का कल्क, सभी प्रकार के कृमि रोगों को विनष्ट करता है ।। ५ ।। शुद्ध राँगे को त्रिफला, भृंगराज तथा अदरख के रस के साथ अथवा मधु-घृत में अथवा भेंड़ के मूत्र या गोमूत्र में अंजन करने से बच्चे के नेत्र रोगों में लाभ होता है ।। ६ ।। दूर्वारस का नस्य नाक से बहने वाले रक्त के रोग को शान्त करता है ।। ७ ।। लहसुन, अदरख और सहजन के रससे कान को भर देने पर अथवा अदरख के रस या तैल से कान को भर देने पर वह कर्णशूल को नष्ट करने वाला तथा ओष्ठ रोग को दूर करने वाला होता है ।। ८ ।। जायफल त्रिफला, व्योष (सोंठ, मिर्च, पिप्पल) गोमूत्र, हल्दी, गो दुग्ध तथा बड़ी हर्रे के कल्कसे सिद्ध किया हुआ तिल के तेल का कवल (कुल्ला) करने से दन्त पीड़ा का नाश होता है ।। ९ ।। काँजी, नारियल का जल, गोमूत्र, सुपारी तथा सोंठ- इनके क्वाथ के कवल को मुख में रखने से जिह्वा के रोग का नाश होता है ।। १० ।। कलिहारी का कल्क (पिसे हुए द्रव्य में) निर्गुण्डी के रस के साथ सिद्ध किये हुए तेल का नस्य लेने से गण्डमाला और गलगण्ड रोग का नाश होता है ।। ११ ।। सभी चर्मरोगों को नष्ट करने वाले आक, माटा, करञ्ज, चूहर, अमलतास और चमेली के पत्तों को गोमूत्र के साथ पिसकर उबटन लगाना चाहिए।।१२।। यदि वाकुची को तिल के साथ एक वर्ष तक खाया जाय तो वह एक वर्ष में कुष्ठ रोग को विनष्ट कर देती है । हर्रे, भिलावा, तेल, गुड़ और पिण्ड खर्जूर- कुष्ठ नाशक औषध हैं ।। १३ ।। पाठा, चित्रक, हल्दी, त्रिफला और व्योष (सोंठ, मिर्च, पिप्पल) इनका चूर्ण तक्र के साथ पीने से अथवा गुड़ के साथ हरीतकी खाने से अर्श रोग का नाश होता है ।।१४।। प्रमेह के रोगी को त्रिफला, दारु, हल्दी, बड़ा इन्द्रायण और नागर मोथा- इनका क्वाथ या आँवले का रस, हल्दी कल्क और मधु के साथ, पीना चाहिए ।। १५ ।। अड़ूसे की जड़, गिलोय और अमलतास के क्वाथ में शुद्ध एरण्ड का तेल मिलाकर पीने से वातरक्त का नाश होता है और पिप्पली से प्लीहा का नाश होता है ।। १६ ।। पेट के रोगी को थूहर के दूध में अनेक बार भावना दी हुई पिप्पली का सेवन करना चाहिए । चित्रक विडङ्ग तथा त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) के कल्क से सिद्ध दुग्ध अरुचि रोग का निवारण करता है ।। १७ ।। पीपलामूल, बच, हर्रे,

मासं तक्रं ग्रहण्यर्शः पाण्डुगुल्मकृमीन् हरेत् ॥ १८ ॥ फलत्रयामृता वासा तिक्तभूनिम्बजस्तथा । क्वाथः समाक्षिको हन्यात् पाण्डुरोगं सकामलम्॥१९॥ रक्तपित्ती पिबेद् वासासुरसं ससितं मधु । वरीद्राक्षाबलाशुण्ठीसाधितं वा पयः पृथक्॥ २०॥ वरी विदारी पथ्या च बलात्रयं सवासकम् । श्वदंष्ट्रामधुसर्पिर्भ्यामालिहेत् क्षयरोगवान्॥२१॥ पथ्याशिग्रु करञ्जार्कत्वक्सारं मधुसिन्धुमत् । समूत्रं विद्रधिं हन्ति परिपाकाय तन्त्रजित्॥२२॥ त्रिवृता जीवती दन्ती मञ्जिष्ठा शर्बरीद्वयम् । तार्क्ष्यजं निम्बपत्रञ्च लेपः शस्तो भगन्दरे॥ २३॥ रुग्घातरजनीलाक्षा चूर्णाजक्षौद्रसंयुता । वासोवर्त्तिर्व्रणे योज्या शोधनीगतिनाशनी ॥ २४॥ श्यामायष्टिनिशालोध्र पद्मकोत्पलचन्दनैः । समरीचैः श्रृतं तैलं क्षीरे स्याद् व्रणरोहणम्॥ २५॥ श्रीकार्पासदलैर्भस्म फलोपलवणा निशा । तत्पिण्डीस्वेदनं ताम्रे सतैलं स्यात् क्षतौषधम्॥ २६॥ कुम्भीसारं पयोयुक्तं वह्निदग्धं व्रणे लिपेत् । तदेव नाशयेत् सेकान् नारिकेलरजोघृतम् ॥ २७ ॥ विश्वाजमोदसिन्धूत्थचिञ्चात्वग्भिः समाऽभया । तक्रेणोष्णाम्बुना वाथ पीतातीसारनाशनी ॥ २८ ॥ वत्सकातिविषाविश्वबिल्वमुस्तश्रृतं जलम् । सामे पुराणेऽतीसारे सासृक्शूले च पाययेत्॥ २९॥ अङ्गारदग्धं सुगतं सिन्धुमुष्णाम्बुना पिबेत् । शूलवानथ वा तद्धि सिन्धुहिङ्गुकणाभया॥ ३०॥ कटुरोहोत्कणातङ्क लाजचूर्णं मधुप्लुतम् । वस्त्रच्छिद्रगतं वक्त्रे न्यस्तं तृष्णां विनाशयेत् ॥ ३१॥ पाठादार्वीजातिदलं द्राक्षामूलफलत्रयैः । साधितं समधु क्वाथं कवलं मुखपाकहृत् ॥ ३२॥ कृष्णातिविषतिक्तेन्द्रदारूपाठापयोमुचाम् । क्वाथो मूत्रे श्रृतः क्षौद्री सर्वकण्ठगदापहः॥३३॥ पथ्यागोक्षुरदुस्पर्श राजवृक्षशिलाभिदाम्। कषायः समधुः पीतो मूत्रकृच्छ्रं व्यपोहति ॥ ३४॥ वंशत्वग्वरुणक्वाथः

पीपल और विडङ्ग को एक साथ मिलाकर रखे, उसके सेवन से या केवल तक्र के एक मास तक सेवन से ग्रहणी, अर्श, पाण्डु, गुल्म और कृमि रोगों का नाश होता है ।। १८ ।। त्रिफला, गिलोय, अडूसा, कुत्थी चिरायता- इनका क्वाथ शहद के साथ पीने से कामला और पाण्डुरोग का नाश होता है ।। १९ ।। अडूसे के रस को मिश्री और शहद मिलाकर पीने से या शतावरी दाख, खरेटी और सोंठ- इनसे सिद्ध किया हुआ दूध पीने से, रक्तपित्त रोग का नाश होता है ।। २० ।। शतावरी विदारीकन्द, बड़ी हर्रे तीनों खरेटी, असगन्ध,गदहपूर्ना तथा गोखरु के चूर्ण को क्षय रोग के रोगी को शहद और घी के साथ चाटना चाहिए ।। २१ ।। हर्रे, सहजन, करञ्ज आक, दालचीनी, पुनर्नवा, सोंठ और सैन्धव , इनका गोमूत्र के साथ येग करके यदि लेप किया जाय तो विद्रधि की गाँठ को पकाने के लिए उत्तम उपाय है ।। २२ ।। निशोथ, जीवन्ती, दन्तभूल, मञ्जिष्ठा, दोनों हल्दी, रसाञ्जजन और नीम के पत्ते का लेप भगन्दर में श्रेष्ठ है ।।२३।। अमलतास, हरिद्रा, लाक्षा और अडूसा इनके चूर्ण को गोघृत और शहद के साथ बत्ती बनाकर नासूर में देवें । इससे नासूर का शोधन होकर घाव भर जाता है ।। २४ ।। पिपल्ली, मुलहठी, हल्दी, लोध पद्मकाष्ठ, कमल, लालचन्दन और मिर्च इनके साथ गोदुग्ध में सिद्ध किया हुआ तेल घाव को भरता है ।। २५ ।। श्रीताड़ कपास की पत्तियों का भस्म, त्रिफला, गोलमिर्च, खरेटी और हल्दी- इनकी गोली बनाकर घाव का स्वेदन करना चाहिए और इन औषधियों को तेल को घाव पर लगाये ।। २६ ।। दूध के साथ कुम्भीसार (गुग्गुलसार) को आग पर जलाकर व्रण पर लेप करना चाहिए । इसी प्रकार नारियल की जड़ की मिट्टी में घी मिलाकर सेंकने से व्रण का नाश होता है ।। २७ ।। सोंठ अजमोद, सेंधानमक, इमली की छाल- इन सबके समान भाग हर्रे को तक्र या गर्म जल के साथ पीने से अतिसार का नाश होता है ।। २८ ।। इन्द्रयव, अतीस, सोंठ, बेलगिरि और नागरमोथा का क्वाथ आम सहित जीर्ण अतिसार में और शूलसहित रक्तातिसार में भी पिलाना चाहिए ।। २९ ।। ठंढे थूहर में सेंधानमक भरकर आग में जला लेना चाहिए, फिर उसे यथोचित मात्रा में उसे उदरशूल रोगी को देना चाहिए अथवा सेंधा नमक, हींग, पिप्पल हर्रे, इनका गर्म जल के साथ सेवन कराया जाय ।। ३० ।। वर की वरोह, कमल और धान के खील के चूर्ण इन सबों को शहद में भिंगोकर, कपड़े में पोटली बनायें और उसे मुख में रखकर चूसे तो इससे प्यास दूर होती है । (अथवा, कुटकी, पीपल, मीठा कूट एवं धान का लावा, इन सबों को मधु के साथ मिलाकर, पोटली में रखकर मुखमें रखे और चूसें तो प्यास दूर हो जाती है ।। ३१ ।। पाठा, दारु हल्दी चमेली का पत्ता, मुनक्का की जड़ और त्रिफला- इन सबों का क्वाथ बनाकर उसमें शहद मिला दें । इसको मुख में धारण करने से मुखपाक रोग नष्ट होता है ।। ३२ ।। पीपल, अतीस, कुटकी, इन्द्रयव, देवदारु, पाठा और नागरमोथा- इनका गोमूत्र में बना क्वाथ मधु के साथ लेने पर सब प्रकार के रोगों का नाश होता है ।। ३३ ।।

शर्कराश्मविघातनः। शाखोटक्वाथ सक्षौद्रक्षीराशी श्लीपदी भवेत् ॥ ३५॥ मासार्कत्वक्पयस्तैलं मधुसिक्तञ्च सैन्धवम् । पादरोगं हरेत् सर्पिर्जालकुक्कुटजं तथा॥ ३६॥ शुण्ठी सौवर्चलाहिङ्गु चूर्णंशुण्ठीरसैर्घृतम्। रुजं हरेदथ क्वाथो विद्धि बद्धाग्निसाधने॥ ३७॥ सौवर्चलाग्निहिङ्गूनां सदीप्यानां रसैर्युतम् । विड़दीप्यकयुक्तं वा तक्रं गुल्मातुरः पिबेत् ॥ ३८ ॥ धात्रीपटोलमुद्गानां क्वाथः साज्यो विसर्पहा । शुण्ठीदारुणवाक्षीरक्वाथो मूत्रान्वितोऽपरः ॥ ३९ ॥ सव्योषायोरजःक्षारः फलक्वाथश्च शोथहृत् । गुड़शिग्रुचित्रवृद्धिश्च सैन्धवानां रजोयुतः॥ ४०॥ त्रिवृताफलकक्वाथः सगुड़ः स्याद् विरेचनः । वचाफलकषायोत्थं पयो वमनकृद् भवेत्॥ ४१॥ त्रिफलायाः पलशतं पृथाभृङ्गजभावितम् । विड़ङ्गं लोहचूर्णञ्च दशभागसमन्वितम् ॥ ४२॥ शतावरीगुड़ूच्यग्निपलानां पंचविंशतिः । मध्वाज्यतिलजैर्लिह्याद् बलीपलितवर्जितः॥ ४२॥ शतमब्दं हि जीवेत सर्वरोगविवर्जितः । त्रिफला सर्वरोगघ्नी समधुः शर्करान्विता ॥ ४४ ॥ सितामधुघृतैर्युक्ता सकृष्णा त्रिफला तथा । पथ्याचित्रकशुण्ठ्यश्च गुड़ूचीमुषलीरजः ॥ ४५ ॥ सगुडं भक्षितं रोगहरं त्रिशतवर्षकृत् । किञ्चिच्चूर्णं जवापुष्पं पिण्डितं विसृजेज्जले ॥ ४६ ॥ तैलं भवेद् घृताकारं किञ्चच्चूर्णं जलान्वितम् । धूपार्थं दृश्यते चित्रं वृषदंशजरायुणा ॥ ४७ ॥ पुनर्माक्षिकधूपेन दृश्यते तद् यथा पुरा । कर्पूरजलुकाभेक तैलं पाटलिमूलयुक्॥ ४८॥ पिष्ट्वा लिप्य पदे द्वे च चरेदङ्गारके नरः । तृणौत्थानादिकं व्यूह्य दर्शयन् वै कुतूहलम्॥ ४९॥ विषग्रहरुजध्वंसक्षुद्रनर्म

हर्रे, गोखरू, जवासा, अमलतास एवं पाषाणभेद- इनके क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से मूत्रकृच्छ्र का कष्ट दूर होता है ।। ३४ ।। बाँस का छिलका और वरुण की छाल का शर्करा (चीनी के रोग) और अशमरी रोग का विनाश करता है । श्लीपद रोग से युक्त मनुष्य शाखोटक की छाल का क्वाथ मधु एवं दुग्ध के साथ पीये । ।। ३५ ।। उड़द, मदार की पत्ती तथा दूध तैल, मोम तथा सैंधव लवण इनका योग, पादरोग नाशक है । सोंठ, काला नमक एवं हींग- इनका चूर्ण या सोंठ के रस के साथ सिद्ध किया गया घी अथवा इनका क्वाथ पीने से मल बन्ध दोष और उससे सम्बन्धित रोग नष्ट हो जाते हैं ।। ३६-३७ ।। गुल्म के रोगी को चाहिए कि वह सर्जक्षार, चित्रक, हींग और अजमोद, इनके रस के साथ, या विडंग एवं चित्रक के साथ तक्र पान करे।।३८।। आँवला, परवल एवं मूँग इनके क्वाथ का घृत के साथ सेवन, विसर्प रोग को दूर करता है । अथवा सोंठ, देवदास, पुनर्नवा या वंशलोचन इनका दुग्ध युक्त क्वाथ उपकारक है। गोमूत्र के साथ सोंठ, मिर्च, पिप्पल, लोहचूर, यवक्षार तथा त्रिफला का क्वाथ शोथ को समाप्त करता है ।। ३९ ।। गुड़, सहिजन, निशोथ एवं सैन्धव लवण इनका चूर्ण अथवा क्वाथ भी शोथ को समाप्त करता है ।। ४० ।। निशोथ एवं गुड़ के साथ त्रिफला का क्वाथ विरेचन कराने वाला है । वच एवं मैनफल के क्वाथ का जल वमन कराने वाला होता है ।। ४१।। भृंगराज के रस में भावित त्रिफला सौपल, वायविडंग एवं लोहचूर दस भाग, एवं शतावरी, गिलोय और चित्रक पचीस पल लेकर उसका चूर्ण बना लें । उस चूर्ण को मधु, घृत और तेल के साथ चाटने से मनुष्य बली और पलितरोग से मुक्त होता है ।। ४२-४३ ।। वह समस्त रोगों से रहित होकर सौ वर्षों तक जीता है । मधु एवं शर्करा के साथ त्रिफला का सेवन करने से समस्त रोग विनष्ट हो जाते हैं ।। ४४ ।। त्रिफला और पिप्पल का मिश्री, मधु और घी के साथ सेवन करने पर भी पूर्वोक्त समस्त लाभ प्राप्त होते हैं । हर्रे, चित्रक, सोंठ गिलोय ओर मुसली का चूर्ण गुड़ के साथ खाने पर रोगों का नाश होता है और तीन सौ वर्षों की आयु प्राप्त होती है । ४५ ।। जवापुष्प को थोड़ा मसलकर जल में मिला लें, उस चूर्ण जल में थोड़ा सा तेल मिला देने पर तेल घृताकार ।। ४६ ।। विल्ली के गर्भ की झिल्ली का धूप देने से चिना नहीं दिखायी देता है । फिर यदि शहद का धूप दिया जाय तो चिन पूर्ववत् दिखायी देने लगता है ।। ४७ ।। पाड़र की जड़ (पाटलिमूल) कर्पूर जोंक ओर मेढक का तेल इनको पीसकर दोनों पैरों में लगाकर मनुष्य जलते हुए अंगारों पर चल सकता है ।। ४८ ।। तृणोत्थापन आदि आश्चर्यजनक खेल दिखलाता हुआ चल सकता है । विषों को रोकना, ग्रहों का निवारण, रोग का नाश तथा तुच्छ क्रीड़ायें कामना परक होते हैं ।। ४९ ।। मैंने तुम्हें लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार की सिद्धियों को देने वाले षट्क्रमों को बतलाया है ।। ५० ।। मन्त्र, ध्यान, औषधि, कथा मुद्रा तथा यप ये छह कर्म जिसकी मुष्टि (सहायक) हैं वह कार्य, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को

च कामिकम्। तत् ते षट्कर्मकं प्रोक्तं सिद्धिद्वयसमाश्रयम्॥५०॥ मन्त्रध्यानौषधिकथामुद्रेज्या यत्रमुष्टयः। चतुर्वर्गफलं प्रोक्तं यः पठेत् स दिवं ब्रजेत्॥५१॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानारोगहराणामौषधानां कथनं नाम त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८३॥

चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मन्त्ररूपौषधकथनम्

धन्वन्तरिरुवाच– **आयुरारोग्यकर्त्तार ओंकाराद्याश्च नाकदाः। ओंकारः परमो मन्त्रस्तं जप्त्वा चामरो भवेत् ॥ १ ॥ गायत्री परमो मन्त्रस्तं जप्त्वा भुक्तिमुक्तिभाक् । ओं नमो नारायणाय मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥ २ ॥ ओं नमो भगवते वासुदेवाय सर्वदः । ओं हूं नमो विष्णवे मन्त्रोऽयञ्चौषधं परम् ॥ ३ ॥ अनेन देवा ह्यसुराः सश्रियो नीरुजोऽभवन् । भूतानामुपकारश्च तथा धर्मो महौषधम्॥ ४॥ धर्मः सद्धर्मकृद्धर्मी एतैर्धर्मैश्च निर्मलः । श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीधरः श्रीनिकेतनः॥ ५॥ श्रियः पतिः श्रीपरम एतैः श्रियमवाप्नुयात् । कामी कामप्रदः कामः कामपालस्तथाहरिः ॥ ६ ॥ आनन्दो माधवश्चैव नामकामाय वै हरेः । रामः परशुरामश्च नृसिंहो विष्णुरेव च ॥ ७॥ त्रिविक्रमश्च नामानि जप्तव्यानि जिगीषुभिः । विद्यामभ्यस्यतां नित्यं जप्तव्यः पुरुषोत्तमः॥ ८॥ दामोदरो बन्धहरः पुष्कराक्षोऽक्षिरोगनुत् । हृषीकेशो भयहरो जपेदौषधकर्मणि॥९॥ अच्युतञ्चामृतं मन्त्रं संग्रामे चापराजितः। जलतारे नारसिंहं पूर्वादौ क्षेमकामवान् ॥ १०॥ चक्रिणं गदिनञ्चैवं शार्ङ्गिणं खङ्गिनं स्मरेत् । नारायणं**

देने वाला कर्म बतलाया गया है । इस प्रसंग को पढ़ने वाला मनुष्य स्वर्ग लोक जाता है ।। ५१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अनेक रोग नाशक औषधियों का वर्णन नामक दो सौ तीरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८३ ॥

श्रीधन्वन्तरि भगवान् ने कहा– सुश्रुत ! ओंकार आदि मन्त्र आयु बढ़ाने वाले तथा समस्त रोगों को दूर करके आरोग्य बढ़ाने वाले होते हैं । ओंकार परम मन्त्र है, उसका जप करके मनुष्य अमर हो जाता है ।। १ ।। गायत्री सबसे महान् मन्त्र है । उसका जप करके मनुष्य भोग तथा मोक्ष को प्राप्त करता है । ओं नमो नारायणाय यह अष्टाक्षर मन्त्र सब कुछ सिद्ध कर देने वाला है ।। २ ।। ओं नमो भगवते वासुदेवाय द्वादशाक्षर मन्त्र सब कुछ प्रदान कर देता है । ओं हूँ विष्णवे नमः यह मन्त्र उत्तम औषध है ।। ३ ।। इसी मन्त्र का जप करके देवता और असुर श्रीसम्पन्न तथा निरोग हो गये। जगत् के समस्त प्राणियों का उपकार तथा धर्माचरण के लिए यह महान् औषध है ।। ४ ।। धर्मः सद्धर्मकृत् धर्मी श्रीभगवान् के इन धर्मसम्बन्धी नामों का जप करके मनुष्य निर्मल हो जाता है । श्रीभगवान् के- श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीधरः श्रीनिकेतनः । श्रियः पतिः श्रीपरमः- इन श्रीसम्बन्धी नामों का जप करके मनुष्य लक्ष्मी को पा लेता है ।।५।। कामी, कामप्रदः कामः कामपालः हरिः आनन्दः माधवः श्रीभगवान के इन नाममन्त्रों का जप करने से मनुष्यों की सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ।। ६ ।। युद्ध में विजय प्राप्ति की इच्छा रखने वाले मनुष्य को- रामः परशुरामः नृसिंहः विष्णुः त्रिविक्रमः- श्रीभगवान् के इन नामों को जपना चाहिए । नित्यविद्याभ्यास करने वाले छात्रों को श्रीभगवान् के 'श्रीपुरुषोत्तमः' इस नाम को जपना चाहिए ।। ८ ।। श्रीभगवान् के दामोदरः इस नाम का जप करने से बन्धन से छुटकारा मिलता है । पुष्कराक्षः इस नाम का जप आँखों के रोगों को दूर करता है । हृषीकेशः भगवान् का यह नाम भय को दूर करता है । औषधि को देते तथा लेते समय श्रीभगवान् के इन नामों का जप करना चाहिए ।। ९ ।। श्रीभगवान् का अच्युत यह नाम अमृत मन्त्र है, संग्राम में अपराजितः यह श्रीभगवान् का नाम जपें । जलपार करते सूमय नृसिंहः इस नाम का स्मरण करें । पूर्व आदि दिशाओं की यात्रा के समय कल्याण की कामना रखने वाले मनुष्य को क्रमशः श्रीभगवान् के चक्री

सर्वकाले नृसिंहोऽखिलभीतिनुत्॥ ११॥ गरुडध्वजश्चविषहृत् वासुदेवं सदाजपेत् । धान्यादिस्थापनेस्वप्ने अनन्ताच्युतमीरयेत्॥ १२॥ नारायणञ्च दुःस्वप्ने दाहादौ जालशायिनम् । हयग्रीवञ्च विद्यार्थी जगत्सूतिं सुताप्यते बलभद्रं शौरकार्य्ये एकं नामार्थसाधनम् ॥ १३ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये मन्त्ररूपौषधकथनं नाम चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८४ ॥

पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मृतसञ्जीवनीकरसिद्धयोगः

धन्वन्तरिरुवाच– **सिद्धयोगान् पुनर्वक्ष्ये मृतसञ्जीवनीकरान् । आत्रेयभाषितान् दिव्यान्-सर्वव्याधिविमर्दनान् ॥ १ ॥** आत्रेय उवाच– **बिल्वादिपञ्चमूलस्य क्वाथःस्याद् वातिके ज्वरे । पाचनं पिप्पलीमूलंगुडूचीविश्वजोऽथवा ॥ २ ॥ आमलक्यभया कृष्णा वह्निःसर्वज्वरान्तकः । बिल्वाग्निमन्थश्योनाककाश्मर्य्यः पाटला स्थिरा ॥ ३ ॥ त्रिकण्टकं पृश्निपर्णी बृहती कण्टकारिकाः । ज्वरीविपाकापार्श्वार्त्तिकाशनुत्कुशमूलकम् गुडूची पर्पटी मुस्तं किरातं विश्वभेषजम् । वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभद्रमिदं स्मृतम् ॥ ५ ॥ त्रिवृद्विशालकटुका त्रिफलारग्वधैः कृतः । संस्कारो भेदनक्वाथः पेयः सर्वज्वरापहः ॥ ६ ॥ देवदारुबलावासात्रिफलाव्योषपद्मकैः । सविडङ्गैः सितातुल्यं तच्चूर्णं पञ्चकासजित् ॥ ७ ॥ दशमूलीशटीरास्ना**

गादी शार्ङ्गी और खड्गी नामों का स्मरण करना चाहिए ।। १० ।। सर्वदा भगवान् के नारायण नाम का स्मरण करना चाहिए, श्रीभगवान् का नृसिंह नाम समस्त भयों को दूर करने वाला है।।११।। श्रीभगवान् का गरुड़ध्वज नाम विष को दूर करने वाला है । उनके वासुदेव नाम का हमेशा जप करते रहना चाहिए । धान इत्यादि रखने तथा सोने के समय श्रीभगवान् के अनन्त एवं अच्युत नाम का स्मरण करना चाहिए ।। १२ ।। दुःस्वप्न देखने पर श्रीभगवान् के नारायण नाम का जप करना चाहिए तथा दाह इत्यादि उत्पन्न होने पर उनके जलशायी नाम को जपना चाहिए । विद्यार्थी को श्रीभगवान् के हयग्रीव नाम का स्मरण करना चाहिए तथा पुत्र की प्राप्ति के लिए उनके जगत्सूतिः इस नाम का जप करना चाहिए । वीरता कार्य करने के समय बलभद्रः इस नाम को जपना चाहिए । श्रीभगवान् का एक ही नाम समस्त कामनाओं को पूरा कर देने में समर्थ होता है ।। १३ ।।

इस प्रकार आदिमहापुराण अग्निपुराण का 'मन्त्रस्वरूप औषधों का वर्णन' नामक दो सौ चौरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८४ ॥

श्रीधन्वन्तरि भगवान् ने कहा– सुश्रुत ! मैं अब उन मृतसंजीवनी करक योगों का वर्णन कर रहा हूँ जिनका उपदेश आत्रेय ने किया था । जो दिव्य तथा सभी व्याधियों का विनाश करने वाले योग हैं ।। १ ।। **आत्रेय ने कहा–** वात ज्वर में विल्व आदि पञ्चमूल (बेल, सोनपाठा, गम्भार, पाटल और अरणी) का काढ़ा देना चाहिए । पाचन के लिए पिप्पलीमूल, गिलोय और सोंठ का काढ़ा देना चाहिए ।। २ ।। आँवला बड़ी हर्रे, पीपल एवं चित्रक इनका क्वाथ सभी प्रकार के ज्वरों को विनष्ट कर देता है । विल्वमूल, अरणी, सोनपाठा, जम्भारी, पाटल, शालपर्णी, गोखरू, पृश्निपर्णी, वृहती (बड़ी कटेर)उपैर, कण्टकारका (छोटी कटेर) इन सबों का क्वाथ और कुश के मूल का क्वाथ, ज्वर, अपाचन, पार्श्वशूल और कास का नाश करने वाले हैं ।। ३-४ ।। गिलोय, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, चिरायता और सोंठ यह पञ्चभद्र क्वाथ वातज्वर एवं पितज्वर में देना चाहिए ।। ५ ।। निशोथ, विशाला (इन्द्रवारुणी) कुटकी त्रिफला और अमलतास इनका क्वाथ यवक्षार मिलाकर पिलावें । यह रेचक और सम्पूर्ण ज्वरों को शान्त करने वाला है ।। ६ ।।देवदारु, खरेटी, अडूस, त्रिफला और व्योष (सोंठ, पिप्पल, मिर्च) पद्म काष्ठ वायविडङ्ग और मिश्री इन सबों के समान भाग का चूर्ण पाँच प्रकार के कास (खाँसी) को दूर करता है ।। ७ ।। हृदयरोग, ग्रहणी, पार्श्वरोग, हिक्का, श्वास एवं कास रोग के विनाश के लिए

पिप्पलीबिल्वपौष्करैः । शृङ्गीतामलकीभार्गी गुडूचीनागवल्लिभिः ॥ ८ ॥ यवाग्रं विधिनासिद्धं कषायं वा पिबेन् नरः । काशहृद् ग्रहणीपार्श्व हिक्काश्वासप्रशान्तये ॥ ९ ॥ मधुकं मधुना युक्तं पिप्पलीं शर्करान्विताम् । नागरं गुड़संयुक्तं हिक्काघ्नं लवणत्रयम् ॥ १० ॥ कारव्यजाजीमरिचं द्राक्षा वृक्षाम्लदाडिमम् । सौवर्चलं गुडं क्षौद्रं सर्वारोचननाशनम् ॥ ११ ॥ शृङ्गवेररसञ्चैव मधुना सह पाययेत् । अरुचिश्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफान्तकम्॥१२॥ वटंशृङ्गी शिलालोधं दाड़िमं मधुकं मधु । पिबेत् तण्डुलतोयेन छर्दितृष्णानिवारणम् ॥ १३ ॥ गुडूची वासकं लोधं पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् । कफान्वितञ्जयेद्रक्तं तृष्णाकासज्वरापहम् ॥ १४ ॥ वासकस्य रसस्तद्वत् समधुस्ताम्रजो रसः । शिरीषपुष्पसुरसभावितं मरिचं हितम् ॥ १५ ॥ सर्वार्त्तिनुन्मसूरोऽथ पित्तमुक्तण्डुलीयकम् । निर्गुण्डी शारिवा शेलु रङ्कोलश्चविषापहः॥ १६ ॥ महौषधं मृतां क्षुद्रां पुष्करं ग्रन्थिकोद्भवम् । पिबेत्कणायुतं क्वाथं मूर्च्छायाञ्च मदेषु च ॥ १७ ॥ हिङ्गुसौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् । चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम्॥१८॥ शङ्खपुष्पीवचाकुष्ठैः सिद्धं ब्राह्मीरसैर्युतम् । पुराणं हन्त्यपस्मारं सोन्मादं मेध्यमुत्तमम् ॥ १९ ॥ पञ्चगव्यं घृतं तद्वत् कुष्ठनुच्चाभयायुतम् । पटोलत्रिफलानिम्बगुडूचीधावनीवृषैः ॥ २० ॥ सकरञ्जैर्घृतं सिद्धं कुष्ठनुद् वज्रकं स्मृतम् । निम्बं पटोलं व्याघ्री च गुडूचीवासकं तथा ॥ २१ ॥ कुर्य्याद् दशपलान् भागान्एकैकस्य सकुट्टितान् । जलद्रोणे विपक्तव्यंयावत्पादावशेषितम् ॥ २२ ॥ घृतप्रस्थं पचेत् तेन त्रिफलागर्भसंयुतम् । पञ्चतिक्तमिति ख्यातं सर्पिः कुष्ठविनाशनम्॥२३॥ अशीतिं वातजान् रोगान् चत्वारिंशच्च पैत्तिकान्। विंशतिं श्लैष्मिकान् कासपीनसार्शोव्रणादिकान्॥२४॥

रोगी मनुष्य को दशमूल, कचूर, रास्ना, पीपल, विल्व, पौष्करमूल काकड़ासिंगी, भुई आँवला, भागी, गिलोय और पान, इन सबों का विधिपूर्वक सिद्ध किया हुआ क्वाथ या यवागू का पान कराना चाहिये ।। ८-९ ।। मुलहठी चूर्ण के साथ मधु, शर्करा के साथ पिप्पली, सोंठ के साथ गुड़ ओर तीनों प्रकार के नमक (सेंधा नमक, विड्नमक और काला नमक) ये हिचकी का नाश करने वाले हैं ।। १० ।। कारवी अजाजी (काला जीरा) सफेद जीरा, मिर्च, मुनक्का, इमली (वृक्षाम्ल) अनारदाना, कालानमक और गुड़- इन सबों के समान भाग के चूर्ण का शहद में मिश्रित कर कारव्यादि वदी बनाये । यह सभी प्रकार के अरुचि रोगों का नाश करती है ।। ११ ।। अदरख के रस के साथ मधु मिलाकर रोगी को पिलाना चाहिए, इससे, अरुचि, कास, श्वास, प्रतिश्याय और कफ विकारों का नाश होता है ।। १२ ।। वट-बटांकुश, काकड़ा सिंगी शिलाजित, लोध, अनारदाना और मुलहठी- इन सबों के समान भाग का चूर्ण बनाकर उस चूर्ण के समान मात्रा में मिश्री मिलायें और शहद में अवलेह तैयार करें । इस अवलेह को यदि चावल के पानी के साथ लिया जाय तो इससे प्यास और वमन का शमन होता है ।। १३ ।। गिलोय, अडूसा, लोध और पिप्पल- इन सबों का चूर्ण शहद के साथ लेने से कफ युक्त रक्त, प्यास, खाँसी एवं ज्वर को नष्ट करने वाला है ।। १४ ।। इसी प्रकार समभाग मधु मे मिश्रित अडूसे का रस और ताम्रभस्म कास को नष्ट करता है । शिरीष पुष्प के स्वरस में भावित सफेद मिर्च का चूर्ण कास में हितकर है ।। १५ ।। मसूर सभी प्रकार की वेदनाओं को नष्ट करता है एवं चौराई का साग पित्तदोष को दूर करता है । निर्गुण्डी, शटिवा, शेलु और अंकोल ये विष दूर करने की औषधि हैं ।। १६ ।। सोंठ, गिलोय, छोटी कटेर पौष्करमूल, पिप्परामूल और पीपल इनका क्वाथ मूर्छा एवं मदात्यय रोग में लेना चाहिए ।। १७ ।। हींग, काला नमक तथा व्योष (सोंठ, मिर्च, पीपल) इन सबों को दो-दो पल लेकर तथा पाँच सेर घृत में सिद्ध और घृत के चार गुने गोमूत्र से सिद्ध करने पर यह औषधि उन्माद का नाश करती है ।। १८ ।। शंखपुष्पी वच और मीठा कूट से सिद्ध ब्राह्मी रस को मिलाकर इन सबों की गोली बना लेनी चाहिए । यह गोली पुराने उन्माद रोग एवं अपस्मार रोग को विनष्ट करती है । यह एक उत्तम मेधावर्धक औषधि है ।। १९ ।। हर्रे के साथ पंचगव्य या घी का प्रयोग कुष्ठनाशक है । परवल की पत्ती, त्रिफला, नीम की छाल गिलोय, पृश्निपर्णी, अडूसे के पत्ते तथा करञ्ज इन सबों से सिद्ध हुआ घी कुष्ठ रोग का नाश करता है । इसे वज्रक कहते हैं ।। २० ।। नीम की छाल, परवल, कण्टकारि पंचांग, गिलोय, अडूसा- इन सबों को दस-दस पल लेकर भली-भाँति कूट लें । फिर सोलह सेर जल में क्वाथ बनायें, उसमें एक सेर और बीस तोले त्रिफला चूर्ण का कल्क बनाकर डाल दें और चतुर्थांश शेष रहने

हन्त्यन्यान् योगराजोऽयं यथार्कस्तिमिरं खलु । त्रिफलायाः कषायेण भृङ्गराजरसेन च ॥ २५ ॥ व्रणप्रक्षालनं कुर्य्यादुपदंशप्रशान्तये । पटोलदलचूर्णेन दाड़िमत्वग्रजोऽथवा ॥ २६ ॥ गुडयेच्च गजेनापि त्रिफलाचूर्णकेन च । त्रिफलायोरजोयष्टिमार्कवोत्पलमारिचैः॥ २७॥ ससैन्धवैः पचेत् तैलमभ्यङ्गाच्छर्दिकापहम् । सक्षीरान् मार्कवरसान् द्विप्रस्थमधुकोत्पलैः ॥ २८ ॥ पचेत्तु तैलगुड़वं तन्नस्यं पलितापहम् । निम्बं पटोलं त्रिफला गुडूची खादिरं वृषम् ॥ २९॥ भूनिम्बपाठात्रिफलागुडूचीरक्तचन्दनम्। योगद्वयं ज्वरं हन्ति कुष्ठविस्फोटकादिकम्॥ ३०॥ पटोलामृतभूनिम्बवासारिष्टकपर्पटैः । खदिरान्तयुतैः क्वाथो विस्फोटज्वरशान्तिकृत्॥ ३१॥ दशमूली छिन्नरुहा पथ्या दारु पुनर्नवा । ज्वरविद्रधिशोथेषु शिग्रुविश्वजिता हिताः॥ ३२॥ मधूकं निम्बपत्राणि लेपः स्याद् व्रणशोधनः । त्रिफला खदिरो दार्वी न्यग्रोधातिबलाकुशाः ॥ ३३ ॥ निम्बमूलकपत्राणां कषायाः शोधने हिताः । करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीरसो हन्याद् व्रणकृमीन् ॥ ३४ ॥ धातकीचन्दनबलासमङ्गामधुकोत्पलैः । दार्वीमेदोऽन्वितैर्लेपः ससर्पिर्व्रणरोपणः ॥ ३५ ॥ गुग्गुलुत्रिफलाव्योषसमांशैर्घृतयोगतः । नाड़ी दुष्टव्रणं शूलं भगन्दरमुखं हरेत् ॥ ३६॥ हरीतकीं मूत्रसिद्धां सतैललवणान्विताम्। प्रातः प्रातश्च सेवेत कफवातामयापहाम् ॥ ३७॥ त्रिकटुत्रिफलाक्वाथं सक्षारलवणं पिबेत् । कफवातात्मकेष्वेव विरेकः कफवृद्धिनुत्॥ ३८॥

तक पकायें । यह पञ्चतिक्त घृत कुष्ठ नाशक होता है ।। २१-२३ ।। यह योगराज अस्सी प्रकार के वातरोग, चालीस प्रकार के पित्तरोग, बीस प्रकार के कफ, खाँसी, पीनस (विगडा जुकाम) बवासीर और चाव आदि का नाश करता है ।। २४ ।। जिस तरह सूर्य अन्धकार को नष्ट करता है उसी तरह यह योगराज अन्य रोगों को नष्ट करता है । उपदंश की शान्ति के लिए त्रिफला के रस से अथवा भृंगराज के रस से घाव को धोना चाहिए ।। २५ ।। परवल की पत्ती के चूर्ण के साथ अनार के छाल का चूर्ण अथवा गजपीपर या त्रिफला का चूर्ण पाउडर के रूप में घाव पर छोड़ें ।। २६ ।। त्रिफला, लोहचूर्ण, मुलहठी आर्कव (कुकुरमाँगरा) नीलकमल, काली मिर्च और सैन्धव नमक को एक साथ पकाये हुए तैल के मलने से वमन की शान्ति होती है ।। २७।। त्रिफला लोहचूर्ण मुलहठी, आर्कव (कुकुरमाँगरा) नीलकमल, काली मिर्च और सैन्धव नमक डालकर पकाये हुए तेल के मर्दन से वमन की शान्ति होती है। दुग्ध, मार्करस, मुलहठी तथा नील कमल इनको दो सेर तेल लेकर तब तक पकायें जब तक कि एक पाव तेल शेष रह जाय । इस तेल का नस्य वृद्धावस्था के चिह्न पलित आदि का नाश करता है ।। २८ ।। नीम की छाल, परवल की पत्ती, त्रिफला, गुडूची, खेर की छाल, अड़ूसा अथवा चिरायता पाठा,त्रिफला तथा लाल चन्दन ये दोनों योग ज्वर को नष्ट करते हैं तथा कुष्ठ, फोड़ा फुन्सी एवं चकत्ते आदि को मिटा देते हैं ।। ३० ।। परवल की पत्ती, गिलोय चिरायता, अड़ूसा, मजीठ एवं पित्तपापड़ा- इनके क्वाथ में खैर मिलाकर लिया जाय तो वह ज्वर तथा विस्फोटक रोगों को शान्त करता है ।। ३१।। दशमूल, गिलोय, हर्रे, दारुहल्दी, गदहपूर्णा, सहजन एवं सोंठ, ज्वर, विद्रधि तथा शोथ रोग में हितकर हैं ।। ३२ ।। महुआ और निम्ब की पत्ती का लेप ब्रणशोधक होता है । त्रिफला, खैर, दारुहल्दी, वरगद की छाल, वरियार, कुश, नीम के पत्ते तथा मूली के पत्ते- इनका क्वाथ शरीर के वाह्य शोधन के लिए हितकर है।। ३३ ।। करञ्ज, नीम तथा मेउड़ का रस, घाव के कृमियों को नष्ट करता है ।। ३४ ।। धव का फूल, सफेद चन्दन, खरेटी, मञ्जीठ, मुलहठी, कमल, देवदारु तथा मेदा का घृत के साथ लेप करने ब्रणरोपण होता (घाव भरता) है ।। ३५ ।। गुग्गुल, त्रिफला, व्योष, (सोंठ, मिर्च, पीपल) इनको बराबर-बराबर लेकर, इन सबों के बराबर घी लेकर इसका प्रयोग करना चाहिए । इस प्रयोग से नाड़ी, व्रण, दुष्टव्रण, शूल तथा भगन्दर आदि रोग दूर होते हैं ।। ३६ ।। गोमूत्र में भिंगोकर शुद्ध की हुई छोटी हर्रे को रेड़ी के तेल में भूनकर सेंधा नमक के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करें । इस हरीतकी से कफ एवं वातजन्य रोगों का नाश होता है ।। ३७ ।। त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) और त्रिफला का क्वाथ यवक्षार और नमक मिलाकर पीने से, कफ एवं वात प्रकृति वाले पुरुषों का विरेचन होता है । यह कफ की वृद्धि को दूर करता है ।। ३८ ।। पीपल,पीपरामूल, वच, चित्रक, सोंठ- इनका क्वाथ अथवा किसी प्रकार का पेय बनाकर पीयें । इससे आमवात का विनाश होता है।। ३९।। रास्ना, गिलोय, रेड़ की छाल, देवदारु और सोंठ- इन सबों का क्वाथ बनाकर सर्वांगवात, तथा संधि, अस्थि और गज्जागत आमवात में पीना चाहिए।। ४०।। अथवा सोंठ के जल के साथ दशमूल के क्वाथ

पिप्पलीपिप्पलीमूलवचाचित्रकनागरैः। क्वाथितं वा पिबेत् पेयमामवातविनाशनम् ॥ ३९॥ रास्नां गुडूचीमेरण्डदेवदारुमहौषधम् । पिबेत् सर्वाङ्गिके वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे॥ ४०॥ दशमूलकषायं वा पिबेद् वा नागराम्भसा । शुण्ठीगोक्षुरकक्वाथः प्रातः प्रातर्निषेवितः ॥ ४१॥ सामवातकटीशूलापाचनो रुक्प्रणाशनः । समूलपत्रशाखायाः प्रसारण्याश्च तैलकम् ॥ ४२॥ गुडूच्याः सुरसः कल्कः चूर्णं वा क्वाथमेव च । प्रभूतकालमासेव्य मुच्यते वातशोणितात् ॥ ४३ ॥ पिप्पली वर्द्धमानं वा सेव्यं पथ्या गुडेन वा । पटोलत्रिफलातीव्रकटुकामृतसाधितम्॥ ४४॥ पक्वं पीत्वा जयत्याशु सदाहं वातशोणितम् । गुग्गुलुं क्वोष्णशीते तु गुडूची त्रिफलाम्भसा॥४५॥ बलापुनर्नवैरण्डबृहतीद्वयगोक्षुरैः । सहिङ्गुलवणैः पीतं सद्यो वातरूजापहम् ॥ ४६ ॥ कार्षिकं पिप्पलीमूलं पञ्चैव लवणानि च । पिप्पलीचित्रकंशुण्ठी त्रिफला त्रिवृता वचा ॥ ४७ ॥ द्वौ क्षारौ शाद्वला दन्ती स्वर्णक्षीरी विषाणिका । कोलप्रमाणां गुटिकां पिबेत् सौवीरकायुताम् ॥ ४८ ॥ शोथावपाके त्रिवृता प्रवृद्धे चोदरादिके । क्षीरं शोथहरं दारु वर्षाभूर्नागरैः शुभम् ॥ ४९॥ सेकस्तथार्कवर्षाभूनिम्बक्वाथेन शोथजित्। व्योषगर्भपलाशस्य त्रिगुणे भस्मवारिणि॥ ५०॥ साधितं पिबतः सर्पिः पतत्यर्शो न संशयः । विष्वक्सेनावनिर्गुण्डीसाधितं चापि लावणम् ॥ ५१ ॥ विडङ्गानलसिन्धूत्थरास्नाग्रक्षारदारुभिः । तैलञ्चतुर्गुणं सिद्धं कटुद्रव्यं जलेन वा ॥ ५२॥ गण्डमालापहं तैलम्भ्यङ्गात् गलगण्डनुत् । शटीकुनागबलयक्वाथः क्षीररसे युतम् ॥ ५३॥ पयस्यापिप्पलीवासा कल्कं सिद्धं क्षये हितम् । वचाविडभयाशुण्ठीहिङ्गकुष्ठाग्निदीप्यकान् ॥ ५४ ॥ त्रिषट्चतुरेकांशसप्तपञ्चांशिकाः क्रमात् । चूर्णं पीतं हन्ति गुल्मं उदरं शूलकासनुत्॥५५॥ पाठानिकुम्भत्रिकटुत्रिफलाग्निषु साधितम् । मूत्रेण चूर्णगुटिका गुल्मप्लीहादिमर्दनी॥ ५६॥ वासानिम्बपटोलानि त्रिफला

को पीना चाहिए । सोंठ एवं गोखरु का क्वाथ यदि प्रतिदिन प्रातःकाल लिया जाय तो वह आमवात के साथ-साथ कटिशूल और पाण्डुरोग का भी नाश करता है ।। ४१ ।। प्रसारिणी (छुई-मुई) की मूल एवं शाखाओं का तेल में इस रोग में लाभप्रद होता है । गिलोय का स्वरस,कल्क, चूर्ण का क्वाथ का दीर्घकाल तक सेवन करके रोगी वातरक्त रोग से छुटकारा पाता है ।। ४३।। पिपल्ली या गुड़ के साथ हर्रे का सेवन करना चाहिए । यह वातरक्त का नाश करता है । पटोलपत्र, त्रिफला, राई, कुटकी और गिलोय- इनका पाक तैयार करके उसका सेवन करें तो उससे दाहयुक्त वातरक्त शीघ्र नष्ट होता है ।। ४४ ।। गुग्गुल को ठंढें- गर्मजल से और त्रिफला को समशीतोष्ण जल से अथवा खरेटी, पुनर्नवा, एरण्डमूल, दोनों कटेरी और गोखरू इन सबों का क्वाथ यदि हींग तथा लवण के साथ लिया जाय तो शीघ्र ही वातव्याधि का नाश होता है ।। ४६ ।। एक तोला पिपलामूल, पाँचों (सैन्धव, सौवर्चल, विड्, सामुद्रएवं औद्भिद) नमक, पिपली, चित्ता, सोंठ, त्रिफला, निशोथ, वच, यवक्षार, सर्जक्षार, शीतला, दन्ती, स्वर्णक्षीरी (सत्यनाशी) और काकड़ासिंगी इन सबों की वेर के समान गूटिका बनायें) और काँजी के साथ उनका सेवन करें ।। ४७-४८ ।। इसका सेवन शोथ तथा उससे हुए पाक में भी करना चाहिए । उदरवृद्धि में भी निशोथ का सेवन किया जा सकता है । दारुहल्दी, पुनर्नवा तथा सोंठ, इनसे सिद्ध किया हुआ दुग्ध शोथ नाशक होता है ।। ४९ ।। मदार गदहपूर्ना एवं चिरायता के क्वाथ में सेवन करने पर शोथ का नाश होता है ।। ४९ ।। त्रिकटुयुक्तघी को तिगुने पलाशभस्म के साथ जल में सिद्ध करके पीने वाले मनुष्य के अर्शरोग का नाश होता है ।। ५० ।। प्रियङ्गु के फूल, कमल, संभालू, वायविडङ्ग, चित्रक, सेंधानमक, रास्ना, दुग्ध, देवदारु और वच से सिद्ध चौगुना कटुद्रव्य युक्त तेल मर्दन करने से (या जल के साथ पिसकर लेप करने से) गलगण्ड तथा गण्डमाला रोगों का नाश होता है ।। ५२ ।। कचूर, नागकेसर, कुमुद का पकाया हुआ क्वाथ तथा क्षीर विदार, पीपल और अडूसा का कल्क दूध के साथ पकाकर पीने से क्षयरोग में लाभ होता है ।। ५३ ।। वच, विड्लवण, बड़ी हर्रे, सोंठ, हींग कूट, चित्रक ओर अजवाइन के क्रमशः दो, तीन, छह, चार, एक, सात, पाँच और चार भाग लेकर चूर्ण बनाएँ यह चूर्ण गुल्मरोग, उदररोग, शूल तथा खाँसी को विनष्ट करता है ।। ५५ ।। पाठा, दन्तीमूल, त्रिकटटु (सोंठ, मिर्च, पिपल) त्रिफला और चित्रक- इनके चूर्ण को गोमूत्र के साथ पिसकर गोली बना लें, यह गुटिका गुल्मरोग तथा प्लीहा आदि को विनष्ट करती है ।। ५६ ।। अडूसा, नीम, परवल की पत्ती के

वातपित्तनुत् । लिह्यात् क्षौद्रेण विडङ्गं चूर्णं कृमिविनाशनम् ॥ ५७ ॥ विडङ्गसैन्धवक्षारमूत्रेणापि हरीतकी । शल्लकीवदरीजम्बुप्रियालाम्रार्जुनत्वचः॥५८॥ पीताः क्षीरेण मध्वक्ताः पृथक्शोणितवारणाः । बिल्वाम्रधातकीपाठाशुण्ठीमोचरसाः समाः ॥५९॥ पीता रुन्धत्यतीसारं गुड़तक्रेण दुर्जयम् । चाङ्गेरीकोलदध्यम्बु नागरक्षारसंयुतम् ॥ ६०॥ घृतयुक्क्वाथितं पेयं गुदभ्रंसे (शे) रुजापहम् । विडङ्गातिविषामुस्तं दारुपाठाकलिङ्गकम्॥ ६१॥ मरीचेन समायुक्तं शोथातीसारनाशनम् । शर्करासिन्धुशुण्ठीभिः कृष्णामधुगुड़ेन वा॥ ६२॥ द्वे द्वे खादेद्धरीतक्यौ जीवेद् वर्षशतं सुखी । त्रिफला पिप्पलीयुक्ता समध्वाज्या तथैव सा ॥ ६३ ॥ चूर्णमामलकं तेन सुरसेन तु भावितम् । मध्वाज्यशर्करायुक्तं लिढ्वा स्त्रीशः पयः पिबेत् ॥ ६४ ॥ माषपिप्पलिशालीनां यवगोधूमयोस्तथा । चूर्णभागैः समांशैश्च पचेत् पिप्पलिकां शुभाम् ॥ ६५ ॥ तां भक्षयित्वा च पिबेत् शर्करामधुरं पयः । नवश्चटकवज्जम्भेद् दशवारीन् स्त्रियं ध्रुवम् ॥ ६६॥ समङ्गाधातकीपुष्पलोध्रनीलोत्पलानि च । एतद् क्षीरेण दातव्यं स्त्रीणां प्रदरनाशनम्॥ ६७॥ वीजं कौरण्टकञ्चापि मधुकं श्वेतचन्दनम् । पद्मोत्पलस्य मूलानि मधुकं शर्करातिलान्॥ ६८॥ द्रवमाणेषु गर्भेषु गर्भस्थापनमुत्तमम् । देवदारु नभः कुष्टं नलदं विश्वभेषजम् ॥ ६९ ॥ लेपः काञ्जिकसम्पिष्टस्तैलयुक्तः शिरोऽर्त्तिनुत् । वस्त्रपूतं क्षिपेत् क्वोष्णं सिन्धूत्थं कर्णशूलनुत् ॥ ७० ॥ लशुनार्द्रकशिग्रूणां कदल्या वा रसः पृथक्। बलाशतावरीरास्नामृताःसैरीयकैः पिबेत्॥७१॥ त्रिफलासहितं सर्पिस्तिमिरघ्नमनुत्तमम्। त्रिफलाव्योषसिन्धूत्थैर्घृतं

चूर्ण को त्रिफला के साथ सेवन करने पर वात पित्त रोगों का नाश होता है । शहद के साथ वायविडंग चूर्ण को चाटने से कृमिरोग का विनाश होता है ।। ५७ ।। वायविडङ्ग, सेन्धा नमक, यवक्षार एवं गोमूत्र के साथ ली गयी हर्रे भी कृमिनाश करती है। शल्लकी वेर, जामुन, प्रियाल, आम और अर्जुन- इन सभी वृक्षों के छाल को मधु के साथ मिलाकर दूध के साथ पीने से रक्तातिसार नष्ट होता है ।। ५८ ।। कच्चे बेल का सूखा गूदा, आम की छाल, च्वाय का फूल, पाठा, सोंठ ओर मोचरस (कदली स्वरस) इन सबों का समान भाग लेकर चूर्ण बना लें और गुड मिश्रित तक्र के साथ पीयें, इससे दुस्सध्य अतिसार का भी अवरोध होता है ।। ५९ ।। चंगेरी, बेर, दही का पानी, सोंठ और यवक्षार- इन सबों का क्वाथ घी के साथ पीने से गुदभ्रंश रोग दूर होता है ।। ६० ।। वायविडंग, अतीस नागरमोथा, देवदारु, पाठा तथा इन्द्रयव- इनके क्वाथ में मिर्च का चूर्ण मिलाकर पीने से शोथ युक्त अतिसार का नाश होता है ।। ६१ ।। शर्करा, सैन्धव एवं सोंठ के साथ अथवा पीपल,मधु एवं गुड़ के साथ प्रतिदिन दो हर्रे को खाने वाला मनुष्य सौ वर्ष तक सुखपूर्वक जीता है ।। ६२ ।। पिप्पली युक्त त्रिफला भी मधु एवं घृत के साथ यदि प्रतिदिन प्रयोग में लायी जाय तो वह भी वैसा ही फल देती है ।। ६३ ।। आँवले के स्वरस से भावित आँवले के चूर्ण को, मधु, घी तथा शर्करा के साथ चाटकर दूध पीनेसे मनुष्य स्त्रियों का प्रिय प्रभु बन सकता है ।। ६४ ।। माष (ऊड़द) पिपल, अगहनी का चावल, जौ और गेहूँ- इन सबों का चूर्ण समान मात्रा में लेकर उसकी घी में पूड़ी बना लें । उसका भोजन करके ऊपर से शर्करायुक्त दुग्ध पीलें । ऐसा करने वाला मनुष्य नवीन गौरैया पक्षी के समान स्त्रियों से दस बार तक सम्भोग कर सकता है ।। ६५-६६ ।। मजीठ धाय के फूल, लोध, नीलकमल- इनको दूध के साथ देने से स्त्रियों का प्रदररोग समाप्त होता है ।। ६७ ।। पीली कटसरैया, मुलहठी और श्वेतचन्दन- ये भी प्रदररोग नाशक हैं । श्वेतकमल और नीलकमल की जड़ तथा मुलहठी, शर्करा और तिल इनका चूर्ण गर्भ को स्थिर करके गर्भपात होने से बचाता है ।। ६८ ।। देवदारु, अभ्रक, कूठ, खस और सोंठ- इन सबों को काँजी में पीसकर तथा तेल मिलाकर लेप करने से शिरोरोग का नाश होता है ।। ७० ।। लहसून, अद्रक, सहजन और केला, इनमें से प्रत्येक का रस कर्णशूल को विनष्ट करने वाला है । इनके रस को थोड़ा सा गर्म करके कपड़े से छानकर डालना चाहिए। अथवा तेल में सेन्धा नमक डालकर छान लें और उसे कान में डालें तो भी कर्णशूल नष्ट होता है । बरियार, शतावरी, रास्ना, गिलोय, कटसरैया और त्रिफला, इनसे सिद्ध घृत का अथवा इनके साथ घृत का पान तिमिर रोग के नाश की सर्वोत्तम दवा है ।। ७१ ।। त्रिफला, त्रिकटु और सैन्धव लवण- इन सबों से सिद्ध घृत का पान करने से मनुष्य की आँखों को लाभ मिलता है । यह हृद्य, विरेचक, दीपन और कफरोग का नाश करने वाला है ।। ७२ ।। गाय के गोबर के रस के साथ नीलकमल के पराग को मिलाकर गोली बना ले। यह रतौंधी

सिद्धं पिबेन् नरः॥ ७२॥ चाक्षुष्यं भेदनं हृद्यं दीपनं कफरोगनुत् । नीलोत्पलस्य किञ्जल्कं गोशकृद्रससंयुतम् ॥ ७३॥ गुटिकाञ्जनमेतत् स्यात् दिनरात्र्यन्धयोर्हितम् । यष्टीमधुवचाकृष्णावीजानां कुटजस्य च ॥ ७४ ॥ कल्केनालोड्यनिम्बस्य कषायोवमनाय सः। स्निग्धस्विन्नयवंतोयं प्रदातव्यं विरेचनम्॥ ७५॥ अन्यथा योजितं कुर्य्यात् मन्दाग्निं गौरवारुचिम् । पथ्यासैन्धवकृष्णानां चूर्णमुष्णाम्बुना पिबेत् ॥ ७६ ॥ विरेकः सर्वरोगघ्नः श्रेष्ठो नाराचसंज्ञकः। सिद्धयोगा मुनिभ्यो ये आत्रेयेण प्रदर्शिताः । सर्वरोगहराः सर्वयोगाग्र्याः सुश्रुतेन हि ॥ ७७॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सञ्जीवनीकरसिद्धयोगवर्णनं नाम पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८५ ॥

षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

कल्पसागरः

धन्वन्तरिरुवाच– **कल्पान् मृत्युञ्जयान् वक्ष्ये ह्यायुर्दान् रोगमर्दनान् । त्रिशती रोगहा सेव्या मध्वाज्यत्रिफलामृता ॥ १ ॥ पलं पलार्द्धं कर्षं वा त्रिफलां सकलां तथा । बिल्वतैलस्य नस्यञ्चमासं पञ्चशती कविः॥ २॥ रोगापमृत्युबलिजित् तिलं भल्लातकं तथा । पञ्चाङ्गं वाकूचीचूर्णं षण्मासं खदिरोदकैः॥ ३॥ रोगापमृत्युबलिजित् तिलं भल्लातकं तथा । पञ्चाङ्गं वाकूचीचूर्णं षण्मासं खदिरोदकैः॥ ४॥ क्वाथैः कुष्ठं जयेत् सेव्यं चूर्णं नीलकुरुण्टजम्। क्षीरेण मधुना वापि शतायुः खण्डदुग्धभुक्। मध्वाज्यशुण्ठीं संसेव्य पलं प्रातः स मृत्युजित्। बलीपलितजिज्जीवेन्माण्डकीचूर्णदुग्धपाः॥५॥**

और दिनौंधी दोनों रोगों में हितकारी हैं ।। ७३ ।। मुलहठी, वच, पिप्पली बीज कुरैया का छाल का कल्क और निम्ब का क्वाथ घोंट देने से वमन कराने की औषधि बन जाती है ।। ७४।। खूब चिकना रेड़ी- जैसे तेल से स्निग्ध किया गया या पकाया हुआ यव का पानी विरेचक होता है ।। ७५ ।। किन्तु इसका अनुचित प्रयोग मन्दाग्नि उदर में भारीपन और अरुचि को उत्पन्न करता है । हर्रे सैन्धव लवण और पीपल के चूर्ण को गर्म पानी से पीना चाहिए ।। ७६ ।। यह नाराच संज्ञक, सभी रोगों को विनष्ट करने वाला और श्रेष्ठ विरेचन कारक औषधि है । आत्रेय महर्षि ने जिन सिद्धयोगों को महर्षियों को बतलाया था, जो योग सभी रोगों को विनष्ट करने वाले हैं तथा सर्वश्रेष्ठ योग है, उन सबों का ज्ञान सुश्रुत ने प्राप्त किया ।। ७७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का मृतसंजीवनकर सिद्धयोग वर्णन नामक दो सौ पचासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८५ ॥

श्रीधन्वन्तरि भगवान् ने कहा– सुश्रुत ! अब मैं मृत्युंजय कल्पों का वर्णन कर रहा हूँ जो आयु को बढ़ाने वाले तथा रोगों का विनाश करने वाले हैं । तीन सौ वर्ष की आयु देने वाली मधु, घी, त्रिफला तथा गिलोय का सेवन करना चाहिए ।। चार तोले, दो तोले अथवा एक तोले की मात्रा में प्रतिदिन त्रिफला के सेवन से भी वही फल देता है । एक मास तक विल्व तैल का नस्य लेने से पाँच सौ वर्ष की आयु तथा कवित्व शक्ति प्राप्त होती है ।। २ ।। भिलावा एवं तिल का सेवन, रोग, अपमृत्यु एवं वृद्धावस्था को दूर करता है । वाकुची के पञ्चाङ्ग के चूर्ण को छह मास तक खैर के क्वाथ के साथ सेवन करने से व्यक्ति कुष्ठ रोग पर विजय प्राप्त करता है । नीली कटसरैया के चूर्ण का मधु या दुग्ध के साथ सेवन करना हितकारी होता है । खाँड़ युक्त दुग्ध का पान करने वाला सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है ।। ३-४ ।। प्रतिदिन प्रातःकाल मधु, घृत और सोंठ का चार तोले की मात्रा में सेवन करने वाला मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है । ब्राह्मी के चूर्ण के साथ दूध का सेवन करने वाले मनुष्य के चेहरे पर झुर्रियाँ नहीं पड़ती हैं और उसके बाल नहीं पकते हैं । वह दीर्घजीवन प्राप्त करता है ।। ५ ।। मधु के साथ

उच्चटामधुना कर्षं पयःपा मृत्युजिन्नरः। मध्वाज्यैः पयसा वापि निर्गुण्डी रोगमृत्युजित् ॥६॥ पलाशतैलं कर्षैकं षण्मासं मधुना पिबेत् । दुग्धभोजी पञ्चशती सहस्त्रायुर्भवेन्नरः ॥ ७॥ ज्योतिष्मतीपत्ररसं पयसा त्रिफलां पिबेत् । मधुनाज्यं ततस्तद्वत् शतावर्य्या रजः फलम् ॥ ८ ॥ क्षौद्राज्यैः पयसा वापि निर्गुण्डी रोगमृत्युजित् । पञ्चाङ्गं निम्बचूर्णस्य खदिरक्वाथभावितम् ॥ ९ ॥ कर्षं भृङ्गरसेनापि रोगजिच्चामरो भवेत् । रुदन्तिकाज्यमधुभुक् दुग्धभोजी च मृत्युजित् ॥ १० ॥ कर्षचूर्णं हरीतक्या भावितं भृङ्गराड्रसैः । घृतेन मधुना सेव्यस्त्रिशतायुश्च रोगजित्॥ ११॥ वाराहिका भृङ्गरसं लोहचूर्णं शतावरी । साज्यं कर्षं पञ्चशती कार्त्तचूर्णं शतावरी ॥ १२॥ भावितं भृङ्गराजेन मध्वाज्यं त्रिशतिं भवेत्! । ताम्रं मृतं मृततुल्यं गन्धकञ्च कुमारिव॥ १३॥ रसैर्विमृज्य द्वे गुञ्जे साज्यं पञ्चशताब्दवान् । अश्वगन्धा पलं तैलं साज्यं खण्डं शताब्दवान् ॥ १४ ॥ पलं पुनर्नवाचूर्णं मध्वाज्यपयसा पिबन् । अशोक चूर्णस्य पलं मध्वाज्यं पयसार्त्तिनुत् ॥ १५ ॥ तिलस्य तैलं समधु न स्यात् कृष्णकचः शती । कर्षमक्षं समध्वाज्यं शतायुः पयसा पिबन्॥१६॥ अभयं सगुडं जग्ध्वा घृतेन मधुरादिभिः । दुग्धान्नभुक् कृष्णकेशोऽरोगी पञ्चशताब्दवान् ॥ १७ ॥ पलं कुष्माण्डिकाचूर्णं मध्वाज्यपयसा पिबन् । मासं दुग्धान्नभोजी च सहस्त्रायुर्विरोगवान् ॥ १८ ॥ शालूकचूर्णं भृङ्गाज्यं समध्वाज्यं शताब्दकृत् । कटुतुम्बीतैलनस्यं कर्षं शतद्वयाब्दवान्॥ १९॥ त्रिफला पिप्पली शुण्ठी सेविता त्रिशताब्दकृत् ; शतावर्य्याः पूर्वयोगःसहस्त्रायुर्बलातिकृत् ॥ २० ॥ चित्रकेण तथा

उच्चटी (भुई आँवला) को एक तोला खाकर ऊपर से दुग्ध पीने वाला मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है । मधु, घी या दुग्ध के साथ में निर्गुण्डी के रस का सेवन करने वाला, रोग एवं मृत्यु को जीतता है।।६।। छह मास तक प्रतिदिन एक तोले भर का पलाश तैल का मधु के साथ सेवन करने से ऊपर से दूध पीने वाला पाँच सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है । दुग्ध के साथ कँगली पत्तों के रस या त्रिफला का प्रयोग करें । इससे मनुष्य एक हजार वर्ष की आयु प्राप्त करता है ।। ७ ।। इसी प्रकार मधु के साथ घी और चार तोले भर शतावरी के चूर्ण का सेवन करने से भी हजारों वर्ष की आयु प्राप्त हो सकती है ।। ८ ।। घी अथवा दूध के साथ में उड़ की जड़ का चूर्ण या पत्र स्वरस रोग एवं मृत्यु का नाश करता है । नीम के पञ्चाङ्ग चूर्ण को खैर के क्वाथ की भावना देकर भृंगराज के रस के साथ एक तोले भर सेवन करके मनुष्य रोगों को जीतकर अमर हो जाता है ।। ९ ।। रुदन्तिका चूर्ण का घी तथा मधु के साथ सेवन करने से अथवा केवल दुग्धाहार के साथ सेवन करने से मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है ।। १० ।। हरीतकी के चूर्ण को भृङ्गराज की भावना देकर एक तोले की मात्रा में घी एवं मधु के साथ सेवन करने वाला रोगमुक्त होकर तीन सौ वर्षों की आयु प्राप्त करता है ।। ११ ।। वाराहिका (गेठी) लोहचूर्ण, शतावरी तथा भृङ्गराज तथा घी समान मात्रा में लेकर प्रतिदिन एक तोला की मात्रा में सेवन करने वाला पाँच सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है । लोहभस्म, शतावरी को भृङ्गराज के रस में भावना देकर मधु तथा घी के साथ सेवन करने वाला तीन सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है।।१२ ।। ताम्रभस्म, गिलोय और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर घीकुंवार के रस में घोंटें और दो-दो रत्ती की गोली बनायें। इसका घृत से सेवन करने वाला नुष्य पाँच सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है।।१३।। अश्वगन्ध, त्रिफला कबाव चीनी,तेल और घृत में सेवन करने वाला सौ वर्ष तक जीता है ।। १४ ।। गदहपूनो का चूर्ण एक पल, मधु, घृत और दुग्ध केसाथ खाने वाला भी शतायु होता है । अशोक की छाल का एक पल चूर्ण, मधु एवं घृत के साथ ,खाकर दुग्धपान करने से रोग का नाश होता है ।। १५ ।। तिल के तैल का मधु के साथ नस्य लेने से सौ वर्ष की आयु होती है और बाल हमेशा काले रहते हैं । बहेड़े के चूर्ण को एक तोला मात्रा में शहद, घी और दुग्ध से पीने वाला शतायु होता है ।। १६ ।। मधुरादि गण की औषधियों और हरीतकी को गुड़ एवं घी के साथ खाकर दूध के साथ अन्न भोजन करने वाले के केश सदा काले रहते हैं । वह रोग रहित होकर पाँच सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है ।। १७ ।। एक मास तक पेठे (कुष्माण्डिका) के एक पल चूर्ण को मधु, घी और दूध के साथ सेवन करने वाला और दुग्धान्न का भोजन करने वाला मनुष्य निरोग रहकर एक हजार वर्ष की आयु प्राप्त करता है ।। १८।। कमलगन्ध का चूर्ण भाँगरे के रस की भावना देकर यदि मधु एवं घृत के साथ लिया जाय तो उससे सौ वर्ष की आयु प्राप्त होती है । कड़वी तुम्बी के एक तोले भर तेल का नस्य, दो सौ वर्षों

पूर्वस्तथा शुण्ठीविडङ्गतः । लोहेन भृङ्गराजेन वलया निम्बपञ्चकैः ॥ २१॥ खदिरेण च निर्गुण्ड्या कण्टकार्य्याथ वासकात् । वर्षाभुवा तद्रसैर्वा भावितो वटिकाकृतः ॥ २२ ॥ चूर्णं घृतैर्वा मधुना गुडाद्यैर्वारिणा तथा । ओं ह्रूंस इति मन्त्रेण मन्त्रितो योगराजकः। मृतसञ्जीवनीकल्पो रोगमृत्युञ्जयी भवेत् ॥ २४॥ सुरासुरैश्च मुनिभिः सेविताः कल्पसागराः । गजायुर्वेदं प्रोवाच पालकाप्योऽङ्गराजकम् ॥ २५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कल्पसागरकथनं नाम षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८६ ॥

सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

गजचिकित्सा

पालकाप्य उवाच– **गजलक्ष्म चिकित्साञ्च लोमपाद ! वदामि ते । दीर्घहस्ता महोच्छ्वासाःप्रशस्तास्ते सहिष्णवः ॥ १ ॥ विंशत्यष्टादशनखाः शीतकालमदाश्च ये । दक्षिणञ्चात्रतं दन्तं बृंहितं जलदोपमम् ॥ २॥ कर्णौ च विपुलौ येषां सूक्ष्मविन्द्वन्वितत्वचौ । ते धार्य्या न तथा धार्य्या वामना ये च सङ्कुशाः ॥ ३ ॥ हस्तिन्यः पार्श्वगर्भिण्या ये च मूढा मतङ्गजाः । वर्णं सत्वं बलं रूपं कान्तिः संहननं जवः ॥ ४ ॥ सप्तस्थितो गजश्चेदृक् संग्रामेऽरीन् जयेत् स च । कुञ्जराः परमाः शोभा शिविरस्य बलस्य च ॥ ५ ॥ आयत्तं कुञ्जरैश्चैव विजयं पृथिवीक्षिताम् । पाकलेषु च सर्वेषु कर्त्तव्यमनुवासनम् ॥ ६॥ घृततैलपरीपाकं स्नानं वातविवर्जितम् । स्कन्धेषु च क्रिया कार्य्या तथा पालकवन् नृपाः॥७॥ गोमूत्रं पाण्डुरोगेषु**

नस्य, दो सौ वर्षों की आयु प्रदान करता है ।। १९ ।। त्रिफला पीपल एवं सोंठ- इन सबों का प्रयोग तीन सौ वर्ष की आयु प्रदान करता है । इनका शतावरी के साथ सेवन अत्यन्त बलप्रद और हजार वर्ष की आयु प्रदान करने वाला होता है । चित्रक केसाथ तथा सोंठ के साथ विड़ंग का प्रयोग भी पूर्ववत् फल प्रदान करता है । त्रिफला पीपल और सोंठ इनका लोह, भृंगराज, खरेटी, निम्बपञ्चांग, खैर, निर्गुण्डी, कटेरी, अडूसा और पुनर्नवा के साथ, या इनके रस की भावना देकर, या इनके संयोग से बटी या चूर्ण का निर्माण करके, उसका घृत, मधु, गुड़ और जल आदि अनुपानों के साथ सेवन करने से पूर्वोक्त फल की प्राप्ति होती है ।। २२ ।। ओं हूँ सः इस मन्त्र से अभिमन्त्रित योगराज मृतसंजीवनी के समान होता है । उसके सेवन से मनुष्य रोग एवं मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है । देवता, असुर और मुनियों ने इन कल्पसागरों का सेवन किया ।। २५ ।। पालकाप्य ने अङ्गराज (लोमपाद) को गजायुर्वेद की शिक्षा दिया था ।। २५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का कल्पसागर वर्णन नामक दो सौ छियासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८६ ॥

पालकाप्य ने कहा– हे लोमपाद ! तुम्हें मैं हाथियों के लक्षण और उनकी चिकित्सा मैं बतला रहा हूँ। लम्बी सूँड़ वाले और दीर्घ श्वास लेनेवाले आघात को सहन करने में समर्थ, अठारह या बीस नखों वाले तथा शीतकाल में मदधारा को बहाने वाले हाथी प्रशस्त होते हैं ।। १ ।। जिनका दाहिना दाँत उठा हो,गर्जना मेघ के समान गम्भीर हो, जिनके त्वचा पर छोटे-छोटे विन्दुओं से युक्त बड़े-बड़े प्रकार के हाथियों का संग्रह करना चाहिए किन्तु छोटे आकार वाले तथा लक्षण हीन हाथियों का संग्रह कभी नहीं करना चाहिए ।। २-३ ।। पार्श्वगर्भिणी हस्तिनी और मूढ़ उन्मत्त हाथियों को कभी नहीं रखना चाहिए ।। ३ ।। वर्ण, सत्त्व, रूप, बल, कान्ति, शारीरिक संगठन एवं वेग- इन सात प्रकार के गुणों से युक्त गजराज, सम्मुख युद्ध में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है ।। ४ ।। शिविर तथा सेना के परम शोभा हाथी ही होते हैं । राजाओं की विजय हाथियों के ही अधीन होती हैं ।। ५ ।। हाथियों के सभी प्रकार के ज्वर में अनुवासन देना चाहिए।।६।। घी और तेल खूब मलवाकर हाथियों को स्नान कराने से उनके वातरोग दूर होते हैं । राजाओं को हाथियों के स्कन्ध रोगों में भी ज्वर की ही तरह अनुवासन कराना चाहिए ।। ७ ।। द्विजश्रेष्ठ

रजनीभ्यां घृतं द्विज ! । अनाहे तैलसिक्तस्य निषेकस्तस्य शस्यते॥ ८॥ लवणैः पञ्चभिर्मिश्रा प्रतिपानाय वारुणी । विडङ्गत्रिफलाव्योषसैन्धवैः कवलान् कृतान्॥ ९॥ मूर्च्छासु भोजयन् नागं क्षौद्रं तोयञ्च पाययेत् । अभ्यङ्गः शिरसः शूले नस्यञ्चैव प्रशस्यते ॥ १० ॥ नागानां स्नेहपुटकः पादरोगानुपक्रमेत्। पश्चात् कल्ककषायेण शोधनञ्च विधीयते ॥ शिखितित्तिरिलावानां पिप्पलीमरिचान्वितैः । रसैः सम्भोजयेन् नागं वेपथुर्यस्य जायते ॥ १२ ॥ बालविल्वं तथा लोध्रं धातकी सितया सह । अतीसारविनाशाय पिण्डीं भुञ्जीत कुञ्जरः॥ १३॥ नस्यं करग्रहे देयं घृतं लवणसंयुतम् । मागधी नागराजाजी यवागूर्मुस्तसाधिता ॥ १४ ॥ उत्कर्णके तु दातव्या वाराहञ्च तथा रसम् । दशमूलकुलत्थाम्बकाकामाचीविपाचितम्॥१५॥ तैलभूषणसंयुक्तं गलग्रहगदापहम् । अष्टभिर्लवणैः पिष्टैः प्रसन्नाः पाययेद् घृतम् ॥ १६ ॥ मूत्रभङ्गेऽथवा बीजं क्वथितं त्रपूषस्य च । त्वग्दोषेषु पिबेन् निम्बं वृषं वा क्वथितं द्विपः॥ १७॥ गवां मूत्रं विडङ्गानि कृमिकोष्ठेषु शस्यते । शृङ्गबेरकणाद्राक्षा शर्कराभिः शृतं पयः ॥ १८॥ क्षतक्षयकरं पानं तथा मांसरसः शुभः । मुद्गोदनं व्योषयुतमरुचौ तु प्रशस्यते ॥ १९॥ त्रिबृद्व्योषाग्निदन्त्यर्क श्यामाक्षीरेभपिप्पली । एतैर्गुल्महरः स्नेहः कृतश्चैव तथापरः ॥ २०॥ भेदनद्रावणाभ्यङ्गस्नेहपानानुवासनैः । सर्वानेव समुत्पन्नान् विद्रवान् समुपाहरेत् ॥ २१॥ यष्टिकं मुद्गसूपेन शारदेन तथा पिबेत् । बालिविल्वैस्तथा लेपः कटुरोगेषु शस्यते ॥ २२ ॥ विड्ङ्गेन्द्रयवौ हिङ्गसरलं रजनीद्वयम् । पूर्वाह्णे पाययेत् पिण्डान् सर्वशूलोपशान्तये ॥ २३ ॥ प्रधान भोजने तेषां यष्टिकव्रीहिशालयः। मध्यमौ यवगोधूमौ शेषा दान्तिनि चाधमाः ॥ २४ ॥ यवश्चैव तथैवेक्षुर्नागानां बलवर्धनः । नागानां यवसं शुष्कं तथा धातुप्रकोपनम् ॥ २५ ॥ मदक्षीणस्य

हाथियों के पाण्डुरोग में, गोमूत्र, हरिद्रा और घी देना चाहिए । अनाह (वद्धकोष्ठता में तेल से पूरे शरीर का मर्दन करके स्नान कराना या क्षरण कराना श्रेष्ठ है ।। ८ ।। हाथी को पञ्च नमक (काला नमक, सेंधा नमक, संचर नमक, समुद्र नमक और काच नमक) के साथ वारुणी मदिरा पिलाना चाहिए । हाथी के मूर्छा रोग में उसको, वायविडंग, त्रिफला, व्योष, (त्रिकटु) तथा सैन्धव नमक का ग्रास बनाकर खिलाना चाहिए तथा शहद से युक्त जल पिलाना चाहिए । शिरःशूल में अभ्यङ्ग (तेल मर्दन) तथा नस्य प्रशस्त है ।। ९-१० ।। हाथियों के पैर में रोग हो जाने पर तेलसिक्त पोटली से मर्दन रूप चिकित्सा करनी चाहिए । उसके पश्चात् कल्क एवं कषाय से उनका शोधन करना चाहिए ।। ११ ।। जिस हाथी को कम्पन होता है उसको पीपल और काली मिर्च मलकर मोर तितर वटेर के मास के साथ भोजन करायें ।। १२ ।। हाथी के अतिसार रोग के शमन के लिए उसको नेत्रबाला, बेल का सूखा गूदा, लोध, धाय के फूल और मिश्री की पिण्डी बनाकर खिलाना चाहिए ।। १३ ।। हाथी के सूंड के रोग में लवण युक्त घृत का नस्य देना चाहिए । उत्कर्णक रोग में हाथी को पीपल, सोंठ, काला जीरा और नागर मोथा से साधित यवागू एवं बराहीकन्द का रस देना चाहिए ।। १४ ।। दशमूल कुल्थी, अम्लवेत और काममाची से सिद्ध किया हुआ तेल मिर्च के साथ प्रयोग करने से गलग्रह रोग का नाश होता है ।। १५।। हाथी के मूत्रकृच्छ्र में आठ लवण से युक्त सुरा एवं घृत का पान कराना चाहिए अथवा खीरे के बीजों का क्वाथ देना चाहिए ।। १६ ।। त्वगदोष में हाथी को नीम अथवा अडूसे का क्वाथ मिलाना चाहिए । कृमियुक्त को गठकी शुद्धि के लिए गोमूत्र एवं वायविडङ्ग प्रशस्त हैं ।। १७ ।। सोंठ, पीपल, मुनक्का और शर्करा से शृतजल का पान क्षतदोष का क्षय करने वाला है तथा मांस का रस भी लाभप्रद होता है ।। १८ ।। अरुचि रोग में सोंठ मिर्च एवं पिप्पलीयुक्त मूँग प्रशंसित है ।। १९ ।। निशोथ त्रिकटु, चित्रक, दन्ती, आक, पीपल, दूध और गजपीपल, इनसे सिद्ध किया हुआ स्नेह (तेल) हाथी के गुल्म रोग को दूर करता है ।। २० ।। इसी प्रकार गज चिकित्सक को चाहिए कि वह भेदन, द्रावण अभ्यङ्ग एवं स्नेहपान और अनुवासन के द्वारा हाथियों के समस्त रोगों को विनष्ट कर ले ।। २१ ।। हाथी के कटु रोगों में मूँग की दाल या मूँग में मुलहठी मिलाकर दें और नेत्रवाला एवं बेल की छाल का लेप करें ।। २२।। हाथी के सभी प्रकार के शूलों को शान्त करने के लिए दिन के पूर्वभाग में, इन्द्रयव, हींग, धूपसरल और दोनों हल्दी की पिण्डी देनी चाहिए । हाथियों के उत्तम भोजन में साठी चावल, मध्यम भोजन में यव और

नागस्य पयःपानं प्रशस्यते । दीपनीयैस्तथा द्रव्यैः शृतो मांसरसः शुभः ॥ २६ ॥ वायसः कुक्कुरश्चोभौ काकोलूककुलो हरिः । भवेत् क्षौद्रेण संयुक्तः पिण्डो युद्धे महापदि ॥ २७ ॥ कटुमत्स्यविडङ्गानि क्षारः कोषातकी पयः । हरिद्रा चेति धूपोऽयं कुञ्जरस्य जयावहः ॥ २८ ॥ पिप्पलीतण्डुलास्तैलं माध्वीकं माक्षिकस्तथा । नेत्रयोः परिषेकोऽयं दीपनीयः प्रशस्यते ॥ २९ ॥ पूरीषं चटकायाश्च तथा पारावतस्य च । क्षीरवृक्षकरीषाश्च प्रसन्नायेष्टमञ्जनम् ॥ ३० ॥ अनेनाञ्जितनेत्रस्तु करोति कदनं रणे । उत्पलानि च नीलानि मुस्तं तगरमेव च ॥ ३१ ॥ तण्डुलोदकपिष्टानि नेत्रनिर्वापणं परम् । नखवृद्धौ नखच्छेदस्तैलसेकश्च मास्यपि ॥ ३२ ॥ शय्यास्थानं भवेच्चास्य करीषैः पांशुभिस्तथा । शरन्निदाघयोः सेकः सर्पिषा च तथेष्यते ॥ ३३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गजचिकित्सावर्णनं नाम सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८७ ॥

अष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अश्ववाहनसारः

धन्वन्तरिरुवाच– **अश्ववाहनसारञ्च वक्ष्ये चाश्वचिकित्सनम् । वाजिनां संग्रहः कार्य्यो धर्मकामार्थसिद्धये॥ १॥ अश्विनी श्रवणं हस्तम् उत्तरात्रितयं तथा । नक्षत्राणि प्रशस्तानि हयानामादिवाहने॥ २॥ हेमन्तः शिशिरश्चैव वसन्तश्चाश्ववाहने । ग्रीष्मे शरदि वर्षासु निषिद्धं वाहनं हये ॥ ३ ॥ तीव्रैर्न च पर्यैर्दण्डैरदेशे न च ताडयेत् । कीलास्थिसंकुले चैव विषमे कण्टकान्विते॥ ४॥ बालुकापङ्कसच्छंन्नेगर्त्तागर्त्त प्रदूषिते । अचित्तज्ञो विनोपायैर्वाहनं**

गेहूँ तथा अधम भोजन में अन्य पदार्थ माने गये हैं ।। २४ ।। यव और ईख हाथियों के बल को बढ़ाते हैं, सूखा तृण उनके धातु को प्रकुपित करता है ।। २५ ।। जिस हाथी का मदक्षीण हो गया हो उसको दुग्ध पिलाना प्रशस्त है और दीपनीय द्रव्यों से पकाये हुए मांस का रस भी प्रशस्त है ।। २६ ।। महापद तथा युद्ध के समय हाथियों को कौआ, कुक्कुर काकोलूक समुदाय तथा बन्दर के मांस का पिण्ड मधु के साथ भोजन में देना चाहिए । कुटकी, मत्स्य, वायविडङ्ग,, लवण, कोशातिकी (झिमकी) का दूध और हल्दी- इनका धूप हाथियों के लिए विजयप्रद है।।२८।। पीपल, चावल, तेल माध्वीक (महुआ अथवा अंगूर के रस से बनायी हुई सुरा) एवं मधु, इनका आँखों की बीट, गूलर, सूखा गोबर एवं मदिरा इन सबों का अञ्जन हाथियों को अत्यन्त प्रिय है ।। ३० ।। हाथी के नेत्रों को इससे अञ्जित करने पर वह संग्राम भूमि में शत्रुओं को मसल डालता है । नीलकमल, नागरमोथा और तगा, इनको चावल के जल में पीसकर हाथियों के नेत्र में अंजन करने से हाथियों को परमशान्ति मिलती है ।। ३१ ।। हाथियों के नख के बढ़ जाने पर उनके नख को काट देना चाहिए और प्रत्येक मास में तेल का सेक करना चाहिए।।३२।। हाथी का शयन स्थान गोबर और धूलसे युक्त होना चाहिए । शरद् ऋतु तथा ग्रीष्म ऋतु में हाथियों का घी से सेक कराना चाहिए ।। ३३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का 'गजचिकित्सा वर्णन' नामक दो सौ सत्तासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८७ ॥

धन्वन्तरी भगवान् ने कहा– अब मै आश्व वाहन सार तथा अश्व चिकित्सा को बतलाऊँगा। धर्म, काम एवं अर्थ की सिद्धि के लिए अश्वों का संग्रह करना चाहिए ।। १।। अश्विनी, श्रवन, हस्त, तीनों उत्तरा,ये घोड़ो के प्रथम वाहन में प्रशस्त है।। २।। हेमन्त, शिशिर तथा वसन्त ऋतु अश्व वाहन में प्रशस्त हैं। ग्रीष्म, शरद, वर्षा ऋतु निषिद्ध हैं।। ३।। घोड़ों को कभी

कुरुते तु यः ॥ ५ ॥ स वाह्यते हयेनैव पृष्ठस्थः कठिकां विना । छन्दं विज्ञापयेत् कोऽपि सुकृती धीमतां वरः ॥ ६ ॥ अभ्यासादभियोगाच्च विना शास्त्रं स्ववाहकः । स्नातस्य प्राङ्मुखस्याथ देवान् वपुषि योजयेत् ॥ ७ ॥ प्रणवादिनमोऽन्तेन स्वबीजेन यथाक्रमम् । ब्रह्मा चित्ते बले विष्णुर्वैनतेयः पराक्रमे ॥ ८॥ पार्श्वे रुद्रा गुरुर्बुद्धौ विश्वेदेवाश्च मर्मसु । दृगावर्त्ते दृशीन्द्वर्कौ कर्णयोरश्विनौ तथा॥ ९॥ जठरेऽग्निः स्वधा स्वेदे वाग् जिह्वायां जवेऽनिलः । पृष्ठतो नाकपृष्ठस्तु खुराग्रे सर्वपर्वताः ॥ १० ॥ ताराश्चरोमकूपेषु हृदि चान्द्रमसी कला । तेजस्यग्नीरतिः श्रोण्यां ललाटे च जगत्पतिः ॥ ११ ॥ ग्रहाश्च हेषिते चैव तथैवोरसि वासुकिः । उपोषितोऽर्चयेत् सादी हयं दक्षश्रुतौ जपेत्॥ १२॥ हय ! गन्धर्वराजस्त्वं श्रृणुष्व वचनं मम । गन्धर्वकुलजातस्त्वं माभूस्त्वं कुलदूषकः ॥ १३॥ द्विजानां सत्यवाक्येन सोमस्य गरुडस्य च । रुद्रस्य वरुणस्यैव पवनस्य बलेन च॥१४ ॥ हुताशनस्य दीप्त्या च स्मर जातिं तुरङ्गम ! । स्मर राजेन्द्रपुत्रस्त्वं सत्यवाक्यमनुस्मर ॥ १५ ॥ स्मर त्वं वारुणीं कन्यां स्मर त्वं कौस्तुभं मणिम् । क्षीरोदसागरे चैव मथ्यमाने सुरासुरैः ॥ १६ ॥ तत्र देवकुले जातः स्ववाक्यं परिपालय । कुले जातस्त्वमश्वानां मित्रं मे भव शाश्वतम्॥१७॥ श्रृणु मित्र ! त्वमेतच्च सिद्धो मे भव वाहन ! । विजयं रक्ष माञ्चैव समरे सिद्धिमावह॥ १८॥ तव पृष्ठं समारुह्य हता दैत्याः सुरैः पुरा । अधुना

जोर से तथा खराब स्थान में दण्डे से कभी न मारे। जो मनुष्य घोड़ों के मन को जाने विना तथा उसके उपायों को जाने विना ही उस पर सवारी करता है, तथा घोड़ों को कीलों तथा अस्थियों से भरे मार्ग में ले जाता है कण्टकमय, बालू तथा कीचड़ से भरे हुए मार्ग पर तथा नीची ऊँची भूमि पर ले जाता है,या बिना काठी के ही घोड़ों के पीठ पर बैठ जाता है, वह स्वयं घोड़े का ही वाहन बन जाता है ।। ५ ।। कोई श्रेष्ठ बुद्धिमान् अश्वशास्त्र को पढ़े विना भी केवल अभ्यास और अध्यवसाय मात्र से अश्व को अपना अभिप्राय समझा देता है । अथवा घोड़े के अभिप्राय को स्वयं समझकर दूसरों को समझा देता है ।। ६ ।। अश्व को स्नान कराकर उसको पूर्वाभिमुख खड़ा करे तथा उसके अंगों में ब्रह्मा आदि देवताओं का न्यास करें ।। ७ ।। देवताओं के बीज मंत्र के आदि में प्रणव तथा मन्त्र के अन्त में नमः पद लगाकर न्यास करे । ओं बं ब्रह्मणे नमः इस मन्त्र से ब्रह्मा का अश्व के हृदय में,ओं विं विष्णवे नमः, इस मन्त्र से विष्णु का मुख में, ओं वैनतेयाय नमः, इस मन्त्र से वैनतेय का पराक्रम में, ।। ८ ।। ओम् रुं रुद्रेभ्यो नमः इस मन्त्र से रुद्रगण का अश्व के पार्श्व में,ओं गं गुरुवे नमः, इस मन्त्र से गुरु का बुद्धि में, ओं विं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, इस मन्त्र से विश्वदेवों का मर्मस्थान में इं इन्दवे नमः, इस मन्त्र से चन्द्रमा का दृगावर्त में, ओम ॐ अर्काय नमः, इस मन्त्र से सूर्य का नेत्रों में,ओम् अं अश्विभ्यां नमः, इस मन्त्र से कानों में अश्विनीकुमारों का, ।। ९ ।। ओम् अं अग्नये नमः, इस मन्त्र से उदर में अग्नि का,ओम् सं स्वधायै नमः, इस मन्त्र से स्वेद (पसीने) में, ओम् वां वाचे नमः, इस मन्त्र से वाणी का जिह्वा में, ओम् अं अनिलाय नमः, इस मन्त्र से अनिल (पवन) का वेग में, ओं नां नाकपृष्ठाय नमः इस मन्त्र से नाकपृष्ठ का पृष्ठ भाग में, ओं पं पर्वतेभ्यो नमः, इस मन्त्र से खुरों के अग्रभाग में, समस्त पर्वतों का ।।१०।। ओं तां ताराभ्यो नमः, इस मन्त्र से ताराओं का रोमकूपों में, ओं चं चान्द्रमसोकलाभ्यो नमः, इस मन्त्र से चन्द्रमा की कलाओं का हृदय में, ओं अं अग्नये नमः, इस मन्त्र से अग्नि का तेज में, ओं रं रत्यै नमः इस मन्त्र से रति का कटिप्रदेश में, ओं जं जगत्पतये नमः, इस मन्त्र से जगत् पति का ललाट देश में, ।। ११ ।। ओं ग्रं ग्रहेभ्यो नमः, इस मन्त्र से ग्रहों का हिनहिनाहट में, वां वासुकये नमः, इस मन्त्र से वासुकि का उरःस्थल में न्यास करे । अश्वारोही को उपवासपूर्वक अश्व की अर्चना करनी चाहिए । पूजन के पश्चात् उसके दाहिने कान में इस मत्र का जप करें।।१२।। हे अश्व ! तुम गन्धर्वराज हो, मेरी बात सुनो ! तुम गन्धर्वकुल में उत्पन्न हुए हो । अपने कुल को दूषित करने वाला न बनना ।। १३ ।। तुम ब्राह्मणों के सत्यवचन, सोम, गरुड़, रुद्र, वरुण तथा पवन के बल से एवं अग्नि की कान्ति से अपनी जाति का स्मरण करो ।। १४ ।। याद करो कि तुम राजेन्द्र पुत्र हो, तुम सत्यवाक्य को स्मरण करो ।। १५ ।। तुम वरुण की कन्या वारुणी को स्मरण करो और कौस्तुभ मणि को याद करो । जिस समय दैत्यों एवं देवों द्वारा क्षीरसमुद्र मथा जा रहा था उस समय तुम देवताओं के कुल में उत्पन्न हुए तुम, अपने सत्यवाक्य को याद करो ।। १६ ।। तुम अश्वों के वंश में उत्पन्न हुए हो, तुम मेरा शाश्वत मित्र बनो । मित्र सुनो ! तुम मेरे सिद्धवाहन बनो ।। १७ ।। तुम मेरी विजय

त्वां समारुह्य जेष्यामि रिपुवाहिनीम्॥१९॥ कर्णजापं ततः कृत्वा विमुह्य च तथाप्यरीन् । पर्यानयेद्धयं सादी वाहयेद् युद्धतो जयः ॥ २० ॥
सञ्जाताः स्वशरीरेण दोषाः प्रायेण वाजिनाम् । हन्यन्तेऽतिप्रयत्नेन गुणाः सादिवरैः पुनः ॥ २१ ॥ सहजा इव दृश्यन्ते गुणाः सादिवरोद्भवाः ।
नाशयन्ति गुणानन्ये सादिनः सहजानपि ॥ २२॥ गुणानेको विजानाति वेत्ति दोषांस्तथाऽपरः । धन्यो धीमान् हयं वेत्ति नोभयं वेत्ति मन्दधीः॥२३॥
अकर्मज्ञोऽनुपायज्ञो वेगासक्तोऽतिकोपनः। घनदण्डरतिच्छिद्रे यः समोऽपि न शस्यते ॥ २४ ॥ उपायज्ञोऽथ चित्तज्ञो विशुद्धो दोषनाशनः ।
गुणार्जनपरो नित्यं सर्वकर्मविशारदः ॥ २५ ॥ प्रग्रहेण गृहीत्वाऽथ प्रविष्टो वाहभूतलम्। सव्यापसव्यभेदेन वाहनीयः स्वसादिना ॥ २६ ॥ आरुह्य
सहसा नैव ताड़नीयो हयोत्तमः । ताड़नाद् भयमाप्नोति भयान् मोहश्च जायते ॥ २७ ॥ प्रातः सादीप्लुतेनैव वल्गामुद्धृत्य चालयेत् । मन्दं मन्दं
विना नालं धृतवल्गो दिनान्तरे ॥ २८ ॥ प्रोक्तमाश्वसनं सामभेदोऽश्वेन नियोज्यते । कषादिताड़नं दण्डो दानं कालसहिष्णुता पूर्वं पूर्वं विशुद्धौ
तु विदध्यादुत्तरोत्तरम् । जिह्वातले विनायोगं विदध्याद् वाहने हये ॥ ३० ॥ गुणेतरशतां वल्गां सृक्कण्या सह गाहयेत् । विस्मार्य्य वाहनं
कुर्य्याच्छिथिलानां शनैः शनैः ॥ ३१ ॥ हयं जिह्वाङ्गमाहीने जिह्वाग्रन्थिं विमोचयेत्। गाढतां मोचयेत् तावत् यावत् स्तोभं न मुञ्चति॥३२॥
कुर्य्याच्छतमुरस्त्राणमविलालञ्च मुञ्चति । ऊर्ध्वाननः स्वभावाद् यस्तस्योरस्त्राणमश्लथम् ॥ ३३ ॥ विधाय वाहयेद् दृष्ट्या लीलया सादिसत्तमः ।

और मेरी रक्षा करो और युद्ध सिद्धि प्रदान करो ।। १८ ।। प्राचीनकाल में देवताओं ने तुम्हारी पीठ पर बैठकर दैत्यों का वध किया था । आज मैं तुम पर चढ़कर शत्रु की सेना पर विजय प्राप्त करूँगा ।। १९ ।। इस प्रकार से अश्वारोह अश्व के कर्ण में जप करके शत्रुओं को मोहित करे । फिर वह अश्व को युद्धस्थल में लाये और उस पर सवार होकर विजय प्राप्त करे ।। २०।। श्रेष्ठ अश्वारोही, घोड़े के शरीर से निकले दोषों को यत्नपूर्वक नष्ट कर देते हैं तथा अपने प्रयत्नों के द्वारा उसमें उत्तम गुणों का आधान कर देते हैं ।। २१ ।। श्रेष्ठ अश्वारोहियों द्वारा उत्पादित भी गुण अश्वों में स्वाभाविक प्रतीत होने लगते हैं । कुछ अश्वारोही तो अश्वों के स्वाभाविक गुणों को भी विनष्ट कर देते हैं ।। २२ ।। श्रेष्ठ अश्वारोही अश्व के गुणों को जानता है और दूसरे अश्वारोही अश्व के दोषों को जानता है । जो अश्व रहस्य को जानता है, वह बुद्धिमान् धन्य है । मन्द बुद्धि अश्वारोही न तो अश्व के गुणों को जानता है और न तो अश्व के दोषों को ।। २३।। जो न तो कर्मों को जानता हैं और न तो उपाय को, जो अश्व का वेगपूर्वक वाहन करने में अनुरक्त रहता है, अत्यन्त क्रोध करता है, छोटे भी अपराध के बदले में कठोर दण्ड देता है, इस प्रकार के कुशल अश्वारोही की भी प्रशंसा नहीं होती है ।। २४ ।। जो अश्वारोही उपायों को जानता है, अश्व के चित्त को समझता है, विशुद्ध है और अश्व के दोषों को विनष्ट करने वाला है, वह सभी कर्मों में कुशल अश्वारोही सर्वदा गुणों के ही अर्जन में लगा रहता है ।। २५ ।। कुशल अश्वारोही घोड़े के लगाम को पकड़कर उसे बाह्य भूमि में ले जाय । वह अपने बायें तथा दायें के भेद से अश्व का संचालन करे ।। २६ ।। उत्तम अश्व पर चढ़कर सहसा उस पर चाबुक नहीं लगाना चाहिए । तड़न से अश्व भयभीत होता है और भय से उसे मोह हो जाता है ।। २७।। प्रातःकाल अश्वारोही घोड़े की लगाम कर उसे तेजी से दौड़ाये । सायंकाल यदि घोड़े के पैर में नाल न हो तो उसे धीरे-धीरे दौड़ाये ।। २८ ।। अश्व के कर्ण में मन्त्र जप तथा अश्व संचालन की विधि बतलायी गयी है, उससे अश्व को आश्वासन प्राप्त होता है, यह उसके साथ सामनीति हुई । रथ में जब एक अश्व दूसरे अश्व के साथ जोता जाता है तब यह उसके साथ भेदनीति हुई। घोड़े को चाबुक लगाना दण्ड है और अश्व को अनुकूल बनने के लिए जो उसे अवसर प्रदान किया जाता है, वह उसके लिए दान है ।। २९ ।। पूर्व-पूर्व नीति के सफल हो जाने पर ही उत्तरोत्तर नीति को अपनाना चाहिए । घोड़े की जिह्वा के नीचे विना जोड़ की रस्सी लगानी चाहिए ।। ३० ।। अधिक से अधिक सौ गुणे सूत को बटकर बनायी गयी बल्गा (लगाम) को घोड़े केदोनों गल्फरों में घुसा देनी चाहिए । पुनः घोड़े को भुलावा देकर धीरे-धीरे लगाम को ढीली करना चाहिए ।। ३१ ।। जब घोड़े की जिह्वा अहीनावस्था को प्राप्त कर ले तब जिह्वा तल की ग्रंथि को खोलदेना चाहिए । जब तक अश्व स्थिरता का त्याग न कर दे तब तक गाढता का त्याग न करे, अर्थात् लगाम को न कसे ।। ३२ ।। जब तक अश्व मुँह से लार गिराता रहे तब तक उरस्त्रण को कसा

तस्य सव्येन पूर्वेण संयुक्तं सव्यवल्गया॥३४॥ यः कुर्य्यात् पश्चिमं पादं गृहीतस्तेन दक्षिणः । क्रमेणानेन यो सेवां कुरुते वामवल्गया ॥ ३५ ॥ पादौ तेनापि पादः स्याद् गृहीतो वाम एव हि। अग्रे चेच्चरणे त्यक्त जायते सुदृढ़ासनम् ॥ ३६ ॥ यौ हृतौ दुष्करे चैव मोटके नाटकायनम् । सव्यहीनं खलीकारो हनने गुणने तथा ॥ ३७ ॥ स्वभावं हि तुरङ्गस्य मुखव्यावर्तनं पुनः । न चैवेत्थं तुरङ्गाणां पादग्रहणहेतवः ॥ ३८ ॥ विश्वस्तं हयमालोक्य गाढ़मापीड्य चासनम् । रोकयित्वा मुखे पादं ग्राह्यतो लोकनं हितम् ॥ ३९ ॥ गाढ़मापीड्य रागाभ्यां वल्गामाकृष्य गृह्यते । तद्बन्धनाद् युग्मपादं तदुद् वक्कनमुच्यते॥ ४०॥ संयोज्य वल्गया पादान् वल्गामामोच्य वाञ्छितम् । बाह्यपार्ष्णिप्रयोगात् तु यत्र तत् ताड़नं मतम् ॥ ४१ ॥ प्रलयाविप्लवे ज्ञात्वा क्रमेणानेन बुद्धिमान् । मोटनेन चतुर्थेन विधिरेष विधीयते ॥ ४२ ॥ नाधत्तेऽधश्च यः पादं योऽश्वो लघुनि मण्डले । मोटनोद्वक्वानाभ्यान्तु ग्राहयेत् पादमीशितम्॥४३॥ वटयित्वासने गाढं मन्दमादाय यो व्रजेत् । ग्राह्यते संग्रहाद् यत्र तत् संग्रहणमुच्यते॥४४॥ हत्वा पार्श्वे प्रहारेण स्थानस्थो व्यग्रमानसम् । वल्गामाकृष्यपादेन ग्राह्यकण्टकपायनम् ॥ ४५ ॥ उत्थितो योऽङ्घ्रिणानेन पार्ष्णिपादान् तुरङ्गमः । गृह्यते यत् खलीकृत्य खलीकारः स चेष्यते॥४६॥ गतित्रये प्रियः पादमादत्ते नैव वाञ्छितः । हत्वा तु यत्र दण्डेन ग्राह्यते हननं हि तत्॥ ४७॥ खलीकृत्य चतुष्केण तुरङ्गो वल्गयान्यया । उच्छ्वस्य ग्राह्यतेऽन्यत्र तत् स्यादुच्छ्वासनं पुनः ॥ ४८ ॥ स्वभावं बहिरस्यन्तं तस्यां दिशि पदायनम्।

रखना चाहिए । जो अश्व स्वभाव से ही अपना मुख ऊँपर रखे उसके उरस्चाप को खूब कस़कर श्रेष्ठ अश्वारोही अपने संकेत के अनुसार चला सकता है ।। ३३ ।। जो व्यक्ति पहले घोड़े के पिछले दायें पैर से दायीं बलगा बाँध देता है, वह उस घोड़े के दायें पैर को अपने वश में कर लेता है ।। ३४ ।। इसी तरह से जो पिछले बायें पैर से बायीं बलगा को बाँध देता है वह भी घोड़े के बायें पैर को अपने वश में कर लेता है ।। ३५ ।। यदि घोड़े के अगले पैर परित्यक्त हुए तो सुदृढ़ासन होता है ।। ३६ ।। यदि अश्व के पैर दुष्कर मोटक कर्म में अपहृत हो गये अथवा बायें पैर में हीनावस्था आ गयी तो उस स्थिति का नाम नाटकायन है । हनन और गुणन कर्म में खलीकार होता है ।। ३७ ।। बार-बार मुख का परिवर्तन करते रहना घोड़े का स्वभाव होता है । ये सब लक्षण उसके पैरों पर नियन्त्रण पाने के उपाय नहीं है ।। ३८ ।। अश्वारोही जब यह जान ले कि अश्व विश्वस्त हो गया है तो वह आसन को जोर से दबाकर अपना पैर उसके मुख से अड़ा दे । ऐसा करके उसकी ग्राह्यता का अवलोकन करना ही हितकारी होता है ।। ३९ ।। रानों द्वारा जोर से दबाकर लगाम खींचकर उसके बन्धन से जो घोड़े के दो पैरों को खींचा जाता है, उसे उद्वक्कन कहते हैं ।। ४० ।। लगाम से घोड़े के चारों पैरों को बाँधकर उसे यथेष्ट रूप में ढीली करके पुनः पार्ष्णि भाग के प्रयोग से जहाँ घोड़े को मोड़ा जाता है उसे ताड़ना या मोट्टन कहते हैं ।। ४१ ।। अश्वारोही को इसी प्रकार से प्रलय तथा अविप्लव को भी जान लेना चाहिए । फिर चतुर्थ मोट्टन (ताड़न) क्रिया द्वारा यह विधि सम्पादित की जाती है ।। ४२।। जो अश्व लघुमण्डल में मोट्टन और उद्वक्कन द्वारा पैरों को भूमि पर नहीं रखकर विना भूमि स्पर्श किये ही चक्कर पूरा कर लेता है, वह अश्व सफल माना जाता है । उसे इसी प्रकार की पादगति सिखानी चाहिए ।। ४३ ।। आसन में खूब कसकर निबद्ध करके जिसे शिक्षा दी जाती है तथापि जो मन्दगति से ही चलता है, फिर पकड़कर जिसे अभीष्ट चाल ग्रहण करायी जाती है, उसकी उस शिक्षण क्रिया को संग्रहण कहा जाता है ।। ४४ ।। जो घोड़ा स्थान में स्थित होकर भी व्यग्रचित हो जाय और उसके पार्श्वभाग में ऐंड़ लगाकर लगाम खींचकर उसे कण्टकपान (लगाम के लोहे का आस्वादन) कराया जाय तथा इस प्रकार पार्श्व भाग में किये गये इस पाद प्रहार से जो खलीकृत होकर चाक लिखे उसका यह शिक्षण 'खलीकार' माना गया है ।। ४५-४६ ।। तीनों प्रकार की गतियोंसे जो मनोवाञ्छित चाल नहीं पकड़ पाता है, उस दशा में डण्डे से मारकर जहाँ वह चाल सिखायी जाती है, उस क्रिया को 'हनन' क्रिया कहते हैं ।। ४७ ।। जब दूसरी बल्गा के द्वारा चार बार खलीकृत करके अश्व को अन्यत्र ले जाकर उच्छ्वासित करके वह चाल सिखायी जाती है, तब उस क्रिया को उच्छ्वास कहते हैं ।। ४८ ।। अश्व स्वभावतः अपने मुख को बाहर की ओर घुमा देता है । उसे यत्नपूर्वक उसी दिशा की ओर मोड़कर वहाँ नियुक्त करके जब अश्व को वैसी गति सिखायी जाती है तो उस प्रयत्न को मुख व्यावर्तन कहते हैं ।।४९ ।।

नियोज्य ग्राहयेत् तत् तु मुखव्यावर्त्तनं मतम् ॥ ४९ ॥ ग्राहयित्वा ततः पादं त्रिविधासु यथाक्रमम् । साधयेत्पञ्चधारासु क्रमशो मण्डलादिषु॥५०॥ आजानूर्ध्वाननं वाहं शिथिलं वाहयेत् सुधीः। अङ्गेषु लाघवं यावत् तावत् तं वाहयेद्धयम् ॥ ५१ ॥ मृदुः स्कन्धे लघुर्वक्त्रे शिथिलः सर्वसन्धिषु। यदा स सादिनो वश्यः संगृह्णीयात् तदा हयम्॥५२॥ न त्यजेत् पश्चिमं पादं यदा साधुर्भवेत् तदा । तदाकृष्टिर्विधातव्या पाणिभ्यामिहवल्गया॥५३॥ तत्र त्रिको यथा तिष्ठेदुद्ग्रीवोऽश्वः समाननः । धरायां पश्चिमौ पादौ अन्तरीक्षे यदाश्रयौ ॥ ५४ ॥ तदासन्धारणं कुर्य्याद् गाढवाहं च मुष्टिना । सहसैवं समाकृष्टो यस्तुरङ्गो न तिष्ठति॥ ५५॥ शरीरं विक्षिपन्तञ्च साधयेन्मण्डलभ्रमैः । क्षिपेत् स्कन्धञ्च यो वाहं स च स्थाप्यो हि वल्गया ॥ ५६॥ गोमयं लवणं मूत्रं क्वथितं मृत्समन्वितम् । अङ्गलेपो मक्षिकादि दंशश्रमविनाशनः॥ ५७॥ मध्ये भद्रादिजातीनां मण्डो देयो हि सादिना । दर्शनं भीततीक्ष्णस्य निरुत्साहः क्षुधाः हयः ॥ ५८ ॥ यथा वश्यस्तथा शिक्षा विनश्यन्त्यतिवाहिताः । अवाहिता न सिध्यन्ति तुङ्गवक्त्रांश्च वाहयेत्॥५९॥ सम्पीड्य जानुयुग्मेन स्थिरमुष्टिस्तुरङ्गमम् । गोमूत्राकुटिला वेणी पद्ममण्डलमालिका॥ ६०॥ पञ्चोलूखलिकाः कार्ये गर्वितास्तेऽतिकीर्त्तिताः । संक्षिप्तञ्चैव विक्षिप्तं कुञ्चितञ्च यथाचितम् ॥ ६१ ॥ वल्गितावल्गितौ चैव षोढा चेत्थमुदाहृतम् । वीथीधनुःशतं यावदशीतिर्नवतिस्तथा॥ ६२॥ भद्रः सुसाध्यो वाजी स्यान्मन्दो दण्डैकमानसः। मृगजङ्घो मृगोवाजी संकीर्णस्तत् समन्वयात्॥ ६३॥ शर्करामधुलाजादः सुगन्धोश्वः शुचिर्द्विजः। तेजस्वी क्षत्रियश्चाश्वो विनीतो बुद्धिमांश्च यः॥६४॥ शूद्रोऽशुचिश्चलो मन्दो विरूपो विमतिः खलः। वल्गया धार्य्यमाणोऽश्वो लालकं यश्च दर्शयेत्॥ ६५॥

क्रमशः तीनों ही गतियों से चलने की रीति सिखाकर पुनः अश्व को मण्डल आदि पाँच धाराओं में चलने का अभ्यास कराना चाहिए ।। ५० ।। ऊपर उठे हुए मुख से लेकर घुटने तक जब अश्व शिथिल हो जाय तब उसे गति की शिक्षा देने के लिए बुद्धिमान पुरुष उसके ऊपर सवारी करे तथा जब तक अश्व के अंगों में हल्कापन न आ जाय तब तक उसको दौड़ाता रहे ।। ५१।। जब अश्व की गर्दन कोमल, मुख हल्का और शरीर की सारी संधियाँ शिथिल हो जायँ तब वह सवार के वश में हो जाता है, उसी अवस्था में अश्व का संग्रह करना चाहिए ।। ५२ ।। जब वह पिछला पाद (गतिज्ञान) न छोड़े तब वह अच्छा घोड़ा होता है । उस समय दोनों हाथों से लगाम खिंचना चाहिए ।। ५३ ।। लगाम खींचकर ऐसा कर देना चाहिए कि घोड़ा ऊपर कीओर गर्दन उठाकर पिछले दो पैरों पर खड़ा हो जाय। जब पृथिवी पर टिके दोनों पैर आकाश की ओर उठे दोनों पैर के आश्रय बन जायँ उस समय अश्व को मुट्ठी से संधारण करना चाहिए । अचानक इस प्रकार से खींचने पर जब घोड़ा न रुके शरीर को झकझोरने लगे, तब उसको मंडलाकार दौड़ाकर अपने वश में करना चाहिए । जो घोड़ा कंधा कँपाने लगे उसे लगाम से खींचकर खड़ा कर देना चाहिए ।। ५४-५६ ।। गोबर, नमक और गोमूत्र का क्वाथ बनाकर उसमें मिट्टी मिला दें और उसका घोड़े के शरीर पर लेप करें । इससे मक्खी आदि के काटने के पीड़ा और थकान दूर होती है ।। ५७ ।। सवार को चाहिए कि वह भद्र आदि जाति के घोड़ों को माँड़ पिलाये । इससे सूक्ष्म कीड़ों आदि के काटने की पीड़ा दूर होती है । भूख के कारण घोड़ा उत्साह शून्य हो जाता है, इसमें भी माँड़ पिलाना लाभप्रद होता है ।। ५८ ।। घोड़े को ऐसी ही शिक्षा देनी चाहिए जिससे कि वह वशीभूत हो जाय । अधिक सवारी करने से घोड़े नष्ट हो जाते हैं । सवारी किये विना घोड़ा सिद्ध भी नहीं होते हैं । उनके मुख को ऊपर की ओर रखते हुए ही उन पर सवारी करना चाहिए ।। ५९ ।। मुट्ठी को स्थिर रखते हुए दोनों घुटनों से दबाकर अश्व को आगे बढ़ाना चाहिए । गोमूत्राकृति, वेणी, पद्ममण्डला और मालिका- इन चिह्नों से युक्त अश्व पञ्चोलूखलिका कहे गये हैं । ये कार्य में अत्यन्त गर्वीले होते हैं ।। ६० ।। इनके छह प्रकार के भेद बतलाये गये हैं- संक्षिप्त, विक्षिप्त, कुञ्चित, अञ्चित, वल्गित, अवल्गित । गली अथवा सड़क पर सौ धनुष् तक दौड़ाने पर भद्र जाति के अश्व सुसाध्य होते हैं, मन्द अस्सी धनुष तक और दण्डैक मानस अश्व को यदि नब्बे धनुष् तक दौड़ाया जाय तब वे साध्य होते हैं ।। ६२ ।। मृगजंघ्य या मृग जातीय अश्व संकर होता है । वह भी इन्हीं के समन्वय के अनुसार अस्सी या नब्बे धनुष् तक दौड़ाने पर साध्य होता है ।। ६३ ।। शक्कर, मधु और धान का लावा खाने वाला ब्राह्मण जातीय अश्व पवित्र एवं सुगन्धि युक्त होता है । क्षत्रिय अश्व तेजस्वी होता है, वैश्य अश्व विनीत और बुद्धिमान् होता है और शूद्र अश्व अपवित्र, चंचल, मन्द,कुरूप, बुद्धिहीन और दुष्ट होता है ।। ६४ ।। लगाम द्वारा पकड़े जाने पर जो अश्व लार गिराने लगे, उसे रस्सी और लगाम खोलकर

धारासु योजनीयोऽसौ प्रग्रहग्रहमोक्षणैः । अश्वादिलक्षणं वक्ष्ये शालिहोत्रो यथावदत् ॥६६॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये अश्ववाहनसारकथनं नामाष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८८ ॥

ऊननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अश्वचिकित्सा

शालिहोत्र उवाच— अश्वानां लक्षणं वक्ष्ये चिकित्साञ्चैव सुश्रुत । हीनदन्तो विदन्तश्च कराली कृष्णतालुकः ॥ १ ॥ कृष्णजिह्वश्च यमजोऽजातमुष्कश्च यस्तथा । द्विशफश्च तथा शृङ्गी त्रिवर्णो व्याघ्रवर्णकः ॥ २ ॥ खरवर्णो भस्मवर्णो जातवर्णश्च काकुदी । श्वित्री च काकसादी च खरसारस्तथैव च॥३॥ वानराक्षः कृष्णशटः कृष्णगुह्यस्तथैव च । कृष्णप्रोथश्च शूकश्च यश्च तित्तिरिसन्निभः॥ ४॥ विषमो गो श्वेतपादश्च ध्रुवावर्त्तविवर्जितः। अशुभावर्त्तसंयुक्तो वर्जनीयस्तुरङ्गमः ॥ ५ ॥ रन्ध्रोपरन्ध्रयोर्द्वौ द्वौ द्वौ द्वौ मस्तकवक्षसोः । प्रयाणे च ललाटे च कण्ठावर्त्ताः शुभादश॥ ६॥ सृक्कण्याञ्च ललाटे च कर्णमूले निगालके । बाहुमूले गले श्रेष्ठा आवर्त्तास्त्वशुभाः परे ॥ ७ ॥ शुकेन्द्रगोपचन्द्राभा ये च वायससन्निभाः । सुवर्णवर्णाः स्निग्धाश्च प्रशस्यास्तु सदैव हि ॥ ८ ॥ दीर्घग्रीवाक्षिकूटाश्च ह्रस्वकर्णाश्च शोभनाः । राज्ञां तुरङ्गमा यत्र विजयं वर्जयेत् ततः ॥ ९ ॥ पालितस्तु हयो दन्ती शुभदो दुःखदोऽन्यथा । श्रियः पुत्रास्तु गन्धर्वा वाजिनो रत्नमुत्तमम् ॥ १० ॥ अश्वमेधे तु तुरगः पवित्रत्वात् तु हूयते । वृषो निम्बबृहव्यौचगुडूची समाक्षिका॥ ११ ॥ सिंहा गन्धकरी पिण्डी स्वेदश्च शिरसस्तथा । हिङ्गुपुष्करमूलञ्च नागरं साम्लवेतसम् ॥ १२ ॥ पिप्पलीसैन्धवयुतं

पानी की धारा से स्नान कराना चाहिए । जैसा कि शलिहोत्र ने बतलाया है, उस तरह के अश्व के लक्षणों का मैं वर्णन करूँगा ।। ६६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अश्ववाहन सार वर्णन नामक दो सौ अट्ठासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८८ ॥

शालिहोत्र ने कहा— सुश्रुत ! मैं अश्वों की चिकित्सा और अश्वों के लक्षण का वर्णन कर रहा हूँ । जो अश्व हीनदन्त, दाँत रहित, कराली (दो से अधिक दन्त पंक्तियों से युक्त) कृष्ण तालु, काली जीभ वाले ।। १ ।। जुड़वाँ पैदा (युग्मज) जन्म से ही विना अण्डकोष के, दो खुरों वाले, सींग वाले, तीन रंगों वाले, व्याघ्रवर्ण ।। २ ।। गर्दभवर्ण, भस्मवर्ण, सुवर्ण, ऊँचे ककुद वाले, श्वेतकुष्ठ वाले, जिस पर कौए आक्रमण करते हों, खरसार ।। ३ ।। वानर की तरह आँख वाले काली आयाल (सटा) वाले, काले गुप्ताङ्ग अथवा काली नथुने वाले, यव के समान कठोर केश वाले । त्तितिर के समान रङ्ग वाले ।। ४ ।। विषम अंग वाले, पैर वाले, स्थिर आवर्तो से रहित तथा अशुभ आवर्तो से युक्त हों, ऐसे अश्वों का त्यागकर देना चाहिये ।। ५ ।। नाक के ऊपर दो-दो आवर्त, मस्तक तथा वक्षस्थल में दो-दो आवर्त, पीठ, पिछले भाग और ललाट और कण्ठ में दो-दो इस प्रकार दस आवर्तो से युक्त अश्व शुभ माने गये हैं ।। ६ ।। ओष्ठ पर, ललाट में, कान के मूलभाग में, गर्दन में अगले पैरों के ऊपर मूल में, निगालक (गर्दन) में, अगले पैरों के ऊपर मूल में तथा गले में स्थित आवर्त श्रेष्ठ होते हैं । इनसे अतिरिक्त अंगों के आवर्त अशुभ होते हैं ।। ७ ।। शुक्र, इन्द्रगोप एवं चन्द्रमा के समान कान्ति से युक्त, कौए के सदृश रंग वाले, सुवर्ण के सदृश रंगवाले तथा चिकने घोड़े सदैव प्रशस्त होते हैं ।। ७ ।। जिस राजा के पास लम्बी गर्दन वाले, धसी आँखों वाले तथा छोटे कानों वाले सुन्दर घोड़े हैं, उस पर कोई विजय नहीं प्राप्त कर सकता है ।। ९ ।। घोड़े-हाथी यदि अच्छी तरह पाले जाते हैं तो वे कल्याणप्रद होते हैं, यदि वे अच्छी तरह नहीं पाले जाते तो वे दुःख देने वाले होते हैं । घोड़े लक्ष्मी के पुत्र तथा गन्धर्व रूप में पृथिवी के उत्तम रत्न हैं ।। १० ।। पवित्र होने के कारण

शूलघ्नं चोष्णवारिणा । नागरातिविषा मुस्ता सानन्ता विल्व मालिका ॥ १३ ॥ क्वाथमेषा पिबेद् वाजी सर्वातीसारनाशनम्। प्रियङ्गुसारिवाभ्याञ्च युक्तमाजं शृतं पयः ॥ १४ ॥ पर्य्याप्तशर्करं पीत्वा श्रमाद् वाजी विमुच्यते । द्रोणिकायान्तु दातव्या तैलवस्तिस्तुरङ्गमे ॥१५॥ कोष्ठजा च शिरा वेध्या तेन तस्य सुखं भवेत् । दाड़िमं त्रिफला व्योषं गुडञ्च समभाविकम् ॥ १६ ॥ पिण्डमेतत् प्रदातव्यमश्वानां काशयनाशनम्। प्रियङ्गुलोध्रमधुभिः पिबेद् वृषरसं हयः ॥ १७ ॥ क्षीरं वा पञ्चकोलाद्यं कासनाद्धि प्रमुच्यते । प्रस्कन्धेषु च सर्वेषु श्रेय आदौ विशोधनम् ॥ १८॥ अभ्यङ्गोद्वर्त्तनैः स्नेहं नस्यवर्त्तिक्रमः स्मृतः । ज्वरितानां तुरङ्गाणां पयसैव क्रियाक्रमः ॥ १९ ॥ लोध्रकन्धरयोर्मूलं मातुलुङ्गाग्निनागराः । कुष्ठहिङ्गुवचारास्ना लेपोयं शोथनाशनः ॥ २० ॥ मञ्जीष्ठा मधुकं द्राक्षाबृहत्यौ रक्तचन्दनम् । त्रपुषीवीजमूलानि शृङ्गाटककसेरुकम् ॥ २१ ॥ अजापयःशृतमिदंसुशीतं शर्करान्वितम् । पीत्वा निरशनो वाजी रक्तमेहात् प्रमुच्यते ॥ २२ ॥ मन्याहनुनिगालस्थ शिराशोथो गलग्रहः । अभ्यङ्गः कटुतैलेन तत्र तेष्वेव शस्यते ॥ २३ ॥ गलग्रहगदो शोथः प्रायशो गलदेशके । प्रत्यक्पुष्पी तथावह्निः सैन्धवं सौरसो रसः ॥ २४ ॥ कृष्णाहिङ्ग्गुयुतैरेभिः कृत्वा नस्यं न सीदति । निशे ज्योतिष्मती पाठा कृष्णाकुष्ठं वचा मधु ॥ २५ ॥ जिह्वास्तम्भे च लेपोयं गुड़मूत्रयुतोहितः । तिलैर्यष्ट्या रजन्या च निम्बपत्रैश्च योजिता ॥ २६ ॥ क्षौद्रेण शोधनी पिण्डी सर्पिषा व्रणरोपणी । अभिघातेन खञ्जन्ति ये ह्यश्वास्तीव्रवेदना ॥ २७ ॥ परिषेकक्रिया तेषां तैलेनाशु रुजापहा । दोषकोपाभिघाताभ्यां पक्वभिन्ने व्रणक्रमः ॥ २८ ॥ अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षमधूकवटकल्कनैः ॥ २९ ॥ प्रभूतसलिलः क्वाथः सुखोणोः

ही अश्वमेध याग में अश्व का होम किया जाता है ।। १० ।। मधु के साथ अडूसा, नीम की छाल, बड़ी कटेरी और गुडूची, इनकी पिण्डी तथा सिरका, स्वेद ये अश्व के नासिका मल को दूर करते हैं ।। ११ ।। हिंग, पुष्करमूल, सोंठ, अम्लवेत, पीपल तथा सैन्धव लवण, इनको गर्म जल के साथ देने पर अश्व के शूल का नाश होता है ।। १२ ।। सोंठ, अतीस, मोथा, अनन्तमूल, और बेल- इन सबों का क्वाथ यदि घाड़े को पिलाया जाय तो वह उसके समस्त प्रकार के अतिसार को विनष्ट कर देता है ।। १३ ।। प्रियङ्गी कालीसर तथा पर्याप्त शर्करा से युक्त गर्म किया हुआ बकरी का दूध पिलाने से घोड़े की थकान दूर हो जाती है ।। १४ ।। अश्व को द्रोणी में तैलवस्ती होनी चाहिये अथवा कोष्ठ में उत्पन्न शिराओं का बेधन करना चाहिए । इससे उसको सुख मिलता है ।। १५।। अनार, त्रिफला, व्योष (सोंठ, मिर्च, पीपल) तथा गुड़ इन सबों को बराबर-बराबर छानकर बनायी गयी पिण्डी अश्व को देने से अश्व की कृशता दूर होती है ।। १६।। यदि घोड़ा प्रियङ्गु, लोध तथा मधु के साथ अडूसे के रस अथवा पञ्चकोलादि (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ) से युक्त दूध पिये तो उसके कास रोग का नाश होता है । सभी प्रकार के प्रस्कंध (दौड़ आदि) से हुए सभी प्रकार के कष्टों में अश्व का पहले शोधन उत्तम है । उसके पश्चत् क्रमशः उसको, तैलमर्दन, उद्वर्तन, नस्य एवं वर्त्तिका करनी चाहिए ।। १८ ।। अश्वों के सभी प्रकार के ज्वरों में दुग्ध से ही चिकित्सा करनी चाहिए ।। १९ ।। लोधमूल, करञ्जमूल, बिजौरा नीबू, चित्रक, सोंठ, कूट, वच एवं रास्ना- इन सबों का लेप शोथ (सूजन) को दूर करता है ।। २० ।। घोड़े को निराहार रखकर, मजीठ, मुलहठी, मुनक्का, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, लाल चन्दन, खीरे का मूल और बीज, सिंघड़े का बीज तथा कसेरू- इनसे युक्त बकरी का दूध पकाकर अत्यन्त शीतल करके शक्कर के साथ पिलाने से घोड़ा रक्त प्रमेह से मुक्त हो जाता है ।। २१-२२ ।। मन्या, हनु तथा गर्दन की शिराओं में शोथ होने पर तथा गलग्रह रोग में उन-उन अंगों में कड़ुआ तेल का मर्दन ही उत्तम होता है ।। २३ ।। जलग्रह रोग तथा शोथ प्रायः गले में ही होते हैं । चिरचिरा,चित्रक,सैन्धव एवं सुगन्धित घास का रस पीपल तथा हींग के साथ नस्य देने पर अश्व कभी दुखी नहीं होता है ।। २४ ।। हल्दी, दारुहल्दी, मालकांगनी, पाढ़ा, पीपल, कूद्यट, वच तथा मधु- इन सबों का गुड़ एवं गोमूत्र के साथ अश्व की जिह्वा पर लेप करने से जिह्वा स्तम्भ समाप्त होता है ।। २५ ।। तिल, मुलहठी, हल्दी और नीम के पत्तों से निर्मित पिण्डी का मधु के साथ प्रयोग करने पर व्रण का शोधन होता है तथा घी के साथ प्रयोग करने पर घाव भर जाता है ।। २६ ।। अधिक चोट लगने के कारण वेदना से युक्त जो घोड़े लंगड़ाने लगते हैं उनके लिए तेल से सिंकाई करना शीघ्र ही रोग को दूर करता है ।। २७ ।। वात,

व्रणशोधनः । शताह्वा नागरंरास्ना मञ्जिष्ठाकुष्ठसैन्धवैः ॥ ३० ॥ देवदारुवचायुग्म रजनीरक्तचन्दनैः । तैलसिद्धं कषायेण गुडुच्याः पयसा सह॥३१॥ प्रक्षणे वस्तिनश्ये च योज्यं सर्वत्र लिङ्गिने । रक्तस्रावो जलौकाभिर्नेत्रान्ते नेत्ररोगिणः ॥ ३२ ॥ खादिरोदुम्बराश्वत्थ कषायेण च शोधनम् । धात्रीदुरालभातिक्ता प्रियङ्गुकुङ्कुमैः समैः ॥ ३३ ॥ गुडूच्या च कृतः कल्को हितो युक्तावलम्बिने । उत्पाते च शिले श्राव्ये शुष्कशेफे तथैव च ॥ ३४ ॥ क्षिप्रकारिणी दोषे च सद्यो विदलमिष्यते । गोशकृन् मञ्जिकाकुष्ठ रजनीतिलसर्षपैः ॥ ३२ ॥ गवां मूत्रेण पिष्टैश्च मर्दनं कण्डुनाशनम् । शीतो मधुयुतः क्वाथो नासिकायां सशर्करः ॥ ३६ ॥ रक्तपित्तहरः पानादश्वकर्णैस्तथैव च । सप्तमे सप्तमे देयमश्वानां लवणं दिने ॥ ३७ ॥ तथा भुक्तवतां देया अतिपाने तु वारुणी । जीवनीयैःसमधुरैर्मृद्वीकाशर्करायुतैः ॥ ३८ ॥ सपिप्पलीकैः शरदि प्रतिपानं सपद्मकैः। विड़ङ्गापिप्पलीधान्य शताह्वालोध्रसैन्धवैः ॥३९ ॥ सचित्रकैस्तुरङ्गाणां प्रतिपानं हिमागमे । लोध्रं प्रियङ्गुका मुस्ता पिप्पलीविश्वभेषजैः॥४०॥ सक्षौद्रैः प्रतिपानं स्याद् वसन्ते कफनाशनम् । प्रियङ्गु पिप्पलीलोध्र यष्ट्याक्षैः समहौषधैः ॥ ४१ ॥ निदाघे सगुडा देया मदिरा प्रतिपानके । लोध्रकाष्ठं सलवणं पिप्पल्यो विश्वभेषजम्॥ ४२ ॥ भवेत् तैलयुतैरेभिः प्रतिपानं घनागमे । निदाघोद्धतपित्तार्त्ता शरत्सु पुष्टशोणिताः ॥ ४३ ॥ प्रावृड्भिन्नपुरीषाश्च पिबेयुर्वाजिनो घृतम् । पिबेयुर्वाजिनस्तैलं कफवाय्वधिकास्तु ये॥ ४४॥ स्नेहव्यापद्भवो येषां कार्य्यं तेषां विरूक्षणम् । त्र्यहं

पित्त एवं कफ दोषों के कारण अथवा क्रोध के कारण चोट खा जाने से पके अथवा फूटे स्थानों के व्रण के लिए यह क्रम है । पीपल, गूलर पाकड़, मुलहठी, वट और बेल- इनका अत्यधिक जल में सिद्ध किये हुए थोड़े गर्म क्वाथ से धोने से व्रण का शोधन हो जाता है ।।२९।। सौंफ, सोंठ, रास्ना, कूट, सैन्धव, देवदारु, वच, हल्दी, दारुहल्दी, रक्तचन्दन- इन सबों का स्नेह क्वाथ करके गुडूची के जल के साथ अथवा दूध के साथ उद्वर्तन, वस्ति अथवा नस्य के रूप में प्रयोग सभी लिङ्गी दोषों में करना चाहिए ।। ३१ ।। नेत्र रोग से युक्त अश्व के नेत्र के अन्तिम भाग में जोंक से रक्त खिंचवाना चाहिए । खैर, गूलर और पीपल की छाल के क्वाथ से नेत्रों का शोधन होता है । युक्तावलम्बी अश्व के लिए आँवला, जवासा, पाठा, प्रियङ्गु, कुंकुम ओर गिलोय- इन सबों को बराबर-बराबर मिलाकर निर्मित किया गया कल्क लाभप्रद होता है।। ३३।। घोड़े के कर्ण सम्बन्धी दोष में एवं उपद्रव में, अनियमित वृत्ति में, लिङ्गसूख जाने की दशा में और शीघ्र हानि करने वाले दोषों में तत्काल वेधन करना चाहिए।। ३४।। गाय का गोबर, मजीठ, कूट, हल्दी, तिल एवं सरसों- इनको गोमूत्र में पीसकर मर्दन करने से, खुजली का नाश होता है ।। ३५ ।। शाल की छाल का क्वाथ ठंढा हो जाने पर मधु एवं शर्करा मिलाकर नाक में डालने से एवं उसी प्रकार से पिलाने से घोड़े का रक्तपित्त नष्ट होता है । घोड़ों को प्रत्येक सातवें दिन पर नमक देना चाहिए ।। ३७ ।। इसी तरह अश्वों के खा लेने पर यदि वे बहुत अधिक जल पीते हैं तो उन्हें वारुणी (मदिरा) शरद् ऋतु में पिलाना चाहिये । जीवनीय गण के द्रव्य (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली क्षीर काकोली, मुद्गपर्णी (वनमूंग) माषपर्णी (वन उड़द) जीवन्ती तथा मुलहठी, मधु, दाख, शक्कर, पिल्ली और पद्माक्ष सहित प्रतिपान में देना चाहिए ।।३८।। हेमन्त ऋतु में अश्वों को वायविडंग, पीपल, धनियाँ, सौंफ, लोध, सैन्धव लवण और चित्रक से युक्त प्रतिपान देना चाहिए ।। ३९ ।। वसन्त ऋतु में लोध, प्रियङ्गु मोथा, पीपल, सोंठ और मधु से युक्त प्रतिपान कफ नाशक माना गया है।।४०।। ग्रीष्म ऋतु में प्रतिपान के लिए प्रियङ्गु, पीपल, लोध, मुलहठी, सोंठ और गुड़ के साथ मदिरा देनी चाहिए ।। ४१ ।। वर्षा ऋतु में अश्वों के लिए प्रतिपान, तेल, लोध, लवण, पीपल और सोंठ के साथ देना चाहिए ।। ४२ ।। जो अश्व ग्रीष्म ऋतु में पित्त के प्रकोप से पीड़ित हो, शरत्काल में रक्त पनत्व से पीड़ित हो तथा वर्षाकाल के प्रारम्भ में जिनके गोबर फूट गये हों ऐसे अश्वों को घृत पिलाना चाहिए ।। ४३ ।। कफ एवं वात की अधिकता होने पर अश्वों को तेल पिलाना चाहिए जिन अश्वों के शरीर में स्नेह के आधिक्य से कोई कष्ट उत्पन्न हो गया हो, उनको रुक्ष बनाना चाहिए ।। ४४ ।। मट्ठा के साथ भोजन तथा तीन दिन तक यवागू पिलाने से अश्वों का रूक्षण होता है ।। ४५ ।। अश्वों के

यवागूरूक्षा स्याद् भोजनं तक्रसंयुतम् ॥ ४५ ॥ शरन्निदाघयोः सर्पिस्तैलं शीतवसन्तयोः । वर्षासु शिशिरे चैव वस्तौ यमकमिष्यते ॥ ४६ ॥
गुर्वभिष्यन्दिभक्तानि व्यायामं स्नानमातपम् । वायुवर्जञ्च वाहस्य स्नेहपीतस्य वर्जितम् ॥ ४७ ॥ स्नानं पानं शकृत्श्रेष्ठमश्वानां सलिलागमे ।
अत्यर्थं दुर्दिने काले पानमेकं प्रशस्यते ॥ ४८ ॥ युक्तशीतातपे काले द्विःपानं स्नपनं सकृत् । ग्रीष्मे त्रिस्नानपानं स्याच्चिरं तस्यावगाहनम् ॥४९॥
निस्तूषाणां प्रदातव्या यवानां चतुराढ़की । चणकव्रीहिमौद्गानि कलायं वापि दापयेत् ॥ ५० ॥ अहोरात्रेण चार्द्धस्य यवसस्य तुलादश । अष्टौ
शुष्कस्य दातव्याश्चतस्त्रोऽथ बुषस्य वा ॥ ५१ ॥ दूर्वा पित्तं यवः कासं वुषश्च श्लेष्मसञ्चयम् । नाशयत्यर्जुनः श्वासं तथा मानो बलक्षयम् ॥ ५२॥
वातिकाः पैत्तिकाश्चैव श्लेष्मजाः सान्निपातिकाः । न रोगाः पीड़यिष्यन्ति दूर्वाहारं तुरङ्गमम् ॥ ५३ ॥ द्वौ रज्जुबन्धौ दुष्टानां पक्षयोरुभयोरपि ।
पश्चाद्धनुश्च कर्त्तव्यों दूरकीलव्यपाश्रयः॥५४॥ वासेयुस्त्वास्तृते स्थाने कृतधूपनभूमयः । यत्नोपन्यस्तयवसाः सप्रदीपाः सुरक्षिताः । कृकवाक्वजकपयो
धार्य्याश्चाश्वगृहे मृगाः ॥ ५५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये अश्वचिकित्साकथनं नामोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८९ ॥

नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अश्वशान्तिः

शालिहोत्र उवाच– **अश्वशान्तिं प्रवक्ष्यामि वाजिरोगविमर्दनीम् । नित्यां नैमित्तिकीं काम्यां त्रिविधां शृणु सुश्रुत ! ॥ १ ॥ शुभे दिने श्रीधरञ्च**

वर्णित कर्म के लिए शरद् एवं ग्रीष्म ऋतु में घृत, हेमन्त एवं वसन्त में तैल तथा वर्षा एवं शिशिर में घी और तेल दोनों का प्रयोग करना चाहिए ।। ४६ ।। जिन अश्वों को स्नेह पान कराया गया है उनके लिए गुरु लारी, या अभिष्यन्दी (कफकारक) भात आदि भोजन, व्यायाम, स्नान, धूप तथा वायुरहित स्थान वर्जित हैं ।। ४७ ।। वर्षा ऋतु में अश्व को दिन में एक बार स्नान और पान कराना चाहिए किन्तु दुर्दिन में उसको केवल पान ही कराना चाहिए ।। ४८ ।। समशीतोष्णकाल में अश्व को दो बार पान ही कराना चाहिए ।। ४८ ।। ग्रीष्म ऋतु में अश्व को तीन बार स्नान और पान दोनों कराना चाहिए ।। ४९ ।। घोड़े के प्रतिदिन भूसा से रहित चार आढक यव खिलाना चाहिए । उसको चना, धान, मूँग, या मटर भी खाने को देना चाहिए ।। ५०।। अश्व को एक दिन और एक रात में पाँच सेर दूब खिलाना चाहिए । सूखी दूब हो तो आठ सेर और यदि भूसा हो तो चार सेर खिलाना चाहिए ।। ५१ ।। दूब पित्त का,जौ कास का, भूसी कफाधिक्य का, अर्जुन श्वास का तथा मानकन्द बलक्षय का नाश करता है ।। ५२ ।। दूर्वा का आहार करने वाले अश्व को, वातज, पित्तज, कफज और सन्निपात रोग से पीड़ित नहीं कर पाते हैं ।। ५३।। उसकी गर्दन में भी रस्सी का बन्धन लगाना चाहिए । रस्सियों को दूर के कील में बाँधना चाहिए ।। ५४ ।। घोड़ों को विस्तृत स्थान में रखना चाहिये जहाँ भूमि पर धूप लगती हो । यत्नपूर्वक धासों को रखें और अश्वशाला को प्रदीप से आलोकित और सुरक्षित होना चाहिए । अश्वशाला में मयूर, अंज, वानर और मृगों को रखना चाहिए ।। ५५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अश्व चिकित्सा वर्णन नामक दो सौ नवासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८९ ॥

शालिहोत्र ने कहा– सुश्रुत ! अब मैं घोड़ों के रोगों का मर्दन करने वाली अश्वशान्ति का वर्णन कर रहा हूँ। ये शान्तियाँ तीन प्रकार की होती हैं- नित्य, नैमित्तिक और काम्य । उन

श्रियमुच्चैःश्रवाश्च तम् । हयराजं समभ्यर्च्यसावित्रैर्जुहुयाद् घृतम्॥ २॥ द्विजेभ्यो दक्षिणां दद्यादश्ववृद्धिस्तथा भवेत् । अश्वयुक् शुक्लपक्षस्य पञ्चदश्याञ्चशान्तिकम् ॥ ३ ॥ वहिः कुर्य्याद् विशेषेण नाशत्यौ वरुणं यजेत् । समुल्लिख्य ततो देवीं शाखाभिः परिवारयेत् ॥ ४ ॥ घटान् सर्वरसैः पूर्वान् दिक्षु दद्यात् सवस्त्रकान् । यवाज्यं जुहुयात् प्राच्य यजेदश्वांश्च साश्विनान् ॥ ५ ॥ विप्रेभ्यो दक्षिणां दद्यान्नैमित्तिकमतः शृणु । मकरादौ हयानाञ्च पद्मैर्विष्णुं श्रियं यजेत् ॥ ६ ॥ ब्रह्माणं शङ्करं सोममादित्यञ्च तथाश्विनौ । रेवन्तमुच्चैःश्रवसं दिक्पालांश्च दलेष्वपि॥ ७॥ प्रत्येकं पूर्णकुम्भैश्च वेद्यां तत्सौम्यतः स्थले । तिलाक्षताज्यसिद्धार्थान् देवतानां शतं शतम् । उपोषितेन कर्त्तव्यं कर्म चाश्वरुजापहम् ॥ ८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये अश्वशान्तिकथनं नाम नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९० ॥

एकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

गजशान्तिः

शालिहोत्र उवाच– **गजशान्तिं प्रवक्ष्यामि गजरोगविमर्दनीम् । विष्णुं श्रियञ्च पञ्चम्यां नागमैरावतं यजेत्॥ १॥ ब्रह्माणं शङ्करं विष्णुं शक्रं वैश्रवणं यमम् । चन्द्रार्कौ वरुणं वायुमग्निं पृथ्वीं तथा च खम् ॥ २ ॥ शेषं शैलान् कुञ्जरांश्च ये तेऽष्टौ देवयोनयः । विरुपाक्षं महापद्मं भद्रं सुमनसं तथा॥३॥ कुमुदैरावतः पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः। सुप्रीतिकोऽञ्जनो नागा अष्टौ होमोऽथ दक्षिणाम् ॥४॥ गजाः शान्त्युदकासिक्ता वृद्धौ नैमित्तिकं**

सबों को तुम सुनो ।। १ ।। किसी शुभ दिन को श्रीभगवान् लक्ष्मी देवी तथा उच्चैःश्रवा के पुत्र हयराज की पूजा करके सविता देवता के मन्त्रों से घी का हवन करें ।। २ ।। इसके पश्चात् ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए ऐसा करने से अश्व की वृद्धि होती है । अश्व समृद्धि की कामना से आश्विन की पूर्णिमा को नगर से बाहर शान्ति कर्म करना चाहिए । इसमें विशेष रूप से अश्विनी कुमारों और वरुण देवता की पूजा करे ।। ३ ।। उसके बाद वेदी पर श्रीदेवी का चित्र पद्मासन के ऊपर बनाकर, उन्हें चारों ओर से वृक्षों की शाखाओंसे आवृत्त कर दें । सभी दिशाओं में समस्त रसों से पूर्ण कलशों की वस्त्र सहित स्थापना करे ।। ४ ।। इसके पश्चात् श्रीदेवी की पूजा करके उनकी प्रसन्नता के लिए जौ तथा घी का हवन करे । इसके पश्चात् अश्विनी कुमारों तथा अश्वों की पूजा करें और ब्राह्मणों को दक्षिणा दें ।। अब तुम नैमित्तिक अश्व शान्ति कर्म को सुनो ।। ५ ।। मकर आदि की संक्रान्तियों में अश्वों की पूजा करे और कमल से भगवान् विष्णु और श्रीदेवी की अर्चना करे । कमल के दलों में, ब्रह्मा, शंकर, सोम, आदित्य, अश्विनी कुमारों, रेवन्त, उच्चैःश्रवा तथा दिक्पालों की पूजा करे ।। ६-७ ।। प्रत्येक अर्चनीय देवताओं के निमित्त वेदी पर पूर्ण कलश स्थापित करना चाहिए और उन कलशों में उनके अधिष्ठित देवताओं की पूजा करें । फिर उन कलशों की उत्तर दिशा में तिल, अक्षत, घी, पीली सरसों की आहुतियाँ दें । प्रत्येक देवता के लिए एक सौ आठ आहुतियाँ दे । इस अश्व शान्ति कर्म को उपवास रहकर करना चाहिए । ऐसा करने से अश्वों के रोग दूर हो जाते हैं ।। ८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अश्वशान्ति वर्णन नामक दो सौ नब्बेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २९० ॥

शालिहोत्र ने कहा– अब मैं हाथियों के रोगों को नष्ट करने वाली गजशान्ति को बतला रहा हूँ । किसी भी शुक्ल पक्ष की पञ्चमी को विष्णु, लक्ष्मी, ऐरावत, हाथी की पूजा करें ।।१।। फिर ब्रह्मा, शिव, विष्णु, कुबेर, यम, चन्द्रमा, सूर्य, वरुण, वायु, अग्नि, पृथिवी, आकाश ।। २ ।। शेषनाग, पर्वत, विरूपाक्ष, महापद्म, भद्र, सुमनस तथा देवजातीय आठ हाथियों की पूजा करें ।। ३ ।। उन आठ हाथियों के नाम हैं- कुमुद, ऐरावत, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन और नील । इसके पश्चात् होम करके दक्षिणा दे ।। ४ ।। पुनः शान्ति कलश के जल

शृणु। गजानां मकरादौ च ऐशान्यां नगराद् वहिः ॥ ५ ॥ स्थण्डिले कमले मध्ये विष्णुं लक्ष्मीञ्च केशरे । ब्रह्माणं भास्करं पृथ्वीं यजेत् स्कन्दं ह्यनन्तकम्॥६॥ खं शिवं सोममिन्द्रादींस्तदस्त्राणि दले क्रमात् । वज्रं शक्तिञ्च दण्डञ्च तोमरं पाशकं गदाम् ॥ ७ ॥ शूलं पद्मं वहिर्वृन्ते चक्रे सूर्य्यं तथाश्विनौ । वसूनष्टौ तथा साध्यान् याम्येऽथ नैर्ऋते दले ॥ ८ ॥ देवानामङ्गिरसश्चाश्विभृगवो मरुतोऽनिले । विश्वेदेवांस्तथा दक्षे रुद्रा रौद्रेऽथ मण्डले॥ ९॥ वृत्तया रेखया तत्र देवान् वै वाह्यतो यजेत् । सूत्रकारानृषीन् वाणीं पूर्वादौ सरितो गिरीन् ॥ १० ॥ महाभूतानि कोणेषु ऐशान्यादिषु संयजेत् । पद्मं चक्रं गदां शङ्खं चतुरश्रन्तु मण्डलम्॥ ११॥ चतुर्द्वारं ततः कुम्भाः अग्न्यादौ च पताकिकाः । चत्वारस्तोरणा द्वारि नागानैरावतादिकान्॥१२॥ पूर्वादौ चौषधीभिश्च देवानां भाजनं पृथक् । पृथक्शताहुतीश्चाज्यैर्गजानर्च्य प्रदक्षिणम्॥ १३॥ नागं वह्निं देवतादीन् वाद्यैर्जग्मुः स्वकं गृहम्। द्विजेभ्यो दक्षिणां दद्यात् हयवैद्यादिकांस्तथा ॥१४॥ करिणं तु समारुह्य वदेत् कर्णन्तु कालवित् । नागराजेऽमृते शान्तिं कृत्वाऽमुस्मिन् जपेन् मनुम् ॥ १५ ॥ श्रीगजस्त्वं कृतो राज्ञा भवानस्य गजाग्रणीः । प्रभूर्माल्याग्रभक्तैस्त्वां पूजयिष्यति पार्थिवः ॥ १६ ॥ लोकस्तदाज्ञया पूजां करिष्यति तदा तव । पालनीयस्त्वया राजा युद्धेऽध्वनि तथा गृहे॥ १७॥ तिर्यग्भावं समुत्सृज्य दिव्यं भावमनुस्मर । देवासुरे पुरा युद्धे श्रीगजस्त्रिदशैः कृतः॥ १८॥ ऐरावतसुतः श्रीमानरिष्टो नाम वारणः । श्रीगजानान्तु तत् तेजः सर्वमेवोपतिष्ठते ॥ १९॥ तत्तेजस्तव नागेन्द्र ! दिव्यभावसमन्वितम् । उपतिष्ठतु भद्रं ते रक्ष राजानमाहवे ॥ २०॥ इत्येवमभिषिक्तं तमारोहेत शुभं नृपः। तस्यानुगमनं कुर्युः सशस्त्रनवसद्गजाः॥२१॥

से हाथियों का अभिषेक किया जाय । तो वे वृद्धि को प्राप्त होते हैं । अब तुम नैमित्तिक गजशान्ति को सुनो ।। ४ ।। मकर आदि की संक्रान्तियों में नगर से बाहर ईशानकोण में हाथियों का पूजन करें ।। ५ ।। वेदी के ऊपर कमल का निर्माण करे । उसके केसरों पर श्रीदेवी तथा विष्णु भगवान् की पूजा करे । उसके पश्चात् ब्रह्मा, सूर्य, पृथिवी, स्कन्द, अनन्त, ।। ६ ।। आकाश, शिव, सोम तथा इन्द्र आदि की पूजा करे । उस कमल के दलों पर क्रमशः उन देवताओं के अस्त्रों की पूजा करे । वज्र, शक्ति, दण्ड, तोमर, पाश, गदा, ।। ७ ।। शूल, पद्म आदि अस्त्रों की अर्चना करे । दलों के बाहरी भाग में चक्र में सूर्य तथा अश्विनी कुमारों की पूजा करे । दक्षिण दिशा में अष्टवसुओं तथा साध्य देवों की पूजा करें । नैर्ऋत्य कोण में भार्गवाङ्गिरस देवताओं की पूजा करे । वायव्य कोण में मरुद्गणों का, दक्षिण दिशा में विश्वेदेवों का और ईशानकोण में रुद्रगणों करा पूजन करे ।। ८-९ ।। वृत्त रेखा के द्वारा निर्मित अष्टदल कमल के बाहर, सरस्वती, सूत्रकार और महर्षियों की पूजा करनी चाहिए । पूर्वभाग में नदियों एवं पर्वतों की पूजा करे ।। १० ।। ईशानकोण आदि कोणों में महाभूतों की पूजा करें । पुनः पद्म, चक्र, गदा तथा शंख से सुशोभित चतुष्कोण एवं चार द्वारों वाले भूपुरमण्डल का निर्माण करके आग्नेय आदि कोणों में कलशों की स्थापना करे तथा चारों ओर पताकाओं एवं तोरणों का सन्निवेश करें । फिर सभी द्वारों पर ऐरावत आदि गजराजों का पूजन करे ।। ११-१२ ।। पूर्वादि दिशाओं में समस्त देवताओं के लिए अलग-अलग सर्वौषधि युक्त कलश स्थापित करे । फिर औषधियों की पूजा करके उनकी परिक्रमा करे । सभी देवताओं के लिए अलग-अलग सौ-सौ घी की आहुतियाँ दे ।। १३ ।। फिर गजराज, अग्नि तथा देवताओं को साथ लेकर बाजा-बजाते हुए अपने घर को लौटे। वहाँ ब्राह्मणों एवं गजचिकित्सकों को दक्षिणा दे ।। १४ ।। इसके पश्चात् कालवेत्ता विद्वान् गजराज पर बैठकर निम्नांकित मन्त्र उनके कान में कहें- उस नागराज (गजराज) के मर जाने पर शान्ति करके दूसरे हाथी के कान में मन्त्र पढे ।। १५ ।। राजा ने तुम्हें 'श्रीगज' के पद पर नियुक्त किया है । अब से तुम इस राजा के लिए गजाग्रणी हो । ये नरेश आज से गन्धमाल्य एवं उत्तम अक्षतों से तुम्हारी पूजा करेंगे ।। १६ ।। उन्हीं की आज्ञा से सभी लोग तुम्हारी पूजा करेंगे । तुमको युद्धभूमि, मार्ग एवं गृह में राजा की सदा रक्षा करनी चाहिए ।। १७ ।। गजराज ! अपने तिर्यग् (पशुयोनि) के भाव का त्याग करके तुम दिव्य योनि का स्मरण करो ।। १७ ।। देवासुर संग्राम में देवताओं ने- ऐरावत पुत्र श्रीमान् अरिष्ट को श्रीगज बनाया था ।। १८ ।। वह श्रीगजों का सम्पूर्ण तेज तुम्हारे भीतर विद्यमान् है । गजेन्द्र ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम्हारे भीतर विद्यमान दिव्य भाव से युक्त तेज उद्बुद्ध हो जाय । तुम रणांगण में राजा की रक्षा करो ।। २० ।।

शालास्वसौ स्थण्डिलेऽब्जे दिक्पालादीन्यजेद् वहिः । केशरेषु बलं नागं भुवञ्चैव सरस्वतीम्॥२२॥ मध्येषु डिण्डिमं प्राच्यं गन्धमाल्यानुलेपनैः! हुत्वा देयस्तु कलशो रसपूर्णो द्विजाय च ॥ २३ ॥ गजाध्यक्षं हस्तिपञ्च गणितज्ञञ्च पूजयेत् । गजाध्यक्षाय तं दद्यात् डिण्डिमं सोऽपि वादयेत् । शुभगम्भीरशब्दैः स्याज्जघनस्थोऽभिवादयेत् ॥ २४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गजशान्तिकथनं नामैकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९१ ॥

द्विनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

शान्त्यायुर्वेदः

धन्वन्तरिरुवाच– **गोविप्रपालनं कार्य्यं राज्ञा गोशान्तिमावदे । गावः पवित्रा माङ्गल्या गोषु लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ १ ॥ शकृन्मूत्रं परं तासामलक्ष्मीनाशनं परम् । गवां कण्डूयनं वारि शृङ्गस्याघौघमर्दनम्॥ २॥ गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिश्च रोचना । षड़ङ्गं परमं पाने दुःस्वप्नाद्यादिवारणम् ॥ ३॥ रोचना विषरक्षोघ्नी ग्रासदः स्वर्गगो गवाम् । यद्गृहे दुःखिता गावः स याति नरकं नरः ॥ ४ ॥ परगोग्रासदः स्वर्गी गोहितो ब्रह्मलोकभाक् । गोदानात् कीर्त्तनाद्रक्षां कृत्वा चोद्धरते कुलम् ॥ ५ ॥ गवांश्वासात् पवित्रा भूः स्पर्शनात् किल्विषक्षयः । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥ ६॥ एकरात्रोपवासश्च श्वपाकमपि शोधयेत् । सर्वाशुभ विनाशाय पुराचरितमीश्वरैः ॥ ७॥ प्रत्येकञ्च त्र्यहाभ्यस्त महासान्तपनं**

इस प्रकार से अभिषिक्त शुभ गजराज पर राजा चढ़े और उस गजराज का श्रेष्ठ शस्त्रधारी वीरों वाले नव श्रेष्ठ गज अनुगमन करें ।। २१ ।। राजा को गजशाला में जाकर भूमि पर अंकित कमल के बाहरी भाग में दिक्पालों आदि की पूजा करनी चाहिए । केसर के स्थान पर महाबली गजराज, भूदेवी और सरस्वती की पूजा करनी चाहिए ।। २२ ।। मध्य में गन्ध, पुष्प एवं चन्दन से डिण्डिम की पूजा एवं हवन करके ब्राह्मणों को रसपूर्ण कलश प्रदान करे ।। २३ ।। फिर राजा गजाध्यक्ष, हस्तिपक और ज्योतिषी का सत्कार करे । इसके पश्चात् डिण्डिम गजाध्यक्ष को दे। गजाध्यक्ष भी उस डिण्डिम को बजाये । गजाध्यक्ष गजराज के जघन प्रदेश पर चढ़कर उस डिण्डिम को शुभ एवं गम्भीर स्वर से बजाये ।। २४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का गजशान्ति वर्णन नामक दो सौ एकानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २९१ ॥

श्रीधन्वन्तरि भगवान् ने कहा– सुश्रुत ! राजा को गौओं तथा ब्राह्मणों का पालन करना चाहिए । अब मैं गोशान्ति का वर्णन कर रहा हूँ । गौएँ पवित्र एवं मंगलमयी हैं । गौओं में सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं ।। १ ।। गौओं का गोबर एवं मूत्र अलक्ष्मी के नाश का सर्वोत्तम साधन है । उनके शरीर को खुजलाना, सींगों को सहलाना और उनको जल पिलाना पाप समूह का नाश करने वाला है ।। २ ।। गोमूत्र, गोबर, गोदुग्ध, गोदधि, घृत और गोरोचन यह षडङ्ग (पञ्चगव्य) पान दुस्वप्न निवारण की सर्वोत्तम औषधि है ।। ३ ।। गोरोचन से विष तथा राक्षसों का विनाश होता है । गौओं को खिलाने वाला स्वर्गलोक का भागी होता है । जिसके घर में गायें दुःखी होती हैं वह नरकगामी होता है ।। ४ ।। दूसरों की गायों को घास देने वाला स्वर्गलोक जाता है, गौओं का कल्याण करने वाला ब्रह्मलोक का भागी होता है, गोदान, गो माहात्म्य कीर्तन और गोरक्षण के द्वारा मनुष्य अपने कुल का उद्धार करता है ।। ५ ।। पृथिवी गौओं के श्वास से पवित्र होती है, उनके स्पर्श से पापों का क्षरण होता है । यदि गोमूत्र, गोबर, घी, गोदुग्ध, गोदधि और कुश का जल, इन सबों को मिलाकर पीकर एक दिन उपवास करे तो इससे चाण्डाल भी पवित्र हो जाता है ।। ६ ।। प्राचीनकाल में देवताओं ने भी समस्त पापों के विनाश के लिए इस अनुष्ठान को किया था ।। ७ ।। इनमें से क्रमशः प्रत्येक वस्तु का भक्षण करके यदि

स्मृतम् । सर्वकामप्रदश्चैतत् सर्वाशुभविमर्दनम् ॥ ८॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रं पयसा दिवसानेकविंशतिम् । निर्मलाः सर्वकामाप्त्या स्वर्गगाः स्युर्नरोत्तमाः॥९॥ त्र्यहमुष्णं पिवेन् मूत्रं त्र्यहमुष्णं घृतं पिबेत् । त्र्यहमुष्णं पयः पीत्वा वायुभक्षः परं त्र्यहम् ॥ १० ॥ तप्तकृच्छ्रव्रतंसर्वपापघ्नं ब्रह्मलोकदम् । शीतैस्तु शीतकृच्छ्रं स्याद् ब्रह्मोक्तं ब्रह्मलोकदम्॥ ११॥ गोमूत्रेनाचरेत् स्नानं वृत्तिं कुर्य्याच्च गोरसैः । गोभिर्व्रजेच्च भुक्तासु भुञ्जीताथ च गोव्रती ॥ १२॥ मासेनैकेन निष्पापो गोलोकी स्वर्गगो भवेत् । विद्याञ्च गोमतीं जप्त्वा गोलोकं परमं व्रजेत् ॥ १३ ॥ गीतैर्नृत्यैरप्सरोभिर्विमाने तत्र मोदते । गावः सुरभयो नित्यं गावो गुग्गुलगन्धिकाः॥ १४॥ गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं परम् । अन्नमेव परं गावो देवानां हविरुत्तमम्॥ १५॥ पावनं सर्वभूतानां क्षरन्ति च वदन्ति च ! हविषा मन्त्रपूतेन तर्पयन्त्यमरान् दिवि ॥ १६॥ ऋषीणामग्निहोत्रेषु गावो होमेषु योजिताः । सर्वषामेव भूतानां गावः शरणमुत्तमम्॥ १७॥ गावः पवित्रं परमं गावो माङ्गल्यमुत्तमम् । गावः स्वर्गस्य सोपानं गावो धन्याः सनातनाः ॥ १८ ॥ नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च । नमो ब्रह्मसुतभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधाकृतम् । एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति॥ २०॥ देवब्राह्मणगोसाधुसाध्वीभिः सकलं जगत् । धार्य्यते वै सदा तस्मात् सर्वे पूज्यतमा मताः ॥ २१ ॥ पिबन्ति यत्र तत् तीर्थं गङ्गाद्या गाव एव हि । गवां माहत्म्यमुक्तं हि चिकित्साञ्च तथा शृणु ॥ २२ ॥ शृङ्गामयेषु धेनूनां तैलं दद्यात् ससैन्धवम्। शृङ्गवेरबलामांसकल्कसिद्धं समाक्षिकम् ॥ २३ ॥ कर्णशूलेषु सर्वेषु मञ्जिष्ठाहिङ्गुसैन्धवैः । सिद्धं तैलं प्रदातव्यं रसोनेनाथ वा पुनः ॥ २४ ॥

तीन-तीन दिन तक रहा जाय तो उसे 'महासान्तपन व्रत' कहते हैं । यह व्रत सम्पूर्ण कामनाओं को सिद्ध करने वाला और समस्त पापों का विनाश करने वाला है ।। ८ ।। केवल दूध पीकर इक्कीस दिन रहने से कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत होता है । इसके अनुष्ठान से श्रेष्ठ मानव समस्त अभीष्ट वस्तुओं को प्राप्त कर पापमुक्त हो जाता है और स्वर्ग को प्राप्त करता है ।। ९ ।। तीन दिन गर्म गोमूत्र पीकर रहे, तीन दिन गर्म घी, तीन दिन गर्म दूध तथा तीन दिन वायु पीकर रहने को तप्तकृच्छ्र व्रत कहते हैं । इसका अनुष्ठान करने वाले के समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं, और वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है ।। १० ।। यदि इन सभी ठंडी वस्तुओं को पीकर रहे तो शक्तिकृच्छ्र व्रत होता है । इसको ब्रह्माजी ने बतलाया है । इस व्रत के अनुष्ठान से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ।। ११ ।। गोव्रत करने वाले को चाहिए कि वह एक मास तक गोमूत्र से स्नान करे, गोरस (दुग्ध) पीकर रहे, गायों के पीछे चले और गायों के भोजन कर लेने के बाद भोजन करे। इस व्रत का अनुष्ठान करने वाला मनुष्य पापरहित होकर स्वर्गलोक को प्राप्त करता है ।। वह गोमती विद्या का जप करके गोलोक को प्राप्त करता है ।। १२-१३ ।। वहाँ पर वह अप्सराओं के साथ विमान पर बैठकर गीत नृत्य करता हुआ प्रसन्न होता है ।। गुग्गुल के समान सुगन्धि वाली गौएँ सुरभिरूपिणी होती हैं ।। १४ ।। गायें समस्त प्राणियों की प्रतिष्ठा हैं । वे परम मंगलमयी हैं, वे परम अन्न और देवताओं के लिए उत्तम हविष्य स्वरूप हैं ।। १५ ।। वे समस्त प्राणियों को पवित्र करने वाले गोदुग्ध और गोमूत्र का वहन एवं क्षरण करती हैं। वे स्वर्गलोक में देवताओं को मंत्र से पवित्र किए गये हविष्य के द्वारा देवताओं को तृप्त करती हैं ।। १६ ।। ऋषियों के अग्निहोत्र एवं होम कार्य में गायें प्रयुक्त होती हैं । गायें समस्त जीवों के सर्वोत्तम रक्षक हैं ।।१७।। गायें परम पवित्र हैं, वे सर्वोत्तम मंगलप्रद हैं । गायें स्वर्गलोक का सोपान हैं, वे सनातन धन्य हैं ।। १८ ।। श्रीमती सुरभिपुत्री गायों को नमस्कार है, पवित्र ब्रह्मा की पुत्री गायों को बार बार नमस्कार है ।। १९ ।। ब्राह्मण और गायें दोनों एक ही कुल की दो शाखायें हैं । एक में मन्त्र स्थित हैं और दूसरे (गायों) में हविष्य ।। २० ।। देवता, ब्राह्मण, गौ, साधु एवं साध्वी नारियाँ केवल इन पर संसार टिका है, अतएव ये सभी सर्वाधिक पूज्य हैं ।। २१ ।। जहाँ पर गायें जल पीती हैं, वह स्थान तीर्थ है । गंगा आदि नदियाँ गोस्वरूप हैं । यहाँ तक मैंने गायों का माहात्म्य बतलाया अब तुम गायों की चिकित्सा के विषय में सुनो ।। २२ ।। गायों के सींगों के रोगों में सोंठ, खरेटी और जटामांसी को सिल पर पिसकर उसमें मधु, सैन्धव और तेल मिलाकर प्रयोग करें।।२३।। गायों के सभी कानों के रोग में मञ्जीष्ठा, हींग और सैन्धव को डालकर सिद्ध किया हुआ तैल प्रयोग करना चाहिए या लहसून के साथ पकाया हुआ तैल प्रयोग करना चाहिए।।२४।।

विल्वमूलमपामार्गं धातकी च सपाटला । कुटजं दन्तशूलेषु लेपात् तच्छूलनाशनम् ॥ २५ ॥ दन्तशूलहरैर्द्रव्यैर्घृतं राम ! विपाचितम् । मुखरोगहरं ज्ञेयं जिह्वारोगेषु सैन्धवम् ॥ २६ ॥ शृङ्गवेरं हरिद्रे द्वे त्रिफला च गलग्रहे । हृच्छूले वस्तिशूले च वातरोगे क्षये तथा ॥ २७ ॥ त्रिफला घृतमिश्रा च गवां पाने प्रशस्यते । अतीसारे हरिद्रे द्वे पाठाञ्चैव प्रदापयेत्॥२८॥ सर्वेषु कोष्ठरोगेषु तथा शाखागदेषु च । शृङ्गवेरञ्च भागीञ्च कासे श्वासे प्रदापयेत् ॥ २९ ॥ दातव्या भग्नसन्धाने प्रियङ्गुर्लवणान्विता। तैलं वातहरं पित्ते मधुयष्टीविपाचितम् ॥ ३० ॥ कफे व्योषञ्च समधु सपुष्टकरजोऽस्त्रजे । तैलाज्यं हरितालञ्च भग्नक्षतिशृतं ददेत् ॥ ३१ ॥ माषास्तिलाः सगोधूमाः पशुक्षीरं घृतं तथा । एषां पिण्डी सलवणा वत्सानां पुष्टिदा त्वियम् ॥ ३२ ॥ बलप्रदा विषाणी स्याद् ग्रहनाशाय धूपकः । देवदारु वचा मांसी गुग्गुलुर्हिङ्गुसर्षपाः॥ ३३॥ ग्रहादिगदनाशाय एष धूपो गवां हितः । घण्टा चैव गवां कार्य्या धूपेनानेन धूपिता ॥ ३४॥ अश्वगन्धातिलैः शुक्लं तेन गौः क्षीरिणी भवेत् । रसायनञ्च पिण्याकं मत्तो यो धार्य्यते गृहे ॥ ३५ ॥ गवां पुरीषे पञ्चम्यां नित्यं शान्त्यै श्रियं यजेत् । वासुदेवञ्च गन्धाद्यैरपरा शान्तिरुच्यते॥ ३६॥ श्वयुक्शुक्लपक्षस्य पञ्चदश्यां यजेद्धरिम् । हरिरुद्रमजं सूर्य्यं श्रियमग्निं घृतेन च ॥ ३७ ॥ दधि सम्प्राश्य गाः पूज्य कार्य्यं वह्निप्रदक्षिणम् । वृषाणां योजयेद् युद्धं गीतवाद्यरवैर्वहिः॥३८॥ गवान्तु लवणं देयं ब्राह्मणानाञ्च दक्षिणा । नैमित्तिके मकरादौ यजेद् विष्णुं सह श्रिया ॥ ३९ ॥ स्थण्डिलेऽब्जे मध्यगते दिक्षु केशरगान् सुरान्। सुभद्राजो रविः पूज्यो बहुरूपो बलिर्वहिः ॥ ४० ॥ ख विश्वरूपा सिद्धिश्च ऋद्धिः शान्तिश्च रोहिणी । दिग्धेनवो हि पूर्वाद्याः कृशरैश्चन्द्र ईश्वर॥४१॥ दिक्पालाः पद्मपत्रेषु कुम्भेष्वग्नौ च होमयेत् । क्षीरवृक्षस्य समिधः सर्षपाक्षततण्डुलान् ॥ ४२ ॥ शतं शतंसुवर्णञ्च कांस्यादिकं द्विजे

समस्तदन्तशूलों में विल्वमूल, अपामार्ग, धातकी, पाटला और कूटज का लेप करना चाहिए । वह शूलनाशक होता है ।। २५ ।। दन्तशूलनाशक द्रव्यों और कूट को घी में पकाकर देने से मुख रोगों का निवारण होता है । जिह्वा रोगों में सैन्धव लवण प्रशस्त होता है ।। २६ ।। गलग्रह रोग में सोंठ, हल्दी, दारुहल्दी और त्रिफला का प्रयोग करना चाहिए । हृदयशूल, बस्तिशूल, वातरोग और क्षयरोग में, गोघृतमिश्रित त्रिफला का अनुपान प्रशस्त होता है ।। २७ ।। अतिसार में हल्दी, दारुहल्दी और पाठा देना चाहिए ।।२८।। सभी प्रकार के कोष्ठगत रोगों में पैर पुच्छ आदि के रोगों में, तथा कास, श्वास आदि अन्य साधारण रोगों में सोंठ एवं भारङ्गी देना चाहिए । २९ ।। हड्डी आदि के टूट जाने पर लवण मिलाकर प्रियंङ्गु का लेप करना चाहिए । तेल वातरोग का हरण करता है । पित्तरोगों में तेल में पकायी हुयी मुलहठी ।। ३० ।। कफ रोग में मधु सहित त्रिकटु तथा रक्त विकार में मजबूत नखों का भस्म देना चाहिए । भग्नक्षत में तेल एवं घी में पकाया हुआ हरताल देना चाहिए ।। ३१ ।। उड़द, तिल, गेहूँ, दुग्ध एवं घी को नमक के साथ मिलाकर पिण्डी देना गोवत्सों को पुष्ट बनाता है ।।३२।। विषाणी बल प्रदान करती है । ग्रहबाधा का विनाश करने के लिए धूप देना चाहिए । देवदारु बचा, जटामांसी, गुग्गुल, हींगु और सर्षप- इन सबों का धूप गौओं की ग्रहबाधा को दूर करने के लिए देना चाहिएण ।। ३३ ।। इस धूप से धूपित करके गायों के गले में घण्टा बाँधना चाहिए ।। ३४ ।। असगन्ध और तिल के साथ नवनीत खिलाने से गायें दुधारू होती हैं । जो बैल घर में मदोन्मत्त हो जाता हो उसके लिए हिंगु परम रसायन है ।। ३५ ।। शान्ति के लिए पञ्चमी तिथि को गोबर पर श्रीलक्ष्मी नारायण भगवान् का चन्दन आदि से सदा पूजन करना चाहिए। इसको अपराशान्ति कहते हैं ।। ३६ ।। आश्विन पूर्णिमा के दिन श्रीहरि का पूजन करें । विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा, श्री तथा अग्नि की पूजा घी से करें ।। ३७ ।। दही खाकर, गायों की पूजा करके अग्नि की प्रदक्षिणा करनी चाहिए । घर के बाहर बाजे आदि बजाते हुए वृषभ युद्ध का आयोजन करें ।। ३८ ।। फिर गायों को लवण दें और ब्राह्मणों को दक्षिणा । मकर आदि की संक्रान्ति के समय नैमित्तिक शान्ति के लिए वेदीस्थ कमल पर लक्ष्मी के साथ नारायण की पूजा करें । पूर्व आदि दिशाओं में केसर स्थान पर देवताओं की पूजा करें । कमल के बाहर मंगलमय ब्रह्मा, सूर्य, बहुरूप, बलि, आकाश ।। ४० ।। और विश्वरूप का सिद्धि, ऋद्धि, शान्ति और रोहिणी आदि (पूर्वादि दिशाओं की दिग्धेनुओं का, पूर्वादि दिशाओं में पूजन करें । चन्द्रमा और शिव का खिंचड़ी (कृशर) सो पूजन करें ।। ४१ ।।

ददेत् । गावः पूज्या विमोक्तव्याः शान्त्यै क्षीरादिसंयुताः ॥ ४३ ॥ अग्निरुवाच– शालिहोत्रः सुश्रुताय ह्यायुर्वेदमुक्तवान् । पालकाप्योऽङ्गराजाय गजायुर्वेदमब्रवीत् ॥ ४४॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शान्त्यायुर्वेदकथनं नाम द्विनवत्याधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९२ ॥

त्रिनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मन्त्रपरिभाषा

अग्निरुवाच– **मन्त्रविद्याहरिं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु । विंशत्यर्णाधिका मन्त्रा मालामन्त्राः स्मृता द्विज ! ॥ १ ॥ दशाक्षराधिका मन्त्रास्तदर्वाग्बीजसंज्ञिताः। वार्द्धक्ये सिद्धिदा ह्येते मालामन्त्रास्तु यौवने ॥ २ ॥ पञ्चाक्षराधिका मन्त्राः सिद्धिदाः सर्वदापरे । स्त्रीपुंनपुंसकत्वेन त्रिधाः स्युर्मन्त्रजातयः ॥ ३ ॥ स्त्रीमन्त्रा वह्निजायान्ता नमोऽन्ताश्च नपुंसकाः । शेषाः पुमांसस्ते शस्ता वश्योच्चाटविशेषु च ॥ ४ ॥ क्षुद्रक्रियामयध्वंसे स्त्रियोऽन्यत्र नपुंसकाः । मन्त्रावाग्नेय सौम्याख्यौ ताराद्यन्तार्द्धयोर्जपेत् ॥ ५ ॥ तारान्त्याग्निवियत्प्रायो मन्त्र आग्नेय इष्यते । शिष्टः सौम्यः प्रशस्तौ तौ कर्मणोः क्रूरसौम्ययोः ॥ ६ ॥ आग्नेयमन्त्रः सौम्यः स्यात् प्रायशोऽन्ते नमोऽन्वितः । सौम्यमन्त्रस्तथाग्नेयः फट्कारेणान्ततो युतः ॥७॥**

कलशस्थ कमलों पर दिक्पालों की पूजा करके अग्नि में दर्पण, अक्षत, तण्डुल और खैरवृक्ष की समिधाओं का होम करना चाहिए ।। ४२ ।। ब्राह्मणों को सौ-सौ भर सुवर्ण और कांस्य आदि धातु का दान करें । पुन क्षीर युक्त गौओं की पूजा करके उन्हें शान्ति के लिए छोड़ें ।। ४३ ।। **अग्निदेव ने कहा-** शालिहोत्र ने सुश्रुत को अश्वायुर्वेद का उपदेश दिया और पालकाप्य ने अङ्गराज को गजायुर्वेद का उपदेश दिया ।। ४४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का आयुर्वेद वर्णन नामक दो सौ बानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २९२ ॥

श्रीअग्निदेव ने कहा– हे द्विज वसिष्ठ ! अब मैं मन्त्रविद्या रूपी श्रीहरि का वर्णन कर रहा हूँ, जो भोग और मोक्ष दोनों को प्रदान करने वाला है उसे आप सुनें । बीस अक्षरों से अधिक अक्षरों वाले मन्त्र मालामन्त्र कहे जाते हैं ।। १ ।। दस अक्षरों के मन्त्र मन्त्र कहे जाते हैं और दस से कम अक्षरों वाले मन्त्र बीज मन्त्र कहे जाते हैं । माला मन्त्र वृद्धावस्था में सिद्ध होते हैं, मन्त्र युवावस्था में सिद्ध होते हैं और पाँच अक्षरों से अधिक और दस से कम अक्षरों वाले मन्त्र सर्वदा सिद्धि प्रदान करने वाले होते हैं ।। २ ।। मन्त्रों की तीन जातियाँ होती हैं- स्त्री, पुरुष और नपुंसक। जिन मन्त्रों के अन्त में स्वाहा शब्द लगता है, वे स्त्री जाति के मन्त्र होते हैं जिन मन्त्रों के अन्त में नमः पद लगता है, वे नपुंसक मन्त्र होते हैं । शेष सभी पुरुषजातीय मन्त्र हैं। वे वशीकरण और उच्चाटन में प्रशस्त माने गये हैं ।। ३-४ ।। क्षुद्र कार्यों तथा रोगों के विनाश के लिए स्त्री मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है और अन्य कार्यों में नपुंसक मन्त्रों का । मन्त्रों के दो भेद होते हैं- आग्नेय और सौम्य । जिन मन्त्रों के आदि में प्रणव लगता है, वे आग्नेय मन्त्र हैं । जिन मन्त्रों के अन्त में प्रणव लगे वे मन्त्र सौम्य कहलाते हैं । जिस समय सूर्य नाड़ी चलती है उस समय आग्नेय मंत्र का जप करना चाहिए और जिस समय चन्द्रनाड़ी चलती हो उस समय सौम्य मन्त्र का जप करना चाहिए ।। ५ ।। जिस मन्त्र में तार (ओम्) अन्त्य (क्षः अग्नि (र) तथा विपत् (इ) का अधिक प्रयोग हो वह मन्त्र आग्नेय माना जाता है । ये दोनों प्रकार के मन्त्र क्रमशः क्रूर एवं सौम्य कर्मों में प्रशस्त माने गये हैं ।। ६ ।। यदि आग्नेय मन्त्रों के अन्त में नमः पद लगा दिया जाय तो वे सौम्य हो जाते हैं और सौम्य मन्त्रों के भी अन्त में यदि फट् पद लगा दिया जाय तो वे आग्नेय हो जाते हैं ।। ७ ।। यदि मन्त्र सोया हो या सोकर तत्काल जगा हो तो वह

सुप्तः प्रबुद्धमात्रो वा मन्त्रः सिद्धिं न यच्छति । स्वापकालो महाबाहो जागरो दक्षिणावहः॥ ८॥ आग्नेयस्य मनोः सौम्यमन्त्रस्यैतद् विपर्य्ययात्।
प्रबोधकालं जानीयादुभयोरुभयोरहः॥९॥ दुष्टर्क्षराशिविद्वेषि वर्णादीन् वर्जयेन् मनून्। राज्यलाभोपकाराय प्रारभ्यारिः स्वरः कुरून्॥१०॥ गोपालककुटीं

सिद्धिप्रद नहीं होता है । जब वाम नाड़ी चलती हो तो वह आग्नेय मन्त्र के सोने का समय होता है, यदि दाहिनी नाड़ी चलती हो तो वह आग्नेय मन्त्र के जागरण का काल होता है ।। ८ ।। सौम्य मन्त्र के सोने और जागने का काल आग्नेय मन्त्र के सोने और जागने के काल के विपरीत होता है । जिस समय दोनों नाड़ियाँ चलती रहती हैं उस समय दोनों प्रकार के मन्त्रों के जागरण का काल होता है ।। ९ ।। दुष्ट नक्षत्र, दुष्ट राशि तथा शत्रु रूप अक्षरों वाले मन्त्रों का त्याग अवश्य कर देना चाहिए । (साधक के नाम के प्रथम अक्षर को तथा मन्त्र के प्रथम अक्षर को लेकर गणना करके यह जानना चाहिए कि वह मन्त्र साधक के लिए अनुकूल है अथवा प्रतिकूल? इस बात को ही संकेतित करता है राज्यलाभोप० इत्यादि श्लोक।) श्लोक के राज्य से लेकर फुल्लौ तक लिपि को बतलाया गया है । नारायणीय तन्त्र में इसकी व्याख्या करते हुए बतलाया गया है कि- अश्वनी से लेकर उत्तरा भाद्र पद तक के छब्बीस नक्षत्रों में अ से लेकर ह तक के अक्षरों को बाँटना चारए । किस नक्षत्र में कितने अक्षर लिए जायेंगे, इस बात का संकेत ही राज्य० इत्यादि श्लोक देता है । श्लोक के 'रा' से लेकर 'ल्लौ' तक छब्बीस अक्षर हैं, ये छब्बीस नक्षत्रों के प्रतीक हैं । तन्त्रशास्त्र के अनुसार केवल व्यञ्जनों का ही ग्रहण किया जाता है, स्वरों का नहीं । सभी व्यञ्जनों को कवर्ग, टवर्ग, पवर्ग एवं यवर्ग में बाँटा जाता है । संकेत लिपिका जो जो अक्षर जिस वर्ग का प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ अक्षर है, उसमें उतनी ही संख्यायें ली जायेंगी । संयुक्ताक्षरों में अन्तिम अक्षर ही लिया जायेगा स्वरों पर कोई संख्या नहीं है । उदाहरणार्थ उपर्युक्त अक्षर का पहला अक्षर 'रा' है, यह य वर्ग का द्वितीय अक्षर है उससे दो संख्या ली जायेगी । इस तरह 'रा'से संकेत मिलता है कि अश्विनी नक्षत्र में अ ये दो अक्षर लिए जायेंगे । 'ज्य' यह संयुक्त तथा यवर्ग का प्रथम अक्षर है । यह संकेतित करता है कि भरणी नक्षत्र में एक अक्षर इ लिया जायेगा ।

श्लोक के अनुसार निम्नांकित चक्र बनता है–

संकेताक्षर	अक्षर संख्या
रा	२
ज्य	१
ला	३
भो	४
प	१
का	१
रा	२
य	१
प्रा	२
र	२
भ्या	१
रिः	२

नक्षत्र	अक्षर
अश्विनी	अ आ
भरणी	इ
कृत्तिका	ई उ ऊ
रोहिणी	ऋ ॠ ऌ ॡ
मृगशिरा	ए
आर्द्रा	ऐ
पुनर्वसु	ओ औ
पुष्य	क
आश्लेषा	ख ग
मघा	घ ङ
पूर्वाफाल्गुनी	च
उत्तरा फाल्गुनी	छ ज

प्रायात् फुल्लाबित्युदिता लिपिः। नक्षत्रेक्षक्रमाद् योज्या स्वरान्त्यौ रेवतीयुजौ ॥ ११ ॥ वालं गौरं खुरंशोणं शमी शोभेति भेदिताः। लिप्यर्णा राशिषु ज्ञेया षष्ठेशादींश्च योजयेत् ॥ १२ ॥ लिपौ चतुष्पथस्थायामाख्यवर्णपदान्तराः । सिद्धाः साध्या द्वितीयस्थाः सुसिद्धा वैरिणः परे ॥ १३॥

ख	२	हस्त	झ ञ
रः	२	चित्रा	ट ठ
कु	१	स्वाती	ड
रून्	२	विशाखा	ढ ण
गो	३	अनुराधा	त थ द
पा	१	ज्येष्ठा	ध
ल	३	मूल	न, प, फ
क	१	पूर्वाषाढ़ा	ब
कु	१	उत्तराषाढ़ा	भ
टी	१	श्रवण	म
प्रा	२	धनिष्ठा	य र
यान्	१	शतभिष	ल
फु	२	पूर्वाभाद्रपद	व श
ल्लौ	३	उत्तराभाद्रपद	ष, स, ह

अं अः ये स्वर रेवती नक्षत्र के साथ संबद्ध होते हैं ।। ११ ।। पूर्व श्लोक के ही समान इस श्लोक के 'वा' से लेकर 'भ' तक के बारह अक्षर मेष आदि १२ राशियों को संकेतित करते हुए अपने वर्ग एवं संख्या को भी बोधित करते हैं । अतएव वा ४ लं ३ गौ ३ रं ३ खु २ रं २ शो ५ णं ५ श ५ मी ५ शो ५ भा ४ इन संख्या में विभक्त आदि अक्षरों को क्रमशः मेषादि राशियों का जानना चाहिए। श, ष, स, ह तथा स्वरान्त्य अं एवं अः इन सभी वर्णों को छठी कन्या राशि के साथ जोड़ देना चाहिए । क्ष कार का मीन राशि में योग होता है ।। १२ ।। इन अक्षरों का राशिचक्र इस प्रकार जानना चाहिए—

संकेतिक वर्ण	**संख्या**	**अक्षर**	**राशि**
वा	४	अ आ इ ई	मेष
लं	३	उ ऊ ऋ	वृष
गौ	३	ॠ ऌ ॡ	मिथुन
रं	२	ए ऐ	कर्क
खु	२	ओ औ	सिंह

सिद्धादीन् कल्पयेदेवं सिद्धात्यन्तगुणैरपि। सिद्धे सिद्धो जपात् साध्यो जपपूजाहुतादिना ॥ १४ ॥ सुसिद्धो ध्यानमात्रेण साधकं नाशयेदरिः। दुष्टार्णप्रचुरो यः स्यान् मन्त्रःसर्वविनिन्दितः ॥ १५ ॥ प्रविश्य विधिवद् दीक्षामभिषेकावसानिकाम् । श्रुत्वा तन्त्रं गुरोर्लब्धं साधयेदीप्सितं मनुम्॥१६॥ धीरो दक्षः शुचिर्भक्तो जपध्यानादितत्परः। सिद्धस्तपस्वी कुशलस्तन्त्रज्ञः सत्यभाषणः॥ १७॥ निग्रहानुग्रहे शक्तो गुरुरित्यभिधीयते।

रं	२	अं अः	कन्या
शो	५	क ख ग घ ङ	तुला
णं	५	च, छ, ज, झ, ञ	वृश्चिक
श	५	ट, ठ, ड, ढ, ण	धनु
मी	५	त, थ, द, ध, न	मकर
शो	५	प, फ, ब, भ, म	कुम्भ
भा	४	य, र, ल, व, क्ष	मीन

(इस राशि ज्ञान का उपयोग यह है कि साधक के नाम का आदि वर्ण जहाँ हो उस राशि से मन्त्र के आदि अक्षर की राशि तक गिने । जो संख्या आये उसी के अनुसार फल जानना चाहिए। इन बारह संख्याओं के बारह भाव होते हैं । उन भावों के नाम हैं- तन, धन, सहज, सुहृद, पुत्र, रिपु, जाया, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय और व्यय । मन्त्र के अक्षर यदि मृत्यु, शत्रु तथा व्यय भाव के अन्तर्गत आते हैं तो उनको नहीं जपना चाहिए ।) चौकोर स्थान पर पाँच रेखाएँ पूर्व से पश्चिम की ओर तथा पश्चिम से पूर्व की ओर खींचकर सोलह प्रकोष्ठ बनाना चाहिए । उनमें क्रमशः सोलह स्वरों को लिखना चाहिए । उसके पश्चात् उसी क्रम से व्यञ्जनों को भी लिखना चाहिए । तीन आवृत्ति होने पर चौथी आवृत्ति में प्रथम दो कोष्ठों के भीतर क्रमशः 'ह' और 'क्ष' लिखकर सब अक्षरों की पूर्ति कर लेनी चाहिए। इन सोलह कोष्ठों में प्रथम चार पंक्तियाँ सिद्ध दूसरी चार पंक्तियाँ साध्य, तीसरी चार पंक्तियाँ सुसिद्ध और अन्तिम चार पंक्तियाँ अरि हैं ।। १३ ।। इस तरह से सिद्ध, साध्य, एवं सुसिद्ध आदि की कल्पना करनी चाहिए । अपने नाम के ही अनुसार मन्त्र साधक को फल भी प्रदान करते हैं । साधक के नाम का आदि अक्षर जिस चतुष्क में पड़ता है, मन्त्र का आदि अक्षर भी यदि उसी चतुष्क में पड़ता है तो वह उसके लिए है, यदि तीसरे चतुष्क में पड़े तो वह उसके लिए सुसिद्ध मन्त्र होगा और यदि चतुर्थ चतुष्क में पड़े तो वह उसके लिए अरिमन्त्र है ।। १३ ।। सिद्ध मन्त्र जपमात्र से फलप्रद होता है । साध्यमन्त्र जप, पूजा तथा आहुति प्रदान करने से फलप्रद होता है । सुसिद्ध मन्त्र केवल ध्यान करने से फलप्रद होता है। अरि मन्त्र साधक का नाश कर देता है ।। १४ ।। मन्त्रों का सिद्धादि चक्र निम्नांकित प्रकार का होगा-

चतुष्क	**मन्त्रों के वर्ण**			
प्रथम	अ क थ ह	आ ख द क्ष	इ ग ध	ई घ न
द्वितीय	उ ङ प	ऊ च फ	ऋ छ ब	ॠ ज भ
तृतीय	ऌ झ म	ॡ भ य	ए ट र	ऐ ठ ल
चतुर्थ	ओ ड व	औ ढ श	अं ण ष	अ त स

जिन मन्त्रों में दुष्टवर्णों की संख्या अधिक हो उन मन्त्रों की सबों ने निन्दा की है ।। १५ ।। शिष्य को चाहिये कि वह विधिपूर्वक दीक्षा में प्रवेश लेकर गुरु के सन्निकट में बैठकर तान्त्रिक मन्त्र और उसकी विधि का श्रवण करे फिर उस मन्त्र की सिद्धि करे ।। १६ ।। जो धीर, दक्ष, पवित्र, भक्तिभाव से सम्पन्न, जप ध्यान आदि में तत्पर रहने वाला, सिद्ध, तपस्वी, कुशल, तन्त्रवेत्ता,

शान्तो दान्तः पटुश्चीर्ण ब्रह्मचर्य्यो हविष्यभुक् ॥ १८ ॥ कुर्वन्नाचार्य्यशुश्रूषां सिद्धोत्साही स शिष्यकः । स तूपदेश्यः पुत्रश्च विनयी वसुदस्तथा॥१९॥ मन्त्रं दद्यात् सुसिद्धौ तु सहस्त्रं देशिको जपेत् । यदृच्छया श्रुतं मन्त्रं छलेनाथ बलेन वा ॥ २०॥ पत्रे स्थितञ्च गाथाञ्च जनयेद् यद्यनर्थकम् । मन्त्रं यः साधयेदेकं जपहोमार्चनादिभिः॥ २१॥ क्रियाभिर्भूरिभिस्तस्य सिध्यन्ते स्वल्पसाधनात् । सम्यक्सिद्धैकमन्त्रस्य नासाध्यमिह किञ्चन ॥ २२॥ बहुमन्त्रवतः पुंसः का कथा शिव एव सः । दशलक्षजपादेकवर्णो मन्त्रः प्रसिध्यति॥ २३॥ वर्णवृद्ध्या जपह्रासस्ते नान्येषां समूहयेत् । बीजाद् द्वित्रिगुणान् मन्त्रान् मालामन्त्रे जपक्रिया ॥ २४ ॥ ! सङ्ख्यानुक्तौ शतं साष्टंसहस्त्रं वा जपादिषु । जपाद् दशांशं सर्वत्र साभिषेकं हुतं विदुः ॥ २५॥ द्रव्यानुक्तौ घृतं होमे जपोऽशक्तस्य सर्वतः । मूलमन्त्राद् दशांशः स्यादङ्गादीनां जपादिकम् ॥ २६ ॥ जपात् सशक्तिमन्त्रस्य कामदा मन्त्रदेवताः। साधकस्य भवेत् तृप्ता ध्यानहोमार्चनादिना ॥ २७ ॥ उच्चैर्जपाद् विशिष्टः स्यादुपांशुर्दशभिगुणैः । जिह्वाजपे शतगुणः सहस्त्रो मानसः स्मृतः॥२८॥ प्राङ्मुखोऽवाङ्मुखो वापि मन्त्रकर्म समारभेत् । प्रणवाद्यः सर्वमन्त्रो वाग्यतो विहिताशनः ॥ २९ ॥ आसीनस्तु जपेन् मन्त्रान् देवताचार्यतुल्यदृक्। कुटिविविक्तदेशाः स्युर्देवालय नदीह्रदाः॥३०॥ सिद्धो यवागूपूपैर्वा पयौ भक्ष्यं हविष्यकम्। मन्त्रस्य देवता तावत् तिथिवारेषु पूजयेत् ॥ ३१ ॥

सत्यभाषी, निग्रह एवं अनुग्रह में समर्थ हो वह गुरु कहलाता है ।। १७ ।। शिष्य को शान्त (अपने मन को वश में रखने वाला) दान्त (जितेन्द्रिय) पटु सामर्थ्यवान्, तपस्वी, ब्रह्मचारी, हविष्यान्न का भोजन करने वाला, आचार्य की सेवा करने वाला, सिद्ध तथा उत्साही होना चाहिए ।। १८ ।। इस प्रकार के शिष्य को तथा अपने पुत्र को मन्त्र का उपदेश देना चाहिए। शिष्य को विनयी तथा आचार्य को धन देने वाला होना चाहिए । गुरु ऐसे शिष्य को मन्त्र का उपदेश दे और शिष्य की सुसिद्धि के लिए स्वयं आचार्य भी उस मन्त्र का एक सहस्त्र जप करे।।१९।। अचानक कहीं से सुने हुए, छल पूर्वक अथवा बल पूर्वक प्राप्त किए हुए अथवा पत्रे में लिखे हुए या गाथा में सुने हुए मन्त्र को नहीं जपना चाहिए । ऐसे मन्त्र का जप करने से अनर्थ होने की संभावना रहती है ।। २० ।। जो साधक, जप, होम तथा अर्चना आदि के द्वारा तथा कठिन परिश्रम पूर्ण क्रियाओं के द्वारा मन्त्र की सिद्धि में लगा रहता है, उसको मन्त्र की सिद्धि स्वल्पकाल एवं स्वल्पसाधन में ही हो जाती है ।। २१ ।। जिसने एक मन्त्र को भी अच्छी तरह से सिद्ध कर लिया है उसके लिए इस जगत् में कुछ भी असाध्य नहीं है । जिसने बहुत से मन्त्रों को सिद्ध कर लिया है, उसके माहात्म्य को क्या कहना है ? वह तो साक्षात् शिव स्वरूप है ।। २२ ।। एक अक्षर का मन्त्र दस लाख जप करने से सिद्ध हो जाता है। मन्त्र के वर्णों में ज्यों-ज्यों वृद्धि होती है त्यों-त्यों उसके जप की संख्या में कमी होती जाती है । इसी प्रकार से अन्य मन्त्रों के जप की संख्या के विषय में तर्क कर लेना चाहिए ।।२३।। बीज मन्त्रों की अपेक्षा माला मन्त्रों की जप संख्या दो गुना अथवा तीन गुना होती है । जिस मन्त्र में जप की संख्या नहीं बतलायी गयी है उस मन्त्र की जप संख्या एक सौ आठ अथवा एक हजार आठ समझनी चाहिए ।। २४ ।। सभी मन्त्रों में जप के दशांश हवन तथा उसके दशांश तर्पण का विधान मिलता है । जिस मन्त्र के होम द्रव्य को नहीं बतलाया गया हो उसका होम द्रव्य घी होता है । होम के अभाव में उतना ही मन्त्र का जप करना चाहिए ।। २५ ।। मूल मन्त्र की अपेक्षा दशांश उसके अंग मन्त्रों का जप करना चाहिए । सशक्तिमन्त्र का जप करने से मन्त्र के देवता प्रसन्न होकर साधक को अभीष्ट फल प्रदान करते हैं । वे साधक के द्वारा किए गये ध्यान, होम तथा अर्चना से तृप्त होते हैं ।। २७ ।। उच्च स्वर से किए गये जप की अपेक्षा उपांशु (मन्द स्वर से किया गया) जप दस गुना श्रेष्ठ होता है । केवल जीभ हिलाकर जप किया जाय तो वह सौ गुना श्रेष्ठ होता है। मानस जप एक हजार गुना श्रेष्ठ होता है ।।२८।। मन्त्र जप के कर्म का सम्पादन या तो पूर्वाभिमुख होकर करना चाहिए अथवा दक्षिणाभिमुख होकर । सभी मन्त्रों के आदि में प्रणव लगाकर जप करना चाहिए । जप मौन होकर तथा विहित आहार लेकर ही करना चाहिए ।। २९ ।। जप बैठकर करना चाहिए । जप करने वाले के अपने आचार्य तथा मन्त्र के देवता दोनों में एक समान श्रद्धा करनी चाहिए । कुटी, एकान्त स्थान, देवालय, नदी अथवा जलाशय ये जप करने के लिए उत्तम स्थान माने गये हैं ।। ३० ।। मन्त्र के जप की सिद्धि के लिए जौ की लप्सी, मालपूआ, दुग्ध एवं हविष्यान्न का भोजन करना चाहिए । साधक को चाहिए कि वह मन्त्र के देवता की तिथि,

कृष्णाष्टमीचतुर्दश्योर्ग्रहणादौ च साधकः । दस्रो यमोऽनलो धाता शशी रुद्रो गुरुर्दितिः ॥ ३२॥ सर्पाः पितरोऽथ भगोऽर्यमा शीतेतरद्युतिः । त्वष्टा मरुत इन्द्राग्नी मित्रेन्द्रौ निर्ऋतिर्जलम्॥३३॥ विश्वेदेवा हृषीकेशो वायवः सलिलाधिपः । अजैकपादहिर्बुध्नः पूषाश्विन्यादिदेवताः॥ ३४॥ अग्निदस्रावुमा निघ्नो नागस्स्कन्दो दिवाकरः । मातृदुर्गा दिशामीशः कृष्णो वैवस्वतः शिवः ॥ ३५ ॥ पञ्चदश्याः शशाङ्कस्तु पितरस्तिथिदेवताः । हरो दुर्गा गुरुर्विष्णुर्ब्रह्मा लक्ष्मीर्धनेश्वरः॥ ३६॥ एते सूर्य्यादिवारेशा लिपिन्यासोऽथ कथ्यते । केशान्तेषु च वृद्धेषु चक्षुषोः श्रवणद्वये॥ ३७॥ नासागण्डौष्ठदन्तानां द्वे द्वे मूर्द्धास्ययोः क्रमात्। वर्णान् पञ्चसुवर्गाणां बाहुचरणसन्धिषु॥३८॥ पार्श्वयोः पृष्ठतो नाभौ हृदये च क्रमान् न्यसेत् । यादींश्च हृदये न्यस्येदेषां स्युः सप्तधातवः ॥ ३९ ॥ त्वगसृङ्मांसकस्नायुमेदोमज्जाशुक्राणि धातवः । वसाः प्राणो वासको लिख्यन्ते चैव लिपीश्वराः ॥ ४० ॥ श्रीकण्ठोऽनन्तसूक्ष्मौ च त्रिमूर्त्तिरमरेश्वरः। अधीशो भारभूतिश्च तिथीशः स्थाणुको हरः ॥ ४१ ॥ झिण्टीशो भौतिकः सद्योजातश्चानुग्रहेश्वरः । अक्रूरश्च महासेनः स्वरस्था देवता अमूः॥ ४२॥ ततः क्रोधीशचण्डौ च पञ्चान्तकशिवोत्तमौ । तथैव रुद्रकूर्मौ त्रिनेत्रो चतुराननः॥ ४३॥ अजेशः सर्वसोमेशौ तथा लाङ्गलिदारुकौ । अर्द्धनारीश्वरश्चोमा कान्तश्चाषाढिदण्डिनौ॥ ४४॥ अत्रिमीनश्च मेषश्च लोहितश्च शिखी तथा। छगलाण्डद्विरण्डो

वार कृष्ण पक्ष की अष्टमी दोनों पक्षों की चतुर्दशी तथा ग्रहण आदि के अवसर पर मन्त्र के देवता की पूजा करे ।। ३१ ।। अश्विनी कुमार, यमराज, अग्नि, धाता, चन्द्रमा, रुद्र, बृहस्पति, अदिति, सर्प, पितृगण, भग, अर्यमा, सूर्य, त्वष्टा, वायु, इन्द्राग्नि, मित्र, इन्द्र, निऋति, जल ।। ३३ ।। विश्वेदेव, विष्णु, वसुगण, वरुण, अजैकपात्, अहिबुर्ध्न्य और पूषा ये क्रमशः अश्विनी आदि नक्षत्रों के देवता हैं ।। ३४ ।। अग्नि, अश्विनीकुमार, पार्वती, गणेश, नाग, स्कन्द, सूर्य, मातृगण, दुर्गा,दिगीश, विष्णु, यम तथा शिव ये प्रतिपदा से लेकर चतुर्दशी पर्यन्त तिथियों के देवता हैं ।। ३५ ।। पूर्णिमा के देवता चन्द्रमा हैं । अमावस्या के देवता पितृगण हैं । रविवार आदि दिनों के देवता क्रमशः शिव, दुर्गा, वृहस्पति, विष्णु, ब्रह्मा, लक्ष्मी और कुबेर हैं । अब मैं लिपिन्यास का वर्णन करता हूँ ।। ३६ ।। (ओं अं नमः केशान्तेषु) ओं आं नमः मुखे । ओं इं नमः दक्षिणानेत्रे ओं ईं नमः वामनेत्रे। ओं उं नमः दक्षिणकर्णे । ओं ऊं नमः वामकणे । ओं ऋं नमः दक्षिणनासायाम् । ओं ॠं नमः वाम नासायाम् । ऌं नमः दक्षिणकपोले । ओं ॡं नमः वामकपोले । ओं एं नमःऊर्ध्वोष्ठे । ओंऐं नमः अधरोष्ठे । ओं ओं नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ । ओं औं नमः अधोदन्तपंक्तौ । ओं अं नमः मूर्ध्नि । ओं अः नमः मुखवृत्ते ।। ३७ ।। ओं कं नमः, दक्षिणबाहुमूले । ओं खं नमः दक्षिण कूर्परे । ओं गं नमः दक्षिणमणिबन्धे । ओं घं नमःदक्षिणहस्तांगुलि मूले । ओं ङं नमःदक्षिण हस्ताङ्गुल्यग्रे । ओं चं नमः वाम बाहुमूले । ओं छं नमः वाम कूर्परे । ओं गं नमः वाममणिबन्धे । ओं झं नमः वामहस्ताङ्गुलिमूले । ओं ञं नमः वाम हस्ताङ्गुलग्रे । ओं टं नमःदक्षिणपादमूले । ओं ठं नमः दक्षिण जानुनि । ओं डं नमः दक्षिणगुल्फे । ओं ढं नमः दक्षिण पादाङ्गुलिमूले । ओं णं नमः दक्षिणपादाङ्गुल्यग्रे । ओं तं नमः वामपादमूले। ओं थं नमः वामपादजानुनि । ओं दं नमः वामगुल्फे । ओं धं नमः वामपादाङ्गुलिमूले । ओं नं नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे । ओं पं नमः दक्षिणपार्श्वे। ओं फं नमः वामपार्श्वे । ओं बं नमः पृष्ठे । ओं भं नमः नाभौ। ओं मं नमः उदरे । ओं यं त्वगात्मने नमः वामासे। ओं रं असृगात्मने नमः दक्षांसे । ओं लं मांसात्मने नमः ककुदि । ओं वं मेदात्मने नमः वामांसे । ओं शं अस्थ्यात्मने नमः । हृदयादिदक्षहस्तान्तम् । ओं षं मज्जात्मने नमः हृदयादिवामहस्तान्तम् । ओं सं शुक्रात्मने नमः हृदयादिदक्षपादान्तम् । ओं हं परमात्मने नमः हृदयादिवामपादान्तम् । ओं लं प्राणात्मने नमः, जठरे। ओं क्षं वासात्मने नमः मुखे ।।) अब लिपीश्वरों को लिखा जा रहा है ।। ४० ।। श्रीकण्ठ, अंनन्त, सूक्ष्म, त्रिमूर्ति,अमरेश्वर, अधीश, भारभूति, तिथीश, स्थाणुक, हर ।। ४१ ।। झिण्टीश, भौतिक, सद्योजात, अनुग्रहेश्वर, अक्रूर, महासेन ये स्वराधिष्ठातृ देवता हैं ।। ४२ ।। क्रोधीश, चण्डीश, पञ्चान्तक, शिवोत्तम, एकरुद्र, कूर्म, एकनेत्र,चतुरानन ।। ४३ ।। अजेश, सर्वेश, सोमेश, लाङ्गलि, दारुक, अर्द्धनारीश्वर, उमाकान्त, आषाढ़ी, दण्डी ।। ४३ ।। अत्रि, मीन, मेष, लोहित, शिखी, छागलाण्ड, द्विरण्ड, महाकाल, कपाली, भुजङ्गेश, पिनाकी, खड्गीश, बक, श्वेत, भृगु, लगुडीश, संवर्त्तक ये व्यञ्जन वर्णों के अधिष्ठातृ देवता हैं ।। ४४-४६ ।। श्रीकण्ठ आदि रुद्रों की शक्तियों को लिखकर तथा अन्त में नमः पद लगाकर उनका न्यास करना चाहिए

द्वौ महाकालकपालिनौ॥ ४५॥ भुजङ्गश्च पिनाकी च खड्गीशश्च वकः पुनः। श्वेतो भृगुर्लगुडीशाक्षश्च संवर्त्तक स्मृतः ॥ ४६॥ रुद्रात्मशक्तीन् लिख्यादीन् नमोऽन्तान् विन्यसेत् क्रमात्। अङ्गानि विन्यसेत् सर्वे मन्त्राः साङ्गास्तु सिद्धिदाः॥ ४७॥ हृल्लेखाव्योमपूर्वाण्येतान्यङ्गानि विन्यसेत्। हृदादीन्यङ्गमन्त्रान्तैर्यो जपेद्धृदये नमः ॥ ४८॥ स्वाहा शिरस्यथ वषट् शिखायां कवचे च हूम्। वौषट् नेत्रेऽस्त्राय फट् स्यात् पञ्चाङ्गं नेत्रवर्जितम्॥४९॥ निरङ्गस्यात्मना चाङ्गं न्यस्येमां नियुतं जपेत्। क्रमाभ्यां देवीं वागीशीं यथोक्तांस्तु तिलान् हुनेत् ॥ ५० ॥ लिपिदेवी साक्षसूत्रकुम्भपुस्तकपद्मधृक्। कवित्वादि प्रयच्छेत कर्मादौ सिद्धये न्यसेत्। निष्कविर्निर्मलः सर्वे मन्त्राः सिद्ध्यन्ति मातृभिः ॥ ५१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मन्त्रपरिभाषाकथनं नाम त्रिनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९३ ॥

चतुर्नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नागलक्षणानि

अग्निरुवाच– **नागोदयोऽथ भावादि दशस्थानानि मर्म च। सूतकं दष्टचेष्टेति सप्तलक्षणमुच्यते ॥ १ ॥ शेषवासुकितक्षाख्याः कर्कटोब्जो महाम्बुजः। शङ्खपालश्च कुलिक इत्यष्टौ नागवर्य्यकाः॥२॥ दशाष्टपञ्च त्रिगुण शतमूर्द्धान्वितौक्रमात्। विप्रौ नृपौ विशौ शूद्रौ द्वौ द्वौ नागेषु कीर्त्तितौ॥३॥**

(श्रीविधार्णव तन्त्र में स्वरों की तथा व्यञ्जनों की रुद्रशक्तियों का उल्लेख है। उसके अनुसार- पूर्णोदरी, विरजा, शाल्मली, लोलाक्षी, वर्तुलाक्षी, दीर्घघोणा, सुदीर्घमुखी, गोमुखी, दीर्घजिह्वा, कुण्डोदरी, ऊर्ध्वकेशी, विकृतमुखी, ज्वालामुखी, उल्कामुखी, श्रीमुखी तथा विद्यामुखी, ये रुद्रों की स्वरशक्तियाँ हैं। महाकाली, महासरस्वती, सर्वसिद्धि गौरी, त्रैलोक्य विद्या, मन्त्रशक्ति, आत्मशक्ति, भूतमाता लम्बोदरी, द्राविणी, नागरी, खेचरी, मञ्जरी, रूपिणी, वीरिणी, काकोदरी, पूतना, भद्रकाली, योगिनी, शंखिनी, गर्जिनी, कालरात्रि, कूर्दिनी, कपर्दिनी, वज्रिका, जया, रेवती, माधवी, वारुणी, वायवी, रक्षोविदारिणी, सहजा, लक्ष्मी, व्यापिनी और महामाया- ये व्यञ्जन स्वरूपा रुद्रशक्तियाँ हैं।) इनका न्यास इस प्रकार करना चाहिए- (ह्सौं अं श्रीकण्ठाय पूर्णोदर्यै नमः। ह्सौं आं अनन्ताय विरजाये नमः इत्यादि।) इन मन्त्रों का अङ्गन्यास भी करना चाहिए। सभी मन्त्र अंगन्यास करने से सिद्धिप्रद करते हैं।। ४७ ।। हृल्लेखा को व्योमबीज से युक्त करके हृदयादि न्यास करना चाहिए। अङ्ग मन्त्रों को अन्त में जोड़कर न्यास करना चाहिए। जैसे- ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रूं शिखायै वषट्, ह्रैं कवचाय हुम्, ह्रौं नेत्राभ्यां वौषट्, ह्रः अस्त्राय फट्। यह षडङ्गन्यास है। पञ्चाङ्गन्यास में नेत्र को छोड़ दिया जाता है।। ४७-४९ ।। निरङ्गमन्त्र का उसके स्वरूप से ही अंगन्यास करके वागीश्वरी देवी (ह्रीं) का एक लाख जप करना चाहिए। उसके पश्चात् दशांश तिलों की आहुति देनी चाहिए।। ५० ।। लिपियों की अधिष्ठात्री वागीश्वरी देवी अपने चारों हाथों में क्रमशः अक्षमाला, कलश, पुस्तक तथा कमल धारण किए हुई हैं। ये कवित्व आदि की शक्ति प्रदान करती हैं। सिद्धि प्राप्त करने के लिए इनका न्यास जप कर्म के आदि में करना चाहिए। इससे अकवि भी निर्मल कवि हो जाता है। मातृका न्यास से सभी मन्त्र सिद्ध होते हैं।। ५१।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का मन्त्रपरिभाषा वर्णन नामक दो सौ तिरानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २९३ ॥

अग्निदेव ने कहा– वसिष्ठ अब मैं नागों की उत्पत्ति, सर्पदंश में अशुभ नक्षत्र आदि सर्पदंश के विविधभेद, सर्पदंश के स्थान, मर्मस्थल, सूतक सर्पदंष्टमनुष्य की चेष्टायें इन सात बातों

तदन्वयाः पञ्चशतं तेभ्यो जाता असंख्यकाः । फणिमण्डलिराजीलवातपित्तकफात्मकाः ॥ ४ ॥ व्यन्तरादोषमिश्रास्ते सर्पा दर्वीकराः स्मृताः । स्थाङ्गलाङ्गलच्छत्र स्वस्तिकाङ्कुशधारिणः ॥ ५ ॥ गोनसा मन्दगा दीर्घा मण्डलैर्विविधैश्चिताः । राजीलाश्चित्रिताः स्निग्धास्तिर्य्यगूर्ध्वञ्च राजिभिः॥६॥ व्यन्तरा मिश्रचिह्नाश्च भूवर्षाग्नेयवायवः । चतुर्विधास्ते षड्विंशभेदाः षोडश गोनसाः॥ ७॥ त्रयोदश च राजीला व्यन्तरा एकविंशतिः। येऽनुक्तकाले जायन्ते सर्पास्ते व्यन्तराः स्मृताः ॥ ८ ॥ आषाढ़ादित्रिमासैः स्याद् गर्भो मासचतुष्टये । अण्डकाना शते द्वे च चत्वारिंशत् प्रसूयते॥९॥ सर्पा ग्रसन्ति सूतौघान् विना स्त्रीपुन्नपुंसकान् । उन्मीलतेऽक्षि सप्ताहात् कृष्णो मासाद् भवेद् वहिः ॥ १० ॥ द्वादशाहात्सुबोधः स्यात् दन्ताः स्युः सूर्य्यदर्शनात्। द्वात्रिंशद्दिनविंशत्या चतस्रस्तेषु दंष्ट्रिकाः ॥ ११ ॥ कराली मकरी कालरात्री च यमदूतिका । एतास्ताः सविषा दंष्ट्रा वामदक्षिणपार्श्वगाः॥ १२॥ षण्मासान् मुच्यते कृत्तिं जीवेत् षष्टिसमाद्वयम् । नागाः सूर्य्यादिवारेशाः सप्त उक्ता दिवा निशि ॥ १३ ॥ स्वेषां षट् प्रतिवारेषु कुलिकः सर्वसन्धिषु। शङ्खेण वा महाब्जेन सह तस्योदयोऽथवा॥ १४॥ द्वयोर्वा नाड़िकामन्त्रमन्त्रकंकुलिकोदयः। दुष्टः स कालःसर्वत्र सर्पदंशे विशेषतः॥१५॥ कृत्तिका भरणी स्वाती मूलं पूर्वत्रयाश्विनी । विशाखार्द्रा मघाश्लेषा चित्रा श्रवणरोहिणी ॥ १६ ॥ हस्तो मन्दकुजौ वारौ पञ्चमी चाष्टमी तिथिः। षष्ठी रिक्ता शिवा निन्द्या पञ्चमी च चतुर्दशी ॥ १७ ॥ सन्ध्याचतुष्टयं दुष्टं दग्धयोगाश्च राशयः । एकद्विबहवो दंशा दष्टविद्धञ्च खण्डितम् ॥१८॥

का वर्णन करता हूँ।। १ ।। शेष, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंखपाल तथा कुलिक ये आठ श्रेष्ठ नाग हैं ।। २ ।। इनमें क्रमशः दो-दो नाग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जाति के बतलाये गये हैं । ये क्रमशः एक हजार, आठ सौ, पाँच सौ तथा तीन सौ फणों वाले होते हैं ।। ३ ।। उनके वंशज पाँच सौ प्रकार के नाग हैं और उनसे असंख्य प्रकार के नाग हुए।। ये नाग आकारभेद से फणी, मण्डली, राजील नाम से अभिहित किए जाते हैं तथा ये क्रमशः वात, पित्त और कफप्रधान होते हैं ।। ४ ।। इनके अतिरिक्त व्यन्तर, दोषमिश्र और दर्वीकर नामक भी सर्प होते हैं । यह चक्र, हल, छत्र, स्वस्तिक तथा अंकुश के चिह्नों से चिह्नित होते हैं ।। ५ ।। गोनस सर्प, मन्दगामी लम्बा तथा अनेक प्रकार के मण्डलों से चित्रित होता है । रागिल सर्प स्निग्ध होता है तथा इसके ऊर्ध्वभाग तथा पार्श्वभाग-रेखाओंसे चित्रित होते हैं ।। ६ ।। व्यन्तर सर्प मिश्रित चिह्नों से युक्त होता है तथा इनके चार भेद होते हैं, पार्थिव, आप्य, आग्नेय और वायवीय। इनके छब्बीस अवान्तर भेद होते हैं । गोनस सर्पों के सोलह भेद होते हैं ।। ७ ।। राजील सर्पों के तेरह भेद होते हैं, और व्यन्तर सर्पो के इक्कीसभेद होते हैं । सर्पों की उत्पत्ति के जो काल बतलाये गये हैं उनसे भिन्न कालों में उत्पन्न होने वाले सर्प व्यन्तर कहलाते हैं ।। ८ ।। आषाढ़ से लेकर तीन महिनों तक सर्पों की गर्भ की स्थिति होती है । गर्भ स्थिति के पूरा होने पर सर्पिणी दो सौ चालीस अण्डे उत्पन्न करती है ।। ९ ।। सर्पशावकों के अण्डे से बाहर निकलते ही उनके स्त्री, पुरुष तथा नपुंसक चिह्नों के उत्पन्न होने से पूर्व ही सर्पगण अपने बच्चों को खा जाते हैं । कृष्णसर्प आँख खुलने पर एक सप्ताह पर अण्डे से बाहर निकलता है ।। १० ।। बारह दिन पर उसको ज्ञान होता है । बीस दिन पर सूर्य का दर्शन करने पर उसके बत्तीस दाँत निकल जाते हैं और उनमें चार दाढ़ होते हैं ।। ११ ।। सर्प की बायीं ओर दाहिनी ओर की दाढ़ें क्रमशः कराली, मकरी, कालरात्रि और यमदूतिका नाम की होती हैं और ये विषयुक्त होती हैं ।। १२।। सर्प छह मास में एक बार केंचुल छोड़ता है और एक सौ बीस वर्ष तक जीवित रहता है । शेष आदि सात नाग सूर्य आदि सात बारों के स्वामी होते हैं । जो नाग दिन का स्वामी होता है वह रात्रि का भी स्वामी होता है ।। १३ ।। शेष आदि सात नाग अपने-अपने वारों में उदित होते हैं किन्तु कुलिक सबों की सन्धि में उदित होता है । अथवा कुलिक का उदय शंखपाल अथवा महाब्ज के साथ माना जाता है ।। १४ ।। अथवा शंखपाल और महापद्म के बीच को दो घड़ियों में कुलिक का उदय होता है । यह सभय सभी प्रकारक सर्पदंश में विशेष रूप से दोषयुक्त माना जाता है ।।१५।। कृत्तिका, भरणी, स्वाती, मूल, तीनों पूर्वा (पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढा और पूर्वाभाद्रपद) अश्विनी, विशाखा, आर्द्रा, मघा, श्लेषा, चित्रा, श्रवण, रोहिणी ।। १६ ।। तथा हस्त नक्षत्र शनिवार एवं मंगलवार, पञ्चमी, अष्टमी, षष्ठी तथा रिक्त (चतुर्थी नवमी एवं चतुर्दशी) ये तिथियाँ सर्पदंश में निन्द्य हैं ।। १७ ।। यदि सर्प चारो सन्ध्याओं, दो तथा तीन सर्पदंशों

अदंशमवगुप्तं स्याद् दंशमेवं चतुर्विधम् । त्रयो द्व्येकक्षता दंश वेदना रुधिरोल्वणा॥ १९॥ नक्तन्त्वेकांघ्रिकूर्माभा दंशाश्च यमचोदिताः । दाहीपिपीलिकास्पर्शी कण्ठशोथरुजान्वितः ॥ २० ॥ सतोदो ग्रन्थितो दंशःसविषोऽन्यस्तुनिर्विषः । देवालये शून्यगृहे वल्मीकोद्यानकोटरे ॥२१॥ रथ्यासन्धौ श्मशाने न नद्याञ्च सिन्धुसङ्गमे । द्वीपे चतुष्पथे सौधे गृहेऽब्जे पर्वताग्रतः॥ २२॥ विलद्वारे जीर्णकूपे जीर्णवेश्मनि कुड्यके । शिग्रुश्लेष्मातकाक्षेषु जम्बूदुम्बरणेषु च ॥ २३॥ वटे च जीर्णप्राकारे खास्यहृत् कक्षजत्रुणि । तालौशङ्खे गले मूर्ध्नि चिबुके नाभिपादयोः ॥ २४॥ दंशोऽशुभः शुभो दूतः पुष्पहस्तः सुवाक् सुधीः । लिङ्गवर्णसमानश्च शुक्लवस्त्रोऽमलः शुचिः ॥२५ ॥ अपद्वारगतःशस्त्री प्रमादी भूगतेक्षणः । विवर्णवासाः पाशादिहस्तो गद्गदवर्णवाक् ॥ २६॥ शुष्ककाष्ठाश्रितः खिन्नस्तिलाक्तककरांशुकः ॥ २७॥ आर्द्रवासाः कृष्णरक्तपुष्पयुक्तशिरोरुहः कुचमर्दी नखच्छेदी गुदस्पृक् पादलेखकः । केशलुञ्ची तृणच्छेदी दुष्टा दूतास्तथैकशः॥ २८॥ इडान्या वा वहेद् द्वेधा यदिदूतस्य चात्मनः । आभ्यां द्वाभ्यां पुष्टयास्मान् विद्यास्त्रीपुन्नपुंसकान् ॥ २९ ॥ दूतः स्पृशति यद्गात्रं तस्मिन् दंशमुदाहरेत् । दूताङ्घ्रिचलनं दुष्टमुत्थितिर्निश्चला शुभा॥ ३०॥ जीवपार्श्वे शुभो दूतो दुष्टोऽन्यत्र समागतः । जीवो गतागतैर्दुष्टः शुभो दूतनिवेदने ॥ ३१॥ दूतस्य वाक् प्रदुष्टा सा पूर्वामजार्द्धनिन्दिता । विभक्तैस्तस्य वाक्यान्तैर्विषनिर्विषकालता ॥ ३२ ॥ आद्यैः स्वरैश्च काद्यैश्च वर्गैर्भिन्नालिपिर्द्विधा । स्वरजो वसुमान् वर्गी इतिक्षेपा च मातृका॥३३॥ वाताग्नीन्द्रजलात्मानो वर्गेषु च चतुष्टयम् । नपुंसकाः पञ्चमाः स्युः स्वराः शक्राम्बु योनयः ॥ ३४ ॥ दुष्टौ दूतस्य वाक्यादौ वाताग्नी मध्यमो हरिः।

को क्रमशः दष्ट, विद्ध एवं खण्डित कहते हैं ।। १८ ।। जब सर्प का स्पर्शमात्र हो जाय किन्तु सर्प काटे नहीं तो उसे अदंश कहते हैं । इसमें मनुष्य सुरक्षित रहता है । सर्पदंश चार प्रकार का होता है। इनमें तीन, दो एक दंश वेदना जनक तथा रुधिर स्राव कराने वाले होते हैं ।। १९ ।। सर्प के द्वारा रात्रि में एक पैर के समान तथा कूर्म के आकार वाले दंश यम प्रेरित होते हैं। शरीर में दाह उत्पन्न करने वाले, जिसमें चींटियों के चलने जैसा अनुभव होता हो तथा कण्ठ शोथ नामक रोग उत्पन्न कर देने वाला एवं व्यथा जनक गाँठ वाला सर्पदंश विषयुक्त होता है । इससे भिन्न प्रकार कादंश निर्विष होता है ।। २० ।। देवमन्दिर, शून्यगृह, वल्मीक, उद्यान, वृक्ष के कोटर में । दो गलियाँ जहाँ मिलती हों या दो मार्ग जहाँ मिलते हों, श्मशान, नदी में, जहाँ पर नदी एवं समुद्र मिलते हों, द्वीप में, चौराहे पर, राजप्रासाद में, गृह में, कमलवन में, पर्वत के शिखर पर ।। २२ ।। विल के द्वार पर, पुराने कुएँ में, पुराने घर में, दीवालों में, शोभाञ्जन लिसोडा आदि के वृक्ष पर, जामुन, गूलर के वृक्ष पर, बँसवारि में ।। २३ ।। वटवृक्ष पर, चाहारदिवारी में, सर्प निवास करते हैं । इन्द्रिय द्वार, मुख, हृदय, कक्ष, जत्रु (ग्रीवामूल) तालु, ललाट तथा ग्रीवा, ग्मिर, चिबुक (ठुड्डी) नाभि और पैर ।। २४ ।। इन स्थानों में सर्प का दंश अशुभ होता है । विषचिकित्सक को सूचना देने वाला यदि हाथ में पुष्प लिए हो, सुन्दर वाणी बोलता हो, बुद्धिमान् हो, सर्पदंष्ट मनुष्य के समान जाति तथा लिङ्ग का हो, श्वेत वस्त्रधारी हो एवं पवित्र हो तो शुभ माना जाता है ।। २५ ।। जो दूत मुख्य द्वार से भिन्न द्वार से आया हो, शस्त्र धारण किए हो, प्रमादी हो, भूमि पर आँखें गड़ाये हो, फटा चिटा कपड़ा पहने हो, हाथ में पाश आदि लिए हो, गद्गद वाणी बोलता हो ।। २६ ।। सूखे हुए काष्ठ पर बैठा हो, उदास हो, हाथ में काला तिल लिए हो, अथवा उसके कपड़े पर लालरंग के धब्बे हों, भीगा हुआ कपड़ा पहने हो, जिसके मस्तक के बालों पर काल और लाल रंग के फूल पड़े हों ।। २७ ।। अपने स्तनों का मर्दन, नखों का छेदन अथवा गुदा का स्पर्श कर रहा हो, पैर के नखों से भूमि को खुरच रहा हो, केशों को खुजला रहा हो, तृण तोड़ रहा हो, इस प्रकार के दूत अशुभ एवं दोषयुक्त होते हैं।।२८।। अपनी अथवा दूत की इडा अथवा पिंगला या दोनों ही नाड़ियाँ चल रही हों, उन दोनों के इन चिह्नों से डँसने वाले सर्प को क्रमशः स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक जानना चाहिए ।। २९ ।। दूत अपने जिस अंग का स्पर्श करे रोगी के उसी अंग में सर्पदंश समझना चाहिए । यदि दूत के पैर चंचल हों तो अशुभ और स्थिर हों तो शुभ होते हैं ।। ३० ।। आया हुआ दूत यदि किसी जीव के बगल में स्थित हो तो शुभ होता है और अन्यत्र स्थित हो तो अशुभ होता है । दूत के निवेदन के समय किसी जीव का आना शुभ होता है और गमन अशुभ होता है ।। ३१ ।। यदि दूत की वाणी दोष युक्त अथवा सुस्पष्ट नहीं प्रतीत हो रही हो तो अशुभ माना जाता है और दूत के स्पष्ट एवं विभक्त वाणी के द्वारा यह ज्ञात होता है कि सर्प का दंश विषयुक्त है अथवा विषरहित।।३२।।

प्रशस्ता वारुणा वर्णा अतिदुष्टा नपुंसकाः ॥ ३५ ॥ प्रस्थाने मङ्गलं वाक्यं गर्जितं मेघहस्तिनोः । प्रदक्षिणं फलं वृक्षो वामस्य च रुतं जितम्॥ ३६॥ शुभा गीतादिशब्दाः स्युरीदृशं स्यादसिद्धये । अनर्थगीरथाक्रन्दो दक्षिणे विरुतं क्षुतम्॥ ३७॥ वेश्या विप्रो नृपः कन्या गौर्दन्ती मुरजध्वजौ । क्षीराज्यदधिशङ्खाम्बु छत्रं भेरी फलं सुराः ॥ ३८ ॥ तण्डुला हेम रूप्यञ्च सिद्धयेऽभिमुखा अमी। सकाष्ठःसानलः कारुर्मलिनाम्बरभारभृत्॥ ३९॥ गलस्थटङ्को गोमायुगृध्रोलूककपर्दिकाः । तैलं कपालकार्पासा निषेधे भस्म नष्टये ॥ ४०॥ विषरोगाश्च सप्तस्युर्धातोर्धात्वन्तराप्तितः । विषदंशो ललाटं यात्यतो नेत्रं नतो मुखम्। आस्याच्च वचनीनाड्यौ धातून् प्राप्नोति हि क्रमात् ॥ ४१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नागलक्षणादिकथनं नाम चतुर्नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९४ ॥

पञ्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दष्टचिकित्सा

अग्निरुवाच– **मन्त्रध्यानौषधैर्दष्ट चिकित्सां प्रवदामि ते । ओं नमो भगवते नीलकण्ठायेति। जपनाद् विषहानिः स्यादौषधं जीवरक्षणम् ॥ १॥ साज्यं शकृद्रसं पेयं द्विविधं विषमुच्यते। जङ्गमं सर्पमूषादि शृङ्गादि स्थावरं विषम् ॥२॥ शान्तस्वरान्वितो ब्रह्मा लोहितं तारकं शिवः । वियतेर्नाममन्त्रोऽयं**

वाक्य के आदि में स्वर वर्ण और कादि वर्ण के प्रयोग भेद से लिपि के दो भेद होते हैं । यदि वाक्य के आदि में दूत स्वर वर्ण का प्रयोग करे तो सर्पदष्ट मनुष्य की जीवन रक्षा और कादि वर्गों के प्रयुक्त होने पर अशुभ की आशंका होती है । यह मातृका विधान है ।। ३३ ।। कवर्गादि के प्रथम चार अक्षर क्रमशः वायु, अग्नि, इन्द्र और वरुण देवताक होते हैं । वर्गों के पंचम अक्षर नुपंसक होते हैं । ह्रस्व स्वर इन्द्रदेवताक होते हैं और दीर्घ स्वर वरुण देवताक होते हैं ।। ३४ ।। दूत के वाक्य के आदि में यदि बायु एवं अग्निदैवत्य अक्षर दूषित होते हैं, ऐन्द्र अक्षर मध्यम फलप्रद होते हैं, वरुणदैवत्य प्रशस्त तथा नपुंसक वर्ण अत्यन्त अशुभ होते हैं ।। ३५ ।। विषचिकित्सक के चलते समय यदि मंगलमय वचन, मेघ और गजराज की गर्जना सुनायी दे दक्षिण पार्श्व में फलयुक्त वृक्ष हों अथवा वाम पार्श्व में पक्षियों का कलरव हो रहा हो तो शुभ होता है । उससे उसकी सफलता की सूचना मिलती है ।। ३६ ।। उस समय गीत आदि के शब्द सुनायी दे तो शुभ होता है । यदि दाहिनी ओर अनर्थ भरी वाणी, चक्रवाक का रुदन तथा पक्षियों का कलरव तथा छींक सुनायी देना अनर्थकारी होता है ।। ३७ ।। यदि सामने से वेश्या, ब्राह्मण, राजा, कन्या, गौ, हाथी, ढोलक, ध्वजा, दुग्ध, घी, दधि, शंख, जल, छत्र, भेरी, फल, मदिरा, चावल, सोना और चाँदी आयें तो ये शुभ के सूचक होते हैं ।। ३८ ।। काष्ठ एवं आग से युक्त बढई, मलिन कपड़ा पहने बोझ ढोने वाला, गले में टंक लटकाये हुए पुरुष, शृगाल, गृध्र, उल्लू, कौड़ी, तेल, कपाल, कपास तथा निषिद्ध भस्म ये सर्पदष्ट की मृत्यु को सूचित करते हैं ।। ४० ।। विष के एक धातु सेदूसरे धातु में प्रवेश कर जाने से सात प्रकार के विष सम्बन्धी रोग होते हैं । विषदंश पहले ललाट में, ललाट से नेत्र में और नेत्र से मुख में चला जाता है । मुख से वह समस्त धमनियों में चला जाता है । इसके पश्चात् वह धातुओं में प्रवेश कर जाता है ।। ४१।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का नाग के लक्षण आदि का वर्णन नामक दो सौ चौरानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २९४ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं मन्त्र, ध्यान तथा औषधियों के प्रयोग से सर्पदष्ट की चिकित्सा का वर्णन करता हूँ । ओम् नमो भगवते नीलकण्ठाय इस मन्त्र का जप करने से विष का नाश होता है । घी के साथ गोबर के रस को पीना सर्पदष्ट की जीवनरक्षक औषधि है । विष दो प्रकार का होता है, जंगम विष और स्थावर विष । सर्प और चूहा आदि में पाया जाने वाला

तार्क्ष्य शब्दमयः स्मृतः ॥ ३ ॥ ओं ज्वल महामते ! हृदयाय गरुड विडालशिरसे गरुडशिखायै गरुड ! विषभञ्जन ! प्रभेदन ! प्रभेदन ! वित्रासय वित्रासय विमर्दय विमर्दय कवचाय अप्रतिहतशासनं वं हूं फट् अस्त्राय उग्ररूपधारक ! सर्वभयङ्कर ! भीषय सर्वं दह दह भस्मीकुरु कुरु स्वाहा नेत्राय । सप्तवर्गान्तयुग्माष्टदिग्दलस्वरकेशरादिवर्णरुद्धं वह्नि राभूतकर्णिकं मातृकाग्बुजम् । कृत्वा हृदिस्थं तन्मन्त्री वामहस्ततले स्मरेत् । अङ्गुष्ठादौ न्यसेद् वर्णान् वियतेर्भेदिताः कलाः ॥ ४ ॥ पीतं वज्रचतुष्कोणं पार्थिवं शक्रदैवतम् । वृत्तार्द्धमाप्यपद्मार्द्धं शुक्लं वरुणदैवतम् ॥ ५॥ त्र्यस्रं स्वस्तिकयुक्तञ्च तैजसं वह्निदैवतम् । वृत्तं विन्दुवृतं वायुदैवतं कृष्णमालिनम्॥ ६॥ अङ्गुष्ठाद्यङ्गुलीमध्ये पर्य्यन्तेषु स्ववेश्मसु । सुवर्णनागवाहेन वेष्टितेषु न्यसेत् क्रमात्॥ ७॥ वियतेश्चतुरो वर्णान् सुमण्डलसमत्विषः । अरूपे रवतन्मात्रे आकाशे शिवदैवते ॥ ८॥ कनिष्ठामध्यपर्वस्थे न्यसेत् तस्याद्यमक्षरम् । नागानामादिवर्णांश्च स्वमण्डलगतान् न्यसेत् ॥ ९ ॥ भूतादिवर्णान् विन्यसेदङ्गुष्ठाद्यन्तपर्वसु । तन्मात्रादिगुणाभ्यर्णानङ्गुलीषु न्यसेद् बुधः॥१०॥ स्पर्शनादेव तार्क्ष्येण हस्ते हन्याद् विषद्वयम् । मण्डलादिषु तान् वर्णान् वियतेः कवयो जितान् ॥ ११ ॥ श्रेष्ठद्व्यङ्गुलिभिर्देह नाभिस्थानेषु पर्वसु। आजानुतः सुवर्णाभ मानाभेस्तु हिमप्रभम्॥१२॥ कुङ्कुमारुणमाकण्ठादाकेशान्तात् सितेतरम्। ब्रह्माण्डव्यापिनं तार्क्ष्यञ्चन्द्राख्यंनागभूषणम्॥१३॥

जंगम विष है । सिंगिया आदि में पाया जाने वाला स्थावर विष है ।। १-२ ।। शान्त स्वर से युक्त ब्रह्मा (क्षौं) लोहित (ह्रीं) तारक (ओम्) और शिव (ह्रौं) यह चार अक्षरों का विपति सम्बन्धी नाम मन्त्र है । इसे शब्द मय तार्क्ष्य (गरुड) माना गया है ।। ३ ।। इस विपति मन्त्र का हृदयादि न्यास इस प्रकार करना चाहिए- ॐ ज्वल महामते हृदयाय नमः, गरुड विशाल शिरसे स्वाहा, गरुड शिखायै वषट्, गरुड विषभञ्जन प्रभेदन-प्रभेदन, वित्रासय, वित्रासय विमर्दय विमर्दय कवचाय हुम्, उग्ररूप धारक ! सर्वभयंकर ! भीषय सर्वं दह दह भस्मीकुरु कुरु स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट् अप्रतिहत शासनं वं हुं फट् अस्त्राय फट् । मातृकामय कमल बनाये । उसके आठों दिशाओं में आठ दल होना चाहिए । प्रत्येक दल में क्रमशः दो-दो स्वरवर्ण लिखना चाहिए । कवर्गादि सात वर्गों के अन्तिम दो-दो वर्णों को भी लिखना चाहिए । उस कमल केसर भाग को वर्ग के आदि अक्षरोंसे अवरुद्ध करना चाहिए । कर्णिका में अग्निबीज 'रं' लिखना चाहिए । मन्त्र का साधक उस कमल को हृदयस्थ करके बायें हाथ की हथेली पर उसका चिन्तन करना चाहिए । अंगुष्ठ आदि में विपति मन्त्र के वर्णों का न्यास करना चाहिए । साथ ही उनके द्वारा भेदित कलाओं का भी चिन्तन करना चाहिए ।। ४ ।। इसके पश्चात् चतुष्कोण भूपुर नामक मण्डल बनाना चाहिए । उसे पीतवर्ण का होना चाहिए तद्यथा चारों ओर से वज्र से चिह्नित होना चाहिए । अर्द्धचन्द्राकार वृत्त जल देवता सम्बन्धी होता है । कमल का आधा भाग शुक्ल वर्ण का होना चाहिए। उसके देवता वरुण हैं ।। ५ ।। फिर स्वस्तिक चिह्न से युक्त तेजोमय वह्निदेवता के मण्डल का चिन्तन करना चाहिए । वायु देवता का मण्डल विन्दुयुक्त एवं वृत्ताकार है । वह कृष्णमाला सेसुशोभित है ।। ६ ।। ये चार भूत अंगुष्ठ, तर्जनी मध्यमा और अनामिका इन चार अंगुलियों के मध्य पर्वों में विद्यमान अपने निवास स्थानों में विद्यमान हैं । इनके वास स्थान सुवर्णमय नागवाहन से वेष्टित हैं । इस प्रकार से ध्यान करते हुए पृथिवी आदि चार भूतों का अंगुष्ठ आदि के मध्य पूर्व में न्यास क्रमशः करना चाहिए ।। ७ ।। साथ ही विपत्ति मन्त्र के चार वर्णों का भी उन्हीं पर्वों में न्यास करना चाहिए और ध्यान करना चाहिए कि इन वर्णों की कान्ति इनके सुन्दर मण्डलों के समान है । इस प्रकार से न्यास करने के पश्चात् रूप रहित शब्दतन्मात्रा वाले शिवदैवत आकाश तत्त्व का कनिष्ठा के मध्य पर्व में न्यास करना चाहिए । चिन्तन करके वेद के आदि अक्षर ओं का न्यास करना चाहिए ।। ८ ।। फिर ऊपर बतलाये गये नागों के नाम के आदि वर्णों का भी अपने-अपने मण्डल में न्यास करना चाहिए । पृथिवी आदि भूतों के आदि वर्णों का अंगुष्ठ आदि अंगुलियों के अन्तिम पर्व में न्यास करना चाहिए । विद्वान् पुरुष गन्धादि तन्मात्राओं के गन्ध आदि गुणों के आदि वर्णों का भी अंगुष्ठ आदि अंगुलियों के अन्तिम पर्वों में न्यास करे ।। १०।। इस प्रकार तार्क्ष्यमन्त्र का न्यास ध्यान पूर्वक मन्त्रज्ञ विद्वान् रोगी के हाथ मात्र का केवल स्पर्श से ही दोनों प्रकार (स्थावर एवं जंगम) विषों का नाश कर देता है । मन्त्रज्ञ पुरुष पृथिवी आदि मण्डलों में विन्यस्त विपति मन्त्र के चारों वर्णों का अपनी श्रेष्ठ दो अंगुलियों द्वारा नाभिस्थानों तथा पर्वों में न्यास करे ।। ११ ।। इसके पश्चात् गरुड का इस प्रकार ध्यान करें- गरुड़ अपनी घुटनो तक

नीलोग्रनाशमात्मानं महापक्षं स्मरेद् बुधः । एवं तार्क्षात्मनो वाक्यान्मन्त्रः स्यान्मन्त्रिणो विषे ॥ १४ ॥ मुष्टिस्तार्क्षकरस्यान्तः स्थिताङ्गुष्ठविषापहा।
तार्क्ष्यं हस्तं समुद्यम्य तत्पञ्चाङ्गुलिचालनात् ॥ १५ ॥ कुर्य्याद् विषस्य स्तम्भादींस्तदुक्तमदवीक्षया । आकाशादेष भूवीजः पञ्चार्णाधिपतिर्मनुः॥१६॥
संस्तम्भयेतिविषतो भाषया स्तम्भयेद् विषम् । व्यत्यस्तभूषया वीजो मन्त्रोऽयं साधुसाधितः ॥ १७ ॥ संप्लवं प्लावय यमः शब्दाद्यः संहरेद्
विषम्। दण्डमुत्थापयेदेष सुजप्ताम्भोऽभिषेकतः॥ १८॥ सुजप्तशङ्खभेर्य्यादि निस्वनश्रवणेन वा । संदहत्येव संयुक्तो भूतेजोव्यत्ययात् स्थितः॥१९॥
भूवायुव्यत्ययान्मन्त्रो विषं संक्रामयत्यसौ। अन्तस्थो निजवेश्मस्थो वीजाग्नीन्दुजलात्मभिः ॥ २० ॥ एतत् कर्म नयेन्मन्त्री गरुडाकृतिविग्रहः ।
तार्क्षवरुणगेहस्थस्तज्जपान् नाशयेद् विषम्॥ २१॥ जानुदण्डीदमुदितंस्वधाश्रीवीज लाञ्छितम् । स्नानपानात् सर्वविषं ज्वरारोगापमृत्युजित्॥२२॥
पक्षि पक्षि महापक्षि महापक्षि विविस्वाहा । पक्षि पक्षि महापक्षि महापक्षि क्षि क्षि स्वाहा ॥ २३॥ द्वावेतौ पक्षिराड्मन्त्रौ विषघ्नावभिमन्त्रणात् ।
पक्षिराजाय विद्महे पक्षिदेवाय धीमहि तन्नो गरुड ! प्रचोदयात् । वह्निस्थौ पार्श्वं तत्पूर्वौ दन्तश्रीकौ च दण्डिनौ ॥ २३ ॥ सकालो लाङ्गली चेति
नीलकण्ठाद्यमीरितम् । वक्षःकण्ठशिखाश्वेतं न्यसेत् स्तम्भो सुसंस्कृतौ ॥ २४ ॥ हर हर स्वाहा हृदयाय नमः कपर्दिने च शिरसे नीलकण्ठाय वै

सुवर्ण की कान्ति से युक्त हैं । घुटनों से लेकर नाभिपर्यन्त हिम के समान श्वेत प्रभा से युक्त हैं । वहाँ से लेकर कण्ठ पर्यन्त वे कुंकुम के समान अरुणप्रभा से युक्त हैं । कण्ठ से लेकर केश पर्यन्त वे श्यामप्रभा से सुशोभित हैं ।। १२ ।। गरुड ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं । उनका नाम चन्द्र है । नाग के भूषणों से वे भूषित हैं । उनकी नासिका का अग्रभाग नीलवर्ण का है, उनके पंख विशाल हैं । इस प्रकार से मन्त्रज्ञ विद्वान् को गरुड का ध्यान करना चाहिए ।। १३ ।। इस तरह से गरुड़ स्वरूप मन्त्रज्ञ पुरुष का वाक्य ही रोगी के विष पर अपना प्रभाव डालता है । इस तरह गरुड़ स्वरूप मन्त्रज्ञ पुरुष की मुट्ठी यदि रोगी के हाथ में हो तो वह उसके अंगुष्ठ के विष को विनष्ट कर देती है ।। १४ ।। मन्त्रज्ञ पुरुष अपने गरुड़ स्वस्रूप हाथ को ऊपर उठाकर रोगी की पाँचों अंगुलियों के चालन मात्र से, विष से उत्पन्न होने वाले मद पर दृष्टि रखते हुए, उस विष का स्तम्भन आदि कर सकता है ।।१५।। आकाश से लेकर भू बीज पर्यन्त जो जो पाँच बीज हैं, वह पञ्चाक्षर मन्त्रराज कहलाता है । (उसका स्वरूप इस प्रकार है- (हं यं वं रं लं) अत्यन्त विष का स्तम्भन करना हो तो मन्त्रज्ञ पुरुष इस मन्त्र के द्वारा उस विष का स्तम्भन कर सकता है । यह व्यत्यस्त भूषण बीज मन्त्र है । अर्थात् इन बीज मन्त्रों का उलटफेर करके बोलना इसका भूषण स्वरूप है । इस मन्त्र को यदि अच्दी तरह से सिद्ध कर लिया जाय और इसकी आदि में यदि 'समलवं प्लावय प्लावय' यह वाक्य जोड़ दिया जाय तो मन्त्र प्रयोक्ता पुरुष इसके प्रयोग से विष का संहार कर देता है ।। १७।। इस मन्त्र के अच्छी तरह से जप के द्वारा अभिमन्त्रित जल से केवल अभिषेक करके मन्त्रज्ञ पुरुष रोगी से दण्डा उठवा सकता है । अथवा इस मन्त्र के जपपूर्वक की गयी भेरी आदि की ध्वनि को सुनाने मात्र से यह प्रयोग रोगी के विष को दग्ध कर देता है । यदि भूबीज (लं) तथा तेजोबीज (रं) को उलटकर मन्त्र का स्वरूप हं पं लं वं रं कर दिया जाय तो भी यह मन्त्र उक्त फल को ही देता है ।। १९ ।। भूबीज और वायु बीज का व्यत्यय करने से जो मन्त्र बनता है, वह (हं लं वं रं यं) विष का संक्रामक होता है । अर्थात् वह विष का अत्यन्त संक्रमण करा देता है । मन्त्रज्ञ पुरुष चाहे रोगी के समीप बैठा हो अथवा अपने घर में बैठा हो, यदि गरुड़ के स्वरूप का चिन्तन तथा अपने आप में गरुड़ की भावना करके, (रं वं) इन दो ही बीजों का उच्चारण करे तो वह इस कर्म को सफल बना सकता है ।। २०।। यदि वह गरुड़ अथवा वरुण के मन्दिर में बैठकर मन्त्र का जप करे तो उससे वह विष के प्रभाव को नष्ट कर सकता है । स्वधा और श्री के बीजोंसे संयुक्त करके यदि इसे जपा जाय तो जानुदण्डी मन्त्र कहते हैं । इसके जपपूर्वक स्नान और जलपान करने वाला पुरुष सब प्रकार के विष, ज्वर, रोग तथा अपमृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है ।। २२ ।। पक्षि पक्षि महापक्षि महापक्षि वि वि स्वाहा । पक्षि पक्षि महापक्षि महापक्षि क्षि क्षि स्वाहा । ये दो पक्षिराज गरुड़ के मन्त्र हैं । इनके द्वारा रोगी को झाड़ने से उसके विष दूर होते हैं । 'पक्षिराजाय विद्महे, पक्षिदेवाय धीमहि, तन्नो गरुड़ः प्रचोदयात् ।' यह गरुड़ गायत्री है । उपर्युक्त तीनों मन्त्रों को रं बीज से आवृत्त करके उनके पार्श्वभाग में भी रं बीज जोड़ दें । इसके पश्चात् दन्त, श्री, दण्डी, काल और लांगली से उन्हें

शिखां कालकूटविषभक्षणाय स्वाहा अथ वर्म च कण्ठेनेत्रं कृत्तिवासास्त्रिनेत्रं । पूर्वाद्यैराननैर्युक्तंश्वेतपीतारुणासितैः ॥ २४॥ अभयं वरदं चापं वासुकिञ्च दधद् भुजैः । यज्ञपीतपार्श्वस्थगौरीरुद्रोऽस्य देवता॥ २५॥ पादजानुगुहानाभि हृत्कण्ठाननमूर्द्धसु । मन्त्रार्णान् न्यस्य करयोरङ्गुष्ठाद्यङ्गुलीषु च॥ २६ ॥ तर्जन्यादितदन्तासु सर्वमङ्गुष्ठयोर्न्यसेत्। ध्यात्वैवं संहरेत् क्षिप्रं बद्धया शूलमुद्रया ॥ २७ ॥ कनिष्ठा ज्येष्ठया बद्धा तिस्रोऽन्याः प्रसृतेर्जवाः । विषनाशे वामहस्तमन्यस्मिन् दक्षिणं करम्॥२८॥ ओं नमो भगवते नीलकण्ठाय चिः अमलकण्ठाय चिः । सर्वज्ञकण्ठाय चिः क्षिप क्षिप ॐ स्वाहा । अमलनीलकण्ठायनैकसर्पविषापहाय। नमस्ते रुद्रमन्यवे । इतिसंमार्जनाद् विषं विनश्यति न सन्देहः । कर्णजाप्या उपानहा वा। यजेद्रुद्रविधानेन नीलग्रीवं महेश्वरं । विषव्याधिविनाशः स्यात् कृत्वा रुद्रविधानकम् ॥ २९ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दष्टचिकित्साकथनं नाम पञ्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९५ ॥

षण्णवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

पञ्चाङ्गरुद्रविधानम्

अग्निरुवाच— **वक्ष्ये रुद्रविधानन्तु पञ्चाङ्गं सर्वदं परम्। हृदयं शिवसङ्कल्पः शिरः सूक्तन्तु पौरुषम्॥१॥ शिखाभ्यः सम्भृतं सूक्तमाशुः कवचमेव च । शतरुद्रीयसंज्ञस्य रुद्रस्याङ्गानि पञ्च हि ॥२॥ पञ्चाङ्गान् न्यस्य तं ध्यात्वा जपेद्रुद्रांस्ततः क्रमात् । यज्जाग्रतोऽस्य हृदयं षड्टचं मानसं विदुः॥३॥**

युक्त कर दें और आदि में नीलकण्ठ मन्त्र को जोड़ दें । इस प्रकार बतलाये गये मन्त्र का वक्षस्थल, कण्ठ और शिखा में न्यास करें । उक्त दोनों मन्त्रों का संस्कार करके उन्हें स्तम्भ में अंकित करें ।। २३-२४ ।। इसके पश्चात् इस प्रकार से न्यास करें- 'हर हृदयाय नमः । कपर्दिने स्वाहा, शिरसे स्वाहा । नीलकण्ठाय स्वाहा शिखायै वौषट् । कालकूट विषभक्षणाय हूँ फट् कवचाय हुम् । कृत्तिवाससे नेत्रत्रयाय वौषट्। अस्त्राय फट् । जिनके पूर्व आदि मुख क्रमशः, श्वेत, पीत, अरुण और श्याम हैं, अपने चारों हाथों में क्रमशः अभयमुद्रा, वरदमुद्रा, धनुष तथा वासुकि को धारण किए हुए हैं । जिनके गले में यज्ञोपवीत शोभा पाता है तथा बगल में पार्वती देवी विद्यमान् हैं ऐसे भगवान् रुद्र ही इस मन्त्र के देवता हैं ।। २५ ।। दोनों पैर, दोनों घुटनों, गुह्यभाग, नाभि, हृदय, कण्ठ और मस्तक इन अङ्गों में मन्त्र के वर्णों का न्यास करके दोनों हाथों में तथा अंगुष्ठ आदि अंगुलियों में अर्थात् तर्जनी से लेकर दोनों हाथों में तथा अंगुष्ठ आदि अंगुलियों अर्थात् तर्जनी से लेकर तर्जनी पर्यन्त की अंगुलियों में मन्त्र के अक्षरों का न्यास करे सम्पूर्ण मन्त्र का अंगुष्ठ में न्यास करना चाहिए ।। २६ ।। इस प्रकार ध्यान और न्यास करके बँधी हुई शूलमुद्रा के द्वारा विष का नाश करना चाहिए ।। २७ ।। कनिष्ठा अंगुलि ज्येष्ठा से बँध जाये और अन्य तीन अंगुलियाँ फैल जायें तो शूल मुद्रा होती है । विष का नाश करने में बायें हाथ का प्रयोग करना चाहिये और अन्य कार्यों में दाहिने हाथ का प्रयोग करना चाहिए ।। २८ ।। 'ओं नमो भगवते नीलकण्ठाय चिः । अमलकण्ठाय चिः । सर्वज्ञकण्ठाय चिः । क्षिप क्षिप ओं स्वाहा । अमलनीलकण्ठाय नैकसर्पविषापहाय नमस्ते रुद्र मन्यवे ।।' इस मन्त्र को पढ़कर झाड़ने से विष नष्ट हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है । रोगी के कान में इस मन्त्र का जप करने से अथवा जूते से रोगी के पास की भूमि को पीटने से विष उतर जाता है । रुद्रविधान के द्वारा नीलग्रीव महेश्वर की पूजा करनी चाहिए । रुद्र विधान करने से विष व्याधि का विनाश होता है ।। २९ ।।

इस प्रकार आदिमहापुराण अग्निपुराण का दष्टचिकित्सा वर्णन नामक दो सौ पचानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २९५ ॥

अग्निदेव ने कहा— अब मैं पञ्चाङ्ग रुद्र विधान का वर्णन कर रहा हूँ जो परम उत्तम और सब कुछ देने वाला है । शिवसंकल्प सूक्त ही इसका हृदय है, पुरुषसूक्त इसका शिरोभाग है।।१।।

ऋषिः स्याच्छिवसङ्कल्पञ्छन्दस्त्रिष्टुवुदाहृतम् । शिरः सहस्रशीर्षेति तस्य नारायणोऽप्यृषिः ॥ ४ ॥ देवता पुरुषोऽनुष्टुपच्छन्दो ज्ञेयञ्च त्रैष्टुभम् । अद्भ्यः सम्भृतं सूक्तमृषिरुत्तरगो नरः ॥ आद्यानां तिसृणां त्रिष्टुप्च्छन्दोऽनुष्टुब्द्वयोरपि । छन्दःस्त्रैष्टुभमन्त्यायाः पुरुषोऽस्यापि देवता ॥ ६ ॥ आशुरिन्द्रो द्वादशानां छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम् । ऋषिः प्रोक्तः प्रतिरथः सूक्ते सप्तदशार्चिके॥ ७॥ पृथक् पृथक् देवताः स्युः पुरुविदङ्गदेवता । अवशिष्ट दैवतेषु छन्दोऽनुष्टुवुदाहृतम् ॥ ८॥ असौ यमो भविवित्विन्द्रः पुरुलिङ्गोक्तदेवताः । पङ्क्तिच्छन्दोऽथ मर्माणि त्वथलिङ्गोक्तदेवताः ॥ ९ ॥ रौद्राध्याये च सर्वस्मिन्नार्षं स्यात् परमेष्ठ्यपि । प्रजापतिर्वै देवानां कुत्सस्य तिसृणां पुनः ॥ १० ॥ मनोद्वयोरुमैका स्याद्रुद्रो रुद्राश्च देवताः । आद्योनुवाकोऽथ पूर्व एकरुद्राख्यदैवतः ॥ ११॥ छन्दो गायत्र्यामाद्याया अनुष्टुप् तिसृणामृचाम् । तिसृणाञ्च तथा पङ्क्तिरनुष्टुबथ संस्मृतम् ॥ १२ ॥ द्वयोश्च जगतीच्छन्दो रुद्राणामप्यशीतयः । हिरण्यवाहवस्तिस्रो नमो वः किरिकाय च॥ १३॥ पञ्चर्चो रुद्रदेवाः स्युर्मन्त्रे रुद्रानुवाककः । विंशके रुद्रदेवास्ताः प्रथमा बृहती स्मृता ॥ १४॥ ऋग्द्वितीया त्रिजगती तृतीया त्रिष्टुबेव च। अनुष्टुभो यजुस्तिस्र आर्य्यादिज्ञः सुसिद्धिभाक् ॥ १५ ॥ त्रैलोक्यमोहनेनापि विषव्याध्यरिमर्दनम्। इं श्रीं ह्रीं हूं त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः । अनुष्टुभं नृसिंहेन विषव्याधिविनाशनम् ॥ १६ ॥ ओं इं इं उग्रंवीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्। नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥ १७॥ अयमेव तु पञ्चाङ्गो मन्त्रः सर्वार्थ साधकः । द्वादशाष्टाक्षरौ मन्त्रौ विषव्याधिविमर्दिनौ॥ १८॥ कुब्जिका त्रिपुरा गौरी चन्द्रिका विषहारिणी । प्रसादमन्त्रो विषहृदायुरारोग्यवर्धनः । सौरो

'अब्दाःसंभृतः' इत्यादि सूक्त इसकी शिखा है । 'आशुः शिशानः' इत्यादि अध्याय इसका कवच है । शतरुद्रिय संज्ञक रुद्र के पाँच ही अंग हैं ।। २ ।। रुद्रदेव का ध्यान करके क्रमशः पञ्चाङ्ग रुद्रों का जप करना चाहिए । यज्जाग्रतो इत्यादि छह ऋचाओं का सूक्त इसका अन्तःकरण हृदय है । इससूक्त के ऋषि शिवसंकल्प हैं तथा इसका छन्द अनुष्टुप् है । इसका (शतरुद्रिय संज्ञक रुद्रक) सहस्रशीर्षा० मन्त्र से प्रारम्भ होने वाला सूक्त शिरोभाग है । इसके ऋषि नारायण, देवता पुरुष एवं छन्द अनुष्टुप् एवं त्रिष्टुप् हैं ।। ३-४ ।। 'अद्भ्यः सम्भृतः' सूक्त केऋषि उत्तरगामी नर हैं । इसके प्रथम तीन मन्त्रों के छन्द त्रिष्टुप् और फिर दो मन्त्रों के छन्द अनुष्टुप् हैं । इस सूक्त के अन्तिम मन्त्र का छन्द त्रिष्टुप् है और इस सूक्त के देवता पुरुष हैं ।। ६ ।। आशुः शिशानो० आदि अध्याय के प्रथम बारह मन्त्रों के देवता इन्द्र हैं और छन्द त्रिष्टुप् हैं । सत्रह ऋचाओं वाले इससूक्त के ऋषि प्रतिरथ हैं ।। ७ ।। किन्तु इसके मन्त्रों के देवता भिन्न भिन्न हैं । इसके अङ्ग देवता पुरुवित् हैं । अवशिष्ट देवताओं सम्बन्धी मन्त्रों का छन्द अनुष्टुप् है ।। ८ ।। असौ यस्ताम्रो० इत्यादि मन्त्र केदेवता पुरुलिङ्ग हैं और इसका पंक्ति छन्द है । मर्माणि० इत्यादि मन्त्र के लिङ्गोक्त देवता हैं ।। ९ ।। सम्पूर्ण रुद्राध्याय के ऋषि परमेष्ठी हैं । देवानाम् इत्यादि मन्त्र के प्रजापति ऋषि हैं । इसके पश्चात् तीन ऋचाओं के ऋषि कुत्स हैं ।। १० ।। मानो महान्त इत्यादि तथा मानस्तो० इत्यादि दो मन्त्रों के देवता उमा और अन्य मन्त्रों के देवता रुद्र एवं रुद्रगण हैं । आद्य अनुवाक् के देवता रुद्र हैं ।। ११ ।। इसके प्रथम मन्त्र का छन्द गायत्री है, फिर तीन ऋचाओं के छन्द त्रिष्टुप्, फिर तीन ऋचाओं के त्रिष्टुप, फिर सात ऋचाओं के अनुष्टुप् और दो ऋचाओं के जगती छन्द हैं । नमो हिरण्य वाहवे० से लेकर 'किरिकेभ्यः' पर्यन्त रुद्रगण की तीन अशीतियाँ हैं ।। १२-१३ ।। रुद्राध्याय के पाँच ऋचाओं के देवता रुद्र हैं । बीसवीं ऋचा के भी देवता रुद्र हैं । पहली ऋचा का छन्द त्रिष्टुप् शेष तीन का अनुष्टुप् छन्द है । श्रेष्ठ पुरुष इनका ज्ञान प्राप्त करके सुसिद्धि को प्राप्त करता है ।। १५ ।। त्रैलोक्य मोहन मन्त्र से भी विष व्याधि तथा शत्रु का नाश होता है । ईं श्रीं ह्रीं, हूं त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः ।' यह त्रैलोक्यमोहन मन्त्र है । अनुष्टुप् नृसिंह मन्त्र से भी विष व्याधि का विनाश होता है । 'ओं इं इं उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् । नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् । यह अनुष्टुप् नृसिंह मन्त्र है ।। १७।। हृदयादि पञ्चाङ्ग न्यास से युक्त यह मन्त्र समस्त अर्थों को सिद्ध करने वाला होता है । भगवान् विष्णु के (ओं नमो भगवते वासुदेवाय) (ओं नमो नारायणाय) विष तथा व्याधि को विनष्ट करने

विनायकस्तद्वद्रुद्रमन्त्राःसदाखिलाः ॥ १९ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पञ्चाङ्गरुद्रविधानकथनं नाम षण्णवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९६ ॥

सप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

विषहृन्मन्त्रौषधम्

अग्निरुवाच— **ओं नमो भगवते रुद्राय छिन्द छिन्द विष ज्वलितपरशुपाणये च । नमो भगवते पक्षिरुद्राय दष्टकम् उत्थापय २ दष्टकं कम्पय २ जल्पय २ सर्पदष्टमुत्थापय लल २ बन्ध २ मोचय २ वररुद्र ! गच्छ २ बध २ त्रुट २ बुक २ भीषय २ मुष्टिना विष संहर विषं ठ ठ । पक्षिरुद्रेण हि विषं नाशमायाति मन्त्रणात् ॥ १ ॥ ओं नमो भगवते रुद्र ! नाशयविषं स्थावरजङ्गमं कृत्रिमाकृत्रिमं विषमुपविषं नाशय नानाविषं दष्टकविषं नाशय धम २ दम २ वम २ मेघान्धकारधारावर्षकं निर्विषीभव संहर २ गच्छ गच्छ आवेशय २ विषोत्थापनरूपं मन्त्राद् विषधारणम्। ओं क्षिप ओं क्षिप स्वाहा । ओं ह्रां ह्रीं खीं सः ठन्द्रौं ह्रीं ठः । जपादिना साधितस्तुसर्पान् बध्नाति नित्यशः ॥ २ ॥ एक द्वित्रिचतुर्वीजः कृष्णाचक्राङ्गपञ्चकः ! गोपीजनवल्लभाय स्वाहा सर्वार्थसाधकः॥३॥ ओं नमो भगवते रुद्राय प्रेताधिपतये हुलु हुलु २ गर्ज २ भ्रामय २ मुञ्च २ मोहय २ कट्ट २ आविश २ सुवर्णपतङ्ग! रुद्रो ज्ञापयति स्वाहा। पातालक्षोभमन्त्रोऽयं मन्त्रणाद् विषनाशनः। दंशकाहिदंशे सद्योदष्टः काष्ठशिलादिना॥४॥**

वाले हैं ।। १८ ।। 'कुब्जिका त्रिपुरा गौरी चन्द्रिका विषहारिणी ।' यह प्रसाद मन्त्र विष को विनष्ट करने वाला तथा आयु एवं आरोग्य को बढ़ाने वाला है । सूर्य एवं विनायक के मन्त्र भी विष का हरण करने वाले हैं । इसी तरह रुद्र के भी समस्त मन्त्र सदा विष को विनष्ट करते हैं ।। १९ ।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का पञ्चाङ्ग रुद्रविधान वर्णन नामक दो सौ छानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २९६ ॥

अग्निदेव ने कहा— 'ओं नमो भगवते रुद्राय च्छिन्द-छिन्द विषं ज्वलित परशुपाणये ।' इस मन्त्र से तथा- 'नमो भगवते पक्षिरुद्राय दष्टकम् उत्थापय- उत्थापय, दष्टकं कम्पय कम्पय, जल्पय जल्पय, सर्पदष्टमुत्थापयोत्थापय लल-लल बन्ध-बन्ध, मोचय-मोचय, वरदरुद्र ! गच्छ-गच्छ, बन्ध-बन्ध, त्रुट-त्रुट, बुक-बुक, भीषय-भीषय, मुष्टिना विषः संहर-संहर, ठः ठः ।' इस पक्षिरुद्र मन्त्र से अभिमन्त्रित करने से विष का नाश हो जाता है ।। १ ।। ओं नमो भगवते रुद्र ! नाशयविषं स्थावरजङ्गमं कृत्रिमाकृत्रिमं विषमुपविषं नाशय, नानाविषं दष्टकविषं नाशय धम-धम, दम-दम, वम-वम, मेघान्धकारधारा वर्षकं निर्विषीभव संहर-संहर गच्छ-गच्छ, आवेशय-आवेशय, विषोत्थापनरूपं मन्त्राद् विषधारणम् । ओं क्षिप-क्षिप स्वाहा । ओं ह्रां ह्रीं खीं सः छ द्रौं ह्रीं ठः।।' जप आदि के द्वारा सिद्ध हो जाने पर यह मंत्र सर्पो को सदा बाँध लेता है ।। २ ।। 'गोपीजन बल्लभाय स्वाहा' यह मन्त्र सम्पूर्ण अभीष्ट अर्थों को सिद्ध करने वाला है । इसके प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ अर्थ बीज के रूप में प्रयुक्त होते हैं । इनसे, हृदय, सिर शिखा और कवच का न्यास होता है । कृष्णचक्राय अस्त्राम् फट् इस मन्त्र के द्वारा इस मन्त्र का पञ्चाङ्ग न्यास पूरा होता है । 'ओं नमो भगवते रुद्राय, प्रेताधिपतये, हुल-हुलु, गर्ज-गर्ज नागान् भ्रामय-भ्रामय,मुञ्च-मुञ्च, मोहय-मोहय, कट्ट-कट्ट आविश-आविश, सुवर्णपतङ्ग ! रुद्रो ज्ञापयति स्वाहा । यह पातालक्षोभ मन्त्र है । इसके द्वारा अभिममन्त्रित करने से विष का नाश होता है । दंशक सर्प के डँस लेने पर शीघ्र ही डंसे हुए स्थान को विष की शान्ति के लिए जलती हुई लकड़ी, जलते

विषशान्त्यै दहेद् दंशं ज्वालकोकनदादिना । शिरीषबीजपुष्पार्क क्षीरवीज कटुत्रयम् ॥ ५ ॥ विषं विनाशयेत् पानलेपनेनाञ्जनादिना । शिरीषपुष्पस्य रसभावितं मरिचं सितम् ॥ ६ ॥ पाननस्याञ्जनाद्यैश्च विषं हन्यान्न संशयः । कोषातकी वचाहिङ्गु शिरीसार्कपयोयुतम् ॥ ७ ॥ कटुत्रयं समेषाम्भो हरेन् नस्यादिना विषम् । रामठेक्ष्वाकुसर्वाङ्ग चूर्णं नस्याद् विषापहम् ॥ ७ ॥ इन्द्रबलाग्निकं द्रोणं तुलसी देविका सहा । तद्रसात्तं त्रिकटुकं चूर्णं भक्ष्य विषापहम् । पञ्चाङ्गं कृष्णपञ्चम्यां शिरीषस्य विषापहम् ॥ ९ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विषहृन्मन्त्रौषधकथनं नाम सप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९७ ॥

अष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

गोनसादिचिकित्सा

अग्निरुवाच– **गोनसादि चिकित्साञ्च वसिष्ठ ! शृणु वच्मि ते । ह्रीं ह्रीं अमलपक्षि स्वाहा । ताम्बूलखादनान् मन्त्री हरेन्मण्डलिनो विषम् ॥ १॥ लशुनं रामठफलं कुष्ठाग्निव्योषकं विषे । स्नुहीक्षीरं गव्यघृतं पक्वं पीत्वाऽहिजे विषे ॥ २॥ अथ राजिलदष्टे च पेया कृष्णा ससैन्धवा । आज्याक्षौद्रशकृत्तोयं पुरीतत्या विषापहम् ॥ ३॥ सकृष्णाखण्डदुग्धाज्यं पातव्यं तेन माक्षिकम् । व्योषं पिच्छं विड़ालास्थि नकुलाङ्गरुहैःसमैः॥४॥ चूर्णितैर्मेषदुग्धाक्तैर्धूपः सर्वविषापहः। रोमनिर्गुण्डिकाकोल पर्णैर्वा लशुनं समम् ॥ ५ ॥ मुनिपत्रैः कृतस्वेदं दष्टं काञ्जिकपाचितैः । मुषिकाः षोडश**

पत्थर, गर्म कोकनद (कमल) आदि के द्वारा जला देना चाहिए ।। ४ ।। शिरीष के बीज तथा पुष्प, आक के दूध तथा बीज तथा सोंठ,मिर्च एवं पिप्पल इनके पान लेप से विष की शान्ति होती है ।। ५ ।। शिरीष के पुष्प के रस से भावित उजली मिर्च का पान, नस्य तथा अञ्जन करने से निश्चय ही विष का नाश होता है, इसमें कोई संशय नहीं ।। ६ ।। कड़वी तरोई, वचा, हिंग शिरीष आक का दूध तथा सोंठ मिर्च एवं पिप्पल तथा बकरे के मूत्र का नश आदि देने से विष की शान्ति ही जाती है ।। ७ ।। अंकोल तथा कड़वी तुम्बी के सर्वाङ्ग चूर्ण के नस्य से विष दूर होता है ।। ८ ।। इन्द्रायण, चित्रक, द्रोण (गूमा) तुलसी, धतूरा और सहा, इनके रस में त्रिकटु (सोंठ, मिर्च एवं पिप्पल) के चूर्ण को भिंगोकर खाने से विष का नाश होता है । कृष्णपक्ष की पञ्चमी को लाया हुआ शिरीष का पञ्चाङ्ग विषहारी होता है ।। ९ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का विषहारी मन्त्रौषध वर्णन नामक दो सौ सत्तानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २९७ ॥

अग्निदेव ने कहा– हे वसिष्ठ ! सुनों अब मैं आपको गोनसादि की चिकित्सा को बतलाता हूँ । ह्रीं ह्रीं अमलयक्षि. ! स्वाहा' इस मन्त्र से अभिमन्त्रित ताम्बूल को खिलाकर मन्त्रवेत्ता मण्डली (गोनस) सर्प के विष को दूर कर सकता है ।। १ ।। लहशुन, अंकोल,त्रिफिला, कूठ, वच तथा व्योष (त्रिकटु) इनको सर्पविष में पीना चाहिए । सर्पविष में स्नूही दुग्ध, गोदुग्ध, गोदधि एवं गोमूत्र में पकाया गया घृत पीना चाहिए ।। २ ।। राजिल जातीय सर्प के काट लेने पर सैन्धव लवण, पिप्पल, घृत, मधु, गोबर का रस और साही की आँत का भक्षण करने से विष दूर हो जाता है ।। ३ ।। सर्पदष्ट मनुष्य को पिप्पल, शर्करा, दुग्ध, घी और मधु का पान कराना चाहिए । त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पिप्पल) मयूर पिच्छ, विडाल की हड्डी तथा नेवले के रोम इन सबों को समान मात्रा में लेकर चूर्ण बनायें और उसे भेंड़ के दुग्ध में भिंगोकर धूप दें तो सभी प्रकार के विष विनष्ट हो जाते हैं ।। ४ ।। पाठा, निर्गुण्डी और अंकोल के पत्ते को समान मात्रा में लेकर, उन सबों के बराबर लहसून लेकर चूर्ण बनाकर धूप दें तो विष का नाश होता है । अगस्त्य वृक्ष के पत्तों को काजी में पकाकर उसके भाप से डँसे हुए स्थान को यदि सेंका जाय तो विष दूर

प्रोक्ता रसं कार्पासजं पिबेत् ॥ ६ ॥ सतैलं मूषिकार्त्तिघ्नं फलिनीकुसुमं तथा । सनागरगुड़ं भक्ष्यं तद्विषारोचकापहम् ॥ ७ ॥ चिकित्सा विंशतिर्भूता लूताविषहरो गणः। पद्मकं पाटली कुष्ठं नेत्रमूशीरचन्दनम् ॥ ८ ॥ निर्गुण्डी शारिवा शेलु लूतार्त्तं सेचयेज्जलैः । गुञ्जानिर्गुण्डिकङ्कोलपर्णं शुण्ठी निशाद्वयम्॥९॥ करञ्जास्थि च तत्पङ्कैः वृश्चिकार्तिहरं शृणु । मञ्जिष्ठा चन्दनं व्योष पुष्पं शिरीषकौमुदम्॥ १०॥ संयोज्याश्चतुरो योगा लेपादौ वृश्चिकापहाः । ओं नमो भगवते रुद्राय चिवि २ छिन्द २ किरि २ भिन्द २ खड्गेन छेदय २ शूलेन भेदय २ चक्रेण दारय २ ओं हूं फट् । मन्त्रेण मन्त्रितोदेयो गर्धभादीन् निकृन्तति ॥ ११ ॥ त्रिफलोशीरमुस्ताम्बु मांसीपद्मकचन्दनम् । अजाक्षीरेण पानादेर्गर्धभादेर्विषं हरेत्॥१२॥ हरेत् शिरीषपञ्चाङ्गं व्योषं शतपदीविषम्। सकन्धरं शिरीषास्थि हरेदुन्दूरजं विषम् ॥ १३॥ व्योषं ससर्पिः पिण्डीत मूलमत्स्य विषं हरेत् । क्षारव्योषवचाहिङ्गु विडङ्गं सैन्धवं नतम् ॥ १४ ॥ अम्बष्ठातिबलाकुष्ठं सर्वकीटविषं हरेत् । यष्टिव्योष गुडक्षीर योगः शूनो विषापहः ॥ १५॥ ओं सुभद्रायै नमः ओं सुप्रभायै नमः । यान्यौषधानि गृह्यन्ते विधानेन विना जनैः ॥ १६॥ तेषां बीजं त्वया ग्राह्यमिति ब्रह्माऽब्रवीच्च ताम् । तां प्रणम्यौषधीं पश्चात् यवान् प्रक्षिप्य मुष्टिना ॥ १७ ॥ दश जप्त्वा मन्त्रमिदं नमस्कुर्य्यात् तदौषधम् । त्वामुद्धराम्यूर्ध्वनेत्रामनेनैव च भक्षयेत्॥ १८॥ नमः पुरुषसिंहाय नमो गोपालकाय च । आत्मनैवाभिजानाति रणे कृष्णपराजयम्॥ १९॥ एतेन सत्यवाक्येन अगदो मेऽस्तु सिद्धयतु। नमोवैदूर्य्यमात्रे

हो जाता है ।। ५ ।। मूषक सोलह प्रकार के होते हैं । कपास का रस तेल के साथ पीने से चूहे का विष दूर होता है । फलिहारी के फूलों को गुड़ एवं सोंठ के साथ खाना चाहिए इससे चूहे का विष दूर होता है ।। ७ ।। लूता (मकड़ी) बीस प्रकार की बतलायी गयी हैं । इनके विष की चिकित्सा सावधानी से करनी चाहिए । पद्म, पाटल, कूट, नेत्रबाल, खश, चन्दन, निर्गुण्डी, शाखि, ये लूताविषहारी गण हैं । इनके जल से मकड़ी के विष को धोना चाहिए ।। ८ ।। गुञ्जानिर्गुण्डी और अंकोल के पत्र, सोंठ, हल्दी, दारुहल्दी तथा करञ्ज की छाल इनको पीसकर पूर्वोक्त औषधियों के जल में मिलाकर लेप करने से लूता का विष दूर होता है । अब वृश्चिक के विष को दूर करने वाली औषधियों को सुनो ।। ९ ।। मञ्जिष्ठ, चन्दन, व्योष (त्रिकटु) एवं शिरीष तथा कुमुद के पुष्प । इन चारों चीजों को मिलाकर चूर्ण करके इनका लेप करने से वृश्चिक का विष दूर हो जाता है ।। १० ।। ओं नमो भगवते रुद्राय, चिचि- चिचि,छिदि-छिदि, किरि, किरि, भिन्द-भिन्द, खड्गेन छेदय-छेदय, शूलेन भेदय-भेदय, चक्रेण दारय-दारय, ओं हूँ फट् इस मंत्र से अभिमंत्रित औषध विषार्त को देना चाहिये । इससे गर्दभ आदि के विष विनष्ट होते हैं ।। ११ ।। त्रिफला, खश, नागरमोथा, नेत्रबाला, जटामांसी और पद्मक तथा चन्दन, इन सबों के चूर्ण को बकरी के दुग्ध के साथ पीने से गधे आदि के विष विनष्ट होते हैं ।। १२ ।। शिरीष का पञ्चाङ्ग तथा त्रिकटु के चूर्ण का लेप गोजर के विष को दूर करता है । स्नूही दुग्ध के साथ शिरीष के छाल के चूर्ण का लेप उन्दूरज (मेढ़क) के विष को दूर करता है ।। १३ ।। त्रिकटु तथा तगर मूल का घृत के साथ प्रयोग करने पर मत्स्य विष का नाश होता है । यवक्षार, त्रिकटु, वच और हींग वायविडङ्ग, सैन्धव लवण, तगर, पाठा, अतिबला तथा कूट ये सभी प्रकार के कीड़ों के विष को विनष्ट कर देते हैं ।। १४ ।। मुलहठी, त्रिकटु, गुड तथा दुग्ध का योग पागल कुत्ते के विष को विनष्ट करता है ।। १५ ।। ओंसुभद्रायै नमः, ओं सुप्रभायै नमः, यह औषधियों को उखाड़ने का मन्त्र है । भगवान् ब्रह्माजी ने सुप्रभा देवी को आदेश दे रखा है कि जो मनुष्य विना विधि विधान के औषधियों को उखाड़ते हैं, उनके प्रभाव को तुम स्वयं ले लिया करो ।। १६।। इसलिए पहले औषधि को प्रणाम करके औषधि के चारों ओर मुट्ठी से जौ विखेर दे, फिर उपर्युक्त मन्त्र का दस बार जप करें और औषधि को नमस्कार करे और कहे- तुम ऊर्ध्वनेत्रा हो मैं तुम्हें उखाड़ता हूँ । इस प्रकार से औषधि को उखाड़ें और औषधि खाते समय- नमः पुरुष सिंहाय० इत्यादि मन्त्र को पढ़ें ।। १८ ।। मन्त्र का अर्थ है-पुरुषसिंह भगवान् गोपाल को बारम्बार नमस्कार है । भगवान् श्रीकृष्ण युद्ध में अपनी पराजय की बात स्वयं जानते हैं । इस सत्यवाम्य से यह औषधि मुझे सिद्धि प्रदान करे।। १९ ।। स्थावर विष के प्रयोग में औषधि खाते समय- नमो वैदुर्यमात्रे

तन्त्र रक्ष २ मां सर्व विषेभ्यो गौरि! गान्धारि! चाण्डालि ! मातङ्गिनी! स्वाहा हरिमाये ! । औषधादौ प्रयोक्तव्यो मन्त्रोऽयं स्थावरे विषे ॥ २० ॥ भुक्तमात्रे स्थितेज्वाले जनं शीताम्बुसेचितम् । पाययेत् सघृतं क्षौद्रं विरेचयेत् तदनन्तरम् ॥ २१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गोनसादिचिकित्सावर्णनं नामाष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९८ ॥

नवनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

बालग्रहहरबालतन्त्रम्

अग्निरुवाच— **बालतन्त्रं प्रवक्ष्यामि बालादिग्रहमर्दनम् । अथ जात दिने वत्सं ग्रही गृह्णाति पापिनी॥ १॥ गात्रोद्वेगो निराहारो लालाग्रीवाविवर्त्तनम्॥ तच्चेष्टितमिदं तत् स्यान् मातृणाञ्च बलिं हरेत् ॥ २ ॥ मत्स्यमांस सुराभक्ष्य गन्धस्त्रग्धूपदीपकैः । लिम्पेच्च धातकीलोध्र मञ्जिष्ठा तालचन्दनैः॥३॥ महिषाक्षेण धूपश्च द्विरात्रे भीषणी ग्रही । तच्चेष्टा कासनिश्वासो गात्रसङ्कोचनं मुहुः॥ ४॥ आजमूत्रैर्लिपेत् कृष्णासेव्यापामार्गचन्दनैः । गोशृङ्गदन्तकेशैश्च धूपयेत् पूर्ववद् बलिः ॥ ५॥ ग्रही त्रिरात्रे घण्टाली तच्चेष्टा क्रन्दनं मुहुः । जृम्भणं स्वनितं त्रासो गात्रोद्वेगमरोचनम् ॥ ६ ॥ केशराञ्जनगोहस्ति दन्तं साजपयो लिपेत् । नखराजीविल्वदलै धूपयेच्च बलिं हरेत् ॥ ७ ॥ ग्रही चतुर्थी काकोली गात्रोद्वेगप्ररोचनम् । फेनोद्गारो दिशो दृष्टिः कुल्माषैः सासवैर्बलिः ॥ ८ ॥ गजदन्ताहिनिर्मोकबाजिमूत्रप्रलेपनम् । सराजीनिम्बपत्रेण धूतकेशेन धूपयेत् ॥ ९ ॥ हंसाधिका पञ्चमी स्याज्जृम्भाश्वासोर्ध्वधारिणी।**

तन्त्र रक्ष-रक्ष मे सर्वविषेभ्यो गौरि ! गान्धारि ! चाण्डालि ! मातङ्गिनी ! स्वाहा हरिमाये !।। २० ।। विष का भक्षण कर लेने पर पहले वमन कराकर विषार्त मनुष्य को पहले शीतल जल से खूब स्नान करायें फिर उसे घी तथा मधु पिलाकर अन्त में विरेचन कराये ।। २१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का गोनसादि चिकित्सा वर्णन नामक दो सौ अठानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २९८ ॥

अग्निदेव ने कहा— अब मैं बालादि ग्रहों को विनष्ट करने वाले बालतन्त्र का वर्णन करता हूँ । जिस दिन बच्चा उत्पन्न होता है, उस दिन उसे पापिनी नामक ग्रही, गृहीत कर लेती है।।१।। उस ग्रही से गृहीत बालक के शरीर में उद्वेग होता है, वह दूध नहीं पीता । लार टपकाता है फिर बार-बार अपनी गर्दन घुमाता है । यह सारी चेष्टा पापिनी ग्रही के कारण होती है । उसके निवारण के लिए मातृकाओं को बलि देना चाहिए ।। २ ।। फिर उस ग्रही के लिए मछली का मांस, मदिरा आदि भक्ष्य पदार्थ तथा चन्दन, माला, धूप एवं दीप निवेदित करे । बच्चे के शरीर में धातकी, लोध, मञ्जीठ, तलीसपत्र एवं चन्दन का लेप करें ।। ३ ।। गुग्गुल का धूप दें । जन्म की दूसरी रात्रि में बच्चे को भीषणी नामक ग्रही गृहीत करती है । ऐसा बालक खाँसी तथा श्वास से पीड़ित होता है । वह बार-बार अपने शरीर को सिकोड़ता है ।। ४ ।। ऐसे बालक के शरीर में बकरी के मूत्र में पिपली, अप्राभार्ग और चन्दन को पीसकर लेप करना चाहिए । गोशृङ्ग, गोदन्त तथा गोकेश की धूप दें एवं पूर्ववत् उस ग्रही को बलि प्रदान करे ।। ५ ।। जन्म के तीसरे दिन घाण्टाली नाम की ग्रही आक्रान्त करती है । उस ग्रही से गृहीत बालक बार-बार रोता है । जम्भाई लेता है, सिसकता है, डरता है गात्रोद्रेग और अरुचि युक्त होता है ।। ६ ।। ऐसे बालक को केसरञ्जन, गोदन्त तथा हस्तीदन्त को बकरी के दुग्ध में पीसकर लेप लगाना चाहिए । नख, राई तथा विल्वपत्र का धूप और पूर्वोक्त बलि देना चाहिए ।। ७ ।। चौथी ग्रही काकोली कही गयी है । इससे गृहीत बालक के शरीर में उद्वेग होता है । वह जोर-जोर से रोता है, मुँह से फेन निकालता

मुष्टिबन्धश्च तच्चेष्टा बलिं मत्स्यादिना हरेत् ॥ १० ॥ मेषशृङ्गबलालोध्र शिलातालैः शिशुं लिपेत् । फट्कारी तु ग्रही षष्ठी भयमोहप्ररोदनम् निराहारोऽङ्गविक्षेपो हरेन्मत्स्यादिना बलिम् । राजीगुग्गुलुकुष्ठेभ दन्ताद्यैर्धूपलेपनैः ॥ १२॥ सप्तमे मुक्तकेश्यार्त्तः पूतिगन्धो विजृम्भणम् । सादः प्ररोदनं कासो धूपो व्याघ्रनखैर्लिपेत् ॥ १३ ॥ वचागोमयगोमूत्रैः श्रीदण्डी चाष्टमे ग्रही । दिशो निरीक्षणं जिह्वाचालनं कासरोदनम् ॥ १४ ॥ बलिः पूर्वैव मत्स्याद्यैर्धूपलेपे च हिङ्गुला । वचासिद्धार्थलशुनैश्चोर्ध्वग्राहीमहाग्रही ॥ १५ ॥ उद्वेजनोर्ध्वनिःश्वासः स्वमुष्टिद्वयखादनम् । रक्तचन्दनकुष्ठाद्यैर्धूपयेल्लेपयेच्छिशुम् ॥ १६॥ कपिरोमनखैर्धूपो दशमी रोदनी ग्रही । तच्चेष्टा रोदनं शश्वत् सुगन्धो नीलवर्णता ॥ १७ ॥ धूपोनिम्बेन भूतोग्रराजी सर्जरसैर्लिपेत् । बलिंवहिर्हरेल्लाज कुल्माषकवकोदनम् ॥ १८ ॥ यावत् त्रयोदशाहं स्यादेवं धूपादिका क्रिया । गृह्णाति मासिकं वत्सं पूतनाशकुनी ग्रही ॥ १९ ॥ काकवद्रोदनं श्वासो मूत्रगन्धोऽक्षिमीलनम् । गोमूत्रस्नपनं तस्य गोदन्तेन च धूपनम्॥ २०॥ पीतवस्त्रं ददेद्रक्तस्रग्गन्धौ तैलदीपकः । त्रिविधं पायसं मद्यं तिलमासं चतुर्विधम् ॥ २१॥ करञ्जाधो यमदिशि सप्ताहं तैर्बलिं हरेत् । द्विमासिकञ्च मुकुटा वपुः पीतञ्च शीतलम्॥ २२॥ छर्दिः स्यान् मुखशोषादि पुष्पगन्धांशुकानि च। अपूपमोदनं दीपः कृष्णं नीरादि धूपकम् ॥ २३॥ तृतीये गोमुखी

है । चारों तरफ देखता है । इसकी शान्ति के लिए मदिरा एवं कुल्माष (उड़द) की बलि देनी चाहिए । बालक के शरीर में हाथी के दाँत, साँप के केंचुल और अश्व के मूत्र का प्रलेप करना चाहिए ।। ८ ।। फिर राई, नीम की पत्ती और भेंड़ के केश का धूप देना चाहिए ।। ९ ।। पाँचवीं ग्रही हँसाधिका नाम की होती है, इससे गृहीत शिशु जम्भाई लेता है, ऊपर की ओर जोर से श्वाँस लेता है और मुट्ठी बाँधता है । ऐसी चेष्टा वाले बालक की शान्ति के लिए मत्स्य आदि की बलि देनी चाहिए ।। १० ।। इससे गृहीत शिशु के शरीर में काकड़सिंगी बला, लोध, मैनसिल और तालीस पात्र का लेप करना चाहिए । बालक को छठें दिन गृहीत करने वाली ग्रही का नाम फटकारी । उससे ग्रस्त बालक को भय एवं मोह होता है । वह बहुत अधिक रोता है । वह निराहार रहता है तथा अपने अंगों को झटकता है । उसकी शान्ति के लिए मत्स्य आदि की बलि देनी चाहिए । उसे राई, गुग्गुल, कूट तथा हाथी दाँत आदि का धूप देना चाहिए और उसका लेप करना चाहिए ।। १२ ।। सातवें दिन बालक को मुक्तकेशी नामक ग्रही गृहीत करती है । इससे गृहीत बालक आर्त होता है । उसके शरीर में सड़े मांस की दुर्गन्धि आती है । वह जँभाई लेता है । वह चिल्लाकर जोर-जोर से रोता है, खाँसी आती है । ऐसे बालक के शरीर में व्याघ्रनख का धूप दे और वचा को गोबर एवं गोमूत्र में पीसकर लेप करें । नवजात शिशु को आठवें दिन श्रीदण्डी नाम की ग्रही गृहीत करती है ।। १३ ।। उससे बालक चारों ओर चंकचिहाकर देखता है, जीभ चलाता है । उसे खाँसी होती है और वह रोता है ।। १४।। ऐसे बच्चे को हिङ्ग, वचा, उजली सरसों तथा लहसून का धूप देना चाहिए । नवीं महाग्रही ऊर्ध्वग्राही है ।। १५ ।। इससे ग्रस्त बालक के शरीर में उद्वेग होता है । वह ऊपर की ओर श्वांस खींचता है और अपनी दोनों मुट्ठियों को चबाता है । ऐसे बालक को रक्तचन्दन तथा कूट आदि का धूप देना चाहिए और उसके शरीर में वानर के रोएँ और नख का धूप देना चाहिए । दसवीं ग्रही का नाम रोदनी है । इस ग्रहीसे गृहीत बालक सदा रोता रहता है उसका शरीर नीलवर्ण का और सुगन्धि से युक्त हो जाता है ।। १७ ।। ऐसे बच्चे को नीम का धूप और कूट, वच, राई तथा राल का लेप करना चाहिए । रोदनी ग्रही के उद्देश्य से लाजा, कुल्माष, वनमूँग और भात की बलि देनी चाहिए ।। १८ ।। इस तरह से धूप आदि देने की क्रियाएँ तेरह दिन तक करनी चाहिए । (दासवें दिन के समान ही शेष तीन दिन की क्रियाएँ की जाती हैं । एक मास के बच्चे को पूतना नामकी ग्रही पकड़ती है । उसका स्वरूप पक्षी का है ।। १९ ।। इससे पीड़ित बालक कौए के समान काँव-काँव करके रोता है । लम्बी श्वाँस लेता है । बार-बार आँखों को मींचता है । मूत्र के समान उसके शरीर से गन्ध आती है । ऐसे बालक को गोदन्त का धूप देना चाहिए ।।२०।। पूतना ग्रही के उद्देश्य से ग्राम के बाहर दक्षिण दिशा में करञ्ज वृक्ष के नीचे प्रतिदिन एक सप्ताह पीला वस्त्र, लालमाला, चन्दन, तेल का दीपक, तीन प्रकार का पायसान्न, मदिरा तथा चार प्रकार का तिलमाष चढ़ाना चाहिए ।। २१ ।। दो मास के बच्चे को मुकुट नाम की ग्रही गृहीत करती है । इससे आक्रान्त शिशु का वर्ण पीला और शरीर ठंढा हो जाता है । ऐसा बालक वमन करता

निद्रा सविण्मूत्रप्ररोदनम्। यवाः प्रियङ्गुः पललं कुल्माषं शाकमोदनम्॥ २४॥ क्षीरं पूर्वे ददेन्मध्येऽहनि धूपश्च सर्पिषा । पञ्चभङ्गेन तत् स्नानं चतुर्थे पिङ्गलार्त्तिहृत्॥ २५॥ तनुः सितः पूतिगन्धः शोषः स मृयते ध्रुवम् । पञ्चमी ललना गात्रसादः स्यान् मुखशोषितम् ॥ २६ ॥ अपानः पीतवर्णश्च मत्स्याद्यैद्रक्षिणे बलिः । षण्मासे पङ्कजा चेष्टा रोदनं विकृतः स्वरः॥ २७॥ मत्स्यमांससुराभक्त पुष्पगन्धादिभिर्बलिः । सप्तमे तु निराहारा पूतिगन्धादिदन्तरुक् ॥ २८॥ पिष्टमांससुरामाषैर्बलिः स्याद् यमुनाष्टमे । विस्फोटशोषणाद्यं स्यात् तच्चिकित्सां न कारयेत् ॥२९॥ नवमे कुम्भकर्ण्यार्त्तो ज्वरी छर्दति बालकः । रोदनं मांसकुल्माष मद्याद्यैर्वैश्वके बलिः ॥ ३०॥ दशमे तापसी चेष्टा निराहारोऽक्षिमीलनम् । घण्टा पताका पिष्टोक्ता सुरामांसबलिः समे ॥ ३१ ॥ राक्षस्येकादशी पीड़ा नेत्राद्यं न चिकित्सनम् । चञ्चला द्वादशे श्वासः त्रासादिकविचेष्टितम् ॥ ३२ ॥ बलिः पूर्वेऽथ मध्याह्ने कुल्माषाद्यैस्तिलादिभिः । यातना तु द्वितीयेऽब्दे यातनं रोदनादिकम् ॥ ३३ ॥ तिलमाषमद्यमांसैर्बलिः स्नानादि पूर्ववत् । तृतीये रोदनी कम्पो रोदनं रक्तमूत्रकम् ॥ ३४॥ गुड़ौदनं तिलापूपः प्रतिमा तिलपिष्टजा । तिलस्नानं पञ्चपत्रैर्धूपो राजफलत्वचा ॥ ३५॥ चतुर्थे चटकाशोफो

है ऐसे बालक को गोमूत्र से स्नान कराना चाहिए, उसका मुख सूखता है । इस ग्रही के लिए पुष्प, गन्ध, वस्त्र, मालपूआ, भात तथा दीपक की बलि प्रदान करें तथा बालक को कालागुरु एवं सुगन्ध बाला आदि का धूप देना चाहिए ।। २३ ।। बालक को तृतीय मास में गोमुखी नाम की ग्रही पकड़ती है । इस ग्रही से गृहीत बालक बहुत सोता है, बार-बार मलमूत्र करता है और जोर-जोर से रोता है । इस ग्रही के लिए पूर्वदिशा में यव, प्रियङ्गु, मांस, कुल्माष, शाक, भात एवं दूध की बलि देनी चाहिए, बच्चे को पञ्चभंग (पलाश, पीपल, गूलर, बट और बेल के पत्ते को पञ्चभंग या पञ्चपत्र कहते हैं ।) से स्नान कराकर घी से धूपित करना चाहिए । चतुर्थ मास में बच्चे को पिङ्गला नाम की ग्रही पीड़ित करती है ।। २५ ।। इससे बच्चे का शरीर उजला हो जाता है, उसके शरीर से सड़े मांस की दुर्गन्धि आने लगती है और बच्चा मर जाता है । पाँचवीं ग्रही ललना नाम की है । इससे ग्रस्त बालक का शरीर सूखने लगता है, मुख भी सूखता है । उसका शरीर पीला पड़ जाता है और अपान वायु निकलती है । इस ग्रही के निमित्त दक्षिण दिशा में मत्स्य आदि की बलि देनी चाहिए ।। २६ ।। छठें महीने में पंकजा नाम की ग्रही बालक को ग्रस्त करती है । इससे ग्रस्त बालक बहुत रोता है, उसका स्वर विकृत हो जाता है ।। २७ ।। इस ग्रही के निमित्त, मत्स्य के मांस, मदिरा, भात, पुष्प तथा गन्ध आदि की बलि देनी चाहिए । सातवें माह में निराहारा नाम की ग्रही उसे पीड़ित करती है । इससे ग्रस्त बालक के शरीर से मांस की दुर्गन्धि निकलती है और उसे दाँत के रोग होते हैं ।। २८ ।। इस ग्रही के लिए, आँटा, मांस, सुरा तथा उड़द की बलि देनी चाहिए । आठवें महीने में बालक को यमुना नाम की ग्रही ग्रस्त करती है । इससे पीड़ित बालक के शरीर में फोड़े-फुन्सी होते हैं और शरीर सूख जाता है । उसकी चिकित्सा नहीं करानी चाहिए ।। २९ ।। नवें माह में बालक को कुम्भकर्णी नाम की ग्रही पीड़ित करती है । बालक को ज्वर, सर्दी एवं जुकाम होता है । वह बहुत रोता है । इस ग्रही की प्रसन्नता के लिए ईशानकोण में मांस, कुल्माष तथा मदिरा की बलि देनी चाहिए ।। ३० ।। दसवें मास में बालक को तापसी नाम की ग्रही ग्रस्त करती है । उससे ग्रस्त बालक निराहार रहता है, आँखें बन्द किए रहता है । इस ग्रही की प्रसन्नता के लिए घण्टा, पताका, आँटा, मदिरा तथा मांस की बलि प्रदान करनी चाहिए ।। ३१ ।। ग्यारहवें माह में राक्षसी नाम की ग्रही बालक को पीड़ित करती है । उससे बालक के नेत्र आदि में पीड़ा होती है । उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिए । बारहवें माह में चञ्चला नाम की ग्रही शिशु को पीड़ित करती है । उससे उसके श्वास तथा त्रास आदि होते हैं ।। ३२ ।। उस ग्रही के उद्देश्य से पूर्वदिशा में कुल्माष तथा तिल आदि की बलि देनी चाहिए । दूसरे वर्ष में यातना नाम की ग्रही बालक को पीड़ित करती है। इससे कष्ठित बालक रोना आदि है ।। ३३ ।। इस ग्रही की प्रसन्नता के लिए तिल, उड़द, मदिरा तथा मांस की बलि देनी चाहिए और पहले के ही समान स्नान इत्यादि करना चाहिए । तीसरे वर्ष में शिशु को रोदनी नाम की ग्रही पीड़ित करती है । इससे बालक काँपता है, रोता है और लाल पेशाब करता है ।। ३४ ।। इस ग्रही के उद्देश्य से गुड़, भात, तिल का पूआ, पिसे तिल की मूर्ति की बलि देनी चाहिए । तिल से स्नान कराना चाहिए । पञ्चपत्र (पञ्चभंग) तथा राजफल के छिलके की छूटा देनी चाहिए ।। ३५ ।। चौथे वर्ष में चटका नाम की ग्रही बालक को पीड़ित करती है। उससे

ज्वरः सर्वाङ्गसादनम् । मत्स्यमांसतिलाद्यैश्च बलिःस्नानञ्च धूपनम् ॥ ३६॥ चञ्चला पञ्चमेऽब्दे तु ज्वरस्त्रासोऽङ्गसादनम् । मांसौदनाद्यैश्च बलिर्मेषशृङ्गेण धूपनम् ॥ ३७ ॥ पलाशोदुम्बराश्वत्थवटविल्वदलाम्बुधृक्। षष्ठेऽब्दे धावनीशीषो वैरस्यं गात्रसादनम् ॥ ३८॥ सप्ताहोभिर्बलिः पूर्वैर्धूपस्नानञ्च भङ्गकैः । सप्तमे यमुनाच्छर्दिरवचोहासरोदनम् ॥ ३९ ॥ मांसपायसमद्यपाद्यैर्बलिः स्नानञ्च धूपनम् । अष्टमे वा जातवेदा निराहारं प्ररोदनम्॥४०॥ कृशरापूपदध्याद्यैर्बलिः स्नानञ्च धूपनम् । कालाब्दे नवमे बाह्वोरास्फोटो गर्जनं भयम् ॥ ४१॥ बलिः स्यात् कृशरापूप सक्तु कुल्माषपायसैः । दशमेऽब्दे कलहंसी दाहोऽङ्गकृशता ज्वरः ॥ ४२ ॥ पौलिकापूपदध्यन्नैः पञ्चरात्रं बलिं हरेत् । निम्बधूपकुष्ठलेप एकादशमके ग्रही ॥ ४३ ॥ देवदूती निष्ठुरवाक् बलिर्लेपादि पूर्ववत् । बलिका द्वादशे श्वासो बलिर्लेपादि पूर्ववत्॥ ४४॥ त्रयोदशे वायवी च मुखावाद्याङ्गसादनम् । रक्तान्नगन्धमाल्याद्यैर्बलिः पञ्चदलैः स्नपेत्॥ ४५॥ राजीनिम्बदलैर्धूपो यक्षिणी च चतुर्दशे । चेष्टाशूलं ज्वरो दाहो मांसभक्षादिकैर्बलिः ॥ ४६॥ स्नानादि पूर्ववच्छान्त्यै मुण्डिकार्त्तिस्त्रिपञ्चके । तच्चेष्टासृक्श्रवः शश्वत् कुर्य्यान् नैवचिकित्सनम् ॥ ४७ ॥ वानरी षोड़शी भूमौ पतेन्निद्रा सदा ज्वरः। पायसाद्यैस्त्रिरात्रञ्च बलिः स्नानादि पूर्ववत्॥ ४८ ॥ गन्धवती सप्तदशे गात्रोद्वेगः प्ररोदनम् । कुल्माषाद्यैर्बलिः स्नानधूपलेपादि पूर्ववत् ॥ ४९॥ दिनेशाः पूतना नाम

पीड़ित करती है । उससे ग्रस्त बालक का शरीर फूल जाता है । ज्वर आता है, सारे शरीर में पीड़ा होती है । इस ग्रही के निमित्त मत्स्य मांस तथा तिल आदि की बलि देकर पूर्ववत् बच्चे को स्नान कराना चाहिए और धूप देना चाहिए ।। ३६ ।। पाँचवें वर्ष में चंचला नाम की ग्रही उसे पीड़ित करती है । इससे बच्चे को ज्वर आता है, उसे डर लगता है और शरीर में पीड़ा होती है । इस ग्रही के लिए मांस तथा भात आदि की बलि देनी चाहिए और बच्चे को बकरे के सिंग का धूप देना चाहिए ।। ३७ ।। उसको पलाश, गूलर, पिप्पल, बट तथा विल्व के पत्ते के जल से स्नान कराना चाहिए । छठें वर्ष में शिशु को छावनी नाम की ग्रही पीड़ित करती है । इससे ग्रस्त बालक का शरीर नीरस होकर सूखने लगता है । उसके सम्पूर्ण शरीर में पीड़ा होती है ।। ३८ ।। इस ग्रही के लिए एक सप्ताह तक पूर्ववत् वस्तुओं की बलि देनी चाहिए तथा बच्चे को भृङ्गराज से स्नान कराकर उसी का धूप देना चाहिए । सातवें वर्ष में बालक यमुना नामक ग्रही से ग्रस्त होता है । वह सर्दी से पीड़ित होता है । बोलता नहीं है । अधिक हँसता और रोता है ।। ३९ ।। इस ग्रही के निमित्त माँस, खीर तथा मद्य आदि की बलि देनी चाहिए और बालक को पूर्वोक्त विधि से स्नान कराकर धूप देना चाहिए । आठवें वर्ष में शिशु को जातवेदा नाम की ग्रही पीड़ित करती है । इससे ग्रस्त शिशु निराहार रहता है और बहुत अधिक रोता है ।। ४० ।। इस ग्रही की प्रसन्नता के लिए खिंचडी पूआ तथा दधि आदि की बलि देनी चाहिए और पूर्ववत् बालक को स्नान कराकर धूप देना चाहिए ।। ४० ।। नवें वर्ष में शिशु को काला नाम की ग्रही गृहीत करती है । ऐसा बच्चा अपनी भुजाओं को झटकता है, गर्जना करता है तथा भयभीत होता है । उसकी शान्ति के लिए खिंचड़ी, पूआ, सत्तू, कुल्माष तथा खीर की बलि देनी चाहिए ।।४१।। दसवें वर्ष में कालहंसी नाम की ग्रही पकड़ती है । उसके प्रभाव से बालक के शरीर में दाह एवं कृशता बढ़ती है और उसे ज्वर लगता है ।। ४२ ।। उसके निमित्त पाँच दिन तक पूड़ी, पूआ, दही और अन्न की बलि देनी चाहिए । बालक को नीम्ब का धूप देना चाहिए और कूठ का लेप करना चाहिए । ग्यारहवें वर्ष में बालक को देवदूती नाम की ग्रही ग्रसती है । उसके प्रभाव से वह निष्ठुर वाणी बोलता है । उसके लिए बलि एवं धूप आदि पहले के ही समान देना चाहिए ।। ४३ ।। बारहवें वर्ष में शिशु को बलिका नाम की दूती पकड़ती है । उससे बालक लम्बी श्वाँस लेता है । इसके लिए भी पूर्ववत् ही बलि तथा धूप आदि करना चाहिए । तेरहवें वर्ष में बालक को वायवी नाम की ग्रही ग्रसती है । इसके प्रभाव से बालक मुख रोग तथा अङ्गशैथिल्य से युक्त होता है । इसके निमित्त लाल अन्न तथा गन्ध तथा माला आदि की बलि देनी चाहिए । बालक को पञ्चपत्र से स्नान कराना चाहिए ।। ४५ ।। बालक को राई तथा नीम के पत्तों का धूप देना चाहिए । चौदहवें वर्ष में बालक को पक्षिणी नाम की ग्रही ग्रस्त करती है । इसके प्रभाव से बालक को शूल होता है, ज्वर एवं दाह होता है । इसके लिए मांस आदि भक्ष्य पदार्थों की बलि देनी चाहिए ।। ४६ ।। उसकी शान्ति के लिए पूर्ववत् स्नान आदि भी कराना चाहिए । पन्द्रहवें वर्ष में बालक को मुण्डिका नाम की ग्रही से कष्ट प्राप्त होता है । इससे ग्रस्त बालक को सदा रुधिर स्राव होता है । इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिए ।। ४७ ।। सोलहवीं ग्रही वानरी नाम की है । इससे ग्रस्त बालक पृथिवी पर गिरता है । उसे सदा नींद आती है और उसे

वर्षेशाः सुकुमारिकाः। ओं नमः सर्वमातृभ्यो बालपीडासंयोगं भुञ्ज भुञ्ज चुट चुट स्फोटय२ स्फुर स्फुर गृह्ण गृह्ण आक्रन्दय आक्रन्दय एवं सिद्धरूपो ज्ञापयति। हर हर निर्दोषं कुरु कुरु बालिकां बालं स्त्रियं पुरुषं वा सर्वग्रहाणामुपक्रमात् । चामुण्डे! नमो देव्यै हूं हूं ह्रीं अपसर अपसर दुष्टग्रहान् हूं तद् यथा गच्छन्तु गृह्यकाः अन्यत्र पन्थानं रुद्रो ज्ञापयति । सर्वबालग्रहेषु स्यान्मन्त्रोऽयं सर्वकामिकः ॥ ५० ॥ ओं नमो भगवति ! चामुण्डे ! मुञ्च मुञ्च बालं बालिकां वा बलिं गृह्ण गृह्ण जय जय वस वस। सर्वत्र बलिदानेऽयं रक्षाकृत् पठ्यते मनुः । ब्रह्मा विष्णुः शिवःस्कन्दो गौरी लक्ष्मीर्गणादयः ॥ रक्षन्तु च ज्वराभ्यां तं मुञ्चन्तु च कुमारकम्॥ ५१॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये बालग्रहिहरबालमन्त्रकथनं नाम नवनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९९ ॥

त्रिशततमोऽध्यायः

ग्रहहृन्मन्त्रादिकम्

अग्निरुवाच– ग्रहोपहारमन्त्रादीन् वक्ष्ये ग्रहविमर्दनान् । हर्षेच्छाभयशोकादि विरुद्धाशुचिभोजनात् ॥ १॥ गुरुदेवादिकोपाच्च पञ्चोन्मादा भवन्त्यथ। त्रिदोषजाः सन्निपाता आगन्तुरिति ते स्मृताः ॥ २ ॥ देवादयो ग्रहा जाता रुद्रक्रोधादनेकधा । सरित्सरस्तड़ागादौ शैलोपवनसेतुषु ॥ ३॥ नदीसङ्गे शून्यगृहे विलद्वार्य्येकवृक्षके । ग्रहा गृह्णन्ति पुंसश्च श्रियः सुप्ताञ्च गर्भिणीम्॥ ४॥ आसन्नपुष्पां नग्नाञ्च ऋतुस्नानं करोति या । अवमानं

ज्वर लगता है । इसकी शान्ति तीन दिन तक पायस आदि की बलि से करनी चाहिए और उसको पूर्ववत् स्नान आदि कराना चाहिए ।। ४८ ।। सत्रहवें वर्ष में गन्धवती नाम की ग्रही बालक पर आक्रमण करता है । इसकी शान्ति के लिए कुल्माष आदि की बलि देनी चाहिए और बालक को पूर्ववत् स्नान, धूप तथा लेप आदि कराना चाहिए ।। ४९।। दिन की स्वामिनी ग्रही पूतना होती है और वर्ष की स्वामिन की ग्रही सुक्षुमारिका ।। ४९ ।। 'ओ नमः सर्वमातृभ्यो बाल पीडा संयोगं भुञ्ज-भुञ्ज चुट-चुट, स्फोटय-स्फोटय, स्फुर-स्फुर, गृह्ण-गृह्ण, आक्रन्दय-आक्रन्दय एवं सिद्धरूपो ज्ञापयति । हर-हर, निर्दोषं कुरु-कुरु, बालिकां, बां, स्त्रियं पुरुषं वा सर्वग्रहाणामुपक्रमात् । चामुण्डे नमेदेव्यै हूं हूं ह्रीं अपसर-अपसर दुष्टग्रहान्, हूं तद् यथा गच्छन्तु गृह्यकाः । अन्यत्र पन्थानं रुद्रो ज्ञापयति ।' यह सम्पूर्ण अर्थों को प्रदान करने वाला मन्त्र है । इसका पाठ सभी बालग्रहों में करना चाहिए ।। ५० ।। 'ओं नमो भगवति! चामुण्डे ! मुञ्च-मुञ्च बालं बालिकां वा बलिं गृह्ण-गृह्ण जय-जय, वस वस । यह रक्षा करने वाला मन्त्र सभी प्रकार के बलिदानों में पढ़ा जाता है । ब्रह्मा, विष्णु, शिव, स्कन्द, पार्वती, लक्ष्मी तथा मातृकागण आदि इस कुमार को छोड़ दें तथा इसकी ज्वरों से रक्षा करें ।। ५१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का बालग्रह निवारक बालमन्त्र वर्णन नामक दो सौ निन्यानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २९९ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं ग्रहों के उपहार और मन्त्रों आदि का वर्णन कर रहा हूँ जो ग्रहों को शान्त करने वाले हैं । हर्ष, इच्छा, भय तथा शोकादि से प्रकृति के विपरीत तथा अपवित्र भोजन करने से गुरु एवं देवता के कोप से मनुष्य को पाँच प्रकार के उन्माद होते हैं । वे वातज, पित्तज, कफज, सन्निपात एवं आगन्तुक बतलाये गये हैं ।। १-२ ।। भगवान् रुद्र के कोप से अनेक प्रकार के देवादिग्रह उत्पन्न हुए । वे नदी, सरोवर, तडाग आदि में, पर्वत, उपवन तथा पुलों पर, नदी के संगम स्थल में, शून्य गृह में बिल द्वार पर, अकेले वृक्ष पर निवास करते है।।३।। ग्रह पुरुषों, स्त्रियों, सोयी हुई गर्भिणी, जिसका आर्तव आने वाला हो, नंगी और तथा ऋतुस्नान करने वाली औरत को पकड़ते है ।। ४ ।। इन ग्रहों के ही कारण मनुष्य का अपमान होता है,

नृणां वैरं विघ्नं भाग्यविपर्य्ययः ॥ ५ ॥ देवतागुरुधर्मादि सदाचारादि लङ्घनम् । पतनं शैलवृक्षादेर्विधुन्वन्मूर्द्धजं मुहुः ॥ ६ ॥ रुदन् नृत्यति रक्ताक्षो हूंरूपोऽनुग्रही नरः । उद्विग्नः शूलदाहार्त्तः क्षुत्तृष्णार्त्तः शिरोर्त्तिमान् ॥ ७ ॥ देहि देहीति याचेत बलिकामग्रही नरः । स्त्रीमालाभोगस्नानेच्छूरतिकामग्रही नरः॥ ८॥ महासुर्दशनो व्योमव्यापी विटपनासिकः । पातालनारसिंहाद्या चण्डीमन्त्रा ग्रहार्दनाः॥ ९॥ पृश्नीहिङ्गुवचाचक्रशिरीषदयितं परम् । पाशाङ्कुशधनं देवमक्षमालाकपालिनम् ॥ १० ॥ खट्वाङ्गाब्जादिशक्तिञ्च दधानं चतुराननम् । अन्तर्वाह्यादिखट्वाङ्ग पद्मस्थं रविमण्डले ॥ ११॥ आदित्यादियुतं प्राच्यं उदितेऽर्केर्घ्यकं ददेत् । श्वासविषाग्निविप्रकुण्डीहल्लेखासकलो भृगुः ॥ १२ ॥ अर्काय भूर्भुवः स्वश्च ज्वालिनीं कुलमुद्धरम्। पद्मासनोऽरुणो रक्तवस्त्र सद्युतिविश्वकः ॥ १३॥ उदारः पद्मधृग्दोर्भ्यां सौम्यः सर्वाङ्गभूषितः । द्रव्यादयोग्रहाः सौम्या वरदाः पद्मधारिणः ॥ १४॥ विद्युत्पुञ्जनिभं वस्त्रं श्वेतः सौम्योऽरुणः कुजः । बुधस्तद्वद् गुरुः पीतः शुक्रः शुक्लः शनैश्चरः ॥ १५ ॥ कृष्णाङ्गारनिभो राहुर्धूम्रः केतुरुदाहृतः । वामोरुवामहस्तान्तेदक्षहस्ताभयप्रदा ॥ १६॥ स्वनामाद्यन्तु वीजास्ते हस्तौसंशोध्य चास्त्रतः । अङ्गुष्ठादौ तले नेत्रे हृदाद्यं व्यापकं न्यसेत् ॥ १७ ॥ मूलवीजैस्त्रिभिः प्राण ध्यायकं न्यस्य साङ्गकम् । प्रक्षाल्य पात्रमस्त्रेण मूलेनापूर्य्य वारिणा ॥ १८ ॥ गन्धपुष्पाक्षतं न्यस्य दूर्वामर्घ्यञ्च मन्त्रयेत् । आत्मानं तेन सम्प्रोक्ष्य पूजाद्रव्यञ्च वैधुवम्॥ १९॥ प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम् । पीठाद्यान् कल्पयेदेतान् हृदा मध्येविदिक्षु च॥ २०॥

है, लोगों से बैर होता है, विघ्न होता है, भाग्य में उलटफेर होता है ।। ५ ।। जो मनुष्य देवता, गुरु, धर्म आदि तथा सदाचार आदि का उल्लंघन करता है,पर्वत तथा वृक्ष से गिरता है, बार-बार अपना बाल नोचता है । रोते हुए नाचता है, लाल-लाल आँखें करके रोता एवं नाचता है वह मनुष्य हूंरूप ग्रह से पीड़ित होता है । भूख तथा प्यास से उद्विग्न होता है, शूल तथा डाह से आर्त बना रहता है । भूख तथा प्यास से व्याकुल बना रहता है । शिरोरोग से आर्त बना रहता है तथा मुझे दो, मुझे दो, इस प्रकार से याचना करता है । उसे बलिकाम ग्रह से ग्रस्त समझना चाहिए ।। ७ ।। स्त्री तथा माता से सम्भोग तथा स्नान करने की इच्छा रखने वाले मनुष्य को रतिकामी ग्रह से गृहीत समझना चाहिए ।। ८ ।। व्योभव्यापी महासुदर्शन मन्त्र, विटपनासिक, पाताल नृसिंहादि मन्त्र तथा चण्डीमन्त्र ग्रहों का मर्दन करने वाले हैं ।। ९ ।। श्रीसूर्यदेव पृश्निपर्णी, हिंगु, वचक, चक्र (तक्रपुष्प) तथा शिरीष पुष्प के प्रेमी हैं, वे अपने हाथों में पाश, अंकुश अक्षमाला, कपाल, खट्वाङ्ग, कमल तथा आदिशक्ति को धारण करते हैं । सूर्यमण्डल में विद्यमान, जिसके भीतर एवं बाहर खट्वांग है ऐसे कमल पर बैठे हैं ।। १० ।। आदित्य आदि से युक्त सूर्य भगवान् की पूजा करके सूर्योदय होने पर सूर्यार्घ्य देना चाहिए ।। ११ ।। श्वास (य) विष (ओं) अग्नि (र) विप्रकुण्डी (ओं) हल्लेखा (ह्रीं) इन सबों को मिलाकर सूर्य का सम्पूर्ण मन्त्र (यौं रौं ह्रीं कलशार्काय भूर्भुवः स्वरौं ज्वालिनीं कुलमुद्धर ।' बनता है ।। १२ ।। भगवान् सूर्य देव कमल के आसन पर विराजमान् हैं । उनकी अंगकान्ति अरुण है ।ये लालवस्त्र धारण करने वाले हैं । वे विश्व को प्रकाशित करने वाले हैं ।। १३ ।।उनकी प्रकृति सौम्य है । उनके सभी अंग भूषित हैं । सूर्य आदि ग्रह सौम्य स्वभाव के हैं और कमल धारण करते हैं । उन सबों का वस्त्र विद्युत् पुञ्ज के समान है । चन्द्रमा श्वेत, मंगल एवं बुध लाल, वृहस्पति पीतवर्ण, शुक्र शुक्ल वर्ण के, शनैश्चर काले कोयले केसमान, कृष्ण वर्ण के, तथा राहु एवं केतु धूम्र वर्ण के बतलाये गये हैं ।। १४-१५ ।। इन सबों का बायाँ हाथ बायीं जंघा पर विद्यमान हैं और दाहिना हाथ अभयमुद्रा से युक्त है । ग्रहों के आदि अक्षर विन्दु से युक्त होकर उनके बीजमन्त्र होते हैं । फट् का उच्चारण करके दोनों हाथों का संशोधन करना चाहिए । फिर अंगुष्ठद्य से लेकर करतल पर्यन्त करन्यास तथा नेत्र रहित पंचाङ्गन्यास करके सूर्य के तीन बीजमन्त्रों (ह्रां ह्रीं सः)से व्यापक न्यास करना चाहिए । इस प्रकार अङ्गन्यास के साथ व्यापक न्यास करके अस्त्र मन्त्र (फट्)से अर्घ्य पात्र का प्रक्षालन करना चाहिए । फिर उसमें मूलमन्त्र (ह्रां हीं स) से जल भरना चाहिए।।१६-१८।। फिर उसमें चन्दन, पुष्प, अक्षत तथा दूर्वा डालकर अर्घ्यपात्र अभिमन्त्रित करें । उस जल से अपना तथा पूजा के द्रव्यों का प्रोक्षण करना चाहिए ।। १९।। इसके पश्चात्

पीठोपरि हृदा मध्ये दिक्षु चैव विदिक्षु च । पीठोपरि हृदाब्जञ्च केशरेष्वष्टशक्तयः ॥ २१॥ रां दीप्ता रीं तथा सूक्ष्माम्रुञ्जयांरेञ्च भद्रिकाम् । रैं विभूतीं रों विमूलां रौममोघां रं विद्युताम् ॥ २२ ॥ रःसर्वतोमुखीं रं पीठं वं प्राच्र्य रविं यजेत् । आवाह्य दद्यात् पाद्यादि हृत्षडङ्गेन सुव्रत ! ॥ २३ ॥ खकारो दण्डिनौ चण्डौ मज्जा दशनसंयुता । मांसदीर्घा जलंवायु हृदैतत् सर्वदं रवेः॥ २४॥ वह्नीशरक्षो मरुतां दिक्षु पूज्या हृदादयः । स्वमन्त्रैः कर्णिकान्तस्था दिक्ष्वस्त्रं पुरतः सदृक् ॥ २५ ॥ पूर्वादिदिक्षु सम्पूज्याश्चन्द्रज्ञ गुरुभार्गवाः । नस्याञ्जनादि कुर्वीत साजमूत्रैर्ग्रहापहैः ॥ २६ ॥ पाठापथ्यावचाशिग्रु सिन्धूव्योषैः पृथक्पलैः । अजाक्षीराढके पक्वसर्पिः सर्वग्रहान्हरेत् ॥ २७ ॥ वृश्चिकालीफलीकुष्ठं लवणानि च शार्ङ्गकम् । अपस्मारविनाशाय तज्जलं त्वभिभोजयेत् ॥ २८ ॥ विदारीकुशकाशेक्षु क्वाथजं पाययेत् पयः । द्रोणे सयष्टिकुष्माण्डरसे सर्पिश्च संस्कृतौ ॥ २९ ॥ पञ्चगव्यं घृतं तद्वद् योगं ज्वरहरं शृणु ओं भस्मास्त्राय विद्महे एकदंष्ट्राय धीमहि तन्नो ज्वरः प्रचोदयात् । कृष्णोषणनिशारास्ना द्राक्षातैलं गुडं लिहेत् ॥ ३०॥ धात्री विश्वासिता कृष्ण मुस्ताखर्जूर मागधी । पिवरश्चेति हिक्काघ्नं तत्त्रयं मधुनालिहेत् ॥ ३१॥ कामली जीरमाण्डूकी निशाधात्रीरसं पिवेत् ।

योगपीठ तथा उसके प्रभूत, विमल, सार, आराध्य एवं परमसुख नामक पादों की कल्पना करनी चाहिए । आग्नेय आदि कोणों तथा मध्य में विद्यमान इन पादों के नाम के अन्त में नमः पद जोड़कर इनकी पूजा करनी चाहिए ।। २० ।। योगपीठ के ऊपर हृदयकमल में तथा दिशाओं एवं विदिशाओं में तथा केशरों में आठ शक्तियों का आवाहन एवं पूजन करना चाहिए ।। २१।। शक्तियों के अर्चना का क्रम है- रां दीप्तायै नमः पूर्वस्याम् । रीं सूक्ष्मायै नमः आग्नेये केसरे । रुं जयायै नमः दक्षिण केसरे । रें भद्रिकायै नमः: नैर्ऋत्यकेसरे । रैं विभूत्यै नमः पश्चिम केसरे । रों विमलायै नमः वायव्यकेसरे । रौं अमोघायै नमः मध्ये । इस प्रकार से योगपीठ की अर्चना करके सूर्य की अचर्ना करनी चाहिए ।। २२ ।। रवि आदि का आवाहन करके उन्हें पाद्य आदि समर्पित करें । पुनः षडङ्गन्यासपूर्वक उनकी अर्चना करें ।। २३ ।। 'रवं कान्तौ' से 'रवं ख खोल्काय नमः' इस मन्त्र को संकेतित किया गया है । कान्त ख है । दण्डिनौ ख । चण्ड उ । इनकी सन्धि करने पर खो बना । मज्ञादशन संयुता मंज्जा = ल् दीर्घा- दीर्घ आकार से युक्त जल = क । अर्थात् का । वायुः = य, हृदा = नमः = इस तरह मंत्र बना 'खं ख खोल्काय नमः।' यह सूर्य का मन्त्र सब कुछ प्रदान करने वाला है ।। २४ ।। अग्निकोण, नैर्ऋत्यकोण, ईशानकोण तथा वायव्यकोण में तथा मध्य में हृदयादि पाँच अंगों की उनके नाम मन्त्रों से अर्चना करनी चाहिए । ये कर्णिका के भीतर ही उपर्युक्त दिशाओं में पूजने योग्य हैं । अस्त्र की पूजा अपने सामने की दिशा में करनी चाहिए ।। २५ ।। पूर्व आदि दिशाओं में क्रमशः चन्द्रमा, बुध, गुरु एवं शुक्र की पूजा करनी चाहिए । ग्रहों के दोष को दूर करने वाले पृश्निपर्णी, हिंग, वच, चक्र, (तगर के पुष्प) शिरीष तथा लहसुन का बकरे के मूत्र से पीसकर आञ्जन करना चाहिए ।। २६।। पाठा, पत्या, (हर्रे), वचा, शिग्रु (सहिजन) सेंधा नमक तथा व्योष (त्रिकटु) इन सबों का एक-एक पल लेकर बकरी के एक आढक दूध में पका लें ओर उसके बाद उस दूध से घी निकाल लें । वह घी समस्त ग्रह बाधाओं को दूर करता है ।। २७ ।। वृश्चिकाली (विछुआ घास, फली, कूरु, सभी तरह के नमक तथा शार्ङ्गक इनको जल में पका लें, और उस जल का अपस्मार के विनाश के लिए प्रयोग करें ।। २८ ।। विदारीकन्द, कुश, काश तथा ईख के क्वाथ से सिद्ध किये गये दूध को रोगी को पिलाना चाहिए । जेठी मधु तथा कुष्माण्ड रस से संस्कृत घृत अथवा पंचगव्य से संस्कार किए गये घी को रोगी को देना चाहिए । यह ज्वर विनाशक योग है । अब ज्वर विनाशक गायत्री सुनो ।। ३०-३१ ।। ओं भस्मास्त्राय विद्महे, एकदंष्ट्राय धीमहि, तन्नोज्वरः प्रचोदयात् ।' यह ज्वर गायत्री है ।। ३१ ।। श्वास (दमा) का रोगी कृष्णोष्ण (काली मिर्च) हल्दी, रास्ना, द्राक्षा, तिल का तेल एवं गुड़, इन सबों को मिलाकर चाटें ।। ३२ ।। अथवा वह मुलहठी (जेठीमधु) तथा घी के साथ भार्गी का सेवन करे । अथवा पाठा, काटकी पिप्पली तथा भार्गी को मधु के साथ चाटे ।। ३३ ।। धात्री (आँवला) विश्वा (सोंठ) सितार (मिश्री) पिप्पली, नागरमोथा, खजूर तथा मागधी तथा पीवर ये औषधियाँ हिक्कार (हिचकी) को विनष्ट करती हैं । उपचर्युक्त तीनों योग मधु के साथ लेने योग्य है ।। ३४ ।। कामल रोग के रोगी को जीरा, मण्डूकपर्णी, हल्दी अरौर आँवले का रस पिलाना चाहिए । यदि व्योष (त्रिकटु) पद्मकाष्ठ, त्रिफला, वायविडङ्ग, देवदारु तथा रास्ना इन सबों को बराबर-बराबर लेकर चूर्ण बनाकर उसमें खांड

व्योषपद्मकत्रिफलाविडङ्गदेवदारवः ॥ ३२॥ रास्नाचूर्णं समं खण्डैर्जग्ध्वा कासहरं ध्रुवम् ॥ ३३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ग्रहहृन्मन्त्रादिकथनं नाम त्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०० ॥

एकाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

सूर्य्यार्चनम्

अग्निरुवाच– **शार्ङ्गी तु दण्डिपद्मेश पावकश्चतुराननः । सर्वार्थसाधकमिदं वीजं पिण्डार्थमुच्यते ॥ १॥ स्वयं दीर्घस्वराद्यञ्च वीजेष्वङ्गानि सर्वशः। खातं साधु विषञ्चैव सविन्दुं सकलं तथा॥ २॥ गणस्य पञ्चवीजानि पृथग्दृष्टफलं महत् । गणं जयाय नमः एकदंष्ट्राया चलकर्णिने गजवक्त्राय महोदरहस्ताय । पञ्चाङ्गं सर्वसामान्यं सिद्धिः स्याल्लक्षजाप्यतः ॥ ३ ॥ गणाधिपतये गणेश्वराय गणनायकाय गणक्रीड़ाय । दिग्दले पूजयेन् मूर्त्तीः पुरावच्चाङ्गपञ्चकम् । वक्रतुण्डाय एकदंष्ट्राय महोदराय गजवक्त्राय । विकटाय विघ्नराजाय धूम्रवर्णाय । दिग्विदिक्षु यजेदेताल्लोकेशांश्चैव मुद्रया॥ ४ ॥ मध्यमातर्जनीमध्यगताङ्गुष्ठौ समुष्टिकौ । चतुर्भुजो मोदकाढ्यो दण्डपाशाङ्कुशान्वितः॥ ५॥ दन्तभक्षधरं रक्त साब्जं पाशाङ्कुशैर्वृतम्। पूजयेत् तं चतुर्थ्याञ्च विशेषेणाथ नित्यशः॥ ६॥ श्वेतार्कमूलेन कृतं सर्वाप्तिः स्यात् तिलैर्घृतैः । तण्डुलैर्दधिमध्वाज्यैः सौभाग्यं वश्यता भवेत्॥७॥**

मिलाकर खिलाया जाय तो नियिश्चत रूप से खाँसी दूर हो जाती है ।। ३३ ।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का ग्रहबाधा विनाशक मन्त्र आदि का वर्णन नामक तीन सौ वाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३०० ॥

अग्निदेव ने कहा– शार्ङ्गी (ग) दण्डी (अनुस्वार) पद्मेश विष्णु (ई) पावक (र्) इन चार अक्षरों के मेल से पिण्डीभूत वीजमन्त्र ग्रीं है । यह समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है।।१।। इस बीज मन्त्र की आदि में दीर्घ स्वरों को जोड़कर अङ्गन्यास करना चाहिए । जैसे- ग्रां हृदयाय नमः, ग्रीं शिरसे स्वाहा, ग्रूं अस्त्राय फट् । सविन्दु (विसर्ग) विष्म्) इनसे युक्तखान्त (ग) से भी इसी प्रकार बीजमन्त्र बनाकर षडङ्गन्यास करना चाहिए । वे वीजमन्त्र हैं- (गां गीं गूं गैं गौं गः) गण के पाँच बीज हैं (गः, गं, गौं गूं, गः) इन सबों का अलग-अलग महान् फल देखा गया है । 'गणं जयाय नमः हृदयाय नमः, एकदंष्ट्राय शिरसे स्वाहा, अचलकर्णिने शिखायै वषट् , गजवक्त्राय कवचाय हुम् , महोदरहस्ताय अस्त्राय फट् यह सर्वसामान्य पञ्चाङ्गन्यास है । उपर्युक्त ग्रीं इस मन्त्र का एक लाख जप करने से सिद्धि प्राप्त होती है ।। ३ ।। अष्टदलकमल के चारों दिशाओं में गणेशजी की चार मूर्तियों की 'गणाधिपतये नमः, गणेश्वराय नमः, गणनायकाय नमः, गणक्रीडाय नमः ।) इन नामोंसे पूजन करें तथा उपर्युक्त पञ्चाङ्गन्यास भी उन दलों में करें । अस्त्र का न्यास कमल के मध्य में करना चाहिए । पुनः कमलदल के दिशाओं तथा विदिशाओं में गणेशजी की आठ मूर्तियों की पूजा इन मन्त्रों से करनी चाहिए- 'वक्रतुण्डाय नमः, एकदंष्ट्राय नमः, महोदराय नमः, गजवक्त्राय नमः, विकटाय नमः, विघ्नराजाय नमः, धूम्रवर्णाय नमः । पुनः इन्द्र आदि लोकपालों की पूजा करनी चाहिए और गणेशजी को मुद्रा दिखानी चाहिए ।। ४ ।। तर्जनी और मध्यमा के बीच में अंगुष्ठ को डालकर मुट्ठी बाँध लेना यही गणेशजी की मुद्रा है। पुनः गणेशजी का ध्यान करें कि- गणेशजी की चार भुजायें हैं । ऐ एक हाथ में मोदक लिए हुए हैं और शेष तीन हाथ में वे दण्ड, पाश तथा अंकुश धारण किए हुए हैं ।। ५ ।। उन्होंने दाँतों में भक्ष्य पदार्थ (लड्डू) को दबा रखा है । उनका शरीर लाल है । वे कमल, पाश एवं अंकुश से घिरे हुए हैं । गणेशजी की नित्य पूजा करनी चाहिये किन्तु चतुर्थी तिथि को विशेष रूप से आयोजन करना चाहिए ।। ६ ।। श्वेत आंक की जड़ की गणेशजी की मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करें तथा तिलएवं घी की आहुति दे तो समस्त कामनाओं की पूर्ति होती है । यदि चावल, दही, मधु

घोषासृक्प्राणशान्त्यर्धी दण्डोमार्त्तण्डभैरवः । धर्मार्थकाममोक्षाणां कर्त्ता बिम्बपुटाबृतः॥ ८॥ ह्रस्वाः स्युमूर्त्तयः पञ्चदीर्घा अङ्गानि तस्य च । सिन्दूरारुणमीशाने वामार्द्धदयितं रविम् ॥ ९ ॥ आग्नेयादिषु कोणेषु कुजमन्दाहिकेतवः। स्नात्वा विधिवदादित्यमाराध्यार्घ्यपुरःसरम्॥ १०॥ कृतान्तमैशे निर्माल्यं तेजश्चण्डाय दीपितम् । रोचना कुङ्कुमंवारि रक्तगन्धाक्षताङ्कुराः॥ ११॥ वेणुवीजयपाःशालि श्यामाक तिलराजिकाः । जपापुष्पान्वितं दत्त्वा पात्रैः शिरसि धार्य्यतत्॥१२॥ जानुभ्यामवनीं गत्वा सूर्य्यायार्घ्यं निवेदयेत् । स्वविद्यामन्त्रितैः कुम्भैर्नवभिः प्रार्च्य वै ग्रहान्॥१३॥ ग्रहादिशान्तये स्नानं जप्त्वार्कं सर्वमाप्नुयात्। संग्रामविजयं साग्निं वीजपोषं सविन्दुकम् ॥ १४ ॥ न्यस्य मूर्द्धादि पादान्तं मूलं पूज्य तु मुद्रया । स्वाङ्गानि च यथान्यासमात्मानं भावयेद्रविम्॥ १५॥ ध्यानञ्च मारणस्तम्भे पीतमाप्यायने सितम् । रिपुघातविधौ कृष्णं मोहयेच्छक्रचापवत्॥१६॥ योभिषेकजपध्यानपूजाहोमपरः सदा । तेजस्वी ह्यजयः श्रीमान् समुद्रादौ जयं लभेत्॥ १७॥ ताम्बूलादाविदं न्यस्य जप्त्वा दद्यादुशीरकम् । न्यस्तबीजेन हस्तेन स्पर्शनं तद्वशे स्मृतम् ॥ १८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सूर्य्यार्चनकथनं नामैकाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०१ ॥

एवं घी को मिलाकर आहुति दी जाय तो सौभाग्य की प्राप्ति तथा वशित्व की प्राप्ति होती है ।। ७ ।। घोष (इ) असृक् (र्) प्राण (य) शान्ति (औ) अर्धी (उ) तथा दण्ड (अनुस्वार) इन सबों को मिलाकर भगवान् सूर्य का (ह्र्यौं ओम्) यह मार्तण्ड भैरव बीज बनता है । यदि इसको बिम्ब बीज से सम्पुटित कर दिया जाय तो यह साधकों को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को प्रदान करता है ।। ८ ।। पाँच ह्रस्व स्वरों से पाँच सूर्य मूर्तियों का न्यास करना चाहिए- जैसे अं सूर्याय नमः, इं भास्कराय नमः, उं भानवे नमः एं खये नमः ओं दिवाकराय नमः और पाँच दीर्घ स्वरों से पञ्चांग न्यास करना चाहिए- (जैसे- आं हृदयाय नमः, ॐ शिरसे स्वाहा इत्यादि) इसके पश्चात् ध्यान करना चाहिए कि भगवान् सूर्य ईशानकोण में स्थित हैं । उनकी शरीर की कान्ति अरुण वर्ण की है । उनके वामभाग में उनकी प्रियतमा स्थित हैं ।। ९ ।। आग्नेय आदि दिशाओं में मंगल, शनि, राहु एवं केतु की पूजा करें । स्नान करके तथा विधिपूर्वक सूर्य की आराधना करके, सूर्य को अर्घ्य दें ।। ११ ।। इसके पश्चात् ईशानकोण में कृतान्त के लिए निर्माल्य तथा चण्ड के लिए प्रदीप्त तेज (दीपक) प्रदान करें । रोचना, कुंकुम, जल, रक्त चन्दन, अक्षत, अंकुर, वेणुबीज, जौ, अगहनी धान का चावल, सावाँ तिल, राई तथा जया पुष्प अर्घ्यपात्र में डालकर उस अर्घ्य पात्र को सिर पर धारण करें ।। ११-१२ ।। इसके बाद दोनों घुटनों को पृथिवी पर टिका दें और सूर्यदेव को अर्घ्य दें । ग्रहों के अपने-अपने मंत्रों से अभिमंत्रित नव कलशों के द्वारा ग्रहों की पूजा करें ।। १३ ।। उन कलशों के जल से ग्रहों आदि की शान्ति के लिए स्नान करना चाहिए। इसके पश्चात् सूर्य केमन्त्र का जप करके मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है । संग्राम विजय विद्या, बीजपोषक विन्दु युक्त अग्नि रकार (रं) जोड़कर उस मन्त्र का मूर्धा से लेकर चरण पर्यन्त व्यापक न्यास करना चाहिए । उसके पश्चात् संग्राम विजय विद्या के उच्चरण पूर्वक सूर्यदेव से मुद्रा प्रदर्शन करते हुए पूजन करना चाहिए । उसके पश्चात् उपर्युक्त प्रकार से अंगन्यास करे अपने में सूर्य की भावना करनी चाहिए ।। १५ ।। मारण तथा स्तम्भन कर्म में सूर्यदेव के पीतवर्ण का ध्यान करना चाहिए, आप्यायन कर्म श्वेतवर्ण का, शत्रुओं के घात कर्म में कृष्णवर्ण का तथा मोहन कर्म में इन्द्रधनुष के वर्ण के सूर्य का ध्यान करना चाहिए ।। १६ ।। जो मनुष्य सूर्य देव के अभिषेक, जप, ध्यान, पूजन, तथा होम में तत्पर रहता है, वह तेजस्वी, अजेय, श्रीमान् होकर समुद्र आदि पर भी विजय प्राप्त करता है ।। १७ ।। ताम्बूल आदि में इस मन्त्र का न्यास करके, इस मंत्र का जप करें । इसके पश्चात् उसमें खंश का इत्र डालें, फिर संग्राम विजय विद्या का अपने हाथ में न्यास करके उस हाथ से जिसको साधक उस ताम्बूल को देता है अथवा स्पर्श करता है, वह व्यक्ति उसके वश में हो जाता है ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का सूर्य पूजा वर्णन नामक तीन सौ एकवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३०१ ॥

द्व्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नानामन्त्राः

अग्निरुवाच– **वाक्कर्मपाश्रर्वयुक्शुक्रतोककृते मतो प्लवः। हुतान्ता देशवर्णेयं विद्या मुख्या सरस्वती ॥ १॥ अक्षाराशी वर्णलक्षं जपेत् स मतिमान् भवेत्। अत्रिः सवह्निर्वामाक्षि विन्दुरिन्द्राय हृत्परः ॥ २ ॥ वज्रपद्मधरं शक्रं पीतमावाह्य पूजयेत्। नियुतं होमयेदाज्यतिलांस्तेनाभिषेचयेत्॥३॥ नृपादिर्भ्रष्टराज्यादीन् राज्यपुत्रादिमाप्नुयात्। हृल्लेखा शक्तिदेवाख्या घोषाग्निर्दण्डि दण्डवान् ॥ ४ ॥ शिवमिष्ट्वा जपेच्छक्तिमष्टम्यादिचतुर्दशीम्। चक्रपाशाङ्कुशधरां साभयां वरदायिकाम् ॥ ५ ॥ होमादिना च सौभाग्यं कवित्वं पुत्रवान् भवेत्। ओं ह्रीं ओं नमः कामाय सर्वजनहिताय सर्वजनमोहनाय प्रज्वलिताय सर्वजनहृदयं ममात्मगतं कुरु कुरु ओम्। एतज्जपादिना मन्त्रो वशयेत् सकलं जगत् ॥ ६ ॥ ओं ह्रीं चामुण्डे ! अमुकं दह दह पच पच मम वशमानय मम वशमानय ठ ठ। वशीकरणकृन्मन्त्रश्चामुण्डायाः प्रकीर्त्तितः। फलत्रयकषायेण वराङ्गं क्षालयेद् वशे ॥ ७॥ अश्वगन्धायवैः स्त्री तु निशाकर्पूरकादिना। पिप्पलीतण्डुलान्यष्टौ मरिचानि च विंशतिः ॥ ८ ॥ वृहती रसलेपश्च वशे स्यान् मरणान्तिकम्। कटीरमूलत्रिकटुक्षौद्रलेपस्तथा भवेत् ॥ ९॥ हिमं कपित्थकरभं मागधी मधुकं मधु। तेषां लेपः प्रयुक्तस्तु दम्पत्योः स्वस्तिमावहेत्॥ १०॥ सशर्करयोनिलेपात् कदम्बरसको मधु। सहदेवी महालक्ष्मीः पुत्रजीवी कृताञ्जलिः॥११॥ एतच्चूर्णं शिरःक्षिप्तं लोकस्य वशमुत्तमम्। त्रिफलाचन्दनक्वाथप्रस्थो**

अग्निदेव ने कहा– वसिष्ठ ! वाक्शक्ति को उत्पन्न करने वाला तथा सुन्दर सन्तान प्रदान करने वाला, वाक्कर्म इत्यादि श्लोक में वर्णित 'ऐं कुलजे ऐं सरस्वति स्वाहा' यह ग्यारह वर्णों का सरस्वती का मुख्य मन्त्र है। यह प्लवस्वरूप विद्या है। इस मन्त्र के जप के अन्त में हवन करना चाहिए ।। १ ।। जो व्यक्ति विना नमक का भोजन करते हुए इस मन्त्र का ग्यारह लाख जप करता है, वह बुद्धिमान् हो जाता है। अत्रि (द्) बह्नि (र) वामाक्षि (ईं) तथा विन्दु (अनुस्वार) अर्थात् (द्रीं) यह महान् इन्द्र का शत्रु विद्रावण मन्त्र है ।। २ ।। वज्र एवं पद्मधारी पीतवर्ण के इन्द्र का आवाहन करके उनका पूजन करना चाहिए। तिल मिश्रित घी से दस हजार हवन करके तिल मिश्रित जल से इन्द्र का अभिषेक करना चाहिए ।। ३ ।। इस मन्त्र का अनुष्ठान करके राजा अपने खोए हुए राज्य तथा पुत्र आदि को प्राप्त कर लेते हैं। हृल्लेखा (ह्रीं) यह शक्ति देवा नाम का मन्त्र है। घोष () अग्नि (र) दण्डी (ई) दण्ड (अनुस्वचार) यह इस मंत्र का उद्धार है ।। ४ ।। शिव की पूजा करके अष्टमी से लेकर चतुर्दशी पर्यन्त शक्ति (ह्रीं) का जप करना चाहिए। चक्र पाश, अंकुश तथा अभय मुद्रा को धारण करने वाली वरदायिनी देवी की आराधना करके होम आदि करने से साधक को सौभाग्य, कवित्वशक्ति तथा पुत्र की प्राप्ति होती है ।। ५ ।। 'ओं ह्रीं ओं नमः कामाय सर्वजनहिताय सर्वजनमोहनाय, प्रज्वलिताय सर्वजनहृदयं ममात्मगतं कुरु कुरु, ओम् इस मन्त्र का जप आदि करने से सम्पूर्ण जगत् साधक के वश में हो जाता है ।। ६ ।। ओं ह्रीं चामुण्डे अमुकं दह-'दह पच-पच मम वशम् आनय-आनय स्वाहा।' यह चामुण्डा का वशीकरण मन्त्र कहा गया है। पुरुष को वश में करने के लिए स्त्री अपनी योनि को त्रिफला के ठंढे जल से धोए ।। ७ ।। अश्वगन्ध, यवक्षार, हल्दी तथा कर्पूर आदि से भी अपनी योनि का प्रक्षालन करे। पिप्पली के आठ दाने काली मिर्च के बीस दाने तथा भटकटैय्या के रस को मिलाकर योनि में लेप करने पर उसका पति आजीवन उसके वश में रहता है ।। ८ ।। कटीरमूल, त्रिकटु तथा मधु का लेप भी उसी तरह का फल देता है ।। ९ ।। हिम, कैथ का रस मागधी पिप्पली, मुलहठी तथा मधु, इनका लेप दम्पती के लिए कल्याणकारी होता है ।। १० ।। शक्कर मिश्रित कदम्ब के रस को मधु में मिलाकर योनि पर लेप करने से वशीकरण होता है। सहदेई, महालक्ष्मी, पुत्रजीवी और लाजवन्ती इन सबों का चूर्ण बनाकर यदि सिर पर डाला जाय तो इस लोक में उत्तम वशीकरण होता है ।। ११ ।। त्रिफला और चन्दन का रस एक प्रस्थ अलग हो और दो कुडव अलग हो। भंगरैया तथा नागकेसर का रस हो, उतना ही हल्दी, क्षम्बुक, मधु और घी में पकायी हुई हल्दीएवं सूखी हिल्दी- इन सबों का लेप करे ।। १२-१३ ।। फिर विदारी कंद और जटामांसी के चूर्ण में चीनी मिलाकर खूब मथें, उसी को प्रतिदिन दूध के साथ पिये

द्विकुड़वं पृथक्॥ १२॥ भृङ्गहेमरसं दोषा तावती क्षम्बुकं मधु । घृतैः पक्वा निशा छाया शुष्का लेप्या तु रञ्जनी ॥ १३ ॥ विदारीं सोच्चटामाष चूर्णीभूतां सशर्कराम्। मथितां यः पिबेत् क्षीरैर्नित्यं स्त्रीशतकं व्रजेत् ॥ १४ ॥ गुल्ममाषतिलव्रीहिचूर्णक्षीरसितान्वितम् । अश्वत्थवंशदर्भाणां मूलं वै वैष्णवीश्रियोः॥ १५॥ मूलं दूर्वाश्वगन्धोत्थं पिवेत् क्षीरैः सुतार्थिनी । कौन्तीलक्ष्म्याः शिबा धात्री वज्रं लोधं वटाङ्कुरम् ॥ १६ ॥ आज्यक्षीरमृतौ पेयं पुत्रार्थं त्रिदिनं स्त्रिया । पुत्रार्थिनी पिवेत् क्षीरं श्रीमूलं सवटाङ्कुरम् ॥ १७ ॥ श्रीवटाङ्कुरदेवीनां रसं नस्ये पिवेच्च सा । श्रीपद्ममूलमुत्क्षीरमश्वत्थोत्तरमूलयुक्॥ १८॥ तरलं पयसा युक्तं कार्पासफलपल्लवम् । अपामार्गस्य पुष्पाग्रं नवं समहिषीपयः ॥ १९ ॥ पुत्रार्थञ्चार्द्धषट्शाकैर्योगाश्चत्वार ईरिताः । शर्करोत्पलपुष्पाक्षलोध्रचन्दनसारिवाः ॥ २०॥ स्त्रवमाणे स्त्रिया गर्भे दातव्यांस्तण्डुलाम्भसा । लाजा यष्टिसिताद्राक्षा क्षौद्रसर्पिषि वा लिहेत् ॥ २२ ॥ आटरुषकलाङ्गल्यः काकमाच्याः शिफा पृथक् । नाभेरधः समालिप्य प्रसूते प्रमदा सुखम् ॥२२॥ रक्तं शुक्लं जवापुष्पं रक्तशुक्लस्त्रुतौ पिवेत्। केशरं बृहतीमूलं गोपीयष्टितृणोत्पलग् ॥ २३॥ साजक्षीरं सतैलं तद्भक्षणं रोमजन्मकृत् । शीर्य्यमाणेषु केशेषु स्थापनञ्च भवेदितम् ॥ २४॥ धात्रीभृङ्गरसप्रस्थतैलञ्च क्षीरमाढकम् । षष्ठ्यञ्जनपलं तैलं तत्केशाक्षिशिरोहितम् ॥ २५ ॥ अस्मिन् ग्रामे गोकुलस्य रक्षां कुरु कुरु शान्तिं कुरु कुरु । घण्टाकर्णो महासेनो वीरः प्रोक्तो महाबलः । मारीनिर्नाशनकरः स मां पातु जगत्पति ॥ २५ ॥ श्लोकौ चैव न्यसेदेतौ मन्त्रौ गोरक्षकौ पृथक् ॥ २६ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानामन्त्रकथनं नाम द्व्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०२ ॥

ऐसा करने वाला पुरुष प्रतिदिन सैकड़ों स्त्रियों के सहवास की शक्ति प्राप्त कर लेता है ।। १४ ।। गुमा, उड़द, तिल, चावल इन सबों का चूर्ण बनाकर उसमें दूध और मिश्री मिलाये । पीपल, बाँस और कुश की जड़, वैष्णवी एवं श्रीनामक औषधियों की जड़ तथा दूर्वा एवं अश्वगन्ध की जड़, पुत्र की इच्छा रखने वाली नारी इन सबों के चूर्ण को दूध के साथ पिये ।। १५ ।। कान्ती, लक्ष्मी, शिवा एवं धात्री (आँवले का बीज) लोध्र एवं कट के अकुर को ऋतुकाल में तीन दिन घी तथा दूध के साथ पीने से नारी को पुत्र की प्राप्ति होती है ।। १६ ।। पुत्र चाहने वाली नारी श्रीनामक औषधि के मूल तथा बटांकुर को पिए ।वह श्री बटांकुर और देवीनामक औषधि के रस का नस्य भी ले और पिये भी ।। १७ ।। श्री तथा कमल के मूल को एवं अश्वत्थ एवं उत्तर के मूल को दूध के साथ पीये । कपास के फल एवं पल्लव को पीसकर दूध के साथ तरल बनाकर पिये । अपामार्ग के नवीन पुष्पाग्र भाग को भैंस के दूध के साथ पीसकर पिये ।। १९ ।। इस तरह से ऊपर के साढे पाँच श्लोक में चार पुत्र प्रदान करने वाले योगों का वर्णन किया गया है । जिस स्त्री का गर्भ गिर जाता हो उसको चीनी, कमल, कमलगट्टा, लोध, चन्दन तथा सारिवाला इन सबों को पीसकर चावल के जल (चरुधोवन) से पिलाना चाहिए । अथवा वह नारी, लाजा, मुलहठी, मिश्री, द्राक्षा, मधु और घी का अवलेह बनाकर चाटे ।। २२ ।। आटरूय (अड़ूसा) कलाङ्गली, काकमाची, जटामांसी, इन सबों को पीसकर यदि नाभि के नीचे छाप दिया जाय तो स्त्री, सुखपूर्वक प्रसव करती है ।। २३ ।। लाल और सफेद जया कुसुम लालचिता तथा हींगपत्री इन सबों को पीसकर पिले केसर, भटकटैया की जड़, गोपी, साठी का तृण तथा उत्पल, इन सबों को बकरी के दूध में पीसकर तथा तेल मिलाकर खाया जाय तो सिर में बाल उग आते हैं।।२४।। यदि सिर के बाल झड़ रहे हों तो उनको रोकने का उपाय है । आँवला और भंगरैया के रस का एक सेर तेल एक आढक दूध षष्ठी और अञ्जन का एक पल तेल ये सभी सिर के बाल, नेत्र तथा सिर के लिए हितकारी हैं ।। २५ ।। ओं नमो भगवते त्र्यम्बकाय उपशमयोपशमय, चुलु-चुलु मिलि-मिलि भिदि-भिदि, गोमानिनि चक्रिणि हूँ फट् । अस्मिन् ग्रामे गोकुलस्य, रक्षां कुरु-कुरु, शान्ति कुरु-कुरु-कुरु ठ ठ ठ । यह गोसमुदाय की रक्षा का मन्त्र है । घण्टाकर्ण महासेन वीर महाबलवान् कहे गये हैं । वे महामारी का विनाश करने वाले हैं । वे मेरी रक्षा करें ।। २६।। ये दोनों मन्त्र गोरक्षक हैं । इन दोनों मन्त्रों को लिखकर घर पर टाँग देना चाहिए ।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अनेक मन्त्र वर्णन नामक तीन सौ दोवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३०२ ॥

त्र्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अङ्गाक्षरार्चनम्

अग्निरुवाच– **यदा जन्मर्क्षगश्चन्द्रो भानुः सप्तमराशिगः । पौष्णः कालः स विज्ञेयस्तदा ग्रासं परीक्षयेत् ॥ १ ॥ कण्ठोष्ठौ चलतः स्थानाद् यस्य वक्रा च नासिका । कृष्णा च जिह्वा सप्ताहं जीवितं तस्य वै भवेत् ॥ २ ॥ तारो मेषो विषं दन्ती नरो दीर्घौ नरौ रसः । क्रुद्धोल्काय महोल्काय वीरोल्काय शिखा भवेत् ॥ ३ ॥ द्युल्काय सहस्रोल्काय वैष्णवोऽष्टाक्षरो मनुः । कनिष्ठादितदष्टानामंगुलीनाञ्च पर्वसु॥ ४॥ ज्येष्ठाग्रेण क्रमात् तावन् मूर्द्धन्यष्टाक्षरं न्यसेत् । तर्जन्यां तारमङ्गुष्ठे तदुत्तारं ततो न्यसेत् ॥ ५॥ तलेङ्गुष्ठे तदुत्तारं बीजोत्तारं ततो न्यसेत् । रक्तगौरधूम्रहरिज्जातरूपाः सितास्त्रयः॥ ६॥ एवंरुपानिमान् वर्णान् भावुद्धान् न्यसेत् क्रमात् । हृदास्येनत्रमूर्द्धाङ्घ्रि तालुगुह्यकरादिषु ॥ ७ ॥ अङ्गानि च न्यसेद् बीजान् न्यस्याथ करदेहयोः । यथात्मनि तथा देवे न्यासः कार्यः करं विना ॥ ८ ॥ हृदादिस्थानगान् वर्णान् गन्धपुष्पैः समर्चयेत् । धर्माद्यग्न्याद्यधर्मादि गात्रे पीठेऽम्बुजे न्यसेत् ॥ ९ ॥ यत्र केशरकिञ्जल्क व्यापिसूर्येन्दुदाहिनाम् । मण्डलं त्रितयं तावद् भेदैस्तत्र न्यसेत् क्रमात् ॥ १० ॥ गुणाश्च तन्त्रसत्त्वाद्याः केशरस्थाश्च शक्तयः । विमलोत्कर्षणीज्ञान क्रियायोगाश्च वै क्रमात् ॥ ११ ॥ प्रह्वी सत्या तथेशानानुग्रहा मध्यतस्ततः । योगपीठं समभ्यर्च्य समावाह्य हरिं यजेत् ॥ १२॥ पाद्यार्घ्याचमनीयञ्च पीतवस्त्रविभूषणम् ! । एतत् पञ्चोपचारञ्च सर्वं मूलेन दीयते ॥ १३॥ वासुदेवादयः पूज्याश्चत्वारो दिक्षु मूर्त्तयः । विदिक्षु श्रीसरस्वत्यै रतिशान्त्यै च पूजयेत् ॥ १४ ॥ शङ्खं चक्रं गदां पद्मं मुशलं खड्गशार्ङ्गिके । वनमालान्वितं दिक्षु**

अग्निदेव ने कहा– जब चन्द्रमा जन्म नक्षत्र पर हो तथा सूर्य उसकी सातवीं राशि पर हो तो उसे पूषा काल कहते हैं । उस समय श्वास की परीक्षा करनी चाहिए ।। १ ।। जिसके कण्ठ और ओष्ठ अपने स्थान से इधर-उधर हट गये हों, जिसकी नाक टेढ़ी हो गयी हो, जीभ काली पड़ गयी हो, उसका जीवन अधिक से अधिक एक सप्ताह जानना चाहिए ।। २ ।। तार (ओम्) मेष (न) विष (म) दन्ती (ओ) दीर्घ स्वर युक्त न एवं र (नारा) (यणा) रस य यह आठ अक्षरों का (ओं नमो नारायणाय) मन्त्र भगवान् विष्णु का है । इसका अङ्गन्यास इस प्रकार है- 'क्रुद्धोल्काय स्वाहा हृदयाय नमः, महोल्काय स्वाहा शिरसे स्वाहा, वीरोल्काय स्वाह, शिखायै वषट्, द्युल्काय स्वाह, कवचाय हुम्, सहस्रोल्काय स्वाहा अस्त्राय फट् ।। ३ ।। कनिष्ठा से लेकर कनिष्ठा तक (अंगुष्ठ को छोड़कर) आठ अंगुलियों के तीनों पर्वों में अष्टाक्षर मंत्र के आठों अक्षरों का ओम् एवं नमः से सम्पुटित करके क्रमशः न्यास करना चाहिए ।। ४ ।। तर्जनी में, मध्यमा से युक्त अंगुष्ठ में करतल में तथा फिर अंगुष्ठ में प्रणव का न्यास उतार कहलाता है, पूर्वोक्त न्यास के पश्चात् बीजोत्तार न्यास करना चाहिए ।। ५ ।। अष्टाक्षर मंत्र के वर्णों के रंग की भावना इस प्रकार करनी चाहिए । आदि के पाँच अक्षर क्रमशः- रक्त, गौर, धूम्र, हरित और सुवर्णमय कान्ति वाले हैं और अन्तिम तीन वर्ण श्वेत वर्ण के हैं । इस तरह से इनकी भावना करके न्यास करना चाहिए।।६।। इनके न्यास के स्थान हैं- हृदय, मुख, नेत्र, मूर्ध, चरण, तालु, गुह्य तथा हस्त । हाथों में तथा अंगों में बीजन्यास करके अंगन्यास करना चाहिए । जिस तरह से अपने शरीर में न्यास किया जाता है, उसी तरह से देवविग्रह में भी न्यास करना चाहिए । किन्तु देवविग्रह में करन्यास नहीं किया जाता है ।। ८ ।। देवविग्रह में हृदयादि स्थानों में विन्यस्त वर्णों का गन्ध पुष्प आदि से पूजन करना चाहिए । धर्म आदि अग्नि आदि तथा अधर्म आदि का भी शरीर में देवी पीठ पर तथा कमल पर क्रमशः न्यास करना चाहिए ।। ९ ।। पीठ पर ही कमलदल, केसर और किञ्जल्क का व्यापक, सूर्यमण्डल, चन्द्रमण्डलएवं अग्निमण्डल इन तीन मण्डलों का पृथक्-पृथक् न्यास करना चाहिए ।। १० ।। उसी पर सत्त्व आदि तीनों गुणों का तथा केसरों में विमला आदि शक्तियों का न्यास करना चाहिए । विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या तथा ईशाना ये आठ शक्तियाँ आठ दिशाओं में तथा अनुग्रहाशक्ति सबों के बीच में स्थित है।।११।। फिर योगपीठ की अर्चना करके श्रीभगवान् का आवाहन करके पुनः उनका पूजन करना चाहिए । पाद्य, अर्घ्य, आचमन, पीताम्बर तथा आभूषण, ये पाँच उपचार हैं । इन सबों को मूलमन्त्र

विदिक्षु च यजेत् क्रमात् ॥ १५॥ अभ्यर्च्य च वहिस्ताक्ष्यं देवस्य पुरतोऽर्चयेत् । विश्वक्सेनञ्च सोमेशं मध्ये आवरणाद् वहिः । इन्द्रादिपरिचारेण पूज्य सर्वमवाप्नुयात् ॥ १६ ॥

इत्यादिमहापुराणेआग्नेये अष्टाक्षरार्चनकथनं नाम त्र्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०३ ॥

चतुरधिकत्रिशततमोऽध्यायः

पञ्चाक्षरादिपूजामन्त्राः

अग्निरुवाच– **मेषःसंज्ञा विषं साक्षि षस्ति दीर्घोदकं रसः ।-एतत् पञ्चाक्षरं मन्त्रं शिवदञ्च शिवात्मकम् ॥ १ ॥ तारकादि समभ्यर्च्य देवत्वादि समाप्नुयात् । ज्ञानात्मकं परं ब्रह्म परं बुद्धिः शिवोहृदि॥ २॥ तच्छक्तिभूतः सर्वेशो भिन्नो ब्रह्मादिमूर्त्तिभिः । मन्त्रार्णाः पञ्चभूतानि तन्मात्रा विषयास्तथा ॥ ३ ॥ प्राणादिवायवः पञ्च ज्ञानकर्मेन्द्रियाणि च । सर्वं पञ्चाक्षरं ब्रह्म तद्वदष्टाक्षरान्तकः॥ ४॥ गव्येन प्रोंक्षयेद् दीक्षास्थानं मन्त्रेण चोदितम्। तन्त्रसम्भूतसम्भावः शिवमिष्ट्वा विधानतः ॥ ५ ॥ मूलमूर्त्त्यङ्गविद्याभिस्तण्डुलक्षेपणादिकम् । कृत्वा चरुञ्च यत् क्षीरं पुनस्तद् विभजेत् त्रिधा ॥६॥ निवेद्यैकं परं हुत्वा सशिष्योऽन्यद् भजेद् गुरुः। आचम्य सकलीकृत्य दद्याच्छिष्याय देशिकः ॥ ७ ॥ दन्तकाष्ठं हृदा जप्तं**

(अष्टाक्षर) से समर्पित करना चाहिए ।। १३ ।। श्रीभगवान् की वासुदेव आदि चार व्यूह मूर्तियों का पूजन चारों दिशाओं में करना चाहिए । अग्नि आदि चारों कोणों में क्रमशः श्रीदेवी, सरस्वती देवी, रति देवी तथा शान्ति देवी की पूजा करनी चाहिए ।। १४ ।। फिर आठों दिशाओं में क्रमशः शंख, चक्र,गदा, पद्म, खड्ग, शार्ङ्ग तथा वनमाला की पूजा करनी चाहिए ।। १५ ।। उसके पश्चात् बाहर तथा श्रीभगवान् के सामने ही गरुड की पूजा करनी चाहिए । इसके पश्चात् भगवान् के समक्ष विष्वक्सेन का तथा मध्य में सोमेश की पूजा करनी चाहिए । आवरण के बाहर इन्द्र आदि परिचारक वर्ग के पूजन के साथ भगवान् की पूजा करके मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है ।। १६-१७ ।।

इस तर से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अष्टाक्षर पूजन विधि का वर्णन नामक तीन सौ तीनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३०३ ॥

अग्निदेव ने कहा– मेष (न) सर्गि विष विसर्ग युक्त मकार (मः) पकार से पहले का अक्षर श और उसके साथ अक्षि (इ) दीर्घोदिक (वा) और मरुत (य)यह पाञ्च अक्षरों वाला नमः शिवाय मन्त्र शिवात्मक है और शिव को प्रदान करने वाला है ।। १ ।। इसके आदि में तारक (ओम्) जोड़ देने से छह अक्षरों का यह मन्त्र हो जाता है । इसकी अर्चना करने से देवत्व की प्राप्ति होती है । ज्ञानस्वरूप परमब्रह्म ही परम बुद्धि स्वरूप हैं और सबके हृदय में विद्यमान हैं ।। २ ।। वह परब्रह्म अपनी शक्ति स्वरूप ब्रह्मा आदि मूर्तियों के भेद से भिन्न सा प्रतीत होता है । इस मन्त्र के अक्षर पाँच हैं, भूतगण भी पाँच हैं, तन्मात्रायें भी पाँच हैं और विषय भी पाँच हैं ।। ३ ।। प्राण आदि वायु पाँच हैं, ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ भी पाँच हैं । यह सब कुछ पञ्चाक्षरात्मक है । उसी तरहसे यह अष्टाक्षर मन्त्र भी है ।। ४ ।। सर्वप्रथम मन्त्रोच्चारणपूर्वक दीक्षास्थान को पञ्चगव्य से प्रोक्षण करना चाहिए । इसके पश्चात् पूजन के लिए आवश्यक समस्त वस्तुओं को एकत्रित करके विधिपूर्वक शिवजी की पूजा करनी चाहिए ।। ५ ।। उसके पश्चात् मूलमन्त्र (ओं नमः शिवाय) इष्टमूर्तिसम्बन्धी मन्त्र तथा अङ्गमंत्रों द्वारा अक्षत छिड़ककर भूतापसारण की क्रिया करनी चाहिए । इसके पश्चात् दूध में चरु पकाकर उसको तीन भागों में विभक्त करना चाहिए ।। ६ ।। उसके एक भाग को शिवजी को निवेदित करे, दूसरे भाग को हवन करें और अवशिष्ट भाग का आचार्य एवं शिष्य दोनों भोजन करें । उसके पश्चात् सकलीकरण करके आचार्य, हृदयमन्त्र से अभिमन्त्रित करके शिष्य को दातौन दे जो कि दूध वाले वृक्ष का हो ।। ७।।

क्षीरवृक्षादिसम्भवम्। संशोध्य दन्तान् संक्षिप्त्वा प्रक्षाल्यैतत् क्षिपेद् भुवि ॥ ८ ॥ पूर्वेण सौम्यवारीश गतं शुभमतोऽशुभम् । पुनस्तं शिष्यमायान्तं शिखाबन्धादिरक्षितम्॥ ९॥ कृत्वा वेद्यां सहानेन स्वपेद् दर्भास्तरे बुधः । सुषुप्तं वीक्ष्य तं शिष्य प्रभाते श्रावयेद् गुरुम् ॥ १० ॥ शुभैः सिद्धिपदैर्भक्तिस्तैः पुनर्मण्डलार्चनम्। मण्डलं भद्रकाद्युक्तं पूजयेत् सर्वसिद्धिदम्॥ ११॥ स्नात्वाचम्य मृदा देहं मन्त्रैरालिप्य कल्प्यते । शिवतीर्थे नरः स्नायादघमर्षणपूर्वकम् ॥ १२॥ हस्ताभिषेकं कृत्वाथ प्रायात् पूजागृहं बुधः । मूलेनाब्जासनं कुर्य्यात् तेन पूरककुम्भकान् ॥ १३ ॥ आत्मानं योजयित्वोर्ध्वं शिखान्ते द्वादशाङ्गुले । संशोध्य दग्ध्वा स्वतनुं प्लावयेदमृतेन च ॥ १४ ॥ ध्यात्वा दिव्यं वपुस्तस्मिन्नात्मानञ्च पुनर्नयेत् । कृत्वैवं चात्मशुद्धिः स्याद् विन्यस्यार्चनमारभेत् ॥ १५॥ क्रमात् कृष्णसितश्यामरक्तपीता नमादयः । मन्त्राणां दण्डिनाङ्गानि तेषु सर्वास्तुमूर्त्तयः॥ १६॥ अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं विन्यस्याङ्गानि सर्वतः । न्यसेन् मन्त्राक्षरं पादगुह्यहृद्वक्त्रमूर्धसु ॥ १७ ॥ व्यापकं न्यस्य मूर्द्धादि मूलमङ्गानि विन्यसेत्! । रक्तपीतश्याममसितान् पीठपादान् स्वकालजान् ॥ १८ ॥ स्वाङ्गान् मन्त्रैर्न्यसेद् गात्राण्यधर्मादीनि दिक्षु च । तत्र पद्मञ्च सूर्य्यादिमण्डले त्रितयं गुणान् ॥ १९ ॥ पूर्वादिपत्रे वामाद्यानवकं कर्णिकोपरि । वामाज्येष्ठा क्रमाद्रौद्री काली कलविकारिणी॥ २०॥ बलविकारिणी चाथ बलप्रमथनी

उससे शिष्य अपने दाँतों को साफ करके उसको फाड़े पुनः उससे जीभ को साफ करके उसे धोकर पृथिवी पर फेंक दे ।। ८ ।। पूर्व की दिशा में फेंकने पर यदि वह दन्त काष्ट उत्तर या पश्चिम दिशा में जाकर गिरे तो शुभ होता है अन्यथा अशुभ होता है । पुनः उस आते हुए शिष्य को शिखाबन्ध आदि के द्वारा रक्षित करके आचार्य उसी के साथ कुश के विस्तर पर शयन करे ।।९।। शिष्य रात्रि में जिस प्रकार का स्वप्न देखे उसे गुरु को सुनाये ।। १० ।। यदि स्वप्न शुभ एवं सिद्धिसूचक हो तो उससे मन्त्र तथा इष्टदेवता के विषय में भक्ति बढ़ती है । इसके पश्चात् पुनः मण्डलार्चन करना चाहिए । सर्वतोभद्र आदि मण्डल जिनको पहले कहा जा चुका है उनमें से किसी एक का पूजन करें । पूजन करने से मण्डल सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करता है।।११।। पहले स्नान करके आचमन करें फिर सम्पूर्ण शरीर में मन्त्र पढ़कर मिट्टी लगायें ।। १२ ।। इसके पश्चात् विद्वान् हस्ताभिषेक (हाथों की शुद्धि) करके पूजा के गृह में प्रवेश करे । वह मूलमन्त्र से योगपीठ पर कमलासन का न्यास करे । पुनः वह मूलमन्त्र से ही, पूरक, कुम्भक एवं रेचक प्राणायाम भी करे ।। १३ ।। वह सुषुम्णा नाड़ी के माध्यम से अपनी आत्मा को ऊपर सहस्रार चक्र में ले जाकर परमात्मा में योजित कर दे । शिर से लेकर शिखा पर्यन्त जो बारह अंगुल का स्थान है वही ब्रह्मरन्ध्र है । उसी में आत्मा को योजित करके । इसके पश्चात् सभी भूतों का अपने कारण तत्त्व में लय का ध्यान करके, वायु का ध्यान करके अपने शरीर का शोषण करे । पुनः अग्नि का ध्यान करके अपने पाञ्च भौतिक शरीर के दग्ध हो जाने का ध्यान करे । पुनः उसे अमृत की धारा में बहा देने की भावना करे ।। १४ ।। इसके पश्चात् ध्यान करे कि उसका नवीन दिव्य शरीर हो गया है । उस शरीर में पुनः आत्मा को प्रवेश कराये । ऐसा करने से आत्मशुद्धि हो जाती है । फिर न्यास करके पूजन प्रारम्भ करे ।। १५ ।। पञ्चाक्षर मन्त्र के नम आदि पाञ्च वर्णों के रूप क्रमशः कृष्ण, श्वेत, श्याम, रक्त तथा पीत हैं । मन्त्र के पाँचों अक्षरों से पञ्चाङ्ग न्यास करके उन्हीं अंगों में तत्पुरुष आदि पाँच मूर्तियों का भी न्यास करना चाहिए ।। १६ ।। इसके पश्चात् अंगुष्ठ से लेकर कनिष्ठा पर्यन्त पाँचों अंगुलियों में अङ्गमन्त्रों का सर्वतोभावेन न्यास करके, मन्त्र के पाँचों अक्षरों का क्रमशः पाद, गुह्य, हृदय, मुख तथा मूर्धा में न्यास करना चाहिए ।। १७ ।। इसके पश्चात् मूर्धा, मुख, हृदय और पाद इन अंगों में व्यापक न्यास करके, मूलमन्त्र के अक्षरों का तथा अङ्गों का वहीं न्यास करें । इसके पश्चात् कोणों में प्रकट पीठ के धर्म आदि पादों का जो क्रमशः रक्त, पीत, श्याम तथा श्वेत वर्ण का है, उनका ध्यान करना चाहिए और उनमें साध्य मन्त्रों के अक्षरों का न्यास करना चाहिए । इसके पश्चात् पूर्वादि दिशाओं में योग पीठ के अधर्म आदि पादों का चिन्तन करके उनमें अङ्गों का न्यास करे । इस प्रकार से योगपीठ का चिन्तन करके उसके ऊपर अष्टदल कमल का, सूर्यमण्डल, सोममण्डल तथा अग्निमण्डल का एवं सत्त्व आदि गुणों की भावना करनी चाहिए ।। १८-१९ ।। इसके पश्चात् अष्टदल के आठ दलों पर वामा आदि शक्तियों का और कर्णिका में नवीं मनोन्मनी नाम की शक्ति का चिन्तन करना चाहिए । इन शक्तियों के क्रमशः नाम हैं-वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली,

तथा । सर्वभूतदमनि च नवमी च मनोन्मनी ॥ २१ ॥ श्वेता रक्ता सिता पीता श्यामा वह्निनिभासिता। कृष्णारुणाश्चताः शक्तीर्ज्वालारूपाः स्मरेत् क्रमात् ॥ २२ ॥ अनन्तयोगपीठाय आवाह्याथ हृदब्जतः । स्फटिकाभं चतुर्बाहुं फलशूलधरं शिवम् ॥ २३ ॥ साभयं वरदं पञ्चवदनञ्च त्रिलोचनम् । पत्रेषु मूर्त्तयः पञ्च स्थाप्यास्तत्पुरुषादयः ॥ २४ ॥ पूर्वे तत्पुरुषः श्वेतो अघोरोऽष्टभुजोऽसितः । चतुर्बाहुमुखः पीतः सद्योजातश्च पश्चिमे ॥ २५ ॥ वामदेवः स्त्रीविलासी चतुर्वक्त्रभुजोऽरुणः । सौम्ये पञ्चास्य ईशाने ईशानः सर्वदः सितः ॥ २६ ॥ इष्टाङ्गानि यथान्यायमनन्तं सूक्ष्ममर्चयेत् । सिद्धेश्वरं त्वेकनेत्रं पूर्वादौ दिशि पूजयेत्॥ २७॥ एकरुद्रं त्रिनेत्रञ्च श्रीकण्ठञ्च शिखण्डिनम् । ऐशान्यादि विदिक्ष्वेते विद्येशाः कमलासनाः ॥ २८ ॥ श्वेतः पीतः सितो रक्तो धूम्रो रक्तोऽरुणः सितः । शूलाशनिशरेष्वासबाहवश्चतुराननाः॥ २९॥ उमा चण्डेशनन्दीशौ महाकालो गणेश्वरः । वृषो भृङ्गरिटिस्कन्दानुत्तरादौ प्रपूजयेत् ॥ ३०॥ कुलिशं शक्तिदण्डौ च खड्गपाशध्वजौ गदाम् । शूलं चक्रं यजेत् पद्मं पूर्वादौ देवमर्च्य च ॥ ३१ ॥ ततोऽधिवासितं शिष्यं पाययेद् गव्यपञ्चकम् । आचान्तं प्रोक्ष्य नेत्रान्तैर्नेत्रे नेत्रेण बन्धयेत् ॥ ३२ ॥ द्वारं प्रवेशयेच्छिष्यं मण्डपस्याथ दक्षिणे । सासनादि कुशासीनं तत्र संशोधयेद् गुरुः॥ ३३॥ आदितत्त्वानि संहृत्य परमार्थे लयः क्रमात् । पुनरुत्पादयेच्छिष्यं सृष्टिमार्गेण देशिकः॥ ३४॥ न्यासं शिष्ये ततः कृत्वा तंप्रदक्षिणमानयेत् । पश्चिमद्वारमानीय क्षेपयेत् कुसुमाञ्जलिम्॥ ३५॥ यस्मिन् पतन्ति पुष्पाणि तन्नामाद्यं विनिर्दिशेत्। पार्श्वे यागभुवः खाते कुण्डे सन्नाभिमेखले ॥ ३६ ॥शिवाग्निं जनयित्वेष्ट्वा पुनः शिष्येण चार्चयेत् । ध्यानेनात्मनिभं

कालविकारिणी, बलविकारिणी, बल प्रमथिनी, सर्वभूत दमनी तथा मनोन्मनी । ये शक्तियाँ ज्वाला स्वरूप हैं । इनके वर्ण क्रमशः- श्वेत, रक्त, सित, पीत, श्याम, अग्नि के समान, कृष्ण तथा अरुण हैं। इसी रूप से इन शक्तियों का चिन्तन क्रमशः करना चाहिए ।। २०-२२ ।। अनन्त योग पीठाय नमः इस मन्त्र से योगपीठ का पूजन करके हृदयकमल में जिनकी कान्ति स्फटिक मणि के समान श्वेत है, जिनकी चार भुजायें हैं, जो फल एवं शूल धारण करने वाले हैं, एवं जिनके हाथ अभय एवं वरद मुद्रा से सुशोभित हैं ।जिनके तीन नेत्र तथा पाँच मुख हैं ऐसे शिव का आवाहन करना चाहिए ।। २३ ।। इसके पश्चात् कमल के दलों में शिव की तत्पुरुष आदि पाँच मूर्तियों की स्थापना करनी चाहिए । (तत्पुरुष आदि के स्थापना के मन्त्र हैं- नं तत्पुरुषाय नमः (पूर्वे) मं अघोराय नमः (दक्षिणे) शिं सद्योजाताय नमः (पश्चिमे) वां वामदेवाय नमः (उत्तरे) यं ईशानाय नमः (ईशाने) तत्पुरुष का वर्ण श्वेत है, इनका स्थान पूर्व में है, अघोर का वर्ण श्याम है और उनकी आठ भुजायें हैं । इनका स्थान दक्षिण दिशा में है । सद्योजात की चार भुजाएँ और चार मुख हैं । इनका वर्ण पीत है और स्थान पश्चिम में है ।। २५ ।। वामदेव का विग्रह पार्वतीजी के साथ है । इनकी चार भुजाएँ और चार मुख हैं । ईशान के पाञ्चमुख हैं । वे श्वेत वर्ण के हैं । सब कुछ प्रदान करने वाले हैं तथा उनका स्थान ईशानकोण के दल में है ।। २६ ।। इसके पश्चात् इष्ट अंगों की यथोचित पूजा करे । फिर अनन्त, सूक्ष्म, सिद्धेश्वर तथा एकनेत्र का पूर्वादि दिशाओं में पूजन करना चाहिए ।। २७ ।। तदनन्तर ईशान आदि कोणों में कमल के आसन पर बैठे हुए त्रिनेत्र, श्रीकण्ठ तथा शिखण्डी की पूजा करनी चाहिए । ये चारो विद्येश हैं ।। २८ ।। इन सबों का वर्ण क्रमशः- श्वेत, पीत, सित, रक्त, धूम्र, रक्त, अरुण एवं सित है। इन सबों की चार भुजाएँ तथा चार मुख हैं । ये अपनी भुजाओं में त्रिशूल, वज्र, बाण एवं धनुष् धारण करते हैं ।। २९ ।। उसके पश्चात् उमा, चण्डीश, नन्दीश, महाकाल, गणेश्वर, वृष, भृंग, रिटि, स्कन्द तथा अनुत्तर की पूजा अच्छी तरह से करनी चाहिए ।। ३० ।। तदनंतर पूर्वादि दिशाओं में भगवान् शिव की पूजा करने के पश्चात् कुलिश, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, ध्वजा, गदा, शूल, चक्र तथा पद्म की पूजा करनी चाहिए ।। ३१ ।। उसके पश्चात् आचार्य अधिवासित शिष्य को पाञ्चगव्य पिलाकर आचमन करायें । फिर उसका प्रोक्षण करके उजले वस्त्र की पट्टी से नेत्र मन्त्र को पढ़ते हुए शिष्य के नेत्रों को बाँध दे ।। ३२ ।। उसके पश्चात् आचार्य दक्षिण द्वार से शिष्य को मण्डप में प्रवेश करायें । वहाँ आसन अथवा कुश पर बैठे हुए शिष्य का गुरु संशोधन करे ।। ३३ ।। इसके पश्चात् शिष्य के पहले के पाञ्च भौतिक तत्त्वों का संहार करके क्रमशः उसका परमात्मा में लय कराये । फिर ध्यान के द्वारा आचार्य शिष्य का सृष्टिमार्ग से उत्पादन करे।।३४।। पुनः उस शिष्य के दिव्य शरीर में न्यास करके उसको प्रदक्षिण क्रम से मण्डप के पश्चिम द्वार पर लाये वहाँ उससे आचार्य पुष्पाञ्जलि प्रदान कराये ।। ३५ ।। पुष्पाञ्जलि का पुष्प

शिष्यं संहृत्य प्रलयः क्रमात् ॥ ३७ ॥ पुनरुत्पाद्य तद्धस्तं दद्याद् दर्भांश्च मन्त्रितान्। पृथिव्यादीनि तत्त्वानि जुहुयाद्धृदयादिभिः ॥ ३८ ॥ एकैकस्य शतं हुत्वा व्योममूलेन होमयेत् । हुत्वा पूर्णाहुतिं कुर्य्यादस्त्रेणाष्टाहुतीर्हुनेत्॥ ३९॥ प्रायश्चित्तं विशुद्ध्यर्थं ततः शेषं समापयेत् । कुम्भं समन्त्रितं प्रार्च्य शिशुं पीठेऽभिषेचयेत् ॥ ४० ॥ शिष्ये तु समयं दत्त्वा स्वर्णाद्यैः स्वगुरुंयजेत् । दीक्षापञ्चाक्षरस्योक्ता विष्ण्वादेरेवमेव हि ॥ ४१॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पञ्चाक्षरादिपूजामन्त्रकथनं नाम चतुरधिकद्वित्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०४ ॥

पञ्चाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

पञ्चपञ्चाशद् विष्णुनामानि

अग्निरुवाच- जपन् वै पञ्चपञ्चाशद् विष्णुनामानि यो नरः । मन्त्रजप्यादिफलभाक् तीर्थेष्वर्चादिचाक्षयम् ॥ १ ॥ पुष्करे पुण्डरीकाक्षं गयायाञ्च गदाधरम् । राघवञ्चित्रकूटे तु प्रभासे दैत्यसूदनम् ॥ २ ॥ जयं जयन्त्यां तद्वच्च जयन्तं हस्तिनापुरे । वाराहं वर्द्धमाने च काश्मीरे चक्रपाणिनम्॥ ३॥ जनार्दनञ्च कुब्जाम्रे मथुरायाञ्च केशवम् । कुब्जाम्रके हृषीकेशं गङ्गाद्वारे जटाधरम् ॥ ४॥ शालग्रामे महायोगं हरिं गोवर्धनाचले। पिण्डारके चतुर्बाहुं शङ्खद्वारे च शङ्खिनम्॥ ५॥ वामनञ्च कुरुक्षेत्रे यमुनायां त्रिविक्रमम् । विश्वेश्वरं तथाशोणे कपिलं पूर्वसागरे ॥ ६॥ विष्णुं महोदधौ विद्याद् गङ्गासागरसङ्गमे । वनमालञ्च किष्किन्ध्यां देवं रैवतकं विदुः ॥ ७ ॥ काशीतटे महायोगं विरजायां रिपुञ्जयम् । विशाखयूपे

जिस देवता पर गिरे उस देवता का नाम आदि में रखकर शिष्य का आचार्य नया नाम रखे । यज्ञभूमि के बगल में बने नाभि तथा मेखला से युक्त कुण्ड में शिवाग्नि को प्रकट करके आचार्य स्वयं उसका पूजन करे फिर उसका शिष्य से भी पूजन कराये । फिर आचार्य ध्यान के द्वारा अपने ही समान शिष्य को भी प्रलय से संहार करके उसको सृष्टिक्रमसे पुनः उत्पन्न करके उसके हाथ में अभिमंत्रित कुश को प्रदान करे । फिर हृदयादि न्यास करके पृथिवी आदि तत्त्वों के लिए आहुति प्रदान करे ।। ३६-३८ ।। पृथिवी, जल, तेज एवं वायु के इनमें से प्रत्येक के लिए सौ-सौ आहुति देकर आकाश तत्त्व के लिए मूलमन्त्र (ओं नमः शिवाय) इस मंत्र से सौ आहुति दे । इसके पश्चात् आहुति देकर अस्त्र मन्त्र (फट्) का उच्चारण करके आठ आहुति दे ।। ३९।। फिर विशेष शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त (होम या गोदान) करे । इसके पश्चात् शेष कार्य को पूरा करें । फिर अभिमन्त्रित कलश की पूजा करके शिष्य का पीठ पर अभिषेक करना चाहिए ।। ४०।। इसके पश्चात् आचार्य शिष्य को शिष्टाचार की शिक्षा दे । शिष्य भी सुवर्ण आदि के द्वारा गुरु की पूजा करे । इस तरह से मैंने आपको पञ्चाक्षर मन्त्र की दीक्षा विधान को बतलाया इसी तरह से विष्णु आदि की भी दीक्षा का विधान है ।। ४१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का पञ्चाक्षरादि पूजामन्त्र का विधानवर्णन नामक तीन सौ चारवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३०४ ॥

अग्निदेव ने कहा— जो मनुष्य विष्णु के पचपन नामों का जप करता है, वह मन्त्रों के जप करने के फल का भागी होता है तथा तीर्थों में अर्चना करने का अक्षय फल प्राप्त करता है।।१।। पुष्कर में पुण्डरीकाक्ष, गया में गदाधर, चित्रकूट में राघव प्रभास में दैत्य सूदन, ।। २ ।। जयन्ती में जय, हस्तिनापुर में जयन्त, वर्द्धमान में वाराह, काश्मीर में चक्रपाषि ।। ३ ।। कुब्जाम्र में जनार्दन, मथुरा में केशवदेव, कुब्जाम्रक में हृषीकेश, गंगाद्वार में जटाधर ।। ४ ।। शालग्राम में महायोग, गोवर्धनाचल में श्रीहरि, पिण्डारक क्षेत्र में चतुर्भुज, शंखद्वार में शंखी ।। ५ ।। कुरुक्षेत्र में वामन, यमुना में त्रिविक्रम, शोण क्षेत्र में विश्वेश्वर, पूर्व समुद्र में कपिल ।। ६ ।। महासागर में विष्णु, गंगासागर में संगम में वनमाला तथा किष्किन्धा में रैवतक देव को बतलाया

ह्यजितं नेपाले लोकभावनम् ॥ ८ ॥ द्वारकायां विद्धिकृष्णं मन्दरे मधुसूदनम् !! लोकाकुले रिपुहरं शालग्रामे हरिं स्मरेत्॥ ९॥ पुरुषं पूरुषवटे विमले च जगत्प्रभुम् । अनन्तं सैन्धवारण्ये दण्डके शार्ङ्गधारिणम् ॥ १०॥ उत्पलावर्तके शौरिं नर्मदायां श्रियः पतिम् । दामोदरं रैवतके नन्दायां जलशायिनम् ॥ ११ ॥ गोपीश्वरञ्च सिन्ध्वब्धौ माहेन्द्रे चाच्युतं विदुः । सह्याद्रौ देवदेवेशं वैकुण्ठं मागधे वने ॥ १२ ॥ सर्वपापहरं विन्ध्ये औड्रे तु पुरुषोत्तमम् । आत्मानं हृदये विद्धि जपतां भुक्तिमुक्तिदम् ॥ १३ ॥ वटे वटे वैश्रवणं चत्वरे चत्वरे शिवम् । पर्वते पर्वते रामं सर्वत्र मधुसूदनम्॥१४॥ नरं भूमौ तथा व्योम्नि वसिष्ठे गरुडध्वजम् । वासुदेवञ्च सर्वत्र संस्मरन् भुक्तिमुक्तिभाक् ॥ १५ ॥ नामान्येतानि विष्णोश्च जप्त्वा सर्वमवाप्नुयात् । क्षेत्रेष्वेतेषु यत् श्राद्धं दानं जप्यञ्च तर्पणम् ॥ १६ ॥ तत् सर्वं कोटि गुणितं मृतो ब्रह्ममयो भवेत् । यः पठेत् शृणुयाद् वापि निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ॥ १७॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पञ्चपञ्चाशदविष्णुनामकथनं नाम पञ्चाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०५ ॥

षडधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नारसिंहादिमन्त्राः

अग्निरुवाच– **स्तम्भो विद्वेषणोच्चाट उत्सादो भ्रममारणे । व्याधिश्चेति स्मृतं क्षुद्रं तन्मोक्षो वक्ष्यते शृणु ॥ १ ॥ ओं नमो भगवते उन्मत्तरुद्राय भ्रम भ्रम भ्रामय भ्रामय अमुकं वित्रासय वित्रासय उद्भ्रामय उद्भ्रामय रुद्र रौद्रेण रूपेण हूं फट् ठ ठ । श्मशाने निशि जप्तेन त्रिलक्षं मधुना हुनेत्।**

गया है ।। ७ ।। काशीतट में महायोग, विरजा में रिपुञ्जय, विशाखयूप में अर्जित तन्य नेपाल में लोकभावन भगवान् को जानना चाहिए ।। ८ ।। द्वारका में श्रीकृष्ण, मन्दराचल में श्रीहरि का स्मरण करना चाहिए ।। ९ ।। पूरुषवट में पुरुष, विमलक्षेत्र में जगत्प्रभु को, सैन्धवारण्य में अनन्त को तथा दण्डकारण्य में शार्ङ्गधारी भगवान् को जानना चाहिए ।। १० ।। उत्पलावर्तक में शौरी, नर्मदा में श्रीपति, रैवतक क्षेत्र में दामोदर तथा नन्दाक्षेत्र में जलशायी भगवान् को जानें ।। ११ ।। सिन्धु सागर में गोपीश्वर को, माहेन्द्र क्षेत्र में अच्युत को सह्याद्रि पर देवदेवेश को तथा मागध वन में वैकुण्ठ भगवान् का स्मरण करें ।। १२ ।। विन्ध्य क्षेत्र में सर्वपापहर को, औड्र में पुरुषोत्तम भगवान् का स्मरण करें । अपने हृदय में आत्मा स्वस्प परमात्मा को जानें इनका जप करने वाला भोग तथा मोक्ष को प्राप्त करता है ।। १३ ।। प्रत्येक वट पर कुबेरात्मा भगवान् को प्रत्येक चत्वर (चौराहे) पर शिव को, प्रत्येक पर्वत पर राम को तथा सर्वत्र मधुसूदन को जानना चाहिए ।। १४ ।। पृथिवी तथा आकाश में नर को, वसिष्ठ तीर्थ में गरुडध्वज को तथा सर्वत्र वासुदेव को स्मरण करने वाला मनुष्य भोग तथा मोक्ष को प्राप्त करता है ।। १५ ।। भगवान् विष्णु के इन नामों का जप करके मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है । इन क्षेत्रों में जो जप, दान, श्राद्ध तथा तर्पण किया जाता है, वह सब कुछ करोड़ गुना फल देता है तथा साधक मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मस्वरूप हो जाता है ।। १६ ।। जो मनुष्य भगवान् के इन नामों को पढ़ता अथवा सुनता है, वह निष्पाप होकर स्वर्ग को प्राप्त करता है ।। १७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का विष्णु के पचपन नाम वर्णन नाम तीन सौ पाचवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३०५ ॥

अध्याय ३०६

अग्निदेव ने कहा– मुने ! स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन, उत्सादन, भ्रामण, मारण एवं व्याधिकरण ये छह क्षुद्र कर्म हैं । इनसे मुक्ति पाने के उपायों को मैं बतला रहा हूँ आप सुनें ।।१।। ओं नमापे भगवते उन्मत्तरुद्राय, भ्रम-भ्रम, भ्रामय-भ्रामय, अमुकं वित्रासय-वित्रासय, उद्भ्रामय-उद्भ्रामय, रुद्र, रौद्रेण रूपेण, हूं फट् स्वाहा ।। श्मशान में जाकर इस मंत्र का रात में तीन लाख जप करें । इसके पश्चात् चिता की आग में धत्तूरे कीसमिधा का हवन करें । ऐसा करने से शत्रु सदा चक्कर में पड़ा रहता है । सुनेहरे गुरु से शत्रु की प्रतिमा बनाकर उक्त मन्त्र का जप करें ।

चिताग्नौ धूर्त्त समिद्भिर्भ्राम्यते सततं रिपुः ॥ २ ॥ हेमगैरिकया कृत्वा प्रतिमा हैमसूचिभिः । जप्त्वा विध्येच्चतत्कण्ठे हृदि वा म्रियतेरिपुः ॥ ३॥ खरबालचिताभस्म ब्रह्मदण्डी च मर्कटी । गृहे वा मूर्ध्नि तच्चूर्णं जप्तमुत्सादकृत् क्षिपेत्॥ ४॥ भृग्वाकाशौ सदीप्ताग्निर्भृगुर्वह्निश्च वर्म फट् । एवं सहस्त्रारे हूं फट् आचक्राय स्वाहा हृदयं विचक्राय शिरः । शिखाचक्रायाथ कवचं विचक्राय च नेत्रकम् ॥ ५ ॥ सुचक्रायास्त्रमुद्दिष्टं ज्वालाचक्राय पूर्ववत्। साङ्गं सुदर्शनं क्षुद्रग्रहहृत्सर्वसाधनम्॥ ६॥ मूर्द्धाक्षिमुखहृद्गुह्य पादे ह्यस्याक्षरान् न्यसेत् । चक्राब्जासनमग्न्याभं दंष्ट्रिणञ्च चतुर्भुजम् ॥ ७॥ शङ्खचक्रगदापद्मपाशाङ्कुशपाणिनम्। चापिनं पिङ्गकेशारक्तंव्याप्तत्रिविष्टपम् ॥ ८ ॥ नाभिस्तेनाग्निना विद्धा नश्यन्ते व्याधयो ग्रहाः । पीतचक्रं सदा रक्ता स्वराः श्याममवान्तरम् ॥ ९ ॥ नेमिः श्वेता वहिः कृष्णवर्णरेखा च पार्थिवी । मध्येतरैमरेवर्णानेवं चक्रद्वयं लिखेत्॥ १०॥ आदावानीय कुम्भोदं गोचरे सन्निधाय च । दत्त्वा सुदर्शनं तत्र याम्ये चक्रे हुनेत् क्रमात् ॥ ११ ॥ आज्यापामार्गसमिधो ह्यक्षतं तिलसर्षपौ । पायसं गव्यमाज्यञ्च सहस्राष्टकसंख्यया॥ १२॥ हुतशेषं क्षिपेत् कुम्भे प्रतिद्रव्यं विधानवित् । प्रस्थानेन कृतपिण्डं कुम्भे तस्मिन् निवेशयेत् ॥ १३ ॥ विष्णवादि सर्वं तत्रैव न्यसेत् तत्रैव दक्षिणे । नमो विष्णुजनेभ्यः सर्वशान्तिकरेभ्यः प्रतिगृह्णन्तु शान्तये नमः। दद्यादनेन मन्त्रेण हुतशेषाम्भसा बलिम्॥१४॥ फलके कल्पिते पात्रे कलशे क्षीरशाखिनः। दधिपूर्णे निवेश्यैव दिक्ष्वेवं होमयेद्द्विजैः॥१५॥ सदक्षिणमिदं होम द्वयं भूतादिनाशनम्। गव्याक्तिपत्रलिखितैर्निष्पर्णैः

इसके बाद उपर्युक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित सोने की सूई से प्रतिमा के गले को अथवा हृदय में बिंधे । ऐसा करने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है ।। ३ ।। गधे के बाल, चिता का भस्म, ब्रह्मदण्डी या तूत की लकड़ी तथा मर्करी (एक प्रकार का करंज) इन सबों को जलाकर भस्म बना लें । उस भस्म को उत्सादन करने वाला पुरुष अपने शत्रु के घर पर अथवा उसके मस्तक पर फेंक दें।।४।। भृगु (स) आकाश, (ह) दीप्त (दीर्घ आकार युक्त) तथा अग्नि (र) युक्त भृगु (स) और अग्नि (र) और वर्म (हुम्) फट् अर्थात् (सहस्रार हुं फट्) इस सुदर्शन मन्त्र का अंगन्यास इस प्रकार है- आचक्राय हुं स्वाहा हृदयाय नमः, विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा सुचक्राय स्वाहा स्वाहा नेत्राभ्यां वौषट्, ज्वालाचक्राय स्वाहा, अस्त्राय फट् ।। ये अंगन्यास पूर्ववत् कहे गये हैं ।। ५ ।। अङ्गन्यासपूर्वक जपा हुआ यह सुदर्शन मन्त्र क्षुद्रकर्मों और ग्रहबाधा को दूर करने वाला तथा सब कुछ प्रदान करने वाला है ।। ६ ।। इस सुदर्शन मन्त्र के छह अक्षरों का क्रमशः मूर्धा, नेत्र, मुख, हृदय, गुह्य तथा पैर में न्यास करना चाहिए । इसके पश्चात् ध्यान करना चाहिए कि चक्र स्वरूप भगवानृ विष्णु कमलासन पर विराजमान हैं । उनकी अंगकान्ति अग्नि के समान है । उसके मुख में दाढ़ें हैं और वे चार भुजाओं वाले होने के साथ-साथ आठ भुजाओं वाले हैं । वे शंख, चक्र, गदा, पद्म, पाश, अंकुश तथा धनुष् अपने हाथों में धारण किए हुए हैं । उनके केश पीले हैं और नेत्र लाल है । वे अपने अरोंसे त्रिलोक को व्याप्त किए हुए हैं ।। ८ ।। चक्र की नाभि उस अग्नि से व्याप्त है जिसके चिन्तन मात्र से व्याधियाँ तथा ग्रह विनष्ट हो जाते हैं । सम्पूर्ण चक्र पीतवर्ण का है । उसके अर सुन्दर और रक्त वर्ण के हैं । अरों को अवान्तर भाग श्याम वर्ण के हैं ।। ९ ।। चक्र की नेमि श्वेतवर्ण की है । उसमें बाहर से कृष्णवर्ण की पार्थिवी रेखा है । अरों से युक्त जो मध्यभाग है उसमें समस्त अकारादि वर्ण हैं । इस प्रकार के दो चक्र चिह्नों को अंकित करना चाहिए ।। १० ।। उत्तरवर्ती चक्र चिह्न पर अपने सन्निकट में ही जलपूर्ण कलश स्थापित करें । दक्षिणवर्ती चिह्न पर सुदर्शन की पूजा करके वहाँ क्रमशः घी, अपामार्ग की समिधा, अक्षत, तिल, सरसों, खीर और गोघृत इन सबों की अष्टोत्तर सहस्र आहुति देनी चाहिए।।१२।। विधान वेत्ता पुरुष हुतशेष द्रव्य को कलश में डालता जाय । उसके पश्चात् एक प्रस्थ (सेर) अन्न के बनाये हुए पिण्ड को उस कलशम` डालें ।। १३ ।। इसके पश्चात् विष्णु आदि देवों के लिए देश समस्त वस्तुओं को वहीं दक्षिण चक्रचिह्न पर रखें । इसके पश्चात् 'नमो विष्णुजनेभ्यः सर्वशान्तिकरेभ्यः ।' इस मन्त्र से बलि देकर कहें कि सब प्रकार की शान्ति करने वाले विष्णु भगवान् के जनों को नमस्कार है, आप सभी बलिग्रहण करें और मुझे शान्ति प्रदान करें । बलि हुतशेष जल से देनी चाहिए ।। १४ ।। फलक पर अथवा कलश में अथवा दूध वाले काष्ठ निर्मित दधिपूर्ण काष्ठ पात्र में रखकर ही बलि प्रत्येक दिशाओं में देनी चाहिए ।। १५ ।। यह हम ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर उनसे ही करवाना चाहिए । इस प्रकार का दो बार होम

क्षुद्रमुद्धुतम् ॥ १६॥ दूर्वाभिरायुषे पद्मैः श्रियै पुत्रा उडुम्बरैः । गोसिद्ध्यै सर्पिषा गोष्ठे मेधायै सर्वशाखिना॥ १७॥ ओं क्ष्रौं नमो भगवते नारसिंहाय ज्वालामालिने दीप्तदंष्ट्रायाग्निनेत्राय सर्वरक्षोघ्नाय सर्वभूतविनाशाय सर्वज्वरविनाशाय दह दह पच पच रक्ष रक्ष हुं फट्। मन्त्रोऽयं नारसिंहस्य सकलाघनिवारणः । जप्यादिना हरेत् क्षुद्रं ग्रहमारी विषामयान् चूर्णमण्डूकवयसा। जलाग्निस्तम्भकृद् भवेत् ॥ १८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नारसिंहादिमन्त्रकथनं नाम षड़धिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०६ ॥

सप्ताधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्रैलोक्यमोहनमन्त्राः

अग्निरुवाच– **वक्ष्ये मन्त्रं चतुर्वर्ग सिद्धौ त्रैलोक्यमोहनम् । ओं श्रीं ह्रीं हूं ओं नमः पुरुषोत्तम ! पुरुषोत्तमप्रतिरूप ! लक्ष्मीनिवास ! सकलजगत्क्षोभण ! सर्वस्त्रीहृदयदारण ! त्रिभुवनमदोन्मादकर ! सुरमनुजसुन्दरीजनमनांसि तापय तापय दीपय दीपय शोषय शोषय मारय मारय स्तम्भय स्तम्भय द्रावय द्रावय आकर्षय आकर्षय परमसुभग ! सर्वसौभाग्यकर ! कामप्रद ! अमुकं हन हन चक्रेण गदया खड्गेन सर्वबाणैर्भिन्द भिन्द पाशेन हट्ट हट्ट अङ्कुशेन ताड़य ताड़य त्वर त्वर किं तिष्ठसि यावत् तावत् समीहितं मे सिद्धं भवति हूं फट् नमः ॥ २ ॥ ओं पुरुषोत्तम ! त्रिभुवनमदोन्मादकर ! हूं फट् हृद्याय नमः। कर्षयमहाबल ! हूं फट् अस्त्राय त्रिभुवनेश्वरसर्वजनमनांसि हन हन दारय दारय मम**

करने से सभी भूतों का विनाश हो जाता है । दही लगे हुए पत्तों पर लिखित मन्त्राक्षरों द्वारा किया गया होम क्षुत्र रोगों का नाशक होता है ।। १६ ।। दुर्वा से होम करने से आयु की वृद्धि होती है, कमलसे होम करने से श्री की वृद्धि होती है, तथा गूलर के काष्ठ से हवन किया जाय तो पुत्र की प्राप्ति होती है । गोशाला में घी से होम करने से गायों की वृद्धि होती है । सभी प्रकार की समिधाओं से होम करने से मेघा की वृद्धि होती है ।। १७ ।। ओं क्ष्रौं नमो भगवते नारसिंहाय ज्वालामालिने दीप्तदंष्ट्राय अग्निनेत्राय, सर्वरक्षोघ्नाय, सर्वभूतविनाशाय, सर्वज्वरविनाशाय दह-दह, पच-पच, रक्ष्र-रक्ष, हुं फट् । यह नारसिंह भगवान् का मन्त्र है, सभी पापों का नाश करने वाला है । जप आदि करने से यह मन्त्र क्षुद्रकर्म, ग्रह, महामारी, विष तथा रोगों का विनाश कर देता है । यदि चूर्ण करके मण्डूकवयस्से हवन किया जाय तो इससे जल स्तम्भन और अग्नि स्तम्भन होता है ।। १९ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का नारसिंहादि मन्त्र वर्णन नामक तीन सौ छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३०६ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं चतुर्वर्ग की सिद्धि प्रदान करने वाले त्रैलोक्य मोहन मन्त्र का वर्णन करता हूँ । 'ओं श्रीं ह्रीं हूँ ओं नमः पुरुषोत्तम ! पुरुषोत्तम ! अप्रतिरूप ! लक्ष्मीनिवास! सकल जगत् क्षोभण ! सर्वस्त्रीहृदयदारण । त्रिभुवन्मदोन्मादकर ! सुरमनुजसुन्दरीजनमनांसि तापय-तापय, दीपय-दीपय, शोषय-षोषय, मारय-मारय, स्तम्भय स्तम्भय, द्रावण-द्रावण, आकर्षय-आकर्षय, परमसुभग ! सर्वसौभाग्यकर ! कामप्रद ! अमुकं हन-हन, चक्रेण, गदया, खड्गेन, सर्वबाणैर्भिन्द-भिन्द, पाशेन कट्ट-कट्ट, अंकुशेन ताडय-ताडय, त्वर-त्वर, किं तिष्ठसि यावत् तावत, समीहितं मे सिद्धं भवति, हुँ फट् नमः ।' इस मन्त्र का अर्थ है कि- ओं श्रीं ह्रीं हूं सच्चिदानन्दस्वरूप, पुरुषोत्तम ! पुरुषोत्तम, अपने सदृश से रहित है, हे लक्ष्मी निवास ! सम्पूर्ण जगत् को क्षुब्ध कर देने में समर्थ, सभी स्त्रियों के हृदय को विदीर्ण करने में समर्थ, त्रिभुवन के मद को उन्मत्त करने वाले, देवताओं तथा मनुष्यों की सुन्दरियों के मन को संतप्त करें, सन्तप्त करे ।दीप्त करें दीप्त करें । शोषित करें शोषित करें । मारें-मारें । स्तम्भित करें-स्तम्भित करें । द्रावित करें-द्रावित करें । आकर्षित करें-आकर्षित करें । परमसौभाग्य सम्पन्न सभी प्रकार के सौभाग्य को आप

वशमानय आनय मम वशमानय हूं फट्। नेत्राय त्रैलोक्यमोहन ! हृषीकेशाप्रतिरूप ! सर्वस्त्रीहृदयाकर्षण ! आगच्छ आगच्छ नमः ॥ ३ ॥ सङ्गाक्षिण्यायकेन न्यासं मूलवदीरितम् । इष्ट्वा सञ्जप्य पञ्चाशत्सहस्रमभिषिच्य च । कुण्डेऽग्नौ दैविके वह्नौ चरुं कृत्वा शतं हुनेत्॥४॥ पृथग् दधि घृतं क्षीरं चरुं साज्यं पयः शृतम् । द्वादशाहुतिमूलेन सहस्रञ्चाक्षतांस्तिलान् ॥ ५ ॥ यवं मधुत्रयं पुष्पं फलं सदधि मिच्छतम् । हुत्वा पूर्णाहुतिं शिष्टं प्राशयेत् सघृतं चरुम् ॥ ६ ॥ सम्भोज्य विप्रानाचार्य्यं तोषयेत् सिध्यते मनुः । स्नात्वा यथावदाचम्य वाग्यतो यागमन्दिरम् ॥ ७॥ गत्वा पद्मासनं बद्ध्वा शोधयेद् विधिना वपुः । रक्षोघ्न विघ्नकृद् दिक्षु न्यसेदादौ सुदर्शनम् ॥ ८ ॥ पञ्चवीजं नाभिमध्यस्थं धूम्रं चण्डानिलात्मकम् । अशेषं कल्मषं देहाद् विश्लेषयदनुस्मरेत् ॥ ९॥ र वीजं हृदयाब्जस्थं स्मृत्वा ज्वालाभिरादहेत् । ऊर्ध्वाधस्तिर्य्यगाभिस्तु मूर्ध्नि संप्लावयेद् वपुः॥१०॥ ध्यात्वामृतैर्वहिश्चान्तःसुषुम्णामार्गगामिभिः ।एवं शुद्धवपुः प्राणानायम्य मनुना त्रिधा॥ ११॥ विन्यसेन्न्यस्तहस्तान्तः शक्तिं मस्तकवक्त्रयोः। गुह्ये गले दिक्षु हृदि कुक्षौ देहे च सर्वतः ॥ १२ ॥ आवाह्य ब्रह्मरन्ध्रेण हृत्पद्मे सूर्य्यमण्डलात् । तारेण सम्परात्मानं स्मरेत् तं सर्वलक्षणम् ॥ १३॥ त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे स्मराय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥ १४ ॥ आत्मार्चनात् क्रतुद्रव्यं प्रोक्षयेच्छुद्धपात्रकम् । कृत्वात्मपूजां विधिना

प्रदान करने वाले हैं, सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं । अमुक को मारिये-मारिये । चक्र, गदा, खड्ग तथा सभी बाणों से भेदन करें- भेदन करें । पाश से आवृत्त करें आवृत्त करें । अंकुश से मारें-मारें । शीघ्रता करें, शीघ्रता करें । जब तक मेरे अभिलषित अर्थ की सिद्धि नहीं हो जाती है तब तक आप क्यों रुकते हैं ? हुं फट् नमः ।। २ ।। इस मन्त्र का न्यास इस प्रकार है । ओं पुरुषोत्तम ! त्रिभुवनमदोन्मादकर हुं फट् हृदयाय नमः । सुरमनुजसुन्दरी मनांसि तापय तापय शिरसे स्वाहा । दीपय-दीपय शोषय-शोषय, मारय-मारय, स्तम्भय-स्तम्भय, द्रावय-द्रावय कवचाय हुम् । आकर्षय-आकर्षय महाबल हुँ फट् नेत्रत्रयाय वौषट् । त्रिभुवनेश्वर सर्वजनमनामंसि हन-हन, दारय ओं मम वशमानय हुं फट्, अस्त्राय फट् । त्रैलोक्य मोहन हृषीकेशा प्रतिरूप सर्वस्त्री हृदयाकर्षण आगच्छ-आगच्छ नमः । इति सर्वाङ्गे ।। ३ ।। इस तरह से मन्त्र के साथ अङ्गन्यास तथा व्यापक न्यास बतलाया गया । इस प्रकार से पूजन करके पच्चास हजार मूल मन्त्र का जप करके अभिषेक करना चाहिए ।। ४ ।। कुण्ड में दैव अग्नि को प्रकट करके इस मन्त्र से एक सौ आहुति देनी चाहिए । अलग से दधि, घी, दूध, चरु, एवं घृत मिश्रित गर्म दूध से अलग-अलग बारह-बारह आहुति मूल मन्त्र से देनी चाहिए । फिर अक्षत तिल, यव, त्रिमधु, पुष्प, फल तथा दधि से एक हजार आहुति कल्याणकामियों को देनी चाहिए । पुनः पूर्णाहुति देकर घी के साथ अवशिष्ट चरु का प्राशन करें । ब्राह्मणों को अच्छी तरह से भोजन कराकर आचार्य को सन्तुष्ट करना चाहिए । ऐसा करने से ही मन्त्र सिद्ध होता है । इसके पश्चात् साधक, स्नान करके विधिवत् स्नान करे और मौन होकर यज्ञशाला में प्रवेश करे । वहाँ पर पद्मासन से बैठकर विधिपूर्वक अपने शरीर का संशोधन करे। सर्वप्रथम दिशाओं में राक्षसों तथा विघ्नों का विनाश करने वाले सुदर्शन मन्त्र का न्यास करना चाहिए । इसके पश्चात् ऐसा ध्यान करे कि पंचक्लेशों के बीज स्वरूप, नाभि के मध्य में रहने वाला, धूम्र वर्ण वाले तथा चण्डवायु स्वरूप सम्पूर्ण पापों को मेरे शरीर से अलग कर रहा है ।। ९ ।। इसके पश्चात् हृदयकमल में रहने वाले रं बीज का स्मरण करना चाहिए । फिर भावना करनी चाहिए कि शरीर के ऊपर नीचे तथा बगल में फैली हुई अग्नि में पाप पुञ्ज को जलाकर भस्म कर दें । फिर मूर्धा (ब्रह्मरन्ध्र) में अमृत का चिन्तन करके, सुषुम्णा नाड़ी के मार्ग से आती हुई अमृत की धारा से अपने शरीर को भीतर एवं बाहर से आप्लावित कर दे । इस प्रकार से शुद्ध शरीर वाला होकर मूल मन्त्र से तीन बार प्राणायाम करे ।। १०-११ ।। इसके पश्चात् मस्तक, मुख, गुह्यभाग, गला, दिशाओं, हृदय, कुक्षि तथा सम्पूर्ण शरीर पर हाथ रखकर शक्ति का न्यास करना चाहिए ।। १२ ।। इसके पश्चात् सम्परात्मा का ध्यान करके उन्हें सूर्यमण्डल से लाकर हृदय कमल में प्रतिष्ठित करे । ये परात्मा समस्त शुभ लक्षणों से युक्त है । ओम् का उच्चारण करते हुए परात्मा का स्मरण करना चाहिए ।। १३ ।। त्रैलोकय मोहनाय विद्महे स्मराय धीमहि, तन्नोविष्णुः प्रचोदयात् ।' यह परात्मगायत्री है ।। १४ ।। परात्मा की अर्चना करने के पश्चात् यज्ञ सम्बन्धी द्रव्यों तथा शुद्ध पात्र का प्रोक्षण करना चाहिए । विधिपूर्वक आत्मपूजा करके वेदी पर उनकी अर्चना करनी चाहिए ।। १५ ।। कूर्म आदि के रूप में

स्थण्डिले तं समर्चयेत् ॥ १५ ॥ कर्मादिकल्पिते पीठे पद्मस्थं गरुड़ोपरि । सर्वाङ्गसुन्दरं प्राप्त वयोलावण्ययौवनम् ॥ १६ ॥ मदाघूर्णितताम्राक्षमुदारं स्मरविह्वलम् । दिव्यमाल्याम्बरलेप भूषितं सस्मिताननम् ॥ १७ ॥ विष्णुं नानाविधानेक परिवारपरिच्छदम् । लोकानुग्रहणं सौम्यं सहस्त्रादित्यतेजसम्॥१८॥ पञ्चावाणधरं प्राप्तकामैक्षं द्विचतुर्भुजम् । देवस्त्रीभिर्वृतं देवी मुखासक्तेक्षणं जपेत् ॥ १९ ॥ चक्रं शङ्खं धनुः खड्गं गदां मुसलमङ्कुशम् । पाशञ्च विभ्रतं चार्चेदावाहादि विसर्गतः ॥ २० ॥ श्रियं वामोरुजङ्घास्थां शिलष्यन्तं पाणिना पतिम् । साब्जचामरकरां पीनां श्रीवत्सकौस्तुभान्वितम् ॥ २१ ॥ मालिनं पीतवस्त्रञ्च चक्राद्याढ्यं हरिं यजेत् । ओंसुदर्शन ! महाचक्रराज ! दुष्टभयङ्कर दुष्टभयङ्कर छिन्द छिन्द विदारय विदारय परममन्त्रान् ग्रस ग्रस भक्षय भक्षय भूतानि त्रासय त्रासय हूं फट् ओं जलचराय हुं फट् । ओं महत् खड्गतीक्ष्ण ! छिन्द हुं फट् स्वाहा खड्गाय नमः । शार्ङ्गाय सशराय हूं फट् । भूतग्रामाय विद्महे चतुर्विधाय धीमहि तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात्। संवर्त्तक! श्वसन् ! पोथय पोथय हूं फट् स्वाहा । पाश ! बन्ध २ आकर्षय आकर्षय हूं फट् । अङ्कुशेन कट्ट हुं फट् ॥ २२ ॥ क्रमाद् भुजेषु मन्त्रैः स्वैरेभिरस्त्राणि पूजयेत्॥२३॥ ओं पक्षिराजाय हूं फट् । तार्क्ष्यं यजेत् कर्णिकायामङ्गदेवान् यथाविधि । शक्तिरिन्द्रादि यन्त्रेषु तार्क्ष्याद्या धृतचामराः ॥ २४ ॥ शक्तयोऽन्ते प्रयोज्यादौ सुरेशाद्याश्च दण्डिना । पीते लक्ष्मीसरस्वत्यौ रतिप्रीतिजयाः सिताः ॥ २५ ॥ कीर्त्तिकान्त्यौ सिते श्यामे तुष्टिपुष्ट्यौ स्मरोदिते । लोकेशान्तं यजेद् देवं विष्णुमिष्टार्थसिद्धये ॥ २६ ॥ ध्यायेन् मन्त्रं जपित्वैनं जुहुयात् त्वभिषेचयेत् । ओं श्रीं क्रीं ह्रीं हूं त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः । एतत्पूजादिना सर्वान् कामानाप्नोति पूर्ववत् ॥ २७ ॥ तोयैःसम्मोहनी पुष्पैर्नित्यं तेन च तर्पयेत्! । ब्रह्मा सशक्रश्रीदण्डी बीजं

कल्पित पीठ पर कमल एवं गरुड के ऊपर विराजमान त्रैलोक्य मोहन भगवान् विष्णु सर्वाङ्ग सुन्दर हैं, और अवस्था के अनुरूप सौन्दर्य एवं यौवन से सम्पन्न हैं ।। १६ ।। उनकी लाल-लाल आँखें मद से घूर्णित हो रही हैं, वे परम उदार हैं और काम से विह्वल हैं । वे दिव्य माला, वस्त्र तथा लेप से समलंकृत हैं । मुख पर मुसुकानि की शोभा झलक रही है ।। १७ ।। उनके परिवार एवं परिकर अनेक हैं । वे लोकों पर अनुग्रह करने वाले हैं । सौम्य स्वभाव के हैं । उनमें हजारों आदित्य का तेज विद्यमान है ।। १८ ।। वे पाँच बाणों को धारण करते हैं । उनकी समस्त इन्द्रियाँ पूर्णकाम हैं । उनकी दो और चार भुजाएँ हैं । उनको देवताओं की स्त्रियाँ घेरे हुई हैं और उनकी दृष्टि श्रीलक्ष्मीजी के मुख पर लगी हुई है । इस प्रकार के भगवान् का स्मरण करना चाहिए ।। १९ ।। श्रीभगवान् चक्र, शंख, धनुष्, खड्ग, गदा, मुसल, अंकुश तथा पाश को धारण किए हुए हैं । इस प्रकार के त्रैलोक्यमोहन श्रीभगवान् का आवाहन से लेकर विसर्जन पर्यन्त पूजा करना चाहिए ।। २० ।। ध्यान करना चाहिए कि श्रीभगवान् के जंघे तथा उरुभाग पर श्रीदेवी जी बैठी हुई हैं । वे अपने हाथ से श्रीभगवान् का आलिंगन कर रही हैं । वे अपने हाथ में कमल तथा चमर धारण किए हुयी हैं । उनका शरीर मांसल है । श्रीवत्सचिह्न तथा कौस्तुभमणि से समलंकृत है ।। २१ ।। श्रीभगवान् के गले में माला है । उनका वस्त्र पीतवर्ण का है तथा चक्र धारण किए हुए हैं । इस प्रकार के श्रीहरि का पूजन करना चाहिए ।। २१ ।। इसके बाद निम्नांकित मंत्र से चक्रराज सुदर्शन का पूजन करना चाहिए- 'ओं सुदर्शन ! महाचक्रराज दह-दह सर्वदुष्टभयं कुरु-कुरु, छिन्द-छिन्द, विदारय-विदारय, परममन्त्रान् ग्रस-ग्रस, भक्षय-भक्षय, भूतानि त्रासय-त्रासय, हुं फट् स्वाहा । ओं महानलचराय हुं फट् स्वाहा, पाञ्चजन्यानमः इस मंत्र से पाञ्च जन्य शंख की पूजा करनी चाहिए । ओं महाखड्गतीक्ष्ण ! छिन्द हूँ फट् स्वाहा, खड्गाय नमः, इस मन्त्र से नन्दक खड्ग की पूजा करनी चाहिए । ओं शार्ङ्गाय शराय हुं फट् इस मन्त्र से धनुष् एवं बाण की पूजा करनी चाहिए । ओं भूत ग्रामाय विद्महे, चतुर्विधाय धीमहि, तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात् यह चतुर्विध भूत ग्राम गायत्री है । इससे गदा का पूजन करना चाहिए ।) संवर्तक मुशल ! पोथय-पोथय हुं फट् स्वाहा । इस मन्त्र से मुशल की पूजा करनी चाहिए । पाश बन्ध-बन्ध आकर्षय-आकर्षय हुं फट् । इस मन्त्र से पाश का पूजन करना चाहिए । अंकुश फट् हुं

त्रैलोक्यमोहनम् ॥ २८ ॥ जप्वा त्रिलक्षं हुत्वा च लक्षं विल्वैश्च साज्यकैः । तण्डुलैः फलगन्धाद्यैःदूर्वाभिस्त्वायुराप्नुयात्॥२९॥ तयाभिषेकहोमादि क्रियातुष्टो ह्यभीष्टदः । ओं नमो भगवते वराहाय भुर्भुवः स्वःपतये भूपतित्वं मे देहि दापय स्वाहा । पञ्चाङ्गं नित्यमयुतं जप्वायूराज्यमाप्नुयात्॥३०॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्रैलोक्यमोहनमन्त्रवर्णनं नाम सप्ताधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०७ ॥

अष्टाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्रैलोक्यमोहनीलक्ष्म्यादिपूजा

अग्निरुवाच– **वान्त सवह्निर्वामाक्षि दण्डी श्रीः सर्वसिद्धिदा । महाश्रिये महासिद्धे ! महाविद्युत्प्रभे ! नमः ॥ १ ॥ श्रियै देवि ! विजये नमः! गौरि महाबले बन्ध बन्ध नमः । महाकाये ! पद्महस्ते ! हुं फट् श्रियै नमः । श्रीयै फट् श्रीं नमः । श्रीयै प्रसीद ! नमः । स्वाहा श्रींफट् ॥ अस्याङ्गानि नवोक्तानि तेष्वेकञ्च समाश्रयेत् । त्रिलक्षमेकलक्षं वा जप्वाक्षाब्जैश्च भूतिदः ॥ ३ ॥ श्रीगेहे विष्णुगेहे वा श्रियं पूज्य धनं लभेत् । आज्याक्तैस्तण्डुलैर्लक्षं**

फट् । इस मन्त्र से अंकुश की पूजा करनी चाहिए ।। २५ ।। श्रीभगवान् की भुजाओं में विद्यमान अस्त्रों की इन्हीं मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए ।। २३ ।। ओं पक्षिराजाय हुं फट् । इस मन्त्र से पक्षिराज गरुड़ की पूजा करनी चाहिए । इसके पश्चात् कमल की कर्णिका में अङ्गदेवताओं की विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिए । पूर्वादि दलों में लक्ष्मी आदि शक्तियों की तथा चामरधारी ताक्ष्र्य आदि की पूजा करनी चाहिए ।। २४ ।। पहले दण्डी के साथ इन्द्र आदि की पूजा करके अन्त में शक्तियों की पूजा करनी चाहिए । लक्ष्मी तथा सरस्वती की अङ्गकान्ति पीली हैं, रति-प्रीति तथा जया नामक शक्तियों की अंगकान्ति श्वेत है ।। २५ ।। कीर्ति और कान्ति की भी अंगकान्ति श्वेत है एवं तुष्टि तथा पुष्टि की अंगकान्ति श्याम है । इनमें स्मरणभाव हमेशा उदित रहता है । लोकेश पर्यन्त (ब्रह्माजी तथा दिक्पालों पर्यन्त) की पूजा करके अपने अभीष्ट अर्थ की सिद्धि के लिए भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए ।। २६ ।। ओं श्रीं क्रीं ह्रीं हूँ त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः । इस मन्त्र से ध्यान एवं जपपूर्वक श्रीभगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए । इस मन्त्र से पूजा आदि करके साधक पहले के ही समान अपनी सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण कर लेता है ।। २७ ।। जल तथा सम्मोहनी वृक्ष के पुष्प से उक्त मन्त्र से नित्य तर्पण करना चाहिए । ब्रह्मा, इन्द्र, श्रीदेवी, दण्डी, बीजमन्त्र तथा त्रैलोक्य मोहन मन्त्र का तीन लाख जप करके तथा घी, बिल्व, चावल, फल, चन्दन आदि तथा दूर्वा से एक लाख होम करके मनुष्य अपनी लम्बी आयु को प्राप्त करता है ।। २९ ।। अभिषेक तथा होम आदि से प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु साधक को अभीष्ट फल प्रदान करते हैं । 'ओं नमो भगवते वराहाय भुर्भुवः स्वः पतये भूपतित्वं मे देहि दापय स्वाहा ।' इसका पञ्चाङ्ग न्यास पूर्वक प्रतिदिन बारह हजार जप करने वाला मनुष्य दीर्घ आयु तथा राज्य प्राप्त करता है ।। ३० ।। इसका पञ्चाङ्ग न्यास है- ओं नमो हृदयाय नमः पतये कवचाय हुम् । भूपतित्वं मे देहि दापय स्वाहा । अस्त्राय फट् ।)

इस प्रकार आदि महापुराण अग्निपुराण का त्रैलोक्यमोहन मन्त्र वर्णन नामक, तीन सौ सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३०७ ॥

अग्निदेव ने कहा– वान्त (श) वह्नि (र) वामाक्षि (ई) तथा दण्डी (अनुस्वार) इन सबों के मेल से श्रीं बीज मन्त्र बनता है । यह समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाला साक्षात् श्री स्वरूप है । इस प्रकार से इस मन्त्र का अंगन्यास करना चाहिए- 'महाश्रिये, महासिद्धे महाविद्युत्प्रभे स्वाहा, हृदयाय नमः, श्रियै देवि विजये स्वाहा, शिरसे स्वाहा, गौरि महाबले बन्ध-बन्ध स्वाहा। शिखायै वषट्। धृतिः स्वाहा कवचाय हुम् । महाकाये, पद्महस्ते हुं फट् अस्त्राय फट् । अथवा- श्रियै स्वाहा हृदयाय नमः श्रीं फट् शिरसे स्वाहा । श्रीं नमः शिखायै वषट् श्रियै प्रसीद नमः कवचाय हुम्। श्रीं फट् स्वाहा अस्त्राय फट् ।। २ ।। इस तरह इस मन्त्र शास्त्र के नव प्रकार से अंगन्यास बतलाये गये हैं । उनमें से किसी एक को अपनाना चाहिए । पद्माक्ष की माला से इस मंत्र का तीन

जुहुयात् खादिरानले ॥ ४ ॥ राजा वश्यो भवेद् वृद्धिः श्रीश्च स्यादुत्तरोत्तरम् । सर्षपाम्भोऽभिषेकेण नश्यन्ते सकला ग्रहाः ॥ ५ ॥ विल्वलक्षहुतालक्ष्मीर्वित्तवृद्धिश्च जायते । शक्रवेश्म चतुर्द्वारं हृदये चिन्तयेदथ ॥ ६ ॥ बलाकीं वामनां श्यामां श्वेतपंकजधारिणिम् । ऊर्ध्वबाहुद्वयं ध्यायेत् क्रीड़न्तीं द्वारि पूर्ववत् ॥ ७ ॥ ऊर्ध्वीकृतेन हस्तेन रक्तपङ्कजधारिणीम् । श्वेताङ्गीं दक्षिणे द्वारि चिन्तयेद् वनमालिनीम् ॥ ८॥ हरितां दोर्द्वयेनोर्ध्वमुद्वहन्तीं सिताम्बुजम् । ध्यायेद् विभीषिकां नाम श्रीदूतीं द्वारि पश्चिमे ॥ ९ ॥ शाङ्करीमुत्तरे द्वारि तन्मध्येऽष्टदलपङ्कजम् । वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥ १० ॥ ध्येयास्ते पद्मपत्रेषु शङ्खचक्रगदाधराः । अञ्जनक्षीरकाश्मीर हेमाभास्ते सुवाससः ॥ ११ ॥ आग्नेयादिषु पत्रेषु गुग्गुलुश्च कुरुण्टकः । दमकः सलिलश्चेति हस्तिनो रजतप्रभाः ॥ १२ ॥ हेमकुम्भधराश्चैते कर्णिकायां श्रियं स्मरेत् । चतुर्भुजां सुवर्णाभां सपद्मोर्ध्व भुजद्वयाम् ॥ १३ ॥ दक्षिणाभयहस्ताभ्यां वामहस्तवरप्रदाम् । श्वेतगन्धांशुकामेक रौप्यमालास्त्रधारिणीम् ॥ १४॥ ध्यात्वा सपरिवारां तामभ्यर्च्य सकलं लभेत् । द्रोणाब्जपुष्पश्रीवृक्षपर्णं मूर्ध्नि न धारयेत् ॥ १५ ॥ लवणामलकं वर्ज्यं नागादित्यतिथौ क्रमात् । पायसाशी जपेत् सूक्तं श्रियस्तेनाभिषेचयेत् ॥ १६ ॥ आवाहादिविसर्गान्तां मूर्ध्नि ध्यात्वार्चयेत् श्रियम् । विल्वाज्याब्जपायसेन पृथग् योगः श्रियै भवेत् ॥ १७ ॥ विषँ हिमज्जा कालाग्नि रत्रि निष्ठानि स्वाहा । ओं ह्रीं महामहिषमर्दिनि ! स्वाहा। मूलमन्त्रं महिषसिंहके नमः । महिषशत्रुं भ्रामय भ्रामय हूं फट् स्वाहा। महिषं भीषय भीषय हूं फट् महिषं हन हन देवि ! हूं फट् महिषनिसूदनि ! हुं फट् ॥ १८ ॥ दुर्गाहृदयमित्युक्तं साङ्गं सर्वार्थसाधकम् ॥ १९ ॥ यजेद्

लाख अथवा एक लाख जप करने से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ।। ३ ।। लक्ष्मीजी के मन्दिर में अथवा श्रीभगवान् के मन्दिर में उनका पूजन करके मानव धन की प्राप्ति करता है । खैर की लकड़ी की आग में घृत मिश्रित चावल का एक लाख हवन करना चाहिए ।। ४ ।। ऐसा करने से राजा वश में हो जाता है और उत्तरोत्तर लक्ष्मी की वृद्धि होती है । सरसों के जल से अभिषेक करने से सभी ग्रहों का नाश हो जाता है ।। ५ ।। विल्वफल की एक लाख आहुति इस मंत्र से देने से लक्ष्मी की वृद्धि होती है तथा धन की वृद्धि होती है । साधक को चाहिए कि वह अपने हृदय में शक्रवेश्म की कल्पना करे । उसके चार द्वार हों ।। ६ ।। उसके पूर्वद्वार पर क्रीड़ा में तत्पर, अपनी दोनों भुजाओं को ऊपर उठाये हुयी श्यामवर्ण तथा वामन कद की वलाकी देवी का ध्यान करे जो अपने दोनों हाथ में श्वेत कमल धारण किये हुयी हैं ।। ७ ।। दक्षिण द्वार पर वनमालिनी का ध्यान करना चाहिए जो अपने ऊपर उठाये हुए एक हाथ में लाल कमल धारण करती हैं । उनकी अङ्गकान्ति श्वेत वर्ण की है ।। ८ ।। पश्चिम द्वार पर विभीषिका नाम की श्रीदूती का ध्यान करना चाहिये । उनकी अंगकान्ति हरित वर्ण की है । वे अपने दोनों हाथों को ऊपर उठाये हुयी हैं और श्वेतकमल धारण किए हुयी हैं ।। ९ ।। उत्तर द्वार शाङ्करी देवी का ध्यान करना चाहिए । इन्द्र वेश्म के बीच में अष्टदल कमल विद्यमान है । उस कमल के दलों में शंख, चक्र एवं गदा धारण करने वाले वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध का ध्यान करना चाहिए । वे सब के सब सुन्दर वस्त्र धारण करने वाले हैं । उनकी अंग कान्ति क्रमशः अञ्जन, दुग्ध, केसर तथा सुवर्ण के समान है ।। १०-११ ।। पद्म के आग्नेय कोणों में गुग्गुल, कुरण्टक, दमक तथा सलिल नामक गजों का चिन्तन करें । वे सब के सब चाँदी के समान सफेद वर्ण के हैं । ये सब के सब सुवर्ण कलश को धारण किये हुए और कर्णिका में श्रीदेवी का ध्यान करना चाहिए । इनकी अंग कान्ति सुवर्ण के समान है । इनकी चार भुजायें हैं । अपने ऊपर की दो भुजाओं में ये कमल धारण किए हुयी हैं ।। १३ ।। इनके दाहिने हाथ में अभय मुद्रा है तथा बायें हाथ में वरद मुद्रा है । वे श्वेत एवं सुगन्धित वस्त्र धारण करती हैं । अपने गले में वे चाँदी की माला धारण करती हैं तथा अस्त्रों को धारण किए हुयी हैं ।। १४ ।। सपरिवार लक्ष्मीदेवी का ध्यान करके तथा उनकी पूजा करके मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेने में समर्थ होता है। उस उपासना के समय सिर पर द्रोण पुष्प, कमल तथा विल्वपत्र को धारण नहीं करना चाहिए ।। १५ ।। पञ्चमी तिथ को नमक नहीं खायें तथा सप्तमी तिथि को आँवला नहीं खाना चाहिए। उपासना के समय साधक को खीर का ही भोजन करना चाहिए और श्रीसूक्त का जप करना चाहिए और उसी से अभिषेक करना चाहिए ।। १६ ।। आवाहन से लेकर विसर्जन पर्यन्त सम्पूर्ण उपचारों

यथोक्तं तां देवीं पीठञ्चैवाब्जमध्यगम् । ओं ह्रीं दुर्गे ! दुर्गे ! रक्षणि ! स्वाहा चेति दुर्गायै नमः । वरणण्यै नमः । आर्य्यायै कनकप्रभायै कृत्तिकायै अभयप्रदायै कन्यकायै सुरूपायै ॥ २० ॥ पत्रस्थाः पूजयेदेता मूर्त्तीराद्यैः स्वरैः क्रमात् ॥ २१ ॥ चक्राय शङ्खाय गदायै खड्गाय धनुषबाणाय । अष्टम्याद्यैरिमां दुर्गां लोकेशान्तां यजेदिति ॥ २२ ॥ दुर्गायोगः समायुःश्रीस्वात्मरक्षाजयादिकृत् ॥ ससाध्येशानमन्त्रेण तिलहोमो वशीकरः । जयः पद्मैस्तु दूर्वाभिः शान्तिः कामः पलाशजैः ॥ २३ ॥ पुष्टिः स्यात् काकपक्षेण मृतिद्वेषादिकं भवेत् । ग्रहक्षुद्रभयापत्तिं सर्वमेव मनुर्हरेत् ॥ २४॥ ओं दुर्गे दुर्गे ! रक्षणि ! स्वाहा । रक्षाकरीयमुदिता जयदुर्गाङ्गसंयुता ॥ २५ ॥ श्यामां त्रिलोचनां देवीं ध्यात्वात्मानं चतुर्भुजम्॥२६॥ शङ्खचक्राब्जशूलादित्रिशूलां रौद्ररूपिणीम् । युद्धादौ सञ्जयेदेतां यजेत् खड्गादिके जये ॥ २७॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्रैलोक्यमोहनीलक्ष्म्यादिपूजाकथनं नाम अष्टाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०८ ॥

नवाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्वरितापूजा

अग्निरुवाच– **त्वरिताङ्गान् समाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकान् । ओं आधारशक्त्यै नमः । ओं ह्रीं पुरु पुरु महासिंहाय नमः । ओं पद्माय नमः। ओं ह्रीं हूं च्छेक्षः । स्त्रीं हूं क्षें ह्रीं फट् त्वरितायै नमः । खे च हृदयाय नमः । च छे शिरसे नमः । छेशः शिखायै नमः । क्षस्त्री कवचाय नमः। स्त्रीं**

पर्यन्त सम्पूर्ण उपचारों का श्रीसूक्त के मन्त्रों से अर्पण करके ध्यानपूर्वक श्रीदेवी का पूजन करना चामिहए । विल्व, घृत, कमल तथा खीर इन सभी वस्तुओं से श्रीदेवी का दूसरा योग बनता है।।१७।। विषं (म) हि, मज्जा (ष) काल (म) अग्नि (र) अत्रि (द) निष्ठ (इ) नि, स्वाहा, (महिषमर्दिनी स्वाहा) यह भगवती महिष मर्दिनी (महालक्ष्मी) का अष्टाक्षर मन्त्र है। इसका पञ्चङ्ग न्यास इस प्रकार है। महिष मर्दिन हूं फट् हृदयाय नमः, महिष शत्रू त्सादिनी हूं फट् शिर से स्वाहा। महिषं भीषय हूं फट शिखयै वषटू। महिषं हन हन द्रेवि हुं फट् कवचाय हुम्। महिष सूदिनी हुं फट् स्वाहा अस्त्राय फट् ।। १८ ।। यह दुर्गाहृदय मन्त्र है । इसकी साङ्गसाधना करने से समस्त अभीष्ट अर्थों की सिद्धि होती है ।। १९ ।। दुर्गादेवी, का निम्नांकित प्रकार से पीठ तथा कमल पर पूजन करना चाहिए । ओं ह्रीं दुर्गे रक्षिणि शरक्षिणि स्वाहा । यह दुर्गादेवी का मन्त्र है । अष्टदल कमल पर- दुर्गा, वरवर्णिनी, आर्या, कनकप्रभा, कृत्तिका, अभयप्रदा, कन्यका, तथा सुरूपा इन आठ मूर्तियों के आदि अक्षरों को बीज मंत्र बनाकर पूजन करना चाहिए ।। २०-२१ ।। इसके साथ ही चक्र, शंख, गदा, खड्ग, धनुष् बाण खेट तथा पाश की भी पूजा करनी चाहिए । अष्टमी आदि तिथियों पर लोकेश्वरी दुर्गा की पूजा करनी चाहिए । २२ ।। दुर्गा की यह पूजा पूर्णायु, श्री आत्मरक्षा तथा विजय प्रदान करने वाली है । मन्त्र में साध्य का नाम जोड़कर तिल से होम करने पर वशीकरण होता है । कमल से होम करने पर विजय की प्राप्ति होती है, दुर्वा से होम करने से शान्ति की प्राप्ति होती है, पलाश की समिधाओं से होम करने से पुष्टि, काकपक्ष से हवन करने से साध्य का मारण एवं विद्वेषण होता है । यह सभी प्रकार की ग्रहबाधा एवं भय को दूर करता है ।। २२-२४ ।। ओं दुर्गे, दुर्गे ! रक्षिणि स्वाहा ! यह जयदुर्गा मन्त्र रक्षा करने वाला बतलाया गया है। ।। २६ ।। श्यामवर्ण वाली तथा तीन नेत्रों वाली एवं चार भुजाओं वाली देवी का ध्यान करके, शंख, चक्र, पद्म, शूल तथा त्रिशूल धारण करने वाली रौद्रस्वरूपिणी दुर्गा देवी का ध्यान करके उनका पूजन खड्ग आदि में करें तो युद्ध आदि में विजय की प्राप्ति होती है ।। २७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का त्रैलोक्य मोहिनी लक्ष्मी आदि की पूजा का वर्णन नामक तीन सौ आठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३०८ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं त्वरिता पूजा के अंगों का वर्णन कर रहा हूँ जिसका ज्ञान भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाला है ।। १ ।। ओं आधारशक्त्यै नमः । इस मन्त्र से आधार

हूं नेत्राय नमः । हूं खे अस्त्राय फट् नमः । ओं त्वरिताविद्यां विद्महे । तूर्णविद्याञ्च धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात् । श्रीप्रणीतायै नमः । हूं कार्यै नमः। खेचर्य्यै नमः । ओं चण्डायै नमः । छेदिन्यै नमः । क्षेपिण्यै नमः । स्त्रियै हूंकार्य्यै नमः । हूंकार्यै नमः । जयायै नमः । किङ्कराय नमः । ओं किंकर रक्ष रक्ष त्वरिताज्ञया स्थिरो भव वषट् ॥ २ ॥ तोतला त्वरिता तूर्णेत्येवं विद्येयमीरिता । शिरोभ्रूमस्तके कण्ठे हृदि नाभौ च गुह्यके ॥ ३॥ उर्वोश्च जानुजङ्घोरुद्वये चरणयोः क्रमात्। न्यस्ताङ्गो न्यस्तमन्त्रस्तु समस्तं व्यापकं न्यसेत् ॥ ४ ॥ पार्वती शवरी चेशा वरदाभयहस्तिका ॥ मयूरबलया पिच्छमौलिः किसलयांशुका । सिंहासनस्था मायूरवर्हच्छत्रसमन्विता ॥ ५ ॥ त्रिनेत्र श्यामला देवी वनमालाविभूषणा । विप्राहिकर्णाभरणा क्षत्रकेयूरभूषणा ॥ ६ ॥ वैश्यनागकटीबन्धा बृषलाहिकृतनूपुरा । एवं रूपात्मिका भूत्वा तन्मन्त्रं नियुतं जपेत् ॥ ७ ॥ ईशः किरातरूपोऽभूत् पुरा गौरी च तादृशी । जपेद् ध्यायेत् पूजयेत् तां सर्वसिद्ध्यै विषादिहृत् ॥ ८ ॥ अष्टसिंहासने पूज्या दले पूर्वादिके क्रमात् । अङ्गगायत्री प्रणीता हूङ्काराद्यादलाग्रके ॥ ९ ॥ फट्कारी चाग्रतो देव्याः श्रीवीजेनार्चयेदिमाः । लोकेशायुधवर्णास्ताः फट्कारी तु धनुर्धरा ॥ १० ॥ जया च विजया

शक्ति का स्मरण एवं पूजन करना चाहिए । ओं पुरु पुरु महासिंहाय नमः । इस मन्त्र से महासिंह स्वरूप सिंहासन की पूजा करे । ओं पद्माय नमः । इस मन्त्र से कमलस्वरूप आसन का पूजन करें । ओं ह्रीं हूं खे च च्छेक्षः स्त्रीं हूं क्षें ह्रीं फट् त्वरितायै नमः । यह त्वरितादेवी का मूल मन्त्र है । इससे त्वरिता देवी का पूजन करना चाहिए । इसका अङ्गन्यास इस प्रकार है । खे च हृदयाय नमः । च च्छे शिरसे नमः (शिरसे स्वाहा) छे क्षः शिखायै नमः (शिखायै वषट्) । क्षः स्त्री कवचाय नमः (कवचाय हुम्) स्त्री हूं नेत्राय नमः (नेत्रत्राय वौषट्) हूं खे अस्त्राय फट् नमः । (अस्त्राय फट्) इसी प्रकार करन्यास भी करना चाहिए । इसके बाद त्वरिता गायत्री का जप करे । त्वरिता विद्यां विद्महे । तूर्णविद्यां च धीमहि । तन्नोदेवी प्रचोदयात् । यह त्वरिता गायत्री है । उत्तर दिशा में श्री प्रणीतायै नमः । इस मन्त्र से श्री प्रणीता का पूजन करे । इसके पश्चात् कमल के पूर्वादि दलों में हूंकारी आदि अन्य शक्तियों की पूजा करें । उनके मन्त्र हैं, हूंकार्यै नमः । खेचर्यै नमः। ओं चण्डायै नमः । छेदिन्यै नमः । क्षेपिण्यै नमः। स्त्रीकार्यै नमः । हूंकार्यै नमः । क्षेमं कर्यै नमः । इसके पश्चात् पार्श्वभाग में जपायै नमः । विजयायै नमः । इन दो मन्त्रों से जया एवं विजया की पूजा करें । इसके पश्चात् किंकर की पूजा 'किंकराय नमः ।' इस मन्त्र से करके कहे- किंकर रक्ष-रक्ष त्वरिताज्ञया स्थिरो भव ।। २ ।। यह त्वरिता विद्या तोतला, त्वरिता एवं तूर्णा इन तीन नामों से अभिहित की जाती है ।। ३ ।। इस विद्या के अक्षरों का सिर, भौंहा, मस्तक, कण्ठ, हृदय, नाभि, गुह्य, उरूद्वय, जानु, जंघाद्वय, ऊरुद्वय तथा पादद्वय इन अंगों में क्रमशः न्यास करके, सम्पूर्ण मन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिए ।। ४ ।। त्वरिता देवी साक्षात् पार्वती स्वरूपा हैं । किराती का वेष धारण करने के कारण ये शबरी कही जाती हैं । सब पर शासन करने के कारण ये ईशा कही जाती हैं । इनके हाथ में वरद मुद्रा अभय मुद्रा से सुशोभित होती हैं । ये अपने हाथों में मयुरपिच्छ का कंगन धारण करती हैं । वे मयुरपिच्छ का ही मुकुट धारण करती हैं । उनके कोमल पत्तों के वस्त्र हैं । वे सिंहासन पर बैठी हुई हैं । उनका छत्र मयूरवर्ह का ही बना है ।। ५ ।। उनके तीन नेत्र हैं तथा उनकी अंगकान्ति श्यामवर्ण की है । वनमाला का आभूषण धारण किए हुयी हैं । ब्राह्मण जातीय दो नाग (अनन्त और कुलिक) उनके कर्णाभूषण का काम करते हैं । क्षत्रिय जाति के दो नाग (वासुकि एवं शंखपाल) उनके केयूर (बाजूबन्द) का काम करते हैं ।। ६ ।। वैश्यजातीय दो नाग (तक्षक एवं महापद्म) उनके कटि प्रदेश में करधनी का काम करते हैं, शूद्रजातीय दो नाग (पद्म तथा कर्कोटक) उनके पैरों के नूपुर का काम करते हैं । साधक स्वयं भी देवीस्वरूप होकर उनके मन्त्र का एक लाख जप करे ।। ७ ।। प्राचीनकाल में अर्जुन को वरदान देने के लिए जब भगवान् शंकर ने किरात का रूप धारण किया तो भगवती पार्वती ने भी किराती का रूप बना लिया । सब प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त करने के लिए तथा विष आदि को दूर करने के लिए उस त्वरिता देवी का ही जप, ध्यान एवं पूजन करनरा चाहिए।।८।। पूर्व वर्णन के अनुसार कमल के पूर्वादि दल के भीतर कर्णिका में आठ सिंहासनों पर आठ देवियों की पूजा करें । (अर्थात् हृदयादि छह अंगों एवं श्रीप्रणीता तथा गाय की भी पूजा करें ।। ९ ।।) दलाग्र में त्वरिता देवी के समक्ष फट्कारी देवी की पूजा करनी चाहिए । इन देवियों के नाममन्त्रों में श्रीबीज लगाकर इनकी पूजा करनी चाहिये । हूंकारी आदि देवियों के

द्वास्थे पूज्ये सौवर्णयष्टिके । किङ्करो वर्वरो मुण्डी लगुडीच तयोर्वहि ॥ ११ ॥ इष्ट्वैवं सिद्धयेद् द्रव्यैः कुण्डे योन्याकृतौ हुनेत् । हेमलाभोऽर्जुनैर्द्धान्यैर्गोधूमैः पुष्टिसम्पदः ॥ १२ ॥ यवैर्धान्यैस्तिलैः सर्वसिद्धिरीति विनाशनम् । अक्षैरुन्मत्तता शत्रोः शाल्मलीभिश्च मारणम् ॥ १३ ॥ जम्बुभिर्धनधान्याप्तिस्तुष्टिर्नीलोत्पलैरपि । रक्तोत्पलैर्महापुष्टिः कुन्दपुष्पैर्महोदयः ॥ १४ ॥ मल्लिकाभिः पुरक्षोभः कुमुदैर्जनवल्लभः । अशोकैः पुत्रलाभः स्यात् पाटलाभिः शुभाङ्गना ॥ १५ ॥ आम्रैरायुस्तिलैर्लक्ष्मीर्विल्वैः श्रीश्चम्पकैर्धनम् । इष्टं मधुकपुष्पैश्च विल्वैः सर्वज्ञतां लभेत् ॥ १६॥ त्रिलक्षजप्यात् सर्वाप्तिर्होमाद् ध्यानात् तथेज्यया। मण्डलेऽभ्यर्च्य गायत्र्या आहुतीः पञ्चविंशतिम् ॥ १७ ॥ दद्याच्छतत्रयं मूलात् पल्लवैर्दीक्षितो भवेत् । पञ्चगव्यं पुरा पीत्वा चरुकं प्राशयेत् सदा ॥ १८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्वरितापूजाकथनं नाम नवाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०९ ॥

दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्वरितामन्त्रादिः

अग्निरुवाच– **अपरां त्वरिताविद्यां वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदाम् । पुरे ब्रजाकुले देवीं रजोभिर्लिखिते यजेत् ॥ १ ॥ पद्मगर्भे दिग्विदिक्षु चाष्टौ**

आयुध और वर्ण उस दिशा के दिक्पालों के आयुध एवं वर्ण के ही समान हैं, किन्तु फट्कारी देवी धनुष् धारण करती हैं ।। १० ।। मण्डल के द्वारभाग में जया एवं विजया की पूजा करनी चाहिए । ये दोनों सुवर्ण की छड़ी धारण करती हैं । उन दोनों से बाहर किंकर की पूजा करनी चाहिए । उसका नाम बर्बर है । उसका सिर मुण्डित है तथा वेद लगुड (लाठी) धारण करते हैं।।११।। इस प्रकार से पूजन करके सिद्धि प्राप्त करने के लिए योन्याकार कुण्ड में हवनीय द्रव्यों से होम करना चाहिए । उजले धान से हवन करने से सुवर्ण का लाभ होता है । गेहूँ से होम करने से पुष्टि एवं सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ।। १२ ।। यव धान्य तथा तिल इन सबों को मिलाकर हवन करने से सब प्रकार की सिद्धियाँ होती हैं । ईतियों का विनाश होता है । बहेड़े का हवन करने से शत्रु का उन्माद हो जाता है । सेमर से हवन करने पर शत्रु का मारण होता है ।। १३ ।। जामुन के फल का हवन करने से धन-धान्य की प्राप्ति होती है । नीलकमल से हवन करने से तुष्टि होती है । लालकमल से हवन करने पर महापुष्टि होती है । कुन्द के पुष्प का हवन करने से महान अभ्युदय होता है ।। १४ ।। मल्लिका पुष्पों से होम करने पर नगर या ग्राम में क्षोभ होता है । कुमुद पुष्पों का हवन करके उपासक सब लोगों का प्रिय बन जाता है । अशोक पुष्पों से होम करने पर पुत्र की प्राप्ति होती है और पाटल पुष्पों से होम करने से उत्तम अंजना की प्राप्ति होती है । आम्र फल की आहुति से आयु, तिलों की आहुति से लक्ष्मी, विल्वफल की आहुति से श्री की प्राप्ति तथा चम्पक पुष्पों से आहुति देने पर धन की प्राप्ति होती है । महुआ के फूल तथा विल्व को मिलाकर एक साथ हवन करनेसे अभीष्ट सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है ।। १६ ।। मूलमन्त्र का तीन लाख जप होम तथा ध्यान एवं पूजन करने से सभी अर्थों की प्राप्ति होती है । मण्डल में त्वरिता देवी की पूजा करके त्वरिता गायत्री से पच्चीस आहुति देनी चाहिए ।। १७ ।। इसके पश्चात् पल्लवों से तीन सौ आहुति देकर दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए । दीक्षा से पहले पंचगव्य पीना चाहिए और दीक्षाकाल में चरु (हविष्य) का भोजन करना चाहिए ।। १८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का त्वरितापूजा वर्णन नामक तीन सौ नवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३०९ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली अपरा त्वरिता विद्या का वर्णन करता हूँ । धूलि से लिखित, वज्र के चिह्न से चिह्नित तथा चौकोर भूपुर मण्डल में त्वरिता

वज्राणि वीथिकाम् । द्वारशोभोपशोभाञ्च लिखेच्छीघ्रं स्मरेन्नरः ॥ २ ॥ अष्टादशभुजां सिंहे वामजङ्घा प्रतिष्ठिताः । दक्षिणा द्विगुणा तस्याः पादपीठे समर्पिता॥ ३॥ नागभूषां वज्रदण्डे खड्गं चक्रं गदां क्रमात् । शूलं शरं तथा शक्तिं वरदं दक्षिणैःकरैः॥ ४॥ धनुः पाशं शरं घण्टां तर्जनीं शङ्खमङ्कुशम् । अभयञ्च तथावज्रं वामपार्श्वे धृतायुधम् ॥ ५ ॥ पूजनाच्छत्रुनाशः स्याद्राष्ट्रं जयति लीलया । दीर्घायूराष्ट्रभूतिः स्याद् दिव्या दिव्यादि सिद्धिभाक् ॥ ६ ॥ तलेति सप्तपातालाः कालाग्निभुवनान्तकाः । ओंकारादिस्वरारभ्य यावद् ब्रह्माण्डवाचकम् ॥ ७ ॥ ओंकाराद् भ्रामयेत् तोयन्तोतला त्वरिता ततः। प्रस्तावं सम्प्रवक्ष्यामि स्वरवर्गं लिखेद् भुवि ॥ ८ ॥ तालुर्वर्गः कवर्गः स्यात् तृतीयो जिह्वतालुकः । चतुर्थस्तालु जिह्वाग्रो जिह्वादन्तस्तु पञ्चमः॥९॥ षष्ठोऽष्टपुटसम्पन्नो मिश्रवर्गस्तु सप्तमः । ऊष्माणः स्याच्छवर्गस्तु उद्धरेज्च मनुं ततः॥ १०॥ षष्ठस्वरसमारूढम् ऊष्मणान्तं सविन्दुकम् । तालुवर्गद्वितीयान्तो स्वरैकादशयाजितम्॥ ११॥ जिह्वातालुसमायोगः प्रथमं केवलं भवेत् । तदेव च द्वितीयन्तु अधस्ताद् विनियोजयेत् ॥ १२ ॥ एकादशस्वरैर्युक्तं प्रथमं तालुवर्गतः । ऊष्माणस्य द्वितीयन्तु अधस्ताद् दृश्य योजयेत् ॥ १३ ॥ षोड़शस्वरसंयुक्तमूष्माणस्य तृतीयकम् । जिह्वादन्तसमायोगे प्रथमं योजयेदधः ॥ १४॥ मिश्रवर्गाद् द्वितीयन्तु अधस्तात् पुनरेव तु । चतुर्थस्वरसम्भिन्न तालुवर्गादिसंयुतम्॥१५॥ ऊष्मणश्च द्वितीयन्तु अधस्ताद् विनियोजयेत्। स्वरैकादशभिन्नन्तु ऊष्मणान्तं सविन्दुकम्॥१६॥ पञ्चस्वरसमारूढम् ओष्ठसम्पुटयोगतः। द्वितीयमक्षरञ्चान्यज्जिह्वाग्रे

देवी की पूजा करनी चाहिए ।। १ ।। उस मण्डल के भीतर पद्म का भी निर्माण करना चाहिए । उस मण्डल के दिशाओं तथा कोणों में आठ वज्रों का निर्माण करना चाहिए । उसमें वीथिका, द्वार, शोभा, उपशोभा आदि को बनाकर मनुष्य त्वरिता देवी का ध्यान करे ।। २ ।। त्वरिता देवी की अठारह भुजायें हैं । उनकी बायीं जंघा सिंह के ऊपर स्थित है । दाहिनी जंघा आकृति में उसकी दो गुनी है और पादपीठ पर स्थित है ।। ३ ।। नागों के ही उनके आभूषण हैं । वे अपनी दाहिनी भुजाओं में क्रमशः वज्र, दण्ड, खड्ग, चक्र, गदा, शूल, बाण, शक्ति तथा अभयमुद्रा को धारण करती हैं ।। ४ ।। वे अपने बायीं भुजाओं में क्रमशः इन आयुधों को धारण करती हैं- धनुष, पाश, बाण, घण्टा, तर्जनी, शंख, अंकुश, अभयमुद्रा तथा वज्र ।। ५ ।। त्वरितादेवी की पूजा करने से शत्रु का नाश हो जाता है तथा उपासक आसानी से राष्ट्र पर विजय प्राप्त कर लेता है । वह साधक दीर्घ आयु को प्राप्त करता है । वह राष्ट्र का ऐश्वर्य बन जाता है । उसको दिव्य तथा अदिव्य (लौकिक तथा अतिलौकिक) सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ।। ६ ।। त्वरिता देवी के तोतला नाम की व्युत्पत्ति इस प्रकार है- तल शब्द सातों पाताल, काल, अग्नि तथा सभी भुवनों को सूचित करता है । ओंकार समस्त स्वरों से लेकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का वाचक है ।। ७ ।। चूँकि त्वरिता देवी ओंकार के द्वारा तल पर्यन्त सम्पूर्ण जल का प्रक्षेपण करती हैं, इसीलिए वे तोतला कहलाती हैं ।। ७ ।। अब मैं त्वरिता देवी के मन्त्र का उद्धार बतलाता हूँ । स्वर वर्ग को भूमि पर लिखें । स्वरों की संख्या सोलह है- अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ऐ, ऐ, ओ, औ, अं, अः ।) कवर्ग का सांकेतिक नाम तालुवर्ग है, दूसरे वर्ग चवर्ग का सांकेतिक नाम जिह्वा तालक है । चौथे वर्ग स्वर्ग को तालु जिह्वाग्र कहते हैं । पाञ्चवें वर्ग को जिह्वादन्त वर्ग कहते हैं ।। ८-९ ।। छठें वर्ग पवर्ग को ओष्ठपुट वर्ग कहते हैं । सातवें वर्ग यवर्ग को मिश्रवर्ग कहते हैं और सातवें शवर्ग को उष्मा वर्ग कहते हैं । इसके बाद त्वरिता मन्त्र का उद्धार इस प्रकार करना चाहिए ।। १० ।। छठें स्वर (ऊ) पर आरूढ़ उष्मा वर्ग के अन्तिम अक्षर हकार विन्दु (अनुस्वार) से युक्त हो (हूं) तालुवर्ग का द्वितीय अक्षर (ख) स्वरवर्ग के ग्यारहवें अक्षर (ए) से युक्त हो (खे) ।। ११ ।। जिह्वातालु समायोग वर्ग का केवल पहला अक्षर (च्) हो । उसी वर्ग का दूसरा अक्षर (छ) को ग्यारहवें स्वर (ए) से युक्त कर दे । अर्थात् (च्छे) । तालुवर्ग के प्रथम अक्षर (क्) के नीचे उष्मावर्ण के द्वितीय अक्षर ष् को जोड़कर और उसे सोलहवें स्वर (अः) से संयुक्त करें । अर्थात् (क्षः) ।। १३ ।। उष्मा वर्ग के तृतीय अक्षर (स्) जिह्वादन्तसमायोग वर्ग के प्रथम अक्षर (त्) को उसके नीचे जोड़ दें ।। १४ ।। उसके नीचे मिश्र वर्ग के द्वितीय अक्षर (र्) को उसके नीचे जोड़कर चतुर्थ स्वर (ई) से संयुक्त करें । अर्थात् (स्त्री) तदनंतर तालुवर्ग के आदि अक्षर (क्) के नीचे उष्मा वर्ग के द्वितीय अक्षर को जोड़ दें और उसको ग्यारहवें स्वर से जोड़ दें । अर्थात् (क्षे) उसके पश्चात् उष्मा वर्ग के अन्तिम अक्षर (ह) को अनुस्वार से युक्त

तालुयोगतः ॥ १७॥ प्रथमं पञ्चमे योज्यं स्वरार्द्धेनोद्धता इमे । ओंकाराद्या नमोऽन्ताश्च जपेत् स्वाहाग्निकार्य्यके ॥ १८ ॥ ओं ह्रीं हूं हः हृदयं हांहश्चेति शिरः । ह्रीं ज्वलज्वलशिखा स्यात् कवचंहनुद्वयम् ॥ १९ ॥ ह्रीं श्रींक्षूंन्नेत्रत्रयाय विद्यानेत्रं प्रकीर्त्तितम् । क्षौं हं खौं हूं फडस्त्रायगुह्याङ्गानि पुरान्यसेत् ॥ २० ॥ त्वरिताङ्गानि वक्ष्यामि विद्याङ्गानि शृणुष्व मे । आदिद्विहृदयं प्रोक्तं त्रिचतुःशिर इष्यते ॥ २१ ॥ पञ्चषष्ठ शिखाप्रोक्ता कवचं सप्तमाष्टमम् । तारकन्तु भवेन्नेत्रं नवार्द्धाक्षरलक्षणम् ॥ २२ ॥ तोतलेति समाख्याता वज्रतुण्डे ततो भवेत् । ख ख हूं दशवीजा स्याद् वज्रतुण्डेन्द्रदूतिका ॥ २३ ॥ खेचरि ज्वालिनीज्वाले खखेति ज्वालिनीदश । वर्च्चे शरविभीषणि खखेति च शवर्य्यपि ॥ २४॥ छे छेदनि करालिनि खखेति च कराल्यपि । वेक्षः श्रवद्रवप्लवनी ख खदूतीप्लवंख्यपि॥ २५॥ स्त्रीबलं कलिः धुननि शास्त्री वसन योगिका । क्षेपक्षेकपिले हस हस कपिला नाम दूतिका ॥ २६ ॥ हूं तेजोवति रौद्रि ! च मातङ्गिरौद्री दूतिका । पुटे पुटे ख ख खड्गे फट् ब्रह्मकदूतिका ॥ २७ ॥ वैतालिनि दशार्णा स्युस्त्यजान्यहि पलालवत् । हृदादिक न्यासादौ स्यान् मध्ये नेत्रे न्यसेत् सुधीः ॥ २८ ॥ पादादारभ्य मूर्द्धान्तं शिर आरभ्य पादयोः । अङ्घ्रिजानूरुगुह्यो च नाभिहृत्कण्ठदेशतः ॥ २९ ॥ वज्रमण्डलमूर्ध्वे च अधोर्ध्वे चादिबीजतः । सोमरूपं ततःश्रावं धारामृतसुवर्षिणम् ॥ ३०॥ विशन्तं ब्रह्मरन्ध्रेण साधुकस्तु विचिन्तयेत् । मूर्धास्यकण्ठहृन्नाभौ गुह्योरुजानुपादयोः ॥ ३१ ॥ आदिवीजं न्यसेन् मन्त्री तर्जन्यादि पुनः पुनः । ऊर्ध्वं सोममधः पद्मं शरीरं वीजविग्रहम् ॥ ३२ ॥ यो जानाति न मृत्युः स्यात् तस्य न व्याधयो ज्वराः । यजेज्जपेत् तां विन्यस्य ध्यायेद् देवीं

करे ।। १५-१६ ।। फिर उसके पाँचवें स्वर से युक्त करें । अर्थात् (हुं) ओष्ठ सम्पुट योगवर्ग के द्वितीय अक्षर (फ्) और जिह्वाग्रतालु याग वर्ग के प्रथम अक्षर (ट्) को पञ्चम अक्षर (ण्) के रूप में परिणत करके जोड़ना चाहिए । स्वर तथा अर्द्धव्यञ्जन वर्णों के साथ उद्धृत हुए ये तोतला देवी के मन्त्र हैं । इस मन्त्र के आदि में ओं तथा अन्त में नमः पद लगाने से बने हुए मंत्र 'ओं हुं खे च्छे क्षः स्त्री क्षे हुं फट् नमः' का जप करना चाहिए तथा मन्त्र के अन्त में स्वाहा लगाकर बने मन्त्र 'ओं हुं खे च्छे क्षः स्त्री क्षे हुं फट् स्वाहा ।' से होम करना चाहिए ।। १७-१८ ।। इस मन्त्र का जप से पूर्व गुह्य अङ्गन्यास इस प्रकार करें- ओं ह्रीं हूं हः हृदयाय नमः । ह्रां हः शिरसे स्वाहा । ह्रीं ज्वल-ज्वल शिखायै वषट् । हनु-हनु कवचाय हुम् । ह्रीं श्रीं क्षूं नेत्रत्रयाय वौषट , क्षौं हं खौं हूं अस्त्राय फट् ।। १९-२० ।। त्वरिता के अंगों का वर्णन मैं आगे चलकर बतलाऊँगा पहले त्वरिता विद्या के अंगों को सुनो । त्वरिता मन्त्र के आदि दो अक्षर इसके हृदय हैं, तीसरे और चौथे अक्षर सिर हैं ।। २१ ।। पाँचवें और छठें अक्षर शिखा बतलाये गये हैं, सातवें और आठवें अक्षर बवच हैं । नवाँ और आधा अक्षर (फट्) नेत्र हैं । ये ही तारक हैं ।।२२।। (जैसे- ओं हुं हृदयाय नमः । खे च्छे शिरसे स्वाहा । क्षः स्त्री शिखायै वषट् । क्षे हुं कवचाय हुम् । फट्! नेत्रत्रयाय वौषट् ।) । तोतले वज्रतुण्डे ख ख हुं यह दश अक्षरों का बीजमन्त्र वज्रतुण्डिका नामक इन्द्रदूतिका विद्या है ।। २३ ।। खेचरि ज्वालिनि ज्वाले ख ख' यह ज्वालिनी विद्या का मन्त्र है । वर्चे शरविभीषणी यह दश अक्षरों वाली शवरी विद्या का मन्त्र है ।। २४ ।। छे छेदनि करालिनि ख ख यह दश अक्षरों वाली कराली विद्या है । क्षः श्रव द्रव प्लवङ्गि ख खे यह प्लवंग दूती विद्या है ।। २५ ।। स्त्री बलं कलि धूननि शासी यह श्वसन योगिका विद्या है । स्त्री बलं कलि धूननि शासी यह श्वसन योगिका विद्या है । क्षे पक्षे कपिले हंस-हंस यह कपिला दूतिका विद्या है ।। २६ ।। हूं तेजोव रौद्रि ! मातङ्गि ! यह रौद्री दूतिका विद्या है । पुटे-पुटे ख ख खड्गे फट् यह ब्रह्मदूतिका विद्या है ।। २७ ।। वैताली में उक्त सभी मन्त्र दश अक्षरों के होते हैं । अन्य सारी बातें पुआल के समान सारहीन हैं । अतएव त्याज्य हैं । न्यास में हृदय आदि का उपयोग होता है । सुधी पुरुष को नेत्र का मध्य में न्यास करना चाहिए ।। २८ ।। पैर से लेकर सिर तक तथा सिर से लेकर पैर तक-पैर, जानु, ऊरु, गुह्य, नाभि, हृदय तथा कण्ठदेश पर्यन्त, ।।२९।। मुखमण्डल पर्यन्त ऊपर नीचे आदि बीज से निर्गत सोमरूप आकार स्वरूप जो अमृत की धारा को वर्षाता है ।। ३० ।। जो ब्रह्मरन्ध्र से निकलकर मुझमें प्रवेश कर रहा है, इस प्रकार से साधक को ध्यान करना चाहिए । साधक को चाहिए कि वह मूर्धा, मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि, गुह्य, ऊरु, जानु, दोनों चरण तथा तर्जनी में आदिबीज का बारम्बार न्यास करे।। ३१।। ऊपर अमृतमय

शताष्टकम् ॥ ३ ३ ॥ मुद्रा वक्ष्ये प्रणीताद्याः प्रणीता पञ्चधा स्मृताः । ग्रथितौ तु करौ कृत्वा मध्येऽङ्गुष्ठौ निपातयेत् ॥ ३४ ॥ तर्जनीं मूर्ध्निसंलग्नां विन्यसेत् तां शिरोपरि । प्रणीतेयं समाख्याता हृद्देशे तां समानयेत् ॥ ३५ ॥ ऊर्ध्वन्तु कनिष्ठिका सर्वजान्तां विदुर्द्विजाः । नियोज्य तर्जनीमध्येऽनामिकां च परस्पराम् ॥ ३६ ॥ ज्येष्ठाग्रं निक्षिपेन् मध्ये भेदनी सा प्रकीर्त्तिता । नाभिदेशे तु तां बद्ध्वा अङ्गुष्ठाम्बु क्षिपेत् ततः ॥ ३७ ॥ कराली तु महामुद्रा हृदयेयोज्य मन्त्रिणः । पुनस्तु पूर्ववद् बद्धलग्नां ज्येष्ठां समुत्क्षिपेत् ॥ ३८ ॥ वज्रतुण्डा समाख्याता वज्रदेशे तु बन्धयेत् । उभाभ्याञ्चैव हस्ताभ्यां मणिबन्धन्तु बन्धयेत् ॥ ३९ ॥ त्रीणि त्रीणि प्रसार्येति वज्रमुद्रा प्रकीर्त्तिता । दण्डः खड्गञ्चक्रगदा मुद्राचाकारतः स्मृताः ॥ ४० ॥ अङ्गुष्ठेनाक्रमेत त्रीणि त्रिशूलञ्चोर्ध्वतो भवेत् ॥ ४० ॥ अङ्गुष्ठेनाक्रमेत् त्रीणि त्रिशूलञ्चोर्ध्वतो भवेत् । एका तु मध्यमोर्ध्वातु शक्तिरेवविधीयते ॥ ४१ ॥ शरञ्च वरदञ्चापं पाशं भारञ्च घण्टया । शङ्खमङ्कुशमभयं पद्ममष्ट च विंशतिः ॥ ४२॥ मोहिणी मोक्षिणी चैव ज्वालिनी चाऽमृताभया । प्रणीताः पञ्चमुद्रास्ते पूजाहोमे च योजयेत् ॥ ४३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्वरितामन्त्रादिकथनं नाम दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१० ॥

एकादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्वरितामन्त्रदीक्षाविधिः

अग्निरुवाच– **दीक्षादि वक्ष्ये विन्यस्य सिंहवज्राकुलेऽब्जके। हे हे हुति! वज्रदन्त ! पुरु पुरु लुलु लुलु गर्ज गर्ज इहसिंहासनाय नमः। तिर्य्यगूर्ध्वगता**

सोम है नीचे बीज स्वरूप शरीर कपाल है । इस गूढ़ रहस्य को जानने वाले की न तो मृत्यु होती है और न तो किसी प्रकार की उसे व्याधि अथवा ज्वर होते हैं । न्यास करके त्वरिता देवी की पूजा करनी चाहिये तथा उनके मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिए ।। ३२-३३ ।। अब मैं प्रणीता आदि मुद्राओं को बतलाता हूँ । प्रणीता आदि मुद्राएँ पाँच प्रकार की होती हैं- (प्रणीता, सबीजा प्रणीता, भेदिनी, कराली और वज्रतुण्डा) दोनों हाथों को ग्रथित करके अंगूठे को बीच में डाल दें और तर्जनी को ऊपर करें । इसे प्रणीता मुद्रा कहते हैं । इसको हृदयदेश में लगायें ।। ३४-३५ ।। इसी मुद्रा में यदि कनिष्ठिका को ऊपर की ओर उठाकर बीच में रखा जाय तो सबीजा प्रणीता मुद्रा होती है, ऐसा द्विजों ने बतलाया है । यदि तर्जनी के बीच में अनामिका को संलग्न करके अंगुष्ठ को अग्रभाग को बीच में रखा जाय तो, वह भेदिनी मुद्रा होती है । इस मुद्रा को नाभिदेश में बाँधकर अंगुष्ठ के जल को छिड़कें ।। ३७ ।। यदि मन्त्र साधक उसी मुद्रा को हृदयदेश में लगाये तो उसे कराली नामक महामुद्रा कहते हैं । फिर पहले के ही समान ब्रह्मलग्ना ज्येष्ठा को यदि साधक ऊपर उठाये तो उसे वज्रतुण्डा मुद्रा कहते हैं । उसको वज्रदेश में आबद्ध करना चाहिए । दोनों हाथों से मणिबन्ध को बाँधना चाहिए ।। ३८-३९ ।। फिर तीन-तीन अंगुलियों को फैलाये रखें तो उसे वज्रमुद्रा कहते हैं । दण्ड, खड्ग, चक्र और आदि मुद्राएँ उनपकी आकृति के अनुसार बतलायी गयी हैं ।। ४० ।। अंगूठे से तीन अंगुलियों को आक्रान्त करके, यदि इन तीनों अंगुलियों का मुख ऊपर की ओर हो तो त्रिशूल मुद्रा होती है । केवल मध्यमा अंगुलि ऊपर की ओर उठी हो तो उसे शक्ति मुद्रा कहते हैं ।। ४१ ।। बाग, वरद, चाप, भार, घंटा, शंख, अंकुश, अभय और पद्म । ये अठाइस मुद्राएँ कही गयी हैं ।। ४२ ।। मोहिनी, मोक्षिणी, ज्वालिनी, अमृता, अभया ये पाँच प्रणीता नाम की मुद्रायें हैं, इनको पूजाकाल तथा होमकाल में करना चाहिए ।। ४३।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का त्वरिता आदि के मन्त्र वर्णन नामक तीन सौ दसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३१० ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं दीक्षा आदि की विधि का वर्णन करता हूँ । सिंहासन पर वज्र से व्याप्त कमल पर इस दीक्षा का विधान है । ' हे हे हुति वज्रदन्त पुरु-पुरु, लुलु-लुलु, गर्ज-

रेखा चत्वारश्चतुरो भवेत् ॥ १ ॥ नवभागविभागेन कोष्ठकान् कारयेद् बुधः । ग्राह्या दिशागताः कोष्ठा विदिशासु विनाशयेत् ॥ २ ॥ वाह्ये वै कोष्ठकोणेषु वाह्यरेखाष्टकं स्मृतम् । वाह्यकोष्ठस्य वाह्ये तु मध्ये यावत् समानयेत् ॥ ३ ॥ वज्रस्य मध्यमं शृङ्गं वाह्यरेखा द्विधार्द्धतः । वाह्यरेखा भवेद् वक्राद्विभङ्गाकारयेद् बुधः ॥ ४॥ मध्यकोष्ठं भवेत् पद्मं पीतकर्णिकमुज्ज्वलम् । कृष्णेन रजसा लिख्य कुलिशासिशिरोर्ध्वता ॥ ५ ॥ वाह्यतश्चतुरस्रन्तु वज्रसम्पुटलाञ्छितम् । द्वारे प्रदापयेन् मन्त्री चतुरो वज्रसम्पुटान् ॥ ६॥ पद्मनाम भवेद् वामवीथी चैव समा भवेत् । गर्भं रक्तं केसराणि मण्डले दीक्षिताः स्त्रियः ॥ ७ ॥ जयेच्च परराष्ट्राणि क्षिप्रं राज्यमवाप्नुयात् । मूर्त्तिं प्रणवसन्दीप्तां हुङ्कारेण नियोजयेत् ॥ ८ ॥ मूलविद्यां समुच्चार्य्य मरुद्व्योमगतां द्विज । प्रथमेन पुनश्चैव कर्णिकायां प्रपूजयेत् ॥ ९॥ एवं प्रदक्षिणं पूज्य एकैकं वीजमादितः । दलमध्ये तु विद्याङ्गा आग्नेय्यां पञ्च नैर्ऋतम् ॥ १० ॥ मध्ये नेत्रं दिशास्त्रञ्च गुह्यकाङ्गे तु रक्षणम् । हुतयः केशरस्थास्तु वामदक्षिणपार्श्वतः ॥ ११॥ पञ्च पञ्च प्रपूज्यास्तु स्वैः स्वैर्मन्त्रैः प्रपूजयेत् । लोकपालान् न्यसेदष्टौ वाह्यतो गर्भमण्डले ॥ १२ ॥ वर्णान्तमग्निमारूढं षष्ठस्वरविभेदितम् । पञ्चदशेन चाक्रान्तं स्वैः स्वैर्नामभियोजयेत्॥ १३॥ शीघ्रं सिंहे कर्णिकायां यजेद् गन्धादिभिः श्रिये । अष्टाभिर्वेष्टयेत् कुम्भैर्मन्त्राष्टशतमन्त्रितैः ॥ १४ ॥ मन्त्रमष्टसहस्रन्तु जप्त्वाङ्गानां दशांशकम् । होमं कुर्य्यादग्निकुण्डे वह्निमन्त्रेण चालयेत्॥ १५॥ निक्षिपेद् हृदयेनाग्निं शक्तिं मध्येऽग्निगां स्मरेत् । गर्भाधानं पुंसवनं

गर्ज इहसिंहासनाय नमः ।' यह सिंहासन के पूजन का मन्त्र है । विज्ञपुरुष को चाहिए कि वह चार रेखा खड़ी तथा चार रेखा आड़ी खींचकर नव प्रकोष्ठ का विभाग करे । उनमें प्रत्येक दिशाओं के कोष्ठों को तो रहने दे और कोणों के प्रकोष्ठों को मिटा दे ।। १-२।। अब बाह्य दिशाओं में कोष्ठ बच जाते हैं उनके कोणों तक आने वाली रेखाओं की संख्या आठ बतलायी गयी है । वाह्य कोष्ठ के बाह्य भाग में ठीक बीचोबीच वज्र का मध्यवर्ती शृंग होता है । बाह्य रेखा के दो भागों में विभक्त करने पर जो रेखार्द्ध बनता है, उतना ही बड़ा शृङ्ग होना चाहिए । वाह्य रेखा को टेढ़ी होनी चाहिए । विद्वान् उसको द्विभंगी बनाये ।। ४ ।। मध्यवर्ती कोष्ठ को कमल की आकृति का बनाये ।उसको पीले रंग की कर्णिका से सुशोभित करे । काले रंग के चूर्ण से कुलिश चक्र बनाकर उसके ऊपर के शृंग को खड्ग के समान बनाना चाहिए ।। ५ ।। चक्र के बाहर चौकोर भूपुर बनाना चाहिए जो वज्रसम्पुट से चिह्नित हो । मन्त्रज्ञ को द्वार देश में चार वज्र सम्पुटों को बनाना चाहिए ।। ६ ।। पद्मवीथी और वामवीथी को एक समान होना चाहिए । कमल के भीतरी भाग और केसर को लाल रंग का बनाना चाहिए । मंडल में स्त्रियों को दीक्षित करके उनसे मन्त्र का जप करायें तो राजा शीघ्र ही दूसरे के राष्ट्रों पर विजय प्राप्त करता है ।। ७ ।। यदि उसका अपना राष्ट्र छिन गया हो तो वह उसे भी शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है ।। प्रणव मन्त्र से तेजस्विनी बनी हुई मूर्ति को हुंकार से नियोजित करना चाहिए । हे द्विज ! मरुत एवं व्योम बीज (यं इं) से सम्पुटित करके मूलमंत्र से कर्णिका में पूजा करें । इस प्रकार प्रदक्षिण क्रम से आदि से ही एक-एक अक्षर रूप बीज का उच्चारण करते हुए कमल दलों में पूजन करना चाहिए । दलों में विद्या के अंगों की पूजा करनी चाहिए । आग्नेय दिशा से प्रारम्भ करके नैर्ऋत्य दिशा तक हृदय, शिर, शिखा, कवच एवं नेत्र इन पाँचों अंगों की पूजा करके कर्णिका में पुनः नेत्र की तथा सम्पूर्ण दिशाओं में अस्त्र की पूजा करनी चाहिए । गुह्याङ्ग में रक्षा की पूजा करनी चाहिए ।।१०।। केसरों में बायें एवं दाहिने पार्श्व में विद्यमान् पाँच-पाँच हुतियों की पूजा उनके नाम मन्त्रों से करनी चाहिए । गर्भमण्डल के बाहर आठ दिक्पालों का न्यास करना चाहिए ।। ११-१२ ।। वर्णान्त (ह) को अग्नि (र) पर चढ़ाकर उसे षष्ठ स्वर (ऊ) से विभेदित करें । उसके सिर पर पन्द्रहवें स्वर (अनुस्वार) से आक्रान्त करने पर बने हुए बीज (हूं) को दिक्पालों के नाम मन्त्रों की आदि में जोड़कर उनकी पूजा करनी चाहिए ।। १३ ।। इसके पश्चात् श्री प्राप्ति की कामना से सिंहासन पर कमल की कर्णिका में गन्ध आदि से पूजन करना चाहिए । इसके पश्चात् अष्टोत्तर शत मन्त्र से अभिमन्त्रित आठ कलशों से कमल को वेष्टित करना चाहिए ।। १४ ।। फिर एक हजार बार मन्त्र का जप करके उसके दशांश होम करना चाहिए । कुण्ड में अग्नि को अग्नि मन्त्र (रं) से ले जायँ ।। १५ ।। हृदयमन्त्र से अग्नि को कुण्ड में स्थापित करें । इसके पश्चात् कुण्ड के भीतर अग्नियुक्त शक्ति का ध्यान करना चाहिए । फिर गर्भाधान, पुंसवन तथा जातकर्म के उद्देश्य

पूर्णाहुत्या तु विद्यायाः शिवाग्निर्ज्वलितो भवेत् ॥ १७ ॥ होमयेन्
जातकर्म च होमयेत् ॥ १६ ॥ हृदयेन शतं ह्येकं गुह्याङ्गे जनयेच्छिखिम्। पूर्णाहुत्या तु विद्यायाः शिवाग्निर्ज्वलितो भवेत् ॥ १७ ॥ होमयेन्
मूलमन्त्रेण शतञ्चाङ्गं दशांशतः । निवेदयेत् ततो देव्यास्ततः शिष्यं प्रवेशयेत् ॥ १८॥ अस्त्रेण ताड़नं कृत्वा गुह्याङ्गानि ततो न्यसेत् । विद्याङ्गैश्चैव
सन्नद्धं विद्याङ्गेषु नियोजयेत् ॥ १९ ॥ पुष्पं क्षिपाययेच्छिष्यमानयेदग्निकुण्डकम् । यवैर्धान्यैस्तिलेराज्यैर्मूलविद्याशतं हुनेत्॥ २०॥ स्थावरत्वं पुरा
होमं सरीसृपमतः परम् । पक्षिमृगपशुत्वञ्च मानुषं ब्राह्ममेव च ॥ २१ ॥ विष्णुत्वञ्चैव रुद्रत्वमन्ते पूर्णाहुतिर्भवेत् । एकया चैव ह्याहुत्या शिष्यो
दीक्षितो भवेत् ॥ २२ ॥ अधिकारो भवेदेवं शृणु मोक्षमतः परम् । सुमेरुस्थो यदा मन्त्री सदाशिवपदे स्थितः॥ २३॥ परे च होमयेत् स्वस्थोऽकर्मकर्मशतान्
दश । पूर्णाहुत्या तु तद्योगी धर्माधर्मैर्नलिप्यते॥ २४॥ मोक्षं याति परं स्थानं यद् गत्वा न निवर्त्तते। यथा जले जलं क्षिप्तं जलं देही शिवस्तथा॥२५॥
कुम्भैः कुर्याच्चाभिषेकं जयराज्यादि सर्वभाक्। कुमारी ब्राह्मणी पूज्या गुर्वादेर्दक्षिणां ददेत् ॥ २६ ॥ यजेत्सहस्रमेकन्तु पूजां कृत्वा दिने दिने ।
तिलाज्यपूर्णहोमेन देवी श्रीः कामदा भवेत्॥ २७॥ ददाति विपुलान् भोगान् यदन्यच्च समीहते । जप्त्वा ह्यक्षरलक्षन्तु निधीनामधिपतिर्भवेत्॥२८॥
द्विगुणेन भवेद्राज्यं त्रिगुणेन च यक्षिणी । चतुर्गुणे च ब्रह्मत्वं ततो विष्णुपदं भवेत् ॥ २९॥ षड्गुणेन महासिद्धिर्लक्षेणैकेन पापहा । दश जप्त्वा

से अग्नि में हृदयमंत्र से एक सौ एक बार होम करें । फिर गुह्य द्वार से नवीन अग्नि के जन्म की भावना करे। फिर मूलविद्या से पूर्णाहुति देनी चाहिए । इससे शिवाग्नि का जन्म सम्पादित होता है ।। १६-१७ ।। तदनन्तर मूलमन्त्र से एक सौ आहुति देनी चाहिए और उसके दशांश अंगों के उद्देश्य से होम करना चाहिए । इसके पश्चात् आचार्य शिष्य को देवी के हाथ में समर्पित करके उसको मण्डल में प्रवेश करायें ।। १८ ।। फिर अस्त्र मन्त्र से ताडन करके गुह्यांगों का न्यास करें । विद्या के अंगों से सम्बद्ध शिष्य को विद्या के अंगों में नियोजित करना चाहिए ।।१९।। इसके पश्चात् आचार्य को शिष्य पर पुष्प का प्रक्षेप कराकर उसे अग्निकुण्ड के समीप ले जाना चाहिए । इसके पश्चात् आचार्य यव, धान्य, तिल तथा घी से एक सौ आहुति मूल विद्या से दें।।२०।। प्रथम होम स्थावर योनि में उसे पहुँचाकर उससे मुक्ति दिलाता है । दूसरा होम उसे सरीसृप (सरककर चलने वाले साँप विच्छू) आदि योनियों में पहुँचाकर उससे उसको मुक्ति दिलाता है । उसके पश्चात् उसे क्रमशः पक्षि, मृग, पशुत्व तथा मनुष्य योनि की प्राप्ति तथा उससे मुक्ति होती है । इसके पश्चात् उस शिष्य को ब्रह्मपद, विष्णुपद तथा अन्त में रुद्रपद की प्राप्ति होती है । सबों के अन्त में पूर्णाहुति होती है ।। २१।। एक ही आहुति से शिष्य दीक्षित हो जाता है और उसे मोक्ष की प्राप्ति का अधिकार प्राप्त हो जाता है । उसके मोक्ष प्राप्ति का क्रम अब सुनो ।। २२।। जब मन्त्रज्ञ पुरुष सुमेरु पर सदाशिव पद में स्थित हो तो उसे दूसरे दिन कर्मों तथा अकर्मों के क्षय के लिए एक हजार आहुति देनी चाहिए । इसके बाद में उसे पूर्णाहुति करनी चाहिए । ऐसा करने वाला योगी धर्म तथा अर्थ के बन्धन में नहीं बँधता है ।। २३-२४ ।। वह परं पद मोक्ष को प्राप्त कर लेता है । उस पद को प्राप्त करने के पश्चात् वह इस संसार में नहीं आता है । जिस तरह जल में डाला हुआ जल जल स्वरूप होता है, उसी तरह शिव में जीव शिवस्वरूप हो जाता है ।। २५ ।। इसके पश्चात् आचार्य शिष्य का कलशों से अभिषेक करे । ऐसा करने से उसे विजय तथा राज्य इत्यादि की प्राप्ति होती है । अभिषेक के पश्चात् यजमान, ब्राह्मणी, कुमारियों की पूजा करके आचार्य आदि को दक्षिणा दें ।। २६ ।। वह प्रतिदिन पूजा करके एक हजार आहुति प्रदान करे । तिल तथा घी से पूर्णहोम करने पर त्वरिता देवी यजमान को श्री तथा समस्त अभिलषित पदार्थों को प्रदान करती हैं ।। २७ ।। वे साधक को विपुल मात्रा में भोगों को प्रदान करती हैं तथा उन समस्त वस्तुओं को प्रदान करती हैं जिन वस्तुओं को साधक चाहता है । मन्त्र के अक्षर संख्या के बराबर लाख संख्या में जप करके साधक निधियों का स्वामी हो जाता है ।। २८ ।। दो गुना जप करने से राज्य की प्राप्ति होती है । तीन गुना जप करने से यक्षिणी सिद्धि हो जाती है । चार गुना जप करने से ब्रह्मा के पद की प्राप्ति होती है । उसके बाद उसे विष्णुपद की प्राप्ति होती है ।। २९ ।। छह गुना जप करने से महासिद्धि होती है । मन्त्र का एक लाख जप करने से पापों का नाश होता है । दश बार जप करने से शरीर की शुद्धि होती है । सौ बार जप करने से तीर्थ में स्नान करने का फल प्राप्त होता है ।। ३० ।। त्वरिता देवी की पूजा कपड़े पर या प्रतिमा पर या वेदीपर करनी चाहिए । देवी के मन्त्र का सौ या हजार या

देहशुद्धौ तीर्थस्नानफलं शतात् ॥ ३०॥ पटे वा प्रतिमायां वा शीघ्रां वै स्थण्डिले यजेत् । शतंसहस्रमयुतं जपे होमः प्रकीर्त्तितः ॥ ३१ ॥ एवं विधानतो जप्त्वा लक्षमेकन्तु होमयेत् । महिषाजमेषमांसेन नरजेन पुरेण वा॥ ३३॥ तिलैर्यवैस्तथा लाजैर्व्रीहिगोधूमकाम्रकैः । श्रीफलैराज्यसंयुक्तैर्होमयित्वा व्रतञ्चरेत् ॥ ३३॥ अर्द्धरात्रेषु सन्नद्धः खड्गचापशरादिमान् । एकवासा विचित्रेण रक्तपीतासितेन वा ॥ ३४॥ नीलेन वाथ वस्त्रेण देवीं तैरेव चार्चयेत्। व्रजेद् दक्षिणदिग्भागं द्वारे दद्याद् बलिं बुधः॥३५॥ दूतीमन्त्रेण द्वारादौ एकवृक्षे श्मशानके। एवञ्च सर्वकामाप्तिं भुंक्ते सर्वां महीं नृपः॥३६॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्वरितामन्त्रदीक्षाकथनं नामैकादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३११ ॥

द्वादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्वरिताविद्यातः प्राप्तसिद्धीनां वर्णनम्

अग्निरुवाच— **विद्याप्रस्तावमाख्यास्ये धर्मकामादि सिद्धिदम् । नवकोष्ठविभागेन विद्याभेदञ्च विन्दति॥ १॥ अनुलोमविलोमेन समस्तव्यस्तयोगतः। कर्णाविकर्णयोगेन अध ऊर्ध्वं विभागशः ॥ २॥ त्रित्रिकेण च योगेन देव्या सन्नद्धविग्रहः । जानाति सिद्धिदान् मन्त्रान् प्रस्तावान्निर्गतान् बहून्॥३॥ शास्त्रे शास्त्रे स्मृता मन्त्राः प्रयोगास्तत्र दुर्लभाः । गुरुस्यात् प्रथमो वर्णः पूर्वेद्युर्न च वर्ण्यते ॥ ४ ॥ प्रस्तावे तत्र चैकार्णाद्व्यर्णास्त्र्यर्णादयोऽभवन्। तिर्य्यगूर्ध्वगता रेखाश्चतुरश्चतुरो भजेत्॥ ५॥ नव कोष्ठा भवन्त्येवं मध्यदेशे तथा इमान् । प्रदक्षिणेन संस्थाप्य प्रस्तावं भेदयेत् ततः ॥ ६ ॥ प्रस्तावक्रमयोगेन प्रस्तावं यस्तु विन्दति । करमुष्टिस्थितास्तस्य साधकस्य हि सिद्धयः॥ ७॥ त्रैलोक्यं पादमूले स्यान्नवखण्डां भुवं लभेत् । कपाले**

दस हजार जप करके होम करना चाहिए ।। ३१ ।। इस तरह से विधिपूर्वक एक लाख जप करके महिष, अजा अथवा मेष के मांस से नगर या पुर द्वार पर होम करें ।। ३२ ।। तिल, यव, लावा, धान, गेहूँ, आम के फल, श्रीफल तथा घी इन सबों को एक साथ करके होम करना चाहिए, फिर व्रत करना चाहिए ।। ३३ ।। साधक आधी रात को कवच आदि से सन्नद्ध होकर, खड्ग, धनुष् तथा बाण आदि लेकर एक वस्त्र धारण करके उपर्युक्त वस्तुओं से ही देवी की पूजा करे । वस्त्र का रंग चितकबरा, लाल, पीला, श्यामवर्ण अथवा नीला होना चाहिए ।। ३४।। विद्वान् मन्त्र दक्षिण दिशा में जाकर द्वार पर बलि प्रदान करे । वह दूती मन्त्र से द्वार आदि पर अथवा एक वृक्ष वाले श्मशान में भी दी जा सकती है । ऐसा करने वाला व्यक्ति राजा होकर अपने सभी कामनाओं को पूर्ण करता है ।। ३६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का त्वरितादेवी के मन्त्र की दीक्षा आदि की विद्या का वर्णन नामक तीन सौ ग्यारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३११ ॥

अग्निदेव ने कहा— अब मैं धर्म, काम आदि सिद्धियों को प्रदान करने वाले विद्या प्रस्ताव का वर्णन कर रहा हूँ । नवकोष्ठों के विभाग से विद्याभेद को साधक प्राप्त करता है ।। १।। अनुलोम विलोम योग, समस्त व्यस्त योग, कर्णाविकर्णयोग, अध ऊर्ध्वविभागयोग एवं त्रित्रिकयोग के द्वारा जिसका शरीर देवी द्वारा सुरक्षित है, वह प्रस्ताव के निकले हुए बहुतसे सिद्धि प्रदान करने वाले मन्त्रों को जानता है ।। २-३ ।। प्रत्येक शास्त्रों में मन्त्र बतलाये गये हैं, किन्तु उनमें दून मन्त्रों का प्रयोग मिलना कठिन है । प्रथम वर्ण गुरु ही होता है, किन्तु उसका इससे पहले वर्णन नहीं किया गया है ।। ४ ।। प्रस्ताव में पहले एकाक्षर, द्वयक्षर एवं त्र्यक्षर मंत्र प्रकट हुए । पहले चार-चार खड़ी एवं पड़ी रेखाओं को खींचना चाहिए ।। ५ ।। इसको खींचकर नव कोष्ठ बनते हैं । मध्यकोष्ठ से प्रारम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से मन्त्र के अक्षरों का उन कोष्ठों में न्यास करें । इसके पश्चात् प्रस्ताव भेदन करना चाहिए ।। ६ ।। जो साधक प्रस्ताव क्रम योग

तु समालिख्य शिवतत्त्वं समन्ततः ॥ ८ ॥ श्मशानकर्पटे वाथ वाह्यं निष्क्रम्य मन्त्रवित् । तस्य मध्ये लिखेन्नाम कर्णिकोपरि संस्थितम् ॥ ९ ॥
तापयेत् खादिराङ्गारैर्भूर्जमाक्रम्य पादयोः । सप्ताहादानयेत् सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ १०॥ वज्र सम्पुटगर्भे तु द्वादशारे तु लेखयेत् । मध्ये
गर्भगतं नाम सदाशिवविदर्भितम् ॥ ११॥ कुड्य फलकके वाथ शिलापट्टे हरिद्रया । मुखस्तभं गतिस्तम्भं सैन्यस्तम्भन्तु जायते॥ १२॥ विषरक्तेन
संलिख्य श्मशाने कर्पटे बुधः । षट्कोणं दण्डमाक्रान्तं समन्ताच्छक्तियोजितम् ॥ १३ ॥ मारयेदचिरादेष श्मशाने निहतं रिपुम् । छेदं करोति
राष्ट्रस्य चक्रमध्ये न्यसेद्रिपुम् ॥ १४॥ चक्रधाराङ्गतां शक्तिं रिपुनाम्ना रिपुं हरेत् । तार्क्ष्येणैव तु बीजेन खड्गमध्ये तु लेखयेत् ॥ १५ ॥ विदर्भ
रिपुनामाथ श्मशानाङ्गारलेखिताम् । सप्ताहात् साधयेद् देशं ताड़येत् प्रेतभस्मना॥ १६॥ भेदने छेदने चैव मारणेषु शिवो भवेत् । तारकं नेत्रमुद्दिष्टं
शान्तिपुष्टी नियोजयेत् ॥ १७ ॥ दहनादिप्रयोगोऽयं शाकिनीश्चैव कर्षयेत् । मध्यादिवारुणीं यावद् वक्रतुण्डसमन्वितः॥ १८॥ कुष्ठाद्या व्याधयो
ये तु नाशयेत् तान् न संशयः । मध्यादि उत्तरान्तन्तु करालीबन्धनात् जपेत्॥१९॥ रक्षयेदात्मनो विद्यां प्रतिवादी यदा शिवः । वारुण्यादि ततो
न्यस्य ज्वरकाशविनाशनम् ॥ २० ॥ सौम्यादि मध्यमान्तन्तु गुरुत्वं जायते वटे । पूर्वादि मध्यमान्तन्तु लघुत्वं कुरुते क्षणात् ॥ २१ ॥ भूर्जे
रोचनया लिख्य एतद् वज्राकुलं पुरम् । क्रमस्थैर्मन्त्रवीजैस्तु रक्षां देहेषु कारयेत् ॥ २२॥ वेष्टिता भावहेम्ना च रक्षेयं मृत्युनाशिनी । विघ्नपापारिदमनी

से प्रस्ताव को प्राप्त करता है उस साधक की मुट्ठी में सारी सिद्धियाँ होती हैं ।। ७ ।। सम्पूर्ण त्रिलोकी उसके चरणों में झुक जाती है । वह नवखण्डों वाली जम्बूद्वीप की सम्पूर्ण पृथिवी पर अधिकार प्राप्त करता है । कपाल अथवा कफन पर चारों ओर शिखा तत्त्व को लिखकर मन्त्रवेत्ता बाहर निकले और मध्यभाग में कर्णिका के ऊपर अभीष्ट व्यक्ति विशेष का नाम भोजपत्र पर लिखकर खैर की लकड़ी से बनायी गयीआग पर उसको तपाये और फिर उसको अपने दोनों पैरों के नीचे दबाये । ऐसा करने से एक सप्ताह में त्रैलोक्य के सम्पूर्ण जीव उसके वश में हो जाते हैं ।।८-१०।। वज्र सम्पुट गर्भसे युक्त द्वादश आकार वाले चक्र के बीच में द्वेष्य व्यक्ति का नाम लिखकर उसे सदाशिव मन्त्र से कुशों द्वारा मार्जित करें ।। ११ ।। उस द्वादश आर वाले चक्र तथा द्वेष्य के नाम को दिवाल पर, काष्ठफलक पर अथवा शिलापट्टी पर लिखना चाहिए । ऐसा करने से शत्रु के मुख का स्तम्भन, गति का स्तम्भन तथा सेना का भी स्तम्भन हो जाता है ।।१२।। मन्त्रवेत्ता पुरुष को चाहिए कि श्मशान के कपड़े (कफन) पर विष मिश्रित रक्त से षट्कोण बनाकर उसके बीच में शत्रु का नाम लिखें । उस चक्र को चारों ओर से शक्ति बीज से युक्त करके उसके ऊपर दण्डा रख दें । फिर श्मशान में रखे हुए उस शत्रु पर शीघ्र ही दण्डे से प्रहार करें । इस प्रयोग से वह चक्र में लिखे हुए शत्रु राजा के राज्य को खण्डित कर देता है ।। १३-१४।। चक्राकार मण्डल बनाकर उसके मध्य में शत्रु का नाम लिखें । फिर चक्र की धारा में शक्ति का न्यास करना चाहिए । फिर शत्रु का नाम लेकर उस पर भावना द्वारा उस चक्र की धारा से प्रहार करना चाहिए । ऐसा करने से शत्रु का हरण होता है । इसी प्रकार खड्ग के बीच में गरुडमन्त्र से शत्रु का नाम लिखें । फिर उस नाम को कुश से मार्जित करें । शत्रु के नाम को श्मशान भूमि के कोयले से लिखना चाहिए । फिर उस पर चिता के भस्म से प्रहार करना चाहिए । ऐसा करके साधक शत्रु के देश को अपने वश में करने में समर्थ हो जाता है।।१६।। वह छेदन-भेदन तथा मारण की क्रिया में शिव के समान शक्तिशाली हो जाता है । तारक (फट्) को नेत्र कहा गया है उसका प्रयोग शान्ति तथा पुष्टि कर्म में करना चाहिए ।। १७ ।। यह दहनादि प्रयोग शाकिनी को भी आकर्षित करता है । उपर्युक्त नव कोष्ठों वाले चक्र के मध्यगत मन्त्राक्षर से लेकर पश्चिम दिशावर्ती कोष्ठ के दो अक्षरों को वक्रतुण्डमन्त्र के साथ जप करने से कुष्ठ आदि जितने भी चर्मरोग हैं उन सबों का नाश हो जाता है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है । (यह अध ऊर्ध्व विभाग योग है) ।। १८।। मध्य कोष्ठ से उत्तरवर्ती कोष्ठ तक के दो अक्षरों को कराली बन्ध के साथ जप करने से यदि स्वयं स्त्री भी प्रतिवादी हों तो उनसे भी अपनी रक्षा कराती है ।। १९।। इसी तरह पश्चिम कोष्ठ के मन्त्राक्षर को आदि में रखकर उत्तर कोष्ठ तक के मन्त्राक्षरों को वक्रतुण्ड मन्त्र के साथ जपा जाय तो ज्वर एवं खाँसी का विनाश होता है ।। २० ।। उत्तरकोष्ठ से लेकर मध्यमकोष्ठ के मन्त्राक्षरों को एक साथ जप लिया जाय तो साधक की इच्छा वे वट के बीज में भारीपन आ जाता है । पूर्वगत कोष्ठ से लेकर मध्य कोष्ठ के अक्षरों को एक साथ जपा जाय तो क्षणभर में ही उसमें हल्कापन आ जाता है ।। २१ ।। भोजपत्र पर गोरोचन

सौभाग्यायुप्रदा धृता॥ २३॥ द्यूते रणे च जयदा शक्रसैन्ये न संशयः। बन्ध्यानां पुत्रदा ह्येषा चिन्तामणिरिवापरा॥ २४॥ साधयेत् परराष्ट्राणि राज्यञ्च पृथिवीं जयेत्। फट् स्त्रीं क्षे हूं लक्षजप्याद् यक्षादिर्वशगो भवेत्॥ २५॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेत्वरिताविद्यातःप्राप्तसिद्धीनां कथनं नाम द्वादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥ ३१२॥

त्रयोदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नानामन्त्राः

अग्निरुवाच– **ओं विनायकार्चनं वक्ष्ये यजेदाधारशक्तिकम्। धर्माद्यष्टककन्दञ्च नालं पद्मञ्च कर्णिकाम्॥ १॥ केसरं त्रिगुणं पद्मं तीव्रञ्च ज्वलिनीं यजेत्। नन्दाञ्च सुयशाञ्चोग्रां तेजोवतीं विन्ध्यवासिनीम्॥ २॥ ध्यानमूर्त्तिं गणपतिं हृदयं स्याद् गणं जयः। एकदन्तोत्कटशिरः शिखायाचलकर्णिने॥ ३॥ गजवक्त्राय कवचं हूं फडन्तं तथाष्टकम्। महोदरो दण्डहस्तः पूर्वादौ मध्यतो यजेत्॥ ४॥ जयो गणाधिपो गणनायकोऽथ गणेश्वरः। वक्रतुण्ड एकदन्तोत्कटलम्बोदरो गजः॥ ५॥ वक्त्रो विकटाननोऽथ हूं पूर्वो विघ्ननाशनः। धूम्रवर्णो महेन्द्राद्यो वाह्ये विघ्नेशपूजनम्॥६॥ त्रिपुरापूजनं वक्ष्ये असिताङ्गो रुरुस्तथा। चण्डः क्रोधस्तथोन्मत्तः कपाली भीषणः क्रमात्॥ ७॥ संहारो भैरवो ब्राह्मीमुख्या ह्रस्वास्तु भैरवाः।**

द्वारा इस वज्र से व्याम भूपुर चक्र को लिखकर, अनुलोमक्रम से स्थित मन्त्र वीजों को लिखकर उसे मन्त्र के समान धारण करके साधक अपने शरीर की रक्षा करे॥ २२॥ भावपूर्वक सुवर्ण में मढ़ाकर धारण किया गया यह रक्षा यन्त्र मृत्यु का भी नाश कर देता है। इसके धारण करने से विघ्न, पाप तथा शत्रु का नाश होता है तथा सौभाग्य एवं आयु की वृद्धि होती है॥ २३॥ इस रक्षायन्त्र को ध्यान करने से जूए तथा युद्ध में विजय की प्राप्ति होती है, इन्द्र की सेना के साथ भी युद्ध होने पर विजय की प्राप्ति होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस रक्षामन्त्र से वन्ध्या स्त्री को भी पुत्र की प्राप्ति होती है तथा यह मन्त्र द्वितीय चिन्तामणि के समान समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है॥ २४॥ इससे सुरक्षित मनुष्य दूसरे के भी राष्ट्र पर अधिकार प्राप्त करता है। वह उसके राज्य तथा पृथ्वी पर विजय प्राप्त करता है। 'फट् स्त्री क्षे हुं' इन चार अक्षरों का एक लाख जप करने से यक्ष आदि भी वश में हो जाते हैं॥ २५॥

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण के त्वरिता विद्या से प्राप्त होने वाली सिद्धियों का वर्णन नामक तीन सौ बारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ३१२॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं विनायक (गणेशजी) की अर्चना का वर्णन करता हूँ। योगपीठ पर सर्वप्रथम आधारशक्ति का पूजन करना चाहिए। अन्य दिशाओं में धर्म आदि (ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य) की पूजा करें। उसके पश्चात् कन्द नाल, कर्णिका॥ १॥ केसर, तीनों गुण (सत्त्व, रजस् एवं तमस्) तथा पद्म की पूजा करें। उसके पश्चात् तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, सुयशा, उग्रा, तेजोवती तथा विन्ध्यवासिनी की पूजा करें॥ २॥ इसके पश्चात् गणेशजी कीअथवा मूर्ति के अंगों की पूजा करें। वाक्य इस तरह हैं। गणंजयाय हृदयाय नमः। एकदन्तायोत्कटाय शिरसे स्वाहा। अचलकर्णिने शिखायै वषट्। गणवक्त्राय इन मन्त्रों में से चार की तो पूर्वादि दिशाओं में और अन्तिम की मध्य में पूजा करें॥ ३-४॥ उसके पश्चात् कमल दलों में क्रमशः गणंजय, गणाधिप, गणनायक, गणेश्वर, वक्रतुण्ड, एकदन्त, उत्कट, लम्बोदर, गजवक्त्र, तथा किटानन की पूजा करें। इसके बाद बीच में हूँ विघ्ननाशाय नमः, महेन्द्राय धूम्रवर्णाय नमः। इन मन्त्रों से विघ्ननाशन एवं धूम्रवर्ण की पूजा करनी चाहिएँ। बाहर के भाग में विघ्नेश की पूजा करनी चाहिए॥ ५-६॥ अब मैं त्रिपुरा पूजन की विधि बतलाता हूँ। उसमें निम्नांकित आङ्ग भैरवों की पूजा की जाती है। वे भैरव हैं- असिताङ्ग भैरव, रुरुभैरव, चण्डभैरव, क्रोध भैरव, उन्मत्त भैरव, कपाली भैरव तथा भीषण भैरव॥ ७॥ इसके पश्चात् ब्राह्मी आदि (माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी,

ब्रह्माणीषणमुखा दीर्घा अग्न्यादौ वटुकाः क्रमात् ॥ ८ ॥ समयपुत्रो वटुको योगिनीपुत्रकस्तथा । सिद्धपुत्रश्च वटुकः कुलपुत्रश्चचतुर्थकः ॥ ९ ॥ हेतुकः क्षेत्रपालश्च त्रिपुरान्तो द्वितीयकः । अग्निवेतालोऽग्निजिह्वः करालोकाललोचनः॥ १०॥ एकपादश्च भीमाक्ष ऐं क्षैं प्रेतस्तथासनम् । ऐं ह्रीं हसौः त्रिपुरा पद्मासनसमास्थिता ॥ ११॥ बिभ्रत्यभयपुस्तञ्च वामे वरदमालिकाम् । मूलेन हृदयादि स्याज्जालपूर्णञ्च कार्मुकम्॥ १२॥ गोमध्ये नाम संलिख्यचाष्टपत्रे च मध्यतः । श्मशानादिपटे श्मशानाङ्गारेण विलेखयेत् ॥ १३॥ चिताङ्गारपिष्टकेन मूर्त्तिं ध्यात्वा तु तस्य च । क्षिप्त्वोदरे नीलसूत्रैर्वेष्ट्य चोच्चाटनं भवेत् ॥ १४ ॥ ओं नमो भगवति ! ज्वालामालिनि ! गृध्रगणपरिवृते ! स्वाहा । युद्धेगच्छन् जपन् मन्त्रं पुमान् साक्षाज् जयी भवेत् ॥ १५ ॥ ओं श्रीं ह्रीं क्लीं श्रियै नमः । उत्तरादौ च घृणिनी सूर्य्या पूज्या चतुर्दले ॥ १६ ॥ आदित्या प्रभावती च हेमाद्रिमधुराश्रियः। ओं ह्रीं गौर्य्यै नमः । गौरीमन्त्रः सर्वकरः होमाद् ध्यानाज्जपार्चनात् ॥ १७ ॥ रक्ता चतुर्भुजा पाशवरदा दक्षिणे करे । अङ्कुशाभययुक्तान्तां प्रार्थ्य शुद्धात्मना पुमान् ॥ १८ ॥ जीवेद् वर्षशतं धीमान् न चौरारिभयं भवेत् । क्रुद्धः प्रसादी भवति युधि मन्त्राम्बुपानतः ॥ १९ ॥ अञ्जनं तिलकं वश्ये जिह्वाग्रे कविता भवेत् । तज्जापान्मैथुनं वश्ये तज्जपाद् योनिवीक्षणम्॥२०॥ स्पर्शाद् वशी तिलहोमात् सर्वञ्चैव तु सिध्यति । सप्ताभिमन्त्रितञ्चान्नं भुञ्जंस्तस्य श्रियः सदा ॥ २१ ॥ अर्द्धनारीशरूपोऽयं लक्ष्म्यादि वैष्णवादिकः । अनङ्गरूपा शक्तिश्च द्वितीया मदनातुरा ॥२२॥ पवनवेगा भुवनपाला वै सर्वसिद्धिदा । अनङ्गमदनानङ्ग मेखलान्ताञ्जपेच्छ्रिये॥ २३ ॥ पद्ममध्यदलेषु ह्रीं स्वरान् कादींस्ततः स्त्रियः । षट्कोणे वा घटे वाऽथ लिखित्वा

चामुण्डा तथा महालक्ष्मी) मातृकाओं की पूजा करनी चाहिए । अकार आदि ह्रस्व स्वरों से भैरवों की पूजा करनी चाहिए । आकार आदि दीर्घ स्वरों के बीच को आदि में रखकर ब्राह्मी आदि मातृकाओं की पूजा करनी चाहिए ।। ७-८ ।। ये बटुक हैं-समय पुत्र बटुक, योगिनीपुत्र बटुक, सिद्धपुत्र बटुक तथा कुलपुत्र बटुक ।। ९ ।। प्रथम हेतुक क्षेत्रपाल हैं, द्वितीय त्रिपुरान्त क्षेत्रपाल हैं, तीसरे अग्निवेत्तालक्षेपाल हैं, चौथे अग्निजिह्वा क्षेत्रपाल हैं, पाँचवें कराल क्षेत्रपाल हैं, छठे लोचन क्षेत्रपाल हैं, ।। १० ।। सातवें एकपाद क्षेत्रपाल तथा आठवें भीमाक्षक्षेत्रपाल हैं । इसके पश्चात् त्रिपुरादेवी के प्रेतस्वरूप पद्मासन की पूजा करनी चाहिए । पूजा के मन्त्र हैं- ऐं क्षैं प्रेतपद्मासनाय नमः । ओं ह्रीं हसौः त्रिपुरायै प्रेतपद्मासनस्थितायै नमः ।। ११ ।। त्रिपुरादेवी का ध्यान इस प्रकार है- त्रिपुरादेवी बायें हाथ में अभय मुद्रा तथा पुस्तक धारण करती हैं, दायें हाथ में वरदमुद्रा एवं जपमाला धारण करती हैं । वे बाणसमूह से परिपूर्ण तरकस एवं धनुष् धारण करती हैं । मूलमन्त्र से उनका हृदयादि न्यास करना चाहिए ।। १२ ।। गायों के बीच में स्थित होकर कफन के ऊपर चिता के कोयले से अष्टदलकमल का चक्र लिखना चाहिए । उसमें द्वेष्य व्यक्ति का नाम लिखकर लपेट दे ।। १३।। इसके पश्चात् चिता की राख को सानकर एक मूर्ति बनायें । उसमें शत्रु के स्थित होने का ध्यान करे । फिर उक्त यन्त्र को नीचे सूत से लपेटकर मूर्ति के पेट में घुसेड़ दें । ऐसा करने से शत्रु का उच्चाटन हो जाता है ।। १४ ।। ओं नमो भगवति ! ज्वालामालिनि ! गृध्रगणपरिवृते ! स्वाहा । इस मन्त्र को जपते हुए युद्ध में जाने वाले को साक्षात् विजय की प्राप्ति होती है ।। १५ ।। ओं श्रीं, ह्रीं क्लीं श्रियै नमः । इस मन्त्र से कमल के उत्तरादि दलों में क्रमशः घृणिनी, सूर्या, आदित्या एवं प्रभावती इन चार देवियों की पूजा करके उपर्युक्त मन्त्र का जप करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । ये सभी देवियाँ सुवर्ण पर्वत के समान मनोहर हैं । ओं ह्रीं गौर्यै नमः । इस मन्त्र का जप, ध्यान और इससे गौरी देवी का पूजन करने से साधक को सब कुछ मिल जाता है ।। १६-१७ ।। गौरी देवी की अंग कान्ति अरुण है। उनकी चार भुजायें हैं । वे अपनी दाहिनी भुजाओं में पाश तथा वरदमुद्रा धारण करती हैं । बायीं भुजाओं में वे अंकुश तथा अभयमुद्रा धारण करती हैं । शुद्ध मन से उनकी प्रार्थना करके मनुष्य एक सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है । उसको चोर तथा शत्रुओं का भय नहीं होता है । इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पी लेने से संग्राम भूमि में क्रुद्ध व्यक्ति भी उस पर प्रसन्न हो जाता है ।। १९-२० ।। इस मन्त्र से अञ्जन एवं तिलक लगाने से वशीकरण सिद्ध होता है । इसका जिह्वाग्र पर लिखने अथवा जप करने से कवित्व शक्ति प्रस्फुटित होती है । इसके जप से स्त्री-पुरुष के जोड़े वश में हो जाते हैं । इसके जप से सूक्ष्म योनि के भी जीवों के दर्शन होते हैं ।। २१ ।। साधक के स्पर्श करने मात्र से मनुष्य वश में हो जाता है। इस मन्त्र से तिल का होम करने

स्याद् वशीकरम् ॥ २४ ॥ ओं ह्रीं ऐं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा। मूलमन्त्रः षड़ङ्गोयं रक्तवर्णे त्रिकोणके द्रावणी ह्लादकारिणी क्षोभिणी गुरुशक्तिका॥२५॥ ईशानादौ च मध्ये तां नित्यां पाशाङ्कुशौ तथा। कपालकल्पकतरुं वीणा रक्ता च तद्वती ॥ २६ ॥ नित्याभया मङ्गला च नववीरा च मङ्गला। दुर्भगा मनोन्मनी पूज्या द्रावा पूर्वादितः स्थिता ॥ २७॥ ओं ह्रीं अनङ्गाय नमः। ओं ह्रीं स्मराय नमः। मन्मथाय च माराय कामायैवच पञ्चधा। कामाः पाशाङ्कुशौ चापबाणाः ध्येयाश्च विभ्रतः ॥ २८ ॥ रतिश्च विरतिः प्रीतिविप्रीतिश्च मतिर्धृतिः। विधृतिः तुष्टिरेभिश्च क्रमात् कामादिकैर्युताः ॥ २९ ॥ ओं छं नित्यक्लिन्ने ! मदद्रवे ! ओं आं। अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः। क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह क्ष। ओं छं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा ॥ ३० ॥ ओं ह्रीं गौरि ! रुद्रदयिते! योगेश्वरि ! हूं फट् स्वाहा ॥ ३१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानामन्त्रकथनं नाम त्रयोदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१३ ॥

से समस्त कामनाओं की पूर्ति हो जाती है। इस मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित करके अन्न का भोजन करने वाले मनुश्य के पास लक्ष्मी सदा बनी रहती है ।। २१ ।। इस मन्त्र के आदि में लक्ष्मी बीज (श्रीं) तथा वैष्णव बीज (क्लीं) को जोड़ देने पर यह अर्द्धनारीश्वर मन्त्र हो जाता है। अनङ्गरूपा, मदनातुरा, पवनवेगा, भुवनपाला, सर्वसिद्धिदा, अनंगमदना और अनंग मेखला; ये शक्तियाँ हैं। इनका जप करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।। २२-२३ ।। कमल के दलों के बीच में ह्रीं स्वरों, कादि व्यञ्जनों को लिखकर सबों के बीच में अभीष्ट स्त्री का नाम लिखना चाहिए। इसे षट्कोणचक्र अथवा कलश मेकं लिखा जा सकता है। ऐसा करने से वशीकरण हो जाता है ।। २४ ।। 'ओं ह्रीं ऐं नित्यक्लिवे मदद्रने स्वाहा। यह मूलमन्त्र छह अंगों वाला है। लाल रंग के त्रिकोण चक्र में अष्टकमल का ध्यान करे। उसके पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः द्रावणी, ह्लादकारिणी, क्षोभिणी और गुरुशक्ति नाम की शक्तियों का पूजन करे और ईशानादि कोणों में तथा मध्य में नित्यानाम की शक्ति का पूजन करना चाहिए। यह नित्या देवी अपने हाथों में पाश, अंकुश, कपाल, कल्पतरु, तथा वीणा धारण करती हैं। इनकी अंगकान्ति रक्त वर्ण की है। अपने अंगकान्ति के ही समान ये वस्त्राभूषण को धारण करती हैं ।। २५ ।। कमल के पूर्वादि दलों में स्थित नित्या, अभया, मंगला, नववीरा, सुमंगला, दुर्भगा मनोन्मनी तथा द्रावा इन आङ्ग देवियों का पूजन करना चाहिए ।।२६ ।। इनके बाहरी भाग में पाँच दलों में कामदेवों का पूजन होता है। ओं ह्रीं अनंगाय नमः। ओं ह्रीं ह्रीं स्मराय नमः। ओं ह्रीं मन्मथाय नमः। ओं ह्रीं माराय नमः। ओं ह्रीं कामाय नमः। ये कामदेवों की पूजा के मंत्र हैं। ये पाँचों काम अपने हाथ में- पाश, अंकुश, धनुष् एवं बाण धारण करते हैं। इनके साथ पाँच कमलवल्लभाओं का क्रमशः पूजन करें। वे हैं- रति- विरति, प्रीति-विप्रीति, मतिविभूति, धृति विधृति एवं तुष्टि-वितुष्टि ।। २९ ।। ओं छं नित्यक्लिन्ने ! मदद्रवे ! ओं ओं अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष ओं छं नित्यक्लिन्ने ! मदद्रवे ! स्वाहा ।। ३० ।। सिंहासन पर आधारशक्ति तथा पद्म का पूजन करने से उसके दलों में हृदय आदि अंगों की स्थापना एवं पूजन करने के पश्चात् मध्यकर्णिका में देवी की पूजा करनी चाहिए। ओं ह्रीं गौरि ! रुद्रदयिते ! योगेश्वरि ! हूं फट् स्वाहा। यह गौरी मन्त्र है ।। ३१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का नानामन्त्र वर्णन नामक तीन सौ तेरहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३१३ ॥

चतुर्दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्वरिताविज्ञानम्

अग्निरुवाच— **ओं ह्रीं हूं खे च छे क्षः स्त्री हूं क्षे ह्रीं फट् त्वरितायै नमः। त्वरितां पूजये न्यस्य द्विभुजाञ्चाष्टबाहुकाम्। आधारशक्तिं पद्मञ्च सिंहे देवीं हृदादिकम्॥ १ ॥ पूर्वादौ गायत्रीं यजेन्मण्डले वै प्रणीतया। हुंकारां खेचरीं चण्डां छेदिनीं क्षेपिणीं स्त्रियम्॥ २ ॥ हुंकारां क्षेमकारीञ्च फट्कारीं मध्यतो यजेत्। जयाञ्च विजयां द्वारि किङ्करञ्च तदग्रतः॥ ३ ॥ तिलैर्होमैश्च सर्वाप्त्यै नामव्याहृतिभिस्तथा। अनन्ताय नमः स्वाहा कुलिकाय स्वधा॥ ४ ॥ स्वाहावासुकिराजाय शङ्खपालाय वौषट्। तक्षकाय वषन्नित्यं महापद्माय वै नमः॥ ५॥ स्वाहाकर्कोटनागाय फट् पद्माय च वै नमः। लिखेन्निग्रहचक्रन्तु एकाशीतिपदैर्नरः॥ ६॥ वस्त्रे वेद्यांतरौ भूर्ज्जे शिलायां यष्टिकासु च। मध्ये कोष्ठे साध्यनाम पूर्वादौ पट्टिकासु च॥७॥ भ्रूं क्ष्रूं चतुरः कण्ठकान् कालरात्रिकाम्। ऐशादावम्बु पादौ च यमराज्यञ्च बाह्यतः। कालीमार रमा लीका लीन मोक्ष क्ष मो नली॥ ८ ॥ मामोदेत तदे मोमा रक्षतत्त्व त्वत क्ष र। यमा, वाट ट वामाय माटमोट टमोटमा॥ ९ ॥ वामोभूरि रिभू मोवा टटरीत्व त्वरीटट॥ यमराजाद् वाह्यतो वंतं तोयं मारणात्मकम्॥ १०॥ कज्जलं निम्बनिर्य्यास मज्जासृग्विषसंयुतम्। काकपक्षस्य लेखन्या श्मशाने वा चतुष्पथे॥ ११ ॥ निधापयेत् कुम्भाधस्ताद् वल्मीके वाथ निक्षिपेत्। विभीतद्रुमशाखाधो यन्त्रं सर्वारिमर्दनम्॥ १२ ॥ लिखेच्चानुग्रहञ्चक्रं शुक्लपक्षेऽथ भूर्जके। लाक्षया**

अग्निदेव ने कहा— ओं ह्रीं हूं खे च च्छे क्षः स्त्री हूं क्षे ह्रीं फट् त्वरितायै नमः। इस मन्त्र से न्यास करके दो भुजाओं वाली अथवा आठ भुजाओं वाली त्वरिता देवी का ध्यानपूर्वक न्यास करना चाहिए। आधार शक्ति तथा अष्टदलकमल की पूजा करनी चाहिए। सिंहासन की पूजा करें तथा उस पर विराजमान त्वरिता देवी की पूजा करें। इसके पश्चात् हृदयादि अंगों की पूजा करनी चाहिए।।१।। पूर्वादि दिशाओं में हृदयादि अंगों की पूजा करके मण्डल के भीतर गायत्री तथा प्रणीता की पूजा करनी चाहिए। इसके पश्चात् आठों पद्मदलों में हुंकारा, खेचरी, चण्डा, छेदिनी, क्षेपिणी, स्त्री, हुंकारी एवं क्षेमकरी की पूजा करनी चाहिए। कमल के मध्य में फटकारी की पूजा करनी चाहिए। द्वार पर जया एवं विजया की पूजा करें। उनके अग्रभाग में किंकर की पूजा करनी चाहिए।।२-३।। त्वरिता देवी के मन्त्र से तिल से होम करने से समस्त वस्तुओं की प्राप्ति होती है। नामोच्चारणपूर्वक देवी के आभूषणस्वरूप आठ नागों की पूजा करनी चाहिए। उनके पूजन के मन्त्र इस प्रकार हैं। अनन्ताय नमः स्वाहा। कुलिकाय नमः स्वधा। वासुकिराजाय नमः स्वाहा। शंखपालाय वौषट्। तक्षकाय वषट्। महापद्मायनमः। कर्कोठनागाय स्वाहा। पद्माय नमः फट्।। ४।। इसके पश्चात् इक्यासी कोष्ठों वाले निग्रह चक्र का निर्माण करना चाहिए। इस चक्र को वस्त्र पर, वेदी पर, पेड़ की शाखा पर, भोजपत्र पर, शिला पर अथवा यष्टियों पर बनाया जा सकता है।। ६।। मध्य कोष्ठ में साध्य शत्रु का नाम लिखकर उसके बगल में दोनों तरफ रं बीज लिखें। उसके पार्श्व भाग की चारों पट्टिकाओं में भ्रूं क्ष्रूं, छूं, हूं इन चार बीजमन्त्रों को लिखना चाहिए। फिर ईशान आदि कोणों में कालरात्रि मन्त्र को लिखना चाहिए। उसके बाद बाहर की ओर यमराज मन्त्र लिखना चाहिए। कालीमाररमाली का लीन मोक्ष क्षमो नली। मामोदेत तदेमोमा रक्ष तत्त्व त्वत क्ष र। यह अनुष्टुप् काली मन्त्र है। यम मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है। यमावाट टवामाय माटमोट टमोटमा। वामोभूरि रिभू मोवा टटरीत्व त्वरी टट।। ७-८।। यमराज मन्त्र के बाहर रं बीज लिखें और उसके नीचे यं बीज लिखें। इस तरह से मारणात्मक निग्रह यन्त्र बन जाता है।। १० ।। नीम की गोंद, मज्जा, रक्त तथा विष मिश्रित स्याही में (चित्ता का भस्म मिलाकर) कौए के पंख की कलम से इस निग्रह यन्त्र को चौराहे पर अथवा श्मशान में लिखना चाहिए।। ११ ।। फिर उसको घड़े के नीचे गाड़ दे अथवा बल्मीक (बाँवी) में डाल दें। अथवा बहेड़े के पेंड़ के नीचे उसको गाड़ दें। ऐसा करने पर साधक के समस्त शत्रुओं का नाश हो जाता है।। १२ ।। शुक्ल पक्ष में भोजपत्र पर अनुग्रह चक्र लिखना चाहिए। दिवाल पर और अथवा भूमि पर लाक्षा (लाल) के रंग से अथवा कुंकुम से

स्फटिकाचन्दनेन वा ॥ भुवि भित्तौ पूर्वदले नाम मध्यमकोष्ठके । खण्डे तु वारिमध्यस्थं जूंसः फट् पट्टिशम् ॥ १४ ॥ लक्ष्मीश्लोकं शिवादौ च राक्षसादि क्रमाल्लिखेत् । श्रीः साममोमा सा श्रीः सानौ याज्ञे ज्ञेया नौसा ॥ १५ ॥ माया लीला लाली यामा याज्ञे ज्ञेया नौसा माया । यत्र ज्ञेया वहिः शीघ्रा दिक्षुरं कलसं वहिः ॥ १६ ॥ पद्मस्थ पद्मचक्रञ्च मृत्युजित् स्वर्गगं धृतिम् । शान्तीनां परमा शान्तिः सौभाग्यादि प्रदायकम्॥१७॥ रुद्रैरुद्रसमाः कार्य्याः कोष्ठकास्तत्र ता लिखेत् । ओमाद्याहूं फडन्ता च आदिवर्णमथानुतः ॥ १८ ॥ विद्यावर्णक्रमेणैव संज्ञाञ्च वषडन्तिकाम् । अधस्तात् प्रत्यङ्गिरैषा सर्वकामार्थसाधिका॥ १९॥ एकाशीतिपदे सर्वामादिवर्णक्रमेण तु । आदिमं यावदन्तं स्याद् वषडन्तञ्च नाम वै ॥ २०॥ एषाप्रत्यङ्गिरा चान्या सर्वकार्य्यादि साधिनी । निग्रहानुग्रहञ्चक्रञ्चतुःषष्टि पदैर्लिखेत् । अमृती सा च विद्या च क्रींसा हूं नामाथ मध्यतः। फट्काराद्यां पत्रगतां त्रिर्ह्रींकारेण वेष्टयेत् ॥ २२ ॥ कुम्भवद्वारिता सर्वशत्रुहृत् सर्वदायिका । विषन्नश्येत् कर्णजपादक्षराद्यैश्च दण्डकैः ॥ २३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्वरिताज्ञानकथनंनामचतुर्दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१४ ॥

या उजली मिट्टी के चन्दन से इस यन्त्र को लिखना चाहिए । इसमें भी निग्रह यन्त्र के ही समान साध्य का नाम मध्य कोष्ठ में होना चाहिए ।। १३ ।। इस तरह नाम के बगल में ठं ठं लिखना चाहिए । पूर्वादि वीथियों में जूं सः फट् लिखना चाहिए ।। १४ ।। फिर ईशानकोण से प्रारम्भ करके नैॠत्यकोण तक क्रमशः ऊपर की ओर पंक्तियों में लक्ष्मी अनुष्टुप् मन्त्र लिखना चाहिए । (इसी तरह से सबसे नीचे के नैॠत्यकोण से प्रारम्भ करके दाहिने से बायें की ओर चार पंक्तियों में लक्ष्मी मंत्र लिखना चाहिए ।। १४ ।। लक्ष्मी अनुष्टुप् मन्त्र इस प्रकार है- श्री सामाया या मा साश्री सानोया ज्ञे ज्ञे या नो सा मा या ली ला ली या मा या ज्ञे ला ली ली ला ज्ञे या ।। १५ ।। चक्र के बाहर चारों ओर एक बार त्वरिता मन्त्र लिखना चाहिए । फिर उसको एक गोल रेखा से ऐसे घेरे कि वह कलश के भीतर आ जाय । उस कलश के नीचे एक कमल बनाकर उसी पर उस पद्मचक्र को स्थापित करना चाहिए । इस चक्र को धारण करने वाला मनुष्य मृत्यु को जीतने वाला तथा स्वर्ग को प्राप्त करने वाला होता है । यह सभी शक्तियों में परम शान्ति को प्रदान करने वाला तथा सौभाग्य आदि को प्रदान करने वाला यंत्र है ।। १७ ।। बारह-बारह रेखायें खड़ी और आड़ी खींचकर ग्यारह कोष्ठ खड़ा और ग्यारह कोष्ठ पड़ा का एक सौ इक्कीस कोष्ठों वाला चक्र बनायें । उसके मध्य कोष्ठ में साध्य का नाम लिखें । फिर ईशानकोण से प्रारम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से बारह बार त्वरिता विद्या के अक्षरों को लिखना चाहिए । मन्त्र के आदि में ओम् लिखना चाहिए और अन्त में फट् लिखना चाहिए । त्वरिता विद्या के वर्णों के क्रम से ही लिखना चाहिए । अन्त में नीचे की ओर वषट् जोड़ देना चाहिए । अन्त में नीचे की ओर वषट् जोड़ देना चाहिए । इसे प्रत्यङ्गिरा विद्या कहते हैं । यह विद्या सम्पूर्ण कामनाओं तथा मनोरथों को सिद्ध करने वाली है ।। १८-१९ ।। इक्यासी कोष्ठों वाले चक्र में आदि से ही वर्ण क्रम के अनुसार त्वरिता विद्या के अक्षरों को लिखना चाहिए । छह बार लिखने के बाद अन्त के कोष्ठों में साध्य का नाम लिखना चाहिए और उसके अन्त में वषट् लिखना चाहिए । यह दूसरी प्रत्यङ्गिरा विधा है जो समस्त कार्यों को सिद्ध करने वाली हैं ।। २० ।। चौंसठ कोष्ठों वाले भी चक्र में निग्रह एवं अनग्रह चक्र लिखना चाहिए । इसे अमृत विद्या कहते हैं । मध्य के कोष्ठ में कीं सा हूं और साध्य का नाम लिखना चाहिए । उसके बाह्य भाग में द्वादशदल कमल बनाकर उसके दलों में त्वरिता विद्या के अक्षरों को विलोम क्रम से लिखना चाहिए। अर्थात् पहले फट् लिखकर बाद में पूर्व-पूर्व के बर्णो को लिखना चाहिए । फिर उसको ह्रींकार से युक्त तीन वृत्ताकार पंक्तियों से वेष्टित करे ।। २२ ।। कुम्भ के आकार वाली इस विद्या को धारण करने से समस्त शत्रुओं का नाश होता है । यह सब कुछ प्रदान करने वाली विद्या है । यदि रोगी के कान में इसे सुनाया जाय तो सर्प आदि का विष विनष्ट हो जाता है । इस विद्या से अंकित दण्डे से यदि रोगी को ठोंका जाय तो भी सर्प आदि के विष विनष्ट हो जाते हैं ।। २३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का त्वरिताविद्या विज्ञान वर्णन नामक तीन सौ चौदहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३१४ ॥

पञ्चदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

स्तम्भनादिमन्त्राः

अग्निरुवाच– **स्तम्भनं मोहनं विद्वेषोच्चाटनं वदे । विषव्याधिमारोग्यञ्च मारणं शमनं पुनः ॥ १॥ भूर्जे कूर्मं समालिख्य तालेन षड्ङ्गुलम् । मुखपादचतुष्केषु ततो मन्त्रं न्यसेद् द्विजः॥ २॥ चतुष्पादेषु क्रींकारं ह्रींकारं मुखमध्यतः । गर्भे विद्यां ततो लिख्य साधकं पृष्टतो लिखेत्॥ ३॥ मालामन्त्रैस्तु संवेष्ट्यइष्टकोपरि सन् न्यसेत् । पिधाय कूर्मपृष्ठेन करालेनाभिसम्पठेत्॥ ४॥ महाकूर्मं पूजयित्वा पादप्रोक्षन्तु निक्षिपेत् । ताड़येद् वामपादेन स्मृत्वा शत्रुञ्च सप्तधा॥ ५॥ ततःसञ्जायते शत्रोस्तम्भनं मुखरागतः । कृत्वा तु भैरवं रूपं मालामन्त्रं समालिखेत्॥ ६॥ ओं शत्रुमुखस्तम्भिनी कामरूपा आलीढकरी । ह्रीं फ्रें फेत्कारिणी मम शत्रूणां देवदत्तानां मुखं स्तम्भय स्तम्भय मम सर्वविद्वेषिणां मुखस्तम्भनं कुरु कुरु ओं हूं फ्रें फेत्कारिणि ! स्वाहा ॥ ७ ॥ फट् हेतुञ्च समालिख्य तज्जपान्तं महाबलम् । वामेनैव नगं शूलं संलिखेद् दक्षिणे करे ॥ ८ ॥ लिखेन्मन्त्रमघोरस्य संग्रामे स्तम्भयेदरीन् । ओं नमो भगवत्यै भगमालिनि ! विस्फुर विस्फुर स्पन्द स्पन्द नित्यक्लिन्ने द्रव द्रव हूं सः क्रींकाराक्षरे स्वाहा ॥ ९ ॥ एतेन रोचनाद्यैस्तु तिलकान्मोहयेज्जगत्॥१०॥ ओं फें हूं फट् फेत्कारिणि ! ह्रीं ज्वल ज्वल त्रैलोक्यं मोहय मोहय गुह्यकालिके स्वाहा ॥ ११ ॥ अनेन तिलकं कृत्वा राजादीनां वशीकरम् । गर्दभस्य रजो गृह्य कुसुमं सूतकस्य च ॥ १२ ॥ नारी रजः क्षिपेद्रात्रौ शय्यादौ द्वेषकृद् भवेत् । गोखुरञ्च तथा शृङ्गमश्वस्य च खुरं तथा ॥ १३॥ शिरः सर्पस्य सङ्क्षिप्तं गृहेषूच्चाटनं भवेत् । करवीरशिफा पीतां संसिद्धार्थां च मारणे ॥१४॥ व्यालछुच्छुन्दरीरक्तं**

अग्निदेव ने कहा– अब मैं स्तम्भन, मोहन, वशीकरण, विद्वेषण तथा उच्चाटन के प्रयोगों को बतला रहा हूँ । तथा विषव्याधि, आरोग्य, मारण तथा उसके शमन के भी प्रयोगों को मैं बतला रहा हूँ ।। १ ।। भोजपत्र के ऊपर ताड़ के कलम से छंह अंगुल का एक कूर्मचक्र लिखना चाहिए । उसके बाद द्विज उसके मुख में तथा चारों पैरों में मन्त्र का न्यास करें ।। २ ।। उसके चारों पैरों में क्रीं तथा मुख में ह्रीं लिखना चाहिए । उसके गर्भस्थान में त्वरिता विद्या को लिखे तथा पृष्ठ पर साध्य का नाम लिखे ।। ३ ।। उसको माला मन्त्र से वेष्टित करके ईंटे के ऊपर रखना चाहिए । उसको ढंककर, करालमन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करना चाहिए ।। ४ ।। फिर महाकूर्म का पूजन करके उसके चरणोदक को शत्रु के उद्देश्य से फेंक दे । फिर शत्रु को स्मरण करके उसे पैर से सात बार मारें ।। ५ ।। ऐसा करने से शत्रु के मुख भाग में स्तम्भन होता है ।। ६।। भैरव की मूर्ति बनाकर उसके चारों ओर माला मन्त्र को लिखना चाहिए । वह मन्त्र है- ओं शत्रुमुखस्तम्भनी, कामरूपा आलीढकरी, ह्रीं फ्रें फेत्कारिणी, मम शत्रूणां देवदत्तानां मुखं स्तम्भय-स्तम्भय, मम सर्वविद्वेषिणां मुखस्तम्भनं कुरु-कुरु-कुरु, ओं हूं फें फेत्कारिणि ! स्वाहा ! उसके पश्चात् फट् लिखें । इस मन्त्र को जपते हुए महाबली भैरव के बायें हाथ में पर्वत और दाहिने हाथ में त्रिशूल बनाये । फिर अघोरमन्त्र लिखे । ऐसा करने वाला साधक संग्राम में शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेता है ।। ८।। ओं नमो भगवत्यै भगमालिनि! विस्फुर-विस्फुर स्पन्द-स्पन्द, नित्यक्लिन्ने द्रव-द्रव, हूं सः क्रींकाराक्षरे स्वाहा । इस मंत्र को पढ़ते हुए रोचना आदि से तिलक लगाने वाला व्यक्ति सम्पूर्ण जगत् को मोहित कर सकता है । ओं फें फट् फेत्कारिणि, ह्रीं ज्वल-ज्वल त्रैलोक्यं मोहय-मोहय गुह्यकालिके स्वाहा । इस मन्त्र को पढ़ते हुए तिलक करने वाला व्यक्ति राजा आदि का वशीकरण कर सकता है ।। ११।। जहाँ गधा बैठा हो वहाँ की धूल, शव के ऊपर का फूल तथा स्त्री के रज का कपड़ा लेकर यदि शत्रु की शय्या पर फेंक दिया जाय तो उसके अपने लोगों में विद्वेष हो जाता है।। १२।। गौ का खुर तथा उसका सिंग तथा घोड़े का खुर तथा सांप का सिर इन सबों को कूटकर एक में मिला दें तथा उसे शत्रु के घर पर फेंक दें तो उसका उच्चाटन हो जाता है।। १३।। पीले कनेर की शिफा (जड़) मारण के कार्य में संसिद्ध प्रयोग है।। १४ ।। साँप एवं छुछुन्दर के रक्त तथा कनेर का बीज भी मारण के काम को सिद्ध करते हैं। मरे हुए गिरगिट, भौंरा, केंकड़ा तथा विच्छू इन सबो को चूर्ण

करवीरं तदर्थकृत् । सरटं षटपदञ्चापि तथाकर्कटवृश्चिकम् ॥ १५ ॥ चूर्णीकृत्य क्षिपेत्तैले तदभ्यङ्गश्च कुष्ठकृत् ॥ १६ ॥ ओं नवग्रहाय सर्वशत्रून् मम साधय साधय मारय मारय आं सों मं बुं गुं शं शुं रां कें ओं स्वाहा ॥ १७ ॥ अनेनार्कशतैरर्च्य श्मशाने तु निधापयेत् ॥ भूर्जे वा प्रतिमायां वा मारणाय रिपोर्ग्रहाः॥१८॥ ओं कुञ्जरी ब्रह्माणी । ओं मञ्जरी माहेश्वरी ! ओं वेताली कौमारी ओं काली वैष्णवी । ओं अघोरा वाराही । ओं वेताली इन्द्राणी। ओं उर्वशी चामुण्डा, ओं वेताली चण्डिका । ओं जयाली यक्षिणी । नवमातरो हे मम शत्रुं गृह्णत गृह्णत ॥ १९ ॥ भूर्ज्जे नाम रिपोर्लिख्य श्मशाने पूजिते म्रियेत् ॥ २० ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्तम्भनादिमन्त्रकथनं नाम पञ्चदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१५ ॥

षोडशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नानामन्त्राः

अग्निरुवाच– **आदौ हूंकारसंयुक्ता खेचक्षे पदभूषिता । वर्गातीतविसर्गेण स्त्रीं हूं क्षेपफडन्तिका ॥ १॥ सर्वकर्मकरी विद्या विषबाधादिमर्दनी। ओं क्षे च छेति प्रयोगश्च कालदष्टस्य जीवने ॥ २॥ ओं हूं खेक्षः प्रयोगोऽयं विषशत्रु प्रमर्दनः । स्त्रीं हूं फडितियोगोऽयं पापारोगादिकं जयेत् ॥ ३॥ खेछेति च प्रयोगोऽयं विघ्नदुष्टादि वारयेत् । हूं स्त्रीं ओमितियोगोऽयं योषिदादिवशीकरः ॥ ४ ॥ खे स्त्रीं खे च प्रयोगोऽयं वशाय विजयाय च ॥५॥ ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्ख्फ्रें ह्सौः ओं नमो भगवति ह्स्ख्फ्रें कुब्जिके ह्स्त्रूं अघोरे घोरे अघोरमुखि छ्रांछ्रीं किणिकिणि विच्चे हसोः ह्स्ख्फ्रें श्रीं ह्रीं ओम् ॥६॥**

करके तेल में डाल दें।। १६ ।। ओं नवग्रहाय सर्वशत्रून् मम साधय-साधय मारय-मारय, आं सों मं बुं गुं, शुं शं रां कें ओं स्वाहा ।। १७ ।। इस मंत्र को भोजपत्र या नवग्रह प्रतिमा पर लिखकर आक के सौ फूलों से पूजा करके शत्रु के मारण के उद्देश्य से श्मशान में गाड़ दें। ऐसा करने वाले साधक को शत्रु को समस्त ग्रह मिलकर मार डालते हैं।। १८ ।। ओं कुञ्जरी, ब्राह्मणी, ओं मञ्जरी माहेश्वरी, आवेताली कौमारी, ओं काली वैष्णवी, ओं अघोरा वाराही, ओ वेतालीन्द्राणी, ओं उर्वशी चामुण्डा, ओं वेताली चण्डिका, ओं जयाली यक्षिणी, नवमातरो हे ! मम शत्रुं गृह्णत-गृह्णत् ।।१९।। भोजपत्र पर इस मन्त्र को लिखें तथा उसकी पूजा श्मशान भूमि में करें तो साधक के शत्रु की मृत्यु हो जाती है ।। २० ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का स्तम्भनादि मन्त्रों का वर्णन नामक तीन सौ पन्द्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३१५ ॥

अग्निदेव ने कहा– पहले हुं रखे, फिर खे च, च्छे, पद जोड़कर शोभा बढ़ायें । फिर विसर्गयुक्त वर्गातीत (क्षः) स्त्री हुं क्षे, लिखकर उसके अन्त में फट् जोड़ देना चाहिए । (इस तरह- हुं खे च च्छे क्षः स्त्री हूं क्षे हीं फट् यह दशाक्षरा त्वरिता विद्या हुई।। १ ।। यह विद्या सभी कार्यों को करने वाली तथा विष बाधा आदि को विनष्ट करने वाली है। ओं हूं खे क्षः यह चतुरक्षरीविद्या का प्रयोग काल के द्वारा डसे गये को भी जिला देती है। ओं हूं खे क्षः यह प्रयोग विष तथा शत्रु को विनष्ट करने वाला है। स्त्री हूं फट् यह प्रयोग पाप तथा रोग आदि पर विजय प्राप्त करता है ।।२-३।। खे च यह दो अक्षरों का प्रयोग विघ्न तथा दुष्ट आदि की बाधा को दूर करता है । 'हूं स्त्री ओम्' इस मन्त्र का प्रयोग स्त्री आदि को वश में करने वाला है ।। ४ ।। क्षः स्त्री क्षः इन तीन अक्षरों के मन्त्र का प्रयोग वशीकरण तथा विजय का साधक होता है ।।५।। ऐं हीं श्रीं ह्स्ख्फ्रें हसौः ओं नमो भगवति ह्स्ख्फ्रें कुब्जिके हस्रूं अघोरे घोरे अघोर मुखि छ्रां, छ्रीं किणि किणि विच्चे हसौः

श्रीमति कुब्जिकाविद्या सर्वकरा स्मृता । भूयः स्कन्दाय यानाह मन्त्रानीशश्च तान् वदे ॥ ७ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानामन्त्रकथनं नाम षोड़शाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१६ ॥

सप्तदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

सकलादिमन्त्रोद्धारः

ईश्वर उवाच– **सकलं निष्कलं शून्यं कालाढ्यं स्वमलङ्कृतम् । क्षपणं क्षयमन्तस्थं कण्ठोष्ठं चाष्टमं शिवम् ॥ १ ॥ प्रासादस्य पराख्यस्य स्मृतं रूपं गुहाष्टधा । सदाशिवस्य शब्दस्य रूपस्याखिलसिद्धये॥ २॥ अमृतश्चांशुभांश्चेन्दुश्चेश्वरश्चोग्र ऊहकः । एकपादेन ओजाख्य औषधश्चांशुमान् वशी ॥ ३॥ अकारादेः वाचकश्च ककारादेः क्रमादिमे । कामदेवः शिखण्डी च गणेशः कालशङ्करौ॥ ४॥ एकनेत्रो द्विनेत्रश्च त्रिशिखो दीर्घबाहुकः। एकपादार्द्धचन्द्रश्च बलयो योगिनीप्रियः ॥ ५॥ शक्तीश्वरी महाग्रन्थिस्तर्पकः स्थाणुदन्तुरौ । निधीशो नन्दी पद्मश्च तथान्यः शाकिनीप्रियः ॥ ६ ॥ मुखविम्बो भीषणश्च कृतान्तः प्राणसंज्ञकः । तेजस्वीशक्र उदधिः श्रीकण्ठः सिंह एव च ॥ ७ ॥ शशाङ्को विश्वरूपश्चाक्षश्च स्यान् नरसिंहकः । सूर्य्यमात्रा समाक्रान्तं विश्वरूपन्तु कारयेत् ॥ ८ ॥ अंशुमत्संयुतं कृत्वा शशिबीजं विनायुतम् । ईशानमोजसाक्रान्तं प्रथमन्तु समुद्धरेत् ॥ ९ ॥ तृतीयं पुरुषं विद्धि दक्षिणं पञ्चमं तथा । सप्तमं वामदेवन्तु सद्योजातं ततःपरम् ॥ १० ॥ रसयुक्तन्तु नवमं ब्रह्मपञ्चकमीरितम् । ओंकाराद्याश्चतुर्थ्यन्ता नमोऽन्ताः सर्वमन्त्रकाः॥ ११॥ सद्योदेवा द्वितीयन्तु हृदयञ्चाङ्गसंयुतम् । चतुर्थन्तु शिरो विद्धि ईश्वरं नाम नामतः ॥ १२ ॥ ऊहकन्तु शिखा ज्ञेया**

ह्स्ख्फ्रें श्रीं ह्रीं ऐं । यह श्रीमति कुब्जिका विद्या समस्त कार्यों को सिद्ध करने वाली है । अब मैं उन मन्त्रों को बतला रहा हूँ जिन मन्त्रों का उपदेश भगवान् शंकर ने स्कन्द जी को दिया था ।। ७।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अनेक मन्त्र वर्णन नामक तीन सौ सोलहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३१६ ॥

भगवान् शंकर ने कहा– हे स्कन्द प्रासाद परा संज्ञक मन्त्रों के स्वरूप आठ प्रकार के बतलाये गये हैं- सकल, निष्कल, शून्य, स्वयमलंकृत कलाढ्य, क्षपण क्षय, अन्तस्थ एवं कण्ठोष्ठ तथा आठवाँ शिव। ये सभी कल्याणकारी हैं ।। १।। ये शब्दस्वरूप मन्त्र सदाशिव स्वरूप हैं । इनके जप से सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।। २ ।। अकार आदि बारह (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऐ, ओ औ, अं अः) स्वरों के वाचक हैं । क्रमशः अमृत, अंशुमान् , इन्द्र, ईश्वर, उग्र, ऊहक, एकपाद, ऐल, ओज, औषध, अंशुमान् और वशी । ककार आदि व्यंजनों के सूचक हैं ।। ३।। कामदेव, शिखण्डी, गणेश, काल, शंकर, एकनेत्र, द्विनेत्र, त्रिशिख, दीर्घबाहुक, एकपाद, अर्द्धचन्द्र, वलय, योगिनीप्रिय ।। ५ ।। शक्तीश्वर, महाग्रन्थि, तर्पक, स्थाणु, दन्तुर, निधीश, नन्दी, पद्म, शाकिनीप्रिय, ।। ६ ।। मुखविम्ब, भीषण, कृतान्त, प्राण, तेजस्वी, शक्र, उदधि, श्रीकण्ठ, सिंह, शशांक, विश्वरूप तथा नारसिंह (ह) को बारह मात्राओं से युक्त करके लिखो ।। ८।। विश्वरूप (ह) को अंशुमान् (अनुस्वार) तथा ओज (ओ) से युक्त करके रखा जाय और उसमें शशिबीज (स) का योग न किया जाय तार हों) यह प्रथम बीज उद्धृत होता है । जो ईशान से सम्बद्ध है। तृतीय बीज है उसे तत्पुरुष संबन्धी जानो । पाँचवाँ बीज (हुं) है जो दक्षिण दिशावर्ती मुख अघोर का बीज है । सातवाँ बीज हिं है उसे वामदेव बीज जानना चाहिए । नवाँ (हं) बीज सद्योजात से सम्बद्ध है । इस प्रकार उक्त पाँच बीजों से युक्त ईशान आदि मुखों को ब्रह्मपंचक कहा गया है ।। १०।। इन सबों के आदि में और अन्त में नमः पद जोड़ देना चाहिए । ईशान आदि नामों का यदि चतुर्थ्यन्त प्रयोग किया जाय तो सभी पूजोपयोगी मन्त्र बन जाते हैं ।। ११ ।। ओं हं सद्योजाताय नमः यह सद्योजात मन्त्र है । द्वितीय, चतुर्थ आदि मात्राएँ दीर्घ हैं, अतः उनका हृदयादि अङ्गन्यास किया जाता

विश्वरूपसमन्विता । कवचमष्टमं ख्यातं नेत्रन्तु दशमं मतम् ॥ १३ ॥ अस्त्रं वशी समाख्यातं शिवसंज्ञं शिखिध्वजः । नमः स्वाहा तथा वौषट् हूं च फट्क्रमेण तु ॥ १४ ॥ जातिषट्कं हृदादीनां प्रासादं मन्त्रमावदे । ईशानाद्रुद्रसंख्यातं प्रोद्धरेच्चांशुरञ्जितम् ॥ १५ ॥ औषधाक्रान्तशिरसमूहकस्योपरिस्थितम्। अर्द्धचन्द्रोर्ध्वनादश्च विन्दुद्वितयमध्यगम्॥१६॥ तदन्ते विश्वरूपन्तु कुटिलन्तु त्रिधा ततः । एवं प्रासादमन्त्रश्च सर्वकर्म करो मनुः ॥ १७ ॥ शिखाबीजं समुद्धृत्य फट्कारान्तन्तु चैव फट् । अर्द्धचन्द्रासनं ज्ञेयं कामदेवं ससर्पकम् ॥ १८ ॥ महापाशुपतास्त्रन्तु सर्वदुष्टप्रमर्दनम् । प्रासादः सकलः प्रोक्तो निष्कलः प्रोच्यतेऽधुना ॥ १९ ॥ औषधं विश्वरूपन्तु रुद्राख्यं सूर्य्यमण्डलम् । चन्द्रार्द्धं नादसंयोगं विसंज्ञं कुटिलन्ततः ॥ २० ॥ निष्कलो भुक्तिमुक्तौ स्यात् पञ्चाङ्गोऽयं सदाशिवः। अंशुमान् विश्वरूपञ्च आवृतं शून्यरञ्जितम् ॥ २१ ॥ ब्रह्माङ्गरहितः शून्यस्तस्य मूर्त्ति रसस्तरुः। विघ्ननाशाय भवति पूजितो बालबालिशैः ॥ २२॥ अंशुमान् विश्वरूपाख्यमूहकस्योपरि स्थितम् । कलाढ्यं सकलस्यैव पूजाङ्गादि च सर्वतः॥२३॥ नरसिंहं कृतान्तस्थं तेजस्विप्राणमूर्ध्वगम् । अंशुमानूहकाक्रान्तमधोर्ध्वं स्वमलंकृतम् ॥ २४ ॥ चन्द्रार्द्धनादनादान्तं ब्रह्मविणुविभूषितम् । उदधिं नरसिंहञ्च सूर्य्यमात्राविभेदितम् ॥ २५ ॥ यदा कृतं तदा तस्य ब्रह्माण्यङ्गानि पूर्ववत् । ओजाख्यमंशुमद्युक्तं प्रथमं वर्णमुद्धरेत् ॥ २६॥ अंशुमच्चांशुनाक्रान्तं द्वितीयं वर्णनायकम् । अंशुमानीश्वरन्तद्वत् तृतीयं मुक्तिदायकम् ॥ २७ ॥ ऊहकाञ्चांशुनाक्रान्त वरुणप्राणतैजसम् । पञ्चमन्तु समाख्यातं

है । द्वितीय बीज, हृदय तथा अङ्गमन्त्र (नमः) बोलकर हृदय में न्यास करना चाहिए । जैसे- हां हृदयाय नमः हृदि, । चतुर्थ बीज (ई) का संबन्ध सिर से है । जो हकार में ईश्वर तथा अंशुमान् के जोड़ने से बनता है । (ह्रीं) जैसे- ह्रीं शिरसे स्वाहा, बनने वाला बीज हूं है । इसका सम्बन्ध शिखा से है । जैसे- हूं शिखायै वषट्, शिखायाम् । आठवाँ बीजमन्त्र हैं का संबन्ध कवच से है । जैसे हैं कवचाय हुम् , इति बाहुमूलयोः । दसवां बीजमन्त्र हौं का संबन्ध नेत्र से है । जैसे- हौंनेत्रत्रयाय वौषट् । इतिनेत्रयोः ।। १३ ।। हे शिखिध्वज अस्त्रमन्त्र वशी (विसर्ग) युक्त हकार (हः) है । जैसे- हः अस्त्राय फट् । यह शिवसंज्ञक है । इन अंगन्यास मन्त्रों के अन्त में क्रमशः नमः, स्वाहा, वषट्, हुम् तथा वौषट् फट् जोड़ना चाहिए ।। १४ ।। ये हृदयादि मन्त्रों की क्रमशः नमः आदि छह जातियाँ हैं । अब मैं प्रासाद मन्त्रों को बतलाता हूँ । ईशान (ई) से युक्त रुद्र (अनुस्वार) तथा अंशुमान् से बीजमंत्र बनता है । (ह्रीं) उसका उद्धार करना चाहिए ।। १५ ।। औषध (औ) के ऊपर विद्यमान् अनुस्वार (हौं) । अर्धचन्द्र अनुस्वार तथा ऊर्ध्वनाद तथा विन्दु से युक्त बनने हीं हीं हूं। ये प्रासाद मन्त्र हैं ।। १६ ।। ये तीनों मन्त्र विश्वरूप को मिलाकर बनते हैं । इस तरह ये तीन कुटिलसंज्ञक मन्त्र हैं । ये तीनों प्रासाद मन्त्र सभी कार्यों को सिद्ध करने वाले हैं ।। १७ ।। इस तरह शिखाबीज हूं फट्कार जिसके अन्त में आता है, वह हौं बीज तथा फट्बीज हः का इन तीनों मन्त्रों का उद्धार करना चाहिए । इसके पश्चात् ध्यान करना चाहिए कि भगवान् शंकर का आसन अर्द्धचन्द्राकार है तथा सर्पों के आभूषण से वे भूषित हैं ।। १८ ।। इसके पश्चात् महापाशुपतास्त्र मन्त्र का जप करना चाहिए। यहसमस्त शत्रुओं का मर्दन करने वाला है । इस तरह सकल (कलासहित) प्रासाद मन्त्र का वर्णन किया गया । अब मैं निष्कल मन्त्र को बतला रहा हूँ ।। १९ ।। औषध (ओ) विश्वरूप (ह) ग्यारहवीं मात्रा सूर्यमण्डल (अनुस्वार) हौं इनसे युक्त अर्द्धचन्द्र (अनुनासिक) एवं नाद से युक्त जो हौं मन्त्र है, वह निष्कल प्रासाद मन्त्र है । इसे संज्ञारहित कुटिल भी कहते हैं ।। २० ।। निष्कल प्रासादमन्त्र भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला है । सदाशिव स्वरूप प्रासादमन्त्र ईशानादि पाँच ब्रह्ममूर्तियों से युक्त होता है । अतः यह पञ्चाङ्ग या साङ्ग कहलाता है । अंशुमान् (अनुस्वार) विश्वरूप (ह) तथा अमृत (अ) इन तीनों के योग से व्यक्त हं बीज शून्यनाम से अभिहित किया जाता है ।। २१ ।। ईशानकोण आदि ब्रह्मात्मक अङ्गों (मुखों) से रहित होने पर उसकी शून्य संज्ञा होती है । ईशानकोण आदि मूर्तियाँ इन बीजों के अमृततरु हैं । बालकों तथा मूर्खों से भी पूजित होने पर विघ्न विनाशक होते है ।। २२ ।। ऊहक (अ) के ऊपर स्थित यदि अंशुमान (अनुस्वार) और विश्वरूप (ह) कलाढ्य कहा गया है । वह सकल के ही अन्तर्गत है । इसमें सदा सकल के ही पूजा तथा अंगन्यास आदि होते हैं ।। २३ ।। यदि नरसिंह (क्ष) कृतान्त (म) के ऊपर चढ़े हों साथ ही तेजस्वी (र) तथा प्राण (य) का भी योग हो नीचे ऊहक (ऊ) हो और ऊपर अंशुमान (अनुस्वार) हो तो (क्ष्म्र्यूं) यह बीजमंत्र बनता है । इसकी समलंकृत संज्ञा है ।। २४ ।। चन्द्रार्द्धकार विन्दु एवं नाद से युक्त ब्रह्मा एवं विष्णु के नामों से विभूषित क्रमशः उदधि (व) एवं नरसिंह (क्ष) को बारह मात्राओं से युक्त करें ।। २५ ।। ऐसा करने पर पहले के ही समान ह्रस्व स्वरों से युक्त बीज ईशानादि

कृतान्तन्तु ततः परम् ॥ २८ ॥ अंशुमानुदकप्राणः सप्तमं वर्णमुद्धृतम् । पद्ममिन्दुसमाक्रान्तं नन्दीशमेकपादधृक् ॥ २९ ॥ प्रथमञ्चान्ततो योज्यं क्षपणं दशबीजकम् । अस्याद्यं तृतीयञ्चैव पञ्चमं सप्तमं तथा ॥ ३० ॥ सद्योजातन्तु नवमं द्वितीयाद्धृदयादिकम् । दशार्णप्रणवं यत्तु फडन्तञ्चास्त्रमुद्धरेत्॥३१॥ नमस्कारयुतान्यत्र ब्रह्माङ्गानि तु नान्यथा। द्वितीयानवमं यावदष्टौ विद्येश्वरा मताः ॥ ३२ ॥ अनन्तेशश्च सूक्ष्मश्च तृतीयश्च शिवोत्तमः । एकमूर्त्त्येकरूपस्तु त्रिमूर्त्तिरपरस्तथा ॥ ३३ ॥ श्रीकण्ठश्च शिखण्डी च अष्टौ विद्येश्वराः स्मृताः । शिखण्डिनोऽप्यनन्तान्तं मन्त्रान्तं मूर्त्तिरीरिताः ॥ ३४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सकलादिमन्त्रोद्धारकथनं नाम सप्तदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१७॥

अष्टादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

गणपूजा

ईश्वर उवाच— **विश्वरूपं समुद्धृत्य तेजस्युपरि संस्थितम् । नरसिंहं ततोऽधस्तात् कृतान्तं तदधो न्यसेत् ॥ १ ॥ प्रणवं तदधः कृत्वा ऊहकं तदधः पुनः । अंशुमान् विश्वमन्तस्थं कण्ठोष्ठप्रणवादिकम् ॥ २ ॥ नमोऽन्तःस्याच्चतुर्वर्णो विश्वरूपञ्चकारणम् । सूर्य्यमात्राहतं ब्रह्मण्यङ्गानीहि तु पूर्ववत्॥३॥**

ब्रह्म अंग होंगे । एवं दीर्घ स्वरों से युक्त बीजों वाले मन्त्रों का हृदयादि अंगों में न्यास होगा । ओज को अंशुमान (अनुस्वार) से युक्त करके ओम् इस प्रथम वर्ण का उद्धार करना चाहिए ।। २६ ।। अंशुमान और अंशु का योग (आं) यह द्वितीय वर्ण नामक स्वरूप है । अंशुमान (अ) और ईश्वर के योग से बना (ई) यह तृतीय वर्ण उसी के समान है तथा मुक्तिप्रदान करने वाला है ।। २७ ।। अंशु (अनुराग) के द्वारा आक्रान्त ऊहक (ऊं) यह चतुर्थ वर्ण है । अनुस्वार वरुण (व) प्राण (य) और तेजस् (र) इनके योग से बना (व्र्यं) पाँचवाँ बीजाक्षर है । अनुस्वार से युक्त कृतान्त (म्) के योग से बना (मं) यह छठा बीजाक्षर है ।। २८ ।। अंशुमान् (अनुस्वार) उरक (व) तथा प्राण (य) के योग से बनने वाला (व्यं) बीज सातवां उद्धृत बीजाक्षर है । इन्दु से युक्त पद्म (पं) आठवां बीजाक्षर है। एक पाद से युक्त नन्दीश अर्थात् (नं) यह नवाँ बीजाक्षर है ।। २९ ।। अन्त में प्रथम बीज ओं को जोड़ देना चाहिए । इस तरह दस बीजों से युक्त जो मन्त्र है, उसे क्षपण कहा जाता है । इसका पहला तीसरा पाँचवाँ तथा सातवाँ तथा नवाँ बीज क्रमशः ईशान, तत्पुरुष अघोर, वामदेव तथा सद्योजात स्वरूप है। शेष द्वितीया आदि (चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम तथा दशम) बीजों का उपयोग हृदयादि अंगन्यास में होता है । प्रणवात्मक दसों बीजों को एक साथ बोलकर अन्त में अस्त्राय फट् कहकर अस्त्र न्यास करना चाहिए ।। ३०-३१ ।। ईशानादि मूर्तियों के अन्त में तो नमः पद लगाकर बोलना चाहिए ऐसे नहीं । द्वितीय से लेकर नवें पर्यन्त आठ बीज मन्त्र आठ विद्येश्वर स्वरूप हैं । ये विद्येश्वर निम्नांकित हैं ।। ३२ ।। अनन्तेश, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकमूर्ति, एकरूप, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ एवं शिखण्डी ये आठ विद्येश्वर कहे गये हैं । शिखण्डी से लेकर अनन्तेश पर्यन्त विलोमक्रम से बीजमन्त्रों का संबन्ध जोड़ना चाहिए । यह प्रासाद मन्त्र का क्षयनामक भेद है । इस तरह यहाँ मन्त्रमूर्तियों का वर्णन किया गया ।। ३३-३४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का सकल आदि मन्त्रों के उद्धार वर्णन नामक तीन सौ सत्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३१७ ॥

अध्याय ३१८

भगवान् शंकर ने कहा— स्कन्द ! जिसके ऊपर तेज (र) विद्यमान हो उस प्रकार के विश्वरूप (ह) को उद्धृत करके नरसिंह (क्ष्) के नीचे कृतान्त (म्) को रखना चाहिए ।। १ ।। और उसके अन्त में प्रणव (ओम्) को लगाना चाहिए । इन सबों के योग से (र् ह् क्ष् मो) बनेगा । उसके पश्चात् ऊहक (ऊ) अंशुमान् (अनुस्वार) विश्व (ह) को संयुक्त करके (हूं) इस बीजमन्त्र को बनायें।

उद्धरेत् प्रणवं पूर्वं प्रस्फुरद्वयमुच्चरेत् । घोरघोरतरं पश्चात् तनु रूपमतः स्मरेत् ॥ ४ ॥ चटशब्दं द्विधा कृत्वा ततः प्रचटमुच्चरेत् । कहेति च द्विधा कार्य्यं वमेति च द्विधा मतम् ॥ ५ ॥ घातयेति द्विधाकृत्य हूं फडन्तं समुच्चरेत् । अघोरास्त्रन्तु नेत्रं स्याद् गायत्री चोच्यतेऽधुना ॥ ६ ॥ तन्महेशाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नः शिवः प्रचोदयात् । गायत्री सर्वसाधनी ॥ ७ ॥ यात्रायां विजयादौ च यजेत् पूर्वङ्गणं श्रिये । तुर्यांशे तु पुरा क्षेत्रे समन्तादर्कभोजिते॥ ८॥ चतुष्पदं त्रिकोणे तु त्रिदलं कमलं लिखेत् । तत्पृष्ठे पदिकावीथिभागि त्रिदलमश्वयुक्॥ ९॥ वसुदेवसुतैः साब्जैस्त्रिदलैः पादपट्टिका । तदूर्ध्वे वेदिका देया भागमात्रप्रमाणतः ॥ १०॥ द्वारं पद्ममितं कोष्ठादुपद्वारं विवर्णितम् । द्वारोपद्वाररचितं मण्डलं विघ्नसूदनम् ॥ ११॥ आरक्तं कमलं मध्ये बाह्यपद्मानि तद् बहिः। सिता तु वीथिका कार्य्या द्वाराणि तु यथेच्छया ॥ १२ ॥ कर्णिका पीतवर्णा स्यात् केशराणि तथा पुनः। मण्डलं विघ्नमर्दाख्यं मध्ये गणपतिं यजेत् ॥ १३ ॥ नामाद्यं सवराकं स्यादेवाच्छक्रसमन्वितम्। शिरो हतं तत्पुरुषेण ओमाद्यञ्च नमोऽन्तकम् ॥१३॥ गजाख्यं गजशीर्षञ्च गाङ्गेयं गणनायकम् । त्रिरावर्त्तङ्गगनगंङ्गोपतिं पूर्वपङ्क्तिगम् ॥ १४ ॥ विचित्रांशं महाकायं लम्बोष्ठं लम्बकर्णकम् । लम्बोदरं महाभागं विकृतं पार्वतीप्रियम् ॥ १५ ॥ भयावहञ्च भद्रञ्च भगणं भयसूदनम् । द्वादशैते दशपङ्क्तौ देवत्रासञ्च पश्चिमे ॥ १६ ॥ महानादं भास्वरञ्च

ये दोनों क्रमशः अन्तस्थ तथा कण्ठोष्ठ कहलाते हैं । इन मन्त्रों रु आदि में प्रणव तथा अन्त में नमः लगाना चाहिए । ऐसा कर देने से ये दोनों मन्त्र चार-चार अक्षरों के बन जाते हैं । जैसे- ओं रहक्ष्मों नमः तथा ओं हूं नमः । इनमें विश्वरूप को कारण माना गया है । उसको बारह मात्राओं (स्वरों) से युक्त करना चाहिए । ये पहले के ही समान पाँच हू स्वार से युक्त मन्त्रों से ईशानादि पाँच मूत्रियों की पूजा करनी चाहिए और दीर्घ स्वर से युक्त मन्त्रों से हृदयादि अंगन्यास करना चाहिए ।। २-३ ।। सर्वप्रथम प्रणव (ह्रीं) लिखकर फिर दो बार स्फुर-स्फुर लिखें । फिर प्रणव जोड़कर सेवा प्रस्फुर-प्रस्फुर लिखें । इसके बाद घोर घोरतरं लिखकर उसके पश्चात् तनुरूप लिखे ।। ४ ।। फिर दो बार चट लिखें फिर दो बार प्रचट लिखें । इसके बाद दो बार कह लिखें उसके बाद दो बार बम लिखें । फिर दो बार बन्ध लिखें ।। ५ ।। उसके बाद दो बार घातय पद लिखकर अन्त में हुं फट् का उच्चारण करे । इसे ही अघोरास्त्र कहते हैं । इसका सम्पूर्ण रूप इस प्रकार है- ह्रीं स्फुर-स्फुर प्रस्फुर-प्रस्फुर घोर-घोरतर तनुरूप चट-चट, प्रचट-प्रचट, कह-कह, बम-बम, बन्ध-बन्ध, घातय-घातय हूं फट् । यह इक्यावन अक्षरों का अघोरास्त्र मन्त्र है ।। ५ ।। इसको नेत्र कहते हैं । अब शिव गायत्री कही जा रही है । महेशाय विद्महे, महादेवाय धीमहि, तन्नः शिवः प्रचोदयात् । यह शिव गायत्री समस्त कार्यों को सिद्ध करने वाली हैं ।। ६-७ ।। यात्रा में तथा विजय आदि की प्राप्ति के कार्य में श्री प्राप्ति के लिए पहले गणों की पूजा करनी चाहिए । सर्वप्रथम चौकोर क्षेत्र को सब ओर से बारह-बारह कोष्ठों में विभाजित करें ।। ८ ।। जब एक सौ चौवालिस पदों का चौकोर मण्डल बन जाए तो उसके बीच के चार पदों में त्रिकोण बनाकर उसके ऊपर तीन दलों का कमल बनाये । उस त्रिदल कमल को अश्व से युक्त होना चाहिए ।। ९ ।। उसके पश्चात् वसुदेव के तीन पुत्रों (वासुदेव, संकर्षण और गद) से समलंकृत तीन दल वाले कमल दलों से पादपट्टिका बनायें । उसके ऊपर भागमात्र प्रमाण से एक वेदी बनायें ।। १० ।। उसके पूर्व आदि दिशाओं में द्वार तथा कोणों में उपद्वार से उसे सुशोभित करें । इस तरह द्वारों एवं उपद्वारों से सुशोभित मण्डल विघ्नों का विनाशक होता है ।। ११ ।। उसके मध्य कमल तथा बाह्य कमलों को रक्त वर्ण का होना चाहिए । मण्डल की विधि को वर्ण का बनाना चाहिए और द्वारों का वर्ण अपनी इच्छा के अनुसार करना चाहिए ।। १२ ।। उषा कमलों की कर्णिका तथा केसर का रंग पीला होना चाहिए। यह विघ्नमर्दन नामक मण्डल है इसके मध्य में गणपति की पूजा करनी चाहिए ।। १३ ।। नाम के आदि अक्षर में अनुस्वार लगाकर उसके आदि में ओम् तथा अन्त में नमः पद लगाकर जैसे- ओं गं गणपतये नमः । ह्रस्वान्त बीजमन्त्रों से युक्त ईशान तत्पुरुषादि मन्त्रों से पूजन करके दीर्घान्त वीज मन्त्रों से न्यास करना चाहिए ।। १३ ।। इस मण्डल की पूर्व दिशा में दस दलों में गज, गजशीर्ष, गांगेय, गणनायक, गगनग तथा गोपति इन नामों को लिखें, इनमें से अन्तिम दो नामों की तीन आवृत्तियाँ होंगी ।। १४ ।। इस तरह से ये दस नाम से दस कोष्ठ भर जायेंगे । दो कोष्ठ खाली रहेंगे जो उत्तर तथा दक्षिण के कोष्ठ के नामों से भरेंगे ।।) इसके पश्चात् मण्डल की दक्षिण दिशा की पंक्तियों में इन बारह नामों को लिखें- वे नाम हैं- विचित्रांश, महाकाय, लम्बोष्ठ, लम्बकर्ण, लम्बोदर,

विघ्नराजं गणाधिपम् । उद्धटस्वानभक्ष्णडौ महाशुण्डञ्च भीमकम् ॥ १७॥ मन्मथं मधुसूदञ्च सुन्दरं भावपुष्टकम् । सौम्ये ब्रह्मेश्वरं मनोवृत्तिञ्च संलयम् ॥ १८॥ लयं नृत्यप्रियं लौल्यं विकर्णं वत्सलं तथा । कृतान्तं कालदण्डञ्च यजेत् कुम्भञ्च पूर्ववत् ॥ १९ ॥ अयुतञ्च जपेन् मन्त्रं होमयेत् तु दशांशतः। शेषाणान्तु दशाहुत्या जपाद्धोमन्तुकारयेत्॥२०॥ पूर्णां दत्त्वाभिषेकन्तु कुर्य्यात् सर्वन्तु सिध्यति। भूगोऽश्वगजवस्त्राद्यैर्गुरुपूजाञ्चरेन् नरः॥२१॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गणपूजाकथनं नामाष्टादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१८॥

ऊनविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

वागीश्वरीपूजा

ईश्वर उवाच– वागीश्वरीपूजनञ्च प्रवदामि समण्डलम्। ऊहकं कालसंयुक्तं चन्द्रं वर्णसमायुतम् ॥ १ ॥ निषाद ईश्वरं कार्य्यं मनुमाचन्द्रसूर्य्यवत्। अक्षरत्र हि देयं स्यात ध्यायेत् कुन्देन्दुसन्निभाम् ॥ २ ॥ पञ्चाशद् वर्णमालान्तु मुक्तास्त्रग्दामभूषिताम् । वरदाभयाक्षसूत्र पुस्तकाढ्यां त्रिलोचनाम्॥३॥ लक्षं जपेन् मस्तकान्तं स्कन्धान्तं वर्णमालिकाम् । अकारादिक्षकरान्तां विशन्तीं मानवत् स्मरेत् ॥ ४ ॥ कुर्य्याद् गुरुश्च दीक्षार्थं मन्त्रग्राहे तु मण्डलम्। सूर्य्याग्रमिन्दुभक्तन्तु भागाभ्यां कमलं हितम् ॥ ५ ॥ वीथिका पदिका कार्य्या पद्मान्यष्टौ चतुष्पदे । वीथिका पदिका बाह्ये द्वाराणि द्विपदानि तु ॥६॥

महाभाग, विकृत, पार्वतीप्रिय, भयावह, भद्र, भगण तथा भयसूदन। इसके पश्चात् पश्चिम दिशा में इन नामों को लिखें- देवत्रास, महानाद, भास्वर, विघ्नराज, गणाधिप, उद्धटस्वरन, उद्धटस्वन, महाशुण्ड, भीम, मन्मथ, मधुसूदन, सुन्दर तथा भावपुष्ट ।। १५-१७।। इसके पश्चात् उत्तर दिशा में- ब्रह्मेश्वर, ब्राह्मनोवृत्ति, संलय, लय, नृत्यप्रिय, लोल, विकर्ण, वत्सल, कृतान्त, कालदण्ड तथा कुम्भ का उल्लेख करके पहले के ही समान उनका पूजन करना चाहिए ।। १८-१९ ।। इसके पश्चात् उपर्युक्त मन्त्र का दस हजार जप करें और उसका दशांश होम करना चाहिए । शेष नाममन्त्रों का दस-दस बार जप करके उसके लिए एक-एक बार आहुति देनी चाहिए ।। २० ।। इसके पश्चात् पूर्णाहुति देकर अभिषेक करना चाहिए ऐसा करने वालों के समस्त मनोरथ सिद्ध होते हैं । इसके पश्चात् साधक भूमि, गौ, अश्व, गज तथा वस्त्र प्रदान करके गुरु की पूजा करें ।। २१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का गण पूजा वर्णन नामक तीन सौ अठारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३१८ ॥

भगवान् शंकर ने कहा– अब मैं मण्डल के साथ वागीश्वरी पूजन का वर्णन करता हूँ । ऊहक (ऊ) को काल (घ) से संयुक्त करके उसका चन्द्रमार्ग (अनुस्वार) से संयोग करने पर (घूं) यह मन्त्र बनता है ।। १ ।। निषाद पर ईश्वर (ई) का योग करके उसे विन्दु तथा विसर्ग से युक्त करें । (ईः) इस तरह ये दोनों मन्त्र चन्द्रसूर्य के तुल्य हैं । इन मन्त्रों को सब को नहीं बतलाना चाहिए। इसके बाद वागीश्वरी देवी का ध्यान करना चाहिए । देवी कुन्दपुष्प तथा चन्द्रमा के समान श्वेतवर्ण की हैं ।। २ ।। वे पचास वर्णों रूपी मोती की माला से समलंकृत हैं । वे वरदमुद्रा, अभयमुद्रा से अक्षमाला तथा पुस्तक को धारण करती हैं । उनके तीन नेत्र हैं ।। ३ ।। इस प्रकार से ध्यान के पश्चात् देवी के एकाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिए । वे पैर से लेकर मस्तक पर्यन्त अथवा स्कन्ध पर्यन्त ककार से लेकर क्षकार पर्यन्त वर्णों की माला को धारण करती हैं ।। ४ ।। मन्त्र का उपदेश देने के लिए आचार्य एक मण्डल का निर्माण करे । उसे सूर्याग्र होना चाहिए तथा इन्दु शोभित होना चाहिए । दो भागों में कमल बनाना चाहिए ।। ५ ।। वह कमल साधक के लिए हितकारी होता है फिर वीथी और पापों का निर्माण करना चाहिए । चतुष्पद में आठ कमलों का निर्माण करना चाहिए । उनके बाहरी भाग में वीथिका और पदिका का निर्माण करना चाहिए । दो दो पायों से द्वारों को बनाना चाहिए ।। ६ ।। इसी तरह उपद्वारों को भी बनाना चाहिए कोणों पर दो पट्टिका

उपद्वाराणि तद्वच्च कोणबन्धं द्विपट्टिकम् । सितानि नव पद्मानि कर्णिका कनकप्रभा॥ ७॥ केशराणि विचित्राणि कोणान् रक्तेन पूरयेत् । व्योमरेखान्तरं कृष्णं द्वाराणीन्द्रेभमानतः ॥ ८ ॥ मध्ये सरस्वती पद्मे वागीशी पूर्वपद्मके । हृल्लेखा चित्रवागीशी गायत्री विश्वरूपया ॥ ९॥ शाङ्करी मतिधृतिश्च पूर्वाद्या ह्रीं स्वबीजकाः । ध्येया सरस्वतीवच्च कपिलाज्येन होमकः । संस्कृतप्राकृतकविः काव्यशास्त्रादिविद् भवेत् ॥ १० ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वागीश्वरीपूजाकथनं नामोनविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१९ ॥

विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

मण्डलानि

ईश्वर उवाच– **सर्वतो भद्रकान्यष्टमण्डलानि वदे गुह ! । शंकुना साधयेत् प्राचीमिष्टां विषुवे सुधीः ॥ १ ॥ चित्रास्वात्यन्तरेणाऽथ दृष्टसूत्रेण वा पुनः । पूर्वापरायतं सूत्रमास्फाल्य मध्यतोऽङ्कयेत् ॥ २ ॥ कोटिद्वयन्तु तन्मध्यादङ्कयेद् दक्षिणोत्तरम् । मत्स्यद्वयं प्रकर्त्तव्यं स्फालयेद् दक्षिणोत्तरम्॥३॥ शतक्षेत्रार्द्धमानेन कोणसम्पातमादिशेत् । एवं सूत्रचतुष्कस्य फालनाच्चतुरस्रकम् ॥ ४ ॥ जायते तत्र कर्त्तव्यं भद्रस्वेदकरं शुभम् । वसुभक्तेन्दु द्विपदे क्षेत्रवीथी च भागिका ॥ ५ ॥ द्वारं द्विपदिकं पद्मामानाद् वै सकपोलकम् । कोणबन्धविचित्रन्तु द्विपदं तत्र वर्त्तयेत् ॥ ६ ॥ शुक्लं पद्मं कर्णिका तु पीता चित्रन्तु केसरम् । रक्ता वीथी तत्र कल्प्या द्वारं लोकेशरूपकम् ॥ ७ ॥ रक्तकोणं विधौ नित्ये नैमित्तिकेऽब्जकं शृणु । असंसक्तन्तु संसक्तं**

को बनाना चाहिए । नव उजले कमलों को बनाना चाहिए, कर्णिका को सुवर्ण के समान पीला बनाना चाहिए ।। ७ ।। केसरों को अनेक रंगों से रंगकर कोणों को लाल रंग से रंगना चाहिए । व्योम रेखान्तर को काला बनाना चाहिए । द्वारों का मान इन्द्र के हाथी के मान के बराबर रखना चाहिए ।। ८ ।। कमल के मध्य सरस्वती की, पूर्वकमल में वागीश्वरी की, फिर अग्नि आदि कोणों के क्रम से हृल्लेखा, चित्रवागीश्वरी, गायत्री, विश्वरूपा, शांकरी, मति और धृति की स्थापना करके उनका पूजन करें । सबों के अपने वीजमन्त्रों से पहले ही जोड़ना चाहिए ।। ९।। उनका सरस्वती के ही समान ध्यान करना चाहिए और कपिला गौ के घी से होम करना चाहिए । ऐसा करने वाला संस्कृत तथा प्राकृत भाषाओं का कवि तथा काव्यों खं शास्त्रों का वेत्ता हो जाता है ।। १० ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का वागीश्वरीपूजन वर्णन नामक तीन सौ उन्नीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३१९ ॥

भगवान् शंकर ने कहा– हे गुह ! मैं अब सर्वतोभद्र आदि आठ मण्डलों का वर्णन करता हूँ । पहले शंकु (कील) से प्राची दिशा का साधन करें प्राची के सिद्ध हो जाने पर विद्वान् पुरुष विषुव काल में चित्रा और स्वाती नक्षत्र के अन्तर से अथवा प्रत्यक्ष सूत को लेकर पूर्व से पश्चिम तक उसे फैलाकर मध्य में दो कोटियों को अंकित करें । उसके बीच से उत्तर से दक्षिण की ओर दो रेखाओं को खींचे ।। २ ।। दो मत्स्यों का निर्माण कर उन्हें दक्षिण से उत्तर की ओर आस्फालित करे ।। ३ ।। शतपद क्षेत्र के आधे मान से कोण सम्पात करें । इस तरह चार बार सूत्र के आस्फालन करने से एक चौकोर रेखा बन जाती है ।। ४ ।। उसमें चार हाथ का शुभ भद्रमण्डल बनाना चाहिए । आठ पदों में सब ओर से विभक्त होने से चौसठ पदों में से बीस पद वाले क्षेत्र में बाहर की ओर एक वीथी का निर्माण करना चाहिए ।। ५ ।। कमल के मान से दो पदों का द्वार बनाना चाहिए । द्वार कपोल युक्त होना चाहिए । कोण बन्ध के कारण उसकी शोभा विचित्र हो, ऐसा द्विपद का द्वार निर्माण में उपयोग करना चाहिए ।। ६ ।। कमल शुक्ल वर्ण का होना चाहिए, कर्णिका पीतवर्ण की होनी चाहिए, केसर चित्रवर्ण का होना चाहिए । वीथी को रक्तवर्ण का बनाना चाहिए, द्वारलोकपाल स्वरूप होता है ।। ७ ।। नित्य-नैमित्तिक विधियों में कोणों का रंग लाल होना चाहिए । अब कमल का वर्णन सुनो । कमल के दो-दो भेद होते हैं संसक्त तथा असंसक्त । ये दोनों प्रकार

द्विधाब्जं भुक्तिमुक्तिकृत् ॥ ८॥ असंसक्तं मुमुक्षूणां संसक्तं तत् त्रिधा पृथक् । बालो युवा च वृद्धश्च नामतः फलसिद्धिदाः ॥ ९ ॥ पद्मक्षेत्रे तु सूत्राणि दिग्विदिक्षु विनिक्षिपेत् । वृत्तानि पञ्चकल्पानि पद्मक्षेत्रसमानि तु ॥ १० ॥ प्रथमे कर्णिका तत्र पुष्करैर्नवभिर्युता । केसराणि चतुर्विंश द्वितीयेऽथ तृतीयके ॥ ११ ॥ दलसन्धिर्गजकुम्भ निभान्तर्यद् दलाग्रकम् । पञ्चमे व्योमरूपन्तु संसक्तं कमलं स्मृतम् ॥ १२ ॥ असंसक्ते दलाग्रे तु दिग्भागैर्विस्तराद् भजेत् । भागद्वयपरित्यागाद् वस्वंशैर्वर्त्तयेद्दलम्॥ १३॥ सन्धिविस्तारसूत्रेण तन्मानादङ्कयेद् दलम् । सव्यासव्यक्रमेणैव वृद्धमेतद् भवेत् तथा ॥ १४॥ अथ वा सन्धिमध्यात् तु भ्रामयेदर्द्धचन्द्रवत् । सन्धिद्वयाग्रसूत्रं वा बालपद्मं तथा भवेत् ॥ १५ ॥ सन्धिसूत्रार्द्धमानेन पृष्ठतः परिवर्त्तयेत् । तीक्ष्णाग्रन्तु सुवातेन कमलं भुक्तिमुक्तिदम् ॥ १६ ॥ मुक्तौ वृद्धं च वश्यादौ बालं पद्मं समानकम् । नवनाभं नवहस्तं भागैर्मन्त्रात्मकैश्च तत् ॥ १७॥ मध्येऽब्जे पट्टिकाबीथी द्वारेणाब्जस्य मानतः । कण्ठोपकण्ठमुक्तानि तद् बाह्ये वीथिका मता ॥ १८ ॥ पञ्चभागान्विता सा तु समन्ताद् दशभागिका। दिग्विदिक्ष्वष्ट पद्मानि द्वारपदनं सवीथिकम् ॥ १९ ॥ तद् बाह्ये पञ्च पदिका वीथिका यत्र भूषिता । पद्मवद् द्वारकण्ठन्तु पदिकञ्चौष्ठकण्ठकम् ॥ २० ॥ कपोलं पदिकं कार्य्यं दिक्षु द्वारत्रयं स्फुटम् । कोणबन्धं त्रिपट्टन्तु द्विपट्टं वज्रवद् भवेत् ॥ २१ ॥ मध्यन्तु कमलं शुक्लं पीतं रक्तञ्च नीलकम् । पीतशुक्लञ्च धूम्रञ्च रक्तं पीतञ्च मुक्तिदम् ॥ २२ ॥ पूर्वादौ कमलान्यष्ट शिवविष्ण्वादिकं यजेत् । प्रासादमध्यतोऽभ्यर्च्च्य शक्रादीनब्जकादिषु॥ २३॥ अस्त्राणि बाह्यवीथ्यान्तु विष्ण्वादीनश्वमेधभाक् । पवित्रारोपणादौ च महामण्डलमालिखेत् ॥ २४ ॥ अष्टहस्तं पुरा क्षेत्रं

के कमल भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले होते हैं ।। ८ ।। मुमुक्षु जीवों के लिए असंसक्त कमल उपयोगी होता है । संसक्त कमल तीन तरह का होता है । बाल, युवा तथा वृद्ध । वे अपने नाम के अनुसार फल सिद्धि प्रदान करने वाले होते हैं ।। ९ ।। कमल के क्षेत्र में दिशा तथा कोणदिशा की ओर सूत चालन करें तथा कमल के समान पाँच वृत्त का निर्माण करे । इन सबों का क्षेत्र एक समान होगा ।। १० ।। प्रथम वृत्त में नव पुष्करों से युक्त कर्णिका होगी, द्वितीय वृत्त में चौबीस केसर होंगे, तीसरे दलों की सन्धि होगी जिसका आकार हाथियों के कुम्भसील के समान होगा । चौथे वृत्त में दलों के अग्रभाग होंगे । पाँचवें वृत्त में आकाश मात्र शून्य होगा । इसे ही संसक्त कमल कहा गया है ।। ११-१२ ।। असंसक्त कमल में दलाग्रभाग पर जो दिशाओं का भाग है उनके विस्तार के अनुसार दो भागों को छोड़कर आठ भागों से दल बनाना चाहिए ।। १३ ।। सन्धि विस्तार सूत्र से उसके मान के अनुसार दल की रचना करनी चाहिए । इसमें बायें से दाहिनी ओर के क्रम से बनाने के काम में लगाना चाहिए । इस तरह से यह वृद्ध कमल बनता है ।। १४ ।। अथवा संधि के मध्य से सूत को अर्द्धचन्द्राकार घुमायें अथवा दो सन्धियों के अग्रवर्ती सूत को घुमाना चाहिए। ऐसा करने से बालपद्म बनता है ।। १५ ।। सन्धिसूत्र के अग्रभाग से पृष्ठ भाग की ओर सूत को घुमाना चाहिए ऐसा करने से तीक्ष्ण बल, अग्रभाग वाला युवा पद्म बनता है । यह पद्म भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है ।। १६ ।। हे सम (छह) मुख वाले स्कन्द मुक्ति के कार्य में वृद्ध कमल का प्रयोग होता है । वशीकरण आदि के कार्यों में बालपद्म का प्रयोग करना चाहिए । नवनाभ कमल चक्र नव हाथ का होता है। इसमें मन्त्रात्मक नव भाग होते हैं ।। १७ ।। इस चक्र के मध्य में कमल होता है । उस कमल के ही प्रमाण तथा द्वार तथा कण्ठ एवं उपकण्ठ बतलाये गये हैं। उसके बाहर के भाग में वीथी बतलायी गयी है ।। १८ ।। पाँच भाग में तो वीथी होती है और अपने चारों ओर दस भाग का स्थान लिए रहता है । उसकी दिशाओं और कोनों में आठ कमल होते हैं द्वारपद्म वीथी के साथ होता है ।। १९ ।। उसके बाहर पाँच भागों वाली वीथी होती है । वह लता आदि से विभूषित होती है । द्वार का कण्ठ कमल के समान होता है द्वार के ओष्ठ एवं कण्ठ एक भाग में होते हैं ।। २० ।। कपोल एक भाग में बनाना चाहिए दिशाओं में तीन द्वारों को स्पष्ट रूप से होना चाहिए । कोणबन्ध तीन पट्टियों, दो पट्टों वाला एवं एक वज्र से युक्त होना चाहिए।।२१।। मध्य कमल श्वेत वर्ण का होता है और श्वेत कमल पूर्वादि दिशाओं में क्रम से क्रमशः पीला, रक्त एवं नील पीत, शुक्ल, धूम्र, रक्त तथा पीत वर्ण का होना चाहिए । यह कमल चक्र भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला होता है ।। २२ ।। पूर्व आदि दिशाओं में आठ कमलों की तथा शिव विष्णु आदि की अर्चना करनी चाहिए । विष्णु आदि का पूजन प्रासाद के मध्यवर्ती कमल में करने के पश्चात्

रसपक्षैर्विवर्त्तयेत् । द्विपदं कमलं मध्ये वीथिका पदिका ततः ॥ २५ ॥ दिग्विदिक्षु ततोऽष्टौ च नीलाब्जानि विवर्त्तयेत् । मध्यपद्मप्रमाणेन त्रिंशत् पद्मानि तानि तु ॥ २६ ॥ दलसन्धिविहीनानि नीलेन्दीवराणि च । तत् पृष्ठे पदिका वीथी स्वस्तिकानि तदूर्ध्वतः ॥ २७ ॥ द्विपदानि तथा चाष्टौ कृतिभागकृतानि तु । वर्त्तयेत् स्वस्तिकांस्तत्र वीथिका पूर्ववद् बहिः ॥ २८ ॥ द्वाराणि कमलं यद्वदुपकण्ठयुतानि तु । रक्तं कोणं पीतवीथी नीलं पद्मञ्च मण्डले ॥ २९ ॥ स्वस्तिकादि विचित्रञ्च सर्वकामप्रदं गुह ! । पञ्चाब्जं पञ्चहस्तं स्यात् समन्ताद् दशभाजितम् ॥ ३० ॥ द्विपदं कमलं वीथी पट्टिका दिक्षु पङ्कजम् । चतुष्कं पृष्ठतो वीथी पदिका द्विपदान्यथ ॥ ३१ ॥ कण्ठौपकण्ठयुक्तानि द्वाराण्यब्जन्तु मध्यतः । पञ्चाब्जमण्डले ह्यस्मिन् सितं पीतञ्च पूर्वकम्॥३२॥ वैदूर्य्याभं दक्षिणाब्जं कुन्दाभं वारुणं कजम। उत्तराब्जन्तु शङ्खाभमन्यत् सर्वं विचित्रकम् ॥ ३३ ॥ सर्वकामप्रदं वक्ष्ये दशहस्तन्तु मण्डलम् । विकारभक्तन्तुर्य्यास्त्रं द्वारन्तु द्विपदं भवेत् ॥ ३४ ॥ मध्ये पद्मं पूर्ववच्च विघ्नध्वंसं वदाम्यथ । चतुर्हस्तं पुरं कृत्वा वृत्तञ्चैव करद्वयम् ॥ ३५ ॥ वीथिका हस्तमात्रन्तु स्वस्तिकैर्बहुभिर्वृता । हस्तमात्राणि द्वाराणि दिक्षु वृत्तं सपद्मकम् ॥ ३६ ॥ पद्मानि पञ्च शुक्लानि मध्ये पूज्यश्च निष्कलः । हृदयादीनि पूर्वादौ विदिक्ष्वस्त्राणि वै यजेत् ॥ ३७ ॥ प्राग्वच्च पञ्च ब्रह्माणि बुद्ध्याधारमतो वदे । शतभागे तिथिभागे पद्मं लिङ्गाष्टकं दिशि ॥ ३८ ॥ मेखलाभागसंयुक्तं कण्ठं द्विपदिकं भवेत् । आचार्य्यो बुद्धिमाश्रित्य कल्पयेच्च लतादिकम् ॥ ३९ ॥ चतुःषट्पञ्चमाष्टादि

पूर्वादि दिशाओं के कमलों में इन्द्र आदि की पूजा करनी चाहिए ।। २३ ।। अस्त्रों की पूजा बाह्य वीथी में करनी चाहिए । वहाँ पर विष्णु आदि की पूजा करके पुरुष अश्वमेध आदि यज्ञों का फल प्राप्त करता है । पवित्रारोपण आदि कर्मों में महामण्डल की रचना करनी चाहिए ।। २४ ।। आठ लम्बे क्षेत्र का छब्बीस से विभाजन करना चाहिए । मध्यवर्ती दो पदों में कमल का निर्माण करना चाहिए । उसके बाद एक पद की वीथी होनी चाहिए ।। २५ ।। उसके पश्चात् दिशाओं तथा विदिशाओं में आठ नील कमलों का निर्माण करना चाहिए । मध्यवर्ती कमल के प्रमाण वाले तीस कमलों को उसके मध्य में होना चाहिए ।। २६ ।। इन सभी कमलों को दल तथा सन्धि से रहित तथा नील इन्दीवर संज्ञक होना चाहिए । उसके पीछे एक पद में वीथी होना चाहिए, उसके ऊपर स्वस्तिक चिह्नों को होना चाहिए ।। २७ ।। वीथी के ऊपरी भाग या बाह्य भाग में दो-दो पदों के विभक्त स्थान में सब मिलाकर आठ स्वस्तिकों को लिखना चाहिए । उसके पहले के ही समान वीथी होनी चाहिए ।। २८ ।। द्वार, कमल तथा उपकण्ठ सब कुछ पूर्ववत् होना चाहिए । मण्डल के कोण का रंग लाल, वीथी का पीला तथा मध्य कमल का वर्ण नीला होना चाहिए ।। २९ ।। हे गुह ! विचित्र रंगों से युक्त स्वस्ति कादि मण्डल सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं ।। २९ ।। पञ्चाब्ज मण्डल पाँच हाथ के क्षेत्र को सब ओर से दस भागों में विभाजित करके बनाया जाता है ।।३०।। इसमें दो पदों का कमल, उसके बाह्यभाग में वीथी, उसके पश्चात् पट्टिका तदनन्तर चारों दिशाओं में चार कमल होते हैं । उन चारों कमलों के पीछे एक पद अथवा दो पदों में बीथी बनानी चाहिए।।३१।। द्वारों को कण्ठ तथा उपकण्ठ से युक्त होना चाहिए । बीच में कमल का निर्माण कराना चाहिए । इस पञ्चाब्ज मण्डल में पूर्ववर्ती कमल उजला और पीला होना चाहिए ।। ३२।। दक्षिण दिग्वर्ती कमल वैदूर्यमणि के रंग का होना चाहिए । पश्चिम दिग्वर्ती कमल कुन्द के समान श्वेत वर्ण का तथा उत्तरदिग्वर्ती कमल शंख के समान उज्ज्वल वर्ण का होना चाहिए । अवशिष्ट समस्त कमलों को विचित्र वर्ण का होना चाहिए ।। ३३ ।। अब मैं समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले दस हाथ के मण्डल का वर्णन करता हूँ । दस हाथ के क्षेत्र को चारों ओर से चौबीस से विभक्त करके चौकोर क्षेत्र बना लेना चाहिए । इसमें द्वार दो पदों का होता है ।। ३४ ।। इसमें भी पूर्ववर्ती चक्रों के समान मध्यवर्ती पद्म का निर्माण करना चाहिए । अब मैं विघ्नविध्वंस चक्र का वर्णन करता हूँ । इसमें चार हाथ का पुट बनाकर उसके मध्य भाग में दो हाथ के घेरे में वृत्त बनाना चाहिए ।। ३५ ।। एक हाथ की वीथी होनी चाहिए जो अनेक स्वस्तिक चिह्नों से घिरा हुआ हो। एक-एक हाथ के चारों दिशाओं में घिरे होंगे । चारों दिशाओं में वृत्त होंगे जिनमें कमल अंकित होगा ।। ३६ ।। इस प्रकार चक्र में पाँच कमल होंगे उनका वर्णशुक्ल होगा । मध्य के कमल में निष्कल परमात्मा का पूजन होगा। पूर्वादि दिशाओं में हृदय आदि अंगों की तथा विदिशाओं में अस्त्रों की पूजा करनी चाहिए ।। ३७ ।। पहले के ही समान इस चक्र में सद्योजात आदि पाँच ब्रह्ममय मुखों का पूजन करना चाहिए ।

खाछिखाद्यादि मण्डलम्। खाक्षीन्दुसूर्य्यगं सर्वं खाक्षि क्षैवेन्दुवर्णनात् ॥ ४० ॥ चत्वारिंशदधिकानि चतुर्दशशतानि हि । मण्डलानि हरेः शम्भोर्देव्याः सूर्य्यस्य सन्ति च ॥ ४१ ॥ दशसप्तविभक्ते तु लतालिङ्गोद्भवं शृणु । दिक्षु पञ्चत्रयञ्चैकं त्रयं पञ्च च लोमयेत् ॥ ४२ ॥ ऊर्ध्वगे द्विपदे लिङ्गमन्दिरं पार्श्वकोष्ठयोः । मध्येन द्विपदं पद्ममथ चैकञ्च पङ्कजम् ॥ ४३ ॥ लिङ्गस्य पार्श्वयोर्भद्रे पदद्वारमलोपनात् । तत्पार्श्वशोभाः षड् लोप्यलताः शेषास्तथा हरेः ॥ ४४ ॥ ऊर्ध्वं द्विपदिकं लोप्य हरेर्भद्राष्टकं स्मृतम् । रश्मिमालासमायुक्तं वेदलोपाच्च शोभिकम् ॥ ४५ ॥ पञ्चविंशतिकं पद्मं ततः पीङ्गमपीङ्गकम् । द्वयं द्वयं रक्षयित्वा उपशोभास्तथाष्ट च ॥ ४६ ॥ देव्यादिख्यापकं भद्रं बृहन्मध्ये परं लघु । मध्ये नवपदं पद्मं कोणे भद्रचतुष्टयम्॥४७॥ त्रयोदशपदं शेषं बुद्ध्यधारन्तु मण्डलम् । शतपदं षष्ट्यधिकं बुद्ध्याधारं हरादिषु ॥ ४८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मण्डलकथनं नाम विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२० ॥

एकविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अघोरास्त्रादिशान्तिकल्पः

ईश्वर उवाच– **अस्त्रयागः पुरा कार्य्यः सर्वकर्मसु सिद्धिदः । मध्ये पूज्यं शिवाद्यस्त्रं वज्रादीन् पूर्वतः क्रमात् ॥ १ ॥ पञ्चमुखं दशकरं रणादौ**

अब मैं बुद्ध्याधार चक्र का वर्णन करता हूँ । सौ पदों के क्षेत्र में से मध्यवर्ती पन्द्रह पदों में एक कमल बनाना चाहिए । इसके पश्चात् आठ दिशाओं में आठ कमल बनाना चाहिए ।। ३८ ।। मेखलाभाग युक्त कण्ठ की रचना दो पदों में करनी चाहिए । आचार्य को चाहिए कि वे अपनी बुद्धि के अनुसार लता आदि का निर्माण करें ।। ३९ ।। चार, छह, पाँच तथा आठ आदि कमलों से युक्त मण्डल होते हैं । बीस तीस आदि कमलों से युक्त मण्डल होते हैं। सम्पूर्ण मण्डल ख (०) अक्षि (२) इन्दु (९) सूर्य (१२) अर्थात् १२१२० कमलों से युक्त होते हैं। १२० कमलों के भी मण्डल का वर्णन किया गया है ।। ४० ।। श्रीहरि, भगवान् शंकर, देवी तथा सूर्य के १४४० मण्डल होते हैं ।। ४१।। सत्रह पदों का सत्रह से विभाग करने पर २९ पदों का बनने वाले मण्डल में जिस प्रकार से लतालिङ्ग आदि का अभाव होता है उसे आप सुनें । प्रत्येक दिशा में पाँच, एक, तीन, तथा पाँच पदों को मिटा देना चाहिए ।। ४२ ।। ऊपर के दो पदों से लिङ्ग तथा पार्श्ववर्ती दो-दो कोष्ठकों से मन्दिर बनेगा । मध्यवर्ती दो पदों का कमल होगा । उसके पश्चात् फिर एक कमल होगा ।। ४३ ।। लिङ्ग के पार्श्व भाग में दो भद्र बनेंगे । इसके पश्चात् एक पद का द्वार होगा उसको मिटाया नहीं जायेगा । उस द्वार के दोनों पार्श्वभाग में छह पदों को मिटाने से द्वार शोभा बनेगी । शेष पदों में लता श्रीहरि के लिए बनेगी ।। ४४ ।। ऊपर के दो पदों को मिटाने से श्रीहरि के लिए भद्राष्टक बनेंगे । फिर चार पदों को मिटाने से रश्मि मालाओं से युक्त शोभा स्थान का निर्माण होगा ।। ४५ ।। पच्चीस पदों से कमल, फिर पीङ्ग, अपीङ्ग, फिर दो-दो पदों को मिलाकर आठ उपशोभाएँ बनेंगी ।। ४६ ।। देवी आदि का सूचक मण्डल बीच में विस्तृत तथा प्रान्त भाग में लघु बनता है । बीच में नव पदों का कमल बनता है तथा चार कोणों में चार भद्रमण्डल बनते हैं ।। ४७ ।। शेष तेरह पदों का बुद्ध्याधार मण्डल होता है। इसमें एक सौ साठ पद होते हैं । बुद्ध्याधार मण्डल भगवान् शिव आदि की आराधना के लिए बनाया जाता है ।। ४८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का मण्डल वर्णन नामक तीन सौ बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३२० ॥

भगवान् शंकर ने कहा– स्कन्द ! पहले समस्त कर्मों में अस्त्र याग करना चाहिए । इससे सिद्धि की प्राप्ति होती है । मध्य में शिव आदि के अस्त्रों की पूजा करनी चाहिए । फिर पूर्वादि

पूजितं जये। ग्रहपूजा रविर्मध्ये पूर्वाद्याः सोमकादयः ॥ २ ॥ सर्व एकादशस्थास्तु ग्रहाः स्युः ग्रहपूजनात् । अस्त्रशान्तिं प्रवक्ष्यामि सर्वोत्पातविनाशिनीम्॥३॥ ग्रहरोगादिशमनीं मारीशत्रुविमर्दनीम् । विनायकोपतप्तिघ्नमघोरास्त्रं जपेन्नरः ॥ ४ ॥ लक्षं ग्रहादिनाशः स्यादुत्पाते तिलहोमनम् । दिव्ये लक्षं तदर्द्धेन व्योमजोत्पातनाशनम्॥ ५॥ घृतेन लक्षपातेन उत्पाते भूमिजे हितम् । घृतगुग्गुलुहोमे च सर्वोत्पातादि मर्दनम् ॥ ६॥ दूर्वाक्षताज्यहोमेन व्याधयोऽथ घृतेन च । सहस्रेण तु दुःस्वप्ना विनश्यन्ति न संशयः॥ ७॥ अयुताद् ग्रहदोषघ्नो यवघृतविमिश्रितात् । विनायकार्त्तिशमनमयुतेन घृतस्य च ॥ ८॥ भूतवेतालशान्तिस्तु गुग्गुलोरयुतेन च । महावृक्षस्य भङ्गे तु व्यालकङ्के गृहे स्थिते ॥ ९॥ आरण्यानां प्रवेशे च पूर्वाज्याक्षतहावनात् । उल्कापाते भूमिकम्पे तिलाज्येनाहुताच्छिवम्॥१०॥ रक्तस्रावे तु वृक्षाणामयुताद् गुग्गुलोः शिवम् । अकाले फलपुष्पाणां राष्ट्रभङ्गे च मारणे ॥ ११ ॥ द्विपदादेर्यदा मारी लक्षार्द्धाच्च तिलाज्यतः । हस्तिमारी प्रशान्त्यर्थं करिणीदन्तवर्धने ॥ १२ ॥ हस्तिन्यां मददृष्टौ च अयुताच्छान्तिरिष्यते । अकाले गर्भपाते तु जातं यत्र विनश्यति॥१३॥ विकृता यत्र जायन्ते यात्राकालेऽयुतं हुनेत् । तिलाज्यलक्षहोमन्तु उत्तमा सिद्धिसाधने ॥ १४ ॥ मध्यमायां तदर्द्धेन

दिशाओं में क्रमशः इन्द्र आदि दिक्पालों के वज्र आदि अस्त्रों की पूजा करनी चाहिए ।। १ ।। पाञ्चमुख वाले तथा दस हाथ वाले भगवान् शिव की पूजा करके संग्राम आदि में जाने पर विजय की प्राप्ति होती है। ग्रहों की पूजा करते समय सूर्य की पूजा बीच में करनी चाहिये तथा पूर्व आदि दिशाओं में सोम आदि ग्रहों की पूजा करनी चाहिये ।। २ ।। ग्रहों की पूजा करने से सभी ग्रह एकादश स्थान में स्थित हो जाते हैं और उसी के अनुसार फल प्रदान करते हैं । अब मैं समस्त उत्पातों का विनाश करने वाली अस्त्रशान्ति का वर्णन कर रहा हूँ ।। ३ ।। यह शान्ति ग्रहों तथा रोगों को शान्त करती है तथा महामारी एवं शत्रुओं का विनाश करती है । साधक को चाहिए कि वह विघ्न करने वाले गणों के द्वारा उत्पादित उत्पात को विनष्ट करने से ग्रह आदि का नाश करे ।। ४ ।। इसका एक लाख जप करने से ग्रह आदि का नाश हो जाता है तिल से दशांश होम करने पर उत्पातों का नाश होता है । एक लाख जप तथा होम करने से आकाशज दिव्य उत्पात का नाश होता है । आधा लाख जप तथा होम करने से आकाश उत्पात का नाश होता है ।। ५ ।। एक लाख घी की आहुति देने से उत्पात की शान्ति में सफलता मिलती है । घी तथा गुग्गुल मिलाकर होम करने से समस्त प्रकार के उत्पातों आदि का शमन होता है ।। ६ ।। दूर्वा, अक्षत तथा घी की आहुति देने से व्याधियों का विनाश होता है । घी की एक हजार आहुति देने से दुःस्वप्नों का नाश होता है, इसमें कोई भी संशय नहीं है ।। ७ ।। घी मिलाकर यव की दस हजार आहुति देने से ग्रह दोष का विनाश होता है । घी की दस हजार आहुति देने से विनायक यव जनित पीड़ा का नाश होता है ।। ८ ।। गुग्गुल की दस हजार आहुति देने से भूत तथा वेताल आदि की शान्ति होती है । किसी महावृक्ष के टूट जाने अथवा आँधी आदि से उखड़ जाने पर अथवा घर में सर्प का कंकाल मिलने पर ।।८।। अथवा यदि जंगल में जाना हो तो विघ्न की शान्ति के लिए पात होने अथवा भूकम्प आने पर तिल एवं घी से होम करने पर कल्याण होता है ।। १० ।। जब वृक्ष से रक्तस्राव होने लगे, बिना समय के वृक्षों में फल एवं पुष्प निकल आएँ, राष्ट्र का मान भंग हो, मारण कर्म किया गया हो, महामारी आयी हो तो गुग्गुल की दस हजार आहुति देने से मंगल होता है ।। ११ ।। जब मनुष्य तथा पशुओं की महामारी आयी हो तो तिल एवं घी की आधा लाख आहुति देनी चाहिए । यदि हाथी की महामारी आयी हो, या हस्तिनी के दाँत बढ़ जायँ ।। १२ ।। अथवा हस्तिनी के गाल से मदवारी चूने लग जाय तो दस हजार आहुति देने से शान्ति होती है ।। १२।। जिस घर में असमय में ही गर्भपात हो जाता हो अथवा जिस घर में उत्पन्न होते ही बच्चे मर जाते हों, जहाँ पर विकृत अंग वाले बच्चे उत्पन्न होते हों जहाँ पर यात्राकाल में विघ्न होते हों, वहाँ पर दस हजार आहुति देनी चाहिए ।। १३।। उत्तम कोटि की सिद्धि की प्राप्ति करने के लिए एक लाख होम करना चाहिए । मध्यम कोटि की सिद्धि के लिए आधा लाख आहुति देनी चाहिए । अधम कोटि की सिद्धि की प्राप्ति के लिए पच्चीस हजार आहुति देनी चाहिए ।। १४ ।। जप तथा होम बराबर बराबर करने से संग्राम में विजय

तत्पादादधमासु च । तथा जपस्तथा होमः संग्रामे विजयी भवेत् ॥ १५ ॥ अघोरास्त्रं जपेन् न्यस्य ध्यात्वा पञ्चास्यमूर्जितम् ॥ १६ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अघोरास्त्रादिशान्तिकल्पकथनं नामैकविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२१॥

द्वाविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

पाशुपतशान्तिः

ईश्वर उवाच– वक्ष्ये पाशुपतास्त्रेण शान्तिजापादि पूर्वतः । पादतः पुण्यनाशो हि फडन्तं चापदादिनुत् ॥ १ ॥ ओं नमो भगवते ! महापाशुपताय अतुलबलवीर्य्यपराक्रमाय त्रिपञ्चनयनाय नानारूपाय नानाप्रहारणोद्यताय सर्वाङ्गरक्ताय भिन्नाञ्जनचयप्रख्याय श्मशानवेतालप्रियाय सर्वविघ्ननिकृन्तनाय सर्वसिद्धिप्रदाय भक्तानुकम्पिने असंख्यवक्त्रभुजापादाय तस्मिन् सिद्धाय वेतालवित्रासिने शाकिनीक्षोभजनकाय व्याधिनिग्रहकारिणे पापभञ्जनाय सूर्य्यसोमाग्निनेत्राय विष्णुकवचाय खड्गवज्रहस्ताय यमदण्डवरुणपाशाय रुद्रशूलाय ज्वलज्जिह्वाय सर्वरोगविद्रावणाय ग्रहनिग्रहकारिणे दुष्टनागक्षयकारिणे ओं कृष्णपिङ्गलाय फट् । हूंकारास्त्राय फट् । वज्रहस्ताय फट् । शक्तये फट् । दण्डाय फट् । यमाय फट् । खड्गाय फट् । नैर्ऋत्याय फट् । वरुणाय फट् । पाशाय फट् । ध्वजाय फट् । अङ्कुशाय फट् । गदायै फट् । कुबेराय फट् । त्रिशूलाय फट् । मुद्गरायफट् । चक्राय फट् । पद्माय फट् । नागास्त्राय फट् । ईशानाय फट् । खेटकास्त्राय फट् । मुण्डास्त्राय फट् । कङ्कालास्त्राय फट् । पिच्छिकास्त्राय फट् । क्षुरिकास्त्राय फट् । ब्रह्मास्त्राय फट् । शक्त्यस्त्राय फट् । गणास्त्राय फट् । पिलिपिच्छास्त्राय फट् । गन्धर्वास्त्राय फट् । मूर्वास्त्राय फट् । दक्षिणास्त्राय फट्। वामास्त्राय फट्। पश्चिमास्त्राय फट्। मन्त्रास्त्राय फट् । शाकिन्यस्त्राय फट् । योगिन्यस्त्राय फट् । दण्डास्त्राय फट् । महादण्डास्त्राय फट् । नागास्त्राय फट् । शिवास्त्राय फट् । ईशानास्त्राय फट् । पुरुषास्त्राय फट् । अघोरास्त्राय फट् । सद्योजातास्त्राय फट् । हृदयास्त्राय फट् । महास्त्राय फट् । गरुडास्त्राय फट् । राक्षसास्त्राय फट् । दानवास्त्राय फट् । क्षौं नरसिंहास्त्राय फट् । त्वाष्ट्रास्त्राय फट् । सर्वास्त्राय फट् । नः फट् । वः फट् । पः फट् । मः फट्। श्रीः फट् । फेः फट् । भूःफट् । भुवः फट् । स्वः फट् । महः फट् । जनः फट् । तपः फट् । सर्वलो कफट् । सर्वपाताल फट् । सर्वतत्त्व फट् । सर्वप्राण फट् । सर्वनाड़ी फट् । सर्वकारण फट् । सर्वदेव फट् । ह्रीं फट् । श्रीं फट् । हूं फट् । स्त्रुं फट् । स्वां फट् । लां फट् । वैराग्याय फट् । मायास्त्राय

की प्राप्ति होती है । अघोरास्त्र का जप तेजस्वी पञ्चमुख भगवान् शंकर के ध्याननपपूर्वक न्यास करके करना चाहिए ।। १६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का मण्डल वर्णन नामक तीन सौ एक्कीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३२१ ॥

भगवान् शंकर ने कहा– स्कन्द ! अब मैं पाशुपत मन्त्र के जप आदि से होने वाली शान्ति का वर्णन करता हूँ । इस मन्त्र के आंशिक जप अथवा पाठ से पूर्वकृत् पुण्य का नाश हो जाता है । इस मंत्र का फडन्त सम्पूर्ण मन्त्र जप से आपत्ति आदि का नाश होता है ।। १ ।। सम्पूर्ण मन्त्र मूल के- ओं नमो भगवते ....सर्वदुरितं नाशय फट् । पर्यन्त है । इस मन्त्र की एक

फट्। कामास्त्राय फट्। क्षेत्रपालास्त्राय फट्। हूंकारास्त्राय फट्। भास्करास्त्राय फट्। चन्द्रास्त्राय फट्। विघ्नेश्वरास्त्राय फट्। ख्रों ख्रौं फट्। ह्रौं ह्रों फट्। भ्रामय भ्रामय फट्। छादय छादय फट्। उन्मूलय उन्मूलय फट्। त्रासय त्रासय फट्। सञ्जीवय सञ्जीवय फट्। विद्रावय विद्रावय फट्। सर्वदुरितं नाशय नाशय फट्। सकृदावर्त्तनादेव सर्वविघ्नान् विनाशयेत्। शतावर्त्तेन चोत्पातान् रणादौ विजयी भवेत्॥ २॥ घृतगुग्गुलहोमाच्च आसाध्यानपि साधयेत्! पठनात् सर्वशान्तिः स्याच्छस्त्रपाशुपतस्य च॥ ३॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पाशुपतशान्तिकथनं नाम द्वाविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥ ३२२॥

त्रयोविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

षडङ्गान्यघोरास्त्राणि

ईश्वर उवाच– **ओं हूं हंस इति मन्त्रेण मृत्युरोगादि शाम्यति। लक्षाहुतिभिर्दूर्वाभिः शान्तिं पुष्टिं प्रसाधयेत्॥ १॥ अथवा प्रणवेनैव मायया वा षडानन!। दिव्यान्तरीक्षभौमानां शान्तिरुत्पातवृक्षके॥ २॥ ओं नमो भगवति! गङ्गे! कालि कालि! महाकालि महाकालि! मांसशोणितभोजने! रक्तकृष्णामुखि! वशमानय मानुषान् स्वाहा। ओम् लक्षं जप्त्वा दशांशेन हुत्वा स्यात् सर्वकर्मकृत्। वशं नयति शक्रादीन् मानुषेष्वेषु का कथा॥३॥ अन्तर्धानकरी विद्या मोहिनी जृम्भणी तथा। वशं नयति शत्रूणां शत्रुबुद्धिप्रमोहिनी॥ ४॥ कामधेनुरियं विद्या सप्तधा परिकीर्त्तिता। मन्त्रराजं प्रवक्ष्यामि शत्रुचौरादिमोहनम्॥ ५॥ महाभयेषु सर्वेषु स्मर्तव्यं हरपूजितम्। लक्षं जप्त्वा तिलैर्होमः सिद्ध्येदुद्धारकं शृणु॥ ६॥ ओं हले शूले एहि**

बार ही आवृत्ति करने से सम्पूर्ण विघ्नों का विनाश हो जाता है। साधक इसकी एक सौ आवृत्ति करके सम्पूर्ण विघ्नों का नाश कर सकता है और संग्राम आदि में विजयी हो सकता है॥ २॥ वह इस मन्त्र से घी तथा गुग्गुल का होम करके असाध्य कार्यों को भी सिद्ध कर सकता है। पाशुपतास्त्र का पाठ मात्र करने से सभी प्रकार की शान्ति हो जाती है॥ ३॥

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का पाशुपतशान्ति वर्णन नामक तीन सौ बाईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ३२२॥

भगवान् शंकर ने कहा– ओं हूं हंसः इस मन्त्र से मृत्यु रोग आदि की शान्ति होती है। इस मन्त्र से दूर्वा तथा घी से एक लाख आहुति देने से साधक शान्ति तथा पुष्टि की सिद्धि करने में सफल होता है॥ १॥ अथवा हे षडानन! केवल प्रणव (ओम्) तथा माया (ह्रीं) के जप से दिव्य, अन्तरिक्षजन्य तथा भूमिजन्य वृक्षों की शान्ति होती है। उत्पात वृक्ष की शान्ति के लिए भी यह उपाय है॥ २॥ ओं नमो भगवति गङ्गे! कालि! कालि! कहाकालि! कहाकालि मांसशोणितभोजने! रक्तकृष्णमुखि! वशमानय मानुषान् स्वाहा। ओम्। इस मंत्र का एक लाख जप करके उसका दशांश भाग होम करने से साधक समस्त कर्मों में सिद्धि प्राप्त करता है। वह इन्द्र आदि को भी अपने वश में कर लेता है, मनुष्यों आदि का क्या कहना है॥ ३॥ यह विद्या अन्तर्धान करने वाली, मोहिनी, जृम्भणी, शत्रुओं को अपने वश में करने वाली तथा शत्रुओं की बुद्धि को मोहित करने वाली है॥ ३॥ यह कामधेनु विद्या सात प्रकार की बतलायी गयी है। अब मैं शत्रुओं तथा चोरों आदि को मोहित करने वाले मन्त्रराज का वर्णन करता हूँ॥ ४॥ इस मन्त्र की पूजा भगवान् शंकर ने की है। महान भय उपस्थित होने पर इस मन्त्र का स्मरण करना चाहिए। इस मन्त्र का एक लाख जप करके तिल से होम करना चाहिए। ऐसा करने से इस मन्त्र की सिद्धि हो जाती है। अब इस मंत्र का उद्धार सुनो॥ ५॥ ओं हले शूले एहि ब्रह्मसत्येन विष्णुसत्येन

ब्रह्मसत्येन विष्णुसत्येन रुद्रसत्येन रक्ष मां वाचेश्वराय स्वाहा ॥ ६ ॥ दुर्गात् तारयते यस्मात् तेन दुर्गा शिवा मता ओं चण्डकपालिनि ! दन्तान् किट किट क्षिट क्षिट गुह्ये फट् ह्रीम्। अनेन मन्त्रराजेन क्षालयित्वा तु तण्डुलान् ॥ ७ ॥ त्रिंशद्वाराणि जप्तानि तच्चौरेषु प्रदापयेत् । दन्तैश्चूर्णानि शुक्लानि पतितानि हि शुद्धये ॥ ८ ॥ ओं ज्वलल्लोचन ! कपिलजटाभारभास्वर ! विद्रावण ! त्रैलोक्यडामर दर दर भ्रम भ्रम आकट्ट आकट्ट तोटय तोटय मोटय मोटय दह दह पच पच एवं सिद्धिरुद्रो ज्ञापयति यदि ग्रहोपगतः स्वर्गलोकं देवलोकं वा आरामविहाराचलं तथापि तमावर्त्तयिष्यामि बलिं गृह्ण गृह्ण ददामि ते स्वाहेति ॥ ९ ॥ क्षेत्रपालबलिं दत्त्वा ग्रहो न्यासाद् वशं व्रजेत् । शत्रवो नाशमायान्ति रणे वैरिगणक्षयः॥१०॥ हंसबीजन्तु विन्यस्य विषन्तु त्रिविधं हरेत । माक्षिकेण समायुक्तो देहवस्त्रादिधूपनात् ॥ १२ ॥ नखं वै देवदारुश्च समं कृत्वाऽथ धूपकः । माक्षिकेण समायुक्तो देहवस्त्रादिधूपनात् ॥ १२ ॥ विवादे मोहने स्त्रीणां मण्डने कलहे शुभः । कन्याया वरणे भाग्ये मायामन्त्रेण मन्त्रितः ॥ १३ ॥ ह्रीं रोचना नागपुष्पाणि कुङ्कुमञ्च मनःशिला । ललाटे तिलकं कृत्वा यं पश्येत् स वशी भवेत् ॥ १४ ॥ शतावर्य्यास्तु चूर्णन्तु दुग्धपीतञ्च पुत्रकृत् । नागकेशरचूर्णन्तु घृतपक्वन्तु पुत्रकृत् ॥ १५ ॥ पालाशवीजपानेन लभेत पुत्रकं तथा । ओं उत्तिष्ठ चामुण्डे ! जम्भय जम्भय मोहय मोहय अमुकं वशमानय वशमानय स्वाहा । षड्विंशा सिद्धविद्या सा नदीतीरमृदा स्त्रियम् ॥ १६ ॥ कृत्वोन्मत्तरसेनैव नामालिख्यार्कपत्रके। मूत्रोत्सर्गं ततः कृत्वा जपेत् तामानयेत् स्त्रियम् ॥ १७ ॥ ओं जूं सः वषट् । महामृत्युञ्जयो मन्त्रो जप्याद्धोमाच्च पुष्टिकृत् । ओं हंसः हूं हूं स ह्रः सौ मृतसञ्जीवनीविद्या अष्टार्णा जयकृद्रणे ॥ १८ ॥ मन्त्रा ईशानमुख्याश्च धर्मकामादिदायकाः । ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम् ॥ १९ ॥ ब्रह्मणश्चाधिपतिर्ब्रह्मा

रुद्रसत्येन रक्ष मां वाचेश्वराय स्वाहा ।' चूँकि भगवती शिवा दुर्गम संकट से पार करती हैं इसीलिए वे दुर्गा कहलाती हैं ।। ६।। 'ओं चण्डकपालिनि ! दन्तान् किट किट क्षिट क्षिट गुह्ये फट् ह्रीं।' इस मन्त्रराज के द्वारा चावल को धोकर ।। ७ ।। इस चावल को इसी मन्त्र को तीस बार पढ़कर अभिमन्त्रित करें । इसके पश्चात् उस चावल को चोरों में बँटवा दें । उन चावलों को दाँतों से चबाने पर उजले दाँत गिर जाते हैं । ऐसा करने से वह मनुष्य चोरी के पाप से मुक्त होकर शुद्ध हो जाता है ।। ८ ।। 'ओं ज्वलल्लोचन कपिलजटाभारभास्वर विद्रावण त्रैलोक्य डामर डामर दर दर भ्रम भ्रम आकट्ट आकट्ट तोटय तोटय मोटय मोटय दह दह पच-पच एवं सिद्धिरुद्रो ज्ञापयति, यदि ग्रहोपगतः स्वर्गलोकं देवलोकं वा आरामविहाराचलं तथापि तमावर्त्तयिष्यामि बलिं गृह्ण गृह्ण ददामि ते स्वाहा।' इस मन्त्र से क्षेत्रपालाबलि देकर न्यास करने से ग्रह वशवर्ती हो जाता है । साधक के शत्रुओं का नाश हो जाता है और संग्राम में वैरी समूह का क्षय हो जाता है ।। १० ।। साधक हंस बीज का न्यास करके तीन प्रकार के विषों को दूर कर देता है । अगरु, चन्दन, कूट, कुंकुम, नाग केसर ।। ११ ।। नख तथा देवदारु इन सबों को बराबर मात्रा में लेकर धूप बनावें । फिर उसमें मधुमक्खी का शहद मिलावें उसकी सुगन्ध से देह तथा वस्त्र आदि को सुगन्धित करें ।। १२ ।। ऐसा करने वाला मनुष्य विवाद, स्त्री सम्मोहन, शृंगार तथा कलह आदि के अवसर पर शुभ फल को प्राप्त करता है । कन्या के वरण तथा भाग्योदय से सम्बद्ध कार्यों में भी सफलता मिलती है ।। १३ ।। माया मन्त्र (ह्रीं) से अभिमन्त्रित करके यदि रोचना, नागकेसर, कुंकुम तथा मैनशिल को मिलाकर तिलक अपने ललाट पर लगाकर किसी को देखता है तो उसे अपने वशवर्ती बना लेता है ।। १४ ।। यदि शतावरी के चूर्ण को दुग्ध के साथ मिलाकर पिया जाय तो उससे पुत्र की प्राप्ति होती है । घी में पकाया गया नागकेसर का चूर्ण पुत्र की प्राप्ति कराने वाला होता है ।। १५ ।। इसी तरह पलाश बीज का पान करने वाला मनुष्य पुत्र को प्राप्त करता है । ओं उत्तिष्ठ चामुण्डे ! जम्भय जम्भ्य मोहय मोहय अमुकं वशमानय वशमानय स्वाहा ।' यह छब्बीस अक्षरों वाली सिद्ध विद्या है । यदि किसी स्त्री को वश में करना हो तो नदी के तीर की मिट्टी से उस स्त्री की मूर्ति बनाकर, धतूर के रस से मदार के पत्ते पर उस स्त्री का नाम लिखें । इसके पश्चात् मूत्रोत्सर्ग करके, फिर शुद्ध होकर इस मन्त्र का जप करें तो वह स्त्री उस साधक के वश में हो जाती है ।। १७ ।। 'ओं जूंसः वषट्।' यह

शिवो मेऽस्तु सदाशिवः। ओं तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ २० ॥ ओं अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरेभ्यस्तु सर्वतः। सर्वेभ्यो नमस्ते रूद्ररूपेभ्यः ॥ २१ ॥ ओं वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः रुद्राय नमः । कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलप्रमथनाय नमः । सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥ २२ ॥ ओं सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः । भवे भवेऽनादिभवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः ॥ २३ ॥ पञ्चब्रह्माङ्ग षट्कञ्च वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदम् ॥ २४ ॥ ओं नमः परमात्मने पराय कामदाय परमेश्वराय योगाय योगसम्भवाय सर्वकराय कुरु कुरु सद्यः सद्यः भव भव भवोद्भव ! वामदेव ! सर्वकार्य्यकर ! पापप्रशमन ! सदाशिव ! प्रसन्न! नमोऽस्तु ते स्वाहा॥२५॥ हृदयं सर्वार्थदन्तु सप्तत्यक्षरसंयुतम् ॥ २६ ॥ ओं शिवः शिवाय नमः शिवः । ओं शिव हृदये ज्वालिनी स्वाहा शिखा॥ २७ ॥ ओं शिवात्मक ! महातेजः ! सर्वज्ञ ! प्रभोसंवर्त्तय महाघोर ! कवचपिङ्गल ! आयाहि पिङ्गल नमो महाकवच ! शिवाज्ञया हृदयं बन्ध बन्ध घूर्णय घूर्णय चूर्णय चूर्णय सूक्ष्मवज्रधर ! वज्रपाश ! धनुर्वज्राशनिवज्रशरीर ! पिच्छरीरमनुप्रविश्य सर्वदुष्टान् स्तम्भय स्तम्भय हुम्॥ २८ ॥ अक्षराणान्तु कवचं शतं पञ्चाक्षराधिकम् ॥ २९ ॥ ओं ओजसे नेत्रं ओम् ह्रीं प्रस्फुर प्रस्फुर घोरघोरतर तनुरूप चट चट प्रचट प्रचट कह कह वम वम बन्ध

यह महामृत्यंजय मन्त्र है । इसका जप तथा होम करने से पुष्टि की प्राप्ति होती है । 'ओं हं सः हुं हूं सः हः सौः ।' यह आठ अक्षरों वाली मृतसंजीवनी विद्या है । यह संग्राम में विजय दिलाने वाली है ।। १८ ।। ईशान आदि मन्त्र भी धर्म तथा काम आदि को प्रदान करने वाले हैं । ईशानः सर्वविद्यानाम् ....मेऽस्तु सदाशिवः । ओम् । यह ईशानमन्त्र है । इसका अर्थ है कि जो सम्पूर्ण विद्याओं के ईश्वर हैं, समस्त भूतों के अधीश्वर हैं, वेदों तथा ब्रह्मा के अधिपति हैं, जो साक्षात्, ब्रह्म तथा जो शिवस्वरूप हैं, वे सदा मेरे लिए कल्याणस्वरूप बने रहें ।। १९।। 'ओं तत्पुरुषाय ....रुद्रः प्रचोदयात् ।' यह रुद्र गायत्री है । इसका अर्थ है कि- तत् पद के अर्थ स्वरूप जो अन्तर्यामी पुरुष हैं, उनको हम जानें । उन महादेव का हम चिन्तन करें । वे भगवान् रुद्र हमें सत्कार्यों को करने के लिए प्रेरित करते रहें ।। २० ।।'ओम् अघोरेभ्यो ....नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः ।' यह अघोरमन्त्र है । इसका अर्थ है कि- जो सर्वव्यापक हैं, सम्पूर्ण जगत् का संहार करने वाले जो रुद्रस्वरूप हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ । ओं वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय .... मनोन्मनाय नमः ।। यह वामदेव मन्त्र है । इसका अर्थ है कि- हे भगवान् शिव ! आपही वामदेव हैं, आपको नमस्कार है, आपही ज्येष्ठ हैं आपको नमस्कार है, आप ही श्रेष्ठ हैं आपको नमस्कार है । रुद्रस्वरूप आपको नमस्कार है, कालस्वरूप आपको नमस्कार है, कालविकरण स्वरूप आपको नमस्कार है बलविकरण स्वरूप आपको नमस्कार है, बल स्वरूप आपको नमस्कार है, बलप्रमथन स्वरूप आपको नमस्कार है, सर्वभूतदमनस्वरूप आपको नमस्कार है सर्वभूतदमनस्वरूप आपको नमस्कार है तथा मनोन्मन स्वरूप आपको मेरा नमस्कार है । (ओं) सद्योजातम् .... भवोदभवाय नमः ।' यह सद्योजातमन्त्र है । इसका अर्थ है कि- मैं सद्योजात के शरण में जाता हूँ । सद्योजात को मेरा नमस्कार है । मैं किसी भी जन्म अथवा जगत् में किसी से पराजित न होऊँ । आप भवोद्भव को मेरा नमस्कार है ।। २३ ।। अब मैं पञ्च ब्रह्म के अङ्ग षट्क का वर्णन कर रहा हूँ जो भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाला है ।। २४ ।। (ओं) नमः परमात्मने पराय ....नमोऽस्तु ते (स्वाहा)। यह हृदयमन्त्र है । इसका अर्थ है कि- 'परंब्रह्म परमात्मस्वरूप, कामनाओं को पूर्ण करने वाले, योगस्वरूप, परमेश्वर, योग से उद्भूत होने वाले, सब कुछ प्रदान करने वाले, भगवान् शंकर को नमस्कार है । हे जगत् स्वरूप भवोद्भव, समस्त कार्यों को करने वाले, पापों को विनष्ट करने वाले, सदाशिव, सदा प्रसन्न रहने वाले भगवन् । आप मेरे अभिलषित अर्थ को सद्यः सम्पन्न करें आपको मेरा नमस्कार है ।। २५ ।। यह सत्तर अक्षरों वाला हृदयमन्त्र है । यह सम्पूर्ण अर्थों को प्रदान करने वाला है ।। २५ ।। षडङ्गन्यास बतलाया जा रहा है । 'ओं शिवाय नम शिरसे स्वाहा । यह शिरोमन्त्र है । ओं शिवहृदये ज्वालिनी स्वाहा शिखायै वषट् । यह शिखामन्त्र है ।।२७।। ओं शिवात्मक ! महातेजः ! सर्वज्ञ ! प्रभो ! संवर्तय महाघोर ! कवचपिङ्गल, आयाहि पिङ्गल ! नमो महाकवच ! शिवाज्ञया हृदयं बन्ध बन्ध घूर्णय घूर्णय, चूर्णय चूर्णय, सूक्ष्म, सूक्ष्मवज्रधर ! वज्रपाश! धनुर्वज्राशनि, वज्रशरीर, मच्छरीरमनु प्रविश्य, सर्वदुष्टान् स्तम्भय स्तद्यम्भय हुम् ।। २८ ।। (कवचाय हुम्) यह एक सौ पाँच अक्षरों का कवच मन्त्र है ।। २९ ।। ओं ओजसे नेत्रत्रयाय वौषट् ।

बन्ध घातय घातय हूँ फट् । अघोरास्त्रम् ॥ ३० ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये षड्ङ्गान्यघोरास्त्रकथनं नाम त्रयोविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२३ ॥

चर्तुर्विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

रुद्रशान्तिः

ईश्वर उवाच– शिवशान्तिं प्रवक्ष्यामि कल्पाघोरप्रपूर्वकम् । सप्तकोट्यधिपोऽघोरो ब्रह्महत्याद्यघार्दनः ॥ १ ॥ उत्तमाधमसिद्धीनामालयोऽखिलरोगनुत्। दिव्यान्तरीक्षभौमानामुत्पातानां विमर्दनः ॥ २ ॥ विषग्रहपिशाचानां ग्रसनः सर्वकामकृत् । प्रायश्चित्तमघौघार्त्तौ दौर्भाग्यार्त्ति विनाशनम् ॥ ३ ॥ एकवीरन्तु विन्यस्य ध्येयः पञ्चमुखः सदा । शान्तिके पौष्टिके शुक्लो रक्तो वश्येऽथ पीतकः ॥ ४ ॥ स्तम्भने धूम्र उच्चाटमारणे कृष्णवर्णकः । कर्षणः कपिलो मोहे द्वात्रिंशद्वर्णमर्चयेत् । त्रिंशल्लक्षं जपेन् मन्त्रं होमं कुर्य्याद् दशांशतः । गुग्गुलघृतयुक्तेन सिद्धोऽसिद्धोऽथ सर्वकृत् ॥ ६ ॥ अघोरान्नापरो मन्त्रो विद्यते भुक्तिमुक्तिकृत्। अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी अस्नातः स्नातको भवेत् ॥ ७॥ अघोरास्त्रमघोरन्तु द्वाविमौ मन्त्रराजकौ । जपहोमार्चनाद् युद्धे शत्रुसैन्यं विमर्दयेत् ॥ ८ ॥ रुद्रशान्तिं प्रवक्ष्यामि शिवां सर्वार्थसाधनीम्। पुत्रार्थं ग्रहनाशार्थं विषव्याधिविनष्टये।।९।। दुर्भिक्षमारीशान्त्यर्थे

यह नेत्रत्रय मन्त्र है । इसके पश्चात् निम्नांकित मन्त्र पढ़कर अस्त्रन्यास करना चाहिए । 'ओं ह्रीं स्फुर-स्फुर घोरघोरस्तनुरूप चट-चट, प्रचट-प्रचट, कह-कह, वम-वम, बन्ध-बन्ध, घातय-घातय हुं फट् ।' यह बावन अक्षरों का अघोरास्त्र है ।। ३० ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का षड्ङ्ग पूर्वक अघोरास्त्र वर्णन नामक तीन सौ तेईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३२३ ॥

भगवान् शंकर ने कहा– अब मैं कल्पाघोर शिवशान्ति का वर्णन कर रहा हूँ । भगवान् अघोर शिव सात करोड़ गणों के अधिप हैं । वे ब्रह्महत्या आदि पापों का विनाश करने वाले हैं ।।१।। वे उत्तम तथा अधम सभी प्रकार की सिद्धियों के आश्रय हैं तथा सभी प्रकार के रोगों को दूर करने वाले हैं । वे दिव्य, अन्तरिक्षजन्य तथा पृथिवी के समस्त उत्पातों को विनष्ट करने वाले हैं ।। २।। वे ग्रह विष, ग्रह तथा पिशाचों को भी अपना ग्रास बनाने वाले हैं तथा साधक की सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं । पापसमूह को पीड़ा देकर भगाने के लिए वे प्रबल प्रायश्चित स्वरूप हैं एवं दुर्भाग्य तथा दुःख का विनाश करने वाले हैं ।। ३ ।। एकवीर का विशेष रूप से न्यास करके सदा पञ्चमुख शिव का ध्यान करना चाहिए । शान्ति तथा पुष्टि कर्म में भगवान् शिव के शुक्ल वर्ण का ध्यान करना चाहिए । वशीकरण में उनके रक्तवर्ण का ध्यान करना चाहिए । उच्चाटन तथा मारण कर्म में उनके धूम्र वर्ण का ध्यान करना चाहिए । आकर्षण कर्म में उनके कृष्ण वर्ण का ध्यान करना चाहिए । मोहन कर्म में भगवान् शिव के कपिल वर्ण का चिन्तन करना चाहिए । (अघोर शिव मन्त्र बत्तीस अक्षरों का है । वे बत्तीस अक्षर वेदोक्त शिव के स्वरूप हैं ।) अत बत्तीस अक्षर स्वरूप शिव की पूजा करनी चाहिए ।। ४-५ ।। साधक को चाहिए कि इस मन्त्र का तीस लाख जप करके उसके दशांश हवन करे । यह होम गुग्गुल तथा घी से करना चाहिए । ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है और समस्त कार्यों को कर देता है ।। ६ ।। अघोर से बढ़कर कोई दूसरा मन्त्र नहीं है जो भोग एवं मोक्ष को प्रदान करे । इस मन्त्र का जप करने से अब्रह्मचारी भी ब्रह्मचारी हो जाता है तथा अस्नातक भी स्नातक हो जाता है ।। ७ ।। अघोरस्त्र तथा अघोरमन्त्र ये दोनों मन्त्रराज हैं । इसका जप, होम तथा अर्चन करने से युद्ध में शत्रु की सेना का विनाश हो जाता है।।८।।

दुःस्वप्नहरणाय च । बलादिराज्यप्राप्त्यर्थं रिपूणां नाशनाय च॥ १०॥ अकालफलिते वृक्षे सर्वग्रहविमर्दने । पूजने तु नमस्कारः स्वाहान्तो हवने तथा ॥ ११ ॥ आप्यायने वषट्कारं पुष्टौ वौषट्नियोजयेत् । चकारद्वितयस्थाने जातियोगन्तु कारयेत्॥ १२॥ ओं रुद्राय च ते ओं वृषभाय नमोऽविमुक्ताय असम्भवाय पुरुषाय च पूज्यायेशानाय पौरुषाय पञ्च चोत्तरे विश्वरूपाय करालाय विकृतरूपाय अविकृतरूपाय ॥ १३ ॥ नियति चोत्तरे काल अप्सु माया च नैर्ऋते॥१४॥ एकपिङ्गलाय श्वेतपिङ्गलाय कृष्णपिङ्गलाय नमः । मधुपिङ्गलाय नमः मधुपिङ्गलाय नियतौ ॥ १५ ॥ अनन्ताय आर्द्राय शुष्काय पयोगणाय । कालतत्त्वे ॥ १६ ॥ करालाय विकरालाय । द्वौ मायातत्त्वे ॥ १७ ॥ सहस्त्रशीर्षाय सहस्त्रवक्त्राय सहस्त्रकरचरणाय सहस्त्रलिङ्गाय। विद्यातत्त्वे । सहस्त्राक्षाद्विन्यसेद् दक्षिणे दले ॥ १८ ॥ एकजटाय द्विजटाय त्रिजटाय स्वाहाकाराय स्वधाकाराय वषट्काराय षड् रुद्राय ॥१९॥ ईशतत्त्वे तु वह्निपत्रे स्थिता गुह। भूतपतये पशुपतये उमापतये कालाधिपतये॥२०॥ सदाशिवाध्यक्ष्यतत्त्वे षट् पूज्याः पूर्वदले स्थिताः। उमायैकुरूपधारिणि ओं कुरु कुरु रुहिणि रुहिणि रुद्रोऽसि देवानां देवदेव विशाख ! हन हन दह दह पच पच मथ मथ तुरु तुरु अरु अरु सुरु सुरु रुद्र शान्तिमनुस्मर कृष्णपिङ्गल ! अकालपिशाचाधिपतिविश्वेश्वराय नमः ॥ २१ ॥ शिवतत्त्वे कर्णिकायां पूज्यौ ह्युमामहेश्वरौ। ओं व्योमव्यापिने व्योमरूपाय सर्वव्यापिने शिवाय अनन्ताय नाथाय अनाश्रिताय शिवाय॥२२॥ शिवतत्त्वे नव पदानि व्योमव्याप्यभिधास्महि॥२३॥

जाता है ।। ८ ।। मैं कल्याण करने वाली तथा समस्त प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली रुद्रशान्ति को बतला रहा हूँ । पुत्र की प्राप्ति के लिए ग्रहों की बाधा के निवारण के लिए, विष तथा व्याधि के विनाश के लिए ।। ९ ।। दुर्भिक्ष तथा महामारी की शान्ति के लिए, दुःस्वप्नों का निवारण करने के लिए, बाल आदि तथा राज्य की प्राप्ति के लिए तथा शत्रुओं के संहार के लिए ।। १० ।। विना समय के ही वृक्ष में फल आ जाने पर तथा समस्त ग्रहों के दोषों को दूर करने के लिए रुद्रशान्ति करना चाहिए । पूजन के समय मन्त्र के अन्त में नमः पद का प्रयोग करना चाहिए और हवन में स्वाहा पद का ।। १० ।। आप्यायन कर्म (तृप्ति के कार्य) में मन्त्र के अन्त में वषट् शब्द का प्रयोग करना चाहिए और पुष्टिमार्ग में वौषट् पद का । मन्त्र में जो दो जगह चकार का प्रयोग किया गया है, वहाँ पर आवश्यकता के अनुसार नमः तथा स्वाहा जाति के पदों का प्रयोग करना चाहिए ।। १२ ।। 'ओं रुद्राय च ते ओं वृषभाय नमोऽविमुक्ताय असम्भवाय पुरुषाय च पूज्यायेशानाय पौरुषाय विकृतरूपाय ।' यह रुद्रशान्ति का मन्त्र है ।। १३ ।। उत्तरवर्ती कमल दल में नियति तत्त्व की स्थिति है पश्चिम दिशा के कमल दल में काल तत्त्व विद्यमान है । नैर्ऋत्यकोणवर्ती कमल दल में माया तत्त्व विद्यमान है । एकपिङ्गलाय श्वेतपिङ्गलाय, कृष्णपिङ्गलाय नमः, मधुपिङ्गलाय नमः मधुपिङ्गलाय । इन सबों की पूजा नियति तत्त्व में होती है ।। १५ ।। अनन्ताय आर्द्राय शुष्काय पयोगणाय नमः इन सबों की पूजा कालतत्त्व में होती है ।। १६ ।। करालाय विकरालाय नमः । इन दोनों की पूजा माया तत्त्व में होती है ।। १६ ।। सहशीर्षाय सहस्त्रवक्त्राय सहस्त्रकरचरणाय सहस्त्रलिङ्गाय (नमः) इन सबों की पूजा विद्यातत्त्व में करनी चाहिए । इनका विन्यास इन्द्र से दक्षिण दिशा के दल में करनी चाहिए ।। १८ ।। वहीं छह पदों से युक्त षड्विध रुद्र का पूजन इन मन्त्रों से करे- एकजटाय (नमः) द्विजटाय (नमः) त्रिजटाय (नमः) स्वाहाकाराय (नमः) स्वधाकाराय (नमः) वषट्काराय (नमः) हे स्कन्द अग्निकोण के दल में ईशतत्त्व विद्यमान हैं । उसी में इन मन्त्रों से भूतपति आदि की पूजा करनी चाहिए । 'भूतपतये (नमः) पशुपतये (नमः) उमापतये (नमः) कालाधिपतये (नमः) ।। २० ।। पूर्ववर्ती दल सदाशिवाध्यक्ष तत्त्व में छह पूजनीयों की स्थिति है । उन सबों का नामोल्लेख निम्नांकित मंत्र में किया गया है । उमावै कुरूपधारिणि ओं कुरु-कुरु रुहिणि-रुहिणि रुद्रोसि देवानां देवदेव विशाख हन हन, दह-दह, पच-पच, मथ-मथ, तुरु-तुरु अरु-अरु, सुरु-सुरु, रुद्रशान्तिमनुस्मर, कृष्णपिङ्गल अकालपिशाचाधिपति विश्वेश्वराय नमः ।। २१ ।। कमल की कर्णिका में शिवतत्त्व की स्थिति है । उसमें उमा एवं महेश्वर की पूजा करनी चाहिए । इनके पूजन का मन्त्र इस प्रकार है- ओं व्योमव्यापिने व्योमरूपाय सर्वव्यापिने शिवायानन्ताय नाथाय अनाश्रिताय शिवाय (नमः) ।। २२ ।। इस मन्त्र में नौ पद हैं । शिवतत्त्व में व्योमव्यापी नाम वाले शिव के नौ पदों का पूजन करना चाहिये ।। २३ ।। योगपीठ पर विराजमान शिव का नौ पदों से युक्त नाम बोलकर निम्नांकित मन्त्र से पूजन करना चाहिए । शाश्वताय योगपीठ संस्थिताय नित्य योगिने ध्यानाहराय नमः। ओं नमः

शाश्वताय योगपीठसंस्थिताय नित्यं योगिने ध्यानहारय नमः । ओं नमः शिवाय सर्वप्रभवे शिवाय ईशानमूर्धाय तत्पुरुषादिपञ्चवक्त्राय । नवपदं पूर्वदले सदाख्ये पूजयेद् गुह॥२४॥ अघोरहृदयाय वामदेवगुह्याय सद्योजातमूर्त्तये । ओं नमो नमः । गुह्यातिगुह्याय गोप्त्रे अनिधनाय सर्वयोगाधिकृताय ज्योतीरूपाय ॥ २५॥ अग्निपत्रे होमतत्त्वे विद्यातत्त्वे द्वे याम्यगे व्यापिन् रूपिन् परमेश्वराय चेतनाचेतन व्योमेन मथ तेजस्तेजः ॥ २६ ॥ मायातत्त्वे नैर्ऋते कालतत्वेऽथ वारुणे । ओं धृ धृ ना ना वां वां अनिधान ! निधनोद्भव ! शिव ! सर्वपरमात्मन् ! महादेव ! सद्भावेश्वर ! महातेज ! योगाधिपते! मुञ्च मुञ्च प्रमथ प्रमथ ओं सर्व ! सर्व ! ओं भव ! भव ! ओं भवोद्भव ! । सर्वभूतसुखप्रद ॥ २७ ॥ वायुपत्रेऽथ नियतौ पुरुषे चोत्तरेण च । सर्वसान्निध्यकर ! ब्रह्मविष्णुरुद्रपर ! अनर्चित ! अस्तुतस्तुत साक्षिन् ! साक्षिन् ! तुरु तुरु पतङ्ग ! पिङ्ग ! पिङ्ग ! ज्ञान ! ज्ञान ! शब्द ! शब्द! सूक्ष्म ! सूक्ष्म ! शिव! शिव ! सर्वप्रद ! सर्वप्रद ! ओं नमः शिवाय ओं नमो नमःशिवाय ओं नमो नमः ॥ २८ ॥ ईशाने प्राकृते तत्त्वे पूजयेज्जुहुयाज्जपेत् । ग्रहरोगादिमायार्त्ति शमनी सर्वसिद्धिकृत् ॥ २९ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रुद्रशान्तिकथनं नाम चतुर्विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२४ ॥

पञ्चविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अंशुकादिः

ईश्वर उवाच– **रुद्राक्षकटकं धार्य्यं विषमं सुसमं दृढ़म् । एकत्रिपञ्चवदनं यथालाभन्तु धारयेत् ॥ १ ॥ द्विचतुःषणमुखं शस्तमव्रणं तीव्रकण्ठकम्। दक्षबाहौ शिखादौ च धारयेच्चतुराननम्॥ २॥ अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी अस्नातः स्नातको भवेत् । हैमी वा मुद्रिका धार्य्या शिवमन्त्रेण चार्च्य तु ॥३॥**

शिवाय सर्वप्रभवे शिवाय ईशानभूधाय तत्पुरुषादि पञ्चवक्त्राय ।' हे स्कन्द उसके पश्चात् सद् संज्ञक पूर्वदल में नव पदों से युक्त शिव का पूजन करें ।। २४ ।। पूजन का मन्त्र इस प्रकार है- अघोरहृदयाय वामदेवगुह्याय सद्योजातमूर्त्तये । ओं नमो नमः । गुह्यातिगुह्याय गोप्त्रे अनिधनाय सर्वयोगाधिकृताय ज्योतीरूपाय ।। २५ ।। अग्निकोण में स्थित ईशतत्त्व में तथा दक्षिणदिशा में विद्यमान विद्यातत्त्व में निम्नांकित मन्त्र से परमेश्वर शिव की अर्चना करें । परमेश्वराय चेतनाचेतन व्यामन् व्यापिन् रूपिन् प्रमथतेजस्तेजः ।। २६ ।। नैऋत्यकोण में विद्यमान माया तत्त्व तथा पश्चिम दिशा में स्थित कालतत्त्व में निम्नांकित मन्त्र द्वारा पूजन करना चाहिए । 'ओं धृ धृ वां वां अनिधान् निधनोद्भव ! शिव ! सर्वपरमात्मन् । महादेव ! सद्भावेश्वर ! महातेज ! योगाधिपते ! मुञ्च-मुञ्च प्रमथ प्रमथ ओं सर्व ! सर्व ! ओं भव ! भव ! ओं भवोद्भव ! सर्वभूतसुखप्रद ।। २७ ।। वायव्यकोण तथा उत्तरदिशा में स्थित नियति तथा पुरुष इन दोनों तत्त्वों में इस मन्त्र से पूजा करनी चाहिए- 'सर्वसान्निध्यकर! ब्रह्मविष्णुरुद्रपर ! अनर्चितअस्तुतस्तुत ! साक्षिन् ! तुरु तुरु पतङ्ग ! पतङ्ग पिङ्ग पिङ्ग ! ज्ञान ! ज्ञान ! शब्द ! शब्द ! सूक्ष्म ! सक्ष्म ! शिव ! शिव ! सर्वप्रद ! सर्वप्रद ! ओं नमः शिवाय। ओं नमो नमः ।। २८ ।। ईशानकोणवर्ती प्राकृत तत्त्व में भी उपर्युक्त मन्त्र के 'शब्द ! शब्द ! से लेकर नमो नमः। पर्यन्त मन्त्र से पूजन, जप तथा होम करना चाहिए । यह रुद्रशान्ति ग्रह, रोग तथा त्रिविध पीड़ा को दूर करके सभी प्रकार की सिद्धि प्रदान करती है ।। २८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का रुद्रशान्ति वर्णन नामक तीन सौ चौबीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३२४ ॥

भगवान् शंकर ने कहा– स्कन्द ! साधक को चाहिए कि वह रुद्राक्ष का कड़ा धारण करे । कड़े के मनकों की संख्या विषम होनी चाहिए । मनके सम तथा सुदृढ़ हों । रुद्राक्ष एकमुख

शिवः शिखा तथा ज्योतिः सावित्रश्चेतिगोचराः । गोचरन्तु कुलं ज्ञेयं तेन लक्ष्यस्तु दीक्षितः ॥ ४ ॥ प्राजापत्यो महीपालः कपोतो ग्रन्थिकः शिवे । कुटिलाश्चैव वेतालाः पद्महंसाः शिखाकुले ॥ ५ ॥ धृतराष्ट्रा वकाः काका गोपाला ज्योतिसंज्ञके । कुटिका सारङ्गाश्चैव गुटिका दण्डिनोऽपरे ॥ ६॥ सावित्री गोचरे चैवमेकैकस्तु चतुर्विधः । सिद्धाद्यंशकमाख्यास्ये येन मन्त्र; सुसिद्धिदः॥ ७॥ भूमौ तु मातृका लेख्याः कूटयन्त्राववर्जिताः । मन्त्राक्षराणि विशिलष्य अनुस्वारं नयेत् पृथक् ॥ ८ ॥ साधकस्य तु या संज्ञा तस्या विश्लेषणं चरेत् । मन्त्रस्याऽऽदौ तथा चान्ते साधकार्णानि योजयेत् ॥ ९ ॥ सिद्धः साध्यः सुसिद्धोऽरिः संज्ञातो गणयेत् क्रमात् । मन्त्रस्यादौ तथा चान्ते सिद्धिदः स्याच्छतांशतः ॥ १० ॥ सिद्धादिश्चान्तसिद्धिश्च तत्क्षणादेव सिद्ध्यति । सुसिद्धादिः सुसिद्धान्तः सिद्धवत् परिकल्पयेत् ॥ ११ ॥ अरिमादौ तथान्ते च दूरतः परिवर्जयेत् । सिद्धः सुसिद्धश्चैकार्थे अरिः साध्यस्तथैव च॥ १२॥ आदौ सिद्धः स्थितो मन्त्रो तदन्ते तद्वदेव हि । मध्ये रिपुसहस्त्राणि न दोषाय भवन्ति हि ॥ १३ ॥ मायाप्रसादप्रणवेनाशंकः ख्यातमन्त्रके । ब्रह्मांशको ब्रह्मविद्या विष्णवंशो वैष्णवः स्मृतः॥ १४॥ रुद्रांशको भवेद् वीर इन्द्रांशश्चेश्वरप्रियः । नागांशो नागस्तब्धाक्षो यक्षांशो भूषणप्रियः॥ १५॥ गन्धर्वांशोऽतिगीतादि भीमांशो राक्षसांशकः । दैत्यांशः स्याद् युद्धकार्य्यो मानी विद्याधरांशकः ॥ १६ ॥ पिशाचांशो मलकाक्रान्तो मन्त्रं दद्यान्निरीक्ष्य च । मन्त्र एकात् फडन्तः स्यात् विद्यापञ्चाशतावधि ॥ १७ ॥ बाला विंशाक्षरान्ता च रुद्रा द्वाविंशगायुधा । तत

या त्रिमुख जैसा भी मिल जाय धारण करें । दो, चार तथा छह मुख वाले रुद्राक्ष प्रशस्त माने गए हैं । उन्हें व्रणरहित तथा तीक्ष्ण कण्टक होना चाहिए । दाहिनी भुजा तथा शिखा में चतुर्मुख रुद्राक्ष धारण करना चाहिए ।। २ ।। इसके धारण करने से अब्रह्मचारी भी ब्रह्मचारी हो जाता है और अस्नातक भी स्नातक हो जाता है । अथवा शिवमन्त्र से पूजन करके सोने की अंगूठी धारण करना चाहिए।।३।। शिव, शिखा, ज्योति तथा सावित्र ये चार गोचर हैं । गोचर का अर्थ कुल समझना चाहिए । उसी से दीक्षित पुरुष को लक्ष्य करना चाहिए ।। ४ ।। प्राजापत्य, महीपाल, कपोत तथा ग्रन्थिक ये चार शिवकुल में गिने जाते हैं । कुटिल, वेताल पद्महंस तथा हंस ये तीन शिखाकुल में माने जाते हैं । धृतराष्ट्र, वक, काक तथा गोपल ये चार ज्योति नामक कुल में परिगणित होते हैं । कुटिक, सारङ्ग, गुटिक तथा दण्डी ये चार ।। ६ ।।सावित्र कुल में माने जाते हैं । इस प्रकार एक-एक कुल के चार-चार भेद होते हैं । अब मैं सिद्ध अंशों की व्याख्या करता हूँ, जिससे मन्त्र सुसिद्धि को प्रदान करने वाला होता है ।। ७ ।। पृथिवी पर कूटयन्त्रों से रहित मातृकाओं को लिखना चाहिए । मन्त्रों के अक्षरों को अलग-अलग करके अनुस्वार को अलग करना चाहिए ।। ८ ।। साधक के भी नाम के अक्षरों को अलग-अलग करना चाहिए ।। ८ ।। साधक के भी नाम के अक्षरों को अलग-अलग करना चाहिए । मन्त्र के आदि तथा अन्त में साधक के नाम के अक्षरों को जोड़ देना चाहिए ।।९।। इसके पश्चात् सिद्ध, साध्य सुसिद्ध तथाअरि इन संज्ञाओं के अनुसार अक्षरों को क्रमशः गिने मन्त्र के आदि तथा अन्त में सिद्ध हो तो वह मन्त्र शत-प्रतिशत सिद्धि प्रदान करने वाला होता है ।। १० ।। यदि आदि तथा अन्त दोनों में सिद्ध अक्षर हों तो वह मन्त्र तत्काल सिद्धि प्रदान करता है । यदि मन्त्र के आदि तथा अन्त दोनों में सुसिद्ध अक्षर आयें तो उस मन्त्र को सिद्ध के ही समान मान लेना चाहिए । अर्थात् यह मन्त्र अनायास ही सिद्ध हो जायेगा यह मान लेना चाहिए ।। ११ ।। जिस प्रकार मन्त्र के आदि तथा अन्त में अरिसंज्ञक वर्ण आ जाये तो उस मन्त्र का परित्याग कर देना चाहिए। सिद्ध एवं सुसिद्ध मन्त्र एक समान होते हैं तथा साध्य एवं अरि मन्त्र प्रायः एक समान होते हैं ।। १२ ।। यदि मन्त्र के आदि और अन्त में सिद्ध अक्षर हों और मध्य में सहस्त्रों रिपु संज्ञक वर्ण हों तो भी वे दोषकारक नहीं होते हैं ।। १३ ।। मायाबीज, प्रसादबीज एवं प्रणव के संयोग से प्रख्यात मन्त्र में अशंक होते हैं । वे क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र के अंश हैं । ब्रह्मा के अंश वालों में मंत्र ब्रह्मविद्या तथा विष्णु का अंश वैष्णव कहलाता है ।। १४ ।। रुद्रांश का मन्त्र वीर कहलाता है, इन्द्रांशक मन्त्र ईश्वरप्रिय होता है । नागांशक मन्त्र नागों के समान स्तब्ध नेत्र वाला माना जाता है । यक्ष के अंश वाला मन्त्र भूषणप्रिय होता है ।। १५ ।। गन्धर्वांश मन्त्र गन्धर्वों के ही समान अत्यन्त गीत आदि को चाहता है, भीमांश राक्षसांश तथा दैत्यांश मन्त्र युद्ध करने वाले होते हैं । विद्याधरांशक मंत्र अभिमानी होता है ।। १६ ।। पिशाचांश मन्त्र मलाक्रान्त होता है । मन्त्र का अच्छी तरह से निरीक्षण करके ही उपदेश देना चाहिए । एक से लेकर अनेक

ऊर्ध्वन्तु ये मन्त्रा वृद्धा यावच्छतत्रयम्॥ १८॥ अकारादिहकारान्ताः क्रमात् पक्षौ सितासितौ । अनुस्वारविसर्गेण विना चैव स्वरा दश ॥ १९ ॥ ह्रस्वाः शुक्ला दीर्घाः श्यामास्तिथयः प्रतिपन्मुखाः। उदिते शान्तिकादीनि भ्रमिते वश्यकादिकम् ॥ २० ॥ भ्रामिते सन्ध्ययो र्द्वेषोच्चाटने स्तम्भनेऽस्तकम्। इडावाहे शान्तिकाद्यं पिङ्गले कर्षणादिकम् ॥ २१॥ मारणोच्चाटनादीनि विषुवे पञ्चधा पृथक् । अधरस्य गृहे पृथ्वी ऊर्द्धो तेजोऽन्तरा द्रवः ॥ २२॥ रन्ध्रपार्श्वे बहिर्वायुः सर्वं व्याप्य महेश्वरः । स्तम्भनं पार्थिवे शान्तिर्जले वश्यादि तेजसे । वायौ स्याद् भ्रमणं शून्ये पुण्यं कालं समभ्यसेत् ॥ २३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये अंशुकादिकथनं नामपञ्चविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२५ ॥

षड्विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

गौर्य्यादिपूजा

ईश्वर उवाच– **सौभाग्यादेरुमापूजां वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदाम् । मन्त्रध्यानं मण्डलञ्च मुद्रां होमादिसाधनम् ॥ १ ॥ चित्रभानुं शिवं कालं महाशक्तिसमन्वितम्। इडाद्यं परतोहृत्य सदेवः सविकारणम्॥ २॥ द्वितीयं द्वारकान्तं गौरीप्रीतिपदान्वितम् । चतुर्थ्यन्तं प्रकर्त्तव्यं गौर्य्या वै मूलवाचकम्। ओं ह्रीं सः शौं गौर्य्यै नमः। तत्रार्णत्रितयेनैव जातियुक्तं षडङ्गकम् । आसनं प्रणवेनैव मूर्त्तिं वै हृदयेन तु ॥ ४ ॥ उहकञ्च तथा कालं शिवबीजं**

अक्षरों तक के मन्त्र के अन्त में यदि फट् शब्द जुड़ा हो तो उसे मन्त्र कहना चाहिए । पच्चास अक्षरों पर्यन्त के फट्कार रहित मन्त्र विद्या कहलाता है ।। १७ ।। बीस अक्षरों पर्यन्त की विद्या को बाला विद्या कहते हैं। बाइस अक्षरों तक के फट्कार रहित मन्त्र रुद्रा संज्ञक तथा युवा होते हैं । इससे ऊपर तीन सौ अक्षरों तक के जितने भी मन्त्र हैं वे वृद्धसंज्ञक होते हैं ।। १८ ।। मन्त्र में अकार से लेकर हकार तक के अक्षर होते हैं । मन्त्रों में क्रमशः शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष होते हैं । अनुस्वार एवं विसर्ग को छोड़कर दस स्वर होते हैं ।। १९ ।। ह्रस्वस्वर शुक्लपक्ष एवं दीर्घस्वर कृष्ण पक्ष होते हैं । प्रतिपद् आदि तिथियाँ भी ये ही हैं । सूर्योदय काल में शान्ति आदि कर्मों को करना चाहिए और भ्रमितकाल में वशीकरण आदि कर्मों को करना चाहिए ।। २० ।। भ्रमित एवं दोनों संध्याकाल में विद्वेषण तथा उच्चाटन सम्बन्धी कर्म करना चाहिए । सूर्यास्त काल में स्तम्भन कर्म करना चाहिए । इड़ा नाड़ी चलती हो तो शान्ति आदि कर्म करना चाहिए । यदि पिंगला नाड़ी चलती हो तो आकर्षण सम्बन्धी कर्म करना चाहिए ।। २१ ।। विषुव काल में जब दोनों नाड़ियाँ समान रूप से चलें तो मारण तथा उच्चाटन आदि पाँचों प्रकार के कर्मों को पृथक्-पृथक् करना चाहिए । तीन मजिले मकान के नीचे वाले तल को पृथिवी ऊपर वालें को तेज तथा बीच वाले को जल कहते हैं ।। २२ ।। जहाँ-जहाँ रन्ध्र हैं वहाँ-वहाँ बाह्य भाग में वायु तथा भीतरी भाग में आकाश हैं । पार्थिव भाग में स्तम्भन कर्म, जल भाग में शान्ति कर्म तथा तेजोभाग में वशीकरण आदि कर्मों को करना चाहिए । वायु में भ्रमण तथा शून्य (आकाश) में पुण्य का अभ्यास करना चाहिए ।। २३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अंशकादि वर्णन नामक तीन सौ पच्चीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३२५ ॥

भगवान् शंकर ने कहा– अब मैं सौभाग्य आदि को प्रदान करने वाली तथा भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली गौरी की पूजा का वर्णन करता हूँ । मैं उमा के मन्त्र, ध्यान, आवरणमण्डल मुद्रा तथा होमादि की विधि को भी बतला रहा हूँ ।। १ ।। यह मन्त्र चित्रभानु, शिव, काल तथा महाशक्ति से युक्त है । सत् विकार से युक्त इसका सर्वप्रथम उद्धार इड़ा से करना चाहिए ।। २ ।। दूसरा मन्त्र द्वाटक नामक वीज से युक्त तथा गौरी पद से युक्त है । गौरी देवी के मूल वाचक मन्त्र (गौरी) को चतुर्थ्यन्त बनाना चाहिये ।। ३ ।। इस तरह 'ओं ह्रीं सः शौं गौर्यै नमः ।' यह गौरी देवी का मूल मन्त्र बनता है । इस मन्त्र के तीन अक्षरों से ही नमः आदि पद जाति पदों को जोड़कर षडङ्ग न्यास करना चाहिए । प्रणव से आसन और हृदयमन्त्र से मूर्ति की कल्पना करनी चाहिए।।४।।

समुद्धरेत् । प्राणं दीर्घस्वराक्रान्तं षड़ङ्गं जातिसंयुतम् ॥ ५॥ आसनं प्रणवेनाऽत्र मूर्त्तिन्यासं हृदाचरेत् । यामलं कथितं वत्स ! एकवीरं वदाम्यथ॥६॥ व्यापकं सृष्टिसंयुक्तं वह्निमायाकृशानुभिः। शिवशक्तिमयं बीजं हृदयादिविवर्जितम् ॥ ७॥ गौरीं यजेद्धेमरूप्यां काष्ठजां शैलजादिकाम् । पञ्चपिण्डां तथाऽव्यक्तां कोणे मध्ये तु पञ्चमम् ॥ ८ ॥ ललिता शुभगा गौरी क्षोभणी चाग्नितः क्रमात् । वामा ज्येष्ठा क्रिया ज्ञाना वृत्ते पूर्वादितो यजेत् ॥ ९॥ सपीड़े वामभागे तु शिवस्याव्यक्तरूपकम्। व्यक्ता द्विनेत्रा त्र्यक्षर शुद्धा या शङ्करान्विता ॥ १० ॥ पीड़पद्मद्वयस्था द्विभुजा वा चतुर्भुजा । सिंहस्था वा वृकस्था वा अष्टाष्टदशसत्करा स्त्रगच्छसूत्रकलिका गलकोत्पलपिण्डिका । शरं धनुर्वा सव्येन पाणिनान्यतमं वहत्॥ १२॥ वामेन पुस्तताम्बूल दण्डाभयकमण्डलुम् । गणेशदर्पणेष्वासां दधदेकैकशः क्रमात् ॥ १३॥ व्यक्ताव्यक्ताऽथवा कार्य्या पद्ममुद्रा स्मृतासने । लिङ्गमुद्रा शिवस्योक्ता मुद्रा चावाहनी द्वयोः ॥ १४ ॥ शक्तिमुद्रा तु योन्याख्या चतुरस्त्रन्तु मण्डलम् । चतुरस्त्रं त्रिपत्राब्जं मध्यकोष्ठचतुष्टये॥ १५॥ त्र्यस्त्रोर्ध्वेचार्द्धचन्द्रस्तु द्विपदं द्विगुणं क्रमात् । द्विगुणं द्वारकण्ठन्तु द्विगुणादुपकण्ठतः॥ १६॥ द्वारत्रयं त्रयं दिक्षु अथवा भद्रके यजेत् । स्थण्डिले वाऽथ संस्थाप्य पञ्चगव्यामृतादिना॥१७॥ रक्तपुष्पाणि देयानि पूजयित्वा ह्युदङ्मुखः । शतं हुत्वाऽमृताज्यञ्च पूर्णादः सर्वसिद्धिभाक् ॥ १८ ॥ बलिं दत्त्वा कुमारीश्च तिस्त्रो वा चाष्ट भोजयेत्। नैवेद्यं शिवभक्तेषु दद्यान्न स्वयमाचरेत् ॥ १९ ॥ कन्यार्थी लभते कन्याम् अपुत्रः पुत्रमाप्नुयात् । दुर्भगा चैव सौभाग्यं राजा राज्यं जयं रणे ॥ २०॥

उहक (उ) काल बीज तथा शिवबीज का उद्धार करना चाहिए । दीर्घ स्वर से युक्त प्राण यां यी, यूं इत्यादि को जाति (नमः, स्वाहा इत्यादि) से युक्त करके षडङ्ग न्यास करना चाहिए ।। ५ ।। यहाँ पर प्रणव से आसन तथा हृदयमन्त्र से मूर्त्तिन्यास करना चाहिये । हे वत्स ! यहाँ तक मैंने यामल का उपदेश किया अब एकवीर मन्त्र को मैं बतला रहा हूँ ।। ६ ।। सृष्टिन्यास से युक्त व्यापक न्यास अग्नि, माया तथा कृशानु द्वारा करना चाहिए । शिवशक्तिमय बीज हृदयादि से विवर्जित है ।। ७ ।। सुवर्ण अथवा चाँदी, अथवा काष्ठ या पत्थर आदि से बनी हुई गौरी की मूर्ति की पूजा करनी चाहिए । अथवा पाँच पीण्डी वाली मिट्टी की प्रतिमा बनायें । चारों कोणों में अव्यक्त प्रतिमा स्थापित करें और बीच में पाँचवीं व्यक्त प्रतिमा स्थापित करे । अग्निकोण से प्रारम्भ करके क्रमशः चारों कोणों में ललिता, शुभगा, गौरी तथा क्षोभणी की पूजा करनी चाहिए । तथा पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः वामा, ज्येष्ठा, क्रिया तथा ज्ञाना नामक शक्तियों की पूजा करनी चाहिए ।। ९ ।। पीड़युक्त वामभाग में शिव के अव्यक्त रूप की पूजा करनी चाहिए । देवी का व्यक्त रूप दो या तीन नेत्रों वाला है । देवी का यह शुद्ध रूप भगवान् शंकर के साथ पूजित होता है ।। १० ।। देवी दो पीड़ों अथवा दो कमलों पर स्थित हीं । उनकी दो अथवा चार अथवा आठ अथवा अठारह भुजाएँ हैं । वे सिंह अथवा भेंड़िया पर सवार हैं ।। ११ ।। वे अपनी दायीं ओर की भुजाओं में स्त्रक्, अक्ष, सूत्र, (पाश), कलिक मुण्ड, कमल, पिण्डिका, बाण तथा धनुष् धारण करती हैं ।। १२ ।। वे अपनी बायीं ओर की भुजाओं में क्रमशः पुस्तक, ताम्बूल, दण्ड, अभयमुद्रा, कमण्डलु, गणेशजी, दर्पण तथा धनुष् धारण करती हैं ।। १३ ।। उनको व्यक्त अथवा अव्यक्त मुद्रा दिखानी चाहिए । आसन के लिए पद्ममुद्रा बतलायी गयी है । शिवजी के लिए लिङ्गमुद्रा बतलायी गयी है । आवाहनी मुद्रा दोनों के लिए बतलायी गयी है ।। १४ ।। शक्तिमुद्रा को ही योनिमुद्रा कहा गया है । इनका मण्डल चौकोर होता है । बीच के चार कोष्ठों में तीन दलों वाला चार हाथ का कमल बनाना चाहिए ।।१५।। तीन कोणों के ऊपरी भाग में अर्द्धचन्द्र रहना चाहिए । उसे दो पदों को मिलाकर बनाए । एक से दूसरा दो गुना होना चाहिए । द्वारों का कण्ठ भाग दो-दो पदों का होना चाहिए किन्तु उपकण्ठ उससे दो गुना होना चाहिए ।। १६ ।। एक एक दिशा में तीन-तीन द्वार होना चाहिए अथवा भद्रमण्डल बनाकर उस पर पूजन करना चाहिए । अथवा किसी वेदी पर स्थापना करके देवता की पूजा पञ्चगव्य तथा पञ्चामृत आदि से करना चाहिए ।। १७ ।। पूजन करने के पश्चात् पूर्वाभिमुख होकर रक्तवर्ण का पुष्प अर्पित करना चाहिए । घी की सौ आहुति देकर पूर्णाहुति प्रदान करने वाला साधक समस्त सिद्धियों का भागी होता है ।। १८ ।। बलि प्रदान करके तीन अथवा आठ कुमारियों को भोजन कराना चाहिए । भगवान् शंकर के भक्तों में नैवेद्य वितरण करना चाहिए, स्वयं ही नहीं खाना चाहिए।।१९।। ऐसा करने वाला कन्या चाहने वाला कन्या प्राप्त करता है, पुत्रहीन पुत्र प्राप्त करता है, दुर्भगा स्त्री सौभाग्य प्राप्त करती है तथा राजा राज्य प्राप्त करता है एवं रण में विजय प्राप्त करता है।। २०।।

अष्टलक्षैश्च वाक्सिद्धिर्देवाद्या वशमाप्नुयुः । न निवेद्य च चास्नीयाद् वामहस्तेन चार्चयेत्॥२१॥ अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां तृतीयायां विशेषतः । मृत्युञ्जयार्चनं वक्ष्ये पूजयेत् कलशोदरे ॥ २२ ॥ हूयमानञ्च प्रणवो मूर्त्तिरोजस ईदृशम् । मूलञ्च वौषडन्तेन कुम्भमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ २३ ॥ होमयेत् क्षीरदूर्वाज्यममृताञ्च पुनर्नवाम् । पायसञ्च पुरोडाशमयुतन्तु जपेन् मनुम् ॥ २४॥ चतुर्मुखं चतुर्बाहुं द्वाभ्याञ्च कलशं दधत्। वरदाभयकं द्वाभ्यां स्नायाद् वै कुम्भमुद्रया॥ २५॥ आरोग्यैश्वर्य्यदीर्घायुरौषधं मन्त्रितं शुभम् । अपमृत्युहरो ध्यातः पूजितोऽद्भुत एव सः॥ २६ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गौर्य्यादिपूजाकथनं नाम षड्विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२६ ॥

सप्तविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

देवालयमाहात्म्यम्

ईश्वर उवाच– **व्रतेश्वरांश्च सत्यादीनिष्ट्वा व्रतसमर्पणम् । अरिष्टशमने शस्तमरिष्टं सूत्रनायकम् ॥ १॥ हेमरत्नमयं भूत्यै महाशङ्खञ्च मारणे । आप्यायने शङ्खसूत्रं मौक्तिकं पुत्रवर्द्धनम् ॥ २ ॥ स्फाटिकं भूतिदं कौशं मुक्तिदं रुद्रनेत्रजम् । धात्रीफलप्रमाणेन रुद्राक्षं चोत्तमं ततः ॥ ३॥ समेरुं मेरुहीनं वा सूत्रं जप्यन्तु मानसम् । अनामाङ्गुष्ठमाक्रम्य जपं भाष्यन्तु कारयेत्॥ ४॥ तर्जन्यङ्गुष्ठमाक्रम्य न मेरुं लङ्घयेज्जपे । प्रमादात् पतिते सूत्रे जप्तव्यन्तु शतद्वयम्॥ ५॥ सर्ववाद्यमयी घण्टा तस्या वादनमर्थकृत् । गोशकृन्मूत्रवल्मीकमृत्तिकाभस्मवारिभिः ॥ ६॥ वेश्मायतनलिङ्गादेः कार्य्यमेवं**

गौरी मन्त्र का आठ लाख जप करने से वाक्सिद्धि होती है, देवता आदि उसके वश में हो जाते हैं । देवी को निवेदित किए विना साधक को भोजन नहीं करना चाहिए, उसे बायें हाथ से भी पूजन नहीं करना चाहिए ।। २१ ।। अष्टमी चतुर्दशी और तृतीया को विशेष रूप से पूजा करनी चाहिए ।। २१ ।। अब मैं मृत्युञ्जय की पूजा विधि बतलाता हूँ । उनकी पूजा कलश में करनी चाहिए ।।२२।। हवन में प्रणव मृत्युञ्जय की मूर्त्ति है । ओं जूं सः यह मूलमन्त्र है । ओं जूं सः वौषट् कहकर मृत्युञ्जय को कुम्भमुद्रा प्रदर्शित करना चाहिए ।। २३ ।। दूध, दूर्वा, घी, गुडूची, पुनर्नवा (गदहपूर्ना) खीर तथा पुरोडाश का होम करना चाहिए । दस हजार मूल मन्त्र का जप करना चाहिए ।। २४ ।। भगवान् मृत्युञ्जय के चार मुख तथा चार भुजायें हैं । वे अपने दो हाथों में कमल लिए हैं और दो भुजाएँ वरदमुद्रा तथा अभयमुद्रा से सुशोभित हैं । उन्हें कुम्भमुद्रा से स्नान कराना चाहिए ।। २५ ।। इससे साधक को आरोग्य, ऐश्वर्य तथा दीर्घायु की प्राप्ति होती है । इस मन्त्र से अभिमन्त्रित औषध शुभ होता है । भगवान् मृत्युञ्जय का ध्यान करने से अपमृत्यु दूर होती है । पूजा करने के लिए वे अद्भुत देव हैं ।। २६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का गौरी आदि के पूजन वर्णन नामक तीन सौ छब्बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३२६ ॥

भगवान् शंकर ने कहा– साधक को चाहिए कि वह व्रतेश्वर तथा सत्य आदि की पूजा करके उन्हें व्रत समर्पित करे । अरिष्ट की शान्ति के लिए अरिष्टमूल की माला उत्तम होती है ।।१ ।। लक्ष्मी प्राप्ति के लिए सुवर्ण तथा रत्न की माला उत्तम होती है । मारण कर्म में महाशंख की माला अच्छी होती है । तृप्ति कर्म में शंख की माला होनी चाहिए तथा मोती की माला पुत्रों की वृद्धि करने वाली होती है ।। २ ।। स्फटिक की माला ऐश्वर्य एवं कोष प्रदान करने वाली होती है । रुद्राक्ष की माला मोक्षप्रद होती है । आँवले के फल के समान रुद्राक्ष की माला उत्तम होती है ।। ३ ।। मानसिक जप सुमेरु युक्त अथवा सुमेरु रहित माला से किया जा सकता है । जप के समय अनामिका तथा अंगुष्ठ से मनका सरकाना चाहिए । उपांशु जप तर्जनी एवं अंगुष्ठ से करना चाहिए । जप में सुमेरु को कभी लांघना नहीं चाहिए । प्रमादवश यदि माला गिर जाय तो दो सौ अधिक जप करना चाहिए ।। ४-५ ।। घण्टा में सभी वाद्यों का समाहार होता है, अतएव उसको बजाना प्रयोजन की सिद्धि

विशोधनम्। स्कन्दो नमः शिवायेति मन्त्रः सर्वार्थासाधकः॥ ७॥ गीतः पञ्चाक्षरो वेदे लोके गीतः षडक्षरः । ओमित्यन्ते स्थितःशम्भुर्मुद्रार्थं वटबीजवत्॥ ८॥ क्रमान्नमः शिवायेति ईशान्याद्यानि वै विदुः । षडक्षरस्य सूत्रस्य भाष्यद् विद्याकदम्बकम् ॥ ९ ॥ यदो नमः शिवायेति एतावत् परमं पदम् । अनेन पूजयेल्लिङ्गं लिङ्गे यस्मात् स्थितः शिवः ॥ १० ॥ अनुग्रहाय लोकानां धर्मकामार्थमुक्तिदः । यो न पूजयते लिङ्गं न स धर्मादिभाजनम् ॥ ११॥ लिङ्गार्चनाद् भुक्तिमुक्तिर्यावज्जीवमतो यजेत् । वरं प्राणपरित्यागो भुञ्जीतापूज्य नैव तम्॥ १२॥ रुद्रस्य पूजनाद्रुद्रो विष्णुः स्याद् विष्णुपूजनात् । सूर्य्यः स्यात् सूर्य्यपूजातः शक्तिः स्यात् शक्तिपूजनात् ॥ १३ ॥ सर्वयज्ञतपोदाने तीर्थे वेदेषु यत् फलम् । तत् फलं कोटिगुणितं स्थाप्य लिङ्गं लभेन्नरः॥ १४॥ त्रिसन्ध्यं योऽर्चयेल्लिङ्गं कृत्वा बिल्वेन पार्थिवम् ॥ शतैकादशिकं यावत् कुलमुद्धृत्य नाकभाक्॥१५॥ भक्त्या वित्तानुसारेण कुर्य्यात् प्रासादसञ्चयम् । अल्पे महति वा तुल्यफलमाढ्यदरिद्रयोः ॥ १६ ॥ भागद्वयञ्च धर्मार्थं कल्पयेज्जीवनाय च । धनस्य भागमेकन्तु अनित्यं जीवितं यतः ॥ १७ ॥ त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य देवागारकृदर्थभाक् । मृतकाष्ठेष्टकशैलाद्यैः क्रमात् कोटिगुणं फलम् ॥ १८ ॥ अष्टेष्टकसुरागारकारी स्वर्गमवाप्नुयात् । पांशुना क्रीड़मानोऽपि देवागारकृदर्थभाक् ॥ १९ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये देवदेवालयमाहात्म्यकथनं नाम सप्तविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२७॥

करने वाला होता है । गृह एवं मन्दिर को गोबर, गोमूत्र वल्मीक की मिट्टी, भस्म तथा जल से शुद्धि करनी चाहिए ।। ६।। स्कन्द ! 'ओं नमः शिवाय' यह मन्त्र समस्त अभीष्ट अर्थों को सिद्ध करने वाला है ।। ७ ।। वेद में इसे पञ्चाक्षर कहा गया है और लोक में इसे षडक्षर कहा जाता है । इस मन्त्र के 'ओम् ' अक्षर में शिव उसी तरह से स्थित हैं जिस तरह से वटबीज में वटवृक्ष स्थित होता है ।। ८ ।। सूत्र स्वरूप इस मन्त्र के क्रमशः, ओं नमः शिवाय । 'ईशानः सर्व विद्यानाम्' इत्यादि विद्या समूह भाष्य हैं ।। ९ ।। 'ओं नमः शिवाय' यह पद ही परम पद है । इसी मन्त्र से शिव लिङ्ग की अर्चना करनी चाहिए क्योंकि शिवलिङ्ग में शिव जी स्थित हैं ।। १० ।। वे संसारी जीवों पर अनुग्रह करने वाले हैं । वे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष प्रदान करने वाले हैं । जो पुरुष भगवान् शिव के लिंग की पूजा नहीं करता उसे यमादि पुरुषार्थों की प्राप्ति नहीं होती ।। ११ ।। शिवलिङ्ग के पूजन से ही भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है, अतएव आजीवन शिवलिङ्ग की अर्चना करनी चाहिए। भले ही प्राण चले जायँ किन्तु भगवान् शिव की पूजा किए बिना भोजन नहीं करना चाहिए ।। १२ ।। रुद्र की पूजा करके जीव रुद्र स्वरूप हो जाता है और विष्णु की पूजा करके वह विष्णुस्वरूप हो जाता है । सूर्य की पूजा करने वाला सूर्यस्वस्रूप हो जाता है और शक्ति की पूजा करने वाला शक्तिस्वरूप हो जाता है ।। १३ ।। सम्पूर्ण यज्ञों, तपस्याओं, दानों तथा तीर्थों के करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, शिवलिङ्ग की स्थापना करके मनुष्य उसके करोड़ गुना अधिक फल प्राप्त कर लेता है ।। १४ ।। जो मनुष्य मिट्टी का लिङ्ग बनाकर तीनों सन्ध्याओं में शिवलिङ्ग की विल्वपत्र से पूजा करता है, वह अपने एक सौ ग्यारह पीढ़ियों का उद्धार करके स्वर्गलोक का भागी बनता है ।। १५ ।। मनुष्य को अपने वित्त के अनुसार शिव मन्दिर का निर्माण कराना चाहिए । मन्दिर बड़ा हो या छोटा दरिद्र तथा धनिक दोनों प्रकार के लोगों को मन्दिर निर्माण का समान फल मिलता है ।। १६ ।। मनुष्य को अपने धन का दो हिस्सा धर्म में व्यय करना चाहिए और एक हिस्सा अपने जीने के लिए, क्योंकि जीवन तो अनित्य है और धर्म नित्य ।। १७ ।। देवमन्दिर को बनवाने वाला मनुष्य अपने तिहत्तर पीढ़ियों का उद्धार करके अपने अपने अभीष्ट अर्थ को प्राप्त करता है । क्रमशः मिट्टी, काठ, ईंट तथा पत्तर के मन्दिर निर्माण का फल उत्तरोत्तर करोड़ गुना है ।। १८ ।। आठ ईंटों का देवमन्दिर बनाने वाला स्वर्ग प्राप्त करता है । खेल में धूल का भी मन्दिर बनाने वाला अपने अभिलषित अर्थ को प्राप्त करता है ।। १९ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का देवमन्दिर माहात्म्य वर्णन नामक तीन सौ सत्ताइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३२७ ॥

अष्टाविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

छन्दःसारः

अग्निरुवाच– **छन्दो वक्ष्ये मूलजैस्तैः पिङ्गलोक्तं यथाक्रमम् । सर्वादिमध्यान्तगणौ म्लौ द्वौ जौ स्तौ त्रिकाः गणाः ॥ १ ॥ ह्रस्वो गुरुर्वा पादान्ते पूर्वो योगाद् विसर्गतः । अनुस्वाराद् व्यञ्जनात् स्यात् जिह्वामूलीयतस्तथा ॥ २ ॥ उपध्मानीयतो दीर्घो गुरुर्ग्लौ नौ गणाविह । वसवोऽष्टौ च चत्वारो वेदादित्यादिलोपतः ॥ ३ ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये छन्दःसारकथनं नामाष्टाविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२८ ॥

ऊनत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

छन्दःसारः

अग्निरुवाच– **छन्दोऽधिकारे गायत्री देवी चैकाक्षरी भवेत् । पञ्चादशासुरी सा स्यात् प्राजापत्याष्टवर्णिका ॥ १ ॥ यजुषां षडर्णा गायत्री साम्नां स्याद् द्वादशाक्षरा । ऋचामाष्टादशर्णा स्यात् साम्नां वर्धेत च द्वयम् ॥२ ॥ ऋचां त्र्यञ्च वर्धेत प्रजापत्य चतुष्टयम् । वर्धेदैकैककं शेषे आतुर्य्यादेकमुत्सृजेत् ॥३॥**

अग्निदेव ने कहा– वसिष्ठ अब मैं वेदों के मूल मन्त्रों के अनुसार पिङ्गलोक्त छन्दों का क्रमशः वर्णन कर रहा हूँ । छन्दःशास्त्र में आठ गण होते हैं, मगण, नगण, भगण, यगण, जगण, रगण, सगण और तगण। ये सभी गण तीन-तीन अक्षरों के होते हैं । (मगण के तीनों वर्ण गुरु होते हैं (ऽऽऽ) नगण के तीनों वर्ण लघु (।।।) होते हैं । भगण आदि गुरु (ऽ।।) होता है और यगण आदि लघु (।ऽऽ) होता है । सगण अन्त गुरु (।।ऽ) होता है और तगण अन्त लघु (ऽऽ।) होता है । जगण मध्यगुरु (।ऽ।) होता है और रगण मध्य लघु (ऽ।ऽ) होता है ।। १ ।। पाद के अन्त में विद्यमान, विसर्ग, अनुस्वार, संयुक्ताक्षर, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय से अव्यवहित पूर्ण में विद्यमान् ह्रस्व वर्ण भी गुरु वर्ण हो जाता है । दीर्घ वर्ण तो गुरु होता ही है गुरु वर्ण को ग से तथा लघु वर्ण को छन्दः शास्त्र में ल से संकेतित किया जाता है । ग तथा ल इन दोनों वर्णों से गणों का संकेत नहीं किया जाता है ।। २ ।। वसु शब्द से आठ संख्या को तथा वेद शब्द से चार की संख्या को संकेतित किया जाता है । इन सबों को लोक के अनुसार जान लेना चाहिए ।। ३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का छन्दःसार वर्णन नामक तीन सौ अट्ठाइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३२८ ॥

अग्निदेव ने कहा– छन्दः शब्द अधिकार में प्रयुक्त है । अर्थात् इस प्रकरण में सर्वत्र छन्दःशब्द की अनुवृत्ति होती है । दैवी गायत्री एक अक्षर की होती है, आसुरी गायत्री पन्द्रह अक्षर की तथा प्राजापत्या गायत्री आठ अक्षरों की होती है ।। १ ।। याजुषी गायत्री आठ वर्णों की होती है साम्नी गायत्री बारह अक्षरों की होती है । आर्ची गायत्री अठारह अक्षरों की होती है । साम्नी गायत्री में क्रमशः दो-दो अक्षर बढ़ाते हुए उन्हें छह कोष्ठों में लिखा जाय ।। २ ।। आर्ची गायत्री के तीन-तीन अक्षर बढ़ाते हुए छह कोष्ठों में लिखना चाहिए । प्राजापत्य गायत्री को चार-चार अक्षर बढ़ाते हुए छह कोष्ठों में लिखना चाहिए । अन्य गायत्रियों में अर्थात् दैवी तथा याजुषी में क्रमशः एक-एक अक्षर बढ़ाते हुए छह कोष्ठों में लिखना चाहिए । आसुरी गायत्री में क्रमशः एक-एक अक्षर घटाते हुए छह कोष्ठों में लिखना चाहिए ।। ३ ।। वे छह कोष्ठ क्रमशः उष्णिक , अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती के होंगे। याजुषी, साम्नी तथा आर्ची- इन तीन भेदों वाले गायत्री आदि प्रत्येक छन्द के अक्षरों को पृथक्-पृथक् जोड़ने पर उन सबों को ब्राह्मी गायत्री ब्राह्मी उष्णिक् आदि समझना चाहिए ।। ४ ।। इसी प्रकार याजुषी के पहले जो दैवी, आसुरी और प्राजापत्या नामक तीन भेद

उष्णिगनुष्टुब् बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब्जगत्यपि । तानि ज्ञेयानि क्रमशो गायत्र्यो ब्रह्म एव ताः॥ ४ ॥ तिस्त्रस्तिस्त्रः समान्यः स्युरेकैका आर्य एव च । ऋग्यजुषां संज्ञा स्युःश्चतुःषष्टिपदे लिखेत् ॥ ५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये छन्दःसारकथनं नामोनत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२९॥

त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

छन्दःसारः

अग्निरुवाच– **पाद आपादपूरणे गायत्र्यो वसवः स्मृताः । जगत्या आदित्याः पादो विराजो दिश ईरिताः ॥ १ ॥ त्रिष्टुभो रुद्राः पादः स्याच्छन्द एकादिपादकम् । आद्यं चतुष्पाच्चतुर्भिस्त्रिपात् सप्ताक्षरैः क्वचित् ॥ २ ॥ सा गायत्री पदे नीचृत् तत्प्रतिष्ठादि षद् त्रिपात् । वर्धमाना षट्सप्ताष्टा**

हैं, उनके अक्षरों को पृथक्-पृथक् छह कोष्ठों में जोड़ने पर जितने अक्षर होते हैं वे आर्षी गायत्री, आर्षी उष्णिक् आदि कहलाते हैं । इन समस्त भेदो को अच्छी तरह से समझने के लिए चौसठ कोष्ठों का चक्र बनाना चाहिए ।। ५ ।।

छन्दः चक्र

क्रम	छन्द	गायत्री के अक्षर	उष्णिक् के अक्षर	अनुष्टुप् के अक्षर	बृहती के अक्षर	पंक्ति के अक्षर	त्रिष्टुप् के अक्षर	जगती के अक्षर
१	आर्षी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८
२	दैवी	१	२	३	४	५	६	७
३	आसुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
४	प्राजापत्या	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२
५	याजुषी	६	७	८	९	१०	११	१२
६	साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४
७	आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६
८	ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का छन्दःसार नामक तीन सौ उनतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३२९ ॥

अग्निदेव ने कहा– इस प्रकरण की पूर्ति पर्यन्त 'पाद' शब्द का अधिकार चलता है । अर्थात् पाद पद की अनुवृत्ति होती है । गायत्री छन्द का एक पाद आठ अक्षरों का होता है । (गायत्री आदि छन्दों के पादों के अक्षरों की पूर्ति न होने पर इय् उव् आदि के द्वारा अक्षरों की पूर्ति कर ली जाती है । जैसे- तत्सवितुर्वरेण्यम्' की अक्षरपूर्ति के लिए 'वरेणीयम्' मानकर अक्षर गणना की जाती है ।) जगती छन्द का एक पाद बारह अक्षरों का होता है । विराट् छन्द के अक्षरों की संख्या दस बतलायी गयी है ।। १ ।। त्रिष्टुप् छन्द के पाद ग्यारह अक्षरों के होते हैं । अपने नाम के अनुसार

त्रिपात् षड्वसुभूधरैः ॥ ३ ॥ गायत्रीत्रिपदानीचृत् नागी नवनवर्त्तुभिः । वाराही रसद्विरसा छन्दश्चाथ तृतीयकम् ॥ ४॥ द्विपाद् द्वादशवस्वन्तैः त्रिपात् तु त्रैष्टुभैः स्मृतम् । उष्णिक् छन्दोऽष्टवस्वर्कैः पादैर्वेदे प्रकीर्त्तितः ॥ ५ ॥ ककुबुष्णिगष्टसूर्य्यवस्वर्णा त्रिभिरेव सः । पुर उष्णिक् सूर्य्यवसुवस्वर्णैश्च त्रिपाद् भवेत्॥ ६॥ परोष्णिक् परतस्तस्माच्चतुष्पादृषिभिर्भवेत् । साष्टाक्षरैनुष्टुप् स्यात् चतुष्पाच्च त्रिपात् क्वचित् ॥ ७ ॥ अष्टार्कसूर्य्यवर्णैः स्यात् मध्येऽन्ते च क्वचिद् भवेत् । बृहती जगत्यस्त्रयो गायत्र्याः पूर्वको यदि ॥ ८ ॥ तृतीयः पथ्या भवति द्वितीयान्यंकुसारिणी । स्कन्धो ग्रीवाक्रौष्टुके स्याद् यास्कस्योरोबृहत्यपि ॥ ९ ॥ उपरिष्टाद् बृहत्यन्ते पुरस्ताद् बृहती पुनः । क्वचिन्नवकाश्चत्वारो दिग्विदिक्ष्वष्टवर्णिकाः॥ १०॥ महाबृहती जागतैः स्यात् त्रिभिः सतो बृहत्यपि। तण्डिनः पङ्क्तिश्छन्दः स्यात् सूर्य्यार्काष्टाष्टवर्णकैः ॥११॥ पूर्वौ वेदयुजौ सतः पङ्क्तिश्च विपरीतकी । प्रस्तारपङ्क्तिः

कोई छन्द एक पाद का, कोई दो पादों का, कोई तीन पादों का तो कोई चार पादों का होता है । आद्य छन्द (गायत्री कहीं पर तो छह अक्षरों के चार पादों वाली होती है तो कहीं सात अक्षरों के तीन पादों वाली होती है ।। २ ।। सात अक्षरों वाली गायत्री की पादनिचृत्त संज्ञा होती है । यदि गायत्री का प्रथम पाद आठ अक्षरों का द्वितीय पाद सात अक्षरों का प्रथम पाद आठ अक्षरों का द्वितीय पाद सात अक्षरों का और तृतीय पाद छह अक्षरों का हो तो वह प्रतिष्ठा गायत्री छन्द होता है । यदि गायत्री का प्रथम पाद छह अक्षरों का द्वितीय पाद सात अक्षरों का और तृतीय पाद आठ अक्षरों का हो तो वह वर्धमाना गायत्री छन्द होता है । यदि त्रिपदा गायत्री का प्रथम पाद छह अक्षरों का द्वितीयपाद आठ अक्षरों का तथा तृतीयपाद सात अक्षरों का हो तो वह अतिपाद निचृत्त छन्द होता है । यदि त्रिपदा गायत्री के प्रथम एवं द्वितीय पाद नव-नव अक्षरों के तथा तृतीय पाद छह अक्षरों का होता हे तो वह नागी गायत्री छन्द होता है ।। ३ ।। यदि गायत्री छन्द का प्रथम पाद छह अक्षरों का तथा द्वितीय एवं तृतीयपाद नव-नव अक्षरों का हो तो वह वाराही गायत्री छन्द होता है । अब तृतीय (विराट्) छन्द के भेदों को बतलाया जा रहा है ।। ४ ।। जब छन्द दो ही चरणों का हो और उसका प्रथम पाद बारह अक्षरों का और द्वितीय पाद आठ अक्षरों का हो तो वह द्विपाद् विराट् छन्द होता है । यदि विराट् छन्द के तीन पाद हों और प्रत्येक पाद ग्यारह अक्षरों के हों तो त्रिपाद् विराट् छन्द होता है । जब दो चरण आठ-आठ अक्षरों के और एक चरण बारह अक्षरों का हो तो वेद में उसे उष्णिक् छन्द कहा गया है ।। ५ ।। यदि प्रथम एवं तृतीय चरण आठ अक्षरों के और बीच का द्वितीय चरण बारह अक्षरों का हो तो वह तीन पादों का कुकुप् उष्णिक् नामक छन्द होता है । यदि प्रथम चरण बारह अक्षरों का तथा द्वितीय एवं तृतीय चरण आठ अक्षरों के हों तो उसे पुर उष्णिक् छन्द कहते हैं।।६।। यदि प्रथम एवं द्वितीय चरण आठ अक्षरों के एवं तृतीय चरण बारह अक्षरों का हो तो उसे परोष्णिक् कहते हैं । सात-सात अक्षरों के चार चरण होने पर भी उष्णिक् छन्द होता है । जब आठ-आठ अक्षरों के चार चरण हों तो अनुष्टुप् नामक छन्द होता है । कहीं-कहीं पर तीन चरणों का भी अनुष्टुप् होता है, उसे त्रिपादनुष्टुप् कहते हैं ।। ७ ।। त्रिपादनुष्टुप् के दो भेद होते हैं- कहीं पर तो उसका प्रथम चरण आठ अक्षरों का और द्वितीय तथा तृतीय चरण बारह-बारह अक्षरों के होते हैं और दूसरे प्रकार का त्रिपादनुष्टुप् वह होता है जिसका मध्यम अथवा तृतीय पाद आठ अक्षरों का होता है । यदि एक चरण जगती का अर्थात् बारह अक्षरों का होता है । यदि एक गायत्री के (अर्थात् आठ-आठ अक्षरों के) हों तो वह चार चरणों का बृहती छन्द होता है ।। ८ ।। इसमें भी जब पहले का स्थान तीसरा चरण ले ले तो उसे पथ्या बृहती कहते हैं । यदि पहले वाला जगती का चरण द्वितीय पाद बन जाय और शेष चरण गायत्री छन्द के ही रहें तो उसे न्यंकुसारिणी बृहती छन्द कहते हैं । आचार्य कौष्टुकि के मत्त में न्यंकुसारिणी को ही स्कन्ध अथवा ग्रीवा छन्द कहते हैं । आचार्य यास्क के मतानुसार उसे उरोवृहती कहते हैं ।। ९ ।। यदि चतुर्थ चरण जगती के और शेष तीन चरण गायत्री के हों तो उसे उपरिष्टाद् बृहती छन्द कहते हैं । यदि प्रथम चरण जगती छन्द का हो और शेष तीन चरण चरण गायत्री छन्द के हों तो उसे पुरस्ताद् बृहती छन्द कहते हैं । वेदों में कहीं-कहीं पर नव-नव अक्षरों के चारों चरण दिखायी देते हैं वे भी वृहती छन्द के भेद हैं । जहाँ पर द्वितीय एवं प्रथम चरण दस अक्षरों के तथा तृतीय एवं चतुर्थ चरण-आठ-आठ अक्षरों के हों उसे भी बृहती छन्द कहते हैं ।। १० ।। जहाँ पर केवल जगती छन्द के तीन चरण हों उसे महाबृहती छन्द कहते हैं । ताण्डी नामक आचार्य के अनुसार यह सतोबृहती छन्द कहलाता है । जिस छन्द में प्रथम दो पाद बारह-बारह अक्षरों के तथा तृतीय एवं चतुर्थ पाद आठ-आठ अक्षरों के होते हैं उसे पंक्ति छन्द कहते हैं ।। ११ ।। जहाँ पर प्रथम एवं तृतीय पाद बारह-बारह अक्षरों के तथा द्वितीय एवं चतुर्थ पाद आठ आठ अक्षरों के हों उसे सतःपंक्ति छन्द कहते हैं । यदि प्रथम एवं तृतीय चरण आठ-आठ अक्षरों के तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण बारह-बारह अक्षरों के हों वहाँ पर

पुरतः पवादास्तारपङ्क्तिका ॥ १२ ॥ विस्तारपंक्तिरन्तश्चेद्बहिः संस्तारपंक्तिका । अक्षर पंक्तिः पञ्चकाश्चत्वारश्चाल्पशो द्वयम् ॥ १३ ॥ पदपङ्क्तिः पञ्च भवेच्चतुष्कं षट्कत्रयम् । षट्कपञ्चभिर्गायत्रैः पंक्ति जगती भवेत् ॥ १४ ॥ एकेन त्रिष्टुब्ज्योतिष्मती तथैव जगतीरिता। पुरस्ताज्ज्योतिः प्रथमे मध्ये ज्योतिश्च मध्यतः ॥ १५ ॥ उपरिष्टाज्ज्योतिरन्त्यादेकस्मिन् पञ्चके तथा । भवेच्छन्दः शङ्कुमती षटके छन्दः ककुद्मती॥१६॥ त्रिपादशिशुमध्या स्यात् सा पिपीलिकमध्यमा । विपरीता यवमध्या निचृदेकेन वर्जिता ॥ १७ ॥ भूरिगेकेनाधिकेन द्विहीना च विराड् भवेत्। स्वराट् स्याद् द्वाभ्यामधिकं सन्दिग्धो दैवतादितः ॥ १८ ॥ आदिपादान्निश्चयः स्याच्छन्दसां देवता क्रमात् । अग्निः सूर्य्यः शशी जीवो मित्रावरुणेन्द्र च । विश्वेदेवाश्च षड्जाद्याः स्वरा षड्जो ऋषभः क्रमात् । गान्धारो मध्यमश्चैव पञ्चमो धैवतस्तथा ॥ २० ॥ निषादवर्णाः श्वेतश्च सारङ्गश्च पिशङ्गकः।

प्रस्तार पंक्ति नामक छन्द होता है । आस्तार पंक्ति नामक छन्द वहाँ होता है जहाँ पर प्रथम एवं द्वितीय चरण आठ-आठ अक्षरों के हों तथा तृतीय एवं चतुर्थ चरण बारह-बारह अक्षरों के हों ।। १२।। यदि द्वितीय एवं तृतीय चरण बारह-बारह अक्षरों के हों तथा प्रथम एवं चतुर्थ चरण आठ-आठ अक्षरों के हों तो वहाँ पर विस्तारपंक्ति नामक छन्द होता है । यदि छन्द के बारह अक्षरों वाले प्रथम एवं चतुर्थ चरण हों एवं द्वितीय एवं तृतीय चरण आठ-आठ अक्षरों वाले हों तो वहाँ पर संस्तारपंक्ति नामक छन्द होता है । जहाँ पर छन्द के पाँच-पाँच अक्षरों वाले चार पाद हों वहाँ पर अक्षर पंक्ति नामक छन्द होता है । यदि पाँच-पाँच अक्षरों के दो ही चरण हों तो वहाँ पर अल्पशः पंक्ति नामक छन्द होता है ।। १३ ।। जहाँ पर पाँच-पाँच अक्षरों के पाँच पाद हों वहाँ पर पदपंक्ति नामक छन्द होता है । वहाँ पर भी पदपंक्ति नामक ही छन्द होता है जहाँ पर पहला पाद चार अक्षरों का दूसरा पाद छह अक्षरों का तथा शेष तीन चरण पाँच-पाँच अक्षरों के ही होते हैं । गायत्री के (आठ-आठ अक्षरों के) पाँच पाद होने पर पथ्यापंक्ति नामक छन्द होता है । यदि गायत्री के छह पाद हों तो वहाँ पर जगती नामक छन्द होता है ।। १४ ।। यदि एकपाद त्रिष्टुप् छन्द के अर्थात् ग्यारह अक्षरों के और शेष चार पाद गायत्री के (आठ-आठ) अक्षरों के हों तो त्रिष्टुप् ज्योतिष्मती नामक छन्द होता है । इसी तरह यदि छन्द का एक पाद जगती छन्द का अर्थात् बारह अक्षरों का हो और शेष चार चरण गायत्री के हों तो जगती ज्योतिष्मती नामक छन्द होता है । यदि पहला चरण ग्यारह अक्षरों का हो और अवशिष्ट चरण आठ आठ अक्षरों के हों तो पुरस्ताज्ज्योतिष्मती नामक त्रिष्टुप् छन्द होता है । यदि पहला चरण बारह अक्षरों का और बाकी चार पाद आठ-आठ अक्षरों के हो तो पुरस्ताज्ज्योतिष्मती जगती छन्द होता है । यदि तीसरा पाद ग्यारह अक्षरों का हो और शेष चार पाद आठ-आठ अक्षरों के हों तो मध्यम ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् छन्द होता है और यदि तृतीय पाद बारह अक्षरों का हो और चार पाद आठ अक्षरों के हों तो मध्यम जयोतिष्मती जगती छन्द होता है ।। १५ ।। यदि प्रारम्भ के चार चरण आठ-आठ अक्षरों के और पाँचवाँ चरण ग्यारह अक्षरों का हो तो उसे उपरिष्टाज्ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् छन्द कहते हैं । इसी तरह यदि पाँचवाँ चरण बारह अक्षरों का हो और शेष चार चरण आठ-आठ अक्षरों के हों तो उपरिष्टाज्ज्योति जगती छन्द होता है । यदि गायत्री आदि छन्दों का एक पाद पाँच अक्षरों का और शेष चरण उनके नियत लक्षण के अनुसार हों तो वह छन्द शंखमती के नाम से अभिहित होता है, जैसे शंखमती गायत्री, शंखमती त्रिष्टुप् आदि । इसी तरह एक पाद छह अक्षरों का और शेष चरण अपने नियत लक्षण के अनुसार हों तो वहाँ ककुद्मती के नाम से छन्द को अभिहित किया जाता है ।। १६ ।। यदि तीन पाद वाले छन्दों के प्रथम और द्वितीय चरण में अधिक अक्षर हों और तृतीय चरण में बहुत कम अक्षर हों तो उसे पिपीलिका मध्या नामक छन्द कहते हैं । इसके विपरीत तीन पादों वाले छन्द के आदि और अन्त वाले पाद में बहुत कम अक्षर हों और बीच के पाद में अधिक अक्षर हों तो यवमध्या नामक छन्द होता है । यदि गायत्री अथवा उष्णिक् आदि छन्दों में एक अक्षर की कमी हो तो उसकी निचृत नामक विशेष संज्ञा होती है ।। १७ ।। यदि एक अक्षर की गायत्री आदि छन्दों में अधिकता होती है तो उसकी भूरिक् नाम की विशेष संज्ञा होती है । यदि दो अक्षरों की कमी हो तो उसकी विराट् नामक विशेष संज्ञा होती है । गायत्री आदि छन्दों में यदि दो अक्षर अधिक हों तो उनको स्वराट् नाम की विशेष संज्ञा होती है । यदि छन्द के नाम निर्णय करने में संदेह हो तो छन्द के आदि पाद के अनुसार उसका नाम निर्णय करना चाहिए ।। १८ ।। इसी तरह देवता, स्वर, वर्ण आदि के द्वारा भी संदिग्ध स्थल में छन्दों का निर्णय किया जा सकता है । गायत्री आदि छन्दों के देवता क्रमशः इस प्रकार हैं- अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, बृहस्पति, मित्रावरुण, इन्द्र ।। १९ ।। तथा विश्वेदेव हैं। उन छन्दों के षड्ज आदि स्वर हैं । स्वरों

कृष्णो नीलो लोहितश्च गौरो गायत्रिमुख्यके ॥ २१ ॥ गोरोचनाभाः कृतयो ज्योतिश्छन्दो हि श्यामलम् । अग्निवेश्यः काश्यपश्चगौतमाङ्गिरसौ क्रमात् ॥ २२ ॥ भार्गवः कौशिकश्चैव वासिष्ठो गोत्रमीरितम् ॥ २३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये छन्दःसारकथनं नाम त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३० ॥

एकत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

छन्दोजातिनिरूपणम्

अग्निरुवाच– **चतुःशतमुत्कृतिः स्यादुत्कृतेश्चतुरस्त्यजेत् । अभिसंव्या प्रत्यकृतिस्तानि छन्दांसि वै पृथक् ॥ १ ॥ कृतिश्चाधि कृतिधृती अत्यष्टिश्चाष्टिरित्यतः । अतिशक्वरी शक्वरीति अतिजगती जगत्यपि ॥ २ ॥ छन्दोऽत्र लौकिकं स्याच्च आर्षमात्रैष्टुभात् स्मृतम् । त्रिष्टुप्पङ्क्तिवृहती अनुष्टुबुष्णिग्गीरितम् ॥ ३ ॥ गायत्री स्यात् सुप्रतिष्ठा प्रतिष्ठा मध्यया सह । अत्युक्तात्युक्त आदिश्च एकैकाक्षरवर्जितम् ॥ ४ ॥ चतुर्भागो भवेत् पादो गणाच्छन्दः प्रदर्श्यते । तावन्तःसमुद्रा गणाद्यादिमध्यान्त सर्वगा॥ ५॥ चतुर्णः पञ्च च गणा आर्य्यालक्षणमुच्यते । स्वरादर्धञ्चार्य्यार्द्धंस्यादार्य्यायां**

के नाम इस प्रकार हैं- षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत ।।२०।। तथा निषाद । इन छन्दों के वर्ण क्रमशः इस प्रकार के हैं- श्वेत, सारङ्ग, पिशंग, कृष्ण, नील, लोहित तथा गौर ।।२१।। कृति नामक छन्दों का वर्ण गोरोचन के समान तथा जयोतिश्छन्दों का वर्ण श्याम है । उपयुक्त छन्दों के क्रमशः ये सात गोत्र हैं- अग्निवेश्य, काश्यप, गौतम अङ्गिरा, भार्गव, कौशिक तथा वसिष्ठ।।२३।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का छन्दःसार वर्णन नामक तीन सौ तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३३० ॥

अग्निदेव ने कहा– उत्कृति नामक छन्द एक सौ चार अक्षरों का होता है । उसमें से चार-चार घटाते जाएँ तो क्रमशः ये छन्द होंगे । अभिवृत्ति (यह सौ अक्षरों का छन्द होता है ।) संस्कृति (यह छ्यानबे अक्षरों का छन्द होता है ।) विकृति (यह बानवे अक्षरों का छन्द होता है ।) आकृति (यह अट्ठासी अक्षरों का छन्द होता है ।) प्रकृति (यह चौरासी अक्षरों का छन्द होता है।)।। १।। कृति (यह अस्सी अक्षरों का छन्द होता है) अधिकृति (यह छिहत्तर अक्षरों का छन्द होता है । धृति (यह बहत्तर अक्षरों का छन्द होता है) अत्यष्टि (यह अड़सठ अक्षरों का छन्द होता है ।) अष्टि (यह चौंसठ अक्षरों का छन्द होता है ।) अतिशक्वरी (यह साठ अक्षरों का छन्द होता है) शक्वरी (यह छप्पन अक्षरों का छन्द होता है) अतिजगती (यह बावन अक्षरों का छन्द होता है) जगती (यह अड़तालिस अक्षरों का छन्द होता है) ।। २ ।। यहाँ तक गिनाये गए केवल वैदिक छन्द हैं । यहाँ से आगे लौकिक छन्दों का अधिकार प्रारम्भ होता है । गायत्री से लेकर त्रिष्टुप् छन्द जो वैदिक छन्द गिनाये गये हैं वे लौकिक छन्द भी होते हैं । ये छन्द इस प्रकार हैं- त्रिष्टुप, पंक्ति, बृहती, अनुष्टुप्, उष्णिक् ।। ३ ।। और गायत्री । गायत्री छन्द में क्रमशः एक-एक अक्षर की कमी होने पर क्रमशः ये छन्द होते हैं- सुप्रतिष्ठा, प्रतिष्ठा, मध्या अत्युक्तात्युक्त और आदि ।। ४ ।। छन्द के चतुर्थ भाग को पाद कहते हैं । (छन्द तीन प्रकार के होते हैं- गणछन्द, मात्राच्छन्द और अक्षरछन्द।) अब गणछन्दों को बतलाया जाता है । चार लघु अक्षरों की गणसंज्ञा होती है । ये गण पाँच प्रकार के होते हैं- आदिगुरु (ऽ।।) मध्यगुरु (।ऽ।) अन्त्यगुरु (।।ऽ) सर्वगुरु (ऽऽ) और सर्वलघु (।।।।) सर्वगुरु गण दो अक्षरों का होता है और सर्व लघु गण चार अक्षरों का होता है । एक गुरु वर्ण दो अक्षरों के बराबर होता हे ।) अब गण छन्दों में सर्वप्रधान आर्या का लक्षण बतलाया जाता है ।।५।। साढ़े सात गणों अर्थात् तीस वर्णों की आर्या होती है । (आर्या छन्द में गुरुवर्ण को दो अक्षर माना जाता है ।) आर्या छन्द में विषमगण (१, ३, ५ एवं ७वाँ) जगण नहीं होता किन्तु छठा गण जगण (।ऽ।) अवश्य होता है । अथवा वह (छठा गण) नगण और लघु अथवा सबके सब लघु (।।।।) भी हो सकता है उस गण के द्वितीय अक्षर से सुबन्त या तिङन्त स्वरूप पदसंज्ञा ही होती है ।

विषमेनाजः॥ ६॥ षष्ठो जो नल पूर्वा स्याद् द्वितीयादिपदं नले । सप्तमेन्ते प्रथमा च द्वितीये पञ्चमे नले ॥ ७ ॥ अर्द्धं पदं प्रथमादि षष्ठ एको लघुर्भवेत् । त्रिषु गणेषु पथ्या स्यादार्य्या पञ्चार्द्धके स्मृता॥ ८॥ विपुलान्याथ चपला गुरुमध्यगतौ च जौ । द्वितीयचतुर्थौ पूर्वे च चपला मुखपूर्विका॥ ९॥ द्वितीये जघनपूर्वा चपलार्य्या प्रकीर्तिता । उभयोर्महाचपला गीतिराद्यर्द्धतुल्यका ॥ १०॥ अन्त्येनार्द्धेनोपगीतिरुद्गीतिश्चोत्क्रमात् स्मृता । अर्द्धे रष्टगणा आर्य्या गीतिच्छन्दोऽथ मात्रया॥११॥ वैतालीयं द्विभस्ता स्याच्चतुष्पादे समे नलः । वसवोऽन्तेवनगाश्च गोपुच्छं दशकं भवेत्॥१२॥ भा गणान्तापातलिका शेषे परे च पूर्ववत् । साकं षड् वा मिश्रायुक् प्राच्यवृत्तिः प्रदर्श्यते ॥ १३ ॥ पञ्चमेन पूर्वसाकं तृतीयेन सहस्त्रयुक् । उदीच्यवृत्तिर्वाच्या स्यादयुगपच्च प्रवर्त्तकम् ॥ १४॥ अयुक् चारुहासिनीस्याद् युगपच्चापरान्तिका ॥ १५ ॥ सप्तार्चिर्वसवश्चैव मात्रासमकमीरितम्। भवेन्नलवमौ लश्च द्वादशो वनवासिका॥१६॥ विश्वलोकः पञ्चमाष्टौ मो चित्रा लवमकश्चलः।-परयुक्तेनोपचित्रा पादाकुलकमित्यतः॥१७॥

यदि सातवाँ गण सर्वलघु (नल) हो तो उसके प्रथम अक्षर से ही पद संज्ञा की प्रवृत्ति होती है । इसी तरह आर्या के उत्तरार्द्ध का यदि पाँचवाँ गण सर्वलघु (नल) हो तो उसके भी प्रथम अक्षर से ही पदसंज्ञा की प्रवृत्ति होती है ।। ६-७ ।। आर्याछन्द के उत्तरार्द्ध में छठा गण केवल लघु वर्णों (।।।।) का होता हे । जिस आर्या के पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध में तीन-तीन गणों के पश्चात् प्रथम पाद का विराम होता है उसे पथ्या आर्या कहते हैं ।। ८ ।। जिस आर्या के पूवार्द्ध या उत्तरार्द्ध में अथवा दोनों में तीन-तीन गणों पर पाद विराम नहीं होता उसे विपुलार्या कहते हैं । जिस आर्या छन्द में द्वितीय तथा चतुर्थ गण गुरु अक्षरों के बीच में होने के साथ ही जगण (।ऽ।) हो उसे चण्ला कहते हैं । अर्थात् चपला (आर्या में प्रथम गण अन्त्यगुरु (।।ऽ) तृतीयगण सर्वगुरु (ऽऽ) तथा पञ्चमगण आदिगुरु (ऽ।।) होता है । शेष गण पूर्ववत् रहते हैं । जिस आर्या के पूवार्द्ध में चपला का लक्षण हो उसे मुखचपला कहते हैं ।। ९ ।। यदि उत्तरार्द्ध में चपला का लक्षण हो तो उसे जघन चपला नामक आर्या कहते हैं । जहाँ पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दोनों में चपला का लक्षण मिले तो उस आर्या को महाचपला कहते हैं । जिस आर्या के पूर्वार्द्ध के समान ही उत्तरार्द्ध भी हो उसे गीति कहते हैं । अर्थात् गीति आर्या के उत्तरार्द्ध में भी छठां गण जगण (।ऽ।) अथवा सर्व लघु (।।।।) होता है ।। १० ।। जहाँ आर्या के उत्तरार्द्ध के ही समान पूर्वार्द्ध भी होता है उसे उपगीति कहते हैं । आर्या के पूर्वोक्त क्रम को विपरीत कर देने पर उद्गीति नामक आर्या होती है । यदि आर्या छन्द के पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दोनों आठ-आठ गणों के हों तो वहाँ पर आर्या गीति नामक छन्द होता है । अब मात्रा छन्दों को बतलाया जा रहा है ।। ११ ।। जहाँ पर विषम (प्रथम एवं तृतीय) चरणों में चौदह लघु मात्राएँ हों तथा सम (द्वितीय एवं चतुर्थ) चरणों में सोलह लघु मात्राएँ हों । इनमे से प्रत्येक चरण के अन्त में रगण, एक लघु तथा एक गुरु हो तो वैतालीय नामक छन्द होता है । रगण, लघु एवं गुरु मिलाकर आठ मात्राएँ होती हैं । इनको छोड़कर विषम पादों में छह-छह मात्राएँ होती हैं तथा सम चरणों में आठ-आठ मात्राएँ होती हैं । वैतालीय छन्द के अन्त में यदि एक मात्रा और बढ़ जाती है तो औपछन्द नामक छन्द होता है ।। १२ ।। वैतालीय छन्द के प्रत्येक पाद के अन्त में रगण लघु तथा गुरु के स्थान पर भगण तथा दो गुरु आ जाते हैं तो उस छन्द का नाम आपातलिका होता है । वैतालीय छन्द के अधिकार में रगण आदि के द्वारा जो प्रत्येक चरण के अन्त में आठ लकारों (मात्राओं का नियम किया गया है प्रत्येक चरण में जो लकार (मात्रा) शेष बंचे रहते हैं उनमें से समलकार विषमलकार के साथ मिल नहीं सकते हैं, उन्हें पृथक्-पृथक् ही रखना चाहिए । इससे विषमलकारों का समलकारों के साथ मेल अनुमोदित होता है । द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में लगातार छह लकार पृथक्-पृथक् नहीं प्रयुक्त हो सकते हैं । प्रथम एवं तृतीय चरणों में रुचि के अनुसार किया जा सकता है। अब प्राच्यवृत्ति नामक वैतालीय छन्द का निरूपण किया जा रहा है ।। १३ ।। जब द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में चतुर्थ लकार (मात्रा) पञ्चम लकार (मात्रा) के साथ संयुक्त हो तो उसका नाम प्राच्यवृत्ति होता है । शेष लकार पूर्ववत् रहेंगे । जब प्रथम एवं तृतीय चरण में दूसरा लकार (मात्रा) तीसरे के साथ मिलता है तो उसका नाम उद्दीच्यवृत्ति नामक वैतालीय छन्द होता है । जब दोनों लक्षणों की एक साथ प्रवृत्ति हो तो प्रवृत्तिक नामक छन्द होता है ।। १४ ।। जिस वैतालीय छन्द के चारों चरण विषम पाद के ही समान हों, अर्थात् प्रत्येक पाद चौदह मात्राओं से युक्त हो तथा द्वितीय मात्रा तृतीय मात्रा से मिली हो तो उसे चारुहासिनी कहते हैं । जब चारों चरण समपाद के लक्षण से युक्त हों अर्थात् प्रत्येक पाद में सोलह मात्राएँ हों तथा अन्तिम अक्षर गुरु हों चतुर्थ लकार पञ्चमलकार से मिला हो तो उसका नाम अपरान्तिका होता है । जिसके प्रत्येक पाद में सोलह लकार (मात्रा) हों, किन्तु प्रत्येक पाद के अन्तिम अक्षर गुरु हों उसे मात्रासमक कहते हैं । इस छन्द में नवम लकार किसी से मिला नहीं रहता है । जिस मात्रा समक में बारहवाँ लकार अपने स्वरूप में ही स्थित होता है, किसी से मिला नहीं रहता है, उसको वनवासिका कहते हैं ।। १६ ।। जिसके चारों चरणों में पाँचवाँ और

गीताय्यीं लोपपश्चेत् सौम्यालः पूर्वः ज्योतिरीरिता । स्याच्छिखा विपर्य्यास्तार्द्धा चूलिका समुदाहृता ॥ १८ ॥ एकोनत्रिंशदन्तेगः स्याज्ञेनसमाबला। गु इत्येकगुरुं संख्यावर्णाद् दशाविपर्य्यात् ॥ १९॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये छन्दोजातिनिरूपणकथनं नामैकत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३१ ॥

द्वात्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

विषमकथनम्

अग्निरुवाच– **वृत्तं समञ्चार्द्धसमं विषमञ्च त्रिधा वदे । समन्तावत् कृत्वकृतमर्द्धसमञ्च कारयेत् ॥ १ ॥ विषमञ्चैव वान्यूनमतिवृत्तं समान्यपि। ग्लौचतुःप्रमाणी स्यादाभ्यामन्यद्वितानकम्॥ २॥ पादस्याद्यन्तु वक्रं स्यात् शनौ न प्रथमास्मृतौ । बाल्यमुश्चतुर्थाद् वर्णात् पथ्यावर्णं युजोयतः॥३॥ विपरीतपथ्यान्यासाञ्चपला वा युजस्वनः॥ विपुलायुग्नसप्तमः सर्वं तस्यैव तस्य च॥ ४॥ तौन्तौ वा विपुलानेका चक्रजातिः समीरिता। भवेत् पदचतुरूर्ध्वंचतुर्वृद्ध्या**

आठवाँ लकार लघुरूप में ही स्थित रहता है उसे विश्लोक कहते हैं । जहाँ नवाँ भी लकार लघु ही होता है उसे चित्रा कहते हैं । जहाँ नवाँ लकार दसवें के साथ मिलकर गुरु हो जाता है, वहाँ उपचित्रा नामक छन्द होता है । मात्रासमक, विश्लोक, वनवासिका, चित्रा तथा उपचित्रा इन पाँचों में से किसी भी छन्द के एक-एक पाद को लेकर चार चरणों का छन्द बनाया जाता है तब उसे पादाकुवक कहते हैं ।।१७।। जिसके प्रत्येक चरण में सोलह लघु स्वरूपतः स्थित हों किसी से मिलकर गुरु न हुए हों उस छन्द को गीत्यार्या कहते हैं । गीत्यार्या में जब आधे भाग की सभी मात्राएँ गुरु हों तथा आधे भाग की सभी मात्राएँ लघु रूप में हों तो उसे शिखा नामक छन्द कहते हैं । शिखा दो प्रकार की होती है- ज्योति और सौम्या । जब पूर्वार्द्ध में केवल लघु ही मात्राएँ हों और उत्तरार्द्ध में केवल गुरु तो ज्योति शिखा होती है । जब उत्तरार्द्ध में केवल गुरु और पूर्वार्द्ध में केवल गुरु ही मात्राएँ हों तो सौम्याशिखा होती है । अब चूलिका बतलायी जा रही है ।। १८ ।। जब पूर्वार्द्ध में उन्तीस लकार और उत्तरार्द्ध में इकतीस लकार हों तथा अन्तिम दो लकारों के स्थान में एक-एक गुरु वर्ण हो तो चूलिका होती है । छन्द की मात्राओं से उसमें जितनी कमी हो उतनी गुरु की संख्या और मानी गयी है । इस तरह वर्ण आदि के अन्तर से गुरु लघु आदि का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।। १९ ।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का छन्दोजाति निरूपण नामक तीन सौ इकतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३३१ ॥

अग्निदेव ने कहा– वृत्त तीन प्रकार के होते हैं- समवृत्त, अर्द्धसमवृत्त तथा विषमवृत्त । समवृत्त की जो संख्या होती है उसमें उतनी ही संख्या का गुणा करें । जो गुणनफल हो उसे अर्ध समवृत्त की संख्या समझे ।। १ ।। इसी तरह अर्धसमवृत्त की जो संख्या हो उससे उतनी ही संख्या का गुणा करने पर जो गुणनफल आए उसे विषमवृत्त की संख्या समझनी चाहिए । विषमवृत्त तथा अर्धसमवृत्त की संख्या में मूलराशि को घटा देने पर शुद्ध विषम तथा शुद्ध अर्द्धसमवृत्त की संख्या ज्ञात होती है । जो अनुष्टुप् छन्द प्रत्येक चरण में गुरु एवं लघु अक्षरों द्वारा समाप्त होता है, अर्थात् अन्तिम दो वर्ण क्रमशः गुरु एवं लघु होते हैं उसे समानी कहते हैं । जिसके चारों चरणों के अन्तिम वर्ण क्रमशः लघु एवं गुरु हों उसको प्रमाणी कहते हैं । जिसकी इन दोनों से भिन्न स्थिति हो उसे वितानक कहते हैं ।। २ ।। यहाँ से तीन अध्याय पर्यन्त 'पादस्य' इस पद का अधिकार है तथा पादचतुरुर्ध्व छन्द के पहले तक 'अनुष्टुब् वक्त्रम्' का अधिकार है । अर्थात् आगे कहे जाने वाले कुछ छन्द वक्त्र संज्ञक होते हैं । वक्त्र जाति के छन्द में पाद के प्रथम अक्षर के बाद सगण (।।ऽ)एवं नगण (।।।) का प्रयोग नहीं होता है । इनके अतिरिक्त मगण आदि छह गणों में से किसी एक गण का प्रयोग होता है । पाद के चतुर्थ अक्षर के पश्चात् भगण (ऽ।।) का प्रयोग किया जा सकता है । जिस वक्त्र जाति के छन्द में द्वितीय एवं चतुर्थ पाद के चतुर्थ वर्ण के पश्चात् जगण (।ऽ।) का प्रयोग होता

पदेषु च॥ ५॥ गुरुद्वयान्तआपीडः प्रत्यापीडो गणादिकः। प्रथमस्य विपर्य्यासे मञ्जरी लवलीक्रमात्॥ ६॥ भवेदमृतधाराख्या उद्गताद्युच्यतेऽधुना। एकतः ससजसानः स्युर्न सौ जो गोऽथ भौ नजौ ॥ ७ ॥ नोगोऽथ सजसा गोगस्तृतीयचरणस्य च । सौरभे केचन भगा ललितञ्च नमौ ससौ ॥ ८॥ उपस्थितं प्रचुपितं प्रथमाद्यं समौ जसौ । गोगगा मलजा रोगः समो नगरजयाः पदे॥ ९॥ वर्धमानं मलौ स्वौ नसौअथोभोजोव ईरिता । शुद्धविराडार्षभाख्यं वक्ष्ये चार्द्धं समन्ततः ॥ १०॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विषमकथनं नाम द्वात्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३२ ॥

है उसे पथ्यावक्त्र कहते हैं।। ३ ।। किसी के अनुसार इसके विपरीत तृतीय एवं प्रथम पाद के बाद जगण (।ऽ।) का प्रयोग करने से पथ्या संज्ञा होती है । जब विषम पादों के चतुर्थ वर्ण के पश्चात् नगण (।।।) तथा सम पादों में चतुर्थ वर्ण के पश्चात् यगण (।ऽऽ) हो तो उस अनुष्टुप् वक्त्र को चपला कहते हैं । जब सम पादों में सातवाँ अक्षर लघु हो यानी चतुर्थ वर्ण के पश्चात् जगण का प्रयोग किया गया हो तो उसको विपुला कहते हैं । सैतव नामक आचार्य के अनुसार विपुला के सम तथा विषम समस्त पादों का सातवाँ वर्ण लघु होना चाहिए । जब प्रथम तथा तृतीय पादों में चतुर्थ अक्षर के पश्चात् यगण न होकर भगण (ऽ।।) या (गण ऽ।ऽ) या नगण (।।।) या तगण हो तो विपुला छन्द होता है ।। ४ ।। इस तरह विपुला छन्द अनेक प्रकार का होता है । वक्त्र जाति के छन्दों के वर्णन के पश्चात् अनुष्टुप् छन्द के प्रथम चरण के बाद प्रत्येक चरण में क्रमशः चार-चार अक्षर बढ़ते जायँ तो पादचतुरुर्ध्व नामक छन्द होता है । इस छन्द के प्रथम पाद में आठ अक्षर द्वितीय पाद में बारह, तृतीय पाद में सोलह और चतुर्थ पाद में बीस अक्षर होतें हैं ।। ५ ।। जिस छन्द के प्रत्येक पाद के अन्तिम दो अक्षर गुरु हों तो आपीड नामक छन्द होता है । यदि इस छन्द के प्रत्येक पाद के आदि के दो अक्षर गुरु हों तथा शेष सभी लघु हों तो प्रत्यापीड नामक छन्द होता है । अब पादचतुरुर्ध्व नामक छन्द के प्रथम पाद के स्थान में द्वितीय पाद हो तथा द्वितीय पाद के स्थान में प्रथम पाद हो तो मञ्जरी नामक छन्द होता है । जब प्रथम पाद के स्थान में तृतीय पाद और तृतीय पाद के स्थान में प्रथम पाद हो तो लवली नामक छन्द होता है ।। ६ ।। जब प्रथम पाद के स्थान में चतुर्थ पाद तथा चतुर्थ पाद के स्थान में प्रथम पाद हो हो तो अमृतधारा नामक छन्द होता है । अबउद्गता आदि छन्दों का वर्णन किया जा रहा है । जिसके प्रथम चरण में क्रमशः सगण (।।ऽ) जगण (।ऽ।) सगण (।।ऽ) और एक लघुवर्ण हो, द्वितीयपाद में नगण (।।।) सगण (।।ऽ) जगण (।ऽ।) और तथा एक गुरु (ऽ) तृतीय पाद में भगण (ऽ।।) नगण (।।।) जगण (।ऽ।) एक लघु एवं एक गुरु (।ऽ) एवं चतुर्थ चरण में सगण (।।ऽ) जगण (।ऽ।) सगण (।।ऽ) जगण (।ऽ।) तथा एक गुरु (ऽ) वर्ण हों तो उस छन्द को उद्गता कहते हैं ।। ७ ।। यदि उद्गता के तृतीय चरण में रगण (ऽऽ) नगण (।।।) भगण (ऽ।।) और एक गुरु वर्ण हों और शेष चरण पूर्ववत् ही रहें तो सौरभ नामक वह छन्द होता है । यदि उद्गता के तृतीय चरण में दो नगण (।।।) और तथा दो सगण (।।ऽ) हों तथा शेष चार पूर्ववत् ही रहें तो वह ललितसंज्ञक छन्द होता है ।। ८ ।। जिस उद्गता के प्रथम चरण में क्रमशः यगण (।ऽऽ) सगण जगण (।ऽ।) भगण (ऽ।।) और दो गुरु (ऽऽ) वर्ण हों द्वितीय चरण में क्रमशः सगण (।।ऽ) नगण (।।।) जगण (।ऽ।) रगण (ऽ।ऽ) और एक गुरु (ऽ) वर्ण हों तृतीय चरण में दो नगण (।।।) तथा एक सगण (।।ऽ) तथा चतुर्थ चरण में तीन नगण (।।।) सगण (।ऽ।) तथा भगण (ऽ।।) हो तो वह 'उपस्थित प्रचुपित' छन्द होता है । उस छन्द के तृतीय चरण में जब क्रमशः दो नगण (।।।) एक सगण (।।ऽ) दो नगण (।।) और एक सगण (।।ऽ) हो तो वह वर्धमान नामक छन्द होता है । इसी छन्द में जब तृतीय चरण के स्थान में तगण (ऽ।।) जगण (।ऽ।) एवं रगण (ऽ।ऽ) हो तो वह शुद्ध विषम नामक छन्द होता है । अब अर्धसम वृत्त का वर्णन करूँगा ।। १० ।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का विषमवृत्त वर्णन नामक तीन सौ बत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३३२ ॥

त्रयस्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अर्द्धसमनिरूपणम्

अग्निरुवाच– **उपचित्रकं सससनाभथभोजभगामथ। द्रुतमध्या ततभगागथोननजयाःस्मृताः ॥ १ ॥ वेगवती सुसमगा भभभगोगथो स्मृता। रुद्रविस्तारस्तोसभगासमजागोगथा स्मृता॥ २॥ सजसागोगथोद्रौणौणोगौ वै केतुमत्यपि। आख्यानकी ततजगागथोजतजगागथ ॥ ४॥ विपरीताख्यानकी त्तौ त्जौ जागतौ जगौगथ। सौमलौ गथलमौभरौभवेद्धरिणवल्लभा॥ ५॥ नौक्रलोगाथनजजा यः स्यादपरवक्त्राय। पुष्पिता नवयौनजजरोगथो कल्पिता॥ जौं जौं यो जरजरागो मूले पनमती शिखा। अष्टाविंशतिनाभागा त्रिंशन्नागन्ततो युजि। खञ्जा तद्विपरीता स्यात् समवृत्तं प्रदर्श्यते ॥ ६॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये अर्द्धसमनिरूपणकथनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३३ ॥

अग्निदेव ने कहा– वह उपचित्र नामक छन्द होता है जिसके प्रथम चरण में तीन सगण (।।ऽ) एक लघु (।) एवं एक गुरु वर्ण हो तथा द्वितीय चरण में तीन भागण (ऽ।।) तथा दो गुरु (ऽऽ) वर्ण हों तथा पूर्वार्द्ध के ही समान उत्तरार्द्ध के भी दोनों चरण हों। द्रुतमध्या नामक छन्द वह होता है जिसके प्रथम पाद में तीन भगण एवं दो गुरु हों एवं द्वितीय पाद में एक नगण एवं तीन जगण हों। प्रथम पाद के समान ही तृतीय चरण हो तथा द्वितीय चरण के समान चतुर्थ चरण हो ।। १ ।। उस छन्द का नाम वेगवती है जिसके प्रथम चरण में तीन सगण एवं एक गुरु एवं द्वितीय चरण में तीन भगण एवं दो गुरु हों उस छन्द को रुद्रविस्तार कहा जाता जिसके प्रथम पाद में क्रमशः तगण सगण भगण एवं एक गुरु हो तथा द्वितीय पाद में क्रमशः सगण मगण, जगण एवं दो गुरु हों। पूवार्द्ध के समान ही उत्तरार्द्ध भी हो ।। २ ।। उस छन्द को केतुमती कहते हैं- जिसके प्रथम पाद में क्रमशः सगण, जगण, सगण तथा दो गुरु हों और द्वितीय पाद में क्रमशः भगण, रगण एवं नगण एवं दो गुरु हों। पूर्वार्द्ध के ही समान उत्तरार्द्ध भी हों। वह आख्यानकी नामक छन्द होता है जिसके प्रथम पाद में दो तगण, एक जगण एवं दो गुरु हों एवं द्वितीय पाद में क्रमशः जगण, तगण, सगण एवं दो गुरु वर्ण हों। पूर्वार्द्ध के ही समान उत्तरार्द्ध भी हों ।। ३ ।। वहाँ पर छन्द की विपरीताख्यान की संज्ञा होती है जिसके प्रथम चरण में क्रमशः जगण तगण जगण एवं दो गुरु वर्ण हों तथा द्वितीय पाद में क्रमशः दो तगण एक जगण तथा दो गुरु वर्ण हों। हरिणबल्लभा अथवा हरिणप्लुता नामक छन्द वहाँ होता है जिसके प्रथम पाद में क्रमशः तीन सगण एवं एक लघु तथा एक गुरु वर्ण हो तथा द्वितीय पाद में क्रमशः एक नगण दो भगण तथा एक रगण हो। पूर्वार्द्ध के ही समान उत्तरार्द्ध हो ।। ४ ।। वहाँ पर अपरवक्त्र नामक छन्द होता है जिसके प्रथम पाद में क्रमशः दो नगण एक रगण एक लघु तथा एक गुरु वर्ण हो तथा द्वितीय पाद में एक नगण दो जगण तथा एक रगण होता है। पूर्वार्द्ध के ही समान उत्तरार्द्ध होता है। पुष्पिता अथवा पुष्पिताग्रा छन्द वहाँ होता है जिसके प्रथम पाद में क्रमशः दो नगण एक रगण तथा एक यगण होता है तथा द्वितीय पाद में क्रमशः नगण, जगण, जगण, रगण एवं एक गुरु वर्ण होता है। पूर्वार्द्ध के ही समान उत्तरार्द्ध भी होता है ।। ५ ।। जिस छन्द के प्रथम पाद में क्रमशः रगण, जगण, रगण-जगण एवं द्वितीय पाद में क्रमशः जगण, रगण जगण, रगण एवं गुरुवर्ण होता है, उसे यवमती अथवा पनमती अथवा परवती छन्द कहते हैं। जिस छन्द के प्रथम पाद में उन्तीस अक्षर तथा द्वितीय पाद में एकतीस अक्षर होते हैं। प्रत्येक पाद का अन्तिम वर्ण गुरु होता है। पूर्वार्द्ध के ही समान उत्तरार्द्ध भी होता है, उसे शिखा नामक वृत्त कहते हैं। जिस छन्द के प्रथम पाद में एकतीस अक्षर तथा द्वितीय पाद में उनतीस अक्षर तथा प्रत्येक पाद के अन्तिम वर्ण गुरु हों तो खञ्जा नामक छन्द होता है। अब इसके पश्चात् समवृत्त का निरूपण किया जा रहा है ।। ६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अर्द्धसमवृत्तनिरूपण नामक तीन सौ तैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३३३ ॥

चतुस्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

समवृत्तनिरूपणम्

अग्निरुवाच– **यतिर्विच्छेद इत्युक्तस्तत् तनुमध्यान्तयौ गणौ । यसगा कुमारललिता भौ गौ चित्रपदा स्मृता ॥ १ ॥ विद्युन्माला ममगा गो भत लगगणौः भवेत् । माणवका क्रीड़ितकं रनसा हलमुखी भवेत् ॥ २ ॥ स्याद् भुजङ्गशिशुभृतानौ मोहंसस्तम्नौगौ । भवेच्छुद्धविराड्वृत्तं प्रतिपादं मसौ जगौ॥ ३॥ मसजगैः पणवो स्याज्जौ गौं मयूरसारिणी । मत्तामभंसगा वृत्तं तजजगास्यादुपस्थिता॥ ४॥ रुक्मवती भमौसगाविन्द्रावज्रा ततौ जगौ गु । जतौ जगौ गूपपूर्वावाद्यन्ताद्युपजातयः ॥ ५॥ दोधक भभभागौ स्यात् शालिनीं मततागगौ । यतिःसमुद्राः ऋषयः वातोर्मी मभतागगौ ॥६॥ चतुःस्वरा स्याद् भ्रमरी विलसितामभौतनलाः । समुद्रा अथ ऋषयो रनरलगैः रथोद्धता ॥ ७ ॥ स्वागतारनौभगौगः वृत्ताननसगगाःश्च सः । श्येनी रजौ र लौगः स्याद्रम्या जरजगौगेस्तथा॥८॥ जगती वंशस्था वृत्तं जतौ जरावथ तौ जरौ। इन्द्रवंशा तोटकं सैश्चतुर्भिः प्रतिपादतः॥९॥ भवेद् द्रुतविलम्बिता**

अग्निदेव ने कहा– वृत्त के चरण के अन्त में अथवा बीच-बीच में होने वाले विराम को यति कहते हैं । जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः तगण एवं यगण हों उसे तनुमध्या नामक वृत्त कहते हैं । जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः यगण, सगण तथा एक गुरु हो उसे कुमारललिता कहते हैं । जिसके प्रत्येक पाद में दो भगण तथा दो गुरु वर्ण हों उसे चित्रपदा कहते हैं ।। १ ।। जिसके प्रत्येकपाद में दो मगण तथा दो गुरु हों उसे विद्युन्माला कहते हैं । जिसके प्रत्येक पाद में भगण तगण एक लघु तथा एक गुरु हो उसे माणवकाक्रीडित कहते हैं । जिसके प्रत्येक पाद में रगण नगण तथा सगण हो उसे हलमुखी वृत्त कहते हैं ।। २ ।। जिसके प्रत्येक पाद में दो नगण तथा एक मगण हो उसे शिशुभृता या भुजग शुभृता या भुजगशिशुयुता या भुजगशिशुवृता कहते हैं । जिसके प्रत्येक पाद में क्रमशः मगण नगण एवं दो गुरु वर्ण हों उसे हंसरुतवृत्त कहते हैं । उस छन्द को शुद्ध विराड् कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में क्रमशः मगण, सगण, जगण एवं एक गुरु वर्ण होता है ।। ३ ।। जिसके प्रत्येक पाद में क्रमशः मगण, नगण, यगण तथा एक गुरु वर्ण होता है, उसे पणववृत्त कहते हैं । मयूरसारिणी नामक वह छन्द होता है जिसके प्रत्येक पाद में क्रमशः रगण, जगण, रगण एवं एक गुरु वर्ण होता है । जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः दो भगण एक सगण एवं एक गुरु वर्ण होता है वह मत्तानामक वृत्त कहलाता है । जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः तगण दो जगण एवं एक गुरु वर्ण हो उसे उपस्थिता नामक वृत्त कहते हैं ।। ४ ।। जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः दो भगण एक सगण तथा एक गुरु वर्ण होता है उसे रुक्मवती नामक वृत्त कहते हैं । इन्द्रवज्रा नामक वह वृत्त होता है जिसके प्रत्येक पाद में क्रमशः दो तगण एक जगण तथा दो गुरु वर्ण होता है । उपेन्द्रवज्रा उस वृत्त को कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में क्रमशः जगण, तगण, जगण तथा दो गुरु वर्ण होते हैं। जब एक ही वृत्त के भिन्न-भिन्न चरणों में इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवजा के लक्षण मिलें तो उपजाति नामक छन्द होता है ।। ५ ।। जिस वृत्त के प्रत्येक पाद में तीन भगण के बाद एक गुरुवर्ण आए उसे दोधक वृत्त कहते हैं । जिस वृत्त के प्रत्येक पाद में क्रमशः मगण दो तगण तथा दो गुरु वर्ण हों उसे शालिनी कहते हैं । इसमें चार एवं सात वर्णों पर यति (विराम) होता है । जिस वृत्त के प्रत्येक पाद में क्रमशः मगण, भगण, तगण एवं दो गुरु वर्ण हों उसे वातोर्मि कहते हैं ।। ६ ।। जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः मगण, भगण, तगण, नगण तथा एक लघु वर्ण होता है उसे भ्रमरीविलासिता अथवा भ्रमरविलासिता वृत्त कहते हैं । इसमें चार तथा सात वर्णों पर यति होती है । रथोद्धता वृत्त के प्रत्येक पाद में क्रमशः रगण, नगण, रगण एक लघु तथा एक गुरु वर्ण होते हैं । इसमें चार एवं सात वर्णों पर यति होता है ।। ७ ।। वृत्त के प्रत्येक पाद में क्रमशः रगण, नगण, भगण तथा दो गुरु वर्ण होते हैं उसे स्वागता वृत्त कहते हैं । वृत्ता वृत्त वहाँ होता है, जिसके प्रत्येक पाद में क्रमशः दो नगण एक सगण तथा दो गुरु हों उसे वृत्ता कहते हैं । जिस वृत्त के प्रत्येक पाद में क्रमशः रगण, जगण एवं रगण एवं दो गुरु वर्ण हों उसे श्येनी वृत्त कहते हैं । वहाँ पर रम्या नामक वृत्त होता है जिसके प्रत्येक प्राद में क्रमशः रगण, नगण, रगण, एक लघु तथा एक गुरुवर्ण होता है ।। ८ ।। यहाँ से जगती छन्द का अधिकार प्रारम्भ होता है । जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः जगण, तगण, जगण और रगण होते हैं उसे वंशस्थ नामक वृत्त कहते हैं । जिस वृत्त के प्रत्येक पाद में क्रमशः दो तगण जगण और रगण होते हैं, उसे इन्द्रवंशा

नभौ भरावथ ननौ। म्यौ श्रीपुटो वसुदेवा जलोद्धतगतिजसौजसौ॥ १०॥ ननौ मरावाथ तत नयनयाः स्मृतम् । कुसुमविचित्रा ननौ ररौ स्याच्चञ्चलाक्षिका॥११॥ भुजङ्गप्रयातं यैः स्याच्चतुर्भिःस्रग्विणीच रैः । प्रमिताक्षरा सजौ सौ कान्तोत्पीड़ा भमौ समौ ॥ १२ ॥ वैश्वदेवी पञ्चाङ्गो मौ यौ नवमालिनी । नजौ भयौ प्रतिपादं गणा अति जगत्यपि॥ १३॥ प्रहर्षणी मनजराः गोयतिर्वह्निदिक्षु च । रुचिरा जभसजगा छिन्ना वेदैर्ग्रहैःस्मृता॥१४॥ मत्तमयूरं मतया सगो वेदग्रहे यतिः । गौरीननसा गः स्यादसम्बाधा मतनसा गौ ॥ १५॥ योग इन्द्रियनवकौ ननौ रसलगाः स्वराः । स्वराश्चापराजिता स्यान्ननभलगाः स्वराः ॥ १६ ॥ द्विःप्रहरणकलिता वसन्ततिलका तभौ । जौ गौ सिंहोन्नता सा स्यान्मुनेरुद्धर्षणी च सा॥१७॥ चन्द्रावती ननननसैर्माला नर्तुनवकः स्मृतः । मणिगुणनिकरा सौ मालिनी नौ मययैश्च॥ १८॥ यतिर्वसुस्वरा भरौ ननौनगौस्वरैः । ऋषभगजविलसिता ज्ञेया शिखरिणी यमौ॥ १९॥ नसभालगृतु-रुद्राः पृथ्वीजसजसा यलगाः । गीसुग्रहविच्छिन्ना पिङ्गलेनेरिता पुरा ॥ २०॥ वंशपत्रपतितं स्याद् भरौनभौ नलौ गृषिदिक्। हरिणी नसमारः सो लगौ रसचतुःस्वराः॥ २१॥ मन्दाक्रान्ता मभनतं तगौगच्छिरयस्वराः। कुसुमितलतावेल्लिता

कहते हैं । जिस वृत्त के प्रत्येक पाद पाद में चार सगण होते हैं उसे तोटक कहते हैं ।। ९ ।। जिस वृत्त के प्रत्येक पाद में क्रमशः एक नगण दो भगण तथा एक रगण होते हैं उसे द्रुत दिलम्बित कहते हैं। जिसके प्रत्येक पाद में क्रमशः दो नगण एक-एक मगण तथा एक-एक सगण होता है उसे श्रीपुट कहते हैं। इसमें चार एवं आठ अक्षरों पर यति होती है । जिस वृत्त को प्रत्येक पाद में क्रमशः जगण, सगण, जगण एवं सगण होता है उसे जलोद्धतगति कहते हैं । इसमें छह-छह वर्णों पर विराम होता है । जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः दो तगण एक मगण तथा एक रगण होते हैं, उस वृत्त को तत कहते हैं । जिस वृत्त के प्रत्येक पाद में क्रमशः नगण, यगण, नगण तथा यगण होते हैं उसे कुसुमविचित्रा कहते हैं । इसमें भी छह-छह अक्षरों पर यति होती है । जिस वृत्त के प्रत्येक पाद में क्रमशः दो नगण एवं दो रगण हों उस वृत्त को चञ्चलाक्षिका। इसमें सात तथा पाँच अक्षरों पर यति होती है ।। १० ।। जिस वृत्त के प्रत्येक पाद में चार यगण हों उसे भुजङ्गप्रयात कहते हैं। इसके पाद के अन्त में यति होती है और जिस वृत्त के प्रत्येक पाद में चार रगण हों उसे स्रग्विणी वृत्त कहते हैं । इसमें भी पाद के अन्त में यति होती है । जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः एक सगण एक जगण तथा दो सगण हो उसे प्रमिताक्षरा कहते हैं । जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः भगण, मगण, सगण एवं मगण हो उसे कान्तोत्पीडा छन्द कहते हैं ।। १२ ।। जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः दो मगण एवं दो यगण हों उसे वैश्वदेवी छन्द कहते हैं । इसमें पाँच एवं सात अक्षरों पर विराम होता है । नवमालिनी छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में क्रमशः नगण, जगण, भगण तथा यगण हो । इसमें भी पाँच एवं सात वर्णों पर विराम होता है । अब अति जगती छन्द का अधिकार प्रारम्भ होता है ।। १३ ।। जिसके प्रत्येक पाद में क्रमशः मगण, नगण, जगण, रगण तथा एक गुरु वर्ण हो उसे प्रहर्षिणी वृत्त कहते हैं। इसमें तीन तथा दश अक्षरों पर यति होती है । रुचिरा नामक वृत्त वहाँ होता है जिसके प्रत्येक पाद में क्रमशः जगण, भगण, सगण, जगण तथा एक गुरुवर्ण हो । जिसके प्रत्येक पाद में मगण, तगण, यगण, सगण एवं एक गुरुवर्ण होता है उसे मत्तमयूर वृत्त कहते हैं। इसमें भी चार एवं नववर्णों पर यति होती है । जिस वृत्त के प्रत्येक पाद में क्रमशः तीन नगण एक सगण एवं एक गुरुवर्ण होता है, उसे गौरी नामक छन्द कहते हैं । वहाँ पर असम्वाधा नामक वृत्त होता है जिसके प्रत्येक पाद में क्रमशः मगण, तगण, नगण, सगण एवं दो गुरुवर्ण हों । इसमें पाँच एवं चार वर्णों पर यति होती है । जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः दो नगण एक रगण एक सगण एक लघु तथा एक गुरुवर्ण हों उसे अपराजिता नामक वृत्त कहते हैं । इसमें सात-सात वर्णों पर यति होती है । जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः दो नगण एक भगण एक यगण, एक लघु तथा एक गुरु वर्ण हो उसे प्रहरणकलिता नामक वृत्त कहते हैं। इसमें भी सात-सात वर्णों पर यति होती है । वसन्ततिलका छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः एक तगण एक भगण दो जगण तथा दो गुरुवर्ण हों । इसके पाद के अन्त में यति होती है । वसन्ततिलका को आचार्य कश्यप सिहोन्नता तथा आचार्य सैतव उद्धर्षिणी कहते हैं ।। १५-१७ ।। चन्द्रावती नामक छन्द वहाँ होता है जहाँ पर प्रत्येक पाद में क्रमशः चार नगण एवं एक सगण होता है । इसमें सात एवं आठ वर्णों पर यति होती है । यदि चन्द्रावती का छह एवं नववर्णों पर यति हो तो उसे मालावृत्त कहते हैं । यदि चन्द्रावती में क्रमशः आठ एवं सात वर्णों पर यति हो तो वही मणिगुणनिकरा कहलाती है । मालिनी छन्द में क्रमशः दो नगण एक मगण तथा दो यगण होते हैं । इसमें आठ एवं सात वर्णों पर यति होती है । ऋषभ गजविलसित नामक छन्द वहाँ होता है जहाँ प्रत्येक पाद में क्रमशः एक भगण, एक रगण तीन नगण एवं एक गुरु वर्ण होता है । इसमें सात एवं नव वर्णों पर यति होती है । शिखरिणी छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण, भगण

मतना य य याः शराः॥ २२॥ रसाः स्वराः प्रतिरथमसजाः भततात्श्च गः । शार्दूलविक्रीड़ितं स्यादादित्यमुनयो यतिकृतिः॥ २३॥ सुवदना मोरो भनया भलगाः स्वराः । यतिर्मुनिरसा भरना रनरा नगौ इति वृत्तं क्रमात् स्मृतम् ॥ २४ ॥ स्त्रग्धरा मरभानयययया त्रिःसप्तका यतिः । सुभद्रकं भरनारनरा नलौ दशभास्कराः॥२५॥ अश्वललितं नजभा जभजा भलगा ततः । मत्ताक्रीडा ममतना नौनलौ गोष्टमातिथिः ॥ २६॥ तन्वी भतनसाभोभो नयो वाणस्वरार्ककाः । क्रौञ्चपदा भमसभा नौ नौ गो वाणशराष्टसप्ततः ॥ २७ ॥ भुजङ्गविजृम्भितं ममतना ननरासलौ । गोष्टेशमुनिभिश्छेदो ह्युपवाहाख्यमीदृशम् ॥ २८ ॥ मनना ननना नौ गगौ नगर्तुरसेन्द्रियैः । नौ सप्तरो दण्डकः स्याच्चण्डवृष्टिप्रपातकम् ॥ २९॥ रेफवृद्ध्या ननौ नवतु रसेन्द्रियैः स्युर्व्यालजीमूतमुख्यका। शेषे वै प्रचिता ज्ञेया गाथाप्रस्तारउच्यते ॥ ३० ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये समवृत्तनिरूपणकथनं नाम चतुस्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३४ ॥

एक लघु तथा एक गुरु वर्ण होते हैं । इसमें छह तथा ग्यारह वर्णों पर क्रमशः यति होती है । प्राचीनकाल में पिङ्गल नामक आचार्य ने बतलाया है कि पृथ्वी नामक छन्द में क्रमशः जगण, सगण, जगण, सगण, यगण एक लघु तथा एक गुरु वर्ण होते हैं । इसमें क्रमशः सात एवं नव वर्णों पर यति होती है ।। १८-२० ।। वहाँ पर वंशपत्रपतित नामक वृत्त होता है जिसके प्रत्येक पाद में क्रमशः मगण, रगण, नगण, भगण, नगण एक लघु तथा एक गुरु वर्ण हो । इसमें सात एवं दश वर्णों पर यति होती है । हरिणी छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः नगण, सगण, मगण, रगण, सगण एक लघु तथा एक गुरु वर्ण होता है । इसमें क्रमशः छह, चार एवं सात वर्णों पर यति होती है ।। २१ ।। वहाँ पर मन्दाक्रान्ता नामक छन्द होता है जिसके प्रत्येक पाद में क्रमशः एक मगण, एक भगण, एक नगण, दो तगण तथा दो गुरु वर्ण होते हैं । इसमें चार, छह तथा सात वर्णों पर यति होती है । वह छन्द कुसुमितलाता नामक होता है जिसके प्रत्येक पाद में क्रमशः मगण, तगण, नगण तथा तीन यगण होते हैं । इसमें पाँच, छह तथा सात वर्णों पर यति होती है । जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण दो तगण एवं एक गुरु वर्ण होते हैं उसे शार्दूलविक्रीडित कहते हैं । इसमें बारह एवं छह वर्णों पर यति होती है ।। २२-२३ ।। सुबदना नामक वृत्त कृति के अन्तर्गत हैं । इसमें प्रत्येक पाद में क्रमशः मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, भगण एक लघु तथा एक गुरु वर्ण होते हैं । इसमें यति सात, सात एवं छह वर्णों पर होती है ।। २४ ।। जिस कृति छन्द के प्रत्येक पाद में बीस वर्ण और क्रमशः लघु एवं गुरु वर्ण होते हैं उसे वृत्त नामक छन्द कहते हैं ।। २४ ।। जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः मगण, रगण, भगण, नगण तथा तीन यगण हों उसे स्त्रग्धरा कहते हैं । इसमें सात-सात वर्णों पर तीन यति होती है । जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः भगण, रगण, नगण, रगण, नगण, रगण, नगण एवं एक लघुवर्ण हों उसे सुभद्रक कहते हैं । इसमें दस एवं बारह वर्णों पर यति होती है ।। २५ ।। अश्वललित नामक छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः नगण, जगण, भगण, जगण, भगण, जगण, भगण एक लघु तथा एक गुरु वर्ण होते हैं । इसमें ग्यारह तथा बारह वर्णों पर यति होती है । मताक्रीडा नामक छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः दो यगण, एक तगण, चार नगण एक लघु तथा एक वर्ण होते हैं । इसमें आठ तथा पन्द्रह वर्णों पर यति होती है ।। २६ ।। तन्वीनामक छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः भगण, तगण, नगण, सगण फिर दो भगण एक नगण एवं एक यगण होते हैं । इसमें पाँच, सात तथा बारह वर्णों पर यति होती है । क्रौञ्चपदा नामक छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः भगण, मगण, सगण, भगण फिर चार नगण एवं एक गुरु वर्ण होते हैं । इसमें क्रमशः पाँच-पाँच आठ तथा सात वर्णों पर यति होती है ।। २७ ।। भुजङ्गविजृम्भित नामक छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः दो मगण, एक तगण, फिर तीन नगण, एक रगण एक सगण, एक लघु तथा एक गुरु वर्ण होते हैं । इसमें आठ, ग्यारह एवं सात वर्णों पर यति होती है ।। २८ ।। जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः एक मगण फिर छह नगण फिर एक सगण तथा अन्त में दो गुरुवर्ण होते हैं उसे उपवाह अथवा अपवाह कहते हैं । इसमें नव, छह, छह तथा पाँच वर्णों पर यति होती है । जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः दो नगण के बाद में सात रगण होते हैं उसे दण्डक कहते हैं । दण्डक का पहला भेद चण्डवृष्टिप्रपात होता है । इसमें पादान्त में विराम होता है।।२९।। दण्डक के दो नगणों को छोड़कर रगण में वृद्धि करने पर व्याल, जीमूत आदि दण्डक कहलाते हैं । चण्डवृष्टिप्रपात के बाद जितने भेद दण्ड के होते हैं वे प्रचित कहलाते हैं । अब गाथा प्रस्तार का वर्णन किया जा रहा है।।३०।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का समवृत्त वर्णन नामक तीन सौ चौतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३३४ ॥

पञ्चत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

प्रस्तारनिरूपणम्

अग्निरुवाच– **छन्दोऽत्र सिद्धं गाथा स्यात् पादे सर्वगुरौ तथा । प्रस्तार आद्यगाथोनः परतुल्योऽथ पूर्वगः ॥ १ ॥ नष्टमध्ये समेऽङ्कोनः समेऽर्द्ध**

अग्निदेव ने कहा– वसिष्ठ जी इस छन्दःशास्त्र में जिन छन्दों का नाम नहीं बतलाया है, वे गाथा नामक छन्द के अन्तर्गत आते हैं । अब प्रस्तार का निरूपण किया जा रहा है । जिस छन्द के पाद में प्रत्येक अक्षर गुरु हों ऐसे पाद में आदि गुरु के नीचे लघु लिखना चाहिए । यह एकाक्षर प्रस्तार की बात है । द्वयक्षर प्रस्तार में उसके बाद इसी क्रम से वर्णों की स्थापना करें । अर्थात् पहले गुरुवर्ण को लिखे उसके नीचे लघुवर्ण को ॥ १ ॥ **विशेष-** प्रस्तार का विस्तृत वर्णन पिङ्गलाचार्य प्रणीत काव्यमाला की मृतसंजीवनी व्याख्या में भट्ट हलायुध ने ८/२० से लेकर ८/२३ तक की व्याख्या में की है । उसका अभिप्राय इस प्रकार से है- किस छन्द के कितने भेद सम्भव हैं इस बात का ज्ञान जिस प्रणाली से होता है उसे प्रस्तार कहते हैं । एकाक्षर छन्द का भेद जानने के लिए पहले गुरु लिखकर उसके नीचे एक लघु लिखें । इस तरह एकाक्षर छन्द के दो भेद हुए । द्वयक्षर छन्द के भेदों का पता लगाने के लिए एकाक्षर प्रस्तार को दो बार लिखना चाहिए। उदाहरणार्थ–

एकाक्षर प्रस्तार

ऽ	१
।	२

द्वयक्षर प्रस्तार

ऽऽ	१
।ऽ	२
ऽ।	३
।।	४

इस तरह द्वयक्षर छन्द के चार प्रस्तार हुए । इसी तरह त्र्यक्षर छन्द के निम्नांकित प्रस्तार के आठ भेद हैं । आचार्य पिङ्गल भी त्र्यक्षर छन्द के आठ प्रस्तारों का समर्थन करते हुए लिखते हैं वसवस्त्रिकाः ॥ ८/२३ ॥ यहाँ पर वसु शब्द आठ संख्या का द्योतक है । इस सूत्र की मृतसंजीवनी में भट्टहलायुध लिखते हैं - 'एवं पूर्वोक्ते त्र्यक्षर प्रस्तारे अष्टौ त्रिका जायन्ते ते च मकारादयः शास्त्रादौ कथिता एव । प्रदर्शनार्थं चैतत् । तेन षोडश चतुष्का, द्वात्रिंशत् पञ्चका भवन्ति । एवं चतुःषष्ठि गायत्रिसमवृत्तानि सर्वगुरुलघ्वाघन्तानि भवन्ति । इस कथन का अभिप्राय है कि त्र्यक्षर छन्द के आठ त्रिक प्रस्तार चतुरक्षर वृत्त के सोलह चतुष्क प्रस्तार एवं पञ्चाक्षर वृत्त के बत्तीस पञ्चक प्रस्तार तथा षडक्षर वृत्त के चौंसठ षडक्षर प्रस्तार होते हैं । इन प्रस्तारों को निम्न प्रकार से जानना चाहिए–

त्र्यक्षर प्रस्तार

ऽऽऽ	१
।ऽऽ	२
ऽ।ऽ	३
।।ऽ	४
ऽऽ।	५
।ऽ।	६
ऽ।।	७

चतुरक्षर प्रस्तार

ऽऽऽऽ	१
।ऽऽऽ	२
ऽ।ऽऽ	३
।।ऽऽ	४
ऽऽ।ऽ	५
।ऽ।ऽ	६
ऽ।।ऽ	७

।।। ८

ऽ।।ऽ ८

ऽऽऽ। ९

।ऽऽ। १०

ऽ।ऽ। ११

।।ऽ। १२

ऽऽ।। १३

।ऽ।। १४

ऽऽ।।। १५

।।।। १६

प्रस्तार का वर्णन करने के बाद नष्टवृत्त का वर्णन करते हुए कहते हैं । जब यह जानने की इच्छा हो कि गायत्री या अन्य किसी छन्द के समवृत्तों मेंसे छठा भेद कौन है तो फिर नष्ट संख्याओं को आधी करने पर जब वह दो भागों में बँट जाए तो एक लघु लिखना चाहिए । यदि आधा करने पर विषम संख्या हाथ लगे तो उसमे एक जोड़कर सम बना लें और फिर उसका आधा करें और ऐसी स्थिति में एक गुरु अक्षर की प्राप्ति होती है, उसे भी अन्यत्र लिख लें । जितने अक्षर वाले छन्द के भेद को जानना हो उतने अक्षरों की पूर्ति होने तक इसी प्रणाली से गुरु लघु का उल्लेख करते रहे। (इस बात को मृतसंजीवनीकार काव्यमाला के ८/२४ तथा ८/२५ इन दो सूत्रों की व्याख्या में इस प्रकार से समझते हैं- जैसे गायत्री छन्द के छठे भेद का स्वरूप जानना हो तो छह का आधा करना होगा । इससे एक लघु की प्राप्ति हुई। बाकी रहा तीन, इसमें दो का भाग नहीं लग सकता । अतः एक जोड़कर आधा किया जायेगा । इस स्थिति में एक गुरु की प्राप्ति हुई। पुनः चार का आधा करने पर दो शेष रहा । दो का आधा करने पर एक शेष रहा तथा एक लघु की प्राप्ति हुई । एक के सम संख्या न होने से एक जोड़ना पड़ा और एक गुरु की प्राप्ति हुई । फिर दो का आधा करने से एक हुआ । उसमें एक जोड़ा गया और एक गुरु की प्राप्ति हुई । पुनः इसी क्रिया के करने से एक गुरु की प्राप्ति हुई । चूँकि गायत्री का एक पाद छह अक्षरों का होता है अतएव उसके पाद का स्वरूप हुआ । (।ऽ।ऽऽऽ) उद्दिष्ट की संख्या बतलाने का सर्वोत्तम उपाय है कि उस छन्द के गुरु लघु वर्णों को क्रमशः दूना-दूना अंक रखता जाय । फिर केवल लघु वर्णों का जो अंक हो उसे जोड़कर उसमें एक मिला दें वही उत्त्र होगा । उदाहरणार्थ– यह इच्छा हुई कि किस संख्या का वृत्त है तो तनुमध्या के लघु वर्णों को इस प्रकार लिखें ।

तगण			यगण		
ऽ	ऽ	।	।	ऽ	ऽ
१	२	४	८	१६	३२

इनमें केवल लघु के अंक हैं ४ और ८ इन दोनों को जोड़कर एक मिलने से १३ हुआ । अर्थात् तनुमध्या गायत्री तेरहवीं संख्या का समवृत्त हैं ।। २ ।। जिस उपाय से विना प्रस्तार के ही वृत्त की संख्या जानी जाती है उस उपाय कोसंख्यान कहते हैं । इसके लिए जितने अक्षर के वृत्त की संख्या जाननी हो उसके आधा भाग को निकाल देना चाहिए । इस क्रिया से दो की उपलब्धि होती है। जैसे छह अक्षर वाले समवृत्त की संख्या क्या है, इसके जानने के लिए छह को दो भागों में विभक्त किया इससे दो की प्राप्ति हुई और बचा अब दो को अलग रखकर विषम संख्या में से एक घटा दिया। उससे शून्य की प्राप्ति हुई । उसे दो के नीचे लिखें । पुनः तीन में से एक घटाने पर जो दो बचा था उसे दो भागों में बाँटा तो उससे दो की प्राप्ति हुई और बचा एक । फिर दो को शून्य के नीचे लिखें । एक जो विषम संख्या उसमें से एक घटा देने से शून्य शेष रहा और उसमें शून्य की प्राप्ति हुई और उसे पहले के ही समान दो के नीचे लिखा । शून्य के स्थान में दो गुना करे। इसके

परे पूर्णं मेरुप्रस्तारतो भवेत् नगसंख्या वृत्तसंख्या चाध्वाङ्गुलमधोऽर्द्धतः संख्यैव द्विगुणैकोना छन्दःसारोऽयमीरितः ॥ ४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रस्तारनिरूपणकथनं नाम पञ्चत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥

लिए निचले शून्य को एक मानकर उसका दो गुना किया । उससे प्राप्त अंक को ऊपर के अर्धस्थान में ले जाकर रखें और उसे उतने से ही गुणा करें । जैसे शून्य स्थान को एक मानकर उसे दूना करने और उसको उतने से ही गुणा करने पर चार संख्या होगी । फिर उसे उसके शून्य स्थान में ले जाकर दूना करने से आठ संख्या होगी । उसे उसके ऊपर के अर्धस्थान में ले जाकर उसे उतने से ही गुणा करने पर ६४ संख्या हुई ।। ३ ।। इसे नीचे के रेखाचित्र से समझें-

अर्धस्थान	२	८X८ = ६४
शून्यस्थान	०	४X२ = ८
अर्धस्थान	२	२X२ = ४
शून्यस्थान	०	१X२ = २

अर्थात् छह अक्षर वाले समवृत्त की संख्या ६४ है । अब एक द्वयादि लग क्रिया की सिद्धि के लिए मेरु प्रस्तार बतलाया जा रहा है । किसी छन्द में कितने लघु कितने गुरु और कितने वृत्त होते हैं। इस बात का ज्ञान मेरु प्रस्तार से होता है । सबसे पहले एक चौकोर कोष्ठ बनायें, इसके नीचे दो उसके नीचे तीन इस तरह जितने अक्षर वाले प्रस्तार का ज्ञान अभीष्ट हो उतने कोष्ठ बनाते जायँ । सबसे ऊपर के कोष्ठ में एक संख्या रखें । उसके नीचे वाले दोनों कोष्ठ में एक संख्या रखें । उसके नीचे वाले दोनों कोष्ठ में भी एक-एक संख्या लिखें । तीसरी पंक्ति के दोनों किनारे के कोष्ठों में एक-एक लिखें और बीच में ऊपर की पंक्ति के अंकों को जोड़कर लिख दें । चौथी पंक्ति में भी दोनों किनारे के कोष्ठों में एक-एक लिखकर बीच के दोनों कोष्ठों में ऊपर की पंक्ति के अंकों को जोड़कर लिखें । इसको नीचे के चक्र से समझना चाहिए- **वर्णमेरु**

एकाक्षर प्रस्तर						१			
द्व्यक्षर प्रस्तर					१	१			
त्र्यक्षर प्रस्तर					१	२	१		
चतुरक्षर प्रस्तर				१	४	६	४	१	
पञ्चाक्षर प्रस्तर			१	५	१०	१०	५	१	
षडक्षर प्रस्तर १		१	६	१५	२०	१५	६	१	
सप्ताक्षर प्रस्तर	१	७	२१	३५	३५	२१	७	१	
अष्टाक्षर प्रस्तर	१	८	२८	५६	७०	५६	२८	८	१

इस मेरु प्रस्तार की द्वितीय पंक्ति में एकाक्षर का विन्यास है । इसमें एक गुरु तथा एक लघु वृत्त होता है । तीसरी पंक्ति में द्व्यक्षर का प्रस्तार है । उसमें एक सर्वगुरु तथा दो एक लघुवृत्त हैं तथा एक सर्वलघु वृत्त हैं । चतुर्थ पंक्ति में त्र्यक्षर का प्रस्तार है । उसमें एक सर्वगुरु, तीन एक लघु फिर तीन दो लघु तथा एक सर्वलघुवृत्त है । इसी तरह से आगे की पंक्तियों में भी समझना चाहिए । इस तरह वृत्तों के लघुगुरु अक्षरों तथा एकाक्षरादि वृत्तों की संख्या का ज्ञान होता है । मेरु प्रस्तार में आधा-आधा अंगुल विस्तार नीचे की अपेक्षा ऊपर की ओर कम होता जाता है । छन्द की संख्या को दो गुना करके उसमें से एक घटा दिया जाय तो उतने ही अंगुल का उसका अध्वा (प्रस्तार देश) होता है । इस तरह इस अध्याय में छन्दःशास्त्र का सार बतलाया गया ।। ४-५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का प्रस्तार निरूपण नामक तीन सौ पैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३३५ ॥

षट्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

शिक्षानिरूपणम्

अग्निरुवाच– **वक्ष्ये शिक्षान् त्रिषष्टिः स्युर्वर्णा वा चतुराधिका । स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः ॥ १ ॥ यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः । अनुस्वारो विसर्गश्च पौख्यौ चापि पराश्रितौ ॥ २ ॥ दुष्पृष्टश्चेति विज्ञेया ऌकारः प्लुत एव च । रङ्गश्च खे अरं प्रोक्तं हकारः पञ्चमैर्युतः॥ ३॥ अन्तस्थाभिः समायुक्त औरस्यः कण्ठ्य एव सः । आत्माबुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया ॥ ४ ॥ मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्। मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम्॥ ५॥ प्रातः सवनयोगं तु छन्दो गायत्रमाश्रितम् । कण्ठे माध्यन्दिनयुतं मध्यमं त्रैष्टुभानुगम्॥ ६॥ तारं तार्त्तीयसवनं शीर्षण्यं जगतीनुगम् । सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः॥ ७॥ वर्णान् जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः । स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नार्थप्रदानतः॥८॥ अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा। जिह्वामूलञ्च दन्ताश्च नासिकौष्ठौ च तालु च॥९॥ सभावश्च विवृत्तिश्च शषसा रेफ एव च । जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः ॥ १० ॥ यद्यो भावप्रसन्धानमुकारादि परम्पदम् । स्वरानतं तादृशं**

अग्निदेव ने कहा– वसिष्ठ जी अब मैं शिक्षाओं का वर्णन करूँगा । वर्णों की संख्या तिरसठ अथवा चौंसठ है । स्वरों की संख्या इक्कीस है । (अ, इ, उ तथा ऋ) ह्रस्व दीर्घ एवं प्लुत के भेद से बारह होते हैं, ए ओ ऐ तथा औ ये दीर्घ एवं प्लुत के भेद से आठ होते हैं । दुःस्पृष्ट (लृ) इन सबों को मिलाकर २१ स्वर होते हैं । दो स्वरों को मध्यवर्ती लृ को दुःस्पृष्ट कहते हैं ।) स्पर्श वर्णों की संख्या पच्चीस है । (क से लेकर म तक) कादयो मावसानाः स्पर्शाः ।) ।। १ ।। यादि की संख्या आठ है । (य, र, ल, व, श, ष, स एवं ह) यमों की संख्या चार है । वर्गों के पञ्चम वर्ण के बाद में आने पर आदि के चार वर्णों तथा पञ्चम वर्ण के बीच में जो उनके सदृश वर्ण का उच्चारण आता है उन्हें यम कहते हैं । भट्टोजि दीक्षित सिद्धान्त कौमुदी में लिखते हैं- वर्णेष्वाद्यानां चतुर्णां पञ्चमे परे मध्ये यमो नाम पूर्वसदृशो वर्णः प्रातिशाख्ये प्रसिद्धः । पलिक्क्नी, चख्ख्नतुः, अगिनः, ध्घ्नन्ति । इनमें दूसरे क्रमशः क्, ख, ग, घ यम हैं ।) अनुस्वार (.) विसर्ग (:) तथा दो पराश्रित क प उपध्मानीय तथा दुःस्पृष्ट लृकार । इस तरह वर्णों की संख्या तिरसठ है । यदि ऋ को प्लुत मान लिया जाय तो वर्णों की संख्या चौंसठ हो जाती है । रङ्ग अर्थात् अनुनासिक वर्णों का उच्चारण (खे अराँ) की तरह तथा आदि पञ्चाक्षर से युक्त हकार य, र, ल, व इन अन्तस्थ वर्णों से युक्त होकर हकार औरस्य हो जाता है तथा संयुक्त न होने पर कण्ठ्य होता है ।। २-३ ।। आत्मा अर्थात् अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य संस्कार रूप से अपने भीतर घट पटादि पदार्थों को अपनी बुद्धि का विषय बनाकर बोलने की इच्छा से मन को उनसे संयुक्त करता है । संयुक्त हुआ वह मन कायाग्नि को आहत करता है, उसी से वायु प्रेरित होता है । वह प्राणवायु हृदयप्रदेश में संचरण करते हुए मन्द ध्वनि में उस प्रख्यात स्वर को उत्पन्न करता है ।। ४-५ ।। जो प्रातः सवन के योग्य मन्त्रोच्चारण के लिए उपयोगी होता है तथा गायत्री छन्द के आश्रित होता है । उसके पश्चात् वह प्राणवायु कण्ठदेश में संचरण करता हुआ त्रिष्टुप् छन्दों से युक्त माध्यन्दिन सवन कर्म के साधनभूत मन्त्रोपयोगी मध्यमस्वर को उत्पन्न करता है ।। ६ ।। इसके पश्चात् वही प्राणवायु शिरोदेश में पहुँचकर उच्चध्वनि से युक्त एवं जगती छन्द के आश्रित सायं सवन कर्म के साधनभूत मन्त्रों के लिए उपयोगी स्वर को उत्पन्न करता है । इस तरह ऊपर की ओर प्रेरित वह प्राण मूर्धा में टकराकर अभिघात नामक संयोग का आश्रय बनकर मुख में स्थित कण्ठ आदि स्थानों में पहुँचकर वर्णों को उत्पन्न करता है। उन वर्णों के पाँच विभाग पाञ्च प्रकार का बतलाया गया है ।। ६-७ ।। स्वर, काल, स्थान, आभ्यन्तर प्रयत्न एवं बाह्य प्रयत्न के भेद से उन वर्णों में भेद होता है ।। ८ ।। उन वर्णों के उच्चारण स्थान आठ हैं हृदय, कण्ठ तथा मूर्धा, जिह्वा का मूल स्थान, दाँत, नासिका, दोनों ओंठ तथा तान्लु ।। ९ ।। विसर्ग का अभाव (सभाव), विवृत्ति या विवर्तन, संधि का अभाव, शकारादेश, शकारादेश, सकारादेश, रेफादेश, जिह्वामूलीयत्व, उपध्मानीयत्व, ये उष्मा वर्णों की आठ गतियाँ हैं ।। १० ।। जिस उत्तरवर्ती पद में आदि अक्षर उकार हो वहाँ यदि गुण आदि के कारण ओभाव का प्रसन्धान (परिज्ञान) हो तो उस ओकार को स्वरस्थानीय ही समझना चाहिए । (जैसे गङ्गोदकम् में) इससे भिन्न सन्धि स्थल में जो ओभाव का परिज्ञान होता है वह ओभाव उष्माका ही गतिविशेष है । (जैसे

विद्याद् यदन्यद् व्यक्तमूष्मणः॥ ११॥(कु) ऊतीर्थादागतं दग्धमपवर्णञ्च भक्षितम्। एवमुच्चारणं पापमनेवमुच्चारणं शुभम्॥ १२॥ सुतीर्थादागतं द्रव्यं स्वाम्नायं सुव्यवस्थितम्। सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्मराजते॥ १३॥ न करालो न लम्बोष्ठो नाव्यक्तो नानुनासिकः। गद्गदो बहु जिह्वश्च न वर्णान् वक्तुमर्हति॥ १४॥ एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडिताः। सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते॥ १५॥ उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः। ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमावधि॥ १६॥ कण्ठ्यावहाविचुयशास्तालव्या ओष्ठजा वुपु। स्युर्मूर्द्धन्या ऋटुरषाः दन्त्याः ऌतुलसाः स्मृताः॥ १७॥ जिह्वामूले तु कु प्रोक्तो दन्त्योष्ठो वः स्मृतो बुधैः। एदैतौ कण्ठतालव्यौ ओ औ कण्ठ्यौष्ठजौ स्मृतौ॥ १८॥ अर्द्धमात्रा तु कण्ठस्य एकारैकारयोर्भवेत्। अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः॥ १९॥ अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीषन्नेम स्पृष्टा शलाः स्मृताः। शेषाः स्पृष्टाः हलः प्रोक्ता निबोधात्र प्रधानतः॥ २०॥ ञमोऽनुनासिकानह्रौ (ह्रौ) नादिमौ हझषः स्मृताः। ईशन्नादोयणयशः श्वासिनश्च खफादयः। ईषच्छ्वासं स्वरं विद्याद् दीर्घमेतत् प्रचक्षते॥ २२॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शिक्षानिरूपणकथनं नाम षट्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥

शिवोवन्द्यः में) ।। ११ ।। जो वेदाध्ययन कुतीर्थ से प्राप्त हुआ है, अर्थात् आचारहीन गुरु से प्राप्त हुआ है, वह नीरस सा है। उसमें अक्षरों को किसी तरह तोड़ मरोड़कर किसी अर्थ तक पहुँचाया गया है। वह भक्षित के समान (निस्तेज) है। इस तरह का वेदोच्चारण पाप है तथा इसके विपरीत उच्चारण शुभ है ।। १२ ।। वह वेद उत्तम तीर्थ से आया है अर्थात् सदाचारी गुरु से पढ़ा गया है, जिसका उच्चारण सुस्पष्ट सम्प्रदायशुद्ध तथा सुव्यवस्थित है। जो सुन्दर स्वरों तथा समुचित उच्चारण स्थानों से उच्चरित हो वह वेदाध्ययन सुशोभित होता है ।। १३ ।। न तो विकराल आकृति वाला, न लम्बे ओंठ वाला, न तो अस्पष्ट उच्चारण करने वाला, न नाक से बोलने वाला और न तो गद्गद् कण्ठ या जिह्वाबन्ध से उच्चारण करने वाला ही वर्णोच्चारण में समर्थ होता है ।। १४।। जिससे वर्ण न तो अव्यक्त हो और न तो पीड़ित ही हों इस प्रकार से वर्णों के सम्यक् प्रयोग से मानव ब्रह्मलोक में पूजित होता है ।। १५ ।। स्वर तीन प्रकार के होते हैं, उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित। उच्चारण काल की दृष्टि से भी स्वर के तीन भेद होते हैं, ह्रस्व दीर्घ एवं प्लुत ।। १६ ।। व एवं ह इन दोनों का उच्चारण कण्ठ से होता है। इ च, छ, ज, झ, भ, य तथा श का उच्चारण तालु से होता है। ऋकार तथा टवर्ग का उच्चारण स्थान मूर्धा है। ऌ, तवर्ग (त, थ, द, ध, न) का उच्चारण स्थान दाँत है ।। १७ ।। कवर्ग का उच्चारण स्थान जिह्वामूल है तथा विद्वानों ने वकार का उच्चारण स्थान दाँत एवं ओष्ठ माना है। ए एवं ऐ का उच्चारण स्थान कण्ठ एवं तालु है तथा ओ एवं औ का उच्चारण स्थान कण्ङ्ग एवं ओष्ठ है ।। १८ ।। एकार एवं ऐकार में अकार की आधी मात्रा होती है। अयोगवाहों (अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय तथा यम) को आश्रय साधन के भागी हैं ।। १९ ।। अ च् (अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ) ये स्वर स्पर्शाभाव रूप विवृत्त प्रयत्न वाले हैं। यण् (य, व, र, ल) के ईषत् स्पृष्ट तथा शलों के अर्धस्पष्ट ईषद् विवृत प्रयत्न होते हैं। शेष हलों (क से लेकर म तक) के स्पृष्ट प्रयत्न होते हैं। इस बात को प्रधान रूप से जानना चाहिए ।। २० ।। ञम् प्रत्याहार के वर्ण (ञ, म, ङ, ण, न) अनुनासिक कहलाते हैं। ह तथा र अनुनासिक नहीं होते हैं। हकार, झकार तथा षकार के संवार, नाद एवं घोष प्रयत्न हैं, यण् तथा जश् के ईषन्नाद (अल्पप्राण) प्रयत्न हैं। ख, फ, छ, ठ, थ के विवार, अघोष तथा श्वास प्रयत्न हैं। च (च, ट, त, क, प, श, ष, स) के इषच्छ्वास प्रयत्न हैं। इस शिक्षाशास्त्र को वाणी का धाम कहा गया है ।। २२ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का शिक्षानिरूपण नामक तीन सौ छत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ३३६॥

सप्तत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

काव्यादिलक्षणम्

अग्निरुवाच– **काव्यस्य नाटकादेश्च अलङ्कारान् वदाम्यथ । ध्वनिर्वर्णाः पदं वाक्यमित्येतद् वाङ्मयं मतम् ॥ १ ॥ शास्त्रेतिहासवाक्यानां त्रयं यत्र समाप्यते । शास्त्रे शब्दप्रधानत्वमितिहासेषु निष्ठता॥ ३॥ अभिधायाः प्रधानत्वात् काव्यं ताभ्यां विभिद्यते । नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा॥३ ॥ कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र च दुर्लभा । व्युत्पत्तिर्दुलभा तत्र विवेकस्तत्र दुर्लभः॥ ४॥ सर्वं शास्त्रमविद्वद्भिर्मृग्यमाणं न सिध्यति। शादिवर्णा द्वितीयाश्च महाप्राणास्तुरीयकः ॥ ५ ॥ वर्गेषु वर्णवृन्दं स्यात् पदं सुप्तिङ्प्रभेदतः । सङ्क्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली ॥ ६॥ काव्यं स्फुरदलङ्कारं गुणवद् दोषवर्जितम् । योनिर्वेदश्च लोकश्च सिद्धमन्नादयोनिजम्। देवादीनां संस्कृतं स्यात् प्राकृतं त्रिविधं नृणाम् । गद्यं पद्यञ्च मिश्रञ्च काव्यादि त्रिविधं स्मृतम् ॥ ८ ॥ अपादः पदसन्तानो गद्यं तदपि गद्यते । चूर्णकोत्कलिकागन्धिवृत्तभेदात् त्रिरूपकम् ॥ ९॥ अल्पाल्पविग्रहं नातिमृदुसन्दर्भनिर्भरम् । चूर्णकं नामतो दीर्घसमासात् कलिका भवेत्॥ १०॥ भवेन्मध्यमसन्दर्भं नातिकुत्सितविग्रहम् । वृत्तच्छायाहरं वृत्तं गन्धिनैतत् किलोत्कटम्॥ ११॥ आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा । कथानिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्यञ्च पञ्चधा ॥ १२ ॥ कर्तृवंशप्रशंसा स्याद् यत्र गद्येन विस्तरात् । कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भविपत्तयः ॥ १३॥ भवन्ति यत्र दीप्ताश्च रीतिवृत्तिप्रवृत्तयः । उच्छ्वासैश्च परिच्छेदो यत्र**

अग्निदेव ने कहा– वसिष्ठ अब मैं काव्य तथा नाटक आदि के स्वरूप तथा अलंकारों का निरूपण करूँगा । ध्वनि, वर्ण, पद तथा वाक्य ये ही वाङ्मय कहे गये हैं ।। १ ।। इस वाङ्मय में ही शास्त्र, इतिहास तथा काव्य इन तीनों की समाप्ति हो जाती है । शास्त्र में शब्द की प्रधानता होती है, इतिहास में अर्थ की प्रधानता होती है । इन दोनों में चूँकि अभिधा शक्ति की ही प्रधानता होती है अतएव काव्य इन दोनों से भिन्न है ।। २ ।। लोक में मनुष्यत्व की प्राप्ति दुर्लभ है, उसमें भी विद्या की प्राप्ति और कठिन है । उसमें कवित्व की प्राप्ति और अधिक कठिन है और उसमें कवित्व की पूर्णशक्ति (प्रतिभा) का होना अत्यन्त कठिन है ।। ३।। उससे भी अधिक दुर्लभ है व्युत्पत्ति । उससे भी अधिक दुर्लभ है विवेक ।। ४ ।। कोई भी शास्त्र क्यों न हो उसका यदि अज्ञानी पुरुषों के द्वारा अनुसंधान किया जाय तो उससे किसी भी अर्थ की सिद्धि नहीं होती है । शादि (श, ष, स, ह) वर्ण, वर्गों के द्वितीय एवं चतुर्थ वर्ण महाप्राण संज्ञक होते हैं ।। ५ ।। वर्णों के समूह को पद कहते हैं । पदों के दो भेद हैं सुबन्त एवं तिङन्त । संक्षेप में वक्ता के अभिप्रेत अर्थ से युक्त पद समूह को वाक्य कहते हैं ।। ६ ।। जिसमें अलंकार भासित हो रहा हो, ऐसे गुणों से युक्त तथा दोषों से रहित वाक्य को काव्य कहते हैं । वेद एवं शास्त्र ये दोनों काव्य की प्रतिभा की योनि बतलाये गये हैं । सिद्ध किए गये मन्त्र के प्रभाव से जिस काव्य का निर्माण होता है उसे अयोनिज कहते हैं ।। ७ ।। देवता आदि (राजा, ब्राह्मण आदि) की भाषा संस्कृत तथा अन्य मनुष्यों की भाषा प्राकृत होती है । वह तीन प्रकार की होती है । काव्य आदि तीन प्रकार के होते हैं, गद्यकाव्य, पद्यकाव्य एवं गद्य-पद्य मिश्रित काव्य ।। ८ ।। जिस काव्य में पद समूह चरणों (पाद) से रहित होता है, वह गद्य काव्य कहलाता है । गद्य के तीन भेद होते हैं- चूर्णक, उत्कलिका तथा वृत्तगन्धि ।। ९ ।। छोटी-छोटी कोमल पदों वाली संयुक्त, अत्यन्त मधुर सन्दर्भ से पूर्ण गद्य को चूर्णक कहते हैं । जिस गद्य में बड़े-बड़े समास से युक्त पद हों उसे उत्कलिका कहते हैं ।। १० ।। जो मध्यम श्रेणी के सन्दर्भ से युक्त हो तथा जिसका विग्रह अत्यन्त कुत्सित (कठिन) न हो, जिसमें पद्य का आभास मिले, जिसके पद किसी पद्य के, टुकड़े से प्रतीत हों, जो सुनने में अधिक उत्कट नहीं प्रतीत हो ऐसे गद्य को वृत्तगन्धि कहते हैं ।। ११ ।। गद्यकाव्य के पाँच भेद माने जाते हैं- आख्यायिका, कथा, खण्डकाव्य, परिकथा तथा कथानिका ।। १२ ।। जिस गद्य काव्य में ग्रन्थ निर्माता के वंश की गद्य के द्वारा विस्तार पूर्वक प्रशंसा की गयी हो, जिसमें कन्या का हरण, संग्राम, विप्रलम्भ (वियोग मरण आदि) विपत्तियाँ आदि वर्णित हों, जिसमें रीतियाँ, वृत्तियाँ तथा प्रवृत्तियाँ प्रकाशित होती हों, जिसमें

या चूर्णकोत्तरा॥ १४॥ वक्त्रं वाऽपरवक्त्रं वा यत्र साख्यायिका स्मृता। श्लोकैः स्ववंशं संक्षेपात् कविर्यत्र प्रशंसति ॥ १५ ॥ मुख्यस्यार्थावताराय भवेद् यत्र कथान्तरम्। परिच्छेदो न यत्र स्याद् भवेद् वालम्भकैः क्वचित् ॥ १६ ॥ सा कथा नाम तद्गर्भे निबघ्नीयाच्चतुष्पदीम्। भवेत् खण्डकथा यासौ यासौ परिकथा तयोः ॥ १७ ॥ अमात्यं सार्थवाहं वा द्विजं वा नायकं विदुः। स्यात् तयोः करुणं विद्धि विप्रलम्भश्चतुर्विधः ॥ १८ ॥ समाप्यते तयोर्नान्द्या सा कथामनुधावति। कथाख्यायिकयोर्मिश्रभावात् परिकथा स्मृता ॥ १९ ॥ भयानकं मुखपरं गर्भे च करुणो रसः। अद्भुतोऽन्ते सुक्लृप्तार्थो नोदात्ता सा कथानिका॥ २०॥ पद्यं चतुष्पदी तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा। वृत्तमक्षरसंख्येयमुक्थं तत् कृतिशेषजम्॥ २१॥ मात्राभिर्गणना यत्र सा जातिरिति काश्यपः। सममर्द्धसमं वृत्तं विषमं पैङ्गलं त्रिधा ॥ २२॥ सा विद्या नौस्तितीर्षूणां गभीरं काव्यसागरम्। महाकाव्यं कलापश्च पर्य्याबन्धो-विशेषकम् ॥ २३ ॥ कुलकं मुक्तकं कोष इति पद्यकुटुम्बकम्। सर्गबन्धो महाकाव्यमारब्धं संस्कृतेन यत् ॥ २४॥ तादात्म्यमजहद् तत्र तत्समं नाति दुःष्यति। इतिहासकथोद्भूतमितरद् वा सदाश्रयम्॥ २५॥ मन्त्रदूतप्रयाणाजिनियतं नातिविस्तरम्। शक्वर्य्यातिजगत्यातिशक्वर्य्या त्रिष्टुभा तथा॥ २६॥ पुष्पिताग्रादिभिर्वक्त्राभिजनैश्चारुभिः समैः। युक्ता तु भिन्नवृत्तान्ता नातिसंक्षिप्तसर्गकम्॥२७॥ अतिशक्वरिकाष्टिभ्यामेकसङ्कीर्णकःपरः। मात्रयाप्यपरः सर्गः प्राशस्त्येषु च पश्चिमः॥ २८॥ कल्पोऽतिनिन्दितस्तस्मिन् विशेषो नादरः सताम्। नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्काश्रमपादपैः॥२९॥ उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः। दूतीवचनविन्यासैरसतीचरिताद्भुतैः॥३०॥ तमसा मरुताप्यन्यैर्विभावैरतिनिर्भरैः।

खण्डों का विभाजन, उच्छ्वास के नाम से किया गया हो, जिसके गद्य चूर्णक कोटि के हों, जिसमें कहीं-कहीं पर वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्द मिलें उस काव्य को आख्यायिका कहते हैं ।।१३-१४।। जिस गद्यकाव्य में कवि श्लोकों द्वारा अपने वंश की प्रशंसा संक्षेप में करें, जिसमें मुख्य कथा को उपस्थित करने के लिए कथान्तर का सन्निवेश किया गया हो, जिसमें परिच्छेद हो ही नहीं, यदि हो भी तो लम्भकों द्वारा हो, उस गद्यकाव्य को कथा कहते हैं। उसके भीतर चतुष्पदी (पद्य) द्वारा निबन्धन करें ।। १५-१६।। जिसमें कथा का एक अंशमात्र वर्णित हो उसे खण्ड कथा कहते हैं। ये जो खण्डकथा और परिकथा हैं उनका नायक या तो मन्त्री होता है, या सहायक होता है अथवा कोई ब्राह्मण होता है। उसमें विप्रलम्भ का वर्णन होता है। वह विप्रलम्भ चार प्रकार का होता है- (प्रवास हेतुक, शापहेतुक, मानहेतुक अथवा करुण हेतुक) ।। १७-१८ ।। उन दोनों में ही ग्रन्थ के भीतर कथा की समाप्ति नहीं होती है, उनमें खण्डकथा कथा का अनुसरण करती है। जिसमें कथा एवं आख्यायिका दोनों की शैली का मिश्रण हो उसे परिकथा कहते हैं ।। १९ ।। जिसमें प्रारम्भ में भयानक, बीच में करुण तथा अन्त में अद्भुत रस का निबन्धन हो उसे कथानिका कहते हैं। यह उत्तम कोटि का काव्य नहीं होता है ।। २० ।। चतुष्पदी पद्य को कहते हैं। उसके दो भेद होते हैं- वृत्त एवं जाति। जिसमें अक्षरों की गणना की जाती है उसे वृत्त कहते हैं। उसके भी दो भेद होते हैं- उक्थ तथा कृतिशेष ।। २१ ।। जिस पद्य में मात्राओं की गणना की जाती है, उसे जाति कहते हैं। यह काश्यप का मत है। पिङ्गलमुनि ने वृत्ति के तीन भेद बतलाये हैं- सम, अर्द्धसम तथा विषम।।२२।। काव्यरूपी सागर को पार करने की इच्छा वालों के लिए यह छान्दोविद्या नौका के समान है। महाकाव्य, कलाप, पर्याबन्ध, विशेषक, कुलक, मुक्तक तथा कोष ये पद्य समूह हैं।।२३।। जिसका निबन्धन सर्गों में तथा संस्कृत भाषा के माध्यम से किया गया हो, उसे महाकाव्य कहते हैं। महाकाव्य के स्वरूप का त्याग किए विना जो रचना महाकाव्य के सदृश होती है, उसे भी दूषित नहीं माना जाता है। काव्य का निर्माण इतिहास के आधार पर होता है, अथवा अन्य किसी सदाश्रय के आधार पर होता है ।। २४-२५ ।। इसमें यथास्थान गुप्तमन्त्रणा, दूतप्रेषण, प्रयाण तथा युद्ध का वर्णन किया जाता है। वह अधिक विस्तृत नहीं होता। शक्वरी, अतिजगती, अतिशक्वरी, त्रिष्टुप्, पुष्पिताग्रा, आदि तथा वक्त्र आदि अत्यन्त मनोहर तथा समवृत्तों के द्वारा महाकाव्यों की रचना होती है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्द बदल देना चाहिए। सर्गों को अत्यन्त संक्षिप्त नहीं होना चाहिए ।। २६-२७ ।। अतिशक्वरी तथा अष्टि इन दो छन्दों में से एक छन्द संकीर्ण होना चाहिए तथा दूसरा छन्द मात्रिक छन्दों से संकीर्ण (पूर्ण) होना चाहिए। पूर्व सर्ग की अपेक्षा अगला सर्ग अधिक प्रशस्त होना चाहिए ।। २८ ।। अल्प अत्यन्त निन्दित कोटि का काव्य है, उसमें सज्जनों का विशेष आदर नहीं होता है। नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्रमा, सूर्य, आश्रम, उद्यान, जलक्रीडा, मधुपान, सुरतोत्सव, दूतीवचन विन्यास तथा कुलटा के चरित्र आदि अद्भुत वर्णनों से युक्त होता

सर्ववृत्तिप्रवृत्तञ्च सर्वभावप्रभावितम् ॥ ३१ ॥ सर्वरीतिरसैः पुष्टं पुष्टं गुणविभूषणैः । अतएव महाकाव्यं तत् कर्त्ता च महाकविः ॥ ३२॥ वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम् । पृथक्प्रयत्नानिर्वर्त्यं वाग्वक्रिम्णि रसाद् वपुः ॥ ३३ ॥ चतुर्वर्गफलं विश्वग्व्याख्यातं नायकाख्यया । समानवृत्तिनिर्व्यूढः कौशिकीवृत्तिकोमलः ॥ ३४ ॥ कलापोऽत्र प्रवासः प्रागनुरागाह्वयो रसः । सविशेषकञ्च प्राप्त्यादि संस्कृतेनेतरेण च॥ ३५॥ श्लोकैरनेकैः कुलकं स्यात् सन्दानितकानि तत् । मुक्तकं श्लोक एकैकश्चमत्कारक्षमः सताम् ॥ ३६ ॥ सूक्तिभिः कविसिंहानां सुन्दरीभिः समन्वितः। कोषो ब्रह्मापरिच्छिन्नः स विदग्धाय रोचते ॥ ३७ ॥ आभासोपमशक्तिश्च सर्गे यद्भिन्नवृत्तता । मिश्रं वपुरिति ख्यातं प्रकीर्णमिति च द्विधा श्राव्यञ्चैवाभिनेयञ्च प्रकीर्णं सकलोक्तिभिः ॥ ३८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये काव्यादिलक्षणकथनं नाम सप्तत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३७ ॥

अष्टत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नाटकनिरूपणम्

अग्निरुवाच— **नाटकं सप्रकरणं डिम ईहामृगोऽपि वा । ज्ञेयः समवकारश्च भवेत् प्रहसनं तथा ॥ १ ॥ व्यायोगभाणवीथ्यङ्कत्रोटकान्यथ नाटिका। सट्टकं शिल्पकः कर्णा एको दुर्मल्लिका तथा ॥ २ ॥ प्रस्थानं भाणिका भाणी गोष्ठी हल्लीशकानि च । काव्यं श्रीगदितं नाट्यरासकं रासकं तथा॥३॥**

है महाकाव्य ।। २९-३० ।। अन्धकार, वायु तथा रति को उद्दीप्त करने वाले अन्य विभावों से महाकाव्य युक्त होता है । उसमें समस्त प्रकार की वृत्तियाँ होती हैं । वह सब प्रकार के भावों से प्रभावित होता है तथा सब प्रकार की रीतियों तथा समस्त रसों से उसका संस्पर्श होता है । समस्त गुणों तथा अलंकारों से उसे परिपुष्ट किया जाता है । इन समस्त विशेषताओं के ही कारण इस रचना को महाकाव्य तथा उसके प्रणेता को महाकवि कहा जाता है ।। ३१-३२ ।। महाकाव्य में वाणी की विचित्रता की प्रधानता होने पर भी रस ही उसका जीवन होता है । उसके स्वरूप की सिद्धि सहजभाव से साध्य वक्रोक्तिविषयक रस से होती है ।। ३३ ।। महाकाव्य का फल चारों प्रकार के पुरुषार्थों की प्राप्ति है । वह नायक के ही नाम से विख्यात होता है । महाकाव्य का निर्वाह समान छन्दों अथवा वृत्तियों से किया जाता है । कैशिकी वृत्ति की प्रधानता होने से काव्य में कोमलता होती है ।। ३४ ।। कलाप उस रचना को कहते हैं जिसमें प्रवास का वर्णन होता है । उसमें पूर्वानुराग नामक शृङ्गार रस की प्रधानता होती है । संस्कृत अथवा प्राकृत के द्वारा प्राप्ति आदि का वर्णन विशेषक कहलाता है ।। ३५ ।। जहाँ अनेक श्लोकों का एक साथ अन्वय होता है उसे कुलक अथवा सन्दानितक कहते हैं। एक-एक श्लोक की स्वतंत्र रचना को मुक्तक कहते हैं । किन्तु उसको सहृदयों के हृदय को चमत्कृत करने का सामर्थ्य होना चाहिए ।। ३६ ।। श्रेष्ठ कवियों की सुन्दर उक्तियों से युक्त ग्रन्थ को कोष कहते हैं । वह ब्रह्म के समान अपरिच्छिन्न रस से युक्त होता है । वह सहृदय हृदयाह्लादक होता है ।। ३७ ।। सर्ग में जो भिन्न छन्दों की रचना होती है वह आभासोपम शक्ति है । उसके दो भेद होते हैं'- मिश्र एवं प्रकीर्ण । जिस रचना में श्रव्य एवं अभिनेय दोनों के लक्षण मिलें वह रचना मिश्र कहलाती हैं । जो रचना सकल उक्तियों से युक्त होती है, वह प्रकीर्ण कहलाती है ।। ३९।।

इस तरह आदिमहापुराण अग्निपुराण का काव्य आदि के लक्षण वर्णन नामक तीन सौ सैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३३७ ॥

अग्निदेव ने कहा— वसिष्ठ रूपक के सत्ताइस भेद माने गए हैं- नाटक, प्रकरण, डिम, ईहामृग, समवकार, प्रहसन, व्यायोग भाण, वीथी, अङ्क, तोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, कर्णा, दुर्मल्लिका, प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी, हल्लीशक, काव्य, श्रीगदित, नाट्यरासक, रासक, उल्लाप्य तथा प्रेङ्खण ।। १-३ ।। लक्षण दो प्रकार के होते हैं- सामान्य लक्षण और विशेष लक्षण।

उल्लाप्यकं प्रेङ्क्षणञ्च सप्तविंशतिरेव तत् । सामान्यञ्च विशेषश्च लक्षणस्य द्वयी गतिः॥ ४॥ सामान्यं सर्वविषयं शेषः क्वापि प्रवर्त्तते । पूर्वरङ्गे निवृत्ते तु देशकालावुभावपि ॥ ५॥ रसभावविभावानुभावा अभिनयास्तथा । अङ्कः स्थितिश्च सामान्यं सर्वत्रैवोपसर्पणात्॥ ६॥ विशेषोऽवसरे वाच्यः सामान्यं पूर्वमुच्यते । त्रिवर्गसाधनं नाट्यमित्याहुः करणञ्च तत् ॥ ७ ॥ इतिकर्त्तव्यता तस्य पूर्वरङ्गो यथाविधि । नान्दीमुखानि द्वात्रिंशदङ्गानि पूर्वरङ्गके ॥ ८ ॥ देवतानां नमस्कारो गुरूणामपि च स्तुतिः । गोब्राह्मणनृपादीनामाशीर्वादादि गीयते॥ ९॥ नान्द्यन्ते सूत्रधारोऽसौ रूपकेषु निबध्यते। गुरुपूर्वक्रमं वंशप्रशंसा पौरुषं कवेः ॥ १० ॥ सम्बन्धार्थौ च काव्यस्य पञ्चैतानेष निर्दिशेत् । नटो विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ॥ ११ ॥ सहिताः सूत्रधारेण संलापं यत्र कुर्वते। चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्य्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ॥ १२ ॥ आमुखं तत् तु विज्ञेयं बुधैः प्रस्तावनापि सा । प्रवृत्तकं कथोद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा ॥ १३ ॥ आमुखस्य त्रयो भेदा वीजांशेषूपजायते । कालं प्रवृत्तमाश्रित्य सूत्रधृग् यत्र वर्णयेत्॥ १४॥ तदाश्रयश्च पात्रस्य प्रवेशस्तत् प्रवृत्तकम् । सूत्रधारस्य वाक्यं वा यत्र वाक्यार्थमेव वा॥ १५॥ गृहीत्वा प्रविशेत् पात्रं कथोद्घातः स उच्यते । प्रयोगेषु प्रयनोगन्तु सूत्रधृग् यत्र वर्णयेत्॥ १६॥ ततश्च प्रविशेत् पात्रं प्रयोगातिशयो हि सः । शरीरं नाटकादीनामितिवृत्तं प्रचक्षते ॥ १७॥ सिद्धमुत्प्रेक्षितञ्चेति तस्य भेदावुभौ स्मृतौ। सिद्धमागमदृष्टञ्च सृष्टमुत्प्रेक्षितं कवेः ॥ १८॥ बीजं बिन्दुः पताका च प्रकरी कार्यमेव च । अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्च चेष्टा अपि क्रमात् ॥ १९॥ प्रारम्भश्च प्रयत्नश्च प्राप्तिः सद्भाव एव च । नियता च फलप्राप्तिः फलयोगश्च पञ्चमः॥ २०॥ मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्शश्च तथैव च । तथा निर्वहणञ्चेति क्रमात्पञ्चैव संधयः ॥ २१॥ अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यत्प्रसर्पति । फलावसानं यच्चैव बीजं तदभिधीयते ॥ २२॥ यत्र

सामान्य लक्षण रूपक के समस्त भेदों में व्याप्त होते हैं । और विशेष लक्षण किसी-किसी में दृष्टिगोचर होते हैं ।। ४।। पूर्वरंग के पूरा हो जाने पर देश-काल, रस, भाव, विभाव, अनुभाव, अभिनय, अङ्क और स्थिति, ये सामान्यरूप से समस्त रूपकों में पाये जाते हैं ।। ५-६ ।। यहाँ सामान्य लक्षण पहले कहा जा रहा है, विशेष लक्षणों का तत्-तत् अवसरों पर निर्वचन किया जायेगा। नाटक को त्रिवर्ग का साधन कहा गया है, क्योंकि वह करण है ।। ७ ।। उसकी इतिकर्तव्यता (कार्यारम्भ) की विधि है कि पूर्वरङ्ग का विधिपूर्वक सम्पादन किया जाय । पूर्वरङ्ग के नान्दी आदि बाइस अङ्ग होते हैं ।। ८ ।। देवताओं को नमस्कार, गुरुजन की प्रशस्ति तथा गौ, ब्राह्मण तथा राजा आदि के आशीर्वाद को नान्दी कहा जाता है ।। ९ ।। रूपकों में यह लिखा जाता है कि 'नान्द्यन्ते प्रविशति सूत्रधारः' अर्थात् नान्दी के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश होता है । इसमें कवि की पूर्व गुरुपरम्परा का, वंश प्रशंसा, पौरुष तथा काव्य के सम्बन्ध और प्रयोजन इन पाँच विषयों का निर्देश किया जाता है ।। १०।। नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्वक ये सभी अपने कार्य से सम्बद्ध प्रस्तुत विषय को उपस्थित करने वाले विचित्र वाक्यों द्वारा सूत्रधार के साथ परस्पर में जहाँ संलाप करते हैं, पण्डित जन उसको आमुख जानें। उसे प्रस्तावना भी कहते हैं ।। ११ ।। आमुख के तीन भेद होते हैं- प्रवृत्तक, कथोद्घात तथा प्रयोगातिशय । जब सूत्रधार उपस्थित काल का वर्णन करता है, तब उसका आश्रयभूत पात्र का प्रवेश प्रवृत्तक कहलाता है । इसका बीजांश में ही प्रादुर्भाव होता है ।। १३-१४ ।। जिस समय सूत्रधार एक प्रयोग में दूसरे प्रयोग का वर्णन करे, उस समय यदि पात्र वहाँ प्रवेश करे, तो वह प्रयोगातिशय होता है । जब पात्र सूत्रधार के वाक्य अथवा वाक्यार्थ का ग्रहण करके प्रवेश करे तो उसे कथोद्घात कहते हैं ।। १५।। जिस समय सूत्रधार एक प्रयोग में दूसरे प्रयोग का वर्णन करे उस समय यदि पात्र वहाँ प्रवेश करे तो उसे प्रयोगातिशय कहते हैं ।। १६।। इतिवृत्त को नाटक आदि का शरीर कहा जाता है । उसके दो भेद होते हैं- सिद्ध तथा उत्प्रेक्षित ।। १७।। शास्त्रों में वर्णित इतिवृत्त सिद्ध कहलाता है तथा कविकल्पित इतिवृत्त उत्प्रेक्षित है । नाटक की अर्थ प्रकृतियाँ पाँच होती हैं- बीज, विन्दु, पताका, प्रकरी तथा कार्य । चेष्टाएँ (कार्यावस्थाएँ) भी पाँच हैं । प्रारम्भ प्रयत्न, प्राप्तिसद्भाव, नियतफलप्राप्ति तथा फलयोग ।। १८-१९-२० ।। नाटक की पाँच सन्धियाँ क्रमशः इस प्रकार हैं- मुख सन्धि, प्रतिमुखसन्धि, गर्भसन्धि, विमर्शसन्धि तथा निर्वहण सन्धि।।२१।।

बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससंभवा। काव्ये शरीरानुगतं तन्मुखं परिकीर्तितम् ॥ २३॥ इष्टस्यार्थस्य रचना वृत्तान्तस्यानुपक्षयः । रागप्राप्तिः प्रयोगस्य गुह्यानां चैव गूहनम् ॥ २४॥ आश्चर्यवदभिख्यातं प्रकाशानां प्रकाशनम् । अङ्गहीनो नरो यद्वन्न श्रेष्ठं काव्यमेव च ॥ २५॥ देशकालैर्विना किंचिन्नेतिवृत्तं प्रवर्तते । अतस्तयोरुपादानं नियमात्पदमुच्यते ॥ २६॥ देशेषु भारतं वर्षं काले कृतयुगत्रयम् । नर्ते ताभ्यां प्राणभृतां सुखदुःखोदयः क्वचित् ॥ सर्गे सर्गादिवार्त्ता च प्रसज्जन्ती न दुष्यति ॥ २७॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये काव्यादिलक्षणकथन नामाष्टत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३८ ॥

उनत्रिंशदधिकत्रिश..तमोऽध्यायः

शृङ्गारादिरसनिरूपणम्

अग्निरुवाच— **अक्षरं परमं ब्रह्म सनातनमजं विभुम् । वेदान्तेषु वदन्त्येकं चैतन्यं ज्योतिरीश्वरम् ॥ १॥ आनन्दः सहजस्तस्य व्यज्यते स कदाचन। व्यक्तिः सा तस्य चैतन्यचमत्काररसाह्वया॥ २॥ आद्यस्तस्य विकारो यः सोऽहङ्कार इति स्मृतः । ततोऽभिमानस्तत्रेदं समाप्तं भुवनत्रयम्॥३॥ अभिमानाद्रतिः सा च परिपोषमुपेयुषी । व्यभिचार्य्यादिसामान्यात् शृङ्गार इति गीयते ॥ ४ ॥ तद्भेदाः काममितरे हास्याद्या अप्यनेकशः । स्वस्वस्थादिविशेषोत्थपरिपोषस्वलक्षणाः॥ ५॥ सत्त्वादिगुणसन्तानाज्जायन्ते परमात्मनः । रागाद्भवति शृङ्गारो रौद्रस्तैक्ष्ण्यात्प्रजायते॥ ६॥ वीरोऽवष्टम्भजः सङ्कोचभूर्वीभत्स इष्यते । शृङ्गाराज्जायते हासो रौद्रात् तु करुणो रसः ॥ ७ ॥ वीराच्चाद्भुतनिष्पत्तिः स्याद् वीभत्साद् भयानकः । शृङ्गारहास्यकरुणा**

जो अल्पमात्र वर्णित होने पर अनेक प्रकार से विस्तार प्राप्त करता है जिसका पर्यवसान फल में होता है उसे बीज कहते हैं ।। २२ ।। जिसमें विविध वृत्तान्तों और रस से बीज की उत्पत्ति होती है काव्य के शरीर में अनुगत उसे मुखसन्धि कहते हैं ।। २३ ।। अभीष्ट अर्थ की रचना, कथावस्तु की अखण्डता, प्रयोग में अनुराग गोपनीय विषयों का गोपन, अद्भुत वर्णन, प्रकाश्य विषयों का प्रकाशन, ये काव्याङ्गों के छह फल हैं । अङ्गहीन मनुष्य के जैसे अङ्गहीन काव्य भी प्रयोग के योग्य नहीं होता है ।। २४-२५ ।। देश-काल के विना किसी भी इतिवृत्त की प्रवृत्ति नहीं होती है, इसीलिए नियमतः उन दोनों का उपादान पद कहलाता है ।। २६ ।। देशों में भारतवर्ष तथा काल में सत्ययुग, त्रेतायुग एवं द्वापरयुग का ग्रहण करना चाहिए । देशकाल के विना प्राणियों को कहीं भी सुख, दुःख की प्राप्ति नहीं होती है । सृष्टि के आदिकाल की वार्ता अथवा सृष्टिपालन आदि की वार्ता यदि प्राप्त हो तो वह वर्णनीय है । ऐसा करने में किसी भी प्रकार का दोष नहीं होता है ।। २७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का नाटक निरूपण नामक तीन सौ अड़तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३३८ ॥

अग्निदेव ने कहा— वसिष्ठ जी ! वेदान्तशास्त्र में जिस अक्षर, सनातन, अजन्मा, व्यापक, परब्रह्म को अद्वितीय, ज्ञानस्वरूप तथा प्रकाशस्वरूप कहा जाता है उसका सहज आनन्द कभी-कभी, व्यञ्जित होता है । उस आनन्द की अभिव्यक्ति का ही चैतन्य, चमत्कार और रस के नाम से वर्णन किया जाता है ।। १-२ ।। उस आनन्द का जो प्रथम विकार होता है उसे अहंकार कहा गया है । उससे अभिमान की उत्पत्ति हुई । उस अभिमान में तीनों लोक व्याप्त हो गया ।। ३ ।। अभिमान से रति की उत्पत्ति हुई वह व्यभिचारी आदि भाव सामान्य के सहयोग से परिपुष्ट होकर शृङ्गार के नाम से अभिहित की जाती है ।। ४ ।। शृङ्गार के ही इच्छानुसार हास्य आदि अनेक दूसरे भेद प्रकट हुए । उनके अपने-अपने विशेष स्थायिभाव होते हैं । उनके परिपोष (अभिव्यक्ति) ही विभिन्न रस हैं ।। ५ ।। वे रस परमात्मा के सत्त्व आदि गुणों के विस्तार से प्रकट होते हैं । अनुराग से शृङ्गार की उत्पत्ति होती है, तीक्ष्णता से रौद्र रस की ।। ६ ।। उत्साह से वीर तथा संकोच

रौद्रवीरभयानकाः ॥ ८ ॥ वीभत्साद्भुतशान्ताख्याः स्वभावाच्चतुरो रसाः । लक्ष्मीरिव विना त्यागान्न वाणी भाति नीरसा ॥ ९ ॥ अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः । यथा वै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्त्तते ॥ १० ॥ शृङ्गारी चेत् कविः काव्ये जातं रसमयं जगत् । स चेत् कविवीतरागो नीरसं व्यक्तमेव तत् ॥ ११ ॥ न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः । भावयन्ति रसानेभिर्भाव्यन्ते च रसा इति ॥ १२ ॥ स्थायिनोऽष्टौ रतिमुखाः स्तम्भाद्याष्टौ च सात्त्विकाः । मनोऽनुकूलेऽनुभवः सुखस्य रतिरिष्यते ॥ १३ ॥ हर्षादिभिश्चमनसो विकाशो हास उच्यते । चित्रादिदर्शनाच्चेतो वैक्लव्यं ब्रुवते भयम् ॥ १४॥ जुगुप्सा च पदानां निन्दा दौर्भाग्यवाहिनाम्। विस्मयोऽतिशयेनार्थ दर्शनाच्चित्त विस्तृतिः॥ १५॥ अष्टौ स्तम्भादयः सत्त्वाद्राजसस्तामसः परम् । स्तम्भश्चेष्टा प्रतिघातो भयरागाद्युपाहितः॥ १६॥ श्रमरागाद्युवेतान्तः क्षोभजन्मवपुर्जलम्। स्वेदो हर्षादिभिर्देहोच्छ्वासाऽन्तः पुलकोद्गमः॥ १७॥ हर्षादिजन्म वाक्सङ्ग स्वरभेदो भयादिभिः। मनोवैक्लव्यमिच्छन्ति शोकमिष्टक्षयादिभिः॥ १८॥ क्रोधस्तैक्ष्णप्रबोधश्चप्रतिकूलानुकारिणि। पुरुषार्थसमाप्त्यार्थो यः स उत्साहउच्यते॥ १९॥ चित्तक्षोभभवोत्तम्भो वेपथुः परिकीर्त्तितः। वैवर्ण्यञ्च विषादादिजन्माकान्तिविपर्य्ययः॥ २०॥ दुःखानन्दादिजं नेत्रजलमश्रु च विश्रुतम् । इन्द्रियाणामस्तमयः प्रलयो लङ्घनादिभिः ॥ २१॥ वैराग्यादिर्मनः खेदो निर्वेद इति कथ्यते । मनः पीड़ादिजन्मा च सादो ग्लानिःशरीरगा ॥ २२ ॥ शङ्कानिष्टागमोत्प्रेक्षा स्यादसूया च मत्सरः । मदिराद्युपयोगोत्थं मनःसंमोहनं मदः ॥ २३॥ क्रियातिशयजन्मान्तःशरीरोत्थक्लमःश्रमः। शृङ्गारादिक्रियाद्वेषश्चित्तस्यालस्यमुच्यते॥ २४॥ दैन्यं सत्त्वादपभ्रंशश्चिन्तार्थपरिभावनम् । इतिकर्त्तव्यतोपायादर्शनं

से बीभत्स रस का उदय होता है । शृङ्गार रस से हास्य रस की रौद्र रस से करुण रस की वीर रस से अद्भुत रस की तथा बीभत्स रस से भयानक रस की उत्पत्ति होती है ।। ७ ।। शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत तथा शान्त ये नवरस हैं किन्तु सहज रस चार ही हैं- ।। ८ ।। जिस तरह त्याग के विना धन की शोभा नहीं होती है, उसी तरह रस के विना वाणी की भी शोभा नहीं होती है ।। ९ ।। अपार काव्य संसार का प्रजापति (स्रष्टा) अकेला कवि ही होता है । उसको जैसा काव्य अच्छा लगता है वैसा ही उसका निर्माण कर देता है ।। १० ।। यदि कवि शृङ्गारी होता है तो काव्य लोक रसमथ हो जाता है, यदि वह वीतराग होता है तो वह काव्य भी नीरस हो जाता है ।। ११ ।। भाव से रहित रस नहीं होता है तथा रस से रहित भाव नहीं होता है । चूँकि भावों से रस की भावना (अभिव्यक्त) होती है, अतएव 'भाव्यन्ते रसा एभिः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार ये भाव कहलाते हैं ।। १२ ।। रति आदि आठ स्थायिभाव हैं तथा स्तम्भ आदि आठ सात्त्विक भाव हैं । मन के अनुकूल सुख के अनुभव को रति कहा जाता है ।। १३ ।। हर्ष आदि के कारण होने वाले मन के विकास को हास कहा जाता है । इष्टवस्तु के क्षय आदि के कारण होने वाली मन की विकलता को शोक कहा जाता है ।। १४ ।। अपने प्रतिकूल आचरण करने वाले पर होने वाली कठोरता का नाम क्रोध है । जो मनोभाव पुरुषार्थ के अनुकूल होता है उसे उत्साह कहते हैं ।। १५ ।। किसी चित्र अथवा भयंकर दृश्य के देखने से होने वाली चित्त की विकलता को भय कहते हैं । दुर्भाग्यवाही पदार्थों की निन्दा को ही जुगुप्सा कहते हैं ।। १६ ।। किसी आश्वचर्यकारी वस्तु को देखकर चित्त के अत्यन्त आश्चर्य से भर जाने को ही विस्मय कहते हैं । स्तम्भ आदि आठ सात्विक भाव हैं जो रजोगुण तमोगुण से परे हैं ।। १७ ।। भय अथवा राग आदि उपाधियों के कारण चेष्टा के प्रतिघात (रुक) हो जाने को ही स्तम्भ कहते हैं । श्रम तथा राग आदि से युक्त अन्तःकरण के क्षुब्ध हो जाने के काराण जो शरीर से पसीना निकलने लगता है उसे स्वेद कहते हैं । हर्ष आदि के कारण शरीर के उल्लसित हो जाने तथा उसमें रोंगटे खड़े हो जाने को रोमाञ्च कहते हैं ।। १८ ।। हर्ष आदि अथवा भय आदि के कारण शब्द का स्पष्ट उच्चारण न होना ही स्वरभेद कहलाता है ।। १९ ।। चित्त के क्षुब्ध हो जाने के कारण जो शरीर काँपने लगता है उसे वेपथु कहते हैं । विषाद आदि के कारण शरीर की कान्ति आदि के बदल जाने को वैवर्ण्य कहते हैं ।। २०।। दुःख अथवा आनन्द विशेष के कारण आँख से जो आँसू निकलने लगता है, उसे अश्रु कहते हैं । उपवास आदि के कारण इन्द्रियाँ अपने कार्यों से उपरत हो जाती हैं तो उसे प्रलय कहते हैं ।।२१।। वैराग्य आदि के कारण जो मन में उदासीनता आ जाती है, उसे निर्वेद कहते हैं । मानसिक पीडा आदि के कारण जो शरीर में शिथिलता उत्पन्न हो जाती है उसे ही ग्लानि कहते हैं ।। २२ ।। अनिष्ट

मोह उच्यते ॥ २५॥ स्मृतिः स्यादनुभूतस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम् । मतिरर्थपरिच्छेदस्तत्त्व ज्ञानोपनायितः॥ २६॥ क्रीड़ानुरागादिभवः सङ्कोचः कोऽपि चेतसः । भवेच्चपलताऽस्थैर्य्यं हर्षश्चित्तप्रसन्नता॥ २७॥ आवेशश्च प्रतीकारः शयो वैधुर्य्यमात्मनः । कर्त्तव्ये प्रतिभाभ्रंशो जड़तेत्यभिधीयते॥२८॥ इष्टप्राप्तेरुपचितिः सम्पदाभ्युदयो धृतिः । गर्वः परेष्ववज्ञानमात्मन्युत्कर्षभावना॥ २९॥ भवेद्विषादो दैवादेर्विघातोऽभीष्टवस्तुनि। औत्सुक्यमीप्सिताप्राप्तेर्वाञ्छया तरला स्थितिः ॥ ३० ॥ चित्तेन्द्रियाणां स्तैमित्यमपस्मारोऽचला स्थितिः । युद्धे बाधादिभीस्त्रासो वीप्सा चित्तचमत्कृतिः॥३१॥ क्रोधस्याप्रशमोऽमर्षः प्रबोधश्चेतनोदयः । अवहित्थं भवेद् गुप्तिरिङ्गिताकारगोचरा ॥ ३२॥ रोषतो गुरुवाग्दण्डपारुष्यं विदुरुग्रताम् । ऊहो वितर्कः स्याद्व्याधिर्मनोवपुरवग्रहः ॥ ३३॥ अनिबद्धप्रलापादिरुन्मादो मदनादिभिः । तत्त्वज्ञानादिना चेतः कषायो परमः शमः॥३४॥ कविभिर्योजनीया वै भावाः काव्यादिके रसाः । विभाव्यते हिरत्यादिर्यत्र येन विभाव्यते ॥ ३५ ॥ विभावो नाम स द्वेधालम्बनोद्दीपनात्मकः। रत्यादिभाववर्गोऽयं यमाजीव्योपजायते॥ ३६॥ आलम्बनविभावोऽसौ नायकादिभवस्तथा । धीरोदात्तो धीरोद्धतः स्याद्धीरललितस्तथा ॥ ३७ ॥ धीरप्रशान्त इत्येवं चतुर्धा नायकः स्मृतः । अनुकूलो दक्षिणश्च शठो धृष्टः प्रवर्तितः॥ ३८॥ पीठमर्दो विटश्चैव विदूषक इति त्रयः । शृङ्गारे नर्मसचिवा नायकस्यानुनायकाः ॥ ३९ ॥ पीठमर्दः सम्बलकः श्रीमांस्तद् वेशजो विटः । विदूषको वै हसिकस्त्वष्टानायकनायिकाः॥ ४०॥ स्वकीया परकीया

वस्तु की प्राप्ति की सम्भावना को शंका कहते हैं । मत्सर (दूसरे के उत्कर्ष को नहीं सह सकने) को असूया कहते हैं । मदिरा आदि के सेवन करने के कारण जो मन में मोह (अज्ञान) उत्पन्न होता है उसे ही मद कहते हैं ।। २३ ।। अधिक कार्य करने के कारण शरीर में जो क्लान्ति उत्पन्न होती है उसी को श्रम कहते हैं । शृंगार आदि की क्रियाओं को धारण करने में जो चित्त का द्वेष होता है उसे आलस्य कहते हैं ।। २४ ।। धैर्य को त्याग देने को ही दैन्य कहते हैं तथा अभिप्रेत वस्तु की प्राप्ति न होने के कारण बार-बार उसके बारे में सोचने को चिन्ता कहते हैं । किसी कार्य को पूरा करने के उपाय के नहीं सूझने को ही मोह कहते हैं।। २५ ।। अनुभूत वस्तु का चित्त में प्रतिबिम्बित होना ही स्मृति कहलाती है । तत्त्वज्ञान के द्वारा अर्थों के निश्चय करने को ही मति कहते हैं।।२६।। अनुराग आदि के कारण होने वाले किसी अवर्णनीय मानसिक संकोच को ही ब्रीड़ा कहते हैं । चित्त की अस्थिरता को चपलता कहते हैं तथा चित्त की प्रसन्नता को ही हर्ष कहते हैं ।। २७ ।। प्रतिकार की आशा से चित्त में जो विकलता उत्पन्न होती है, उसे ही आवेश कहते हैं । कर्तव्य के विषय में प्रतिभा का काम नहीं करना जड़ता कहलाती है ।। २८ ।। अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति से बढ़े हुए सन्तोष अथवा आनन्द के अभ्युदय को धृति कहते हैं । दूसरों में निकृष्टता तथा अपने में होने वाली उत्कृष्टता की भावना को गर्व कहते हैं ।। २९ ।। अभिप्रेत वस्तु की प्राप्ति के कारण होने वाले विघ्न के कारण जो दुख होता है उसे विषाद कहते हैं । अभिप्रेत वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा से मन की चञ्चल स्थिति को उत्सुकता अथवा उत्कण्ठा कहते हैं ।। ३० ।। चित्त तथा इन्द्रियों में आयी हुई स्तिमितता के कारण जो चित की चंचलता है उसे अपस्मार कहते हैं । युद्ध आदि बाधाओं के आ जाने से स्थिर न रह पाना ही त्रास है ।। ३१ ।। क्रोध के शान्त न हो पाने को अमर्ष कहते हैं तथा चेतना के उदय को प्रबोध कहते हैं । चेष्टा तथा आकार से प्रकट होने वाले भावों को छिपाने को अवहित्था कहते हैं ।। ३२ ।। क्रोध में आकर गुरुजनों पर कठोरवाग्दण्ड का प्रहार ही उग्रता कहलाती है । चित्त की ऊहापोह की स्थिति को वितर्क कहते हैं तथा शरीर एवं मन के प्रतिकूल परिस्थिति को व्याधि कहते हैं ।। ३३ ।। काम आदि के कारण असम्बद्ध (उन्मत्त) प्रलाप करने को उन्माद कहते हैं । तत्त्वज्ञान हो जाने के कारण जो चित्त की वासना शान्त हो जाती है उसे शम कहते हैं ।। ३४ ।। कविजनों को चाहिए कि वे काव्य आदि में भावों तथा रसों का सन्निवेश करें । जिसमें रति आदि भावों की विभावना हो अथवा जिसके द्वारा उनकी विभावना की जाय उन्हें विभाव कहा जाता है । विभाव दो प्रकार के होते हैं- आलम्बन विभाव तथा उद्दीपन विभाव । रति आदि भाव समूह जिसका आश्रय लेकर निष्पन्न होते हैं, वह विभाव आलम्बन विभाव कहलाता है । यह नायक आदि का आलम्बन लेकर उद्भूत होते हैं ।। ३५-३६ ।। नायक चार प्रकार के कहे गये हैं- धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित तथा धीर प्रशान्त। इन चारों के चार-चार भेद होते हैं- अनुकूल, दक्षिण, शठ एवं धृष्ट । इस तरह नायकों की संख्या सोलह हो जाती है ।। ३७-३८।। पीठ मर्द, विट तथा विदूषक ये तीनों शृंगार रस में नायक के (नर्मसचिव नायक एवं नायिका को मिलाने वाले) तथा नायक के अनुगामी होते हैं ।। ३९ ।। पीठमर्द तो श्रीमान् (ऐश्वर्य सम्पन्न) तथा नायक के समान बलशाली होता

च पुनर्भूरिति कौशिकाः । सामान्या न पुनर्भूरिरित्याद्या बहुभेदतः॥ ४१॥ उद्दीपनविभावास्ते संस्कारैर्विविधैः स्थितैः । आलम्बनविभावेषु भावानुद्दीपयन्ति ये॥ ४२॥ चतुः षष्टिकला द्वेधा कर्माद्यैर्गीतकादिभिः । कुहकं स्मृतिरप्येषां प्रायो हासोपहासकः ॥ ४३ ॥ आलम्बनविभावस्य भावैरुद्बुद्धसंस्कृतैः । मनोवाग्बुद्धिवपुषां स्मृतीच्छाद्वेषयत्नतः ॥ ४४॥ आरम्भ एव विदुषामनुभाव इति स्मृतः । स चानुभूतये चात्र भवत्युत निरुच्यते ॥ ४५॥ मनोव्यापारभूयिष्ठो मन आरम्भ उच्यते । द्विविधः पौरुषस्त्रैण ईदृशोऽपि प्रसिध्यति॥ ४६॥ शोभा विलासो माधुर्य्यं स्थैर्य्य गाम्भीर्य्यमेव च । ललितञ्च तथौदार्य्यं तेजोऽष्टाविति पौरुषाः ॥ ४७ ॥ नीचनिन्दोत्तमस्पर्द्धा शौर्य्यं दाक्षादिकारणम् । मनोधर्मे भवच्छोभा शोभते भवनं यया ॥ ४८ ॥ भावो हावश्च हेला च शोभा कान्तिस्तथैव च । दीप्तिर्माधुर्य्यशौर्य्ये च प्रागल्भ्यं स्यादुदारता ॥ ४९ ॥ स्थैर्य्यं गम्भीरता स्त्रीणां विभावा द्वादशेरिताः । भावो विलासो हावः स्याद् भाव; किञ्चिच्च हर्षजः ॥ ५० ॥ वाचोयुक्तिर्भवेद् वागारम्भो द्वादश एव सः । तत्राभाषणमालापः प्रलापो वचनं बहुः॥ ५१॥ विलापो दुःखवचनमनुलापोऽसद्कृद्वचः । संलाप उक्तप्रत्युक्तमपलापोऽन्यथा वचः ॥ ५२॥ वार्त्ताप्रयाणं सन्देशो निर्देशः प्रतिपादनम्। तत्त्वदेशोऽतिदेशोऽयमपदेशोऽन्यवर्णनम्॥ ५३॥ उपदेशश्च शिक्षावाक् व्याजोक्तिर्व्यपदेशकः । बोधाय एष व्यापारः सुबुध्यारम्भ इष्यते । तस्य भेदास्त्रयस्ते च रीतिवृत्तिप्रवृत्तयः ॥ ५४॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शृङ्गारादिरसनिरूपणकथनं नामोनचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३९ ॥

है। विट (धूर्त) नायक के ही देश का कोई व्यक्ति होता है । विदूषक प्रहसन के द्वारा नायक को प्रसन्न करने वाला होता है । नायक की नायिकाएँ आठ प्रकार की होती हैं ।। ४० ।। स्वकीया, परकीया, पुनर्भू । कौशिका कार्य के मत से पुनर्भू नायिका होती है । कुछ लोग पुनर्भू को न मानकर उसके स्थान पर सामान्या को मानते हैं । सामान्या नायिकाओं के अनेक भेद होते हैं ।। ४१ ।। उद्दीपन विभाव विविध संस्कारों के रूप में स्थित रहते हैं । ये आलम्बन विभाव में भावों को उद्दीप्त करते हैं ।। ४२ ।। चौसठ कलाएँ कर्मादि तथा गीतिकादि के भेद से दो प्रकार की होती हैं । 'कुहक' तथा 'स्मृति' प्रायः हासोपहारक हैं ।। ४३ ।। आलम्बन विभाव के उद्बुद्ध संस्कार से युक्त भावों के द्वारा स्मृति, इच्छा, द्वेष एवं प्रयत्न के संयोग से किए गए मन, वाणी, बुद्धि तथा शरीर के कार्य को विद्वानों ने अनुभाव कहा है । 'स अत्र अनुभूयते अथवा अनुभवति' अर्थात् आलम्बन में जो अनुभव किया जाता है अथवा आलम्बन में जो दर्शन के पश्चात् अभिव्यक्ति होता है, यह अनुभाव शब्द की निरुक्ति है ।। ४४-४५ ।। मानसिक व्यापार की बहुलता से युक्त कार्य 'मन का कार्य' कहा जाता है । वह दो प्रकार का होता है- पौरुष (पुरुष सम्बन्धी) तथा स्त्रैण (स्त्री सम्बन्धी) । वह इस तरह से भी प्रख्यात है ।। ४६ ।। शोभा, विलास, माधुर्य, स्थैर्य, गाम्भीर्य, ललित, औदार्य तथा तेज- ये आठ प्रकार के पौरुष मानसिक कार्य हैं ।। ४७ ।। नीच जनों की निन्दा, उत्तम पुरुषों से स्पर्धा, शौर्य तथा चातुर्य इनके कारण मानसिक कार्य के रूप में शोभा का आविर्भाव होता है जैसे भवन की शोभा ।। ४८ ।। भाव, हाव, हेला, शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, शौर्य, प्रगल्भता, उदारता, स्थिरता एवं गम्भीरता, ये बारह स्त्रियों के विभाव बतलाए गए हैं ।। ४९ ।। विलास और हाव को भाव कहते हैं । भाव कुछ हर्ष से उद्भूत होता है । वाणी के योग को वागारम्भ कहते हैं उसके भी बारह भेद होते हैं ।। ५० ।। उसमें भी भाषण को आलाप कहते हैं , अधिक भाषण को प्रलाप कहते हैं, दुःखपूर्ण वचन को विलाप कहते हैं। बारम्बार किए जाने वाले कथन को अनुलाप कहते हैं । कथोपकथन को संलाप कहते हैं । किसी बात को झुठलाने को अपलाप कहते हैं ।। ५१-५२ ।। वार्ता के परिवहन को 'संदेश' तथा विषय के प्रतिपादन को निर्देश कहते हैं तत्त्वकथन को अतिदेश तथा निस्सार वस्तु के वर्णन को 'अपदेश' कहते हैं ।। ५३ ।। शिक्षापूर्ण वचन को उपदेश तथा व्याजोक्ति को व्यपदेश कहते हैं । दूसरों को अभिप्रेत अर्थ का ज्ञान कराने के लिए सुन्दर बुद्धि का आश्रय लेकर वागारम्भ का व्यापार होता है । उसके भी तीन भेद होते हैं- रीति, वृत्ति एवं प्रवृत्ति ।। ५४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का शृङ्गार आदि रसों के वर्णन नामक तीन सौ उनचालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३३९ ॥

चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

रीतिनिरूपणम्

अग्निरुवाच— **वाग्विद्यासम्प्रतिज्ञाने रीतिः सापि चतुर्विधा । पाञ्चाली गौड़देशीया वैदर्भी लाटजा तथा ॥ १ ॥ उपचारयुता मृद्वी पाञ्चाली ह्रस्वविग्रहा । अनवस्थितसन्दर्भा गौड़ीया दीर्घविग्रहाः ॥ २॥ उपचारैनबहुभिरुपचारैर्विवर्जिता । नातिकोमलसन्दर्भा वैदर्भी मुक्तविग्रहा ॥ ३ ॥ लाटीया स्फुटसन्दर्भा नातिविस्फुरविग्रहा । परित्यक्ताऽपि भूयोभिरुपचारैरुदाहृता ॥ क्रियास्वविषमा वृत्तिर्भारत्यारभटी तथा । कौशिकी सात्वती चेति सा चतुर्धा प्रतिष्ठिता ॥ ५ ॥ वाक्प्रधाना नरप्राया स्त्रीयुक्ता प्राकृतोक्तिता । भरतेन प्रणीतत्वाद् भारतीरीतिरुच्यते॥ ६॥ चत्वार्य्यङ्गानि भारत्या वीथी प्रहसनं तथा । प्रस्तावना नाटकादेर्वीथ्यङ्गाश्च त्रयोदश॥ ७॥ उद्घातकं तथैव स्याल्लपितं स्याद् द्वितीयकम् । असत्प्रलापो वाक्श्रेणी नालिका विपणं तथा ॥ ८॥ व्याहारस्त्रिमतश्चैव छलावस्कन्दिते तथा । गण्डोऽथ मृदवश्चैव त्रयोदशमथाचितम् ॥ ९॥ तापसादेः प्रहसनं परिहासपरं वचः । मायेन्द्रजालयुद्धादिबहुलारभटी स्मृता ॥ सङ्क्षिप्तकारपातौ च वस्तूत्थापनमेव च ॥ १० ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रीतिनिरूपणं नाम चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४० ॥

एकचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नृत्यादिरङ्गकर्मनिरूपणम्

अग्निरुवाच— **चेष्टाविशेषमप्यङ्गप्रत्यङ्गे कर्म चानयोः। शरीरारम्भमिच्छन्ति प्रायः पूर्वोऽवलाश्रयः॥ १॥ लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिञ्चितम्।**

अग्निदेव ने कहा— वसिष्ठ ! अब मैं वाग्विद्या के सम्यक् ज्ञान के लिए रीति का निरूपण कर रहा हूँ । रीति चार प्रकार की होती है । पाञ्चाली, गौडी, वैदर्भी और लाटी ।। १ ।। इनमें से पाञ्चाली रीति उपचार से युक्त कोमल एवं लघु समासों से युक्त होती है ।। गौड़ी रीति में संदभर की अधिकता, तथा बड़े-बड़े समासों की बहुलता होती है ।। २ ।। वह अधिक उपचारों से युक्त नहीं होती । वैदर्भी रीति उपाचारों से रहित होती है, सामान्यतः कोमल सन्दर्भों से युक्त तथा समास से रहित होती है ।। ३ ।। लाटी रीति में संदर्भ स्फुट रूप से विद्यमान रहते हैं । उसमें समास अधिक स्पष्ट नहीं होते हैं । वह अनेक विद्वानों से परित्यक्त हैं फिर भी वह उपचार से युक्त रूप में पायी जाती है ।। ४ ।। जो क्रियाओं में विषमता को नहीं प्राप्त होती है वह वाक्य रचना वृत्ति कही जाती है । उसके चार भेद हैं- भारती, आरभटी, कैशिकी और सात्त्वती ।। ५ ।। भारती वृत्ति में वाचिक अभिनय की प्रधानता होती है, वह पुरुष प्रधान होती है, कभी-कभी स्त्रियों के आश्रित होने पर वह प्राकृत उक्तियों से युक्त होती है । भरत के द्वारा प्रयुक्त होने के कारण उसे भारती कहा जाता है ।। ६ ।। भारती वृत्ति के चार अंग होते हैं- बीथी, प्रहसन, आमुख तथा नाटकादि विषय की प्ररोचना। वीथी के भी तेरह अंग होते हैं ।। ७ ।। उद्घातक, लपित, असत् प्रलाप, वाक् श्रेणी, नालिका, विपण, व्याहार, त्रिगत, छल, अवस्यन्दित, गण्ड, मृदव और उचित ।। ८-९ ।। तापस आदि के परिहासयुक्त वचन को प्रहसन कहते हैं । आरभटी वृत्ति में, माया, इन्द्रजाल तथा युद्ध आदि की बहुलता बतलायी गयी है । आरभटी वृत्ति के भेद हैं- संक्षिप्तकारपात तथा वस्तूत्थापन।।१०-११।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का रीति वर्णन नामक तीन सौ चालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३४० ॥

अग्निदेव ने कहा— वसिष्ठ अब मैं अभिनय में नृत्य आदि के समय शरीरसे होने वाली चेष्टा विशेष को तथा अङ्ग प्रत्यङ्ग के कर्म को बतलाता हूँ । इसे विज्ञ पुरुष आङ्गिक कर्म मानते हैं।

मोट्टायितं कुट्टमितं विव्वोको ललितन्तथा ॥ २ ॥ विकृतं क्रीड़ितं केलिरिति द्वादशधैव सः । लीलेष्टजनचेष्टानुकरणं संवृतक्षये ॥ ३ ॥ विशेषान् दर्शयन् किञ्चिद् विलासः सद्भिरिष्यते । हसितक्रन्दितादीनां सङ्करः किलकिञ्चितम् ॥ ४ ॥ विकारः कोऽपि विव्वाको ललितं सौकुमार्य्यतः । शिरः पाणिरुरः पार्श्वं कटिरंघ्रिरिति क्रमात् ॥ ५ ॥ अङ्गानि भ्रूलतादीनि प्रत्यङ्गान्यभिजानते । अङ्गप्रत्यङ्गयोः कर्म प्रयत्नजनितं विना ॥ ६॥ न प्रयोगः क्वचिन्मुख्यन्तिरश्चीनञ्च तत् क्वचित् । आकम्पितं कम्पितञ्च धूतं विधूतमेव च॥ ७॥ परिवाहितमाधूतमवधूतमथांचितम् । निकुञ्चितं परावृत्तमुत्क्षिप्तञ्चाप्यधोगतम्॥८॥ ललितञ्चेति विज्ञेयं त्रयोदशविधं शिरः । भ्रू कर्म सप्तधा ज्ञेयं पातनं भ्रूकुटीमुखम् ॥ ९॥ द्रष्टिस्त्रिधा रसस्थायिसंञ्चारिप्रतिबन्धना । षट्त्रिंशद्भेदविधुरा रसजा तत्र चाष्टधा॥ १०॥ नवधा तारकाकर्म भ्रमणञ्चलनादिकम् । षोढ़ा च नासिका ज्ञेया निश्वासो नवधा मतः ॥ ११ ॥ षोढ़ोष्ठकर्मकं पाद्यं सप्तधा चिबुकक्रिया । कलुषादिमुखं षोढा ग्रीवा नवविधा स्मृता॥ १२॥ असंयुतः संयुतश्च भूम्ना हस्तः प्रयुज्यते । पताकास्त्रिपताकश्च तथा वै कर्त्तरीमुखः ॥ १३॥ अर्द्धचन्द्रोत्करालश्च शुकतुण्डस्तथैव च । मुष्टिश्च शिखरश्चैव कपित्थः केटकामुखः ॥ १४॥ सूच्यास्यः पद्मकोषोहि शिराः समृगशीर्षकाः । कामूलकालपद्मौ च चतुरभ्रमरौ तथा ॥ १५ ॥ हंसास्यहंसपक्षा च सन्दंशमुकुलौ तथा । उर्णनाभस्ताम्रचूड़श्चतुर्विंशतिरित्यमी ॥ १६॥ असंयुतकराः प्रोक्ताः संयुतास्तु त्रयोदश । अञ्जलिश्च कपोतश्च कर्कटः स्वस्तिकस्तथा॥ १७॥ कटको वर्धमानश्चाप्यसङ्गो निषधस्तथा । दोलः पुष्पपुटश्चैव तथा मकर एव च ॥ १८ ॥ गजदन्तो बहिस्तम्भो वर्धमानोऽपरे कराः । उरः पञ्चविधं स्यात् तु आभुग्ननर्त्तनादिकम्॥ १९ ॥ उदरं दुरतिक्षामंखण्डं पूर्णमिति त्रिधा । पार्श्वयोः पञ्चकर्माणि जङ्घाकर्म

इन सबों के अबलाजनों के आश्रित होने पर ये सब विच्छित्ति विशेष के पोषक होते हैं ।। १ ।। लीला विलास, विभ्रम विच्छित्ति, किलकिञ्चित, मोट्टायित, कुट्टमित, विब्वोक ललित, विकृत, क्रीडित तथा केलि- ये बारह नायिकाओं के यौवन काल में सहजभाव से उद्भूत होने वाले अलंकार हैं ।। २ ।। आवरण से आवृत्त स्थान में प्रियजनों की चेष्टा के अनुकरण को लीला कहते हैं ।। ३।। प्रियजनों के दर्शन आदि से मुख और नेत्र आदि में चेष्टा से होने वाले हास तथा शुष्क रुदन आदि के मिश्रण को किलकिंचित् कहते हैं ।। ४ ।। चित्त के किसी गर्वयुक्त विकार को विव्वोक कहते हैं, सौकुमार्य जनित चेष्टा विशेष को ललित कहते हैं । सिर, हाथ, वक्ष-स्थल, कमर के पार्श्व तथा पैर ये क्रमशः अंग हैं । भ्रूलता (भौंह) इत्यादि प्रत्यङ्ग अथवा उपाङ्ग हैं । अङ्ग प्रत्यङ्गों के प्रयत्नजनित कर्म (चेष्टा विशेष) के विना नृत्य आदि का प्रयोग सफल नहीं होता है । वह कहीं मुख्य रूप से तथा कहीं वक्र रूप से साधित होता है ।। ५-६ ।। आकम्पित, कम्पित, द्रुत, विद्रुत, परिवाहित, आघूत, अवधूत, अञ्चित, निकुंचित, परावृत्त उत्क्षिप्त, अधोगत एवं लोलित- ये तेरह प्रकार के शिरःकर्म होते हैं ।। ७-८।। भ्रूकर्म सात प्रकार के होते हैं- भ्रूकर्मों में पातन आदि कर्म प्रधान हैं ।। ९ ।। रस, स्थायिभाव एवं संचारी भाव के सम्बन्ध से दृष्टि का अभिनय तीन प्रकार का होता है । उसके भी छत्तीस भेद होते हैं । उनमें दस भेद रस से उत्पन्न होते हैं ।। १० ।। भ्रामण एवं संचालन के भेद से कनीनिका (आँख की पुतली) के कर्म नव प्रकार के होते हैं । नाक के कर्म छह प्रकार के होते हैं तथा निःश्वास के कर्म नव प्रकार के होते हैं ।। ११ ।। ओष्ठ के कर्म छह, पाद के कर्म, छह, चिबुक (ठोढ़ी) के कर्म सात तथा ग्रीवा (गर्दन) के कर्म नौ प्रकार के होते हैं ।। १२ ।। हस्त (हाथ) के कर्म दो प्रकार के होते हैं संयुत एवं असंयुत के भेद से । पताक,, त्रिपताक, कर्तरीमुख, अर्द्धचन्द्र, उत्कराल, शुकतुण्ड, मुष्टि, शिखर कपित्थ, केकटामुख ।। १३-१४।। सूच्यास्य, पद्मकोष, अतिशिरा, मृगशीर्षक, कामूल, कालपद्म, चतुर, भ्रमर, हंसास्य, हंसपक्ष, संदंश, मुकुल, ऊर्णनाभ एवं ताम्रचूड ये चौबीस भेद असंयुत हस्त के अभिनय कर्म के हैं तथा संयुत करके अभिनय तेरह प्रकार के होते हैं ।। १५-१६।। अंजलि, कपोत, कर्कट, स्वस्तिक, कटक, असंग, निषध, दोल, पुष्पपुट, मकर, गजदन्त, एवं वहिः स्तम्भ । संयुत हस्त के परिवर्द्धन से अन्य भेद भी होते हैं ।। १७-१८।। वक्षःस्थल के अभिनय पाँच प्रकार के होते हैं- अभुग्ननर्तन आदि के भेद से ।। १९ ।। उदर कर्म

च पञ्चधा। अनेकधा पादकर्म नृत्यादौ नाटके स्मृतम् ॥ २० ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नृत्यादिरङ्गकर्मनिरूपणं नाम एकचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४१ ॥

द्विचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अभिनयादिनिरूपणम्

अग्निरुवाच– **आभिमुख्यं नयन्नर्थान् विज्ञेयोभिनयो बुधैः। चतुर्धा सम्भवः सत्त्ववागङ्गाहरणाश्रयः॥ १॥ स्तम्भादिः सात्त्विको वागारम्भो वाचिक आङ्गिकः। शरीरारभ आहार्य्यो बुद्ध्यारम्भप्रवृत्तयः ॥ २ ॥ रसादि विनियोगोऽथ कथ्यते ह्यभिमानतः। तमन्तरेण सर्वेषामयार्थै व स्वतन्त्रता॥ ३॥ सम्भोगो विप्रलम्भश्च शृङ्गारो द्विविधः स्मृतः। प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च तावपि द्विविधौ पुनः॥ ४॥ विप्रलम्भाभिधानो यः शृङ्गारः स चतुर्विधः। पूर्वानुरागमानाख्यः प्रवासकरुणात्मकः॥ ५॥ एतेभ्योऽन्यतरं जायमानसम्भोगलक्षणम्। विवर्त्तते चतुर्धैव न च प्रागतिवर्त्तते ॥ ६॥ स्त्रीपुंसयोस्तदुदयस्तस्य निर्वर्त्तिका रतिः। निखिलाः सात्त्विकास्तत्र वैवर्ण्यप्रलयौ विना ॥ ७ ॥ धर्मार्थकाममोक्षैश्च शृङ्गार उपचीयते। आलम्बनविशेषैश्च तद्विशेषैर्निरन्तरः ॥ ८ ॥ शृङ्गारं द्विविधं विद्याद् वाङ्नेपथ्यक्रियात्मकम्। हासश्चतुर्विधोऽलक्ष्यदन्तः स्मित इतीरितः ॥ ९ ॥ किञ्चिल्लक्षितदन्ताग्रं हसितं फुल्ललोचनम्। विहसितं सस्वनं स्याज्जिह्मोपहसितन्तु तत्॥ १०॥ सशब्दं पापहसितमशब्दमतिहासितम्। यश्चासौ करुणो नाम स रसस्त्रिविधो भवेत्॥ ११॥ धर्मोपघातजश्चित्तविलासजनितस्तथा। शोकः शोकाद् भवेत् स्थायी कः स्थायी पूर्वजो मतः ॥ १२॥ अङ्गनेपथ्यवाक्यैश्च**

तीन प्रकार के होते हैं- दुरतिक्षाम, खण्ड तथा पूर्ण। पार्श्वभाग के भी अभिनय पाँच प्रकार के होते हैं तथा जंघा के भी अभिनय पाँच प्रकार के होते हैं। नाट्यनृत्य आदि में पाद कर्म (चरण के अभिनय) अनेक प्रकार के बतलाए गए हैं ।। २०-२१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का नृत्य आदि में उपयोगी अङ्गकर्म का निरूपण नामक तीन सौ एकतालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३४१ ॥

अग्निदेव ने कहा– वसिष्ठ ! नाटक अथवा काव्य में वर्णित अर्थों को जो सामने उपस्थित कर देता है, विद्वानों ने उसे अभिनय कहा है। अभिनय चार प्रकार का सम्भव है- सात्त्विक, वाचिक, आङ्गिक तथा आहार्य ।। १ ।। स्तम्भ, स्वेद आदि सात्त्विक अभिनय हैं। जिसका आरम्भ वाणी से होता है उसे वाचिक अभिनय कहते हैं। शरीर से किए जाने वाले अभिनय को आङ्गिक अभिनय कहते है तथा जिसका आरम्भ बुद्धि से होता है, उसे आहार्य अभिनय कहते हैं ।। २ ।। रस आदि का विनियोग अभिमान से होता है, यह कहा गया है। रस के आधान के बिना सबकी स्वतंत्र सत्ता व्यर्थ ही है ।। ३ ।। शृंगार रस दो प्रकार का होता है सम्भोग तथा विप्रलम्भ। सम्भोग के भी दो भेद होते हैं- प्रच्छन्न एवं प्रकाश ।। ४ ।। विप्रलम्भ शृगार के चारभेद होते हैं- पूर्वानुराग हेतुक, मानहेतुक, प्रवासहेतुक तथा करुणा हेतुक ।। ५ ।। इनमें से पूर्वानुराग विप्रलम्भ से सम्भोग शृंगार की उत्पत्ति होती है। वह भी पूर्व का अतिक्रमण किए बिना ही चार भागों में विभक्त होता है ।।६।। यह स्त्री तथा पुरुष के आश्रित होता है तथा उसकी निर्वतिका रति होती है। उस सम्भोग शृंगार में वैवर्ण्य तथा प्रलय को छोड़कर सभी सात्त्विक भाव उत्पन्न होते हैं ।। ७ ।। धर्म, अर्थ,काम एवं मोक्ष से, आलम्बन विशेष के द्वारा, उन विशेषों के भी विशेष से शृंगार रस सदा उपचित होता है ।। ८ ।। अभिनेय शृंगार के दो भेद होते हैं- वचनक्रियात्मक तथा नेपथ्य क्रियात्मक ।। ८।। हास्य रस के स्थायीभाव भाव हास के पाँच भेद होते हैं स्मित, हसित, विहसित, अपहसित तथा अतिहसित। जिस हंसी में दाँत न दिखायी पड़े (मुसकुराहट मात्र) को स्मित कहते हैं ।। ९ ।। जिस हँसी में दाँत का अग्रभाग कुछ दिखायी पड़े और नेत्र विकसित हो जायँ वह हसित हैं। ध्वनियुक्त हास को विहसित तथा कुटिलता से युक्त (दृष्टि से देखकर किए गए हास को अपहसित कहते हैं और जिस हंसी

रौद्रोऽपि त्रिविधो रसः । तस्य निर्वर्त्तकः क्रोधः स्वेदो रोमाञ्च वेपथुः ॥ १३ ॥ दानवीरो धर्मवीरो युद्धवीर इति त्रयम् । वीरस्तस्य च निष्पत्तिहेतुरुत्साह इष्यते ॥ १४॥ आरम्भेषु भवेद् यत्र वीरमेवानुवर्त्तते । भयानको नाम रसस्तस्य निर्वर्त्तकं भयम् ॥ १५॥ उद्वेजनः क्षोभणश्च वीभत्सो द्विविधः स्मृतः । उद्वेजनः स्यात् प्लुत्याद्यैः क्षोभणो रुधिरादिभिः ॥ १६ ॥ जुगप्सारम्भिका तस्य सात्त्विकांशो निवर्त्तते । काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते ॥ १७ ॥ अलङ्करिष्णवस्ते च शब्दमर्थमुभौ त्रिधा । ये व्युत्पत्यादिना शब्दमलङ्कर्तुमिह क्षमाः॥ १८॥ शब्दालङ्कारमाहुस्तान् काव्यमीमांसकाविदः । छाया मुद्रा तथोक्तिश्च युक्तिर्गुम्फनया सह ॥ १९ ॥ वाकोवाक्यमनुप्रासश्चित्तं दुष्करमेव च । ज्ञेया नवालंकृतयः शब्दानामित्यसङ्करात्॥ २०॥ तत्रान्योक्तेरनुकृतिश्छाया सापि चतुर्विधा । लोकच्छेकार्भकोत्तीनामेकोक्तेरनुकारतः॥ २१॥ आभाणकोक्तिर्लोकोक्तिः सर्वसामान्य एव ताः । यानुधावति लोकोक्तिश्छायामिच्छन्ति तां बुधाः ॥ २२ ॥ छेका विदग्धा वैदग्ध्यं कलासु कुशला मतिः । तामुल्लिखन्ती छेकोक्तिश्छाया कविभिरिष्यते ॥ २३ ॥ अव्युत्पन्नोक्तिरखिलैरर्भकोक्त्योपलक्ष्यते । तेनार्भकोक्तिश्छाया तन्मात्रोक्तिमनुकुर्वती॥ २४॥ विप्लुताक्षरमश्लीलं वचो मत्तस्य तादृशी । या सा भवति मत्तोक्तिश्छायोक्ताप्यतिशोभते ॥ २५ ॥ अभिप्रायविशेषेण कविशक्तिं विवृण्वती । मुत्प्रदायिनीति सा मुद्रा सैव शय्यापि नो मते ॥ २६ ॥ उक्ति सा कथ्यते यस्यामर्थकोऽप्युपपत्तिमान् । लोकयात्रार्थविधिना धिनोति हृदयं सताम् ॥ २७ ॥ उभौ विधिनिषेधौ च नियमानियमावपि। विकल्पपरिसङ्ख्ये च तदीयाः षडधोक्तयः॥ २८॥ अयुक्तयोरिव मिथो वाच्यवाचकयोर्द्वयोः। योजनायै कल्प्यमाना युक्तिरुक्ता

में व्यक्ति जोर से ठहाका मारकर हँसता है वह अतिहसित है ।। १० ।। जो करुण नाम का रस है, उसके तीन भेद होते हैं । वह तीन कारणों से उद्भूत होता है- (१) धर्मोपघात जनित, (२) चित्तविलासजनित तथा (३) शोकदायक घटना जनित । यदि कोई यह कहे कि शोक जनित शोक में स्थायी कौन शोक होता है । तो इसका उत्तर है कि जो पूर्ववर्ती शोक से उत्पन्न हुआ है, वह ।। ११-१२ ।। अङ्गकर्म, नेपथ्यकर्म तथा वाक्कर्म इन तीनों से सम्बन्धित होने के कारण रौद्र रस भी तीन प्रकार का होता है । उसका स्थायी भाव क्रोध है तथा इसमें स्वेद, रोमाञ्च तथा वेपथु ये तीन सात्त्विक भाव उद्भूत होते हैं ।। १३ ।। वीर रस के भी तीन भेद हैं, दानवीर, धर्मवीर और युद्धवीर । उसकी उत्पत्ति का कारणभूत स्थायी भाव उत्साह है ।। १४ ।। जो प्रारम्भ में वीर का ही अनुसरण करता है तथा आगे चलकर जो भय का उत्पादक होता है, वह भयानक रस है । उसका निर्वर्तक स्थायी भाव भय है ।। १५ ।। बीभत्स रस के दो भेद होते हैं उद्वेजन और क्षोभण। पूति (दुर्गन्धि) आदि के कारण उद्वेजन नामक बीभत्स होता है तथा खून आदि के कारण क्षोभण बीभत्स होता है ।। १६ ।। इसका स्थायी भाव जुगुप्सा है तथा इसमें कोई भी सात्त्विक भाव नहीं उदित होता है ।। १६।। काव्य की शोभा को बढ़ाने वाले धर्मों को अलंकार कहते हैं । वे चूँकि शब्द अर्थ तथा शब्दार्थ को अलंकृत करते हैं अतएव उनके तीन भेद होते हैं ।। १७।। जो व्युत्पत्ति (प्रतिभा) आदि के द्वारा काव्य के शब्दों को अलंकृत करने में समर्थ होते हैं उन अलंकारों को काव्यमीमांसाकारों ने शब्दालंकार कहा है ।। १८।। संकरालंकार को छोड़कर शब्दालंकार के नव भेद होते हैं- छाया, मुद्रा, उक्ति, युक्ति, गुम्फना, वाकोवाक्य, अनुप्रास, चित्त और दुष्कर ।। १९-२० ।। दूसरे के कथन के अनुकरण करने को छाया कहते हैं । इस छाया के भी चार भेद होते हैं - लोकोक्ति, अनुकरण, छेकोक्ति अनुकरण, अर्भकोक्ति अनुकरण तथा मत्तोक्ति अनुकरण ।। २१ ।। आभाणक (कहावत) को लोकोक्ति कहते हैं । इनका सर्वसामान्य में प्रचलन होता है । लोकोक्ति का अनुसरण करने वाली रचना को विद्वज्जन लोकोक्तिछाया कहते हैं ।। २२ ।। विदग्ध (कुशल) को छेक कहते हैं । कला में कुशल बुद्धि को विदग्धता कहते हैं । उस बुद्धि का उल्लेख करने वाली रचना को विद्वानों ने छेकोक्तिछाया कहा है ।। २३ ।। सभी विद्वान् यह मानते हैं कि अर्भकोक्ति मूढ पुरुष की उक्ति का उपलक्षण है । उन मूढ पुरुषों की उक्ति का अनुसरण करने वाली रचना को अर्भकोक्तिछाया कहा जाता है ।। २४ ।। मत्त पुरुष की उक्ति अश्लीलता पूर्ण तथा वर्णक्रम हीन होती है । उस प्रकार की उक्ति का अनुसरण करने वाली रचना मत्तोक्ति छाया कहलाती है । वह भी यथावसर वर्णित होने पर सुशोभित होती है ।। २५ ।। अपने विशेष अभिप्राय के द्वारा कवित्वशक्ति का प्रकाशन करने वाली जो रचना सहृदयों को मोद प्रदान करती है, वह मुद्रा कहलाती है । हमारे मत में वही शय्या कहलाती है ।। २६ ।। जिसमें युक्तियुक्त अर्थविशेष का वर्णन हो तथा जो लोकप्रचलन के प्रयोजन की विधि से सज्जनों के अन्तःकरण को सन्तुष्ट करे उसे उक्ति कहते हैं ।। २७ ।। उक्ति से ही सम्बन्धित उक्ति के छह भेद होते

मनीषिभिः॥२९॥ पदञ्चैव पदार्थश्च वाक्यं वाक्यार्थमेव च। विषयोऽस्याः प्रकरणं प्रपञ्चश्चेति षड्विधः॥ ३०॥ गुम्फना रचनाचर्य्या शब्दार्थक्रमगोचरा। शब्दानुकारादर्थानुपूर्वाश्चेयं क्रमात् त्रिधा॥ ३१॥ उक्तिप्रत्युक्तिमद् वाक्यं वाकोवाक्यं द्विधैव तत्। ऋजुवक्रोक्तिभेदेन तत्राद्यं सहजं वचः॥ ३२॥ सा पूर्वप्रश्निका प्रश्नपूर्विकेति द्विधाभवेत्। वक्रोक्तिस्तु भवेद् भङ्गा काकुस्तेन कृता द्विधा ॥ ३३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽलङ्कारेऽभिनयादिकथनं नाम द्विचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४२ ॥

त्रिचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

शब्दालङ्काराः

अग्निरुवाच— **स्यादावृत्तिरनुप्रासो वर्णानां पदवाक्ययोः। एकवर्णाऽनेकवर्णावृत्तिर्वर्णगुणो द्विधा॥ १॥ एकवर्णगतावृत्तेर्जायन्ते पञ्च वृत्तयः। मधुरा ललिता प्रौढ़ा भद्रा परुषया सह ॥ २ ॥ मधुरायाश्च वर्गान्तादधो वर्ग्या रणौ स्वनौ। ह्रस्वस्वरेणान्तरितौ संयुक्तत्वं नकारयोः॥ ३॥ न कार्य्या वर्ग्यवर्णानामावृत्तिः पञ्चमाधिका। महाप्राणोष्मसंयोगप्रविमुक्तलघूत्तरौ ॥ ४॥ ललिता बलभूयिष्ठा प्रौढ़ा या पणवर्गजा। ऊर्ध्वं रेफेण युज्यन्तेनटवर्गोनपञ्चमाः॥ ५॥ भद्रायां परिशिष्टाः स्युः परुषा साऽभिधीयते। भवन्ति यस्यामूष्माणः संयुक्तास्तत्तदक्षरैः ॥ ६ ॥ अकारवर्जमावृत्तिः स्वराणामतिभूयसी। अनुस्वारविसर्गौ च पारुष्याय निरन्तरौ॥७॥ शषसा रेफसंयुक्ताश्चाकारश्चापि भूयसा। अन्तस्थाभिन्नमाभ्याञ्च हः पारुष्याय संयुतः॥८॥**

हैं- विधि, निषेध, नियम, अनियम, विकल्प तथा परिसंख्या ।। २८ ।। परस्पर में पृथग्भूत के समान स्थित वाच्य तथा वाचक दोनों का परस्पर में मिलाने में समर्थ उक्ति को मनीषियों ने युक्ति कहा है ।। २९ ।। युक्ति के विषय छह हैं- पद, पदार्थ, वाक्य, वाक्यार्थ, प्रकरण तथा प्रपञ्च ।। ३० ।। रचनाचर्या को गुम्फना कहते हैं। उसके तीन भेद हैं- शब्दार्थ क्रमगोचरा, शब्दानुकारा तथा अर्थानुपूर्वार्था ।। ३१ ।। जिस रचना में उक्ति और प्रत्युक्ति (प्रश्न एवं उत्तर) दोनों हो उसे वाकोवाक्य कहते हैं। उसके भी दो भेद होते हैं- ऋजूक्ति तथा वक्रोक्ति। जो स्वाभाविक कथन है उसको ही ऋजूक्ति कहते हैं। उसके भी दो भेद होते हैं- अपूर्वप्रश्निका तथा प्रश्नपूर्विका। वक्रोक्ति के भी दो भेद होते हैं- भङ्गवक्रोक्ति तथा काकुवक्रोक्ति।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अभिनयादि निरूपण नामक तीन सौ बयालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३४२ ॥

अग्निदेव ने कहा— वसिष्ठ जी! पद एवं वाक्य में वर्णों की आवृत्ति को अनुप्रास कहते हैं। वृत्त्यनुप्रास के वर्णसमुदाय दो प्रकार के होते हैं- एक वर्ण तथा अनेक वर्ण ।। १ ।। एक वर्ण गत वृत्ति से पाँच वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं- मधुरा, ललिता, प्रौढा, भद्रा तथा परुषा ।। २ ।। मधुरा वृत्ति की रचना में वर्गान्त पञ्चम वर्ग के नीचे उसी वर्ग के अक्षर तथा ह्रस्वस्वर से अन्तरित र, ण, न, म, ये वर्ण प्रयुक्त होते हैं तथा दो नकार भीसंयुक्त होते हैं ।। ३ ।। वर्ग्य वर्णों की आवृत्ति पाँच से अधिक बार नहीं करनी चाहिए। महाप्राण (वर्गों के द्वितीय एवं चतुर्थ वर्ण) तथा लघु अक्षर वाली रचना मधुरा कही गयी है ।। ४ ।। ललिता में वकार एवं लकार का अधिक प्रयोग होता है। इसमें ऊर्ध्वगत रेफ से संयुक्त पकार एवं णकार तथा वर्ग्यवर्ण प्रयुक्त होते हैं, किन्तु इसमें टवर्ग तथा पञ्चमवर्ण का प्रयोग नहीं होता है ।। ५ ।। जिसमें अवशिष्ट असंयुक्त, रेफ, णकार आदि कोमल वर्ण प्रयुक्त होते हैं, उसे भद्रा अथवा कोमला वृत्ति कहते हैं। जिसमें विभिन्न अक्षरों से संयुक्त होकर उष्मा (श, ष, स, ह) वर्णों का प्रयोग होता है उसे परुषा वृत्ति कहते हैं ।। ६ ।। इस वृत्ति में अकार से अतिरिक्त अन्य स्वरोकी अत्यधिक आवृत्ति होती है। अनुस्वार तथा विसर्ग निरन्तर रूप में प्रयुक्त होकर परुषता को प्रकट करते हैं ।। ७ ।। रेफ संयुक्त, श, ष, स का प्रयोग अधिक अकार का प्रयोग, अन्तस्थ वर्णों का अधिक सन्निवेश तथा रेफ एवं अन्तस्थ से भेदित एवं संयुक्त

अन्यथाऽपि गुरुर्वर्णः संयुक्ते परिपन्थिनि । पारुष्यायादिमांस्तत्र पूजिता न तु पञ्चमी॥ ९॥ क्षेपे शब्दानुकारे च परुषापि प्रयुज्यते । कर्णाटी कौन्तली कौन्ती कोङ्कणी वामनासिका ॥ १० ॥ द्रावणी माधवी पञ्च वर्णान्तस्थोष्मभिः क्रमात् । अनेकवर्णावृत्तिर्या भिन्नार्थप्रतिपादिका ॥ ११ ॥ यमकं साव्यपेतञ्च व्यपेतञ्चेति तद् द्विधा । आनन्तर्य्यादव्यपेतं व्यपेतं व्यवधानतः॥ १२॥ द्वैविध्ये नानयोःस्थानपादभेदाच्चतुर्विधम् । आदिपादादिमध्यान्तेष्वेकद्वित्रिनियोगतः॥ १३॥ सप्तधा सप्तपूर्वेण चेत् पादेनोत्तरोत्तरः। एकद्वित्रिपदारम्भस्तुल्यः षोढा तदापरम् ॥ १४॥ तृतीयं त्रिविधं पादस्यादिमध्यान्तगोचरम्। पादान्तयमकञ्चैव काञ्चीयमकमेव च ॥ १५॥ संसर्गयमकञ्चैव विक्रान्तयमकं तथा । पादादियमकञ्चैव तथाम्रेडितमेव च ॥ १६ ॥ चतुर्व्यवसितञ्चैव मालायमकमेव च । दशधा यमकं श्रेष्ठं तद्भेदा बहवोऽपरे॥१७॥ स्वतन्त्रस्यान्यतन्त्रस्य पदस्यावर्त्तना द्विधा । भिन्नप्रयोजनपदस्यावृत्तिं मनुजा विदुः॥ १८॥ द्वयोरावृत्तपदयोः समस्ता स्यात् समासतः । असमासात् तयोर्व्यस्ता पादे त्वेकत्र विग्रहात्॥१९॥ वाक्यस्यावृत्तिरप्येव यथासम्भवमिष्यते । अलङ्काराद्यनुप्रासो लघुमध्येवमर्हणात् ॥ २०॥ यया कयाचिद् वृत्या यत् समानमनुभूयते । तद्रूपादिपदासत्तिः सानुप्रासा रसावहा॥ २१॥ गोष्ठ्यां कुतूहलाध्यायी वाग्बन्धश्चित्रमुच्यते । प्रश्नः प्रहेलिका गुप्तं च्युतदत्ते तथोभयम् ॥ २२ ॥ समस्या सप्त तद्भेदा नानार्थस्यानुयोगतः । यत्र प्रदीयते तुल्यवर्णविन्यासमुत्तरम् ॥ २३॥ स प्रश्नः स्यादेकपृष्ठद्विपृष्टोत्तरभेदतः। द्विधैकपृष्टो द्विविधः समस्तो व्यस्त एव च ॥ २४॥ द्वयोरप्यर्थयोर्गुह्यमानशब्दा प्रहेलिका । सा द्विधार्थी च शाब्दी च तत्रार्थी चार्थबोधतः ॥ २५ ॥ शब्दावबोधतः शाब्दी प्राहुः षोढ़ा प्रहेलिकाम्। यस्मिन् गुप्तेऽपि वाक्याङ्गे भाव्यर्थोऽपारमार्थिकः॥२६॥ तदङ्गविहिताकाङ्क्षस्तद्गुप्तं गूढ़मप्यदः। यत्रार्थान्तरनिर्भासोवाक्याङ्गच्यवनादिभिः॥२७॥

हकार भी परुषता का कारण होता है ।। ८ ।। अन्य प्रकार से भी जो गुरु वर्ण हैं, वे यदि माधुर्य विरोधी वर्ण से युक्त हों तो उनसे भी परुषता आती है । उस परुष रचना में यदि वर्ग का आदि अक्षर ही संयुक्त एवं गुरु हो तो श्रेष्ठ होता है । संयुक्त पञ्चमवर्ण का सन्निवेश परुष रचना में सर्वश्रेष्ठ नहीं माना गया है ।। ९ ।। यदि किसी पर आक्षेप करना हो अथवा किसी को कठोर वचन कहना हो तो वहाँ परुषा वृत्ति का ही प्रयोग किया जाता है । क, च, ट, त, प इन पाँच वर्णों, अन्तस्थवर्णों (य, र, ल, व) तथा उष्मा वर्णों के प्रयोग से जो आवृत्ति बनती है उसके बारह भेद हैं- कर्णाटी, कौन्तली, कोंकणी, वामनासिका, द्राविडी, माधुरी मत्सी, मागधी, ताम्रलिप्तिका, औण्ड्री, पौण्ड्री ।। १०-११ ।। जहाँ पर अनेक वर्णों की आवृत्ति हो तथा उसका अर्थ भिन्न हो वहाँ पर यमक नामक शब्दालंकार होता है । यमक के दो भेद होते हैं- अव्यपेत तथा व्यपेत ।। १२।। व्यवधान से युक्त वर्णों की आवृत्ति वाले यमक को व्यपेत तथा व्यवधान रहित को अव्यपेत कहते हैं।।१३।। इन दोनों यमकों के स्थान तथा पाद भेद के कारण दो-दो भेद होते हैं । इस तरह यमक चार प्रकार का होता है । आदि पाद के आदि, मध्य एवं अन्त में एक, दो एवं तीन वर्णों की पर्यायतः आवृत्ति होने पर कुल सात भेद हो जाते हैं । यदि सात पादों में उत्तरोत्तर पाद एक, दो और तीन पदों से आरम्भ हो तो अन्तिम पाद छह प्रकार का होता है ।। १४-१५ ।। तीसरे पाद के आदि मध्य एवं अन्त में आवृत्ति होने से वह तीन प्रकार का होता है । श्रेष्ठ यमक के दस भेद होते हैं- पादान्त यमक, काञ्ची यमक, समुद्र यमक, विक्रान्त्य यमक, चक्रवालयमक, संदष्ट यमक, पादादि यमक, आम्रेडित यमक, चतुर्व्यवसित यमक तथा माला यमक । इनके भी अनेक भेद होते हैं ।। १६-१७।। भिन्नार्थ वाचक पद की आवृत्ति को विद्वानों ने दो प्रकार का माना है- स्वतंत्र एवं अस्वतंत्र ।। १९ ।। दो आवृत्त पदों का समास होने पर समस्ता और उनके समास रहित होने पर व्यस्ता आवृत्ति कही जाती है ।। २० ।। यथासम्भव वाक्य की भी आवृत्ति इस प्रकार की होती है । अनुप्रास यमक आदि अलंकार लघु होने पर भी इस प्रकार समादृत होते हैं ।। २१ ।। आवृत्ति चाहे पद की हो या वाक्य की, जिस किसी भी आवृत्ति से वर्ण समूह समान अनुभव में आता है । उसआवृत्त रूप को आदि में रखकर जो सानुप्रास पद रचना की जाती है, वह सहृदयों के लिए आस्वाद्य होती है ।। २२ ।। सहृदयों की गोष्ठी में जो पदरचना कौतूहल पूर्वक पढ़ीएवं सुनी जाती है, उसे चित्र कहते हैं ।।२२।। इनके मुख्य सात भेद हैं- प्रश्न, प्रहेलिका, गुप्त, च्युताक्षर, दत्ताक्षर तथा च्युतदत्ताक्षर । इसमें अनेकार्थ प्रश्न होते हैं ।। २३।। जिसमें समानान्तर विन्यासपूर्वक उत्तर दिया जाये वह प्रश्न कहलाता है । वह दो प्रकार का होता है- एकपृष्टोत्तर तथा द्विपृष्टोत्तर ।। २४ ।। एक पृष्टोत्तर भी दो तरह का होता है- समस्त एवं व्यस्त । जिसमें दोनों अर्थों के वाचक शब्द गूढ़ होते हैं उसे प्रहेलिका कहा

तदङ्गविहिताकाङ्क्षस्तच्च्युतं स्याच्चतुर्विधम् । स्वरव्यञ्जनविन्दूनां विसर्गस्य च विच्युतेः॥ २८ ॥ दत्तेऽपि यत्र वाक्याङ्गे द्वितीयोऽर्थः प्रतीयते । दत्तं तदाहुस्तद्भेदाः स्वराद्यैः पूर्ववन्मताः ॥ २९ ॥ अपनीताक्षरस्थाने न्यस्ते वर्णान्तरेऽपि च । भासतेऽर्थान्तरं यत्र च्युतदत्तं तदुच्यते॥ ३०॥ सुश्लिष्टपद्यमेकं यन्नानाश्लोकांशनिर्मितम् । सा समस्यापरस्यात्मपरयोःकृतिसङ्करात्॥ ३१॥ दुःखेन कृतमत्यर्थं कविसामर्थ्यसूचकम् । दुष्करं नीरसत्वेऽपि विदग्धानां महोत्सवः॥ ३२॥ नियमाच्च विदर्भाच्च बन्धाच्च भवति त्रिधा । कवेः प्रतिज्ञा निर्माणरम्यस्य नियमः स्मृतः ॥ ३३ ॥ स्थानेनापि स्वरेणापि व्यञ्जनेनापि स त्रिधा । विकल्पः प्रातिलोम्यानुलोम्यादेवाभिधीयते ॥ ३४ ॥ प्रातिलोम्यानुलोम्यञ्च शब्देनार्थेन जायते । अनेकधावृत्तवर्णविन्यासैः शिल्पकल्पना ॥ ३५ ॥ तत्तत्प्रसिद्धवस्तूनां बन्ध इत्यभिधीयते । गोमूत्रिकार्द्धभ्रमणे सर्वतोभद्रमम्बुजम्॥ ३६॥ चक्रञ्चक्राब्जकं दण्डो मुरजश्चेति चाष्टधा । प्रत्यर्धं प्रतिपादं स्यादेकान्तरसमाक्षरा॥ ३७॥ द्विधा गोमूत्रिकां पूर्वामाहुरश्वपदां परे । अन्त्याङ्गोमूत्रिकां धेनुं जालबन्धं वदन्ति हि ॥ ३८ ॥ अर्द्धाभ्यामर्द्धपादैश्च कुर्य्याद् विन्यासमेतयोः । न्यस्तानामिह वर्णानामधोऽधः क्रमभागिनाम् ॥ ३९ ॥ अधोऽधः स्थितवर्णानां यावत् तुर्य्यपदं नयेत् । तुर्य्यपादान्नयेदूर्ध्वं पादार्द्धं प्रतिलोमतः ॥ ४० ॥ तदेवं सर्वतोभद्रं त्रिविधं सरसीरुहम् । चतुष्पत्रं ततो विघ्नं चतुष्पत्रे उभे अपि॥ ४१॥ अथ प्रथमपादस्य मूर्द्धन्यस्त्रिपदाक्षरम्। सर्वेषामेव पादानामन्ते तदुपजायते ॥ ४२ ॥ प्राक्पदस्यान्तिमं प्रत्यक् पादादौ

जाता है । उसके दो भेद होते हैं- शाब्दी प्रहेलिका और आर्थी प्रहेलिका । वह अर्थबोध के सम्बन्ध से आर्थी कही जाती है ।। २५-२६ ।। जिसमें शाब्दबोध का सम्बन्ध होता है, वह शाब्दी प्रहेलिका है । उसके छह भेद हैं । वाक्याङ्ग के गुप्त होने पर भी सम्भाव्य अपारमार्थिक अर्थ जिसके अंग में आकांक्षा से युक्त स्थित रहता है वह गुप्त कही जाती है । इसको गूढ़ भी कहते हैं ।। २७ ।। जिस पदरचना में वाक्याङ्ग की विकलता के कारण अर्थान्तर की प्रतीति विकलित अंग में साकांक्ष रहती है वह च्युताक्षर कही जाती है । उसके चार भेद हैं- स्वरच्युति, व्यञ्जनच्युति, विसर्गच्युति तथा विन्दु च्युति ।। २९ ।। जिसमें वाक्यांग के विकल अंश को पूरा कर देने पर भी दूसरे अर्थ की प्रतीति होती रहती है उसको दत्ताक्षरा कहते हैं । उसके भी स्वर आदि के कारण पूर्ववत् भेद होते हैं ।। ३०।। जिस रचना में लुप्त वर्ण के स्थान पर अक्षरान्तर को सन्निविष्ट कर देने पर भी अर्थान्तर का आभास होता रहता है, उसको च्युतदत्ताक्षरा वृत्ति कहते हैं ।। ३१ ।। जहाँ एक ही पद्य सुनियोजित ढंग से अनेक श्लोकांशों से निर्मित हो उस रचना को समस्या कहते हैं । समस्या दूसरे की रचना होती है और उसकी पूर्ति अपनी रचना होती है, इस तरह अपनी तथा दूसरे की रचना के सांकर्य से समस्या की पूर्ति होती है ।। ३२ ।। चित्रकाव्य अत्यन्त कठिन होता है, क्लेश साध्य होने पर भी वह कवि की कवित्वशक्ति का सूचक होता हैं यद्यपि यह नीरस होता है फिर भी विदग्ध (काव्यकला में कुशल) पुरुषों के लिए यह महोत्सव के समान अत्यन्त प्रिय होता है ।। ३३ ।। इसके तीन भेद होते हैं- (१) नियम, विदर्भ तथा बन्ध भेद के कारण । रमणीय कविता का निर्माण करने में समर्थ कवि की प्रतिज्ञा को नियम कहते हैं ।। ३४ ।। यह नियम भी तीन प्रकार का होता है- स्थानविषयक, स्वरविषयक तथा व्यञ्जन विषयक । विकल्प प्रातिलोम्य तथा आनुलोम्य के द्वारा होता है ।। ३५।। प्रातिलोम्य तथा आनुलोम्य शब्द एवं अर्थ के द्वारा होते हैं । अनेक प्रकार के वृत्तों के वर्णों के विन्यास के द्वारा विभिन्न प्रख्यात वस्तुओं के चित्रकर्मादि की कल्पना करने को बन्ध कहते हैं ।। ३६।। बन्धों के आठ भेद माने जाते हैं- १. गोमूत्रिका बन्ध, २. अर्धभ्रमण बन्ध, ३. सर्वतोभद्र बन्ध, ४. अम्बुज (कमल) बन्ध, चक्रबन्ध, चक्राब्जबन्ध, दण्डबन्ध तथा मुरजबन्ध ।।३७।। जिस रचना के प्रत्येक अर्द्धभागों तथा प्रत्येक पाद में एक-एक अक्षर के व्यवधान से अक्षर साम्य प्रयुक्त होता है उसको गोमूत्रिका बन्ध कहते हैं ।। ३८ ।। गोमूत्रिका बन्ध के दो भेद होते हैं- पूर्वागोमूत्रिका। इसको कुछ लोग अश्वदा गोमूत्रिका भी कहते हैं तथा अन्त्यागोमूत्रिका इसको धेनुजाबन्ध भी कहा जाता हे ।। (पूर्वागोमूत्रिका के प्रत्येक अर्द्धभाग में एक-एक अक्षर के बाद अक्षर साम्य से युक्त होती है और अन्त्यागोमूत्रिका प्रत्येक पाद में एक-एक अक्षर के अन्तर से अक्षर साम्य से युक्त होती है) ।। ३९ ।। गोमूत्रिका बन्ध के पूर्वोक्त दोनों भेदों का विन्यास क्रमशः अर्द्धभागों तथा अर्द्धपादों से करना चाहिए । यहाँ क्रमशः नीचे-नीचे विन्यस्त वर्णों का नीचे-नीचे स्थित वर्णों का जब तक चतुर्थ पाद पूरा न हो जाय तब तक नयन करें । चतुर्थ पाद पूरा हो जाने पर प्रातिलोम क्रम से अक्षरों को पादार्ध

प्रातिलोम्यतः। अन्त्यपादान्तिमञ्चाद्यपादादावक्षरद्वयम् ॥ ४३ ॥ चतुश्छदे भवेदष्टच्छदे वर्णत्रयं पुनः । स्यात् षोडशच्छदे त्वेकान्तरञ्चेदेकमक्षरम्॥४४॥ कर्णिकां तोलयेदूर्ध्वं पत्राकाराक्षरावलिम् । प्रवेशयेत् कर्णिकायाञ्चतुष्पत्रसरोरुहे ॥ ४५॥ कर्णिकायां लिखेदेकं द्वे द्वे दिक्षु विदिक्षु च। प्रवेशनिर्गमौ दिक्षु कुर्य्यादष्टच्छदेऽम्बुजे॥४६॥ विश्वग्विषमवर्णानां तावत् पत्रावलीजुषाम् । मध्ये समाक्षरन्यासः सरोजे षोडशच्छदे॥ ४७॥ द्विधा चक्रं चतुररं षड़रं तत्र चादिमम् । पूर्वार्द्धे सदृशा वर्णाः पादप्रथमपञ्चमाः ॥ ४८॥ अयुजोऽश्वयुजश्चैव तुर्य्यावप्यष्टामावपि । तस्योपपादप्राक्प्रत्यगरेषु च यथाक्रमम् ॥ ४९॥ स्यात् पादार्द्धचतुष्कन्तु नाभौ तस्याद्यमक्षरम्। पश्चिमारावधि नयेन्नेमौ शेषे पदद्वयी ॥ ५० ॥ तृतीयं तुर्य्यपादान्ते प्रथमौ सदृशावुभौ । वर्णौ पादत्रयस्यापि दशमः सदृशो यदि ॥ ५१॥ प्रथमे चरणे तस्य षड्वर्णाः पश्चिमे यदि । भवन्ति द्व्यन्तरं तर्हि बृहच्चक्रमुदाहृतम्॥५२॥ सम्मुखारद्वये पादमेकैकं क्रमशो लिखेत्। नाभौ तु वर्णं दशमं नेमौ तुर्य्यपदं नयेत्॥ ५३॥ श्लोकस्याद्यन्तदशमाः समा आद्यन्तिमौ युजोः । आदौ वर्णाः समौ तुर्य्यपञ्चमावाद्यतुर्य्ययोः ॥ ५४ ॥ द्वितीयप्रातिलोम्येन तृतीयं जायते यदि । पदं विदध्यात् पत्रस्य दण्डश्चक्राब्जकं कृतेः॥ ५५॥ द्वितीयौ प्राग्दले तुल्यौ सप्तमौ च तथापरौ । सदृशावुत्तरदलौ द्वितीयाभ्यामथार्द्धयोः॥ ५६॥ द्वितीयषष्ठाः सदृशाश्चतुर्थपञ्चमावपि। आद्यन्तपादयोस्तुल्यौ

पर्यन्त ऊपर ले जाना चाहिए ।। ४०-४१ ।। इस तरह सर्वतोभद्र बन्ध तीन प्रकार का होता है । कमलबन्ध के भी तीन भेद होते हैं-चतुर्दल, अष्टदल और षोडशदल । चतुर्दल कमल बन्ध के निबन्धन में- प्रथम पाद के ऊपरी तीन पदों वाले अक्षर सभी पादों के अन्त में रखे जाते हैं ।। ४२-४३ ।। पूर्वपाद के अन्तिम वर्ण को पीछले पाद के आदि में प्रातिलोम्यक्रम से विन्यस्त करना चाहिए । अन्तिम पाद के अन्तिम दो अक्षरों को प्रथम पाद के अन्त में सन्निविष्ट करना चाहिए । यह चतुर्दल कमल में स्थित होती हैं । अष्टदल कमल में अन्तिम पाद के अन्तिम तीन अक्षरों को प्रथम पाद के आदि में रखना चाहिए । षोडशदल कमल में दो अक्षरों के बीच में कर्णिका (मध्यवर्ती) एक अक्षर का उच्चारण होता है । कर्णिका के अन्त में ऊपर, पत्राकार अक्षरों की पंक्ति लिखनी चाहिए । तथा उसे कर्णिका में प्रविष्ट कराना चाहिए । यह बात चतुष्पत्र कमल बन्ध के विषय में कही गयी है ।। ४४-४५।। कर्णिका में एक अक्षर लिखें तथा दिशाओं तथा विदिशाओं (कोणों) में दो-दो अक्षर लिखें । प्रत्येक दिशा में प्रवेश तथा निर्गम का मार्ग रखना चाहिए । यह बात अष्टदल कमल के विषय में कही गयी है ।। ४७ ।। चारों ओर विषम वर्णों की पत्रावली बनाकर उतने ही वर्णों का विन्यास करना चाहिए । बीच की कर्णिमा में सम अक्षरों का एक अक्षर के रूप में विन्यास करना चाहिए । यह बात षोडशदलकमल के विषय में कही गयी है ।। ४८ ।। चक्रबन्ध दो प्रकार का होता है- चार अरों का तथा छह अरों का । चार अरों वाले चक्रबन्ध के पूर्वार्द्ध में समवर्णों की स्थापना करनी चाहिए । प्रथम पाद के जो प्रथम पञ्चम आदि विषम वर्ण हैं उनको एवं चौथे तथा आठवें दोनों समवर्णों की क्रमशः उत्तर, पूर्व, दक्षिण एवं पश्चिम के अरों में लिखना चाहिए ।। ४९-५० ।। उत्तर पादार्ध के चार वर्णों को नाभि में लिखना चाहिए तथा उसके आदि में दो वर्णों को पिछले दो अरों में लिखना चाहिए शेष दो पदों को नेमि में ले जाना चाहिए ।। ५१ ।। तृतीय अक्षर को चतुर्थ पाद के अन्त में लिखना चाहिए एवं प्रथम दो समवर्णों को तीन पादों के अन्त में लिखना चाहिए । यदि दसवाँ वर्ण सम हो तो उसे प्रथम अर में लिखना चाहिए तथा छह वर्णों को पश्चिम अर पर स्थापित करना चाहिए । वे दो-दो के अन्तर से स्थापित होंगे । इस तरह से बृहत् चक्र का निर्माण होगा । यह बृहत् चक्र बतलाया गया है ।। ५२-५३ ।। इसमें सामने के दो अरों में क्रमशः एक-एक पाद लिखना चाहिए, नाभि में दशम वर्ण को लिखना चाहिए तथा नेमि में चतुर्थ चरण को ले जाय ।। ५४ ।। श्लोक के आदि, अन्तिम तथा दशम अक्षर को समान होना चाहिए तथा द्वितीया एवं चतुर्थ चरण के भी आदि तथा अन्तिम अक्षर को समान होना चाहिए। प्रथम एवं चतुर्थ चरण के प्रथम चतुर्थ एवं पञ्चम वर्ण भी समान होना चाहिए ।। ५५ ।। द्वितीय चरण को विलोम क्रम से पढ़ने पर यदि तृतीय चरण हो जाता है तो उसे पत्र के स्थान में लिखना चाहिए । उस रचना का नाम दण्डचक्राब्ज बन्ध होता है ।। ५६ ।। यदि पूर्वार्द्ध में दोनों चरणों के सातवें अक्षर एक समान हों और द्वितीय अक्षर की दृष्टि से भी पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध में समानता हो एवं दूसरे छठें तथा चौथे एवं पाँचवें भी वर्ण एक दूसरे के सदृश हों । उत्तरार्द्ध भाग के सातवें अक्षर प्रथम एवं चतुर्थ चरणों के उन्हीं अक्षरों के समान हों तो उन समान रूप वाले चतुर्थ एवं पञ्चम

परार्द्धसप्तमावपि ॥ ५७॥ समौ तुर्य्यं पञ्चमन्तु क्रमेण विनियोजयेत्। तुर्य्यौ योज्यौ तु तद्वच्च दलान्ताः क्रमपादयोः ॥ ५८ ॥ अर्द्धयोरन्तिमाद्यौ तु मुरजे सदृशावुभौ । पादार्द्धपतितो वर्णः प्रतिलोम्यानुलोमतः॥ ५९॥ अन्तिमं परिबध्नीयाद् यावत् तुर्य्यमिहादिमत् । पादात् तुर्य्याद्यदेवाद्यं नवमात् षोड़शादपि ॥ ६० ॥ अक्षरात् पुटके मध्ये मध्येऽक्षरचतुष्टयम् । कृत्वा कुर्य्याद् तथैतस्य मुरजाकारता भवेत्॥ ६१॥ द्वितीयं चक्रशार्दूलविक्रड़ितकसम्पदम्। गोमूत्रिका सर्ववृत्तैरन्ये बन्धास्त्वनुष्टुभा ॥ ६२॥ नामधेयं यदि न चेदमीषु कविकाव्ययोः । मित्रधेयाभितुष्यन्ति नामित्रः खिद्यते तथा॥ ६३॥ वाणवाणासनव्योमखड्गमुद्गरशक्तयः । द्विचतुर्थत्रिशृङ्गाटा दम्भोलिमुसलाङ्कुशाः ॥ ६४॥ पदं रथस्य नागस्य पुष्करिण्यसिपुत्रिका । एते बन्धास्तथा चान्ये एवं ज्ञेयाः स्वयं बुधैः ॥ ६५ ॥

इतयादिमहापुराण आग्नेये शब्दालङ्कारकथनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४३॥

चतुश्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अर्थालङ्काराः

अग्निरुवाच— **अलङ्करणमर्थानामर्थालङ्कार इष्यते । तं विना शब्दसौन्दर्य्यमपि नास्ति मनोहरम् ॥ १॥ अर्थालङ्काररहिता विधवेव सरस्वती । स्वरूपमथ सादृश्यमुत्प्रेक्षातिशयावपि ॥ २ ॥ विभावना विरोधश्च हेतुश्च सममष्टधा । स्वभाव एव भावानां स्वरूपमभिधीयते ॥ ३॥ निजमागन्तुकञ्चेति द्विविधं तदुदाहृतम्। सांसिद्धिकं निजं नैमित्तिकमागन्तुकं तथा॥४॥ सादृश्यं धर्मसामान्यूमुपमा रूपकं तथा। सहोक्त्यर्थान्तरन्यासाविति स्यात् तु चतुर्विधः॥५॥**

अक्षर की क्रमशः योजना करनी चाहिए ।। ५७-५८।। क्रमपादगत जो चतुर्थ अक्षर हैं उनको तथा दलान्त वर्णों को पूर्ववत् स्थापित करना चाहिए।।५९।। मुरजबन्ध में पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध दोनों के अन्तिम अक्षर समान हैं । पादार्द्ध भाग में स्थित जो वर्ण हैं, उसे प्रातिलोम्यानुलोम्य क्रम से स्थापित करें । अन्तिम अक्षर को इस प्रकार निबद्ध करे कि वह चतुर्थ चरण का आदि अक्षर बन जाय। चतुर्थ चरण में जो आदि अक्षर हो उससे नवें तथा सोलहवें अक्षर से पुटक के बीच-बीच में चार-चार अक्षरों का निवेश करें । ऐसा करने से उस श्लोक बन्ध के द्वारा मुरज का रूप प्रकट हो जाता है ।। ६०-६१।। द्वितीय चक्र शार्दूलविक्रीडित छन्द से बनता है । गोमूत्रिका छन्द सभी छन्दों से बन सकता है । इससे भिन्न बन्ध अनुष्टुप् छन्द से बनते हैं ।। ६३ ।। यदि इन बन्धों में कवि तथा काव्य का नाम न हो तो उससे मित्रभाव रखने वाले लोग सन्तुष्ट होते हैं तथा शत्रु भी खिन्न नहीं होते हैं ।। ६४ ।। बाण, धनुष, व्योम, खड्ग, मुद्गर, शक्ति, द्विशृंगार, त्रिशृंगार, चतुःशृंगार, वज्र, मुसल, अंकुश, रथपद नागपद, पुष्करिणी तजथा असिपुत्रिका (कटारी) इन सबों की आकृतियों में चित्रबन्ध लिखे जाते हैं । इन सबों के अतिरिक्त भी चित्रबन्ध लिखे जा सकते हैं उनकी कल्पना विद्वज्जन स्वम् कर सकते हैं ।। ६५-६६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का शब्दालंकार वर्णन नामक तीन सौ तैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३४३ ॥

अग्निदेव ने कहा— वसिष्ठ ! अर्थों के अलंकरण को अर्थालंकार कहा जाता है । उसके विना शब्द का भी सौन्दर्य मन को आकर्षित करने वाला नहीं होता है ।। १ ।। अर्थालंकार से रहित सरस्वती विधवा के समान शोभा रहित होती है । अर्थालंकार के आठ भेद हैं- स्वरूप, सादृश्य, उत्प्रेक्षा, अतिशय, विभावना विरोध हेतु तथा सम ।। २ ।। पदार्थों के स्वभाव को स्वरूप कहते हं । उसके दो भेद होते हैं- निज एवं आगन्तुक । सांसिद्धिक को निज तथा नैमित्तिक को आगन्तुक कहते हैं ।। ३-४ ।। धर्म की समानता को सादृश्य कहते हैं । वह भी चार प्रकार का होता है, उपमा,

उपमा नाम सा यस्यामुपमानोपमेययोः । सत्ता चान्तरसामान्ययोगित्वेऽपि विवक्षितम् ॥ ६ ॥ किञ्चिदादाय सारूप्यं लोकयात्रा प्रवर्त्तते । समासेनासमासेन सा द्विधा प्रतियोगिनः॥ ७॥ विग्रहादभिधानस्य ससमासाऽन्यथोत्तरा । उपमाद्योतकपदेनोपमेयपदेन च ॥ ८ ॥ ताभ्याञ्च विरहात् त्रेधा ससमासान्तिमा त्रिधा । विशिष्यमाणा उपमा भवन्त्यष्टादश स्फुटाः ॥ ९ ॥ यत्र साधारणो धर्मः कथ्यते गम्यतेऽपि वा । ते धर्मवस्तुप्राधान्याद् धर्मवस्तूपमे उभे॥ १०॥ तुल्यमेवोपमीयेते यत्रान्योन्येन धर्मिणौ । परस्परोपमा सा स्यात् प्रसिद्धेरन्यथा तयोः॥ ११॥ विपरीतोपमा सा स्याद् व्यावृत्तेर्नियमोपमा । अन्यत्राप्यनुवृत्तेस्तु भवेदनियमोपमा॥ १२॥ समुच्चयोपमातोऽन्यधर्मबाहुल्यकीर्त्तनात् । बहोर्धर्मस्य साम्येऽपि वैलक्षण्यं विवक्षितम् ॥ १३ ॥ यदुच्यतेऽतिरिक्तत्वं व्यतिरेकोपमा तु सा । यत्रोपमा स्याद् बहुभिः सदृशैः सा बहूपमा ॥ १४ ॥ धर्माः प्रत्युपमानञ्चेदन्ये मालोपमैव सा । उपमानविकारेण तुलना विक्रियोपमा ॥ १५॥ त्रैलोक्यासम्भवि किमप्यारोप्य प्रतियोगिनि । कविनोपमीयते या प्रथमे साद्भुतोपमा॥१६॥ प्रतियोगिनमारोप्य तदभेदेन कीर्त्तनम्। उपमेयस्य सा मोहोपमाऽसौ भ्रान्तिमद्वचः ॥ १७॥ उभयोर्धर्मिणोस्तथ्यानिश्चयात् संशयोपमा । उपमेयस्य संशय्य निश्चयान्निश्चयोपमा॥ १८॥ वाक्यार्थेनैव वाक्यार्थोपमा स्यादुपमानतः । आत्मनोपमानादुपमा साधारण्यातिशायिनी ॥ १९ ॥ उपमेयं यदन्यस्य तदन्यस्योपमा मता । यद्युत्तरोत्तरं याति तदाऽसौ गगनोपमा ॥ २०॥ प्रशंसा चैव निन्दा च कल्पिता सदृशी तथा । किञ्चिच्च सदृशी ज्ञेया

रूपक, सहोक्ति तथा अर्थान्तरन्यास ।। ५ ।। जिसमें अन्तर (भेद) तथा सामान्य को लेकर उपमान तथा उपमेय की सत्ता विवक्षित हो उसे उपमालंकार कहते हैं ।। ६ ।। क्योंकि यत् किंचित् विवक्षित सदृशता को ही लेकर लोक यात्रा (लौकिक व्यवहार) चलती है । प्रतियोगी (उपमान) के समस्त तथा असमस्त होने के कारण उपमा भी दो प्रकार की होती है, ससमासा, असमासा ।। ७।। कहीं उपमा के द्योतक इवादिपद के अभाव के कारण कहीं उपमेय के अभाव के कारण तथा कहीं दोनों के अभाव के कारण ससमासा उपमा के तीन भेद होते हैं । इसी तरह असमासा के भी तीन भेद होते हैं। उपमा के विशेषण से युक्त होने पर उसके अठारह भेद होते हैं ।। ९ ।। जिसमें साधारण धर्म का कथन अथवा ज्ञान हो, उपमा के उस भेद को धर्म या वस्तु की प्रधानता के कारण धर्मोपमा एवं वस्तूपमा कहते हैं ।। १० ।। जिसमें उपमेय एवं उपमान की प्रसिद्धि के अनुसार परस्पर तुल्य उपमा दी जाती है वहाँ पर परस्परोपमा होती है । प्रसिद्धि के विपरीत उपमान तथा उपमेय की विषमता में जब उपमा दी जाती है तो विपरीतोपमा होती है । जहाँ पर एक वस्तु से ही उपमा देकर अन्य वस्तु का व्यावर्तन किया जाय वहाँ पर नियमोपमा होती है । यदि उपमेय के गुणादि धर्मों की उपमान में भी अनुवृत्ति हो तो वहाँ पर अनियमोपमा होती है ।। ११-१२ ।। एक से भिन्न धर्मों की बहुलता का वर्णन होने पर समुच्चयोपमा होती है । जहाँ पर अनेक धर्मों की समानता प्रतीत होने पर भी उपमान से उपमेय की विलक्षणता विवक्षित हो, वहाँ पर अतिरिक्तत्व वर्णन के कारण व्यतिरेकोपमा होती है ।। १३ ।। वहाँ पर बहूपमा होती है जहाँ पर वह संख्या सदृश उपमानों द्वारा उपमा दी जाती है । यदि उनमें से भिन्न-भिन्नउपमान भिन्न-भिन्न साधारण धर्मों से युक्त हों वहाँ पर मालोपमा होती है । जहाँ पर उपमेय की उपमान का विकार बतलाकर सदृशता बतलायी जाय वहाँ पर विकियोपमा होती है ।। १५ ।। जब कवि उपमान में किसी ऐसे वैशिष्ट्य का आरोप करके उपमा बतलाये जो त्रैलोक्य में असंभव हो तो वहाँ पर अद्भुतोपमा होती है ।। १६ ।। जहाँ पर उपमान को आरोपित करके उससे उपमेय की अभिन्नता बतलायी जाय वहाँ पर भ्रमोपमा होती है, कयोंकि उसमें भ्रम का वर्णन किया जाता है । जहाँ पर दो धर्मियों मे से किसी एक का यथार्थ रूप से निश्चय न हो वहाँ पर संशयोपमा होती है ।। १७।। उपमेय के विषय में पहले संशय होने के पश्चात् जहाँ पर निश्चय हो वहाँ पर निश्चयोपमा होती है ।। १८ ।। जहाँ पर वाक्यार्थ को उपमान बनाकर उससे ही वाक्यार्थ की उपमा दी जाय वहाँ पर वाक्यार्थोपमा होती है । यह उपमा उपमान की दृष्टि से दो प्रकार की होती है- साधारणी और अतिशायिनी ।। १९ ।। जो एक का उपमेय हो वही दूसरे का उपमान हो, अर्थात् परस्पर में एक दूसरे के उपमान एवं उपमेय बतलाये गए हों, तो वहाँ पर अन्योन्योपमा होती है । यदि इसी प्रकार उत्तरोत्तर क्रम चलता जाय तो वहाँ पर गगनोपमा होती है ।। २० ।। इसके अतिरिक्त उपमा के ये अन्य पाँच भेद होते हैं- प्रशस्तोपमा, निन्दोपमा, कल्पितोपमा, सदृश्युपमा तथा किञ्चित् सदृश्युपमा ।। २१ ।। गुणों की समानता को देखकर उपमेय का जो तत्त्व उपमान से

उपमा पञ्चधा पुनः ॥ २१ ॥ उपमानेन यत्तत्त्वमुपमेयस्य रूप्यते । गुणानां समतां दृष्ट्वा रूपकं नाम तद् विदुः॥ २२॥ उपमैव तिरोभूतभेदा रूपकमेव वा । सहोक्तिःसहभावेन कथनं तुल्यधर्मिणाम् ॥ २३ ॥ भवेदर्थान्तरन्यासः सादृश्येनेत्तरेण सः । अन्यथोपस्थिता वृत्तिश्चेतनस्येतरस्य च ॥ २४॥ अन्यथा मन्यते यत्र तामुत्प्रेक्षां प्रचक्षते । लोकसीमानिवृत्तस्य वस्तुधर्मस्य कीर्त्तनम्॥ २५॥ भवेदतिशयो नाम सम्भवासम्भवाद् द्विधा। गुणजातिक्रियादीनां यत्र वैकल्यदर्शनम्॥ २६॥ विशेषदर्शनायैव सा विशेषोक्तिरुच्यते। प्रसिद्धहेतुव्यावृत्त्या यत् किञ्चित् कारणान्तरम् ॥ २७ ॥ यत्र स्वाभाविकत्वं वा विभाव्यं सा विभावना । सङ्गतीकरणं युक्त्या यदसंगच्छमानयोः॥ २८॥ विरोधपूर्वकत्वेन तद्विरोध इति स्मृतम् । सिसाधयिषितार्थस्य हेतुर्भवति साधकः ॥ २९॥ कारको ज्ञापक इति द्विधा सोऽप्युपजायते । प्रवर्त्तते कारकाख्यः प्राक् पश्चात् कार्य्यजन्मनः॥३०॥ पूर्वशेष इति ख्यातस्तयोरेव विशेषयोः । कार्य्यकारणभावाद् वा स्वभावाद् वा नियामकात्॥३१॥ ज्ञापकाख्यस्य भेदोऽस्ति नदीपूरादिदर्शनात् । अविनाभावनियमो ह्यविनाभावदर्शनात् ॥ ३२॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये अर्थालङ्कारकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

शब्दार्थालङ्काराः

अग्निरुवाच– **शाब्दार्थयोरलङ्कारो द्वावलङ्कुरुते समम्। एकत्र निहितो हारः स्तनं ग्रीवामिव स्त्रियाः ॥ १॥ प्रशस्तिः कान्तिरौचित्यं संक्षेपो यावदर्थता । अभिव्यक्तिरिति व्यक्तं षड् भेदास्तस्य जाग्रति॥२॥ प्रशस्तिः परवन्मर्मद्रवीकरणकर्मणः। वाचो युक्तिर्द्विधा सा च प्रेमोक्तिस्तुतिभेदतः॥३॥**

रूपित अभेदेन प्रतिपादित किया जाता है, उसे रूपक कहते हैं ।। २२ ।। अथवा भेद के तिरोहित हो जाने पर उपमा ही रूपक कहलाने लगती है । समान धर्म से युक्त दो पदार्थों के एक साथ रहने को सहोक्ति कहते हैं ।। २३ ।। पूर्ववर्णित वस्तु के समर्थन के लिए साधर्म्य अथवा वैधर्म्य से जो अर्थान्तर का उपन्यास किया जाता है उसे अर्थान्तरन्यास कहते हैं । जिसमें चेतन या अचेतन पदार्थ की अन्यथास्थित परिस्थिति को दूसरे तरह से माना जाता है, उसे उत्प्रेक्षा कहते हैं ।। २४।। अलौकिक वस्तु के धर्म के वर्णन को अतिशयालंकार कहते हैं । इसके दो भेद होते हैं- सम्भव तथा असंभव।।२५।। जहाँ पर विशेष ज्ञान के लिए गुण, जाति तथा क्रिया आदि की विकलता का प्रदर्शन हो, उसे विशेषोक्ति कहते हैं ।। २६।। जिसमें प्रसिद्ध हेतु की व्यावृत्ति (अभाव प्रदर्शन पूर्वक) अन्य किसी कारण की उद्भावना की जाय, अथवा स्वाभाविकता स्वीकार की जाय वहाँ पर विभावना नामक अलंकार होता है ।। २७ ।। परस्पर में असंगत पदार्थों का जहाँ युक्ति के द्वारा विरोधपूर्वक संगति दिखायी जाय उसे विरोधालंकार कहते हैं ।। २८।। जिसकी सिद्धि करना अभिप्रेत हो ऐसे अर्थ का साधक अलंकार हेतु कहलाता है । वह भी कारक एवं ज्ञापक के भेद से दो प्रकार का होता है ।।२९।। कारक हेतु कार्य की उत्पत्ति के पूर्व तथा पश्चात् में भी रहता है ।। ३० ।। जो पूर्व शेष कहलाता है और उन्हीं भेदों में कार्यकारण भाव के द्वाराअथवा किसी नियामक स्वभाव के द्वारा, या अविनाभाव के दर्शन के द्वारा जो अविनाभाव का नियम होता है, वह ज्ञापक हेतु का भेद है । ज्ञापक का उदाहरण नदीपूर का दर्शन है ।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अर्थालंकार वर्णन नामक तीन सौ चौवालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३४४ ॥

अग्निदेव ने कहा— वसिष्ठ ! शब्दार्थालंकार शब्द एवं अर्थ दोनों को समान रूप से अलंकृत करता है । जैसे एक ही अंग में धारण किया गया हार रमणी के स्तन तथा गला दोनों को अलंकृत करता है ।। १ ।। काव्यों में शब्दार्थालंकार के छह भेद पाए जाते हैं- प्रशस्ति, कान्ति, औचित्य, संक्षेप, यावदर्थता तथा अभिव्यक्ति ।। २ ।। दूसरे के मर्मस्थल को द्रवित करने की वाक्कुशलता

प्रेमोक्तिस्तुतिपर्य्यायौ प्रियोक्तिगुणकीर्त्तने । कान्तिः सर्वमनोरुच्यवाच्यवाचकसङ्गतिः।। ४।। यथा वस्तु तथा रीतिर्यथा वृत्तिस्तथा रसः । ऊर्जस्विमृदुसन्दर्भादौचित्यमुपजायते।। ५ ।। संक्षेपो वाचकैरल्पैर्बहोरर्थस्य संग्रहः । अन्यूनाधिकता शब्दवस्तुनोर्यावदर्थता ।। ६ ।। प्रकटत्वमभिव्यक्तिः श्रुतिराक्षेप इत्यपि । तस्या भेदौ श्रुतिस्तत्र शब्दं स्वार्थसमर्पणम्।। ७।। भवेन्नैमित्तिकी पारिभाषिकी द्विविधैव सा । सङ्केतः परिभाषेति ततः स्यात् पारिभाषिकी ।। ८ ।। मुख्यौपचारिकी चेति सा च सा च द्विधा द्विधा । स्वाभिधेयस्खलद्वृत्तिरमुख्यार्थस्य वाचकः ।। ९ ।। यया शब्दो निमित्तेन केनचित् सौपचारिकी । सा च लाक्षणिकी गौणी लक्षणागुणयोगतः ।। १० ।। अभिधेयाविनाभूता प्रतीतिर्लक्षणोच्यते । अभिधेयेन सम्बन्धात् सामीप्यात् समवायतः ।। ११ ।। वैपरीत्यात् क्रियायोगाल्लक्षणा पञ्चधा मता । गौणीगुणानामानन्त्यादनन्ता तद्विवक्षया ।। १२ ।। अन्यधर्मस्ततोऽन्यत्र लोकसीमानुरोधिना । सम्यगाधीयते यत्र स समाधिरिह स्मृतः।। १३।। श्रुतेरलभ्यमानोऽर्थो यस्माद् भाति सचेतनः । स आक्षेपो ध्वनिः स्याच्च ध्वनिना व्यज्यते यतः ।। १४ ।। शब्देनार्थेन यत्रार्थः कृत्वा स्वयमुपार्जनम् । प्रतिषेध इवेष्टस्य यो विशेषाऽभिधित्सया।। १५।। तमाक्षेपं बुवन्त्यत्रस्तुतं स्तोत्रमिदं पुनः। अधिकारादपेतस्य वस्तुनोऽन्यस्य या स्तुतिः ।। १६ ।। यत्रोक्तं गम्यते नार्थस्तत्समानविशेषणम् । सा समासोक्तिरुदिता

को प्रशस्ति कहते हैं । उसके दो भेद होते हैं- प्रेमोक्ति तथा स्तुति इन दोनों के पर्यायवाची शब्द क्रमशः प्रियोक्ति तथा गुणकीर्त्तन हैं । सबों के मन की रुचि के अनुसार वाच्य तथा वाचक की संगति को कान्ति कहते हैं ।। ४ ।। ओज एवं माधुर्य से युक्त संदर्भ में, वस्तु के अनुसार, रीति एवं वृत्ति के अनुसार यदि रस का प्रयोग हो तो वहाँ पर औचित्य की उत्पत्ति होती है ।। ५ ।। कम वाचक शब्दों के द्वारा बहुत अधिक अर्थ के संग्रह को संक्षेप कहते हैं । जहाँ पर शब्द एवं अर्थ की अन्यूनाधिकता (समानता) हो वहाँ पर यावदर्थता नामक शब्दार्थालंकार होता है ।। ६ ।। अर्थ की प्रकटता को अभिव्यक्ति कहते हैं । उसके दो भेद होते हैं'- श्रुति एवं आक्षेप । शब्द के द्वारा अपने अर्थ का किये जाने वाले समर्पण को श्रुति कहते हैं ।। ७ ।। श्रुति के भी दो भेद होते हैं नैमित्तिकी एवं पारिभाषिकी । संकेत को ही परिभाषा कहते हैं । जिस श्रुति का परिभाषा से सम्बन्ध हो उसे पारिभाषिकी कहते हैं । पारिभाषिकी को मुख्या तथा नैमित्तिकी को औपचारिकी कहते हैं । औपचारिकी के भी दो भेद होते हैं । जिसके द्वारा मुख्य अर्थ से स्खलित हुआ किसी निमित्त वश अमुख्य अर्थ का बोधन करता है उसको औपचपारिकी कहते हैं ।। ८-९ ।। वह लक्षणा के योग से लक्षणिकी और गुण से योग के कारण गौणी कहलाती है ।। १० ।। अभिधेय अर्थ के साथ सम्बद्ध रहकर जो अन्य अर्थ की प्रतीति होती है, उसे लक्षणा कहते हैं । अभिधेय के साथ सम्बन्ध, सामीप्य, समवाय, वैपरीत्य एवं क्रियायोग के कारण लक्षणा पाँच प्रकार की मानी जाती है ।। ११ ।। गुणों की अनन्तता के कारण उनकी विवक्षा होने से गौणी के अनन्त भेद होते हैं ।। १२ ।। लोकसीमा के पालन में तत्पर कवि के द्वारा जब अप्रस्तुत वस्तु के धर्म प्रस्तुत वस्तु पर सम्यक्रूप से आरोपित किए जाते हैं तो वहाँ पर समाधि होती है ।। १३ ।। श्रुति से अनुपलब्ध अर्थ जिसके द्वारा चैतन्ययुक्त के समान प्रतीत होता है उसे आक्षेप कहते हैं । चूँकि यह ध्वनि से व्यक्त होता है, अतएव उसे ध्वनि भी कहा जाता है । इसमें ध्वनि के आश्रय से शब्द एवं अर्थ द्वारा स्वतः संकलित अर्थ ही अभिव्यक्त होता है ।। १४ ।। अभीष्ट अर्थ की विशेष विवक्षा से अर्थात् उसमें और अधिक उत्कर्ष लाने के लिए जो प्रतिषेध सी प्रतीति होती है, उसको आक्षेप कहते हैं । अधिकार (प्रकरण) से पृथक् अप्रस्तुत अन्य वस्तु की जो प्रशंसा की जाती है उसे अस्तुत स्तोत्र (अप्रस्तुत प्रशंसा) कहते हैं ।। १६ ।। जहाँ किसी एक वस्तु के कहने पर उसके समान विशेषण वाले दूसरे अर्थ की प्रतीति हो उसे विद्रान् पुरुष अर्थ की संक्षिप्ता के कारण समासोक्ति कहते हैं ।। १७ ।। वास्तविक पदार्थ का अपलाप करके किसी अन्य पदार्थ को सूचित करना ही अपह्नुति है । जहाँ पर अभिधेय अर्थ सीधे न कहकर घुमा

सङ्क्षेपार्थतया बुध॥ १७॥ अपह्नुतिरपह्नुत्य किञ्चिदन्यार्थसूचनम् । पर्य्यायोक्तिः यदन्येन प्रकारेणाभिधीयते । एषामेकतमस्यैव समाख्या ध्वनिरित्यतः ॥ १८ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये शब्दार्थालङ्कारकथनं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४५॥

षट्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

काव्यगुणविवेकः

अग्निरुवाच— **अलंकृतमपि प्रीत्यै न काव्यं निर्गुणं भवेत् । वपुष्यललिते स्त्रीणां हारो भारायते परम्॥ १॥ न च वाच्यं गुणो दोषाभाव एव भविष्यति। गुणाः श्लेषादयो दोषा गूढार्थाद्याःपृथक् कृताः ॥ २ ॥ यः काव्ये महतीं छायामनुगृह्णात्यसौ गुणः। सम्भवत्येष सामान्यो वैशेषिक इति द्विधा ॥ ३ ॥ सर्वसाधारणीभूतः सामान्य इति मन्यते । शब्दमर्थमुभौ प्राप्तः सामान्यो भवति त्रिधा॥ ४॥ शब्दमाश्रयते काव्यं शरीरं यः स तद्गुणः। श्लेषो लालित्यगाम्भीर्य्यसौकुमार्य्यमुदारता ॥ ५ ॥ उर्जस्वी यौगिकी चेति गुणाः शब्दस्य सप्तधा। सुश्लिष्टसन्निवेशत्वं शब्दानां श्लेष उच्यते ॥ ६॥ गुणादेशादिना पूर्वं पदसम्बद्धमक्षरम् । यत्र सन्धीयते नैव तल्लालित्यमुदाहृतम् ॥ ७॥ विशिष्टलक्षणोल्लेखलेख्यमुत्तानशब्दकम्। गाम्भीर्यं कथयन्त्यार्य्यास्तदेवान्येषु शब्दताम् ॥ ८ ॥ अनिष्ठुराक्षरप्राय शब्दता सुकुमारता । उत्तानपदतौदार्य्ययुतश्लाघ्यैर्विशेषणैः ॥ ९ ॥ ओजः समासभूयस्त्वमेतत् पद्यादिजीवितम् । आब्रह्मस्तम्भपर्य्यन्तमोजसैकेन पौरुषम्॥ १०॥ उच्यमानस्य शब्देन येन केनापि वस्तुनः । उत्कर्षमावहन्नर्थो गुण इत्यभीधीयते॥११॥ माधुर्य्यं संविधानञ्च कोमलत्वमुदारता। प्रौढिः सामयिकत्वञ्च तद्भेदाः षट् चकाशति॥ १२॥ क्रोधेर्ष्याकारगाम्भीर्य्यान्माधुर्य्यं धैर्य्यगाहिता। संविधानं**

फिराकर कहा जाता है, उसे पर्यायोक्त कहते हैं । इनमें से किसी एक को ध्वनि कहते हैं ।। १८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का शब्दार्थालंकार वर्णन नामक तीन सौ पैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३४५ ॥

अग्निदेव ने कहा— वसिष्ठ ! अलंकारों से अलंकृत होकर भी गुणहीन काव्य सहृदय हृदयाह्लादक उसी तरह नहीं होता है जिस तरह लालित्य रहित रमणी के शरीर पर हार भी भार के समान प्रतीत होता है ।। १ ।। यदि कोई कहे कि गुणों के निरूपण की क्या आवश्यकता है ? दोष के अभाव को ही तो गुण कहते हैं । तो ऐसा कहना उचित नहीं है, क्योंकि श्लेष आदिगुण गूढार्थ आदि दोषों से पृथक् हैं ।। २ ।। जो काव्य महती शोभा का आधान करता है उसे गुण कहते हैं । उसके दो भेद होते हैं- सामान्यगुण और विशेष गुण ।। ३ ।। जो गुण सर्वसाधारण होता है उसे सामान्यगुण कहते हैं । सामान्यगुण भी तीन प्रकार का होता है, शब्दगत, अर्थगत तथा शब्दार्थगत ।। ४ ।। जो गुण काव्यशरीर में शब्दाश्रित होता है, उसे शब्दगुण कहते हैं । शब्दगुण सात प्रकार के होते हैं- श्लेष, लालित्य, गाम्भीर्य, सौकुमार्य, उदारता, ओज तथा यौगिकी (समाधि) ।। ५।। शब्दों के सुश्लिष्ट सन्निवेश को श्लेष कहते हैं ।। ७ ।। विशिष्ट लक्षण के अनुसार उल्लेखनीय भावव्यञ्जन शब्द समूह को आर्य पुरुष गाम्भीर्य नामक गुण कहते हैं उसी को अन्यत्र उत्तान शब्दक अथवा शब्दत्व कहा गया है ।। ८ ।। जो रचना निष्ठुर अक्षरों से रहित होती है अर्थात् जिसमें कोमल पदों का प्रयोग होता है उसे सौकुमार्य गुण विशिष्ट माना जाता है । जिस रचना में श्लाघ्य विशेषणों से युक्त उत्कृष्ट पदों का प्रयोग होता है उसे औदार्य गुण विशिष्ट माना जाता है ।। ९ ।। समास बहुल रचना ओज गुणविशिष्ट होती है यह गद्य-पद्य काव्य का प्राण है । ब्रह्मा से लेकर एक तृणपर्यन्त समस्त प्राणियों के पौरुष का वर्णन केवल ओज गुण से किया जाता है ।। १० ।। जिस किसी भी

परिकरः स्यादपेक्षितसिद्धये॥ १३॥ यत्काठिन्यादिनिर्मुक्तसन्निवेशविशिष्टता। तिरस्कृत्यैव मृदुता भाति कोमलतेति सा॥ १४॥ लक्ष्यते स्थूललक्षत्वप्रवृत्तेर्यत्र लक्षणम्। गुणस्य तदुदारत्वमाशयस्यातिसौष्ठवम्॥ १५॥ अभिप्रेतं प्रति यतो निर्वाहस्योपपादिकाः। युक्तयो हेतुगर्भिण्यः प्रौढ़ाप्रौढ़िरुदाहृता॥१६॥ स्वतन्त्रस्यान्यतन्त्रस्य बाह्यान्तःसमयोगतः। तत्रव्युत्पत्तिरर्थस्य या सामयिकतेति सा॥ १७॥ शब्दार्थावुपकुर्वाणो नाम्नोभयगुणः स्मृतः। तस्य प्रसादः सौभाग्यं यथासंख्यं प्रशस्तता॥ १८॥ पाको राग इति प्राज्ञैः षट् प्रपञ्चविपञ्चिताः। सुप्रसिद्धार्थपदता प्रसाद इति गीयते॥ १९॥ उत्कर्षवान् गुणः कश्चिद् यस्मिन्नुक्ते प्रतीयते। तत्सौभाग्यमुदारत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः॥ २०॥ यथासंख्यमनुद्देशः सामान्यमतिदिश्यते। समये वर्णनीयस्य दारुणस्यापि वस्तुनः॥ २१॥ अदारुणेन शब्देन प्राशस्त्यमुपवर्णनम्। उच्चैः परिणतिः कापि पाक इत्यभिधीयते॥ २२॥ मृद्वीकानारिकेलाम्बु पाकभेदाच्चतुर्विधः। आदावन्तेव सौरस्यं मृद्वीकापाक एव सः॥ २३॥ काव्येच्छाया विशेषो यः स राग इति गीयते। अभ्यासोपहितः कान्तिं सहजामपि वर्त्तते॥ २४॥ हारिद्रश्चैव कौसुम्भो नीली भागश्च स त्रिधा। वैशेषिकः परिज्ञेयो यःस्वलक्षणगोचरः॥ २५॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये काव्यगुणविवेककथनं नाम षट्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥ ३४६॥

शब्द के द्वारा वर्ण्यमान वस्तु के उत्कर्ष का वहन करने वाला गुण अर्थगुण कहलाता है ।। ११ ।। अर्थगुण के छह भेद होते हैं- माधुर्य, संविधान, कोमलता, उदारता, प्रौढ़ि और सामयिकता ।।१२।। क्रोध तथा ईर्ष्या में भी आकार की गम्भीरता तथा धैर्यधारण को माधुर्य कहते हैं। अपेक्षित कार्य की सिद्धि के लिए किया जाने वाला उद्योग संविधान है ।। १३ ।। जो कठिनता आदि दोषों से रहित है तथा सन्निवेश विशेष का तिरस्कार करके, मृदुरूप में ही प्रतीत होता है, उस गुण को कोमलता कहते हैं ।। १४ ।। जिसमें स्थूल लक्ष्यत्व की प्रवृत्ति का लक्षण लक्षित होता है, आशय अत्यन्त सुन्दर रूप में प्रकट होता है, वह उदारता नामक गुण है ।। १५ ।। अभिप्रेत अर्थ के निर्वाह का उपपादन करने वाली हेतु गर्भिणी युक्तियों को प्रौढ़ि कहते हैं ।। १६ ।। स्वतंत्र अथवा परतन्त्र कार्य के आभ्यन्तर अथवा बाह्यसंयोग से जिस अर्थ की व्युत्पत्ति होती है उसे सामयिकता कहते हैं ।। १७ ।। जो शब्द एवं अर्थ दोनों को उपकृत करता है, उसे उभयगुण (शब्दार्थ गुण) कहते हैं। काव्यशास्त्र के मर्मज्ञों ने इसका विस्तार छह भेदों में किया है। वे भेद हैं- प्रसाद, सौभाग्य, यथासंख्य, प्रस्तता, पाक तथा राग ।। १८।। सुप्रसिद्ध अर्थों से समन्वित पदों का सन्निवेश प्रसाद कहलाता है ।।१९।। जिसके उक्त होने पर कोई गुण उत्कर्षवान् होता हुआ प्रतीत होता है, विद्वान् उसको औदार्य या सौभाग्य कहते हैं ।। २० ।। तुल्य वस्तुओं का क्रमशः कथन यथासंख्य माना जाता है। समयानुसार वर्णनीय दारुण वस्तु का भी अदारुण शब्दों से वर्णन, प्राशस्त्य कहलाता है ।। २१।। किसी पदार्थ की उच्च परिणति को पाक कहते हैं। पाक दो प्रकार का होता है- मृद्वीपाक तथा नारिकेलाम्बुपाक।।२२।। आदि और अन्त में भी जहाँ सौरस्य हो वह मृद्वीका पाक है। काव्य में जो छाया विशेष (शोभातिशय्य) प्रस्तुत किया जाय उसे राग कहते हैं। अभ्यास में लाए जाने पर यह राग स्वाभाविक कान्ति को भी लाँघ जाता हे ।। २४ ।। राग तीन प्रकार का होता है- हरिद्राराग, कौसुम्भराग तथा नीली राग। जो स्वलक्षण गोचर (अनन्य साधारण) गुण हो उसको वैशेषिक गुण कहते हैं ।। २५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का काव्यगुणविवेक वर्णन नामक तीन सौ छियालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३४६ ॥

सप्तचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

काव्यदोषविवेक

अग्निरुवाच– **उद्वेगजनको दोषः सभ्यानां स च सप्तधा । वक्तृवाचकवाच्यानामेकद्वित्रिनियोगतः ॥ १॥ तत्र वक्ता कविर्नाम प्रथमे स च भेदतः। सन्दिहानोऽविनीतः सन्नज्ञो ज्ञाता चतुर्विधः॥ २॥ निमित्तपरिभाषाभ्यामर्थसंस्पर्शिवाचकम् । तद्भेदो पदवाक्ये द्वे कथितं लक्षणं द्वयोः॥ ३॥ असाधुत्वाप्रयुक्तत्वे द्वावेव पदनिग्रहौ । शब्दशास्त्रविरुद्धत्वमसाधुत्वं विदुर्बुधाः ॥ ४॥ व्युत्पन्नैरनिबद्धत्वमप्रयुक्तत्वमुच्यते । छान्दसत्वमविस्पष्टत्वञ्च कष्टत्वमेव च ॥ ५॥ तदसामयिकत्वञ्च ग्राम्यत्वञ्चेति पञ्चधा । छान्दसत्वं न भाषायामविस्पष्टमबोधतः ॥ ६॥ गूढ़ार्थता विपर्य्यस्तार्थता संशयितार्थता। अविपष्टार्थता भेदास्तत्र गूढ़ार्थतेति सा ॥ ७॥ यत्रार्थो दुःखसम्वेद्यो विपर्य्यस्तार्थता पुनः । विवक्षितान्यशब्दार्थप्रतिपत्तिर्मलीमसा ॥ ८॥ अन्यार्थत्वासमर्थत्वे एतामेवोपसर्पतः। सन्दिह्यमानवाच्यत्वमाहुः संशयितार्थताम् ॥ ९॥ दोषत्वमनुबध्नाति सज्जनोद्वेजनादृते । असुखोच्चार्य्यमाणत्वं कष्टत्वं समयाच्युतिः॥१०॥ असामयिकता नेयामेताञ्च मुनयो जगुः । ग्राम्यता तु जघन्यार्थ पतिपत्तिः खलीकृता ॥ ११॥ वक्तव्यग्राम्यवाच्यस्य वचनात् स्मरणादपि । तद्वाचकपदेनाभि साम्याद् भवति सा त्रिधा ॥ १२ ॥ अनेकभागुपालम्भः साधारण इति स्मृतः ॥ १३ ॥ क्रियाकारकयोर्भ्रंशो विसन्धिः पुनरुक्तता। व्यस्तसम्बन्धता चेति पञ्च साधारणामताः॥ १४॥ अक्रियत्वं क्रियाभ्रंशो भ्रष्टकारकता पुनः । कर्त्र्यादिकारकाभावो विसन्धिः सन्धिदूषणम्॥१५॥ विगतो वा विरुद्धो वा सन्धिः सः भवति द्विधा । सन्धेर्विरुद्धता कष्टापादादर्थान्तरागमात् ॥ १६ ॥ पुनरुक्तत्वमाभीक्ष्ण्यादभिधानं द्विधैव तत् ।**

अग्निदेव ने कहा– वसिष्ठ ! दोषयुक्त काव्य सहृदयों को उद्विग्न करने वाला होता है । वक्ता, वाचक एवं वाच्य इनमें से एक-एक के नियोग से, दो-दो के नियोग से तथा तीनों के नियोग से सात प्रकार का होता है ।। (जैसे- वक्तृवाचक नियुक्ति दोष, वाचक वाच्यनियुक्ति दोष, वक्तृवाच्यनियुक्ति दोष, तथा वक्तावाचक वाच्यनियुक्त दोष) ।। १ ।। इनमें वक्ता कवि को कहा गया है । वह चार प्रकार का होता है- सन्दिहान, अविनीत, अज्ञ तथा ज्ञाता ।। २ ।। निमित तथा परिभाषा (संकेत) के द्वारा अर्थ का संस्पर्श करने वाले शब्द को वाचक कहते हैं । उसके दो भेद होते हैं- पद एवं वाक्य । इन दोनों का लक्षण कहा जा चुका है ।। ३ ।। पद दोष दो प्रकार का होता है- असाधुत्व एवं अप्रयुक्तत्व । विद्वानों ने व्याकरणशास्त्र विरुद्ध पद में असाधुत्व दोष माना है ।।४।। जिसका काव्यशास्त्र में व्युत्पन्न कवियों ने प्रयोग नहीं किया है ऐसे पद में अप्रयुक्तत्व दोष होता है । अप्रयुक्तत्व दोष के पाँच भेद होते हैं- छान्दसत्त्व, अविस्पष्टत्व, कष्टत्व, असामयिकत्व एवं ग्राम्यत्व।।५।। जिसका प्रयोग लोकभाषा में नहीं होता है ऐसे पद के प्रयोग से छान्दसत्व दोष होता है । जो पद बोधगम्य नहीं होता है उसमें अविस्पष्टत्व दोष होता है ।। ६ ।। अविस्पष्टत्व दोष के तीन भेद होते हैं- गूढार्थता, विपर्यस्तार्थता तथा संशयितार्थता । जहाँ अर्थ का ग्रहण (ज्ञान) क्लेश पूर्वक होता है, वहाँ गूढ़ार्थता दोष होता है । जो विवक्षित अर्थ से भिन्न शब्दार्थ के ज्ञान से दूषित हो उसे विपर्ययस्तार्थता कहते हैं ।। ७-८ ।। अन्यार्थता एवं असमर्थत्व ये दोनों दोष भी विपर्यस्तार्थता का ही अनुगमन करते हैं । जिसमें अर्थ संदिग्ध होता है उसे संशयितार्थता कहते हैं ।। ९ ।। यह सज्जनों को उद्विग्न नहीं करने पर भी दोष माना जाता है । सुखपूर्वक उच्चारण न होने को कष्टत्व दोष कहते हैं । जो रचना कविजन निर्धारित मर्यादा से रहित हो उसमें असामायिकता दोष होता है । मुनियों ने असामयिकता को ही नेया कहा है ।। १०।। जिसमें निकृष्ट एवं दूषित अर्थ की प्रतीति होती है वह रचना ग्राम्यता दोष से युक्त होती है । यह ग्राम्य दोष तीन प्रकार से होता है- निन्दनीय ग्राम्य अर्थ के कथन से, उसके स्मरण से तथा उसके वाचक पद से समानता होने से ।। ११-१२ ।। अर्थ दोष दो प्रकार का होता है- साधारण तथा प्रातिस्वितक । जो दोष अनेक भागवर्ती होता है वह साधारण कहलाता है। यह साधारण दोष पाँच प्रकार का होता है- क्रियाभ्रंश, कारकभ्रंश, विसन्धि, पुनरुक्तता तथा व्यस्त सम्बन्धता के भेद से ।। १३-१४ ।। क्रियाहीनता को क्रियाभ्रंश, कर्ता आदि कारक के अभाव

अर्थावृत्तिः पदावृत्तिरर्थावृत्तिरपि द्विधा॥ १७॥ प्रयुक्तवरशब्देन तथा शब्दान्तरेण च। नावर्त्तते पदावृत्तौ वाच्यमावर्त्तते पदम् ॥ १८॥ व्यस्तसम्बन्धता सुष्ठु सम्बन्धो व्यवधानतः । असम्बन्धान्तरनिर्भासात् सम्बन्धान्तरजन्मनः ॥ १९ ॥ स भावेऽपि तयोरन्तर्व्यवधानात् त्रिधैव सा। अन्तरा पदवाक्याभ्यां प्रतिभेदं पुनर्द्विधा॥ २०॥ वाच्यमर्थार्थ्यमानत्वात् तद्द्विधा पदवाक्ययोः । व्युत्पादितपूर्ववाच्यं व्युत्पाद्यञ्चेति भिद्यते ॥ २१॥ इष्टव्याघातकारित्वं हेतोः स्यादसमर्थता । असद्धित्वं विरुद्धत्वमनैकान्तिकता तथा ॥ २२॥ एवं सत्प्रतिपक्षत्वं कालातीतत्वसङ्करः । पक्षे सपक्षे नास्तित्वं विपक्षेऽस्तित्वमेव तत्॥ २३॥ काव्येषु पारिषद्यानां न भवेदप्यरुन्तुदम् । एकादशनिरर्थत्वं दुष्करादौ न दुष्यति ॥ २४॥ दुःखीकरोति दोषज्ञान् गूढ़ार्थत्वं न दुष्करे । न ग्राम्यतोद्वेगकारी प्रसिद्धेर्लोकशास्त्रयोः॥२५॥ क्रियाभ्रंशे न लक्ष्मास्ति क्रियाध्याहारयोगतः । भ्रष्टकारकताक्षेपबलाध्याहृतकारके ॥ २६॥ प्रगृह्ये गृह्यते नैव क्षतं विगतसन्धिना । कष्टपाठाद् विसन्धित्वं दुर्वचादौ न दुर्भगम् ॥ २७॥ अनुप्रासे पदावृत्तिर्व्यस्तसम्बन्धता शुभा। नार्थसंग्रहणे दोषो व्युत्क्रमाद्यैर्न लिप्यते ॥ २८॥ विभक्तिसंज्ञालिङ्गानां यत्रोद्वेगो न धीमताम्। संख्यायास्तत्र भिन्नत्वमुपमानोपमेययोः ॥ २९ ॥ अनेकस्य तथैकेन बहूनां बहुभिः शुभा । कवीनां समुदाचारः समयो नाम गीयते ॥ ३०॥ सामान्यश्च विशिष्टश्च धर्मवद् भवति द्विधा । सिद्धसैद्धान्तिकानाञ्च कवीनाञ्चाविवादतः ॥ ३१ ॥ यः प्रसिध्यति सामान्य इत्यसौ समयो मतः । सर्वे सिद्धान्तिका येन सञ्चरन्ति निरत्ययम् ॥ ३२ ॥ कियन्त एव वा येन सामान्यस्तेन स द्विधा । छेद सिद्धान्ततोऽन्यः स्यात् केषाञ्चिद् भ्रान्तितो यथा॥ ३३॥ तर्कज्ञानं

को कारक भ्रंश, तथा सन्धि के दोष को विसन्धि कहते हैं ।। १५ ।। विसन्धि दोष दो प्रकार का होता है- सन्धि का अभाव तथा विरुद्ध सन्धि । विरुद्ध पदार्थान्तर की प्रतीति के कारण विरुद्धसन्धि को कष्टकर माना गया है ।। १६ ।। बार-बार कथन को पुनरुक्तत्व दोष कहते हैं । उसके दो भेद होते हैं- अर्थावृत्ति तथा पदावृत्ति । अर्थावृत्ति भी दो प्रकार की होती है ।। १७ ।। काव्य में प्रयुक्त अभीष्ट शब्द के द्वारा तथा शब्दान्तर के द्वारा । पदावृत्ति में अर्थ की आवृत्ति नहीं होती है केवल पद की आवृत्ति होती है ।। १८ ।। जहाँ पर व्यवधान से भली भाँति सम्बन्ध हो वहाँ पर व्यस्त सम्बन्धता नामक दोष होता है । व्यस्त सम्बन्धता तीन प्रकार की होती है- सम्बन्धान्तर की प्रतीति के कारण, संबन्धान्तरजन्य होने के कारण एवं इन दोनों के अभाव में भी अन्तर्व्यवधान होने के कारण ।।१९।। बीच में पद एवं वाक्य का व्यवधान होने के कारण उपर्युक्त प्रत्येक भेदों के दो-दो भेद हो जाते हैं ।। २० ।। पद एवं वाक्य में अर्थ एवं अर्थ्यमान के भेद से वाच्यार्थ के दो भेद होते हैं । पदगत वाच्य व्युत्पादित एवं व्युत्पाद्य के भेद से दो प्रकार के होते हैं ।। २१ ।। अभीष्ट की सिद्धि में व्याघात करने वाला हेतु दोष है ।। २१ ।। यही हेतु दोष ग्यारह प्रकार का होता है- असमर्थत्व, असिद्धत्व, विरुद्धत्व, अनैकान्तिकत्व, सत्प्रतिपक्षत्व, कालातीतत्व, संकर, पक्षासत्त्व, सपक्षासत्त्व विपक्ष में सत्त्व तथा निरर्थकत्व । यह इष्टव्याघातकारित्व दोष काव्यों, नाटकों तथा सहृदयों में मार्मिक पीड़ा उत्पन्न करने वाला होता है । दुष्करचित्रबन्ध आदि काव्यों में निरर्थत्व दोष नहीं माना जाता है ।। २२-२४ ।। दुष्कर चित्रबन्ध आदि काव्यों में गूढार्थ दोष सहृदयों को दुःखी नहीं बनाता है। लोक एवं शास्त्र में प्रसिध ग्राम्यता दोष भी उद्वेगकारी नहीं होता है ।। २५ ।। क्रियाभ्रंश में यदि क्रिया का आक्षेप किया जाय तो वह दोष नहीं रह जाता है । आक्षेप के द्वारा कारक का अध्याहार संभव हो तो कारक भ्रंश भी दोष नहीं रह जाता है ।। २६ ।। जहाँ पर प्रगृह्य संज्ञा होकर प्रकृतिभाव होने के कारण संधि न हो वहाँ पर विसन्धि भी दोष नहीं रह जाता है । जहाँ पर संधि कर देने से उच्चारण करने में कठिनाई हो ऐसे स्थल में भी विसन्धि दोष नहीं होता है ।। २७ ।। अलंकार में पद की आवृत्ति तथा व्यस्त सम्बन्धता शुभ है । अर्थसंग्रह में आर्यावृत्ति दोष नहीं होता है । वह व्युत्क्रम आदि दोषों से भी लिप्त नहीं होता है ।। २८ ।। उपमान और उपमेय में, विभक्ति, संज्ञा और लिङ्ग तथा वचन का भेद होने पर भी वह तब तक दोष नहीं माना जाता है जब तक वह बुद्धिमानों को उद्वेग कारक न बने ।। २९ ।। अनेक की एक से तथा बहुतों की बहुत से दी गयी उपमा शुभ (गुण) मानी गयी है । कवि परम्परा से अनुमोदित सदाचार समय कहलाता है ।। ३०।। यह समय भी दो प्रकार का होता है- सामान्य धर्म से युक्त तथा विशिष्ट धर्म से युक्त । सामान्य समय उसको कहते हैं जो सभी सिद्धान्तवादियों के अनुकूल होता है, उसके विषय में किसी भी कवि का विवाद नहीं होता है। जिस पर समस्त सिद्धान्तवादी विना किसी बाधा के संचरण करते हैं । दूसरे तरह का सामान्य समय वह है जिसका अनुसरण कुछ ही सिद्धान्तवादी कर पाते हैं । यह सिद्धान्त

मुनेः कस्य कस्यचित् क्षणभङ्गिका । भूतचैतन्यता कस्य ज्ञानस्य सुप्रकाशता।। ३४।। प्रज्ञातस्थूलताशब्दानेकान्तत्वं तथार्हतः । शैववैष्णवशाक्तेयसौरसिद्धान्तिनां मतिः ।। ३५।। जगतः कारणं ब्रह्म साङ्ख्यानां सप्रधानकम् । अस्मिन् सरस्वतीलोके सञ्चरन्तः परस्परम् ।। ३६।। बध्नन्ति व्यतिपश्यन्तो यद्विशिष्टः स उच्यते । परिग्रहादप्यसतां सतामेवापरिग्रहात्।। ३७।। भिद्यमानस्य तस्यायं द्वैविध्यमुपगीयते । प्रत्यक्षादिप्रमाणैर्यद् बाधितं तदसद् विदुः।। ३८।। कविभिस्तत् प्रतिग्राह्यं ज्ञानस्य द्योतमानता । यदेवार्थक्रियाकारी तदेव परमार्थसत् ।। ३९।। अज्ञानाज्ज्ञानतस्त्वेकं ब्रह्मैव परमार्थसत् । विष्णुः सृष्ट्यादिहेतुः स शब्दालङ्काररूपवान्। अपरा च परा विद्या तां ज्ञात्वा मुच्यते भवात् ।। ४० ।।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये काव्यदोषविवेककथनं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।। ३४७ ।।

अष्टचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

एकाक्षराभिधानम्

अग्निरुवाच— **एकाक्षराभिधानञ्च मातृकान्तं वदामि ते । अविष्णुः प्रतिषेधः स्यादा पितामहवाक्ययोः ।। १।। सीमायामथाव्ययम् आ भवेत् संक्रोधपीडयोः । इः कामे रतिलक्ष्म्योरी उः शिवे रक्षकाद्य ऊः।। २ ।। ऋ शब्दे चादितौ ॠ स्यात् ऌ ॡ ते वै दितौ गुहे । ए देवी ऐयोगिनी स्यादो ब्रह्मा औ महेश्वरः ।। ३ ।। अङ्कामः अः प्रशस्तः स्यात् को ब्रह्मादौ कुकुत्सिते । खं शून्येन्द्रियं खड्गो गन्धर्वे च विनायके ।। ४ ।। गङ्गीते गो गायने**

भेद दो प्रकार से होता है- सिद्धान्त विशेष का आश्रय लेने से तथा भ्रान्ति के कारण ।। ३२-३३ ।। किसी मुनि का आधार तर्क होता है और किसी मुनि का आधार क्षणभंगवाद । कोई यह मानते हैं कि भूतों के संघात से शरीर में चैतन्यता आ जाती है । कोई ज्ञान को ही स्वयम्प्रकाश मानते हैं ।। ३४ ।। कोई प्रज्ञात स्थूलतावादी हैं, कोई शब्दानेकान्तवादी हैं । शैव, वैष्णव, शाक्त तथा सौर सिद्धान्त के मानने वालों का मत है कि जगत् का कारण ब्रह्म है । सांख्यों के अनुसार जगत् का कारण प्रधान (प्रकृति) है ।। ३५।। इस वाणी के लोक में विचरण करते हुए विचारक जो एक दूसर के प्रति विपर्यस्त दृष्टि रखते हैं तथा युक्तियों द्वारा एक दूसरे को बाँधते हैं, उनका वह भिन्न-भिन्न मत ही विशिष्ट मार्ग अथवा समय कहा गया है ।। ३६।। वह विशिष्ट समय असत् के परिग्रह तथा सत् के परित्याग के कारण दो प्रकार का है ।। ३७।। जो मत प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाधित हो विद्वान् उसे असत् मानते हैं । कवियों को वह मत स्वीकार नहीं करना चाहिए जहाँ ज्ञान का प्रकाश हो। वही अर्थ क्रियाकारी है। वही परमार्थ सन्मार्ग है ।। ३८-३९ ।। अज्ञान तथा ज्ञान से परे जो एकमात्र ब्रह्म हैं वही परमार्थ सत् है । वही जानने योग्य हैं । वे भगवान् विष्णु ही जगत् की सृष्टि आदि (पालन एवं संहार) के हेतु हैं । वे ही शब्द तथा अलंकार स्वरूप हैं । वे ही अपरा एवं परा विद्या स्वरूप हैं । उनको जानकर मनुष्य संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है ।। ४० ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का काव्यदोष विवेक वर्णन नामक तीन सौ सैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।। ३४७ ।।

अग्निदेव ने कहा— वसिष्ठ ! अब मैं आपको एकाक्षराभिधान तथा उनकी मातृकाओं का नाम बतलाता हूँ । अ भगवान् विष्णु का नाम है अ प्रतिषेध के भी अर्थ में आता है । आ ब्रह्मा जी का वाचक है तथा वाक्य में भी उसका प्रयोग होता है ।। १ ।। सीमा के अर्थ में प्रयुक्त होने वाला आ अव्यय है । उसका प्रयोग क्रोध तथा पीडा के भी अर्थ में होता है । इ काम के अर्थ में प्रयुक्त होता है । ई रति तथा लक्ष्मी के अर्थ में प्रयुक्त होता है । उ शिव का वाचक है ऊ रक्षक आदि का वाचक है ।। २ ।। ऋ शब्द का बोधक है ॠ अदिति के अर्थ में प्रयुक्त होता है । ऌ तथा ॡ ये दोनों वर्ण दिति तथा कुमार कार्तिकेय के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं । ए देवी का वाचक है ऐ योगिनी का वाचक है, ओ ब्रह्मा का वाचक है तथा औ महेश्वर (शङ्कर जी) का वाचक है ।।३।। अं काम

स्याद् घो घण्टा किङ्किणीमुखे। ताड़ने ङश्च विषये स्पृहायाञ्चैव भैरवे॥ ५॥ चो दुर्जने निर्मले छश्छेदे र्जिजयने तथा । जं गीते झः प्रशस्ते स्याद् बले ञो गायने च टः ॥ ६ ॥ छश्चन्द्रमण्डले शून्ये शिवे चोद्वन्धने मतः । डश्च रुद्रे ध्वनौ त्रासे ढक्कायां ढोध्वनौ मतः॥ ७॥ णो निष्कर्षे निश्चये च तश्चौरे क्रोडपुच्छके । भक्षणे थश्छेदने दो धारणे शोभने मतः ॥ ८॥ धो धातरि च धूस्तूरे नो वृन्दे सुगते तथा । प उपवने विख्यातः पुश्च झञ्झानिले मतः॥९॥ फुः फुत्कारे निष्फले च विः पक्षी भश्च तारके । मा श्रीर्मानश्च माता स्याद्या योगे यो यातृवीरणे ॥ १० ॥ रो वह्नौ च लः शक्रे च लो विधातरि ईरितः । विश्लेषणे वो वरुण शयने शश्च शंसुखे॥ ११॥ षः श्रेष्ठे सः परोक्षे च सा लक्ष्मीः सं कचे मतः । धारणे हस्तथा रुद्रे क्षः क्षेत्रेऽथाक्षरे मतः ॥ १२ ॥ क्षौ नृसिंहे हरौ तद्वत् क्षेत्रपालकयोरपि । मन्त्र एकाक्षरो देवो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥ १३॥ हैहयशिरसे नमः सर्वविद्याप्रदो मनुः । आकाराद्यास्तथा मन्त्रा मातृकामन्त्र उत्तमाः ॥ १४॥ एकपद्मेऽर्चयेदेतान्नव दुर्गाश्च पूजयेत्। भगवती कात्यायनी कौशिकी चाथ चण्डिका॥१५॥ प्रचण्डा सुरनायिका उग्रा पार्वती दुर्गया ॥ १६ ॥ ओं चण्डिकायै विद्महे भगवत्यै धीमहि तन्नो दुर्गा प्रचोदयात् ॥ १७ ॥ क्रमादि तु षडङ्गं स्यद् गणो गुरुर्गुरुः क्रमात् ॥ अजितापराजिता चाऽथ जया च विजया ततः ॥ १८ ॥ कात्यायनी भद्रकाली मङ्गला सिद्धिरेवती । सिद्धादिवटुकाः पूज्या हेतुकश्च कपालिकः ॥ १९ ॥ एकपादो भीमरूपो दिक्पालान्मध्यतोनव। ह्रीं दुर्गे ! दुर्गे रक्षणि ! स्वाहा मन्त्रार्थसिद्धये ॥ २०॥ गौरी पूज्या च धर्माद्याः स्कन्दाद्याः शक्तयो यजेत् । प्रज्ञा ज्ञाना क्रिया वाचा वागीशी ज्वालिनी तथा ॥ २१ ॥ वमाज्येष्ठचरौकी च गौरीं ह्रीं च

का बोधक है, अः प्रशस्त का बोधक है। क ब्रह्मा आदि के अर्थ में आता है। कु कुत्सित के अर्थ में आता है खं शुन्य तथा इन्द्रिय का बोधक है । गः गन्धर्व तथा गणेश का बोधक ।। ४ ।। गं गीत का गः गयन का, घः घण्टा का तथा करधनी के अग्रभाग का वाचक है । घः ताड़न का भी वाचक है । ङ अक्षर विषय, स्पृहा तथा भैरव का वाचक है ।। ५ ।। च निर्मल तथा दुर्जन के अर्थ में प्रयुक्त होता है । छ का अर्थ छेदन है । जि विजय का वाचक है । जं गीत का वाचक है । झः अर्थ प्रशस्त ञ का अर्थ बल तथा टः का अर्थ गायन है ।। ६ ।। छ का अर्थ चन्द्रमण्डल, शून्य, शिव तथा उद्वन्धन है । ड अक्षर रुद्र, ध्वनि तथा त्रास के अर्थ में आता है । ढ का अर्थ ढक्का तथा उसकी ध्वनि है ।। ७ ।। णः निष्कर्ष एवं निश्चय के अर्थ में आता है । त के अर्थ तस्कर (चोर) तथा शूकर की पूँछ है । थ भक्षण के अर्थ में तथा द छेदन, धारण तथा शोभन के अर्थ में आता है ।। ८ ।। ध के अर्थ धाता एवं धूस्तूर (धतूर) हैं । न के अर्थ वृन्द (समूह) तथा सुगत (बुद्ध) हैं । प का अर्थ उपवन है और पुः का अर्थ झञ्झावात है ।। ९ ।। फुः के अर्थ फुत्कार तथा निष्फल हैं । वि का अर्थ पक्षी है । भं का अर्थ ताराएँ हैं । मा का अर्थ लक्ष्मी, मान तथा माता हैं । य का अर्थ योग, याता (यात्री अथवा दयादिन) तथा वीरण वृक्ष हैं ।। १० ।। र के अर्थ हैं- अग्नि, बल तथा इन्द्र, ल का अर्थ विधाता है । व का अर्थ विश्लेषण तथा वरुण हैं । शः का अर्थ शयन एवं शं का अर्थ सुख है ।। ११ ।। षः का श्रेष्ठ, स परोक्ष, सा का लक्ष्मी, सं का बाल, ह का धारण तथा रुद्रक्ष का क्षेत्र, अक्षर, क्षौं का नृसिंह, हरि, क्षेत्र तथा पालक हैं ।। १२ ।। एकाक्षरमन्त्र देवस्वरूप भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाला होता है । क्षौं हयशिरसे नमः यह समस्त विद्याओं को प्रदान करने वाला मन्त्र है । अकार आदि नव अक्षर भी मन्त्र हैं उन्हें उत्तम मातृका मन्त्र कहते हैं ।। १३-१४ ।। इन मंत्रों को एक कमल दल में स्थापित करके इनकी पूजा करें । इनमें नवदुर्गाओं की भी पूजा करें । भगवती, कात्यायनी, कौशिकी, चण्डिका, प्रचण्डा, सुरनायिका, उग्रा, पार्वती दुर्गा ।। १६ ।। ओं चण्डिकायै विद्महे, भगवत्ये धीमहि तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्।।१७।। यह दुर्गा गायत्री मन्त्र है । षडङ्ग आदि क्रम से पूजा करनी चाहिए । साथ ही गणों की भी पूजा करनी चाहिए । अजिता, अपराजिता, जया, विजया ।। १८ ।। कात्यायनी, भद्रकाली, मंगला, सिद्धि, रेवती, सिद्ध आदि बटुक तथा एक पाद, भीमरूप, हेतुक, कापालिक का पूजन करना चाहिए । बीच में नव दिक्पालों की पूजा करनी चाहिए ।। १९ ।। मन्त्र की सिद्धि के लिए ह्रीं दुर्गे ! दुर्गे ! रक्षणि स्वाहा । इस मन्त्र का जप करना चाहिए । गौरी की पूजा करें, धर्म आदि का, स्कन्द आदि का तथा शक्तियों की पूजा करें ।। २० ।। प्रज्ञा, ज्ञानक्रिया, वाचा, वागीशी, ज्वालिनी, वामा, ज्येष्ठा, रौद्रा, गौरी, ही तथा पुरस्सरा देवी का 'ह्रीं सः महागौरि रुद्रदयिते स्वाहा' इस मन्त्र से महागौरी

पुरस्सरा । ह्रीं सः महागौरि रुद्रदयिते स्वाहेतिक ॥ २२ ॥ ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः सुभगा ललिता तथा । कामिनी काममाला च इन्द्राद्याः शक्तिपूजनम् ॥ २३ ॥ ओं गं स्वाहा मूलमन्त्रोऽयं गं वा गणपतये नमः । षड्ङ्गोरक्तशुक्लश्च दन्ताक्षपरशूत्कटः ॥ २४ ॥ समोदकोऽथ गन्धादिगन्धोल्कायेति च क्रमात् । गजो महागणपतिर्महोल्कः पूज्य एव च ॥ २५ ॥ कुष्माण्डाय एकदन्तत्रिपुरान्तकाय श्यामदन्तविकटहरहासाय। लम्बनाशनाय पद्मदंष्ट्राय मेघोल्काय धूमोल्काय । वक्रतुण्डाय विघ्नेश्वराय विकटोत्कटाय गजेन्द्रगमनाय । भुजगेन्द्रहाराय शशाङ्कधराय गणाधिपतये स्वाहा ॥ २६ ॥ एतैर्मनुभिः स्वाहान्तैः पूज्य तिलहोमादिनार्थभाक् । काद्यैर्वा बीजसंयुक्तैस्तैराद्यैश्च नमोऽन्तकैः ॥ २७ ॥ मन्त्राः पृथक् पृथग् वा स्युर्द्विरेफद्विर्मुखाक्षिणः । कात्यायनं स्कन्द आह यत् तद् व्याकरणं वदे ॥ २८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये एकाक्षराभिधानकथनं नामाष्टचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४८ ॥

ऊनपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

व्याकरणम्

स्कन्द उवाच– **वक्ष्ये व्याकरणं सारं सिद्धशब्दस्वरूपकम् । कात्यायनविबोधाय बालानां बोधनाय च॥ १॥ प्रत्याहारादिकाः संज्ञाः शास्त्रसंव्यवहारगाः। अ ई उ ण्। ऋ लृ क्। ए ओ ङ्। ऐ औ च्। ह य व र ट्। ल ण्। ञ म ङ ण न म्। झ भ ञ्। घ ढ ध ष्। ज ब ग ड द श्। ख छ ठ थ च ट त व्। क प य्। श ष स र्। ह ल्। इति प्रत्याहारः ॥४॥ उपदेश इद्धलन्तं भवेदजनुनासिकः । आदिवर्णो गृह्यमाणोऽप्यन्त्येनेता सहैव**

का पूजन करे।। २२ ।। ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, सुभगा, ललिता, कामिनी, काममाला तथा इन्द्रादि शक्तियों का पूजन भी एकाक्षर मन्त्र से करना चाहिए ।। २३ ।। गणेश जी की पूजा के लिए ओं गं गणपतये नमः, अथवा गं गणपतये नमः यह मूल मन्त्र है । रक्त, शुक्ल, दन्त, नेत्र, परशु तथा मोदक ये गणेश जी के षडङ्ग हैं । गन्धोल्काय नमः' इस मन्त्र से उन्हें गन्ध आदि समर्पित करें ।। २४।। गज, महागणपति तथा महोल्क ये भी पूजनीय हैं ।। २५ ।। कुं कुष्माण्डाय नमः, एं एकदन्ताय नमः, त्रिं त्रिपुरान्तकाय नमः, शं श्यामरन्तविकटहरहासाय नमः, लं लम्बनासाननाय नमः, पं पद्मदंष्ट्राय नमः, में मेघोल्काय नमः धूं धूमोल्काय नमः, वं वक्रतुण्डाय नमः, विं विघ्नेश्वराय नमः, विं विकटोत्कटाय नमः, गं गजेन्द्रगमनाय नमः, भुं भुजगेन्द्रहाराय नमः, शं शशांकधराय नमः, गं गणाधिपतये नमः, इन मन्त्रों से तिल आदि से होम करके मन्त्रार्थभूत देवता का पूजन करना चाहिए ।। २५-२७।। अथवा द्विरेफ, द्विमुख तथा द्वयक्षर पृथक्-पृथक् मन्त्र हो सकते हैं । अब मैं उस व्याकरण को बतला रहा हूँ जिसे कुमार कार्तिकेय ने कात्यायन को बतलाया था ।। २८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का एकाक्षराभिधान वर्णन नामक तीन सौ अड़तालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३४८ ॥

स्कन्द जी ने कहा– कात्यायन ! अब मैं बालकों के बोध के लिए तथा उन्हें व्याकरण का ज्ञान कराने के लिए सिद्ध शब्द रूप सारभूत व्याकरण का वर्णन कर रहा हूँ ।। १ ।। पहले जिनका व्याकरण शास्त्रीय प्रक्रिया में व्यवहार होता है उन प्रत्याहार आदि संज्ञाओं को बतला रहा हूँ ।। २ ।। अ इ उ ण्, ऋलृक्, एओङ् ऐऔच्, हयवरट्, लण्, ञमङणनम्, झभञ्, घढधष्, जबग डदश्, खफछठथचटतव् कपय्, शषसर्, हल् ।। ३ ।। ये माहेश्वर सूत्र हैं । इनको अक्षरसमाम्नाय कहते हैं। इनसे अण् आदि प्रत्याहार बनते हैं ।। ४ ।। उपदेशावस्था में जो अन्तिम हल

तु ॥ ५ ॥ तयोर्मध्यगतानां स्याद् ग्राहकः स्वस्य तद् यथा ॥ ६ ॥ अण् एङ् अट् यङ् छव् (व) झष् भष् अक् इक् (उक्) अण् इण् यण् परेण णकारेण । अम् यम् ङम् अच् इच् (एच्) ऐच् अय् मय् झय खय् जश् झर् खर् चर् पर् शर् अश् हश् वश् झष् अल् हल् वल् हल् झल् शल्।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये व्याकरणकथनं नामोनपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४९ ॥

पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

सन्धिसिद्धरूपम्

स्कन्द उवाच– **वक्ष्ये सन्धिसिद्धरूपं स्वरसन्धिमथादितः । दण्डाग्रं सागता दधीदं नदीहते मधूदकम्॥ १॥ पितॄषभः लृकारश्च तवेदं सकलोदकम् । अर्धर्चोऽयं तवल्कारःसैषा सैन्द्री तवौदनम्॥ २॥ खट्वौघोऽभवदित्येवं व्यसुधीर्वस्वलङ्कृतम् । पित्रर्थोपवनं दात्री नायको लावको**

उसकी इत्संज्ञा होती है । अन्तिम इत्संज्ञक वर्णों के साथ गृहीत होने वाला जो आदि वर्ण वह दोनों के मध्यवर्ती वर्णों का तथा अपना भी बोध कराता है । जैसा कि निम्नांकित उदाहरण से स्पष्ट है।।६।। अण्, एङ्, अट्, यङ् (या यञ्) छव्, झष्, भष्, अक्, इक्, उक्, अण्, इण्, यण् ये तीनों पर णकार अर्थात् लण् सूत्र के णकार से बनते हैं । अम्, णम्, ङम्, अच्, इच्, एच्, ऐच्, अय्, मय्, झय्, अश्, झर्, खर्, चर्, शर्, अश्, हश्, वश्, झश्, अल्, हल्, वल्, रल्, झल्, शल्, ये सभी प्रत्याहार हैं ।

इस तरह से आदि महापुराण अग्निपुराण का व्याकरणशास्त्र वर्णन नामक तीन सौ उनचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३४९ ॥

स्कन्द जी ने कहा– अब मैं सन्धि के सिद्ध रूपों को बतलाऊँगा । उसमें पहले स्वर संधि बतलाता हूँ । **विशेष–** जहाँ पर दो वर्ण मिलकर एक नया ही रूप धारण करते हैं, उसे संधि कहते हैं । सन्धि को सामान्यतः पाँच भेद होते हैं- अच् सन्धि, हल् सन्धि, अनुस्वार सन्धि, विसर्ग सन्धि तथा स्वादि सन्धि । चूँकि अनुस्वार सन्धि में व्यञ्जन का अनुस्वार होता है तथा अनुस्वार का व्यञ्जन होता है, अतएव अनुस्वार सन्धि का भी व्यञ्जन सन्धि अथवा हल् सन्धि में ही अन्तर्भाव हो जाता है । इसी तरह स्वादि सन्धि का भी विसर्ग सन्धि में ही अन्तर्भाव हो जाता है । इसलिए मुख्यतः तीन ही सन्धियाँ होती हैं- १. अच् सन्धि, अथवा स्वर सन्धि, २. हल् सन्धि अथवा व्यञ्जन सन्धि एवं ३. विसर्ग सन्धि । जहाँ पर स्वर विकृत होकर वर्णान्तर से मिल जाते हैं वहाँ पर स्वर सन्धि होती है । इसके मुख्यतः पाँच भेद होते हैं- यणादेश, अयादेश, लोपादेश, अवङादेश एवं एकादेश । इ, उ, ऋ एवं ऌ इन चार स्वरों के स्थान में क्रमशः य, व, र एवं ल् का आदेश होना ही यणादेश कहलाता है । अयादेश छह प्रकार के होते हैं- अय्, अव्, आय, आव्, यान्तादेश एवं वान्तादेश । लोपादेश में य्, व् का लोप होता है । अवङादेश में ओ को अवङ् आदेश होता हे । एकादेश में गुण एकादेश, दीर्घ एकादेश, वृद्धि एकादेश पूर्वरूप एकादेश पररूप एकादेश प्रधान है । दण्डाग्रम्, साऽऽगता, दधीदम्, नदीहते, मधूदकम् ।। १ ।। पितृषभः, ऌकारः (ये दीर्घ सन्धि के उदाहरण हैं । इन समस्त पदों में 'अकः सवर्णे दीर्घः' (६/१/१०१) इस पाणिनीय सूत्र से दीर्घ हुआ है । दण्ड+अग्रम् = दण्डाग्रम्, दण्ड का अग्रभाग सा+आगता = साऽऽगता, आ+आ = आ । वह आयी । दधीदम = दधि + इदम् = दधीदम् = इ + इ = ई । यह दही है । नदी + ईहते = नदी = ईहते = नदीहते । ई + ई = ई । नदी चाहती हैं । मधु + उदकम्= मधूदकम् = उ + उ = ऊ । मधु का जल । पितृ + ऋषभः पितृषभः । ऋ + ऋ = ॠ । पितृवर्य । ऌ + ऌकार = ॡकार = ऌ + ऌ = ॡ । दीर्घ ऌ ।) तवेदम् , सकलेदकम् अर्धर्चोयम्, तवल्लकारः । (ये सभी गुणैकदेश सन्धि के उदाहरण हैं गुणैकादेश तीन होते हैं ए, ओ और अ (अ- या अल्) । तव + इदम् = तवेदम् । अ + इ = ए । यह तुम्हारा है । सकल + उदकम्+ सकलोदकम् । अ + उ = ओ । सम्पूर्ण जल् । अर्ध + ऋचोऽयम् = अर्धर्चोऽयम् । अ + ऋ = अ > अर् । यह ऋचा का आधा है । तव + ऌकार । इन समस्त स्थलों में आद्गुण (पा० सू० ६/१/८७ से गुण हुआ है ।) सैषा, सैन्द्री, तवौदनम् ।। २ ।। खट्वौघोऽभवत् । (ये सभी वृद्धि एकादेश सन्धि के उदाहरण हैं । वृद्धि एकादेश में तीन आदेश होते हैं, ऐ, औ तथा आ (आर्

नयः॥ ३॥ त इह तयिहेत्यादि तेऽत्र योऽत्र जलेऽकजम् । प्रकृतिर्नो अहो एहि अ अवेहि इ इन्द्रकम् ॥ ४ ॥ उ उत्तिष्ठ कवी एतौ वायू एतौ वने इमे। अमी एते यज्ञभूते एहि देव! इमन्नय ॥ ५॥ वक्ष्ये सन्धिं व्यञ्जनानां वाग्यतोऽजेकमातृकः । षडेते तदिमेवादिवाङ्नीतिः षण्मुखादिकम् ॥ ६ ॥ वाङ् मनसं वग्भागादिर्वाक् श्लक्ष्णं तच्छरीरकम्। तल्लुनाति तच्चरेच्च क्रुङ्ङास्ते च सुगण्णिह॥ ७॥ भवांश्चरन् भवांञ्छात्रो भवांष्टीकाः भवांष्ठकः।

या आल्) । सा + एषा = सैषा । आ + ए = ऐ । वह यह स्त्री है । सा + ऐन्द्री = सैन्द्री । आ + ऐ = ऐ वह इन्द्र की है । तव + ओदनम् = तवौदनम् । अ + ओ = औ । तुम्हारा भात। खट्वा + ओघोऽभवत् = खट्वौघोऽभवत् । आ + ओ = औ । खाट का समूह था ।) इत्येवम् , व्यसुधीः । वस्वलंकृतम् , पित्रर्थोपवनम्, दात्री । (ये सभी यणादेश के उदाहरण हैं । इ को यणाचि (पा० सू० ६/१/७७) से क्रमशः इ, उ, ऋ तथा ऌ के स्थान में क्रमशः य्, व्, र् एवं ल् यणादेश होते हैं । इति। एवम् = इत्येव । इ > य् इस तरह । वि + असुधीः = व्यसुधीः। इ > य् । विशेष + अज्ञ । वसु + अलंकृतम् = वस्वलंकृतम् । उ > व् । सम्पत्ति से समलंकृत । पितृ + अर्थोपवनम् = पित्र्थोपवनम् = पिता के लिए उपवन । ऋ > र् । दातृ + इ = दात्री । ऋ > र् देने वाली ।) नायक, लावकः नयः । (ये अयादेश सन्धि के उदाहरण हैं । एचोऽयवायावः (पा० सू० ६/१/७८) इस सूत्र से यदि बाद में अच् प्रत्याहार के वर्ण हों तो क्रमशः ए, ओ, ऐ तथा औ के स्थान में क्रमशः अय्, अव्, आय् तथा आव् आदेश होते हैं । नै + अकः = नायकः। ए > आय् । नेता । लावकः = लौ + अकः = लावकः औ > आव् । काटने वाला । ने + अ = नयः । ए > अय् नीति ।) ।। ३ ।। त इह, तयिह, इत्यादि (लोपादेश के उदाहरण हैं । लोपः शाकल्यस्य (पा० सू० ८/३/१९) इस सूत्र से विकल्प से य् का लोप होता है । ते + इह = त इह । ए > अय् जहाँ य का लोप नहीं हुआ वहाँ तयिह । तुम्हारा यहाँ है ।) तेऽत्र, योऽत्र, जलेऽकजम् । (ये सभी पूर्वरूप सन्धि के उदाहरण हं । एङः पदान्तादति (पा० सू० ६/१/१०९) इस सूत्र के अनुसार उत्तर पदस्थ अ पूर्वपद के अन्त में विद्यमान एङ् प्रत्याहार के वर्ण में मिल जाता है । ए ओ एङ् प्रत्याहार के वर्ण हैं । ते + अत्र = तेऽत्र । तुम्हारा यहाँ है । यो+ अत्र = योऽत्र । जो यहाँ है । जले + अकजम् = जलेऽकजम् । इन सभी स्थलों में अ अपने पूर्व वर्ण में मिल गया है ।) जहाँ पर सन्धि न होकर प्रकृति रूप ही रह जाता है, उसे प्रकृतिभाव कहते हैं । उसके उदाहरण हैं- नो अहो, अहो एहि, अ अवेहि, इ इन्द्रकम्, उ उत्तिष्ठ, कवी एतौ, वायू एतौ, वने इमे, अमी एते, यज्ञभूते एहि, देव, इमं नय । इन सभी उदाहरणों में पूर्वपद की प्रगृह्य संज्ञा हुई है । इसलिए प्रकृतिभाव होने के कारण सन्धिकार्य नहीं हुआ है । नो अहो में नो ओदन्त निपात हैं इसलिए ओत् सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा होकर प्रकृतिभाव हुआ है । अहो एहि में भी ओत् सूत्र से पूत्रपद की प्रगृह्य संज्ञा हुई है । अ + अवेहि, इ इन्द्रकम्, उ उत्तिष्ठ इन तीनों स्थलों में (निपात एकाजनाङ्' सूत्र से पूर्व पदों की प्रगृह्य संज्ञा होकर प्रकृति भाव हुआ है । कवी एतौ, वायू एतौ, वने इमे इन तीनों स्थलों में 'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' सूत्र से पूर्वपदों की प्रगृह्य संज्ञा हुई है । यज्ञभूते ! एहि देव ! इमं नय इन दोनों उदाहरणों में सम्बुद्धि पदों की प्रगृह्य संज्ञा 'दूराद्धूते च' सूत्र से हुई है ।। ४-५ ।। अब मैं व्यञ्जनों की सन्धि का वर्णन करूँगा । वाग्यतः, अजेकमातृकः, षडेते, तदिमे तथा अवादि ये (ये जश्त्वविधान के उदाहरण हैं । झलां जशोऽन्ते ।(८/३/२३९) इस सूत्र से पदान्त झल् प्रत्याहार के वर्णों का जश् प्रत्याहार के रूप में आदेश होता है । ज, ब, ग, ड, द ये जश् प्रत्याहार के वर्ण हैं । वाक् + यतः = वाग्यतः । क् > ग् । अच् + एकमातृकः= अजेकमातृकः । च् > ज् । षट् + एते = षडेते । ट् > ड् । तत् + इमे तदिमें त् > द् । अप् + आदि = अबादि । प् > ब् । वाङ्नीतिः षण्मुखादिकम् ।। ६ ।। वाङ्मनसम् ।(ये तीनों अनुनासिक विधान के उदाहरण हैं । यरोऽनुनासिके ऽनुनासिको वा ।' (८/४/४५) यह सूत्र उत्तर पद के आदि वर्ण के अनुनासिक होने पर पदान्त पर वर्ण को विकल्प से अनुनासिक करता है। प्रत्यये भाषायां नियम यह वार्तिक तो अनुनासिकादि प्रत्यय परे रहनै पर य- वर्ण को नित्य अनुनासिक करता है । वाक् + नीति : = वाङ्नीतिः । क् > ङ् । षट् + मुखम् = षण्मुखम् । ट् > ण् । वाक> + मनसम् = वाङ्मनसम् । क् > ङ् । वाग्भावादिः तो जश्त्वविधान का ही उदाहरण हैं । वाक् + भावादि : = वाग्भावादिः । क् ग् । वाट् छ् लक्ष्णम् (यह छत्व विधान का उदाहरण है । शश्छोऽटि (पा० सू० ८/४/६२) तथा 'छत्वममीतिवाच्यम् इस वार्तिक से छत्व का विधान होता है । वाक् + श्लक्ष्णम् = वाक्छ्लक्ष्णम् । श > छ्) तच्छरीरकम् । (यह श्चुत्वविधान का उदाहरण है । स्तोः श्चुना श्चुः । (८/४/४०) इस सूत्र से श्चुत्व का विधान होता है । तत् + शरीरकम् = तच्छरीरकम् । त् > च् तथा श > छ् तल्लुनाति । (यह परसवर्ण लत्व विधान का उदाहरण है । तोर्लि (८/४/६०) इस सूत्र से परसवर्ण लत्व विधान होता है । तत् + लुनाति = तल्लुनाति । त् + ल् । तच्चरेत् यहाँ श्चुनाश्चुः' सूत्र से तत् के तकार का चकार हुआ है । तत् + चरेत् = तच्चरेत्। क्रुङ्ङास्ते

भवांस्तीर्थं भवांस्थेयान् भवांल्लेखा भवाञ्जयः ॥ ८ ॥ भवाञ्छेते भवाञ्च्शेते भवाञ्शेते भवाण्डीनः । त्वम्भर्त्ता त्वङ्करोष्यादिः सन्धिर्ज्ञेयो विसर्गजः॥९॥ कश्छिन्द्यात् कश्चरेत् कष्टः कष्ठः कस्थश्च कश्चलेत् । क × खनेत क × करोति स्म क × पठत् क × फलेत वा ॥ १० ॥ कश्श्वशुरः कः श्वशुरः कस्स्वरः, कः स्वरः। कः फलेत् कः शयिता कोऽत्र योधः क उत्तमः ॥११ ॥ देवा एते भो इह सोदरा यान्ति भगो व्रज । सुपूः सुदूरात्रिरत्र

ये ङ् मुडागम विधान का उदाहरण हैं । 'ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नितयम् । (८/३/३२) इस सूत्र से ङमुट् का आगम होता है । क्रुङ् + आस्ते = कुङास्ते । ङमुडागम का एक ङ् यहाँ बढ़ गया है । स्रुगण् + इह = सुगण्णिह ।। ७ ।। भवांश्चरन्, भवांश्छात्र, भवांष्टीका, भवांष्ठकः, भवांस्तीर्थम् तथा भवांर्स्थे यान् (ये सभी नकार के रुत्व विधान के उदाहरण हैं । 'नश्छव्यप्रशान् (पा० सू० ८/३/७) इस सूत्र के अनुसार प्रशान् भिन्न पदान्त नकार के बाद यदि छ (छ ठ थ च ट त) प्रत्याहार का कोई वर्ण हो तो न का रू हो जाता है । भवान् + चरन् = भवांश्चरन् न् > रु > र > विसर्ग > स् > श् (श्चुत्व होकर) उसके पूर्व अनुस्वारागम । भवान् + छात्रः भवांश्छात्रः । न् > रु > र > विसर्ग > स् > श् उससे पूर्व अनुस्वारागम । भवान् + टीका = भवांष्टीका। न् + रु> र > विसर्ग > ष्टुत्व उससे पूर्व अनुस्वारागम । भवान् + तीर्थम् = भवाँस्तीर्थम् । न् + रु > र् > विसर्ग > स् + अनुस्वारागम् भवान् । भवाँस्थेयान् = भवान् + स्थेयान् न् > रु > र्> विसर्ग> स् > अनुस्वारागम् ।) भवांल्लेखा और यवाञ्जयः (यह सानुनासिक पर सर्वर्ण का उदाहरण है । भवान् + लेखा = भवाँल्लेखा । तोर्लि सूत्र से सानुनासिक लकारात्मक पर सवर्ण हैं ।) भवाञ्जयः में श्चुत्व हुआ है । भवान् + जयः = भवाञ्जयः ।) ।। ८ ।। भवाञ्छेते, भवाञ्चशेते, भवाञ्शेते । (ये तीनों रूप तुडागम के उदाहरण हैं । भवान् + शेते शि तुक् (८/ ३/ ३१) इस सूत्र से नान्त तुगागम। भवान् + त + शेते । श्चुत्व के कारण न् > ञ् त् > च् शश्छोटि से श् का छ होने पर भवाञ्छेते रूप हुआ । झरो झरि सवर्णे सूत्र से च का लोप होने पर भवांञ्छेते । लोप तथा छत्व के वैकल्पिक होने से इन दोनों कार्यों के न होने पर रूप बना भवाञ्चशेते । जहाँ तुगागम नहीं होगा वहाँ भवांशेते रूप होगा ।) भवाण्डीनः यह ष्टुत्व विधान का उदाहरण है । भवान् + डीन= भवाण्डीनः । न्> ण् । तवं भर्ता, त्वम्भर्ता, त्वं करिष्यसि, त्वङ्करिष्यसि । (ये दोनों वैकल्पिक पर सवर्ण के उदाहरण हैं । त्वं + भर्ता = त्वा पदान्तस्य (८/४२५९) सूत्र से वैकल्पिक पर सवर्ण। त्वं भर्ता, त्वम्भर्ता। इसी तरह त्वं + करोषि = त्वङ्करोषि । अनुस्वार का परसवर्ण ङ् । विकल्प से तवं करोषि । इसके पश्चात् विसर्ग की होने वाली सन्धि को जानना चाहिए । ९ ।। कश्छिन्द्यात्, कश्चरेत्, कष्टः, कष्ठः ये चारों उदाहरण विसर्ग के स्थान में सत्व विधान के हैं । विसर्ग का स विसर्जनीयस्य सः- पा० सू० ८।३।३४ ।। से होता है । कः + छिन्द्यात् = क श्छिन्द्यात् । विसर्ग> स् > श्चुत्व होकर श्। कः + चरेत् > कश्चरेत् । विसर्ग > स् > श् । कः + टः = कष्टः । कः + ठः कष्ठः । विसर्ग > स् > ष्टुनाष्टुः से ष्टुत्व होकर ष् । कः चलेत् = कश्चलेत् । यहाँ पर भी विसर्ग > स् > श। कः स्थः । यह वैकल्पिक विसर्ग का विसर्ग रहने का उदाहरण है । वाशरि पा० सू० ८/३/३६ इस सूत्र के अनुसार विसर्ग के बाद यदि श्, ष्, स हों तो विसर्ग का विसर्ग ही रह जाता है । विकल्प से । कः + स्थः = कःस्थः । कखनेत् X क X पौ च - पा० सू० ८२३/३७ के अनुसार विसर्ग के बाद यदि क प आएँ तो विसर्ग का ऐसा आदेश होता है । कः खनेत् = क X खनेत् । कः+ करोति = क X करोति । कः पठेत् = क X पठेत् । कः + फलेत् = क X फलेत् । सर्वत्र विसर्ग का जिह्वा मूलीय अथवा उपध्मानीय आदेश ।। १० ।। कश्श्वशुरः कःश्वशुरः कस्स्वरः, कः स्वरः। ये चारों वैकल्पिक विसर्ग के विसर्ग के उदाहरण हैं । कः श्वशुरः = कश्श्वशुरः । विसर्ग का > स् > श् विकल्प पक्ष में कः श्वशुरः । कः + स्वरः = कस्स्वरः । विसर्ग > स् । विकल्प से कः स्वरः । कः फलेत् यहाँ वैकल्पिक होने के कारण उपध्मानीय फ नहीं हुआ है । कः शयिता में वैकल्पिक विसर्ग का विसर्ग वाशरि पा० सू० ८/३/३६ से हो गया है । कोऽत्र योधः तथा क उत्तमः ये दोनों स् के रु का उदाहरण हैं । कस् + अत्रयोधः = कोऽत्रयोधः । स् का ससजुषो रुः- पा० सू० ८/२/६६ से रु, होकर हशि च पा० सू० ६/१२११४ उ होकर आद्गुणः सूत्र से गुण तथा अमिपूर्वःसूत्र से पूर्वरूप होकर कोऽत्रयोधः बना है । कस् + उत्तमः = कउत्तमः । विसर्ग > रु > य अतोरोरप्तादप्लुते ६/१/११३ से लोपः शाकल्यस्य सूत्र से य का लोप होकर क उत्तमः ।। ११।। देवा एते = देवास् + एते = देवा एते । स् > रु > य य का लोप । भोइह, स्वदेवायान्ति, भगोव्रज । ये तीनों उदाहरण य लोप विधान के हैं । भोस् + इह = भोइह, स्वदेवास+ यान्ति = स्वदेवायान्ति, भगोस् + व्रज = भगोव्रज। इन सभी स्थलों में स > रु > य (अंतोरोरप्लुतादप्लुते) हलि सर्वेषाम् से य का लोप होने पर उपर्युक्त रूप सिद्ध हुआ । सुपूर यह रकार का विसर्ग,खरबसानयोर्विसर्जनीयः सूत्र से हुआ । सुदूरात्रिरत्र = सुदूर् + रात्रिरत्र = यहाँ रो रि सूत्र से र का लोप तथा ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः सूत्र से दुके उकार का दीर्घ होकर सुदूरात्रिरत्र बना । वायुर्याति= वायु सू + याति । =

वायुर्याति पुनर्नहि॥ १२॥ पुनरेत स यातीह एष याति क ईश्वरः। ज्योतीरूपं तवच्छत्रं म्लेच्छधीश्छिद्रमच्छिदत् ॥ १३ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सन्धिसिद्धरूपकथनं नाम पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५०॥

एकपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

सुब्विभक्तिसिद्धरूपम्

स्कन्द उवाच— **विभक्तिसिद्धरूपञ्च कात्यायन वदामिते। द्वेविभक्ती सुप्तिङश्च सुपः सप्तविभक्तयः॥ १॥ सु औजसिति प्रथमा अमौट्शसो द्वितीया । टाभ्यां भिसिति तृतीया ङेभ्यांभ्यसश्चतुर्थ्यपि ॥ २ ॥ ङसिभ्यांभ्यसः पञ्चमी स्यात् ङसोसामिति षष्ठ्यपि । ङिओस्सुबिति सप्तमी स्यात् स्युः प्रातिपदिकात् पराः॥३॥ द्विविधं प्रातिपदिकं ह्यजन्तञ्च हलन्तकम्। प्रत्येकं त्रिविधं तत् स्यात् पुमांस्त्री च नपुंसकम् ॥४॥ दर्श्यन्ते नायकास्तेषामनुक्तानाञ्च**

वायुर्याति । स् > रु > र् ।। १२ ।। पुनाराति = पुनर् + राति = पुनाराति । र् का लोप रोरि से तथा पूर्व अप् का दीर्घ = पुनाराति । स यातीह = सस् + यातीह = स यातीह। सकार का एत्तत्तदोः सुलोपोऽकोरन ञ् समासे हलि से लोप होकर यह रूप बना । सैष याति । सस् + एष स् याति । स एष याति । यहाँ सस् के सकार का लोप श्लोक की पादपूर्ति के लिए हुआ है । तथा एषस् के सकार का लोप एत्तत्तदोः सुलोप० इत्यादि से हुआ है । क ईश्वरः कः ईश्वरः में विसर्ग का स का रुत्व यत्व तथा य का लोप होकर क ईश्वरः सिद्ध हुआ है । ज्योतीरूपम् । ज्योतिर्+ रूपम् । रोरि से र का लोप तथा ढ्रलोप पूर्वस्य दीर्घोऽणः से पूर्व अण् को दीर्घ होकर ज्योतीरूपम् यह रूप बना है । तवच्छत्रम् । तव + छत्रम् । यहाँ छे च पा० सू० ६/१/७३ से तुगागम अनुबन्ध लोप फिर श्चुत्व होकर तवच्छत्रम् बना है । इसी तरह म्लेच्छ धीः तथा छिद्रमच्छिदत् बना है ।। १३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का सन्धि सिद्धरूप वर्णन नामक तीन सौ पचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३५० ॥

स्कन्द जी ने कहा— कात्यायन अब मैं तुम्हें विभक्ति सिद्ध रूपों को बतलाता हूँ । ए विभक्तियाँ दो प्रकार की होती हैं सुप विभक्तियाँ तथा तिङ् विभक्तियाँ । सुप् की सात विभक्तियाँ होती हैं।।१।। सु औ जस् यह प्रथमा विभक्ति है । अम् औट् शस् यह द्वितीया विभक्ति है । टा भ्याम् भिस् यह तृतीया विभक्ति है । ङे, भ्याम् भ्यस् यह चतुर्थी विभक्ति है । २ ।। ङसि भ्याम् भ्यस् यह पञ्चमी विभक्ति है । ङस् ओस् आम् यह षष्ठी विभक्ति है । ङि ओस् सुप् यह सप्तमी विभक्ति है । ये विभक्तियाँ प्रातिपदिक संज्ञक शब्दों से परे होती हैं ।। ३ ।। प्रातिपदिक दो प्रकार के होते हैं- अजन्तप्रातिपदिक तथा हलन्तप्रातिपदिक । इन दोनों प्रकार के प्रातिपदिकों के तीन-तीन भेद होते हैं । पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग तथा नपुंसक लिङ्ग ।। ४ ।। यहाँ पर उन पुल्लिङ्ग आदि शब्दों के नायकों का दिग्दर्शन कराया जा रहा है (अकारान्त से लेकर ओकारान्त पर्यन्त जितने शब्द हैं वे सब अजन्त शब्द हैं । अजन्त शब्दों की संख्या अनन्त है । अतएव उन सबों को तो यहाँ नहीं बतलाया जा सकता है । फलतः कुछ शब्द निदर्शन के रूप में वर्णित किए गये हैं । शेष शब्दों का रूप उन्हीं प्रदर्शित शब्दों के ही समान होता हे । जिन शब्दों का सिद्धरूप यहाँ पर दिखाया जा रहा है । वे शब्द ही यहाँ पर नायक शब्द से कहे गए हैं । जिन शब्दों का वर्णन यहाँ नहीं किया जा रहा है उन्हीं के ये समर्थक शब्द हैं वृक्ष शब्द अजन्त पुल्लिङ्ग अकारान्त शब्द हैं । इसको सम्बोधन सहित सातों विभक्तियों के रूप इस प्रकार हैं । प्रथमा- वृक्षः, वृक्षौ, वृक्षाः, द्वितीया- वृक्षम्, वृक्षौ वृक्षान् तृतीया- वृक्षेण, वृक्षाभ्याम्, वृक्षैः चतुर्थी- वृक्षाय, वृक्षाभ्याम् वृक्षेभ्यः, पञ्चमी, वृक्षात्, वृक्षाभ्याम्, वृक्षेभ्यः, षष्ठी वृक्षस्य, वृक्षयोः वृक्षाणाम्, सप्तमी, वृक्षे वृक्षयो, वृक्षेषु सम्बोधन- हे वृक्ष, हे वृक्षौ हे वृक्षाः । सर्वशब्द सर्वनाम है- इसके रूप हैं- प्रथमा सर्वः सर्वौ सर्वे द्वितीया- सर्वम्, सर्वौ सर्वान् तृतीया- सर्वेण, सर्वाभ्याम्, सर्वै, चतुर्थी- सर्वस्मै सर्वाभ्याम्, सर्वेभ्यः, पञ्चमी सर्वस्मात्, सर्वाभ्याम्, सर्वेभ्यः षष्ठी- सर्वस्य सर्वयोः सर्वेशाम् सप्तमी- सर्वस्मिन् सर्वयोः सर्वेषु सम्बो०- सर्व, हे सर्वौ हे सर्वे । पूर्व शब्द भी सर्वनाम

वीर्य्यतः । वृक्षः सर्वोऽथ पूर्वश्च प्रथमश्च द्वितीयकः॥ ५॥ तृतीयः खड्गपा वह्निः सखापतिरहर्पतिः । पटुर्नीर्ग्रामणीदृन्भूः खलपूमित्रभूः स्वभूः ॥ ६॥ सुश्रीः सुधीः पिता माता ना कर्ता क्रोष्टुनप्तृकौ । सुरा रा गौस्तथा द्यौर्ग्लौः स्वरान्ताः पुंसि नायकाः ॥ ७ ॥ सुवाक् त्वक् पृषत् सम्राट् जन्मभाक्

है । उसका भी सर्व के ही समान रूप होता है । पूर्व शब्द के ही समान- पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर तथा अधर ये शब्द भी पूर्व के ही समान सर्वनाम हैं । ये व्यवस्था तथा असंज्ञा के ही अर्थ में सर्वनाम होते हैं । स्व तथा अन्तर शब्द भी अर्थ विशेष में ही सर्वनाम होते हैं । जहाँ पर ये किसी के नाम के अर्थ में आयें तो इनका रूप वृक्ष शब्दके समान होगा पूर्व आदि सर्वनाम् शब्दों के प्रथम के बहुवचन में प्रथमे- प्रथमाः तथा सप्तमी के एक वचन पूर्वे पूर्वस्मिन्- ये वैकल्पिक तथा पञ्चमी एक वचन में पूर्वात्- पूर्वस्मात् रूप भी होते हैं । प्रथम, द्वितीय ।। ५ ।। तथा तृतीय शब्द यद्यपि सर्वनाम नहीं हैं, फिर भी इसके प्रथमा ब० व० में प्रथमे-प्रथमाः, द्वितीये-द्वितीयाः तृतीये-तृतीयाः, द्वितीय, एवं तृतीय शब्दों के चतुर्थी एकवचन में द्वितीयाय-द्वितीयस्मै, तृतीयाय तृतीयस्मै, पञ्चमी ए० व० में द्वितीयात् द्वितीयस्मात्, तृतीयात् तृतीयस्मात् तथा सप्तमी एकवचन में द्वितीये-द्वितीयस्मिन् तृतीये-तृतीयस्मिन् रूप होते हैं । खङ्गं पातीति खङ्गयाः- यह खड्गपा शब्द की व्युत्पत्ति है। खड्गपा = खङ्ग रक्षक है । इसका रूप इस प्रकार है- प्रथमाः- खङ्गपाः, खङ्गपौ, खङ्गपाः द्वितीया- खङ्गपाम्, खङ्गपौ खङ्गपः । तृतीया- खङ्गपा, खड्गपाभ्याम्, खड्गपाभिः चतुर्थी- खड्गपे, खड्गपाभ्याम्, खड्गपाभ्यः, पञ्चमी खड्गपः, खड्गपाभ्याम्, खड्गपाभ्यः, षष्ठी- खड्गपः, खड्गपोः ख हनीड्गपाम्, सप्तमी- खड्गपि, खड्गपोः खड्गपासु । सम्बो०- हे खड्गपाः हे खड्गपौ हे खड्गपाः बहिन शब्द ह्रस्व इकरान्त और पुलिङ्ग है । इसके सिद्ध रूप हैं- १- वह्निः, वह्नी वह्नयः, २. वह्निम्, वह्नीन्, ३. वह्निना बह्निभ्याम्, वह्निभिः । ४. वह्नये, वह्निभ्याम्, बह्निभिः । ५. ब्रह्नेः, वहिनभ्याम्, वह्निभ्यः । ६. वह्नेः वह्नयोः बह्नीनाम्, ७. बह्नौ, बह्नोः वह्निषु सम्बो०- हे वहने, हे वहनी हे वहनायः । (वह्नि शब्द के ही समान रवि, कवि, गिरि, मुनि इत्यादि ह्रस्व इकारान्त अजन्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप भी होंगे । सखि शब्द के सिद्ध रूप इस प्रकार हैं– १- सखा सखायौ सखायः २- सेख्यम्, सखायौ, सखीन्, ३- सख्या, सखिभ्याम्, सखिभिः, ४- सख्ये, सखिभ्याम् सखिभ्यः, ५- सख्युः सखिभ्याम्, सखिभ्यः, ६- सख्युः सख्योः सखीनाम्, ७- सख्यौ, सख्योः सखिषु सम्बो० हे सखे, सख्यौ, सख्यः । पति शब्द के सिद्धरूप प्रथमा एवं द्वितीया विभक्तियों में बह्नि शब्द के समान तथा शेष विभक्तियों में सखि शब्द के समान होंगे । अहर्पति शब्द समस्त पद है । इसका अर्थ है सूर्य । इसके सिद्धरूप बह्नि शब्द के तुल्य होंगे ।। ५ ।। उकारान्त पटु शब्द का अर्थ कुशल है । इसके सिद्धरूप इस प्रकार से हैं- (१) पटुः, पटू, पटवः (२) पटुम्, पटू, पटून्, (३) पटुना, पटुभ्याम्, पटुभिः, (४) पटवे पटुभ्याम्, पटुभ्यः, (५) पटोः, पटुभ्याम्, पटुभ्यः, (६) पटोः, पट्वोः, पटूनाम्, (७) पटौ, पट्वोः, पटुषु । सम्बोध०- हे पटो, हे पटू, हे पटवः इसी तरह साधु भानु आदि शब्दों के भी रूप चलेंगे । ग्रामणी शब्द दीर्घ ईकारान्त है । ग्रामणी= गाँव का मुखिया । इसके सिद्धरूप इस प्रकार होंगे- (१) ग्रामणी, ग्रामण्यौ, ग्रामण्यः, (२) ग्रमणीम्, ग्रामण्यौ ग्रामण्यः, (३) ग्रामण्या, ग्रामणीभ्याम्, ग्रामणीभिः, (४) ग्रामण्ये ग्रामणीभ्याम्, ग्रामणीभ्यः, (५) ग्रामण्यः, ग्रामणीभ्याम्, ग्रामणीभ्यः, (६) ग्रामण्यः, ग्रामण्योः, ग्रामण्याम् (७) ग्रामण्याम्, ग्रामण्योः ग्रामणीषु । दीर्घ ऊकारान्त दृन्भू शब्द के अर्थ हैं- राजा, चक्र, सूर्य, सर्प, वज्र । इसके रूप दृन्भूः, दृन्भ्वौ, दृन्भ्वः इत्यादि चलते हैं । खलपू शब्द का अर्थ है- खलिहान अथवा भूमि को पोतने वाला । इसके भी रूप खलपूः, खल्प्वौ खलप्वः चलते हैं । मित्रभूः = मित्र से उत्पन्न। इसके रूप होते हैं। मित्रभूः, मित्रभुवौ मित्रभुवः इत्यादि । स्वभूः शब्द का अर्थ है स्वयम् होने वाला । इसके रूप होते हैं- स्वभूः, स्वभुवौ, स्वभुवः इत्यादि ।। ६ ।। सुश्रीः = सुन्दर शोभा से सम्पन्न। इसके रूप- सुश्रीः सुश्रियौ, सुश्रियः इत्यादि होते हैं । पितृ = पिता । इसके रूप चलते हैं- (१) पिता, पितरनै, पितरः, (२) पितरम्, पितरौ, पितॄन्, (३) पित्रा, पितृभ्याम्, पितृभिः (४) पित्रे, पितृभ्याम्, पितृभ्यः (५) पितुः, पितृभ्याम्, पितृभ्यः, (६) पितुः पित्रोः, पितृणाम्, (७) पितरि, पित्रोः, पितृषु । सम्बो०- हे पितः, पितरौ पितरः । भ्रातृ = भाई । भातृ शब्द के भी रूप पितृ शब्द के ही समान हैं । जामाता = दामाद (जमाई) शब्द के भी रूप इसी तरह के होंगे । नृ = मनुष्य । ना, नरौ, नरः इत्यादि- पितृशब्द के ही समान नृ शब्द के भी रूप होंगे । नृ शब्द के षष्ठी बहुवचन में दो रूप होते हैं- नृणाम्- नॄणाम् । कर्तृ = करने वाला । इसके रूप हैं- कर्ता, कर्तारौ, कर्तारः। कर्तारम्, कर्तारौ, कर्तॄन् । शेष विभक्तियों में रूप पितृ शब्द के ही समान होंगे। क्रोष्टु = शृगाल (सियार) इसका रूप पटु शब्द के समान होता है । यदि इसे क्रोष्टृशब्द मानें तो इसका रूप कर्तृ शब्द के समान होगा । नप्तृ = नाती (पुत्री का पुत्र) इसके रूप पितृ शब्द के समान होते हैं ।। ६।। सुरै शब्द का अर्थ है- सुन्दर धन वाला । इसके रूप चलते हैं- (१) सुराः सुरायौ, सुरायः, (२) सुरायम्, सुरायौ, सुरायः (३) सुराया, सुराभ्याम्, सुराभिः, (४) सुराये, सुराभ्याम्, सुराभ्यः, (५) सुरायाः, सुराभ्याम्, सुराभ्यः, (६) सुरायाः सुरायोः सुरायाम्, (७) सुरायाम्, सुरायोः, सुरासु । रै शब्द का अर्थ है धन । इसका भी रूप सुरा शब्द के ही समान होता हे । गौ = बैल तथा गाय दोनों । गौ शब्द पुल्लिंग है । इसके रूप हैं- (१) गौः गावौ, गावः, (२) गावम्, गावौ गाः, (३) गवा, गोभ्याम्, गोभिः (४) गवे गोभ्याम्, गोभ्यः, (५) गोः गोभ्याम्, गोभ्यः, (६) गोः, गवोः गवाम्,

च सुराडपि । अयम् मरुद्भवन् दीव्यन् भवांश्च मघवान् पिबन् ॥ ८ ॥ भगवानघवानर्वान् वह्निमत् सर्ववित्सुपृत् । सुसीमा कुण्डी राजा च श्वा युवा मघवा तथा ॥ ९ ॥ पूषा सुकर्मायज्वा च सुवर्मा च सुधर्मणा । अर्य्यमा वृत्रहा पन्थाः सुककुबाष्टपञ्च च ॥ १० ॥ प्रशान् सुत्वा च प्राञ्चाद्या सुद्यौः सुभ्राट् सुपूरपि। चन्द्रमाः सुवचाः श्रेयान् विद्वांश्चोशनसा सह॥११॥ पेचिवान् गौरवानड्वान् गोधूङ्मित्रद्रुहौ श्वलिट् । स्त्रियां जाया जरा बाला एड़का

(७) गवि गवोः गोषु । औकारान्त- द्या शब्द का अर्थ आकाश है । इसके रूप हैं- (१) द्यौः द्यावौ द्यावः, (२) द्यावम्, द्यावौ, द्यावः, (३) द्यावा, द्युभ्याम्, द्युभिः, (४) द्युः द्युभ्याम्, द्युभ्यः, (५) द्युः, द्युभ्याम्, द्युभ्यः, (६) द्युः द्यवोः द्यूनाम् (७) द्यवि, द्यवोः, द्युषु । लौ = चन्द्रमा । इसका भी रूप द्यौ शब्द के समान होता है । ये समस्त अजन्तपुल्लिङ्ग के नायक शब्द हैं ।। ७ ।। इसके पश्चात् हलन्त पुल्लिङ्ग शब्दों का परिचय कराया जा रहा है । सुवाक् = सुन्दवक्ता । इसके रूप हैं- (१) सुवाच्, सुवाचौ, सुवाचः, (२) सुवाचम्, सुवाचौ, सुवाचः, (३) सुवाचा, सुवाग्भ्याम्, सुवाग्भिः, (४) सुवाचे, सुवाग्भ्याम्, सुवाग्भ्यः, (५) सुवाचः, सुवाग्भ्याम्, सुवाग्भ्यः, (६) सुवाचः, सुवाचोः, सुवाच्राम्, (७) सुवाचि, सुवाचोः, सुवाक्षु । सुत्वक् = सुन्दर त्वचा वाला । पृषत् = जलविन्दु। इसके रूप होते हैं । पृषत् पृषतो पृषतः इत्यादि । सम्राट् = चक्रवर्ती राजा । इसके रूप हैं- सम्राट् = सम्राट्, सम्राजौ, सम्राजः, (२) सम्राजम्, सम्राजौ, सम्राजः, (३) सम्राजा, सम्राड्भ्याम्, सम्राड्भिः इत्यादि । जन्मभाक् = जन्म लेने वाला । सुराट् = श्रेष्ठ राजा । अयम् = यह, मरुत् = वायु, भवन् = होता हुआ, दीव्यन् = क्रीडा करता हुआ अथवा प्रसन्न होता हुआ । भवान् = आप, मघवान् = इन्द्र, पिबन् = पीता हुआ । इसके रूप होते हैं- (१) पिबन्, पिबन्तौ, पिबन्तः, (२) पिबन्तम्, पिबन्तौ, पिबतः (३) पिबता, पिबद्भ्याम् पिबद्भिः, (४) पिबते पिबद्भयाम् पिबद्भ्यः, (५) पिबतः पिबद्भ्याम्, पिब्द्भ्यः, (६) पिबतः पिबतोः पिबताम्, (७) पिबति, पिबतोः पिबत्सु ।। ८ ।। भगवान् = समस्त ऐश्वर्यों से सम्पन्न । अधवान् = पापयुक्त । अर्वा = अश्व, बह्निमान् = अग्नियुक्त, सर्ववित् = सर्वज्ञ । सर्ववित् शब्द के रूप होते हैं- (१) सर्ववित् सर्वविद् सर्वविदौ, सर्वविदः, (२) सर्वविदम्, सर्वविदौ, सर्वविदः, (३) सर्वविदा सर्वविद्भ्याम्, सर्वविद्भ्यः, (४) सर्वविदे सर्वविद्भ्याम् सर्वविद्भ्यः, (५) सर्वविदः सर्वविद्भ्याम् सर्वविद्भ्यः, (६) सर्वविदः सर्वविदोः सर्वविदाम्, (७) सर्वविदि, सर्वविदोः, सर्ववित्सु । सुपृत् = अच्छी तरह से पालन करने वाला, राजा = नरेश, राजा शब्द के सिद्ध रूप हैं- (१) राजा, राजानौ, राजानः, (२) राजानम् राजानौ, राज्ञः, (३) राज्ञा राजभ्याम् राजभिः, (४) राज्ञे, राजभ्याम्, राजभ्यः, (५) राज्ञः, राजभ्याम्, राजभ्यः, (६) राज्ञः, राज्ञोः, राज्ञाम्, (७) राजनि- राज्ञि, राज्ञोः राजसु श्वा= कुत्ता । श्वा शब्द के रूप हैं- (१) श्वा, श्वानौ, श्वानः, (२) श्वानम्, श्वानौ शुनः, (३) शुना श्वभ्याम्, श्वभिः, (४) शुने श्वभ्याम् श्वभ्यः, (५) शुनः श्वभ्याम् श्वभ्यः (६) शुनः शुनोः शूनाम्, (७) श्वनि शुनोः श्वसु । युवा = तरुण । इसके रूप चलते हैं- (१) युवा, युवानौ युवानः, (२) युवानम्, युवानौ, यूनः (३) यूना युवभ्याम् युवभिः इत्यादि। मधवा = इन्द्र । इसके सिद्ध रूप हैं- (१) मघवा, मघवन्तौ, मघवन्तः, (२) मधवन्तम्, मघवन्तौ, मघवतः, (३) मधवता मधवद्भ्याम्, मधवाद्भ्यः, (४) मधवते इत्यादि । पूषा = सूर्य । इसके सिद्धरूप हैं- (१) पूषा, पूषणौ, पूषणः (२) पूषणम्, पूषणौ, पूष्ण, (३) पूष्णा, पूषभ्याम्, पूषभिः सप्तमी केएकवचन में- पूषणि तथा पूष्णि ये दो रूप होते हैं । सुकर्मा = सुन्दर कर्म करने वाला । यज्वा = यज्ञ करने वाला । इसके रूप होते हैं- (१) यज्वा, यज्वानौ, यज्वानः, (२) यज्वानम्, यज्वानौ, यज्वनः, (३) यज्वना यजज्वभ्याम्, यज्वभि इत्यादि। सुवर्मा = उत्तम कवच धारण करने वाला । सुधर्मा = उत्तम धर्म वाला । अर्यमा = सूर्य, वृत्रहा = इन्द्र । इसके रूप हैं- (१) वृत्रहा, वृत्रहणौ, वृत्रहणः, (२) वृत्रहणम्, वृत्रहणौ, वृत्रघ्नः, (३) वृत्रघ्ना, वृत्रहभ्याम्, वृत्रहभिः, (४) वृत्रघ्ने वृत्रहभ्याम्, वृत्रहभ्यः, (५) वृत्रघ्नः, वृत्रहभ्याम् वृत्रहभ्यः, (६) वृत्रघ्नः वृत्रघ्नोः वृत्रघ्नाम्, (७) वृत्रघ्नि, वृत्रघ्नोः, वृत्रहसु । सुककुप् = स्वच्छ दिशाओं वाला । इसके रूप होते हैं- सुककप्, सुककुप्, सुककुभौ, सुककुभः इत्यादि । अष्ट- आठ, इसके रूप हैं- (१) अष्ट- अष्टौ, अष्ट अष्टौ, अष्टाभिः अष्टभिः इत्यादि । पञ्च = पाँच- इसके रूप हैं- पञ्च, पञ्च, पञ्चभिः इत्यादि । अष्ट एवं पञ्च शब्द नित्य बहुवचनान्त शब्द हैं ।। १० ।। प्रशान् = पूर्ण शान्त । रूप हैं- प्रशान्, प्रशामौ, प्रशामः, प्रशामम्, प्रशानौ, प्रशमः, इत्यादि । सुत्वा । सुत्वा सुत्वानौ, सुत्वानः । प्राङ् = पहले चलने वाला । प्राञ्चौ प्राञ्चः । प्रत्यङ् = आत्मा । प्रत्यक् प्रत्यञ्चौ, प्रत्यञ्चः इत्यादि । स्यौः, स्वच्छ आकाश वाला समय । सुभ्राट् + विशेष शोभा युक्त । सुभ्राट् सुभ्राज्,सुभ्राजौ, सुभ्राजः इत्यादि। सुपूः = सुन्दर नगरों वाला । सुपूः, सुपुरौ सुपुरः इत्यादि । चन्द्रमा = चन्द्रमाः, चन्द्रमसौ, चन्द्रमसः इत्यादि । सुवचाः = सुन्दर बोलने वाला । सुवचाः सुवचसौ, सुवचसः । श्रेयान् = श्रेष्ठ = श्रेयान् श्रेयांसौ श्रेयांसः इत्यादि । विद्वान् = विज्ञ । विद्वान्, विद्वांसौ, विद्वांसः । विद्वांसम्, विद्वांसौ, विदुषः । विदुषा इत्यादि । उशना = शुक्राचार्य- उशना, उशनसौ, उशनसः इत्यादि ।। ११ ।।

सह वृद्धया ॥ १२ ॥ क्षत्रिया बहुराजा च बहुदा माऽथ बालिका। माया कौमुदगन्धा च सर्वा पूर्वा सहान्यया ॥ १३ ॥ द्वितीया च तृतीया च बुद्धिः स्त्री श्रीर्नदी सुधीः । भवन्ती चैव दीव्यन्ती भाती भान्ती च यान्त्यपि॥१४॥ शृण्वती तुदती कर्त्री तुदन्ती कुर्वती मही । रुधन्ती क्रीडती दान्ती पालयन्ती सुवाण्यपि ॥ १५ ॥ गौरी पुत्रवती नीश्च बधुर्देवतया भुवा। तिस्रो द्वे कति वर्षाभूः स्वसा माताऽपराच गौः॥ १६॥ नौर्वाक्त्वक्प्राच्यवाचीति

पेचिवान् = जिसने पूर्वकाल में पाचन किया हो । पेचिवान् पेचिवांसौ, पेचिवांसः इत्यादि । अनड्वान् ; साँड़ । अनड्वान् अनड्वाहौ, अनड्वाहः, अनड्वाहम् अनड्वाहौ, अनडुहः । अनडुहा, अनुडुद्भ्याम्, अनुडुद्भिः इत्यादि । गोधुक् = गो दूहने वाला = गोधुक्, गोधुग् गोदुहौ, गोदुहः इत्यादि । मित्रध्रुक् = मित्र से द्रोह करने वाला । मित्रध्रुक् मित्रध्रुग्, मित्रध्रुट् मित्रध्रुड् । मित्रद्रुहौ, मित्रद्रुहः । मित्रद्रुग्भ्याम्, मित्रध्रुड्भ्याम् इत्यादि । मुक् = अज्ञानी । मुक्, मुग्, मुहौ, मुहः इत्यादि । लिट् = चाटने वाला । लिट् लिड्, लिहौ लिहः । इत्यादि ।। ११ ।। अब स्त्रीलिङ्ग के नायक शब्दों का निरूपण किया जा रहा हे । जाया = स्त्री इसके रूप हैं- (१) जाया, जाये, जायाः, (२) जायाम्, जाये जायाः, (३) जायया, जायाभ्याम्, जायाभिः, (४) जायायै, जायाभ्याम् जायाभ्यः (५) जायायाः, जायाभ्याम्, जायाभ्यः, (६) जायायाः जाययोः जायानाम्, (७) जायायाम्, जाययोः, जायासु । सम्बो०- हे जाये, हे जाये हे जायाः। जरा = बुढ़ापा । जरा शब्द का रूप इस तरह होता है- (१) जरा जरसौ, जरे, जराः जरसः, (२) जरसम्, जराम्, जरे जरसौ, जराः जरसः, (३) जरया, जरसा, जराभ्याम्, जराभिः, (४) जरायै, जरसे, जराभ्याम्, जराभ्यः, (५) जरायाः, जरसः, जराभ्याम् जराभ्यः (६) जरायाः, जरसः, जरयोः जरसोः, जराणाम् जरसाम् जरायाम्, जरयोः, जरसोः जरासु । हे जरे इत्यादि। वाला = नवीन अवस्था वाली स्त्री, एडका (भेंड) वृद्धा (बूढ़ी स्त्री) इन सबों के रूप जाया के समान होते हैं ।। १२ ।। क्षत्रिया, क्षत्रिय जाति की स्त्री, बहुराजा = बहुत से राजा हों ऐसी नगरी, बहुदा= बहुत अधिक देने वाली । मा = लक्ष्मी, बहुदामा = बहुत दाम अथवा सरसीया कान्ति वाली, बालिका = लड़की इन सभी शब्दों के रूप जाया के समान होंगे । माया = भगवान् की माया । कौमुदगन्धा= कुमुद के समान गन्ध वाली रमणी । इन सबों के रूप जाया के समान होंगे। सर्वा = सभी । इसके रूप हैं- (१) सर्वा, सर्वे, सर्वाः, (२) सर्वाम् सर्वे सर्वाः, (३) सर्वया, सर्वाभ्याम्, सर्वाभिः, (४) सर्वस्यै, सर्वाभ्याम्, सर्वाभ्यः (५) सर्वस्याः सर्वाभ्याम् सर्वाभ्यः (६) सर्वस्याः सर्वयोः सर्वासाम्, (७) सर्वस्याम् सर्वयोः सर्वासु । हे सर्वे । पूर्वा = पहली तथा अन्या = दूसरी शब्द के रूप सर्वा के समान होंगे ।। १३ ।। द्वितीया दूसरी, तृतीया = तीसरी । शब्द के भी रूप सर्वा शब्द के ही समान होंगे । बुद्धि = मति, बुद्धि शब्द के रूप इस तरह से हैं- (१) बुद्धिः, बुद्धी, बुद्धयः, (२) बुद्धिम् बुद्धी बुद्धीः, (३) बुद्ध्या, बुद्धियाम् बुद्धिभिः, (४) बुद्धये, बुद्धियाम्, बुद्धिभ्यः, (५) बुद्ध्याः, बुद्धियाम् बुद्धिभ्यः (६) बुद्ध्याः बुद्ध्योः बुद्धीनाम् (७) बुद्धौ बुद्ध्योः बुद्धिषु । हे बुद्धे। मति शब्द के भी रूप बुद्धि शब्द के ही समान होंगे । स्त्री = औरत । इसके रूप इस प्रकार से होंगे- (१) स्त्री स्त्रियौ, स्त्रियः, (२) स्त्रियम् स्त्रीम् स्त्रियौ, स्त्रीः (३) स्त्रिया, स्त्रीभ्याम्, स्त्रीभिः, (४) स्त्रियै स्त्रीभ्याम् स्त्रीभ्यः, (५) स्त्रियाः स्त्रीभ्याम् स्त्रीभ्यः (६) स्त्रियाः स्त्रियोः स्त्रीणाम्, (७) स्त्रियाम् स्त्रियोः स्त्रीषु । श्रीः = लक्ष्मी + श्रीः श्रियौ, श्रियः इत्यादि । नदी = नदी (१) नदी नद्यौ नद्यः, (२) नदीम् नद्यौ नदीः (३) नद्या नदीभ्याम् नदीभिः (४) नद्यै नदीभ्याम् नदीभ्यः (५) नद्याः नदीभ्याम् नदीभ्यः (६) नद्याः नद्योः नदीनाम्, (७) नद्याम् नद्योः नदीषु । सुधी = अच्छी बुद्धिवाली, भवन्ती = होती हुई, दीव्यन्ती = क्रीडा करती हुई । भाती तथा भान्ती = शोभमाना । यान्ती = जाती हुई । इन सबों के रूप नदी के समान होंगे ।। १४ ।। शृण्वती = सुनती हुई, तुदती = दुःख देती हुई कर्त्री = करने वाली, कुर्वती = करती हुई, मही = पृथिवी, रुन्धती = रोकती हुई, क्रीडन्ती खेलती हुई, दान्ती = दाँत की बनी हुई वस्तु । पालयन्ती = पालन करती हुई, सुवाणी = सुन्दर वाणी। इन सबों के रूप नदी के समान होंगे ।। १५ ।। गौरी = पार्वती, पुत्रवती= पुत्र वाली नी = ले जाने वाली । इनके भी रूप नदी के समान होंगे । वधूः = स्त्री । इसके रूप होंगे- वधूः बध्वौ बध्वः इत्यादि । देवता = देवी । देवता शब्द के रूप जाया के समान होंगे । भू = पृथिवी । = भु भुवौ, भुवः इत्यादि इसके रूप होंगे । तिस्रः = तीन । इसके रूप होंगे- तिसः, तिस्रः, तिसृभिः, तिसृभ्यः, तिसृभ्यः, तिसृणाम् तिसृषु । द्वे = दो इसके रूप हैं- द्वे द्वे द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम् द्वाभ्याम् द्वयोः, द्वसयोः । कति = कितने । कति शब्द बहुवचनान्त ही होता है । इसके रूप हैं- कति, कति, कतिभिः, कतिभ्यः, कतिभ्यः, कतीनाम्, कतिषु । वर्षा भूः = वर्षाकाल में उत्पन्न होने वाली मेढकी । वसा = बहन । इसके रूप हैं- स्वसा, स्वासारौ स्वसारः इत्यादि । माता = माँ । इसके रूप होंगे- माता, मातरौ, मातरः इत्यादि अपरा = दूसरी । गौः = गाय । गौ शब्द

तिरश्ची समुदीच्यपि । शरद्विद्युत् सरिद्योषित् अग्निवित् सम्पदा दृशत्॥१७॥ यैषा सा वेदवित्संवित् वह्वीः राज्ञी त्वया मया । सीमा पञ्चादयो राका धूः पूश्चैव दिशा गिरा ॥ १८ ॥ चतस्रो विदुषी चैव केयं दिक् दृक् च तादृशी । असौ स्त्रियां नायिकाश्च नायकाश्च नपुंसके ॥ १९ ॥ कुण्डं सर्वसोमपश्च दधिवारि खलप्वथ । मधु त्रपु कर्त्तृ भतृ अतिभर्तृ पयः पुरः॥ २०॥ प्राक् प्रत्यक् च तिर्य्यगुदक् जगद् जाग्रत् तथा सकृत् । सुसम्पच्च

का रूप पुल्लिंग गौ शब्द के ही समान होगा ।। १६ ।। नौ = नौका । वाक् = वाणीं इसके रूप- वाक् वाग् वाचौ वाचः इत्यादि होंगे । त्वक् = त्वचा । प्राची = पूर्व दिशा, अवाची = दक्षिण, दिशा, तिरश्ची = पश्चिम दिशा, उदीची = उत्तर दिशा । इन सबों के रूप नदी के समान होंगे । शरत् = शरद् ऋतु। इसके रूप होंगे शरत् - शरदौ, शरदः इत्यादि । विद्युत् = बिजली । इसके रूप हैं- विद्युत्, विद्युतौ, विद्युतः इत्यादि । सरित् = नदी, योषित् = स्त्री । योषित् योषितौ योषितः । अग्निवित् = अग्नि को जानने वाली । अग्निवित् अग्निविद् अग्निविदौ, अग्निविदः । सम्पत्= सम्पत्ति, सम्पत् सम्पद्, सम्पदौ, सम्पदः । दृशत् = शिला = दृशत् दृशद्, दृशदौ, दृशदः । इत्यादि ।। १७।। या = जो = या, ये, याः इत्यादि । एषा = यह । एषा, एते, एताः एताम् एते, एताः इत्यादि इसके रूप हैं । वेदवित् = वेदज्ञा । वेदवित्, वेदविद्, वेदविदौ वेदविदः इत्यादि । संवित् = बुद्धि संवित्, संविद्, संविदौ, संविदः इत्यादि । बह्वी = बहुत । इसके रूप नदी के समान राज्ञी = रानी । त्वया, मया = युष्मत् अस्मत् शब्द । इन दोनों शब्दों के रूप तीनों लिंगों में एक समान होते हैं । युष्मत् शब्द का रूप है- (१) त्वम्, युवाम्, यूयम्, (२) त्वाम्, युवाम्, युष्मान् (३) त्वया, युवाभ्याम्, युष्माभिः, (४) तुभ्यम्, युवाभ्याम्, युष्मभ्यम्, (५) त्वत्, युवाभ्याम्, युष्मत्, (६) तव, युवयोः युष्माकम्, (७) त्वयि, युवयोः युष्मासु । अस्मद् शब्द के रूप इस प्रकार हैं- (१) अहम्, आवाम्, वयम्, (२) माम्, आवाम्, अस्मान्, (३) मया अवाभ्याम्, अस्माभिः (४) मह्यम्, अवाभ्याम्, अस्मभ्यम्, (५) मत् अवाभ्याम्, अस्मत् (६) मम् आवयोः अस्माकम्, (७) मयि, आवयोः अस्मासु । सीमा = अवधि । इसके रूप हैं- (१) सीमा, सीमानौ सीमानः, (२) सीमानम्, सीमानौ, सीम्नः इत्यादि । पञ्च आदि नान्त शब्द । पञ्च, पञ्च पञ्चभिः इत्यादि । राका= रात्रि । इसके रूप जाया शब्द के समान होंगे । धूः बोझ । धूः धुरौ, धुरः । इत्यादि । दिक्, दिशौ, दिशः, दिशम्, दिशौ दिशः । दिशा, दिग्भ्याम्, इत्यादि । गिर् = वाणी । गीः, गिरौ, गिरः इत्यादि ।। १८ ।। चतस्रः = चार । विदुषी = पण्डिता । का = कौन । का, के, काः इत्यादि। दिक् = दिशा, दृक् = नेत्र, दृक्-दृग्, दृशौः दृश इत्यादि । तादृक् = वैसी, तथा असौ = वह। ये स्त्रीलिङ्ग के नायक शब्द हैं । अब नपुंसकलिङ्ग के नायक शब्दों को बतलाया जा रहा है ।।१९।। कुण्डम् = कुण्ड । रूप- कुण्डम्, कुण्डे, कुण्डानि । कुण्डम्, कुण्डे, कुण्डानि शेष विभक्तियों में वृक्ष के समान रूप होंगे । सर्वम् = सब सोमपम्, = सोमपायी । दधि = दही (१) दधि, दधिनी, दधीनि (२) दधि, दधिनी, दधीनि, (३) दध्ना, दधिभ्याम्, दधिभिः, (४) दध्ने, दधिभ्याम्, दधिभ्यः, (५) दध्नः दधिभ्याम्, दधिभ्यः, (६) दधाः, दध्नोः, दध्नाम्, (७) दध्नि, दधिनि, दध्नोः दधिषु । वारि = जल । इसके रूप इस प्रकार हैं- (२) वारि, वारिणी, वारीणि (३) वारिणा, वारिभ्याम्, वारिभिः (४) वारिणे, वारिभ्याम्, वारिभ्यः, (५) वारिणः, वारिभ्याम्, वारिभ्यः, (६) वारिणः वारिणोः, वारीणाम्, (७) वारिणि, वारिणोः, वारिषु । खलपु = खलिहान को साफ करने वाला । (१-२) खलपु, खलपुनी, खलपूनि, (३) खलप्वा, खलपूभ्याम्, खलपूभिः, (४) खलप्वे, खलपूभ्याम्, खलपूभ्यः, (५) खलप्वाः इत्यादि । मधु- मदिरा, या श्राहद । (१-२) मधु, मधुनी, मधूनि, (३) मधुना, मधुभ्याम्, मधुभिः, (४) मधुने मधुभ्याम्, मधुभ्यः, (५) मधुनः, मधुभ्याम्, मधुभ्यः, (६) मधुनः मधुनोःमधूनाम्,, (७) मधुनि, मधुनोः मधुषु । हे मधो- मधु । हे मधुनी, हे मधूनि । त्रपु = रंगा । (१-२) त्रपु, त्रपुणी, त्रपूणि, शेषविभक्ति में मधु के समान रूप होंगे । कर्तृ = करने वाला । भर्तृ = भरण-पोषण करने वाला, अतिभर्तृ = भर्त्ता का भी अतिक्रमण करने वाला । इन सबों के प्रथमा एवं द्वितीया में रूप इस प्रकार हैं- कर्तृ, कर्तृणी, कर्तॄणि, भर्तृ, भृर्तृणी, भर्तॄणी इत्यादि । शेष पुल्लिंग के समान । पयस् = दुग्ध । पयः, पयसी, पयांसि । पुरस् शब्द अव्यय है । पुरस् = पहले । अव्यय शब्दों के सभी लिङ्गों तथा सभी विभक्तियों में एक ही समान रूप होते हैं ।। २० ।। प्राक् = पूर्व, प्रत्यक् = पश्चिम, तिर्यक् = तिरछा चलने वाले पशु पक्षी। इन सबों के रूप इस प्रकार हैं प्रथमा एवं द्वितीया (१-२) प्राक्, प्राची, प्राञ्चि, (१-२) प्रत्यक् प्रत्यञ्ची, प्रत्यञ्चि । (१-२) तिर्यक् तिर्यञ्ची, तिर्यञ्चि । उदक् = उदक् उदञ्ची उदञ्चि । जगत् = संसार (१-२) जगत्, जगती, जगन्ति इत्यादि । जाग्रत् = सजग रहने वाला । जाग्रत, जाग्रती जाग्रन्ति। इत्यादि । शकृत् = विष्ठा य मल । शकृत्, शकृती, शकृन्ति । शक्ना, शकृता तृतीया आदि में रूप पुल्लिंग के समान जानना चाहिए । सुसम्पत् = अच्छी सम्पत्ति वाला कुल । इसके प्रथमा एवं द्वितीया विभक्तियों में रूप इस तरह से होंगे । (१-२) सुसम्पत् - सुसम्पद्, सुसम्पदी, सुसम्पन्ति । सुदण्डि=

सुदण्डीह अहः किञ्चेदमित्यपि ॥ २१ ॥ षट् सर्पिः श्रेयश्चत्वारि अदोऽन्ये हीदृशाः परे । एतेभ्यः प्रथमादयश्च स्युः प्रातिपदिकात्परः । प्रातिपदिकात् स्त्रीलिङ्गार्थवचने प्रथमा भवेत् ॥ २३ ॥ सम्बोधने च प्रथमा उक्ते कर्मणि कर्त्तरि । कर्म यत् क्रियते तत् स्यात् द्वितीया कर्मणि स्मृता ॥ २४ ॥ क्रियते येन करणं कर्त्ता यश्च करोति सः । अनुक्ते तिङ्कृत्तद्धितैस्तृतीया करणे भवेत्॥ २५॥ कारके कर्त्तरि च सा सम्प्रदाने चतुर्थ्यपि । यस्मै दित्सा धारयते सम्प्रदानं तदीरितम्॥ २६॥ अपादानं यतोऽपैति आदत्ते च भयं यतः । अपादाने पञ्चमी स्यात् स्वस्वाम्यादौ च षष्ठ्यपि ॥ २७ ॥ आधारो योऽधिकरणं विभक्तिस्तत्र सप्तमी । एकार्थे चैकवचनं द्व्यर्थे द्विवचनं भवेत्॥ २८॥ बहुषु बहुवचनं सिद्धरूपाण्यथो वदे । वृक्षः सूर्य्योऽम्बु वाहोऽर्क हे रवे ! हे द्विजातयः॥ २९॥ विप्रौ गजान् महेन्द्रेण यमाभ्यामनलैः कृतम् । रामाय मुनिवर्य्याभ्यां केभ्यो धर्मात् हरौ रतिः ॥ ३० ॥ शराभ्यां पुस्तेकभ्यश्च अर्थस्येश्वरयोर्गतिः । बालानां सज्जने प्रीतिर्हंसयोः कमलेषु च॥ ३१ ॥ एवं काममहेशाद्याः शब्दा ज्ञेयाश्च वृक्षवत् । सर्वे विश्वे च सर्वस्मै

सुन्दर दण्डियों से युक्त गृह । इसके रूप हैं- (१-२) सुदण्डि, सुदण्डिनी, सुदण्डीनि। शेष रूप पुल्लिङ्ग के समान होंगे । इह = यहाँ । यह अव्यय शब्द हैं । अहन् = दिन । इसके प्रथमा द्वितीया में रूप होंगे- अहः, अहनी, अह्नी, अहानि । किम् = यह- प्रश्नवाचक सर्वनाम है। इसके रूप हैं- किम्, के, कानि । इदम्, = यह । इसके नपुंसक में रूप हैं- इदम्, इमे,, इमानि ।। २१ ।। षट् = छह संख्या का वाचक शब्द है । इसके रूप हैं- षट्, षट्, षड्भिः, षड्भ्य, षड्भ्यः षण्णाम्, षट्सु । सर्पिस्, घी । इसके रूप हैं- (१-२) सर्पिः, सर्पिषी, सर्पींषि । सर्पिषा, सर्पिभ्याम्, सर्पिर्भिः इत्यादि । श्रेयः = कल्याण । इसके रूप हैं- (१-२) श्रेयः श्रेयसी, श्रेयांसि, (३) श्रेयसा, श्रेयोभ्याम्, श्रेयोभिः, (४) श्रेयसे इत्यादि । चतुर् = चार संख्या का वाचक है । इसके नपुंसक में रूप होंगे- चत्वारि, चत्वारि, चतुर्भिः, चतुर्भ्यः, चतुर्भ्यः, चतुर्णाम्, चतुर्षु । अदः = यह, वह । इसके नपुंसक में रूप होंगे । (१-२) अदः अमू, अमूनि । शेष विभक्तियों में पुल्लिंग के समान रूप होंगे । इन सबों के ही समान अन्य शब्दों का भी रूप होता है ।। २१ ।। इन समस्त शब्दों की पहले प्रातिपदिक संज्ञा होंती है इसके बाद में प्रथमा आदि विभक्तियाँ होती हैं ।। २२ ।। धातु तथा प्रत्यय तथा प्रत्ययान्त शब्दों की ही प्रातिपदिक संज्ञाहोती है । प्रातिपदिक से प्रातिपदिकार्थ, लिङ्गामात्राधिक्य तथा वचन मात्र का बोध कराने के लिए प्रथमा विभक्ति होती है ।। २३ ।। सम्बोधन के अर्थ में, उक्त कर्म में तथा कर्त्ता के भी अर्थ में प्रथमा विभक्ति होती है । जो किया जाता है, उसकी कर्म संज्ञा होती है । कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है ।। २४ ।। जिसके द्वारा क्रिया की सिद्धि होती है उसे करण कहते हैं तथा जो क्रिया को करने वाला होता है उसे कर्ता कहते हैं । तिङ्, कृत्, तद्धित तथा समास से अनुक्त कर्ता में तथा करण में तृतीया विभक्ति होती है ।। २५ ।। किसी भी कारक के रहते हुए कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है । सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है । जिसको कुछ देने की इच्छा होती है, उसे समप्रदान कहते हैं ।। २६ ।। जिससे किसी का विलगाव होता हो, जिससे कुछ लेता या ग्रहण करता हो, जिससे भय की प्राप्ति हो, उसकी अपादान संज्ञा होती है ।। अपादान में पञ्चमी विभक्ति होती है । जिसमें स्व स्वामी आदि सम्बन्ध की प्रतीति होती है, उससे षष्ठी विभक्ति होती है ।। २७ ।। जो आधार होता है उसकी अधिकरण संज्ञा होती है और उसमें सप्तमी विभक्ति होती है । एक के अर्थ में एकवचन तथा दो के अर्थ में द्विवचन होता है ।। २८ ।। बहुत्व की विवक्षा होने पर बहुवचन होता है । अब मैं सिद्ध रूपों को बतलाता हूँ। वृक्षः (ए० व० प्रथमा) अम्बुवाहः = मेघ (प्रथमा ए० व०) अर्क : = सूर्य (प्रथमा ए० व०) हेरवे = सूर्य (सम्बो० ए० व०) हे द्विजातयः = हे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों (प्र० ब० व०) ।। २९।। विप्रौ (विप्र + प्र+ द्वि० व०) गजान् हाथियों को (गज० द्वि+ब०व०) महेन्द्रेण = इन्द्र के द्वारा (महेन्द्र + तृ + ए० व०) मम् = मेरा (अस्मद् + षष्ठी + ए० व०) आभ्याम् = इन दोनों के द्वारा (इदम् + तृ + द्वि० व०) अनिलैः हवाओं द्वारा (अनिल + तृ० ब०व०) कृतम् = किया गया (कृत + प्र० + ए० व०) रामाय (राम के लिए (राम + चतु० ए० व०) मुनिवर्याभ्याम् = दो श्रेष्ठ मुनियों द्वारा (मुनिवर्य + तृ० + द्वि० व०) केभ्यः = किनके लिए (किम् + चतु० + ब० व०) धर्मात् = धर्म से (धर्म + पञ्च+ ए० व०) हरौ = श्रीहरि में (हरि + सप्तमी ए० व०) रतिः = प्रीति (रति + प्रथमा + ए० व०)।। ३० ।। शराभ्याम् = दो बाणों द्वारा (शर + तृ० + द्वि० व०) पुस्तकेभ्यः = पुस्तकों के लिए । (पुस्तक + च० + ब० व०) अर्थस्य = धन का (अर्थ + षष्ठी + ए० व०) ईश्वरयोः = दो स्वामियों का (ईश्वर + षष्ठी + द्वि० व०) गति : = प्राप्ति (गति + प्र० ए० व०)

सर्वस्मात् कतरो मतः ॥ ३२ ॥ सर्वेषां स्वञ्च विश्वस्मिन् शेषरूपञ्च वृक्षवत् । एवञ्चोभयकतरकतमान्यतरादयः॥३३॥ एवं चरमायतया अल्पार्द्धा नेमआदयः ! । द्वितीयस्मै द्वितीयाय द्वितीयस्मात् द्वितीयकात् ॥ ३६ ॥ द्वितीयस्मिन् द्वितीये च तृतीयश्च तथाऽर्कवत् । सोमपाः सोमपौ ज्ञेयौ सोमपाः सोमपां व्रज ॥ ३७ ॥ कीलालपौ सोमपश्च सोमपा सोमपे दद । सोमपाभ्यां सोमपाभ्यः सोमपः सोमपोः कुलम् ॥३८॥ एवं कीलालपाद्याः स्युः कविरग्निस्तथाऽरयः। हे कवे ! कविमग्नी तान् हरीन् सात्यकिना हृतम् ॥ ३९ ॥ रविभ्यां रविभिर्देहि वह्नये यः समागतः। अग्नेरग्न्योस्तथाग्नीनां कवौ कव्योः कविष्वऽथ ॥ ४० ॥ एवं सुसृतिरभ्रान्तिः सुकीर्त्तिः सुधृतिस्तथा । सखा सखायौ सखायः हे सखे व्रजसत्पतिम् ॥ ४१ ॥ सखायञ्च सखायौ च सखीन् सख्या गतो दद । सख्ये सख्युश्च सख्युश्च सख्योः शेषः कवेरिव ॥ ४२ ॥ पत्या पत्ये च पत्युश्च पत्युः पत्योस्तथाऽग्निवत्। द्वौ द्वौ द्वाभ्यां द्वाभ्यां द्वित्वाद्यार्थे द्वयोर्द्वयोः॥४३॥ त्रयस्त्रींश्च त्रिभिस्त्रिभ्यस्त्रयाणाञ्च त्रिषु क्रमात् । कविवत् कतिकतीति शेषं बहुवचनं स्मृतम्॥४४॥

बालानाम् = बालकों का (बाल + षष्ठी + ब० व०) सज्जने = सत्पुरुष में (सज्जन + स० + ए० व०) हंसयोः = दो हंसों की (हंस + ष० + द्विव०) कमलेषु = कमलों में () कमल + सप्तमी ब०व०() बालकों की सज्जनों में प्रीति नहीं है तथा हंस की जोड़ी की कमलों में प्रीति होती है ।। ३१ ।। इसी तरह काम एवं महेश आदि शब्दों को वृक्ष के समान जानना चाहिए । सर्वे = सब (सर्व : प्रथम ब० व०) विश्वे = सब (विश्व + प्र० + ब० व०) सर्वस्मै सबों के लिए, (सर्व+ प० + ए० व०) सर्वस्मात् = सबसे (सर्व + प० ए० व०) कतरो मतः = दोनों में से कौन सा अभिमत है । कतर, तथा मत + प्र० + ए० व०) ।। ३२ ।। सर्वेषाम् (सर्व + ष० + ब० व०) स्वम् = अपने को । (स्व + द्वि० ए० व०) विश्वस्मिन् (विश्व + सप्तमी ए० व०) इसके शेष रूप वृक्ष के समान होंगे । इसी तरह के उभय = दोनों, कतर = दोनों में कौन, कतम् = बहुतों में कौन तथा अन्यतर = दो में से कोई एक आदि शब्दों के भी रूप होंगे ।। ३३ ।। पूर्व शब्द के बहुवचन में सर्वनाम में पूवे तथा सर्वनामा भाव में पूर्वाः रूप होते हैं । चतुर्थी एकवचन में पूर्वस्मै, पञ्चमी एकवचन में पूर्वस्मात् रूप होंगे । सुसमागतः = अच्छी तरह से आया हुआ । पूर्वे बुद्धिश्च पूर्वस्मिन् = पूर्व में बुद्धि सर्वनाम में पूर्वस्मिन् रूप होगा तथा सर्वनामाभाव पक्ष में पूर्वे । पूर्व शब्द के शेष रूप सर्वशब्द के समान होंगे ।। ३४ ।। इसी तरह पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अन्तर, अपर, अधर और नेम शब्दों का भी रूप जानना चाहिए । प्रथम शब्द के प्रथमा बहुवचन में प्रथमे और प्रथमाः दो रूप होते हैं । इनके शेष रूप अर्क शब्द के रूप के समान होते हैं ।। ३५ ।। इसी तरह चरम शब्द, तयप् प्रत्ययान्त शब्द, अल्प अर्द्ध नेम आदि शब्दों के रूप होते हैं । चरम् तथा कतिपय आदि शब्दों के शेष रूप प्रथम शब्द के सदृश होंगे तथा नेम शब्द के रूप सर्वशब्द के समान होंगे । जिन शब्दों के अन्त में तीय प्रत्यय लगता है उनके चतुर्थी, पञ्चमी और सप्तमी के एकवचन में रूप विकल्प से सर्व शब्द के समान होते हैं । जैसे- द्वितीयस्मै-द्वितीयाय द्वितीयस्मात्-द्वितीयात् ।। ३६ ।। द्वितीयस्मिन् - द्वितीये । ऐसे ही तृतीय शब्द का रूप चलता है । इन दोनों शब्दों के शेष रूप अर्क शब्द के समान होते हैं । १- सोमपाः सोमपौ,सोमयाः (२) सोमपाम्, सोमपौ सोमपाः, (३) सोमपा, सोमपाभ्याम्, सोमपाभः, (४) सोमपे सोमपाभ्याम्, सोमपाभ्यः, (५) सोमपाः सोमपाभ्याम्, सोमपाभ्यः, (६) सोमपःसोमपोः सोमपाम्, (७) सोमपि, सोमपोः, सोमपासु।।३८।। सोमपा के ही समान कीललया = अग्निपीने वाला शब्द का भी रूप होगा । कविः (कवि प्रथमा ए० व०) अग्निः (अग्निः + प्रथ० + ए० व०) अरयः (अरि + प्र० ब० व०) हे कवे (कवि० सम्बो० ए० ब०) कविम् (कवि + द्वि ए० व०) अग्नी (अग्नि + प्र० द्वि० व०) हरीन् (हरि + द्वि० + ब० व०) सात्यकिना (सात्यकि + तृ० + ए० व०) हृतम् (हृत + प्र० + ए० व०) ।। ३९ ।। रविभ्याम् (रवि + तृ० द्वि० व०) रविभिः (रविन्० तृ० ब० ब०) देहि वह्नये यःसमागतः = जो आया है उसे अग्नि को समर्पित कर दो । बह्नये = (बह्नि + च० + ए० व०) अग्नि शब्द की षष्ठी के तीनों वचन में क्रमशः रूप हैं- अग्नेः, अग्न्योः, अग्नीनाम्। कवौ, कव्योः कविषु ये कवि शब्द के सप्तमी विभक्ति के रूप हैं ।। ४० ।। सुसृति, अभ्रान्ति, सुकीर्ति तथा सुधृति शब्दों के भी रूप कवि शब्द के ही समान होंगे । हे सखे सत्पतिं व्रज = हे मित्र तुम अच्छे स्वामी के पास जाओ । (१) सखा, सखायौ, सखायः । (२) सखायम्, सखायौ, सखीन्, (३) सख्या, सखिभ्याम्, सखिभिः, (४) सख्या आगतः = मित्र के साथ आया । (४) सख्ये सखिभ्याम्, सखिभ्यः, (५) सख्यु सखिभ्याम्, सखिभ्यः, (६) सख्युः, सख्योः, सखीनाम्, (७) सख्यौ,

नीर्नियौ च नियो हे नीः ! नियं नियौ नियो निया । नीभ्यां नीभिर्निये नीभ्यः नियां निये नियोस्तथा॥४५॥ सुश्रीः सुधीः प्रभृतयो ग्रामणीः पूजयेद्धरिम् । ग्रामण्यौ ग्रामण्यो ग्रामण्यं ग्रामण्या ग्रामणीभिः ॥ ४६ ॥ ग्रामण्यो ग्रामण्यामेवं सेनानीप्रमुखाः सुभूः । सुभुवो च स्वयम्भुवः स्वयम्भुञ्च स्वयम्भुवः ॥ ४७ ॥ स्वयम्भुवा स्वयम्भुवि एवं प्रतिभुवादयः । खलपूः खलप्वौ श्रेष्ठौ खलप्वञ्च खलप्वि च॥ ४८॥ एवं शरपूमुखाः स्युः क्रोष्टा क्रोष्टार ईरिताः । क्रोष्टंश्च क्रोष्टुना क्रोष्ट्रा क्रोष्टूनां क्रोष्टरीदृशम् ॥ ४९ ॥ पिता पितरौ पितरः हे पितः! पितरौ शुभौ । पितृन् पितुः पितुः पित्रोः पितृणां पितरीदृशम् ॥ ५० ॥ एवं भ्राता च जामातृमुखा नृणां नृणां तथा । कर्त्ता कर्त्तारौ कर्त्तृंश्च कर्तृणां कर्त्तरीदृशम् ॥ ५१ ॥ पितृवच्चैवमुद्गाता स्वसा नप्तादयः स्मृताः । सुराः सुरायौ सुरायःसुरायाञ्चसुराय्यपि॥ ५२॥ गौः गावौ गां गा गवा च गोर्गवोश्च गवां गवि । एवं द्यौर्ग्लौश्चापि तथा स्वरान्ताः पुंसिनायकाः ॥ ५३ ॥ सुवाक् सुवाचौ सुवाचा सुवाग्भ्याञ्च सुवाक्ष्वपि । एवं दिक्प्रमुखाः प्राङ् च प्राञ्चौ प्राञ्चञ्च भो व्रज ॥ ५४ ॥ प्राग्भ्यां प्रागभिः प्राचाञ्च प्राचि च प्राङ्सु प्राङ्क्ष्वपि । एवं ह्युदङुदीची वा सम्यङ् प्रत्यक् समीच्यपि ॥ ५५ ॥ तिर्य्यङ् तिरश्च सध्र्यङ्

सख्योः सखिषु ।। ४१-४२ ।। पत्या (पति तृ० ए० व०) पत्ये (पति + चतु० + ए०व०) पत्युः (पति + ष० द्वि ए०) पत्यौ (पति + सप्त० द्वि० व०) पति शब्द के शेष रूप अग्नि शब्द के रूप के समान होंगे । द्वि शब्द नित्य द्विवचनान्त है । यह दो संख्या का वाचक है । इसके पुल्लिङ्ग में रूप हैं । द्वौ, द्वौ, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम् द्वयोः, द्वयोः ।। ४३ ।। तीन संख्या के वाचक त्रिशब्द के पुल्लिङ्ग में रूप हैं- त्रयः, त्रीन्, त्रिभिः, त्रिभ्यः त्रयाणाम्, त्रिषु । कति = कितने । यह नित्य बहुवचनान्त शब्द है । इसके प्रथमा एवं द्वितीया में रूप होंगे- कति, कति । शेष विभक्तियों में इसके रूप कवि शब्द के समान होंगे ।। ४४ ।। नी शब्द के रूप इस प्रकार हैं । (१) नीः नियौ नियः (२) नियम्, नियौ नियः, (३) निया, नीभ्यामम्, नीभिः, (४) निये नीभ्याम्, नीभ्यः, (५) नियः, नीभ्याम्, नीभ्यः, (६) नियः, नियोः नियाम्,, (७) नियि नियोः निषु ।। ४५ ।। सुश्री : तथा सुधीः शब्दों के भी रूप इसी तरह होंगे । ग्रामणी : पूजयेद् हरिम् = ग्राम प्रधान श्री हरि की पूजा करें। ग्रामणी शब्द के रूप इस तरह होंगे । (१) ग्रामणी ग्रामण्यौ, ग्रामण्यः, (२) ग्रामण्यम्,, ग्रामण्यौ ग्रामण्यः। (३) ग्रामण्या, ग्रामणीभ्याम्, ग्रामणीभिः, (४) ग्रामण्ये, ग्रामणीभ्याम्, ग्रामणीभ्यः, (५) ग्रामण्यः, ग्रामणीभ्याम्, ग्रामणीभ्यः, (६) ग्रामण्यः, ग्रामण्योः, ग्रामण्याम्, (७) ग्रामण्याम्, ग्रामण्योः ग्रामणीषु । इसी तरह सेनानी शब्द के भी रूप होते हैं । सुभूः सुभुवौ इत्यादि सुभू शब्द के रूप हैं । स्वयम्भू शब्द के रूप इस प्रकार होते हैं । (१) स्वयम्भूः स्वयम्भुवौ, स्वयम्भुवः, (२) स्वयम्भुवम्, स्वयम्भुवौ, स्वयम्भुवः, (३) स्वयम्भुवा इत्यादि । सप्तमी एकवचन में स्वयम्भुवि रूप होता है । प्रतिभू आदि शब्दों के भी रूप इसी तरह होते हैं ।। ४६-४७ ।। खलपू० (खलपू + प्र० ए० व०) खलप्वौ (खलपू प्र० द्वि० व०) खलप्वम् (खलपू० द्वितीय० ए० व०) खलप्वि (खलपू सप्त० ए० व०) ।। ४८ ।। इसी तरह शरपू आदि शब्दों के भी रूप चलते हैं । क्रोष्टृ शबद के रूप इस तरह हैं- (१) क्रोष्टा क्रोष्टारो, क्रोष्टारः द्वितीया बहुवचन में क्रोष्टून् तृतीया एकवचन में दो रूप होते हैं क्रोष्टुना क्रोष्ट्रा । षष्ठी बहुवचन में क्रोष्टूनाम् तथा सप्तमी एकवचन क्रोष्टरि रूप होते हैं ।। ४९ ।। पितृ शब्द के रूप इस प्रकार होते हैं- (१) पिता, पितरौ पितरः, (२) पितरम्, पितरौ, पितृन्, (३) पित्रा पितृभ्याम्, पितृभिः, (४) पित्रे, पितृभ्याम्, पितृभिः, (५) पितुः, पितृभ्याम्, पितृभ्यः, (६) पितुः, पित्रोः, पितृणाम्,, (७) पितरि, पित्रोः पितृषु । सम्बो० हे पितः ।। ५० ।। पितृ शब्द के ही समान भ्रातृ एवं जामातृ शब्दों के भी रूप चलते हैं । नृ शब्द के षष्ठी बहुवचन में दो वैकल्पिक रूप चलते हैं- नृणाम्, नृणाम् । कर्त्ता, कर्त्तारौ, कर्तारः, कर्तृ शब्द के प्रथमा में रूप है । द्वितीया बहुवचन में कर्त्तृन्, षष्ठी बहुवचन में कर्तृणाम् तथा सप्तमी एकवचन में कर्त्तारि रूप होते हैं ।। ५१ ।। उद्गातृ = सामवेद का गान करने वाला । ऋत्विक्, स्वसृ = बहन, नप्तृ = नाती इन शब्दों के भी रूप पितृशब्द के ही समान होते हैं । (किन्तु इन शब्दों के प्रथमा में रूप होते हैं- उद्गाता, उद्गातारौ, उद्गातारः स्वसा, स्वसारौ, स्वसारः, नप्ता नप्तारौ नप्तारः । शेष रूप पितृ शब्द के समान होते हैं ।) सुरै शब्द के रूप इस प्रकार के होते हैं- सुराः सुरायौ, सुरायः, इत्यादि षष्ठी के बहुवचन में सुरायाम् तथा सप्तमी के एकवचन में सुरायि होता हे ।। ५२ ।। गौ शब्द के रूप इस प्रकार होते हैं- (१) गौः गावौ गावः, (२) ग्राम् गावौ गाः, (३) गवा गोभ्याम् गोभिः। षष्ठी में गोः गवोः गवाम् सप्तमी के एकवचन गवि इत्यादि । गौ के ही समान द्यौ तथा ग्लौ शब्द के भी

च विश्वद्राङ् पूर्ववत् स्मृता । अदद्र्यङदमुयङ् स्यात् तथामुमुयडीरितः ॥ ५६ ॥ अदद्र्यञ्चो ह्यमुद्रीचः अदद्र्यग्भ्याञ्च पूर्ववत् । तत्त्वतृट् तत्त्वतृषौ च तत्त्वतृड्भ्यां समागतः ॥ ५७ ॥ तत्त्वतृषि तत्त्वतृट्सु एवं काष्ठतडादयः । भिषक् भिषग्भ्यां भिषजि जन्मभागादयस्तथा॥ ५८॥ मरुत् मरुद्भ्यां मरुति एवं शत्रुजिदादयः । भवान् भवन्तौ भवतां भवंश्चैव भवत्यपि॥ ५९॥ महान् महान्तौ महतामेवं भगवदादयः । एवंमघवान्मघवन्तौ अग्निचिच्चाग्निचित्यपि॥ ६०॥ अग्निचित्स्वेवमेवान्यत् वेदवित् तत्त्ववित्त्वपि । वेदविदामेवमन्यत् यः समस्तेन सर्ववित् ॥ ६१ ॥ राजा राजानौ राज्ञः राज्ञि राजनि राजन् ! । यज्वा यज्वानस्तद्वत् करी दण्डी च दण्डिनौ ॥ ६२ ॥ पन्थाः पन्थानौ च पथः पथिभ्यां पथि चेदृशम् । मन्था ऋभुक्षाः पथ्याद्याापः पञ्च च पञ्चभिः ॥ ६३ ॥ प्रतान् प्रतानौ प्रतान्भ्यां हेप्रतांश्च सुशर्मणः। आपः अपः अद्भिरप्येवं प्रशांश्चैव प्रशाम्यपि ॥ ६४ ॥ कः केन

रूप चलते हैं । इस तरह स्वरान्त पुल्लिङ्ग नायक शब्दों के रूप बतलाए गए ।। ५३ ।। सुवाच् शब्द के रूप इस प्रकार होते हैं- (१) सुवाक् सुवाग् सुवाचौ सुवाचः, (२) सुवाचम्, सुवाचौ सुवाचः। (३) सुवाचा सुवाभ्याम्, सुवाग्भिः । सप्तमी के बहुवचन में सुवाक्षु रूप होता है । इसी तरह दिक् आदि शब्दों के भी रूप चलते हैं । प्राञ्च् शब्द के रूप इस प्रकार होते हैं- (१) प्राङ् प्राञ्चौ, प्राञ्चः। (२) भोः प्रोंञ्चं व्रज = तुम प्राचीनों के पथ पर चलो । (३) प्राचा प्राग्भ्याम् प्राग्भिः। षष्ठी के बहुवचन में प्राचाम् तथा सप्तमी के एकवचन में प्राचि एवं बहुवचन में प्राङ्सु तथा पाङ्क्षु रूप होते हैं।।५४।। इसी तरह उदञ्च, सम्यञ्च तथा प्रत्यञ्च शब्दों के भी रूप चलते हैं। जैसे- उदङ् उदञ्चौ, उदञ्चः । स्त्रीलिङ्ग में उदीची । सम्यङ्, सम्यञ्चौ प्रत्यञ्चः । स्त्रीलिङ्ग में समीची । प्रत्यङ् प्रत्यञ्चौ प्रत्यञ्चः । स्त्रीलिङ्ग में प्रतीची रूप होते हैं ।। ५५ ।। तिर्यङ् (तिर्यक् प्रथमा एकवचन) तिरश्च (तिर्यच् + द्वि ब० व०) संध्र्यङ सध्र्यञ्च + प्र० एकवचन) सध्र्यङ् = सन्मार्गामी । सध्रीचः = (सध्र्ञ्च + द्वितीय बहुवचन) विश्वद्राङ् (विश्वद्रञ्च + प्र० ए० व०) इन सभी शब्दों के रूप एक तरह चलते हैं ।। ५५ ।। अमुम् अञ्चति इस अर्थ में तीन रूप एकवचन में होते हैं- अद्रद्र्यङ्, अदमुयङ् तथा अमुमुय। इन तीनों के अर्थ हैं उसकी ओर जाने वाला ।। ५६।। प्रथमा बहुवचन में अद्र्यञ्चः रूप होता है तथा द्वितीया के बहुवचन में अमुमुईचः एवं अमुद्रीचः ये रूप होते हैं । भ्याम् विभक्ति में अदद्र्यग्भ्याम् रूप होता है ।। ५६ ।। तत्त्वतृट् = तत्त्वज्ञान का प्यासा । (तत्त्वतृष् प्रथमा ए० व०) तत्त्वतृषौ (तत्त्वतृष् + प्र० द्वि० व०) तत्त्वतृषि (तत्त्वतृष् + सप्त० ए० व०) तत्त्वतृत्सु (तत्त्वतृष् + स० ब० व०) काष्ठतड् = कठफोड्वा पक्षी अथवा काष्ठ काटने वाला । आदि शब्दों के भी रूप इसी तरह चलते हैं ।। ५७ ।। भिषज् = वैद्य । भिषज् शब्द के रूप होते हैं- भिषक् भिषग् भिषजौ, भिषजः । तृतीया द्विवचन में भिषग्भ्याम् तथा सप्तमी एकवचन में भिषजि रूप होता है । इसी तरह जन्मभाक् आदि शब्दों के भी रूप होते हैं ।। ५८ ।। मरुत् (वायु) शब्द के रूप होते हैं मरुत् मरुद् = मरुतौ, मरुतः, तृतीया द्विवचन में मरुद्भ्याम् तथा सप्तमी एकवचन में मरुति रूप होते हैं । शत्रुजित् आदि शब्दों के भी रूप इसी तरह के होते हैं । पूजनीय व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होने वाले भवत् शब्द के रूप होते हैं- भवान् भवन्तौ भवन्तः। षष्ठी के बहुवचन में भवताम् रूप होता है । शतृ प्रत्ययान्त भवत् शब्द के रूप- भवन्, भवन्तौ भवन्तः तथा सप्तमी के एकवचन में भवति होता है ।। ५९ ।। महान् शब्द के रूप- महान् महान्तौ महान्तः होते हैं । षष्ठी बहुवचन में महताम् रूप होता है । भगवत् शब्द के रूप भी भगवान् भगवन्तौ भगवन्तः होते हैं । मधवत् शब्द के रूप मघवान् मघवन्तौ मघवन्तः इत्यादि होते हैं । अग्निचित् शब्द के रूप होते हैं- अग्निचित् अग्निचिद्, अग्निचितौ अग्निचितः । सप्तमी के एकवचन में अग्निचिति रूप होता है ।। ६० ।। सप्तमी बहुवचन में अग्निचित्सु रूप होता है । इस तरह से अन्य शब्दों के भी रूप होते हैं । वेदवित् तथा तत्त्ववित् शब्द के भी रूप इसी तरह होते हैं । षष्ठी बहुवचन में तत्त्वविदाम् रूप होता है । इसी तरह सर्ववित् आदि समस्त शब्दों के रूप होते हैं ।। ६१ ।। राजा शब्द के सिद्ध रूप हैं- (१) राजा, राजानौ, राजानः, (२) राजानम्, राजानौ राज्ञः । सप्तमी एकवचन में राज्ञि तथा राजनि रूप होते हैं तथा सम्बोधन में हे राजन् रूप होता है । यज्वन् शब्द के रूप होते हैं- यज्वा, यज्वानौ, यज्वानः । करी = हाथी शब्द के रूप करी करिणौ, करिणः इत्यादि होते हैं दण्डिन् शब्द के रूप दण्डी, दण्डिनौ दण्डिनः इत्यादि होते हैं ।। ६२ ।। पथिन् शब्द के रूप- पन्थाः पन्थानौ पन्थानः होते हैं । द्वितीया बहुवचन में पथः तृतीया द्विवचन में पथिभ्याम् तथा सप्तमी एकवचन में पथि रूप होते हैं । मथिन् शब्द के रूप मन्थाः, ऋभुक्षन् शब्द के रूप ऋभुक्षाः इत्यादि होते हैं । पथ्यादि में तीन शब्द आते हैं- पथिन्, मथिन् तथा ऋभुक्षन् । पञ्चन् शब्द के रूप- पञ्च, पञ्च तथा पञ्चभिः इत्यादि होते हैं ।। ६३ ।। प्रतान् शब्द के रूप- प्रतान्, प्रतानौ, प्रतानः। तृतीया द्विवचन में प्रतान्भ्याम् रूप होते हैं । सम्बोधन में हे प्रतान् रूप होता है । सुशर्मन् शब्द के द्वितीया बहुवचन में सुशर्मणः रूप होता है । अप् शब्द

सर्ववत् केषु अयं चेमे इमान्नयः । अनेन चाभ्यमेभिश्च अस्मै चेभ्यः स्वमस्य च ॥ ६५॥ अनयोरेषामेषु स्याच्चत्वारश्चतुरस्तथा । चतुर्णाञ्च चतुर्ष्वऽस्ति सुगीः श्रेष्ठः सुगिर्य्यपि ॥ ६६ ॥ सुद्यौः सुदिवौ सुद्युभ्यां विड्विशौ विट्सु यादृशः । यादृग्भ्याञ्चैव विड्भ्याञ्च षट् षट् षण्णाञ्च षट्स्वपि॥ ६७॥ सुवचाः सुवसा न सुवचोभ्यामयेदृशम् । हे सुवचो ! हे उशन् उशना वोशनस्यपि ॥ ६८ ॥ पुरदंशा अनेहा हे विद्वन् ! विद्वांस उत्तमाः । विदुषे नमो विद्वद्भयां विद्वत्सु च वभूविवान् ॥ ६९ ॥ एवञ्च पेचिवान् श्रेयान् श्रेयांसौ श्रेयसस्तथा । असौ अमू अमी श्रेष्ठा अमुं अमूनिहामुना॥ ७०॥ अमीभिरमुष्मै वामुष्मादमुष्य वामुयोस्तथा । अमीषाममुष्मिन्नित्येवं गोधुगभिरागतः । गोधुक्ष्वित्येवमन्येऽपि मित्रद्रुहो मित्रदुहा।

नित्य बहुवचनान्त हैं । इसके रूप होते हैं- आपः, अपः, अद्भिः इत्यादि । प्रशाम् शब्द के रूप होते हैं- प्रशान्, प्रशामौ प्रशामः । सप्तमी के एकवचन में रूप प्रशामि होता है।। ६४ ।। किम् शब्द के पुल्लिंग में रूप- कः कौ के, कम् कौ कान्, केन, काभ्याम् कैः । सप्तमी बहुवचन में केषु रूप होता है । शेष रूप सर्वशब्द के समान होते हैं । इदम् शब्द के पुल्लिंग में रूप इस प्रकार होते हैं- (१) अयम् इमौ, इमे, (२) इमम्, इमौ, इमान् । इमान् नय = इन सबों को ले जाओ । (३) अनेन आभ्याम् एभिः, (४) अस्मै, आभ्याम्, एभ्यः, (५) अस्मात् आभ्याम्, एभ्यः । (६) अस्य अनयोः एषाम् (७) अस्मिन् अनयोः एषु । चतुर शब्द के रूप होते हैं- चत्वारः, चतुरः, चतुर्भिः, चतुर्भ्यः चतुर्णाम्, चतुर्षु । जिसकी अच्छी वाणी हो उसे सुगीः अथवा सुगिः कहते हैं । सुगिर शब्द के सप्तमी के एकवचन में रूप सुगिरि होता है ।। ६५-६६ ।। सुदिव् शब्द के रूप इस प्रकार होते हैं । सुद्यौः सुदिवौ, सुदिवः । तृतीया द्विवचन में सुद्युभ्याम् रूप होता है । विश् शब्द का के रूप होते हैं- विट् विड् विशौ विशः इत्यादि । तृतीया के द्विवचन में विड्भ्याम् रूप चलता है । सप्तमी के बहुवचन मूं विट्सु रूप होता है । यादृश् शब्द के रूप होते हैं- यादृक्-यादृग्, यादृशौ यादृश। यादृशम्, यादृशौ यादृशः । यादृश, यादृग्भ्याम्, यादृग्भिः इत्यादि । षष् = छह संख्या । ष ष् शब्द के रूप होते हैं- षट् ' षट्, षड्भिः, षड्भ्यः षड्भ्यः षण्णाम्, षट्षु ।। ६७ ।। सुवचस् शब्द के रूप इस प्रकार होते हैं- सुवचाः सुवचसौ सुवचसः । सुवचसम्, सुवचसौ सुवचसः । सुवचसा, सुवचोभ्याम्, सुवचोभिः । सम्बोधन में रूप हे सुवचः होता है । उशनस् शब्द के रूप इस प्रकार होते हैं- उशना, उशनसौ, उशनसः । सम्बोधन में है । उशनः इत्यादि । सप्तमी के एकवचन में उशनसि रूप होता है ।। ६८ ।। पुरुदंश तथा अनेहस् शब्द के रूप पुरुदंशा, पुरुदंशौ पुरुदंशः तथा अनेहा, अनेहसौ, अनेहसः इत्यादि होते हैं । विद्वस् शब्द के रूप होते हैं - विद्वान्, विद्वांसौ विद्वांसः । विद्वांसम्, विद्धांसौ, विदुषः । विद्वांस उत्तमाः (विद्वान् पुरुष उत्तम होते हैं । चतुर्थी के एकवचन में विदुषे रूप होता है । विदुषे नमः = विद्वान् को नमस्कार है । तृतीया द्विवचन में विद्वद्भ्याम् तथा सप्तमी बहुवचन में विद्वत्सु रूप होता है । विद्वत्सु बभूविवान् = विद्वानों में प्रकट हुआ। बभूविवस् शब्द के रूप होते हैं- बभूविवान्, बभूविवांसौ, बभूविवांसः । पेचिवस् = जो भूतकाल में पाचक रहा । पेचिवान्, पेचिवांसौ, पेचिवांसः श्रेयस् = श्रेष्ठ । श्रेयस् शब्द के रूप होते हैं- श्रेयान्, श्रेयांसौ, श्रेयांसः । द्वितीया में श्रेयसः रूप होता है । अदस् शब्द के पुल्लिंग में रूप होते हैं- (१० असौ, अमू, अमी, (२) अमूम्, अमू, अमून् , (३) अमुना, अमुभ्याम्, अमीभिः, (४) अमुष्मै, अमूभ्याम्, अमीभ्यः (५) अमुष्मात् अमूभ्याम्, अमीभ्यः (६) अमुष्य, अमुयोः अमीषाम् । (७) अमुष्मिन् अमुयोः अमीषु । गोधुग्भिरागतः = वह गाय दुहने वाला आया ।। ६९-७१ ।। गोदुह शब्द के रूप इस प्रकार हैं- गोधुक्-गोधुग्, गोदुहौ, गोदुहः । सप्तमी के बहुवचन में रूप गोधुक्षु होता है । इसी प्रकार से दुह आदि शब्दों के रूप होते हैं । मित्रद्रुह् शब्द के रूप इस प्रकार होते हैं । मित्रध्रुक्-मित्रध्रुग् मित्रद्रुहौ, मित्रद्रुहः । तृतीया में- मित्रद्रुहा, मित्रध्रुग्भ्याम् मित्रध्रुड्भ्याम्, मित्रध्रुग्भिः ! इसी तरह चित्तद्रुह आदि शब्दों के रूप होते हैं ।। ७२ ।। स्वलिह् (अपने को चाटने वाला) शब्द के रूप इस प्रकार होते हैं- स्वलिट् -स्वलिड्, स्वलिहौ, स्वलिहः । तृतीया विभक्ति में रूप होंगे- स्वलिहा, स्वलिड्भ्याम्, स्वलिड्भः । सप्तमी के एकवचन में- स्वलिहि रूप होता है । अनडुह (गाड़ी खींचने वाला बैल) शब्द के रूप इस प्रकार होते हैं- अनड्वान् अनड्वाहौ अनड्वाहः । अनड्वाहम् अनड्वाहौ, अनडुहः । (३) अनडुहा, अनडुद्भयाम् अनडुद्भिः । सप्तमी बहुवचन में- अनडुत्सु

मित्रध्रुग्यां मित्रध्रुग्भिरेवं चित्तद्रुहादयः॥७२॥ स्वलिट् स्वलिड्भ्यां स्वलिहि अनड्वाननडुत्सु च। अजन्ताश्च हलन्ताश्च पुंस्यथोऽथ स्त्रियां वदे॥७३॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सुब्विक्तिसिद्धरूपकथनं नामैकपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५१ ॥

द्विपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

स्त्रीलिङ्गशब्दसिद्धरूपम्

स्कन्द उवाच– **रमा रमे रमाः शुभा रमां रमे रमास्तथा। रमया च रमाभ्याञ्च रमाभिः कृतमव्ययम्॥ १॥ रमायै च रमाभ्याञ्च रमायां रमयोः शुभम्। रमाणाञ्च रमायाञ्च रमास्वेवं कलादयः॥ २॥ जरा जरसौ जर इति जरसश्च जरा जराम्। जरसञ्च जरास्वेवं सर्वा सर्वे च सर्वया॥ ३॥ सर्वस्यै देहि सर्वस्याः सर्वस्याः सर्वयोस्तथा। शेषं रमावद्रूपं स्याद् द्वे द्वे तिस्रश्च तिसृणाम् ॥ ४ ॥ बुद्धिर्बुद्ध्या बुद्धये च बुद्ध्यै बुद्धेश्च हे मते !। कविवत् स्यान् मुनीनाञ्च नदी नद्यौ नदीं नदीः ॥ ५ ॥ नद्या नदीभिर्नद्यै च नद्याञ्चैव नदीषु च। कुमारी जृम्भणीत्येवं श्रीः श्रियौ च श्रियः श्रिया ॥ ६ ॥ श्रियै श्रिये स्त्री स्त्रियञ्च स्त्रीश्च स्त्रियः स्त्रिया स्त्रियै। स्त्रियाः स्त्रीणां स्त्रियाञ्च ग्रामण्यां धेन्वै च धेनवे ॥ ७ ॥ जम्बूर्जम्ब्वौ च जम्बूश्च जम्बूनाञ्च फलं**

रूप बनता है। सम्बोधन में हे अनड्वन् रूप होता है। अजन्त एवं हलन्त पुल्लिङ्ग शब्दों के सिद्ध रूप बताये गए अब इनके स्त्रीलिङ्ग रूपों को बताया जा रहा है ॥ ७३ ॥

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण के सुबन्त सिद्ध रूप वर्णन नामक तीन सौ एकावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३५१ ॥

भगवान् स्कन्द ने कहा– अकारान्त स्त्रीलिङ्ग रमा शब्द के सिद्ध रूप इस प्रकार हैं- (१) रमा, रमे, रमाः, (२) रमाम्, रमे, रमाः, (३) रमया, रमाभ्याम्, रमाभिः, (४) रमायै, रमाभ्याम्, रमाभ्यः, (५) रमायाः रमाभ्याम् रमाभ्यः (६) रमायाः रमयोः रमाणाम्, रमासु। (७) रमायाम् रमयोः रमासु। इसी तरह कला आदि शब्दों के भी रूप होते हैं ॥ १-२ ॥ जरा शब्द के रूप इस प्रकार हैं- (१) जरा, जरसौ- जरे, जरसः-जराः। (२) जरसम् जराम्, जरसौ, जरे, जरसः जराः। सप्तमी बहुवचन में जरासु रूप होता है। शेष विभक्तियों में रूप सर्वा शब्द के समान होते हैं। सर्वा शब्द के रूप इस प्रकार हैं- (१) सर्वा, सर्वे, सर्वाः, (२) सर्वाम् सर्वे सर्वाः, (३) सर्वया सर्वाभ्याम् सर्वाभिः (४) सर्वस्यैः, सर्वाभ्याम्, सर्वाभ्यः (५) सर्वस्याः, सर्वाभ्याम् सर्वाभ्यः, (६) सर्वास्याः, सर्वाभ्याम्, सर्वाभ्यः, (७) सर्वस्याम्, सर्वयोः सर्वासाम्। हे सर्वे द्विशब्द के रूप इस प्रकार होते हैं- द्वे, द्वे, द्वाभ्याम् इत्यादि। त्रि शब्द के रूप होते हैं- तिस्रः, तिस्रः तिसृभिः, तिसृभ्यः, तिसृणाम्। इत्यादि ॥ ३-४ ॥ बुद्धि शब्द के रूप बुद्धि (प्र० ए० व०) बुद्धया (तृ० ए० व०) बुद्धये-बुद्धयै (चतु० ए० व०) बुद्धेः (ष० ए० व०) मति शब्द का सम्बोधन में रूप हे मते होता है। मुनि शब्द का षष्ठी बहुवचन में रूप मुनीनाम् होता है। शेष रूप कवि शब्द के रूप के समान होते हैं। नदी शब्द के रूप हैं। नदी, नद्यौ नद्यः, नदीम्, नद्यौ नदीः। नद्या, नदीभ्याम्, नदीभिः। नद्यै, नदीभ्याम् नदीभ्यः। नद्याः नदीभ्याम्, नदीभ्यः। नद्याः नद्योः नदीनाम्। नद्याम्, नद्योः, नदीषु ॥ ५ ॥ कुमारी तथा जृम्भणी शब्दों के भी रूप इसी तरह के होते हैं। श्री शब्द के रूप इस तरह से होते हैं। श्रीः प्र० ए० व०) श्रियौ (प्र० द्वि० व०) श्रियः (प्र० ब० व०) श्रिया (तृ० ए० व०) श्रियै- श्रिये (च० ए० व०)। स्त्री शब्द के रूप इस प्रकार के होते हैं। स्त्री (प्र० ए० व०) स्त्रियम् (द्वि० ए० व०) स्त्रीः (स्त्री द्वि ब० व०) स्त्रिया (तृ० ए० व०) स्त्रियै (च० ए० व०) ॥ ६ ॥ स्त्रियाः (ष० ए० व०) स्त्रीणाम् (ष० ब० व) स्त्रियाम् (स० ए० व०) ग्रामणी शब्द के सप्तमी के एकवचन में रूप ग्रामण्याम् होता है। धेनु शब्द के चतुर्थी एकवचन में दो रूप होते हैं- धेन्वै तथा धेनवे ॥ ७ ॥ जम्बू जामुन शब्द के रूप हैं- जम्बूः (प्र० ए० व०) जम्ब्वौ (प्र० तथा द्वि० द्विवचन) जम्बूनाम् (ष० ब० व०) जम्बूनां फलं पि = जामुन के फल का रस पीओ। वर्षाभूः वर्षाकाल में उत्पन्न होने वाली मेढकी) शब्द के प्रथमा तथा द्वितीया द्विवचन में रूप वर्षाभ्वौ होता

पिब । वर्षाभ्वौ च पुनर्भ्वौ च मातृर्वापि च गौश्च नौः ॥ ८ ॥ वाग् वाचा वाग्भिश्च वाक्षु स्त्रग्भ्यां स्त्रजि स्त्रजोस्तथा । वीरुद्भ्याञ्चैव वीरुत्सु भवती स्याद् भवन्त्यपि॥९॥ दीव्यन्ती भाती भान्ती च तुदन्ती च तुदत्यपि । रुदती रुन्धती देवी गृह्णती चोरयन्त्यपि॥ १०॥ दृषत् दृषद्भयां दृषदि सीमा सीम्नि च सीमनि ॥ ११ ॥ दामनीभ्यां ककुद्भयाञ्च केयमाभ्यां तथासु च । गीर्भ्याञ्चैव गिरा गीर्षु सुभूः सुपूः पुरा पुरि ॥ १२ ॥ द्यौर्द्युभ्यां दिवि द्युषु तादृश्या तादृशी दिशः । यादृश्यां यादृशी तद्वत् सुवचोभ्यां सुवचः स्वपि । असौचामूममूचामूरमूभिरमुयाऽमुयोः ॥ १३॥

इत्यादि महापुराणे आग्नेये स्त्रीलिङ्गशब्दसिद्धरूपकथनं नाम द्विपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५२ ॥

त्रिपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नपुंसकशब्दसिद्धरूपम्

स्कन्द उवाच— **नपुसंके किं के कानि ततो जलम् । सर्वं सर्वे च पूर्वाद्याः सोमपं सोमपानि च ॥ १ ॥ ग्रामणि ग्रामणिनी च ग्रामणी ग्रामणीन्यपि। वारि वारिणी वारीणि वारिणां वारिणीदृशम् ॥ २ ॥ शुचये शुचिने देहि मृदुने मृदुवे तथा । त्रपु त्रपुणी त्रपूणाञ्च खलपूनि खलप्वि च ॥ ३॥ कर्त्ता**

है । पुनर्भ्वौ (पुनभू+प्रथमा+द्वितीया द्विवचन) मातृः (मातृ+द्वितीया+ब० व०) गौः (गौ प्रथमा एकवचन) नौः (प्र० ए० व०) ।। ८ ।। वाच् शब्द के रूप हैं- वाक्-वाग्, वाचौ वाचः । वाचा (तृ० ए०) वाग्भिः (तृ० ब० व०) वाक्षु (स० ब० व०) स्त्रग्भ्याम् (स्त्रज् तृ० द्विव०) स्त्रजि (स० ए० व०) स्त्रजोः (स० द्वि०) विरुत् (लता) विरुद्भ्याम् (वीरुत्+ तृ० द्वि०) वीरुत्सु (वीरुत् स० ब० व०) भवत् शब्द का स्त्रीलिङ्ग के रूप में भवती । स्त्रीलिङ्गमें भवत् शब्द का रूप भवन्ती होता है । दीव्यत् शब्द का स्त्रीलिङ्ग में रूप दीव्यन्ती भाती-भान्ती ये दो होते हैं भा शब्द। तुदत् शब्द के स्त्रीलिङ्ग में रूप तुदती तथा तुदन्ती ये दो होते हैं । रूदत् शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप रुदती, रुन्धत् शब्द का रुन्धती, गृह्णत् शब्द का गृह्णती तथा चोरयत् शब्द का चोरयन्ती होता है ।। ९-१० ।। दृषद् (दृषद्, प्र० ए० व०) दृषद्भयाम् (दृषद्+तृतीया+द्विवचन) दृषदि (सप्त० ए० व०) विशेष विदुषी (प्र० ए० व०) कृति शब्द का प्रथमा एकवचन में रूप कृतिः होता है । समिध् शब्द के रूप हैं- समित् समिद (प्र० ए० व०) समिद्भ्याम् (तृ० द्वि० व०) समिधि (सप्तमी ए० व०) । सीमन् शब्द के रूप हैं- सीमा (प्र० ए०) सीम्नि, सीमनि (स० ए० व०) ।। ११।। दामनीभ्याम् रूप दामनी शब्द का है । ककुब्भ्याम् ककुब् (दिशा) शब्द का तृ० द्विवचन में रूप है । का किम् शब्द का प्रथमा एकवचन में रूप है इदम् शब्द के स्त्रीलिङ्ग में रूप इयम् आभ्याम् आदि होता है । आसु (इदम् सप्तमी बहु वचन का रूप है । गिर् शब्द के रूप हैं- गीर्भ्याम् (तृ० द्वि० व०) गिरा (तृ० ए० व०) गीर्षु (स० ब० व०) इत्यादि । सुभूः (सु भू प्र० ए० व०) सुपूः (सु पू प्रथ० ए० व०) पुरा (पु- + तृ० ए० व०) पुरि (स० ए० व०) ।। १२ ।। द्यौः (दिव् + प्रथ० ए० व०) द्युभ्याम् (दिव् + तृ० द्वि०व०) दिवि (स० ए०) द्युषु (स० ब० व०) तादृशी शब्द के रूप हैं- तादृशी (प्र० ए० व०) तादृश्या (तृ० ए० व०) दिश् शब्द के रूप हैं- दिक्-दिग्, दिशौ, दिशः । यादृशी शब्द के रूप हैं- यादृश्याम् (स० ए० व०) यादृशी (प्र० ए० व०) उसी तरह सुवचस् शब्द के रूप हैं- सुवचोभ्याम् (तृ० द्वि व०) सुवचःसु (स० ब० व०) अदस् शब्द के स्त्रीलिङ्ग में रूप हैं- असौ (प्र० ए० व०) अमू (प्र० द्वि० व०) अमूम् (द्वि ए० व०) अमूया (तृ० ए० व०) अमूभिः (तृ ब० व०) अमूयोः (ष० द्वि० व०) इत्यादि ।। १३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का स्त्रीलिङ्ग शब्दों का सिद्ध रूप वर्णन नामक तीन सौ बावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३५२ ॥

अध्याय ३५३

भगवान् स्कन्द ने कहा— किम् शब्द के नपुंसक में रूप होते हैं- (१) किम्, के, कानि, (२) किम् के कानि । शेष पुल्लिंग के समान । जलम् (प्र० ए० व०) सर्वम् (सर्व प्र० ए० व०)

च कर्तृणे कर्त्त्रे अतिर्यतिरणी तथा । अभिन्यभिनिनी चैव सुवचांसि सुवाक्षु च॥ ४॥ तद् यत् त्विमे तत् कर्माणि इदञ्चेमे त्विमानि च । ईदृक् त्वदोऽमुनि अमूनि अमुना स्यादमीषु च ॥ ५ ॥ अहमावां वयं मां वे आवामस्मान् मया कृतम् । आवाभ्याञ्च तथास्माभिर्मह्यमस्मभ्यमेव च ॥ ६॥ मदावाभ्या मदस्मच्च पुत्रोऽयं मम चावयोः । अस्माकमपि चास्मासु त्वं युवांयूयमीजिरे॥ ७॥ त्वां युवाञ्च युष्मांश्च त्वया युष्माभिरीरितम् । तुभ्यं युवाभ्यां युष्मभयं त्वत् युवाभ्याञ्च युष्मत् ॥ ८ ॥ तव युवयोर्युष्माकं त्वयि युष्मासु भारती । उपलक्षणमत्रैव अजझलन्ताश्च ते स्मृताः ॥ ९॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नपुंसकशब्दसिद्धरूपकथनं नाम त्रिपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५३ ॥

चतुःपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

कारकम्

स्कन्द उवाच– **कारकं सम्प्रवक्ष्यामि विभक्त्यर्थसमन्वितम् । ग्रामोऽस्ति हे महार्केह नौमि विष्णुं श्रिया सह ॥ १ ॥ स्वतन्त्रः कर्त्ता विद्यान्तं**

सर्वे (प्र० ब० व०) पूर्वादि (अपर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्वर एवं अन्तर- इन शब्दों के भी रूप इसी प्रकार होते हैं । सोमपम् (प्र० ए० व०) सोमपानि (प्र० ब० व०) ।। १ ।। ग्रामणी शब्द के नपुंसक रूप होते हैं- ग्रामणि, ग्रामणिनी, ग्रामणीनि । इत्यादि वारि शब्द के रूप हैं- वारि, वारिणी, वारीणि, षष्ठी बहुवचन में वारीणाम् तथा सप्तमी एकवचन में वारिणि रूप होते हैं ।। २ ।। शुचि शब्द के चतुर्थी एकवचन में शुच्ये-शुचिने ये दो रूप होते हैं । मृदु शब्द के चतुर्थी एकवचन में रूप होंगे- मृदवे, मृदुने । त्रपु (प्र० ए० व०) त्रपुणी (प्र० द्वि० व०) त्रपूणाम् (ष० व० व०) ये त्रपु (रंगा) शब्द के रूप हैं । खलपूनि (प्र० ब० व०) खलाप्वि (स० ए० व०) ये खलपू शब्द के रूप हैं ।। ३ ।। कर्तृ शब्द के रूप हैं- कर्त्रा-कर्तृणा (तृ० ए० व०) तथा कर्त्रे-कर्तृणे (च० ए० व०) अतिरि शब्द के रूप हैं- अतिरि (प्र० ए० व०) अतिरिणी (प्र० द्वि० व०) अभिनि शब्द के रूप हैं- अभिनि (प्र० ए० व०) अभिनिनी (प्र० द्वि० व०) सुवच् शब्द के रूप हैं- सुवचांसि (प्र० ब० व०) सुवाक्षु (स० ब० व०) ।। ४ ।। तत् शब्द के प्रथम एकवचन में रूप होते हैं- तत् तद् कर्माणि कर्म शब्द के प्रथमा बहुवचन का रूप है । इदम् शब्द के रूप हैं । इदम्, इमे, इमानि ।। इदृश् शब्द के प्रथमा एकवचन में दो रूप होते हैं- ईदृक्-ईदृश् । अदस् शब्द के प्रथमा का रूप है- अद् अमुनी अमूनि । अमुना (तृ० ए०) अमीषु (सप्तमी ब० व०) अस्मद् शब्द के रूप हैं- (१) अहम् आवाम्, वयम्, (२) माम्, आवाम्, अस्मान्, (३) मया, आवाभ्याम् अस्माभिः, (४) महयम् आवाभ्याम् अस्मभ्यम् (५) मत् आवाभ्याम् अस्मत् (६) मम आवयोः अस्माकम्, (७) मयि, आवयोः अस्मासु । युष्मद् शब्द के रूप भी इस प्रकार से होते हैं- (१) त्वम्, युवाम्, यूयम्, (२) त्वाम्, युवाम्, युष्मान्, (३) त्वया, युवाभ्याम्, युष्माभिः, (४) तुभ्यम्, युवाभ्याम्, युष्मभ्यम्, (५) त्वत्, युवाभ्याम्, युष्मत्। (६) तव युवयोः युष्माकम्। (७) त्वयि युवयो; युष्मासु। यहाँ अजन्त एवं हलन्त शब्दों के नपुंसक पों का दिग्दर्शन मात्र कराया गया है।।६-९।।

इस तरह से आदिमहापुराण, अग्निपुराण का नपुंसक शब्दों के सिद्ध रूपों का वर्णन नामक तीन सौ तिरपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३५३ ॥

भगवान् स्कन्द ने कहा– अब मैं विभक्त्यर्थ से युक्त कारक का वर्णन करूँगा । ग्रामोऽस्ति = ग्राम है । यहाँ पर ग्राम शब्द में मात्र अर्थ में प्रथमा विभक्ति हुई है । हे महार्क यहाँ पर सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति हुई है । इह नौमि विष्णुं श्रिया सह मैं यहाँ लक्ष्मी के साथ विष्णु को नमस्कार करता हूँ । यहाँ पर विष्णुम् पद में विष्णु शब्द की कर्म संज्ञा हुई है । तथा **द्वितीया कर्मणी स्मृता**। इस पूर्व वर्णित नियम के अनुसार विष्णु में द्वितीया विभक्ति हुई है । **श्रिया सह** में सह के योग में श्रीशब्द से तृतीया विभक्ति हुई है । (यह पहले कहा जा चुका है सहार्थक तथा सादृश्यार्थक शब्दों

कृतिनः समुपासते । हेतुकर्तालम्भयते हितं वै कर्मकर्त्तरिः॥ २ ॥ स्वयं भिद्येत् प्राकृतधीः स्वयञ्च छिद्यते तरुः। कर्त्ताऽभिहितं उत्तमः कर्त्ताऽनभिहितोऽधमः॥३॥ कर्त्ताऽनभहितो धर्मः शिष्ये व्याख्यायते यथा। कर्त्ता पञ्चविधः प्रोक्तः कर्म सप्तविधं शृणु ॥ ४ ॥ ईप्सितं कर्म च यथा श्रद्धाति हरिं यतिः। अनीप्सितं कर्म यथा अहिं लङ्घयते भृशम्॥ ५॥ नैवेप्सितं नानीप्सितं दुग्धं सम्भक्षयन् रजः । भक्षयेदप्यकथितं गोपालो दोग्धि गां पयः॥ ६॥ कर्त्तृकर्माऽथ गमयेच्छिष्यं ग्रामं गुरुर्यथा । कर्म चाभिहितं पूजा क्रियते वै श्रियै हरेः॥ ७॥ कर्मानभिहितं स्तोत्रं हरेः कुर्य्यात् तु सर्वदम्। करणं द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमभ्यन्तरं तथा॥८॥ चक्षुषा रूपं गृह्णाति बाह्यं दात्रेण तल्लुनेत्। सम्प्रदानं त्रिधा प्रोक्तं प्रेरकं ब्राह्मणाय गाम्॥९॥ नरो

के योग में तृतीया विभक्ति होती है ।। १ ।। क्रिया के करने में जो स्वतन्त्र होता है उसे कर्त्ता कारक कहते हैं । कर्ता के (भेद) स्वतंत्र कर्ता यह क्रिया के करने में स्वतंत्र होता है । (२) प्रयोगकर्ता अथवा हेतु कर्ता यह उसका प्रयोजक होता है । (३) कर्मकर्ता- जहाँ कर्म ही कर्ता के रूप में विवक्षित होता है । (४) अभिहित कर्ता । यह कर्ता उक्त होता है । वाक्यो में कर्ता के अर्थ में तिङ् होता है । अभिहित कर्ता उत्तम माना गया है । (५) अनभिहित कर्ता । यह अधम कोटि का कर्ता होता है । इनके उदाहरण हैं- (१) विद्यां तां कृतिनः समुपासते = विद्वान् पुरुष उस विद्या की उपासना करते हैं । यहाँ विद्या की उपासना में विद्वानों की स्वतंत्रता विवक्षित हैं । अतः कृतिनः स्वतंत्र कर्ता है । (चैत्रो मैत्रं) हितं लम्भते । चैत्र मैत्र को हित की प्राप्ति कराता है । यहाँ मैत्र हित की प्राप्ति करता है तथा चैत्र उसको हित की प्राप्ति करवाता है । अतएव यहाँ चैत्र प्रयोजक अथवा हेतु कर्ता है । (३) कर्मकर्ता ।। २ ।। स्वयम् भिद्यते प्राकृत धीः = अर्थात् गवाँर व्यक्ति स्वयं फूट जाता है । अथवा तरुः स्वयं छिद्यते = वृक्ष स्वयं कट जाता है । यहाँ पर तोड़ने एवं फोड़ने वाले कर्ताओं के व्यापार विवक्षित नहीं हैं । जहाँ पर कार्य के अतिशय सौकर्य को बतलाने के लिए कर्ता का व्यापार विवक्षित नहीं होता है, वहाँ पर कर्म आदि अन्य कारक भी कर्ता के ही समान प्रतीत होते हैं । वहाँ पर कर्ता कर्म कर्ता कहलाता है । अतएव उपर्युक्त दोनों वाक्य के कर्तृ पद प्राकृतधी तथा तरुः कर्मकर्ता के उदाहरण हैं । (४) समो गच्छति यह अभिहित कर्ता का उदाहरण है । यहाँ कर्ता के अर्थ में तिङ् प्रत्यय हुआ है । अतएव यहाँ कर्ता उक्त है । उक्त कर्ता उत्तम होता है । (५) अनुक्तकर्ता का उदाहरण है- गुरुणा धर्मः शिष्ये व्याख्यायते । अर्थात् गुरुण शिष्य के लिए धर्म की व्याख्या करता है । इस वाक्य में कर्ता गुरु उक्त नहीं है । अतएव अनुक्त होने के कारण गुरु में तृतीया विभक्ति हुई है । तथा कर्मभूत धर्म पद में प्रथमा विभक्ति हुई । उसी के अनुसार यहाँ तिङ् प्रत्यय भी हुआ है । अनुक्तकर्ता अधम कोटि का कर्ता होता है । अब सात प्रकार के कर्मों को सुनो ।। ३-४ ।। (१) ईप्सित कर्म, (२) अनीप्सित कर्म, (३) ईप्सितानीप्सित कर्म, (४) अकथित कर्म, (५) कर्तृ कर्म, (६) अभिहित कर्म तथा (७) अनभिहित कर्म । इन सबों के उदाहरण इस प्रकार से हैं- (१) ईप्सित कर्म- श्रद्दधाति हरिं यतिः । अर्थात् संन्यासी श्रीहरि में श्रद्धा करता है । यहाँ पर यति की श्रद्धा क्रिया के द्वारा ईप्सित श्रीहरि हैं । अतएव हरि यहाँ पर ईप्सित कर्म हैं । (२) अनीप्सित कर्म- अहिं लङ्घयते भृशम् । अर्थात् उससे साँप को बार-बार लंघवाता है । यहाँ पर लाँघने वाला यद्यपि साँप को लाँघना नहीं चाहता है, किन्तु किसी के डर के मारे उसे बार-बार लाँघना पड़ता है । अतएव यहाँ पर अहि अनीप्सित कर्म है ।। ५ ।। (३) ईप्सितानीप्सित कर्म- दुग्धं संभक्षयन् रजः भक्षयेत् । दुग्ध पीते समय धूल भी पी लेता है । यहाँ पर पीने की क्रिया के द्वारा दुग्ध तो ईप्सित है किन्तु धूल पीना उसको ईप्सित नहीं है, फिर भीवह उसे पी लेता है । अतएव दुग्ध और रज दोनों क्रमशः ईप्सित एवं अनीप्सित कर्म हैं । अकथित कर्म- जहाँ पर कारक अपादान आदि विशेष नामों से विवक्षित नहीं होता है, वहाँ पर कारक की कर्म संज्ञा होती है । उसे ही अकथित कर्म कहते हैं । जैसे गां दोग्धि पयः । यहाँ पर गौ अपादान है फिर भी उसके अपादान रूप से विवक्षित नहीं होने के कारण उसकी कर्म संज्ञा हुई और उसमें द्वितीया विभक्ति हुई है ।। ६ ।। कर्तृ कर्म- जहाँ पर प्रयोजक कर्ता का प्रयोग होता है वहा प्रयोज्य कर्ता कर्म के रूप में परिणत हो जाता है । जैसे- गुरुः शिष्यं ग्रामं गमयेत्। यहाँ पर शिष्य गाँव जाता है तथा गुरु उसके ग्राम भेजता है । गुंरुः शिष्यं ग्रामं गमयेत् तथा शिष्यः ग्रामं गच्छेत् । यहाँ पर प्रयोजक कर्ता गुरु हैं तथा प्रयोज्यकर्ता शिष्य है । अतएव उसकी यहाँ कर्म संज्ञा हुई है तथा उसमें द्वितीया विभक्ति हुई है । अभिहित कर्म- जहाँ पर वाक्य में कर्म में प्रत्यय होता है, उसे अभिहित कर्म होता है । अभिहित कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है । जैसे- श्रियै हरेः पूजा क्रियते । यहाँ पर चूँकि कर्म में प्रत्यय हुआ है अतएव पूजा जो कर्म है उसमें प्रथमा विभक्ति हुई है । अतएव इस वाक्य का कर्म पूजा अभिहित कर्म है ।। ७ ।। अनभिहित कर्म- जहाँ पर वाक्य में कर्ता में प्रत्यय होता है, वहाँ पर अनभिहित कर्म होता है और उसमे द्वितीया विभक्ति होती है । जैसे हरेः सर्वदं स्तोत्रं कुर्यात् । अर्थात् समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाली श्रीहरि की स्तुति करें । यहाँ

ददाति नृपतये दासं तदनुमन्तृकम् । अनिराकर्तृकं भर्त्रे दद्यात् पुष्पाणि सज्जनः॥ १०॥ अपादानं द्विधा प्रोक्तं चलमश्वात् तु धावतः । पतितश्चाचलं ग्रामादागच्छति स वैष्णवः॥ ११॥ चतुर्धा चाधिकरणं व्यापकं दध्नि वै घृतम् । तिलेषु तैलं देवार्थमौपश्लेषिकमुच्यते ॥ १२॥ गृहे तिष्ठेत् कपिर्वृक्षे स्मृतं वैषयिकं यथा । जले मत्स्यो वने सिंहः स्मृतं सामीप्यकं यथा ॥ १३ ॥ गङ्गायां घोषो वसति औपचारिकमीदृशम् । तृतीया वाऽथ वा षष्ठी स्मृताऽनभिहिते तथा ॥ १४ ॥ विष्णु; सम्पूज्यते लोकैर्गन्तव्यं तेन तस्य वा । प्रथमाऽभिहितकर्तृकर्मणोः प्रणमेद्धरिम्॥ १५॥ हेतौ तृतीया चान्नेन

पर कर्मभूत स्तोत्र कर्म है, उसमें द्वितीया विभक्ति हुई है । करण दो प्रकार का होता है- आभ्यन्तर करण और बाह्य करण । करणे तृतीया इस पूर्वोक्त नियम के अनुसार करण में तृतीया विभक्ति होती है ।। ८ ।। चक्षुषा रूपं गृह्णाति अर्थात् चक्षुरेन्द्रिय से रूप का ग्रहण करता है । यह आभ्यन्तर करण का उदाहरण है, क्योंकि चक्षु आभ्यन्तर करण है । इसको रूप के ग्रहण करने की क्रिया को कोई दूसरा नहीं देख सकता । इसलिए चक्षुषा में तृतीया विभक्ति हुई है । दात्रेण लुनाति = अर्थात् हँसुआ से काटता है । यह बाह्यकरण का उदाहरण है । सम्प्रदान तीन प्रकार का कहा गया है- (१) प्रेरक सम्प्रदान, (२) अनुमन्तृक सम्प्रदान तथा (३) अनिराकर्तृक सम्प्रदान । (१) प्रेरक सम्प्रदान जो दान करने के लिए प्रेरित करे उसे प्रेरक सम्प्रदान कहते हैं । नरो ब्राह्मणाय गां ददाति। अर्थात् मनुष्य ब्राह्मण को गौ का दान करता है । यहाँ ब्राह्मण प्रेरक सम्प्रदान है । अतएव उसमें चतुर्थी विभक्ति हुई है । (२) अनुमन्तृक सम्प्रदान- जो प्राप्त हुई वस्तु को केवल अनुमति प्रदान करता है । जैसे- नरो नृपतये दासं ददाति । अर्थात् मनुष्य राजा को दास प्रदान करता है । मनुष्य राजा को दास प्रदान करता है तथा राजा उसको अनुमति मात्र दे देता है । अतएव नृपति अनुमन्तृक सम्प्रदान हुआ और उसमें चतुर्थी विभक्ति हुई । (३) अनिराकर्तृक सम्प्रदान- वह होता है जो न तो प्राप्त हुई वस्तु का अनुमोदन करता है और न तो वह उसका निराकरण परित्याग ही करता है, अपितु वह उसे चुपचाप स्वीकार कर लेता है । जैसे- सज्जनः भर्त्रे पुष्पाणि दद्यात् । सज्जन स्वामी को पुष्प प्रदान करे । यहाँ पर चतुर्थी विभक्ति हुई है ।। १० ।। अपादान दो प्रकार का बतलाया गया है, चल तथा अचल । अपादान में अपादाने पञ्चमी स्यात् इस नियम के अनुसार पञ्चमी विभक्ति होती है । धावतः अश्वात्! पतितः = दौड़ते हुए घोड़े से गिरा । यहाँ दौड़ता हुआ घोड़ा चल अपादान है। अतः उससे पञ्चमी विभक्ति हुई । सः वैष्णवः ग्रामादायाति = वह वैष्णव गाँव से आ रहा है । यहाँ पर ग्राम अचल अपादान है । उससे पञ्चमी विभक्ति हुई है ।। ११ ।। अधिकरण चार प्रकार के होते हैं- अभिव्यापक, औपश्लेषिक, वैषयिक तथा सामयिक । (१) अभिव्यापक अधिकरण- जो वस्तु किसी वस्तु में व्यापक हो उसका आधार अभिव्यापक अधिकरण है । दध्नि घृतम्- दही में घी है । तिलेषु तैलम् देवार्थम् अर्थात् तिल में तेल देवता के लिए है । तिल में तेल व्यापक है । अतएव उन दोनों के आधार दधि तथा तिल अभिव्यापक अधिकरण है । उनमें- आधारो योऽधिकरणं विभक्तिस्तत्र सप्तमी इस पूर्वोक्त नियम के अनुसार सप्तमी विभक्ति हुई है । अब औपश्लेषिक अधिकरण बतलाया जा रहा है ।। १२ ।। कपिः गृहे तिष्ठेत् वृक्षे च अर्थात् बन्दर गृह पर तथा वृक्ष पर रहे । यहाँ बन्दर के आधार गृह और वृक्ष हैं । उन दोनों से बन्दर सटकर बैठता है अतएव ये दोनों बन्दर के औपश्लेषिक अधिकरण हैं । अधिकरण होने से उन दोनों में सप्तमी विभक्ति हुई है। अब वैषयिक अधिकरण बताया जा रहा है । विषयभूत अधिकरण को वैषयिक अधिकरण कहते हैं । 'जले मत्स्यः वने सिंहः अर्थात् जल में मछली वन में सिंह। यहाँ जल तथा वन दोनों क्रमशः मछली तथा सिंह के विषय हैं और मछली तथा सिंह विषयी हैं । अतएव जल और वन वैषयिक अधिकरण हैं और अधिकरण होने के ही कारण उनमें सप्तमी विभक्ति हुई है । अब सामीप्यक अधिकरण बतलाया जा रहा है । गंगायां घोषो वसति गंगा में घोष है । यहाँ पर गंगा को घोष का अधिकरण बतलाया गया है । चूँकि यहाँ अन्वयानुपपत्ति के कारण गंगा शब्द सामीप्यक अधिकरण है । अधिकरण होने के कारण उसमें सप्तमी विभक्ति हुई है । ऐसे वाक्य औपचारिक (लाक्षणिक) वाक्य कहलाते हैं ।। १३ ।। उक्त कर्ता में तृतीया अथवा षष्ठी विभक्ति होती है ।। १४ ।। विष्णुः सम्पूज्यते लोकैः लोगों द्वारा भगवान् विष्णु सम्पूजित होते हैं। यहाँ पर कर्म में प्रत्यय हुआ है । अतएव कर्म उक्त है तथा कर्ता अनुक्त होने के कारण ही कर्ता लोक में तृतीया विभक्ति हुई है । तेन तस्य वा गन्तव्यम्। इस वाक्य में कृदन्त के द्वारा कर्म के उक्त होने के कारण वाक्य के कर्ता में विकल्प से तृतीया तथा षष्ठी विभक्ति दिखलायी गयी है । अर्थात् तस्य गन्तव्यम् तथा तेन गन्तव्यम् इन दोनों वाक्यों का अर्थ एक ही है । जहाँ पर कर्ता उक्त होता है वहाँ कर्ता में प्रथमा विभक्ति तथा जहाँ पर कर्म उक्त होता है वहाँ पर कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है । जैसे- भक्तः हरिम् प्रणमेत् अर्थात् भक्त हरि को प्रणाम करे । यहाँ पर कर्ता में प्रत्यय होने के कारण कर्ता भक्त में प्रथमा विभक्ति हुई है तथा भक्तेन हरिः प्रणम्यते । यहाँ पर चूँकि कर्म में प्रत्यय हुआ है अतएव इस वाक्य के कर्म हरि में प्रथमा विभक्ति

वसेद् वृक्षाय वै जलम् । चतुर्थी तादर्थ्येऽभिहिता पञ्चमी पर्य्युपाङ्मुखैः ॥ १६ ॥ योगे वृष्टः परि ग्रामाद् देवोऽयं बलवत् पुरा । पूर्वा ग्रामादृते विष्णोर्न मुक्तिरितराहरेः॥ १७॥ पृथग् विनाद्यैस्तृतीया पञ्चमी च तथा भवेत् । पृथग् ग्रामाद् विहारेण विना श्रियम् श्रिया श्रियः ॥ १८ ॥ कर्मप्रवचनीयाख्यैर्द्वितीया योगतो भवेत् । अन्वर्जुनञ्च योद्धारो ह्यभितो ग्राममीरतिम्॥ १९॥ नमःस्वाहास्वधास्वस्तिवषडाद्यैयश्चतुर्थ्यपि । नमो देवाय ते स्वस्ति तुमर्थाद् भाववाचिनः ॥ २० ॥ पाकाय पक्तो याति तृतीया सहयोगके । हेत्वर्थे कुत्सितेऽङ्गे सा तृतीया वा विशेषणे॥ २१॥ पिताऽगात् सह पुत्रेण काणोऽक्ष्णा गदया हरिः । अर्थेन निवसेद् भृत्यः काले भावे च सप्तमी ॥ २२ ॥ विष्णौ नते भवेन् मुक्तिर्वसन्ते स गतो हरिम्।

हुई है ।। १६ ।। हेतु में तृतीया विभक्ति होती है । जैसे- अन्नेन वसेत् क्वापि । अर्थात् अन्न के हेतु कहीं भी रहें । यहाँ पर निवास का हेतु अन्न है । अतएव उसमें तृतीया विभक्ति हुई है । तादर्थ्य के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है । जैसे- **वृक्षाय जलम्** अर्थात् वृक्ष के लिए जल । यहाँ पर वृक्ष में तादर्थ्य है । अतएव उसमें चतुर्थी विभक्ति हुई है । जिसका परि, उप तथा आङ् इन उपसर्गों से सम्बन्ध हो उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है ।। १६ ।। जैसे वृषटोऽयं परिग्रामात् देवोऽयं बलवत् पुरा = अर्थात् पहले देवने गाँव से कुछ दूर हटकर बहुत जोर से वर्षा की । यहाँ पर परि उपसर्ग का ग्राम से योग है । अतएव ग्राम में पञ्चमी विभक्ति हुई है । दिशावाचक शब्द अन्यार्थक शब्द तथा ऋते शब्द के योग में भी पञ्चमी विभक्ति होती है । जैसे पूर्वो ग्रामात् । यहाँ पर दिशा के वाचक पूर्व शब्द का ग्राम से योग है अतएव ग्राम में पञ्चमी विभक्ति हुई है । ऋतेविष्णोः यहाँ पर ऋते शब्द का विष्णु से योग है अतएव विष्णु में पञ्चमी विभक्ति हुई है । नमुक्तिः इतरा हरेः । यहाँ पर अन्यार्थक के वाचक इतरा शब्द का हरि से योग है अतएव हरि में पञ्चमी विभक्ति हुई है ।। १७ ।। तथा पृथक् एवं विना आदि शब्दों का जिसके साथ योग होता है उसमें तृतीया अथवा पञ्चमी विभक्ति होती है । पृथक् ग्रामात्। यह पृथक् शब्द के योग में पञ्चमी विभक्ति का उदाहरण है । पृथग् विहारेण। यह पृथक् शब्द के योग में तृतीया विभक्ति का उदाहरण है । विना श्रियम्। यहाँ विना शब्द के योग के कारण श्रीशब्द में द्वितीया विभक्ति हुई है । विना श्रियः। यहाँ विना शब्द के योग में श्रीशब्द में पञ्चमी विभक्ति हुई है ।। १८ ।। जिस शब्द का कर्म प्रवचनीयों के साथ योग होता है, उस शब्द में द्वितीया विभक्ति होती है । अन्वर्जुन योद्धारः। अर्जुन के सन्निकट में योद्धा हैं । यहाँ अनु कर्मप्रवचनीय है । उसका अर्जुन से योग है । अतएव अर्जुन शब्द में द्वितीया विभक्ति हुई है। जिसके साथ अभितः शब्द का योग होता है, उसमें द्वितीया विभक्ति होती है । जैसे ग्राममभितः ईरितम् । यहाँ पर अमितः शब्द का ग्राम के साथ योग है, अतएव उसमें द्वितीया विभक्ति हुई है ।। १९।। नमः, स्वधा, स्वस्ति तथा वषट् आदि शब्दों का जिसके साथ योग होता है उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है । नमो देवाय । यह नमः शब्द के योग में चतुर्थी विभक्ति का उदाहरण है । नमः का देव शब्द के साथ योग है अतएव देव में चतुर्थी विभक्ति हुई है । ते स्वस्ति । यह स्वस्ति शब्द के योग में चतुर्थी विभक्ति का उदाहरण है । ते तुभ्यम् का वैकल्पिक रूप है । तुमुन् प्रत्ययार्थक भाव वाची शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है ।। २० ।। इसके उदाहरण हैं- पाकाय याति तथा पक्तो याति । अर्थात् पकाने के लिए जाता है। यहाँ पर 'पाक' तथा 'पक्ति' ये दोनों शब्द तुमुन् प्रत्ययार्थक भाववाची हैं अतएव इन दोनों में चतुर्थी विभक्ति हुई है । सह शब्द तथा सहार्थक शब्द के योग में हेतु अर्थ तथा कुत्सित अठ के वाचक में तृतीया विभक्ति होती है ।। २१ ।। सहार्थ के योग में तृतीया विशेषण वाचक से होती है । जैसे- पुत्रेण सहाऽगात् पिता । अर्थात् पुत्र के साथ पिता चले गए । यहाँ सह शब्द के योग विशेषण वाचक पुत्र में तृतीया विभक्ति हुई है । गदया हरिः। अर्थात् श्रीहरि गदा के साथ रहते हैं । यहाँ सहार्थ के योग में विशेषण वाचक गदा शब्द से तृतीया विभक्ति हुई है । काणोऽक्षणा । यह कुत्सित अंग के वाचक शब्द के योग में तृतीया विभक्ति का उदाहरण हैं । यहाँ कुत्सित अंग अक्षि है उसमें तृतीया विभक्ति हुई है । अर्थेन निवंसेद भृत्यः । अर्थात् भृत्य धन के लिए निवास करे । भृत्य के रहने के कारण धन है । अतएव तृतीया विभक्ति हुई है । काल वाचक और भाव के अर्थ में सप्तमी विभक्ति होती है ।। २२ ।। अर्थात् जिसकी क्रिया से अन्य क्रिया लक्षित होती है, उसके वाचक शब्द से सप्तमी विभक्ति होती है । जैसे- विष्णौ नते भवेन्मुक्तिः । अर्थात् भगवान् विष्णु को नमस्कार करने से मुक्ति होती है । यहाँ भगवान् विष्णु को नमस्कार करने की क्रिया से मुक्ति मिलने की क्रिया लक्षित होती है । 'वसन्ते स गतो हरिम्' अर्थात् वह वसन्त में श्रीहरि के पास गया । यहाँ पर वसन्तकाल का वाचक शब्द है अतएव उसमें सप्तमी विभक्ति हुई । (स्वामी, ईश, पति, साक्षी, सत् तथा दायाद आदि शब्दों का जिसके साथ योग हो उसमें षष्ठी तथा सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं । जैसे- नृणां स्वामी, नृषु स्वामी । अर्थात् मनुष्यों का स्वामी यहाँ स्वामी शब्द का योग होने के कारण नृ शब्द में जब षष्ठी विभक्ति हुई तो **नृणाम्** तथा सप्तमी विभक्ति होने पर नृषु हुआ।

नृणां स्वामी नृषु स्वामी नृणामीशः सतां पतिः ॥२३ ॥नृणां साक्षी नृषु साक्षी गोषु नाथो गवां पतिः । गोषु सूतो गवां सूतो राज्ञां दायादकोऽस्त्विह॥२४॥ अन्नस्य हेतोर्वसति षष्ठी स्मृत्यर्थ कर्मणि। मातुः स्मरति गोप्तारं नित्यं स्यात् कर्तृकर्मणोः । अपां भेत्ता तव कृतिर्न निष्ठादिषु षष्ठ्यपि ॥ २५॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कारककथनं नाम चतुःपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५४ ॥

पञ्चपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

समासः

स्कन्द उवाच– **षोढ़ा समासं वक्ष्यामि अष्टाविंशतिधा पुनः । नित्यानित्यविभागेन लुगलोपेन च द्विधा॥ १॥ कुम्भकारश्च नित्यः स्याद्धेमकारादिकस्तथा। राज्ञः पुमान् राज पुमान्, नित्योऽयञ्च समासकः ॥ २ ॥ कष्टश्रितो लुक्समासः कण्ठेकालादिकस्त्वलुक् । स्यादष्टधा तत्पुरुषः प्रथमाद्यसुपा सह॥३॥ प्रथमा तत्पुरुषोऽयं पूर्वं कायस्य विग्रहे । पूर्वकायोऽपरकायो ह्यधरोत्तरकायकः ॥ ४ ॥ अर्द्धं कणाया अर्द्धकणा भिक्षातूर्य्यमथेदृशम्। आपन्नजीविकस्तद्वत्**

नृणाम् ईशः में ईश शब्द के योगम् नृ शब्द से षष्ठी विभक्ति हुई है । **सताम् पतिः** । यहाँ पति शब्द के योग में सत् शब्द में षष्ठी विभक्ति हुई है ।। २३ ।। नृणाम् साक्षी तथा नृषु साक्षी। में साक्षी शब्द के योग के कारण नृ शब्द से षष्ठी तथा सप्तमी विभक्ति आयी है । **गोषुनाथः गवां पतिः** में क्रमशः नाथ तथा पति शब्द से योग होने के कारण गौ शब्द से षष्ठी विभक्ति तथा सप्तमी विभक्तियाँ आयी हैं । **गोषु सूतः, गवां सूतः** यहाँ पर सूत (उत्पन्न) शब्द के योग में ही गौ शब्द से षष्ठी एवं सप्तमी विभक्तियाँ आयी हैं । **इह राज्ञां दायाद कोऽस्तु** । यहाँ राजाओं का दायाद कोई हो यहाँ दायाद के योग में राजन् शब्द से षष्ठी विभक्ति हुई है ।। २४ ।। हेतु के वाचक हेतु शब्द का प्रयोग होने पर षष्ठी विभक्ति होती है । जैसे- अन्नस्य हेतोर्वसति । चूँकि वसने का कारण अन्न है । उस कारण के वाचक हेतु शब्द का योग होने से अन्न शब्द से षष्ठी विभक्ति आयी है । स्मरणार्थक धातु का प्रयोग होने पर उसके कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है । जैसे- मातुः स्मरति। यहाँ पर स्मरणार्थक स्मृ धातु का प्रयोग होने से उसके कर्म मातृ शब्द में षष्ठी विभक्ति हुई है । कृत्प्रत्यय के योग में कर्ता एवं कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है । अपां भेत्ता । भेतृ शब्द कृत्प्रत्ययान्त है अतएव उसके योग से उसके कर्मभूत अप् शब्द से षष्ठी विभक्ति आयी है । इसी तरह तव कृतिः। यहाँ कृति शब्द कृत् प्रत्ययान्त है अतएव उसके कर्तृभूत युष्मद् शब्द में षष्ठी विभक्ति हुई है । निष्ठा के योग में षष्ठी विभक्ति नहीं होती है । क्त, क्तवतु, शतृ, शानच्, उ, उक, क्त, तुमुन्, खलर्थ, तृन्, शानच् तथा चानश् आदि प्रत्यय निष्ठादि हैं । इनके भी योग में षष्ठी विभक्ति नहीं होती है । जैसे ग्रामं गतवान् इत्यादि में ।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का कारक निरूपण नामक तीन सौ चौवनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३५४ ॥

भगवान् स्कन्द ने कहा– मैं छह प्रकार के समासों का वर्णन करूँगा । फिर अवान्तर भेद से उसके अट्ठाइस भेदों का वर्णन करूँगा । समास नित्य तथा अनित्य के भेद से दो प्रकार का होता है । फिर लुक् तथा अलुक् के भी भेद से दो प्रकार का होता है ।। १ ।। कुम्भकार तथा हेमकार ये नित्य समास हैं । क्योंकि विग्रह वाक्य के द्वारा इन सबों से जाति विशेष का बोध नहीं हो सकता है । राज्ञः पुमान् = राजपुमान् यह अनित्य समास है । यह षष्ठी तत्पुरुष समास स्वपद विग्रह होने के कारण अनित्य समास है । कष्टं + श्रितः = कष्टश्रितः यह लुक् समास है क्योंकि कष्ट पद के अन्त में विद्यमान् द्वितीया विभक्ति का यहाँ लुक् हुआ है । कण्ठेकालः यह अलुक् समास है, क्योंकि कण्ठ शब्द के अन्त में विद्यमान् सप्तमी विभक्ति का यहाँ लुक् नहीं हुआ है । तत्पुरुष समास आठ प्रकार का होता है । प्रथमान्त आदि शब्द सुबन्त के साथ समस्त होते हैं । पूर्वं कायस्य इस विग्रह में जब पूर्वकायः शब्द बनता है तो प्रथमा तत्पुरुष होता है । कायस्य अपरम् = अपरकायः,

द्वितीया माधवाश्रितः ॥ ५ ॥ वर्षम्भोग्यो धान्यार्थश्च तृतीयया । चतुर्थी स्याद् विष्णुबलिर्वृकभीतिश्च पञ्चमी ॥ ६ ॥ राज्ञः पुमान् राजपुमान् षष्ठी वृक्षफलं तथा । सप्तमी चाक्षशौण्डोऽय महितो नञ्समासकः ॥ ७ ॥ कर्मधारयः सप्तधा नीलोत्पलमुखाः स्मृताः । विशेषणपूर्वपदो विशेष्योत्तरतस्तथा॥८॥ वैयाकरणखसूचिः शीतोष्णं द्विपदं शुभम् । उपमानपूर्वपदः शङ्खपाण्डर इत्यपि ॥ ९ ॥ उपमानोत्तरपदः पुरुषव्याघ्र इत्यपि । सम्भावनापूर्वपदो गुणवृद्धिरितीदृशम् ॥ १० ॥ गुण इति वृद्धिर्वाच्या सुहृदेव सुबन्धुकः । अवधारणपूर्वपदो बहुव्रीहिश्च सप्तधा ॥ ११ ॥ द्विपदश्च बहुव्रीहिरारूढ़भवनो नरः । अर्चिताशेषपूर्वोऽयं बहुङ्घ्रिः परिकीर्त्तितः ॥ १२ ॥ एते विप्राश्चोपदशाः सङ्ख्योत्तरपदस्त्वयम् । सङ्ख्योभयपदो यद्वद् द्वयेकत्रयो नरः॥१३॥ सहपूर्वपदोऽयं स्यात् समूलोद्धृतकस्तरुः । व्यतिहारलक्षणार्थः केशाकेशि नखानखि॥ १४॥ दिग्लक्ष्या स्याद् दक्षिणपूर्वा द्विगुराभाषितो द्विधा । एकवद्भावि द्विशृङ्गं पञ्चमूली त्वनेकधा ॥ १५ ॥ द्वन्द्व; समासो द्विविधो हीतरेतरयोगकः । रुद्रविष्णू समाहारो भेरीपटहमीदृशम् ॥ १६॥ द्विधाख्यातोऽव्ययीभावो नामपूर्वपदो यथा। शाकस्यमात्रा शाकप्रति यथाऽव्ययपूर्वकः ॥ १७॥ उपकुम्भञ्चोपरथ्यं प्राधान्येन चतुर्विधः । उत्तरपदार्थमुख्यो

कायस्य अधरम् = अधरकायः, कायस्य उत्तरम् = उत्तरकायः आदि प्रथमा तत्पुरुष समास के उदाहरण हैं ।। २-४ ।। अर्धं कणायाः इस विग्रह में अर्द्धकाणा बनता है तुर्यं भिक्षायाः इस विग्रह में भिक्षातुर्यम् तथा तुर्यभिक्षा ये दो रूप बनते हैं । यहाँ षष्ठी तत्पुरुष हैं । आपन्न जीविकः में द्वितीया तत्पुरुष है । इसका विग्रह है- आपन्नो जीविकाम् । पक्षान्तर में जीविकापन्नः भी रूप होता है । माधवम्+ आश्रितः इस विग्रह में निष्पन्न रूप माधवाश्रितः में भी द्वितीया तत्पुरुष है । वर्षभोग्यः में भी द्वितीया तत्पुरुष है । इसका विग्रह है- **वर्षम् भोग्यः** । धान्येन + अर्थः इस विग्रह में व्युत्पन्न **धान्यार्थः** में तृतीया तत्पुरुष है । विष्णवे + बलिः = विष्णु बलिः में चतुर्थी तत्पुरुष है । वृकात् + भीतिः = वृकभीतिः में पञ्चमी तत्पुरुष समास है ।। ५-६ ।। राज्ञः पुमान् = राजपुमान् तथा वृक्षस्य फलम्= वृक्षफलम् में षष्ठी तत्पुरुष हैं । अक्षेषु शौण्डम्= अक्षशौण्डम् में सप्तमी तत्पुरुष है । न + हितः = अहितः में नञ् तत्पुरुष समास है ।। ७ ।। नीलं चेदमुत्पलम् = नीलोत्पलम् में कर्मधारय समास होता है । कर्मधारय समास सात प्रकार का होता है । (१) विशेषण पूर्वपद- जिस समस्त पद में पूर्वपद विशेषण होता है । नीलोत्पलम् इसका उदाहरण है- (२) विशेष्योत्तर विशेषण पद = जैसे वैयाकरणः खसूचिः (कुछ पूछने पर आकाश की ओर ताकने वाला । ३- विशेषणोभयपद- जैसे- शीतोष्णः । ४- उपमानपूर्वपद- शंखपाण्डुरः अर्थात् शंख के समान उजला ।। ८-९ ।। (५) उपमानोत्तर पद- पुरुष व्याघ्रः (पुरुषो व्याघ्र इव) (६) सम्भावनापूर्वपद- जिसमें पूर्वपद सम्भावनात्मक हो । जैसे- गुणवृद्धिः (गुण इति वृद्धि स्यात्) अर्थात् गुण शब्द कहने से वृद्धि की सम्भावना होती है । (७) अवधारण पूर्वपद- जहाँ समस्त पद के पूर्वपद में निश्चयार्थक शब्द हों । जैसे- सुहृदेव सुबन्धुकः । बहुव्रीहि समास भी सात प्रकार का होता है- (१) द्विपद बहुव्रीहि- इसमें दो पदों का समास होता है । जैसे- आरूढभवनोनरः- जो मनुष्य भवन पर चढ़ गया है । आरूढं भवनं येन सः- यह इस पद का विग्रह है । (२) बहुपद बहुव्रीहि- जिसमें दो से अधिक पदों का बहुव्रीहि समास होता है। जैसे- अर्चिताशेषपूर्व; (अर्चिता अशेषाः पूर्वा यस्य सः) यह इस पद का विग्रह है ।। १२ ।। (३) संख्योत्तपर पद बहुव्रीहि- एते विप्रा उपदशाः । अर्थात् ये ब्राह्मण लगभग दस हैं । यहाँ पर संख्यात्मक पद उपदश उत्तर पद है । (४) संख्योभयपद- जैसे द्वित्रा द्वयेकत्रयः । (५) सहपूर्वपद बहुव्रीहि- जैसे समूलोद्धृतकः तरुः । (सहमूलेन उद्धृतम् कं शिखा यस्य सः) अर्थात् जड़ के साथ जिसकी शिखा उखाड़ ली गयी है ऐसा पेड़। (६) व्यतिहार लक्षण बहुब्रीहि- इसके उदाहरण हैं- केशा केशि युद्धम् (केशं च केशं च प्रहृत्य युद्धम्। नखानखि = नखं च नखं च प्रहृत्य यस्मिन् युद्धम् ।। १४ ।। (७) दिग्लक्षणार्थक बहुव्रीहि- दक्षिण पूर्वी दक्षिण तथा पूर्व की दिशा का अन्तराल । द्विगु समास दो प्रकार का बतलाया गया है । ये दोनों भेद एकपद्भाव तथा अनेकधा स्थिति को लेकर होने वाले कर्मधारय समास । जिस समास का पूर्वपद संख्यावाचक होता है उसे द्विगु समास कहते हैं । द्विशृङ्गम् तथा पञ्चमूली ये दोनों एकपद्भाव द्विगु के उदाहरण हैं । द्वयोः शृंगयोः समाहार इस विग्रह में एकपद्भावप्रद सिद्ध होता है । पञ्चानांमूलानां समाहार इस विग्रह में एकवद्भाव होकर पञ्चमूली पद सिद्ध होता है । सप्तर्षयः यह अनेकपद् भाव द्विगु का उदाहरण है ।। १५ ।। द्वन्द्व समास दो प्रकार का होता है- (१) इतरेतर योग द्वन्द्व तथा (२) समाहार द्वन्द्व । इतरेतर द्वन्द्व का उदाहरण है- रुदविष्णू । रुद्रश्च विष्णुश्च इसका विग्रह है । समाहार द्वन्द्व का उदाहरण है भेरी पटहम् । भेरी

द्वन्द्वश्चोभयमुख्यकः। पूर्वार्थेशोऽव्ययीभावो बहुव्रीहिश्च बाह्यतः ॥ १८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये समासकथनं नाम पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५५ ॥

षट्पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

तद्धितम्

स्कन्द उवाच— **तद्धितं त्रिविधं वक्ष्ये सामान्यवृत्तिरीदृशम् । लच्यंसलो वत्सलः स्यादिलचि स्यात् तु फेनिलम् ॥ १ ॥ लोमशः शे पामनो ने इलचि स्यात् तु पिच्छिलः । अणिप्राज्ञ आर्च श्राद्धः स्यात् दन्तादुरचि दन्तुरः ॥ २ ॥ रे स्यान्मधुरं सुषिरं रे स्यात् केशव ईदृशः । हिरण्यवो मणिवो वे वलचिस्याद्रजस्वलः॥ ३॥ इनौ धनी करी हस्ती धनिकं ठनिसमीरितम् । पयस्वी विनि मायावी ऊर्णायुर्युसि ईरितम् ॥ ४ ॥ वाग्मी ग्मिनि आलचि स्याद् वाचालश्चाटचीरितम् । फलिनो बर्हिणः केकी वृन्दारकस्तथारकनि ॥५॥ आलुचि शीतन्न सहते शीतालुः श्चालुरीदृशः । हिमालुरालुचि स्याच्च**

पटहश्च अनयोः समाहारः । यहाँ पर तुर्याङ्ग होने के कारण एकवद् भाव हुआ है ।। १६ ।। अव्ययी भाव समास के भी दो भेद होते हैं । नाम पूर्व पद तथा अव्यय पूर्व पद । नाम पूर्व पद का उदाहरण है- शाकस्यमात्रा = शाकपति। यहाँ शाक नाम है तथा प्रति अव्यय मात्रार्थक है । उपकुम्भम् = उपरथ्यम् । ये अव्यय पूर्व पद के उदाहरण हैं । इसमें नाम उत्तर पद है तथा सामीप्यार्थक उप अव्यय पूर्व पद में है । प्रधान रूप से समास के चार भेद किए जाते हैं । उत्तर पदार्थ प्रधान (तत्पुरुष) समास । उभयपदार्थ प्रधान द्वन्द्व समास, पूर्व पदार्थ प्रधान अव्ययी भाव तथा अन्य पदार्थ प्रधान बहुब्रीहि समास ।। १७-१८।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का समास वर्णन नामक तीन सौ पचपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३५५ ॥

भगवान् स्कन्द ने कहा— अब मैं तीन प्रकार के तद्धितों का वर्णन करूँगा । सामान्यवृत्ति तद्धित, अव्यय तद्धित तथा भाववाचक तद्धित । अंस शब्द से लच् प्रत्यय होने पर अंसलः बनता है । इसका अर्थ है बलवान् । वत्स शब्द से लच् प्रत्यय होने पर वत्सलः बनता है । इसका अर्थ है स्नेहवान् । फेन शब्द से इलच् प्रत्यय होकर के निलः बनता है । इसका अर्थ है, फेनयुक्त । लोमादि गण में पठित शब्दों से श प्रत्यय होने पर लोमशः आदि रूप व्युत्पन्न होते हैं । लोमश का अर्थ है लोमवान् (पामादि गण में पठित शब्दों से न प्रत्यय होने पर पामनः पद बनता है । पामनः का अर्थ है पामवान् अर्थात् जिसको खुजली हुई हो । पिच्छादि शब्दों से इलच् प्रत्यय होने पर पिच्छिलः बनता है । पिच्छिलः का अर्थ है पंख वाला । प्रज्ञा शब्द से अण् प्रत्यय होने पर प्राज्ञः बनता है । प्राज्ञः = बुद्धिमान् । अर्चा शब्द से नण प्रत्यय होने पर आर्चः बनता है, आर्चः = अर्चावान् । श्रद्धा शब्द से ण प्रत्यय करके श्राद्धः बनता है । श्राद्धः = श्रद्धावान् । दन्त शब्द से उरच् प्रत्यय होकर दन्तुरः बनता है दन्तुरः = उठे हुए दाँतों वाला ।। २ ।। मधु शब्द से र प्रत्यय होने पर मधुरम् बनता है । मधुरम् = माधुर्य युक्त । सुषि शब्द से र् प्रत्यय होकर सुषिरम् बनता है। सुषिरम् = छिद्र युक्त । केश शब्द से व प्रत्यय होने पर केशवः बनता है । केशवः = घुंघराले केश वाले भगवान् श्रीकृष्ण । हिरण्य शब्द से व प्रत्यय होकर हिरण्यवः बनता है, तथा मणि शब्द से व प्रत्यय होकर मणिवः बनता है । हिरण्यवः = हिरण्यवान् (सुवर्ण सम्पत्ति वाला) तथा रजस् शब्द से वलच् प्रत्यय होकर रजस्वलः बनता है । रजस्वलः = धूल भरा हुआ है ।। ३ ।। क्रमशः धन, कर तथा हस्त शब्द से इनी प्रत्यय होकर धनी, करी तथा ठ का इक् होकर धनिक् बनता है । धनिक = धनवान् । पयस् तथा माया शब्द से विनि प्रत्यय होने पर पयस्वी तथा मायावी शब्द बनते हैं । पयस्वी = दुग्ध वाला, मायावी = माया करने वाला । ऊर्णा शब्द से मत्वर्थीय युस् प्रत्यय होने पर ऊर्णायुः बनता है । ऊर्णायुः = ऊनी । वाच् शब्द से ग्मिनि प्रत्यय होने पर वाग्मी शब्द बनता है । वाग्मी = बोलने में प्रखर । वाच् शब्द से आलच् प्रत्यय होने पर वाचालः व्युत्पन्न होता है । वाच् शब्द से आटच् प्रत्यय होने पर वाचाटः बनता है । फल शब्द तथा बर्ह शब्द से इनच् प्रत्यय होने पर फली तथा बर्ही पद व्युत्पन्न होते हैं । फली = फल वाला । बर्ही = बर्हों वाला (मयूर) । वृन्द शब्द से आरकन् प्रत्यय होने पर वृन्दारकः होता है । वृन्दारकः = देव ।।४-५।।

हिमं न सहते तथा ॥ ६ ॥ रूपं वातादुलचि स्याद् वातुलश्चात्रापत्यके । वासिष्ठः कौरवो वासः पाञ्चालः सोऽस्य वासकः ॥ ७ ॥ तत्र वासो माथुरः स्याद् वेत्यधीते च चान्द्रकः। व्युत्क्रमं वेत्ति क्रमकः कोशंवेतीति कौशकः॥८॥ प्रियङ्गूनां भवं क्षेत्रं प्रैयङ्गवीनकं खञि । मौद्गीनं कौद्रवीणञ्च वैदेहश्चानपत्यके॥ ९॥ इञि दाक्षिर्दाशरथिः फकि नाडायनादिकम् । आश्वायनः स्याच्च फञि यञि गार्ग्यश्चवात्सकः ॥ १० ॥ ढकि स्याद् वैनतेयादिश्चाटकेरस्तथैरकि ढकि गोधेरको रूपं गौधारश्चात्रकीर्त्तितम्॥ ११॥ क्षत्रियो घे कुलीनः खे ण्ये कौरव्यादयः स्मृता; । यति मूदर्धन्यमुख्यादिः सुगन्धिरिति रूपकम् ॥ १२ ॥ तारकादिभ्य इतचि नभस्तारकितादयः । अनङि् स्याच्च कुण्डोध्नी पुष्पधन्वसुधन्वनी॥ १३॥ चुञ्चुपी वित्तचञ्चुः

शीतं न सहते इस अर्थ में शीत शब्द से आलुच् प्रत्यय होने पर शीतालुः शब्द व्युत्पन्न होता है । इसी तरह हिमं न सहते इस अर्थ में हिमालुः शब्द व्युत्पन्न होता है ।। ६ ।। वात शब्द से उलच् प्रत्यय करके वातालुः शब्द व्युत्पन्न होता है । वसिष्ठ शब्द से अपत्य अर्थ में अण् प्रव्यय करके वसिष्ठस्यापत्यं पुमान्। इस अर्थ में वासिष्ठः बनता है । वासिष्ठः वसिष्ठ की सन्तान । कुरु शब्द से अण् प्रत्यय करके कौरवः पद बनता है । कौरवः = कुरु की सन्तान । मथुरा में उसका वास है, इस अर्थ में मथुरा शब्द से अण् प्रत्यय होने पर माथुरः बनता है । पञ्चाले वासोऽस्य। इस अर्थ में पञ्चाल शब्द से अण् प्रत्यय करने पर पाञ्चालः पद व्युत्पन्न होता है । (चान्द्रम् व्याकरणमधीते तद्वेद वा) अर्थात् चान्द्र व्याकरण पढ़ता है अथवा जानता है, इस अर्थ में द्वितीयान्त समर्थ चान्द्र पद से अण् प्रत्यय होकर चान्द्रः पद व्युत्पन्न होता है । चान्द्र एव। इस अर्थ में चान्द्र शब्द से स्वार्थ में क प्रत्यय होकर चान्द्रकः पद बनता है ।। ७ ।। क्रमादि शब्दों से बुन् प्रत्यय होता है । क्रमं वेत्ति। अर्थात् जो क्रम को जानता है, इस अर्थ में क्रम शब्द से वुन् प्रत्यय तथा वु को अक् आदेश होकर क्रमकः शब्द व्युत्पन्न होता है । कोशं वेत्ति- जो कोश को जानता है इस अर्थ में, कोश शब्द से वुन् प्रत्यय होकर, वुन् को अक होने पर कौशकः पद व्युत्पन्न होता है ।। ८ ।। 'प्रियंगूनाम् भवं क्षेत्रम्'। जहाँ पर प्रियंगु कंगनी उत्पन्न होती है वह क्षेत्र इस अर्थ में षष्ठ्यन्त समर्थ प्रियंगु शब्द से खञ् प्रत्यय होकर तथा उ के स्थान पर ईना देश करके तथा आदि अच् की वृद्धि करके 'प्रैयंगवीनम् पद व्युत्पन्न होता है । मुद्गानां भवं क्षेत्रम् = वह क्षेत्र जहाँ मूँग उत्पन्न होती है । इस अर्थ में समर्थ षष्ठ्यन्त मुद्ग वाची शब्द से खञ् प्रत्यय, ख को ईनादेश तथा आदि अच की वृद्धि करके मौद्गीनम् पद व्युत्पन्न होता है । इसी तरह क्रोद्रवाणां भवं क्षेत्रम्। इस अर्थ में कौद्रवीणम् पद बनता है । विदेहसय अपत्यं पुमान्। इस अर्थ में विदेह शब्द से अण् प्रत्यय करके वैदेहः पद व्युत्पन्न होता है ।। ९ ।। दक्षस्य अपत्यं पुमान्। इस अर्थ में दक्ष शब्द से अत इञ् सूत्र से इञ् प्रत्यय तथा आदि अच् की वृद्धि करके दाक्षिः पद व्युत्पन्न होता है । इसी तरह दशरथस्य अपत्यं पुमान् इस अर्थ में दाशरथिः पद व्युत्पन्न होता है । नडस्या गोत्रापत्यम् इस अर्थ में नड शब्द से फ प्रत्यय तथा का आयना देश तथा आदि अच् की वृद्धि करके नाडग्यन आदि पद व्युत्पन्न होते हैं । आदि शब्द से चारीयणः (चरस्य गोत्रापत्यम्) आदि पदों को लेना चाहिए ।। ९ ।। इसी तरही अश्वस्य गोत्रापत्यम् इस अर्थ में अश्व शब्द से फञ् प्रत्यय होकर तथा उसका आयना देश एवं आदि अच् की वृद्धि होकर आश्वायनः यह रूप व्युत्पन्न होता है । गर्गस्य गोत्रापत्यम्। इस अर्थ में गर्ग शब्द से यञ् प्रत्यय होकर तथा आदि अच् की वृद्धि होकर गार्ग्यः तथा वत्सस्य गोत्रापत्य अर्थ में वत्स शब्द से यञ् प्रत्यय होकर वात्स्यः पद व्युत्पन्न होता है ।। १० ।। विनतायाः अपत्यं पुमान् इस अर्थ में बिनता शब्द से ढक् प्रत्यय होकर तथा ढ के स्थान में एयादेश होकर तथा आदि अच् की वृद्धि होकर वैनतेयः शब्द व्युत्पन्न होता है । श्लोक के आदि पद से सुमित्रायाः अपत्यं सौमित्रेयः पद को लेना चाहिए। चटकायाः (गौरैया पक्षी) अपत्यं नरः इस अर्थ में चटका शब्द से ऐरक्प्रत्यय होकर तथा आदि अच् की वृद्धि होकर चाटकैटः पद व्युत्पन्न होता है । गोधायाः अपत्यम्। इस अर्थ में गोधा शब्द से ढ्रक प्रत्यय होकर गौधेरः पद व्युत्पन्न होता है । गोधा शब्द से आरक् प्रत्यय होने पर गौधारः पद व्युत्पन्न होता है । ऐसा वैयाकरणों ने बतलाया है ।। ११ ।। क्षत्र शब्द से जातिबोधक घ प्रत्यय तथा घ को इयादेश करके क्षत्रियः रूप व्युत्पन्न होता है । कुल शब्द से ख प्रत्यय तथा ख के स्थान में ईनादेश करके कुलीनः यह पद व्युत्पन्न होता है । कुरु शब्द से अपत्य अर्थ में ण्य प्रत्यय करके आदि अच की वृदि तथा गुण एवं वान्ता देश कर कौरव्यः पद व्युत्पन्न होता है । शरीर के अवयव के वाचक मूर्धन् तथा मुख शब्द से यत् प्रत्यय होकर मूर्द्धन्यः तथा मुख्यम् पद व्युत्पन्न होते हैं । सुगन्ध शब्द से इ प्रत्यय होने से सुगन्धिः पद व्युत्पन्न होता है ।। १२ ।। नभस् तारिकतम्। इत्यादि वाक्य का तारकितम् पद। तारकाः संजाता अस्य। इस विग्रह में तारक् शब्द से इतच् प्रत्यय होकर व्युत्पन्न होता है । तारकादि गण में पठित शब्दों से इतच् प्रत्यय होता है । कुण्डम् उधसो यस्याः अर्थात् जिसका स्तन कुण्ड के समान हैं इस अर्थ में, कुण्डोधस् शब्द से अनङ् प्रत्यय करके

स्याद् विततमस्य च शब्दके । चणपि स्यात् केशचणः रूपे स्यात् पटुरूपकम् ॥ १४ ॥ इयसौ च पटीयान् स्यात् तरप्यक्षतरादिकम् । पचतितराञ्च तरपि तमप्यटतितमामपि ॥ १५ ॥ मृदुकल्पः कल्पपि स्यादिन्द्रकल्पोऽर्ककल्पकः । राजदेशीयो देशीये देश्ये देश्यादिरूपकम्॥ १६॥ पटुजातीयो जातीये जानुमात्रञ्च मात्रचि । ऊरुद्वयसो द्वयसचि ऊरुदघ्नञ्च दघ्नचि ॥ १७॥ तयपि स्यात् पञ्चतयः दौवारिकष्ठकीरितम् । सामान्यवृत्तिरुक्ताऽथ अव्ययाख्यश्चतद्धितः॥ १८॥ यस्माद् यतस्तसिलि च यत्र तत्र त्रलीरितम् । अस्मिन् काले ह्यधुना स्यादिदानीञ्चैव दान्यपि ॥ १९ ॥ सर्वस्मिन् सर्वदा दास्यात् तस्मिन् काले र्हिलीरितम् । तर्हि ऽस्मिन् काल इह कर्हि कस्मिंश्च कालके ॥ २० ॥ यथा थालि थमि कथं पूर्वस्यां दिशि सञ्चयेत् । अस्ताति

तथा ङीष् प्रत्यय होने पर कुण्डोध्नी शब्द व्युत्पन्न होता है । पुष्पं धनुः यस्य इस विग्रह में पुष्पधनुष् शब्द से अनङ्ग प्रत्यय करके (पुष्पधन्वा शब्द व्युत्पन्न होता है) इसी तरह सुष्ठु धनुर्यस्य विग्रह में सुधनुष् शब्द से अनङ् प्रत्यय करके सुधन्वा पद व्युत्पन्न होता है ।। १३ ।। वितेन प्रसिद्धः इस अर्थ में वित्त शब्द से चुञ्चुप् प्रत्यय होने पर वित्तचुञ्चुः पद व्युत्पन्न होता है वित्त चुञ्चुः = धन के कारण प्रसिद्ध । शब्दे प्रसिद्धः इस अर्थ में शब्द-शब्द से चुञ्चुप् प्रत्यय होने पर शब्द चुञ्चुः शब्द व्युत्पन्न होता है । शब्द चुञ्चुः = शब्द शास्त्र (व्याकरण शास्त्र) में प्रसिद्ध विद्वान् । जो अपने केश से प्रसिद्ध हैं इस अर्थ में केश शब्द से चणप् प्रत्यय करके केशचणः शब्द व्युत्पन्न होता है । प्रशस्तः पटुः इस विग्रह में पटु शब्द से प्राशस्त्य अर्थ में रूप प्रत्यय करने पर पटुरूपः (प्रशस्त पटु) शब्द व्युत्पन्न होता है ।। १४ ।। अनयोरति शयेन पटुः अर्थात् यह इन दोनों में अतिशय पटु है, इस अर्थ में पटु शब्द से इयसुन् प्रत्यय करने पर पटीयान् यह रूप बनता है । इसी अर्थ में अक्ष शब्द से तरप् प्रत्यय करने पर अक्षतरः पद व्युत्पन्न होता है । आदि शब्द से इसी अर्थ में व्युत्पन्न होने वाले पटुतर आदि शब्दों को जानना चाहिए । अयम् अनयोरतिशयेन पचति। अर्थात् यह इन दोनों में श्रेष्ठ रसोइया है इस अर्थ में पंचति शब्द से तरप् प्रत्यय करके आम् कर देने से पचतितराम् रूप व्युत्पन्न होता है । अयमेतेषु अतिशयेन अटति अर्थात् इन सबों में सर्वाधिक घूमता है, इस अर्थ में अटति शब्द से तमप् प्रत्यय करके आम् करने पर अटतितमाम् यह रूप व्युत्पन्न होता हे ।। १५ ।। कुछ न्यूनता अथवा असमाप्ति का अर्थ सूचित करने के लिए सुबन्त तथा तिङन्त शब्दों से कल्पप्, देश्य तथा देशी यर प्रत्यय होते हैं । किञ्चिन्न्यूनं मृदुः इस अर्थ में मृदु शब्द से कल्पप् प्रत्यय होकर मृदुकल्पः शब्द व्युत्पन्न होता है । इसी तरह ईषदुनः इन्द्रः इस अर्थ में इन्द्र शब्द से कल्पप् प्रत्यय होकर इन्द्रकल्पः शब्द व्युत्पन्न होता है । इसी तरह से अर्ककल्पः शब्द व्युत्पन्न होता है । ईषदुनः राजा। इस अर्थ में राजन् शब्द से देशी यर प्रत्यय करके राजदेशीय शब्द व्युत्पन्न होता है । इसी अर्थ में राजन् शब्द से देश्य प्रत्यय करने पर राजदेश्यः शब्द व्युत्पन्न होता है ।। १६ ।। पटु के प्रकार का इस अर्थ में पटु शब्द से जातीय प्रत्यय करने पर पटुजातीयः रूप बनता है । जानु शब्द से मात्रा के बोधक मात्रच् प्रत्यय के करने पर जानुमात्रम् शब्द व्युत्पन्न होता हे । जानुमात्रम् = घुटने तक । ऊरु शब्द से द्वयसच् प्रत्यय करने पर ऊरुद्वयास शब्द व्युत्पन्न होता है । ऊरुशब्द से दघ्नच् प्रत्यय करने पर ऊरुदघ्नम् शब्द व्युत्पन्न होता है ।। १७ ।। पञ्च अवयवा यस्य तत्। अर्थात् जिसके पाँच अवयव हों इस अर्थ में पञ्चन् शब्द से तयप् प्रत्यय करने पर पञ्चतयम् शब्द बनता है । द्वारं रक्षति अथवा द्वारि नियुक्तः। इस अर्थ में द्वार शब्द से ठक् प्रत्यय करके ठक् का इकादेश करने पर द्वौवारिकः पद व्युत्पन्न होता है । यहाँ तद्धित की सामान्य वृत्ति का वर्णन किया गया अब अव्यय तद्धित का वर्णन किया जाता है। तत् शब्द से तसिल् प्रत्यय करने पर ततः शब्द व्युत्पन्न होता है । यस्मात् इस अर्थ में यत् शब्द से तसिल प्रत्यय करने पर यतः शब्द व्युत्पन्न होता है । यस्मिन् काले इस अर्थ में इदम् शब्द से अधुना प्रत्यय होने पर तथा इदम् के स्थान में इशादेश अनुबन्ध लोप तथा यस्येतिय च सूत्र से इ का लोप होने पर अधुना पद व्युत्पन्न होता है । अधुना = इस समय । अस्मिन् काले। के ही अर्थ में इदम् शब्द से दानी प्रत्यय करके तथा इदम् के स्थान में इ आदेश करके इदानीम् यह रूप बनता है ।। १९ ।। सर्वस्मिन् काले अर्थात् हर समय के अर्थ में सर्व शब्द से दा प्रत्यय करके सर्वदा शब्द व्युत्पन्न होता है । तस्मिन् काले इस अर्थ में तत् शब्द र्हिल् प्रत्यय करके तर्हि शब्द व्युत्पन्न होता है । अस्मिन् इस अर्थ में इदम् शब्द से ह प्रत्यय करके तथा इदम् के स्थान में इ आदेश करके इह यह रूप बना है । इह = इस, कस्मिन् काले। इस अर्थ में, किम् शब्द से र्हिल् प्रत्यय करके तथा किमः कः से किम् का क आदेश होने पर कर्हि यह रूप व्युत्पन्न होता है । कर्हि = कब ।। २० ।। येन प्रकारेण इस अर्थ में यत् शब्द से प्रकार के अर्थ में थाल् प्रत्यय होने पर यथा तथा केन प्रकारेण। इस अर्थ में किम् शब्द से थम् प्रत्यय होने पर तथा किम् को क आदेश होने पर कथम् यह रूप व्युत्पन्न होता है । दिशा के अर्थ में रूढ़ शब्द से अस्ताति प्रत्यय होता है । श्लोक में पूर्वस्याः पञ्चमी विभक्ति का तथा पूर्व प्रथमा विभक्ति प्रतिरूप हैं । अर्थात् दिशा का वाचक शब्द यदि सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त तथा प्रथमान्त हो तब ही उससे अस्ताति प्रत्यय होता है । इस अस्ताति प्रत्यय के स्थान पर असि प्रत्यय करके,

चैव पूर्वस्याः पूर्वादिग्रामणीयकाः ॥ २१ ॥ पुरस्तात् सञ्चरेद् गच्छेत् सद्यस्तुल्येऽहनीरितम् । उति पूर्वाब्दे च परुत् पूर्वतरे परार्य्यपि ॥ २२ ॥
ऐषमोऽस्मिन् संवत्सरे रूपंसमसि चेरितम् । एद्यवौ परेद्यवि स्यात् परस्मिन्नहनीरितम् ॥ २३ ॥ अद्यास्मिन्नहनि द्ये स्यात् पूर्वेद्युश्च तथैद्युसि ।
दक्षिणस्यां दिशि वसेत् दक्षिणाद दक्षिणाह्युभौ ॥ २४ ॥ उत्तरस्यां दिशि वसेदुत्तराह्युतराह्युभौ । उपरि वसेदुपरिष्टाद् भवेद्रिष्टाति ऊर्ध्वकात्॥ २५॥
उत्तरेण च पित्रोक्तम् आचि च स्याच्च दक्षिणा । आहौ दक्षिणाहि वसेद् द्विप्रकारकं द्विधा च धा ॥ २६ ॥ ध्यमुञि चैकध्यं कुरु त्वं द्वैध्यन्धमुञि
चेदृशम् । द्वौ प्रकारौ द्विधा धाचि आसुसुरतरं यथा॥२७॥ निपातास्तद्धिताः प्रोक्ताः तद्धितो भाववाचकः । पटोर्भावः पटुत्वन्त्वपटुता तलिचेरितम्॥२८॥

सप्तमी में पूर्वस्याम् पञ्चमी में पूर्वस्याः तथा प्रथमा में पूर्वा रूप होता है ।। २१ ।। पुरस् इस अव्यय से अस्ताति प्रत्यय होकर पुरस्तात् यह रूप सिद्ध होता है । पुरस्तात् गच्छेत् यह इस शब्द का वाक्य का उदाहरण है । समाने अहनि = एक ही दिन में इस अर्थ में समान शब्द का स् तथा अहनि शब्द का द्यस्- आदेश होकर सद्यः यह रूप बनता है । पूर्वापदे = पहले वर्ष में इस अर्थ में पूर्व शब्द के स्थान में पर तथा उससे उत् प्रत्यय होकर परुत् शब्द का प्रयोग किया जाता है । पूर्व से पूर्व वर्ष में इस अर्थ में परारि शब्द का प्रयोग होता है । इसमें पूर्व के स्थान में पर तथा उससे आरि प्रत्यय होकर परारि यह रूप बनता है ।। २२ ।। अस्मिन् संवत्सरे इस अर्थ में ऐषमः पद का प्रयोग होता है । इसमें इदम् के स्थान में इ आदेश होकर समसण् प्रत्यय होता है । अकार णकार की इत्संज्ञा होकर इ + समः इस अवस्था में सकार के स्थान में मूर्ध न्यादेश एवं आदि अच् की वृद्धि होकर ऐषमः यह रूप बनता है । परस्मिन् अहनि= दूसरे दिन इस अर्थ में परशब्द से एद्यवि प्रत्यय होकर परेद्यवि यह रूप बनता हे ।। २३ ।। अस्मिन् अहनि = आज के दिन इस अर्थ में इदम् के स्थान में अ आदेश करके उससे 'द्य' प्रत्यय करके अद्य यह रूप बनता है । पूर्वस्मिन् दिने = पहले दिन इस अर्थ में पूर्व शब्द से द्युस् प्रत्यय करके पूर्वेद्युः यह रूप बनता है । दक्षिणस्याम् दिशि दूरे वसेत् = दक्षिण दिशा में दूर रहें । दक्षिणस्याम् दूरे इस अर्थ में दक्षिण शब्द से आहि प्रत्यय होकर दक्षिणाहि शब्द व्युत्पन्न होता है और वाक्य होता है- दक्षिणाहि वसेत् जहाँ पर दक्षिण शब्द से आत् प्रत्यय होता है वहाँ पर दक्षिणात् रूप बनता है । जहाँ पर तसिल होता है वहाँ पर दक्षिणातः रूप बनता है ।। २४ ।। उत्तरस्यां दिशि वसेत् इस अर्थ में उत्तर शब्द से आत् प्रत्यय होने पर उत्तरात् यह पद व्युत्पन्न होता है । उत्तर शब्द से आहि प्रत्यय होने पर उत्तराहि यह रूप बनता है । उपरि वसेत् = ऊपर रहे इस अर्थ में ऊर्ध्व शब्द स रिष्टातिल् प्रत्यय होने पर तथा ऊर्ध्व के स्थान में उप आदेश होने पर उपरिष्टात् यह रूप बनता है । जहाँ पर ऊर्ध्व शब्द का उप् आदेश होकर रिल् प्रत्यय होकर उपरि यह रूप निष्पन्न होता है ।। २५ ।। उत्तर शब्द से एनप् प्रत्यय होकर उत्तरेण यह रूप बनता है । दक्षिण शब्द से आच् प्रत्यय होकर दक्षिणरा यह रूप बनता है । दक्षिण शब्द से आहि प्रत्यय होने पर दक्षिणाहि यह रूप बनता है । दो प्रकार के अर्थ में द्वि शब्द से धाट् प्रत्यय होकर द्विधा यह रूप होता हे । इसी तरह त्रिधा, चतुर्धा पञ्चधा इत्यादि रूप बनते हैं ।।२६।। एक शब्द से प्रकार अर्थ में ध्यमुञ् प्रत्यय होकर तथा आदि अच् की वृद्धि होकर 'ऐकध्यम्' यह रूप बनता है । द्वैध्यम् रूप भी द्वि शब्द से ध्यमुञ् प्रत्यय होकर बनता है । त्वं द्वैध्यम् कुरु = तुम दो प्रकार का करो । द्वैध्यम् के ही समान् त्रैध्यम् भी बनता है । दो प्रकार के अर्थ में द्वि शब्द से धाच् प्रत्यय करके द्विधा यह रूप बनता है । यहाँ तक निपात संज्ञक तद्धितों का वर्णन किया गया अब भाववाचक तद्धित का वर्णन किया जा रहा है ।। २७ ।। पटोर्भावः इस अर्थ में पटु शब्द से त्व प्रत्यय होकर पटुत्वम् यह रूप बनता है। पटु शब्द से भाव अर्थ में तल् प्रत्यय होकर पटुता यह रूप बनता है ।। २८ ।। पृथोर्भावः इस अर्थ में पृथु शब्द से इमनिच् प्रत्यय होकर प्रथिमा यह रूप बनता है । प्रथिमा = मोटापन। सुखस्य भावः इस अर्थ में सुख शब्द से भाव अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय होकर सौख्यम् यह रूप निष्पन्न होता है । स्तेनस्य भावः कर्मूवा = चोर का भाव अथवा कर्म, इस अर्थ में स्तेयम् यह रूप सिद्ध होता है । सख्यु भावः = सखा के भाव इस अर्थ में 'य' प्रत्यय होकर सख्यम् यह रूप बनता है ।। २९ ।। कपेर्भावः कर्म वा = कपि का भाव अथवा कर्म इस अर्थ में कपि शब्द से ढक् प्रत्यय करके ढ का एयादेश आदि अच् की वृद्धि तथा गुण करने पर कापेयम् यह रूप सिद्ध होता है । इसी तरह 'सेना एव सैन्यम्' इस अर्थ में सेना शब्द से स्वार्थ में ष्यञ् प्रत्यय करके सैन्यम् यह रूप निष्पन्न होता है । शास्त्रीयात् पथः अनपेतम् = जिसने शास्त्रीय मार्ग का परित्याग नहीं किया है, इस अर्थ में पथिन् शब्द से यत् प्रत्यय होकर पथ्यम् यह रूप बनेगा । अश्वस्य भावः कर्म वा। इस अर्थ में अश्व शब्द से अञ् प्रत्यय होकर आश्वम् यह रूप बनता है । कुमारस्य भावः कर्म वा। इस अर्थ में कुमार शब्द से अञ् प्रत्यय तथा आदि अच् की वृद्धि होकर कौमारम् यह रूप निष्पन्न होता है । यूनोर्भावः कर्म वा। इस अर्थ में युवन् शब्द से अञ् प्रत्यय

स्तेयं यति च स्तेनस्य प्रथिमा चेमनि पृथोः सौख्यं सुखात् ष्यञीरितम्। ये सख्युः सख्यमीरितम् । आश्वं कौमारकं चाञि रूपं चाञि न यौवनम् । आचार्य्यकं कनि प्रोक्तमेवमन्येऽपि तद्धिताः॥ ३०॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये तद्धितकथनं नाम षट्पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५६ ॥

सप्तपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

उणादिसिद्धरूपम्

कुमार उवाच— **उणादयोऽभिधास्यन्ते प्रत्यया धातुतः परे । उणि कारुश्च शिल्पी स्यात् जायुर्मायुश्च पित्तकम् ॥ १ ॥ गोमायुर्वायुर्वेदेषु बहुलं स्युरुणादयः। आयुः स्वादुश्च हेत्वाद्याः किशारुर्धान्यशूककः॥ २॥ कृकवाकुः कुक्कुटः स्याद् भरुर्भर्त्ता मरुस्तथा । शयुश्चाजगरो ज्ञेयः त्सरुरायुधमुच्यते॥३॥ स्वरुर्वज्रं त्रपुरुरसिसमसारं फल्गुरीरितम्। गृध्रश्च क्रनि किरचि मन्दिरं तिमिरं तमः॥४॥ इलचि सलिलं वारि कल्याणं भण्डिलं स्मृतम् । बुधो विद्वान्**

होकर तथा आदि अच् की वृद्धि होकर यौवनम् यह रूप बनता है । आचार्यस्य भावः कर्म वा। इस अर्थ में आचार्य शब्द से कन् प्रत्यय होकर तथा आदि अच् की वृद्धि होकर आचार्यकम् यह रूप निष्पन्न होता है ।। ३० ।।

इदस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का तद्धित वर्णन नामक तीन सौ छप्पनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३५६ ॥

भगवान् स्कन्द ने कहा— अब मैं उणादि प्रत्ययों का वर्णन करूँगा । ये प्रत्यय धातु से परे (धातु के पश्चात्) होते हैं । करोति इति। अर्थात् जो शिल्प कर्म को करे इस अर्थ में कृ धातु से उण् प्रत्यय होने पर अनुबन्ध लोप होकर वृद्धि तथा विभक्ति कार्य होने पर कारूः यह रूप निष्पन्न होता है । कारूः = शिल्पी । जयतति रोगान्। इस अर्थ में जि धातु से उण् प्रत्यय वृदि आयादेश तथा विभक्ति कार्य होने पर जायुः- यह रूप बनता है । जायुः = औषधि। मि धातु से उण् प्रत्यय अनुबन्ध लोप आदि वृद्धि, अयादेश तथा विभक्ति कार्य करके मायुः यह रूप बनता है । मायुः = पित्त । मिनोति = प्रक्षिपति देहे उष्माणमिति। यह मायुः शब्द की व्युत्पत्ति है ।। १ ।। गावम् मिनोति। इस अर्थ में गोपूर्वक मि धातु से उण् प्रत्यय करने उपर्युक्त प्रकार से गोमायुः शब्द बनता है । गोमायुः शृगाल । इसी तरह आयुः शब्द भी उण् प्रत्ययान्त है । वेद में उणादि प्रत्ययों की बाहुलकात् प्रवृत्ति होती है । स्वदते। इस अर्थ में स्वदि धातु से उण् प्रत्यय होकर स्वादुः। यह शब्द व्युत्पन्न होता है । हेतु शब्द भी औणादिक ही है । किंशारूः = धान्यशुक । किं शृणाति। इस अर्थ में किं पूर्वक शृ धातु सेण् प्रत्यय होकर किंशारूः यह रूप सिद्ध होता है । २ ।। कृकवाकुः = मुर्गा या मोर । कृकेन गलेन वक्तीति कृकवाकुः । कृकपूर्वक वच् धातु ञुण् प्रत्यय होने पर कृकवाकुः यह रूप व्युत्पन्न होता है । कृक + वच् + ञुण् । ञुण् का अनुबन्ध लोप च चकार का लकार तथा अत उपधायाः से उपधा की वृद्धि होने पर कृकवाकुः यह पद व्युत्पन्न होता है । भरति विभर्ति वा इस अर्थ में भृ धातु से उ प्रत्यय करके गुण तथा विभक्ति कार्य करने पर भरूः यह रूप सिद्ध होता है । भरूः = भर्ता, स्वमी । इसी तरह मृ धातु से उ् प्रत्यय गुण तथा विभक्ति कार्य करने पर मरुः यह रूप व्युत्पन्न होता है । मरुः = जलहीन देश । शीङ् धातु से उ प्रत्यय करने पर शी - उ इस स्थिति में यण् कार्य करके फिर विभक्ति कार्य करने पर शयुः यह रूप निष्पन्न होता है । शयुः = सोए रहने वाला (अजगर) । त्सर शब्द से उ प्रत्यय करके विभक्ति कार्य करने पर त्सरुः शब्द व्युत्पन्न होता है । त्सरुः = खड्गमुष्टि ।। ३ ।। स्व शब्द से उ प्रत्यय करने पर विभक्ति कार्य करने पर स्वरुः यह रूप बनता हे । स्वरुः = वज्र । स्वर्यन्ते प्राणा अनेन। इस अर्थ में स्वरुः शब्द व्युत्पन्न होता है । त्रपुः = रंगा । त्रप् + उ = त्रपुः। फल्गुः = सारहीन । फल्ग् से उ् प्रत्यय तथा विभक्ति कार्य करने पर फल्गुः शब्द व्युत्पन्न होता है । आकांक्षार्थक गृधु > गृध् धातु से क्रन् प्रत्यय करने पर ककार तथा नकार की इत्संज्ञा होती है । पुनः गृध्र शब्द से विभक्ति कार्य करने पर गृध्रः= गीध पक्षी रूप व्युत्पन्न होता है । मदि धातु से किरच् प्रत्यय करके अनुबन्ध लोप होने पर मन्दिरम् यह रूप व्युत्पन्न होता है । मन्दिरम् = देवालय अथवा गृह । तिमिरम् = अन्धकार । तिमि + किरच् अनुबन्ध लोप फिर विभक्ति कार्य तिमिरम् ।। ४ ।। सलति निम्नं गच्छतीति । इस अर्थ में

क्वसौ स्याच्च शिविरं गुप्तसंस्थितिः ॥ ५ ॥ ओतुर्विड़ालश्चतुडि अभिधानादुणादयः । कर्णः कानीन गृह भूर्वास्तूजे वातृकः स्मृतः॥ ६॥ अनड्वान् वहतेर्विनि स्याज्जीवातुः जीवनौषधम्। नौ वह्निरनिचि हरिणः मृगः कामी च भाजनम् ॥ ७ ॥ करण्डो भाजनम्भाण्ड सरण्डश्च चतुष्पदः । तररण्डः सङ्घातो वरण्डः साम निर्भरम्॥ ८॥ स्फारं प्रभूतं स्यान्नन्तप्रत्यये चीरवल्कलम् । कातरो भीरुरुग्रस्तु प्रचण्डो जवसं तृणम् ॥ ९॥ जगच्चैव तु

गत्यर्थक षल् धातु से इलच् प्रत्यय तथा विभक्ति कार्य करने पर सलिलम् यह रूप व्युत्पन्न होता है । सलिलम्=जल । इसी तरह कल्याणार्थक भण्डि धातु से इलच् प्रत्यय करने पर विभक्ति कार्य करके भमण्डिलम् यह रूप व्युत्पन्न होता है । भण्डिलम् = कल्याण । भण्डि इलच् पुनः विभक्ति कार्य करके भण्डिलम् यह रूप बनता है । ज्ञानार्थक विद् धातु से क्वसु प्रत्यय होने पर अनुबन्ध लोप होकर *विद्वस् शब्द से विभक्ति कार्य करके विद्वान्* यह रूप बनता है । विद्वान् = बुध या पण्डित। शेतेऽस्मिन् राजबलमिति अर्थात् जिसमें राजा की सेना रहती है, इस अर्थ में शीङ् + धातु से किरच् प्रत्यय करके शीङ् से वुक् का आगम करके उसका अनुबन्ध लोप करके तथा शी के ई का इ आदेश करके विभक्ति कार्य करने पर शिवरम् यह पद्र व्युत्पन्न होता है । शिविर = गुप्त निवास करने को शिविर कहते हैं ।। ५ ।। अवरक्षणे धातु से तुङ् प्रत्यय करके तथा वकार के स्थान में ऊट् आदेश एवं गुण करके ओतु शब्द से विभक्ति कार्य करने पर ओतुः यह रूप सिद्ध होता है । ओतुः= विडाल । उणादि प्रत्यय अभिधान मात्र से होते हैं । कृ धातु से न प्रत्यय करके गुण होने पर कर्न इस स्थिति में नकार का णकार करके विभक्ति कार्य करने पर कर्णः यह रूप निष्पन्न होता है । कर्ण= कर्णः सूर्य पुत्र कर्ण अथवा श्रोत्र । वस् धातु से तुन प्रत्यय करके गृह के अर्थ में उसका णित्व होकर वृद्धि होने से वास्तु शब्द निष्पन्न होता है । वास्तु = गृह भूमि । जीव शब्द से आतृकन् प्रत्यय होकर तथा आदि अच् की वृद्धि होकर जैवातृक शब्द का विभक्ति कार्य होने पर जैवातृकः यह रूप निष्पन्न होता है । जैवातृकः = चन्द्रमा ।। ६ ।। अनं शकटं बहतत इस अर्थ में अनस् पूर्वक वह धातु से क्विप् प्रत्यय करके तथा अनस् के सकार का डकारादेश करके एवं वह के व का उ् सम्प्रसारण करके अनुडुह शब्द का प्रथमा के एकवचन में अनड्वान् रूप होता है । अनड्वान् = गाड़ी खींचने वाला बैल । जीव धातु से आतु प्रत्यय करके जीवातुः शब्द व्युत्पन्न होता है । जीवातुः = संजीवनौषध । वह् धातु से नित् प्रत्यय करके अनुबन्ध लोप करके विभक्ति कार्य करने पर बह्निः शब्द व्युत्पन्न होता है । हृञ् हरणे धातु से इनच् प्रत्यय करके अनुबन्ध लोप होने पर हृ + इन इस स्थिति में गुण तथा विभक्ति कार्य करने पर हरिणः यह पद व्युत्पन्न होता है । हरिण = मृग तथा कामी पुरुष । कृ धातु से अण्डन् प्रत्यय करने पर गुण करके विभक्ति कार्य करने पर करण्डः पद व्युत्पन्न होता है । करण्ड = भाजन, भाण्ड । सृ धातु से अण्डन् प्रत्यय करके गुण तथा विभक्ति कार्य करने पर सरण्डः यह पद व्युत्पन्न होता है । सरण्डः = चौपाया जानवर । तृ धातु से अण्डन् प्रत्यय करने पर तरण्डः पद निष्पन्न होता है । तरण्डः = समूह । वृ धातु से अण्डन् प्रत्यय करने वरण्डः पद व्युत्पन्न होता है । वरण्डः = सामवेद ।। ७-८ ।। वृद्ध्यर्थक स्फायि धातु से र्क् प्रत्यय करने पर स्फार शब्द से विभक्ति कार्य करने पर स्फारम् यह पद व्युत्पन्न होता है । स्फारम् = प्रभूत, अधिक । चि धातु से क्रन् प्रत्यय करके अनुबन्ध लोप तथा चि के हस्व इ का ई करके विभक्ति कार्य करने पर चीरम् पद व्युत्पन्न होता है । चीरम् = बल्कल वस्त्र । भी धातु से क्रुकन् प्रत्यय करके अनुबन्ध लोप होने पर विभक्ति कार्य करके भी रु+कः यह रूप व्युत्पन्न होगा । भीरुकः = कातर, डरपोक, भीरु । उच समवाये धातु से रन् प्रत्यय करने पर विभक्ति कार्य करके उग्रः यह पद व्युत्पन्न होता है । उग्र = प्रचण्ड । यव् धातु से णित् असच् प्रत्यय करके अनुबन्ध लोप करके आदि अच् की वृद्धि करके यावस शब्द से विभक्ति कार्य करने पर यावसः इस पद की सिद्धि होती है । यावसः = तृणम् ।। ९ ।। गत्यर्थक गम् धातु से अत् प्रत्यय का निपातन होता है तथा गम् के स्थान में जन् आदेश होकर अनुबन्ध लोप तथा विभक्ति कार्य होने पर जगत् यह रूप सिद्ध होता है । जगत् = संसार या भूलोक । कृश धातु से अनुक् प्रत्यय होने पर कृशानुः पद व्युत्पन्न होता है । कृशानुः = अग्नि । द्युत् धातु से इसिन् प्रत्यय करके तथा द्य के स्थान पर जकारादेश करके एवं गुण करके ज्योतिः शब्द व्युत्पन्न हुआ है । ज्योति का अर्थ है अग्नि तथा सूर्य । अर्च धातु से क् प्रत्यय करने पर अर्कः पद व्युत्पन्न होता है । अर्कः = सूर्य । अर्कशब्द से स्वार्थ में क प्रत्यय करने पर अर्ककः बनता है । वरणार्थक वृ धातु से ष्वरच् प्रत्यय करने पर अनुबन्ध लोप तथा गुण करने पर वर्वरः यह रूप बनता है । वर्वरः = कुटिल धूर्त । याचनार्थक चत् धातु से ष्वरच् प्रत्यय करने पर विभक्ति कार्य के पश्चात् चत्वरम् यह रूप बनता । चत्वर = चतुष्पथ + चौरास्ता ।। १० ।। चीवर शब्द चत्वर शब्द से निपातनात् सिद्ध होता है । चीवर का अर्थ है चिथड़ा अथवा भिक्षुक का वस्त्र । मि धातु से क्त्र प्रत्यय करके ककार की इत्संज्ञा करके मित्रः यह पद विभक्ति कार्य करने पर व्युत्पन्न होता है । मित्र का अर्थ है- सूर्य । पुनातीति इस अर्थ में पू धातु से क्त्र प्रत्यय क् की इत्संज्ञा तथा ऊ

भूर्लोको कृशानुर्ज्योतिरर्ककः। वर्वरः कुटिलो धूर्त्तश्चत्वरञ्च चतुष्पथम्॥ १०॥ चीवरं भिक्षुप्रावृत्तिरादित्यो मित्र ईरितः । पुत्रः सूनुः पिता तातः पृदाकुर्व्याघ्रवृश्चिके। गर्त्तोऽवटोऽथ भरतो नटोऽपरेऽप्युणादयः ॥ ११ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये उणादिसिद्धरूपकथनं नाम सप्तपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५७ ॥

अष्टपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

तिङ्विभक्तिसिद्धरूपम्

कुमार उवाच– **तिङ्विभक्तिं प्रवक्ष्यामि तथाऽऽदेशं समासतः । तिङ्स्त्रिष्वपि वर्त्तन्ते भावे कर्मणि कर्त्तरि ॥ १ ॥ सकर्मकाकर्मकाच्च कर्त्तरि द्विपदे स्मृताः । सकर्मकाकर्मणि च तदादेशस्तथेरितः ॥ २ ॥ वर्त्तमाने लडाख्यातो विध्याद्यर्थे लिङ्गीरितः । विध्यादौ लोडाशिषि च भूतानद्यतने च लङ् ॥ ३ ॥ भूते लुङ् लिट् परोक्षेऽथ भाविन्यद्यतने च लुट् । लिङ्गाशिषि च शेषेऽर्थे लृड् भविष्यति लृङ् भवेत् ॥ ४ ॥ लिङ्निमिते क्रियातिपत्तौ परे नवात्मनेपदम् । पूर्वं परस्मैपदन्तिप्तसन्तीति प्रथमः पुमान् ॥ ५ ॥ सिप्थस्थ मध्यमनरो मिप्वस्मस् चोत्तमः पुमान् ॥ ५ ॥ त आताम् अन्तात्मने**

का उ करके पुत्रः पद विभक्ति कार्य के पश्चात् व्युत्पन्न होता है । पुत्र = बेटा । शूङ् प्राणी प्रसवार्थक धातु से नु प्रत्यय होता है । यह प्रत्यय कित् माना जाता है । धातु के षकार को सकार देश तथा विभक्ति कार्य करने पर सूनुः यह रूप सिद्ध होता है । पा रक्षणे से तृच् प्रत्यय होकर आकार के स्थान में इकार आदेश करके पितृ शब्द बनता है । उसका प्रथमा एकवचन में पिता यह रूप बनता है । विस्तारार्थक तन् धातु से तन प्रत्यय तथा धतु के अकार का दीर्घ एवं अनुनासिक लोप करके विभक्ति कार्य करने पर तातः यह पद सिद्ध होता है । कुत्सित शब्दार्थक पद धातु से काकु प्रत्यय करके ककार की इत्संज्ञा एवं पर्द के रेफ का सम्प्रासारण करके बने पृदाकु शब्द का प्रथमा का रूप है पृदाकुः । पृदाकुः = सर्प, बीछू या बाघ । गृ धातु से तन् प्रत्यय तथा गुणादेश करने पर गर्तः शब्द की सिद्धि होती है । गर्तः = गड्ढा । भृ धातु से अतच् प्रत्यय गुणादेश तथा विभक्ति कार्य करने पर भरतः शब्द की सिद्धि होती है । भरत = जो भरण-पोषण करे। नम् धातु से डट् प्रत्यय करके टि का लोप करने तथा विभक्ति कार्य करने पर नटः शब्द व्युत्पन्न होता है । नटः = वेषधारी अभिनेता । ये तो यहाँ पर कुछ उणादि दिखाए गये इनसे भिन्न भी उणादि होते हैं ।। ११ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का उणादिसिद्ध रूप वर्णन नामक तीन सौ सत्तावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३५७ ॥

कुमार कार्तिकेय ने कहा– अब मैं तिङ् विभक्ति तथा आदेश का संक्षेप में वर्णन करूँगा । तिङ् प्रत्यय भाव, कर्म तथा कर्ता इन तीनों अर्थों में होते हैं ।। १ ।। सकर्मक तथा अकर्मक धातुओं से तिङ् विभक्ति कर्ता में होते हैं । कर्ता में प्रत्यय परस्मै पद तथा आत्मने पद दोनों में ळ होते हैं । सकर्मक धातु से तिङ्ादेश कर्म तथा कर्ता में बताए गए हैं ।। २ ।। वर्तमान काल की क्रिया के बोध के लिए धातु से लट् लकार का विधान तथा विधि आदि के अर्थ में लिङ् लकार बतलाया गया है । विधि आदि के आदि पद का अर्थ है- निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट (सत्कारपूर्वक व्यापार) सम्प्रश्न तथा प्रार्थना । इन अर्थों का प्रतिपादन करने के लिए धातु से लिङ् के अर्थ में धातु से लोट् लकार होता है । अनद्यतन भूत का बोध कराने के लिए धातु से लङ् लकार होता है ।।३।। सामान्यभूत के अर्थ में धातु से लुङ् लकार होता है । परोक्षभूत के अर्थ में धातु से लिट् लकार होता है । अद्यतन भविष्यत् काल के अर्थ में धातु से लुट् लकार का प्रयोग होता है । आशीष् के अर्थ में धातु से आशीर्लिङ् का प्रयोग होता है । शेष अर्थ अर्थात् सामान्य भविष्य के अर्थ में धातु से लट् लकार का प्रयोग होता है । क्रियार्थां क्रिया हो तो भी न हो तो भी हेतु-हेतुमद्भाव लिङ्ग निमित्त होता है । उसके होने पर भविष्यत् का ज्ञान कराने के लिए लृङ् लकार का प्रयोग क्रिया की अतिपत्ति गम्यमान हो तो करना चाहिए । तिङ् विभक्तियाँ के अन्तिम नव विभक्तियों आत्मनेपद की विभक्तियाँ

मुख्यः थासाथां ध्वञ्च मध्यमः ॥ ६ ॥ उत्तम इ वहि महि भूवाद्या धातवः स्मृताः । भुविरेधिः पचिर्नन्दि ध्वंसि श्रंसिः पादिस्त्वदिः ॥ ७ ॥ शीङः क्रीड़ी जुहोतिश्च जहातिश्च दधात्यपि । दीव्यतिः स्वपितिर्नहिः सुनोतिर्वसिरेव च ॥ ८ ॥ तुदिर्मृशतिर्मुञ्चतिः रुधिर्भुजिस्त्यजिस्तनिः । शवादिके विकरणे मनिश्चेव करोत्यपि॥ ९॥ क्रीडतिर्वृङो ग्रहिश्चोरिः पा नीरचिश्च नायकाः । भुवि स्यात् तिङ् भवति सः भवतस्तौ भवन्ति ते ॥ १० ॥ भवसि त्वं युवां भवथो यूयं भवथ चाप्यहम् । भवाम्यावां भवावश्च भवामो ह्येधते कुलम् ॥ ११॥ एधेते द्वे त ऐधन्ते एधसे त्वं हि मेधया । एधेथे च समेधध्वे ह्येधावहे धिया ॥ १२ ॥ एधामहे हरेर्भक्त्या पचतीत्यादि पूर्ववत् । भूयतेऽनुभूयतेऽसौ भावे कर्मणि वै यकि॥ १३॥ बुभूषति सनीत्येवं णिचि भावयतीश्वरम् । यङि बोभूयते वाद्यं बोभोति स्याच्च यङ्लुकि ॥ १४ ॥ पुत्रीयति पुत्रकाम्यत्येवं पटपटायते । घटयत्यऽथ सनि णिचि

हैं तथा प्रथम नव विभक्तियाँ परस्मैद की होती हैं । प्रथम पुरुष की तीन विभक्तियाँ हैं- तिप्, तस् तथा झि मध्यम पुरुष की सिप्, थस् तथा थ ये तीन विभक्तियाँ हैं । उत्तम पुरुष की तीन विभक्तियाँ हैं- मिप्, वस् तथा मस्। ये नवों विभक्तियाँ परस्मैपद की विभक्तियाँ हैं, आत्मने पद प्रथम पुरुष की विभक्तिया हैं त् आताम् झ, । मध्यम पुरुष की विभक्तियाँ हैं थास् आथाम् ध्वम्। उत्तम पुरुष की विभक्तियाँ हैं- इड्, वहिङ् एवं महिङ्। भू तथा वा आदि क्रिया के वाचक धातु कहलाते हैं लभ्, एध्, पच्, नन्द्, ध्वंस, स्रंस्, पद्, अद्, शीङ्, हु, हा, धा, दिव्, स्वप्, नह, पूञ्, वस्, तुद्, मृश्, मुञ्च्, रुध्, भुज, तज, तन, मन तथा कृ, ये समस्त धातु, शप् आदि विकरण होने पर क्रिया के बोधक होते हैं ।। ६-९ ।। क्रीड् वृङ्, ग्रह, चुर्, पा, नी तथा अच् ये तथा उपर्युक्त समस्त धातु नायक (प्रधान हैं । अन्य धातुओं के रूप इनके ही समान होते हैं । भू धातु से तिङ् प्रत्यय होने पर इनके रूप होते हैं- भवति भवतः भवन्ति । इनका वाक्य में प्रयोग इस प्रकार होता है- स भवति, तौ भवतः, ते भवन्ति । त्वं भवसि, युवाम् भवथः, यूयम् भवथ। अहं भवामि, आवाम् भवावः, वयम् भवामः । ये भू धातु के लट् लकार के रूप हैं । आत्मने पदीय एध् धातु के रूप इस प्रकार से चलते है। कुलम् एधते । अर्थात् कुल (वंश) बढ़ता है ।। १०-११ ।। द्वे एधेते (दो बढ़ते हैं) त एधन्ते (वे सब बढ़ते हैं) त्वम् मेधया एधसे, एधध्वे (ये दोनों मध्यम पुरुष के द्विवचन तथा बहुवचन के रूप हैं । उत्तम पुरुष के तीनों वचनों में क्रमशः रूप एधे, एधावहे, एधामहे होते हैं । इनके वाक्य में प्रयोग इस प्रकार होते हैं- अहं धिया एधे (मैं अपनी बुद्धि से बढ़ता हूँ ।) आवाम् धिया एधावहे । (हम दोनों अपनी बुद्धि से बढ़ते हैं । तथा- वयं हरेर्भक्त्या एधामहे । हम लोग श्रीहरि की भक्ति से बढ़ रहे हैं । पाकार्थक पच् धातु का रूप भू धातु के ही रूप के समान होता है । भू धातु से भाव में तथा अनु + भू धातु से कर्म में यक् प्रत्यय करके रूप भूयते तथा अनुभूयते बनते हैं । भाव में प्रत्यय होने पर क्रिया केवल एक वचन की ही होती है सभी पुरुषों में कर्ता तृतीयान्त होता है । फलतः सबों के लिए एक ही क्रिया सबके लिए प्रयुक्त होती है । जैसे तेन अनुभूयते, त्वया अनुभूयते, ताभ्यामनुभूयते, सर्वैः अनुभूयते । अस्माभिः अनुभूयते इत्यादि । जहाँ कर्म में प्रत्यय होता है, वहाँ कर्म के उक्त होने के कारण कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है । उसी के अनुसार सभी पुरुषों तथा सभी वचनों में क्रिया का प्रयोग किया जाता है । जैसे- सः अनुभूयते, तौ अनुभूयेते, ते अनुभूयन्ते । त्वमनुभूयसे, युवामनुभयेथे, यूयमनुभूयध्वे । अहमनुभूये आवामनुभूयावहे तथा वयमनुभूयामहे ।। १२-१३ ।। अर्थ विशेष को लेकर धातु से णिच्, सन्, यङ् तथा यङ् लुक् होते हैं । इन सबों को क्रमशः ण्यन्त, सनन्त, यङन्त तथा यङलुगन्त कहा जाता है । जहाँ पर किसी क्रिया के कर्ता का कोई दूसरा प्रयोजक अथवा प्रेरक होता है, वहाँ उस प्रयोजक की हेतु संज्ञा होती है तथा प्रयोज्य कर्ता कर्म बन जाता है । जब प्रयोजक के व्यापार प्रेषण आदि वाच्य होते हैं तो धातु से णिच् प्रत्यय होता है । णिच् प्रत्यय करके जो रूप बनता है वह ण्यन्त रूप कहलाता है । जैसे भू धातु का ण्यन्त रूप है । भावयति, भावयतः भावयन्ति, भावयसि, भावयथः भावयथ । भावयामि भावयावः भावयामः इन रूपों का वाक्य में प्रयोग होगा- यज्ञदत्त ईश्वरं भावयति । अर्थात् ईश्वरो भवति यज्ञदत्तः, ध्यानादिविधिना तं भवितुं प्रेरयति । अर्थात् यज्ञदत्तः ईश्वरं भावयति इस वाक्य का अर्थ ईश्वर को अपने ध्यान आदि के द्वारा होने के लिए प्रेरित करता है । जहाँ पर कोई धातु इच्छा क्रिया का कर्म बनता है तथा इच्छा क्रिया का कर्ता ही उस धातु का भी कर्ता होता है, वहाँ पर उस धातु से इच्छा की अभिव्यक्ति के लिए सन् प्रत्यय होता है । भू धातु का सनन्त रूप बुभूषति होता है । बुभूषति का अर्थ है भवितुम् इच्छति। अर्थात् होने की इच्छा करता है । सन् प्रत्यय तथा यङ् प्रत्यय परे रहने पर धातु का द्वित्व हो जाता है । जहाँ पर किसी क्रिया को बार-बार होना बताया जाता है । वहाँ पर धातु से यङ् प्रत्यय होता

बुभूषयति रूपकम् ॥ १५॥ भवेद् भवेताञ्च लिङि भवेयुश्च भवेः परे । भवेतञ्च भवेतैवं भवेयञ्च भवेव भवेम च॥ १६॥ एधेत एधेयातामेधेरन् मनसा श्रिया । एधेथाश्च एधेयाथामेधेध्वमेधेय एधेवहि एधेमहि ॥ १७ ॥ अस्तु तावद् भवतां लोटि भवन्तु भवताद् भव। भवतं भवत भवानि भवाव भवाम च॥ १८॥ एधतामेधेतामेधन्तामेधै पचावहै पचामहै । अभ्यनन्ददपचतामपचन्नपचस्तथा ॥ १९ ॥ अभवतमभवतापचमपचावापचाम च । ऐधतैधेतामैधध्वम् ऐधे चैधामहीरितम्॥ २०॥ अभूदभूतामभूवनभूश्चाभूवमेव लुङ् । ऐधिष्टैधिषातां नरावैधिष्ठा ऐधिषीदृशम् ॥ २१ ॥ लिटि बभूव बभूवतुः बभूवुश्च बभूविथ । बभूवथुर्बभूव च बभूविव बभूविम ॥ २२ ॥ पेचे पेचाते पेचिरे त्वमेधाञ्चकृषे तथा । एधाञ्चक्राथे पेचिध्वे पेचे पेचिमहे तथा ॥ लुटि भविता भवितारौ भवितारो हरादयः । भवितासि भवितास्थो भवितास्मस्तथा वयम् ॥ २४ ॥ पक्ता पक्तारौ पक्तारः

है । यङ् तथा यङ् लुक् होने पर धातु का द्वित्व होने पर उसके पूर्वभाग के इक् का गुण हो जाता है । भू धातु से यङ् प्रत्यय होने पर रूप होता है बोभूयते अर्थात् पुनः-पुनः अतिशयेन वा भवति । बार-बार अथवा अत्यधिक होता है । जैसे वाद्यं बोभूयते । अर्थात् वाद्य वादन बार-बार अथवा अत्यधिक मात्रा में हो रहा है । भू धातु से यङ्लुक् होने पर बोभोति रूप होता है । बोभूयते तथा बोभोति दोनों का अर्थ एक ही है । दोनों में अन्तर यह है कि यङन्त रूप आत्मने पद में चलते हैं जब कि यङ्लुगन्त रूप परस्मैपद में ।। १४ ।। जहाँ पर नाम अथवा सुबन्त शब्द से क्यच् आदि प्रत्ययों के होने पर उसकी धातु संज्ञा होकर धातु के ही समान उसके रूप भी चलते हैं । ऐसे धातुओं को नाम धातु कहते हैं । जो इच्छा का कर्म हो तथा इच्छा करने वाले का सम्बन्धी हो ऐसे सुबन्त से इच्छा के अर्थ में क्यच् प्रत्यय होते हैं । जैसे आत्मनः पुत्रमिच्छाति इस अर्थ में पुत्रम् इस सुबन्त शब्द से क्यच् प्रत्यय होता है और उसका अनुबन्ध लोप होकर पुत्रम् अम् + य यह स्थिति बनती है। फिर सनद्यन्ता धातवः से धातु संज्ञा होकर सुपो धातु प्रातिपदिकयोः सूत्र से अम् का लोप होकर, क्यचि च सूत्र से अकार के स्थान में ईकार होकर पुत्रीय यह स्थिति बनती है । फिर तिप् शप् आदि कार्य होकर पुत्रीयति यह रूप बनता है । इसी अर्थ में काम्य् प्रत्यय होकर पुत्रकाम्यति यह रूप भी बनता है । पटत् भवति इति इस अर्थ में पटपटायते यह रूप बनता है । पट पटायते का अर्थ है पटपट की आवाज होती है । यहाँ पटत् से भू धातु के योग में डाच् प्रत्यय तथा अनुबन्ध लोप होकर पटत् + डा यह स्थिति बनती है । फिर 'डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम् ' इस वार्तिक से पटत् का द्वित्व होकर टि का लोप होने पर पटपटा भू यह स्थिति बनी । फिर लोहितादिडाज्भ्यः क्यच् इस सूत्र से भवति के अर्थ में क्यच् होकर तथा अनुबन्ध लोप होकर पटपटाय बना। पुनः धातु संज्ञा एवं धातु सम्बन्धी कार्य होने पर पअपटायते यह रूप बना । इसी तरह घटं करोति इस अर्थ में तत्करोति तदाचष्ट के अनुसार घटयति यह रूप बनता है । यदि सनन्त से णिच् प्रत्यय किया जाय तो भू धातु का सनन्त रूप बुभूषयति यह रूप बनेगा ।। १५ ।। भू धातु के विधि लिङ् में क्रमशः इस प्रकार रूप चलते हैं- भवेत्, भवेताम्, भवेयुः । भवेः भवेतम् भवेत । भवेयम् भवेव भवेम ।। १६ ।। एध् धातु के विधिलिङ् में क्रमशः इस प्रकार रूप चलते हैं- एधेत, एधेयातम् एधरेन्, एधेथाः एधेयाथाम् एधेध्वम् । एधेय एधेवहि, एधेमहि इनके वाक्य में प्रयोग इस तरह होते हैं । त्वम् मनसा एधेथा; = तुम मनसे बढ़ो । अहं श्रिया एधेय = मैं लक्ष्मी के द्वारा बढ़ूँ इत्यादि ।। १७ ।। लोट् लकार में भू धातु के रूप इस प्रकार के होते हैं- भवतु, भवतात् भवताम्, भवन्तु । भव भवतात्, भवतम्, भवत। भवानि, भवाव, भवाम ।। १८ ।। एध धातु के रूप लोट् लकार में इस प्रकार से होते हैं- एधताम्, एधेताम्, एधन्ताम् । एधस्व, एधेथाम्, एधध्वम् । एधै, एधावहै, एधामहै । इसी तरह पच धातु के भी आत्मने पद में लोट् लकार के उत्तम पुरुष में रूप होते हैं- पचै, पचावहै, पचामहै । अभिपूर्वक नदि धातु को लङ् लकार के प्रथम पुरुष के एकवचन में रूप अभ्यनन्दत् । पच् धातु के लङ् लकार में रूप होते हैं अपचत अपचताम् अपचन् । अपचः, अपचताम्, अपचत । अपचम् अपचाव अपचाम् । एध धातु के लङ् लकार में रूप होते हैं- ऐधत, ऐधेताम्, ऐधन्त । ऐधेथाः, ऐधेथाम् ऐधध्वम् । ऐधै, ऐधावहै ऐधामहि ।। १९-२० ।। भू धातु के लुङ् लकार में रूप इस प्रकार होते हैं । अभूत्, अभूताम्, अभूवन् । अभूः अभूतम् अभूत । अभूम् अभूव, अभूम । एधातु के लुङ् लकार में रूप होते हैं- ऐधिष्ट, ऐधिषाताम्, ऐधिषत । ऐधिष्ठाः ऐधिषाथाम, ऐधिध्वम ऐधिषि, ऐधिष्वहि, ऐधिष्महि । नरौ ऐधिषाताम् = दो मनुष्य बढ़ें, यह वाक्य में प्रयोग का उदाहरण है । भू धातु के लिट् लकार में इस प्रकार से रूप चलते हैं- बभूव, बभूवतुः. बभूवुः । बभूविथ, बभूवथुः, बभूव । बभूव बभूविव, बभूविम । पच् धातु के आत्मने पद में लिट् लकार में रूप इस प्रकार होते हैं- पेचे, पेचाते, पेचिरे । पेचिषे, पेचाथे, पेचिध्वे । पेचे, पेचिवहे पेचिमहे । एध् धातु के लिट् लकार में रूप इस तरह होते हैं- एधाञ्चक्रे, एधाञ्चक्राते एधाञ्चक्रिरे। एधाञ्चकृषे, एधाञ्चक्राथे, एधाञ्चकृध्वे।

पक्तासि त्वं शुभौदनम् । पक्ताध्वे पक्ताहें चाहं पक्तास्महेहरेश्चरुम्॥ २५॥ लिङ्गाशिषि सुखं भूयात् भूयास्तां हरिशङ्करौ । भूयासुस्ते च भूयास्त्वं युवां भूयास्तमीश्वरौ ॥ २६॥ भूयास्त यूयं भूयासमहं भूयास्म सर्वदा । यक्षीष्ट ह्येधिषीयास्तां यक्षीरन्नेधिषीय च॥ २७॥ यक्षीवह्येधिषीमहिलिङ्चायक्ष्यतेतिलङ् । अयक्ष्येतामयक्ष्यन्तायक्ष्येऽयक्ष्येथांयुवाम्॥ २८॥ अयक्ष्यध्वमैधिष्यावह्यैधिष्याम ह्यरेर्वयम् । लृटि स्याद् भविष्यतीति एधिष्यामह ईदृशम् ॥ २९ ॥ एवं विभावयिष्यन्ति बोभविष्यति रूपकम् । घटयेत् पटयेत् तद्वत् पुत्रीयतिचकाम्यति ॥ ३०॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये तिङ्विभक्तिसिद्धरूपकथनं नाम अष्टपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५८ ॥

एकोनषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

कृत्सिद्धरूपम्

कुमार उवाच– **कृतस्त्रिष्वपि विज्ञेया भावे कर्मणि कर्त्तरि । अजल्युट्क्तिन् घञो भावे युजतव्यत् एव च ॥ १ ॥ अचि विन्याः विनय उत्करः**

एधाञ्चक्रे, एधाञ्चकृवहे, एधाञ्चकृमहे ।। २१-२३ ।। अनद्यतन भविष्यत् के सूचक लुट् लकार में भू धातु के रूप इस प्रकार के होते हैं । भविता, भवितारौ, भवितारः । भवितासि, भवितास्थः भवितास्थ। भवितास्मि भवितास्व, भवितास्म । वयम् भवितास्म = हम लोग होयेंगे । यह वाक्य प्रयोग का उदाहरण है ।। २४ ।। पच् धातु के लुट् लकार में आत्मने पदीय रूप- पक्ता, पक्तारौ, पक्तारः । पक्तासे, पक्तासाथे, पक्ताध्वे । पक्ताहे, पक्तास्वहे, पक्तास्महे । अहं पक्ताहे = अर्थात् मैं पकाऊँगा । यह वाक्य प्रयोग का उदाहरण है । वयं हरेश्चरुं पक्तास्महे = हम लोग श्रीहरि के लिए चरु पकायेंगे । पच् धातु के लुट् लकार में परस्मैपदीय रूप इस प्रकार होते हैं- पक्ता, पक्तारौ, पक्तारः । पक्तासि । शेष भू धातु के रूप के समान रूप होते हैं ।। २५ ।। आशीर्लिङ् में भू धातु के रूप इस प्रकार से चलते हैं- भूयात्, भूयास्ताम्, भूयासुः । भूयाः, भूयास्तम्, भूयास्त । भूयासम्, भूयास्व, भूयास्म। वाक्य प्रयोग सुखं भूयात् = सुख होए । हरिशङ्करौ भूयास्तम् । श्री हरि और शंकर होएँ ते भूयासुः= वे होएँ । त्वं भूयाः = तुम होओ । युवामीश्वरौ भूयास्तम् = तुम दोनों स्वामी बनो । यूयम् भूयास्त = तुम लोग होओ । अहं भूयासम = मैं होऊँ । वयं सर्वदा भूयास्म = हम लोग सब कुछ देने वाले बनें । यक्ष् धातु के आशीर्लिङ् में आत्मने पदीय रूप इस प्रकार से चलते हैं । यक्षीष्ट, यक्षीयास्ताम्, यक्षीरन् । यक्षीष्ठाः यक्षीयास्थम् यक्षीध्वम् यक्षीय, यक्षीवहि, यक्षीमहि । एध् धातु के आशीर्लिङ् में रूप इस प्रकार होते हैं- एधिषीष्ट, एधिषीयास्ताम्, एधिषीरन् । एधिषीष्ठाः, एधिषीवहि, एधिषीमहि । यक्ष् धातु के लङ् लकार में रूप इस प्रकार होते हैं- अयक्ष्यत, अयक्ष्येताम् अयक्ष्यन्त अयक्ष्यथाः, अयक्ष्येथाम्, अयक्ष्यध्वम्, अयक्ष्ये, अयक्ष्यावहि, अयक्ष्यामहि । एध् धातु के लृङ् लकार में रूप इस प्रकार होते हैं- ऐधिष्यत, ऐधिष्येताम् ऐधिष्यन्त । एधिष्यथाः, ऐधिष्येथाम्, ऐधिष्यध्वम् । ऐधिष्ये ऐधिष्यावहि, ऐधिष्यामहि । वाक्य प्रयोग वयं अरे ऐष्यिामहि । हम लोग शत्रु से बढ़ जायेंगे । भू धातु के लृट् लकार में रूप इस प्रकार होते हैं- भविष्यति, भविष्यतः, भविष्यन्ति । भविष्यसि, भविष्यथः, भविष्यथ । भविष्यामि भविष्यावः भविष्यामः । एध् धातु के लृट् लकार में रूप इस प्रकार से होते हैं- एधिष्यते, एधाष्येते, एधिष्यन्ते । एधिष्यसे, उएधिष्येथे, एधिष्यध्वे । एधिष्ये, एधिष्यावहे, एधिष्यामहे।।२६-२९।। इसी प्रकार विपूर्वक भू धातु के णिजन्त लृट् लकार में रूप होंगे- विभावयिष्यति, विभावयिष्यतः विभावयिष्यन्ति इत्यादि रूप होंगे । भू धातु के लृट् लकार में यङ्लुगन्त रूप बोभविस्यति होता है । घटं करोति इस अर्थ में घटयति तथा पटं करोति इस अर्थ में पटयति यह रूप होता है । उसी का विधिलिङ् में रूप क्रमशः घटयेत् तथा पटयेत् ये रूप होते हैं । इसी तरह नाम धातुओं के रूप पुत्रीयति तथा पुत्रकाम्यति आदि भी होते हैं ।। ३० ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का तिङ् विभक्तिसिद्ध रूप वर्णन नामक तीन सौ अट्ठावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३५८ ॥

अध्याय ३५९

कुमार कार्तिकेय ने कहा– यह जानना चाहिए कि प्रत्यय, भाव, कर्म तथा कर्ता तीनों में होते हैं । अच्, अप्, ल्युट, क्तिन् भावार्थक घञ्, युच्, अ तथा तव्यत् आदि ।। १ ।। विपूर्वक

प्रकरस्तथा । देवो भद्रः श्रीकरश्च ल्युटि रूपन्तु शोभनम्॥ २॥ क्तिनि वृद्धिस्तुतिमती घञि भावोऽथ युच्यपि । कारणा भावनेत्यादि अकारे च चिकित्सया ॥ ३ ॥ तथा तव्यो ह्यनीयश्च कर्त्तव्यं करणीयकम् । देयं ध्येयञ्चैव यति ण्यति कार्यञ्चकृत्यकाः ॥ ४ ॥ कर्त्तरिक्तादयो ज्ञेया भावे कर्मणि च क्वचित् । गतो ग्रामं गतो ग्राम आश्लिष्टश्च गुरुस्त्वया ॥ ५ ॥ शतृशानचौ भवनेधमानो भवन्त्यपि । ण्वुल्तृचौसर्वधातुभ्यो भावको भविता तथा॥ ६॥ क्विबन्तश्च स्वयम्भूश्च भूते लिटः क्वसुन् कानच् । बभूविवान् पेचिवांश्च पेचानः श्रद्दधानकः ॥ ७ ॥ अणि स्युः कुम्भकाराद्या

नी धातु से अच् प्रतयय होकर चकार की इत्संज्ञा, गुण तथा अयादेश होने पर विनय शब्द का विभक्ति कार्य करने पर विनयः रूप निष्पन्न होता है । उत् + पूर्वक कृ धातु से अप् प्रत्यय करके पकार की इत्संज्ञा गुण तथा रपर के पश्चात् विभक्ति कार्य करने पर उत्करः यह रूप बनता है । इसी तरह प्र + कृ + अप् = प्रकरः । दिव् + धातु से अच् प्रत्यय गुण तथा विभक्ति कार्य करने पर देवः यह रूप निष्पन्न होता है । भद्र + अच्-विभक्ति कार्य = भद्रः । श्री + कृ + अप् + गुण + रपर + विभक्ति कार्य = श्रीकरः । इसी तरह शुभ + ल्युट् । लकार टकार की इत्संज्ञा, य >अन तथा लघुपध गुण होने पर एवं विभक्ति कार्य करने पर शोभनम् यह रूप निष्पन्न होता है ।। २ ।। वृद्धिः- वृद्ध + क्तिन् नकार की इत्संज्ञा, तथा ककार की इत्संज्ञा तकार का धकारादेश होने पर पूर्व धकार का जश्त्व होकर दकार, पुनः विभक्ति कार्य होने पर वृद्धिः शब्द निष्पन्न होता है । इसी तरह स्तु धातु से क्तिन् प्रत्यय होकर स्तुतिः तथा मन् धातु से क्तिन् प्रत्यय होकर मतिः ये रूप निष्पन्न होते हैं। भावः भू धातु से घञ् प्रत्यय होने पर भावः यह रूप बनता है । कारणा- णिजन्त कृ धातु से युच् प्रत्यय करने पर कारि + यु इस स्थिति में णि का लोप तथा यु का अनादेश नकार का णकार होने एवं स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् होने पर कारणा यह रूप होता है । भावना इसी तरह से णिजन्त भू धातु से युच् प्रत्यय करके भावना यह रूप बनता है । चिकित्सा- चिकित्स् से अप्रत्यय करके तथा स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् होने पर विभक्ति कार्य करके चिकित्सा यह रूप बनता है ।। ३ ।। धातु से तव्य तथा अनीयर प्रत्यय भी होते हैं । कृ धातु से तव्य प्रत्यय गुण तथा विभक्ति कार्य करने पर कर्तव्यम् यह रूप होता है । कृ धातु से अनीय प्रत्यय होकर करणीयम् आदि पदों की सिद्धि होती है । देयम् - दा धातु से यत् प्रत्यय करने पर ईद्यति सूत्र से आ का ई करके पुनः गुण करके विभक्ति कार्य करने पर देयम् यह रूप बनता है । ध्येयम् - ध्यै धातु से यत् प्रत्यय करने पर 'आदेच उपदेशे शिति' सूत्र से ऐ का आ आदेश । ईद्यति से आ का ई आदेश, गुण तथा विभक्ति कार्य करने पर ध्येयम् यह रूप बनता है । कार्यम् - कृ धातु से ण्यत् प्रत्यय होने पर णकार तकार की इत्संज्ञा, आदि अच् की वृद्धि करने पर कार्यम् रूप बनता है । यहाँ तक कृत्य संज्ञक प्रत्यय कहे गये हैं ।। ४ ।। यह जानना चाहिए कि क्ति आदि प्रत्यय कर्ता में होतें हैं किन्तु कहीं-कहीं पर वे भाव तथा कर्म भी होते हैं । जैसे- स ग्रामं गतः । यहाँ पर कर्ता के अर्थ में गम् धातु से क्त प्रत्यय होकर गतः यह रूप बना है । ग्रामे गतः इस वाक्य में कर्ता में क्त प्रत्यय गतः में हुआ है । दोनों वाक्य का अर्थ है । वह गाँव गया । 'त्वया गुरु आश्लिष्टः । अर्थात् तुम्हारे द्वारा गुरु का आलिङ्गन किया गया । यहाँ पर कर्म में प्रत्यय हुआ है । कर्म में प्रत्यय होने के ही कारण कर्म उक्त हो गया है और उसमें प्रथमा विभक्ति हुई है तथा कर्ता में तृतीया विभक्ति हुई है । आङ्पूर्वक श्लिष् धातु से क्त प्रत्यय होकर आश्लिष्टः यह रूप बना है ।। ५ ।। वर्तमानार्थ बोधक लट् लकार से शतृ प्रत्यय तथा शानच् प्रत्यय दोनों होते हैं । उनमें रस्मैपद में शतृ प्रत्यय होते हैं तथा आत्मनेपदीय धातु से शानच् प्रत्यय होता है । भू धातु से शतृ प्रत्यय करने पर भवन् यह रूप बनता है । एध् धातु से शानच् प्रत्यय होने पर एधमानः यह रूप बनता है । सभी धातुओं से ण्वुल् तथा तृच् प्रत्यय होते हैं । भू धातु से ण्वुल् प्रत्यय होकर तथा वु का अकादेश होकर भावकः यह रूप बनता है । भू धातु से तृच् प्रत्यय होकर भविता यह रूप बनता है ।। ५ ।। भू धातु से क्विप् प्रत्यय होकर तथा क्विप् का सर्वापहारी लोप होकर स्वयम् + भू + क्विप् = स्वयम्भू शब्द से विभक्ति कार्य होने पर स्वयम्भूः पद सिद्ध होता है । भूतकालिक अर्थ ज्ञान कराने के लिए लिट् लकार में धातु से क्वसु तथा कानच् प्रत्यय भी होते हैं । परस्मैपदीय धातु से क्वसु प्रत्यय होता है जबकि आत्मनेपदीय धातु से कानच् प्रत्यय होता है । भूधातु क्वसु प्रत्ययान्त रूप बभूविवान् यह रूप होता है । पच् धातु से क्वसु प्रत्यय होने पर पेचिवान् यह रूप होता है । स बभूविवान् = वह हुआ था । सः पेचिवान् = उसने पकाया था । सः पेचे अर्थात् उसने पकाया इस अर्थ में आत्मनेपद में पच् धातु से कानच् प्रत्यय होकर पेचानः यह पद बनता है । सः श्रद्धे इस अर्थ में श्रद्पूर्वक धा धातु से कानच् प्रत्यय होकर श्रद्दधानः यह रूप बनता है ।। ७ ।। कुम्भं करोति- अर्थात् घड़ा बनाता है, इस अर्थ में कुम्भपूर्वक कृ धातु से कर्मण्यणि सूत्र से अण् प्रत्यय होकर कुम्भकारः यह रूप बनता है । भूत तथा वर्तमान अर्थ में भी उणादि प्रत्यय होते हैं । वा धातु से उण् प्रत्यय करके तथा युगागम तथा विभक्ति कार्य करके वायुः पद निष्पन्न

भूतेऽप्युणादयः स्मृताः । वायुः पायुश्च कारुः स्याद् बहुलं छन्दसीरितम् ॥ ८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कृत्सिद्धरूपकथनं नामैकोनषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५९ ॥

षष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

स्वर्गपातालादिवर्गाः

अग्निरुवाच– **स्वर्गादिनामलिङ्गो यो हरिस्तं प्रवदामि ते । स्वःस्वर्गनाकत्रिदिवा द्यौदिवौ द्वे त्रिविष्टपम् ॥ १ ॥ देवा वृन्दारका लेखा रुद्राद्या गणदेवताः । विद्याधराऽप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः ॥ २॥ पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः । देवद्विषोऽसुरा दैत्याः सुगतः स्यात् तथागतः॥३॥ ब्रह्मात्मभूः सुरज्येष्ठो विष्णुर्नारायणो हरिः । रेवतीशो हली रामः कामः पञ्चशरः स्मरः ॥ ४ ॥ लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा शर्वः सर्वेश्वरः शिवः । कपर्दोऽस्य जटाजूटः पिनाकोऽजगवन्धनुः ॥ ५ ॥ प्रमथाः स्युः परिषदा मृडानी चण्डिकाऽम्बिका द्वै मातुरो गजास्यश्च सेनानीरग्निभूर्गुहः॥६॥ आखण्डलः शुनासीरः सुत्रामाणो दिवस्पतिः । पुलोमजा शचीन्द्राणी देवी तस्य तु वल्लभा ॥ ७ ॥ स्यात् प्रासादो वैजयन्तो जयन्तः पाकशासनिः। ऐरावतोऽभ्रमातङ्गैरावणाभ्रमुवललभाः॥ ८॥ ह्रादिनी वज्रमस्त्री स्यात् कुलिशम्भिदुरं पविः । व्योमयानं विमानोऽस्त्री पीयूषममृतं सुधा ॥ ९ ॥ स्यात् सुधर्मा देवसभा स्वर्गङ्गा सुरदीर्घिका । स्त्रियां बहुष्वप्सरसः स्वर्वेश्या उर्वशीमुखाः ॥ १० ॥ हाहा हूहूश्च गन्धर्वा अग्निर्बह्निर्धनञ्जयः । जातवेदाः**

होता है । पा + उण् = पायुः । कृ + उण् = कारुः । बहुलं छन्दसि- इस नियम के अनुसार सभी कृत् प्रत्यय वेद में बहुल रूप से होते हैं । अर्थात् कहीं होते हैं तथा कहीं नहीं होते हैं ।। ८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का कृदन्त सिद्धरूप वर्णन नामक तीन सौ उनसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३५९ ॥

अग्निदेव ने कहा– स्वर्ग आदि नाम तथा लिंग जिनके स्वरूप हैं उन श्रीहरि का मैं वर्णन कर रहा हूँ स्वः (अव्यय) स्वर्ग, नाक, त्रिदिव (पुल्लिंग) द्यौ दिवौ (स्त्रीलिङ्ग) तथा त्रिविष्टप् (नपुंसक) ये सात नाम स्वर्गलोक के हैं ।। १ ।। देव, वृन्दारक, लेख (पुल्लिंग) ये देवताओं के नाम हैं रुद्र आदि (आदित्य, वसु आदि) ये गण देवताओं के नाम हैं । विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, ।। २ ।। पिशाच, गुह्यक, सिद्ध तथा भूत- ये देव योनियों के नाम हैं । देवद्विष् असुर तथा दैत्य ये असुरों के नाम हैं । सुगत तथा तथागत ये दो बुद्ध के नाम हैं ।। ३ ।। ब्रह्मा, आत्मभू, सुरजयेष्ठ- ये ब्रह्मा जी के नाम हैं । विष्णु, नारायण और हरि- ये भगवान् विष्णु के नाम हैं । रेवतीश, हली, राम- ये बलराम जी के नाम हैं । काम, पञ्चशर, स्मर- ये कामदेव के नाम हैं ।। ४।। लक्ष्मी, पद्मालया, पद्मा ये लक्ष्मी जी के नाम हैं । शर्व, सर्वेश्वर तथा शिव ये शङ्करजी के नाम हैं । शिवजी के जटाजूट और जटामण्डल का नाम कपर्द है । उनके धनुष् का नाम पिनाक तथा अजगव है ।। ५ ।। शिवजी के पार्षदों का नाम प्रमथ है । मृडानी, चण्डिका तथा अम्बिका- ये पार्वत के नाम हैं । गणेशजी के दो नाम हैं- द्वैमातुर तथा गजास्य । कार्तिकेय जी के तीन नाम हैं- सेनानी, अग्निभू तथा गुह ।। ६ ।। आखण्डल, शुनासीर तथा सुत्रामा एवं दिवस्पति ये इन्द्र के नाम हैं । इन्द्र की पत्नी शची देवी के नाम हैं- पुलोभजा, शची तथा इन्द्राणी ।। ७ ।। इन्द्र के महल का नाम वैजयन्त है । इन्द्र के पुत्र के नाम जयन्त तथा पाकशासनिः है । इन्द्र के हाथी के नाम हैं- ऐरावत, अभ्रमातङ्ग, ऐरावण तथा अभ्रमुबल्लभ ।। ८ ।। इन्द्र के वज्र के नाम हैं- ह्रादिनी (स्त्री) वज्र, कुलिश (पु० न०) भिदुर पवि। व्योमयान और विमान (पु० नपुं०) ये देवताओं के विमान के नाम हैं । पीयूष, अमृत (नपुं०) तथा सुधा (स्त्री०) ये अमृत के नाम हैं ।। ९ ।। देवताओं की सभा का नाम सुधर्मा है । देवताओं की नदी का नाम स्वर्गङ्गा तथा सुरदीर्घिका है । अप्सरस् (ब० व० तथा स्त्रीलिङ्ग, स्वर्वेश्या ये उर्वशी आदि अप्सराओं के नाम हैं ।। १० ।। हाहा हूहू ये

कृष्णवर्त्मा आश्रयाशश्च पावकः॥ ११॥ हिरण्यरेताः सप्तार्चिः शुक्रश्चैवाशुशुक्षणिः । शुचिरप्तिमौर्वस्तु वाडवो वडवानलः॥ १२॥ वह्नेर्द्वयोर्ज्वालकीलावर्चिर्हेतिः शिखा स्त्रियाम् । त्रिषु स्फुलिङ्गोऽग्निकणो धर्मराजः परेतराट् ॥ १३ ॥ कालोऽन्तको दण्डधरः श्राद्धदेवोऽथ राक्षसः। कौणपास्रपक्रव्यादो यातुधानश्च नैर्ऋतिः ॥ १४ ॥ प्रचेता वरुणः पाशी श्वसनः स्पर्शनोऽनिलः । सदागतिर्मातरिश्वा प्राणो मरुत्समीरणः॥ १५॥ जवो रंहस्तरसी तु लघुक्षिप्रमरं द्रुतम् । सत्वरं चपलं तूर्णमविलम्बितमाशु च ॥ १६ ॥ सततोऽनारताश्रान्तसन्तताविरतानिशम् । नित्यानवरताजस्रमप्यथातिशयो भरः ॥ १७॥ अतिवेलभृशात्यर्थातिमात्रोद्गाढनिर्भरम् । तीव्रैकान्तनितान्तानि गाढवाढदृढानि च॥ १८॥ गुह्यकेशो यक्षराजो राजराजो धनाधिपः । स्यात् किन्नरः किंपुरुषस्तुरङ्गवदनो मयुः॥ १९॥ निधिर्नां शेवधिर्व्योम त्वभ्रं पुष्करमम्बरम् । द्यौर्दिवौ चान्तरीक्षं खं काष्ठाशाककुभो दिशः ॥ २०॥ आभ्यन्तरन्त्वन्तारलञ्चक्रवालन्तु मण्डलम्। तडित्वान् वारिदो मेघस्तनयित्नुर्बलाहकः॥ २१॥ कादम्बिनी मेघमाला स्तनितं गर्जितं तथा। शम्पातशतह्रदाह्रादिन्यैरावत्यः क्षणप्रभाः ॥ २२ ॥ तड़ित् सौदामिनी विद्युच्चञ्चला चपलाऽपि च । स्फुर्जथुर्वज्रनिर्घोष वृष्टिघातस्त्ववग्रहः ॥ २३॥ धारा सम्पात आसारः शीकरोऽम्बुकणाः स्मृताः । वर्षोपलस्तु करका मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम् ॥ २४ ॥ अन्तर्धा व्यवधा पुंसि त्वन्तर्द्धिरपवारणम् । अपिधानतिरोधानपिधानच्छादनानि च॥ २५॥ अब्जो जैवातृकः सोमो ग्लौर्मृगाङ्कः कलानिधिः । विधुः कुमुदबन्धुश्च बिम्बोऽस्त्री मण्डलं त्रिषु॥२६॥

गन्धर्वों के नाम हैं । अग्नि, बह्नि, धनञ्जय जातवेदा, कृष्णवर्मा, आश्रयाश, पावक, हिरण्यरेता, सप्तार्चिः, शुक्र, आशुशुक्षणि, शुचि तथा अप्ति ये अग्नि के नाम हैं । और्व, वाडव तथा वाडवानल ये समुद्र के भीतर की अग्नि के नाम हैं ।। १०-११ ।। अग्नि की ज्वाल के पाँच नाम हैं- ज्वाला, कील (स्त्री तथा पु०) अर्चिष (नपुं०) हेति तथा शिखा (स्०ी) स्फुलिङ्ग तथा स्त्री० पु० नपुं० अग्निकण ये दो नाम चिनगारी के हैं । धर्मराज, परेतराट् ।। १३ ।। काल, अन्तक, दण्डधर तथा श्राद्धदेव ये यमराज के नाम हैं । राक्षस, कौणप, अश्रप, क्रव्याद, यातुधान तथा नैर्ऋति- ये राक्षसों के नाम हैं ।। १४ ।। प्रचेता, वरुण तथ पाशी ये वरुण के नाम हैं । श्वसन, स्पर्शन, अनिल, सदागतिः, मातरिश्वा, प्राण, मरुत् तथा समीरण- ये वायु के नाम हैं ।। १५ ।। जव (पुं०) रहंस तथा तरस (नपुं०) ये वेग के नाम हैं । लघु, क्षिप्र, अद, द्रुत, सत्वर, चपल, तूर्ण, अविलम्बित तथा आशु- ये शीघ्रता के नाम हैं । क्रिया विशेषण होने पर इन सबों का नपुंसक लिङ्ग एकववचन में प्रयोग होता है ।। १६ ।। सतत, अनारत, अश्रान्त, संतत, अविरत, अनिश, नित्य, अनवरत तथा अजस्र- ये निरन्त के वाचक हैं । इनका भी प्राय; क्रिया विशेषण के ही रूप में प्रयोग होता है। केवल नित्य शब्द अन्य विशेषणों में भी प्रयोग होता है । अतिशय भर, अतिवेल, भृश, अत्यर्थ, अतिमात्र उद्गाढ, निर्भर, तीव्र, एकान्त, नितान्त, गाढ बाढ़ तथा दृढ़- ये अतिशय के वाचक हैं ।।१७-१८।। गुह्यकेश, राजराज, यक्षराज तथा धनाधिप- ये कुबेर के नाम हैं । किन्नर, किंपुरुष, तुरङ्गवदन तथा मयु- ये किन्नरों के नाम हैं ।। १९ ।। निधि तथा शेवधिः (पु०) ये निधि के नाम हैं । व्योम, अभ्र, पुष्कर अम्बर, द्यौः, दिव्, अन्तरीक्ष तथा ख ये आकाश के नाम हैं । काष्ठा, आशा, ककुभ् तथा दिश् ये दिशा के नाम हैं ।। २० ।। अभ्यन्तर तथा अन्तराल मध्य के नाम हैं । चक्रवाल तथा मण्डल ये गोलकार मण्डल तथा समुदाय के नाम हैं । तडित्वान्, वारिद्, मेघ, स्तनयित्नु तथा बलाहक ये मेघ के नाम हैं ।। २१ ।। बादलों की घटा का नाम कादम्बिनी तथा मेघमाला है । स्तनित, गर्जित (नपुं) ये दोनों मेघ के गरजने के नाम हैं । शम्पा, शतह्रदा, ह्रादिनी, ऐरावती, क्षणप्रभा, तडित, सौदामिनी, विद्युत्, चञ्चला और चपला- ये नव नाम विजली के हैं । स्फुर्जथु, वज्रनिघोष, ये दो नाम विजली के गड़गड़ाहट के हैं । वर्षा के रुक जाने को वृष्टिघात तथा अवग्रह कहते हैं ।। २२-२३ ।। मुसलाधार वर्षा होने के दो नाम हैं, धारासम्पातः तथा आसार। जल के कण को शीकर कहते हैं । वर्षा के साथ गिरने वाले ओले को करका कहते हैं । बादलों की घटा से छिपे हुए दिन को दुदिन कहते हैं ।। २४ ।। अन्तर्धा, व्यधा अन्तर्धि (पु०) अववारण, अविधान, तिरोधान, पिधान तथा आच्छादन (नपुं०) ये आठ नाम अदृश्य होने के नाम हैं ।। २५ ।। अब्ज, जैवातृक, सोम, ग्लौ, मृगाङ्क, कलानिधः, विधु, कुमुदबन्धु- ये नाम चन्द्रमा के हैं। विम्ब (पु०) मण्डल (पु० नपुं० स्त्री) ये चन्द्रमा तथा सूर्य के मण्डल के नाम हैं ।। २६ ।। चन्द्रमा के सोलहवें भाग को कला कहते हैं । भित्त, शकल तथा खण्ड- ये टुकड़े के नाम हैं । चन्द्रिका,

कला तु षोडशो भागो भित्तं शकलखण्डके । चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना प्रसादस्तु प्रसन्नता ॥ २७ ॥ लक्षणं लक्ष्मकं चिह्नं शोभा कान्तिर्द्युतिश्छविः। सुषमा परमा शोभा तुषारस्तुहिनं हिमम्॥२८॥ अवश्यायस्तु नीहारः प्रालेयः शिशिरो हिमः । नक्षत्रमृक्षं भन्तारा तारकाप्युडु वा स्त्रियाम् ॥ २९ ॥ गुरुर्जीव आङ्गिरस उशना भार्गवः कविः । विधुन्तुदस्तमो राहुर्लग्नं राश्युदयः स्मृतः॥ ३०॥ सप्तर्षयो मरीच्यत्रिमुखाश्चित्रशिखण्डिनः । हरिदश्वब्रध्नपूषद्युमणिर्मिहिरो रविः ॥ ३१॥ परिवेषस्तु परिधिरुपसूर्य्यकमण्डले । किरणोस्त्रमयूखांशुगभस्तिघृणिधृष्णयः ॥ ३२ ॥ भानुः करो मरीचिः स्त्रीपुंसयोर्दीधितिः स्त्रियाम् । स्युः प्रभा रुग्रुचिस्त्विड्भाभाश्छविद्युतिदीप्तयः ॥ ३३ ॥ रोचिः शोचिरुभे क्लीबे प्रकाशो द्योत आतपः । कोष्णं कवोष्णं मन्दोष्णं कदुष्णं त्रिषु तद्वति ॥ ३४॥ तिग्मं तीक्ष्णं खरं त्वद् दिष्टोऽनेहा च कालकः । घस्रो दिनाहनी चैव सायं सन्ध्या पितृप्रसूः॥३५॥ प्रत्यूषोऽऽहर्मुखं कल्यमुषःप्रत्यूषसी अपि। प्राह्णा पराह्णमध्याह्नास्त्रिसन्ध्यमथ शर्वरी॥ ३६॥ यामी तमी तमिस्रा च जयौत्स्नी चन्द्रिकयान्विता । आगामिवर्त्तमानाहर्युक्तायां निशि पक्षिणी ॥ ३७ ॥अर्द्धरात्रनिशीथौ द्वौ प्रदोषो रजनीमुखम्। सपर्वसन्धिः प्रतिपत्पञ्चदश्योर्यदन्तरम्॥३८॥ पक्षान्तौ पञ्चदश्यौ द्वे पौर्णमासी तु पूर्णिमा । कलाहीने सानुमतिः पूर्णे राका निशाकरे ॥ ३९ ॥ अमावास्या त्वमावास्या दर्शः सूर्येन्दुसङ्गमः । सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहूः ॥ ४० ॥ संवर्त्तः प्रलयः कल्पः क्षयः कल्पान्त इत्यपि । कलुषं वृजिनैनोऽघमंहोदुरितदुष्कृतम्॥ ४१॥ स्याद्

कौमुदी, ज्योत्स्ना ये चाँदनी के नाम हैं । प्रसाद तथा प्रसन्नता ये दो नाम निर्मलता तथा हर्ष के वाचक हैं ।। २७ ।। लक्षण, लक्ष्म तथा चिह्न ये तीन नाम चिह्न के हैं । शोभा, कान्ति, द्युति और छवि ये शोभा के नाम हैं । सुषमा परम शोभा का नाम है । तुषार, तुहिन, हिम, ।। २८ ।। अवश्याय, नीहार, प्रालेय, शिशिर तथा हिम ये पाले के वाचक हैं । नक्षत्र, ऋक्ष, भ (नपुं०) तारा, तारका, (स्त्री०) उडु (स्त्री नपुं०) ये नक्षत्र के पर्याय हैं ।। २९ ।। गुरु, जीव, आंङ्गिरस- ये वृहस्पति के नाम हैं । उशना, भार्गव तथा कवि- ये तीन नाम शुक्राचार्य के हैं । विधुन्तुद, तम तथा राहु- ये तीन नाम राहु के हैं । राशियों के उदय को लग्न कहते हैं ।। ३० ।। मरीचि तथा अत्रि आदि सप्तर्षियों को चित्रशिखण्डी कहते हैं । हरिदश्व ब्रह्म, पूषा, द्युमणि, मिहिर तथा रवि- ये सूर्य के नाम हैं ।। ३१ ।। परिवेष, परिधि, उपसूर्यक, तथा मण्डल ये उत्पात आदि के समय सूर्य के चारों ओर दिखायी पड़ने वाले घेरे के नाम हैं । किरण, उस्त्र, मयूख, अंशु, गभस्ति, घृणि, घृष्णि, भानु, कर (पु०) मरीचि (स्त्री० पु०) दीधिति (स्त्री०) ये सूर्य की किरणों के नाम हैं ।। २६।। प्रभा, रुक्, रुचि, त्विट्, भा, आभा, छवि, द्युति (स्त्री०) रोचिष् शोचिष् (नपुं०)। ये प्रभा के नाम हैं । प्रकाश, द्योत, आतप (पुं०) ये तीन नाम धूप के हैं ।। ३३।। कोष्ण, कवोष्ण, मन्दोष्ण तथा कदुष्ण (पु० स्त्री० नपुं०) ये नाम कम गर्म के हैं । इनका लिङ्ग परिवर्तन विशेष्य के अनुसार होता है ।।३४।। तिग्म, तीक्ष्ण तथा खर (पु० स्त्री० नपु०) ये अधिक गर्म के वाचक हैं । इनका भी लिङ्ग परिवर्तन विशेष्य के अनुसार होता है । दिष्ट, अनेहस् तथा काल (पु०) ये समय के वाचक हैं । घस्र, दिन तथा अहन् (नपुं०) ये दिन के वाचक हैं । सायम् यह सायंकाल का नाम है । संध्या तथा पितृप्रसु ये दो संध्या के नाम हैं ।। ३५ ।। प्रत्यूष्, अहर्मुख, कल्य, उषस् तथा प्रत्यूष ये प्रभातकाल के वाचक हैं । दिन के प्रथम भाग को प्राहण, अन्तिम भाग को अपराह्ण तथा मध्यभाग को मध्याह्न कहते हैं । इन तीनों के समुदाय को त्रिसन्ध्य कहते हैं । शर्वरी, यमी, तमी ये रात्रि के वाचक हैं । अन्धेरी रात को तमिस्रा कहते हैं तथा चाँदनी रात्रि को ज्योत्स्नी कहते हैं ।। ३६।। आगामी दिन तथा वर्तमान दिन के बीच की रात्रि का बोध कराने के लिए पक्षिणी शब्द का प्रयोग होता है ।। ३७ ।। आधी रात के दो नाम हैं- अर्द्धरात्र तथा निशीथ (पु०) रात्रि के प्रारम्भ के दो नाम हैं- प्रदोष तथा रजनीमुख । प्रतिपदा तथा अमावस्या या पूर्णिमा के बीच का जो समय होता हे, उसे सपर्व कहते हैं। दोनों पञ्चदशियों अर्थात् पूर्णिमा एवं अमावस्या को पक्षान्त कहते हैं । पूर्णिमा के दो नाम हैं पौर्णभासी तथा पूर्णिमा ।। ३८।। पूर्णिमा को चन्द्रोदय के समय प्रतिपद् का योग लग जाने से एक कला से हीन चन्द्रमा का उदय हो तो उस पूर्णिमा को 'अनुमति' कहते हैं । यदि पूर्ण चन्द्रमा का उदय होता है तो उस पूर्णिमा को 'राका' कहते हैं । अमावस्या के चार नाम हैं- अमावस्या,

धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः । मुत् प्रीतिः प्रमदो हर्षः प्रमोदामोदसम्मदाः ॥ ४२ ॥ स्यादानन्दथुरानन्दः शर्मशातसुखानि च । श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलंशुभम्॥ ४३॥ भावुकं भविकं भव्यं कुशलं क्षेममस्त्रियाम् । दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः ॥ ४४ ॥ क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः प्रधानं प्रकृतिः स्त्रियाम् । हेतुर्ना कारणं वीजं निदानं त्वादिकारणम् ॥ ४५ ॥ चित्तन्तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसम्मनः । बुद्धिर्मनीषा धीषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः ॥ ४६ ॥ प्रेक्षोपलब्धिश्चितसंवित्प्रतिपज्ज्ञप्तिचेतनाः । धीर्धारणावतीमेधा सङ्कल्पः कर्ममानसम्॥ ४७॥ सङ्ख्या विचारणा चर्चा विचिकित्सा तु संशयः । अध्याहारस्तर्क ऊहः समो निर्णयनिश्चयौ ॥ ४८ ॥ मिथ्यादृष्टिर्नास्तिकता भ्रान्तिर्मिथ्यामतिर्भ्रमः । अङ्गीकाराभ्युपगमप्रतिश्रवसमाधयः॥ ४९॥ मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः । मुक्तिः कैवल्यनिर्वाणश्रेयोनिःश्रेयसामृतम् ॥ ५० ॥ मोक्षोऽपवर्गोऽथाज्ञानमविद्याहम्मतिः स्त्रियाम् । विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे॥ ५१॥ आमोदः सोऽतिनिर्हारी सुरभिर्घ्राणतर्पणः । शुक्लशुभ्रशुचिश्वेतविशदश्वेतपाण्डराः ॥ ५२ ॥ अवदातः सितो गौरो वलक्षो धवलोऽर्जुनः। हरिणः पाण्डुरः पाण्डुरीषत्पाण्डुस्तु धूसरः ॥ ५३ ॥ कृष्णो नीलासितश्यामकालश्यामलमेचकाः ॥ पीतो गौरो हरिद्राभः पालाशो हरितो हरित्॥५४॥ रोहितो लोहितो रक्तःशोणः कोकनदच्छविः । अव्यक्तरागस्त्वरुणः श्वेतरक्तस्तु पाटलः ॥ ५५॥ श्यावः स्यात् कपिशो धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते । कडारः कपिलः पिङ्गपिशङ्गौकद्रुपिङ्गलौ ॥ ५६॥

आमावस्य, दर्श तथा सूर्येन्दुसंगम ।। ३९।। सबेरे के चतुर्दशी का योग होने से अमावस्या के प्रातःकाल यदि चन्द्रमा का दर्शन हो जाय तो उस अमावस्या को सिनीवाली कहते हैं । किन्तु चन्द्रोदय काल में अमावस्या का योग होने से यदि चन्द्रमा की कला बिल्कुल न दिखायी पड़े तो, उस अमावस्या को कुहू कहते हैं ।। ४० ।। संवर्त, प्रलय, कल्प, क्षय तथा कल्पान्त ये पाँच नाम प्रलय के हैं । कलुष, वृजिन, एनः अघ, अंह, दुरित और दुष्कृत- ये पाप के नाम हैं ।। ४१ ।। धर्म (पु० नपुं०) पुण्य, श्रेयः, सुकृत (नपुं) तथा वृष (पु०) ये नाम पुण्य के हैं । भुत्, प्रीति, प्रमद हर्ष, प्रमोद आमोद, सम्मद आनन्दथु, आनन्द, शर्म, शात एवं सुख- ये सुख एवं हर्ष के नाम हैं ।। ४२।। श्वः श्रेयस्, शिव, भद्र, कल्याण, मङ्गल, शुभ, भावुक, भाविक, भव्य, कुशल तथा क्षेम- ये कल्याण के बोधक हैं । इन शब्दों का प्रयोग पुल्लिङ्ग तथा नपुंसक लिङ्ग दोनों में होता है ।। ४३ ।। दैव, दिष्ट, भागधेय, भाग्य (नपुं० नियति (स्त्री०) तथा विधि (पु०) ये भाग्य के पर्यायवाची शब्द हैं।।४४।। क्षेत्रज्ञ, आत्मा, तथा पुरुष ये आत्मा के वाचक शब्द हैं । प्रधान (नपुं०) प्रकृति (स्त्री०) ये दो नाम प्रकृति के हैं । हेतु (पु०) कारण तथा बीज (नपुं) ये कारण के वाचक शब्द हैं। कार्य की उत्पत्ति में जो प्रधान कारण होता है, उसके दो नाम हैं निदान एवं आदिकारण ।। ४५ ।। चित्त, चेतस्, हृदय, स्वान्त, हृत्, मानस तथा मन ये मन के पर्याय हैं । बुद्धि, मनीषा, धीषणा, धी, प्रज्ञा, शेमुषी, मति, प्रेक्षा, उपलब्धि, चित्, संवित्, प्रतिपत्, ज्ञप्ति, चेतना, ये सभी शब्द बुद्धि के वाचक हैं ।। ४६।। धारण शक्ति से युक्त बुद्धि को मेधा कहते हैं । मानसिक व्यापार का नाम संकल्प है । संख्या, विचारणा, चर्चा ये विचार के नाम हैं । विचिकित्सा तथा संशय ये संदेह के नाम हैं ।। ४७।। अध्याहार, तर्क एवं ऊह- ये तर्क वितर्क के नाम हैं । निश्चित, विचार के नाम निर्णय और निश्चय हैं ।। ४८ ।। नास्तिकता का दूसरा नाम मिथ्यादृष्टि है । भ्रान्ति, मिथ्यामति तथा भ्रम- ये तीनों भ्रमात्मक ज्ञान के वाचक शब्द हैं । अङ्गीकार,अभ्युपगम, प्रतिश्रव तथा समाधि ये स्वीकार रूपी अर्थ के वाचक शब्द हैं ।। ४९ ।। मोक्षविषयिणी बुद्धि का नाम ज्ञान तथा शिल्प एवं शास्त्र विषयक बुद्धि को विज्ञान कहते हैं । मुक्ति, कैवल्य, श्रेयस् निःश्रेयस्, अमृत, मोक्ष तथा अपवर्ग- ये मोक्ष के वाचक शब्द हैं । अज्ञान (नपुं०) अहम्मति एवं अविद्या- ये तीनों अज्ञान के पर्याय हैं ।। ५०।। रगड़ से उत्पन्न हुई सुगन्ध का नाम परिमल है । वह गन्ध यदि अत्यन्त मनोहर हो तो उसे आमोद कहते हैं । घ्राणेन्द्रिय को तृप्त करने वाली उत्तम गन्ध का नाम सुरभि है ।। ५१।। शुभ्र शुक्ल, शुचि, श्वेत, विशद, श्येत, पाण्डर, अवदात् सित, गौर, वलक्ष, धवल तथा अर्जुन- ये श्वेत वर्ण के वाचक शब्द हैं ।। ५२।। हरिण, पाण्डुर तथा पाण्डु ये कुछ पीतिमा लिए हुए श्वेत वर्ण के नाम हैं । यदि यह रंग बहुत हल्का हो तो उसे धूसर कहते हैं ।। ५३ ।। नील,

चित्रं किर्म्मीरकल्माषशवलैताश्च कर्वुरे । व्याहार उक्तिर्लपितमपभ्रंशोऽपशब्दकः ॥ ५७॥ तिङ्सुबन्तचयो वाक्यं क्रिया वा कारकान्विता । इतिहासः पुरावृत्तं पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥ ५८ ॥ आख्यायिकोपलब्धार्था प्रबन्धः कल्पना कथा । समाहारः संग्रहस्तु प्रवह्लिका प्रहेलिका ॥ ५९ ॥ समस्या तु समासार्था स्मृतिस्तु धर्मसंहिता । आख्याह्वे चाभिधानञ्च वार्त्ता वृत्तान्त ईरितः ॥ ६० ॥ हूतिराकारणाह्वानमुपन्यासस्तु वाङ्मुखम् । विवादो व्यवहारः स्यात् प्रतिवाक्योत्तरे समे ॥ ६१ ॥ अभिशापो यशः कीर्त्तिः प्रश्नः पृच्छानुयोगकः॥ ६२ ॥ आम्रेडितं द्विस्त्रिरुक्तं कुत्सानिन्दे च गर्हणे । स्यादाभाषणमालापः प्रलापोऽनर्थकं वचः ॥ ६३ ॥ अनुलापो मुहुभार्षा विलापः परिदेवनम् । विप्रलापो विरोधोक्तिः संलापो भाषणं मिथः ॥ ६४ ॥ सुप्रलापः सुवचनमपलापस्तु निह्नवः । उषती वागकल्याणी सङ्गतं हृदयङ्गमम् ॥ ६५ ॥ अत्यर्थमधुरं सान्तवमबद्धं स्यादनर्थकम्। निष्ठुराश्लीलपरुषं ग्राम्यं वै सूनृतं प्रिये॥६६॥ सत्यं तथ्यमृतं सम्यङ्नादनिस्वाननिस्वनाः । आरवारावसंरावविरावा अथ मर्मरः ॥ ६७॥ स्वनितेवस्त्रपर्णानां

असित, श्याम, काल, श्यामल तथा मेचक- ये कृष्ण वर्ण के वाचक शब्द हैं ।। ५३।। पीत, गौर तथा हरिद्राभा- ये पीले रंग के वाचक शब्द हैं । पालाश हरित तथा हरित् ये हरे रंग के वाचक शब्द हैं।।५४।। रोहित, लोहित तथा रक्त लाल रंग के वाचक शब्द हैं । लाल कमल के समान जिसकी शोभा हो उसे शोण कहते हैं । जिसकी लालिमा जान नहीं पड़ती हो उस हल्की लाली का नाम अरुण है। सफेदी लिए हुए जो लाली होती है, अर्थात् गुलाबी रंग को पाटल कहते हैं ।। ५५ ।। जिसमें काले तथा पीले रंग मिले हों उस रंग को श्याव और कपिश कहते हैं । जहाँ काले के साथ लाल रंग मिला हो उसे धूम्र तथा धूमल कहते हैं । कडार, कपिल, पिङ्ग, पिशङ्ग, कद्रु तथा पिङ्गल- ये भूरे रंग के वाचक हैं ।। ५६ ।। चित्र, किर्मीर, कल्माष, शबल, एत तथा कर्बुर- ये चितकबरे रंग के बोधक शब्द हैं ।। ५६।। व्याहार, उक्ति तथा लपित- ये वचन के समानार्थक शब्द हैं । व्याकरण के नियमों से रहित होने के कारण अशुद्ध शब्दों को अपभ्रंश कहते हैं । सुबन्त पदों के समुदाय अथवा तिङन्त पदों के समुदाय को वाक्य कहते हैं । अथवा कारक से युक्त क्रिया इन सबों को वाक्य कहते हैं । प्राचीनकाल में घटित सच्ची घटना का वर्णन करने वाला ग्रन्थ इतिहास अथवा पुरावृत्त कहलाता है । (सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित) इन पाँच लक्षणों से युक्त व्यास महर्षि द्वारा प्रणीत ग्रन्थ पुराण कहलाता है ।। ५८ ।। सच्ची घटना पर आधारित गद्यकाव्य का नाम आख्यायिका है । कल्पित कथा पर आधारित गद्यकाव्य को कथा कहते हैं । संग्रह के वाचक दो शब्द हैं- समाहार तथा संग्रह । बुझौवल अथवा पहेली के दो नाम हैं- प्रवह्लिका तथा प्रहेलिका।।५९।। पूर्ण करने के लिए दी गयी संक्षिप्त पदावली का नाम समस्या है । धर्मशास्त्र के पर्यायवाची दो शब्द हैं- स्मृति तथा धर्मसंहिता । आख्या, आह्वा तथा अभिधान ये नाम के वाचक शब्द हैं । वार्ता तथा वृत्तान्त ये दोनों समानार्थक शब्द हैं ।। ६० ।। हूति, आकरणा तथा आह्वान् ये पुकारने के नाम हैं । वाणी के आररम्भ करने को उपन्यास तथा वाङ्मुख कहते हैं । विवाद तथा व्यवहार मुकदमेबाजी को कहते हैं । प्रतिवाक्य तथा उत्तर ये दोनों समानार्थक हैं । उपोद्घात तथा उदाहार ये दोनों भूमिका के नाम हैं । झूठा कलंक लगाने को मिथ्याभिशंसन तथा अभिशाप कहते हैं । यश तथा कीर्त्ति ये दोनों सुयश के नाम हैं । प्रश्न, पृच्छा तथा अनुयोग ये तीनों नाम पूछने के हैं ।। ६१-६२ ।। एक ही शब्द को दो तीन बार कहने को आम्रेडित कहते हैं । दूसरे की निन्दा करने के तीन नाम हैं- कुत्स, निन्दा तथा गर्हण । साधारण बात-चित को आभाषण तथा आलाप कहते हैं । अनर्थक तथा असम्बद्ध वचन को प्रलाप कहते हैं ।। ६३ ।। बारंबार की जाने वाली वार्ता को अनुलाप कहते हैं। शोकयुक्त किए गए उद्गार के नाम- विलाप तथा तथा परिदेवन है । परस्पर विरोधी बात को विप्रलाप तथा विरोधोक्ति कहते हैं । दो व्यक्तियों द्वारा की गयी आपस में बात को संलापन कहते हैं।। ६४।। उत्तम वाणी को सुप्रलाप तथा सुवचन कहते हैं । किसी बात को जो छिपाने के लिए बात की जाती है उसे अपलाप तथा निह्नव कहते हैं । अकल्याणकारिणी बात को उशतीक होते हैं । हृदय में बैठ जाने वाली युक्तियुक्त वाणी को- संङ्गत तथा हृदयंगम कहते हैं ।। ६५ ।। अत्यन्त मधुर वाणी में जो सान्त्वना दी जाती है उस वाणी को- सान्त्व कहते हैं । जिन बातों का आपस में कोई भी सम्बन्ध न हो उन बातों को अवद्ध एवं अनर्थक कहा जाता है । निष्ठुर तथा परुष ये दोनों कठोर वाणी के वाचक हैं । इन शब्दों के बोधक ग्राम्य तथा अश्लील शब्द हैं । प्रिय

भूषणानान्तु शिञ्जितम् । वीणाया निक्ष्वणः क्वाणः तिरश्चां वाशितं रुतम् ॥ ६८ ॥ कोलाहलः कलकलो गीतं गानमिमे समे । स्त्री प्रतिश्रुत् प्रतिध्वाने तन्त्रीकण्ठान्निषादकः ॥ ६९ ॥ काकली तु कले सूक्ष्मेध्वनौ तु मधुरास्फुटे । कलो मन्द्रस्तु गम्भीरे तारोऽत्युच्चैस्त्रयस्त्रिषु॥ ७०॥ समन्वितलयस्त्वेकतालो वीणा तु वल्लकी। विपञ्ची सा तु तन्त्रीभिः सप्तभिः परिवादिनी ॥ ७१ ॥ ततं वीणादिकं वाद्यमानद्धं मुरजादिकम् । वंशादिकन्तु सुषिरं कांस्यतालादिकं घनम्॥ ७२॥ चतुर्विधमिदं वाद्यं वादित्रातौद्यनामकम् । मृदङ्गा मुरजा भेदास्तङ्क्यालिङ्ग्योर्द्धकास्त्रयः॥ ७३॥ स्याद् यशःपटहो ढक्का भेर्य्यामानकदुन्दुभिः । आनकः पटहो भेदा झर्झरीडिण्डिमादयः ॥ ७४ ॥ मर्दलः पणवस्तुल्यौ क्रियामानन्तु तालकः । लयः साम्यं ताण्डवस्तु नाट्यं लास्यञ्च नर्त्तनम् ॥ ७५ ॥ तौर्य्यत्रिकं नृत्यगीतवाद्यं नाट्यमिदं त्रयम् । राजा भट्टारको देवः साभिषेका च देव्यपि ॥ ७६॥ शृंगारवीरकरुणाद्भुतहास्यभयानकाः । वीभत्सरौद्रे च रसाः शृङ्गारः शुचिरुज्ज्वलः॥ ७७॥ उत्साहवर्धनो वीरः कारुण्यं करुणा घृणा । कृपा दया चानुकम्पाऽप्यनुक्रोशोऽप्यथो हसः ॥ ७८ ॥ हासो हास्यञ्च वीभत्सं विकृतं त्रिष्विदं द्वयम् । विस्मयोऽद्भुतमाश्चर्य्यं चित्रमप्यथ भैरवम् ॥ ७९ ॥ दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकम् । भयङ्करं प्रतिभयं रौद्रन्तूग्रममी त्रिषु ॥ ८०॥ चतुर्दश दरत्रासौ भीतिर्भीः साध्वसम्भयम् । विकारो मानसो

प्रिय लगने वाली वाणी को सुनृत कहते हैं ।। ६६ ।। सत्य, तथ्य, ऋत तथा सम्यक् ये यथार्थवाचक वचन का बोध कराने वाले शब्द हैं । नाद, निस्वान, निःस्वन, आरव, आराव, संराव तथा विराव- ये अव्यक्त शब्द के वाचक शब्द हैं । कपड़े तथा पत्तों से आने वाली आवाज को मर्मर कहते हैं । भूषणों की ध्वनि का नाम शिञ्जित है ।। ६७।। वीणा के स्वर को निक्वण तथा क्वाण कहते हैं । पक्षियों की कलरव ध्वनि को वाशित कहते हैं ।। ६८ ।। एक समूह की आवाज को कोलाहल तथा कलकल कहते हैं । गीत तथा गान ये दोनों समानार्थक शब्द हैं । प्रतिश्रुत (स्त्री) तथा प्रतिध्वनि (नपुं०) ये दोनों प्रतिध्वनि के वाचक शब्द हैं । वीणा के कण्ठ से निषाद आदि स्वर निकलते हैं ।। ६९ ।। मधुर एवं अस्फुट ध्वनि को कल कहते हैं । सूक्ष्म कल का नाम काकली है । जोर से दी जाने वाली आवाज को तार कहते हैं । कल, मन्द्र तथा तार इन तीनों शब्दों का तीनों लिंगों में प्रयोग होता है ।। ७० ।। गाने तथा बजाने के मिले हुए लय को एकताल कहते हैं। वीणा के तीन नाम हैं- वीणा, वल्लकी तथा विपञ्ची। सात तारों से बजने वाली वीणा को परिवादिनी कहा जाता है । वाद्यों के चार भेद हैं- तत, आनद्ध, सुषिर तथा घन । इनमें वीणा आदि वाद्यों को तत कहते हैं । मुरज तथा ढोला आदि को आनद्ध कहते हैं । बाँसुरी आदि को सुषिर कहते हैं तथा काँस्य के झाल आदि को घन् कहते हैं ।। ७१-७२ ।। इन चारों प्रकार के वाद्यों के समुदित नाम हैं- वाद्य वादित्र तथा आतोद्य । ढोल के दो नाम हैं- मृदङ्ग तथा मुरज । उसके तीन भेद हैं- अङ्क्य, आलिङ्ग्य तथा उर्द्धक ।। ७३ ।। सुयश का विस्तार करने के लिए जो डंका पीटा जाता है, उसे यशः पटह तथा ढक्का कहते हैं । भेरी के अर्थ में आनक तथा दुन्दुभि शब्द का प्रयोग किया जाता है । आनक तथा पटह परस्पर पर्यायवाची शब्द हैं । झर्झरी तथा डिण्डिम आदि वाद्यों के भेद हैं ।। ७४ ।। मर्दल तथा पणव ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं । जिससे गाने-बजाने की क्रिया तथा काल का ज्ञान होता है उसे ताल कहते हैं । गीत तथा वाद्य आदि का समान अवस्था में होना लय कहलाता है । ताण्डव, नाट्य, लास्य तथा नर्तन ये सभी नृत्य के पर्यायवाची हैं ।। ७५ ।। नृत्य, गीत तथा वाद्य इन तीनों का समुदित नाम तौर्यत्रिक तथा नाट्य है । नाटक में राजा को भट्टारक कहा जाता है तथा जिसका अभिषेक हुआ रहता है उस महारानी को देवी कहा जाता है ।। ७६ ।। शृंगार, वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, भयानक बीभत्स तथा रौद्र ये आद्ध रस हैं । इनमें शंगार रस के तीन नाम हैं- कारुण्य, करुणा, घृणा, कृपा दया, अनुकम्पा तथा अनुक्रोश। हास्य रस के तीन नाम हैं- हस, हास एवं हास्य । बीभत्स तथा विकृत बीभत्स रस के वाचक हैं । इन दोनों शब्दों का तीनों लिंगों में प्रयोग होता है ।। ७८।। विस्मय, अद्भुत, आश्चर्य तथा चित्र ये अद्भुत रस के वाचक हैं । भैरव, दारुण, भीषण, भीष्म, घोर, भीम, भयानक, भयंकर तथा भयानक ये भयानक रस के वाचक शब्द हैं । उग्र यह रौद्र का पर्याय है। अभुत से लेकर उग्र तक के चौदहों शब्द तीनों लिङ्गों में प्रयुक्त होते हैं। दर, त्रास, भीति, भी, साध्वस तथा भय ये भय के वाचक शब्द हैं ।। ७९-८० ।।

भावोऽनुभावोभावबोधनः ॥ ८१ ॥ गर्वोऽभिमानोऽहङ्कारो मानश्चित्तसमुन्नतिः । अनादरः परिभवःपरिभावस्तिरस्क्रिया॥ ८२॥ व्रीड़ा लज्जा त्रपा ह्रीः स्यादभिध्यानं धने स्पृहा । कौतूहलं कौतुकञ्च कुतुकञ्च कुतूहलम् ॥ ८३ ॥ स्त्रीणां विलासविव्वोकविभ्रमा ललितं तथा । हेला लीलेत्यमी हावाः क्रियाः शृङ्गारभावजाः ॥ ८४ ॥ द्रवकेलिपरीहासा क्रीडा लीला च कूर्दनम् । स्यादाच्छुरितकं हासः सोत्प्रासः समनाक्स्मितम्॥८५॥ अधोभुवनपातालं च्छिद्रंश्वभ्रंवपा शुषिः । गर्त्तावटौ भुवि श्वभ्रे तमिश्रं तिमिरं तमः॥ ८६॥ सर्पः पृदाकुर्भुजगो दन्दशूको विलेशयः । विषं क्ष्वेडश्च गरलं निरयो दुर्गतिः स्त्रियाम्॥ ८७॥ पयः कीलालममृतमुदकं भुवनं वनम् । भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा कल्लोलोल्लोलकौ च तौ ॥ ८८॥ पृषन्तिविन्दुपृषताः कूलं रोधश्च तीरकम्। तोयोत्थितं तत् पुलिनं जम्बालं पङ्ककर्दमौ॥ ८९॥ जलोच्छ्वासाः परीवाहाः कूपकास्तु विदारकाः । आतरस्तरपण्यं स्याद् द्रोणी काष्ठाम्बुवाहिनी॥ ९०॥ कलुषचाविलोऽच्छस्तु प्रसन्नोऽथ गभीरकम् । अगाधं दासकैवर्त्तो शम्बूका जलशुक्तयः ॥ ९१ ॥ सौगन्धिकन्तु कह्लारं नीलमिन्दीवरं कजम् । स्यादुत्पलं कुवलयं सिते कुमुदकैरवे ॥ ९२॥ शालूकमेषां कन्दः स्यात् पद्मं तामरसङ्कजम् । नीलोत्पलं कुवलयं रक्तं

रति आदि मानसिक विकारों को भाव कहते हैं । भाव को अभिव्यक्त करने वाले रोमञ्च आदि को अनुभाव कहते हैं । घमण्ड के तीन नाम हैं- गर्व, अभिमान तथा अहंकार । मेरे सदृश कोई दूसरा नहीं है- इस प्रकार की भावना को मान तथा चित्त समुन्नति कहते हैं । अनादर, परिभव, परिभाव तथा तिरस्क्रिया ये अपमान के वाचक शब्द हैं ।। ८१-८२ ।। व्रीडा, लज्जा, त्रपा तथा ह्री- ये लज्जा के वाचक शब्द हैं । दूसरे के धन को हड़पने की इच्छा को अभिध्यान कहते हैं । कौतूहल, कौतुक, कुतुक, कुतूहल- ये चार कौतुक के पर्यायवाची शब्द हैं ।। ८३ ।। स्त्रियों के शृंगारजन्य चेष्टाओं से उत्पन्न होने वाले ये हाव हैं- विलास, विव्वोक, विभ्रम, ललित, हेला तथा लीला ।। ८४ ।। द्रव, केलि, परिहास, क्रीडा, लीला तथा कूर्द्दन ये सभी खेलकूद हंसी परिहास के वाचक शब्द हैं। दूसरों पर आक्षेप करते हुए जो उसकी हँसी उड़ायी जाती है, उसको- आच्छुरितक कहते हैं । मन्द मुसुकान को स्मित कहते हैं ।। ८५ ।। नीचे के लोकों का नाम अधोभुवन तथा पाताल है । छिद्र, श्वभ्र, वपा तथा सुषिः, ये छिद्र के वाचक हैं । भूमि के भीतर के गड्ढे के दो नाम गर्त तथा अवट् । तमिस्र, तिमिर तथा तम- ये अन्धकार के वाचक शब्द हैं ।। ८६ ।। सर्प, पृदाकु, भुजंग, दन्दशूक तथा विलेशय ये सर्प के नाम हैं । विष, क्ष्वेड तथा गरल- ये विष के नाम हैं ।। ८७ ।। पयस, कीलाल, अमृत, उदर्क, भुवन तथा वन- ये जल के पर्यायवाची शब्द हैं ।। भङ्ग, तरङ्ग, ऊर्मि, कल्लोल तथा उल्लोल ये लहर के नाम हैं ।। ८८ ।। पृषत्, ये जल की बूँदों के नाम हैं । कूल, रोध तथा तीर ये तीन तट के नाम हैं । जल से तुरत बाहर निकले हुए किनारे को पुलिन कहते हैं । कीचड़ के तीन नाम हैं जम्बाल, पंक तथा कर्दम ।। ८९ ।। जलाशय अथवा नदी के भर जाने पर ऊपर से जो जल बहने लग जाता है उसको जलोच्छ्वास तथा परीवाह- कहते हैं । सुखी हुई नदी आदि के गहरे गड्ढे में जो जल रहता है उसको कूपक अथवा विदारक कहते हैं । नदी पार करने के लिए जो खेवाई दी जाती है- उसे आतर अथवा तरपण्य कहते हैं । जिस काठ के बने हुए पात्र में जल रखा जाता है उसे द्रोणी कहते हैं ।। ९० ।। मैले जल को कलुष तथा आविल, स्वच्छ जल को अच्छ तथा प्रसन्न एवं गहरे जल को गभीर तथा अगाध कहते हैं । मल्लाह के दो नाम हैं- दाश तथा कैवर्त । सीपी के दो नाम हैं- शम्बूक तथा जलशुक्ति ।। ९१ ।। दो नाम श्वेत कमल के हैं- सौगन्धिक तथा कह्लार । नीलकमल को इन्दीवर कहते हैं । उत्पल तथा कुवलय- ये नाम कुमुद तथा कमल आदि के साधारण नाम हैं । श्वेत उत्पल को कुमुद तथा कैरव कहते हैं । कुमुद की जड़ का नाम शालूक है । पद्म, तामरस एवं कञ्ज ये कमल के पर्यायवाची शब्द हैं । नील उत्पल का नाम कुवलय तथा लाल उत्पल का नाम कोकनद है ।। ९२-९३ ।। कमल की जड़ का नाम करहाट तथा शिफाकंद है । कमल के केसर को किञ्जलक तथा केसर कहते हैं । खनी (स्त्री०) तथा आकर (पु०) ये दो नाम खान के वाचक हैं । पर्वत के निकट की नीची भूमि को उपत्यका तथा पहाड़ की ऊँची भूमि को अधित्यका कहते हैं । यहाँ तक स्वर्गवर्ग तथा पातालवर्ण आदि का वर्णन

कोकनदं स्मृतम्॥ ९३॥ करहाटः शिफा कन्दं किञ्जल्कः सरोऽस्त्रियाम् । खनिः स्त्रियामाकरः स्यात् पादाः प्रत्यन्तपर्वताः ॥ ९४ ॥ उपत्यकाद्रेरासन्ना भूमिरूर्ध्वमधित्यका । स्वर्गपातालवर्गाद्या उक्ता नानार्थकान् शृणु ॥ ९५॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्वर्गपातालादिवर्गकथनं नाम षष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६० ॥

एकषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अव्ययवर्गाः

अग्निरुवाच— **आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ सीमार्थे धातुयोगजे । आ प्रगृह्यः स्मृतौ वाक्येऽप्यास्तु स्यात् कोपपीड़योः ॥ १ ॥ पापकुत्सेषदर्थे कु धिग्गुजुप्सननिन्दयोः । चान्वाचयसमाहारेतरेतरसमुच्चये ॥ २ ॥ स्वस्त्याशीःक्षेमपुण्यादौ प्रकर्षे लङ्घनेऽप्यति । स्वित्प्रश्ने च वितर्के च तु स्याद् भेदेऽवधारणे ॥ ३॥ सकृत्सहैकवारे स्यादाराद् दूरसमीपयोः । प्रतीच्यां चरमे पश्चादुताप्यर्थविकल्पयोः ॥ ४॥ पुनःसदार्थयोःशश्वत साक्षात्प्रत्यक्षतुल्ययोः। खेदानुकम्पासन्तोषविस्मयामन्त्रणे वत॥ ५॥ हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः । प्रतिप्रतिनिधौ वीप्सालक्षणादौ प्रयोगतः॥ ६॥ इति हेतौ प्रकरणे प्रकाशादिसमाप्तिषु । प्राच्यां पुरस्तात् प्रथमे पुरार्थेऽग्रत इत्यपि ॥ ७॥ यावत् तावच्च साकल्येवधौ मानेऽवधारणे । मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकात्स्न्र्येष्वऽथोथ च ॥ ८॥ वृथा निरर्थकाविध्योर्नानाऽनेकोभयार्थयोः । नु पृच्छायां विकल्पे च पश्चात् सादृश्ययोरनु ॥ ९॥**

किया गया है, अब अनेकार्थक शब्दों का वर्णन सुनो ।। ९४-९५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण के स्वर्गपातालदिवर्ग के वर्णन नामक तीन सौ साठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३६० ॥

अग्निदेव ने कहा— धातु के साथ उपसर्ग का प्रयोग ईषत् (स्वल्प) अभिव्यक्ति तथा मर्यादा (सीमा) के अर्थ में प्रयुक्त होता है । आ प्रगृह्य संज्ञक अव्यय है । इसका वाक्य तथा स्मरण अर्थ में प्रयोग होता है । आः अव्यय का प्रयोग कोप तथा पीड़ा के अर्थ में होता है ।। १ ।। कु अव्य का प्रयोग कुत्सा, (घृणा) पाप तथा ईषत् अर्थ में होता है । धिक् अव्यय का प्रयोग फटकार और निन्दा के अर्थ में होता है । 'च' अव्यय का प्रयोग समुच्चय तथा समाहार अर्थ तथा अन्वाचय तथा इतरेतरयोग में होता है ।। २ ।। स्वस्ति का प्रयोग आशीर्वाद, क्षेम तथा पुण्य आदि के अर्थ में होता है । अति का प्रयोग अधिकता के अर्थ में तथा ए का प्रयोग लंघन के अर्थ में होता है । स्वित् का प्रयोग प्रश्न तथा वितर्क के अर्थ में होता है ।। ३ ।। सकृत् का प्रयोग एक साथ तथा एक बार के अर्थ में होता है । आरात् का प्रयोग दूर तथा समीप के अर्थ में होता है । पश्चात् का प्रयोग पश्चिम दिशा तथा बाद में के अर्थ में प्रयुक्त होता है । उत तथा अपि का अर्थ, समुच्चय तथा विकल्प के अर्थ में होता है ।। ४ ।। शाश्वत् का प्रयोग पुनः तथा सदा के अर्थ में होता है । साक्षात् का प्रयोग प्रत्यक्ष तथा तुल्य के अर्थ में होता है । बत इस अव्यय का प्रयोग खेद, दया, सन्तोष, विस्मय तथा सम्बोधन के अर्थ में होता है ।। ५ ।। हन्त इस अव्यय का प्रयोग हर्ष, अनुकम्पा, वाक्यारम्भ तथा विषाद के अर्थ में होता है । प्रति का प्रयोग प्रतिनिधि, वीप्सा एवं लक्षण के अर्थ में होता है ।। ६ ।। इति इस अव्यय का प्रयोग हेतु, प्रकरण, प्रकाश तथा समाप्ति के अर्थ में होता है । पुरस्तात् - इस अव्यय का प्रयोग- पूर्वदिशा, प्रथम तथा पुरा (पूर्वकाल) एवं आगे के अर्थ में होता है ।। ७ ।। यावत् तथा तावत् इन अव्ययों का प्रयोग समग्र, अवधि (सीमा) माप तथा अवधारणा के अर्थ में होता है । अथो तथा अथ इन दो अव्ययों का प्रयोग मंगल, अनन्तर, आरम्भ प्रश्न तथा समग्रता के अर्थ में होता है ।। ८ ।। वृथा शब्द व्यर्थ तथा अवधि (सीमा) के अर्थ का द्योतक है । नाना शब्द का प्रयोग अनेक तथा उभय के

प्रश्नावधारणानुज्ञाऽनुनयामन्त्रणे ननु। गर्हासमुच्चयप्रश्नशङ्कासम्भावनास्वपि ॥ १० ॥ उपमायां विकल्पे वा समि त्वर्द्धे जुगुप्सिते । अमा सह समीपे च कं वारिणि च मूर्धनि ॥ ११॥ इवेत्थमर्थयोरेवं नूनं तर्केऽर्थनिश्चये । तूष्णीमर्थे मुखे जोषं किम्पृच्छायां जुगुप्सने ॥ १२॥ नाम प्रकाश्यसम्भाव्यक्रोधोपगमकुत्सने । अलं भूषणपर्य्याप्तिशक्तिवारणवाचकम् ॥ हूं वितर्के परिप्रश्ने समयाऽन्तिकमध्ययोः । पुनरप्रथमे भेदे निर्निश्चयनिषेधयोः ॥ स्यात् प्रबन्धे चिरातीते निकटागामिके पुरा । उररयुरी चोररी च विस्तारेऽङ्गीकृते त्रयम् ॥ १५ ॥ स्वर्गे परे च लोके स्वर्वार्त्तासम्भावयोः किल । निषेधवाक्यालङ्कारे जिज्ञासावसरे खलु॥ १६॥ समीपोभयतःशीघ्रसाकल्याभिमुखेऽभितः । नामप्रकाशयोः प्रादुर्मिथोन्योन्यं रहस्यपि॥ १७॥ तिरोऽन्तर्द्धौ तिर्यगर्थे हा विषादशुगर्त्तिषु। अहहेत्यद्भुते खेदे हि हेतावववधारणे ॥ १८॥ चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः। मुहुः पुनः पुनः शश्वदभीक्ष्णमसकृत्समाः॥ १९॥ स्त्राग्झटित्यञ्जसाह्नाय सपदि द्राङ्मङ्क्षु च द्रुते । बलवत् सुष्ठु किमुत विकल्पे किं किमूत च॥२०॥ तु हि च स्म ह वै पादपूरणे पूजनेऽप्यति । दिवाह्नीत्यथ दोषा च नक्तञ्च रजनाविति॥ २१॥ तिर्यगर्थे साचि तिरोप्यथ सम्बोधनार्थकाः। स्युः प्याट्पाडङ्ग हे है भोः समया निकषा हिरुक् ॥ २२ ॥ अतर्किते तु सहसा स्यात् पुरः पुरतोऽग्रतः । स्वाहा देवहविर्दाने श्रौषट् वौषट् वषट्

अर्थ में होता है । अनु- इस अव्यय का प्रयोग सादृश्य तथा पश्चात् के अर्थ में होता है ।। ९ ।। ननु इस अव्यय का प्रयोग- प्रश्न, निश्चय, अनुज्ञा, अनुनय तथा सम्बोधन के अर्थ में होता है । अपि इस अव्यय का प्रयोग निन्दा, समुच्चय, प्रश्न, शङ्का तथा सम्भावना के अर्थ में होता है ।। १० ।। वा इस अव्यय का प्रयोग उपमा तथा विकल्प के अर्थ में होता है । सामि इस अव्यय का प्रयोग आधे तथा निन्दा के अर्थ में होता है । अमा इस अव्यय का प्रयोग साथ एवं समीप के अर्थ में होता है । कम् इस अव्यय का प्रयोग जल तथा मस्तक के अर्थ में होता है।।११।। एवम् इस अव्यय का प्रयोग इव तथा इत्थम् के अर्थ में होता है । नूनम् इस अव्यय का प्रयोग तर्क तथा वस्तु के निश्चय करने के अर्थ में होता है । जोषम् इस अव्यय का अर्थ मौन तथा सुख है । किम् इस अव्यय का अर्थ प्रश्न तथा निन्दा है ।। १२ ।। नाम इस अव्यय का प्रयोग प्रकाशित होना, सम्भावना क्रोध, स्वीकार तथा निन्दा के अर्थ में होता है । अलम् इस अव्यय का प्रयोग भूषण, पर्याप्ति, सामर्थ्य तथा निवारण के अर्थ में होता है ।। १३।। हुम् इस अव्यय का प्रयोग, वितर्क एवं प्रश्न के अर्थ में होता है । समया- इस अव्यय का अर्थ सन्निकट तथा मध्य में होता हे । पुन- इस अव्यय का प्रयोग प्रथम को छोड़कर द्वितीय, तृतीय आदि जितने बार कार्य हो उतने के अर्थ में होता है तथा भेद के अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है । निर् इस अव्यय का प्रयोग निश्चय तथा निषेध के अर्थ में होता है ।। १४ ।। पुरा इस अव्यय का प्रयोग बहुत पहले वीती हुई बात तथा सन्निकट भविष्य में होने वाली बात के अर्थ में होता है । उररी, उरी तथा ऊररी इन तीन अव्ययों का प्रयोग विस्तार तथा अंगीकार के अर्थ में होता है ।। १५ ।। स्वर् यह अव्यय स्वर्गलोक तथा परलोक का वाचक है । किल इस अव्यय का प्रयोग वार्ता तथा सम्भावना के अर्थ में होता है । खलु इस अव्यय का प्रयोग निषेध, वाक्यालंकार, जिज्ञासा तथा अवसर के अर्थ में होता है ।। १६ ।। अभितः- इस अव्यय का प्रयोग समीप, उभयतः, शीघ्र, साकल्य तथा अभिमुख के अर्थ में होता है । प्रादुः- इस अव्यय का प्रयोग नाम अव्यय के अर्थों के अर्थ में तथा प्रकाश के अर्थ में होता है । मिथः- इस अव्य का प्रयोग परस्पर तथा एकान्त के अर्थ में होता है ।। १७ ।। तरस् इस अव्यय का प्रयोग अन्तर्धान तथा तिरछे चलने के अर्थ में होता है । हा- इस अव्यय का प्रयोग विषाद, शोक तथा पीडा को व्यक्त करने के अर्थ में होता है । अहहा इस अव्यय का का प्रयोग, अद्भुत खेद, के अर्थ में तथा हि इस अव्यय का प्रयोग हेतु तथा निश्चय के अर्थ में होता है ।। १९ ।। चिराय, चिररात्राय, चिरस्य ये तीन अव्यय चिरकाल के बोधक हैं । मुहुः, पुनः पुनः शश्वत् अभीक्ष्ण तथा असकृत्- ये सभी अव्यय बारम्बार के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।। १९ ।। द्राक्, झटिति, अञ्जसा अह्नाय, सपदि, स्राक् तथा मंक्षु ये सभी अव्यय शीघ्रता के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं । बलवत् तथा सुष्ठ ये दोनों अव्यय अतिशय तथा शोभन के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं । किमुत् किम् तथा किमूत ये तीनों अव्यय विकल्प के

स्वधा ॥ २३ ॥ किञ्चिदीषन्मनागल्पे प्रेत्याऽमुत्र भवान्तरे । यथा तथा चैव साम्ये अहो हो इति विस्मये ॥ २४॥ मौने तु तूष्णीं तूष्णीकं सद्यः सपदि तत्क्षणे । दिष्ट्या समुपयोषञ्चेत्यानन्देऽर्थान्तरेऽन्तरा ॥ २५ ॥ अन्तरेण च मध्ये स्युः प्रसह्य तु हटार्थकम् । युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थानेऽभीक्ष्णं शश्वदनारते॥ २६॥ अभावे नह्यनो नापि मास्म मालञ्च वारणे । पक्षान्तरे चेद् यदि च तत्त्वे त्वऽद्धाऽञ्जसा द्वयम् ॥ २७ ॥ प्राकाश्ये प्रादुराविः स्यादोमेवं परमं मते । समन्ततस्तु परितः सर्वतो विश्वगित्यपि ॥ २८॥ अकामानुमतौ काममसूयोपगमेऽस्तु च । ननु च स्याद् विरोधोक्तौ कच्चित् कामप्रवेदने ॥ २९ ॥ निःषमं दुःषमं गर्ह्ये यथास्वन्तु यथायथम् । मृषा मिथ्या च वितथे यथार्थन्तु यथातथम् ॥ ३० ॥ स्युरेवन्तु पुनर्वैवेत्यवधारणवाचकाः। प्रागतीतार्थकं नूनमवश्यं निश्चये द्वयम् ॥ ३१ ॥ संवद् वर्षेऽवरे त्वर्वागामेवं स्वयमात्मना । अल्पे नीचैर्महत्युच्चैः प्रायोभूम्नाऽद्रुते शनैः॥ ३२॥ सना नित्ये बहिर्बाह्येस्मातीतेऽस्तमदर्शने। अस्ति सत्त्वे रुषोक्तावमुं प्रश्नेनुनये त्वपि॥ ३३॥ हूं तर्के स्यादुषा रात्रेरवसाने नमो नतौ । पुनरर्थेऽङ्गनिन्दायां

बोधक हैं।। २० ।। तु, हि, च, ह, स्म इन अव्ययों का प्रयोग पादपूर्ति के लिए होता है । अति का प्रयोग पूजन के भी अर्थ में होता है । दिवा- अव्यय दिन का वाचक है । दोषा एवं नक्तम् ये दो अव्यय रात्रि के अर्थ में आते हैं ।। २१ ।। साची तथा तिरस् शब्द तिर्यक् (तिरछे) के अर्थ में आते हैं । प्याट् पाट् अङ्ग हे, है, भोः ये सभी अव्यय सम्बोधन के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं । समया निकषा तथा हिरुक् ये तीनों अव्यय समीप के अर्थ में आते हैं ।। २२ ।। सहसा इस अव्यय का प्रयोग अतर्कित के अर्थ में होता है । पुरः पुरतः तथा अग्रतः इन तीनों अव्ययों का प्रयोग सामने के अर्थ में होता है । स्वाहा इस अव्यय का प्रयोग देवता को हविष्य प्रदान करने के अर्थ में होता है । श्रौषट् तथा वौषट् के भी ये ही अर्थ हैं । वषट् शब्द का प्रयोग इन्द्र का भाग प्रदान करने के अर्थ में तथा स्वधा इस अव्यय का प्रयोग पितरों का भाग प्रदान करने में होता है ।। २३ ।। किञ्चित्, ईषत् तथा मनाक् ये तीनों अव्यय अल्प के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं । प्रेत्य तथा अमुत्र ये दोनों अव्यय जन्मान्तर के बोधक हैं । यथा एवं तथा इन दो अव्ययों का प्रयोग समान के अर्थ में होता है ।। २४ । अहो तथा हो ये दो अव्यय विस्मय रूप के बोधक हैं । तुष्णीम् तथा तुष्णीकम् इन दो अव्ययों का प्रयोग मौन के अर्थ में होता है । सद्यः तथा सपदि इन दो अवययों का प्रयोग तत्काल के अर्थ में होता है । दिष्ट्या तथा समुपजोषम् इन दो अव्ययों का प्रयोग आनन्द के अर्थ में होता है । अन्तरा- इस अव्यय का प्रयोग भीतर के अर्थ में होता है ।। २५ ।। अन्तरेण इस अव्यय का प्रयोग मध्य में के अर्थ में होता है । प्रसह्य शब्द हठ का बोध कराता है । साम्प्रतम् तथा स्थाने इन दो अव्ययों का प्रयोग उचित के अर्थ में होता है । अभीक्ष्णम् तथा शश्वत् इन दो अव्ययों का प्रयोग सर्वदा के अर्थ में होता है ।। २६ ।। नहि, अ, नो और न ये सभी अव्यय अभाव के बोधक हैं । मास्म, मा, और अलम् ये तीनों अव्यय निषेधार्थक हैं । चेत् तथा यदि ये दो अव्यय दूसरा पक्ष उपस्थित करने के लिए प्रयुक्त होते हैं। अद्धा तथा अञ्जसा ये दो अव्यय वास्तव के अर्थ में आते हैं ।। २७ ।। प्रादुस् तथा आविर इन दोनों अव्ययों का अर्थ प्रकट होना है । ओम् एवम् तथा परमम् ये अव्यय स्वीकृति अथवा अनुमति देने के अर्थ में आते हैं । समन्ततः परितः सर्वतः तथा विष्वक् इन तीन अव्ययों का अर्थ चारों ओर है ।। २८ ।। कामम् अव्यय अकाम अनुमति के अर्थ में आता है । अस्तु पद असूया (दोषदृष्टि) तथा स्वीकृति का भाव सूचित करता है । ननु इस अव्यय का प्रयोग किसी बात का विरोध करने के अर्थ में होता है । कच्चित् अव्यय का प्रयोग किसी अभीष्ट वस्तु की जिज्ञासा के लिए प्रश्न करने के अवसर पर प्रयुक्त होता है ।। २९ ।। निःषमम् तथा दुःषमम् इन दोनों अव्ययों का प्रयोग निन्दा के अर्थ में होता है । यथास्वम् तथा यथायथम् इन दो अव्ययों का प्रयोग यथायोग्य के अर्थ में होता है । मिथ्या तथा मृषा इन दो अव्ययों का प्रयोग असत्य के अर्थ में होता है । यथातथम् इस पद का प्रयोग सत्य के अर्थ में होता है ।। ३० ।। एवम्, तु, पुनः, वै तथा वा ये सभी अव्यय निर्धारणार्थक हैं । प्राग्- अतीतकालिक अर्थ का बोधक है, नूनम् तथा अवश्यम् ये दो अव्यय निश्चयार्थक हैं ।। ३१ ।। संवत् शब्द वर्ष का वाचक है- अर्वाक् शब्द पहले का वाचक है । आम् और एवम् ये दो शब्द स्वीकृति देने के वाचक हैं । स्वयम् यह अव्यय अपने से का वाचक है । नीचैस् अव्यय अल्प अर्थ का वाचक है, उच्चैस् यह अव्यय महान् अर्थ का वाचक है । प्रायः यह प्रत्यय बाहुल्य अर्थ का वाचक है । शनैस् यह मन्द अर्थ का वाचक अव्यय है ।। ३२ ।। सना यह अव्यय नित्य का वाचक है । स्म यह अतीतकालिक अर्थ को

दुष्ठु सुष्ठु प्रशंसने॥ ३४॥ सायं साये प्रगे प्रातः प्रभाते निकषाऽन्तिके । परुत्परार्य्यैमोऽब्दे पूर्वे पूर्वतरे यति॥ ३५॥ अद्यात्राऽह्न्यथ पूर्वेऽह्नीत्यादौ पूर्वोत्तरा परात् । तथाऽधरान्यान्यतरेतरात्पूर्वेद्युरादयः ॥ ३६॥ उभयद्युश्चोभयेद्युः परे तवह्नि परे उभयद्युश्चोभयेद्युः परेद्यवि। ह्यो गतेऽनागतेऽह्निः श्वः परश्वः श्वःपरेऽहनि ॥ ३७॥ तदा तदानीं युगपदेकदा सर्वदा सदा । एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतं तथा ॥ ३८॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये अव्ययवर्गकथनं नामैकषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६१ ॥

द्विषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नानार्थवर्गाः

अग्निरुवाच– **आकाशे त्रिदिवे नाकोलोकस्तु भुवने जने । पद्येयशसि च श्लोकः शरे खड्गे च सायकः॥ १॥ आनकः पटहो भेरीकलङ्कोऽङ्कापवादयोः। मारुते वेधसि ब्रध्ने पुंसि कः कं शिरोऽम्बुनोः ॥ २ ॥ स्यात् पुलकाकस्तुच्छधान्ये संक्षेपे भक्तसिक्थके । महेन्द्रगुग्गुलूलूकव्यालग्राहिषु कौशिकः॥ ३॥ शालावृकौ कपिश्वानौ मानं स्यान् मितिसाधनम् । सर्गः स्वभावनिर्मोक्षनिश्चयाध्यायसृष्टिषु ॥ ४ ॥**

सूचित करता है । अस्तम् यह अव्यय अदृश्य होने को बतलाता है । अस्ति यह अव्यय सत्ता का वाचक है । ऊ क्रोध भरी उक्ति का अपि भी प्रश्न एवं अनुनय का वाचक है ।। ३३ ।। हूं तर्क का सूचक है । उषा रात्रि की समाप्ति काल का बोधक है । नमो नमस्कार के अर्थ में प्रयुक्त होता है । पुनः अर्थ का, दुष्ठु निन्दा का तथा सुष्ठु प्रशंसा का बोधक है ।। ३४ ।। सायम् सायंकाल का, प्रगे तथा प्रातर् ये दोनों अव्यय प्रभात काल के बोधक है निकषा समीप का बोधक है । परुत् अव्यय गतवर्ष का बोधक है । परारि यह अव्यय उससे भी पहले के गत वर्ष का बोधक है ।। ३५ ।। अध इस अव्यय का प्रयोग'आज के दिन' इस अर्थ में होता है । पूर्व, उत्तर, अपर, अधर, अन्य, अन्यतर तथा इतर आदि के पहले दिन के आदि के अर्थ में, पूर्वेद्युः आदि अव्ययों का प्रयोग होता है ।। ३६ ।। उभयद्युः तथा उभयेद्युः इन दोनों अव्ययों का प्रयोग 'दोनों दिन' के अर्थ में होता है । परेद्यवि इस अव्यय का प्रयोग (दूसरे दिन) के अर्थ में होता है । ह्यस् अव्यय बीते हुए दिन के अर्थ में आता है । श्वस्- आने वाले काल के लिए प्रयुक्त होता है । परश्वस् आने वाले परसो दिन के अर्थ में आता है ।। ३७ ।। तदा तथा तदानीम् ये दो अव्यय 'उस समय' के अर्थ में आते हैं । युगपत् तथा एकदा इन दो अव्ययों का प्रयोग 'एक ही समय' के अर्थ में होता है । सर्वदा तथा सदा ये दो अव्यय हमेशा के अर्थ में आते हैं । एतर्हि, सम्प्रति, इदानीम्, अधुना तथा साम्प्रतम् इन अव्ययों का प्रयोग इस समय के अर्थ में होता है ।। ३८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अव्यय वर्ग वर्णन नामक तीन सौ एकसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३६१ ॥

अग्निदेव ने कहा– नाक शब्द का प्रयोग आकाश तथा स्वर्ग के अर्थ में होता है । लोक शब्द संसार तथा जनसमुदाय के अर्थ में प्रयुक्त होता है । श्लोक शब्द का प्रयोग पद्य तथा यश के अर्थ में होता है । सायक शब्द का प्रयोग बाण तथा खड्ग के अर्थ में होता है ।। १ ।। आनक शब्द का प्रयोग पटह एवं भेरी के अर्थ में होता है । कलङ्क शब्द चिह्न तथा अपवाद का वाचक है । क शब्द का कः यह पुल्लिंग प्रयोग बायु, ब्रह्मा तथा सूर्य का वाचक है । क शब्द का कम् यह नपुंसक लिंग में प्रयोग मस्तक तथा जल का बोधक होता है ।। २ ।। पुलाक शब्द का प्रयोग कदन्न, संक्षेप तथा भात के पिण्ड के अर्थ में होता है । कौशिक शब्द का प्रयोग इन्द्र, गुग्गुल, उल्लू तथा साँप पकड़ने वाले के अर्थ में होता है ।। ३।। शालावृक शब्द का प्रयोग बन्दर तथा कुत्ते के अर्थ में होता है । मान शब्द का प्रयोग नाप के साधन के अर्थ में होता है । सर्ग शब्द का प्रयोग स्वभाव, त्याग, निश्चय अध्ययन तथा सृष्टि के अर्थ में होता है।।४।।

योगः सन्नहनोपायध्यानसङ्गतियुक्तिषु । भोगः सुखे स्त्र्यादिभृतावब्जौ शङ्खनिशाकरौ ॥ ५॥ काके भगण्डौ करटौ दुश्चर्मा शिपिविष्टकः । रिष्टं क्षेमाशुभाभावेष्वरिष्टे तु शुभाऽशुभे॥ ६॥ व्युष्टिःफले समृद्धौ च दृष्टिर्ज्ञानेऽक्ष्णि दर्शने । निष्ठानिष्पत्तिनाशान्ताः काष्ठोत्कर्षे स्थितौ दिशि ॥ ७ ॥ भूगोवाचस्त्विडा इलाः प्रगाढं भृशकृच्छ्रयोः । भृशप्रतिज्ञयोर्बाढं शक्तस्थूलौ दृढौ त्रिषु॥ ८॥ विन्यस्तसंहतौ व्यूढौ कृष्णो व्यासेऽर्जुने हरौ । पणो द्यूतादिषूत्सृष्टे भृतौ मूल्ये धनेऽपि च ॥ ९ ॥ मौर्व्यां द्रव्याश्रिते सत्वशुक्लसन्ध्यादिके गुणः । श्रेष्ठेऽधिपे ग्रामणीः स्यात् जुगुप्साकरुणे घृणे ॥१०॥ तृष्णा स्पृहापिपासे द्वे विपणिः स्याद् वणिक्पथे । विषाभिमरलोहेषु तीक्ष्णं क्लीबे खरे त्रिषु ॥ ११ ॥ प्रमाणं हेतुमर्य्यादाशास्त्रेयत्ताप्रमातृषु । करणं क्षेत्रगात्रादावीरिणं शून्यमूषरम् ॥ १२ ॥ यन्ता हस्तिपके सूते वह्निज्वाला च हेतयः । श्रुतं शास्त्रावधृतयोर्युगपर्य्याप्तयोः कृतम्॥ १३॥ ख्याते हृष्टे प्रतीतोऽभिजातस्तु कुलजे बुधे । विविक्तौ पूतविजनौ मूर्च्छितौ मूढसोच्छ्रयौ ॥ १४ ॥ अर्थोऽभिधेयस्वस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु । निदानागमयोस्तीर्थमृषिजुष्टजले गुरौ ॥ १५ ॥ प्राधान्ये राजलिङ्गे च वृषाङ्गे ककुदोऽस्त्रियाम् । स्त्री संविज्ञानसम्भाषाक्रियाकाराजिनामसु ॥१६॥ धर्मे रहस्युपनिषत् स्यादृतौ वत्सरे शरत् । पदं व्यवसितित्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु ॥ १७ ॥ त्रिष्विष्टमधुरौ स्वादू मृदू चातीक्ष्णकोमलौ । सत्ये

योग शब्द कवच धारण, साम आदि उपायों के प्रयोग, ध्यान, संगति तथा युक्ति का वाचक हैं । भोग शब्द सुख तथा स्त्री आदि के उपभोग का वाचक है । अब्ज शब्द शंख तथा चन्द्रमा का वाचक है ।। ५ ।। करट शब्द हाथी के कपोल तथा कौए का वाचक है । शिपिविष्ट शब्द दुश्चर्मा (कोढ़ी) का वाचक है । दिष्ट शब्द का प्रयोग क्षेम (कल्याण) अशुभ तथा अभाव का वाचक है । अरिष्ट शब्द शुभ तथा अशुभ दोनों का वाचक है ।। ६ ।। व्युष्टि शब्द प्रभातकाल तथा समृद्धि के अर्थ में आता है । दृष्टि शब्द ज्ञान, नेत्र और दर्शन के अर्थ में आता है । निष्ठा के अर्थ हैं- निष्पत्ति, नाश तथा अन्त । काष्ठा शब्द के अर्थ हैं- उत्कर्ष, स्थिति तथा दिशा ।। ७ ।। इडा तथा इला शब्द पृथिवी तथा गौ के वाचक हैं । प्रगाढ़ शब्द, अत्यन्त एवं कठिनाई का बोध कराता है । बाढम् पद अत्यन्त तथा प्रतिज्ञा के अर्थ में आता है । दृढ़ शब्द समर्थ तथा स्थूल का वाचक है- इसका तीनों लिंगों में प्रयोग होता है ।। ८ ।। व्यूढ़ का अर्थ है- विन्यस्त (सिल सिलेवार रखा हुआ तथा संहत (संगठित) कृष्ण शब्द- व्यास, अर्जुन, तथा श्रीकृष्ण का वाचक है । पण शब्द का प्रयोग जुए में दाँव पर लगायी गयी वस्तु तथा धन का वाचक है ।।९।। गुण शब्द का प्रयोग प्रत्यञ्चा, द्रव्यों के आश्रित रहने वाले, रूप, रस आदि गुण सत्त्व आदि (रजस् एवं तमस्) शुक्ल आदि गुण तथा सन्धि आदि नीति के छह गुणों का वाचक है । ग्रामणी शब्द श्रेष्ठ तथा स्वामी का वाचक है । घृणा- शब्द जुगुप्सा तथा दया का वाचक है ।। १० ।। तृष्णा इच्छा तथा प्यास दोनों का वाचक है । विषणि शब्द के दो अर्थ हैं- बाजार तथा बनिये की दूकान । नपुंसकलिङ्ग में प्रयुक्त तीक्ष्णम् शब्द विष, अभिमर (संग्राम) तथा लौह का वाचक है । प्रचण्ड तथा प्रखर के अर्थ में उसका तीनों लिङ्गों में प्रयोग होता है ।। ११ ।। प्रमाण शब्द का प्रयोग हेतु, मर्यादा, शास्त्र, इयत्ता (सीमा) तथा प्रमाता के अर्थ में होता है । करुण शब्द का प्रयोग क्षेत्र तथा गात्र के अर्थ में प्रयुक्त होता है । करुण शब्द का प्रयोग क्षेत्र तथा गात्र इत्यादि का बोधक हैं ईरिण शब्द शून्य तथा भूमि का वाचक है । १२ ।। हेति शब्द का प्रयोग हाथीवान तथा सारथि के अर्थ में होता है । हेति शब्द का प्रयोग आग की ज्वाला के अर्थ में होता है। श्रुत शब्द का प्रयोग शास्त्र तथा (निश्चय) के अर्थ में होता है । कृत् शब्द सयुग तथा पर्याप्ति का वाचक है ।। १३ ।। प्रतीत शब्द का प्रयोग विख्यात तथा दृष्ट के अर्थ में होता है । अभिजात शब्द का प्रयोग कुलीन तथा विद्वान् के अर्थ में होता है । विविक्त शब्द पवित्र तथा एकान्त अर्थ का बोध कराता है तथा मूर्छित शब्द संज्ञाशून्य (बेहोश) तथा उन्नत अर्थ को बतलाता है ।। १४।। अर्थ शब्द अभिधेय (वाच्यार्थ) धन, वस्तु, प्रयोजन तथा निवृत्ति का वाचक है । तीर्थ शब्द निदान (उपाय) आगम (शास्त्र) तीर्थस्थान, महर्षियों द्वारा सेवित जल तथा गुरु के अर्थ में प्रयुक्त होता है ।। १५ ।। पुल्लिंग तथा नपुंसकलिंग में प्रयुक्त होने वाले ककुद् शब्द के अर्थ हैं- राजचिह्न बैल के अंग विशेष तथा प्राधान्य। संवित् (स्त्रीलिङ्ग) शब्द के अर्थ हैं- ज्ञान, सम्भाषण, क्रिया के नियम, युद्ध तथा नाम ।। १६ ।। उपनिषत् शब्द का प्रयोग रहस्य तथा धर्म है । शरत् शब्द ऋतु तथा वर्ष के अर्थ में आता है । पद शब्द के अर्थ हैं- व्यवसाय, (निश्चय) रक्षा, स्थान,

साधौ विद्यमाने प्रशस्तेऽभ्यर्हिते च सत् ॥ १८॥ विधिविधाने दैवेऽपि प्रणिधिः प्रार्थने चरे । वधूर्जाया स्नुषा स्त्री च सुधालेपोऽमृतं स्नुही ॥१९॥ स्पृहा सम्प्रत्ययः श्रद्धा पण्डितम्मन्यगर्वितौ । ब्रह्मबन्धुरधिक्षेपे भानू रश्मिदिवाकरौ॥ २०॥ ग्रावाणौ शैलपाषाणौ मूर्खनीचौ पृथग्जनौ । तरुशैलौ शिखरिणौ तनुस्त्वग्देहयोरपि॥ २१॥ आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्मवर्ष्म च । उत्थानं पौरुषे तन्त्रे व्युत्थानं प्रतिरोधने ॥ २२ ॥ निर्य्यातनं वैरशुद्धौ दाने न्यासार्पणेऽपि च । व्यसनं विपदि भ्रंशे दोषे कामकोपजे॥ २३॥ मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः ! तौर्य्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥ २४ ॥ पैशून्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्। वाग्दण्डश्चैव पारुष्यं क्रोधजोऽपिगणोऽष्टकः॥ २५॥ अकर्म्मगुह्ये कौपीनं मैथुनं सङ्गतौ रतौ । प्रधान परमार्था धीः प्रज्ञानं बुद्धिचिह्नयोः ॥ २६॥ क्रन्दने रोदनाह्वाने वर्ष्म देहप्रमाणयोः । आराधनं साधने स्यादवाप्तौ तोषणेऽपि च ॥ २७ ॥ रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपि लक्ष्म चिह्नप्रधानयोः । कलापो भूषणे वर्हे तूणीरे संहतेऽपि च ॥ २८ ॥ तल्पं शर्य्याट्टदारेषु डिम्भौ तु शिशुबालिशौ । स्तम्भौ स्थूणाजड़ीभावौ सभ्ये संसदि वै सभा ॥ २९ ॥ किरणप्रग्रहौ रश्मी धर्म्माः पुण्ययमादयः । ललामं पुच्छपुण्ड्राश्वभूषाप्राधान्यकेतुषु ॥ ३० ॥ प्रत्ययोधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु । समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः ॥ ३१ ॥ अत्ययोऽतिक्रामे

चिह्न, चरण तथा वस्तु ।। १७ ।। स्वादु शब्द प्रिय तथा मधुर अर्थ का वाचक है । मृदु शब्द तीक्ष्णता रहित तथा कोमल अर्थ का वाचक है । मृदु तथा स्वादु शब्द दोनों का प्रयोग तीनों लिंगों में होता है । सत् शब्द का प्रयोग सत्य, साधु, विद्यमान प्रशस्त तथा पूज्य के अर्थ में होता है ।। १८ ।। विधि शब्द विधान तथा दैव का वाचक है । प्रणिधि शब्द याचना तथा दूत के अर्थ में प्रयुक्त होता है । बधू शब्द का प्रयोग जाया (पत्नी) स्नुषा (पतोहू) तथा स्त्री के अर्थ में होता है । सुधा शब्द का प्रयोग चूना, अमृत तथा शहद के अर्थ में होता है ।। १९ ।। श्रद्धा शब्द आदर, विश्वास एवं आकांक्षा के अर्थ में प्रयुक्त होता है । पण्डितम्मन्श्रय तथा गर्वित (घमण्डी) ये समानार्थक हैं । ब्रह्मबन्धु शब्द का प्रयोग ब्राह्मण का अपमान करने के लिए कहा जाता है । भानु शब्द किरण तथा सूर्य दोनों का वाचक है ।। २० ।। ग्रावन् (ग्रीवा) शब्द पर्वत एवं पत्थर दोनों का वाचक है । पृथग्जन शब्द का प्रयोग मूर्ख तथा नीच दोनों अर्थों में होता है । शिखरी शब्द का प्रयोग वृक्ष तथा पर्वत दोनों के अर्थ में होता है । तनु शब्द शरीर तथा त्वचा (छाल) दोनों का वाचक है ।। २१ ।। आत्मा शब्द का प्रयोग यत्न, धृति, बुद्धि, ब्रह्म तथा वर्ण (शरीर) के अर्थ में होता है । उत्थान शब्द का प्रयोग पौरुष तथा तन्त्र के अर्थ में होता है । व्युत्थान शब्द का अर्थ विरोध में खड़ा होना है।।२२।। निर्यातन शब्द का प्रयोग वैर का बदला लेने, दान देने तथा धरोहर लौटाने के अर्थ में होता है । व्यसन शब्द का प्रयोग विपत्ति, अधःपतन तथा काम तथा क्रोध से उत्पन्न होने वाले दोषों के अर्थ में होता है ।। २३ ।। शिकार, जुआ, दिन में सोना, दूसरों की निन्दा करना, स्त्रियों में आसक्त होना, मदिरा पीना, नाचना, गाना, बाजा बजाना तथा व्यर्थ घूमना- ये काम से उत्पन्न होने वाले दस दोष हैं ।। २४ ।। चुगली, दुस्साहस, द्रोह, ईर्ष्या, दोषदर्शन, अर्थदूषण, वाणी की कठोरता तथा दण्ड की कठोरता- यह क्रोध से उत्पन्न होने वाले आठ दोषों का समूह है ।। २५।। कौपीन शब्द नही करने योग्य नीच कर्म तथा गुप्तस्थान का वाचक है । मैथुन शब्द संगति तथा रति के अर्थ में आता है । प्रधान शब्द परमार्थ बुद्धि का बोधक है तथा प्रज्ञान शब्द बुद्धि एवं चिह्न का वाचक है ।। २६ ।। क्रन्दन शब्द रोने तथा पुकारने के अर्थ में आता है । वर्ष्मन् शब्द देह तथा परिभाग का वाचक है । आराधन साधन, प्राप्ति तथा संतुष्ट करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है ।। २७ ।। रत्न शब्द अपनी जाति में श्रेष्ठ के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है । लक्ष्म शब्द प्रधान तथा चिह्न का बोधक है । कलाप शब्द आभूषण, मोरपंख तरकस तथा संगठित के अर्थ में आता है ।। २८ ।। तल्प शब्द शय्या, अट्टालिका तथा स्त्री के अर्थ में आता है । डिम्भ शब्द का प्रयोग शिशु तथा मूर्ख के अर्थ में होता है । स्तम्भ शब्द खम्भे तथा जडवत् निश्चेष्ट हो जाने के अर्थ में आता है । सभा शब्द समिति तथा सदस्यों का वाचक है ।। २९ ।। रश्मि शब्द के दो अर्थ हैं- किरण तथा लगाम । धर्म शब्द का प्रयोग पुण्य तथा यम आदि के अर्थ में होता है । ललाम शब्द का प्रयोग पूँछ, पुण्ड्र (तिलक) घोड़ा आभूषण, श्रेष्ठता तथा ध्वजा इत्यादि अर्थों में होता है ।। ३० ।। प्रत्यय शब्द का प्रयोग अधीन, शपथ, ज्ञान, विश्वास तथा हेतु के अर्थ में होता है । समय शबद का प्रयोग

कृच्छ्रे सत्यं शपथतथ्ययोः । वीर्य्यं बलप्रभावौ च रूप्यं रूपे प्रशस्तके ॥ ३२ ॥ दुरोदरो द्यूतकारे पणे द्यूते दुरोदरम् । महारण्ये दुर्गपथे कान्तारः पुन्नपुंसकम् ॥ ३३ ॥ यमानिलेन्द्रचन्द्रार्कविष्णुसिंहादिके हरिः । दरोऽस्त्रियां भये श्वभ्रे जठरः कठिनेऽपि च ॥ ३४ ॥ उदारो दातृमहतोरितरस्त्वन्यनीचयोः। चूड़ा किरीटं केशाश्च संयता मौलयस्त्रयः ॥ ३५ ॥ बलिः करोपहारादौ सैन्यस्थैर्य्यादिके बलम् । स्त्रीकटीवस्त्रबन्धेऽपि नीवी परिपणेऽपि च॥३६॥ शुक्ले मूषिके श्रेष्ठे सुकृते वृषभे वृषः । द्यूताक्षे सारिफलकेऽप्याकर्षोऽथाऽक्षमिन्द्रिये ॥ ३७ ॥ ना द्यूताङ्गे च कर्षे च व्यवहारे कलिद्रुमे। उष्णीषः स्यात् किरीटादौ कर्षूः कुल्याभिधायिनी॥३८॥ प्रत्यक्षेऽधिकृतेऽध्यक्षः सूर्य्यवह्नी विभावसू । शृङ्गारादौ विषे वीर्य्ये गुणे रागे द्रवे रसः॥३९॥ तेजःपुरीषयोर्वर्च आगः पाशापराधयोः । व्यूहो वृन्देऽप्यहिर्वृत्रेऽप्यग्नीर्कास्तमोनुदः ॥ ४० ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानार्थवर्गकथनं नाम द्विषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६२ ॥

त्रिषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

भूमिवनौषध्यादिवर्गाः

अग्निरुवाच– **वक्ष्ये भूपुराद्रिवनौषधिसिंहादिवर्गकान् । भूरनन्ता क्षमा धात्री क्ष्माप्याकुः स्याद् धरित्र्यपि ॥ १ ॥ मृन्मृत्तिका प्रशस्ता तु मृत्सा**

शपथ, आचार, काल, सिद्धान्त, तथा संवित का वाचक है ।। ३१ ।। अत्यय शब्द अतिक्रमण तथा कठिनाई के अर्थ में आता है । सत्य शब्द शपथ तथा सत्य भाषण के अर्थ में आता है। वीर्य शब्द बल एवं प्रभाव का वाचक है । रूप शब्द परम सुन्दर रूप का वाचक है ।। ३२ ।। पुल्लिंग दुरोदर शब्द जुआ खेलने वाले पुरुष तथा जुए में लगाए जाने वाले दाव का भी बोधक है । नपुंसक में प्रयुक्त होने वाला कन्तार शब्द बहुत बड़े जंगल तथा दुर्गम मार्ग का वाचक है ।। ३४ ।। हरि शब्द का प्रयोग यम, वायु, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, विष्णु तथा सिंह आदि के अर्थ में होता है । पुल्लिंग तथा नपुंसकलिंग में प्रयुक्त होने वाला दर शब्द, भय, श्वभ्र (गर्त) जठर (पेट) तथा कठिन अर्थ का वाचक होता है।।३४।। उदार शब्द दाता तथा महान पुरुष के अर्थ में प्रयुक्त होता है, इतर शब्द अन्य तथा नीच का वाचक है । मौलि शब्द- चूडा, किरीट तथा बँधे हुए केश के अर्थ में आता है ।। ३५ ।। बलि शब्द कर (टैक्स) तथा उपहार के अर्थ में आता है । बल शब्द सोना तथा स्थिरता आदि का बोधक है । नीवी शब्द स्त्री के कमर में लगी हुई गाँठ (फुफुती) के अर्थ में तथा परिपण (पूँजी) के अर्थ में आता है ।। ३६ ।। वृष शब्द शुक्ल (अधिक वीर्यवान्) चूहा, श्रेष्ठ, पुरुष, पुण्य तथा बैल के अर्थ में आता है । आकर्ष शब्द पासा तथा चौसर की विछांने के अर्थ में आता है । नपुंसक अक्ष शब्द इन्द्रिय का बोधक है । पुल्लिङ्ग अक्ष शब्द पासा, कर्ष, (सोलह मासे का एक माप) गाड़ी का पहिया, व्यवहार (व्यय की चिन्ता) तथा बहेड़े के वृक्ष अर्थ का बोधक है । उष्णीश शब्द किरीट आदि के अर्थ में आता है । स्त्रीलिङ्ग कर्पू शब्द कुल्या (छोटे नदी) का वाचक है ।। ३९ ।। अध्यक्ष शब्द प्रत्यक्ष तथा अधिकारी के अर्थ में आता है । विभावसु शब्द सूर्य तथा अग्नि का वाचक है । रस शब्द- विष, वीर्य, गुण, राग द्रव तथा शृंगार आदि रसों का बोधक है ।। ३९ ।। तेजः शब्द पुरीष तथा वर्चस् का वाचक है । आगस् शब्द पाप तथा अपराध का वाचक है । छन्दस् शब्द पद्य तथा इच्छा का बोधक है । साधीयस् (साधीयान्) शब्द साधु तथा बाढ के अर्थ में आता है । व्यूह शब्द समूह का वाचक है । अहि शब्द वृत्रासुर के भी अर्थ में आता है । तमोनुत् शब्द अग्नि, चन्द्रमा तथा सूर्य का वाचक है ।। ४० ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का नानार्थवर्ग वर्णन नामक तीन सौ बासठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३६२ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं, भूमि, पुर, पर्वत, वनौषधि तथा सिंह आदि वर्गों का वर्णन करूँगा । भू, अनन्ता, क्षमा, धात्री, क्ष्मा कु तथा धरित्री ये पृथिवी के नाम हैं ।। १ ।। अच्छी

मृत्स्ना च मृत्तिका । जगत्त्रिविष्टपं लोकं भुवनं जगती समा ॥ २ ॥ अयनं वर्त्म मार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः । सरणिः पद्धतिः पद्या वर्त्तन्ये कपदीति च ॥ ३ ॥ पूः स्त्री पुरीनगर्य्यौ वा पत्तनं पुटभेदनम् । स्थानीयं निगमोऽन्यत् तु यन्मूलनगरात् पुरम् ॥ ४ ॥ तच्छाखानगरं वेशो वेश्याजनसमाश्रयः । आपणस्तु निषद्यायां विपणि पण्यवीथिका॥ ५॥ रथ्या प्रतोली विशिखा स्याच्चयो वप्रमस्त्रियाम् । प्राकारो वरणः शालः प्राचीरं प्रान्ततो वृतिः ॥ ६ ॥ भित्तिः स्त्री कुड्यमेडूकं यदन्तर्न्यस्तकीकसम् । वासः कूटी द्वयोः शाला सभा सञ्जवनन्त्विदम् ॥ ७ ॥ चतुःशालं मुनीनान्तु पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम् । चैत्यमायतनं तुल्ये वाजिशाला तु मन्दुरा ॥ ८ ॥ हर्म्यादि धनिनां वासः प्रासादो देवभूभुजाम् । स्त्री द्वार्द्वारं प्रतीहारः स्याद् वितर्दिस्तु वेदिका ॥ ९ ॥ कपोतपालिकायान्तु विटंकं पुं नपुंसकम् । कपाटमवरं तुल्ये निःश्रेणिस्त्वधिरोहिणी॥ १०॥ सम्मार्जनी शोधनी स्यात् सङ्करोऽवकरस्तथा । अद्रिगोत्रगिरिग्रावा गहनं कानन्नं वनम्॥ ११॥ आरामः स्यादुपवनं कृत्रिमं वनमेव यत् । स्यादेतदेव प्रमदवनमन्तःपुरोचितम् ॥ १२॥ वीथ्यालिरावलिः पङ्क्तिश्रेणीलेखास्तु राजयः । वानस्पत्यः फलैः पुष्पात् तैरपुष्पाद् वनस्पतिः ॥ १३ ॥ ओषध्यः फलपाकान्ताः पलाशी द्रुद्रुमागमाः । स्थाणु वा ना ध्रुवः शङ्कु प्रफुल्लोत्पल्लसंस्फुटाः ॥ १४ ॥ पलाशं छदनं पर्णमिध्यमेधः समित् स्त्रियाम् । बोधिद्रुमश्चलदलो दधित्थग्राहिमन्मथाः॥ १५॥ तस्मिन् दधिफलः पुष्पफलदन्तशठावपि । उदुम्बरे हेमदुग्धः कोविदारे द्विपत्रकः ॥१६॥

मिट्टी के मृत्स्ना तथा मृत्सा ये दो नाम हैं । मृत् तथा मृत्तिका ये मिट्टी के नाम हैं । जगत्, त्रिविष्टप्, लोक तथा जगती ये सभी समानार्थक हैं ।। २ ।। अयन, वर्त्म, मार्ग, अध्वा, पन्था, पदवी, सृति, सरणिः, पद्धति, पद्या तथा एकपदी- ये मार्ग के नाम हैं ।। ३ ।। इनमें से पद्या तथा एकपदी ये पगदंडी के नाम हैं ।। ३ ।। पुर (पू0) पुरी, नगरी, पत्तन, पुटभेदन, स्थानीय और निगम- ये सात नगर हैं । मूलनगर (राजधानी) से भिन्न जो नगर होते हैं उसे शाखा नगर कहते हैं । वेश्याओं के निवास स्थान का नाम वेश तथा वेश्याजन समाश्रय है । आपण शब्द निषधा (बाजार) के अर्थ में आता है बाजार की गली के दो नाम हैं- विपणि तथा पण्यवीथिका ।। ४-५ ।। रथ्या, प्रतोली तथा विशिखा- ये शब्द गली तथा नगर के मुख्य मार्ग के बोधक हैं पुल्लिंग तथा नपुंसकलिंग में प्रयुक्त होने वाले चय तथा वप्र शब्द के द्वारा खाईं से निकालकर जमा किए हुए मिट्टी के ढेर को कहते हैं । प्राकार वरण, शाल तथा चार ये चार नाम नगर के चारों ओर बने हुए घेरे की दिवार के हैं ।। ६ ।। भीतिः (स्त्री) तथा कुड्य (नपुं0) ये दिवार के नाम हैं । एडूक ऐसी दिवार को कहते हैं जिसके भीतर हड्डी पड़ी रहती है । वास (पु0) कुटी (स्त्री0,कूट (पु0) पर्यायवाची हैं । शाला तथा सभा शब्द पर्यायवाची हैं । चार शालों से युक्त गृह को संजवन कहते हैं । मुनियों की कुटी का नाम पर्णशाला (स्त्री0) तथा उटज (पु0 नपुं0) है । चैत्य तथा आयतन ये दोनों शब्द पर्यायवाची हैं । घुड़शाल को वाजिशाल तथा मन्दुरा कहते हैं ।। ७-८ ।। साधारण धनियों के निवास स्थान को हर्म्य कहते हैं । तथा देवताओं एवं राजाओं के महल को प्रासाद कहते हैं । द्वार (स्त्री) द्वारम् (नपु0) तथा प्रतीहार (पु0) ये दरवाजे के नाम हैं । आँगन में बैठने के लिए बने चबूतरे को वितर्दि तथा वेदिका कहते हैं ।। ९ ।। कबूतरों के रहने के लिए बने हुए स्थान को विटङ्क (पु0 नपुं0) तथा कपोतपालिका कहते हैं । कपाट (नपुं0) तथाअवर (नपुं0) ये दोनों शब्द समानार्थक हैं निःश्रेणि तथा अधिरोहिणी ये दोनों नाम सीढ़ी के हैं ।। १० ।। झाड़ू के दो नाम हैं- सम्मार्जनी तथा शोधनी । संकर तथा अवकर ये दो नाम कूड़ा के हैं । अद्रि, गोत्र, गिरि तथा ग्रावा- ये पर्वत के नाम हैं । गहन, कानन और वन ये जंगल के नाम हैं ।। ११ ।। आराम तथा उपवन ये दो नाम उद्यान के हैं । वह कृत्रिम वन जो राजा तथा अन्तःपुर की रानियों के उपयोग में आता है- उसे प्रमदवन कहते हैं ।। १२ ।। वीथी, आली, अवली, पंक्ति, श्रेणी, लेखा तथा राजि- ये सभी नाम पंक्ति (कतार) के हैं । जिस वृक्ष में फूल लगकर फल लगते हैं उसे वानस्पत्य कहते हैं । जिसमें विना फूल के ही फल आ जाते हैं उसे वनस्पति कहते हैं ।। १३।। फल पक जाने पर जिनके पेड़ सूख जाते हैं उन धान गेहूँ आदि अनाजों को ओषधि कहा जाता है । पलाशी, द्रु, द्रुम तथा आगम ये सभी नाम वृक्ष के हैं । ठूँठे वृक्ष के तीन नाम हैं- स्थाणु (पु0) ध्रुव (पु0) तथा शंकुः (पु0) । फूल से भरे वृक्ष के तीन नाम हैं- प्रफुल्ल, उत्फुल्ल तथा संस्फुट ।। १४ ।। पलाश (नपु0) छद्म (नपुं0) तथा

सप्तपर्णो विशालत्वक् कृतमालं सुवर्णकः । आरेवतव्याधिघातसम्पाकचतुरङ्गुलाः॥ १७॥ स्याज्जम्बीरे दन्तशठो वरुणे तिक्तशावकः । पुन्नागे पुरुषस्तुङ्गः केसरो देववल्लभः ॥ १८॥ पारिभद्रे निम्बतरुर्मन्दारः पारिजातकः । वञ्जुलश्चित्रकृच्चाथ द्वौ पीतनकपीतनौ ॥ १९॥ आम्रातके मधूके तु गुड़पुष्पमधुद्रुमौ । पीलो गुड़फलः स्रंसी नादेयी चाम्बुवेतसः ॥ शोभाञ्जने शिग्रुतीक्ष्ण गन्धकाक्षीरमोचकाः। रक्तोऽसौ मधुशिग्रुः स्यादरिष्टः फेनिलः समौ ॥ २१ ॥ गालवः शावरो लोध्रस्तिरीटस्तिल्वमार्जनौ । शेलुः श्लेष्मातकःशीत उद्दालो बहुवारकः ॥ २२॥ वैकङ्कतः श्रुवावृक्षो ग्रन्थिलो व्याघ्रपादपि । तिन्दुकः स्फूर्जकः कालो नादेयी भूमिजम्बुकः ॥ २३ ॥ काकतिन्दौ पीलुकः स्यात् पाटलिर्मोक्षमुष्ककौ । क्रमुकः पट्टिकाख्यः स्यात् कुम्भी कैडर्य्यकट्फले ॥२४॥ वीरवृक्षोऽरुष्करोऽग्निमुखी भल्लातकी त्रिषु । सर्जकासनजीवाश्चपीतसालेऽथमालके॥ २४॥ सर्जाश्वकर्णौ वीरद्रु इन्द्रद्रुःककुभोऽर्जुनः । इङ्गुदी तापसतरुर्मोचाः शाल्मलिरेवच॥ २६॥ चिरविल्वो नक्तमालः करजश्च करञ्जके । प्रकीर्य्यः पूतिकरजो मर्कट्यङ्गारवल्लरी ॥ २७॥ रोही रोहितकः प्लीहशत्रुर्दाड़िमपुष्पकः । गायत्री बालतनयः खदिरो दन्तधावनः ॥ २८॥ अरिमेदो विट्खदिरे कदरः खदिरे सिते । पञ्चाङ्गुलो वर्धमानश्चञ्चुर्गन्धर्वहस्तकः ॥ २९॥ पिण्डीतको मरुवकः पीतदारु च दारु च। देवदारुः पूतिकाष्ठं श्यामा तु महिलाह्वया॥ ३०॥ लतागोविन्दनी गुन्दा प्रियङ्गुः फलिनी फली । मण्डूकपर्णपत्रोर्णनटकट्वङ्गटुण्टुकाः॥ ३१॥ श्योनाकशुकनासर्क्षदीर्घवृन्तकुटन्नटाः । पीतद्रुः सरलश्चाथ निचुलोऽम्बुज इज्जलः ॥ ३२॥ काकोडुम्बरिका फल्गुररिष्टः पिचुमर्दकः । सर्वतोभद्रको

पर्ण ये पत्ते के नाम हैं । इध्म (नपुं०) एधस् तथा समिधा (स्त्री०) ये यज्ञकाष्ठ के वाचक शब्द हैं । बोधिद्रुम (पु०) तथा चलदल (पु०) ये दो नाम पीपल के वृक्ष के हैं । कैंथ के वृक्ष के छह नाम हैं- दधित्थ, ग्राही, मन्मथ, दधिफल, पुष्पफल तथा दन्तशठ । उदुम्बर (गूलर के वृक्ष को हेमदुग्ध कहते हैं तथा कोविदार को द्विपत्रक ।। १५-१६ ।। चितवन के दो नाम हैं- सप्तपर्ण तथा विशालत्वक् । कृतमाल, सुवर्णक, ओरवत, व्याधिघात, सम्पाक तथा चतुरङ्गुल ये सभी नाम सोनालु अथवा धन बहेड़ा के हैं ।। १७ ।। दन्तशठ जम्बीरी नीबू को भी कहते हैं । तिक्त शाक शब्द वरुण का वाचक है । पुंनाग, पुरुष, तुङ्ग, केसर तथा देववल्लभ- ये सभी नाम नागकेसर के हैं ।। १८ ।। पारिभद्र, निम्बतरु, मन्दार और पारिजात ये नाम बकायन के हैं । वञ्जुल तथा चित्रकृत- ये दो नाम तिनिश नामक वृक्ष के हैं। पीतन तथा कपीतन ये आम्रातक (अमड़ा) के नाम हैं ।। १९ ।। गुडपुष्प और मछुद्रुम- ये मधूक (महुआ) के नाम हैं । पीलू (देशी अरवरोट) को गुडफल तथा स्रंसी कहते हैं । नादेयी तथा अम्बुवेतस ये जल में उत्पन्न होने वाले बेंत के नाम हैं ।। २० ।। शिग्रु, तीक्ष्णगन्धक, काक्षीर तथा मोचक ये शोभाञ्जन (सजिजन) के नाम हैं। लाल फूल वाले सहिजन को मधुशिग्रु कहते हैं । अरिष्ट तथा फेनिल ये दो नाम रीठा के हैं ।। २१ ।। गालव, शावर, लोध्र, तिरीट, तिल्व तथा मार्जन- ये लोध के वाचक हैं । शेलू श्लेष्मातक, शीत, उद्दाल और बहुवारक- ये नाम लसोड़े के हैं ।। २२ ।। वैकङ्कत, श्रुवावृक्ष, ग्रन्थिल तथा व्याघ्रपाद ये नाम कठेर नामक वृक्ष के हैं । तिन्दुक, स्फूर्जक तथा काल ये तेन्दु वृक्ष के नाम हैं । नादेयी तथा भूमिजम्बुक ये नारंगी के नाम हैं ।। २३ ।। पीलुक तथा काकतिन्दुक ये कुचिला के नाम हैं । पाटलि, मोक्ष तथा मुष्कक- ये मोरवा के नाम हैं । क्रमुक तथा पट्टिका- ये पाठानी लोध के नाम हैं । कुम्भी कैंकर्य तथा कट्फल- ये कायफल के नाम हैं ।। २४ ।। वीरवृक्ष, अरुष्कर, अग्निमुखी तथा भल्ताकी- ये भिलावा के नाम हैं । सर्जक, असन, जीव और पीतसाल- ये विजयसार के नाम हैं ।। २५ ।। सर्ज तथा अश्वकर्ण ये सालवृक्ष के नाम हैं । वीरद्रु, इन्द्रद्रु, ककुभ तथा अर्जुन- ये अर्जुनवृक्ष के नाम हैं। तपस्वियों के वृक्ष का नाम इङ्गुदी हैं सेमर के वृक्ष के नाम हैं- मोचा तथा शाल्मलि।।२६।। चिरविलव, नक्तमाल, करञ्ज तथा करञ्जक- ये करञ्ज नामक वृक्ष के नाम हैं । प्रकीर्य तथा पूतिकरज ये कँटीले करञ्ज के नाम हैं । मर्कटी तथा अङ्गार वल्लरी- ये करञ्ज के ही भेद हैं ।। २७ ।। रोही, रोहितक, प्लीहशत्रु तथा दाडिम पुष्पक- ये रोहेडा के नाम हैं गायत्री, बालतनय, खदिर तथा दन्तधावन- ये खैर वृक्ष के नाम हैं ।।२८।। अरिमेद तथा विटखदिर ये दुर्गन्धित खैर के नाम हैं । पञ्चाङ्गुल, वर्धमान, चञ्चु तथा गन्धर्व हस्तक- ये एरण्ड के नाम हैं ।। २९ ।। पिण्डरीतक तथा मरुवक ये मैनफल वृक्ष के नाम हैं । देवदारु वृक्ष के चार नाम हैं- पीतदारु, दारु, देवदारु तथा पूतिकाष्ठ । श्यामा, महिलाह्वया, लता, गोविन्दनी, गुन्दा, प्रियङ्गु, फलिनी तथा फली ये प्रियङ्गु (आँगुन) के नाम हैं ।। ३०।। मण्डूकपर्ण,

निम्बे शिरीषस्तु कपीतनः॥ ३३॥ वकुलो वञ्जुलःप्रोक्तः पिच्छिलाऽगुरुशिंशपाः । जया जयन्ती तर्कारी कणिका गणिकारिका ॥ ३४ ॥ श्रीपर्णमग्निमन्थः स्याद् वत्सको गिरिमल्लिका । कालस्कन्दस्तमालः स्यात् तन्दुलीयोऽल्पमारिषः ॥ ३५ ॥ सिन्धुवारस्तु निर्गुण्डी सैवास्फीता वनोद्भवा । गणिका यूथिकाऽम्बष्ठासप्तला नवमालिका ॥ ३६ ॥ अतिमुक्तः पुण्ड्रकः स्यात् कुमारी तरणिः सहा । तत्र शोणे कुरुवकस्तत्र पीते कुरुण्टकः ॥ ३७ ॥ नीलाझिण्टी द्वयोर्वाणा झिण्टी सैरीयकस्तथा । तस्मिन् रक्ते कुरुवकः पीते सहचरी द्वयोः ॥ ३८ ॥ धुस्तूरः कितवो धूर्त्तो रुचको मातुलुङ्गके । समीरणो मरुवकःप्रस्थपुष्पः फणिज्जकः॥ ३९॥ कुठेरकस्तु पर्णासेऽथास्फीतो वसुकार्कके । शिवमल्ली पाशुपती वृन्दा वृक्षादनी तथा ॥ ४० ॥ जीवन्तिका वृक्षरुहा गुडूची तन्त्रिकाऽमृता । सोमवल्ली मधुपर्णी मूर्वा तु मोरटी तथा ॥ ४१ ॥ मधूलिका मधुश्रेणी गोकर्णी पीलुपर्ण्यपि । पाठाऽम्बष्ठा विद्धकर्णी प्राचीना वनतिक्तिका ॥ ४२ ॥ कटुः कटम्भरा चाथ चक्राङ्गी शकुलादनी । आत्मगुप्ता प्रावृषायी कपिकच्छुश्च मर्कटी॥ ४३॥ अपामार्गः शैखरिकः प्रत्यक्पर्णी मयूरकः । फञ्जिका ब्राह्मणी भार्गी द्रवन्ती शम्बरी वृषा ॥ ४४ ॥ मण्डूकपर्णी भण्डीरी समङ्गा कालमेषिका। रोदनी कच्छुराऽनन्ता समुद्रान्ता दुरालभा ॥ ४५ ॥ पृश्निपर्णी पृथक्पर्णी कलशिर्धावनिर्गुहा । निर्दिग्धिका स्पृशी व्याघ्री क्षुद्रा दुस्पर्शया सह॥४६॥ अवल्गुजः सोमराजी सुवल्लिः सोमवल्लिका। कालमेषी कृष्णफला वाकुची पूतिफल्यऽपि ॥ ४७॥ कणोषणोपकुल्या

पत्रोर्ण, नट, कट्वङ्ग, टुण्टुक, श्योनाक, शुकनास, ऋक्ष, दीर्घव्रन्त तथा कुटन्नट ये शोणक (सोनपाठा) के नाम हैं ।। ३१।। सरल वृक्ष के दो नाम हैं- पीतद्रुः तथा सरल । निचुल, अम्बुज तथा इज्जल- ये समुद्र फल के नाम हैं ।। ३२ ।। काकोदुम्बरिका तथा फल्गु ये कटुम्बरी के नाम हैं । अरिष्ट, पिचुमर्दक तथा सर्वतभद्रक ये निम्ब वृक्ष के नाम हैं। शिरीष वृक्ष के दो नाम हैं- शिरीष तथा कपीतन।।३३।। मौलिश्री के वृक्ष के दो नाम हैं- बकुल तथा वञ्जुल । शीशम वृक्ष के तीन नाम हैं- पिच्छला, अगरु तथा शिंशपा । जया, जयन्ती तथा तर्करी = ये जैत वृक्ष के नाम हैं । कर्णिका, गणिकारिका, श्री पर्ण, अग्निमनी- ये अरणि के नाम हैं । वत्सक तथा गिरिमल्लिका- ये कुटजवृक्ष के नाम हैं ।। ३४।। तमालवृक्ष के दो नाम हैं- कालस्कन्द और तमाल । तण्डुलीय तथा अल्पमखि- ये चौराई (साग) के नाम हैं ।। ३५ ।। सिन्धुवार तथा निर्गुण्डी ये सिन्धुवार के नाम हैं। यदि वही सिन्धुवार जंगल में पैदा हुआ हो तो उसे आस्फीता कहते हैं । जूही के तीन नाम हैं- गणिका, यूथिका तथा अम्बष्ठा । सप्तला को ही नवमालिका कहते हैं ।। ३६ ।। माधवीलता के दो नाम हैं- अतिमुक्त तथा पुण्ड्रक । कुमारी, तरणि तथा सहा ये घृतकुमारी के वाचक हैं । लाल घृतकुमारी को कुरवक तथा पीली घृतकुमारी को कुरण्टक कहते हैं ।। ३७ ।। नीली कटसरैया के दो नाम हैं- नीली झीण्टी तथा बाणा । इन दोनों शब्दों का स्त्रीलिंग तथा पुल्लिङ्ग दोनों में प्रयोग होता है । झिण्टी तथा सैरीयक ये सामान्य कटसरैया के नाम हैं । लाल कटसरैया को कुरवक कहते हैं तथा पीली कटसरैया को सहचरी- या सहचरः कहते हैं ।। ३८ ।। धूस्तूर, कितव तथा धूर्त- ये धतूर के नाम हैं । रुचक तथा मातुलुङ्ग ये बीजौरा नीम्बू के नाम हैं ।। ३९ ।। कुठेरक तथा पर्णास ये तुलसी वृक्ष के नाम हैं । आस्फीत, वसुक तथा अर्क ये अकवन (मदार) के नाम हैं । शिवमल्ली तथा पाशपती- ये बृह्त मौलिकश्री के नाम हैं । पेड़ पर पैदा हुई लता के चार नाम हैं- वृन्दा, वृक्षादनी, जीवन्तिका तथा वृक्षरुहा । गुडूची, तन्त्रिका, अमृता, सोवल्ली तथा मधुपर्णी ये गुडुची के नाम हैं । मूर्वा, मोरटी, मधूलिका, मधुश्रेणी, गोकर्णी तथा पीलपर्णी ये एकलता विशेष के नाम हैं ।। ४०-४१।। पाठा, अम्बष्ठा, विद्धकर्णी, प्राचीना तथा वनतिलिका- ये पाठा नामक लता के नाम हैं ।। ४२ ।। कटु, कटम्भरा, चक्राङ्गी तथा शकुलादनी ये कुटकी के नाम हैं । केवाँछ के चार नाम हैं- आत्मगुप्ता, प्रावृषायी, कपिकच्छु तथा मर्कटी।।४३।। अपामार्ग (चिचिड़ा) के चार नाम हैं- अपामार्ग, शैखरिक, प्रत्यक्पर्णी तथा मयूरक । ब्रह्मकोटि के तीन नाम हैं- फञ्जिका, ब्राह्मणी तथा भार्गी । मूसाकानी के तीन नाम हैं- द्रवन्ती, शम्बरी तथा वृषा ।।४४ ।। मजीठ के चार नाम हैं- मण्डूकपर्णी, भण्डीरी, समङ्ग तथ्बा कालमोषिका । कचूर के पाँच नाम हैं- रोदनी, कच्छुरा, अनन्ता, समुद्रान्ता तथा दुरालभा ।। ४५ ।। पिठवन के पाँच नाम हैं- पृश्निपर्णी, पृथक्पर्णी, कलशि, धावनि तथा गुहा । भटकटैय्या के पाँच नाम हैं- निर्दिग्धिका, स्पृशी व्याघ्री, क्षुद्रा, दुःस्पर्शा ।। ४६ ।। अवल्गुज,

स्याच्छ्रेयसी गजपिप्पली । चव्यन्तु चविका काकचिञ्ची गुञ्जे तु कृष्णला ॥ ४८ ॥ विश्वा विषा प्रतिविषा वनशृङ्गाटगौक्षुरौ । नारायणी शतमूली कालेयकहरिद्रवः ॥ ४९॥ दार्वी पचम्पचा दारुशुक्ला हैमवती वचा । वचोग्रगन्धा शड्ग्रन्था गोलोमी शतपर्विका ॥ ५० ॥ आस्फीता गिरिकर्णी स्यात् सिंहास्यो वासको वृषः । मिशी मधुरिकाच्छत्रा कोकिलाक्षेक्षुरक्षुरा ॥ ५१ ॥ विड़ङ्गोऽस्त्री कृमिघ्नः स्यात् वज्रदुस्नुक्स्नुही सुधा । मृद्वीका गोस्तनी द्राक्षा वलावाट्यालकस्तथा ॥ ५२ ॥ काला मसूरविदला त्रिपुटा त्रिवृता वृतः । मधुकं क्लीतकं यष्टिमधुका मधुयष्टिका॥ ५३॥ विदारी श्रीशुक्लेक्षुगन्धा क्रोष्ट्री च या सिता। गोपी श्यामाशारिवा स्यादनन्तोत्पलशारिवा ॥ ५४ ॥ मोचा रम्भा च कदली भण्टाकी दुष्प्रधर्षिणी । स्थिरा ध्रुवा सालपर्णी शृङ्गी तु वृषभो वृषः ॥ ५५ ॥ गाङ्गेरुकी नागबला मुषली तालमूलिका । ज्योत्स्नी पटोलिका जाली अजशृङ्गी विषाणिका॥ ५६॥ स्याल्लाङ्गलिक्यग्निशिखाताम्बूली नागवल्ल्यपि-। हरेणू रेणुका कौन्ती ह्रीवेरो दिव्यनागरम्-॥ ५७ ॥ कालानुसार्यवृद्धाश्मपुष्पशीताशिवानि तु। शैलेयं तालपर्णी तु दैत्या गन्धकुटी मुरा॥ ५८॥ ग्रन्थिपर्णं शुकं वर्हि वला तु त्रिपुटा त्रुटिः । शिवा तामलकी चाथ हनुर्हट्टविलासिनी॥ ५९॥ कुटनटं दशपुरं वानेयं परिपेलवम् । तपस्विनी जटामांसी पृक्वा देवी लता लशूः ॥ ६०॥ कर्चुरको द्राविडको गन्धमूली शठी स्मृता । स्यादृक्षगन्धा छगलान्त्रा वेगी वृद्धारकः ॥ ६१ ॥ तुण्डिकेरी रक्तफला बिम्बका पीलुपर्ण्यपि । चाङ्गेरी चुक्रिकाम्बष्ठा स्वर्णक्षीरी हिमावती ॥ ६२॥

सोमराजी, सुवल्ली, सोमवल्लिका, कालमेषी, कृष्णफली, वाकुची तथा पूतिफली- ये वाकुची के नाम हैं ।। ४७ ।। पिप्पली के तीन नाम हैं- कणा, उष्णा तथा उपकुल्या । गजपिप्पली के दो नाम हैं- श्रेयसी, गजपिप्पली । चव्य अथवा वचा के दो नाम हैं- चव्य तथा चविका । गुञ्जा (घुंघची) के तीन नाम हैं- काकचिञ्ची, गुञ्जा तथा कृष्णला ।। ४८ ।। अतीस के तीन नाम हैं- विश्वा, विषा और प्रतिविषा । गोखरू के दो नाम हैं- वनशृंगार तथा गोक्षुर । शतावरी के दो नाम हैं- नारायणी तथा शतमूली । दारुहल्दी के पाँच नाम हैं- कालेपक, हरिद्रव, दार्वी, पवचम्पचा तथा दारु । सफेद जड़ वाली वचा को हैमवती कहते हैं । वच के पाँच नाम और हैं- वचा, उग्रगन्धा, षड्ग्रन्थी, गोलोमी तथा शतपर्विका ।। ४९-५० ।। आस्फीता तथा गिरिकर्णी- ये नाम विष्णुक्रान्ता (अपराजिता) के हैं । अडूसे के तीन नाम हैं- सिंहास्य, वासक तथा वृष । वनसौंफ के तीन नाम हैं- मिशी, मधुरिका तथा छत्रा । तालमखाना के तीन नाम हैं- कोकिलाक्ष, इक्षुर तथा क्षुर ।। ५१ ।। वायविडंग के दो नाम हैं- विडङ्ग (पु० नपुं०) तथा कृमिद। सेंहुण के चार नाम हैं- वज्रदु, स्नुक् स्नुही तथा सुधा । मुनक्का के तीन नाम हैं- मृद्वीका, गोस्तनी तथा द्राक्षा। बरियार के दो नाम हैं- बलरा तथा वाट्यालक ।। ५२ ।। श्यामलता के (श्यामत्रिधारा) के दो नाम हैं- काला तथा कसूरविदला । शुक्लत्रिधारा के तीन नाम हैं- त्रिपुटा, त्रिवृता तथा त्रिवृत । जेठी मधु के चार नाम हैं- मधूक, क्लीतक, यष्टिमधुका तथा मधुयष्टिका ।। ५३ ।। भूमि कुष्माण्ड के पाँच नाम हैं- विदारी, श्री शुक्ला, इक्षुगन्धा, कोण्ट्री तथा सिता । श्यामालता (गौरी) के पाँच नाम हैं- गोपी, ग्यापा, शारिवा अनन्ता तथा उत्पलशारिवा ।। ५४ ।। केले के तीननाम हैं- मोचा, रम्भा तथा कदली । भाण्टे के दो नाम हैं- भण्टाकी तथा दुष्प्रधर्षिणी । परिवन के तीन नाम हैं- स्थिरा, ध्रुवा तथा सालपर्णी। काकड़ासिंगी के तीन नाम हैं- शृंगी, वृषभ तथा वृष ।। ५५ ।। गाङ्गेरुकी तथा नागबला ये बला के भेद हैं- मुसली के दो नाम हैं- मुषली तथा तालमूलिका । तरोई के तीन नाम हैं- ज्योत्स्नी, पटोलिका और जाली । मेडासिंगी के दो नाम हैं- अजशृङ्गी तथा विषाणी ।। ५६ ।। करियारी के दो नाम हैं- लाङ्गलिकी तथा अग्निशिखा । पान के दो नाम हैं- ताम्बुली तथा नागवल्ली । रेणुका नामक गन्धद्रव्य के तीन नाम हैं- हरेणू, रेणुका तथा कौन्ती । नेत्रबाला तथा सुगन्धबाला के दो नाम हैं- ह्रीवेरी तथा दिव्यनागर ।। ५७।। शिलाजीत के पाँच नाम हैं- कालानुसार्य, वृद्ध, अश्मपुष्प शीतशिव तथा शैलेय । मुरा नाम के सुगन्धित द्रव्य के चार नाम हैं- तालपर्णी, दैत्या गन्धकुटी तथा मुरा।। ५८ ।। गठिवन के तीन नाम हैं- ग्रन्थिपर्ण, शुक तथा वर्हि । छोटी इलायची के तीन नाम हैं- बजला, त्रिपुटा एवं त्रुटि । भूंई आवला के दो नाम हैं- शिवा तथा तामलकी। नखी नामक गन्ध द्रव्य के दो नाम हैं- हनु तथा हट्टविलासिनी ।। ५९ ।। मोथा के चार नाम हैं, कुटनट दशपुर वानेय और परिपेलव । जटामाँसी के दो नाम हें- तपस्विनी तथा जटामांसी । असवर्ग के चार नाम है- पृक्का, देवी, लता

सहस्रवेधी चुक्रोऽम्लवेतसः शतवेध्यपि । जीवन्ती जीवनी जीवा भूमिनिम्बः किरातकः ॥ ६३ ॥ कूर्चशीर्षो मधुकरश्चन्द्रः कपिवृकस्तथा । दद्रुघ्नः स्यादेड्गजो वर्षाभूः शोथहारिणी ॥ ६४॥ कुनन्दती निकुम्भस्त्रा यमानी वार्षिका तथा । लशुनं गृञ्जनारिष्टमहाकन्दरसोनकाः ॥ ६५॥ वाराही वरदा गृष्टिः काकमाची तु वायसी। शतपुष्पा सितच्छत्राऽतिच्छत्रा मधुरा मिसिः ॥ ६६ ॥ अवाक्पुष्पी कारवी च सरणा तु प्रसारणी। कटम्भराभद्रवला कर्बूरश्च शटी ह्यथ॥ ६७॥ पटोलः कुलकस्तिक्तःकारवेल्लः कटिल्लकः । कुष्माण्डकस्तु कर्कारुरिर्वारुः कर्करी स्त्रियौ ॥ ६८॥ इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी स्यात् विशालात्विन्द्रवारुणी । अर्शोऽघ्नः शूरणः कन्दो मुस्तकः कुरुविन्दकः ॥ ६९ ॥ वंशे त्वक्सारकर्मारवेणुमस्करतेजनाः। छत्रातिच्छत्रापालघ्नी मालातृणकभूस्तृणे ॥ ७०॥ तृणाराह्वयस्तालो घोण्टा क्रमुकपुगकौ । शार्दूलद्वीपिनौ व्याघ्र हर्य्यक्षः केशरी हरिः॥ ७१॥ कोलः पौत्री वराहः स्यात् कोफ ईहामृगो वृकः । लूतोर्णनाभौ तु समौ तन्तुवायश्च मर्कटे ॥ ७२ ॥ वृश्चिकः शूककीट; स्यात् सारङ्गस्तोककौ समौ। कृकवाकुस्ताम्रचूडः पिकःकोकिल इत्यपि ॥ ७३ ॥ काके तु करटारिष्टौ वकःकह्व उदाहृतः। कोकश्चक्रश्चक्रवाको कादम्बः कलहंसकः॥ ७४॥

तथा लशू ।। ६० ।। कचूर के चार नाम हैं- कर्चूरक द्राविक, गन्धमूली तथा शठी । विधारा के चार नाम है- ऋक्षगन्धा, छगलान्त्रा, वेगी तथा विद्धारा ।। ६१ ।। कन्दूरी के चार नाम है- तुण्डिकेरी, रक्तफला, विम्बका, पीलुपर्णी । अम्ललोड़िका (अम्ल लोना) के तीन नाम है- चाङ्गेरी, चुक्रिका और अम्बष्ठा । मकोय के दो नाम है- स्वर्णक्षीरी तथा हिमावती ।। ६२ ।। अम्लबेंत के चार नाम है- सहस्रवेधी, चुक्र, अम्लवेतस तथा शतवेधी। जीवन्ती के तीन नाम है- जीवन्ती, जीवनी तथा जीवा । चिरायता के दो नाम है- भूमिनिम्ब तथा किरातक ।। ६३ ।। अष्टवर्गान्तक 'जीवक' के दो नाम है- कूर्चशीर्ष तथा मधुरक। चन्द्र तथा कपिवृक ये दोनों समानार्थक हैं । चकवढ़ के दो नाम हैं- दद्रुध्न तथा एडगज । गदहपूर्ना के दो नाम हैं- वर्षाभू तथा शोथहारिणी ।।६४।। कुनदन्ती, निकुम्भा यमानी तथा वार्षिका- ये चार नाम एक लता के हैं । लहसुन के पाँच नाम हैं- लशुन, गृञ्जन, अरिष्ट, महाकन्द तथा रसोन ।। ६५ ।। वाराहीकन्द के तीन नाम हैं । वाराही, वरदा तथा गृष्टी । काकमाची तथा वायसी ये भी उसी के वाचक नाम हैं । सौंफ के सात नाम है- शतपुष्पा, सितच्छत्रा, अतिच्छत्रा, मधुरा, मिसि, अवाक्पुष्पी तथा कारवी । कुब्जं प्रसारिणी नामक औषधि के चार नाम है- सरणा, प्रसारणी, कटम्भरा तथा भद्रबला । कचूर के और दो नाम है- कर्बूर तथा शटी ।। ६६-६७ ।। परवल के तीन नाम हैं- पटोल, कुलक तथा तिक्तक। करैला के दो नाम हैं- काखेल्ल तथा कटिल्लक। कोंहणा के दो नाम हैं- कूष्माण्डक तथा कर्कारू । ककड़ी के दो नाम हैं- उर्वारू (स्त्री0) तथा कर्कटी (कर्कटी) ।। ६८ ।। कड़वी लौकी के दो नाम हैं- इक्ष्वाकु तथा कटुतुम्बी । इन्द्रायण लता के दो नाम हैं- विशाला तथा इन्द्रवारुणी । अर्शोध्न, शूरण तथा कन्द ये ओल के तीन नाम हैं । मोथा के दो नाम- मुस्तक तथा कुरूविन्द।।६९।। बाँस के पाँच नाम हैं- त्वक्सार, कर्मार, वेणु, मस्कर तथा तेजन । पानी में पैदा होने वाले तृण के तीन नाम हैं- छत्र, अतिछत्र तथा पालघ्नी । मालातृणक तथा भूस्तृण- ये तृण विशेष के नाम हैं ।। ७० ।। ताल वृक्ष के दो नाम हैं- ताल तथा तृणराज । सुपारी के तीन नाम हैं- घोण्टा, क्रमुक तथा पूग ।। ७० ।। शार्दूल तथा द्वीपी ये बाघ के नाम हैं । हर्यक्ष, केसरी तथा हरि ये सिंह के नाम हैं ।। ७१ ।। शूकर के तीन नाम हैं- कोल, पोत्री तथा वराह । भेंडिये के तीन नाम हैं- कोफ, इहामृग तथा वृक । मकड़ी के चार नाम हैं- लूता, ऊर्णनाभि, तन्तुवाय तथा मर्कट ।। ७२ ।। विच्छू के दो नाम हैं- वृश्चिक तथा शूककीट । पपीहा के दो नाम हैं- सारङ्ग तथा स्तोक । मूर्गा के दो नाम हैं- कृकवाकु तथा ताम्रचूड । कोयल के दो नाम पिक तथा कोकिल ।। ७३ ।। करट तथा अरिष्ट- ये दो नाम कौए के हैं । बक तथा कह्व ये दो नाम बगले के हैं । कोक, चक्र तथा चक्रवाक ये तीन नाम चकवा के हैं । कादम्ब तथा तालहंस- ये दो नाम हंस के हैं ।। ७४ ।। छोटी मधुमखी के दो नाम हैं- पतङ्गिका तथा पुस्तिका । बड़ी मधुमक्खी के दो नाम हैं- सरघा तथा मधुमक्षिका । द्विरेफ, पुष्पलिह, भृङ्ग, षट्पद, भ्रमर तथा अलि- ये भौंरे के नाम हैं ।। ७५ ।। मोर के दो नाम हैं- केकी तथा शिखी । मोर की वाणी को केका कहते हैं । शकुन्ति, शकुनी तथा द्विज ये पक्षी के पर्यायवाची शब्द हैं । पक्षति (स्त्री0) तथा पक्षमूल (नपुं0) ये दो नाम पंख के हैं । चञ्चु (स्त्री0) तथा तोटि (स्त्री0) ये दो नाम चोंच के हैं ।। ७६ ।। उड्डीन तथा सन्डीन ये पक्षियों के उड़ने के नाम हैं । कुलाय (पु0 नपुं0) तथा

पतङ्गिका पुत्तिका स्यात् सरघा मधुमक्षिका। द्विरेफपुष्पलिड्भृङ्गषट्भ्रमरालयः॥ ७५॥ केकी शिख्यस्य वाक् केका शकुन्तिशकुनीद्विजाः । स्त्री पक्षतिः पक्षमूललञ्चुस्तोटिरुभे स्त्रियौ ॥ ७६ ॥ गतिरुड्डीनसण्डीनौ कुलायौ नीडमस्त्रियाम्। पेशी कोषो द्विहीनेऽण्डं पृथुकः शावकः शिशु॥७७॥ पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः सन्दोहव्यूहको गणः । स्तोमौघनिकरव्राता निकुरम्बकदम्बकम्। सङ्घातसञ्चयौ वृन्दं पुञ्जराशी तु कूटकम् ॥ ७८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये भूमिवनौषध्यादिवर्गकथनं नाम त्रिषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६३ ॥

चतुःषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नृब्रह्मक्षत्रविट्शूद्रवर्गाः

अग्निरुवाच– **नृब्रह्मक्षत्रविट्शूद्रवर्गान् वक्ष्येऽथ नामतः । नरःपञ्चजनाःमर्त्या योषिद्योषाऽबला बधूः॥ १॥ कान्तार्थिनी तु या याति सङ्केतं साऽभिसारिका। कुलटा पुंश्चल्यसती नग्निका स्त्री च कोटवी ॥ २ ॥ कात्यायन्यर्धवृद्धा या सैरिन्ध्री परवेश्मगा । असिक्नी स्यादवृद्धा या मालिनी तु रजस्वला ॥ ३ ॥ वारस्त्री गणिका वेश्या भ्रातृजायास्तु यातरः । ननन्दा तु स्वसा पत्युः सपिण्डास्तु सनाभयः ॥ ४ ॥ समानोदर्य्यसोदर्य्यसगर्भसहजाः सम्मा । सगोत्रबान्धवज्ञातिबन्धुस्वस्वजनाः समाः ॥ ५॥ दम्पती जम्पती भार्य्यापती जायापती च तौ । गर्भाशयो जरायुः स्यदुल्वञ्च कललोऽस्त्रियाम्॥६॥ गर्भो भ्रूण् इमौ तुल्यौ क्लीबः शण्डो नपुंसकम्। स्यादुत्तानशया डिम्भो बालो माणवकः स्मृतः ॥ ७ ॥ पिचिण्डिलो बृहत्कुक्षिरवभ्रटो नतनासिके।**

नीड (पु० नपुं०) ये दो नाम पक्षियों के घोसले के हैं। अण्डे के तीन नाम हैं- पेशी, कोष (पु०) तथा अण्ड (पु० नपुं०) । पृथुक, शावक, शिशु, पोत, पाक, अर्भक तथा डिम्भ ये शिशु के वाचक शब्द हैं । सन्दोह, व्यूहक, गण, स्तोम, ओघ, निकर, व्रात, निकुरम्ब, कदम्बक, संघात, संचय, वृन्द, पुञ्ज, राशि तथा कूट ये सभी नाम समूह के वाचक हैं ।। ७७-७८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का भूमि वनौषधि आदि वर्ग वर्णन नामक तीन सौ तिरसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३६३ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं नाम निर्देशपूर्वक, मनुष्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ग का वर्णन कर रहा हूँ । नर, पञ्चजन तथा मर्त्य ये पुरुष मनुष्यों के वाचक शब्द हैं । योषित्, योषा, अबला तथा बधू- ये स्त्रियों के वाचक शब्द हैं ।। १ ।। जो अपने अभीष्ट पुरुष के साथ समागम करने के लिए किसी संकेंतित स्थान पर जाती है उसे अभिसारिका कहते हैं । व्यभिचारिणी स्त्री के तीन नाम हैं- कुलटा, पुंश्चली तथा असती । नंगी स्त्री के दो नाम हैं- नग्निका तथा कोटवी ।। २ ।। अर्द्धवृद्धा विधवा स्त्री जो गेरुआ वस्त्र धारण करती है, कात्यायनी कहलाती है । दूसरे के घर में रहकर केश प्रसाधनादि के द्वारा जीवन निर्वाह करने वाली स्त्री 'सैरन्ध्री कहलाती है । अन्तःपुर की वह दासी जो बूढ़ी नहीं हुई हो वह असिक्नी कहलाती है । रजस्वला स्त्री मालिनी कहलाती है ।। ३ ।। वेश्याओं के तीन नाम हैं- वारस्त्री, गणिका तथा वेश्या । भाइयों की स्त्रियाँ परस्पर में याता (दायादिन) कहलाती है । पति के बहन को ननन्दा कहते हैं । एक परिवार के सात पीढ़ी के अन्दर के लोग- सपिण्ड तथा सनाभि कहलाते हैं ।। ४ ।। सगे भाइयों के चार नाम हैं- समानोदर्य, सोदर्य, सगर्भ तथा सहज । सगोत्र, बान्धव, बन्धु, स्व, स्वजन ये सभी नाम दायाद के वाचक हैं ।। ५ ।। पति-पत्नी के वाचक शब्द चार हैं- दम्पती, जम्पती, भार्यापती तथा जायापती । गर्भ को लपेटने वाली झिल्ली के चार नाम हैं- गर्भाशय, जरायु, उल्व तथा कलल। कलल शब्द का प्रयोग पुल्लिंग तथा स्त्रीलिङ्ग दोनों में होता है ।। ६ ।। गर्भ के दो नाम हैं- गर्भ तथा भ्रूण । नपुंसक के तीन नाम हैं- क्लीब, शण्ड तथा नपुंसक । उतान सोने वाले नवजात शिशु को डिम्भ कहते हैं । बालक को माणवक कहते हैं ।। ७ ।। लम्बे पेट वाले पुरुष को पिचिण्डिल तथा बृहत् कुक्षि कहते हैं । जिसकी नाक झुकी हुई होती है उसे अवभ्रट कहते

विकलाङ्गस्तु पोगण्ड आरोग्यं स्यादनामयम् ॥८ ॥ स्यादेडे वधिरः कुब्जे गडुलः कुकरे कुनिः । क्षयः शोषश्च यक्ष्मा च प्रतिश्यायस्तुपीनसः॥९॥ स्त्री क्षुत् क्षुतं क्षयं पुंसि कासस्तु क्षवथुः पुमान् । शोथस्तु श्वयथुः शोफः पादस्फोटो विपादिका ॥ १० ॥ किलासं सिध्नकच्छान्तु पाम पामा विचर्चिका। कोठो मण्डलकं कुष्ठं श्वित्रे दुर्नामकार्शसी ॥ ११ ॥ आनाहस्तु विबन्धः स्याद् ग्रहणी रुक्प्रवाहिका । वीजवीर्य्येन्द्रियं शुक्रं पललं क्रव्यमामिषम् ॥ १२ ॥ बुक्काऽग्रमांसं हृदयं हृन्मेदस्तु वपा वसा । पश्चाद्ग्रीवा शिरा मन्था नाड़ी तु धमनिः शिरा ॥ १३ ॥ तिलकं क्लोम मस्तिष्कं दूषिका नेत्रयोर्मलम् । अन्त्रं पुरीतद्गुल्मस्तु प्लीहा पुंस्यऽथ वस्नसा ॥ १४ ॥ स्नायुः स्त्रियां कालखण्डयकृती तुऽसमे इमे । स्यात् कर्पूरः कपालोऽस्त्री कीकसङ्कुल्यमस्थि च ॥ १५ ॥ स्याच्छरीरास्थ्नि कङ्कालः पृष्ठास्थ्नि तु कशेरुका । शिरोऽस्थनि करोटिः स्त्री पार्श्वास्थनि तु पर्शुका॥१६॥ अङ्गं प्रतीकोऽवयवः शरीरं वर्ष्म विग्रहः । कटो ना श्रोणिफलकं कटिः श्रोणिः ककुद्मती ॥ १७ ॥ पश्चान्नितम्बः स्त्रीकट्याः क्लीबे तु जघनं पुरः । कूपकौ तु नितम्बस्थौ द्वयहीने ककुन्दरे॥ १८॥ स्त्रियां स्फिचौ कटिप्रोथावुपस्थो वक्ष्यमाणयोः । भगं योनिर्द्वयोः शिश्नो मेढ्रो मेहनशेफसी॥१९॥ पिचिण्डकुक्षी जठरोदरं तुन्दं कुचौ स्तनौ। चूचुकन्तु कुचाग्रं स्यान्न ना क्रोड़ं भुजान्तरम् ॥ २० ॥ स्कन्धो भुजशिरोंऽशोऽस्त्री सन्धी तस्यैव जत्रुणी । पुनर्भवः कररुहो नखोऽस्त्री नखरोऽस्त्रियाम् ॥ २१ ॥ प्रादेशतालगोकर्णास्तर्जन्यादियुते तते । अङ्गुष्ठे सकनिष्ठे स्याद्

हैं । विकलाङ्ग तथा पोगण्ड उसको कहते हैं जिसका कोई अंग विकृत हो अथवा कम हो । आरोग्य तथा अनामयता निरोगिता को कहते हैं ।। ८ ।। बहरे को एड तथा बधिर कहते हैं । कुबड़े को कुब्ज तथा गडुल कहतें हैं । जिसका रोग के कारण हाथ खराब हो गया हो उसे कुनिः कहते हैं । क्षय, शोष तथा यक्ष्मा ये टीबी के रोग के नाम हैं । जुकाम के दो नाम हैं- प्रतिश्याय तथा पीनस ।। ९ ।। स्त्रीलिङ्ग, क्षुत्, पुल्लिंग क्षव तथा नपुंसक क्षुत् शब्द छींक के वाचक हैं । (पु0) कास तथा क्षवथु, ये दो नाम खाँसी के हैं । शोथ, शवथु तथा शोफ ये तीन नाम सूजन के हैं । विवाई के दो नाम हैं- पादस्फोट तथा विपादिका ।। १० ।। सेहुएँ के दो नाम हैं- किलास तथा सिध्म । खुजली के चार नाम हैं- कच्छू, पाम, पामा तथा विचर्चिका । जिस कोढ में चकत्ते पड़ जाते हैं उसके दो नाम हैं- कोठ तथा मण्डलक । सफेद कुष्ठ के दो नाम हैं- श्वित्र तथा कुष्ठ । बवासीर के दो नाम हैं- दुर्नामक तथा अर्श ।। ११ ।। मल-मूत्र के अवरोध को अनाह तथा विवन्ध कहते हैं । संग्रहणी रोग के दो नाम हैं- ग्रहणी तथा प्रवाहिका । बीज, वीर्य, इन्द्रिय तथा शुक्र- ये वीर्य के पर्याय हैं। पलल, क्रव्य तथा आमष ये माँस के पर्याय हैं ।।१२।। छाती के मांस के दो नाम हैं बुक्का तथा अग्रमांस । हृदय तथा हृत् ये मन के पर्याय हैं । मेदा के तीन नाम हैं- मेदा, वपा, वसा । गले के पीछे की नाड़ी को मन्था कहते हैं । नाड़ी, धमनी तथा शिरा ये नाड़ी के पर्यायवाची शब्द हैं ।। १३ ।। शरीर में विद्यमान काले तिल को तिलक तथा क्लोम कहते हैं । दिमाग को मस्तिष्क तथा आँख के कीचड़ को दूषिका कहते हैं । आँत के दो नाम हैं- अन्त्र तथा परीतत् । बरवट के दो नाम हैं- गुल्म तथा प्लीहा (पुल्लिंग) अंग प्रत्यंग की संधि के बन्धन को वस्नसा तथा स्नायु कहते हैं । कलेजा (जिगर) के दो नाम हैं- कालखण्ड तथा यकृत् । कर्पर तथा कपाल (पु0 नपुं0) ये ललाट के वाचक हैं । कीकस, कुल्य तथा अस्थि ये हड्डी के नाम हैं ।। १४-१५ ।। रक्त तथा मांस से रहित हड्डी को कंकाल कहते हैं । पीठ की हड्डी (मेरुदण्ड) का नाम 'कशेरुका' है । शिर की हड्डी को करोटि (स्त्री0) कहते हैं । अगल-बगल की हड्डी को पर्शुका कहते हैं ।। १६ ।। अङ्ग, पतीक, अवयव, शरीर, वर्ष्म तथा विग्रह- ये शरीर के वाचक शब्द हैं । कट और श्रोणिफलक ये दो नाम चूतड़ के हैं । कटि, श्रोणि तथा ककुद्मती ये कमर के नाम हैं ।। १७ ।। स्त्री के कमर के पिछले भाग को नितम्ब तथा अगले भाग को जघन कहते हैं । नितम्ब के ऊपर जो दो गड्ढे हैं, उन्हें कूपक तथा कुकन्द (नपुं0) कहते हैं ।। १८ ।। कटि के माँस पिण्ड को स्फिच् और कटिप्रोथ कहते हैं । भग तथा लिङ्ग इन दोनों को उपस्थ कहते हैं । भग तथा योनि ये स्त्रीचिह्न के वाचक शब्द हैं । शिश्न, मेढ्र मेहन तथा शेफस् ये पुरुष चिह्न (लिङ्ग) के वाचक शब्द हैं ।। १९ ।। पेट के वाचक शब्द पाँच हैं- पिचण्ड, कुक्षि, जठर, उदर तथा तुन्द । स्तन के वाचक दो शब्द हैं- कुच तथा स्तन । स्तन के अग्रभाग को चुचुक कहते हैं । गोदी के वाचक दो शब्द हैं- क्रोड एवं भुजान्तर ।। २०।।

वितस्तिर्द्वादशाङ्गुलः॥ २२॥ पाणौ चपेटप्रतलप्रहस्ता विस्तृताङ्गुलो । बद्धमुष्टिकरो रत्निररत्निः स कनिष्ठवान् ॥ २३॥ कम्बुग्रीवा त्रिरेखा साऽवटुर्घाटा कृकाटिका । अधः स्याच्चिबुकञ्चौष्ठादथ गण्डौ गलो हनुः ॥ २४ ॥ अपाङ्गौ नेत्रयोःप्रान्तौ कटाक्षोऽपाङ्गदर्शने । चिकुरः कुन्तलो बालः प्रतिकर्म प्रसाधनम्॥ २५॥ आकल्पवेशौ नेपथ्यं प्रत्यक्षं खेलयोगजम् । चूड़ामणिः शिरोरत्नं तरलो हारमध्यगः॥ २६॥ कर्णिका तालपत्रं स्याल्लम्बनं स्याल्ललन्तिका । मञ्जीरो नूपुरं पादे किङ्किणी क्षुद्रघण्टिका॥२७॥ दैर्ध्यमायाम आरोहः परिणाहो विशालता । पटच्चरं जीर्णवस्त्रं संख्यानञ्चोत्तरीयकम्॥ २८॥ रचना स्यात् परिस्पन्द आभोगः परिपूर्णता । समुद्गकः सम्पुटकः प्रतिग्राहः पतद्ग्रहः ॥ २९॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नृब्रह्मक्षत्रविट्शूद्रवर्गकथनं नाम चतुःषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६४ ॥

पञ्चषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

ब्रह्मवर्गः

अग्निरुवाच– **वंशोऽन्ववायो गोत्रं स्यात् कुलान्यभिजनान्वयौ । मन्त्रव्याख्याकृदाचार्य्य आदेष्टा त्वध्वरे व्रती ॥ १ ॥ यष्टा च यजमानः स्यात्**

स्कन्ध, भुजशिरस् तथा अंस (पु० नपुं०) ये कन्धे के वाचक शब्द हैं । हँसली की हड्डी को जत्रु कहते हैं । पुनर्भव, कररुह, नख (पुं० नपुं) तथा नखर (पुं० नपुं०) ये नख के नाम हैं ।।२१।। अंगूठे से लेकर तर्जनी तक फैले हुए हाथ को प्रादेश। अंगूठे से मध्यमा तक को ताल तथा अनामिका तक फैले हुए हाथ को गोकर्ण कहते हैं । अंगूठे से लेकर कनिष्ठिका तक फैले हाथ को नाम वितस्ति (बलिस्त या बित्ता) है । इसकी लम्बाई बारह अंगुल की होती है ।। २२ ।। जब हाथ की सभी अंगुलियाँ फैली हो तो उसे चपेट, प्रतल तथा प्रहस्त कहते हैं । मुट्ठी बँधे हुए हाथ के माप का नाम रत्नि है । कोहनी से कनिष्ठा तक के हाथ के माप को अरत्नि कहते हैं ।। २३ ।। शंख के समान आकार वाली ग्रीवा का नाम कम्बुग्रीवा तथा त्रिरेखा है । गले की घाँटी को अवटु, घाटा तथा कृकाटिका कहते हैं । ओठ से नीचे के हिस्सेको चिबुक कहते हैं । गण्ड और गल्ल ये गाल के वाचक हैं । गालों के निचे के भाग को हनु कहते हैं ।। २४ ।। नेत्रों के दोनों प्रान्तों को अपाङ्ग कहते हैं । उन्हें दिखाने की चेष्टा को कटाक्ष कहते हैं । चिकुर, कुन्तल तथा बाल ये केश के वाचक हैं । बालों को सँवारने तथा शृंगार करने को- प्रतिकर्म तथा प्रसाधन कहते हैं ।। २५ ।। नाटक में भिन्न-भिन्न वेष धारण करने के तीन नाम हैं- आकल्प, वेश तथा नेपथ्य । मस्तक पर धारण किए जाने वाले रत्न को चूड़ामणि तथा शिरोरत्न कहते हैं । हार के बीच-बीच में गूँथे गए रत्न को तरल कहते हैं ।। २६ ।। कान के आभूषण के दो नाम हैं- कर्णिका तथा तालपत्र । गले से नीचे तक लटकने वाले हार को लम्बन तथा ललान्तिका कहते हैं । मञ्जीर तथा नूपुर ये पैर के आभूषण के दो नाम हैं- किंकिणी तथा क्षुद्रघंटिका ।। २७ ।। कपड़े आदि की लम्बाई के तीन नाम हैं- दैर्घ्य, आयाम तथा आनाह । कपड़े की चौड़ाई (अर्ज) को- परिणाह तथा विशालता कहते हैं । पुराने वस्त्र को पटच्चर कहते हैं । संख्यान तथा उत्तरीयक चादर अथवा दुपट्टा को कहते हैं ।। २८ ।। फूल आदि से बालों के शृंगार करने तथा गाल पर पत्रभंग आदि बनाने को रचना तथा परिस्पन्द कहते हैं । प्रत्येक उपचार की पूर्णता का नाम आभोग है । ढक्कनदार पेटी को समुद्गक तथा सम्पुटक कहते हैं । पीकदान के दो नाम हैं- प्रतिग्राह तथा पतद्ग्रह ।। २९ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का मनुष्य (ब्रह्म-क्षत्र-वैश्य तथा शूद्र) वर्ग वर्णन नामक तीन सौ चौसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३६४ ॥

अग्निदेव ने कहा– वंश, अन्ववाय, गोत्र, कुल, अभिजन तथा अन्वय ये वंश के नाम हैं । मन्त्र की व्याख्या करने वाले ब्राह्मण को आचार्य कहते हैं । जिसने यज्ञ में व्रत की दीक्षा ली है उसे आदेष्टा, यष्टा तथा यजमान कहते हैं । समझ बूझकर कार्य करने को उपक्रम कहते हैं । एक गुरु के यहाँ साथ-साथ पढ़ने वाले छात्रों को सतीर्थ्य तथा सगुरु कहते हैं । सभ्य, सामाजिक

ज्ञात्वारम्भ उपक्रमः । सतीर्थ्याश्चैकगुरवः सभ्याः सामाजिकास्तथा ॥ २ ॥ सभासदः सभास्तारा ऋत्विजो याजकाश्च ते । अध्वर्यूद्गातृहोतारो यजुःसामर्ग्विदः क्रमात् ॥ ३ ॥ चषालो यूपकटकः समे स्थण्डिलचत्वरे । आमिक्षा सा शृतोष्णे या क्षीरे स्याद् दधियोगतः ॥ ४ ॥ पृषदाज्यं सदध्याज्ये परमान्नन्तु पायसम् । उपाकृतः पशुरसौ योऽभिमन्त्र्य क्रतौ हतः॥ ५॥ परम्पराकं समनं प्रोक्षणञ्च वधार्थकम् । पूजा नमस्याऽपचितिः सपर्य्यार्चार्हणाः समाः॥ ६॥ वरिवस्या तु शुश्रूषा परिचर्य्याप्युपासनम् । नियमो व्रतमस्त्री तच्चोपवासादि पुण्यकम्॥ ७॥ मुख्यः स्यात् प्रथमः कल्पोऽनुकल्पस्तु ततोऽधमः । कल्पे विधिक्रमौ ज्ञेयौ विवेकः पृथगात्मता ॥ ८ ॥ संस्कारपूर्वं ग्रहणं स्यादुपाकरणं श्रुतेः । भिक्षुः परिव्राट् कर्मन्दी पाराशर्य्यपि मस्करी॥ ९॥ ऋषयः सत्यवचसः स्नातकश्चाप्लुतव्रती। ये निर्जितेन्द्रियग्रामा यतिनो यतयश्च ते ॥ १०॥ शरीरसाधनापेक्षं नित्यं यत् कर्म तद्यमः । नियमस्तु स यत्कर्मानित्यमागन्तुसाधनम्। स्याद् ब्रह्मभूयं ब्रह्मत्वं ब्रह्मसायुज्यमित्यपि ॥ ११ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ब्रह्मवर्गकथनं नाम पञ्चषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६५ ॥

षट्षष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

क्षत्रविट्शूद्रवर्गाः

अग्निरुवाच– **मूर्द्धाभिषिक्तो राजन्यो बाहुजः क्षत्रियो विराट्। राजा तु प्रणताशेषसामन्तः स्यादधीश्वरः॥ १॥ चक्रवर्त्ती सार्वभौमो नृपोऽन्यो**

सभासद तथा सभास्तार ये यज्ञों के सदस्यों के नाम हैं । यज्ञ कराने वाले ऋत्विजों के नाम- ऋत्विज् तथा याजक है ।। १-२ ।। यजुर्वेद के ज्ञाता ऋत्विक् को अध्वर्यु, सामवेद के ज्ञाता ऋत्विक् को उद्गाता तथा ऋग्वेद के ज्ञाता को होता कहते हैं ।। ३ ।। यज्ञीय स्तम्भ पर लगाये जाने वाले काठ के छल्ले को- चषाल तथा यूपकटक कहते हैं । स्थण्डिल तथा चत्वर ये वेदी के नाम हैं । खौलाये हुए दूध में दधि मिला देने से जो हवनीय पदार्थ बनता है उसे अमीक्षा कहते हैं ।। ४ ।। दही मिलाए हुए घी का नाम पृषदाज्य कहते हैं । पायस तथा परमान्न ये खीर के नाम हैं । यज्ञ में अभिमन्त्रित करके मारे गए पशु को उपाकृत कहते हैं ।। ५ ।। यज्ञीय पशु के वध करने को- परम्पराक शामन तथा प्रोक्षणस कहते हैं । पूजा, नमस्य, अपचिति, सपर्या तथा अर्हणा ये पाँच नाम पूजा के हैं ।। ६ ।। सेवा के चार नाम हैं- वरिवस्या, शुश्रूषा परिचर्या तथा अर्हणा । नियम और व्रत - (पुं० नपुं०) ये परस्पर में पर्यायवाची शब्द हैं । उपवास आदि के रूप में किए जाने वाले व्रत को पुण्यक कहते हैं ।। ७ ।। जिसका मुख्य रूप से विधान किया जाता है, उसे प्रथम कल्प कहते हैं । उसकी अपेक्षा जिसका अप्रधान रूप से विधान किया जाता है उसे अनुकल्प कहते हैं । कल्प के अर्थ में विधि तथा क्रम शब्द का प्रयोग होता है । भेदज्ञान को विवेक कहते हैं ।। ८ ।। संस्कारपूर्वक वेदाध्ययन के प्रारम्भ करने को श्रुतिका उपाकरण कहते हैं । भिक्षु, परिव्राट, कर्मन्दी, पाराशरी तथा मस्करी ये संन्यासी के वाचक शब्द हैं ।। ९ ।। जिसकी वाणी सदा सत्य होती है उन्हें ऋषि तथा सत्यवचा कहते हैं । जिसने वेदाध्ययन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए अध्ययन पूरा कर लिया है तथा दूसरे आम को नहीं स्वीकार किया है उससे स्नातक कहते हैं । जिसने अपनी समस्त इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किया है उसे यती तथा यति कहते हैं ।। १० ।। शरीर साध्य नित्य कर्म का नाम यम है । जो कर्म कभी-कभी नैमित्तिक रूप से किए जाते हैं उन्हें नियम कहते हैं । ब्रह्मभाव की प्राप्ति को- ब्रह्मभूय, ब्रह्मसायुज्य तथा ब्रह्मत्व कहते हैं ।। ११ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का ब्रह्मवर्ग वर्णन नामक तीन सौ पैंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३६५ ॥

अध्याय ३६६

अग्निदेव ने कहा– क्षत्रिय के वाचक शब्द पाँच हैं- मूर्धाभिषिक्त, राजन्य, बाहुज, क्षत्रिय तथा विराट् । जिस राजा के सामने समस्त सामन्त सिर झुकाते हैं उसे अधीश्वर कहते हैं ।।१।।

मण्डलेश्वरः। मन्त्री धीसचिवोऽमात्यो महामात्राः प्रधानकाः ॥ २ ॥ द्रष्टरि व्यवहाराणां प्राड्विवाकाऽक्षदर्शकौ । भौरिकः कनकाध्यक्षोऽथाध्यक्षाधिकृतौ समौ ॥ ३॥ अन्तःपुरे त्वधिकृतः स्यादन्तर्वेशिको जनः । सौविदल्लाः कञ्चुकिनः स्थापत्याः सौविदाश्च ते ॥ ४ ॥ षण्डो वर्षवरस्तुल्याः सेवकार्थ्यनुजीविनः। विषयानन्तरो राजा शत्रुर्मित्रमतः परम्॥ ५॥ उदासीनः परतरः पार्ष्णिग्राहस्तु पृष्ठतः । चरः स्पशः स्यात् प्रणिधिरुत्तरः काल आयतिः ॥ ६ ॥ तत्कालस्तु तदात्वं स्यादुदर्कः फलमुत्तरम् । अदृष्टं वह्नितोयादि दृष्टं स्वपरचक्रजम् ॥ ७॥ भद्रकुम्भः पूर्णकुम्भो भृङ्गारः कनकालुका। प्रभिन्नो गर्जितो मत्तो वमथुः करशीकरः॥ ८॥ स्त्रियां शृणिस्त्वङ्कुशोऽस्त्री परिस्तोमः कुथा द्वयोः । कर्णीरथः प्रवहणं दोला प्रेङ्खादिका स्त्रियाम् ॥ ९॥ आधोरणा हस्तिपका हस्त्यारोहा निषादिनः । भटा योधाश्च योद्धारः कञ्चुको वारणोऽस्त्रियाम् ॥ १० ॥ शीर्षण्यञ्च शिरस्त्रेऽथ तनुत्रं वर्म्मदंशनम्। आमुक्तः प्रतिमुक्तश्च पिनद्धश्चापिनद्धवत्॥ ११॥ व्यूहस्तु बलविन्यासश्चक्रञ्चानीकमस्त्रियाम् । एकेभैकरथा त्र्यश्वाः पत्तिः पञ्चपदातिका ॥ १२ ॥ पत्त्यङ्गैस्त्रिगुणैः सर्वैः क्रमादाख्या यथोत्तरम् । सेनामुखं गुल्मगणौ वाहिनी पृतना चमूः ॥ १३ ॥ अनीकिनी दशानीकिन्योऽक्षोहिण्यो गजादिभिः॥ १४॥ लस्तकस्तु धनुर्मध्यं मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः। पृषत्कप्राणविशिखा अजिह्मगखगाशुगाः ॥ १५ ॥

जिस राजा का सम्पूर्ण पृथिवी पर अधिकार हो उस सम्राट् के दो नाम हैं- चक्रवर्ती तथा सार्वभौम । छोटे-छोटे मण्डलों के प्रशासक राजाओं को मण्डलेश्वर कहते हैं । मन्त्री के वाचक शब्द तीन हैं- मन्त्री, सचिव तथा अमात्य । महामात्य तथा प्रधानामात्य ये महामात्य के नाम हैं ।। २ ।। मुकदमें को देखने वाले को प्राड्विवाक तथा अक्षदर्श कहते हैं । सुवर्ण की रक्षा जिसके अधिकार में हो उसे भौरिक तथा कनकाध्यक्ष कहते हैं । अध्यक्ष तथा अधिकृत ये अधिकारी के नाम हैं ।। ३ ।। जिसको अन्तःपुर की रक्षा का अधिकार सौंपा गया हो उसे अन्तर्वेशिक कहते हैं । अन्तःपुर की रक्षा में नियुक्त सिपाहियों के नाम हैं- सौविदल्ल, कञ्चुकी, स्थापत्य तथा सौविद ।। ४ ।। अन्तःपुर में रहने वाले नपुंसकों के नाम हैं- षण्ड तथा वर्षवर । सेवा करने वाले के तीन नाम हैं- सेवक, अर्थी तथा अनुजीवी । अपने राज्य की सीमा पर रहने वाला राजा शत्रु अपना मित्र होता है ।। ५ ।। जो न शत्रु की सीमा पर हो और न अपनी सीमा पर उसे उदासीन कहते हैं। विजिगीषु राजा के पीछे रहने वाले राजा को पार्ष्णिग्राह कहते हैं । गुप्तचर के वाचक शब्द तीन हैं- चर, स्पश तथा प्रणिधि । भविष्यत् काल को आयतिः कहते हैं ।। ६ ।। वर्तमान काल के वाचक दो शब्द हैं- तत्काल तथा तदात्व । कर्म के भावी फल को उदर्क कहते हैं । आग लगने अथवा बाढ़ आदि के भयको अदृष्टभय कहते हैं । अपने राज्य अथवा शत्रु के राज्य के सिपाहियों से होने वाले भयको दृष्टभय कहते हैं ।। ७ ।। भरे हुए घड़े को भद्रकुम्भ अथवा पूर्णकुम्भ कहते हैं । सोने के गडुए को भृङ्गार तथा कनकालुका कहते हैं । मतवाले हाथी को प्रभिन्न, गर्जित तथा मत्त कहते हैं । हाथी के सूड़ से निकलने वाले जल के कणों को वमथु तथा करशीकर कहते हैं ।। ८ ।। हाथी को हाँकने के काम में आने वाले लोहे के अंकुश को सृणि (स्त्री०) तथा अंकुश (पु० नपुं०) कहते हैं । हाथी की गद्दी तथा झूले को परिस्तोम तथा कूथ कहते हैं । स्त्रियों के बैठने योग्य पर्दे वाली गाड़ी को कर्णीरथ तथा प्रवहण कहते हैं । झूले के दो नाम हैं- दोला (स्त्री०) तथा प्रेंखा (स्त्री०) ।। ९ ।। हाथीवान के चार नाम हैं- आधोरण, हस्तिपक, हस्त्यारोह तथा निषादी । लड़ने वाले सिपाहियों को भट तथा योद्धा कहते हैं । कवच के दो नाम हैं- कञ्चुक (पु० नपुं०) तथा वारण (पु० नपुं०) ।। १० ।। सिर पर रखे जाने वाले टोप के दो नाम हैं- शीर्षण्य तथा शिरस्त्र । कवच के फिर तीन नाम- तनुत्र, वर्म तथा दंशन। पहने हुए कवच के चार नाम हैं- पिनद्ध, अपिनद्ध, आमुक्त तथा प्रतिमुक्त ।। ११ ।। सेना की मोर्चाबन्दी के दो नाम हैं- व्यूह तथा बलविन्यास । चक्र (नपुं) अनीक (नपुं०) सेना के ये दो नाम हैं । जिस सेना में एक रथ, एक हाथी तीन घोड़े तथा पाँच पैदल हों उसे पत्ति कहते हैं ।। १२ ।। पत्ति के समस्त अंग जिसमें तीन गुना हों तो उसे सेनामुख कहते हैं । सेनामुख के तीन गुणा बड़ा गुल्म होता है । गुल्म के तीन गुना बड़ा- गण । गण के तीन गुना बड़ी वाहिनी होती है । वाहिनी के तीन गुना बड़ी पृतना होती है । पृतना के तीन गुना बड़ी चमू होती है । चमू के तीन गुना बड़ी होती है अनीकनी और अनीकनी के दशगुना बड़ी होती है अक्षौहिणी ।। १३।। धनुष के तीन नाम हैं- धनुष्, कोदण्ड तथा इष्वास। पत्ति आदि के अंगों को निम्नांकित चक्र से आसानी से समझा

तूणोपासङ्गतूणीरनिषङ्गा इषुधिर्द्वयोः । असिर्ऋष्टिश्च निस्त्रिंशः करवालः कृपाणवत् ॥ १६॥ त्सरुः खड्गस्य मुष्टौ स्यादीली तु करपालिका । द्वयोः कुठारः सुधितिश्छुरिका चासिपुत्रिका॥ १७॥ प्रास्तु कुन्तो विज्ञेयः सर्वला तोमरोऽस्त्रियाम् । वैतालिका बोधकरा मागधा वन्दिनःस्तुतौ ॥ १७॥ संशप्तकास्तु समयात् संग्रामादनिवर्त्तिनः। पताका वैजयन्ती स्यात् केतनं ध्वजमस्त्रियाम् ॥ १९ ॥ अहं पूर्वमहं पूर्वमित्यहंपूर्विका स्त्रियाम् । अहमहमिका सा स्याद् योऽहंङ्कारः परस्परम्॥२०॥ शक्तिः पराक्रमः प्राणः शौर्य्यं स्थानसहो बलम् । मूर्च्छा तु कश्मलं मोहोऽप्यवमर्दस्तु पीडनम्॥२१॥ अभ्यवस्कन्दनन्त्वभ्यासादनं विजयो जयः। निर्वासनं संज्ञपनं सारणं प्रतिघातनम् ॥ २२॥ स्यात् पञ्चता कालधर्मो दिष्टान्तः प्रलयोऽत्ययः । विशो भूमिस्पृशो वैश्यो वृत्तिर्वर्त्तनजीवने ॥ २३॥ कृष्यादिवृत्तयो ज्ञेया कुसीदं वृद्धिजीविका । उद्धारोऽर्थप्रयोगः स्यात् कणिशं शस्यमञ्जरी ॥ २४ ॥ किंशारुः शस्यशूकं स्यात् स्तम्बो गुत्सस्तृणादिनः। धान्यं व्रीहिः स्तम्बकरिः कडङ्गरो वुषं स्मृतम्॥२५॥ माषादयः शमीधान्ये

जा सकता है-

सेना नाम	पत्ति	सेनामुख	गुल्म	गण	वाहिनी	पृतना	अनीकनी	अक्षौहिणी
हाथी	१	३	९	२७	८१	७२९	२१८७	२१८७०
रथ	१	३	९	२७	८१	२४३	२१८७	२१७७०
घोड़े	३	९	२७	८१	२४३	२१८७	८५६१	८५६१०
पैदल	५	१५	४५	१३५	४०५	३६४५	१०९३५	१०९३५०

धनुष के दोनों कोणों को कटि तथा अटनी कहते हैं ।। १४ ।। धनुष् के मध्यभाग को लस्तक कहते हैं । धनुष् की प्रत्यञ्चा को, मौर्वी, ज्या, शिञ्चिनी तथा गुण कहते हैं । पृषत्क, बाण, विशिख, अजिह्मग, खग तथा आशुग ये बाण के नाम हैं ।। १५ ।। तूण, उपासङ्ग, तूणीर, निषङ्ग तथा इषुधिः (पु0 स्त्री0) ये तरकस के नाम हैं । असि, ऋष्टि, निस्त्रिंश, करवाल तथा कृपाण ये तलवार के नाम हैं ।। १६ ।। खड्ग की मुष्टि को त्सरु कहते हैं । गुप्ती के दो नाम हैं-ईली तथा करपालिका (करवालिका) कुल्हाड़ी के दो नाम हैं- कुठार तथा सुधिति । छुरी के दो नाम हैं- क्षुरिका तथा असिपुत्रिका ।। १७ ।। भाले के दो नाम हैं- प्रास तथा कुन्त । गँडासे के दो नाम हैं- सर्वला तथा तोमर (पु0 नपुं0) । मङ्गल गान करके राजा को जगाने वालों को वैतालिक तथा बोधकर कहते हैं । स्तुति करने वालों के दो नाम हैं- मागध तथा वन्दी ।। १८ ।। जो शपथ लेकर संग्राम से पीछे पैर नहीं हटाते ऐसे योद्धा को संशप्तक कहते हैं । पताका के दो नाम हैं- पताका तथा वैजयन्ती । ध्वजा के दो नाम हैं- केतन (पुं0 नपुं0) तथा ध्वज (पुं0 नपुं0) ।। १९ ।। मैं पहले मैं पहले इस प्रकार से कहते हुए योद्धाओं की युद्ध आदि में प्रवृत्ति होती है उसे अहम्पूर्विका (स्त्री0) कहते हैं । मैं समर्थ हूँ, मैं समर्थ हूँ इस प्रकार से जो परस्पर में अहंकार प्रकट किया जाता है उसे अहमहमिका कहते हैं ।। २० ।। शक्ति, पराक्रम, प्राण, शौर्य, स्थान, सहस् तथा बल ये बल के वाचक हैं । मूर्छा के तीन नाम हैं- मूर्छा, कश्मल तथा मोह । विपक्षी को अच्छी तरह से मर्दन करने को अवमर्द तथा पीडन कहते हैं ।। २१ ।। शत्रु को धर दबोचने का नाम- अभ्यवस्कन्दन तथा अभ्यवसादन है । जीत को विजय तथा जय कहते हैं । मारने के चार नाम हैं- निर्वासन, संज्ञपन, सारण तथा प्रतिघातन ।। २२ ।। मृत्यु के पाँच नाम हैं- पञ्चता तथा कालधर्म, दिष्टान्त, प्रलय तथा अत्यय ।। २२ ।। विश् भूमिस्पृश् तथा वैश्य ये वैश्य जाति के नाम हैं- जीविका के वाचक तीन नाम हैं- वृत्ति, वर्तन तथा जीवन ।। २३ ।। कृषि आदि (गोरक्ष, वाणिज्य आदि) ये वैश्य की जीविका हैं । व्याज से चलायी जाने वाली जीविका- कुसीदवृत्ति है। व्याज के लिए धन देने को उद्धार तथा अर्थप्रयोग कहते हैं । अनाज की बाल का नाम कणिश है।।२४।। जौ आदि के तीक्ष्ण अग्रभाग को किंशारु तथा सस्यशूक कहते हैं । तृण आदि के गुच्छ का नाम स्तम्ब है । धान्य, ब्रीहि तथा स्तम्ब करि ये धान के वाचक हैं । भूसे के दो नाम हैं- कडङ्गार तथा बुश ।। २५ ।। शमीधान्य (फली के अन्दर से निकलने वाले अन्न) माष आदि (चना, मटर आदि) हैं ।यव आदि को शुकधान्य कहते हैं । नीवार को तृणधान्य कहते हैं । सूप के दो

शुकधान्ये यवादयः। तृणधान्यानि नीवाराः शूर्पं प्रस्फोटनं स्मृतम्॥ २६॥ स्यूतप्रसेवौ कण्डोलपिटौ कटकिलिञ्जकौ । समानौ रसवत्यान्तु पाकस्थानं महानसे॥ २७॥ पौरोगवस्तदध्यक्षः सूपकारास्तु वल्लवाः । आरालिका आन्धसिकाः सूदा औदनिका गुणाः ॥ २८ ॥ क्लीबेऽम्बरीषं भ्राष्टो ना कर्कर्य्यालुर्गलन्तिका । आलिञ्जरः स्यान्मणिकं सुषवी कृष्णजीरके ॥२९॥ आरनालस्तु कुल्माषं वाह्लीकं हिङ्गुरामठम् । निशा हरिद्रा पीता स्त्री खण्डे मत्स्यण्डिफाणिते ॥ ३० ॥ कूर्चिका क्षीरविकृतिः स्निग्धं मसृणचिक्कणम्। पृथुकः स्याच्चिपिटको धाना भ्रष्टयवाःस्त्रियः॥३१॥ जेमनं लेप आहारो माहेयी सौरभी च गौः । युगादीनाञ्च वोढारो युग्यप्रासङ्ग्यशाटकाः॥३२॥ चिरसूता वष्कयणी धेनुः स्यान्नवसूतिका । सन्धिनीवृषभाक्रान्तवेहद्गर्भोपघातिनी॥ ३३॥ पण्याजीवो ह्यापणिको न्यासश्चोपनिधिः पुमान् । विपणो विक्रयः संख्याः सङ्ख्येये ह्यादश त्रिषु॥३४॥ पंक्ते शतसहस्त्रादि क्रमाद् दशगुणोत्तरम् । मानन्तुलाङ्गुलिप्रस्थैर्गुञ्जाः पञ्चाद्यमाषकः ॥ ३६ ॥ ते षोडशाक्षः कर्षोऽस्त्री पलं कर्षचतुष्टयम् । सुवर्णविस्तौ हेम्नोऽक्षे कुरुविस्तस्तु तत्पले ॥ ३७ ॥ तुला स्त्रियां पलशतं भारः स्याद् विंशतिस्तुलाः। कार्षापणः कार्षिकः स्यात् कार्षिके ताम्रिके पणः ॥ ३८ ॥ द्रव्यं वित्तं स्वापतेयं रिक्थमृक्थं धनं वसु । रीतिः स्त्रियामारकूटो न स्त्रियामथ ताम्रकम् ॥ ३९॥ शुल्वमौदुम्बरं लौहे तीक्ष्णं कालायसायसी। क्षारः काचोथ चपलो रसः सूतश्च पारदे ॥ ४० ॥ गरलं माहिषं शृङ्गं त्रपुसीसकपिच्चटम्। हिण्डीरो

नाम हैं- शूर्प तथा प्रस्फोटन ।। २६ ।। झोले के दो नाम हैं- स्यूत तथा प्रसेव । टोकरी के दो नाम हैं- कण्डोल तथा पिट् । चटाई के दो नाम हैं- कट तथा किलिञ्जक । रसोई घर के तीन नाम हैं- रसवन्ती, पाकस्थान तथा महानस ।। २७ ।। रसोई घर के अध्यक्ष को पौरोगव कहते हैं। रसोइये के सात नाम हैं- सूपकार, बल्लव, आरालिक, आन्धसिक सूद, औदनिक तथा गुण।।२८।। भाँड के दो नाम हैं- अम्बरीष (नपुं0) तथा भ्राष्ट्र (पु0) कठौते के तीन नाम हैं- कर्करी, आलु तथा गलन्तिका । बड़े घड़े को आलिञ्जर तथा मणिक कहते हैं । काले जीरे को सुषवी कहते हैं ।। २९ ।। आरनाल तथा कुल्माष ये काँजी के नाम हैं । हींग के तीन नाम हैं- बाह्लीक, हींगु तथा रामठ । हल्दी के तीन नाम हैं- निशा, हरिद्रा तथा पीता । खाण को मत्स्यण्डि तथा फणित कहते हैं ।। ३० ।। खोआ के दो नाम हैं- कुर्चिका तथा क्षीरविकृति । चिकने के वाचक तीन शब्द हैं- स्निग्ध, मसृण तथा चिक्कण । चिउड़ा के दो नाम हैं- पृथुक तथा चिपिटक । भूने हुए जौ को धाना (स्त्री0) कहते हैं ।। ३१ ।। भोजन के वाचक तीन शब्द हैं- जेमन, लेप, आहार । गाय के तीन पर्यायवाची शब्द है- माहेयी, सौरभी तथा गौ कंधे पर जुआ ढोने वाले बैल को युग्य तथा प्रासङ्ग्य कहते हैं । गाड़ी खींचने वाले बैल को शाकट कहते हैं ।। ३२ ।। बहुत दिनों की व्यायी हुई गाय को वष्कयणी कहते हैं और थोड़े दिनों की व्यायी गाय को धेनु कहते हैं । साँड़ से लगी गाय को संधिनी कहते हैं और गर्भ गिराने वाली गायको बेहद् कहते हैं ।। ३३ ।। पण्यजीव तथा आपणिक ये दो नाम व्यापारी के हैं । न्यास (पु0) तथा उपनिधि (पु0) ये धरोहर के नाम हैं । विपण तथा विक्रय ये दो नाम बेचने के हैं । एक से लेकर दश तक संख्या वाचक शब्दों का संख्येय के अर्थ में प्रयोग होता है । अतएव उनका तीनों लिङ्गों में विशेष के अनुसार प्रयोग होता है । पञ्चन् से दशन् तक के शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में एक समान होते हैं । इसी तरह अष्टादश तक समझना चाहिए ।। ३४ ।। विशंति आदि समस्त संख्या वाची शब्द संख्या तथा संख्येय के अर्थ में आते हैं और वे नित्य बहुवचनान्त हैं । नित्य एकवचनान्त का नियमसंख्येय अर्थ में ही लागू होता है ।संख्या अर्थ में तो द्विवचनान्त तथा बहुवचनान्त भी प्रयोग मिलता है । जैसे द्वेशते, त्रीणि शतानि, द्वे विंशती, तिस्त्रविंशत्यः इत्यादि । एकोनविंशति से लेकर नवनवति पर्यन्त सभी संख्यावाची शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं ।। ३५ ।। पंक्ति (१०) से लेकर शत-सहस्त्र आदि सभी शब्द दस गुने होते हैं । जैसे- पंक्तिःशतम्,सहस्त्रम् इत्यादि । मान (परिमाण) तीन तरह के होते हैं- तुलामान, अंगुलिमान तथा प्रस्थमान । पाँच गुंजे का एक माशा (माषक) होता है ।। ३६ ।। सोलह माषक का एक अक्ष होता है । उसी को कर्ष (सु0 नपुं0) कहते हैं । चार कर्ष का एक पल होता है । एक अक्ष सोने को सुवर्ण तथा विस्त कहते हैं । एक पल सोने को कुरुविस्त कहते हैं ।। ३७ ।। सौ पल की तुला होती है । बीस तुला का एक भार होता है ।। ३७ ।। चाँदी के रुपये का नाम कार्षापण तथा कार्षिक है । ताम्बे के पैसे को पण कहते हैं ।। ३८ ।। द्रव्य, वित्त, स्वापतेय, रिक्थ, ऋक्थ, धन तथा वसु- ये नाम धन के हैं । रीति (स्त्री0) तथा आरकूट (पु0) ये दोनों शब्द पीतल के वाचक हैं । ताम्बे के तीन

ब्धिकफः फेनो मधूच्छिष्टन्तु सिक्थकम् ॥ ४१ ॥ रङ्गवङ्गे पिचुस्थूलो कूलटी तु मनःशिला । यवक्षारश्च पाक्यः स्यात् त्वक्क्षीरा वंशलोचनः॥४२॥ वृशला जघन्यजाः शूद्राश्चाण्डालान्त्याश्च सङ्कराः । कारुः शिल्पी संहतैस्तैर्द्वयोःश्रेणिः सजातिभिः॥ ४३ ॥ रङ्गाजीवश्चित्रकरस्त्वष्टा तक्षा च वर्धकिः । नाड़िन्धमः स्वर्णकारो नापितान्तावसायिनः ॥ ४४ ॥ जावालः स्यादजाजीवो देवाजीवस्तु देवलः । जायाजीवास्तु शैलूषा भृतको भृतिभुक् तथा । ४५ ॥ विवर्णः पामरो नीचः प्राकृतश्च पृथग्जनः । विहीनोऽपसदो जाल्मोभृत्येदासेरचेटकाः॥ ४६॥ पटुस्तु पेशलो दक्षो मृगयुर्लुब्धकः स्मृतः । चाण्डालस्तु दिवाकीर्त्तिः पुस्तं लेप्यादिकर्मणि ॥ ४७ ॥ पञ्चालिका पुत्रिका स्याद् वर्करस्तरुणः पशुः। मञ्जूषा पेटकः पेडा तुल्यसाधारणौ समौ । प्रतिमा स्यात् प्रतिकृतिर्वर्गा ब्रह्मादयः स्मृताः ॥ ४८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये क्षत्रविट्शूद्रवर्गकथनं नाम षट्षष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६६ ॥

सप्तषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

सामान्यनामलिङ्गानि

अग्निरुवाच— **सामान्यान्यथ वक्ष्यामि नामलिङ्गानि तच्छृणु। सुकृती पुण्यवान् धन्यो महेच्छस्तु महाशयः॥१॥ प्रवीणनिपुणाभिज्ञविज्ञनिष्णातशिक्षिताः।**

नाम हैं- ताम्रक, शुल्व तथा औदुम्बर । लोहे के भी तीन नाम हैं- लौह, कालायस तथा आयस ।। ३९।। काँच के दो नाम हैं- क्षार तथा काच । पारा के चार नाम हैं- चपल, रस, सूत तथा पारद ।। ४० ।। भैंस के सींग का नाम गरल है । रंगा के तीन नाम हैं- चपु, सीसक तथा पिच्चट । समुद्र फेन के तीन नाम हैं- हिण्डीर, अब्धिकफ तथा फेन । मोम के दो नाम हैं- मधुच्छिष्टक तथा सिक्थक।।४१।। राँगा के दो और नाम हैं- रंगा तथा बँग। रुई के दो नाम हैं- पिचु तथा तूल । मैनसिल के दो नाम हैं-कुलटी (कुनटी) तथा मनःशिला । यवक्षार तथा पाक्य ये पर्यायवाची शब्द हैं । वंशलोचन के दो नाम हैं- त्वक्क्षीरा बंशलोचना ।। ४२।। शूद्र जाति के तीन नाम- वृषल, जघन्यज तथा शूद्र । चाण्डाल तथा अन्त्यज जातियाँ वर्णसंकर कहलाती हैं । शिल्प कर्म के ज्ञाता को शिल्पी तथा कारु कहते हैं । समान जातियोंउ के एकचित शिल्पियों के समूह को श्रोणि कहते हैं । श्रोणि शब्द स्त्रीलिङ्ग तथा पुल्लिङ्ग दोनों है ।। ४३ ।। चित्र बनाने वाले को रङ्गाजीव तथा चित्रकार कहते हैं । बढ़ई के तीन नाम हैं- त्वष्टा, तथा तक्षा वर्धकि । सुनार के वाचक दो शब्द हैं- नाड़ीन्धम तथा स्वर्णकार । नाई के दो नाम हैं- नापित तथा अन्तावसायी।।४४।। बकरी बेचने वाले गड़ेरिया के दो नाम- जाबाल तथा अजाजीव । देवपूजा से जीविका चलाने वाले के दो नाम हैं- देवजीव तथा देवल । अपनी स्त्रियों के साथ नाटक दिखाकर अपनी जीक्किा चलाने वाले नट को- जायाजीव तथा शैलूष कहते हैं । रोज मजदूरी करके अपनी जीविका चलाने वाले को भृतक तथा भृतिभुक् कहते हैं ।। ४५ ।। नीच के वाचक शब्द हैं- विवर्ण, पामर, नीच, प्राकृत, पृथग्जन, विहीन, अपसद तथा जाल्म । दास को- भृत्य, दासेर तथा चेटक कहते हैं ।। ४६ ।। चतुर के वाचक तीन शब्द हैं- पटु, पेशल तथा दक्ष। मृगयु तथा लुब्धक ये दो नाम व्याध के हैं । चाण्डाल के दो नाम हैं- चाण्डाल तथा दिवाकीर्ति । पुताई आदि के काम को पुस्त कहते हैं ।। ४७ ।। पुतली या गुड़िया के दो नाम हैं- पञ्चालिका तथा पुत्रिका । जवान पशु को बर्कर कहते हैं । पेटी के तीन नाम हैं- मञ्जूषा, पेटक तथा पेडा । तुल्य तथा साधारण ये पर्यायवाची शब्द हैं । पत्थर आदि की मूर्ति को प्रतिमा तथा प्रतिकृति कहते हैं । इस तरह ब्राह्मण आदि वर्गों का वर्णन किया गया।। ४८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का क्षत्र, वैश्य, शूद्र वर्गादि वर्णन नामक तीन सौ छाछठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३६६ ॥

अध्याय ३६७

अग्निदेव ने कहा— अब मैं सामान्य नाम लिङ्गों का वर्णन करूँगा । उसे आप सुनें । सुकृति, पुण्यवान तथा धन्य- ये शब्द सौभाग्यशाली पुण्यात्मा के लिए प्रयुक्त होते हैं । जिसकी

स्युर्वदान्यस्थूललक्षदानशौण्डो बहुप्रदे ॥ २॥ कृती कृतज्ञः कुशल आसक्तोद्युक्त उत्सुकः । इभ्य आढ्यः परिवृढो ह्यधिभूर्नायकोऽधिपः ॥ ३ ॥ लक्ष्मीवान् लक्ष्मणः श्रीलः स्वतन्त्रः स्वैर्य्यपावृतः । खलपूः स्याद् बहुकरो दीर्घसूत्रश्चिरक्रियः ॥ ४ ॥ जाल्मोऽसमीक्ष्यकारी स्यात् कुण्ठो मन्दः क्रियासु यः । कर्मशूरः कर्मठः स्याद् भक्षकौ घस्मरोऽद्मरः ॥ ५ ॥ लोलुपो गर्धनो गृध्नुर्विनीतप्रश्रितौ तथा । धृष्टे धृष्णुर्वियातश्च निभृतः प्रतिभान्विते॥ ६॥ अधीरो भीरुको भीरुर्वन्दारुरभिवादके । भूष्णुर्भविष्णुर्भविता ज्ञाता विदुरविन्दुकौ॥ ७॥ मत्तशौण्डोत्कटक्षीवाश्चण्डस्त्वत्यन्तकोपनः। देवानञ्चति देवद्र्यङ् विश्वद्र्यङ् विश्वगञ्चति ॥ ८॥ यः सहाञ्चति स सध्र्यङ सतिर्यङयस्तिरोञ्चति। वाचोयुक्तिः पटुर्वाग्मी वावदूकश्च वक्तरि॥९॥ स्याज्जल्पकस्तु वाचालो वाचाटो बहुगर्ह्यवाक्। अपध्वस्तो धिक्कृतः स्याद् बद्धे कीलितसंयतौ ॥ १० ॥ रवण शब्दनो नान्दीवादी नान्दीकरः समाः । व्यसनार्त्तोपरक्तौ द्वौ विहस्त व्याकुलौ समौ॥ ११॥ विहस्तव्याकुलौ तुल्यौ नृशंसक्रूरघातुकाः । पापो धूर्त्तो वञ्चकः स्यान्मूर्खे वैधेयवालिशौ॥१२॥ कदर्य्ये कृपणक्षुद्रौ मार्गणो याचकार्थिनौ । अहङ्कारवानहंयुःस्याच्छुभंयुस्तु शुभान्वितः॥ १३॥ कान्तं मनोरमं रुच्यं हृद्याभीष्टे ह्यभीप्सिते । असारं फल्गु शून्यं वै मुख्यवर्यवरेण्यकाः॥ १४॥ श्रेयान् श्रेष्ठः पुष्कलः स्यात् प्राग्र्याग्र्यग्रीयमग्रियम् । वड्रोरु विपुलं पीनपीवनी तु स्थूलपीवरे ॥ १५॥ स्तोकाल्पक्षुल्लकाः सूक्ष्मं श्लक्ष्णं दभ्रं कृशं तनु । मात्राकुटीलवकणा भूयिष्ठं पुरुहं पुरु॥ १६॥ अखण्डं पूर्णसकलमुपकण्ठान्तिकाभितः ।

इच्छा महान् हो उसे महेच्छ या महाशय कहते हैं ।। १ ।। प्रवीण, निपुण, अभिज्ञ, विज्ञ, निष्णात तथा शिक्षित सुयोग्य तथा कुशल के वाचक हैं । बहुत दान करने वाले के चार नाम हैं- वदान्य, स्थूललक्ष, दानशौण्ड तथा बहुप्रद ।। २ ।। कृती, कृतज्ञ तथा कुशल ये शब्द भी प्रवीण आदि के ही वाचक हैं । आसक्त, उद्युक्त तथा उत्सुक ये कार्यपरायण उद्योगी पुरुष के वाचक हैं । इभ्य तथा आढ्य अधिक धनवान को कहते हैं । स्वामी के वाचक ये चार शब्द हैं- परिवृढ अधिभू, नायक तथा अधिप ।। ३ ।। शोभा तथा श्री से सम्पन्न पुरुष के वाचक शब्द हैं- लक्ष्मीवान्, लक्ष्मण तथा श्रील । स्वतन्त्र के वाचक शब्द हैं- स्वतन्त्र स्वैरी तथा अपावृत । खलिहान साफ करने वाले को- खलपू तथा बहुकर कहते हैं । आलसी तथा बहुत देर से कार्य को पूरा करने वाले को- दीर्घसूत्री तथा चिरक्रिय कहते हैं ।। ४ ।। बिना बिचारे काम करने वाले को जाल्म तथा असमीक्ष्णकारी कहते हैं । काम करने में ढीले को कुण्ठ तथा मन्द कहते हैं । उत्साहपूर्वक काम करने वाले का कर्मशूर तथा कर्मठ कहते हैं । खाने वाले को-भक्षक, घस्मर तथा अद्मर कहते हैं ।। ५ ।। लोभी को- लोलुप, गर्धन तथा गृध्नु कहते हैं । विनययुक्त पुरुष को- विनीत तथा प्रश्रित कहते हैं । धृष्ट के नाम हैं- धृष्णु तथा वियात । प्रतिभाशाली पुरुष को- निभृत तथा प्रतिभान्वित कहते हैं ।। ६ ।। डरपोक को भीरुक, भीरु तथा अधीर कहते हैं । प्रणाम करने वाले को बन्दारु तथा अभिवादक कहते हैं । होने वाले के वाचक हैं- भूष्णु, भविष्णु तथा भविता तथा जानकार के नाम हैं- ज्ञाता, विदुर एवं विन्दूक ।। ७ ।। मत्त, शौण्ड तथा क्षीब ये मतवाले के वाचक हैं । अधिक क्रोध करने वाले को चण्ड तथा अत्यन्त कोपन कहते हैं । देवताओं का अनुसरण करने वाले को देवद्र्यङ् तथा सब ओर जाने वाले को विश्वद्र्यङ् कहते हैं ।। ८ ।। साथ चलने वाले को सध्र्यङ् कहते हैं । तिरछे चलने वाले को तिर्यङ् कहते हैं । कुशल वक्ता के नाम हैं- वाचोयुक्ति, पटु, वाग्मी तथा बावदूक ।। ९ ।। बहुत अनाप शनाप बकने वाले को जल्पाक, वाचाल, वाचाट तथा बहुगर्ह्यवाक् कहते हैं । धिक्कारे हुए पुरुष को अपध्वस्त तथा धिक्कृत कहते हैं । बद्ध को- कीलित तथा संयत कहते हैं ।। १० ।। आवाज करने वाले को रवण तथा शब्दन कहते हैं । नान्दी पाठ करने वाले को- नान्दीवादी तथा नान्दीकर कहते हैं । पीडित के दो नाम हैं- व्यसनार्त तथा उपरक्त । शोकाकुल व्यक्ति को- विहस्त तथा व्याकुल कहते हैं।।११।। नृशंस, क्रूर, घातुक तथा माप- ये निर्दयी मनुष्य के वाचक शब्द हैं । ठग को धूर्त तथा वञ्चक कहते हैं । मूर्ख के दो नाम हैं- वैधेय तथा वालिश ।। १२ ।। कदर्य (कंजूस) के दो नाम हैं- कृपण तथा क्षुद्र । याचना करने वालों के तीन नाम हैं- मार्गण, याचक तथा अर्थी । अहंकारी को अहंकारवान् तथा अहंयु कहते हैं । शुभ के भागी को शुभान्वित तथा शुभंयु कहते हैं ।। १३।। सुन्दर के वाचक तीन शब्द हैं- कान्त, मनोरम तथा रुच्य । प्रिय के वाचक शब्द हैं- हृद्य, अभीष्ट तथा अभीप्सित । निस्सार शब्द के वाचक शब्द हैं- असार, फल्गु तथा शून्य। मुख्य, वर्य, वरेण्यक, श्रेयान्, श्रेष्ठ एवं पुष्कल- ये श्रेष्ठ के वाचक शब्द हैं । प्राग्र्य, अग्र्य, अग्रीय तथा अग्रिय शब्द भी श्रेष्ठ के ही वाचक हैं ।। १४।। वड्र, उरु तथा विपुल- ये तीनों

समीपे सन्निध्याभ्यासौ नेदिष्टं सुसमीपकम्॥ १७॥ सुदूरे तु दविष्ठं स्याद् वृत्तं निस्तलवर्तुले । उच्चप्रांशून्नतादग्रा ध्रुवो नित्यः सनातनः ॥ १८॥ आविद्धं कुटिलं भुग्नं वेल्लितं वक्रमित्यपि॥ २०॥ चञ्चलं तरलञ्चैव कठोरं जठरं दृढम्॥१९॥ प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्यो नवीनो नूतनो नवः । एकतानोऽनन्यवृत्तिरुच्चण्डमविलम्बितम् । उच्चावचं नैकभेदं सम्बाधकलितं तथा । तिमितं स्तिमितं क्लिन्नमभियोगस्त्वभिग्रहः ॥ २१॥ स्फातिर्वृद्धौ प्रथा ख्यातौ समाहारः समुच्चयः । अपहारस्त्वपचयो विहारस्तु परिक्रमः ॥ २२ ॥ प्रत्याहार उपादानं निर्हारोऽभ्यवकर्षणम् । विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः स्यादास्यात्वासना स्थितिः ॥ २३ ॥ सन्निधिः सन्निकर्षः स्यात् संक्रमो दुर्गसञ्चरः । उपलम्भस्त्वनुभवः प्रत्यादेशो निराकृतिः ॥ २४ ॥ परिरम्भः परिष्वङ्गः संश्लेष उपगूहनम् । अनुमा पक्षहेत्वाद्यैर्डिम्बे भ्रमरविप्लवौ ॥ २५ ॥ असन्निकृष्टार्थज्ञानं शब्दाद्धि शाब्दमीरितम् । सादृश्यदर्शनात् तुल्ये बुद्धिः स्यादुपमानकम् ॥ २६ ॥ कार्य्यं दृष्ट्वा विना न स्यादर्थापत्ति परार्थधीः । प्रतियोगिन्यऽगृहीते भुवि नास्तीत्यभावकः । इत्यादिनामलिङ्गो हि हरिरुक्तो नृबुद्धये ॥ २७॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सामान्यनामलिङ्गादिनकथनं नाम सप्तषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६७ ॥

शब्द विशाल के वाचक हैं । पीन, पीवन् तथा स्थूल एवं पीवर- ये मोटे अर्थ के बोधक हैं ।। १५ ।। स्तोक, अल्प, क्षुल्लक, सूक्ष्म, श्लक्ष्ण, दभ्र, कृश, तनु, मात्रा, त्रुटि, लव तथा कण- ये सभी स्वल्प अथवा सूक्ष्म के वाचक हैं । भूयिष्ठ, पुरुह तथा पुरु ये सभी अधिक अर्थ के वाचक हैं ।। १६ ।। अखण्ड, पूर्ण तथा सकल ये सम्पूर्ण अर्थ के वाचक हैं । उपकण्ठ, अन्तिक, अभितः, सन्निधि तथा अभ्याश- ये समीप अर्थ के वाचक हैं । अत्यन्त सन्निकट को नेदिष्ठ कहते हैं ।। १७ ।। अत्यन्त दूरस्थ को दविष्ठ कहते हैं । वृत्त, निस्तल तथा वर्तुल- ये गोलाकार के वाचक हैं । उच्च, प्रांशु, उन्नत तथा उदग्र- ये ऊँचे के वाचक हैं । ध्रुव, नित्य तथा सनातन ये नित्य के वाचक हैं ।। १८ ।। आविद्ध, कुटिल, भुग्न, वेल्लित तथा वक्र- ये टेढ़े के वाचक हैं । चञ्चल तथा तरल- चपल के वाचक हैं । कठोर, जरठ तथा दृढ़- ये कठोर के वाचक हैं ।। १९ ।। प्रत्यग्र, अभिनव, नव्य, नवीन,, नूतन तथा नव- ये नये के वाचक हैं । एकाग्र चित्त वाले के वाचक दो शब्द हैं- एकतान तथा अनन्यवृत्ति । स्फूर्ति के वाचक दो शब्द हैं- उच्चण्ड तथा अविलम्बित ।। २० ।। उच्चावच तथा नैकभेद ये अनेक के वाचक हैं । सम्बाध तथा कलित- ये गहन के वाचक हैं । तिमित, स्तिमित तथा क्लिन्न- ये आर्द्र (भिंगे हुए) के वाचक हैं । दूसरे पर किए गये दोषारोपण के नाम हैं- अभियोग तथा अभिग्रह ।। २१ ।। स्फाति शब्द वृद्धि का वाचक है तथा प्रथा शब्द ख्याति का वाचक है । समूह के वाचक शब्द हैं-समाहार तथा समुच्चय । अपहार तथा अपचय ये ह्रास के वाचक हैं तथा विहार एवं परिक्रम ये घूमने के अर्थ में आते हैं ।। २२ ।। प्रत्याहार तथा उपादान- इन्द्रियों को उनके विषय से हटाने को कहते हैं । निर्हार तथा अभ्यवकर्षण- ये शरीर में गड़े हुए शस्त्र इत्यादि को युक्तिपूर्वक निकालने को कहते हैं । विघ्न, अन्तराय तथा प्रत्यूह- ये विघ्न के वाचक शब्द हैं । आस्या, आसना तथा स्थितिः- ये बैठने की क्रिया के वाचक हैं ।। २३ ।। सन्निधि तथा सन्निकर्ष- ये समीपता के वाचक हैं । संक्रम तथा दुर्गसंचर किले में प्रवेश करने को कहते हैं । उपलम्भ तथा अनुभव- ये अनुभूति के वाचक हैं । प्रत्यादेश तथा निराकृति- ये दूसरे के मत का खण्डन करने के नाम हैं ।। २४ ।। परिरम्भ, परिष्वङ्ग, संश्लेष तथा उपगूहन- ये आलिङ्गन करने के नाम हैं । पक्ष तथा हेतु आदि के द्वारा निश्चित होने वाले ज्ञान को अनुमा या अनुमान कहते हैं । विना हथियार के किए गये युद्ध अथवा भयभीत होने पर किए गए शब्द को डिम्भ, भ्रमर तथा विप्लव कहते हैं ।। २५ ।। शब्द के द्वारा जो परोक्ष अर्थ का ज्ञान होता है उसे शाब्द ज्ञान कहते हैं । समानता के कारण उसके तुल्य वस्तु का जो ज्ञान होता है उसको उपमान कहते हैं । जहाँ पर कार्य को देखकर कारण का निश्चय किया जाता है-उसे अर्थापत्ति कहते हैं । प्रतियोगी का ग्रहण न होने पर- अमुक वस्तु पृथ्वी पर नहीं है- ऐसा जो कहा जाता है उसे अभाव कहते हैं । इस तरह मनुष्यों का ज्ञान बढ़ाने के लिए मैंने नाम तथा लिङ्ग स्वरूप श्रीहरि का वर्णन किया ।। २६-२७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का नाम लिङ्ग वर्णन नामक तीन सौ सड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३६७ ॥

अष्टषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नित्यनैमित्तिकप्राकृतप्रलयाः

अग्निरुवाच– **चतुर्विधस्तु प्रलयो नित्यो यः प्राणिनां लयः । सदा विनाशो जातानां ब्राह्मो नैमित्तिको लयः ॥ १ ॥ चतुर्युगसहस्रान्ते प्राकृतः प्राकृतो लयः । लय आत्यन्तिको ज्ञानादात्मनः परमात्मनि॥ २॥ नैमित्तिकस्य कल्पान्ते वक्ष्ये रूपं लयस्य ते । चतुर्युगसहस्रान्ते क्षीणप्राये महीतले ॥ ३॥ अनावृष्टिरतीवोग्रा जायते शतवार्षिकी । ततः सत्त्वक्षयः स्याच्च ततो विष्णुर्जगत्पतिः॥ ४॥ स्थितो जलानि पिबति भानोः सप्तसुरश्मिषु। भूपातालसमुद्रादितोयं नयतिसंक्षयम्॥ ५॥ ततस्तस्यानुभावेन तोयाहारोपबृंहिताः । त एव रश्मयः सप्त जायन्ते सप्त भास्कराः॥६॥ दहन्त्यऽशेषं त्रैलोक्यं सपातालतलं द्विज ! । कूर्मपृष्ठसमा भूः स्यात् ततः कालाग्निरुद्रकः॥ ७॥ शेषाहिश्वाससम्पातात् पातालानि दहत्यधः । पातालेभ्यो भुवं विष्णुर्भुवः स्वर्गं दहत्यतः ॥ ८ ॥ अम्बरीषमिवाभाति त्रैलोक्यमखिलं तथा । ततस्तापपरीतास्तु लोकद्वयनिवासिनः ॥ ९ ॥ गच्छन्ति ते महर्लोकं महर्लोकाज्जनं ततः । रुद्ररूपी जगद् दग्ध्वा मुखनिश्वासतो हरेः ॥ १० ॥ उत्तिष्ठन्ति ततो मेघा नानारूपाः सविद्युतः । शतं वर्षाणि वर्षन्तः शमयन्त्यग्निमुत्थितम् ॥ ११ ॥ सप्तर्षिस्थानमाक्रम्य स्थितेऽम्भसि शतं मरुत् । मुखनिःश्वासतो विष्णोर्नाशं नयति तान् घनान्॥१२॥ वायुं पीत्वा हरिः शेषे शेते चैकार्णवे प्रभुः । ब्रह्मरूपधरः सिद्धैर्जलगैर्मुनिभिःस्तुतः॥ १३॥ आत्ममायामयीं दिव्यां योगनिद्रां समास्थितः । आत्मानं वासुदेवाख्यं चिन्तयन् मधुसूदनः ॥ १४॥ कल्पं शेते प्रबुद्धोऽथ ब्रह्मरूपी सृजत्यसौ । द्विपरार्धं ततो व्यक्तं प्रकृतौ लीयते द्विज॥ १५॥ स्थानात् स्थानं दशगुणमेकस्माद् गुण्यते स्थले। ततोऽष्टादशमे भागे परार्धमभिधीयते॥ १६॥ परार्धं द्विगुणं यत् तु प्राकृतः प्रलयः**

अग्निदेव ने कहा– प्रलय चार प्रकार का होता है- नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत तथा आत्यन्तिक । जगत् में हुए प्राणियों की जो मृत्यु होती रहती है, उसे नित्य प्रलय कहते हैं । एक हजार चतुर्युग बीत जाने पर जब ब्रह्मा जी का दिन समाप्त होता है, उस समय जो प्रलय होता है, उसे ब्राह्म प्रलय अथवा नैमित्तिक प्रलय कहते हैं । पाँच भूतों का जो प्रकृति में लय हो जाता है, उसे प्राकृतिक प्रलय कहते हैं । ज्ञान हो जाने पर आत्मा जब परमात्मा में लीन हो जाता है तो उसे आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं ।। १-२ ।। कल्प के अन्त में जो नैमित्तिक प्रलय होता है, मैं उसका रूप आपको बतलाता हूँ । जब चतुर्युग एक हजार बार बीत जाता है तो यह भूमण्डल क्षीणप्राय हो जाता है ।। ३ ।। उस समय सौ वर्ष तक की भयंकर अनावृष्टि होती है । उस समय जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु सूर्य की सात किरणों में स्थित होकर पृथिवी, पाताल, समुद्र आदि के जल को पी जाते हैं । इससे सारा जल समाप्त हो जाता है ।। ४-५ ।। उस समय भगवान् की इच्छा से जल पीकर पुष्ट हुई सात किरणें सात सूर्य के रूप में प्रकट होती हैं ।। ६ ।। वे सातों सूर्य पाताल सहित समस्त त्रिलोकी को जलाने लगते हैं । उस समय पृथिवी कछुए के पीठ के समान दिखायी देने लगती है । फिर भगवान् शेष के श्वसों से कालाग्नि रुद्र का प्रादुर्भाव होता है । वे नीचे के समस्त पातालों को भस्म कर देते हैं । इसके पश्चात् भगवान् विष्णु भूलोक, भुवर्लोक तथा स्वर्गलोक को भी भस्म कर देते हैं ।। ८ ।। उस समय सारा त्रैलोक्य जलते हुए भाँड़ के समान प्रतीत होता है । उस समय ताप से संतप्त होकर भुवर्लोक तथा स्वर्लोक के निवासी महर्लोक में चले जाते हैं । फिर महर्लोक से वे जन लोक में जाकर स्थित होते हैं । शेष रूपी भगवान् विष्णु के मुखोच्छ्वास से निकले हुए, कालाग्नि रुद्र जब सम्पूर्ण जगत् को जला डालते हैं उस समय आकाश में अनेक रूप वाले बादल उमड़ आते हैं । उससे बढ़ी हुई अग्नि शान्त हो जाती है ।। ९-११ ।। जब सप्तर्षियों के स्थान तक पानी पहुँच जाता है, तब विष्णु के मुख से निकले हुए श्वाँस से सौ वर्षों तक प्रचण्ड वायु चलती है, जो उन मेघों को विनष्ट कर डालती है ।। १२ ।। इसके पश्चात् ब्रह्मरूपधारी भगवान् विष्णु उस वायु को पीकर एकार्णव में शयन करते हैं । उस समय सिद्ध एवं महर्षि गण जल में स्थित रहकर भगवान् की स्तुति करते हैं ।। १३ ।। भगवान् मधुसूदन अपनी वासुदेव संज्ञक आत्मा का चिन्तन करते हुए, अपनी ही दिव्य

स्मृतः । अनावृष्ट्याऽग्निसम्पर्कात् कृते संज्वलने द्विज ॥ १७ ॥ महदादेर्विकारस्य विशेषान्तस्य संक्षये । कृष्णेच्छाकारिते तस्मिन् सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे॥ १८॥ आपो ग्रसन्ति वै पूर्वं भूमेर्गन्धादिकं गुणम् । आत्मगन्धात् ततो भूमिः प्रलयत्वाय कल्पते ॥ १९ ॥ रसात्मिकाश्च तिष्ठन्ति ह्यापस्तासां रसो गुणः । पीयते ज्योतिषा तासु नष्टास्वग्निश्च दीप्यते ॥ २० ॥ ज्योतिषोऽपि गुणं रूपं वायुर्ग्रसति भास्करम् । नष्टे ज्योतिषि वायुश्च बली दोधूयते महान् ॥ २१ ॥ वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशं ग्रसते ततः । वायौ नष्टे तु चाकाशं नीरवं तिष्ठति द्विज॥ २२॥ आकाशस्याथ वै शब्दं भूतादिर्ग्रसते च खम् । अभिमानात्मकं खञ्च भूतादिं ग्रसते महान् ॥ २३ ॥ भूमिर्याति लयञ्चाप्सु आपो ज्योतिषि तद् व्रजेत् । वायौ वायुश्च खे खञ्च अहङ्कारे लयं स च ॥ २४ ॥ महत्तत्त्वे महान्तश्च प्रकृतिर्ग्रसते द्विज ! । व्यक्ताऽव्यक्ता च प्रकृतिर्व्यक्तस्याव्यक्तके लयः ॥ २५ ॥ पुमानेकाक्षरः शुद्धः सोऽप्यंशः परमात्मनः । प्रकृतिः पुरुषश्चैतौ लीयेते परमात्मनि ॥ न सन्ति यत्र सर्वेशे नामजात्यादिकल्पनाः । सत्तामात्रात्मके ज्ञेये ज्ञानात्मन्यात्मनः परे ॥ २७॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नित्यनैमित्तिकप्राकृतप्रलयकथनं नाम अष्टषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६८ ॥

मायामयी योगनिद्रा का आश्रय लेकर एक कल्प तक सोते रहते हैं । जगने पर ब्रह्मा का रूप धारण करके वे जगत् की सृष्टि करते हैं । इस प्रकार ब्रह्मा की दो परार्द्धपर्यन्त की आयु समाप्त हो जाने पर, यह सम्पूर्ण स्थूल प्रपञ्च प्रकृति में लीन हो जाता है ।। १४-१५ ।। एक स्थान से दूसरे स्थान को दस से गुणा करते हुए अठारहवें स्थान तक पहुँचने पर जो संख्या होती है, वही ब्रह्मा की परार्द्ध संख्या होती है । जैसे- १ × १० ×१० ×१० ×१० ×१० ×१० ×१० ×१० ×१० ×१० ×१० ×१० ×१० ×१० ×१० ×१० ×१० ×१० =१०००००००००००००००००० एक महाशंख । = ब्रह्मा जी की परार्द्ध संख्या ।। १६ ।। परार्द्ध का दूना समय व्यतीत हो जाने पर प्राकृत प्रलय होता है । उस समय अनावृष्टि के कारण, सर्वत्र प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित होने लगती है तथा सब कुछ जलकर भस्म हो जाता है ।। १७ ।। महत् तत्व से लेकर विशेष पर्यन्त सभी विकारों का नाश हो जाता है । श्री भगवान् के संकल्प से होने वाले प्राकृत प्रलय हो जाने पर, पहले जल पृथिवी के गन्ध आदि गुणों को ग्रस लेता है । इसके बाद गन्धहीन पृथिवी का प्रलय हो जाता है । वह जल में घुल-मिलकर जलरूप हो जाती है ।। १८-१९ ।। उस समय रसमय जल की स्थिति होती है । फिर तेजस्तत्त्व जल के गुण रस को तेज पी लेता है । इससे जल का लय हो जाता है । जल के लीन हो जाने पर अग्नि तत्त्व प्रदीप्त हो जाता है ।। २० ।। इसके पश्चात् अग्नि के प्रकाशमय गुण रूप को वायु ग्रस लेता है । तेज के नष्ट हो जाने पर प्रचण्ड वायु चलने लग जाती है ।। २१ ।। उसके पश्चात् वायु के गुण को आकाश ग्रस लेता है । फिर वायु के लीन हो जाने पर नीरव आकाशमात्र रह जाता है ।। २२ ।। उसके पश्चात् भूतादि ()तामस) अहंकार आकाश के गुण शब्द को ग्रस लेता है । तैजस अहंकार इन्द्रियों को अपने में लीन कर लेता है । इसके बाद महत् तत्त्व अभिमानस्वरूप भूतादि एवं तैजस अहंकार को ग्रस लेता है ।। २३ ।। इस तरह पृथिवी जल में लीन होती है, जल तेज में लीन हो जाता है, तेज का वायु में लय हो जाता है, वायु का आकाश में लय होता है । आकाश का अहंकार में लय होता है ।। २४ ।। फिर अहंकार महत्तत्त्व में लीन हो जाता है । ब्रह्मन उस महत् तत्त्व को भी प्रकृति ग्रस लेती है । प्रकृति के दो रूप हैं- व्यक्त तथा अव्यक्त । व्यक्त प्रकृति का अव्यक्त प्रकृति में लय होता है ।। २५ ।। एक अविनाशी तथा शुद्ध स्वरूप पुरुष परमात्मा का अंश है । प्रकृति तथा पुरुष इन दोनों का परमात्मा में लय हो जाता है ।। २६ ।। वह परमात्मा सबों का स्वामी है । वह नाम तथा जाति की कल्पना से रहित है । वह केवल सत्ता स्वरूप है । वही ज्ञेय है, ज्ञान स्वरूप है तथा आत्मा से भिन्न तथा श्रेष्ठ है ।। २७ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का नित्य, नैमित्तिक तथा प्राकृत प्रलय वर्णन नामक तीन सौ अड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३६८ ॥

ऊनसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

आत्यन्तिकलयगर्भोत्पत्तिनिरूपणम्

अग्निरुवाच– **आत्यन्तिकं लयं वक्ष्ये ज्ञानादात्यन्तिको लयः । आध्यात्मिकादिसन्तापं ज्ञात्वा स्वस्य विरागतः ॥ १ ॥ आध्यात्मिकस्तु
सन्तापः शारीरो मानसो द्विधा । शारीरो बहुभिर्भेदैस्तापोऽसौ श्रूयतां द्विज ! ॥ २ ॥ त्यक्त्वा जीवो भोगदेहं गर्भमाप्नोति कर्मभिः । आतिवाहिकसंज्ञस्तु
देहो भवति वै द्विज॥ ३॥ केवलं स मनुष्याणां मृत्युकाल उपस्थिते । याम्यैः पुंभिर्मनुष्याणां तच्छरीरं द्विजोत्तमा ! ॥ ४ ॥ नीयते याम्यमार्गेण
नान्येषां प्राणिनां मुने ! । ततः स्वर्याति नरकं सभ्रमेद् घटयन्त्रवत्॥ ५॥ कर्मभूमिरियं ब्रह्मन् ! फलभूमिरसौ स्मृता । यमो योनीश्च नरकं
निरूपयति कर्मणा॥ ६॥ पूरणीयाश्च तेनैव यमश्चैवानुपश्यताम् । वायुभूताः प्राणिनश्च गर्भन्ते प्राप्नुवन्ति हि॥ ७॥ यमदूतैर्मनुष्यस्तु नीयते तञ्च
पश्यति। धर्मी च पूज्यते तेन पापिष्ठस्ताड्यते गृहे ॥ ८॥ शुभाशुभं कर्म तस्य चित्रगुप्तो निरूपयेत् । बान्धवानामशौचे तु देहे खल्वातिवाहिके॥९॥
तिष्ठन् नयति धर्मज्ञ ! दत्तपिण्डाशनं ततः । तं त्यक्त्वा प्रेतदेहन्तु प्राप्यान्य प्रेतलोकतः ॥ १० ॥ वसेत् क्षुधातृषायुक्त आमश्राद्धान्नभुङ्नरः ।
आतिवाहिकदेहात् तु प्रेतपिण्डैर्विना नरः ॥ ११ ॥ न हि मोक्षमवाप्नोति पिण्डांस्तत्रैव सोऽश्नुते । कृतेसपिण्डीकरणे नरः संवत्सरात् परम् ॥ १२॥
प्रेतदेहं समुत्सृज्य भोगदेहं प्रपद्यते। भोगदेहावुभौ प्रोक्तावशुभाशुभसंज्ञितौ॥१३॥ भुक्त्वा तु भोगदेहेन कर्मबन्धान्निपात्यते। तं देहं परतस्तस्माद्**

अग्निदेव ने कहा– अब मैं आत्यन्तिक प्रलय का वर्णन करूँगा । जब जगत् के आध्यात्मिक आदि (आधिभौतिक तथा आधिदैविक) आदि सन्तापों को जानकर संसार से वैराग्य होता है तो ज्ञान के उत्पन्न हो जाने से आत्यन्तिक लय होता है ।। १ ।। आध्यात्मिक संताप के दो भेद होते हैं- शारीरिक तथा मानसिक । ब्रह्मन् ! वसिष्ठ जी शारीरिक संताप के अनेक भेद होते हैं उन्हें आप सुनें ।। २ ।। जीव भोगदेह का परित्याग करके अपने कर्मों के अनुसार पुनः गर्भ में आता है । हे द्विज ! एक आतिवाहिक नाम का शरीर होता है ।। ३ ।। मनुष्य के मृत्युकाल उपस्थित होने पर उस आतिवाहिक शरीर की प्राप्ति होती है । यमराज के दूत उस आतिवाहिक शरीर को यमलोक के मार्ग से ले जाते हैं । उस शरीर की प्राप्ति दूसरे प्राणियों को नहीं होती है ।। ४ ।। यमलोक में जाने के बाद मनुष्य या तो स्वर्ग लोक में जाता है अथवा नरकलोक में जाता है । जिस तरह राहट नामक यन्त्र (घटी यन्त्र) के घट कभी पानी में डूबते हैं और कभी पानी से बाहर आता है, उसी तरह वह जीव कभी नरक का चक्कर लगाता है तो कभी स्वर्ग का ।। ५ ।। ब्रह्मन ! यह कर्मभूमि है तथा परलोक फलभूमि है । यमराज जीव को उसके कर्मानुसार भिन्न-भिन्न योनियों तथा नरकों में डाला करते हैं ।। ६ ।। यमराज ही जीवों द्वारा नरकों को परिपूर्ण बनाए रखते हैं । यमराज ही इनके नियामक हैं । जीव वायु रूप धारण करके गर्भ में प्रवेश करते हैं ।। ७ ।। यमदूत जब मनुष्य को यम के पास ले जाते हैं तो यमराज उन जीवों को देखते हैं । यदि कोई धर्मात्मा होता है तो उसकी वे पूजा करते हैं तथा यदि कोई पापी होता है तो उसको वे अपने घर पर दण्ड देते हैं ।। ८ ।। चित्रगुप्त उस जीव के शुभ तथा अशुभ कर्मों की विवेचना करते हैं । मृत्यु हो जाने पर जब तक बान्धवों का अशौच बना रहता है, तब तक जीव आतिवाहिक शरीर में ही रहकर दिए हुए पिण्डों को भोजन के रूप में अपने साथ ले जाता है ।। ९ ।। प्रेतलोक में पहुँचकर जीव आतिवाहिक शरीर को त्याग देता है तथा दूसरा (भोग) शरीर प्राप्त करके वहाँ भूख-प्यास से युक्त होकर निवास करता है । उस समय वही उसे भोजन के रूप में प्राप्त होता है जो श्राद्ध के समय कच्चा अन्न दिया जाता है ।। १० ।। प्रेत के निमित्त पिण्डदान किए विना उसको आतिवाहिक शरीर से छुटकारा नहीं मिलता है । वह उसी शरीर में रहकर केवल पिण्डों का भोजन करता है ।। ११।। सपिण्डीकरण श्राद्ध करने के पश्चात् एक वर्ष के बाद वह प्रेत शरीर को त्यागकर भोगदेह को प्राप्त कर लेता है । भोग शरीर दो प्रकार के होते हैं- शुभ तथा अशुभ ।। १२-१३ ।। भोग देह के द्वारा कर्मजन्य फलों को भोगने के

भक्षयन्ति निशाचराः॥ १४ ॥ पापे तिष्ठति चेत् स्वर्गं तेन भुक्तं तदा द्विज ! । तदा द्वितीयं गृह्णाति भोगदेहन्तुपापिनाम् ॥ १५ ॥ भुक्त्वा पापन्तु वै पश्चाद् येन भुक्तं त्रिविष्टपम्। शुचीनां श्रीमतां गेहे स्वर्गभ्रष्टोऽभिजायते ॥ १६ ॥ पुण्ये तिष्ठति चेत् पापं तेन भुक्तं तदा भवेत् । तस्मिन् सम्भक्षिते देहे शुभं गृह्णाति विग्रहम्॥१७॥ कर्मण्यल्पावशेषे तु नरकादपि मुच्यते । मुक्तस्तु नरकाद् याति तिर्यग्योनिं न संशयः ॥ १८॥ जीवः प्रविष्टो गर्भन्तु कललेऽप्यत्र तिष्ठति। घनीभूतं द्वितीये तु तृतीयेऽवयवास्ततः॥ १९॥ चतुर्थेऽस्थीनि त्वङ्मांसं पञ्चमे रोमसम्भवः । षष्ठे चेतोऽथ जीवस्य दुःखं विन्दति सप्तमे॥ २०॥ जरायुवेष्टिते देहे मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिस्तथा । मध्ये क्लीवस्तु वामे स्त्री दक्षिणे पुरुषस्थितिः॥ २१॥ तिष्ठत्युदरभागे तु पृष्ठस्याभिमुखस्तथा । यस्यां तिष्ठत्यसौ योनौ तां स वेत्ति न संशयः ॥ २२॥ सर्वञ्च वेत्ति वृत्तान्तमारभ्य नरजन्मनः । अन्धकारञ्च महतीं पीडां विन्दति मानवः ॥ २३॥ मातुराहारपीतन्तु सप्तमे मास्युपाश्नुते । अष्टमे नवमे मासि भृशमुद्विजते तथा ॥ २४॥ व्यवाये पीड़ामाप्नोति मातुर्व्यायामके तथा । व्याधिश्च व्याधितायां स्यान्मुहूर्त्तं शतवर्षवत् ॥ २५ ॥ सन्तप्यते कर्मभिस्तु कुरुतेऽथ मनोरथान् । गर्भाद् विनिर्गतो ब्रह्मन् ! मोक्षज्ञानं करिष्यति ॥ २६ ॥ सूतिवातैरधोभूतो निःसरेद् योनियन्त्रतः । पीड्यमानो माससमात्रं करस्पर्शेन दुःखितः॥ २७॥ खशब्दात् क्षुद्रश्रोतांसि देहे श्रोत्रं विविक्तता । श्वासोच्छ्वासौ गतिर्वायोर्वक्रसंस्पर्शनं तथा ॥ २८ ॥ अग्नेरूपं दर्शनं स्यादूष्मा पङ्क्तिश्च पित्तकम्। मेधा वर्णं बलं छाया तेजः शौर्य्यं शरीरके ॥ २९ ॥ जलात् स्वेदश्च रसनं देहे वै संप्रजायते । क्लेदो वसा रसा रक्तं शुक्रमूत्रकफादिकम्॥ ३०॥

पश्चात् मर्त्यलोक में गिरा दिया जाता है । उस समय उसके त्यागे हुए भोग देह को निशाचर खा जाते हैं ।। १४ ।। ब्रह्मन् यदि जीव पाप के फल का भोग किए विना पुण्यों के फल स्वर्ग का सुख भोग लेता है तो फिर वह पापियों का भोग शरीर धारण करता है ।। १५ ।। जो जीव अपने पापों का फल भोगने के पश्चात् पुण्यों के फल स्वर्ग का भोग करता है, वह स्वर्ग से लौटने पर इस संसार में पवित्र श्रीमानों के घर में जन्म लेता है ।। १६ ।। ब्रह्मन् ! यदि जीव पुण्य के रहते ही पापों को भोग लेता है तो उसका भोग समाप्त होने पर वह पुण्यभोग के लिए उचित शुभ शरीर को धारण करता है ।। १७ ।। जब कर्म का भोग थोड़ा सा अवशिष्ट रहता है तो जीव को नरक से छुटकारा मिल जाता है । नरक से निकला हुआ जीव पशु-पक्षी आदि तिर्यग् योनि में ही जन्म लेता है । इसमें कोई संशय नहीं है ।। १८ ।। मानव योनि के गर्भ में प्रविष्ट जीव पहले मास में कललरूप में रहता है । द्वितीय मास में वह घनीभूत (कठोर मांस पिण्ड के रूप में परिणत) हो जाता है । तीसरे महीने में उसके अवयव आविर्भूत हो जाते हैं ।। १९ ।। चौथे महीने में हड्डी, मांस तथा त्वचा का प्राकट्य होता है । पाँचवें महीने में रोएँ निकल आते हैं । छठें महीने में उसमें चेतना आ जाती है, सातवें महीने से वह कष्ट का अनुभव करने लगता है ।। २० ।। उसका सारा शरीर झिल्लियों में लिपटा रहता है । मस्तक के सन्निकट उसके जुड़े हुए हाथ बन्धे रहते हैं । यदि गर्भस्थ शिशु नपुंसक हो तो मध्यभाग में रहता है, स्त्री हो तो वामभाग में रहता है तथा यदि पुरुष हो तो पेट के दक्षिण भाग में रहता है ।। २१ ।। पेट के भीतर रहकर वह पीठ की ओर मुँह किए रहता है । निःसन्देह वह जिस योनि में रहता है, उसका उसे अच्छी तरह से ज्ञान रहता है ।। २२ ।। वह मनुष्य जन्म से लेकर वर्तमान योनि के समस्त वृत्तान्तों को जानता है । गर्भ के उस अन्धकार में जीव को बड़ा ही कष्ट होता है ।। २३ ।। सातवें महीने में वह माता के द्वारा खाये गए आहार का रस भी पीने लगता है । आठवें तथा नवें महीने में उसे अत्यन्त उद्वेग होता है ।। २४ ।। मैथुनकाल में तो उसको और अधिक पीड़ा होती है । माता के परिश्रम करने पर भी उसे पीड़ा होती है । माता के रोगी होने पर वह भी व्याधियुक्त हो जाता है । उसके लिए एक मुहूर्त भी सौ वर्ष के समान बीतता है ।। २५ ।। जीव अपने कर्मों के अनुसार गर्भ में संतप्त होता है । उस समय वह यह संकल्प करता है कि वह गर्भ से निकलते ही मोक्ष के साधनों में लग जायेगा ।। २६ ।। प्रसूतिवायु से प्रेरित होकर उसका सिर नीचे की ओर आ जाता है । फिर वह योनियन्त्र से पीड़ित होते हुए गर्भ से बाहर निकल आता है । गर्भ से बाहर निकलने पर एक महीने तक किसी द्वारा हाथ से छू लिए जाने पर भी वह कष्ट का अनुभव करता है ।। २७ ।। ख शब्द वाच्य आकाश से शरीर के भीतर छोटे-छोटे छिद्र कान तथा अवकाश आदि आविर्भूत होते हैं । श्वास, उच्छ्वास, गति तथा अंगों को टेढ़ा मेढ़ा करके किसी का स्पर्श करना- ये सभी वायु के कार्य हैं ।। २८ ।। रूप, ने, गर्मी, पाचनक्रिया, पित्त,, मेधा,

भूमेर्घ्राणं केशनखं गौरवं स्थिरतोऽस्थितः । मातृजानि मृदून्यत्र त्वङ्मांसहृदयानि च॥ ३१॥ नाभिर्मज्जा शकृन्मेदःक्लेदान्यामाशयानि च । पितृजानि शिरास्नायुशुक्रञ्चैवात्मजानि तु ॥ ३२ ॥ कामक्रोधो भयं हर्षं धर्माधर्मात्मता तथा । आकृतिः स्वरवर्णौ तु मेहनाद्यं तथा च यत् ॥ ३३॥ तामसानि तथाऽज्ञानं प्रमादालस्यतृट्क्षुधाः। मोहमात्सर्यवैगुण्यशोकायासभयानि च ॥ ३४॥ कामक्रोधौ तथा शौर्य्यं यज्ञेप्सा बहुभाषिता । अहङ्कारः परावज्ञा राजसानि महामुने॥ ३५॥ धर्मेप्सा मोक्षकामित्वं परा भक्तिश्च केशवे । दाक्षिण्यं व्यवसायित्वं सात्विकानि विनिर्दिशेत् ॥३६॥ चपलः क्रोधनो भीरुर्बहुभाषी कलिप्रियः । स्वप्ने गगनगश्चैव बहुवातो नरो भवेत् ॥ ३७॥ अकालपलितः क्रोधी महाप्राज्ञो रणप्रियः । स्वप्ने च दीप्तिमत्प्रेक्षी बहुपित्तो नरो भवेत्॥ ३८॥ स्थिरमित्रः स्थिरोत्साहः स्थिराङ्गो द्रविणान्वितः । स्वप्ने जलसितालोकी बहुश्लेष्मा नरो भवेत् ॥ ३९॥ रसस्तु प्राणिनां देहे जीवनं रुधिरं तथा । लेपनश्च तथो मांसमेहस्नेहकरन्तु तत् ॥ ४०॥ धारणन्त्वऽस्थि मज्जा स्यात् पूरणं वीर्य्यवर्धनम् । शुक्रवीर्य्यकरं ह्योजः प्राणकृजीवसंस्थितिः ॥ ४१ ॥ ओजः शुक्रात् सारतरमापीत हृदयोपगम्। षडङ्गसक्थिनी बाहुमूर्धा जठरमीरितम् ॥ ४२॥ षट्त्वचा बाह्यतो यद्वदन्या रुधिरधारिका । विलासधारिणी चान्या चतुर्थी कुण्डधारिणी॥ ४३॥ पञ्चमी विद्रधिस्थानं षष्ठी प्राणधरा मता। कलासप्तमी मांसधरा द्वितीया रक्तधारिणी ॥ ४४ ॥ यकृत्प्लीहाश्रया चान्या मेदोधराऽस्थिधारिणी । मजाज्ञश्लेष्मपुरीषाणां धरा पक्वाशयस्थिता।

वर्ण, बल, छाया, तेज तथा शौर्य ये शरीर में अग्नि तत्त्व से प्रकट होते हैं ।। २९ ।। पसीना, स्वाद का अनुभव करना, रस ग्रहण की शक्ति शुक्र (वीर्य) मूत्र तथा कफ आदि शरीर में जल तत्त्व से उद्भूत होते हैं ।। ३० ।। घ्राणेन्द्रिय, नख, केश तथा गुरुत्व ये सब भूमि तत्त्व से उत्पन्न होते हैं । शरीर में जो कोमल पदार्थ है- त्वचा, मांस, हृदय, नाभि, मज्जा, मल, मेदा, क्लेदन तथा आमाशय- ये माता के रज से उत्पन्न होते हैं ।। ३१।। शिरा, स्नायु तथा शुक्र का प्रादुर्भाव पिता के वीर्य से होता है । काम, क्रोध, भय, हर्ष, धर्म, अधर्म, आकार, स्वर, वर्ण मेहन (मूत्रादि की क्रिया) ये सभी जीव के अपने होते हैं ।। ३२-३३ ।। अज्ञान, प्रमाद, आलस्य, क्षुधा, तृषा, मोह, मात्सर्य, वैगुण्य, शोक, आभास तथा भय ये सभी तमोगुण जन्य हैं ।। ३४।। महामुने ! काम, क्रोध, शौर्य, यज्ञ करने की अभिलाषा, बहुत बोलने की आदत, अहंकार तथा दूसरों का अनादर करना- ये सभी रजोगुण के कार्य हैं ।। ३५ ।। धर्म की अभिलाषा, मोक्ष की आकांक्षा, भगवान् विष्णु में पराभक्ति, उदारता तथा उद्योगशीलता- ये सभी सत्त्वगुण के कार्य हैं ।। ३६ ।। चञ्चल, क्रोधी, डरपोक, अधिक वातूनी, कलह में रुचि रखने वाला, तथा स्वप्न में आकाश मार्ग से उड़ने वाला मनुष्य वातप्रधान प्रकृति का होता है ।। ३७ ।। जिसके बाल असमय में ही सफेद हो जायँ, क्रोधी, महाबुद्धिमान् तथा युद्धप्रिय जिसे स्वप्न में प्रकाशमान वस्तुएँ दिखायी देती हों, वह व्यक्ति पित्तप्रधान प्रकृति वाला होता है ।। ३८ ।। जिसके मैत्री, उत्साह, अङ्ग सभी स्थिर हों, जो धन आदि से सम्पन्न हो, जो स्वप्न में जल तथा श्वेत पदार्थों को देखता है, वह कफप्रधान प्रकृति का पुरुष होता है ।। ३९ ।। प्राणियों के शरीर में रस जीवन देने वाला होता है । रुधिर लेपन का कार्य करता है तथा माँस मेहन एवं स्नेहन क्रिया को करने वाला होता है ।। ४० ।। हड्डी तथा मज्जा धारण क्रिया का कार्य करते हैं । वीर्य की वृद्धि शरीर को पूर्ण बनाने वाली होती है । ओज शुक्र एवं वीर्य को उत्पन्न करता है । वही जीव की संस्थिति तथा प्राण की रक्षा करने वाला होता है ।। ४१ ।। ओज शुक्र की अपेक्षा अधिक सारवस्तु है । वह हृदय के समीप रहता है, उसका रंग कुछ-कुछ पीला होता है । दोनों जंघे दोनों भुजाएँ, मूर्धा तथा जठर ये छह अंग बतलाए गए हैं ।। ४२ ।। त्वचा के छह स्तर हैं । एक तो वह है जो बाहर से दिखायी पड़ती है, दूसरी जो रुधिर को धारण करती है । तीसरी किलास (धातु शेष) तथा चौथी कुण्ड (धातु विशेष) को धारण करती है ।। ४४ ।। पाँचवी त्वचा इन्द्रियों का स्थान है और छठीं त्वचा प्राणों को धारण करने वाली बतायी गयी है । कला भी सात प्रकार की होती है पहली कला मांस को धारण करती है, दूसरी रक्त को धारण करती है ।। ४४ ।। तीसरी कला यकृत तथा प्लीहा को धारण करती है तथा चौथी मेदा तथा अस्थि को धारण करती

षष्ठी पित्तधरा शुक्रधरा शुक्राशयाऽपरा ॥ ४५ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये आत्यन्तिकलयगर्भोत्पत्तिनिरूपणकथनं नामैकोनसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६९॥

सप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

शरीरावयवाः

अग्निरुवाच– श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा घ्राणं धीः खञ्चभूतगम् । शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः खादिषु तद्गुणाः ॥ १ ॥ पायूपस्थौ करौ पादौ वाग् भवेत् कर्मखं तथा । उत्सर्गानन्दकादानगतिवागादि कर्म तत् ॥ २ ॥ पञ्चकर्मेन्द्रियाण्यत्र पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि च । इन्द्रियार्थाश्च पञ्चैव महाभूतामनोऽधिपाः॥३॥ आत्माऽव्यक्तश्चतुर्विंशतत्वानि पुरुषः परः । संयुक्तश्च वियुक्तश्च यथा मत्स्योदके उभे ॥ ४ ॥ अव्यक्तमाश्रितानीह रजःसत्त्वतमांसि च । आन्तरः पुरुषो जीवः स परं ब्रह्म कारणम्॥ ५॥ स याति परमं स्थानं यो वेत्ति पुरुषं परम् । सप्ताशयाः स्मृता देहे रुधिरस्यैक आशयः॥ ६॥ श्लेष्मणश्चामपित्ताभ्यां पक्वाशयस्तु पञ्चमः । वायुमूत्राशयः सप्त स्त्रीणां गर्भाशयोऽष्टमः ॥ ७॥ पित्तात् पक्वाशयोऽग्नेः स्याद् योनिर्विकासिता ऋतौ । पद्मवत् गर्भाशयः स्यात् तत्र धत्ते सरक्तकम् ॥ ८ ॥ शुक्रं स्वशुक्रतश्चाङ्गं कुन्तलान्यत्र कालतः । न्यस्तं शुक्रमतो योनो नेति गर्भाशयं मुने॥९॥ ऋतावपि च योनिश्चेद् वातपित्तकफावृता। भवेत् तदा विकासित्वं नैव तस्यां प्रजायते॥१०॥ वुक्कात् पुक्वसकप्लीहयकृतकोष्ठाङ्गहृद्

है । पाँचवीं कला मज्जा, श्लेष्म तथा पुरीष को धारण करती है तथा वह पक्वाशय में रहती है । छठीं कला पित्त को धारण करती है तथा सातवीं कला शुक्र को धारण करती है एवं शुक्राशय में स्थित रहती है ।। ४५ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का आत्यन्तिक प्रलय तथा गर्भ की उत्पत्ति वर्णन नामक तीन सौ उनहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३६९ ॥

अग्निदेव ने कहा– श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा तथा घ्राण ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं । आकाश समस्त भूतों में व्यापक है । शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध- ये क्रमशः आकाश आदि पाँच भूतों के गुण हैं ।। १ ।। पायु (मलेन्द्रिय) उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय) हाथ, पैर तथा वाणी ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं । इन कर्मेन्द्रियों के कर्म क्रमशः मलोत्सर्ग, आनन्द, ग्रहण, गमन तथा वाग्विसर्ग हैं।।२।। इस शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं । इन इन्द्रियों के विषय भी पाँच हैं । पञ्च महाभूत मन, बुद्धि, आत्मा (महत्तत्व) तथा अव्यक्त (प्रकृति) ये चौबीस तत्त्व हैं । पुरुष (आत्मा) इन सबों से परे (श्रेष्ठ) है । वह इन चौबीस तत्वों से संयुक्त तथा असंयुक्त भी रहता है जैसे मछली जल के भीतर भी रहती है और बाहर भी ।। ३-४ ।। रजोगुण, तमोगुण तथा सत्त्वगुण, ये अव्यक्त के आश्रित रहते हैं । शरीर के भीतर रहने वाला पुरुष जीव कहलाता है तथा परं ब्रह्म सम्पूर्ण जगत् का कारण है ।। ५ ।। जो परमपुरुष (परमात्मा) को जानता है, वह परम पद (मोक्ष) को प्राप्त करता है। शरीर के भीतर सात आशय कहे गए हैं । पहला रुधिराशय ।। ६ ।। दूसरा श्लेष्माशय, तीसरा आमाशय, चौथा पित्ताशय, पाँचवाँ पक्वाशय, छठाँ वाताशय तथा सातवाँ मूत्राशय । इन सबों के अतिरिक्त स्त्रियों का आठवाँ अशय गर्भाशय होता है ।। ७ ।। अग्नि से पित्त तथा पित्त से पक्वाशय होता है । ऋतुकाल में स्त्री की योनि कुछ फैल जाती है । उसमें स्थापित किया हुआ वीर्य गर्भाशय तक पहुँच जाता है । गर्भाशय कमल के आकार का होता है । वही अपने भीतर रज तथा वीर्य को धारण करता है । वीर्य से शरीर तथा समयानुसार उसमें केश प्रकट होते हैं ।। ८ ।। यदि ऋतुकाल में भी योनि वात, पित्त तथा कफ से आवृत्त रहता है तो उसमें विकास नहीं होता है । इसीलिए योनि में स्थापित भी वीर्य गर्भाशय तक नहीं पहुँचता है।।९-१०।।

व्रणाः । तण्डकश्च महाभाग ! निबद्धान्याशये मतः॥ ११॥ रसस्य पच्यमानस्य साराद् भवति देहिनाम् । प्लीहा यकृच्च धर्मज्ञ ! रक्तफेनाच्च पुक्कसः ॥ १२ ॥ रक्तं पित्तञ्च भवति तथा तण्डकसंज्ञकः । मेदोरक्तप्रसाराच्च वुक्कायाः सम्भवः स्मृतः॥ १३॥ रक्तमांसप्रसाराच्च भवन्त्यन्त्राणि देहिनाम् । सार्धत्रिव्यामसंख्यानि तानि नृणां विनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥ त्रिव्यामानि तथा स्त्रीणां प्राहुर्वेदविदो जनाः । रक्तवायुसमायोगात् कामे यस्योद्भवः स्मृतः ॥ १५ ॥ कफप्रसाराद् भवति हृदयं पद्मसन्निभम् । अधोमुखं तच्छुषिरं यत्र जीवो व्यवस्थितः॥ १६॥ चैतन्यानुगता भावाः सर्वे तत्र व्यवस्थिताः । तस्य वामे तथा प्लीहा दक्षिणे च तथा यकृत् ॥ १७॥ दक्षिणे च तथा क्लोम पद्मस्यैवं प्रकीर्त्तितम् । श्रोतांसि यानि देहेऽस्मिन् कफरक्तवहानि च॥ १८ ॥ तेषां भूतानुमानाच्च भवतीन्द्रियसम्भवः । नेत्रयोर्मण्डलं शुक्लं कफाद भवति पैतृकम्॥ १९॥ कृष्णञ्च मण्डलं वातात् तथा भवति मातृकम् । पित्तात् त्वङ्मण्डलं ज्ञेयं मातापितृसमुद्भवम् ॥ २० ॥ मांसासृक्कफजा जिह्वा मेदोऽसृक्कफमांसजौ । वृषणौ दश प्राणस्य ज्ञेयान्यायतनानि तु ॥ २१॥ मूर्द्धा हृन्नाभिकण्ठाश्च जिह्वा शुक्रञ्च शोणितम्। गुदं वस्तिश्च गुल्फञ्च कण्डुराः षोडशेरिताः॥२२॥ द्वे करे द्वे च चरणे चतस्त्रः पृष्ठतो गले । देहे पादादिशीर्षान्ते जालानि चैव षोड़श ॥ २३॥ मांसस्नायुशिरास्थिन्यः चत्वारश्च पृथक् पृथक् । मणिबन्धनगुल्फेषु निबद्धानि परस्परम् ॥ २४ ॥ षट्कूर्चानि स्मृतानीह हस्तयोः पादयोः पृथक्। ग्रीवायाञ्च तथा मेढ्रे कथितानि मनीषिभिः॥२५॥ पृष्ठवंशस्योपगताश्चतस्रो मांसरज्जवः । चतस्रश्च तथा पेश्यस्तासांबन्धनकारिकाः ॥ २६॥ सीरण्यश्च तथा सप्त पञ्चमूर्द्धानमाश्रिताः । एकैका मेढ्रजिह्वास्ता अस्थि षष्टिशतत्रयम् ॥२७॥ सूक्ष्मैः सह चतुषष्टिर्दशना विंशतिर्नखाः । पाणिपादशलाकाश्च तासां स्थानचतुष्टयम्॥ २८॥ षष्ट्यङ्गुलीनां

हे महाभाग बुक्क से पुक्कस, प्लीहा, कोष्ठाङ्ग, हृदय, व्रण तथा तण्डक होते हैं । ये सभी आशय से निबद्ध होते हैं ।। ११ ।। हे धर्मज्ञ ! प्राणियों के पकाये जाने वाले रस के सार से प्लीहा तथा यकृत उत्पन्न होते हैं । रक्त के फेन से पुक्कस की उत्पत्ति होती है ।। १२ ।। इसी प्रकार रक्त, पित्त तथा तण्डक की भी उत्पत्ति होती है मेदा तथा रक्त के प्रसार से बुक्क की उत्पत्ति होती है ।।१३।। पुरुष की आँतों का माँस के प्रसार से वेदधारियों की आतें बनती हैं । पुरुष की आँतों का परिमाण साढे तीन व्याम बताया जाता है ।। १४ ।। वेदज्ञों ने स्त्रियों की आँतों का परिमाण तीन व्याम लम्बा बतलाया है । रक्त तथा वायु के संयोग से काम की उत्पत्ति बतलायी गयी है ।। १५ ।। कफ के प्रसार से हृदय प्रकट होता है । हृदय पद्म के सदृश होता है । उसका छिद्र अधोमुख होता है, जिसमें जीव का निवास होता है ।। १६ ।। चेतना से सम्बन्ध रखने वाले समस्त भावों की स्थिति वहीं होती है । हृदय के वामभाग में प्लीहा तथा दाहिने भाग में यकृत् होता है ।। १७ ।। हृदय कमल के दक्षिण भाग में क्लोम की भी स्थिति बतलायी गयी है । शरीर के भीतर कफ तथा रक्त का बहन करने वाले जो स्रोत हैं उनके भूतानुमान से इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है । नेत्रमण्डल का जो श्वेत भाग है, वह कफ से उत्पन्न होता है । उसका प्राकट्य पिता के वीर्य से होता है ।। १८-१९ ।। नेत्र का जो श्याम भाग है उसकी उत्पत्ति वात से मानी गयी है । उसका प्राकट्य माता के रज से माना गया है । त्वचा मण्डल की उत्पत्ति पित्त से होती है । इसका उद्भव माता एवं पिता दोनों के अंश से होता है ।। २० ।। मांस, रक्त तथा कफ से जिह्वा का निर्माण होता है । मेदा, रक्त, कफ तथा मांस से अण्डकोश की उत्पत्ति होती है । प्राणो के दस आश्रय जानना चाहिए । मूर्धा, हृदय, नाभि, कण्ठ, जिह्वा, शुक्र, शोणित, मेदा, वस्ति तथा गुल्फ (पैर की घुट्टी) । तथा कण्डुरा (नसें) सोलह बतलायी गयी हैं ।। २१-२२ ।। दो हाथ में, दो पैर में, चार पीठ में, चार गले में तथा चार पैर से लेकर सिर तक सम्पूर्ण शरीर में। इसी तरह जाल भी सोलह बतलाए गए हैं ।। २३ ।। मांस जाल, स्नायुजाल, शिराजाल तथा अस्थिजाल । ये चारों पृथक्-पृथक् दोनों कलाइयों तथा पैर की दोनों गांठों में परस्पर आबद्ध हैं।।२४।। इस शरीर में छह कूर्च बतलाए गए हैं । मनीषी पुरुषों ने दोनों हाथ, दोनों पैर गला और लिङ्ग में- उनका स्थान बतलाया है ।। २५ ।। पृष्ठ के मध्य भाग में जो मेरुदण्ड है, उसके

द्वे पार्ष्ण्योर्गुल्फेषु च चतुष्टयम् । चत्वार्य्यरत्न्योरस्थीनि जङ्घयोस्तद्वदेव तु ॥ २९ ॥ द्वे द्वे जानुकपोलोरु फलकांशसमुद्भवम्। अक्षस्थानांशकश्रोणिफलके चैवमादिशेत् ॥ ३०॥ भगास्तोकं तथा पृष्ठे चत्वरिंशच्च पञ्च च । ग्रीवायाञ्च तथाऽस्थीनि जत्रुकञ्च तथा हनुः ॥ ३१ ॥ तन्मूलं द्वे ललाटाक्षिगण्डनासांघ्यवस्थिताः । पर्शुकास्तालुकैः सार्द्धमर्ब्बुदैश्च द्विसप्ततिः ॥ ३२ ॥ द्वे शङ्खके कपालानि चत्वार्येव शिरस्तथा । उरः सप्तदशास्थीनि सन्धीनां द्वे शते दश॥ ३३॥ अष्टषष्टिस्तु शाखासु षष्टिश्चैकविवर्जिता। अन्तरा वै त्र्यशीतिश्च स्नायोर्नवशतानि च॥ ३४॥ त्रिंशाधिके द्वे शते तु अन्तराधौ तुसप्ततिः । ऊर्ध्वगाः षट्शतान्येव शाखासु कथितानि तु ॥ ३५ ॥ पञ्चपेशीशतान्येव चत्वारिंशत् तथोर्ध्वगाः। चतुःशतन्तु शाखासु अन्तराधौ च षष्टिका ॥ ३६॥ स्त्रीणां सप्ताधिका वै स्याद् विंशतिश्चतुरुत्तरा । स्तनयोर्दश योनौ च त्रयोदश तथाशये॥३७॥ गर्भस्य च चतस्रः स्युः शिराणाञ्च शरीरिणाम् । त्रिंशच्छतसहस्राणि तथान्यानि नवैव तु ॥ ३८॥ षट्पञ्चाशत्सहस्राणि रसं देहे वहन्ति ताः । केदार इव कुल्याश्च क्लेदलेपादिकञ्च यत् ॥ ३९ ॥ द्वासप्ततिस्तथा कोट्यो लोम्नामिह महामुने ! । मज्जाया मेदसश्चैव वसायाश्च तथा द्विज!॥४०॥ मूत्रस्य चैव पित्तस्य श्लेष्मणः शकृतस्तथा। रक्तस्य सरसस्यात्र क्रमशोऽञ्जलयो मताः॥ ४१॥ अर्धार्धाभ्यधिकाः सर्वाः पूर्वपूर्वाऽञ्जलेर्मताः।

निकट चार मांसमयी डोरियाँ हैं । उतनी ही पेशियाँ भी हैं जो उन्हें बाँधे रहती हैं ।। २६ ।। सात सीरणियाँ हैं । उनमें से पाँच मस्तकाश्रित हैं तथा एक मेढ़ (लिङ्ग) में तथा एक जिह्वा में है। हड्डियाँ अट्ठारह हजार हैं ।। २७ ।। सूक्ष्म तथा स्थूल- दोनों मिलाकर चौंसठ दाँत हैं । बीस नख हैं- इसके अतिरिक्त हाथ तथा पैर की शलाकाएँ हैं । उन सबों के चार स्थान हैं ।। २८ ।। अंगुलियाँ में साठ, एँडियों में दो गुल्फों में चार, अरत्नियों में चार तथा जंघों में भी चार हड्डियाँ हैं ।। २९ ।। घुटनों में दो, गालों में दो, ऊरुओं में दो तथा फलकों के मूलभाग में भी दो ही हड्डियाँ हैं । इन्द्रियों के स्थानों तथा श्रोणि फलक में भी इसी तरह दो-दो हड्डियाँ हैं ।। ३० ।। भग में भी थोड़ी सी हड्डियाँ हैं । पीठ में पैंतालिस हड्डियाँ हैं । गले में भी पैंतालिस हड्डियाँ हैं। गले की पसली तथा ठोढ़ीं में भी दो हड्डियाँ हैं ।। ३१ ।। ठोढ़ी के मूल में दो हड्डी हैं । ललाट, नेत्र, कपाल, नासिका चरण, पसली, तालु तथा अर्बुद, इन सबों में सूक्ष्म रूप से बहत्तर हड्डियाँ हैं ।। ३२ ।। मस्तक में दो शंख और चार कपाल हैं । छाती में सत्रह हड्डियाँ हैं । सन्धियाँ दो सौ दस हैं ।। ३३ ।। इसके शाखाओं में अड़सठ तथा उनसठ हैं । अन्तरा में तिरासी संधियाँ हैं । स्नायुओं की संख्या नव सौ हैं ।। ३४ ।। उनमें से अन्तराधि में दो सौ तीस हैं । सत्तर ऊर्ध्वगामी हैं तथा शाखाओं में छह सौ स्नायु हैं ।। ३५ ।। पेशियों की संख्या पाँच सौ हैं । उनमें से चालीस ऊर्ध्वगामिनी हैं । शाखाओं में चार सौ पेशियाँ हैं तथा अन्तराधि में साठ पेशियाँ हैं ।। ३६ ।। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की मांस पेशियाँ सत्ताइस अधिक हैं । दोनों स्तनों में मिलाकर दस, योनि में तेरह तथा गर्भाशय में चार ।। ३७ ।। शरीरधारियों के शरीर में छत्तीस हजार नव शिराएँ हैं ।। ३८ ।। इसी तरह छप्पन हजार नाड़ियाँ हैं । जैसे छोटी-छोटी नालियाँ खेत में पानी बहाकर ले जाती हैं, उसी प्रकार ये नाडियाँ सम्पूर्ण शरीर में रस को प्रवाहित करती हैं । क्लेदन तथा लेपन उन्हीं के कार्य हैं ।। ३९ ।। महामुने ! इस शरीर में बहत्तर करोड़ रोमकूप हैं तथा मज्जा, मेदा, वसा, मूत्र, पित्त, श्लेष्मा, मल, खून तथा रस इनकी क्रमशः अञ्जलियाँ मानी जाती हैं ।। ४०-४१ ।। इनमें से पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर अंजलियाँ डेढ़ गुनी अधिक मात्रा की हैं ।। ४१ ।। एक अञ्जली में आधी वीर्य की और आधी ओज की होती हैं ।। ४२ ।। विद्वानों ने स्त्रियों के रज की चार अंजलि बतलाया है । यह शरीर मल तथा दोष आदि

अर्धाञ्जलिश्च शुक्रस्य तदर्धञ्चतथौजसः॥४२॥ रजसस्तु तथा स्त्रीणाञ्चतस्त्रः कथिता बुधैः । शरीरं मलदोषादि पिण्डं ज्ञात्वाऽऽत्मनि त्यजेत्॥४३॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शरीरावयवकथनं नाम सप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३७० ॥

एकसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नरकनिरूपणम्

अग्निरुवाच– **उक्तानि यममार्गाणि वक्ष्येऽथ मरणे नृणाम् । ऊष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः॥ १॥ शरीरमुपरुध्याऽथ कृत्स्नान् दोषान् रुणद्धि वै । छिनत्ति प्राणस्थानानि पुनर्मर्माणि चैव हि ॥ २ ॥ शैत्यात् प्रकुपितो वायुश्छिद्रमन्विष्यते ततः । द्वे नेत्रे द्वौ तथा कर्णौ द्वौ तु नासापुटौ तथा ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वं तु सप्त च्छिद्राणि अष्टमं वदनं तथा । एतैः प्राणो विनिर्याति प्रायशः शुभकर्मणाम् ॥ ४॥ अधः पायुरुपस्थं च अनेनाशुभकारिणाम्। मूर्धानं योगिनो भित्त्वा जीवो यात्यथ चेच्छया॥ ५॥ अन्तकाले तु सम्प्राप्ते प्राणेऽपानमुपस्थिते । तमसा संवृते ज्ञाने संवृतेषु च मर्मसु ॥ ६॥ स जीवो नाभ्यधिष्ठानाच्चाल्यते मातरिश्वना। बाध्यमानश्चाऽऽनयते अष्टाङ्गा प्राणवृत्तिकाः ॥ ७ ॥ च्यवन्तं जायमानं वा प्रविशन्तं च योनिषु । प्रपश्यन्ति च तं सिद्धा देवा दिव्येन चक्षुषा ॥ ८ ॥ गृह्णाति तत्क्षणाद्योगे शरीरं चाऽऽतिवाहिकम् । आकाशवायुतेजांसि विग्रहादूर्ध्वगामिनः॥९॥ जलं मही च पञ्चत्वमापन्नः पुरुषः स्मृतः । आतिवाहिकदेहं तु यमदूता नयन्ति तम् ॥ १० ॥ याम्यं मार्गं महाघोरं षडशीतिसहस्त्रकम् । अन्नोदकं नीयमानो बान्धवैर्दत्तमश्नुते ॥ ११ ॥ यमं दृष्ट्वा यमोक्तेन चित्रगुप्तेन चेरितान् । प्राप्नोति नरकान् रौद्रान् धर्मी शुभपथैर्दिवम् ॥ १२॥ भुज्यन्ते**

का पिण्ड है, ऐसा जानकर अपने मन में शरीर के प्रति होने वाले मोह का परित्याग कर देना चाहिए ।। ४३ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्नि पुराण का शरीरावयव वर्णन नामक तीन सौ सत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३७० ॥

अग्निदेव ने कहा– मैं यममार्ग का वर्णन कर चुका हूँ अब मैं मनुष्यों की मृत्यु के विषय में कुछ कहूँगा । शरीर में जब वात का वेग बढ़ जाता है तो उसके प्रभाव से पित्त का भी प्रकोप बढ़ जाता है ।। १ ।। वह पित्त सम्पूर्ण शरीर को रोककर सम्पूर्ण दोषों को आवृत्त कर लेता है । वह प्राणों के स्थान तथा मर्मों का उच्छेद कर डालता है ।। २ ।। फिर शीत से वायु का प्रकोप होता है और वायु निकलने के लिए छिद्र खोजने लगती है । दो नेत्र, दो कान, दो नाक, एक ऊपर का ब्रह्मरन्ध्र- ये सात छिद्र हैं तथा आठवाँ छिद्र मुख है ।। शुभकर्म करने वाले प्राणियों के प्राण प्रायः इन्हीं स्थानों से निकलते हैं ।। ३-४ ।। नीचे की ओर छिद्र दो हैं- पायु तथा उपस्थ । पापियों के प्राण इन्हीं मार्गों से निकलते हैं । योगियों का प्राण मूर्धा का भेदन करके निकलता है । वह जीव भी अपनी इच्छा के अनुसार लोकों में जाता है ।। ५ ।। अन्तकाल आने पर प्राण अपान में स्थित हो जाता है । अज्ञान से ज्ञान तथा मर्मस्थान आच्छन्न हो जाते हैं। उस समय जीव वायु के द्वारा बाधित होकर नाभि स्थान से विचलित हो जाता है । अतएव वह आठ अंगों वाली प्राणों की वृत्तियों को लेकर शरीर से बाहर हो जाता है ।। ७ ।। जीव को शरीर से निकलते हुए जन्म लेते समय तथा योनियों में प्रवेश करते समय सिद्ध तथा देवता ही अपनी दिव्य दृष्टि से देख पाते हैं ।। ८ ।। जीव मृत्यु के पश्चात् शीघ्र ही आतिवाहिक शरीर का सम्बन्ध प्राप्त कर लेता है ।। ९ ।। पृथ्वी तथा जल तत्त्व पृथिवी तथा जल में मिल जाते हैं । शरीर के पाञ्च तत्त्वों का अपने मूलभूत पाँचों तत्त्वों में मिल जाने को ही पुरुष की पञ्चत्व की प्राप्ति कही गयी है । जीव को उसके आतिवाहिक शरीर के साथ यमदूत ले जाते हैं ।। १० ।। यमलोक का मार्ग अत्यन्त भयंकर है तथा छियासी हजार योजन लम्बा है । उस मार्ग से ले जाये जाने

पापिभिर्वक्ष्ये नरकांस्ताश्च यातनाः । अष्टाविंशतिरेवाधःक्षितेर्नरककोटयः॥ १३॥ सप्तमस्य तलस्यान्ते घोरे तमसि संस्थिताः । घोराख्या प्रथमा कोटिः सुघोरा तदधःस्थिताः ॥ १४ ॥ अतिघोरा महाघोरा घोररूपा च पञ्चमी । षष्ठी तरलताराख्या सप्तमी च भयानका ॥ १५॥ भयोत्कटा कालरात्री महाचण्डा च चण्डया । कोलाहला प्रचण्डाख्या पद्मा नरकनायिका ॥ १६ ॥ पद्मावती भीषणा च भीमा चैव करालिका । विकराला महावज्रा त्रिकोणा पञ्चकोणिका ॥ १७ ॥ सुदीर्घा वर्तुला सप्तभूमा चैव सुभूमिका । दीप्तमायाऽष्टाविंशति कोटयः पापिदुःखदाः॥ १८॥ अष्टाविंशतिकोटीनां पञ्च पञ्च च नायकाः । रौरवाद्याः शतञ्चैकं चत्वारिंशच्चतुष्टयम्॥ १९॥ तामिस्रमन्धतामिस्र महारौरवरौरवौ । असिपत्रं वनञ्चैव लोहभारं तथैव च ॥ २० ॥ नरकं कालसूत्रञ्च महानरकमेव च । सञ्जीवनं महावीचि तपनं सम्प्रतापनम् ॥ २१ ॥ सङ्घातञ्च सकाकोलं कुड्मलं पूतिमृत्तिकम् । लोहशङ्कुमृजीषञ्च प्रधानं शाल्मलीं नदीम्॥ २२॥ नरकान् विद्धि कोटीनां नायकान् घोरदर्शनान् । पात्यन्ते पापकर्म्माण एकैकस्मिन् बहुष्वपि ॥ २३ ॥ मार्जारोलूकगोमायुगृध्रादिवदनाश्च ते । तैलद्रोण्यां नरं क्षिप्त्वा ज्वालयन्ति हुताशनम्॥ २४॥ अम्बरीषेषु चैवान्यांस्ताम्रपात्रेषु चापरान् । अयःपात्रेषु चैवान्यान् बहुवह्निकणेषु च ॥ २५॥ शूलाग्रारोपिताश्चान्ये छिद्यन्ते नरकेऽपरे । ताड्यन्ते च कशाभिस्तु भोज्यन्ते चाप्ययोगुड़ान् ॥ २६ ॥ यमदूतैर्नराः पांशून् विष्ठारक्तकफादिकान् । तप्तं मद्यं पाययन्ति पाटयन्ति पुनर्नरान्॥ २७॥ यन्त्रेषु पीडयन्ति स्म भक्ष्यन्ते वायसादिभिः । तैलेनोष्णेन सिच्यन्ते छिद्यन्ते नैकधा शिरः ॥ २८ ॥ हा तातेति क्रन्दमानाः स्वकं निन्दन्ति कर्म ते । महापातकजान्

वाला अपने बन्धु बान्धवों द्वारा दिए गये अन्न-जल का उपभोग करता है ।। ११ ।। यमराज से मिलने के पश्चात् उनके आदेश से चित्रगुप्त जिन भयंकर नरकों को बतलाते हैं, वह उन नरकों में जाता है । यदि वह धार्मिक होता है तो वह शुभ मार्गों से देवलोक में जाता है ।। १२ ।। पापी जीव जिन नरकों का उपभोग करते हैं, मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ । इस पृथ्वी के नीचे नरकों की अट्ठाइस श्रेणियाँ हैं ।। १३ ।। सातवें तल के नीचे घोर अन्धकार में उनकी स्थिति है । नरक की पहली कोटि का नाम घोरा है । उसके नीचे सुघोरा की स्थिति है ।। १४ ।। तीसरी अतिघोरा, चौथी महाघोरा, पाँचवी घोर रूपा, षष्ठी तरल तारा तथा सातवीं कोटि भयानक है ।। १५ ।। आठवीं भयोत्कटा, नवीं कालरात्रि, दसवीं महाचण्डा, ग्यारहवीं चण्डा, बारहवीं कोलाहला, तेरहवीं प्रचण्डा, चौदहवीं पद्मा तथा पन्द्रहवीं कोटि नरक नायिका है ।। १६ ।। सोलहवीं पद्मावती, सत्रहवीं भीषणा, अट्ठारहवीं भीमा,उन्नीसवीं करालिका, बीसवीं विकराला, इक्कीसवीं महाव्रजा, बाइसवीं त्रिकोण तथा तेइसवीं कोटि का नाम पञ्चकोणिका है ।। १७ ।। चौबीसवीं सुदीर्घा पच्चीसवीं वर्तुला, छब्बीसवीं सप्तभूमा, सत्ताइसवरीं सुभूमिका तथा अट्ठाइसवीं कोटि दीप्तिमाया है । ये सभी कोटियाँ पापियों को दुःख देने वाली हैं ।। १८ ।। इन अट्ठाइस कोटियों के पाँच-पाँच नायक हैं तथा वे रौरव आदि के नाम से प्रख्यात हैं । उन सबों की संख्या एक सौ पैंतालिस है ।। १९ ।। तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, असिपत्र वन तथा लोहभार ।। २० ।। कालसूत्र नरक, महानरक, संजीवन, महावीचि, तपन, सम्प्रतावन ।। २१।। संघात, काकोल, कुड्मल, पूतमृत्युक, लोहशंकुक ऋजीष, प्रधान, शाल्मलीवृक्ष तथा वैतरणी नदी ।। २२ ।। इन नरकों को कोटियों का नायक तथा भयंकर जानो । पापी जीव इनमें एक-एक में डाले जाते हैं अथवा अनेक में डाले जाते हैं ।। २३ ।। यातना देने वाले यमदूतों का मुख विडाल, उल्लू, सियार तथा गृध्र आदि के समान हैं । वे जीवों को तेल के कड़ाह में डाकर नीचे से आग जला देते हैं ।। २४ ।। किन्हीं जीवों को भाड़ में झोंक देते हैं, किन्हीं को ताम्बे या तपाये हुए लोहे के वर्तन में डाल देते हैं । बहुतों को आग की चिनगारियों में डाल देते हैं ।। २५ ।। बहुतों को शूली पर चढ़ा देते हैं, दूसरे नरकों में जीवों को टुकड़े-टुकड़े काट डालते हैं, कोड़ों से पीटते हैं तथा लोहे के गोले को खिलाते हैं ।। २६ ।। बहुत से यमदूत जीवों को धूलि, विष्ठा, रक्त तथा कफ आदि खिलाते हैं । जलती हुई मदिरा पिलाते हैं तथा बहुत से जीवों को आरे से चीर डालते हैं ।। २७ ।। कुछ जीवों को वे कोल्हू में पेरते हैं, कितनों को कौए आदि नोच-नोच कर खाते हैं। कुछ जीवों के ऊपर जलता हुआ तेल डालते हैं तथा उनके सिर के अनेक टुकड़े कर दिए जाते हैं ।। २८ ।। उस समय जीव अरे बाप-अरे बाप कहकर चिल्लाते हैं तथा अपने किए हुए कर्मों की निन्दा करते हैं । महान पापों के फलस्वरूप भयंकर एवं निन्दित कर्मों का कष्ट भोगकर, कर्मों का क्षय हो जाने पर वे महापापी जीव पुनः इस मर्त्यलोक में आते हैं।।२९।।

घोरान् नरकान् प्राप्य गर्हितान् ॥ २९ ॥ कर्मक्षयात् प्रजायन्ते महापातकिनस्त्विह । मृगश्वशूकरोष्ट्राणां ब्रह्महा योनिमृच्छति॥ ३०॥ खरपुक्काशम्लेच्छानां मद्यपः स्वर्णहार्य्यपि । कृमिकीटपतङ्गत्वं गुरुगस्तृणगुल्मताम्॥ ३१॥ ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात् सुरापः श्यावदन्तकः । स्वर्णहारी तु कुनखी दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ॥ ३२ ॥ यो येन संस्पृशत्येषां स तल्लिङ्गोऽभिजायते । अन्नहर्त्ता मायावी स्यान्मूको वागपहारकः ॥ ३३ ॥ धान्यं हृत्वाऽतिरिक्ताङ्गः पिशुनः पूतिनासिकः । तैलहृत् तैलपायी स्यात् पूतिवक्त्रस्तु सूचकः॥३४॥ परस्य योषितं हृत्वा ब्रह्मस्वमपहृत्य च । अरण्ये निर्जने देशे जायते ब्रह्मराक्षसः ॥ ३५॥ रत्नहारी हीनजातिर्गन्धान् छुछुन्दरी शुभान् । पत्रं शाकं शिखी हृत्वा मुखरो धान्यहारकः ॥ ३६ ॥ अजः पशुं पयः काको यानमुष्ट्रः फलं कपिः । मधु दंशः फलं गृध्रो गृहकाक उपस्करम् ॥ ३७॥ श्वित्री वस्त्रं सारसञ्च झिल्ली लवणहारकः । उक्त आध्यात्मिकस्तापः शस्त्राद्यैराधिभौतिकः॥३८॥ ग्रहाग्निदेवपीड़ाद्यैराधिदैविक ईरितः। त्रिधा तापं हि संसारं ज्ञानयोगाद् विनाशयेत्। कृच्छैर्व्रतैश्च दानाद्यैर्विष्णुपूजादिभिर्नरः॥३९॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नरकनिरूपणकथनं नामैकसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३७१॥

द्विसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

यमनियमाः

अग्निरुवाच– **संसारतापमुक्त्यर्थं वक्ष्याम्यष्टाङ्गयोगकम् । ब्रह्मप्रकाशकं ज्ञानं योगस्तत्रैकचित्तता॥ १॥ चित्तवृत्तिर्निरोधश्च जीवब्रह्मात्मनोः**

ब्रह्महत्यारा जीव मृग, कुत्ता, शूकर तथा ऊँट की योनि में जाता है । मदिरा पीने वाला गदहा, चाण्डाल तथा म्लेच्छ की योनि में जाता है । सोना चुराने वाला कीड़े-मकोड़े तथा पतिङ्गे होते हैं। गुरुपत्नी के साथ गमन करने वाला मनुष्य तृण तथा लताओं में जन्म लेता है ।। ३०-३१ ।। ब्रह्महत्यारा राज्यक्ष्मा का रोगी होता है । मदिरा पीने वाले के दाँत काले हो जाते हैं । सोना चुराने वाले के नख खराब हो जाते हैं । गुरुपत्नी गामी के चमड़े खराब हो जाते हैं । अर्थात् वह कोढ़ी हो जाता है ।। ३२ । जिसका जिस पाप से सम्बन्ध रहता है, वह उसके किसी चिह्न के साथ जन्म लेता है । अन्न चुराने वाला मायावी होता है । वाणी (दूसरे की कविता चुराने वाला मूक (गूँगा) होता है ।। ३३ ।। धान चुराने वाला जब जन्म लेता है तो उसका कोई अंग अतिरिक्त होता है । चुगली करने वाले की नाक से बदबू आती है । तेल चुराने वाला तिलचट्टा कीड़ा होता है तथा इधर की बात उधर लगाने का काम करता है उसके मुँह से दुर्गन्ध आती है।।३४।। दूसरों की स्त्री तथा ब्राह्मण के धन को चुराने वाला निर्जन वन में ब्रह्मराक्षस होता है ।। ३५ ।। रत्न चुराने वाला नीच जाति में जन्म लेता है । उत्तम गन्ध चुराने वाला छुछुन्दरी होता है । शाक-पात चुराने वाला मुर्गा होता है, तथा अन्न चुराने वाला चूहा होता है ।। ३६ ।। पशु चुराने वाला बकरा होता है, दूध चुराने वाला कौआ होता है । सवारी चुराने वाला ऊँट होता है, तथा फल चुराने वाला वानर होता है । शहद की चोरी करने वाला डँस होता है, फल चुराने वाला गृध्र तथा घर का सामान चुराने वाला गृहकाक होता है ।। ३७ ।। वस्त्र चुराने वाले को श्वित्र (श्वेत कुष्ठ) होता है, चोरी चोरी रस का स्वाद लेने वाला कुत्ता होता है तथा नमक चुराने वाला झींगुर होता है ।। ३७ ।। इस तरह से आध्यात्मिक ताप का वर्णन किया गया। शस्त्र आदि से कष्ट की जो प्राप्ति होती है उसे आधिभौतिक ताप कहते हैं ।। ३८ ।। ग्रह, अग्नि, देवता आदि से जो भी कष्ट की प्राप्ति होता है, उसे आधिदैविक ताप कहते हैं । इस भय ताप से युक्त संसार है । इन संतापों की निवृत्तिं ज्ञानयोग से होती है । मनुष्यों को चाहिए कि वह उपवासमय व्रत, दान तथा भगवान् विष्णु की पूजा आदि करें ।। ३९।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का नरक निरूपण नामक तीन सौ एकहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३७१ ॥

अग्निदेव ने कहा– संसार के त्रिविध तापों से छुटकारा पाने के लिए मैं अष्टाङ्ग योग का वर्णन कर रहा हूँ । ब्रह्म को प्रकाशित करने वाला योग है । चित्त की एकाग्रता को योग कहते

परः । अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य्यापरिग्रहौ ॥ २॥ यमाः पञ्च स्मृता विप्र ! नियमाः भुक्तिमुक्तिदाः । शौच सन्तोषतपसी स्वाध्यायेश्वरपूजने॥३॥ भूतापीड़ा ह्यहिंसा स्यादहिंसा धर्म उत्तमः । यथा गजपदेऽन्यानि पदानि पथगामिनाम् ॥ ४ ॥ एवं सर्वमहिंसायां धर्मार्थमभिधीयते । उद्वेगजननं हिंसा सन्तापकरणं तथा ॥ ५ ॥ रुक्कृतिः शोणितकृतिः पैशुन्यकरणं तथा । हितस्यातिनिषेधश्च मर्मोद्घाटनमेव च ॥ ६॥ सुखापह्नुतिः संरोधो वधो दशविधा च सा । यद्भूतहितमत्यन्तं वचः सत्यस्य लक्षणम् ॥ ७ ॥ सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् । प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ ८ ॥ मैथुनस्य परित्यागो ब्रह्मचर्य्यं तदष्टधा । स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥ ९॥ सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च। एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १०॥ ब्रह्मचर्य्यं क्रियामूलमन्यथा विफला क्रिया । वसिष्ठश्चन्द्रमाः शुक्रो देवाचार्य्यः पितामहः॥११॥ तपोवृद्धा वयोवृद्धास्तेऽपि स्त्रीभिर्विमोहिताः। गौड़ी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेयास्त्रिविधाः सुराः ॥ १२ ॥ चतुर्थी स्त्री सुरा ज्ञेया-ययेदं मोहितं जगत् । माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पीत्वा तु माद्यति ॥१३॥ यस्माद् दृष्टमदा नारी तस्मात् तान्नावलोकयेत् । यद् वा तद् वाऽपरद्रव्यमपहृत्य बलान्नरः ॥ १४ ॥ अवश्यं याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतं हविः । कौपीनाच्छादनं वासः कन्थां शीतनिवारिणीम् ॥ १५ ॥ पादुके चापि गृह्णीयात् कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् । देहस्थितिनिमित्तस्य वस्त्रादेः स्यात् परिग्रहः ॥ १६ ॥ शरीरं धर्मसंयुक्तं रक्षणीयं प्रयत्नतः । शौचन्तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमभ्यन्तरं तथा॥ १७॥ मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धेरथान्तरम् । उभयेन शुचिर्यस्तु स शुचिर्नेतरः शुचिः ॥ १८॥

हैं ।। १ ।। चित्त की वृत्तियों के निरोध को भी योग कहते हैं । जीवात्मा एवं परमात्मा में ही अन्तःकरण की वृत्तियों को स्थापित करना उत्तम योग है । हे विप्र ! यम पाँच हैं- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह । भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले नियम भी पाँच हैं । शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय तथा ईश्वराराधन ।। २-३ ।। किसी भी जीव को दुःख न देना ही अहिंसा है । अहिंसा ही उत्तम धर्म है । जिस तरह से रास्ते पर चलने वाले सबों के पैर हाथा के पैर में अँट जाते हैं उसी तरह अहिंसा में समस्त धर्मों तथा धर्मों का आधान बतलाया जाता है ।। ४।। हिंसा के दस भेद हैं- (१) किसी को उद्विग्न करना, (२) संतप्त करना, (३) रोगी बनाना, (४) किसी के शरीर से रक्त निकालना, (५) चुगली करना, (६) किसी के हित में बाधा पहुँचाना, (७) उसके गोप्य बातों का प्रचार करना, (८) दूसरे को सुख से वंचित करना, (९) अकारण बन्दी बनाना और (१०) प्राणदण्ड देना। जो बात दूसरे प्राणियों के लिए हितकर हो वह सत्य है ।। ५-७ ।। सत्य बोलना चाहिए किन्तु प्रिय बोलना चाहिए यही सनातन धर्म है ।। ८ ।। मैथुन करना, (२) स्त्री की चर्चा करना, (३) स्त्री के साथ क्रीड़ा करना, (४) स्त्री की ओर देखना, (५) उससे लुक छिपकर बातें करना, (६) उसे प्राप्त करने का संकल्प करना, (७) स्त्री को प्राप्त करने का प्रयास करना तथा (८) क्रिया निवृत्ति स्त्री के साथ समागम करना मनीषियों ने मैथुन के आठ अङ्ग बतलाए हैं ।। ९-१० ।। सम्पूर्ण शुभ कर्मों की सिद्धि का मूल ब्रह्मचर्य ही है, ब्रह्मचर्य के अभाव में समस्त क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं । वसिष्ठ, चन्द्रमा, शुक्र, देवताओं के आचार्य वृहस्पति, ब्रह्माजी ये सभी तपोवृद्ध एवं वयोवृद्ध होकर भी स्त्री के मोह में फँस गए ।। ११।। मदिरा तीन प्रकार की होती है- गौणी, पैष्टी और माध्वी ।। १२ ।। चौथी मदिरा (सुरा) स्त्री को जानना चाहिए जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण संसार मोहित है । पुरुष मदिरा को तो पीने पर मदमत्त होता है किन्तु स्त्री को तो वह देखने मात्र से ही मदमत्त हो जाता है ।। १३ ।। चूँकि नारी देखने मात्र से उन्मत्त बना देती है अतएव उसको देखना ही नहीं चाहिए । यदि मनुष्य किसी भी प्रकार से दूसरे भी द्रव्य का अपहरण करता है अथवा देवताओं के लिए होम किए विना ही हविष्य को खाता है तो वह अवश्य तिर्यक् (पशु-पक्षी) की योनि में जाता है ।। १४ ।। मुमुक्षु पुरुष अपने साथ कौपीन, शरीर को ढँकने वाला वस्त्र, ठंडी के कष्ट को दूर करने वाली कन्था (गुदड़ी) तथा खड़ाऊँ इतनी ही वस्तुओं को अपने साथ रखे अन्य वस्तु का संग्रह न करे । इसी को अपरिग्रह कहते हैं ।। १५ ।। शरीर की रक्षा के लिए वस्त्र आदि को लिया जा सकता है । धर्म में लगे हुए शरीर की रक्षा प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिए ।। १६।। शौच (पवित्रता) दो प्रकार का होता है- बाह्य शौच एवं भीतरी शौच । मिट्टी तथा जल से बाहरी शुद्धि होती है तथा भाव

यथा कथञ्चित् प्राप्त्या च सन्तोषस्तुष्टिरुच्यते। मनसश्चेन्द्रियाणाञ्च ऐकाग्र्यं तप उच्यते ॥ १९ ॥ तज्जयः सर्वधर्मेभ्यः स धर्मः पर उच्यते । वाचिकं मन्त्रजप्यादि मानसं रागवर्जनम्॥ २०॥ शारीरं देवपूजादि सर्वदन्तु त्रिधा तपः । प्रणवाद्यास्ततो वेदाः प्रणवे पर्य्यवस्थिताः ॥ २१॥ वाङ्मयः प्रणवः सर्वं तस्मात् प्रणवमभ्यसेत् । अकारश्च तथोकारो मकारश्चार्द्धमात्रया ॥ २२ ॥ तिस्रो मात्रास्त्रयो वेदाः लोका भूरादयो गुणाः। जाग्रत् स्वप्नः सुषुप्तिश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ २३ ॥ प्रद्युम्नः श्रीवासुदेवः सर्वमोङ्कारकः क्रमात् । अमात्रो ऽनन्तमात्रश्च द्वैतस्यापगमः शिवः॥२४॥ ओंङ्कारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो मुनिः । चतुर्थी मात्रा गान्धारी प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते ॥ २५ ॥ तत् तुरीयं परं ब्रह्म ज्योतिर्दीपो घटे यथा । तथा हृत्पद्मनिलयं ध्यायेन्नित्यं जपेन्नरः॥ २६॥ प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्॥ २७॥ एतदेकाक्षरं ब्रह्म एतदेकाक्षरं परम् । एतदेकाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ २८॥ छन्दोऽस्य देवी गायत्री अन्तर्य्यामी ऋषिः स्मृतः । देवता परमात्माऽस्य नियोगो भूक्तिमुक्तये॥ २९ ॥ भूरग्न्यात्मने हृदयं प्राजापत्यात्मने शिरः। स्वः सूर्य्यात्मने च शिखाकवचमुच्यते॥ ३०॥ ओं भूर्भुवः स्वः कवचं सत्यात्मने ततोऽस्त्रकम् । विन्यस्य पूजयेद् विष्णुं जपेद् वै भुक्तिमुक्तये ॥ ३१ ॥ जुहुयाच्च तिलाज्यादि सर्वं सम्पद्यते नरे । यस्तु द्वादशसाहस्रं जपमन्वहमाचरेत्॥३२॥ तस्य द्वादशभिर्मासैः परं ब्रह्म प्रकाशते। अणिमादि कोटिजप्याल्लक्षात् सारस्वतादिकम् ॥ ३३ ॥ वैदिकस्तान्त्रिको

की शुद्धि को भीतरी शुद्धि कहते हैं । जो इन दोनों प्रकार की शुद्धि रखने वाला है वही वस्तुतः पवित्र है, दूसरा नहीं ।। १७-१८ ।। प्रारब्धानुसार जो कुछ भी जैसे-तैसे मिल जाय उसी में सन्तुष्ट रहने को सन्तोष कहते हैं । मन तथा इन्द्रियों की एकाग्रता को तप कहते हैं ।। १९ ।। मन तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना ही सर्वश्रेष्ठ तप है । वह तप तीन प्रकार का होता है- वाचिक, मानसिक तथा शारीरिक । मन्त्र जप आदि वाचिक तप हैं । आसक्ति का त्याग मानसिक तप है और देवपूजन आदि शारीरिक तप हैं । तप से सब कुछ की प्राप्ति होती है ।। २०।। वेद प्रणव से ही प्रारम्भ होते हैं अतएव प्रणव में सम्पूर्ण वेद स्थित हैं । प्रणव ही सम्पूर्ण वाङ्मय है अतएव प्रणव का जप करना चाहिए ।। २१।। प्रणव में अकार, उकार तथा आधा मकार है । तीन मात्राएँ, तीनों वेद, भूः, भुवः एवं स्वः ये तीनों लोक, (सत्व, रजस् एवं तमस्) ये तीनों गुण, जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति, ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर प्रद्युम्न, श्री एवं वासुदेव ये सभी क्रमशः ओंकार स्वरूप हैं ।। २२-२३।। ओंकार मात्रा से रहित अथवा अनन्त मात्राओं से युक्त है। यह द्वैत को विनष्ट करने वाला तथा शिव स्वरूप है । जिसने ओंकार को तत्वतः जान लिया वही मुनि है दूसरा कोई नहीं ।। २४ ।। (अर्धमात्रा के रूप में प्रख्यात) प्रणव की चतुर्थी मात्रा गान्धारी कहलाती है, यह प्रयुक्त होने पर मूर्धा में लक्षित होती है ।। २५ ।। वही तुरीय नाम से प्रसिद्ध परब्रह्म है, वह ज्योतिर्मय है । जैसे घड़े के भीतर रखा दीपक उसमें प्रकाश करता है उसी तरह मूर्धा में विद्यमान परब्रह्म उसके भीतर अपनी ज्ञानमयी ज्योति फैलाये रहता है । योगी को चाहिए कि वह हृदय में स्थित ब्रह्म का मन से ध्यान करो और प्रणव का जप करे । इसी को ईश्वर प्रणिधान कहते हैं ।। २६ ।। प्रणव धनुष् है जीवात्मा बाण है और ब्रह्म उसका लक्ष्य है । सावधान होकर उस लक्ष्य का भेदन करना चाहिए और बाण के समान तन्मय हो जाना चाहिए ।। २७ ।। यह एकाक्षर प्रणव ही ब्रह्म है, यह एकाक्षर ही परम तत्त्व है । इस एकाक्षर प्रणव को जानकर जो-जो कुछ चाहता है, उसको उसी की प्राप्ति हो जाती है ।। २८ ।। प्रणव की दैवी गायत्री छन्द है इसके ऋषि अन्तर्यामी हैं, परमात्मा देवता हैं तथा इसका भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति में विनियोग होता है ।। २९ ।। प्रणव के हृदयादि न्यास इस प्रकार होते हैं- ऊँ भूः अग्न्यात्मने हृदयाय नमः । ऐसा कहकर हृदय का स्पर्श करें । ओं भुवः प्रजापत्यात्मने नमः शिरासिं। ऐसा कहकर शिर का स्पर्श करें । ऊँ स्वः सर्वात्मने नमः शिखायै वषट् । ऐसा कहकर शिखा का स्पर्श करें । ओम् भूर्भुवःस्वः कवचाय हुम् ऐसा बोलकर दाहिने हाथ की अंगुलियों द्वारा बायीं भुजा को और बायें हाथ की अंगुलियों से दायीं भुजा का स्पर्श करे । ओम् सत्ययात्मने नमः अस्त्राय फट् । ऐसा बोलकर अस्त्र न्यास करें । इस तरह से न्यास करके भगवान् विष्णु की पूजा करें तथा भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रणव का जप करें ।। ३०-३१ ।। जो व्यक्ति प्रतिदिन प्रणव का बारह हजार जप करके तिल तथा घी से होम करता है उसको बारह मास में ब्रह्मा

मिश्रो विष्णोर्वै त्रिविधो मखः । त्रयाणामीप्सितेनैकविधिना हरिमर्चयेत् ॥ ३४ ॥ प्रणम्य दण्डवद् भूमौ नमस्कारेण योऽर्चयेत् । स यां गतिमवाप्नोति न तां क्रतुशतैरपि ॥ ३५ ॥ यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ ३६॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये यमनियमकथनं नाम द्विसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३७२ ॥

त्रिसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

आसनप्राणायामप्रत्याहाराः

अग्निरुवाच– **आसनं कमलाद्युक्तं तद् बध्वा चिन्तयेत् परम् । शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ॥ १ ॥ नात्युच्छितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्। तत्रैकाग्रं मनःकृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः॥ २॥ उपविश्यासने युञ्ज्याद् योगमात्मविशुद्धये । समकायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः॥ ३॥ सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वन्दिशश्चानवलोकयन् । पार्ष्णिभ्यां वृषणौ रक्षंस्तथा प्रजननं पुनः ॥ ४ ॥ उरुभ्यामुपरिस्थाप्य बाहूतिर्य्यक् प्रयत्नतः । दक्षिणं करपृष्ठञ्च न्यसेद् वामतलोपरि॥ ५॥ उन्नम्य शनकैर्वक्त्रं मुखं विष्टभ्य चाग्रतः । प्राणः स्वदेहजो वायुस्तस्यायामो निरोधनम्॥६॥ नासिकापुटमङ्गुल्या पीड्यैव च परेण च। औदरं रेचयेद् वायुं रेचनाद्रेचकः स्मृतः॥७॥ वाह्येन वायुना देहं दृतिवत् पूरयेद् यथा। तथा पूर्णश्चसन्तिष्ठेत्**

का साक्षात्कार हो जाता है ।। ३२।। इसका एक करोड़ जप करने पर अणिमा दिसिद्धियों की प्राप्ति होती है, एक लाख जप करने से सरस्वती आदि की कृपा होती है ।। ३३ ।। भगवान् विष्णु के तीन प्रकार के यज्ञ होते हैं- वैदिक तान्त्रिक तथा उभयमिश्रित। इन तीनों में से जो अभिप्रेत हो उसी विधि से भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए ।। ३४ ।। जो मनुष्य भूमि पर दण्ड के समान पड़कर भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम करता है उसको जिस गति की प्राप्ति होती है, उसकी प्राप्ति सैकड़ों इन्द्र भी नहीं कर सकते हैं ।। ३५ ।। जिस मनुष्य की श्री भगवान् में परा भक्ति होती है तथा आचार्य में भी उसकी श्री भगवान् के ही समान भक्ति होती है, उसी महात्मा को इन वर्णित अर्थों का ठीक-ठीक ज्ञान होता है ।। ३६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण के यमनियम वर्णन नामक तीन सौ बहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३७२ ॥

अग्निदेव ने कहा– मुने ! पद्मासन आदि अनेक आसनों में से कोई भी आसन लगाकर परमात्मचिन्तन करना चाहिए। किसी पवित्र स्थान में अपने बैठने के लिए स्थिर आसन विछाकर जो न तो अधिक ऊँचा हो और न तो अधिक नीचा हो, उस पर सबसे पहले कपड़ा, उसके ऊपर मृगचर्म तथा उसके ऊपर कुशासन विछाए ।। १ ।। उस पर बैठकर मन को एकाग्र करके चित्त एवं इन्द्रियों की क्रियाओं को नियन्त्रित करना चाहिए । उस आसन पर बैठकर अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योगाभ्यास में लग जाय । उस समय शरीर, सिर और गला को एक सीध में स्थिर रखें ।। २-३ ।। अपनी नाक को देखें और किसी दूसरी ओर न देखें । दोनों पैरों की एडियों से अण्डकोश तथा लिङ्ग को दबाये रखें ।। ४ ।। दोनों जंघाओं पर दोनों हाथों को तिरछा करके प्रयत्नपूर्वक स्थापित करें । दाहिने हाथ की हथेली के पृष्ठ को बाएँ हाथ की हथेली पर रखें ।। ५ ।। मुँह को कुछ ऊँचा करके सामने की ओर रखें ।। ५।। फिर इस प्रकार प्राणायाम करें । शरीर के भीतर रहने वाली वायु को प्राण कहते हं । उसके रोकने को आयाम कहते हैं । इस तरह वायु को रोकने को प्राणायाम कहते हैं ।। ६ ।। अंगुलि से नासिका के एक छिद्र को दबाकर दूसरे से पेट में रहने वाली बायु को बाहर निकालें । वायु के रेचन (बाहर निकालने) से इस क्रिया को रेचक कहते हैं ।। ७ ।। फिर चमड़े की थैली के समान बाहर की वायु से अपने शरीर को भरे । भर जाने पर कुछ देर तक वैसे ही रखे रहें । शरीर को वायु से भरने के कारण इस क्रिया को पूरक कहते हैं ।। ८ ।। वायु भर जाने के पश्चात् साधक न तो भीतर की वायु

पूरणात् पूरकः स्मृतः॥ ८॥ न मुञ्चति न गृह्णाति वायुमन्तर्बहिः स्थितम्। सम्पूर्णकुम्भवत् तिष्ठेदचलः स तु कुम्भकः ॥ ९ ॥ कनिष्ठः सकृदुद्घातः स वै द्वादशमात्रिकः। मध्यमश्च द्विरुद्घातश्चतुर्विंशतिमात्रिकः॥ १०॥ उत्तमश्च त्रिरुद्घातः षट्त्रिंशत्तालमात्रिकः। स्वेदकम्पाभिघातानां जननश्चोत्तमोत्तमः॥ ११॥ अजितान्नारुहेद् भूमिं हिक्काश्वासादयस्तथा। जिते प्राणे स्वल्पदोषविण्मूत्रादि प्रजायते ॥ १२ ॥ आरोग्यं शीघ्रगामित्वमुत्साहः स्वरसौष्ठवम्। बलवर्णप्रसादश्च सर्वदोषक्षयः फलम् ॥ १३॥ जपध्यानं विनागर्भः स गर्भस्तत् समन्वितः। इन्द्रियाणां जयार्थाय सगर्भं धारयेत् परम् ॥ १४ ॥ ज्ञानवैराग्ययुक्ताभ्यां प्राणायामवशेन च। इन्द्रियांश्च विनिर्जित्य सर्वमेव जितं भवेत् ॥ १५ ॥ इन्द्रियाण्येव तत्सर्वं यत् स्वर्गनरकावुभौ। निग्रहीतविसृष्टानि स्वर्गाय नरकाय च ॥ शरीरं रथमित्याहुरिन्द्रियाण्यस्य वाजिनः। मनश्च सारथिः प्रोक्तः प्राणायामः कशः स्मृतः ॥ १७ ॥ ! ज्ञानवैराग्यरश्मिभ्यामावद्धं विधृतं मनः। शनैर्निश्चलतामेति प्राणायामैकसंहितम् ॥ १८॥ जलविन्दुं कुशाग्रेण मासे मासे पिबेत् तु यः। संवत्सरशतं साग्रं प्राणायामश्च तत्समः॥ १९॥ इन्द्रियाणि प्रसक्तानि प्रविश्यविषयोदधौ। आहृत्य यो निगृह्णाति प्रत्याहारः स उच्यते॥२०॥ उद्धरेदात्मनात्मानं मज्जमानं यथाम्भसि। भोगनद्यतिवेगेन ज्ञानवृक्षं समाश्रयेत् ॥ २१॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये आसनप्राणायामप्रत्याहारकथनं नाम त्रिसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३७३ ॥

को छोड़ता है और न तो बाहर की वायु को ग्रहण करता है, वह भरे हुए घड़े के समान अविचल भाव से स्थिर रहता है। कुम्भवत् स्थिर होने के कारण उसकी इस क्रिया को कुम्भक कहते हैं ।। ९ ।। बारह मात्रा का एक उद्घात होता है, इतनी देर तक वायु को रोके रहने पर कनिष्ठ प्राणायाम होता है। दो उद्घात यानी चौबीस मात्रा का जो प्राणायाम होता है वह मध्यम प्राणायाम है ।। १० ।। तीन उद्घात यानी छत्तीस मात्रा तक का जो प्राणायाम होता है, वह उत्तम प्राणायाम होता है। जिस प्राणायाम से शरीर से पसीना निकलने लगे, शरीर काँपने लगे अथवा अभिघात लगने लगे वह उत्तमोत्तम प्राणायाम होता है ।। ११ ।। प्राणायाम की पूर्व-पूर्व भूमिका पर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् ही उत्तरोत्तर भूमिका का अभ्यास करना चाहिए। प्राणों को जीत लेने पर हिचकी तथा श्वास आदि के रोग दूर हो जा.ते हैं। मल एवं मूत्र आदि के दोष भी कम हो जाते हैं ।। १२ ।। नीरोग होना, तेज चलना, मन में उत्साह बने रहना, स्वर में मधुरता आना, बल का बढ़ना, शरीर के रंग में स्वच्छता का आना तथा सभी प्रकार के दोषों का नाश हो जाना, ये प्राणायाम के परिणाम हैं ।। १३ ।। प्राणायाम दो तरह के होते हैं- अगर्भ एवं सगर्भ। जप एवं ध्यान के विना किया जाने वाला प्राणायाम अगर्भ प्राणायाम कहलाता है, तथा जप एवं ध्यान के साथ किया जाने वाला प्राणायाम सगर्भ है। इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के लिए सगर्भ प्राणायाम ही उत्तम है ।। १४ ।। ज्ञान एवं वैराग्य से युक्त होकर प्राणायाम के अभ्यास से इन्द्रियों को वश में कर लेने पर सब पर विजय प्राप्त हो जाती है ।। १५ ।। जिसे स्वर्ग एवं नरक कहते हैं वह सब इन्द्रियाँ ही हैं। वे वश में होने पर स्वर्ग में पहुँचाती हैं और उन्हें स्वतन्त्र छोड़ देने पर वे नरक में ले जाती हैं ।। १६ ।। शरीर को रथ कहते हैं, इन्द्रियाँ ही उसके घोड़े हैं। मन ही उस रथ का सारथी कहा गया है तथा प्राण उसके लिए चाबुक का काम करता है ।। १७ ।। ज्ञान एवं वैराग्य की बागडोर में बाँधे गए मन रूपी घोड़े को जब प्राणायाम से आबद्ध करके अच्छी तरह से अपने वश में कर लिया जाता है तो मन धीरे-धीरे निश्चल हो जाता है ।। १८ ।। जो मनुष्य सौ वर्ष से कुछ अधिक समय तक कुश के अग्रभाग से लेकर जल की एक-एक बूँद एक-एक मास पर पीकर रहता है, उसकी उस तपस्या तथा प्राणायाम दोनों का एक समान फल होता है ।। १९ ।। विषयों के समुद्र में प्रवेश करके उसमें फँसी हुई इन्द्रियों को लौटाकर जो उन्हें वश में करता है, उसकी उस क्रिया को प्रत्याहार कहते हैं ।। २० ।। जैसे जल में डूबा हुआ मनुष्य उससे निकलने का प्रयास करता है उसी तरह भोग रूपी नदी का वेग अत्यधिक बढ़ जाने पर, उससे बचने के लिए सुदृढ़ ज्ञान रूपी वृक्ष का आश्रय लेना चाहिए ।। २१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार वर्णन नामक तीन सौ तिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३७३ ॥

चतुःसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

आसनप्राणायामप्रत्याहाराः

अग्निरुवाच– **ध्यै चिन्तायां स्मृतो धातुर्विष्णुचिन्ता मुहुर्मुहुः । अनाक्षिप्तेन मनसा ध्यानमित्यभिधीयते ॥ १ ॥ आत्मनः समनस्कस्य मुक्ताशेषोपधस्य च । ब्रह्मचिन्तासमासक्तिर्ध्यानं नाम तदुच्यते॥ २॥ ध्येयालम्बनसंस्थस्य सदृशप्रत्ययस्य च । प्रत्ययान्तरनिर्मुक्तः प्रत्ययो ध्यानमुच्यते॥३॥ ध्येयावस्थितचित्तस्य प्रदेशे यत्र कुत्रचित् । ध्यानमेतत् समुद्दिष्टं प्रत्ययस्यैकभावना ॥ ४ ॥ एवं ध्यानसमायुक्तः स्वदेहं यः परित्यजेत् । कुलं स्वजनमित्राणि समुद्धृत्य हरिर्भवेत् ॥ ५ ॥ एवं मुहूर्त्तमर्धवा ध्यायेद् यः श्रद्धया हरिम् । सोऽपि तां गतिमाप्नोति न तां सर्वैर्महामखैः ॥ ६ ॥ ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं यच्च ध्यानप्रयोजनम् । एतच्चतुष्टयं ज्ञात्वा योगं युञ्जीत् तत्त्ववित् ॥ ७ ॥ योगाभ्यासाद् भवेन्मुक्तिरैश्वर्य्यञ्चाष्टधा महत् । ज्ञानवैराग्यसम्पन्नः श्रद्दधानः क्षमान्वितः ॥ ८ ॥ विष्णुभक्तः सदोत्साही ध्यात्वेत्थं पुरुषः स्मृतः । मूर्तामूर्तं परं ब्रह्म हरेर्ध्यानं हि चिन्तनम्॥९॥ सकलो निष्कलो ज्ञेयः सर्वज्ञः परमो हरिः । अणिमादिगुणैश्वर्य्यं मुक्तिर्ध्यानप्रयोजनम् ॥ १० ॥ फलेन योजको विष्णुरतो ध्यायेत् परेश्वरम् । गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् जाग्रदुन्मिषन् निमिषन्नपि ॥ ११ ॥ शुचिर्वाऽप्यशुचिर्वापि ध्यायेत् सततमीश्वरम् । स्वदेहायतनस्यान्ते मनसि स्थाप्य केशवम्॥१२॥ हृत्पद्मपीठिकामध्ये ध्यानयोगेन पूजयेत् । ध्यानयज्ञः परः शुद्धः सर्वदोषविवर्जितः ॥ १३॥ तेनेष्ट्वा मुक्तिमाप्नोति बाह्यशुद्धैश्च नाध्वरैः। हिंसादोषविमुक्तित्वाद् विशुद्धिश्चित्तसाधनः ॥ १४ ॥ ध्यानयज्ञः परस्तस्मादपवर्गफलप्रदः । तस्मादशुद्धं सन्त्यज्य ह्यनित्यं**

अग्निदेव ने कहा– ध्यै धातु चिन्तनार्थक है । ध्यै धातु से ही ध्यान शब्द व्युत्पन्न होता है । स्थिर चित्त से भगवान् विष्णु का बार-बार चिन्तन करना ही ध्यान कहलाता है ।। १ ।। समस्त उपाधियों से रहित मन सहित आत्मा का ब्रह्म विचार में परायण होना ही ध्यान कहलाता है ।। २ ।। ध्येय रूप आधार में स्थित एवं सदृश ज्ञान से युक्त हो विजातीय प्रतीतियों से रहित जो प्रतीति होती है, उसको ध्यान कहते हैं ।। ३-४ ।। जिस किसी प्रदेश में भी ध्येय वस्तु के चिन्तन में एकाग्र हुए चित्त को प्रतीति के साथ जो अभेद की भावना होती है उसको भी ध्यान कहते हैं ।। ५ ।। इस तरह ध्यान परायण होकर जो शरीर का त्याग करता है वह अपने वंश, स्वजन तथा मित्रों का उद्धार करके स्वयंम् भगवत् स्वरूप हो जाता है ।। ५ ।। इस तरह जो पुरुष प्रतिदिन एक अथवा आधे मुहूर्त तक भी श्रीहरि का श्रद्धा पूर्वक ध्यान करता है, वह व्यक्ति जिस गति को प्राप्त करता है, उसे सम्पूर्ण महायज्ञों के द्वारा भी नहीं प्राप्त किया जा सकता है।।६।। तत्त्ववेत्ता योगी को चाहिए कि वह ध्याता, ध्यान, ध्येय (ध्यान के विषय) तथा ध्यान के प्रयोजन को जानकर योग का अभ्यास करे ।। ७ ।। योगाभ्यास के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति आठ प्रकार के महा ऐश्वर्य (अणिमा, महिमा, गरिमा, लधिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, ईशित्व एवं वशित्व) की प्राप्ति होती है । ज्ञान एवं वैराग्य से युक्त श्रद्धालु, क्षमाशील, विष्णुभक्त तथा ध्यान में सर्वदा उत्साह रखने वाला यह ध्याता का स्वरूप बतलाया गया है ।। ८।। मूर्तात्मक एवं अमूर्तात्मक सम्पूर्ण जगत् को परमात्मा का स्वरूप जानकर उसमें श्रीहरि का चिन्तन करना ही ध्यान है ।। ९ ।। सर्वज्ञ परमात्मा श्रीहरि को सम्पूर्ण कलाओं से युक्त एवं निष्कल जानना चाहिए । अणिमा आदि ऐश्वर्यों की प्राप्ति तथा मुक्ति की प्राप्ति ध्यान के प्रयोजन हैं ।। १२ ।। भगवान् विष्णु ही कर्मों के फलों को देने वाले हैं, अतएव श्रीहरि का ध्यान करना चाहिए । वे ही ध्येय हैं । चलते हुए, खड़ा होने पर, सोते हुए, जागते हुए, आँख बंद करते समय, आँख खोलते समय, पवित्र अथवा अपवित्र समस्त अवस्थाओं में सदा ईश्वर का ध्यान करना चाहिए ।। ११।। अपने शरीर रूपी मन्दिर के भीतर मन में स्थित हृदयकमल रूपी पीठ के मध्य भाग में भगवान् केशव की स्थापना करके ध्यान योग के द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए ।। १२।। ध्यान यज्ञ, श्रेष्ठ, शुद्ध तथा समस्त दोषों से रहित है ।। १३ ।। उसके द्वारा श्रीभगवान् का यजन करके मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता

बाह्यसाधनम्॥ १५॥ यज्ञाद्यं कर्म्म सन्त्यज्य योगमत्यर्थमभ्यसेत् । विकारमुक्तमव्यक्तं भोग्यभोगसमन्वितम् ॥ १६ ॥ चिन्तयेद्धृदये पूर्वं क्रमादादौ गुणत्रयम् । तमः प्रच्छाद्य रजसा सत्त्वेन छादयेद्रजः ॥ १७॥ ध्यायेत् त्रिमण्डलं पूर्वं कृष्णं रक्तं सितं क्रमात् । सत्त्वोपाधिगुणातीतः पुरुषः पञ्चविंशकः ॥ १८ ॥ ध्येयमेतदशुद्धञ्च त्यक्त्वा शुद्धं विचिन्तयेत् । ऐश्वर्य्यं पङ्कजं दिव्यं पुरुषोपरि संस्थितम्॥ १९॥ द्वादशाङ्गुलविस्तीर्णं शुद्धं विकसितं सितम् । नालमष्टाङ्गुलं तस्य नाभिकन्दसमुद्भवम् ॥ २० ॥ पद्मपत्राष्टकं ज्ञेयमणिमादिगुणाष्टकम् । कर्णिकाकेशरं नालं ज्ञानवैराग्यमुत्तमम्॥२१॥ विष्णुधर्म्मश्च तत्कन्दमिति पद्मं विचिन्तयेत् । तद्धर्मज्ञानवैराग्यं शिवैश्वर्य्यमयं परम् ॥ २२॥ ज्ञात्वा पद्मासनं सर्वं सर्वदुःखान्तमाप्नुयात् । तत्पद्मकर्णिकामध्ये शुद्धदीपशिखाकृतिम्॥ २३॥ अङ्गुष्ठमात्रममलं ध्यायेदोङ्कारमीश्वरम् । कदम्बगोलकाकारं तारं रूपमिव स्थितम् ॥ २४॥ ध्यायेद् वा रश्मिजालेन दीप्यमानं समन्ततः । प्रधानं पुरुषातीतं स्थितं पद्मस्थमीश्वरम् ॥ २५ ॥ ध्यायेज्जपेच्च सततमोङ्कारं परमक्षरम्। मनःस्थित्यर्थमिच्छन्ति स्थूलध्यानमनुक्रमात्॥२६॥ तद्भूतं निश्चलीभूतं लभेत् सूक्ष्मेऽपि संस्थितम्। नाभिकन्दे स्थितं नालं दशाङ्गुलसमायतम्॥२७॥ नालेनाष्टदलं पद्मं द्वादशाङ्गुलविस्तृतम् । सकर्णिके केसराले सूर्य्यसोमाग्निमण्डलम्॥ २८॥ अग्निमण्डलमध्यस्थः शङ्खचक्रगदाधरः। पद्मी चतुर्भुजो विष्णुरथ वाष्टभुजो हरिः॥२९॥ शार्ङ्गाक्षवलयधरः पाशाङ्कुशधरः परः। स्वर्णवर्णः श्वेतवर्णः सश्रीवत्सः सकौस्तुभः॥ ३०॥ वनमाली

है । बाह्यशुद्धि से युक्त यज्ञों के द्वारा इस फल की प्राप्ति नहीं की जा सकती है । हिंसा आदि दोषों से रहित होने के कारण ध्यान अन्तःकरण की शुद्धि का प्रधान साधन तथा चित्त को वश में करने वाला है ।। १३-१४ ।। ध्यान यज्ञ सर्वश्रेष्ठ है अतएव उससे मोक्ष की प्राप्ति होती है । अतएव अशुद्ध एवं अनित्य बाह्य साधन वाले यज्ञ आदि कर्मों का परित्याग करके योग का ही विशेष रूप से अभ्यास करना चाहिए ।। १५।। सर्वप्रथम विकार युक्त, अव्यक्त तथा भोग्य भोग से युक्त तीनों गुणों का क्रमशः हृदय में ध्यान करना चाहिए ।। १६ ।। तमोगुण को रजोगुण से आच्छादित करें फिर सत्त्वगुण से रजोगुण को आच्छादित करे । इसके पश्चात् पहले कृष्ण फिर श्वेत उसके पश्चात् श्वेत इन तीन मण्डलों का क्रमशः ध्यान करें । इसके पश्चात् सत्त्वोपाधि से युक्त पच्चीसवाँ तत्त्व पुरुष तत्व का ध्यान करना चाहिए ।। १७-१८ ।। यह जो ध्येय का क्रम बतलाया गया है, वह अशुद्ध है, उसको त्यागकर शुद्ध परमात्म तत्त्व का ध्यान करना चाहिए। परम पुरुष के ऊपर उन्हीं की नाभि से उत्पन्न एक दिव्य कमल है, वही परमात्म का दिव्य ऐश्वर्य है । उसका विस्तार बारह अंगुल है, वह शुद्ध विकसित तथा श्वेत वर्ण का है।।१९।। उसका नाल आठ अंगुल का है । उस कमल के आठ दलों को अणिमा आदि आठ ऐश्वर्य जानना चाहिए । उसकी कर्णिका का केसर ज्ञान तथा नाल उत्तम वैराग्य है ।। २०-२१।। विष्णु धर्म ही उसकी जड़ है इस प्रकार के कमल का ध्यान करना चाहिए । धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं कल्याणमय ऐश्वर्य स्वरूप उस कमल को जानकर, जो श्रीभगवान् का आसन है, योगी समस्त दुःखों को पार का जाता है ।। २२।। उस कमल की कर्णिका के बीच में ओंकार स्वरूप ईश्वर का ध्यान करे । उनकी आकृति शुद्ध दीपशिखा के समान एवं अंगूठे के बराबर है । वे अत्यन्त निर्मल हैं ।। २३।। कदम्ब गोल के समान उनका गोलाकार स्वरूप तारा की भाँति स्थित है ।। २४ ।। अथवा कमल के ऊपर विराजमान प्रकृति एवं पुरुष से अतीत प्रकाश समूह के द्वारा चारों ओर से सुशोभित ईश्वर का ध्यान करना चाहिए ।। २५ ।। इस प्रकार से ध्यान करते हुए सदा परम अक्षर ओंकार का जप करना चाहिए । साधक को चाहिए कि मन को स्थिर करने के लिए पहले वह स्थूल का ध्यान करे । फिर क्रमशः मन के स्थिर हो जाने पर उसे सूक्ष्म तत्त्व के चिन्तन में लगना चाहिए ।। २६ ।। नाभि कमल में स्थित जो कमल की नाल है उसका दस अंगुल विस्तार है । उस नाल के ऊपर अष्टदल कमल है वह बारह अंगुल विस्तृत है ।। २७।। उसकी कर्णिका के केसर में सूर्य, सोम तथा अग्नि इन तीन देवताओं का मण्डल है । अग्नि मण्डल के बीच में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किए हुए चतुर्भुज अथवा आठ भुजाओं वाले श्रीहरि भगवान् विष्णु विराजमान हैं ।। २९ ।। अष्टभुजा वाले भगवान् के हाथ में शंखादि के अतिरिक्त शार्ङ्ग धनुष् अक्षमाला, पाश तथा अंकुश विद्यमान हैं । उनका शरीर सुवर्ण के समान देदीप्यमान तथा श्वेत वर्ण का है । उनके वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिह्न, तथा कौस्तुभमणि सुशोभित है । वनमाला

स्वर्णहारी स्फुरन्मकरकुण्डलः । रत्नोज्जवलकिरीटश्च पीताम्बरधरो महान्॥ ३१॥ सर्वाभरणभूषाढ्यो वितस्तिर्वा यथेच्छया । अहं ब्रह्म ज्योतिरात्मा वासुदेवो विमुक्त ओम् ॥ ३२ ॥ ध्यानाच्छान्तो जपेन् मन्त्रं जपाच्छान्तश्च चिन्तयेत् । जपध्यानादियुक्तस्य विष्णुः शीघ्रं प्रसीदति ॥ ३३ ॥ जपयज्ञस्य वै यज्ञाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् । जपिनं नोपसर्पन्ति व्याधयश्चाधयोग्रहाः। भुक्तिमुक्तिर्मृत्युजयो जपेन प्राप्नुयात् फलम् ॥ ३४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ध्यानयोगकथनं नाम चतुःसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३७४ ॥

पञ्चसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

धारणा

अग्निरुवाच– **धारणा मनसो ध्येये संस्थितिर्ध्यानवद् द्विधा । मूर्त्तामूर्त्तहरिध्यानमनोधारणतो हरिः॥ १॥ यद् बाह्यावास्थितं लक्ष्यं तस्मान्न चलते मनः । तावत् कालं प्रदेशेषु धारणा मनसि स्थितिः ॥ २ ॥ कालावधि परिच्छिन्नं देवे संस्थापितं मनः । न प्रच्यवति यल्लक्ष्याद् धारणा साऽभिधीयते ॥ ३॥ धारणा द्वादशायामा ध्यानं द्वादशधारणाः । ध्यानं द्वादशकं यावत् समाधिरभिधीयते॥ ४॥ धारणाभ्यासयुक्तात्मा यदि प्राणैर्विमुच्यते। कुलैकविंशमुत्तार्य्य स्वर्याति परमं पदम्॥ ५॥ यस्मिन् यस्मिन् भवेदङ्गे योगिनां व्याधिसम्भवः । तत् तदङ्गं धिया व्याप्य धारयेत् तत्त्वधारणम् ॥ ६ ॥ आग्नेयी वारुणी चैव ऐशानी चामृतात्मिका। साग्निः शिखा फडन्ता च विष्णोः कार्य्या द्विजोत्तम !॥७॥ नाडीभिर्विकटं दिव्यं शूलाग्रं वेधयेच्छुभम्। पादाङ्गुष्ठात् कपालान्तं रश्मिमण्डलमावृतम् ॥ ८ ॥ तिर्य्यक्चाधोर्ध्व भागेभ्यः प्रयान्त्योऽतीव तेजसा । चिन्तयेत् साधकेन्द्रस्तं यावत् सर्वं महामुने ! ॥९ ॥ भस्मीभूतं शरीरं स्वन्ततश्चैवोपसंहरेत् । शीतश्लेष्मादयः पापं विनश्यन्ति द्विजातयः॥ १०॥ शिरो धीरञ्च**

तथा सुवर्ण का हार पहने हुए श्रीभगवान् के कानों में मकराकृतिकुण्डल सुशोभित है । रत्नों से चमकता हुआ किरीट वाले भगवान् पीताम्बर धारण किए हुए हैं । वे सभी प्रकार के आभूषणों से विभूषित हैं । उनका आकार यथेच्छ अथवा एक बित्ते का है ।। ३०।। ध्यान करते समय यह भावना करे कि मैं ज्योतिर्मय हूँ । मैं ही नित्य ओंकार स्वरूप वासुदेव हूँ। ध्यान करने से थक जाने पर मन्त्र जप करना चाहिए और जप करते-करते थक जाने पर ध्यान करना चाहिए । जो हमेशा ध्यान करने और जप करने में लगा रहता है उस पर भगवान् विष्णु शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं ।। ३२-३३ ।। दूसरे यज्ञ जपयज्ञ की सोलहवीं कला के भी समान नहीं होते हैं । जप करने वाले पुरुष के पास, आधि, व्याधि एवं ग्रह नहीं आते । भोग, मोक्ष तथा मृत्यु पर विजय रूपी फल की प्राप्ति जप के द्वारा होती है ।। ३४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का ध्यानयोग वर्णन नामक तीन सौ चौहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३७४ ॥

अग्निदेव ने कहा– ध्येय में मन के स्थिर हो जाने को धारणा कहते हैं । इसके दो भेद हैं- साकार और निराकार । भगवान् के ध्यान में जो मन को लगाया जाता है, उसे क्रमशः मूर्त धारणा और अमूर्त धारणा कहते हैं । इस धारणा से श्रीहरि की प्राप्ति होती है ।। १ ।। जब तक बाहर के लक्ष्यों से मन विचलित नहीं होता है तब तक किसी भी लक्ष्य में मन को लगाने को धारणा कहते हैं ।। २ ।। नियत समय तक देह के भीतर जो मन को रोके रखा जाता है और वह अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होता है, तो उस अवस्था को धारणा कहते हैं ।। ३ ।। बारह आयाम की धारणा होती है । बारह धारणा का ध्यान होता है । बारह ध्यान पर्यन्त जो मन की एकाग्रता होती है उसे समाधि कहते हैं ।। ४ ।। जिसका मन धारणा के अभ्यास में लगा हुआ है, उसी समय यदि उसके प्राण निकल जाते हैं, तो वह पुरुष अपनी इक्कीस पीढ़ी का उद्धार करके परम पद स्वर्ग को प्राप्त करता है ।। ५ ।। योगी के जिस-जिस अंग में व्याधि की सम्भावना हो, उस-उस अंग को बुद्धि से व्याप्त करके तत्त्वों की धारणा करनी चाहिए ।। ६ ।। हे द्विजोत्तम ! विष्णु की चार प्रकार की धारणा होती है-आग्नेयी, वारुणी, ऐशानी और अमृतात्मिका। उस

कारञ्च कण्ठं चाधोमुखे स्मरेत्। ध्यायेदच्छिन्नचित्तात्मा भूयो भूतेन चात्मना ॥ ११ ॥ स्फुरच्छीकरसंस्पर्शप्रभूतं हिमगामिभिः । धाराभिरखिलं विश्वमापूर्य्य भुवि चिन्तयेत्॥ १२॥ ब्रह्मरन्ध्राच्च संक्षोभाद् यावदाधारमण्डलम् । सुषुम्णान्तर्गतो भूत्वा संपूर्णेन्दुकृतालयम् ॥ १३ ॥ संप्लाव्य हिमसंस्पर्शतोयेनामृतमूर्त्तिना। क्षुत् पिपासाक्रमप्रायः सन्तापपरिपीड़ितः॥ १४॥ धारयेद् वारुणीं मन्त्री तुष्ट्यर्थं चाप्यतन्द्रितः । वारुणीधारणा प्रोक्ता ऐशानीधारणां शृण ॥ १५ ॥ व्योम्नि ब्रह्ममये पद्मे प्राणापाने क्षयं गते । प्रसादं चिन्तयेद् विष्णोर्यावच्चिन्ताक्षयं गता ॥ १६ ॥ महाभावं जपेत् सर्वं ततो व्यापक ईश्वरः । अर्द्धेन्दुं परमं शान्तं निराभासं निरञ्जनम्॥ १७॥ असत्यं सत्यमाभाति तावत् सर्वं चराचरम् । यावत् स्वरमन्दरूपं न दृष्टं गुरुवक्त्रतः॥१८॥ दृष्टितस्मिन् परे तत्त्वे आब्रहन् सचरा चरम्। प्रमातृमानमेयञ्च ध्यानहृत्पद्मकम्पनम्॥१९॥ मातृमोदकवत् सर्वं जपहोमार्चनादिकम्। विष्णुमन्त्रेण वा कुर्य्यादमृतां धारणां वदे॥ २०॥ सम्पूर्णेन्दुनिभं ध्यायेत् कमलं तन्त्रिमुष्टिगम्। शिरःस्थं चिन्तयेद् यत्नाच्छशाङ्कयुतवर्चसम्॥२१॥ सम्पूर्णमण्डलं व्योम्नि शिवकल्लोलपूर्णितम्। तथा हृत् कमले ध्यायेत् तन्मध्ये स्वतनुं स्मरेत्। साधको विगतक्लेशो जायते धारणादिभिः ॥ २२॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये धारणाकथनं नाम पञ्चसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३७५ ॥

समय अग्नि युक्त शिखामन्त्र का जिसके अन्त में फट् शब्द का उच्चारण किया जाता है जप करना चाहिए ।। ७ ।। नाडियों के द्वारा विकट, दिव्य एवं शुभ शूलाग्र का वेधन करें । साधक यह भावना करे कि पैर के अंगूठे से लेकर कपाल तक रश्मिमण्डल से व्याप्त है । वह बड़ी तेजीके साथ नीचे ऊपर तथा इधर-उधर फैल रहा है । साधकेन्द्र को इस प्रकार की भावना तब तक करते रहनी चाहिए जब तक कि वह अपने सम्पूर्ण शरीर को उसमें भस्म होते न देख ले। उसके पश्चात् वह उस धारणा का उपसंहार करे ।। ८-९।। हे द्विजातयों इसके द्वारा शीत तथा श्लेष्मा आदि रोगों का विनाश होता है । यह आग्नेयी धारणा कहलाती है ।। १० ।। इसके पश्चात् धीरभाव से विचार करते हुए शिर तथा कण्ठ के अधोमुख होने का चिन्तन करें । उस समय साधक का चित्त नष्ट नहीं होना चाहिए । वह पुनः अन्तःकरण से ध्यान में लग जाय । फिर ऐसी धारणा करे कि जल के अनन्तकण प्रकट होकर एक दूसरे से मिलकर हिम राशि को उत्पन्न कर रहे हैं और उसके रस में पृथिवी पर जल की धाराएँ प्रकट होकर सम्पूर्ण संसार को आप्लावित कर रही हैं ।। ११-१२ ।। इस तरह उस हिमस्पर्श से शीतल अमृतस्वरूप जल के द्वारा क्षोभवश ब्रह्मरन्ध्र से निकलकर मूलाधार पर्यन्तसम्पूर्ण चक्रमण्डल को आप्लावित करके सुषुम्णा नाड़ी निकलकर मूलाधार पर्यन्त सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल को धारण करे ।। १३-१२ ।। भूख प्यास आदि के क्रम से प्राप्त होने वाले क्लेशों से अत्यन्त पीड़ित होकर अपनी तुष्टि के लिए इस वारुणी धारणा का चिन्तन करना चाहिए और आलस्य का त्याग करके उस समय विष्णु मन्त्र का जप भी करना चाहिए ।। १४।। इस तरह वारुणी धारणा बतलायी गयी अब ऐशानी धारणा को सुनो ।। १५ ।। प्राण तथा अयाम का क्षय होने पर हृदयाकाश में ब्रह्ममय कमल के ऊपर विराजमान भगवान् विष्णु की कृपा का तब तक चिन्तन करना चाहिए जब तक कि सारी चिन्ता का नाश न हो जाय ।। १६ ।। उसके बाद व्यापक ईश्वर रूप से स्थित होकर परम शान्त, निरञ्जन, निराभास एवं अर्द्धचन्द्रस्वरूप सम्पूर्ण महाभाव का जप और चिन्तन करे ।। १७ ।। जब तक आचार्य के मुख से जीवात्मा को ब्रह्म का ही अंश नहीं जान लिया जाता है तब तक यह असत्य भी सम्पूर्ण चराचर जगत् सत्य के समान प्रतीत होता है ।। १८ ।। उस परम तत्त्व का साक्षात्कार हो जाने पर ब्रह्मा से लेकर सम्पूर्ण चराचर जगत् प्रमाता, प्रमाण एवं प्रमेय सब कुछ ध्यानगत हृदयकमल में लीन हो जाता है ।। १९ ।। जप, पूजन एवं होम को माता द्वारा दी गयी मिठाई के समान मधुर मानकर विष्णुमन्त्र के द्वारा उसका श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करें । अब मैं अमृता धारणा को बतला रहा हूँ ।। २० ।। मस्तक की नाड़ी के केन्द्र स्थान में पूर्ण चन्द्रमा के समान आकार वाले कमल का ध्यान करना चाहिए और प्रयत्न पूर्वक यह भावना करें कि- आकाश में दस हजार चन्द्रमा के समान प्रकाशमान एक चन्द्रमण्डल उदित हुआ है । जो कल्याणमय लहरियों से परिपूर्ण है ।। २१ ।। इस तरह का ध्यान अपने हृदय कमल में भी करना चाहिए और उसके मध्यभाग में अपने शरीर को स्थित देखे । धारणा आदि के द्वारा साधक के समस्त कष्ट विनष्ट हो जाते हैं ।। २२ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का धारणा वर्णन नामक तीन सौ पचहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३७५ ॥

षट्सप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

धारणा

अग्निरुवाच– **यदात्ममात्रं निर्भासं स्तिमितोदधिवत् स्थितम् । चैतन्यरूपवद् ध्यानं तत् समाधिरिहोच्यते ॥ १ ॥ ध्यायन् मनः सन्निवेश्य यस्तिष्ठेदचलःस्थिरः। निर्वातानलवद् योगी समाधिस्थः प्रकीर्त्तितः ॥ २ ॥ न शृणोति न चाघ्राति न पश्यति न रस्यति । न च स्पर्शं विजानाति न सङ्कल्पयते मनः॥ ३॥ न चाभिमन्यते किञ्चिन्न च बुध्यति काष्ठवत् । एवमीश्वरसंलीनःसमाधिस्थः स गीयते ॥ ४ ॥ यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता । ध्यायतो विष्णुमात्मानं समाधिस्तस्य योगिनः ॥ ५ ॥ उपसर्गाः प्रवर्त्तन्ते दिव्याः सिद्धिप्रसूचकाः । पातितः श्रावणो धातुर्दर्शनस्वाङ्गवेदनाः॥ ६॥ प्रार्थयन्ति च तं देवा भोगैर्दिव्यैश्च योगिनम् । नृपाश्च पृथिवीदानैर्धनैश्च सुधनाधिपाः॥ ७॥ वेदादिसर्वशास्त्रञ्च स्वयमेव प्रवर्त्तते । अभीष्टच्छन्दोविषयं काव्यञ्चास्य प्रवर्त्तते ॥ ८॥ रसायनानि दिव्यानि दिव्याश्चौषधयस्तथा । समस्तानि च शिल्पानि कलाः सर्वाश्च विन्दति ॥ ९ ॥ सुरेन्द्रकन्या इत्याद्या गुणाश्च प्रतिभादयः । तृणवत् तान्त्यजेद् यस्तु तस्य विष्णुः प्रसीदति ॥ १० ॥अणिमादिगुणैश्वर्य्यः शिष्ये ज्ञानं प्रकाश्य च । भुक्त्वा भोगान् यथेच्छातस्तनुन्त्यक्त्वालयात् ततः ॥ ११ ॥ तिष्ठेत् स्वात्मनि विज्ञान आनन्दे ब्रह्मणीश्वरे । मलिनो हि यथादर्शं आत्मज्ञानाय न क्षमः ॥१२॥ सर्वाश्रयान्निजे देहे देही विन्दति वेदनाम् । योगयुक्तस्तु सर्वेषां योगान्नाप्नोतिवेदनाम् ॥ १३ ॥ आकाशमेकं हि**

अग्निदेव ने कहा– जो चैतन्य रूप से युक्त एवं शान्त समुद्र की भाँति स्थिर हो जिसमें आत्मा के सिवा किसी अन्य वस्तु की प्रतीति नहीं होती हो उस ध्यान को योगदर्शन में समाधि कहते हैं ।। १ ।। जो व्यक्ति ध्यान के समय अपने चित्त को ध्येय में स्थिर करके निर्वात स्थान में जलती हुई अग्नि शिखा के समान अविचल एवं स्थिर भाव से बैठा रहता है वह योगी समाधिस्थ कहलाता है ।। २ ।। जो सुनता है, न सूंघता है, न देखता है, न आस्वाद लेता है, न तो स्पर्श का अनुभव करता है और न तो जिसका मन संकल्प करता है ।। ३ ।। न तो अभिमान करता है, न तो वह किसी दूसरी वस्तु को जानता है, काष्ठ के समान अविचल भाव से ईश्वर के चिन्तन में तल्लीन रहता है- उस पुरुष को समाधिस्थ कहा जाता है ।। ४ ।। जिस तरह निर्वात (वायु रहित) स्थान में रखा हुआ दीपक काँपता नहीं है, उसी तरह से विष्णु चिन्तन परायण योगी पुरुष के मन की स्थिति होती है ।। ५ ।। उसके समक्ष अनेक दिव्य विघ्न आते हैं । वे सिद्धि के सूचक होते हैं । साधक पटक दिया जाता है । उसके कान में वेदना होती अनेक प्रकार के धातुओं के दर्शन होते हैं तथा वह अपने शरीर में अत्यधिक वेदना का अनुभव करने लगता है ।।६।। उसके सन्निकट में आकर देवगण उसे दिव्य भोग स्वीकार करने की प्रार्थना करने लगते हैं, राजा पृथिवी का दान देने का लोभ देते हैं और धनाधिप उसे धन की लालच देते हैं ।। ७ ।। वेद आदि समस्त शास्त्र उसकी बुद्धि में स्फुरित होने लगते हैं । उसके द्वारा मनोनुकूल छन्द में अभीष्ट विषय से युक्त काव्य की रचना होने लगती है ।। ८ ।। दिव्य रसायन दिव्य औषधियाँ तथा सम्पूर्ण शिल्प और कलाएँ, उसे प्राप्त हो जाती हैं ।। ९ ।। उसके पास बिना बुलाए ही देवेश्वरों की कन्याएँ तथा प्रतिभा आदि गुण भी आते हैं किन्तु जो इन सबो को तिनके के समान निस्सार समझकर उन्हें त्याग देता है, उस पर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं ।। १० ।। अणिमा आदि विभूतियों से युक्त योगी पुरुष को उचित है कि, वह शिष्य को ज्ञान देकर अपनी इच्छा के अनुसार भोगों को भोगकर उसके पश्चात् लययोग के अनुसार शरीर का त्याग करे ।। ११ ।। वह विज्ञानानन्दमय ब्रह्म ईश्वर में स्थित हो जाय । जिस तरह से मलिन दर्पण प्रतिबिम्ब का ज्ञान कराने में समर्थ नहीं होता है, इस तरह मलिन अन्तःकरण में आत्मज्ञान नहीं उदित होता है ।। १२ ।। देह समस्त प्रकार के रोगों का आश्रय है, अतएव देहाभिमानी जीव अपने शरीर में कष्ट प्राप्त करता है, किन्तु योगी साधक तो योग के प्रभाव से किसी भी प्रकार के कष्ट का अनुभव अपने देह में नहीं करता है । १३।। जैसे एक ही आकाश घट आदि भिन्न-भिन्न उपाधियों के कारण

यथा घटादिषु पृथग् भवेत् । तथात्मैको ह्यनेकेषु जलाधारेष्विवांशुमान्॥ १४॥ ब्रह्मखानिलतेजांसि जलभूक्षितिधातवः । इमे लोका एष चात्मा तस्माच्च सचराचरम्॥ १५॥ मृद्दण्डचक्रसंयोगात् कुम्भकारो यथा घटम् । करोति तृणमृत्काष्ठैर्गृहं वा गृहकारकः ॥ १६ ॥ करणान्येवमादाय तासु तास्विह योनिषु । सृजत्यात्मानमात्मैवं सम्भूय करणानि च॥ १७॥ कर्मणा दोषमोहाभ्यामिच्छयैव स बध्यते । ज्ञानाद् विमुच्यते जीवो धर्म्माद् योगी न रोगभाक् ॥ १८ ॥ वर्त्याधारस्नेहयोगाद् यथा दीपस्य संस्थितिः । विक्रियापि च दृष्ट्वैवमकाले प्राणसंक्षयः ॥ १९॥ अनंता रश्मयस्तस्य दीपवद् यः स्थितो हृदि । सितासिताः कद्रुनीलाः कपिलाः पीतलोहिताः ॥ २० ॥ ऊर्ध्वमेकः स्थितस्तेषां यो भित्त्वा सूर्य्यमण्डलम्। ब्रह्मलोकमतिक्रम्य तेन याति परां गतिम् ॥ २१ ॥ यदस्यान्यद्रश्मिशतमूर्ध्वमेव व्यवस्थितम् । तेन देवनिकायानि धामानि प्रतिपद्यते॥ २२॥ ये नैकरूपाश्चाधस्ताद्रश्मयोऽस्य मृदुप्रभाः । इह कर्मोपभोगाय तैश्च सञ्चरते हि सः॥ २३॥ बुद्धीन्द्रियाणि सर्वाणि मनः कर्मेन्द्रियाणि च । अहङ्कारश्च बुद्धिश्च पृथिव्यादीनि चैव हि ॥ २४ ॥ अव्यक्त आत्मा क्षेत्रज्ञःक्षेत्रस्यास्य निगद्यते । ईश्वरः सर्वभूतस्थः सन्नसन् सदसच्च सः॥ २५॥ बुद्धेरुत्पत्तिरव्यक्ता ततोऽहङ्कारसम्भवः । तस्मात् खादीनि जायन्ते एकोत्तरगुणानि तु॥ २६॥ शब्दः स्पर्शश्च रूपश्च रसो गन्धश्च तद्गुणाः । यो यस्मिन्नाश्रयश्चैषां स तस्मिन्नेव लीयते ॥ २७ ॥ सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणास्तस्यैव कीर्त्तिताः । रजस्तमोभ्यामाविष्टश्चक्रवद् भ्राम्यते हि सः ॥ २८॥ अनादिरादिमान् यश्च स एव पुरुषः परः। लिङ्गेन्द्रियैरुपग्राह्यः स विकार उदाहृतः ॥ २९॥ यतो वेदाः पुराणानि विद्योपनिषदस्तथा । श्लोकाः

भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है तथा एक ही सूर्य भिन्न-भिन्न जलाधारों के कारण अनेक प्रतीत होता है, उसी तरह एक ही आत्मा शरीर भेद के कारण भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है ।। १४ ।। वायु, तेज, जल और पृथिवी ये पाँचों भूत ब्रह्मात्मक हैं । यह समस्त लोक आत्मा ही है । आत्मा से ही चराचर जगत् अभिव्यक्त होता है ।। १५ ।। जिस तरह कुम्भकार मृत्पिण्ड,, दण्ड तथा चक्र के संयोग से घट का निर्माण करता है अथवा घर बनाने वाला जिस तरह मिट्टी, तृण काष्ठ से गृह का निर्माण करता है, इसी तरह आत्मा भी इन्द्रियों को साथ लेकर कार्य-कारण समूह को एकत्रित करके विभिन्न योनियों में शरीर धारण करता है ।। १६-१७ ।। जीव कर्म से, दोष से, मोह से तथा अपनी इच्छा से बन्धन में पड़ता है तथा ज्ञान से उसकी मुक्ति होती है । किन्तु योगी पुरुष को धर्मानुष्ठान करने पर भी रोग की प्राप्ति नहीं होती है ।। १८ ।। जिस तरह, बाती, तैल पात्र तथा तैल इन तीनों के संयोग से ही दीपक की स्थिति होती है, इनमें से किसी एक के भी अभाव में दीपक नहीं रह सकता हे, इसी तरह योग एवं धर्म के अभाव में शरीर में विकार उत्पन्न होता है और अकाल में ही पुरुष की मृत्यु हो जाती है ।। १९ ।। दीपक की किरणों के समान हमारे हृदय में स्थित प्रकाशमान आत्मा की श्वेत, कृष्ण, नील, कपिल पीत तथा रक्त वर्ण की अनंत रश्मियाँ हैं ।। २० ।। उनमे से एक किरण ऐसी है जो सूर्यमण्डल का भेदन करके सीधे ऊपर की ओर चली गयी है, तथा ब्रह्मलोक को भी पार कर गयी है, उस किरण के द्वारा योगी पुरुष परमगति को प्राप्त करता है ।। २१ ।। उसके अतिरिक्त अन्य भी सैकड़ों किरणें ऊपर की ओर जाती हैं किन्तु उनके द्वारा मनुष्य भिन्न-भिन्न देवताओं के ही लोक में जाता है ।। २२ ।। एक ही रंग की जो अनेक किरणें नीचे की ओर स्थित हैं, उनकी कान्ति कोमल है, उन किरणों के माध्यम से निकलने वाला जीव इस लोक में ही कर्मोपभोग के लिए संचरण करता है ।। २३ ।।समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, कर्मेन्द्रियाँ, अहंकार, बुद्धि तथा पृथिवी इत्यादि पंचभूत तथा प्रकृति ये सभी क्षेत्र हैं और आत्मा इन सबों को जानने वाला क्षेत्रज्ञ है । वही समस्त भूतों का ईश्वर है । सत्, असत् तथा सदसत् सभी उसके रूप हैं ।।२४-२५ ।। अव्यक्त प्रकृति से बुद्धि (समष्टि) की उत्पत्ति होती है, उससे अहंकार की उत्पत्ति होती है उससे आकाश आदि (वायु, तेज, जल एवं पृथिवी की उत्पत्ति होती है), जो उत्तरोत्तर एकाधिक गुण वाले हैं ।। २६ ।। उनके गुण, क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध हैं । इनमें से जो भूत जिसके आश्रय में रहता है, उसका उसी में लय होता है ।। २७ ।। अव्यक्त प्राकृति के ही सत्त्व, रजस् एवं तमस् ये तीन गुण हैं । रजोगुण एवं तमोगुण से आविष्ट जीव चक्र के समान घूमता रहता है ।। २८ ।। जो सबों का आदि कारण होकर भी अनादि है वही परम पुरुष परमात्मा है । उसका मन तथा इन्द्रियों

सूत्राणि भाष्याणि यच्चान्यद् वाङ्मयं भवेत् ॥ ३०॥ पितृयानोपवीथ्याश्च यदगस्त्यस्य चान्तरम्। तेनाग्निहोत्रिणो यान्ति प्रजाकामा दिवं प्रति॥३१॥ ये च दानपराः सम्यगष्टाभिश्च गुणैर्युताः । अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो गृहमेधिनः ॥ ३२॥ पुनरावर्त्तने वीजभूता धर्मप्रवर्त्तकाः । सप्तर्षिनागवीथ्यश्च देवलोकं समाश्रिताः ॥ ३३॥ तावन्त एव मुनयः सर्वारम्भविवर्जिताः । तपसा ब्रह्मचर्येण सङ्गत्यागेन मेधया ॥ ३४ ॥ तत्र तत्रावतिष्ठन्ते यावदाभूतसंप्लवम् । वेदानुवचनं यज्ञा ब्रह्मचर्यं तपो दमः ॥ ३५ ॥ श्रद्धोपवासःसत्यत्वमात्मनो ज्ञानहेतवः । स त्वाश्रमैर्निदिध्यास्यःसमस्तैरेवमेव तु॥ ३६॥ द्रष्टव्यस्त्वथ मन्तव्यः श्रोतव्यश्च द्विजातिभिः । य एवमेनं विन्दन्ति ये चारण्यकमाश्रिताः ॥ ३७ ॥ उपासते द्विजाः सत्यं श्रद्धया परया युताः । क्रमात् ते सम्भवन्त्यर्चिरहः शुक्लं तथोत्तरम् ॥ ३८ ॥ अयनं देवलोकञ्च सवितारं सविद्युतम् । ततस्तान् पुरुषोऽभ्येत्य मानसो ब्रह्मलौकिकान् ॥ ३९ ॥ करोति पुनरावृत्तिस्तेषामिह न विद्यते । यज्ञेन तपसा दानै र्ये हि स्वर्गजितो जनाः ॥४०॥ धूमं निशां कृष्णपक्षं दक्षिणायनमेव च । पितृलोकं चन्द्रमसं नभो वायुं जलं महीम्॥ ४१॥ क्रमात् ते सम्भवन्तीह पुनरेव ब्रजन्ति च । एतद् यो न विजानाति मार्गद्वितयामात्मनः॥ ४२॥ दन्दशूकः पतङ्गो वा भवेत् कीटोऽथवा कृमिः । हृदये दीपवद् ब्रह्म ध्यानाज्जीवो ऽमृतो भवेत् ॥ ४३॥ न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः । श्राद्धकृत् सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते ॥ ४४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये समाधिकथनं नाम षट्सप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३७६ ॥

से ग्रहण होता है, वह विकार कहलाता है ।। २९ ।। जिससे वेदों, पुराणों, विद्याओं, उपनिषदों, श्लोकों, सूत्रों, भाष्यों तथा अन्य वाङ्मय की अभिव्यक्ति हुई है, वही ईश्वर है ।। ३० ।। पितृयाण मार्ग की उपवीथी से लेकर अगस्त्य तारा के बीच का जो मार्ग है, उसी से सन्तान की कामना वाले अग्निहोत्री पुरुष स्वर्ग जाते हैं ।। ३१ ।। जो लोग दान परायण हैं तथा आठ गुणों से युक्त हैं तथा जो गृहस्थ अट्ठासी हजार मुनि हैं, उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म ही पुनरावृत्ति का कारण है ।। ३२।। वे लोग सप्तर्षि तथा नागवीथी के मार्ग से देवलोक गए हैं ।। ३३ ।। उतने ही (अट्ठासी हजार ही ऋषि और हैं जो सभी प्रकार के कर्मों का त्याग करने वाले हैं । वे तपस्या, अनासक्ति, ब्रह्मचर्य तथा मेधा के प्रभाव से कल्पपर्यन्त भिन्न-भिन्न दिव्य लोकों में रहते हैं ।।३४।। सदा वेदाध्ययन, निष्कामयज्ञ, ब्रह्मचर्य, तपस्या एवं दम, श्रद्धा, उपवास तथा सत्यभाषण ये आत्म ज्ञान के साधन हैं ।। ३५।। समस्त द्विजातियों को उचित है कि वे सत्त्वगुण को अपनाकर आत्मा का श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन एवं साक्षात्कार करें ।। ३६।। इस प्रकार से जानने वाले तथा वानप्रस्थाश्रमी जो लोग परमश्रद्धा से सम्पन्न होकर सत्य की उपासना करते हैं वे क्रमशः, अर्चि, दिन, शुक्लपक्ष, उत्तरायण, देवलोक, सूर्यमण्डल तथा विद्युत् के अभिमानी देवताओं के लोक में जाते हैं ।। ३७-३८।। इसके पश्चात् उन जीवों को मानस पुरुष अपने साथ ले जाकर उन्हें ब्रह्मलोक का निवासी बना देता है । वे जीव पुनः इस संसार में नहीं आते हैं ।। ३९ ।। जो लोग यज्ञ, तप एवं दान से स्वर्गलोक पर अधिकार प्राप्त करते हैं, वे क्रमशः, धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन, पितृलोक तथा चन्द्रमा के अभिमानी देवताओं के लोक में जाते हैं । फिर आकाश, वायु, एवं जल के मार्ग से होकर इस पृथिवी पर लौट आते हैं ।।४०-४१ ।। जो व्यक्ति आत्मा के इन दो मार्गों को नहीं जानता है, वह मृत्यु के पश्चात, सर्प, पतंग, कीड़ा या कृमि होता है ।। ४२।। हृदयाकाश में दीपक के समान प्रकाशमान ब्रह्म का ध्यान करने वाला जीव मुक्त हो जाता है ।।४३।। न्यायपूर्वक धन का उपार्जन करने वाला, तत्त्वज्ञान में स्थित, अतिथिप्रिय, श्राद्ध करने वाला तथा सत्य बोलने वाला गृहस्थ भी मुक्त हो जाता है ।। ४४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का समाधि वर्णन नामक तीन सौ छिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३७६ ॥

सप्तसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

ब्रह्मज्ञानम्

अग्निरुवाच– **ब्रह्मज्ञानं प्रवक्ष्यामि संसाराज्ञानमुक्तये । अयमात्मा परं ब्रह्म अहमस्मीति मुच्यते ॥ १॥ देह आत्मा न भवति दृश्यत्वाच्च घटादिवत्। प्रसुप्ते मरणे देहादात्माऽन्यो ज्ञायते ध्रुवम् ॥ २ ॥ देहः स चेत् व्यवहरेदविकार्य्यादिसन्निभः । चक्षुरादीनीन्द्रियाणि नात्मा वै करणं त्वतः ॥ ३ ॥ मनो धीरपि आत्मा न दीपवत् करणं त्वतः । प्राणोऽप्यात्मा न भवति सुषुप्ते ऽचित्प्रभावतः ॥ ४ ॥ जाग्रत्स्वप्ने च चैतन्यं सङ्कीर्णत्वान्न बुध्यते। विज्ञानरहितः प्राणः सुषुप्ते ज्ञायते यतः॥ ५॥ अतो नात्मेन्द्रियं तस्मादिन्द्रियादिकमात्मनः । अहङ्कारोऽपि नैवात्मा देहवद् व्यभिचारतः ॥ ६ ॥ उक्तेभ्यो व्यतिरिक्तोऽयमात्मा सर्वहृदि स्थितः । सर्वद्रष्टा च भोक्ता च नक्तमुज्ज्वलदीपवत् ॥ ७ ॥ समाध्यारम्भकाले च एवं सञ्चिन्तयेन् मुनिः । यतो ब्रह्मण आकाशं खाद् वायुर्वायुतोऽनलः ॥ ८ ॥ अग्नेरापो जलात् पृथ्वी ततः सूक्ष्मं शरीरकम् । अपञ्चीकृतभूतेभ्य आसन् पञ्चीकृतान्यतः॥ ९॥ स्थूलं शरीरं ध्यात्वाऽस्माल्लयं ब्रह्मणि चिन्तयेत् । पञ्चीकृतानि भूतानि तत्कार्य्यञ्च विराट् स्मृतम् ॥ १० ॥ एतत् स्थूलं शरीरं हि आत्मनोऽज्ञानकल्पितम्। इन्द्रियैरपि विज्ञानं धीरा जागरितं विदुः ॥ ११ ॥ विश्वस्तदभिमानी स्यात् त्रयमेतदकारकम् । अपञ्चीकृतभूतानि तत्कार्यं लिङ्गमुच्यते॥ १२॥ संयुक्तं सप्तदशभिर्हिरण्यगर्भसंज्ञितम् । शरीरमात्मनः सूक्ष्मं लिङ्गमित्यभिधीयते ॥ १३॥ जाग्रत्संस्कारजः स्वप्न प्रत्ययो विषयात्मकः । आत्मा तदभिमानी स्यात् तैजसो ह्यप्रपञ्चतः ॥ १४ ॥ स्थूलसूक्ष्मशरीराख्यद्वयस्यैकं हि कारणम् । आत्मा ज्ञानञ्च साभासं**

अग्निदेव ने कहा– अब मैं अज्ञानजन्य संसार के बन्धन से छुटकारा पाने के लिए ब्रह्मज्ञान का वर्णन करूँगा । यह आत्मा परं ब्रह्म है और परंब्रह्म मैं ही हूँ ।। १ ।। ऐसा चिन्तन करने वाला पुरुष मुक्ति पा लेता है ।। १ ।। देह आत्मा नहीं है क्योंकि वह दृश्य है, दृश्य घट आदि के समान । सो जाने पर अथवा मृत्यु हो जाने पर पता चलता है कि निश्चित रूप से आत्मा देह से भिन्न है ।। २ ।। यदि देह ही आत्मा होता तो वह मृत्यु के पश्चात् भी पहले के ही समान व्यवहार करता, उसमें कोई विकार नहीं होता, वह पहले के ही समान बना रहता । चक्षुरादि इन्द्रियाँ भी आत्मा नहीं हैं, क्योंकि वे करण हैं । जो करण हैं वह कर्ता आत्मा नहीं हो सकता ।। ३ ।। मन और ज्ञान भी आत्मा नहीं है, क्योंकि वे भी प्रकाश के साधन हैं । प्राण भी आत्मा नहीं है क्योंकि सुषुप्तिकाल में उस पर अचित् (जड़) का प्रभाव रहता है ।। ४ ।। जग्रतावस्था में तथा स्वापावस्था में प्राण के साथ चैतन्य मिला सा रहता है इसीलिए उसकी पृथक् प्रतीति नहीं होती है । किञ्च यह भी ज्ञात होता है कि सुषुप्तिकाल में प्राण ज्ञान से रहित होता है ।। ५ ।। इसीलिए आत्मा इन्द्रिय आदि नहीं हैं, अपितु इन्द्रिय आदि आत्मा के हैं । अहंकार भी आत्मा नहीं है क्योंकि देह के समान उसकी भी आत्मा से पृथक् उपलब्धि होती है ।। ६ ।। उपर्युक्त देह इन्द्रिय, मन, प्राण तथा अहंकार से भिन्न ही आत्मा है । यह सबों के हृदय प्रदेश में रहता है। रात्रि में जलते हुए दीप के समान सबों का द्रष्टा एवं भोक्ता है ।। ७ ।। समाधि के आरम्भकाल में मुनि को इस प्रकार से चिन्तन करना चाहिए । ब्रह्म से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी तथा उससे सूक्ष्म शरीर उत्पन्न होता है । अपञ्चीकृत् भूतों से पञ्चीकृत् भूतों की उत्पत्ति हुई ।। ९ ।। स्थूल शरीर का ध्यान करके उसका ब्रह्म में लय होने का ध्यान करे । पञ्चीकृत् भूत तथा उनके कार्यों को विराट् कहते हैं ।। १० ।। आत्मा का यह स्थूल शरीर अज्ञान कल्पित है । इन्द्रियों के द्वारा होने वाले ज्ञान को धीरों ने जागरित कहा है ।। ११ ।। जाग्रत के अभिमानी आत्मा को विश्व कहते हैं । ये तीनों प्रणव के प्रथम वर्ण के आकार स्वरूप हैं । अपञ्चीकृत् भूत तथा उनके कार्य को लिङ्ग कहते हैं ।। १२ ।। सत्रह अवयवों (दस इन्द्रियाँ पञ्चतन्मात्राएँ और मन बुद्धि) से युक्त आत्मा के सूक्ष्म शरीर को हिरण्यगर्भ कहा जाता है ।। १३ ।। जाग्रत अवस्था के संस्कार से उत्पन्न होने वाले विषयों के ज्ञान को स्वप्न

तदध्याहृतमुच्यते ॥ १५॥ न सन्नासन्न सदसदेतत् सावयवं न तत् । निर्गतावयवं नेति नाभिन्नं भिन्नमेव च ॥ १६॥ भिन्नाभिन्नं ह्यनिर्वाच्यं बन्धसंसारकारकम् । एकं स ब्रह्म विज्ञानात् प्राप्तं नैव च कर्म्मभिः ॥ १७॥ सर्वात्मना हीन्द्रियाणां संहारः कारणात्मनाम् । बुद्धेः स्थानं सुषुप्तं स्यात् तद्द्वयस्याभिमानवान् ॥ १८ ॥ प्राज्ञ आत्मा त्रयश्चैतत् मकारः प्रणवः स्मृतः। अकारश्च उकारोऽसौ मकारो ह्ययमेव च ॥ १९ ॥ अहं साक्षी च चिन्मात्रो जाग्रत्स्वप्नादिकस्य च । नाज्ञानञ्चैव तत्कार्यं संसारादिकबन्धनम् ॥ २०॥ नित्यशुद्धबुद्धमुक्तसत्यमानन्दमद्वयम् । ब्रह्माहमस्म्यहं ब्रह्म परं ज्योतिर्विमुक्त ओम् ॥ २१॥ अहं ब्रह्म परं ज्ञानं समाधिर्बन्धघातकः। चिरमानन्दकं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तकम् ॥ २२॥ अयमात्मा परं ब्रह्म तद् ब्रह्म त्वमसीति च । गुरुणा बोधितो जीवो ह्यहं ब्रह्माऽस्मि बाह्यतः ॥ २३ ॥ सोऽसावादित्यपुरुषः सोऽसावहमखण्ड ओम् । मुच्यतेऽसारसंसाराद् ब्रह्मज्ञो ब्रह्म तद् भवेत् ॥ २४ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ब्रह्मज्ञानकथनं नाम सप्तसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३७७ ॥

अष्टसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

ब्रह्मज्ञानम्

अग्निरुवाच– **अहं ब्रह्म परं ज्योतिः पृथिव्यबनलोज्झितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्वाय्वाकाशविवर्जितम् ॥ १ ॥ अहं ब्रह्म परं ज्योतिरादिकार्यविवर्जितम्।**

कहते हैं । उसका जो अभिमानी आत्मा होता है उसे तैजस कहते हैं । वह जाग्रत् के प्रपञ्च से रहित होता है ।। १४ ।। स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों प्रकार के शरीरों का एक ही कारण आत्मा है। आभास युक्त ज्ञान को अध्याहृत ज्ञान कहते हैं ।। १५ ।। इन अवस्थाओं का साक्षी न सत् है न असत् और न तो सदसत् ही है । न तो वह सावयव है और न तो निरवयव । वह न तो भिन्न है और न तो अभिन्न ।। १६ ।। वह भिन्न अभिन्न स्वरूप भी नहीं है । वह सर्वथा अनिर्वचनीय है । इस बन्धन रूप संसार की भी सृष्टि करने वाला वही है । वह ब्रह्म एक है । उसकी प्राप्ति कर्मों से नहीं ज्ञान से होती है ।। १७ ।। जब बाह्यज्ञान के साधनभूत इन्द्रियों का पूर्ण रूप से लय हो जाता है, केवल बुद्धि की ही स्थिति रहती है, उस अवस्था को सुषुप्ति कहते हैं। बुद्धि तथा सुषुप्ति दोनों के अभिमानी को प्राज्ञ कहते हैं । ये तीनों मकार तथा प्रणव स्वरूप हैं । यह प्राज्ञ ही अकार उकार एवं मकार स्वरूप है ।। १८-१९ ।। 'अहम्' पद के लक्ष्यार्थ रूप चित्स्वरूप आत्मा जाग्रत् तथा स्वप्न आदि अवस्थाओं का साक्षी है । उसमें अज्ञान तथा उसके कार्य संसार बन्धन आदि नहीं होते हैं ।। २० ।। नित्यशुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य, आनन्द एवं अद्वितीय ब्रह्म मैं हूँ । मैं ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ । मुक्त तथा ओंकारस्वरूप हूँ ।। २१ ।। मैं ही ज्ञान समाधि रूप परब्रह्म हूँ । संसारबन्ध को विनष्ट करने वाला हूँ । चिरन्तन, आनन्दमय, सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप अनन्त स्वरूप ब्रह्म मैं ही हूँ ।। २२ ।। यह आत्मा परब्रह्म है । वह परब्रह्म तुम हो । इस तरह से गुरु के द्वारा बोध कराये जाने पर जीव यह अनुभव करता है कि देहादि से विलक्षण मैं ही परब्रह्म हूँ ।। २३ ।। सूर्यमण्डल के भीतर जो प्रकाशमय पुरुष है वह मैं ही हूँ । मैं वहअखण्ड परब्रह्म तथा ओंकार स्वरूप हूँ । इस प्रकार से ब्रह्मज्ञानी पुरुष इस असार संसार से मुक्त होकर ब्रह्मस्वरूप हो जाता है ।। २४ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का ब्रह्मज्ञान वर्णन नामक तीन सौ सततहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३७७ ॥

अध्याय ३७८

अग्निदेव ने कहा– मैं पृथिवी, जल एवं अग्नि से रहित स्वयम्प्रकाश परब्रह्म हूँ । मैं वायु तथा आकाश से रहित प्रकाशस्वरूप परब्रह्म हूँ ।। १ ।। मैं कार्य एवं कारण से विलक्षण

अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्विराडात्मविवर्जितम्॥ २॥ अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जाग्रत्स्थानविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्विश्वभावविवर्जितम् ॥ ३ ॥ अहं ब्रह्म परं ज्योतिराकाराक्षरवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्वाक्पाण्यङ्घ्रिविवर्जितम् ॥ ४ ॥ अहं ब्रह्म परं ज्योतिः पायूपस्थविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः श्रोत्रत्वक्चक्षुरुज्झितम् ॥ ५ ॥ अहं ब्रह्म परं ज्योतिरसरूपविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सर्वगन्धविवर्जितम् ॥ ६॥ अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जिह्वाघ्राणविवर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिः स्पर्शशब्दविवर्जितम् ॥ ७॥ अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्मनोबुद्धिविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिश्चित्ताहङ्कारवर्जितम्॥ ८॥ अहं ब्रह्म परं ज्योतिः प्राणापानविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्व्यानोदानविवर्जितम् ॥ ९॥ अहं ब्रह्म परं ज्योतिः समानपरिवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जरामरणवर्जितम्॥ १०॥ अहं ब्रह्म परं ज्योतिः शोकमोहविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः क्षुत्पिपासाविवर्जितजम् ॥ ११ ॥ अहं ब्रह्म परं ज्योतिः शब्दोद्भूतादिवर्जितम्! । अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्हिरण्यगर्भवर्जितम् ॥ १२ ॥ अहं ब्रह्म परं ज्योतिः स्वप्नावस्थाविवर्जितजम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिस्तैजसादिविवर्जितम् ॥ १३॥ अहं ब्रह्म परं ज्योतिरपकारादिवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सभाज्ञानविवर्जितम् ॥ १४॥ अहं ब्रह्म परं ज्योतिरध्याहृतविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सत्त्वादिगुणवर्जितम् ॥ १५॥ अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सदसद्भाववर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सर्वावयववर्जितम् ॥ १६॥ अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्भेदाभेदविवर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सुषुप्तिस्थानवर्जितम् ॥ १७॥ अहं ब्रह्म परं ज्योतिः प्राज्ञभावविवर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्मकारादिविवर्जितम् ॥ १८॥ अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्मानमेयविवर्जितम् ॥ अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्मितिमातृविवर्जितम् ॥ १९॥ अहं ब्रह्म परं ज्योतिः साक्षित्वादिविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः कार्य्यकारणवर्जितम् ॥ २० ॥ देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम् । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिमुक्तं ब्रह्म तुरीयकम्॥ २१ ॥ नित्यशुद्धबुद्धमुक्त

प्रकाश स्वरूप परब्रह्म हूँ । मैं विराट् स्वरूप (स्थूल ब्रह्माण्ड) से भिन्न प्रकाश स्वरूप परब्रह्म हूँ ।। २ ।। मैं जाग्रत् अवस्था से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ । मैं विश्वरूप से विलक्षण ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ ।। ३ ।। मैं आकार और अक्षर से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ । मैं वाक्, पाणि तथा पाद से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ ।। ४ ।। मैं पायु तथा उपस्थ से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ। मैं श्रोत्र, त्वक् एवं चक्षु से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ ।। ५ ।। मैं रस एवं रूप से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ । मैं सभी गन्धों से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ ।। ६ ।। मैं स्पर्श एवं जिह्वा एवं प्राण से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ । मैं स्पर्श एवं शब्द से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ ।। ७ ।। मैं मन एवं बुद्धि से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ । मैं चित्त एवं अहंकार से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ ।। ८ ।। मैं प्राण एवं अपान से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ । मैं व्यान एवं उदान से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ ।। ९ ।। मैं समान से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ । मैं जरामरण से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ ।। १० ।। मैं शोक एवं मोह से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ । मैं भूख एवं प्यास से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ ।। ११ ।। मैं शब्दोत्पत्ति आदि से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ । मैं हिरण्यगर्भ से भिन्न ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ ।। १२ ।। मैं स्वप्नावस्था से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ । मैं तैजस आदि से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ ।। १३ ।। मैं अपकार आदि से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ ।। मैं सभाज्ञान से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ ।। १४ ।। मैं अध्याहार से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ ।। मैं सत्त्व आदि गुणों से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ ।। १५ ।। मैं सद्भाव एवं असद्भाव से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ । मैं समस्त अवयवों से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ ।। १६ ।। मैं भेद तथा अभेद से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ । मैं सुषुप्ति स्थान से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ ।। १७ ।। मैं प्राज्ञ भाव से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ । मैं मकार आदि से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ ।। १८ ।। मैं मान तथा मेय से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ । मैं मिति (ज्ञान) तथा माता (ज्ञाता) भाव से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ ।। १९ ।। मैं साक्षित्व आदि से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ । मैं कार्य तथा कारण भाव से रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ ।। २० ।। मैं देह,

सत्यमानन्दमद्वयम्। ब्रह्माऽहमस्म्यहं ब्रह्म सविज्ञानं विमुक्त ओम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिः समाधिर्मोक्षदः परः॥ २२॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ब्रह्मज्ञानकथनं नाम अष्टसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३७८ ॥

ऊनाशीत्याधिकत्रिशततमोऽध्यायः

ब्रह्मज्ञानम्

अग्निरुवाच– **यज्ञैश्च देवानाप्नोति वैराजं तपसा पदम् । ब्रह्मणः कर्मसंन्यासाद् वैराग्यात् प्रकृतौ लयम्॥ १॥ ज्ञानात् प्राप्नोति कैवल्यं पञ्चैता गतयःस्मृताः। प्रीतितापविषादादेर्विनिवृत्तिर्विरक्तता ॥ २ ॥ सन्न्यासः कर्मणां त्यागःकृतानामकृतैः सह । अव्यक्तादौ विशेषान्ते विकारोऽस्मिन् निवर्त्तते ॥ ३ ॥ चेतनाचेतनान्यत्वज्ञानेन ज्ञानमुच्यते । परमात्मा च सर्वेषामाधारः परमेश्वरः ॥ ४ ॥ विष्णुनाम्ना च वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते । यज्ञेश्वरो यज्ञपुमान् प्रवृत्तैरिज्यते ह्यसौ ॥ निवृत्तैर्ज्ञानयोगेन ज्ञानमूर्त्तिः स चेक्ष्यते ।ह्रस्वदीर्घप्लुताद्यन्तु वचस्तत्पुरुषोत्तमः ॥ ६ ॥ तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानञ्च कर्म चोक्तं महामुने!। आगमोक्तं विवेकाच्च द्विधा ज्ञानं तथोच्यते ॥ ७॥ शब्दब्रह्मागममयं परं ब्रह्म विवेकजम् । द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये ब्रह्मशब्दपरञ्च यत् ॥ ८ ॥ वेदादिविद्या ह्यपरमक्षरं ब्रह्मसत्परम् । तदेतद्भगवद्वाच्यमुपचारेऽर्चनेऽन्यतः ॥ ९ ॥ सम्भर्त्तेति तथा भर्त्ता भकारोऽर्थद्वयान्वितः । नेता गमयिता स्त्रष्टा गकारोऽयं महामुने ! ॥१० ॥ ऐश्वर्य्यस्य समग्रस्य वीर्य्यस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥ ११॥ वसन्ति**

इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण तथा अहंकार से रहित, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि से मुक्त तुरीय ब्रह्म हूँ ।। २१ ।। मैं नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य स्वरूप आनन्दस्वरूप, अद्वितीय ब्रह्म हूँ । मैं विज्ञानस्वरूप ब्रह्म हूँ । मैं मुक्त एवं प्रणवस्वरूप हूँ । मैं समाधि तथा मोक्ष देने वाला परंब्रह्म हूँ ।। २२ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का ब्रह्मज्ञान वर्णन नामक तीन सौ अट्ठहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३७८ ॥

अग्निदेव ने कहा– वसिष्ठ जी ! मनुष्य यज्ञ के द्वारा देवताओं के, तपस्या के द्वारा विराट् के पद को, कर्मों के संन्यास के द्वारा ब्रह्म पद को तथा त्याग के द्वारा प्रकृति में लयको तथा ज्ञान के द्वारा कैवल्य को प्राप्त करता है । ये पाँच गतियाँ बतलायी गयी हैं ।। १।। प्रसन्नता, संताप एवं विषाद आदि से रहित हो जाने के भाव को विरक्ति कहते हैं । जो किए जा चुके हैं तथा जो किए जाने वाले हैं उन समस्त कर्मों के संकल्प तथा फल आदि के त्याग को कर्मसंन्यास कहते हैं । ऐसा हो जाने पर अव्यक्त से लेकर विशेष पर्यन्त सभी वस्तुओं के प्रति मन में विकार नहीं होता है ।। २-३ ।। अपने को समस्त चेतन एवं अचेतन वस्तुओं से भिन्न जानना ज्ञान है । परमात्मा सबों का आधार है, वही परमेश्वर है ।। ४ ।। वही वेदों तथा वेदान्तों में विष्णु नाम से अभिहित किया गया है । वही यज्ञेश्वर हैं । प्रवृत्ति मार्गानुयायी यज्ञों के द्वारा उसकी आराधना करते हैं ।। ५ ।। निवृत्ति मार्ग के लोगों द्वारा उस ज्ञान स्वरूप विष्णु का साक्षात्कार किया जाता है । ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत वचन उस पुरुषोत्तम के ही स्वरूप हैं ।। ६ ।। महामुने ! उसकी प्राप्ति के दो साधन बतलाए गए हैं ज्ञानयोग एवं कर्मयोग । ज्ञान दो प्रकार का होता है- आगमोक्त ज्ञान तथा विवेकजन्य ज्ञान ।। ७ ।। शब्द ब्रह्म का ज्ञान आगमजन्य और परंब्रह्म का ज्ञान विवेकजन्य है । ब्रह्म दो प्रकार से जानने योग्य हैं, शब्द ब्रह्म या अक्षर ब्रह्म । सत्वस्वरूप अक्षर तत्त्व परब्रह्म कहलाता है । यह परब्रह्म ही भगवत् शब्द का मुख्यार्थ है । पूजा आदि अन्य अर्थों में उसका औपचारिक प्रयोग होता है ।। ९ ।। भगवत् शब्द के भकार के अर्थ है, सम्भर्ता (पोषणकर्ता) एवं भर्ता (स्वामी) । हे महामुने ! गकार के तीन अर्थ हैं, नेता (कर्मों के फलों की प्राप्ति कराने वाला) गमयिता (प्रेरक) तथा सृष्टि करने वाला ।। १० ।। सम्पूर्ण ऐश्वर्य सम्पूर्ण

विष्णौ भूतानि स च धातुस्त्रिधात्मकः । एवं हरौ हि भगवान् शब्दोऽन्यत्रोपचारतः ॥ १२ ॥ उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामगतिं गतिम्।। वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाच्यो भगवानिति।। १३।। ज्ञानशक्तिः बलैश्वर्य्यं वीर्य्यं तेजांस्यशेषतः । भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः।।१४।। खाण्डिक्यजनकायाह योगं केशिध्वजः पुरा । अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या अस्वेस्वमिति या मतिः ॥ १५ ॥ अविद्याभवसम्भूतिर्वीजमेतद् द्विधा स्थितम्। पञ्चभूतात्मके देहे देही मोहनमाश्रितः ॥ १६।। अहमेतदितीत्युच्चैः कुरुते कुमतिर्मतिम् । इत्थञ्च पुत्रपौत्रेषु तद्देहोत्पतितेषु च ॥ १७।। करोति पण्डितः साम्यमनात्मनि कलेवरे । सर्वदेहोपकाराय कुरुते कर्म मानवः ॥ १८।। देहश्चान्यो यदा पुंसस्तदा बन्धाय तत्परम् । निर्वाणमय एवायमात्मा ज्ञानमयोऽमलः।। १९।। दुःखज्ञानमयोऽधर्मः प्रकृतेः स तु नात्मनः । जलस्य नाग्निना सङ्गः स्थालीसङ्गात् तथापि हि ॥ २० ॥ शब्दास्ते कादिका धर्मास्तत् कृता वै महामुने । तथात्मा प्रकृतौ सङ्गादहंमानमदिभूषितः ॥ २१ ॥ भजते प्राकृतवान् धर्मान् अन्यस्तेभ्यो हि सोऽव्ययः । बन्धाय विषयासङ्गं मनो निर्विषयं धिये ॥ २२ ॥ विषयात् तत् समाकृष्य ब्रह्मभूतं हरिं स्मरेत् । आत्मभावं नयत्येनं तद्ब्रह्मध्यायिनं मुने।। २३।। विचार्य्य स्वात्मनः शक्त्या लौहमाकर्षको यथा । आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः । २४।। तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते । विनिष्पन्दः समाधिस्थः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २५ ॥ यमैः सनियमैः स्थित्या प्रत्याहृत्या मरुज्जयैः । प्राणायामेन पवनैः प्रत्याहारेण चेन्द्रियैः ॥ २६।। वशीकृतैस्ततः कुर्य्यात् स्थितं चेतः शुभाश्रये । आश्रयश्चेतसो ब्रह्म मूर्त्तञ्चामूर्त्तकं द्विधा ।।२७।। सनन्दनादयो ब्रह्मभावभावनया युताः । कर्मभावनया चान्ये देवाद्याः स्थावरान्तकाः।। २८।। हिरण्यगर्भादिषु च ज्ञानकर्मात्मिका द्विधा । त्रिविधा भावना प्रोक्ता

वीर्य, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्ण ज्ञान तथा सम्पूर्ण वैराग्य इन सबों को समुदित रूप से भग कहा जाता है ।। ११ ।। भगवान् विष्णु में सम्पूर्ण भूत निवास करते हैं । वे सबों के धारक तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवस्वरूप हैं । इस भगवत् शब्द का साक्षात् प्रयोग श्रीहरि के लिए होता है और अन्य अर्थ में इसका औपचारिक (गौण) प्रयोग होता है ।। १२ ।। जो उत्पत्ति (सृष्टि), प्रलय, जीवों की गति एवं अगति, विद्या तथा अविद्या को जानता है, वही भगवान् कहलाने योग्य है ।। १३ ।। त्याज्य गुणों से रहित सम्पूर्ण ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य तथा तेज ये भगवत् शब्द के वाच्यार्थ हैं ।। १४ ।। प्राचीनकाल में राजा केशिध्वज ने खाण्डिक्यजनक को इस प्रकार से उपदेश दिया था । अनात्मा में जो आत्मबुद्धि होती है तथा अस्व में जो स्वबुद्धि होती है, वह संसार बन्ध के कारण रूप से अज्ञान के रूपों में स्थित है ।। १५ ।। देहाभिमानी जीव अज्ञानान्धकार से आच्छन्न होने के कारण देह में कुमति के कारण आत्मबुद्धि करके मैं देह ही हूँ इस रूप से देह को ही आत्मा मानने लगता है । इसी तरह अपने देह से उत्पन्न होने वाले पुत्र पौत्र आदि में ममता को सुदृढ कर लेता है ।। १६-१७ ।। विद्वान् पुरुष अनात्मा शरीर में समभाव रखता है । तथा वह मनुष्य समस्त देहों का उपकार करने के लिए कर्मों को करता ।। १८ ।। जब देह आत्मा से भिन्न है तब उसके द्वारा किए जाने वाले समस्त कर्म बन्धनकारक होते हैं। वस्तुतः आत्मा तो निर्वाणमय (शान्त) ज्ञानमय तथा निर्मल है ।। १९ ।। दुःख के अनुभव स्वरूप जो धर्म है, वह प्रकृति का है, आत्मा का नहीं । जल का अग्नि के साथ साक्षात् सम्बन्ध नहीं होता है, किन्तु आग पर रखी हुई बटलोही के संसर्ग से उसमें ताप जन्य खलखलाहट आदि शब्द होता है । हे महामुने ! इसी प्रकार से प्रकृति के संसर्ग से अहंकार तथा ममकार आदि दोषों से जी सम्पृक्त हो जाता है ।। २०-२१ ।। वह प्रकृति के धर्मों को अपना लेता यद्यपि वह प्राकृत धर्मों से पृथक् तथा निर्विकार है । विषयों में आसक्त रहने वाला मन बन्धन का साधन बन जाता है और विषयों से विरक्त मन मोक्ष का साधन होता है ।। २२ ।। इसलिए मन को विषयों से हटाकर ब्रह्मस्वरूप श्रीहरि का स्मरण करना चाहिए । जिस तरह चुम्बक लोहे को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है उसी तरह परब्रह्म अपने स्मरण करने वाले को जानकर उसे ब्रह्म स्वरूप बना देता है ।। २३ ।। अपने प्रयत्न की अपेक्षा से मन की जो विशिष्ट गति होती है उसका ब्रह्म से संयोग होने को ही योग कहते हैं । जो स्थिरभाव से ब्रह्म में समाधिस्थ होता है उसे परं ब्रह्म की प्राप्ति होती है ।। २४-२५ ।। अतएव यम, नियम, प्रत्याहार, प्राणायाम तथा प्रत्याहार के द्वारा इन्द्रियों को वश में करके, मन को शुभाश्रय में स्थिर करना चाहिए । मन का शुभाश्रयभूत ब्रह्म दो प्रकार का है- मूर्त ब्रह्म तथा अमूर्त ब्रह्म ।। २६-२७ ।। सनन्दन आदि सिद्धयोगी

विश्वं ब्रह्म उपास्यते ॥ २९ ॥ प्रत्यस्तमितभेदं यत् सत्तामात्रमगोचरम् । वचसामात्मसंवेद्यं तज्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥ ३०॥ तच्च विष्णोः परं रूपमरूपस्याजमक्षरम् । अशक्यं प्रथमं ध्यातुमतोमूर्त्तादिचिन्तयेत्॥ ३१॥ भगवद्भावमापन्नस्ततोऽसौ परमात्मना । भवत्यभेदो भेदश्च तस्याज्ञानकृतो भवेत् ॥ ३२॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ब्रह्मज्ञानकथनं नामोनाशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३७९॥

अशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अद्वैतब्रह्मविज्ञानम्

अग्निरुवाच– अद्वैतब्रह्मविज्ञानं वक्ष्ये यद्भरतोऽगदत् । शालग्रामे तपश्चक्रे वासुदेवार्चनादिकृत् ॥ १ ॥ मृगसङ्गान्मृगो भूत्वा ह्यन्तकाले स्मरन् मृगम् । जातिस्मरो मृगस्त्यक्त्वा देहं योगात् स्वतोऽभवत् ॥ २ ॥ अद्वैतब्रह्मभूतश्च जडवल्लोकमाचरत् । क्षत्ताऽसौवीरराजस्य विष्टियोगममन्यत॥३॥ उवाह शिविकामस्य क्षत्तुर्वचनचोदितः । गृहीतो विष्टिना ज्ञानी उवाहात्मक्षयाय तम् ॥ ४॥ ययौ जडगतिः पश्चात् ये त्वन्ये त्वरितं ययुः । शीघ्रान् शीघ्रगतीन् दृष्ट्वा अशीघ्रं तं नृपोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ राजोवाच– किं श्रान्तोऽस्यल्पमध्वानं त्वयोढा शिविका मम । किमायाससहो न त्वं पीवानसि निरीक्ष्यसे ॥ ६ ॥ ब्राह्मण उवाच– नाहं पीवान् न वैवोढा शिविका भवतो मया । न श्रान्तोऽस्मि न वायासो वोढव्योऽसि महीपते ! ॥ ७ ॥ भूमौ

ब्रह्मभावना से युक्त हैं तथा देवताओं से लेकर स्थावर पर्यन्त समस्त जगत् के प्राणी कर्म की भावना से युक्त हैं ।। २८ ।। हिरण्यगर्भ आदि में ब्रह्मभावना तथा कर्मभावना दोनों प्रकार की भावना है । सम्पूर्ण विश्व में ब्रह्म की भावना करके उपासना करनी चाहिए । इस तरह भावना तीन प्रकार की बतलायी गयी है । ब्रह्मभावना, कर्मभावना तथा विश्व में ब्रह्मात्मकता की भावना ।। २९ ।। जिसमें समस्त भेद समाप्त हो जाते हैं, जो सत्तामात्र और वाणी का अविषय हैं, जो स्वयं ही अनुभव करने योग्य है वही ब्रह्मज्ञान है ।। ३० ।। वह रूप हीन विष्णु का उत्कृष्ट स्वरूप है, जो अजन्मा और अविनाशी है । अमूर्त रूप का ध्यान करना पहले कठिन होता है, अतएव पहले मूर्त आदि का चिन्तन करना चाहिए ।। ३१ ।। ऐसा करने वाला मनुष्य भगवद्भाव को प्राप्त करके परमात्मा के साथ एकीभूत हो जाता है । भेद की प्रतीति तो अज्ञान के कारण होती है ।। ३२ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का ब्रह्मज्ञान वर्णन नामक तीन सौ उन्नासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३७९ ॥

अग्निदेव ने कहा– अब मैं भरत के द्वारा उपदिष्ट अद्वैत ब्रह्मविज्ञान का वर्णन करूँगा । राजा भरत शालग्राम क्षेत्र में भगवान् वासुदेव की अर्चना करते हुए तपस्या कर रहे थे ।। १ ।। उनकी एक मृग में आसक्ति हो गयी । मृत्यु के समय उस मृग का ही स्मरण करते हुए उन्होंने शरीर का त्याग किया और दूसरे जन्म में स्वयं मृग हुए किन्तु उन्हें पूर्व जन्म की यादगारी थी। उस मृग शरीर का त्याग करके स्वयं जड भरत रूप से ब्राह्मण पुत्र हुए ।। २ ।। वे स्वयम् अद्वैत ब्रह्मस्वरूप थे तथा लोक में जड़ के समान व्यवहार करते थे । उन्हें बलवान् समझकर सौवीर नरेश के सेवकों ने उन्हें राजा की पालकी ढोने के काम में लगा दिया ।। ३ ।। सेवक के कहने से वे सौवीराज की पालकी ढोने लगे । यद्यपि वे ज्ञानी थे फिर भी बेगार में पकड़ लिए जाने पर अपने कर्मों का क्षय करने के लिए राजा की पालकी ढोने लगे ।। ४ ।। किन्तु उनकी गति मन्द थी, वे पीछे की ओर लगे थे, उनको छोड़कर सभी शिविका वाहक तेज चलते थे । राजा ने देखा कि दूसरे कहार तेज चल रहे हैं तथा जड़ भरत धीरे चल रहे हैं । तब **राजा ने कहा–** अरे अभी तो तुम थोड़ी ही दूर चले हो, थक गए हो क्या ? क्या तुमसे परिश्रम सहा नहीं जाता

पादयुगं तस्थौ जङ्घे पादद्वये स्थिते । उरू जङ्घाद्वयावस्थौ तदाधारं तथोदरम् ॥ ८॥ वक्षःस्थलं तथा बाहूस्कन्धौ चोदरसंस्थितौ । स्कन्धस्थितेयं शिविका मम भारोऽत्र किं कृतः ॥ ९ ॥ शिविकायां स्थितञ्चेदं देहं त्वदुपलक्षितम् । तत्र त्वमहमप्यत्र प्रोच्यते चेदमन्यथा ॥ १०॥ अहं त्वञ्च तथाऽन्ये च भूतैरुह्याम पार्थिव ! । गुणप्रवाहपतितो गुणवर्गो हि यात्ययम्॥ ११॥ कर्मवश्या गुणाश्चैते सत्त्वाद्याः पृथिवीपते । अविद्यासञ्चितं कर्म तच्चाशेषेषु जन्तुषु ॥ १२॥ आत्मा शुद्धोऽक्षरः शान्तो निर्गुणः प्रकृतेः परः । प्रवृद्ध्यपचयौ नास्य एकस्याखिलजन्तुषु ॥ १३ ॥ यदा नोपचयस्तस्य यदा नापचयो नृप ! । तदा पीवानसीति त्वं कया युक्त्या त्वयेरितम् ॥ १४ ॥ भूजङ्घापादकट्यूरुजठरादिषु संस्थिता । शिविकेयं तथा स्कन्धे तदाभावः समस्त्वया॥ १५॥ तदन्यजन्तुभिर्भूप! शिविकोत्थानकर्मणा । शैलद्रव्यगृहीतोत्थः पृथिवीसम्भवोऽपिवा॥ १६॥ यथा पुंसः पृथग्भावः प्राकृतैः करणैर्नृप ! । सोढ़व्यः समहाभारः कतरो नृपते मया॥ १७॥ यद्द्रव्या शिविका चेयं तद्द्रव्यो भूतसंग्रहः । भवत्तोमेऽखिलस्यास्य समत्वेनोपबृंहितः ॥ १८॥ तच्छ्रुत्वोवाच राजा तं गृहीत्वाङ्घ्री क्षमाप्य च । प्रसादं कुरु त्यक्त्वेमां शिविकां ब्रूहि शृण्वते । यो भवान् यन्निमित्तं वा यदागमनकारणम्॥१९॥ ब्राह्मण उवाच– श्रूयतां कोऽहमित्येतद् वक्तुं नैव च शक्यते । उपभोगनिमित्तञ्च सर्वत्रागमनक्रिया॥ २०॥ सुखदुःखोपभोगौ तु तौ देशाद्युपपादकौ । धर्माधर्मोद्भवौ भोक्तुं जन्तुर्देशादिमृच्छति॥ २१॥ राजोवाच– योऽस्ति सोहमिति ब्रह्मन् ! कथं वक्तुं न शक्यते । आत्मन्येष न दोषाय शब्दोऽहमिति यो द्विज !॥२२॥ ब्राह्मण उवाच– शब्दोऽहमिति दोषाय नात्मन्येष तथैव तत्। अनात्मन्यात्मविज्ञानं शब्दो वाभ्रान्तिलक्षणः॥२३॥

है क्या ? देखने में तो मोटे हो ।। ६ ।। **ब्राह्मण ने कहा–** राजन् ! न तो मैं मोटा हूँ और न तो मैंने तुम्हारी पालकी ढोयी है । न तो मैं थका हूँ और न तो मुझे परिश्रम करना पड़ा है । न तो मुझपर तुम्हारा भार ही है ।। ७ ।। पृथिवी पर दोनों पैर हैं, पैरों पर जंघाएँ हैं, जंघाओं के ऊपर ऊरु हैं और उरुओं के ऊपर उदर है ।। ८ ।। उदर के ऊपर वक्षःस्थल, भुजाएँ एवं कन्धे हैं, कन्धे के ऊपर तुम्हारी पालकी हैं मेरे ऊपर कौन सा भ्यार है ।। ९ ।। पालकी में तो तुम्हारा शरीर है अतएव तुम पालकी में हो और मैं यहाँ हूँ, यह कहना मिथ्या है ।।१०।। राजन्, तुम, मैं तथा अन्य जितने भी जीव हैं, सबों का भार पञ्चभूतों द्वारा ही ढोया जाता है, ये पञ्चभूत भी गुणों के प्रवाह में पड़कर चल रहे हैं ।। ११ ।। राजन् ! ये सत्त्व आदि गुण कर्मों के अधीन हैं और कर्म अविद्या (अज्ञान) से सञ्चित है, जो समस्त जीवों मेकं विद्यमान है ।। १२ ।। आत्मा तो शुद्ध, अक्षर (अविनाशी) शान्त, निर्गुण तथा प्रकृति से परे है । आत्मा में वृद्धि और ह्रास नहीं होते । वह एक ही समस्त जीवों में व्याप्त है ।। १३ ।। राजन यदि आत्मा की न तो वृद्धि होती है और न तो उसका ह्रास होता है तब आपने किस युक्ति के आधार पर मुझे मोटे हो यह कहा ? ।। १४ ।। यदि पृथिवी, पैर, जंघा, ऊरु, कटि और उदर आदि पर रखी हुई यह शिविका मेरे लिए भार है तब तो उसी तरह तुम्हारे लिए भी हो सकती है ।। १५।। राजन् ! इस तरह तो अन्य जन्तुओं ने भी केवल पालकी ही नहीं उठा रखी है अपितु पर्वत तथा पृथिवी पर उत्पन्न होने वाले समस्त द्रव्यों को उठा रखा है ।। १६ ।। राजन् ! यदि पुरुष (जीव) प्राकृतिक साधनों से भिन्न है तो फिर मुझे कौन सा महान् भारसहना करना पड़ रहा है ? ।। १७ ।। जिन द्रव्यों से यह शिविका बनी है उन्हीं द्रव्यों से मेरे तुम्हारे तथा अन्य समस्त प्राणियों के शरीर का निर्माण हुआ है । इसकी पुष्टि समान द्रव्य से होती है ।। १८ ।। यह सुनकर राजा पालकी से उतरकर ब्राह्मण का चरण पकड़ लिया और क्षमा याचना माँगते हुए कहा- भगवन्! यह पालकी छोड़ दीजिए, मुझपर कृपा कीजिए । मुझे तत्वों का उपदेश दीजिए मैं सुनना चाहता हूँ । आप यह बतलाएँ कि आप कौन हैं ? किस निमित्त अथवा किस कारण से यहाँ आए हैं ।। १९ ।। ब्राह्मण ने कहा- राजन् ! मैं कौन हूँ यह नहीं कहा जा सकता । कर्मों का फल भोगने के लिए सर्वत्र आया जाया जाता है ।। २० ।। सुख दुःख के भोग ही विभिन्न देशों (शरीरों) आदि की प्राप्ति के कारण हैं । धर्म एवं अधर्म जन्य सुख एवं दुःख को भोगने के लिए लिए जीव किसी भी देश अथवा शरीर को प्राप्त करता है ।। २१ ।। **राजा ने कहा–** ब्रह्मन् जो (आत्मा) है उसे मैं हूँ, इस रूप से क्यों नहीं कहा जा सकता है ? आत्मा के लिए 'मैं' इस शब्द का प्रयोग तो दोषयुक्त नहीं प्रतीत होता है ।। २२ ।। **ब्राह्मण ने कहा–** राजन् ! आत्मा के लिए 'मैं'

यदा समस्तदेहेषु पुमानेको व्यवस्थितः । तदाहि को भवान्कोऽहमित्येतद्विफलं वचः ॥ २४॥ त्वं राजा शिविका चेयं वयं वाहाः पुरःसराः । अयञ्च भवतो लोको न सदेतन्नृपोच्यते॥ २५॥ वृक्षाद् दारु ततश्चेयं शिविका त्वदधिष्ठिता । कावृक्षसंज्ञा जातास्य दारुसंज्ञाऽथ वा नृप ॥ २६ ॥ वृक्षारूढ़ो महाराजो नायं वदति चेतनः । न च दारुणि सर्वस्त्वां ब्रवीतिशिविकागतम्॥ २७॥ शिविकादारुसङ्घातो रचनास्थितिसंस्थितः । अन्विष्यतां नृपश्रेष्ठ ! तद्भेदे शिविका त्वया ॥ २८ ॥ पुमान् स्त्री गौरयं वाजी कुञ्जरोविहगतस्तरुः । देहेषु लोकसंज्ञेयं विज्ञेया कर्महेतुषु ॥ २९॥ जिह्वा ब्रवीत्यहमिति दन्तौष्ठौ तालुकं नृप। एते नाहं यतः सर्व्वे वाङ्निष्पादनहेतवः ॥ ३०॥ यै हेतुर्भिवदत्येषा वागेवाहमिति स्वयम् । तथापि वाङ् नाहमेतदुक्तं मिथ्या न युज्यते ॥ ३१॥ पिण्डः पृथग् यतः पुंसः शिरः पादादिलक्षणः । ततोऽहमिति कुत्रैतां संज्ञां राजन् करोम्यहम् ॥ ३२ ॥ यदन्योऽस्ति परः कोऽपि मत्तः पार्थिवसत्तम् ! । तदेषोऽहमयं चान्यो वक्तुमेवमपीष्यते॥ ३३॥ परमार्थभेदो न नरो न पशुर्न च पादपः । शरीराश्च विभेदाश्च य एते कर्मयोनयः ॥ ३४ ॥ यस्तु राजेति यल्लोके यच्च राजभटात्मकम् । तच्चान्यच्च नृपेत्थन्तु न सत् सम्यगनामयम् ॥ ३८ ॥ त्वं राजा सर्वलोकस्य पितुः पुत्रो रिपोरिपुः । पत्न्याः पतिः पिता सूनोः कस्त्वां भूप ! वदाम्यहम् ॥ ३६ ॥ त्वं किमेतच्छिरः किन्नु शिरस्तव तथोदरम् । किमु पादादिकं त्वं वै तवैतत् किं महीपते ! ॥ ३७ ॥ समस्तावयवेभ्यस्त्वं पृथग्भूतो व्यवस्थितः। कोऽहमित्यत्र निपुणं भूत्वा चिन्तय

शब्द का प्रयोग दोषयुक्त नहीं है, यह तुम्हारा कहना विल्कुल ठीक है, किन्तु अनात्मा में आत्मा का बोध कराने वाला यह अहम् (मैं) शब्द तो दोषयुक्त है ही । अथवा भ्रमपूर्ण अर्थ को लक्षित करने वाला शब्द तो दोषयुक्त होता ही है ।। २३ ।। जब सम्पूर्ण शरीरों में एक ही आत्मा व्यवस्थित है तो फिर कौन तुम हो और कौन मैं हूँ यह कहना व्यर्थ है ।। २४ ।। राजन् ! तुम राजा हो, हम लोग कहार हैं, यह पालकी है, आगे चलने वाले सिपाही हैं तथा यह तुम्हारा देश है, ये सब के सब मिथ्या व्यवहार हैं ।। २५ ।। वृक्ष से लकड़ी होती है, लकड़ी से यह पालकी बनी है जिस पर तुम बैठे हो, तो राजन् ! इसे कौन सा वृक्ष अथवा कौन सी लकड़ी कहा जाय ? ।। २६ ।। कोई भी चेतन यह नहीं कहता है कि महाराज वृक्ष अथवा लकड़ी पर चढ़े हैं। सब लोग यही कहते हैं कि तुम पालकी में बैठे हो ।। २७ ।। रचना की कला विशेष से निर्मित यह पालकी लकड़ी का समुदाय मात्र है । तुम इसकी लकड़ियों को अलग-अलग करके उनमे से पालकी ढूँढ़ निकालो तो ।। २८ ।। यह पुरुष, यह स्त्री, यह गौ, यह घोड़ा, यह हाथी, यह पक्षी तथा यह वृक्ष है, इस प्रकार से कर्मजन्य भिन्न-भिन्न शरीरों में लोगों ने भिन्न-भिन्न नामों का आरोप कर रखा है ।। २९ ।। जिह्वा 'अहम्' मैं का उच्चारण करती है । दाँत, ओठ, तालु और कण्ठ आदि भी उसका उच्चारण करते हैं, किन्तु ये सब (अहम्) शब्द वाच्य नहीं हैं, अपितु ये सब वाणी के उच्चारण के साधन मात्र हैं ।। ३० ।। राजन् वाणी जिन हेतुओं से अपने को मैं कहती है, यदि उन्हीं हेतुओं से यह कहा जाय कि मैं वाणी नहीं हूँ, तो यह मिथ्या नहीं होगा।।३१।। राजन् ! चूँकि शिर तथा पैर आदि के समूह रूप शरीर से भिन्न ही पुरुष है, अतएव राजन् मैं इस शब्द के द्वारा किसको अभिहित किया जाय ।। ३२ ।। राजन् श्रेष्ठ ! यदि मुझसे (आत्मा से) भिन्न कोई दूसरा होता तब तो यह मैं हूँ और यह दूसरा है ऐसा कहा भी जा सकता था ।। ३३ ।। पर्वत, पशु, वृक्ष आदि में कोई भी वास्तविक भेद नहीं है, शरीरों के जितने भी भेद प्रतीत होते हैं वे कर्मजन्य हैं ।। ३० ।। राजन् ! राजा, राजसेवक तथा इसी प्रकार की अन्य जितनी भी संज्ञाएँ हैं वे सत्य एवं निर्दोष नहीं हैं । (वे सबके सब भ्रान्तिजन्य हैं।।३५।। राजन् ! तुम सम्पूर्ण प्रजाओं के राजा हो, अपने पिता के पुत्र हो, शत्रु के शत्रु हो, अपनी पत्नी के पति हो तथा अपने पुत्र के पिता हो, इन सबों में मैं तुम्हें किस नाम से पुकारूँ ।। ३६ ।। पृथिवीपते ! क्या तुम यह शिर हो ? अथवा शिर तुम्हारा है ? इसी तरह क्या तुम उदर हो अथवा उदर तुम्हारा है ? या तुम ये पैर आदि हो अथवा पैर आदि तुम्हारे हैं ? ।। ३७ ।। तुम इन समस्त अङ्गों से पृथक् रूप से स्थित हो, अतएव राजन् ! तुम बड़ी ही सावधानी से चिन्तन करो कि तुम कौन हो ? इन सारी बातों को सुनकर राजा ने श्रीहरि स्वरूप उस ब्राह्मण से कहा।।३८।। **राजा ने कहा**— ब्रह्मन् ! मैं तैयार होकर महीर्षि कपिल से आत्मकल्याण के विषय में कुछ पूछने के लिए जा रहा था । आप मेरे लिए पृथिवी पर महर्षि कपिल के अंश हैं अतएव

पार्थिव ! । तच्छ्रुत्वोवाच राजा तमवधूतं द्विजं हरिम् ॥ ३८ ॥ राजोवाच– श्रेयोऽर्थमुद्यतः प्रष्टुं कपिलर्षिमहं द्विज ! । तस्यांशः कपिलर्षेस्त्वं मत्कृते ज्ञानदो भुवि। ज्ञानवीच्युदधेर्यस्माद् यच्छ्रेयस्तच्च मे वद ॥ ३९॥ ब्राह्मण उवाच– भूयः पृच्छसि किं श्रेयः परमार्थं न पृच्छसि । श्रेयांस्यपरमार्थानि अशेषाण्येव भूपते॥ ४०॥ देवताराधनं कृत्वा धनसम्पत्तिमिच्छति । पुत्रानिच्छति राज्यञ्च श्रेयस्तस्यैव किं नृप॥ ४१॥ विवेकिनस्तु संयोगः श्रेयो यः परमात्मनः । यज्ञादिका क्रिया न स्यात् नास्ति द्रव्योपपत्तिता ॥ ४२॥ परमार्थात्मनोर्योगः परमार्थ इतीष्यते । एको व्यापि समः शुद्धो निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥ ४३॥ जन्मवृद्ध्यादिरहित आत्मा सर्वगतोऽव्ययः । परं ज्ञानमयोऽसङ्गी गुणजात्यादिभिर्विभुः॥४४॥ निदाघऋभुसंवादं वदामि द्विज ! तं शृण । ऋभुर्ब्रह्मसुतो ज्ञानी तच्छिष्योऽभूत् पुलस्त्यजः ॥ ४५ ॥ निदाघः प्राप्तविद्योऽस्मान्नगरे वौ पुरे स्थितः। देविकायास्तटे तञ्च तर्कयामास वै ऋभुः ॥ ४६॥ दिव्ये वर्षसहस्रेऽगान्निदाघमवलोकितुम्। निदाघो वैश्वदेवान्ते भुक्तवान्नं शिष्यमब्रवीत् । भुक्त्यन्ते तृप्तिरुत्पन्ना तुष्टिदा साऽक्षया यतः ॥ ४७ ॥ ऋभुरु वाच– क्षुदस्ति यस्य भुक्तेऽन्ने तुष्टिर्ब्राह्मण! जायते । न मे क्षुदभवत् तृप्तिं कस्मात् त्वं परिपृच्छसि ॥ ४८॥ क्षुत्तृष्णे देहधर्माख्ये न ममैते यतो द्विज ! । पृष्टोऽहं तत् त्वया ब्रूयां तृप्तिरस्त्येव मे सदा ॥ ४९॥ पुमान् सर्वगतो व्यापी आकाशवदयं यतः । अतोऽहं प्रत्यगात्माऽस्मीत्येतदर्थे भवत् कथम् ॥ ५० ॥ सोऽहं गन्ता न चागन्ता नैकदेशनिकेतनः। त्वं चान्यो न भवेन्नापि नान्यस्त्वत्तोऽस्मि वाप्यहम् ॥ ५१ ॥ मृण्मयं हि गृहं यद्वन्मृदालिप्तं स्थिरीभवेत् । पार्थिवोऽयं तथा देहः पार्थिवैः परमाणुभिः ॥ ५२ ॥ ऋभुरस्मि तवाचार्य्यः प्रज्ञादानाय ते द्विज ! । इहागतोऽहं यास्यामि परमार्थस्तवोदितः॥ ५३॥ एकमेवमिदं विद्धि न भेदः सकलं जगत् । वासुदेवाभिधेयस्य स्वरूपं परमात्मनः ॥ ५४॥ ऋभुर्वर्षसहस्रान्ते पुनस्तन्नगरं ययौ । निदाघं नगरप्रान्ते एकान्ते स्थितमब्रवीत् ॥ ५५॥ एकान्ते स्थीयते कस्मान्निदाघं

मुझे ज्ञान का उपदेश दें । जिससे ज्ञान सागर को प्राप्त कर मुझे परम कल्याण की प्राप्ति हो ।। ३९ ।। **ब्राह्मण ने कहा–** राजन् ! तुम फिर कल्याणकारी साधन पूछते हो परमार्थ के विषय में नहीं पूछ रहे हो । राजन् सभी कल्याण परमार्थ हैं ।। ४० ।। मनुष्य देवताओं की आराधना करके धन-सम्पत्ति प्राप्त करना चाहता है, पुत्रों तथा राज्य को चाहता है किन्तु वस्तुतः यही कल्याण है क्या ? । ४१ ।। विवेकी पुरुष की दृष्टि में परमात्मा की प्राप्ति ही श्रेय है, वह यज्ञादि की क्रिया तथा द्रव्य की प्राप्ति को श्रेय नहीं मानता है ।। ४२ ।। परमार्थ आत्मा एवं परमात्मा के योग को परमार्थ माना जाता है । परमात्मा एक, व्यापक, सम, शुद्ध, निर्गुण तथा प्रकृति से परे है ।। ४३ ।। आत्मा सर्वव्यापक, निर्विकार जन्म तथा वृद्धि से रहित उत्कृष्ट, ज्ञानस्वरूप, गुण तथा जाति रहित तथा विभु है ।। ४४ ।। राजन् ! अब मैं निदाघ तथा ऋभु के संवाद को सुनाता हूँ उसे तुम ध्यान पूर्वक सुनो । ऋभु ब्रह्मा जी के पुत्र तथा ज्ञानी थे, पुलस्त्य जी के पुत्र निदाघ ने उनका शिष्यत्व स्वीकार किया ।। ४५ ।। उनसे विद्या प्राप्त करके निदाघ देविका नदी के तट पर एक नगर में जाकर रहने लगे तो ऋभु ने उनके निवास स्थन का पता लगाया ।। ४६ ।। देवताओं के एक हजार वर्ष बीत जाने पर ऋभु निदाघ को देखने के लिए गए । उस समय निदाघ वैश्वदेव के पश्चात् अन्न खाकर अपने शिष्य से कह रहे थे । भोजन के बाद मुझे तृप्ति हुई है क्योंकि भोजन ही अक्षय तृप्ति देने वाला है ।। ४७ ।। **ऋभु ने कहा–** ब्राह्मण जिसको भूख लगी होती है, उसी को भोजन से तृप्ति होती है । मुझे भूख नहीं लगी है अतएव मुझसे तृप्ति के विषय में क्यों पूछते हो ।। ४८ ।। द्विज भूख और प्यास तो देह के धर्म हैं मेरे (आत्मा) के नहीं । तुमने मुझसे पूछा है, अतः मैं बतलाता हूँ मुझको हमेशा तृप्ति बनी रहती है ।। ४९ ।। चूँकि पुरुष आकाश की भाँति सर्वत्र व्याप्त रहता है मैं वह प्रत्यगात्मा ही हूँ अतएव आप कहाँ से आ रहे हैं यह प्रश्न मेरे विषय में कैसे हो सकता है? ।। ५० ।। मैं न तो कहीं आता हूँ और न कहीं जाता हूँ और न किसी एक स्थान में रहता हूँ न तो तुम मुझसे अन्य हो और न तो मैं ही तुमसे अन्य हूँ ।। ५१ ।। जैसे मिट्टी का घर मिट्टी से लिपने पर सुदृढ़ होता है और उसी तरह पार्थिव शरीर पार्थिव अन्न परमाणुओं से सुदृढ़ होता है ।। ५२ ।। द्विज मैं तुम्हारा आचार्य ऋभु हूँ । तुझे ज्ञान देने के लिए आया हूँ । अब मैं जाऊँगा । तुम्हें परमार्थ तत्त्व का उपदेश

ऋभुरब्रवीत् ॥ ५५ ॥ निदाघ उवाच– **भो विप्र ! जनसंवादो महानेष नरेश्वरः । प्रविवीक्षु पुरं रम्यं तेनात्र स्थीयते मया ॥ ५६॥** ऋभुरुवाच– **नराधिपोऽत्र कतमः कतमश्चेतरो जनः । कथ्यतां मे द्विजश्रेष्ठ ! त्वमभिज्ञो द्विजोत्तम॥ ५७॥ योऽयं गजेन्द्रमुन्मत्तमद्रिशृङ्गसमुत्थितम् । अधिरूढ़ो नरेन्द्रोऽयं परिवारस्तथेतरः ॥ ५८॥ गजो योऽयमधो ब्रह्मन्नुपर्य्येव स भूपतिः । ऋभुराह गजः कोऽत्र राजा चाह निदाघकः ॥ ५९॥ ऋभौर्निदाघ आरूढ़ो दृष्टान्तं पश्यवाहनम् । उपर्य्यहं यथा राजा त्वमधः कुञ्जरो यथा ॥ ६०॥ ऋभुः प्राह निदाघं तं कतमस्त्वामहं वदे । उक्तो निदाघस्तन्नत्वा प्राह मे त्वं गुरुर्ध्रुवम्॥ ६१॥ नान्यस्या द्वैतसंस्कारसंस्कृतं मानसं तथा । ऋभुः प्राह निदाघं तं ब्रह्मज्ञानाय चागतः । परमार्थं सारभूतमद्वैतं दर्शितं मया ॥ ६२ ॥** ब्राह्मण उवाच– **निदाघोऽप्युपदेशेन तेनाद्वैतपरोऽभवत् । सर्वभूतान्यभेदेन ददृशे स तदात्मनि ॥ ६३ ॥ अवाप मुक्तिं ज्ञानात् स तथा त्वं मुक्तिमाप्स्यसि । एकः समस्तं त्वञ्चाहं विष्णुः सर्वगतो यतः ॥ ६४ ॥ पीतनीलादिभेदेन यथैकं दृश्यते नभः । भ्रान्तिदृष्टिभिरात्मापि तथैकः स पृथक् पृथक् ॥ ६५॥** अग्निरुवाच– **मुक्तिं ह्यवाप भवतो ज्ञानसारेण भूपतिः । संसाराज्ञानवृक्षारिज्ञानं ब्रह्मेति चिन्तय ॥ ६६॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये अद्वैतब्रह्मविज्ञानकथनं नामाशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३८० ॥

दे दिया ।। ५३ ।। तुम इस सम्पूर्ण जगत् को एकमात्र परमात्मा श्री वासुदेव का स्वरूप समझो इसमें भेद नहीं है ।। ५४ ।। पुनः एक हजार वर्ष के बाद ऋभु उस नगर में गये, जबकि निदाघ नगर के सन्निकट में एकान्त में बैठे थे । ऋभु ने निदाघ से कहा । तुम एकान्त में क्यों बैठे हो ? ।। ५५ ।। **निदाघ ने कहा–** विप्र ! राजा इस मनोहर नगर में प्रवेश करना चाहता है । मार्ग में बहुत बड़ी भीड़ है इसलिए एकान्त में खड़ा हूँ ।। ५६ ।। **ऋभु ने कहा–** ब्राह्मण तुम यहाँ की सारी बातें जानते हो । बताओ इसमें राजा कौन है और उससे भिन्न कौन है ।। ५७।। **निदाघ ने कहा–** ब्रह्मन् ! पर्वत के समान ऊँचे मतवाले गजराज पर जो चढ़ा है वही राजा है और अन्य उसके परिवार के लोग हैं ।। ५८ ।। नीचे वाला जीव हाथी है और ऊपर वाला जो है वही राजा है ।। ५८।। **ऋभु ने कहा–** मुझे समझाकर बतलाओ कि कौन राजा है और कौन हाथी ? ।। ५९ ।। इस पर निदाघ ऋभु के ऊपर चिढ़ गए और कहे दृष्टान्त के रूप में तुम वाहन को देखो । मैं राजा के समान ऊपर हूँ और तुम हाथी के समान नीचे हो ।। ६० ।। ऋतु ने निदाघ से कहा कि तुम यह बतलाओ मैं कौन हूँ और तुम कौन हो ? ।। ऐसा कहने पर निदाघ ने उन्हें प्रणाम करके कहा तुम निश्चय मेरे गुरु ऋभु हो ।। ६१ ।। किसी दूसरे का मन इस प्रकार से अद्वैत संस्कार से संस्कृत नहीं रहता है । ऋभु ने निदाघ से कहा- मैं तुम्हें ब्रह्मज्ञान कराने के लिए आया था और तुम्हें परमार्थ का सारभूत अद्वैत का ज्ञान करा दिया ।। ६२ ।। **ब्राह्मण (जड़भरत) ने कहा–** उस उपदेश के द्वारा निदाघ भी अद्वैत परायण हो गये और समस्त प्राणियों को अपने से अभिन्न रूप से देखने लगे । ६३ ।। उन्होंने ज्ञान के माहात्म्य से मुक्ति प्राप्त कर ली और तुम भी मुक्ति प्राप्त करोगे । तुम, मैं यह सम्पूर्ण जगत् एकमात्र विष्णु का स्वरूप हैं। सबों में विष्णु व्याप्त हैं ।। ६४ । जैसे एक ही आकाश उपाधि भेद के कारण नीला आदि अनेक रूप से दिखायी पड़ता है, उसी तरह भ्रान्तिपूर्ण दृष्टि वालों को यह एक ही आत्मा पृथक्-पृथक् दिखायी देता है ।। ६५ ।। **अग्निदेव ने कहा-** वसिष्ठ जी ! जड़भरत द्वारा उपदिष्ट ज्ञानसार के माहात्म्य से सौवीर नरेश ने भी मुक्ति प्राप्त कर ली । ज्ञानस्वरूप ब्रह्म ही इस संसाररूपी वृक्ष का शत्रु है इसका हमेशा आप चिन्तन करते रहें ।। ६६ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अद्वैतब्रह्म विज्ञान वर्णन नामक तीन सौ अस्सीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३८० ॥

एकाशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

गीतासारः

अग्निरुवाच– **गीतासारं प्रवक्ष्यामि सर्वगीतोत्तमोत्तमम् । कृष्णोऽर्जुनाय यमाह पुरा वै भुक्तिमुक्तिदम् ॥ १ ॥** श्रीभगवानुवाच– **गतासुरगतासुर्वा न शोच्यो देहवानजः । आत्माऽजरोऽमरोऽभेद्यस्तस्माच्छोकादिकं त्यजेत् ॥ २ ॥ ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते । सङ्गात् कामस्ततः क्रोधः क्रोधात् सम्मोह एव च ॥ ३ ॥ सम्मोहात् स्मृतिविभ्रंशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति । दुःसङ्गहानिः सत्सङ्गान्मोक्षकामी च कामनुत् ॥ ४ ॥ कामत्यागादात्मनिष्ठः स्थिरप्रज्ञस्तदोच्यते । या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्त्ति संयमी ॥ ५ ॥ यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने । आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्य्यं न विद्यते ॥ ६ ॥ नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चनः । तत्त्ववित् तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ॥ ७॥ गुणागुणेषु वर्त्तन्ते इति मत्त्वा न सज्जते । सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यति ॥ ८॥ ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन ! । ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ॥ ९ ॥ लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा । सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥ १०॥ ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः । शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ ११॥ न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति । दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ॥ १२ ॥ मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥ १३॥ चतुर्विधा**

अग्निदेव ने कहा– अब मैं गीता का सार बतला रहा हूँ जो गीता का सर्वोत्तम अंश है । जिस भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले गीताशास्त्र का उपदेश पूर्वकाल में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिया ।। १ ।। **श्रीभगवान् ने कहा–** अर्जुन ! किसी मरे अथवा जीवित मनुष्य के विषय में शोक नहीं करना चाहिए । शरीरधारी आत्मा अजन्मा, अजर, अमर एवं अभेद्य है, अतएव उसके लिए शोक त्याग देना चाहिए ।। २ ।। विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की विषयों में आसक्ति हो जाती है । आसक्ति से काम, काम से क्रोध तथा क्रोध से सम्मेह होता है।।३।। सम्मोह से स्मृति का नाश होता है, बुद्धि के नाश से विनाश हो जाता है । सत्पुरुषों की संगति से बुरे सङ्ग छूट जाते हैं । इसके पश्चात् मनुष्य समस्त कामनाओं का त्याग करके मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा करने लग जाता है ।। ४ ।। कामनाओं का त्याग हो जाने से मनुष्य आत्मनिष्ठ हो जाता है । उसी को स्थिरप्रज्ञ कहते हैं । सम्पूर्ण संसारी प्राणियों के लिए जो रात्रि है अर्थात् संसारी जीव जिस परमात्म प्राप्ति के विषय में लापरवाह रहते हैं उसके विषय में संयमी पुरुष सावधान रहता है ।। ५ ।। जिन विषयों के भोगों में संसारी जीव सावधान रहते हैं, उन विषयों की ओर से आत्मनिष्ठ पुरुष पराङ्मुख रहता है । जो मनुष्य अपने आप में सन्तुष्ट रहता है उसके लिए कोई भी कर्तव्य अवशिष्ट नहीं रहता है ।। ६ ।। उस आत्मनिष्ठ पुरुष को कुछ करने से न तो कोई प्रयोजन है और न तो कुछ नहीं करने से ही । हे महाबाहो ! गुण एवं कर्मों के विभाग के तत्त्व को जानने वाला पुरुष यह समझकर कहीं आसक्त नहीं होता है कि प्राकृतिक गुण गुणों में बरत रहे हैं ।। ७ ।। अर्जुन ! तुम ज्ञान रूपी नौका के सहारे समस्त पापों को पार कर जाओगे । अर्जुन ज्ञान रूपी अग्नि समस्त कर्मों को भस्म कर देती है ।। ८ ।। जो समस्त कर्मों को बहन कर परमात्मा को समर्पित करके उन्हें अनासक्त भाव से करता है, वह उसी तरह ससे पापोंसे लिप्त नहीं होता जिस तरह कमल पत्र पर जल नहीं चढ़ता है ।। ९ ।। सर्वत्र समदर्शी योगी पुरुष समस्त भूतों में परमात्मा को तथा परमात्मा में समस्त भूतों को देखता है ।। १०।। योगभ्रष्ट पुरुष का जन्म पवित्र श्रीमानों के घर में होता है । हे तात ! कल्याणमय शुभ कार्यों को करने वाले पुरुष की कभी दुर्गति नहीं होती है ।। ११।। मेरी यह दिव्य माया तीनों गुणों से युक्त है तथा इसको पार करना कठिन है । वे ही लोग इसको पार कर पाते हैं जो मेरी शरणागति करते हैं ।। १२ ।। आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी एवं ज्ञानी ये चार प्रकार के लोग मेरा भजन करते हैं । इनमें से ज्ञानी तो केवल मुझमें ही स्थित रहता हे ।। १३ ।। अक्षर ब्रह्म परमतत्त्व है स्वभाव

भजन्ते मां ज्ञानी चैकत्वमास्थितः। अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते॥ १४॥ भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः । अधिभूतं क्षरोभावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ॥१५॥ अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर। अन्तकाले स्मरन् माञ्च मद्भावं यात्यसंशयः ॥ १६॥ यं यं भावं स्मरन्नन्ते त्यजेद् देहं तमाप्नुयात् । प्राणं न्यस्य भ्रुवोर्मध्ये अन्ते प्राप्नोति मत्परम् ॥ १७ ॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म वदन् देहं त्यजन् तथा । ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्ताः सर्वे मम विभूतयः ॥ १८॥ श्रीमन्तश्चोर्जिताः सर्वे ममांशाः प्राणिनः स्मृताः । अहमेको विश्वरूपं इति ज्ञात्वा विमुच्यते ॥ १९ ॥ क्षेत्रं शरीरं यो वेत्ति क्षेत्रज्ञः स प्रकीर्त्तितः । क्षेत्रक्षेत्रयज्ञोर्ज्ञानं यत् तज् ज्ञानं मतं मम ॥ २० ॥ महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च । इन्द्रियाणि दशैकञ्च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥ २१॥ इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः । एतत् क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ २२॥ अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् । आचार्य्योपासनं शौचं स्थैर्य्यमात्मविनिग्रहः॥ २३ ॥ इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च । जन्म मृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्॥२४॥ असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु। नित्यञ्च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ २५ ॥ मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी । विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ २६ ॥ अध्यात्मज्ञाननिष्ठत्वं तत्त्वज्ञानानुदर्शनम् । एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ २७॥ ज्ञेयं यत् तत् प्रवक्ष्यामि यं ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते । अनादि परमं ब्रह्म सत्त्वं नाम तदुच्यते ॥ २८ ॥ सर्वतः पाणिपादन्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् । सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ २९॥ सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् । असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ ३०॥ बहिरन्तश्च

अर्थात् जीवात्मा को अध्यात्म कहते हैं । भूतों की उत्पत्ति एवं वृद्धि करने वाले विसर्ग को कर्म कहते हैं ।। १४ ।। विनाशशील पदार्थो को अधिभूत कहते हैं तथा पुरुष अधिदैवत है । हे देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन इस देह के भीतर अन्तर्यामी रूप से रहने वाला मैं ही अधियज्ञ हूँ।। १५।। जो अन्तिम समय में मेरा स्मरण करते हुए शरीर का त्याग करता है, वह मेरे भाव को प्राप्त करता है । अन्त में जिन-जिन पदार्थो को स्मरण करते हुए प्राणी शरीर का त्याग करता है, वह उसी योनि को प्राप्त करता है ।। १६।। मृत्यु के समय जो प्राणों को भौहों के मध्य में स्थापित करके 'ओम्' इस एक अक्षर वाले ब्रस्म का उच्चारण करते हुए देह का त्याग करता है- वह मुझको ही प्राप्त करता है ।। १७।। ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सम्पूर्ण जगत् मेरी विभूति है । समस्त ऐश्वर्य सम्पन्न तथा तेजःसम्पन्न प्राणी मेरे अंश हैं ।। १८ ।। अकेला मैं हूँ और सम्पूर्ण जगत् मेरा रूप (शरीर) है इस तरह से जानकर प्राणी मुक्त हो जाता है ।। १९ ।। जो इस क्षेत्र रूपी शरीर को जानने वाला है उसको क्षेत्रज्ञ कहते हैं । क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ का जो ज्ञान है वह ज्ञान मुझको अभिप्रेत है ।। २० ।। पाञ्चों महाभूत, अहंकार, बुद्धि प्रकृति, ग्यारह इन्द्रियाँ तथा पाँच इन्द्रियों के विषय ।। २१ ।। इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, स्थूल शरीर, चेतना एवं धृति, संक्षेप में यह विकारों से युक्त क्षेत्र है ।। २२ ।। अभिमानशून्यता, दम्भशून्यता, अहिंसा, क्षान्ति (क्षमा) ऋजुता, आचार्य की सेवा, बाह्य एवं आभ्यन्तर शौच पवित्रता अन्तःकरण की स्थिरता, मन का निग्रह ।। २३ ।। इन्द्रियो के विषय (रूप, रस आदि) से वैराग्य अहंकार शून्यता, जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि तथा दुःखरूपी दोषों का चिन्तन करना । २४ ।। पुत्र, पत्नी तथा गृह आदि में आसक्ति एवं ममता का त्याग करना, प्रिय एवं अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति होने पर सदा एक समान चित्त बनाये रहना, अर्थात् हर्ष एवं शोक के वशीभूत न होना ।। २५ ।। मुझ परमेश्वर में अनन्य भाव से अविचल भक्ति का होना, एकान्त स्थान में रहने का स्वभाव, जन समुदाय में आसक्ति का न होना।।२६।। अध्यात्म ज्ञान में स्थिति, सर्वदा तत्त्वज्ञान का चिन्तन करते रहना, इन्हीं सबों को ज्ञान कहा गया है तथा इन सबों से भिन्न को अज्ञान ।। २७ ।। अब मैं उस ज्ञेय (जानने योग्य) पदार्थ को बतलाता हूँ, तथा वह सत् स्वरूप कहा जाता है ।। २८ ।। उसके सब ओर हाथ और पैर हैं, सब ओर नेत्र, सिर तथा मुख हैं, उसके सब ओर कान हैं तथा वह संसार की समस्त वस्तुओं में व्यापक है ।। २९ ।। समस्त इन्द्रियों से रहित होकर भी इन्द्रियों के समस्त विषयों को जानने वाला है । वह आसक्ति रहित तथा सबों का धारण पोषण करने वाला है । वह गुणों से रहित होकर भी गुणों का भोक्ता है ।। ३० ।। वह समस्त भूतों के भीतर एवं बाहर व्याप्त है तथा वह चर एवं अचार स्वरूप है । सूक्ष्म होने के कारण वह अविज्ञेय है, वह सबों से दूर

भूतानामचरञ्चरमेव च । सूक्ष्मत्वात् तदविज्ञेयं दूरस्थञ्चान्तिकेऽपि तत् ॥ ३१॥ अविभक्तञ्च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् । भूतभर्तृ च विज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ ३२॥ ज्योतिषामपि तज्जयोतिस्तमसः परमुच्यते । ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं दृदि सर्वस्य धिष्ठितम् ॥ ३३॥ ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना । अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ ३४ ॥ अन्ये त्वेवमजानन्तो श्रुत्वाऽन्येभ्यः उपासते । तेऽपि चाशु तरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ ३५ ॥ सत्त्वात् सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च। प्रमादमोहौ तमसो भवतो ज्ञानमेव च ॥ ३६॥ गुणा वर्त्तन्ते इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते । मानावमानमित्रारितुल्यस्त्यागी स निर्गुणः ॥ ३७॥ ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् । छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ ३८॥ द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च । अहिंसादिः क्षमा चैव दैवीसम्पत्तितो नृणाम् ॥ ३९ ॥ न शौचं नापि चाचारो ह्यासुरीसम्पदोद्भवः । नरकत्वात् क्रोधलोभकामस्तस्मात् त्रयं त्यजेत् ॥ ४० ॥ यज्ञस्तपस्तथा दानं सत्त्वाद्यैस्त्रिविधं स्मृतम् । आयुः सत्त्वं बलारोग्य सुखायान्नन्तुसात्त्विकम् ॥ ४१ ॥ दुःखशोकामयायान्नं तीक्ष्णरूक्षन्तु राजसम् । अमेध्योच्छिष्टपूत्यन्नं तामसं नीरसादिकम् ॥ ४२ ॥ यष्टव्यो विधिना यज्ञो निष्कामाय स सात्त्विकः । यज्ञः फलाय दम्भात्मा राजसस्तामसः क्रतुः ॥ ४३ ॥ श्रद्धामन्त्रादिविध्युक्तं तपःशारीरमुच्यते। देवादिपूजाऽहिंसादि वाङ्मयं तप उच्यते ॥ ४४ ॥ अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं स्वाध्यायसज्जपः। मानसं चित्तसंशुद्धिमौनमात्मविनिग्रहः ॥ ४५॥

दूर तथा सबों के सन्निकट है ।। ३१ ।। यद्यपि वह अविभक्त (अखण्ड) है फिर समस्त भूतों में विभक्त के समान स्थित है । वह समस्त भूतों का पालन, संहार एवं सृष्टि करने वाला है ।।३२।। वह समस्त प्रकाशकों का भी प्रकाशक है, वह तमस् से परे है, वह परमब्रह्म ज्ञानस्वरूप, ज्ञेय स्वरूप तथा ज्ञान के ही द्वारा जानने योग्य है । वह सबों के हृदय में स्थित है ।। ३३ ।। सम्पूर्ण जगत् की आत्मा स्वरूप उस परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार कुछ लोग मन के द्वारा अपने अन्तःकरण में करते हैं, कुछ लोग ज्ञानयोग के द्वारा तथा कुछ लोग कर्मयोग के द्वारा साक्षात्कार अपने अन्तःकरण में करते हैं ।। ३४ ।। इन ज्ञानी पुरुषों से जो भिन्न हैं वे दूसरों से सुनकर ही उपासना करते हैं । वे दूसरों से सुनकर उपासना करने वाले भी शीघ्र ही संसार सागर को पार कर जाते हैं ।। ३५ ।। सत्त्वगुण के उद्रिक्त होने पर ज्ञान, रजोगुण के उद्रिक्त होने पर लोभ तथा तमोगुण के उद्रिक्त होने पर प्रमाद, मोह तथा अज्ञान उत्पन्न होते हैं ।। ३६ ।। गुण ही गुणों में बरतते हैं ऐसा जानकर जो स्थिर रहता है, अपनी स्थिति से विचलित नहीं होता है, जो मान-अपमान, शत्रु तथा मित्र दोनों के प्रति समान भाव रखता है तथा अपने अभिमान का त्याग किए रहता है, वह निर्गुण है ।। ३७ ।। जिसकी जड़ ऊपर की ओर है और शाखा नीचे की ओर है उस संसार रूपी अश्वत्थ वृक्ष को अनादि काल से प्रवृत्त होने के कारण अव्यय कहते हैं । वेद ही उसके पत्ते हैं, उस संसार वृक्ष को यथार्थ रूप से जानने वाला ही वेद का वेत्ता है ।। ३८ ।। इस संसार में दो प्रकार की भूतों (जीवों) की सृष्टि है, दैव एवं आसुर । दैवी सम्पत्ति सम्पन्न मनुष्य अहिंसा आदि तथा क्षमा से युक्त होते हैं ।। ३९ ।। जो आसुरी सम्पत्ति से सम्पन्न होता है उसमें न तो शौच होता है और न तो सदाचार ही होता है । क्रोध, लोभ एवं काम ये नरक देने वाले हैं अतएव इन तीनों का त्याग कर देना चाहिए ।। ४० ।। सत्त्व आदि (रजोगुण एवं तमोगुण) के भेद से तप, यज्ञ एवं दान ये तीन-तीन प्रकार के होते हैं । सात्त्विक अन्न का भोजन करना आयु, सत्त्व, बल, आरोग्य एवं सुख की वृद्धि करने वाला होता है ।। ४१ ।। तीक्ष्ण तथा रूक्ष अन्न राजस होता है । उससे दुःख, शोक एवं रोग की उत्पत्ति होती है । अपवित्र, उच्छिष्ठ (जूठा) दुर्गन्धि युक्त तथा नीरस आदि अन्न, तामस होता है ।। ४२ ।। कर्तव्य की भावना से कामना रहित होकर विधिपूर्वक किया जाने वाला यज्ञ सात्त्विक होता है । फल की कामना से किया जाने वाला यज्ञ राजस तथा दम्भ की भावना से किया जाने वाला यज्ञ तामस होता है ।। ४३ ।। श्रद्धापूर्वक एवं मन्त्रों द्वारा विधिपूर्वक की जाने वाली देवताओं की पूजा तथा अहिंसा आदि तप शारीरिक तप हैं । अब मैं वाणी के तप को बतला रहा हूँ ।। ४४ ।। जिससे किसी को उद्वेग न हो ऐसा सत्य वचन स्वाध्याय तथा जप ये (वाणी के तप हैं) चित्त की शुद्धि मौन रहना तथा मन का निग्रह ये मानस तप हैं ।। ४५ ।। कामना से रहित होकर तपस्या करना सात्त्विक है, कामना से किया जाने वाला तप राजस तथा दूसरों के दुःख देने के लिए किया जाने वाला

सात्त्विकञ्च तपोऽकामं फलाद्यर्थन्तु राजसम् । तामसं परपीडायै सात्त्विकं दानमुच्यते ॥ ४६॥ देशादौ चैव दातव्यमुपकाराय राजसम् ।
अदेशादाववज्ञातं तामसं दानमीरितम् ॥ ४७ ॥ ओं तत् सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः । यज्ञदानादिकं कर्म भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ॥ ४८॥
अनिष्टमिष्टं मिश्रञ्च त्रिविधं कर्मणः फलम् । भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु सन्न्यासिनां क्वचित् ॥ ४९ ॥ तामसः कर्मसंयोगात् मोहात् क्लेशभयादिकात्।
राजसः सात्त्विकोऽकामात् पञ्चैते कर्महेतवः ॥ ५० ॥ अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणञ्च पृथग्विधम् । त्रिविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवञ्चैवात्र पञ्चमम्॥५१॥
एकं ज्ञानं सात्त्विकं स्यात् पृथग् ज्ञानन्तु राजसम् । अतत्वार्थं तामसं स्यात् कर्माकामाय सात्त्विकम् ॥ ५२ ॥ कामाय राजसं कर्म मोहात् कर्म तु
तामसम् । सिद्धासिद्ध्योः समः कर्त्ता सात्त्विको राजसोऽत्यपि ॥ ५३ ॥ शठोऽलसस्तामसः स्यात् कार्य्यादिधीश्च सात्त्विकी । कार्य्यार्थं सा राजसी
स्याद् विपरीता तु तामसी ॥ ५४ ॥ मनोधृतिः सात्त्विकी स्यात् प्रीतिकामेति राजसी । तामसी तु प्रशोकादौ सुखं सत्त्वात्तदन्तगम् ॥ ५५ ॥ सुखं
तद्राजसञ्चाग्रे अन्ते दुःखन्तु तामसम् । यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ॥ ५६॥ स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य विष्णुं सिद्धिञ्च विन्दति । कर्मणा
मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ॥ ५७ ॥ ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तं जगद् विष्णुञ्च वेत्ति यः । सिद्धिमाप्नोति भगवद्भक्तो भागवतो ध्रुवम् ॥ ५८॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गीतासारकथनं नामैकाशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३८१ ॥

तप तामस है । उत्तम देश, काल एवं पात्र में दिया गया दान सात्त्विक होता है, प्रत्युपकार की भावना से दिया जाने वाला दान राजस एवं अयोग्य देश, काल एवं पात्र में अपमानपूर्वक दिया हुआ दान तामस होता है ।। ४६-४७ ।। ओम्, तत् एवं सत् ये तीन ब्रह्म के नाम कहे गये हैं । यज्ञ तथा दान आदि कर्म मनुष्य को भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाले होते हैं ।। ४८।। जिन लोगों ने कर्मों के फल की इच्छा का त्याग नहीं किया है, उनको कर्मों का फल अनिष्ट, इष्ट तथा सम्मिश्रित फल की प्राप्ति होती है, किन्तु संन्यासी (कर्मों के फल का त्याग करने वाले) को कभी भी किसी भी प्रकार के फल की प्राप्ति नहीं होती है ।। ४९ ।। मोहवश किया जाने वाला कर्मों का त्याग तामस, क्लेश के भय से किया जाने वाला कर्मों का फल राजस एवं कामना के त्याग से किया जाने वाला त्याग सात्त्विक होता है । अधिष्ठान, कर्त्ता, भिन्न-भिन्न करण, विभिन्न प्रकार की चेष्टाएँ तथा दैव ये पाँच कर्म के कारण हैं ।। ५०-५१ ।। समस्त भूत में एक परमात्मा की व्याप्ति का ज्ञान सात्त्विक, भेदज्ञान राजस तथा अतत्त्विक ज्ञान तामस होता है । निष्काम भाव से किया जाने वाला कर्म राजस तथा मोह के कारण किया जाने वाला कर्म तामस होता है ।। ५२ ।। कार्य की सफलता एवं असफलता दोनों में एक समान रहने वाला कर्ता सात्त्विक, हर्ष एवं शोक करने वाला राजस तथा शठ एवं आलसी कर्ता तामसी होता है । कार्य एवं अकार्य को जानने वाली बुद्धि सात्त्विक, उसे ठीक से नहीं जानने वाली बुद्धि राजसी तथा विपरीत धारणा वाली बुद्धि तामसी होती है ।। ५२-५४ ।। मन को धारण करने वाली सात्त्विकी, प्रीति की कामना से युक्त धृति राजसी एवं शोक से युक्त धृति तामसी होती है । सुखद परिणाम वाला सुख सात्त्विक होता है, जिसके आदि में सुख हो राजस सुख है तथा जिसके अन्त में दुख हो वह तामससुख है ।। ५५ ।। जिससे सम्पूर्ण जीवों की उत्पत्ति हुई है, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है, उन भगवान् विष्णु की पूजा अपने वर्ण एवं आश्रम के कर्मों के द्वारा करके मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।। ५६ ।। जो मनुष्य मन, कर्म एवं वाणी के द्वारा सभी अवस्थाओं में सर्वदा ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब (तृण) पर्यन्त सम्पूर्ण जगत् को विष्णु स्वरूप जानता है, वह श्री भगवान् में भक्ति रखने वाला भागवत पुरुष सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है ।। ५७-५८ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण के गीतासार वर्णन नामक तीन सौ एकासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३८१ ॥

द्वयशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

यमगीता

अग्निरुवाच– **यमगीतां प्रवक्ष्यामि उक्ता या नाचिकेतसे । पठतां शृण्वतां भुक्त्यै मुक्त्यै मोक्षार्थिनां सताम् ॥ १ ॥** यम उवाच– **आसनं शयनं यान परिधानगृहादिकम् । वाञ्छत्यहोऽतिमोहेन सुस्थिरं स्वयमस्थिरः॥ २॥ भोगेष्वासक्तेरभावो नित्यमात्मावलोकनम् श्रेयः परं मनुष्याणां कपिलोद्गीतमेव हि ॥ ३॥ सर्वत्र समदर्शित्वं निर्ममत्वमसङ्गता। श्रेयः परं मनुष्याणां गीतं पञ्चशिखेन हि ॥ ४॥ आगर्भजन्मबाल्यादिवयोऽवस्थादिवेदनम्। श्रेयः परं मनुष्याणां गङ्गाविष्णु प्रगीतकम् ॥ ५ ॥ आध्यात्मिकादिदुःखानामाद्यन्तादिप्रतिक्रिया । श्रेयः परं मनुष्याणां जनकोद्गीतमेव च ॥ ६ ॥ अभिन्नयोर्भेदकरः प्रत्ययो यः परात्मनः। तच्छान्तिपरमं श्रेयो ब्रह्मोद्गीतमुदाहृतम् ॥ ७ ॥ कर्त्तव्यमिति यत्कर्म ऋग्यजुः सामसंज्ञितम् । कुरुते श्रेयसेऽसङ्गान् जैगीषव्येण गीयते ॥ ८ ॥ हानिः सर्वविधित्सानामात्मानः सुखहैतुकी । श्रेयः परं मनुष्याणां देवलोद्गीतमीरितम् ॥ ९ ॥ कामत्यागात् तु विज्ञानं सुखं ब्रह्म परं पदम् । कामिनां न हि विज्ञानं सनकोद्गीतमेव तत् ॥ १० ॥ प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च कार्य्यं कर्मपरोऽब्रवीत् । श्रेयसां श्रेय एतद्धि नैष्कर्म्यं ब्रह्म तद्धरिः॥ ११॥ पुमांश्चाधिगतज्ञानो भेदं नाप्नोति सत्तमः । ब्रह्मणा विष्णुसंज्ञेन परमेणाव्ययेन च ॥ १२॥ ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं सौभाग्यं रूपमुत्तमम् । तपसा लभ्यते सर्वं मनसा यद् यदिच्छति॥ १३॥ नास्ति विष्णुसमं ध्येयं तपो नानशनात् परम्। नास्त्यारोग्यसमं धन्यं**

अग्निदेव ने कहा– अब मैं यमगीता का वर्णन कर रहा हूँ जिसका उपदेश यमराज ने नचिकेता को दिया था । यह पढ़ने और सुनने वालों को भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली है तथा मोक्ष चाहने वाले सत्पुरुषों को मोक्ष प्रदान करने वाली है ।। १ ।। **यमराज ने कहा–** यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि मनुष्य अत्यन्त मोह के कारण अस्थिर चित्त वाला होने के कारण आसन, शय्या, वाहन, परिधान (वस्त्र आदि) तथा गृह आदि को सुस्थिर समझकर इन्हें प्राप्त करने की कामना करता है ।। २ ।। कपिल महर्षि ने कहा ही है कि- भोगों में आसक्ति का अभाव तथा सदा आत्मतत्त्व का चिन्तन ये दोनों मनुष्यों के लिए परमकल्याणकारी हैं ।। ३ ।। पञ्चशिखाचार्य ने कहा है कि-सर्वत्र समता की दृष्टि, ममता तथा आसक्ति का अभाव- ये मनुष्यों के परम कल्याण के साधन हैं ।। ४ ।। गङ्गा विष्णु का कहना है कि गर्भ तथा जन्म से लेकर वाल्य आदि अवस्थाओं को यथार्थ रूप से जानना ही मनुष्यों के लिए परम कल्याणकारी हैं ।। ५ ।। जनक ने कहा है कि- आध्यात्मिक आदि (आधिभौतिक एवं आधिदैविक) दुःख उत्पन्न एवं विनष्ट होने वाले हैं, यह जान कर उनको बर्दास्त करना तथा उन दुःखों का प्रतिकार (दुःखों के शाश्वत विनाश का उपाय) करना ही मनुष्यों के लिए परम कल्याणकारी हैं ।। ६ ।। जीवात्मा एवं परमात्मा वस्तुतः अभिन्न हैं । किन्तु इन दोनों में जो भेद की प्रतीति होती है, उसका निवारण करना ही परम कल्याण का साधन है, यह ब्रह्माजी का मत है ।। ७ ।। जैगिषव्य महर्षि का कहना है कि ऋग् यजुः एवं सामवेद में जो कर्म बतलाये गये हैं उन्हें कर्तव्य समझकर अनासक्त भाव से उनका अनुष्ठान करना ही मनुष्य के लिए कल्याणकारी हैं । यह देवल महर्षि का मत बतलाया गया है कि समस्त प्रकार के कर्मों के प्रारम्भ करने की इच्छा का त्याग करना ही आत्मसुख का साधन है और यही मनुष्यों का परम कल्याण है ।। ९ ।। सनकादि महर्षियों का कहना है कि- कामनाओं के त्याग से विज्ञान, सुख, ब्रह्म एवं परमपद की प्राप्ति होती है किन्तु जो मनुष्य कामनाओं वाला है उसको ज्ञान नहीं होता है ।। १० ।। प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों प्रकार के कर्मों को करना चाहिए किन्तु वस्तुतः नैष्कर्म्य ही ब्रह्म है, वही भगवान् विष्णु का स्वरूप है, वही सर्वोत्तम कल्याण है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं ।। ११ ।। जिस मनुष्य को ज्ञान हो जाता है वह कभी भी परम ब्रह्म स्वरूप भगवान् विष्णु से कभी भी भेद को नहीं प्राप्त करता है ।। १२ ।। ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकता, सौभाग्य तथा उत्तम रूप तपस्या से उपलब्ध होते हैं । यही नहीं मनुष्य मन से जो कुछ भी चाहता है उन सबों की प्राप्ति तपस्या से ही होती है ।। १३ ।। भगवान् विष्णु के समान

नास्ति गङ्गासमा सरित्॥ १४ ॥ न सोऽस्ति बान्धवः कश्चिद् विष्णुं मुक्त्वा जगद्गुरुम् । अधश्चोर्ध्वं हरिश्चाग्रे देहेन्द्रियमनोमुखे ॥ १५ ॥ इत्येवं संस्मरन् प्राणान् यस्त्यजेत् स हरिर्भवेत् । यत् तद् ब्रह्म यतः सर्वं यत् सर्वं तस्य संस्थितम् ॥ १६ ॥ अग्राह्यकमनिर्देश्यं सुप्रतिष्ठञ्च यत् परम् । परापरस्वरूपेण विष्णुः सर्वहृदि स्थितः॥ १७॥ यज्ञेशं यज्ञपुरुषं केचिदिच्छन्ति तत् परम् । केचिद् विष्णुं हरं केचित् केचिद् ब्रह्माणमीश्वरम्॥१८॥ इन्द्रादिनामभिः केचित् सूर्य्यं सोमञ्च कालकम् । ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तं जगद् विष्णुं वदन्ति च ॥ १९ ॥ स विष्णुः परमं ब्रह्म यतो नावर्त्तते पुनः। सुवर्णादिमहादानपुण्यतीर्थावगाहनैः॥ २०॥ ध्यानैर्व्रतैः पूजया स धर्मःश्रुत्या तदाप्नुयात् । आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु॥ २१॥ बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च । इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषुगोचरान् ॥ २२॥ आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः । यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ॥ २३॥ न तत्पदमवाप्नोति संसारञ्चाधिगच्छति । यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा ॥ २४ ॥ स तत् पदमवाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते । विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान् नरः ॥ २५ ॥ सोऽध्वानं परमाप्नोति तद् विष्णोः परमं पदम् । इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ॥ २६ ॥ मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः । महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः ॥ २७॥ पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः । एषु सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते ॥ २८ ॥ दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः। यच्छेद् वाङ्मनसि प्राज्ञः तद् यच्छेज् ज्ञानमात्मनि ॥ २९ ॥ ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेच्छान्त आत्मनि । ज्ञात्वा ब्रह्मात्मनोर्योगं यमाद्यैर्ब्रह्म सद् भवेत्॥३०॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ । यमाश्च नियमाः पञ्च शौचं सन्तोषसत्तपः ॥ ३१॥ स्वाध्यायेश्वरपूजा च आसनं पद्मकादिकम्।

कोई ध्येय नहीं है, निराहार रहने से बड़ी कोई तपस्या नहीं है, आरोग्य से बढ़कर कोई मूल्यवान् वस्तु नहीं है, गंगा के समान कोई नदी नहीं है ।। १४ ।। जगद्गुरु भगवान् विष्णु के समान दूसरा कोई बान्धव नहीं है । नीचे ऊपर, आगे, देह, इन्द्रिय, मन तथा मुख में भगवान् श्रीहरि विराजमान हैं ।। १५ ।। इस प्रकार से श्रीभगवान् का चिन्तन करते हुए जो प्राणों को त्यागता है, वह स्वयम् श्रीहरिस्वरूप हो जाता है । वह ब्रह्म जो सर्वत्र व्याप्त है, जिससे सब उत्पन्न होते हैं, जो सर्वस्वरूप है तथा यह सम्पूर्ण जगत् जिसका संस्थान है ।। १६ ।। जो किसी भी प्रकार से ग्राह्य नहीं है, जिसका किसी भी नाम से निर्देश नहीं किया जा सकता है, जो सुप्रतिष्ठित है तथा सबों से परे है, वह परात्पर रूप से भगवान् विष्णु ही सबों के हृदय में स्थित हैं ।। १७ ।। वे यज्ञ के स्वामी हैं, यज्ञपुरुष हैं, उन्हें कोई परब्रह्मरूप से प्राप्त करना चाहता है, कोई विष्णु रूप से, कोई शिवरूप से,कोई ब्रह्मा रूप से तो कोई ईश्वर रूप से ।। १८ ।। कोई इन्द्र आदि नामों से, तृण पर्यन्त सम्पूर्ण जगत् विष्णु स्वरूप है ऐसा कहा जाता है ।। १९ । भगवान् विष्णु ही परब्रह्म हैं जिन्हें प्राप्तकर जीव इस संसार में नहीं आता है । सुवर्ण आदि का महादान करने से पवित्र तीर्थों में जाकर स्नान करने से ।। २० ।। ध्यान करने से, ब्रत करने से धन के द्वारा पूजा करने तथा धर्मशास्त्रों का श्रवण करने से उनकी प्राप्ति होती है ।। २०।। आत्मा को रथी समझो और शरीर को रथ, बुद्धि को सारथि जानो और मन को लगाम समझो । इन्द्रियों को घोड़ा और विषयों (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा शब्द) को उनका मार्ग जानो ।।२२।। मनीषी पुरुषों ने इन्द्रियों तथा मन से युक्त आत्मा को भोक्ता कहा है । जो अनियन्त्रित मन के कारण विज्ञान रहित होता है वह भगवान् विष्णु के लोक को नहीं प्राप्त करता है, और वह इस संसार में ही आता है ।। २३ ।। जो मनुष्य नियन्त्रित मन से युक्त होने के कारण विज्ञानवान् होता है, वह मृत्यु के पश्चात् भगवान् विष्णु के उस लोक को प्राप्त करता है जहाँ से वह इससंसार में नहीं आता है ।। २४ ।। जो मनुष्य विवेक सम्पन्न मन रूपी सारथि से युक्त होता है तथा मन रूपी लगाम को अपने वश में रखता है वह संसार रूपी मार्ग को पार करके भगवान् विष्णु के परम पद को प्राप्त करता है ।। २५ ।। इन्द्रियों से उनके विषय महान् हैं, विषयों की अपेक्षा मन श्रेष्ठ है । मन से बुद्धि परे है, आत्मा (महत्) तत्त्व से परे है, अव्यक्त (मूल प्रकृति) महत् तत्त्व से श्रेष्ठ है और उस अव्यक्त (मूल प्रकृति) से पुरुष (परमात्मा) महान् है ।। २६-२७ ।। उस पुरुष परमात्मा से बढ़कर कुछ भी नहीं है, वही श्रेष्ठता की सीमा है, वही परम प्राप्य है । इन समस्त भूतों में परमात्मा अन्तर्यामी रूप से छिपा है, वह दिखायी नहीं पड़ता है ।। २८ ।। उसका साक्षात्कार सूक्ष्मदर्शी पुरुष अपनी सूक्ष्मदर्शिनी बुद्धि के द्वारा करते हैं । विद्वान पुरुष को चाहिए

प्राणायामो वायुजयः प्रत्याहारः स्वनिग्रहः ॥ ३२ ॥ शुभे ह्येकत्र विषये चेतसो यत् प्रधारणम् । निश्चलत्वात् तुधीमद्भिर्धारणा द्विज कथ्यते॥३३॥ पौनःपुन्येन तत्रैव विषयेष्वेव धारणा । ध्यानं स्मृतं समाधिस्तु अहं ब्रह्मात्मसंस्थितिः ॥ ३४॥ घटध्वंसाद् यथाकाशमभिन्नं नभसा भवेत्। मुक्तो जीवो ब्रह्मणैवं सद्ब्रह्म ब्रह्म वै भवेत् ॥ ३५ ॥ आत्मानं मन्यते ब्रह्म जीवो ज्ञानेन नान्यथा । जीवो ह्यज्ञानतत्कार्य्यमुक्तः स्यादजरामरः ॥ ३६॥ अग्निरुवाच— **वसिष्ठ ! यमगीतोक्ता पठतां भुक्तिमुक्तिदा । आत्यन्तिको लयः प्रोक्तो वेदान्तब्रह्मधीमयः ॥ ३७ ॥**

इत्यादिमहापुराण आग्नेये यमगीताकथनं नाम द्व्यशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३८२ ॥

त्र्यशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

आग्नेयपुराणमाहात्म्यम्

अग्निरुवाच— **आग्नेयं ब्रह्मरूपं ते पुराणं कथितं मया । सप्रपञ्चं निष्प्रपञ्चं विद्याद्वयमयं महत् ॥ १ ॥ ऋग्यजुःसामाथर्वाख्या विद्या विष्णुर्जगज्जनिः। छन्दः शिक्षा व्याकरणं निघण्टुज्योतिराख्यकाः ॥ २ ॥ निरुक्तधर्मशास्त्रादिमीमांसान्यायविस्तराः । आयुर्वेदपुराणाख्या धनुर्गन्धर्वविस्तराः॥३॥ विद्या सैवार्थशास्त्राख्या वेदान्ताऽन्या हरिर्महान् । इत्येषा चापरा विद्या परविद्याऽक्षरं परम् ॥ ४ ॥ यस्य भावोऽखिलं**

विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वह वाणी को मन में लीन करे, मन को ज्ञान में ज्ञान को महत् तत्त्व में तथा महत् तत्त्व को शान्त आत्मा में लीन करे ।। २९।। यम आदि नियमों के द्वारा ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य सत्त्वस्वरूप ब्रह्म ही हो जाता है ।। ३० ।। अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह (दान न लेना) ये पाँच यम हैं । नियम भी पाँच हैं- शौच (भीतर तथा बाहर की पवित्रता) सन्तोष, उत्तम तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर की पूजा । पद्मासन आदि आसन हैं ।। ३१ ।। प्राण वायु पर विजय प्राप्त करने को प्राणायाम कहते हैं, अपने मन को वश में करने को प्रत्याहार कहते हैं ।। ३२ ।। हे ब्रह्मन ! कल्याणकारी एक विषय में चित्त को निश्चल रूप से स्थिर करने को बुद्धिमान पुरुषों ने धारणा कहा है ।। ३३ ।। उस शुभ विषय की बारम्बार धारणा करने को ही ध्यान कहा गया है । मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार से आत्मा का चिन्तन करना ही समाधि कहलाता है ।। ३४ ।। जिस प्रकार घट का ध्वंस हो जाने पर घटाकाश महाकाश से अभिन्न हो जाता है, उसी प्रकार से मुक्त जीव ब्रह्म के साथ अभेद को प्राप्त कर लेता है । वह सत्वस्वरूप ब्रह्म ही हो जाता है ।। ३५ ।। ज्ञान हो जाने पर ही अपने को ब्रह्म मानने लगता है । ज्ञान के हुए विना उसको ऐसी अनुभूति नहीं होती है । ज्ञान तथा अज्ञान के कार्यों से मुक्त होकर जीव अजर-अमर हो जाता है ।। ३६ ।। **अग्निदेव ने कहा–** हे वसिष्ठ! जो मनुष्य यमगीता का पाठ करता है उसको भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है । वेदान्त ज्ञान के अनुसार सर्वत्र ब्रह्म बुद्धि का होना ही आत्यन्तिक लय कहलाता है ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का यमगीता वर्णन नामक तीन सौ बयासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३८२ ॥

अग्निदेव ने कहा– ब्रह्मन् ! ब्रह्मस्वरूप अग्निपुराण का मैंने तुमसे वर्णन किया है । इस महापुराण में कहीं संक्षेप में तथा कहीं विस्तारपूर्वक परा एवं अपरा दोनों प्रकार की विद्याओं का वर्णन किया गया है ।। १ ।। ऋग्, यजुः, साम तथा अथर्व नामक वेदविद्या, विष्णु भगवान् की महिमा, संसार की सृष्टि, छन्द, शिक्षा, व्याकरण, निघण्टु, ज्योतिष, ।। २ ।। निरुक्त, धर्मशास्त्र आदि मीमांसा, न्यायशास्त्र, आयुर्वेद, पुराण, धनुर्वेद, विस्तृत गान्धर्वविद्या ।। ३ ।। अर्थशास्त्र, वेदान्त, महान् श्रीहरि ये सब अपरा विद्या के अन्तर्गत हैं और अक्षर ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाली परा विद्या हैं ।। ४ ।। यह सम्पूर्ण जगत् विष्णु स्वरूप है, इस प्रकार का जिसका भाव हो उसको कलियुग नहीं बाधित करता है । जिसने महायज्ञों को नहीं किया है तथा जिसने

विष्णुस्तस्य नो बाधते कलिः । अनिष्ट्वा तु महायज्ञानकृत्वाऽपि पितृस्वधाम् ॥ ५ ॥ कृष्णमभ्यर्चयन् भक्त्या नैनसो भाजनं भवेत् । सर्वकारणमत्यन्तं विष्णुं ध्यायन् न सीदति ॥ ६ ॥ अन्यतन्त्रादिदोषोत्थो विषयाकृष्टमानसः । कृत्वाऽपि पापं गोविन्दं ध्यायन् पापैः प्रमुच्यते॥७॥ तद् ध्यानं यत्र गोविन्दः सा कथा यत्र केशवः। तत् कर्म यत् तदर्थीयं किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥ ८ ॥ न तत् पिता तु पुत्राय न शिष्याय गुरुर्द्विज । परमार्थं परं ब्रूयाद् यदेतत् ते मयोदितम् ॥ ९ ॥ संसारे भ्रमता लभ्यं पुत्रदारधनं वसु । सुहृदश्च तथैवान्ये नोपदेशो द्विजेदृशः ॥ १०॥ किं पुत्रदारैर्मित्रैर्वा किं मित्रक्षेत्रबान्धवैः । उपदेशः परो बन्धुरीदृशो यो विमुक्तये॥ ११॥ द्विविधो भूतमार्गोऽयं दैव आसुर एव च । विष्णुभक्तिपरो दैवो विपरीतस्तथाऽऽसुरः॥१२॥ एतत्पवित्रमारोग्यं धन्यं दुःस्वप्ननाशनम् । सुखप्रीतिकरं नृणां मोक्षकृद्यत् तवेरितम् ॥ १३ ॥ येषां गृहेषु लिखितमाग्नेयं हि पुराणकम् । पुस्तकं स्थास्यति सदा तत्र नेशुरुपद्रवाः ॥ १४ ॥ किं तीर्थैर्गोप्रदानैर्वा किं यज्ञैः किमुपोषितैः । आग्नेयं ये हि शृण्वन्ति अहन्यहनि मानवाः ॥ १५ ॥ यो ददाति तिलप्रस्थं सुवर्णस्य च माषकम् । शृणोति श्लोकमेकञ्च आग्नेयस्य तदाप्नुयात् ॥ १६ ॥ अध्यायपठनञ्चास्य गोप्रदानाद् विशिष्यते । अहोरात्रकृतं पापं श्रोतुमिच्छोः प्रणश्यति ॥ १७ ॥ कपिलानां शते दत्ते यद्भवेद् ज्येष्ठपुष्करे । तदाग्नेयं पुराणं हि पठित्वा फलमाप्नुयात् ॥ १८ ॥ प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च धर्मं विद्याद्वयात्मकम्। आग्नेयस्य पुराणस्य शास्त्रस्यास्य समं न हि ॥ १९॥ पठन्नाग्नेयकं नित्यं शृण्वनपि पुराणकम्। भक्तो वसिष्ठ! मनुजः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २० ॥ नोपसर्गा न चानर्था न चौरारिभयं गृहे। तस्मिन् स्याद् यत्र चाग्नेयपुराणस्य

पितरों का श्राद्ध नहीं किया है, वह व्यक्ति भी यदि भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण की अर्चना करता है तो वह पाप का भागी नहीं होता है । सम्पूर्ण जगत् के कारण स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करने वाला व्यक्ति कभी भी कष्ट में नहीं पड़ता है ।। ५-६ ।। परतन्त्रता जन्य दोष के कारण तथा विषयों के प्रति मन के आकृष्ट हो जाने के कारण यदि कोई पाप भी कर लेता है तो वह भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करके पापों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है । ७ ।। बहुत अधिक कहने से क्या लाभ ? ध्यान वही है जिसमें भगवान् गोविन्द का चिन्तन हो, कथा वही है जिसमें भगवान् केशव का वर्णन हो तथा कर्म वही है जो भगवान् श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए किया जाय ।। ८ ।। हे द्विज ! जो उपदेश पिता अपने पुत्र को नहीं दे सकता तथा गुरु शिष्य को नहीं दे सकता है वही उपदेश मैंने आपको इस अग्निपुराण के माध्यम से दिया है ।। ९ ।। हे द्विज ! इस संसार में भ्रमण करता हुआ मनुष्य पुत्र, पत्नी, धन, सम्पत्ति, मित्र तथा अन्य सारी वस्तुओं को प्राप्त कर सकता है किन्तु इस प्रकार का उपदेश नहीं प्राप्त कर सकता ।। १० ।। पुत्र, मित्र, खेती तथा बान्धवों से क्या लाभ है ?सबसे बड़ा हितैषी इस प्रकार का उपदेश ही है जिससे मुक्ति मिल सकती है ।। ११ ।। जीवों की सृष्टि दो प्रकार की होती है- देव एवं आसुर । भगवान् विष्णु में लगे जीवों की दैवी सृष्टि है तथा जो भगवद्भक्ति विपरीत सृष्टि है, वह आसुर सृष्टि है ।।१२।। यह अग्निपुराण जिसका मैंने आपको उपदेश दिया है धन देने वाला, दुःस्वप्नों का विनाश करने वाला, सुख एवं प्रसन्नता को प्रदान करने वाला तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है।।१३।। जिसके घर में अग्निपुराण लिखकर रखा रहता है उसके घर के समस्त उपद्रव नष्ट हो जाते हैं ।। १४ ।। जो मनुष्य प्रतिदिन अग्निपुराण का श्रवण करते हैं उन्हें तीर्थ में जाने, गोदान करने, यज्ञ तथा उपवास करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।। १५ ।। जो व्यक्ति प्रतिदिन अग्निपुराण का एक श्लोक सुनता है उसको प्रतिदिन एक प्रस्थ तिलदान करने एवं एकमाशा सुवर्णदान करने का फल प्राप्त होता है ।। १६ ।। प्रतिदिन अग्निपुराण के एक अध्याय का पाठ करने वाले मनुष्य को गोदान करने का फल प्राप्त होता है तथा अग्निपुराण सुनने की इच्छा करने वाले व्यक्ति के उस दिन तथा उस रात के किए हुए पापों का विनाश हो जाता है ।। १७ ।। वृद्ध पुष्कर क्षेत्र में सौ कपिला गौओं को दान करने का जो फल होता है उस फल को मनुष्य अग्निपुराण का पाठ करके प्राप्त कर लेता है ।। १८ ।। धर्म दो प्रकार का है- प्रवृत्ति धर्म तथा निवृत्ति धर्म । ये दो प्रकार के धर्म हैं । इन दोनों प्रकार के धर्मों का फल अग्निपुराण के फल के समान नहीं होता है ।। १९ ।। हे वसिष्ठ जी ! जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक प्रतिदिन अग्निपुराण का पाठ करता है अथवा श्रवण करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है ।। २० ।। जिस घर में अग्निपुराण

हि पुस्तकम् ॥ २१ ॥ न गर्भहारिणीभीर्तिन च बालग्रहा गृहे । यत्राग्नेयं पुराणं स्यान्नपिशाचादिकं भयम्॥२२॥ शृण्वन् विप्रो वेदवित् स्यात्क्षत्रियः पृथिवीपतिः । ऋद्धिं प्राप्नोति वैश्यश्च शूद्रश्चारोग्यमृच्छति ॥ २३ ॥ यः पठेत् शृणुयान्नित्यं समदृग्विष्णुमानसः । ब्रह्माग्नेयं पुराणं सत् तत्र नश्यन्त्युपद्रवाः॥ २४ ॥ दिव्यन्तरीक्षभौमाद्या दुःस्वप्नाद्यभिचारकाः । यच्चान्यद् दुरितं किञ्चित् तत्सर्वं हन्ति केशवः ॥ २५ ॥ पठतः शृण्वतः पुंसः पुस्तकं यजतो महत्। आग्नेयं श्रीपुराणं हि हेमन्ते यः शृणोति वै ॥ २६ ॥ प्रपूज्य गन्धपुष्पाद्यैरग्निष्टोमफलं लभेत् । शिशिरे पुण्डरीकस्य वसन्ते चाश्वमेधजम् ॥ २७॥ ग्रीष्मे तु वाजपेयस्य राजसूयस्य वर्षति । गोसहस्रस्य शरदि फलं तत्पठतो श्रुतौ ॥ २८ ॥ आग्नेयं हि पुराणं यो भक्त्याग्रे पठते हरेः । सोऽर्चयेच्च वसिष्ठेह ज्ञानयज्ञेन केशवम् ॥ २९ ॥ यस्याग्नेयं पुराणस्य पुस्तकं तस्य वै जयः । लिखितं पूजितं गेहे भुक्तिर्मुक्तिः करेऽस्ति हि ॥ ३० ॥ इति कालाग्निरूपेण गीतं मे हरिणा पुरा । आग्नेयं हि पुराणं वै ब्रह्मविद्याद्वयास्पदम् । विद्याद्वयं वसिष्ठेदं भक्तेभ्यः कथयिष्यसि ॥ ३१ ॥ वसिष्ठ उवाच– व्यासाग्नेयपुराणं ते रूपं विद्याद्वयात्मकम् । कथितं ब्रह्मणो विष्णोरग्निना कथितं यथा ॥ ३२॥ सार्धं देवैश्च मुनिभिर्मह्यं सर्वार्थदर्शकम् । पुराणमग्निना गीतमाग्नेयं ब्रह्मसम्मितम् ॥ ३३ ॥ यः पठेच्छृणुयाद् व्यास ! लिखेद्वा लेखयेदपि । श्रावयेत्पाठयेद्वाऽपि पूजयेद्धारयेदपि ॥ ३४॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्तकामो दिवम्व्रजेत् । लेखयित्वा पुराणं यो दद्याद् विप्रेभ्य उत्तमम् ॥ ३५॥ स ब्रह्मलोकमाप्नोति कुलानां शतमुद्धरेत्। एकं श्लोकं पठेद् यस्तु पापपङ्काद् विमुच्यते॥३६॥ तस्माद् व्यास ! सदा श्राव्यं शिष्येभ्यः सर्वदर्शनम्।

की पुस्तक रहती है, उसमें विघ्न बाधाओं, अनर्थों चोरों तथा शत्रुओं का भय नहीं होता है ।। २१ ।। जिस घर में अग्निपुराण रहता है वहाँ गर्भपात का भय, बालग्रहों का भय तथा पिशाचों आदि का भय नहीं होता है ।। २२ ।। अग्निपुराण का श्रवण करने वाला ब्राह्मण वेदज्ञ हो जाता है, क्षत्रिय पृथिवी का स्वामी (सम्राट) हो जाता है, वैश्य धनी हो जाता है तथा शूद्र निरोग हो जाता है ।। २३ ।। जो व्यक्ति भगवान् विष्णु में मन लगाकर समान दृष्टि रखते हुए प्रतिदिन ब्रह्मस्वरूप अग्निपुराण का पाठ अथवा श्रवण करता है उसके समस्त उपद्रव विनष्ट हो जाते हैं ।। २४।। जो मनुष्य अग्निपुराण का पाठ करता है, श्रवण करता है तथा पुस्तक की पूजा करता है, उसके भौम, दिव्य अन्तरिक्ष जन्य उपद्रवों को उसके दुःस्वप्नों को, अभिचार कर्मों को तथा अन्य समस्त पापों को भगवान् केशव विनष्ट कर देते हैं ।। २५ ।। जो मनुष्य हेमन्त ऋतु में अग्निपुराण का श्रवण उसकी चन्दन आदि से पूजन करके करता है वह अग्निष्टोम याग करने का फल प्राप्त करता है ।। २६ ।। शिशिर ऋतु में पुण्डरीक याग का तथा वसन्त ऋतु में अश्वमेध याग का फल प्राप्त होता है । ग्रीष्म ऋतु में इस पुराण का श्रवण करने से वाजपेय याग का तथा वर्षा ऋतु में राजसूय याग का फल प्राप्त होता है । शरद् ऋतु में अग्निपुराण का पाठ करने अथवा श्रवण करने से हजार गोदान करने का फल प्राप्त होता है ।। २८ ।। हे वसिष्ठ जो मनुष्य भगवान् श्रीहरि के सम्मुख बैठकर अग्निपुराण का भक्तिपूर्वक पाठ करता है वह मानों ज्ञानयोग के द्वारा उनकी अर्चा करता है ।। २९ ।। जिसके घर में लिखित अग्निपुराण के पुस्तक की पूजा की जाती है उसको विजय की प्राप्ति होती है । उसके हाथ में भोग तथा मोक्ष विद्यमान रहता है ।। ३० ।। इस बात को पूर्वकाल में श्रीहरि ने कालाग्नि रूप से स्वयं मुझे बतलाया था । यह अग्निपुराण दोनों ब्रह्मविद्या स्वरूप है ।। ३१ ।। हे वसिष्ठ इन-इन दोनों विद्याओं को तुम भक्तों के समक्ष बतलाना ।। ३१ ।। **वसिष्ठ जी ने कहा**– हे व्यास जी ! यह अग्निपुराण परा एवं अपरा दोनों विद्याओं से युक्त है । तथा समस्त विषयों का ज्ञान कराने वाला है, इस बात को भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा जी को तथा अग्निदेव ने सभी देवताओं के साथ मुझको जिस रूप में बतलाया उसी तरह से मैंने आपको बतलाया ।। ३२ ।। अग्निदेव के द्वारा उपदिष्ट यह अग्निपुराण वेद के समान है ।। ३३ ।। जो मनुष्य इस पुराण को सुनाता है अथवा पढ़वाता है, उसका पूजन कराता है तथा धारण करता है, उसकी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं, तथा समस्त पापों से रहित होकर वह स्वर्गलोक जाता है ।। ३४ ।। इस पुराण को लिखवाकर जो व्यक्ति इसे ब्राह्मणों को दान करता है, वह अपने सौ पीढ़ों के पुरुषों का उद्धार करके ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है । ३५ ।। जो व्यक्ति अग्निपुराण के एक भी श्लोक का पाठ करता है, वह पाप रूपी

शुकाद्यैर्मुनिभिः सार्द्धं श्रोतुकामैः पुराणकम् ॥ ३७ ॥ आग्नेयं पठितं ध्यातं शुभं स्यात् भुक्तिमुक्तिदम् । आग्नेयं तु नमस्तस्मै येन गीतं पुराणकम्॥३८॥ व्यास उवाच– **वसिष्ठेन पुरा गीतं सूतैतत्ते मयोदितम् । पराविद्याऽपराविद्या स्वरूपं परमं पदम् ॥ ३९ ॥ आग्नेयं दुर्लभं रूपं प्राप्यते भाग्यसंयुतैः । ध्यायन्तो ब्रह्म चाग्नेयं पुराणं हरिमागताः ॥ ४० ॥ विद्यार्थिनस्तथा विद्यां राज्यं राज्यार्थिनो गताः । अपुत्राः पुत्रिणः सन्ति नाश्रया आश्रयं गताः ॥ ४१ ॥ सौभाग्यार्थी च सौभाग्यं मोक्षं मोक्षार्थिनो गताः । लिखन्तो लेखयन्तश्च निष्पापाश्च श्रियं गताः ॥ ४२॥ शुकपैलमुखैः सूत आग्नेयन्तु पुराणकम्। रूपं चिन्तय याताऽसि भुक्तिं मुक्तिं न संशयः ॥ ४३ ॥ श्रावय त्वञ्च शिष्येभ्यो भक्तेभ्यश्च पुराणकम्।** सूत उवाच– **व्यासप्रसादादाग्नेयं पुराणं श्रुतमादरात् ॥ ४४ ॥ आग्नेयं ब्रह्मरूपं हि मुनयः शौनकादयः । भवन्तो नैमिषारण्ये यजन्तो हरिमीश्वरम्॥४५॥ तिष्ठन्तः श्रद्धया युक्तास्तस्माद्वः समुदीरितम् । अग्निना प्रोक्तमाग्नेयं पुराणं वेदसम्मितम् ॥ ४६ ॥ ब्रह्मविद्याद्वयोपेतं भुक्तिदं मुक्तिदं महत् । नास्मात्परतरः सारो नास्मात्परतरः सुहृत् ॥ ४७ ॥ नास्मात्परतरो ग्रन्थो नास्मात्परतरा गतिः । नास्मात्परतरं शास्त्रं नास्मात्परतरा श्रुतिः ॥ ४८ ॥ नास्मात्परतरं ज्ञानं नास्मात्परतरा स्मृतिः । नास्मात्परो ह्यागमोऽस्ति नास्माद् विद्या पराऽस्ति हि ॥ ४९ ॥ नास्मात्परः स्यात्सिद्धान्तो नास्मात्परममङ्गलम्। नास्मात्परोऽस्ति वेदान्तः पुराणम्परमन्विदम् ॥ ५० ॥ नास्मात्परतरं भूमौ विद्यते वस्तु दुर्लभम् । आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन् सर्वविद्याः प्रदर्शिताः॥५१॥ सर्वे मत्स्यावताराद्या गीतारामायणन्त्विह । हरिवंशो भारतञ्च नवसर्गाः प्रदर्शिताः ॥ ५२ ॥ आगमो वैष्णवो गीतः पूजादीक्षाप्रतिष्ठया। पवित्रारोहणादीनि**

पंक से रहित हो जाता है ।। ३६ ।। अतएव व्यास इस सर्वदर्शनसंग्रह रूपी पुराण को तुम्हें सुनने की इच्छा वाले शुकादि मुनियों के साथ अपने शिष्यों को सदा सुनाते रहना चाहिए ।। ३७।। अग्निपुराण का पाठ, चिन्तन अत्यन्त कल्याणप्रद तथा भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला है । इस पुराण का उपदेश करने वाले अग्निदेव को नमस्कार है ।। ३८ ।। **व्यास जी ने कहा–** वसिष्ठ जी ने इस पुराण को मुझे सुनाया उसे ही मैंने तुम्हें सुनाया है । यह पुराण पराविद्या एवं अपराविद्या का स्वरूप है । यह परम पद प्रदान करने वाला है ।। ३९ ।। आग्नेय पुराण परम दुर्लभ है । यह भाग्यवान् पुरुषों को ही प्राप्त होता है । इस ब्रह्म स्वरूप अग्निपुराण का चिन्तन करते रहने से ही श्रीहरि की प्राप्ति हो जाती है ।। ४० ।। इसका चिन्तन करके विद्या चाहने वालों ने विद्या, राज्य चाहने वालों ने राज्य, पुत्रहीनों ने पुत्र तथा आश्रयहीनों ने आश्रय प्राप्त किया ।। ४१ ।। सौभाग्य चाहने वालों ने सौभाग्य तथा मोक्ष चाहने वालों ने मोक्ष प्राप्त किया। इस पुराण को लिखने तथा लिखवाने वाले पाप रहित होकर लक्ष्मी को प्राप्त किए ।। ४२ ।। सूत ! तुम शुक एवं पैल आदि मुनियों के साथ अग्निपुराण का चिन्तन करो निश्चित रूप से तुम्हें भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति होगी ।। ४३ ।। तुम अपने शिष्यों तथा भक्तों को यह पुराण सुनाओ ।। ४३ ।। **सूत जी ने कहा–** हे शौनक आदि मुनियों व्यास जी की कृपा से मैंने इस पुराण को आदरपूर्वक सुना है।।४४।। आप लोग इस नैमिषारण्य में रहकर श्रद्धापूर्वक श्रीहरि की आराधना करते है अतएव मैंने आप लोगों को यह पुराण सुनाया है ।। ४५ ।। अग्निदेव के द्वारा उपदिष्ट यह पुराण वेद के समान है ।। ४६ ।। यह परा एवं अपरा दोनों विद्याओं से युक्त है तथा भोग एवं मोक्ष को प्रदान करने वाला है ।। यह सर्वोत्तम सार एवं सर्वोत्तम मित्र है ।। ४७।। इससे बढ़कर कोई ग्रन्थ नहीं इससे बढ़कर कोई गति नहीं है । इससे बढ़कर कोई शास्त्र नहीं है तथा इससे बढ़कर कोई श्रुति नहीं है ।। ४८ ।। इससे बढ़कर कोई ज्ञान नहीं तथा इससे बढ़कर कोई धर्मशास्त्र नहीं है । इससे बढ़कर कोई आगम नहीं है तथा इससे बढ़कर कोई विद्या नहीं है ।। ४९ ।। इससे बढ़कर कोई न तो सिद्धान्त है और न इससे बढ़कर कोई मंगल है । इससे बढ़कर कोई वेदान्त नहीं है, यही सर्वोत्तम पुराण है ।। ५० ।। पृथिवी पर इससे बढ़कर कोई भी दुर्लभ वस्तु नहीं है । इस अग्निपुराण में सभी विद्याओं का उपदेश किया गया है ।। ५१।। इसमें समस्त मत्स्य आदि अवतारों तथा गीता एवं रामायण का वर्णन है । हरिवंश एवं महाभारत का भी वर्णन है । इसमें नव प्रकार की सृष्टियों का भी वर्णन है ।। ५२ ।। इसमें वैष्णवागम

प्रतिमालक्षणादिकम् ॥ ५३ ॥ प्रासादलक्षणाद्यञ्च मन्त्रा वै भुक्तिमुक्तिदाः । शैवागमस्तदर्थश्च शात्तेयः सौर एव च ॥ ५४ ॥ मण्डलानि च वास्तुश्च मन्त्राणि विविधानि च । प्रतिसर्गश्चानुगीतो ब्रह्माण्डपरिमण्डलम् ॥ ५५ ॥ गीतो भुवनकोषश्च द्वीपवर्षादिनिमग्नगाः । गयागङ्गाप्रयागादि तीर्थमाहात्म्यमीरितम् ॥ ५६ ॥ ज्योतिश्चक्रंज्योतिषादि गीतो युद्धजयार्णवः। मन्वन्तरादयो गीताः धर्मा वर्णादिकस्य च ॥ ५७ ॥ अशौचं द्रव्यशुद्धिश्च प्रायश्चित्तं प्रदर्शितम् । राजधर्मा दानधर्मा व्रतानि विविधानि च ॥ ५८ ॥ व्यवहाराः शान्तयश्च ऋग्वेदादिविधानकम् । सूर्यवंशः सोमवंशो धनुर्वेदश्च वैद्यकम् ॥ ५९ ॥ गन्धर्ववेदोऽर्थशास्त्रं मीमांसा न्यायविस्तरः । पुराणसंख्या माहात्म्यं छन्दो व्याकरणं स्मृतम् ॥ ६० ॥ अलंङ्कारो निघण्टुश्च शिक्षाकल्प इहोदितः। नैमित्तिको प्राकृतिको लय आत्यन्तिकः स्मृतः ॥ ६१ ॥ वेदान्तं ब्रह्मविज्ञानं योगो ह्यष्टाङ्ग ईरितः । स्तोत्रं पुराणमाहात्म्यं विद्या ह्यष्टादश स्मृताः॥६२॥ ऋग्वेदाद्या परा ह्यत्र पराविद्याक्षरम्परम् । सप्रपञ्चं निष्प्रपञ्चं ब्रह्मणो रूपमीरितम् ॥ ६३ ॥ इदं पञ्चदशसाहस्रं शतकोटिप्रविस्तरम्। देवलोके दैवतैश्च पुराणं पठ्यते सदा ॥ ६४ ॥ लोकानां हितकामेन संक्षिप्योद्गीतमग्निना । सर्वं ब्रह्मेति जानीध्वं मुनयः शौनकादयः ॥ ६५ ॥ श्रृणुयाच्छ्रावयेद्वाऽपि यः पठेत् पाठयेदपि । लिखेल्लेखापयेद्वाऽपि पूजयेत् कीर्त्तयेदपि ॥ ६६ ॥ पुराणपाठकञ्चैव पूजयेत्प्रयतो नृप । गोभूहिरण्यदानाद्यैर्वस्त्रालङ्कारतर्पणैः ॥ ६७ ॥ तं सम्पूज्य लभेच्चैव पुराणश्रवणात्फलम् । पुराणान्ते च वै कुर्यादवश्यं द्विजभोजनम् ॥ ६८ ॥ निर्मलः प्राप्तसर्वार्थः सकुलः स्वर्गमाप्नुयात् । शरयन्त्रं पुस्तकाय सूत्रं वै पत्रसञ्चयम् ॥ ६९ ॥ पट्टिकाबन्धवस्त्रादि

का भी वर्णन है। इसमें देवताओं की पूजा दीक्षा तथा प्रतिष्ठा का वर्णन है । पवित्रारोहण आदि तथा प्रतिमाओं के लक्षण आदि का वर्णन है ।। ५३ ।। मन्दिरों के स्वरूप का वर्णन है । इसमें भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले मन्त्रों का भी वर्णन है । शैव आगम, उसके प्रयोजन शाक्त आगम तथा सौर आगम का वर्णन है ।। ५४ ।। इसमें मण्डल, वास्तु तथा अनेक प्रकार के मन्त्रों का वर्णन है । इसमें प्रतिसर्ग का वर्णन है । ब्रह्माण्डमण्डल तथा भुवनकोष का वर्णन है ।। ५५ ।। इसमें भुवनकोष, द्वीप वर्ष एवं नदियों का वर्णन है । इसें गंगा, गया तथा प्रयाग आदि तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन है । इसमें ज्योतिश्चक्र (नक्षत्रमण्डल) ज्योतिष् आदि विद्या तथा युद्ध जयार्णव का वर्णन है । इसमें मन्वन्तर तथा वर्णों एवं आश्रमों के धर्मों का वर्णन किया गया है ।। ५७।। इसमें अशौच, द्रव्यशुद्धि तथा प्रायश्चित आदि का भी निरूपण किया गया है । इसमें राजधर्म, दानधर्म तथा अनेक प्रकार के व्रतों का निरूपण किया गया है ।। ५८ ।। व्यवहार, शान्ति तथा ऋग्वेद आदि के विधानों का इसमें वर्णन किया गया है । सूर्यवंश, चन्द्रवंश, धनुर्वेद तथा आयुर्वेद का इसमें वर्णन किया गया है । गान्धर्ववेद, अर्थशास्त्र, मीमांसा तथा न्यायशास्त्र का इसमें वर्णन है । पुराणों की संख्या, उनका माहात्म्य तथा छन्द एवं व्याकरणशास्त्र का भी इसमें निरूपण किया गया है ।। ६० ।। इस पुराण में अलंकार, निघण्टु (कोष) शिक्षाशास्त्र तथा कल्पशास्त्र का वर्णन किया गया है । इसमें नैमित्तिक, प्राकृतिक एवं आत्यन्तिक इन तीनों लयों का वर्णन है ।। ६१ ।। इसमें वेदान्त, ब्रह्मज्ञान तथा अष्टाङ्गयोग का वर्णन है । स्तोत्र, पुराणों का माहात्म्य तथा अठारह विद्याओं का इसमें निरूपण किया गया है ।। ६२ ।। ऋग्वेद आदि अपराविद्या, पराविद्या एवं परम अक्षरतत्त्व का भी निरूपण किया गया है । इसमें ब्रह्म के सविशेष तथा निर्विशेष रूप का निरूपण किया गया है ।। ६३ ।। इस लोक में इस पुराण में पन्द्रह हजार श्लोक हैं तथा देवलोक में इसमें एक अरब श्लोक हैं । देवता सर्वदा अग्निपुराण का पाठ किया करते हैं।।६४।। संसारी जीवों का कल्याण करने के लिए अग्निदेव ने इसका संक्षेप करके उपदेश किया है । हे शौनक आदि मुनियों सम्पूर्ण पुराण को ब्रह्मात्मक जानो ।। ६५ ।। जो इसे सुनाता या सुनता है, पढ़ता या पढ़ाता है, लिखता या लिखवाता है तथा इसका पूजन एवं कीर्तन करता है, उस राजा को सावधानी पूर्वक पुराण का पाठ करने वालों का पूजन करना चाहिए।।६६।। वक्ता को गौ, भूमि तथा सुवर्ण आदि का दान देकर वस्त्र एवं आभूषण से तृप्त करके जो मनुष्य पुराण का श्रवण करता है, वह पुराण श्रवण का पूरा-पूरा फल प्राप्त करता है।।६७।। पुराण पूरा हो जाने पर ब्राह्मण भोजन अवश्य कराना चाहिए । ऐसा करने वाला मनुष्य समस्त पापों से रहित होकर समस्त कामनाओं को प्राप्त करके अपने वंश के साथ स्वर्गलोक

दद्याद्यः स्वर्गमाप्नुयात् । यो दद्याद् ब्रह्मलोकी स्यात्पुस्तकं यस्य वै गृहे ॥ ७० ॥ तस्योत्पातभयं नास्ति भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् । यूयं स्मरत आग्नेयं पुराणं रूपमैश्वरम् । सूतो गतः पूजितस्तैः शौनकाद्या हरिं ययुः ॥ ७१ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पुराणमाहात्म्यं नाम त्र्यशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३८३ ॥

॥ समाप्तमिदमाग्नेयम्महापुराणम् ॥

को जाता है ।। ६८ ।। जो मनुष्य इस पुस्तक को रखने के लिए पेटी, सूत, पन्ना, काठ की पट्टी तथा उसे बाँधने के लिए वस्त्र आदि देता है वह स्वर्गलोक को प्राप्त करता है ।। ६९ ।। जो अग्निपुराण का दान करता है वह ब्रह्मलोक में जाता है । जिसके घर में अग्निपुराण का पुस्तक रहता है उसमें घर में उत्पात का कोई भय नहीं रहता है । वह भोग तथा मोक्ष को प्राप्त करता है ।। ७० ।। आपलोग इस पुराण को ईश्वरस्वरूप समझकर इसका स्मरण करें । इसके पश्चात् शौनकादि महर्षियों द्वारा पूजित होकर सूत जी चले गए और शौनक आदि महर्षि श्रीहरि को प्राप्त किए ।। ७१ ।।

इस तरह से आदिमहापुराण अग्निपुराण का अग्निपुराण माहात्म्य वर्णन नामक तीन सौ तीरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३८३ ॥

।। इस तरह अग्निपुराण समाप्त हुआ ।।